

THE
MAHABHARATA

SARAT CHANDRA VYASA

Translated

and

with a commentary

EDITED BY

SARAT CHANDRA SOM

10, 1/2, L.B. 1/2, STREET, CALCUTTA

(SECOND EDITION)

1907.

Price Rs. 12

(All rights reserved to Publisher)

1-2

विषय	पृष्ठा	विषय	पृष्ठा
टोपटोकी इन्दीका आभासादि	३०१	अश्विनका शुभदाका देखना और शुभदाको	३०१
श्रीकृष्णका पाण्डवोंके निकट प्रीतिके वना	३०२	अश्विनके विषयमें श्रीकृष्णको अनाज	३०२
शानाभीको पाण्डवोंका उनाना आनन्द	३०३	शुभदा और दुर्गतिजन्मका दुर्गमे	३०३
श्रीमा	३०४	मिथिला अश्विन और	३०४
दुर्गायमादिकका आभासादि	३०५	श्रीकृष्णके अनाजमें पाण्डवोंके दासका आनन्द	३०५
इको और कोरना, विदुरके इका दुर्गदाइकी	३०६	दुर्गके अश्विनका शुभदा, शुभदाके शुभ	३०६
टोपटोकी आभासादि	३०७	विषय और दुर्ग इन्दीका कोरे नाता	३०७
श्रीमा	३०८	कृष्ण वनवासी और	३०८
शुभदायुके निकट दुर्ग वनको अनाज	३०९	निकट पाण्डवोंका प्रीतिके वना	३०९
अश्विनको अनाज	३१०	अश्विनके शुभदा वन	३१०
श्रीमाको अनाज	३११	अश्विनका अश्विन शिवा, शिवा	३११
श्रीमाका और कर्णका नादगुना	३१२	श्रीमाके शुभदा शुभदा कोरे वना	३१२
विदुरको अनाज	३१३	वनको अश्विन शिवा	३१३
पाण्डवोंको आनन्द और	३१४	दुर्गदाइका अश्विन आनन्द	३१४
आभासादि विदुरका पाण्डवनामके नाता	३१५	कृष्ण अश्विनका पाण्डवोंके नादगुना विषय	३१५
पाण्डवोंका अश्विननामके अनाज	३१६	शुभदा आनन्दके शुभदा अश्विनका अनाज और	३१६
आभासादि पाण्डवोंका अश्विन	३१७	पाण्डव वन वनवासीके विषय कृष्ण अश्विनके	३१७
दुर्गायमादि अश्विन	३१८	अश्विनका अनाज	३१८
आनन्द	३१९	शाना अश्विनका अश्विन शिवा अश्विन और	३१९
शुभदायुके कथा	३२०	दुर्गायमाके दास दशको अनाज	३२०
शुभदायुके नवदा और	३२१	अश्विनके दुर्गका और वनवासीके आभासादि	३२१
शुभदायुके दिवित्रय	३२२	पाण्डव वन वनवासीके अनाज	३२२
मिथिलाका उपति	३२३	अश्विनके विषयमें अश्विनका वनवासी और	३२३
मिथिलाके निमित्त शुभदायुके अश्विन	३२४	अश्विनके अश्विन अश्विनका शुभदा नवदासी अश्विन	३२४
टोपटोके विषयमें निषम काला	३२५	अनाज	३२५
अश्विनके दारा ब्राह्मणको गोरक्षा	३२६	अश्विन और वनवासीके दारा कृष्ण अश्विनका	३२६
अश्विनका वनवासी और वनवासी	३२७	शुभदा योंग उपकरण प्राप्त श्रीमा	३२७
अश्विनका गदादारमें निवास, अश्विनको	३२८	अश्विनके दारा पाण्डव वनका अनाज	३२८
आनन्द करके उल्लासका पतावमें प्रथम और	३२९	पाण्डव वन वनवासीके भागनेवाले प्राप्ति-	३२९
दोनोंका सङ्गम	३३०	यीका विनाश	३३०
अश्विनका अनेक प्रकारके तीर्थ देखना	३३१	इन्द्रको आभासादि पाण्डवोंके दारा अनाजको वनवा	३३१
अश्विन और चित्राङ्गदाका विवाह	३३२	और इन्द्रके दारा अश्विनके सङ्गको रक्षा	३३२
अश्विनके दारा पञ्च ग्राहमोचन	३३३	इन्द्रके सङ्ग अश्विनका शुभदा	३३३
गरी तीर्थका विवरण	३३४	इन्द्रादि देवताओंको पराजय, अश्विनको	३३४
श्रीकृष्णके सङ्ग अश्विनका दारकाई जाना	३३५	रोग शान्ति	३३५

विषय	पृष्ठा	विषय	पृष्ठा
अश्वमेध द्वारा मद्र दानवकी रक्षा और	...	गङ्गा विषयमें कृष्णके पास युधिष्ठिरका प्रश्न	२०३
मन्दपाल शत्रुको कत्त	...	शत्रुकाके द्वारा जरासन्धका परामर्श और	...
अश्वमेध निरुद्ध इन्द्रका विजय	...	अश्वमेध पराजित	२०४
करना अश्वमेध	...	जरासन्ध के साथ विषयमें युधिष्ठिरका अनु-	...
आदिशत्रुकी समाधि	...	काह, अश्वमेध = काह और शत्रुकाकी परा-	...
		जय	२०५

समाधि-२ का सारांश :

युधिष्ठिरकी समाधि जरासन्ध (जय) के द्वारा की	...
बाधा पाके मद्र दानवके द्वारा समाधि पर	...
माण तथा जरासन्ध विरुद्ध जरासन्ध	...
शत्रुकाकी पराजय जाना	२०६

विन्द सरीसृपसे मणिमय भाग्य, गङ्गा और	...
गङ्गा जलके अन्तर मयदानवके द्वारा समा	...
तेयार जाना	२०७

युधिष्ठिरका समाधि जाना और समाधिप-	...
नाम वर्णन	२०८

युधिष्ठिरका समाधि नारद मुनिका आना	...
और उनके द्वारा राज-प्रधान विधि मन्त्रोंमें	...
विविध प्रश्न	२०९

नारद मुनिके समीप इन्द्र, यम, वरुण,	...
कुवेर और ब्रह्माका समाधि विवरण सुननेके	...
लिये युधिष्ठिरका समिन्नाय देखके नारद	...
मुनिवे द्वारा उक्त समाधिपका वर्णन	२१०

राजा हरिश्चन्द्रके राजसूय यज्ञका विषय	...
वर्णन और युधिष्ठिरका राजसूय यज्ञ करनेका	...
उपदेश करके नारद मुनिका हारकापुरीमें	...
जाना	२१०

राजसूय यज्ञ करनेके निमित्त सुहृदोंके सङ्ग	...
युधिष्ठिरकी सलाह और उनकी सुनीत देख-	...
कर प्रजा समूहकी उनमें अनुरक्ति	२११

युधिष्ठिरका भाद्यों तथा मान्त्रियोंसे यज्ञ	...
विषयमें परामर्श	२१२

युधिष्ठिरका श्रीकृष्णके पास दूत भेजना	२१३
इन्द्रप्रस्थमें श्रीकृष्णका पुनरागमन राजसूय	...

जरासन्ध के साथ अश्वमेध परामर्श	...
गङ्गा विषयमें युधिष्ठिरका जलाह मद्र और	...
अश्वमेध परामर्श	२०८
शत्रुकाकी परामर्श	...

जरासन्धके विषयमें युधिष्ठिरका प्रश्न और	...
कृष्णके द्वारा जरासन्ध के पिता राजा वृहद्रथका	...
मुनीन्द्र वर्णन	२०९
जरासन्धकी आत्म-परिचय	२१०

जरासन्धका आत्मपरिचय और अश्वमेधकी	...
सुनिध नारा जरासन्धके मविष्य काव्योका	...
वर्णन	२११

जरासन्धका राज्याभिषेक और श्रीकृष्णके	...
सहित शत्रुता	२१२

जरासन्धके विषयमें कृष्णकी परामर्श	...
रुनके युधिष्ठिरकी उक्ति	२१३

कृष्णके साथ भीमार्जुनका संग्रहपुरमें जाना	...
---	-----

जरासन्धके सङ्ग श्रीकृष्ण और भीमार्जुनको	...
मुलाकात तथा आत्मात्मा	२१५

जरासन्ध और कृष्णकी उक्ति प्रत्युक्ति	२१६
--------------------------------------	-----

श्रीकृष्णका युद्ध करनेके लिये जरासन्धका	...
ललकारना और लड़नेके विषयमें जरासन्धकी	...
सम्भाति	२१७

भीमसेनके सङ्ग युद्ध करनेके लिये जरास-	...
न्ध की इच्छा और उन दोनोंका युद्ध	२१८

जरासन्धका वध	२१९
--------------	-----

कैदी राजाओंकी जरासन्धके कारागारसे	...
कुटकारा मिलना	२२०

जरासन्धपुत्र सहदेवका	...
पर कृष्णके द्वारा अभिविज्ञा होना	...

विषय	पृष्ठा
द्रौपदीकी कुन्तीका आसीर्वाह ...	३०५
श्रीकृष्णका पाण्डवोंके निकट यौतुक भेजना	
राजाओंकी पाण्डवोंका वृत्तान्त मालूम	
होना	३०५

दुर्योधनादिका आक्षेप और हस्तिनापुरकी और लौटना, विदुरके द्वारा धृतराष्ट्रकी द्रौपदीके स्वयम्बरका सम्वाद मालूम	
होना	३०६
धृतराष्ट्रके निकट दुर्योधनकी सलाह	३०७
कर्णकी सम्मति	३०८
भीष्मकी सलाह	३०९
द्रोणाचार्य और कर्णका वादानुवाद	३१०
विदुरकी सलाह	३११

पाण्डवोंकी लानेके लिये धृतराष्ट्रकी आज्ञासे विदुरका पाञ्चालनगरमें जाना	३१२
--	-----

पाण्डवोंका हस्तिनापुरमें आगमन और आधा राज्य पाके खाण्डवप्रस्थमें बास	३१४
---	-----

युधिष्ठिरके समीप नारदमुनिका आगमन	३१६
---	-----

सुन्द उपसुन्दकी कथा	३१७
----------------------------	-----

सुन्द उपसुन्दकी तपस्या और वरप्राप्ति	३१७
सुन्द उपसुन्दकी दिग्विजय	३१८
तिलोत्तमाकी उत्पत्ति	३१९

तिलोत्तमाके निमित्त सुन्द उपसुन्दकी मृत्यु	३२०
द्रौपदीके विषयमें नियम करना	३२१

अर्जुनके द्वारा ब्राह्मणकी गोरक्षा	३२२
अर्जुनका ब्रह्मचर्य और वनवास	३२३

अर्जुनका गङ्गाहारमें निवास, अर्जुनकी आकर्षण करके उलूपीका पतालमें प्रवेश और दोनोंका सङ्गम	३२४
---	-----

अर्जुनका अनेक प्रकारके तीर्थ देखना	३२४
अर्जुन और चित्राङ्गदाका विवाह	३२५

अर्जुनके द्वारा पञ्च ग्राहभोचन	३२६
नारी तीर्थका विवरण	३२६

श्रीकृष्णके सङ्ग अर्जुनकी हारकामें जाना	३२७
---	-----

विषय	पृष्ठा
अर्जुनका सुभद्राकी देखना और सुभद्राकी हरनेके विषयमें श्रीकृष्णकी सलाह	३२८
सुभद्रा हरण और यदुवंशियोंका युद्धके निमित्त सज्जित होना	३२९

श्रीकृष्णके अनुरोधसे यादवोंके द्वारा सान्त्वना पूर्वक अर्जुनको बुलाना, सुभद्राके सङ्ग उनका विवाह और इन्द्र प्रस्थमें लौटके जाना	३३०
---	-----

कृष्ण बलराम और यादवोंका इन्द्रप्रस्थमें जाकर पाण्डवोंको यौतुक देना	३३१
---	-----

अभिमन्युका जन्म	३३२
अभिमन्युकी अस्त्र शिक्षा, पाँच पाण्डवोंसे द्रौपदीके गर्भमें पाँच पुत्रोंकी उत्पत्ति और उनकी अस्त्र शिक्षा	३३३

युधिष्ठिरका राज्य शासन	३३३
कृष्ण अर्जुनका यमुनाके तटपर बिहार	३३४

भूखे ब्राह्मणके वेषमें अग्निका आना और खाण्डव वन जलानेके लिये कृष्ण अर्जुनसे सहायता मांगना	३३४
--	-----

राजा श्वेतकि का यज्ञानुष्ठान तपस्या और दुर्वासाके द्वारा यज्ञकी समाप्ति	३३५
--	-----

अग्निकी दुर्बलता और ब्रह्माकी आज्ञासे खाण्डव वन जलानेका उद्योग	३३७
---	-----

अग्निके विषयमें ब्रह्माका वचन और अग्निके समीप अर्जुनका युद्धके उपयोगी अस्त्र मांगना	३३७
--	-----

अग्नि और वरुणके द्वारा कृष्ण अर्जुनको युद्धके योग्य उपकरण प्राप्त होना	३३८
---	-----

अग्निके द्वारा खाण्डव वनका जलना	३३९
खाण्डववन जलानेपर भागनेवाले प्राणि-योंका विनाश	३४०

इन्द्रकी आज्ञासे बादलोंके द्वारा जलकौ वर्षा और इन्द्रके द्वारा अश्वसेन सर्पको रक्षा	३४०
इन्द्रके सङ्ग अर्जुनका युद्ध	३४१

इन्द्रादि देवताओंकी पराजय, अग्निकी रोग शान्ति	३४३
--	-----

विषय	पृष्ठा
अर्जुनके द्वारा मय दानवकी रक्षा और	
मन्दपाल ऋषिकी कथा ...	३४४
अर्जुनके निकट इन्द्रका दिव्यास्त्र प्रदान	
करना अङ्गीकार ...	३५०
भादिपर्वकी समाप्ति ...	३५१

सभापर्वका सूचीपत्र ।

युधिष्ठिरकी सभा बनानेके लिये श्रीकृष्णकी आज्ञा पाके मय दानवके द्वारा सभाका परि-	
माण तथा उसका चित्र बनाना ...	३५३
श्रीकृष्णका द्वारकामें जाना ...	३५४

बिन्दु सरोवरसे मणिमय भाण्ड, गदा और शंख लानेके अनन्तर मयदानवके द्वारा सभा तैयार होनी ...	३५६
---	-----

युधिष्ठिरका सभामें जाना और सभासदोंके नाम वर्णन ...	३५७
--	-----

युधिष्ठिरकी सभामें नारद मुनिका आना और उनके द्वारा राज्यपालन विधि सम्यन्धमें विविध प्रश्न ...	३५८
--	-----

नारद मुनिके समीप इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर और ब्रह्माकी सभाका विवरण सुननेके लिये युधिष्ठिरकी अभिज्ञासे देखके नारद मुनिके द्वारा उक्त सभाओंका वर्णन ...	३६३
--	-----

राजा हरिश्चन्द्रके राजसूय यज्ञका विषय वर्णन और युधिष्ठिरको राजसूय यज्ञ करनेका उपदेश करके नारद मुनिका द्वारकापुरीमें जाना ...	३७०
--	-----

राजसूय यज्ञ करनेके निमित्त सहृदोंके सङ्ग युधिष्ठिरकी सभाह और उनकी सुनीत देखकर प्रजा समूहकी उनमें अनुरक्ति ...	३७१
---	-----

युधिष्ठिरका भाइयों तथा मान्त्रियोंसे यज्ञ विषयमें परामर्श ...	३७२
---	-----

युधिष्ठिरका श्रीकृष्णके पास दूत भेजना ...	३७३
---	-----

इन्द्रप्रस्थमें श्रीकृष्णका पुनरागमन राजसूय	
---	--

विषय	पृष्ठा
यज्ञके विषयमें कृष्णके पास युधिष्ठिरका प्रश्न ३७३	
श्रीकृष्णके द्वारा जरासन्धका प्रभाव और अत्याचार वर्णन ...	३७४
जरासन्धके बध विषयमें युधिष्ठिरका अनु-	
त्साह, भीमका उत्साह और श्रीकृष्णकी परा-	
मर्श ...	३७७

जरासन्ध बध असम्भव समझके राजसूय यज्ञके विषयमें युधिष्ठिरका उत्साह भङ्ग और अर्जुनका उत्साह ...	३७८
श्रीकृष्णकी परामर्श ...	३७९

जरासन्धके विषयमें युधिष्ठिरका प्रश्न और कृष्णके द्वारा जरासन्धके पिता राजा बृहद्रथका वृत्तान्त वर्णन ...	३८०
जरासन्धकी आत्म-परिचय ...	३८१

जरासन्धका नामकरण और चण्डकीर्शक मुनिके द्वारा जरासन्धके भविष्य काथ्योंका वर्णन ...	३८१
---	-----

जरासन्धका राज्याभिषेक और श्रीकृष्णके सहित शत्रुता ...	३८२
---	-----

जरासन्धबध विषयमें कृष्णकी परामर्श सुनके युधिष्ठिरकी उत्ति ...	३८३
---	-----

कृष्णके साथ भीमार्जुनका मगधपुरमें जाना ..	३८४
---	-----

जरासन्धके सङ्ग श्रीकृष्ण और भीमार्जुनको मुलाकात तथा वार्तालाप ...	३८५
---	-----

जरासन्ध और कृष्णकी उत्ति प्रत्युत्ति ...	३८६
--	-----

श्रीकृष्णका युद्ध करनेके लिये जरासन्धकी ललकारना और लड़नेके विषयमें जरासन्धकी सम्मति ...	३८७
---	-----

भीमसेनके सङ्ग युद्ध करनेके लिये जरासन्ध की इच्छा और उन दोनोंका युद्ध ...	३८८
--	-----

जरासन्धका बध ...	३८९
------------------	-----

कैदी राजाओंको जरासन्धके कारागारसे कुटकारा मिलना ...	३९०
---	-----

जरासन्धपुत्र सहदेवका मगधदेशके राज्य-पर कृष्णके द्वारा अभिषिक्त होना ...	३९१
---	-----

विषय	पृष्ठा
भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेवकी दिग्विजयका संक्षेप विवरण ...	३६१
अर्जुनकी उत्तर दिशामें दिग्विजय	३६२
भीमसेनकी पूर्व दिशामें दिग्विजय	३६४
पश्चिम दिशामें नकुलकी दिग्विजय	३६८
युधिष्ठिरका राजसूय यज्ञके लिये अनुष्ठान	३६९
इन्द्रप्रस्थमें श्रीकृष्णका पुनर्वार आगमन	३७०
राजा युधिष्ठिरकी सभामें निमन्त्रित राजाओंका आना और भीष्म द्रोण प्रभृतिका आगमन तथा उनका सत्कार ...	४०१
ऋषियोंका तर्कवितर्क ...	४०३
भीष्मकी आज्ञामें श्रीकृष्णकी पहली अर्घदान और श्रीकृष्णके अर्घदान विषयमें शिशुपालका तर्क ...	४०४
शिशुपालका सभासे बाहिर होना, शिशुपालसे राजा युधिष्ठिरका विनययुक्त वचन और भीष्मके द्वारा श्रीकृष्णकी महिमा वर्णन ...	४०५
यज्ञविनाशके निमित्त राजाओंकी परामर्श	४०६
भीष्मके द्वारा राजाओंकी निन्दा और युधिष्ठिरको धीरज प्रदान ...	४०७
शिशुपालके द्वारा भीष्म और कृष्णकी निन्दा तथा बूढ़े हंसकी कथा ...	४०८
कृष्णकी निन्दा सुनके भीमसेनका क्रोध करना ...	४०९
भीष्मके द्वारा शिशुपालका जन्म वृत्तान्त वर्णन ...	४१०
भीष्मके विषयमें शिशुपालके कठोर वचन	४११
भीष्मके विषयमें राजाओंका दुर्वाच्य	४१२
शिशुपालका कृष्णको युद्धके लिये ललकारना और उसके विषयमें कृष्णकी उत्ति	४१३
श्रीकृष्णके द्वारा शिशुपालका वध	४१४
युधिष्ठिरको सभामें घूमते हुए दुर्योधनका भ्रमयुक्त होना ...	४१५
राजा दुर्योधनकी जलमें गिरते देखकर	४१६

विषय	पृष्ठा
भीम, अर्जुन तथा नकुल सहदेवका हसना और पाण्डवोंका ऐश्वर्य देखके दुर्योधनका सन्तापित होना ...	४१५
शकुनिके सङ्ग दुर्योधनकी परामर्श	४१६
दुर्योधनके समीप शकुनिके द्वारा जूआ खेलनेकी परामर्श ...	४१७
धृतराष्ट्रके निकट दुर्योधनका दुःख वर्णन	४१८
द्यूतसभा बनानेके लिये धृतराष्ट्रकी आज्ञा	४१९
धृतराष्ट्र और विदुरकी वार्त्ता शाय ...	४२०
धृतराष्ट्रके द्वारा दुर्योधनके समीप जूएके दोष वर्णन और निज दुःख सुनानेके क्लेशसे दुर्योधनके द्वारा पाण्डवोंका ऐश्वर्य वर्णन	४२०
दुर्योधनके विषयमें धृतराष्ट्रका उपदेश	४२५
पाण्डवोंका धन हरनेके लिये दुर्योधनकी अत्यन्त अभिलाष ...	४२६
जूआ खेलनेके विषयमें शकुनिका उत्साह	४२७
बादानुवादके अनन्तर धृतराष्ट्रका उस विषयकी अनुमोदन करना ...	४२८
युधिष्ठिरकी लीवा लानेके लिये विदुरका इन्द्र प्रस्थमें जाना ...	४२८
चौसड़ खेलनेके लिये युधिष्ठिरका हास्तिनापुरमें आना ...	४२९
चौसड़ खेलनेके विषयमें शकुनि और युधिष्ठिरकी बातें ...	४३०
जूएकी खेलमें बाजी लगनी और द्यूतक्रीड़ा आरम्भ ...	४३१
युधिष्ठिरकी जूएमें पराजय, धृतराष्ट्रके विषयमें विदुरका उपदेश ...	४३३
दुर्योधनके द्वारा विदुरकी निन्दा	४३४
युधिष्ठिरका चारों भाइयोंकी जूएकी बाजीमें हारना ...	४३५
निज शरीर और द्रौपदीकी बाजीमें लगाकर युधिष्ठिरकी पराजय ...	४३७
द्रौपदीकी लानेके लिये विदुरके द्वारा दुर्योधनकी आज्ञा अस्वीकार ...	४३८

विषय	पृष्ठा
द्रौपदीको सभामें लानेके विषयमें आज्ञा- वाचीकी अपारगता देखकर द्रुपदका द्रौप- दीको केश पकड़के सभामें लेआना ४४०	
द्रौपदीका सभामें विलाप और प्रश्न ४४१	
भीमसेनका युधिष्ठिरके विषयमें क्रुद्ध होना और विकर्णकी वक्तृता ... ४४१	
द्रौपदीके विषयमें कर्णकी वक्तृता ४४२	
द्रुपदका द्रौपदीका वस्त्र खींचा जाना, द्रौपदीका कृष्णको स्मरण करना तथा कृष्णके प्रभावसे द्रौपदीका वस्त्र अच्य होना और द्रुपदका हृदयका लोह पीनेके लिये भीमसेनकी प्रतिज्ञा ... ४४२	
सभासदोंके द्वारा पुत्रसहित धृतराष्ट्रकी निन्दा, विदुरकी वक्तृता तथा उनके द्वारा प्रह्लाद और सुधन्वाका सम्वाद वर्णन ४४३	
द्रौपदीका विलाप तथा प्रश्न सुननेके अनन्तर भीष्मकी वक्तृता ... ४४४	
दुर्योधनकी वक्तृता और सभासदोंके द्वारा उसकी प्रशंसा, भीष्मका वचन और कर्णकी वक्तृता ... ४४५	
भीमसेनका क्रुद्ध होना, द्रौपदीको दुर्यो- धनका वाईं जङ्घा दिखाना और उसकी जङ्घा तोड़नेके लिये भीमसेनकी प्रतिज्ञा तथा विदु- रका वचन ... ४४६	
धृतराष्ट्रके द्वारा द्रौपदीको वर मिलना ४४७	
द्रौपदीके द्वारा पाण्डवोंका दासभाव छुटना, कर्णका वचन सुनके भीमसेनका क्रोध करना और अर्जुन तथा युधिष्ठिरके द्वारा शान्त होना ... ४४८	
धृतराष्ट्रकी आज्ञासे अपना धन और राज्य पाक पाण्डवोंका इन्द्रप्रस्थमें जाना ४४९	
धृतराष्ट्रके समीप दुर्योधनको फिर जूआ खेलनेके निमित्त प्रार्थना, पुनर्वारजूप खेलनेके लिये धृतराष्ट्रकी आज्ञा, दुर्योधनकी त्यागनेके निमित्त धृतराष्ट्रके समीप गान्धारीकी सम्मति ..	

विषय	पृष्ठा
प्रतिकामी सूतके द्वारा फिर जूआ खेल- नेके लिये युधिष्ठिरको बुलाना, ... ४५०	
बारहवर्ष बनवास तथा एक वर्ष क्षिपके निवास करनेको बाजी लगाकर युधिष्ठिरका जूपमें हारना ... ४५१	
द्रुपदका प्रभुतिके वचनसे पीड़ित होके कौरवोंके विनाशके लिये पाण्डवोंकी प्रतिज्ञा ४५२	
कौरवोंके समीपसे युधिष्ठिरका विदा होना ४५३	
कुन्तीका शोकित होना ... ४५४	
धृतराष्ट्रके निकट विदुरका जाना और पाण्डवोंके वनमें जानेका वृत्तान्त कहना ४५५	
पाण्डवोंके वनमें जानेसे पुरवासियोंका आक्षेप, कौरवोंकी सभामें नारदमुनिका आना और उनके द्वारा कौरवोंके भावीफलका वर्णन तथा धृतराष्ट्रका चिन्तायुक्त होना ४५७	
सभापर्वको समाप्ति ... ४५८	

वनपर्वका सूचीपत्र ।

पाण्डवोंका वनगमन वृत्तान्त ... ४५९	
युधिष्ठिरका वचन सुनके प्रजाका नगरकी और लौटना ... ४६१	
कितनेही ब्राह्मणोंका पाण्डवोंके सह वनमें जाना ... ४६१	
युधिष्ठिर और ब्राह्मणोंकी वार्ता तथा ब्राह्मणोंके भरण पोषणके विषयमें शौनक और युधिष्ठिरकी उक्ति प्रत्युक्ति ... ४६२	
सूर्यकी उपासना करनेके लिये युधिष्ठिरके विषयमें धौम्यका उपदेश ... ४६५	
युधिष्ठिरके द्वारा सूर्यकी उपासना ४६७	
युधिष्ठिरकी सूर्यके द्वारा बटखोई मिलनी सूर्यके वरसे उस तामेकी बटखोई सहायतासे ब्राह्मणोंकी भोजन कराके युधिष्ठिरका काम्यक वनमें जाना धृतराष्ट्रके सह विदुरकी वार्ता- लाप ..	

विषय	पृष्ठा
धृतराष्ट्रका विदुरको त्यागना और विदुरका युधिष्ठिरके निकट जाना ...	४७०
धृतराष्ट्रकी आज्ञासे विदुरको बुझानेके लिये सञ्जयका काम्यक बनमें जाना और विदुरका फिर हस्तिनापुरमें आना	४७१
पाण्डवोंके विनाशके लिये दुर्योधनादिका उद्योग, कौरव सभामें वेदव्यास मुनिका आगमन और धृतराष्ट्रके सङ्ग वार्त्तालाप	४७२
सुरभीका उपाख्यान ...	४७३
व्यासका प्रस्थान और मैत्रेय ऋषिका आगमन ...	४७४
धृतराष्ट्र और मैत्रेय ऋषिका उपदेश	४७५
दुर्योधनको मैत्रेय ऋषिका शाप और किर्मीर राक्षसकी कथा ...	४७६
भीमके हाथसे किर्मीर राक्षसका वध	४७७
वनवासी पाण्डवोंके निकट भोजवंशियोंका आगमन और पाण्डवोंसे कृष्णकी वार्त्तालाप	४७८
अर्जुनके द्वारा कृष्णकी स्तुति ...	४७९
कृष्णके विषयमें द्रौपदीकी उक्ति ...	४८०
कृष्णका द्रौपदीकी धीरज देना ...	४८३
द्रोणाचार्यके विनाश विषयमें धृष्टद्युम्नके वचन ...	४८३
शाल्ववध उपाख्यान और हारकापुरीकी रक्षा ...	४८४
शाल्वके सङ्ग वृष्णिवंशियोंका युद्ध ...	४८६
शाल्वके सङ्ग प्रद्युम्नका युद्ध ...	४८७
शाल्वकी पराजय ...	४८०
शाल्वको मारनेके लिये कृष्णका प्रस्थान	
शाल्व और कृष्णका युद्ध ...	४८०
सौभका नष्ट होना और शाल्वका मारा जाना ...	४८४
श्रीकृष्ण प्रभृतिका पाण्डवोंके समीपसे विदा होना ...	४८४
पुरवासियोंका युधिष्ठिरके समीपसे विदा होकर निज निज स्थानपर जाना ...	४८५

विषय	पृष्ठा
पाण्डवोंका हस्तवनमें जाना ...	४८५
युधिष्ठिर और मार्कण्डेयमुनिकी वार्त्तालाप	४८६
वकदालभ्य मुनिकेद्वारा युधिष्ठिरकी प्रशंसा	४८८
युधिष्ठिरके सङ्ग द्रौपदीकी वार्त्तालाप	४८८
युधिष्ठिरकी वक्तृता ...	५०१
द्रौपदीकी वक्तृता ...	५०३
द्रौपदीके समीप युधिष्ठिरके वचन	५०५
युधिष्ठिरके निकट द्रौपदीके वचन	५०८
भीमसेनकी वक्तृता ...	५०९
भीमसेनके समीप युधिष्ठिरके वचन	५१२
भीमसेनकी उक्ति ...	५१३
युधिष्ठिरके निश्चित वचन ...	५१५
युधिष्ठिरके निकट वेदव्यास मुनिका आगमन ...	५१६
युधिष्ठिरकी प्रतिस्मृति विद्या देकर व्यासदेवका अन्तर्धान होना और युधिष्ठिरका काम्यक बनमें जाना ...	५१७
युधिष्ठिरके निकट अर्जुनका प्रतिस्मृति विद्या सीखना और मन्त्र साधनके लिये प्रस्थान करना ...	५१७
अर्जुनको साक्षात् इन्द्रका दर्शन प्राप्त होना	५१८
महादेवका साक्षात् दर्शन करनेके लिये अर्जुनका महातपस्यामें रत होना	५१९
किरात वेषधारी महादेवका अर्जुनके समीप आना ...	५२०
मूरराक्षसके ऊपर एक सङ्ग ही किरात वेषधारी महादेव और अर्जुनकी जाणवर्षा तथा बादानुवाद ...	५२०
किरातवेषी महादेव और अर्जुनका युद्ध	५२१
अर्जुनका मूर्च्छित होके पृथ्वीमें गिरना और सावधान होकर महादेवकी पूजा करनी ...	५२२
अर्जुनके द्वारा महादेवकी स्तुति	५२३
अर्जुनको महादेवके द्वारा पाशुपत अस्त्र प्राप्त होना ...	५२३

विषय	पृष्ठा
अर्जुनका यम, वरुण, कुबेर तथा इन्द्रादि देवताओंके समीप दिव्य शस्त्र पाना	५२५
इन्द्रके रथकी लेकर अर्जुनके निकट मात-लिका आना	५२६
अर्जुनका इन्द्र लोकमें जाना	५२७
अर्जुनका महास्त्रोंकी सीखना	५२८
अर्जुनकी नाचने गानेकी शिक्षा प्राप्त होनी और अर्जुनके समीप उर्वशीका जाना	५२९
अर्जुनकी उर्वशीका शाप	५३१
इन्द्रके निकट लोमश मुनिका जाना और अर्जुनके विषयमें वार्त्तालाप	५३२
इन्द्रलोकसे युधिष्ठिरके निकट लोमश मुनिका आगमन, धृतराष्ट्र और सञ्जयकी वार्त्तालाप	५३३
युधिष्ठिर और भीमसेनकी वार्त्तालाप	५३७
युधिष्ठिरके निकट बृहदश्व मुनिका आगमन	५३८
राजा नलकी कथा	५३९
नलका हंस पकड़ना, दमयन्तीके सङ्ग हंसकी वार्त्तालाप	५४०
नारद मुनिके सङ्ग इन्द्रकी वार्त्तालाप	५४१
विदर्भ देशमें राजा नलसे इन्द्रादिकी भेंट होनी और उनका दूत होकर दमयन्तीके निकट नलका जाना	५४१
दमयन्ती और नलकी वार्त्तालाप	५४२
देवताओंके विषयमें दमयन्तीकी अनिच्छा	५४३
देवताओंके निकट नलके द्वारा दमयन्तीका अभिप्राय वर्णन	५४३
दमयन्तीका राजा नलकी पति बनाना	५४४
इन्द्रादि लोकपालोंसे नलकी आठ वर मिलना, दमयन्तीके सङ्ग नलका विवाह राज्य शासन और पुत्र कन्याका जन्म वर्णन, कलि युगके सङ्ग देवताओंकी वार्त्तालाप	५४५
कलियुगकी सहायतासे नलके सङ्ग पुष्करका जूषा खिलना	५४६
सब हारनेके अनन्तर दमयन्तीके सहित	

विषय	पृष्ठा
नलका वनमें जाना, पचीसवी कलियुगके द्वारा नलका वस्त्र हरण, नल और दमयन्तीकी वार्त्तालाप	५४७
नलका दमयन्तीकी सोती झई छोड़के चले जाना	५४८
जागनेपर दमयन्तीका शोकयुक्त आक्षेप	५४९
दमयन्तीकी अजगरका घटना और व्याधके द्वारा दमयन्तीका सांपके मुखसे कूटना	५५०
दमयन्तीके शापसे व्याधका विनाश, अनेक स्थानोंमें नलको खोजती झई दमयन्तीका घूमना	५५१
दमयन्तीको ऋषियोंका दर्शन प्राप्त होना	५५३
दमयन्तीकी धीरज देके ऋषियोंका अन्तर्धान होना	५५४
मार्गमें बनियोंका भ्रष्ट देखके दमयन्तीका उनके सङ्ग चलना	५५५
बनियोंके समूहमें जङ्गल हाथियोंका घुसना और उनके द्वारा बटोहियोंका विनाश, तथा बचे हुए लोगोंका शोकयुक्त आक्षेप	५५५
दमयन्तीका चंदोराजके गृहमें निवास	५५७
ककीटक नागके काटनेसे नलका कुत्तप होना	५५८
राजा ऋतुपर्णके सारथी बनके उनके समीप नलका निवास	५५९
नल दमयन्तीकी खोजनेके लिये राजा भीमकी आज्ञासे अनेक ब्राह्मणोंका प्रस्थान	५६०
सुदेव ब्राह्मणके द्वारा दमयन्तीकी पहचान	५६१
दमयन्तीका विदर्भ नगरमें पिताके समीप आना और राजा भीमका दमयन्तीके उपदेशानुसार नलको खोजनेके लिये दूत भेजना	५६२
दमयन्तीकी पर्याद ब्राह्मणके द्वारा नलका समाचार मिलना	५६३
राजा ऋतुपर्णके समीप दमयन्तीका पुनर्वाप और स्वयम्बर सम्वाद भेजना	५६४
राजा ऋतुपर्णका विदर्भ नगरकी जा	

विषय	पृष्ठा	विषय	पृष्ठा
राजा ऋतुपर्णसे नलकी जूएकी विद्या मिलनी		लोपामुद्राका जन्म वृत्तान्त	६१०
और नलके शरीरसे कलियुगका निकलना ५६६		विदर्भराजकी कन्या लोपामुद्राके सङ्ग	
विदर्भनगरमें राजा ऋतुपर्णका आना और		अगस्त्य मुनिका विवाह, लोपामुद्राकी अग-	
नलके विषयमें दमयन्तीका तर्क वितर्क ५६७		स्त्यके निकट धनके लिये इच्छा	
दमयन्तीकी आज्ञासे केशिनीका बाहुक-		धन मांगनेके लिये अगस्त्य मुनिका इत्थल	
रूपी नलके समीप जाना, नल और केशिनी की		राक्षसके पास जाना और वातापीको भक्षण	
वार्त्तालाप ५६८		करना ६११	
बाहुकके अङ्गुत कर्म्भोंको देखके दमय-		इत्थल राक्षसके समीप धन पाके अगस्त्य	
न्तीको नलके विषयमें निश्चय होना ५७०		मुनिका निज आयुष्यमें आना और दृढ-	
राजा नल और दमयन्तीका मिलाप ५७१		स्युका जन्म ६१२	
राजा ऋतुपर्णको नलका परिचय मिलना		रामके बाणसे परशुरामका तेज नष्ट होना ६१३	
और उनसे अश्वविद्या सीखके नगरमें जाना ५७२		परशुरामका भृगुतीर्थके अस्पर्शसे फिर	
राजा नलका निज राज्यमें जाना ५७३		तेजस्वी बनना, वृत्वासुरके बधकी कथा ६१४	
राजा नलकी फिर अपना राज्य		कालिय दैत्योंके दुष्कर्म्मोंका वर्णन ६१६	
मिलना ५७४		देवताओंके द्वारा नारायणकी स्तुति ६१७	
युधिष्ठिरकी जूएकी विद्या सिखाके वृहदश्व		विष्णुकी आज्ञासे देवताओंका अगस्त्य	
मुनिका पस्थान ५७५		मुनिके पास जाके समुद्र सोखनेके लिये उनसे	
अर्जुनके विषयमें द्रौपदीके सङ्ग पाण्डवोंकी		प्रार्थना करनी	
वार्त्तालाप		विम्बरा पर्वतका बहना अगस्त्य मुनिके	
युधिष्ठिरके निकट नारद मुनिका आना ५७६		द्वारा विम्बराचल पर्वतका निवृत्त होना ६१८	
पुलस्त्यके कहे हुए तीर्थोंका फल वर्णन ५७७		अगस्त्य मुनिके समुद्रका जल पीनेपर	
तीर्थयात्राकी आज्ञा देकर नारद मुनिका		देवताओंके द्वारा कालिय दैत्योंका बध ६१९	
अन्तर्धान होना और धौम्य मुनिके सङ्ग युधि-		राजा सगरकी कथा ६२०	
ष्ठिरकी वार्त्तालाप ५८८		असमञ्जसका उपाख्यान ६२२	
धौम्य मुनिके द्वारा तीर्थों तथा सनके		अशुमानके द्वारा यज्ञीय घोड़ेकी म'गना,	
फलोंका वर्णन ५८९		राजा सगरकी यज्ञ समाप्ति और गङ्गाकी	
युधिष्ठिरके निकट लोमश-मुनिका आगमन ६०३		लानेका उद्योग	
लोमश-मुनिके द्वारा इन्द्र और अर्जुनका		राजा भगीरथके द्वारा गङ्गाका मर्त्य लोकमें	
सम्वाद वर्णन ६०४		आना और सगरवंशका उद्धार, नन्दा तथा अप-	
लोमशमुनि प्रभृतिके सङ्ग पाण्डवोंकी		रनन्दा तीर्थका विवरण ६२४	
तीर्थ यात्रा ६०६		ऋष्य ऋद्धे मुनिकी कथा ६२६	
युधिष्ठिरादिका नैमिषारण्यमें जाना ६०७		युधिष्ठिरका गङ्गासागरादि तीर्थ दर्शन ६३०	
समठमुनिके द्वारा राजर्षि गयका यज्ञवर्णन ६०८		अकृतव्रणके सङ्ग युधिष्ठिरकी वार्त्तालाप ६३१	
इत्थल राक्षसके द्वारा ब्राह्मणोंका माराजाना		राजा कार्तवीर्यका और परशुरामका	
और अगस्त्यमुनिसे पितरोकी वार्त्तालाप ६०९		जन्म विवरण ६३२	

विषय	पृष्ठा
परशुरामका पिताकी आज्ञा पालना	६३३
परशुरामके हाथसे कार्तवीर्यार्जुन तथा अन्योन्य क्षत्रियोंका मारा जाना	६३४
युधिष्ठिरादिको परशुरामका दर्शन प्राप्त होना	६३५
अनेक तीर्थोंका दर्शन करते हुए पाण्डवोंका प्रभास तीर्थमें जाना और बलराम प्रभृति के सङ्ग पाण्डवोंकी भेंट होनी	६३६
पाण्डवोंके विषयमें यदुवंशियों तथा बलदेव प्रभृतिकी वार्त्तालाप	...
पयोष्णि तीर्थ और नृग राजाका यज्ञ वर्णन	६३८
चवन मुनिकी कथा	६३९
राजामायाताकी कथा	६४३
राजा सीमकका वृत्तान्त यमुना तीर्थमें नहानेके अनन्तर पाण्डवोंका सब लोकों तथा अर्जुनको देखना और कुरुक्षेत्रादि तीर्थोंके दर्शन	६४६
बाज, कबूतर और राजा उशीनरकी कथा	६४७
खेतकेतु, कहोड़ तथा अष्टावक्रकी कथा	६४९
समझादि तीर्थोंके फल वर्णन	६५६
यवक्रोत मुनिकी कथा	...
उसौरबोज, मैनाक खेतगिरि और काल पर्वतके पार होनेके अनन्तर पाण्डवोंको कैलास पर्वत तथा बदरिकाश्रम देखना	६६१
द्रुपसेन प्रभृतिकी राजा सुधाङ्गके समीप छोड़के पाण्डवोंका गन्धमादन पर्वतकी ओर जाना	६६२
शुद्धाचारी पाण्डवोंका अलकनन्दा नदीका देखना और नरकासुरके बधकी कथा	६६४
बाराहकृपे विष्णुके द्वारा पृथ्वीका उद्धार	६६५
प्रचण्ड आंधी तथा वर्षासे पाण्डवोंका मोहित होना	६६६
द्रौपदीका झककर पृथ्वीपर गिरना	६६७
युधिष्ठिरका विज्ञाप और घटोत्कचका आगमन	६६७

विषय	पृष्ठा
घटोत्कच आदि राजसोंके कन्धेपर चढ़के ब्राह्मणों तथा पाण्डवोंका बदरिकाश्रममें जाना	६६८
सुगन्धयुक्त कमलके फूलकी लानेके लिये भीमसेनका प्रस्थान	६७०
भीमसेनका हनुमानकी देखना	६७२
हनुमान और भीमसेनको वार्त्तालाप	६७३
हनुमानकी पूछ न उठा सकनेसे भीमका लज्जित होके हनुमानकी शिथिल करनी, हनुमानके द्वारा राजा रामचन्द्रका वृत्तान्त वर्णन	६७४
हनुमानके पहले रूपकी देखनेके लिये भीमसेनकी इच्छा और हनुमानके द्वारा चारों युगोंके वृत्तान्त तथा धर्म वर्णन	६७५
भीमसेनका हनुमानके समुद्र लांघनेके रूपकी देखना	६७७
भीमकी हनुमानका उपदेश	...
भीमसेनको मार्ग बताकर हनुमानका अन्तर्धान होना	६७९
भीमसेनका सुगन्धयुक्त कमल देखना	६८०
राजसोंके सङ्ग भीमका युद्ध, राजसोंकी पराजय, कुबेरका भीमके कार्यको अनुमादन करना	६८१
कुबेरके कमलवनमें भीमसेनके सङ्ग युधिष्ठिरादिकी भेंट होनी	६८२
आकाश वाणी सुनके कुबेरके स्थानसे लौटकर पाण्डवोंका नर-नारायणके आश्रममें आना	...
युधिष्ठिर, नकुल और सहदेवको जटासुरका हरणादि वृत्तान्त	६८३
भीमके सङ्ग जटासुरका युद्ध	६८५
भीमके हाथसे जटासुरका मारा जाना	६८६
पाण्डवोंका हिमाचलमें वृषपर्वाका आश्रम देखना	६८७
पाण्डवोंका आर्ष्टिपेणमुनिके आश्रममें जाना	६८८
द्रौपदीके कहनेसे भीमसेनका फूल खानेके लिये कुबेरपुरमें जाना	६८९

विषय	पृष्ठा
भीमके हाथसे कुवेरपुरमें बह्मत्से यज्ञ,	
राक्षस तथा मणिमानका मारा जाना	६६३
कुवेरपुरमें भीमसेनके पास युधिष्ठिरादिका	
जाना	६६४
पाण्डवोंको कुवेरका दर्शन होना	...
कुवेरके द्वारा यज्ञ राक्षसोंके शापका	
वृत्तान्त वर्णन	६६५
धौम्य प्रभृति ब्राह्मणोंके सङ्ग पाण्डवोंका	
मिलन	६६७
अर्जुनके सङ्ग युधिष्ठिरादिकी भेंट होनी	
और पाण्डवोंके समीप इन्द्रका आगमन तथा	
वार्त्तालाप	६६८
अर्जुनके सङ्ग पाण्डवोंकी वार्त्तालाप	७००
अर्जुनके दिव्य अस्त्रोंकी शिचाका वृत्तान्त	७०३
अर्जुनका निवातकवचोंसे लड़नेको जाना	७०५
निवात कवचवध विवरण	७०६
हिरण्यपुरवासौ पुलोम और कालकञ्ज	
दानवोंका वृत्तान्त	७०८
पुलोम और कालकञ्ज दानवोंके साथ	
अर्जुनका युद्ध	७१०
अर्जुनका राजा युधिष्ठिरकी दिव्यास्त्रोंका	
दिखाना	७१२
लोमश मुनिका देवलीकमें जाना और	
पाण्डवोंका वृषपर्वाके स्थानमें लौट आना	७१४
पाण्डवोंका सुबाहुके राज्यमें पङ्गवाना	
और घटोत्कचादिकी विदा करना	७१५
भीमसेनका अजगरके द्वारा पकड़े जाना	७१६
शापग्रस्त अजगर रूपी राजा नङ्गषका	
वृत्तान्त	७१७
युधिष्ठिरके सङ्ग अजगर रूपी नङ्गषकी	
वार्त्तालाप	७१८
पाण्डवोंका काम्यकवनमें लौटना और वहाँ	
पर कृष्णादिका आगमन	७२३
कृष्णादिके सङ्ग बैठे हुए पाण्डवोंके समीप	
मारकण्डेय और नारदमुनिका आगमन	७२४

विषय	पृष्ठा
मारकण्डेयके द्वारा जीवके दुःखादि भाग	
कारण वर्णन	७२५
परिष्टनेमी मुनिकी कथा	७२७
राजा वैष्ण, अत्रिसुनि और गौतमकी कथा	७२८
सरस्वती और कश्यपका सम्वाद	७२९
वैवस्वतमनु और मत्स्यावतारकी कथा	७३१
युग और युगचयका वृत्तान्त	७३३
बटवृक्षवासौ बालकके उदरमें मारकण्डेय	
मुनिको सब लोकोंका दर्शन प्राप्त होना	७३६
कलियुगका विवरण	७३८
प्रजारक्षण धर्म-वर्णन	७४३
मण्डूक कन्या सुशोभनाकी कथा	...
शल प्रभृति राजाओं तथा वामदेव मुनिकी	
कथा	७४५
राजर्षि बक और इन्द्रका सम्वाद	७४७
राजा सुहोत्र और शिविकी कथा तथा	
राजा ययातिके दानका विवरण	७४८
राजा वृषदर्भ और सेंदुककी कथा तथा	
उशीनरपुत्र शिविराजके द्वारा कबूतरकी	
रक्षा	७४९
अष्टक, प्रतर्दन, वसुमना और नारदमुनिसे	
बढ़के राजा शिविको महाभाग्य वर्णन	७५१
राजा इन्द्रद्युम्नकी कथा	७५२
दानके फलाफलका वर्णन	७५३
यमलोकके मार्गका वृत्तान्त	७५५
पुण्यकर्म, शौचाचरण और दानकी	
विधिका वर्णन	...
उतङ्ग महर्षिको तपस्या और विष्णुसे	
वर पाना	७५८
राजा इच्छाकुकी वंशावली और कुवला-	
श्वकी राज्य देकर बृहदश्वका तपोवनकी और	
प्रस्थान करना, उतङ्ग मुनिका बृहदश्वके	
समीप जाना तथा बृहदश्वके द्वारा कुवलाश्वको	
धुम्बुके मारनेकी आज्ञा मिलनी	७५९
मधुकैटभ वधकी कथा	७६०

विषय	पृष्ठा
धनुष्का वृत्तान्त, पुत्रोंके सहित कुवलाश्वके	
सङ्ग युद्ध तथा धनुष्का वध ...	७६१
कुवलाश्वकी धनुष्मार नाम और वर	
प्राप्त होना ...	७६२
उत्तम दुर्ज्ञेय धर्म-निरूपण ...	७६३
कौशिक ब्राह्मणकी कोपट्टिसे बगुलीका	
मरना, कौशिकका ब्राह्मणकी सती स्त्रीके	
निकट भिन्ना भागना और उसको पतिसेवा	
वर्णन ...	७६३
कौशिककी भोग देनेके लिये सती स्त्रीका	
जाना, कौशिकका क्रुद्ध होना और सती स्त्रीका	
उससे ब्राह्मणके लक्षण तथा धर्म कहके उसके	
क्रोधकी शान्त करना ...	७६४
कौशिक ब्राह्मणका धर्मव्याधके निकट	
जाना व्याधका निज कर्म वर्णन ...	७६५
शिष्टाचारका वर्णन ...	७६७
निज धर्मके अनुसार हिंसादिके दोष-गुण	७६८
जीवकी नित्यताका वर्णन ...	७७१
जन्म और जातिलका कारण वर्णन ...	७७२
पञ्चमहाभूत और उनके सत, रज, तथा	
तमोगुणका विवरण ...	७७३
पार्थिव धातुओंका देहाभिमानत्वमें कारण	७७४
प्राणादि वायुसे शरीरका चैष्टायुक्त होना ...	७७५
तत्त्वज्ञानकी उपाय वर्णन ...	७७५
ब्राह्मणकी धर्म व्याधका माता पिताको	
सेवास्वपो धर्म प्रदर्शित करना ...	७७६
कौशिक ब्राह्मणके विषयमें माता पिताकी	
सेवा करनेके लिये धर्मव्याधकी आज्ञा	७७७
धर्मव्याधके पूर्व जन्मके श्रापका वृत्तान्त	७७८
कौशिकके द्वारा धर्म व्याधकी प्रशंसा और	
शोकरहित होके सन्तोष लाभके गुण वर्णन ...	७७९
कौशिक ब्राह्मणका धर्मव्याधके निकटसे	
विदा होकर माता-पिताकी सेवा करनी और	
भद्रिराका उपाख्यान ...	७७९
अग्नि और अग्नि कन्याओं तथा मरुत्योंकी	

विषय	पृष्ठा
अभिशाप ...	७८१
देवसेनाकी इन्द्रका अभयदान और इन्द्रके	
सङ्ग युद्धमें केशी का भागना ...	७८५
देवसेनाके सङ्ग इन्द्रकी वार्त्तालाप ...	७८६
देवसेनाके पतिके लिये इन्द्रके विचार	
विषयमें ब्रह्माका अनुमोदन और सप्तर्षियोंकी	
स्त्रियोंसे अग्निकी आसक्ति ...	७८६
अरुन्धतीके अतिरिक्त सप्तर्षियोंकी स्त्रियोंका	
रूप धरके स्वाहाका अग्निसे सङ्गम और श्वेत	
पर्वतपर अग्निके वीर्यकी छोड़ना ...	७८७
स्कन्दकी उत्पत्ति तथा विक्रम प्रकाशित	
करना ...	७८८
स्कन्दकी माताओंका विवरण ...	७८८
विश्वामित्रके द्वारा स्वामकार्तिकका	
संस्कार होना और सप्तर्षि गणोंका कः	
स्त्रियोंकी त्यागना ...	७८९
स्वामकार्तिकको मारनेके लिये देवता-	
ओंका यत्न ...	७९०
इन्द्रादि देवतोंकी पराजय और विसाखकी	
उत्पत्ति, देवताओंका कार्तिकेयके शरणमें जाना	
तथा कार्तिकेयके पारिषदोंका वृत्तान्त	७९०
कार्तिकेयका देवताओंके सेनापति पदपर	
अभिषेक और सद्रूप होनेका विवरण	७९२
देवसेनाके सङ्ग कार्तिकेयका विवाह	७९३
सप्तर्षियोंकी कः स्त्रियाँ, कृत्तिका तथा	
कार्तिकेयकी अन्य माताओं और स्कन्दाग्रजाका	
विवरण ...	७९४
कार्तिकेयके द्वारा स्वाहा और अग्निका	
सयोग ...	७९४
अग्निके देहमें महादेव और स्वाहाके शरी-	
रमें उमा देवीका प्रवेश, मिष्टिक और अमि-	
ष्टिकका विवरण ...	७९६
शिव पार्वतीका भद्रवट्टको जाना ...	७९६
सातवें वायु स्कन्दकी रक्षा करनेके लिये	
कार्तिकेयकी महादेवकी आज्ञा	

विषय	पृष्ठा
देव दानवोंका युद्ध ...	७६८
कार्तिकेयके हाथसे महिषासुर प्रभृति दान- वोंका मारा जाना ...	७६९
इन्द्रके द्वारा कार्तिकेयकी प्रशंसा और देवताओंका निज निज स्थानमें जाना ..	७७०
कार्तिकेयकी स्तुति तथा मार्कण्डेय समस्या प्रश्न समाप्त ...	८००
द्रौपदी-सत्यभामा सम्वाद तथा सत्यभामाके समीप द्रौपदीका स्वामीके चित्तको आकर्षित करनेकी उपाय कहना ...	८०१
द्रौपदीके विषयमें सत्यभामाके वचन और कृष्णका पाण्डवोंके निकटसे विदा होकर निज नगरीमें जाना ...	८०३
वनवासी पाण्डवोंका दुःख सुनके धृतरा- ष्ट्रका शोकित होना ...	८०४
वनवासी पाण्डवोंकी ऐश्वर्य्य दिखानेके लिये दुर्योधनकी शकुनि और कर्णकी परा- मर्श ...	८०६
घोषयात्राकी सलाह ...	८०७
सखीक दुर्योधन प्रभृतिका द्वैतवनमें जाके गोशालाके समीप सेना स्थापित करके डेरा करना ...	८०८
दुर्योधनादिका शिकार खेलना और युधि- ष्ठिरका राजर्षि यज्ञारम्भ, गन्धर्व्व सेनासे दुर्यो- धनकी सेनाका विवाद ...	८०९
दुर्योधनकी सेनासे गन्धर्व्व सेनाका युद्ध ...	८१०
चित्रसेन गन्धर्व्वके माया युद्धमें कर्णका भागना ...	८११
गन्धर्व्वोंका दुर्योधन प्रभृति तथा राजा रानियोंको हरना, दुर्योधनकी सेनाके लोगोंका पाण्डवोंकी शरणमें जाना और भीमसेनके कठोर वचन ...	८१२
दुर्योधनादिको कुड़ानेके लिये युधिष्ठिरकी आज्ञा, कौरवोंको कुड़ानेके लिये अर्जुनकी प्रतिज्ञा ...	८१३

विषय	पृष्ठा
गन्धर्व्वों और पाण्डवोंका मृदु युद्ध तथा उत्तर प्रत्युत्तर ...	८१३
पाण्डवोंके सङ्ग तुमुल युद्धमें गन्धर्व्वोंकी पराजय ...	८१४
अर्जुन और चित्रसेनकी उक्ति प्रत्युक्ति ...	८१५
दुर्योधनादिका पाण्डवोंके द्वारा गन्धर्व्वोंके हाथसे कूटना गन्धर्व्वोंपर युधिष्ठिरकी प्रसन्नता और अमृत वर्षासे मृत गन्धर्व्वोंका जीवित होना ...	८१६
दुर्योधनका नगरकी ओर जाना, कर्ण और दुर्योधनकी वार्त्तालाप ...	८१७
दुर्योधनका व्रत करके प्राण छोड़नेकी इच्छा करना, दुर्योधनसे दुःशासन और कर्णदिकी उक्ति प्रत्युक्ति ...	८१८
दैत्य-दानवोंका क्रुत्याके सहार दुर्योधनको पातालमें मंगाना और साहस देनेवाले अनन्तर व्रतके स्थानमें पहुँचाना ...	८२०
दुर्योधनका व्रतसे उठके सेनाके सहित नगरमें जाना, दुर्योधनकी भीष्मके वचन उपहास ...	८२१
कर्णका दिग्विजयके लिये चलना, कर्णका दिग्विजय करके दुर्योधनकी धन सौंपके धृत- राष्ट्र और गान्धारोका दर्शन करना ...	८२२
दुर्योधनका वैष्णव यज्ञारम्भ और निम- न्त्रण करनेवाले दूतसे युधिष्ठिर और भीमसेनकी वार्त्तालाप ...	८२५
अर्जुनको मारनेके लिये कर्णकी प्रतिज्ञा सुनकर युधिष्ठिरका चिन्तायुक्त होना और दुर्योधनका राज्यशासन वर्णन ...	८२६
युधिष्ठिरका सपनेमें हरिनोका देखकर उनके वचनके अनुसार द्वैत वनको छोड़कर काम्यक वनमें जाना पाण्डवोंके समीप वेदव्यास मुनिके द्वारा दानका माहात्म्य वर्णन ...	८२७
मुग्दल ऋषिके एक द्रोणी धान प्राप्ति तथा अतिथि सत्कारकी कथा ...	८२८

विषय	पृष्ठा
दुष्योधनका दुर्व्यासा मुनिकी अतिथि सत्कार करके प्रसन्न करना और दुर्व्यासा मुनिसे दुष्योधनकी वर मिलना, दुर्व्यासाका पाण्डवोंके समीप शिष्योंके सहित आतिथ्यके निमित्त जाना ८३३	
द्रौपदीकी स्तुतिसे कृष्णका प्रसन्न होके शोक भक्षण करके दृष्ट होना, ... ८३४	
शिष्योंके सहित दुर्व्यासा मुनिका भागना ,,	
जयद्रथका द्रौपदीको देखना और उसके समीप कोटिकाख्यकी भोजना ... ८३५	
कोटिकाख्य और द्रौपदीका प्रश्नोत्तर ८३६	
जयद्रथ और द्रौपदीका बाद विवाद ८३७	
जयद्रथके द्वारा द्रौपदी हरण ... ८३८	
पाण्डवोंका एकत्रित होना और धात्रीके मुखसे द्रौपदीका वृत्तान्त सुनके दौड़के जयद्र- थको ललकारना ८४०	
जयद्रथका द्रौपदीके मुखसे पाण्डवोंका परिचय सुनना ,,	
पाण्डवोंका जयद्रथके सहायकोंके सङ्ग युद्ध करके उन्हें मारना ८४१	
द्रौपदीको रथसे उतारके जयद्रथका भागना ८४२	
द्रौपदीके सहित युधिष्ठिर और नकुल सहदेवका आश्रममें जाना और अर्जुनका एक कोसकी दूरीसे जयद्रथके घोड़ोंको मारना ८४३	
भीमसेनका जयद्रथको पकड़के दैमारना और उसके सिरपर पांच चोटी रखना ८४३	
युधिष्ठिरकी आज्ञासे जयद्रथको कुटकारा मिलना, जयद्रथका महादेवके उद्देश्यसे तपक- रना और महादेवके द्वारा नर नारायणका वृत्तान्त वर्णन ८४४	
राम, लक्ष्मण, सीता और नैश्वर्य, विश्वा प्रभृतिका जन्म वृत्तान्त ८४७	
रावणादिका जन्म वृत्तान्त, और तपस्या ८४८	
रावणादिका ब्रह्म से वर पाके कुवेरकी	

विषय	पृष्ठा
जोतके लज्जा छीनना और राक्षसोंका राजा होना ८४८	
बानरादिके जन्म-विवरण ... ८४९	
रामचन्द्रको युवराज करनेके लिये दशर- थकी आज्ञा और दशरथके समीप कैकेयीका वर माँगना ८५०	
सीता और लक्ष्मणके सहित रामका वनमें जाना दशरथका प्राण छोड़ना और रामकी पादुका रखके भरतका नन्दिग्राममें राज्य करना ,,	
रामके हाथसे खरदूषणादिका मारा जाना सूपर्णाखाके मुखसे रामका पराक्रम सुनके राव- णका मारीचके निकट जाना और रावण तथा मारीचकी वार्त्तालाप ८५१	
मृग रूप धरके मारीचका सीताको लुभाना तथा मारीचका मारा जाना .. ८५२	
लक्ष्मणसे सीताका कठोर वचन, लक्ष्मणका रामके समीप जाना और रावणके द्वारा सीताहरण ,,	
जटायुका पङ्क काटके रावणका सीताको लज्जामें लेजाना, रामका लक्ष्मणकी आज्ञा द्वारा देखके सोच करना, जटायुके मुखसे सीताहरण सुनना और जटायुकी मृत्यु, राम लक्ष्मणके द्वारा कवचनाम राक्षसका मरना और विश्वा- वसुके रूपसे सुग्रीवके सङ्ग मित्रता करनेका उपदेश करके स्वर्गको जाना ... ८५३	
पम्पाके तटपर रामका विलाप, लक्ष्मणके वचनसे सावधान होना और पितरोंका तर्पण करके ऋष्यमूक पर्वतपर जाना ८५५	
ऋष्यमूकवासी सुग्रीवके साथ रामकी मित्रता होनी वालि और सुग्रीवको सड़ाई ,,	
रामके वाणसे वालिकी मृत्यु, सुग्रीवका किष्किन्ध्याका राज्य तथा तारा प्राप्त होना और माल्यवान पर्वतपर रामका निवास, रावणका सीताको अशोक वनमें रखना ८५६	
राक्षसियोंका सीताको डराना,	

विषय	पृष्ठा
स्थिर प्रतिज्ञा, विजटा और अविन्धका सपना देखके सीताको प्रसन्न करके धीरज देना	८५७
रावण और सीताकी वार्त्तालाप	८५८
रामकी आज्ञासे लक्ष्मणका किष्किन्धामें जाना और सुग्रीवकी सङ्ग लेकर रामके समीप लौट आना	८५९
हनुमान प्रभृतिका मधुबाके फलोंको भक्षण करना और हनुमानसे रामकी वार्त्तालाप	८६०
हनुमानके द्वारा सीताकी खोज और दर्शनादि वृत्तान्त वर्णन	८६१
रामके समीप बन्दरोंका आना	८६२
बन्दरोंके सहित रामका समुद्रके पार जानेका विचार	८६३
रामकी आज्ञासे नलका समुद्रमें पुल बांधना, रामके समीप विभीषणका आना और रामके मन्त्रित्व तथा लङ्काके राज्यपर अभिषिक्त होना, सेनाके सहित रामका समुद्रके पार जाना, रामके समीप वैष बदलके रावणके मन्त्रो शुकशारणका आना और रामकी आज्ञासे उन्हें बन्दरोंकी सेना दिखाके छोड़ देना	८६४
रावणके द्वारा लङ्कापुरीकी रक्षा और रावणके समीप अङ्गदका जाना	८६५
लङ्काकी कारदिवालो आदि तोड़नेके समय युद्धन बन्दरों तथा बद्धतेरे राज्ञोंका मारा जाना	८६६
राम-रावण तथा राज्ञोंके सङ्ग बन्दरोंका घोर युद्ध	८६७
रावणका कुम्भकर्णको जगाना	८६८
कुम्भकर्णका युद्ध और उसकी मृत्यु	८६९
लक्ष्मण और मेघनादका भयङ्कर युद्ध	८७०
मेघनादका शस्त्रोंके प्रभावसे राम-लक्ष्मणकी बांधना, प्रज्ञास्त्र तथा विशाल्या औषधीसे राम लक्ष्मणका सावधान होना और कुबेरके भेजे हुए जलसे नेत्रोंकी धोना	८७१

विषय	पृष्ठा
लक्ष्मणके हाथसे मेघनादका मारा जाना, रावणका सीताको मारनेके लिये उद्यत होना और अविन्धके वचनसे रावणका क्रोध शान्त होना	८७२
रामके सङ्ग रावणका मायायुद्ध और इन्द्रके भेजे हुए रथपर रामका चढ़ना तथा राम-रावणका भयङ्कर युद्ध	८७३
रामके हाथसे रावणका मारा जाना और विभीषणकी लङ्काका राज्य मिलना	८७४
रामका सीताको परित्याग करना और सीताके विषयमें रामसे वायु तथा ब्रह्माकी वार्त्तालाप	८७५
देवता तथा पिताके वचनसे रामका सीताकी ग्रहण करना, वर पाना, हनुमानकी सीतासे वर मिलना और रामका लङ्कासे प्रस्थान करना	८७६
रामादिका किष्किन्धामें आना, अङ्गदको युवराजके पदपर अभिषिक्त करना और रामका राज्याभिषिक्त	८७७
मार्कण्डेय मुनिका वचन सुनके युधिष्ठिरका शोक रहित होना और राजा अश्वपति तथा सावित्रीकी कथा	८७८
राजा अश्वपतिकी गायत्रीसे वर मिलना, सावित्रीका जन्म और पिताकी आज्ञासे स्वयं वर खोजना	८७९
सत्यवानके सङ्ग सावित्रीका विवाह और सावित्रीका विरात्र व्रत करना	८८०
सत्यवानके सङ्ग सावित्रीका वनमें जाना, सत्यवानके सिरमें पौड़ा होनी और उनके समीप यमराजका आगमन	८८१
सत्यवानकी मृत्यु, यमराजसे सावित्रीको वर मिलना	८८२
सत्यवानका फिर जीवित होना, सत्यवान और सावित्रीकी वार्त्तालाप	८८३
सत्यवान और सावित्रीका आश्रमकी और	८८४

विषय	पृष्ठा
चक्रना राजा द्युमत्सेनका सत्यवान और सावि- त्रीको ढूढ़ना और ब्राह्मणोंके सङ्ग वार्त्ता- लाप ८८२	
सत्यवान और सावित्रीसे ऋषियोंकी वार्त्ता- लाप ८८३	
राजा द्युमत्सेनको राज्य मिलना, सावि- त्रीके एक सौ पत्र तथा एक सौ भाइयोंकी उत्पत्ति ८८४	
सूर्य और कर्णकी वार्त्तालाप .. ८८५	
कुन्तीके द्वारा ब्राह्मणकी सेवा ... ८८६	
ब्राह्मणसे कुन्तीको मन्त्रप्राप्ति ... ८८७	
कुन्तीका सूर्यको अर्पण करना ८८८	
सूर्यके प्रभावसे कुन्तीका गर्भवती होना ८८९	
कुन्तीके गर्भसे कर्णकी उत्पत्ति, कुन्तीका कर्णको अश्वनदीमें बहा देना ... ८९०	
अधिरथ सूतके द्वारा कर्णका प्रतिपालन और अस्त्रशिक्षाका वृत्तान्त ... ८९१	
कर्णके समीप ब्राह्मण वैषधारी इन्द्रका आना, इन्द्र और कर्णकी वार्त्तालाप ८९२	
कर्ण का कवच और दोनों कुण्डल इन्द्रको दान करके उनसे अमोघ शक्ति ग्रहण करना ८९३	
हरिणके द्वारा अरणीहरण और पाण्ड- वोंका उस हरिनकी वनमें खोजना तथा भूख प्याससे कातर पाण्डवोंके शोकयुक्त वचन ८९४	
यज्ञके तालाबमें जल पीनेसे नकुल, सहदेव, अर्जुन और भीमसेनकी मृत्यु, ... ८९५	
युधिष्ठिरका तालाबपर गिरे हुए भाइ- योंका देखना, युधिष्ठिरका विलाप और विशेष चिन्ता करना ८९६	
यज्ञ और युधिष्ठिरकी वार्त्तालाप .. ८९७	
यज्ञका प्रश्न करना और युधिष्ठिरका उत्तर देना ८९८	
युधिष्ठिरका यज्ञसे नकुलके जीवित होनेका वर मांगना और भीमादिका जीवित	

विषय	पृष्ठा
होना तथा यज्ञरूपी धर्मका युधिष्ठिरको परि- चय देना ८९९	
वर देके धर्मका अन्तर्धान होना, ब्राह्म- णोंसे अनुमति लेके पाण्डवोंका छिपके निवास करनेके लिये विचार करना ... ९००	
वनपर्वका माहात्म्य तथा वनपर्वको समाप्ति ९०१	

विराटपर्वका सूचीपत्र ।

युधिष्ठिरकी अर्जुनके सङ्ग अज्ञातवासकी सलाह ९०२	
विराट नगरमें वेष बदलके निवास करनेके विषयमें युधिष्ठिर और भीमसेनका विचार ९०३	
विराट नगरमें छिपकर रहनेके लिये अर्जुन, तथा नकुल और सहदेवका विचार ... ९०४	
विराट नगरमें अज्ञातवासके लिये द्रौप- दीका विचार और धौम्य आदिकी पाञ्चालदेश तथा इन्द्रसेन प्रभृतिकी द्वारका पुरीमें जानेकी निमित्त युधिष्ठिरकी आज्ञा ... ९०५	
पाण्डवोंकी राजभवनमें बसनेके विषयमें धौम्य मुनिका उपदेश ९०६	
धौम्य मुनिके उपदेशमें युधिष्ठिरकी सम्मति ९०७	
युधिष्ठिरका विराट नगरको जाना और धौम्य मुनिका पाञ्चालदेश तथा इन्द्रसेन प्रभृ- तिका द्वारका पुरीमें जाना... .. ९०८	
शमीवृक्षपर धनुषों तथा अस्त्रादिकी रखके पाण्डवोंका विराट नगरमें जाना, युधिष्ठिरके द्वारा दुर्गा देवीकी स्तुति ... ९०९	
दुर्गा देवीसे युधिष्ठिरकी वर मिलना और युधिष्ठिरका राजा विराटकी सभामें जाना ९१०	
विराटकी सभामें भीमसेनका प्रवेश ... ९११	
विराटकी रनिवासमें द्रौपदीका प्रवेश... ९१२	
विराटकी गोशाला तथा सभामें सहदेवका प्रवेश ९१३	

विषय	पृष्ठा
विराटकी सभामें अर्जुनका प्रवेश ...	६२२
विराटकी घुड़साल तथा सभामें नकुलका जाना ...	६२३
विराट नगरमें पाण्डवोंका परस्पर अर्थ सहायता करते हुए निवास तथा द्रौपदीकी रक्षा ...	६२४
भीमसेनके हाथसे जीमूत नाम मल्लका मारा जाना ...	६२४
पाण्डवों तथा द्रौपदीके द्वारा विराट और अन्तःपुरवासियोंकी प्रसन्नता सुदेशा रानीके समीप कीचकका द्रौपदीको मांगना ...	६२५
कीचकका द्रौपदीसे सङ्गम करनेको प्रार्थना ६२६	
हितापदेशके कलसे परनारी गमन दोष कहके द्रौपदीका कीचकको निवारण करना ...	६२७
सैरिन्धीकी पानेके लिये सुदेशा रानीके निकट कीचककी परामर्श ...	६२७
सुदेशाका कीचकके घरमें पानी लानेके लिये द्रौपदीको भेजना, सूर्यका द्रौपदीकी रक्षाके लिये एक राक्षस नियुक्त करना, कीचक और सैरिन्धीका वादानुवाद ...	६२८
कीचकका द्रौपदीको पकड़ना तथा द्रौपदीके झटकेसे कीचकका पृथ्वीमें गिरना, द्रौपदीका भागके विराटकी सभामें जाना, कीचकका द्रौपदीको लात मारना, सूर्यके भेजे हुए राक्षसके द्वारा कीचकका दूर फेंका जाना और युधिष्ठिर तथा भीमसेनका क्रुद्ध होना युधिष्ठिरके इशारेसे भीमका क्रोध शान्त होना, द्रौपदीका विराटकी सभामें विलाप ...	६२८
द्रौपदीके विषयमें विराटका वचन ...	६२९
राजा युधिष्ठिरके वचनसे द्रौपदीका सुदेशा रानीके पास जाना, सुदेशा और द्रौपदीकी वार्तालाप ...	६३०
भीमसेनके शयनगृहमें द्रौपदीका जाना भीमसेनका जागना ...	६३१

विषय	पृष्ठा
भीमसेनके निकट द्रौपदीके दुःखयुक्त वचन ६३१	
भीमसेनका द्रौपदीको धीरज देना ...	६३६
कीचकको मारनेके विषयमें द्रौपदी और भीमसेनकी परामर्श ...	६३७
राजभवनमें द्रौपदी और कीचककी वार्तालाप ...	६३८
द्रौपदीका भीमसेनको कीचकका सम्वाद देना, कीचकको मारनेके लिये भीमसेनका शपथ करना ...	६३८
नृत्यशालामें कीचक और भीमसेनकी वार्तालाप तथा कीचक और भीमसेनका युद्ध ६३९	
भीमसेनके हाथसे कीचकका मारा जाना ६४०	
नृत्यशालामें पहरवालोंका मरे हुए कीचकको देखना ...	६४१
कीचकके भाइयोंका मरे हुए कीचकके सङ्ग द्रौपदीको अरघीमें बांधके श्मशानमें जाना ...	६४२
भीमके हाथसे उपकीचकोंका मारा जाना ६४२	
द्रौपदीकी देखके मत्स्यदेशवासियोंका व्याकुल होना, द्रौपदीके सङ्ग भीमसेनकी वार्तालाप और नाचघरमें सैरिन्धीके सङ्ग बृहन्नला तथा वान्याओंकी वार्तालाप सैरिन्धीका राजा विराटको रनिवासमें जाना और उसके सङ्ग सुदेशारानीकी वार्तालाप ...	६४३
देश देशमें कीचकके मारनेका समाचार फैलना, पाण्डवोंकी खोजनेवाले दूतोंका लौटके हस्तिनापुरमें पाण्डवोंके न मिलने और कीचकके मरनेका समाचार कहना ...	६४४
पाण्डवोंकी खोजनेके विषयमें दुर्योधन, कर्ण और दुःशासनके वचन ...	६४५
पाण्डवोंके दूढ़नेके विषयमें द्रोणाचार्यके वचन ...	६४५
पाण्डवोंके दूढ़नेके विषयमें भीष्मकी वक्तृता ...	६४६
पाण्डवोंके विषयमें कृपाचार्यके नीतियुक्त वचन ...	६४६

विषय पृष्ठा

सुशर्माको विराट नगरमें जानेकी सम्मति ६४७

कर्णका सुशर्माके बचनको अनुमोदन करना और सेनाका दो भाग करके सुशर्मा और दुर्योधनादिका दिशाविभाग क्रमसे गऊ हरनेके लिये विराट नगरमें जाना ... ६४८

सुशर्माका विराटके अहीरोसे गोश्रोंको छीन लेना, अहीरोके सुखसे गऊ हरनेका वृत्तान्त सुनके राजा विराटका युद्धके निमित्त तैयार होना

राजा विराटकी आज्ञासे चारों पाण्डवोंका युद्ध करनेके लिये जाना और विगर्त तथा विराटकी सेनाका युद्ध ... ६४९

शतानीक प्रभृति तथा राजा विराट और सुशर्माका युद्ध ... ६५०

रातके युद्धमें सुशर्माका राजा विराटको पकड़ना और विराटको छुड़ानेके लिये भीमसेनकी युधिष्ठिरकी आज्ञा ... ६५१

चारा पाण्डवोंका विगर्त सेनाके सङ्ग युद्ध करना

भीमसेनके द्वारा सुशर्माकी पराजय, भीमसेनका सुशर्माका पकड़के युधिष्ठिरको दिखाना और युधिष्ठिरकी आज्ञासे सुशर्माको छोड़ देना ... ६५२

सुशर्माका विराट नगरसे प्रस्थान करना कङ्क प्रभृतके विषयमें विराटको प्रसन्नता और मत्स्य नगरमें विराटके बिजयकी सूचना ... ६५३

दुर्योधन प्रभृतिका विराटको गोवोंको हरना, अहीरोके सुखसे उत्तरको गऊ हरनेका समाचार मिलना

स्त्रियोंके बीच सारथीके निमित्त उत्तरकी वार्त्तालाप, सैरिन्धीके द्वारा वृहन्नलाका सारथ्य कर्म वर्णन ... ६५४

उत्तरका वृहन्नलाको बुलानके लिये जाना,—वृहन्नलासे उत्तरकी वार्त्तालाप ६५५

विषय पृष्ठा

वृहन्नलाको सारथी बनाकर उत्तरका युद्ध करनेके लिये चलना और कौरवोंकी सेना देखके भयभीत होना ... ६५६

उत्तर और वृहन्नलाका बादानुवाद, उत्तरका भागना और उत्तरकी पकड़नेके लिये अर्जुनका उसके पीछे दौड़ना ... ६५७

वृहन्नलाको उत्तरकी पीछे दौड़ते देखकर कौरवोंके बीच तर्क वितर्क होना, वृहन्नलाका उत्तरको पकड़ना, उत्तरको विनय, अर्जुनका रथी बनके युद्ध करना स्वीकार करके उत्तरकी रथ हांकनेकी आज्ञा देकर धीरज देना ६५७

नपुंसक वेषधारीको अर्जुन जान और अशकुनोंको देखकर द्रोणाचार्यकी वक्तृता तथा कौरवोंको सावधान करना कार्य और दुर्योधनादिकी वार्त्तालाप ... ६५८

अर्जुनका उत्तरको शमीवृक्षपर चढ़के युधिष्ठिरके धनुष बाण लानेके लिये आज्ञा, उत्तरका शमीवृक्ष परसे पाण्डवोंके धनुषोंको उतारना ... ६५९

पाण्डवोंके धनुष बाणादिका परिचय ६६०

द्विपे हुए वेषमें रहनेवाले पाण्डवों तथा द्रौपदीका परिचय, अर्जुनके दश नाम और उसका कारण वर्णन ... ६६१

उत्तरकी अर्जुनके विषयमें प्रीति और भय रहित होना, उत्तर तथा अर्जुनका प्रश्नोत्तर ... ६६२

अर्जुनका युद्ध करनेके लिये कौरवोंकी मोह चलना ... ६६३

दुर्योधनसे द्रोणाचार्यकी वार्त्तालाप तथा उन्हें सावधान करना ... ६६४

भीम प्रभृतिके समीप दुर्योधनकी वक्तृता, द्रोणाचार्यकी स्पर्धा करके कर्णकी वक्तृता ... ६६५

कर्णकी सम्मतिकी खण्डन करते हुए द्रुप-चार्यकी वक्तृता ...

विषय	पृष्ठा	विषय	पृष्ठा
कर्ण और दुर्योधनका निरादर करके अश्वत्थामाकी वक्तृता ६६७	भीम प्रभृतिके सङ्ग अर्जुनका युद्ध और कौरवोंकी सेनाकी अवस्था वर्णन, अर्जुनके सङ्ग भीमका युद्ध ६८५
द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और अश्वत्थामाकी युद्ध करनेके लिये प्रसन्न करते हुए भीमकी वक्तृता ६६६	अर्जुनके सङ्ग युद्धमें भीमका मूर्च्छित होना ६८६	
दुर्योधनके वचनसे द्रोणाचार्यका क्रोध शान्त होना, भीमकी गिनतीसे कालचक्रके अनुसार पाण्डवोंका तेरह वर्षसे अधिक बीतना वर्णन ६६७	अर्जुनके सङ्ग युद्धमें दुर्योधनकी पराजय और अर्जुनके द्वारा उसको निन्दा, दुर्योधनका फिर युद्ध करनेके लिये लौटना और उन्हें लौटता देखकर समस्त सेनाका अर्जुनके सङ्ग फिरके युद्ध करना ६८७
भीमका कौरवोंकी सेनाका चार भाग करना और व्यूह बनाकर युद्धके निमित्त स्थित होना ६७०	अर्जुनका सम्हाटनास्त्र चलाना कौरवोंका मूर्च्छित होना, भीमका छाड़के कौरवोंके वस्त्र हरण और भीमके सारथीके शरीरसे बाण मारके उत्तरार्जुनका एकान्तमें स्थित होना, भीम और दुर्योधनकी वार्त्तालाप ,	
द्रोणाचार्यके द्वारा अर्जुनका आगमन सम्वाद वर्णन, दुर्योधनकी खोजके उनकी ओर जाना तथा अर्जुनका विराटकी गौवोंकी नगरकी ओर लौटा लेना ६७१	कौरवोंका अपन नगरकी ओर जाना, अर्जुनके बाणसे दुर्योधनका मुकुट कटना, देवताओंका निज निज स्थानपर जाना, अर्जुनका भागी हुई सेनाका धारज देना ६८८	
चित्रसेन आदिके सङ्ग अर्जुनका युद्ध ६७२	उत्तरका विजय सम्वाद भोजना और राजा विराटका निज राजधानीमें लौटना ६८९	
अर्जुन और कर्णका युद्ध तथा कर्णकी पराजय ६७३	उत्तरकी रक्षाके लिये चतुराङ्गिनी सेना भोजनके लिये विराटका आज्ञा, युधिष्ठिरके द्वारा बृहन्नालाकी प्रशंसा और राजा विराटका उत्तरक विजयका सम्वाद मिलना तथा वैजयिक वस्तुओंका नगरमें स्थापित करना ६९०
अर्जुनके सङ्ग लड़के कौरवी सेनाका पीड़ित होना ६७४	विराटका सेरिम्भीकी पासा लान और कङ्ककी जूभा खेलनकी आज्ञा करना, विराट और युधिष्ठिरका जूभा तथा वादानुवाद ...	
अर्जुनका उत्तरकी कृपाचार्य प्रभृतिका परिचय देना ६७५	विराटका युधिष्ठिरके सुखमें पासा मारना, युधिष्ठिरका निज नाकसे गिरते हुए रुधिरकी अङ्गुलीमें रख लेना, उत्तरका विराट नगर तथा सभामें प्रविष्ट होना और युधिष्ठिरके नाकसे गिरता हुआ रुधिर देखके शोकित होना ६९१
कौरवोंके सङ्ग अर्जुनका युद्ध देखनके लिये इन्द्रादि देवताओंका आकाशमें स्थित होना ,		उत्तरके सङ्ग अर्जुनकी सेलाह तथा वृद्ध	
अर्जुनसे लड़कर कृपाचार्यका भागना ६७७			
अर्जुनके सङ्ग युद्धमें द्रोणाचार्यका युद्ध तथा द्रोणाचार्यकी पराजय ६७८		
अश्वत्थामाके सङ्ग अर्जुनका युद्ध ६८०		
अचय तूणीरके प्रभावसे अर्जुनका अश्वत्थामासे अष्ट रहना ६८१		
कर्णाजुनका वादानुवाद और फिर युद्ध करना तथा कर्णकी पराजय ६८२		
रथ हाक्नमें उत्तरकी असमर्थ देखकर अर्जुनका उसे धीरज देना ६८३		

विषय पृष्ठा
नला रूपसे सारथी बनके नगरमें आना, विराट
नगरमें विराटके क्षमा मागनसे युधिष्ठिरका
प्रसन्न होना, वृहन्तलाका विराटकी सभामें
आना, विराट और उत्तरका कीरवांक सङ्ग युद्ध
विषयक वार्त्तालाप ... ६६१
विराटकी आज्ञासे कीरवींका वस्त्र उत्त-
राका प्रदान करना ... ६६३
विराटकी सभामें चारों भाद्रयक सहित
महाराज युधिष्ठिरका राजासंहासनपर बैठना
और उन्हें अपने सिंहासनपर बैठे हुए देखकर
राजा विराटका क्रोध होना, विराटका अर्जु-
नके मुखसे पाण्डवाका पारचय मिलना ...
उत्तरका राजा विराटका पांडवा तथा
द्रौपदीका परिचय देना और पांडवाका राज्य
सौंपकर अर्जुनके संग उत्तरका विवाह कर-
नके निमित्त राजा विराटकी स्मृति ... ६६४
अर्जुनकी निज पुत्र अभिमन्युके संग उत्त-
राके विवाहकी परामर्श पांडवाका उपप्लव नग-
रमें निवास करना ... ६६५
उत्तराके संग अभिमन्युका विवाह ... ६६६
विराटपर्व तथा विराटपर्वका भावार्थ समाप्त,,

उद्योगपर्वका सूचीपत्र ।

विराटकी सभामें राजाशके समीप युधिष्ठि-
रके राज्य प्राप्ति विषयमें श्रीकृष्णका प्रस्ताव ६६७
बलदेवजीकी वक्तृता ... ६६८
सात्यकीकी वक्तृता ... ६६९
राजा द्रुपदकी वक्तृता और सब देशोंके
राजाओं तथा कीरवांक समीप दूत भेजनाका
प्रस्ताव ... १०००
राजा द्रुपदके वचनमें सन्तान होकर कृष्णका
संजनक सहित द्वारकामें जाना ... १००१
विराटनगर और हस्तिनापुरमें सेनाके
सहित देश देशके राजाओंका आना ...

विषय पृष्ठा
राजा द्रुपदका निज पुरोहितको पांडवोंका
दूत बनाकर हस्तिनापुरमें भेजना ... १००२
श्रीकृष्णके भवनमें अर्जुन और दुर्योधनका
एकही समय जाना ...
कृष्णका दुर्योधनको नारायणीसेना देने
और स्वयं अर्जुनका सारथी होना स्वीकार
करना ... १००३
कृष्णके सहित अर्जुनका युधिष्ठिरके निवेद-
पाना, महाराज शल्यका पांडवाकी सहायताके
लिये सेनाके सहित प्रस्थान करना तथा दुर्यो-
धनके सत्कारसे प्रसन्न होना ... १००४
दुर्योधनकी आशसे युद्ध करना स्वीकार
करके शल्यका उपप्लव नगरमें युधिष्ठिरको
देखनेके लिये जाना ...
शल्यका युधिष्ठिरके समीप कथा प्रसंगसे
शत्रुविजय नाम इतिहास कहना ... १००५
द्रुपदके भेजे हुए पुरोहितको कीरवींको
सभामें सत्य विषयक वक्तृता ... १०१६
द्रुपदके पुरोहितके वचनमें भासकी
स्मृति ... १०२०
द्रुपदके पुरोहितका वचन तथा भासकी
स्मृति सुनके कणकी अभिमानयुक्त वक्तृता
और धृतराष्ट्रके द्वारा भासकी प्रसन्नता तथा
कणका तिरस्कार ...
धृतराष्ट्रका शान्ति स्थापन करनेकी इच्छासे
सञ्जयका पांडवोंके समीप भेजनाका
प्रस्ताव ... १०२१
धृतराष्ट्रकी आज्ञासे सञ्जयका उपप्लव
नगरमें जाना ... १०२२
पाण्डवोंके समीप सञ्जयका धृतराष्ट्रके कहे
हुए वचन कहना ... १०२५
सञ्जयका वचन सुनके महाराज युधिष्ठि-
रका उत्तर देना ... १०२६
युधिष्ठिरका वचन सुनके सञ्जयका
प्रत्युत्तर ...

विषय	पृष्ठा
सञ्जयका वचन सुनके युधिष्ठिरका नि । धर्माधर्म व्यवहारके विषयमें श्रीकृष्णके ऊपर भार अर्पण करना १०२६
युधिष्ठिर और दुर्योधनके विषयमें श्रीकृष्णकी वक्तृता १०३०
युधिष्ठिरके सङ्ग वार्त्तालाप करके सञ्जयकी बिदा होनेके लिये प्रार्थना, युधिष्ठिरका कौरवोंके समीप मन्देशा भेजना १०३३
सञ्जयका कुरुसभामें आना, सञ्जयके मुखसे युधिष्ठिरकी प्रशंसा और धृतराष्ट्रकी निन्दा १०३६
धृतराष्ट्रका प्रजागरावस्थामें विदुरके मुखसे अनेक प्रकारकी नीति तथा धर्ममूलक कथा सुनना १०३८
धृतराष्ट्रका सन्देश निवारण करनेके लिये सनत्सुजात ऋषिके द्वारा विस्तारपूर्वक तत्त्वज्ञानकी कथा वर्णन १०६५
पाण्डवोंके समीपसे लौटकर सञ्जयका कुरुसभामें जाना और धृतराष्ट्रके पूछनेपर अर्जुनका सन्देश कहना १०७६
दुर्योधनको उपदेश करनेकी इच्छासे भीष्मके द्वारा कृष्णार्जुनका पूर्व वृत्तान्त वर्णन १०८६
कर्ण और भीष्मका बादविवाद १०८७
धृतराष्ट्रका सञ्जयसे पाण्डवोंके सहायकोंका सन्देश पूछना और सञ्जयका पाण्डवोंके सहाय करनेवाले राजाओंका पृथक् पृथक् नाम कहना १०८८
पाण्डवोंके बल तथा पराक्रमको कहते हुए धृतराष्ट्रका विलाप १०९०
धृतराष्ट्रका पाण्डवोंके सङ्ग सन्धि करनेका प्रस्ताव और सञ्जयके द्वारा धृतराष्ट्रकी निन्दा तथा अर्जुनकी प्रशंसा वा पाण्डवोंके विजयकी सम्भावना वर्णन १०९४
अपनी तथा भीष्म द्रौणादि योद्धाओंका	

विषय	पृष्ठा
पराक्रम वर्णन करके निज पक्षको विजय सम्भावना दिखाते हुए दुर्योधनका धृतराष्ट्रको धीरज देना १०९५
दुर्योधनके पूछनेसे सञ्जयके द्वारा युधिष्ठिरका युद्धविषयक अभिप्राय वर्णन १०९८
सञ्जयके मुखसे अर्जुनके रथके घोड़े तथा ध्वजाका वर्णन १०९९
धृतराष्ट्रके पूछनेपर सञ्जयका युधिष्ठिरकी सेनाके राजाओंका नाम तथा भागनिरूपण वर्णन ११०१
धृतराष्ट्रका वचन सुनके दुर्योधनकी वक्तृता ११०१
धृतराष्ट्रके पूछनेपर सञ्जयका युधिष्ठिरके विषयमें धृष्टद्युम्नका उत्साहयुक्त वचन और युधिष्ठिरके द्वारा धृष्टद्युम्नको प्रशंसा वर्णन
धृतराष्ट्रका दुर्योधनको युद्ध न करनेका उपदेश ११०२
धृतराष्ट्रका वचन सुनके दुर्योधनका उत्तर देना और निज पक्षके राजाओंके विषयमें धृतराष्ट्रका शोकयुक्त वचन ११०३
धृतराष्ट्रके पूछनेपर सञ्जयके द्वारा कृष्णार्जुनका माहात्म्य वर्णन तथा कृष्णार्जुनका सन्देश सुनके दूसरे पक्षके बलाबलको निश्चय करके धृतराष्ट्रका दुर्योधनकी सन्धि विषयक उपदेश करना ११०४
दुर्योधनका क्रोधपूर्वक निज माहात्म्य सुनाकर धृतराष्ट्रको धीरज देना ११०५
दुर्योधनको हर्षित करनेके लिये कर्णकी निज स्थावायुक्त वक्तृता और पाण्डवोंके मारनेकी प्रतिज्ञा करना ११०७
भीष्मके द्वारा निज वचनका प्रतिवाद सुनके कर्णका उनके जीवित रहते पर्यन्त शस्त्रोंको परित्याग करके युद्धसे निवृत्त रहनेका सङ्कल्प और भीष्मसे दुर्योधनको वार्त्तालाप ११०७

विषय	पृष्ठा
युधिष्ठिरकी प्रशंसाके लिये धृतराष्ट्रके समीप विदुरका दम गुण और दान्त पुरुषके लक्षण वर्णन ११०८
विदुरका दुर्योधनकी मूढ़ता दिखाते हुए दो पक्षों व्याध तथा मूर्खकिरातोंका इतिहास कहके स्वजनोंके सङ्ग विरोध न करनेका उपदेश ११०९
धृतराष्ट्रका दुर्योधनको पाण्डवोंके सङ्ग सन्धि करनेका उपदेश १११०
धृतराष्ट्रके समीप सञ्जयके द्वारा कृष्णका माहात्म्य वर्णन १११२
धृतराष्ट्रके पूछनेपर सञ्जयके मुखसे ईश्वर-ज्ञानको उपाय वर्णन,—धृतराष्ट्रका आक्षेप सुनके दुर्योधनके विषयमें गान्धारीका तिरस्कार १११३	
धृतराष्ट्रके पूछनेपर सञ्जयके द्वारा कृष्णके नाम और कर्मोंका वर्णन १११४
युधिष्ठिरका कृष्णके समीप विविध युक्ति प्रदर्शित करके कौरवोंके सङ्ग सन्धि करनेके लिये प्रस्ताव करना १११६
कृष्ण और युधिष्ठिरका उत्तर प्रत्युत्तर ११२०	
भीमसेनको कृष्णके समीप कुरुसभामें सन्धि करनेके लिये अनुमति ११२३
सन्धिको इच्छा दूर करने और युद्धका उत्साह बढ़ानेके लिये भीमके विषयमें कौशलके अनुसार कृष्णकी वक्तृता ११२४
कृष्णका वचन सुनके भीमसेनका क्रोध तथा उत्साहपूर्वक निज पराक्रम वर्णन ११२५	
भर्षेयनका विविध युक्तिके सहित कृष्णसे कौरवोंके सङ्ग सन्धि करनेका उपदेश ११२७	
कृष्णका भर्षेयनके वचनकी अनुमोदन करना और हेतुवादके सहित युद्ध घटनाकी सम्भावना वर्णन ११२८
कृष्णके समीप नकुलका कार्यगतिके अनुसार सन्धि वा विग्रहका प्रस्ताव करनेके लिये उपदेश ११३०

विषय	पृष्ठा
कृष्णसे सहदेवका युद्ध घटनाके उपयोगी प्रस्ताव करनेका अनुरोध करना और सहदेवके वचनमें सात्यकिकी सम्मति तथा कृष्णके समीप द्रौपदीके विविध शोकपूर्ण वचन ११३१
कृष्णका द्रौपदीको धीरज देना ११३३
कृष्णका हस्तिनापुरकी ओर चलना और युधिष्ठिर तथा अर्जुन प्रभृतिका कुन्तीके समीप कृष्णके द्वारा सन्देश भेजना ११३४
मार्गमें चलते हुए देवर्षियोंके सङ्ग कृष्णकी वार्त्तालाप... ११३६
शालिभवन और वृकस्थलमें पुरवासियोंके द्वारा श्रीकृष्णका अतिथि सत्कार ११३८
धृतराष्ट्रके प्रस्तावसे वृकस्थल प्रभृति मार्गके स्थानमें दुर्योधनकी आज्ञासे सभा स्थान बनना तथा कृष्णके अतिथि सत्कारके योग्य सब वस्तुओंको संग्रह करना, परन्तु उन सबका अनादर करके कृष्णका हस्तिनापुरमें जाना ११३८
धृतराष्ट्रको विदुरका हितोपदेश और कृष्णके समीप मणिरत्नादि उपहार देनेके लिये निषेध करना ११४०
कृष्णके सत्कार विषयमें दुर्योधनका प्रतिवाद और धृतराष्ट्रको भीष्मका सन्धि करनेके लिये उपदेश ११४१
कृष्णकी कैद करनेके विषयमें भीष्मके समीप दुर्योधनका प्रस्ताव और धृतराष्ट्रका दुर्योधनको उस विषयमें निषेध करना तथा दुर्योधनकी निन्दा करके भीष्मका सभासे बाहिर होना ११४२
कृष्णका हस्तिनापुरमें आना कौरवोंके द्वारा कृष्णका सम्मान
विदुरके गृहमें कृष्णका अतिथि सत्कार होना तथा कृष्णकी देखके कुन्तीके शोकयुक्त वचन ११४३
कृष्णका कुन्तीकी धीरज देना ११४८
कृष्णका दुर्योधनके राजभवनमें जाना ११४८	

विषय	पृष्ठा
दुर्योधनका कृष्णको भोजनके निमित्त निमन्त्रण करना परन्तु कृष्णका अस्वीकृत होना ११४६	
कृष्णके सन्धि प्रस्ताव निरर्थक तथा कौरवोंकी सभामें उनका प्रवेश करना अनुचित होनेके विषयमें कृष्णके सङ्ग विदुरकी वार्तालाप ११५१	
कृष्णका विदुरके समीप शान्ति स्थापित करनेको उपयागिता प्रदर्शित करना ११५३	
कृष्णका कौरवोंको सभामें जाना और वहाँ देवर्षियोंका आगमन ... ११५५	
धृतराष्ट्रके समीप कृष्णका विविध युक्तिके सहित सन्धि स्थापित करनेके विषयमें प्रस्ताव करना ११५६	
परशुरामके द्वारा राजा दम्भीह्वय और नर-नारायणको कथा वर्णन ... ११६०	
वज्र ऋषिके द्वारा नर-नारायणका माहात्म्य और मार्तालिका उपस्थित वर्णन तथा दुर्योधनकी सन्धि विषयक उपदेश ... ११६२	
दुर्योधनके समीप नारद मुनिका अत्यन्त हठ और क्रोध अभिमान प्रभृतिके दोषोंसे रहित होनेके लिये उपदेश तथा गालव मुनि और राजा ययातिका इतिहास वर्णन ... ११७२	
धृतराष्ट्रके अनुरोधसे कृष्णका सन्धि स्थापित करनेके लिये दुर्योधनका आक्षेप करना ११६१	
भीमका कृष्णके वचनको अनुमोदन करके दुर्योधनको उपदेश करना ... ११६४	
दुर्योधनको द्रोण, विदुर और धृतराष्ट्रका उपदेश ;—भीम और द्रोणाचार्यके द्वारा पाण्डवोंका पराक्रम वर्णन और दुर्योधनको सन्धि विषयक उपदेश करना ... ११६५	
दुर्योधनका कृष्णके समीप अपना निरपराधत्व प्रमाणित करते हुए उत्तर देना और पाण्डवोंकी राजांश न देना अभिप्राय प्रकाशित करना ११६६	

विषय	पृष्ठा
कृष्णके क्रोधपूर्वक तिरस्कार करनेपर दुर्योधनका मन्त्रियोंके सहित सभासे बाहर होना ११६७	
दुर्योधनको संयत करनेके निमित्त कौरवोंको कृष्णका उपदेश ... ११६८	
धृतराष्ट्रकी आज्ञासे गान्धारीका सभामें आना और शान्ति स्थापन करनेको इच्छासे दुर्योधनकी बुझाना ... १२००	
दुर्योधनकी गान्धारीका उपदेश ... १२०१	
गान्धारीके वचनका अनादर करके दुर्योधनका सभासे बाहर होके कृष्णके कैद करनेके लिये कर्ण और शकुनि प्रभृतिके सङ्ग परामर्श करना तथा उनके अभिप्रायको जानके सात्याकका कृत स्त्रीका सेना सज्जित करनेके लिये अनुमत देना ... १२०३	
सात्याकका कृष्णके निकट जाकर दुर्योधनका दुष्ट अभिप्राय वर्णन करना और उस विषयमें धृतराष्ट्रसे कृष्णके वचन	
विदुरके द्वारा फिर सभामें बुलाकर दुर्योधनका धृतराष्ट्रका उपदेश ... १२०४	
कृष्णका माहात्म्य कहके विदुरका दुर्योधनको निन्दा करना	
भट्टहासके सहित श्रीकृष्ण भगवानका कौरवोंकी सभामें विराटक्षेप दिखाना १२०५	
ऋषियोंकी आज्ञासे श्रीकृष्णका कौरवोंकी सभासे बाहर होना ... १२०६	
कृष्णका कुन्तीके समीप जाना और कृष्णके समीप युधिष्ठिरादिके विषयमें कुन्तीका उपदेश १२०७	
कुन्तीका पाण्डवोंको उपदेश करनेके मिससे विदुरा और सृञ्जयका इतिहास कहना १२०८	
कुन्तीका कृष्णके सहारे पुत्रोंको सन्देश भेजना १२१७	
कृष्णके विषयमें कुन्तीके कहे हुए वचन दुर्योधनको विदित कराके भीम और	

विषय पृष्ठा
द्रोणाचार्यका उसे युद्धसे निवृत्त होनेके लिये
अनुरोध करना, राजभवन वा सेनाके बीच उत्पात
तथा अशक्तुनोंकी देखके कौरवोंके पराजयकी
सम्भावना वर्णन ... १२१६

धृतराष्ट्रके पूरुनेपर सञ्जयके द्वारा कृष्ण
और कर्णका सम्वाद वर्णन, कर्णके विषयमें
कृष्णका पाण्डवपक्ष अवलम्बन करनेके लिये
अनुरोध करना ... १२२२

कृष्णके समीप कर्णका पाण्डवपक्ष अवल-
म्बन करनेका विषय अस्वीकार करना और
दुर्योधनके पक्षमें रहके युद्धमें देह त्यागनेका
अभिप्राय प्रकाशित करना ... १२२३

कर्णके समीप कृष्णका युद्धके लिये दिन
निश्चय करना ... १२२६

कृष्णके समीप कर्णका निज पक्षकी परा-
जय सूचक अशक्तुन वर्णन करना .. ,

विदुरके निकट कुरु-पाण्डवोंका सन्धि न
होनी सुनके कुन्तीका कर्णकी पाण्डवोंकी पक्ष
अवलम्बन करनेकी इच्छासे उसका जन्म
वृत्तान्त सुनाकर भाइयोंके सङ्ग मिलनेके लिये
अनुरोध करना ... १२३०

कर्णका कुन्तीकी बात अस्वीकार करनी १२३१

कर्णका अर्जुनके अतिरिक्त कुन्तीके
चारों पुत्रोंकी न मारनेका प्रण करना १२३२
युधिष्ठिरके पूरुनेपर कृष्णका कौरवोंकी सभामें
भीष्म द्रोण प्रभृतिने दुर्योधनकी जिस प्रकार
उपदेश किया था, उसे विस्तारपूर्वक वर्णन
करना और दुर्योधनके दुष्ट अभिप्रायके अनु-
सार भावी युद्धका विषय कहना १२३३

कृष्णका वचन सुनके युधिष्ठिरकी भीमा-
दिकी सेनाका विभाग करनेके लिये अनुमति
और सेनापतिका निश्चय करके पाण्डवोंका
सेनाके सहित कुरुक्षेत्रमें जाना ... १२३६
दुर्योधनकी आज्ञासे युद्धके निमित्त साज्जतज्ञ
कौरव पक्षीय राजाओंकी शोभा वर्णन १२४५

विषय पृष्ठा
दुर्योधनका भीष्मकी सेनापति करना और
भीष्मकी युद्ध विषयमें प्रतिज्ञा ... १२४७

युधिष्ठिरका सन्देश युक्त होकर कृष्णके
समीप युद्ध विषयमें सेना विभाग करनेके लिये
कहना और कृष्णकी उस विषयमें सम्मति तथा
पाण्डवोंके समीप बलदेवजीका आना और
युद्ध विषयमें निज सम्मति प्रकाशित करके सर-
स्वती तीर्थमें जाना ... १२४८

युद्धमें सहायता करनेके लिये सेनाके सहित
सुकिराजका पाण्डवोंके निकट आना और
वहाँसे लौटके दुर्योधनके समीप जाना तथा
वहाँसे विदा होकर निज नगरकी ओर प्रस्थान
करना ... १२५०

धृतराष्ट्रके पूरुनेपर सञ्जयके द्वारा कुरु
पाण्डवोंकी सेनाका निवास स्थान वर्णन और
दूत भेजनेके विषयमें दुर्योधनकी सलाह और
वक्तव्य विषय कहके उलूककी पाण्डवोंके
समीप भेजना ... १२५१

उलूकका पाण्डवोंकी सभामें जाना और
दुर्योधनके कहे हुए वचन कहके क्रोध पाण्ड-
वोंका क्रोध बढ़ाना ... १२५७

पाण्डवोंका उलूकके कहे हुए वचनका
उत्तर देना और उलूकका पाण्डवोंकी सभामें
लौटकर दुर्योधनके निकट जाकर सब समा-
चार सुनाना .. १२५९

पाण्डवोंका युद्धके निमित्त प्रस्थान करना
और दृष्टद्युम्नके द्वारा योद्धाओंकी विषयमें प्रति-
ज्ञा निश्चय करके सैनिक एस्वोंका विभाग
करना .. १२६३

दुर्योधनके पूरुनेपर भीष्मका कौरव पक्षीय
रथी और अतिराधियोंकी संख्या वर्णन १२६४

कर्णकी अर्द्धरथी कहनेपर भीष्मके सङ्ग
कर्णका विवाद .. १२६८

भीष्मके द्वारा पाण्डवपक्षीय रथी
अतिराधियोंकी संख्या वर्णन

विषय पृष्ठा
 शिखण्डीके वध विषयमें भीष्मकी सम्मति तथा, दुर्योधनके पूछनेपर अम्बाका खान बर्णन ... १२७३

भीष्मका शिखण्डीके पहले स्त्री होनेका वृत्तान्त बर्णन करनेके विषयमें काशिराज पुत्रो अम्बादिका स्वयम्बर तथा सब राजाओंकी पराजित करके निज पराक्रमका वृत्तान्त कहना „

अम्बाका शाल्वराजके विषयमें पूर्ण अनुराग प्रकाशित करनेपर उसे शाल्वके समीप भोजनके लिये भीष्मकी अनुमति, अम्बाका शाल्वराजके निकट जाना और शाल्वके ग्रहण न करनेमें अम्बाका तपोवनमें जाना तथा ऋषियोंके निकट तप करनेकी इच्छा करना ... १२७४

अम्बाके विषयमें तपस्वियोंका विचार १२७५

तपस्वियों तथा अम्बाके निकट राजर्षिहोत्रवाहनका आना और निज दौहित्री अम्बाका परिचय पाके उसके दुःखको दूर करनेके विषयमें उपदेश करना ... १२७७

होत्रवाहनका परशुरामके सेवक अश्रुतब्रणके निकट निजदौहित्रीका वृत्तान्त कहना १२७८

अश्रुतब्रणका अम्बाको परशुरामके द्वारा बैरसमाप्त करानेके विषयमें उपदेश करना १२७९

तपस्वियोंके निकट परशुरामका आना और अम्बाके दुःखका वृत्तान्त सुनके भीष्मकी शासन करनेका विषय अङ्गीकार करके कुरुक्षेत्रमें जाना. ... १२८०

भीष्मकी आज्ञान करके परशुरामका उन्हें अम्बा ग्रहण करनेके विषयमें अनुरोध करना और उस विषयमें भीष्मकी अस्मति तथा तीसरे दिन पथीत भीष्मके सङ्ग परशुरामका युद्ध बर्णन ... १२८२

भीष्मका अग्रजके वसुधामा के द्वारा प्रत्यापनास्त्र चक्रान्तरी विधि विदित जाना १२८३

दूमरे दिन प्रत्यापनास्त्र अम्बान करने पर देव तथा ऋषियोंके द्वारा भीष्मका निवारित

विषय पृष्ठा
 होना और देवताओं तथा पितरोंके वचनसे निवारित होके दोनोंका युद्धसे निवृत्त होना ... १२८५

परशुरामके द्वारा भीष्मके सङ्ग नैर समाप्त होनेपर अम्बाका फिर तपोवनमें जाकर उग्र तप करना और गङ्गाके शापसे आधे शरीरसे नदीक्षप धारण करना ... १२८६

अम्बाको महादेवके समीप अभिलषित वर मिलना ... १२८७

अम्बाका जलती हुई अग्निमें प्रवेश करके शरीर त्यागना और शिवके वरसे द्रुपदराजके गृहमें कन्यारूपमें उत्पन्न होके पुत्ररूपसे प्रसिद्ध होना ... १२८८

पुत्ररूपिणी द्रुपदकन्या शिखण्डीका दशार्ण देशकी राजाकी कन्याके सङ्ग विवाह होना और निज कन्याके द्वारा उसका स्त्रीभाव प्रकाशित होनेपर दशार्णराजका द्रुपदके समीप दूत भेजना ... १२८९

महादेवके वरसे कन्याके पुरुषत्व लाभकी आशा रहनेपर द्रुपदके द्वारा देवताओंकी पूजा होनी और शिखण्डीका प्राण त्यागनेके लिये निर्जन वनमें जाना तथा स्थूणाकर्ण यक्षके निकट पुरुषत्व लाभ करके निज नगरमें लौट आना और विहरण्यवर्माके समीप शिखण्डीका पुरुष रूपसे परिचय ... १२९०

स्थूणाकर्ण यक्षके स्थानमें कुवेरका आना और उसके पुरुषत्व परिवर्तन करनेका वृत्तान्त सुनते क्रुद्ध होकर शिखण्डीके जीवन समय पर्यन्त स्त्रीभावसे निवास करनेके लिये शाप देकर निज स्थानपर जाना ... १२९१

पहली प्रतिज्ञाके अनुसार शिखण्डीका पुरुषत्व प्रदान करनेके निमित्त स्थूणाकर्णके पास जाना और उसके शापका वृत्तान्त जानके वहासे प्रसन्नतापूर्वक निज नगरमें लौट आना, शिखण्डीका स्त्रीपूर्वक बर्णन करनेके अनन्तर

विषय	पृष्ठा
उसके बच विषयमें भोष्मता अस्वीकार करना १३०२
दुर्योधनके पूछनेपर भोष्म और द्रोग प्रभृति का पाण्डवी सेनाके विनाश विषयमें निज निज सामर्थ्यके अनुसार दिन निश्चय करना १३०३
युधिष्ठिरके पूछनेपर अर्जुनका कौरवी सेनाके विनाश विषयमें निज सामर्थ्यके अनुसार समय निर्णय करके युधिष्ठिरको धोरज देना, कौरव पक्षीय सेनाका अणीकूमके अनुसार युद्धके निमित्त प्रस्थान करके रणक्षेत्रमें शिविर स्थापित करना १३०४
पाण्डवाको सेनाका कौशलके अनुसार अणी विभाग पूर्वक युद्धके निमित्त प्रस्थान करना १३०५
उद्योगपर्वकी समाप्ति १३०६

भौष्मपर्वका सूचोपत्र ।

कुरु पाण्डवाके युद्धका वृत्तान्त शिविर स्थापित करना और व्यूह रचना १३०७
युद्धके लिये नियम करना १३०८
धृतराष्ट्र का युद्धका वृत्तान्त सुनानके लिये व्यासदेवके द्वारा भृशकुनाका बान १३०९	... १३०९
धृतराष्ट्र का व्यासदेवके समीप अनुयायि विनाश विषयमें देवी कारण बान और व्यासदेवका धृतराष्ट्रको युद्ध निवारण करनेके लिये उपदेश करना १३१२
धृतराष्ट्रका व्यासदेवको प्रसन्न करनेके लिये प्रायना और व्यासदेवके द्वारा जय पराजयके लक्षण वर्णन १३१३
पृथ्वीके गुण, भूतक देश तथा जावोको आशुन, प्र. १३१४	... १३१४
नाम और पारभाणाद वर्णन १३१५
सदृशन दाप और धर्म पक्षतः ।	...

विषय	पृष्ठा
वृत्तान्त मेरुगिरिके उत्तर और पूर्वभागका विवरण १३१६
मात्यवान पर्वतका विवरण १३१८
पृथ्वीके सब होपोंको कथा १३२२
चंद्र सूर्य और राहका वृत्तान्त तथा भूमि-पर्व्याध्याय सुननेका फल वर्णन १३२५
रुक्मयका धृतराष्ट्रके समीप युद्धमें भोष्मके आरंभ जानिका समाचार कहना और धृतराष्ट्रका विनाश १३२६
रुक्मयका धृतराष्ट्रके निकट युद्ध वृत्तान्त कहना १३२७
दोनों पक्ष ही व्यूह रचना होनेपर दुर्योधनके द्वारा दुःशासनका भोष्मकी रक्षा करनेके लिये आज्ञा मिलनी १३३०
प्रथम दिनकी युद्धसज्जा और सेनापतियोंका विवरण १३३१
आतंरिके कहै हुए दुर्निमित्तका दीखना १३३२	... १३३२
भोष्म और द्रोगका प्रतिदिन पाण्डवोंकी जयके लिये आशोच्चाद करके दुर्योधनकी ओरसे युद्ध करनेका वृत्तान्त तथा राजाओंके विषयमें भोष्मका उपदेश, भौष्मके पृष्ठरक्षक तथा उनके अनुगामी वीरोंका वृत्तान्त और व्यूह रचनाका विवरण तथा दोनों पक्षके योद्धाओंकी अवस्था और लक्षण वर्णन १३३३	... १३३३
धृतराष्ट्र पक्षीय अधिक सेना देखके युधिष्ठिरका विषादयुक्त होना और अर्जुनका युधिष्ठिरके समीप विजय सम्भावना वर्णन करना १३३४
निज सेनाके विषयमें युधिष्ठिरका कर्प-जनक उपदेश, पाण्डव पक्षीय योद्धाओंका विवरण १३३८
अर्जुनका कुरुका भौष्मसे रक्षित सेनाके विनाशके लिये दुर्गात्तव पाठ करनेके निमित्त उपदेश और अर्जुनके द्वारा दुर्गाकी स्तुति १

विषय	पृष्ठा
दुर्गादेवीसे अर्जुनको वर मिलना और पाण्डवोंकी विजयका कारण वर्णन	१३४०
द्रोणाचार्यके समीप दुर्योधनके द्वारा दोनों औरकी सेनाका वृत्तान्त वर्णन	१३४१
युद्ध करनेके लिये उद्यतपुरुषोंको देखनेके लिये कृष्णके समीप अर्जुनकी इच्छा	१३४१
अर्जुनका रुजनों तथा मातुलादिको देखकर बिषादयुक्त होके युद्धसे निवृत्त होनेकी इच्छा	... १३४२
कृष्णार्जुनकी वार्त्तालाप	... १३४३
आत्मतत्त्व-विषयक प्रस्ताव	...
निष्काम कर्मकी प्रशंसा और सकाम कर्मकी निन्दा	... १३४५
समाधिस्थ और स्थिरप्रज्ञ पुरुषोंके लक्षण	१३४७
ज्ञान और कर्म विषयके प्रस्ताव	... १३४८
पुरुष जिसके द्वारा पापाचरण करता है, उसका विवरण और कर्मयोगादिका पुरातनत्व वर्णन	... १३५०
ज्ञान, कर्म और सन्न्यासयोग	... १३५४
आत्म संयमन योग	... १३५६
चित्तसंयमन विषयके प्रस्ताव	... १३५७
यागमन्त्र पुरुषोंकी गति तथा विज्ञान योगका वर्णन	... १३५६
ब्रह्म, अध्यात्म कर्म, अधिभूत और आधिदैव रूप विज्ञान याग तथा तारक ब्रह्मयोगका वर्णन	... १३६१
मनुष्य, दैव और ब्रह्मवर्षका परिमाण, ब्रह्मीपासक तथा कर्म करनेवालोंके परलोकमें जानेका मार्ग वर्णन तथा संसारमें पुनरागमन	... १३६३
परम गोपनीय ब्रह्मविद्याका विषय वर्णन	१३६४
परमात्मस्वरूप कृष्णकी सर्वकारणता, जन्म हीनता और उन्हींकी कृपासे जीवोंका मोह विनाशादि वर्णन	... १३६६
कृष्णकी परमेश्वर रूपसे विभूति वर्णन	१३६७

विषय	पृष्ठा
कृष्णका अर्जुनको अपना अलौकिक रूप दिखाना और अद्भुत तथा भीषण मूर्ति देखके अर्जुनका विस्मित होना	... १३६८
लोक संहार करनेमें प्रवृत्त हुए कृष्णका अर्जुनके विषयमें उपदेश और अर्जुनके द्वारा कृष्णकी स्तुति तथा शान्त रूप देखनेके लिये प्रार्थना	... १३७०
अर्जुनकी घोरज देके कृष्णका पहला रूप दिखाना और दोनोंकी वार्त्तालाप	१३७१
ईश्वरमें कर्म समर्पण करनेवाले उपासकों तथा ब्रह्मीपासकोंकी अष्टता अष्टतादिका वर्णन	... १३७२
प्रकृति-पुरुषका योग वर्णन	... १३७३
सत, रज और तमोगुणके स्वरूप तथा कार्योंका वर्णन	... १३७५
तीनों गुणोंकी अतिक्रम करनेकी उपाय तथा पुरुषोत्तम योग	... १३७६
देव और असुर प्राकृतिका वर्णन	... १३७८
सालिक, राजसी और तामसी अहं तथा उनके कार्योंका वर्णन	... १३७९
सन्न्यास और त्यागका विवरण	... १३८०
कर्म और उसमें प्रवृत्तके कारण	१३८१
बुद्धि, धृति प्रभृति के सालिकत्वादि और त्रिविध सुखादिका विवरण	... १३८२
ब्राह्मणादि चारों वर्णोंके सालिकादि गुण कार्य और उनके फल तथा ब्रह्म प्राप्तिकी उपाय वर्णन	... १३८३
परमेश्वरके शरणापन्न होनेके लिये उपदेशादि	... १३८४
गीताके अर्थका तत्व पात्र विशेषको कहनेका उपदेश और सुननेका फल, अर्जुनका मोह कूटना तथा गीता सुननेके अनन्तर सञ्जयके द्वारा कृष्णार्जुन पचाय लागाके विजयकी सम्भाषना वर्णन	... १३८४
अर्जुनकी युद्ध करनेके लिये उद्यत होती	

विषय	पृष्ठा
देखके योद्धाओंका युद्धके बाजे बजाना, युद्ध देखनेके लिये विमानपर चढ़के देवताओंका आकाशमें आना और युधिष्ठिरका भीष्मके निकट जाना ... १३८५	
युधिष्ठिरके विषयमें भीष्म अर्जुन, नकुल सहदेव, कृष्ण तथा कौरवी सेनाके पुरुषोंके वचन ... १३८६	
भीष्म और युधिष्ठिरकी वार्त्तालाप १३८६	
युधिष्ठिरका द्रोणाचार्यके समीप जाना और उन दोनोंकी वार्त्तालाप ... १३८७	
युधिष्ठिरका कृपाचार्यके निकट जाना तथा उन दोनोंकी वार्त्तालाप ... १३८८	
युधिष्ठिरका शल्यके निकट जाना और उन दोनोंकी वार्त्तालाप ... १३८९	
युधिष्ठिरका दुर्योधनकी सेनासे बाहिर होना, कर्णको पाण्डवोंकी ओरसे युद्ध करनेके लिये कृष्णका अनुरोध और उस विषयमें कर्णकी असममति, दुर्योधनकी ओरका यदि कोई पुरुष युधिष्ठिरके पक्षमें युद्ध करनेके लिये प्रवृत्त हो उसके निमित्त जंघे स्वरसे घोषणा और उसे सुनके युयुत्सुका युधिष्ठिरके पक्षमें आना १३८९	
प्रथम दिनका युद्धारम्भ ... १३९०	
हैरथ युद्ध ... १३९२	
संक्रुल युद्ध ... १३९५	
अभिमन्युके सङ्ग भीष्म तथा उनके रक्षक गणोंका युद्ध ... १३९६	
शल्यके हाथसे युद्धमें बिराट पुत्र उत्तरका मारा जाना और बिराटपुत्र शङ्खके सङ्ग शल्यका युद्ध और भीष्मके द्वारा पाण्डवाकी सेनाका विनाश तथा प्रथम दिनका युद्ध समाप्त १३९८	
युधिष्ठिरका शोकित होके कृष्णके समीप विषयके लिये परामर्श करना ... १३९९	
युधिष्ठिके शोक कुड़ानेके विषयमें कृष्णका उपदेश और युधिष्ठिर तथा धृष्टद्युम्नकी वार्त्तालाप ... १४००	

विषय	पृष्ठा
दूसरे दिनकी युद्धमें पाण्डवोंकी ओर कौटुव्युद्ध बनाना और उसका अवयव वर्णन १४०१	
विपक्ष व्यूहकी देखके दुर्योधनका द्रोणाचार्यके निकट निज अभिप्राय प्रकाशित करना १४०२	
भीष्म द्रोणके द्वारा व्यूह रचना और उसके अवयवोंका वर्णन ... १४०३	
दोनों सेनाका युद्धके लिये उद्यत होना, भीष्मका पराक्रम देखके कृष्णके समीप अर्जुनके वचन ... १४०३	
अर्जुनके सङ्ग भीष्म द्रोण प्रभृति महारथोंका युद्ध ... १४०४	
भीष्म और अर्जुनका युद्ध, देवताओंकी वार्त्तालाप ... १४०५	
द्रोणाचार्यके सङ्ग धृष्टद्युम्नका युद्ध ... १४०७	
कलिङ्गराजके सङ्ग भीष्मसेनाका युद्ध ... १४०७	
भीष्मसेनके हाथसे कलिङ्गराजके पुत्र शत्रुदेव तथा भानुमानका मारा जाना और कलिङ्ग सेनाका विनाश ... १४०८	
भीष्मसेनके विषयमें सात्यकि और धृष्टद्युम्नकी सहायता ... १४११	
धृष्टद्युम्नके सङ्ग अश्वत्थामा शल्य और कृपाचार्यका युद्ध ... १४१२	
अभिमन्युके सङ्ग दुर्योधनपुत्र लक्ष्मणका युद्ध, अर्जुनका पराक्रम प्रकाशित करना ... १४१३	
दूसरे दिनका युद्ध समाप्त ... १४१३	
तीसरे दिनका युद्धारम्भ, भीष्मके द्वारा गास्ड्यूह और पाण्डवोंकी ओर चर्चन्द्रव्यूह बनना ... १४१४	
कुरु-पाण्डवोंकी सेनाके वीरोंका संग्राम १४१४	
अर्जुन, सात्यकि, अभिमन्यु और भीष्मसेनके द्वारा सीवन्नादि कुरुसेनाका तितर बितर होना ... १४१५	
दुर्योधन और भीष्मकी वार्त्तालाप ... १४१६	
भीष्मका कुंडु होके निज पराक्रम प्रकाशित करना ... १४१७	

विषय	पृष्ठा	विषय	पृष्ठा
कृष्णके अनुरोधसे अर्जुनका भीष्मके सङ्ग युद्ध करना ... १४१६		पाण्डवोंको युद्धमें जीत तथा चौथे दिनका युद्ध समाप्त... १४३२	
अर्जुनका मृदुयुद्ध देखके कृष्णका स्वयंभीष्म विनाशके निमित्त चिन्तित होना, भीष्मका पराक्रम वर्णन ... ,		पाण्डवोंकी अवधता तथा धृतराष्ट्रपुत्रोंके विनाशका कारण वर्णन ... ,	
युधिष्ठिरकी सेनाको भागतो हुई देखके सात्यकिके समीप कृष्णके वचन ... १४२०		भीष्मके द्वारा कृष्णका माहात्म्य उत्पत्ति, स्थिति तथा स्तोत्र ... १४३४	
भीष्मको मारनेके लिये हाथमें चक्र लेकर कृष्णका रथसे उतरना, कृष्णके विषयमें भीष्मके वचन और अर्जुनके द्वारा कृष्णका निवारित होना ... १४२१		पाँचवें दिनके युद्धमें मकर व्यूह और श्येनव्यूह बनना, भीष्मके सङ्ग भीमसेनका युद्ध, अर्जुनका युद्ध करनेके लिये भीष्मके समीप जाना तथा पाण्डवोंके सङ्ग कुरुपक्षीय राजाओंका युद्ध ... १४३६	
कृष्णका फिर रथपर चढ़ना, अर्जुनका पराक्रम वर्णन... १४२२		भीष्मका पराक्रम प्रकाशित करके भीमसेनादिके सङ्ग युद्ध करना ... १४४३	
पाण्डवोंकी जीत तथा तीसरे दिनका युद्ध समाप्त ... १४२३		अर्जुनके सङ्ग अश्वत्थामाका युद्ध १४४४	
चौथे दिनके युद्धमें दोनों ओर व्यालव्यूह बनना ... ,		दुर्योधनके सङ्ग भीमसेन और लक्ष्मणादिके सङ्ग अभिमन्युका युद्ध ... ,	
भीष्मके सङ्ग अर्जुनका युद्ध ... १४२४		सात्यकिके सङ्ग भूरिश्रवाका युद्ध १४४५	
कौरवोंकी सेनाके सङ्ग अभिमन्यु और धृष्टद्युम्नका युद्ध ... १४२५		भूरिश्रवाके हाथसे सात्यकिके दस पुत्रोंका वध ... १४४६	
धृष्टद्युम्नके हाथसे संयमनिपुत्रका मारा जाना संयमनिके सङ्ग धृष्टद्युम्नका युद्ध और धृतराष्ट्रके शोक युक्त वचन ... १४२६		पाँचवें दिनका युद्ध समाप्त ... १४४७	
शल्यके सङ्ग धृष्टद्युम्न और अभिमन्युका युद्ध तथा दुर्योधनके सङ्ग भीमसेनका संग्राम ,		छठे दिनका युद्धारम्भ पाण्डव पक्षमें मकरव्यूह और दुर्योधनकी ओर क्रीडव्यूह बनना ,	
भीमसेनके हाथसे मगध देशीय गजसेनाका विनाश ... १४२७		धृतराष्ट्रके शोकयुक्त वचन और सञ्जयका उत्तर ... १४४८	
अभिमन्युके हाथसे मगधराजका मारा जाना और भीमके हाथसे कौरवोंकी सेनाका विनाश ... १४२८		भीमका दुःशासनादिकी सेनामें प्रविष्ट होना ... १४४९	
भूरिश्रवाके सङ्ग सात्यकिका युद्ध ... १४२९		धृष्टद्युम्नका भीमसेनके समीप जाना और दुर्योधनकी आज्ञासे उसे मारनेके लिये धृतराष्ट्रपुत्रोंकी चेष्टा ... १४५१	
दुर्योधनके सङ्ग भीमसेनका युद्ध ... १४३०		धृष्टद्युम्नके द्वारा धृतराष्ट्रके पुत्रोंका मोहित होना और द्रोणाचार्यके अस्त्र प्रभावसे फिर सावधान होना ... ,	
भीमसेनके हाथसे धृतराष्ट्रके कई एक पुत्रोंका मारा जाना और भीमसेन तथा धृष्टद्युम्नके सङ्ग भगदत्तका संग्राम ... १४३१		युधिष्ठिरकी आज्ञासे अभिमन्यु, आदि वारह वीराका भीमसेन तथा धृष्टद्युम्नकी रक्षाके लिये जाना ... १४५२	

विषय	पृष्ठा	विषय	पृष्ठा
द्रोणाचार्यके द्वारा दृष्ट्युन्मकी पराजय और पाण्डवोंकी सेनाका तितर बितर होना १४५२		नकुल-सहदेवके सङ्ग मद्राजका युद्ध तथा मद्राजकी पराजय ... १४६३	
दुर्योधन तथा उनके कई एक भाइयोंके सङ्ग भीमसेनका युद्ध और अभिमन्यु प्रभृति बारह वीरोंके सङ्ग दुर्योधनादिका संग्राम ... १४५३		युधिष्ठिरसे युद्धकरके श्रुतायुका पराजित होना ,,	
भोष्मके द्वारा पाण्डव सेनाका तितर बितर होना, दुर्योधनके विषयमें भीमसेनके वचन और दानोंका संग्राम और जयद्रथादिके सङ्ग अभिमन्यु, प्रभृतिका युद्ध ... १४५४		कृपाचार्यके सङ्ग चेकितानका युद्ध और दृष्टकेतुसे भूरिश्रवाकी लड़ाई ... १४६४	
दर्शमुख आदि पाच भाइयोंके सङ्ग केकयराज पाचों भाइयोंका संग्राम तथा छठे दिनका युद्ध समाप्त ... १४५६		अभिमन्युके साथ दृतराष्ट्रके तीन पुत्रोंको लड़ाई और अर्जुन भोष्म तथा दुर्योधन प्रभृतिका सभागम	
दुर्योधन और भोष्मकी वार्त्तालाप तथा कुरुसेनाका युद्ध भूमिमें जाना		शिखण्डके विषयमें युधिष्ठिरके वचन १४६६	
भोष्म का दुर्योधनको घोरज दिके शस्त्रोंकी पीड़ा दूर करनेवाली औषधो देना १४५७		भोष्म, युधिष्ठिर, भीमसेन और चित्रसेनका सभागम ... १४६७	
सातवें दिनका दुद्धारम्भ कौरवोंकी और मण्डलशूह तथा पाण्डवोंकी ओर वज्रशूह बनना ... १४५८		संकुल संग्राम और सातवें दिनका युद्ध समाप्त ... १४६८	
युद्धमें भीष्मार्जुनका सभागम		आठवें दिनका युद्धारम्भ कुरुपक्षमें सागर व्यूह और पाण्डवोंकी ओर शृङ्गाटक व्यूह बनना ... १४६९	
द्रोणाचार्यके सङ्ग विराटका युद्ध १४५९		भोष्म और भीमसेनका पराक्रम प्रकाशित करना तथा भीमसेनके हाथसे दृतराष्ट्रके सुनाभादि कई एक पुत्रोंका मारा जाना १४७१	
द्रोणाचार्यके हाथसे विराटपुत्र शंखका मारा जाना, अखत्यमाके सङ्ग शिखण्डकी पराजय ... १४६०		भोष्मके समीप दुर्योधनके वचन और दृतराष्ट्रके सङ्ग सञ्जयकी वार्त्तालाप १४७२	
सात्यकिके सङ्ग अलम्बुषका युद्ध और अलम्बुषका भाग ११, दृष्ट्युन्मके सङ्ग दुर्योधनका युद्ध ... १४६०		संकुल संग्राम और शकुनिके इरावानका युद्ध तथा इरावानका परिचय ... १४७४	
दुर्योधनकी पराजय, भीमसेनसे कृतवर्माका संग्राम और कृतवर्माकी पराजय १४६१		इरावानसे शकुनिके भाइयोंको लड़ाई और शकुनिके पाच भाइयोंकी मृत्यु, अलम्बुष राक्षसके साथ इरावानका संग्राम १४७६	
दृतराष्ट्र और सञ्जयकी वार्त्तालाप, अन्तिराज दाना भाइयोंके सङ्ग इरावानका युद्ध		अलम्बुष राक्षसके हाथसे इरावानका मारा जाना ... १४७७	
भगदत्तसे घटोत्कचका संग्राम और घटोत्कचकी पराजय ... १४६२		संकुल युद्ध अर्जुन भोष्म तथा द्रोणाचार्यका पराक्रम, घटोत्कचसे दुर्योधनकी लड़ाई तथा दुर्योधनकी पराजय ... १४७९	
		घटोत्कचके सङ्ग द्रोणादका संग्राम और द्रोणादकी पराजय ... १४८१	
		सङ्ग संग्राम और दृतराष्ट्रकी सेना विनाश	

विषय	पृष्ठा
भीमसेनके साथ दुर्योधनका संग्राम	१४८१
घटोत्कचकी मायायुद्धसे पाण्डवोंकी विजय	१४८३
भीम और दुर्योधनकी वार्त्तालाप	„
भगदत्त प्रभृतिके साथ भीमसेन और घटोत्कच प्रभृतिका युद्ध	... १४८४
इरावानकी मृत्यु, सुनके कृष्णके समीप अर्जुनके शोकयुक्त बचन	... १४८६
अर्जुनका भीम प्रभृतिके सङ्ग युद्ध	१४८७
भीमसेनके सङ्ग युद्धमें धृतराष्ट्रके कई एक पत्रोंका मारा जाना	... „
दोनों ओरके प्रधान योद्धा तथा सैनिक पुरुषोंका युद्धमें मारा जाना और आठवें दिनका युद्ध समाप्त	... १४८८
पाण्डवोंके विनाश विषयमें दुर्योधन-दिकी परामर्श	... १४८९
कर्णकी सलाहसे दुर्योधनका भीमके निकट जाना और दोनोंकी वार्त्तालाप	„
भीमके बचनके अनुसार युद्धके निमित्त दुर्योधनको राजाओं तथा दुःशासनकी आज्ञा देना	... १४९२
सेनाका युद्धभूमिमें जाना और नवें दिनका युद्धारम्भ	... „
दोनों ओरकी सेनाका व्यूह वर्णन	१४९३
अभिमन्युके द्वारा कुरुसेनाका विनाश	१४९४
अभिमन्युके सङ्ग युद्धमें अश्वत्थामकी पराजय	... १४९५
भीम द्रोणादिके सङ्ग अभिमन्यु और अर्जुन प्रभृतिका संग्राम	... १४९७
अर्जुनके द्वारा विगर्तराजको पराजय, भीमसेनके हाथसे गजसेनाका विनाश और सङ्ग युद्ध	... १४९८
युधिष्ठिर, नकुल और सहदेवके हाथसे दुर्योधनकी बद्धतबो सेनाका विनाश	१५०३
महाराज शल्यके सङ्ग युधिष्ठिरका संग्राम	१५०४
पाण्डवोंसे भीमका संग्राम	... „

विषय	पृष्ठा
भीमको पराक्रम प्रकाशित करते देखके कृष्णका क्रुद्ध होके अर्जुनके हाथ शान्त होना	... १५०६
नवें दिनका युद्ध समाप्त	... १५०७
युधिष्ठिर और कृष्णकी वार्त्तालाप	१५०८
पाण्डवोंका भीमके समीप जाना और विजयकी उपाय पूछना, युधिष्ठिरके सङ्ग भीमकी वार्त्तालाप	... १५१०
कृष्ण और अर्जुनकी वार्त्तालाप	... १५११
दशवें दिनका युद्धारम्भ और भीमके हाथसे पाण्डवोंकी सेनाका विनाश	१५१३
भीमके सङ्ग शिखण्डी और अर्जुनका युद्ध तथा परस्पर वार्त्तालाप	... १५१४
धृतराष्ट्र और सञ्जयकी वार्त्तालाप तथा भीमका पराक्रम वर्णन	... १५१५
दुर्योधन और भीमकी वार्त्तालाप	१५१६
भीमको पाण्डवोंका आक्रमण और कौरवोंके पक्षके वीरोंका उन्हें निवारण करनेकी चेष्टा	... १५१७
अश्वत्थामासे द्रोणाचार्यके बचन	... १५२१
भगदत्त प्रभृति दश महारथोंके सङ्ग भीमसेनका युद्ध	... १५२२
भीमार्जुनके द्वारा भगदत्त प्रभृतिकी पराजय होनेपर कुरुसेनाका विनाश	... १५२५
धृतराष्ट्र और सञ्जयकी वार्त्तालाप, भीमका पाण्डवोंकी सेनासे युद्ध और शरीर त्यागनेकी इच्छा, युधिष्ठिरके समीप भीमके बचन	१५२६
भीमकी मारनेके लिये धृष्टद्युम्न आदिका यत्न और कुरुपक्षीय वीरोंका उन्हें निवारण करनेके लिये उद्योग करना	... १५२७
दुर्योधनके रुद्ध अभिमन्युका युद्ध	१५२८
अश्वत्थामासे सात्यकी धृष्टकेतुसे पौरव और भीमसेनके सङ्ग सुशर्माका युद्ध	„
अभिमन्युके साथ वृहदशका संग्राम	...
भीमके हाथसे गजसेनाका विनाश, शल्य युधि-	...

विषय पृष्ठा
 छिर और द्रोणाचार्यसे धृष्टद्युम्नका युद्ध और
 भीष्मकी रणभूमिमें गिरानेके लिये शिखण्डीके
 सहित अर्जुनका उनके समीप जाना १५२६
 अर्जुनके द्वारा विदेह और कलिङ्ग प्रभृति
 अनेक देशकी सेनाका विनाश ... १५३२
 अर्जुनके सङ्ग युद्धमें दुःशासनादिकी पराजय ,,
 शल्य और कृपाचार्य प्रभृतिके द्वारा पाण्डवों
 और अर्जुनके हाथसे कुरुसेनाका विनाश १५३३
 पाण्डवोंका भीष्मकी और लगातार अस्त्र
 चलाना ... १५३४
 द्रोणादिके सङ्ग सात्यकि प्रभृतिका संग्राम,
 शिखण्डीका भीष्मके ऊपर बाण चलाना अर्जु-
 नके बाणसे भीष्मका धनुष कटना १५३६
 भीष्मका मृत्यु की इच्छा करनी, देवताओंका
 भीष्मके वचनकी अनुमोदन करना १५३७
 भीष्मका अर्जुनके ऊपरबाण न चलाना
 और अर्जुन शिखण्डीका भीष्मके ऊपर प्रहार
 करना ... १५३८
 दुःशासनके समीप भीष्मके वचन ... १५३८
 राजा युधिष्ठिरकी आज्ञासे पाण्डवपक्षके
 सब वीरोंका भीष्मके ऊपर प्रहार करना और

विषय पृष्ठा
 दोनों ओरके वीरोंका तुमुल युद्ध अन्तमें कुरु-
 पक्षकी पराजय, भीष्मका रथसे गिरना १५३८
 आकाश बाणी सुनना और गंगाके भेजे हुए
 महर्षियोंके सङ्ग भीष्मकी वार्त्तालाप १५३९
 भीष्मके गिरनेपर पाण्डवोंका हर्ष और कौर-
 वोंका विषाद धृतराष्ट्रका शोकित होना १५४०
 दुःशासनका द्रोणाचार्यके समीप जाके
 भीष्मके गिरनेका वृत्तान्त कहना और उस
 दसवें दिन कुरुपाण्डवोंका निज निज सेनाको
 युद्धसे निवृत्त करना, पाण्डवोंका और कौर-
 वोंका भीष्मके समीप जाके उपाधान प्रदान
 करना ... १५४१
 भीष्मके घाव आराम करनेके लिये उनके
 समीप वैद्यका आगमन, कृष्ण और युधिष्ठिरकी
 वार्त्तालाप ... १५४३
 अर्जुनका भीष्मको जलसे टप करना १५४४
 भीष्मके द्वारा अर्जुनकी प्रशंसा और दुर्धौ-
 धनकी युद्धसे निवृत्त होनेका उपदेश १५४५
 भीष्मके निकट कर्णका जाना, भीष्म और
 कर्णकी वार्त्तालाप ... १५४६
 भीष्मपर्वकी समाप्ति ... १५४८

पादि, सभा, वन, विराट, उद्योग, भीष्म इत्यादि पर्वोंकी सूचीपत्र सम्पूर्णा ।

सूचीपत्र ।

द्रोणपर्व ।

विषय	पृष्ठा	विषय	पृष्ठा
वैशम्पायन सुनिके द्वारा धृतराष्ट्र तथा उनके पुत्रोंकी अवस्था वर्णन ...	१५४६	भागनेकी शपथ करके अर्जुनकी रणभूमिसे प्रत्यक्ष भागाना करना और अर्जुनका उनके सङ्ग युद्ध करनेके लिये जाना तथा अर्जुनसे युधिष्ठिरकी वार्त्तालाप...	१५७६
भीमकी रक्षाका विधान करके दोनों पक्षके वीरोंका युद्धके निमित्त सज्जित होना ...	१५५०	अर्जुनका विगर्तोंके सङ्ग युद्ध और सुधन्वाका वध ...	१५८१
कर्णका रणभूमिमें आके कौरवोंकी धीरज देना ...	१५५१	कुरुपाण्डवोंकी सेनाका व्यूह बनना ...	१५८४
कर्णका भीमके समीप जाना और भीमसे कर्णकी वार्त्तालाप ...	१५५३	कुरुपाण्डव तथा दोनों ओरके वीरोंका युद्धारम्भ ...	१५८६
कर्णकी युद्ध करनेके लिये भीमके द्वारा अनुमति मिलनी ...	१५५४	द्रोणाचार्यके हाथसे सत्यजितका वध होनेपर युधिष्ठिरका रणभूमिसे भागना ...	१५८७
द्रोणाचार्यका सेनापति पदपर अभिषिक्त होना धृतराष्ट्रके समीप सञ्जयका संक्षेपमें द्रोणवध वृत्तान्त कहना ...	१५५७	पाण्डव पक्षीय योद्धाओंका द्रोणाचार्यकी आक्रमण करना और द्रोणाचार्यके हाथसे पाण्डवोंकी सेनाका विनाश ...	१५८८
राजा धृतराष्ट्रका सञ्जयसे विस्तारपूर्वक द्रोणवध वृत्तान्त पूछना ...	१५६०	भीमके विषयमें कर्णके सङ्ग दुर्योधनकी वार्त्तालाप ...	१५९०
सञ्जयके द्वारा द्रोणाचार्यका युद्ध वृत्तान्त वर्णन ...	१५६८	पाण्डवपक्षीय भीम प्रभृति योद्धाओंके रथ चिह्न वर्णन ...	१५९१
द्रोणाचार्यका युधिष्ठिरकी ग्रहणविषयक कृतपूर्वक दुर्योधनकी वर देना ...	१५६९	धृतराष्ट्रका आक्षेप ...	१५९५
द्रोणाचार्यकी प्रतिज्ञा सुनके युधिष्ठिरका भयभीत होना और अर्जुनका युधिष्ठिरकी धीरज देना ...	१५६९	दोनों सेनाके योद्धाओंका हृन्द् युद्ध ...	१५९६
दोनों ओरकी सेनाका युद्धारम्भ, द्रोणाचार्यका पराक्रम प्रकाशित करना ...	१५७०	भीमसेनके सङ्ग युद्धमें दुर्योधनकी पराजय और भीमके हाथसे हाथीके सहित राजा अङ्गका मारा जाना ...	१५९९
दोनों सेनाके वीरोंका द्वैरूप संग्राम ...	१५७२	भगदत्तके सङ्ग युद्धमें भीमादिकी पराजय और दशार्णराजका मारा जाना तथा भगदत्तके हाथीके द्वारा पाण्डवोंकी सेनाका विनाश ...	१६०५
प्रथम दिनका युद्ध समाप्त ...	१५७८	भगदत्तके हाथीका शब्द सुनके अर्जुनकी संज्ञकोंके सङ्ग युद्ध त्यागके भगदत्तके समीप	

विषय	पृष्ठा
जानेकी चेष्टा और संसप्तकोंका उन्हें बाधा देना फिर संसप्तकोंको मारके अर्जुनका भगदत्तके सङ्ग युद्ध करना १६०२
भगदत्तके चलाये हुए वैष्णवास्त्रकी कृष्णाका निज वक्षस्थलपर धारण करना और उस विषयमें कृष्णके सङ्ग अर्जुनकी वार्त्तालाप १६०६	...
अर्जुनके हाथसे भगदत्तका मारा जाना १६०७	...
अर्जुनके पराक्रमसे शकुनिके दो भाइयोंका मारा जाना १६०८
द्रोणाचार्यके विनाश और रक्षाके निमित्त दोनों सेनाके वीरोंका युद्ध १६०९
अश्वत्थामाके हाथसे नील राजाका मारा जाना १६१०
सङ्कुल संग्राम १६११
दूसरे दिनका युद्ध समाप्त १६१४
दुर्योधन और द्रोणाचार्यकी वार्त्ता
संक्षेपमें अभिमन्युका बध १६१५
तीसरे दिनके युद्धमें कौरवोंकी और चक्रव्यूह बनना १६१६
चक्रव्यूह भेद करनेके विषयमें अभिमन्युकी प्रतिज्ञा और चक्रव्यूहके बीच अभिमन्युका प्रवेश १६१८
दुर्योधनादिके सङ्ग अभिमन्युका युद्ध १६२०	...
द्रोणाचार्यके द्वारा अभिमन्युकी प्रशंसा १६२३	...
अभिमन्युको मारनेके लिये दुर्योधनकी आज्ञासे दुःशासन प्रभृति महारथोंका उसकी ओर युद्ध करनेके लिये गमन करना १६२४	...
अभिमन्युके सङ्ग युद्धमें दुःशासनकी पराजय १६२५
अभिमन्युके हाथसे कर्णके छोटे भाईका मारा जाना १६२६
चक्रव्यूहके द्वारपर जयद्रथके सङ्ग युद्धमें सेनाके सहित पाण्डवोंकी पराजय १६२७	...
अभिमन्युके हाथसे वशातिराज तथा सुख्य सुख्य वीरोंका मारा जाना १६२८

विषय	पृष्ठा
अभिमन्युके सङ्ग युद्धमें कर्णको पराजय तथा अश्वकेतु प्रभृतिका मारा जाना १६३४	...
अभिमन्युके बध विषयमें शकुनि प्रभृतिकी सलाह १६३५
कर्णादिके द्वारा अभिमन्युकी धनुर्व्याप तथा रथहीन करना १६३६
दुःशासनके हाथसे अभिमन्युका मारा जाना कौरवोंकी सेनामें हर्ष और पाण्डवोंका विषादयुक्त होना १६३७
तीसरे दिनका युद्ध समाप्त और अभिमन्युके विषयमें युधिष्ठिरका विलाप १६३८
युधिष्ठिरके समीप कृष्ण द्वैपायन सुनिका आना तथा उन्हें उपदेश करना १६४०	...
नारद और राजा अकम्पनका उपाख्यान १६४२	...
ब्रह्मा और महादेवकी वार्त्तालाप १६४३	...
मृत्यु तथा ब्रह्माकी कथा
राजा सृञ्जय, नारद और पर्वत सुनिकी कथा १६४७
राजा सृञ्जयका पुत्रशोक कुड़ानेके निमित्त नारद सुनिके द्वारा मरुत्त प्रभृति राजाओंका उपाख्यान वर्णन १६४८
युधिष्ठिरका शोक कुड़ानेके व्यासदेवका अन्तर्धान होना, अभिमन्युका बध वृत्तान्त अर्जुनसे कहनेके निमित्त युधिष्ठिरका चिन्तित होना १६६४
अशकुन देखके अर्जुनका शङ्कित होना, कृष्णका अर्जुनकी धीरज देना, अर्जुनका डरे पर जाना और स्वजनोंको दुःखी देखना
अर्जुनका अभिमन्युको न देखकर विलाप तथा कृष्णका अर्जुनकी धीरज देना १६६५	...
युधिष्ठिरके द्वारा अर्जुनके समीप अभिमन्युका बध वृत्तान्त वर्णन १६६८
जयद्रथको मारनेके विषयमें अर्जुनकी प्रतिज्ञा १६६९
अर्जुनकी प्रतिज्ञा सुनके जयद्रथका भय	...

विषय	पृष्ठा	विषय	पृष्ठा
भीत होना और दुर्योधन तथा द्रोणाचार्यका वचन सुनके निर्भय होना ...	१६७१	अर्जुनका जयद्रथकी ओर जाना ...	१६६८
कृष्ण और अर्जुनकी वार्तालाप ...	१६७२	अर्जुनका युद्धमें कृतवर्माको पराजित करके काम्बोज सेनाकी ओर जाना और उनके दोनों पृष्ठरक्षकोंका कृतवर्माके द्वारा निवारित होना ...	१७०१
अर्जुनके कहनेसे कृष्णका सुभद्राको धीरज देना ...	१६७५	दुर्योधन और द्रोणाचार्यकी वार्तालाप ...	१७०७
सुभद्राका विलाप ...	१६७६	द्रोणाचार्यका दुर्योधनको अभेद कवच पहनाकर युद्ध करनेके लिये अर्जुनके निकट भेजना ...	१७०८
पाण्डवोंकी सेनामें अर्जुनका प्रतिज्ञा पूरी होनेके विषयमें सब लोगोंका चिन्तित होना और कृष्णका अपना रथ सज्जित रखनेके लिये दासकको आज्ञा देना...	१६७९	व्यूहके द्वारपर दोनों ओरकी सेनाके वीरोंका युद्ध ...	१७१०
अर्जुनका सपना देखना, सपनेमें महादेवकी प्रसन्नता और पाशुपत अस्त्र पाना ...	१६८०	धृष्टद्युम्न तथा उनकी रक्षाके लिये समागत सात्यकि प्रभृतिके सङ्ग द्रोणाचार्यका तुमुल युद्ध ...	१७११
चौथे दिन निद्रासे सावधान होकर युधिष्ठिरका स्नानादि कार्य करना ...	१६८४	अर्जुनके हाथसे युद्धमें विन्द और अनुविन्दका मारा जाना तथा उनकी वृद्धतसी सेनाका विनाश ...	१७१८
युधिष्ठिरके समीप कृष्णका आना और युधिष्ठिरकी कृष्णका धीरज देना ...	१६८५	अर्जुनका अस्त्र प्रभावसे रणभूमिमें तालाब बनाना और उसमें कृष्णका घोड़ोंको नहलाना तथा जल पिलाना और पृष्ठोपर स्थित अर्जुनके सङ्ग रथी कौरवोंका युद्ध ...	१७२०
युधिष्ठिरके निकट अर्जुनका आना और उनसे सपनेका वृत्तान्त कहना, पाण्डवोंका युद्धके निमित्त सज्जित होना ...	१६८७	अर्जुनका रथपर चढ़के जयद्रथकी ओर जाना और कौरवोंका विध्वंसित होना ...	१७२१
राजा युधिष्ठिरकी रक्षाके निमित्त अर्जुनका सात्यकिकी आज्ञा करना, धृतराष्ट्रका सञ्जयके समीप युद्ध वृत्तान्त पूछना तथा विलाप करना ...	१६८८	चलते हुए कृष्णार्जुनकी वार्तालाप और जयद्रथकी दूरसे देखना...	१७२३
धृतराष्ट्रके विषयमें सञ्जयका आक्षेप ...	१६८९	द्रोणाचार्यके द्वारा अभेद कवच पहनकर दुर्योधनका अर्जुनके निकट जाके युद्ध करना और दुर्योधनकी पराजय ...	१७२४
चौथे दिन सबेर जयद्रथके विषयमें द्रोणाचार्यका उपदेश और चक्रशकट व्यूह बनाना ...	१६९२	जयद्रथकी रक्षा करनेवाले महारथ वीरोंके सङ्ग अर्जुनका युद्ध ...	१७२७
अर्जुनका युद्ध करनेके लिये जाना और उत्तम शकुन देखना तथा कौरवोंकी ओर अशकुन दोखना ...	१६९४	दोनों ओरके रथियोंकी रथध्वजाका विवरण ...	१७२८
दुर्मैर्षणकी सेना और दुःशासनकी पराजित करके अर्जुनका कौरवोंके व्यूहमें प्रवेश करना ...	१६९५	व्यूहके द्वारपर द्रोणाचार्यके पराक्रमसे युधिष्ठिरका भागना ...	१७२९
द्रोणाचार्यके सङ्ग अर्जुनका युद्ध और क्रोधवशसे द्रोणाचार्यको अतिक्रम करके		व्यूहके द्वारपर दोनों सेनाका रथ युद्ध	

विषय	पृष्ठा
और क्षेमधूर्ति प्रभृतिका मारा जाना १७३३	
द्रौपदीपुत्रोंके हाथसे सोमदत्तपुत्रका मारा जाना और भीमसेनके सङ्ग युद्धमें अलंबुषका भागना ... १७३५	
घटोत्कचके सङ्ग अलम्बुषका युद्ध और अलंबुषका वध ... १७३६	
द्रोणाचार्यके सङ्ग सात्यकि आदि पाण्डव पक्षीय वीरोंका युद्ध ... १७३८	
युधिष्ठिरका सात्यकिकी प्रशंसा करके अर्जुनके समीप जानेके लिये आज्ञा देना १७३९	
युधिष्ठिरकी आज्ञासे सात्यकिका अर्जुनकी ओर जाना ... १७४४	
द्रोणाचार्यके सङ्ग सात्यकिका युद्ध और कौशल क्रमसे द्रोणाचार्यकी अतिक्रम करके आगे बढ़ना ... १७४८	
सात्यकिके सङ्ग कृतवर्माका युद्ध और कृतवर्माकी पराजित करके सात्यकिका काम्बोज सेनामें प्रवेश करना ... १७५०	
धृतराष्ट्रका आक्षेप ... १७५१	
सञ्जयके द्वारा धृतराष्ट्रके पहले असावधानीसे किये हुए कर्मोंका फल वर्णन १७५३	
भीमादिके संग युद्धमें कृतवर्माकी विजय ,,	
सात्यकिके संग युद्धमें कृतवर्माकी पराजय १७५५	
सात्यकिके हाथसे जलसन्धका मारा जाना १७५६	
सात्यकिके संग युद्धमें सुदर्शनका मारा जाना और निज सारथीसे सात्यकिकी वार्त्तालाप १७६१	
सात्यकिका यवन तथा काम्बोजसेनामें प्रवेश करना ... १७६३	
सात्यकिके संग युद्धमें दुःशासन प्रभृतिकी पराजय ... १७६५	
दुःशासनका फिर सात्यकिके निकट आना १७६६	
व्यूहके द्वारपर द्रोणाचार्यके संग पाण्डवसेनाके वीरोंका युद्ध और वीरकेतु प्रभृतिका मारा जाना ... १७७०	
सात्यकिके संग युद्धमें दुःशासनेकी पराजय १७७१	

विषय	पृष्ठा
व्यूहके द्वारपर दोनों ओरकी सेनाका युद्ध १७७४	
द्रोणाचार्यके हाथसे वृहत्क्षत्र प्रभृतिका मारा जाना ... १७७६	
सात्यकिकी सहायताको जानेके लिये भीमसेनके विषयमें युधिष्ठिरकी आज्ञा १७७९	
भीमसेनका द्रोणाचार्यकी पराजित करके व्यूहके बीच प्रवेश करना ... १७८२	
भीमके हाथसे दुर्योधनके नव भाद्वर्योंका मारा जाना ... १७८३	
द्रोणाचार्यका फिर भीमसेनको निवारण करनेके लिये बाण वर्षाना और पुनर्बार उन्हें पराजित तथा भीमसेना अतिक्रम करके भीमसेनका अर्जुनकी देखके सिंहनाद करना और उसे सुनके युधिष्ठिरका हर्षित होना १७८४	
भीमसेन और कर्णका संग्राम तथा कर्णकी पराजय ... १७८६	
द्रोणाचार्यके संग दुर्योधनका जयद्रथवध विषयमें वार्त्तालाप ... १७८७	
दुर्योधनके सङ्ग अर्जुनके पृष्ठरक्षक युधामन्यु और उत्तमौजाका युद्ध तथा उन दोनोंकी पराजय ... १७८८	
कर्णका भीमके संग दूसरी बार युद्ध करना और फिर कर्णकी पराजय ... १७८९	
भीमके संग तीसरी बार कर्णका संग्राम और पराजय ... १७९१	
भीमके हाथसे दुर्जन्यका मारा जाना और भीमके संग चौथी बार युद्धमें कर्णकी पराजय ... १७९४	
भीमके हाथसे दुर्मुखका मारा जाना तथा भीमके साथ युद्धमें कर्णकी पांचवी बार पराजय ... १७९५	
धृतराष्ट्रका आक्षेप ... १७९६	
धृतराष्ट्रके विषयमें सञ्जयके वचन १७९७	
भीमके साथ युद्ध करके दुर्मुखका मारा जाना पांच भाद्वर्योंका मारा जाना ... १७९८	

विषय पृष्ठा
 भीमके साथ युद्धमें कृष्णकी परा-
 जय और चित्र प्रभृति दुर्योधनके चार भाइ-
 योंका मारा जाना ... १७६८
 भीमसेनका सिंहाद सुनके युधिष्ठिरकी
 प्रसन्नता और दुर्योधनका चिन्तायुक्त
 होना ... १८०१
 कर्णका भीमसेनके संग तुमुल संग्राम और
 भीमसेनकी पराजय ... १८०२
 कर्णके द्वारा भीमसेनका युद्धभूमिमें तिर-
 स्कार ... १८०३
 अर्जुनके अस्त्र प्रभावसे कर्णका भीमके
 समीपसे पृथक् होना ... १८०७
 धृतराष्ट्रका आक्षेप और सात्यकिके साथ
 युद्धमें राजा अलम्बुषका मारा जाना १८०८
 सात्यकिका दुःशासन प्रभृति धृतराष्ट्रके पुत्रों
 तथा बह्वतसी सेनाकी पराजित करके कृष्णा-
 र्जुनकी देखना और सात्यकिके विषयमें कृष्णा-
 र्जुनकी वार्त्तालाप ... १८०९
 सात्यकिके संग भूरिश्रवाका युद्ध तथा
 सात्यकिकी पृथ्वीपर गिराके लात मारना १८१०
 कृष्णकी आज्ञासे अर्जुनका अस्त्रसे भूरिश्र-
 वाकी भुजा काटना ... १८१३
 भूरिश्रवाके द्वारा अर्जुन और कृष्णावशकी
 निन्दा ... १८१४
 सात्यकिके हाथसे योगयुक्त भूरिश्रवाका सिर
 काटा जाना ... १८१५
 भूरिश्रवाका सात्यकिकी पटकके लातसे
 मारनेका कारण वर्णन १८१६
 अर्जुनका जयद्रथ वधके निमित्त युद्ध
 करना और कर्णके संग दुर्योधनकी वार्त्ता-
 लाप ... १८१८
 दुर्योधन, कर्ण, वृषसेन, शल्य, अश्वत्थामा,
 कृपाचार्य और जयद्रथके संग अर्जुनका
 युद्ध ... १८१९
 जयद्रथके वध विषयमें अर्जुनके समीप

विषय पृष्ठा
 कृष्णकी उक्ति तथा योगमायासे सूर्यकी क्षिपाना
 और जयद्रथकी रक्षा करनेवाले योद्धाओंके
 समीप अर्जुनका पराक्रमप्रकाशित करना १८२५
 कृष्णके उपदेशके अनुसार अर्जुनका जयद्रथके
 सिरकी काटके समन्तपञ्चकमें उनके पिताकी
 गोदीमें फेंकना ... १८२७
 कृपाचार्य और अश्वत्थामाके सङ्ग अर्जु-
 नका युद्ध और कृपाचार्यकी बाणोंकी चोटसे
 मूर्च्छित देखकर अर्जुनका विलाप १८२८
 कृष्णके रथपर चढ़के सात्यकिका कर्णके
 संग युद्ध करना ... १८३०
 भीमसेनकी बात सुनके अर्जुनका कर्णके
 विषयमें तिरस्कार युक्त वचन और कृष्णार्जु-
 नकी वार्त्तालाप ... १८३२
 कृष्णका अर्जुनकी रणभूमि दिखाना १८३४
 कृष्णार्जुनका युधिष्ठिरके समीप जाना,
 जयद्रथ वध वृत्तान्त सुनके युधिष्ठिरका हर्षित
 होना और कृष्ण प्रभृतिके संग वार्त्तालाप १८३५
 दुर्योधनका विषाद और द्रोणाचार्यके
 संग दुर्योधनकी वार्त्तालाप ... १८३७
 दुर्योधन और कर्णकी वार्त्तालाप १८४१
 प्रदीपके समय दोनों ओरकी सेनाका घोर
 संग्राम और युधिष्ठिरसे युद्धमें दुर्योधनकी
 पराजय ... १८४३
 द्रोणाचार्यसे युद्ध करके धृष्टद्युम्नके पुत्रों,
 केकयगर्गों तथा शिविराजका मारा जाना १८४८
 भीमके हाथसे कलिंगराज प्रभृतिका मारा
 जाना ... १८४९
 सात्यकिके युद्ध करके सोमदत्तका पराजित
 होना द्रोणाचार्यका पराक्रम वर्णन ...
 अश्वत्थामासे घटोत्कचका तुमुल संग्राम
 और घटोत्कचकी पराजय ... १८५२
 सात्यक तथा भीमसेनके सङ्ग सोमदत्त
 और बाहिकका युद्ध सोमदत्तका मूर्च्छित
 होना, बाहिकका मारा जाना, भीम

विषय	पृष्ठा
धृतराष्ट्रके दस पुत्रों और कर्णके भाइयोंका मारा जाना १८५६
द्रोणाचार्यसे युधिष्ठिरका युद्ध ...	१८६०
दुर्योधनके समीप कर्णके अभिमानयुक्त वचन १८६१
कर्ण और कृपाचार्यका विवाद ...	”
अश्वत्थामा और कर्णका विवाद तथा दुर्योधनके द्वारा दोनोंका शान्त होना, पाण्डवोंकी सेनाका कर्णसे युद्ध १८६४
अश्वत्थामाके सङ्ग दुर्योधनकी वार्त्तालाप ...	१८६५
धृष्टद्युम्नादिके सङ्ग युद्धमें अश्वत्थामाका पराक्रम प्रकाशित करना १८६६
दोनों पक्षकी सेनाका सङ्कुल युद्ध ...	१८७१
सात्यकिसे युद्ध करके सीमदत्तका मारा जाना १८७२
दोनों ओरकी सेनामें दीपक जलाके युद्धारम्भ १८७४
दोनों सेनाके रथियोंका द्वैरथ युद्ध ...	१८७८
कृतवर्मासे युद्ध करके युधिष्ठिरका पराजित होना १८७९
सात्यकिके हाथसे युद्धमें भूरिका मारा जाना ”
अश्वत्थामाके सङ्ग घटोत्कचका संग्राम और घटोत्कचकी पराजय १८८१
भीमसे युद्ध करके दुर्योधनकी पराजय ...	१८८२
कर्णसे युद्ध करके सहदेवका पराजित होना ”
दोनों ओरकी सेनाका द्वैरथ युद्ध ...	१८८३
दुर्योधनके वचनके अनुसार द्रोणाचार्य और कर्णका अत्यन्त पराक्रम प्रकाशित करना १८८४
कर्णका पराक्रम देखके युधिष्ठिर, कृष्ण और अर्जुनकी वार्त्तालाप १८८६
कृष्णाार्जुनका कर्णकी मारनेके लिये घटोत्कचकी आज्ञा देना १८८७

विषय	पृष्ठा
घटोत्कचसे युद्ध करके अलम्बलका मारा जाना १८८८
कर्णके सङ्ग घटोत्कचका युद्ध ...	१८९१
अलायध राक्षसका भाना और भीमके साथ युद्ध करके घटोत्कचके हाथसे मारा जाना १८९६
कर्णके सङ्ग घटोत्कचका भयङ्कर युद्ध ...	१८९९
कर्णका इन्द्रकी भ्रमोद्योगशक्तिसे घटोत्कचकी मारना १९०४
घटोत्कचके मरनेसे पाण्डवोंका दुःखित तथा कृष्णका हर्षित होना और अर्जुनके पृथ्वीपर हर्षका हेतु वर्णन...	... १९१५
धृतराष्ट्रका प्रश्न सुनके सञ्जयका इन्द्रकी दीर्घभ्रमोद्योगशक्तिकी कर्णका कृष्णाार्जुनके ऊपर न चलानेका कारण वर्णन १९१६
घटोत्कचके मरनेसे युधिष्ठिरका विलाप और कृष्णसे युधिष्ठिरकी वार्त्तालाप ...	१९२२
युधिष्ठिरका कर्ण वधके निमित्त युद्धभूमिमें स्वयं जाना और व्यासदेवका वचन सुनकर धीरज धरके निवृत्त होना १९२४
युद्धभूमिमें दोनों ओरके योद्धाओंका निद्रित होना १९२६
दुर्योधन और द्रोणाचार्यकी वार्त्तालाप और कुरुसेनाका दो भाग करना ...	१९२७
पाण्डवोंकी सेना दो भागमें विभक्त होनी दोनों ओरकी सेनाका युद्ध १९२८
द्रोणाचार्यके हाथसे बिराट और दुपदका मारा जाना १९३१
नकुलके संग युद्धमें दुर्योधनकी पराजय १९३४
दोनों ओरके योद्धाओंका युद्ध ...	१९३५
द्रोणाचार्यके संग अर्जुनका तुमुल संग्राम ...	१९३६
दोनों सेनाका संकुल युद्ध १९३७
द्रोण वधे विषयमें कृष्णका प्रस्ताव तथा उपाय प्रदर्शित करना १९४१

विषय	पृष्ठा
दोनों ओरसे तुमुल युद्ध होना तथा द्रोणाचार्यका पराक्रम प्रकाशित करना	१६४२
द्रोणाचार्यके विषयमें ऋषियोंका उपदेश	१६४५
युधिष्ठिरके मुखसे अपने पुत्रके मरनेका वृत्तान्त सुनके द्रोणाचार्यका प्राण त्यागनेका निश्चय करना	... १६४६
द्रोणाचार्यका शस्त्र-त्यागके योगावलम्बी होना और धृष्टद्युम्नके हाथसे द्रोणाचार्यका सिर कटना	... १६४८
कुरुसेनाका भागना और द्रोणाचार्यकी मृत्यु सुनके अश्वत्थामाका क्रुद्ध होना	१६५०
धृतराष्ट्रका सञ्जयके समीप पिटवधसे क्रुद्ध हुए अश्वत्थामाके कार्यका वृत्तान्त पूछना	१६५३
अश्वत्थामाकी पाञ्चाल योद्धाओंको मारनेके निमित्त प्रतिज्ञा करना	... १६५४
पाण्डवों वा पाञ्चाल प्रभृतिके विनाशके निमित्त अश्वत्थामाका नारायणास्त्र चलाना, युधिष्ठिरका कौरवोंको फिर युद्ध करनेके लिये लौटते देखकर कारण पूछना, युधिष्ठिरसे अर्जुनके आक्षेप युक्त	... १६५६
अर्जुनके विषयमें भीमसेनके आक्षेप युक्त वचन, धृष्टद्युम्न तथा सात्यकि प्रभृतिका विवाद और कृष्णके द्वारा शान्त होना	... १६५९
अश्वत्थामाका पराक्रम और नारायणास्त्रका प्रभाव वर्णन	... १६६४
कृष्णार्जुनके द्वारा नारायणास्त्रसे भीमसेनका परिव्राण	... १६६७
पाण्डवोंकी सब सेनाके रणभूमिमें भागने पर नारायणास्त्रकी निवृत्ति	... १६६८
धृष्टद्युम्न और सात्यकिके सह अश्वत्थामाका युद्ध	... १६६९
अश्वत्थामाके निकट सात्यकिकी पराजित होत देखके अर्जुनका अश्वत्थामाके निकट जाना	१६७०
अश्वत्थामासे युद्ध करके भीमसेनका पराजित होना	... १६७१

विषय	पृष्ठा
अश्वत्थामाके सह अर्जुनका युद्ध	१६७३
अश्वत्थामा और वेदव्यास सुनिकी वार्त्तालाप तथा कृष्णार्जुनका माहात्म्य वर्णन	१६७६
अर्जुनके पूछनेसे व्यासदेवके द्वारा अर्जुनके अग्रगामी महादेवका माहात्म्य वर्णन	१६७८
द्रोणपर्वके पाठका फल वर्णन तथा द्रोणपर्वकी समाप्ति	... १६८४

कर्णपर्वका सूचीपत्र ।

वैशम्पायन सुनिके द्वारा संचेपमें कर्णवध सुनके विस्तार पूर्वक सुननेके लिये जनमेजयकी इच्छा	... १६८६
धृतराष्ट्र और सञ्जयकी वार्त्तालाप	...
धृतराष्ट्रका सञ्जयसे कुरुपाण्डवोंका युद्ध-वृत्तान्त पूछना और सञ्जयके द्वारा संचेपमें कर्णवध वृत्तान्त वर्णन	... १६८७
कर्णवध सुनके धृतराष्ट्र तथा गान्धारी प्रभृतिका मूर्च्छित होना	... १६८८
धृतराष्ट्रके पूछनेपर सञ्जयके द्वारा कुरुपाण्डवोंके बीच जीवित तथा मरे हुए योद्धाओंका वृत्तान्त वर्णन	... १६८९
कर्णादिका वध वृत्तान्त सुनके धृतराष्ट्रका अत्यन्त विलाप करना और कर्णके मरनेसे सब सेनाकी ही मरी हुई समझके सञ्जयसे युद्धका वृत्तान्त पूछना	... १६९३
द्रोणाचार्यके मरनेपर द्रुपदकी अपनी ओरके राजाओंके सह परामर्श करना और अश्वत्थामाके अनुरोधसे कर्णकी सेनापति पदपर अभिषिक्त करना	... १६९७
कर्णका सेनाकी सज्जित करके मकर-व्यूह बनाना	... १६९८
युधिष्ठिरकी आज्ञासे अर्जुनका व्यूह बनाना	...
दोनों ओरकी सेनाके वीरोंका न-	...

विषय	पृष्ठा
भीमसेनके हाथसे चेमभूर्तिका मारा जाना	२००२
सात्यकिके हाथसे अनुविन्द और बिन्दका मारा जाना	२००३
श्रुतकर्माके हाथसे चित्रसेनका मारा जाना, प्रतिबिम्बाके हाथसे चित्रका बध ...	२००४
अश्वत्थामाके सङ्ग भीमसेनका युद्ध	२००५
अर्जुनके सङ्ग अश्वत्थामाका युद्ध	२००६
अर्जुनसे युद्ध करके अश्वत्थामाका पराजित होना	२००८
अर्जुनके हाथसे दण्डधार और दण्डका मारा जाना	२००९
संशप्तकोंके सङ्ग अर्जुनका सङ्कुल युद्ध और कृष्णके द्वारा अर्जुनकी प्रशंसा	२०१०
अश्वत्थामासे पाण्ड्यराजका मकरध्वज युद्ध तथा पाण्ड्यराजका मारा जाना	२०१३
सङ्कुल संग्राम	२०१४
सहदेव और दुःशासनका युद्ध ...	२०१६
नकुलके सङ्ग कर्णका वाक् युद्ध करके और संग्राम करना और नकुलकी पराजित करके उनके गलेमें धनुष डालना तथा उनकी निन्दा	२०१८
कर्णका असीम पराक्रम प्रकाशित करना	२०१९
शकुनि और श्रुतसीमका युद्ध	२०२०
कृपाचार्यके सङ्ग युद्ध करके धृष्टद्युम्नका भागना	२०२१
कृतवर्मासे युद्ध करके शिखण्डिका पराजित होना	२०२२
अर्जुनका घोर संग्राम तथा विजय	२०२३
युधिष्ठिरसे संग्राम करके दुर्योधनका पराजित होना और दोनों सेनाका सङ्कुल युद्ध	२०२४
युधिष्ठिर और दुर्योधनका पुनर्ज्जर युद्ध	२०२५
पाण्डवोंकी विजय तथा पन्द्रह दिनका युद्ध	२०२७

विषय	पृष्ठा
धृतराष्ट्रके पश्चात्तापयुक्त वचन सुनके सङ्कयका उत्तर	२०२८
कर्णका निज गुण वर्णन करके दुर्योधनसे शल्यकी अपना सारथी बनानेके लिये कहना	२०२९
दुर्योधनका विनय पूर्वक शल्यकी कर्णका सारथी बनानेके लिये अनुरोध करना और उसे सुनके शल्यका क्रोध होना	२०३०
बहुत प्रार्थनाके सहित दुर्योधनके समक्षानेपर शल्यका कर्णका सारथी बनना	२०३१
दुर्योधनके द्वारा शल्यके समीप त्रिपुर बध उपाख्यान वर्णन	२०३३
दुर्योधनके द्वारा कर्णकी प्रशंसाके लिये परशुराम तथा शिवका उपाख्यान वर्णन	२०३८
दुर्योधनकी विनयसे दूसरे दिन कर्णका शल्य सारथीके सहित रथपर चढ़के युद्ध करनेके लिये प्रस्थान करना और कुरुसेनाके चलेनेपर युद्धभूमिमें बहुतसे उत्पात देखना	२०४१
अपनी बड़ाई करनेमें प्रवृत्त हुए कर्णका शल्यके द्वारा तिरस्कार	२०४३
कृष्णार्जुनकी देखानेवाले पुष्पकी में विविध धन दान कहेंगे' ऐसा कहके कर्णका गर्व प्रकाश करना	२०४४
कर्ण की कुपित करनेकी इच्छा उसके विषयमें शल्यका अत्यन्त तिरस्कार	२०४६
शल्यके विषयमें कर्णके द्वारा मद्रदेशीय बुराईयाका वर्णन तथा शल्यकी अत्यन्त निन्दा	२०४६
उपमा प्रसङ्गसे कर्णके समीप शल्यका काकोपाख्यान वर्णन करके कर्णकी निन्दा करना	२०४८
शल्यके समीप कर्णका अपनी बड़ाई करना और मृत्युकालके समय ब्रह्मास्त्र मूलने तथा रथका बायाँ पहिआ पृथ्वीमें घुसनेके विषयमें दोनों शपका वृत्तान्त कहके शल्यकी निन्दा करना	२०५०

विषय	पृष्ठा
शल्यके विषयमें कर्ण का मद्र देशके ब्रह्मतसे प्रचलित बुराचारोंका वर्णन करके उसकी अत्यन्त निन्दा करना २०५३
पाण्डवोंका व्यूह देखकर कर्ण का व्यूह बनाके युद्ध करके पाण्डवोंकी सेनाको बायीं ओर करना २०५६
कर्ण और शल्यका सम्वाद २०५८
संजुल संग्राम २०५९
कर्ण के हाथसे अनेक बोरोंका मारा जाना २०६०	
कर्ण के समीप युधिष्ठिरकी पराजय २०६४	
दोनों सेनाका संजुल संग्राम २०६५	
भीमसेन और कर्ण का युद्ध और कर्ण का पराजित होना २०६७
धृतराष्ट्रपुत्रोंको भीमके हाथसे मरते देखकर कर्ण का फिर भीमसेनसे युद्ध करके उन्हें रथरहित करना २०६८
दोनों सेनाका संजुल युद्ध २०६९
संग्रामकोंके सङ्ग अर्जुनका भयानक युद्ध २०७१	
कृपाचार्यसे युद्ध करके शिखण्डीका पराजित होना २०७३
कृपाचार्यके हाथसे सुकेतुका मारा जाना ,,	
धृष्टद्युम्नके समीप कृतवर्माकी पराजय २०७४	
अश्वत्थामाका महा पराक्रम प्रकाशित करना और युधिष्ठिरका भागना २०७५	
दुर्योधनका विपुल पराक्रम प्रकाशित करनेके अनन्तर धृष्टद्युम्नकी द्वारा पराजित होना, कर्ण, भीम, अर्जुन अश्वत्थामाका असौम विक्रम प्रकाशित करना २०७६	
अश्वत्थामा और अर्जुनका महाघोर संग्राम तथा अश्वत्थामाकी पराजय २०७८	
अश्वत्थामाका धृष्टद्युम्नको मारनेके लिये प्रतिज्ञा करना और अर्जुनका युद्धभूमिसे युधिष्ठिरकी देखनेके लिये लौटना २०८०	
कृष्ण का रथभूमि की अवस्था दिखाना २०८१	
अश्वत्थामासे युद्ध करके धृष्टद्युम्नकी	

विषय	पृष्ठा
पराजय २०८३
अर्जुनके समीप अश्वत्थामाकी पराजय २०८४	
अर्जुनके समीप कृष्णका युधिष्ठिरकी विपद घटना तथा भीमका असौम विक्रम वर्णन करना २०८४
संजुल युद्धमें कर्णसे शिखण्डी, उलूकसे सहदेव, सात्यकिसे शकुनि, भीमसे दुर्योधन, कृपाचार्यसे युधामन्यु और कृतवर्मासे संग्राम करके उत्तमौजाका पराजित होना २०८८	
भीमसेनका अत्यन्त पराक्रम प्रकाशित करना २०८९
कर्णका असौम पराक्रम प्रकाशित करना और कर्णसे युद्ध करके युधिष्ठिरका भागना २०९०
कर्णका नकुल, सहदेव और युधिष्ठिरकी बाणोंसे मारके विकल करना और शल्यके कहनेसे उन्हें छीड़के दुर्योधनकी रक्षाके लिये जाना २०९१
अर्जुन और अश्वत्थामाका घोर युद्ध तथा अश्वत्थामाकी पराजय...	... २०९२
कर्णके बाणसे व्याकुल होकर युधिष्ठिरकी सेनाका भागना २०९३
भीमसेन और अर्जुनकी वात्सलाप तथा अर्जुनका युधिष्ठिरको देखनेके लिये जाना, अर्जुनको देखकर कर्णके मरनेका अनुमान करते हुए युधिष्ठिरका प्रसन्नाचित्त होकर अर्जुनसे कर्णके मरनेका वृत्तान्त पूछना २०९५	
युधिष्ठिरके समीप युद्धका वृत्तान्त सुनके अर्जुनका कर्णवचके निमित्त प्रतिज्ञा करना २०९७
कर्णकी जीवित सुनके युधिष्ठिरका अत्यन्त क्रुद्ध होकर अर्जुनकी निन्दा करके समर्थ पुरुषकी गाण्डीव धनुष देनेके लिये आज्ञा करना २०९८
'दूरेकी गाण्डीव धनुष दो' ऐसा कहने	

विषय पृष्ठा
ले पुरुषके विनाश विषयमें प्रतिज्ञा रहनेपर
अर्जुनका युधिष्ठिरको मारनेके लिये तलवार
ठाना और कृष्णका वलाक-कौशिक उपा-
ग्रानादि विविध प्रमाण प्रदर्शित करके विस्ता-
पूर्वक अर्जुनको उपदेश करना तथा प्रतिज्ञा
पालनकी उपाय वर्णन करना २०६६
कृष्णके उपदेश क्रमसे अर्जुनका युधिष्ठि-
रको कठोर वचन कहना उस दोषको कुड़ा-
के लिये अपनी बड़ाई करना तथा युधिष्ठि-
रके समीप विनय करनी और युधिष्ठिरको
भिमान उत्पन्न होनेपर कृष्णके द्वारा शान्त
होना तथा युधिष्ठिरके द्वारा कृष्णकी अत्यन्त
प्रशंसा ... २१०५
अर्जुनका युधिष्ठिरकी फिर प्रसन्न करना
और प्रीतिपूर्वक दोनों भाइयोंका मिलना
तथा कर्णको मारनेके लिये अर्जुनका फिर
उपदेश करना ... २१०६
कृष्णका अर्जुनके विषयमें बहूत प्रशंसा
करके उन्हीं कर्णवधके निमित्त उत्साहित
करना ... २१०७
अर्जुनकी बार बार प्रशंसा करके कृष्णका
आदिसे अन्ततक युद्ध वृत्तान्त कहना और शत्रु-
वधके निमित्त उत्तेजित करना २१०८
कृष्णके वचनसे उत्साहित होकर अर्जुनका
कर्णवधके लिये दृढ़ सङ्कल्प करके अपनी
बड़ाई करना ... २११२
सङ्कुल युद्ध, उत्तमौजाके हाथसे सुषिणका
मार जाना ... २११४
भीमका बहूतसे हस्ति प्रभृति मारनेके
पश्चात् सारथीसे बाणोंको सेव्या पूछके शत्रु-
पक्षोंके मारनेका दृढ़ सङ्कल्प करना २११५
युधिष्ठिरका कुशल सम्वाद न पाके भीमसे
आका शोकित होना और सारथीके मुखसे
अर्जुनके आनेकी बात सुनके धीरज धरना ,,
भीमार्जुनका असीम विक्रम प्रकाशित

विषय पृष्ठा
करना और भीमके समीप पराजित शकुनिको
लेकर दुर्योधनका भागना ... २११८
कर्णको घोर बीरता प्रकाशित होनी तथा
पाण्डवोंकी सेना और महारथोंका
भागना ... २१२०
शल्यका उपदेश सुनके कर्णका कृष्णार्जु-
नकी प्रशंसा करके अपनी बड़ाई करना और
कुर्सेनाके महारथोंके साथ अर्जुनका
अत्यन्त पराक्रम प्रकाशित करना २१२३
अर्जुन और भीमसेनका अत्यन्त पराक्रम
प्रकाशित करना ... २१२६
कर्णके हाथसे पाञ्चाल सेनाका विनाश २१२८
भीमसेन और दुःशासनका युद्ध तथा दुःशा-
सनका मारा जाना ... २१२९
भीमके हाथसे दुर्योधनके निषङ्गी प्रभृति
दश भाइयोंका मारा जाना २१३१
वृषसेनसे युद्ध करके नकुलका पराजित
होना ... २१३२
शतानीकके हाथसे कुलिन्दराजके दश
पुत्रोंका मारा जाना और अर्जुनसे युद्ध करके
वृषसेनका मारा जाना... २१३४
अर्जुनसे युद्ध करनेके लिये आते हुए कर्णके
रथ तथा महात्मादि वर्णन करके अर्जुनके
विषयमें कृष्णका उसे मारनेके लिये अनुरोध
करना और उस विषयमें अर्जुनका सम्मत
होना ... २१३५
कर्णार्जुनका युद्धभूमिमें समागम होना,
देवासुरोंका विभाग क्रमसे दोनोंका पक्ष अव-
लम्बन करना, विजयके विषयमें दृढ़ और
सूर्यका विवाद, इन्द्रके पृथ्वीपर ब्रह्मा और
शिवके वचनसे अर्जुनके विजयका निश्चय
होना ... २१३८
कर्णार्जुनका द्वैरथ युद्धारम्भ होना २१३९
अर्जुनके हाथसे बहूतसी सेना मरी हुई
देखके दुर्योधनके विषयमें अश्वत्थामाका युद्धसे

विषय पृष्ठा
निवृत्त होनेका उपदेश और उसमें दुर्योधनकी
असम्मति... २१४०
कर्णार्जुनका भयङ्कर संग्राम २१४१

शाप प्रभावसे कर्णके रथके पहियाका
पृथ्वीमें घुस जाना और कर्णका ब्रह्मास्त्र भूलना
और पृथ्वीमें रथका दूसरा पहिया घसनेपर
कर्णका रथसे उतरके पृथ्वीसमेत रथको चार
अङ्गुल तक उठा लेना और अर्जुनको क्षण भर
तक बाण न चलानेके निमित्त प्रार्थना
करना ... २१४६

कृष्णका कर्णकी निन्दा करना ... २१५०

अर्जुनके हाथसे कर्णका मारा जाना और
कर्णके सारथी शल्यका भागना २१५१

कौरवोंकी और विषाद और पाण्डवोंका हर्षित
होना शल्यका दुर्योधनकी धीरज देना २१५२

कुरुसेनाका भागना और दुर्योधनकी
आज्ञासे उनके सारथीका अर्जुनके समीप
जानेका उद्योग करना, बह्मत्सौ कुरुसेनाका,
मरना तथा युद्धसे भागना ... २१५४

दुर्योधनकी भागती हुई सेनाकी युद्ध कर-
नेके लिये उपदेश करना ... २१५५

शल्यके उपदेशसे दुर्योधन प्रभृतिका शिवि-
रमें जाना, कर्णकी प्रशंसा तथा कर्णके मरने
पर नदी प्रभृतिका बहना बन्द होना और बह-
तभी सेनाका वध करके अर्जुनका कृष्णके
सहित शिविरमें जाके आनन्दित होना २१५६

कृष्णके द्वारा अर्जुनकी प्रशंसा तथा अर्जु-
नकी लेकर युधिष्ठिरके निकट जाके कर्णके
मरनेका समाचार कहना, युधिष्ठिरका हर्षित
होके रणभूमिमें जाके मरे हुए कर्णकी देख-
कर अर्जुनकी प्रशंसा करना पाण्डवोंका
शोक दूधोदरकी स्तुति करते हुए शिविरमें
जाना, कर्णवध वृत्तान्त सुनके धृतराष्ट्र
आदिका पृथ्वीपर गिरना और विदुरके द्वारा
सूचके बोलना ... २१५६

विषय पृष्ठा
कर्णपर्वके पाठादिका फल वर्णन तथा
कर्णपर्वकी समाप्ति ... २१६०

शल्यपर्वका सूचीपत्र ।

वैशम्पायन मुनिके द्वारा कौरवोंकी अवस्था
तथा कार्य वर्णन ... २१६१

सञ्जयके मुखसे दुर्योधनादिके मरने का
वृत्तान्त सुनकर धृतराष्ट्रका मूर्च्छित होना २१६२
धृतराष्ट्रका विलाप ... २१६३

कर्णके मरनेपर कौन सेनापति हुआ तथा
दुर्योधनादिके मारे जानेके विषयमें धृतराष्ट्रका
प्रश्न सुनके सञ्जयके द्वारा युद्ध वृत्तान्त
वर्णन ... २१६४

कृपाचार्यका दुर्योधनके विषयमें युद्धसे
निवृत्त होनेका उपदेश और उस विषयमें युक्ति
प्रदर्शित करके दुर्योधनका असम्मत होना
तथा कौरवोंका स्थानान्तरमें जाना २१६७

अश्वत्थामाकी सम्मतिसे दुर्योधनका
शल्यकी सेनापतिके पदपर अभिषिक्त
करना ... २१७२

शल्यके सेनापति होनेसे कौरवोंका हर्षित
होना और शल्यवधके निमित्त युधिष्ठिरका
श्रीकृष्णसे सलाह करना ... २१७३

दोनों सेनाकी व्यूह रचना और मरनेसे
बची हुई सेनाकी संख्या वर्णन २१७५
सङ्कुल युद्ध... ..

शल्यका युधिष्ठिरकी ओर जानेका उद्योग
करना और नकुलसे युद्ध करके कर्णपत्र चित्रसेन
प्रभृतिका मारा जाना... २१७७

पाण्डवोंके सङ्ग शल्यका अत्यन्त पराक्रम
प्रकाशित करना ... २१८०

भीमके साथ शल्यका संग्राम तथा गदा युद्ध
करके दोनोंका मूर्च्छित होना २१८१

शल्यके सङ्ग युधिष्ठिरका युद्ध २१

भीमादिके सङ्ग शल्यका तुमुल संग्राम २

विषय	पृष्ठा
अश्वत्थामा प्रभृतिके सङ्ग अर्जुनका युद्ध २१८४	
दुर्योधनादिके सङ्ग धृष्टद्युम्न प्रभृतिका युद्ध तथा पाण्डव पक्षीय वीरोंके सङ्ग शल्यका असीम पराक्रम प्रकाशित करना ... २१८६	
शल्यके पराक्रमसे पौडित तथा घायल होके पाण्डवोंकी सेनाका रणभूमिसे भागना, निज पक्षके वीरोंकी सहायतासे युधिष्ठिरका पराक्रमके सहारे शल्य तथा उनके भाईको मारना ... २१८८	
सात्यकिसे युद्ध करके कुतबर्माका पराजित होना ... २१९२	
मद्रदेशीय महारथोंका पाण्डवोंकी सेनासे युद्ध करके मारा जाना... २१९३	
कुरुसेनाका भागना तथा दुर्योधनको पाण्डवोंकी और युद्ध करनेके लिये जाता हुआ देखकर कुरुसेनाका लौटना और दोनों सेनाका संकुल संग्राम ... २१९५	
धृष्टद्युम्न प्रभृतिके सङ्ग युद्ध करके शल्य-राजका मारा जाना ... २१९७	
सात्यिकिके हाथसे क्षेमधूर्तिके मारा जाना और कुतबर्माकी पराजय २१९८	
शकुनि प्रभृतिका पाण्डवोंकी सेनाकी और जाना, अर्जुनका कृष्णके समीप कुरुसेनाके विनाशकी इच्छा करके युद्धमें पराक्रम प्रकाशित करना ... २२०३	
संकुल संग्राम और दुर्योधनकी पराजय २२०५	
भीमसेनके हाथसे दुर्म्भर्षण प्रभृति धृतराष्ट्रके पुत्रोंका मारा जाना ... २२०७	
दुर्योधनको मारके युद्ध शेष करनेके निमित्त अर्जुनसे कृष्णकी वार्त्तालाप २२०८	
अर्जुनके हाथसे पुत्र सहित सुशर्मा तथा वृद्धतसी सेनाका विनाश और भीमसेनके हाथसे धृतराष्ट्रपुत्र सुदर्शनका मारा जाना २२०९	
सहदेवके हाथसे पुत्रके सहित शकुनिका मारा जाना ... २२१०	

विषय	पृष्ठा
बची हुई कुरुसेनाका पाण्डवोंकी औरके वीरोंके हाथसे विनाश... २२१२	
दुर्योधनका भागके तालाबमें प्रवेश करनेके लिये जाना, व्यासदेवकी कृपासे सञ्जयकी रक्षा, दुर्योधनसे सञ्जयकी मुलाकात और वार्त्तालाप, राजरानियोंके सङ्ग सञ्जय तथा युयुत्सुका हस्तिनापुरमें जाना २२१२	
अश्वत्थामा प्रभृति कुरुपक्षके तीन महारथियोंका दुर्योधनको देखनेके लिये द्वैपायन छद्मकी और जाना, दुर्योधनका पतन पाके पाण्डवोंका सेनाके सहित ढेरोंमें जाना, अश्वत्थामा प्रभृतिके सङ्ग दुर्योधनकी वार्त्तालाप ... २२१५	
व्याधगणोंके मुखसे दुर्योधनकी तालाबमें निवास करते हुए सुनके पाण्डवोंका युद्धके निमित्त दुर्योधनके समीप जाना और अश्वत्थामा प्रभृतिका वहांसे प्रस्थान करके बटवृक्षके नीचे बैठके चिन्ता करना ... २२१६	
कृष्ण और युधिष्ठिरका दुर्योधनके वधविषयमें विचार ... २२१७	
युधिष्ठिर और दुर्योधनको युद्धविषयमें वार्त्तालाप, दुर्योधनका तालाबसे निकलके पाण्डवोंसे गदायुद्धका प्रस्ताव करना ... २२२१	
कृष्णका आक्षेप पूर्वक युधिष्ठिरकी निन्दा करना ... २२२१	
दुर्योधनके सङ्ग युद्ध करनेके लिये भीमसेनका उत्साहित होना और कृष्णका उस विषयको अनुमोदन करना २२२२	
गदा युद्ध करनेके लिये उद्यत भीमसेन और दुर्योधनके अभिमान युक्त वचन २२२३	
गदायुद्धके स्थानमें बलदेवजीका आना और युधिष्ठिरादिके सङ्ग वार्त्तालाप ... २२२३	
जनमेजयके पूछनेपर वैशम्पायनके द्वारा बलदेव जीकी तीर्थयात्रा वर्णन तथा प्रभासतीर्थका माहात्म्य कहते हुए चन्द्रका विवादादि वर्णन २२२४	

विषय	पृष्ठा
उदपान तीर्थका उपाख्यान ...	२२२७
विनशन, गन्धर्व, गर्गस्तोत्र, शङ्ख, पावन और	
मागधन्व तीर्थका उपाख्यान ...	२२२८
सप्त सारस्वत तीर्थ और मङ्गलक ऋषिकी	
कथा ...	२२३०
कपाल भोचन तीर्थ तथा रुद्रगु मुनिकी	
कथा और आधिष्ठाण प्रभृति ऋषियोंकी सिद्धि	
प्राप्त होनी और वकदालभ्य मुनिकी कथा २२३३	
वसिष्ठापवाद तीर्थकी कथा ...	२२३४
कार्तिकेयके जन्मादिकी कथा ...	२२३८
वरुणदेवका अभिषेक, अग्नि तीर्थ तथा	
कुबेर तीर्थकी कथा ...	२२४७
वदरपाचन तीर्थका उपाख्यान ...	२२४८
बलदेवजोका इन्द्रादि तीर्थमें जाना और	
उन तीर्थोंके माहात्म वर्णन ...	२२५०
असित देवल और जैगोषव्यकी कथा २२५१	
सोम तीर्थकी कथा, दधीचि और सारस्वत	
मुनिका माहात्म वर्णन ...	२२५३
वृद्धकन्यातीर्थकी कथा ...	२२५५
कुरुक्षेत्रका माहात्म्य वर्णन बलदेवका	
कुरुक्षेत्र तीर्थ देखके उत्तम उत्तम आश्रमोंमें	
जाना बलदेवके पूछनेपर नारद मुनिका कौर-	
वोंके युद्ध घटनाका वृत्तान्त कहना और सर-	
स्वतीतीर्थका माहात्मा गानेके अनन्तर बलदे-	
वका गदायुद्ध देखनेके लिये जाना २२५७	
भीमसेन और दुर्योधनका गदायुद्ध वर्णन २२५८	
गदायुद्धकी तैयारी सुनके धृतराष्ट्रका	
आक्षेप, अशकुनोंका प्रकट होना, युधिष्ठिरके	
निकट भीमका उत्साहित होना और भीम तथा	
दुर्योधनका वाक्युद्ध ...	२२६०
भीम और दुर्योधनका गदायुद्ध ...	२२६२
अर्जुनके पूछनेपर कृष्णका भीमसेन और	
दुर्योधनके युद्धविषयक निपुणार्थका वर्णन	
करके अन्याय युद्धमें दुर्योधनके मरनेका सम्रा-	
जय वर्णन ...	२२६४

विषय	पृष्ठा
अर्जुनके इशारेकी जानके भीमका दुर्यो-	
धनकी जङ्घामें गदा मारना, दुर्योधनके गिर-	
नेके समय अशकुनोंकी उत्पत्ति ...	२२६५
पृथ्वीमें गिरे हुए दुर्योधनके विषयमें भीम-	
सेनका निन्दायुक्त वचन कहके उनके सिरपर	
पाँव रखना, उसे देखकर युधिष्ठिरका विरक्त	
होके दुर्योधनके विषयमें विनययुक्त वचन कहके	
आक्षेप करना ...	२२६६
बलरामका क्रोधपूर्वक भीमसेनको मार-	
नेके लिये उद्यत होना और कृष्णके वचनसे	
शान्त होके वहाँसे प्रस्थान करना २२६७	
शोकित युधिष्ठिरको कृष्णका धीरज देना,	
भीमके उत्साहयुक्त वचनकी युधिष्ठिरका अनु-	
मादन करना ...	२२६८
पाण्डवों और पाण्डालोका हर्ष पूर्वक भीम	
सेनकी प्रशंसा करना, कृष्ण और दुर्योधनका	
वाक्युद्ध, कृष्णका पाण्डवोंको भीम प्रभृतिको	
अन्याय युद्धसे मारके चिन्ता करते हुए देखकर	
उन्हें धीरज देना ...	२२७१
शिविरमें जानेपर पहिले अर्जुन और पाले	
कृष्णका रथसे उतरना, विना अग्निके ही अर्जु-	
नके रथका जलना, कृष्णके द्वारा उसके जलनेका	
कारण वर्णन, युधिष्ठिरके सङ्ग कृष्णका जय	
विषयक वार्त्तालाप ...	२२७२
कृष्णके उपदेशसे सात्यकिके सङ्ग पाण्डवोंका	
भीमवती नदीके तटपर निवास करना और	
कृष्णका हस्तिनापुर जाना ...	२२७३
वैशम्पायनके द्वारा कृष्णके हस्तिनापुरमें	
जानेका कारण वर्णन, धृतराष्ट्र और गांधा-	
रोकी धीरज देके कृष्णका पाण्डवोंके निकट	
खीट आना ...	२२७४
धृतराष्ट्रके पूछनेपर सञ्जयके द्वारा दुर्यो-	
धनके कहे हुए क्रोधपूरित विषाद वचन	
वर्णन ...	२२७५
अउदरमाया प्रभृति तीन महारथोंका	

विषय	पृष्ठा
अश्वत्थामा प्रभृतिके सङ्ग अर्जुनका युद्ध २१८४	
दुर्योधनादिके सङ्ग दृष्टद्युम्न प्रभृतिका युद्ध	
तथा पाण्डव पक्षीय वीरोंके सङ्ग शल्यका असीम	
पराक्रम प्रकाशित करना ...	२१८६
शल्यके पराक्रमसे पीड़ित तथा घायल होके	
पाण्डवोंकी सेनाका रणभूमिसे भागना, निज	
पक्षके वीरोंकी सहायतासे युधिष्ठिरका परा-	
क्रमके सहारे शल्य तथा उनके भाईको	
मारना	२१८८
सात्यकिसे युद्ध करके कुतबर्माका पराजित	
होना	२१८९
मद्रदेशीय महारथोंका पाण्डवोंकी सेनासे	
युद्ध करके मारा जाना...	२१९३
कुरुसेनाका भागना तथा दुर्योधनको	
पाण्डवोंकी ओर युद्ध करनेके लिये जाता हुआ	
देखकर कुरुसेनाका लौटना और दोनों	
सेनाका संकुल संग्राम ...	२१९५
दृष्टद्युम्न प्रभृतिके सङ्ग युद्ध करके शल्य-	
राजका मारा जाना ...	२१९७
सात्यकिके हाथसे क्षेमधूर्तिकी मारा जाना	
और कुतबर्माकी पराजय ...	२१९८
शकुनि प्रभृतिका पाण्डवोंकी सेनाकी ओर	
जाना, अर्जुनका कृष्णके समीप कुरुसेनाके	
विनाशकी इच्छा करके युद्धमें पराक्रम प्रका-	
शित करना	२२०३
संकुल संग्राम और दुर्योधनकी पराजय २२०५	
भीमसेनके हाथसे दुर्म्भर्षण प्रभृति धृतरा-	
ष्ट्रके पुत्रोंका मारा जाना ...	२२०७
दुर्योधनको मारके युद्ध शेष करनेके	
निमित्त अर्जुनसे कृष्णकी बार्तालाप २२०८	
अर्जुनके हाथसे पुत्र सहित सुशर्मा तथा	
वृद्धतपी सेनाका विनाश और भीमसेनके	
हाथसे धृतराष्ट्रपुत्र सुदर्शनका मारा जाना २२०९	
सहदेवके हाथसे पुत्रके सहित शकुनिका	
मारा जाना	२२१०

विषय	पृष्ठा
बची हुई कुरुसेनाका पाण्डवोंकी ओरके	
वीरोंके हाथसे विनाश...	२२१२
दुर्योधनका भागके तालाबमें प्रवेश कर-	
नेके लिये जाना, व्यासदेवकी कृपासे सञ्जयकी	
रक्षा, दुर्योधनसे सञ्जयकी सुलाकात और	
बार्तालाप, राजरानियोंके सङ्ग सञ्जय तथा	
युयुत्सु का हस्तिनापुरमें जाना २२१२	
अश्वत्थामा प्रभृति कुरुपक्षके तीन महा-	
रथियोंका दुर्योधनको देखनेके लिये द्वैपायन	
हृदको ओर जाना, दुर्योधनका पतान पाके	
पाण्डवोंका सेनाके सहित डेरोंमें जाना, अश्व-	
त्थामा प्रभृतिके सङ्ग दुर्योधनकी बार्ता-	
लाप	२२१५
व्याधगणोंके मुखसे दुर्योधनकी तालाबमें	
निवास करते हुए सुनके पाण्डवोंका युद्धके	
निमित्त दुर्योधनके समीप जाना और अश्व-	
त्थामा प्रभृतिका वहांसे प्रस्थान करके बटवृक्षके	
नीचे बैठके चिन्ता करना ...	२२१६
कृष्ण और युधिष्ठिरका दुर्योधनके वधवि-	
षयमें विचार	२२१७
युधिष्ठिर और दुर्योधनको युद्धविषयमें	
बार्तालाप, दुर्योधनका तालाबसे निकलके	
पाण्डवोंसे गदायुद्धका प्रस्ताव करना ...	२२१८
कृष्णका आक्षेप पूर्वक युधिष्ठिरकी निन्दा	
करना	२२२१
दुर्योधनके सङ्ग युद्ध करनेके लिये भीम-	
सेनका उत्साहित होना और कृष्णका उस	
विषयको अनुमोदन करना २२२२	
गदा युद्ध करनेके लिये उद्यत भीमसेन	
और दुर्योधनके अभिमान युक्त वचन २२२३	
गदायुद्धके स्थानमें बलदेवजीका आना और	
युधिष्ठिरादिके सङ्ग बार्तालाप ...	२२२३
जनमेजयके पूछनेपर वैशम्पायनके द्वारा बलदेव	
जीकी तीर्थयात्रा बर्णन तथा प्रभासतीर्थका माहा-	
त्म कहते हुए चन्द्रका विवादादि बर्णन २२२४	

विषय	पृष्ठा
उदपान तीर्थका उपाख्यान ...	२२२७
विनशन, गन्धर्व, गर्गस्तोत्र, शङ्ख, पावन और नागधन्व तीर्थका उपाख्यान ...	२२२८
सप्त सारस्वत तीर्थ और मङ्गणक ऋषिकी कथा ...	२२३०
कपाल मोचन तीर्थ तथा स्वर्ग सुनिकी कथा और आर्षिप्रिया प्रभृति ऋषियोंकी सिद्धि प्राप्त होनी और बकदालभ्य सुनिकी कथा	२२३३
वसिष्ठापवाह तीर्थकी कथा ...	२२३४
कार्तिकेयके जन्मादिकी कथा ...	२२३८
वसुदेवका अभिषेक, अग्नि तीर्थ तथा कुबेर तीर्थकी कथा ...	२२४७
बदरपाचन तीर्थका उपाख्यान ...	२२४८
बलदेवजोका इन्द्रादि तीर्थमें जाना और उन तीर्थोंके माहात्म्य वर्णन ...	२२५०
असित देवल और जैगोषव्यकी कथा	२२५१
सोम तीर्थकी कथा, दधीचि और सारस्वत सुनिका माहात्म्य वर्णन ...	२२५३
वृद्धकन्यातीर्थकी कथा ...	२२५५
कुरुक्षेत्रका माहात्म्य वर्णन बलदेवका कुरुक्षेत्र तीर्थ देखके उत्तम उत्तम आश्रमोंमें जाना बलदेवके पूरुनेपर नारद सुनिका कौरवोंके युद्ध घटनाका वृत्तान्त कहना और सरस्वतीतीर्थका माहात्म्य गानेके अनन्तर बलदेवका गदायुद्ध देखनेके लिये जाना	२२५७
भीमसेन और दुर्योधनका गदायुद्ध वर्णन	२२५८
गदायुद्धकी तैयारी सुनके धृतराष्ट्रका आक्षेप, अशकुनोंका प्रकट होना, युधिष्ठिरके निकट भीमका उत्साहित होना और भीम तथा दुर्योधनका वाक्युद्ध ...	२२६०
भीम और दुर्योधनका गदायुद्ध ...	२२६२
अर्जुनके पूरुनेपर कृष्णका भीमसेन और दुर्योधनके युद्धविषयक निपुणाईका वर्णन करके अन्याय युद्धमें दुर्योधनके मरनेकी सम्भावना वर्णन ...	२२६४

विषय	पृष्ठा
अर्जुनके इशारेकी जानके भीमका दुर्योधनकी जङ्घामें गदा मारना, दुर्योधनके गिरनेके समय अशकुनोंकी उत्पत्ति ...	२२६५
पृथ्वीमें गिरे हुए दुर्योधनके विषयमें भीमसेनका निन्दायुक्त वचन कहके उनके सिरपर पाँव रखना, उसे देखकर युधिष्ठिरका विरक्त होके दुर्योधनके विषयमें विनययुक्त वचन कहके आक्षेप करना ...	२२६६
बलरामका क्रोधपूर्वक भीमसेनकी मारनेके लिये उद्यत होना और कृष्णके वचनसे शान्त होके वहाँसे प्रस्थान करना	२२६७
शोकित युधिष्ठिरको कृष्णका धीरज देना, भीमके उत्साहयुक्त वचनको युधिष्ठिरका अनुमोदन करना ...	२२६८
पाण्डवों और पाण्डालोंका हर्ष पूर्वक भीमसेनकी प्रशंसा करना, कृष्ण और दुर्योधनका वाक्युद्ध, कृष्णको पाण्डवोंको भीम प्रभृतिको अन्याय युद्धसे मारके चिन्ता करते हुए देखकर उन्हें धीरज देना ...	२२७१
शिविरमें जानेपर पहले अर्जुन और पाण्डवोंका रथसे उतरना, बिना अग्निके ही अर्जुनके रथका जलना, कृष्णके द्वारा उसके जलनेका कारण वर्णन, युधिष्ठिरके सङ्ग कृष्णको जय विषयक वार्त्तालाप ...	२२७२
कृष्णके उपदेशसे सात्यकिके सङ्ग पाण्डवोंका भीषवती नदीके तटपर निवास करना और कृष्णका हस्तिनापुर जाना ...	२२७३
वैशम्पायनके द्वारा कृष्णके हस्तिनापुरमें जानेका कारण वर्णन, धृतराष्ट्र और गान्धारीकी धीरज देके कृष्णका पाण्डवोंके निकट लौट आना ...	२२७४
धृतराष्ट्रके पूरुनेपर सञ्जयके द्वारा दुर्योधनके कहें हुए क्रोधपूरित विलाप वचन वर्णन ...	२२७५
अश्वत्थामा प्रभृति तीन महारथोंका	

विषय	पृष्ठा
दुर्योधनके निकट जाना और उनकी दुर्दशा देखके मूर्च्छित होके आक्षेप करना, दुर्योधनका विलाप सुनके अश्वत्थामाका क्रुद्ध होके पाञ्चाल प्रभृतिको मारनेके लिये प्रतिज्ञा करना तथा दुर्योधनके द्वारा अश्वत्थामाका सेनापतिके पदपर अभिषिक्त होना	२२७७
शल्यपर्वका सूचीपत्र समाप्त	... २२७८

सौप्तिकपर्वका सूचीपत्र ।

अश्वत्थामा प्रभृतिका भयभीत होके रणभूमिसे अलग जाना, धृतराष्ट्रका आक्षेप २२७९

धृतराष्ट्रके पूरुनेपर सञ्जयके द्वारा अश्वत्थामा प्रभृतिका रात्रिके समय वटवृक्षके तले निवास वर्णन ... २२८०

उलूके द्वारा सोते हुए कौर्वोंका मरना देखके अश्वत्थामाका निद्रित शत्रु पाण्डव तथा पाञ्चालोंको मारनेका विचार करना ...

अश्वत्थामाके अभिप्रायमें कृपाचार्यकी असम्मति, कृपाचार्य और कृतवर्माके समीप अश्वत्थामाके बचन ... २२८१

कृपाचार्य और अश्वत्थामाकी निज निज मत स्थापित करनेके लिये उत्तम युक्तिपूर्ण वक्तृता और तीनों महारथियोंका रात्रिके समय पाण्डवोंके शिविरमें जाना ...

अश्वत्थामाका शिविर हारपर जाके महाभूत देखकर चिन्ता करके महादेवकी उपासना करना, देवी और रुद्रगणोंका प्रकट होना तथा महादेवका प्रकट होके अश्वत्थामाको तलवार देना ... २२८६

अश्वत्थामाका शिविरमें प्रवेश करना और शिविरके हारपर कृपाचार्य तथा कृतवर्माका स्थित होना, अश्वत्थामाका धृष्टद्युम्नके डेरमें जाना, अश्वत्थामाके हाथसे धृष्टद्युम्न प्रभृति तथा बची हुई सेनाके सब पुरुषोंका मारा जाना ... २२९०

विषय	पृष्ठा
अश्वत्थामादि तीनों महारथोंका सुसुप्त दुर्योधनके निकट जाना और उनकी दुरवस्था देखके कृपाचार्यका आक्षेप करना	२२९५
दुर्योधनको पृथ्वीमें पड़े देखके अश्वत्थामाका विलाप करके शिविरके बीच धृष्टद्युम्नोदि शत्रुओंके मारनेका सम्वाद कहना और अश्वत्थामाकी प्रशंसा करके दुर्योधनका प्राण त्यागना २२९६

ऐषिक पर्वारम्भ, धृष्टद्युम्नके सारथिके मुखसे द्रौपदीपुत्र प्रभृति स्वजनोंकी मृत्युका सम्वाद सुनके युधिष्ठिरका विलाप करना २२९७

नकुलके मुखसे पत्रादिका मरना सुनके द्रौपदीका विलाप करके युधिष्ठिरसे अश्वत्थामाको मारनेके लिये अनुरोध करना तथा द्रौपदीके अनुरोधसे भीमसेनका अश्वत्थामाको मारनेके लिये जाना ... २२९८

कृष्णका युधिष्ठिरको अश्वत्थामाको मारनेके लिये उद्यत भीमसेनकी रक्षाके लिये अनुरोध करना और उसही प्रसङ्गमें ब्रह्मशिरनाम अस्त्रका उपाख्यान कहना ... २३००

युधिष्ठिर, कृष्ण और अर्जुनका एक रथपर चढ़के भीमसेनके पास जाना, अश्वत्थामाका पाण्डवोंकी मारनेके लिये ब्रह्मशिरनाम अस्त्र चलाना, अश्वत्थामाके अस्त्रको निवारण करनेके लिये अर्जुनका ब्रह्मशिर अस्त्र छोड़ना, व्यासदेवके अनुरोधसे अश्वत्थामाका पाण्डवोंको अपने सिरकी मणि देनेमें सम्मत होकर ब्रह्मशिर अस्त्रको उत्तराके गर्भमें छोड़ना २३०१

अश्वत्थामाके सङ्ग कृष्णकी परीक्षितके जन्मादि विषयक वार्त्तालाप, अश्वत्थामाके विषयमें कृष्णका शाप, अश्वत्थामासे मणि लेकर कृष्णादिका द्रौपदीके समीप जाके उसे धीरज देना और उस मणिको युधिष्ठिरका सिरपर धारण करना ... २३०४

अश्वत्थामाके हाथसे पाञ्चालादि वीरोंके

विषय	पृष्ठा
बिनाश विषयमें युधिष्ठिर और कृष्णकी वार्त्ता- लाप तथा महादेवका माहात्म्य वर्णन	२३०५
देवताओंके पक्षमें महादेवका क्रुद्ध होके प्रसन्न होना	... २३०६
सौप्तिक पर्वकी समाप्ति...	...

स्त्रीपर्वका सूचोपत्र ।

जनमेजयके पूछनेपर वैशम्पायनके द्वारा धृतराष्ट्रका बिलाप वर्णन और सञ्जयका यथा- योग्य वार्त्ता कहके उन्हें धीरज देना	२३०७
धृतराष्ट्रको विदुरका धीरज देना	... २३०८
धृतराष्ट्रका विदुरके निकट तत्त्व कथा सुननेकी इच्छा तथा विदुरके द्वारा तत्त्वज्ञानकी कथा वर्णन	... २३१०
धृतराष्ट्रके शोकित होनेपर वेदव्यास मुनिका दैवोपाख्यान कहके उनका शोक दूर करना	... २३१३
विदुरका फिर धृतराष्ट्रको धीरज देके उनका शोक दूर करना	... २३१६
धृतराष्ट्रका गान्धारी प्रभृति रीतों जड़ स्त्रियोंको सङ्गलेकर मरे हुए पुत्रपौत्रादिके प्रेत- कार्थ निभानेके लिये बाहन पर चढ़के नगरसे बाहिर होना	... २३१७
कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामाकी धृतराष्ट्र तथा गान्धारीसे भेंट होनी और रात्रिके समय शिविरमें साये हुए पाञ्चालादि वीरोंके मारनेको वृत्तान्त कहके उनके समीपसे प्रस्थान करना	... २३१८
युधिष्ठिरादिका धृतराष्ट्रके समीप जाके उनसे मिलना और धृतराष्ट्रके द्वारा लोहमय भीमका बिनाशादि	... २३१९
कृष्णके वचनसे धृतराष्ट्रका क्रोध शान्त होना	... २३२१
गान्धारीको व्यासदेवका उपदेश	... २३२१

विषय	पृष्ठा
भीमसेनसे गान्धारीकी वार्त्ता	... २३२१
गान्धारीकी क्रोध दृष्टिसे युधिष्ठिरका कुन्ख होना, गान्धारीका पाण्डवोंको धीरज देना, द्रौपदी, कुन्ती और गान्धारीके मिलन समयमें परस्पर बिलाप करना और दिव्यदृष्टिसे गान्धा- रीका युद्धभूमि देखना	... २३२२
धृतराष्ट्रका राजरानियोंको सङ्गलेकर युद्ध- भूमि देखनेके लिये जाना, राजरानियोंका रोदन तथा मूर्च्छित होना और श्रीकृष्णकी उनकी दुर्दशा दिखाके गान्धारीका बिलाप करना तथा अभिमन्युको मरा हुआ देखके उत्तराका बिलाप	... २३२३
क्रोधसे आर्त गान्धारीका कृष्णकी शप देना और कृष्णका उसे अनुमोदन करना	२३३४
कृष्णका गान्धारीकी निन्दा करना, धृतरा- ष्ट्रके पूछनेपर युधिष्ठिरका मरे हुए सेनाकी गिनती बताना और स्वर्ग विशेषमें गये हुए वीरोंका वृत्तान्त कहना तथा युद्धमें मरे हुए पुरुषोंका दाह करना	... २३३५
मरे हुए पुरुषोंका तर्पण, कर्णका तर्पण करनेके निमित्त कुन्तीके द्वारा पाण्डवोंकी कर्णका परिचय मिलना	... २३३६
युधिष्ठिरका बिलाप पूर्वक कर्णका तर्पण करना, और स्त्री पर्वकी समाप्ति	...

शान्तिपर्वका सूचोपत्र ।

मृत सुहृद्दण्डोंका तर्पण करनेके अनन्तर भागीरथीके तटपर स्थित धृतराष्ट्रादिके निकट जाके नारदादि देवर्षि तथा ब्रह्मर्षियोंका शोकार्त युधिष्ठिरको धीरज देना	२३३७
युधिष्ठिरका नारद मुनिसे कर्णका वृत्तान्त तथा उनके रथका पश्चिमा पृथ्वीमें धंसने और शपकी कारण पूछना	... २३३८
नारद मुनिके द्वारा कर्णका वृत्तान्त तथा	

विषय	पृष्ठा
परशुरामके निकट ब्रह्मास्त्र पानेका विवरण वर्णन २२३६
नारद मुनिके द्वारा दुर्योधनका कर्णको सङ्ग लेकर कन्या हरण करना तथा कर्णका पराक्रम वर्णन २२४२
युधिष्ठिरका शोक कुड़ानेके लिये कुन्ती देवीका युधिष्ठिरसे कर्णका वृत्तान्त कहना और उसे सुनके युधिष्ठिरका स्त्रियोंको शापदेना २२४४	
कर्णको स्मरण करके अर्जुनके समीप युधिष्ठिरकी शोक युक्त वक्तृता २२४५
युधिष्ठिरके विषयमें अर्जुनकी आक्षेप युक्त वक्तृता २२४७
अर्जुनकी बात सुनके युधिष्ठिरका शोक युक्त होके उत्तर देना २२४८
युधिष्ठिरके विषयमें भीमसेनकी आक्षेप युक्त वक्तृता २२५१
युधिष्ठिरके निकट अर्जुनके द्वारा इन्द्र और तपस्त्रियोंका इतिहास वर्णन २२५२
युधिष्ठिरके विषयमें नकुलकी वक्तृता २२५४
युधिष्ठिरके विषयमें सहदेवकी वक्तृता २२५६
युधिष्ठिरके विषयमें द्रौपदीके वचन २२५७
युधिष्ठिरके समीप अर्जुनके द्वारा दण्डविधि वर्णन २२५८
मोहमें पड़े हुए युधिष्ठिरके विषयमें भीमसेनके प्रबोध वचन २२६२
भीमके विषयमें युधिष्ठिरके शान्तिपूरित वचन २२६३
युधिष्ठिरके प्रबोधके लिये अर्जुनके द्वारा जनक और जनकपत्नीका इतिहास वर्णन २२६५	
अर्जुनके निकट युधिष्ठिरके द्वारा मोक्षधर्मकी प्रशंसा २२६७
युधिष्ठिरके निकट देवस्थान ऋषिका राजधर्मकी प्रशंसा करके उन्हें यज्ञानुष्ठानका उपदेश करना तथा इन्द्र वृहस्पति सम्वाद वर्णन २२६८

विषय	पृष्ठा
युधिष्ठिरके निकट अर्जुनके द्वारा क्षत्रिय धर्मकी प्रशंसा तथा उन्हें यज्ञानुष्ठानमें रत होनेके लिये प्रार्थना २२७०
युधिष्ठिरके समीप व्यासदेवका गृहस्थ तथा राजधर्मकी प्रशंसा करके उन्हें गृहस्थ वा राजधर्ममें प्रवृत्त होनेके लिये उपदेश प्रसङ्गमें राजा सुद्युम्न और शङ्ख लिखित मुनिका इतिहास कहना २२७१
युधिष्ठिरके विषयमें व्यासदेवके द्वारा कर्तव्य कर्म विषयक उपदेश तथा राजषि हयग्रीवका इतिहास वर्णन २२७३
अर्जुनको कुपित देखकर तथा व्यासदेवका उपदेश सुनके दुःखित चित्तसे युधिष्ठिरका निज मनोवृत्ति प्रकाशित करना और युधिष्ठिरके समीप उपदेश प्रसङ्गमें व्यासदेवके द्वारा राजा सेनजित्का इतिहास वर्णन २२७५
अर्जुनके निकट युधिष्ठिरके द्वारा तपस्या प्रभृति बाणप्रस्थ धर्मकी प्रशंसा २२७७
युद्धमें मरे हुए स्वर्गनोंके उद्देशसे युधिष्ठिरका विलाप करके अनशन व्रतके सहारे प्राण त्यागनेका उद्योग करना और युधिष्ठिरके विषयमें व्यासदेवके प्रबोध वचन २२७८
स्वजन वियोगजनित शोकसे सन्तापित युधिष्ठिरके समीप व्यासदेवके द्वारा अश्वमेध इतिहास वर्णन २२८०
व्यासदेवके उपदेशसे मोनावलम्बी युधिष्ठिरके प्रबोधके निमित्त अर्जुनकी प्रार्थनासे युधिष्ठिरके निकट कृष्णके द्वारा सोलह राजाओंका उपाख्यान वर्णन २२८३
युधिष्ठिरका प्रश्न सुनके कृष्णके द्वारा सृक्षयराजके पुत्र सुवर्णशीवीका वृत्तान्त वर्णन २२८१
युधिष्ठिरके पूछनेपर नारद मुनिके द्वारा सुवर्णशीवीका वृत्तान्त वर्णन २२८२
श्रीकार्तव्ययुधिष्ठिरके विषयमें व्यासदेवके	

विषय पृष्ठा
द्वारा राजधर्म-विषयक उपदेश और प्रायश्चित्तका अनुष्ठान वर्णन ... २३६६

व्यासदेवके निकट युधिष्ठिरका युद्धमें मरे हुए स्वजनोके लिये सन्तापित होना और उस शोकको दूर करनेके निमित्त युधिष्ठिरके निकट व्यासदेवके उपदेश वचन २३६७

युधिष्ठिरके पूछनेपर मनुष्यको जिन कर्मोंके करनेसे प्रायश्चित्त करना होता है, व्यासदेवके द्वारा उनका वर्णन होना २४००

युधिष्ठिरका प्रश्न सुनके व्यासदेवके द्वारा विजातियोंके भक्ष्य, उत्तम दान और पात्र-अपात्रके विषयमें प्रजापति मनु और सिद्ध ऋषियोंका इतिहास वर्णन २४०५

युधिष्ठिरका व्यासदेवके समीप चारों वर्णोंके धर्म, राजधर्म, आपद्धर्म तथा एक पुरुषके द्वारा परस्पर विरुद्ध धर्म अनुष्ठित होनेके विषयमें प्रश्न करना और व्यासदेवका युधिष्ठिरको उक्त विषय जाननेके लिये भीष्मके समीप जानेकी आज्ञा देना भीष्मकी प्रशंसा, युधिष्ठिरकी भीष्मके निकट जानमें असम्मति तथा कृष्णके वचनसे सानसिक शोकत्यागके ऋषियों, भाइयों तथा धृतराष्ट्रके सहित युधिष्ठिरका हस्तिनापुरमें जाना और प्रजासमूहका नगरको सज्जित करना २४०८

समागत पुरवासियोंके प्रशंसा वचन सुनते हुए राजमार्ग प्रतिक्रम करके युधिष्ठिरका राजनगरीमें जाना और सब जनपद पुरवासी प्रजा तथा ब्राह्मणोंसे आशीर्वाद-पाके राजभवनमें प्रविष्ट होके आशीर्वाद देनेवाले ब्राह्मणोंकी गज, भूमि तथा सुवर्ण दान करना, ब्राह्मणोंका वेदमन्त्र पढ़के युधिष्ठिरकी आशीर्वाद देना, भिक्षु ब्राह्मणके वेषमें चार्वक राजसका आना तथा ब्राह्मणोंकी निन्दा करनेसे उनके शोषानक्षसे भक्ष्य होजाना २४११

युधिष्ठिरके निकट कृष्णका ब्राह्मणोंकी

विषय पृष्ठा
प्रशंसा करके चार्वक राजसके वर तथा बधकी उपाय कहके उन्हें धीरज देना २४१२

युधिष्ठिरका राज्याभिषेक और उनका प्रजा तथा ब्राह्मणोंके विषयमें कर्तव्यकर्म और भीमादिके विषयमें राजकार्यका भार अर्पण करना ... २४१४

युधिष्ठिरादिके द्वारा युद्धमें मरे हुए पुरुषोंका श्राद्ध होना ... २४१५

युधिष्ठिरके द्वारा कृष्णकी स्तुति तथा गुण वर्णन ... २४१६

युधिष्ठिरका कृष्णको ध्यानयुक्त देखके ध्यानका कारण पूछना, कृष्णके द्वारा उसका वृत्तान्त वर्णन और उपदेश ग्रहण करनेके लिये भीष्मके निकट जानेकी आज्ञा और युधिष्ठिरके अनुरोधसे कृष्णका सात्यकिसे रथ आनेके लिये कहना ... २४१८

जनमेजयके पूछनेपर वैशम्पायनके द्वारा भीष्मके योगयुक्त होकर देहत्यागनका विषय वर्णन भीष्मके द्वारा कृष्णकी स्तुति कृष्णका भीष्मके शरीरमें प्रविष्ट होके उन्हें त्रिकाक्षदर्शी ज्ञान देकर निज शरीरमें छोटना और योगबलसे भीष्मकी भाक्तीका विषय जानके श्रानन्द पूर्वक रथपर चढ़के युधिष्ठिरादिके सहित कुरुक्षेत्रकी ओर जाना ... २४१९

मार्गमें कृष्णका युधिष्ठिरके समीप परशुरामका पराक्रम वर्णन और युधिष्ठिरके पूछनेपर कृष्णका परशुरामके द्वारा पृथ्वी निःक्षत्रिय करनेका कारण, क्षत्रियोंकी पुनरीत्यत्ति तथा कुरुक्षेत्रमें क्षत्रियोंके विनाशका विषय कहना ... २४२५

कृष्णसे वार्त्तालाप करते हुए युधिष्ठिरका सात्यकि प्रभृति वीरोंके सहित भीष्मके निकट जाना, कृष्ण प्रभृतिको रथसे उतरके व्यासादि ऋषियोंकी प्रणाम करना और भीष्मके विषयमें कृष्णके वचन ... २०

विषय	पृष्ठा
भीष्म और कृष्णकी वार्त्ताशाप	२४३२
कृष्णका भीष्मकी वरदान करना व्यासादि महर्षियोंके द्वारा ऋक्, यजु तथा सामवेदके मन्त्रोंसे कृष्णकी पूजा होनी और भीष्मकी आज्ञानुसार युधिष्ठिरादिका नगरमें जाना	२४३३
कृष्णके सहित युधिष्ठिरादिका भीष्मके समीप जाना	... २४३५
कृष्ण और भीष्मकी वार्त्ताशाप	२४३६
भीष्मकी बात सुनके युधिष्ठिरका भीष्मके चरणपर गिरना और भीष्मका युधिष्ठिरकी धीरज देके प्रश्र करनेको कहना	२४३८
युधिष्ठिरका भीष्मसे राजधर्म पूछना, भीष्मका राजधर्मके प्रसङ्गमें मनु तथा उग्रनाके श्लोक और प्रजाके विषयमें राजाका कर्त्तव्य कर्म वर्णन करना	... २४३९
युधिष्ठिरके निकट भीष्मका बृहस्पति मतके अनुसार मरुत राजके द्वारा राजाओंका कर्त्तव्य कार्य विषयक प्राचीन श्लोक कहना, व्यासादिके द्वारा भीष्मकी प्रशंसा और सन्ध्याके समय भीष्मकी आज्ञासे युधिष्ठिरादिका हस्तिनापुरमें जाना	२४४२
दूसरे दिन युधिष्ठिरका भीष्मके समीप राजा शब्दकी उत्पत्ति तथा एक पुरुषके समीप अनेक लोगोंके नत होनेका कारण पूछना, और भीष्मके द्वारा उसका वृत्तान्त वर्णन	२४४६
भीष्मके समीप युधिष्ठिरका अनुलोम तथा विलोमजात वर्णोंके साधारण धर्म, चारों वर्णोंके पृथक् धर्म, राजधर्म, राज्यवृद्धि तथा उन्नत अवस्थाकी उपाय, कैसे कीष, दण्ड, किष्का, सहाय, मन्त्री, ऋत्विक् और आचार्य परित्याज हैं, आपत्कालमें किसका किस भांति विश्वास करना चाहिये और किस विषयसे आत्माकी रक्षा होती है ? यह सब वृत्तान्त पूछना और भीष्मके द्वारा इन सब विषयोंका वृत्तान्त वर्णन	... २४५१

विषय	पृष्ठा
युधिष्ठिरका उत्तर कालमें सुखदायक, मङ्गलमय, अहिंसा युक्त लोकसम्मत सुखके उपायका हेतु तथा युधिष्ठिरके सट्टम मनुष्योंकी सुख प्राप्त होने योग्य धर्म विषय पूछना और भीष्मके द्वारा उसका वृत्तान्त वर्णन	२४५६
"भीष्मके द्वारा युधिष्ठिरके समीप साध्य, देव, वसु, रुद्र, विश्व, मरुत प्रभृति गण तथा दोनों अश्विनीकुमार जिस प्रकार आदि देव नारायणसे उत्पन्न होकर क्षत्रधर्ममें प्रवृत्त हुए थे, उस इतिहासके प्रसङ्गमें विष्णु विषयक इन्द्र और मान्धाताका सम्वाद वर्णन	२४५८
वाणप्रस्थादि पात्र्योंके धर्म संचेपमें सुनके युधिष्ठिरकी भीष्मके समीप फिर उन धर्मोंको विस्तारपूर्वक सुननेकी प्रार्थना और भीष्मके द्वारा विस्तार पूर्वक उक्त धर्मोंका वर्णन	... २४६१
राज्यके कर्त्तव्यकार्य सुननेके लिये भीष्मके समीप युधिष्ठिरकी प्रार्थना और भीष्मके द्वारा राज्यके कर्त्तव्य कार्य वर्णन	२४६२
ब्राह्मण लाग राजाका जिस लिये देवद्वेष कहते हैं ? भीष्मके द्वारा उसका वर्णन	२४६५
युधिष्ठिरका भीष्मके समीप राजाके श्रेष्ठ कर्त्तव्य कर्मोंका विचार, सेवक, स्त्री, पुत्र तथा साधारण लोगोंको किस प्रकार विश्वास करके उन्हें किन कार्योंपर नियुक्त करना उचित है इत्यादि प्रश्न और भीष्मके द्वारा उनका विवरण वर्णन	... २४६८
युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा दण्डनीतिसे राजा और प्रजाके सोभाग्य वर्णन	२४७१
युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा इस लोक और परलोकमें कर्मोंके सहारे सुख प्राप्त होनेका वृत्तान्त वर्णन	२४७२
जिस प्रकार प्रजापालन करनेसे राजाको आधिपत्य बन्धनमें बद्ध होना नहीं पड़ता और व्यवहार निरौघादि कार्योंमें भी अन्यथा	

विषय पृष्ठा
नहीं होता उस विषयमें युधिष्ठिरका प्रश्न सुनके भीष्मके द्वारा उसका वृत्तान्त वर्णन २४७३
भीष्मका युधिष्ठिरसे राजपुरोहित सम्बन्धित प्रश्नवा और वायका सम्वाद कहना २४७४
भीष्मका युधिष्ठिरसे राजपुरोहितके विषयमें ऐल और कश्यपका सम्वाद वर्णन २४७६
भीष्मका युधिष्ठिरसे राजपुरोहितके विषयमें कुवेर और सुचकुन्दका सम्वाद कहना ... २४७८
युधिष्ठिरके पूछनेपर राजाके जिस वृत्तिके अवलम्बन करनेसे प्रजाकी उन्नति होती है, भीष्मके द्वारा उसका वृत्तान्त वर्णन २४७९
युधिष्ठिरका राज्यपालन विषयसे विरक्त होना और भीष्मका युधिष्ठिरके विषयमें उपदेश बचन ...
युधिष्ठिरका भीष्मसे स्वर्ग प्राप्तिकी उत्तम उपाय, उससे उत्तम प्रीति, उससे श्रेष्ठ ऐश्वर्यका विषय पूछना और भीष्मके द्वारा उसका वर्णन तथा युधिष्ठिरका प्रश्न सुनके भीष्मका स्वर्ग और निषिद्ध कर्ममें रत ब्राह्मणोंमें प्रभेद कहना ... २४८०
युधिष्ठिरके पूछनेपर राजा जिसके धनका अधिकारी होता है और जैसी वृत्ति अवलम्बन करनी चाहिये भीष्मके द्वारा उसका वर्णन ... २४८१
युधिष्ठिरका भीष्मसे ब्राह्मणके राजधर्म तथा वैश्य धर्माचरण विषयमें प्रश्न करना और भीष्मके द्वारा उसका वृत्तान्त वर्णन २४८३
वैश्य, शूद्र और अन्त्यज प्रभृतिके शस्त्रधारी होनेपर क्षीणबल क्षत्रिय किस प्रकार लोक चक्र होवे इत्यादि युधिष्ठिरके विविध प्रश्न उनके भीष्मके द्वारा उनका वृत्तान्त वर्णन ... २४८३
युधिष्ठिरका भीष्मसे ऋत्विगोंके कर्तव्यार्थमें गुण और स्वभाव पूछना, भीष्मका उस

विषय पृष्ठा
विषयको कहना, यज्ञमें दक्षिणा देनेके विषयमें युधिष्ठिरका प्रश्न सुनके भीष्मके द्वारा उसका वृत्तान्त वर्णन ... २४८५
युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मका राजाके मित्र, शत्रु और लोगोंके विश्वास तथा अविश्वासका विषय कहना ... २४८६
युधिष्ठिरका भीष्मसे सबके चित्तको वशमें करनेकी उपाय पूछना और भीष्मका उस विषयमें श्रीकृष्ण तथा नारदका सम्वाद कहना २४८८
भीष्मका युधिष्ठिरसे मित्र शत्रुकी परीक्षा विषयमें कालकवृक्षीय कौशल्यका सम्वाद कहना ... २४९०
युधिष्ठिरका भीष्मसे राजाके कैसे सभासद, संहृद, सहाय परिच्छद तथा मन्त्री होने योग्य हैं, इत्यादि विषय पूछना और भीष्मके द्वारा उनका वृत्तान्त वर्णन ... २४९३
भीष्मका युधिष्ठिरसे राजाके सभासदादिके विषयमें इन्द्र वृहस्पति सम्वाद कहना २४९६
युधिष्ठिरका भीष्मसे स्वर्ग और कीर्तिलाभ प्रभृतिकी उपाय पूछना तथा भीष्मके द्वारा उसका वृत्तान्त वर्णन ... २४९७
युधिष्ठिरका भीष्मसे राजाओंका वासस्थान निरूपण विषयमें प्रश्न करना और भीष्मके द्वारा उसका वृत्तान्त वर्णन ... २४९८
युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा राष्ट्र-चाकी उपाय वर्णन ... २५००
युधिष्ठिरका भीष्मसे कोष बढ़ानेवाले राजाका व्यवहार पूछना और भीष्मके द्वारा उसका वर्णन ... २५०२
भीष्मके द्वारा राज्यपालन पद्धति वर्णन २५०३
युधिष्ठिरके पूछनेपर 'तुल्य बाहुबलशाली तथा तुल्य गुणशाली मनुष्योंके बीच कौन मनुष्य सबसे प्रबल तथा सबका भक्षक होता है,' भीष्मके द्वारा इस विषयमें उत्तर और मान्यताका सम्वाद वर्णन ... २५०४

विषय पृष्ठा

युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा धर्म-
मार्गकी इच्छा करनेवाले राजाके धार्मिक
होनेकी उपाय वर्णन ... २५०६

युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा विज-
यकी इच्छा करनेवाले क्षत्रियके धर्माचरण
तथा उचित युद्ध करनेका वृत्तान्त वर्णन २५१२

युधिष्ठिरका क्षत्रधर्मकी निन्दा पूर्वक
भीष्मके समीप राजा जिन कर्मोंके सहारे सब
लोकोंको जय करता है, उस विषयकी पूछना
और भीष्मके द्वारा उसका वर्णन २५१५

युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा युद्धमें
मरनेवाले शूरोंकी जो लोक प्राप्त होते हैं, उस
विषयमें अम्बरीष इन्द्र सम्वाद वर्णन २५१६

भीष्मका युधिष्ठिरसे प्रतर्दन और जनकका
युद्ध वृत्तान्त कहना ... २५१८

युधिष्ठिरके पूछनेपर विजयकी इच्छा कर-
नेवाला राजा जिस प्रकार भयभीत सेनाको
राजभय दिखाके युद्धके निमित्त भेजना उचित
है, भीष्मका उसे वर्णन करना २५१९

युधिष्ठिरके पूछनेसे भीष्मके द्वारा शूर पुस्-
षोंके रूप, स्वभाव, आचार, सन्नाह, शस्त्रादिका
विषय, देशाचार और कुलाचारके अनुसार
वर्णन ... २५२१

युधिष्ठिरका प्रश्न सुनके भीष्मके द्वारा
जयशील सेनाके लक्षण वर्णन २५२२

युधिष्ठिरके पूछनेपर प्रबल पक्षवाले शत्रुके
सङ्ग जिस प्रकार आचरण करना चाहिये,
भीष्मका उस विषयमें बृहस्पति इन्द्र सम्वाद
कहना ... २५२४

युधिष्ठिरके प्रश्नके अनुसार भीष्मके द्वारा
सेवकोंसे प्रबोधित, दण्ड और कोषसे रहित
धन लाभमें असमर्थ होनेपर सुखकी इच्छावाले
राजाके विषयमें कौशल्य-कालक वृत्तीयका उपा-
ख्यान वर्णन ... २५२७

युधिष्ठिरके समीप भीष्मके द्वारा शूरवीरोंका

विषय पृष्ठा

व्यवहार वर्णन ... २५३२

युधिष्ठिरसे भीष्मका अनुष्ठेय धर्म विषय
कहना ... २५३३

युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा धर्म-
मार्गमें रहनेकी उपाय, सत्य, मिथ्या, सनातन
धर्म तथा सत्य मिथ्या कहनेका समय
वर्णन ... २५३५

युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मका जीवोंकी
दुस्तर विषयोसे पार होनेकी उपाय
कहना ... २५३६

युधिष्ठिरके समीप भीष्मके द्वारा प्रियदर्शन
तथा अप्रियदर्शन पुरुषोंके विषयमें व्याघ्र गोमा
युका सम्वाद वर्णन ... २५३८

युधिष्ठिरके समीप भीष्मका राजाके कर्त्तव्य
कर्म तथा सुखी होनेकी उपायके विषयमें उष्ट्र-
ग्रीवीपाख्यान कहना ... २५४१

युधिष्ठिरका भीष्मके समीप राजाकी दुर्लभ
राज्यपाके असहाय होकर बलवान शत्रुके
समीप जिस प्रकार रहना उचित है, उसको
उपाय पूछना और भीष्मका उस विषयमें सरि-
त्तागर सम्वाद कहना ... २५४३

युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा सभाके
बीच मूर्ख तथा प्रगल्भ कोमल वा कठोर भावसे
निन्दित होनेपर विद्वान् पुरुषके व्यवहार
वर्णन ...

युधिष्ठिरके पूछनेसे भीष्मका राजनित्यादि
कहना तथा ऋषि और कुर्त्तिका सम्वाद वर्णन
करना ... २५४५

युधिष्ठिरके पूछनेसे भीष्मका संचेपमें राज-
धर्म कहना ... २५४८

युधिष्ठिरका प्रश्न सुनके भीष्मके द्वारा दण्ड
और उसके रूपादि वर्णन ... २५५२

दण्ड उत्पत्तिके विषयमें भीष्मके द्वारा बस-
होमका इतिहास वर्णन ... २५५५

युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा धर्म-

विषय पृष्ठा
दिका निश्चय कहनेके प्रसङ्गमें कामन्दक अङ्ग-
रिष्ट सम्वाद वर्णन ... २५५७

युधिष्ठिरका भीष्मसे शीलता तथा उसका
लक्षण पूछना और भीष्मका उस प्रसङ्गमें दुर्यो-
धन वृतराष्ट्रसंवाद कहना ... २५५८

युधिष्ठिरका भीष्मसे आशाकी उत्पत्ति पूछना
और उस विषयमें भीष्मके द्वारा सुमित्रऋषभ
संवाद वर्णन... २५६२

युधिष्ठिरका भीष्मसे धर्मकथा पूछना उस
विषयमें भीष्मका यमगीतमसम्वाद कहना २५६६

युधिष्ठिरका भीष्मसे मित्रादिसे रहित
राजाके विषयमें उपाय पूछना और भीष्मका
उस विषयमें उपाय वर्णन ... २५६८

युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा आपत्कालमें
राजाओंके कर्तव्याकर्तव्यका विषय और
राजाओंके राज्य, किला, सेवक तथा कोष
शत्रुओंसे आक्रान्त होनेपर उस समयके योग्य
कार्य वर्णन ... २५६९

युधिष्ठिरका भीष्मसे आपत्कालमें उपजीव्य
वस्तुओंकी चोरी होनेपर भी राजाओंसे ब्राह्म-
णोंकी रक्षा तथा उनके जीविकाकी उपाय
पूछना, भीष्मके द्वारा उसकी उपाय वर्णन और
राजाओंकी निज राज्य तथा परराज्यसे धनसं-
ग्रहप्रतिबल तथा धर्म करनेका उपदेश २५७०

युधिष्ठिरके विषयमें भीष्मका उपदेशकालसे
दस्युराज कायव्यका उपन्यास कहना और
राजकोष सञ्चयके विषयमें ब्रह्माकी कही हुई
गाथा वर्णन ... २५७३

युधिष्ठिरके निकट भीष्मके द्वारा अनागत
विधाता, प्रत्युत्पन्नमति और दीर्घसूत्र पुरुषोंके
लक्षणके विषयमें शकुलनामी तीन मछलियोंका
इतिहास वर्णन ... २५७५

युधिष्ठिरका भीष्मसे राजाके शत्रुओंके बीच
घिरनेपर उसका कर्तव्य कार्य पूछना और
भीष्मका उस विषयमें बिड़ाल—मूषिक—सम्वाद

विषय पृष्ठा
दयुक्त इतिहास कहना ... २५७६

राजाओंकी शत्रुओंका विश्वास न करना
चाहिये, इस विषयमें सन्देहयुक्त होके युधिष्ठि-
रका भीष्मसे प्रश्न करना और उस विषयमें
भीष्मके द्वारा पूजनी चिड़िया तथा राजा ब्रह्मद-
त्तका इतिहास वर्णन ... २५८६

युधिष्ठिरका भीष्मसे युगक्षय निबन्धसे
धर्मादि विनष्ट तथा लोगोंके क्षीण होनेपर
कर्तव्य कार्य पूछना और भीष्मका उस प्रसङ्गमें
राजा शत्रुक्षय और भरद्वाजका इतिहास
कहना ... २५८९

आपत्कालमें धर्मादि विनष्ट तथा लोगोंसे
उल्लङ्घित होनेपर लोगोंके कर्तव्यकार्य विषयमें
युधिष्ठिरका प्रश्न सुनके भीष्मके द्वारा उस विष-
यमें विश्वामित्र और चाण्डालका इतिहास
वर्णन ... २५९५

समस्त धर्माचरणमें असमर्थता हेतु युधि-
ष्ठिरका भीष्मसे प्रश्न करना और भीष्मका युधि-
ष्ठिरके विषयमें धर्माचरणविषयक उपदेश २६००

शरणागत पुरुषोंके प्रतिपालन करनेसे जो
धर्म होता है, उस विषयमें युधिष्ठिरके समीप
भीष्मके द्वारा कवूतर और व्याधाके सम्वादयुक्त
इतिहास वर्णन ... २६०२

बिना जाने पापाचरण करनेसे किस प्रकार
मुक्ति होती है, इस विषयको जाननेके लिये
युधिष्ठिरका भीष्मसे प्रश्न करना और भीष्मका
उस विषयमें इन्द्रोत्तनमेजय - सम्वाद
कहना ... २६०७

कोई मनुष्य मरके फिर जीवित होता है,
उसे जाननेके लिये युधिष्ठिरका भीष्मसे प्रश्न
करना और भीष्मका युधिष्ठिरसे उसके उत्तर
प्रसङ्गमें गिह-जम्बुक सम्वाद युक्त इतिहास
कहना ... २६११

भसार, अल्प बल तथा चन्द्रजीवी मनुष्य
शत्रु निग्रहमें समर्थ पुरुषसे वैर करनेपर किस

विषय पृष्ठा
प्रकार आत्म रक्षा करेगा, उसे जाननेके लिये
युधिष्ठिरका भीष्मसे प्रश्न करना और भीष्मका
उस विषयमें शास्त्रालिपवन सम्वादयुक्त इतिहास
कहना ... २६१६

पापका निवास स्थान और जिससे पाप
प्रवर्तित होता है, उसे जाननेके लिये युधिष्ठि-
रका भीष्मसे प्रश्न करना और भीष्मके द्वारा
उसका वृत्तान्त वर्णन ... २६१६

युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा भ्रजानका
विषय वर्णन ... २६२१

युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा स्वाध्या-
यमें यत्नशील धर्मकी इच्छावाले मनुष्योंके लिये
इस लोकमें कल्याणदायक विषय वर्णन २६२२

युधिष्ठिरके निकट भीष्मके द्वारा तपका
प्रभाव वर्णन ... २६२३

युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा, सत्यधर्म
सत्यके लक्षण तथा धर्मादि वर्णन ... २६२४

युधिष्ठिरका भीष्मसे कामादि तेरह रिपु-
ओंकी उत्पत्तिका विषय पूछना, उस प्रसङ्गमें
भीष्मके द्वारा लोभोपाख्यान और निरास पुरु-
षोंका वर्णन ... २६२५

युधिष्ठिके समीप भीष्मके द्वारा वेदान्त
जाननेवाले तथा यज्ञ शील ब्राह्मणोंके विषयमें
दानादि विविध उपदेश और रजस्वला गमन
प्रभृति अनेक प्रकारके पाप तथा पापका प्राय-
श्चित वर्णन ... २६२७

नकुलके पूछनेपर भीष्मके द्वारा तलवारकी
उत्पत्ति वर्णन ... २६३०

युधिष्ठिरका विदुर तथा भाद्योंसे धर्म,
अर्थ, कामके उत्तम, मध्यम और निकृष्ट भेद
पूछना तथा विदुरादिका उस विषयमें
उत्तर ... २६३३

युधिष्ठिरका भीष्मसे मित्रामित्रका विषय
पूछना और भीष्मका उस विषयकी वर्णन
करना ... २६३६

विषय पृष्ठा
युधिष्ठिरका भीष्मसे कृतघ्नका इतिहास
पूछना तथा भीष्मके द्वारा कृतघ्नोपाख्यान
वर्णन ... २६३७

भीष्मके निकट युधिष्ठिरका गृहस्थ प्रभृति
आश्रमोंका धर्म पूछना और भीष्मका उस
विषयमें उत्तर देना और धन पुत्र तथा कलत्र
विनष्ट होनेपर शोक दूर करनेके विषयमें राजा
सेनजित् और पिङ्गलाका उपाख्यान वर्णन २६४३

सब प्राणियोंके चय करनेवाले समयके
बोतते रहनेपर किस प्रकार कल्याणका आसरा
करना चाहिये, इस विषयमें युधिष्ठिरका
प्रश्न सुनके भीष्मके द्वारा पिता-पुत्रोपाख्यान
वर्णन ... २६४६

पृथक् २ धनवान तथा निर्धन मनुष्योंके
सुख-दुख लाभ विषयमें युधिष्ठिरका प्रश्न सुनके
भीष्मके द्वारा उस विषयका वृत्तान्त वर्णन २६४७

कृषि-वाणिज्यप्रभृति कार्योंको करके अर्थ
लाभमें असमर्थ होनेपर मनुष्य किस कार्यसे
सुख लाभ कर सक्ता है ? युधिष्ठिरके इस प्रश्न
विषयमें भीष्मके द्वारा मस्किगीता इतिहास
वर्णन ... २६४८

मनुष्य किस व्यवहारके सहारे शोकरहित
होके पृथ्वीपर विचरता है और किस कार्यको
करके उत्तम गति पाता है ? युधिष्ठिरके इस
प्रश्नके उत्तरमें भीष्मके द्वारा प्रह्लाद और अज-
गरके सम्वादयुक्त इतिहास वर्णन २६५३

वासुदेव, वित्त और बुद्धि, इनके बीच मनु-
ष्योंकी किससे प्रतिष्ठा होती है ? युधिष्ठिरका
ऐसा प्रश्न सुनके भीष्मके द्वारा उसके उत्तरमें
इन्द्र काश्यप सम्वाद वर्णन ... २६५५

दान, यज्ञ प्रभृति कल्याण लाभके कारण
हैं वा नहीं ? युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके
द्वारा इस विषयका वृत्तान्त वर्णन ... २६५७

जीव समेत जंगत् किससे उत्पन्न हुआ है ?
युधिष्ठिरका यह प्रश्न सुनके भीष्मके द्वारा उसके

विषय पृष्ठा
उत्तर प्रसङ्गमें भृगु-भरहाजके सम्वाद युक्त इतिहास वर्णन ... २६५८
युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा आचारकी विधि वर्णन ... २६७२
युधिष्ठिरका अध्यात्म विषयक प्रश्न तथा जगत् किससे उत्पन्न होके प्रलयके समय किसमें लीन होता है, इत्यादि प्रश्न पूछना और भीष्मके द्वारा अध्यात्मयोग तथा ध्यान योग वर्णन ... २६७४
युधिष्ठिरका जापकोंकी फल प्राप्ति विषयमें प्रश्न सुनके भीष्मका जापक उपाख्यान कहना तथा जापकोंके निरयस्थानोंका वर्णन २६८०
जापकोंकी गति और गन्तव्य विषयमें भीष्मके द्वारा इच्छाकुवंशीय राजा और किसी ब्राह्मणका इतिहास वर्णन ... २६८१
युधिष्ठिरके पूछनेसे भीष्मके द्वारा जापकों-पाख्यानका उपसंहार भाग वर्णन ... २६८८
ज्ञानयुक्त योग, सब वेद, अग्निहोत्रादि नियमोंके फल, तथा जीव किस प्रकार जाना जाता है, इत्यादि युधिष्ठिरका प्रश्न सुनके भीष्मका उस विषयमें मनु और ब्रह्मरूपित सम्वाद कहना ... २६८९
भूतोंकी उत्पत्ति और लयके कारण केशवके स्वरूप विषयक युधिष्ठिरका प्रश्न सुनके भीष्मकेद्वारा सर्व भूतोंकी उत्पत्ति वर्णन २७००
पहले कौन कौनसे प्रजापति थे, कौन ऋषि किस दिशामें वास करते हैं, युधिष्ठिरका यह प्रश्न सुनके भीष्मके द्वारा इस विषयका वृत्तान्त वर्णन ... २७०२
युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा श्रीकृष्णका माहात्म्य वर्णन ... २७०३
युधिष्ठिरका मोक्षविषयक प्रश्न सुनके भीष्मका उस विषयमें गुरु शिष्य सम्वादयुक्त इतिहास कहना ... २७०४
जनकवंशीय जनदेवने किस प्रकार समस्त

विषय पृष्ठा
व्यवहार भोगत्यागके मोक्षलाभ की थी ? युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मका उसके उत्तर प्रसङ्गमें पञ्चशिखकी कथा कहना ... २७१८
मनुष्य किन कर्मोंके करनेसे सुख पाता, किन कर्मोंसे दुःखभागी होता और कैसे कर्म करके सिद्ध पुरुषकी भांति विचरता है ? युधिष्ठिरका यह प्रश्न सुनके भीष्मका उस विषयमें उत्तर देना ... २७२५
यज्ञ दीक्षित वा मन्त्र दीक्षित ब्राह्मणादि तीनों वर्णोंकी देवताओंकी बलिसे बचा हुआ मांस खाना उचित है, वा नहीं ? तपस्या किसी कहते हैं ? ब्राह्मण किस प्रकार उपवासी वा ब्रह्मचारी हो सकते हैं ? इत्यादि युधिष्ठिरका प्रश्न सुनके भीष्मका क्रमसे उत्तर देना २७२७
शुभ वा अशुभ कर्मोंका पुरुष कर्त्ता होता है, वा नहीं ? युधिष्ठिरके इस प्रश्नके विषयमें भीष्मके द्वारा प्रह्लाद और इन्द्रका सम्वाद वर्णन ,
राजा जिस बुद्धिके सहारे विपदग्रस्त वा अभ्यष्ट होकर पृथ्वीपर विचरता है, युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा उस विषयमें इन्द्र और बलिके सम्वाद युक्त इतिहास वर्णन २७२९
भीष्मके द्वारा इन्द्र-नसुचि सम्वादयुक्त इतिहास वर्णन ... २७३६
वस्तु नाश वा राज्य नाश रूपी विपदमें पड़े हुए पुरुषके पक्षमें कल्याण क्या है ? युधिष्ठिरका यह प्रश्न सुनके भीष्मका उसके उत्तर प्रसङ्गमें इन्द्र और बलिका सम्वाद कहना २७३७
युधिष्ठिरके पूछनेसे भावो उन्नतिशाली पुरुषोंके पूर्व लक्षणके विषयमें भीष्मका लक्ष्मी और इन्द्रके सम्वादयुक्त इतिहास कहना ... २७४२
पुरुष कैसे चरित्र, आचार, विद्या तथा पराक्रम सम्पन्न होनेसे उत्तम ब्रह्म धाम प्राप्त करता है ? युधिष्ठिरका यह प्रश्न सुनके उस विषयमें भीष्मके द्वारा जैगीषव्य और देवकका सम्वाद वर्णन ... २७४७

विषय

पृष्ठा

भूलोकमें सबका प्रिय सब जीवोंका अभि-
नन्दन करनेवाला मनुष्य कौन है ? युधिष्ठिरके
पूछनेसे भीष्मका उस विषयमें बासुदेव-उग्रसेन
सम्वाद कहना ... २७४८

जीवोंको उत्पत्ति और लयके विषय तथा
ध्यान, कर्म, काल और युग युगमें किस प्रकार
परमायु होती है ? समस्त लोकतल, जीवोंकी
अगति, गति, सृष्टि और मृत्यु कहाँसे होती है ?
युधिष्ठिरका ऐसा प्रश्न सुनके भीष्मका उसके
उत्तर प्रसङ्गमें व्यासदेव और शुकदेवके सम्वाद-
युक्त इतिहास कहना ... २७४९

‘मृत’ यह नाम कहाँसे हुआ ? स्थूल वा
सूक्ष्म शरीर अथवा आत्मा, इनमें किसकी मृत्यु
होती है ? किस पुरुषसे उत्पन्न होकर मृत्यु,
किस निमित्त समस्त प्रजाकी हरण करती है ?
युधिष्ठिरका यह सब प्रश्न सुनके भीष्मका उसके
प्रसङ्गमें मृत्यु और प्रजापतिका सम्वाद
कहना ... २७५६

युधिष्ठिरके पूछनेसे भीष्मके द्वारा धर्मके
लक्षण वर्णन ... २७६०

युधिष्ठिरके धर्म, सम्बन्धीय अनेक प्रकारके
प्रश्न सुनके भीष्मकी उस प्रसङ्गमें जाजलि और
तुलाधारके सम्वादयुक्त इतिहास कहना २७६३

भीष्मके द्वारा विचित्रगीता तथा शरीर
यात्रा निभानेकी उपाय वर्णन ... २८०३

गुरुकी आज्ञासे यदि हिंसामय दुष्कर कर्म
अवश्य करना पड़े, तो उस विषयमें शीघ्रता वा
विलम्बकी प्रतीक्षा करनी होगी ? युधिष्ठिरका
यह प्रश्न सुनके भीष्मका चिरकारिकोपाख्यान
कहना ... २८०३

राजा किस प्रकार प्रजाकी रक्षा करे, किस
भांति दण्ड विधानसे रहित होके प्राणि हिंसासे
निवृत्त रहे ? युधिष्ठिरके इस प्रश्नके उत्तर प्रस-
ङ्गमें भीष्मके द्वारा दुर्मर्त्तिन और सत्यवानका
उपाख्यान वर्णन ... २८०८

विषय

पृष्ठा

युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा गार्हस्थ्य
और योगधर्मके विषयमें गो-कपिल सम्बन्धीय
इतिहास वर्णन ... २८१०

वेदोंमें कहे हुए धर्म, अर्थ और काम इन
तीनोंके बीच किस विषयकी प्राप्ति श्रेष्ठ है ?
युधिष्ठिरका ऐसा प्रश्न सुनके भीष्मके द्वारा उस
विषयके उदाहरणमें कुण्डधारका उपाख्यान
वर्णन ... २८१६

धर्म अथवा स्वर्गफलके निमित्त विनियुक्त
यज्ञ कैसा है ? युधिष्ठिरका यह प्रश्न सुनके
भीष्मका उसके उत्तर प्रसङ्गमें उच्छ्वस्ति ब्राह्म-
णका इतिहास कहना ... २८२२

मनुष्य किस भांति पापात्मा होता तथा
किस भांति धर्माचरण करता है ? इत्यादि
युधिष्ठिरका प्रश्न सुनके भीष्मका उन विषयोंका
उत्तर देना ... २८२३

युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा मोक्ष
विषयमें असित देवल और नारदका सम्वाद
वर्णन ... २८२४

युधिष्ठिरके पूछनेसे तृष्णाकी निवृत्तिके
विषयमें भीष्मके द्वारा माण्डव्य और जनकका
सम्वाद वर्णन ... २८२७

सर्व प्राणियोंके नाशक समयके बीतते रहने
पर क्या करना योग्य है ? युधिष्ठिरका ऐसा
प्रश्न सुनके भीष्मका, उस विषयमें पिता पुत्रके
सम्वादयुक्त इतिहास कहना ... २८२८

मनुष्य कैसे सत्स्वभाव, आचरण, ज्ञान तथा
कैसे अवलम्बन करनेसे ब्रह्मको पाता है ?
युधिष्ठिरका प्रश्न सुनके भीष्मका उस विषयमें
उत्तर देना ... २८३०

युधिष्ठिरका सन्त्रास धर्म अवलम्बन कर-
नेके लिये भीष्मसे प्रश्न करना और भीष्मका
उस विषयमें बृत्रगीता कहना वा उस प्रसङ्गमें
विविध प्रश्नोंका उत्तर देना ... २८३१

युधिष्ठिरके पूछनेसे भीष्मके द्वारा उत्तरकी

विषय पृष्ठा
उत्पत्ति वर्णन ... २८४४
दक्षयज्ञके विनाशका वृत्तान्त वर्णन ... २८४६
युधिष्ठिरके प्रश्नके अनुसार भीष्मके द्वारा
शत्रुवधस्यनाम वर्णन ... २८४८
अध्यात्मका स्वरूप क्या है तथा कहांसे
अध्यात्म शास्त्र उत्पन्न हुआ है ? युधिष्ठिरका
ऐसा प्रश्न सुनके भीष्मका उस विषयमें उत्तर
देना ... २८५६
युधिष्ठिरका दुःख तथा मृत्युभयसे परि-
त्राणकी उपाय पूछना और भीष्मका उस विष-
यमें समझ नारदके सम्वादयुक्त इतिहास
कहना ... २८५८
युधिष्ठिरके प्रश्नके अनुसार भीष्मके द्वारा
संशय प्रयुक्त अनुष्ठान रहित मनुष्यके कल्याण
विषयमें नारद और गालवका इतिहास
वर्णन ... २८६०
मेरे समान राजा पृथ्वी पालनेमें नियुक्त
रहके किस भांति मोक्षधर्मका अनुष्ठान कर
सकेगा और कैसे गुणसम्पन्न होनेसे आसक्ति
पाशसे छूटेगा ? युधिष्ठिरका ऐसा प्रश्न सुनके
भीष्मके द्वारा सगर और अरिष्टनेमिके संवाद-
युक्त इतिहास वर्णन ... २८६३
देवर्षि उशना देवताओंके अप्रिय कार्योंमें
नियुक्त होकर किस निमित्त सदा असुरोंके
प्रिय करनेवाले हुए थे ? युधिष्ठिरका यह प्रश्न
सुनके भीष्मका उस विषयमें उत्तर देना २८६६
भृगुनन्दन उशनाने किस निमित्त महादे-
वके जठरके बीच विचरण किया था तथा वहां
किस प्रकार तपस्या की थी ? युधिष्ठिरके ऐसा
पूछनेपर भीष्मके द्वारा भव-भागव सम्वाद युक्त
इतिहास वर्णन ... २८६६
मनुष्य कैसा शुभकर्म करके इस लोक
और परलोकमें कल्याण लाभ करता है ?
युधिष्ठिरके इस प्रश्नके विषयमें भीष्मके द्वारा
पराशर गीता वर्णन ... २८६७

विषय पृष्ठा
लोकके बीच विद्वान् मनुष्य सत्य, दम,
क्षमा और बुद्धिकी प्रशंसा किया करते हैं, इस
विषयमें आपका क्या मत है ? युधिष्ठिरके इस
प्रश्नके उत्तर प्रसङ्गमें भीष्मके द्वारा हंसगीता
वर्णन ... २८८३
सांख्य और योगमें क्या विशेषता है ? युधि-
ष्ठिरका ऐसा प्रश्न सुनके भीष्मका उस विष-
यमें उत्तर देना ... २८८६
व्रत पवित्रता तथा दया वा इन सबके फल
यदि दोनों मतमें ही समान हैं, तो दोनों
दर्शन क्यों पृथक् हुए ? युधिष्ठिरका ऐसा
प्रश्न सुनके भीष्मका उस विषयमें उत्तर
देना ... २८८७
युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा
योगियोंके आहारादि विषयोंके जयका
वृत्तान्त वर्णन ... २८८८
युधिष्ठिरका सांख्य मत पूछना और
भीष्मका उसे वर्णन करना ... २८८९
निज शरीरसे उत्पन्न कौन कौनसे दोष
अशुभ रूपसे देखते हैं ? युधिष्ठिरके पूछनेसे
भीष्मका उस विषयमें उत्तर देना २८९०
सांख्यगणोंकी षड्गुणऐश्वर्य्य सम्पन्न पर-
मात्मस्वरूप परम मोक्षधाम प्राप्त होनेपर
उन्हीं जन्म मरणादिका कारण तथा मोक्ष विष-
यमें विशेष ज्ञान रहता है, वा नहीं ? इत्यादि
युधिष्ठिरका प्रश्न सुनके भीष्मके द्वारा
सांख्ययोग वर्णन ... २८९२
जिससे जीवोंको पुनरावृत्ति रहित होती
तथा जिससे जीवोंका पुनरागमन होता है, जो
अक्षर तथा चररूपसे वर्णन हुआ है, वह कौन
है ? युधिष्ठिरके इस प्रश्नके विषयमें भीष्मका
वसिष्ठ-करालजनक सम्वाद तथा जनकानुशा-
सन वर्णन... २८९३
अनकपुत्र वसुमान और भृगुनन्दनके संवाद
प्रसङ्गमें भीष्मके द्वारा युधिष्ठिरके समीप

विषय

पृष्ठा

इस लोक तथा परलोकके कल्याणकारी
कार्ये वर्णन ... २६०८

“जो धर्माधर्म, सब भांतिके संशय, जन्म,
मृत्यु, पुण्यपापसे विमुक्त, मङ्गल स्वरूप,
सर्वदा भयरहित, अविनाशी, अक्षर, अव्यय,
स्वभावसे ही निर्दोष तथा सदा आयास रहित
है, उसे ही वर्णन करना उचित है,” युधि-
ष्ठिरका ऐसा प्रश्न सुनके भीष्मका उसके
उत्तर प्रसङ्गमें याज्ञवल्क्य और जनकके संवा-
दयुक्त इतिहास कहना ... २६०९

मनुष्य महत् ऐश्वर्य, विपल वित्त अथवा
दीर्घ परमायु पाके किस प्रकार मृत्युको
अतिक्रम करता है ? तपस्या धर्म, शास्त्रज्ञान
वा रसायन प्रयोग करनेसे जरा-मृत्युको प्राप्त
नहीं होता ? युधिष्ठिरके इस प्रश्नके उत्तर-
में भीष्मके द्वारा पञ्चशिख और जनकका
संवाद वर्णन ... २६२२

किस पुरुषने गृहस्थ धर्म परित्याग न
करके बुद्धिके विलयास्पर्द मोक्षत्व पाया है ?
स्थूल वा लिङ्ग शरीर किस प्रकार परित्यक्त
होता तथा मोक्षका परम तत्त्व क्या है ? युधि-
ष्ठिरके इस प्रश्नके अनुसार भीष्मका सुलभा
और जनकके संवादयुक्त इतिहास कहना २६२३

व्यासपुत्र शुकदेवने किस प्रकार वैराग्य
लाभ किया था ? और आपने नारायणके किस
कार्यकलापका बुद्धिके सहारे निश्चय किया है ?
युधिष्ठिरके इस प्रश्नके उत्तरमें भीष्मके द्वारा
व्यासदेव-शुकदेव संवाद वर्णन २६३२

युधिष्ठिरका दान, यज्ञ तपस्या तथा गुरु-
सेवाका विषय पूछना और भीष्मका उस विष-
यमें उत्तर देना ... २६३७

युधिष्ठिरका शुकदेवके जन्म तथा उनके
सम्बन्धमें कई एक प्रश्न करना और भीष्मके
द्वारा उनके प्रश्नोंका वृत्तान्त वर्णन २६३८

गृहस्थादि चारों आश्रमवाले सिद्धिकी

विषय

पृष्ठा

अभिलाष करके किस देवताकी पूजा करें ?
इत्यादि युधिष्ठिरका प्रश्न सुनके भीष्मके द्वारा
नारद और नारायणके संवादयुक्त इतिहास
तथा श्वेतद्वीप निवासी पुरुषोंके वृत्तान्त कह-
नेके प्रसङ्गमें राजा उपरिचर वसुका यज्ञ वा
स्वर्गसे भ्रष्ट होनेका वृत्तान्त वर्णन २६५९

सर्व शक्तिमान भगवान् स्वयं यज्ञेश्वर
होकर किस प्रकार यज्ञ करता और वेदकर्ता
होके किस प्रकार वेदाङ्गवेत्ता कहके विख्यात
हुआ है ? इत्यादि शौनकके प्रश्नानुसार
सौतिका उस विषयमें उत्तर देना २६७५

अर्जुनके पूछनेपर श्रीकृष्णका निज नामोंका
निरुक्त कहना ... २६८०

अग्नि और चन्द्रमा किस प्रकार पहिले एक
योनि हुए थे ? अर्जुनका यह प्रश्न सुनके
कृष्णका उस विषयमें उत्तर देना २६८३

अनिरुद्ध शरीरसे स्थित नारायणका दर्शन
करनेपर भी किस लिये नारद वहासे नर-
नारायणका दर्शन करनेके लिये दौड़े ? शौन-
कका यह प्रश्न सुनके सूतका उस विषयमें
उत्तर देना ... २६९२

वैशम्पायन सुनिके द्वारा नर-नारायणकी
वार्त्तालाप वर्णन ... २६९३

तुम इस कल्पित दैव और पितृकार्यमें
किसकी पूजा करते हो ? नर ऋषिका ऐसा
प्रश्न सुनके नारद सुनिका उस विषयमें उत्तर
देना ... २६९५

पहले समयमें पितरोंकी किस प्रकार पिण्ड
संज्ञा प्राप्त हुई ? नारदका ऐसा प्रश्न सुनके
नर-नारायणका उस विषयमें उत्तर देना २६९६

हरिका अद्भुत रूप हयग्रीव अवतार
क्यों हुआ और हयग्रीवको देखके ब्रह्माने क्या
किया था ? इत्यादि जनमेजयका प्रश्न सुनके
वैशम्पायन सुनिका उस विषयमें उत्तर
देना ... २६९७

विषय	पृष्ठा	विषय	पृष्ठा
जनमेजयका यथाक्रमसे ऐकान्तिक पुरुषोंके धर्माचरण, अनेक विषयोंमें स्थित ब्राह्मणोंके उक्त धर्माचरण न करनेका कारण प्रभृति पूछना और वैशम्पायनका उस विषयमें उत्तर देना ३००१	सुनके वैशम्पायनका उस विषयमें उत्तर देना ३००५
जनमेजयका वैकारिक पुरुषोंके पुरुषोत्तम विषयक प्रश्न सुनके वैशम्पायनका उस विषयमें उत्तर देना ३००४	पुरुष अनेक अथवा एक है ? अथ पुरुष कौन है और उसकी योनि क्या है ? जनमेजयका यह प्रश्न सुनके वैशम्पायनके द्वारा उस विषयका वृत्तान्त वर्णन...	... ३००८
सांख्य योगादि सब ज्ञानकाण्ड एकनिष्ठ वा पृथक् निष्ठ हैं ? वेदव्यास मुनि किस प्रकार नारायणके पुत्र हुए ? जनमेजयका ऐसा प्रश्न		युधिष्ठिरका भीष्मके समीप आश्रमवासियोंका अष्ट धर्म पूछना और भीष्मके द्वारा उस विषयमें नारद तथा इन्द्रके सम्वादयुक्त उच्छ्वस्ति उपाख्यान वर्णन ३०११
		शान्ति पर्वकी समाप्ति ३०१८

द्रोण, कर्ण, शल्य, सीमिक, स्त्रो, शान्ति पर्वोंकी सूचीपत्र सम्पूर्ण ।

सूचीपत्र ।

अनुशासनपर्व ।

विषय	पृष्ठा	विषय	पृष्ठा
युधिष्ठिरका भीष्मके समीप शोक निवारण तथा स्वजनवध जनित पाप दूर करनेकी उपाय पूरुना और भीष्मके द्वारा उस विषयके उत्तर प्रसङ्गमें गौतमी, व्याध, सर्प, मृत्यु और कालका सम्वाद वर्णन ... ३०२१		उपकारकी इच्छा करके जो उपकार करते तथा उपकारकी इच्छा न करके जो पुरुष उपकर्त्ता होते हैं, वैसी मित्रता-संबन्धके वशमें होकर यदि कोई नीच जातिकी उपदेश करे, तो उसे दोष होता है, वा नहीं ? इत्यादि युधिष्ठिरका प्रश्न सुन भीष्मका उस विषयमें उत्तर देना ३०४१	
किस गृहस्थने धर्मके सहारे मृत्युकी पराजित किया है ? युधिष्ठिरका यह प्रश्न सुनके भीष्मका उस विषयमें सुदर्शन उपाख्यान युक्त इतिहास कहना ... ३०२५		कैसे पुरुष और कौसी स्त्रीमें लक्ष्मी निवास करती है ? इत्यादि युधिष्ठिरके पूरुनेपर भीष्मके द्वारा उस विषयका वृत्तान्त वर्णन ... ३०४४	
युधिष्ठिरका विश्वामित्रके ब्राह्मणत्व प्राप्ति का कारण तथा बसिष्ठके पुत्रनाशादि वृत्तान्त पूरुना और भीष्मके द्वारा वह सब वृत्तान्त वर्णित होना ... ३०३०		स्त्री पुरुषके संयोगमें वैषयिक सुख किसे अधिक होता है ? युधिष्ठिरके पूरुनेपर भीष्मका उस विषयमें उत्तर देना ... ३०४५	
युधिष्ठिरका अनृशंस्य धर्म और भक्तोंका गुण पूरुना और भीष्मका उस विषयमें शुक-इन्द्र सम्वादयुक्त इतिहास कहना ... ३०३२		ऐहिक शिष्ट व्यवहार और पारलौकिक कल्याणकी इच्छावाले मनुष्यको क्या करना चाहिये तथा कैसे स्वभावसे युक्त होकर मनुष्य लोक यात्रा निर्वाह करे ? इत्यादि युधिष्ठिरके पूरुनेपर भीष्मका उस विषयमें उत्तर देना ३०४८	
युधिष्ठिरका भाग्य और उद्योगकी श्रेष्ठताके विषयमें प्रश्न सुनके भीष्मका उसके उत्तर प्रसङ्गमें ब्रह्मा और बसिष्ठके सम्वादयुक्त इतिहास कहना ... ३०३४		युधिष्ठिरका महेश्वरके नाम सुननेके लिये अभिलाषी होना, उस विषयमें कृष्णका पुत्र कामनासे युक्त होकर निज तपस्या उपमन्युके कहे हुए मघवाहनोपाख्यान, तथा महादेवके समीप उपमन्युके वर प्राप्ति का वृत्तान्त कहना ... ३०४९	
युधिष्ठिरके पूरुनेपर भीष्मके द्वारा शुभ कर्मोंके फल वर्णन ... ३०३७		तण्डि ऋषिकी महादेवकी आराधनासे वर मिलना ... ३०५६	
पूज्य कौन है ? किसे नमस्कार करना चाहिये ? इत्यादि युधिष्ठिरका प्रश्न सुनके भीष्मका उस विषयमें उत्तर देना ... ३०३८		कृष्णके द्वारा उपमन्युके कहे हुए महादेवके सहस्र नाम वर्णन ... ३०७०	
दान करनेका सङ्कल्प करके जो लोग ब्राह्मणोंको दान नहीं देते, भविष्यमें उनकी कैसी दशा होती है ? युधिष्ठिरका ऐसा प्रश्न सुनके भीष्मके द्वारा उसका वृत्तान्त वर्णन ३०३९		व्यासदिका महेश्वर स्तवकी प्रशंसा करके युधिष्ठिरको उसे पाठ करनेके लिये कहना ३०८४	

विषय पृष्ठा
 स्त्रियोंके पाणिग्रहणके समय जो सङ्घर्ष होता है, वह क्या ऋषियोंके कहे हुए मन्त्रके द्वारा प्रकाशित धर्म है अथवा प्रजापतिके सच्चे सन्तानके लिये प्रसिद्ध हुआ है ? इत्यादि युधिष्ठिरके प्रश्नानुसार भोष्मका उस विषयसे अष्टावक्रादिक सन्वादयुक्त इतिहास कहना ३०८८
 युधिष्ठिरके अनेक प्रकारके प्रश्न सुनके भोष्मका उस विषयमें उत्तर देना ... ३०९४
 युधिष्ठिरके पूछनेपर भोष्मके द्वारा दैव और पितरश्राद्धका समय वर्णन ... ३०९६
 हिंसा न करनेपर भी किस प्रकार ब्रह्म-हत्या विहित हुई है ? युधिष्ठिरका ऐसा प्रश्न सुनके भोष्मका उस विषयमें उत्तर देना ३१०१
 युधिष्ठिरके पूछनेपर भोष्मके द्वारा तीर्थ दर्शनादिके माहात्म्य वर्णन ... ३१०२
 भोष्मके समीप सङ्घर्षियोंका आगमन ३१०४
 कौन देश, जनपद, आश्रम, पर्वत तथा कौनसी नदियें पुण्य-प्रभावसे श्रेष्ठ तथा जानने योग्य हैं ? युधिष्ठिरका ऐसा प्रश्न सुनके भोष्मके द्वारा इस विषयके उत्तर प्रसङ्गमें शिलोच्छ्रुति और सिद्धके सन्वादयुक्त इतिहास वर्णन ३१०५
 युधिष्ठिरका ब्राह्मणत्व-प्राप्ति विषयक प्रश्न सुनके भोष्मके द्वारा उस विषयमें मतङ्ग और गर्दभीके सन्वादयुक्त इतिहास वर्णन ३१०८
 युधिष्ठिरके पूछनेपर भोष्मके द्वारा राजा बीतहव्यके ब्राह्मणत्व प्राप्ति का विषय वर्णन ३११२
 तीनों लोकके बीच कौनसे मनुष्य पूज्य हैं ? युधिष्ठिरके पूछनेपर भोष्मका उस विषयमें उत्तर देना ... ३११५
 युधिष्ठिरका भोष्मसे शरणागत की रक्षा का फल पूछना और भोष्मके द्वारा उस विषयमें बाज कवूतर तथा राजा वृषदर्भके सन्वादयुक्त इतिहास वर्णन ... ३११६
 युधिष्ठिरका भोष्मके समीप राजाके गुस्तर कार्य और इस लोक तथा परलोकमें सुख

विषय पृष्ठा
 प्राप्त होनेका विषय पूछना और भोष्मके द्वारा उस विषयमें प्रशंसा वर्णन ... ३११८
 पूर्व परिचित, विरोधित और दूरदेशका अभ्यागत इन तीनों पात्रोंके बीच कौन पात्र उत्तम है ? युधिष्ठिरके पूछनेपर भोष्मके द्वारा इस विषयका वृत्तान्त वर्णन ... ३१२२
 युधिष्ठिरके पूछनेपर स्त्रियोंके स्वभाव वर्णन करनेके विषयमें भोष्मका पञ्चचूड़ा और नारदके सन्वादयुक्त इतिहास कहना ३१२३
 युधिष्ठिरका भोष्मके समीप स्त्रीरक्षा विषयक प्रश्न करना और भोष्मका उसके उत्तर प्रसङ्गमें विपुल उपाख्यान कहना ३१२५
 युधिष्ठिरका भोष्मके समीप पितृलोक, देवता, अतिथि स्वजन गृह, सब धर्मोंका मूल तथा कन्यादान करने योग्य पात्र पूछना और भोष्मका उस विषयमें उत्तर देना ३१३१
 युधिष्ठिरका भोष्मके समीप कन्याके शुल्कप्रद पतिप्रोषित होनेपर उसका व्यवहार पूछना और भोष्मके द्वारा उसका वृत्तान्त वर्णन ३१३२
 युधिष्ठिरका धर्ममार्गमें चलनेवाले मनुष्योंके कर्तव्यकर्म तथा ब्राह्मणके चार प्रकारकी स्त्रियोंके गर्भसे उत्पन्न हुए पत्रोंके पैतृक अंश पानेका विषय पूछना और भोष्मके द्वारा उसका वृत्तान्त वर्णन ... ३१३६
 युधिष्ठिरके पूछनेपर भोष्मके द्वारा अन्य वर्णोंके दाय विभागका नियम वर्णन ३१३८
 युधिष्ठिरके पूछनेपर भोष्मके द्वारा वर्णसङ्कर जातिके धर्मादि वर्णन ... ३१३९
 युधिष्ठिरके पूछनेपर भोष्मका सब वर्णोंके पृथक् पृथक् विषय वर्णन करना ३१४२
 दूसरेकी पीड़ा देखके कैसा स्नेह करना चाहिये ? दूसरोंके सङ्ग किस प्रकार अनृण-सताका अनुष्ठान करना योग्य है तथा गौवोंका कैसा माहात्म्य है ? युधिष्ठिरका ऐसा प्रश्न सुनके भोष्मका उसके उत्तर प्रसङ्गमें चवनी-

विषय	पृष्ठा
पाख्यान कहना ३१४३
युधिष्ठिरके पूछनेपर परशुरामकी उत्पत्ति विषयमें भीष्मके द्वारा च्यवनकुशिक संवादयुक्त इतिहास वर्णन ३१४६
स्वजन और राजाओंके बधसे दुःखित युधिष्ठिरका भीष्मके समीप हिंसाजनित पाप दूर होनेकी उपाय पूछना और भीष्मके द्वारा पापनाशक उपाय वर्णन ३१५४
युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा पाराम तथा तडागोत्सर्गका फल वर्णन ३१५६	
युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा दान धर्म वर्णन ३१५८
युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा दान और यज्ञके उत्कृष्ट फल वर्णन ३१६१	
युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा सबसे उत्कृष्ट दानका फल वर्णन ३१६२
इस लोकमें राजा किन वस्तुओंके दानकी कामना करके अधिक गुणवाले ब्राह्मणोंकी दान करे ? इत्यादि युधिष्ठिरका प्रश्न सुनके भीष्मका उस विषयमें उत्तर देना ३१६६	
युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा नक्षत्र योगमें दानका फल वर्णन ३१६८
युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा दक्ष-मान ब्राह्मणका पादुका प्रभृति दानका फल वर्णन ३१७१
युधिष्ठिरके पूछनेसे भीष्मके द्वारा जल दानका फल वर्णन ३१७३
युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा तिल और दीप दानका फल वर्णन ३१७४	
युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा सब दानोंकी श्रेष्ठ विधि तथा भूसिदानका फल वर्णन ३१७५
युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा गोदानका फल वर्णन ३१७६
गोदानकी फलप्राप्ति विषयमें भीष्मके द्वारा	

विषय	पृष्ठा
उद्दालकि और नाचिकेतके संवादयुक्त इति- हास वर्णन ३१७८
युधिष्ठिरका गोदाताके लोकप्राप्तिका विव- रण पूछना और भीष्मका उसके उत्तर प्रसङ्गमें इन्द्र-ब्रह्माके संवादयुक्त इतिहास कहना ३१८१	
युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा व्रता- दिके फल वर्णन ३१८४
युधिष्ठिरका भीष्मके समीप गोदानकी विधि तथा फलादि विविध प्रश्न करना और भीष्मका विविध इतिहास कहके उस विषयमें उत्तर देना...	... ३१८६
युधिष्ठिरका भीष्मसे सुवर्णकी उत्पत्ति तथा उसका स्वरूपादि पूछना और भीष्मका उसके उत्तर प्रसङ्गमें कार्तिकेयकी उत्पत्ति कहना ३१८८
युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा आइकी विधि वर्णन ३२०८
उपवास तपस्या है, वा अन्य भांतिके किसी नियमसे तपस्या होती है ? इत्यादि युधिष्ठिरका प्रश्न सुनके भीष्मका उस विषयमें उत्तर देना ३२१६
जो लोग ब्राह्मणोंको विविध वस्तु दान करते हैं, उन देनेवाले और लेनेवालोंमें क्या बिशीषता है ? युधिष्ठिरका ऐसा प्रश्न सुनके भीष्मके द्वारा उसके उत्तर प्रसङ्गमें राजा वृषा- दर्भि और सप्तर्षियोंके संवादयुक्त इतिहास वर्णन ३२१७
युधिष्ठिरका भीष्मके निकट आइादि कार्यमें चतुर और पादुका दान करनेकी कारण पूछना और भीष्मके द्वारा उस विषयमें स्थू- तथा जमदग्निके संवादयुक्त इतिहास वर्णन ३२२६
युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा गार्ह- स्थ्यधर्म वर्णन ३२२८
युधिष्ठिरके पूछनेसे फूल, धूप और दीप	

विषय

पृष्ठा

दानके विषयमें भीष्मके द्वारा अगस्त्य, भृगु तथा
नङ्गधके सम्वादयुक्त इतिहास वर्णन ३२२६

युधिष्ठिरके पूछनेसे भीष्मके द्वारा ब्राह्म-
णोंके धन हरनेवालोंकी गति वर्णन ३२३५

युधिष्ठिरका भीष्मके समीप सुकृतशाली
मनुष्योंके परलोकमें निवासका विवरण पूछना
और भीष्मका उसके उत्तर प्रसङ्गमें इन्द्र और
गौतमके सम्वादयुक्त इतिहास कहना ३२३६

तपस्यासे श्रेष्ठ क्या है ? इत्यादि धर्मपुत्रका
प्रश्न सुनके भीष्मके द्वारा ब्रह्मा और भगीर-
थके सम्वादयुक्त इतिहास वर्णन ३२३८

किस प्रकार मनुष्य आयुष्मान् तथा
अल्पायु होता है ? किस भांति कीर्ति वा
लक्ष्मी प्राप्त होती है ? इत्यादि युधिष्ठिरके
पूछनेपर भीष्मके द्वारा उसका वृत्तान्त
वर्णन ... ३२४१

युधिष्ठिरका भीष्मसे जेष्ठ तथा कनिष्ठका
व्यवहार पूछना और भीष्मके द्वारा उसका
वृत्तान्त वर्णन ... ३२४७

धर्मराजका भीष्मसे सब वर्णोंको उपवास-
विधि तथा उपवास परायण पुरुषाकी गति
पूछना और भीष्मका उसके उत्तर प्रसङ्गमें
अङ्गिराके कहे हुए वचन कहना ३२४८

धर्मराजके पूछनेपर भीष्मके द्वारा दारि-
द्र्यके निमित्त यज्ञ-विधि वर्णन ३२५१

युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा श्रेष्ठ
तीर्थका विषय वर्णन ... ३२५६

युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा
कल्याणकारी, महत् फल जनक और संशय
रहित उपवासका वर्णन ... ३२५७

युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा रूप,
सौभाग्य और प्रियत्वका विषय वर्णन ३२५८

विविध प्रश्नोत्तर प्रसङ्गमें युधिष्ठिर और
हृस्वर्पतिकी उक्ति प्रत्युक्ति ...

मनुष्य वचन, मन और कर्मसे हिंसा करते

विषय

पृष्ठा

हुए किस प्रकार दुःखोंसे कूटता है ? इत्यादि
युधिष्ठिरका प्रश्न सुनके भीष्मका उस विषयमें
उत्तर देना ... ३२६५

युधिष्ठिरका मास उद्घाटन विषयक प्रश्न
सुनके भीष्मका उस विषयमें उत्तर देना ३२६६

जो लोग अकाम वा सकाम होकर मन्त्र-
युद्धमें मरते हैं, उन्हें कौनसी गति प्राप्त होती
है ? युधिष्ठिरका ऐसा प्रश्न सुनके भीष्मका
उसके उत्तर प्रसङ्गमें द्वैपायन और कीटोपा-
ख्यान कहना ... ३२७१

विद्या, तपस्या और दानके बीच श्रेष्ठ क्या
है ? युधिष्ठिरका यह प्रश्न सुनके भीष्मके द्वारा
उसके उत्तर प्रसङ्गमें मैत्रेय और कृष्णद्वैपायनका
सम्वाद वर्णन ... ३२७३

युधिष्ठिरका भीष्मसे सती स्त्रियोंका समुदा-
चार पूछना और भीष्मके द्वारा उस विषयमें
सुमना और शाण्डिलीका सम्वाद वर्णन ३२७६

साम और दानके बीच श्रेष्ठ कौन है ?
युधिष्ठिरका ऐसा प्रश्न सुनके भीष्मका उस
विषयमें राज्ञस और ब्राह्मणके सम्वाद युक्त
इतिहास कहना ... ३२७७

अत्यन्त दुर्लभ कर्म क्षेत्रमें मनुष्य जन्म पाके
कल्याण चाहनवाले दरिद्रोंका जो कर्तव्य है,
जो सब दानोंके बीच उत्कृष्ट तथा मान्य वा पूज्य
लोगोंकी जो वस्तु जिस प्रकार देने योग्य है—
युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा उसका
वृत्तान्त वर्णन ... ३२७८

युधिष्ठिरका ब्राह्मणादिके भोजान्नविषयक प्रश्न
सुनके भीष्मका उस विषयमें उत्तर देना ३२८०

दान और तपस्याके बीच कौन विषय श्रेष्ठ
है ? युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मके द्वारा उसका
तथा दान धर्मके सहारे राजाओंके स्वर्गमें
गमन करनेका वृत्तान्त वर्णन ... ३२८२

युधिष्ठिरका भीष्मसे कृष्णकी महिमा पूछना
और भीष्मका उसके उत्तर प्रसङ्गमें ऋषियों तथा

विषय	पृष्ठा
श्रीकृष्णके सम्वादयुक्त इतिहास कहना ३२६४	
युधिष्ठिरके समीप भीष्मके द्वारा उमा-महे- श्वर सम्वाद वर्णन ... ३२६५	
मनुष्यवृन्द किस देवता तथा परमाश्रयकी प्रजा करते हुए इस लोकमें शुभलाभ करते हैं ? युधिष्ठिरका ऐसा प्रश्न सुनके भीष्मका उसके उत्तर प्रसङ्गमें विष्णु सहस्र नाम कहना ३३११	
कैसा जप्य मन्त्र जपनेसे महत् फल होता है ? इत्यादि युधिष्ठिरका प्रश्न सुनके भीष्मका उस विषयमें उत्तर देना ... ३३३१	
कौन पूज्य और कौन नमस्कार करने योग्य है ? इत्यादि युधिष्ठिरका प्रश्न सुनके भीष्- मका उस विषयमें उत्तर देना ... ३३३४	
किस प्रकार कल्पको देखके तथा कैसे कर्मोद्भयकी जानके आप ब्राह्मणोंकी पूजा करते हैं ? युधिष्ठिरके ऐसा पूछनेपर भीष्मके द्वारा उस विषयमें पवनार्जुन सम्वादयुक्त इति- हास वर्णन ... ३३३५	
युधिष्ठिरका भीष्मसे ब्राह्मण पूजाका फल पूछना और भीष्मका कृष्णसे ब्राह्मण पूजाका विषय पूछनेके लिये युधिष्ठिरसे अनुरोध करना ... ३३४२	
धर्मराजके पूछनेपर कृष्णके द्वारा ब्राह्मण प्रजाका फल वर्णन ... ३३४५	
दुर्वासाकी कृपासे उस समय तुम्हें कौनसा विज्ञान प्राप्त हुआ था ? युधिष्ठिरका यह प्रश्न सुनके कृष्णका उस विषयको कहनेके प्रसङ्गमें ईश्वरकी प्रशंसा करना ... ३३४७	
निर्णय और आगम; इन दोनोंके बीच कारण क्या है ? युधिष्ठिरका ऐसा प्रश्न सुनके भीष्मका उस विषयमें उत्तर देना ... ३३५०	
युधिष्ठिर और भीष्मका विविध प्रश्नोत्तर ३३५१	
भार्यहीन मनुष्य अत्यन्त बलवान् होके भी धनवान् नहीं होता, इत्यादि धर्मराजका प्रश्न सुनके भीष्मका उस विषयमें उत्तर देना ३३५२	

विषय	पृष्ठा
इस लोकमें पुरुषके लिये कल्याण क्या है, इत्यादि युधिष्ठिरका प्रश्न सुनके भीष्मके द्वारा देववंश प्रभृति वर्णन ... ३३५४	
जनमेजयके पूछनेपर वैशम्पायन सुनिके द्वारा युधिष्ठिरादिके विषयमें भीष्मके शेष वचन तथा भीष्मके प्राणत्यागनेका विषय वर्णन ३३५६	
भीष्मके मरनेपर गङ्गाका विलाप तथा कृष्णका गङ्गादेवीको धीरज देना ... ३३५६	
अनुशासन पर्वकी समाप्ति ...	

अश्वमेधपर्वका सूचीपत्र ।

धृतराष्ट्रको आगे करके शोकार्त युधिष्ठि- रका पृथ्वीपर गिरना, युधिष्ठिरको धृतराष्ट्र और कृष्णका धीरज देना ... ३३६१	
धर्मराजका वनमें जानेके लिये कृष्णसे अनुमति माँगना तथा युधिष्ठिरके विषयमें व्यास देवके धैर्य युक्त वचन ... ३३६२	
युधिष्ठिरका व्यासदेवसे अश्वमेध यज्ञके नामत्त धन प्राप्तिकी उपाय पूछना और व्यास- देवके द्वारा युधिष्ठिरको मरुत्तराजका धन लानेके लिये उपदेश ... ३३६३	
युधिष्ठिरका व्यासदेवसे मरुत्तराजका विव- रण पूछना ...	
व्यासदेवके द्वारा राजा मरुत्तका वृत्तान्त वर्णन ... ३३६४	
धर्मराजका व्यासदेवसे मरुत्तका वीर्य तथा सुवर्ण सञ्चयका वृत्तान्त पूछना और व्यासदेवका उस विषयमें बृहस्पति मरुत्तके सम्वाद युक्त इतिहास कहना ... ३३६५	
युधिष्ठिरादिकी श्रीकृष्णका धीरज देना ३३७४	
व्यासादिके वचनसे शोक रहित होके युधिष्ठिरका वात्सवोंके प्रेतकार्यादि करनेके अनन्तर पृथ्वीको वशमें करके व्यासादिके सङ्ग वार्त्तालाप करना ...	

विषय	पृष्ठा	विषय	पृष्ठा
कृष्णाञ्जनका इन्द्रप्रस्थमें बिहार तथा अनेक प्रकारकी वार्त्तालाप ३३७८	पाण्डवोंके युद्धका वृत्तान्त वर्णन ...	३४३७
अञ्जनका कृष्णासे पृर्वीकृत परमात्म-विषय पूछना और कृष्णाका उसके उत्तर प्रसङ्गमें ब्राह्मण गोता कहना ३३७९	जनमेजयके पूछनेपर वैशम्पायनके द्वारा पाण्डवोंकी मरुत्तराजकी रत्न प्राप्ति का वृत्तान्त वर्णन ३४४०
परमज्ञेय कौन है ? अञ्जनका ऐसा प्रश्न सुनके कृष्णाका उसके उत्तर प्रसङ्गमें गुरुशिष्यके सम्बादयुक्त इतिहास कहना ३४०३	कृष्णाका हस्तिनापुरमें आना और उत्पन्न हुए मृत परौक्षितको जिलाना ...	३४४३
अञ्जनके पूछनेपर कृष्णाके द्वारा गुरुशिष्यका वृत्तान्त वर्णन ३४२४	रत्न संग्रह करके पाण्डवोंका हस्तिनापुरमें आके परौक्षितका जन्म वृत्तान्त सुनना युधिष्ठिरके निकट व्यासदेवका आगमन ...	३४४७
हारकामें जानेके निमित्त कृष्णाका अञ्जनसे सम्मति करना ३४२५	युधिष्ठिरको यज्ञ करनेके लिये व्यासदेवकी अनुमति मिलनी, धर्मराजका यज्ञमें दीक्षित होनेके निमित्त व्यासदेवके निकट प्रस्ताव करना ३४४८
हारकापुरीमें जानेकी वार्त्ता कहनेके लिये कृष्णाका अञ्जनके सहित युधिष्ठिरके समीप जाना और उनकी अनुमतिसे हारकाकी ओर चलना ३४२६	वेदव्यासके द्वारा यज्ञ करनेका समय वर्णन और घोड़ेकी परोक्षा करके देश भ्रमणके निमित्त छोड़नेकी अनुमति देना और व्यासदेवकी आज्ञानुसार युधिष्ठिरका अञ्जनको घोड़ेकी रक्षा करनेके लिये नियुक्त करना ...	३४४९
कृष्णासे मरुभूमिमें उतड़ु ऋषिसे भेंट होना तथा दोनोंकी वार्त्तालाप ३४२८	अञ्जनका घोड़ेके सङ्ग चलना ...	३४५०
जनमेजयका वैशम्पायनसे उतड़ुकी तपस्याका विवरण पूछना और वैशम्पायनके द्वारा उतड़ु सुनिका वृत्तान्त वर्णन ...	३४३१	घोड़ेके सहित अञ्जनका विगर्त देशमें जाके विगर्तवासियोंके सङ्ग युद्ध करके वहासे प्राग्ज्योतिष पुरमें जाके वज्रदत्तके सङ्ग संग्राम करना ३४५०
उतड़ुके गुरुदक्षिणा देनेके निमित्त उद्यत होनेपर गौतम-पत्नी अहल्याका उनसे राजा सौदासकी स्त्रीका कुण्डल मांगना और उसे लानेके लिये उतड़ुका सौदासके निकट जाना ३४३२	अञ्जनका सिन्धुराजवंशियोंके सङ्ग युद्ध ...	३४५३
उतड़ु और सौदासकी वार्त्तालाप ...	३४३३	अञ्जनका मणिपुर राज्यमें ब्रुवाहनके सङ्ग संग्राम ३४५६
सौदासके वचन अनुसार उतड़ुका उनकी स्त्रीके समीप जाके कुण्डल मांगना और मदयन्तीसे कुण्डल पाके अञ्जनके पास जानेकी इच्छासे प्रस्थान करना, मार्गमें सर्पके द्वारा कुण्डल हरण होना फिर नागलोकसे कुण्डल लाकर अहल्याको देना ३४३३	ब्रुवाहनके बाणसे अञ्जनका प्राण त्यागना और चित्राङ्गदा तथा उलूपीके द्वारा फिर जीवित होना ३४५७
कृष्णाका हारकामें जाना ...	३४३६	चित्राङ्गदा और उलूपीके सङ्ग अञ्जनकी वार्त्तालाप ३४६०
वसुदेवके पूछनेपर कृष्णाके द्वारा कुरु-		घोड़ेके सङ्ग अञ्जनका मगधदेशमें जाना और सहदेवपुत्र मेघसन्धिके सङ्ग युद्ध करना ३४६१
		अञ्जनका समुद्रके तटसे अङ्ग प्रभृति देशोंमें	

विषय पृष्ठा
जाकर वहांके सब लोगोंको जीतते हुए दाशार्ण्य
देशमें जाकर चित्राङ्गदके सङ्ग युद्ध करना फिर
वहांसे चलके मार्गमें अनेक राजाओंसे युद्ध
करते हुए गान्धार देशमें जाके शकुनिपुत्रके सङ्ग
युद्ध करना ... ३४६३

घोड़ेके सहित अर्जुनका हस्तिनापुरकी
ओर लौटना, उस वृत्तान्तको सुनके धर्मरा-
जका भीष्मादि भाइयोंको यज्ञानुष्ठानके लिये
आज्ञा देना ... ३४६४

भीमका स्थपतिगणोंके द्वारा यज्ञस्थान
तथा गृहादि निर्माण कराके राजाओंके समीप
दूत भेजना तथा अनेक देशके राजाओंका
हस्तिनापुरमें आना ... ३४६५

बलदेवके सहित श्रीकृष्णका हस्तिनापुरमें
आना और युधिष्ठिरके सङ्ग कृष्णकी वार्त्ता-
लाप ... ३४६६

युधिष्ठिरको यज्ञमें दीक्षित होनेके लिये
अनुमति, युधिष्ठिरकी दीक्षा और अश्वमेध
यज्ञारम्भ तथा यज्ञकी समाप्ति ३४६८

धर्मराजके यज्ञमें क्या अद्भुत कार्य हुआ
था ? जनमेजयका ऐसा प्रश्न सुनके उसके उत्तर
प्रसङ्गमें वैशम्पायन मुनिके द्वारा नकुलोपाख्यान
वर्णन ... ३४७१

जनमेजयका नैशम्पायनसे नेबलके द्वारा
यज्ञनिन्दाका कारण पूछना और वैशम्पायनका
उस विषयमें उत्तर देना ... ३४७५

जनमेजयके पूछनपर वैशम्पायनके द्वारा सब
यज्ञोंका परम निन्द्य वर्णन ३४७७
अश्वमेध पर्वको समाप्ति ... ३४७८

आश्वमेधवासिक पर्वका सूचोपत्र ।

राज्य प्राप्तिके अनन्तर पाण्डवोंने धृतराष्ट्रके
सङ्ग जैसा व्यवहार किया था, जनमेजयके पूछने
पर वैशम्पायनके द्वारा उसका वृत्तान्त
वर्णन ... ३४८१

विषय पृष्ठा
धृतराष्ट्र और युधिष्ठिरकी वार्त्तालाप तथा
वहां पर वेदव्यास मुनिका आना ३४८४
व्यासदेव और युधिष्ठिरकी वार्त्तालाप तथा
वेदव्यास मुनिकी आज्ञानुसार युधिष्ठिरका
धृतराष्ट्रकी वनमें जानके विषयमें सम्मति
देना ... ३४८६

धृतराष्ट्रका युधिष्ठिरके विषयमें राजनीति
उपदेश करना ... ३४८७

धृतराष्ट्रका पुरवासियोंके विषयमें विनययुक्त
वचन कहना ... ३४८२

शाश्व नाम ब्राह्मणके द्वारा पुरवासियोंका
धृतराष्ट्रके विषयमें निज निज सम्मति प्रकाश
करना ... ३४८३

धृतराष्ट्रका विदुरकी धन लानके लिये
युधिष्ठिरके निकट भेजना और उस विषयमें
युधिष्ठिरकी सम्मति ... ३४८५

धृतराष्ट्रका भीष्म तथा पुत्रादिके उद्देश्यसे
दान और आज्ञादि करना ... ३४८७

धृतराष्ट्रादिका वनमें जाना और गङ्गाके
तटपर निवास करना ... ३४८८

धृतराष्ट्रका वेदव्यास मुनिके आश्रममें
जाना और वहांपर नारदादि ऋषियोंका समा-
गम तथा वार्त्तालाप ... ३५०२

कुन्तीके शोकसे शोकार्त पाण्डवोंका
बिलाप तथा उसे देखनेके लिये वनमें
जाना ... ३५०४

पाण्डवोंका राजा धृतराष्ट्रके निकट निवास
तथा उनके सङ्ग वार्त्तालाप... ३५०७

युधिष्ठिरका विदुरके समीप जाना और
विदुरका यागावलम्बन पूर्वक प्राणत्यागके
धर्मराजके शरीरमें प्रविष्ट होना ३५०८

धृतराष्ट्रके विषयमें वेदव्यास मुनिके
वचन ... ३५०९

जनमेजयका वैशम्पायनसे धृतराष्ट्र
में आश्वर्थ घटनाका विषय

विषय	पृष्ठा
वैशम्पायन सुनिका उस विषयमें उत्तर देना,	
व्यासदेवकी विषयमें गान्धारीकी वचन ३५११	
व्यासदेवकी समीप कुन्तीकी द्वारा कर्णकी	
उत्पत्तिका वृत्तान्त वर्णन ... ३५१३	
गान्धारीकी विषयमें व्यासदेवकी वचन ३५१४	
व्यासदेवका धृतराष्ट्रादिको युद्धमें मरे हुए	
पुत्रादि दिखाना ... ३५१५	
धृतराष्ट्रने पुत्र, पौत्र और आत्मीजनोंको	
देखकी क्या किया ? इत्यादि जनमेजयका प्रश्न	
सुनकी वैशम्पायन सुनिका उस विषयमें उत्तर	
देना ... ३५१८	
युधिष्ठिरकी निकट नारद सुनिका आना	
और धृतराष्ट्रकी मृत्युका सम्वाद कहना ३५२०	
युधिष्ठिरका धृतराष्ट्रकी मृत्युसंवाद सुनकी	
बिलाप करना ... ३५२२	
युधिष्ठिरकी हाथसे धृतराष्ट्रादिका आँखादि	
होना ... ३५२३	
आश्वमेधावसिक पर्वकी समाप्ति ३५२४	

मौषल पर्वका सूचीपत्र ।

युधिष्ठिरका अशकुन देखना तथा मौषल	
युद्धमें वृष्णिवंशियोंके मरनेका वृत्तान्त	
सुनना ... ३५२५	
जनमेजयके पूछनेपर वैशम्पायनकी द्वारा	
अम्यक, वृष्णि तथा भोजवंशियोंके निनष्ट	
होनेका वृत्तान्त वर्णन ... ३५२६	
अम्यक तथा वृष्णिवंशियोंके गृहमें काल-	
पुरुषका घूमना तथा अनेक भातिकी अज्ञ, त	
घटना ... ३५२६	
वृष्णि और अम्यकवंशियोंकी तीर्थयात्रा	
उद्धवका प्रस्थान करना, प्रभास तीर्थमें सबका	
महापान आरम्भ, सात्यकी और कृतवर्माका	
विवाद तथा परस्पर युद्ध करके सबका विनाश	
होना ... ३५२८	

विषय	पृष्ठा
केशव, दासक और वभ्रका बलरामके	
समीप जाना, कृष्णका दासकको संवाद देनेके	
लिये अर्जुनकी निकट और वभ्रकी स्त्रियोंकी	
रक्षाके निमित्त दारकामें भेजना, वभ्रका	
विनाश, स्त्रियोंकी रक्षाके निमित्त कृष्णका	
दारकामें जाना और पिताकी स्त्रियोंकी	
रक्षाका भार देकर बलरामकी निकट आना,	
बलरामका प्राण त्यागना, बलरामके वियोगमें	
कृष्णका विह्वल होके पृथ्वीपर बैठना और	
व्याधाके वाणकी चोटसे प्राणत्यागके निज	
धाममें जाना ... ३५२९	
अर्जुनका दारकामें आना और वसुदेवका	
बिलाप ... ३५३१	
वसुदेवके विषयमें अर्जुनकी वचन ३५३२	
वसुदेव तथा उनकी स्त्रियोंका प्राण छोड़ना	
और अर्जुनकी द्वारा उनका दाहकर्म तथा	
अन्त्येष्टिकार्य्य होना, सब यदुवंशियोंका प्रेत-	
कार्य्य करके अर्जुनका दारकासे बाहर	
होना और मार्गमें दस्युओंका यादवोंकी	
स्त्रियोंकी हरण करना... ३५३३	
अर्जुनका व्यासदेवकी निकट जाके याद-	
वोंका वृत्तान्त कहना, अर्जुनकी विषयमें व्यास-	
देवकी वचन ... ३५३५	
अर्जुनका हस्तिनापुरमें जाना ३५३७	
मौषल पर्वका सूचीपत्र समाप्त ... "	

महाप्रस्थानिक पर्वका सूचीपत्र ।

अर्जुनकी विषयमें युधिष्ठिरकी वचन और	
अर्जुनादि चारों भाइयोंका उनके वचनमें	
सम्मत होना, युधिष्ठिरकी द्वारा परीक्षितका	
राज्याभिषेक ... ३५३९	
युधिष्ठिरादिका श्रीकृष्ण प्रभृतिके उद्देश्यसे	
अज्ञा करके द्रौपदीके सहित महाप्रस्थानकी	
निमित्त बाहर होना ... ३५४०	

विषय पृष्ठा

पाण्डवोंका पूरवकी और चलके लोहित समुद्रके तटपर जाना और हताशनके अनु-रीधसे अर्जुनका गाण्डीव धनुष त्यागना- ३५४०

चारों ओर घूमनेके अनन्तर हिमालय और बालुकार्णव अतिक्रम करके पाण्डवोंका सुमेरु पर्वत पर चढ़ना और द्रौपदी, सहदेव, नकुल, अर्जुन तथा भीमका क्रमसे गिरना और भीमसेनके पूछनेपर युधिष्ठिरके द्वारा उन सबके गिरनेका कारण वर्णन ३५४१

युधिष्ठिरके समीप इन्द्रका आना, इन्द्र और युधिष्ठिरकी वार्त्तालाप ३५४२

युधिष्ठिरके विषयमें धर्मके वचन, धर्म-राजका स्वर्गमें जाना, युधिष्ठिरके विषयमें नारदके वचन और इन्द्र तथा युधिष्ठिरकी वार्त्तालाप... ३५४३

महाप्रस्थानिक पर्वकी समाप्ति ... ३५४४

स्वर्गरोहणपर्वका सूचीपत्र ।

मेरे परदादा पाण्डवोंने स्वर्गमें जाके कौनसा स्थान प्राप्त किया था? इत्यादि जनमेजयका प्रश्न सुनके वैशम्पायनका उस विषयमें उत्तर देना दुर्योधनका ऐश्वर्य देखके अमर्षके वशवर्ती

विषय पृष्ठा

युधिष्ठिरके वचन और युधिष्ठिरसे नारदकी वार्त्तालाप... ३५४५

मेरे मेरे हुए भाई तथा दूसरे राजा लोग किस स्थानमें हैं? इत्यादि युधिष्ठिरके प्रश्न सुनके देवताओंका उस विषयमें उत्तर देना देवताओंकी आज्ञासे देवदूतका युधिष्ठिरकी उनके भाइयोंका निवास स्थान दिखानेके लिये जाना और वहांपर कर्णदिके वचन सुनके युधिष्ठिरका चिन्तायुक्त होना ... ३५४६

युधिष्ठिरके समीप देवताओंका आना और युधिष्ठिरके विषयमें इन्द्र तथा धर्मके वचन ३५४८

आकाश गङ्गामें स्नान करनेसे युधिष्ठिरका मनुष्य रूप छोड़के श्रीकृष्णादिसे मिलना ३५४९

धृतराष्ट्र प्रभृति राजाओंने कितने समयतक स्वर्गमें वास किया था? इत्यादि जनमेजयका प्रश्न सुनके वैशम्पायनका उस विषयमें उत्तर देना ... ३५५०

सौतिके द्वारा महाभारतके निस्तु तथा माहात्म्यादि वर्णन ... ३५५१

किस विधिके अनुसार महाभारत सुनना चाहिये? इत्यादि जनमेजयके पूछनेपर वैशम्पायनके द्वारा महाभारत सुननेका फलवर्णन ३५५३ स्वर्गरोहण पर्व समाप्त .. ३५५६

पनुशासन, अश्वमेध, आश्रमवासिक, मौषल, महाप्रस्थानिक, स्वर्गरोहणपर्वोंकी सूचीपत्र सम्पूर्ण

सूचीपत्र समाप्त ।

॥

अथ कं तथा वृष्टिवाश्रयिकं ॥

॥

॥

महाभारत।



आदिपर्व ।

नारायण नरोत्तम नर और देवी सरस्वती जी को प्रणाम करके जय कीर्तन करना चाहिये।

एक समय लोमहर्षण-पुत्र, सूतकुलके-आनन्द-दायी, सूतवंशी, पौराणिक श्री उग्रश्रवा जी महाराज विनयपूर्वक सिर नायकर नैमिषारण्य में कुल-के-स्वामी श्री शौनकाजी के द्वादश-वार्षिकी-यज्ञ में दीक्षित और परम सुखसे बैठे हुए बड़े बड़े ऋषियों के पास जा पड़चे। श्री उग्रश्रवा जी के नैमिषारण्य में ठिके हुए ऋषियों के आश्रम में पड़चने पर, तपस्वी लोग आश्चर्य कथा सुनने के लिये वहां आकर उनकी चारों ओर घेर बैठे। सूत-पुत्रने उन सब मुनि और तपस्वियों को प्रणाम-दण्डवत करके दोनों हाथ जोड़ कर तपोवृद्धिका-समाचार पूछा। उन साधुओंने भी उनका उचित-सत्कार किया। आगे उन सब तपस्वियों के बैठने के पश्चात् श्री लोमहर्षणपुत्र जी नम्र-भावसे अपनेलिये ठहराये-हुए आसन पर जा बिराजे। उनकी सुख-से बैठे-हुए और खस्यचित्त देखकर किसी ऋषिने बातही बात में पूछा, कि हे पद्म-पत्राक्ष सूतपुत्र। कहिये तो सही, इस समय आपका आना कहां से हुआ और अवतक आप कहां बिराजते थे। यह पूछे जाने पर, वाक-निपुण

श्री उग्रश्रवा जी महाराज शुद्ध-आत्मा-युक्त मुनियों की उस बड़ी सभामें अच्छी और सच्ची रीति पर उनलोगों के चरित्रानुरूप वचन कहने लगे।

सूतपुत्र बोले, कि हे चिरञ्जीव महर्षियो ! महानुभाव-राजर्षि जनमेजय के सर्प-यज्ञ में श्री वैशम्पायन मुनिने पृथ्वीनाथ परीक्षितपुत्र की श्रीवेदव्यास जी महाराज की कही हुई जो भांति भांति की मनोहर पुण्यकथा विधि-पूर्वक सुनाई थीं, मैं उन सब अपूर्व अर्थों से भरी हुई महाभारतीय कथाओं की सुनलेने के पश्चात् नाना तीर्थ और अनेक देशों में घूम घूम कर उस समन्तपञ्चक नामक पवित्र स्थान में होता हुआ, जिसकी सेवा ब्राह्मण लोग करते हैं और जहां पहिले कौरव, पाण्डव और दूसरे सब राजाओं में लड़ाई हुई थी, इस आश्रम में आपलोगों की भेंटके लिये आया हूँ। हे सूर्य-और अग्निके समान तेजोमय पुण्यवन्त द्विजो ! जान पड़ता है, कि आप लोग इस यज्ञमें अभिषिक्त हुए हैं और नहा-धीकर शुचि हो करके जप-हवन से निश्चिन्त होकर आसनों पर सुख से बैठे हैं; क्या मैं इसी समय पुराणों की धर्मार्थयुक्त पवित्र-कथा और महानुभाव नरेशों और ऋषियोंका इतिहास सुनाऊँ ?

ऋषियों ने कहा, कि महर्षि द्वैपायन जो पुराण कह गये हैं, जिसको सुनकर देवता और ब्रह्मर्षियों ने बड़ी प्रशंसा की है, श्री वेदव्यास जी की आज्ञा से वैशम्पायन मुनिने सर्प-यज्ञके काल में जिस उपाख्यानो में श्रेष्ठ, विचित्र-पद-औ-पर्वयुक्त, सूक्ष्मार्थ प्रतिपादक, युक्तिपूर्ण, वेदार्थ से सुशोभित इतिहास-पर बने हुए महाभारत की अर्थभरी, अनेक शास्त्रोक्त आशयोंकी, पवित्र, संस्कृत कथा महाराज जनमेजय की विधिके अनुसार आनन्द पूर्वक सुनाई थी, हमलोग आश्चर्य-कार्यकारी श्री महाराज वेद-व्यास जी की रची हुई उस चारों वेदार्थसिद्ध-कारी पापभय-हारी, पुण्यभरी संहिता को सुना चाहते हैं ।

श्री उग्रश्रवा जी बोले, कि उस हरि की, जो विश्व का आदि पुरुष श्री ईश्वर है; जिसका नाम लेकर ब्रह्मत लोग हवन और स्तुति करते हैं; जो अद्वितीय, सत्य, विकार-रहित, व्यक्त, अव्यक्त, सनातन श्री ब्रह्मरूपी है; जिसका रचा हुआ विश्व असत्, सदसत् और सदसत् से भिन्न है; जिसने सब स्थूल और सूक्ष्म वस्तु रची हैं; जो परम पुराण, अविनाशी, मङ्गल का देनेवाला श्री मङ्गलरूप है; जो विश्वभर में व्याप्त, विश्व भरका उपासना-योग्य, दोषरहित, शुद्धस्वभाव, इन्द्रियोंका अधीश और चराचरके गुरु हरिकी प्रणाम करके सबलोकों के पूजनीय, महानुभाव और आश्चर्यकार्यकारी श्री महाराज वेदव्यास जी का पवित्रमत प्रकाश करना प्रारम्भ करता हूँ ।

किसी किसी कविने भूमण्डल में पहिले भी इस इतिहास की कही है, अब भी कोई कोई कहते हैं और आगे भी बहते-कहेंगे । अनन्त ज्ञान का देनेवाला यह इतिहास तीनों लोक में प्रशंसित हुआ है, ब्राह्मण लोग इसेकी संक्षेप में और विस्तारपूर्वक धारण किये हुए हैं । यह महाभारतग्रन्थ अनेक भांति के छन्द

अच्छे अच्छे शब्द और देवता तथा ब्राह्मणों की सधी हुई शब्दरूपी-शक्ति से सुशोभित हुआ है और पण्डितलाग इसका बड़ा आदर करते हैं ।

यह जगत्, दशों और घोर अंधरे से घेरा हुआ और उजाला श्री ज्योति से विलकुल खाली था । सृष्टि की आदि में जीवों की उत्पत्ति का अविनाशी बीज-रूपी एक बड़ा अण्डा उत्पन्न हुआ; पण्डित लोग उसीको महान श्री दिव्य कहा करते हैं । सुना जाता है, कि वह परब्रह्म का अद्भुत, अव्यक्त चिन्ता-तीत और सब ठौर तुल्यभाव है, उस अण्डे में सूक्ष्मकारण रूप से प्रवेश कर गया था । उससे सब लोकों के पितामह, अद्वितीय प्रभु, प्रजापति ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र उपजे । अग्नि, स्वायम्भुव मनु, वसिष्ठ, परमेष्ठी, दश प्रचेता, दक्ष, दक्षके सातपुत्र—इन इक्कीस प्रजापति-ओंने जन्म लिया । वह विराट् पुरुष जिनको ऋषिलाग यागवल् से देखते हैं, श्री विश्वदेव-गण—बारह सूर्य, आठ वसु, दो अश्विनी-कुमार, यक्षलाग, सार्धलाग, पिशाचलाग, गुह्यकलाग और पितरलाग उत्पन्न हुए । सब गुणों से सुशोभित, विद्वान्, शान्त-चिन्त, ब्रह्मर्षि और राजर्षियों ने जन्म लिया । और क्रम के अनुसार जल, पृथ्वी, वायु, आकाश, दिश, वर्ष, ऋतु, मास, पक्ष, दिन, रात्रि और सब दूसरे लौकिक पदार्थ रचे गये ।

। स्थावर और जड़म-आत्मक यह दृश्यमान जगत् प्रलयकाल में फिर लोप हो जायगा । जैसे वसन्त आदि हर ऋतु में ऋतुओं के चक्र-प्रकट-करनेवाले फूल-आदि फूल कर, दिन पूरे होने पर, फिर गायब होते हैं, तैसेही युगके आरम्भ में सब पदार्थ रचे जाकर प्रलय-काल में फिर लय हो जाते हैं । इसी भांति रचने और नाश करनेवाला अनादि, अनन्त संसारचक्र सदा बदलता रहता है ।

तैंतीस सहस्र, तैंतीस सौ, तैंतीस द्विता संचेप में रचे गये । वहज्जानु, चक्षुः, आत्मा, विभावसु, सविता, ऋचीक, अर्क, भानु, आशावह, रवि, विवस्वान्, मरुत—यह सब अदिति के पुत्र हुए । इनमें महा सबसे छोटे, उनके पुत्र द्विभ्राट और द्विभ्राट के पुत्र सुभ्राट हुए; सुभ्राट के बड़े पण्डित और अनेक पुत्रों के जन्म-दाता दशज्योतिः, शतज्योतिः और सहस्रज्योतिः नामक तीन पुत्र हुए । महानुभाव दशज्योतिः के दशसहस्र, शतज्योतिः के एकलक्ष और सहस्रज्योतिः के दशलक्ष पुत्र उत्पन्न हुए; उनही लोगोंसे कुरुवंश, यदुवंश, ययातिवंश, इक्ष्वाकुवंश और दूसरे अनेक राजर्षि-वंश उपजे औ वे सब उपजे हुए वंश इसकाल में बृद्धत फैल गये हैं ।

दुर्ग, नगर, तीर्थ-क्षेत्र आदि सब जीवस्थान, धर्म-के-रहस्य, अर्थ-के-रहस्य, काम-के-रहस्य चारों वेद, योग-शास्त्र, विज्ञान-शास्त्र, धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष औ धर्म, अर्थ और काम सम्बन्धी अनेक शास्त्र, आयुर्वेद, धनुर्वेद इत्यादि संसार-निर्वाह करने के सब शास्त्रों को श्री महाराज वेदव्यास ऋषि जानते थे । वह सब विषय, व्याख्या-सहित सब इतिहास और अनेक भांति की श्रुति, इस ग्रन्थमें कही हैं; सो वही सब विषय इस ग्रन्थ के लक्षण हैं ।

कोई कोई पण्डित इसकी संचेप में जानना चाहते हैं और कोई कोई विस्तार-पूर्वक जानना चाहते हैं; इसलिये श्रीमहाराज वेदव्यास जी ने इसे संचेपमें और विस्तारपूर्वक कहा है । भिन्न भिन्न पण्डित भिन्न भिन्न स्थानसे इस संहिताको आरम्भ समझते हैं; कोई कोई तो “नारायणं नमस्कृत्य” इस मन्त्र से; कोई कोई आस्तीकपर्वसे और कोई कोई राजा उपरिचर की कथासे इसका आरम्भ समझकर पढ़ने लगते हैं । पण्डित लोग अनेक उपायों से इस संहिता का ज्ञान उभाड़ते हैं ।

उनमें कोई कोई तो इसकी सुन्दर व्याख्या करते हैं और दूसरे इसका अर्थ भली-रीति समझने की शक्ति रखते हैं ।

सत्यवतीपुत्र विज्ञान ब्रह्मर्षि पाराशरि, अपनी तपस्या और ब्रह्मचर्य के प्रभावसे सनातन वेद का विभाग कर इस पवित्र इतिहास को रच गये हैं । वह शक्ति-पूर्ण हैपायन सोचने लगी, कि इस श्रेष्ठतम इतिहास-ग्रन्थ की रचना के पश्चात् मैं इसे क्यों कर शिष्यों को पढ़ा सकूंगा । ऋषि हैपायन जीकी ऐसी चिन्ता करते हुए जानकर सर्वलोकों के गुरु-देव भगवान् ब्रह्मा जी श्रीमहाराज व्यास जी के सन्तोष के निमित्त और लोकों के हित करनेकी इच्छा से उस स्थानमें स्वयं उपस्थित हुए । उन्हें देखतेही वेदव्यासजीने समस्त मुनियों के सहित अचम्भे में होकर उनकी प्रणाम-दण्डवत किया, और बैठने की श्रेष्ठ आसन दिया । हिरण्यगर्भ के, उस आसन में बैठने पर, सत्यवती-पुत्र उनके समीप दोनों हाथ जोड़ कर खड़े रहे । अनन्तर कृष्ण हैपायनजी परमेष्ठी की आज्ञा-पाकर प्रसन्न-नेत्र और आनन्द-भरे मुख से उनके आसन के निकट बैठ गये । कुछ काल पीछे अति तेजस्वी व्यासजी ब्रह्माजीसे कहने लगी, कि हे भगवन् ! मैंने एक ऐसा परम पवित्र काव्य रचने की कल्पना की है, जिसमें वेद के गूढ़तत्त्व; वेद-वेदाङ्ग और उपनिषद् की व्याख्या; पुराण और इतिहास का प्रकाश; भूत, भविष्यत और वर्तमान—इन तीनों का निरूपण; बुढ़ापा, मृत्यु, भय, व्याधि, भाव और अभावका निर्णय; विविध धर्म और आश्रम के लक्षण; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, सूद्र—इन चारों वर्ण के लिये नाना पुराणों में कथित आचार, विधि, तपस्या और ब्रह्मचर्य; पृथिवी, चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारा और चारों युग के प्रमाण; ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और आत्मतत्त्व के

निरूपण ; न्याय, शिक्षा, चिकित्सा, दानधर्म, पाशुपतधर्म और उनका वृत्तान्त कि जिन जिनने जिस जिस कारण से दिव्य वा मानव-योनिमें जन्म लिया है ; पवित्र तीर्थ, देश, नदी, वन, पर्वत, समुद्र, दिव्यपुरी, व्यूह रचने के नियमादि युद्ध-कौशल, विशेष विशेष वाक्य, विशेष विशेष जाति, लोकयात्रा के विधान कथित होंगे और इनसबों के उपरान्त वह परब्रह्मा, जो सम्पूर्ण संसार में व्याप्त है, सिद्ध किया जावेगा ; पर इस भूमण्डल में इसे लिख सके, ऐसा कोई योग्य लेखक नहीं है ।

ब्रह्माजी बोले, तुममें रहस्यों का ज्ञान रहने के कारण तुम बड़े कठोर तप करने वाले, कुल-शील से सुशील और सब ऋषियों से श्रेष्ठ हो । मैं जानता हूँ, कि तुम जन्म के समयसे सत्य और ब्रह्म-सम्बन्धी वाक्य ही कहते हो, सो जब तुमने स्वरचित ग्रन्थ को काव्य करके निर्णय किया है, तब वह काव्य ही करके प्रसिद्ध होगा ; जैसे सब आश्रमोंमें गृहस्थाश्रम सर्व-प्रधान है, तैसेही सब काव्यों में तुम्हारा यह काव्य सर्व-श्रेष्ठ होगा ; कोई भी कवि इससे बढ़कर सुन्दर काव्य रच नहीं सकेगा । इस समय तुम गणेश जी की स्मरण करो, वही तुम्हारे इस काव्यके लेखक होंगे ।

श्री उग्रश्रवा जी बोले, कि ऐसा कह कर ब्रह्माजी के अपने स्थान को चले जाने पर सत्यवती-पुत्र श्री महाराज व्यासजी ने हेरम्ब को स्मरण किया । भक्तों की इच्छा-भरनेवाले विघ्न-नाशी गणनायक को स्मरण करते ही वह वहां आ पड़ेंगे । वेदव्यास जी से पूजे जाकर उनके आसन में विराजने पर, श्री महाराज व्यास जी बोले, हे अनघ गणनायक ! मैं बोले जाता हूँ, आप मेरे मानस-सङ्कल्पित महाभारत ग्रन्थके लेखक होंगे । यह सुनकर गणपति जी बोले कि लिखना आरम्भ करने पर, यदि

मेरी लेखनी क्षणमात्र भी न रुके, तो मैं लेखक हो सकता हूँ । श्री व्यास जी बोले, कि आप भी किसी स्थान का अर्थ बिना समझे न लिखिये । गणनायक जी तथास्तु कहके लेखक के कार्यमें नियुक्त हुए । व्यास जी इसी से कौतूहलवश होकर बीच बीच में ग्रन्थग्रन्थि अर्थात् समझने में अति कठोर श्लोक रचे हैं और इसी प्रतिज्ञा के अनुसार इस महाभारत में ऐसे गूढार्थयुक्त आठ सहस्र, आठसौ श्लोक हैं, जिनके सत्य अर्थ मैं जानता हूँ, श्री शुकदेव जी भी जानते हैं और इसमें सन्देह है, कि सञ्जय जानता है वा नहीं । शिष्यों के निकट उन सब गूढार्थ-युक्त व्यास कूटों के बड़े बड़े कूट अर्थों की व्याख्या कोई नहीं कर सकता । उन श्लोकों के लिखने के समय श्रीगणपति जी सब विषयों के जानकार होने पर भी, अर्थ समझने के लिये क्षणकाल सोचा करते थे और उस अवसर में श्री व्यासदेव दूसरे अनेक श्लोक रच डालते थे ।

महाभारत-रूपी-सूर्य ने मानवों का अंधेरा हर लिया है ; यह पुराणरूपी-पूर्णचन्द्रमा श्रुति-रूपी-ज्योत्स्ना को प्रकट कर मनुष्य-बुद्धि-रूपी-कुमुदवन को प्रकाश कर रहा है ; इस इतिहास-रूपी-दीपकने मोह रूपी अंधेरेको हरकर सम्पूर्ण भुवनरूपी गृहमें उजाला भर दिया है । बादल जैसे प्रजाओं का आश्रय है, तैसेही यह महाभारत-रूपी-अविनाशी-वृक्ष सब बड़े बड़े कवियों का आश्रय होगा । भारत-वृक्ष का संग्रह-अध्याय उसके बीजरूपी, पौलोम और आस्तीकपर्व जड़रूपी, सम्भवपर्व गुह्यरूपी, सभा और वनपर्व पक्षियों के घोंसले-रूपी, अरणीपर्व पर्वरूपी, विराट और उद्योगपर्व साररूपी, भीष्मपर्व बड़ी शाखारूपी, द्रोणपर्व पत्ररूपी, कर्णपर्व सुफेद फूलरूपी, शल्यपर्व गन्धरूपी, स्त्रीपर्व और ऐषिकपर्व छायारूपी, शान्तिपर्व महाफल-रूपी, अश्वमेधपर्व अमृत-

रस-रूपी, आश्रमवासिकपर्व आधार-रूपी, और मौषलपर्व बड़ी बड़ी शाखाओं के अन्त-भाग-रूपी हुए हैं। शान्तचित्त हिजलोग उस महाभारत-रूपी वृक्ष की शरण लेते हैं और मैं भी उसी वृक्ष के स्वादिष्ट और देवदुर्लभ पवित्र रस-भरे नित्यधर्मरूपी-फूल और मोह-रूपी-फल को कथा कहूँगा।

पूर्व कालमें बड़े वीर्यवन्त, धर्मात्मा कृष्ण-द्वैपायन जीने अपनी माता और प्रज्ञा-शील भीष्मदेव के नियोगसे विचित्रवीर्य के क्षेत्र में तीनों अग्नि के समान तेजस्वी तीन पुत्र उपजाये थे। वेदव्यास जी महाराज इस प्रकार से धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर—इन तीन सन्तानों का जन्म देकर तपस्या के लिये फिर आश्रम की गये। आगे उन पुत्रों के वृद्ध होकर परलोक सिधारने पर, वेदव्यास जी ने मनुष्यलोक में महाभारत को प्रकट किया। अनन्तर जनमेजय के सर्प यज्ञके समय में सहस्रों ब्राह्मण और स्वयं जनमेजय के, बड़ी चाहके साथ महाभारत सुनने की इच्छा दिखाने पर, श्री वेदव्यासजीने शिष्यों के सहित पोंसहीमें बैठे हुए श्री वैशम्पायनजी को ग्रन्थ सुनाने की आज्ञा दी। नित्य यज्ञके कर्म पूरे होने के पीछे वैशम्पायन मुनि बार बार पूछे जाकर सभी में संभ्यों के साथ बैठ कर महाभारत सुनाने लगे। भगवान् द्वैपायन ऋषिने इस महाभारत ग्रन्थमें कुरुवंशका विस्तार, गान्धारों की धर्मशीलता, विदुर की प्रज्ञा, कुन्तीका धैर्य, श्रीकृष्णका माहात्म्य, पाण्डवों की सत्यनिष्ठा और धृतराष्ट्र पुत्रों की दुष्टता वर्णन की हैं। पहिले उन्होंने उपाख्यानभागकी छोड़कर चौबीस सहस्र श्लोकों में भारत संहिता रची थी; पण्डितगण उन्हीं चौबीस सहस्र श्लोकों ही को भारत कहा करते हैं। आगे वेदव्यासजीने सम्पूर्ण पर्व और वृत्तान्तों का संहतिप कर आघेसी श्लोकों में अनुक्रमणिका-अध्यायकी रचा।

भगवान् द्वैपायन ने पहिले इसे अपने पुत्र शुक-देवजी को पढ़ाया और पीछे योग्य शिष्यों को भी प्रदान किया। इसके पीछे उन्होंने साठ लाख श्लोकों की दूसरी एक संहिता रची थी; उसके तीसलाख देवलीकमें, पन्द्रह लाख पितृ-लोकमें, चौदह लाख गन्धर्व-लोकमें, और एक लाख श्लोक मर्त्यलोकमें प्रतिष्ठित हुए हैं। नारदजीने देवताओं को, असित देवलने पितरों को और शुकदेवजीने गन्धर्व, यक्ष और राक्षसोंको वह सब श्लोक सुनाये थे। श्री व्यासजी महाराज के शिष्य सर्व वेदों के ज्ञाता, धर्मात्मा श्री वैशम्पायनजीने इस नरलोक में जनमेजय के सर्प-यज्ञके समय लाख श्लोकों की जिस भारत-संहिता को कीर्तन किया था, मैं उसकी वर्णन करता हूँ, आप लोग श्रवण कीजिये।

दुर्योधन मर्त्यमय अर्थात् अहङ्कारी महा-वृक्ष है; कर्ण उसका गुंडा, शकुनि उस की शाखा, दुःशासन उसके बड़े-चढ़े फल-फूल; और अज्ञान से अन्धे, प्रज्ञा-रहित धृतराष्ट्र उसकी जड़-रूपी हैं। युधिष्ठिर धर्ममय महा-वृक्ष हैं; अर्जुन उसका गुंडा, भीमसेन उसकी शाखा, नकुल और सहदेव उसके बड़े-चढ़े फल-फूल और श्रीकृष्ण, वेद और ब्राह्मण उसकी जड़-रूपी हैं। युधिष्ठिर का नाम लेने से धर्म बढ़ता है, भीमसेन का नाम लेने से पाप जल-जाता है, अर्जुनका नाम लेनेसे शूरता बढ़ती है और नकुल और सहदेव के नाम लेनेसे आरोग्यता प्राप्त होती है।

राजा पाण्डु अपनी बुद्धि और विक्रम से बृहते देश जय कर अन्त में अहेर खेलते हुए वनमें जाकर मुनियों के साथ वसे थे; वह भोग में आसक्त मृग की मारकर घोर विपद में पड़े थे। उसे वनमें आपद्धर्म्म के अनुसार कुन्ती और माद्री के गर्भमें धर्म, वायु, इन्द्र और दोनों अश्विनीकुमार—इन पांच देवताओं के औरस से पाण्डवों का जन्म हुआ और क्रमानु-

निरूपण ; न्याय, शिक्षा, चिकित्सा, दानधर्म, पाशुपतधर्म और उनका वृत्तान्त कि जिन जिनने जिस जिस कारण से दिव्य वा मानव-योनिमें जन्म लिया है ; पवित्र तीर्थ, देश, नदी, वन, पर्वत, समुद्र, दिव्यपुरी, व्यूह रचने के नियमादि युद्ध-कौशल, विशेष विशेष वाक्य, विशेष विशेष जाति, लोकयात्रा के विधान कथित होंगे और इन सबों के उपरान्त वह परब्रह्म, जो सम्पूर्ण संसार में व्याप्त है, सिद्ध किया जावेगा ; पर इस भूमण्डल में इसे लिख सके, ऐसा कोई योग्य लेखक नहीं है ।

ब्रह्माजी बोले, तुममें रहस्यों का ज्ञान रहने के कारण तुम बड़े कठोर तप करने वाले, कुल-शील से सुशीलित और सब ऋषियों से श्रेष्ठ हो । मैं जानता हूँ, कि तुम जन्म के समयसे सत्य और ब्रह्म-सम्बन्धी वाक्य ही कहा करते हो, सो जब तुमने स्वरचित ग्रन्थ को काव्य करके निर्णय किया है, तब वह काव्य ही करके प्रसिद्ध होगा ; जैसे सब आश्रमोंमें गृहस्थाश्रम सर्व-प्रधान है, तैसेही सब काव्यों में तुम्हारा यह काव्य सर्व-श्रेष्ठ होगा ; कोई भी कवि इससे बढ़कर सुन्दर काव्य रच नहीं सकेगा । इस समय तुम गणेश जी की स्मरण करो, वही तुम्हारे इस काव्य के लेखक होंगे ।

श्री उग्रश्रवा जी बोले, कि ऐसा कह कर ब्रह्माजी के अपने स्थान को चले जाने पर सत्यवती-पुत्र श्री महाराज व्यासजी ने हेरम्ब को स्मरण किया । भक्तों की इच्छा भरनेवाले विघ्न-नाशी गणनायक की स्मरण करते ही वह वहां आ पड़ेंगे । वेदव्यास जी से पूजे जाकर उनके आसन में विराजने पर श्री महाराज व्यास जी बोले, हे अनघ गणनायक ! मैं बोले जाता हूँ, आप मेरे मानस-सङ्कल्पित महाभारत ग्रन्थ के लेखक होंगे । यह सुनकर गणपति जी बोले कि लिखना आरम्भ करने पर, यदि

मेरी लेखनी क्षणमात्र भी न रुके, तो मैं लेखक हो सकता हूँ । श्री व्यास जी बोले, कि आप भी किसी स्थान का अर्थ बिना समझे न लिखिये । गणनायक जी तथास्तु कहके लेखक के कार्यमें नियुक्त हुए । व्यास जी इसी से कौतूहलवश होकर बीच बीच में ग्रन्थग्रन्थि अर्थात् समझने में अति कठोर श्लोक रचे हैं और इसी प्रतिज्ञा के अनुसार इस महाभारत में ऐसे गूढार्थयुक्त आठ सहस्र, आठसौ श्लोक हैं, जिनके सत्य अर्थ मैं जानता हूँ, श्री शुकदेव जी भी जानते हैं और इसमें सन्देह है, कि सञ्जय जानता है वा नहीं । शिष्यों के निकट उन सब गूढार्थ-युक्त व्यास कूटों के बड़े बड़े कूट अर्थों की व्याख्या कोई नहीं कर सकता । उन श्लोकों के लिखने के समय श्रीगणपति जी सब विषयों के जानकार होने पर भी, अर्थ समझने के लिये क्षणकाल सोचा करते थे और उस अवसर में श्री व्यासदेव दूसरे अनेक श्लोक रच डालते थे ।

महाभारत-रूपी-सूर्य ने मानवों का अंधेरा हर लिया है ; यह पुराणरूपी-पूर्णचन्द्रमा श्रुति-रूपी-ज्योत्स्ना को प्रकट कर मनुष्य-बुद्धि-रूपी-कुमुदवन की प्रकाश कर रहा है ; इस इतिहास-रूपी-दीपक ने मोह रूपी अंधेरे को हरकर सम्पूर्ण भुवनरूपी गृहमें उजाला भर दिया है । बादल जैसे प्रजाओं का आश्रय है, तैसेही यह महाभारत-रूपी-अविनाशी-वृक्ष सब बड़े बड़े कवियों का आश्रय होगा । भारत-वृक्ष का संग्रह-अध्याय उसके बीजरूपी, पौलोम और आस्तीकपर्व जड़रूपी, सम्भवपर्व गुड़रूपी, सभा और वनपर्व पक्षियों के घोंसले-रूपी, अरणीपर्व पर्वरूपी, विराट और उद्योगपर्व साररूपी, भीष्मपर्व बड़ी शाखा-रूपी, द्रोणपर्व पत्ररूपी, कर्णपर्व सुफेद फूलरूपी, शल्यपर्व गन्धरूपी, स्त्रीपर्व और ऐषिकपर्व छाया-रूपी, शान्तिपर्व महाफल-रूपी, अश्वमेधपर्व अमृत-

रस-रूपी, आयसवासिकपर्व आधार-रूपी, और मौपलपर्व बड़ी बड़ी शाखाओंके अन्त-भाग-रूपी हुए हैं। शान्तचित हिजलीग उस महाभारत-रूपी वृक्षकी शरण लेते हैं और मैं भी उसी वृक्ष के खादिष्ट और देवदुर्लभ पवित्र रस-भरे नित्यधर्मरूपी-फूल और मोहरूपी-फल को कथा कहूँगा।

पूर्व कालमें बड़े वीर्यवन्त, धर्मात्मा कृष्ण-द्वैपायन जीने अपनी माता और प्रज्ञा-शील भीष्मदेव के नियोगसे विचित्रवीर्य के क्षेत्र में तीनों अग्नि के समान तेजस्वी तीन पुत्र उपजाये थे। वेदव्यास जी महाराज इस प्रकार से धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर—इन तीन सन्तानों का जन्म देकर तपस्या के लिये फिर आश्रम की गये। आगे उन पुत्रों के वृद्ध होकर पर-लोक सिधारने पर, वेदव्यास जी ने मनुष्यलोक में महाभारत की प्रकट किया। अनन्तर जनमेजय के सर्प यज्ञके समय में सहस्रों ब्राह्मण और स्वयं जनमेजय के, बड़ी चाहके साथ महाभारत सुनने की इच्छा दिखाने पर, श्री वेदव्यासजीने शिष्यों-के-सहित पांसहीमें बैठे हुए श्री वैशम्पायनजी को ग्रन्थ सुनाने की आज्ञा दी। नित्य यज्ञके कर्म पूरे होने के पीछे वैशम्पायन मुनि बार बार पूछे जाकर सभा में सबों के साथ बैठ कर महाभारत सुनाने लगे। भगवान् द्वैपायन ऋषिने इस महाभारत ग्रन्थमें कुरुवंशका विस्तार, गान्धारों की धर्मशीलता, विदुर की प्रज्ञा, कुन्तीका धैर्य, श्रीकृष्णका गान्धात्य, पाण्डवों की सत्यनिष्ठा और धृतराष्ट्र पुत्रों की दुष्टता वर्णन की हैं। पहिले उन्होंने उपनिषद्भागकी होड़कर चौबीस सहस्र श्लोकों में भारत संहिता रची थी; पण्डितगण उसमें चौबीस सहस्र श्लोकों ही को भारत कहा करते हैं। आगे वेदव्यासजीने नमस्कृत्य पर्व और वनपर्वों की संक्षेप कर पांचवीं शताब्दी में अनुसमयिका-महाकवि रचा।

भगवान् द्वैपायन ने पहिले इसे अपने पुत्र शुक-देवजी को पढ़ाया और पीछे योग्य शिष्यों को भी प्रदान किया। इसके पीछे उन्होंने साठ लाख श्लोकों की दूसरी एक संहिता रची थी; उसके तीसलाख देवलोकमें, पन्द्रह लाख पितृ-लोकमें, चौदह लाख गन्धर्व-लोकमें और एक लाख श्लोक मर्त्यलोकमें प्रतिष्ठित हुए हैं। नारदजीने देवताओं को, असित देवलने पितरों को और शुकदेवजीने गन्धर्व, यक्ष और राक्षसोंको वह सब श्लोक सुनाये थे। श्री व्यासजी महाराज के शिष्य सर्व वेदों के ज्ञाता, धर्मात्मा श्री वैशम्पायनजीने इस नरलोक में जनमेजय के सर्प-यज्ञके समय लाख श्लोकों की जिस भारत-संहिता की कीर्तन कियाथा, मैं उसकी वर्णन करता हूँ, आप लोग श्रवण कीजिये।

दुर्योधन मनुष्य अर्थात् अहङ्कारी महा-वृक्ष है; कर्ण उसका गुडा, शकुनि उस की शाखा, दुःशासन उसके बड़े-चढ़े फल-फूल; और अज्ञान से अन्ध, प्रज्ञा-रहित धृतराष्ट्र उसकी जड़-रूपी हैं। युधिष्ठिर धर्ममय महा-वृक्ष है; अर्जुन उसका गुडा, भीमसेन उसकी शाखा, नकुल और सहदेव उसके बड़े-चढ़े फल-फूल और श्रीकृष्ण, वेद और ब्राह्मण उसकी जड़रूपी हैं। युधिष्ठिर का नाम लेने से धर्म बढ़ता है, भीमसेन का नामलेने से पाप जल-जाता है, अर्जुनका नाम लेनेसे शूरता बढ़ती है और नकुल और सहदेव के नाम लेनेसे आरोग्यता प्राप्त होती है।

राजा पाण्डु अपनी बुद्धि और विक्रम से बहुत देश जय कर अन्त में अहेर गिरते हुए वनमें जाकर मुनियों के साथ उसे दे; वह भोग में आसक्त भग की मारकर घोर विषय में पड़ेगा। उस वनमें आपत्तियों के अनुसार वृन्ती और माद्री के गर्भमें धर्म, वायु, इन्द्र और दाना अग्निहोत्रमार—इन पांच देवताओंके औरस से पाण्डवों का जन्म हुआ और

सार सदाचार की विधि से उनके जात-कर्मादि सब निर्व्वाह किये गये। पाण्डव लोग पवित्र-वन के भीतर बड़े बड़े तपस्वियों के पुण्याश्रम में साधुओं के सहित कुन्ती और माद्री से रक्षित होने और बढ़ने लगे। कुछकाल पीछे एक समय ऋषिलोग उन राजलक्ष्णों से सुशोभित, जटाधारी, ब्रह्मचारी शिशुओं को स्वेच्छासे धृतराष्ट्र-आदिके पास लेगये। आगे वे मुनिलोग यह कह कर, कि “ये पाण्डुपुत्रगण तुम्हारे पुत्र, भ्राताचेल और सुहृत् हैं” वहाँसे लौट चले। इस प्रकारसे पाण्डवों को अर्पण कर मुनियोंके चले जाने पर, उन्हें देख देखकर साधु-कौरव लोग और नाना जातिके पुरवासी हर्ष-वश कोलाहल करने लगे। कोई कोई बोले, “यह पाण्डुपुत्र नहीं हैं”; कोई-कोई बोले, “हां, येही पाण्डुकी सन्तान हैं।” दूसरे लोग बोले, “राजा पाण्डुके परलीक गये, तो बहुत दिन हो चुके, अब उनके पुत्र कहांसे उपजे?” उस समय सर्वत्र पुरवासियों का यह शब्दही सुनाई देने लगा, कि: “आज हमारा आना सब प्रकार शुभ निकला; क्योंकि सौभाग्यवश पाण्डुपुत्रों का दर्शन हुआ; हे पाण्डव! तुम तो कुशलसे आये न?”—यह शब्द बन्द होनेपर दशों और से गूंजती हुई दिवों की आकाशवाणी हुई। पाण्डवों के नगर में पड़चते ही आश्चर्य-रूप से फूलों की वृष्टि, सुगन्ध का सञ्चार और शंख-नगाड़ों की ध्वनि होने लगी। उस आनन्दसे पुरवासियों की कीर्त्ति बढ़ाने वाली और आकाशतक पड़चती हुई हर्षवर्त्ति उत्पन्न हुई। पाण्डव नाना शास्त्र और सम्पूर्ण वेद पढ़कर और निर्भय होकर बड़े आदर-सम्मानसे बसेने लगे। प्रजा, युधिष्ठिर के शुद्धाचार, भीमसेनके धैर्य, अर्जुन के विक्रम, नकुल और सहदेवकी नम्रता और कुन्ती की गुरुसेवा से परम प्रसन्न हुई; विशेष कर पांचों भाई की शूरता ने सबों का सन्तोष उपजाया। आगे द्रौपदीके स्वयम्बरस्थलमें अग-

णित राजाओं के एकचित्र होने पर, अर्जुनके कठोर लक्ष्यको भेद कर उस राजपुत्रीको जीत लिया। उस कालसे वह इस धरती परके धनुषधारियों के पूज्य हुए और रणक्षेत्र में सूर्यकी भांति उनपर किसी की दृष्टि नहीं ठहरती थी। आगे उन्होंने राजाओं और बड़े बड़े शूर-वीरों को जीतकर राजसूत-यज्ञ का आयोजन कर दिया। महाराज युधिष्ठिरने वासुदेवजी की सुन्दर नीति और भीमार्जुनके भुजबल के सहारे अपरिमित अन्न और अनेक दक्षिणा दानकर सब प्रकार से अष्ट राजसूय यज्ञ किया। उस यज्ञमें बल-गन्धित जरासन्ध और अहङ्कारी शिशुशाल का विनाश हुआ था। कीपायुध दुर्व्योधन के पास नाना स्थानों से मणि, सुवर्ण, रत्न, गौ, हाथी, घोड़े, रज्जविरज्जके वस्त्र शिविर अर्थात् कपड़े के घर, यवनिका अर्थात् पर्दा, अच्छे अच्छे मृगचर्म, रज्जु मृगके लोम से बने हुए चादरा—यह सब भेंट आने लगीं। पाण्डवों का वह बढ़ाचढ़ा ऐश्वर्य देखकर दुर्व्योधनके हृदय में द्वेष-घटित क्रोध आ समाया। उस यज्ञमें मयदानव कुत-विमान-सदृश अपूर्व समा देख कर वह दुःखसे जलने लगा। उस समामें दुर्व्योधन को चलते समय भ्रमवश गिरते देख कर भीमसेनने श्रीकृष्ण चन्द्रके सम्मुख छोटे मनुष्य के समान अपमान दिखाकर उसकी बड़ी हसी की। नाना प्रकारके रत्न और भांति-भांति के भोग भोगने पर भी दुर्व्योधन चित्त-पीड़ासे मलिन, पीला और दुबला होने लगा। पुत्र-प्रेमी राजा धृतराष्ट्र के निकट यह बात कही जाने पर, उन्होंने जुआ खेलने की आज्ञा दी, यह सुनकर श्री वासुदेवजी को बड़ा क्रोध उपजा। उन्होंने बड़े असन्तोषके साथ उस मगड़में अपनी सम्मति दी और विदुर, भीष्म, द्रोणाचार्य और शरद्वतके पुत्र कृपाचार्य की असम्मति से आपस की उस घोर लड़ाईमें भिड़े हुए चतुरियोंके नष्ट होनेके कारणरूपी भयावने जुआ

आदि नाना कुनीतियों की और ध्यान नहीं दिया । पाण्डवों के जय-पाने के पीछे, राजा धृतराष्ट्र, उस अति अप्रिय वाणी की सुनकर और दुर्योधन, कर्ण और शकुनि की पूर्व-प्रतिज्ञा की स्मरण कर कर दैरतके सोचने-समझने के पश्चात् सञ्जय से कहने लगे, "हे सञ्जय ! मैं सब वृत्तान्त कहता हूँ सुनो । तुम शास्त्रके ज्ञाता, मेधावान, बुद्धिमान और पण्डित-मण्डली में महामान्य हो ; सी सुभा पर व्यर्थ दोष न लगाओ । देखो, युद्ध कुछ मेरा अभीष्ट नहीं था और न मैं कुल-क्षय होने से सन्तुष्ट होता हूँ, मेरे पुत्र और पाण्डुके पुत्रों में कुछ विशेष भी नहीं है । मेरे दूपाभरे-पुत्रगण सुभा की वृद्ध जानकार मानते ही नहीं, मैं अन्धा और दीन हूँ, सी पुत्र-स्नेह से सब सह लेता हूँ, अचेत दुर्योधन को मोहयुक्त होने से मैं भी मोह में पड़ता हूँ । क्षत्रियवंशी दुर्योधन राज-सूय यज्ञ में बड़े प्रभावी युधिष्ठिर का अपार ऐश्वर्य देखकर और सभा में जाने के समय उस प्रकार हँसे जाकर सह नहीं सका ; और युद्ध में स्वयं पाण्डवों का पराजय करन में असमर्थ होकर पाण्डु राजलक्ष्मी पान का उत्साह खा दिया ; पीछे राजा गान्धार से कपट जुए की श्रांति की । उस कालमें जे जा कुछ जान सका था, वह सुना । हे स्त-पुत्र ! मेरे वह सब बुद्ध-युक्त वचन सुनकर सुभी सच्चा बुद्धिमान जानागे" ।

जब सुना, कि अर्जुन न-वाचक धनुष चढ़ाकर लक्ष्य का भेद करके धरती पर गिराया और भय राजाभा के सामन से द्रौपदी का हर लाया है, हे सञ्जय ! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की । जब सुना, कि अर्जुन न-हरकामें जाकर माधवकी छाटी बाहन-सुभद्रा-से बलपूर्वक विवाह किया है पार तत्पश्चात् भी भी वरराज की पार की शयान-दानो इन्द्र-प्रभमें प्राप्त हैं, हे सञ्जय ! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की । जब सुना, कि राजा-इ-

दाह के काल में देवराज के जल वरसाने पर अर्जुन ने दिव्य वाणोंसे वृष्टिको रोक कर अग्नि को प्रसन्न किया है, हे सञ्जय ! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की । जब सुना, कि पाण्डव लोग कुन्ती-सहित जतुग्रह से बच गये और विदुर उनकी मङ्गल-चेष्टा कर रहा है, हे सञ्जय ! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की । जब सुना, कि रङ्ग-स्थलमें अर्जुन ने लक्ष्यका भेद कर जय संहित द्रौपदी का लाभ किया है और महाबली पाञ्चाल और पाण्डव एक हो गये हैं, हे सञ्जय ! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की, जब सुना, कि भीमसेन ने क्षत्रियों में बड़े तेजस्वी, मगधनाथ जरासन्धका भुजबलसे मार डाला है, हे सञ्जय ! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की । जब सुना, कि पाण्डुपुत्रों ने दिग्विजयमें सब नरेशोंका बल-पूर्वक अधीन कर राजसूय महा-यज्ञ सम्पूर्ण किया है, हे सञ्जय ! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की । जब सुना, कि राती-पीटती, एक-वस्त्र-पहरी-झड़, दुःखमें-डूबी, रजस्वला, सनाथ द्रौपदी अनाथ की भांति सभामें लिवाई गई है, हे सञ्जय ! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की । जब सुना, कि कुवदि कपटी दुःशासन ने उस सभाके बीच में द्रौपदी के अङ्ग से वस्त्र खींच कर ढेर लगाया और तिस पर भी वस्त्रका पार नहीं पासका, हे सञ्जय ! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की । जब सुना, कि शकुनि ने युधिष्ठिर का जुए में हराकर राज हारलिया है और तिस पर भी बड़े प्रतापी भाई लग युधिष्ठिर के आशाधीन बने हैं, हे सञ्जय ! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की । जब सुना कि धार्मिक पाण्डव लोग वनमें जाकर बड़े भाई का प्रसन्न रखने के निमित्त अनेक कष्ट उठाते हुए बड़ी चेष्टा करते हैं, हे सञ्जय ! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की । जब सुना, कि सुहृदों महानुभाव खातक पार भिक्षा-भोग समानेमाने

ब्राह्मणगण वनमें धर्मराज के अनुगत हुए हैं, हे सञ्जय ! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि अर्जुनने किरात-रूप-धारी देवादिदेव महादेव को युद्धमें प्रसन्न कर पाशुपत नामक महा-अस्त्र पाया है, हे सञ्जय ! तभी मैंने फिर जयकी आशा नहीं की। जब सुना, कि प्रशंसा-योग्य और सत्य-प्रेमी धनञ्जय देवलोक में जाकर इन्द्रजीसे विधिपूर्वक दिव्य अस्त्र सीख रहा है, हे सञ्जय ! तभी मैंने फिर जयकी आशा नहीं की। जब सुना, कि उसने बरदान-गर्वित, देवों के अजेय, पुलोम-पुत्र, काल-केय नाम दुष्ट असुरों को जय किया है, हे सञ्जय ! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि शत्रुनाशी किरीटी असुर-वध के लिये इन्द्र-लोक में जाकर कार्य पूरा करके लौट आया है, हे सञ्जय ! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि भीम और दूसरे पाण्डु-पुत्रगणोंने मनुष्योंके न-जाने-योग्य देश में जाकर श्रीकुवेरजी से भेंट की है, हे सञ्जय ! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि कर्ण के मतानुसारी मेरे पुत्रगण घोषयात्रा में जाकर गन्धर्वों से पकड़े गये और अर्जुन से मुक्त हुए, हे सञ्जय ! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि धर्म ने यक्षका-स्वरूप धारण करके युधिष्ठिर के समीप आकर कुछ प्रश्न पूछे हैं और उसने ठीकर उत्तर देदिये हैं, हे सञ्जय ! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि पाण्डवगण द्रौपदी-सहित विराट-राज्य में गुप्त-भावसे ठिके थे, पर हमारी ओरके किसीने यह हाल नहीं जाना, हे सञ्जय ! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि महात्मा पाण्डवों के विराट-नगर में रहने के काल में एकरथ धनञ्जय ने हमारी ओर के बड़े २ योद्धाओं को परास्त किया है, हे

सञ्जय ! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि मत्स्य-राजने अर्जुनको नाना अलङ्कारों से सुहाती हुई अपनी उत्तरा नाम कन्या अर्पण करदी है और अर्जुनने उस कन्याको अपने पुत्र, अभिमन्यु के निमित्त ग्रहण किया है, हे सञ्जय ! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि युधिष्ठिरने, जीतेजाने, निर्धन होने, देशसे निकाले जाने और अपने जनों से छोड़े जाने परभी सात अक्षौहिणी सेना एकत्रित की है, हे सञ्जय ! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि यह भूलोक जिनके एक पद के समान हुआथा, वही मधुवंशीवासु-देव सब प्रकार से पाण्डवों के हित साधने की चेष्टा कर रहे हैं, हे सञ्जय ! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब नारदजी से सुना, कि श्रीकृष्णचन्द्र और अर्जुन नर नारायण के अवतार हैं और उन्होंने उनको ब्रह्म-लोक में भलीभांति दर्शन किया है, हे सञ्जय ! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि श्रीकृष्णचन्द्र लोकों के हितार्थ दुर्योधन से मेल करनेको आये थे; पर सफल मनोरथ न होकर लौट गये हैं, हे सञ्जय ! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि कर्ण और दुर्योधन ने श्री कृष्णचन्द्र को कष्ट में डालने की चेष्टा की है, पर उन्होंने उनको अपना विश्वरूप दिखाया है, हे सञ्जय ! तभी मैंने फिर जयकी आशा नहीं की। जब सुना, कि श्री वासुदेवजीके जानेके कालमें रोती-पीटती हुई कुन्ती उनके रथके सामने खड़ी हुई है और उन्होंने उसकी अनेक प्रकार से समझाया है, हे सञ्जय ! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि श्री वासुदेवजी और शान्तनु-पुत्र भीष्म दोनों, पाण्डवों के मन्त्री बने हैं और भारद्वाजद्वीप उन्हें अशीस दे रहे हैं, हे सञ्जय ! तभी मैंने फिर

जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि कर्ण भीष्मसे यह कहकर, कि “तुम युद्ध करोगे, तो मैं न लड़ूंगा” सेना को छोड़ कर चला गया है, हे सञ्जय। तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि श्री कृष्णचन्द्र, अर्जुन और अप्रमेय गाण्डीव धनुष, यह तीन कठोरवीर्य पदार्थ एक साथ मिल गये हैं, हे सञ्जय। तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि रथासद अर्जुन के मोह-युक्त और विकल होने पर श्री कृष्णचन्द्र ने उसकी अपने शरीरमें चौदहों भुवन दिखाये हैं, हे सञ्जय। तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि शत्रुनाशी भीष्मजी रणभूमि में नित्य दशसहस्र रथियों को नष्ट करके भी शत्रुओं में से एकभी प्रसिद्ध पुरुष को मार नहीं सके, हे सञ्जय। तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि गङ्गा-नन्दन, धार्मिकवर भीष्मजीने अपनी मृत्युका उपाय स्वयंही पाण्डवों से कह दिया और उन्होंने प्रसन्नमन से उसी उपाय को आश्रय किया, हे सञ्जय। तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि अर्जुन ने शिखण्डी को सामने रखकर युद्ध में बड़े कठोर महावीर भीष्मजी को घायल किया है, हे सञ्जय। तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि वृद्धवीर भीष्मजी सोमक सेनाओं को प्रायः नष्ट होने की दशमें पड़चकर स्वयं बाणों से कटे भेदे गये हैं, हे सञ्जय। तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि भीष्मदेवने शरशय्या पर शयनकर अर्जुन को जल लाने की आज्ञा दी है और उसने धरती से जल निकाल कर उनको प्रसन्न किया है, हे सञ्जय। तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि बासु, द्रुप और सूर्य पाण्डवों को जय देने के निमित्त उनके गहायक बने हैं और तिस्रों जलज

हमकी भय दिखा रहे हैं, हे सञ्जय। तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि आश्वर्य्योद्वा द्रोणाचार्य जी रणभूमि में अस्त्र चलाने के अनेक कौशल दिखा करके भी पाण्डवपक्षके किसी श्रेष्ठ पुरुष को नहीं मारते, हे सञ्जय। तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि हमारी ओर की संसप्तक नामक सेना अर्जुन को मारने के लिये बूँह रचने पर भी, आपही युद्ध में अर्जुन से मारी गई है, हे सञ्जय। तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि अद्वितीय वीर अभिमन्यु, शस्त्रधारी द्रोणाचार्य से रक्षित और दूसरों से न-भेदे-जाने-वाले चक्रव्यूह की भेद कर उसमें प्रवेश कर गया है, हे सञ्जय। तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि महारथी योद्धेलोग अर्जुन की वध करने में अशक्त होकर बालक अभिमन्युको चारों ओर से घेर करके मारकर आनन्द कर रहे हैं, हे सञ्जय। तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि वीरों के अभिमन्युको मारकर आनन्दसे मोहित हो कोलाहल मचाने पर अर्जुन ने क्रोध से जलकर जयद्रथवधकी प्रतिज्ञा की है, हे सञ्जय। तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि अर्जुन, जयद्रथ-वध की प्रतिज्ञा करके शत्रुओं के बीचमें उस सत्य-प्रतिज्ञा से उत्तीर्ण हुआ है, हे सञ्जय। तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि अर्जुन के घोड़ों के यकने पर, श्री कृष्णचन्द्र उनको बन्धन से मुक्त कर जल पिला देने के पश्चात् फिर जीत कर रथको हांक लेगये हैं, हे सञ्जय। तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि घोड़ोंके अशक्त होने पर पाण्डुयुव अर्जुन ने अकेले रथपर रजकंभमृग वीरों को हराया है, हे सञ्जय। तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना

वृषिवंशी सात्यकि, हाथी पर चढ़ी हुई सेनाओं के द्वारा द्रोणाचार्यके बड़े कठोर दल की भेद कर श्रीकृष्णाचन्द्र और अर्जुन के पास जा पड़चा है, हे सञ्जय ! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि कर्णने भीम को न वध कर धनुषकी कीटिसे सता सता करके “मूर्ख”, “पेटू” आदि बातोंसे लाञ्छन-पूर्वक छोड़ दिया है, हे सञ्जय। तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि द्रोणाचार्य, कृतवर्मा, कृपाचार्य, कर्ण अश्वत्थामा और वीरवर मदराजने बदला लेनेमें अशक्त होकर जयद्रथवधके दुःख को सह लिया है, हे सञ्जय ! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि माधव ने घोररूपी घटोत्तच राक्षस पर इंद्रजीकी दी हुई दिव्यशक्ति की चलवाकर उसको व्यर्थ कर दिया है, हे सञ्जय। तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि कर्ण ने अर्जुन के मारने के लिये रखी हुई दिव्य-शक्ति को घटोत्तच से लड़ने में उस पर चलाया है, हे सञ्जय। तभी मैंने फिर जयकी आशा नहीं की। जब सुना, कि द्रोणाचार्य के अस्त्र छोड़कर अनशन-मृत्यु की इच्छा से अकेले रथ पर बैठने पर धृष्टद्युम्नसे धर्म-लङ्घन कर उनको मारा है, हे सञ्जय। तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि माद्रो-पुत्र नकुल ने युद्ध-मण्डल में घूम घूम कर सब लोगोंके सामने अश्वत्थामा के साथ समान-भावसे द्वैरथ युद्ध किया है, हे सञ्जय ! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि द्रोणाचार्यजीके मारे जाने पर अश्वत्थामा दिव्य नारायण-अस्त्र मारके भी पाण्डवों को मार नहीं सका, हे सञ्जय ! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि रणभूमि में भीमसेन ने भाई दुःशासन का रक्त पीया और कोई उसको रोक नहीं सका, हे

सञ्जय ! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि दैव-निरूपित भाटयुद्ध में अर्जुनने रणमें-बड़े-कठोर महावीर कर्णको नष्ट किया है, हे सञ्जय ! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि धर्मराज युधिष्ठिर ने वीरवर द्रोणपुत्र, दुःशासन और उग्रस्वभावी कृतवर्मा को जीत लिया है, हे सञ्जय ! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि वही मदराज जो श्रीकृष्ण चन्द्रसे लड़ने का अहङ्कार रखते थे, रणवीर युधिष्ठिर से हने गये हैं, हे सञ्जय ! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि पाण्डुपुत्र सहदेव ने कुखेल और भागड़ की जड़, पापिष्ठ, क्ली शकुनि को लड़ाई में मारा है, हे सञ्जय। तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि अकेला, हीनबल, रथरहित, थका-मादा दुर्योधन ऋद्ध में जाकर जलस्तम्भ रचके रह गया है, हे सञ्जय ! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि पाण्डवगण श्रीकृष्णाचन्द्र के संग ऋद्धके निकट खड़े होकर मेरे पुत्र असहजशील दुर्योधन को लाञ्छन कर रहे हैं, हे सञ्जय ! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि गदायुद्ध में नाना आश्चर्य कौशल दिखानेवाला दुर्योधन, मण्डलाकार में घूमते समय वासुदेव की परामर्श से अन्याय-रूप से घायल हुआ है, हे सञ्जय। तभी मैंने फिर जयकी आशा नहीं की। जब सुना, कि अश्वत्थामा आदिने रात्रिको सोतेहुए पाञ्चालों और द्रौपदी के पुत्रों को नष्ट कर अति घृणित और अयशका कार्य किया है, हे सञ्जय। तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि भीम को पुत्र-वध के कारण क्रोध से अग्नि बनकर अपने पीछे दौड़ते हुए देखकर अश्वत्थामा ने ऐशिक नामक परमास्त्र मारकर उत्तरा का गर्भ नष्ट किया है, हे सञ्जय ! तभी

मैंने फिर जय की आशा नहीं की । जब सुना, कि अश्वत्थामाने अर्जुनवधके निमित्त ब्रह्माशिरः नामक अव्यर्थ अस्त्रको मारा है, पर अर्जुनने “स्वस्ति” कह कर अपने अस्त्र से उस अस्त्र को रोक दिया है और अश्वत्थामा ने उसको मणिरत्न दे दिया है, हे सञ्जय ! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की । जब सुना, कि अश्वत्थामा को महास्त्र से विराट-पुत्री का गर्भ नष्ट करते देखकर द्रुपद्युज जी और श्रीकृष्णचन्द्र दोनों ने उसको शाप दिया है, हे सञ्जय ! तभी मैंने फिर जयकी आशा नहीं की । इस समय गान्धारी, पुत्र, पौत्र, स्वजन, पिता और भ्राता को खींचकर बड़ी विकल हुई है, पाण्डवों ने दुष्कर कर्म कर फिर अपने राज्य को अकण्टक कर लिया है । हा ! कैसा कष्ट है ! सुनते हैं, कि हमारी ओरके तीन और पाण्डव-पक्ष के सात, केवल येही दश मनुष्य जीते हैं, इस भयानक युद्ध में क्षत्रियों की अठारह अर्धहिणी नष्ट-भ्रष्ट होगई, हे स्त्र । मैं धारों और अंधेरा देखता हूं, मोहसे विकल हो रहा हूं, चेतना मुझी छोड़ कर भाग रही है, चित्त बड़ा उदास हो रहा है” ।

श्री उग्रयवा जी बोले, कि राजा धृतराष्ट्र पति खेदयुक्त होकर इस प्रकार बहृत विलाप करके मूर्च्छित हो गये । आगे फिर चेतना आजाने पर सञ्जय से यह बात कहने लगे, “हे सञ्जय ! मेरी दशा इस प्रकार बिगड़ गई है, कि मैं इसी समय बिना विलम्ब प्राण छोड़ना चाहता हूं, मैं इस जीवन को रखने का कुछ भी फल नहीं दीखता ।

श्री उग्रयवा जी महाराज बोले, कि इतनी कथा कहनेके पीछे दीनभाव-युक्त राजा धृतराष्ट्र भी लज्जामय की भांति लम्बी श्वास छोड़कर विलाप करने हुए परछड़ी मोहका देखकर पीमाद मञ्जय उससे उनम अर्धयुक्त कहकर बोले, “महाराज ! आपने प्रीमाद

नारद और वेदव्यासजी के मुख से यह सुना होगा, कि महारथी शैव्य, जयशील, सञ्जय, सुहोत्र और रन्तिदेव ; अति प्रभावी काकीवानु, वाल्हीक और दमन ; शत्रुनाशी शर्याति, अजीत, नल और विश्वामित्र ; महाबली अम्बरीष, महात्मा मरु, मनु, इक्ष्वाकु, गंग, भरत, परशुराम, राम, शशबिन्दु, भगीरथ, कृतवीर्य और जनमेजय ; और शुभकर्मशील ययाति, स्वयं देवताओंने जिनकी यज्ञ कराया था और जिनके यज्ञीय यूपसमूह में कानन सहित मही-मण्डल अर्द्धित हुआ था ;—ये सब सर्वगुण-सम्पन्नलोग, प्रधानर राजवंश में जन्मलेने, इन्द्रजीके सदृश तेजस्वी और दिव्य अस्त्रों में निपुण होने, धरणीमण्डल को धर्मयुद्ध से जय करलेने, और नाना यज्ञानुष्ठान कर इसलोक में अतुल यशोलाभ करने पर भी अन्त में काल कवल में पतित हुए हैं ।

पूर्वकाल में राजा शैव्य के पुत्रशोक से विकल होने पर देवर्षि नारदने उनके समीप उन चौबीस राजाओं की उपाख्यानों की कीर्तन किया था ; इनके अतिरिक्त और भी बहूतेरे अतिवलशाली महारथी, सर्वगुणशील महात्मा राजा कालगर्भमें लय पागये हैं । सुना जाता है, कि पुरु, कुरु, यदु, शूर, विश्वगर्भ महाद्युति, अणुह, युवनाश्व, कक्षात्स्य, विक्रमी रघु, विजय, वीतिहोत्र, अङ्ग, भव, खेत, हृह-हुरु, उशीनर, कङ्क, दुर्लिटुह, द्रुम, दम्भीडव, पर, वेणु, सगर, सङ्गति, निर्मि, अजेय, परग, पुन्द्र, देवावृध अनघ, देवाह्वय, सुप्रतिम, सुप्रतीक, वृहद्रथ, महीलाह, विनीताका, सुहृत्, नैपथ नल, सत्यव्रत, गान्तभय, सुमित्र, सुवल्, प्रभु जानुजह, अनरण्य अर्ज प्रियमव्य, रुचिद्रत, यलज्जु, निरामर्ह, ननुग्रह, वृहत्स, हृष्टकेतु, कुरङ्केतु, दीमकेतु, निरामय, अनिचिन्, चण्ड, धर्म, कृतज्जु, हर्ष सुध, महापराक्रम, जयम, पररा, दुर्लित, हे ननु राजा :

सैकड़ों, सहस्रों, पद्मसंख्यातक के धीशक्तिमान्, अतिबलवान्, प्रतापवान् राजगण आपके पुत्रों के सदृश अपार ऐश्वर्य छोड़कर परलोककी गये हैं। पण्डित सुकविगण पुराण में जिनके अलौकिक कार्य, विक्रम, दान-माहात्म्य, आस्तिकता, सत्यनिष्ठा शौच, दया, सरलता आदि कीर्तन करते हैं, वह सब सर्व-गुण-सम्पन्न महाधन महात्मा भी निधन होगये हैं। आपके पुत्रगण दुरात्मा, हेपी, लोभी और बड़े दुराचारी थे, अतएव उनके निमित्त शोक करना नहीं चाहिये। आप शास्त्रज्ञ मेधावान्, धीमान् और पण्डित-समाज में अति सन्मानित हैं; जिनकी बुद्धि शास्त्रानुसारिणी होती है, वे कभी मोहवश नहीं होते। आप तो जानते ही होंगे, कि आपने प्राण्डवों को निर्देया और अपने पुत्रों की दया दिखाई थी। ऐसा तो कहीं सुना नहीं जाता, कि किसी दूसरे ने अपनी सन्तान-रक्षा के निमित्त आपके सदृश यत्न किया हो; पर जो हीना था सो होचुका, अब उस बारे में खेद न करें। जो कुछ भाग्य में बड़ा है, कौन उसे कौशल से रोक सकता है? विधाता-निर्णीत पथ को कोई भी लङ्घन नहीं कर सकता। भाव, अभाव, सुख, दुःख सबही कुछ कालवश संघटित होते हैं; काल जीवों को सृजन कर रहा है, फिर कालही उनकी संहार कर रहा है; काल प्रजाओं को जलाता है, फिर कालही उनकी शीतल करता है। सारे भुवनमण्डल के शुभाशुभ सम्पूर्ण पदार्थ कालही से बन रहे हैं, कालही में लय पाजाते हैं और कालही से फिर उत्पन्न होते हैं; सब जीवों के सोजाने पर भी काल सजग रहता है, काल को कोई अतिक्रम नहीं कर सकता है; काल बिना बाधा-विपत्ति सब भूतों में तुल्य-भाव से विचर रहा है। वर्तमान, भूत, भविष्यत्, सभी वस्तु कालसे रची हुई है, यह सब जानकर आप को मोहवश न होना चाहिये।

श्रीउग्रयवाजी बोले, सञ्जयने शोकार्त जन-नाथ धृतराष्ट्र को इस प्रकार से समझा बुझा कर शान्त किया। श्रीकृष्णदेवायनजी महाराज इस विषय में परम पवित्र उपनिषत् कह गये हैं, जिसे विद्वान् सुकविगण पुराण और लोकमण्डली में कीर्तन करते हैं। इस भारत-ग्रन्थ के पढ़ने का पुण्य इतना है, कि यदि कोई इसकी एक चरण कविता भी यथा-सहित पढ़े, तो वह सब पापों से मुक्त होकर पवित्र होता है। इस भारत में निष्पाप और सत्कर्मशील देव, देवर्षि, महोरग और यज्ञों का वर्णन है। जो सत्य और ऋतस्वरूप, पवित्र और पवित्रकारी, नित्य और निर्मल, ज्योतिस्वरूप और सनातन परब्रह्म हैं; पण्डितगण जिनके लोकातीत कार्यों की कीर्तन करते हैं; जिन से वचनातीत, कार्य-कारण-आत्मक यह विश्व, हिरण्यगर्भादिरूप में विश्वका विस्तार, यागादि कर्मकी प्रवृत्ति, जन्म, मृत्यु, और फिर उत्पत्ति हो रही है; जो अध्यात्म रूप में पञ्चभूती देहके अधिष्ठाता और अव्यक्तादि सम्पूर्ण वस्तुओं से भिन्न करके वेद में वर्णित हुए हैं और जिनकी जीवनमुक्त यतिश्रेष्ठ लोग ध्यान और योगबल से आदर्शमें स्थित प्रतिविम्बके सदृश अवलोकन करते हैं, वही सनातन भगवान् वासुदेव इस ग्रन्थ में कीर्तित हुए हैं। धर्मशील नर, नियम और यज्ञ के साथ इस अध्याय को पाठ करके सम्पूर्ण पापों से मुक्त होते हैं। आस्तिक पुरुष भारतग्रन्थ के इस अनुक्रमणिका-अध्याय की प्रथम से सदा सुना करें, तो किसी क्लेश से कांतर नहीं होंगे। सन्ध्या और प्रातःकाल में इस अनुक्रमणिका-अध्याय को कुछ कुछ पाठ करने से दिन और रात्रिके सब पाप उसी काल में छूट जाते हैं। यह अनुक्रमणिका अध्याय महाभारतकी सत्य और अमृतमयी देहके सदृश है। जैसे दधि में मक्खन,

हिमंद् जीवों में ब्राह्मण, वेद में आरण्यक, औषधियोंमें अमृत, जलाशयोंमें समुद्र और चतुष्पदों में गौ श्रेष्ठ हैं, तैसेही इतिहासों में यह महाभारत प्रधान है। जो पुरुष आदिके काल में इस अध्याय का कमसे कम एक चरण भी ब्राह्मणोंको सुनाता है, उसके दिये हुए अन्न और पान पितृलोकमें अक्षय होते हैं। इतिहास और पुराण से वेदका अर्थ प्रकाश हुआ है; क्योंकि थोड़ी-विद्या पढ़े-हुए जनसे वेदकी यह भय उपजता है, कि वह मुझे मारेगा। पण्डितगण श्रीकृष्ण-कैषीयनजी के कथित इस वेदकी सुनाकर अर्थ पाते हैं और निश्चय ही भूणहत्यादि पापों को भस्म कर देते हैं। जो पुरुष शुचि हो करके इस अध्यायकी पर्वों के क्रमसे पाठ करता है, मेरी समझ में उसको सम्पूर्ण भारत को पढ़ने का फल मिलता है। जो पुरुष अज्ञायुक्त होकर ऋषि-सेवित इस अध्याय को नित्य सुनाता है, वह दीर्घायु हो और कीर्त्तिलाभ कर अन्तको दिव्यलोक में चला जाता है। पूर्वकालमें सब देवताओंने मिलकर तराजू की एक और चारों वेद और दूसरी ओर इस भारत को चढ़ाकर तौल किया था, इससे रहस्य-सहित चारों वेदोंसे यही भारी निकला। उस दिनसे लोग इसको महाभारत कहा करते हैं। यह बड़ाई और गर्वार्थ में वेदसे बढ़ कर है, भी बड़ाई और गर्वार्थ के कारण महाभारत भी करके प्रसिद्ध हुआ है। जो पुरुष महाभारत शब्दके सप्रार्थसे विदित होता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। तपस्या, पठन, मन्त्रा-पन्थादि सम्पूर्ण वेद-विधि और राजाओंके युद्ध और नगर-आक्रमण कदापि पापजनक नहीं हो सकते; पर वे अमर अभिप्रायसे दूषित होते, तो निःसन्देह पापजनक होते हैं।

आदिपर्व प्रथम अध्याय और
चतुर्दशस्कंधापर्यन्त समाप्त ।

ऋषिगण बोले, हे सूतनन्दन ! तुमने जिस समन्तपञ्चक देशका नाम किया था, हम उसके सब सत्य वृत्तान्तों को सुना चाहते हैं। सूतपुत्रजी बोले, हे सत्तमगण ! मैं समन्त-पञ्चक तीर्थका सब वृत्तान्त वर्णन करता हूँ; श्रवण कीजिये ।

वेता और हापर युगोंके सन्धिकाल में अस्त्रविद्याके पारङ्गत भगवान् परशुरामजीने क्रोधकेवश में होकर पृथ्वी परके समस्त क्षत्रिय कुलको बार बार विनाश किया था। उन अग्नितुल्य तेजस्वी रामने अपने भुजवीर्यके बलसे क्षत्रियकुलका सत्यानाश कर उनके शीणितसे समन्तपञ्चक में पांच झड़ बनाये थे। सुना है, कि क्रोधयुक्त होकर उन रक्त भरे हृदों के किनारे उन्होंने रक्त से पितरोंका तर्पण किया था; अनन्तर ऋचीक आदि पितृ-लोक आकर बोले, “हे महाभाग, महातेजस्वी भृगुनन्दन राम ! तुम्हारी यह पितृभक्ति और विक्रम देखकर हम अति प्रसन्न हुए हैं, तुम्हारा मङ्गल होवे, अब मनमाना वर मांगो।” परशुरामजी बोले, कि यदि मेरे पितृ-लोक प्रसन्न होकर कृपा करते हों, तो यह वर मागता हूँ, कि मैंने क्रोधपूर्वक क्षत्रिय कुलका नष्ट कर जो पाप किया है, उससे मुक्त हो जाऊँ और मुझसे बने हुए रक्त के यह पांचों भील भूमण्डल में प्रसिद्ध तीर्थ बनें। अनन्तर पितरोंने “वही होगा” ऐसा कहकर “चमस्व” इस वचनसे उन्हें क्षत्रियकुलके उच्छेद करनेसे निवृत्त किया, और वह भी उस कार्य से दूर रहे। रक्तकपी जलयुक्त इन पांच झड़ों के आस पास जो देश है, वह पवित्र समन्त-पञ्चक नामसे प्रसिद्ध हुआ है। क्योंकि जिस देशमें जो ऊँह चिन्ह होते हैं, पण्डितगण उन्हीं के अनुसार उस देशका नाम ठहराते हैं। हापर और कलियुगके सन्धिकालमें हम समन्तपञ्चक देशमें बृह-पाण्डवी-मेवाची में

संग्राम हुआ था। उस भूदोष-वर्जित धर्म-भरे देशमें अठारह अक्षौहिणी सेना युद्ध करनेकी कामना से गई थी। हे द्विजो ! वे वहीं मिलकर वहीं मारी गईं। हे व्रतशील, साधु ब्राह्मणो ! मैंने आप लोगोंसे जिस पुण्य-भरे सुन्दर देशका नाम लिया था, उसके समन्त-पञ्चक नाम पड़नेका वृत्तान्त सम्पूर्ण कह सुनाया है।

ऋषिगण बोले, हे सूतनन्दन। आपने जो अक्षौहिणी शब्द कहा, हम उसका सच्चा अर्थ सुना चाहते हैं। एक अक्षौहिणीमें कितने पैदल, कितने घोड़े, कितने रथ, कितने हाथी रहते हैं, वह आप जानते हैं, सो हमारे निकट ठीक ठीक वर्णन कीजिये।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, एक रथ, एक हाथी, पांच पैदल और तीन घोड़े मिलकर एक पत्ति होती है; तीन पत्तियोंसे एक सेनामुख; तीन सेनामुखोंसे एक गुल्म; तीन गुल्मों से एक गण; तीन गणोंसे एक वाहिनी; तीन वाहिनियोंके एक होनेपर पृतना कही जाती है; और तीन पृतनाओंसे एक चमू होती है; तीन चमूओंसे एक अनीकिनी होती है; दश अनीकिनियोंके एकत्र मिलने से पण्डित लोग एक अक्षौहिणी कहते हैं। हे हिजश्रेष्ठगण ! संख्या गिननेके तत्व जाननेवाले पुरुषों ने अक्षौहिणी सेनाकी यह संख्या लगाई है, कि (२१,८,७०) इकीस सहस्र ८ सौ सत्तर रथ, उतनेही गज, (१०,६,३,५०) एक लक्ष, नौ सहस्र, तीन सौ पचास पैदल और (६५,६,१०) षेसठ सहस्र ६ सौ दश घोड़ोंसे एक अक्षौहिणी बनती है। हे तपोधनो ! मैंने पहिले कहा है, कि कुरुपाण्डवों की ऐसीही अठारह अक्षौहिणी सेना उस देशमें जामिली थीं। हे द्विज श्रेष्ठगण ! वे कौरवोंकी उपलक्ष करके आश्चर्यकार्यकारी काल के आजाने पर उसीदेश में नष्ट हो गईं। परमात्मा के जाननेवाले भीमजीने दश दिन

युद्ध किया था। द्रोणाचार्यमे पांच दिन कौरवी-सेनाकी रक्षा की थी। शत्रु-सेना-नाशी करने दो दिन और शल्य ने आधादिन युद्ध किया था, अनन्तर आधादिन भीम और दुर्योधन में गदा युद्ध हुआ था। उसदिन रात्रि की अश्वत्थामा, कृतवर्मा और कृपाचार्य, इन तीनों ने युधिष्ठिर की विश्वासी और निद्रित सेनाओं पर आक्रमण किया था।

हे शौनक जी ! मैं आपके यज्ञमें जो सुन्दर भारतोपाख्यान कीर्तन कर रहा हूं, श्रीमहा-राज व्यासजीके-शिष्य, धीमान् वैशम्पायन जी ने उसे जनमेजय के सर्पयज्ञ में विस्तार-पूर्वक कहा था। इस में राजाओं के यश और वीर्य की कथा कही गई है। इसकी आदि में पौष्य, पौलोम और आस्तीक, यह तीन पर्व हैं। इसमें विचित्र पद, आख्यान और नाना-प्रकार के आचारादि प्रकाशित हुए हैं, मोक्षार्थी जन जैसे वैराग्य की आश्रय करते हैं, तैसेही प्राज्ञलोग इस भारतकी शरण लिये रहते हैं। जैसे जानने योग्य वस्तुओं में आत्मा और प्यारीवस्तुओं में जीवन प्रधान है, तैसे ही श्रेष्ठ विषयों से भरा-हुआ यह इतिहास सम्पूर्ण आगमों में बढ़िया बना है। जैसे भोजन बिना शरीर-धारण का दूसरा उपाय नहीं है, तैसे ही इस आख्यान की शरण बिना, भूमण्डल में कोई दूसरा आख्यान विद्यमान नहीं है। जैसे उन्नति चाहनेवाले नौकर चाकर, सङ्गी राजा का आश्रय लेते हैं, तैसे ही कविगण इस भारत की अवलम्बन करते हैं। जैसे सब लौकिक और वैदिक वाक्य, स्वर और व्यञ्जन वर्णों से परिपूर्ण रहते हैं, तैसेही इतिहासों में श्रेष्ठ यह भारत, हितसाधनेवाली बुद्धि का आधार हुआ है। इस समय आप लोग अनन्त प्रज्ञाके आधार, विचित्र पद और पर्व संयुक्त, सूक्ष्मार्थ न्याय विशिष्ट और वेदार्थ-विभूषित भारत इतिहास का पर्वसंग्रह अवगण कीजिये।

प्रथम अनुक्रमणिका पर्व (१) द्वितीय पर्व-
संग्रह पर्व (२) आगे पौष पर्व (३) पौलोम-
पर्व (४) आस्तीकपर्व (५), और आदिवंशव-
तारण पर्व (६) अनन्तर जिसके अवगण करने से
हर्ष से शरीर रोमाञ्चित होता है, वही विचित्र
सम्भवपर्व (७), आगे जतुग्रह-दाह-पर्व (८),
तिसके बाद हिङ्गुपर्व (९), अनन्तर वक्वध-
पर्व (१०), चैत्ररथपर्व (११) पश्चात् देवी
पाञ्चाली स्वयम्बरपर्व (१२); तिसके बाद क्षत्रिय-
धर्म में जयलामके पश्चात् पाण्डवों का विवाह-
पर्व (१३), अनन्तर विदुरागमनपर्व (१४),
पीढ़ी राज्यलामपर्व (१५) तब अर्जुन का
वनवासपर्व (१६), पश्चात् सुभद्राहरणपर्व
(१७), सुभद्राहरणके बाद यौतुकाहरणपर्व
(१८) अनन्तर खाण्ड वदाहपर्व, जिसमें मय-
दानव का दर्शन हुआ (१९), आगे सभाक्रिया-
पर्व (२०), तब मन्त्रणापर्व (२१), अनन्तर
जरासन्धवधपर्व (२२), तिसके अन्तर दिग्वि-
जय पर्व (२३), दिग्विजयके बाद राजसूयिकपर्व
(२४); पश्चात् अर्थाभिहरणपर्व (२५), तिसके बाद
शिशुपालवधपर्व (२६), अनन्तर द्यूतपर्व (२७),
पश्चात् अनुद्यूतपर्व (२८), अनन्तर अरण्यवा-
पर्व (२९), तब किष्कीरवधपर्व (३०), तिसके
बाद अर्जुनाभिगमनपर्व (३१), तब ईश्वरा-
र्जुनके युद्धसम्बन्धी किरातपर्व (३२), अनन्तर
इन्द्रलोकाभिगमनपर्व (३३), तब धर्म और
कहणारसयुक्त नलीपाख्यानपर्व (३४), तिसके
बाद कुरुराज यधिष्ठिर का तीर्थयात्रापर्व,
उसी में जटासुरवध वर्णित हुआ है (३५), तब
यक्षवधपर्व (३६) तब निवातकवचयज्ञपर्व
(३७), अनन्तर भाजगरपर्व (३८), तब मार्कण्डेय
समभापर्व (३९), तिसके बाद द्रौपदी-सत्य-
भाषा-सम्वादपर्व (४०), अनन्तर घोषयात्रापर्व
उसी में भगवद्गीता और सुदृढ ज्ञापिका प्रोहि-
तोक्ति उपाख्यान है (४१), तब द्रौपदीहरण-
पर्व उसी में जबद्वयसम्बन्ध, पतिव्रता सावित्री

का अद्भुत माहात्म्य और रामीपाख्यान
कथित हुए हैं (४२), आगे कुण्डलाहरणपर्व
(४३) तिसके बाद औरख्येयपर्व (४४), अनन्तर
विराटपर्व के अन्तर्गत पाण्डवों का प्रवेश और
समयपालनपर्व (४५), आगे कीचकवधपर्व
(४६), अनन्तर गीग्रहणपर्व (४७), तब अभि-
मन्यु और उत्तरा का विवाहपर्व (४८), अन-
न्तर अति आश्चर्य सैन्योद्योगपर्व (४९), तब
सञ्जययानपर्व (५०) तिसके पश्चात् चिन्तायुक्त
धृतराष्ट्र का प्रजागरपर्व (५१) अनन्तर गुह्य-
त्सक अत्यात्मज्ञानसम्बन्धी सनतसुजातपर्व (५२),
आगे यानसन्धिपर्व (५३), तिसके पश्चात् भग-
वदयानपर्व, जिस में मातलीका उपाख्यान,
गालवचरित, श्रीमहाराज कृष्णचन्द्र का सभा-
प्रवेश और विदुलोपवेशासन वर्णित हुए हैं
(५४), तब श्रीकृष्णचन्द्र और महानुभव कर्णका
वादाविवादपर्व (५५), तिसके पश्चात् कुरु-
पाण्डवों का सैन्यनियानपर्व (५६) अनन्तर
रथातिरथ संख्यापर्व (५७), आगे क्रोध वृद्धि
करने वाला उलूकदुताभिगमनपर्व (५८)
तिसके पश्चात् अम्बोपाख्यानपर्व (५९), अनन्तर
आश्चर्य भीष्माभिकेकपर्व (६०), आगे जम्बु-
हीपसन्निवेशपर्व (६१), अनन्तर हीपविस्तारके
कीर्तन-युक्त भूमिपर्व (६२), तब भगवद्गीता-
पर्व (६३) तिसके पश्चात् भीष्मवधपर्व (६४)
अनन्तर द्रोणाभिकेकपर्व (६५), तब संसप्तक-
वधपर्व (६६), आगे अभिमन्युवधपर्व (६७),
अनन्तर प्रतिज्ञापर्व (६८), तब जयद्रथवधपर्व
(६९) तिसके पश्चात् षटोत्कचवधपर्व (७०),
अनन्तर लोमहर्षणपर्व (७१) आगे नारायणा-
स्तव्यागपर्व (७२), तिसके पश्चात् कर्णपर्व (७३),
अनन्तर शल्यवधपर्व (७४), तब कटप्रवेशपर्व
(७५) तिसके पश्चात् गदायुद्धपर्व (७६) अनन्तर
नारसत्त तीर्थवंशानुकीर्तनपर्व (७७), तिसके
पश्चात् अतिशीघ्र सौप्तिकपर्व (७८), आगे
अति कष्टदायी रणोत्पत्तिपर्व (७९) तिसके पश्चात्

संग्राम हुआ था । उस भूदोष-वर्जित धर्म-भरे देशमें अठारह अक्षौहिणी सेना युद्ध करनेकी कामना से गई थी । हे द्विजो ! वे वही मिलकर वही मारी गई । हे व्रतशील, साधु ब्राह्मणो ! मैंने आप लोगोंसे जिस पुण्य-भरे सुन्दर देशका नाम लिया था, उसके समन्त-पञ्चक नाम पड़नेका वृत्तान्त सम्पूर्ण कह सुनाया है ।

ऋषिगण बोले, हे सूतनन्दन ! आपने जो अक्षौहिणी शब्द कहा, हम उसका सच्चा अर्थ सुनना चाहते हैं । एक अक्षौहिणीमें कितने पैदल, कितने घोड़े, कितने रथ, कितने हाथी रहते हैं, वह आप जानते हैं, सो हमारे निकट ठीक ठीक वर्णन कीजिये ।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, एक रथ, एक हाथी, पांच पैदल और तीन घोड़े मिलकर एक पत्ति होती है ; तीन पत्तियोंसे एक सेनामुख ; तीन सेनामुखोंसे एक गुल्म ; तीन गुल्मों से एक गण ; तीन गणोंसे एक वाहिनी ; तीन वाहिनियोंके एक होनेपर पृतना कहि जाती है, और तीन पृतनाओंसे एक चमू होती है ; तीन चमूओंसे एक अनीकिनी होती है ; दश अनीकिनियोंके एकत्र मिलने से पण्डित लोग एक अक्षौहिणी कहते हैं । हे द्विजश्रेष्ठगण ! संख्या गिननेके तब जाननेवाले पुरुषों ने अक्षौहिणी सेनाकी यह संख्या लगाई है, कि (२१,८,७०) इकीस सहस्र सौ सत्तर रथ, उतनेही गज, (१०,८,३,५०) एक लक्ष, नौ सहस्र, तीन सौ पचास पैदल और (६५,६,१०) पैंसठ सहस्र सौ दश घोड़ोंसे एक अक्षौहिणी बनती है । हे तपोधनो ! मैंने पहिले कहा है, कि कुरु-पाण्डवोंकी ऐसीही अठारह अक्षौहिणी सेना उस देशमें जामिली थी । हे द्विज श्रेष्ठगण ! वे कौरवोंको उपलक्ष करके आश्चर्यकार्यकारी काल के आजाने पर उसीदेश में नष्ट हो गई । परमात्मा के जाननेवाले भीष्मजीने दश दिन

युद्ध किया था । द्रोणाचार्यमे पांच दिन कौरवी-सेनाकी रक्षा की थी । शत्रु-सेना-नाशी कर्णने दो दिन और शल्य ने आधादिन युद्ध किया था, अनन्तर आधादिन भीम और दुर्योधन में गदा युद्ध हुआ था । उसदिन रात्रि की अश्वत्थामा, कृतवर्मा और कृपाचार्य, इन तीनों ने युधिष्ठिर की विश्वासी और निद्रित सेनाओं पर आक्रमण किया था ।

हे शौनक जी ! मैं आपके यज्ञमें जो सुन्दर भारतोपाख्यान कीर्तन कर रहा हूँ, श्रीमहाराज व्यासजीके-शिष्य, धीमान् वैशम्पायन जी ने उसे जनमेजय के सर्पयज्ञ में विस्तार-पूर्वक कहा था । इस में राजाओं के यश और वीर्य की कथा कही गई है । इसकी आदि में पौपय, पौलोम और आस्तीक, यह तीन पर्व हैं । इसमें विचित्र पद, आख्यान और नाना-प्रकार के आचारादि प्रकाशित हुए हैं, मोक्षार्थी जन जैसे वैराग्य की आश्रय करते हैं, तैसेही प्राज्ञलोग इस भारतकी शरण लिये रहते हैं । जैसे जानने योग्य वस्तुओं में आत्मा और प्यारीवस्तुओं में जीवन प्रधान है, तैसेही श्रेष्ठ विषयों से भरा हुआ यह इतिहास सम्पूर्ण आगमों में बढ़िया बना है । जैसे भोजन बिना शरीर-धारण का दूसरा उपाय नहीं है, तैसे ही इस आख्यान की शरण बिना, भूमण्डल में कोई दूसरा आख्यान विद्यमान नहीं है । जैसे उन्नति चाहनेवाले नौकर चाकर, सवंगी राजा का आश्रय लेते हैं, तैसे ही कविगण इस भारत को अवलम्बन करते हैं । जैसे सब लौकिक और वैदिक वाक्य, स्वर और व्यञ्जन वर्णों से परिपूर्ण रहते हैं, तैसेही इतिहासों में श्रेष्ठ यह भारत, हितसाधनेवाली बुद्धि का आधार हुआ है । इस समय आप लोग अनन्त प्रज्ञाके आधार, विचित्र पद और पर्व संयुक्त, सूक्ष्मार्थ न्याय विशिष्ट और वेदार्थ-विभूषित भारत इतिहास का पर्वसंग्रह अवगण कीजिये ।

प्रथम अनुक्रमणिका पर्व (१) द्वितीय पर्व-
संग्रह पर्व (२) आगे पौष पर्व (३) पौलोम-
पर्व (४) आस्तीकपर्व (५), और आदिवंशव-
तारण पर्व (६) अनन्तर जिसके अवगण करने से
हर्ष से शरीर रोमाञ्चित होता है, वही विचित्र
सम्भवपर्व (७), आगे जतुग्रह-दाह-पर्व (८),
तिसके बाद हिङ्गुपर्व (९), अनन्तर वक्वध-
पर्व (१०), चैत्ररथपर्व (११) पश्चात् देवी
पञ्चाली स्वयम्बरपर्व (१२), तिसके बाद क्षत्रिय-
धर्म में जयलामके पश्चात् पाण्डवों का विवाह-
पर्व (१३), अनन्तर विदुरागमनपर्व (१४),
पीछे राज्यलामपर्व (१५) तब अर्जुन का
वनवासपर्व (१६), पश्चात् सुभद्राहरणपर्व
(१७), सुभद्राहरणके बाद यौतुकाहरणपर्व
(१८) अनन्तर खाण्डवदाहपर्व, जिसमें मय-
दानव का दर्शन हुआ (१९), आगे सभाक्रिया-
पर्व (२०), तब मन्त्रणापर्व (२१), अनन्तर
जरासन्धवधपर्व (२२), तिसके अन्तर दिग्वि-
जय पर्व (२३), दिग्विजयके बाद राजसूयिकपर्व
(२४), पश्चात् अर्थाभिहरणपर्व (२५), तिसके बाद
शिशुपालवधपर्व (२६), अनन्तर द्यूतपर्व (२७),
पश्चात् अनुद्यूतपर्व (२८), अनन्तर अरण्ययात्रा-
पर्व (२९), तब किष्कीरवधपर्व (३०), तिसके
बाद अर्जुनाभिगमनपर्व (३१), तब ईश्वरा-
र्जुनके युद्धसम्बन्धी किरातपर्व (३२), अनन्तर
इन्द्रलोकाभिगमनपर्व (३३), तब धर्म और
करुणारसयुक्त नलीपाख्यानपर्व (३४), तिसके
बाद कुरुराज यधिष्ठिर का तीर्थयात्रापर्व,
उसी में जटासुरवध वर्णित हुआ है (३५), तब
यक्षयज्ञपर्व (३६) तब निवातकवचयज्ञपर्व
(३७), अनन्तर आजगरपर्व (३८), तब मार्कण्डेय
सप्तसप्तपर्व (३९), तिसके बाद द्रौपदी-सत्य-
भामा-सम्वादपर्व (४०), अनन्तर घोषयात्रापर्व
उसी में मृगसुप्तोद्भव और सुहृल ऋषिकाव्रीहि-
द्रौणिक उपाख्यान है (४१), तब द्रौपदीहरण-
पर्व उसी में जयद्रथमन्यन, पतिव्रता सावित्री

का अद्भुत माहात्म्य और रामीपाख्यान
कथित हुए हैं (४२), आगे कुण्डलाहरणपर्व
(४३) तिसके बाद आरण्येयपर्व (४४), अनन्तर
विराटपर्व के अन्तर्गत पाण्डवों का प्रवेश और
समयपालनपर्व (४५), आगे कीचकवधपर्व
(४६), अनन्तर गीग्रहणपर्व (४७), तब अभि-
मन्यु और उत्तरा का विवाहपर्व (४८), अन-
न्तर अति आश्चर्य सैन्योद्योगपर्व (४९), तब
सञ्जययानपर्व (५०) तिसके पश्चात् चिन्तायुक्त
धृतराष्ट्र का प्रजागरपर्व (५१) अनन्तर गुह्य-
त्वक अव्यात्मज्ञानसम्बन्धी सनतसुजातपर्व (५२),
आगे यानसन्धिपर्व (५३), तिसके पश्चात् भग-
वद्यानपर्व, जिस में मातलीका उपाख्यान,
गालवचरित, श्रीमहाराज कृष्णचन्द्र का समा-
प्रवेश और विदुर्लोपवशासन वर्णित हुए हैं
(५४), तब श्रीकृष्णचन्द्र और महानुभव कर्णका
वादाविवादपर्व (५५), तिसके पश्चात् कुरु-
पाण्डवों का सैन्यनिर्यानपर्व (५६) अनन्तर
रथातिरथ संख्यापर्व (५७), आगे क्रोध वृद्धि
करने वाला उलूकदुताभिगमनपर्व (५८)
तिसके पश्चात् अम्बोपाख्यानपर्व (५९), अनन्तर
आश्चर्य भीष्माभिप्रेकपर्व (६०), आगे जम्बु-
द्वीपसन्निवेशपर्व (६१), अनन्तर द्वीपविस्तारके
कीर्तन-युक्त भूमिपर्व (६२), तब भगवद्गीता-
पर्व (६३) तिसके पश्चात् भीष्मवधपर्व (६४)
अनन्तर द्रोणाभिप्रेकपर्व (६५), तब सप्तक-
वधपर्व (६६), आगे अभिमन्युवधपर्व (६७),
अनन्तर प्रतिज्ञापर्व (६८), तब जयद्रथवधपर्व
(६९) तिसके पश्चात् घटोत्कचवधपर्व (७०),
अनन्तर लोमहर्षणपर्व (७१) आगे नारायणा-
स्त्वयागपर्व (७२), तिसके पश्चात् कर्णपर्व (७३),
अनन्तर शल्यवधपर्व (७४), तब हृदप्रवेशपर्व
(७५), तिसके पश्चात् गदायुद्धपर्व (७६) अनन्तर
सारस्वत तीर्थवंशानुकीर्तनपर्व (७७), तिसके
पश्चात् अतिवीर्य सौप्तिकपर्व (७८), आगे
अति कष्टदायी ऐधीकपर्व (७९), तिसके पश्चात्

जलप्रादानिकपर्व (८०), अनन्तर स्त्रीविलाप-
पर्व (८१) तब कौरवों का और्ध्वदेहिकयाज्ञपर्व
(८२) तिसके पश्चात् ब्राह्मण-वेशधारी चार्वाक-
राक्षस का वधपर्व (८३) अनन्तर धीमान् धर्म-
राजका अभिषिचनिकपर्व (८४), तब गृह-
विभागपर्व (८५), तिसके पश्चात् शान्तिपर्व
(८६), तब राजधर्मानुशासनपर्व (८७), अनन्तर
आपद्धर्मपर्व (८८), तब मोक्षधर्मपर्व, जिसमें
शुक प्रश्नाभिगमन, ब्रह्मप्रश्नानुशासन, दुर्वासजी
का प्रादुर्भाव और मायाके साथ कथोपकथन
हैं (८९), तिसके पश्चात् आनुशासनिकपर्व,
जिसमें धीमान् भीष्मजीका स्वर्गारोहण वर्णित
हुआ है (९०) तब सर्वपापनाशी आश्वमेधिक-
पर्व (९१), तिसके पश्चात् आध्यात्मसम्बन्धी अनु-
गीतापर्व (९२), अनन्तर आश्रम वासिकपर्व (९३)
तब पुत्रदर्शनपर्व (९४) तिसके पश्चात् नारदा-
गमनपर्व (९५) अनन्तर अतिकष्टदायी मौषल-
पर्व (९६), आगे महाप्रास्थानिकपर्व (९७)
तिसके पश्चात् स्वर्गारोहणिकपर्व (९८) अनन्तर
खिलनामक हरिवंशपर्वके अन्तर्गत विष्णुपर्व,
जिसमें शिशुचर्या और श्रीकृष्ण से कंसवध होना
वर्णित हुए हैं (९९), तब अति आश्चर्य भविष्य-
पर्व (१००)। इन सौ पर्वों को महात्मा
व्यासदेव कीर्तन कर गये हैं। सूतवंशी लोम-
हर्षणपुत्र नैमिषारण्यमें संचेप क्रमानुसार जो
अठारह पर्व कह गये हैं, भारत के वही
संक्षिप्त पर्वसंग्रह कहे जाते हैं।

पौष्य, पौलोम, आस्तीक, आदिवंशावतरण,
सम्भव, जतुगृह-दाह, हिडिम्बवध, वकवध चैत्र-
रथ, द्रौपदीका, स्वयम्बर, वैवाहिक, विदुरा-
गमन, राज्यलाभ, अर्जुन का वनवास, सुभद्रा-
हरण, यौतुकाहरण, खाण्डवदाह, मयदर्शन
यह सब आदिपर्वमें कथित हुए हैं।

पौष्यपर्वमें उत्तङ्ग का महात्मकीर्तन
है। पौलोमपर्वमें भृगुवंश का विस्तार वर्णित
हुआ है। आस्तीकपर्वमें गरुड़ और सम्पूर्ण

सर्पों की उत्पत्ति और समुद्रमंथन, उच्चैःश्रवाकी
उत्पत्ति और महाराज परीक्षित-पुत्रके सर्प-
यज्ञानुष्ठान के कालमें भरतवंशी महात्मावर्ण-
सम्बन्धी महाभारतकी कथा वर्णित हुई हैं।

सम्भवपर्वमें राजगण तथा दूसरे वीरगण
और महर्षि द्वैपायनकी भिन्न भिन्न प्रकार की
उत्पत्ति; देवताओं का अंशवतार; दैत्य-
दानव, यक्ष, सर्प गन्धर्व, पक्षी और दूसरे नाना
प्राणियों की उत्पत्ति और जिन महाराज
भरतके नामानुसार भारतवंश लोक में प्रसिद्ध
हुआ है, जिन्होंने महातपस्वी महर्षि कण्वके
आश्रय में दुष्मन्तके औरस से शकुन्तलाके गर्भमें
जन्म लिया था; उनका वृत्तान्त; राजा शान्त-
नुके गृहमें गङ्गा के गर्भमें महानुभाव वसुओंकी
उत्पत्ति, पुनः स्वर्गारोहण और तेजोभावापत्ति;
भीष्मका जन्म और उनका राज्यत्याग, ब्रह्म
चर्यावलम्बन तथा प्रतिज्ञा पालन; भीष्मके
द्वारा चित्राङ्गदकी रक्षा और चित्राङ्गदके मारे
जाने पर उसके कनिष्ठ सहोदर विचित्रवीर्य
की रक्षा और उसकी राज्यमें स्थापन; अनी-
माण्डव्य के शाप से धर्मकी नरयोनि में उत्पत्ति
वरदान के बलसे कृष्णद्वैपायनजी से धृतराष्ट्र
और पाण्डुका जन्म, और पाण्डवोंकी उत्पत्ति;
पाण्डवों की वारणावत में भोजने के वारमें
दुर्योधन की मन्त्रणा और उससे पाण्डवों के
समीप पुरोचनका भेजा जाना; हित करनेके
लिये पथमें विदुर का स्नेहभाषा में धीमान्
धर्मराज के प्रति उपदेश; विदुर के वाक्यसे
सुरङ्ग खोदा जाना, पांच पुत्रों के सहिय व्याध-
पत्नी और पुरोचन का जल मरना; घने वन
में पाण्डवों की राक्षसी हिडिम्बा से भेंट और
भीम से हिडिम्बका मारा जाना, घटोत्कच की
उत्पत्ति; पाण्डवों की अति तेजस्वी महर्षि
वेदव्यासजी से भेंट और उनकी आज्ञा से एक
चक्रा नगरी में ब्राह्मण के घर उनका अज्ञात
वास; राक्षसवक्रका वध और यह देखकर

नगरवासियों का विजय ; द्रौपदी और धृष्ट-
द्युम्न का जन्म ; ब्राह्मणों से द्रौपदीके स्वयम्बर
की वार्ता सुनकर कौतूहली हो करके श्री-
व्यासजी की आज्ञासे पाण्डवों का द्रौपदी लाभ
की आशासे स्वयम्बर देखनेकेलिये पाञ्चाल
देशकी ओर जाना ; गङ्गाकिनारे अङ्गारपर्ण
गन्धर्व्व की जयकर उससे अर्जुन की मित्रता
और उसके सुखसे तपती, वसिष्ठ और श्रीर्षका
सुन्दर उपाख्यान सुनना ; पाण्डवों का
पाञ्चालनगरमें जाना ; वहां सम्पूर्ण राजाओं
के बीच में लक्ष्यकी भेदकर अर्जुन का द्रौपदी-
लाभ, और उस हेतु युद्ध उभड़ने पर, भीमसेन
और अर्जुन से शल्य, कर्ण और दूसरे क्रोधसे
अन्य नरेशों की पराजय ; भीमार्जुन के उस
असाधारण अपरिमित वीर्य्यकी देखकर इस
समझ से, कि वे पाण्डव हैं, मिलने के लिये
भार्गव के घरमें अति बुद्धिशाली श्रीवलरामजी
और श्री कृष्णचन्द्र का जाना ; द्रौपदीके पांच
पति होने की बात सुन कर राजा द्रुपद का
विषाद ; तिसपर पांच इन्द्रोंका अति आश्चर्य्य
उपाख्यान कहा जाना ; द्रौपदी का दैवी अमा-
नवी विवाह ; धृतराष्ट्र द्वारा पाण्डवों के निकट
विदुर का प्रेषित होना ; विदुर का पङ्कचना
और श्रीकृष्णचन्द्र का दर्शन । पाण्डवों का
खाण्डवप्रस्थ में वसना और आधा राज्य
शासना, श्री नारद जीकी आज्ञासे पांचों
भाईका द्रौपदी से नियम करना ; सुन्द और
उपसुन्दका उपाख्यान, युधिष्ठिर द्रौपदी के
साथ जिस निराले गृह में विराज रहे थे, उस
गृह में ब्राह्मण के उपकारार्थ जा करके अस्त्र
लाकर विप्रवर की गौ उद्धार कर नारद-कृत
नियम रक्षाके लिये वीरवर अर्जुनका वनकी
जाना ; पार्थ के वनवास कालमें पथमें नाग-
कन्या जलूपी से सङ्गम और पूण्यतीर्थ को
जाना, वज्रवाहनका जन्म ; तपस्वी ब्राह्मणके
शापसे ग्राह-यानि में जन्मी हुई पांच सुन्दरी

अप्सरार्यों का अर्जुन-द्वारा शापसे मुक्त होना ;
प्रभासतीर्थ में श्रीकृष्णचन्द्र से अर्जुन का
मिलाप ; द्वारकाजी में श्रीकृष्णकी सम्मति से
काम-यान पर अर्जुन का अभिलाषा-रखती
हुई सुभद्रा की हरलीना ; देवकीनन्दन श्रीकृष्ण-
चन्द्र का दहेज-सहित खाण्डव-प्रस्थ में गमन ;
सुभद्रा के गर्भ में तेजोवन्त अभिमन्यु का जन्म ;
द्रौपदी के पुत्र होना ; श्रीकृष्ण और अर्जुन के
जल-विहार के लिये यमुनाजीमें जाने पर वहां
चक्र और चाप मिल जाना ; खाण्डवदाह ;
मय-दानव और सर्प की अग्नि से रक्षा ; शार्ङ्गों
के गर्भ में मन्दपाल नामक महर्षिका पुत्र
उपजाना ; यह सब वृत्तान्तभरा आदिपर्व्व
पहिले कहा गया है । भगवान् तेजोवान्
महात्मा महर्षि वेदव्यास ने इस पर्व्व में दो सौ
सत्ताइस अध्यायों की संख्या लगाई है ; और
इसमें आठ सहस्र, आठ सौ, चौरासी श्लोक
कीर्तन किये गये हैं ।

अनेक वृत्तान्त-वाले दूसरे पर्व्व का नाम
सभापर्व्व है ; पाण्डवों का सभा-निर्माण ;
किङ्कर दर्शन ; देवलोक देखने-वाले श्रीनारद-
जी का लोकपालों की सभा वर्णन ; राजसूय
यज्ञका प्रारम्भ ; जरासन्धवध ; गिरिदुर्ग में
कैद भोगते हुए राजाओं का श्रीकृष्ण से मुक्त
होना, पाण्डवों की दिग्विजय ; राजसूय
महायज्ञ में राजाओं का भेंट-सहित आना ;
अर्घ देने के बारे में वादाविवाद होने के समय
शिशुपाल-वध, यज्ञका ऐश्वर्य्य देखकर दुःख
और हेय-युक्त हुए दुर्योधन की भीम से सभाके
बीच में हंसी होनी, उससे दुर्योधन का क्रोध
होना और जूए का अनुष्ठान, कपटी शकुनि
से चौसर में धर्मपुत्र युधिष्ठिर की हार,
समुद्रमें डूबी हुई नावकी भांति चौसर-रूपी
समुद्रमें डूबी हुई परम दुःखिनी पुत्रवधू द्रौपदी
का महाप्राज्ञ धृतराष्ट्र से उद्धार । वह देख-
कर फिर चौसर खेलने के लिये दुर्योधन का

पाण्डवों को बुलाना । उसमें जय पाये हुए दुर्योधन से पाण्डवों का वन को भेजा जाना । महात्मा व्यासजी ने सभापर्व में इन विषयों को वर्णन किया है । हे श्रेष्ठ दिजी ! इस पर्व में अठत्तर अध्याय और दो सहस्र, पांच-सौ, ग्यारह श्लोक विद्यमान हैं ।

इसके पश्चात् अरण्यक नामक बड़ा भारी तीसरा पर्व है । महात्मा पाण्डवों के वन को सिधारने पर धीमान् धर्मपुत्रके पीके नगर-वासियोंका जाना । अनुगत ब्राह्मणोंके पोषणार्थ श्रीमहाराज धीम्यमुनि के उपदेश-अनुसार महानुभव युधिष्ठिर की अन्न और औषधि के लिये सूर्य-नारायण से प्रार्थना । सूर्यदेव की कृपासे अन्नपाना । धृतराष्ट्र से हित कहने-वाले विदुरजी का निकाला जाना । उनका पाण्डवों के समीप पहुँचना और धृतराष्ट्र की आज्ञा से फिर लौट आना । कर्णके उपहास वाक्य पर वानवासी पाण्डवोंकी हत्याके लिये दुर्मति दुर्योधन की युक्ति । उस दुष्टभाव को समझकर श्री महाराज व्यासजी का शीघ्र आगमन और दुर्योधन को बन्की और जाने से रोकना । सुरभि का उपाख्यान । मैत्रेय का हस्तिनापुर में आगमन और धृतराष्ट्र को उपदेश करना तथा दुर्योधन को शाप देना । युद्धमें भीमसेनसे किष्कीर का वध होना । यह सुनकर, कि शकुनि ने धूर्तता से पाण्डवों को जय कर लिया है, वृष्णि और पाञ्चालों का युधिष्ठिर के निकट जाना ; अर्जुन द्वारा क्रोधयुक्त श्रीकृष्ण का क्रोध शान्त होना । श्रीकृष्ण के निकट द्रौपदी का दुःख । दुःखिता द्रौपदी को श्रीकृष्ण का समझाना । सौभवध का उपाख्यान । श्रीकृष्ण से पुत्र सहित सुभद्रा का हारकाजीमें भेजा जाना । दृष्टद्युम्न का द्रौपदी के पुत्रों को पाञ्चाल देश में लेजाना । पाण्डवों का रमणीय हैतवन में प्रवेश । युधिष्ठिर, भीम और द्रौपदी का वार्त्तालाप । पाण्डु-

पुत्रों के समीप महर्षि वेदव्यासजीका आगमन और युधिष्ठिर को स्मृतिनामक विद्यादान । श्रीव्यासजी के चले जाने पर पाण्डवों का काम्यक-वन में प्रवेश । दिव्यास्त्र लाभ करने की चेष्टा में अपरिमित तेजस्वी अर्जुन का प्रवास । वराधरूपी महादेवके सङ्ग अर्जुन का युद्ध । अर्जुन का लोक-पाल-दर्शन, अस्त्रप्राप्ति और अस्त्रशिक्षाके लिये महेन्द्रलोक में गमन । उसवात को सुनकर धृतराष्ट्र की अतिचिन्ता । युधिष्ठिर का परमार्थ-ज्ञानी बृहदश्व नामक महर्षि-दर्शन । उनके समीप अति कातर हो-कर युधिष्ठिर का परिताप और विलाप । धर्म और कर्णारसभरा नलीपाख्यान, जिनमें नलवृत्तान्त और विपत्कालमें भी दमयन्ती के मर्यादापालने की कथा कही गई है । महर्षि बृहदश्व से युधिष्ठिर का अक्षहृदय नामक विद्या पाना । पाण्डवों के समीप सुगं से लोभश ऋषिका आना और वनवासी महानुभव पाण्डवों को स्वर्ग में विराजते हुए अर्जुन का समाचार सुनाना । अर्जुन का समाचार सुन-कर पाण्डवों की तीर्थ यात्रा । तीर्थ-यात्रा के फल और पुण्यकीर्तन । महर्षि नारदजी की पुलस्त्य तीर्थ की यात्रा और महानुभव पाण्डवों का भी उसही तीर्थमें गमन । कुण्डल देकर कर्ण का इन्द्रकी प्रार्थना पूरी करना । गयासुर का यज्ञ । अगस्त्य का उपाख्यान और वातापि-भक्षण । सन्तान के निमित्त अगस्त्य ऋषि का लोपामुद्रा नाम कन्या से विवाह । कौमार ब्रह्मचारी ऋषयश्मद्भजीका चरित्र । जमदग्नि-पुत्र महावीर्य परशुरामजीका चरित्र । कार्तवीर्य-वध । हैहयवध । प्रभास तीर्थमें वृष्णिओं के साथ पाण्डवों का मिलाप । सुकन्याका उपाख्यान । शर्याति के यज्ञ में शत्रुवंशी च्यवन मुनि का दोनों अश्विनीकुमारों को यज्ञीय सोमरस देना । अश्विनीकुमारों का च्यवनमुनिको यौवनावस्था में स्थापन करना । माध्याताका

उपाख्यान । जन्तुनामक राजपुत्र का उपाख्यान । सोमकराज का अनेक पुत्र पानेके लिये पुत्र की मारकर याग करना और सौ पुत्र पाना । श्येन-कपोतका मनभावन उपाख्यान । इन्द्र, अग्नि और धर्म से शिविराजाकी परीक्षा । अष्टावक्र का उपाख्यान । जनकराज के यज्ञ में नैयायिकवर वरुणपुत्र वन्दी के साथ विप्रर्षि अष्टावक्र का वादाविवाद । महाप्रभावी अष्टावक्र के साथ विवाद में वन्दी की पराजय । जय लाभ करके अष्टावक्र का समुद्र में डूबे हुए कन्होड़ नामक निज पिता का उद्धार करना । यवक्रीत की कथा । महानुभव रैभ्य की कथा । पाण्डवों की गन्धमादन पर यात्रा । वहाँ रहने के काल में सुगन्धी पदार्थ बटोरने के लिये द्रौपदी से नियुक्त होकर महावली भीमसेन की पथ में कदली वनके भीतर अति बलशाली पवननन्दन हनुमानजी से भेंट । भीम का पद्म-वन बिगाड़ना और वहाँ राक्षस और मणि-मत् आदि महावीर्य यक्षों के साथ घोर युद्ध । वृकोदरसे जटासुर नामक राक्षस का वध होना । वृषपर्व नामक राजर्षि के समीप पाण्डवोंका गमन । पाण्डवों का आर्जुनसेनाश्रम में गमन और वास । पाण्डाली का महानुभव भीम को उत्साह देना । भीम का कैलाश पर चढ़ जाना और महाबलशाली मणिमत् आदि यक्षों से घोर युद्ध । पाण्डवों के साथ कुवेरजी का मिलाप । भाइयों से अर्जुन का मिलाप । दिव्यास्त्र पाये हुए सवसाची अर्जुन से इन्द्रजी के कार्य के लिये हिरण्यपुरवासी निवात-कावच नामक देवशत्रु भयानक दानवों और पुलामपुत्र कालकेयो का घोर युद्ध और पार्थ से उनका माराजाना । महाराज युधिष्ठिर की अर्जुन का अस्त्र दिखाने का उद्योग और देवर्षि नारदजी का अस्त्र दिखाने से रोकना । पाण्डवों का गन्धमादन से उतरना । उस बड़े वन में पर्वतके-समान-शरीर-धारी प्रबल सर्प-

का भीमको निगल जाना ; प्रश्नके अर्थ कह कर युधिष्ठिर का भीम को उद्धार करना । महात्मा पाण्डवों का फिर काम्यकवन में आगमन । पुरुष-श्रेष्ठ पाण्डवों की फिर देखने के लिये वासुदेव का काम्यकवन में आना । मार्कण्डेय-समास्या-घटित अनेक भांति की कथा । उस महर्षिसे वेणुपुत्र पृथुराजा का उपाख्यान कहाजाना । महानुभव तार्क्ष्य ऋषि और सरस्वतीजी की कथा । मत्स्योपाख्यान । मार्कण्डेय-समस्या और पुरावृत्तोंका कीर्तन । इन्द्रदुम्न का उपाख्यान । धुम्भुमारका उपाख्यान । पतिव्रता का उपाख्यान । अङ्गिराका उपाख्यान । द्रौपदी और सत्यभामा का सम्वाद । पाण्डवों का पुनः व्रतवन में प्रवेश । घोषयात्रा और उसमें गन्धर्वों से दुर्योधन का बांधाजाना अर्जुन के द्वारा लज्जायुक्त मन्दबुद्धि दुर्योधन का गन्धर्वों से मुक्तहोना । युधिष्ठिर का स्वप्न-में लग देखना और फिर काम्यकवन में आना । ब्रीह्मिदौशिकका बड़ा भारी उपाख्यान । दुर्वासा जी की कथा । आश्रमसे जयद्रथ का द्रौपदी को हरलाना और भीमसेन का वायु के समान उसके पीछे जाना ; महावली भीम का जयद्रथ की पाँचशिखाधारी बनाना ; महाराज रामचन्द्र जी की बड़ी भारी कथा, जिसमें श्रीराम चन्द्रने युद्ध में बड़े विक्रम से रावण को मारा था ; सावित्री की कथा ; इन्द्र जी के उद्देश में कर्णका दोनों कुण्डल त्याग देना और उसे प्रसन्न होकर इन्द्रजी का कर्ण को एक पुरुष मारने वाली शक्ति देना ; अरण्य उपाख्यान ; धर्म द्वारा निज पुत्र का अनु-शसन ; वरलाम के पश्चात् पाण्डवों का पश्चिम दिशा की जाना ; यह सब विषय-युक्त आरण्यक नामक तीसरा पर्व वर्णित हुआ है । इसमें दो सौ उनहत्तर अध्याय और ग्यारह सहस्र, आठ सौ, चौसठ श्लोक कीर्तन किये गये हैं ।

इसके पश्चात् विराटपर्व का बीरा सुनिये ; विराट नगर में जाकर श्मशान के बीचमें बड़े भारी समीवृक्ष को देख करके उस पर पाण्डवों का अस्त्र रखना ; पुर में प्रवेश कर उनका गुप्त भावसे रहना ; दुराचारी कामी कीचक की पाञ्चालीसे सम्भोग की प्रार्थना और भीमसे उसका वध । पाण्डवों के अन्वेषण के लिये नरेश दुर्योधन का चारों ओर चतुर दूत भेजना और पाण्डवों को दूढ़ निकालने में उन दूतों की अक्षमता ; पहिले त्रिगर्त की सेना का विराट-राज की गौ हरना और उनसे विराट-राजका लोमाञ्च करने-वाला घोर युद्ध ; त्रिगर्त से पकड़े गये हुए विराट का भीम से मुक्त होना और पाण्डवों का गौ फेरलेना ; कौरवों का गौ हरलेना ; अर्जुन के युद्ध में सम्पूर्ण कौरवों की पराजय ; किरीटि का विक्रम-पूर्वक गौ फेर लेना ; सुभद्रा के पुत्र, शत्रुनाशी अभिमन्यु की पत्नी और पार्थ की पुत्रवधू करने के लिये विराटका अपनी उत्तरा नाम कन्यादान ; यह सब विषययुक्त विराट नामक चौथापर्व विस्तारपूर्वक कहा गया है । इस पर्व में सरसठ अध्याय हैं और वेदज्ञ महर्षि व्यासजीने इस में दो सहस्र पचास श्लोक कीर्तन किये-हैं ।

इसके अन्तर विशेष रूपसे जानने योग्य उद्योगनामक पांचवेंपर्व को अवगण कीजिये । पाण्डवों के जयकी इच्छासे उपप्लव नाम स्थान में रहने के समय दुर्योधन और अर्जुन का वासुदेवजीके पास-जाना और उनके ऐसी प्रार्थना करने पर, कि “आप उपस्थित युद्ध में हमारी सहायता कीजिये” महामति श्रीकृष्ण का इससे यह कहना, कि “हे श्रेष्ठ पुरुष युगल ! युद्ध न करके केवल युक्तिमात्र देने-वाला मैं और एक अचौहिणी सेना, इन दो में किसको क्या दूं ?” अभागे दुर्मति दुर्योधन का सेनाका वर मांगना और अर्जुन का युद्ध

से दूर रहनेवाले श्रीकृष्ण की मन्त्रणा-कार्य में नियुक्त कर लेना । मद्राज पाण्डवों के निकट आ रहे थे, कि ऐसे समयमें दुर्योधनका समाचार पाकर उनके पास पहुँचना और क्लेश उपहार देकर सन्तुष्ट करने पर वह जब वर देने की उद्यत हुए, तब उपस्थित युद्ध में सहायता की प्रार्थना करना और मद्राज शल्य का सहायता देना स्वीकार कर पाण्डवों के समीप जाना ; शल्य का युधिष्ठिर को समझाना और इन्द्रकी विजय वर्णन करना ; पाण्डवों का कौरवोंके समीप पुरोहित भेजना, उससे इन्द्रकी विजय सम्बन्धी कथा सुन कर शान्ति चाहने-वाले महा प्रतापी धृतराष्ट्र का विदुर की मन्त्रणा से सञ्जय नामक दूतका भेजना ; वासुदेव और पाण्डवों का वृत्तान्त सुनकर चिन्ता से धृतराष्ट्र का निद्रा त्याग देना ; विदुरकी मुखसे बुद्धिमान धृतराष्ट्र का विचित्र और हितवाक्य सुनना ; मनःपीड़ासे पीसे जाते हुए शोकात्तल धृतराष्ट्रका सन्त सुजात ऋषि से अति उत्तम अध्यात्म-सम्बन्धी शास्त्र सुनना ; प्रातः काल में सञ्जय से वासुदेव और अर्जुन का ऐकात्मभाव का विषय कहा जाना ; महामति और कृपावान् श्रीकृष्ण का सन्धिस्थापन करने की आग्रहण ; दोनों पक्ष की हितेच्छा से श्रीकृष्णचन्द्र के सन्धि-स्थापन का प्रस्ताव करने पर दुर्योधन का उस बातको टार देना ; दम्भोद्भवका उपाख्यान ; महात्मा सातली का अपनी दुहिता के लिये वर दूढ़ना । महर्षि गालव चरित ; विदुला पुत्र का उपदेश ; कर्ण और दुर्योधन आदिकी दुष्ट मन्त्रणा की संसर्ग कर राजगण के समीप श्रीकृष्णका अपना योगेश्वर-भाव दिखाना ; श्रीकृष्णका कर्ण की अपने रथ पर चढ़ाना और हित परामर्श देना ; मदगर्बित कर्ण का कौशलपूर्वक श्रीकृष्ण की हितवातकी अस्वीकार करना ; हस्तिनापुर से उपलव्यनगरमें पाण्डवी के निकट

आकर श्रीकृष्णका सारा वृत्तान्त कहना ; श्रीकृष्णसे सब बातोंकी सुन कर, हित कार्य की युक्ति ठहरा करके पाण्डवों की युद्धकी तथ्यारी ; हस्तिनापुर से युद्ध के लिये हाथी, घोड़े, रथ और पैदल की यात्रा ; सैन्यसंख्या ; घोर युद्धके पूर्वदिन दुर्योधनका उलूक नामक मनुष्य की दूत नियुक्त कर पाण्डवोंकी सेवामें भेजना ; रथ अतिरथीकी संख्या ; अस्त्रोपाख्यान ; उद्योग नामक पांचवें पर्वमें सन्धि-विग्रहकी बातोंमें मिले हुए यह सब वृत्तान्त वर्णित हुए हैं। - हे तपोधन ! उदारचित्त महानुभाव महर्षि वेदव्यास ने इस पर्वमें छः, सहस्र छः सौ, अष्टानव्वे श्लोक कीर्तन किये हैं।

अब अत्यार्थ्य भीष्मपर्व की कथा कहता हूं। जम्बूखण्ड निर्माण करने की कथा ; युधिष्ठिर की सेना में बड़ी उदासी ; दश दिनों तक ठहरी हुई काठोर लड़ाई के समय में योग सत्यकी नाना हेतुओंकी दिखा कर महामति वासुदेव का अर्जुन की उदासी को दूर करना ; युधिष्ठिर के झितेच्छुक उदारचित्त स्वयं श्रीकृष्ण का रथसे उतर कर निर्भयचित्त से हाथ में प्रतीद लेकर भीष्म-वधार्थ गमन ; वाक्य रूपी दण्डसे श्रीकृष्णका अर्जुनकी आघात करना ; सर्वशस्त्रों में पारङ्गत गाण्डीवचापधारी अर्जुन का शिखण्डों की सामने रख कर तेज वाणों की आघात से भीष्म की रथ से भूमि पर गिराना, भीष्म का शरशय्या पर शयन ; इन सब वृत्तान्तोंसे भरा हुआ भीष्मपर्व नामक अति विस्तृत भारतीय कथवापर्व वर्णित हुआ है। वेदवेत्ता वेदव्यास ने इस पर्वमें एक सौ सतरह अध्याय और पांच सहस्र, आठ सौ, चौरासी श्लोक कीर्तन किये हैं।

अनन्तर बृहद्वृत्तान्त युक्त अति आश्चर्य्य शीर्ष-पर्व कहता हूं ;—प्रतापी द्रोणाचार्य का सेनापति के प्रदमें अभिषिक्त होना ;

दुर्योधन की प्रीति के निमित्त बड़े भारी अस्त्रज्ञ द्रोणाचार्यजी का यह कहकर कि “धीमान् युधिष्ठिरको पकड़ लाजंगा” प्रतिज्ञा करना। संसप्तक युद्ध-स्थल से अर्जुनका खदेड़ा जाना, महाराज भगदत्त का सुप्रतिक नामक अपने हाथी पर रणस्थल में इन्द्रतुल्य अतुल विक्रम प्रकाश करना ; अर्जुन से भगदत्त का माराजाना ; जयद्रथ आदि महारथी योद्धाओं से महावली अप्राप्त-यौवन अकेले वालक अभिमन्यु का वध होना ; अभिमन्यु के मारे जाने पर क्रोध से जले हुए अर्जुन का रणभूमि में सात अक्षौहिणी सेनाओं की मार कर मद्राज जयद्रथ की मारहालना ; महाराज युधिष्ठिर की आज्ञा से पार्थकी बूढ़ निकालने के लिये महाभुज भीम और महारथी सात्यकि का देवताओंके पार होने के अयोग्य कुरुक्षेत्र में घुसना ; शीघ्र संसप्तकी का युद्ध में नाश ; अलम्बुष्य श्रुतायुः जलसन्ध, वीर्यशाली भूरिश्रवा, विराट, महारथी दुपद और घटोत्कच आदि अनेक वीरों का पतन ; युद्ध में द्रोणाचार्यजी के गिरने पर क्रोध से जले हुए अश्वत्थामा का भयानक आग्नेय नारायणअस्त्र मारना ; उत्तम रूपसे रुद्र-माहात्म्य का कीर्तन ; श्रीमहाराज व्यासदेव का आगमन ; श्रीकृष्ण और अर्जुन का माहात्म्य वर्णन ; यही सब विषय सविस्तृत सातवें पर्वमें कहे गये हैं। जिन सब पुरुष-श्रेष्ठ भूपालोंका निर्देश है, उनमें प्रायः सभीके मृत्यु-वृत्तान्त इस पर्व में वर्णित हुए हैं। तत्त्वदर्शी पाराशरि व्यासजीने विचार-पूर्वक इस पर्व में एक सौ सत्तर अध्याय और आठ सहस्र, नौ सौ, नौ श्लोक कीर्तन किये हैं।

इसके पश्चात् परम अद्भुत कर्णपर्व कहता हूं। धीमन्मद्राज का सारथी के कार्य में नियुक्त होना ; युद्धार्थ यात्रा करने के काल

में कर्ण और मद्राज के बीच में परस्पर वाय्ययुद्ध; कर्णके तिरस्कारार्थ शल्यका हंस और काककी कथा कहना; महाप्रभावी अश्वत्थामा से पाण्डुराज का माराजाना; दण्डसेनवध और दण्डवध; सर्वचापधारी जनो के सम्मुख कर्णसे हैरथयुद्ध करने में धर्मराज युधिष्ठिर का प्राण जाने पर होना; युधिष्ठिर और अर्जुनका आपसमें क्रोध करना; श्रीकृष्णका अर्जुनसे विनय; वृकोदर का युद्धस्थलमें पूर्व-प्रतिज्ञा के अनुसार दुःशासन की छाती चीर कर शीणित पीना; हैरथ युद्धमें अर्जुन से महारथी कर्णका मारा जाना; यही सब विषय महाराज व्रासजीने आठवां पर्व में कहे हैं। वेदव्रासजी ने इस कर्णपर्व में उनहत्तर अध्याय और चार सहस्र, नौ सौ, चौसठ श्लोक कीर्तन किये हैं।

इसके अनन्तर विचित्र अर्थयुक्त शल्यपर्व कहता हूँ। कर्ण के मारे जाने पर मद्रेश्वर शल्यका सेनापति के पद में नियुक्त होना; नाना रथियों के पृथक् रूप से रथ-युद्धों का वर्णन; कौरव-पक्षके प्रधान योद्धों का मारा जाना; महानुभव धर्मराज से शल्यका वध होना; अधिक सेना मारी गई और खल्व वाकी रही देखकर दुर्योधन का क्रोध में घुसना और जलस्तम्भ रचके वहाँ ठहरना; व्राधों का भीम को दुर्योधनका समाचार देना; धीमान् धर्मराज युधिष्ठिर के लाज्जुन से क्रोधी दुर्योधन का भीम से बाहर निकल आना; जहाँ पर भीमके साथ दुर्योधन का गदायुद्ध होनेवाला था; वहाँ सबके एकत्रित होने पर बलरामजी का आगमन; सरस्वती तीर्थ और दूसरे नाना तीर्थों का माहात्म्य कीर्तन; उस रणभूमिमें भीमके साथ दुर्योधन का घोर गदा-युद्ध; युद्धस्थल में अति वेगवती गदा से भीम का महाराज दुर्योधन को दोनों उरु भग्न कर देना; यह सब विषय आश्चर्य्य अर्थ-

युक्त नवें पर्व में वर्णित हुए हैं। कौरवों के यशकीर्तन करने वाले व्रासमुनि ने इसमें नाना वृत्तान्त-युक्त उनसठ अध्याय कीर्तन किये हैं। और तीन सहस्र, दस सौ, बीस श्लोक रचे हैं।

इसके पश्चात् दुःखदायी सौप्तिक पर्व कहता हूँ। पाण्डवों के रणस्थल से चले जाने पर क्रोधी दुर्योधन जिन स्थान में पड़ा था, वहाँ संन्याके समय कृतवर्मा, कृपाचार्य और अश्वत्थामा, इन तीन महारथियों ने उपस्थित होकर देखा, कि राजा दुर्योधन के उरु भग्न हुए हैं और सर्वशरीर में रुधिरयुक्त होकर वह रणभूमि में पड़ा है, इससे महारथी द्रोण-पुत्रने क्रोधसे जलकर यह प्रतिज्ञा की, कि “धृष्टद्युम्न आदि पाञ्चाल और सहचर समेत पाण्डवों को न मार कर तनुवाण (जिरह-वत्तर) नहीं छोड़ूंगा”। अनन्तर उन तीन महारथियोंने राजा से यह प्रतिज्ञावचन कहकर वहाँ से पधारे और सूर्यास्त होने पर एक बड़े वन में प्रवेश पूर्वक वहाँ एक बड़े वड़ की जड़में बैठकरके देखा, कि एक उल्लू उसरात्रि कालमें अनेक कौरवोंको मार रहा है, उसे देखकर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा ने पितृवध की बात स्मरण करके क्रोधवश मनही मनमें यह कल्पना की, कि पाञ्चालों के सो जाने पर सबों को मार डालूंगा। अनन्तर इन्होंने पाण्डवों के शिविर द्वार पर उपस्थित होकर देखा, कि एक आकाश स्पर्श-कारी बड़ाभारी भयानक आकारधारी राक्षस द्वारके सामने खड़ा है। उस राक्षस की अस्त्र मारने में बाधा देते देखकर द्रोणपुत्र ने तत्क्षण विरूपोच्च रुद्र की आराधना करके कृप और कृतवर्मा के संग शिविर में प्रवेश कर विश्वास पूर्वक सोते हुए धृष्टद्युम्न आदि परिवार सहित सम्पूर्ण पाञ्चाल और द्रौपदीके पुत्रों को नाश किया। श्रीकृष्ण के कौशल से इस प्रकारसे केवल महाचाप-

धारी सात्यकि और पांच पाण्डव बचे, शेष सब मारे गये। अश्वत्थामाने अपने हाथ ही से पाण्डवों को हनन किया था। दृष्टद्युम्न के सारथिके इस भयानक विषय को पाण्डवों के निकट कहने पर, पुत्रशोक और पितृ-भाटवध से कातर द्रौपदी ने भूखी रहकर प्राणत्यागने की कल्पना कर पतिओं से प्रार्थना की। वीर्यवान् भीम-पराक्रम भीमसेन द्रौपदी का वचन सुन कर उसकी प्रिय इच्छा पालने को क्रोधवश गदा लेकर अश्वत्थामा के पीछे दौड़े। द्रोणपुत्रने भीम के भय से अभिभूत और दैव प्रेरणा से क्रोध-पूर्वक “पृथ्वी अपाण्डवा ही” ऐसा कहकर अस्त्र मारा; इस पर श्रीकृष्णचन्द्र ने “ऐसा न करो” कहके अश्वत्थामा को रोका। पापात्मा अश्वत्थामा की विद्रोहिता देखकर अर्जुन ने अस्त्र द्वारा उस अस्त्र को निवारण किया, अश्वत्थामा और हैपायन आदिने परस्पर शपथ दिया। जयश्री पाये हुए पाण्डवों ने महारथी द्रोणपुत्र से मणि लेकर प्रसन्न चित्त होकर उसे द्रौपदी को दिया। यह सब वृत्तान्त-युक्त इस दशविं पर्वका नाम सौप्तिकपर्व कहा है। वेदवक्ता महात्मा व्यासमुनि ने इसमें अठारह अध्याय कीर्तन किये और आठ सौ सत्तर श्लोक रचे हैं। तेजोवान् व्यासजी ने ऐषिक-पर्व को इस पर्व के अन्तर्गत किया है।

अनन्तर कुरुणरसयुक्त स्त्रीपर्व कहा जाता है। प्रज्ञा-शील भूपाल धृतराष्ट्र ने पुत्रशोक से कातर होकर भीम का विनाश करने की कामना से कृष्ण की दी हुई भीम की लोहेकी बनी प्रतिमूर्ति तोड़ डाली। धीमान् राजा धृतराष्ट्र को शोकसे बहृत ही कातर देखकर बुद्धिमान विदुरने मोक्षसम्बन्धी नाना हेतुवादों से उनकी सासारिक माया दूरकर ढाड़स दिया और धृतराष्ट्र अन्तःपुरवासिनी सिमन्तिनियों को सङ्ग लेकर शोकाकुल चित्तसे रणस्थल को

देखने गये; वीरों की स्त्रियां अति कुरुणस्वरसे विलाप करने लगीं। गान्धारी और धृतराष्ट्र को क्रोध और मोह उपस्थित हुआ; क्षत्रिय-नारियां युद्धमें पीठ न दिखाये हुए शूरवीर पिता, भ्राता और पतियोंकी रणमें मरे और गिरे देखने लगीं। पुत्रशोक से कातर होकर गान्धारी के क्रोधयुक्त होने पर श्रीकृष्णने उनका क्रोध शान्त किया। धार्मिकवर, महाप्राज्ञ राजा युधिष्ठिर ने शास्त्रानुसार युद्धमें मरे राजाओं के शरीर दाह किये। राजाओं की जल देनेकी तर्पण-क्रिया आरम्भ होने पर कुन्तीने गुप्तभावसे जन्मे हुए कर्ण को स्वपुत्र करके प्रकाश किया। प्रज्ञाशील परमऋषि व्यासदेवने घोर-शोक उधारी, सज्जन-नेत्र दुखारी, चित्त-विकल-कारी, स्त्रीपर्व-नामक इस ग्यारहवें पर्वमें सत्तरह अध्याय कीर्तन कर सात सौ सत्तरश्लोक रचे हैं।

इसके पश्चात् ज्ञान-वृद्धिकारी शान्तिपर्व नामक बारहवां पर्व कहता हूँ। इसमें धर्मराज युधिष्ठिर की पिता, भ्राता, कुटुम्ब, मातुल आदि सबोंकी मरवा डालने के कारण उदासी छा गई। भीष्मदेवने शरशय्या पर पतित होकरके युधिष्ठिर को तत्व-ज्ञान चाहनेवाली राजाओंके अवश्य जानने योग्य राजधर्म सुनाया है और उनके द्वारा हेतुदर्शनिवाला आपद्धर्म भी प्रकाशित हुआ है। मानवलीग जिसे जान कर सर्वत्र वनते हैं, वह वज्रविस्तृत मोक्षधर्म भी इसमें भीष्मजी से कहा गया है। ज्ञानियों के प्रिय इस बारहवें पर्व का नाम शान्तिपर्व है, इसमें तीन सौ, उनतालीस अध्याय हैं। हे तपोधनो! धीमान् पाराशरि व्यासजी ने इस पर्वमें चौदह सहस्र, सात सौ, सात श्लोक कीर्तन किये हैं।

इसके पश्चात् उत्तम अनुशासन पर्व जानिये। कुरुराज युधिष्ठिर भागीरथीपुत्र भीष्मजी से धर्मनिर्णय सुन करके अपने स्वाभा

आ गये । इस पर्व में धर्म और अर्थ सम्बन्धी सम्पूर्ण व्यवहार, विविध दानों के भिन्न भिन्न फल ; आचार व्यवहार का निरूपण ; सत्यकी पूर्ण उत्तति ; गौ-ब्राह्मणों का माहात्म्य ; देश और काल के भेद से धर्मका भेद और भीष्मकी स्वर्गप्राप्ति वर्णित हुई है । इस धर्म-निर्णयकारी नाना वृत्तान्त-धारी तैरहें पर्वमें एकसौ छियालीस अध्याय हैं और आठ सहस्र श्लोक रचे गये हैं ।

इसके पश्चात् आश्वमेधिक नामक चौदहवां पर्व कथित हुआ है । सम्वत् और मरुत्त का सुन्दर उपाख्यान ; सुवर्णकोष का पाना ; पहिले अस्त्राग्नि से जले और औष्ण्यासे फिर प्राण पाये हुए घरीक्षित का जन्म ; यज्ञ के घोड़े को छोड़ने पर उसके पीछे चलनेवाले अर्जुन से स्थान स्थानों में क्रोधी राजाओं का युद्ध ; चित्रवाहन राजाकी पुत्री चित्राङ्गदा के गर्भजात निज पुत्र वज्रवाहन से अर्जुन का जीवन जाने पर हीना ; अश्वमेध-महायज्ञ के काल में नकुलीपाख्यान ; यह सब विषय अति अद्भुत आश्वमेधिकपर्व में वर्णित हुए हैं । तत्त्वदर्शी महर्षि ने इस में एकसौ तीन अध्याय कीर्तन किये हैं और तीन सहस्र, तीन सौ, बीस श्लोक रचे हैं ।

अनन्तर आश्वमेधिक नामक पन्द्रहवां पर्व कहा जाता है । इस पर्व में गान्धारी सहित राजा धृतराष्ट्र और विदुर राज्य छोड़कर आश्वमेधके लिये वनकी सिंधारे । वहाँ देखकर गुप्तसेविका सती कुन्ती पधारें हुए धृतराष्ट्र की अनुगामिनी हुई । वहाँ राजा धृतराष्ट्र ने युद्ध में मरे और परलोक की सिंधारे हुए पुत्र, पौत्र और दूसरे वीर राजाओं को फिर आते देखा । उन्होंने कृष्णदेवायनजी की कृपा से यह उत्तम और अत्यन्त व्यापार देख कर गान्धारी के साथ शोक परित्याग करके परम सिद्धि लाभ की । जितेन्द्रिय

विद्वान् गवल्गणके पुत्र महात्मा सञ्जय और विदुर ने धर्म की आश्रय कर सुगति प्राप्त की । धर्मराज युधिष्ठिरने नारदजीके दर्शन कर उनके मुखसे वृष्टियों के कुलचय होने की बातें सुनी । यह सब वृत्तान्त अति अद्भुत आश्वमेधिकपर्व में कहे गये हैं । तत्त्वदर्शी महर्षि ने इस पर्वमें ब्यालीस अध्याय और एक सहस्र, पांच सौ, छः श्लोक रचे हैं ।

अनन्तर दुःखदायी मौशलपर्वकी श्रवण कीजिये । जोलोग रणभूमिमें सहजही में अस्त्र के आघात सहलेंते थे, वह सर्व पुंसोंमें श्रेष्ठ यादवगण ब्रह्मशापस्वरूपी दण्ड से पीड़ित होकर देववंश समुद्र-तट पर मदिरा पीनेकी सभा में पानीमत्त होकरके परस्पर एकादण्डस्त्री वज्राघात से आहत हुए । इस प्रकार राम, कृष्ण, दोनोंने सम्पूर्ण यदुवंश को नष्ट कर आपने भी सर्वसंहारी काल की लङ्घन नहीं किया । आगे नरश्रेष्ठ अर्जुन हारकाजी में आकर और उसे यादवों से खाली पाकर बड़ी मनःपीड़ा से खेदवश हुए । उन्होंने अपने मातुल नरश्रेष्ठ वसुदेवकी अग्निक्रिया कर सुरापानसभा में युद्धवंशी वीरों का अति विनाश देखा । आगे उन्होंने बलरामजी, श्री कृष्णचन्द्र और प्रधान प्रधान यदुवंशियोंके शरीर दोहे किये और हारकाजीसे बाल, वृद्ध सर्व जनों की ले आने के समय पथमें घोर आपद से घरे जाकर निज गाण्डीधनुष की पराजय और दिव्यस्त्री की अप्रसन्नता देखी । आगे उन्होंने यादव-नारियों की चोरी और विक्रम की अनित्यता देख कर बड़े उदास होकर युधिष्ठिर के निकट लौट करके व्यासजी के वचनानुसार सन्यास-आश्रमकी शरण लेनेकी अभिलोषा की । यह सोलहवां पर्व मौशलपर्व करके कहा गया है । तत्त्वदर्शी वेदव्यासजीने इस पर्वमें आठ अध्याय और तीन सौ, बीस श्लोक कीर्तन किये हैं ।

इसके पश्चात् महाप्रास्थानिक नामक सत्तरहवां पर्व कथित है। पुरुषश्रेष्ठ पाण्ड-
वोंने देवी द्रौपदी के सङ्ग राज्य छोड़कर
महाप्रस्थान अवलम्बन किया। आगे उन्होंने
लाल समुद्रकूल में गमन करके अग्नि का दर्शन
किया। उस स्थान में अग्नि की आज्ञासे अर्जन
ने उस महाप्रभावी अग्नि की पूजा कर दिव्य
श्रेष्ठ गाण्डीव चाप को चढ़ा दिया। आगे
युधिष्ठिर सब भाइयों और द्रौपदी को गिरते
देखकर उनकी माया छोड़ कि सी की ओर न
देख करके अकेले चले गये। इस सत्तरहवें
पर्व का नाम महाप्रास्थानिक पर्व है, इसमें
तत्त्वदर्शी महर्षि ने तीन अध्याय और तीन सौ,
तेइस श्लोक कीर्तन किये हैं।
अनन्तर अमानुषी आश्चर्य, स्वर्गारोहणपर्व
जानिये। स्वर्ग से देवयान उपस्थित होनेपर
महाप्राज्ञ धर्मराज, सदय हृदय से अपने साथी
कुत्ते को छोड़कर जाने में सममत नहीं हुए।
महात्मा युधिष्ठिर की इस प्रकार की अटल
धर्मनिष्ठा, देखकर धर्म ने कुत्ते का स्वरूप
छोड़कर युधिष्ठिर की दर्शन दिया। युधि-
ष्ठिर को धर्मसहित स्वर्गारोह होने पर देवदूत
ने छलपूर्वक उनकी नरक दिखाया; इससे
उनकी बड़ी कठोर यातना मिली। धर्मात्मा
युधिष्ठिर ने उस नरक में यमराज के वशीभूत
अपने भाइयों का कंसणस्वर श्रवण किया।
इन्द्रजी और धर्मराज दोनों ने युधिष्ठिर को
“ऐश्वर्य भोगने का यही फल है” ऐसा कहकर
वह सब विषय दिखाये। युधिष्ठिर आकाश-
स्थित गङ्गाजी के जल में स्नानपूर्वक मानव शरीर
छोड़कर देवलोक में अपने धर्म से मिले हुए
स्थान को प्राप्त कर देवराज और दूसरे
देवताओं के सहित पूजे जाकर परमानन्द
भोगने लगे। धीशक्तिमान् व्यासदेव ने
अठारहवें पर्व में यह सब विषय कहे
हैं, हे तपोधन। महात्मा परमर्षि ने इस

पर्व में पांच अध्याय और दो सौ नौ श्लोक
रचे हैं।
इस प्रकार से सम्पूर्ण अठारह पर्व कहे गये
हैं। इसके पश्चात् खिल हरिवंश और भविष्य-
पर्व कीर्तित हुए हैं। महर्षि व्यासजी ने उस
में बारह सहस्र श्लोकों की संख्या की है।
महाभारत के यह सब पर्वसंग्रह कहे चुके।
अठारह अज्ञीहिणी सेना युद्ध करने के निमित्त
एकत्र होने पर अठारह दिनों तक अति कठोर
युद्ध हुआ था।
जो ब्राह्मण, चतुर्वेद, वेदाङ्ग और सम्पूर्ण
उपेनिषत् से ज्ञात हैं, पर महाभारतीय उपा-
ख्यान को नहीं जानते, वह कभी विज्ञ नहीं
कहे जा सकते हैं। अपार बुद्धिमान व्यासदेव
जी ने महाभारत को अर्थशास्त्र, कामशास्त्र और
अति-विस्तृत धर्मशास्त्र करके निर्दिष्ट किया
है। जैसे पुष्कोयल का कूजन श्रवण करके
कौवे की कर्कश बोली सुनने की इच्छा नहीं
होती, तैसीही इस उपाख्यान को सुनने से और
कुछ सुनने की अभिलाषा नहीं रहती। जैसे
पञ्चभूतों से तीनों प्रकार लोकों की उत्पत्ति
होती है तैसीही इस सर्वश्रेष्ठ इतिहास से
कवित्व-बुद्धि उपजती है। जैसे जरायुज, अण्डज,
स्वेदज, उद्भिज्ज यह चार प्रकार की प्रजा
आकाश में ही रहती हैं, तैसीही सम्पूर्ण पुराण
इस उपाख्यान में है। जैसे आश्चर्य-चित्तक्रिया
सब इन्द्रियों का आश्रयरूपी हैं, तैसीही यह
उपाख्यान दान, अध्ययन आदि क्रिया और
शम, दम आदि गुणों का आश्रयरूपी हुआ है।
जैसे भोजन विना शरीर धारण का कोई दूसरा
उपाय नहीं है, तैसीही इस उपाख्यान के आश्रय
विना भूमण्डल में कोई भी आख्यान विद्यमान
नहीं है। जैसे उन्नति चाहनेवाला भृत्य सहशी
भूपाल की शरण लिता है, तैसीही श्रेष्ठ कवि-
कुल कवित्तशक्तिकी उन्नति के लिये इस महा-
भारत को आश्रय करते हैं। जैसे की

आश्रम सदाचारयुक्त गृहस्थाश्रम के समान नहीं हो सकता है, तैसीही किसी कविकृत कोई काव्य इस काव्य के समान नहीं हो सकेगा । सदा उद्योगी बने रहो और धर्म में तुम्हारी प्रवृत्ति हो, क्योंकि वह एक धर्मही परलोक का मित्र है, अर्थ और स्त्री आदि सब भोगकी वस्तु चतुर जनोंसे भली प्रकार सेवित होनेपर भी कभी अपनी ओर स्थिर नहीं होतीं । महाभागवान् द्वैपायनजी के दोनो हीठों से निकले हुए अप्रमेय, परम पवित्र ; पापविनाशी परम कल्याण-दायी महाभारत को पाठ करने के समय जो उसे सुनते हैं, उनकी पुष्करतीर्थ के जल में नहानेका क्या प्रयोजन है ? ब्राह्मण दिनोंकी इन्द्रियों से जो कुछ पाप करते हैं, संध्या को महाभारत-का नाम कीर्तन करने से उन पापों से मुक्त होते हैं । और रात्रि को तन मन वचन से जो पाप करते हैं, प्रातःकाल में महाभारतका नाम गान कर उससे कूटते हैं । वेदिविद् ब्राह्मण को सुवर्णशृङ्खल युक्त सौ गौ दान करनेवाली वज्रश्रुतजन और सदा सुपवित्र भारतीय कथा सुननेवाला इन दोनों को तुल्य फल लाभ होता है । जैसे मनुष्यगण अर्णव-यान पर परम सुखसे विस्तीर्ण समुद्र की पार कर सकते हैं, तैसीही पहिले इस पर्वसंग्रह को सुनने से इसके द्वारा अति श्रेष्ठ महार्थयुक्त इस महत् आख्यान-रूपी सागर की सुखसे पार कर सकते हैं ।

आदिपर्व में दूसरा अध्याय और पर्व संग्रहपर्व समाप्त ।

वह रोता हुआ अपनी माता के पास जा पड़ा । उसे रोते देखकर माता ने पूछा, “तुम क्यों रो रहे हो ? किसने तुमको मारा है ?” माता से पूछे जाकर कुत्ते ने उत्तर दिया, “जनमेजय के भाइयोंने मुझको मारा है ।” उसकी माता बोली, “कदाचित्त तुमने वहां कोई दोष किया होगा, सो उन्होंने तुमको मारा है ।” कुत्ते ने फिर कहा, “नहीं मैंने कोई दोष नहीं किया, यज्ञका घृत भी नहीं चाटा और न उस पर दृष्टि दी थी ।” यह सुनकर उसकी माता की बड़ा दुःख हुआ और जहां महाराज जनमेजय भाइयोंके साथ दीर्घ यज्ञ अनुष्ठान कर रहे थे, उस यज्ञस्थल में उपस्थित होकर क्रोध दिखाकर जनमेजय से कहा, “मेरे इस पुत्रने तुम्हारा कोई दोष नहीं किया, यज्ञ का घृत भी नहीं चाटा और न उस पर दृष्टि दी, फिर तुमलोगोंने क्यों उसको मारा है ?” उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया, तबपुनः सरमा नाम्नी देवकुत्तीने उनसे कहा, “जो कि तुमने मेरे निर्दोषी पुत्र को मारा है, सो तुमको अलक्षित भय आकर घेर लेगा ।” देवकुत्ती सरमा के इस प्रकार से शाप देने पर, जनमेजय की बड़ी घबराहट और उदासी आई ।

अनन्तर उस यज्ञ समाप्त होने पर महाराज जनमेजय हस्तिनापुर में आकर एक योग्य पुरोहित के अन्वेषण के लिये बड़ा करने लगे जो कुत्ते के शाप से मुक्त कर सकें । एक दिन मृगया को निकल गये उन्होंने अपने राज्य ही के किसी एक प्रदेश में एक आश्रम देखा । उस आश्रममें श्रुतश्रवण नामके एक ऋषि वसते थे, उनके सोम नामक एक परम तेजस्वी पुत्र थे । परीक्षित पुत्र जनमेजय ने उस ऋषिपुत्र के समीप जाकर पुरोहित बनाने की प्रार्थना की और पिता की दण्डवत् कर बोले, “हे भगवन् ! आपके यह पुत्र मेरे पुरोहित होवे ।”

के ऐसी प्रार्थना करने पर ऋषिवर बोले, “हे जनमेजय ! मेरा यह पुत्र महातपस्वी, सदा वेदपठन में नियुक्त और मेरे तपोवीर्य युक्त है। एक सर्पिण ने मेरा वीर्य पी लिया था, उसीसे उसके गर्भ में इसने जन्म लिया है, यह तुमको सब शर्पों से मुक्त कर सकेगा ; केवल महा-देवजी के दिये हुए शापको रोक नहीं सकेगा। इसका यह एक गुड़ नियम है, कि कोई ब्राह्मण इस से जो कुछ प्रार्थना करेगा, यह उनको वही दान कर देगा, यदि तुम इस वतका साहस कर सको, तो मेरे इस पुत्र को ले जाओ।” ऋषि के ऐसा कहने पर जनमेजय बोले, भगवन् ! आप जो कहते हैं, वही होगा।” आगे वह पुरोहित को सङ्ग लेकर राजधानी में आकर भाइयों से बोले, “इस ऋषिकुमार को मैंने पुरोहिता में वरण किया है। यह जब जो कष्ट कहेंगे, तुम तभी बिना विचारे वह पूरा करना।” जनमेजय के भादृगण इसप्रकार आदिष्ट होकर ऋषिकुमार की आज्ञा पालने लगे। महाराज जनमेजय भाइयों को वह आज्ञा देकर तक्षशिला देशको जीतने गये और उस देश को अपने वश में करलिया।

जब राजा जनमेजयने तक्षशिला देश की जीता था, उस समय आयोदधीस्य नामके जो एक ऋषि थे, उसके उपमन्यु, आरुणि और वेद, यह तीन शिष्य थे। ऋषिने एक समय पाञ्चाल देशीय शिष्य आरुणि को यह आज्ञा देकर, कि “बेटा आरुणे ! तुम क्षेत्र में जाकर बांध बांधो, क्षेत्र में भेज दियो।” आरुणि गुरु से आदिष्ट होकरके वहाँ जाकर बड़े बड़े कष्ट उठाने पर भी जब बांध की बांध नहीं सका, तब अन्तमें एक उपाय यह ठहराया, कि क्षेत्र की मोरी में जाकर लेट रहा। उसके लेटने पर जल की गति भी रुक गई।

अनन्तर एकदिन आयोदधीस्य ने शिष्योंसे पूछा, “पाञ्चाल देशी आरुणि कहां गया है?”

शिष्योंने उत्तर दिया, भगवन् ! आपहीने उसको क्षेत्रका बांध बांधनेकी भेजा है। शिष्योंसे यह सुनकर आयोदधीस्यने कहा, “चलो, जहां आरुणि गया है, हम सब वही चलें।” आगे वह बांधके पास पड़चकर चिल्लाकरके पुकारने लगे, “बेटा पाञ्चाल्य आरुणे ! कहां हो ? चले आओ।” आरुणि उपाध्याय की बात सुनकर उस बांधसे एकायक उठकर उनके निकट उपस्थित हुआ और कहा, “भगवन् ! मैं आया हूँ ; आपके क्षेत्र का जल निकल रहा था, जब किसी प्रकार उसे रोक नहीं सका, तब अन्तमें वहाँ लेटा, इसी से जलका निकलना बन्द हुआ।” इस समय आपके पुकारने पर एकायक क्षेत्र से निकल कर आपके पास आ पड़चा हूँ और प्रणाम करता हूँ, आप आज्ञा कीजिये इस समय कौनसा कार्य करना होगा।” आरुणि की बात पूरी होनेपर उपाध्यायने कहा, “बेटा ! क्षेत्र की मोरीसे निकल आये हो, तो तुम उद्दालक नास से प्रसिद्ध होगे।” यह कह कर उपाध्याय उस पर कृपाकटाक्ष कर बोले, “जोकि तुमने तन मन वचन से येरी आज्ञा पालन की है, तो तुम्हारा मङ्गल होगा और सम्पूर्ण वेद और धर्मशास्त्र तुम्हारे मन में प्रकाशित रहेंगे।” आगे आरुणि उपाध्याय की आज्ञा से मनमाने देश को पधारा।

आयोदधीस्यके दूसरे शिष्य का नाम उपमन्यु था। उपाध्यायने उसको यह कहकर, कि “बेटा ! तुम गोरक्षा करो,” गोरक्षा के लिये भेज दियो। उपमन्यु उपाध्याय के वाक्यानुसार गोरक्षा करने लगा। दिन भर गोरक्षा कर सन्ध्या की शुरू के सामने आकर दण्डवत् किया करता था। एक दिन उपाध्यायजी उसकी पृष्ठ देखकर बोले, “बेटा उपमन्यु ! तुमको बहुत पृष्ठ देखता हूँ, तुम क्योंकर भूख मिटाते हो ?” उपमन्यु बोला, “मैं भिक्षासे ही जीविका निर्वाह कर लेता हूँ।”

बोले, कि, “मेरी आज्ञा बिना भिक्षा का अन्न भोजन न करता ।” उपाध्याय के ऐसी आज्ञा करने पर वह भिक्षा से जो कुछ पाता था, सब गुरु को सङ्कल्प कर छोड़ता था । उपाध्याय के उसकी सब भिक्षान्न ले लेने पर वह ‘ऐसाही हो’ कह कर गौरक्षा करनेकी जाता था । इस प्रकार से नित्य दिनभर गौरक्षा कर रात्रि की गुरु के घर में आकर उनकी नमस्कार किया करता था । तिस पर भी उसको पुष्ट देखकर उपाध्यायजी बोले, “बेटा-उपमन्यो । तुम्हारा सब भिक्षान्न तो मैं ले लेता हूँ ; अब तुम किस प्रकार से भोजनकार्य निर्वह करते हो ?” उपमन्यु बोला, “पहिली बारकी भिक्षा से जो कुछ मिलता है, वह आप को देकर मैं फिर दूसरी बार भिक्षा करता हूँ, उसी से मेरी जीविका निर्वह होती है ।” उपाध्याय बोले, “ऐसा करना गुरुकुल में रहनेवाले को उचित नहीं है, इससे दूसरे भिक्षार्थियों की वृत्ति मारी जाती है, ऐसा करने के हेतु तुम्हारा बड़ा लोभ प्रकाश होता है ।” उपमन्यु यह कह कर कि “फिर ऐसा न करूँगा” पूर्ववत् गौरक्षा करने लगा और दिनभर गौरक्षा करके सन्ध्या की गुरु के घर में आकर पूर्ववत् गुरु के सामने खड़े हो कर नमस्कार किया करता था । उपाध्याय ने तिस पर भी उसको पूर्ववत् पुष्ट देखकर फिर पूछा, “बेटा-उपमन्यो । तुम भिक्षा कर जो कुछ पाते हो, वह सबतो मैं ले लेता हूँ, फिर दूसरी बार तुम भिक्षा भी नहीं करते हो, तिसपर भी तुमको वृद्धत पुष्ट देखता हूँ, सो इन दिनों तुम क्या खाते हो ?” उपमन्यु बोला, “इन गौओं का दूध पीकर जीता हूँ ।” उपाध्याय बोले, “मैंने तुमको गौओं का दूध पीने नहीं कहा ; सो मेरी आज्ञा बिना दूध पीना उचित नहीं है ।” उपमन्यु तथास्तु कहकर प्रतिज्ञा पूर्वक गौरक्षा करके फिर गुरु के घर में आकर पूर्ववत् नमस्कार कर खड़ा हुआ । उपाध्याय

ने उसकी पूर्ववत् पुष्ट देखकर कहा, “बेटा-उपमन्यो ! भिक्षान्न भोजन नहीं करते, दूसरी बार भिक्षा भी नहीं करते, दूध भी नहीं पीते, तौभी पुष्ट बने हो, अब किस प्रकार से भूख मिटाते हो ?” उपाध्याय के ऐसा कहने पर उपमन्यु बोला, “जब बछड़े अपनी अपनी माताओं के स्तन पीते हैं, तब उनके मुँह से जो फेन निकल कर गिरता है, मैं उसी को पीकर प्राण बचाता हूँ । उपाध्याय बोले, “यह सबगुणवान् बछड़े तुम पर दया करके वृद्धत अधिक फेन उगिल डालने हैं ; तुम उसी फेनको पीकर बछड़ों की वृत्ति लोप करते हो ; सो फेन पीना भी तुमको अनुचित है ।” उपमन्यु तथास्तु कहकर अङ्गीकार करके फिर गौरक्षा करने लगा । पर गुरु के मना करनेके कारण तौ भिक्षान्न भोजन किया, न दूसरी बार भिक्षा की, न दूध पीया और न उगिला हुआ फेन ही पीया, सो एक दिन वन में भूख से अति कातर होकर उसने मदारका पत्ता खालिया ; वह चारा, तीता, कड़ुआ, रुखा, पचने में तीखा पद खाकर उसने अपनी आंखें बिगाड़ी । वह उसीसे अन्धा हुआ ; आगे वन में धूमता हुआ एक कूँये में गिर पड़ा ; सूर्यदेव अस्ताचल चोरी पर चढ़ गये ; तौभी जब उपमन्यु गृह में न लौटा, तब उपाध्याय ने शिष्यों से पूछा, “उपमन्यु क्यों नहीं आता है ?” शिष्यों ने कहा, “कदाचित् गौरक्षा के लिये उपमन्यु वन में गया है ।” उपाध्याय बोले, “मैंने उसकी सब प्रकार के भोजन करने को मना कर दिया है, इससे वह निःसन्देह क्रोधित हुआ है, सो अबतक न आता हीगा ; अब उसकी खोज करनी उचित है ।” यह कलकर शिष्यों के सङ्ग वन में जाकर उनकी पुकारने लगे, “बेटा उपमन्यो ! कहाँ हो ? आओ ।” उपमन्यु गुरु की बात सुनके चिल्लाकर बोला, “मैं इस कूप में पड़ा हूँ ।” उपाध्याय ने पूछा, “तुम कैसे कूप में आ

गिरे ?” उपमन्यु बोला, मदारका पत्ता खाकर मैं अन्धा होगया हूं, सो कूप में गिर गया हूं ।” उपाध्याय बोले, “दोनों अश्विनीकुमारों का स्तव करो, वे देवताओंके चिकित्सक हैं, तुम्हारी आंखें बना-देंगे ।” उपाध्याय की ऐसी आज्ञा पाकर उपमन्यु ऋग्वेद-विहित वाक्योंसे दोनों अश्विनीकुमारों का स्तव करने लगा ।

हे दोनों अश्विनीकुमार ! तुम सृष्टि-के पहिले विद्यमान थे और चिरगर्भरूप में पहिले उत्पन्न हुए थे ; तुमही विचित्र प्रपञ्च का स्वरूप धारण कर प्रकाशमान होते हो ; देश, काल और अवस्था द्वारा तुम्हारा निर्णय नहीं हो सकता, सो मैं वाक्य और तपस्या द्वारा तुम्हें आत्मस्वरूपमें प्राप्त करना चाहता हूं । तुम वृत्ति और चैतन्यका रूप धारण कर द्योतमान होते हो ; शरीररूपी वक्ष पर पक्षी के स्वरूप में चढ़े हो और प्रकृतिगत विक्षेपनीशक्ति से सम्पूर्ण जगत् की रच रहे हो ; तुम सत्त्व, रज, तम, इन तीन गुणों से अतीत और मनके अगोचर हुए हो । तुम ज्योतिर्मय सङ्गरहित परब्रह्मस्वरूप, लयपाये जगत् के अधिष्ठान और भ्रम औ चय-वर्जित हुए हो । तुम सुन्दर नाकयुक्त अर्थात् शरीर धर्मयुक्त हो, तिस परभी काल की जीत चुके हो । तुम दिवाकरकी रचकर दिन और रात्रिरूपी शुक्ल और कृष्ण तांतों से वर्ष रूपी वस्त्र बना रहे हो ; इसी से कर्म-फल भोगने की लोकों का पथ बना देते हो । जीवरूपी पक्षी के परमात्मा की कालशक्ति से ग्रसित होने के कारण उसको मोक्षरूपी महत्-सौभाग्य देने की अश्विनीकुमारों के स्वरूप में प्रकटित हुए हो । रागादि विषयों से जकड़े हुए बड़े एवं जन जब तक इन्द्रियों के अधीन फंसे रहते हैं, तबतक तुम लोगों को शरीरधारो समझते हैं । अहीरात्ररूपी तीन सौ साठ गाय-सबको पजाने और सबकी नष्ट करनेवाला वर्षरूपी

जो बकड़ा उत्पन्न करती हैं और तत्व जानने की अभिलाषा रखनेवाली जिस बकड़े की सहायता से नानाक्रियाओं में तत्वज्ञानरूपी दूध दूह लेते हैं, तुम उस वर्षके उपजानेवाले हुए हो । वर्षरूपी जिस एकही धूर में अहीरात्ररूपी सातसौ बीस आरे बारह मासरूपी नाहों के अवलम्बन से हैं, तुमने उस अनियत मायामय अक्षय कालचक्र की नियुक्त किया है, वह कालचक्र इस लोक और परलोक की सम्पूर्ण प्रजा को स्पर्श कर रहा है । मेषादि राशिरूपी बारह आरे, ऋतुरूपी छः धूरे और वर्षरूपी एक अक्षवाला तथा कर्मफलरूपी आधार युक्त जो एक चक्र है, कालके अधिष्ठाता देवगण भी जिसमें स्थित हैं, तुम सुभी उस कालचक्र से युक्त करो, मैं जन्मादि दुःख से बड़ा उदास हो रहा हूं । तुम विषय आदि सम्पूर्ण प्रपञ्चों से भरे हो, तुम ही कर्मफलरूपी हो, तुमही आकाशादि के लय के कारण हो, तुमही अनादि अविद्यादोष से भोग्य पदार्थों में इन्द्रिय संयोग करके परम-सुख से विचर रहे हो और इधर तुमही परब्रह्म-रूपी हो ; हे दोनों अश्विनीकुमार ! तुमने पहिले दशदिशा, सूर्य और आकाशको रचा ; उस सूर्ययुक्त दिशा और काल के अनुसार ऋषिलोग वेदविहित सम्पूर्ण कर्मों का अनुष्ठान करते हैं और देवता तथा मनुष्य अपने अपने अधिकार के अनुसार ऐश्वर्य भोगते हैं । तुमने पञ्चतन्मात्रको रचकर उनके परस्पर मिलावट से नाना प्रकारके पदार्थ उपजाये हैं और उसीसे इन चौदह भुवनों की सृष्टि हुई है । प्राणोगण देह, इन्द्रिय और बुद्धिरूपी विकारके वश में होकर विषयको भोग रहे हैं और देवता, मनुष्य और पशुआदि सब इस पृथ्वी की आश्रय किये हुए हैं ; हे प्रसिद्ध दोनों अश्विनीकुमार ! मैं तुम्हारा पूजा करता हूं । और तुम्हारे उत्पन्न किये हुए अनन्त आकाशके कार्योकी भी पूजा करता हूँ ।

कर्मफलके बिना देवगण भी किसी कार्य में सफलमनीरथ नहीं होसकते; तुम उस कर्मफल के उपजानेवाले और नित्यमुक्त हो। तुम सूर्यके स्वरूप में किरणद्वारा जलरूपी गर्भ धारण करते हो, वह किरण जीवनहीन होने परभी गर्भ धारणकरके प्रसव करती है, वह जलरूपी गर्भ मेघ से जन्म लेते ही भूलोक में फैल जाता है। लोकों के जीवन के लिये तुमही उस जीवनरूपी गर्भ को त्याग करते हो।

उपमन्यु के इस प्रकार स्तव करने पर दोनों अश्विनीकुमार उस स्थान में आनकर बोले, कि हम तुम्हारे स्तव से प्रसन्न हुए हैं, तुमको पिष्टक देते हैं भोजन करो। अश्विनी कुमारों से ऐसी आज्ञा पाकर उपमन्यु बोला, “तुम कभी मिथ्या नहीं बोलते, पर मैं गुरुको बिना निवेदन किये यह पिष्टक नहीं खा सकता।” अश्विनीकुमारों ने कहा, “पहिले तुम्हारे उपाध्याय ने हमारा स्तव कियाथा, हमारे प्रसन्न होकर ऐसा पिष्टक देने पर उन्होंने गुरुको बिना निवेदन किये भोजन कर लिया था; तुम्हारे उपाध्याय ने जैसा किया था, तुम भी तैसाही करो।” उपमन्यु ने उत्तर दिया, “हे दोनों अश्विनीकुमार! आप कभी मिथ्या बचन नहीं बोलते, तौभी मैं तुम से विनय कर कहता हूं, “गुरु को बिना निवेदन किये यह पिष्टक खा नहीं सकूंगा।” दोनों कुमार बोले, “तुम्हारी ऐसी अटल गुरु-भक्ति देखकर हम बड़े प्रसन्न हुए। तुम्हारे गुरुके काले लोहेके दांत हुए; पर तुम्हारे दांत सोने के होंगे, अर्थात् तुम्हारे गुरु, शिष्यों से जिस निर्दयता से व्यवहार करते हैं, तुम तैसा न करके उन पर दयाशील होगी। बेटा! तुम्हारी सुन्दर आंखें होंगी और तुम्हें मङ्गल प्राप्त होगा।”

अश्विनीकुमारों के इस प्रकार वर देने पर उपमन्यु के सुन्दर नेत्र हुए। आगे उसने

उपाध्याय के सम्मुख आकर नमस्कार किया और प्रारम्भ से अन्त तक सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। उपाध्याय वह सुन कर प्रसन्न होकर बोले, अश्विनोक्तमारों ने जो कुछ कहा है, बची होगा, तुमको मङ्गल प्राप्त होगा, और सम्पूर्ण वेद और धर्मशास्त्र तुम्हारे स्मरण-मार्ग में प्रकटित रहेंगे। गुरुभक्त उपमन्यु को यह परीक्षा हुई।

उक्त आयोदधीम्य के तीसरे शिष्यका नाम वेद था। उपाध्याय ने उस की आज्ञा करी, “वेद वेद। तुम कुछ दिन मेरे घरमें रहकर गुरु-सेवा करो, तुम्हारा मङ्गल होगा।” वेद तथास्तु कहकर बह्मकाल गुरुकुल में रहकर गुरु-सेवा करने लगा। उपाध्याय उस पर वैल के समान नित्य नाना भार डाल देते थे। उसने भी शीत, ग्रीष्म, क्षुधा, घ्यास आदि सब दुःख सह लेकर और किसी बात में विरोधी न होकर बह्मकाल तक गुरुसेवा की। वह काल के पश्चात् उपाध्याय प्रसन्न हुए, इसी से वेद ने कल्याण और सर्वज्ञता लाभ की। उसने उपाध्याय की आज्ञा से गुरुकुल से लौट कर गृहस्थाश्रम अवलम्बन किया।

निज गृह में बसने के काल में उनके तीन शिष्य हुए। वह शिष्यों को “कर्म करो वा गुरुसेवा करो” कुछ बोलता नहीं था, क्योंकि वह गुरुकुल में बसने का दुःख विलक्षण ही जानता था, सो शिष्यों को कष्ट देना नहीं चाहता था। एक समय जनमेजय और पौण्ड्रिन दो क्षत्रियों ने आकर वेद को उपाध्याय के पद में वरण किया। एक दिन वेद ने याजन-कार्य में जानेके कालमें उत्तङ्ग नामक शिष्य की आज्ञा दी, “हे उत्तङ्ग! मैं चाहता हूं, कि मेरी अनुपस्थिति में गृहमें जो कुछ अभाव हो, तुम उन को पूरा किया करो।” वेद उत्तङ्ग की यह आज्ञा देकर बाहर चले गये। गुरुसेवा-शील उत्तङ्ग गुरुनियोग का अनुष्ठान कर के

गुरुकुल में बसने लगा । उस काल में एकदिन उपाध्याय के घर की स्त्रियाँ एकत्र होकर उतङ्ग को बुलाकर बोलीं, “उतङ्ग ! तुम्हारी उपाध्यायनी ऋतुमती हुई है, तुम्हारे उपाध्याय भी घर में नहीं है, परदेश की चले गये है, सो जिस से उनकी ऋतु खाली न जाय, तुम तिसका विधान करो, क्योंकि वह बड़ी उदास हुई है ।” उतङ्ग ऐसी आज्ञा सुनकर बोला, मैं स्त्रियों की बात सुनकर ऐसा कुकर्म नहीं कर सकूँगा, उपाध्याय ने मुझे ऐसी आज्ञा नहीं दी, कि “तुम कुकर्म भी करना ।”

कुछ कालान्तर उपाध्याय परदेश से घर में लौट आये और यह सब वृत्तान्त जान कर उतङ्ग पर प्रसन्न होकर बोले, “बेटा उतङ्ग ! तुम्हारा कौनसा प्रिय कार्य करूँ ? तुमने धर्मानुसार मेरी सेवा की है, सो परस्पर हम में प्रीति बढी है, अब आज्ञा देता हूँ, कि तुम घर लौट जाओ तुम्हारी सम्पूर्ण अभिलाषा पूर्ण होगी ।” उपाध्याय के ऐसा कहने पर उतङ्ग बोला, “मैं आपका कौनसा पलट्टे में उपकार करूँ ? कहा है, जो विद्या पढ़ाकर दक्षिणा नहीं लेता और जो धर्मपूर्वक विद्या पढ़ कर दक्षिणा नहीं देता, उन दोनों में एक मर जाता है और उनमें आपसका हेतुभाव खड़ा होता है, सो आपकी आज्ञा पाने से मैं गुरुदक्षिणा बटोरने का प्रयत्न करूँ । उपाध्याय बोले, बेटा उतङ्ग ! तब तुम और कुछ दिन मेरे घर रहो, आगे कहूँगा ।”

कुछ दिनों के पश्चात् उतङ्ग उपाध्यायजी से बोला, “आज्ञा कीजिये, कैसी गुरुदक्षिणा देने से आप प्रसन्न होंगे, मैं उसे लाने की चेष्टा करूँ ।” उतङ्ग के ऐसी प्रार्थना करने पर उपाध्याय बोले, “बेटा उतङ्ग ! तुम बार बार मुझे कह रहे हो, गुरुदक्षिणा दूँगा, सो तुम यह के भीतर जाकर उपाध्यायनी से पूछो, कि गुरुदक्षिणा के निमित्त क्या लाना होगा ? वह जो कहेगी,

वही लाना । उपाध्याय के ऐसी आज्ञा करने पर उतङ्ग ने उपाध्यायनी से पूछा, “भगवति उपाध्यायने मुझे घर जाने की आज्ञा दी है, पर मैं आपकी मनमानी गुरुदक्षिणा लाकर ऋणमुक्त होकर घर जाना चाहता हूँ ; सो आप आज्ञा कीजिये, कि गुरुदक्षिणा के निमित्त क्या लाना होगा ?” उतङ्ग के ऐसी प्रार्थना करने पर, उपाध्यायनी बोली, “बेटा उतङ्ग ! राजा पौष के निकट जाकर, उनकी स्त्री के धारण किये हुए दोनों कुण्डल मांग लाओ । आगामी चौथे दिनकी पुण्यक नामक व्रत का उत्सव होगा, मैं उस दिन उन दोनों कुण्डलों से सजधज कर ब्राह्मणों की अन्न बांटना चाहती हूँ । सो तुम यही कार्य करो, ऐसा करने से तुम्हारा मङ्गल होगा, और इसके न करने से किसी प्रकार से तुम्हारी भलाई नहीं है ।” उपाध्यायनी के ऐसी आज्ञा करने पर उतङ्ग उन कुण्डलों को लाने गया । जाने के कालमें पथ में देखा, कि एक बृहदाकार पुरुष एक बड़े भारी बैल पर चढ़ कर चले जा रहे हैं । उन्होंने उतङ्ग को देखकर कहा, “ऐ उतङ्ग ! इस बैल का यह गोवर खाओ ।” उतङ्ग के गोवर न खाने की इच्छा दिखाने पर उस पुरुष ने फिर कहा, “उतङ्ग ! खाजाओ, मत विचारो । पहिले तुम्हारे उपाध्यायने भी यह किया था ।” यह सुनकर उतङ्ग बैल का गोवर और मूत्र खा पोंकर के उठकर भ्रमवश पथमें चलते ही चलते आचमन कर चला गया ।

अनन्तर पौष नाम चतुर्विध के निकट उपस्थित होकर देखा, कि वह आसन पर विराज रहे है । उतङ्ग उनकी आशीस देकर बोला, “मैं कुछ भिक्षा के निमित्त आप के पास आया हूँ ।” पौष ने पांव कूकर कहा, “मैं आपका नौकर पौष हूँ, कहिये क्या करना है ।” उतङ्ग बोला, “मैं गुरुदक्षिणा लिये दो कुण्डल मांगने आया हूँ,

पत्नी जो दो कुण्डल पहिनती हैं, आप उन्हींको दान दीजिये ।” पौष्य बोले, “भीतर जाकर मेरी स्त्रीसे मांगिये ।” यह सुनकर वह भीतर जाकर और पौष्य की स्त्री को न देख कर पौष्यके निकट लौट आकर बोला, “सुभी इस प्रकार भूठ मूठ ठगना नहीं चाहिये, भीतर आपकी धर्मपत्नी नहीं हैं, रहती तो दीखतीं ।” पौष्य क्षणकाल शोच कर बोले, “भगवन् ! स्मरण कर देखिये, कि अवश्यही उच्छिष्ट आपके सुहमें है । उच्छिष्टसे अपवित्र जन उसकी भेंट नहीं कर सकता, वह पतिव्रता है, सो वह अशुचि-जन को दिखाई नहीं देती । पौष्य के ऐसा कहने पर उत्तङ्ग ने स्मरण कर कहा, “हां मैंने आते समय एकायक उठकर चलते-हो चलते आचमन किया था ।” पौष्य बोले, “आपही की भूल हुई । जाते हुए वा खड़े खड़े आचमन करना ठीक नहीं है ।” उत्तङ्ग ने “ठीक कहा” यह कह कर पूर्व और मुंह फेरके बैठ कर हाथ, पांव, मुंह धोकर बिना शब्द तीन बार फेनरहित, शीतल, हृदय-तक पङ्कचने-योग्य जल पीकर दोवार दोनों होठों को मलकर और विहित इन्द्रियों को छू करके आचमन कर अन्तःपुरमें प्रवेश किया और वहां क्षत्राणी को देखा । पौष्य की स्त्री उत्तङ्गकी देखकरके उठकर नमस्कार पूर्वक स्वागत पूछकर बोली, “भगवन् ! आज्ञा कीजिये, क्या करूं ?” उत्तङ्ग बोला, “गुरुदक्षिणा देने की मैं आपके दोनों कुण्डल मांगता हूं, सुभी दान कर दें ।” उसकी यह गुरुभक्ति देखकर पौष्य-पत्नी आते प्रसन्न हुई और यह सोचकर, कि “यह सुपात्र है, इनकी प्रार्थना अस्वीकार न करनी चाहिये” ऐसा विचार कर कानों से कुण्डल खोलकर उनको दे दिये और कहा, “नागराज तत्त्व इन कुण्डलों को वहुत चाहते हैं, सो बड़ी सावधानता से ले जाइये ।” यह सुनकर उत्तङ्ग बोला, “भग-

वति । मत सोचिये, तत्त्वक सुभीसे कुण्डल नहीं ले सकेगा ।” यह कह कर पौष्य की स्त्रीसे विदा होकर पौष्य के पास आपहुंचा और कहा, “हे पौष्य । सुभी परम सन्तोष लाभ हुआ । पौष्यने उससे कहा, “भगवन् । मदा सत्पात्र नहीं मिलते, आपभी सर्वगुणशील अतिथि उपस्थित है, सो याद करना चाहता हूं ; आप क्षण भर ठहरिये ।” उत्तङ्ग बोला, “ठहरा हूं, जो अन्न उपस्थित हो, आप वही शोध लाइये । पौष्यने वही स्वीकार कर जो अन्न उपस्थित था, वही लाकर उन्हें भोजन करने को दिया । उत्तङ्ग ने केशयुक्त और शीतल अन्न देखकर अशुचि समझकरके पौष्य से कहा, “जोंकि तुमने सुभीको अशुचि अन्न दिया है, सो तुम अन्ध होगे ।” पौष्य बोले, “तुम दोष देने के अयोग्य अन्नपर दोष डालते हो, सो तुम्हें सन्तान न होगी ।” उत्तङ्ग बोला, “अशुचि अन्न भोजन करने देकर पलटें में शाप देना उचित नहीं है । आप भली भांति देख लीजिये, यह अन्न अशुचि है वा नहीं ।” यह सुन कर पौष्यने उस अन्नकी परीक्षा कर उसकी अपवित्रता प्रत्यक्ष की ।

अनन्तर अन्नको मुक्तकेशी स्त्री का लाया हुआ, शीतल और केशयुक्त जानकर राजा पौष्य उत्तङ्ग ऋषिको प्रसन्न करने लगे और विनयसे कहा, “भगवन् । न जानकरके ही शीतल और केशयुक्त अन्न लाया हूं, अब आप से क्षमा मांगता हूं, सुभी अन्धा होना न पड़े ।” उत्तङ्ग बोला, “मेरी बात मिथ्या नहीं होती, आप अन्ध होकर अति शीघ्र नेत्रशील होंगे । आपने सुभीको जो शाप दिया है, वह न फलने पावे ।” पौष्य बोले “शाप लौटाने की सामर्थ्य सुभीमें नहीं है, अभीतक मेरा क्रोध शान्त नहीं हुआ, क्या आप नहीं जानते, कि ब्राह्मण का हृदय मक्खनके समान है, थोड़े ही में गल जाता है और बात उनकी तेज अस्तुरेके समान ।

है ; पर क्षत्रियों में यह दोनों ही विपरीत है अर्थात् बात उनकी मक्खन-तुल्य और हृदय तेज अस्तुरे के सदृश हैं । सो जाति-सिद्ध तेज-हृदय के हेतु उस शाप की लौटा नहीं सकूंगा, आप जाइये ।” उत्तङ्ग बोला, “आपने अन्न की अपवित्रता प्रत्यक्षकर सुभसे विनय किया, पहिले कहाथा, ‘दोषस्पर्शरहित अन्न के अशुचि होने का दोष लगातेही, सो तुम्हारे सन्तान नहीं होगी ।’ अब जब अन्न में दोष प्रत्यक्ष हो गया है, तब फिर वह शाप भुभ पर कार्य नहीं करेगा । अब मैं जाता हूं, यह कहकर उत्तङ्ग दोनों कुण्डल लेकर पधारा ।

पथ में देखा, कि एक नङ्गा सन्यासी कभी दीखता और कभी न दीखता हुआ आरहा है । अनन्तर उत्तङ्ग धरती पर दोनों कुण्डल रखकर पिशाव करने लगा । इसी बीच में वह सन्यासी शीघ्रतासे आकर दोनों कुण्डल लेकर दौड़ा । पिशाव होजाने पर उत्तङ्ग शुचि और संयत हो देवता और गुरु को नमस्कार कर बड़े वेगसे सन्यासीके पीछे दौड़ा । जब वहुत निकट पहुँचा, तब उसकी पकड़ लिया । तत्क्षक पकड़े जाकर सन्यासी का रूप छोड़ कर अपना रूप धरके उसी स्थान में एक चौड़े विल के भीतर जा घुसा, अनन्तर उस भारी विल से नाग-लोक में जाकर अपने घर में पहुँचा । पौष्यपत्नी की बात-स्मरण कर उत्तङ्ग तत्क्षक के पीछे चलने के लिये उस विल की लकड़ी से खोदने लगा, पर किसी प्रकार से सफल-मनोरथ नहीं हो सका । तब इन्द्रने यह देखकर, कि ब्राह्मण बड़ा कष्ट पारहा है, वज्र की आज्ञा करके भेजा, “वज्र जाओ, उस ब्राह्मण की सहायता करो ।” आगे वज्रने उस लकड़ी के अगले अंश में घुसकर विल की फाड़-दिया । तब उस विल के भीतर घुस करके नागलोक में जाकर उत्तङ्ग ने भांति भांतिके मन्दिर, राज-महल, गृहचोटी, द्वार और नाना प्रकार के

आश्चर्य क्रीड़ास्थान देखे । अनन्तर वह नागों की स्तुति करने लगे ।

ऐरावत जिन सर्पों के राजा है, जीलोग रणभूमि में सुशीभित और विजली तथा पवन के समान वेगवान् होकर मानों अस्त्र वर्षानि लगते हैं, ऐसे सुन्दर रूपधारी और विचित्र कुण्डलधारी ऐरावतवंशी नागगण देवलीक में सूर्य की भांति प्रकटित है । गङ्गाजी के उत्तर कुल में अनेक सर्पों के वासस्थान हैं, मैं वहां के उन नागों का भी स्तव करता हूँ । ऐरावत के बिना कौन जन सूर्य-किरणरूपी सेना में घूम घाम सकता है ? जब धृतराष्ट्र चलते हैं, तब उनके पीछे अष्टादस सहस्र आठ नाग दल बाधकर गमन करते हैं । ऐरावतके उन सब कनिष्ठ भाइयों की भी, धृतराष्ट्र के निकट के या दूरके हैं नमस्कार करता हूं । जो पहिले कुरुक्षेत्र और खाण्डवप्रस्थ में वसते थे, कुण्डलके निमित्त उन नागराज-तत्क्षक का स्तव करता हूँ । तत्क्षक और अश्वसेन यह दोनों नित्य के साथी होकर कुरुक्षेत्र में इक्षुमती-नदी के तट पर वसते थे । श्रुतसेन नामक तत्क्षक के जो कनिष्ठ भाता नामोंमें श्रेष्ठता पाने की प्रार्थना कर सूर्य की उपासनापूर्वक कुरुक्षेत्र में स्थित थे, मैं उन महात्मा की भी नमस्कार करता हूं । इस प्रकारसे श्रेष्ठ नागों के स्तव करने पर भी कुण्डल न पाकर विप्रकृषि उत्तङ्ग चिन्तायुक्त हुए । जब नागों की स्तुति करने परभी कुण्डल न मिले, तब उन्होंने देखा, कि दो स्त्रियां सुन्दर वेश्यायुक्त तांत में वस्त्र बना रहो हैं, उसके ताने सादे और काले रङ्ग के हैं और ऊँ बालकोंसे घुमाये जाते हुए बारह आरों का एक चक्र देखा ; एक पुरुष और एक सुन्दर घोड़ेकीभी देखा । उत्तङ्ग निम्नलिखित मन्त्र-वाक्य से उनके स्तव करने लगा ।

इस चौबीस पर्वयुक्त सनातन चक्र में तीन सौ साठ ताने लगाये गये हैं, ऊँ कुमार

धुमा रहे हैं। विश्वरूपिणी दोनों युवती इस ताने में सादे और काले सूत देकर सदा वस्त्र बनाती हुई सम्पूर्ण भूत और चौदहों भुवनों को धुमा रहो हैं। जो महात्मा दो कालेवस्त्र पहिनते हैं, जिन्होंने वज्रधारी होकर नमुचि और व्रतासुर को वध किया था; जो तीनों भुवनों को रक्षा करते हैं; जो लोको में सत्य और असत्य बांट देते हैं; जिन्होंने वैश्वानर के समान तेजोवान् सामुद्रिक घोड़े को प्राप्त किया है, उन त्रिलोकनाथ विश्वेश्वर पुरन्दर को नमस्कार करता हूँ।

उतङ्ग के ऐसे स्तव करने पर वह पुरुष उनसे बोले, तुम्हारे इस स्तव से मैं प्रसन्न हुआ हूँ, तुम्हारा कौनसा प्रिय कार्य करूँ। उतङ्ग उनसे बोला, “सम्पूर्ण सर्प मेरे वश में आवें।” उस पुरुषने फिर उतङ्ग से कहा, “इस घोड़े के मलहार में फूँकी।”

उतङ्गने उसे पुरुष की आज्ञा से घोड़े के मलहारमें फूँक दिया; इससे घोड़े के सर्वशरीर के छिद्रों से धूँआंसहित अग्निशिखा निकलने लगीं। अनन्तर उन अग्नि-शिखाओं से नाग-लोक गर्भ होने पर तक्षकने अग्निके भयसे डरकर और चिन्तित होकर उन दोनों कुण्डलों के साथ गृह से एकायक निकल कर उतङ्ग से कहा, “आप इन दोनों कुण्डलों को लें।” उतङ्ग ने कुण्डलों को लिया और उन्हें लेकर सोचने लगा, “आजन्ही तो उपाध्यायनी का पुण्यक-व्रत होनेवाला है, मैं भी बड़ी दूर आ पड़ा हूँ, क्योंकि उचित समय पर वहाँ पहुँच करके कार्य पूरा कर सकूँगा।” उतङ्ग ऐसा सोच रहा था, कि ऐसे समय में वह पुरुषवर उनसे बोले, “उतङ्ग इस घोड़े पर चढ़लो; ऐसा करने से थोड़े काल में तुम गुरु के घर में पहुँच सकोगे।” उतङ्ग “तथास्तु” कहके उस घोड़े पर चढ़कर उपाध्यायकुल में लौट आया।

इधर उपाध्यायनी स्नान करके बैठ कर

केश साफ करती और ऐसा सोचती हुई, कि “उतङ्ग अभी तक नहीं आया” शाप देने का विचार कर रही थी, कि इतने में उतङ्ग ने उपाध्याय के घर में प्रवेश करके उपाध्यायनी को प्रणामकर दोनों कुण्डल दे दिये। उपाध्यायनी उतङ्ग से बोली, “बेटा उतङ्ग? तुम्हारा मङ्गल होवे, तुम अच्छे अवसर में आ पहुँचे; अच्छा हुआ, कि मैंने तुमको बिना दोष शाप नहीं दिया; अब तुम्हारे मङ्गल का अवसर आ पहुँचा है, तुम मनमाने विषयमें सिद्धिलाभ करो।” अनन्तर उतङ्ग ने उपाध्याय को प्रणाम किया। उपाध्याय स्वागत पूछ कर बोले, “बेटा उतङ्ग! तुमको आनेमें इतनी देर काँ इई?” उतङ्गने उत्तर दिया दिया, “नागराज तक्षक ने कुण्डल लाने में मुझे विघ्न किया था, सो मैं नागलोक में गया था। वहाँ देखा, कि दो स्त्रियाँ तांतमें वस्त्र धीन रहो है, उस में जो सादे और काले रङ्ग के सूत है वह क्या है? और भी देखा, कि छः कुमारा से बारह आरवाला एक पहिया धुमाया जाता है। वह क्या है? एक पुरुष को देखा, वह कौन है? और बड़े भारी एक घोड़े को देखा, वह कौन है? पथ में एक बैल को देखा था, उस पर एक पुरुष चढ़े थे। उन्होंने विनयपूर्वक मुझ से कहा था, ‘बेटा उतङ्ग! तुम इस बैल का गोबर खालो, पहिले तुम्हारे उपाध्याय ने भी ऐसा ही किया था’; मैंने उनका वचन सुन कर उस बैल का गोबर खा लिया। जिन्होंने मुझे गोबर खाने कहा था, वह कौन है? मैं इन सब विषयों का पूरा वृत्तान्त आप से सुना चाहता हूँ। उतङ्ग के यह सब पूछने पर उपाध्याय बोले, “बेटा उतङ्ग! तुमने जिन दो स्त्रियों को देखा, वे धाता और विधाता हैं; जिन सादी और काली तांतों को देखा वे सब दिन और रात हैं; जिस चक्र को देखा वह वर्ष है; जिन छः कुमारों को उस बारह

आरेवाले चक्रको घुमाते देखा, वे कः ऋतु हैं ; और जिस पुरुष को देखा, वह इन्द्रजी है ; जिस अश्व को देखा, वह अग्नि है ; पथमें जानेके काल में जिस बैल को देखा, वह नागराज ऐरावत है ; उनपर जो चढ़े थे वह इन्द्र हैं । और तुमने जो गोवर भोजन किया वह अमृत है । जिस अमृत को खाने के कारण तुम नागलोक में जाने पर भी नष्ट नहीं हुए । वही भगवान् इन्द्र मेरे मित्र हैं, उन्होंने तुम्हारा कष्ट-देख कर दयायुक्त होकर ऐसी कृपा दिखाई है, इसीसे कुण्डल लेकर तुम लौट आ सके हो । अतएव हे सुशील ! मैं तुमको आज्ञा देता हूँ, तुम घर जाओ, मङ्गल प्राप्त होगी ।

भगवान् उतङ्ग उपाध्यायसे विदा लेकर तक्षक पर क्रोधयुक्त रहने के कारण, बदला लेने की इच्छासे हस्तिनापुर को पधारे । विप्रवर उतङ्ग विना विलम्ब हस्तिनापुर में जा कर महाराज जनमेजय के निकट उपस्थित हुए । अजय जनमेजय इसके पहिले तक्षकशिला-देश की जीतने गयेथे । वहां से जय लाभ करके लौट कर मन्त्रियों से वेष्टित हो सिंहासन पर आरूढ़ थे । ऐसे समय में उतङ्ग उनकी देखकर अवसर समझके, विधिपूर्वक अशीस देकर, साधुशब्दयुक्त सुशोभित वचनों से बोले, “हे श्रेष्ठ-नरनाथ ! अपना कर्त्तव्य न पालन करके तुम बालकके समान दूसरे कार्यों में लगे हो ।” श्रीउग्रश्रवाजी कहते हैं, कि उतङ्ग से इस प्रकार कहे जाकर महाराज जनमेजय विधिपूर्वक उनकी पुजा करके बोले, “मैं इन प्रजाओंका पालन कर अपना क्षत्रियधर्म रक्षा कर रहा हूँ, इस क्षण आप जो विचार कर यहा आये हैं, मेरा वह कर्त्तव्य ही क्या है, आज्ञा करें ।

श्रीउग्रश्रवाजी कहते हैं, कि नरनाथ की यह बात सुनकर अति पुण्यशील दिजीतम उतङ्गने उन अहीन-कान्ति महाराज जनमेजय

को उत्तर दिया, कि हे नरनाथ ! मैं तुमसे स्वकार्य-साधन ही का अनुरोध करता हूँ । हे श्रेष्ठ महीपाल ! जिस तक्षकने तुम्हारे पिताजी को नष्ट किया है, उस दुष्टात्मा सर्पको उचित फल दो । राजन् ! इस विधिदर्शित कार्य का काल आ पड़ंचा है, सो तुम्हारे उन महानुभाव जन्मदाता का जो अनिष्ट हुआ है, उसका बदला लो । दुष्ट स्वभावी दुरात्मा तक्षकसे तुम्हारे पिताजी-विना अपराध काटे जाकर वज्र-जले वृक्ष के समान मृत्यु की प्राप्त हुए हैं । जिस सर्पाधम तक्षकने बल और अहङ्कार से उकुल कर तुम्हारे पिताको काटने का अनुचित कार्य किया है और राजर्षिवंश-वाले देव-सदृश महाराज परीक्षित को बचाने के लिये काश्यपवर धन्वन्तरिजीको अति देख-कर, उन को भी अर्थद्वारा जिस पापात्माने रोका था, हे महाराज ! सर्पयज्ञका अनुष्ठान कर प्रज्वलित अग्नि में उस पापात्मा की आहुति चढ़ानी चाहिये, सो शीघ्र उसका अनुष्ठान करो । ऐसा करने से तुम्हारे पिताजी का बदला होजायगा और मेरा भी अति-प्रिय कार्य होगा । हे निष्पाप-पृथ्वीनाथ ! मैं गुरु के लिये धन लाने गया था, इसमें उस दुरात्माने सुभी बड़ा विघ्न किया था ।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि महाराज जनमेजय यह सुनकर जिस प्रकार घृतसे अग्नि-जल उठता है, वैसेही उतङ्ग के वाक्यरूपी घृतसे उनका क्रोधरूपी अग्नि जल उठा । आगे अति दुःखित होकर उतङ्गके सामने ही मन्त्रियों से पिता के परलोक सिधारने का वृत्तान्त पूछा । पर वह जब उतङ्ग से पिता की मृत्यु का वृत्तान्त सुन चुके, तभी एकवारगी-दुःख और-शोक से विवश हो पड़े ।

आदिपर्व में तीसरा अध्याय और

पौष्पपर्व समाप्त ।

लोमहर्षणपुत्र सौति पौराणिक श्री उग्रश्रवा जी, नैमिषारण्य में कुलपति शौनक जी के द्वादश-वार्षिकीयज्ञ में शुभागमन किये हुए ऋषियों के समीप उपस्थित होकर दोनों हाथ जोड़के बोले, “आपलोग इस समय क्या सुनना चाहते हैं ? मैं क्या कहूँ ?” ऋषिलोग बोले, “हे लोमहर्षणपुत्र ! हम लोग योग सम्बन्धी कथा सुनने के अभिलाषी होकर तुमसे जो जो पूछेंगे, तुम वह सब वर्णन करना । परन्तु भगवान् कुलपति शौनक जी इस समय अग्निगृह में विराजते हैं, जो देवासुर-सम्बन्धी सम्पूर्ण विषय जानते हैं और जो नर, उरग तथा गन्धर्वों के सम्पूर्ण वृत्तान्तों से ज्ञात हैं, विशेष करके जो इस यज्ञ के कुलपति और विद्वान्, कार्यकुशल, बुद्धिमान्, कर्मकाण्ड सम्बन्धी शास्त्र और उपनिषद् सिद्धान्तों में अद्वितीय गुरु हैं, तथा सत्यवादी, शान्तिमें रत, तपस्वी और व्रतशील हैं ; सो वह हम सबोंही के माननीय हैं, अतएव उनके लिये कुछ काल ठहरो, वह श्रेष्ठासन पर आसुद्ध होकर जो कुछ प्रश्न करेंगे, तुम वही वर्णन करना ।” श्री उग्रश्रवा जी बोले, “वही होवे ; महात्मा गुरु शौनकजी के बैठकर प्रश्न करने ही पर मैं नाना विषय-सम्बन्धी कथा सुनाऊंगा ।”

अनन्तर विप्रवर श्री शौनक जी वाह्यां से देवताओं को और जल से पितरों को तृप्त कर विधिपूर्वक सम्पूर्ण कार्यों को निर्वह करके जिस स्थान पर उग्रश्रवा जी और सिद्धव्रतशील, ब्रह्मर्षिगण सुख से बैठे थे, उस यज्ञभूमि में उपस्थित हुए । आगे ऋत्विक् और सभासदों के बैठने पर कुलपति शौनक जी स्वयं बैठकर बोलने लगे ।

आदिपर्व में चौथा अध्याय समाप्त ।

श्रीशौनक जी बोले, “हे लोमहर्षणपुत्र ! पहिले तुम्हारे पिताने सम्पूर्ण पुराण पाठ किये

थे, क्या तुमने उन सबोंकी पढ़लिया है ? पुराणों में देवताओंके चरित्र और महानुभव पुरुषों के आदि-वंश-वृत्तान्त कथित हुए हैं ; पहिले तुम्हारे पिताके निकट हमलोग वह सब सुन चुके हैं, इस समय उनमें सबसे प्रधान भगुवंश का वृत्तान्त सुनना चाहते हैं, तुम वह कीर्तन करो, हमलोग एकचित्त होकर सुने जाते हैं ।”

योस्तपत्रजी बोले, “हे विजयेष्ठ ! आपने जिन विषयों को पुराणों में व्यवसा किया है, और वैशम्पायन आदि द्विजवर और मेरे पिताने पाठ और कीर्तन किया है, मैंने उन सब विषयों को पिताजी से भलो भाँति पढ़ लिया है ; हे ब्रह्मन् ! आप ध्यान देकर सुनिये । हे भगुनन्दन ! इन्द्र आदि देवगण, सप्तर्षिगण और मरुद्गण, जिस श्रेष्ठतर भगुवंशका सम्मान किया करते हैं, मैं पहिले उस वंशही का वृत्तान्त यथावत् कीर्तन करता हूँ, आप व्यवसा कीजिये । सुन चुका हूँ, कि महर्षि भगु वरुणके यज्ञानुष्ठान के समय स्वयम्ब्र ब्रह्माजीके द्वारा अग्निसे उत्पन्न हुए थे । भगुजीके बड़े स्नेहपात्र पुत्रका नाम च्यवन है ; च्यवन के परम धार्मिक पुत्रका नाम प्रमति ; प्रमतिके घृताची से जन्मे हुए औरस पुत्र का नाम रुरु है ; रुरु से प्रमदा के गर्भ से आपके पूर्व पितामह वेदज्ञ, धर्मज्ञ तपस्वी, यशस्वी, शास्त्रज्ञ, ब्रह्मज्ञ, परमधर्मशील सत्यशील जितेन्द्रिय, आचार-प्रिय शुनक नामक पुत्र का जन्म हुआ ।”

श्रीशौनकजी बोले, “हे सूतनन्दन ! कहो, महात्मा भगुपुत्र क्योंकर च्यवन नामसे प्रसिद्ध हुए थे, मैं वह जानना चाहता हूँ ।”

श्री उग्रश्रवाजी बोले, महर्षि भगुजीकी प्रेमसुहानी, त्रिलोकजानी पुलोमानाम्नी एक स्त्री थी । वह पतिसहवास से गर्भवती हुई । हे भगुनन्दन ! धर्मधर यशसागर सुनिवर भगु सम्मान प्रकृतिधारिणी अपनी धर्मपत्नी पुलोमाके गर्भवती होने पर, एक दिन नहाने गये थे, कि

ऐसे अवसरमें पुलोमा नामक राक्षस वहां आकर उनके आश्रममें जा घुसा और आश्रमके भीतर अनिन्दित-रूपखानि भृगुपत्नी को देखकर काम पीडा से विन-चेतनसा हो पड़ा। सुदर्शना पुलोमा ने राक्षस को आश्रम में आते देखकर वनके फलमूलों से अतिथि-सत्कार किया। हे ब्रह्मन् ! वह कामातुर राक्षस उस परम रूपमयी रमणी को देखकर हरने की इच्छा से प्रसन्न होने लगा और मनही मन में ऐसा कहने लगा, 'कदाचित् मेरा अभीष्ट सिद्ध होने पर है।' क्योंकि उस राक्षस ने पहिले उस सुहासिनी कामिनी को मन में पत्नीके आसन पर बैठाया था, पर उसके पिता ने शास्त्रविधिके अनुसार भृगुजी से उसका विवाह कर दिया था। यह अनुचित कार्य राक्षस के चित्त में सदा जागता था; इस समय अवसर पाकर उसने पुलोमा को हरलेना निश्चय कर लिया। अनन्तर उस राक्षस ने अग्नि गृह में प्रज्वलित अग्निदेव को देखकर उनसे पूछा, 'हे अग्नि ! तुम देवों के सुखवत् बने हो, मैं तुमसे पूछता हूँ, ठीक बोलो, मैंने पहिले इस सुन्दरी नारी को मन ही मन में पत्नी बनाई थी, आगे इसके बापने इसे अन्यायकारी भृगु को दान किया है। आप सच कहिये, यह एकान्तवासिनी, सुनितम्बिनी, भृगुपत्नी है कि नहीं ? मैं इस आश्रम से इसे हरलेना चाहता हूँ, क्योंकि पहिले मैंने इस सुभद्रमा को पत्नी करके वरण किया था, पश्चात् भृगुने इसे अन्यायरूपसे प्राप्त किया; इससे क्रोधरूपी अग्नि जल कर मेरा हृदय जलाता हुआ आजतक बना है।'

श्रीसूतपुत्रजी बोले, "इस प्रकार से वह राक्षस जलते हुए अग्नि की पुकार पुकार कर बार बार पूछने लगा, 'हे अग्नि ! तुम सदा सर्वभूतों के हृदय में पाप और पुण्य के साक्षी-स्वरूप होकर विराजामन हो, सो सच बोलो,

मेरी पहिले की वरण की हुई जिस पत्नी को अन्याय करनेवाले भृगुने हर किया है, वह यही नारी है या नहीं ?' हे अग्नि ! तुम यह बात सुझसे सच बोलो, मैं तुम्हारे सामने ही इस भृगुपत्नी को इस आश्रमसे हर लेजाना चाहता हूँ।"

श्रीसूतपुत्रजी बोले, "उस राक्षस की ऐसी बात सुनकर अग्नि इन दोनों भयसे भीत होकर कि एक-और मिथ्या बोलना और दूसरी और भृगु का शाप लेना है, अति दुःखीचित्त से बोले, कि 'हे दानव-नन्दन ! तुमने पहिले इस पुलोमा को वरण तो किया था, पर वेदविधि के अनुसार मन्त्र पढ़कर विवाह नहीं किया था, इसके पिताने अति यशस्वी सुपात्रके लोभ से इस यशस्विनी पत्नी को तुम्हें न देकरके भृगु को सम्यदान किया है और भृगुने भी वेदविधि के अनुसार सुभद्रको साक्षी बना करके मन्त्र पढ़कर, इससे विवाह किया है। हे दानव-प्रधान ! मैं जानता हूँ, कि तुमने पहिले जिसको वरण किया था, यह वही पुलोमा है, मैं भूठ नहीं बोल सकता, क्योंकि लोकों में कभी भूठी बात का आदर नहीं है।"

आदि पर्व में पांचवां अध्याय समाप्त ।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, हे ब्रह्मन् ! अनन्तर वह राक्षस, अग्नि की ऐसी बात सुनकर शूकर का रूप धरके वायु और मनके समान तेजी से उस पुलोमा को हर ले गया। हे भृगुकुल तिलक ! ऐसे समय में पुलोमा के गर्भस्थित बालक क्रोधसे अस्था होकर गर्भरूपी शय्या से च्युत हुआ, इसी हेतु उसका नाम च्यवन हुआ। माता के गर्भ से गिरे हुए उस सूर्यके समान तेजस्वी बालक को देखते ही राक्षस, पुलोमा को छोड़कर भग्न होके पृथ्वी पर गिरा। हे भृगुनन्दन ! वह दुःखजरी, सुन्दरी पुलोमा, भृगुके च्यवन नामक उस

को गोद में लेकर आश्रम की ओर चलने लगी। तब सर्व्व लोकों के पितामह ब्रह्माजी अपनी पत्न्यधू उस परम-रूपवती भृगुपत्नी को रोती और नेत्रों से आंसू गिराती हुई देखकर समझाने लगी ! तप करते हुए भृगुजी की धर्म पत्नी पुलोमा जिस पथसे चलने लगी, वहां उस की अश्रु गिरकर एक बड़ी नदी बन गई। अश्रु से निकली हुई उस नदीको वधूके साध आश्रम की ओर बहते देखकर सर्व्वलोकों के पितामह ब्रह्माजी ने उसका नाम “वधूसरा” रखा। प्रतापी भृगुपुत्र इस प्रकार से च्यवन नाम से प्रसिद्ध हुए थे।

अनन्तर महर्षि भृगुने उस दशा में च्यवन नामक पुत्र और पत्नी को देखा और अति क्रोधवश होके पुलोमा से प्रष्टा, “हे मीठी हंसोड़ि ! राक्षस नहीं जानता था, कि तुम मेरी स्त्री हो कि नहीं ; सो उसने जब तुम्हें हरे लेने की इच्छा प्रकट करी थी, तब उसे किसने तुम्हारा परिचय दिया था ? तुम सच-सच वीलो, सुभो बड़ा क्रोध हो रहा है, मैं उसको शाप दूं किसने यह अनिष्ट किया ? कौन मेरे शाप से भय नहीं खाता ? पुलोमा बोली, हे भगवन् ! अग्नि ने उस राक्षस को मेरा परिचय दिया था, इसीसे राक्षस कूरङ्गीके समान रोती हुई सुभको ले चला ; अन्ते में तुम्हारे इस पुत्र के तेज के प्रभाव से सुभ को छोड़कर वह राक्षस भक्ष होगया, इसी से मैं उस दुरात्मा के हाथ से बच गई हूं। श्रीसूतपुत्रजी बोले, भृगुने पुलोमा की यह बात सुनकर अति क्रोधसे यह कहकर, कि “तुम सर्व्वभक्षक होगी” अग्निको शाप दिया।

आदिपर्व्व में छठवां अध्याय समाप्त।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि भृगुके शाप देने पर अग्निने क्रोधान्वित होकर कहा, “हे ब्रह्मन् ! तुमने एकायक सुभो यह क्या शाप-

दिया ? सच बात कहने को पूछे जाने पर मैंने धर्मानुसार विना पक्षपात सत्यही कहा है, इसमें मेरा कौनसा दोष है ? जो साक्षी सत्य विषय जानने पर भी झूठी गवाही देता है, उसके ऊपर के सात पुरखे और नीचे के सात पुरखे नरक में गिरते हैं। जो जन्म गूढ़तत्त्व जानकर पूछे जाने पर गवाही नहीं देता, वह भी उक्त पाप में डूबता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। मैं भी तुमको शाप दे सकता हूं, पर ब्राह्मण को सन्मान करता हूं, इसीसे नहीं दिया। हे ब्राह्मन् ! तुम सब जानते हो, तिस पर भी कहता हूं, सुनो। मैं योगबलसे आत्मा को अनेक भागोंमें बांट कर मूर्त्तिभेद से अग्निहोत्र, सत्र, यज्ञ और गर्भाधानादि सम्पूर्ण क्रियाओं में विराजता हूं। वेदीक्त विधान से सुभको जो घृत चढ़ाया जाता है, उससे देवलोक और पितृलोक तृप्त होते हैं। सुभ को चढ़ाई हुई सोमरस, घृत, दुग्ध आदि वस्तु देवता और पितरों के शरीर के स्वरूप बन जाती हैं। देवता और पितरोंके निमित्त दर्श और पौर्णमास यज्ञ एकत्र किये जाते हैं, सो देवता और पितरों में कोई भिन्नता नहीं है। वे हर पर्व्व में कभी एकत्र और कभी पृथक्स्वरूपसे पूजित होते हैं। सुभो जो घृत चढ़ाया जाता है, उसे देवता और पितर लोग भोजन करते हैं, सो मैं ही उन देवता और पितरों के सुख के समान बना हूं। अमावस्या में पितरलोग और पौर्णमासी में देवलोग आहुति पाकर मेरे सुख से ही घृत भोजन करते हैं, सो मैं देवता और पितरों के सुख स्वरूप ही करके क्योंकर सर्व्वभक्षक हूंगा ?

श्रीउग्रश्रवा जी बोले, कि अनन्तर अग्नि कुछकाल सोचकर ब्राह्मणों के अग्निहोत्र, सत्र, यज्ञ और दूसरी क्रियाओं से गायब हुए। आग्नी प्रजा अग्नि विना, ओङ्कार, वःटकार संधा और स्वाहादि वर्जित होकर अति दुःखी हुई।

इस पर ऋषि लोग अति चिन्तित चित्त से देवताओं के समीप उपस्थित होकर यह वचन बोले, “हे निष्पाप देवगण । अग्नि के नष्ट होने के कारण तीनों लोकों की प्रजा अग्निहोत्रादि क्रियाओं से वर्जित होकर क्या करना चाहिये, समझ नहीं पाती; इस समय जो करना उचित समझें, करें, विलम्ब का अवसर नहीं है ।”

अनन्तर देवता और ऋषिलोग ब्रह्माजी के समीप गमन कर अग्नि के शाप और ब्राह्मणों की क्रियादि लोप होनेका समाचार जताकर बोले, “हे महाभाग किसी कारण से भृगुजीने अग्नि को यह कह कर कि ‘तुम सर्वभक्षक होओ’ शाप दिया है । यज्ञ के अग्रभाग-भोजन-करनेवाले अग्नि देवताओं के मुखस्वरूप होकर क्योंकर सर्व-भक्षक हो सकते हैं ?”

विश्व सृष्टि-कारी ब्रह्मा जोने उनकी वह बात सुन कर क्षय और उदय-वर्जित भूतभावन अग्नि को बुला करके मनभावन बातों में कहा, “हे अग्नि । तुम सर्वलोकों के कर्ता, संहर्ता, रक्षिता और अग्निहोत्रादि क्रियाओं के कराने-वाले हो, अतएव हे लोकेश्वर, ज्ञताशन । ऐसा करो, कि जिनसे अग्निहोत्रादि क्रिया लोप न हो जाय । तुम लोकपाल होने पर भी क्यों ऐसे सुन्ध हो रहे हो ? तुम पवित्र और अकेले सर्व लोकों की गति हुए हो; सो तुम सर्व शरीरसे सर्व भक्षक नहीं होगे । हे शिखावान् । तुम्हारे अपान भाग से जो सब शिखार्य हैं, वे ही सर्व भक्षक होंगी और तुम्हारी जो मांस-भोजी देह है, वह भी सर्व-भोजी होगी । जैसे सूर्य-किरण के स्पर्श से हरेक वस्तु शुद्ध होती है, तैसेही तुम्हारी शिखा से जल कर सब वस्तु पवित्र होंगी । हे अग्ने । तुम निज प्रभाव से निकल कर परम तेजस्वरूप हुए हो, सो निज तेजही से ऋषि के शाप को सत्य कर दो और तुम्हारे सुह में जिन वस्तुओं की आहुति चढ़ाई

जाती है, उनसे देवों का और अपना भाग ग्रहण करो ।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि अग्नि-“एवमस्तु” कहकर ब्रह्माजी की बात मान करके उनकी आज्ञा पालनेके निमित्त चले गये और देवता और ऋषिलोगभी निजनिज स्थानमें पधारे । ऋषिगण पूर्ववत् क्रियादि करने लगे । देवलोकमें सम्पूर्ण जीव आनन्द भोगने लगे । अग्नि भी शाप से मुक्त होकर अति प्रसन्न हुए । भगवान् ज्ञताशन को इस प्रकारसे भृगु का शाप लगा था । यह अग्नि के शाप-सम्बन्धी इतिहास पुलोमा राक्षस का नाश और च्यवन की उत्पत्ति कही गई ।

आदिपर्वमें सातवां अध्याय समाप्त ।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि हे ब्रह्मन् ! भृगु-नन्दन च्यवन ने सुकन्या नाम्नी स्त्री के गर्भ में प्रमति नामक एक तेजोपूर्ण महात्मा पुत्र उत्पन्न किया । प्रमति ने भी वृताची के गर्भ में रुरु नामक पुत्रीत्पादन किया, रुरुने प्रमदरा के गर्भ में शुनक नाम पुत्रका जन्म दिया । हे ब्रह्मन् ! मैं उस अति तेजस्वी रुरु के चरित्र का सम्पूर्ण वृत्तान्त कहता हूँ, श्रवण कीजिये । हे विप्रर्षि । पहिले विद्वान्, तपस्वी और सर्व भूतों के हितैषी स्थूलकेश नाम से प्रसिद्ध एक महर्षि थे जिन दिनों में गन्धर्वराज विंशवावसु के मिलन से मेनका नाम्नी अप्सरा गर्भवती हुई थी । अनन्तर निर्दयी, निर्लज्जा मेनका यथाकाल में गन्धर्वराजके औरस जात उस गर्भ की स्थूलकेश ऋषिवर के आश्रम के निकट नदीतट पर गिरा-कर चली गई । आगे उस तेजस्वी स्थूलकेश ऋषिने निर्जैन नदीतट पर छोड़ी वस्तुओं से उजाड़ी उस देवकन्यासी परम सुन्दरी कन्याको देखा । ऋषिऋष्ठ स्थूलकेशने उस नवजात कन्या को देखकर दयावश होकरके और पालने लगे । वह सुन्दरी

पवित्र आश्रम में बढ़ने लगी। महाभाग महर्षि स्थूलकेशने क्रमानुसार विधिपूर्वक कन्यावत् उसकी जात-कर्मदि क्रिया निर्वह करार्ये। वह कन्या रूप, स्वत्व तथा गुणादिमें सम्पूर्ण प्रमदाओं से अच्छी होने लगी, इस लिये महर्षिने उसका नाम प्रमदरा रख दिया।

अनन्तर एक समय धर्मात्मा रुरु उस आश्रम में प्रमदरा की देखकर काम से पोड़ित हुए। आगे रुरुने अपने प्यारे साथीसे पिता के समीप अपना अभिप्राय प्रगट करवाया। प्रमति ने भी यशस्वी स्थूलकेश जीसे वह कन्या प्रार्थना की। प्रमदरा के पिता स्थूलकेशने रुरु के निमित्त वह कन्या दे दी। उत्तर फाल्गुनी नक्षत्र में उनके विवाह का दिन ठहरा अनन्तर विवाहके कई दिन पहिले अलौकिक रूपवती वह कन्या सहेलियों के सङ्ग खेल रही थी। उसके क्रीडस्थल में टेढ़े भाव से एक लम्बा सर्प सोया था। पर प्रमदरा ने उसे न देख कर मृत्यु-काल आजानेपर मानों काल-प्रेरणासे उस सर्प पर पैर रखा; सर्पनेभी उस न जानती-हुई बाला की देह में विषैलै दातों से काटा। प्रमदराके सर्तसे काटी जाते ही उसका रङ्ग बदला, शोभा बिगड़ी, केश बिखरे, गहने गिरे, चेतना जाती रही, चेहरा देखने-योग्य न रहा, प्राण कूटा, एकायक देह घरती पर लोट-पड़ी और स्वजनों के चित्त शोक से जलने लगी। जान पड़ने लगा, कि मानों वह सर्प-विष-जली बाला धरतीरूपी सेज पर सीती है; सो मरने पर भी उस सुमधमाने पुनः सुन्दर शोभा धारण की। स्थूलकेश और दूसरे तपस्वियों ने पद्मिनी के समान धरती पर लेटी हुई उस अचेत कन्या को देखा।

अनन्तर ब्राह्मण लोग दयायुक्त होकर उसे देखने को उपस्थित हुए। स्वस्थात्रेय, महाजानु, कुशिक, शङ्खमेखल, उद्दालक, कठ, प्र्वेत,

अति यशस्वी भरदाज, कीणाकृत्य, आर्ष्टिप्रेम, गौतम, प्रमति, उनके पुत्र रुरु और दूसरे वनवासी लोग आकर उस कन्या की सर्पविष जली हुई। और प्राणहीन देख कर रोने लगे। आगे रुरु अति शोकाकुल होकर वहां से अन्यत्र चले गये।

आदि पर्वमें आठवां अध्याय समाप्त।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि महात्मा ब्राह्मणोंके उस स्थानमें बैठने पर रुरु अति दुःखी होकरके घने वनमें घुसकर रोने लगी; और अति शोक से विवश होकर करुण स्वर से अनेक विलाप करते हुए प्यारी प्रमदरा को स्मरण करके शोकसे कहने लगी, “मेरा शोक बढ़ानेवाली वह क्षीणाङ्गी धरती पर सीती है, मेरे और मेरे मित्रों के लिये इस से क्या अधिक दुःख होगा! यदि मैंने दान और गुरु जनों की अच्छी सेवा की हो, तो मेरी प्यारी जी उठे और यदि मैं जन्म से व्रतशील और जितेन्द्रिय रहा हूं, तो आजही यह सुन्दरी प्रमदरा उठ खड़ी हो।

वन में रुरु, स्त्री के निमित्त शोकाकुल होकर ऐसा विलाप कर रहे थे कि ऐसे समय में देवदूत आकर उनसे यह बात बोले, “हे धर्मात्मन् रुरो! तुम दुःखी होकर जो कुछ कह रहे हो, सब व्यर्थ है, क्योंकि जिसकी आयु पूरी हो गई है, वह कभी जीती नहीं। अस्मराके गर्भजात इस गन्धर्वकन्या की आयु पूरी हुई है, अतएव बेटा। तुम शोक से चित्त को बिकल मत करो, परन्तु महात्मा देवताओंके इसके लिये एक उपाय स्थिर किया है, यदि वह करना चाहो, तो प्रमदरा को पा सकोगे।” रुरु बोले, “हे देवदूत! देवताओं ने क्या उपाय ठहराया है, सच कहो; उसे सुनकर उसके अनुसार कार्य करूंगा। सुभो वचाओ।” देवदूत बोले, “हे भृगुनन्दन

रुरो । तुम उस कन्या को अपनी आयु का अधाभाग दो, ऐसा करने ही से तुम्हारा प्रेमद्वरा जो उठेगी ।” रुरु बोले, “हे स्नेहचरीत्तम । मैं उस विलासिनी कन्या को आयु का अर्धभाग देता हूँ, मेरी प्यारी प्रेमद्वरा प्रह्वार, रूप और आभरणोंसे सुशोभिता होकर फिर जी जावे ।”

संतजी बोले, कि अनन्तर देवत और गन्धर्वराज दोनों धर्मराज के समीप जाकर बोले, “हे धर्मराज । यदि आप अनुमति करें, तो रुरु की मरी स्त्री प्रेमद्वरा रुरु की आधी आयु लेकर कुशल लाभकर जी जास्के ।” धर्मराज बोले, “यदि तुम ऐसा ही चाहते हो, तो रुरु को भार्या प्रेमद्वरा रुरु को आधी आयु पाकर फिर जी जावे ।” धर्मराजके ऐसा कहने पर, वरवर्णिनी प्रेमद्वरा रुरु को आधी आयु पाकर मानों निद्रा से जगने के समान उठ बैठी । भविष्यत् में भी यह देखने में आवेगा, कि तेज-भरे रुरु जीकी दोष-आयु का आधा अंश भार्या के निमित्त च्य हुआ था ।

अनन्तर रुरु और प्रेमद्वरा के पिता प्रमति ।था-स्थलकेशने अति आनन्द से वाञ्छित दिन उनका विवाह कर दिया । वह दम्पति परस्पर के हित-वाञ्छी होकर क्रीड़ा करने लगे । कमलकेश के समान रूपवती दुर्लभा भार्याको पाकर रुरुजी ने सर्पकुल को नष्ट करने का प्रण ठाना । सर्प देखतेही वह अति क्रोधवश होकर लाठी से अपनी शक्ति के अनुसार उसे नष्ट करते थे । कए दिन उन्होंने घने वन में घुस कर देखा, कि एक बूढ़ा डोंड-साप सोता है ; उसे देखकर क्रोधित होकर यमदण्ड के समान कुवड़ी उठा करके उसकी नष्ट करने की चले । यह देख कर डोंड बोला, “हे तपोधन । आज मैंने तुम्हारी कोई हानि

नहीं की, सो क्यों क्रोधवश होकर मुझ को मारते हो ?”

आदिपर्व में नौवां अध्याय समाप्त ।

रुरुजी बोले, “हे भुजङ्ग । एक सर्पने मेरी प्राणप्यारी भार्या को डंसा था, इससे मैंने यह भयानक नियम किया है, कि जब जिस सर्प को देखूंगा, तभी उसको नष्ट करूंगा, इस लिये मैंने तुम्हें मारने की इच्छा की है, आज तुम प्राण खीओगे ।” डोंड बोला, “हे ब्रह्मन् । जो सर्प मनुष्यों को डंसते हैं, वे दूसरी जाति के हैं, अतएव सर्प नामकी गन्ध पाते ही विन-विष डोंड की हिंसा करनी उचित नहीं है । डोंड जाति दूसरी जातियोंके सर्पों से भिन्न प्रकारका सुख भोगती है और इन दोनोंके लाभ के विषय भी अलग अलग हैं । पर अमङ्गल और दुःख भोगने के काल में दोनों समान हैं, अतएव धर्मशास्त्र में पण्डित होकर डोंड-जाति की हिंसा करनी आपको नहीं चाहिये ।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि महर्षि रुरुने सर्पकी ऐसी बात सुन कर उसको भय से जकड़ा हुआ डोंड जानके वध नहीं किया । भगवान् रुरु उसको ढाड़स देकर बोले, “हे भुजङ्ग । मुझसे बोलो, कि तुम कौन हो, और किस कारण ऐसी दशाको प्राप्त हुए हो । डोंड बोला, “हे रुरो । मैं पहिले सहस्रपाद नामक ऋषि था, आगे ब्रह्मशाय से सर्प बना हूँ ।” रुरु बोले, “हे सर्पश्रेष्ठ । ब्राह्मण ने क्रोधित होकर किस हेतु तुमको शाय दिया था ? और तुम कितने दिनोंतक सर्प-शरीर को आश्रय किये रहोगी ?”

आदिपर्व में दशवां अध्याय समाप्त ।

डोंड बोला, “पहिले खगम-नामक वादी, तपोवती ब्राह्मण मेरे मित्र थे । ए

वह अग्निहोत्र याग में आसक्त थे, ऐसे समय में मैने बाल-स्वभावसे खेलता हुआ एक तृण का सर्प बना कर उनको डरवाया, इससे वह एक-बारगी सुर्क्षित हो पड़े। आगे वह व्रतशील, सत्यवादी तपोधन चेतना पाकर, मानों मुझको कोपाग्नि से जलाकर बाले, 'तुमने जिसप्रकार मुझको भारी भय में डालने के निमित्त वीर्य-रहित तृण का सर्प बनाया है, तिस प्रकार मेरे शाप से वीर्य-रहित सर्प होगी।' हे तपोधन ! मैं उनको तपस्या की सामर्थ्य से विदित था, इस हेतु उस काल में अति चिन्तित चित्त से सम्मानपूर्वक प्रणामकर दोनों हाथ जोड़के सामने खड़े होकर उस वनवासी ऋषि से बोला, 'हे ब्रह्मन् ! मैंने सित कहके, खेल के निमित्त हंसी में ऐसा किया है, सो मुझे क्षमा करके यह शाप निवृत्त करें।' अनन्तर वह तपोधन मुझे अति उदास देखकर बारबार गर्म सांस लेते व्यथित होकर बोले, 'हे तपोनिधे ! मैंने जो बात कही है, वह कभी रूठी होने की नहीं है, अतएव जो कहता हूँ सुनो। हे अनघ ! मेरी यह बात सदा स्मरण रखना, कि प्रमति के रूप नामक शुद्धाचारी एक पुत्रवर उत्पन्न होगी, उनको देखकर शीघ्र ही तुम मेरे शाप से मुक्त होगी। आपही वह प्रमतिपुत्र प्रसिद्ध रसुजी हैं, अतएव मैं इस समय अपना स्वस्वप पाकर आपकी कुछ क्षितीपदेश करूँगा स्तपुत्रजी बोले, कि यह कहकर वह यशस्वी द्विजवर सर्पस्वप छोड़कर अपना सुन्दर शरीर प्राप्त हुए और अति तजस्वी रसुजी से बोले, "हे सर्वजीवश्रेष्ठ ! अहिंसाही परम धर्म है, अतएव ब्राह्मण ही करके किसी जीव की हिंसा न कीजिये। सुना है, कि ब्राह्मणों को शान्तचित्त वेद-वेदाङ्गविद और सर्वभूतों का अभयदाता होना चाहिये। अहिंसा, सत्यवचन, क्षमा और वेदाभ्यास, यह कई ब्राह्मणों के परम धर्म हैं। दण्डधारण, उग्रता और प्रजापालन

रूपी जो क्षत्रियके धर्म हैं, वह आपके लिये मङ्गलदायी नहीं हैं, वह क्षत्रिय ही के कार्य हैं, हे द्विजोत्तम सरो ! आप यवण कीजिये। पूर्वकाल में राजा जनमेजय ने सर्पयज्ञ में सर्पों की हिंसा की थी, पर तपोवीर्यवान्, वेदवेदाङ्गविद, द्विजश्रेष्ठ आस्तीक मुनिसे भयार्त सर्पों की रक्षा हुई थी।"

आदिपर्व में बारहवां अध्याय समाप्त ।

रसुजी बोले, "हे द्विजश्रेष्ठ ! राजा जनमेजय ने किस हेतु और किस प्रकार से सर्पों को नष्ट किया था ? धीमान् आस्तीक मुनिही ने फिर किस हेतु उनकी रक्षा की थी ? मैं वह सब सुनना चाहता हूँ।" ऋषिवर बोले, हे सरो ! तुम ब्राह्मणोंके मुखसे अति महत् आस्तीक-वृत्तान्त सुन लेना।" स्तपुत्र बोले, कि यह कह कर वह ऋषि गायव हुए। उस ऋषि को आगे न देखके उनकी खोज में उस वन में चारों ओर दौड़ने लगे, अन्तमें थक कर धरती पर गिर जाकर मोहयुक्त तथा अचेतनसे बने और बीच बीच में उस ऋषि के विषयमें सोचने लगे। अनन्तर उन्होंने चेतना पाकर पिता के समीप आ करके सम्पूर्ण वृत्तान्त और आस्तीकजी की कथा पूछा। उनके पिताने भी प्रारम्भ से अन्त तक सम्पूर्ण कह सुनाई।

अदिपर्व में बारहवां अध्याय और सर्पयज्ञ-प्रस्तावना नामक पौलोमपर्व समाप्त ।

श्रीशौनकेजी बोले, "हे स्तनन्दन ! भूपालों में सिंहरूपी राजा जनमेजय ने किस हेतु सर्पयज्ञ का अनुष्ठान कर सर्पोंको नष्ट किया था, और द्विजश्रेष्ठ तपस्वी आस्तीकमुनि ही ने किस कारण से प्रज्वलित अग्नि से सर्पों की रक्षा की थी, उन सबों का सच्चा हाल विशेष करके वर्णन करो। जिस राजर्षि ने सर्पयज्ञ का

अनुष्ठान किया था, वह किसके पुत्र हैं ? और वह द्विजवर आस्तीक ही फिर किसके पुत्र हैं ? यह सुभसे बोली।" सुतपत्र बोले, "हे वाग्मिन् । मैं अति बृहत् आस्तीकवृत्तान्त को विशेष करके सम्पूर्ण कीर्तन करता हूँ, अथवा कीजिये।" श्रीशौनकाजी बोले, पुरातन ऋषि ब्रह्मनिष्ठ आस्तीकजी की यह मनहरणी कथा विस्तृत रूपसे सुनना चाहता हूँ।" - सौति जी बोले, "हे शौनका । - ब्राह्मण गण इस इतिहास को पुराण करके कीर्तन किया करते हैं। पहिले व्यासदेव के शिष्य-बुद्धिमान-सूतकलोद्भव मेरे पिता-लोमहर्षण जीने नैमिषारण्यवासो ब्राह्मणों से पूछे जाकर महाराज श्रीकृष्णहैपायन जी का रचा हुआ यह उपाख्यान कीर्तन किया था। मैं उनके मुखसे जैसा सुन चुका हूँ; आपके प्रश्नानुसार उस सर्वपापनाशी आस्तीक-उपाख्यानकी ठीक उसी प्रकारसे ज्यों का त्यों वर्णन करता हूँ।"

आस्तीक जीके पिताका नाम जरत्कार है। वह ब्रह्माके समान प्रभावी ब्रह्मचारी, नियमित भोजी, महातपस्वी, सदा कंठोर तप में नियुक्त, ऊँचेरेता, यायावरवंशतिलक, धर्मज्ञ, व्रतशील और तपोवली थे। वह महात्मा सुनिवर-सदा यत्र-सायं गृह हो करके (अर्थात् जहां-कहीं सन्ध्या उपस्थित हो; वहीं रहके) श्रूमण्डल में भ्रमण करते थे। बीच-बीच में तीर्थरूपा और तीर्थोत्थन करते रहे। प्रज्जलित अग्निके समान महातेजःप्रभावी वह ऋषि कभी गलितपत्र-भोजन कर, कभी वाताहार कर, कभी आहार त्याग-कर, शरीर सुखाकर, निद्रा छोड़कर, घूमा करते थे। एक दिन उन्होंने भ्रमण करते हुए देखा, कि उनके पितामहगण एक बड़े गढ़ में लटके हैं, उनके पैर ऊपर और सुह नीचे की ओर हैं। जरत्कार ने यह देखतेही पूछा, "तुम कौन हो ? और किसहेतु इस गढ़ में सदा लिये-रहनेवाले स्रपों से प्रायः

काटे हुए खसखस के गुच्छे में लटककर नीचे मुह किये रहते हो ?" पितरों ने कहा, "हम यायावर नामक व्रतशील ऋषि हैं। हे ब्रह्मन् । वंश लोप होनेकी सम्भावेना मे हमारी अधोगति हो रही है। पर इन बुरे भाग्यवालों की जरत्कार नामक एक दुर्भाग्य सन्तान है। उस अश्व ने केवल तपही को आश्रय किया है, पत्नीत्पादन के निमित्त विवाह करना नहीं चाहता। अतएव वंशलोप की सम्भावेना होने पर हम इस गढ़ में लटके हुए हैं। हम लोग नाथ रहने पर भी पापिष्ठ के समान अनाथ होकर नीचे गिर रहे हैं। हे निष्पाप साध-शिरोमणि। तुम कौन हो, कि हमारे मित्र के सदृश चिन्ता करते हो ? हे ब्रह्मन् । हम जानना चाहते हैं, कि तुम कौन हो और किस हेतु हमारी शोचनीय दशा देख करके यहां खड़े होकर शोक-प्रकाश कर रहे हो ?" जरत्कारजी बोले, "मेराही नाम जरत्कार है, आपलोग मेरे ही पितृपितामहादि पूर्वपुरुष हैं; इस समय आज्ञा कीजिये, कि मुझको क्या करना होगा।" पितृगणबोले, "बेटा। तुम हमको, अपनेको और धर्मकी बचाने के निमित्त सचेष्ट हो करके हमारा वंश बढ़ाओ; हे तात। पत्रवान् पुरुष जैसी सद्गति प्राप्त करते हैं दूसरे बृहदिनों के बटोरे हुए तप अथवा दूसरे पुण्यफल से भी तैसी सद्गति पा नहीं सकते। हे पत्र । इस हेतु तुम स्त्रीग्रहण और सन्तानोत्पादन में चित्त लगाओ। हम तुमको आज्ञा करते हैं, कि यही हमारा परम कल्याणकारी होगा। जरत्कारजी बोले, "मैं भोगके निमित्त स्त्रीग्रहण वा धनार्जन न करूंगा, पर आपके हितानुष्ठान के लिये विवाह करूंगा। कन्या यदि मेरे नाम की हो, और उसके वन्धुवर्ग स्वेच्छापूर्वक दान करें, तो उस कन्या को भिक्षा के समान ग्रहण कर विधिपूर्वक विवाह करना स्वीकार करता हूँ। इस

नियमको अनुसार यदि कन्या पाऊंगा, तो आपकी आज्ञा अन्यथा न होगी मैं विधिपूर्वक विवाह करूंगा। पर हे पित्रगण! मैं दरिद्र हूँ, कौन मुझे कन्यादान करेगा? परन्तु यदि कोई दान करे, तो मैं अवश्य ही उसको लूंगा, इसमें सन्देह नहीं उससे जो पुत्र उत्पन्न होंगे, वह आपकी उद्धार करेंगे। जिससे आपलोग भी शाश्वतस्वर्ग लाभ कर परम आनन्द से समय बितावेंगे।”

आदिपर्व में तेरहवां अध्याय समाप्त ।

सौतिजी बोले, कि अनन्तर वह ब्रह्मचारी व्रतशील जरत्कार, संसार-आश्रम में प्रवेशार्थ विवाह करने के निमित्त धरणीमण्डल घूम आये, पर किसी स्थान में भी योग्य-पत्नी प्राप्त नहीं हुए। एक समय उन्होंने कन्याभिचार्य वन में प्रवेश कर पितृवाक्य स्मरण करके कुछ चिन्ताकर तीन बार प्रार्थना की बातें कह्यो, उस समय नागराज वासुकि उनको अपनी भगिनी ग्रहण करानेको उद्यत हुए। पर उस कन्या को अपने नाम की न समझकर महात्मा जरत्कार एकायक ग्रहण न करके सोचने लगे, कि मैंने यह प्रतिज्ञा की है, कि यदि कन्या निज नाम को ही और उसके वस्तुगुण स्वेच्छापूर्वक दान करे, तभी ग्रहण करूंगा। ऐसी चिन्ता कर वह महाप्राज्ञ तपःप्रभावी जरत्कार जो वासुकि से बोले, “हे भुजङ्ग! सच बोली, तुम्हारी इस बहिन का क्या नाम है?” वासुकि बोले, “हे जरत्कारी! मेरी इस अनुजा का नाम जरत्कार है, मैं इस सुसध्यमाको दान करता हूँ, भार्यार्थ ग्रहण करो। हे दिजोत्तम! मैंने इस भगिनी को, तुम्हारे निमित्त रख छोड़ा है, प्रतिग्रह करो।” वासुकिने यह बात कह कर उनको अपनी सुन्दरी भगिनी सम्प्रदान की। जरत्कारने भी वेद विधि के अनुसार विवाह के

संस्कार-कर्मों के पश्चात् उस कन्या से विवाह किया।

आदिपर्वमें चौदहवां अध्याय समाप्त ।

सौतिजी बोले, हे वेदनिपुण। पहिले संप्रदायने सपों को यह शाप दिया था, कि “महाराज जनमेजय के यज्ञमें अग्निदेवता तुमको जलावेंगे।” नागराज वासुकि ने उस शाप की शान्ति के निमित्त व्रतशील, तपसी जरत्कार ऋषि की बहिन दान की। जरत्कार ने भी वेदविधि के अनुसार उससे विवाह किया। कुछ कालान्तर उस कन्याके गर्भमें आस्तीक नामक एक पुत्रवर उत्पन्न हुए। वह वेदावेदाङ्ग में पण्डित, तपस्वी, महानुभाव स्वभूतों को तुल्य देखनेवाले और पितृमातृ कुलों के भयनाशी हुए थे। अनन्तर वृद्धिदिनों के पश्चात्, पाण्डवनन्दन नरेश जनमेजयने वेदके अनुसार सर्पयज्ञ नामक महायज्ञ का प्रारम्भ किया। सुना जाता है, कि सर्पकुल की नाश करने के निमित्त उस यज्ञ के आरम्भ होने पर महातपस्वी आस्तीकने भाई, मामा और दूसरे सर्पों को सर्प-माता के शाप से बचाया था। और वह सन्तानोत्पादन तथा तपस्या से पितरों को उद्धार कर और व्रत, पाठ और वंश वृद्धि कर उनके निकट उद्धार भी हुए; एवं भांति भांति के दक्षिणायुक्त यागों से देवताओं के और ब्रह्मचर्य से ऋषियों के ऋण-से मुक्त हुए थे। हे भृगुश्रेष्ठ! व्रतशील जरत्कार इस प्रकार से पितरोंके कठिनभार को पालन कर और आस्तीक नामक पुत्र पाकर धर्म्मार्जन करके वेदतदिन पीके पितरों के साथ शाश्वतस्वर्ग प्राप्त हुए। मैं यह आस्तीक का आख्यान ठीक ठीक कह गया; अब आज्ञा कीजिये, कि कि कथा कहूँ।

आदिपर्व में पन्द्रहवां अध्याय समाप्त ।

शौनकजी बोले, “हे सूतनन्दन । साधु स्वभावी आस्तोक ऋषि की कथा फिर विस्तार-रूप से वर्णन करी; उसे सुनने की सुभी बड़ी इच्छा है । विशेष करके तुम जो कुछ कहते जाते हो, वह बड़ी मीठी और सुन्दर जान पड़ती है । तुम अपने पिता के समान जिस प्रकारसे पुराण कह रहे हो, उससे हमलोग बड़ी प्रसन्नता लाभ कर रहे हैं; तुम्हारे पिता सदा हमारी सेवा के निमित्त जिसप्रकार पुराण कीर्तन करते रहे, तुम भी ठीक उसी प्रकार कहें जाओ ।”

श्रीसौतिजी बोले, कि हे सदाजीविन् । मैंने यह आस्तोक-कथा पिताजी से जैसे सुनी, ठीक वैसे ही कहें जाता हूँ; सुनिये । पहिले सत्ययुग में कद्रु और विनता नाम्नी आश्चर्य्य रूपवती, सुन्दर लक्षणां से सुहाती दो कन्या थीं । वेदज्ञ प्रजापति की पत्नी और कश्यप सुनि की स्त्री थीं । प्रजापति सहस्र कश्यप ने उन दोनों धर्मपत्नियों पर अति प्रसन्न होकर उनको इच्छानुरूप वर देना चाहा । उनकी स्त्रियों ने भी पति से अभीष्ट वर पाने की बात सुनकर हृदयमें अति प्रीति और प्रफुल्लता लाभ की । पहिले कद्रु ने प्रार्थना की, कि मेरे गर्भ से तुल्यतेजोवान् सहस्र नाग उत्पन्न हों । विनता ने प्रार्थना की, कि बल, प्रभाव, सुन्दरता, और तेजो में कद्रु के पत्नों से श्रेष्ठ केवल दोही पत्र मेरे गर्भ से जन्म लें । विनता ने कश्यप से प्रार्थनाके अनुसार पत्र का वर पाकर उनसे “एवमस्तु” कह करके प्रार्थित वरलाभ से प्रसन्न हो कर अति वीर्यवान् दो पत्नों के पाने की आशा में सफलता लाभ की । कद्रु ने भी तुल्य प्रभावी एक सहस्र पत्नों का वर पाकर अपनेको क्रतार्थ समझा । अनन्तर महातपस्वी कश्यपजी इच्छानुरूप वर पाने से सन्तोष लाभ को हुई दोनों पत्नियों की यह कह कर कि “तुम अति यत्नसे गर्भ धारण किये रहना” वन की पधारे ।

श्रीसौतिजी बोले, वज्रतदिनों के पश्चात् कद्रु ने एक सहस्र अण्डे और विनता ने दो अण्डे प्रसव किये । तब सेविकाओं ने प्रफुल्ल हृदय से उन अण्डोंकी गर्भ-भांडीमें पांच सौ वर्षों तक रखा । अनन्तर कद्रु के अण्डों से सहस्र पत्र उत्पन्न हुए, परन्तु विनताके अण्डे उसी दशा में रहे । इससे तपस्विनी देवी विनताने लज्जा पाकर पुत्र पाने के निमित्त एक अण्डे को खरं तोड़कर देखा, कि पत्र का पूर्वार्द्ध शरीर मात्र उत्पन्न हुआ है, शेषार्द्ध अभीतक प्रकाशित नहीं हुआ है । सुना जाता है, कि उस पुत्रने क्रोधित होकर विनता को यह शाप दिया; कि हे माता । तुमने पत्र देखने के लोभ से जैसे मेरे अङ्ग बिगाड़ दिये, वैसे ही जिससे अहङ्कार दिखा रही हो, उसी कद्रु ही की पांच सौ वर्षों तक दासी बनी रहोगी । माता । यदि तुम इस दूसरे अण्डे को भी फोड़ कर उस यशस्वी पुत्र की भी अङ्गहीन वा विकलाङ्ग न करी, तो वह हीनेवाला पुत्र तुम को दासीपन से मुक्त करेगा । हे माता । यदि तुम अण्डेके भीतर के पुत्र का विशेष बल चाहती हो, तो धैर्य्यके साथ पांच सौ वर्षों तक उस पुत्र के जन्म की समय ताकती रहो ।

अरुण ने विनता को इस प्रकार शाप देकर आकाश-मार्ग में चढ़ करके सूर्यके सारथिका कार्य्य प्रारम्भ किया । हे ब्रह्मन् ! सदा प्रातः काल में वह अरुण सूर्यके रथ पर दिखाई देता है । आगे उचित समय पर सर्पभीजी गरुड भी उत्पन्न हुए । हे भृगुशार्दूल ! वह पक्षीराज जन्म लेते ही अति क्षुधित होकर विनता को छोड़करके विधाता के नियमित भोजन की खोज में आकाश-मार्ग में चढ़ गये ।

आदिपर्वमें सोलहवां अध्याय समाप्त ।

सूतजी बोले, कि हे तपोधन । उस काल में एक दिन कद्रु और विनता दोनों वहिनियों

ने देखा, कि अमृत मथने के काल में जो सर्व-
श्रेष्ठ अश्वरत्न उत्पन्न हुआ था, सम्पूर्ण देवताओं
ने जिस सुन्दर-मूर्ति अश्व की प्रशंसा की थी,
जो - सर्व लक्षणयुक्त, अजर, अति वलशाली,
देवतावाहन श्रीमान् अश्वराज धरती भर में
श्रेष्ठ है, वही उच्चैःश्रवा उनके पाग से चला-
जाता है ।

श्रीशौनक जी बोले, “हे सूत । हमसे कहो,
कि देवताओं ने कहाँ और क्यों समुद्र मथन
किया था, जिससे वह महावीर्यवान् और अति
सुहावना अश्वराज उच्चैःश्रवा उत्पन्न हुआ ?
शौति जी बोले, कि जलती हुई ज्योति को
भांति सुमेरु नामक एक अति सुन्दर पर्वत
सीनेसे मढ़ी हुई चोटी से सूर्य की प्रभा रोक
कर खड़ा है, उसके भीतर का सुन्दर सुवर्ण
ही उसके आभरण के समान हुआ है । उस
पर्वत पर देवता और गन्धर्वलोक विराजमान
हैं, उसे माप कर अन्तःपानि की सामर्थ्य किसी
की नहीं है । अधर्मी लोग उस पर पैर भी
रख नहीं सकते; वह पर्वत घोररूप, भयानक
सर्पों से घेरा हुआ और सुन्दर औषधियों से
सुशोभित है; उस महागिरिने जंघाई में
आकाशमार्ग को ढांप रखा है; कोई प्राकृत
पुरुष वहाँ मनसे भी पहुँचने की सामर्थ्य नहीं
रखता; वहाँ अगणित नद, नदी, वृक्ष सुशो-
भित हैं और भांति भांति के कीड़े मकौड़े मीठे
कलरव मचा रहे हैं । नागलोक के तपोनियम-
युक्त महातपस्वी सम्पूर्ण देवता एकत्र होकर
उस पर्वतकी आकाशसमान, सीमा-रहित और
विविध रत्नों से सुहावनी मनहरणी चोटी पर
चंद्रके बैठ कर अमृत लाभ के निमित्त परामर्श
करने लगे । देवतागण चिन्तायुक्त होकर
चारों ओर युक्ति कर रहे थे, ऐसे समय में
भगवान् विष्णुने ब्रह्माजीसे यह बात कही, कि
सुर और असुरलोक मिलेकर महासागर को
कलसे के समान करके मथन करें, समुद्र मथने

से अवश्यही अमृत निकलेगा । वे सर्व औषधि
और सर्व रत्न पाने पर भी न रुक कर मथन
करते जायें, तो अन्त में अमृत प्राप्त करेंगे ।

आदिपर्जन्य में सतरहवां अध्याय समाप्त ।

श्रीशौतिजी बोले, कि अनन्तर समुद्र मथन
के मथनदण्ड करने के निमित्त सब देवताओंने
मिलकर बड़ी ऊंची ऊंची चोटियोंसे सुग्री
भित लताजाली से वेष्टित, विविध पक्षीपूरित
कराल-सर्पजन्तुओंसे आकलित, किन्नर देव
देववालाओं से सेवित, जंघाई में ग्यारह योजन
खड़े, ग्यारह योजन नीचे गड़े, सब पर्वतों से
बड़े मन्दर को उखाड़ने की चेष्टा करी, पर
किसी प्रकार सफलदर्शनरथ होनहीं सके।
अन्तमें उन्होंने ब्रह्मा और विष्णु जीके समीप
जाकर कहा, कि आप हमारे हित करने के
निमित्त मन्दर पर्वतको उखाड़ने की आज्ञा
दीजिये ।

अनन्तर महाबली अनन्तने उठ कर वनोंमें
भरे और कराल सर्पजन्तुओंसे घेरे उस पर्वत
राज मन्दर को बल से उखाड़ा । आगे देव
गण-उनके साथ समुद्रतट पर उपस्थित हुए
और समुद्र से कहा, कि हम अमृत के निमित्त
तुम्हारा जल मथन करेंगे । समुद्रने कहा, कि
यदि मुझको अमृत का अंश देना स्वीकार करी,
तो मन्दरपर्वत की कठिन रगड़ सह ले सकता
हूँ । समुद्रकी इस बात पर सुरासुर लोग
संमत हुए और वे सागरतट पर खड़े होकर
कूर्मराज से बोले, “हे कूर्मराज । तुम इस
मन्दर को अवलम्ब बन रही, नहीं तो जल
में वह डूब जायगा । कूर्मराज ने “तथास्तु”
कह कर पीठ पर मन्दर को रखा । इन्द्रजी
कूर्मके पीठ पर उस मन्दरपर्वत की यत्नसे
धुमाने लगे । देवता और असुर अमृत के
निमित्त मन्दर को मथनदण्ड और वासुकि की
मथन-रस्सी बना कर समुद्र मथने लगे । जि

और वासुकि का मुख था, उधर दानव और जिस ओर उसकी पूछ थी, उधर देवतालोग पकड़ कर मथने लगे, अनन्तदेव नारायण के स्वरूप हैं, इस हेतु नारायण अनन्तदेव का मुख उठाकर विष की तेजी सहने लगे। अनन्तर सुरों से चलाये जाते हुए वासुकि के मुख से प्रति-क्षया घूँआ और अग्निशिखायुक्त श्वासवायु निकलने लगी। वह घूँआ विजलीयुक्त मिथुन बनकर थके सादे उदासी देवताओं पर वरसने लगा। चारों ओर सुरासुरों पर मन्दरगिरि की चोटी पर से पुष्प-वृष्टि होने लगी। देव-दानवों से मन्दर के सहारे मथे जाते हुए समुद्र से बादल की ध्वनिके सदृश महाशब्द उठने लगा और समुद्र में रहनेवाले सैकड़ों जलजन्तु और पाताल-तलवासी वरुणलोक वाले वै-जीव जिनके देह में जल-भाग प्रधान हैं, मन्दर से हिलोडे जाकर लय पाने लगे। उस घूमते हुए पर्वत-शिखर पर के वृक्ष आपस में घिस कर पत्तियों-समेत गिरने लगे। जैसे विजली के दल से नीलजलद घेरा जाता है, वैसे वृक्षादि की रंगड़ से जली, शिखावाली आग से मन्दरपर्वत घेरा गया। रंगड़ से जली हुई वह आग पर्वत पर के सब हाथी और सिंहों को तथा दूसरे अनेक भाति के जीवों को, जलाने और मारने लगी। अनन्तर अमरश्रेष्ठ इन्द्रजी बादल से निकले जल से चारों ओर फैले दाहने वाले अग्नि को बुझाने लगे। आगे नानाविध वृक्षों का दूध और पौधों का अपरिमित रस समुद्र-जल में चूने लगा। उस अमृत-सदृश-रसस्वपी जल और जले हुए सुवर्ण के प्रभाव से देवताओं ने अमरता लाभ की। जब समुद्रजल उस सुन्दर रस से मिलकर दूध बना, तब उस दूध से घृत बनने लगा। अनन्तर देवगण सुख से बैठे हुए ब्रह्माजी से बोले, “हे ब्रह्मन्। नारायणजी के सिवाय, हम सब, या देवता या दानव वृद्धत थक गये हैं। वृद्धत दिन

होगये, समुद्र-मथन शुद्ध हुआ है, पर अभी तक अमृत नहीं निकला।” देवताओं के इतना कहने पर ब्रह्माजी देवादिदेव नारायणजी से बोले, “हे विष्णो! तुम सुरासुरों की बल दे, इसे विषय की तुमही एकमात्र गति हो।” विष्णुजी बोले, “जो लोग समुद्र-मथन कर रहे हैं, मैं उन सबों की बल दे रहा हूँ तुम सब समुद्र-रूपी कल से की हिलोड़ी और मन्दर-पर्वत को घुमाते रहो।”

औस्तजी बोले, कि नारायण जी का वचन सुन कर देवता और दानव बल पाकरके और मिल जुलके फिर उस समुद्रजल की बड़े वेग से मथने लगे, इससे समुद्र से अगणित किरण-माला पहिरे उजाला-धरे और सुहावने शीतल प्रकाश-धरे सोम (चन्द्रमा) उत्पन्न हुए; आगे घृत से पद्मासन पर विराजमान लक्ष्मीजी और सुरा-देवी के उपजने पर उसी घृत से सुफेद, घाड़ा और नारायणजीकी छाती में स्थित कौस्तुभ नामक तजे प्रकाशधारी शोभाकारी दिव्य मणि तथा सर्व कामनाओं के फलदाता मन्दारवृक्ष और सुरभि उत्पन्न हुई। हे ब्रह्मन्! लक्ष्मी, सुरा, सोम, और मनेजब घाड़ा यह सब आदित्य-प्रधानुसारी होकर जहा देवगण थे, बहा चले गये। अनन्तर मूर्तिमान धन्वन्तरी जी अमृतभरा शुक्लकमण्डलु लेकर उठ आये। दानव लोग यह आश्चर्य-लीला देख कर यह कहते हुए, कि “यह हमारा होगा, यह हमारा होगा” बिड़ा कीलाहल मचाने लगे। अनन्तर श्वेत रङ्ग का चार दांतवाला ऐरावत नामक बड़ा भारी हाथी निकला और देवराज उसपर अधिकार कर बैठे। इस पर भी न ठहर कर देवताओं के बार बार मथन करने पर घूँआ सहित आग के समान कालकूट विष जंग की घेर कर उत्पन्न हुआ। उसकी सूघते ही तीनों लोकों के जीवोंकी चेतना जाती रही। तब ब्रह्माजी की प्रार्थना से मन्दरूपी भगवान् महे

श्वर ने विष को निगलकर गले में धारण किया और उसी दिन से वह नीलकण्ठ नाम से प्रसिद्ध हुए। दानव लोग यह आश्चर्य लीला देख कर निराश हुए, आगे अमृत और लक्ष्मी के लिये देवताओं से बड़ी शत्रुता प्रगट करने लगे। अनन्तर नारायण जी मोहिनी माया आश्रय करके अपूर्व स्त्री-मूर्तिधारण-पूर्वक दानवों के निकट जा पहुँचे, आगे सब दैत्यों ने उस अपूर्व रूपवती युवती को देख करके उस रूप में मग्न होकर और जड़वत् बनकर, उनकी अमृत दे दिया।

आदिपर्व में अठारहवां अध्याय समाप्त ।

सौमित्रजी बोले, कि अनन्तर दानव वृन्द एकत्र होकरके तनुवाण (जिरह बख्तर) पहिन कर अस्त्रादि सहित देवताओं पर चढ़ दौड़ें। इधर वीर्यवान् प्रभु नारायण नरदेव से मिलकर दानवों से अमृत हर लाये। देवता लोग भी उस भारी लड़ाई के कालमें नारायण जीसे अमृत पाकर पीने लगे। अमर लोग इच्छानुरूप अमृत पोरहे थे, ऐसे समय में राज्ञ नामक दैत्य देवता का स्वरूप लेकरके वहाँ आकर अमृत पीने लगा। अमृत राज्ञ तक पहुँचने पाया था, ऐसे समय में चन्द्र और सूर्य ने देवताओं के हित करने के लिये वह बात प्रकाश कर दी। राज्ञ का असुरपर प्रगट होने पर भगवान् चक्रधारी ने चक्र से उसी क्षण बलपूर्वक उस अमृत पीनेवाले राज्ञ के सुशोभित सिर को धड़ से अलग कर दिया। चक्र से अलग किया हुआ पहाड़ की चोटी सदृश वह दैत्य-मस्तक आकाश में उठ कर बड़ा भयानक शब्द करने लगा। उस दैत्य के सिर-वर्जित शरीर के धरती पर लोटने पर पहाड़, वन और द्वीपों के सहित धरती थरथराने लगी इसी समय से राज्ञ के मुख से चन्द्र और सूर्य को स्थायी शत्रुता बन गई, इसी से राज्ञ बीच

बीच में चन्द्र और सूर्य को ग्रास कर लेता है इस समय में भगवान् विष्णु सुन्दरी स्त्रीका अनुपम रूप छोड़ कर भांति भांति के भयानक अस्त्रों से दानवों को कम्पित करने लगे। अनन्तर समुद्रतट पर देवदानवों में अति घोर युद्ध हुआ। सहस्रों तेज कटार और नीखदार तोमर आदि भांति भांति के अस्त्र बरसने लगे। आगे असुर लोग चक्र से काटे जाकर रक्त लालने लगे, कोई कोई खड़ग, शक्ति और गदा घायल होकर धरती पर लोटने लगे। और असुरों के गर्म सोने के सदृश रङ्गे हुए सिर कठोर पट्टिस से शरीरों से अलग होकर सड़ गिरने लगे। महावीर असुरवृन्द रक्त से लाल होकर और मारे जाकर धातुओं से रङ्गे पर्वत-शृङ्ग के समान लेटने लगे। सूर्य के लाल होने पर उस रणभूमि में आपस में कटते हुए सुरासुरों में हाहाकार मच उठा; रणभूमि में दूर से बरसते हुए परिघ अस्त्र और निकट के धूसों से एक दूसरे को मारते हुए सुरासुरों की आहट आकाश तक पहुँचने लगी। “काटी चूर करो, पछियाओ, धरती पर गिराओ, खुद आगे बढ़ो” चारों ओर से केवल यही स आहट सुनाई देने लगी। यह अति घोर युद्ध हो रहा था, कि नर और नारायणदेव रणभूमि में आ पहुँचे। भगवान् नारायण ने नरदेव का सुन्दर चाप देखकर अपने दैत्य-नाशी चक्र को स्मरण किया; स्मरण करते ही शत्रुओं के दुःखदायी, सूर्यसदृश प्रभावी, न टूटने वाले और रणभूमि में अति कठोर सुदर्शन स्वर्ण से आ बहका। आगे हस्तीसूड़ समान सुजवान् कठोर विगवान् नारायणजीने जलती हुई आग के समान भयानक, प्रबल पराये-देश-नाशो अति प्रभाशाल उस उपस्थित चक्र की शत्रुदल पर फेंका। तब प्रलयकाल के अग्नि के समान तेजोवान् सुदर्शन पुरुषश्रेष्ठ के हाथ से चलाये जाकर सहस्रों दैत्य-दानवों की बड़ी

वेगसे काटता हुआ वार वार गिराने लगा । कहीं कहीं तो अग्निके समान जलाने लगा, कहीं असुरों की एकायक काटा कूटा और पिशाच की भांति रणभूमि तथा आकाशमें हर घड़ी घूमता घूमता रक्त चूसने लगा । बिना जलके बादल सदृश शोभायुक्त महाबली, सहस्रों साहसी असुर आकाश में चढ़कर वार वार पर्वतों की गिराकर देवताओं की घायल करने लगे । नाना रङ्ग के मेघ सदृश वनयुक्त भयानक पर्वत आपस में लड़कर चूर चूर होकर घोर आह-टके साथ गिरने लगे । एक दूसरे की ललकारते हुए और भयानक लड़ाई में फंसे देवासुरों की रणभूमि की चारों ओर बड़े बड़े पर्वतों के गिरनेसे वन सहित धरती चोट खाकर कांपने लगी । अनन्तर असुरों के साथ उस घोर लड़ाई में नरदेवने सुवर्ण-मढ़े वाणों से पर्वतों की चोटो काट काटकर उनसे आकाशतल छालिया । आगे दैत्य लोग देवताओं से मारे काटे जाकर और आकाश में घूमते हुए प्रज्वलित अग्नि के समान सुदर्शन को क्रोधित देखकर पृथ्वीके भीतर और खार समुद्र में जा बुसे । तब देवताओंने जय पाकर मन्दरपर्वत का यथोचित सत्कार करके उसको उसके स्थान में जड़ दिया । सम्पूर्ण बादल भी चारों ओर आकाश और स्वर्ग में शब्द मचाते हुए अपने अपने स्थानों की पधारें ; पश्चात् देवता लोग अति आनन्द से अमृत रखने लगे । अनन्तर इन्द्रजीने देवताओंसे मिलकर अमृत-रक्षाके लिये नरदेव के हाथ में अमृत-भाण्ड की सौंप दिया ।

आदि पर्व में उन्नीसवां अध्याय समाप्त ।

और सौतिजी बोली, हे शौनक जी । जिस प्रकार अति बलशाली अश्वराज उच्चैःश्रवा की उत्पत्ति हुई थी, वह अमृत-मथन की कथा आपको कह सुनाई । उस उच्चैःश्रवा की देख-

कर कद्रु विनतासे बोली, “बहिनि ! जल्द कहो तो सही, यह उच्चैःश्रवा किस रङ्ग का है ? विनता बोली, “मैं जानती हूँ, कि यह उच्चैःश्रवा सुफेद रङ्ग का है । क्यों कल्याणि ! तुम क्या समझती हो ? तुम्हारी सुनकर मैं इस बारे में बाजी लगाऊंगी ।” कद्रु बोली, “री मीठी हंसीड़ि । जान पड़ता है, कि इस घोड़े की पूंछ काले रङ्ग की है । आओ इस बारे में बाजी लगावें, कि जो हारेगी, वह सदा दूसरी की दासी बनी रहेगी ।” सौतिजी बोली, कि इस प्रकार कद्रु और विनता आपस में दासीपन की बाजी लगा करके यह कहकर, कि “कल घोड़ा देख लिया जायगा” अपने अपने घरों की पधारी । आगे कद्रुने ठगने की इच्छा से अपने सहस्र पुत्रों की बुलवाकर आज्ञा दी, “बेटा । तुम शीघ्र काले लोम वनकर उच्चैःश्रवाकी ढांप लो, कि जिससे सुभको दासी बननी न पड़े ।” कद्रु के ऐसा कहने पर, जिन सर्पों ने उसकी बात न मानी, उनको उसने यह शाप दिया, कि पाण्डवपुत्र बुद्धिमान राजर्षि जनमेजय के सर्पयज्ञ के समय अग्निदेवता तुमको जलावेंगे । कद्रुने क्रोधित होकर देवसंयोग से सर्पों की जैसा कठोर शाप दियाथा, उसे स्वयं ब्रह्माजीने सुना और सम्पूर्ण देवोंके सहित कद्रु की वह बात अनुमोदन की ; क्योंकि कटीले सर्पगण उनदिनों बड़े विषैल और प्रभावी हो गये थे और उनकी संख्याभी बहुत बढ़ी थी । “दूसरों की पीड़ा देनेवाले तेज विषैले सर्पों का अपना भाता से इस प्रकार शाप पाना अनुचित नहीं हुआ, क्योंकि यह प्रजाओं के मङ्गलार्थ ही हुआ था । जो लोग सदा दूसरों की हिंसा किया करते हैं, वे दैवहीसे प्राणघातकी सजा पा जाते हैं ।”—ब्रह्माजी ऐसा कहकर कद्रुकी बड़ी प्रशंसा करके कश्यप ऋषिजी की बुलवा कर बोली, “हे अनघ ! हे परन्तप । जिन तेज विषैले कटीले सर्पों

तुम्हारे औरससे जन्म लिया है, दैवसंयोग से शाप पा गये हैं । बेटा । इस हेतु तुम्हें क्रोधित होना नहीं चाहिये । देखो, सर्पयज्ञ में सर्पों का नाश होगा, यह बात परागाही में प्रसिद्ध है ।” सृष्टिकर्त्ता भगवान् ब्रह्माजीने महानुभाव प्रजापति कश्यपको उक्त बातों से प्रसन्न कर विष हरने वाली विद्या दी ।

आदिपर्वमें बीसवां अध्याय समाप्त ।

—

श्रीसुतपुत्रजी बोले, कि हे तपोधन । दूसरे दिन सवेरे सूर्य उगतेही, दासीपन को बाजी लगाये झूँड़े, हिंसा और क्रोध से उछली झूँड़े कद्रु और विनता दोनों बहिन उच्चैःश्रवा को देखने चलीं, यात्रा करके कुछ दूर चलकर उन्होंने पासही में बड़ा गहरा महासमुद्र देखा । जो समुद्र प्रलयकालिक हवा से हिलोड़े जाकर घोर शब्द मचा रहा है ; जो ककुए, घरियार, तिमि, तिमिझल, मकर आदि भांति भांति के रहस्यों जीवों से सदा भरा रहता है ; जिसमें नाना प्रकारके भयानक देहधारी जलचर जन्तुओं के रहनेके कारण कोई उतर नहीं सकता, जो अपार, सींच के बाहर, पवित्र जलधर अपूर्व समुद्र सर्व रत्नका आधार, वरुणजीका घर, सर्पों का सुन्दर और श्रेष्ठ आगार, वाङ्मणि का आधार, असुरों का मित्रवर, स्थलचर जीवोंका भयाकर, जल का अक्षय भाण्डार, देवभोगयोग्य अमृत का मंगलमय श्रेष्ठ अलौकिक आधार, जलचरों के घोर शब्दसे भयाकर और भयानक शब्दागार, भारी भारी लहरों के कारण घुसने के अपार, सर्वभूतों का भयदायी और तटपर प्रवल वेगसे बहती सुई हवा से चञ्चल हुआ है और हवासे चोट खाने के हेतु लहरों से ऊँचा होकर मानों चारों ओर लहररूपी हाथ उठाकर नाच रहा है ; जो सुन्दर रत्नाकर चन्द्रकी छटी छटी के कारण अति ऊँची लहरों से उछल

उठता है, जो पाञ्चजन्य शंख की उत्पत्तिका स्थान है ; अमित तेजोवान् भगवान् नारायणने भूमण्डलके उद्धारके निमित्त वाराहका स्वरूप लेकर जिसका जल हिलोड़ा और गदला किया था ; व्रतशील ब्रह्मर्षि अत्रि सैकड़ों वर्षों में भी जिसके अथाह जलके पाताल-तलके तलतक पहुँच नहीं सके थे ; अपरिमित तेजोपूर्ण पद्मनाभ विष्णु प्रलयकाल में योग की निद्रा में जहाँ सोते हैं, जो समुद्र वज्राघात के भयसे डरे हुए मैनाक पर्वत का निर्भय करनेवाला और भयभरे युद्ध में हारे असुरोंका एकमात्र आश्रय तथा बड़वासुखसे प्रज्वलित अग्नि में जल रूपी घृतकी आहुति चढ़ाने वाला हुआ है ; जिस लम्बे कूड़े अपरिमित अपार समुद्रका तल कुआ नहीं जाता, सहस्रों महानदी जिस समुद्रवरके समीप नायिका की भांति अहङ्कार पूर्वक सदा दौड़ रही है, वह वज्र जलभरा हुआ, लहरों से नाचता हुआ, अति गहरा, तिमि-मकरादि उग्र जीवों से पूरा जलचरों के घोर शब्द से गूजता हुआ, आकाश समान फैला हुआ, अथाह अपार जलसागर कद्रु और विनता को देख पड़ा ।

आदिपर्व में इक्कीसवा अध्याय समाप्त ।

—

श्रीउग्रश्रवा जी बोले, इधर सर्पों ने सलाह की, कि “माता की आज्ञा पालनी ही पड़ेगी, क्योंकि उसकी अभोष्ट सिद्ध न होनेसे वह खेह वर्जित होकर हम लोगों को नष्ट करेगी। वह प्रसन्न हों, तो हमको इस शापसे बचा सकती है, सो निश्चय ही हमलोग उस घेड़े की पूछको काली कर देंगे ।” यह सलाह करके वे उच्चैःश्रवा के निकट जाकर उसकी पूँछके लोसवत् बने रहे । हे डिजोत्तम ! इस अवसर में वे दोनों सीत बहिन, बाजी लगाकर अति सन्तोषपूर्वक समुद्र के दूसरे पार चली गईं । जो समुद्र प्रवल हवासे सञ्चालित, घोर

शब्द पूर्ण, तिमि तिमिझिल मकरादि भांति भांतिके सहस्रां भयानक, जीवों से भरा हुआ, अति भयानक, रत्नाकर वरुणजीका घर, नाग-मन्दिर, नदी नायक, बड़वानल और असुरों की वास-भूमि, भयानक जीवों और जलका अक्षय भण्डार, देवभोग्य अमृत की मङ्गलमय दिव्य श्रेष्ठ खानि है, उस धारणातीत, चिन्ता-उपमा-रहित, पवित्र जलपूरित, सहस्रों महा-नदियों से पूजित अति तरल लहरों से भरे हुए, सीते से नाचते हुए, आकाश समान फैले हुए, बाढ़वाग्नि बढ़ानेवाले महासमुद्र की देखती हुई दक्षपुत्री कद्रु और विनता आकाशमार्ग से शीघ्र चलने लगीं ।

आदिपर्व में बाढ़सवां अध्याय समाप्त ।

श्रीउग्रश्रवा जी बोले, कि द्रुत चलने वाली कद्रु और विनता महासमुद्रके पार उतरकर शीघ्र ही उच्चैःश्रवा के समीप जा पड़ेंगीं ; वहां पड़चकरके उन दोनों ने उस बड़े वेगवान् और चन्द्रमाकी चांदनी समान सुफेद घोड़े की काली पूंछ देखी । इसमें विनता बड़ी उदास हुई और कद्रुने उसकी अपनी दासी बनाई । बाजी में हारकर विनता दुःख से जलती हुई दासी के कार्य करने लगी । इस अवसर में बड़े प्रभावी गरुड़जी कालपूर्ण होने पर माता की सहायता बिना स्वयं अण्डेकी फोड़कर निकाल आये । महासत्त्वशाली, महाबली, विजली के समान पिङ्गल नेत्रधारी, अति भय-कारी, कालाग्नि संमाने प्रज्ज्वलित, महाघोर, सदमूर्ति, भारी शरीरधारी, जलती हुई आग की भांति अति भयानक, कामरूपी, कामवीर्य-भरे, कामगतिशील वह पक्षीराज देशों और प्रकाशित करके उसरे बाढ़वाग्नि के समान एका-यक देह बढ़ाकर घोर शब्द सचाते हुए आकाश की उड़ गये । यह देखकर देवता लोग भय खाकर सुख से बैठे हुए विश्वरूपी अग्निदेव

की शरण लेकर उनके पांव छूकर बोले, “हे अग्नि ! तुम अपने शरीर की और न बढ़ाओ ; क्या तुमने हमको जलाने की एच्छा की है ? वह देखो, तुम्हारे बड़ेचढ़े तेज-समूह आ रहे हैं ।” यह सुनकर अग्निदेव बोले, “हे दैत्य-नाशी देवगण ! तुमने जो सोचा है, वह ठीक नहीं है, यह मेरे सदृश प्रभावी महात्मा गरुड़ हैं ; जन्म लेकर माता विनताका आनन्द बढ़ा रहे हैं ; तुम लोग तेजपूरित गरुड़जी की देखकर मोहित हो गये हो ; कश्यपके पुत्र, महाबली, सर्पनाशक यह गरुड़ जी देवताओं के हित करने वाले तथा दैत्य, दानव और राक्षसों के शत्रु होंगे ; तुम डरो मत, आओ हम सब मिलकर उनका दर्शन करें ।” अग्निके इतनी कथा कहने पर देवगण ऋषियों से मिलकर पधारे और दूर ही से गरुड़जी की स्तुति करने लगे ।

देवगण बोले, हे पक्षीराज ! तुम ऋषि हो, तुम महाभाग्यवान् हो, तुम देवता हो, तुम स्वामी हो, तुम ताप देनेवाले सूर्य्य हो, तुम परमेश्वर हो, तुम प्रजापति हो, तुम चन्द्र हो, तुम हवग्रोव हो, तुम आशुग हो, तुम जगदीश्वर हो, तुम आदिभूत हो, तुम ब्रह्म हो, तुम ब्राह्मण हो, तुम अग्नि हो, तुम वायु हो, तुम धाता हो, तुम विधाता हो, तुम देव-ताओंके शिरोमणि विष्णु हो, तुम महान् तत्व हो, तुम अहङ्कारतत्व हो, तुम नित्य हो, तुम निर्विकार हो, तुम महत् यश हो, तुम तेज हो, तुम वृद्धिद्वत्ति हो, तुम हमारे सब से प्रधान सुक्तिदाता हो, तुम बलसागर हो, तुम साधु हो, तुम अनेक सत्सुक्त हो, तुम ऐश्वर्य्यवान् हो, तुम अजोत हो, हे पूर्ण कीर्तिवान् ! तुम्ही से आगत अनागत सबों की उत्पत्ति होती है । तुम चिन्मात्र हो, तुम्ही सूर्य्यके समान किरणों से स्थावर जड़मात्माक सम्पूर्ण जगत्की प्रकाश कर रहे हो और फिर तुम्ही सूर्य्यके प्र

हरकर इस चराचर विश्व को लय कर रहे हो। हे अग्नि-समान प्रभाववान्! जिस प्रकार प्रलय कालमें सूर्यदेव क्रोधित होकर प्रजाओं की जलाते हैं, तुम भी उसी प्रकार उनकी जला रहे हो और युग बदलने के काल में सृष्टिनाशी प्रलयाग्नि जिस प्रकार भयानक रूप से जलकर संहार करता है, तुम भी उसी प्रकार सृष्टि को नष्ट कर रहे हो। विजलो-सदृश शीभावान् अन्धकारनाशक, आकाशव्यापक, महाबली, कार्य कारणरूपी, वर देने वाले, अजेयविक्रम, गमनमार्ग में विचरने वाले पक्षी-राज। हम तुम्हारी शरण लेते हैं। हे जगत् प्रभो। तुम्हारे तेज से यह सम्पूर्ण जगत् तप रहा है। अतएव तुम तपे हुए सुवर्ण-वर्ण तेजोंसे इस सम्पूर्ण जगत् तथा देवगण और महात्माओं की रक्षा करो। देखो, आकाश में चलनेवाली देवतालीन तुम्हारे तेजोंसे चार मान और भय खाकर मार्ग भूल रहे हैं। हे पक्षीवर! तुम दयावान् महानुभव कश्यप ऋषिके पुत्र हो, सो क्रोधयुक्त मत बनो, जगत् पर दया दिखाओ, तुम समर्थ हो, सब कुछ कर सकते हो, पर-शान्ति आश्रय कर-हमको बचाओ। हे पक्षीराज। तुम्हारे बिजली की कड़कड़ाहट के समान शब्दसे दिशा आकाश स्वर्ग और इस पृथ्वी तथा हमारे हृदय में प्रतिक्षण हलचल मच रहा है, सो तुम अपने अग्नितुल्य शरीर को सज्जाली। हे यमराजसमान-क्रोधवान्। तुम्हारी द्युति देखकर हमारे चित्त एकबारंगी अस्थिर और चञ्चल हो रहे हैं, हे पक्षीश्रेष्ठ। प्रार्थना करते हैं, कि हमलोगों पर प्रसन्न होओ। हे भगवान्! तुम हमारे सुख देनेवाले और मङ्गल-दायी होओ। गरुड़जी ने, ऋषि और देवताओं की ऐसी स्तुति सुनकर अपने तेजसमूहको हर लेने की-प्रतिज्ञा की।

आदिपर्व में तेईसवां अध्याय समाप्त ।

गरुड़जी देवताओं के यह सब वचन सुनकर और अपनी देहको देखकर उसे सम्भावने लगे और बोले, कि मेरी देहको देखकर जीवों को भय खाना नहीं पड़ेना। तुम लोग में भारी आकार को देखकर डर गये हो, सो मैं अपना तेज हर लेता हूँ। श्री उग्रयवान् बोले, कि पश्चात् कामचारी कामवीर्य पक्षी-राज स्वरूप सम्भालकर अपने बड़े भाई अरुण को पीठ पर चढ़ाकरके पितृगृह से महासमुद्र के दूसरे तट पर माता के समीप पधारे। इस समय सूर्यदेवने तेज किरणजाल फैलाकर तीनों लोक जलाने की कल्पना की थी, इस हेतु अति द्युतिमान् गरुड़ने अरुण को पूर्व और फेंक दिया।

श्रीरुरुजी बोले, कि भगवान् सूर्यदेवने इस समय किस कारण से तीनों लोकों को जलाना चाहा था? और देवताओंने उनकी कौनसी हानि पड़वाई थी, कि वह क्रोधित हुए थे? प्रमति बोले, कि हे निष्पाप। जब चन्द्र और सूर्यने राज्ञके अमृत पीनेका वृत्तान्त प्रकाश कर-दिया था, तब राज्ञने चन्द्र और सूर्यके विरुद्ध शत्रुता ठान ली थी। उस शत्रुता के हेतु जब राज्ञ सूर्य को ग्रास करने लगा, तब वह यह सोच कर क्रोधित हुए, कि मैं तो देवताओं के कार्य के लिए राज्ञ से शत्रुता का बड़ी हानि और कष्ट सह रहा हूँ, पर विपत्त के समय देवों में से कोई भी मेरी सहायता नहीं करते, वरण राज्ञ जब सुभको ग्रास करता है, तब वे देख देख कर हंसा करते हैं, सो मैं निःसन्देह सम्पूर्ण लोकों को नाश करूँगा। सूर्यदेव ऐसी-प्रतिज्ञा ठानकर-अस्ताचल की चोटी पर चढ़ गये और वहाँ से लोकों में संहार का भय-उपजाने लगे। यह देखकर महर्षिगण देवताओं के समीप जाकरके बोले, कि आज आधी रातके समय सर्वलोकभयकारी त्रिलोकनाशी महादाह शुरू होगा।

सुनकर देवहन्द्ने ऋषियों के सहित ब्रह्माजी के समीप जाकर निवेदन किया, कि हे भगवन् । आज दाह का यह कैसा महाभय आ पड़ा ? अभी तो सूर्यदेव दीख नहीं पड़ते, पर तौभी मानों सृष्टि लोप हो रही है ; जब वह उगेंगे, तब न जानें, क्या होगा ? पितामह जी बोले, कि लोकोंको नाश करने के लिये सूर्यदेव उगने पर है, वह निकलते ही सर्वलोकों को भस्म करेंगे, पर पहिले ही इसका प्रतिविधान किया गया है ; धीमान्, बृहत शरीर-धारी अरुण नामक अति प्रभावो कश्यपएत सूर्य के सामने विराजेंगे । वह सूर्य के सारथी का कार्य कर तेज हर लेंगे, इसीसे देवता ऋषि और सर्वलोकों का मङ्गल होगा । प्रमति बोले, कि अनन्तर पितामह की आज्ञानुसार अरुण ने वह सब कार्य किये और सूर्यदेव भी अरुण से आच्छादित होकर उदय हुए । सूर्य जिस हेतु क्रोधित हुए थे और अरुण जिस कारण उनके सारथी बने, वह कह चुके, अब पहिले जो प्रश्न किये गये थे, उनके उत्तर सुनिये ।

आदिपर्व में चौबीसवां अध्याय समाप्त ।

श्रीसीतिजी बोले, अनन्तर अति वीर्यशाली, महाबली, कामचारी पक्षीराज समुद्र के दूसरे पार माता के समीप जा पड़ेंगे । वहां उनकी माता विनता बाजी हार कर और अति-दुःखी होकर दासी बन दिन काट रही थी । एक दिन कद्रु गरुड़ के सामने ही पैर कूती हुई विनता का नाम लेकर बोली, “री विनता । उस निराले समुद्र के भीतर नागोंके घरमें सुभको ले चल ।” यह सुनाकर गरुड़ की माता सर्प माता को वहाँ ले चली । गरुड़भी माता की आज्ञानुसार सर्पों को ले चले ; पर ले चलने के समय वह विनतापुत्र पक्षीराज सूर्यमण्डल के निकट होकर जाने लगे । इससे सर्पगण सूर्य के तेज से तपकर

सुभानि लगे । कद्रु पुत्रों की वैसी दशा में देखकर देवराज की स्तुति करने लगी, कि हे सर्व देवों के नाथ ! तुमको नमस्कार करता हूं, हे बलसूदन । तुमको नमस्कार करता हूं, हेनमुचिनाशी सहस्राक्ष संचोकान्त । तुमकी प्रणाम करती हूं, जल बरसा कर तुम सूर्यसे जलते हुए सर्पों की रक्षा करो ; हे देवीत्तम । तुम हमारे एकही रक्षक हो ; हे पुरन्दर । तुम अपरिमित वृष्टि को सृष्टि कर सकते हो । तुम वायु हो, तुम बादल हो, तुम अग्नि हो, तुम आकाश की विजली समूह हो, तुम मेघों के चलानेवाले हो, तुमही प्रलय-काल के भारी बादल हो, तुम तुलनारहित घोर वज्र हो, तुम गरजानेवाले जलधर हो, तुम तीनों लोक के रचने वाले हो तुम नाश करनेवाले हो, तुम जीतने के अयोग्य हो, तुम सर्वभूतों के प्रकाशरूपी हो, तुम आदित्य हो, तुम विभावसु हो, तुम आश्वर्य्ययुक्त महान् तत्व हो, तुम राजा हो, तुम देवों में श्रेष्ठ हो, तुम विश्णु हो, तुम सहस्राक्ष हो, तुम परात्परपर-देव हो, तुम अमृत हो, तुम्ही परम पूजित सोमदेव हो, तुम महर्त हो, तुम तिथि हो, तुम लव हो, तुम क्षण हो, तुम शुक्लपक्ष हो, तुम कृष्णपक्ष हो, तुम कला हो, तुम काष्ठा हो, तुम वृष्टि हो, तुम वर्ष, ऋतु मास, दिन और रात हो, तुम उत्तर पर्वतयुक्त धरती हो, तुम सूर्ययुक्त निर्मल आकाशमण्डल हो, तुम तिमि तिमिङ्गिल मीन मकरादि नाना जल-जन्तुओं से भरे और लहराते हुए महासमुद्र हो, तुम अति-यशस्वी हो, इस हेतु प्रज्ञायुक्त महर्षिगण आनन्दचित्त से सदा तुम्हारी उपासना किया करते हैं, तुम मङ्गलार्थ यज्ञों में स्तुति प्राप्त होकर वषट् किये हुए घृत और सोमरस को पीते हो, हे अनन्तबली । विप्रहन्द् फलपानके निमित्त सदा तुम्हारे नामसे यज्ञ किया करते हैं, और सम्पूर्ण वेदाङ्ग में तुम्हारे गुण कीर्तित हैं, इसीहेतु यागशील

श्रेष्ठ द्विजवन्द सर्वप्रकार से प्रयत्नपूर्वक वेदाङ्गों की मीसांसा किया करते हैं ।

आदिपर्व में पच्चीसवां अध्याय समाप्त ।

श्री उग्रयवाजी बोले, कि कद्रु के इस प्रकार स्तुति करने पर भगवान् मेघवाहनने धीले बादलों से सम्पूर्ण आकाशमण्डल को आच्छादित कर लिया और मेघों को आज्ञा दी, कि तुम भली भांति जल बरसाओ । मेघवन्द विजली समूह से उज्ज्वल होकर आपस में घोर गर्जन करते हुए जल बरसाने लगे । अति अद्भुत बड़े शब्दशील बादलों के बहत जल बरसाने पर आकाश देखकर जान पड़ने लगा, कि मानों प्रलयकाल आगया है । विजली और हवासे डोलते हुए बादलों की सनसनाहटरूपी बाजों के साथ अगणित धाराओं की लहरों से मानों आकाश भी नाचने लगा और बादलों से सदा जल की धार बहने से आकाश-तल, चन्द्र और सूर्य से खाली जान पड़ने लगा । देवराज की वर्षा से सर्पों को बड़ा आनन्द हुआ ; धरती जले से भर गई ; निर्मल शीतल जल पाताल तल तक पहुँचने लगा । इस प्रकार अपार जलकी लहरों से पृथ्वी आच्छादित होने पर सर्पगण माता के सहित रामणीयक द्वीप की पधारे ।

आदिपर्व में छत्तीसवां अध्याय समाप्त ।

श्रीसौतिजी बोले, कि अनन्तर गरुड़ पर चढ़े हुए सर्पगण जलधारा से नहाने कर प्रसन्न हृदय से थोड़े काल में रामणीयक द्वीप में जा पहुँचे । संकरों के वासस्थान और विष्वक्कर्माजी से बने हुए उस द्वीप में नागोंने पहिले पहल बड़े भयानक खार समुद्र को देखा ; पीछे गरुड़जी के साथ अति सुन्दर वन में प्रवेश किया । वह महावन सदा सागर-जल से घेरा हुआ और भांति भांति के पक्षियों के

कलरवों से पूरित, रङ्ग विरङ्ग के फल-फूलों से सजे सजाये वन, सुन्दर सुन्दर गृह मन्दिर, कमलकलाप से भरे हुए सुन्दर झीलों से सुशोभित है ; उस वन में गुड़ सुगन्धित हवा मन्द मन्द बह रही है ; हवासे धीरे धीरे डोलते हुए जंघे जंघे सुहावने चन्दन के वृक्ष फूल वर्षा कर अपूर्व अतुल शोभा को बढा रहे हैं ; भांति भांति के फोंधा से फूलों के गिरे से ऐसा जान पड़ता है, कि मानों वहाँ पहुँचे हुए सर्पों पर फूल बरस रहे हैं ; इस गरुड़ और अप्सराओं के परम प्यार, मधु-मनभों मधुमक्षियों से गूँजते हुए, मनोहर, दिव्य, पवित्र और सुन्दर वन की शोभा निहारने से सबों के मन में आनन्द की लहर लहराने लगती है, वह नाना पक्षियों की आहट से वाजता हुआ सुन्दर वन कद्रुके पत्र, नागों का परम प्रिय था, सो वे वहाँ प्रवेश कर विहार करने लगे और अति वीर्यशाली पक्षीराज से कहा, “हे खेचर । तुम आकाश में घूमने के काल अनेक प्रकारके देश देखते हो, सो जहाँ कहीं अमल जल और सुन्दर स्थल हो, ऐसे किसी दूसरे द्वीप में हमको ले चलो ।” यह सुन कर कुछ काल सोच करके गरुड़ जी विनता से बोले, “माता । मैं क्यों सर्पों की आज्ञा पालूँ !” गरुड़ के ऐसा कहने पर विनताने सर्व गुणों से भूषित, महाबली, परम वीर्यशाली, आकाशविहारी अपने पुत्र गरुड़ से कहा, “हे पक्षीराज । मैं सर्पों के छल से झूठी बाजी हार कर, दुर्दैववश अपनी सौत की दासी बनी हूँ ।” जब गरुड़माता ने दासी बनने का कारण कह सुनाया, तब आकाश विहारी गरुड़ जी माता के दुःख से दुःखी होकर सर्पों से बोले, “हे सर्पों । रच बोलो मेरे कौनसी वस्तु ढूँढ़लाने वा किन बात को जान कर लौटने अथवा किस प्रकार की पौरुष प्रकाश करने से हम तुम्हारी सेवकाई से छूट

सकते हैं ।” श्रीउग्रश्रवा जी बोले, सपों ने गरुड़ की बात सुनकर कहा, “हे पक्षीवर ! तुम बलपूर्वक अमृत लाओ, तो सेवकाई से छूट सकते हो ।”

आदिपर्व में सताइसवां अध्याय समाप्त ।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि गरुड़ सपों की इतनी कथा सुनकर माता से बोले साई ! मैं अमृत लाने की जाऊंगा, कुछ भोजन करना चाहता हूं, कहीं क्या खाऊं ।” विनता बोली, “निराले समुद्र में धीवरों के रहने के सुन्दर सुन्दर घर हैं, वहां सहस्रों धीवर बसते हैं, तुम उन्हें भोजन कर अमृत लाने की जाओ, पर कभी ब्राह्मण मारने की अभिलाषा मत करो । ब्राह्मण सर्व जीवों के अवध्य हैं, क्योंकि वह अग्निके समान हैं । ब्राह्मण सब भूतों के गुरु हैं, वह क्रोधित होने से अग्नि, सूर्य, विष और अस्त्र के समान बन जाते हैं, साधुलोग इसी हेतु ब्राह्मण की पूजा करते हैं, बेटा । क्रोध से उकल उठने पर भी तुम कभी ब्राह्मणवध मत करना, कभी ब्राह्मणको हानि भी न पहुंचाना, हे अनध ! व्रतशील ब्राह्मण क्रोधित होकर जिस प्रकार भस्म करते हैं, अग्नि और सूर्य भी उस प्रकार भस्म नहीं कर सकते । इन्हीं कारणोंसे ब्राह्मण का सम्मान करना ; ब्राह्मण सर्वभूतों के अग्रज, वर्यों में श्रेष्ठ, पिता और गुरु हैं ।” गरुड़ बोले, “माद । ब्राह्मण का रूप कैसा, स्वभाव कैसा, और पराक्रम कैसा है ? क्या वह अग्नि की भांति जलते हैं अथवा शान्तमूर्ति है ? माद । जिन शुभ लक्षणों से ब्राह्मण को जान सकें, वह सुभको हेतु दर्शाकर बता दो, मैं पहिले वही जानना चाहता हूं ।” विनता बोली, “हे पुत्र ! जो तुम्हारे भोजन के काल में गले तक पहुंचते ही कांटेके समान गलेमें अटक जायं और जलते अद्भार की भांति जला दें, उन्हींको तुम ब्राह्मण

जान लेना, तुम क्रोधयुक्त होनेपर भी कभी ब्राह्मण की हत्या न करना ।” विनता पुनः छेह से फिर बोली “बेटा ! जो तुम्हारे पेट में न पचें, उन्हींको अच्छे ब्राह्मण जान लेना ।” सपों से ठगी, अतिदुःखी, साधुशीला विनता, पत्रके अतुल बल जानने पर भी पुनः छेहसे प्रसन्नचित्त होकर उनको अशीस देने लगी और बोली, “बेटा ! पवन-देवता तुम्हारे दोनों पङ्क्तों को बचावें, चन्द्र और सूर्य तुम्हारी पीठ को बचावें, अग्निदेव तुम्हारे सिरको बचावें, वसुलोग तुम्हारे सम्पूर्ण शरीर को बचावें । बेटा ! मैं भी यहां रहकर तुम्हारी शान्ति और स्वस्तिके लिये मङ्गलचिन्ता में सदा नियुक्त रहूंगा, तुम बिनाविघ्न कार्य-साधन के लिये पधारो ।

श्री उग्रश्रवा जी बोले, कि अनन्तर महावली गरुड़ माताकी बात सुनकर दोनों पङ्क्त फैलाकर आकाश की-उड़ें ; और चुधा-से कातर होकर सर्वनाशी दूसरे यमराज को भांति वह धीवरों के पास जा पहुंचे । धीवर मारने की उनके नीचे उतरने के काल में आकाश चूमती हुई बेपरिमाण धूल उड़ने लगी, उस धूल के नीचे गिरने पर समुद्र-जल स्खने पर हुआ और उनके उतरने के समय निकट के पर्वतों के वृक्ष हिलने लगे । अनन्तर सर्पभक्षक, पक्षीराज गरुड़ भारी मुंहको फैलाकरके धीवरों के मार्ग रोककर खड़े रहे । धीवरगण भी भय से उनके मुंह में ही शीघ्र घुसने लगे । जिस प्रकार वनस्थित वृक्षों के प्रवल पवन से हिलाये जाने से सहस्रों पक्षी समूह धूल और हवा के विगसे विकल और मुग्ध होकर आकाश में इधर-उधर घूमते रहते हैं, उसी प्रकार धीवरगण गरुड़जीके फैले हुए मुख में घुसने लगे । आगे-शत्रु तरसानेवाले महावली चुधासे जले पक्षीराजने अगणित धीवरों को मारकर-मुंह बन्द कर लिया ।

आदि पर्व में अठाइसवां अध्याय स

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि धीवरों के सङ्ग स्त्री-सहित एक ब्राह्मण गरुड़जीके कण्ठ में प्रविष्ट होकर जलते अङ्गार के समान गलेको जला रहे थे । गरुड़जी उनसे बोले, “हे द्विजोत्तम ! मैं मुह खोलता हूं, तुम शीघ्र निकल जाओ, ब्राह्मण सदा पाप में रत होने पर भी मेरे वधयोग्य नहीं हैं ।” गरुड़जी का यह वचन सुनकर ब्राह्मणने उत्तर दिया, कि मेरी स्त्री यह धीवरी भी मेरे सङ्ग निकले । गरुड़ बोले, “मेरे तेज से पच जाने के पहिले अपनी धीवरों को लेकरके शीघ्र निकलो । श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि अनन्तर ब्राह्मण धीवरी के सङ्ग निकल आये और गरुड़ की आशीस देकर मनमाने देशको पधारे । स्त्री-सहित ब्राह्मणके निकलने पर कामरूपी पक्षीराज दोनों पक्ष फैलाकर आकाश की उड़ गये, आगे पिताजी से भेंट होने पर उनसे पूछे जाकर यथावत् सर्व वृत्तान्त कह सुनाये । अमेयात्मा महर्षि कश्यपजी उनसे बोले, “बेटा । तुमलोग तो कुशल से हो ? तुमको नित्य यथोचित भोजन तो मिलता है ? इस भूलोक में तुम्हारे भोजनयोग्य सामग्री बहुत है न ?” गरुड़जी बोले, “पिता । मेरी माता और भ्राता नित्य कुशल से हैं, मैं भी कुशल से तो हूं, पर मेरे यथोचित भोजन के विषय में नित्य ही अमङ्गल सूक्ष्मता है, हालमें सर्पों ने मुझको दुर्लभ अमृत लानेकी भेजा है, मैं भी माता की सेवकाई कुड़ाने की अमृत लाजंगा । माताने मुझे आज्ञा दी थी, कि तुम धीवरों को खालिना, पर सहस्रो धीवरों को खाजाने पर भी मेरी चुधा न गई, सो भगवन् ! आप आज्ञा दीजिये, कि और कुछ भोजन को सामग्री कहां मिलेगी, जिसे खाकर अमृत ला सकू; हे प्रभो । आप मेरी भूख-प्यास मिटाने की भोजन-सामग्री का पता बता दीजिये । कश्यपजी बोले, “यंह जो सरोवर देखते हो, अति पवित्र है, और देवलोक में

भी प्रसिद्ध है ; यहां एक हाथी मुह नीचेकर कूर्मरूपी बड़े भाई पर सदा चढ़ आता है । पूर्वजन्म में उनमें जिस कारणसे शत्रुता हुई थी और उनका जितना परिमाण है, वह सब गृहवृत्तान्त कहता हूं, सुनो ।”

विभावसु नामक एक बड़े क्रोधी महर्षि और सुप्रतीक नामक उनके एक बड़े तपस्वी छोटे भाई थे । सुप्रतीक को ऐसी इच्छा नहीं थी, कि पैत्रिक धन एकत्र रहे, सो वह कभी कभी सम्पत्ति वंटवाने की बात कहा करते थे । एक समय विभावसु अपने छोटे भाई सुप्रतीक से बोले, “भाई । बड़तेरे मनुष्य मुग्ध होकर पैत्रिक धन वंटवाना चाहते तो हैं, पर वंट जाते ही वे धन की मायासे मोहित होकरके आपस के भगड़े में फंस जाते हैं । स्वार्थी और अज्ञानी भाइयों के अपना अपना अंश लेकर अलग होते ही शत्रुलोग मिल बनकर उनके आपस का द्वेष खड़ा कर देते हैं । आगे क उनमें शत्रुता हो जाती है, तब शत्रुलोग भी दोष निकालने लगते हैं, सो बिना विलम्ब उनका सत्यानाश हो जाता है, इसी से साधुलोग गुरु और शास्त्रों की आज्ञा न माननेवाले आपस में लड़ते हुए भाइयों के अलग होने की प्रशंसा नहीं करते, हे सुप्रतीक । तुम भाई से विवाद कर धन की अभिलाषा कर रहे हो और तु किसी प्रकारसे रुकते नहीं हो, सो हस्तीयों में जन्म लोगे ।” सुप्रतीक इस प्रकार का पाकर विभावसुसे बोले, “तुम भी जलन करके कच्छप होकर जन्म लोगे ।” इस प्रकार क्रोधवश पशु-योनि में जन्म लिये हुए, विभावसु और सुप्रतीक धन के निमित्त बुद्धि खोकर एक दूसरे के शापसे हाथी और ककुआ बने हैं । इस सरोवर में वे दोनों भाई महाबली हाथी और ककुये के स्वरूप में अलौकिक परिमाण और बलसे गर्वित होकरके पूर्व-शत्रुता सार कर एक दूसरे की हिंसा किया करते हैं ।

देखो, सुन्दरमूर्ति बड़ा भारी हाथी सरीवर के तट की आ रहा है, उसकी चिलाहट सुनते ही बड़ा भारी ककुआ भी सम्पूर्ण जल को हिलोड़ कर बाहर निकला है। वह महा-बली हाथी उसको देखते ही सूँड़ की कुण्डलवत् बनाकर दांत, सूँड़के अगले भाग, पूंछ और पांव आदिके धक्कोंसे मछलियोंसे भरे हुए तालाबको हिलोड़ कर जल में जा उतरा है, विक्रामी ककुआ भी सिर ऊपरकर लड़ने की आग बढ़ा है। उस हाथी का परिमाण जंचाई में दस योजन और लम्बाई में बारह योजन है। ककुआ की जंचाई तीन योजन की और गोलाई दश योजन की; अब वे दोनों एक दूसरे के मारनेकी घोर लड़ाई में फंस गये हैं, सो तुम शीघ्र उन दोनों को खाकर अपना मनमाना कार्य करो; बड़े बादल समान कूर्म और बृहत पर्वतवत् घोररूप हस्ती की भोजन करके अमृत लाने जाओ।

श्रीस्रतजी बोले, कि महर्षि कश्यपने यह कहकर गरुड़ की इन वचनोंसे अशीस दिया, कि हे अण्डज ! देवोंके साथ युद्ध के समय तुम्हारा मङ्गल होगा; पूर्णकुम्भ, गौ, ब्राह्मण और जो दूसरी माङ्गलिक वस्तु है, वे तुम्हारे मङ्गलदायी होंगे। जब तुम देवों के साथ युद्धमें प्रवृत्त होगे, तब ऋग्वेद यजुर्वेद, सामवेद, यज्ञका युद्ध घृत, सम्पूर्ण रहस्य और अङ्गों के सहित सम्पूर्ण वेद तुमको बल दें। कश्यप ऋषिके इतनी कथा कहने पर गरुड़ने वहांसे चलकर निकट ही में पक्षियोंसे भरे हुए उस सुन्दर जलपूर्ण सरीवर को देखा। आगे अति वैगवान् पक्षीवर अपने पिताजीके वचनोंको स्मरण करके एक नखसे हस्ती और दूसरे से कच्छप को लेकर आकाश की बड़ी जंचाई पर उड़ गये और स्थान ठहरा करके सुमेरु की चोटी पर देववृक्षों के निकट जा पड़ें। सुन्दर सुवर्ण-पर्वत पर के वृक्ष समूह पक्षीवर के पङ्क्तियों

को हवासे चोट खाकर टूटने के भयसे कांपने लगे। गरुड़जी अभोष्ट फलदायी वृक्षों को कांपते देखकर दूसरे अपार, बृहत-आकार, त्रैदूर्य-मणिकी शाखाओं से सुहावने, सुवर्ण और चांदी के फलों से बने ठने, समुद्र जल से प्रक्षालित और शोभा-पूरित महा वृक्षों के पास गये। वहां बड़े ही पुराने एक बड़े बड़ने मनके समान वैगवान् पक्षीराज को उधर जाते देखकर कहा, “गरुड़ जी। तुम मेरी सी योजन फैली हुई यह जो एक महा-शाखा देखते हो, इसी पर बैठकर हाथी और ककुआ को भोजन करो। अनन्तर महीधर समान वृहत्-प्रमाण तेजीवान् पक्षीवर के उतरते ही सहस्रों पक्षि-भरा वह वृक्ष हिलने लगा और पत्तों की घनी कतार से सुहावनी वह शाखा टूट भी गई।

आदिपर्व में उनतीसवां अध्याय समाप्त ।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि गरुड़जी के पांवों से छूते हो वृक्षशाखाके टूटने पर उसे उन्होंने पकड़ रखा। आगे आश्चर्य हीकर उस टूटी हुई बड़ी शाखा की ओर आख फौरकर देखा, कि उस में वालखिल्य “ऋषिलोग नीचे मुह कर लटकते हैं। तपस्यामग्न लम्बमान् ब्रह्म-र्षियों को देखकर पक्षीवर सोचने लगे, कि “ऋषिगण इस शाखा में लटक रहे हैं, ऐसा करना होगा, कि वे मारे न जायें; यदि शाखा गिर जाय, तो इनके प्राण जाते रहेंगे।” ऐसा विचारकर वीरवर पक्षी-नाथने नखों से दृढ़ताके साथ गज और कच्छप को पकड़कर ऋषियों के नष्ट होने के भय से उस शाखा को दोनों चोंचों से सम्भाल लिया। महर्षियों ने गरुड़ का यह अद्भुत कार्य देखकर अचम्भे में होकर उनका “गरुड़” नाम रखा; क्योंकि वह सर्पभक्षक पक्षीवर भारी भार लेकर उड़े। अनन्तर गरुड़ पङ्क्तियों

हवा से पर्वतों को विकल करते हुए वहां से धीरे धीरे चले। आगे वालखिल्यों की रक्षा के निमित्त उस शाखाकी और गजकच्छप की लेकर अनेक देश घूम डाले; पर कहीं बैठके भोजन करने की योग्य स्थान न मिला। अनन्तर उन्होंने पर्वतश्रेष्ठ गन्धमादन पर जाकर अपने पिता कश्यप की तप में मग्न देखा। भगवान् कश्यपभी उस तेज-वीर्यभरे, मन और हवा के समान वेगवान् दिव्य-देही पर्वत-शृङ्ग-बत्, उद्यत ब्रह्मदण्ड-रूपी, चिन्तातीत, अद्भुत विकटाकार, भयङ्कर-मूर्ति, महा-वीर्य-शाली, साक्षात् प्रज्वलित अग्नि-सदृश सौद्रमूर्ति, देव-दैत्य और दानवोंके अधृष्य तथा अजेय, पर्वत शृङ्गविदारक, जल समुद्र सोखने वाले, तीनों लोकों को मथने योग्य, घोर यमराज-सदृश, भयानक पक्षीराज को उपस्थित होते देखकर और उनका अभिप्राय समझकर बोले, “बेटा! सावधान। साहस मत करो, आजही कष्ट भोगना न पड़े, मरीचिप वालखिल्य लोग क्रोधित होकर तुमको भक्ष न करें।”

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि अनन्तर कश्यपने एत के निमित्त तपोबलसे निष्पाप महाभाग्यवान् वालखिल्य सुनियों को प्रसन्न किया और बोले, “हे तपोधनो। गरुड़ लोकोके मङ्गल के निमित्त जिस कार्य में उद्यत हुआ है और जिस महान् कार्य के करने की अभिलाषा की है आप लोग उसे उस कार्य को करने की आज्ञा दें।” श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि भगवान् कश्यप के ऐसा कहने पर वालखिल्य सुनिगा उस शाखाको छोड़ कर तपके निमित्त अति पवित्र हिमालय पर्वतको पधारे। उनके चले जाने पर विनता-पुत्रने, अपने शाखाभार से कातर-मुखसे अस्मृष्ट बातों में कश्यपजी से पूछा, “भगवन्। मैं इस वृक्षशाखाको कहां रखूँ, सुभे बताइये, कि मनुष्यों से खाली देश कहा है।” “यह सुनकर कश्यपजीने, हिम से

आच्छादित कन्दरावाले, मनसे भी शैरोके पङ्चनेके योग्य, मनुष्योंसे खाली एक पक्ष निश्चय कर दिया। महापक्षी तार्क्ष्य उस बड़े भारी पर्वत की और गज, कूर्म और ऊँच शाखा की लेकर अति वेग से चले गये। विनता पुत्र जिस भारी शाखा की लेचले, वह एक सौ गौके चमड़े से बनो एकावली रस्सी के भी घेरी नहीं जा सकती थी। अनन्तर विह्वर गरुड़ने सैकड़ों योजन चलकर थोड़े ही काल में पिता के बताये हुए उस पक्षत में पङ्च कर बड़े शब्द से उस भारी शाखा को छोड़ा। गरुड़ के पंखों की हवा खाकर वह गिरिवर कम्पित हुआ और वहां के वृक्षों से उखड़ कर गिर जाने से चारों ओर फूल न सने लगे। जगि काञ्चन से पची हुई लि चोटियों ने गिरि की सुशोभित किया था, वे सब टूट फूट कर इधर उधर गिरने लगीं। वृक्षसमूह उस बड़ी शाखा की रगड़ खाकर गिरते हुए सुवर्ण फूलों से, विजलीदार बादल के समान बड़ी शोभा पाने लगे। सुनौले रङ्ग वृक्ष धरती पर गिर कर और वातुओं से रंग जाकर सवेरे लगे हुए सूर्य के किरणसे रंग हुए जान पड़ने लगे। अनन्तर पक्षीराज गरुड़ पहाड़ की चोटी पर बैठकर उस गज और कूर्म दोनों को भोजन करने लगे। गाँव वह हाथी और बाघों को खाकर पर्वत की चोटी से अतिवेग से उड़ गये। गरुड़ ने आकाश को उड़ने पंर देवताओं के भयदायक उपद्रव होने लगे। देवराज का प्रिय वज्र भस्म से जल उठा, आकाश से धुआं-सहित शिखाएँ उल्कापिण्ड बेज्जत गिरने लगे, जो पहिले देवता और असुरों की लड़ाई में भी नहीं हुआ था; वसु, रुद्र, आदित्य, माध्य, मरु और दूसरे सब देवोंके सहस्रों अस्त्र आपस में भिड़ने लगे; आग की चिंगारियाँ गिरने लगीं, और विना बादल निर्मल आकाश

महाशब्द से गरजने लगा ; जो देवों के भी देवता हैं, वह भी रक्त वर्षा ने लगे ; देवताओं की माला मलिन और तेज नष्ट हुआ ; घोर उपद्रव की घनघटासे बहुत अधिक रक्तरूप वृष्टि होने लगी ; अधिक धूल उड़नेसे देवों के मुकुट मलिन हुए । अनन्तर उन कठोर उपद्रवों की देखकर भीतचित्त चिन्तित देवराज इन्द्रजी देवों के साथ एकत्र होकर देवोंके गुरु बृहस्पतिजी से बोले, “भगवन् ! किस कारण से एकायक यह उपद्रव मचा ?” ऐसा कोई शत्रु तो देखते नहीं, कि हमको लड़ाई में डूबे सके ।” बृहस्पति जी बोले, “देवराज इन्द्र । तुम्हारे अपराध और प्रमाद के कारण अति प्रभावी, बालखिल्य महर्षियों के तपोबलसे विनता के गर्भ से उपजा हुआ, कश्यप पुत्र, कामरूपी, महाबली पक्षीराज अमृत हरने को आ रहा है, वह बड़ा शक्तिशाली है ; जान पड़ता है, कि अमृत हर लेजा सकेगा, उस पक्षीके लिये कुछभी-असम्भव नहीं है, अनायास ही असाध्य साधन कर सकता है ।” श्रीउग्रश्रवा जी बोले, “इन्द्रजी गुरुदेवके वचन सुन कर अमृतके रखवारों से बोले, “देखो, महाबली पक्षीवर अमृत हरनेको उत्पन्न हुआ है, इस लिये तुम्हें सावधान किये देता हूँ, कि वह बल से अमृत न हरने पावे, बृहस्पति जीने कहा है, कि वह पक्षी अतुल-बलशाली है ; अमृत रखवारे देवोंने इन्द्रकी बात सुनकर के अचरज मानकर यत्नसहित अमृत को घेर रखा, प्रभावी देवराज भी वहाँ हाथ में वज्रको लेकर खड़े रहे । मनस्वी देवता लोग सर्व शरीर में विचित्र सुवर्णयुक्त महामूल्य वैदूर्यमणि-जटित कवच धारण कर कठिन तथा सुहावने ढाल और भांति भांति के घोररूप अगणित सान-लगाये, नोखे अस्त्र उठाकर चिन्गारी सहित धूआ और अग्निशिखायुक्त चक्र परिघ, त्रिशूल, परस, विविध तेजयुक्त शक्ति निर्मल तलवार

और अपनी अपनी देहके समान गदा लेकर भांति भांति के सुन्दर आभूषण और जलते हुए सुहावने अस्त्रों से भूषित हो रहे । अनुपम बलवीर्यवाली, पाप के दूत से खाली, असुरपुरी-विदारी, जलती आग के समान तेजसमूह से शोभायमान सम्पूर्ण देवगण मन लगाकर अमृत-रक्षा में लगे रहे । वह सहस्रों परिघ से रङ्गा हुआ रणस्थल भी सूर्यकिरण से गले हुए आकाश की भांति शोभा पाने लगा ।

आदिपर्वमें तीसवां अध्याय समाप्त ।

श्रीशौनकाजी बोले, कि हे सूतपुत्र । इन्द्र का कौन सा दोष और कैसी भूल हुई थी और गुरुजी कैसे बालखिल्य मुनियों के तप के प्रभाव से उत्पन्न हुए, द्विजवर कश्यप के श्योंकर पक्षीपुत्र उत्पन्न हुए और वह पुत्र कैसे काम-चारी, काम-वीर्य, अधृष्ट और सर्वजीवों के अवध्य हुए, यदि यह सब विषय पुराणों में कहे गये हों, तो कीर्तन करो, मैं सुनना चाहता हूँ । श्रीउग्रश्रवाजी बोले कि “हे द्विजवर । आप जो कुछ पूछते हैं, वह पुराण ही के विषय हैं, मैं यह सब संक्षेप में कहता हूँ, सुनिये । जब प्रजापति कश्यपजी ने पुत्र की कामना से यज्ञ किया था, तब देवता, ऋषि और गन्धर्वों ने उनके यज्ञ की सहायता कीथी । कश्यपजी ने यज्ञकी लकड़ी लाने को इन्द्र, बालखिल्य मुनि और दूसरे देवों को नियुक्त किया था । देवराज इन्द्र अपनी शक्तिके अनुसार पर्वतके समान लकड़ी का वीथ लेकर दिनों कष्ट आने लगे और पथ में देखा, कि अंगूठेके समान नाटे नाटे ऋषिलोग एकत्र मिलकर पलाश की एक ही छोटी डाली लेकर अति कष्टसे आ रहे हैं । वे निराचारी पतले तपोधनगण तपस्यासे ऐसे दुबले हो गये थे, कि गोष्पदभर जल में भी डूब कर कष्ट पा रहे थे । गर्व से उठले हुए इन्द्रजी उन ऋषियों को

कर अचरज मानके उनकी हंसी करते हुए लांघ कर वेगसे चले गये। इस से बड़े बड़े तपस्वी बालखिल्य ऋषियोंने अति दुःखी और क्रोधयुक्त होकर इन्द्र के भयदायी एक महान् कार्य का अनुष्ठान किया। हे शौनकजी! आप सुने जाइये। वे व्रतशील ऋषिलोग इस कामनासे, कि “हमारे व्रत और तपके फल से आज कामवीर्य, कामचारी, देवराज के भयदायी, इन्द्र से सैकड़ों गुणी सूरता और वीरतापूर्ण मनोहर उग्रमूर्ति दूसरे एक इन्द्र देवलोक में उत्पन्न होंगे” बड़े बड़े मन्त्रों से अग्नि में आहुति चढ़ाने लगे। देवराज इन्द्र यह सुनकर बड़े दुःखी हुए और व्रतशील कश्यप ऋषि की शरण ली। प्रजापति कश्यप ने देवराजकी बात सुनकर बालखिल्य ऋषियोंके समीप जाकर पूछा, कि “क्या आप लोगोंका कार्य पूरा हो गया?” सत्यवादी बालखिल्य लोग बोले, कि “हां हुआ है।” ओकश्यप प्रजापति जी उनकी समझाकर बोले, “हे तपोधनो! इन्होंने ब्रह्माजी की आज्ञा से तीनों भुवन के इन्द्रका पद प्राप्त किया है, आप लोगभो दूसरे इन्द्रके लिये चेष्टा कर रहे हैं, पर ब्रह्मा जीकी बात भूठी कर देनी आपको नहीं चाहिये, हे सत्तमो! आपके अभीष्ट सङ्कल्पकोभी मिथ्या करना नहीं चाहता हूं, आपने जिसकी इन्द्र बनाना चाहा है, वह महाबली और वीर्यशाली पुरुष पक्षियोंका इन्द्र होंगे; देवराज इन्द्र प्रार्थना कर रहे हैं, कि आप उन पर प्रसन्न होंगे। तपोधन बालखिल्यगण, मुनिश्रेष्ठ कश्यप प्रजापति से ऐसे कहे जाकर सम्मान पूर्वक उनसे बोले, “हे प्रजापते! हम सबोंने इन्द्रकी उत्पत्ति के निमित्त और आपकी सन्तान उपजाने की अभिलाषासे इस यज्ञ का प्रारम्भ किया है, सी आप हमारे कर्मफल को लेकरके जी कुछ अच्छा जान पड़े, वही कीजिये।

योसौतिजी बोले, कि इस समय शुभलक्षणा

कल्याणी यशस्विनी दक्षपुत्री तपोरता विनता ऋतुज्ञान-पूर्वक व्रत कर और गृचि होकर पुत्र की कामना से पतिके पास गई। कश्यपजी उसके बोले, “देवि! तुम जी चाहती हो, वह पूरा होगा, मेरे सङ्कल्प और बालखिल्य मुनियोंके तपोबलसे तुम्हारे गर्भसे बड़े भाववान्, तीनों भुवन में प्रधान दो पुत्र उत्पन्न होकर त्रिलोक में पूजे जायेंगे। भगवान् कश्यपजी फिर विनता से बोले, “प्यारी! तुम अप्रमत्त होकरके अपने सुमहान् गर्भ की धारण किये रहना, क्योंकि यह लोकों में माननीय महावीर कामरूपी दोनों पक्षी सम्पूर्ण पक्षियों पर अधिकार फैलाये रहेंगे।” अनन्तर कश्यप प्रजापति जी प्रसन्नहृदय से देवराजसे बोले, “हे पुरन्दर! तुम्हारी सहायता करनेवाले दो भाई उपजेंगे, उन से तुम्हारी कोई हानि नहीं होगी, हे इन्द्र! तुम्हारे दुःख दूर होंगे, तुम सदा इन्द्र बने रहोगे। पर तुम फिर कभी ब्रह्माज्ञानी, वज्रसमान बल बोलनेवाले, अति क्रोधी ब्राह्मणों का अहङ्कार से अपमान न करना। कश्यप जीके इतना कहने पर स्वर्गनाथ भय को दूरकर स्वर्गधाम की पधारें; विनता भी मनोरथ पूर्ण होने के कारण प्रसन्न हुई और समय आने पर अश्व और गरुड़ यह दो सन्तान प्रसव कीं; पर अरुण विकलाङ्ग होकर सूर्य के सारथि बने। गरुड़ पक्षियोंके इन्द्र के पद पर बैठे। भृगुनन्दन! उस पक्षिराज गरुड़के आकर्षण कार्य की कथा कहता हूं, सुनिये।

आदिपर्वमें ईकतीसवा अध्याय समाप्त।

श्रीउग्रयवाजी बोले, कि हे विजयेश्वर! वह सति जीके वचन सुनके देवों के पूर्वोक्त रीति से वनठन लेने पर पक्षीराज गरुड़ बड़े वेगसे उनके पास आ पड़ेंगे। देवगण महाबली गरुड़ की देखते ही कांपने लगे और भयसे

यह भूलकर, कि क्या करना चाहिये, आप ही आप सर्व अस्त्रों से एक दूसरे को मारने लगे। उन में विजली और आगके समान प्रकाशमान् अति वीर्यवान् अप्रमेयात्मा विश्व-कर्मा जी अमृत रखते थे, वह क्षणभर पक्षीवर से लड़कर पड़, चोंच और नखों की चोट से काटे कूटे जाकर मरने पर हुए। आगे पक्षी-राजने पक्षों की हवासे सम्पूर्ण लोकों को उजाले से खाली करके उस धूल से देवोंको भी आच्छादित कर लिया। देवगण धूलसे आच्छादित होकर मोहयुक्त हो गये और अमृत के रखवारे भी अस्त्रों के समान बनकर गरुड़जी को देख नहीं सके। पक्षीनाथने इस प्रकार से स्वर्गधाम को विकल किया और पड़ और चोंचों की चोटोंसे देवों को घायल करने लगे। अनन्तर सहस्रनेत्र इन्द्रने पवन-देवकी आज्ञा दी, कि “हे पवन। तुम तुरन्त इस धूल-वृष्टि को रोको। यह तुम्हारा ही कर्तव्य है।” यह सुनकर महाबली वायु ने सम्पूर्ण धूल हटा दी, इससे आकाश की अंधेरी साफ होनेपर देवोंने उस पक्षी पर चढ़ाई की। महाबली गरुड़ देवोंसे आघात पाकर सर्वभूतों में भय उपजानेवाले प्रलयकालिक बादल के समान अति घोर गर्जन करने लगे और वह महावीर्यवान् शत्रुनाशी पक्षीनाथ आकाशको उड़े। कवचधारी, इन्द्रादि सम्पूर्ण देवोंने आकाश को उड़े और अपने ऊपर विराजते हुए गरुड़जी को पट्टिश, परिघ, भूल, गदा, प्रज्वलित चुरप्र, सूर्य समान चक्रादि नाना अस्त्रों से घेर लिया। पक्षीनाथ चारों ओर से भांति भांति के अस्त्रों की मार सह-करके भी घोर युद्ध करने लगे, एक बार भी विकल नहीं हुए, वरण मानों तेज से सबों को जलाने लगे वह प्रतापी विनता-पुत्र पड़ और छाती की चोट से देवों को चारों ओर गिराने लगे; पक्षीराज गरुड़-से गिराये जाकर

और चोंच तथा नखों की चोटों से घायल होकर लड़ाई करते हुए बड़े तेजस्वी देवगण अति कातर-चित्तसे मुह से रक्त गिराने लगे। और पूरी हार मान कर बार बार पोंछे देखते हुए भागने लगे। उनमें से सांध्य और गन्धर्व-लोग पूर्व और, वसु और सृष्टगण दक्षिण और, आदित्यगण पश्चिम और और दोनों अश्विनी-कुमार उत्तर औरको पधारे। पक्षीनाथ गरुड़ अश्वक्रन्द, रेणुक, क्रथन, तपन, उलूक, प्रसन्न, निमिष, प्ररुज, पुलिन इन महावीरों से घोर युद्ध करने लगे। जिस प्रकार प्रलय-काल में पिनाकधारी क्रुद्ध होकर पिनाक से सबों का नाश करते हैं, उसी प्रकार शत्रु-मथने-हार विनतापुत्रने पड़, चोंच और नखों से उन वीरों को घायल किया। महाबली बड़े उत्साहों से सब देवतां सर्व शरीर में घायल होकर रक्तवर्षा निवाले बादल की भांति शोभा पाने लगे। पक्षीश्रेष्ठ गरुड़ने उन वीरों को घायल कर अमृत लाने को जाकर देखा, कि अग्नि-देवता अमृत को चारों ओर से घेरे है, उस अग्नि की शिखायें सब तरफ फैली हैं, जान पड़ता है, कि मानों वह शिखा तेज हवा से उड़कर दिनेनाथ को भी जला रही हैं। यह देख करके वेगवान्, महात्मा, शत्रु-दुःखदायी, कामरूपी गरुड़ने चलकर आठ सहस्र एक सौ मुह धारण करके उन सब मुखों से सम्पूर्ण नदियों का जल पीकर फिर अतिवेग से आकर उस जलको छिरकाकर जलती हुई आगको बुझाया और बुझा करके ही अमृत लाने के निमित्त भीतर घुसने की दूसरी एक अति छोटी देह धारण की।

आदिपर्व में बत्तीसवां अध्याय समाप्त।

श्रीउग्रयवाजी बोले, कि गरुड़, किरणों से सुशोभित उस सुवर्णमय शरीरकी धारणकर जिस प्रकार जल का सीता समुद्र में जा

है, उसी प्रकार से बलपूर्वक वहां जा घुसे और देखा, कि जलते हुए सूर्य की भांति, अति भयानक, लोहे से बने अस्तुरेके समान तीक्ष्णधार एक चक्र अमृत की चारों ओर सदा घूम रहा है। देवोंने अमृत चुरानेवालों को काटने के लिये उस कठोर यन्त्रको बनवा रखा था। पक्षीनाथ उस यन्त्र में प्रवेश की थोड़ी सी जगह देखकर आरों के बीच के छेद से भीतर जा घुसे और उसमें देखा, कि प्रज्वलित अग्नि के समान चमकीले, विजली के समान चञ्चल जोभवाले अति वीर्यशाली, प्रज्वलित मुख और नेत्रवान् देखने में विष-समान, महाघोर, सदा क्रोधी, अति बली, लाल नेत्रवाले, आखों की पुतली हर घड़ी स्थिर किये हुए, दो कराल सर्प अमृत रखने के निमित्त सदा नियुक्त हैं। उन दोनों में से एक जभी किसोकी देखे, तभी वह भस्म हो जाय। विनता-पुत्र गरुड़ने सहसा घूल फेंककर उन दोनों सर्पों की आखें बन्द कर दीं और आकाश से अलक्षित भावसे चढ़ाईकर उनके शरीर में मारने लगे, और बिना विलम्ब उन को टुकड़े टुकड़े कर अमृत पर दौड़े। अनन्तर वह महाबली विनतापुत्र यन्त्र को पूर्णरूप से मथनपूर्वक अमृत का कलसा उठाकर स्वयं न पी करके बाहर निकलने के पश्चात् बड़े वेगसे उड़े और ऐसी लड़ाई आदिसे भी न थककर सूर्य का तेज रोककर चलने लगे। जानेके काल में आकाश में विष्णुजीसे भेट हुई। श्रीनारायणजी उनको अमृत पीने के लोभ से रहित देखकरके प्रसन्न होकर बोले, “हे पक्षि ! तुम वर मांगो।” पक्षीवर बोले, “सुभको यह वर दो, कि मैं तुम्हारे ऊपर विराजूं” और फिर यह प्रार्थना की, कि अमृत न पीने पर भी मैं अजर अमर हो सकूं। विष्णुजीने “तथास्तु” कहकर वही वर दिया। विनतानन्दन गरुड़ दोनों वर पाकर विष्णुजी से बोले, कि तुम भी

कोई वर मांगो। मैं वह तुमको दूं। विष्णु महाबली, वीर्यशाली गरुड़से प्रार्थनाकी, कि “तुम मेरे वाहन बनो।” आगे भगवान् नारायणने ऊपर रखने के निमित्त गरुड़ की ध्वजा पर विराजने कहा। गरुड़जी देवोंके लेश श्रीनारायण जीसे “तथास्तु” कहकर वायु को हरा करके अति वेगसे चलने लगे। इन्द्रजीने पक्षीनाथ गरुड़की अमृत हरकर ले जाते देख क्रोध से उन पर वज्र मारा। पक्षीनाथ गरुड़ वज्रकी मार खाकर हंसकर देवराज से बोले, “हे इन्द्र ! जिस ऋषिकी हड्डोसे वज्र बना है, उनके सम्मान रखनेके निमित्त और तुम्हारे वज्रकी मर्यादा बनाये रखने की मैं एक पर त्याग देता हूं, तुमको इसका भी अन्त नहीं मिलेगा ; देखो, तुम्हारे इस वज्र की चीट से सुभकी कुछ भी पीड़ा जान नहीं पड़ी। पक्षीने छने यह कहकर एक पर गिरा दिया। सब लोगोंने उस फेंके हुए सुन्दर पर की अपूर्व शोभा देखकर उसका “सुपर्ण” नाम रखा। सहस्रनेत्र पुरन्दर यह अत्याश्चर्य देखकर ऐसा सोचते हुए, कि “यह पक्षी लघु नहीं है; निश्चय कोई महाप्राणी होगा” बोले, “हे पक्षी वर ! मैं जानना चाहता हूँ, कि तुम्हारा वर कितना है और तुम से सदा मित्रता रखने की इच्छा होती है।

आदिपर्वमें तैत्तिरीयसंवां अध्याय समाप्त ।

गरुड़जी बोले, कि हे देवराज, पुरन्दर ! तुम मेरे साथ मित्रता करना चाहते हो; अच्छा, वही होगा। मेरा बल बृहत् और न सहने योग्य है, हे शतक्रतो। पण्डितलोग अपने बल की प्रशंसा वा स्वगुण कीर्तन नहीं करते; हे मित्र ! तुम मित्र बनकर पूछते हो, इस लिये कहता हूं, नहीं तो बिना कारण अपनी प्रशंसा की बात न कहनी चाहिये। मैं एक पर्वत, नगर, वन, फूलवारी, और समुद्र-ज

सहित धरती को उठा ले जाता हूँ, यदि तुम भी उस पक्ष पर बैठे रहो, तौमी मुझे कष्ट नहीं जान पड़ेगा। ज्यादा कहने का प्रयोजन नहीं, स्थावर-जड़म पूर्ण सम्पूर्ण भुवनको एकत्र कर एकही काल में लेजाने में मैं थकता नहीं, इतना बल मुझमें है। श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि हे शौनक। सर्व लोकोंके हित-चाहनेवाले प्रभु विरीटधारी, श्रीमान् देवराज वीरवर गरुड़ के यह वचन सुनकर बोले, “गरुड़। तुमने जो कुछ कहा, सभी तुम्हारे लिये सम्भव हैं, इस क्षण तुम मेरे से मित्रता करो और तुमको अमृत का प्रयोजन न हो, तो वह मुझे लौटा दो, तुमने जिनको अमृत देने की इच्छा की है, वे सदा हमारी हानि किया करते हैं।” गरुड़जी बोले, “किसी विशेष कारण से अमृत ले जाता हूँ, पर किसी को यह अमृत पीने नहीं दूंगा। हे स्वर्गपति, सहस्र वीर। मैं इस अमृत के कलसे को ले जा करके जहां रखूँगा, तुम वहां से उसी क्षण हर लाना। इन्द्र जी बोले, “हे अण्डोत्पन्न विजराज। तुम्हारी इस बातसे मैं बड़ा प्रसन्न हुआ। तुम मुझसे जो कुछ वर लेना चाहो मांग ली।” श्रीउग्रश्रवा जी बोले, कि यह बात सुनकरके गरुड़ कद्रुके पुत्रों के व्यवहार और माताके दासीपन के कारणरूपी कद्रुके कुल को शरण कर बोले, “मैं हर तरह से समर्थ होने पर भी तुमसे यह वर मांगता हूँ, कि हे शक्र। महाबली सर्पगण मेरे भोजन की सामग्री बनें।” दानवनाशो इन्द्रने “तथास्तु” कहकर योगीश्वर, देवों के देव महाप्रभावी हरि के समीप जा करके यह सब कह सुनाया। हरिके गरुड़ की कही हुई हरका बात मान लेने पर भगवान् स्वर्गनाथने गरुड़ को पुकार कर फिर कहा, कि तुम्हारे अमृत रखते ही मैं उसे हर लाऊंगा। अनन्तर गरुड़ उभी-क्षण माता के निवट लौट गये और प्रसन्न

हृदयसे सर्पों से बोले, कि हे नागों। मैं तुम्हारे निमित्त यह अमृत लेता आया हूँ और उसे कुशापर रखता हूँ, तुम स्नान और मङ्गलाचरण करके अमृत पिओ। तुम सबोंने मिलकर जैसा कहा था, मैंने वैसाही किया है, सो आजसे मेरी माता सेवकाई से छूट जायं। यह सुनकर सर्पगण ने गरुड़ जीसे “तथास्तु” कह कर विनता को सेवकाई से छुड़ाकर नहाने गये, इस अवसरमें इन्द्र भी अमृतका कलसा लेकर स्वर्गधाम को पधारे। सर्पों ने प्रफुल्लित चित्तसे स्नान, जप और मङ्गलाचरण करके अमृत पीने के निमित्त, जहां कुशासन पर अमृत का कलसा धरा था, वहां आ करके देखा, कि कलसा चोरी गया है, तब उन्होंने सोचा कि, “हमने जैसे कुल से विनता को दासी बनाया था, गरुड़ ने भी वैसीही कुल से उस को सेवकाई से छुड़ाया है।”, आगे इस विचारसे, कि कुशासन पर अमृत रखा था, सर्पगण जन कुशोंको चाटने लगे, इससे उनकी जीभ कट कर दो भागों में बंट गई। अमृत के स्पर्श से कुश भी पवित्र हुआ। महात्मा गरुड़ इस प्रकारसे अमृत हरण तथा प्रत्याहरण करके सर्पों को दो जोभवाले बनाया। अनन्तर वह पक्षीराज प्रफुल्लित हृदय से माता के साथ उस वन में वसने लगे और सम्पूर्ण सर्पों से भले प्रकार पूजे जाकर और सर्पभक्षक बनकर दूसरों के करने के अयोग्य कीर्ति से माताका आनन्द बढ़ाने लगे। जो नर ब्राह्मणों की सभा में यह कथा सुनते वा पढ़ते हैं; वह अति प्रभावी पक्षीराज गरुड़ जीके चरित्र कहने का पुण्य लेकरके विना सन्देह देवलीक में पधारते हैं।

आदिपर्वमें चौतीसवां अध्याय समाप्त ।

श्रीशौनकजी बोले, कि हे शक्र। माता से सर्पों का शाप और अरुण से ।

का शाप इन दोनों के कारण तुमने कह सुनाये और पति से कटु और विनता के वर पाने का वृत्तान्त वर्णनपूर्वक विनता के पुत्रोंके नाम कह चुके हो, पर हे सौति ! सर्पों के नाम कहे नहीं हो ; और कुछ नभी हो, तो प्रधान प्रधान सर्पों के नाम कह सुनाओ, हमको सुनने की अभिलाषा है । श्रीउग्रयवा जो बोले, कि हे तपोधन ! सर्पों के वृद्ध होने के कारण सर्वोंके नाम नहीं कहूँगा, केवल प्रधान प्रधानोंके नाम कहता हूँ, सुनिये ।

सर्पों से पहिले शेषनागने जन्म लिया, अनन्तर वासुकि का जन्म हुआ, इसके पश्चात् ऐरावत, तक्षक, कर्कोटक, धनञ्जय, कालकेय, मणिनाग, पूरण, पिञ्जरक, एलापत्र, वामन, नील, अनिल, कल्माष, श्वल, आर्यक, उग्रक, कलेशपोतक, सुरामुख, दधिमुख, विमल-पिण्डक, आप्त, करोटक, सङ्घ वालिशिख निष्ठानक, हेमगुह नहष, पिङ्गल, वाह्यकर्ण, हस्ति-पद, सुहरपिण्डक, कम्बल, अश्वतर कालीयक, वृत्त, सम्बर्त्तक, पद्म, महापद्म, शङ्खमुख, कृष्ण-ण्डक, क्षेमक, पिण्डारक, करवीर, पुष्पदंष्ट्र, विल्वक, विल्वपाण्डर, मूषकाद, शङ्ख शङ्ख-शिरा पूर्णभद्र, हरिदक, अपराजित, ज्योतिक, औवह, कौरव्य, धृतराष्ट्र, शंखपिण्ड, विरजा, सुवाङ्ग, शालिपिण्ड, हस्तिपिण्ड, पिठरक, सुमुख, कौणपाशन, कुठर, कुञ्जर, प्रभाकर, कुमुद, कुमुदाच, तित्तिरि, हलिक कर्दम, वज्रमूलिक, कर्कर, अकर्कर, कुण्डोदर, और सहोदर, यह सब प्रधान प्रधान नागों के नाम कहे गये ; हे द्विजश्रेष्ठ ! अधिक होने के भयसे दूसरे सब सर्पों के नाम नहीं कहे । हे तपो-धन ! इनके पुत्र पौत्रादि भी वृद्ध हैं, इस लिये उनकी कथा भी नहीं सुनाई, वास्तव में अनेक सहस्र, अनेक अजुत, अनेक अर्बुद नाग हैं, उनकी संख्या भी नहीं हो सकती है ।

आदिपर्व में पैंतीसवां अध्याय समाप्त ।

श्रीशोकजी बोले, कि वेदा । तुम महा-वीर्यशाली सर्पों की कथा कह चुके, पर यह बोली, कि उन्होंने माताके शाप को सुनने के पश्चात् आ किया था । श्रीउग्रयवाजी बोले, कि तब सर्पों में अति यशस्वी भगवान् गण नाग कटुको छोड़कर गन्दमादन, वदरिका, गोकर्ण, पष्कर, हिमालय आदि सम्पूर्ण तीर्थ और आश्रमों में घूमकर तपोमग्न, व्रतशील हो करके कठोर तप करने करते उनका मांस, चमड़ा और नसें सूख गईं । आगे पितामह ब्रह्माजी से उनकी भेट होने पर ब्रह्माजी ने उनकी अटल धैर्य से तप करते देखकर कहा कि हे शेष ! तुम यह क्या करते हो ? प्रजापति का जिससे मङ्गल हो, वही करो ; हे शेष ! तुम कठोर तप से प्रजापति दुःख दे रहे हो, हे शेष ! मुझसे कहो, कि तुम्हारे चित्त में कौनसी अभिलाषा है । शेषजी बोले, कि मेरे सब सहोदर भाई ही दुष्ट-बुद्धि हैं, उनके साथ एक वसना नहीं चाहता, सो आप वैसी आज्ञा दीजिये । वे आपस में शत्रुके समान सदा द्वेष रखते हैं, इस हेतु मैं मन में यह सोच कर तपकर रहा हूँ, कि फिर उनसे भेट करना पड़े । वे सदा विनता और उसके पुत्रकी हानि किया करते हैं, हमारे सौतेले भाई विनतापुत्र गरुड़, अपने पिता महाभारत कश्यप प्रजापति के वर से अति बलवीर्यशाली हुए हैं ; इस हेतु मेरे सहोदरगण सदा उनकी हिंसा किया करते हैं, सो मैं तप करके वह शरीर पतन करूँगा, कि फिर दूसरे जन्म में भी उन भाइयों से किसी प्रकार संसर्ग करना न पड़े । शेषके यह कहने पर पितामह ने उत्तर दिया, कि हे शेष ! मैं तुम्हारे भाइयों के सब व्यवहार जानता हूँ, तुम्हारी माता के शाप से उनका जो अति भय हुआ है, वह भी

जानता हूँ, पर पहिले हो उसका प्रतिकार हो गया है, दो तुम भाइयों के निमित्त दुःख मत करो। हे शेष ! मैं तुम पर अति प्रसन्न हुआ हूँ, तुमको वर दूँगा, जो कुछ चाहते हो, मागो। हे सर्पश्रेष्ठ ! सौभाग्यवश, तुम्हारा चित्त धर्म पर भुका है, सो तुम्हारी बुद्धि किसी तरह धर्म से न हटे। शेषजी बोले, कि हे देवों के पितामह ! प्रभो ! आप मुझे यही वर दीजिये, कि धर्म, शान्ति और तप में मेरा चित्त बना रहे; यही मेरा अभिप्राय है ब्रह्माजी बोले, कि हे शेष ! मैं तुम्हारे इस शान्तिगुणसे प्रसन्न हुआ, तुम मेरी आज्ञा से प्रजाओं के हितके निमित्त यह कार्य करो, कि पर्वत, नगर, वन, फलवारी और समुद्र सहित इस धरती को ऐसी दृढ़ता से धरे रहो, कि वह अबके समान किसी प्रकारसे न डोलने पावे। शेष जी बोले, कि देव ! आप वरदायी महोपति, भूतपति, प्रजापति और जगपति है, अतएव जब आप आज्ञा करते हैं, मैं तब पृथ्वी को ऐसी धरे रहूँगा, कि वह डोलने न पावेगी, हे प्रजापति ! आप इस पृथ्वी को मेरे सिर पर रख दीजिये। ब्रह्माजी बोले, कि हे सर्पनाथ ! तुम महीमण्डल के नीचे चले जाओ पृथ्वी आपही तुमको बिल दे देगी, हे शेष ! तुम्हारे इस धरती-मण्डल को धारण करनेसे मेरा अति प्रिय कार्य होगा।

श्रीउग्रयवाजी बोले, कि वासुकि के बड़े भाई सर्पनाथ, प्रभु अनन्त, "तथास्तु" कहकर बिल में घुस करके पूरी धरती-देवी को सिर पर धरे रहे। यह देखकर ब्रह्माजी बोले, कि हे धार्मिकवर नागश्रेष्ठ शेष ! तुमने अकेले अनन्त फणाओं के मण्डल से जिस प्रकार इस धरती को धारण किया है, मेरे और इन्द्रके बिना कोई दूसरा ऐसे स्थिर भाव से इसे ले नहीं सकता है। श्रीउग्रयवाजी बोले, कि प्रतापी प्रभु अनन्त ब्रह्माजी की आज्ञा से

अकेले धरती को धारण किये पाताल-तल में वसने लगे। तब भगवान् देवश्रेष्ठ, पितामहने विनूतानन्दन सुपर्ण को भी अनन्त की सहायता करने की आज्ञा दी।

आदिपर्व में छत्तीसवां अध्याय समाप्त।

श्रीसौतिजी बोले, कि नागराज वासुकि भी माता से शाप के वचन सुनकर यह सोचने लगे, कि क्योंकर वह शाप दूर होगा। अनन्तर वह ऐरावतादि सम्पूर्ण धार्मिक भाइयों के साथ विचार करने लगे। वासुकि जी बोले, कि हे निष्पाप भाइयो ! माताने जो शाप दिया है, वह सभी जानते हैं, अब आओ, सब-कोई मिलके विचार करके उस शाप से मुक्त होने का प्रयत्न करें। देखो सब शाप ही व्यर्थ हो सकता है पर माता के शाप से मुक्त होने का कोई उपाय नहीं है, विशेष करके अव्यय, सत्य और अप्रमेय पितामहजी के सामने यह शाप दिया गया है, उसी से मेरा हृदय कांप रहा है; जान पड़ता है, कि हमारा सर्वनाश बिना सन्देह आ पड़ंचा है, नहीं तो शाप देने के काल में अव्यय देवों के देव पितामह ने क्यों माताको मना नहीं किया ? सो आओ, आज सब मिलकर ऐसी युक्ति करें, कि जिससे सर्पों का मङ्गल हो, इस समय काल गवाने का कुछ भी समय नहीं है। इस स्थान में जो सर्प उपस्थित हैं, वे सब बुद्धिमान, और ज्ञानवान् हैं, सो सबों से मिलजुलकर विचार करने से अवश्य ही शाप से मुक्त होने का कोई उपाय निकल सकता है। जिस प्रकार अगले समय में अग्नि के दूर होने पर देवों ने उनकी फिर प्राप्त करने के लिये उपाय ठहराया था, उसी प्रकार ऐसा कोई उपाय निश्चय किया जावे, कि जिससे राजा जनमेजय का सर्पयज्ञ न होने पावे वा निष्फल हो जावे। श्रीउग्रयवाजी बोले, कि अनन्तर विचार-बुद्धि

में पण्डित कद्रुपुत्रोंने “तथास्तु” कहकर स्वीकार-पूर्वक एकट्ठे हाँकार अभिलाषा पूरी करने की प्रतिज्ञा की। आगे विचार के कालमें किसी किसी सर्पने कहा, कि हम उत्तम ब्राह्मण हो करके जनमेजयके निकट यह भिक्षा मांगें, कि वह सर्प-यज्ञ न करें। पण्डितार्द्धके अभिमान रखते हुए किसी किसी सर्पने कहा, कि चलो, हममें से कोई कोई जनमेजय के निकट जाकर उनके प्यारे मन्त्री बने रहें, ऐसा करनेसे वह हमसे हर विषय का ही कर्तव्याकर्तव्य पूछेंगे, उस समय हम ऐसी युक्ति देंगे, कि जिससे सर्प-यज्ञ न होने पावे। राजा जनमेजय बड़े बुद्धिसालु हैं, हम भी उनके बड़े प्यारे मन्त्री बने रहेंगे, जब वह पूछेंगे, कि सर्प यज्ञका अनुष्ठान करना चाहिये या नहीं, हम तभी कहेंगे, कि नहीं महाराज। ऐसा कार्य न कीजिये, उस यज्ञ से बड़ा भारी दोष होगा, जीवों की हिंसा करनेसे परलोक होने पर नरक में जाना पड़ता है और सर्प-गण क्रोधित होकर प्रजाओं को काट खायेंगे, ऐसी भाति भांति की युक्ति दे करके इस लोक और परलोक के अनेक दोष दिखाकर उनकी ऐसे रोकेंगे, कि सर्प यज्ञ न होने पावेगा। अथवा सर्पयज्ञ की विधि जाननेवाले और राज कार्य में दक्ष जो ब्राह्मण उस सर्पयज्ञ के आचार्य होंगे, कोई सर्प जाकर उन्हीं को काटेगा, काटने ही से वह मर जायेंगे, जो यज्ञके प्रधान उपाध्याय के मारने से यज्ञ फिर न होगा। इसके पश्चात् भी कोई दूसरे सर्प-यज्ञ की विधि जाननेवाले पुरोहित हों, तो उनकी भी उसी प्रकारसे काटेंगे; ऐसा करनेही से हमारा कार्य पूरा होगा। अनन्तर धार्मिक कृपावान् और माननीय कुछ नागों ने कहा, कि यह तुम्हारी कुबुद्धिही है, ब्रह्म-हत्या न करनी चाहिये, विपत्तके समय निर्दोष और धर्मयुक्त उपायही कल्याणदायी होता है ;

अधर्म के कार्यसे सम्पूर्णा जगत् नाश होता है। दूसरे कुछ नाग बोले, कि विजलीदार बादल का स्वरूप लेकर प्रतिक्षण जल वपाकर यज्ञ की आग बुझा देंगे और रात्रि के समय ऋत्तिकोंके बेसुध होने पर कोई कोई सर्प यज्ञके सम्पूर्ण अङ्ग खुकभाण्डकी चुरा लावें, ऐसा करनेहीसे यज्ञ में विघ्न पड़ेगा। अथवा उस यज्ञ के आरम्भ होनेके समय सैकड़ों सर्प एकत्र होकर सब लोगों की काटने लगेंगे, ऐसा करनेही से सबोंका भय उपजेगा या सर्पगण मृत और विष्ठा छोड़ छोड़कर यज्ञ के पवित्र भोज्य विगाड़ देंगे, ऐसा करने से सब भोज्य नष्ट हो जायेंगे। दूसरे कुछ नाग बोले, कि चलो, हम जाकर राजाके पुरोहित बनें, आगे यह कहकर, कि “पहिले यज्ञ की दक्षिणा दो” यज्ञ में विघ्न डालेंगे, ऐसा करने ही से वह राजा हमारे वश में आकर हम जो कहेंगे, सोही करेंगे। दूसरे कुछ सर्प बोले, कि राजा जब जलक्रीड़ा करेंगे, उसी समय हम लोग उनकी पकड़ लाकर घर में बाध रखेंगे, ऐसा होने से फिर सर्पयज्ञ होनेकी सम्भावना नहीं रहेगी। आगे पण्डितार्द्ध के अभिमान रखने वाले कुछ सर्प बोले, कि उस प्रकारसे भी कुछ नहीं होगा, आओ हम जनमेजयको पकड़ लाकर काटें, ऐसा करनेही से हमारा अभेद्य पूर्ण होगा, क्योंकि उनकी मृत्यु होने पर एक बारगी सब बुराई को जड़ कट जायगी। चक्षुश्रव वासुके। हमारी बुद्धि की सीमा इतनीही है; अब आपकी समझ में जो उचित जान पड़े, वही कीजिये। सर्पगण, सर्पनाथ वासुकि को यह बात कह कर उनके सुह की ओर ताकने लगे, वासुकि भी बहृत सोचकर उन सर्पों से बोले, कि हे सर्पगण। तुमने अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार जो निश्चय किया, वह मेरी समझ में अति अनुचित लगता है, वास्तवमें तुम लोगोंने जो कुछ कहा है, उनमें

से कोई भी बात सुभी अच्छी नहीं जंचती ; क्योंकि उनमें ऐसा कोई भी कर्तव्य विषय नहीं है, जिसके करने से तुम्हारा मङ्गल हो सके । वास्तव में मेरी समझ में महानुभाव कश्यप की प्रसन्न करना ही हमारे लिये मङ्गलदायी है । हे सर्पगण ! अपनी और स्वजनों की आत्मा पर विशेष आदर रहने के कारण, तुम्हारी कही और विचारी हुई किसी बात पर मन नहीं चलता है । पर चाहे, जिस प्रकार से हो सके, तुम्हारी भलाई सुभी करनी ही होगी । मैं तुम से बड़ा हूँ, सो मेरे ही ऊपर सब दोष गुणों का भार है ; इसी से मैं बहुत ही उदास हो रहा हूँ ।

आदिपर्व में सैंतीसवां अध्याय समाप्त ।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि आगे एलापत्र नामक एक सर्प सम्पूर्ण सर्प और वासुकि को इतना कथा सुनकर बोला, कि हे महाराज । ऐसा नहीं होगा, कि यह सर्पयज्ञ न हो ; और जिन से हमलोगों को बड़ा भय हो गया है, वह पाण्डव-कुमार राजा जनमेजय भी कुछ ऐसे वैसे नहीं है । वास्तव में जो पुरुष दैववश विपत्ति में गिरता है, वह दैवही को आश्रय कर लेता है, उसका कोई दूसरा उपाय नहीं है, हे सर्पयज्ञेयगण ! हम को दैवही से यह भय हो गया है, सो दैवही की शरण लेनी उचित है । तुम मेरी बात सुनो जब माताने हमको शाप दिया, तब मैंने भीतचित्त से उनकी गोदमें बैठकर सोच से घबराए देवों की यह बात सुनी, कि वे अति दुःखी होकर पितामहजीके समीप जाकर बोले, कि हे प्रभो देव देव पितामह ! आपके सामने ही तीक्ष्ण-रूपा कद्रुने जैसा शाप दिया है, हमारी कोई स्त्री आपने प्यारे पुत्र को वैसा कठोर शाप नहीं दे सकती, पर जो आपने “तथास्तु” कहकर कद्रुकी बात मान ली और उसे रोका नहीं,

इसका क्या कारण है, हम लोग सुनना चाहते हैं । ब्रह्मा जी बोले, कि अनेक सर्प तीक्ष्ण, बड़े विषैले और घोररूप हो गये हैं, सो जैने प्रजाके हितके निमित्त उससमय कद्रुकी रोका नहीं, वास्तव में जो सब सर्प नीचाशय, काटने में बड़े तथ्यार, पापात्मा और बड़े विषैले हैं, सर्पयज्ञ में वही नष्ट होंगी, पर जो धार्मिक हैं, उनकी हानि नहीं होगी । इस सर्पयज्ञका समय आने पर जिस उपायसे उस भारी भयसे सर्पों की मुक्ति होगी, वह कहता हूँ, सुनो ।

“जरत्कार नामके अति बुद्धिमान्, जितेन्द्रिय, तपमें रत एक महर्षि यायावर वंशमें उत्पन्न होंगे । उनके आस्तीक नामक एक तपस्वी पुत्र जन्म लेंगे, उन्हींसे सर्पयज्ञ बन्ध कराया जायगा । इसीसे जो सब सर्प धर्मशील हैं, वही बचेंगे ।” देवगण बोले, “ब्रह्मन् । वह सुनियों में प्रधान, बड़े तपोवीर्यवान् जरत्कार, किसके गर्भमें उस बड़े प्रभावी पुत्रकी उत्पन्न करेंगे ?” ब्रह्माजी बोले, “वीर्यवान् द्विजश्रेष्ठ जरत्कारजी निज नामवाली कन्या से उस वीर्यशाली पुत्रको उपजायेंगे ।” सर्पनाथ वासुकि की जरत्कार नाम्नी एक बहिन है । उसी जरत्कार के गर्भ में जरत्कारजी के वीर्य से वह आस्तीकमुनि जन्म लेकर नागों की माताके शापसे मुक्त करेंगे । एलापत्र बोला, कि देवों ने पितामहसे “एवमस्तु” कहा और भगवान् विरिञ्चि भी देवों की यह कथा सुनकर स्वर्गधाम को पधारे । हे वासुके । मैं यह उपाय देखता हूँ, कि जब वह व्रतशील महर्षि जरत्कार विवाहके निमित्त कन्या मांगेगी, तब तुम सर्पों की शापशान्तिके लिये जरत्कार नाम्नी अपनी बहिन को दान कर देना ; मैंने सुना है, कि माताके शाप को दूर करनेका यह एकही उपाय है ।

आदिपर्व में अठतीसवां अध्याय समाप्त ।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि हे हिजथेष्ट । सम्पूर्ण सर्प एलापत्र नाग की बात सुनकर अति प्रसन्न हुए और सभी उनको “माधु” कहने लगे । वासुकिने आनन्दित होकर जरत्कारु नाम्नी अपनी बहिन को कुमारो रख दीड़ा । अनन्तर कुछ कालान्तर देवता और असुरों ने मिलकर समुद्र-मथन किया ; उसमें महाबली वासुकि, मथन रखी हुए । आगे उस कार्यके पूर्ण होने पर देवोंने वासुकि के साथ पिता-महंजीके निकट जाकर कहा, “भगवन् यह वासुकि अपनी माता के शाप से भय खाकर अति दुःखी हुए हैं ; आप कृपापूर्वक इनकी माता के शाप से उपजी हुई उदासी को दूर कीजिये, यह स्वजनों के हितेच्छुक हुए है । यह नागनाथ सदा से हमारे प्रियकारी और हितकारी हैं ; हे देवेश । आप कृपा प्रगटकर इनके चित्त की पीड़ा को दूर कीजिये ।” ब्रह्माजी बोले, “हे असुरो । एलापत्रनागने पहिलेही वासुकि से जो कुछ कही थीं, वह मेरी ही विचारी हुई बात हैं । मैंने जैसा कहा था, काल आजाने पर वासुकि वैसाही करें ; जो सब सर्प सदासे पापाचारी है, वे ही सर्पयज्ञ में नष्ट होंगे ; जो धार्मिक हैं, वे नष्ट नहीं होंगे । हाल में उस हिजराज जरत्कारु ने भूलीक में जन्म लिया है और सदासे कठोर तपस्या में मग्न है, अतएव वासुकि जाकर उचित समय में उनको अपनी जरत्कारु नाम्नी बहिन सौंप दें । “हे देवगण । एलापत्र नागने सर्पों के हित के निमित्त जो कुछ कहा है, वह सब ठीक वैसाही होगा, कभी उसका विपरीत न होगा ।” श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि शापसे मुग्ध वासुकि पितामहंजीकी यह बात सुनकर जरत्कारु ऋषिकी बहिन दान करनेका प्रण ठानकर सम्पूर्ण सर्पों की यह आज्ञा देकरके जरत्कारुके पास नियुक्त करे रखा, कि जब जरत्कारु, पत्नीके निमित्त कन्या मांगेंगे,

तब तुम लोग आकर सुभी तुरन्त समाचार देना ; ऐसा करनेही से हमारा मङ्गल हो सकेगा ।

आदिपर्व में उनतालीसवां अध्याय समाप्त ।

श्रीशौनकजी बोले, कि हे सूतपत्र ! तुम जिस जरत्कारु का वृत्तान्त कहा, उस महात्मा भाव ऋषिका किस लिये “जरत्कारु” यह नाम भूमण्डल में प्रसिद्ध हुआ, वह मैं सुनना चाहता हूँ । जरत्कारु शब्द की व्युत्पत्ति कैसी है, वह ठीक ठीक कहो । श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि जरत् शब्दका अर्थ क्षय और कारु शब्दका अर्थ दारुण है ; जरत्कारु का शरीर दक्ष दारुण अर्थात् विशेष पृष्ठ था ; पर जरत्कारु ने कठोर तपस्यासे धीरे धीरे उस दारुण शरीर को सुखा लिया था ; हे ब्रह्मन् । इसी लिये वह जरत्कारु नाम से प्रसिद्ध हुए । वासुकी की बहिन के नाम की व्युत्पत्ति भी वैसीही है । धर्मात्मा शौनकजी यह सुनकर हंसने लगे और उग्रश्रवाजीसे बोले, कि हां तुमने जो कहा वही ठीक है । आगे उन्होंने फिर कहा कि तुमने पहिले जो जो कथा कही है वह सब हमने सुना, आस्तिक सुनि जिस प्रकारसे जन्म लिया था, अब वही सुनना चाहता हूँ । उग्रश्रवाजी यह वचन सुनकर शास्त्रके अनुसार कहने लगे ।

ब्रह्माजीकी आज्ञा से वासुकि जरत्कारु ऋषि की अपनी बहिन दान करना ठानकर सम्पूर्ण सर्पों को जरत्कारुके पास नियुक्त रख कर सावधान हो रहे । आगे बृहत्काल व्यतीत हुआ, पर धीमान् व्रतपरायण वह ऋषि केवल तपस्वी में दत्तचित्त रहे ; विवाह करना नहीं चाहा । वह महात्मा केवल जितेन्द्रिय, भव रहित स्वाध्याय में नियुक्त, ऊर्ध्वरेता और तपः परायण होकरके सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल में घूमने लगे ; एकवार मनसे भी विवाह करने

की कल्पना नहीं की। हे ब्रह्मन् ।
कुछ कालान्तर परीक्षित नामक राजाने
कीरव वंश में जन्म लिया। वह सच्चारज
अपने प्रपितामह पाण्डुराजा के समान युद्ध
में अद्वितीय धनुषधारी और आखेटक थे ;
तभी वह मृग, शूकर चीता जैसे और दूसरे
जन्तुओं की भाँति भाँति के वनैले जन्तुओं की भाँकर
मृगया करते हुए फिरा करते थे। एक समय
परीक्षित विचित्र वाणसे एक मृग को बँधकार
पीठ पर धनुष चढ़ाये उसके पीछे दौड़ते हुए
धने वन में जा घुसे। जैसे पहिले भगवान्
मृगजी देवलोक में यज्ञ के मृगको बँधकार
उसके पीछे पीछे हाथ में चाप लिये दूढ़ने के
निमित्त इधर उधर घूमते फिरे थे, वह भी
वैसेही बँधे हुए मृग के पीछे पीछे दौड़ते हुए
वन में घूमने लगे। परीक्षित से बँधा हुआ
कोई मृग पहिले जीवित रहकर वन में भाग
नहीं सका था। इस मृग का बँधे जाकर
भागना और उससे उनका बड़ी दूर तक घने
वन में लिवाये जाना उनके केवल बड़त शीघ्र
स्वर्गप्राप्ति का पूर्वलक्षण था। आगे परीक्षित
ने थके, माँदे और प्यासे होकर वनमें देखा,
कि एक मुनि गौचराने के स्थान में बैठे हैं और
बछड़ों के दूध पीने के काल में उनके मुँहसे
गिरे हुए फेनकी पी रहे हैं। राजा परीक्षितने
भ्रूख और थकावट से कातर होकर वेग से
व्रत में रत उस मुनि के निकट जाकर धनुष
उठाकर पूछा, “हे ब्रह्मन् । मैं असिमन्तु का
पुत्र राजा परीक्षित हूँ, मुझसे बँधा हुआ
एक मृग अदृश्य हो गया है, आपने उसको
देखा कि नहीं? मौनव्रत किये हुए उस
मुनिने कुछ उत्तर नहीं दिया, आगे राजाने
क्रोधवश होकर चाप के अगले भाग से एक
सर्पको उठाकर उनके गले में मालाके समान
लपेट दिया। मुनिने उस पर ध्यान न देकरके
भली बुरी कुछ भी नहीं कही। राजा ऋषि

को इस दशमें देखकर क्रोध छोड़के कातर
हृदयसे राजधानी में लौट गये ऋषि भी
उसी दश में रहे। वह क्षमाशील महामुनि
जानते थे कि राजसिंह परीक्षित स्वधर्म में रत
रहते हैं, इस हेतु अपमानित होने पर भी शाप
नहीं दिया। भरतवंश के अवतंस राजशर्दूल
परीक्षित भी उस मुनि की वैसा धर्मशील कारके
नहीं जानते थे, इसी लिये ऐसी घृष्टता प्रगट की।
उस ऋषिका शृङ्गी नाम एक तरुण पुत्र
था ; वह अति तेजस्वी, तपस्यायुक्त और व्रतनिष्ठ
था ; उसको क्रोध आने से शान्त करना
असाध्य था। वह बीच बीच में भले प्रकार
संयत होकर आदरपूर्वक सुख से बैठे-हुए
सर्वभूतों के हित में रत, पितामह ब्रह्माजी के
निकट गमन किया करता था। जिस दिन
परीक्षित ने उसके पिता के गले में मृत सर्प
डाल दिया था, उस दिन वह पितामहजी से
आज्ञा पाकर घर को आ रहा था, ऐसे समय
उसके साथो-कुश नामक ऋषिपुत्र खेलता हुआ
धर्म के विषय में उसकी हंसी कर उसके पिता
का हाल सुनाया। अति क्रोधी ऋषिकुमार
शृङ्गी उसे सुनते ही क्रोधसे परिपूर्ण होकर
एकवारही विषको समान बना। “अशु-
“हे शृङ्गी ! तुम जैसे तपस्वी वैसे ही तेजस्वी
भी हो, फिर कभी अहङ्कार न करना, तुम्हारे
पिताने एक मरे सर्पको गले में धारण किया
है। हमारे समान ब्रह्मज्ञानी सिद्ध तपस्वी
ऋषि-पुत्रों के कुछ कहने पर तुम फिर कभी
कुछ मत कहना, तुम्हारा पुत्राभिमान कहां
रहा ? तुम्हारे अहङ्कारके वचन कहा गये ?
अभी घरमें जाकर देखोगे, कि तुम्हारे पिता
गले में एक सुईकी लिये हुए हैं। हे मुनिजनों
में श्रेष्ठ पुरुष ! तुम्हारे पिताकी कोई दोष करते
नहीं देखा बिना दोषही इस प्रकार से अप-
मानित होते देखकर मैं बड़ा दुःखी।

आदिपर्व में चालीसवां अध्याय

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि कृश के इतनी कथा कहने पर वह तेजस्वी शृङ्गी क्रोधयुक्त होकर पिता के मृत सर्प धारण की बात सुनकर मनकी पीड़ा से जलने लगा, आगे कृश की ओर देखकर मीठी बातों से पूछा, आज क्या-कर मेरे पिताके गले में मृत सर्प आया ?” कृश बोला, “आज राजा परीक्षित मृगयाको आकर तुम्हारे पिता के गले में मरा सर्प डाल गये हैं।” शृङ्गी बोला, “हे कृश ! सच बोली, मेरे पिता ने उस मन्दबुद्धि राजा का कौनसा अनिष्ट किया था और देखो, मेरा तपोबल कितना है।” कृश बोला, “अभिमन्युके पुत्र राजा परीक्षित मृगयाके निमित्त वन में प्रवेश कर वाण से एक शीघ्रगामी मृगको बाँधकर अकेले उसको पकियाने लगे; आगे जब घोर वन में देर तक घूमने पर भी मृग की नहीं देखा, तब भूख, प्यास और थकावट से विक्षल होकर जड़ के समान बैठे मौन साधे तुम्हारे पिता को देखतेही उस भागी हुए मृग की बात बार बार पूछने लगे। तुम्हारे पिता मौनव्रत किये हुए थे; सो कुछ उत्तर नहीं दिया। उसीसे राजाने चाप की कोटि से एक मृत सर्पको उठाकर उनके गले पर रख दिया। हे शृङ्गिन् ! तुम्हारे व्रतशील पिता भी उसी दशा में हैं, राजा परीक्षित अपनी राजधानी हस्तिनापुर की पधारे हैं।”

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि यह सुनकर, कि पिताके गलेमें मृत सर्प रखा हुआ है, ऋषि-पुत्र क्रोधाम्नि से जल उठे, उनके दोनों नेत्र लाल हो गये। उस क्रोधी और तेजस्वी ऋषि-कुमारने क्रोध से बावले बनकर जल छूकर भूपाल को यह शाप दिया, कि “जिस पापिष्ठ राजाने मौनव्रतयुक्त मेरे वृद्ध पिता के गले में मृत सर्प डाल दिया है, कठोर विपधारी सर्पनाथ तत्काल मेरे वाक्यानुसार अति क्रोधित

होकर उस ब्राह्मण के अपमान करदेवाँ कुसुमलके बालङ्ग रूपी राजा की सात रातों के बीच में यमराज के पाङ्गने वनावेगी।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि शृङ्गी क्रोधमग्न इस प्रकार शाप देकर पिताके निकट गया। उसके पिता मृतसर्प लेकर गौ चरानेके स्थान में बैठे थे, शृङ्गी उनको उस दशामें देखकर फिर क्रोधयुक्त होकर मन की पीड़ासे आंगिराने लगा और बोला, “पिता ! यह सुनकर, कि दुरात्मा राजा परीक्षित ने आपका यह अपमान किया है, मैंने क्रोध से उस लुर कुल के कलङ्गी को उसके कुकार्थयोग्य एक कठोर शाप दिया है, कि सातवें दिन सर्पमृत तत्काल उसको यमघर पहुँचावेगी।” हे ब्रह्म ! शमीक ऋषि उस प्रकार क्रोधयुक्त शृङ्गीके बोले, “बेटा ! तुमने जो किया, उससे मैं आसन्न हुआ, तपस्वियों का ऐसा धर्म नहीं है, हम उस राजाके अधिकार में बसते हैं और वह भी न्यायानुसार हमारी रक्षा कर रहे हैं, इसलिये उनका दोष लेनेयोग्य नहीं है। बेटा ! राजा के दोष करने पर भी उनके क्षमा करना हमारा कर्त्तव्य है, हमारे धर्म की बिगाड़ने से धर्मभी हमको बिगाड़ता है। यदि राजा हमारी रक्षा न करे, तो हमारा भारी अमङ्गल हो सकता है; हम फिर धर्मका अनुष्ठान नहीं कर सकते; बेटा ! धार्मिक राजों से भले प्रकार रहित हो। हम बद्धत धर्माज्ञान किया करते हैं, सो धर्मतः हमारे धर्म के भी भागी होते हैं। अतएव राजाके दोष करने पर भी उनके क्षमा करना चाहिये। विशेष कर जिसप्रकार से प्रजाओं की पालना राजा का कर्त्तव्य है, परीक्षित उसी प्रकारसे अपने प्रपितामह पाण्डुराजा के समान आदर-यत्न से हमारे रक्षा कर रहे हैं। जान पड़ता है, कि वह तपस्वी राजाने भूखे और थके रह कर मेरा

जो मौनव्रत है, उसे न जानके ही ऐसा किया है। बेटा। देश में राजा न रहने से सदा लुटेरों के भय आदि नाना दोष आ पड़ते हैं, लोगों के विद्रोही होने से राजाही दण्ड देकर उनका शासन करते हैं, जब सब लोग राजाके दण्ड के भय से भीत होते हैं, तभी शान्ति मिलने प्रकार संस्थापित होती है। सदा भययुक्त रहने से कोई धर्माचरण वा योगादि क्रिया नहीं कर सकता, सो राजाही से धर्म और धर्म ही से स्वर्ग मिलता है; भूपाल द्वारा सम्पूर्ण यागादि क्रियाओं के अनुष्ठान होने से देवगण प्रसन्न होकर वृष्टि करते हैं, वृष्टि से अन्नआदि उपजते हैं। और अन्नआदि से प्रजाके जीवन बने रहते हैं। राजा राज्य की रक्षा करते हैं, इसी लिये वह मनुष्यों के धाता होते हैं; भगवान् मनुजी कह गये हैं, कि राजा दश आर्य ब्राह्मण के समान माननीय है। अतएव जान पड़ता है, कि तपस्वी परोक्षित्ने भूखे होकर और थककर मेरे इस मौनव्रत को न जानके ही ऐसा किया है; बेटा। तुमने बाल-स्वभाव से क्या ऐसा कुकर्म्म किया? राजाको शाप देना हमारे लिये किसी प्रकार कर्त्तव्य नहीं होता।”

आदिपर्व में एकतालीसवां अध्याय समाप्त ।

शुद्धी बोला, “हे पिता। यदि परोक्षित् को शाप देनेसे मेरा साहस प्रकाश वा कुकर्म्म हुआ हो, तो होवे और आपभी उसे प्रिय वा अप्रिय जो कुछ समझना हो, समझें; पर मेरी कही हुई बात व्यर्थ नहीं होगी। हे तात। मैं आपको निश्चय करके कहता हूँ, कदापि मेरी वह बात झूठी न होगी, मेरा शाप का व्यर्थ होना तो दूर रहा, मैं हंसी से भी कभी झूठ नहीं बोलता।” शमीक बोले, “बेटा। मैं जानता हूँ, कि तुम्हारा प्रभाव बड़ा कठोर है और तुम सत्यवादी हो। कभी झूठ नहीं

बोले हो और तुम्हारा दिया हुआ यह शाप भी व्यर्थ नहीं जायगा; पुत्र के वयःप्राप्त होने पर भी सदा उसकी ऐसा उपदेश करना पिताका कर्त्तव्य है, कि वह गुणवान् और यशयुक्त होवे। तुम तो बालक हो, सदा तप हो में रत हो, महात्माओं के भी प्रभाव बढ़ने के साथ साथ क्रोध भी बहुत बढ़ता है। हे धार्मिकवर। तुम्हारा बाल-स्वभाव और अनुचित साहस देखकर जान पड़ता है, कि सुश्रेष्ठ पुत्र प्रेमवश तुमको बहुतरे विषयोंकी शिक्षा देनी होगी। हे पुत्र। तुम क्रोध तज शम-युक्त होकर बनके फल मूल खाकर तप किया करो, इस प्रकारसे फिर धर्मक्षय न करना, क्योंकि जितेन्द्रिय मुनियों का बड़े दुःख से बटोरा हुआ जो धर्म है, वह क्रोधसे लोप हो जाता है और धर्मके लोप होनेही से बाधित सद्गति नहीं मिलती। क्षमाशील यतियों की क्षमाही सिद्धि की जड़ है, तुम सदा क्षमाशील और जितेन्द्रिय होकर तप करते रहो, एक क्षमा की आश्रय करके ब्रह्मलोकको प्राप्त करोगे। बेटा। मैं शान्ति को आश्रय करके आज जितना सम्भव हो सके, सब करूँगा; अवश्य ही नरनाथके निकट यह बात कहला भेजूँगा, कि “राजन्। तुम जो हमारे गले पर मृत सर्प डालकर मेरा अपमान कर गये हो, वह देखकर मेरे न सहने-हारे बालक पुत्रने आज्ञानता से तुमको शाप दिया है।”

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि सुव्रतकारी महा-तपा शमीक का हृदय दया से गल गया। उन्होंने गौरमुख नामक सुशील और सावधान शिष्य को यह आज्ञा देकर भेज दिया, कि तुम राजाके पास जाकर कुशल-क्षेम पृच्छकर सम्पूर्ण समाचार कहना। गौरमुख उपाधरकर हारपाल से पहिले निर्वाण कुरुकुलके बढ़ाने वाले राजा परी-

मन्दिर में गये। आगे थकावट दूर कर मन्त्रियों के सामने ही राजा के पास शमीक मुनिके कहे हुए कठोर समाचारकी आदि से अन्ततक कहने लगे, “हे राजेन्द्र ! आपके अधिकार में परम धार्मिक, शान्त, दान्त महा-तपोवन्त शमीक नामक एक महर्षि हैं ; हे नरसिंह ! वह मौनव्रतधारी हैं, आपने चाप की कोटि से एक मृतसर्प को उठाकर उनके गले में लपेट दिया था, शमीक मुनिने आपके उस कार्य से क्रोधित न हो करके क्षमा की थी, पर उनके पुत्रने क्षमा न करके आज पिताके न जानने में आपको यह शाप दिया है, कि सात रातों के बीच में तक्षक सर्प महाराज को काटेगा। शमीक-ऋषि, पुत्र को बार बार बोली थे, कि ऐसा करो, कि जिससे महाराज बच जायं, पर वह बोला, कि कोई भी उस शाप को व्यर्थ न कर सकेगा। ऋषिवर किसी प्रकारसे क्रोधयुक्त पुत्रके क्रोध को शान्त न कर सके, इस हेतु आपकी हितेच्छा से मुझे भेजा है।”

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि कुरुवंशावतंस तपस्वी राजा परीक्षित उस कठोर बात को सुनकर यह जान करके, कि मैंने पापकार्य किया है, अति दुःखी हुए ; विशेष कर जब सुना, कि उस महामुनिने मौनव्रत के कारण उत्तर नहीं दिया था, तब और भी अधिक-शोक से कातर हुए और यह सोचते हुए कि ऐसे दया-स्वभावी शमीक मुनि का मैंने अपमान किया है, पूर्वके किये पाप को क्षरण कर बार बार कातर होने लगे। देव-समान राजा परीक्षित यह समझकर कि क्षमाशील ब्राह्मण का अपमान किया है, जैसे दुःखी हुए, अपनी मृत्यु के समाचार सुनने पर भी वैसे कातर नहीं हुए। अनन्तर यह प्रार्थना जताकर, कि भगवान् शमीकमुनि फिर मुझ पर प्रसन्न हों, गौरमुख की विदा किया।

गौरमुख के चलेजाने पर राजा सोचयुक्त उसीक्षण मन्त्रियों से मन्त्रणा करने लगे। स्वयं मन्त्रतन्त्र हाकरके भी उन्होंने मन्त्रियों से विचार कर अच्छे प्रकारसे रक्षित एकस्थान वाला एक यह वनवाया, आग बचने के निमित्त चिकित्सक और दवा पास रखी और मन्त्र सिद्ध ब्राह्मणोंकी शरीर की रक्षाके निमित्त नियुक्त किया। परम धार्मिक वह परीक्षित मन्त्रियों से चारों ओर से सुरक्षित होत उसी स्थान में सब राजकार्य करने लगा। उस सुरक्षित गृह में राजा के पास कोई भी जा नहीं पाता था। अधिक कहना व्यर्थ है, सर्वत्र चलनेवाली हवा भी वहां पहुंचने नहीं पाती थी।

आगे सातवां दिन आपहुंचने पर विजये विद्वान काश्यप राजा को चिकित्सा करने के पधारे। उन्होंने सुनाथा, कि सर्पनाथ तक्षक राजा परीक्षित की यमराजके घर पहुंचाया। इसी उन्होंने मनही मन में निश्चय किया कि सर्पनाथ के राजा को काटनेहीसे मैं विरक्त सुक्तकर आरोग्य करूंगा, ऐसा करने से मुझे धर्मार्थ दोनों प्राप्त होंगे। यह सोचते ही एकचित्त होकर काश्यपजी जारहे थे, कि एक समयने नागराज तक्षक बड़े ब्राह्मण का धरकर उन से जा मिला और बोला, “मुनिश्रेष्ठ ! आप शीघ्रता से कहा जारहे है आपने कौनसा कार्य साधने की इच्छा की है ?” काश्यपजी बोले, “आज सर्पनाथ तक्षक कुरुकुल-नन्दन शत्रुनाशो राजा परीक्षित के विष से जलावेगा, हे सौम्य ! अग्निके समान तेजस्वी पाण्डवकुलतिलक महाबली राजा के तक्षकके काटने ही से मैं उसीक्षण आग करूंगा, इस अभिप्राय से मैं शीघ्र जारहा हूँ। तक्षक बोला, “ब्रह्मन् ! मैं ही तक्षक परीक्षित को भक्ष करूंगा, मेरे काटने से तुम आरोग्य नहीं कर सकोगे, तुम लौट जाओ।”

काश्यपजी बोले, “यह सुभको निश्चयरूपसे जान पड़ता है, कि तुम्हारे राजाकी काटने से मैं जाकर विद्यावल द्वारा विष से बचा सकूंगा ।

आदिपर्व में बयालीसवां अध्याय समाप्त ।

तत्त्वक बोला, कि हे काश्यप । यदि तुमकी ऐसी समझ हो, कि मेरे काटने से तुम आरोग्य कर सकोगे, तो मैं इस बड़की काटता हूँ, तुम उसको जिलादो, और अपनी शक्तिके अनुसार सन्तुलन दिखाने में त्रुटि मत करो; हे हिज-सत्तम । देखो, तुम्हारे सामने ही इस वृक्ष को काट मर देता हूँ । काश्यपजी बोले, “हे नागनाथ । यदि तुमकी ऐसी समझ हुई हो, कि मैं आरोग्य नहीं कर सकूंगा, तो इस वृक्ष को काटो, तुम्हारे काटनेसे मैं उसको फिर जिला दूंगा ।” श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि महात्मा काश्यपके यह कहने पर नागेश तत्त्वकने उस बड़ को काटा, सर्प के बड़े प्रयत्न से काटते ही वह वृक्ष विषम सर्पविष से जलने लगा । तत्त्वक उस वृक्ष को भस्म करके काश्यपजीसे फिर बोला, “हे हिजराज । तुम अपनी शक्ति के अनुसार यत्न करके इस वृक्ष को फिर जिलाओ ।” सौमिजी बोले, कि काश्यपने तत्त्वक के तेज से भस्म हुए वृक्षके भस्म को लेकरके कहा, “हे सर्पनाथ । आज इस वृक्ष पर मेरी विद्या का बल देखो, तुम्हारे सामने ही मैं इसको जिलाता हूँ ।” अनन्तर उन हिजश्रेष्ठ विद्वान् भगवान् काश्यपने उस भस्म हुए वृक्षकी विद्या के बल से जीवन दिया । उसमें पहिले, अङ्गर, आगे दीपत्ते, उसके पश्चात् महाशाखा फिर छोटी छोटी शाखा और सम्पूर्ण पत्ते निकल पड़े । महात्मा काश्यप को वृक्षकी फिर जिला देते देखकर तत्त्वक बोला, “हे ब्रह्मन् । यह तुम्हारे लिये बड़े भावार्थ का विषय नहीं है, कि तुम मेरे संदृश

किसी दूसरे सर्प के तेज विषकी दूरकर सकते हो, पर हैं तपोधन । बोली, तुम कैसी प्रार्थना सहित राजाकी विष से मुक्त करने को जा रहे हो; तुमने राजासे जो वस्तु पाने की अभिलाषा की है, वह दुर्लभ भी हो, तो मैं दे देता हूँ । हे विप्र । विप्रशापवश उस राजा की आयु अन्त हुई है, तुम्हारे वहाँ जाने से अभिप्राय के सिद्ध होने में सन्देह है, अतएव यदि आरोग्य न कर सका, तो तुम्हारा तीनों लोकों में प्रसिद्ध, प्रकाशमान् यशस्वपी प्रकाश प्रकाश-वर्जित सूर्यकी भाँति क्षिप जायगा ।” श्रीकाश्यप जी बोले, “हे सर्पराज ! मैं धन की आशा से वहाँ जाता हूँ, तुम वह सुभो दो; मैं सुवर्ण पाने से लौट जाऊँगा ।” तत्त्वक बोला, “हे हिजोत्तम । तुमने राजासे जितना धन पाने की आशा की है, मैं उससे भी अधिक दे देता हूँ, लौट जाओ ।”

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, बुद्धिमान् हिजश्रेष्ठ अति तेजस्वी काश्यपमुनि तत्त्वक की बात सुनकर राजा परीक्षित के विषय में ध्यान करने लगे । आगे दिव्यज्ञान के प्रभाव से यह देखकर, कि पाण्डवपुत्र राजा परीक्षित की आयु अन्त हुई है, तत्त्वक से मनमाना धन पाकर लौट गये । महात्मा काश्यपके उस नियम से लौट जाने पर तत्त्वक तुरन्त हस्तिनापुर को पधारा और पथ में सुना, कि राजा विषहरने-वाली दवा और मन्त्रोंसे बड़े यत्नसे रक्षित हो, रहे हैं । तब सोचने लगा, कि माया के बल से राजा को ठगना पड़ेगा, अब कौन सा उपाय कर्त्त । अनन्तर उस तत्त्वक-सर्पने साथी-नागोंकी तपस्वी का रूप धारणकर तथा फल, दर्भ और उदक लेकर राजा के पास जाने की आज्ञा दी और कहा, कि तुम बड़वड़ी न दिखाकर किसी काम के बहाने से राजा के पास जाकर उनकी फल, फूल और जल देना । सर्पों ने तत्त्वक

आज्ञातुसार कार्य किया और राजा को फल, फूल और जल दिया। बोर्यशाली राजा परीक्षित ने वह सब ले लिये और उनको कार्य पूराकर चले जाने की आज्ञा दी। तपस्वी-रूपी सर्पों के चले जाने सर राजाने सार्थी और भिक्षु से कहा, कि तुम मेरे साथ तपस्वियों से लाये हुए यह मोठे फल खाओ। आगे उन्होंने मन्त्रियों के सज्जित फल खाना चाहा और जिस फलके भीतर तक्षक था, ऋषिपत्निके शापानुसार देव-प्रेरणासे उसीके स्वयं खाने लगे। हे शौनका! भजन करने के समय में एक अणु-प्रमाण छोटा, कालिनेत्र-वाला, तमके रङ्ग का कीट देखा। राजप्रेष्ठ परीक्षित ने उस कीट को लेकर मन्त्रियों से कहा, कि दे दे, अश्वत्थ अनाचलशिखर पर पड़च रहे हैं, आज अब मुझे विष का भय नहीं रहा; भी यह कीट तक्षक का प्रतिनिधि होकर मुझे काट देवे, तभी उस मुनिकी बात भी सच ठहरेगी और मेरा शाप भी खर होगा। राजा यह कहकर मुभाँकर और चेतना वर्जित होकर उसीक्षण उस कीटकी गलीपें लगाकर हंसने लगे। विधि के नियमानुसार मन्त्रियों ने भी उनके मत को समर्थन किया। राजा हंस रहे थे, कि ऐसे समय में तक्षकने तपस्वियों के दिये हुए उस फल से निकलकर अपने शरीर से अति वेग-पूर्वक उनकी घेर लिया। हे शौनका! सर्पनाथ तक्षकने शरीर से सहाराज को घेर लेकर अति गर्जन के साथ उनकी काट लिया।

आदिपर्व में तैत्तलीसवा अध्याय समाप्त ।

श्रीउग्रप्रवाजी बोले कि मन्त्रीगण राजा को तक्षक से भोगके द्वारा घिरे हुए देखकर अति दुःखी होकर और सुख को खेदयुक्त बनाकर रोने लगे, आगे तक्षक के गर्जन का

शब्द सुनकर सब भागने लगे और शोकग्र होकर देखा, कि अद्भुत लालवर्ण सर्पनाथ तक्षकनाग आकाश मार्ग से जा रहा है और रमणों के काले केश के समान आकाश के बीच में मेंदुरके चिह्न की सुहावनी मागसी शोभा दे रहा है। इधर तक्षक के विषम विष से उपजो हुई आगसे वह एकस्तम्भवाला षष्ठ सर्वप्रकार से घेरे जाकर जल रहा है। तब वे भय-युक्त चित्तसे उस घरकी छोड़कर चारों ओर पधारे। राजा भी वज्राघात से घायल हुए पुष्प के समान उसीक्षण भाग पड़े।

राजा परीक्षित के तक्षक के तंज से जब जाने पर मन्त्री और गुहाचारी ब्राह्मणप्रेष्ठ राज-परीक्षित ने राजाके सम्पूर्ण और्द्धदेव कार्य सन्पन्न किये। अनन्तर नागरिकां ने मिलकर शत्रुनाशी कुरुवंश में अष्ट जनमेजय नामक परीक्षित के बालक पुत्रको गद्दीपर बैठाया। आर्यमात नृपप्रेष्ठ जनमेजय बालक होने पर भी उन मन्त्रियों और पुरोहितों के साथ अपने पितामह युधिष्ठिर के समान राज्य शासने लगे। कुछ कालान्त उनके मन्त्रियों ने उनकी शत्रुनाशी देखकर काशीराज सुवर्णवर्मा के पास जाकर वपुष्टमा नाम्नी कन्याकी प्रार्थना की। सुवर्णवर्मा ने कुरुप्रवीर जनमेजय को धर्मानुसार परीक्षा कर वपुष्टमा नाम्नी कन्या को दान किया। जनमेजय वपुष्टमा की लाभकर अति प्रसन्न हुए, उन्होंने किसी दूसरी स्त्री पर कभी मन नहीं चलाया था। जिसप्रकार पूर्वकाल में गुरुवराने उर्वशी की लाभकर प्रसन्नचित्त से उस्से विहार किया था, उसी प्रकार राजप्रेष्ठ बोर्यशाली जनमेजय प्रसन्नहृदय से वपुष्टमा के साथ कभी सुन्दर ताल में, कभी वनमें विहार करने लगे। प्रसिद्ध रूपवती, अन्तापुरकी ज्योति, सुन्दरी सती वपुष्टमा भी उस भूपा

की पति पाकर विहार के समय अति प्रेम दिखा कर प्रसन्न करने लगी ।

आदिपर्व में चवालीसवां अध्याय समाप्त ।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि इस समय महा-
तपा जरत्कार ऋषि यत्सायंग्रह होकर अर्थात्
जहां सम्पत्ति हो जाती थी, वहीं टिके रहकर
सम्पूर्ण पृथ्वी में घूम रहे थे; वह महातेजा
सुनि पवित्र तीर्थ में नहाकर दूसरों के करने
के अयोग्य कठोर तप करके कभी निराहार
से, कभी वाताहार से अपने शरीर को सुखा-
करके घूमा करते थे । एक समय घूमते हुए
देखा, कि उनके पिता और पितामहलोग
एक वीरगास्तम्भ अर्थात् खसखस के गच्छे को
आश्रय कर गढ़े के भीतर नीचे-मुह करके
लटक रहे हैं; उस वीरगास्तम्भ का एकही
तात शेष रहा, गढ़ में रहता हुआ सब
उसे भी धीरे धीरे काट रहा है । जरत्कार
ने उनको निराहारी, दुबले-पतले, दोन और
अपनी रत्ना के अभिलाषी देखकर दःखी
हृदय से निकट जाकर पूछा, आप कौन हैं ?
किस हेतु इस वीरगास्तम्भ की आश्रय लिये
हुए लटक रहे हैं ? इस गढ़ के रहनेवाले
भूष के प्रायः सब जड़की काटने से यह उपी-
रस्तम्भ बहुत दुर्बल हो गया है; इसका एकही
जड़ जी शेष है, उसे भी यह भूष अपने तेज
दातों से धीरे धीरे काट रहा है, यह अल्पशेष
मूल भी थोड़ेही कालमें टूटेगा, तब निःसन्देह
आप नीचे मुह किये हो इस गढ़ में गिर
जायेंगे; आप को नीचे मुह किये और विपद
में पड़े हुए देखकर मुझे बड़ा दुःख हो रहा
है; कहिये, मैं आपका कौनसा उपकार करूं ।
मेरी तपस्या के चौथे भाग वा तीसरे भाग वा
प्राये भाग से, अथवा मेरी सम्पूर्ण तपस्या से
प्राप्तलोग इस विपद से बच जाइये, इसमें आप
ऐसा चाहें, वैसाही कीजिये । पितृगण बोले,

कि हे ब्राह्मण-श्रेष्ठ ! आप बड़े ब्रह्मचारी हो-
कर हमारी रक्षा करना चाहते हैं, पर हमारी
यह विपद तपस्या से दूर होनेवाली नहीं
है । हे ब्रह्मिन् । हमलोगों का भी बहुत
तपका फल उटोरा हुआ है, हे ब्रह्मन् । केवल
सन्तान न रहने ही के कारण हम इस अपवित्र
नरक में गिर रहे हैं, क्योंकि भगवान् पिता-
महने कहा है, कि सन्तान जन्मागा परम
धर्म है । हम यहां लटकते हुए अचेतनवत्
हुए हैं, इस हेतु आपका यश तीनों लोकों में
प्रसिद्ध रहने पर भी हम आपको पहिचान
नहीं सकते हैं, आप बृद्ध और बड़े भाग्यवान्
हैं, इसहेतु हमारे इस बड़े भारी दुःख और
शीघ्रनीय दशाको देखकर दया प्रगट कर
रहे हैं, हे विप्र । सुनिये हम कौन हैं, हम
यायावर नामक व्रतनिष्ठ ऋषि हैं, हमारा
वंश लीप होने पर है; इससे सम्पूर्ण कठोर
तपस्या निष्फल हुई है और पत्नीकसे च्युत
हो रहे हैं; ऐसा न समझिये, कि हमारी
सन्तान नहीं है, पर हम स्वल्प भाग्यवाले हैं ।
हमारी एकही दुर्भाग्य सन्तान है, उसका
रहना और न सहना स्मरान है, उसका नाम
जरत्कार है । वह सन्तान वेद-विदाङ्ग-
निपण, व्रतशील, जितेन्द्रिय, महान्त और
बड़ा तपस्वी है; उसने केवल तपही व
आश्रय किया है; उस कसन्तानने तपके लो-
से हमको इस विपद के समुद्र में डुबाया है
उसकी स्त्री, पत्न, स्वजन, बन्धु, कोई नहीं है
इस हेतु हम अनाथकी भांति इस गढ़ में
लटके हैं । आप कृपा प्रगट कर जरत्कार
से भेंट करके कहना, कि “हे तपोधन । तुम्हारे
पितरलोग दोनों के समान नीचे मुह कर
गढ़ में लटक रहे हैं, तुम विवाहकर पत्नी-
त्यादन करो; क्योंकि तुम बुद्धिमान् और कल
की एकासात्र आशा हो ।” हे ब्रह्मन् !
हमको जिस वीरगास्तम्भ में आश्रित दे

यह हमारा कुल बढ़ानेवाला कुलस्तम्भ है ; इसकी जो सब जड़ देखते हैं, वे हमारी सन्तान हैं, सभी काल से भक्षित हुई हैं ; यह जो आधी खाई हुई एकही जड़ है, जिसे पकाड़-हम गड़हे के ऊपर लटके हैं, यह वही जरत्कार है, उसने केवल तपस्या की आश्रय किया है । यह जो रूप देखते हैं वह महा-बली काल है ; यह काल तपमें रत, मन्दमति, चेतनाहीन और तपस्यालोभी उस जरत्कार की धीरे धीरे निगल रहा है ; हे सत्तम ! उसकी तपस्या हमको दत्ता नहीं सकेगी । देखिये इस जड़के टूटते ही हम लोग काल से मारे गये हुए पापियों के समान उखड़कर इस गड़हेमें गिर जायेंगे । हम वन्धुगों के साथ इसमें गिर जायेंगे, तो जरत्कार भी काल से भक्षित होकर इस स्थान में गिरकर नरक में जायगा । तपस्या, यज्ञ वा पाप दूरकरने-वाले जितने महत्त काये हैं, वे सब पुत्रोत्पादन के समान नहीं होते ; आपने जैसा देखा, वह सब तपोधन जरत्कार से भेट कर कह देना । हे ब्रह्मन् ! आप हमारे नाथ के समान होकर इस प्रकारसे कहना, कि जिस जरत्कार विवाह करके पुत्रोत्पादन करे । हे सत्तम ! जान पड़ता है, कि आप जरत्कारके मित्रों में से कोई होंगे, क्योंकि मित्र वा अपने कुलवालों के समान हमको देखकर शोक प्रगट कर रहे हैं ; हम सुनना चाहते हैं, कि आप कौन यहां आये हैं ?”

आदिपर्वमें पैतालीसवां अध्याय समाप्त ।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि जरत्कार पितरों की यह सब बात सुनकर अति शोकयुक्त होकर मनःपीड़ा से आंखों में आस्र भरकर और गदगद होकर बोले, आप मेरे ही पित्र-पितामह हैं ; आज्ञा कीजिये, कि आपके अभीष्टको पूरा करनेके निमित्त मुझको क्या

करना चाहिये, मैंही आपका पुत्र पापाला जरत्कार हूं ; मैं अकृतआत्मा हूं मुझसे जो दोष हुआ है, उसका दण्ड दीजिये । पितरनों तोले, “बेटा । तुम इच्छानुसार घूमते इस हमारे सीमाश्रयसे इस देशमें आ गये हो ; कहां तो सही ; तुमने क्यों विवाह नहीं किया ? जरत्कार बोलै, हे पितृगण । मेरे हृदय में सदा यह बात जगती है, कि मैं ऊर्ध्वरेता हो कर देह को विसर्जन करूंगा, कभी विवाह नहीं करूंगा, मैंने मनहो मन में ऐसाही निश्चय किया था ; हे पितामहगण । वर्तमानमें आपको यहां पक्षियों के समान इस प्रकार लटकते हुए देखकर मैं ब्रह्मचर्य से चित्त हटाता हूं, मैं आपका प्रियकार्य करूंगा, सन्देह नहीं है, कि विवाह करनेकी प्रस्तुत हुआ हूं ; पर यदि निज नामकी कन्या पावें और वह कन्या मुझको भिक्षा के समान खाने आ मिले तथा मुझे उसका पालन करना न पड़े, तो उस कन्याको लेकर विवाह करूंगा । हे पितामहगण ! मैं सच कहता हूं, इसके विपरीत होने से मैं विवाह नहीं कर सकूंगा । उस विवाहिता स्त्री के गर्भ से जो सन्तान उत्पन्न होगी, वही आपका उद्धार करेगी और उसी से आप नित्य अव्यय हो करके स्वर्ग में वसेंगे ।”

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि हे शौनक ! वह मुनि पितरों से यह बात कहकर विवाहाधीन होकर सम्पूर्ण भूमण्डल में घूमने लगे, पर वह जानकर कितीने उनकी अपनी कन्या दान नहीं की । आगे पितरों की आज्ञा से जरत्कार निर्व्वेद पाकर वनमें घुसके-दुःखी हृदय से चिलाकर रोने लगे । अनन्तर प्रज्ञावान् उग्र ऋषिने पितरों की हितेच्छा से उस वन में धीरे धीरे तीन बार यह कहा, कि “मैं कन्या की भिक्षा मागता हूं, इस स्थान में स्थावर जड़-मात्सक जितने जीव विराजमान हों और जो

भूत अप्रकाशित हों, सब मेरी बात सुनें, मैं
कठोर तपस्या में रत हूँ; पितरोंने दुःखी
होकर सन्तानीत्पादन के निमित्त सुभाको
आज्ञा दी है, कि तुम विवाह करो। हे जीव-
गण। भूमण्डल में कन्या की भिक्षा मांग
रहा हूँ, मैं अति दरिद्र और दुःखी हूँ, पितरों
ने सुभाको विवाह करने को नियोग किया है,
मैं सर्वत्र घूम रहा हूँ; पर मैंने जिनसे यह
प्रस्ताव किया, यदि उनमें से किसी की कन्या
ही, तो दान करो; पर वह कन्या मेरे नाम
की होगी और भिक्षा के समान सत्के मिलेगी,
तथा मैं उसका पोषण न करूँगा; यह हो,
तो दान करो।” अनन्तर जो नाग जरत्कारु
को रक्षा में नियुक्त थे, उन्होंने वासुकि को
यह समाचार सुनाया।

नागनाथ वासुकि जरत्कारु की विवाह
को इच्छा सुनतेही सजी सजाई बहिन को
लेकर वन में उस ऋषि के निकट पधारे और
उस महात्मा मुनि को भिक्षा के समान उस
कन्या को दान किया। तब जरत्कारुने एका-
यक उसको प्रतिग्रह नहीं किया; बल्कि सोचने
लगे, कि यह कन्या मेरे नाम की नहीं हो
सकती है, और कदाचित् इसे पालना पोषना
भी होगा। मोक्ष के पथिक जरत्कारु इस
प्रकारसे दो मन करने लगे। हे भृगुनन्दन।
आगे उस ऋषिने वासुकि से कन्या का नाम
पूछा और कहा, कि मैं उसको न पालूँगा।

आदिपर्व में क्रियालीसवा अध्याय समाप्त।

श्रीउग्रश्रवा जी बोले, कि वासुकिने जरत्कारु
ऋषि से कहा, “हे हिजोत्तम ! तपस्विनी यह
कन्या मेरी बहिन और तुम्हारे नाम की है;
तुम इसको भार्यार्थ ग्रहण करो, हे तपोधन।
यथाशक्ति मैं इसको पालूँगा और रखूँगा; हे
मुनिवर ! मैंने तुम्हारे निमित्त इतने दिनों
तक इस कन्या को रखा है।” ऋषि बोले,

“अच्छा मेरा यह नियम रहा, कि मैं इसका
पोषण न करूँगा और यह कन्या कभी मेरा
अप्रिय कार्य नहीं करेगी, करने ही से मैं
इसको त्याग दूँगा।”

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि वासुकि के यह
स्वीकार करने पर, कि “मैं बहिन का पोषण
करूँगा,” जरत्कारु वासुकि के घरको गये।
मन्त्रप्रयोग में निपुण, तपोवृद्ध, महा व्रतशील,
धर्मात्मा जरत्कारुने विधिपूर्वक मन्त्र, पढ़कर
जरत्कारु से प्रशंसित होकर पत्नी के साथ
सर्पनाथ की इच्छानुसार सुन्दर वासगृह में
वहाँ परम रमणीय चादरा से ढंपी हुई सुन्दर
सेज पर सोकर स्त्रीसे एकत्र रहने लगे। साध-
श्रेष्ठ ऋषिने उस वासगृह में पत्नी से यह नियम
किया, कि तुम कभी मेरा अप्रिय कार्य करने
वा अप्रिय कहने न पाओगी; ऐसा करने से
मैं फिर तुम्हारे घर में न रहूँगा और तुमको
त्याग दूँगा; मैंने जो कहा, उसे स्मरण रखना।
अनन्तर वासुकि की बहिन जरत्कारुने अति
सोचयुक्त और दुःखी होकर “एवमस्तु” कहके
वह बात मानली। आगे पतिका प्रिय चाहने
वालो यशस्विनी नागेश की बहिन श्वानकाकीय
उपाय से अर्थात् कुत्ता, हरिण और कौवे की
सावधानी, भय और इङ्कित समझने के सहज
गुण आश्रय करके दुःखी पति की सेवा करने
लगी।

कुछ कालान्तर वासुकि की बहिन उस
जरत्कारुने ऋतुस्थानकर महामुनि पतिके पास
यथाविधि गमन करके अग्नि के समान गर्भ
धारण किया शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की भांति
वह गर्भ दिनोंदिन बढ़ने लगा। एक दिन
अति यशस्वी श्रीजरत्कारुजी नागकी बहिन
जरत्कारुकी गोद में सिर रखकर यके-मादे के
के समान सीते रहे; सूर्यदेव अस्ताचल की
चोटी पर चढ़ गये, तौभी उनकी नौद न टूटी।
तब मनस्विनी वासुकि की बहिन धर्म लोप

हीनेके भय से भीत होकर सोचने लगी, कि पति को नौद से जगाऊँ वा नहीं। ऐसा करने से दुःखशील धर्माल्सा पति के निवाट दीषी बनना पड़ेगा; नौद से न जगाने से इस धार्मिक पतिका धर्म लोप हीने को सम्भावना है, नौद से जगाने से भी यह क्रोधित हो सकते हैं; इसका क्या करना चाहिये। जिसने धर्म लोप न हीने पावे, वही कर्त्तु; इसमें शन्देह नहीं, कि नौद से जगाने से क्रोधित होंगे, पर यदि सन्ध्या लड़न होवे, तो निःशन्देह धर्म लोप होगा। सीठी बोलनेवाली नर्पवहिन ने मनहो मन में ऐसा निश्चय कामके नौदयुक्त अग्नि-समान तेजस्वी रूपि की विनय-युक्त बातोंसे कहा “हे महाभाग, व्रतशील भगवन्! सूर्यदेव डूब रहे हैं, उठकर जल कू करके सन्ध्यापासन कीजिये; देखिये अग्निहोत्र का समय आया है; यह सुहृत्त दारुण और रमणीय है; देखिये, पश्चिम और को संध्या उपस्थित हो रही है।”

पत्नी के यह बात कहने पर महातपा भगवान् जरत्कारु क्रोध से होठों को फुलाकर बोले, “अरी सर्पिणी। तूने मेरा इस प्रकारसे अपमान किया? मैं तेरे साथ अब न रहूँगा; जहां मन चाहे, चला जाऊँ, री वामीरु। मैं निश्चित जानता हूँ, कि मेरे सोये रहने से सूर्यदेव कभी उचित समय में अस्त नहीं हो सकते; देख, अपमानित होकर कोई पुरुष वसना नहीं चाहता; विशेष कर यह तो असम्भव ही है, कि मैं वा मेरे सदृश कोई दूसरा अपमानित होकर वास करे।” पति से इस हृदयसुखानेवाली बात को सुनकर वासुकि के घरमें रहती हुई वहिन जरत्कारु बोली, “हे विप्र। मैंने अपमान करनेके निमित्त आपकी नौदसे नहीं जगाया, इसी हेतु ऐसा किया है, कि आपका धर्म लोप हीने न पावे। सर्प की वहिनके ऐसा कहने पर महातपा जरत्कारु

क्रोधवश और पत्नी त्यागने के अभिलाषी होकर सर्पिणी में बोले, “री सर्पिणी। मेरी वा कभी झूठी नहीं होती; मैं अवश्य जाऊँगा, मैंने पहिलेही तेरे निराले में यह निश्चय दिया था, भट्टे। मैं चले जाने पर अपने भाई से कहना, कि सुनि चले गये हैं, फिर मैं जहां जितने दिनोंतक वसा, पगल सूखसे रहा री भीरु। मेरे जाने से न शोक से विकल न हो।” जरत्कारु सुनि की यह बात सुनकर सन्ध्या सुन्दरी जरत्कारु एकाबारही शोक से विकल और चिन्तायुक्त हुई, उसका हृदय कांपने लगा, सुखपट्ट सूख गया और दोनों गार्यों से अ सु की धार बहने लगी। वामर जरत्कारु तब कुछ धीरज धरकर दोनों हाथ जोड़कर आत् से मद्द होकर बोली “हे विजोत्तम। इस निहोपी पत्नी को त्याग आप को नहीं चाहिये क्योंकि आप धर्म हैं; विशेष कर मैं सदा धर्मपथ में रहना आप की सेवा, हितानुष्ठान और प्रिय-साध कर रही हूँ। जिस अभिप्राय से मेरे भाई आप से मेरा विवाह कर दिया, मन्द भाग्यसे मैं वह भी लाभ नहीं कर सकी; अतएव मैं अब सुभसे क्या कहेंगी? हे साधुश्रेष्ठ। मैं स्वर्गणोंने माताके शाप से कातर होकर प्रार्थना की है, कि आपके वीर्य से मेरे गर्भ में एक सन्तान उत्पन्न होवे, वह भी आजतक नहीं हुआ। आपके वीर्य से पुत्र उत्पन्न होकर मेरे स्वर्गणोंका मङ्गल होगा, हे भगवन्। मैं स्वर्गणों के हित की इच्छा से प्रार्थना करती हूँ कि आप प्रसन्न हों। आपसे मेरा क सन्बन्ध निष्फल न कीजिये। हे सत्तम। मैं महात्मा होकरके भी यह अप्रकाशित गर्भाधार कर लोकर निहोपी पत्नीको तजके जानेकी उद्यत हो रहे हैं?” पत्नीकी ऐसी बात सुनकर तपोधन जरत्कारुने उस कालीक वचनोंसे कहा, “हे सुभगी। अग्नि की समा

परम धार्मिक, वेदवेदाङ्गों में निपुण एक ऋषि तुम्हारे गर्भ में विराज रहे हैं।" धर्मात्मा महर्षि जरत्कार पत्नी से यह बात कहकर फिर कठोर तप करनेका प्रया ठानकर चले गये।

आदिपर्व में सैतालीसवां अध्याय समाप्त ।

श्रीउग्रश्रवा जी बोले, कि हे तपोधन । पतिके चले जाते हो जरत्कारने भाईके निकट जाकर सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया । नागेश वासुकि दीर्घाचत से दीना बहिन से बोले, "भद्रे । हमारा जी अभिप्राय है और जिस अभिप्राय से तुम्हारा विवाह किया था, वह तो तुम जानती हो ; पहिले पितामह जीने देवों से कहा था, सपों के हित के निमित्त तुम्हारे गर्भ में उस ऋषिके वीर्य से यदि एक पुत्र का जन्म हो, तो वह वीर्यवान् पुत्र सपों की सर्प यज्ञ से बचावेगा ; हे सुभगे । उन सुनिश्चित से तुम्हें गर्भ जिझ्या है वा नहीं ? मैं चाहता हूं, कि तुमको जिस अभिप्राय से दान किया है, वह निष्फल न होवे । यद्यपि ऐसा प्रय करना मेरे लिये अनुचित है, तौभो इसे अपना शुक्कार्य जान-सकते हो ऐसा अनुचित प्रय कर रहा हूं । तुम्हारे पति बड़े भारी तपस्वी हैं, किसी प्रकारसे वह सफल होयें नहीं लौटेंगे, यदि उनके पीढ़े जायं, तो वह शप भो दे सकते है । भद्रे । तुम्हारे पतिके सम्पूर्ण कार्यों को विशेष रूप से प्रगट करो और ब्रह्म दिनों से गड़े हुए मेरे हृदयके कठोर शैल को उठाली ।" जरत्कार यह बात सुनकर दुःख से कातर सर्पपति वासुकि से डाड़स देकर बोली, "राजन् । मैंने उस महात्मा महातपा पति से सन्तान की बात पूछी थी, उस पर वह मुझसे यह कहकर, कि "अस्ति" अर्थात् सन्तान तेरे गर्भमें है, वन की पधारे । मुझको कारण होता है, कि वह हंसी में भी काभी झूठ नहीं कहते, फिर इस विपदवे समयमें क्यों झूठ कहेंगे ? भैया ।

उन्होंने मुझसे कहा है कि अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी तुम्हारे एक पुत्र उत्पन्न होगा ; मेरे तपोधन पति यह कह करके ही चले गये हैं ; अतएव भैया ! अपनी यह चिन्तपीड़ा दूर करो !"

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि नागनाथ वासुकि-ने यह बात सुनकर आनन्द से कूदती हुई आंखोंमें "एवमस्तु" कहकर बहिन की बात स्मनली । अनन्तर धन देकर, सम्भ्रा-बुझाकर और उचित पारितोषिक देकर उस महीदरा बहिनका सम्मान करने लगे । हे द्विज श्रेष्ठ । आकाश में उगी हुए शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान अति प्रकाशमान् बड़ा तेजोवान् वह गर्भ दिनोंदिन बढ़ने लगा ; हे ब्रह्मन् । आगे समय आने पर उस सर्पबहिन ने पितृ-मातृ-कुलों के भयनाशी एक पुत्र प्रसव किया । कुमार उम नागनाथ के घरमें पाले जाकर बढ़ने लगा और बालिपनहीं से सखशुणी और व्रतनिष्ठ होकर असाधारण बुद्धि के प्रभाव से भगवान् चवन के निकट साङ्गवेद पाठ किया । वह "आस्तीक" नाम से प्रसिद्ध हुए ; वह जब गर्भ में थे, तब उनके पिता "अस्ति" यह बात कहकर वन की सिधारे थे, इस लिये उनका नाम आस्तीक हुआ । असाधारण बुद्धिमान् आस्तीक बालिपन में नागों के घरमें रहकर वासुकि के अति यत्नसे भली भाँति रक्षित होकर घूमते हुए प्रकाशमान् भगवान् देवोंके देव भूलधारीके सम्मान दिनोंदिन बढ़कर सम्पूर्ण सपों को आनन्द देने लगे ।

आदिपर्व में अदतालीसवां अध्याय समाप्त ।

श्रीशौनकाजी बोले, कि राजा जनमेजय ने पिताके परलोक के विषय में मन्त्रियों से जो कुछ पूछा था, उसे फिर विस्तार-पूर्वक कहो । श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि ब्रह्मन् । राजाने मन्त्रियों से जैसा पूछा था और मन्त्रियों ने

परीक्षित की स्वर्ग-प्राप्ति के विषयमें जैसा वर्णन किया था, वह सुनिये। जनमेजय ने पूछा, “हे मन्त्रियो! मेरे पिताका जैसा चरित्र था और वह महायशा नरेश काल-वश जिस प्रकार नाश हुए, वह तुम भले प्रकार जानते हो; मैं तुमसे पिता का सम्पूर्ण चरित्र सुनकर जैसे मद्गल हो सके, वही करंगा, कदापि विपरीत न करूँगा।” श्रीउग्रयवाजी बोले, कि महात्मा राजा जनमेजयके यह प्रश्न करने पर, धर्मज्ञ और प्राज्ञ मन्त्रियोंने कहा, “राजन्। आपने अपने पिता महात्मा जनश्रेष्ठ परीक्षित के चरित्र के विषयमें जो कुछ पूछा और जिस प्रकार वह परलोक को सिधारं, वह सुनिये। आपके पिता जैसे धर्मात्मा, महात्मा तथा प्रजापालक थे, वह कहता हूं। धर्मशील राजा साक्षात् धर्मके अवतार के समान धर्म-पथ अवलम्बन करके चारोंवर्गों को निज निज धर्म में रखकर प्रजा पालते थे; अतुल विक्रमी श्रीमान् पृथ्वीनाथ, पृथ्वी को भले प्रकार रक्षा करते थे; उनका डेपी कोई नहीं था, वह भी किसीका द्वेष नहीं करते थे; वह प्रजापति के समान सब प्रजाको समान जानते थे, कभी पक्षपात नहीं करते थे; ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, यह राजा से सुरक्षित होकर प्रसन्नचित्त से निज निज कार्य में लगे रहते थे; वह विधवा, अनाथ, दीन, दुःखियों का पोषण करते थे और द्वितीय चन्द्रमा की भांति प्रजाओं के नेत्रों के आनन्द-दायी थे। उस श्रीमान् सत्यवादी दृढ़विक्रमी महीपाल से सब लोग ही तुष्ट और पुष्ट होते थे; हे जनमेजय। - ऐसे-गुणवान् आपके पिता धनुर्वेद में शारद्वतजी के शिष्य और गोविन्द के प्रियपात्र थे; वह किसीके भी अप्रिय नहीं थे। कुरुकुलके क्षय होने पर अभिमन्युके पुत्र उस बलवान् महायशा परीक्षितने उत्तरा के गर्भ से जन्म लिया था, इसहेतु उनका नाम

परीक्षित हुआ था। राजधर्म में निपुण सर्वगुणों में शूरपति, जितेन्द्रिय, मेधावुद्धिमान, धर्ममेवक, कामक्रोधादि के अर्वाभूत, महाबुद्धियुक्त और नीतिशास्त्र में अद्विजित आपके पिता प्रजा पालकर साठ वर्ष की अवस्था में सब लोगों को दुःखके समुद्र से उठाकर परलोक को सिधारं हैं। हे पुरुष श्रेष्ठ। उसके पश्चात् आपन कसकल से प्राप्त गत अनक सहस्र वर्ष तक शासित होते हैं इस राज्य की धर्मानुसार प्राप्त किया है और बाल्यपनही में अभिषिक्त होकर सम्पूर्ण प्रजा पालन कर रहे हैं।” जनमेजय बोले, “लोक में असाधारण कीर्तिमान अगले पुत्रों के चरित्रों को जानकर सुभी-समझ पड़ता है, कि इस वंश में कभी ऐसे कोई भू नहीं थे, जो प्रजाओं के प्रिय और प्रिय करनेवाले नहीं हुए थे; अतएव यह सुन चाहता हूं, कि मेरे पिता वैसे गुणवान् होने पर भी किसहेतु अकाल में काल हुए; तुम आदि से अन्ततक यथावत् प्रश्न करो।”

श्रीउग्रयवाजी बोले, कि राजाके चित्त में मन्त्रीगण राजासे इस प्रकार पूछी जाकर यथाविधि आद्योपान्त कहने लगे। मन्त्रियोंने कहा, “राजन्। आपके पिता महायशा पाण्डुके समान सर्वशास्त्रों में निपुण, अति-चापधारी और सदा श्रमयाशील थे। एक समय वह हमलोगों पर राजकार्य का सम्पूर्ण भार सौंपकर शृगया के निःसत्त वन में गये। आगे एक शृग उन वान से वीधे जाकर वनमें जाबुसा। वह खड़्ग तूणीर आदि युद्धकी साजों से सजधज कर अकेले उस शृगके ढूँढ़ने लगे; पर देख नहीं पाया, किन कहां भागा, वह साठ वर्ष की आयुमें पड़ गये और बूढ़े हो गये थे, इस हेतु थक गये और भूख से कातर हुए; आगे उस घोर वन में

मौनव्रत किये हुए एक मुनि की देखकर भागे हुए मृग का समाचार पूछा । मुनि मौनी थे, सो पूछे जाने पर भी कोई उत्तर नहीं दिया । राजा एकतो भूख और थकावट से कातर थे, फिर उस पर शाखावर्जित वृक्ष के समान बैठे हुए उस ऋषि की बात न बोलते देखकर उसीक्षण क्रोधयुक्त हो गये ; पर आपके पिता नहीं जानते थे, कि वह मुनि मौनव्रत किये हैं इससे उन्होंने क्रोधयुक्त होने के कारण उनकी मानहानि की अर्थात् चापे की कोटि से धरतो पर से एक मृत सर्प को उठाकर उस पवित्रात्मा मुनि के गले पर रखा ; उस मेधायुक्त मुनिने भलो या बुरी कुछ न कही, क्रोध भी नहीं किया था, उसी प्रकार सर्प को गलेमें लिये रहे ।”

आदिपर्व में उनचासवां अध्याय समाप्त ।

मन्त्रीगण बोले, हे राजेन्द्र । आपके पिता भूख से कातर होकर मुनिके गले पर मृत सर्प डालकर नगर में लौट आये । उस ऋषि के शृङ्गी नामक गौके गर्भसे जन्म लिये हुए सहायशा, महातेजा, तीक्ष्णवीर्य, अति क्रोधी एक पत्न थे, वह ब्रह्माजी के निकट जाकर उनकी पूजाकरके उनकी आज्ञा से आश्रम को लौटे आ रहे थे, पथ में अपने साथी से सुना, कि घोरतपस्वी, मुनिश्रेष्ठ, जितेन्द्रिय, विशुद्धात्मा, आश्चर्य्य कार्य में नियुक्त, तपस्या से प्रकाशमान यतात्मा, सदा शुभाचार में रत सत्कृत्य, मे स्थित लोभवर्जित, सुस्थित, अचुद्राशय, प्रत्यारहित, वृद्ध, सर्वभूतो को शरण देने योग्य और मौनव्रत में बैठे हुए उनके पिता का अपमान कर आपके पिता ने एक मृत सर्प उठाकर उनके गले पर डाला है और वह वृद्ध ऋषि भी जड़के समान उस मृत सर्प को गले में लिये हुए है, हानिकारी राजाकी नदलेमें कोई हानि नहीं को । महातेजा ऋषि-

कुमार बालक होने परभी वृद्धके समान थे, सो वह उसे सुनकर अति क्रोधित हुए और अपने तेज से म्मानों जलकर जल कूकर आपके पिताका नाम लेकर यह शाप दिया, कि जिस पापात्मा ने बिना अपराध मेरे पिता के गले में मृत सर्प डाला है, उसको महातेजा विषधारी तक्षक सर्प मेरे बलिपन के प्रभाव से भेजे जाकर सात रात्रियों के बोच में क्रोधपूर्वक तेज से जला दंगा, हे मित्र । मेरे तपोबल की देखो । शृङ्गीने यह बात कहकर जहां उसके पिता थे, वहां जाकर उनको देखकर शाप देने का वृत्तान्त कह सुनाया । उस मुनिशार्ङ्गल समीक ने गौरमुख नामक गुणवान् सुशील शिष्य को आपके पिताके निकट भेजा । गौरमुख यहां आकर थकावट मिटाकर राजा को सब वृत्तान्त सुनाकर गुरु की यह आज्ञा जताई, कि “हे महोदय । मेरे पुत्रने तुमको शाप दिया है । सावधान होओ, हे महाराज । तक्षक तुमकी तेजद्वारा जलावेगा ।”

हे जनमेजय । आपके पिता यह कठोर बात सुनकर नागीत्तम तक्षक का भय खाकर सावधान हो रहे । अनन्तर उस सातवें दिनके अने परमर्हार्थ काश्यप राजाके समीप आ रहे थे, पथ में नागनाथ तक्षकने उनकी देखा तक्षक बोला, “हे विज । तुम शीघ्रतापूर्वक कहा जा रहे हो ? क्या करना चाहते हो ?” काश्यपने उत्तर दिया, “हे विप्र । आज नागराज तक्षक कुरुकुलप्रदीप राजा परीक्षित को तेज से जलावेगा, मैं आज ही आरोग्य करने के अभिप्राय से शीघ्रतापूर्वक जा रहा हूं ; मेरे वहां जाने पर तक्षक उनका प्राण नहीं ले सकेगा ।” तक्षक बोला, “हे ब्रह्मन् ! मैं ही तक्षक हूं, मेरे काटने पर तुम क्यों उनकी वचाना चाहते हो ? कभी वचा नहीं सकोगे, वरण मेरा आश्चर्य्य वीर्य्य प्रवृत्त करो ।” तक्षकने यह बात कहकर एक वृक्ष को काटा ;

काटनेहीसे वह वृक्ष उसी क्षण भस्म हो गया । हे राजन् । तब काश्यपने उस वृक्ष को बचाया यह देखकर तक्षक काश्यप को यह कहकर लुभाने लगा, कि बोलो, तुम क्या पाने की इच्छासे राजा के पास जा रहे हो । काश्यपने उत्तर दिया, कि मैं धन पाने की आशासे जाता हूं । अनन्तर तक्षकने उस महात्मा को मोठो बातों से कहा, “हे अनघ ! तुमने-राजासे जितना धन पाने की आशा की है, मैं उससे भी अधिक धन देता हूं, लौट जाओ ।” तक्षक को यह बात सुनकर मानवश्रेष्ठ काश्यप प्रार्थना से अधिक धन पाकर लौट गये । अनन्तर परम धार्मिक नृपश्रेष्ठ आपके पिताके सुरक्षित गृह में बड़े सावधान रहने पर भी तक्षकने विष बदलकरके आकर विपक्षपी आगसे उनको भस्म किया । उसके पश्चात् आप विपक्षियों को जीतने की उनके पदपर आरुढ़ हुए है, हे नृपश्रेष्ठ ! हमने जो सब अति भयावनी लोला देखी और सुनी है, वह सब आद्योपान्त कह सुनाई । हे नरनाथ । अपने पिता और उत्तङ्ग ऋषि की पराजय का कृतान्त तो सुन चुके, अब जो उचित हो, कीजिये ।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि अनन्तर शत्रुकुल-शाली राजा जनमेजय ने मन्त्रियोंसे कहा, “यह आश्चर्य्य लीला कि तक्षकने वनस्पति को जलाया और काश्यपने उसको जीवन दिया, तुमने किस्से सुनी है ? मुझको जान पड़ता है, कि तक्षकने उस समय सोचा था, कि इस ब्राह्मण के मन्त्रद्वारा विष से मुक्त होकर वृक्ष को जीवन मिला है, सो मेरे राजाको काटनेसे यह ब्राह्मण जाकर यदि उनको जिला दे, तो लोग यह कहकर मेरी हंसी करेंगे, कि तक्षक का अब वैसा विष न रहा । सर्पाधम पापात्मा तक्षकने मनही मन में यह सोचकर काश्यपजी को प्रसन्नकर विदाकर दिया था, इस में

कुछ भी सन्देह नहीं है ; पर मैं चाहूँ कि उपायसे ही, उस पापात्मा के इस पाप का उचित प्रतिफल दूंगा ; परन्तु मैं एक बात पूछता हूँ, कि निर्जन वन में काश्यप और तक्षक में बातों का होना किसने सुना है, वा किसने देखा है, अथवा ग्योंकर वह तुम्हारे कानों तक पहुंचा ? मैं यह सुनकर ऐसी चेष्टा करूंगा, कि सर्पकुलका नाश होवे ।” मन्त्रियों ने कहा, कि हे राजन् । काश्यप और तक्षक का मिलन-वृत्तान्त जिसने हमसे जिस प्रकार कहलाया, वह कहता हूं, सुनिये । हे पृथ्वीपति ! एक मनुष्य लकड़ी के निमित्त उस वृक्ष पर चढ़ कर सूखी शाखा बटोर रहा था, उक्त ब्राह्मण और तक्षकने वृक्ष पर चढ़े हुए उस मनुष्य को देखा नहीं था, हे राजन् । वह मनुष्य तक्षक के विपानि से वृक्ष-सहित भस्म हो गया था, आगे काश्यपजीके प्रभाव से वृक्ष के साथ जो उठा, उस पुरुषने हमारे पास आकर तक्षक और ब्राह्मण का सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा था ; हे राजन् । हमने जो कुछ देखा है और सुना है, वह सब कह चुके । हे राजसिंह । इस क्षण सुनकर जो उचित हो कीजिये ।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि राजा जनमेजय मन्त्रियों की बात सुनकर दुःख से अति कातर और खेदयुक्त होकर हाथ से हाथ मलने लगे और बार बार लस्वी सास लेकर उन कमरों से आंसू गिराने लगे । पिताके शोकसे रोने में उनके आंसू रोकने योग्य न रहे, अनन्त वह यथाविधि जल कूकर खेदयुक्त चित्तसे क्षणभर सोच करके मनही मन में कार्य ठहराकर मन्त्रियों से बोले, “मेरे पिताके परलोक सिधारने के विषय मैं तुमने जो कहा उसे सुनकर मैंने मनही मन में जैसा निश्चय किया है, वह सुनो । मैंने सोचा है, कि कि दुरात्मा तक्षकने शृङ्गी नामक ऋषि-पुत्रका

मिस मात्र पाकर मेरे पिता की जलाकर नष्ट किया है, उस पापिष्ठ का प्रतिफल देना उचित है ; देखो, उस दुरात्मा का अत्याचार कितना है ; काश्यपजी आ रहे थे, उनकी उसने धन देकर लौटा दिया, वह ब्राह्मण आये होते, तो मेरे पिता बिना सन्देह जी उठते । काश्यपजी के प्रसाद और मन्त्रियों के विनय से जी गये होते, तो उसकी कौनसी हानि हुई होती । उस अजेय राजा को जिलाने के निमित्त द्विजोत्तम काश्यप आ रहे थे, उसने सूर्खता से क्यों उनकी रोका ? यह सोचकर कि ब्राह्मण राजा को जीवन न दें, उनकी धन देना उस दुराचारी तक्षकका बड़ा अत्याचार प्रकट करता है, अतएव मैं उतङ्ग के, मेरे और तुम्हारे हितानुष्ठान करने के निमित्त पिता को शत्रुता का बदला लूंगा ।

आदिपर्व में पचासवां अध्याय समाप्त ।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि ब्रह्मन् । भरतसिंह पुरोहितपुत्र पृथ्वीनाथ श्रीमान् जनमेजय की यह सब बात मन्त्रियों से अनुमोदित होने पर उन्होंने सर्पयज्ञ करने का प्रणयन लिया । अनन्तर उन वाक्ययुक्त राजा ने पुरोहित और ऋत्विकों की बुलवाकर कार्योपयुक्त यह बात कही, कि जिस दुरात्मा तक्षकने मेरे पिता की हिंसा की है, मैंने उसका यथोचित प्रतिफल देने की इच्छा की है ; आपलोग कहें, कि ऐसे किसी विधान से विदित है वा नहीं, कि जिससे नागराज तक्षक की भवों के साथ जलती हुई आग में डाल सकूँ ? पहिले तक्षकने जिस प्रकार से विषरूपी आग ने मेरे पिता को जलाया था, मैंने भी उस पापिष्ठ को उस प्रकार जलती हुई आग में गह्वति चटाकर जलाने की इच्छा की है । ऋत्विक्गण बोले, कि राजन् । पुराणों में देखते हैं, कि सर्पयज्ञ नामक एक महान् यज्ञ

है ; देवताओंने आपही के निमित्त उस यज्ञकी रचा है । पौराणिकलोग कहते हैं, कि आपके बिना कोई दूसरे भूप उस महायज्ञ का अनुष्ठान नहीं कर सकेंगे । हे महाराज । हम लोग भी उसके नियमों से ज्ञात हैं ।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि हे सत्तम । राजाने ऋत्विकों की यह बात सुनकर तक्षक की अग्निके मुहमें पड़ा हुआ और जला हुआ समझा । आगे मन्त्रज्ञ ब्राह्मणों से बोले, कि मैं सर्पयज्ञ का अनुष्ठान करूंगा, आपलोग आयोजन कीजिये । हे द्विजसत्तम । बुद्धिमान, वेदज्ञ ऋत्विकलोगोंने यज्ञस्थान के निमित्त एक स्थान ठहराकर यथाविधि उसे सजाया ; आगे उन्होंने वेदविधिके अनुसार परम ऋद्धियुक्त द्विजीसे निषेवित अपरिमित धनधान्यवाले ऋत्विकों से सेवित दृष्ट यज्ञस्थानकी बना करके राजा को सर्पयज्ञ में दीक्षित किया ; पर तब उस सर्पयज्ञ में विघ्नडालनेवाला एक भारी निमित्त उपस्थित हुआ । जब यज्ञस्थान बन रहा था, तब वास्तुविद्यामें पण्डित बुद्धिमान् राज (स्थपति) पौराणिक सूतने कहा था, कि जिस देश में और जिस काल में यह नाप आरम्भ हुआ है, उससे जान पड़ता है, कि एक ब्राह्मण के द्वारा यह यज्ञ रोका जायगा । राजा दीक्षित होने के पहिले यह बात सुनकर द्वारवानों से बोले, कि मेरे न जानने में किसी की भी घुमने न देना ।

आदिपर्व में एकावन अध्याय समाप्त ।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि अनन्तर यथाविधि सर्पयज्ञ आरम्भ हुआ । याजकलोग यथाविधि अपने अपने कार्यों में लगे । वे लोग काले रङ्गके दुपट्टे लेकर धूपसे धूमिली आंख बनाकर विधिपूर्वक मन्त्र उच्चारते हुए प्रज्वलित अग्निमें आहुति चढ़ाने लगे इससे सर्पों के चित्त कापने लगे । अनन्तर याजकलोग

को उद्देश्यकर अग्निके मुह में आहुति देने लगे ; तब सादे, काले नीले, बूढ़े, बाल, कौस-भर, योजनभर गोकर्णभर सैकड़ों सत्तसों सर्प लम्बी सांस लेते हुए एक दूसरे को पूरु और सिर से कसके लपेटकर धीमे स्वरमें परस्पर को बुलाने के पीछे भांति भांतिके शब्दोंसे चिल्ला चिल्ला कर घूमते चक्कर खाते जलती हुई आग में गिरने लगे । इस प्रकारसे सैकड़ों सत्तसों, अयुतों, अर्जुनों सर्प अग्नि में गिरते ही विवश शरीर होकर नष्ट हुए । अनन्तर अश्व-समान हाथी को सुंडके समान परिघ-समान मत्तहस्तो-समान भारो शरीरधारी और महाबली, अगाणित रङ्गविरङ्गके भांति भांति के, विष में विषम, घोररूप दन्तशूक सर्प आठ-वाह्यरूपी दण्ड से पीड़ित होकर अग्निके मुह में गिरने लगे ।

आदिपर्व में बावन अध्याय समाप्त ।

शौनकजीने पूछा, कि बैठा । पाण्डुवनन्दन धीमान् राजा जनमेजय ने सर्पोंको बड़ा भय देनेवाले, अति दुःखदायी, बड़े कठोर जिस सर्प-यज्ञ का अनुष्ठान किया था, विस्तार-पूर्वक कहो, कि उसमें कौन कौन महर्षि ऋत्विक् और सदस्य थे, क्योंकि यह जानना चाहता हूँ, कि कौन कौन मुनि सर्पयज्ञके विधानसे विदित थे । श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि जो सब पण्डितलोग सर्प यज्ञ में ऋत्विक् और सदस्य थे, उनके नाम कहता हूँ सुनिये । अवनवंशो वेदज्ञ प्रांसज ब्राह्मण चण्डभार्गव उस महायज्ञ में होता, विद्वान् बूढ़े कौत्स नामक ब्राह्मण उहाता, जैमिनि मुनि ब्रह्मा, शार्ङ्गरव और पिङ्गल मुनि अध्वर्यु हुए थे । पुत्र और शिष्यों के साथ व्यास, उद्दालक, प्रमत्तक, श्वेत-केतु, पिङ्गल, असित, देवल, नारद, पर्वत, आत्रेय, कुण्डजठर, कालघट, वास्य, वृद्ध श्रुत-अवा, जप और स्वाध्याय में रत सुशील, कोहल,

देवशर्मा, मीदगल्य, समसीरभ यह सब और दूसरे वेदज्ञ वृद्धत ब्राह्मण जनमेजयके इस महा यज्ञमें सदस्य हुए थे । ऋत्विकोंके उस यज्ञमें आहुति चढ़ाना आरम्भ करने पर घोर भयानक सर्पगण आकर गिरने लगे, उनको वन और मेदकी नदी बहने लगी । सदा जलते हुए सर्पोंकी कठोर दुर्गन्ध चारों ओर फैलने लगी ; आगमें गिरे, आकाशमें ठहरे और अग्निसे जलते हुए, सर्पोंके चिल्लानेके शब्द सदा सुनाई देने लगा । नागनाथ तत्क्षण राजा जनमेजयके सर्पयज्ञमें दोषित होनेकी बात सुनकर, अपनेको दीपी जान, इन्द्रपुरी जाय, भययुक्तचित्तसे इन्द्रके पास आद्योपात्त सब बात कहकर उनकी शरण लो । इससे इन्द्रकी प्रसन्न होकर बोले, “हे नागराज तत्क्षण सर्पयज्ञसे तुमको कोई भय नहीं है, मैंने यह लिखी तुम्हारे लिये पितामह जीकी प्रसन्न किये है, सो तुम्हें भय नहीं है, चित्त की पीड़ासे दूर करो ।”

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि अनन्तर नागोत्तम तत्क्षण इन्द्रसे इस प्रकार ढाड़स पाकर प्रसन्न चित्तसे इन्द्रके पास रहने लगा । इधर नागोंके हर घड़ी अग्निमें गिरने पर वासुकी अपने परिवारोंको अल्पशेष देखकर अति दुःखी चित्तसे खेदयुक्त होने लगे, तब वह अति शोकसे घेर गयी और उनका मन डोलने लगा । अनन्तर वह नागनाथने अपनी बहिन से कहा, “भद्रे ! मेरा शरीर जल रहा है, मैं चारों ओर अंधेरो छाये हुई देखता हूँ, मोहसे विवश हो रहा हूँ, मेरा चित्त घूम रहा है, देखनेमें अँध हो रहा है । आज विवश शरीरसे मुझको भी जलती हुई आगमें गिरना पड़ेगा, सर्पोंके नाशके निमित्त जनमेजयने यज्ञ आरम्भ किया है । मुझको भी यमराज का पाहुना बनना पड़ेगा । अरो बहिन ! जिस हेतु जरत्कार ऋषि तुम्हारा विवाह कर दिया था, यह वही कारण

आ पड़चा है, अब हमकी भित्तोंके सहित
बचाओ; री नागोत्तमे । पहिले पितामहने
स्वयं मुझसे कहा था, कि सर्पयज्ञ आरम्भ होने
पर आस्तीक-ऋषि उसे रोकेंगे; सो बहिन ।
अब मेरी और मेरे परिवारोंकी रक्षाके
निमित्त बृद्ध-सम्मत वेदनिपुण अपने बालकपुत्रसे
कहा ।

आदिपर्वमें तिरपन अध्याय समाप्त ।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि अनन्तर सर्पकी
बहिन जरत्कारुने नागनाथ वासुकिके वाक्या-
नुसार अपने पुत्र को बुलाकर यह कहा, कि
बेटा ! मैयाने मुझे तुम्हारे पिताकी जिस
निमित्त दान दिया था, उसका काल अब
आगया है, जो उचित हो, करो । आस्तीकजी
बोले, कि सच कहो, किस लिये मामाने तुम्हें
मेरे पिता को दान किया था, मैं सुनकर उसके
अनुसार कार्य करूँ । उसके अनन्तर वासु-
कीके हितचाहनेवाली सर्पकी बहिन जरत्कारु
ढाड़स पाकर पुत्रसे बोली, कि सम्पूर्ण सर्पों
की माता कद्रुने जिस कारणसे क्रोधित होकर
अपने पुत्रोंको शाप दिया था, वह कहती हूँ,
सुनो । उसने विनतासे दासीपन का दाव
लगाकर सर्पोंसे कहा था, कि तुमलोग सादे
उच्चैःश्रवाको काला बनाओ, सर्पोंके न मानने
पर उसने शाप दिया, कि “जनमेजय राजा के
सर्पयज्ञमें अग्निदेव तुमको जलावेंगे और तुम
सरकार परलोकाकी सिधारोगे।” कद्रुके शाप देने
पर सर्वलोकोके पितामह ब्रह्माने “एवमस्तु”
कहके उस बातका समर्थन किया । वासुकिनेभी
पितामहजीकी वह बात सुनकर अमृत मथनेके
पश्चात् देवोंकी शरण ली । देवगण दुर्लभ
अमृतकी पाकर सफलमनोरथ होकर मेरे
भाईको साथ लेकर पिताकाहके समीप जा
पहुँचे ।

प्राग् रघु देवता नागनाथ वासुकिसे मिल-

कर पद्मयोनि ब्रह्माजीकी इसलिये प्रसन्न करने
लगे, कि सर्पोंका शाप मुक्त होवे । देवगण
बोले, कि भगवन् । यह नागनाथ वासुकि
स्वजनोंके निमित्त अति दुःखी है, अतएव ऐसा
कीजिये, कि माताका शाप दूर होवे । ब्राह्माजी
बोले, कि जरत्कारु नामक ऋषि जरत्कारु
नाम्नी जिस सर्प-बहिनसे विवाह करेंगे, उसी-
के गर्भसे एक श्रीमान ब्राह्मण जन्म लेकर सर्पों
की माताके शापसे बचावेगा । बेटा । नाग-
नाथ वासुकिने पितामहकी यह बात सुनकर
तुम्हारे पिताके साथ मेरा विवाह कर दिया,
अतएव सर्पयज्ञका काल आनेके पहिलेही
तुमने मेरे गर्भसे जन्म लिया है; अब वह
कठोर काल आ पड़चा है, तुम हमको भयसे
बचाओ, अग्निके मुखसे मेरे भाईकी रक्षा करो ।
बेटा ! मैं सर्पोंको रक्षाके निमित्त तुम्हारे
पिताकी दी गई थी, सो ऐसा करो, कि मैं
जिस अभिप्रायसे सौंपी गई थी, वह व्यर्थ न
हो; अथवा कहो तो सही, इस विषयमें तुम्ही
क्या सोच रहे हो । आस्तीकने माताकी बात
सुनकरके “तथास्तु” कहकर मान ली; आग
दुःखसे जलते हुए वासुकिकी जीवन दे कर-
केही मानों बोलने लगे, कि हे महाभाग सर्प-
नाथ वासुके ! मैं सच कहता हूँ, तुमको
उस शापसे बचाजंगा; राजन् । तुम चित्त
स्थिर करो, तुम्हें कुछ भय नहीं है, मैं विशेष
यत्न करूँगा, कि जिससे तुम्हारा मङ्गल होगा,
मैं हंसीमें भी भूठ नहीं बोलता, फिर कामके
समय कहनेका कौन सी सम्भावना है ? मामा !
मैं उन दीक्षित आचार्यात जनमेजयके निकट
चलकर मङ्गलयुक्त बातोंसे उसका प्रसन्न
करूँगा; हे सत्तम ! ऐसा करूँगा, कि वह
यज्ञ रुक जाय; हे महाभाग नागनाथ ! मैं
जा कह रहा हूँ, वह असम्भव न जानय, और
तुम्हारे चित्तमें ऐसी समझ न आवे, कि मुझमें
यह भूठ ठहर सके । वासुकि बोले,

आस्तीक ! मैं चक्कर खारचा हूँ, मेरा हृदय फटा जाता है, ब्रह्मदण्डसे पीसे जाकर चारों ओर अंधेरी देख रहा हूँ । आस्तीकजी बोले, कि हे सर्पराज ! तुम किसी प्रकार दुःखी मत होओ, मैं तुम्हारा प्रज्वलित अग्निका भय कर कसूंगा, मैं प्रलय-कालिक अग्निके समान तेजस्वी अति घोर ब्रह्मदण्डको दूर कसूंगा, तुम इस प्रकारसे किसी विषयमें भय मत करो ।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि अनन्तर दिग्ग्येष्ट आस्तीक मुनि वासुकिजी कठोर चित्तपीडाको दूरकर स्वयं सर्पकुलके उद्धारका भार लेकर शीघ्रता पूर्वक सर्व गुणशाली जनमेजयके यज्ञ स्थानको पधारे । आगे वहाँ पहुँचकर अग्नि और सूर्यके समान प्रकाशमान अगणित सदस्योंसे भरे हुए, सुन्दर यज्ञस्थान को देखा । यज्ञभूमिमें घुसनेके कालमें द्वारवानोंसे रोके जानेके कारण घुसनेकी इच्छासे उस सर्पयज्ञकी प्रशंसा करने लगे । अनन्तर हे पुण्यात्माओंमें श्रेष्ठ, द्विजोत्तम ! आस्तीकमुनि यज्ञभूमिमें पहुँचकर अनन्त कीर्तियुक्त भूपाल ऋत्विक्, सदस्य और अग्निका स्तव करने लगे ।

आदिपर्वमें चौवनवां अध्याय समाप्त ।

श्री आस्तीकजी बोले, कि हे भारतश्रेष्ठ परीक्षित ! प्रयागमें सोम, वरुण और प्रजापतिका जैसा यज्ञ हुआ था, आपका यह यज्ञ वैसाही हुआ है । प्रार्थना करता हूँ, कि हमारे प्रियजनों का मङ्गल होवे । हे भारतश्रेष्ठ परीक्षित ! देवराजने जो सौ यज्ञ किये थे, आपका यह यज्ञ उस प्रकारके अयुत यज्ञके समान हुआ है । प्रार्थना करता हूँ, कि हमारे प्रियजनों का मङ्गल होवे । हे भारतश्रेष्ठ परीक्षित ! यम, हरिमेधा और रन्तिदेवने जो यज्ञ किया था, आपका यह

यज्ञ वैसाही हुआ है ; प्रार्थना करता हूँ, कि हमारे प्रियजनों का मङ्गल होवे । हे भारतश्रेष्ठ परीक्षित ! गय, गणविन्द और वैश्वदेव जो यज्ञ किया था, आपका यह यज्ञ वैसाही हुआ है, प्रार्थना करता हूँ, कि हमारे प्रियजनों का मङ्गल होवे । हे भारतश्रेष्ठ परीक्षित ! नृग, अजमीढ, और दाशरथि राजा रामचन्द्रजीने जो यज्ञ किया था, आपका यह यज्ञ वैसाही हुआ है, प्रार्थना करता हूँ, कि हमारे प्रियजनों का मङ्गल होवे । हे भारतश्रेष्ठ परीक्षित ! अजमीढवंशी देवपुत्र युधिष्ठिरका यज्ञ स्वर्गमें जैसा प्रनंसित हुआ था, आपका यह यज्ञ वैसाही हुआ है, प्रार्थना करता हूँ, कि हमारे प्रियजनों का मङ्गल होवे । हे भारतश्रेष्ठ परीक्षित ! सत्यवती-पुत्र कृष्णद्वैपायन स्वयं सम्पूर्ण धर्मानुष्ठान करके जो यज्ञ किया था, आपका यह यज्ञ वैसाही हुआ है, प्रार्थना करता हूँ, कि हमारे प्रियजनों का मङ्गल होवे । देवराज इन्द्रजीके यज्ञमें जैसे सदस्य थे, उनके ऐसे आपकी इस यज्ञमें सूर्यके समान प्रकाशमान यह सब सदस्य बैठे हैं, इस कालमें ऐसी कोई वस्तु विद्यमान नहीं है, जो यह हो न जानें ; अतएव इनको दान देनेसे कभी न नहीं होता ; मैंने निश्चय करलिया है, कि भगवान् द्वैपायनके समान ऋत्विक् तीनों यज्ञों में नहीं है, क्योंकि इनके शिष्यलोग निज कार्यमें दक्ष और सब कामोंमें रुचि होकरके भूमण्डलमें घूम रहे हैं । विभावर्त, चित्रभानु, महात्मा, हिरण्यरेता, हतमुख और कृष्णवर्मा अग्निदेव प्रज्वलित और दक्ष औरकी शिष्यायुक्त होकरके देवोंकी सेवा करनेके लिये आपकी यह हवनकी वस्तु माँ रहे हैं । हे राजन् । इस धरती भरमें आपकी सदृश प्रजापालक महाराज और कोई नहीं है, आपकी धीरज कोभी देखकरके मैं सदा प्रसन्न रहता हूँ ; आप वरुण और धर्मराज यम

मान अनुशासक हैं, साक्षात् वज्रधारी देव-
राजकी भांति सत्यलोकमें प्रजाको पाल रहे
हैं। हे पुत्रप्रेष्ठ ! आप हमारे सम्मानके
पात्र हैं, ऐसा यज्ञशील नरेश इस लोकमें कोई
नहीं है। आप खट्वाङ्ग, नाभाग और दिलीप
नरेशोंके सदृश हैं, आपका प्रभाव ययाति और
मास्रता को भांति है और आप भीष्मजीके
सदृश व्रतशील होकरके विराजमान हैं।
आपका वीर्य वाल्मीकिके वीर्यवत गुप्त है,
आपका क्रोध वशिष्ठके सदृश वशमें है, आपकी
प्रभुताई इन्द्रजी की सी है और आपका प्रकाश
नारायणजीके प्रकाशके सदृश प्रगट होता है।
आप धर्मराजकी नाई धर्म ठहरानेवाले हैं,
श्रीकृष्णजीके सदृश सर्व गुणयुक्त हैं, लक्ष्मीजीके
हसनके अद्वितीय आधार हैं, दम्भोजवके समान
शैवली हैं, श्रीरामचन्द्रजी ऐसे अस्त्रज्ञ और
पास्त्रज्ञ हैं, वित और श्रीर्षके समान प्रभावी
और भगीरथ की भांति भेंट के लिये दुर्लभ
हैं।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि राजा, सदस्य,
ऋत्विक् और अग्नि सभी इस प्रकार स्तव किये
जाने पर प्रसन्न हुए। राजा जनमेजय उनके
हृदय के भावको समझकर कहने लगे।

आदिपर्वमें पचपन अध्याय समाप्त।

जनमेजय बोले, कि यह बालक, ऋषि
वृद्धकी नाई बातें कह रहे हैं, बातोंसे जान
पड़ता है, कि यह बालक नहीं, वृद्ध है। सुभी
हो रही है, कि इनकी मनमाना वर
दू। ब्राह्मणों। आप इस विषयका उचित
विचार करें। सदस्यलोग बोले, कि ब्राह्मण
बालकभी होंगे, तो राजाके माननीय होते हैं,
विशेष पूजा पाते हैं, अनएव आप इनके मन-
माने सब कर दे सकते हैं, पर ऐसा करना
नाहिंवे, कि हमारा उद्देश्य किया हुआ तक्षक
श्रीगो आवे।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि राजा वर देनेकी
अभिलाषा होकर आस्तीक मुनिसे यह कह-
नेहो पर थे, कि “वर मांगो,” कि ऐसे समयमें
होताने कुछ असन्तुष्ट चित्त होकर कहा, कि
महाराज। कुछ विलम्ब कीजिये, अभीतक
तक्षक नहीं आया है। जनमेजय बोले, कि
आपलोग शक्तिके अनुसार ऐसी चेष्टा कीजिये,
कि मेरा कार्य पूरा हो और तक्षक शीघ्र आवे,
क्योंकि वह तक्षकही हमारा शत्रु है। ऋत्विक्
लोग बोले, कि हे राजन् ! हमारे शास्त्रोंमें
कहा है और अग्निदेवभी प्रकाश कर रहे हैं,
कि तक्षक, भय खाकर इन्द्रके गृहमें शरण
लिये हुए है। महात्मा पौराणिक सूतजी
लोहिताक्षने राजासे पूछी जाकर पहिले जिस
प्रकार कहा था, तबभी फिर वैसाही कहा,
कि महाराज ब्राह्मणलोग जो कहते हैं, वह
सत्य है। मैं पुराणके अनुसार कहता हूं, कि
इन्द्रने उस तक्षकको यह वर दिया है, कि “तुम
मेरे पास छिप रहो, अग्निदेव तुम को जला
नहीं सकेंगे।” यज्ञमें दीक्षित राजाने यह
बात सुनकर चित्तमें दुःख मानकरके होता से
कहा, कि मन्त्र उच्चारणकर तक्षककी आज्ञाति
चढ़ाओ। होता अति यत्नसे मन्त्र उच्चारण करते
हुए तक्षकके नामसे आज्ञाति देने लगे।

अनन्तर सम्पूर्ण देवोंसे स्तव पानेवाले महा
नुभाव देवराज रथमें चढ़कर आकाशमण्डलमें
स्वयं उपस्थित हुए। मेघ, विद्याधर और
अप्सरा उनके साथ आईं, नागराज तक्षक भयसे
उनके दुपट्टेमें लिपट रहा। इधर राजाने
क्रोधित होकर फिर मन्त्रज्ञ ऋषियांसे कहा,
कि ब्राह्मणों ! यदि तक्षकने इन्द्रके गृहमें
शरण ली हो, तो इन्द्रके सहित उसकी अग्निमें
गिराइये। होताने तक्षकके निमित्त जनमे-
जयसे ऐसी आज्ञा पाकर इन्द्रके सहित तक्षकके
नाम आज्ञाति दी। होताके ऐसी आज्ञाति
देनेही पर इन्द्रजी तक्षकके साथ पीड़ि

आकाश-मण्डलमें दिखाई देने लग। उस यज्ञको देखतेही इन्द्र अति भीत होकर तक्षककी छोड़कर हड़बड़ाते हुए अपने घरकी भागी। इन्द्रके इस प्रकार भागनेपर तक्षक भयसे मोहित और विवश होकर यज्ञकी आगशिखा-के समीप आ पड़ा। तब ऋत्विक्लोग बोले, कि हे राजेन्द्र ! अब आपका कार्य विधिपूर्वक हुआ, अब इन ब्राह्मणश्रेष्ठकी वर दे सकते हैं। जनमेजय बोले, कि हे अप्रमेय बालक ! तुम जैसे योग्य पात्र हो, मैं तुमको वैसा ही वर दूंगा। तुम्हारे चित्तमें जैसा ही और जो कुछ चाहते हो मांगो ; यदि मेरे देनेके अयोग्यभी हो, तौभी दूँगा। इस बीच ऋत्विक्ोंने कहा, कि हे महाराज ! वह देखिये, तक्षक आपके वशमें होकर शीघ्र आ रहा है और भयसे विकल होकर चिल्लानेके हेतु उसकी घोर आहट सुनाई देती है ; निश्चय जान पड़ता है, कि बज्रधारी देवराजने उसकी छोड़ दिया है, सो मन्त्रके बलसे खींचे जाकर स्वर्गसे गिर रहा है ; देखिये, वह सर्पनाथ तेज शंस छोड़ता हुआ आकाशमें चक्कर खा खा-कर और चेतना-वर्जित होकर आ रहा है।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि नागनाथ तक्षक अग्निमें गिर रहा था, कि ऐसे समयमें आस्तीक मुनिने इस वरके मांगनेका अवसर लिया, कि हे जनमेजय ! यदि वर दें, तो मेरी यह प्रार्थना है, कि आपका यह सर्पयज्ञ बन्द होवे और सर्प इसमें अब न गिरें। ब्रह्मन् ! आस्तीककी यह वर पानेकी प्रार्थना सुनकरके परीक्षित-पुत्रने अनधिक प्रसन्न चित्तसे कहा, विभी ! आप सोना, चांदी, गौ, वा और कुछकी प्रार्थना कीजिये, सभी दे सकूंगा ; पर मेरा यह यज्ञ बन्द नहीं होगा। आस्तीकने उत्तर दिया, कि राजन् ! मैं सोना, चांदी, गौ आदि कुछ नहीं मांगता, आपका यह यज्ञ बन्द हो, उसीसे मेरे मातृकुलका भङ्गल होगा।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि मुनि आ ! ऐसा उत्तर देने पर बोलनेमें तेज राजा जनमेजय बार बार कहने लगे, कि “हे त्रिवेन्द्र ! आप दूसरा वर मांगिये, तो आपके लिये मङ्गल होगा ; पर आस्तीकने किसी प्रकार का वरको प्रार्थना नहीं की। अनन्तर वेद सम्पूर्ण रुद्रस्योनि झिलकार राजासे कहा, कि ब्राह्मण-कुमारकी अनमाना वर दीजिये।

आदिपर्वमें ऋष्यनवा अध्याय समाप्त।

श्रीशौनकजीने पूछा, कि हे सूतपुत्र ! उ सर्पयज्ञमें जो सब सर्प आ गिरे थे, उनके नाम सुनने चाहता हूं। श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि हे द्विजोत्तम ! सहस्रों, अयुतों, अर्बुदों के अग्निमें हवन हुए थे, बहुत होनेके हेतु उनके संख्या नहीं हो सकती, पर जितना स्मरण कहता हूँ। पहिले उनमें वासुकि-वंशी नील लाल, सादे, बड़े, घोर विषसे भयान जितने बड़े बड़े सर्प माताके वासुकीपुत्र दान्ति-पुत्रोंसे जाकर विवश और पीड़ायुक्त हस्त अग्निमें हवन हुए थे, उनके नाम सुनि-कोटिश, भानश, पूर्ण, शल, पाल, हलीमर पिच्छल, कौणप, चक्र कालवेग, प्रकालन हि गणवाह, शरण, कक्षक और कालदन्तक वासुकि-वंशी यह सब और महाबही घोररूपी दान्ति सर्प भी जलती हुई, आग में गिरे थे। तब कुल से उपजे हुए, सर्पों के नाम कहता हूँ सुनिये। पुच्छाण्डक, मण्डलक, पिच्छसेत, रभेणक उच्छिख, शरभ, भङ्ग, विल्वतेजा, विहग, शिली, शलरक, भूक, सुकुमार, प्रवण, मुहुर, शिशुरोमा, सुरोमा और महाह-तक्षकवंशी यह सब सर्प अग्निमें घुसे थे। पातवत, परिपात्र, पाण्डव, हरिण, कुश, विह, शरभ, मेद, प्रमोद और संहतापन, ऐरावत वंशी यह सब नाग आगमें गिरे थे। हे द्विजोत्तम ! एरक, कुण्डल, वेणी, वेणीकथ, उमा

नाक, वाहुक, शृङ्गवेर, धूतक, प्रातर, आतक,
 औरव्यवंशी यह सब नाग आगमें घुसे थे । हे
 ब्रह्मन् धृतराष्ट्रवंशी विषधारी वायुवत वेगवान
 नागोंके नाम कहता हूं, सुनिये । शङ्करा,
 पेठरक, कुठार, सुखसेचक, पूर्णाङ्गद, पूर्णमुख,
 त्रहास, शकुनि, दरि, अमाहठ, कामठक, सुषेण,
 मानस, व्यय, भैरव, मुण्डवेदाङ्ग, पिशङ्ग, सुद-
 रारक, ऋषभ, वेगवान्, नाग, पिण्डारक, महा-
 हव, रक्ताङ्ग, सर्वसारङ्ग, समृद्ध, पठवासक, वरा-
 शरणक, सुचित्र, चित्रवेगिक, पराशर, तरुणक,
 मणिलम्ब और अरुणि । हे ब्रह्मन् ! यह
 सब बड़े बड़े सर्पोंके नाम कह चुका, अधिक
 होने के हेतु सब सर्पोंके नाम नहीं कह सका ;
 इनके बेटे और इनके पोते जो जलती हुई आग
 में गिरे थे, उनकी संख्या नहीं लगती । इनके
 सिवाय तीन शिष्ययुक्त सात शिष्ययुक्त, दश शिष्य
 युक्त प्रलय कालिक अग्नि ऐसा विष धरनेवाले
 भयानक, बड़े भारी भारी अति तेज पहाड़की
 छोटी ऐसे ऊँचे योजन भर फैले हुए, दो योजन
 ऊँचे हुए, कामरूपी कामबलसे जगते हुए,
 प्रस्निवत् विषधारी भांति भातिके सैकड़ों,
 सहस्रों सर्प ब्रह्मदण्डके समान माताकी वातसे
 रोसे जाकर उस महायज्ञमें जल गये थे ।

आदिपर्वमें सतातनवां अध्याय समाप्त ।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि सुनिये, परीक्षित-
 जनमेजयके उस प्रकार वर देनेके प्रस्तुत
 नाम हिने पर और एक आश्चर्य लीला हुई थी ।
 नागनाथ तक्षक इन्द्रजीके हाथसे फिसलकर
 आकाशहीमें रहने लगा । तब राजा जनमेजय
 सोचने लगे, कि भयसे विकल होने पर भी
 तक्षक विधिपूर्वक आज्ञा दी हुई आगमें क्यों
 नहीं गिरा । शौनकजीने पूछा, कि हे सूत ।
 उस उक्त समय मनीषासम्पन्न ब्राह्मणोंका सन्त-
 तिभायुक्त नहीं हुआ था, कि तक्षक आगमें
 नहीं गिरा ? श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि नाग-

राज तक्षक चेतना खींकरके जब इन्द्रजीके
 हाथसे फिसलकर गिर रहा था, तब मुनि
 आस्तीकने “रहो, रहो, रहो,” यह बात तीन-
 वार कही थी, जैसे कोई पुरुष आकाश और
 धरतीके बीचमें ही रहे, वैसेही तक्षक दुःखी
 चित्तसे आकाशहीमें रहने लगा । अनन्तर
 सदस्योंके अति अनुरोधसे राजाने कहा, कि
 अच्छा, आस्तीक जो कहते हैं, वही होवे ;
 सर्पयज्ञ बन्द होवे, सर्प सोचसे बचें । अनन्तर
 चारों ओर आनन्दध्वनि उड़ने लगी ; मुनि
 आस्तीककी वर देनेसे पाण्डवनन्दन राजा जनमे-
 जयका यज्ञ बन्द हुआ । आगे राजा परीक्षित-
 पुत्रने प्रसन्न होकर ऋत्विक्, सदस्य और दूसरे
 लोगों को, जो उस यज्ञमें आवेथे, सैकड़ों
 सहस्रों मुद्रा दान दिये । जिसने पाँहलेहा
 कहा था, कि एक ब्राह्मणसे यज्ञ बन्द होगा,
 उस (राज) स्थपतिके बेटे लोहिताक्षकी भी
 बहुत धन दिया । उस अपरिमित पराक्रमी
 राजाने प्रसन्न होकर उस लोहिताक्षकी भोजन
 वस्त्रादि देकर अन्तमें विधिके अनुसार यज्ञान्त
 स्नान किया । आगे सन्तुष्ट होकरके उस कृत्य
 किये हुए और प्रसन्नचित्त पण्डित आस्तीककी
 यथोचित पूजाकर घरमें जानेकी आज्ञा दी और
 कह दिया, कि आप फिर आना, मैं जब अश्व-
 मेध नामक महायज्ञ करूँगा, तब आपकी
 सदस्य होना पड़ेगा ।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि आस्तीक इस प्रकार
 अलौकिक कार्य साधकर अति प्रीतिचिन्तसे
 राजाको प्रसन्न करके तथास्तु कहकर चले
 गये । आगे जब उन्होंने आनन्दित हृदयसे
 माता और मामाके पास चलकर प्रणामपूर्वक
 सब वृत्तान्त कह सुनाये, तब वहाँ जो सर्प उप-
 स्थित थे वे भयरहित हुए और मुनि आस्तीक
 पर प्रसन्न होकर कहा, कि तुम मनमाना वर
 माग्यो, हमको बचानेके हेतु हम सब तुम पर
 बड़े सन्तुष्ट हुए हैं, अब तुम्हारा कौनसा प्रिय

कार्य करें? सर्पगण बार बार कहने लगे, कि बेटा । तुम्हारा कौनसा वाञ्छित कार्य पूरा कर दें? आस्तीकजी बोले, कि इस भूमण्डलमें जो सब ब्राह्मण वा दूसरे मनुष्य प्रसन्न चित्त होकर प्रातःकाल वा सन्ध्याके समय मेरा यह धर्म-आख्यान पढ़ेंगे, उनको तुमसे कोई भय नहीं रहेगा । सर्पोंने प्रसन्न मनसे कहा, कि हे भाज्ज । तुम जो वर मांगते हो, वह हम सिर नायकर और आनन्दचित्त होकर देंगे । “जो दिन को वा रात्रिमें अक्षित, आर्त्तिमान और सुनीय को स्मरण करेंगे, उनको सर्पोंसे भय नहीं रहेगा, जिस यशयुक्त आस्तीकने जरत्कारुके वीर्य और जरत्कारुके गर्भसे जन्म लिया था, जिन्होंने सर्प-यज्ञोंमें तुम्हारी रक्षा की थी, हे सहाभाग सर्पों । हम उनको स्मरण करते हैं, अब हमारी तुम हिंसा नहीं कर सकते हो, हे अति विषयुक्त सर्प । भागो तुम्हारा मङ्गल होवे, हे सर्प ! चले जाओ, राजा जनमेजयका यज्ञ अन्त होने पर मुनि आस्तीकने जो बात कही थी, वह स्मरण करो; जो सर्प आस्तीक का वाक्य सुनकर चला नहीं जाता है, शिशुवृक्षके फलके सदृश उसका सिर सैकड़ों टुकड़ोंमें फट जाता है ।

बड़े बड़े सर्पोंके मिलकर यह वर देने पर महात्मा द्विजवर आस्तीकने परलोक सिधारनेकी कल्पना की । धर्मात्मा द्विजोत्तम आस्तीक इस प्रकार सर्पोंको सर्पयज्ञसे रक्षा कर पुत्र पौत्रादि छोड़कर उचित समयमें परलोकको सिधारे । यह आस्तीकीपाख्यान आपके समीप यथावत् कीर्तन किया; इसकी कीर्तन करनेसे सर्पका भय जाता रहता है । ब्रह्मान् । आपके पूर्व-पुरुष भार्गवोत्तम प्रमतिने निजपुत्र रुरुसे पूछे जाकर जिस प्रकार कहा था और मैंने भी जैसा सुनाया, कविवर आस्तीकके सुन्दर चरित्रकी वैसाही कह सुनाया । ब्रह्मान् । दुण्डुभका वाक्य सुनकर आप जो वृद्धधर्मायुक्त

और पुण्य बढ़ानेवाला यह आस्तीकीपाख्यान सुनकर इसक्षणा आपका महत् कौतूहल दूर होवे ।

आदिपर्वमें अठावनवां अध्याय और आस्तीकीपाख्यान समाप्त ।

श्रीशौनकजी बोले, कि बेटा । तुमने मेरे पास भृगुवंशी आदि जो सब महत् आख्या कीर्तन किये हैं, उनसे मैं बड़ा प्रसन्न हूँ । इन्द्रतनन्दन । तुमसे फिर कहता हूँ, कि व्यासजीके विषयमें जो सब कथा हैं, उनको यथावत् कीर्तन करो । उस बड़े भारी यज्ञमें महात्मा सदस्योंके अवसर के समय जिन जिन विषयोंमें जो आश्चर्य कथायें हुई थीं, वह सब तुम्हारे सुहृदोंसे सुनना चाहता हूँ । हे सौते ! तुम सब हमसे कहो, उग्रयवाजी बोले, कि सर्व यज्ञके अवसरके समय ब्राह्मणोंने वेदायुक्त अनेक कथा कही थीं, उनमें व्यासजीने महाभारत नामक विचित्र आख्यानकी कीर्तन किया था । शौनकजी बोले, कि कृष्णार्जुनजनमेजयसे पूछे जाकर अवसरके अनुसार पाण्डवोंका यज्ञ बढ़ानेवाला महाभारत नामक आख्यानकी विधिपूर्वक सुनाया था, वह पण्डित कथा विधिके अनुसार सुनना चाहता हूँ । साधव्योंमें श्रेष्ठ सूतपत्र । महानुभाव महर्षि हृदयसमुद्रमें निकले हुए, उस कथाक्षपी अतका कीर्तन करो, अभीतक मेरी सुनने इच्छा निवृत्त न होनेके कारण तप्त नहीं हूँ । श्रीउग्रयवाजी बोले, कि आपके निकट कृष्णार्जुनके कहे हुए महाभारत नामक अति श्रेष्ठ महाख्यानकी आदि से आरम्भ कहूंगा । हे द्विज । मैं नाना रूपसे कहता हूँ । सुनिये, इसकी कहनेमें मुझे इतना हर्ष आ रहा ।

आदिपर्वमें उनसठवां अध्याय समाप्त ।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि पण्डित ऋषि कृष्ण-
हैपायनजी जनमेजयके सर्पयज्ञमें दीक्षित होना
सुनकर वहां पहुंचे । जिन पाण्डव पितामहने
शक्तिपुत्र पराशरके वीर्य से सत्यवतोकी कन्या-
दशाहोमें उसके गर्भमें यमुनाद्वीप पर जन्म
लिया था; जिन अतियशयुक्त महर्षिने जन्म
लियेही उसीक्षण निज इच्छासे देहकी बढाकर
वेद, वेदाङ्ग इतिहास आदि सम्पूर्ण शास्त्र पढ़े
थे, तप, वेदपाठ, व्रत उपवास, सन्तानोत्पादन
आ यज्ञसे कोई भी जिनसे बढ चढकर नहीं
हो सका है, जिन परात्पर परमेश्वरके तत्व
जाननेवाले, सत्यव्रतधारी, अतीतदर्शी, शुद्ध-
चारी, वेदज्ञ, ब्रह्मर्षिने एक वेदकी चार भागोंमें
बांटा था; जिन पुण्यकीर्तियुक्त अति यशवान्
महर्षिने शान्तनुवंशकी रक्षाके निमित्त पाण्डु,
धृतराष्ट्र और विदुरकी जन्म दियाथा; उन्ही
महात्माने वेद वेदाङ्ग में पण्डित शिष्योंके साथ
राजर्षि जनमेजयकी यज्ञ-सभामें प्रवेश किया ।
वहां देखा, कि जिस प्रकार देवोंसे घरे जाकर
इन्द्रजी बैठते हैं, वैसाही राजा जनमेजय अगणित
सदस्यों, मूर्खाभिषिक्त बहू-दिशाधिपों और
ब्रह्मवत कर्मदक्ष ऋत्विकोंसे घरे जाकर यज्ञ-
सभामें बैठे हैं । भरतवंशके आभूषणरूपी
राजर्षि जनमेजय उन ऋषिका स्वागत देख-
कर प्रसन्नचित्तसे साथियोंके साथ उठ खड़े
हुए । देवराज जिसप्रकार वहस्यतिजीकी
सेवाप्राप्तन देते हैं, वैसाही प्रभु जनमेजयने सदस्योंसे
सहमत होकर स्वागत महर्षिकी सुवर्ण आसन
पर दिया और वह उसपर बैठे और देवर्षियोंसे
कहूँ जाते हुए उन पितामह कृष्णहैपायनकी
महाभावास्त्वोचित कर्मसे पूजा कर उनकी योग्य पाद,
आदि शिष्य, आचमनीय और गौ विधिपूर्वक निवे-
दना दिन किया । भगवान् व्यासजीने प्रीतिचिन्तसे
पाण्डव जनमेजयसे वह सब पूजा लेकर विना
कारण जीवकी हिंसा करना उचित नहीं है,
आदिपर्वके गोवध नहीं करने दिया ।

जनमेजयने प्रेम दिखाकर उस प्रकार
प्रपितामहकी पूजकर निकट बैठकर प्रसन्न-
चित्तसे कुशल पूछा । भगवान् व्यासजीने भी
उनसे अपना कुशल कहा; आगे सदस्यलोगों-
के उनको स्वागत करने पर उन्होंने भी उनकी
यथोचित अभ्यर्थना की । अनन्तर जनमेजयने
सदस्योंसे हाथ जोड़कर हिजथेष्ठ प्रपितामहसे
पूछा, कि हे हिज । आपने कुरुपाण्डवोंके
अनन्त चरितकी प्रगट किया है; अतएव कृपा-
कर उसे कहिये मुझे सुननेकी इच्छा हुई है ।
मेरे प्रपितामह लोग सभी क्रोधद्वेषसे वर्जित थे,
तिस परभी क्यों वे दैववश नैसी बड़ी शत्रुतामें
गिरे? फिर किस हेतु वैसी अगणित जीव-
नाशी लड़ाई हुई? हे द्विजोत्तम ! यह सब
आदिसे अन्ततक भली भंति सुनाइये ।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि तब कृष्णहैपायन-
जोने उनकी यह बात सुनकर निकट बैठे हुए
शिष्य नैशम्पायनसे कहा, कि पहिले जिस
प्रकार कुरु पाण्डवोंमें घट भगड़ा हुआ था,
वह तुमने सुझसे जैसा सुना है, इस नरेशके
समीप ठीक वैसाही कह सुनाओ । विप्रर्षि
नैशम्पायनजो गुरुकी आज्ञा पाकर महाराज
जनमेजय, सदस्यों और सब राजाओंके सामने
कुरु-पाण्डवोंके भगड़े और सर्वनाश आदि
विषय सम्बन्धी पौराणिक कथाओंकी सुनाने
लगे ।

आदिपर्वमें साठवां अध्याय समाप्त ।

श्रीनैशम्पायनजी बोले, कि पहिले गुरुके
पदोंपर भक्तिसहित एकचित्तसे साष्टाङ्ग प्रणाम
कर, विद्वान् जनों और सम्पूर्ण ब्राह्मणोंकी
पूजकरके सर्वलोकोंसे प्रशंसित धीमान् महर्षि
महात्मा व्यासजीका सम्पूर्ण मत कहता हूँ ।
महाराज । आप इस भारतीय उपाख्यान
सुननेके योग्य एतद्वत् हैं; गुरुजीकी आज्ञा
चित्तकी उत्साहित कर रही है ।

श्रेष्ठ महाराज । जिस प्रकार कुसु पाण्डवोंका घरू भगड़ा था, राज्यके निमित्त जिस प्रकार जूएका खेल, पाण्डवोंका वनवास और सर्वनाशी कठोर लड़ाई हुई थी, यह सब आपसे कहता हूँ, सुनिये ।

युधिष्ठिर आदि वह सब वीरवर्ग पिताकी मृत्युके पश्चात् निज घरमें लौटकर थोड़े समयमें धनुष-विद्या में दक्ष और वेदज्ञ होगये । कौरवलोग उनकी छप, वल, वीर्य, उत्साह श्री और यशयुक्त और पुरवासियोंके प्रिय देखकर खेदयुक्त हुए । अनन्तर क्रूरचित्त दुर्योधन, कर्ण और शकुनि उनकी मताना और घरसे खदेड़ना आदि भांति भांतिके बुरे व्यवहार करने लगे । एकदिन पापात्मा दुर्योधनने भीमको अन्नके साथ विष पीनेकी दियाथा, हकीदर भी उसे पी गये थे । एक दिन भीम प्रमाणाकीटि अर्थात् गंगाजीके तट पर एक खेलके घरमें सोये थे, उस समय वह पापात्मा उनकी बांधेकर गंगाजीके सोतेमें छोड़कर अपने घरमें लौट आया । कुन्तीपुत्र महाभुज भीमसेन जब जगे, तब बलसे वस्त्रनकी तोड़कर पीड़ा-दूर करके उठ आये । किसी दूसरे समय वह सोते थे, धृतराष्ट्र-पुत्रने कालसर्पसे उनके सर्व शरीरकी कटाया था, शत्रुनाशी भीमसेनका तिस परभी प्राण न गया । जब कौरवलोग आसा देकर, पाण्डवोंके प्राण लेने का चेष्टा किया करते थे, तब महामति विदुर उनके उपायकी नष्ट करने और पाण्डवोंको रक्षाके निमित्त सयत्न रहते थे, जिसप्रकार देव-लोकके देवराज सर्वलोकोंके सुखदायी होते हैं, उनके समान विदुर सदा पाण्डवोंके शुभा-कांक्षी थे । जब कौरवोंने देखा, कि न गुप्त न प्रगट किसी उपायसे पाण्डवोंके प्राण नष्ट न होकरहे देववश उनकी रक्षा होने लगी, तब दुर्योधनने कर्ण और दुःशासन आदि मन्त्रियोंसे युक्तिकर धृतराष्ट्रकी आज्ञा लेकरके जतु-

गृह वनवाया । पुत्रके प्रिय चाहनेवाले राज धृतराष्ट्रने राज्य भोगनेकी एच्छामे पाण्डवोंके घरमें खदेड़ा । पाण्डवलोग सब एकत्र होकर हस्तिनानगर में पधारे ; जानेके कालमें विदुर उन महानुभावोंकी अच्छी युक्ति दी थी, उन्हीं के रात्रिके समय जतुगृह से बचकर वनमें भाग सके ।

शत्रुनाशी महात्मा पाण्डवलोग माताके साथ वारणावत नगरमें जाकर बसने लगे । उन्होंने पहिले अति सावधान होकर पुत्र-चनसे अपनी रक्षाकर धृतराष्ट्रकी आज्ञा-सार वर्षभर जतुगृहमें वास किया था, और विदुरके परामर्शसे बिल खोदवाकर जतुगृह आग लगाकरके पुरोचनकी जलाकर भयभीत चित्तसे माताके साथ भागे । अनन्तर वह हिडिम्बा नाम बड़े भारी एक राक्षसकी देह कर मार डाला ; आगे आत्म-प्रकाश और धृतराष्ट्रपुत्रोंके भयसे भीत होकर एकत्र नामक नगरीमें गये । पथमें हिडिम्बा नामक राक्षसीके साथ भीमसेनके मिलनसे धीरे नामक उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ था । यहाँ से श्रेष्ठ पाण्डवलोग उस नगरीमें पहुँचकर पढ़नेवाले व्रतशील और जितेन्द्रिय ब्रह्मचारियोंका वेष लेकर माताके साथ एक ब्राह्मण घरमें कुछकाल वसे । महाभुज हकीदर भीमसेनने उस नगरीमें महाबली, क्षुधित नामक एक राक्षसकी देखा ; पुरुषश्रेष्ठ महावीर भीमसेनने निज भुजबलसे एकबार उसका प्राण नष्ट कर नगरवालोंके भयकी शान्त किया ।

अनन्तर पाण्डवोंने सुना, कि पाञ्चाल नगरमें पाञ्चाल-राजपुत्री स्वयम्बरकी अभिलाषिणी हुई है । यह सुनकरकेही उन्होंने वहाँ जाकर उसकी प्राप्ति किया । शत्रुनाशी पाण्डवलोग द्रौपदीकी प्राप्तिकर, वहाँ वर्षभर बसने पीछे जाने जाकर चास्तनापुरकी लौट गये ।

आगे धृतराष्ट्र और भीष्मजी उनसे बोले, के बेटा । इसलिये, कि तुममें भावविरोध न खड़ा हो, हमने सोचकर यह ठहराया है, कि तुम खाण्डवप्रस्थमें जाय बसो, अतएव तुम वेषको छोड़कर नाना देशयुक्त अच्छी चौड़ी सड़कोंसे शोभित खाण्डवप्रस्थमें बसनेको जाओ । पाण्डवलोग उनकी इस बातके अनुसार सब आत्मजनोंके साथ सम्पूर्ण धन ऐश्वर्य लेकर खाण्डवप्रस्थ नगरको पधारे । परम धार्मिक, सत्यव्रतशील, अप्रमत्त, उत्साहपूर्ण, क्षमाशील, शत्रुको दुखानेवाले पाण्डवलोग बहुत दिनोंतक वहाँ बसकर शस्त्रके प्रभावसे सम्पूर्ण नरेशोंको वशमें लाये । अति यशयुक्त भामसेनने पूर्व-दिशा, वीर अर्जुनने उत्तर दिशा, नकुलने पश्चिम दिशा और शत्रुनाशी सहदेवने दक्षिण दिशाको जय किया । इस प्रकार वे सबोंको वशमें लाकर सम्पूर्ण भूमण्डलमें एकही अधीश हुए । सूर्यके समान तेजस्वी, अटल, विक्रमोपाच पाण्डवों और आकाश मण्डलमें सुशोभित एक सूर्यसे मानो धरती है सूर्ययुक्त हुई । अनन्तर सत्यविक्रमी, तेजस्वी, गुणवान् स्थिर प्रणधारी प्यारे भाई, सत्यसाची अर्जुनको वनवास को भेजा । अर्जुन (सौर मासकी गणनाके अनुसार) ग्यारह वर्ष दश महीने वनमें वसे । उस समय एक दिन उन्होंने हारकासे श्रीकृष्णके निकट जाकर कृष्णकी छोटी बहिन प्रसन्ननयना मधुरभाषिणी सुभद्रा को प्राप्त किया । इन्द्राणी जिसप्रकार इन्द्रसे मिलकर प्रसन्न हुई थी, और श्रीलक्ष्मीजी जिसप्रकार विष्णुजीसे मिलकर सन्तुष्ट हुई थी, उस प्रकार सुभद्रा पाण्डुपुत्र अर्जुनसे संयुक्त होकर अति आनन्दित हुई, है नृपश्रेष्ठ । अर्जुनने श्रीकृष्णके साथ खाण्डव वनको जलाकर अग्निको सन्तुष्ट किया । दृढ़ निष्ठा पर भरोसा रखनेहारे श्रीकृष्ण को जिस प्रकार शत्रुओंके मारनेमें कठिनता नहीं जान पड़ती है, उस प्रकार केशव पर भरोसा रखने

हारे अर्जुन को कोई कार्य असाध्य जान नहीं पड़ता था । अनन्तर अग्निदेवने खाण्डवदहन होनेसे सन्तुष्ट होकर अर्जुनको सुन्दर गाण्डोव धनुष अक्षयवाणयुक्त तरकस और कपिध्वज-युक्त रथ दिया । अर्जुनने मय नामक असुरको खाण्डवके साथ जलजानेसे बचाया था, तिसहेतु मयासुरने उनकी सर्व यत्नों से सुहावना एक सुन्दर सभाग्रह बना दिया । दुष्टबुद्धि दुर्मति दुर्योधनने उस सभाको देखकर लोभ-वश होकरके शकुनिके द्वारा चौसर में युधिष्ठिर को ठगकरके बारह वर्ष वनमें और वर्षभर गुप्तभावसे बसाया । हे महाराज । तेरह वर्षके वनवासके पश्चात् चौदहवां वर्ष आ पंद्रहवें पर पाण्डवोंने अपनी सम्पत्ति मांगी, पर नहीं मिली, इसीसे लड़ाई खड़ी होगई । अनन्तर पाण्डवलोगोंने क्षत्रियोंको ध्वंस करनेके पश्चात् दुर्योधन को नाशकर उस राज्यको प्राप्त किया जिसके लिये अनेक लोग मारे गयेथे । हे जग-शील । क्रोध वेषादिवर्जित पाण्डवोंका इस प्रकार आत्म-विक्रिद राज्यनाश और जयलाभ हुआ था और यही उनके प्राचीन इतिहासका वृत्तान्त है ।

आदिपर्वमें इकसठवां अध्याय समाप्त ।

जनमेजय बोले, कि हे द्विजोत्तम । आपने कुरुवंशियोंके चरित्र-सम्बन्धी महाभारत नामक महान् आख्यानको संक्षेपमें कीर्तन किया । हे अनघ तपोधन । उस विचित्र उपाख्यानको फिर विस्तृतरूपसे सुननेकी मुझे बड़ी इच्छा होती है आप कृपा करके वर्णन करें ; अगले पुरुषोंके महत् चरित्रोंको सुनकर मेरी इच्छा पूरी नहीं हुई । पाण्डवोंने तो धर्मज्ञ होने परभी अवध्य स्वजन, कुटुम्बी आदियोंको वध किया था, पर तिसपर भी उन्हीं की प्रशंसा करते हैं । यद्य तो कुछ सामान्य और स्वल्प कारण का विषय नहीं है । निहीनो नरये पाण्डवोंने बदला लेनेके योग्य होने

दुरात्माओंसे नाना कष्ट सहन किये थे ? हे हिजवर ! दश सहस्र हस्तीका बल रखनेवाले वृकोदर इतना लेश सहकरके भी क्यों क्रोधित नहीं हुए ? द्रुपदराजपुत्री सती द्रौपदीने दुरात्मा धृतराष्ट्र पुत्रोंसे वैसा लेश पाकरके शक्ति रहनेपर भी क्यों क्रोध की दृष्टिसे उनकी भस्म नहीं किया दुरात्माओंने भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेवको वैसा दुःख दिया था, तथापि वे चार नरश्रेष्ठ भाई क्यों चौसर प्यारे युधिष्ठिरके अनुगामी हुए ? धार्मिकश्रेष्ठ, धर्मज्ञ, धर्मपुत्र, युधिष्ठिरने केश सहनेके अयोग्य हो करके भी क्यों वैसा असह्य कष्ट भोग किया था, और पाण्डुपुत्र धनञ्जयने अकेले केवल गोजुष्टाको सारथी बनाकर क्योंवार अस्त्र मार करके अगणित सेनादो यमराजके घरमें भेजा था ? हे तपोधन ! यह सब लीला जिस कारण और जिस प्रकारसे हुई थीं, और महारथी वीरोंने जब जो कुछ किया था वह सब मेरे पास कहिये ।

अतैश्ममायनजी बोले, कि महाराज ! कुछ बिलम्ब कीजिये, कृष्णहैपायनजीका कहना हुआ यह पवित्र आख्यान अति विस्तृत है, मैं धीरे धीरे कहता हूं, सर्वलोक पूजित, अमिततेजा, महात्मा, महर्षि वेदव्यासके सम्पूर्ण मतको कहंगा ; परम तेजस्वी सत्यवती-सुतने पवित्र लक्ष्मीकोमें इस आख्यानको प्रकाश किया है, जो पण्डित पुरुष इस महाभारतको सुनाते हैं और जो लोग सुनते हैं, वे ब्रह्मलोकमें जाकर देवता सदृश होते हैं । ऋषि का रचा हुआ यह पराण वेदके समान पवित्र सुन्दर और सब सुनने योग्य विषयोंमें श्रेष्ठ है ; इस पवित्र इतिहासमें अर्थ, काम और मोक्ष सम्बन्धी सम्पूर्ण विषयोंका भी उपदेश है । विद्वज्जन, बड़े, दाता, सत्यशील आस्तिकोंके सम्मुख सम्पूर्ण वेदोंके प्रतिनिधि इस आख्यानको पाठकर अर्थ लाभ करते हैं ; इसमें सन्देह नहीं है, कि इस

इतिहासके सुननेमें भूगण्ड्यादि सम्पूर्ण पाप दूर होते हैं । जिस प्रकार राजमें चन्द्रमण्डल सुक्त होता है, वैसेही अति-दुराचारी पुरुषोंमें इस इतिहासके सुननेमें सर्व पापोंसे सुक्त होता है । इस इतिहासका नाम जय है, जय चाहने वाले जनको इसे सुनना चाहिये । इसे सुननेमें राजा पृथ्वीको जय कर सकते हैं और शत्रुको हरा सकते हैं । यह श्रेष्ठ पुस्तक और महान् स्वस्वयनरूपी है । युवराजराजों के साथ बार बार इसे सुनें, तो उनके वीरत्व वा राज्याधिकारिणी कन्या होती है । अमी बुद्धियुक्त व्यासजीका रचा हुआ यह आख्यान पवित्र धर्मशास्त्रवत्, श्रेष्ठ अर्थशास्त्रके सदृश और मोक्षशास्त्ररूपी बना है । वर्तमान कोई कोई महाभारत कीर्तन कर रहे हैं, भविष्यतमेंभी बहूतरे सुनेंगे । पुत्रगण इसे सुनकर पिताको आज्ञा मानते और उनका श्रम करते हैं । जो इसे सुनते हैं, वह शारीरिक मानसिक और वाचनिक सम्पूर्ण पापोंसे उल्लेख्य सुक्त होते हैं । जो भरतकुलके इस महाजन्मवृत्तान्तको सुनकर गुणमें दोष नहीं लगाते उनको परलोक का भय तो दूर रहता, पीड़ा का भय भी जाता रहता है । महात्मा पाण्डवों और वृद्धधन, सम्पत्ति और तेजयुक्त सर्व विद्यापण्डितजन प्रसिद्ध चरित्रों की कीर्तिकी प्रकाश करनेके निमित्त पुण्य चाहनेवाले कृष्णहैपायन जीने इस धन, यश, आयु तथा स्वर्ग दिलाकर हारे पवित्र इतिहास को कीर्तन किया है । जो इस लोकमें पवित्र ब्राह्मणोंको यह महापुण्ययुक्त महाभारत सुनाते हैं, उनको सनातन धर्म प्राप्त होता है, जो नर शुचि होकर सदा कुशलोंके प्रसिद्ध वंशकी कीर्तन करता है, वह लोकसमाजमें पूजा जाता है और सदा उसका वंश बढ़ता है । जो ब्राह्मण वर्षाके चार महीने सदा व्रतशील होकर इस महाभारतकी पाठ करते हैं, वह सर्वपापोंसे सुक्त होते हैं ।

जन्होंने इसे पढ़ा है, वे वेदज्ञ कहे जाते हैं, इस महाभारतमें पापकी कूतसे बचे पवित्र देवता, राजर्षि, ब्रह्मर्षि, केशव, भगवान्, भूतनाथ और भवानीकी कथा है। इसमें छः माताओंके पुत्र कार्तिकेय की उत्पत्तिका वृत्तान्त और गौ ब्राह्मणादिका माहात्म्य कीर्तित है। सर्व-वेदवत् इस महाभारतकी धर्म सञ्ज्ञय करनेकी अभिलाषिओंकी सुनना चाहिये। जो विद्वज्जन पर्वानुसार इसे ब्राह्मणोंकी सुनाते हैं, वह निष्पाप हो करके देवलोककी जयकर शाश्वत ब्रह्मलोककी सिधारते हैं। जो आइके कालमें कमसे कम इसका एक पादभी ब्राह्मणोंकी सुनाते हैं, उनके उस आइमें पितरोंको अन्न दान होती है। दिनकी इन्द्रियोंसे वा मनसे ज्ञानपूर्वक जो पाप होता है, महाभारत सुननेसे वह उसीक्षण दूर होता है। भरतकुलका महत जन्मवृत्तान्त इसमें कीर्तित है, इस लिये इसका नाम महाभारत है। जो महाभारतके इस व्युत्पत्ति युक्त अर्थको जानते हैं, उनका सम्पूर्ण पाप नष्ट होता है, क्योंकि इसमें भरतकुलकी अति आश्चर्य्य इतिहास कथित हैं, इस हेतु इसकी कथा कहनेसे मनुष्यों का महापातक दूर होता है। पूर्णाभिलाषी, कार्यकुशल, सुनि कृष्णार्हपायनने नित्यके उद्योगसे और शुद्धाचारी होकर तीनवर्षतक तप और नियम आश्रय करके इसकी रचा है, अतएव ब्राह्मणोंकी नियमयुक्त होकर इसकी सुनना चाहिये। जो सब ब्राह्मण औकृष्णार्हपायन की कही हुई यह उत्तम पवित्र महाभारतीय कथा कहेंगे और जो लोग इसकी सुनेंगे, वे चाहे सुकर्म करें वा कुकर्म करें, पर कभी पापसे कुए नही जायेंगे। इस इतिहासकी सम्पूर्ण सुननेसे धार्मिक जन सिद्धि लाभ कर सकते हैं; इस अति पवित्र इतिहासको सुनकर लोग जैसा सन्तोषको प्राप्त होते हैं, स्वर्गलाभ करके भी वैसा सन्तुष्ट नहीं होते। एषः शील जन अज्ञापूर्वक इस इति-

हासकी सुनकर वा सुनाकर राजसूय और अश्वमेध यज्ञोंके फलकी प्राप्त करते हैं। जैसे भगवान् समुद्र और महागिरि सुमेरु सर्व रत्नोंकी खानि कहके प्रसिद्ध हैं, वैसेही यह महाभारतभी है। यह महाभारत वेदके समान पवित्र, सुन्दर सुननेयोग्य बातोंसे सुशोभित, सुखदायी, पापहारी और शीलतावृद्धिकारी है। हे राजन्। जो यांचककी यह भारत देते हैं, मानों वह समुद्रोंसे घिरी हुई सम्पूर्ण पृथ्वीको दे देते हैं। हे परीक्षित एव। पुण्य और जयके निमित्त मैं दिव्य आनन्ददायी यह सम्पूर्ण कथा कहता हूँ, सुनिये। भुनिवर कृष्णार्हपायनजीने तीन वर्षों तक सदा उद्योगी रहकर इस आश्चर्य्य आख्यान, महाभारतकी रचा है; हे भारतश्रेष्ठ। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-सम्बन्धी जो जो विषय इसमें हैं, वही सब अन्यत्र दोख पड़ते हैं, जो विषय इस भारत में नहीं हैं, वह और कहीं नहीं मिलेंगे।

आदिपर्वमें बासठवां अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि उपरिचर नामक धर्मशील एक पृथ्वीनाथ थे; (उनका और एक नाम वसु था) सृगया करनेका उनको बड़ा प्रेम था। उस पौरवनन्दन राजा वसुने दिवराजके उपदेशसे चेदि नामक सुहावने देशपर अधिकार किया था। एक समय अस्त्र शस्त्र छोड़कर उनके कठोर तपमें प्रवृत्त होने पर इन्द्रादि देवोंने सोचा, कि यह जैसी कठोर तपस्या कर रहे हैं, उससे इन्द्रका पद प्राप्त कर सकते हैं। ऐसी चिन्ता कर दिवगण उक्त राजाके निकट जा पड़ेंगे और समझा बुझाकर उनको तपस्यासे निवृत्त करने लगे। दिवगण बोले, कि हे महाराज ! ऐसा करो कि इस धरतीसे धर्म न घटे। तुम धर्मकी रक्षा करोगे, तो सम्पूर्ण भूमण्डलमें धर्म रक्षित होगा। इन्द्रजी बोले, कि तुम सदा उत्साहो

और समाहित होकर ऐसा करे, कि इस धर-
तोमें धर्म रक्षित हो ; ऐसा करनेमें तुम अच्छा
धर्मार्जन करके शाश्वत पवित्र स्वर्गलोकमें
गमन करोगे । तुम मर्त्यलोकमें वान करते
हो ; मैं स्वर्गमें रहता हूँ, तथापि तुम मेरे प्रिय
सखा हूँ । हे नरनाथ ! इस धरतीमें जो
देश सुन्दर, पशुओंके मङ्गलकारी, पवित्र, गङ्गा
धनधान्यपूर्ण; स्वर्गके समान रमणीय, सौम्य
और अच्छी भूमिके गुणयुक्त हो, तुम वहां
जाय बसो । हे चेदिप ! यह चेदिदेश बड़ा
ऐश्वर्ययुक्त और अगणित धनरत्नोंसे भरा हुआ
है, यहां वसुधा वसुओंसे भरी हुई है ; अतएव
इस स्थानहीमें बसो । इस देशके निवासी धर्म
शील, सदा सन्तुष्ट और साधु हैं ; हंसीमें भी
कोई झूठ नहीं बोलता ; पुत्रगण पितासे अलग
नहीं होते और सदा गुरुकी सेवामें लगे रहते
हैं, इस स्थानमें कोई दुबले पतले बैलको बोझा
ढोने वा हर जोतनेमें नहीं लगाता है । हे
माननीय ! इस चेदिदेशमें सदा सब जन स्वध-
र्ममें सन्नद्ध रहते हैं । तीनों लोकोंमें जो कुछ
होता है उसमें कुछभी तुम्हारे जाननेसे छिप
नहीं है ; मैं तुमको देवोंके भोग-योग्य, आकाश
गामो सुन्दर स्फटिकका बना महान् विमान
देता हूँ, यह सदा तुम्हारे पास उपस्थित
रहेगा । इस मर्त्यलोकमें तुम्हीं अकेले यान-
पर चढ़कर साक्षात् शरीर-धारी देवतोंकी
भांति ऊपर विचर सकोगे । तुमको अश्वान
पङ्कजा वैजयन्ती-माला देता हूँ ; यह रण-
भूमिमें तुम्हारे रक्षा करेगी ; इसके पहिरनेसे
तुम्हारे शरीरमें अस्त्र नहीं घुसेंगे । हे नरेश !
यह माला इन्द्रमाला करके प्रसिद्ध होगी और
यह तुम्हारे श्रेष्ठ प्रतिमारहित महान् चिह्न
होगी ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर इन्द्रने
प्रेमचिह्नकी बात उठाकर उनकी शिष्ट पालन-
वाली एक वांस की लाठी दी । आगे वर्ष भर

व्यतीत ज्ञान पर पृथ्वीनाथ वसुने इन्द्रकी पूजा
निमित्त उस वांस की लाठीकी धरतीमें
दिया । हे राजन् ! उपरिचर राजान् !
वांसकी लाठीको गाड़ा था, आजतक राजान् !
वैसाही किया करते हैं और उसके दूसरे
सुगन्धी, माला, वस्त्र, आभूषण आदि से
वांसकी लाठीको सुशोभितकर उठा लेते
तथा विधिपूर्वक उसकी मालासे लपेट राते
हैं । उसकालमें हंसरूपी भगवान् महादेवकी
पूजा होती है ; क्योंकि वसुकी प्रीति
निमित्त महात्मा महेश्वर स्वयं होमका स्वरूप
धरकर पूजे गये थे । वैभवयुक्त देवराज म-
न्द्रने राजप्रेष्ठ वसुसे हुई उस पूजाकी देख-
अति प्रसन्न होकर कहा, कि जो सब नर न-
रेश चेदिराजके समान प्रेमसे और उत्सव
भरी पूजा करेंगे, उनसे राज्यको श्री और
होगे और उनके अधिकारके देश विस्तृत
हर्षपूर्ण होंगे । हे नरनाथ ! महाश-
न्द्रने इस प्रकारसे प्रेमसहित महाराज वसु
सत्कार किया । जो सब जन भूमि-रक्षा
देकरके सदा महेन्द्रका उत्सव करेंगे, वे रा-
वसुके समान पूजे जायेंगे ! वर लाभकर चे-
नाथ वसु महायज्ञ और इन्द्रोत्सव करने
कारण इन्द्रसे सत्कृत होकर चेदिदेशमें
पूर्वक धर्मके अनुसार इस धरतीकी पालने लगे
और इन्द्रजी पर प्रेम दिखाकर इन्द्रका उत्सव
करने लगे ।

बड़े तेजस्वी वसुके महावीर्यवान् पाँच
पुत्र जन्मे थे । उक्त सम्नाटने पुत्रोंकी नाम
रोज्योमें अभिषिक्त किया, उनमेंसे प्रति
प्रधान रथी बृहद्रथ नामक एक पुत्र मह-
देशके राजा हुए । उनके दूसरे एक पुत्रका
नाम प्रत्यग्रह, अन्य एकका कुशास्व वा मणि-
वाहन, अन्य एकका सावेह एवम् और एक
राजपुत्रका यदु नाम था, ये कभी हारे नहीं
हे महाराज ! उन सार्वर्षिकी यह पाँच पुत्र

; उन्होंने अपने नामसे देश और राजधानी पायी थीं। वसुके उन पांच महीपालोंसे अति विस्तृत स्थायी अलग अलग पांचोंकी उत्पत्ति हुई। महात्मा राजा वसु । इन्द्रके दिये स्फटिकके बने यानमें बैठकर काशको उड़ते थे, तब गन्धर्व और अप्सरा-ए आकर उनकी स्तुति पढ़ते थे। इस कारण ऊपर विचरनेके कारण वह उपरिचरमसे प्रसिद्ध हुए थे। उनकी राजधानीके गोप शुक्तिमती नाम्नी एक नदी बहती थी। लाहल नामक एक सजाव पर्वतने कामना छोड़कर उसको रोका। राजा वसुने पर्वतको लात मारी, उनके पांवकी चोटसे विल बना, उसीसे शुक्तिमती नदी वह कली। कोलाहल पर्वतके मिलनसे उसने एक पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई, ने उपरिचरसे सुक्त होनेके कारण सन्तुष्ट कर राजाकी वह पुत्र और कन्या दे दी। गर्भिष्ठा अरिन्दम वसुदाता वसुने उस नदीकी सेनापति और गिरिका नाम्नी उस याकी रानी बनाया। एक समय वसुकी तो गिरिकाने ऋतुकाल आनेसे गर्भधारणके व समयमें ऋतुस्नान करके पतिसे अभिलाषा की। उस दिन राजा अष्ट वसुके पितरोंने त होकर उनको आज्ञा दी, कि आज तुम याकी जाओ। वह पृथ्वीनाथ पितरोंकी आज्ञा न करके मृगयाकी पधारे, पर मयुक्त चित्तसे अनुपम रूप यौवनवती शत लक्ष्मीके समान उस गिरिकाहीकी रा करने लगे; वसन्त तो विराजमानही फिर तिसपर वह वन कुवेरजीकी फुल-पोसा था; उसमें अशोक, चम्पा, आम, बी. नागकेशर, कर्णिकार, वकुल दिवापाटल ल. नारिकेल, चन्दन, अर्जुनादि सुन्दर और फलयुक्त भांति भांतिके वृक्ष चारों मुशोभित थे, और कीयलकुलकी मीठी

आलापचारी और मतवाली भौरोंकी भनभना-हट चारों दिशामें गूंज रही थी। राजा काम-वश ही करके चारों ओर देखते रहे, पर गिरिकाकी न देखकर कामाग्निसे बड़बड़ जलने लगे। आगे उन्होंने इच्छानुसार घूमते हुए नये पल्लव और फूलोंके गुच्छेसे ढंपा हुआ, एक सुन्दर अशोक वृक्ष देखा; उस वृक्षपर फूलके समूह इतने सुशोभित थे, कि उसकी एक भी शाखा देख नहीं पड़ती थी; उसके मनोहर मधु और फूलोंकी गन्ध चारों ओर फैल रही थी। नरनाथ उस अशोककी छांहमें सुखसे बैठकर अमल वायुसे हर्षयुक्त हुए। इस बीचमें उस स्थानमें उनका वीर्य गिरा; राजा उस गिरे हुए, वीर्यको वृक्षके पत्तेमें धरकर सोचने लगे, कि क्योंकर हमारा यह गिरा हुआ वीर्य और स्त्रीकी ऋतु व्यर्थ न हो? आगे देरतक सोचकर बार बार विचारनेके पश्चात् निश्चय किया, कि मेरा यह वीर्य अव्यर्थ है और रानीके पास भेजनेका भी समय हुआ है; सो किसी प्रकारसे इसे भेजनाही चाहिये। अनन्तर ऐसा निश्चय करके स्वच्छ धर्ममार्थ-तत्वोंके जाननेवाले राजा उपरिचरने मन्त्रोंसे उस वीर्यको सुधारकर पासमें ठहरे हुए, शीघ्र चलनेवाले एक वाजपत्नीसे कहा, कि “हे सौम्य। तुम मेरे उपकारके निमित्त मेरे इस वीर्यको मेरे अन्तःपुरमें ले जाओ, आज गिरिकाने ऋतुस्नान किया है, इसे उसको दो।” तेजोवान् वाजपत्नी उस वीर्यको लेकर उसीक्षण आकाशको उड़कर अति वेगसे चला। जानेके कालमें उसे दूसरे एक वाजने देखा और उसकी चोंचमें मांस जानकर उसके पीछे उड़ने लगा। अनन्तर उस आकाशहीमें उनमें चोंचोंकी लड़ाई मची। लड़नेमें वाजके मुखसे वीर्य यमुनाजीके जलमें गिर गया। अट्रिका नामसे प्रसिद्ध एक अप्सरा ब्रह्मशापसे मरुली बनकरके यमुनाजीके जलमें रहती थी; क्योंकि राजा

वसुका वीर्य बाजके मुखसे वहां गिरा, त्यांही उस मत्स्यरूपी अद्रिका ने वेगसे आपटकर उसकी ले लिया ।

हे भारतश्रेष्ठ ! इसके पश्चात् दशवें महीनेमें एक दिन मकुहोंने उस मछलीको फांसा ; अंगे उसके पेटसे एक पुत्र और एक कन्या पाकर अति आश्चर्ययुक्त होकरके राजासे जाकर कहा, कि महाराज ! मछलीके शरीरमें यह दो मनुष्य उपजे हैं । तब राजा उपरिचरने उन दोनोंमें से बालकको ले लिया । वह मछलीसे जन्मा हुआ लड़का पीछे मत्स्य नामक सत्यशील धार्मिक राजा हुआ था । वह अप्सरा क्षण भरमें शापसे मुक्त हुई ; क्योंकि जब अद्रिका शापसे भ्रष्ट होकर मत्स्य योनिमें आ गिरी थी, तब भगवान् ने कृपापूर्वक कहा था, कि तू दो मनुष्य प्रसव करके शापसे मुक्त होगी । अनन्तर अद्रिका दो मनुष्यपुत्र प्रसव करके मकुहोंसे मारी गयी और मछलीका स्वरूप छोड़के दिव्यरूप धर सिद्ध और चारणोंसे सेवित आकाशमार्गको चली गयी । राजाने मत्स्यकी गन्धयुक्त मत्स्यके गर्भसे उपजी हुई कन्याको मकुहेको दे दिया और कहा, कि यह कन्या तुम्हारी बेटी होगी । रूप-यौवन-वती सर्वगुणवाली मृदु-हासिनी उस सत्यवती नाम्नी कन्याके मकुहेके घरमें कुछदिन पाले जानेके हेतु उसका नाम मत्स्यगन्धा हुआ था ।

एक समय मत्स्यगन्धा पिताकी आज्ञासे नाव चलाती थी, कि ऐसे समय तीर्थ-यात्रामें निकले हुए धीमान् ऋषि पराशरने उसको देखा और अति रूपवती, सिद्धोंकीभी प्रार्थनाके योग्य रम्योत्, मृदुहासिनी, मनोरमा उस वसुकी बेटीको देखतेही मुनिवर एकवारही कामवश हुए और बोले, री कल्याणि ! मेरा-मनोरथ पूरा कर । कन्या बोली, कि भगवन् ! नदीके दोनों ओर ऋषिलोग हैं, वे हमको देखते हैं, अतएव इसकालमें क्योंकर हमारा सङ्गम हो

सकता है ? मत्स्य-गन्धाकी ऐसी आपत्ति कर प्रभु भगवान् पराशरने कोहरा तब सम्पूर्ण देश अन्धकारसे घिर गया । न्तर मङ्गलिके रचे हुए कोहरेकी देखकर, खिनी कन्या आश्चर्य और लज्जायुक्त हो आगे सत्यवती बोली, “भगवन् ! मैं निवशमें रहनेवाली कन्या हूं ; मेरा विवाह हुआ है । हे अनघ ! आपने मिलनेसे कन्याभावमें दीप पड़नेगा । हे विजेत कन्याभावमें दीप पड़नेसे मैं क्योंकर लौट जाऊंगी ? हे धीमान् ऋषि ! ऐसा कैसे मैं घरमें नहीं रह सकूंगी । हे भगवान् ! इसका विचारकर जो कुछ करना हो, कीर्ति कन्याके ऐसा कहने पर ऋषि प्रसन्न हो बोले, कि मेरेसे मिलनेसे तेरे कन्याभावमें दीप नहीं पड़नेगा । री भीरु ! तेरी जो अभिलाषा हो, वर मांग । री सुन्दरी, हासिनि ! मेरी प्रसन्नता कभी निष्फल हुई । पराशरजीके यह बात कहने पर मत्स्यगन्धाने अपने शरीरकी अच्छी गन्ध प्रार्थना करी । मुनिने “तथास्तु” कहकर प्रार्थित वरको दिया । अनन्तर सत्यवती के प्रभावसे ऋतुमती और प्रार्थित वरके प्रसन्न होकर अद्भुत कार्यकुशल ऋषि पराशर सङ्गम किया । तबसे मत्स्यगन्धाका “गन्धा” यह नाम धरतीमें प्रसिद्ध हुआ । योजन भर दूरसेभी उसके शरीरकी सुंघते थे, इसलिये उसका “योजनगन्धा” नामभी प्रसिद्ध हुआ था । सत्यवतीने इस प्रकारसे अच्छा वर पाकर आनन्दित चित्तसे पराशरका मनोरथ पूराकरके उसी दिन गर्भ कर प्रसव किया । इससे वीर्यवान् यमुनादीपमें जन्म लिया । वह जन्म लेतेही आज्ञासे तपस्या करनेकी दत्तचित्त हुए उसको यह कहकर चले गये, कि जब ही तब मुझे स्मरण करनेसे मैं आ पड़ूंगा

श्रीहैपायनजीने इस प्रकार पराशरके वीर्य और सत्यवतीके गर्भसे जन्म लिया था । उस लकके हीपमें प्रसव किये जानेपर उसका नाम हैपायन हुआ । विद्वान् हैपायनने देखा, हर युगमें धर्मका एक एक पाद घट रहा और युगानुसार मनुष्योंकी शक्ति और आयु घटती जाती है । तब उन्होंने वेदकी शक्तके निमित्त ब्राह्मणोंपर दया दिखाकर उसका व्यास याने विभाग किया, इस हेतु उनका नाम वेदव्यास हुआ । श्रेष्ठ वरदेनेहारे प्रभु भीष्मजीने शिष्य सुमन्तुको, जैमिनीको, पैलको और वैशम्पायनको तथा स्वपुत्र शुकदेवकी महारतके साथ चारों वेद पढ़ाये । उन सुमन्तुदि शिष्योंमें से हरैकने महाभारतकी अलग अलग एक एक संहिता प्रकाश की ।

महावीर्य, महायश, अपरिमित, प्रकाश-शान्तनुपुत्र भीष्मजीने वसुओंके अंशसे गङ्गाके गर्भसे जन्म लिया था । प्रसिद्ध महायश वेदाङ्ग पराण ऋषि विप्र अणीमाण्डव्य चोरी ने परभी भूठभूठ चोरीके कलङ्कसे शूलीपर लिये गये थे, इसहेतु उन्होंने धर्मको पुकारा कहा, कि हे धर्म । मैंने बाल्यपनमें कुशकी पतिङ्गेको बँधा था, स्मरण होता है, कि मेरे भरमें इतनाही पाप किया है ; यह स्मरण होता नहीं, कि फिर कभी कोई और पाप किया हो ; पर जितना पाप हुआ है, उससे सगुणी अधिक तपस्या की है, क्या इतने भी वह पाप क्षय नहीं हुआ ? क्योंकि सर्व शिोंकी पीड़ा देनेकी अपेक्षा ब्राह्मणपीड़नका अधिक होता है, अतएव तुम ब्राह्मण-पीड़नके पापसे पापी होनेके कारण शूद्रयोनिमें जा लगे । धर्मने उस शापसे शूद्रयोनिमें गान्धर्व, धार्मिक और पाप-वर्जित विदुरके रूपमें जन्म लिया था । सुनिकल्प स्तुत शङ्ख-गवल्गणसे जन्म लिया था । कवच कुण्डल-प्रसन्न-मुख महाबली कर्णने कुन्तीकी

कन्यादशमें उसके गर्भ और सूर्यके वीर्यसे जन्म लिया था । अनादि, अनन्त, जगत्कर्ता, जगत्प्रभु, लोकोंके नमस्कारहीन, महायशस्वी भगवान् विष्णुने लोकोंपर दया दिखाकर वसु-देवके वीर्य और देवकीके गर्भसे जन्म लिया था । पण्डितलोग जिनको अव्यक्त, नित्य, ब्रह्म, प्रकृति, त्रितुणात्मक, आत्मा, अव्यय, प्रधान, जरत्कारण, विभु, पुरुष, विश्वकर्मा सत्यगुण-अय, प्रणवस्वरूप, अनन्त, अचल, देव, हंस, नारायण-प्रभु, धाता, अजर, दिव्य, श्रेष्ठ, अवि-नष्ट, कैवल्य, निर्गुण, अपरिच्छिन्न, कारण-विहीन और जन्म-मृत्यु-वर्जित कहा करते हैं, उन सर्वभूतोंके पितामह जगत्कर्ता विभु पुरुषने धर्मवृद्धिके निमित्त अश्वक वृष्णिवंशमें जन्म लिया था । अश्वत्थ, महावीर्य, सर्वशा-स्त्रज्ञ, अश्व चलानेमें सुदक्ष, नारायणकी भक्ति-युक्त सात्यकि और कृतवर्माने सत्यक और हृदिकसे जन्म लिया था । कठोर तपयुक्त महर्षि भरद्वाजका वीर्य द्रोणी अर्थात् गिरि-कन्दरामें गिरकर और वृद्धि पाकर द्रोणाचार्य का जन्म हुआ । गौतमजीका वीर्य सरकण्डेके बोझपर गिरकर दो भागोंमें बंट जानेके कारण उससे अश्वत्थामाकी माता कृपी और महाबली कृपने जन्म लिया । अनन्तर द्रोणाचार्यके वीर्यसे महाबली अश्वत्थामाका जन्म हुआ । साक्षात् अग्निकी भाति तेजोवीर्यवान् वीर धृष्ट-द्युम्नने यज्ञके समय अग्निसे द्रोणको नष्ट कर-नेके निमित्त चापसहित जन्म लिया और उस यज्ञकी वेदी पर तेजस्विनी, शुभलक्षणा, प्रज्व-लित देहधारणी अनुपम रूपवती कृष्णाका जन्म हुआ । आगे प्रह्लादके शिष्य नमजित और सुवलने जन्म लिया । देवी कीपसे सुवलका पुत्र धर्म विप्रव करनेहारा हुआ । उस गान्धारराज सुवत्से अर्थशास्त्रज्ञ शकुनि और दुर्योधनकी माता गान्धारीका जन्म हुआ । कृष्णहैपायनके वीर्य और विचित्रवीर्यकी स्त्रीके गर्भसे राजा

धृतराष्ट्र और महाबली पाण्डु उत्पन्न हुए और उन्होंने हैपायनसे धर्मार्थयुक्त श्रीमान् मेधावी, पापकी कूतसे रहित विदुरने शूद्र योनिमें जन्म लिया । पाण्डुकी दो राणियोंसे देववत् पांच पाण्डवोंका जन्म हुआ । उनमेंसे युधिष्ठिर सर्वगुण-युक्त और बड़े थे ; उन्होंने धर्मके वीर्य से जन्म लिया था । वायुसे वृकोदर, इन्द्रसे श्रीमान् सर्व-शास्त्रधारी अष्ट धनञ्जय और दोनों अश्विनी-कुमारोंसे रूपवान् नकुल और सहदेवने जन्म लिया श्रीमान् धृतराष्ट्रके दुर्योधन आदि सौ पुत्र और वैश्यागर्भसे जन्मा हुआ युयुत्सु, नामक एक पुत्र हुआ । हे भारत । जिनमेंसे दुःशासन, दुःसह, दुर्मुख, विकर्ण, चित्रसेन, विविंशति, जय, सत्य-व्रत, पुष्पिष्ठ, वैश्यापुत्र तथा युयुत्सु, यह ग्यारह महारथी थे । महात्मा पाण्डुके पीते, श्रीकृष्ण-के भाई अभिमन्युने अर्जुनके वीर्य और सुभ-द्राकी गर्भसे जन्म लिया । पांच पाण्डवोंके वीर्य और द्रौपदीके गर्भसे सर्वशास्त्रोंमें निष्ठान्, रूपवान् पांच कुमार उत्पन्न हुए ; उनमेंसे युधिष्ठिरके पुत्र प्रतिविन्ध्य वृकोदरके पुत्र सुत-सोम, अर्जुनके पुत्र श्रुतकीर्ति, नकुलके पुत्र शतानीक और सहदेवके पुत्र प्रतापी श्रुतसेन हैं । इनके सिवाय वृकोदरके वनमें हिडिम्बा-गर्भसे घटोत्कच नामक एक पुत्र हुआ था । शिखण्डीने द्रुपदसे जन्म लिया था, उसने कन्या होकरके पुत्रत्व प्राप्त किया था स्थूण नामक यक्षने प्रिय साधनकी इच्छासे उसकी पुरुष बनाया था । कुरुपाण्डवोंके युद्धके कालमें युद्ध करनेके निमित्त सैकड़ों सहस्रों भूप एकत्र हुए थे । दश सहस्र वर्षोंमेंभी उन अगणित राजाओंके नाम निश्चय नहीं किये जा सकते ; पर जिन प्रधान प्रधान राजाओंसे यह कथा पूरी हुई है, केवल उनकेही नाम कहे गये ।

आदिपर्वमें तिरसठवां अध्याय समाप्त ।

जनमेजय बोले, कि ब्रह्मन् ! जिन राजाओंके नाम आपने कहे सुनाये, और जिन नहीं कहे, उन देववत् महारथी महाभाग जिस कारण भूमण्डलमें जन्म लिया था, वहां सुनना चाहता हूं ; हे महाभाग । आप प्रवर्णन कीजिये । श्रीवेशम्पायनजी बोले, हे राजन् । सुनचुका हूं, कि आप जो कि पूछते हैं, वह देवोंका रहस्य है, हम हा में स्वयम्भूके पांव छूकर आपके पास वह रहस्य प्रकाश करते हैं ।

पूर्वकालमें जामदग्न्य इस भूमण्डल इक्कीस बार चतुरियोंसे खाली कर महेन्द्रपर्व पर तप करने लगे । हे राजन् । जब जामदग्न्य भार्गवके द्वारा चतुरियोंसे खाली तब चतुरियोंकी स्त्रियां ब्राह्मणोंकी उपास करने लगीं । हे नरव्याघ्र । व्रतशील ब्राह्मण लोग ऋतुकालमें उन चतुरियोंके पास तप करने लगे, ऋतुकालके सिवाय किसी दूसरे समयमें कामवश ही करके नहीं जाते थे । राजा सहस्रों चतुरियोंकी राणियां ब्राह्मणोंसे धारण कर चतुरियोंके वंश बढ़ानेके फिर महावीर्यवान् कुमार और कुमारी करने लगीं ; इस प्रकार चतुरियोंने अक्षतपत्नी ब्राह्मणोंके वीर्य और चतुरियोंके से जन्म लेकर दीर्घायु प्राप्तकर धर्म करके वृद्धि पायी थी ; इससे फिर ब्राह्मण चार वर्ण पूर्ण हुए ! हे भरतर्षभ । उन वै ऋतुकालहीमें स्त्रियोंके पास गमन करते ऋतुकालके सिवाय किसी दूसरे समय काम होकरके नहीं गमन करते थे ; इसी प्रकार पशुपक्षी आदि तिर्यक-योनिके जीवण ऋतुकालहीमें स्त्रियोंके पास गमन करते हैं ; वे इस विरुद्धता नहीं करते हैं । हे पृथ्वीपाल । अन्तर प्रजागण सैकड़ों सहस्रों वर्षकी आयु कर धार्मिक व्रतशील हुए और शरीर मनसस्वन्धी पीडाओंसे बचे । हे राजन्

अनन्तर क्षत्रियवंशी राजालोग समुद्रतक, पहाड़ नगर और वनयुक्त इस भूखण्डलकी, जो एक-वार उनके हाथसे च्युत हुआ था, फिर अपने अधिकारमें लाये। क्षत्रियोंके धर्मानुसार फिर इस धरतीका शासन आरम्भ करनेपर, ब्राह्मणादि चारों वर्ण अति प्रसन्न हुए। भूपाल लोग काम-क्रोधसे उपजते हुए सम्पूर्ण दोषोंको छोड़कर धर्मानुसार दण्ड पानेके योग्य लोगोंको दण्ड देकर राज्य पालने लगे। क्षत्रियोंके इस प्रकार धार्मिक होने पर सहस्रनेत्र शतक्रतु देशकाल पर ध्यान रखकर नियमानुसार वर्षा करके प्रजा पालने लगे। हे जननाथ ! उन दिनों कोई बालेपनमें, अकालमें कालवश नहीं मरता था और यौवन दशाकी न प्राप्त करने पर कोई विवाह नहीं करता था। हे भरत-कुलतिलक ! ऐसी आयुयुक्त प्रजासे समुद्रतक धरती पूरित हुई। क्षत्रियलोग अनेक दक्षिणा देकर बड़े बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान करने लगे। ब्राह्मणलोग शिक्षा कल्प व्याकरणदि अङ्ग और उपनिषत्-सहित वेदोंको पढ़ने लगे ; उन दिनों वे वेदोंको नहीं बेचते थे और शूद्रोंके सामने वेदके मन्त्र नहीं उच्चारते थे, पतले और दुबले बैलोंको बोझा ढानेमें नहीं लगाते थे और उनका यज्ञसे पालन करते थे। उन दिनों कोई मनुष्य थोड़ी अवस्थाके बछड़ेवाली गायको दूधते नहीं थे और वाणिकलोग कुटिल तौलसे ठग-कर विक्रीकी वस्तुओंको नहीं बेचते थे। हे नरव्याघ्र ! उन दिना सबजन धार्मिक होकर धर्ममार्गकी आर हांठ रखकर धर्मके कर्मोंको करते थे। हे नरेश ! उन दिनों चारोंवर्ण निज निज धर्ममें लगे रहते थे ; किसी स्थानमें धर्मकी घटी नहीं थी। हे भरतवंशश्रेष्ठ ! उस कालमें गौ और नारि उचित समयमें प्रसव करती थीं, ऋतुओंके अनुसार वृक्षके फूल और फल फलते फूलते थे। हे पृथ्वीनाथ ! तब इस प्रकार सत्ययुग प्रवर्तित होने पर सम्पूर्ण धरती

अगणित जीवोंसे पूरित हुई। हे भरतवंशके प्रधान महाराज ! जब मर्त्यलोक ऐसा आनन्द धाम बन गया, तब राजाओंके क्षेत्रोंमें असुरलोग जन्म लेने लगे। वे युद्धमें देवोंसे बार बार हारकर ऐश्वर्य और स्वर्गसे निकाले जानेपर भूतलमें जन्म लेने लगे। हे राजेन्द्र ! मनस्वी असुर लोग भूलोकमें देवत्व प्राप्त करनेकी इच्छापर गौ, घोड़े, जूँट, गदहे, भैंसे क्रव्याद, हाथी, मृगादि अनेक जीवों से उत्पन्न होने लगे। हे महिपाल ! इस प्रकार दिति और दनुके पुत्रोंमेंसे कुछने जन्म लिया, कुछ जन्म लेने लगे, इससे धरती भार-युक्त होकर आपहीकी आप सम्भालनेके योग्य न रही। अनन्तर उनमेंसे अति अहङ्कारी कठोर वीर्यवान् कोई कोई दैत्य और दानव मानवकुलमें जन्म लेकर महीपाल बने। वह वीर्यभरे अहङ्कारपूरे शत्रुभयने-हारे अगणित दैत्य-दानव अनेक स्वरूप धारणकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र और दूसरे जीवों को सताने लगे। हे राजन् ! वे बलगर्भित वीर्यके अहङ्कारसे उन्मत्त और वधके अयोग्य होकर सम्पूर्ण सत्त्व-गुणियोंको भय दिखा वा नष्टकर और आत्मके महर्षियोंका अपमानकर सर्वत्र विचरने लगे।

हे राजन् ! इस प्रकार बलवीर्यके अहङ्कारसे उन्मत्त बड़े बड़े असुरोंसे सताई जाकर धरती ब्रह्माजीके पास गयी ; क्योंकि उसकालमें जब धरती दानवोंसे बल-पूर्वक जकड़ी गयी थी, तब शेषनाग, दिग्गज तथा कूर्मादयोमेंसे कोईभो उसको धरे रहनेका समर्थ नहीं था। हे महिपाल ! इसी हेतु भारयुक्त और भयसे क्रातर होकर पृथ्वीने सर्व भूतोंके पितामह ब्रह्माजीकी शरण ली। आगे उसने वहां उप-स्थित होकर पृष्ठाभाग देवता, दिव और महर्षियोंसे घिरे हुए, देव-कार्यमें नियुक्त, हर्षभरे गन्धर्व तथा अप्सराओंसे स्तुति किये जाने हुए,

तीनों लोकोंके प्रभु, अव्यय, देव ब्रह्माजीका दर्शनकर उनकी उपासना की। हे भारत ! अनन्तर पृथ्वीने शरण लेनेकी लालसासे सम्पूर्ण लोकपालोंके सामने उनसे सब वृत्तान्त कह सुनाया। हे राजन् ! सर्वोंके प्रधान स्वयम्भू परमेष्ठी पहिलेसे पृथ्वीका अभिप्राय जानते थे, क्योंकि जो जगतके सृष्टि-कर्त्ता है, वह सुरा-सुरादि सम्पूर्ण लोकोंके चित्तके भावोंसे क्यों न विदित रहेंगे। हे महाराज ! सर्व भूतोंके सृष्टिकर्त्ता, नियन्ता और सङ्गल करनेवाले प्रभु प्रजापति पृथ्वीसे बोले, वसुधरे ! तुम जिस लिये मेरे पास आयी हो, उस कार्यके पूरा करनेके निमित्त मैं सम्पूर्ण देवोंको नियुक्त करूँगा। श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे राजन् ! सृष्टिकर्त्ता देव ब्रह्माने इससवायसे धरतीकी ढाढ़स देकर विदा किया। आगे सब देवोंको आज्ञा दी, कि तुम पृथ्वीके भारको दूर करनेके निमित्त अपने अपने अंशोंसे उस मर्त्यलोकहीमें उतरकर विरोध मचाओ, और गन्धर्व तथा अप्सराओंको बुलवाकर उनसे वैसेही अर्थ-भरे हित वचनोंसे कहा, कि तुम अपने अपने अंशोंसे मनुष्यलोकमें जन्म लो, अनन्तर इन्द्रादि देव-तोंने उन देवगुरुके उस सत्यार्थयुक्त अति उप-कारी वचनको सुनकर मान लिया। - आगे वे अपने अपने अंशसे पृथ्वीमें जन्म लेना निश्चयकर वैकुण्ठनिवासी शत्रुमथने हारे मधुसूदनके पास गये। जा गदा-चक्रधरे पीतवीर पहिरे, नये-नोलबादलकी द्युतिसे घिरे, पद्मनाभिसे सुहारे, दैत्यसूदन कमलनयन, प्रजापति-पति, सुरनाथ, महाबली, श्रीवत्साङ्ग, हृषिकेश तथा सर्वदेवोंके पूजित करके प्रसिद्ध हैं, उन पुरुषोत्तमसे इन्द्र-जीने पृथ्वीके निमित्त कहा, कि आप अपने अंशसे भूमण्डलमें अवतीर्ण हों, हरिनेभी “तथास्तु” कहके मान लिया।

आदिवंशावतारण और चौंसठवां अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर इन्द्र नारायणजीके सम्मुख सब दिवोंके सहित स्वर्ग अपने अंशसे भूमण्डलमें अवतीर्ण होनेकी प्रतीक्षा करी; आगे सब दिवोंकी आज्ञा देकर नारायणजीके मन्दिरसे लौट गये। सुरगण असुरोंने नाश और सब लोगोंके हितके निमित्त क्रमानु-प्रार स्वर्गसे पृथ्वीमें अवतीर्ण होने लगे। हे राजसिंह ! उन्होंने इच्छानुसार ब्रह्मर्षि और राजर्षियोंके वशोंमें जन्म लिया और दानव, राक्षस, गन्धर्व, पन्नग आदि तथा दूसरे भाँति भाँतिके अगणित जन्तुओं को नष्ट करने लगे। हे भरतवंश यष्ट ! वे ऐसे बलवन्त हुए थे, कि दानव, राक्षस, गन्धर्व, वा पन्नगण उनको बालेपनमेंभी कोई हानि नहीं पहुँचा सकते थे। जनमेजयने कहा, कि सुभे पूर्ण-रीतिसे यह सुननेकी इच्छा है, कि देव, दानव, गन्धर्व अप्सरा, यक्ष, राक्षस और सम्पूर्ण मनुष्य तथा दूसरे सब जीव क्योंकर उत्पन्न हुए थे; आप आद्योपान्त सम्पूर्ण कहें। श्रीवैशम्पायन जी बोले, कि मैं स्वयम्भुको प्रणाम करके देवता और दूसरे जीवोंकी उत्पत्ति और प्रलयकी वर्णन करता हूँ।

मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलह्य, पुलह और क्रतु यह छः प्रसिद्ध महर्षि ब्रह्माजीके मानसपुत्र हैं। कश्यपजी मरीचिके पुत्र हैं और उन कश्यपजीसे यह सब प्रजा रची गयी। प्रजापति दक्षसे अति सौभाग्यवती तेरह कन्या उत्पन्न हुई थीं। उनके नाम अदिति, दिति, दनु, काला, दनायुः, सिंहिका, क्रोधा, प्राधा, विश्वा, विनता, कपिला, सुनि और कद्रु हैं। यह कश्यपकी स्त्री थीं। हे मनुष्यव्याघ्र ! इनके अनन्त वीर्यवान् अगणित पुत्र-पौत्र उत्पन्न हुए थे। अदितिके गर्भसे भुवनेश द्वादश पुत्रोंने जन्म लिया है। हे राजन् ! उनमेंसे प्रत्येकके नाम कहता हूँ; यथा धाता, मित्र, अर्यमा, शक्र, वरुण, अंश, भग, विवस्वान्, पूषा, सार्वता,

लवण और विष्णु। इन बारह पुत्रोंमेंसे सबसे छोटे सबसेसे शुणवान हैं। दितिका एक पुत्र, उसका नाम हिरण्यकशिपु था। महात्मा हिरण्यकशिपुके पांच पुत्र हुए थे; उनमें प्रह्लाद सबसेसे बड़ा, संह्लाद दूसरा, अनुह्लाद तीसरा, शिवि चौथा और वाष्कल पांचवां था। हे भारत। प्रह्लादके सर्वत्र प्रसिद्ध तीन पुत्र थे; उनके नाम विरोचन, कुम्भ और निकुम्भ थे। विरोचनसे बलि नामक एक प्रतापी पुत्रका जन्म हुआ था। बलिके वाण नामक एक प्रख्यात महावीर पुत्र उत्पन्न हुआ; वह श्रीमान् महाकाल नामसे प्रसिद्ध होकर रुद्रदेवका साथी बना है। हे भारत। दनु नाम्नी दक्षपुत्रीने तीनों लोकमें प्रसिद्ध चालीस पुत्र प्रसव किये थे; उनमेंसे विप्रचित्ति नामक अति यशस्वी बड़े पुत्र राजा हुए थे। सत्वर, नमुचि, पुलोम, असिलीमा, केशी, दुर्लभ्य अयशिरा, अश्वशिरा, वीर्यवान् अश्वशङ्ख, गगनमूर्द्धा, वेगवान्, केतुमान्, स्वर्भानु, अश्व, वृषपर्वी, अजक्र, अश्वग्रीव, महाबली तुङ्गण्ड, एकपाद, एकचन्द्र, विरूपाक्ष, महीदर निचन्द्र, निकुम्भ, कुपट, कपट, शरभ, शलभ, सूर्य और चन्द्र, यह सब दानव दनुवंशसे उत्पन्न हुए थे। देवोंमें गिने जाते हुए, सूर्य और चन्द्र उक्त दनु वंशी सूर्य और चन्द्रसे भिन्न हैं। दनुवंशमें वे तीन दानव प्रसिद्ध थे और उस वंशमें महाबली पराक्रमी दूसरे दश प्रख्यात दानवोंने जन्म लिया था; उनके नाम एकाक्ष, वीर, अमृतप, प्रलम्ब, नरक, वातापी, शत्रुतापन, महासुर शठ, गरिष्ठ, दायुः और दीर्गजिह्व थे। हे भारत। इनके पुत्र-पौत्र इतने थे, कि उनकी संख्या नहीं होती। सिंहिकासि चन्द्र और सूर्यकी ग्रास करने वाली राहु, सुचन्द्र, चन्द्रहन्ता और चन्द्रप्रमर्दन जन्मे थे। इसके अतिरिक्त उस कटिलके कटिल स्वभावी अगणित पुत्र-पौत्राद थे। उनमेंसे कुछ क्रोधवश होकर कटिल कार्य करनेवाले, शत्रुनाशी गण थे।

विचर, बल, वीर और महासुर वृत्त असुरोंसे श्रेष्ठ इन चार पुत्रीने दनायुः के गर्भसे जन्म लिया था। काला नाम्नी दक्ष-पुत्रीके काल समान प्रसिद्ध असुरोंसे बड़े वीर्यवान् शत्रु-मथने हारे बहूत पुत्र थे; वे विनाशन, क्रोध, क्रोधन्ता क्रोधशक्र, आदि नामोंसे प्रसिद्ध थे।

ऋषिकुमार शुक्राचार्य असुरोंके उपाध्याय थे; उपनाके प्रख्यात चार पुत्र असुरोंके याजक थे, उनके अतिरिक्त लवणधर और अत्रि यह दो रौद्रकर्मा थे। यह सब सूर्यके समान तेजस्वी और ब्रह्मलोक पर भक्ति रखनेवाले थे। हे महीपाल। मैने पुराणोंमें तरस्वी असुर और असुरोंका जो वंश-वृत्तान्त सुना था, सो कह चुका। उनके पुत्र कन्या इतने अधिक हैं, कि उनकी संख्या नहीं होती। गरुड, अरुण, ताक्ष्य, अरिष्टनेमि, आरुणि और बारुणि यहसब विनताकी सन्तान हैं। नागनाथ शेष, अनन्त, वासुकि, तक्षक, कूर्म और कुलिक यह कद्रुसे उत्पन्न हुए थे। भीम-सेन, सुपर्ण, वरुण, गोपति धृतराष्ट्र, सूर्यवर्चा सत्यवाक, अर्कपर्ण, प्रयुत, भीम, प्रख्यात, सर्वज्ञ जितेन्द्रिय चित्ररथ, शालिशिरा, पर्यन्थ, कलि और नारद इन सोलह देव और गन्धर्वोंने दक्ष पुत्री मुनिके गर्भसे जन्म लिया था। हे भारत। इसके पश्चात् दूसरे अनेक वंशोंकी कथा कहता हूँ। अंनवद्या, मनु, वंशा, असुरा, मार्जण-प्रिया अनुपा, सुभगा, भासी, यह सब कन्या प्राधासे उत्पन्न हुई हैं। सिद्ध, पूर्ण, वहि, महायशा पूर्णायुः, ब्रह्माचारी, रतिगुण, साङ्ग-श्रेष्ठ सुपर्ण, विश्वावसु, भानु और सुचन्द्र इन दश देवता और गन्धर्वोंनेभी प्राधासे जन्म लिया है; इनके अतिरिक्त उन महाभागा देवी प्राधाने महात्मा कश्यपके महावाससे प्रख्यात पुण्य लक्षणयुक्त अप्सराओंके वंशकी प्रसव किया है। उनके नाम अलम्बुषा, मित्रकेशा, विद्युत्पर्णा, तिलोत्तमा अरुण, रहिता, रन्धा, मनीरमा,

कोशिना, सुवाह, सुरता, सुरजा और सुप्रिया हैं ; एवम् अतिवाह, प्रख्यात हाहा, हह और तुम्बुरु, यह चार गन्धर्वराजभी उसकी मन्तान हैं । पुराणोंमें कहा है, कि अमृत, ब्राह्मण गौ, गन्धर्व और अप्सरा यह सब कपिलासे जन्मे हैं । आपकी गन्धर्व, अप्सरा, सर्प, सुपर्ण, रुद्र, मरुत, गौ और पुण्यकार्य करनेवाले श्रीमान् ब्राह्मणादि सर्वजीवोंकी उत्पत्तिकी कथा सुना चुका । यह आयुवृद्धिकारी, पुण्य भरो, धन्य तथा कानोंको सुखदेनेवाली हैं ; इस लिये सदा द्वेप छोड़कर इसे सुनना और सुनाना । जो जन देवता और ब्राह्मणके सामने नियमके अनुसार महात्माओंकी यह वंशावली पाठ करेंगे वह अच्छे पुत्र, लक्ष्मी और यशके सहित अन्तमें सुगति प्राप्त करेंगे ।

आदिपर्वमें पैसठवां अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि प्रख्यात छः महर्षि ब्रह्माजीके मानसपुत्र थे । (उनके सिवाय सातवें पुत्र) स्याणुके अति तेजस्वी ग्यारह सन्तान हुई थीं उनके नाम मृग-व्याध, सर्प, अति यशशाली निऋति, अजैकपात, अहिर्बुध्न, बड़े तपस्वी पिनाकी, ईश्वर, दहन, महाद्योतवान् कपाली स्याणु और भगवान् भग यह ग्यारह रुद्र करके प्रख्यात हैं । मरोचि अङ्गिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु, यह वीर्यवान् छः महर्षि ब्रह्माके पुत्र हैं । अङ्गिराके सर्वत्र प्रसिद्ध तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे ; उनके नाम बृहस्पति, उत्तथ और व्रतशील सम्बर्त हैं । हे नराधिप ! कहा है, कि अग्निके अगणित पुत्र जन्मे थे, वे सब वेदपारग, सिद्ध, शान्तचित्त और महर्षि थे । हे मनुजव्याघ्र ! राक्षस, बन्दर किन्नर, और यक्षलोग धीमान् पुलस्त्यके पुत्र हुए । हे राजन् ! शलभ, सिंह, किम्बुरुष व्याघ्र, भल्लुक और ईहामृग, यह पुलहके पुत्र हुए । क्रतुके क्रतुवत् पाप दूर करनेहारे

और सूर्यके साथी वालखिल्य नामक छे तीनोंलोकमें प्रख्यात और नव्य-व्रतशील थे । पृथ्वीपाल । शान्तचित्त, बड़े तपस्वी भगवान् दक्ष मुनिने ब्रह्माजीके दाहिने अङ्गूठसे ब्रह्म लिया और उन महात्माकी स्त्री ब्रह्माके बाँधे अंगूठेसे उत्पन्न हुई थी । प्रजापति दक्ष उस स्त्रीसे पचास कन्याओंकी उत्पन्न कराया, वे कन्या सब कमललोचना और सुन्दरी थीं । दक्षके पुत्र न रहनेके कारण उन्होंने कन्याओंकी पुत्रिका बनायी थी अर्थात् इस नियमसे उनको दान किया था, कि उन्हें गर्भसे जो पुत्र जन्मे, वेही उनके पुत्र बनें । उन्होंने दिव्य विधिके अनुसार धर्मकी दस कन्या, चन्द्रकी सत्ताइस कन्या और कश्यपके तेरह कन्या दान की थी । धर्मकी धर्मपत्नियोंके नाम लेते हैं, सुनिये । कीर्त्ति, लक्ष्मी, धृति, मेधा, पुष्टि, यज्ञा क्रिया, बुद्धि, लज्जा और मति, इन दश दक्षकी कन्याओंकी भावना स्वयम्भुने धर्मकी स्त्री बना दी थी । चन्द्र की सत्ताइस स्त्री तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हैं । वे सब लोकयात्रा निर्वाहके निमित्त काल जांचनेके लिये पश्चिमी भरणी, आदि नक्षत्रोंके नामसे प्रख्यात हुई हैं ।

ब्रह्माजीके पुत्र मनु और उनके पुत्र प्रजापति हैं ; उनसे आठ वसुओंका जन्म हुआ जो उनकी कथा विस्तृत रूपसे कहता हूँ ; ध्रुव, सोम, ग्रहः, अनिल, अनल, प्रत्यूष, प्रभाष यह आठ वसु करके प्रसिद्ध हुए थे । ब्रह्म विद्यामें पण्डित ध्रुव और धर धुमाके पुत्र ; चन्द्र और वायु मनस्विनी श्वसाके पुत्र ; दिक्क रता के पुत्र ; जतासन शाण्डिलीके पुत्र और प्रत्यूष तथा प्रभाष प्रभाताके पुत्र थे । आठ वसुओंमेंसे धरके दो पुत्र थे, उनके नाम द्रविण और जत हव्यवह थे । लोकनामी भगवान् काल ध्रुवके पुत्र थे ; सोमके पुत्र वर्चा, और, वर्चाकी कन्या वर्चसी थी ; भन

हरनेवाली वर्षासोके शिशिर, रमण और प्राण
यह तीन पुत्र हुए थे । दिवससे ज्योतिः, शम
प्रान्त और सुनि, यह चार पुत्र उत्पन्न हुए
थे । अग्निसे शरवणरूपी गृहवाले श्रीमान्
कुमारका जन्म हुआ ; कृत्तिका आदि छः
प्रमाताओंसे उनका नाम कार्तिकेय हुआ
रहै । शाख, विशाख और नैगमेय, यह
तीन कार्तिकेयके छोटे भाई थे । अनिलके
जीर्ण और शिवा नाम्नी उनकी स्त्रीके
गर्भसे मनोजव और अविज्ञातगति इन दो
पुत्रोंका जन्म हुआ । देवल नामक ऋषि
के यक्षसे उत्पन्न हुए थे । देवलके चमावान्
और मनीषी, यह दो पुत्र हुए थे । ब्रह्मजानने-
वाली सुन्दरी स्त्री वृहस्पतिजीकी बहन संसार-
प्रायश्चममें न फंसकर योगमें चित्तको लगाकरके
सम्पूर्ण भूमण्डलमें विचर चुकी थी ; आगे उन्हीं
वसुओंमें आठवें प्रभाषकी स्त्री होकर शिल्प-
विद्यामें दक्ष विश्वकर्मा नामक महानुभाव पुत्र
पसव किया ;—जो विश्वकर्मा सहस्रों शिल्प-
कार्योंके सृष्टिकर्ता, जो देवोंके वर्द्धक अर्थात्
शिल्पकारी,—जिन्होंने सम्पूर्ण अलङ्कार बनाये
हैं, जो शिल्पियोंमें प्रधान पुरुष देवोंको
दिव्य यान बना देते हैं,—भनुष्यलीग जिन महा-
माकी शिल्पविद्या सीखकर जीविका निर्वाह
करते हैं,—जो अव्यय, और मनुष्यों के सदा
जनीय हैं, वह उन प्रभाषके पुत्र हैं । सर्व-
लोकोंकी सुख देनेहारे भगवान् धर्म नरविग्र-
हके स्वरूपमें ब्रह्माजीके दाहिने स्तनकी भेद
करके निकले थे । तेजसे लोकरक्षक और
अवजीवोंमें मनोहर शम, काम और हर्ष, यह
तीन धर्मसे उत्पन्न हुए थे । कामकी स्त्री रति,
शमकी स्त्री पाप्म और हर्षकी स्त्री नन्दा हुईं
उन्होंने लोकोमें बड़ी पतिष्ठा प्राप्त की थी । हे
राजसिंह । मरीचिके पुत्र कश्यप हैं, कश्यप
की पुत्री सुरासुरों सबोंने जन्म लिया है, अतएव
आदि पुरुष कहके बखाने जाते हैं ।

वड्वा-रूपधारिणी सूर्यपत्नी महाभागा
लाष्टीने आकाशमें दोनों अश्विनीकुमारोंको
प्रसव किया है । हे नाराधिप ! अदितिके
गर्भसे इन्द्रादि बारह पुत्रोंने जन्म लिया था ।
उनमेंसे जिनमें सवलोक पतिष्ठित हैं, वही विष्णु
सबोंसे छोटे हैं । तैंतीस प्रधान देवोंके पक्ष,
कुल और गणके अनुसार अर्थकी कथा कहता
हूं । रुद्रगण, साध्यगण, मरुद्गण, वसुगण,
भार्गवगण और विश्वदेवगण, यह एक एक
पक्ष हैं । विनतानन्दन गरुड, बलवान् अरुण
और भगवान् वृहस्पति आदित्यगणमें गिने जाते
हैं । दोनों अश्विनीकुमार, सब औषधि और
पशुलीग गुह्यकगणमें गिने जाते हैं । हे राजन्
आदिसे अन्त तक यह सब देवोंकी कथा कही ;
भगवान् भृगु ब्रह्माके हृदयकी भेदकर निकले ।
कविपुत्र कवि स्वयं विद्यामें पण्डित शुक्रने भृगु
के वीर्यसे जन्म लिया । वह ब्रह्माजीकी
आज्ञासे ग्रहके स्वरूपमें तीनों लोगोंकी प्राण-
यात्रा निर्वाहके लिये वर्षना और न वर्षना,
भयकर रहना और न रहना विषयोंपर दृष्टि
रखनेके निमित्त नियुक्त होकर भूमण्डलमें
विचर रहे हैं । व्रतशील, मेधावी, ब्रह्मचारो,
अति बुद्धिमान् योगाचार्य शुक्र योग बलसे वृह-
स्पति और शुक्र यह दो स्वरूप लेकरके
देव और असुरोंके गुरु हुए । विधा-
तासे दैत्योंके योगक्षेम-कार्यमें नियुक्त होनेपर
भृगुने चवन नामक एक दूसरे धर्मात्मा प्रज्व-
लित तेजधारी यशस्वी, अनिन्दित पुत्रको उत्पन्न
किया । हे भारत ! वह क्रोधयुक्त होकर
राक्षसके हाथसे माताको कुड़ानेके निमित्त
गर्भसे गिरे थे । मनीषी सुनि चवनने आरुपी
नाम्नी मनुजीकी बेटीसे विवाह किया था ।
अति यशस्वी और्व आरुपीकी जांघको चीर-
कर निकले । और्वके पुत्र ऋचीक हुए ; वह
वालेपनहीमें सब गुणोंसे भूषित, अति तेजस्वी
और बड़े वीर्यवान् थे । ऋचीकके पुत्र जमदग्नि

थे, महात्मा जमदग्नि के चार पुत्र थे, उनमें राम सबसे छोटे होने पर भी गुणों के लिये सबों से बड़े हुए थे; वह जितेन्द्रिय क्षत्रिय कलनाशक और शास्त्रज्ञ थे। ऋची के जमदग्नि आदि सौ पुत्र थे। उनके सहस्र पुत्र धरती में फैल गये। ब्रह्माजी के जो दूसरे पुत्र हैं, वे तीनों-लोकों में धाता और विधाता नाम से प्रख्यात होकर ब्रह्मलोक में मनुजी के साथ वसते हैं। शुभलक्षणा, पद्मपर विराजमाना देवी लक्ष्मी उनकी बहिन है; आकाश की उड़नेवाली घोंडि लक्ष्मीजी के मानस-पुत्र हैं। वसुधा की बड़ी स्त्री देवी ने शुक्र से जन्म लिया; उन्होंने बल नामक एक पुत्र और सुरा नाम सरजन्दिनी एक कन्या प्रसव की। पेट भरने के निमित्त प्रजाओं के एक दूसरे की खाने से सर्वभूतनाशी अधर्म खड़ा हो गया, अधर्म की स्त्री का नाम निर्ऋति था, उसके गर्भ से नैऋत राक्षसों ने जन्म लिया था और उसके पापाचारी घोररूप = सरे तीन वेदे थे; उनके नाम भय, महाभय और सर्वभूतों के अन्तकारी मृत्यु हैं। मृत्यु की स्त्री पत कोई नहीं थे, क्योंकि वह स्वयं ही अन्तक हैं। काकी, श्वेनी, भाषी, घृतराष्ट्री और शुकी, लोकों में प्रसिद्ध इन पांच कन्याओं ने देवी ताम्रा के गर्भ से जन्म लिया। काकी ने उल्लुओं की, श्वेनी ने बाजों की, भाषी ने मुरगों और गिद्धों की और भद्रा घृतराष्ट्री ने, हंस, राजहंस और चकवों की प्रसव किया। सर्वलक्षण-धारिणी कल्याणी, गुणशालिनी, यशस्विनी शुकी से शुक्र पक्षियों का जन्म हुआ। मृगी, मृगनन्दा, हरी, भद्रमना, मातङ्गी, शार्ङ्गली, श्वेता, सुरभि और सर्वलक्षणवाली भामिनी सुरसा तथा क्रोधवशा यह नौ नारो क्रोध से उत्पन्न हुई थीं। हे नरोत्तम! सन मृगों ने मृगी से जन्म लिया है; ऋक्ष और स्वमरों ने मृगनन्दा से जन्म लिया है; देवनाग महागज ऐरावत भद्रमना के गर्भ से उत्पन्न हुए हैं; और लंगूर वन्दरो और वेगवान्

घोड़ों ने हरी से जन्म लिया है। शार्ङ्गली सिंह, व्याघ्र और महासत्व सम्पूर्ण चेतों के जन्म दिया है। हे नराधिप! हस्तीगण मातङ्गी के वेदे हैं; श्वेता से श्वेताक्ष, द्रुतगामी दिग्गज उत्पन्न हुआ था। हे राजन्! कल्याणी यशस्विनी गन्धर्वों और रोहिणी इन दो कन्याओं ने सुरभिके गर्भ से जन्म लिया, इसके सिवाय सुरभिकी और दो कन्या थीं; उनके नाम विमला और अनला थे। रोहिणी से गौ और गन्धर्वों से घोड़े उत्पन्न हुए। खजूर, ताड़, हिंगुल, ताली, खजूरिका, पिण्डफलवाली वृक्ष अनला से उत्पन्न हुए हैं; इनके सिवाय अनला की शुकी नाम की एक वेठी थी। सुरसा से कर्क उपजा। अरुण की स्त्री श्वेनी ने सम्पाती और जटायु नामक महाबली वीर्यवान् दो पुत्रों के प्रसव किया था और नागगण सुरसा से तथा पद्मगण कद्रु से उत्पन्न हुए थे; गन्धर्व और अरुण ने वितता के गर्भ से जन्म लिया था। हे मतिमान् मनुजाधिपते! यह सर्वभूतों की उत्पत्तिकी कथा कह सुनाई; इसके सुनकर मनुष्यलोक सर्वज्ञ बन जाते हैं और पापों से मुक्त होकर अच्छी गति प्राप्त करते हैं।

आदिपर्व में अष्टासठवां अध्याय समाप्त।

जनमेजय बोले, कि भगवन्। देव, दानव गन्धर्व, उरग, राक्षस, सिंह, व्याघ्र, मृग, पक्षी और महात्मा मानवों के जन्म कर्माणि सम्पूर्ण आद्योपान्त सुनने चाहता हूं। नीलम्पायनजी बोले, कि हे मनुष्येन्द्र। जिन देवता और दानवों ने मानवों के स्वरूप में जन्म लिया था, पहिले उनकी कथा कहता हूं।

विघ्नचित्त नामक प्रख्यात दानवराज जरासन्ध नाम से प्रसिद्ध राजा हुआ था। हे नरनाथ! हिरण्यकशिपु नामक दितिके पुत्र ने शिशुपाल होकर नरयोनि में जन्म लिया था। प्रह्लाद

छोटा भाई प्रसिद्ध संह्लाद शश्य नामसे प्रख्यात
 होकरके वाल्मिक देशका राजा हुआ था ।
 संह्लादका सबसे छोटा भाई प्रसिद्ध तेजस्वी अनु-
 ह्लाद घृष्टकेतु नामक राजा हुआ था । हे
 राजन् ? शिवि नामक दैत्य दुम नामक प्रसिद्ध
 राजा हुआ था । हे पुरुषश्रेष्ठ ! असुरश्रेष्ठ
 गण्डल मानव-यानिसे जन्मलेकर भगदत्त नाम
 से प्रसिद्ध हुआ था । अयाशिरा अश्वशिरा,
 अयःशङ्ख, गमनमूर्द्धा, और वेगवान्, इन पाँच
 वीर्यवान् महात्मा महासुरोंने केकय देशमें
 श्रेष्ठ भूपति होकर जन्म लिया था । प्रख्यात
 प्रतापी केतुमान् उग्रकर्मा नामक प्रसिद्ध नरेश
 हुआ था । स्वभानु नामसे प्रसिद्ध श्रीमान्
 महासुर, उग्रसेन नामक उग्रकर्मा राजा हो-
 कर अवतीर्ण हुआ था । श्रीमान् महासुर
 अश्वने अशोक नामक महादुर्जय नरेश होकर
 जन्म लिया था । अश्वका छोटा भाई दैत्य
 अश्वपति, हार्दिक्य नामक महीपाल हुआ था ।
 श्रीमान् महासुर वषपर्वाने दीर्घप्रज्ञ नामसे
 प्रख्यात राजा होकर जन्म लिया । वषपर्वका
 छोटा भाई अजक शाल्व नामक पृथ्वीनाथ
 हुआ । बलवान् महासुर अश्वग्रीवने राचवान्
 नामक नरेश होकर जन्म लिया ; कोर्तिशाली
 मातमान् सूक्ष्म नामक दैत्यने वृहद्रथ नामक
 प्रख्यात महीपति होकर जन्म लिया था । असुर-
 राजतुल्लसेनावेन्दु नामक प्रशंसित भूपालके
 स्वरूपमें अवतीर्ण हुआ । असुरोंमें आत बलवान्
 द्रुपद नगोजत् नामक प्रख्यात विक्रमी राजा
 होकर जन्म लिया । प्रसिद्ध महासुर एकचक्र
 पथामें प्रतावन्ध नामक प्रशंसित पृथ्वीपति
 हुआ था । अद्भुत याज्ञा महासुर दैत्य विक्र-
 पाचने चिन्तमण्डलमें चित्तवर्मा नामक प्रख्यात
 चिन्तपात होकर जन्म लिया । शत्रुनाशी वीर
 दैत्यवर हर, श्रीमान् प्रख्यात अवनीपति होकर
 अवतीर्ण हुआ था । वषपक्ष चयकारो
 मरुतजा सहरने भूमण्डलमें वाहीक नामक

प्रशंसित राजा होकर जन्म लिया । असुरोत्तम
 चन्द्रानन निचन्द्र महीपति श्रीमान् मुञ्जकेशके
 स्वरूपमें अवतीर्ण हुआ था । लड़ाईमें दुर्जय
 महार्मात निकुम्भ जन्म लेकर भूपालमें श्रेष्ठ
 देवाधिप करके प्रशंसित हुआ । दैत्योंमें शरभ
 नामक महासुरने पौरव नामक नरोत्तम राजर्षि
 होकर जन्म लिया था । हे राजन् ! महासुर
 महावीर्यवान् श्रीमान् कुपथने महीमण्डलमें
 सुपार्श्व नामक प्रसिद्ध महीपति होकर जन्म
 लिया । हे राजन् ! सुवर्णके पर्वतवत् महासुर
 क्रुथने प्रख्यात राजर्षि पार्वतेयके स्वरूपमें जन्म
 लिया था । असुरोंमें दूसरे शलभने प्रह्लाद
 नामसे वाल्मिक देशके राजा होकर जन्म लिया ।
 दितपुत्रोंमें श्रेष्ठ चन्द्रसमान चन्द्र प्रशंसित
 काम्बोजाधिप चन्द्रवर्मका स्वरूप लेकर उत्पन्न
 हुआ । दानवश्रेष्ठ सुप्रसिद्ध सूर्यने ऋषिक
 नामक नृपश्रेष्ठ राजर्षि होकर जन्म लिया ।
 हे नृपश्रेष्ठ ! मृतपा नामक प्रशंसित
 असुरोत्तमन पाश्र्वममें अनूप देशके भूपति हो-
 कर जन्म लिया । प्रख्यात महासुर महातेजा
 गावष्ट राजा दुमसेनके स्वरूपमें अवतीर्ण हुआ ।
 माननीय महासुर श्रीमान् मयूरावध नामक
 भूनाथ हुआ । उसका छोटा भाई प्रसिद्ध सुपर्ण
 कालकीर्ति नामसे धरतीमें अवतीर्ण हुआ ।
 प्रधानामें प्रशंसित असुर चन्द्रहन्ता शुनक नाम
 राजर्षि हुआ । महासुर च द्रावनाशनन जानाक
 नामक प्रख्यात राजा होकर जन्म लिया ।
 हे कुरुवशश्रेष्ठ ! दानवश्रेष्ठ दार्घाजङ्घ काशी-
 राज नामक प्रसिद्ध राजा हुआ । चन्द्र-सूर्यके
 मधनहारा जाग्रहासाहकासे प्रसव किया गया था,
 उस ग्रहन क्रोध नामक प्रसिद्ध भूप होकर जन्म
 लिया था दनायुके चार पुत्रोंमें बड़ा पुत्र असुर
 तेजस्वी विचर वसुमित्र नामक राजा हुआ ।
 हे नराधप ! उसके दूसरे पुत्र महासुरने पाण्डव
 देशमें सुप्रसिद्ध राजा होकर जन्म लिया । असु-
 रोत्तम प्रशंसित बलोन पाण्डुमत्स्यक नामक

भूप ज्ञा । हे राजन् ! महासुर प्रख्यात
वृत्तने मणिमाल नामक राजर्षि होकर जन्म
लिया । उसका छोटा भाई असुर क्रोधहन्ता
दण्ड नामक क्षितितलमें प्रसिद्ध राजा ज्ञा ।
क्रोधवर्द्धन नामक दूसरा असुर दण्डधार नामक
प्रख्यात भूप ज्ञा । हे राजसिंह ! सिंहसमान
विक्रमी आठ कालियोंमेंसे बड़ा महासुर जय-
त्सेन मगध देशका अधिपति ज्ञा । देवराजके
समान श्रीमान दूसरा असुर अपराजित नामक
महातेजा तीसरे महासुरने अति बलवन्त निप-
धाधिपति होकर जन्म लिया उनमेंसे चौथे असु-
रने श्रीमान नाम प्रसिद्ध राजर्षि होकर
जन्म लिया । उनमें अष्ट पांचवें महासुरने
शत्रु मथनेहारा महौजा नामसे प्रख्यात होकर
जन्म लिया । उनमेंसे छठवां मतिमान् नामक
महासुर क्षितिमण्डलमें प्रख्यात राजर्षिसत्तम
अभीरु नामसे अवतीर्ण ज्ञा । उनके सातवें
असुरराजने समुद्रसेन नामसे समुद्रतक धरतीमें
प्रख्यात धर्मार्थतत्त्व जाननेवाले नरेश होकर जन्म
लिया । हे नराधिप ! कालेश्रोंमेंसे आठवां
असुर बृहत् नामक सर्वभूतोंके हित करनेवाला
राजा ज्ञा । हे राजन् ! दानवोंमें सुवर्णके
पर्वतवत् महाबली प्रसिद्ध कुक्षि पावन्तीय
नामक प्रसिद्ध क्षितीश ज्ञा । हे राजन् ।
अतिवीर्यवान् महासुर श्रीमान् क्रथनने पृथ्वीपर
सूर्य्याक्ष नामक प्रसिद्ध क्षितिपति होकर जन्म
लिया । असुरोंमें श्रीमान् महासुर सूर्य्यने सर्व
भूतोंमें अष्ट बाह्लीकराज दरद होकर जन्म
लिया । हे राजन् ! क्रोधवश नामक जिन
गणोंकी कथा कह चुका हूँ, उन्होंने धरतीमें
सूरवीर पृथ्वीनाथ होकर जन्म लिया । मद्रक,
कर्णवेष्ट, सिद्धार्थ, कीटक, सुवीर, सुबाहु, महा-
वीर बाह्लीक, क्रथ, विचित्र, सुरथ, भूमिपति
श्रीमान् नील, चीरवासा, भूमिपाल, दन्तवक्र,
दुर्जन, नृपसिंह स्कन्ही, आषाढ़, वायुवेग, भूरि-
तेजा, एकलव्य, सुमित्र, वाटधान, गीमुख, कार्ष्णक-

गण, चैमधूर्ति, श्रुतायुः, उदह, वृहत्सेन,
अग्रतीर्थ, कलिङ्गराज, कुहर, प्रशंसित मतिमान्
और मनुजेश ईश्वर, यह सब महाभाग अति
कीर्त्तिमान् मतिमान् महाबली वीरोंमें अष्ट
राजगण क्रोधवश गणोंके अवतार हैं ।

दानवांगे प्रख्यात महाबली कालनेमी, ल-
सेन पुत्र बलवान् प्रशंसित कंसके स्वल्पमें अ-
तीर्ण ज्ञा । देवराजवत् देवक गन्धर्वपति
नामक प्रधान नरेश होकर धरतीमें अवतीर्ण
ज्ञे । हे भारत ! अति कीर्त्तिमान् देवर्षि
वृहत्सतिजीके अंशसे विनायोनिके उपजे हुए
भरद्वाज पुत्र द्रोणउत्पन्न ज्ञे । हे भूपवैद्य !
जी सम्पूर्ण अस्त्र चलानेमें दक्ष ; प्रधात
चापधारी, अति कीर्त्तिमान् और महा-
तेजस्वी है ; वेदज्ञगण जिनका धनुर्वेद आ
वेदमें पण्डित, आश्वेय कार्थेकारी और वि-
कुलके बढ़ानेवाले करके कहा करते हैं, वे
नरअष्ट द्रोणन वृहत्सतिजीके अंशसे जन्म
लिया । महादेव, अन्तक, काम और क्रोध
एक हीनेसे उन चारोंके अंशसे शत्रुपक्षनाश
शूरवीर, शत्रुमथनेहारे पद्मपताक्ष, आत वीर
वान् अश्वत्थामा उत्पन्न ज्ञे । वांशष्टके दक्ष
और इन्द्रके नियोगके कारण, अष्टवमुखा
शान्तनु के वीर्य और गंगाजीके गर्भ
जन्म लिया ; उनमें भीष्म सबोंसे छोटे है ; वह
मतिमान्, वेदज्ञ, सहक्ता, शत्रुकुलनाशी और
कौरवोंके ढाढ़स देनेवाले थे ; सर्व अस्त्र
व्यवहारमें दक्ष महातेजा यह महात्मा जमदग्नि
के पुत्र महानुभाव, भार्गव, परशुरामसे लड़े थे ।
हे राजन् ! आते पौरुषयुक्त ब्रह्मर्षि कृप सूर्य्य
अंशसे पृथ्वीमें अवतीर्ण ज्ञे । हे राजन् द्रुपद
अंशसे शत्रुपीड़क महारथी शकुनिने जन्म लि-
या ; वृष्णिवशअष्ट शत्रुमथनेहारे सत्यवीर
सात्यकि मरुद्गणसे उत्पन्न ज्ञे थे । हे द्रुप !
अस्त्रधारियोंमें अष्ट राजर्षि द्रुपद उन्ही देवर्षि
भूलोकमें अवतीर्ण ज्ञे थे । हे राजन् ! अश्व

म कर्म करने वाले, क्षत्रियकुलमें अष्ट भूपाल
तत्त्वभी उन्ही देवोंसे उत्पन्न हुए । विपक्ष
राज्यकी पीड़ा पड़ने वाले, शत्रुमथनेहारे
नरेश विराटभी उन्ही मरुद्गणके अंशसे अवतीर्ण
हूँ थे । अरिष्टाके पुत्र प्रख्यात गन्धर्वनाथ
हंसने कृष्णद्वैपायननन्दन कुरुवंश बढ़ानेवाले
धृतराष्ट्रके स्वरूपमें जन्म लिया । वह दीर्घमुख
महातेजस्वी बुद्धिमान नरेश माताके दोष और
शत्रुके क्रोधसे जन्मसे अन्धे हुए थे । उनके
और एक भाई थे, उनका नाम पाण्डु था ; वह
सत्यधर्ममें रत, शुद्धाचारी महा सत्त्वयुक्त और
महाबली थे । पुत्रवान् पुरुषोंमें प्रधान
जो अत्रिके पुत्र महाभाग धर्म हैं, अति
बुद्धिमान महामति विदुर उन धर्मके अवतार
होकर उत्पन्न हुए थे । हे पृथ्वीपते ! जो
कलिपुरुष सर्वोंका द्वेष करनेवाला तथा
भूमण्डलमें सर्वनाशका कारण हुआ है और
जिस मन्दचित्तने भूतनाशी बड़े भारी
विदेशके अग्निको प्रज्वलित किया था, वह
गुरुकुलमें कलङ्क लगानेवाला मन्दमति दुर्यो-
धन वालिके अंशसे उत्पन्न हुआ । पौल-
स्त्योंने दुर्योधनके भाई बनकर मानवयोनिमें
जन्म लिया । हे भरतकुलश्रेष्ठ ! दुःशासनादि
कुटिल कार्य में लगे हुए सौ भाइयोंमेंसे दुर्मुख
दुःसह आदि जिनके नाम कहे गये और जिनके
वही कहे गये हैं तथा धृतराष्ट्रके वैश्यापुत्र युयुत्सु
नामका सौसे अधिक जो और एक पुत्र था,
वही सभी राजसोके अंश और दुर्योधनके
अहायक थे ।

जनमेजय बोले, कि हे विभी ! धृतराष्ट्रके
पुत्रोंके नाम बड़े छोटेके क्रमसे आद्योपान्त
क्षत्रिय । ओवैशम्पायनजी बोले, कि हे राजन् ।
दुर्योधन युयुत्सु, दुःशासन, दुःसह, दुःशल
दुर्मुख, विविंशति, विकर्ण जलसन्ध, सुलोचन,
वन्द, अनुविन्द, दुर्धर्ष सुबाहु, दुष्प्रपर्ण,
दुर्भर्षण, दुर्मुख, दुष्कार्य कार्य, चित्र उपचित्र,

चित्राक्ष, चारु, चित्राङ्गद, दुर्भेद, दुष्प्रधर्ष,
विविक्त, विकट सम, ऊर्णनाभ, सुनाभ, नन्द,
उपनन्दक, सेनापति, सुषेन, कुण्डीदर, महीदर,
चित्रबाहु चित्रवर्मा, सुवर्मा, दुर्बिलोचन,
अयोबाहु, महाबाहु चित्रचाप, सुकुण्डल,
भीमवेग, भीमबल, बलाकी बलवर्द्धन,
उग्रायुध, भीमसर, कणकायुः, दृढायुध
दृढवर्मा, दृढक्षत्र, समकोर्ति, अनूदर, जरासन्ध,
दृढसन्ध, सत्यसन्ध, सहस्रवाक्, उग्रश्रवा, उग्र-
सेन, सेनानि, दुष्पराजय, अपराजित, पण्डितक
विशालाक्ष, दुराधर, दृढहस्त, सुहस्त, वातवेग
सुवर्चा, आदित्यकेतु, वद्वाशी, नागदत्त, अग्रयायी
निषङ्गो, कवची, पाशी, दण्डधार, धनुर्ग्रह, उग्र-
भीमरथ, वीर, वीरबाहु, अलोलुप, अभय,
रौद्रकर्मा, दृढरथ, अनाष्ट, कुण्डभेदी, विरावी,
दीर्घलोचन, दीर्घबाहु, महाबाहु, व्युढोरु,
कनकध्वज, कुण्डाशी, और वीरज धृतराष्ट्रके
यह सौ पुत्र थे ; इनके सिवाय दुःशला नाम्नी
एक कन्या और युयुत्सु नामक वैश्यागर्भसे जन्मा
हुआ एक पुत्र था । धृतराष्ट्रके पुत्रोंके नाम
बड़े छोटेके क्रमसे कहे गये ; यह सभी महा-
रथी, शूर, युद्धमें दक्ष, वेदज्ञ, राजनीतिक
और युद्धविद्यामें पण्डित पण्डित थे । हे मही-
पते ! इनमें सर्वोंकी विवाहसे योग्य स्त्री
मिली थीं । हे राजन् ! कौरव धृतराष्ट्रने
शकुनिके मतमें सिन्धुराज, जयद्रथको उचित
समयमें दुःशला नाम्नी कन्यादान की थी । हे
धरतीनाथ ! धर्मके अंशसे युधिष्ठिर पवनके
अंशसे भीम, देवराजके अंशसे अर्जुन
और दोनों अश्विनीकुमारोंके अंशसे अत-
क्षपवान् सर्वभूतोंमें मनोहर सर्वप्रकारसे
सुन्दर नकुल सहदेवने जन्म लिया था । वच्चा
नामक प्रख्यात प्रतापी सामके पुत्र अर्जुननन्दन
महाकीर्तिमान् आभसन्धुके स्वरूपमें अवतीर्ण
हूँ थे । हे राजन् ! उनके अवतार होनेके
कालमें चन्द्रने देवोंसे कहा था, कि मैं प्राणसे

भी प्यारे पुत्रकी भूमण्डलमें भेज नहीं सकता पृथ्वीमें असुरवधरूपी सुरकाय्य हमारा अवश्यमेव कर्तव्य होगया है, इसके विरोधी कभी नहीं हो सकते, अतएव इस नियममें वञ्चाकों भेजता हूँ, कि वह भूतलमें अवतीर्ण होकर वज्रकाल नहीं रहेंगे, शीघ्रही लौट आवेंगे । नारायणके साथी नरदेव इन्द्रके वीर्यसे प्रसिद्ध पाण्डववन्दन प्रतापी अर्जुनके स्वरूपमें अवतीर्ण होंगे, हे अमरवन्द । मेरे पुत्र धरतीतलमें उन अर्जुनके वीर्यसे जन्म लेकर वाले-पनहीमें महारथी होकरके, सोलह वर्ष रहेंगे जब इनकी सोलह वर्षकी अवस्था होगी, तब वह भारी लड़ाई मचेगी, जिनमें तुम्हारे अंश-वाले अगणित वीरोंको गिरावेंगे । हे सुरो ! लड़ाईके समय शतुलोग चक्रवत् बूझ रचकर लड़ेंगे, मेरे वह महाभुज पुत्र बालक होने परभी नरनारायणके सिवाय ओरोंके भेदनके अयोग्य उस व्युहमें घुसकर बिना भय घूमते हुए उन सबोंको विमुखकर महारथी वीरोंको मथन करके दिनके चौथे भागके बीचमें यमराजके घरमें भेजेगी । अनन्तर दिन धोतने पर एकत्र मिले हुए अनेक बहु महारथी वीरोंसे घार युद्ध कर मेरे महाभुज पुत्र मेरे समीप चले आवेंगे, वह एक वंशरक्षक पुत्र उत्पन्न करेंगे । वह पुत्र नष्ट होत हुआ भरतकुलका वंशरक्षक होगा । सम्पूर्ण सुरोंने चन्द्रको यह बात सुनकर “तथास्तु” कहके उनकी पूजा की । हे राजन् ! आपके पितामहकी यह जन्म-कथा कह सुनाई ।

महारथी वृष्टद्युम्न अग्निके अंशसे उत्पन्न हुए थे । हे राजन् ! जो शिखण्डी पहिले कन्या थे, उ हीने राक्षसके अंशसे जन्म लिया था । हे भरतवंश श्रेष्ठ ! विश्वदेव गणने द्रौपदीके पांच पुत्र होकर जन्म लिया था, उनके नाम प्रतिविम्ब, सौम, युतकीर्ति, शतानीक और युतसेन हैं । यदुकुलमें श्रेष्ठ शूर वसुदेवके

पिता थे । उनकी पृथा नाम एक कन्या के रूपवती थी, कि उसके समान भूमण्डलमें कोई उमरी स्त्री नहीं थी । वीर्यवान् शूरने अपार आशापर अपने फुफेरे भाई कान्तीभोजन पहिले अङ्गीकार किया था । कि मेरी पहिले सन्तान होने पर तुमको दे दूंगा, इस अङ्गीकार अनुसार पहिले गर्भमें उत्पन्न हुई उस कन्या उनको दे दिया । पृथा पिण्डगृहमें ब्राह्मण सेवा और अतिथियोंके सत्कारमें लगी रह गयी । एक समय उसने जितेन्द्रिय व्रतों अति स्तब्धस्वभावी, धर्मके रहस्यज्ञ ब्राह्म ऋषि दुर्वासाको सर्वप्रकारसे सेवा करके स्नान किया था । भगवान् दुर्वासाजोने प्रसन्न हो उसे विधिपूर्वक वशीकरण मन्त्र दिया और कहा, कि हे सुभगे ! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ देवि ! तुम इस मन्त्रसे जिन जिन देवताओं को बुलाओगी, उनकी कृपासे तुम्हें पुत्र उत्पन्न होगा । यशस्विनी वाला पृथा दुर्वासाकी आज्ञा वात सुन आश्चर्यवश होकर कन्यावस्त्रों सूर्यदेवको बुलाया । तब जगकी प्रकाश करने वाले भगवान् तपनने उनका गर्भाधान कि उस देवगर्भ सदृश औमान गर्भसे सब शस्त्रों में श्रेष्ठ, सूर्य सदृश द्युतमान्, मनों सर्वज्ञ सुशीभित, कण्डल-कवच-धारो एक उत्पन्न हुआ । कुन्तोने वसुकुलके भयसे शशवान् प्रसव भये हुए कुमारको कुण्डलमें बाँधा । राधाके पति अधिरथ ने एक यशशाली रथ बनानेवालेने जलमें डूँडते हुए उस कुमारको उठाकर राधाका पुत्र दे दिया । आगे उस स्त्री और पुरुष दोनों उस लड़केको वसुपति नाम रखा । वह तब सर्वत्र प्रकाशित हुआ था । वसुपति ज्यों बढ़ने लगे, त्यों त्यों बलसे सर्व विद्याओंमें परिणत और श्रेष्ठ जयशील हुए तथा सम्पूर्ण वेदाङ्ग सीख लिये । महात्मा सत्य पराक्रमी धीमान् श्रेष्ठ प्रिय जब पाठकी दशमें थे, तभीसे ब्राह्मणों

नका कुछभी अदेय नहीं रहा । एक समय तभावन इन्द्रजीने अपने पूत अर्जुनके उपरके निमित्त ब्राह्मणका वैश लेकर वीरवर सुप्रिणसे उनके शरीरमें साथ उत्पन्न हुए कवच और दोनों कुण्डलोंकी भिन्ना मांगी ; वसुप्रिणने एने अङ्गकी काटकर कवच और दोनों कुण्डलोंकी निकाल कर दे दिया । तब देवराज न्द्रने अचरज मानकर उनको एक पुरुषके श करनेवाली एक शक्ति दी और बोले, कि दुर्द्वर्ष । तुम सुर असुर, मनुष्य, गन्धर्व, राक्षस और राक्षस इनमें चाहे जिस किसीपर यह शक्ति चलाओगे, वह एक पुरुष निश्चयही सम्राजका पाहुना बनेगा । वह राधापुत्र हिले वसुप्रिण नामसे भूमण्डलमें प्रख्यात थे ; मागे अपने अङ्गकी काटनेसे उनका नाम कर्ण हुआ । पृथाके प्रथम पत्र, जिन्होंने बड़े यशो-मान्त वीर तथा कवच-कुण्डल-धारी होकर जन्म लिया था, वह बिना बाधा कवचकी छोड़ करके कर्ण नामसे प्रख्यात हुए । हे राजन् । कर्ण व्रतकुलमें रहकर वहाँ बड़े थे । वह शत्रुकुलकी शत्रुत्वानेवाली नरोंमें अष्ट सर्वशास्त्रोंमें पण्डित कर्णकी दूर्योधनके मित्र और मन्त्री थे । जिन्होंने हीने दिननाथके अंशसे जन्म लिया था ।

जो सनातन देवोंके देव श्रीनारायण हैं, उनके अंशसे मर्त्यलोकमें प्रतापी वासुदेवजी अवतीर्ण हुए । महाबली बलदेवजीने शेष-भागके अंशसे जन्म लिया । हे राजन । महौजा अनन्तत्मार प्रद्युम्नके स्वरूपमें अवतीर्ण हुए । इस प्रकार चार देवोंने वसुदेवके वंशमें अवतारनेवाले अगणित नरोंके स्वरूपमें जन्म लिया । हे राजन । मैंने जिन सब अप्सरा-ओंकी कथा कही है, वे सब देवराजकी आज्ञासे मतलपर मोलच-रुद्ध देवीके स्वरूपमें प्रगट होकर वासुदेवकी पत्नी बनीं । औलक्ष्मीजी भद्रग भीष्मकुलमें जन्म लेकर मती रुक्मिणीके स्वरूपमें भूमण्डलमें प्रकाश हुईं । द्रुपद

राजकुमारी द्रौपदी शचीके अंशसे वेदीमेंसे अवतीर्ण हुई थी । वह निन्दाके अयोग्य रूपवती द्रौपदी नतो बड़ी लम्बी और न बड़ी नाटी थी ; वह काले धूधराले केशोंसे सुहावनी, पद्म गन्धभरी पद्म समान प्रशस्त नेत्रवती सुश्रीणी सर्वलक्ष्णोंसे सुहासिनो वैदूर्यमणिसे और सदा सिंहरूपी पांच पुरुषोंकी चित्त मोहिनी थी । सिद्धि और धृति इन दो देवियोंने पाँचों पाण्डवोंकी माता कुन्ती और माद्रीके स्वरूपमें जन्म लिया था । मति देवीने सुबलकन्या गान्धारीके स्वरूपमें जन्म लिया । हे राजन् । सुर, असुर, अप्सरा, गन्धर्व, राक्षसादियोंकी अंशसे अवतीर्ण होने की कथा कह चुका । जो सब ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य पृथ्वीमें जन्म लेकर युद्धमें जयके अयोग्य राजा बने थे और जिन सब महात्माओंने बड़े भारी यदुकुलमें जन्म लिया था, उन सबोंकी कथाभी कह चुका, इसके पढ़नेसे धन, यश, पत्र, आयु और जय मिलता है । हेप छोड़कर यह अंशवतारणकी कथा सुनना । ज्ञानीलोग, देव, गन्धर्व, राक्षसोंके अंशवतारणकी कथा सुननेसे जन्म मृत्यु-के वृत्तान्तसे विदित होकर विपत्तके समय शोकादिके वशमें नहीं होते ।

आदिपर्वमें सड़सठवां अध्याय समाप्त ।

जनमेजय बोले, कि हे ब्रह्मन् । आपसे देव, दानव, राक्षस, गन्धर्व, और अप्सरोंके अंशवतारणकी कथा सुन चुका । हे विप्र । अब इन ब्राह्मणोंके सम्मुख आप प्रथमसे कुरु-वंशकी कथा कहिये, मुझे सुननेकी बड़ी इच्छा हो रही है ।

श्रीनैशम्पायनजी बोले, कि हे भरतर्षभ । दुष्प्रन्त नामक वीर्यवान् भूप कौरवोंके आदि पुरुष थे । वह चार समुद्रोंतक धरती रक्षते थे और इस भूमण्डलमें जितने पदार्थ उत्पन्न होते हैं उनका चौथा अंश कर्मे लेंते थे ।

वह शत्रु मथनेहारे जयशील मानवनाथ, ब्राह्मण और क्षत्रियोंसे भरे रत्नोंकी खानि; समुद्रोंसे घेरे स्नेच्छदेशतक सम्पूर्ण देशोंकी भोग करते थे। उनके शासनके कालमें वर्णसङ्घर नहीं थे, प्रजाको खेतीकरके अनाज उपजाना नहीं पड़ता था और कोई पाप कर्ममें हाथ नहीं डालता था। हे नरव्याघ्र ! दुष्मन्त जब नगरोंके स्वामी थे, तब सबलोग धर्ममें नियुक्त रहकर धर्म और अर्थ उपार्जन करते थे, चोरीका भय, रोगका भय और क्षधाका भय कुछभी नहीं था। उनदिनों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र निज निज धर्ममें लगे रहते थे, वृष्टि आदिके निमित्त किसी को दैवीकर्म नहीं करना पड़ता था। उस भूपालके आश्रयमें सब लोग निर्भय होकर रहते थे। उनदिनों बादल उचित समयमें जल वृष्टि करते थे, शस्य रसयुक्त होते थे और धरती पशु और भांति भांतिके रत्नोंसे भरी थी। उस कालमें ब्राह्मण गण वेद पठनादि निज निज कार्यमें नियुक्त रहते थे और कभी झूठ नहीं बोलते थे। बज्रसे भी कठिन देहधारी विचित्र महावीर्यवान वह युवा दुष्मन्त निज भुजबलसे बनीपवन सहित मन्दरपर्वतको, उखाड़कर वहन कर सकते थे। वह प्रक्षेप, विक्षेप, परिक्षेप और अभिक्षेप इन चारों प्रकारके गदायुद्धमें दक्ष और हाथी की पीठ और घोड़ेकी पीठपर चढ़नेमें बड़े निपुण थे। वह बलमें विष्णुवत तेजमें सूर्यसदृश गाम्भीर्यमें समुद्र समान और सहन-गुणमें धरती की भांति थे। पुरवासी और दूसरी प्रजाओंके उनपर प्रसन्न रहनेके कारण वह साधारण जनोके प्रेमपात्र हुए थे। वह महीपाल दुष्मन्त आनन्द पूर्वक धर्मानुसार प्रजाओंका शासन किया करते थे।

आदिपर्वके शकुन्तलीपाख्यानमें अढ़-

सटवां अध्याय समाप्त ।

जनमेजय बोले, कि हे भगवन् ! भरतकी उत्पत्ति और चरित्र तथा जन्म-कथा यथावत् सुननेकी इच्छा होती है श्रीष्ठ मतिमान् ! वीर दुष्मन्तने जिसप्रकार शकुन्तलाको लाभ किया था और उस सिंहासनी पुरुषने जो जो कार्य किये थे, विस्तृत रूपसे उनकी कथा कहिये, मुझको आद्योपान्त सुननेकी अभिलाषा हुई है।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि एक समय व महाभुज दुष्मन्त अगणित सेना और अनेक वाह साय लेकर मृगयाके लिये घने वनमें गये। अति सुन्दर चतुरङ्गिणी सेना और सैन्य हाथी घोड़े उनकी घेरे हुए चले। युद्धविद दक्ष सैकड़ोंवीर खड्ग, शक्ति, गदा, मृग प्रास और तोमरादि अस्त्र लेकर उनके साथ चलने लगे। उस पृथ्वीनाथके चलते स योधों की सिंह समान गरजना, शंख, शं नगाड़ों की ध्वनि, रथोंके पहियोंकी आह, हस्तियों की चिह्वाड़ घोड़ोंकी हिनहिना और भांति भांतिके अस्त्र और वैष से सजी सेनाकी ललकार—यह सब अप्रगट मिलाकर केवल किलकिलाहट होने लगी। नगरकी नारियां अच्छे अच्छे गहनोंकी श्रियों पर चढ़कर शूर, यशोवन्त और अराजसभायुक्त उक्त राजाको देखने लगीं स्त्रियां इन्द्रके समान शत्रुनाशने हारे, खदेड़नेमें हस्तीवत उस पृथ्वीनाथ को निहा कर वज्रधारी इन्द्र समझने लगीं और कहकर उनका स्तव करने लगीं, कि यह पुराणोंमें श्रेष्ठजन रणभूमिमें वसुवत् पराक्रमी इनके भुजबलसे शत्रु लय पाते हैं। रमणीय प्रेमसे यह कहती हुई उनके शिरपर फल वर्षाने लगीं। दुष्मन्त सब स्थानोंमें चला और ब्राह्मणोंसे प्रशंसित होकर मृगयाके कि अति प्रसन्नचित्तसे वनकी पधारे। ब्राह्म क्षत्रिय, वैश्य और सद्रलोग मत्तहस्ती समान

हाथली देवराजकी भांति उस पृथ्वीनाथके
चले और चारों ओरसे अशीस और जय-
कार करते हुए उनको देखने लगे । पुर-
वासी और जनपदवासी इसप्रकार बड़ी दूरतक
गिरतीपति के पीछे चलकर उनकी आज्ञासे
केंद्रित आये । वह नरनाथ सुवर्णके रंगसे सजी
रथमण्डलीसे महीमण्डलकी और रथके
हियोंकी घरघराहटसे मिले हुए कोलाहलसे
आकाशमण्डलकी भरने लगे । धीमान् धरती-
थ दुष्मन्तने जाते समय बेल, खैर, मदार,
आदि नाना वृक्षोंसे घेरा हुआ, पहाड़ोंसे
गरे हुए पत्थरोंसे रूखा, जल और नरोंसे
हित, वज्रयोजन तक फैला हुआ और मृग,
संघों तथा दूसरे भयानक वनैले जीवोंसे भरा
आ नन्दनवनके समान एक वन देखा । नरेश
कर और वाहनोंसे उस वनको हिलोड़कर
भंति भंतिके मृगोंकी वेधने लगे और अग-
गत व्याघ्रोंकी लक्षकर वाणोंसे बौंधके धरती-
र गिराया । वह वज्रदूरके मृगोंकी भालोंसे
धने और निकटके हिरणोंकी खड़्गोंसे
गटने लगे और उन अष्ट शक्तिवान् पुरुषने
किसी किसी जन्तुकी शक्तिसे नष्ट किया । गदा
हमें दक्ष अतुल विक्रमी भूपाल तोमर, असि
और गदा चलाते हुए भंति भंतिके वनैले मृग
और पक्षी मारकर घूमने लगे । आश्चर्य
शीर्षशाली राजा और लड़ाई प्रियारी सेनाओंसे
निर्भर भारी वन हिलोड़े जानेसे सब सिंह उस-
की होलकर भागने पर हुए । मृगदल पतिके
लोहनी छेनेपर शोचयुक्त हृदयसे कोलाहल करते
हुए इधर उधर भागने लगे । दलसे विकुड़े
पगा छत्ते मादे होकर जल पीनेके लिये सूखी
दीमें जाकर आशा और चेतसे हाथ धोकर
तिरने लगे । मृगदलके भूख प्यासके मारे
संके मादे होकर धरती पर गिर जाने पर
सूखी सेना पानकर उनकी खाने लगीं ; किसी
कमीने काटकर भाग पैदाकरके उनके मासकी

पकाकर खालिया । उस वनमें कुछ महाबली
मत्तहस्ती अस्त्रों से काटें कूटे जाकर और भय
खाकर सँड़के अगलिभागकी सिकोड़ करके
भागने लगे ; कुछ वनैले हाथी भागनेके कालमें
मलमूल छोड़ते और रक्त गिराते हुए अगणित
लोगोंकी कुचलकर चले । मरे मृगाधिप और
मृगोंसे भरे हुए उस वनमें जलरूपी बादल
और वाणधारा रूपी जलधारासे भरा पूरा हो-
कर अपूर्व शोभा धारण की ।

आदिपर्वके शकुन्तलीपाख्यानमें उन-
सत्तरवां अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि राजा दुष्मन्त
वाहन और सेनाओंके साथ सहस्रों मृगा मार-
कर मृगोंकी पक्षियाते हुये अकेले दूसरे एक
वनमें जावुसे । वह अति बलवन्त होनेपर भी
थकगये और भूख प्यासके मारे विकल हुए ।
आगे उस वनकी पारकर एक बड़ाभारी मैदान
देखा । भूपाल उस निराले मैदानकी छोड़-
कर सुन्दर आश्रमयुक्त चित्तानन्ददायी और
मनोहर दूसरे एक वनमें जा वुसे, देखा, कि
वहां ठण्डी हवा वह रही है, पीछे खिले हुए
फूलोंसे सजे हैं ; और हरी घाससे धरती ढंपी
है ; मीठी बोसी बोलनेवाली पक्षियोंकी ध्वनि,
कीयलोंके कलपि और भींगुरोंकी झङ्कारसे
वनमें शब्द भर रहा है ; वहां बड़ी बड़ी
शाखा और ठण्डी छांहयुक्त वृक्षोंसे चारो दिशा
घिरी हुई है ; उन पेड़ोंके नीचे मधुलीभी
भंवरोके गूजते हुए घूमनेपर अति सुन्दर शोभा
होरही है । उस वनमें फूल और फलोंसे
रहित और कांटोंसे जकड़ा हुआ एकभी पेड़
न था और सबही वृक्ष भंवरोसे भरे हुए थे वड़े
चापधारी दुष्मन्त पक्षियाके कलियोंसे पूर्ण,
फूलोंसे सजेसजाये, मनोहर, सबोसे वादया
और सर्वप्रकार फूलोंसे सुशोभित सुन्दरछांह-
वाले उस वनकी निहारकर उसमें जावुसे ।

तब हवासे डोलते हुए फूलोंके वृक्ष शाखारूपी भुजोंसे वार वार सुन्दर सुन्दर फूल वर्षाने लगे। पीछे फूलरूपी वस्त्रसे और पक्षियों की आकाशतक पड़चती हुई मीठी बोली से सुशोभित होरहे थे। फूलोंके भारसे उन वृक्षोंके नीचे सिर किये नयेपल्लवों पर बैठकर मधुलीभी भौर मीठे स्वरसे गीत गारहे थे। महातेजा दुष्मन्त उस स्थानमें फूलोंमें सजे नाना प्रदेश और हृदयमें सानन्द पड़चाते हुए लता-मण्डपोंको देखकर अति प्रसन्न हुए। एक दूसरीसे मिली हुई शाखा और फूलोंसे सुहावने तथा महेन्द्रकी ध्वजाके समान वृक्षोंसे वह वन सुशोभित होरहा था। वहां सिद्ध चारण, गरुड, किन्नर, वन्दर, और अप्सरा वावलोंकी भांति खेल रहे थे। अनुभवमें सुखदायी, ठण्डी, फूलोंकी रेणु लेजानेवाली, अच्छी गन्धयुक्त हवा द्रधर उधर घूमती हुई मानी खेलनेहीके लिये पोधोंके निकट पड़च रही थी।

राजा ऐसे वज्रगुणयुक्त उड़ती हुई ध्वजाकी नाई, नदी तटसे उत्पन्न सुन्दर वनको देखने लगे। आगे पुण्यशीला, सुखसलिला, अगणित पक्षियोंसे घिरा हुआ और तपोवनकी मन-भावनी मालिनी नदीके पास सनीहर आनन्दित पक्षियोंसे परिपूर्ण, भांति भांतिके वृक्षोंसे ढपा, आहुति चढ़ाई हुई प्रज्वलित अग्निसे सुशोभित निकटहीमें उनके नेत्रोंके सामने एक आश्रम दीख पड़ा। राजन्। श्रीमान् धरती पति दुष्मन्त यति, मुनि और बालखिल्योंसे परिवृत, अनेक अग्निवृक्षोंसे सुशोभित और फूलोंसे सुसज्जित, विस्तृत भारीतटयुक्त तपोवनको देखकर वार वार उसकी प्रशंसा करने लगे और वहाँके चारपायों और मृगोंकी शान्तमूर्तिकी देखकर प्रसन्न हुए। आगे अजेय श्रीमान् दुष्मन्त देवलोकके समान सर्वप्रकारसे सुन्दर उस आश्रमकी ओर चलेकर सर्वजीवोंकी माताके समान विराजमाना पुण्य जलपूर्ण

आश्रमोंमें सुहावनी मालिनी नदीको जो नदी किन्नरोंकी वासभूमि और तथा भालुओंसे सेवा पारङ्गी है; जिसके तट पर चक्रवाचकई खेलते हैं; जिसकी फूलकी समान फेन बहता है; जिसका वेदपाठकी ध्वनिसे सुशोभित है, और मत्तहस्ती सिंह और बड़े बड़े सर्प विचरते हैं, उस नदीतटमें महात्मा कण्वका आश्रम विराजमान है। महर्षिओंसे वसा हुआ आश्रमको पालनेवाला उस नदीकी देवी पृथ्वीनाथने उसमें प्रवेश करना चाहा। राजा जीसे शोभायमान नरनारायण जीके आश्रमोंमें भांति रमणीय तट और द्वीपोंसे सुहावनी मालिनी नदीसे सजे हुए, उन्नत मोरके शब्दसे गूँजते हुए चैत्ररथ सदृश उस तट पर प्रवेशकर भूपालने अतिगुणाशाली महर्षि तैजोपूर्ण तपोधन कश्यपनन्दन महर्षि का दर्शन करना चाहा। तब जायो, घड़े पैदलोंसे परिपूर्ण सेनाकी वनके द्वारपर जाकर बोली, सेनाओं। मैं रजोगुणके तपोधन मुनिवर कण्वके दर्शन को जाता हूँ मेरे लौटनेके काल तक तुम मेरे लिये ठहरी रहो।

अनन्तर मानवेन्द्र नन्दनवन समान तपोवनमें प्रवेशकर भूख-प्यासकी अपार आनन्दरूपी जलमें डूबे। वहाँ और पुरोहितके साथ सम्पूर्ण राजचिह्न लेकर उन अव्यय तपस्या ऋषिकी देखनेके उस सुन्दर आश्रममें जावुसे। आगे उस नदीकी गुणगुणाहटसे गूँजते हुए और भांतिके पक्षियोंसे वसे हुए आश्रमकी लोकके सदृश देखने लगे; वह उस आश्रम अनुष्ठान किये जाते हुए नैतानिक ऋग्वेद दक्ष ब्राह्मणोंके द्वारा पदोंके उच्चारण जाते हुए ऋग्वेदके मन्त्र सुनने का कल्प सूत्रादि यज्ञविद्याओंमें पण्डित

र सदा व्रतशील ऋषियोंसे गाये जाते हुए
 मीठे सामगीतसे और अच्छे नियम युक्त ब्राह्म-
 णोंसे भारुण्डसामगीतसे वह आश्रम सुशोभित
 था । सामवेदके अनुसार पवित्र यज्ञमें साम-
 वेद गानमें दक्ष अथर्ववेदमें पण्डित मुनि लोग
 बैठे और क्रमयुक्त संहिताके पाठ कर रहे थे ।
 अन्तरे द्विजोंके यथास्थानोच्चारित शब्दसे संस्कृत
 ऋषियोंमें कथा कहनेके कारण आश्रम शब्दयुक्त
 होनाकर दूसरे ब्रह्मलोक की भांति शोभा पा
 रहा था । यज्ञविद् क्रम-शिष्टा में पण्डित,
 गायके तत्त्व जाननेवाले, आत्मविज्ञानशाली
 उपारग, नाना वाद्योंके जोड़ने और मिला-
 में निपुण, ब्रह्मोपासनरूपी विशेष कार्यमें
 च, सोचधर्मीशिल, मत ठहराने-शक्ता दूर
 रने और सिद्धान्त करनेमें ज्ञानी, कुन्द शब्द
 और प्राचीन शास्त्रोंका ज्ञान रखनेवाले, काल-
 नयुक्त द्रव्यगुण कर्मज्ञ, कार्यकारण वेत्ता,
 ही तथा बन्दरोंको बोली समझनेमें समर्थ
 स्तोत्र ग्रन्थ समाश्रित और नानाशास्त्रोंमें
 ज्ञेयोंसे उच्चारित जाते हुए और प्रधान प्रधान
 ऋषीकांकी चारों ओरसे बजते हुए शब्द भूपा-
 से सुने गये । शत्रुनाशी नरेशने स्थान स्थान-
 ऐसे व्रतशील नियमयुक्त जपहोम करनेवाले
 गणों को देखा । महोपति दुष्मन्तने यत्नसे
 गये हुए विचित्र मनोहर आसनों को देख-
 र चित्तमें अचरज माना और ब्राह्मणोंके
 नाये हुए देवस्थानोंका संस्कार देख देख कर
 अपने को ब्रह्मलोकमें टुका हुआ जाना । ऋषि
 कण्ठके तपसे रक्षित तपोगुण और वनकी
 भायुक्त उस परम मङ्गलमय आश्रमको
 खकर देखनेको लालसा न भरने पर नृपञ्च
 मन्त नचुष्ट न होसके । शत्रुनाशी राजाने
 की ओर पुरोहितों के साथ महाव्रतशील
 पोषण सुनियोसे सर्ववधिर हुए ऋषि काश्यपके
 वह मनोहर गुहस्थानमें प्रवेश किया ।
 शत्रुनाशी राजाने सत्तरवां अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर महा-
 वाङ्मदुष्मन्त मन्त्री और पुरोहितको बिदा
 करके अकेले चलकर ऋषि कण्ठके आश्रममें
 जा पहुंचे, पर वहां लन संयत व्रतयुक्त मह-
 षि की न देखकर आश्रमको सूना पाकर चिन्ता
 कर यह बात कही कि “यहां कौन है,” इससे
 आश्रम प्रतिध्वनित हुआ । अनन्तर उनकी
 ध्वनिको सुन साक्षात् लक्ष्मीकी भांति रूपवती
 तपस्विनीका वेषधारण किये एक कन्या उस
 आश्रमसे निकल आई । उस कृष्णाक्षी नारोने
 राजर्षि दुष्मन्तको देखतेही उसीक्षण अभ्यर्थना
 करके स्वागत पूछा । हे राजन् । कन्याने
 राजाको आसन, पाद और अर्घ्यसे पूजकर
 स्वास्थ्य और कुशल पूछा, अनन्तर लज्जायुक्त
 मुखसे कहा, कि कहिये, क्या कार्य करना
 होगा । राजा विधिपूर्वक पूजे जाकर उस
 अनिन्दिताङ्गी, मधुरभाषिणी की ओर देख-
 कर बोले, कि भद्रे । मैं महाभाग ऋषि
 कण्ठकी उपासना करने आया हूं, हे शोभने ।
 बोली कि वे भगवान् कहा गये हैं ।
 शकुन्तला बोली भगवान् पिता फल बटोरनेको
 आश्रमसे निकले हैं । आप क्षणभर ठहरिये
 उनको लौटे हुए पावेंगे ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि राजा ऋषिका
 न पाकर शकुन्तलाको सुन्दरी, और रूप-
 यौवनवती देखकर बोले, कि री सुश्रीणि ।
 तुम कौन ? किसकी बेटी हो ? री शोभने !
 तुम ऐसी रूपगुणवती होकर क्यों इस वनमें
 आई हो ? और कहासे आई ? रीशुभे ! तुमने
 दर्शन मात्रसे मेरा मन हर लिया है, री
 शोभने ! बोली मैं तुम्हारा परिचय लेना
 चाहता हूं । आश्रममें राजाके इस प्रकार
 कहने पर साधुश्रीजा शकुन्तलाने भीठे अचर-
 युक्त बातोंमें कहा, कि हे दुष्मन्त ! मैं दृढिमान्
 धर्मज्ञ महाका कण्ठकी बेटी हूं । दुष्मन्त
 बोले, कि लोकप्रजित महाभाग भगवान्

ऊर्ध्वरेता है, यदि धर्माभी निज चरित्रसे टल, सके, पर तौभी संयत व्रतशाल महर्षि कदापि निज वृत्तसे नहीं टलते हैं, अतएव री सुन्दरी ! सुभी बड़ी शङ्का होती है, कि तुम क्योंकर उनकी कन्या हुई, तुम मेरी यह शङ्का दूर करो ।

शकुन्तला बोली, कि हे राजन् ! यह जिस प्रकार हुआ है, मैंने जैसा सुना है और मैं जैसे महर्षि की बेटो हुई हूं, सब कहती हूं, सुनिये किसी समय एक ऋषिने अकार पिता कण्वसे मेरा जन्म-वृत्तान्त पूछा, था, उस समय भगवान् ने उनसे जैसा कहा था, कि हे पृथ्वी-नाथ । वह सुनिये । कण्वजी कहने लगे, कि पूर्वकालमें ऋषि विश्वामित्रने बड़ी तपस्या आरम्भ की थी; इससे देवराज बड़े चिन्तायुक्त और भयभीत होकर सोचने लगे, कि यह ऋषि तपस्याके बलसे बड़े तेजस्वी हुए हैं, सो सुभको पदसे च्युत कर सकते हैं, ऐसी चिन्ताकर मेनका नामक अप्सरासे बोली, कि मेनका । तुम दिव्य गुणोंसे अप्सरोमें श्रेष्ठ हो । कल्याणि ! तुम मेरा हित करो, मैं जो कहता हूँ, सुनो । मेनका । आदित्यवत तेजस्वी महा तपस्वी विश्वामित्रकी कठोर तपस्यासे मेरा हृदय कांप रहा है, वह संयतात्मा दुर्धर्ष क्रमशः कठोरतर तपस्यामें प्रवृत्त हो रहे हैं । री सुमयमे । मैं तुमपर भार देता हूँ, तुम जाकर उनको लुभाओ, कि वह सुभको पदसे निकाल न सकें, उनकी तपस्यामें विघ्न डालनेकी यत्नवती हो, कि मैं बिना विघ्न पदमें बना रह सकूँ । री सुन्दरी ! तुम रूप यौवनकी शोभा, हाव, भावादि और लाजसे मिली हुई बातोंसे सुनिको लुभाकर तपस्यासे निवृत्त करो । मेनका बोली, कि भगवा । विश्वामित्र महा तेजस्वी, महा तपस्वी और बड़े क्रोधो हैं; आप भी उनको जानते हैं; जिन महात्माके तेज, तपस्या और क्रोधसे आप देवराज होकरके भी भय खा रहे हैं, उनसे

क्यों नहीं भयभीत होजंगी ? कि महात्मा वशिष्ठके प्यारे पुत्रोंकी सृष्टिकी अनुभव करायी थी, जो पहिले क्षत्रिय-जन्म लेकर पीर बलमें ब्राह्मण हुए हैं; कि ने तानादिके निमित्त एक बहुजलभरी समयी अपार नदी बहाई है; व्याधक्षी नामक धर्मात्मा राजर्षिने दुर्भिक्षके काल उक्त नदीके तटपर जिन महात्माके परिवार पाला पोपा था; दुर्भिक्ष कालके अन्त पर जिस प्रभुने फिर आयुष्ममें लौटकर कौशिकी नदीका "पारा" यह नाम रखा और प्रसन्न होकर स्वयं उन मतङ्ग नामक ऋषिका याजन कार्य किया था, हे न आप भी जिनके भयसे सोमरस पीनेकी गये हैं, जिन्होंने क्रोधित होकर प्रतिज्ञा-पूर्वक रूप एक नक्षत्र-लोक रचा है; जिन्होंने गुरुग्रस्त विशङ्कुको ढाढ़स दिया था, हे प्रभु जिनके कार्य यह सब हैं, मैं उससे बड़ा खाती हूं; ऐसी आज्ञा कीजिये, कि न क्रोधित होकर सुभको भस्म न कर लें, जो तेजसे सम्पूर्ण लोकोंकी जला सकते हैं, पर्वतको चूड़ बना सकते हैं और अति सर्व दिशाओंकी उलट पलट कर सकते हैं, प्रज्वलित अग्नि सदृश तपोराशि जितेन्द्रिय महर्षिको मेरीसी अबलाकी क क्योंकर खू सकती है ? हे सुरेन्द्र ! जिनका मुख प्रज्वलित अग्निका स्वरूप है, जिनके नेत्रोंके तारें चन्द्र सूर्यके स्वरूप हैं, जिनकी जिह्वा कालस्वरूप है, उन दुर्धर्ष महर्षिको मेरीसी अबलाकी जाति क्योंकर खू सकती है ? यम, सोम, महर्षिगण साधक और बालखिल्य मुनिगण जिनके प्रभावसे भय खाते हैं, मेरीसी अबलाकी जाति क्योंकर भय न खायेंगे ? हे सुरेन्द्र ! आप जब ऋषिके समीप जानेकी आज्ञा कर रहे हैं, मैं क्योंकर विनये रह सकूंगी, पर हे

ज। मेरी रक्षा का प्रयत्न कीजिये, कि मैं आपसे भली प्रकार रक्षिता होकर आपका हार्थ साधन करने के लिये चल फिर सकूँ; और मेरी और भी प्रार्थना यह है, कि जब मैं आप्रममें खेलती रहूँगी, उस समय वायु मेरा बहिना हुआ वस्त्र हरलेखें और आपकी आज्ञा के लिये उस कार्यमें समस्त और मेरे सहायक हों। और भी मैं जब आपकी लुभाने लगूँगी, तब वनसे सुरभि हवा चलती रहेगी। मेनका की इसी प्रार्थना पर देवराजने "तथास्तु" कहकर हस्तसाही प्रवक्ष्य कर दिया, अनन्तर मेनका विष्णुमित्रके आयसकी पधारी।

शकुन्तलोपाख्यानमें एकहत्तरवां

अध्याय समाप्त ।

कण्वजी बोले, कि देवराजके मेनका की बातसे वायुकी आज्ञा देने पर पवनदेव मेनकाके साथ चले। अनन्तर उस सुन्दरी अप्सराने वनस्थानसे जले, तप करते हुए विष्णुमित्रको आप्रममें पाया और ऋषिकी प्रणाम करके वनसे साथमें भयके साथ खेलने लगी। वायुने भी उस समय उसकी चन्द्रमा सदृश वस्त्रको हर लिया, सुन्दरी मेनका, वायुके उस कार्यसे मानो अचरज मानकर लाज दिखाती हुई वस्त्र चुन लेने के लिये अग्नि समान तेजस्वी महर्षि विष्णुमित्रकी आखोंके सामने गई। मुनिप्रेष्ठ विष्णुमित्र उस समय उस जांचनेके अयोग्य प्रवस्थावाली रूपवती अनिन्दिता मेनकाका वस्त्रहीना, वस्त्र लेने की अभिलाषिणी भूली भटकीसी और विपत्तमें पड़ी हुई देखकर विस्मयित; उसके अतुल्य गुण निहारकर कामवश हुए और मिलनकी अभिलाषासे उसका बुलाया। अनिन्दिता मेनका भी उस पर मन्त हुई। तब मुनि और मेनका दोनों इस स्थानमें वृद्धत कालतक विहार करने लगे और मगमान खेलके सुखमें वृद्धतदिनोका भी

एक दिनके समान गंवाया; इसपर मुनिके वीर्य और मेनकाके गर्भसे हिमालयपर्वतके मनोहर चट्टानपर, मालिनी नदीके किनारे शकुन्तलाका जन्म हुआ। मेनका सफल मनोरथ होकर उस हालकी पैदा हुई, सन्तानको मालिनी नदीके तटपर छोड़करके उसीक्षण इन्द्रकी सभामें गयी। सिंह, व्याघ्रोंसे भरे हुए उस घने वनमें उस हालकी भयी हुई बालिकाकी सोती हुई देखकर पक्षियोंने चारों ओरसे घेर लिया। शकुन्त लोग उस वनमें इस लिये मेनका-पुत्रीकी रखवारी करते रहे, कि मास-लोभी जन्तु उस बालिकाकी हिंसा न कर सकें; उस समय मैंने स्वानार्थ जाकर उस मनोहर निर्जन वनमें उसकी उस दशामें देखकरके आप्रममें ले जाकर कन्याकी भाति रक्षा की। धर्मशास्त्रोंमें कहा है, कि जन्मदाता, प्राणदाता और अन्नदाता यह तीनोंही पिता होते हैं। यह कन्या निर्जन वनमें शकुन्तोंसे बचायी गयी थी, इसलिये मैंने इसका "शकुन्तला" यह नाम दिया है; हे विप्र! शकुन्तला इस प्रकार मेरी कन्या हुई है, यह अनिन्दिता शकुन्तला सुभक्तकी पिता करके जानती है।

शकुन्तला बोली, कि हे नराधिप! पिताने आये हुए महर्षिसे पूछे जाकर इस प्रकार मेरा जन्म वृत्तान्त उस महर्षिसे कहा था; सो सुभक्तकी कण्वकी बेटी करके जानना, मैं जन्मदाता पिताका नहीं जानती; कण्वको पिता करके मानती हूँ; हे राजन्! मेरे जन्मके विषयमें जैसी घटना हुई थी और उसे मैंने जैसा सुना था, वह मैं सब कह चुकी।

आदिपर्वके शकुन्तलोपाख्यानमें
वहत्तरवां अध्याय समाप्त ।

शकुन्त बोले, कि री कल्याण! तुमने जो कहा, उससे निश्चय जाता है, कि तुम राजपुत्री हो। री कल्याण! तुम मेरी स्त्री हो; मैं

कहो, उसके निमित्त क्या करना होगा ? आज तुम्हारे लिये सुवर्णहार, वस्त्र, सुवर्णके कुण्डल, नाना नागरोंसे बटोरे शोभादेनेहारे शुक्ल मणि, रत्न, और मृगचर्म, सन्दक आदि सभी लाताहूँ, आज सम्पूर्ण राज्यही तुम्हारे हाथमें होजावे ; री शोभने । तुम मेरी पत्नी होगी । री सुन्दरि । री भीरु । मुझको गान्धर्व-विवाहसे वरो ; री रम्भोस्तु । सब दिवाहोंमेंसे गान्धर्व विवाह ही श्रेष्ठ करके उक्त है । शकुन्तला बोली, कि राजन् । मेरे पिता फल बटोरनेके लिये इस आश्रमसे गये हैं ; आप क्षणभर ठहरें, वह आकर आपकी मुझे सम्पदान करेंगे । दुष्मन्त बोले, कि री सुन्दरी ! मैं चाहता हूँ कि तुम स्वयं मुझको भजो, री अनिन्दिते । मैं तुम्हारे निमित्तही यहां हूँ, मेरा हृदय तुम पर ही आसक्त हुआ है । देखो, आपही अपना वन्धु है, आपही अपनी गति हैं, सो धर्मानुसार तुम अपनेको दान करो । धर्मानुसार आठ प्रकारके विवाह संक्षेपमें कहे हैं ;—यथा ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर गान्धर्व, राजस और पैशाच । स्वायम्बुवनुनिने इस आठ प्रकारोंके विवाह में जो जिसके लिये धर्मयुक्त है, उसकी कथा आद्योपान्त कहो है, कि पहिले कहे हुए चार प्रकारके विवाह ब्राह्मणके लिये प्रसस्त है । री अनिन्दिते ! पहिलेसे, आद्योपान्त कहे हुए ६ प्रकारके विवाह क्षत्रियके लिये धर्मयुक्त हैं ; राजोंके लिये राजस-विवाह भी धर्म-सम्मत है और वैश्य और शूद्रके लिये आसुर-विवाह धर्मयुक्त करके कहा है । पहिले गिने हुए पांच प्रकारके विवाहोंमें ब्राह्म, दैव, और प्राजापत्य यह तीन प्रकारोंके विवाह सा प्रभारसे धर्मतंतुयुक्त है । आर्ष तथा आसुरविवाह धर्म-विहित नहीं है और पैशाच तथा आसुर-विवाह किसी प्रकारसे कर्तव्य नहीं है । धर्म की गति ऐसी है, विधिके अनुसार विवाह करना कर्तव्य है ; अतएव इसकी शङ्का न करना, कि

गान्धर्व और राजस-विवाह क्षत्रियोंके लिये धर्म संयुक्त हैं ; इसमें सन्देह नहीं है, कि यह दो प्रकारके विवाह, चाहे अलग रूपमें हो वा मिल कर ही, राजोंके लिये उचित हैं । री सुन्दरी ! मैं तुमसे विवाह करनेकी अभिलाषी हुआ हूँ और इसमें तुम्हारीभी इच्छा है, सो गान्धर्व विवाहके अनुसार मेरी पत्नी होना तुम्हारे लिये अनुचित नहीं होगा । शकुन्तला बोली, कि हे प्रभो पौरव्येष्ट ! यदि यह धर्म पदक अनुसार होवे और आत्मसमर्पणके विषयमें मुझको अधिकार रहे, तो सुनिये मेरा एक प्रण है । महाराज ! मैं इस निर्जैन स्थान पर कहती हूँ, कि मुझसे प्रण कीजिये, कि जो गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न होगा वह पुत्र युवराज और आपके पीछे अधिकारी होगा ; हे दुष्मन्त मैं सच कहती हूँ, कि यदि ऐसा हो, तो आपको विवाह करने में मुझे आपत्ति नहीं है ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि राजाने जो कुछ न विचार करके शकुन्तला की बात माली और बोले, कि री शुद्धमुखि । तुम कि योग्य हो, वही कहूँगा और तुमकी राजधानी ले जाऊँगा, री सुश्रीणि । मैं तुमसे यह प्रण कर चुका । राजर्षि दुष्मन्त सुचलन शकुन्तला के यह कहकर यथाविधि, पाणिग्रहण करके उससे साथ मिले । अनन्तर उसको समझा बुझा करके विश्वास कराकर निज नगरी की पधार आनेके काल शकुन्तलासे बारबार बोले, कि री शुद्धमुखि ! राजधानी में चलकर तुम्हारे लिये चतुरङ्गिनो सेना भेजूगा उस और उस सेना के साथ तुमकी राजधानीमें ले जाऊँगा ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे जनमेजय ! राजा शकुन्तलासे वह प्रतिज्ञाकर यह सोचकर चले, कि तपस्वी कण्व आश्रममें आकर यह सब सुनकरके क्या समझेंगे, क्या काँटें ऐसेही सोचते हुए उन्होंने निज राजधानीमें

श किया । अनन्तर कुछ कालके पश्चात्
हर्षि कण्वके आश्रममें आ पहुँचने पर, शकु-
ला लज्जावश होकर उनके पास नहीं गयी ।
व्यज्ञानयुक्त मलातपा भगवान् कण्व दिव्य
त्रोंसे सम्पूर्ण वृत्तान्तको जानकर प्रसन्नचित्त
ए और बोले, कि भद्रे । आज मेरी सम्म-
के विना एकान्तमें पुरुषसे मिलनेसे तुम्हारे
मैकी हानि नहीं हुई ; क्योंकि कहा है,
तत्त्वत्रयके लिये गान्धर्व, विवाह श्रेष्ठ होता
; निर्जन स्थानमें कामयुक्ता नारिसे कामयुक्त
ना मन्त्र जी मिलन होता है, वही गान्धर्व
विवाह कहाता है । राजा दुष्मन्त धर्मात्मा,
ह्यात्मा और पुरुषश्रेष्ठ है ; जो शकुन्तले । वह
मकी भज चुके हैं, और तुमनेभी उनकी पतित्वमें
रण कर लिया है, इससे तुम्हारे गर्भसे एक
महात्मा महाबली पुत्र जन्म लेगा । वह पुत्र
म्पूर्ण भूमण्डलका अधिपति होगा और विप-
तके विरुद्ध रणयात्रा करनेके कालमें उस
महात्मा चक्रवर्तीके रथके चक्र कभी नहीं
रुकेगे ।

अनन्तर शकुन्तलाने फल और यज्ञकी
तवाड़ीके बोझको रखकर मुनिके पाँव धो दिये,
पागी उनकी थकावट दूर होते और सुखसे
बैठे देखकर बोली, कि पिता । पुरुषश्रेष्ठ राजा
दुष्मन्तको मैंने पतित्वमें वरण कर लिया
है इस क्षण आप कृपाकर उस राजा और
उनके मन्त्रियोंपर प्रसन्न हों । कण्व बोले,
कि री बेटी । मैं तुम्हारे लिये उनपर प्रसन्न
हुआ हूँ । रो श्मै । तुम सुभसे मनमाना
वर लो ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर शकु-
न्तलाने दुष्मन्तकी हिताभिलाषिणी होकर
पारवोकी धर्मनिष्ठा और राज्यसे व्युत्त न
होनेका पर मांगा ।

आदिपर्वके शकुन्तलीपाख्यानमें

तिष्ठन्तवन्तः पञ्चाय समाप्तः ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि राजा दुष्मन्त
प्रतिज्ञामें आवद्ध होकर राजाधानीकी लौट
गये । सुन्दरी शकुन्तलाने तीन वर्षके पूरे होने
पर दुष्मन्तके वीर्यसे जन्म लिये हुए प्रज्वलित
अग्निके समान अपार वीर्यवान् उदार गुणवान्
एक पुत्र प्रसव किया । श्रीमान् कुमार दिनों-
दिन बढ़ने लगा ; पुण्यशील ऋषिने विधिपूर्वक
उसके जातकस्मादि संस्कार किये । शुक और
तेज दांतयुक्त सिंह समान कठोर शरीरधारी
चक्रवर्तीके चक्रवत् चिह्नसे रंगे हुए हस्तयुक्त,
मंहामूर्द्धा, अतिबलवन्त, महासत्त्वदेवकुमार समान
वह कुमार मुनिके आश्रममें शीघ्र बढ़ने लगा ।
वह बलवान् बालक ६ वर्षकी अवस्थामें आश्र-
मके सिंह, व्याघ्र, शूकर, भैंसे हाथी आदिकी
पकड़कर निकटके वृक्षोंमें बांध रखता था
और उन सिंह व्याघ्रोंमें किसीपर खेलता हुआ
घूमता फिरता था । कण्वके आश्रममें रहने-
वाले मुनिलोग उन लीलाओंकी देखकर समझा
करते थे, कि यह बालक सर्व जीवोंकाही दमन
करता है ; सो इसका “सर्वदमन” नाम रचा ।
विक्रमसे तेजोवन्त और बलवान् तभीसे सर्व-
दमन नामसे प्रसिद्ध हुए ।

महर्षि कण्वने तब कुमारका असाधारण
बल और कार्य देखकर शकुन्तलासे कहा, कि
इस बालकके युवराजके पद पर अभिषिक्त
होनेका समय आ पहुँचा है । अनन्तर उन्होंने
शिष्योंको बुलाकर कहा, कि तुम इस आश्रममें
पुत्र सहित शकुन्तलाको सर्व लक्षणयुक्त पतिके
घरमें लेजाओ । स्त्रियोंको सदा पिताके घरमें
रहना नहीं चाहिये ; ऐसा होनेसे कीर्ति,
चरित्र और धर्म विगड़ सकता है, सो इसकी
पतिके घर ले जानेमें और कुछ भी विलम्ब मत
करो । महातेजस्वी शिष्यलोग द्राप्य कण्वकी
आज्ञाको मानकर पुत्रसहित शकुन्तलाको आगे
करके हस्तिनापुरकी पधारे । अच्छे भोजनकी
शकुन्तला भी असन् समान प्रकाशमान् उद्गम्य-

वान् निज पुत्रकी लेकर दुष्मन्तके जाने हुए उस वससे आने लगी। आगे वे सब उस नये सूर्यसदृश तेजस्वी बालकके साथ राजाके द्वार पर पहुँचकर द्वारपालसे राजाकी खबर देकर राजमन्दिरमें प्रविष्ट हुए। अनन्तर ऋषि कण्व के शिष्यलोग सम्पूर्ण हाल राजाके सम्मुख कहकर आश्रमको ओर लौटे।

शकुन्तला राजाका यथानियम सत्कार कर बोली, कि आपके इस पुत्रने मेरे गर्भसे जन्म लिया है, देवता समान यह पुत्र आपहीके वीर्यसे उत्पन्न हुआ है, सो इसको युवराजके पद पर बैठाइये; हे पुरुषश्रेष्ठ! आप जिस प्रकार स्वीकृत हुए थे, वैसाही कार्य कीजिये। हे महाभाग! पहिले आपने मुनि कण्वके आश्रममें सुभसे सङ्गमके समय जो प्रतिज्ञाकी थी, उसको स्मरण कीजिये। अनन्तर शकुन्तलाके यह वचन सुनतेही नरनाथ दुष्मन्तकी अपना किया हुआ पूर्व कार्य स्मरण हुआ; तिस पर भी वह कहने लगे, कि मुझे कुछभी स्मरण नहीं है। अरी दुष्ट तपस्विनि! तू किसकी स्त्री है? तुझसे मेरा धर्म, अर्थ और काम किसी विषयके सम्बन्धका रहना, मुझको स्मरण नहीं होता, सो तू अब जो चाहती है कर चाहे चली जा, चाहे रहो।

दुष्मन्तके ऐसी निष्ठुर वाणी कहनेपर तपस्विनी सुन्दर शकुन्तला, लज्जासे मलिन और अचेतन बनकर दुःखसे जड़के समान खड़ी रही। अभिमान और दुःखमें उसकी आंखें लाल हो गयीं और दोनों हीठ हिलने लगी। तब वह तिच्छी दृष्टिसे राजाकी ओर देखकर कटाक्षसे मानों उनको भस्म करने लगी, उसने क्रोधयुक्ता होने परभी बाहर कुछ न प्रगटकर तपसे बटोरि हुए तेजकी रोक लिया। अनन्तर कुछकाल सोचकर दुःख और खेदयुक्त होके क्रोधसे पतिकी ओर देखकरके बोली, कि महा राज! आप सब जान करकेभी क्यों नीचजनके

समान दिन सीचे विचारें "नहीं जानता" का वात कह रहे हैं? चाहे यह विषय सब म भूँट हो, पर आपका हृदय सभी जानता है सो आत्माकी गवाहोसे जो मङ्गलयुक्त होवे की दीजिये, आत्माकी मानहानि न कीजिये? न जन हृदयमें दूख रखता है और बाहर न प्रगट करता है, उस आत्मचोर चोटेसे कि कौन पाप है, जो नहीं होता। क्या आप यह समझ लिया है, कि मैने अकेले यह कार्य किया है, साथ कोई नहीं था, कौन जानता? क्या आप नहीं जानते, कि पराण मुनि परेश्वर सबके हृदय-मन्दिरमें सदा सजग हैं उसके पास कोई पाप छिपा नहीं रहता; उसके सामनेही यह पाप कर रहे हैं? तब पापकर समझते हैं, कि किसोने नहीं जाना पर देवों और हृदयके परम पुरुषकी अज्ञात नहीं रहते। आदित्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, आकाश, धरती जल, हृदय, यम, दिन रात्रि, दोनों सध्या और धर्म यह लोग सब चरित्रोंसे ज्ञात रहते हैं, सब कामोंके सार हृदय मध्यके चैतन्य पुरुष जिनपर प्रसन्न रहें हैं, वैवस्वत काल उनकी सम्पूर्ण दुःखिया न कर देते हैं और जिस दुरात्माकी आत्मा सन्त नहीं होती, काल उसको पापके कीचड़ गाड़कर पीड़ा पहुँचाते हैं। जा जन आप आत्माका अपमान कर कुछका और विश्वास दिलाता और आत्माकी गवाहो नहीं मानता है, देवगण उसका हित नहीं करते मैं पातत्रता स्वयं आ पहुँची हूँ कहा मेरा अपमान न कीजिये। मैं आदरपूर्वक स्त्री स्वयं आयी हूँ, इस समय आदरपूर्वक मुझे लेना आपका कर्तव्य है, पर आप नहीं लेते हैं। आप क्यों नीचजनकी भाँति इस सभामें मुझका तुच्छ समझ रहे हैं? क्या मैं शून्यमें चित्ता रही हूँ? हे दुष्मन्त! बार बार प्रार्थना करती हूँ, पर यदि मेरी

मानगी, तो आज आपका सिर सैकड़ों गोमें बँट जायगा। प्राचीन कविलोग हा करते हैं, कि पति स्वयं गर्भके स्वरूपमें गोमें प्रविष्ट होकर फिर पुत्रके स्वरूपमें जन्म नाहे। पतिके उस जन्म लेनेके लियेही पत्नी या कहो जाती है, ज्ञानी पुरुषके पुत्र होनेसे पुत्र सन्तानोंसे परलोकवासी पितरोंका द्वार करता है। भगवान् स्वयम्भूने स्वयं कहा है, कि पुत्र पञ्चम नामक नरकसे तान करता है, इस लिये वह पुत्र कहा जाता है। इसे स्वर्ग मिलता है और प्रपौत्रसे प्रपितामह भग आनन्दित होते हैं। जो गृहकार्योंमें जाता है, वह भार्या है, जिन्होंने पुत्र प्रसव दिया है, वही भार्या है, जो पतिप्राणा है, जो भार्या है, जो प्रतिव्रता है, वही भार्या है। मनुष्योंका स्त्री ही आधा अङ्ग है, भार्या हीसे बढकर साथी है, भार्याही धर्मार्थ काम तीनों वर्गोंकी जड़ है और भार्याही शरीरसे पार करनेका निदान है। जिनके भार्या है, वही क्रियादि किया करते हैं; जिनके भार्या है, वही सहवासी है। जिनके भार्या वही आसोद-प्रसोदसे काल काटते हैं; जिनके भार्या है, वही श्रीमान् है। प्रियश्चदा भार्या निरालमें अच्छे परामर्श देनेवाले मित्रके समान है, धर्मकर्ममें हितैषी पिताके समान पीड़ाकी दशमें स्नेहवती मातावत् है, और छे मार्गमें पथिक पातका विद्यामका स्थल। फिरभी जिसके भार्या रहती है, उसीका लोग विश्वास करते हैं, सो भार्याही मनुष्योंकी परम गति है। किसीके सासारिक जा अन्तकरण पर नरकमें पैठनेसे उसके शरीरके नाशके केवल पतिव्रता भार्याही साथी होती है, पत्नीके पाहेले परलोक संधारनेसे पतिके निमित्त पथ ताकती रहती है, और पतिके पाहेले देह ढाड़नेसे सती भार्या पतिके पीड़ जाती है। हे राजन्। क्योंकि

भर्ता इस लोक और परलोक दोनों लोकोंमें भार्याको प्राप्त करता है, इसलिये विवाहकर्म विधिवद्ध हुआ है। पण्डितलोग कहा करते हैं, कि आपहीसे आप पुत्रके स्वरूपमें जन्म लेता है, सो पुत्रवती भार्याको अपनी माताकी नाई जानना। पुण्यवान् स्वर्ग पानेसे जैसे आनन्दित होते हैं, आईनेमें देखे जाते हुए सुखकी नाई भार्याके गर्भसे जन्म लिये हुए पुत्रको देखकर जन्मदाता तैसेही आनन्दित होते हैं। पत्नीनेसे न्हाया हुआ जन जिस प्रकार ठण्डे जलने सन्तुष्ट होता है, मनुष्यगण मनःपोड़ासे जलने और रोगोंसे जकड़े जानेपरभी भार्यासे वैसेही आनन्दित होते हैं; अति क्रोधित होनेपर भी पतिकी पत्नीका अप्रिय कार्य न करना चाहिये, क्योंकि रति, प्रीति और धर्म सबही भार्याके हाथमें हैं। स्त्रियां आत्माको सनातन पवित्र धर्महीन हैं, ऋषियोंको भी ऐसी शक्ति नहीं है, कि स्त्रीके बिना प्रजा रचें। यदि पुत्र धरतीकी धूलमें शरीरको रङ्गकर निकट आकरके पिताके गलेसे लगे, तो उससे फिर क्या अधिक सुख मिलना है? हे राजन्। आपका यह पुत्र स्वयं आकर उत्साहयुक्त नेत्रोंसे आपको देख रहा है, तिस परभी आप किस लिये उसका अपमान कर रहे हैं? देखिये चौंटियां छोटी प्राणी होने परभी प्रसव किये हुए अण्डोंकी रक्षा करती हैं, विगाड़ती नहीं; आप धर्मज्ञ होनेपरभी क्यों अपन पुत्रको नहीं पालेंगे? छोटी सन्तानके गलेसे लगनेसे उसका अनुभव पिताका जैसा सुखदायी जान पड़ता है, कोमल वस्त्र, जल और नारीका अनुभवभी वैसा सुखदायी नहीं होता। जिस प्रकार दो पाये जन्तुओंमें ब्राह्मण प्रधान है, चार पायोंमें गौ श्रेष्ठ है और माननीय जनोंमें गुरु, सुखानुभवोंमें पदानुभवही श्रेष्ठ है। यह सुन्दरमूर्ति पुत्र आपको गलेसे लग कर अनुभव करे, जोकि पदानुभवसे दूसरा

अनुभव पृथ्वीमें नहीं है । हे अरिन्दम राजेन्द्र ! तीनवर्ष पूरे होनेपर मैंने आपके इस शोकनाशी पुत्रको प्रसव किया है ; हे पौरव ! पहिले सौरिमें आकाशवाणी हुई थी, कि यह पुत्र सौ अश्वमेध यज्ञ करेगा ! मनुष्यलोक दूसरे गांवमें जाकर जब घरको लौटते हैं, तब पुत्रको गोदमें लेकर सिर चूम कर परमानन्द प्राप्त करते हैं । पुत्रके जातकर्ममें ब्राह्मणलोक जो यह वैदिकमन्त्र पाठ करते हैं, कि “तुम मेरे अङ्गसे निकले हो, तुम मेरे हृदयजात पुत्ररूपी आत्मा हो, तुम्हारी शत वर्षकी आयु होवे, वेष्टा । मेरा जीवन और वंशका अचय होना तुम्हारेही अधीन है, सो तुम शत वर्षकी आयु पाकर परम सुखसे काल काटो” उसमें आपभी ज्ञात हैं । हे राजन् ! आपके अङ्गसे यह दूसरा पुरुष उत्पन्न हुआ है, निर्मल सरवरमें दीख पड़ती हुई, निज परछांहीसी अपनी इसरी आत्मा इस पुत्रमें आप देख लीजिये । जिस प्रकार एक गार्हपत्य अग्निसे आहवनीय अग्निकी उत्पत्ति होती है, वैसेही आप एक होने परभी आपसे जन्मे हुए इस पुत्रके स्वरूपमें स्वयं दोभाग हुए हैं । महाराज ! मैं जब पिताके आश्रममें कुमारी थी, तब आपने मृगयामें जाकर मृगको पकियाते हुए वहां पञ्च करके सुभसे विवाह कर लिया था । उर्वशी ; पूर्वचिन्ति, सहजन्या, मेनका, विश्वाची और घृताची यह छः अप्सरा औरोंसे श्रेष्ठा है, उनमें ब्रह्माजीसे जन्मी हुई अप्सरा मेनकाने देवलीकसे भूतलमें उतरकर गर्भधारण किया था । आगे वह मन्दस्वभावा मेनका हिमाचलके चट्टान पर सुभको प्रसव कर परायी सन्तानकी नाई छोड़के चली गयी, हा ! मैंने पूर्वजन्ममें कैसा पाप किया होगा, कि वचपनमें पिता माताने मुझे त्याग दिया और अब आपभी सुभको छोड़ रहे हैं । आप के सुभ छोड़नेमें मैं स्वच्छासे निज आश्रमकी

चली आऊंगी, पर यह बालक आपकी है, आपको इसे छोड़ना नहीं चाहिये ।

दुष्मन्त बोसे, कि शकुन्तले ! मैं नौ जानता, कि तुम्हारा गर्भोत्पन्न यह बाल मेरा पुत्र है वा नहीं ; तुम्हारी बात पर किसको परतीत होगी ? स्त्रियां प्रायः झूठी बात कहा करती हैं ; विगेष तुम्हारी जननी व्यक्ति चारिणी दयाहीना मेनका निर्माल्य त्यागनेकी भाति तुमकी हिमाचलकी पठ पर छोड़ी गयी थी और क्षत्रियवंशी, ब्राह्मणत्वलीभी निर्दय स्वभावी विश्वामित्रभो कामवश होकर तुम्हां जनक हुए थे । यदि यह कहो, कि मेनका अप्सराओंमें प्रधाना और विश्वामित्र ऋषियोंमें श्रेष्ठ हैं, तो फिर तुम उनकी सन्तान होकर क्योंकर वेश्यासी बात कह रही हो ? काय श्रद्धाके अयोग्य बातके कहनेमें तुमकी लज नहीं होती ? विशेष तुम मेरे सामने यह बात कह रही हो ; रीदुष्ट तपस्विनी ! तू यहांसे चली जा । वह सर्वश्रेष्ठ मर्त्य कहां ? और नीच वा अप्सराओंमें श्रेष्ठ मेनका कहां ? और नीच तपस्विनीका वेष बननी हुई तू कहां ? तेरा यह पुत्र बालक होनेपर मोटा ताजा और वलिष्ठ दीख पड़ता है, इस कालहीमें यह क्योंकर शालवृक्षसा बढ उठा । तेरा जन्म बड़ा नीच है, उससे तू वेश्यासी बात कहती है । मेनकाने कामके वर्ण होकर जैसे चाहा है, वैसेही तुम्हको पैदा किया है । री तापसि ! तू जो कुछ कहती है, वह सब मेरा अनजाना, अनसुना और अनसोच है ; मैं तुम्हको नहीं जानता, जहां तेरी इच्छा हो तहां चली जा ।

अनन्तर शकुन्तला बोली, कि राजन् ! पराया दोष ससोंके समान होनेसेभी देख लेते हैं, पर अपना दोष वेलपत्रके समान होनेपरभी नहीं देखते । हे दुष्मन्त ! मेनका देवोंकीही प्रेमी और देवगण मेनकाहीके प्रेमी हैं, सो आप

जन्मसे मेरा जन्म श्रेष्ठ है। हे राजेन्द्र। देखिये, पहाड़ और सर्पों के समान हम दोनोंमें प्रभेद है, आप धरतीपर चलते हैं, और मैं आकाशकी उड़ती हूं। हे नृप। देखिये, हमारा प्रभाव कितना है; मैं महेन्द्र, कुबेर, यम और वरुण इनके मन्दिरोंमें जा सकती हूं। हे अनघ। एक सच कहावत यह है, मैं उदाहरणके लिये आपसे कहती हूं द्वेषसे मैं नहीं कहती, सो आप इसे सुनकर मेरी बात चमा नकीजियेगा; कुत्तप जन जवतक दर्पणमें अपना मुख नहीं देखता, तबतक अपनेकी औरोंसे सुन्दर समझता है, पर जब दर्पणमें अपना मुख बुरा देखता है, तब जान सकता है, कि औरोंसे अपना कितना प्रभेद है। अच्छे रूपवान् जन किसीका अनादर नहीं करते; बहूत कड़ी बात कहनेसे लोग निन्दक या औरोंके पीड़ा-देन-वाले गिने जाते हैं सूअर जैसे और सब वस्तुओं मेंसे केवल विष्ठाकी चुन लेता है, नैसीही मूर्ख जन कहनेवालेके हित और अहित वाक्योंमेंसे केवल अहित वाक्यहीको ध्यानमें लाते हैं; फिर हंस जैसे जल और दूधकी मिलावटसे जल के भागकी छोड़कर दूधले लेता है, नैसीही ज्ञानी पुरुष कहनेवालेकी हिताहित बातोंको सुनकर केवल गुणयुक्त बातकीही ध्यानमें लाते हैं। औरोंकी निन्दा करनेसे जिस प्रकार साधु दुःख मानते हैं, नैसीही परायी निन्दा कर असाधु जन प्रसन्न होते हैं। साधुजन बड़ोंका सम्मान कर जैसे सत्पुत्र होते हैं, नैसीही निन्दित जन सज्जनोंकी निन्दाकर आनन्दित होते हैं। मूर्खलोग नहीं जानते, कि दोष क्या है, पर पराये दोषोंके देखनेवाले बनकर सुख-चैनसे काल काटते हैं: वे जिन दोषोंके कारण पण्डितोंसे निन्दनीय होते हैं, पण्डितोंकी उन्ही दोषोंसे निन्दित कहा करते हैं। पर लोकोंमें हमने अधिक जंसीकी बात और क्या हो सकती है, कि स्वयं झुज होकर तुजनकी झुजन कह-

के लाञ्छन करे? जिस प्रकार क्रोधित सर्पसे भय होता है, नैसीही सच्चे धर्मसे गिरे हुए जनसे नास्तिकभी भय खाता है, फिर आस्ती-कके भयभीत होनेमें कौनसा अचरज है? जो पुरुष स्वयं आत्मरूपी सन्तान उत्पन्न कर स्वीकार नहीं करता है, देवगण उसकी ओर बिगाड़ दें हैं और उसका स्वर्गभोग नहीं होता। पितृ-गण पुत्रकी वंश और स्वजनोंकी प्रतिष्ठास्वपी और सर्व धर्मसे श्रेष्ठ कहा करते हैं, सो ऐसे पुत्रकी त्याग देना उचित नहीं है। भगवान् मनुने औरस, क्षत्रज, कानोन, गूढज और सहोदर इन पांच प्रकारके पुत्रोंको निज पत्नीके गर्भ-जात और अपविद्ध, क्रीत, विवर्द्धित आदि सात प्रकारके पुत्रोंकी अन्यसे उत्पन्न, सब मिलाकर बारह प्रकारके पुत्र ठहराये हैं। हे राजसिंह धर्म, कीर्ति, और चित्तकी प्रीति बढ़ानेवाले पुत्रगण जन्म लेकरके धर्मरूपी नाव बनकर पितरोंकी नरकसे उद्धार करते हैं; सो पुत्रकी त्यागना नहीं चाहिये। हे पृथ्वीनाथ। सत्य, धर्म और आत्माकी रक्षा कीजिये। हे नरेन्द्र-सिंह! इस विषयमें आपकी कपट करना कर्तव्य नहीं है; देखिये, सैकड़ों कूपोंकी प्रतिष्ठासे एक तालकी प्रतिष्ठा श्रेष्ठ है, सैकड़ों तालोंकी प्रतिष्ठासे एक यज्ञका करना श्रेष्ठ है, सैकड़ों यज्ञों से एक पुत्र श्रेष्ठ है और सैकड़ों पुत्रोंसे एक सत्यनिष्ठा श्रेष्ठ है। यदि एक तालपर एक और नहस अश्वमेध और दूसरी और सत्यनिष्ठाको रखकर ताला जाय, तो सहस्र अश्वमेधोंसे एक सत्यनिष्ठा भारी होगी। हे राजन्। इसमें सन्देह है, कि सर्व वेदोंका पठन और सर्व तीर्थोंमें स्नान एक सत्य वाक्य-के तुल्य होना है वा नहीं। सत्यके समान धर्म नहीं है, असत्यसे बढ़कर पाप और क्रोध भी नहीं है। हे राजन्! सत्यही परमेश्वर और सत्यही परम-नियम है। हे नृपते: आपने मुझसे जो नियम किया था,

लङ्घन न कीजिये ; अपना प्रण पूरा कीजिये । पर यदि मिथ्याही पर आपकी प्रेमही और उससे आप मेरी इस सत्य बातकी परतीत न करें, तो मैं स्वयं चली जाती हूं ; आपसे मेरे मिलनका प्रयोजन नहीं है । हे दुष्मन्त ! आपके न लेनेसेभी मेरा यह पुत्र शैलराजसे अलङ्घ्यता इस पृथ्वीका चारों समुद्रों तक गगन करेगा ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि शकुन्तला यह सब कहकर चली गयी । अनन्तर ऋत्विक्, पुरोहित, आचार्य और मन्त्रियोंसे घिरे हुए राजाको आकाशवाणी हुई, कि “हे दुष्मन्त ! माता चमड़ेके कोषके समान है, उसमेंसे पिता स्वयं ही पुत्रके स्वरूपमें जन्म लेता है, सो पुत्रको पालो पीघो । शकुन्तलाका अनादर मत करो हे नरदेव । निज वीर्यसे उत्पन्न हुई सन्तान यमराजके घरसे उधार करती है; ऐसा सन्देह न करना, कि यह पुत्र तुम्हारा है वा नहीं, तुम्हींने यह गर्भाधान किया है । शकुन्तलानि जो कष्ट कहा है, सब सत्य है । हे दुष्मन्त ! अपना अङ्ग दो भागोंमें बंटकर पुत्रके स्वरूपमें भार्याके गर्भसे जन्म लेता है ; अतएव शकुन्तला के गर्भजात निजपुत्रका पालन करो । हे पौरव ! जीते हुए पुत्रको तजकर जीवन धरना अति दुर्भाग्यकी बात है ; शकुन्तलाके गर्भजात इस महात्मा दुष्मन्त-नन्दनका पालन करो ; हमारी बातके अनुसार तुमको इस पुत्रका भरण करना हीगा, इस हेतु इसको नाम भरत होगा ।”

पुस्तुलीत्पन्न राजा दुष्मन्तने ऐसी दैववाणी सुनकर प्रसन्नचित्तसे पुरोहित और मन्त्रियोंसे कहा, कि आप इन देवदूतकी बात पर ध्यान दीजिये और मैंभी वैसाही जानता हूं, कि इस पुत्रने मुझसेही जन्म लिया है ; यदि मैंने शकुन्तलाके वाक्यानुसार अपने पुत्रको ले लिया होता, तो प्रजा यह शङ्का करती, कि यह पुत्र यह न भी हो सकता है ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भारत ! तब देवदूतने पुत्रको विशुद्ध कराकर प्रसन्न प्रसुदित चित्तसे उलवाकर लेलिया । प्रीतियुक्त और सुदित होकर दमारकी योग्य कर्म सन्तान करके फिर धूमकर प्रकट करते हुए, गलिसे लगाया । तब प्रायः लोग अशीस दिन लगे और आठ स्तुति लगा ; राजा पुत्रान्तर्भव लासकर प्रसन्न नन्दित हुए, आगे धर्मानुसार पतिव्रता प्रसमान कर सम्मानित हुए कहने लगे, कि लोकोंमें कोई नहीं जानता, कि मैंने विवाह किया है, इसहेतु तुम्हारी निमित्त मैंने ऐसा व्यवहार किया और ऐसा सम्मान सदाते हैं, कि केवल सुखकी लापासे इनका सङ्गम हुआ, विवाह हुआ, यह बिना विधिसे उत्पन्न हुआ राज्यका अधिकारी बना, दस लोनापवाद दूर करनेके लिये ऐसा चरित्र प्रकट किया प्यारी विशालाक्षी ! तुमने क्रोधित हो मुझको जो अप्रिय बातें कही हैं, हे शुभे ! मेरी प्यारी ही, इस लिये उन प्रतीति करता हूं । हे भारत ! राजर्षि दुष्मन्त प्यारी सहिष्णी शकुन्तलासे उस प्रकार कह अन्न, पान और वस्त्रादियोंसे उसका रुक किया । आगे शकुन्तलाके गर्भजात पुत्र “भरत” यह नाम देकर युवराजके पदमें अर्पित किया । तबसे उन महात्मा भरत प्रज्वलित, जीतनेके अयोग्य, दिव्य और तीव्र प्रख्यात महत् चक्र प्रवर्तित हुआ । वह महत् पालोंकी जीतकर वशमें लाये और सावधान आचरण किये जाते हुए धर्मका अनुष्ठान कर लगे, उनका सुन्दर यश भूमण्डलमें फैल गया वह महा प्रतापी और सार्वभौम चक्रवर्ती हुए और देवराज इन्द्रकी भांति वज्रयज्ञानुष्ठान करने लगे । महर्षि कण्वने उनसे प्रसन्न दक्षिणा-युक्त यज्ञ कराया था । उन

रतन गोविन्दत नामक अश्वमेध-यज्ञ करके
रमें भगवान् ऋषि कण्वकी सहस्र पद्म धन
न दिया था ।

यह भारतीय कीर्ति उन भरतहीसे हुई है
और उन्हींसे यह भरत-वंश फैला है । भरतके
शमें जिन सब देवव्रत महात्मा ब्रह्मकल्प,
नक राजश्रेष्ठोंने जन्म लिया था, वे भारत
मसे प्रख्यात हुए ; उन सबोंके नाम अगणित
। हे भारत ! उनमें जो प्रधान, महा
ग्यवान् देवकल्प और सत्यशील है, उन्हींके
म कहेंगा ।

आदिपर्वके चौहत्तरवां अध्यायमें
शकुन्तलीपाख्यान समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे अनघ ! प्रजा-
ति दक्ष, वैवस्वत मनु, भरत दुक्ष, पुरु, आज-
दक्ष, यादव और सम्पूर्ण कौरवोंकी पवित्र
हत् स्वयंयुक्त, धन और यश तथा आयु
नेवाली सम्पूर्ण वंशकी कथा तुमसे कहता
। प्रचेताके दश पुत्र थे, वे सब तेजसे प्रज्ज-
त महर्षि-समान तेजस्वी, साधु और पुण्य-
ल थे, उनके मुखसे निकली हुई आगसे
हेली वृक्ष-श्रीप्रधि सब जल भुन गयी थीं ।
न दशोंसे प्राचेतस प्रजापति दक्ष उत्पन्न हुए
। दक्षसे यह सब प्रजा रची गयी है । हे
एषव्याघ्र ! वह दक्षही लोकोंके पितामह
। प्राचेतस सुान दक्षन वीरेणी नाम्नी पत्नी
मिलनसे अपने सदृश साशतव्रत सहस्र पुत्र
उत्पन्न किये । ऋषि नारदने दक्षसे जन्म लिये
ए उन सहस्र पुत्रोंको मोक्षसाधन और अत्यु-
भ सांख्यज्ञान की शिक्षा करायी । हे जन-
क ! प्रागे उन प्रजापति दक्षने बहू प्रजा
उनका इच्छाने पचास कन्याओंकी पुत्रिका
प्राया । उन पचास कन्याओंमेंसे दश धर्मका,
और पचासना, पार समय-दशानवाला नत्ता-
क कन्याओंको सद्गुण दिया । कन्यपचास

तेरह पत्नियोंमेंसे दाक्षायणी अदिति बड़ी थी ;
उस अदितिने मरोचिके पुत्र कश्यपजीके मिल-
नसे वीर्यवान् इन्द्रादि देवता और विवस्वान्
सूर्यकी प्रसव किया । विवस्वान् सूर्यकी मनु
नामक एक धोमान् पुत्र उत्पन्न हुए, वह
सर्वशास्त्रोंके विधान करनेवाली थे । उन विव-
स्वानहीसे मनुके छोटे भाई प्रभु वैवस्वत यमने
जन्म लिया । मनु बड़े बुद्धिमान और धर्मात्मा
थे, उन्हींसे यह मानव-वंश प्रसिद्ध तथा प्रति-
ष्ठित हुआ है । ब्राह्मण क्षत्रियादियोंने उन्हीं
मनुसे जन्म लिया है, इस हेतु वे मानव करके
प्रसिद्ध हुए । हे महाराज ! अनन्तर ब्राह्मण
लोग क्षत्रियोंसे सद्गत हुए । सम्पूर्ण गुणोंमें
मनुज ब्राह्मणोंगणने साङ्गवेद धारण किया ।
मनुके वैन, धृष्णु, नारिष्यन्, नाभाग, इच्छाकु,
कारूप, शर्याति, पृषध, और नाभारिष्ठ यह नौ
क्षत्रिय धर्मशील पुत्र और इला नाम्नी एक
कन्या हुई थी । इनके अतिरिक्त इस पृथ्वीमें
उन मनुके और पचास पुत्र हुए थे, सुन चुका
हूँ, कि वे आपसमें लड़कर नष्ट हुए हैं ।
अनन्तर विद्वान् पुरुरवान् इलासे जन्म लिया
था ; हमने सुना है, कि इलाही पुरुरवाकी
माता और पिता थी । महाशीभावान् पुरुरवान्
मनुष्य होने परभी आमनुष्य साधियोंसे घेर
जाकर महासागरके तेरह द्वीपों का अधिकारमें
कर लिया था । उन्हीं वीर्यके बलसे वाय-
लेसे बनकर ब्राह्मणोंसे अगड़ा मचाया, तबपर
विप्रोंके चित्ताचिन्ताकर रीति परभी उनका
सम्पूर्ण रत्न हर लिया था । हे राजन् ! अन-
न्तर ब्रह्मलोकसे सततसुमारने आकर उनको
भुतके अनुसार उपदेश किया ; उसपरभी
उन्हीं ध्यान नहीं दिया, इनसे महापराधने
एकत्र होकर उनको शाप दिया : वनसे दूर त
लोभी रूप शापग्रस्त होतही चेतना
उसीक्षण नष्ट हुए । वह पराजित
उन्हींके नाम मनु-वंश

विधिपूर्वक दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य और आहवनीय इन तीन प्रकारके अग्निको लाये थे । इलापुत्र पुरुरवाके वीर्य और उर्वशीके गर्भसे ६ पुत्रोंने जन्म लिया था ; उनके नाम आयु, धीमान्, आमावसु, दृढायु थे । आयुके वीर्य और स्वभानुपुत्रीके गर्भसे नहुष, वृद्धशर्मा, राजी, गय और अनेना यह पांच पुत्र भये, आयुके पुत्र नहुष धीमान् तथा सचे पराक्रमी थे । हे पृथ्वीनाथ ! उन्होंने उत्तम रीतिसे धर्मानुसार राज्य का शासन किया । नहुषने पितृगण, देवगण, विप्रगण, और गन्धर्व सर्प, राक्षस, ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा नैश्योंका पालन किया था । उन्होंने निज भुजबलसे लुटेरोंको नष्ट करके ऋषियोंको करदाता बनाया, और एक समय उन ऋषियोंको पशुकी भांति वाहन बनाया था । वह तेज यश, बल और विक्रमसे देवोंको हराकर इन्द्रके पदपर आसुद्ध हुए थे । उनके याति, ययाति, संयाति, आयाति अयति और ध्रुव यह ६ प्रिय बोलो बोलनेवाले पुत्र जन्मे थे । यति योगाग्र्य करके ब्रह्मज्ञ सुनि बने थे ।

सत्य पराक्रमी नहुषपुत्र ययाति सम्राट हुए, उन्होंने पृथ्वीका पालनकर अनेक यज्ञ किये थे और यतात्मा होकर अति भक्तिसे देवगण और पितृगणकी उपासना करते थे । अजेय ययाति सम्पूर्ण प्रजाओं पर दया प्रगट करते थे, हे महाराज ! देवयानी और शर्मिष्ठाके गर्भसे उनके सर्वगुणयुक्त चापधारी पुत्रने जन्म लिया था । उनमें देवजानीके गर्भसे यदु और तुर्वसुका जन्म हुआ, द्रुह्यु, अनु और पुरु, इन्होंने शर्मिष्ठाके गर्भसे जन्म लिया । हे राजन् ? ययाति बृद्ध वषों तक धर्मानुसार प्रजा पालनकर अन्तमें रूपनाशी अति कठोर जरासे जकड़े गये । हे महाराज ! तब राजा जरासे जकड़े जाकर यदु पुरु, तुर्वसु, द्रुह्यु और अनु इन पांच

पुत्रोंको बुलाकर बोले, कि मैं युवा युवतियोंसे मनमाना भोगकर विचार चाहता हूँ, हे पुत्र ! तुम उस सहारा दो । अनन्तर देवजानीके बड़े पुत्रने कहा, कि कहिये, हमारे आपका कौनसा कार्य करना है । उनसे बोले, कि तुम मेरे बुढ़ापेको मैं तुम्हारे यौवनसे ऐश्वर्य भोगूँ । हे पुत्र मैं दीर्घयज्ञमें दीक्षित था, उन कालमें शुक्राचार्यके शापसे जराग्रस्त हुआ हूँ । कारण मैं अत्यन्त सन्तापित हो रहा हूँ, तुनमेंसे कोई मेरे इस जराग्रस्त लेकर राज्य शासन करो, मैं फिर वनकर नये शरीरसे मनमाना भोग करूँ ।

यदु आदि भाइयोंमेंसे किसीने बुढ़ापेकी नहीं लिया । अनन्तर सत्य-विक्रमो पुरुने उनसे कहा, कि महाराज आप मेरे यौवनको प्राप्तकर नये शरीरमें जिये, मैं आपकी आज्ञासे जरा लेकर शासन करता हूँ । पुरुके यह बात कहते ही राजर्षि ययातिने तप और वीर्यके बलसे महात्मा पुत्रमें बुढ़ापा प्रविष्ट कराया । अपने पुत्र पुरुका यौवन पाकर युवा बने, ययाति को वृद्धावस्था लेकरके राज्य करने लगे । न हारनेहारे राजसिंह सहस्रवर्ष बीतने परभी सिंह समान बने रहे और दो पत्नियोंसे दीर्घकाल विचारकर फिर विश्वाचीके साथ फुलवाड़ीमें खेलने लगे । महायश ऐसा करकेभी भोगसे तृप्त नहीं हुए, समझकर उन महात्माने यह कविता पढ़ी जिस प्रकार आगमें घृत छीड़नेसे आग बूमकर बढ़तीही जाती है, उस प्रकार वस्तुओंके भोगसे काम निवृत्त न होकर जायाही करता है । रत्नोंसे भरीपूरी सुवर्ण, पशु और स्त्री यह सब वस्तु एक

बोले, जिसके भोगमें आनेसेभी उससे पूरी तृप्ति नहीं
लाभित कर सकती, यह समझकर शान्तिका आश्रय
एवं उपाधी उचित है। जब कोई जन कामना
के लिये कर्म मन और वाचसे प्राणीपर
करे किन्तु पापाचरण नहीं करते हैं। जब कोई
कार्य करने किसी प्रकारसे भय नहीं खाते और
तुम मनुष्यसे कोई भय प्राप्त नहीं करता तथा वह
ऐश्वर्यवन्तों की कामना वस्तु पर अभिलाषा और
जतन, जतनसेका द्वेष नहीं करते, तभी वह ब्रह्मको
प्राप्त कर सकते हैं। हे नृप ! महाप्राज्ञ ययातिने
मन्त्राधिकार प्रकाश कामकी तुच्छताका विचारकर
इस कल्पसे मनकी ठीककर पुत्रसे फिर अपना
मन को छोड़ा ले लिया। वह मनमाने भोगसे तृप्त
मनमाने हो करकेही पुत्र पुत्रकी यौवन देकर उसे
अश्वमेधमें बैठाकर बोले, कि तुम्हींसे मैं पुत्रवान्
प्राप्त हूँ; तुम्ही मेरे वंशतिलक पुत्र हो, यह वंश
हमारे नामहीसे प्रख्यात अर्थात् लोकोंमें पौरव
वंश करके प्रसिद्ध होगा।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर नृपसिंह
ययातिने पुत्रकी राज्याभिषिक्त करके भृगु-
पर्वतपर भली प्रकार तपका अनुष्ठान
करके महा तपस्वी होकर अनेक काल काटा;
तबमें वह पत्नीसहित अनसन व्रतसे कालधर्म-
प्राप्त कर स्वर्गको पधारे।
सम्भवपर्वमें पञ्चत्तरवां अध्याय समाप्त।

जनमेजय बोले, कि हे तपोधन ! मैं विस्तृत
परमेश्वरसे सुना चाहता हूँ, कि प्रजापतिसे दशवीं
व्यासों गिने जाते हुए हमारे पूर्वपुरुष यया-
ति परम दुर्गन्धशून्य गुरुपुत्रीकी क्योंकर प्राप्त
की तब बताया था; और भी आप दूसरे वंशकी
कथा यादोपान्त रीति-
से कहें।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे जनमेजय !
कालमें देवराजके समान तेजस्वी नृपति
ययातिने गुरु और वृषपर्वाके निम्न प्रकार

दमादके पद पर वरण किया था और नङ्ग-
पुत्र ययातिसे जिसप्रकार देवयानिका मिलन
हुआ था, वह आपसे कहता हूँ, सुनिये।

इस चराचरसहित त्रिलोकके ऐश्वर्य पाने-
के विषयमें देवासुरोंमें आपसकी अहङ्कार-
युक्त गहरी लड़ाई मची; देवोंने हेपवश
याजनकार्यके निमित्त अङ्गिकाके पुत्र मुनि
वृहस्पतिकी पुरोहितीमें वरित किया,
असुरोंनेभी शुक्रकी नियुक्त किया; वे दोनों
पुरोहित ब्राह्मण नित्य आपसमें अहङ्कार
किया करते थे। देवतालोग युद्धस्थलमें उप-
स्थित हुए जिन दानवोंको वध करते थे, शुक्र
विद्याके बलसे फिर उनको जिला देते थे; पर
असुरलोग युद्धमें जिन देवोंकी गिराते थे, सरल
बुद्धियुक्त वृहस्पतिजी उनको जिला नहीं सकते
थे; क्योंकि वीर्यवान् शुक्रजी जो सञ्जीवनी
विद्यासे ज्ञात थे, वृहस्पतिजी उसे नहीं जानते
थे, इससे देवगण बड़े दुःखी हुए। अनन्तर
देवोंने कविपुत्र उषनाकी देखकर अति भयसे
कातर होकर वृहस्पतिके बड़े बेटे कचके निकट
आकर कहा, कि हमने तुम्हारी शरण ली
वचाओ, तुम हमारी सहायता करो। अति
तेजस्वी ब्राह्मण शुक्रमें जो सञ्जीवनी विद्या है,
उसे शीघ्र सीख ली; हम तुमको यज्ञांशके
भागी बनावेंगे; तुमही वृषपर्वाके निकट उन
ब्राह्मणकी भेंट कर सकोगे, वह दानवोंको
रक्षा करते हैं, देवोंको नहीं वचाते। तुम्हारी
अनस्था कम है, सो तुम शुक्रकी आराधना कर
सकोगे और तुम्ही उन महात्माकी दयिता
कन्या देवयानीकी उपासना कर सकोगे; इस
विषयमें तुम्हारे विना कोई हमरा समर्थ नहीं
है। देवयानी तुम्हारी शीलता, दक्षिण,
मधुरता, आचार और दमसे मत्त होवे, तो
तुम उस सञ्जीवनी विद्याकी अवश्य प्राप्त करोगे
अनन्तर वृहस्पतिके यह बात कहकर दे-
वोंने उनसे पञ्चान वृषपर्वाके निकट

हे राजर् । दिवोंसे भेजे हुए वह कच गोध्र चलकर असुरराजके मन्दिरमें शक्रकी देग्न-करके बोले, कि मैं ऋषि अङ्गिराके पौत्र और बृहस्पतिका पौरस-पुत्र हूं। मेरा नाम कच है ; आप मुझको शिष्य बनावें। हे ब्रह्मन् । मैं आपको गुरु मानकर सहस्र वर्षों तक परम ब्रह्मचर्य्य अवलम्बन करूंगा, आप आज्ञा कोजिये। शक्रजी बोले, कि हे कच। तुम्हारा कल्याण होवे, तुम्हारी बात मान ली, तुम मेरे आदरके पात्र हो, तुम्हारे समादर करनेसे बृहस्पतिभी पूजे जायंगे। श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर कचने कविपुत्र शक्रको आज्ञासे ब्रह्मचर्य्य-व्रतको अवलम्बन किया। हे भारत। कच उस व्रतकालको प्राप्त कर उपाध्याय शक्र और देवयानीकी आराधना करने लगे। युवा कच शक्रकी सन्तुष्ट कर गीत, नाच और बाजेसे तथा फूल, फल और भांति-भांतिकी वस्तु देकर और टहलूएके समान आज्ञा मानते हुए युवती देवयानीकी सन्तोष देने लगे। देवयानीभी उस निर्लज्ज-पुरमें गीत और लालित्यसे नियम-व्रतशील उन ब्राह्मण कुमारकी सेवा करने लगी। इस प्रकार व्रतानुष्ठान करते हुए, कचको पांच सौ वर्ष बीत गये।

अनन्तर एकदिन वह निर्लज्ज वनमें अकेले गौकी रखवारी कर रहे थे, कि ऐसे समयमें दैत्योंने उनकी देखकर यह जान करके, कि यह बृहस्पतिके पुत्र कच है, सञ्जीवनी विद्याकी रक्षाके लिये और बृहस्पतिजी पर द्वेष कर क्रोधपूर्वक उनको मार डाला, आगे उनकी टुकड़े-टुकड़े कर सियार कुत्तों को दे दिया। हे भारत। इसके अनन्तर गौओंके रखवारीके बिना अपने घर, लौटनेपर देवयानीने देखा, कि गौ वनसे लौट आई, पर कच नहीं आये, तब वह कुछकाल ठहरकर पितासे बोली, कि हे प्रभा पिता ! सूर्यदेव अस्तावल को पधारे,

आपका अग्निहोत्र आहुत हुआ और गो-वारोंसे रक्षित होकर लौट आई, पर नहीं देखा। हे पिता। मुझको नि- पड़ता है, कि कच मरे या मारे गये; मैं कहती हूं, कि बिना कचके जी नहीं सकूँ। शक्रजी बोले, कि “हे कच। चने जाओ, मरे हो, मैं तुमको जिलाता हूं,” यह श्रुत-सञ्जीवनी विद्या पढ़कर कचको बुला कर बुलाये जाने की विचार कुत्तोंके शरीरों फाड़करके निकलकर आ पड़ें और वनी विद्याका प्रभाव देखकर प्रसन्न हुए। देवयानीने उनसे पूछा, कि तुमने क्यों इतनी देर की? कचने उत्तर दिया, कि हे भावनी! मैंने समिध लकड़ीके बौझ और कुशादि लेकर आनके कालमें बहुत थककर एक गौ को आश्रय किया था और गौ भी उस घास-छांहमें थीं। असुरोंने उस स्थानमें मुझ देखकर पूछा, कि तुम कौन हो? मैंने कहा कि मैं बृहस्पतिके पुत्र कच हूँ; यह श्रुत कहतेही दानवोंने मुझको नष्ट कर टुकड़े करके सियार कुत्तोंको देकर हीके निज स्थानमें पधारे। हे भर्तृ ! ब्रह्मर्षि भार्गवके सञ्जीवनी विद्या पढ़कर मुझको बुझाने पर मैं किसी प्रकार जी करके यहां तुम्हारे सामने आया हूं, और शक्रकन्यासे पूछी जान कचने यह भी कहा, कि हा। मैं मारा गया।”

अनन्तर ब्राह्मण कच फिर देवयानीसे आज्ञासे फूल बटोरनेके लिये मनमाने वन चले गये। दानवोंने फिर भी उनकी देखकर पीस करके समुद्रके जलमें घोल दिया। अनन्तर देवयानीने उनकी देरतक न आते देखकर पिताको वह समाचार सुनाया, इससे बृहस्पति-पुत्रने फिर शक्रकी विद्याके ब्रह्म बुलाये जाकर आ करके वह सब हाल कच सुनाया। अनन्तर असुरोंने तीसरी बार उनके

ने देखकर जलाकर और चूर चूर मंदिरासे मिलाकरके उन शुक्रहीको पिला । आगे देवयानीने फिर पितासे कहा, पता । मैंने कचको फूल बटोरनेके लिये था, अबभी आते नहीं देखती हूँ, मुझको य जान पड़ता है, कि वह सरे या मारे, मैं निश्चय कहती हूँ, कि उस कचके बिना जीऊंगी । शुक्र बोले, बेटी ! बृहस्पति-पुत्र कच मर गया है, मैं क्या करूँ ? आपके बलसे मैं बार बार उसको जिलाता हूँ, परभी असुरलोक उसको मार डालते हैं, गानि । तुम शोक न करना, मत रोओ, मेरे समान प्रभाववती नारि किसी नश्वर के लिये कभी शोक प्रकट नहीं करती ; मैं तुम्हारे प्रभावसे ब्रह्मा, ब्राह्मण, इन्द्रादि, ना, वसुलोक अश्विनीकुमार और असुरगण गुण जगत् तुम्हारी उपासनाकी आशासे सिर धरे रहते हैं, सो तुमको शोकसे क्या प्रयो- है ? उस ब्राह्मणको जीवित रखना मेरा पथ हो गया है, क्योंकि उनको बार बार जाने परभी असुरलोक बार बार बंधकर होते हैं । देवयानी बोली, कि बूढ़ोंसे बूढ़े इरा जिनके पितामह, और तपोनिधि बृह- ते जिनके पिता हैं, ऐसे ऋषि-पौत्र और पुत्र उन कचके लिये क्यों नहीं शोक तंगी ? अथवा क्यों नहीं रोऊंगी ? अहा ! ब्रह्मचारी तपोधन थे, वह कर्ममें सदा सही और दृढ़ थे, पिता । मैं फिर जन न करकेही उस कचकी वाट लूगी । कि उनका स्वरूप मुझे बड़ा प्रिय ता है ।

आश्रमायनकी बोल कि कविपुत्र मर्हार्पि पाचार्यने देवयानीसे इस प्रकार उत्साहत पर जोधने देव्यापर आक्रोश किया और कि असुरलोक निश्चित मेरा रूप किया तें नही तो मेरे शिष्योंके आनंदपर

वे क्यों उनकी मार डालते हैं ? कृटिलात्मा असुरलोक मुझकोही ब्रह्महत्याके पापसे पापी बनाते हैं और सदा मेरा विरुद्धाचरण करते हैं, ब्रह्महत्या किसकी नहीं जला देती है ? इन्द्रकीभी भक्षकर सकती है ; क्या यह पाप कभी नष्ट होता है ? अनन्तर उनके मञ्जी-वनी शिष्यासे कचको बुलाने पर कचने गुरुके पेटमें रहकर गुरुहत्याके भयसे भीत होकर धीरे धीरे उत्तर दिया । उस पर शुक्र बोले, कि हे विप्र । यह कहो, कि तुम कौन पथसे मेरे पेटमें जा चुके हो । कच बोले, कि हे गुरो । आपकी कृपासे मुझे स्मरणशक्ति लुप्त नहीं हुई, जो जिस प्रकारसे हुआ, वह सब स्मरण है, इस लिये, कि कहीं हमको गुरुके पेटकी फाड़नेके लिये पापके कीचड़में डूबना न पड़े और तप घट जाय, पेटमें वसनेका अपार कष्ट सह रहा हूँ । हे काय ! असुरोंने मुझ-को मार, जलाय और चूर चूर करके मंदिरामें घोलकर आपको दे दिया था, पर हे विप्र ! आपके रहते आसुरिक माया क्योंकर ब्राह्म-णिक मायासे बढ़ सकेगी ? तब शुक्रने देव-यानीसे कहा, कि बेटी देवयानि । इस समय क्योंकर तुम्हारा प्रियानुष्ठान करूँ ? मेरे नाश होनेसे कच जी सकता है, क्योंकि कच मेरे पेटके भीतर है ; मेरा पेट बिना फाड़े नहीं निकल सकेगा । देवयानी बोली, कि कचका नाश और आपकी मृत्यु यह अग्निवत् दोनों शोकही मुझका जलान लगेगी ; कुछ ऐसा नहीं, कि कचके नाश होनेमें कुशलमें रहूंगी, आपको कोई ज्ञान पड़चने संभा मैं जी नहीं सकूंगी । तब शुक्रने कचसे कहा, कि हे बृहस्पतिपुत्र कच । तुम बृहस्पतिके पुत्र करके प्रख्यात और देवयानीके प्रेमी हैं और देवयानीभी तुमका भज रही है ऐसी दशासे यदि तुम कचके स्वरूपमें इस न हो, तो आप जो मञ्जीवनी विद्या तुमको देता है, तु

लो; केवल ब्राह्मणोंके बिना उसरा जन मेरे पैटमें घुसके फिर जीवन पाकर नहीं निकल सकता, सो तुम यह विद्या लो, मैं तुमको जीवन देता हूँ; बेटा ! मेरी देहसे निकल कर और पुत्ररूपी होकर मुझको जिलाओ, गुरुसे विद्या लाभ करके विद्यावान् होकर धर्मपथ पर दृष्टि रखना, अकृतज्ञ न होना ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि ब्राह्मण कच गुरुसे सञ्जीवनी विद्या लाभकर जिस प्रकार पौर्णमासीके दिन सूर्यके अस्त होने पर पूर्णचन्द्रमा प्रकट होता है, वैसेही शुक्रकी कोखकी फाड़कर जसीक्षणा साक्षात् निकल आये । अनन्तर ब्रह्मापुत्र शुक्रको मरे और गिरे हुए देखकर सञ्जीवनी विद्यासे उनको जिलाया और उठा करके उस सिद्ध सञ्जीवनी विद्याको प्रणाम कर बोले, कि जब विद्याहीन था, तब जिन्होंने मेरे 'कानोंमें' विद्यारूपी अमृत डाल दिया है, मैं 'उनको' पिता और माता समझता हूँ । जो जन कृतज्ञ होता है, वह कभी गुरुका विपरीताचरण नहीं करता ; जो लोग विद्यालाभ कर अष्टतम सभ्यके उपदेश करनेवाले और निधिकी निधि तथा पूजनीय गुरुका समादर नहीं करते हैं, वे इस लोकमें अप्रतिष्ठा लाभ कर अन्तर्मे-नरकको सिधारते हैं । श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि विद्वान् शुक्रने मदिरा पीकर उन्मत्त होय और ठगे जाकर कचको उसके साथ पी लिया था, यह देखकर मदिरा पानका चेतनानाश-रूपी गहरा दोष समझ करके क्रोधित हुए । तब स्वयं मदिरापान पर क्रोधित उन महानुभाव उपनाने ब्राह्मणों की हितेच्छासे उठकरके कहा, कि आजसे जो ब्राह्मण मोहवश मदिरा पान करेगा, वह मन्दबुद्धि ब्राह्मण धर्मसे च्युत और ब्रह्महत्याके पापमें-निमग्न तथा इस लोक और परलोकमें निन्दनीय

होगा । मैंने ब्राह्मणोंके धर्मके विषयों की सीमा और मर्यादा जगत्में स्थापित इसकी साध लोग ब्राह्मण लोग, देव लोग, गुरुसेवी लोग सबकोई सुना, अप्रमेय, निधियों की निधि और महानुभाव शुक्र । पर यह आपकी वाणी कहकर देवसे दानवांकी झुलवाकर बोले, कि दान सुनो, तुमसे कहता हूँ कि तुमने अति समान कार्य किया है । यह महात्मा कच इसक्षणा सञ्जीवनी विद्या पाकर सिद्ध हैं, मेरे पास रहेंगे । यह इस क्षणासे और मैं तुल्य प्रवाची हुए । भार्गवोंने नाही कहकर चुप होने पर दानव लोग रज मानकर निज निज परकी निज अनन्तर कचने गुरुके यज्ञा सहस्वर्ष पा पीके गुरुकी आज्ञासे स्वर्गधाममें जाना चाह सन्ध्या पर्वमें किञ्चनरवां अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि कचका कुलमें वसनेका ब्रह्मचर्य व्रत समाप्त होते वह गुरुसे विद्या लेकर स्वर्गधाममें गये कि ऐसे समयमें देवगानी उनसे बोली कि ऋषि अङ्गिराके पौत्र । यह समझकर शीलता, कौलिन्य, विद्या, दम और प्रज्वलित और महायश महर्षि अङ्गिरा प्रकार मेरे पिताके माननीय है, वैसेही सतिजीसी मेरे माननीय और पूजनीय जो कुछ कहती हूँ, हे तपोधन । तुम तुम जब व्रताचारी और नियमान्वित हैं, मैंने तुमसे जैसा व्यवहार किया है, जानते हो, इस समय तुम ब्रह्मचर्यमें हुए हो इससे अपनी अनुगत इस भजना उचित है, अतएव विधिपूर्वक पढ़कर मुझसे विवाह कर लो । कच बोले कि हे अनिन्दिताङ्गी । तुम्हारे पिता शुक्र जिस प्रकार मेरे पूजनीय और

सेहो तुमभी मेरी पूजनीया हई हो ।
 तुम मेरे गुरु महात्मा भार्गवके प्राणसेभी
 कन्या हो, सो तुम मेरी गुरुकी पुत्री
 हे धर्मानुसार सदा पूज्यतमा हई हो ।
 वजानि । तुम्हारे पिता शुक्र मेरे गुरु है,
 जिस प्रकार सदा मेरे माननीय है, तुमभी
 ही मेरी माननीया हो, इस दशमें सुभसे
 कहना तुमको नहीं चाहिये । देव्यानी
 तो, कि हे द्विजोत्तम । तुम मेरे गुरुपुत्रके
 हा, मेरे पिताके पुत्र नहीं हो, सो तुमभी
 पूजनीय और माननीय भये हो । हे कच ।
 अचुरोनि बार बार तुम्हारा प्राण नष्ट
 था था, तबसे तुमपर मेरी जितनी प्रीति
 और मित्रता तथा प्रेम प्रकाश होनेसे तुम-
 मेरी जितनी भक्ति है, वह अवश्यही
 नित होगे, आज एकवार सब स्मरण कर
 लो । हे धर्मज्ञ । मैं भक्तिमती और
 होंपी हूं सुभको त्यागना तुमको नहीं
 चाहिये । कच बोले, कि हे शुभव्रते ! अनु-
 त कार्यमें सुभको नियुक्त कर रही हों,
 उचित नहीं है । हे अच्छे भौवाली ।
 सुभ । सुभपर प्रसन्न होओ, तुम गुरुसे
 ही गुरुतरा भयी हो : हे भद्रे । प्रशस्तनेत्रा ।
 सुख, भाविनी, सुन्दरी । यहभी विचारी
 तुमने काव्य के जिस कोखमें वास
 किया था, मैंभी उसी कोखमें वस चुका हूँ ।
 मेरे धर्मानुसार तुम मेरी वाहन हई हो,
 फिर ऐसा न कहना । हे भद्रे । तुम्हारे
 हा परम सुखसे था, कभी दुःख नहीं देखा,
 जाऊंगा, तुमसे विदा मागता हूं, यह
 हा शिष्य दो, कि मार्गमें मेरा मङ्गल होवे ।
 तुम धर्मकी विरोध-वर्धित कथाके अवसरमें
 करण करना और भावधान तथा
 शिष्याणां शिष्या कीकर मेरे गुरुकी नित्य पूजा
 कर लेना । देव्यानी बानी, कि कच ! मैं धर्म-
 तुम्हारे मार्ग बार बार तुम्हारी मार्गना करती हूं,

यदि इसे न मानो, तो तुम्हारी यह सच्चीवनी
 विद्या सिद्ध नहीं होगी । कच बोले, कि मैं
 तुमको गुरुपुत्री जान करकेही नहीं जानता,
 कोई अन्य दोष समझ करकेही ऐसा नहीं
 करता हूं, विशेष इस विषयमें गुरुने सुभी आज्ञा
 नहीं दी है, सो तुम जो चाहतो हो, सो शप
 दो । हे देव्यानि । ऋषियोंका जैसा धर्म है,
 उसके अनुसार मेरे व्यवहार करनेसे धर्मानुसार
 मैं शपके योग्य नहीं हूं पर तुमने कामके वश
 सुभको शप दिया, सो तुम्हारी कामना पूरी
 नहीं होगी—कोई ऋषिपुत्र तुमसे विवाह नहीं
 करेगा । और तुमने जो शप दिया, कि मेरी
 वह विद्या सफल नहीं होगी, वह सत्यही होगा,
 पर मैं जिसकी वह विद्या पढ़ाऊंगा, उसकी वह
 विद्या अवश्य सफल होगी ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि द्विजश्रेष्ठ कच
 देव्यानीसे ऐसा कहकर वीरसे स्वर्गपतिके
 घरकी गये । इन्द्रादि देवता उनकी आंत
 देखकर वृहत्सतिकी ओर प्रीतिसे देखके कचसे
 बोले, कि तुमने हमारा अति आश्चर्य
 हित कार्य किया है, इसमें तुम्हारा यश
 सदा स्थायी होगा और तुम यज्ञके अंश
 भागी होगे ।

सम्यक् दर्शने मतहन्तरवा अथाय नमात् ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भरतपंथ ।
 देवगण विद्यावान कचका प्राप्तकर परम मनुष्य
 चित्तमें उनसे वह विद्या पढ़कर कृतार्थ हुए ।
 अनन्तर सब देवता देवराजके निकट आकर
 बोले, कि हे पुरन्दर ! आपके वक्रम प्रगट
 करनेका यही समय है, इस जग शत्रुकुलका
 नष्ट कीजये । सम्पूरा देवोंके मन्त्रकर ऐसा
 कहनपर इन्द्र "तदास्तु" कहके मान कर
 उसके प्रवचनके निर्मल चले । थाने वह देख-
 कर, एक चैतन्यके समान एक वनमें रुक गया
 जलमें खिल रही है, उन्होंने गायत्री मन्त्र

लेकर उन सबोंके वस्त्रोंको एक दूसरेसे मिला दिया । अनन्तर सब कन्यायोंने एकही समय निकलकर जिसके निकट और वस्त्र मिला, वही पहिन लिया । राजा वृषपर्वाकी कन्या शर्मिष्ठा ने वस्त्रोंकी मिलावट न जानकर देवयानीका वस्त्र ले लिया, हे राजेन्द्र ! तब उस हेतु शर्मिष्ठा और देवयानीमें आपसका भगड़ा खड़ा होजानेपर देवयानी बोली, कि असुर-पुत्री ! तुम शिष्या होकर क्यों मेरा वस्त्र ले रही हो ? तुममें शिष्टाचार नहीं है, कभी तुमको मङ्गल नहीं होगा । शर्मिष्ठा बोली, कि मेरे पिता जब बैठे वा सोये रहते हैं, तुम्हारे पिता तब नीचे रहकर नम्रभावसे भाटकी भांति सदा उनकी स्तुति करते रहते हैं ; तुम्हारे पिता भीखमङ्ग्रे हैं, मेरे पिता दाता हैं ; तुम्हारे पिता स्तुति पढ़नेवाले, मेरे पिता स्तव किये जानेवाले हैं ; तुम्हारे पिता दान लेकर जीविका निर्वाह करते हैं, मेरे पिता दान नहीं लेते ; री भीखमङ्ग्रे । तुम अस्वहीना हो, मैं अस्ववती हूँ, री भीखसे जीनेवाली । तुम चाहें क्रोध करो वा दुःख मानो, अथवा विद्रोह मचाओ, वा क्रोधिता होओ, उससे केवल तुम्हारा दरिद्रताके हेतु चोभही प्रगट होता है ; तुमने समझ लिया है, कि मैं तुम्हारे समानकी विरोधी हूँगी, पर मैं तुमको गिनतीहीमें नहीं लाती हूँ ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि शर्मिष्ठाने वस्त्रके लिये देवयानीकी बड़ी आसक्ति और बड़ी देखकर उसको क्रूपमें डाल दिया ; पापचिन्ता शर्मिष्ठा यह समझकर, कि देवयानी मर गयी है, न देखकरकेही क्रोधके वश चली गयी । अनन्तर नङ्गप्रपुत्र ययाति सगयाके लिये उस वनमें आये थे ; उनके वाहन और घोड़ोंके वज्रत यकनेपर उन्होंने जल दूढ़ते हुए एक सूखा कूआ पाया और उसमें देखा, कि अग्निकी शिखा समान एक कन्या रो रही है ; नृपोत्तम

ययातिने उस दिव्यदेहा कन्याको : मन-हरने-वाली थीमी बोलीसे समझाकर कि तामिके रङ्ग नखवाली, मली हुई, कण्डलवाली युवती नारि । तुम कौन हो ? ऐसी चिन्ता कर रही हो ? क्यों कातर ? शोक प्रकाश कर रही हो ? और क्यों इस पासपातमें ठंप्पे हुए क्रूपमें गिर रही ? तुम किसकी बेटी हो ? हे सुन्दरी यह सब सच बोलो ।

देवयानी बोली, कि देवोंसे दैत्यों के जानेपर उन सब दैत्योंको जो विद्याके वर मिलते हैं, मैं उन शुककी कन्या हूँ, वह मैं यह दशा जान नहीं सके हैं, हे राजा ! यह तामिके रंगवाले नख उंगली युक्त हाथको ऊपर उठाती हूँ । इसे पकड़ सुझे निकालिये, क्योंकि आप सुवंशी हैं निश्चय जानती हूँ, कि आप बड़े धीर, और यशवाले हैं, इससे आपको सुझे इससे निकालना चाहिये । श्रीवैशम्पायनजी बोले कि नङ्गप्रपुत्र राजा ययातिने उसकी कन्या जानकर दहिना हाथ पकड़कर क्रूपसे निकाला । वह सुन्दरी देवयानी ऊपर जिकालकर उचित सम्भाषण कर के चला अपने नगरकी पधारे ।

नङ्गप्रपुत्रके चले जाने पर अनिन्दित देवयानी शोकसे खेदवती होकर असुरपुरसे हुई धूर्तिका नास्ती दासोसे बोली, कि धूर्ति ! तुम शीघ्र चलकर मेरे पितासे कहो, कि इनदिनों राजा वृषपर्वा के नगर में न जाने वैशम्पायन वाले, कि वह धूर्तिका दूत के असुर-मन्दिरमें जाकर शुककी देखकरके मेरे साथ बोली, कि हे महाभाग ! वृषपर्वाकी कन्या शर्मिष्ठा वनमें देवयानीके घायलकर आई है । यह सुनतेही शुक कन्याको दूढ़नेके लिये विषादित चिन्तित हुए पूर्वक सिंधारे । अनन्तर वनमें कन्या

नीकी देखकर स्नेहवश दुःखित हृदयसे हाथों से उठाय गलेमें लगाकर बोली, कि सभी जन निज दीप और गुणके अनुसार दुःख और सुख भोगते हैं, मैं समझता हूँ, कि तुमने कोई बुरा कार्य किया होगा, उसीसे निष्कृतिरूपी अन्ध दशा भयी है। देवयानी बोली, कि मेरा व्यवहार हीवे वा न हीवे, वृषपर्वाकी कन्या शर्मिष्ठा ने मुझसे जैसा कहा है, उसको ध्यान देकर सुनिये। शर्मिष्ठा ने कहा है, कि आप देवियों के भाट हैं, क्या यह सच है? और क्रोधसे आखें लालकर अति कटीली और कड़वी बातोंसे मुझसे यह भी कहा, कि “तुम्हारे पिता स्तुतिपाठ करनेवाले, सदासे भिखमंगे और दान लेनेवाले हैं; और मेरे पिता स्तुति किये जाते हुए दाता और दान देनेवाले हैं।” अहङ्कारसे भरी हुई वृषपर्वाकी कन्या ने क्रोधसे रक्तनेत्रा बनकर बार बार मुझसे ऐसा कहा; पिता। मैंने यह बात कही है, कि यदि मैं स्तुतिपाठ करनेवाले और दान लेनेवाले की बेटी हूँ, तो शर्मिष्ठाकी प्रसन्न करूँगी। शुक्र बोले, कि देवयानी! तुम स्तुति पढ़नेवाले, भिखमंग वा दान लेनेवाले की बेटी नहीं हो, स्तुति न पढ़नेवाले और स्तुति किये जानेवाले जन की कन्या हो; वृषपर्वा, इन्द्र और नहुषपुत्र यह सबलाग जानते हैं, मेरा विराध-वाञ्छन्त, सचके बाहर शर्मिष्ठा और नहुषपुत्र ह, स्वर्ग और भूतलमें जाते हैं, वे उनका नियन्ता हैं, भगवान् शिवजी न मन्ताप-पूजक ऐसा कहा है। तुमसे मैं यह कहता हूँ, कि मेरी प्रजापति की हतके शिवजी जल वपाता है, सुकसेही सम्पूर्ण शिवजी वृष्ट होती है। ओवेशम्भायनजी बोले, कि दुःखवशात् और खेदग्रस्तता पूर्णकी ऐसी भविष्यत्वात् सोचो, पतिने उनका पिता शुक्रन

शुक्र बोले, कि जो अन्यजनसे निन्दित होकर निन्दा की बातकी सहलेंते हैं, देवयानी। तुम जानना, कि उससेही इस सम्पूर्ण जगत्का जय करना होता है। जो उठले हुए क्रोधकी शासित घोड़ेकी नाईं शासित करते हैं, वही साधुओंसे सारथि करके उक्त होते हैं। वास्तवमें, ऐसा नहीं, कि वह घोड़े की रामहीकी पकड़नेसे सारथि कहे जाते हैं। जो क्रमासे चढ़े हुए क्रोधकी रोक लेते हैं, देवयानी। तुम जानना, कि उससे ही इस सम्पूर्ण जगत्का जय करना होता है। जो मर्पके केंचुल छोड़ने की भाँति चढ़े हुए क्रोधकी क्रमासे रोक लेते हैं, वही पुरुष करके कथित होते हैं। जो क्रोधकी रोकते हैं और किसीकी निन्दा करनेसे उसकी सह लेते हैं, तदा आप दुःखित होने पर भी औरों को दुःख नहीं देते हैं, वही पुरुषार्थकी भागी हैं। जो बिना थकावट महीने महीने यागकी क्रिया करते हैं और सर्व प्राणियोंके अक्रोधी होते हैं, इन दोनोंसे अक्रोधी पुरुषही श्रेष्ठ हैं। अज्ञान बालक बालिका आपसमें जो अनिष्टाचरण किया करती हैं, प्राज्ञलाग उसका अनुकरण नहीं करते, क्योंकि वे बालक बालिका बलाबलसे ज्ञात नहीं हैं। देवयानी बोली, कि पिता। मैं बालिका होने पर भी धर्म का मर्म जानती हूँ और अक्रोध और क्रोधके विषयमें बलाबलसेभी ज्ञात हूँ, पर जा श्रेष्ठ होकर शिवकी समान व्यवहार नहीं करता। मझलेछुक जनकी उसकी क्रमा न करना चाहिये, और जिनके व्यवहार ऐसे निकृष्ट हैं, उनके दिग्में वसनेकी मुझ इच्छा नहीं होती। जो भक्त पुरुष कौतिल्य और चरित्रके विषयमें निन्दा करते हैं, उनके साथ सम्बन्धियों जनका वसना उचित नहीं है। जो न्य साधु हल, शालके ज्ञात हैं उनके साथ वसना उचित है और वह ब्राम्हणी चेष्टा करके गता जाता है। जिस प्रकार अग्निप्रामा

वनकी लकड़ीका मथन करते हैं, उसप्रकार वृषपर्वाकी कन्याकी अति कठार कटीली बात मेरे हृदयकी मथ रही है। मैं जानती हूँ, कि तीनोंलोकोंमें इससे अधिक असाध्य काश्ये कोई हमरा नहीं है, जो धनहीन जन शत्रुओंको प्रचलित श्री देखकर उपासना करते हैं, विद्वान् लोग ऐसा जानते हैं, कि ऐसे जनकी मृत्युही मङ्गल है।

सभ्यवपर्वमें उनहत्तरवा अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर भृगुश्रेष्ठ काश्ये काधसे चलके, बैठे हुए वृषपर्वाके पास पहुँच करके, निर्भय चित्तसे यह कहने लग, कि राजन् ! अधर्माचरण करनेसे उसी दिन उनका फल दोखता नहीं पड़ता है, पर जिस प्रकार धरतीका जातने बानेसे उचित समयमें फलदेतो है, उस प्रकार अधर्माधी धीरे धीरे आचारित होकर याग्यकालमें अधर्माकारीकी जड़ काट देता है। जिस प्रकार अधिक भाजन करनेसे उसीक्षण हानि न होनेसेभी अन्तमें अवश्यही हानि होती है, तैसे ही पापकाश्येका फल यादे अपनेमे न दोख पड़ता हो, तो पुत्र वा पौत्रमे वह अवश्यही दोख पड़ेगा। हे वृषपर्वा ! मेरे घरमें रहते हुए धर्मज्ञ, गुरु-सेवक और निष्पापी ब्राह्मण बृहस्पतिपुत्र कौचको तुमन बध किया था, बधके अयाग्य उस कचके बधके कारण और मेरी पुत्रीका तुम्हारो बेटों शर्मिष्ठाने प्रायः मारही डाला था, उसहेतु तुम निश्चय जानना, कि तुमको और तुम्हारे बान्धवाको मैं त्याग दूँगा। अहो देवराज ! जोकि तुम मुझको झूठमूठका प्रलाप बकने वाला समझते हो, पर यह तुम्हारा अपना दोष है, उसे तुम न सुधारकर उड़ा दिते हो, सो तुम्हारे राज्य और साथमें मेरा न रहनाही उचित है। वृषपर्वा बोले, कि हे भार्गव ! मैं आपको झूठे वा अधर्माधिक नहीं समझता

हूँ, सो आप मुझपर प्रसन्न होंगे। हे भार्गव ! यदि आप हमको छोड़कर यहाँसे चले जाते, तो मैं समुद्रमें जा डूबूँगा, क्योंकि आपके बिना हमारी कोई और गति नहीं है। गुरुजी बोले, कि असुरगण ! तुम चाहे समुद्रमें डूबो वा किसी ओर पधारो, पर मैं बेटोका अन्याय चरण सह नहीं सकूँगा, क्योंकि वह मेरी बड़ी स्नेहपात्री है। बृहस्पतिजी के इन्द्रके यागके निन्धाह करनेहारि हैं, सो तुम्हारे वैसा हूँ पर मेराजीवन देवयानीके अधीन है अतएव देवजानीको प्रसन्न करो। वृषपर्वा बोले, कि हे भार्गव ! इस भूमण्डलमें असुरोंके हाथी गौ, घोड़े और जितना धन सम्पद है, आप उन सबके और मेरेभी अधिकारी हैं। गुरुजी बोले कि हे महासुर ! असुर राजाका जितना ऐश्वर्य्य है, यदि मैं सबका अधीश भी बनूँ, तोभी देवयानीको प्रसन्न करूँ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि भार्गवकी ऐसी बात सुनकर महाविज्ञ वृषपर्वा ने उसे मार लिया और उसके साथ भार्गवने देवयानीके पान चलकर वह सब वृत्तान्त कह सुनाया। अनन्तर देवयानी बोली, कि हे पिता ! मैं भला भाति नहीं जानती हूँ, कि आप देवराजकी सम्पूर्ण सम्पद के अधीश हैं, सो राजा ऐसा कहे। वृषपर्वा बोले, कि हे सुदा देवयानि ! तुम्हारी जो कामना हो, सो कहो यदि वह दुर्लभ भी हो तो उसे पूरी करूँगा। देवयानि बोली, कि मैं कामना करती हूँ, कि सहस्र कन्याओंके साथ शर्मिष्ठा मेरी दास बने, मेरे पिता मुझको जहा दान कांछे, शर्मिष्ठा वहाँ मेरे साथ जायगो। वृषपर्वा निकटको दासीसे बोले, कि दासो ! उठो, शीघ्र जाकर शर्मिष्ठाको लाओ, देवयानी जो कामना कर रही है, शर्मिष्ठासे उसे पूरी करनेका कहो।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर दार्शनिक

शर्मिष्ठा के पास जाकर कहा, कि भद्रे !
कर शर्मिष्ठा । उठी, वन्धुओं के मझल करने की
होइ प्रवती होयी, ब्राह्मण शुक्र देवयानी से आदिष्ट
न होइ कर शिष्य देव्यों को त्याग रहे हैं । हे अनघे !
तुम आज उन शुक्र-कन्या ने यह कामना की है,
र मैं जो कि तुमको सहस्र दासियों के साथ उनकी दासी
बनना पड़ेगा ; तभी वह मानेंगी । शर्मिष्ठा
बोली, कि यदि देवयानिके लिये शुक्र सुभको
कर लावें, तो आज देवयानी जो कामना करेगी
उसको मैं पूरी करने को सममत हूं, मेरे दोष से
शुक्र और देवयानी न जायं ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर शर्मिष्ठा
पिता के प्रवन्ध के अनन्तर पाल्की पर चढ़कर
सहस्र कन्याओं से घेरी जाकर के श्रेष्ठपुर से
शीघ्र निकली, आगे देवयानिके पास आकर
बोली, कि मैं सहस्र दासियों के साथ तुम्हारी
सेविका दासी बनी, तुम्हारे पिता जहां
तुमको दान करेंगे, मैं वहां तुम्हारे साथ
जाऊंगी । देवयानी बोली, कि मैं तुम्हारी
स्तुति पढ़नेवाली, भिखमंगी और दान लेनेवा-
ली कन्या हूं ; तुम स्तुति किये जानेवाली की
पुत्री हो । फिर क्यों तुम दासी बनोगी ?
शर्मिष्ठान उत्तर दिया, कि चाहें जिस किसी
उपाय से वन्धुवर्ग सुखी होवें, वही सुभको करना
होगा । सो तुम्हारे पिता जहां तुमको दान
करेंगे, मैं वहां तुम्हारी साथी बनी रहूंगी ।
श्रीवैशम्पायन जी बोले, कि हे नृपसेठ !
हृषपर्व की बेटे के दासीपन स्वीकार करने पर
देवयानी पिता के पास जाकर बोली कि हे पिता !
मैं सन्तुष्ट हूँ, अब नगर को जाऊंगी, मैं जान
चुकी कि आपका विज्ञान और विद्या का बल
अर्थ है । वैशम्पायन बोले, कि महायशः ।
शुक्र एवी की यह बात सुनकर सब
देवों में पूजे जाकर प्रसन्नचित्त से असुरपण्डों
पर ।

अनन्तर पर्व में सभी उपाय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे नृपोत्तम !
अनन्तर वृद्धकाल पश्चात् सुन्दरी देवयानी
खेलने के निमित्त पूर्ण कायत उस वन में गयी
आगे वृद्ध सहस्र दासी और शर्मिष्ठा के साथ
वहां पङ्चकर मनमाना घूमने लगी । वह
वहां सम्पूर्ण सहेलियों के साथ परम आनन्द
भोगने लगी, वे सब मधु-हृदका मधु पीकर
कभी खेल रही थीं ; कभी भांति भातिके फल
और भाति भातिकी भोजनीय सामग्री खारची
थी, कि ऐसे समय में नृपपुत्र ययाति फिर मृगया के
निमित्त आन कर थकावट से जलपानार्थी हो-
कर स्नेच्छापूर्वक वहां आ पङ्चवे । उन्होंने
वहां देवयानी, शर्मिष्ठा और अनुपम रूपवती
दिव्य आभूषणों से सजी धजी मधुपान से उन्मत्ता
खेलती हुई कामिनियों को देखा, मधुर
हासिनी अनुपम रूपवती, नारियों में प्रधाना
देवयानी उन बालाओं में बैठी थी, शर्मिष्ठा
उसको प्रांव आदि दाव-दावकर सेवा कर रही
थी । यह देखकर राजा ययाति निकट जाकर
बोले, कि शुभे । तुम दो कन्या दो सहस्र
कन्याओं से घिरी हो, तुम दोनों के नाम, गो
जानना चाहता हूं । देवयानि बोली, कि
नराधिप । यह कहती हूं, सुनिये । जो असुर-
पण्डों के गुरु, शुक्र नाम से प्रख्यात है, मैं उनकी
कन्या हूं, यह हृषपर्व नामक दैत्यराज की
दुहिता हूं, इनका नाम शर्मिष्ठा है, यह मेरी
सहेली और दासी हैं, मैं जहां जाता हूं, यह
मेरे साथ जाती हैं । ययाति बोले कि यह
जानने के लिये मेरा कौतूहल बट रहा है, कि
यह सुन्दर भौंहवाली दैत्यराज दुहिता आ-
कर तुम्हारी दासी हुई । देवयानि बोली, कि
हे नरसेठ ! सब हृदय देवकी का वशीभूत है,
देवावीन विषय में अचरज न मानना आपका
रूप और वेद राजा को भक्ति देवती है, आप
वैदिक श्रद्धा कह रहे हैं ; मुझसे कहिये, कि
आप कौन किसके पुत्र और कहाँ से आते हैं ।

य अपार प्रीति पाओगी, —और, इस मारी वृषपर्वाकी दुष्टिताकी-सदा पूजा करना, हे राजा ! इसको विस्तर पर न लाना ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि शुक्रकी यह बात सुनकर राजा ययातिने उनकी प्रदक्षिणा करके शास्त्रीय विधिके अनुसार-देवयानीसे शुभ विवाह किया । उक्त वृषपर्वा, शुक्रसे दो पुत्र कन्या और शर्मिष्ठा सहित उत्तमाङ्गना देवयानीकी और प्रचुर धन लाभ कर, महात्मा शुक्र और दैत्योंसे सत्कार किये जाकर और आज्ञा पाकर प्रसन्न चित्तसे निज राज-दानीकी पधार ।

सम्भवपर्वमें एकासी अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर ययाति ने महेन्द्रकी परीक्षी निज पुरीमें पञ्चवक्त्र-पुरमें प्रवेश-पूर्वक देवयानीकी योग्य वास-दान दिया । आगे देवयानीकी आज्ञासे शोक वनके निकट घर बनाकर, उसमें वृष-पर्वाकी पत्नीकी वासस्थान बनवा दिया और सहज दासीके साथ उस-शर्मिष्ठाकी-वस्त्र, लङ्कार, अन्न पानादिसे यथोचित-विभागके तत्पश्चात् आदर सत्कारपूर्वक रख दिया । अनन्तर वक्त्र-पुरमें राजा देवयानीसे परम प्रीतिपूर्वक विचार करते हुए, वृद्धवर्ष बिताने लगा । ययातिसमयमें देवयानीका ऋतुकाल आने लगा । सुन्दरी देवयानीने गर्भ धारण किया । जो उसके एक सुदृशमान पुत्रका जन्म हुआ । शर्मिष्ठा वर्ष वर्तीत है नेपर यौवन-प्राप्ता शर्मिष्ठाका ऋतुकाल आ पड़ा । तब वह सोचने लगी कि मेरा ऋतुकाल उपस्थित हुआ, पर पुत्र-प्राप्ति नहीं हुई, क्या पति नहीं है, या होगा ! ययाति ने कहा, ययाति शक्र काटो पूरा होवे । शर्मिष्ठाकी पति प्रसन्न किया है, मेरी यौवनदशा देखो, मैं, देवयानीसे निज प्रजार राजाकी

पतित्वमें वरण किया है, वैसी वैसाही करूँ, शुभकी निश्चय जान पड़ता है, कि राजासे पुत्ररूपी फल प्राप्त करूँगी, अब उन धर्मा-माकी निरालेमें पाऊ तब ठीक हो ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर उस कालमें राजा मनमाने अशोकवनके निकट पञ्चवक्त्र शर्मिष्ठाकी देखकर बैठ गये । मधुर-हासिनी शर्मिष्ठा निरालेमें उनकी अकेले पा-करके दोनों हाथ जोड़कर निकट आकर बोली कि हे नहुषपुत्र ! चंद्र, इन्द्र, विशु, यम-वा वरुणके और आपके अन्तःपुरमें रहनेवाली कां-कीई देख नहीं सकता । हे राजा ! आप मेरे रूप, कुल और शीलकी बात सदासे जानते हैं, सो मैं आपको प्रसन्न कर प्रार्थना करती हूँ, आप मेरे ऋतुकी रक्षा कीजिये । ययाति बोले, कि मैं जानता हूँ, कि तुम सुशीला, अनिन्दनीया, दानवकन्या हो, तुम्हारा रूप सर्वके अगले भागके समान भी निन्दायोग्य नहीं है ; पर मैंने जब देवयानीसे विवाह किया था, तब भगवान् उशनाने कहाथा, कि तुम इस वृषपर्वाकी कन्याकी विस्तर पर मत बुलाना । शर्मिष्ठा बोली, कि हे राजा ! हंसीमें न मिलूंगा कहके मिलने योग्य स्त्रीसे मिलनेमें और विवाहके समय और प्राण जाने की सम्भावनामें, और सब चोरी जानेसे—इन पाचस्थानमें भूठी बात कहनेसे दोष नहीं होता, हे नन्द । लोगोंका ऐसा कहना, कि पूछे जाकर भूठी कहनेसे मनुष्य पातित होता है, भूठ है, क्योंकि गौ ब्राह्मण, स्त्री, दीन, अनाथ आदिके लिये विविध विविध स्थानोंमें भूठी साक्षी देनेमें पुण्यभी होता है । जिस स्थलमें दोनोंका एकार्य समाधान करना होगा, वहा भूठी बात दोषकी होती है । ययाति बोले, कि राजा प्रजापति प्रभाकर हैं, वह भूठ बोलनेसे बच जाते हैं, यथावत् यदि प्रजापति भोगना भी पड़े, तभी मिथ्या कहनेका मुझे

साहस नहीं होता । शर्मिष्ठा बोली, कि हे राजन् । सहेलीका पति और अपना पति दोनों समान हैं । दो सहेलियोंमें एकका विवाह होनेसे दोनोंका विवाह मिट जाता है, पहिले मेरी सहेलीने आपको वरणा किया है, उससेही आपको मेरा पतित्वमें वरणा करना होगया है, ययाति बोले, कि मेरा यह एक व्रत है, कि सांगनेवाला जन जो सांगेगा सही वही है दूगा, तुम सुभसे सांग रही हो, सो कहो, तुम्हारी कौनसी अभिलाषा पूरी करनी होगी । शर्मिष्ठा बोली, कि महाराज । आप सुभसे अधर्मसे बचावें, धर्म रक्षा करें, आपने पुत्रवती होकर मैं भली भांति धर्मानुष्ठान करूंगी । राजन् । भाईया, दास और पुत्र यह तीन धनपति नहीं होते, परं यह जो धन उपार्जन करते हैं, वह धन उनका होता है, जिनके वे अधीन हैं । हे राजन् । मैं देवयानीकी दासी और आपको वशीभूता हूँ हूँ, सो देवयानी और मैं दोनों आपकी भजनेके योग्य हैं, सो आप सुभसे भजें ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि राजाने शर्मिष्ठाकी बात सुनकर उसे ठीक जान करके शर्मिष्ठाका मनोरथ सफल कर धर्मरक्षा की । इंक्षानुरूप सङ्गमसे शर्मिष्ठाका मनोरथ पूरा होनेपर वे दोनों उचित सम्मान से सम्भाषण कर योग्य स्थानोंमें पधारें । हे राजन् । प्रसन्न भैया, भली भौवाली, मधुरहासिनी शर्मिष्ठाने उस पहिले सङ्गमहीमें उन नृपोत्तमसे गर्भवती होकर उचित समयमें देवकुमार समान प्रसन्न नेत्र एक पुत्र प्रसव किया ।

सम्भवपर्वमें विंशती अध्यायः समाप्तः ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भारत । शर्मिष्ठाके पुत्र जन्मा है, यह सुनकर सुन्दरी देवयानी दुःखीचित्त हुई, और शर्मिष्ठाके समीप आकर यह बोली, कि रो भली भौवाली ।

तुमने कामकी वशीभूता होकर यह पापकर्मा कर डाला है ? शर्मिष्ठा बोली, हे सुन्दरी । मेरे पास धर्मात्मा वे, एक ऋषि आये थे, उनके वर देनेकी इच्छा होनेपर मैंने धर्मानुसार उनसे ऋतु रत्न प्रार्थना की थी । हे सुन्दरी । मैं ऋतु प्रत्येक काम-चारिणी नहीं हूँ सो मैं कहती हूँ, कि मेरे गर्भोत्पत्ति इस ऋतु ऋषिके औरसे जन्म लिया है । देवयानी बोली, कि रो भीरु । यदि यह सच है, अच्छा है, पर क्या तुम उन ब्राह्मणकी पत्नी हो ? मैं उसका नाम गोत्र और दल पता चाहती हूँ । शर्मिष्ठा बोली, कि हे सुन्दरी वह ब्राह्मण तप और तेजसे दिनरातके ऋतु जन्ते थे, उनकी देखकर मेरी ऐसी शक्ति थी, कि कोई बात पूछूं । देवयानी बोली, हे शर्मिष्ठा । यदि ऐसा हो और यदि ऋषि ब्राह्मणसे पुत्रलाभ किया हो, तो क्रोधका कोई कारण नहीं है ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि वे दोनों मिलीमें ऐसा कहकर हंसी उड़ाने लगीं । देवयानी यह बात ठीक जानकर निज पुरीमें पधारि ।

अनन्तर राजर्षि ययातिके वीर्य तथा देवयानीके गर्भसे इन्द्र और उपेन्द्रके समान पुत्रोंने जन्म लिया उनके नाम यदु, तुर्वसु हैं । फिरभी उस राजर्षिसे द्वय पुत्री शर्मिष्ठाने द्रुह्य, अनु और पुरु यह कुमार प्रसव किये । हे राजन् । कुछ काल बीतने पर सुन्दरी देवयानी यया साथ उस निर्जन वनको गयी, वहाँ यह कर, कि देवयत रूपवान् तीन कुमार खेल रहे हैं, देवयानीने अचरज मानकर से पूछा, राजन् । कहो, देवकुमार यह कुमार किसकी सन्तान है, सुभकी पड़ता है, कि रूप और तेजमें यह उ समान है ।

गीता ने श्रीवैशम्पायनजी बोली, कि देवयानीने राजा-
 है। यह बात कहकर कुमारोंसे पूछा, कि
 पास लको। तुम्हारे नाम क्या हैं? तुमने
 उनके शक्रसंघसे जन्म लिया है? रुच सच कहो,
 सार उम्हें सुनना चाहती हूं। बालकोंने उड़लियोंमें
 सुंदरी न राजाजीको दिखाया और, कहा, कि
 नहीं है। शर्मिष्ठा हमारी माता है।
 श्रीवैशम्पायनजी बोली, कि लड़के यह बात
 कह करके सब मिलकर राजाके पास गये,
 जाने तब देवयानीके सामने आनन्द प्रकट वा
 नका आदर नहीं किया। आगे लड़के
 ति हुए शर्मिष्ठाके पास जा पड़ंचे। राजा
 कह देखकर दुःखित हुए। देवी देवयानी
 राजापर लड़कोंकी प्रीति देखकर सत्य तत्त्व
 जानकर शर्मिष्ठासे बोली, कि तुमने मेरी
 धोना होकर क्यों मेरा ऐसा अप्रिय कार्य
 किया है। तुमने वही असुर-धर्म आश्रय
 किया, सुभसे नहीं डरी? शर्मिष्ठा बोली,
 कह दे मधुरहामिनी। मैंने जो अपने प्रेमी-
 ने ऋषि करके प्रगट किया था, वह बात
 भूटी नहीं है। मैंने न्याय और धर्मके अनु-
 सार ही व्यवहार किया है, क्यों-तुमसे डरूंगी?
 मानकर शोभने। तुमने जब इन राजाको भर्त्ता
 ययातिकी वरके वरण किया है, मैंने तभी इनकी वरण
 और उपेक्षा की है, क्योंकि सहेलीके भक्त धर्मानुसार
 उनकी वार्त्ता होती है, तुम ब्राह्मणी और बड़ी हैं।
 उस राजाकी मेरी पूजनीय और माननीय होती है।
 अनु और यह तुम जानती हैं कि यह राजा
 है। मैंने भी मेरे अधिक पूजनीय हुए हैं।
 सुंदरी देवी श्रीवैशम्पायनजी बोली, कि देवयानी शर्मि-
 की गयी। इसकी यह बात सुनकर राजासे बोली कि
 मैं तीव्र पीड़ित हूँ। अब फिर मैं यहां नहीं रहूंगी।
 ने अनुरोध मेरा अप्रिय कार्य किया है। यह देख
 कहो, इससे कि भगवान् देवयानी इतना ही कहकर
 जान है। शर्मिष्ठा ने देवयानीके उठ खड़ी हो
 र तब ही राजाके पास जा रही थी राजा भारी

हृदयसे सम्मानसहित सम्भक्ति हुए उसको पोछे-
 चलने लगे, पर देवयानी क्रोधसे आंखें-लाल
 कर चली, किसी प्रकार न लौटी। आगे
 राजाकी कांड़े-उत्तर न देकरकेही आंसुभरे
 नेत्रोंमें उसीक्षण शुकके पास जा पड़ंची और
 पिताको देखकर प्रणाम कर सामने खड़ी
 रही अनन्तर ययातिने भी भार्गवकी पूजा
 की। देवयानी बोली, कि हे पिता। अधर्मसे
 धर्म हार गया है, नीचकी हडि हुई है, वृष-
 पर्श्वकी पुत्री शर्मिष्ठा सुभक्ता लांघ गयी है,
 हे पिता। इस ययातिके वीर्य और शर्मिष्ठा
 के गर्भसे-तीन पुत्रोंने जन्म लिया है, मैं दुर्भागी
 हूं, मेरे दो पुत्रसे अधिक नहीं हुए, आपको
 समाचार देती हूं। हे भार्गव काण ! यह
 राजा धर्मज्ञ करके प्रख्यात है, पर यहभी
 आपसे कह देती हूँ कि इन्होंने मर्यादाको
 अतिक्रम किया है।
 शुकजी बोली, कि महाराज। इस कारण,
 कि तुमने धर्मज्ञ होकर अधर्म को प्रिय जाना,
 बिना विलम्ब, कठोर हुदापा तुमको घेर लेगा।
 ययाति बोली, कि भगवान्। दानवेन्द्रकी पुत्रीने
 ऋतुरक्षाकी प्रार्थना की थी, उसपर मैंने धर्म-कार्य
 जान करकेही ऐसा किया है, कामकी वशीभूत
 हाकर नहीं किया। ब्रह्मन् ! किमो कामि-
 नीके ऋतुरक्षाकी प्रार्थना करने पर जो
 पुरुष ऋतुकी रक्षा नहीं करता, ब्रह्मवादी
 ब्राह्मणगण उसका भूषणहत्याके पापी कहते
 हैं। मिनन-याग्या कामिनीके कामवतो होकर
 निरालम्ब मलनकी प्रार्थना करनेपर जो पुरुष
 उससे नहीं मिलता पण्डितनीग धर्मशास्त्रोंमें
 उसका भूषणहत्याकारो कहते हैं। हे भार्गव !
 मैं अधर्मके भयसे भोत होकर इन सब विप्र-
 योकी सजो-भक्ति आलोचना करके शर्मिष्ठामें
 मिला हूं। यह देख कि पुत्रियाय नाहुष
 तुमने वर्णन है, कि तुमने मेरे ययातीकी
 प्रपञ्चा करने दी, तुमने यह नहीं किया है,

साहस नहीं होता। शर्मिष्ठा बोली, कि हे राजन्! सहेलीका पति और अपना पति दोनों समान हैं। दो सहेलियोंमें एकका विवाह होनेसे दोनोंका विवाह सिद्ध होता है; पहिले मेरी सहेलीने आपको वरणा किया है, उससेही आपको मेरा पतित्वमें वरणा करना होगया है। ययाति बोले, कि मेरा यह एक व्रत है, कि मांगनेवाला जन जो मांगेगा मैं वही दे दूंगा, तुम मुझसे मांग रही हो, सो कहो, तुम्हारी कौनसी अभिलाषा पूरी करनी होगी। शर्मिष्ठा बोली, कि महाराज। आप मुझे अधर्मसे बचावे, धर्म रक्षा करें, आपसे पुत्रवती होकर मैं भली भांति धर्मानुष्ठान करूंगी। राजन्। भाव्या, दास और पुत्र यह तीन धनपति नहीं होते, परं यह जो धन उपार्जन करते हैं, वह धन उनका होता है, जिनके वे अधीन हैं। हे राजन्। मैं देवयानीकी दासी और आपको वशीभूता हुई हूं, सो देवयानी और मैं दोनों आपके भजनेके योग्य हैं, सो आप मुझे भजें।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि राजाने शर्मिष्ठाकी बात सुनकर उसे ठीक जान करके शर्मिष्ठाका मनोरथ सफल कर धर्मरक्षा की। इंक्षानुरूप सङ्गमसे शर्मिष्ठाका मनोरथ पूरा होनेपर वे दोनों उचित सम्मान से सम्भाषण कर योग्य स्थानोंमें पधारें। हे राजन्। प्रसन्न भेदा, भली भौवाली, मधुरहासिनी शर्मिष्ठाने उस पहिले सङ्गमहीमें उन नृपोत्तमसे गर्भवती होकर उचित समयमें देवकुमार समान प्रसन्न नेत्र एक पुत्र प्रसव किया।

सम्भवपर्वमें विआसी अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भारत। शर्मिष्ठाके पुत्र जन्मा है, यह सुनकर सुन्दरी देवयानी दुःखीचित्त हुई, और शर्मिष्ठाके समीप यह बोली, कि रो भली भौवाली।

तुमने कामकी वशीभूता होकर यह पापकर्म कर डाला है? शर्मिष्ठा बोली, हे सुन्दरी। मेरे पास धर्मानुष्ठान के एक ऋषि आये थे, उनके वर देनेकी उद्देश्यसे होनेपर मैंने धर्मानुसार उनसे ऋतु प्रार्थना की थी। हे सुन्दरी। मैं अत्यन्त पूर्वक काम-चारिणी नहीं हुई हूँ, सो मैं चाहती हूं, कि मेरे गर्भोत्पन्न इस पुत्र के ऋषिके औरसे जन्म लिया है। देवयानी बोली, कि रो भीरु। यदि यह सच होय, तो अच्छा है, पर क्या तुम उन ब्राह्मणकी जानो हो? मैं उसका नाम गोल और कुल जान चाहती हूं। शर्मिष्ठा बोली, कि हे सुन्दरी वह ब्राह्मण तप और तेजसे दिननाथके जन्ते थे, उनकी देखकर मेरी ऐसी शक्ति थी, कि कोई बात पूछूं। देवयानी बोली, हे शर्मिष्ठा। यदि ऐसा हो और यदि अति श्रेष्ठ ब्राह्मणसे पुत्रलाभ किया हो, तो क्रोधका कोई कारण नहीं है।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि वे दोनों निमित्तमें ऐसा कहकर हंसी उड़ाने लगीं। देवयानी यह बात ठीक जानकर निज पुरीमें पधारि।

अनन्तर राजर्षि ययातिके वीथे तथा देवयानीके गर्भसे इन्द्र और उपेन्द्रके समान पुत्रोंने जन्म लिया, उनके नाम यदु, तुर्वसु हैं। फिरभी उस राजर्षिसे पुत्री शर्मिष्ठाने दुह्यु, अनु और पुरु यह कुमार प्रसव किये। हे राजन्। अकुल-काल बीतने पर सुन्दरी देवयानी साथ उस निर्जन बनको गयी, वहाँ यह कर, कि देवयत रूपवान् तीन कुमार खेल रहे हैं, देवयानीने अन्तरज मानकर से पूछा, राजन्। कहो, देवकुमार यह कुमार किसकी सन्तान है, मुझकी पड़ता है, कि रूप और तेजमें यह समान है।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि देवयानीने राजा-
को यह बात कहकर कुमारोंसे पूछा, कि
कौन लालको । तुम्हारे नाम क्या हैं ? तुमने
किस ङंगसे जन्म लिया है ? रुच सच कहो,
मैंने सुनना चाहती हूँ । बालकोंने उड़लियोंमें
उन राजाहीको दिखाया और कहा, कि
शर्मिष्ठा हमारी माता है ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि लड़के यह बात
कह करके सब मिलकर राजाके पास गये,
राजाने तब देवयानीके सामने आनन्द प्रकट वा
उनका आदर नहीं किया । आगे लड़के
गए शर्मिष्ठाके पास जा पड़चे । राजा
यह देखकर दुःखित हुए । देवी देवयानी
राजापर लड़कोंकी प्रीति देखकर सत्य-तत्त्व
जानकर शर्मिष्ठासे बोली, कि तुमने मेरी
प्रधीना होकर क्यों मेरा ऐसा अप्रिय-कार्य
किया है । तुमने वही असुर-धर्म आश्रय
किया, सुभसे नहीं डरो ? शर्मिष्ठा बोली,
कहे मधुरहामिनी । मैंने जो अपन प्रेमी-
हैं । तो ऋषि करके प्रगट किया था, वह बात
झूठी नहीं है, मैंने न्याय और धर्मके अनु-
सारही व्यवहार किया है, क्यों-तुमसे डरूंगी ?
नकराहें शोभने ! तुमने जब इन राजाको भर्ता
यातिके वरके वरण किया है, मैंने तबो इनको वरण
कर दिया है, क्योंकि सहेलीके भक्त धर्मानुसार
उनके भक्त होते हैं, तुम ब्राह्मणी और बड़ी हैं।
राजाके मेरी पूजनीया और माननीया होती हैं।
अब और यह तुम जानतो हैं कि यह राजा
है शर्मसे भी मेरे अधिक पूजनीय हुए है ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि देवयानी शर्मि-
ष्ठाकी यह बात सुनकर राजासे बोली, कि
राजन् ! अब फिर मैं यह नहीं रहूंगी ।
तुमने मेरा अप्रिय कार्य किया है । यह देख
कर, कि श्रद्धालु देवयानी द्रुतना ही कहकर
पारसुरमी आखोंसे एकायक उट खड़ी हो
उनीक्षण राजाके पास जा रही थी राजा भारी

हृदयसे सम्मानसहित समझति हुए उसको पोछे-
चलने लगी, पर देवयानी क्रोधसे आंखें लाल
कर चली, किसी प्रकार न लौटी । आगे
राजाकी काँड़े-उत्तर-न देकरकेही आसुर
नेत्रोंमें उसीक्षण शुकके पास जा पड़ची और
पिताको देखकर प्रणाम कर सामने खड़ी
रही अनन्तर ययातिने भी भार्गवकी पूजा
की । देवयानी बोली, कि हे पिता । अधर्मसे
धर्म-हार गया है, नीचकी-वृद्धि हुई है, वष-
पर्षाकी पुत्री शर्मिष्ठा सुभका लांघ गयी है,
हे पिता । इस ययातिके वीर्य और शर्मिष्ठा
के गर्भसे-तीन पुत्रोंने जन्म लिया है, मैं दुर्भागी
हूँ, मेरे-दो पुत्रोंसे अधिक नहीं हुए, आपको
समाचार देती हूँ । हे भार्गव काण ! यह
राजा धर्म-च करके प्रख्यात है, पर यहभी
आपसे कह देती हूँ कि इन्हींने मर्यादाको
अतिक्रम किया है ।

शुकजी बोले, कि महाराज ! इस कारण,
कि तुमने धर्म-च होकर अधर्म को प्रय जाना,
बिना विलम्ब, कठोर बुढापा तुमको घेर लेगा ।
ययाति बोले, कि भगवान् । दानवेन्द्रकी पुत्रीने
ऋतुरक्षाकी प्रार्थना कीथी, उसपर मैंने धर्म-कार्य
जान करकेही ऐसा किया है, कामके वशीभूत
हाकर नहीं किया । ब्रह्मन् । किसी-कामि-
नीके ऋतुरक्षाकी प्रार्थना करने पर जो
पुरुष ऋतुकी रक्षा नहीं करता, ब्रह्मवादी
ब्राह्मणगण उसको भ्रूणहत्याके पापी कहते
हैं । मित्रन-यात्रा कामिनीके कामवतो-होकर
निरालेमें मिलनकी प्रार्थना करनेपर जो पुरुष
उससे नहीं मिलता पण्डितलोग वर्मशास्त्रोंमें
उसका भ्रूणहत्याकारो कहते हैं । हे भार्गव ।
मैं अधर्मके भयसे भोत होकर इन सब विष-
योकी भलो-भार्ति आलोचना करके शर्मिष्ठासे
झिना हूँ । शुक बोले, कि पृथ्विनाथ नाहुष !
तुम मेरे नर्धन हो, जो तुमका मेरे आज्ञाकी
अपेक्षा करनी थी, तुमने वह नहीं किया है,

धर्मविषयमें ऐसा स्थिरा वार करनेसे चोरीके दोषका दोषी बनना पड़ता है ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि शक्रको क्रोधयुक्त होकर शाप देने पर नङ्गपुत्र ययाति-उसीक्षण पूर्व अवस्थाको छोड़के बुढ़ापेको प्राप्त हुए ; तब उन्होंने कहा, कि हे भार्गव ! मैं यौवन दशमें देवयानीसे तप्त नहीं हुआ हूँ ब्राह्मण ! आप प्रसन्न होंगे, कि यह बुढ़ापा मुझमें प्रविष्ट न होसके । शक्र बोले, कि पृथ्वीपाल ! मेरी बात झूठी नहीं ठहरती है, तुम बुढ़ापेमें ग्रसित हुए हो, पर चाहो तो इस बुढ़ापेको दूसरे जनमें चला सकोगी । ययाति बोले, कि हे ब्रह्मन् ! आप यह आज्ञा कीजिये, मेरा जो पुत्र मुझको अपना यौवन देगा, वही पुत्र राज्यभागो पुत्र-भागो और कीर्ति-भागो होगा । शक्र बोले कि नङ्गपुत्र । तुम एक चित्तसे मेरा ध्यान कर इच्छानुसार बुढ़ापेको चला सकोगे, उससे तुम पापके भागो नहीं होंगे, जो पुत्र तुमको अपनी अवस्था देगा वह आयुमान्, कीर्तिमान्, राज्याधिकारी और अनेक सन्तानयुक्त होगा ।

सम्भवपक्षमें तिरासी अंश समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर, राजा ययाति बुढ़ापेसे ग्रसित होकर निज पुरमें जाकर बड़े और अष्ट पुत्र यदुसे बोले, कि बेटा ! शक्र के शापसे बुढ़ापेमें भास बोला कर दिया, केश पक गये और दुर्बलता छा गयी है, पर मैं यौवनके भोगसे भली भाँति तप्त नहीं हुआ हूँ, अतएव तुम मेरे इस बुढ़ापेके साथ पाप को ले लो, तुम्हारे यौवनसे मैं कामके विषय भोगू ; आगे सहस्र वर्ष पूरे हो जाने पर मैं तुम्हारा यौवन तुमको लौटा देकर अपनी जराके साथ पाप भोगूंगा । यदु बोले, कि महाराज ! बुढ़ापेमें पान भोजादि विषयमें अनेक दोष दोख पड़ते हैं, इस लिये मैं समझ

ताहूँ, कि बुढ़ापेको न लूंगा । जिस लोभ शक्र दाढ़ीयुक्त आनन्दवर्जित, निग्रसित, लटकते हुए ममयुक्त सिद्ध है ; शरीरधारी, कटाकारी, दुर्बल दुर्बल, किसी कार्यके करनेमें असमर्थ और तथा माधियोंसे अनादृत होते हैं, उस जहाँ मैं भोगना नहीं चाहता हूँ । धर्मज्ञ भूमि मुझमें अधिक धारि आपके वृद्ध पुत्र उनमेंसे किसीको जरा लेनेको आज्ञा कीजिये ययाति बोले, ऐ पुत्र ! तुमने मेरे इस जन्म ले करकेभी अपनी अवस्था नहीं दी, तुम्हारे वंशमें कोई राज्याधिकारी नहीं है ।

आगे तृत्सुसे बोले, कि वैया तुम्हें तुम मेरी इस जराके साथ पापकी लेहो, तुम्हारे यौवनसे विषय भोगू, आगे सहस्र पूरे होनेपर तुम्हारा यौवन तुमको अपनी जराके साथ पाप ले लूंगा । तृत्सु उत्तर दिया, कि पिता ! जिससे भोगसे हाय ध ना पड़ता है, जिससे बल रूप विगड़ जाता है, जिससे बुद्धि जाती है, और जिससे प्राण नष्ट हो सकता है, बुढ़ापेको मैं नहीं चाहता हूँ । ययाति कि रे तृत्सु ! तुमने मेरे हृदयसे जब करकेभी अपनी अवस्था नहीं दी, तो प्रजा सम्पूर्णरूपसे लंछित जायगी और आचार और धर्म वृद्धत तड़ है, जेलीग लोभाचारो मासखानेवाले हैं नीच हैं, और शूद्रकी पत्नीसे आसक्त हैं, आचार पक्षियाकी भाँति हैं और जो पशुधर्मी तथा स्लेच्छ हैं, रे मूर्ख ! उनके राजा होंगे ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि ययाति पुत्र-तृत्सुको इस प्रकार शाप देकर शक्र पुत्र दुह्युसे बोले, कि हे दुह्यु ! सहस्र वर्ष लिये मेरे रङ्ग तथा रूपनाशी इस जन्म लेकर अपना यौवन मुझे दो, जब सहस्र

पूरे होंगे तब तुम्हारा यौवन तुमको देकर फिर निज पापके साथ जराको ले लूंगा ।
दुच्छो बोला, कि जराग्रस्त जन जीर्ण शरीर-धारी होनेके कारण घड़े, रथ, हाथी, स्त्री आदिको भोग नहीं सकता और उसकी बातभी बिगड़ जाती है, सो मैं बुढ़ापेकी नहीं मांगता ।
ययाति बोले, कि दुच्छो । तुमने मेरे हृदयसे जन्म ले करके भी अपनी अवस्था नहीं दी, सो तुम्हारी अति प्रिय इच्छाभो कभी पूरी नहीं होगी । जहा घड़े, रथ, हाथी राजाके योग्य यान, गौ, गदहे, बकरे, पालको आदिसे जाना आना नहीं हो सकता जहां सदा वेड़ेपर और कूदकर जाना पड़ता है, जहां राजा शब्द कहा नहीं जाता है, तुम वंशसहित उस देशमें रहोगी ।

अनन्तर अनु नामक पुत्रसे बोले, कि हे अनी । तुम मेरे पापके सहित यह बुढ़ापा लो, मैं तुम्हारे यौवनसे एक सहस्र वर्ष विषय भोगूँ । अनुने उत्तर दिया, कि जराग्रस्त जन टूटे फूटे अङ्ग लेकर अकालमें बच्चेके समान अशुचि शरीरसे अन्न ग्रहण करते हैं, उचित समयमें अग्निमें आहुति नहीं दे सकते, इससे जराको नहीं ले, सकूंगा । ययाति बोले, कि तुमने मेरे हृदयसे जन्म ले करकेभी अपनी अवस्था नहीं दी, इसहेतु तुमने जिस जराका दोष कहा, उसीकी प्राप्त करोगी । हे अनी । तुम्हारी प्रजा यौवनमें पड़चतेही मर जायगी और तुमभो श्रुति और स्मृतिके अनुसार अग्नि-कार्यसे वर्जित होगी ।

अनन्तर पुरुसे बोले, कि हे पुरो । तुम मेरे प्यारे पुत्र हो, तुम्हीं सर्वोसे श्रेष्ठ होगे, वेठा । बुढ़ापेने बली और पलितसे मुक्त पर चढ़ाई की है, मैं शुक्रके शापसे जराग्रस्त होनेके कारण यौवनसे भलीभाति तृप्त नहीं हो सका हूँ । हे पुरो । तुम मेरे पापके साथ इस जराको लो, मैं तुम्हारे यौवनसे कुछ दिनों तक विषय भोगूँ, आगे सहस्र वर्ष पूरे दी, हूँ

होने पर तुम्हारा यौवन तुमको देकर निज पापके साथ जराको लूंगा ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि पिताकी यह बात सुनतेही पुरुने उत्तर दिया, कि महाराज । आपने जो आज्ञा दी, मैं वही करूँगा । मैं आपके पापके साथ जराको लूंगा । हे राजन् । आप मेरा यौवन लेकर मनमाना विषय भोगिये । मैं आपकी अवस्था और रूप धरकर जराग्रस्त होकर आपको यौवन देकर आपके नियोगके अनुसार कार्य करूँगा । ययाति बोले, कि वेठा पुरो । मैं तुम पर प्रसन्न हुआ, प्रीति-चित्तसे यह वर देता हूँ, कि तुम्हारे राज्यमें प्रजा सर्वकामनाओं की पूर्तिसे प्रसन्न रहेगी । महातपा ययातिने यह कह कर शुक्रको स्मरण करके पुरु नामक महात्मा पुत्रमें जराकी संक्रामित किया ।

मन्ववपर्वमें चौरासी अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि नहुषपुत्र राजा श्रेष्ठ ययाति प्रीतियुक्त होकर पुरके यौवनमें मनमाना विषय भोगने लगे । हे राजेन्द्र । उनकी जैसी कामना और जैसा उत्साह था, वह उसके अनुसार उचित समयमें यथायोग्य धर्मसे विना विरोध किये सुख भोगने लगे । वह यज्ञोंसे देवोंकी, आहुतिसे पितरोंकी, मनमानो कृपासे दोनोंकी, प्रार्थना पूरी कर ब्राह्मणोंकी, अन्नपानसे अतिथियोंकी, भले प्रकार पालनसे वैश्योंकी और अनिर्दयतासे शूद्राकी भली भाति तृप्त कर और सम्पूर्ण रूपसे सता कर लुटेरोंकी तथा धर्मसे सम्पूर्ण प्रजाओंकी अनुरक्त कर दूसरे देवराजके समान प्रजाको पालने लगे । सिंहवत् विक्रमी वह राजा विषयमें आसक्त होकर धर्मसे विना विरोध किये भले प्रकार भोग करने लगे । वह सच्ची कामनाकी सामग्री पाकर सन्तुष्ट हुए पर यह कारण जर कि मेरी यौवनावस्था सहस्र वर्षमें

पूरो होजायगो अति खेदयुक्तभी हूँ । चौथे-
वान कालज्ञ राजपि सहस्र वर्षतक यौवन पा-
कर कलाकाष्ठा आदि कालके जितने भाग
उसमें विश्वाचोके साथ कभी सुशीमित मन्दन-
वायें, कभी अलकामें, कभी पहाड़को चोटी-
पर अथवा कभी उत्तर प्रदेशमें खेलने लगें ।
अनन्तर धर्मत्माने जब देखा, कि सहस्र वर्ष
पूर्व होगये हैं, तब पुत्र पुरुको बुझवाकर बोले,
कि हे अरिन्दम पुत्र । मैं तुम्हारे यौवनमें
अभिलाषा और उत्साहके अनुसार उचित काल
में विषय भोग चुका हूँ ; पर जिस प्रकार आग-
में घृत छोड़नेसे न बुझकर औरभी जल उठती
है, उसी प्रकार कामनाको वस्तुओंकी भोगनेमें
कभी कामकी निवृत्ति नहीं होती, वरन और-
भी क्रमसे बढ़ता रहता है । पृथ्वीमें धान,
यव, सुवर्ण, पशु और स्त्री यह सब एक पुरुषसे
भोगे जाने परभी उसकी पूरी - मि नहीं होती,
अतएव भोगकी प्यास त्यागना उचित है । जो
प्यास दुर्मितियोंके त्यागनेके अयोग्य है, बुढ़ापा
आजानेसेभी जिस प्यासकी क्षय नहीं होती,
और जो प्राणविनाशो रोगसदृश है, उस प्यासके
छोड़े बिना सुखी होनेका दूसरा उपाय नहीं
है । मैं विषयासक्त था, उसमें सहस्र वर्ष
व्यतीत हो गये हैं, तिस परभी मेरी विषयकी
प्यास दिनोंदिन प्रबल होती जाती है, अतएव
मैं यह प्यास छोड़कर परम ब्रह्ममें चित्तकी
समाधान करके बिना भगड़ा औ ममता-रहित
होकर वनमें ऋषीके साथ एकत्र वस्त्रंगा । हे
पुत्री । तुम्ही मेरे प्रियकार्य करनेहारि पुत्र
हो, मैं तुम पर प्रसन्न हुआ हूँ, तुम्हारा भङ्गल
होगा, तुम अपना यौवन लेकर इस राज्यके
अधीश बनो ।

श्रीकृष्णायनजी बोले, कि अनन्तर नङ्गप-
पुत्र ययातिने जराको ले लिया और पुरुभी फिर
अपना यौवन प्राप्त हुए । राजाके कनिष्ठ
पुत्रको राज्यमें अभिषिक्त करने की अभिलाषा

प्रगट करने पर, ब्राह्मणादि चारों वर्गों,
राजाके समीप आकर यह कहा, कि हे प्रजा-
शुक्रके नातो देवयानीके प्रदत्त किय ज्येष्ठ पु-
त्रों । अतिक्रम कर पुरुको वर्गों राज्य देने-
यद्यु आपके ज्येष्ठ पुत्र, तुर्वसु, अनु, और शर्म-
ष्ठाके गर्भोत्पन्न दृष्ट्यु, तीक्ष्ण, अनु चौध और पुरु-
सर्वोसे कनिष्ठ हैं, अतएव ज्येष्ठकी अतिक्र-
म करके अतिष्ठ व्याकर राज्याधिकारी ने
सकता है । हमने, यह आवेदन किया, आ-
यथावर्मा पालन कोजिये । ययाति बोले, कि
हे ब्राह्मणादि वर्गों । तुम सब मेरी बात सुनो
मैं ज्येष्ठकी किसी प्रकार राज्य नहीं दूँ
ज्येष्ठ यदुने मेरी आज्ञा नहीं पाली है ।
पुत्र पिताके प्रतिकूल आचरण करता है, सब
ओंके मतमें वह पुत्र, पुत्रों में नहीं गिना जाता,
जो पुत्र पिता की आज्ञासे चलनेवाला, कि-
कारी तथा नम्र है, और पिता माता पर पु-
त्र के समान व्यवहार करता है, वही पुत्र पुत्र
यदु, तुर्वसु, दृष्ट्यु, अनु, इन्हींने मेरे प्रति
अनादर प्रगट किया है, पुरुने मेरी आज्ञा
विशेष रूपमें रखकर और मानकर मेरी आज्ञा
को ले लिया था, इससे पुरु कनिष्ठ होनेके
मेरा उत्तराधिकारी दायद होगा । मितव-
पुरुने मेरी अभिलाषा पूरी की है और उपर-
शुक्रने स्वयं सुभक्तको वह वर दिया है, कि
पुत्र तुम्हारा आज्ञाकारी होगा, वही राज्या-
धिकारी होगा, अतएव तुमसे विनय करता हूँ
कि तुम पुरुको राज्यपर बैठाओ । तब चारों
वर्गोंकी प्रजाओंने कहा, कि जो पुत्र गुण-
साधु, श्रेष्ठ और सदा पिता माताका चित्तकी
हीता है, वह कनिष्ठ होने परभी सम्पूर्ण क-
र्णका पात्र हो सकता है, अतएव आपका प्रि-
कारो पुत्र पुरु इस राज्यको प्राप्त करनेके योग्य
है, इस विषयमें शुक्रनेभी वर दिया है
उसकी विरुद्धतामें उत्तर नहीं दिया
सकता ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले कि पुरवासी और लोककी सम्पूर्ण कथा सुननेका अभिलाषी हो रहा हूं।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे राजन् ! स्वर्गमें और इस लोकमें पुण्य उपजानेवाली सर्व पापनाशिनी राजा ययातिकी अच्छी कथा आपसे कहता हूं, सुनिये। नहुष-पुत्र राजा ययाति कनिष्ठपुत्र पुरुको राज्यपर अभिषिक्त और यदु आदि पुत्रोंकी नीच देशमें स्थापन करके सतुष्ट चित्तसे वानप्रस्थाश्रमको आश्रय कर फलमूलभक्षक होकरके बृद्धकाल तक वनमें रहे; उसकालमें उन्होंने संयतात्मा और जितक्रीध होकर देवता और पितरोंका तर्पण, वाणप्रस्थकी विधिसे अग्निमें आहुति दान और वनके फल मूल और घृतसे अतिदियोंकी पूजा की थी, उक्त विभुने उच्छ्वस्ति अवलम्बन कर शस्यको चुन चुन कर शेष अन्नके भोजनसे पूर सहस्र वर्ष व्यतीत किये थे; आगे उन्होंने संयतचित्त होकर जलमात्र पीकर एक वर्ष काटा; अनन्तर तंद्रा रहित होकर वर्षभर वायु भक्षक हो रहे, अन्तमें एक वर्ष पञ्चाग्निके बीचमें तपस्याकी ६ महीने वाताहारी हो एक पांवके बल खड़े रहे; अनन्तर पुनर्कीर्ति नहुष-नन्दनने आकाश-मण्डलकी चमका कर स्वर्गरोहण किया।

सम्भवपर्वमें पचासी अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि नहुष-पुत्र राजा ययाति एक प्रकार धारे पुत्रको राज्यपर अभिषिक्तकर प्रसन्नचित्तसे वाणप्रस्थाश्रम आश्रयकर सुनि होगये। वह जितेन्द्रिय संयत-व्रत, और फल-मूल भक्षी होकर ब्राह्मणोंके साथ कुछकाल वनमें बसकर स्वर्गकी पधारे, स्वर्गमें आरूढ़ होकर उन्होंने कुछकाल परम सुखसे काटा। आगे स्वल्प कालहीमें देव-राजने फिर उनको स्वर्गसे नीचे गिराया था। सुन चुका हूँ, कि वह स्वर्गसे च्युत होकर भूतलको प्राप्त नहीं हुए थे, आकाशहीमें ठहरे थे, आगे उस वीर्यवान राजाने वसुमान अष्टक, प्रतर्हण और शिविके साथ एकत्र होकर फिर स्वर्गरोहण किया था।

जनमेजय बोले, कि यह आद्योपान्त सच्चे प्रकार सुना चाहता हूं, कि संधीपात ययाति किस कार्यसे फिर देवलोककी प्राप्त हुए, आप वन ब्राह्मणों और ऋषियोंके सामने कहिये। वह कुरुवंशके बढ़ानेवाले, सत्य कीर्तियुक्त, सूर्य समान तेजस्वी पृथ्वीपति ययाति देवराजके वर प्राप्त हुए। उनका यश सर्वत्र फैला हुआ है। उन भद्रात्माके इस लोक और पर-

सम्भवपर्वमें द्विचासी अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि वह राजेन्द्र ययाति स्वर्गरोहण पूर्वक देव, साध्य, मरुत और वसुओंसे भली भांति घेरे जाकर देवालयमें वारु-पूर्वक देवलोक और ब्रह्मलोकमें विचरने लगे। यह सुन चुका हूँ, कि पुण्यकारी, जितेन्द्रिय उस पृथ्वीपतिने इस प्रकारसे बृद्धकाल स्वर्ग-वास किया। एक समय उस नृपचोष्ठ ययातिके देवराजके पास जानेपर उन्होंने उनसे वार्ता करनेके पश्चात् उनसे पूछा, कि राजन् ! जब एक तुच्छारा स्वरूप लेकर जरा ग्रहण

अवश्यही होगा, मैं कभी भयसे मोहित नहीं हुआ और मेरा सानसिक कोई सन्तापभी विद्यमान नहीं है; देखो, सर्प, विच्छेद, मछली आदि जलके और स्थलके कीट, पत्थर और लृणा काष्ठादि जितने स्वेदज, अरवज और उद्भिज्ज पदार्थ हैं सभी नियतिके अन्तमें निज निज प्रकृतिमें लीन होते हैं। हे अष्टक! सुख दुःख अनिष्ट हैं, अतएव क्यों उनसे तापित हंगा? यह विचार कर, कि क्या कल्लं क्या करनेसे सन्ताप जाता रहेगा, अप्रमत्त होकर सन्तापका विसर्जन कर दिया है।

श्री वैशम्पायनजी बोले, कि वहां टहरे हुए सर्पगुणयुक्त मातामह भूपाल ययातिके ऐसा कहने पर अष्टकने फिर स्वर्गवामकी कथा पूछी, कि हे पृथ्वीपते। तुम क्षेत्रज्ञ नारद आदिके समान धर्मकी कथा कह रहे हो, अतएव तुमने जितने कालमें जिस प्रकारसे जिन जिन प्रधान लोकोंकी भोग किया है वह सब सुभसे कहो। ययाति बोले, कि मैं इसलोकमें सार्वभौम राजा था, आगे महत् लोकको जयकर वहां सहस्र वर्ष वास किया, पश्चात् परमलोककी प्राप्ति कर सहस्र हारयुक्त सी यौवन फैली हुई सुन्दर इन्द्रपुरीमें सहस्र वर्ष वास किया था। अनन्तर उससेभी अष्ट दुष्प्राप्य दिव्य अजर लोकपति प्रजापतिलोककी प्राप्ति कर वहांभी सहस्रवर्ष वास किया, आगे उससेभी परम लोकको पाकर देव-देवके आलयमें विहार कर, देवोंसे पूजे जाय तथा देवोंके तुल्य प्रभावी और तुल्य दुरतिमान होकर मनमाने लोकोंमें वास किया, अन्तमें कामरूपी होकर दस लक्ष वर्ष नन्दनवनमें वास कर सुगन्धी फूल लगे हुए मनोहर वृक्षदलकी देखता हुआ अप्सराओंके साथ विहार करने लगा, इस प्रकार स्वर्गीय सुखमें आशक्त रजनमें बहुत काल व्यतीत हुआ। अनन्तर उग्ररूपी देवतने मेरे पास आकर “च्युत हो” यह

वात उस प्लुतस्वरसे तीन बार कही, हे मित्र। मैं इतनाही मात्र जानता हूँ उमीक्षा में अल्प पुण्यवात् होकर वनमें च्युत हुआ। हे नरन्द्र। तब करनेवाले सुरोंका यह खेद वाक्य मार्गमें सुना, कि जाय। कैसे दुःखकी है। वह देखो, पुंकारी, पुण्य ययाति क्षीण-पुं होकर गिर रहे हैं। गिरते हुए ही उनसे पूछा, कि मैं क्यों समाजमें गिर सकता हूँ? अनन्तर सुभको तुम्हारी यह यज्ञभूमि इस यज्ञभूमिमें घुसे सृजित उपदे-
वानेकी भांति हविको गन्ध सूंघकर प्र-
चित्त होकर इस यज्ञभूमिमें शीघ्र चला-
सम्भवपर्जन्यके ययाति उपाख्यानमें
नवासी अध्याय समाप्त।

अष्टकजी बोले, कि हे सत्यशील कामरूपी होकर दस लक्ष वर्ष नन्दनवनमें थे, अनन्तर किस हेतु उसका छोड़कर उतरे ययाति बोले, कि जिस प्रकार लोकमें किसीके स्वल्पवित्त होने पर श्रात, भित्त और स्वजनगण त्याग देते हैं, प्रकार वहां मनुष्यों के क्षीण पुण्य है ऐश्वर्यवान् देवगण उनकी उसोक्षण त्याग है। अष्टकने कहा, कि उस देवलोकमें लोग क्योंकर क्षीण-पुण्य होते हैं? इसमें सुभने बड़ी शङ्का हो रही है। फिर भी सुभसे कहो, कि किस पुण्य के कौनसे प्रजापति-धाममें जाया जाता है, मेरी समझमें तुम क्षेत्रज्ञ हो। ययाति कि हे नरदेव। जो लोग अपनी उन्नति सुखसे प्रगट करते हैं, वे क्षीण-पुण्य देवलोकसे इस भूतलरूपी नरकमें भोगकी अभिलाषासे थक जाते हैं, और सियार आदिके भोजनके निमित्त

ना प्रकारके शरीर प्राप्त करते हैं। हे
इस कारणसे दीपयुक्त और लोकोपे
न्या किये जाते हुए, कर्म त्याग देना। हे
मीनाथ। तुमसे सब कुछ कह चुका; कहो,
फिर क्या कहना होगा।
अष्टकजी बोले, कि जब गिड शितिकण्ड
दि पक्षी और पतिङ्गे मनुष्यों को खा लेते
तब किस प्रकारसे जीव वत्तमान रहना
फिर कोकर प्रगट होता है? और
रव बैतराण आदि जो नरक प्रसिद्ध है, उन-
अतिरिक्त भीम नरक क्या है? यह सब
होगा चाहता हूं। ययाति बोले, कि सम्पूर्ण
जीव अनुष्ठान किये हुए कर्मके अनुसार देह
जन्मके पीछे माता की कोखों जन्म लेकर
स्थानमें सम्पूर्ण अङ्ग प्रत्यङ्ग युक्त देहकी
पत्ति हेनिपर प्रसव किये जाकर प्रकाश
में पृथ्वीमें चलते फिरते रहते हैं, वही जीव-
लिये भीम नरक कहा जाता है, क्योंकि
प्रकारसे वहां गिरनेसे अपनी अवस्थाको
नहीं देखते, अज्ञानवश केवल विषयके
गहीमें वपांकी व्यतीत किया करते हैं।
ई जीव निजके किये हुए कर्मके अनुसार
काल स्वर्ग भोग कर स्वर्गसे गिरनेके काल-
साठ सहस्र वा अन्धो सहस्र वर्षभी आका-
र रहकर काष्ठ भोगते हैं, गिरनेवाले उन
वोंको बड़े बड़े दातवाले भयङ्कर हस्ती, मैंसे
राक्षस लोग हिंसा करते रहते हैं। अष्टक
ले, कि जं लोग पापके हेतु स्वर्गसे च्युत
हैं, कड़े काटनेवाले भयावने भीम राक्ष-
के उगकी हिंसा करने पर वे कोकर बने
हैं? कोकर इन्द्रियादि युक्त होते हैं?
धवा कोकर गर्भम जाकर जन्म लेते हैं?
याति बोले, कि सूक्ष्म भूतसे आवृत जीव जल-
क शरीर धरकर वीर्यका स्वरूप प्राप्त करता
है; पुरुषसे गिराये जाकर वह वीर्य स्त्रीके
कामसे मिलने पर फल फलके समान हो-

कर "रज" यह संज्ञा पाता है। रज स्त्रीके
पेटमें गर्भके स्वरूपमें उत्पन्न होता है। जीव-
गण पहिले जल, वायु, आकाश और तेज इन
पाच महाभूतोंमें प्रविष्ट होते हैं, आगे वन-
स्यात और औशधिमें व्याप्त होते हैं, अनन्तर
शुक्र और शोणितके स्वरूपको पाकर गर्भोत्पत्ति
करते हैं। क्रमसे दीपाये चारपाये आदिके
शरीर प्राप्त करते हैं। अष्टक बोले, कि जब
जीव नरयोनिनी प्राप्त करता है, क्या तब
अपने सूक्ष्म शरीरहोकी लेकर माता की
कोखमें घुसता है? अथवा कोई अन्य भीतक
शरीर धरकर घुसता है? यह सुभसे कहिये
मैं शङ्कायुक्त होकर पूछता हूँ, और जीवोंके
क्योंकर शरीर भेद आदि होते हैं? अथवा
क्योंकर अपने आँख, कान आदि सम्पूर्ण इन्द्रिय,
रूप और शब्दादि विषयोंका ज्ञान लाभ करते
हैं? हे पिता। हम तुमको क्षेत्रज्ञ समझ
कर पूछ रहे हैं, तुम यह सब सच्ची रीतिसे
कहो। ययाति बोले, कि पाच प्राण, मन,
बुद्धि और दश इन्द्रिययुक्त अपञ्चीकृत भूतसे
बने बनाये सूक्ष्म शरीरमें वीर्यके स्वरूपको
धारण कर स्त्रियोंको ऋतुमें पुष्परससे अनुसंवद्ध
गर्भाश्रित वह जीव तन्मात्रका अधिकार युक्त
किसी विशेष वायुसे उत्कृष्टता और क्रमसे
वृद्धिको प्राप्त होता है; आगे जब सम्पूर्ण
आकार पाकर सज्जालाभ करके मनुष्य के
आकारमें जन्म लेता है, तब कानसे शब्द जान
सकता है, चक्षुसे रूप देखता है, नाकसे गन्ध
संघटता है, जिह्वासे स्वाद लेता है, त्वचामें अनु-
भव कर सकता है और मनसे पदार्थोंको जान
सकता है। हे अष्टक। जीवात्माका सूक्ष्म-
रूपी वह लिङ्ग शरीर इन प्रकार स्थूल शरीरमें
आ पड़ता है।

अष्टक बोले, कि जो पुरुष मर जाता है,
लोग उसको जलाते वा गाड़ते हैं, अथवा
किसी प्रकार से उसके शरीरका नष्टकर

है, सो स्थूल शरीरके साथ लिङ्ग शरीर भी नष्ट होजाता है, अतएव वह लिङ्ग शरीर नाशको प्राप्तकर कर्माकर भांस पिण्डरूपी स्थूलदेहको चेतनायुक्त करता है । ययाति बोले, कि है राजसिंह । जोवात्मा मृत्युके कालमें पवनके आगे चलनेवाले पञ्च प्राणादि लिङ्ग शरीरको धारण करके निश्चितकी भांति स्थूलदेहको छोड़कर सुश्रुत और दृक्कृतकी सामने लिये एक प्रकारका विंशप शब्द करता हुआ अन्य यानिमें जन्म लेता है, उनमें पुण्यात्मा पुरुष पुण्ययोनिमें जन्म लेता है, और पापकारी पुरुष पाप योनिमें कीट पतङ्गादिके स्वरूपमें उत्पन्न होते हैं । हे महातुभाव, राजसिंह । ऋषयि, चारपायि, दो पायि आदि जीवगण इस प्रकारसे गर्भमें अभिर्भूत होते हैं, सुख और दुःख कहनेको नहीं है, मैं सब कुछ कथा तुमसे कह चुका, कहो और क्या पूछोगे । अष्टक बोले, कि है तात । तपस्या और विद्या इन दोनोंमें किससे श्रेष्ठलोकको प्राप्ति होती है, और जिस क्रमसे शुभ लोकमें जाया जाता है वह सब सत्यरूपसे कहो । ययाति बोले, कि साधुलोग सदा कहा करते हैं, कि तपस्या, दान, शम, दम, लज्जा, ऋजुता और सर्व जीवों पर कृपा, यह सात मनुष्योंके स्वर्गलोकमें जानेके प्रधान द्वार है ; पर साधुलोग सदा यह कहा करते हैं, कि जो मय पुरुष तमयुक्त होकर अहङ्कार प्रकाश करते हैं, वे मङ्गल पानके योग्य नहीं हो सकते हैं । जो जन पढ़ करके ऐसा अभिमानी होकर, कि मैं ही पण्डित हूँ, विद्यासे औरोंके यशको लोप करता है, उसका स्वर्ग प्राप्त नहीं होता, यहांतक कि उसका वह पाठ कुछभी फलदायी नहीं होता । अग्निहोत्र, भौनव्रत, अध्ययन यज्ञ चार प्रकारके कर्म शुभ करनेवाले तो हैं, पर अहङ्कारके साथ यह सब कर्म किये जानेपर अनुचित रूपसे आचारेत होकर भय देने वाले होते हैं । मनुष्य आते सम्मानके पात्र होने-

मेभी हर्ष युक्त न होवे और अपमानित मेभी खेदयुक्त न बने, क्योंकि इन लोकमें साधुलोग साधुलोगोंकी पूजा किया करते हैं, असाधुलोग कभी साधुओंके समान आ नहीं करते । पण्डितोंने ऐसा कहा है कि इस प्रकार अहङ्कार दिखावेमें दया दिया, यज्ञ किया, पाठ किया, व्रत किया उसकी सुगति नहीं होती, अतएव सब प्रकारसे अहङ्कारका छोड़ना ही उचित है, पर जो विद्वानलग चिन्तापथके अदृष्ट को अपने समान साधुओंके मङ्गलकारी समान ब्रह्मको संयत चित्त होकर अपना आदर व्यक्त जानते हैं, वे समाधिसे उस ब्रह्मके साथ एक भाव प्राप्तकर अच्छी शान्ति अर्थात् मुक्ति करते हैं ।

सम्भवपर्वके ययाति उपाख्यानमें ।

८३वे अ. ११५ समाप्त ।

अष्टकजी बोले, कि वैदिकगण इस विंश भांति भांतिकी बातें कहा करते हैं कि भिक्षु, ब्रह्मचारी और वानप्रस्थ, यह सब रहकर कौसा आचरण करनेसे धर्मार्जन करनेको समर्थ होते हैं । ययाति बोले कि ब्रह्मचारी गुरुके घरमें वासकर गुरुके बुलाने पाट लें, गुरुके कार्यमें सदा उत्साही बनें, बड़े सबेरे गुरुके उठनेके पहिले उठें, गुरुके सोनेके पीछे सेवि और, धीरे धीरे जित्ति धीरजयुक्त वक्तावर्जित पठनशील हों, उनका ब्रह्मचर्य सिद्ध होता है । प्राचीन निषत्तो में कहा है, कि ब्रह्मजीन धर्मार्जन धनार्जन करके नित्य नैमित्तिकादि अति योको भोजन करावे और किसीके विना दान करे न ले । वनवासीजन निज शक्तिसे किये हुए फल मूल पर जीते हुए, पापकारक निवृत्त, दानशील, नियमित भक्त सदा और परायी हिंसा आदिसे रहित होनेसे

पक्षमें अच्छी सिद्धि प्राप्त करते हैं। जो
गुणयुक्त, निश्च जितेन्द्रिय और थोड़े वस्त्र
हिनेवाले होते हैं और शिल्पसे जीविका नहीं
करते हैं। गृहस्थके घरके बिना किसी और स्थानमें
नहीं जाते हैं, किसी विषय से मिलते मिसते नहीं हैं
और स्वल्प चलते हैं, पर तिसपर भी नाना
विशेषोंमें घूमते हैं वही भिक्षु करके कहे जाते हैं।
जिस समय सब विषय तुच्छ हो जाते हैं और
खदेनेवाली वस्तु भनमानो छोड़ दो जा
सकतो हैं, विज्ञान उस समयहीमें संयत हो-
कर ब्रह्मनिष्ठाके निमित्त वनमें जानेको चेष्टा
करें, वानप्रस्थजन निज शरीर और सम्पूर्ण
न्द्रियोंको वनमें छोड़ें, तो ऊपरके पित्र-पिता
महादि दश पुरुषोंको, नोचेकी पुत्र, पौत्रादि
दश पीढियोंको तथा निजकी परब्रह्ममें लीन
करते हैं।

अष्टकजी बोलें, कि हम यह सुना चाहते
हैं, कि मुनि कितने प्रकारके होते हैं और
मौनव्रतभी कितने प्रकारके होते हैं, यथाति
बोले, कि हे जनाधिप । वनमें वसनेसे सम्पूर्ण
ग्रामकी वस्तु जिनके समोप रहती है, और
ग्राममें टिकने परभी सम्पूर्ण वनके पदार्थ जिसके
सामने आते हैं, उनका नाम मुनि है। अष्टक
बोले, कि वनमें वसनेसे ग्रामकी वस्तु और
ग्राममें वसनेसे वनकी वस्तु क्योंकि सामने
आसकतो हैं ? यथाति बोलें, कि मुनिके वनमें
वसनेसे उनको ग्रामकी वस्तु इकट्ठी करनी
नहीं पड़ती। उनके योगबलसे स्वयं सम्पूर्ण
पदार्थ सामने आजाते हैं, वह विवेकसे सन्यासी,
गृहाद वाल्जित और परमहंस होते हैं और
विश्वके व्यपदेशरहित होते हैं एवम् कौपीन
तथा उसके टंपनके योग्य वस्त्रमात्रकी लेते हैं ;
और उतनाही भोजन करते हैं, कि जिनसे
केवल प्राण धारण हो सके, उनके ग्राममें
वसनेसेभी वनके व्यवहार सब उनके वशमें हो
जाते हैं, ज. मुनि सम्पूर्ण कर्म और कामना

त्याग कर जितेन्द्रिय होकर मौनव्रत आश्रय
किये रहते हैं, वह सिद्धि प्राप्त करते हैं ;
जो निश्च शुद्धचित्त और आकांक्षा-वर्जित
होकर हिंसायुक्त धर्मको त्याग देते हैं,
विशुद्ध भोजन करते हैं और जिन्होंने
हिंसा करनेवाली नखोंको काट डाला
है, ऐसे मुनिको कौनसा जन न पूजेगा ? जो
क्षमाशील और तपस्यासे दुबले पतले और
जिनका मांस, हड्डी और रक्त पतला हो
गया है वह इस लोक और परलोकमें जयकी
प्राप्त करते हैं, जब मौनकी भली भाँति आश्रय
किये हुए मुनि अद्वैत भावके अवलम्बनसे इन्द्र
वर्जित होते हैं, तब इस लोक और परलोकमें
जयकी प्राप्त होते हैं ; जिस प्रकारसे गौ आदि
पशु, हाथ पंख आदिकी चेष्टासे भोजनको न
बटोर कर केवल मुखसे आहार निर्व्याह करते
हैं, उसही प्रकार जब मुनि प्रत्यागात्मामें एकाग्र
होकर बिन मांगे पड़ची हुई भोजनकी साम-
ग्रीको प्राण धरनेहीके निमित्त मुखसे उटाते
हैं, हाथ पावसे कोई चेष्टा नहीं करते, ऐसी
अवस्था होनेसे उनके सामने सम्पूर्ण लोक
अमृतके स्वरूप होते हैं।

सम्भवपर्वके यथाति उपाख्यानम्
एकानव्वे अध्याय समाप्त ।

अष्टकजी बोलें, कि सूर्य और चन्द्रके
समान दौड़नेवाले यति और वानप्रस्थ इन
दोनोंमें कौन पहिले देवदत्त हो सकते हैं ?
यथाति बोले, कि दोनोंमेंसे यतिजन संयत रह
कर इच्छाचारी गृहस्थ जनोंसे भरे पूरे ग्राममें
वस करकेभी पहिले देवके स्वरूपको प्राप्त होते
हैं, पर उन यति-जनसे क्रोध ईर्ष्यादि देहके
धर्मोंके हेतु निजकी अनुष्ठानकी हुई तपस्याका
विपरीत व्यवहार रूपी पाप किया जावे, तो
वृद्धत कालमें होनि योग्य तप अनुष्ठान करनेके
कालप्राप्त न होनेसेभी वह उस कारण अदि

अनुतापित होवे, तो फिर दूसरी तपस्याका अनुष्ठान करें, ऐसा करनेसे वह उस पापसे मुक्त होकर सफल मनोवृत्ति हो सकते हैं, और जिस ज्ञानी पुरुषने अविनाशी ब्रह्मको धारण (दर्शन लाभ) किया है, वह सदा इच्छानुसार पापाचरण करनेसे भी अति सुखरूपी मुक्तियों लाभ करता है। हे राजा ! मोक्षकी खोज न करके अनित्य स्वर्ग भोगनेके लिये जिस धर्मका अनुष्ठान किया जाता है, उस धर्मकी पण्डितोंने अजितेन्द्रिय जनके धनके सदृश कष्टदायी और असत्य करके कहा है, पर जिस निष्काम धर्मसे मोक्षफलकी प्राप्ति होती है, उसीको उचित पथ और समाधि करके कहा है एवम् उसी पर चलना योग्य है।

अष्टक बोले, कि हे राजा ! तुमको मालाधारी, सुतेजस्वी और परम सुन्दर युवा पुरुष देखता हूँ, आज तुम कहाँसे आये हो। और किस जनकी दूतस्वरूपी होकर किस ओर भेजे गये हो ? अथवा पृथ्वीहीमें तुम्हारा जाने योग्य स्थान है क्या ? ययाति बोले, कि मैं क्षीणपुण्य होनेसे स्वर्गसे च्युत होकर इस भौम नरकमें गिरनेके लिये पृथ्वीमण्डलमें प्रवेश कर रहा हूँ; तुम्हारे साथ वाक्यालाप करके गिरूंगा, इस लिये लोक-पाललोग मुझको शीघ्र प्रस्तुत होनेकी कहते हैं। हे नरेन्द्र ! मेरे भूतलमें गिरनेके पहिले दूरसे प्रार्थना करने पर उन्होंने मुझको वर दिया है, कि तुम गुणवन्त और संगत साधुमण्डलके समीप गिरोगे।

अष्टक बोले, कि हे पृथ्वीनाथ ! मुझको जान पड़ता है, कि तुम धर्मके फलस्वरूपी सब सिद्ध स्थानोंकी जानते हो, अतः पूछता हूँ, कि स्वर्गलोक अथवा नक्षत्रलोकादिमें मेरे पुण्यसे उपार्जन कीर्द्ध भोगनेका स्थान है वा नहीं ? यदि हाँ, तो गिरनेपर भी न गिरागे।

बोले, कि हे नरेन्द्र ! सुनो, इस

भूमण्डलमें गौ घाटुं और जितने वाक्के हैं पार्श्वतीय पग हैं, देवलोकां उतनही पुण्यसे उपार्जन किये हुए स्थान हैं। अष्टक बोले, कि हे राजा ! यदि मेरुकी पीठ पर वा नक्षत्रलोकां अथवा स्वर्गधाममें मेरे पुण्यसे उपार्जन किये हुए स्थान हैं, तो वह सब तुमको दे देता हूँ मत गिरो। माहर्षे बोले, हाकर तुम्हो उनका अधिकार मैं लाया। ययाति बोले, कि हे राजा ! मेरे हैं वेदज्ञ और वेदाचारी जन कभी प्रतिग्रह नहीं करते। हे नरेन्द्र ! ब्राह्मणका सदा दान देता होता है मैंने पहिले वैसा दान दिया है; चक्रियारि पुरुष और दिशाजय करनेवाले वीरको पर यह मांगने को नाई दीनताकी स्वीकार करूँ कभी न जोयें; अहो ! मैं सुकर्म करनेवाला अभिलाषी होकर, जो कार्य पहिले कभी नहीं किया था क्या वहो कहूंगा ?

अनन्तर वहाँ टिके हुए प्रतर्दन नामक एक राजाने कहा, कि हे सृष्टिनाथ-रूप-धारक ! मैं प्रतर्दन हूँ, तुमको पूछता हूँ, कि यदि नक्षत्रलोक वा देवलोकमें मेरा पुण्यसे उपार्जन किया हुआ स्थान है, तो कहो, मुझसे सम्भोग पड़ता है, कि धर्मानुष्ठानसे उपार्जन किए हुए सम्पूर्ण सिद्ध स्थानोंसे तुम ज्ञात हो ययाति बोले, कि हे नरेन्द्र ! घृतकुल्य सुखदेनेवाले दूतने अधिक स्थान तुम्हारे प्रतीक्षामें है; कि हर स्थानमें सात सात दिवसनेसे भी वे चुकते नहीं। प्रतर्दन बोले, कि यदि नक्षत्रलोक वा स्वर्गमें मेरे पुण्यसे उपार्जन किये हुए स्थान हैं, तो वह सब तुमको दे देता हूँ, वह सब तुम्हारे ही हैं, तुम और न गिरो, मोहवर्जित होकर शीघ्र वहाँ चढ़ जाओ। ययाति बोले कि पृथ्वीनाथ ! तुल्य तेजयुक्त भूपाल होकर कोई दूसरे राजासे योगक्षेम करनेवाली सुकर्म प्रार्थना नहीं करते, ज्ञानी राजा

आज्ञासे विपदग्रस्त होनेपरभी कभी-निष्ठुर व्यवहार नहीं करते, अतएव मैं क्योंकर यह स्वीकार करूंगा ? राजाको धर्मको और दृष्टि रखकर धर्मयुक्त और यशदायी कार्य करना चाहिये। पर तुम जो कहते हो, वह नीच धर्म है, अतएव मेरे ऐसे धर्मज्ञ जन-जान बूझकर यह क्यों मानेगी ? दूसरे राजाओंने जो प्रतिग्रहका कार्य कभी नहीं किया है, मैं सुकर्म करने का अभिलाषी होकर वह क्योंकर करूंगा ? नृपति ययाति-ऐसा कह रहे थे, कि ऐसे समयमें वसुमान नामक एक नृपोत्तम उनसे बोले ।

सम्भवपर्वके ययाति उपाख्यानमें
वानञ्जे अर्थाय समाप्त ।

वसुमानजो बोले, कि हे नरेन्द्र । मैं औष-दक्षि वसुमान, तुमसे पूछता हूं, कि यदि नक्षत्रमण्डल वा स्वर्गधाममें मेरे पुण्यसे उपा-र्जित प्रख्यात स्थान हो, तो कहो, हे महा-लन् । सुभाको जान पड़ता है, कि तुम धर्मसे लाभ करने योग्य सम्पूर्ण पुण्य लोकोंसे ज्ञात हो । ययाति बोले, कि सूर्यदेव-आकाश-मण्डल, पृथ्वी और दिशाओंमें-जितना स्थान तापयुक्त करते हैं, देवलोकमें उतना अनन्त पुण्यलोक तुम्हारी प्रतीक्षामें है । वसुमान बोले, कि हे राजन् ! वह सब पुण्यलोक तुम-को दान देता हूं, वह तुम्हारेही होवें, तुम मत गिरी, हे धीमार् । यदि तुमकी प्रतिग्रह जान ण्डे, तो तुम वह सब लोक तिनका देकर मोल ले लो । ययाति बोले, कि खरण होता है, कि मैंने शिशुके सृष्ट भयानक कालचक्रसे भय खाकर कभी व्यर्थ मोल विक्री नहीं की है, और राजाओंने जो कभी नहीं की, वह मैं एकधर्म करनेका अभिलाषी होकर क्योंकर करूंगा ? वसुमान बोले, कि हे राजन् ! यदि तुमको मोल लेना अधोष्ठ न हो तोभी मेने दिये

हुए वह सब पुण्यलोक ले लो, हे नरेन्द्र ! मैं जिन लोकोंमें न जाऊंगा वह तुम्हारे हीवें ।

अनन्तर शिवि नामक नृपोत्तमने कहा, कि मैं उग्रोनरका पुत्र शिवि हूं, तुमसे पूछता हूं, कि नक्षत्रलोक वा देवलोकमें यदि मेरे पुण्यार्जित स्थान होवें, तो कहो, हे तात । सुभाको जान पड़ता है, कि धर्मार्जित उन सब पुण्यलोकोंसे तुम ज्ञात हो । ययाति बोले, कि हे नरेन्द्र । तुमने कभी बाण्यसे वा मनसे साधु याचक जनका अनादर नहीं किया है, इस कारण देवलोकमें बिजलीके समान प्रख्यात अनन्त महत् स्थान तुम्हारे लिये है । शिवि बोले, कि हे राजन् । तुमको मोल लेना

अधोष्ठ न हो, तो वह सब पुण्यलोक दान कर देता हूं तुम ले लो, मैं उन्हें देकर फिर लौटा न लूंगा, उन स्थानोंमें जानसे पण्डित लोग शोक नहीं पाते । ययाति बोले, कि हे नर-देव । तुम इन्द्र समान प्रभावी हो और तुम्हारे सब पुण्यलोकभी अनन्त हैं, पर हे शिवे । अन्यके दिये हुए पुण्यलोकमें मैं क्रोड़ा न करूंगा, अतएव तुम्हारा यह दान सुभी स्वीकृत नहीं है ।

अष्टक बोले, कि हे राजन् । हम सबोसे हरेकने निज निज पुण्यार्जित लोक अलग अलग तुमको दान करदिये, उनका यदि लेना सम्मत तुमको न हो, तो हम सब एकत्र होकर अपने सम्पूर्ण पुण्यलोक तुमको देकर भीम-नरकमें जाते हैं । ययाति बोले, कि हे सत्यप्रिय साधुओं । मैंने जो पहिले कभी नहीं किया है, वह स्वीकार नहीं करूंगा, मैं जिम विषयके योग्य हूं, वह पूरा करने में तुम यत्नवान् हों । अष्टक बोले, कि उस आकाशमण्डलमें सुवर्ण मय पंच रथ देखना हूं, उन पर चढ़ कर मनुष्यगण स्वर्गधामको जा सक्ते हैं ; यह कहो, कि वे किशके हैं । ययाति बोले, कि वह जो अग्नि-जिह्वाके मृदु प्रज्वलित उच्च पावक आकाश-

मण्डलमें प्रगट हो रहे हैं, वे तुम लोगोंकी बनाकर देवताओंके यहां ले जायेंगे । अष्टक बोले, कि हे राजा ! तुम रथ पर आसुद्ध होओ और आकाशपथको पधारो, जब काल उपस्थित होगी, तब हम भी तुम्हारे पीछे चलेंगे । ययाति बोले, कि इसी क्षण हम सभी निष्पाप और स्वर्गजयकारी भये हैं, अतएव हमको एकत्र होकर चलना पड़ेगा वह देवों, देवलोकका पथ दोख पड़ता है ।

श्रीनैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर वे सब नरेश धर्मके प्रभावसे आकाशमण्डल आक्रमण करके रथों पर आसुद्ध होकर पधारें । अष्टकजी बोले, कि मैंने सोचा था, कि महात्मा देवराज सर्वप्रकारसे मेरे मित्र हैं, अतएव मैं ही पहिले अकेला जाऊंगा, पर यह उशीनरके पुत्र शिवि अकेले क्यों हम सबोंको छोड़कर चले ? ययाति बोले, कि इस उशीनरके पुत्र शिविने ब्रह्मलोक पथको पानेके निमित्त सर्वस्व दान कर दिया था, सो यह तुमसे भी श्रेष्ठ हुए हैं । हे राजा ! दान, तपस्या, सत्य, धर्म, लज्जा, श्री, चमत्कार, अकुटिलता और पालनेकी इच्छा यह सब गुण उपमा-रहित राजा शिविके इतने हैं, कि बुद्धिसे उनका नाम नहीं हो सकता, शिवि इतने गुणशाली और लज्जाके भारसे नम्र होनेहोसे उनका रथ हमकी छोड़ चला ।

श्रीनैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर अष्टकजीने कौतूहलपूर्वक होकर इन्द्र सद्यः मातामह-से फिर पूछा, कि हे नृपते ! मैं पूछता हूं सच कहो, कि तुम कहांसे आये हो ? किसकी सन्तान और स्वयं कौन हो ? तुमने जो कार्य किया है, वंचे जग मण्डलमें तुम्हारे बिना ब्राह्मण वा क्षत्रिय कोई नहीं कर सकता है । ययाति बोले, कि मैं नहुषका पुत्र और पुत्रका पिता हूं, मेरा नाम ययाति है, मैं इस धरती-मण्डलमें सार्वभौम राजा था, तुम मेरे परम भागजन हो, तुमसे स्पष्ट कहता हूं, कि मैं

तुम्हारा मातामह हूं । मैंने सम्पूर्ण को जीतकर ब्राह्मणोंको वस्त्र दान, पवित्र और सुन्दर सौ घोड़े देवोंके उत्सर्ग कर दिये थे, जो ऐसा करते हैं, उन पुत्रवान जनोंकी उपासना करते हैं वाहन, गौ, सुवर्ण, तथा दूसरे और उत्कृष्ट से भरी पूरी यह पृथ्वी और सौ अक्षर ब्राह्मणोंको दान कर दी थी, और मेरी कर्म वात अभी निष्पन्न नहीं हुई, मैं सब आकाशमण्डल तथा धरती दोनों है और मैं लोकमें अग्नि जन रहा हूं, इस हेतु साधु सत्यहीको पूजा करते हैं । हे अष्टक ! तुम प्रतर्द्धनसे और औशदृष्टि से जो कहता है सच है । यह मुझे निश्चय समझ है, कि सगण और देवगण एक सत्यनिष्ठा हीसे प्रकट होते हैं । जो जन हेपरहित होकर इस स्वर्ग प्राप्तिका हतान्त आद्योपान कर ब्राह्मणोंको सुनावेगा, वह हमारे पुण्य स्थानकी लाभ करेगा । नैशम्पायनजी बोले, कि, अति महात्मा उदारकर्मी राजा ययाति योंसे वर प्राप्त कर कीर्तिसे पृथ्वी करके मित्रोंके साथ स्वर्गको आसुद्ध हुए ।

सम्भवपर्वके ययाति उपाख्यानमें
तिरानच्चे अध्याय समाप्त ।

जनमेजय बोले, कि भगवन् ! पुरुवंशीयोंमें जिनकी जैसा विक्रम और वीर्य था जो जैसे थे, वह सुना चाहता हूं । इस वंशमें राजा कभी कुचरित, वीर्यवर्जित अथवा पराजित नहीं हुआ । हे तपोधन ! प्रसन्न चरित और विज्ञानयुक्त उन राजाओंके विस्तृत रूपसे सुननेकी इच्छा हो रही है । श्रीनैशम्पायनजी बोले, कि हे राजा ! पुरुवंशकी वृत्तान्त जो हमसे पूछा, उन वंशधर वीर देवराजके समान तेजयुक्त, गिणत विनशाली, विक्रमी और सर्व

जा योग्य राजोंके वृत्तान्त-आपसे कहता हूँ,
निये । पुरुकी पौष्टि नाम्नी महिषीसे प्रवीर,
खर और रौद्राश्व इन तीन महारथी पुत्रोंका
जन्म हुआ था, उनमें प्रवीर वंशधर हुए । प्रवी-
रके वीर्य और शूरसेनीके गर्भसे मनुष्य नामक
जन्म लिया; प्रसवनेवाला सर्वप्रभु मनु-
ष्यने चार समुद्रतक पृथ्वीका शासन किया था ।
मनुष्यके वीर्य और शीवोरोके गर्भसे शक्त, संह-
र्ष और बाम्नी यह तीन पुत्र उत्पन्न हुए; वे
शूर और महारथी भये थे । मनस्वी
राजाके वीर्य और मिथकेशो नाम्नी अस्-
त्रके गर्भसे अन्वग भानु आदि दश पुत्रोंने जन्म
लिया था, वे सभी सर्व शास्त्रोंमें निपुण, धर्म-
वान्, बड़े चापधारो, योगशील, शूर, प्रजायुक्त
और सर्व शास्त्रज्ञ हुए । उनसे ऋच्यु, कक्ष्यु,
स्थिवान, कृकष्यु, स्थण्डिल्यु, बनेयु, महा-
वीर्यवान् जल्यु, बलवन्त तेज्यु, इन्द्रके समान
क्रमी धर्म्यु और देवसदृश पराक्रमी द्रश्व-
तेज्यु, इन दश पुत्रोंने जन्म लिया था । देवी-
देवराज जैसे विक्रमी, और विहान हैं, ऋच्यु,
मण्डलमें अद्वितीय राजा होकर, अनाष्टि
मसे प्रसिद्ध हुए । राजसूय और अश्वमेध
करनेवाले परम धार्मिक प्रख्यात राजा
तनारने अनाष्टिसे जन्म लिया, हे राजन् ।
तनारके औरससे तंसु, महान, अतिरथ और
हा द्योतवान् दुह्यु यह चार पुत्र उत्पन्न हुए,
सब असीम विक्रमी थे । उनमें तंसु अति
वीर्यवान् और वंशधर थे; उन्होंने भूमण्डलको
तक प्रदीप्त यज्ञ उपार्जन किया था !
स्थिवन्त तंसुने ईलिन नामक पुत्रको जन्म
पाया; जयशील उन तंसुके पुत्रनेमो सम्पूर्ण
तीतलकी जोत लिया था । अनन्तर रथ-
रीके गर्भ और राजा ईलिनके वीर्यसे पञ्च-
कोके समान पांच पुत्र उत्पन्न हुए; उनके
नाम दुष्मन्त, शूर, भीम, प्रवसु और वसु थे । हे
मित्र । उनमेंसे कुछ दुष्मन्त राजा हुए;

दुष्मन्तसे शकुन्तलाके गर्भसे विहान भरतने जन्म
लिया, -उनसेही भरत-वंशका महान् यज्ञ
फैल गया ।

भूपाल भरतके तीन महिषियों से-तीन पुत्रोंने
जन्म लिया, वे राजाके योग्य पुत्र नहीं हुए थे
यह कहके राजा उनपर असंतुष्ट थे, यह देख-
कर पुत्रोंकी माताओंने क्रोधके वशमें होकर
निज निज पुत्रोंकी मार डाला; इससे नरश्रेष्ठ
भरतके उन पुत्रोंकी उत्पत्ति व्यर्थ हुई । हे
भारत । अनन्तर राजा भरतने महायज्ञका
अनुष्ठान करके भरद्वाजसे भुमन्यु नाम पुत्र लाभ
किया । हे भरतश्रेष्ठ ! - आगे पीरवनन्दन
भरतने अपनेकी पुत्रवान जानकर उस भुमन्यु
नामक पुत्रकी यौवराज्यपर अभिषिक्त किया ।
अनन्तर भुमन्युके वीर्य और पुष्करिणीके
गर्भसे सुहोत, सुहोता, सुहलि, सुयजु, ऋचिक
और हिविरथ इन सब पुत्रोंने जन्म लिया इन-
मेंसे सुहोत ज्येष्ठ पुत्र थे, सो उन्होंने राज्या-
प्राप्त किया । वह राजसूय अश्वमेध आदि नाना
यज्ञ करके हाथी और घोड़ासे भरी, नाना
रत्नोंसे पूरी, समुद्रसे घिरी सम्पूर्ण पृथ्वी भोगने
लगे । तब भूमण्डल हाथी घोड़े और रथोंसे
पूरित और अगणित मनुष्योंसे विकल होकर
अति भारसे पीड़ित होनेके कारण डूबने पर
हुआ । राजा सुहोतके धर्ममानुसार प्रजा-
शासन करनेसे धरतोमण्डल सैकड़ों सहस्रों
स्थानोंमें देवालय और यज्ञके यूपोंसे चित्रित
हुआ था । हे भारत । पृथ्वीनाथ सुहोतसे स्त्री
ऐचाकीने अजमीढ़, सुमीढ़ और परमीढ़
यह तीन पुत्र प्रसव किये, उनमेंसे अजमीढ़
ज्येष्ठ पुत्र थे, उनसेही वंश प्रतिष्ठित हुआ ।
हे भारत ! अजमीढ़ने तीन राणियोंसे ६ पुत्र
उत्पन्न किये; उनमें धमिनीके गर्भसे ऋच नीली-
के गर्भसे दुष्मन्त तथा परमेष्ठी और केशिनोके
गर्भसे जह्नु, व्रजन और रूपिन इन तीन पुत्रोंने
जन्म लिया । दुष्मन्त और परमेष्ठीके वंश

यह सब पाञ्चाल राजा उत्पन्न हुए । अमिततेजा जन्तुके वंशसे कुशिकोंने जन्म लिया । जनाधिप ऋक्ष, व्रजन और क्षपिणामे ज्येष्ठ थे ; ऋक्षसे राजवंश करनेवाले सम्बरण नामक पुत्र उत्पन्न हुए । हे राजन् ! हम सुन चुके हैं, कि जब ऋक्षपुत्र सम्बरणने धरतीकी शासन किया था, तब बहुत प्रजा क्षय होने लगी । क्षयो मृत्यु, अनावृष्टि और व्याधि आदि नाना क्रौन्धोंसे प्रजा लोप होनेपर राज्य एकवारही नष्ट हो गया ; शत्रु पक्षकी सेना भारत पक्षीय गोदाका मारने और घायल करने लगी । पाञ्चालके भय विक्रम से भूमण्डलकी जीतकर चतुरङ्गिणी सेनासे पृथ्वीको डोलाते हुए राजा सम्बरणके निकट आन पहुंचे ; आगे युवस्थलमें दश अक्षौहिणी सेनासे राजा सम्बरणकी पराजय किया । तब वह बहुत भय खाकर स्त्री, पुत्र मन्त्रो और मित्रोंके साथ भागकर हिन्दु नामक महानदके तटसे पर्वतके निकट तक फैली हुई एक फुलवाड़ीमें टिक रहें । भारतगंगा उस जानिके अयोग्य वनमें बड़काँल बसने लगी, धीरे धीरे उनके सौ वर्ष व्यतीत हुए ।

अनन्तर एक समय भगवान् ऋषि वशिष्ठ उनके यहाँ आ पहुंचे, भारतलोगोंने उनको आगत देखकर यज्ञके साथ नमस्कार करके अर्घ्य दिया । आगे उन बड़े तेजस्वी ऋषिके आसन पर बैठने पर राजाने स्वयं उनको सत्कार करके सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाकर उनसे प्रार्थना की, कि आप हमारे पुरोहित हों, तो हम राज्यको फिर पानेका यत्न कर सकते हैं । वशिष्ठने भारतोंके निकट वह स्वीकार किया और सम्पूर्ण भूमण्डलकी चोटी को नाई अष्ट पौरव सम्बरणकी क्षत्रियोंके आधिपत्यरूपी साम्राज्यपर अभिसिक्त किया । भूपाल सम्बरण भरतके पहिले वसे हुए सुन्दर नगरमें फिर अधिष्ठान करके सम्पूर्ण भूपालोंको वनाने लगे । अजमोढ़के पौरव

महावली सम्बरण फिर पृथ्वीकी प्राप्ति दक्षिणायुक्त अनेक यज्ञोंका अनुष्ठान लगे । अनन्तर सूर्यपुत्री तपतीने भर्पति से सम्बरणसे कुरु नामक पुत्र प्रसव किया । राजन् ! सम्पूर्ण प्रजाओंने कुरुको देखकर वरणा किया । उन महातपा कुरु तपस्यासे कुरुजाङ्गल नामक स्थान पवित्र । उनके निज नामके अनुसार कुरुक्षेत्र प्रसिद्ध हुआ । वाहिनी नाम्नी मनस्विनी वाणीने तिनसे अविहित, भा अभिष्यत, चैत्ररथ, मुनि और प्रख्यात । यह पाँच पुत्र प्रसव किये । अर्धिराज, शवलाश्व, वीर्यवन्त आदिराज, पिराज, कली, शाकलो उच्चैश्रवा, भङ्गकार, जितारी यह आठ पुत्र उत्पन्न हुए । वंशमें कर्म्मके हेतु गुणसे प्रधान जनमेजय सात और दूसरे अनेक महारथियोंने जन्म था । कक्षसेन, उग्रसेन वीर्यवन्त विश्वसुपेन और भीमसेन यह सब पुत्र परीक्षित उत्पन्न हुए थे ; यह सब धर्मार्थ तपस जनमेजयसे महावल्गन्त पृथ्वी भरमें धर्मार्थयुक्त और सर्वभूतोंके हितमें । आठ पुत्रोंने जन्म लिया । उनमें ज्येष्ठ है, पीछे पाण्डु, वाहीक, महातेजा बलवन्त जाम्बुनद, कुण्डोदर और पदाति इनमें धृतराष्ट्र राजा भये थे । कुण्डिक, वितर्क, क्राथ, कृष्णिन, वहिश्वा, इन्द्राभ, अपराजित भुमन्तु यह धृतराष्ट्रके पुत्र भारत ! प्रतोप, धर्मनेत्र और सुनेत्र, प्रसिद्ध राज कुमार धृतराष्ट्रके पौत्र इनमें प्रदीप प्रख्यात और अद्वितीय । भरत वंशज अष्ट । देवापि, शान्तनु और शान्तनु । इन तीन महारथी पुत्रोंने प्रतीपसे जन्म था ; उनमें देवापिने धर्म लाभके लिये अवलम्बन की और महारथी शान्तनु वाहीक भूमण्डलके अधीश हुए ।

पिसदृश सत्ययुक्त बृहतेरे भूपालोने भरत
मिं जन्म लिया था। ऐसे देवर्षि सदृश
चावान् बृहतेरे महारथी भूपतियोंनेभी ऐल
को वृद्धि करके मनुवंशमें जन्म लिया था।
सम्भवपर्वमें चौरानके अष्टाय समाप्त ।

जनमेजय बोले, कि हे ब्रह्मन् ! आपसे
गले पुरुषोंकी महत उत्पत्तिकी कथा सुनी
र इस वंशके उदारचरित राजाओंके वृत्तान्तों
भी ज्ञात हुआ, पर यह परमप्रिय उपाख्यान
क्षेपमें कहा गया है, उससे भली प्रकार तृप्त
हो जाऊँ। आप फिर विस्तृत रूपसे
बतलिये। प्रजापति मनुसे लेकर सम्पूर्ण राजाओं
पवित जन्म-वृत्तान्त रूपी यह दिव्य कथा
तुनेसे किस मनुष्यकी प्रीति नहीं होती? वे
उत्तमशीलता आदिगुण, अमाधारणशक्ति, शारी-
रिक बल, मानसिक सामर्थ्य, अदीनता और
साहयुक्त थे, उनके सुकर्म्म, गुण और महा-
वीर्यमें बढ़ा हुआ यश तोनों लोकमें व्याप्त हो-
या और बढ़कर आजतक विद्यमान है, उन-
की अमृत सदृश मीठी कथा संक्षेपमें सुनकर
भी प्रकार तृप्त नहीं हो सका हूँ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे राजन् ! मैंने
बतलाले हैपायनसे आप के शुभवंशके वृत्तान्तोंकी
कथा सुना है, वह सब कहता हूँ, सुनिये।
इससे अदिति अदितिसे विवस्वान विवस्वानसे
मनुसे इला, इलासे पुरुरवा, पुरुरवासे
ययु, आयुसे नहुष और नहुषसे ययातिने जन्म
लिया था। ययातिके दो स्त्रिया थी, शुक्र की
दो देवयानी और वृषपर्वाकी कन्या शर्मिष्ठा।
इस स्थानमें वंशकी कथा-सम्बन्धी श्लोक हैं, कि
देवयानीने यदु और तुर्वसु इन दो पुत्रोंकी
और वृषपर्वाकी कन्या शर्मिष्ठाने द्रुह्यु, अनु-
रूप पुर इन तीन पुत्रोंकी प्रसव किया था।
ययुसे यादव वंश और पुरसे पौरव वंश
प्रसूत हुआ। पुरकी भाया कौशल्यासे जन्म-

जयने जन्म लिया, उन्होंने तीन वार अश्वमेध
और एकवार विश्वजित यज्ञ करके वनमें प्रवेश
किया था उन्होंने साधवकी अनन्ता नाम्नी
कन्यासे विवाह किया था, उससे प्राचिस्वान्
नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। सूर्योदयके स्थान-
तक प्राची दिशा जोतने पर उनका नाम प्राचि-
स्वान हुआ। प्राचिस्वानने अश्वकी नाम्नी
साधव की कन्यासे विवाह किया था, उनसे
संयातिकी उत्पत्ति हुई। संयातिने दृशदत्तको
कन्या बराह्मिसे विवाह किया था, उसके गर्भसे
अहंजातिने जन्म लिया। अहंजातिने कृत-
वीर्यकी कन्या भानुमतिका पाणिग्रहण किया;
भानुमतिके गर्भसे सार्वभौमने जन्म लिया।
सार्वभौमने कैकेय राजको जोतकर उनको
पुत्री सुनन्दाको हर लिया, आगे उसको
विवाह करने पर उसके गर्भसे जय-
त्सेनकी उत्पत्ति हुई। जयत्सेनने विदर्भ
राजकुमारो सुयवाका पाणिग्रहण किया, उससे
अवचीनका जन्म हुआ। अवचीनने दूसरी
विदर्भी मथ्यादा नामी कन्यासे विवाह किया,
इससे अरिहका जन्म हुआ। आद्वी नाम्नी
कन्यासे राजा अरिहके विवाह होने पर उनसे
महाभौमने जन्म लिया। महाभौमने प्रासेद-
जितकी कन्या सुयज्ञाके गर्भसे अयुतनायीका
जन्म हुआ, इनके अयुत अश्वमेध यज्ञ करनेसे
इनका नाम अयुतनायी हुआ। अयुतनायीने
पृथुयवाकी कन्या कामासे विवाह किया था,
इससे कामाके गर्भसे अक्रोधनने जन्म लिया।
कलिङ्ग राजकन्या करम्भाके साथ अक्रोधनका
विवाह हुआ, इससे करम्भाके गर्भसे देवातिथिन
जन्म लिया। देवातिथिनने विदेहराजपुत्री
मथ्यादासे विवाह किया था, मथ्यादाके गर्भसे
अरिहने जन्म लिया। अरिहने अद्वराजको
सुदेवा नामी कन्यासे विवाह किया था।
सुदेवान् उच्च नामक पुत्र प्रसव किया था।
तक्षककी पुत्री ज्वालाके साथ उच्चका विवाह

यह सब पाञ्चाल राजा उत्पन्न हुए । अमिततेजा जन्हुके वंशसे कुशिकोंने जन्म लिया । जनाधिप ऋक्ष, व्रजन और ऋषिगामे ज्येष्ठ थे ; ऋक्षमे राजवंश करनेवाले सम्बरण नामक पुत्र उत्पन्न हुए । हे राजा ! हम सुन चुके हैं, कि जब ऋक्षपुत्र सम्बरणने धरतीकी शासन किया था, तब बहुत प्रजा क्षय होने लगी, क्षधा, सन्धु, अनावृष्टि और व्याधि आदि नाना क्रौरणोंसे प्रजा लोप होनेपर राज्य पञ्चवारही नष्ट हो गया ; शत्रु पक्षकी सेना भारत पक्षीय योद्धाओं मारने और घायल करने लगी, पाञ्चालके भय विक्रम से भूमण्डलकी जीतकर चतुर्दिगो सेनासे पृथ्वीको डोलाने हुए राजा सम्बरणके निकट आन पहुंचे, आगे युद्धस्थलमें दश अक्षौहिणी सेनासे राजा सम्बरणको पराजय किया । तब वह बहुत भय खाकर स्त्री, पुत्र मन्त्रो और मित्रोंके साथ भागकर सिन्धु नामक महानदके तटसे पर्वतके निकट तक्ष फैली हुई एक फुलवाड़ीमें टिक रहने भारतगंगा उमर जानेके अयोग्य वनमें बहुतकाल बसने लगे ; धीरे धीरे उनके सौ वर्षे व्यतीत हुए ।

अनन्तर एक समय भगवान् ऋषि वशिष्ठ उनके यहां आ पहुंचे, भारतलोगोंने उनको आगते देखकर यज्ञके साथ नमस्कार करके अर्घ्य दिया । आगे उन बड़े तेजस्वी ऋषिके आसन पर बैठने पर राजाने स्वयं उनका सत्कार करके सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाकर उनसे प्रार्थना की, कि आप हमारे पुरोहित हों, तो हम राज्यको फिर पानेका यत्न कर सकते हैं । वशिष्ठने भारतोंके निकट वह स्वीकार किया और सम्पूर्ण भूमण्डल की चोटी को नाई अष्ट पौरव सम्बरणको क्षत्रियोंके आधिपत्यरूपी साम्राज्यपर अभिसिक्त किया । भूपाल सम्बरण भारतके पहिले वसे हुए सुन्दर नगरमें फिर अधिष्ठान करके सम्पूर्ण भूपालीको करदाता बनाने लगे । अजमोढ़के पौरव

महावली सम्बरण फिर पृथ्वीकी दक्षिणायुक्त अनेक यज्ञोंका अनुष्ठान लगे । अनन्तर सूर्यपुत्री तपतीने भर्षा सम्बरणसे कुरु नामक पुत्र प्रसव किया । राजा । सम्पूर्ण प्रजाओंने कुरुको देखकर वरणा किया । उन महातपा तपस्यासे कुरुजाद्वल नामक स्थान पवित्र । उनके निज नामके अनुसार कुरुक्षेत्र प्रसिद्ध हुआ । वाहिनी नाम्नी मनस्विनी राणीने तिनसे अविहित, भी अभिष्यत, चैत्ररथ मुनि और प्रख्यात यज्ञ पांच पुत्र प्रसव किये । शवलाश्व, वीर्यवन्त आदिराज, पिराज, कनी, शाखलो, उच्चैश्रवा, भद्रका जितारी यह आठ पुत्र उत्पन्न हुए । वंशमें कर्म्मके हेतु गुणसे प्रधान जनमेजय सात और दूसरे अनेक महारथियोंने जन्म था । कक्षसेन, उग्रसेन वीर्यवन्त सुषेने और भीमसेन यह सब पुत्र परीक्षित उत्पन्न हुए थे ; यह सब धर्मार्थ जनमेजयसे महाबलवन्त पृथ्वी भरमें धर्मार्थयुक्त और सर्वभूतोंके हितमें आठ पुत्रोंने जन्म लिया । उनमें ज्येष्ठ है, पीछे पाण्डु, वाह्लीक, महातेजा बलवन्त जाम्बुनद, कुण्डोदर और पद्मादनमें धृतराष्ट्र राजा भये थे । कृष्ण वितर्क, क्राथ, कृष्णिन, वहिश्वा, इन्द्रा अपराजित भुमन्तु यह धृतराष्ट्रके पुत्र भारत । प्रतोप, धर्मनेत्र और सुनेत्र, प्रसिद्ध राज कुमार धृतराष्ट्रके पुत्र इनमें प्रदीप प्रख्यात और अद्वितीय भरत वंशज्येष्ठ । देवापि, शान्तनु और इन तीन महारथी पुत्रोंने प्रतीपसे जन्म लिया, उनमें देवापिने धर्म लाभके लिये अवलम्बन की और महारथी शान्तनु वाह्लीक भूमण्डलके अधीश हुए ।

पिसदृश सत्ययुक्त बृहतेरे भूपालीने भरत
मि जन्म लिया था। ऐसे दिवसि सदृश
चावान् बृहतेरे महारथी भूपतियोंनेभी ऐल
को वृत्ति करके मनुवंशमे जन्म लिया था।
सम्भवपर्वमें चौरान के अनाय समाप्त ।

जनमेजय बोले, कि हे ब्रह्मन् । आपसे
गले पुरुषोंकी महत उत्पत्तिकी कथा सुनी
र इस वंशके उदारचरित राजाओंके वृत्तान्तों
की ज्ञात हुआ, पर यह परमप्रिय उपाख्यान
क्षेपमें कहा गया है, उससे भली प्रकार तृप्त
होई हुआ हूं आप फिर विस्तृत रूपसे
बुझिये। प्रजापति मनुसे लेकर सम्पूर्ण राजाओं
पवित्र जन्म-वृत्तान्त रूपी यह दिव्य कथा
मुनेसे किस मनुष्यकी प्रीति नहीं होती। वे
नशोलता आदिगुण, अभाधारणशक्ति, शारी-
क बल, मानसिक सामर्थ्य, अदीनता और
साहयुक्त थे, उनके सुकर्म्म, गुण और महा-
त्तमसे बड़ा हुआ यश तोना लोकमें व्याप्त हो-
कर और बढ़कर आजतक विद्यमान है, उन-
की अमृत सदृश मीठी कथा सक्षेपमें सुनकर
भी प्रकार तृप्त नहीं हो सका हूं।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे राजन् । मैंने
सहले हैपायनसे आप के शुभवंशके वृत्तान्तोंकी
ज्ञाता सुना है, वह सब कहता हूँ, सुनिये।
मनुसे अदिति अदितिसे विवस्वान विवस्वानसे
मनु, मनुसे इला, इलासे पुरूरवा, पुरूरवासे
ययु, ययुसे नक्षप और नक्षपसे ययातिने जन्म
लिया था। ययातिके दो स्त्रिया थीं, शुक्र की
पत्नी देवयानी और वृषपर्वीकी कन्या शर्मिष्ठा।
उन स्थानमें वंशकी कथा-सम्बन्धी श्लोक है, कि
देवयानीने यदु और तुर्वश इन दो पुत्रोंको
और वृषपर्वीकी कन्या शर्मिष्ठाने द्रुह्यु, अनु
और पुरु इन तीन पुत्रोंको प्रसव किया था।
ये यदुसे यादव वंश और पुरुसे पौरव वंश
प्रसव हुआ। पुरुकी भाव्या कौशल्यासे जनमे-

जयने जन्म लिया, उन्होंने तीन बार अश्वमेध
और एकवार विश्वजित यज्ञ करके वनमें प्रवेश
किया था उन्होंने माधवकी अनन्ता नाम्नी
कन्यासे विवाह किया था, उससे प्राचिस्वान्
नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। सूर्योदयके स्थान-
तक प्राची दिशा जोतने पर उनका नाम प्राचि-
स्वान हुआ। प्राचिस्वानने अश्वकी नाम्नी
माधव की कन्यासे विवाह किया था, उनसे
संयातिकी उत्पत्ति हुई। संयातिने दृशदतको
कन्या वराहोसे विवाह किया था, उसके गर्भसे
अहंजातिने जन्म लिया। अहंजातिने कृत-
वीर्यकी कन्या भानुमतिका पाणिग्रहण किया,
भानुमतिके गर्भसे सार्वभौमने जन्म लिया।
सार्वभौमने कैकेय राजको जोतकर उनको
पुत्री सुनन्दाको हर लिया, आगे उसको
विवाह करने पर उसके गर्भसे जय-
त्सेनकी उत्पत्ति हुई। जयत्सेनने विदर्भ
राजकुमारी सुयवाका पाणिग्रहण किया, उससे
अवचीनका जन्म हुआ। अवाचीनने दूसरी
विदर्भी मथ्यादा नामी कन्यासे विवाह किया,
इससे अरिहका जन्म हुआ। आङ्गी नाम्नी
कन्यासे राजा अरिहके विवाह होने पर उनसे
महाभौमने जन्म लिया। महाभौमने प्रासिद्-
जितकी कन्या सुयज्ञाके गर्भसे अयुतनायीका
जन्म हुआ, इनके अयुत अश्वमेध यज्ञ करनेसे
इनका नाम अयुतनायी हुआ। अयुतनायीने
पृथुश्रवाकी कन्या कामासे विवाह किया था,
इससे कामाके गर्भसे अक्रोधनने जन्म लिया।
कलिङ्ग राजकन्या करम्भाके साथ अक्रोधनका
विवाह हुआ, इससे करम्भाके गर्भसे देवातिथिने
जन्म लिया। देवातिथिने विदेहराजपुत्री
मथ्यादासे विवाह किया था, मथ्यादाके गर्भसे
अरिहने जन्म लिया, अरिहने अङ्गराजकी
सुदेवा नामी कन्यासे विवाह किया था।
सुदेवाने ऋच नामक पुत्र प्रसव किया था।
तच्चक्रको पुत्री ज्वालाके साथ ऋचका विवाह

झा, उस ज्वालाके गर्भसे मतिनार नामक राजाने जन्म लिया ; मतिनारने सरस्वती नदीके तटपर बारह वर्षमें अनुष्ठान होनेवाले, अनन्त गुणयुक्त यज्ञका अनुष्ठान किया था । उस महा-यज्ञके समाप्त होनेपर सरस्वतीने आकर उनकी पतित्वमें वरण किया था, इसी सरस्वतीके गर्भसे तंसु नाम पुत्र उत्पन्न हुआ । इसस्थानमें वंशकथाका श्लोक है, “सरस्वतीने मतिनारसे तंसुनामक पुत्रकी प्रसव किया ।” तंसुने कालि-ङ्गीसे ईलिन नामक पुत्र उत्पन्न किया । राजा ईलिनके और रथन्तरोके गर्भसे दुष्मन्तादि पांच पुत्रोंने जन्म लिया । दुष्मन्तने विश्वामित्रकी कन्या शकुन्तलासे विवाह किया था, उससे भरतका जन्म हुआ । इस स्थलमें वंशानुकीर्तन के दो श्लोक हैं, कि हे दुष्मन्त ! माता चमड़े-के कोशकी नाई है, उसमें पिता आपही पुत्रके स्वरूपमें जन्म लेता है, अतएव पुत्रको पोषो पालो शकुन्तलाका अनादर मत करो । हे नर-देव ! निज बोध्यसे उत्पन्न हुई, सन्तानें यम-राजके घरसे उधार करती है और तुम्हीने यह गर्भाधान किया है ; वह सच है, शकुन्त-लाने जो कहा है । अतएव हे पौरव ! शकुन्तलाके गर्भसे उत्पन्न इस महात्मा पुत्रकी पालन करो, हमारी बातके अनुसार तुमको इस पुत्रका पालन करना होगा ।” इस हेतु दुष्मन्तके पुत्रका नाम भरत हुआ है ।

भरतने काशोराज सर्वसेनकी पुत्री सुन-न्दासे विवाह किया था, इससे सुनन्दाके गर्भसे भुमन्युकी उत्पत्ति हुई । भुमन्युने दशार्हकी कन्या विजयासे विवाह कर सुहोत्र नाम पुत्रोत्पादन किया था सुहोत्रने इक्ष्वाकुकी कन्या सुवर्णासे विवाह किया था, उससे सुवर्णाके गर्भसे हस्ती नामक राजपुत्रका जन्म हुआ ; महाराज हस्तीने निज नामसे हस्तिनापुर स्थापन किया था, इस लिये हस्तिनापुर प्रख्यात हुआ है । हस्तीने त्रिगर्त राजकन्या यशोधरासे

विवाह कर उससे विकुण्ठर नाम पुत्र उत्पन्न किया था । विकुण्ठरने दशार्हकी पुत्रीसे विवाह किया था, सुदेवाके गर्भसे अजमीढ़ने जन्म लिया । अजमीढ़के कैकेयी, गार्धारी, विजया, चामा इन चार पत्नियोंसे चौबीस सौ पुत्र जन्म हुआ । वे सब भूपाल अलग अलग धर हुए थे, उनमेंसे मन्वरणके पुत्रहीसे प्रतिष्ठित था । मन्वरणने सूर्यकी पुत्रीसे विवाह किया था, तपतीके गर्भसे जन्म हुआ । कुरुने दशार्हकी पुत्रीसे विवाह किया । शुभाङ्गीके गर्भसे विदुर जन्म हुआ । माधवपुत्री संप्रियासे विवाह होनेपर संप्रियाके गर्भसे अनश्वाने जन्म लिया । अनश्वाने अभृता नामी कुमारीसे विवाह करके उसके गर्भसे नामक पुत्रोत्पादन किया । परीक्षितके वृद्ध कन्या सुयशासे विवाह किया था, उससे भीमसेन नामक पुत्रने जन्म हुआ । भीमसेनने कैकेय राजकुमारी, कुमारीसे विवाह किया था, कुमारीके गर्भसे प्रतिश्रवा पुत्रका जन्म हुआ । प्रतिश्रवाके पुत्र शैव्यराजकुमारी सुनन्दा से विवाह कर गर्भसे देवापि, शान्तनु और वालीक यह पुत्र उत्पन्न किये ; देवापि बालिपनहीमें गये थे, शान्तनु राजा भये । इस स्थानमें कीर्तनका श्लोक है, कि “वह भूप भुजसे जिन जीर्ण जनोंको स्पर्श करते थे, वे सब युवा (शान्तनु) होकर सुख भोगते थे, हेतु इनका नाम शान्तनु हुआ है ।” भागीरथी गङ्गासे विवाह किया था, उस गंगाके गर्भसे देवव्रतने जन्म लिया, जिनको भीम कहा करते हैं । भीमने पिताका कार्य करनेकी इच्छासे उनके साथ सत्यवती विवाह कर दिया, उस सत्यवतीका और नाम गन्धमाली करके प्रसिद्ध था । पंडिते वतीकी कन्यादशा में पराशरसे गर्भ

प्रायनका जन्म हुआ था ; आगे शान्तनुके वीर्य
 और उसके गर्भसे दो और पुत्रोंने जन्म लिया,
 उनके नाम विचित्रवीर्य और चित्राङ्गद थे ;
 चित्राङ्गद यौवनको प्राप्त करनेके पहिले गन्ध-
 र्वसे मारे गये थे, विचित्रवीर्य राजा हुए थे ।
 विचित्रवीर्यने कौशल्याके गर्भोत्पन्न काशि-
 राजपुत्री आश्वका और अम्बालिका इन दो
 कन्याओंसे विवाह किया था ; पर वह सन्तान
 होतेही परलोकको सिधारे । तब इस हेतु,
 कि दुष्मन्तका वंश नष्ट न हो जाय, सत्यवती
 सोचने लगी ; आगे उसने निजपुत्र हैपायन
 ऋषिकी मनसे स्मरण किया, तिस्से हैपायनने
 उसके सम्मुख उपस्थित होकर पूछा कि माई ।
 क्या करना होगा ? सत्यवती बोली, कि
 तुम्हारे भाई विचित्रवीर्य विना सन्तान परलोक-
 को सिधारे हैं, उनका पुत्रोत्पादन करो ; हैपा-
 यनने स्वीकार किया । अनन्तर उन्होंने यथा-
 कालमें धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर वह तीन
 पुत्र उत्पन्न किये । आगे हैपायनके वरदानके
 प्रभावसे गांधारीके गर्भसे धृतराष्ट्रके पुत्रोंमें
 से दुर्योधन, दुःशासन, विकर्ण और चित्रसेन
 यह चार पुत्र प्रधान थे, कुन्ती और माद्री
 यह दो स्त्री-रत्न पाण्डुकी भार्या भयी थीं ;
 कुन्तीका दूसरा एक नाम पृथा था, अनन्तर
 एक समय पाण्डु मृगयाके निमित्त वनमें गये
 थे, वहां देखा, कि एक ऋषि मृगोसे मैथुन
 कर रहे हैं, तबतक कामरसके पूर्ण न
 होनेके हेतु भले प्रकार टप नहीं हुए थे, उन
 अद्भुत मृगरूपी ऋषि पर उन्होंने वाण मारा ।
 ऋषि वाणसे विद्व होकर पाण्डुसे बोली, कि
 तुमने धर्म और कामरसके अभिज्ञ होकर,
 मुझको अपूर्ण मनोरथ देखने परभी मार
 डाला । इन हेतु तुमभी कामरसमें अटप रहे-
 कर उस दशाहीमें शीघ्र परलोकको सिधारोगे ।
 पाण्डुका यह शप सुनतेही मात उसीक्षण रङ्ग
 बदल गया, और शपसे बचनेके लिये स्त्रीसे

मिलना त्याग दिया । आगे उन्होंने कुन्ती
 और माद्रीसे कहा, कि मैंने अपनी चपलतासे
 यह कुदशा प्राप्त की है, सुना है, कि पुत्रकी
 उत्पत्ति न होनेसे स्वर्गको प्राप्ति नहीं होती ।
 अनन्तर कुन्तीसे बोली, कि तुम मेरे लिये पुत्र
 उत्पादन करो । आगे कुन्तीने पतिके उस
 नियोगके अनुसार धर्मसे युधिष्ठिर, पवनसे
 भीम और इन्द्रसे अर्जुन यह तीन पुत्र उत्पन्न
 किये । पाण्डु उनपर प्रसन्न होकर बोली, कि
 तुम्हारी सौत यह माद्री निःसन्तान है, तुम यत्न-
 वती होकर इसके अच्छे पुत्र उत्पन्न कर दो ।
 कुन्तीने वह स्वीकार कर वह विद्या माद्रीको
 दे दी, कि जिस विद्यासे धर्मादिको बुलाकर
 वह पुत्रोत्पादन करती थी ; आगे माद्रीनेभी
 दोनों अश्विनीकुमारोंसे नकुल और सहदेव
 यह दो यमज पुत्र उत्पन्न किये । एक समय
 पाण्डु माद्रीको गहनोंसे सजी हुई, देखकर
 कामवश हो गये, इससे माद्रीके स्पर्श
 करतेमात्र उन्होंने शरीर छोड़ा । पाण्डुकी
 देह चिताकी आगमें जला दी जानेपर
 माद्री उनके पीछे सती हो गयी, और उस
 समय कुन्तीसे कह गयी, कि तुम सावधान
 होकर मेरी इन दो यमज सन्तानोंकी
 पालना । अनन्तर तपस्वीगण कुन्तीके साथ
 पाण्डुवांकी हस्तिनापुरमें लिवालाकर भोज
 विदुरको दे दिया और ब्राह्मण क्षत्रियादि
 सर्व वर्णोंके निकट पाण्डुवांकी सब जन्मकथा
 सुनाकर उनके सामनेसे चले गये, उन तप-
 स्वीयोंके वाक्योंके अन्तहीने कालमें आकाशसे
 फूलोंकी वृष्टि होने लगी और देवताओंके नगाड़े
 बजने लगे ।

पाण्डुोंने भी माद्रीसे लिये जाकर पिताको
 ऋतु-कथा कहकरके विधिपूर्वक पिताका
 और्ध्वदेहिक कार्य किया ; आगे वे उस स्थानमें
 वसने लगे । उनसे दुर्योधन लड़कपनहीसे
 भगडने लगा ; उस पापात्माने राक्षसी

लेकर नाना उपायोंसे उनको वहांमें उखाड़-
नेकी चेष्टा की थी, पर जो कार्य हीनहार है,
उसके अवश्य होनेके हेतु उसका मनोरथ
सफल नहीं हो सका। अनन्तर धृतराष्ट्रने
तत्कालपूर्वक उनको वारणावत् ग्रामको भोजा,
पाण्डवलोगभी सम्मत होकर वहां गये थे।
वारणावतमें उन्होंने दुर्योधनके चैष्टित अनु-
ष्ठानसे जनुह में जल भरने पर हीकर विदुर-
जीके परामर्शके प्रभावसे रक्षा पायो। आगे
वारणावतसे एकचक्रा नगरीमें गये, वहां जानेमें
पथमें हिडिम्बकी वध किया था। उस
एकचक्रा नगरीमें वक नामक राजसकी मारकर
पाञ्चाल नगरमें गये, वहां द्रौपदीको भार्या
प्राप्त करके निज राज्यमें लौटकर कुछदिन
कसलसे रहे। उस समय द्रौपदीके गर्भसे
पाच पुत्र उत्पन्न हुए, उनमें युधिष्ठिरके वीर्यसे
प्रतिविम्ब भोमके वीर्यसे सुतभोम, अर्जुनके
वीर्यसे अतिकोर्त्ति, नकुलके वीर्यसे शतानीक
और सहदेवके वीर्यसे अतकस्माका जन्म
हुआ। युधिष्ठिरने गोवासन नामक शव्य
राजकी कन्या देविकाका स्वयम्बरके स्थानमें
प्राप्त किया, उस देविकाके गर्भसे यौधेय नाम
पुत्र उत्पन्न हुआ था। भीमसेनने वीर्यरूपी
शुल्कके द्वारा काशिराजकी पुत्री बलन्धरासे
विवाह कर उसके गर्भसे सर्वक नामक पुत्रको
उत्पन्न किया। अर्जुनने हारकासे जाकरके
वासुदेवकी बहिन भद्रभाषिणी-सुभद्राकी हर-
कर उससे विवाह किया। आगे बिनाविघ्न
निज नगरमें लौटकर उस सुभद्रासे अति गुणवन्त
वासुदेवके प्यारे अभिमन्यु नामक पुत्रको उत्पन्न
किया। नकुलने चेदिराजकुमारी करेण्डुमती
नाम्नी कन्यासे विवाह करके उससे निरामव
नामक पुत्रको उत्पादन किया। सहदेवने
स्वयम्बरके कालमें द्यातमान मद्रराज की कन्या
विजयासे विवाह किया था, विजयाके गर्भसे
सुहोत्र नाम पुत्रका जन्म हुआ।—भीमसेनने

पश्चिमकी हिडिम्बासे राजस वध
उत्पादन किया था। पाण्डवोंकी यह
पुत्र थे, उनमें अभिमन्युहीसे वंशकी रक्षा
है। अभिमन्युने विराट-राजपत्नी उत्ता
विवाह किया था, उनके वीर्य और उत्ता
गर्भसे क सन्ताने पोर्क अस्त्राग्निदेवारा
मरा पुत्र भूमिष्ठ हुआ। पुनर्पौत्रस वासुदेव
“तु इस सन्तानको जिलाऊंगा, कहे के
की नियाग किया। उनके लियोगके अन्त
इन्तीने उस मर हुए बालक की गोदमें लि
आगे भगवान् वासुदेवने उस बालक
अज्ञात धनवीर्य-पराक्रमयुक्त और अस्त्र
से जले हुए बालककी निज तेजसे जिलाया।
न्तर बोलि, कि कुलके परिचोण होने पर
बालकने जन्म लिया है, इस हेतु इसका
परिचिन् होव। महाराज। परिचिन् मान
नाम्नी आपकी स्यातासे विवाह किया था।
माधवतीके गर्भसे जनमेजयके नामसे
जन्म लिया है, आपने वपुष्टमा नाम्नी
शतानीक और शस्तुर्कर्ण यह दो पुत्र
किये हैं। शतानीक के वीर्य और वैदेहीके
अश्वमेधदत्त नाम एक पुत्र उत्पन्न हुआ है।
हे नृपते। पुरु और पाण्डवोंकी यह
कथा कह चुका। धन्य, पुरु भरी और
युक्त ब्राह्मण लोग निज धर्ममें नियुक्त
प्रजा प्रालनमें लगे हुए क्षत्रियगण, वैश्य
और तीना वर्णके सेवाकारी और अज्ञायुक्त
अवश्यमेव सुनें और इसका अर्थ जानें, जो
देवपरायण ब्राह्मण और दूसरे मानव
अहङ्काररहित और संयत होकरके इस प
इतिहासकी अशेषरूपसे सुनेंगे वा सुन
वह स्वर्गको जीत कर पुण्य लोकमें वसेंगे
देवता ब्राह्मण और दूसरे मनुष्योंकी समान मान
नीय और पूजनीय होंगे। यह परम प
महाभारत-भगवान् वेदव्याससे रचा गया है
जो सब वेद सत्य ब्राह्मणादि चारवर्ण

हारकी तज कर अशुभ होकर इसे सुनेगी, सुकृतिशाली और स्वर्ग-जयकारी होंगी और पापाचरण करने परभी शोचनीय दशाकी तज नहीं होंगी। इस विषय पर यह श्लोक है, क 'वेदवत पवित्र, उत्तम, धन्य, यश बढ़ानेवाला और आयुवृद्धिकारी यह महाभारत नियतात्मकोंके सुनने योग्य है।

सप्तपर्वमें पञ्चम अध्याय समाप्त।

श्रीकृष्णायनजी बोले, कि इच्छाक वशोत्पन्न महाभय नामसे प्रख्यात सत्यवादी और सत्यवैक्त्रमी एक नरनाथ थे। उन्होंने सहस्र अश्व-मेध और शत सख्यायुक्त राजसूय यज्ञमें देवाधीशको सत्पूजा किया था। इससे वह अन्तःकालमें स्वर्गका पधारि। अनन्तर एक समय पुरलोक ब्रह्माको उपासना कर रहे थे, उस समय राजर्षि और राजा महाभय उस स्थानमें उपस्थित थे। अनन्तर नदियोंमें प्रधान गङ्गा उस समय पितामहके निकट उपस्थित हुई, उनका चन्द्र-प्रकाश सदृश वस्त्र पवनसे ऊपर उठा, देवताओंने देखतेही मुख नीचे कर लिये, राजर्षि महाभय निःशब्द चिन्तनमें उन पर्वतपर ताकते रहे, इस हेतु भगवान् ब्रह्माने महाभयको शाप देकर कहा, कि तुम मर्त्य-लोकमें जन्म लगे और कुछकाल पीछे इस पुण्यलोकमें आ सकोगे। नृपात महाभयने राजालोक और दूसरे तपोधनोंकी कुछकाल चिन्ता करके अति तेजस्वी भूप प्रतीपके वीर्यसे जन्म लेनेकी अभिलाषा की, जलयुक्त गङ्गा नृपति महाभयको उस प्रकार अधीक्ष्य देखकर उनकी मनही मनमें सोचनी हुई चली गयी। उन्होंने जानके काल पथमें स्वर्गधामवाले देव वसुओंकी मनःपीड़ासे दुःखों और स्वर्गसे च्युत होकर रहते देखा। हे नृपति। जलयुक्त भागीरथीने उनको उस दशमें देखकर पूछा, कि तुम क्यों

श्रीभ्रष्ट हुए हो? देवोंका कोई अमङ्गल तो नहीं हुआ। वसुओंने कहा, कि हे महा-नदी। महात्मा वशिष्ठने स्वल्प दोषसे क्रोधित होकर हम पर शाप दिया है; ऋषियेष्ठ वशिष्ठ एषकर मन्त्रोपासन कर रहे थे, हम सुग्ध चिन्त होकरके उनकी लाघ कर गये थे, इससे उन्होंने क्रोधयुक्त होकर हमको शाप दिया है कि तुम नरयोनिमें जन्म ली। ब्रह्मवादी महर्षिने जो कहा है, वह अतिक्रम नहीं हो-सकेगा। अतएव तुम समुद्रमें मानवी बनेकर हमको पुत्र बनाओ। हे शुभे। हम मानवीके पेटमें नहीं घुसेंगे। गङ्गाने वसुओंकी बातको सनकर जाना और कहा, कि मर्त्य-लोकमें कौनसे श्रेष्ठ पुरुष तुम्हारे जन्मदाता होंगे? वसुलोक बोले, कि नरलोकमें प्रतीप नामक पृथ्वीनाथके पुत्र शान्तनु नामसे तीनों लोकोंमें प्रशंसित भूप होंगे, हम चाहते हैं, कि वह हमारे जन्मदाता होंगे। गङ्गाजी बोलीं, कि हे निष्पापी दैवगण। तुम जैसा कहते हो, मेराभी वही मत है; कल्पना की है कि मैं उन शान्तनु राजाहीका प्रिय अपुष्टान कहूँगी, वह तुम्हारा भी अभिमत हुआ है। वसुलोक बोले, कि हे तीनों लोकोंमें जाने-वालों। जब हमें तुम्हारे पुत्रके स्वरूपमें जन्म ले, तब तुम हमको जलमें फेंकना, कि सदा हमको मर्त्यलोकमें रहना न पड़े, शीघ्र बेचाव हो सके। गङ्गाजी बोलीं, कि तुम जैसा कहते हो, वही कहूँगी, पर पुत्रार्थी शान्तनुका सुभसे मिलन व्यर्थ न हो, इस हेतु ऐसा विधान करो, कि मेरा एक पुत्र जीवित रहे। वसुलोक बोले, कि हम अपनेसे हरेकसे निज निज तेजका आठवां भाग देंगे, उस तेजसे तुम्हारी और उनकी अभिलाषानुसृत्य एक पुत्र उत्पन्न होकर जीवित रहेगा, पर मर्त्यलोकमें उसका वंश नहीं रहेगा, वह वीर्यवन्त सन्तान निःसन्तान होगी। वसुलोक गङ्गाके साथ ऐसा

नियम बांधकर उसीक्षण मनमाने स्थानको प्रसन्न चित्तसे पधारे ।

सम्भवपूर्वसे कानब्बे अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर सर्व भूतोंके हितमें नियुक्त भूपति प्रतीप वहुवर्ष गङ्गाद्वारमें वसकर जप करने लगे । रूपगुण-युक्त अति लुभानेवाली स्त्रीरूपिणी सुमुखी, दिव्यरूपा, मनस्विनी, गङ्गाने जलसे निकलकर पाठपरायण राजर्षिके शालहृत्तके समान दहिनी उसकी भजना की । महीपाल प्रतीप उस यशस्विनीसे बोले, कि हे कल्याणि । तुम्हारे प्रार्थित कौनसा प्रिय कार्य करूं ? नारी बोली, कि महाराज ! मैं तुमकी कामना करके भजती हूं । - तुम मुझकी भजो ; साधुलोग इच्छावती कामिनीको त्याग देना दोषयुक्त कहा करते हैं ; प्रतीप बोले, कि री सुन्दरी, कल्याणि ! - मेरा धर्मयुक्त व्रत यह है, कि मैं कामके वशमें होकर परायी-नारि वा असवर्णा स्त्रीसे नहीं मिलता । नारी फिर बोली, कि महाराज ! - मैं अलक्षणा, मिलनेके अयोग्य वा निन्दित-स्त्री नहीं हूं ; मैं प्रार्थनीया सुन्दरी नारी तथा स्वर्गकी कन्या होकर तुमसे प्रार्थना कर रही हूं, तुम मेरी भजन करो । प्रतीप बोले, कि तुम जिस प्रिय कार्यके लिये मुझे प्रवृत्ति दिलाती हो, मैं उससे निवृत्त हूं यदि इसक्षण उसका विरुद्धाचरण करूं, तो यह धर्म-विरोध मुझको नष्ट करेगा ; विशेष-तुमने मुझे दक्षिण-उरुका आश्रयकर आहिङ्गन किया है ; री भीरु वराङ्गने ! पुरुषकी दहिनी उरु, पुत्र, कन्या और पुत्रवधूका आसन है, और बांयी उरु, प्रणयिणीके भोगनेके योग्य है ; तुमने उस बांयी उरुको आश्रय नहीं किया है, इसलिये मैं तुमसे कामयुक्त आचरण नहीं कर सकता हूं । री कल्याणि ! - जोंकि तुमने आकरकेही मेरी पुत्रवधूके पक्ष की दहिनी

उरुको आश्रय किया है, सो तुम मेरी होओ, अतएव आपन पुत्रके निमित्त लिया । नारि बोली, कि हे धर्मज्ञ ! अपने पुत्रके साथ मेरा विवाह करनेके निमित्त कुछ कह रहे हो, वही होवे ; तुम पर करके मैं इस वंशकी सेवा करूंगी ; मैं जितने भूपाल हैं, तुम्हो उनकी गति हो । तुम्हारे इस वंशके जितने गुण हैं, वह मैं वर्षोंमेंभी कहके अन्त नहीं कर सकूँ और इस वंशमें जो प्रख्यात हैं, जितनी साधुता और श्रेष्ठता थी, वह कह करके अन्त नहीं की जा सकती । धर्मज्ञ विभो ! मेरे साथ यह एक नियम राना पड़ेगा, कि मैं जो कुछ करूंगी तुम्हारे पुत्र उसका कभी विचार नहीं कर सके मैं ऐसाही नियममें रहकर तुम्हारे पुत्रसे बढ़ाऊंगी, तुम्हारे एत प्रणय तथा प्रियकर और पुत्रसे स्वर्गकी प्राप्ति करेंगे ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे राजन ! ऐसे कहेकर उसी स्थानमें अन्तर्हिता राजाने पुत्रके जन्मकी प्रतीक्षा करके वही किया । उसी समयसेही क्षत्रियोंमें कुरुकुलप्रदीप प्रतीप स्त्रीके सहित पुत्रके तप करने लगे । आगे दम्पतिके दुदापमें महात्मा-महाभिषने जन्म लिया ; वह शान्तचित्त होने पर उस कालमें उस जन्म हुआ, इस हेतु उनका नाम, शान्तनु कुरुश्रेष्ठ शान्तनु निज कर्मसे जो पुण्यलोक जीता जाता है, वह मनमें ठहर कर पुण्य कर्माहीका अनुष्ठान करने लगे । अनन्तर राजा प्रतीप निजपुत्र शान्तनु युवा देखकर बोले, कि हे शान्तनी ! तुम्हारे मङ्गलके निमित्त पूर्वकालमें एक सुन्दरी नारी मेरे पास आई थी ; हे पुत्र ! वह रूपवती युवती वरवर्णिनी काम-गामिनी कामिनी यदि पुत्रकी कामना से तुम्हारे

निरालेमें आवे, तो तुम उसकी ऐसा मत
 कृपा, कि "हे अङ्गने ? तुम कौन, किसकी
 पीठी हो ? और वह कामिनी, जो कर्मा करेगी
 हमी, तुम उससे मत पृथ्ना ; हे अनघ । मैं
 मकी यह आज्ञा करता हूं, कि इस आज्ञाके
 अनुसार तुम उस भजनेवाली युवतीको भजना ।
 श्रीवैशम्पायनजी, बोले कि, राजा प्रतीप
 व अपने पुत्र शान्तनुको ऐसी आज्ञा देनेके
 आत् निज राज्यपर अभिषिक्त करके, वनको
 धारे । देवराजके समान द्योतमान धीमार
 रतीनाथ शान्तनु सदा वनमें जाकर सुगया
 रने लगे । महाराज । एक समय वह राज-
 छे सुग और भैंसे वध करके सिद्धचारणोंसे
 वित-गङ्गाके सामने अकेले घूम रहे थे, कि
 से समयमें साक्षात् लक्ष्मीके सृष्ट आन्तिवती
 निन्दिता, दिव्य आभूषणोंसे सजी, शोभा
 नेवाले दांतोंसे सुशोभिता एक परमा-नारीको
 खा । नराधिप शान्तनुने पद्मोदर सृष्ट
 दरी, पतला वस्त्र पहिने हुए उस रमणीको
 खकर उसके रूपैश्वर्यसे आश्चर्य माना और
 नके नेत्रक्षपी दो चक्रवर्त्तुप चन्द्रमाके
 मृतकी पीकर द्रव नहीं हुए और विलासिनी
 रारिभी राजाको अति उज्ज्वल रूपलाव से
 मकते और घूमते देखकर स्नेह और प्रेममें
 सुकर अपनी दिखनेकी लालसाकी भले प्रकार
 र्ण नहीं कर सकी । राजाने उसकी पीठी
 तातोंसे समझाकर कहा, कि सुन्दरी, शोभने
 वीवत् कालिमती । मैं तुमसे यह प्रार्थना
 रता हूं, कि तुम चाहे देवी वा दानवी, अथवा
 म्यर्ची वा अप्सरा पद्मिनी वा यक्षी वा मानवी
 हो, मेरी भाषा हीओते ।
 संभवपर्वमें, सतानव्वे अध्याय समाप्त ।
 श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनिन्दिता गङ्गा
 राजाकी मृदु और मनोहर वाणी मन्द हंसीके
 सुनकर वसुओंके नियमको स्मरण करके

उनके सामने गयीं और बातोंसे भूपतिके
 चित्तकी प्रसन्न करती हुई बोलीं, कि, हमही-
 पाल । मैं तुम्हारी रानी और वशीभूता हूंगी,
 पर मैं यदि शुभ वा अशुभ कार्य कहूँ, तो तुम
 रोकने वा अप्रिय बात कहने नहीं पाओगी ; हे
 पृथ्वीपाल । तुम यदि ऐसे नियमसे मेरे साथ रह
 सको तो मैं भी तुम्हारे साथ रहूंगी, यदि रीकी
 वा अप्रिय वाणी कहूँ, तो निश्चय तुमको त्याग
 दूंगी । हे भरतयेष्ठ । राजाके वह मानने पर
 गङ्गाने उन भूपालेश्वरकी प्राप्तकर आपार
 आनन्द लाभ किया । भूपति शान्तनु भी
 उनको लाभकर उनके वशमें होकर मनमाना
 भोग करने लगे, पूछना उचित न समझकर
 उससे कुछ पूछते नहीं थे, वरन् उनकी शीलता,
 सुव्यवहार, सुन्दरता, उदारता और निरालेवी
 सेवासे सन्तुष्ट होने लगे । सुन्दरी दिव्यरूपा
 त्रिपथगामिनी देवी गङ्गा शोभनीय मानवी
 शरीर धरकर देवराजके समान द्योतमान
 नृपसिंह शान्तनुके सौभाग्यसे उनका मनोरथ
 सफल करती हुई प्रियारी प्रती हुई । वह
 समीग, स्नेह, चतुरता, सुन्दर नाच और मने
 हर हाव भावसे राजाका मन बहलाने लगीं ;
 राजाभी उसके प्रेमी बने, वह अच्छी स्त्रीके
 गुणसे वशीभूत होकर क्रीड़ामें आसक्त रहनेसे
 यह जान नहीं सके, कि अनेक महीने, ऋतु
 और वर्ष बीत रहे हैं । नरेशने मनमाना
 उनसे क्रीड़ाकरते हुए क्रमशः अमर सृष्ट
 आठ पुत्र उत्पन्न किये । हे भारत ! जब जो
 पुत्र जन्म लेता था, तबही गङ्गा उसकी जलमें
 डाल देती और कुमारको यह कहकर सीतेमें
 डबा देती थी, कि तुमकी प्रसन्न करती हूँ ।
 इस प्रकार क्रमसे सात पुत्रोंकी जलमें डाल-
 देने पर गङ्गाका ऐसा निर्दयी व्यवहार राजाके
 लिये अति असन्तोषका होने लगा, पर इस
 भयसे, कि कहीं छोड़कर चली न जाय,
 उससे कुछ कहते नहीं थे । अनन्तर आठवें

पुत्रके जन्म लेने पर जब गङ्गा हंस रही थी, कि ऐसे समयमें राजा अति दुःखी होकर निज पुत्रकी रक्षाके निमित्त उनसे बोले, कि 'पुत्रकी मृत मारो, तुम कौन, किसकी बेटी हो ? क्यों पुत्रकी मार डालती हो ? री पुत्रघात करनेवाली ! तुम यह अति अनुचित और महत् पाप कर रही हो । नारी बोली, कि हे पुत्र-कामी ! तुम पतवान जनोंगें येष्ट हुए, तुम्हारे इस पुत्रको न माहंगी ; पर मैंने जो नियम बांधा था, उसको अनुसार तुम्हारे पास मेरे रहनेका काल बीत गया । मैं महर्षियोंसे सेवित जन्हुको कन्या गङ्गा हं, देवताके कार्य साधनेके लिये तुमसे सहवास किया था, तुम्हारे पुत्र महातेजस्वी महाभाग अष्टवसु ऋषिजीके शापसे मनुष्य होकर जन्मे थे, इस मर्त्तलोक भरमें तुम्हारे विना उनका जन्मदाता होनेवाला कोई नहीं है, और मेरे विना कोई उनकी माता होनेवालीभी नहीं है, इस हेतु मैंने वसुओंकी माता होनेके लिये मानवी शरीरको आश्रय किया था, तुमने अष्टवसुओंका जन्म देकर अक्षयलोक लाभ किया । वसुओंसे मेरा यह नियम स्वीकार किया हुआ था, कि जन्म लेतेही मैं उनकी मानवी जन्मसे मुक्त करूंगी । इसलिये उनकी उस प्रकारसे जल में डाल दिया था, इससे वे महात्मा आपव ऋषिके शापसे मुक्त हुए, इस समय तुम इस महाव्रत पुत्रकी पाली ; तुम्हारा महत्त्व होवे, मैं जाती हूँ । मैंने तुम्हारे लिये वसुओंके निकट एक पुत्र मांगा था, इससे चरेके वसुके आठवें भागसे इस पुत्रका जन्म हुआ है । सो मेरे प्रसव किये हुए, इस पुत्रकी "गङ्गादत्त" अर्थात् गङ्गाका दिया हुआ करके जानना ।

सम्भवपूर्वमें अठानव्वे अध्याय समाप्त ।

शान्तनुजी बोले, कि आपव नामके कौनसे ऋषि हैं ? और वसुओं ने उनको कौनसा

दोष किया था ? और तुम्हारे दिये हुए पुत्रने कौनसा दोष किया था, कि उस फलसे वह मानवलोकमें वास करेगा जाऊँगी । वसुलोग सर्व लोकोके ईश्वर सो सुभे यह कहो, कि वे क्यों मर्त्तलोक उत्पन्न हुए ।

श्रौत्रेशम्यायनजी बोले, कि देवो गङ्गा पुरुषयेष्ठ पति राजा शान्तनुसे यह लगीं, कि हे भारतयेष्ठ । पूर्वकालमें वेवने जिनकी पुत्रलाभ किया था, वह नामक मुनि आपव नामसे प्रसिद्ध हुए ; तोमें येष्ठ सुमेरु के किनारे उनका आश्रम था, वह आश्रम मृग पाक्षियोंसे हुआ और सदा सर्वऋतुओंके फूलों से रहता था । हे भारतयेष्ठ । पुण्यवानों वही वरुणपुत्र भीठे फल मूल और उस आश्रमके वनमें तप किया करते भरतर्षभ । एक सुमय सर्वकामदुषा नाम्नी देवी दक्षपुत्रीने जगत् पर कृपा करनेके लिये कश्यपसे एक कन्या प्रसव धर्मात्मा वरुणपुत्रने उस कन्याको लेकर धेनु बनायी सुरभीकी कन्या गौ उन सेवित पवित्र और रमणीय उपवनमें निर्भय चिन्तसे चरने लगी । हे अनन्तर किसी समयमें पृथ्वादिदेव देवर्षिसेवित उस वनमें आकर निज निज विचरने लगे और रमणीय पर्वत और इधर उधर क्रीड़ा करनेकी प्रवृत्त हुए इन्द्रसमान विक्रमी उनमेंसे एक सुन्दरी एक स्त्रीने उस वनमें घूमती हुई की कन्या नन्दिनीकी देखा । हे शीलसम्पदसे भरी पूरी वसुकी स्त्रीने गौवैल समान आंखवाली, येष्ठ, प्रशस्त धनवाली अच्छी दुधारी पूंछ और खुरशुक्त, शुभलक्षणा, सुशीला सर्वगुणवती देखकर अचरज मानकर

ति दु नामक वसुको दिखाया, हे गजेन्द्र
मान विक्रमी पौरव-नन्दन ! दु, नामक वसुने
उस सुरभी की पुत्रीको देखकर अपनी
मेका देवीसे उसके रूप और गुणाका बखान
र कहा, कि री सुन्दरी ! जिन ऋषिका
उत्तम तपोवन है, यह कालेनेत्रवाली देवी
भो की पुत्री उन वरुणजीके हवनकी गौ
हे सुन्दरी ! जो नर इस नन्दिनीका
ठा दूध पीयेगा, वह अटल यौवन पाकर दश
हस्र वर्ष जीवित रहेगा ।

हे तपोत्तम ! सुमन्मा सुन्दरी देवी
उपनीने यह सुनकर अति तेजस्वी पतिसे
हा, कि मर्त्यालोकमें रूप-यौवनवती भूदेव-
जी जितवती मेरी सहेली है, वह धीमान सत्य
गौ राजर्षि उशीनरकी बेटो है, मानव-
कये उसका रूपसम्पद प्रसिद्ध है, हे महा-
गौ । उसके लिये मुझे बड़ड़ा-सहित इस
गौ लेनेकी अभिलाषा हुई है । हे पुत्र-
नेवाले अमरश्रेष्ठ ! शीघ्र गौको लाइये,
मानद ! मेरी वह सहेली केवल इस गौका
पीकर मर्त्यालोकमें जरारहित और रोग-
जित होगी । हे अनन्दित महाभाग ! मेरा
प्रियकार्य करना आपका कर्त्तव्य है, इससे
धक प्रिय मेरा और कुछ नहीं है । दु-
वसुने यह बात सुनकर प्रेमिका
का प्रिय अनुष्ठान करनेके लिये पृथु
दि भाद्रयोके साथ उस कामधेनुको हर
या । हे भूप ! वह उस कालमें अपनी
कालेनेत्रा स्त्रीको बातोंमें आकर उन ऋषिकी
र तपस्याकी भलो भांति आलोचना नहीं
सके । यह तर्क एकवार भी मनमें नहीं
देला । या, कि इस गौके हरनेसे हमारा पतन
वसुकी गौ ।

अनन्तर वरुणपुत्र ऋषि फल बटोरकर
अश्वमें उपस्थित हुए ; पर अपने सुहावने
तिनमें बड़ड़ा सहित उस गौको नहीं देखा ।

तब उदारधीमान् तपोधन उस वनमें इधर
उधर ढूँढ़ने लगे । पर देरतक हूढ़ करकेभी
नहीं पाया । आगे दिव्य नेत्रसे जाना, कि
वसुओंने गौ हर ली है, इससे उन्होंने उसी-
क्षण क्रोधयुक्त होकर वसुओंकी यह शाप
दिया, कि जोकि वसुओंने मेरी सुलक्षणवती
अच्छी पूछवाली दुधारी कामधेनुको हर लिया
है, सो इसमें सन्देह नहीं, कि वे सब मर्त्यालोकमें
जन्म लेंगे । हे भरतकुलप्रदोष ! सुनियोंमें
श्रेष्ठ भगवान् आपवने क्रोधकेवशमें होकर वसु-
ओंकी यह शाप दिया । उन महाभाग मह-
र्षिने शाप देकर तप में मन लगाया । हे
राजर्षि ! क्रोधयुक्त महाप्रतापो ब्रह्मर्षि तपो-
धन से देवता आठोंवंसु एस प्रकारसे शाप
पाकर शापके वृत्तान्तसे श्रातहीकर फिर उन
महात्माके आश्रममें आकर उनकी उपासना
करने लगे । हे पृथ्वीपालश्रेष्ठ ! पुरुषव्याघ्र
वसुगणने उन सर्वधर्म्मनिपुण ऋषिश्रेष्ठ आपव
की प्रसन्न करनेके लिये बड़ी चेष्टा की, पर
मनोरथ सफल नहीं हो सका । अनन्तर धर्म्मात्मा
ऋषिने कहा, कि मैंने पृथु आदि तुम सबोंको
जो शाप दिया है, वर्षभरमें तुम उस शापसे
मुक्त हो सकोगे, पर तुम जिसके लिये शाप-
ग्रस्त हुए हो, वह दु नामक वसुही केवल निज
धर्म्मके दोषसे मनुष्यलोक में दीर्घकालतक
वसेगा, मैंने क्रोधित होकर जो कहा है, उसको
विरुद्धता नहीं कर सकूंगा । यह महामना
दु नामक वसु मर्त्यालोकसे सन्तान उत्पादन
नहीं करेगा, स्त्रीमिलन त्याग देगा और
धर्म्मात्मा तथा सर्व शास्त्रोंमें पण्डित होकर
पिताके प्रियकार्यमें सदा नियुक्त रहेगा ।
महर्षि सब वसुओंसे यह बात कहकर चले
गये । तब सब वसुओंने एकत्र होकर मेरे पास
आकर प्रार्थनापूर्वक कहा, कि हे गंगी ! हमारे
जन्म लेतेही तुम स्वयं हमें जलमें डाल देना । हे
राजश्रेष्ठ ! शापसे ग्रसित वसुओंकी शापसे

वचानेके लिखे मैंने वैसा किया है । मैं नृपो-
त्तम भारत ! उन ऋषिके शापसे यह
द्यु नामक वसु अकेले दीर्घकाल मनुष्यलोकमें
वसेंगे ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि देवी गङ्गा यह
कहकर उस स्थानहीसे अन्तर्हित हुई और
उस कुमारकी लेकर अनमाने स्थानकी पधारों ।
वह द्यु नामक वसु शान्तनुकी अन्तान होकर
दिवव्रत और गाङ्गेय नामसे प्रसिद्ध हुए और
शान्तनुसेभी अधिक गुणशील भये थे । इधर
शान्तनुने शोकयुक्त होकर निज पुरमें प्रवेश
किया । हे महाराज ! इसदृश उन महात्मा
भारत राजा शान्तनुके अनुपम गुण और महा-
भाग्यकी कथा कहूंगा, जिनका देदीत्यमान
इतिहास महाभारत करके प्रसिद्ध हुआ है ।

सम्भव पर्वमें अनान-वे अष्टमः समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि धीमान शान्तनु
सत्यवादी करके सभे लोकोंमें प्रसिद्ध और देवता
तथा राजपुत्रोंसे सत्कार पाये जाते थे । हे
पुरुषश्रेष्ठ ! महासत्त्व शान्तनुमें दम, दान,
दया, बुद्धि, लज्जा, धैर्य, और बड़ा प्रभाव यह
सब गुण सदा विद्यमान थे । ऐसे सुगुणशाली,
धर्मार्थपरायण वह राजा भरतवंश और सर्व
जनोंके रक्षक थे ; वह शङ्खसी ग्रीवायुक्त, वृंहत्
स्वन्धारी उन्नत नाम ऐसे बिक्रमी और
और सम्पूर्ण अर्थ और राजलक्ष्णोंसे अलंकृत
थे । मानवद्वन्द्वने उस कीर्तिमान पुरुषके
चरित्रको देखकर यह ठहराया था, कि काम
और अर्थसे धर्मही श्रेष्ठ है ; पुरुषश्रेष्ठ महा-
सत्त्व शान्तनुमें यह सब गुण थे । कोई पृथ्वी-
पाल धर्मके विषयमें उनके समान नहीं हो
सके । भूपोंने उन राजाकी धर्मपथमें वर्त-
मान और धार्मिकोंमें प्रधान देखकर राजा-
ओंके प्रधान पद पर बैठाया ; वे शोक, भय
और वाधाओंसे रहित होकर सुखसे सोते

और सुखसे जागते थे, मी भारतवर्षाधिप
नुकी उन्नति पति सम्पत्ति था ।
समान तेजस्वी कीर्तिमान उन सम्राट्
नके अनुसार नरेशद्वन्द्व यागशील और
युक्त हुए थे । तब शान्तनु आदि
प्रजा रहित और सुनियम भली भाँति
हीनेसे सर्व वर्गोंका धर्म बढ़ने लगा ।
लोग ब्राह्मणोंकी सेवामें, वैश्यलोग
की सेवामें और शूद्र लोग ब्राह्मण और
योंके प्रेमी रहकर वैश्यों की सेवामें लगे ।
राजा शान्तनु कुरुवंशियोंकी कुलकर्मि
गीय राजधानी हस्तिनापुरमें बसकर
सहित धरतीकी शासने लग ।
सत्यवादी और सरल स्वभावी धरतीनय
दान धर्म और तपस्याके बलसे
समान श्रीमान हुए थे । वह क्रोध द्वेष
देखनेमें चद्रमा ऐसे प्यारे, तेजमें सूर्य
वेगमें पवन समान, क्रोधमें यमराजकी
और क्षमागुणसे पृथ्वीकी नाईं थे । हे राजा
उनके राज्यके समय पशु, सूवर, रत्न, पक्षी
जीव नहीं मारे जाते थे । वह राजा
रूपी ब्रह्मधर्मसे अलङ्कृत करके स्वयं
क्रोधसे रहित, नम्र और यत्नशील होकर
पक्षपात सर्व प्राणियोंका शासन करती
उनदिनों देव-यज्ञ, ऋषियज्ञ और पित्र-
क्रिया होने लगीं ; कोई अधर्म करके
जीवका मारता नहीं था । वह राजा
दुःखी, अनोथ और पक्षी योनिमें जन्म
हुए सर्व जीवोंके पिताके समान थे ;
उनके साम्राज्यके कालमें वायुने सर्व
आश्रय किया, और वह कृत्तिस वर्ष
स्त्री सम्भोगादि विषय भोगकर अन्तमें
सिधारे । गङ्गाके गर्भसे जन्मे वसु उनके
देवव्रत : सुन्दरता, आचार, चरित्र
विद्या सर्व विषयहीमें उनके सदृश हुए थे ।
महाबलवीर्यवन्त महासत्त्ववान्,

र गदादि सर्व अस्त्रोंके चलानेमें निपुण
 शान्तनुने एक समय एक मृगकी वींध-
 र उसके पीछे जाते हुए निकटकी नदी
 शीरधी गङ्गाको स्वल्प जलयुक्त देखा । पुंरुष-
 शान्तनु वह देखकर सोचने लगे, कि इस
 भारी गङ्गामें आज क्यों पहिलेके समान
 ता नहीं देखता हूँ? अनन्तर उसका
 रण दृढ़ते हुए देखा, कि बड़ा भारी देख-
 में सुन्दर रूपधारी और देवराज सदृश सुन्दर
 कुमार तेजवाणजालसे गङ्गाजीके सीतोंकी
 कि करे दिव्यास्त्र चला रहा है । राजाने
 पने पासहीसे नदीगङ्गाको वाणोंसे ढँपी हुई
 खकरके बालकका अलौकिक आश्चर्य कार्य
 हार कर अचरज माना ! धीमान शान्तनुने
 हिले जन्म लेनेही पर पुत्रकी देखा था, सो इस
 निज पुत्र करके पहिचाननेके योग्य कोई
 क्षण उनके स्मरणपथमें आस्तु नहीँ हुआ,
 मार पिताकी देख करकेही मायासे उनकी
 करके उस स्थानहीसे अन्नर्हित हुए ।
 नन्तर राजा शान्तनु वह आश्चर्य लीला
 खकर शङ्कायुक्त होकरके गङ्गासे बोले, कि
 स अन्नर्हित हुए कुमारकी मुझे दिखाओ ।
 जाने उत्तम रूप धरकर दहिने हाथमें उस
 लंकृत कुमारकी लेकर राजाकी दिखाया ।
 नर्मल बस्त्रसे भलो भाति आवृता और नाना
 गम्भीरोंसे सजी हुई गङ्गाको पहिले देखने
 रभी इस समय उन्होंने नहीं पहिचाना ।
 व गङ्गा बोलीं, कि हे पुंरुषव्याघ्र नृपते ।
 हिले तुमने मेरे गर्भसे जो आठवाँ पुत्र लाभ
 किया था, यह वही पुत्र है । यह सम्पूर्ण अस्त्र-
 विद्याओंमें अति परिष्ठित हुआ है । हे विभी,
 महाराज । इस पुत्रकी मैंने बढ़ाया है, इसे
 रकी ले जाओ । यह कुमार युद्धमें देवराज
 समान बड़े चापधारी, अस्त्र विद्यामें दक्ष और
 वीर्यवान् हुआ है ; तुम्हारे इस पुत्रने ऋषि
 शिष्ठसे कृओं अङ्गके सहित वेद पढ़ लिया है ।

हे भारत ! यह सुर और असुर दोनोंके
 प्यारे हैं ; असुरोंके गुरु, उपना जिन जिन
 शास्त्रोंसे ज्ञात है, इस पुत्रने वह सब पढ़ लिये ;
 और अङ्गिराके पुत्र तथा सुरासुरकोंके नम-
 स्कारयोग्य वृहस्पतिजी जी जी शास्त्र जानते हैं,
 इस पुत्रने वह सबभी भीख लिये है । प्रतापी
 कठोर ऋषि जामदग्न्या राम जिन सब अस्त्र-
 विद्याओंसे ज्ञात है, इस महाबाहु सहाय्या
 पुत्रों साङ्गीपाङ्ग वह सब विद्या अधिष्ठित
 हुई है । हे राजन्, हे वीर ! धर्मार्थ की-
 विद महाधनुर्धारी तुम्हारे इस वीर पुत्र
 को मैं इस समय दे देती हूँ, इसे घर लेते
 जाओ ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि राजा शान्तनु
 गङ्गासे ऐसी आशा पाकर दिवाकर सदृश देदीप्य-
 मान पुत्रकी लेकर अपने पुरमें आये और उन्होंने
 पुरन्दरपुर ऐसी पुरीमें प्रवेशकर अपनेको अति
 सम्पद्युक्त और सिद्धकाम समझा । अनन्तर
 पौरववंश के राज्यको भले प्रकार रखनेके
 निमित्त अभय-देनेवाले और गुणशील महात्मा
 पुत्रकी यौवराज्यमें अभिषिक्त किया । हे
 भरतर्षभ ! महायशस्वी शान्तनुपुत्रने सुचरित्रसे
 अपने पिता, पौरवगण और प्रजापति सबको
 प्रेमी बनाया था । अपरिमित विक्रमयुक्त मही-
 पाल शान्तनुने अपने पुत्रके साथ आसीद
 आनन्दमें चार वर्षकाल काटा ।

किसी समयमें जैन महीपति शान्तनुने
 यमुनातटके वनमें जाकर एक प्रकारकी अन्न-
 जानी अच्छी गन्धका प्राख पाया । यह पता
 लगानेके लिये, कि कहाँसे वह गन्ध आ रही
 थी, चारो ओर घूमघूम कर अन्तमें देवद्विपिणी
 एक दासीको देखा ; काली आँखवाली उस
 कन्याको देख करकेही उन्होंने पूछा, कि री
 भीरु ! तुम कौन, किसकी बेंटी हो ? इस
 वनमें क्यों आई हो ? कन्या बोली, कि तुम्हारा
 मङ्गल होवे । मैं दासकन्या हूँ, महात्मा दासराज

मेरे पिता है। उनकी आज्ञासे मैं धर्मके लिये नाव चलातो हूँ। राजा शान्तनु ने उस दास-कन्याको रूपवती सुगन्धवती मधुरतासे मोहिनी और देवहूषिणी देखकर मनहीमनमें उसकी कामना की। फिर उसके पिताके पास जाकर वह कन्या मांगो और यहभी पूछा, कि सुभसे विवाह कर देनेको सम्मत हो वा नहीं। दासराजने उनसे कहा, कि हे नरेश। इस सुन्दरीने जब जन्म लिया है, तभी निश्चय हुआ है, कि यह कन्या किसी वरकी सस्यदान की जायगी, पर मेरी एक कल्पना है, उसे सुनिये; हे अनघ! आप सत्यवादी हैं, अतएव यदि इस कन्याको धर्मपत्नी बनानेकी प्रार्थना करें, तो आपको मेरे पास नय करके एक बात अङ्गीकार करनी होगी। हे नृप! उसके अङ्गीकार करनेहीसे मैं कन्याको दान कर दूँगा। मेरे लिये आपके नमान सुपात्र फिर कभी न मिलेगा। शान्तनु बोले कि हे दास! कहो, तुम क्या वर मांगते हो। मैं सुनकर उसकी व्यवस्था करूँगा, यदि देने योग्य हो, तो दूँगा, न देनेका हूँ, तो न दे सकूँगा। दासराजने कहा, कि हे पृथ्वीनाथ। इस कन्याके गर्भसे जो पुत्र जन्म लेगा वह पुत्र आपके पोछे राजा होगा; उसीको अभिषिक्त करना होगा, दूसरे पुत्रका अभिषिक्त नहीं कर सकेंगे।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भारत। राजा शान्तनु कठिन कामपीड़ासे जलने परभी दासको वह देनेको सम्मत नहीं हुए। वह उस दास-कन्याकी चिन्ता करते हुए कामसे चेत रहित होकर हस्तिनापुरको लौट गये, अनन्तर एक समय शान्तनु शोकसे विह्वल होकर सोच रहे थे, कि ऐसे समयमें पुत्र देवव्रतने आकर उनसे कहा, कि आपका सबप्रकारसे कुशल देखता हूँ, सब राजालोग आपकी आज्ञावश हैं तिसपरभी आप

दुःखित होकर शोक प्रगट कर रहे हैं, जान पड़ता है, मानों आप मरनेको विचार रहे हैं। हे राजा! सुभसे कुछ बात नहीं पर मैं देखता हूँ, कि आप पीले बदरङ्ग और चले गये हैं, अब पीड़िपर चढ़कर घूमते नौ सो जानना चाहता हूँ कि आपकी को पोड़ा हुआ है, मैं उसकी दूर करनेका प्रयत्न करूँगा। पुत्रकी यह बात सुनकर बोले, कि ऐ बेटा! यह सन्देह नहीं है, मैं मोचयुक्त हुआ हूँ; उसका कारण सदा ऐ बेटा भरत-कुल प्रदीप। हमारे इस एकमात्र सन्तान तुमने जन्म लिया है, पर सदा अस्त्र चलानेमें नियुक्त और पौंस इच्छा रखते हो, सो मनुष्यकी अनियता स्वभाव के मैं शोकयुक्त हुआ हूँ। हे गाईय! कि सो प्रकार, तुमको विपत होय, हमारा वंश नहीं रहेगा, पर इसमें सन्देह तो तुम एक पुत्रही मेरे शत पुत्रोंसे अधिक हो। हेतु मैं फिर विवाह करनेको इच्छामी नहीं करता, केवल वंशकी रक्षाके लिये इतनी कामना करता हूँ, कि तुम कुशलसे जो धर्मवादी लोग कहा करते हैं, कि जिस एकमात्र पुत्र है, वह निःसन्तान है। विद्वान और शिष्य प्रशिक्षोंसे विप्रकार इन सबके अक्षयफल देनेवाले होने लगे। पुत्रके सोलह भागके एकांशकेभी तुल्य होते और पुत्र जिस प्रकार मनुष्यके मङ्गल साधनेहारा करके प्रसिद्ध है, उस प्रकार पशु-पक्षी आदि दूसरे जीवोंके लियेभी प्रसिद्ध है। हे महाप्राज्ञ। इसमें सुभसे नहीं है, कि पुत्रसे स्वर्ग प्राप्त होता है। पुराणोंकी जड़ और देवोंके प्रमाणभूत जो है, उससे सदा इसका प्रमाण मिलता है। हे भारत! तुम शूर, अमर्षयुक्त और अस्त्र चलानेमें सदा नियुक्त रहते हो, इससे पुत्र स्थलही में तुम्हारे नष्ट होनेकी सम्भावना

खता हूँ। ऐसा होनेसे बंशकी कैसी गति
 मिलेगी? इसी लिये मैं संशययुक्त हुआ हूँ।
 प्र। तुमको दुःखके सम्पूर्ण कारणोंसे
 त किया।

श्रीवैशम्पायनजी बोले कि महाबुद्धि देवव्रत
 जैसे वह सब कारण ज्ञात होकर बुद्धिसे
 इसका सोच करके उसीक्षण परम हितपो वृद्ध
 मन्त्रीके पास जाकर पिताके उस शोककी कारण-
 को बृत्तान्त पूछा। हे भरतर्षभ। कुरु राज-पुत्रके
 योवत् पढ़ने पर उस गन्धवती कन्याके लिये
 दासराजने जो वर मांगा था, मन्त्रीने वह कह
 नाया। अनन्तर देवव्रत वृद्ध क्षत्रियोंसे
 मेलकर स्वयं दासराजके साथ जाकरके
 पिताके लिये वह कन्या मांगी। दासराजने
 उनकी विधिपूर्वक पूजकर स्वागत किया। हे
 भरत! देवव्रतके उस दासराजकी सभामें बैठ-
 पर दासराजने उनसे कहा, कि हे भरतर्षभ।
 आप शस्त्र धरनेवालोंमें श्रेष्ठ और शान्तनुके
 एक मात्र पुत्र हैं, आप सब विषयोंके कर्त्ता हैं,
 आपसे एक बात कहता हूँ, सुनिये। कन्याके
 पिताके साक्षात् इन्द्र होने पर भी ऐसे मानयुक्त
 और प्रार्थनीय सम्बन्धके छोड़नेसे उसको
 अवश्यही सन्तापित होना पड़ता है। जो
 सप-प्रधान तुम्हारे ऐसे गुणवान हैं, उन्हींके
 योग्यसे इस सत्यवती नामी सुन्दरी कन्याने
 कर्म लिया है; उन्हीं वज्रवार मेरे पास
 आपके पिताका नाम लेकर कहा था, कि
 यह धर्मज्ञभूपाल सत्यवतीसे विवाह करनेके
 योग्यपात्र है, फिर भी ऋषिश्रेष्ठ देवर्षि असि-
 नि पहिले इस सत्यवतीके लिये बार बार
 प्रार्थना की थी, सने उस पर ध्यान नहीं दिया।
 हे वृषोत्तम। मैं कन्याका पिता हूँ, इस लिये
 यह एक बात कहता हूँ, कि इसमें केवल एक
 अवलवत सपन्न दोष है। हे शत्रुकी पीड़ा देने-
 वाले। आप जिसके सपन्न है, यद्यपि वह
 गन्धर्व वा असुर होवे, तथापि आपके क्रोधित

होनेसे वह कभी दीर्घकाल तक जी
 नहीं सकेगा, तौभी हे पृथ्वीनाथ। इस
 विषयमें इतनाही दोष है, कोई दूसरा
 दोष नहीं; हे परन्तप। आपका
 मङ्गल होवे, देने और न देनेके विषयमें यही
 जानना।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भरत-
 वंशतिलक। गङ्गापुत्र देवव्रत दासराजकी
 यह बात सुनकर पिताके उपकारके लिये सब
 वृद्ध क्षत्रियोंके सामने बोले कि हे सत्यवादिन्।
 जानना, कि सत्यही मेरा व्रत है, मैं सत्य करके
 कहता हूँ ऐसा मनुष्य जन्मा नहीं है, कि यह
 कहनेका उत्साही हो और यहभी जान नहीं
 पड़ता, कि पीछे जन्म लेगा। तुम जो अभिप्राय
 प्रगट करते हो, मैं वैसाही कहूँगा, तुम्हारी
 इस कन्या के गर्भमें जो सन्तान उत्पन्न होगी,
 वह सन्तानही हमारे राज्यकी अधिकारी
 होगी। हे भरतर्षभ। उनकी यह बात सुन-
 कर दासराजने राज्यके जिये कठोर कर्म
 करने पर होकर फिर यह कहा, कि हे
 धर्मशाली। अति प्रकाशमान आप शान्तनु
 पक्षके कर्त्ता होकर आये हैं, पर इस कन्या
 दानकेभी आप कर्त्ता होंगे। हे शान्तशील।
 इसस्थलमें और एकबात कहनी है, उसका भी
 विधान आप कीजिये हे अरिन्द्रम। जिनकी
 कन्या पर स्नेह है, उनकी यह अवश्यमेव
 कहना पड़ता है, अतएव मैं कन्याके प्रेमसे
 ही कहता हूँ। हे सत्यधर्मशील। इन
 राजाके बीचमें आपने सत्यवतीके निमित्त
 जो प्रतिज्ञाकी, वह आप जैसे महानुभाव हैं,
 उसके योग्यही हुआ। हे महाबाहो। इस
 विषयमें मुझे कुछभी शङ्का नहीं है, कि उसका
 विपरीत नहीं होगा, पर आपकी जो सन्तान
 होगी उसके लिये मुझे बड़ा संशय होता है।
 वैशम्पायन बोले, कि हे राजन्। सत्य धर्मशील
 सत्यव्रतधारी, गङ्गानन्दन दासराजका अभिप्राय

जानकर पिताकी प्रीतिके लिये प्रतिज्ञा पूर्वक बोले; कि हे नृपतिम दासराज । मैं पिताके लिये इन राजाओंके सम्मुख यह कहता हूँ सुनो । हे राजवृन्द । मैंने पहिलेही राज्य छोड़ दिया है, अब मेरे पुत्रके राज्य पानेके विषय में जो शङ्का कही गयी है, उसके निमित्तभी प्रतिज्ञा करता हूँ; हे दास । मैं जितने दिन जीवित रहूँगा, आजसे तबतक के लिये ब्रह्मचर्य अवलम्बन करेलेता हूँ, इससे मेरे निःसन्तान होने परभी मेरा अक्षय स्वर्ग होगा । श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि धर्मात्मा दासराज उनकी वह बात सुनकर परमानन्दसे गदगद होकर कल्यादानके लिये सम्मत हुए । अनन्तर आकाशसे अप्सरा गण और ऋषिगण गङ्गानन्दन देवव्रतके नैसर्गिक भयानक संकल्पको सुनकर यह कहके, कि “यह भीषण है उनपर फूल वर्षाने लगे । आगे भीषण पिताके लिये उस यशस्विनी-योजनगन्धा कन्यासे बोले, कि हे माता । रथपर आरुढ़ होओ, अपने घरकी चलना होगा । वैशम्पायन बोले, कि भीषणने यह बात कह कर भाविनी गन्धवतीकी रथपर चढ़ाकर हस्तिनापुरमें गमन करके शान्तनुसे सब कह सुनाया । राजगणभी आकर सब मिल करके और चहरेक मनुष्य पृथक् रूपसे उनके उस दुष्कार-कार्य की प्रशंसा करने लगे और बोले, कि इनके भयङ्कर कार्य करनेसे इनका नाम भीषण हुआ है । महाराज शान्तनुने भीषणक वह दुसाध्य कार्य सुनकर सन्तुष्ट होकरके उन महात्माको इच्छामृत्युका वर दिया ।

सम्भवपर्वमें एकसौ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे महीपाल ! अनन्तर विवाह होजाने पर राजा शान्तनुने रूपवती सत्यवतीकी अपने घरमें स्थापन किया । उनके वीर्य और सत्यवतीके

गर्भमें चित्राङ्गद नामक धीमान वीर्यवान् श्रेष्ठ एक वीरपुत्रने जन्म लिया । वीर्यवन्त प्रभु शान्तनुने उस सत्यवतीसे वीर्य नामक बड़े चापधारी एक पुत्रकी दन किया था । पुरुषश्रेष्ठ विचित्रवीर्य प्राप्त होनेके पहिलेही धीमान शान्तनु वशमें हुए । शान्तनुके स्वर्गकी विधा भीषणने सत्यवतीके मतमें होकर चित्राङ्गदको राज्य पर अभिशिक्त कि चित्राङ्गदने शूरतासे सम्पूर्ण राजों को पराजित किया था । वह किसी मनुष्यकी नहीं समझते थे, यह देखकर, कि वह असुर मनुष्योंकी पराजय कर सकते हैं । इन्द्र नामक एक बलवन्त गन्धर्वराज पास उपास्थित हुए । अनन्तर शान्तनु पुत्राङ्गदके साथ गन्धर्वराजचित्राङ्गदका युद्ध अत्यन्त कठोर युद्ध हुआ, गन्धर्वराज कुरुराज दोनों महाबली थे; सी वर्षोंतक सरस्वती नदीके तटपर युद्ध हुआ । हे रूपश्रेष्ठ । उसमें वृष्टियुक्त और मथनेहारा घोर युद्ध अन्तमें बड़ी बड़ी मायाधरनेवाली राजने वीर कुरुनन्दनकी रणमें गिरा । गन्धर्वराज नरश्रेष्ठ, अरिन्दम, चित्राङ्गद मारकर एकही कालमें नष्ट करके पर जा चढ़े । अति तेजस्वी चित्राङ्गद होनेपर शान्तनुनन्दन भीषणने उनकी अन्तक्रिया सम्पन्न की थी । उसके पश्चात् महाभुज सत्यव्रतशील भीषणने यौवन में हुए, बालक विचित्रवीर्यकी कुरुराजमें पित्त किया । महाराज ! विचित्रवीर्य आज्ञानुसारी होकर पिताके राज्यकी लगे । वह धर्मशास्त्र भीषणकी जि पूजते थे, भीषणनेभी वैसेही धर्मानुसार पालन किया था ।

सम्भवपर्वमें एकसौ पहिला अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोलते कि हे कौरव !
 आता चित्राङ्गदके मारे जानेपर बालक भ्राता
 चित्रवीर्य की उपलक्ष्य कर भीष्म सत्यवतीके
 नमैं रहकर राज्य पालने लगे । अनन्तर
 भ्राता भीष्मने भ्राता विचित्रवीर्यको यौवन प्राप्त
 होते देखकर उनके विवाहका निश्चय किया ।
 राजन् । अनन्तर उन्होंने सुना कि काशी-
 राजकी अप्सरा-समान तीन कन्याओंका एकत्र
 स्वयम्बर होगा । सहारथी शत्रुजित् प्रभु भीष्म
 भ्राताकी आज्ञा लेकर प्रधान रथपर चढ़कर
 सारणीगुरीमें गये । उन्होंने वहां पहुँच-
 कर देखा कि सञ्जयसे राजालोग आकर उप-
 स्थित हुए हैं और उनके बीचमें स्वयम्बरकी
 भिलाषिणी वे तीन कन्याभी विद्यमान हैं ।
 राजन् । जब सब राजाओंके नाम कहे
 गये तब प्रभु भीष्मने स्वयं उन तीनकन्या-
 ओंकी हर लिया और उन कन्याओंकी निज
 रथपर चढ़ाकर बोलने लगे । बुधोसे कथित
 है कि गुणवान् वरको बुलवाकर यथा-
 क्त कन्याकी अलङ्कृत करके धन दानपूर्वक
 प्रदान करना, और दूसरे लोग दी गयी लेकर
 दान करते हैं । कोई कोई पण्डित धन
 कर कन्यादान करते हैं, कोई कोई बलपूर्वक
 लीजाते हैं, कोई कोई कन्याकी सम्म-
 से विवाह करते हैं, कोई कोई प्रसन्ना-
 चासे मिलते हैं, दूसरे लोग दान करनेवाले
 बुलाकर वा स्वयं जाकर कन्याकी प्राप्त
 करते हैं और कोई कोई उचित विधानके अनु-
 सार दक्षिणके स्वरूपमें कन्याकी लाभ करते
 आठ संख्याओंमें गिने जाते हुए यह शेषोक्त
 ग्राह कवियोंका प्रार्थनीय है, पर राजगण
 स्वयम्बरहीकी प्रशंसा करते हैं और उसमेंही
 गत होते हैं, परन्तु धर्मवादीजन कहते
 कि स्वयम्बरके स्थलसे विपक्षपक्षकी दवा-
 बलपूर्वक जो कन्या ली जाती है, वह
 ही अशुभा है, इस कारण से बलपूर्वक इस

स्थानसे कन्या हरता हूँ, हे राजवन्द ! तुममें
 जिसकी जितनी शक्ति हो, उसके अनुसार जय-
 के लिये यत्नवान् होओ, अथवा हार मान
 जाओ । हे महीपतिगण ! मैं युद्धके लिये
 निश्चित हो रहा हूँ । वीर्यवान् कौरववन्दन
 काशीराज और दूसरे महीपालोंसे ऐसा कह-
 कर कन्याओंको अपने रथपर ले करके राजा-
 ओंकी युद्धार्थ बुलाकर शीघ्र पधारें ।

अनन्तर सम्पूर्ण भूप क्रोधित होकर निज
 निज वड़ाई प्रगट करके दांतीसे होंठ काटते
 हुए उठ खड़े हुए ; और उनमेंसे किसी किसी
 ने क्रोधवश ऐसी शीघ्रताकी, कि उनके पहिने
 हुए आभूषण और कवचादि शरीरसे गिरने
 लगे, उनके वह गिरते हुए, कवच और आभू-
 षण तारोंके पतनके समान दीख पड़े । वह
 सब राजालोग इधर उधर कवच और अल-
 ङ्कारोंके गिर जानेसे क्रोध और असमर्पवश भीहै
 चढ़ाय और आंखें बढ़ाय अस्त्र शस्त्र लेकर
 सारथियोंसे अच्छे घोड़े जोते हुए, प्रस्तुत
 सुन्दर रथोंपर चढ़के अस्त्र शस्त्र उठाकर चले
 जाते हुए भीष्मकी पश्चियाते हुए चले । हे
 भारत । अनन्तर अकेले भीष्मसे उन सब
 राजाओंका रोंयें खड़ा करनेवाला घोर युद्ध होने
 लगा । राजा लोगोंने एकही कालमें भीष्मपर
 दश सहस्र वाण मारे, भीष्म ने उसीक्षण अर्थात्
 उन वाणोंके आ पहुँचनेके बीचपथहीमें रोके
 तक को बाँधनेवाले घोर वाणोंकी बिना रोक
 टोक की दृष्टिसे टुकरे टुकरे कर डाला । इस-
 के पीछे सब राजालोग चारों ओरसे उनकी
 घेरकर जिस प्रकार बादलदल पर्वतपर बिना
 रोक टोक जल धारा वर्षाते हैं, उस प्रकार
 उनपर वाण वर्षाने लगे । तब भीष्मने वाण-
 जालसे उन सब वाणोंका वर्षना रोककर तीन
 तीन वाणोंसे हरेक महीपालकी विद्ध किया ।
 राजाओंमें सेभो हरकरने पाच पाच वाणोंसे
 भीष्मकी विद्ध किया । हे राजन् । भीष्मने

फिर प्रभाव प्रगटकार दो दो वागीसे हर भानकर शाल्वका वार वार साजुवाद का भूपकी विज किया । वज्र युद्ध इतना कठोर लगे और शाल्वराज की लघुहस्ता हीने लगा, जि जो सब वीर देवाशुरको युद्धके रणमें पण्डिताईकी अवलोकन कर समान और शरशक्तियोंसे समाकून उस घोर चित्तसे बड़ी प्रशंसा करने लगे । शत्रुपुर-विजयो शान्तनुपुत्रने क्षत्रियों की युद्धको देख रहे थे, उनके लियेभी यह भयानक शत्रु-प्रशंसा की वाणी सुन करके क्रोधयुक्त हो गया, भीष्म युद्धस्थलमें वाचन और शिर प्रशंसा की वाणी सुन करके और क्रोधयुक्त हो गया, तब रथ पर चढ़े हुए राजा-“तिष्ठ तिष्ठ” यह बात कहो और क्रोधयुक्त लोगोंने शत्रु पक्षी हीने पर भी उनके अलौ-सारथीकी आज्ञा दी, जि जहां वह शाल्व किक आश्चर्य का, शीघ्र हाथ चलानेका है, वहां रथको ले चलो ; जिस प्रकार म कौशल और आत्मरक्षाको देखकर उनको सर्प नष्ट करता है, उस प्रकार मैं आज उस प्रशंसापूर्वक सम्मान प्रगट किया । अनन्तर शत्रु धरने वालेमें श्रेष्ठ भरतवंशतिष्ठक भीष्म भीष्मने वारुणास्त्र छोड़कर उससे शाल्व पर युद्धमें राजाओंकी पराजयकर कन्याओंके साथ घड़े नष्ट किये और अस्त्रसे शाल्व निज नगर की ओर याता की । सम्पूर्ण अस्त्र दूरकर उनकी सारथीको राजका पाहुता बनाया । हे नरश्रेष्ठ ! शाल्व ही है राजर् । जिस प्रकार महावली हस्ती-दलपति किसी हस्तिनीके प्राप्त किये हुए दूसरे हाथीके दो जंघाको फाड़ कर हस्तिनी को और दौड़ता है, उस प्रकार अमेधात्मा महा-रथी शाल्वराज स्वीकामी होकर युद्धके लिये भीष्मके पीछे दौड़े और वह महाभुज अमर्ष-युक्त होकर “तिष्ठ तिष्ठ” ऐसा कहने लगे । शत्रुबल मथनेवाले पुरुषव्याघ्र भीष्म उस वाक्यसे आकुलित होकर क्रोधसे जलने हुए अग्नि समान जल उठे, क्षत्रिय-धर्ममें सच्चे निष्ठावान उस महारथीने लिलारको हिलोड़कर शर और शरासनको फेंकाकर शाल्वराजके निमित्त निडर और स्थिर चित्तसे रथको रोक लिया । सम्पूर्ण राजालोग उनकी निवृत्त होते देखकर भीष्म और शाल्व दोनोंका समागम देखनेके लिये खड़े होगये । ऋतुमती गौके लिये बल-वन्त दं वेल जिस प्रकार तर्जन गज्जन करते हैं, वैसेही महावली पराक्रमी दो भूप आप-समें विक्रम प्रगट करनेलगे । नरोंमें श्रेष्ठ शाल्वराजने शतसहस्र शीघ्रगासी शरोंसे भीष्म-को ढांप लिया । राजालोग पहिलेही शाल्व-राजसे भीष्मको मथे जाते देखकर अचरज

महाभारत ।

भानकर शाल्वका वार वार साजुवाद का लगे और शाल्वराज की लघुहस्ता रणमें पण्डिताईकी अवलोकन कर चित्तसे बड़ी प्रशंसा करने लगे । शत्रुपुर-विजयो शान्तनुपुत्रने क्षत्रियों की प्रशंसा की वाणी सुन करके क्रोधयुक्त हो “तिष्ठ तिष्ठ” यह बात कहो और क्रोधयुक्त सारथीकी आज्ञा दी, जि जहां वह शाल्व है, वहां रथको ले चलो ; जिस प्रकार म सर्प नष्ट करता है, उस प्रकार मैं आज उस वाण नष्ट करूंगा । उसको अनन्तर दुर्योध भीष्मने वारुणास्त्र छोड़कर उससे शाल्व पर घड़े नष्ट किये और अस्त्रसे शाल्व सम्पूर्ण अस्त्र दूरकर उनकी सारथीको राजका पाहुता बनाया । हे नरश्रेष्ठ ! शाल्व ही नन्दन भीष्मने कन्याओंके लिये ऐन्द्र है, वह उनके अच्छे घेड़ोंको मारा । इस प्रकार उस उन्होंने नृपश्रेष्ठ शाल्वराजको जीतकर गेध रहते ही छोड़ दिया । आगे राजा निज नगर में जाकर धर्मानुसार अपना पालनमें प्रवृत्त हुए । शत्रुपुर विजयो के भूप स्वयम्बर देखनेको आवे थे, वेभी निज राज्यको पधारे । महायोद्धा दुर भीष्म इस प्रकार तीन कन्या जीतकर हर्ष-पुरमें उस स्थानकी ओर चले जिस पर कौरवराज विचित्रवीर्य विराज रहे थे । पिता कुरुवशी नृपश्रेष्ठ शान्तनु जिस प्रकार धरती शासते थे धर्मात्मा विचित्रवीर्यभी इस प्रकार शासन कर रहे थे । हे नरश्रेष्ठ ! भीष्म स्वल्पकालके बीचमेंही वन, जल, अग्नि और भांति भातिके वृहद्युक्त उपवन स्थलसे अक्षत शरीरमें काशीराजकी कन्या को ले आये ; उन धर्माशील महाभुज भीष्मने प्रियमाधनके लिये विक्रमसे लाभकी

वैष्णवयुक्त कुमारियोंको पुत्रवधू, छोटी बहिन
 और बेटेकी नाई लेकर कौरवोंके पास आकर
 निष्ठ भ्राता विचित्रवीर्यकी दे दिया। वह
 स्रष्टा उक्त प्रकार धर्मानुसार अलौकिक
 कार्य पूराकर भ्राता विचित्रवीर्यकी विवाहके
 लिये प्रवृत्त करने लगे। जितेन्द्रिय भीष्म
 धवतीसे परामर्श कर काशीराजकी कन्या-
 से विचित्रवीर्यका विवाह कर देना निश्चय
 र चुके थे, कि ऐसे समय उन कन्याओंसे
 जो कया हंसकर उनसे बोली, कि मैं पहिले
 मराज्यकी अधीश शाल्वकी सनही मनमें
 ते बना चुकी थी, उन्होंनेभी सनहीमनमें
 नकी भाया बनाया था, इसमें सेरे पिताकी
 स्त्राभी थी, उस स्वयम्बर स्थलमें मैं शाल्व-
 की वरमाला दितो, आप धर्मशील हैं,
 इ विचारकर धर्मानुसार कार्य कीजिये।
 स कन्याके विप्रोंकी सभामें यहवात कहने
 धर्मज्ञ वीर भीष्म यह सोचने लगे, कि
 मान विषयमें क्या कर्तव्य है। आगे उन्होंने
 पारंग ब्राह्मणोंसे युक्ति निश्चयकर काशी
 की अम्बा नान्दी उस बड़ी कन्याकी
 प्रती अभिष्टपूर्ण करनेकी आज्ञा दी। अन-
 र यथाविधि कर्मानुसार अम्बिका और
 वालिका नान्दी काशीराजकी दो छोटी
 योंसे विचित्रवीर्यका विवाह कर दिया।
 प-यौवनयुक्त धर्मात्मा विचित्रवीर्य अम्बिका,
 वालिका पाणिग्रहण कर कामानुवर्त्ती
 गत। धूराली नीले केशवाली, लाल और
 निखयुक्त, काली और सुलक्षणा कल्याणी
 अम्बिका और अम्बालिका दोनों पीननितम्बिनी
 ही शर पीनपयोधरा थीं। वे विचित्रवीर्य की
 युक्त प्रेमा मनमाना पति पाकर सन्तोष पूर्वक
 प्रसन्न होकर रहने लगी। अम्बिकीकुमार-समान
 लीलापवा और देववतविक्रमी विचित्रवीर्य
 सले में दोनों नारियाँहीके मनमें हन बने
 वह उन नारियोंके साथ लगातार सात

वर्ष विहार कर यौवन कालहीमें भयानक
 चय रोगसे जकड़े गये। अनन्तर विप्रवासी
 चिकित्सकों से चिकित्साके लिये भिजोंके यत्न
 करने पर भी कुरुकुल प्रदेश विचित्रवीर्य
 कालके वशमें होकर अस्तावलकी गये-सूर्यके
 समाव गच्छ झर। धर्मात्मा भीष्मने चिन्ता-
 युक्त और शोकवश होकर ऋत्निक और सम्पूर्ण
 कौरवोंके साथ सद्यवतीकी सतानुसारी होके
 राजा विचित्रवीर्यके सन प्रेतदण्ड भले प्रकार
 दूर किये।

सद्यवपर्वमें एक-सौ दूसरा अध्याय समाप्त ।

श्रीकृष्णायनजी बोले, कि हे भारत ।
 अनन्तर महाभागा भाविनी सद्यवती पुत्र शोक-
 से विह्वल दीन और दुःखचित्त होकर पत्र-
 वधुओंके साथ पुत्रकी नौद्विद्विहिक किया पूरी
 कर भीष्मकी और दोनों पुत्रवधुओंकी समझा
 बुझा कर राज्य और दिव्यवंशकी दशा शोक-
 के धर्म पर दृष्टि रखकरके भीष्मसे बोली,
 कि धर्मशील यशस्वी कुरुवंशी नरेश
 शान्तनुका वंश, कीर्ति और पिण्ड एक तुम्ही
 पर निर्भर है; और जिस प्रकार शुभ कर्मसे
 निश्चयही स्वर्ग होता है, और सत्यशीलता से
 निश्चयही आयु की वृद्धि होती है, उस प्रकार
 तुममें निश्चयही धर्म प्रतिष्ठित है। हे धर्मज्ञ !
 तुम धर्म और नानाप्रकारकी श्रुति और
 सम्पूर्ण वेदाङ्गोंमें सन्धिमें और विस्तृत रूपसे
 ज्ञात हो। शूद्र और अङ्गिरा की नाई तुम्हें
 धर्मशीलता और कुलाचार तथा विपत्कालमें
 विचार करने की सामर्थ्य भी है, यह स्व-मै
 जानतोहूँ। इसलिये मैं तुमसे बड़ा भरोसा
 पाकर तुमको किसी कार्यमें नियुक्त करूँगी।
 हे धार्मिकवर ! यह सुनकर तुमकी उसे
 पूरा करना चाहिये। हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुम्हारा
 प्रिय भ्राता मेरा पुत्र वीर्यवान विचित्रवीर्य
 पुत्र न होतिही बालिपनमें स्वर्गकी सिधारा है।

हे भारत । तुम्हारे माताकी रानी रूपयावन-
शुक्ला, शुभलक्षणा यह काशीराजकी कन्यायें
पुत्रकामा हुई हैं । हे महाभुज । हमारे
वंश परम्परा की रक्षाके लिये मेरे नियोगसे
उन दो पुत्रवधुयोंके पुत्रीत्पादन कर धर्मरक्षा
करो । तुम राज्यमें अभिषिक्त होकर भारत
राज्यका शासन करो और धर्मानुसार विवाह
करलो । पितरों की मन दुवाओ ।

श्रीकृष्णायनजी बोलि, कि माता और
मित्रोंके ऐसा कहनेपर धर्मात्मा परन्तप भीष्मने
धर्मसंयुक्त यह उत्तर दिया, कि हे माता ।
इसमें सन्देह नहीं है, कि आपने जो कहा,
वह धर्मयुक्त है, पर सन्तानके लिये जो सत्य प्रण
हुआ था उससेभी आप ज्ञात हैं, सो उस सत्यकी
रक्षा के लिये फिर अभी प्रतिज्ञा करता हूँ,
कि देवलोकका राज्य त्याग दे सकता हूँ,
अथवा इससेभी अधिक जो कुछ हो, उसकीभी
छोड़ सकता हूँ, तथापि सत्यकी किसी प्रकार
छोड़ नहीं सकूंगा । यद्यपि पृथ्वी गन्धकी छोड़
सके, जल निज रसकी छोड़सके, ज्योतिरूपकी
छोड़ सके, पवन अनुभवगुणको छोड़ सके,
सूर्यनिज प्रकाशको छोड़ सके, पुच्छलतारा
गम्भीर छोड़सके, आकाश शब्द की छोड़सके,
चन्द्रमा ठही किरणकी छोड़ सके, इन्द्र विक्रमकी
त्याग सकें और धर्मराज धर्मकी त्याग सकें
तथापि मैं सत्यकी किसीप्रकार त्यागने को
प्रवृत्त नहीं हूंगा । बलवन्धारी भीष्मके उत्सा-
हसे ऐसा कहनेपर माता सत्यवतीने उनसे
कहा, कि हे सत्यपराक्रमी । सत्यमें जो
तुम्हारी परमनिष्ठा है, वह मैं जानती हूँ । तुम
द्रष्टा करनेसे निज तेजसे अन्य त्रिलोक रच
सकते हो, औरभी तुमने मेरे निमित्त जो सत्य
किया था, उससेभी मैं ज्ञात हूँ, पर मैं चिन्तित ।
तुम इस विपदकी दशापर ध्यान देकर पैटक
वंशका भार लो । ऐसा करो, कि जिससे
कुलकाक्रम नमिष्ट कर धर्मरक्षा होवे और

मित्रवर्ग आनन्दित होवे । यह सुनकर
सन्तान चाहने वाली सत्यवती कातर हो,
ऐसी धर्मविरुद्ध बात बार बार कह रही
भी सने फिर कहा, कि हे राज्ञी । आप धर्मकी
दृष्टि कीजिये, हम सबोंकी मननष्ट करता है,
यका असताव्यवहार धर्माशास्त्रमें प्रगलित
होता । हे रानी ! आपने ऐसा सनातन की
यधर्म कहता हूँ, कि जिनसे भूमण्डलमें
नया वंश अद्वय बना रहे, आप उसे सत्य
लोकयात्रा पर दृष्टि रख करके पुरोहित
उनके साथ, कि जो नव प्राज्ञ धर्मार्थ विप
पण्डित के विचारिये ।

सत्यवपर्वमें एकसौ तीसरा अध्याय समाप्त ।

भीष्मजी बोलि, कि पूर्वकालमें हमसे
कुमार रामने पिताके वधसे दुःखी हो
परशुसे हेहय देरके अधीश कार्तवीर्यकुं
नष्ट किया था । जिस हेहयपतिने प्रजा
अति कठोर धर्मका अनुष्ठान कराया था
शुरासने उनके सहस्र भुजकी काटकर, उन्
न शान्त होकर फिर रथपर भूम
जीतनेके चाप लेकर सहास्रोंके प्रयोगसे
स्वार क्षत्रियकुलकी नष्ट किया । उन
त्वाने नाना अस्त्रोंसे इक्कीस बार
क्षत्रियोंसे खाली किया । उन सहस्रों
प्रकार भूमण्डलके क्षत्रियोंने वलित हो
सब स्थानों की सम्पूर्ण क्षत्रियोंकी कि
वेदपारंग ब्राह्मणोंसे सन्तान उत्पन्न का
वेदमें यह निश्चित है, कि जो जन विवाह
है, उसके क्षेत्रमें सन्तान होनेसे उसकी जीव
है, अतएव धर्म जानकारकी ही क्षत्रिय पति
ब्राह्मणोंसे संसर्ग किये था, इससेही क्षत्रिय
फिर उत्पत्ति हुई है । इस विषयमें और
प्राचीन इतिहास कहता हूँ, सुनिये, पूर्व
उतथ नामके धीशील एक ऋषि थे, उन
परम प्यारी समता नाम्नी एक भार्या की ।

मय उतथकी कनिष्ठ भ्राता देवींके पुरोहित और
म तेजस्वी बृहस्पति उस ममताके पास उपगत
र. इससे ममता उन वाचस्पति देवरसे बोली,
तुम्हारे बड़े भाईसे मैं गर्भवती हुई हूँ;
तुम लौट जाओ है सहाभाग बृहस्पति ।
र गर्भमें स्थित इस उतथ्य मुनिने कोखमें
प्रत होकरकीही पड़ना वेदकी पाठ
या है. तुमभी असोष वीर्यवान् है, सो
'स कोखमें' दो सन्तानोंका स्थान क्योंकर
भव हो सकता है? इसलिये आज तुम लौट
ओ । ममताके ऐसा कहनेपर बृहस्पति अति-
शीघ्र तेजस्वी होनेपरभी तब कामकेवशमें अपने
जनकी रोक नहीं सके. अकामा कामिनी
भी अनुरागी हुई । अनन्तर वीर्यगिरानेमें
यत बृहस्पतिसे गर्भमें स्थित बालकने कहा,
तू है तात । आप शान्त होवे, इस गर्भमें
आपकी स्थिति सम्भव नहीं हो सकती । है
गवान् । यह स्थान स्वल्प है, मैं पहिले
हां आया हूँ, आप असोष वीर्यवान् है, सो
आपको पीड़ा न पड़वावे । बृहस्पति उस
गर्भमें स्थित मुनिकी बातको न मान कर
मुनिके लिये मनीहर नेत्रवती ममताकी और
गये । अनन्तर गर्भमें स्थित उस मुनिने बृह-
स्पतिके वीर्य गिरनेके समयको समझकर
वीर्यधुतनेके पथकी दोनों पावोंसे रोक रखा,
वही वीर्य रोक जाकर स्थान न पानेसे
सी क्षण भूमिपर गिर गया । यह देखकर
गवान् ऋषि बृहस्पतिने क्रोधित होकर गर्भमें
स्थित उतथ्य-पुत्रको लाञ्छन कर शपथ दिया,
जोकि ऐसे मनीहर कालमें तुमने मुझकी
इसी बात कही सो तुम दीर्घ अंधेरी में प्रविष्ट
होगे अर्थात् अन्धे होगे । बृहस्पति कीर्तियुक्त
बृहस्पतिके इस शपथके हेतु बृहस्पति-सदृश
तेजस्वी वह ऋषि जन्म लेकर दीर्घतमा नामसे
प्रसिद्ध हुए । वेदज्ञ, प्राज्ञ, जन्मान्ध दीर्घतमाने
विद्यावलसे प्रेपी नाम्नी एक तरुणी और

रूपवती ब्राह्मणीकी पत्नी प्राप्त किया । इस
महायशने कुलकी बाढ़ानेके लिये गीतमा
पुत्रीत्पादन किया । वे गीतमादि सब पु
लीभ और मोहसे अभिभूत थे । धर्मात्म
वेदवेदाङ्गपारंग सहात्मा वह दीर्घतमा सुर
भीकी सन्तान कामधेनुसे सम्पूर्ण गोधर्म शिक्ष
करके उससे अज्ञायुक्त होकर निःशङ्क चित्तसे
खुलाखली मैथुनादि करनेको प्रवृत्त हुए ।
आश्रमनिवासी मुनिगण दीर्घतमा की मर्यादा
छोड़ने देखकर मोहयुक्त और क्रोधित हुए
और आपसमें कहने लगे कि क्या आश्चर्य है ।
इसने मर्यादा और राज्या त्याग दी है, जो वह
पापात्मा आश्रममें रहनेके योग्य नहीं है, हम
इसकी आश्रमसे निकाल बाहर करें, और
दीर्घतमाकी पत्नीभी पुत्र लाभके हेतु उस
अश्वेपति पर सन्तुष्ट नहीं थी, एक समय दीर्घ-
तमाने भार्याकी असन्तुष्ट देखकर कहा, कि
तुम क्यों मुझ पर विवेपका व्यवहार करती
हो? प्रेपी बोली, कि पति स्त्रीको भरने
पोषते हैं, इस हेतु वह भर्ता कहे जाते हैं
और पालते हैं, इससे पति कहे जाते हैं । है
महातपस्वि ! मैं सदासे तुम्हारी जन्मान्धताके
हेतु तुम्हारा और तुम्हारे पुत्रोंका भरण
पोषण कर कर थक गयी हूँ, अब और भरण
कर नहीं सकूंगी ।

भीष्म बोले, कि ऋषिने पत्नीकी बात सुन
करके क्रोधयुक्त होकर पुत्रवती पत्नी प्रेपीसे
कहा कि मुझ की स्त्रियोंके कुलमें ले जाओ, तो
तुम धनवती बन सकोगी । प्रेपी बोली, कि
है विप्रेन्द्र ! तुम्हारे दिये हुए दुःखदायी धनकी
मुझे इच्छा नहीं है, तुम जो चाहो करो, मैं
पहिले की नाई फिर भरण पोषण नहीं कर
सकूंगी । दीर्घतमा बोले, कि मैं आजसे ऐसी
लोक मर्यादा स्थापन करता हूँ, कि नारी एक
पतिपर जीवनभर निर्भर करेगी । एक पति
जीवित रहे, वा मर जावे कोई स्त्री

पतिकी शरण ले नहीं सकेगी ; यदि कोई नारी दूसरा पति कर ले, तो वह पतित होगी, इसमें सन्देह नहीं। जिनके पति नहीं हैं, बात बातमें उनका पाप होगा और उनका प्रचुर धनभी रहे, तो उसका भोग व्यर्थ होगा। वे नित्य अकीर्ति तथा निन्दाकी पात्र होंगी ; ब्राह्मणी उनकी यह बात सुनकर अतिवीर्यवान् होकर बोली, कि हे पुत्री ! इसकी गङ्गा में डाल आओ। आगे लोभ और मोह से अभिभूत गौतमादि पुत्रोंने अन्धे बापकी दावकार वेड़े पर रख करके गङ्गा में बहा दिया। अनन्तर वे कुटिल पुत्र यह सोचते हुए घरकी लौटे, कि इस अन्धे और बूढ़ेकी हस क्यों भरने पीपने चली। आगे अन्धेविप्र वेड़े पर गङ्गाके सीतमें बहते हुए, मनमाने अनेक देशों से ही चले। धार्मिकवर बलि नाम एक राजाने गङ्गातटानकी जाकर सीतसे निकट आये हुए, उन अन्धे ऋषिकी देखा। बलि उनकी सत्यपराक्रमी धर्मशील जानकर अपने घरमें लाये और अपने पुत्रके लिये उनसे प्रार्थना कर बोली, कि हे भानद, महाभाग ! मेरे वंश की रक्षाके लिये मेरी स्त्रीसे सन्तान उत्पन्न कीजिये, कि धर्म और अर्थमें कुशल होवे। तेजस्वी ऋषिके राजाकी उस बात पर सम्मत-हीने पर राजाने उनके पास अपनी सुदेषा नाम्नी स्त्रीको भेज दिया, पर राजरानी सुदेषाने उनकी अन्धा और बूढ़ा देखकर स्वयं उनके पास न जाकर अपनी दासीको भेजा। धर्मात्मा ऋषिने उस शूद्रयोनिमें काचीवदादि ग्यारह पुत्र-उत्पन्न किये। अनन्तर राजाने काचीवदादि पुत्रों की शठनशील देखकर यह उस अन्धे ऋषिसे कहा, कि “यह मेरे पुत्र हैं।” परन्तु महर्षिने कहा, कि यह तुम्हारे पुत्र नहीं हैं, यह मेरे हैं, इन्होंने मुझसे शूद्रयोनिमें जन्म लिया है। सुदेषा नामी तुम्हारी रानीने सुखता है तु मुझकी अन्धा और बूढ़ा देखकर, अनादर

करके पूजा धातियोंकी भेज दिया था। अन्धे बलिने फिर उन ऋषिकी प्रसन्न करके स्वामी सुदेषाकी उनके पास भेजा। दीर्घतमा देवी सुदेषाकी अङ्गोंका स्पर्श बोली, कि तुम्हारे आदित्य समान तेजस्वी उत्पन्न होंगे। उन पुत्रोंके नाम बलि, कलिङ्ग, पुण्ड्र और सुहृन् होंगे, इस समय उनके निज निज नामसे एक एक प्रख्यात होगा। बलि के नामसे अङ्गदेश का नामसे बङ्गदेश, कलिङ्ग के नामसे कलिङ्ग पुण्ड्र के नामसे पुण्ड्रदेश और सुहृन् के नामसे सुहृन्देश होगा। पूर्वकालमें इस प्रकारके पिसे जन्म लिया हुआ राजा बलिका नामसे हुआ था। इनके अतिरिक्त सहायक पराक्रमी परम धर्मवान् बड़े बड़े चापधारी वीर शत्रियोंन ब्राह्मणोंके वीर्यसे जन्म लिया है सा। आप यह सुनकर जो मन करें।

सम्भवपर्वमें एकसौ चौथा अध्याय समाप्त।

भीम बोली, कि हे माता ! भर्तृवत् सन्तान बढ़ानेके लिये योग्य उपाय कहता सुनिये ; किसी गुणवन्त ब्राह्मणकी धन श्रेय नेवता दीजिये : वह विचित्रवीर्यकी श्रेष्ठतादान करेंगी। औनेश्वर्यायनजी बोली, अनन्तर सत्यवती मुह नोचे कर लज्जाके टूटी फूटी बातोंमें भीष्मसे बोली, कि हे भूज, भारत ! तुम जो कहते हो, सब सच है। परन्तु तुम पर विश्वास रहनेके अपने वंश की वृद्धिके लिये, जैसा कहानी आपकी तुम पलट नहीं सकोगी। इस वंशमें तुम्ही धर्म, तुम्ही सत्य और तुम्ही परम गति भये ही, सो मेरी सत्य बातकी रक्षा आगे जैसा कर्तव्य होवे, वही करो। मेरे पिता धार्मिक थे ; उनकी धर्म के लिये एक नाव थी, एक समय मैं

यौवनके दिनोंमें उस नावको चलाती थी, उस समय धीमान् धार्मिक श्रेष्ठ परमर्षि शर यमुना नदीके पार उतरनेके लिये कर मेरी नावपर चढ़ बैठे। मैं उन सुनिष्ठ को यमुना पार कर रही थी, कि ऐसे समयमें वह कामवश होकर सीढ़ी वातेमें लकी लुभाने लगे। हे भारत। मैं पिताभय और ऋषिके शापका भय खाकर मृत्युनवर पाकर उनकी बात पलट नहीं सकी; भारत। उन ऋषिने सुभको नावपर धत और बालिका पाकर तेजसे विवश कर धरोसे भूमखलकी कायकर अपने वशमें ले लिया। पहिली मेरे शरीरमें मछली की बड़ी बुरी गन्ध थी, उन्होंने उसकी गन्ध गन्ध कर दो। अनन्तर बोले, कि तुम इस यमुना दीपही पर रे वीथीसे पैदा हुए। इस गर्भकी छोड़कर तर कन्यावस्थाहीमें रहोगे। उससे यमुनाके तट पर मेरी कन्यावस्थाके उस गर्भसे पराशर-पुत्र महर्षि महायोगी जन्म लेकर हैपायन नामसे प्रसिद्ध हुए। वह भगवान् ऋषि तपकी भावसे चारोवेदोंके व्यास अर्थात् विभाग कर व्यास नामसे प्रख्यात हुए हैं और कृष्णवर्ण होनेसे उनका नाम कृष्ण हुआ है। सत्यवादो अतिशूल और पापरहित वह महात्मा जन्म करकेही उत्तम पिताके साथ चले गये, उन अप्रतिम द्युतिमान व्यासकी मेरे नियुक्त होनेसे वह तुम्हारे भाताके क्षेत्रमें उत्तम पुत्र उत्पन्न कर सकते हैं। हे महाभुज। उन्होंने पहिले सुभसे कहा था, कि प्रयोजन हेतु, तो मेरे स्मरण करना। हे भीष्म! यदि तुम चाहो, तो अब उनकी स्मरण करूँ। तुम्हारी स्मृति होनेसे वह महातपा हैपायन अवश्य विचित्रवीर्यके क्षेत्रमें सन्तान उत्पादन करेगी।

श्रीकृष्णायनजी बोले, कि उन महर्षि

कृष्णहैपायनके नाम कहतेही भीष्मने दोनों हाथ जोड़कर कहा, कि जो धर्म, अर्थ और काम इन वियर्थोंकी भले प्रकार आलोचना करते हैं और इस प्रकार उन सबोंका अनुष्ठान करते हैं, कि धर्मके साथ भावी धर्मका, अर्थके साथ भावी अर्थका और कामके साथ भावी कामका, सत्त्वग्रहे अर्थात् धर्ममें धर्म की अर्थसे अर्थ की और कामसे कामकी फिर सभावना वनी रहें और एक विषयसे अन्य विषयका जोड़ न रहें; वही बुद्धिमान कहे जाते हैं। आपने मेरे कुलका हितजनक धर्मयुक्त और मङ्गलकारी जो वचन सुभसे कहा, उससे मैं पूर्ण रूपसे सम्मत हूँ।

श्रीकृष्णायनजी बोले, कि हे कुरुनन्दन! अनन्तर भीष्मके उस विषयमें सम्मत होने पर कालीने सुनि कृष्णहैपायनका स्मरण किया। धीमान् वेदव्यास वेदकी व्याख्या कर रहे थे, कि ऐसे समयमें माताकी चिन्ता जानकर क्षण कालमें माताकी सम्मुख प्रगट हुए, दूसरा कोई कुछे जान नहीं सका। आगे धीवर की बेटीने पुत्रका विधिपूर्वक समादर कर हाथोंसे गले लगाकर स्तन दुग्धसे नहाया और वज्रकालके पीछे पुत्रको देखकर अश्रुजलसे आपभो नहा गयी। पूर्व पैदा भये पुत्र व्यास दुःखिता माता पर जल छोड़ ठण्डाकर प्रणामपूर्वक बोले, कि हे धर्मतज्ञ जाननेवाली। आपकी जैसी इच्छा है, उसकी पूरी करनेके लिये मैं आया हूँ, आप आज्ञा कीजिये, अपना मनमाना अनुष्ठान करूँगा। अनन्तर पुरोहितने आकर उन परमर्षिको यथाविधि पूजा की; उन्होंने भी मन्दसे वह पूजा ली और मन्त्रसे उपासना किये जाकर प्रसन्न हुए। आगे माता सत्यवतीने उनकी आसन पर बैठे हुए देखकर कुशल पूछ करके कहा, कि हे कवि। पितासे जो पुत्र उत्पन्न होते हैं, वे पिता माता दोनोंमें माधारण होते हैं। पुत्र पर पिताका जैसा अधि-

कार है, इसमें सन्देह नहीं है, माताका भी वैसाही अधिकार रहता है। हे ब्रह्मार्प ! देवविधानसे पैदा भये तुम मेरे जिस प्रकार प्रथम पुत्र हो, विचित्रवीर्यभी उस प्रकार मेरा कनिष्ठ पुत्र था और विचित्रवीर्य तथा भीष्म एक पिताके पुत्र होनेसे भीष्म जिस प्रकार विचित्रवीर्यके भ्राता भये है, उस प्रकार तुम और विचित्रवीर्य एक माताके गर्भसे पैदा-नेके कारण यह सुभक्तो समझ पड़ता है, कि तुमभी विचित्रवीर्यके भ्राता भये हो, आगे तुमको जैसी समझ हो। यह शान्तनुपुत्र सत्यविक्रमी भीष्म सत्य पालनेके लिये राज्य शासन, पुत्रोत्पादन करनेकी सम्मत नहीं होते, अतएव हे अनघ ! मैं जो कहती हूँ, सुनकर अपने भाई विचित्रवीर्य पर स्नेहवश हीके कुरु-वशकी रक्षा, प्रजाका पालन भीष्मकी बात, मेरा नियोग सर्वजीवों पर कृपा और अनिर्दे-यिताके लिये वह तुमकी पूरा करना चाहिये। तुम्हारे कनिष्ठ भ्राताकी देवकन्या समान रूप यौवनवती दो भाव्या है, वे धर्मानुसार पुत्रकामा हैं। ऐ बेटा ! तुम मनमाने पात्र हो, सो उन दो राणियोंसे इस कुलकी परम्पराको बनाये रखनेके योग्य पुत्रोत्पादन करो।

व्यासजी बोले, कि हे अतिबुद्धिमती सत्य-वती ! आप इसलोक और परलोक दोनों प्रकारके धर्मसे जिस प्रकार ज्ञात हैं; उस विषयमें आपका चित्तभी उसी प्रकार प्राणि-योंके हितमें है; अतएव मैं आपके नियोगके अनुसार धर्मकी स्मरणकर आपकी इच्छा पूरी कलंगा, क्योंकि ^३ जीवन्तनधर्म मेरा ज्ञात है मैं भ्राताकी सिद्धि के लिये उत्र दान कलंगा; पर अब यह मेरे पुत्र, बने परेता हूँ, कि वधूगण न्यायानुसार पुत्र नेत्रत जिये रहै; वह इन्हीके ही होगी, व्रतोंमें कोई नारी मेरे पास नहीं आसकेगी। सत्यवती बोली, कि ऐसा करो, कि जिससे देवी, राजरानियां

आजही गर्भवती होयें। राज्य राजा रहनेपर प्रजा अनाथ होकर नष्ट होगी, लोप हो जायंगी वृष्टि नहीं होगी और चले जायंगे, सो बिना राजाके राज्य की कर रक्षा हो सकती है; अतएव तुम गर्भधान करो, भीष्म उस गर्भजात वा बढ़ावेंगे। व्यासजी बोले, कि यदि विद्वत् कर अकालहीमें पुत्र देना पड़े, तो रात मेरे कुक्षपकी सहें, यही उनका परम होगा। यदि कौशल्या मेरी गन्ध, रूप, वैश्व शरीरकी सहसके, तो वह आजही गर्भ ले।

श्रीकृष्णायनजी बोले, कि व्यासजी सत्यवतीसे यह बात कहकर फिर कि राजमहिषी कौशल्या अच्छा शुद्ध पहिन करके अच्छे आभूषणोंसे सजकर मिलन की कामना करे; सत्यवती पुत्र पास जाकर निरालेमें भेंटकर धर्म और युक्त और हितजनक यह बात बोली, कि कौशल्या ! तुमसे धर्म-सम्मत जो बात कहूं, सुनी। मेरे दुर्भाग्यसे भरतवंश उखड़ है, उससे भीष्मने सुभक्तो पीड़ित देखकर पिताके वंशकी उखड़नेपर विचारकरके बटानेके लिये सुभक्तो युक्ति दी है, ऐ वह युक्ति तुम्हारे अधीन है, अतएव तुम अभीष्ट सिद्धकर उस युक्तिको सफल विनष्ट भरतवंशका फिर उद्धार करो। सुन्दरी ! देवराज समान कुमार करो; वह कुमार हमारे इस भारी राक्ष भारकी सम्भाल लेंगा। सत्यवतीने उस चारिणीकी धर्मानुसार विनय करके प्रकार सम्मत कराके देव, ऋषि, ब्राह्मण अतिथियोंकी भोजन कराया।

सम्भवधर्ममें एकसौ पांच अंश समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर वधू
 प्रख्याके योग्य समय में ऋतु-स्नान करने पर
 धती उसे भले प्रकार सजे झर विस्तर पर
 कर धीमे स्वरसे बोली, कि हे कौशल्ये ।
 पारे एक देवर है; वह आज रात्रिकी
 पारे पास आवेंगे, तुम एकामन होकर उनकी
 ताकती रहो । अम्बिका सासकी वह बात
 कर सुभ शयनमें सोकर भीष्म और दूसर
 श्रेष्ठोकी चिन्ता करने लगी । अनन्तर
 वतीके सुत सत्यवात बोलनेवाले ऋषिने
 हल अम्बिकाके लिये नियुक्त होकर दीप
 ते रहते ही घरमें प्रवेश किया । अम्बि-
 ने उन कृष्णवर्ण पुरुषकी पिङ्गल जटा, बड़ी
 दाढ़ी और जलते झर नेत्रोंकी देखकर
 खे मूढ़ लीं । हैपायनने माताका प्रिय साध-
 लिये उसके साथ सङ्गम किया; पर काशी
 की कन्या भयसे उनको देख नहीं सकती ।
 न्तर व्यासजीके घरसे निकलने पर उनकी
 ने उनने पूछा, कि क्या बेटा । इस वधूसे
 वान पुत्र जन्म लेगा ? इन्द्रियोंसे अतीत
 रखनेवाले सत्यवतीनन्दन व्यासजी माताकी
 बात सुनकर बोले, कि विधिपूर्वक जन्म
 आ, ज्ञा यह गर्भमें स्थित बालक दश
 हस्ती के समान - बलवान; बिहान
 ऋषियोंमें श्रेष्ठ, महाभाग, महा वीर्यवन्त
 अति बुद्धिमान होगा और उस
 आत्मासे सौ सन्तान उत्पन्न होंगी; पर वह
 को दीपसे अन्धा होगा । पुत्र की
 सुनकर माता बोली, कि हे तपोधन ।
 पुरुष कुरुवंशके योग्य भूप नहीं हो
 ता, अतएव जाति कुलके रक्षक पितरोंके
 धर और कुरुवंशकी राजा होसके, ऐसा एक
 उत्पन्न करना होगा । महायशो व्यास
 पर स्वीकृत होकर चले गये । आगे समय
 पर कौशल्याने, ऋषिकथित एक अन्धापुत्र
 किया । हे अरिन्दम ! देवी सत्यवतीने

पूर्ववत पुत्रवधूकी आज्ञा देकर फिर उन ऋषि-
 की बुलाया । महर्षि पूर्ववत विधिके अनुसार
 अम्बालिकाके पास आकर उपगत झर । हे
 भारत । अम्बालिका उन ऋषिकी देखकर
 पीली हो गयी । सत्यवतीके सुत व्यासजी
 उसको भीत, दुःखित और पीली देखकर बोले,
 कि इस कारण, कि तुम सुभकी विरूप देख-
 कर पीली हुई हो, तुम्हारा पुत्रभी पीला
 होगा । हे शुभानने ! वह पुत्र पीला अर्थात्
 पाण्डु नामहीसे प्रख्यात होगा । हे भगवान्
 ऋषिश्रेष्ठके यह बात कहकर घरसे निकलने
 पर सत्यवतीने उनसे सन्तानकी बात पूछी ।
 व्यासने माताको फिर पुत्रके पीला होनेका
 विषय कह सुनाया । सत्यवतीने वह सुनकर
 फिर उनसे और एक पुत्रकी प्रार्थना की;
 महर्षिने वहभी स्वीकार किया । अनन्तर
 समय आनेपर देवी अम्बालिकाने सुन्दर श्रियुक्त
 पाण्डुवर्ण एक कुमार प्रसव किया, जिनके पुत्र
 पांच पाण्डव बड़े चापधारी भये थे । अनन्तर
 बड़ी वधूका ऋतु काल आनेपर सत्यवतीने
 उसको उन ऋषिके निकट नियुक्त किया; पर
 उसने ऋषिके शरीरकी वैसी गन्ध स्पर्शकर
 देवीके वायानुरूप कर्म नहीं किया । अनन्तर
 देवकन्या सदृशी उस काशीराज पुत्रीने अप्सरा
 समान एक दासीको अपने आभूषणों से अल-
 ङ्कृत कर कृष्णहैपायनजीके निकट नियोग
 किया । आगे ऋषिके आनेपर दासी उठकर
 नमस्कार पूर्वक ऋषिकी आज्ञानुसार उनको
 उपचरित और सत्कृत कर विस्तर पर जा
 वेठी । हे राजा । व्रतशील महर्षि निरालेमें
 उससे सहवासमें कामकी भोगकर उस पर अति
 प्रसन्न झर और उठकर जानेके काल उससे
 बोले, तुम्हारा दासीपन सुक्त होगा । हे शुभे !
 तुम्हारे गर्भमें स्थित सन्तान धर्मात्मा मङ्गल
 भोजन और बुद्धिमान जनोमें सर्वसे श्रेष्ठ होगी ।
 महाराज ! श्रीकृष्णहैपायनजी के वीर्य अ

उसके गर्भसे धृतराष्ट्र और महात्मा पाण्डुके भाई विदुरने जन्म लिया । अर्थ तब जाननेवाले और जितेन्द्रिय श्रीकृष्णदेवायनजीने माताके निकट आकर महात्मा माण्डव्यके शापसे धर्मका विदुरके स्वरूपमें जन्म और अपने सामने दासीका नियोग, और उससे पुत्रके स्वरूपमें धर्मका जन्म यह सब कह सुनाये । अनन्तर वह उस गर्भकी कथा माताके निकट कहकर धर्मानुसार ऋणसे कुटकारा कृपाकर उस स्थानही में अन्तर्हित हुए । हे भूप । श्रीदेवायनजी के वीर्य और विचित्रवीर्यके चैत्रमे कुरुकुलके बढ़ानेवाले देवकुमार समान कुमारों ने इस प्रकार जन्म लिया था ।

सम्भवपर्वमें एक सौ छः अध्याय समाप्त ।

—

जन्मेजय वीले, कि धर्मने कौनसा वस्त्र किया था, कि उस कारण शापसे ग्रसित हुए और कि न ब्रह्मर्षिके शापसे शूद्र योनिमें जन्म लिया ?

श्रीवैशम्पायनजी वीले, कि माण्डव्य नामसे प्रसिद्ध सर्व धर्मज्ञ धृतिमान् सत्यनिष्ठ और तपमें निर्युक्त एक महातपा महायोगी ब्राह्मण एक समय आश्रमके द्वारपर स्थित वृक्षकी जड़में ऊर्ध्वबाहु और मौनी होकर वृद्ध दिनोंसे तप कर रहे थे, कि ऐसे समयमें एकदिन लुटेरे लूटी हुई वस्तुओंको लेकर उनके उस आश्रममें आये । हे भरतवंशश्रेष्ठ । उनके पीछे रखवारे आ रहे थे ; सो वे भय खाकर रखवारोंके आते न आते उस आश्रममें लूटे हुए धनको छिपाकर आपभी वहीं रहे । अनन्तर चोरों की पकियाते हुए पैदल रखवारे उसीक्षण उस स्थानमें आपहुँचे । हे राजन् । उन्होंने उस दशमें तपस्वी उस ऋषिको देखकर पूछा, कि हे दिगंबर ! लुटेरे किस पथसे गये ? हे ब्राह्मण ! कह दीजिये, हम शीघ्र उस पथमें जायेंगे । हे राजन् ! रखवारोंके उस प्रकार

पूछनेपर तपोधन माण्डव्यने भली सुन नहीं कही । अनन्तर राजपुरुषोंने सब ममें दंडते हुए चुराये हुए पदार्थोंके चोरोंको पाया । आगे उन मुनिपर रोंका सन्देह होनेपर उन्होंने लुटेरों से मुनिकी बांधकर राजाके पास दे दिया । उन्होंने लुटेरोंके साथ मुनिकीभी मारनेकी आज्ञा दी । रखवारोंने महातपा माण्डव्यको जानकर शूलीपर चढ़ा दिया ; अनन्तर लूटे हुए वस्तुओंको लेकर राजाके यहां आये । धर्मात्मा विप्रर्षि वृद्धकाल शूलीपर चढ़े और विना भोजन रहने परभी मृत्युके न गिरे । वह तपके बलसे जीवित रहे, ऋषियोंकी अपने पास बुलवाया । हे भरतपोवलयुक्त मुनिलोग रात्रिकी पक्षियोंका लेकर उनके पास आकरके उन से शूलीके ऊपर तपमें सन्न देखकर, आते दुःखी और उन्होंने निज निज रूप लेकर विज्ञेय पूछा, कि हे ब्रह्मन् ! हम सुना चाहते कि तुमने कौन सा पाप किया है, कि शूलीका भारी दुःख और भय पड़ता है ।

सम्भवपर्वमें एकसौ सात अध्याय समाप्त ।

—

श्रीवैशम्पायनजी वीले, कि अनन्तर शार्ङ्गल माण्डव्यने उन तपोधनोंसे कहा, मैं किसकी दीप लगाऊँ, कोई और मनुष्य विषयमें दोषी नहीं है । हे नराधिप ! दिनोंके पीछे रखवारोंने उनकी उस देखकर राजासे सब हाल कह सुनाया । सुनकर भूपाल तब मन्त्रियोंसे युक्ति कर उस शूलीपर स्थित ऋषिकी प्रसन्नता लिये विनयके साथ कहने लगे, कि मोहवश अज्ञानतासे आपकी हानि है, अब आपकी प्रसन्नताके लिये प्रार्थना है, आप मुझपर क्रोधित न हों ।

सो बात सुनकर सुनि प्रसन्न हुए । भूपाल
को प्रसन्न देखकर शूलीके खम्भेसे उतार-
र उससे निकालने लगे, पर उससे मनोरथ
फल नहीं हो सका, आगे देहके भीतर घुसी
शूलीको जड़ काट डाली । तब सुनि
नर घुसी हुई शूलीको ले कारकेही कठोर
स्था करने लगे ; उससे औरोंके लिये दुर्लभ
श्लोकको जीत लिया । वह अणी अर्थात्
नीके अगले भागको लिये रहनेके कारण
एक तल्ल ब्राह्मण अणि माण्डव्य एक समय
मैके पास गये । धर्मकी वहां बैठे देखकर
अणि-माण्डव्य उनको लाञ्छन कर बोले,
मैंने अज्ञानतासे कौनसा कुकर्म किया
कि जिससे ऐसा फल पाया ? इसका गूढ़
तब मुझसे शीघ्र कहो और मेरी तपस्याका
भाव देखो । धर्म बोले, कि तुमने एक दिन
अग्नि की पूछमें इपीका अर्थात् तिनका घुसाया
है तपोधन ! तुमने उस कर्मका यह
फल प्राप्त किया है । अणि-माण्डव्य बोले,
है धर्म । मेरी बाजावस्थामें किये हुए
दोषसे दोषका तुमने ऐसा कठोर दण्ड दिया
इस हेतु तुम मनुष्य होकर शूद्र योनिमें
जन्म लोगे । आजसे मैं कर्मके फल भोगनेके
प्रयत्नमें लोकोमें यह नियम स्थापन करता हूं,
जब तक चौदह वर्षकी आयु पूरी न होवे
तक पाप करनेसे भी पाप नहीं होगा ।
चौदह वर्षके पीछे पापकर्म करनेसे उसके
फलकी प्राप्ति होगी ।
श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि इस दोषके हेतु
हात्मा अणि माण्डव्यके शापसे धर्मने विदु-
स्वतुषमें शूद्रयोनिमें जन्म लिया था ; पर
धर्म और अर्थके विषयमें पण्डित क्रोध और
रणाभदर्शी होकर कुरुवंशके हित साधनेमें
उत्साही थे ।
सम्भवपर्वमें एकसौ आठ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर उन
तीन कुमारोंके जन्म लेने पर कौरवगण, कुरु-
जाङ्गल देश और कुरुक्षेत्र इन तीनोंकी पूरी
उन्नति हुई । तब भूमिमें वृद्धत शस्य उपजने
लगे, शस्य रसयुक्त हुए, बादलोंके उचित सम-
यमें वृष्टि करनेसे वृक्षोंके अपरिमित फल और
फूल होने लगे । उनदिनों सब वाहन प्रसन्न,
मृग पक्षी प्रभुदित, माला गन्धयुक्त और फल
अर्क्षे रसयुक्त होते थे । तब नगर, वाणिज्य,
और शिल्प पर जीनेवालेसे भरा पूरा था ; और
शूरलोग, विज्ञानलोग और साधुगण सुखी होने
लगे । उस समयमें कोई लुटेरा वा अवर्मा-
शील न था, सो राज्यके सब प्रदेशोंमें मानी
सत्ययुग प्रवृत्त हुआ । प्रजा धर्मशील, याग-
शील, सत्यशील, और आपसमें प्रेमशील होकर
विशेष रूपसे बढ़ने लगे । सम्पूर्ण जन क्रोध
लोभ और अभिमानवर्जित होकर धर्मानु-
सारही परस्पर आनन्द मानने लगे । उस
कालमें वह नगर बड़े भारी समुद्रके समान
भरा सैकड़ों बड़े बड़े भवनोंसे पूरा और बादल
दलके सदृश द्वार और तीरणोंसे संयुक्त होकर
अमरावती कीसी अपूर्व शोभा पाने लगा ।
मानवगण नदो, वन, तड़ाग, सरोवर, रमणीय
फुलवाड़ी और पर्वतोंकी समभूमि पर प्रसन्न
चित्तसे विहार करने लगे । दक्षिण कुरुलोग
उत्तर कुरुओंसे एक दूसरेको अहङ्कार दिखा
कर सिद्ध ऋषि और चारणोंके साथ विचरने
लगे । कुरुओंसे बड़े हुए उस सुन्दर जनपदमें
कोई कृपण नहीं था और कोई नारी विधवा
नहीं होती थी । कूप, उपवन, तड़ाग, सभा
और ब्राह्मणोंकी वस्ती सर्व सम्पदयुक्त हुई,
और सब स्थानोंमें सदा उत्सव होने लगे ।
वह राज्य भोष्मसे धर्मानुसार इस प्रकार
रक्षित हुआ, कि अनेक देशोंके यज्ञयूपोंसे
चित्रत होकर अति रमणीय बन गया ; भोष्म
के विधानसे उस राज्यमें धर्मचक्र ऐसा प्रवर्तित

ज्ञा, कि वहतेरे दूसरे राज्योंकी कीड़कर उस राज्यमें बसने लगे। महात्मा कुरु-कुमारोंसे किये जाते हुए कार्योंकी देखकर जनपद और पुरवामी सब नति उत्साहयुक्त हुए। हे नराधिप ! प्रधान कौरवों और पुरवासियोंके धरेमें “खाओ, पीओ” यह बात सदा सुनाई देने लगी।

धृतराष्ट्र, पाण्डु और महाभारति विदुर जन्म-हीसे भीष्मसे पुत्रकी भांति प्रतिपालित, जातिके योग्य संस्कारोंसे संस्कृत, व्रत तथा पठन में नियुक्त, और अस्त्र तथा व्यायाममें पण्डित होकर उचित समयमें यौवनदशाकी प्राप्ति हुए। वे धनुर्विदमें, वेदमें, गदा-युद्धमें, खड्ग-चर्म चला नेमें, गजशिखामें और नीति शास्त्रमें दक्ष हुए। वे वेद वेदाङ्गके तत्त्वज्ञ होकर इतिहास, पुराण और दूसरे नाना विषयोंकी शिक्षा आदि सब विषयोंमें पण्डित हुए थे। विक्रमी पाण्डु धनुर्विद्या और महीपति धृतराष्ट्र पराक्रममें सबोंसे श्रेष्ठ भये। हे राजा ! तीनोंलोकोंमें विदुरके स्मान धर्मशील, और धर्म विषयमें परम तत्त्वज्ञ कोई दूसरा नहीं था। उस कालमें राजा शान्तनुके नष्ट होते हुए वंशकी फिर जगते देखकर सम्पूर्ण राज्योंमें ऐसी प्रशंसा की बात उड़ने लगी, कि वीर प्रसविनी, स्त्रियोंमें दोनों काशीराजकी बेटियां, देशोंमें कुरुजाइल, सर्व धर्मज्ञ जनोंमें भीष्म और नगरोंमें हस्तिनापुर श्रेष्ठ है। धृतराष्ट्रकी जन्मानु-हीने और विदुरकी शूराणीकी गर्भमें जन्म लेनेके हेतु राज्यकी प्राप्ति नहीं हुई, सो पाण्डु ही राज्याधिप हुए। अनन्तर एक समय नीति-शास्त्रमें पण्डित गङ्गानन्दन-धर्मतत्त्वज्ञ विदुरकी यद्योचित यह बात बोली।

सम्भवपूर्वमें एक सौ नौ अध्याय समाप्त।

भीष्मजी बोले, कि हमारा यह सर्वगुण-ता और सर्वत्र प्रख्यात कुरुकुल पृथ्वी भरमें

दूसरे सब पृथ्वीपालोंपर अधिकार फैला है। इस विषयमें, कि धर्मशील, राजाओंके द्वारा पहिलेमें रचित इस कभी उखड़नेकी दशा न होवे, मैं, और महात्मा कृष्णदेवायनके प्रयत्नसे तुम्हारे कुलतत्त्व उत्पन्न हुए हैं। अब तुम पर कुल स्थापित हुआ है, सो तुम्हारी मेरी ऐसी चेष्टा होनी चाहिये कि, यज्ञ-सागर सृष्टि बढ़े। सुन चुका हूं, कि कुरु-शरसेनकी कन्या, सुबल, राजपुत्री और देशाधिपकी बेटी, यह तीन कन्या हमारे योग्य हैं। हे पुत्र ! क्षत्राणियोंमें ये कन्यायें कुलीन, रूपवती और हर हमारे माय सम्बन्धके योग्य हैं; हे विदुर ! मैं अभिमान हूं, कि इस वंशकी नके निमित्त उन्हींसे विवाह करना उचित अथवा तुम्हारी समझमें जो अच्छा होवे, विदुर बोले, कि आप हमारे पिता हैं, हमारी माता हैं और आपही हमारे गुरु हैं, अतएव आपही स्वयं विचारकर इस वंशका सङ्गलदायी होवे, वही कीजिए। श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि कुरुभीष्मने ब्राह्मणोंके मुखसे सुना, कि लक्षणयुक्त सुबलपुत्री गान्धारीने देवताके नेत्रहारी वरदायी महादेवकी धना कर सौ पुत्र पानेका वरलाभ किया है भारत। अनन्तर भीष्मने गान्धारी निकट दूत भेजा। धृतराष्ट्र अश्वमेध गान्धारराजने बहते विचार किया। उन्होंने कौरवोंके कुल, प्रसिद्धि और की भले प्रकार आज्ञाचना करके गान्धारी नाम्नी कन्या दान करनी किया। हे भारत। अनन्तर गान्धारीने कि धृतराष्ट्र अश्वमेध है और उस अश्वमेध विवाह होगा। तब उन्होंने पतिव्रता हेतु दस्त्र लेकर कई फीरा लगा करके

तोंकी बांधा, क्योंकि उन्होंने यह निश्चय किया
 कि मैं पतिसे डाह न करूँगी । अनन्तर
 ताम्बारराजकुमार शकुनिने रूप यौवनवती
 परम सुकृता भगिनीकी लेकर कौरवोंके निकट
 जा करके धृतराष्ट्रको सम्प्रदान किया, तब
 भीष्मके मतानुसार दोनोंका विवाह कर
 दिया गया । वीर शकुनि धृतराष्ट्रको यथो-
 चित वस्त्रादि देकर वहिनकी सम्प्रदान करके
 भीष्मसे भले प्रकार आदर सत्कार पाकर निज
 नगर की पधारा । हे भरतवंश तिलक !
 सुन्दरी गान्धारी शीलता, सदाचार और यत्नसे
 सम्पूर्ण कौरवोंका सन्तोष उपजाने लगी । सुव्रत
 गाली गान्धारी सुन्दर व्यवहारसे गुरुओंकी
 सेवा किया करती थी, वाक्यसेभी कभी अन्य
 पुरुषका नाम नहीं लेती थी ।

सम्भव पर्वमें एकसौ दश अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि शूरनामक यदु-
 कुलमें अष्ट एक महात्मा वसुदेवके पिता थे ।
 उनको पृथा नाम्नी एक कन्या थी । वह
 कन्या ऐसी रूपवती थी ; कि भूमण्डलमें कोई
 नारि उनके रूपकी बराबरी नहीं कर सकती
 थी । हे भारत ! सत्यवादी शूरने कृपाकाँची
 निःसन्तान पित्रस्वस्तीय प्रिय मित्र महात्मा
 कुन्तीभोजराजसे पहिले स्वीकार किया था,
 कि अपनी पहिली सन्तान तुमको दे दूँगा ;
 उस स्वीकारके अनुसार प्रथम गर्भसे जन्मी हुई
 उस कन्याको दे दिया । पृथा उस पिताके
 घरमें ब्राह्मणोंकी सेवा और अतिथियों के
 सत्कारमें नियत रहती थी, एक समय उसने
 जितेन्द्रिय व्रतशील उग्रस्वभावी और धर्मके
 गूढ़ तत्त्वोंके जाननेवाले ब्राह्मण दुर्व्यासाको सर्व
 प्रयत्नसे सेवा कर प्रसन्न किया ! उस मुनिने
 भविष्यत्में सन्तान आपद्दर्शकी बात सोचकर
 उसको अभिचारयुक्त मन्त्र दिया और बोले,
 कि तुम इसमन्त्रसे जिन जिन देवताओंको बुला-

ओगी उन उन देवताके प्रभावसे तुम्हारे पुत्र
 उत्पन्न होगा । यशस्विनी बाला पृथाने
 दुर्व्यासा की यह बात सुन करके अचरज मान-
 कर कन्यावस्थाहीमें सूर्यदेवको बुलाया ।
 आगे उस अनिन्दित अङ्गवालीने लोकभावन
 आदित्य की आते देखकर महत् आश्चर्य दिख-
 करके विस्मय माना । सूर्यदेव उसके पास
 आकरके बोले, कि री असिताङ्गि । मैं यह
 आया हूँ, कहो, तुम्हारा क्या प्रियकार्य करना
 होगा ; पृथा बोली, कि हे शत्रुनाशी विभी !
 किसी ब्राह्मणने मुझको विद्या और वर दिया
 है, उसकी परीक्षाके लिये आपको बुलाया है ।
 मैं इस अपराधके लिये सिर नायकर आपको
 प्रसन्न करती हूँ ; नारी यद्यपि बहूत अपराध
 भी करे, तथापि उसकी रक्षा करना चाहिये ।
 सूर्य बोले, कि मैं यह सब जानना हूँ, कि
 मुनि दुर्व्यासाने तुमको वर दिया है, अब तुम
 भय त्यागकर मुझसे संगम करो । री शुभे !
 मेरा दर्शन अवश्य है, री भीरु ! तुमने जिस
 कारण मुझको बुलाया, यदि वह व्यर्थ हो, तो
 इसमें सन्देह नहीं, कि हानि होगी ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भारत ! सूर्य
 इस प्रकार अनेक बातोंसे समझाने बुझाने लगे,
 पर सुन्दरी यशस्विनी कुन्तीने कन्यावस्थामें
 रहनेके कारण बन्धुओंके भय और लज्जासे
 अपनी सम्मति नहीं दी । हे भरतर्षभ !
 दिवाकरने फिर उससे कहा, कि री राज्ञी !
 मेरी कृपासे तुम कोई दोषयुक्ता न होओगी ।
 प्रकाशनाथ भगवान आदित्य कुन्तीराजकी
 कन्यासे यह कहकर उससे जा मिले । इससे
 सर्वशस्त्रधारियोंमें प्रधान, देववत् श्रीमातृ जन्म-
 के साथ कवच-कुण्डलोंसे सर्वलोकोंमें प्रशंसा-
 वार्कण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । अन-
 न्तर परम व्युत्तिमान आदित्य फिर उसको
 कन्यावस्था देकर आकाशको गये ।

यादव-कन्या जन्मे हुए कुमारको देखकर

दीनचित्तसे सोचने लगी, कि अब कौन उपाय करना चाहिये । क्या करूँ, तो मङ्गल होवे । अनन्तर उसने उस बुरी लीलाको कृपानेके लिये महाबली कुमारको जलमें बहा दिया । अति यशवन्त स्रुतगुत्र राधापतिने जलमें डाले हुए बालक को उठाकर स्त्रीके साथ पुत्रका प्रतिनिधि बनाया । उस बालकने वसु अर्थात् कुण्डल और कवचरूपी धनके साथ जन्म लिया था, इससे राधापति और उसकी स्त्रीने उस बालकका वसुपेण यह नाम रखा । बली और प्रभावी वह बालक ज्यों ज्यों बढ़ने लगा त्यों त्यों अस्त्र विद्याओंमें भी दक्ष होने लगा । जबतक पीठपर्यन्त तापयुक्त नहीं होता था, तबतक वह सूर्यकी उपासना करते थे ; उपासना करनेके कालमें धोमान वसुपेणके पास भूमण्डलमें ऐसा कोई अर्थ नहीं था, जो वह ब्राह्मणोंको नहीं देते थे, । एक समय देवराज इन्द्रने अर्जुनके हित साधनेके निमित्त ब्राह्मणका वेष लेकर भिक्षार्थी होकरके उनके निकट आकर कवच पानेकी प्रार्थना की, उसपर कर्णने करजोड़कर निज शरीरसे स्वभावहीसे मिले हुए कवचकी काटकर ब्राह्मण रूपी इन्द्रको दे दिया । सुरनाथ इन्द्रने कवच लेकर कर्णके इस प्रकार कार्यसे प्रसन्न होकर उनकी एक पुरुष नष्ट करनेवाला शक्तिअस्त्र दे दिया और कहा, कि देव, असुर, मनुष्य, गन्धर्व, उरग और राक्षस इनमेंसे चाहे जिस एकको तुम जय करना चाहोगे, इस शक्तिसे वह नष्ट होगा । सूर्य पुत्र पहिले वसुपेण नामसे धरतीमें प्रसिद्ध थे, अब कवच काटनेसे कर्ण नामसे प्रख्यात हुए ।

सम्भवर्षमें एकसौ ग्यारह अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोलि, कि कुन्तिभोजकी कन्या प्रसस्त नेत्रवाली पृथा सत्त्वगुणयुक्त ब्रतशील और धर्मप्रेमी थी ; पर ऐसी रूपयौवन-

वती, तत्रस्त्रिणी और अक्ल अक्ल स्त्रीकी भरी हुई कन्याको किसी राजाने प्रार्थना की थी । हे राजश्रेष्ठ ! इस हेतु पिता राजकुन्तिभोजने राजाओंको बुलवाकर कन्या स्वयम्बरमें निधुक्त किया । मनस्विनी पर उन सब भूपालोंके मध्य रङ्गभूमिमें भरतश्रेष्ठ राजसिंह पाण्डुको देखा । राजकुन्ति स्थित दूसरे देवराजके समान सिंह दृष्ट कर बैलकी भांति नेत्रवाले महामति, महाशक्ति और आदिशक्ति नाई सब राजाओंकी दृष्टिपनेवाले नरश्रेष्ठ पाण्डुको देखकर अर्निद अन्नवाली शुभलक्षणभरी कुन्ती बड़ी कि हुई ; अनन्तर उसने एकही बार कामसे कि अङ्गयुक्त और चञ्चलचित्त होकरके लज्जा साथ राजा पाण्डुके गलेमें माला देती कुन्तीको पाण्डुको माला देते देखकर भूपाल हस्ती, घोड़े और रथों पर चढ़कर जिस प्रकार आये थे, वैसेही निज निज स्थानोंकी पक्षा हे राजर् ! अनन्तर कन्याके पिताने यथा उनका विवाह कर दिया । देवराज के प्रकार शचीके साथ मिले हैं, उनके सम अतुल सौभाग्ययुक्त कुसनन्दन कुन्तीभोज कन्यासे मिले । हे राजश्रेष्ठ ! कुसुम महीपाल कुन्तीभोजने कुन्तीका विवाह दासादकी अनेक धनोंसे पूजकर वेटीकी जग पुरमें भेज दिया । अन्तर राजा कौरव पाण्डु महर्षि और ब्राह्मणोंके अशीससे युक्त किये जाकर नाना प्रकार ध्वजासंयुक्त सेनाओंके सहित निज नगरमें उपस्थित हुए । अनन्तर प्रभु पाण्डुने स्त्री कुन्तिकी गृहमें रखा ।

सम्भवर्षमें एक सौ बारह अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोलि, कि अनन्तर शाकुनि पुत्र मतिमान भीष्मने यशवन्त भूपाल पाण्डु और एक विवाह करना निश्चय किया, वह

नितियों, ब्राह्मणों, महर्षियों और चतुरङ्गी
नाओंके साथ मद्रेश्वरके नगरको गये।
हीकोंमें अष्ट मद्रपति भीष्मके आनेकी
त सुनकर आगे बढ़कर यथाविधि उनकी
ताकर निजपुरमें लिवाय लाये, और पाय
र्व, मधुपर्क और शुक्ल आसन देकर आनेका
रण पूछा। कुरुवंशके प्रधान भीष्म उनसे
ले, कि हे अरिन्दम ! मैं कन्याके लिये आया
। सुन चुका हूँ, कि साध्वी यशस्विनी
द्री नानी आपकी बहिन है, मैं पाण्डुके
ये उसको मांगता हूँ। हे राजन् विवाहके
स्वयमें आप हमारे योग्य पात्र हैं। हे मद्रे-
श्वर। इस विषयमें सीच विचारकर आप हम-
ो यथाविधि सम्बन्धीको भांति समझिये। भीष्म
ो यह बात सुन मद्रपति बोले, कि हे कौरव !
समझता हूँ, कि हमारे लिये आपसे अच्छे
त कोई दूसरे नहीं है, पर हमारे वशमें
हेले के भूपोंने शुल्क लेनेका जो एक नियम
तया है, वह भला होवे वा बुरा, मैं उसके
रुद्धकार्य करने का साहसी नहीं हो सकता ;
ह नियम प्रकाशही है, सो सन्देह नहीं, कि
त आपभी उससे ज्ञात है, अतएव हे वीर।
नन्दन करो' यह बात कहना आपके योग्य नहीं
है। हे शत्रुनाशी। शुल्क लेना हमारा
लक्ष्य है, और वही परम प्रमाण है, सो मैं
पूछना सझीच आपसे यह बात नहीं कह
र कहता हूँ।

जनाधिप भीष्मने तब मद्रराजसे कहा,
नन्दन हे राजन्। स्वयं ब्रह्माजीने भी इसको
परमधर्म कहा है। पूर्वके पुरुष इस विधिके
ली अनुसार चलते थे, सो यह दीपयुक्त नहीं है।
शल्य। यहभी ज्ञात है, कि यह मथ्यादा
शुक्लपुत्रोंकी सम्मतियुक्त है। महातेजस्वी
नन्दनने यह बात कहकर सहस्रों वना-
कि अश्वपथो विन वना अपरिमित सुवर्ण, विचित्र रत्न
ज, रथ, अश्व, वस्त्र, आभूषण अच्छे मणि,

सोती और लाल शल्यकी दिये। शल्यने यह
सब धन लेकर प्रसन्नचित्तसे कौरवश्रेष्ठ भीष्म-
को नाना अलङ्कारोंसे सजी हुई कन्या दान की।
धीमान् गङ्गापुत्र भीष्म माद्रीकी लेकर हस्ति-
नापुरको लौट कर पुरमें प्रविष्ट हुए।

अनन्तर नराधिप पाण्डुने साधुओंकी
सम्मतियुक्त शुभ दिनमें, शुभलग्नमें, विधिपूर्वक
माद्रीसे विवाह किया। आगे विवाहके
निर्वाह हो जाने पर कुरुनन्दनने नयी-व्याही
स्त्रीके रहनेके लिये एक सुन्दर घर निर्दिष्ट कर
दिया। राजश्रेष्ठपाण्डु कुन्ती और माद्रीके
साथ मनमाने सुखसे बसने लगे। हे प्रभो।
राजा पाण्डुने स्त्रीसे तीस रात्रि विचार करके
धरतीके जय करनेके लिये यात्रा की। पृथ्वीके
जवेच्छक राजा पाण्डु भीष्मादि बड़ोंकी, दृढ-
राष्ट्रकी और कुरुओंमें दूसरे अष्ट जनोंकी
प्रणाम नमस्कार और निमंत्रण करके उनकी
आज्ञा लेकर मङ्गलाचारयुक्त अशोस सुनते
हुए हाथी, घोड़े और रथोंसे भरी हुई बड़ी
भारी सेनाके साथ चले। वह प्रसन्न और पुष्ट
सेनाओंके सङ्ग शत्रुमण्डलीकी खोजके लिये
निकले। कौरवोंके यश बढ़ानेवाले नरोंमें
सिंहरूपी पाण्डुके पहिलेही दोषी दशार्ण
देशके राजाओंको लड़ाईमें परास्त किया।
अनन्तर रङ्गविरङ्ग भाण्डोंके साथ अगणित
हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंसे बनी हुई
सेनाओंकी लेकर अनेक राजाओंको हानि पहुँचाये
हुए, बल तथा अहङ्कारसे गर्वित मगधके
दीर्घनामक राजाकी राजमन्दिरहीमें बध
किया। वहांसे कोष और बद्धत वाहन
लूटकर मिथिलामें जाकरके विदेह नगरको
परास्त किया। हे भरत श्रेष्ठ। अनन्तर
उन्होंने काशी, सुत्त और पुण्ड्रदेशमें जाकर
निज भुजवीर्यसे कौरव वंशका यश फैलाया।
तब वाणरूपी समूह शिखासे सुशोभित और
शस्त्ररूपी तेजसे प्रज्जलित शत्रुनाशी पा

अग्निसे भृपाललोग जल कर भरनेलगे । गेना सहित पाण्डुने सेनासहित नरेशोंके बलको तोड़ कर और वशमें लाकर अपने काममें नियुक्त किया ।

धरती परके सब भूपोंने पाण्डुसे परास्त होकर मानवीमें उनकी ऐसा वीर समझा, कि जैसे देवोंमें इन्द्र हैं, और सब कर जोड़ उनकी प्रणाम कर नानाअस्त्र मणि, सुता, प्रवाल, सुवर्ण चंदी गौ, घाड़े, हाथी, गदहें, ऊंट, भैंसे, बकरे, भेड़ कम्बल, मृगचर्म, और रंकुमृगके बने चंदवे इत्यादि नाना धन भेंट लेकर उनके सामने खड़े हुए । हस्तिनापुरके नाथ पाण्डुने उनस-
वोंकीले लिया । अनन्तर वह अति प्रसन्न सेनाओंके साथ निज राज्यकी प्रजा और पुर-
वासियों को आनन्द देनेके लिये हस्तिना-
पुरमें लौट गये । तब राजा और मन्त्रिगण पुरवासी और ग्राम वासियोंसे मिलकर प्रसन्न चित्तसे आपसमें यह करने लगे, कि धीमात् भरत और राजाओंमें सिंहरूपी शान्तनुकी कीर्ति बिगड़नेपर हुई थी, पर अब पाण्डुने फिर उसका उद्धार किया । जिन राजाओंका धन और राज्य हर लिया गया था, अब नागपुरनाथ पाण्डुने उनको कर देनेवाले बनाये ।

आगे पाण्डुके निकट आनेपर भीष्म आदि कौरव हृदयसे उनको लौटा लानेको चले । वे हस्तिनापुरसे कुछ दूर जाकर राजाके साथियोंको बहुत धनसे भरा पूरा देखकर प्रसन्न हुए ; नाना यानों पर लाये हुए बड़े बड़े हाथी घोड़े, रथ, ऊंट, भेड़ आदि नाना धन रत्न इतने अधिक आरहे थे, कि उन्होंने उनका अन्त नहीं देखा ; कौशल्याके आनन्द बढ़ाने-
वाले पाण्डुने चचा भीष्मके पांव छूकर नगर तथा जनपदवासियोंका भी यथोचित सम्मान किया । भीष्म शत्रुपुरजयकारी मनोरथ सफल घरकी लौटे हुए भतीजे पाण्डुको गलेसे लगा-
कर आनन्दसे आसू वर्षाने लगे । पाण्डुने

अनेक तृथ्य और भाँपू आदिके घोर सम्पूर्ण पुरवामियोंकी प्रमत्त कर प्रथम किया ।

सम्भवपर्वमें एकसी तरह अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर धर्म पाण्डुने धृतराष्ट्रकी आज्ञा लेकर अपने पुत्र बलसे लाभ किये हुए धनको भीष्म, कौरव और माता कौशल्याको भेंट दी और विदुरके पास भेजा । उन्होंने आत्मनो धनसे सन्तुष्ट किया । हे भारत ! भीष्म पाण्डुके जीते लाये हुए नाना रत्नोंसे कौरव और यशस्विनी कौशल्याको प्रसन्न किया शची जिसप्रकार जयन्तकी गलेसे लक्ष्मी सुखको प्राप्त करती है, वैसेही पाण्डु अतुल तेजस्वी नरचक्ष पाण्डुको गले लगा कर के आनन्द पाया । धृतराष्ट्र, वीरवर पाण्डु बलार्जित इतने अधिक धनसे परमहर्ष किया करते थे, कि उस धनसे सैकड़ों गुणा अधिक दक्षिणा युक्त सैकड़ों यज्ञ हो सकते थे । हे भरतकुलप्रदीप ! लक्ष्मी पाण्डु, कुन्ती और माद्रीके साथ होकर वनमें जा वसे ! वह सुखदायी और कोमल विस्तर छोड़के वनमें सदा खेलने लगे । वह हिमालय के मनमोहन दहिने छोरमें धूमधाम बड़े बड़े साल वनोंसे सोहते हुए पीठ पर वसने लगे । श्रीमान पाण्डु, कुन्ती और माद्रीके संग वनमें वसते हुए दो स्त्रियोंके बीचमें ऐरावतके समान शोभा लगे । दो स्त्रियां साथ लिये खड्ग वाण चाप धरे हुए, परमास्त्र चलानेमें दक्ष, विविध कवचसे सुशोभित, विचरते हुए पाण्डुको वनवासी लोग देवता समझने लगे । धृतराष्ट्र की आज्ञासे मनुष्यगण सदा आनन्द

इत होकर वनमें उनके लिये कामना और उनकी सामग्री पड़वाने लगे ।

इधर गङ्गापुत्र भीष्मने सुना, कि महीपाल उनके शूद्राणीके गर्भसे जन्मी हुई स्त्री और नयुक्त एक कन्या है । अनन्तर उन्होंने देवकसे मांगकर वह कन्या ला करके कामति विदुरका विवाह कर दिया । कुरु-विदुर ने उस स्त्रियके वीर्य और शूद्रा-के गर्भसे जन्मी हुई कन्यासे अपने ज्ञान गुण और नम्रतायुक्त अनेक पुत्रोंकी प्राप्ति दिया ।

अवपर्वमें एक सौ चौदह अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे जनमेजय । अनन्तर धृतराष्ट्रके वीर्य गांधारीके गर्भसे सौ और वैश्या के गर्भसे एक पुत्रने जन्म लिया । पाण्डुके वंशकी रक्षाके लिये देवोंने कुन्ती के माद्रीके गर्भसे महारथी पांच पुत्र उत्पन्न किये ।

जनमेजयने पूछा, कि हे द्विजश्रेष्ठ । गांधारीके गर्भसे क्योंकर और कितने दिनोंमें सौ उत्पन्न हुए उनकी आयु कितनी थी ? पाण्डुने वैश्याके गर्भसे क्योंकर एक पुत्रकी प्राप्ति दी ? धृतराष्ट्र अपनी प्यारी स्त्री गांधारीके साथ व्यवहार कियो करते थे ? महात्मा कृपा सुनिके शाप देनेपर क्योंकर पाण्डुके महारथी पुत्र उत्पन्न हुए ? हे विद्वान् धृतराष्ट्रपोधन् । यह सब कथा विस्ततरूपसे कहीये, कुलका चरित्र सुनकर मैं नहीं हँसूँ ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि एक समय भगवान् हेपायनके भूख और थकावटसे कातर होकर गांधारीके पास आ पहुँचनेपर गांधारीको सन्तुष्ट किया था, उससे व्यासने गांधारीकी प्रार्थनाके अनुसार यह वर दिया, तुम्हें पतिके समान वीर्यवान् सौ पुत्र पैदा

होंगे । अनन्तर गांधारी योग्य कालमें धृतराष्ट्रसे गर्भवती हुई । गर्भहोनेके पीछे दो वर्ष बीते पर तौभी सन्तान नहीं हुई, इससे वह बड़ी दुःखी होने लगी, आगे यह सुन कर, कि कुन्तीके बाल स्त्र्यके समान पुत्र भये हैं, अपने गर्भको स्थिर देख चिन्तायुक्त होकर अति मनः पीड़ासे धृतराष्ट्रके जाननेमें बड़े यत्नपूर्वक अपने पेटमें आघात किया, उससे दो वर्षका वह गर्भ कटी हुई लोहेकी गेंदके समान मांसपेशी स्वरूपमें भूमिपर गिरा । गांधारीके उसे त्यागनेपर होतेही जापकोमें श्रेष्ठ हैपायनने उस बातसे ज्ञात होकर तुरन्त वहाँ पहुँच करके उस मांसपेशीको देखा ; अनन्तर सुवलकन्या से बोले, कि तुम यह क्या करनेकी उद्यत हुई हो । गांधारीने महार्पसे अपनी यह सच्ची इच्छा प्रगटकर, कि कुन्तीके स्त्र्यके समान प्रकाशमान पुत्र उत्पन्न हुए सुनकर अति दुःखसे मैने पेटमें चीट मारी है । आपने पहिले सुभको वर दिया था, कि सौ पुत्र उत्पन्न होंगे, अब सौ पुत्रोंके बदले यह मांसपेशी पैदा हुई है । व्यासजी बोले, कि हे सुवलपुत्री । जो कहा था, सोही होगा, कदापि बात नहीं पलटेगी, हँसीमेंभी मैने कभी झूठी बात नहीं कही है, फिर क्यों वह बात उलट जायगी ? अब धृतराष्ट्रसे सौ घड़े भरकर निरालीमें यत्नसे रखी और ठण्डे जलसे इस मांसपेशीको नहलाओ ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे नरेश ! अनन्तर नहलाते नहलाते वह मांसपेशी बहुत भागोंमें बट गयी । काल पूर्ण होनेपर उनकी संख्या सौ हुई, और प्रत्येक भाग अंगूठेके पीरके समान हुआ । अनन्तर वह सब मांसपेशी धृतराष्ट्रके घड़ोंमें रक्षित होकर भले अच्छे गुप्त स्थानमें भली भांति रखी जाने लगीं । भगवान् व्यास तब सुवलकन्यासे बोले, कि इतने समयमें अर्थात् दीर्घ पीछे यह सब घड़े खोलना । धी

भगवान् द्वैपायन यह कहकर यह सब गर्भ स्थापन कर फिर तपके लिये हिमाचलको पधारे । अनंतर योग्यकालमें उन दुग्धोंमें से पहिले राजा दुर्योधनका जन्म हुआ, पर राजा युधिष्ठिर पहिले जन्म लेनेके हेतु ज्येष्ठ भये थे । यह बात धीमान् विदुर और धृतराष्ट्रके कानोंमें पहुंची । जिस दिन दुर्योधनका जन्म हुआ, उसी दिन महाभुज बोर्यवार भीमनेभी जन्म लिया था । हे महाराज ! दुर्योधन जन्म लेतेही गदहेके समान शब्द करने प्रारंभ चिलाने लगा, उसे सुनकर गिह, गदहे, सियार और कौए कोलाहल मचाने लगे, हवा वेगमे बहने लगी और दिशयें जलने लगीं । हे महाराज ! राजा धृतराष्ट्र इससे भय खाकर भीम, विदुर, ब्राह्मण, मित्र, और कोरवोंको बुलवाकर बोले, कि हमारे वंश बढ़ानेवाले राजपुत्र युधिष्ठिर ज्येष्ठ हैं, सो वह अपनेही गुणसे राज्यको पा सकते हैं, उस विषयमें सुभे कुछ कहना नहीं है, पर मेरे इस पुत्रने युधिष्ठिरके पीछे जन्म लिया है, उससे क्या यह कुमार भी राजा हो सकेगा ? इस विषयमें जो निश्चय हो, वह आप ठीक ठीक कहिये । हे भारत । इस बातके कहे जाने पर सियार और सांस खानेवाले कुटिल जन्तु अमंझलकारों शब्द मचाने लगे । हे महाराज चारों ओर यह सब अमंझल चिह्न दिख कर के ब्राह्मणगण और महासति विदुर धृतराष्ट्रसे बोले, कि हे पुण्यश्रेष्ठ महाराज । आपके ज्येष्ठ पुत्रके जन्म लेनेही जिस प्रकार यह सब भयानक अमंझल चिह्न दिख पड़ते हैं, उससे यह प्रकाश हो रहा है, कि आपका यह पुत्र कुलहानि करनेवाला होगा, इसको त्याग देनेहीसे कुल की शान्ति हो सकती है, नहीं तो बड़ी हानि होगी, हे महोपाल भारत । यदि आप अपने कुलकी शान्ति रखनी चाहते हैं, तो यही अच्छा होगा, कि इस एक पुत्रको त्याग दीजिये ; तब आपके

निनानजे पुत्र तो बचेंगे, आप एकको इस वंश और जगत्का हित कीजिये । राज ! कष्ट है, कि कुलकी रक्षा एकको त्यागना, ग्रामकी भलाईके लिये को त्यागना, देशकी भलाईके लिये त्यागना और आत्माके लिये पृथ्वीको उचित है ।

उन सब दिनों और विदुरके ऐसा पर राजा धृतराष्ट्रने पुत्रके स्नेह से बात नहीं सुनी । हे पृथ्वीनाथ ! महीने भरने धृतराष्ट्रके सौ पुत्र और एक ने जन्म लिया । गान्धारी जब बटी हुई की पीड़ासे कातर थी, उसी वर्ष उस गर्भसे धृतराष्ट्रके अतियशुक्त धीमान् नामक एक पुत्रने जन्म लिया । वैश्या और क्षत्रियके वीर्यसे जन्म लेनेके हेतु कारण करके कथित हुआ है । इस धीमान् धृतराष्ट्रसे महारथी वीर सौ पुत्र एक कन्या और महातेजस्वी युयुत्सुन लिया था ।

सम्भव पर्वमें एकसौ पन्द्रह अध्याय

जनमेजय बोले, कि हे अनघ । धृतराष्ट्रकी कृपासे सौ पुत्रोंका जन्म हुआ कह चुके, पर ऋषिकी प्रसन्नतासे उत्पन्न होनेकी कोई कथा आपने नहीं है । आप धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंसे अधिक वैश्याके गर्भसे जन्म लिये हुए पुत्र और गान्धारीके गर्भसे जन्म ली हुई एक के जन्म लेनेकी कथा कह चुके ; पर तेजयुक्त महर्षि व्यासजी बोलेंगे, कि राजपुत्रीके सौ पुत्र जन्म लेंगे, हे भगवन् ! आपने क्योंकर गान्धारीके गर्भमें सौ अधिक एक कन्याकी बात कही ? यदि पिने उन मांसपेशियोंको सौ भागोंसे काट और यदि सुवलपुत्रीका फिर गर्भ

तो, क्यों कर दुःशलाकी उत्पत्ति हुई ? प्रवर इस विषयकी सुननेके लिये सुभी दृष्टा हुई है, आप-यथावत कह सुनावें । श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे पाण्डव ! ने अच्छा प्रश्न किया है । मैं आपसे व्यक्त से कहता हूँ । भगवान् व्यासने स्वयं ठण्डे से उन मांसपेशियों की नहशवा कर अलग अलग बांट डालनेकी कल्पना की । हे महाराज ! वह ज्यों ज्यों ने लगे, त्यों त्यों धात्री उन्हें घृतके घड़ोंमें डूने लगी । इस समय कठोर व्रत करने-वाली सती सुन्दरी देवी गान्धारी कन्यास्नेह आलोचना कर मनही मनमें सोचने लगी, कि इसमें सन्देह नहीं है, कि इन मांस पेशियोंसे सौ पुत्र उत्पन्न होंगे, क्योंकि मुनिकी कभी मिथ्या नहीं होती ; पर यदि सुभी पुत्रोंसे अधिक कनिष्ठा एक कन्या हो, तो हृदयकी बड़ा सन्तोष मिले और उससे पति दौहित्रसे मिलते हुए पुण्यलोकके गम न होवे, विशेष नारी मातृकी दामादसे प्रीति होती है, सो यदि मेरी सौ पुत्रोंसे एक पुत्री भी होवे तो, मैं पुत्र और पुत्रियोंसे घिरी जाकर कृतार्थ होऊँ । यदि सञ्जीरोति पर तप दान वा (ब्राह्मणोंसे) न किया हो अथवा यदि गुरुओंकी प्रसन्नता हो तो, सुभी एक कन्या भी होवे । इस सपनेमें ऋषियोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णवैपायन स्वयं उन मांसपेशियोंकी बांट रहे थे । वह सौ भाग गिन कर गान्धारीसे बोले, कि तुम्हारे सौ बेटे हुए, मैंने तुमसे झूठी नहीं बोली थी । दैव संयोगसे ऊपर एक भाग बचा, तुम्हारी दृष्टानुसार इस भागसे एक पुत्री कन्या होगी । अनन्तर महातपा तपोनि दूसरे एक घृतके घड़ेकी मंगवाकर उसमें उसके भागकी छीड़ दिया । हे अनघ भरत-श्रेष्ठ ! दुःशलाकी जन्म-कथा आपसे यह

कह चुका । हे राजेन्द्र ! कहिये, फिर क्या कहना होगा ।

सम्भवपर्वमें एकसौ सोलह अध्याय समाप्त ।

जनमेजय बोले, कि धृतराष्ट्रके बड़े छोटेके क्रमसे सब लड़कोंके, और हरेकका अलग नाम आद्योपान्त कहिये । श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे महाराज ! दुर्योधन, युयुत्सु, दुःशासन, दुःसह, दुःशल, जलसन्ध, सम, रुह, विन्द, अनु-विन्द, दुर्धर्ष, सुवाह, दुष्प्रधर्षण, दुर्मर्षण, दुर्मुख, दुष्कर्ण, कर्ण, विविशति, विकर्ण, शल, सत्त्व, सुलोचन, चित्र, उपचित्र, चित्राक्ष, चारुचित्र, शरासन, दुर्मद, दुर्चिगाह, विवित्सु, विकटानन, जर्णनाभ, सुनाभ, नन्द, उपनन्द, चित्रवान्, चित्रवर्मा, सुवर्मा, दूर्ध्वलोचन, अथोवाह, महावाह, चित्राह, चित्रकुण्डल, भीमवेग, भीम-बल, बलाकी, बलवर्द्धन, उग्रायुध, भीमकर्मा, कनकायु, दृढायुध, दृढवर्मा, दृढचेत, सीम-कोर्ति, अनूदर, दृढसध, जरासन्ध, सत्यसन्ध, सदः, सुवाक्, उग्रश्रवा, उग्रसेन, सेनानी, दुष्पराजय, अपराजित, कुण्डशायी, विशालाक्ष, दुराधर, दृढहस्त, सहस्रा, बातवेग, सुवक्त्रा, आदिचक्रैः, वह्वाशी, नागदत्त, अग्रयायी, कवची, निपट्टी, कुण्डी, कुण्डधार, धनुर्धर, उग्र, भीमरथ, वीरवाह, अलोलुप, अभय, रौद्र-कर्मा, दृढव्रत, अनावृथ, कुण्डभेदी, विरावी, दीर्घलोचन, प्रमथ, प्रसाथी, वीर्यवान् दीर्घरोम, दीर्घवाह, महावाह, लूटैः, कनकध्वज, कुण्डाशी, विरजा, यह सौ पुत्र और कन्या दुःशला है । महाराज ! धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंके और सौके अतिरिक्त कन्या दुःशलाका नाम यह कह चुका, हे महाराज ! इन नामोंके क्रमके अनुसार इनके जन्मका क्रमभी जानना । वे सबके सब महारथी शूर, युद्धस दक्ष, वेशमें पण्डित और अस्त्र चलानेमें निपुण थे । हे महोपाल ! धृतराष्ट्रने परीक्षाद्वारा योग्य

कन्याओंका निश्चयकर उचित समयमें यथारीति उन सबोंका विवाह कर किया । हे भरतकुल प्रदीप ! अनन्तर महाराजा धृतराष्ट्रने योग्य कालमें जयद्रथ की दुःशला नाम्नी कन्या सम्पदान कर दी ।

सम्भवपर्वमें एक सौ सत्तरह अध्याय समाप्त ।

जनमेजय बोले कि, हे ब्रह्मवादि ! आप मनुष्य धृतराष्ट्रके पुत्रोंके अष्ट अलौकिक आर्ष जन्मकी कथा और उनके अलग अलग नाम भी कह चुके हैं । हे ब्राह्मण ! वह सब आपसे सुन लिया है, अब पाण्डवोंके चरित्रकी कथा कहिये ; आपने वंशोंके अवतरणमें कहा है, कि पाण्डवगण सब महात्मा तथा इन्द्रके समान पराक्रमी थे और देवोंके अंशोंसे जन्म लिया था ; सो मैं उन अलौकिक कर्म करने वाले पाण्डवोंकी जन्मसे लेकर आद्योपान्त सम्पूर्ण कथा सुना चाहता हूं, हे वैशम्पायन ! आप उसे कह जाइये ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि महाराज ! राजा पाण्डुने मृगव्यांलोंसे भरे एक बड़े वनमें घूमते घूमते मैथुन धर्ममें आसक्त एक यूथपति मृगको देखा । आगे उन्होंने सीनेकी पूछसे सुशोभित सुन्दर परवाले नोकदार और तेज चलनेवाले पाच बाणोंसे उस मृग और मृगीको धिक्क किया । हे महाराज ! कोई बड़े तेजस्वी तपोधन ऋषिभुमार मृगका स्वरूप लेकर स्त्रीके साथ उस प्रकारसे मिले थे । वह उस मृगीसे लिपटे रहते ही वानाघातसे चरण भरमें धरतीपर गिरकर मनुष्यकी दातेमें विकल-निजसे पाण्डुसे बोले, कि काम क्रोधयुक्त होन-बुद्धिजनभी ऐसा निष्ठुर कार्य नहीं करता, पर मानसी बुद्धि देवका पार नहीं पा सकती ; देवकी मानसी बुद्धिसे बड़ चट जाना है, सो देवों विष्णुकी बुद्धिमान जनभी समझ नहीं सकते । हे भरत ! तुम मृगोंके धर्मयुक्त प्रधान

वंशमें जन्म लेकर क्योंकर काम लोभसे अभिभूत हुए और क्योंकर तुम्हारा चित्त ऐसा डगमगाया ? पाण्डु बोले, कि हे मृग ! राजालोग शत्रु नाशने में जैसा किया करते हैं, मृग वेधने में वैसाही करते है, सो तुम्हें मोहसे सुभकी ऐसा लाञ्छन नहीं करना चाहिये । छिपकर और कौशलसे मृग बध करना राजाओंका धर्म है ; तुम फिर क्यों उस विषयमें निन्दा कर रहे हो ? ऋषि अगस्त्यने यज्ञकर सम्पूर्ण वनमें सर्वदेवोंके उद्देशमें सम्पूर्ण मृगोंको मंथनकर मर गया की थी । उन्होंने अभिचार कर्मके लिये तुम्हारी वसासे हवन किया था ; सो प्रमाणित धर्मके अनुसार तुम सुभसे मारे गये हो, फिर क्यों हमारी निन्दा कर रहे हो । मृग बोला, कि मनुष्य लोग शत्रुकी भली भांति न देखकर बाण नहीं चलाते, विशेष जिस समय शत्रुसे दोष होता है, उसी समयमें शत्रु वधनेका सुदर अवसर करके कहा है । पाण्डु बोले, कि हे मृग ! मृग प्रमत्त रहें वा अप्रमत्तही रहै, लोग नाना कटोर उपायोंसे खुलाखुली उनका बध करते हैं, अतएव तुम क्यों निन्दा करते हो ? मृग बोला, कि महाराज ! तुमने मृग है, इस लिये मैं अपने लिये तुम्हारी निन्दा नहीं करता । पर तुमकी इस समय निष्ठुर व्यवहार न कर मेरे मैथुनकाल तक ठहरे रहना चाहिये था । सर्वभूतोंके प्रिय और सर्वभूतोंके हितयुक्त ऐसे समयमें क्या कोईभी विद्वान् जन वनमें मैथुन करते हुए, मृगकी वध कर सकता है ? हे राजेन्द्र ! मैं आनन्दसे इस मृगीसे स्तन पैदा करनेके लिये लिपट गया था, तुमने वध व्यर्थ कर दिया । महाराज ! तुमने गुद कर्म करनेवाले पीरव राजोंके वंशमें जन्म लिया है सो यह कार्य तुम्हारे योग्य नहीं हुआ है । हे भरत ! यह बड़ा निष्ठुर कर्म स्वर्गनाशी, यम नाशी धर्मनाशी और सर्व लोकोके

अनुचित हुआ है, हे देवोपमा । तुमने शास्त्र जाननेवाले धर्मार्थ तत्त्वोंके जाननेवाले, और स्त्रीसे मिलनके सुखको अनुभव करनेवाले होकरकेभी जो यह स्वर्गनाशी कार्य किया है, वह तुम्हारे योग्य नहीं हुआ है । हे नरेशोंमें श्रेष्ठजन । जो सब लोग निष्ठुर कार्य करनेवाले पापाचारी और धर्मार्थ कामसे रहित होते हैं, तुम्हो उनका दण्ड करते हो । हे महाप्राज्ञ । मैं दृगके स्वरूपमें फल-भूल पर जोता हुआ मुनि हूं, सुभक्तो बिना अपराध मार कर कौनसा बड़ा लाभ उठाया ? मैं शमशील होकर नित्य वनगं रहता हूं, तिसपरभी तुमने बिनादोष सुभक्तो मारा ! सो तुमको शाप देता हूं, कि तुमने जिस प्रकार स्त्री-पुरुष से कठिन व्यवहार किया है, उस प्रकार जब स्वयं कामयुक्त होकर विवश होओगी, तब तुमभी ऐसीही जोवनाशी दशा प्राप्त करोगी । मैं किमिन्दम नामक तपस्वी मुनि हूँ, मनुष्योंको लज्जासे बचनेके लिये मृगीसे मिल रहा था । तुम्हारे यह न जाने रहनेसे कि मैं मृगाका स्वरूप लेकर मृगीसे घने वनमें चरा करता हूँ, सुभक्तो मार डालनेके कारण तुम पर ब्रह्महत्याका पाप न वर्तगा । मैं मूर्ख ! जैसे कि तूने मृगके स्वरूपधारी सुभक्तो इस प्रकार मार डाला, तू भी इसका फल योंही प्राप्त करेगा । तू कामवश प्रियासे मिलतेही इसी दशमें प्रेतलोकको सिंधारेगा । हे मतिमत् । तुम अन्तकालमें जिस स्त्रीसे मिलोगे, वह प्यारीभी सर्वलोकोंके लङ्घनके अयोग्य प्रेतलोकोंमें भक्ति-पूर्वक तुम्हारे साथ चली जायगी । सुभक्तो जिस प्रकार सुख समय तुमसे दुःख मिला, वैसेही तुमभी सुख पानेके काल दुःख प्राप्त करोगी ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि मृगने यह बात कहकर अति दुःखी होकर प्राण छोड़ा । राजा पाण्डुभी क्षण भरमें दुःखके समुद्रमें डूबे । सम्भवपर्वमें एकऔ अठारह अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि राजा पाण्डु अपने मित्र समान उस ऋषिको छोड़कर स्त्रियोंके सहित शोक और दुःखसे पीड़ित और विकल होकर बहुत विलपने लगे । वह कहने लगे, कि हाय ! बुरी आत्मायुक्तजन अच्छे वंशमें जन्म लेने पर भी कामके फट्टे में फंसकर अपने कर्मके दोषसे कुगति प्राप्त करता है । मैंने सुना है, कि मेरे पिता विचित्रवीर्य धर्मात्मा शान्तनुसे जन्म लेकरके केवल कामयुक्त आत्मा होनेहोसे बालेपनहीमें परलोकको सिंधारे थे ; उन कामयुक्त राजाके चित्तमें साक्षात्-भगवान् ऋषि संयतवादी श्रीकृष्णवैपायनने सुभक्त जन्म दिया था ; ऐसे मनुष्यके पुत्र होनेपरभी मैं बुरी-रीतिसे केवल वनहीमें घूम फिर रहा हूँ । आज मेरी बुरी बुद्धि, व्यसनके विषयमें लिप्त हुई है, तो देवोंने सुभक्तो त्याग दिया है, क्योंकि मेरा-पुत्रका सुख बिना देखे स्वर्ग पानेका पथ रुक गया । अब मैं मोक्षमार्गका पथिक बनूँ । पुत्र उत्पादन आदि सांसारिक बन्धन ही अति दुःखका कारण हुआ है, सो मैं ब्रह्मचारी बनकर जन्मदाता व्यासजीसे किये जाते हुए कार्यमें नियुक्त होऊंगा । मैं अपने चित्तको बिना सन्देह कठोर तपमें नियुक्त करूंगा, उससे भार्यादि त्याग कर अकेले सिर मुड़ाकर मुनि ही आश्रमोंमें स्थित इन सब दृष्टियोंमेंसे एक एकसे भीख मांग मांग जीवनको बचाऊंगा । सब प्रिय और अप्रियको छोड़कर धूलसे देहको नहला कर खाली घरमें वा पेड़को जड़में वस्त्रंगा, किसी प्रकारसे न तो हर्ष और न शोक करूंगा, अपनी निन्दा और प्रशंसाको समान समझूंगा, अशीस वा प्रणाम की इच्छा न करूंगा ; और बिना बखेड़ा तथा किसीसे दान न लेकर दिन काटूंगा । मैं किसीपर न तो हँसूंगा और न भौह चढ़ाऊंगा, सदा प्रसन्नमुख होकर सर्व भूतोंके हितमें नियुक्त रहूंगा ; अरु, खेद,

जरायु और उद्भिदसे जन्म लिये हुए इन चार प्रकारके स्थावर जगम प्राणियों पर हिंसा प्रगट नहीं करूंगा; अपनी प्रजावत सर्व भूतों पर नृत्त्य दृष्टि रखूंगा। नित्य पाच वा दश घरोंमें एकही बार भीख मागूंगा; उनसे भीख न मिले, तो विना भोजनभी दिन गंवा-जंगा, स्वल्प भोजन किया कलंगा, पर तौभी एक वारमें न मिले, तो फिर कभी भीख न मागूंगा; सात वा दश घरमें मागनेपर यदि भीख न मिले, तो लोभसे दूसरे घरमें फिर नहीं जाऊंगा। चाहे लाभ होवे वा नहीं, मैं सबोंको समान समझूंगा और कठोर तप कलंगा। किसीके वस्त्रसे मेरे एक हाथको काटने और चन्दनसे दूसरे हाथको सुगन्धयुक्त कर देनेमें दोनोंमें से किसीकी न तो हित और न अहितकी इच्छा कलंगा। मैं जीवन और मृत्युसे आनन्द वा द्वेष प्रगटकर न तो कभी उद्यत उठू और न कभी सुर्माऊंगा। चेतनयुक्त जन निमेषादि कालके नियमसे जो सब स्वर्गादि फलदायी मङ्गलयुक्त कार्य कर सकते हैं, मैं सम्पूर्ण रूपसे चित्तके पापको धोकर उन सब क्रियादिको कर कर धर्मार्थ त्याग और अनित्य फल देनेवाली सब इन्द्रियोंकी क्रियाओंको त्याग दूंगा और अविद्यादि सर्व प्रकारके ज्ञानको फाड़कर सब पापोंसे साफ होकर वायुका गुण लिये रहूंगा, किसीके वशमें नहीं जाऊंगा। सदा ऐसी रीतिसे चलकर निर्भय पथको आश्रय करके देह छोड़ूंगा, वीर्य-प्राजितहोकर आत्मतत्त्वरूपी धर्मसे सदा च्युत निवशीर्षनाशी दुर्मार्ग पर कभी पावकी न रखूंगा। काम रजित होनेपरभी जो कामयुक्त होकर दोनोंके समान फिर काम-क्रियामें फँसता है उस सुकार्य कर वा दुकार्य कर भ्रष्टही दुर्लभके पथमें चलता है अर्थात् जूटा पारसदाता से।

अपराधियोंकी वृत्ति, कि अनन्तर राजा

अति दुःखीचित्तसे यह सब बातें कहकर लक्ष्मी शंस छोड़कर कुन्ती और माद्रीकी और आँख फेर कर बोले, कि कौशल्या, विदुर, वसुसहित राजा धृतराष्ट्र आर्या सत्यवती, भीमराज-पुरोहितलोग, व्रतशील सीम पीनेवाले महाका ब्राह्मणगण और जितने नगरके वृद्धजन मेरे आश्रयमें हैं, उन सबोंसे प्रसन्नकर कहना, कि पाण्डु प्रवज्या आश्रमकी शरणा लेकर वनमें गया है। कुन्ती और माद्री वनवासका संकल्प ठाने हुए पतिके वचन सुनकर यथायोग्य बात बोलों। हे भरतश्रेष्ठ! दूसरे बृद्धत आश्रम हैं, जिनको आश्रयकर आप इन दो धर्म पत्नियोंके साथ कठोर तपस्या कर सकेंगे, और इसमें सन्देह नहीं है, कि देह छोड़नेके लिये महाफलको पाकर स्वर्गको प्राप्त करेंगे। हम दोनोंभी पतिलोकयुक्त होकर अब इन्द्रियोंकी रोककर कामना और सुखकी तजकर कड़ी तपस्या करेंगे। हे महाप्राज्ञ पृथ्वीनाथ! आप हमको छोड़ देंगे तो विना सन्देह हम आजही प्राण छोड़ेंगे। पाण्डु बोले, कि तुम्हारा यह निश्चय यदि धर्मके अनुसार होवे, तो मैं अपने पिताकी अव्ययवृत्तिकी आश्रयकर लूंगा। ग्रामके भोजन और ग्रामके सुखकी छोड़कर वस्त्रकल पहिन कर और फल झूल खाता हुआ भारी तपकर घने वनमें घूमूंगा; चौर, चर्म और जटा धारणकर नियमित भोजन कर, भूख प्यास पर ध्यान न रखकर ठण्डी हवा और धूपकी सहकर और अड़ोंकी दुबला पतला बनाकर दोनों समय नहाता और अग्निमें हवन करता हुआ कठोर तपस्यामें इस शरीरको सुखा डालूंगा। निरालेमें रहकर कच्चा और पक्का और वाणप्रस्थके योग्यशास्त्रकी चर्चा करना हुआ, वनके फल, जल और वातोसे पितर और देवोंका तर्पण कलंगा; ग्रामवासियोंकी बात तो दूर रही, एकही घरमें ठिके हुए, वाणप्रस्थोंकाभी कभी

अप्रिय कार्य नहीं करूंगा; जबतक यह देह न कूटेगी तबतक मैं योंही इन सब वनके शास्त्रोंकी कठोर विधियोंकी पालन करता हुआ जीवित रहूंगा ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि कौरवनन्दन राजा पाण्डु दोनों स्त्रियोंसे यह बात कह कर चूड़ामणि, निष्क, अङ्गद, कुण्डल, मूल्यवान वस्त्र और स्त्रियोंके आभूषण आदि सब वस्तु ब्राह्मणों को देकर, साधियोंसे बोले, कि तुम हस्तिनापुरमें जाकर कहना, कि कुरुनन्दन पाण्डु अर्थ, काम, सुख, और परम प्रिय स्त्रीसे मिलनेके सुख सबको तज प्रज्याश्रम लेकरके स्त्रियोंके संग वनकी पधारा है । अनन्तर उनके साथी और नौकर उन भरतवंशके सिंह-रूपी नरेशकी नाना कसूरोंकी बातें सुनकर अति दुःखयुक्त कोलाहलसे हाहाकार करते हुए रोने लगे, आगे राजाको तज कर शोकके आंसू गिराते हुए उनकी सब बातोंके साथ बिना विज्ञापन हस्तिनापुरमें जा पहुँचे । नरश्रेष्ठ धृतराष्ट्र उनके सुखसे उनकी सब घटनाओंकी सुन कर पाण्डुके लिये बड़ा शोक करने लगे । वह भाईके शोकसे विकल होकर उच्चैः शब्दोंको रोचसोच सेज, आसन, भोग किसीसे सुख नहीं पासके । हे कौरववंशी ! इधर राजकुमार पाण्डु फल मूल खाते हुए दोनों स्त्रियोंके साथ नागशत पर्वतकी पधारे । आप उस चतुरथ पर चढ़ कर कालकूट पर्वतकी पीढ़ी रखके हिमाचलसे होते हुए गन्धमा-दनमें जा पहुँचे । हे महाराज ! वह महा-भूत, सिद्ध और परम ऋषियोंसे रक्षित होकर समभूमि और सुखी स्थानोंमें वासकर चुके । अन्तमें इन्द्रद्युम्न तालकी प्राप्तिकरके हंसकूटकी पीढ़ी छोड़ कर शतशृङ्ग नामक पहाड़ पर कठोर तप करने लगे ।

सम्भवपर्वमें एकसौ उन्नीस अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भारत ! वीर्य-वन्त पाण्डु उस स्थानमें बड़ी अच्छी तपस्यामें सदा नियुक्त रहकर सिद्धचारणोंके अति प्रिय बने । वह गुरुसेवक, अहङ्कारवर्जित, संय-तात्मा और जितेन्द्रिय होकर निज वीर्यसे स्वर्गकी प्राप्तिकरनेके योग्य पराक्रमी बने । कोई कोई ऋषि उनकी भाई, दूसरे भिन्न सम-भने लगे और सब अन्यऋषि उनकी पुत्रवत पालने लगे । हे भरतश्रेष्ठ ! अनन्तर पाण्डु वृद्धत दिनों तक बिना कलङ्ग तपोबल बटोर-कर ब्रह्मर्षि समान बने । एक समय अमा-वस्या तिथिमें व्रतशील महर्षि लोग भगवान् स्वयम्भूके दर्शनके लिये एकत्र होकर ब्रह्म-लोकमें जा रहे थे, कि ऐसे समयमें पाण्डु उन ऋषियों की जाते हुए देखकर बोले, कि हे वाक्निपुण महर्षियों ! कहिये, आप कहाँ जायेंगे ? ऋषिलोग बोले, आज ब्रह्मलोकमें महात्मा देव तथा ऋषियोंकी और महात्मा पितरोंकी बड़ी बटोर होगी ; हम ब्रह्मलोकमें जाते हैं ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि पाण्डु महर्षि-योंके साथ जानकी इच्छासे स्वर्गकी पार कर-नेके लिये एकायक उठकर दोनों स्त्रियोंके साथ शतशृङ्गसे उत्तरकी ओर चले । तब तप-स्त्रियोंने उनसे कहा, कि हमने उत्तर की ओर शैलराजसे क्रमशः ऊपरकी चलते हुए इस सुन्दर पर्वतपर अगणित अगम्य देश देखे हैं, बीच बीचमें देव गन्धर्व और अप्सराओंके सैकड़ों यानोंसे भरे और गीतोंमें गूँजते हुए स्थान दीख पड़ते हैं, कहीं कहीं बुबुलकी समभूमि और सुखी फुलवाड़ी, बड़ी बड़ी नदी और दुर्गम कन्दरा हैं ; कोई कोई स्थान सदा हिमसे ढके रहते हैं ; वहाँ न तो हवा मग, अथवा पानी है न और कुछ है ; कहीं कहीं ऐसी भारी वर्षा होती है, कि वह स्थान दुर्गम वा फिसलने ही जाते हैं ; किसी पशुकी वात

तो दूर रही, पखिलभी वहां पड़ने नहीं सकते, केवल अकेला वायु और सिद्ध तथा परम ऋषि लोग वहां जा सकते हैं। इन राज-कन्याओं ने कभी दुःख-सहन नहीं किया है, सो दुर्गम शैलराज पर चलने में क्यों नहीं सुभाविंगो? अतएव हे भरत-श्रेष्ठ। तुम मत आओ। पाण्डु बोले, कि हे महाभागवत्! कहा है, कि जिसके सन्तान नहीं है, उसके स्वर्ग में घुसने के द्वार नहीं हैं; मेरी सन्तान नहीं है, सो अति दुःखसे जलकर आपसे ऐसा कहता हूं। हे तपोधनवृन्द! मैं पितरों के ऋण से मुक्त न होने ही के कारण बड़ा दुःखी बना हूं, सुभको निश्चय होगया है, कि मेरे इस शरीर के नष्ट होने पर पितर लोग भी नष्ट होंगे। मनुष्य-लोग पितरों के, देवों के, ऋषियों के और मनुष्यों के इन चार ऋणों को लेकर इस धरती में जन्म लेते हैं और धर्मानुसार उनको वह ऋण भरना ही चाहिये; धर्म जाननेवाले कहते हैं, कि जो मनुष्य इन स्वाभाविक ऋणों के भरने के लिये उचित समय में मन नहीं लगाता है, उसको सुगति नहीं होती है। मानवलोग याग से देवों को, पठन तथा तप से मुनियों को, पुत्रोत्पादन तथा पिण्ड दान से पितरों को और निष्ठुरता से रहित होकर मनुष्यों को तुष्ट कर उनके ऋण से मुक्त होते हैं। मैं देव, ऋषि और मनुष्य, इनके ऋण से धर्मानुसार मुक्त हुआ हूं, पर मेरे शरीर के नष्ट होने पर पितरों को नष्ट होना पड़ेगा। हे तपस्वीगण! जो लोग नरों में खड़े हैं, वे पितरों के ऋण को भरने की सन्तान पैदा करने के निमित्त पृथ्वी में जन्म लेते हैं, पर मैं अभी तक उक्त ऋण से मुक्त नहीं हो सका हूं, सो प्रकट है, कि मैंने जिस प्रकार पिता विविध श्रेष्ठ क्षेत्र में महर्षि व्यास से जन्म लिया है, जो वेमर्षी मेरे इस क्षेत्र में सन्तान उत्पन्न नहीं करेगा। ऋषिलोग बोले, कि हे धर्मरत्न! तू इस दिव्य नेत्रों से देखते हैं,

कि तुम्हारे पाप-रहित देववत शुभ पुत्र उत्पन्न होंगे, सो हे नर-व्याघ्र! तुम कर्म से देवों का अभिप्राय पूरा करो, क्योंकि बुद्धिमान जन वधवाकर सुन्दर फल प्राप्त करते हैं! ऐमहाराज। तुम्हारा फल दीख पड़ता है, तुम सन्तान उत्पन्न करने का प्रयत्न करो, उससे अवश्य ही आनन्द देनेवाले, सर्व गुणों से सजे हुए पुत्र पा सकोगे। श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि राजा पाण्डु तपस्वियों की वह बात सुनकर और यह स्मरण कर, कि ऋग के शाप से उनकी पुत्र पैदा करने की शक्ति नष्ट हो गयी है, चिन्ता-युक्त हुए। आगे वह यशस्विनी धर्मपत्नी कुन्ती से निराले में बोले, कि हे कुन्ती! तुम इस विपत्काल में पुत्र उत्पन्न करने का प्रयत्न करो; देखो, धर्म कहनेवाले सदा कहते हैं, कि सन्तान इन तीनों लोकों में धर्म भरी प्रतिष्ठा से ऊँच है। याग, दान, तपस्या और भले प्रकार अनुष्ठान किया हुआ नियम, यह सब उनको पवित्र नहीं करते हैं, जिनके कि सन्तान नहीं होती। हे सुन्दरो! यह जानने ही कारण मैं सोचके देखता हूं, कि मेरे पुत्र पैदा न होने से मैं शुभलोक की नहीं प्राप्त कर सकूंगा। रो भीरु! पहिले जैसे मैं दुरी आत्मयुक्त और निष्ठुर कार्य में दत्तचित्त था, वैसे ही ऋग के शाप से मेरी सन्तान पैदा करने की शक्ति जाती रही है। धर्मशास्त्रों में कहा है, कि ६ प्रकार के पुत्र वशु के धन के अधिकारी होते हैं, और ६ प्रकार के पुत्र उसके अधिकारी नहीं होते। रो पृथ्वी। मैं उन बारह प्रकार के पुत्रों की बात कहता हूं, सुनो। (पहिला) औरस अर्थात् जो व्याही स्त्री से निजके द्वारा पैदा हो, (दूसरा) प्रणीत, अर्थात् जो अच्छे परपुत्र के द्वारा निज क्षेत्र से पैदा हो, (तीसरा) परिणीत, अर्थात् जो मोल लिये हुए वीर्य के द्वारा निज क्षेत्र से पैदा हो, (चौथा) पौनर्भव अर्थात् जो विधवा के गर्भ से अन्य के द्वारा पैदा हो,

(प्रचवा) कानीन अर्थात् जो कन्यावस्थामें पैदा हो, (कठवां) स्त्रीरिणीके गर्भसे पैदा हुआ, अर्थात् जो गूढ़ वा कुण्ड नामसे प्रसिद्ध है, (सातवां) दत्त अर्थात् जो पूज्य पिता मातासे दे दिया जाय, (आठवां) क्रीत, अर्थात् जो धन देकर ले लिया गया हो (नवां) उप-क्रीत, अर्थात् जो कृत्रिम हो, (दशवां) स्वयं उपागत अर्थात् मैं तुम्हारा पुत्र बना, यह कह-के जो स्वयं आवे, (ग्यारहवां) ज्ञातिरेता सहोदर अर्थात् जो भाई आदिसे गर्भवती स्त्रीसे विवाह करने पर उसके गर्भसे पैदा हो, (बारहवां) हीनयोनिधृत, अर्थात् जो हीन जाति की स्त्रीसे पैदा हो। इन बारह प्रकारके पुत्रोंमें पहिला न बन पड़े, तो उससे पिछला, फिर उससे पिछला, फिर वह भी न हो तो उससे पिछला, इस प्रकारसे माताको पुत्रकी इच्छा करनी चाहिये। लोग आपत्कालमें उत्तम छोटे सहोदर भाईसे पुत्रकी कामना किया करते हैं।-स्वयम्भुव मनुने कहा है, कि मनुष्यगण अपने वीर्यके बिना अन्न जनसे भी धर्म फल देनेवाले अष्ट पुत्र प्राप्त कर सकते हैं। अतएव हे कुन्ती ! मैं इस समय सन्तान पैदा करने की शक्तिसे रहित हुआ हूं, सो तुमको नियोग करता हूं, तुम सत्य वा अष्ट-जनसे यशस्वी पुत्र प्रसव करो। हे पृथ्वी ! शरदः ऋतुकी कन्याकी कथा कहना हूं, सुनो। वह बोरकी स्त्रीपतिसे पुत्र पैदा करनेकी नियुक्त होकर ऋतु-स्नान करके रात्रिकी चौराहे पर खड़ी हुई। आगे एक सिद्ध ब्राह्मणकी वरण कर पुरुषन यज्ञमें अग्निकी आज्ञाति चढ़ाकर उस धर्मको पूरा करनेके पीछे उनसे मिली। इससे दुर्जय आदि तीन महारथियोंका जन्म हुआ। हे कल्याण ! उस प्रकार तुमभी मेरे नियोगसे ऐसे किसी ब्राह्मणसे जो सुभसे तपमें अष्ट हो, शीघ्र सन्तान पैदा करने की चेष्टा करो ! सभ्यपर्वमें एकसी बीस आय संपाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे महाराज ! कुन्ती यह बात सुन कर कुरुवंशियोंमें अष्ट भूपति पाण्डुसे बोली कि, हे धर्म राजाजीवनेत्र ! मैं आपको धर्मपत्नी और आपहीके प्रेममें फंसी हूं; सो आपको सुभसे ऐसा कहना कभी उचित नहीं है। हे वीर महाभुज ! धर्मा-नुसार आपही को सुभसे अपने वीर्यके द्वारा सन्तान पैदा करनी चाहिये। हे मानवोंमें व्याघ्ररूपी पुरुष ! ऐसाही होनेसे मैं आपके साथ स्वर्गमें जा सकूंगी; अतएव हे कुरुनन्दन आपही सन्तानके लिये सुभसे मिलिये क्योंकि मैं मनसेभी दूसरे पुरुषसे मिला नहीं चाहती; विशेष इस भूमण्डलमें ऐसा कौन है, जो आपसे अष्ट हो सके ? हे धार्मिक, विशालाक्ष ! पहिले मैंने एक पौराणिक कथा सुनी थी, उसको आपसे कहती हूं, सुनिये। पूर्वकालमें कुरुवंश-बढ़ानेवाले परम धार्मिक व्युपिताश्व नामक एक प्रसिद्ध राजा थे। उन धर्मात्मा महाभुज नरेशके याग आरम्भ कर देने पर इन्द्र सहित देवता और देवर्षिलोग वहां आ पड़चे थे। आगे उन महात्मा राजर्षि व्युपिताश्वके यज्ञमें देवराज सोमरस पीकर और ब्रह्मणलोग दक्षिणा पाकर उन्नतके समान हो गये थे, वे देवगण और ब्रह्मर्षि-लोग स्वयं कर्म पूरा करने लगे। हे राजा ! जिस प्रकार हिम अन्त होनेपर भगवान् आदित्य सम्पूर्ण भूतोंको पीछे रखकर आगे बढ़कर प्रकाशमान होते हैं, वैसेही व्युपिताश्व संज्ञ-लोकीकी पीछे रखकर सोहने लगे। हे अष्ट-भूप ! वह प्रतापी राजेन्द्र व्युपिताश्व दश हस्तीके समान बल रखते थे, सो अश्वमेधयज्ञमें पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण, उन चारों ओरके राजाओंको हराके पकड़ पकड़ कर अपने वशमें लाये थे। हे कुरुकुल-अष्ट ! पुराण कहनेवाले लोग यह कथा कहा करते हैं, कि यश-वन्त व्युपिताश्वके पृथ्वीनाथ होनेसे उन्होंने समुद्र-

तक इस धरतीको जीतकर सबलोकोंको इस प्रकार पालन किया था, कि जैसे पिता औरस पुत्रको पालते हैं। उन्हें भी अनन्त रत्न बटोरकर सोमसंस्था अर्थात् ज्योति-ष्टोमादि महा-यज्ञोंको बढ़ाकर अगणित सोमसत्ता निचोड़ी और ब्राह्मणोंको प्रचुर धन दिया था। राजा काक्षीवान् की कन्या भद्रा-उनको परम प्रियारी स्त्री थी। हे मनुष्योंमें इन्द्ररूपी ! भूमण्डल-भरमें उस भद्राके समान अनुपम स्वरूपवती नारी कोई दूसरी नहीं थी। उस दम्पतिमें नारी जिस प्रकार पतिहीकी कामना करती थी। उन प्रकार पतिभी उस नारीके प्रेमी थे। अनन्तर भद्राके बड़े प्रेमी व्युषिताश्वकी दूधने घेरा, इससे वह सूर्यकी भांति सूर्य कालके बीचमें अस्त हो गये। उस भूपालके परलोककी सिधारनेपर उनकी स्त्री शोकसे बड़ी विह्वल हुई। हे पुरुषोंमें व्यग्ररूपी नरेश ! भद्राने अति दुःखी होकर जैसा शोक किया था, वह कहती हूं, सुनिये।

भद्रा भर्ताकी लच्छक बोली, कि हे परम धर्मात्मा ! पतिके बिना नारी अति निष्फला होती है। जो नारी पतिके बिना जीवनको धारण किये रहती है, वह सदा दुःखी होकर मरीमी बनी रहती है। हे चन्द्रियश्रेष्ठ ! पतिके बिना अबलाओंकी मृत्युही मङ्गलदायी होती है, अतएव मैं तुम्हारे साथ चली जाना चाहती हूं, प्रसन्न होकर सुभको साथ ले चली। हे महाराज ! तुम्हारे बिना सुभे जग भर भी जीनेकी इच्छा नहीं है, अतएव प्रसन्न होओ, सुभको बिना विलम्ब यहांसे ले जाओ। हे राजांमें व्याघ्ररूपी पुरुष ! चाहे नमभूमि हो, चाहे रुखा हो, हर स्थानमें मैं तुम्हारे मद्र पीछे पीछे जाऊंगी, फिर न लौटूंगी। हे नरव्याघ्र ! मैं तुम्हारी प्रिय शायर जित करनेमें सज्ज, परमात्माके समान पाई जाती हूं और सदा आज्ञा माननेवाली

बनी रहूंगी ! हे पुष्करेक्षणा ! तुम्हारे बिना आजसे कष्टदायी हृदय सोखने-हारी चितपीड़ा सुभको जकड़ लेगी। सुभको निश्चय जान पड़ता है, कि जो एकत्र रहते हैं, वुरे भाग्यवश मैंने उनकी एक दूसरेसे अलग कर दिया था, उस पापहीसे सुभे यह भारी विरह आ पड़ो है। हे पृथ्वीनाथ ! जो नारी पतिसे अलग होकर जग भरभी जीती रहती है, वह मानों नरकमें घुसकर बड़ी ही कष्टसे दिन काटती है। मैंने पूर्वजन्ममें इकट्ठे विराजती हुई दम्पतियोंको एक दूसरेसे अलग कर दिया था, उसे पापकर्म से बटोरि हूँ, दुःखने इस समय विरहका स्वरूप लेकर सुभपर चेढ़ाई की है। हे भूपाल ! मैं आजसे तुमकी आखोंके सामने रखकर कुशोंके विस्तर पर लेटी रहूंगी ; किसी सुखसे सुखी न होऊंगी। हे नरव्याघ्र ! दर्शनि दीजिये। हे नाथ ! हे नरनाथ ! कान्ते होकर विलपती हूं, असुखी इस दीना अधीनाकी आज्ञा दी। कुन्ती बोली, कि इस प्रकारसे वह व्युषिताश्वकी स्त्री उस सुर्दसे लिपटकर बार बार भांति भांतिके विलाप कर रही थी, कि ऐसे समयमें यह आकाशवाणी हुई, कि—“भद्रे ! उठो, जाओ ; रो, मधुरहासिनी ! तुमको वर देता हूं, मैं तेरेसे सन्तान पैदा करूंगा। री सुन्दरी ! अष्टमी-चतुर्दशीमें तू ऋतुदा कर सुभसे अपने विस्तर पर लेटना।” यह आकाशवाणी होनेपर पुत्र चाहती हुई देी पतिव्रता भद्रा उस वातके अनुसार उस प्रकार लेटी रही। हे भरतवंशमें श्रेष्ठ पुरुष ! उस देवोंने उस शवके वीर्यसे तीन शाल्व और चार मद्र, सब सात सन्तान प्रसव कीं। हे भरत-श्रेष्ठ ! उस प्रकार आपभी तप और योगके बलसे मानवके द्वारा सुभसे सन्तान पैदा कर सकते हैं।

संभवपर्चमें एकसी इक्कीस अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि धर्मज्ञ राजा पाण्डु देवोंसे यह बात सुनकर फिर उनकी अच्छा धर्मयुक्त यह बात बोले, कि हे कुन्ति । तुमने जो कहा, वह ठीकही है । व्युपितास्वने ऐसाही किया था, क्योंकि वह देववत थे ; पर धर्मज्ञ महात्मा महर्षियोंने पुराणोंमें धर्मका जो तत्व दिखाया है, वह तुमसे कहता हूं, सुनो, ऐ सुन्दरि । पूर्वकालमें स्त्रियोंकी कुछ मनाही नहीं थी; ऐ मधुरहासिनी । वे उन दिनों स्वतन्त्र अर्थात् पतिआदियोंसे न रीकी जाकर भोगके सुखकी आशमें धूमा करती थीं । ऐ सुन्दरी । वे कुमारी-दशाहीसे व्यभिचार किया करती थीं, इससे उनको अधर्म नहीं होता था, क्योंकि वही पूर्वकालका धर्म था । ऐ सुन्दरि । आजतक तिर्यग् योनिकी प्रजा-काम-हेषसे रहित होकर उस पुराने धर्मसे चरती हैं । महर्षिलोगभी प्रमाणसे दर्शाये हुए इस धर्मकी प्रशंसा किया करते हैं, ऐ सुन्दरि । उत्तर-कुरुओंमें आजतक इस धर्मकी पूजा हो रही है, क्योंकि वह सनातन धर्म स्त्रियों पर कृपायुक्त है । पर थोड़े-कालसे इस विषयमें वर्तमान नियम हो रहा है, जिस हेतु जिनसे यह स्थापित हुआ है, विस्तारपूर्वक कहता हूं, सुनो ।

हमने सुना है, कि उद्दालक नामका एक महर्षि थे । श्वेतकेतु नामसे प्रसिद्ध उनके एक पुत्र भये थे । उन श्वेतकेतुहीने क्रोधित होकर धर्मके अनुसार यह मर्यादा ठहरायी है । ऐ पद्मनेत्रवती ! उसका कारण सुनो । एक समय एक ब्राह्मण श्वेतकेतुके पिताके सामने उसकी मातासे हाथ थामकर बोला, कि मांसी हम चलें । अनन्तर ऋषिकुमार श्वेतकेतु अन्य पुरुषसे माताकी लिवाये जाते देखकर दुःखी और क्रोधित हुए । उनके पिता उद्दालक उनकी क्रोधसे कांपते हुए देखकर बोले, कि बेटा ! तुम क्रोधित मत होओ,

सनातन धर्म ऐसाही है । इन भूमंडलमें सर्व वणोंकीही स्त्रियां बिना रोक टोक सबोंसे मिलती हैं । ऐ बेटा । गौके समान सर्व वणोंकी प्रजाभी निज निज वणोंसे व्यवहार किया करती हैं । आगे ऋषिकुमारने वह सहनेको अहम होकर भूमंडलमें स्त्रीपुरुषोंकी यह मर्यादा ठहरायी । ऐ महाभागे ! हमने सुना है, कि उससे मनुष्य समाजमें यह नियम ठहर गया है ; यह दूसरे प्राणियों पर नहीं वर्तता है । श्वेतकेतुने यह नियम रचा, कि आजसे जो नारी पतिको तजकर व्यभिचार करेगी, उसको घेर दुःखदायी भूणहत्याका पाप लगेगा । फिरभी इस भूमंडलमें जो पुरुष-कौमारवस्थासे ब्रह्मचारिणी, पतिव्रता प्यारो स्त्रीको तजकर परायी नारीसे मिलेगी उसकोभी वैसाही पाप लगेगा । जो स्त्री पुत्र पैदा करनेके लिये पतिसे न मिलकर उनकी बात नहीं मानीगी, उसकोभी वैसाही पाप पड़ने चाहे । हे भीरु ! उन उद्दालकके पुत्र श्वेतकेतुने बलपूर्वक धर्मके अनुसार यह मर्यादा ठहरायी थी । ऐ सुन्दरी । हमने सुना है, कि सौदामको स्त्री मदयन्ती पतिसे पुत्र पैदा करनेमें नियुक्त होकर महर्षि वसिष्ठके निकट गयी थी और उनसे अश्वत्थ नामक पुत्र प्राप्त किया था । उस कासिनीने भर्ताका प्रियकार्य करने होके लिये ऐसा किया था । ऐ पद्मनेत्रे ! तुम यहभी जानती हो कि कुरुओंका वंश बढ़ानेके लिये भगवान् कृष्णवैपायनसे हम लोगोंका जन्म हुआ । अतएव हे सुन्दरी । इन सब विषयोंकी भली भर्ति आलोचना करके मेरी इस धर्मनुसारी बातको मानना तुम्हे उचित है । हे पतिव्रते, राजपुत्रि । धर्म जाननेवाले पुरातन धर्मकी यह व्याख्या तो करते हैं, कि मर्यादा हर ऋतुमें पतिको छोड़कर अन्यत्र न जाय, श्रेय अन्य समयमें वह स्वतन्त्र हो सकती हैं ; पर ऐ राजपुत्री ! वे

जाननेवाले यहभो कहते हैं, कि चाहे धर्म-वा
अधर्म होवे, पति भार्यासे जो कहे, भार्याको
वह अवश्य मानना चाहिये। ऐ सुन्दरि !
विशेष मैं पैदा करनेकी शक्तिसे हाथ धो चुका
हूँ, पर पुत्र पानेकी इच्छाभी रखता हूँ, सो है
शुभे ! मैं पुत्र देखनेकी इच्छासे तुमको प्रसन्न
करनेके लिये लाल उंगलिये से सुशोभित इस
पद्मपत्र समान हथेलीको सिर पर उठाता हूँ।
ऐ सुकेशिनी ! तुम मेरे नियोगके अनुसार
अच्छी तपस्यायुक्त ब्राह्मणसे गुणवन्त पुत्र प्रसव
करो। हे पृथुश्रीणि ! तुमसे मैं पुत्रवान्
जनोंकी गति लाभ करूँगा। पतिके प्रिय-
कार्य और हित चाहनेवाली सुन्दरी कुन्ती,
शत्रुपुर नाशनेहारे पति पाण्डुकी यह बात सुन
कर बोली, कि बालेपनमें मैं पिताके घरमें
अतिथियोंकी सेवामें नियुक्त थी। उन दिनों
प्रशसित व्रतयुक्त ब्राह्मणोंकी भले प्रकार सेवा
किया करती थी। एक समय धर्मके गृहंतत्त्व
जाननेवाले दुर्वास नामक प्रसिद्ध जितेन्द्रिय
महर्षि वहां आये। मैंने उनको सर्वप्रकारके
प्रयत्नसे सत्पूजित किया। उन भगवान्ने मुझकी
अभिचारयुक्त वर देकर एक मन्त्र दे दिया
और कहा, कि तुम इस मन्त्रसे जिन जिन
देवोंको बुलाओगी, वह चाहे काम रहे वा
नहीं रहे, उसीक्षण तुम्हारे वशमें हो जायेंगे।
मेरी रानि ! उन देवोंकी कृपासे तुम्हारे पुत्र
होंगे। हे भारत ! पिताके घरमें उन दुर्वा-
साने मुझसे ऐसा कहा था। हे भूपाल !
ब्राह्मणकी बात झूठी नहीं होती। अब उसका
समय आ पड़ा है; अतएव हे राजर्षि !
पापकी आज्ञा होवे, तो उस मन्त्रसे किसी
देवताकी बुला सकती हूँ, इससे हमें हितकरने
वाला पुत्र प्राप्त होगा। हे सत्यव्रतवर्मा !
यदि देवताओंमें किस देवकी बुलाऊँ आपहीकी
आज्ञासे मैं इस कार्यमें दक्षिण होती हूँ।

पण्डितजी, कि हे सुन्दरि ! तुम आजही

इस बातका यथाविधि प्रयत्न करो। ऐ शुभे !
धर्मकी बुलाओ, क्योंकि वह देवोंमें पुण्यात्मा
हैं। ऐ सुन्दरि ! धर्म हमको किसी प्रकार
से अधर्ममें डाल नहीं सकेंगे, और लोगभी
समझेंगे, यह काम धर्मयुक्त ही हुआ है।
इसमें सन्देह नहीं है, कि धर्मका दिया हुआ
वह पुत्र कुरुओंमें धार्मिक होगा और उसका
मन कभी अधर्मसे डाला नहीं जायगा; सो ऐ
सुन्दरि ! तुम संयत होकर और धर्मको
आश्रयकर, अभिचार तथा उपचारसे धर्म
हीको बुलाओ। श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि
अनन्तर वह श्रेष्ठ नारी कुन्ती भर्ताकी वह बात
सुन उसको मान, पाँव छू करके उनकी आज्ञा
मानली।

सम्भव-पर्वमें एक सौ बाईस अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे जनमेजय !
जब गोमारीने वर्षभर गर्भधारण किया था,
तब कुन्तीने गर्भके निमित्त अक्षर धर्मको
बुला करके शीघ्र उनकी पूजा की और पक्षि
दुर्वासाने जो मन्त्र दिया था, उसको यथाविधि
जपने लगी। अनन्तर मन्त्रके प्रभाव से, धर्म
राज स्थैर्य-सदृश यानमें आबद्ध होकर उस
स्थानमें, जहां कुन्ती जपकर रही थी, आन
पड़ने और हँसते हुए बोली, कि ऐ कुन्ती !
कहो, तुमको क्या देना होगा। कुन्ती हँस
हँसकर बोली, कि मुझको पुत्र दीजिये। अन्-
तर सुन्दरी कुन्तीने योगीका स्वरूप लिये हुए
धर्मसे मिलकर सर्वजीवोंका हित करने-
वाला पुत्र प्राप्त किया। इसके पश्चात् कार्तिक
महीनेकी अति प्रशसित पूर्णा तिथि को
शुक्ल पक्षकी चन्द्रयुक्त व्रजिष्ठा नक्षत्रमें आभ-
जित् नामक अष्टविंशतिवर्षीय दिन दोपहर के
समय कुन्तीने अति यग्यवन्त एक श्रेष्ठ पुत्र
प्रसव किया। उस पुत्रके जन्म नवही आश्विन
वर्षी हुई, कि पाण्डुका यह पादका पुत्र

धर्मशील जनोंमें श्रेष्ठ, विक्रमी, नरोंमें उत्तम
सत्य कहनेवाला, भूमण्डलका एकही अधि-
कारी, तीनों लोकोमें प्रशंसित यशवन्त, तेज-
वन्त व्रतशील और युधिष्ठिर नामसे प्रसिद्ध
होगा। पाण्डु वही धार्मिक पुत्र पाकर
फिर कुन्तीसे बोले कि पण्डितलोग चतुरियों को
बलमें श्रेष्ठ कहते हैं, सो तुम एक बलमें प्रधान
हो ऐसे पुत्रको प्रार्थना करो। अनन्तर
कुन्तीने पति की यह बात सुनकर पवनदेवकी
बुलायी। आगे महावली पवनदेव मृग पर
चढ़के उसकी पास आये और बोले, कि ऐ कुन्ति
तुम्हें क्या दूँ? तुम्हारे हृदयमें जो इच्छा
हो, सो कहो। कुन्ती लज्जासे मुह नीचाकर
कुछ हँस कर बोली, कि हे देवोत्तम। मुझको
बड़े शरीरधारी महावली, सर्व अहङ्कारको
हरनेहारा एक पुत्र दीजिये। अनन्तर पवन-
देवसे महाभुज भीमपराक्रमी भीमका जन्म
हुआ। हे भरत। उस महावली पुत्रके
जन्म लेतेही आकाशवाणी हुई, कि “यह जन्म
लिया हुआ बालक सम्पूर्ण बलियोंमें श्रेष्ठ
होगा।” वकीदर के जन्म लेतेही यह एक
आश्चर्य घटना हुई, कि उसने माताकी गोदसे
गिरकर देहसे पत्थर तोड़ डाला—कुन्ती
वाँघके भयसे भय खाकर एकायक गिर पड़ी;
यह समझ नहीं सकी, कि उसकी गोदमें वकी-
दर सीता था, सो वह वज्र समान शरीरधारी
कुमार पहाड़ पर गिर पड़ा, उसकी देहकी
चोटसे पत्थर सैकड़ों भागोंमें चूर हो गया।
उस आश्चर्य लीलाको देखकर पाण्डुने अचरज
माना। हे भरतश्रेष्ठ। जिस दिन भीमने
जन्म लिया, उसी दिन पृथ्वीनाथ दुर्योधनका
जन्म हुआ। वकीदरका जन्म होनेपर पाण्डु
फिर सोचने लगे, कि क्योंकर मेरे एक प्रधान
लोकश्रेष्ठ पुत्र पैदा होगा। यह भूमण्डल देव-
मौर पुरुषकारसे पूरा प्रतिष्ठित है, उनमेंसे
दश कालके अनुसार विधि-वश प्राप्त होता है।

सुनता हूँ, कि इन्द्र देवोंके राजा तथा प्रधान
हैं; वह अपरिमित बल और उत्साहयुक्त है,
और उनका वीर्य तथा प्रकाश भी अपरिमित
है। तपस्यासे उनकी प्रशंसा कर सकूँ, तो
महावली पुत्र पा सकूँगा, वह मुझको जो
पुत्र देंगे, वह अवश्यही सर्वोत्तम श्रेष्ठ होगा
और रणस्थलमें मर्त्यलोका तथा अमर्त्यलोक
वालोंकी हरा सकेगा, सो मैं कर्म, मन और
वाक्यसे कठोर तप करूँगा। अनन्तर कौरव-
नन्दन महाराज पाण्डुने, महर्षियोंसे परामर्श
कर कुन्तीकी यह आज्ञा दी, कि वर्ष भरमें पूर्ण
होवे, ऐसा कोई शुभ व्रत करो और आपभी
उन स्वर्गनायको उपासनोंकी इच्छासे परम
समाधिसे कठोर तपस्याकी आश्रयकर एक
पाँवसे खड़े हो सूर्यकी धूममें उदयके कालसे
अस्तकालतक तपने लगे। बृहत्काल बीतने
पर देवराज उनके पास आपहुँचे और बोले,
कि “मैं तुमको तीनों लोकोमें प्रसिद्ध एक श्रेष्ठ
पुत्र दूँगा; वह पुत्र गौ ब्राह्मण और मित्रोंका
हित करनेवाला, अमित्रोंको शोक पड़ाने
हारा, सब बान्धवोंको आनन्ददायी और सम्पूर्ण
शत्रुकुलका नाश करनेवाला होगा।” महात्मा
इन्द्रके यह बात कहनेपर, धर्मात्मा कौरव
देवराज की उस बातकी स्मरण कर कुन्तीसे
बोले, कि ऐ कन्याणि। तुम्हारा कर्म सुफल
हुआ है। देवनाथ प्रसन्न होकर तुम्हें सङ्ग-
लित पुत्रको देना चाहते हैं। ऐ सुन्दरी!
अब एक और यशस्वी शत्रु दसनेहारा, नीति-
युक्त, महात्मा, श्रेष्ठ समान तेजपूर्ण न हारने-
वाला, क्रियावान, देखनेमें अद्भुत, चतुर्यतेजसे
पूरित ऐसे कीर्तियुक्त जैसा मनुष्योंमें देख नहीं
पड़ता, पुत्र उत्पन्न करो। ऐ सुन्दरी! मैंने
देवराजकी प्रशंसा कर लिया है, तुम उनको
बुलाओ। त्रीवैशम्पायनजी बोले, कि यशस्वनी
कुन्तीने यह सुनकर इन्द्रको बुलाया। अनन्तर
देवराजने आकर अर्जुनका जन्म दिया। इसकी

जन्म लेतेही बड़े गम्भीर शब्दसे आकाश गूँजकर आकासवाणी हुई। उससे सम्पूर्ण आश्रममें रहेवाली प्राणियोंके कानोंमें सुन्दरी कुन्तीकी पुकार सहित यह सुन पड़ा, कि ऐ-कुन्ति। कार्तवीर्य सृष्ट वीर्यवान्, शिवि समान पराक्रमी, इन्द्रवत अजीत यह कुमार सर्वत्र तुम्हारा यश फैलावेगा। उपेन्द्रसे जिस प्रकार अदितिकी प्रीति बढ़ी थी, वैसेही उपेन्द्रवत यह पुत्र तुम्हारी प्रीति औरभी बढ़ावेगा। यह कुमार मद्र, कुरु, सोमक, चेदि, काशी करुष आदि देशोंकी वशमें लाकर कौरववंशकी राजलक्ष्मी-धारण करेगा। और इस पुत्रके भुजवीर्यसे अग्निदेव खाण्डवप्रस्थमें सर्वभूतोंके मेदसे बड़ा सन्तोष प्राप्त करेंगे। यह महाबली वीर पुरुष भाइयोंके सहित सम्पूर्ण महीपालोंको जीतकर तीनवार अश्वमेध यज्ञ करेगा। हे कुन्ति! यह अतियशवन्त पुत्र जामदग्न्या और वैष्णु समान पराक्रमी और वीर्यवान् जनेमें श्रेष्ठ होगा। यह युद्धमें महादेव शङ्करकी प्रसन्न कर उनसे पाशुपत अस्त्र प्राप्त करेगा और देवराजकी आज्ञासे देवोंके द्वेष करनेवाले निवातकवच नामक दैत्योंको वध करेगा। यह पुरुषोंमें श्रेष्ठ जन, सम्पूर्ण दिव्यास्त्र सीखकर विगड़ी हुई राजलक्ष्मीको फिर सुधारेगा” कुन्तीने पुत्रके विषयमें यह आश्चर्य वाणी सुनी। बड़े वेगसे उचारो हुई उस वाणीको सुनकर शतशृङ्ग पर विराजते हुए, तपस्त्रियोंकी बड़ा आनन्द हुआ और विमानपर आरुढ़ देवगणभी बड़े प्रसन्न हुए। आकाशमें बड़े घोर कोलाहलसे नगाड़े बजने लगे, घोर शब्द हँसने लगा, दिना रोम ठोकर ध्वज दर्पने लगे और सब देव मिल-कर पापोंकी पूजा करने लगे। कद्रु और विनायक पुत्रगण गन्धर्गगण अप्सरागण और अश्वपतिरक्षक तथा भरद्वाज कण्व, गौतम, शतभिष, जमदग्नि, अग्नि और (सर्वके

नष्ट होने पर जो उदित हुए थे, वह भगवान्, अत्रि-यह-सात-महर्षि-वहां आये। मरीचि, अङ्गिरा, पुलह्या, पुलह, क्रतु, प्रजापति दक्ष, गन्धर्व और अप्सरागण, यह भी वहां आये। अप्सरावृन्द दिव्यमाला और दिव्यबस्तु पहिनकर - सर्व - आभूषणोंसे वन-ठनकर अर्जुनकी प्रशंसाके गीत गाने और नाचने लगीं। चारों-ओर, महर्षिलोग स्वस्वकी मन्त्र-जपने लगे; श्रीमान् तुम्हारे गन्धर्वोंके साथ गीत आरम्भ किया। है-नरेश! भीमसेन, उग्रसेन, जर्णायु, अनघ, गोपति, धृतराष्ट्र, सूर्यवर्चा, युगप, दणप, काशी, नन्दि, चित्ररथ, शालिशिरा, पर्जन्य, कलि, नारद, सङ्गा, वृहडा, वृहक, महासना, कराल, ब्रह्मचारो, वज्रगुण, विख्यात सुवर्ण, विश्वावसु, भुमन्तु, सुचन्द्र, शक्र और ललित, गीत गानेवाले प्रख्यात हाहा और हूह-यह-देव और गन्धर्व-गीत गाने लगे। प्रशस्तलोचना, महाभागा, अप्सरायें सर्व आभूषणोंसे सज धजकर प्रसन्न चित्तसे नाचने और गाने लगीं। अनूचाना, अनवशा गुणमुख्या गुणावरा, अद्रिका, सोमा, मिश्रकेशी, अलम्बुषा, मरोचि, शुचिक्रा, विद्युतपर्णी, तिलोत्तमा, अम्बिका, लक्षणा, क्षेमा, देवी रम्भा, मनोरमा, असिता, सुवाङ्ग, सुप्रिया, सुवरा, पुण्डरीका सुगन्धा, सुरसा, प्रमाथिनी, काम्या और शारदती यह सब अप्सरायें जुट बांध नाचने लगीं। और मेनका सहजन्या, कर्णिका, पुष्टिकस्थला, ऋतुस्थला, घृताची विहावी पूर्वचितो, उल्लोचा और प्रलीचा, उल्लोकी विशालनेत्रा यह ग्यारह स्वर्गकी वैष्णव एकत्र होकर गीत गाने लगीं। धाता, अर्थमा, मित्र, वरुण, अंश, भंग, इन्द्र, विवस्वान, पूषा वरा, सविता और विष्णु यह बारह आदित्य और पर्जन्य तथा पावकगण आकाशमें विराजते हुए पाण्डुपुत्र की सहिसा बढ़ाने लगे। हे मद्रनाम्नी पृथ्वीनाथ। नृग-जगत्, सर्व, धर्म

यशवन्त, निःश्रुति, अजैकपात, अहिर्बुध्न, पिनाकी, दहन, ईश्वर, कपाली, स्थाणु और भगवान् भग यह ग्यारह रुद्र वहां आये । दोनों अश्विनीकुमार, आटी वसु, महावली मरुद्गण विश्वदेवगण और साध्यगण आनेकर वहां विराजने लगे । कर्कोटक, वासुकी, कच्छप कुण्ड और महोरज, तक्षक, यह सब तपयुक्त बड़े क्रोधी महावली सर्प और दूसरे बृहत् नाग वहां आपहुंचे । तार्क्ष्य, अरिष्टनेमि, गरुड़, असितध्वज, अरुण और आरुणि यह सब विनताके पुत्र भी वहां आ गये । विमानों पर चढ़े और पर्वत की चोटी पर टिके देवों को तपमें सिद्ध महापुरुष लोग देखने लगे, किसी दूसरे ने नहीं देखा । सुनियोनि वह सब अति आश्चर्य्य लीला देखकर अचरज माना और भी अद्भुत करने लगे, अति यशवन्त पाण्डुने पुत्रों को लोभसे फिर धर्मपत्नी कुन्तीको नियोग करना चाहा । उसपर कुन्ती उससे बोली, कि धर्म जाननेवाले लोग आपत्कालमें भी चौथे प्रसवकी प्रशंसा नहीं करते, क्योंकि चौथे पुंस्रस-नारि, स्त्रैरिणी होती है और पात्रवें पुरुषसे मिलने से वंश्या होतो है । हे विद्वत् ! आप यह धर्म जानने पर भी क्यों वावलेके समान उसको नाच कर फिर सन्तान के लिये सुभसे कहते है ?

सम्भवपर्वमें एकसौ-तेईस अध्याय समाप्त ।

श्रीशम्पायनजी बोलि, कि अनन्तर कुन्ती और गान्धारीके पुत्रोंके पैदा होने पर माद्री निरालीमें पाण्डुसे बोली, कि हे शत्रुनाशिन ! आपके सुभपर कृपायुक्त न रहनेके कारण भी कोई विशेष दुःख नहीं है, हे अनघ । कुन्तीसे अष्ट होकर सदा अष्टोष्ट सुभे बनी होने पर भी दुःख नहीं है, हे नरनाथ कुरु-दन । गान्धारीके सौ पुत्र भये सुनकरके सुभे कोई बड़ा क्रोध नहीं हुआ है, पर माद्रीका सुभे बड़ा दुःख है, कि हम दोनों सौत

समान हैं, पर तौभी मेरे सन्तान नहीं हुई, भाग्यवश कुन्तीसे आपके सन्तान हुई है, इस समय यदि कुन्तीराजपुत्री मेरे सन्तान होनेके उपाय कर दें, तो सुभपर बड़ी दया होवे और उससे आपकी भी हित हो सकता है कुन्तीपुत्री मेरी सौत है, सो उससे स्वयं कहनेकी अभिमान होता है, यदि आप सुभ पर प्रसन्न होवें, तो आपही उनकी आज्ञा दीजिये । पाण्डु बोले, कि ऐ माद्री ! इस विषयमें मैं सदा मनही मनमें आलोचना किया करता हूं, पर यह तुम्हारा इष्ट है, वा तहीं यही जानने की अपेक्षामें तुमसे कहनेका साहस नहीं हुआ था, अब तुम्हारा मत जान लिया, सो उस विषयमें प्रयत्नभी करूंगा, जान पड़ता है, कि मेरे कहनेसे कुन्ती मान लेती ।

श्रीशम्पायनजी बोलि, कि अनन्तर पाण्डु फिर निरालीमें कुन्तीसे बोलि, कि ऐ कल्याणि ! मेरी प्रीति के लिये लोकोके प्रिय कल्याणयुक्त ऐसा काम करो, कि जिससे मेरा वंश न उखड़े और मेरे पितरोंके और तुम्हारेभी पिण्डलोप होने की सम्भावना न रहे । ऐ भामिनि ! तुम यशके लिये इस कठिन कार्यमें हाथ डालो । देखी, देवोंके अधिकारी होने पर भी केवल यशके लिये देवराजने यज्ञ किया था । मन्त्रजाननेवाले ब्राह्मणलोग यज्ञहीके लिये कठोर तपे कर कर गुरुकी उपासना किया करते हैं और राजर्षि तथा तपोधन ब्राह्मण-लोगोंने केवल यज्ञहीके लिये नाना कठिन कर्म किये हैं, अतएव ऐ निन्दा वल्लित प्यारी ! तुम सन्तानरूपवेड़ेसे माद्रीका उद्धार करो । उसको पुत्रवती कर परम कीर्ति लो । कुन्ती यह सुनकर माद्रीसे बोली, कि तुम एकवार किसी देव का स्मरण करो, इसमें सन्देह नहीं, कि उनसे तुम्हारे उनके सङ्ग पुत्र होगा । माद्रीने मनही मनमें विचार कर दोनों अश्विनी कुमारोंको स्मरण किया ।

कुमारोंने वहां आकर नकुल और सहदेव नामक अनुपम रूपवान् दो यमज पुत्रोंका जन्म दिया। तब अकाशवाणी हुई, कि “सत्यरूपो गुणयुक्त यह दो कुमार रूपसम्पदमें दोनों अश्विनी-कुमारोंसेभी अधिक प्रकाशित हुए हैं। हे पृथ्वीनाथ। अनन्तर शतशृङ्ग पर रहनेवाले ब्राह्मणोंने कुमारोंके पुत्रोंमें आश्चर्य कर्म और भक्ति देखकर प्रसन्न चित्तसे अशीस देके नाम रख दिये। उन्होंने कुन्तीके पुत्रोंमें बड़ेका नाम युधिष्ठिर, ममलेका नाम भीमसेन, तीसरेका नाम अर्जुन और माद्रीके दो पुत्रोंमेंसे पहिले जन्म लिये हुए पुत्रका नाम नकुल और दूसरेका नाम सहदेव रखा। कुरु-वंशमें ये छ पाण्डुपुत्रगण बाल्यपनमें महाबली, पराक्रमी, महासत्त्वयुक्त और बड़े वीर्यवान्त हुए। उनकी आयु जब वर्ष-भरकी हुई, तब वे पांच वर्षकी अवस्थावाले जान पड़ने लगे। नरनाथ पाण्डु उन पुत्रोंको देव सनान और बड़े तेजस्वी देखकर बड़ आनन्दित हुए। पाण्डुवगण शतशृङ्ग पर रहनेवाले मुनियोंके और उनकी स्त्रियोंकेभी प्यारे बने। अनन्तर पाण्डुने फिर निरालेमें माद्रीके लिये कुन्तीसे विनय की, तब कुन्तीने उत्तर दिया, कि मैंने एकवार कहने से माद्रीने दो पुत्र लाभ किया है, इससे मैं ठगी गयी हूं, सो अब उससे चारनेका भय खाती हूं क्योंकि बुरी नारियोंका स्वभाव ऐसाही होता है। मैं मूर्ख हूँ पछिले नहीं जानती थी, कि एकही बार दो देवोंका बुलानेसे दो पुत्र पैदा होते हैं, जो आपसे यह वर मांगती हूं, कि आप इस विषयमें मुझे आशान कीजिये। महाराज। इस प्रकारसे पाण्डुके देवोंके दिये हुए महाबली कीर्तिमानों, वरुण वटानेवाले पांच पुत्र उत्पन्न हुए। वे मानवोंमें ये छ पाण्डव लोग अभयशाली, चन्द्रमाके समान देखनेमें प्रिय और आशीर्वादी, मित्र समान जानीवाले, मित्र

सत्ययुक्त, सिंहकीनाई आंखंधारी, सिंहकी भक्ति सदृश विक्रभी, सिंहकी भांति गर्दनयुक्त, सिंहके विक्रमसे पूरित स्थानमें जानेवाले और देवोंके समान विक्रमयुक्त होकर दिन पर दिन बढ़ने लगे। पवित्र हिमालयपर एकत्रित महर्षि लोगोंने उनकी उस प्रकार बढ़ने देखकर अचरज माना था। जिस प्रकार जलमें थोड़े कालमें पद्मवन खिल उठता है, वैसे ही वे एक सौ-पांच कौरव रूत कालमेंही बढ़ उठे।

सम्भव पर्वमें एकसौ चौबीस अध्याय समाप्त।

श्रीकृष्णायनजो बोलि, कि अनन्तर पाण्डु देखनेके योग्य उन पांच पुत्रोंको देखकर केवल अपने सुभावल्लके आश्चर्यसे उस पहाड़पर भारी वनमें सुखसे काल काटने लगे। एक समय प्राणियोंके मीहनेवाले वसन्तके आने पर नाना फूलोंसे सजे सजाये वनमें राजा पाण्डु स्त्रीके साथ घूमने लगे। देखो, कि घासों और गूँड़नेवाले भंवरोसे ढँपे हुए पल्लव, तिल, आम, चम्पा, पारिभद्रक, कर्णिकार, केशर, अतिमुक्त अशोक, कुरुवक, खिले मान्दारवन और दूसरे पौधे नाना फल फलोंसे सजे हैं; कीयल हर घड़ी कुलहलाय रही हैं; मधुमक्खी भन भनाती हुई, गीत नारही है; और नाना स्थानोंके ताल खिले पद्मवनोंसे सुशोभित हुए हैं। चितकोमत्त करनेवाले उन वनोंको देखते हुए राजा पाण्डुके हृदयपर कामदेवका अधिकार प्रगट हुआ। अच्छा वस्त्र पहिरी हुई माद्री अकेली प्रफुल्लितचित्त और देवता समान घूमते हुए उन राजाके पीछे पीछे चलने लगी। तब पतला वस्त्र पहिरे हुई युवती माद्रीको देखकर राजाके हृदयमें इस प्रकार मदनकी आग सुलग उठी, कि जैसे वनमें आग बल उठती है। वह निरालेमें उस पद्मवना वाताको देखतेही एकवारही कामके बागों कीगये, किमी प्रकार कामकी रोक नहीं सके।

सो असहाया धर्मपत्नीको बलसे पकड़ लिया । तब देवी माद्री अपने पूरे बल और शक्तिसे रोकने लगी पर राजा तब कामसे एकवार ही बावले बने थे, सो प्राणनाशी पूर्ण कथित शापके भयको उनके चित्तमन्दिरमें स्थान नहीं मिला । हे कौरव !- उस कालमें मदनकी आज्ञा से चलते हुए, पाण्डु विधिवश शापके भयको भूलकर मानो जीवन छोड़नेहीके लिये बलसे माद्रीको पकड़कर मैथुनधर्मके पथिक बने । उस कामयुक्त पुरुषकी बुद्धि साक्षात्-कालसे मोहित होकर इन्द्रियोंकी मंथनकर चेतना सहित जाती रही थी, सो वह परम धार्मिक कुरुनन्दन पाण्डु स्त्रीसे मिलकर कालके धर्ममें नियुक्त हुए ।

अनन्तर माद्री चे ना रहित भूपालसे लिपटी रह करकेही बार बार दुःखसे चिन्ताकर गला फाड़ने लगी । आगे पुत्रोंके साथ कुन्ती और माद्रीके दोनों पुत्र उस शोकयुक्त शब्दको सुनकर एकत्र हो करके वहां जाने लगे, जहां राजाकी वह दशा हुई थी । हे महाराज ! तब माद्री कातर स्वरसे कुन्तीसे बोली, कि तुम अकेलीही यहां आओ, लड़के वहीँ-रहें । कुन्ती यह सुनकर लड़को को वहीँ छोड़कर यह कहके रीती हुई कि "मैं मारी गयी" उसी-क्षण वहां आ पड़्यो । वह माद्रीके साथ पाण्डुकी धरतीपर लेटे हुए देखकर शोकसे विडल हुई और अति दुःखसे विलपती हुई बोली, कि इस जितेन्द्रिय वीरको मैं सदा वचाती फिरती थी, इन्होंने ऋषिके शापसे ज्ञात रह करकेभी क्योंकर तुमपर आक्रमण किया ? री माद्री ! इस भूपालको तुम्हें वचाना उचित था, वह न करके तूने क्यों इनकी निरालेमें लुभाया ? यह शापसे ग्रसित होनेके कालसे सदा दुःखी चित्तसे उस शापके सोचमें रहते थे, फिर निरालेमें तुम्हें पाकर क्योंकर इनके चित्तमें हर्ष आन खड़ा हुआ ? री

वाल्मीकि ! तू मुझसे धन्य और भाग्यवती है, क्योंकि तूने कामयुक्त भूपालका प्रफुल्ल मुख देखा है । माद्री बोली, कि ऐ देवि ! मैं विलपती हुई, बार बार रोकने लगी, पर राजा शाप-है ! दुर्भाग्यता-सफल करनेहीके लिये अपनेको नहीं रोक सके । अनन्तर कुन्ती बोली, कि मैं बड़ी धर्मपत्नी हूं, प्रधान धर्मफल मुझकोही मिलता है, सो री माद्री ! अवश्यमेव होनेवाले विषयसे मुझे मत रोक ; मैं परलोककी सिधारे हुए, पतिके साथ ही जाऊं, तू इनको छोड़कर इन लड़कोंको पालना । माद्री बोली, कि मैंने पतिको पकड़ रखा है, भागने नहीं दिया है, मैंही इनके साथ जाऊंगी, क्योंकि मैं काम-रससे भली प्रकार तप्त नहीं हुई हूं, तूम बड़ी, हो सो मुझे आज्ञा दो । यह भरत कुलके प्रदीप मुझसे मिलकरकेही कामसे च्युत हुए हैं, सो मैं यमराज के घरमें क्योंकर इनके उस कामकी उखाड़ डालूंगी ? ऐ आर्य्य ! ऐसा जान नहीं पड़ता है, कि मैं जीती रहकर तुम्हारे पुत्रोंको अपने पुत्रोंकी भांति पाल सकूंगी, सो उस हेतु मुझको पापकी आच नग्न सकतो है, अतएव ऐ कुन्ति ! तुम मेरे इन दोनों पुत्रोंसे अपने पुत्रकी भांति वर्त्ताव करना, यह राजा मेरीही कामना करके परलोक की सिधारे है, सो इनके शरीरसे मेरे इस शरीरको ढांपकर फूकना । ऐ आर्य्य ! मेरे इस प्रिय कार्य्यके करनमें असम्मत मत होना । फिरभी तुम मेरे हित चाहनेवाली होकर लड़को पर ध्यान रखना, इसके अति-रिक्त मैं नहीं समझती हू कि मुझे और कुछ कहनेकी है । वैशम्पायनजी बोले, धर्मपत्नी यशयुक्ता मद्रराज-कन्या यह कहकर विना विलम्ब चिताकी आगमें स्थित पाण्डुके सह में गयी ।

सम्भव पर्वमें एकमौ पच्चीस अध्याय समाप्त ।

कुमारोंने वहां आकर नकुल और सहदेव नामक अनुपम रूपवान् दो यमज पुत्रोंका जन्म दिया। तब अकाशवाणी हुई, कि “सत्यरूपो गुणयुक्त यह दो कुमार-रूपसम्पदमें दोनों अश्विनी कुमारोंसेभी अधिक प्रकाशित हुए हैं।, हे पृथ्वीनाथ। अनन्तर शतशृङ्ग पर रहनेवाले ब्राह्मणोंने कुमारोंके पुत्रोंमें आश्चर्य कर्म और भक्ति देखकर प्रसन्न चित्तसे अशीस देकों नाम रख दिये। उन्होंने कुन्तीके पुत्रोंमें बड़ेका नाम युधिष्ठिर, मभलेका नाम भीमसेन, तीसरेका नाम अर्जुन और माद्रीके दो पुत्रोंमेंसे पहिले जन्म लिये हुए पुत्रका नाम नकुल और दूसरेका नाम सहदेव रखा। कुरु-वंशमें अष्ट पाण्डुपुत्रगण बाल्यपनमें महाबली, पराक्रमी, महासत्त्वयुक्त और बड़े वीर्यवान्त हुए। उनकी आयु जब वर्ष भरकी हुई, तब वे पांच वर्षकी अवस्थावाले जान पड़ने लगे। नरनाथ पाण्डु उन पुत्रोंको देव सनान और बड़े तेजस्वी देखकर बड़ा आनन्दित हुए। पाण्डुवगण शतशृङ्ग पर रहनेवाले मुनियोंके और उनकी स्त्रियोंकेभी प्यारे बने। अनन्तर पाण्डुने फिर निरालिमें माद्रीके लिये कुन्तीसे विनय की, तब कुन्तीने उत्तर दिया, कि मेरे एकवार कहने से माद्रीने दो पुत्र लाभ किया है, इससे मैं ठगी गयी हूं, सो अब उससे हारनेका भय खाती हूं क्योंकि बुरी नारियोंका स्वभाव ऐसाही होता है। मैं मूर्ख हूँ पहिले नहीं जानती थी, कि एकही बार दो देवोंको बुलानेसे दो पुत्र पैदा होते हैं, सो आपसे यह वर मांगती हूं, कि आप इस विषयमें मुझे आज्ञा न कीजिये। महाराज। इस प्रकारसे पाण्डुके देवोंके दिये हुए महाबली कीर्तिनालो, कुरुवंश बटानेवाले पांच पुत्र उत्पन्न हुए थे। वे मानवोंमें अष्ट पाण्डुवलो गम्भिरदण्डयुक्त, चन्द्रमाके समान देखनेमें प्रिय बड़े नाथधारी, सिंह समान छातीवाले, सिंह

सत्त्वयुक्त, सिंहकीनाई आंखधारी, सिंहकी भक्ति सदृश विक्रभी, सिंहकी भांति गर्दनयुक्त, सिंहके विक्रमसे पूरित स्थानमें जानेवाले और देवोंके समान विक्रमयुक्त होकर दिन पर दिन बढ़ने लगे। पवित्र हिमालयपर एकत्रित महर्षि लोगोंने उनको उस प्रकार बढ़ने देखकर अचरज माना था। जिस प्रकार जलमें थोड़े कालमें पद्मवन खिल उठता है, वैसे ही वे एक सौ पांच कौरव रूद्र कालमेंही बढ़ उठे।

सम्भव पर्वमें एकसौ चौबीस अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोलते, कि अनन्तर पाण्डु देखनेके योग्य उन पांच पुत्रोंको देखकर केवल अपने सुभवलके आश्चर्यसे उस पहाड़पर भारी वनमें सुखसे काल काटने लगे। एक समय प्राणियोंके मोहनेवाले वसन्तके आने पर नाना फूलोंसे सजे सजाये वनमें राजा पाण्डु स्त्रीके साथ घूमने लगे। देखा, कि घास और गूँजेवाले भंवरोसे ढँपे हुए पेलोश, तिल, आम, चम्पा, पारिभद्रक, कर्णिकार, केशर, अतिसुक्त, अशोक, कुरुवक, खिले मान्दारवन और दूसरे पौधे नाना फल फलोंसे सजे हैं; कीयलहर घड़ी कुलहलाय रही हैं; मधुमक्खी भनभनाती हुई, गीत नाचती है; और नाना स्थानोंके ताल खिले पद्योंकीसे सुशोभित हुए हैं। चित्तकीमत्त करनेवाले उन वनोंको देखते हुए राजा पाण्डुके हृदयपर कामदेवका अधिकार प्रगट हुआ। अच्छा वस्त्र पहिरी हुई माद्री अकेली प्रफुल्लितचित्त और देवता समान घूमते हुए उन राजाके पीछे पीछे चलने लगी। तब पतला वस्त्र पहिरे हुई युवती माद्रीको देखकर राजाके हृदयमें इस प्रकार मदनकी आग सुलग उठी, कि जैसे वनमें आग बल उठती है। वह निरालिमें उस पदमेत्रावालाको देखतेही एकवारही कामके वशमें होगये, किमी प्रकार कामकी रोक नहीं सकें।

सो बसहाया धर्मपत्नीको बलसे पकड़ लिया । तब देवी माद्री अपने पूरे बल और शक्तिसे रोकने लगी पर राजा तब कामसे एकधार ही बावले बने थे, सो प्राणनाशी पूर्व कथित शापके भयको उनके चित्तमन्दिरमें स्थान नहीं मिला । हे कौरव ! उस कालमें मदनकी आज्ञा से चलते हुए, पाण्डु विधिवश शापके भयको भूलकर मानो जीवन छोड़नेहीके लिये बलसे माद्रीको पकड़कर मैथुनधर्मके पथिक बने । उस कामयुक्त पुरुषकी बुद्धि मादात-कालसे मोहित होकर इन्द्रियोंकी मंयनकर चेतना सहित जाती रही थी, सो वह परम धार्मिक कुरुनन्दन पाण्डु स्वोसे मिलकर काल-के धर्ममें नियुक्त हुए ।

अनन्तर माद्री ने ना रक्षित भूपालसे लिपटी रह करकेही बार बार दुःखसे चिन्ताकर गला फाड़ने लगी । आगे पुत्रोंके साथ कुन्ती और माद्रीके दोनों पुत्र उस शोकयुक्त शब्दको सुनकर एकत्र हो करके वहां जाने लगे, जहां राजाकी वह दशा हुई थी । हे महाराज ! तब माद्री कातर स्वरसे कुन्तीसे बोली, कि तुम अकेलीही यहा आओ, लड़के वही रहें । कुन्ती यह सुनकर लड़को को वही छोड़कर यह कहके रोती हुई कि "मैं मारी गयी" उन्मी-चण वहा आ पड़्यो । वह माद्रीके साथ पाण्डुकी धरतीपर लेटे हुए देखकर शोकसे विह्वल हुई और अति दुःखसे विलपती हुई बोली, कि इस जितेन्द्रिय वीरकी मैं सदा वचाती फिरती थी, इन्होंने कृपिके शापसे ज्ञात रह करकेभी क्योंकर तुमपर आक्रमण किया ? री माद्री । इस भूपालको तुमने वचाना उचित था, वह न करके तूने क्यों इनको निरालेमें लुभाया ? यह शापसे ग्रसित होनेके कालसे सदा दुःखी चित्तसे उस शापके सोचमें रहते थे, फिर निरालेमें तुमने पाकर क्योंकर इनके चित्तमें हर्ष आन खड़ा हुआ ? री

वाहीकि ! तू मुझसे धन्य और भाग्यवती है, क्योंकि तूने कामयुक्त भूपालका प्रफुल्ल सुख देखा है । माद्री बोली, कि ऐ देवि ! मैं विल-पती हुई, बार बार रोकने लगी, पर राजा शाप-हे ! दुर्भग्यता सफल करनेहीके लिये- अपनेको नहीं रोक सके । अनन्तर कुन्ती बोली, कि मैं बड़ी धर्मपत्नी हूं, प्रधान धर्मफल सुभकोही मिलता है, सो री माद्री ! अवश्यमेव होनेवाले विषयसे सुभे मत रोक ; मैं परलोककी सिधारे हुए, पतिके साथ ही जाऊं, तू इनको छोड़कर इन लड़कोंको पालना । माद्री बोली, कि मैंने पतिको पकड़ रखा है, भागने नहीं दिया है, मैंही इनके साथ जाऊंगी, क्योंकि मैं काम-रससे भली प्रकार तप्त नहीं हुई हूं ; तू बड़ी, हो सो सुभे आज्ञा दो । यह भरत कुलके प्रदीप सुभसे मिलकरकेही कामसे च्युत हुए हैं, सो मैं यमराज के घरमें क्योंकर इनके उस कामकी उखाड़ डालूगी ? ऐ आर्य्य ! ऐसा जान नहो पड़ता है, कि मैं जीती रहकर तुम्हारे पुत्रोंको अपने पुत्रोंकी भाति पाल-सकूगी, सो उस हेतु सुभको पापकी आच नग सकतो है, अतएव ऐ कुन्ति ! तुम मेरे इन दोनों पुत्रोंसे अपने पुत्रकी भाति वर्ताव करना, यह राजा मेरीही कामना करके परलोक की सिधारे है, सो इनके शरीरसे मेरे इस शरीरको ढांपकर फूकना । ऐ आर्य्य ! मेरे इस प्रिय कार्य्यके करनमें असम्मत मत होना । फिरभी तुम मेरे हित चाहनेवाली होकर लड़कों पर ध्यान रखना, इसके अति-रिक्त मैं नहीं समझती हूं, कि सुभे और कुछ कहनेकी है । वैशम्पायनजी बोले, धर्मपत्नी यशयुक्ता मद्रराज -कन्या यह कहकर बिना विलम्ब चिताकी आगमें स्थित पाण्डुके सङ्ग में गयी ।

सम्भव पर्वमें एकमौ पच्चीस अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी वेली, कि देवोंको भांति युक्तिदाता महर्षि तपस्वीगण पाण्डुकी मृत्युकी देखकर आपसमें कहने लगे, कि अति यशस्वी महात्मा पाण्डुने राज्यकी छोड़के इन स्थानमें तप करते हुए तपस्वियोंकी शरण ली थी। वह स्त्री और बालकपुत्रोंको इस स्थानमें तुम्हारे पास व्यासकी भांति रखकर यहाँसे स्वर्गकी पधारे, सो चली, हम उन महात्माकी स्त्री पुत्र और देहकों लेकर उनके राज्यमें जायं, तभी हमारे धर्मको रक्षा होगी।

श्रीवैशम्पायनजी बेली, कि उदारचित्त, सिद्ध और देवसदृश महर्षियोंने आपसमें ऐसो युक्तिकर भीष्म और धृतराष्ट्रके निकट सौप देनेके लिये पाण्डुओंकी आगे करके हस्तिनापुरको जाना चाहा। वे उसीक्षण पाण्डुकी स्त्री, पुत्र और दोनों मुर्दोंको लेकर पधारे। पुत्र-प्रेमयुक्त दुन्तीने पहिले सदा सुखी रहने पर भी अब निज देशमें जानेके कौतूहलसे उस दूर पथसे चलनेपर उसको स्तब्ध जाना। उस यशस्विनीने स्वल्पकालके बीचहीमें कुरु-जाङ्गलमें पड़चकर नगरके प्रधान द्वारकी प्राप्ति किया। तब तपस्वीलोग द्वारवानोंसे बेली, कि राजासे हमारे आनेकी बात कहो। द्वारवानने उसीक्षण राजसभामें जाकर वह समाचार सुनाया। हस्तिनापुरमें सहस्रो गृह्यका और मुनियोंके आनेका समाचार सुन पुरवासी प्रजाओंने अचरज माना। अनन्तर स्वर्ग उगनेके क्षणभर पीछे पुरवासीलोग तपस्वियोंके दर्शनके निमित्त स्त्री पुत्रादिके साथ पड़चने लगे। यानोंपर चढ़े स्त्री-सहित चरित्रगण और ब्राह्मणोंके साथ ब्राह्मणिया चली, वैश्य तथा शूद्रोंकीभी बड़ी भीड़ लगी। उस समय किसीने किसी पर द्वेष प्रगट नहीं किया। सबोंकी बुद्धि धर्ममार्ग में डली रही। गान्तनुपुत्र भीष्म, वाहीक, उदरक, प्रह्लाद, राजर्षि धृतराष्ट्र विदुर,

देवी सत्यवती, यशस्विनी काशीराजकन्या और राजराणियोंके साथ गान्धारीभी निकली। दुर्योधन आदि धृतराष्ट्रके सौ पुत्र भी नाना सुन्दर गहनोंसे सजकर आये। पुरोहितके साथ कौरवलोग उन सब महर्षियोंको देखकर सिर नायकर प्रणाम करके सामने आ बैठे। उस प्रकार नागरिक और ग्रामवासी सभी भूमिपर स्वागतकर सिर नाय करके प्रणाम पूर्यक उनके सामने जा बैठे। हे प्रभो! अनन्तर भीष्म चारों और सब लोगोंको चुपचाप देखकर पाय और अर्घ्यसे न्यायके अनुसार उन महर्षियोंकी पूजाकर राज्य और राजाका हाल कह सुनाया। इसके पश्चात् उनमें सबसे बूढ़े, जटा अजिन धरे हुए, एक महर्षि उठे और साथी ऋषियोंकी सन्मति लेकर यह बात बेली, कि कौरव-राज्यके अधीश पाण्डु नामक जो भूपाल कामके भोगकी तजकर यहाँसे शतशृङ्ग पर गये थे, उनके प्रशंस्य व्रतके लेनेपर किसी दिव्य कारणसे उस शतशृङ्ग पर साक्षात् धर्मसे इस पुत्रका जन्म हुआ है, इनका नाम युधिष्ठिर है। फिरभी उस महात्मा राजाने पवनसे बलवानोंमें अंश, भीम नामक यह पुत्र प्राप्त किया है। सत्य पराक्रमी इस बालकने देवराजसे कुन्तीके गर्भसे जन्म लिया है, इसकी कीर्ति सम्पूर्ण चाप धारियोंकी पराजय करेगी। अन्य, दोनों अश्विनी कुमारोंसे माद्रीने जो दो महाचाप धारी पुरुष-श्रेष्ठोंको प्रसव किया है, उन पुरुष व्याघ्रोंकीभी यह देखो। यशस्वी पाण्डुने धार्मिक और वनचारी होकरके प्रायः नष्ट होनेवाले पितामह-वंशका फिर उद्धार किया है। तुम पाण्डुके पुत्रोंका जन्म, ऋद्धि और वेद पठनकी भली प्रकार आलोचना करके सदा परम प्रीति प्राप्त करोगे। पाण्डु मातृओंकी पदवीमें चढ़कर और पुत्र प्राप्त कर आज सातदिन हुए पिश्लोकी सिधां

पतिव्रता माद्री उनको चितापर स्थित और अग्निके मुखमें आहुति चढ़ते देखकर उस अग्निसमें प्रवेश करके अपनाजीवन त्यागकर पतिके साथ पतिलोकमें गयी है । अब उनके परलोककी जो कुछ क्रिया करनी हो, करो ! उनके यह दो शरीर और माताके साथ वह श्रेष्ठ पुत्रगण क्रियासे गुड़ होवे । प्रतिक्रिया हो जानेपर अति यशस्वी सर्व-धर्म जाननेवाले कुरुवंशियोंमें श्रेष्ठपुत्र पाण्डु पितृ वत्तकी प्राप्त करें। औत्रैशम्यायनजी बोले, कि तपस्वी-लोग यह कहकर उनके सामने ही गुल्लकोंके साथ क्षण भरमें अन्तर्हित हुए । उन ऋषि और सिद्धोंकी गन्धर्वोंके नगरकी भांति अघात भ्रमसे आकाशमें भुल्लादियुक्त जो नगर दीख पड़ता है, उसके समान उपस्थित होते और फिर अन्तर्हित होते देखकर सबोंने अचरज माना ।

सम्भवपर्वमें एकसौ छत्तीस अध्याय समाप्त ।

धृतराष्ट्र बोले, कि हे विदुर । राजविधिके अनुसार राजाओंमें सिंहहृषो पाण्डु और माद्री की सम्पूर्ण प्रतिक्रिया भले प्रकार निर्व्वाह करो । पाण्डु और माद्रीके नामसे पशु, वस्त्र, रत्न और नाना, धन, जिनकी जितनी इच्छा हो, वह उनको दान कर दो । ऐसा करो, कि कुन्ती माद्रीका सत्कार करे और माद्रीकी भले प्रकार ऐसे तोप ताप रखे, कि वह पवन और सूर्यसेभी न दीख पड़े । निष्पाप पाण्डुको दशा बुरी नहीं है, क्योंकि देवकुमार समान भूरताभूरित पंच पुत्र उत्पन्न हुए हैं ।

औत्रैशम्यायनजी बोले, कि हे भारत । विदुर उनको "जो आज्ञा हो" कह कर भीषके साथ परम पवित्र स्थानमें पाण्डुके सत्कारमें प्रवृत्त हुए । राजपुरोहितलोग शीघ्रतापूर्वक राजपुरोसे राजा पाण्डुके आज्यकी गन्धसे सुगन्धी प्रज्वलित जानाग्निकी उनको दाहनेके

लिये ले आये । अनन्तर मत्तो, ज्ञाति और मित्रवर्ग वस्त्रसे पाण्डुके शरीरकी तोपकर और भांति भांतिके फूल, अच्छी गन्धयुक्त पदार्थ मूल्यवान वस्त्र और माला आदिसे पाल्कीमें सुशोभित कर उनके निकट जा पड़चे । उसके पीछे उस सजे सजासे दानमें नरोंकी जीत कर उसपर माद्रीसे लिपटे हुए भलीभांति ढंपे नरश्रेष्ठ पाण्डुकी ले जाने लगे और गुल्ल हल धर कर चंवर हिला कर और अनेक वाजे बजा कर उनको बड़ी शोभा कर दी । पाण्डुकी और्द्धदेहिक क्रियाके लिये सौकड़ों मनुष्य वज्रतरु लेकर सागनेवालोंकी वांटने लगे और पाण्डुके लिये गुल्ल हल बड़ा चंवर और मनोहर वस्त्र बटोरे । पुरोहित लोग शुक्लवस्त्र पहिन कर जलते हुए अलंकृत अग्नियों आहुति चलाते हुए उनके आगे चलने लगे और सहस्रों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र शोकयुक्त होकर रो रो कर यह कहते हुए राजाके पीछे चलने लगे, कि हे नराधिप । आप हमको कठोर दुःखमें त्याग अतायकर कहाँ चले ?

अनन्तर पाण्डुवाण, भीष और विदुरने रीते हुए चलकर मङ्गलमयी गङ्गातटके सुन्दर वनयुक्त खण्डमें समभूमि पर सत्यवादो सुकन्धी स्त्रीसहित नरसिंह पाण्डुकी पाल्की धरी । उसके पीछे उन्होंने कृष्णअगुल्लसे लिप्त, चन्दनसे चर्चित और सर्व सुगन्धसे सुगन्धित पाण्डुकी देहकी सुवर्णके घड़ेमें लागे हुए जलसे नहलाकर चारों ओर श्वेत-चन्दन लगा दिया, आगे कृष्णअगुल्लसे मिले हुए तुङ्गरस नामक सुगन्धी पदार्थसे लिप्त कर उनकी देशीय शुक्ल-वस्त्रसे तोप दिया । मूल्यवान विस्तरपर महाराज पाण्डु वस्त्रसे तोप जाकर जीवितके समान शोभा पाने लगे । अनन्तर ऋत्विजोंकी आज्ञानुसार प्रतिक्रिया होजाने पर उन्होंने घृतमें नहाये और अलंकृत माद्री-सहित राजाकी तुङ्ग औ पद्मनामक सुगन्धि पदार्थोंसे मिली हुई

चन्दनकी लकड़ी, तथा दूसरे भाँति भाँतिके अन्ही गन्धयुक्त पदार्थोंसे विधिपूर्वक दाहने लगे। तब काशिराजकी पुत्री कौशल्या मोहसे “हा पुत्र! हा पुत्र।” यह बात कहती हुई एकायक धरती पर लोट गयी। नगरवाले तथा जनपदवासी उनकी शोकयुक्त और गिरजाते देखकर राजभक्तिसे दया पूरित और दुःखी होकर रोने लगे। वहाकी तिर्थग्योंनिसे उत्पन्न हुए सम्पूर्ण प्राणीभी उस-रुलाईसे मानों कातर होकर मनुष्यके साथ रोने लगे; अनन्तर दाहकी क्रिया अन्त होने पर पाण्डवोंके साथ भीष्म, विदुर, धृतराष्ट्र और सम्पूर्ण कौरवी स्त्रियोंने पाण्डुकी जल-क्रिया की।—हे महाराज! सम्पूर्ण मन्त्रीगण उन जल क्रिया किये हुए, शोकसे व्याकुल पाण्डवों को लेकर शोक करते हुए घरकी लौट आये।—हे महाराज! पाण्डवोंने जिस प्रकार वस्तुओंके साथ मिट्टी पर सो सो कर बारह रात काटी, वैसेही ब्राह्मण आदि नगरवालेभी धरती पर सीये और नगरके लड़कों तक सम्पूर्ण प्रजाओंसेभी पाण्डवोंके साथ साथ विना हर्ष, विना आनन्द, विना स्वास्थ्य-बारह रात गंवायी।

सम्भवपर्वमें एकसौ सताइस अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर कुन्ती, धृतराष्ट्र और भीष्मने वस्तुओंके साथ सम्पूर्ण कौरव और सहस्राँ अच्चे अच्चे विप्रोंकी भोजन कराके और अच्चे अच्चे विप्रोंकी रत्न और सुन्दर सुन्दर ग्राम दे दे कर पाण्डुकी स्वधा और अमृतमय आइ दान किया। आगे भरतवंशियोंमें अष्ट शौच किये हुए पाण्डवोंकी लेकर जास्तिनापुरमें प्रविष्ट हुए। नगर और जनपदवासी अपने मृत मित्रकी भाँति उन पुरुष-पण्डुके लिये मदा शोक करने लगे। अनन्तर कृष्ण व्यास आनकर आद क्रियाके अन्तमें सब

जनोकी दुःखी देखकर मोहयुक्त और दुःखी शोकसे विह्वल माता सत्यवतीसे बोले, कि मा। सुखका दिन जाता रहा है; अब कठोर काल आ पड़ा। दिन धीरे धीरे पापपूर्ण हो रहे हैं, पृथ्वीकी जीवन दशा जाती रही; अब पूर्व वत शस्यकी उपज नहीं होगी; उसके पीछे बड़ी भारी मायामे पूरित, धर्मक्रिया और आचारनाशी, नाना विधयुक्त कठोर काल आपड़ेगा; कुरुओंकी बुरी नीतिसे धरती उजड़ जाने पर होगी, सो आप तपोवनमें जाकर चिन्तकी वृत्तियोंकी रोककर योगमें बैठिये। अपने वंशका घोर सर्वनाश न देखिये। सत्यवती—“तथास्तु” कहके वह मानकर अन्त-पुरमें जाकर पुत्रवधूसे बोली, कि ऐ अम्बिका। मैंने सुना है, कि तुम्हारे पौत्रकी बुरी रीतिसे आत्मजनोंके साथ भरतवंशी और नगरवाले नष्ट हो जायेंगे, सो यदि तुम चाहो, तो तुम्हारा मङ्गल होवे, चलो हम इस पुत्र शोकसे विह्वल अम्बालिकाको लेकर वनमें जाय। यह कह कर सुव्रतयुक्त सत्यवती अम्बिकाके साथ भीष्म को उस प्रकारसे सम्बोधन कर दोनों पुत्र वधुओंके साथ वनकी पंधारी। हे भरतवंश महाराज! उन देवियोंने वहां कठोर तप कर देह छोड़करकी मनमानी सुगति प्राप्त की।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर पाण्डव वेदानुसार संस्कारोंको पाकर नाना भोगके पदार्थ भोग करते हुए पिताके घरमें बटने लगे। वे प्रसन्नचित्त होकर धृतराष्ट्रकी पुत्री के साथ परम सुखसे खेलते कूदते थे और सब लड़कपनके खेलोंमें अपने तेजसे बट बढ़ निकलते थे। वेगके विषयमें निशानकी वस्तु लानेमें, सबसे पहिले भोजनकी सामग्री लेने में और धूल फेंकने इत्यादि लड़कपनके खेलों में भीष्मसेन सम्पूर्ण धृतराष्ट्र-कुमारोंकी हारा कर मताया करते थे। हे महाराज! अब

धृतराष्ट्रके लड़के आनन्दमें खेलते थे, तब उल्लू पाण्डव उनकी पकड़कर एकमें दूसरेकी अलग कर देते थे और उनके सिरोंकी थाम थामकर एक दूसरेसे लड़ा देते थे। उन बड़े तेजवन्त एकसौ एक कुमारोंकी हकीदर अकेले सहज-हीमें दिक किया करते थे। महाबली भीम बलसे उनके केश पकड़ मारते पीटते थे मिट्टी पर टेलते, सिर और गर्दन चाटि रगड़ कर घसीट लेजाते थे। वे कष्टके मारे चिल्लाकर रोते थे। वह जलमें खेलते हुए, दोनों भुजोंसे दश लड़कोंकी पकड़कर जलमें डुबाये रहते थे, आगे उनके मरने पर होनेसे छोड़ देते थे। जब धृतराष्ट्रके पुत्र पेड़ों पर चढ़कर फल तोड़ते थे, तब भीम उन पेड़ोंमें लात मार मार हिलाते थे, उन लातोंके बलसे हिलने और ढगमगाने पर लड़के उसी-क्षण पेड़ोंसे कूटकर फलके साथ गिर जाते थे। वास्तवमें वे लड़के, चाहे वाङ्मयकी कहिये, चाहे वेगकी कहिये, चाहे शिचाकी कहिये किसी बातमें अहंकारपूर्वक हकीदरसे बढ नहीं सकते थे। ऐसा नहीं, कि हकीदर धृतराष्ट्रके पुत्रों की ईको हानि करनी चाहते थे, केवल लड़कपनहीसे वह उस प्रकारसे अहंकार प्रगटकर उनके बड़े अप्रिय कामोंमें हाथ डालते थे। अनन्तर प्रतापी धृतराष्ट्र-कुमार दुर्योधन भीमसेनका वैसा अति प्रख्यात बल देखकर बुरा भाव दिखाने लगा। धर्महीन, पापकर्मके देखनेवाले दुर्योधनका चित्त अज्ञानता और ऐश्वर्यसे लोभसे पाप पर दौड़ा। उनकी यह समझ आगयी, कि पाण्डवोंमें मझला यह कुन्तीपुत्र हकीदर बलियोंमें श्रेष्ठ है, सो उसकी कौशलसे मार डालना चाहिये। अत्यन्त बल विक्रमयुक्त महावीर हकीदर अकेला ही हम सबोंसे अहङ्कार करता है, जब वह नगरकी फुलवाड़ीमें सो रहेगा तब उसे गङ्गामें डाल दूंगा, आगे उसके

बड़े भाइयोंकी और बड़े युधिष्ठिरकी बलसे बांधकर पृथ्वीमें एकही राजा हंगा, पापात्मा दुर्योधन यह निश्चय कर मचात्मा भीमसेनकी सदा टूटने लगा। हे भारत। अनन्तर उस पापात्माने जलकीड़ाके गङ्गाजीके तटपर प्रमाणा-कोटि नामक स्थानमें जल और स्थलपर वस्त्र और कमलैका एक सुन्दर बड़ा भवन बनवाकर उसमें सम्पूर्ण कामके पदार्थोंसे भरे, फहराती हुई ध्वजासे सुशोभित नाना घर रचवाये। हे भारत-नन्दन। उस भवनका नाम उदक-क्रीडन भया : रसीईवनानिमे दक्ष रजोई वालीने उसमें चवाने, चूसने, चाटने, पीनेकी नाना भोजनकी वस्तु बनवाकर रखीं, आगे सब ठीक होनेपर टङ्गलुओंने दुर्योधनकी वह समाचार सुनाया। आगे दुर्म्माति दुर्योधन ने पाण्डवोंसे कहा, कि चलो हम सब भाई मिलकर वन वगीचेमें सुशोभित गङ्गाजीके किनारे जाकर जलमें खेलें। युधिष्ठिरके सम्मत होनेपर शूर कौरव लोग पाण्डवोंके साथ नगरके समान बड़े रथ और बड़े बड़े शरीरयुक्त हाथियोंपर नगरसे निकले। आगे वे वीर भाईवर्ग वगीचेमें पङ्कचकर साधियोंकी विदा-करके उपवनकी शोभा देखते हुए सिंहके पर्वतकी कन्दरामें घुसनेकी नाईं उसके भीतर जा घुसे। देखा, कि राजलोगोंसे साफ किये हुए, चित्र करनेवालोंसे चित्रित, सुफेद बैठके और गृहकी चीटियां सुहा रही हैं। वहा जंगली, फौहारे अर्थात् जिनसे सैकड़ों धारोंसे जल निकलकर ओसकी भांति घरके भीतर भागकी भर देता है, ऐसी ऐसी कलोंकी अपूर्व शोभा देख पड़ती है, खिले पक्षके वनसे दूधे जलभरे पोखरे और तालोंको बड़ी शोभा हो रही है और ऋतुसे उपजे हुए फलोंसे वहांकी भूमिभी घिरी है। अनन्त और कौरव वहा जा बैठे और गान मगाये हुए कामके पदार्थोंका

लगे । वे सुन्दर फुलवाड़ीमें खेलते हुए एक दूसरेके मुहमें खानेकी वस्तु देने लगे । इस अवसरमें पापात्मा दुर्ध्वानने भीमसेनकी मारडालनेकी इच्छासे भोजनकी वस्तुमें विष मिलाया, तब उस पापात्माने, जिसके हृदयमें अस्तुरा और बातमें अमृत सा था, स्वयं उठकर भाई और मित्रवत् भीमसेनके मुखमें उस विषैली वस्तुका एक बड़ा भाग डाल दिया । भीमसेननेभी कोई दीषन जानकर उसे भोजनके पदार्थके समान खा लिया । तब पुरुषोंमें बड़ा अथम दुर्ध्वान अपनी इच्छा पूरी हुई जानकर मानों मनहोमनमें हंसने लगा । आगे धृतराष्ट्रके लड़के और पाण्डवलीग सब प्रसन्न चित्तसे एकत्र होकर जलमें खेलने लगे । जलमें खेलनेके पीछे कुरुवंशियोंमें श्रेष्ठ वीरगण पवित्र वस्त्र पहिनकर अलंकृत हुए और खेलसे थककर दिन बीतने पर होनेसे उस विहारके घरहीमें रहना चाहते । महाबली भीम जलमें खेलते हुए कुमारोंकी बहृत-लड़ा करके थककर आराम करनेको इच्छासे उस प्रमाण-कोटिके स्थलभागमें आकरकेही सो गये । पाण्डु-पुत्र भीम एक तो थके और विष के नशेमें अचेतन ही थे, फिर तिसपर ठंडी जवा पाकर और सर्व शरीरमें विषके वर्तव होनेके कारण एकवारही अज्ञान हो गये । तब दुर्ध्वानने मरेके तुल्य हुए भीमकी लताजालसे स्वयं बाधकर स्थलसे जलमें गिराया ।

चेतना-रहित पाण्डव जलमें डूबकर नागोंके घरमें सर्पोंके बच्चेपर जा गिरे । अनन्तर अगणित, काष्ठीमें तेज विषैले सर्प मिलकर भीमकी काटने लगे । तिनसे काटे जाकर भीमसेनके शरीरका स्थायी विष चञ्चल होकर सर्प-विषसे दूर हो गया । उन सर्पोंके दंतीसे भीमसेनके मर्मस्थानमें चोट लगनेपरभी उनकी बड़ी भारी दातीकी कटिनाईके कारण

चमड़ातकभी भेदा नहीं गया । अनन्तर कुन्तीपुत्र चेतना पाकर बन्धनोंको काटकर उन सर्पोंकी गाड़ने लगे ; उनमेंसे कुछ सर्प भय खाकर वेगसे भाग गये । उन मारसे बचे हुए सर्पोंने देवराजके समान सर्पराज वासुकिके पास जाकर कहा, कि हे वीर नागेन्द्र ! एक मनुष्य किसीसे बांधे जाकर जलमें गिराया गया था, हमको जान पड़ता है, कि उसने विष पिया था ; क्योंकि जब हमारे आगे गिरा तब वह अचेत था, आगे जब हमने उसे काटा आरम्भ कर दिया तब वह चेतना पाकरके, जगकर, अपने शरीरके बन्धन काटकर हमको मारने लगा ; आपको जानना चाहिये, कि वह महाभुज कौन है । अनन्तर वासुकिने सभी नागोंके साथ वहां आकर भारी-पराक्रमी महाभुज भीमकी देखा । तब कुन्तीके पितृके मातामह आर्य्यक नामक नागराजने नातीके नाती भीमकी देखकर उनकी गलेसे लगाया ; इससे अति यशस्वी नागेन्द्र वासुकि उन पर प्रसन्न होकर नागराज आर्य्यकसे बोले, कि इनका क्या प्रियकार्य्य करना चाहिये ? इनकी धनादि अनेक रत्न दो । वासुकिकी यह बात सुनकर आर्य्यक बोले, कि हे नागेन्द्र ! यदि आप प्रसन्न हुए हों, तो इसकी धनरत्नों की आवश्यकताही क्या पड़ी है ? आप जब प्रसन्न हुए हैं तब यह कुमार रस पीकर बली होने, उस कुण्डनें सहस्र हाथियोंका बल धरा है, सो यह बालक उक्त कुण्डका जितना रस पी सके उतना इसकी पीने दीजिये । नागराज वासुकिने सम्मत होने पर भीमसेन पवित्र होकर और नागोंसे मङ्गल आचरण किये जाने पर पूर्व ओर मुख करके बैठकर रस पीने लगे । महाबली भीमने एकही दममें कुण्डा भर रस पी लिया और इस प्रकारसे आठ कुण्डोंकी खाली कर दिया । अनन्तर शत्रुनाशी महाभुज भीमसेन

नागोंकी दी जड़ दिव्य मेज पर परम सुखसे सोरहे ।

सम्भव पर्वमें एकसौ अठाइस अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर सम्पूर्ण कौरव और भीमके बिना पाण्डव गंगा खेल और विहार कर रय, हाथी, घोड़े और दूसरे यानों पर हस्तिनापुरकी लौट : जानेके कालमें कहने लग, कि भीम हमारे पहिले गया होगा । पापात्मा दुर्धनने उनमें भीमकी न देख कर प्रसन्नचित्तसे नगरमें प्रवेश किया । धर्मन्मा युधिष्ठिर अपने कोई पापबुद्धि नहीं रखते थे, अपने दृष्टान्तसे शत्रुकीभी साधु समझते थे । वह भ्रात्रेयो कुन्तीएव माता कुन्तीके पास जाकर पंच कृकर बोले, कि कि क्यों मा । भीम यहाँ आया है ? ऐ शत्रु चाहनेवाली । वह अभी तक क्यों नहीं देख पड़ता ? तब वह कहाँ गया होगा ? हम वनमें फुलवाड़ियोंके चारों ओर उसकी खोज कर चुके, पर कहीं उस वीर वृकीदरकी नहीं देखा ; अन्तमें सबोंने यह समझ लिया, कि भीम हमारे पहिले ही आया होगा । ऐ महाभागी यशस्विनी । हम व्याकुल हृदयसे आ रहे हैं, सो कहिये, कि महाभुज भीम यहाँ आकर कहाँ गया है ? आपने उसकी कहीं भेजा तो नहीं ? ऐ शोभने । उस वीरके विषयमें मेरा चित्त हड़बड़ा रहा है, क्योंकर स्मरण होता है, कि भीम सोता था, उसके पीछे फिर नहीं आया, सो मारा गया होगा । धीमान् धर्मपुत्रकी यह बात सुनकर कुन्ती हाहाकार करती हुई दुःखसे उनसे बोली कि, बेटा । मैंने भीमकी नहीं देखा है, भीम मेरे पास नहीं आया, सो छोटे भाइयोंको लेकर तुरन्त उसकी खोजका प्रयत्न करो, कुन्ती सन्तापित चित्तसे ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठिरसे यह कहकर विदुरकी बुलवाकर उनसे

बोली, कि भगवान् क्षत्र । भीमसेन कहाँ गया है, वह देख नहीं पड़ता है । दूसरे भाईलोग भाइयोंके साथ फुलवाड़ीसे लौट आने हैं ; केवल अकेल महाभुज भीम मेरे पास नहीं आया है ; उसको देखकर दुर्धनकी आंखेंभी प्रसन्न नहीं होती, वह सुयोधन बड़ा पेंचीला, दुर्मति, नीच रान्धल, भी और आंखों की लज्जासे वर्जित है, सो कहीं ऐसा न हो, कि उसने क्रोधवश उस वीरकी मारडाला हो, इस भयसे मेरा चित्त विकल और हृदय जल रहा है । विदुर बोले, कि ऐ कल्याणि । आप यह बात न प्रगट कीजिये, शेष पुत्रोंको रक्षा कीजिये, क्योंकि वह दुरात्मा दुर्धन लाञ्छित होनेसे आपके शेष पुत्रोंकीभी मार सकता है । महासुनिने कहा है, कि आपके पुत्रगण दीर्घजीवन पावेंगे, सो आपका पुत्र लौट आकर अवश्यही आपको प्रीति बढ़ावेगा ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि विद्वान् विदुर यह कहकर अपने घरकी गये । कुन्ती सचतो हुई, पुत्रोंके साथ घरमें रहने लगी । अनन्तर आठवें दिन महाबली पाण्डुपुत्र भीमसेन जगि और उस समय उस रसके पंच जानेसे अप्रमेय और बलवन्त बन गये । सर्पगण उस पाण्डवकी जगते देखकर शीघ्रतापूर्वक समझाने लगे और यह बात बोले, कि हे महाभुज । तुमने जो वीर्य देनेद्वारा रस पे लिया है, उससे तुम दश सहस्र नागकी समान बली और रणस्थलमें अजीत योग्य होगी । हे कुरुश्रेष्ठ । आज तुम इस दिव्य और शुभ जलसे स्नानकर अपने घरकी लौट जाओ, तुमको न देखकर तुम्हारे भाईलोग दुःखी हुए हैं ।

अनन्तर महाभुज महाबली भोमने स्नान कर और शुचि होकर शक्रवस्त्र और श्वेतमाला पहिनकर नागोंका दिया हुआ परमान्न भोजन किया । आगे शत्रुनाशी

लगे । वे सुन्दर फुलवाड़ीमें खेलते हुए एक दूसरेके मुहमें खानेकी वस्तु देने लगे । इस अवसरमें पापात्मा दुर्ध्वधनने भीमसेनको मारडालनेकी इच्छासे भोजनकी वस्तुमें विष मिलाया, तब उस पापात्माने, जिसके हृदयमें अस्तुरा और बातमें अमृत सा था, स्वयं उठकर भाई और मित्रवत् भीमसेनके मुखमें उस विषैली वस्तुका एक बड़ा भाग डाल दिया । भीमसेननेभी कोई दोष न जानकर उसे भोजनके पदार्थके समान खा लिया । तब पुस्वोंमें बड़ा अथम दुर्ध्वधन अपनी इच्छा पूरी हुई जानकर मानों मनहीमनमें हंसने लगा । आगे धृतराष्ट्रके लड़के और पाण्डवलीग सब प्रसन्न चित्तसे एकत्र होकर जलमें खेलने लगे । जलमें खेलनेके पीछे कुस्वंधियोंमें अछ वीरगण पवित्र वस्त्र पहिनकर अलंकृत हुए और खेलसे थककर-दिन बीतने पर होनेसे उस विचारके घरहीमें रहना चाहता । महाबली भीम जलमें खेलते हुए कुमारोंकी बड़त लड़ा करके थककर आराम करनेको इच्छासे उस प्रमाण-कोटिके स्थलभागमें आकरकेही सो गये । पाण्डु-पुत्र भीम एक तो थके और विष के नशेमें अचेतन ही थे, फिर तिसपर ठंडी हवा पाकर और सर्व शरीरमें विषके वर्तव होनेके कारण एकवारही अज्ञान हो गये । तब दुर्ध्वधनने मरेके तुल्य हुए भीमकी सताजालसे स्वयं बाधकर स्थलसे जलमें गिराया ।

चेतना-रहित पाण्डव जलमें डूबकर नागोंके घरमें सर्पोंके बच्चोंपर जा गिरे ! अनन्तर अगणित, काटनेमें तेज विषैले सर्प मिलकर भीमकी काटने लगे । तिनसे काटे जाकर भीमसेनके शरीरका स्थायी विष चञ्चल हुए सर्प-विषसे दूर हो गया । उन सर्पोंके द तोसे भीमसेनके मर्मस्थानमें चीट लगनेपरभी उनकी बड़ी भारी दातीकी कठिनाईके कारण

चमड़ातकभी भेदा नहीं गया । अनन्तर कुन्तीपुत्र चेतना पाकर बन्धनोंकी काटकर उन सर्पोंकी गाड़ने लगे ; उनमेंसे कुछ का भय खाकर वेगसे भाग गये । उन मारसे बड़े हुए सर्पोंने देवराजके समान सर्पराज वासुकिने पास जाकर कहा, कि हे वीर नागेन्द्र ! एक मनुष्य किसीसे बांधे जाकर जलमें गिराया गया था, हमको जान पड़ता है, कि उसने विष पिया था, क्योंकि जब हमारे आगे गिरा तब वह अचेत था, आगे जब हमने उसे काटा आरम्भ कर दिया तब वह चेतना पाकरके, जगकर, अपने शरीरके बन्धन काटकर हमको मारने लगा ; आपको जानना चाहिये, कि वह महाभुज कौन है । अनन्तर वासुकिने साधी नागोंके साथ वहा आकर भारी पराक्रमी महाभुज भीमकी देखा । तब कुन्तीके पिताके मातामह आर्य्यक नामक नागराजने नातीके नाती भीमकी देखकर उनकी गलेसे लगाया ; इससे अति यशस्वी नागेन्द्र वासुकि उन पर प्रसन्न होकर नागराज आर्य्यकसे बोले, कि इनका क्या प्रियकार्य्य करना चाहिये ? इनकी धनादि अनेक-रत्न दो । वासुकिकी यह बात सुनकर आर्य्यक बोले, कि हे नागेन्द्र ! यदि आप प्रसन्न हुए हों, तो इसकी धनरत्नकी आवश्यकताही क्या पड़ी है ? आप जब प्रसन्न हुए है तब यह कुमार रस पीकर बली होने, उस कुण्डनें सहस्र हाथियोंका बल धरा है, सो यह बालक उक्त कुण्डका जितना रस पी सके उतना इसकी पीने दीजिये । नागराज वासुकिने सम्मत होने पर भीमसेन पवित्र होकर और नागोंसे मझल आचरण किये जाने पर पूर्व ओर मुख करके बैठकर रस पीने लगे । महाबली भीमने एकही दममें कुण्डा भर रस पी लिया और इस प्रकारसे आठ कुण्डोंकी खाली कर दिया । अनन्तर शत्रुनाशी महाभुज भीमसेन

गोंकी दी हुई दिव्य सेज पर परम सुखसे
ठोरे ।

सम्भव पर्वमें एकसौ अठारह अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर सम्पूर्ण
वीरव और भीमके बिना पाण्डव गण खेल
और विहार कर रथ, हाथी, घोड़े और दूसरे
प्राणी पर हस्तिनापुरकी लौटि ; जानेके कालमें
कहने लग, कि भीम हमारे पहिले गया
होगा । पापात्मा दुर्योधनने उनमें भीमको
न देख कर प्रसन्नचित्तसे नगरमें प्रवेश किया ।
धर्म-आत्मा युधिष्ठिर अपनेमें कोई पापबुद्धि
नहीं रखने थे, अपने दृष्टान्तसे शत्रुकीभी साधु
समझते थे । वह भावप्रेमी कुन्तीपुत्र माता
कुन्तीके पास जाकर पंच कूकर बोले, कि
कि क्यों मा ! भीम यहां आया है ? ऐ शुभ
चाहनेवाली । वह अभी तक क्यों नहीं देख
पड़ता ? तब वह कहं गया होगा ? हम
वनमें फुलवाड़ियोंमें चारों ओर उसकी खोज
कर चुके, पर कहीं उस वीर वृकीदरकी नहीं
देखा ; अन्तमें सबोंने यह समझ लिया, कि
भीम हमारे पहिले ही आया होगा । ऐ
महाभागे यशस्विनी ! हम व्याकुल हृदयसे
चारहे हैं, सो कहिये, कि महाभुज भीम
यहां आकर कहा गया है ? आपने उसकी
कहीं भेजा तो नहीं ? ऐ शोभने ! उस
वीरके विषयमें मेरा चित्त हड़बड़ा रहा है,
क्योंकि स्मरण होता है, कि भीम सोता था,
उसके पीछे फिर नहीं आया, सो मारा गया
होगा । भीमान् धर्मपुत्रकी यह बात सुनकर
कुन्ती लाड़ाकर करती हुई दुःखसे उनसे
बोली कि बेटा ! मैंने भीमको नहीं देखा
। भीम मेरे पास नहीं आया, सो लौटि भाई-
पैके पैजर तुम्हें उसकी खोजका प्रयत्न
करनी सलाह देता हूँ । चित्तसे व्यथित पुत्र युधि-
ष्ठिरने तब कूकर विदुरकी पुनराश्रय उनसे

बोली, कि भगवान् क्षत्र । भीमसेन कहां
गया है, वह देख नहीं पड़ता है । दूसरे
भाईलोग भाइयोंके साथ फुलवाड़ीसे लौट
आये हैं, केवल अकेला महाभुज भीम मेरे
पास नहीं आया है ; उसको देखकर दुर्यो-
धनकी आंखेंभी प्रसन्न नहीं होतीं । वह सुयो-
धन बड़ा पेंचीला, दुर्मति, नीच राज्यलुभी
और आंखों की लज्जासे वर्जित है, सो कहीं
ऐसा न हो, कि उसने क्रोधवश उस वीरकी
मारडाला हो, इस भयसे मेरा चित्त विकल
और हृदय जल रहा है । विदुर बोले, कि
ऐ कल्याणि ! आप यह बात न प्रगट कीजिये,
श्रेष्ठ पुत्रोंको रक्षा कीजिये, क्योंकि वह
दुरात्मा दुर्योधन लाज्जित होनेसे आपके श्रेष्ठ
पुत्रोंकीभी मार सकता है । महासुनिने कहा
है, कि आपके पुत्रगण दीर्घजीवन पावेंगे, सो
आपका पुत्र लौट आकर अवश्यही आपको
प्रीति बढ़ावेगा ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि विद्वान् विदुर
यह कहकर अपने घरकी गये । कुन्ती सचती
हुई, पुत्रोंके साथ घरमें रहने लगी । अन-
न्तर आठवें दिन महाबलो पाण्डुपुत्र भीमसेन
जगे और उस समय उस रसके पंच जानसे
अप्रमेय और बलवन्त बन गये । सर्पगण उस
पाण्डवकी जगते देखकर शीघ्रतापूर्वक लसमाने
लगे और यह बात बोले, कि हे महाभुज !
तुमने जो वीर्य देनेहारा रत्न पहिया है, उससे
तुम दश सज्ज नागके समान दली और
रणस्थलमें अजीत योग्य होगे । हे वीर्यवृद्ध !
आज तुम इस दिव्य और शुभ जलसे स्नानकर
अपने घरकी लौट जाओ, तुमको न देखकर
तुम्हारे भाईलोग दुःखी हुए हैं ।

अनन्तर महाभुज महाशक्ती भंमने दान
कर और गृहि छोड़कर युद्धस्थल और ग्रीव
माला धारितकर शरणागता दिशः दृष्ट
परमात्म भंमने किया । अपने शत्रुवर्ती

पाण्डव सपौसे आदर और असीस पाकर दिव्य आभूषण पहिनकर नागोंकी सम्भाषण करके प्रसन्नचित्तसे नागलोकसे निकले। नागोंने उस कमलनेत्रवाले कुसुमन्दनकी जलसे उठाकर उसी वन-खण्डमें छोड़ दिया, आगे उनके सम्मुखसे अन्तर्हित हुए। इसके अनन्तर महाभुज, महाबली कुन्तीपुत्र भीमसेन वहांसे उठकरके वेग पूर्वक चलकर माताके पास आगये। शत्रु नाशी वृकोदर माता और ज्येष्ठ भाइके पांव छूकर छोटे भाइयोंके सिर चूम करके माता और भाइयोंके गले लगे और वे आपसमें मित्रता दिखा दिखाकर बार बार यह कहने लगे, कि "कैसा आनन्द है, कैसा आनन्द है।" आगे महाबल-पराक्रमी भीमसेनने भाइयोंसे दुर्योधनके कार्योंकी कह सुनाया और नागलोकमें भला वा बुरा जो कुछ हुआ था, वह सबभी भली भांति प्रकाश किया। अनन्तर राजा युधिष्ठिर उनसे यह अर्थयुक्त वाक्य बोले, कि तुम चुप हो जाओ, यह सब हाल कभी प्रकाश मत करना। हे कुन्तीपुत्री। तुम अबसे यत्न पूर्वक आपसमें अपनी रक्षा करना। महाबाहु धर्मराज युधिष्ठिर यह कहकर भाइयोंके साथ सावधान बने रहे। धर्मात्मा विदुर उनको ऐसा परामर्श देते थे, कि जिसके उन पृथापुत्रोंकी चूक न हो। उसके अनन्तर दुर्योधनने भीमसेनके भोजनके पदार्थमें फिर नया तेज विष मिलाया। वैश्याकुमार युयुत्सुने पाण्डवोंके हितके लिये वह प्रकाशकर दिया, पर तोभी बिना विकार वृकोदरने उसे खाकर पचा लिया। वह विष तेज और भीमके नागनेत्रोंमें होने परभी भीममें विकार उपजा नहीं सका, सो भीमने उनको पचा डाला। इस प्रकार दुर्योधन, कर्ण और सुवलपुत्र शत्रुनिने नाना उपायोंसे पाण्डवोंकी नष्ट करनेकी चेष्टा की थी। हे शत्रुनाशिन !

मतमें रह कर उस बातपर क्रोध प्रगट नही करते थे।

संभावपर्वमें एकसौ उनतीस अध्याय समाप्त।

जनमेजयजी बोले, कि हे ब्रह्मन् ! आपके जन्मकी भी कथा कहिये। उन्होंने क्योंकर शरकाण्डकी लकड़ी से जन्म लिया था, और क्योंकर अस्त्रोंकी लाभ किया था ? श्रीनैश्यायनजी बोले, कि महाराज ! महर्षि गौतमके शरद्धान नामक एक पुत्र थे ; उन गौतमने शरकाण्डसे जन्म लिया था। हे शत्रुनाशिन ! धनुर्वेदमें उनकी जैसी बुद्धि थी, वेद पठनमें वैसी बुद्धि नहीं हुई थी ; जिस प्रकार ब्रह्म चारीलोग तपसे वेदकी ज्ञात होते हैं, वैसीही उन्होंने तपहीसे सर्वास्त्रोंकी प्राप्ति किया था। उन गौतमने धनुर्वेदमें अपरिमित ज्ञान और अनन्त तपस्यासे देवराजकीभी वज्रत डरपाया था। हे कौरव ! अनन्तर देवेन्द्रने जानपदी नाम्नी देववालाको यह आज्ञा देकर उनके सामने भेजा, कि तुम गौतमकी तपस्यामें विप्र डालो। बाला जानपदी गौतमजीके सुन्दर आश्रममें जाकर धनुषबाण धारी उन शरद्धानकी लुभाने लगी। उस वनमें अनुपम सुन्दरी एक वस्त्र पहिरे अप्सरा की देखकर गौतमके नेत्रोंमें प्रफुल्लता छा गयी, उनके हाथोंसे धनुषबाण धरती पर गिर पड़े, और देह कांपने लगी। पर उन महाप्राज्ञ ऋषि-कुमार के उत्तम ज्ञान और तपस्यामें दृढ प्रतिज्ञा रहनेसे वह परम धीरज धरे रहे। महाराज ! उनमें एकाग्र जो विकार आन पड़ंचा था उसीसे उनका वीर्य गिर गया था, पर वह उस बातकी नहीं जान सके थे। अनन्तर वह धनुर्बाण, कुशा-मार रुगका चर्म और उस आश्रम और अप्सराको तजकर अन्य स्थानमें चले चले गये। उनका वीर्य शरकाण्ड की लकड़ी पर गिरा था, इसलिये वह दो भाग

होगया, उससे एक कन्या और एक पुत्रका जन्म हुआ । अनन्तर मृगयाके शिष्य मनमाने घूमने वाले, नरनाथ शान्तनुके एक सैनिकने वनमें उस पुत्र और कन्याको देखा और वहां धनुर्बाण और मृगका चर्म देखकर समझा, कि यह दोनों धनुर्वेदमें दक्ष किसी ब्राह्मणकी सन्तान होंगी । तब उस सैनिकने धनुर्बाण और दोनों बच्चोंको लेजाकर नरनाथकी दिखाया । नरनाथने कृपापूर्वक उन बच्चोंको ललिया और यह कह कर, कि “यह मेरी सन्तान हुई” अपने स्थानकी पधारे । अनन्तर प्रतीपके पुत्र नरथोष्ठ शान्तनुने गौतमकी उस पुत्र और कन्याको सम्पूर्ण संस्कारसे सुधार और पाल पोषकर बढाया और गौतमभी उस आयुमसे आनकर धनुर्वेदमें दत्तचित्त रहे । महीपाल शान्तनुने यह समझ कर, कि “मैंने कृपापूर्वक इन इन बच्चोंको जिलाया है” उनके कृप और कृपी यह नामही रख दिये । गौतमजी तपके द्वारा यह जान सके थे, कि उस स्थानमें दोनों सन्तान-रखी हुई हैं, सो तब वहां आनकर अपने गोत्रादि सब कह गये । उन्होंने कृपकी चार प्रकारके धनुर्वेद, नाना शास्त्र-विद्या और दूसरे गुप्त विषयोंकी शिक्षा दी । कृप स्वल्प कालके ही बीचमें परम आचार्य बने । महारथी धृतराष्ट्र पुत्रगण, महावनी पाण्डवगण और नानादेशोंसे आये हुए दूसरे भूपाल उनसे धनुर्वेद सीखने लगे ।

संस्कृत-पर्वमें एकसौ तीस अध्याय समाप्त ।

जीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर भीम पर्वोंका विशेष रूपसे विद्या पढ़ाने और विनय भाषानेके लिये वाण चलानेमें दक्ष, अस्त्रविद्यामें अश्वत्थ, वीर्यवन्त आचार्य दृष्टने लगे । यह समझकर, कि जो सर्व बुद्धिमान महाभाग नाना अस्त्र विद्यामें पण्डित और देव-

विद्या न सीखना चाहिये । भरत-वंशियोंमें अष्टपुरुष भीमने प्राण्डव और कौरवोंकी भरद्वाजकी पुत्र वेदमें पण्डित धीमारु द्रोणकी शिष्य बना दियो । अस्त्र चलानेवालोंमें अष्ट महाभाग और अति यशवन्त द्रोणाचार्यने महात्मा भीष्मसे शास्त्रानुसार भले प्रकार पूजे जाकर सन्तोषपूर्वक उन सबोंकी शिष्य बनाया । भागे उन्होंने उनकी विशेष प्रकारसे धनुर्वेद सिखाया । हे महाराज । वे अनन्त तेजयुक्त प्राण्डव और कौरवयोग स्वल्पकालहीने सर्व शास्त्रोंमें पण्डित होगये ।

जनमेजयने पूछा, कि हे ब्राह्मण । वह वीर्यवन्त द्रोण किसके पुत्र थे ? किस प्रकार उनका जन्म हुआ था ? क्योंकर उन्होंने शास्त्रोंकी प्राप्त किया था ? और क्योंकर कौरवोंसे मिले ? फिर भी अश्वत्थामा नामक सर्वशास्त्रोंमें दक्ष प्रधान उनके पुत्रने क्योंकर जन्म लिया था ? यह सब भले प्रकार सुना चाहता हूं आप कहिये ।

जीवैशम्पायनजी बोले, कि गङ्गाद्वारके निकट भरद्वाज नामसे प्रख्यात सदा प्रशंसित व्रतयुक्त भगवान् महर्षि वसते थे । एक समय वह अग्निहोत्र करनेके अभिप्रायसे पहिले ही महर्षियोंके साथ गङ्गाजीके किनारे नहाने गये थे ; वहां देखा, कि रूप-यौवनवती, मदगर्ज्विदा और मदसे भ्रूमती हुई घृताची नान्दी अपरा नहाकर उठी ; फिर उस समय उसका वस्त्रभी गिर गया । धीमान महर्षि उस विवस्त्राअपरा की देखकर कामके वशमें डोगये, उनका चिन घृताची पर झुकनेसे वीर्य गिर गया । ऋषिने तब द्रोणनामक यज्ञके उत्तमने उस वीर्यको रखा । धीमारु भरद्वाजके द्रोणमें रखे हुए उस वीर्यसे द्रोणका जन्म हुआ । उन्होंने वेद और वेदाङ्ग सब पढ़ लिये थे । अस्त्र विद्या जाननेवालोंमें प्रधान प्रतापी भरद्वाजने पण्डित यन्त्रिदेश नामक महाभाग महर्षिकी आज्ञासे शिक्षा पाई । हे भरतजी । यह सब कहिये ।

हुए उन ऋषि अग्निवेशने चपने गुस्सेपुत्र द्रोणको वह अग्नास्त्र दे दिया। पृथ्वी नामक एक राजा ऋषि भरद्वाजके मित्र थे। भरद्वाजके पुत्र होनेके कालमें उनकेभी द्रुपद नामक एक पुत्र हुआ था। वह पृथ्वीपुत्र नित्य भरद्वाजके आश्रममें जाकर द्रोणके साथ खेलते और पढ़ते थे। हे नरनाथ। अनन्तर राजा पृथ्वीके परलोक सिधार जानेपर महाभुज द्रुपद उत्तर पाञ्चाल देशके राजा हुए। उस समय भगवान् ऋषि भरद्वाजका स्वर्ग गमन हुआ और अतितपयुक्त द्रोणभी उसीस्थानमें रहकर तप करने लगे। अनन्तर वेद वेदाङ्गोंमें पण्डित और तपस्याके बलसे निष्पापी उन अतियशवन्त द्रोणने पिताके पहिलेके नियोगानुसार पुत्रके लोभसे शरद्वतकी कन्या कृपीसे विवाह किया। उसके अनन्तर अग्निहोत्रमें वाक आदि बाहरी इन्द्रियोंके रोकनेमें और धर्ममें प्रेमी उस गौतमपुत्री कृपीने अश्वत्थामा नामक पुत्रप्राप्त किया। पुत्रने जन्म लियेही उच्चैःश्रवा अश्वकी भांति शब्द किया, वह सुनकर उसकालमें आकाशे स्थित किसी विन देखे प्राणीने कहा था, कि घड़िकी नाई शब्द करनेवाला इस बालकका स्थाभ (शब्द) नामा दिशाओंमें पड़ंचा है, इस कारण इसका नाम अश्वत्थामा हीगा। उससे भरद्वाजपुत्र धीमान् द्रोणने उस पुत्रसे बड़ी प्रीति प्राप्त की, और स्थानहीमें रहकर धनुर्वेदमें सन्नद्ध रहे। हे महाराज! उन्होंने उस समय सुना, कि सर्वशस्त्र धरनेवालोंमें श्रेष्ठ, सर्वज्ञानयुक्त, शत्रुनाशी ब्राह्मण महात्मा जामदग्न्या रामने ब्राह्मणोंकी सब धन वांट देनेकी इच्छा की है। रामके धनुर्वेद और दिव्यास्त्रों का समाचार पाकर उन्होंने वह सब और नीति शास्त्रोंकी उनसे सीखना चाहा। उनके अनुसार वह अति तपेयुक्त महाभुज भरद्वाज तपस्वी और व्रतयुक्त शिष्योंसे प्रिय रखकर महेन्द्रपर्वत पर गये। आगे वहां

पड़ंचकर शत्रुकुलनाशी दान्त और दान्त भृगुनन्दनकी देखा। अनन्तर उनने शिष्योंके साथ उनके पास जाकर अपना नाम और अङ्गिके कुलमें जन्म होनेकी बात आदि कही और भूमिपर सिर रगड़कर उनके दोनों पांवोंमें प्रणाम किया। उसके पीछे द्रोण सब ढीढ़ ढाड़ वनमें जानेकी इच्छा किये हुए महात्मा जामदग्न्यासे यह बोले, कि हे महामते। मैं विन योनिसे जन्मा हुआ हूं भरद्वाजसे द्रोणीमें उत्पन्न हुआ हूं, हालमें धनकी लालसासे यहां आया हूं। क्षत्रियकुलनाशी महात्मा परशुरामने उनसे कहा, कि हे द्विजश्रेष्ठ। तुम भले आये हो, जो चाहते हो, कहो। रामके यह बात कहनेपर भरद्वाजपुत्र उन नाना धनदानके इच्छुक योधोंमें प्रधान जामदग्न्यासे बोले, हे महाभाग व्रतशील। मैं अपरिमित धन मांगता हूं। राम बोले, कि हे तपोधन। मेरा सुवर्ण और दूसरा धन जो कुछ था, सब ब्राह्मणोंकी दे चुका हूं। ग्राम और नगरोंकी मालासे सजी हुई, सारतक चल्यो गयी हुई, यह पृथ्वी भी कश्यपकी दे दी है, अब मेरे केवल बड़े मुख्यवान् अश्व शस्त्र और मेरा यह शरीरही शेष है, हे द्रोण। अब अश्व अथवा शरीर देनेकी उद्यत हूं। शीघ्र कहो, कि इन दोनोंमेंसे क्या चाहते हो, वह तुमकी दे देता हूं। द्रोण बोले, कि हे भार्गव। प्रयोग, उपसंहार और रहस्योंके साथ सम्पूर्ण अस्त्रोंकी भले प्रकार मुझकी दीजिये। भार्गवने तथास्तु कहकर उनकी सम्पूर्ण अस्त्र और रहस्य और नियमोंके साथ धनुर्वेदकी विशेषरूपसे दे दिया। द्विजमें श्रेष्ठ द्रोण सब अस्त्र शस्त्रोंकी लेकर कृतार्थ होकरके प्रसन्नचित्तसे प्रिय मित्र द्रुपदके पास गये।

सम्भवपर्वमें एकसौ इकतीस अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनस्तर प्रतापी
भरद्वाजके पुत्र भूपाल द्रुपदके यहां जाकर बोलें,
कि हे महाराज ! सुभको मित्र करके जानो !
मित्र भारद्वाजके प्रेमसे समान कहनेपर नर-
नाथ पाञ्चालराज वह बात सह नहीं सके ।
वह ऐश्वर्यके अहङ्कार से उत्पन्न थे, सो क्रोध
अमर्षसे जीभ और भौंहकी विगाड़ करके
आखे लालकर द्रोणसे यह बोले, कि, हे विप्र !
तुम्हारी बुद्धि नहीं सुधरी और पक्की नहीं
झई है, क्योंकि तुमने एकायक सुभसे कहा,
कि मैं तुम्हारा मित्र हूं । हे खलपुत्र ! अनन्त
ऐश्वर्ययुक्त भूपालोंकी कभी ऐसे औवर्जित
और निर्धनजनोंसे मित्रता नहीं होती ; काल
सब वस्तुओंकी तोड़ फोड़ देता है, उससे
मित्रता भी टूट जाती है, पहिले समान होनेके
कारण तुमसे मेरी मित्रता झई तो थी ; पर
भूमण्डलमें मित्रता कभी किसीके हृदयमें बनी
नहीं रहती है, क्योंकि कालसे वह दूर हो-
जाती है, अथवा क्रोधसे वह जड़सहित उखड़
जाती है, सो तुम उस पुरानी मित्रताकी
पूजा मत करो, ऐसा न समझो, कि वहभी
बनी है । हे द्विजोंमें अछजन ! अवश्यही
किसी प्रयोजनसे तुमसे मेरी मित्रता झई थी,
देखो, दरिद्र कभी धनीका मित्र नहीं होता ;
मूर्ख कभी पण्डितसे मित्रता नहीं कर सकता
है, वीर्यवर्जित जन कभी वीरका मित्र नहीं
कर सकता, फिर तुम क्यों पहिलेकी मित्रता
साधते हो ? जिनका धन समान है, जिनका
बल समान है, उनहीमें आपसकी मित्रता हो
सकती है, पुष्ट और अगुष्ट जनोसे कभी मित्रता
न बनता नहीं हो सकती है ; जो
अविद्य नहीं है, वह कभी अविद्याका
मित्र नहीं हो सकता है रज्ज्वालेसे रज
अविद्याका कभी मित्रता नहीं कर सकता
है, राजा न होनेसे राजाके साथ मित्रता नहीं
कर सकता है नी तुम क्यों पहिलेकी मित्रता

चाहते हो ? वैशम्पायनजी बोले कि, प्रतापी
भारद्वाजने द्रुपदकी यह सब बात सुनकर क्रोधसे
जलकर क्षणभर सोचा ; वह बुद्धिमान मनहो
मनमें पाञ्चाल-राज की पराजयका उपाय
निश्चयकर हस्तिनापुर नामक कौरवोंके नग-
रकी गये ।

सम्भवपर्वमें एकसौ वत्तीस अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि द्विजवृद्ध भार-
द्वाज हस्तिनापुरमें जाकर कृपाचार्यके घरमें
छिप कर रहनेलगे । वह उनके पुत्र प्रभावी
अश्वत्थामा कृपाचार्यके शिष्य दे लेनेके पीछे,
कुन्तीके पुत्रोंकी अस्त्रकी शिक्षा देने थे, पर
उनकी कोई जान नहीं सका था । इस प्रकार
भारद्वाज द्रोण कृपाचार्यके घरमें कुछ काल
छिपकर बसे । अनन्तर एक समय युधिष्ठिर
आदि वीर लड़के मिलकर हस्तिनापुरसे
निकलकर (बीठा) अथवा गेंदका खेल खेलते
हुए प्रसन्नचित्तसे घूमने लगे । खेलनेके काल
उनकी वह गेंद कूपमें गिर गयी । अनन्तर
लड़कोने ध्यान लगाकर उस गेंदके उठानेके
लिये बड़ा प्रयत्न किया, पर किसी प्रकार
मनोरथरूपल नहीं हो सका । इससे वे
लज्जासे मुह नीचा कर एक दूसरेके मुखकी
और ताकने लगे और उसके उठानेका उपाय
न देखकर बड़े सोचमें पड़े । ऐसे समयमें
उन्होंने देखा, कि ब्रह्म बूढ़े, दुबले अग्निहोत्र
से एष्युक्त, आर्द्रिक किये हुए, एक ब्राह्मण
पासही खड़े हैं । तब उपस्थित कान्ठमें विफल
मनोरथ, सुनरं उच्चाह्रस्व से हुए धनुरके
उन भद्रात्मा ब्राह्मणकी देखकरकेही उनके
पास जाकर चारों ओर घेर कर खड़े हो
गये । वीर्यवान् द्रोण कृपाचार्यके विप्रस
मनोरथ देखकर दहनाये कारण यह है-
उसने कहा कि ! तुम्हारे अस्त्र जनक
मित्रता से तुम्हारी उन्नति निश्चित होगी मित्रता

है ! क्योंकि तुम भरतकुलमें जन्म लेकरके भी इस गंदकी उठा नहीं सके ; अब यदि तुम मुझे खानेकी दो, तो मैं गंद और मुदरी दोनों तिनकेसे उठा सकता हूं। शत्रुनाशी द्रोणने कुमारोंसे यह कहकर उस जलसे खाली कूपमें अपनी मुदरी डाल दी। तब कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर उनसे बोले, कि ब्रह्मन् ! कृपाचार्यकी आज्ञासे आप हमारे पास सदा रहनेकी भिक्षा लीजिये। ऐसा कहे जाकर द्रोण हंसकर भरत-कुमारोंसे बोले, कि यह मुझे भर इषीका अर्थात् सरकाछेपर मैं अस्त्रका मन्त्र फूक देता हूं, दूसरे अस्त्रमें जो वीर्य नहीं है, इसमें वही देखोगे। इस इषीकासे वह गंद भेद कर दूसरी इषीकासे इस इषीकाकी भेद कलंगा फिर और इषीकासे उस दूसरेकी भी बिड़ कलंगा, इस प्रकार क्रमसे इषीकाके योग से उस गंदकी थाम लूंगा। अनन्तर द्रोणने जैसा कहा, ठीक वैसाही कर दिखाया। लड़कोंने अचरजके मारे आखे चढ़ाकर वह लीला देखी और यह मानकर, कि यह बड़त आश्चर्य है, कहा कि हे विप्रर्षे ! यह मुन्दरी भी तुरन्त निकालिये। अनन्तर अति यशस्वी प्रभु द्रोणने शरासन लेकर वाणसे उस मुन्दरीकी बिड़कर ऊपर उठा लिया। आगे वाण सहित उस मुन्दरीकी लेकर विजयरहित चित्तसे विजययुक्त कुमारोंकी दे दिया। कुमारोंने वाणसे उस मुदरीकी उठा देखकर कहा, कि ब्रह्मन् ! यह विद्या दूसरोंमें दीख नहीं पड़ती, सो आपको प्रणाम करते हैं, जानना चाहते हैं, कि आप कौन, किसके पुत्र हैं, और यह भी कहिये कि हम आपका क्या उपकार करें। कुमारोंकी वह बात सुनकर द्रोणने उत्तर दिया, कि तुम भीष्मके पास जाकर मेरा आकार और गुणकी बात ठीक ठीक कहो। इससे वह बड़े तेजस्वी भीष्म सुभके परिचय लेगा।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, अनन्तर लड़कोंने वह मानकर भीष्मके पास जाकर उन ब्राह्मणका ठीक ठीक हाल और उनके आश्चर्यकार्य की बात कह सुनायी। भीष्म कुमारोंके मुखसे सब सुनकर उन ब्राह्मणकी द्रोण करके जाना। और सोचा, कि यही आचार्य-कार्य के योग्य है। अनन्तर शस्त्रधारियोंमें बड़े भीष्मने स्वयं उसीक्षण वहां जाकर उनको आदरपूर्वक लिवा लाकर आनेका कारण योग्य रूपसे पूछा; द्रोण आयोपागत सब सुनाकर बोले कि, हे आयुष्मन् ! मैं पहिले धनुर्वेद और अस्त्र शिक्षाके लिये महर्षि अग्निवेशके यहां गया था, वहां ब्रह्मचारी, नम्र जटाधारी और गुस्की सेवामें उत्साहित होकर अनेक वर्ष गंवाये, उन दिनों पाञ्चालराज कुमार महावली प्रभावी यज्ञसेन उन गुस्के निकट अस्त्र विद्या और धनुर्विद्या सीखनेके लिये रहते थे। हे प्रभो ! वहां वह मेरे लपकारी, मित्र और प्यारे थे, उनके साथ एकत्र रहकर मैं बड़त-दिन सुखसे था, हे कौरव ! बालेपनसे उनके साथ एकत्र मैंने पढ़ा था, इस लिये वह सदा मेरे प्रिय करनेवाले और प्रिय कहनेवाले-मित्र थे। हे भीष्म ! वह मेरी प्रीति के लिये सदा सुभसे यह कहा करते थे, कि “हे द्रोण ! मैं महानुभव पिताका बड़ा प्यारा पुत्र हूँ, सो मैं-तुमसे यह सब प्रीतिज्ञा करता हूँ, कि जब पाञ्चालराज सुभका राज्यपर बैठेविगे, तब वह राज्य तुम भोग करोगे, ऐ मित्र ! मेरा भोग, ऐश्वर्य और सुख सब तुम्हारे हाथ रहेंगे।” आगे जब उनकी अस्त्र-शिक्षा अन्त हुई, तब वह मुझसे सम्मान पाकर वहां से चले गये। मैंने तभीसे सदा उनकी वह बात मनमें रख ली। अनन्तर मैंने पिताके नियोगसे पुत्र पानेकी लोभसे रुन्ध केशी अति बुद्धिमती व्रतशीला और अग्निहोत्र तथा याग करने और इन्द्रियोंके रोकनेमें उदा

नियुक्त कृपोने विवाह किया। कृपोने मेरे वीर्यसे अश्वत्थामा नामक भीमविक्रमी सूर्य-समान तेजस्वी एक पुत्र प्राप्त किया। भरताज मुक्तकी पाकर जिस प्रकार प्रसन्न हुए थे, मैं भी उस सन्तानको प्राप्त कर उसीप्रकार कृतार्थ हुआ। अश्वत्थामा बाल्यवर्षमें एकदिन धीके पुत्रोंकी दूध पीते देखकर ऐसा रोने लगा, कि उससे मेरी सुध बुध जाती रही। यह सोचकर, अपने यागादि कर्म करनेवाले स्नातक जन अप्रसन्न न हों, अर्थात् यदि याग-शील जनके थोड़ी गाय रहें, तो उनसे गायका प्रतिग्रह करनेसे उनका धर्म लोप हो सकता है, मैंने धर्मयुक्त विशुद्ध प्रतिग्रह करनेके लिये बहूत बार उस देशमें भ्रमण किया। हे गङ्गा नन्दन! देशके एक छोरसे दूसरे छोरतक घूमने परभी दूध देनेवाली एकभी गाय नहीं मिली। आगे दूसरे लड़कोंने पिष्टोदक (चावलकी बुकनीके साथ मिले हुए जल) से उस लड़केको लुभाया। हे कुरुनन्दन! बालक अश्वत्थामा उस पिष्टोदककी पीकर बाल्यवर्षके कारण सुग्ध होकर यह कह करके, कि मैंने दूध पी लिया है, उठकर आनन्दसे नाचने लगा। उस पुत्रको लड़कोंसे घेरे जाकर और उनकी हँसीका विषय ज्ञात होकर, नाचते देखकर मेरे हृदयमें अति दुःख हुआ, विशेष चिदावेवालासे यह बात सुनकर, कि “दरिद्र द्रोणपर अधिकार है! जो धर्मके बिना पोतका दूधका ठिकाना नहीं कर सकता, जिसका पुत्र दूधकी प्याससे पिष्टोदक पीकर प्रसन्न हृदयसे लेने दूध पीया, कहके गया था। मेरी दुर्गति बिगड़ गयी। आगे आपकी अपनी निन्दाकर नाचने लगा, कि मैं आपकी ही आज दिव्य ज्ञान और निन्दा पाने लगे हूँ। जगत्पति, तभी पण्डित होकर, धर्म-परायण सिद्ध नहीं होना। हे भीम! पण्डित ऐसा विचार करने परभी मैं

प्यारे पुत्र और स्त्रीकी लेकर, पहिलेके स्नेहके हेतु राजा द्रुपदके यहाँ गया; यह सुनकर, कि मेरे वह प्रिय मित्र राज्यपर बैठे हैं, अपने कृतार्थ जानकर प्रसन्नचित्तसे उनके पास गया। हे प्रभो! उनसे एकत्र वास और उनकी प्रतिज्ञाकी स्मरण करते हुए, मैंने उनके पास जाकर मित्रतासे कहा, कि हे पुरुष व्याघ्र! मैं तुम्हारा मित्र हूँ, यह कहकर मित्रवत् निकट जाकर उनसे मिला। इससे नीच मनुष्यकी भाँति सुभ्रपर हँसकर उन्होंने कहा, कि हे ब्राह्मन्! तुम्हारी यह बात बुद्धिमानोंकीसी और सुधरी हुई नहीं है। हे हिज! क्योंकि तुमने एकायक सुभ्रसे कहा, कि “मैं तुम्हारा मित्र हूँ” कालसे सभी टूट फूट जाता है, सो मित्रताभी टूट फूट जाती है; तुमसे पहिले जो मेरी मित्रता हुई थी, वह उन दिनोंके सम्बन्धहीसे हुई थी; वास्तवमें अत्रोद्विग्न जन अत्रोद्विग्नसे, रथहीन जन रथयुक्तसे और राजा न होनेसे राजासे मित्रता नहीं कर सकता है, अतएव तुम क्यों पहिली मित्रताकी इच्छा करते हो? दोनोंके समान होनेसे मित्रता होती है, पर आपसमें उँटे बड़े होनेसे क्यों कर मित्रता हो सकती है? इस भ्रमण्डलमें किसीकी मित्रता कभी मढ़ा बनी नहीं रहती है, क्योंकि कालने यज्ञ दूरी हो सकती है, भयवा क्रोधसे उखड़ जाती है; अतएव तुम उस पुरानी मित्रताकी इच्छा करनी छोड़ दो, अब उसे बनीबतायी मन जानो। हे हिज, मैं चेष्टा जन! किसी प्रयोजनकीसे तुमसे मेरी मित्रता हुई थी; देवों दरिद्रजन धनीका, मूर्ख पण्डितका, और बौद्ध राजाजन जन राजाका मित्र नहीं हो सकता है, सो तुम क्यों पहिली मित्रताकी इच्छा कर रहे हो? हे भीम! जो पण्डित उग्रदुष्ट भयानक, दुर्गति, कर्म, उँटे दरिद्रसे मित्रता नहीं कर सकता। मैंने राजाके दरिद्रों तुमसे ही प्रतिज्ञा

की थी, वह सुभको स्मरण नहीं होती ; पर तुम एक रात जो कुछ खाना चाहो, वह मैं देनेकी सममत हूँ। उनकी वह बात सुनकर, ऐसी प्रतिज्ञा करके जोकि मैं बिनाविलम्ब पूर्ण कर सकूँगा स्त्रीके साथ लौट आया। हे भीष्म ! मैं राजा द्रुपदसे इस प्रकार लज्जित होकर गुणवन्त शिष्योंकी खोजमें कुरुराज्यमें उपस्थित हुआ था, आगे आपकी इच्छानुसूप कार्य करनेके लिये इस सुन्दर नागपुरमें आया, कहिये इस समय क्या करना होगा ?

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि द्रोणको यह बात सुनकर भीष्मने उनसे कहा, कि शरासनके गुणकी टीलाकर लीजिये ; इन कुमारीकी भले प्रकार अस्त्रविद्या दान कीजिये। कुरुवोके घरमें पूजे जाकर भोगके पादर्थ भोगिये ; कुरु-राजके इस राष्ट्र के साथ राज्य और जो कुछ ऐश्वर्य्य है, आप सबके राजाके समान वने रहिये ; सम्पूर्ण कौरव आपहीके हुए। हे ब्राह्मन् ! जान लीजिये, कि आपकी जो कुछ प्रार्थना थी, वह सब पूरी हो हो गयी है। विप्रर्षे ! हमारे भाग्यसे आप महत् जन कृपासे यहां आ गये हैं। सम्भवपर्वमें एकसौ तैंतीस अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर अति तेजस्वी मनुष्योंमें अष्टजन द्रोण, भीष्मसे पूजे जाकर कुरुवोके घरमें आदरपूर्वक रहने लगे। आगे आचार्यकी थकाई दूर होनेपर भीष्मने पौत्रोंको ले जाकर उनके शिष्य बना दिये और प्रसन्न होकर नाना धन देकर उनके रहनेके लिये धन-धान्यसे भरा पूरा साफ एक गृह ठहरा दिया था। बड़े धनुषधारी द्रोणने प्रसन्न चित्तसे उन कुरु-पाण्डव और धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी शिष्य बना लिया। अनन्तर द्रोण अकेले उन सब निकटके जंगलमें निरालगे विश्रामपूर्वक बोले, कि हे अश्वत्थाम ! कोई एक वाञ्छित विषय मेरे

मनमें जग रहा है। सो वह सत्य कर बोले कि, जब तुम लोग अस्त्र विद्यामें दक्ष बनेगे, तब मेरी वह इच्छा पूरी करना। हे पृथ्वी नाथ ! कौरवलोग यह सुनकर चुप हो रहे। अनन्तर शत्रु दंसनेहारे अर्जुनने उनकी सब कामनाओंकी पूरी करनेका प्रणयना। तब द्रोणने बार बार अर्जुनका सिर चूमकर प्रसन्नतासे उनकी गलेसे लगाया और हर्षके मारे उनकी आंखोंसे आसू गिरने लगे। अनन्तर वह वीर्य्यवन्त द्रोण पाण्डुनन्दनको दिव्य और मानवी नाना प्रकारके अस्त्रोंकी शिक्षा देने लगे। हे भरतश्रेष्ठ ! तब, दूसरे अनेक राजकुमारभी आकर के अस्त्रशिक्षाके लिये द्विजोंमें अष्ट द्रोणाचार्यके पास एकत्रित होने लगे। वृष्णिवशी, अश्वकवशी और अनेक देशोंके भूपालपुत्र तथा राधादुमार सुत पुत्र कर्ण द्रोणाचार्यके निकट आकरके शिष्य बने। सुतपुत्र अति वेषयुक्त होकर अर्जुनसे अहङ्कार दिखाकर दुर्योधनको और भक्तकर पाण्डवोंका अनादर करने लगे। अर्जुन धनुर्वेद सीखनेके लिये रुदा द्रोणाचार्यके निकट रहते थे। वह शिक्षा भुजवल, उद्योग और अस्त्र-विद्यामें यत्नरखनेके कारण सर्वोसे विशेष बन गये। अस्त्र चक्षानेमें समान होनेपर भी उस विषयमें शीघ्र और कौशलके विषयमें अर्जुनही सम्पूर्ण शिष्योंसे बढ़ कर निकले। तब द्रोणने समझा, कि कोईभी शिक्षाके विषय में इस इन्द्रपुत्र अर्जुनके समान नहीं हो सकेगा। आचार्य द्रोण इस प्रकार बाण और अस्त्र विद्याकी शिक्षा देने लगे। इसलिये, कि जनलानेमें विलम्ब हो, वह सब शिष्योंको एक एक कमण्डल अर्थात् छोटा मुहवाला जलका वर्तन देते थे, और शीघ्र कार्य पूरा करनेके लिये अपने पुत्र अश्वत्थामाको एक कलसा देते थे ; इसका अभिप्राय यह है, कि अश्वत्थामाके शीघ्र जनलानेपर द्रोणाचार्य उसकी किसी किसी अंग

मोक्षमार्गप्रदीपिका के अनुसार कि अनन्तर धीरे-
धीरे जलाने से प्रसून को घोंटें पर, रव पर
जली पर और भस्मि पर धुत करनेकी विधि
दिया हो और गदाहानि, खड्ग चमननि
कोष, पात्र, शक्ति आदि विभिन्न विभिन्न यन्त्रों के
प्रयोगों से और जलाने से कदाचित् एकही मन्त्र

अनेक वाण चलाने अथवा एकवारही अनेक जनोंके संग युद्ध करनेमें सुशिक्षित किया। सहस्रों राजा और राजकुमार उनके उस कौशलकी बातकी सुनकर धनुर्वेद सीखनेके लिये द्रकट्टे होने लगे। हे महाराज। हिरण्य-धनु नामक निषाद राजकुमार एकलव्य द्रोणके पास आया। धर्मज्ञ द्रोण यह समझ कर, कि यह व्याधका पुत्र है, राजकुमारोंके चिढ़नेके भयसे उसको नहीं लिया। हे शत्रु-नाशि! एकलव्यने द्रोणाचार्यके पावों पर सिर रखकर, वनमें जाकर मिट्टीसे द्रोणकी एक प्रतिमा गढ़ी और उस प्रतिमूर्तिमें अच्छे आचार्यकी बुद्धि देकर नियमसे एकचित्त होकर धनुर्वेद सीखने लगा। उसकी बड़ी अज्ञा और एकचित्तताके कारण अस्त्रोंका विमोचन, आदान और सन्धान बड़ा सहज हो पड़ा। अनन्तर किसी समय शत्रुदंसेन-हारे कुरुपाण्डव लोग द्रोणाचार्यकी आज्ञासे रथ पर आरुढ़ होकर मृगयाके लिये गये। हे राजन्! तब एक मनुष्य मृगयाके योग्य जालादि लेकर, एक कुत्तेकी साथ लेकर, अपनी इच्छानुसार पाण्डवोंके सह चरने लगा। आगे उस वनमें जब सब लोग अपना अपना काम पूरा करनेके लिये घूम घूम रहे थे, तब उनका साथी वह कुत्ता किसीके न देखे जाकर व्याधकी ओर गया और उनकी कान्हा, विष्ठासे शरीर रड़ा हुआ, कान्हा चमड़ा पछिने झग और जटाधारी देखकर उसके नामसे खड़ा होकर भौंकने लगा। व्याधपुत्रने बल चलानेमें शीघ्रता दिखा कर उस चिमने झग झन्केके मुँहमें एक बारही सात वाण चलाया। वाणोंके मुँह पन्द्रहने पर इन्ना पाण्डवोंके पास गया। और पाण्डवोंने उसकी उस दममें देखकर बड़ा आश्चर्य माना और सबलोग इस चमनेवाले कुत्ते की बुद्धि तथा शक्ति की कामना देखकर उसे बहुत

हुए और सब प्रकारसे उसकी प्रशंसा करने लगे । हे राजन् ! तब पाण्डवोंने उस वनमें रहनेवाले अस्त्र चलानेहारेको वनमें ढूँढ़ते हुए देखा, कि वह हरषड़ी वाण चला रहा है, पर उन्होंने उस स्वरूप विगाड़े हुए व्याधकी नहीं पहिचाना, अन्तम पूछा, कि आप कौन हैं ? किसके पुत्र हैं ? एकलव्य बोला कि, हे वीर गण ! मैं निषादराज हिरण्यधनुका पुत्र हूँ, द्रोणाचार्यका शिष्य होकरके सदा धनुर्वेद सोखनेके लिये परिश्रम कर रहा हूँ ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर पाण्डवोंने उसकी ठीक पहिचानकर लौट कर वह सब आश्चर्य वृत्तान्त सच सच द्रोणाचार्यको कह सुनाया । हे राजन् ! कुन्तीपुत्र अर्जुन एकलव्यको स्मरण करते हुए द्रोणके पास पहुँच कर प्रेमसे निरालेमें बोले, कि हे आचार्य ! पहिले आपने अकेले सुभक्तकी गलेसे लगाकर प्रेमसे यह कहा था कि, मेरा कोई शिष्य तुमसे श्रेष्ठ न होगा" फिर क्यों वीर्यवन्त निषाद-राजका पुत्र आपका शिष्य होकर सुभक्ते, वरन सम्पूर्ण लोगोंसे श्रेष्ठ हुआ ? अनन्तर द्रोण उस बातकी क्षणभर निश्चयरूपसे सोचकर सब्यसाची अर्जुनको साथ लेकर उस निषाद-राजपुत्रके यहां गये और देखा, कि विष्टासे देह रक्षा हुआ जटाधारी, चीर पहिने एकलव्य हाथोंसे चापको थामकर सदा वाण चला रहा है । एकलव्यने निकट आये हुए द्रोणाचार्यको देखकर निकट आके पाव छूकर प्रणाम किया, विधिपूर्वक पूजकर तथा यत्न कहकर, कि मैं आपका शिष्य हूँ, दीना हाथ जोड़ सामने खड़ा रहा । हे राजन् ! अनन्तर द्रोणने एकलव्यसे कहा, कि हे वीर ! यदि तुम मेरे शिष्य हो, तो मुझको दक्षिणा दो । एकलव्यने मुनकर प्रसन्न चित्तसे कहा, कि भगवाँ ! आपकीजिये, कि क्या दूँ ?

हे ब्रह्मर्षिमें उत्तम ! आप मेरे गुरु हैं, मुझको सुभी कुछभी अर्पण नहीं है । द्रोणाचार्य बोले, कि यदि तुम अवश्य देनेपर हो, तो मुझको दाहिने हाथका अंगूठा देदो । एकलव्य सदा सत्य पर खड़ा था, सो आश्चर्य द्रोणकी वर कठोरवाणी सुनने पर भी चित्तमें दुःख न मान कर और मुखको प्रसन्न कर अपना प्रतिज्ञा पूरी करके विना विचार अपने दाहिने अंगूठेको काट कर द्रोणाचार्यको दे दिया । हे नरेश ! अनन्तर निषादराज-कुमार शेष उड्डालियेसे वाण चलाने लगा, पर पहिले की समान शीघ्रतासे काम न कर सका । तब अर्जुन प्रसन्न चित्त हुए, उनकी मनःपीड़ा जाती रही और आचार्य द्रोणने पहिले जैसे कहा था, कि कोई भी अर्जुनको परास्त नहीं कर सकेगा, अब वह बात सच्ची ठहरी । दुर्योधन और भीम द्रोणके यह दो शिष्य गदायुद्धमें दक्ष बने, उनमेंसे एक दूसरेपर सदा क्रोधित बना रहता था । अस्त्र चला नेके सब रहस्योंके जाननेसे अश्वत्थामा सबों से अच्छे निकले । नकुल और सहदेव खट्वाङ्गका बेट फकड़नेमें सबोंकी नाध गये । युधिष्ठिर रथियोंमें प्रधान हुए । धनञ्जय इस बातमेंही श्रेष्ठ निकले थे । वह बुद्धि, उपाय, वन और उत्साहसे सम्पूर्ण अस्त्र चलानेमें दक्ष रही दलके स्वामियोंके दलपति होकर समुद्रसे लेकर सम्पूर्ण धरतीमें प्रसिद्ध हुए । विभीषण अस्त्रोंके चलाने और गुरुकी भक्ति करनेमें विषयोंमें उनके समान कोई दूसरा नहीं था । सबों पर बराबर अस्त्रोपदेश होने परभी वीर्यवन्त अर्जुन सौष्टव अर्थात् स्थिति सुष्टि आदिकी शक्तिसे सब कुमारोंमें अद्वितीय अतिरथ करके गिने गये ! हे शत्रुनाश ! दुरात्मा धृतराष्ट्र पुत्रगण बढ़े वलो भीमसेन और विद्या सोखे हुए अर्जुनको देखकर डीपसे जलने लगे । हे पुत्रपत्रेष्ठ ! एक समय द्रोणने अस्त्र सबकी सम्पूर्ण विद्याओंमें शिक्षित उन सब शिष्योंकी

एकत्र कर यह जानना चाहा, कि किसने कैसी शिष्टा ली है । इससे पहिले उन्होंने तुमारोंके न जाननेमें शिल्पकारसे वनवाकर एक कृत्रिम गिड़ पक्षीको निशानेके लिये एक वृक्ष पर रख छोड़ा था । आगे शिष्योंसे बोले, कि कुमारो ! तुम शीघ्र धनुष लेकर उसमें वाण जोड़ करके उस देखे जाते हुए गिड़ पर निशाना किये रहो मेरी बातके सुनतेही उस पक्षीके सिरका काटना पड़ेगा । ऐ वेत्रे ! मैं एक एक कर तुम सबोंमें जब जिसे जैसे नियोग करूंगा, वह उसीक्षण वैसाही करे ।

श्रीशम्भुयनजी बोले, कि अनन्तर अङ्गिरा-वशियोमें श्रेष्ठ द्रोण पहिले युधिष्ठिरसे बोले, कि हे दुर्धर्ष ! वाणसे निशाना करलो, मेरी बात पूरी है, तेही उसको चलाना । आगे शत्रुतपनेहारे युधिष्ठिर गुरुकी आज्ञासे पहिले धनुष लेकर पक्षी पर निशाना किये खड़े रहे । हे भरत-श्रेष्ठ ! द्रोणने धनुष पर गुण चढ़ाये हुए कुरुनन्दन युधिष्ठिरसे क्षण भर पीछे कहा, कि राजकुमार ! उस वृक्षपरके गिड़को देखते हो ? युधिष्ठिर बोले, कि हा देखता हूँ । द्रोणने तत्काल पीछे फिर कहा, कि तुम इस वृक्षकी भाँकी अथवा अपने भाइयोंकी देखते हो ? युधिष्ठिर बोले, कि हा, मैं इस वृक्षकी भाँइयों- और उस पक्षीको देखता हूँ । आचार्यसे बार बार यों पूछे जाने परभी उन्होंने बार बार भाँकी कहा । इससे द्रोण उन पर प्रसन्नचित्त होकर लाज्यन कर बोले, कि राजा चल जाओ, यह लक्ष्य विद्ध करना सारा काम नहीं है । अनन्तर अति यशस्वन्त होने सब शिष्योंकी शक्ति पूरनेके लिये दुर्ग-आदि धृतराष्ट्रके पुत्रासे चार भीम, नकुल, सहदेव तथा अन्य दिग्गजोंके राजकुमारोंसिभी उस वृक्ष पर निशाने सहित खड़े रख रखकर वृक्ष पर सब वृक्ष ऊपर दे देखर, कि वृक्षदि

न्तर द्रोण कुछ हँसकर धनुषदसे वेली, कि वेत्रे ! अब तुमको यह लक्ष्य विद्ध करना पड़ेगा, सो वह लक्ष्यकी देखो, मेरी बातके साथही साथ वाण जोड़कर क्षणभर ठहरे रहो । सञ्जसाची अर्जुन गुरुकी आज्ञासे शरासनमें वाण जोड़कर पक्षी पर निशाना जमाकर खड़े रहे । क्षणभर पीछे द्रोणने पहिलेको नाईं कहा, कि अर्जुन तुम उस वृक्ष-परके पक्षीको और सुझकी देखते हो ? हे भारत ! पार्थने कहा, केवल पक्षीहीकी देखता हूँ, वृक्षकी वा आपको नहीं देखता हूँ । अनन्तर दुर्धर्ष द्रोण प्रसन्नचित्त होकर क्षणभर पीछे पाण्डवोंमें महारथी उन अर्जुनसे बोले कि यदि तुम पक्षीहीको देखते हो तो कहो, उसको कैसा देखते हो । अर्जुनने उत्तर दिया, कि मैं उस पक्षीका सिर मात्र देखता हूँ, शरीर नहीं देखता । अर्जुनकी यह बात सुनकर हर्षके मारे उनकी देखके रोये खड़े हो गये और उनसे बोले, कि अब वाण छोड़ो । तब पाण्डुपुत्र अर्जुनने कोई विचार न करके वाणकी मारा, उससे उसीक्षण उस तेज अस्तुरेकी नाईं वाणने वृक्ष-परके पक्षीका सिर कटकर नीचे गिरा । द्रोणाचार्यने वह काम पूरा होते देखकर प्रसन्नचित्तसे फाल्गुनको गर्लेसे लगाया और मनहीमनमें यह निश्चय किया, कि राजा द्रुपद सहायकोंके साथ युद्धमें चार जावंगा । हे भरतकुलमें श्रेष्ठ पुरुष ! उसके इरादामें पीछे द्रोणने शिष्योंके सह गङ्गा नद्याने जाकर वृक्षाही जलमें देह डुबायो, क्योंकि एक बलवन्त परिवारने माना जानकी प्रेरणासे उनकी उनकी जादजे भीतर तक काटा । शरीर खयें उससे वृक्षमें नमक होने परभी सब शिष्योंने माना उनकी नीला देहने के लिये पीले, कि तुम युद्धमें हम जयप्राप्ति करके लौट रहे हैं । युद्ध द्रोणने यह बात

झए और सब प्रकारसे उसकी प्रशंसा करने लगे । हे राजन् । तब पाण्डवोंने उस वनमें रहनेवाले अस्त्र चलानेहारेको वनमें ढूँढते झए देखा, कि वह हरषड़ी वाण चला रहा है, पर उन्होंने उस स्वरूप विगाड़े झए व्याधकी नहीं पहिचाना ; अन्तम पूछा, कि आप कौन है ? किसके पुत्र हैं ? एकलव्य बोला कि, हे वीर गण । मैं निषादराज हिरण्यधनुका पुत्र हूँ, द्रोणाचार्यका शिष्य होकरके सदा धनुर्वेद सोखनेके लिये परिश्रम कर रहा हूँ ।

श्रीवैशम्पायनजी बोलि, कि अनन्तर पाण्डवोंने उसकी ठीक पहिचानकर लौट कर वह सब आचर्य्य वृत्तान्त सच सच द्रोणाचार्यको कह सुनाया । हे राजन् ! कुन्तीपुत्र अर्जुन एकलव्यको स्मरण करते झए द्रोणके पास पहुँच कर प्रेमसे निरालेमें बोलि, कि हे आचार्य्य । पहिले आपने अकेले मुझकी गलेसे लगाकर प्रेमसे यह कहा था कि, मेरा कोई शिष्य तुमसे श्रेष्ठ न होगा” फिर क्यों वीर्य्यवन्त निषाद-राजका पुत्र आपका शिष्य होकर मुझसे, वरन सम्पूर्ण लोगोंसे श्रेष्ठ हुआ ? अनन्तर द्रोण उस बातको क्षणभर निश्चयरूपसे सोचकर सब्यसाची अर्जुनको साथ लेकर उस निषाद-राजपुत्रके यहां गये और देखा, कि विष्टासे देह रक्षा हुआ जटाधारो, चीर पहिने एकलव्य हाथीसे चापको थामकर सदा वाण चला रहा है । एकलव्यने निकट आवे झए द्रोणाचार्यको देखकर निकट आके पाव छूकर प्रणाम किया, विधिपूर्वक पूजकर तथा यज्ञ कहकर, कि मैं आपका शिष्य हूँ, दोनों हाथ जोड़ सामने खड़ा रहा । हे राजन् । अनन्तर द्रोणने एकलव्यसे कहा, कि हे वीर ! यदि तुम मेरे शिष्य हो, तो मुझको दक्षिणा दो । एकलव्यन नूनकर प्रसन्न चित्तसे कहा, कि भगवान् । आशा कीजिये, कि क्या दू ?

हे ब्रह्मर्षिमें उत्तम । आप मेरे गुरु हैं, गुरुको मुझे कुछभी अर्पण नहीं है । द्रोणाचार्य बोले कि यदि तुम अवश्य देनेपर हो, तो मुझको दाहिने हाथका अंगूठा देदो । एकलव्य सदा सत्य पर खड़ा था, सो आचर्य्य द्रोणकी वर कठोरवाणी सुनने पर भी चित्तमें दुःख न मान कर और मुखको प्रसन्न कर अपनो प्रतिज्ञा पूरी करके विना विचार अपने दाहिने अंगूठेको काट कर द्रोणाचार्यको दे दिया । हे नरेश ! अनन्तर निषादराज-कुमार शेष उद्गलियोंसे वाण चलाने लगा, पर पहिले की समान शीघ्रतासे काम न कर सका । तब अर्जुन प्रसन्न चित्त झए, उनकी मनःपीड़ा जाती रही और आचार्य्य द्रोणने पहिले जैसे कहा था, कि कौन भी अर्जुनको परास्त नहीं कर सकेगा, अब वह बात सच्ची ठहरी । दुर्योधन और भीम द्रोणके यह दो शिष्य गदायुद्धमें दक्ष बने, उनमेंसे एक दूसरेपर सदा क्रोधित बना रहता था । अस्त्र चला नेके सब रहस्योंके जाननेमें अश्वधामा सर्वों से अच्छे निकले । नकुल और सहदेव खट्गका बँट फकड़नेमें सर्वोंकी नाश अये । युधिष्ठिर रथियोंमें प्रधान झए । धनञ्जय इस बातमेंही श्रेष्ठ निकले थे । वह बुद्धि, उपाय, वर और उत्साहसे सम्पूर्ण अस्त्र चलानेमें दक्ष रथी दलके स्वामियोंके दलपति होकर समुद्र लीकर सम्पूर्ण धरतीमें प्रसिद्ध झए । विष्वक् अस्त्रोंके चलाने और गुरुकी भक्ति करनेके विषयोंमें उनके समान कोई दूसरा नहीं था । सर्वों पर बराबर अस्त्रोपदेश होने परभी वीर्य्यवन्त अर्जुन सौष्टव अर्थात् स्थिति सुष्टि आदिकी शुद्धिसे सब कुमारीमें अद्वितीय अतिरथ्य करके गिने गये ! हे शत्रुनाश ! दुरात्मा धृतराष्ट्र पुत्रगण बढ़े बली भीमसेन और विद्या सोते झए अर्जुनको देखकर द्वेषसे जलने लगे । पुरुषत्रय श्रेष्ठ ! एक समय द्रोणने अस्त्र सबकी सम्पूर्ण विद्याओंमें शिक्षित उन सब शिष्योंकी

एकत्र कर यह जानना चाहता, कि किसने कैसी शिखा ली है। इससे पहिले उन्होंने तुम्हारे को न जाननेमें शिल्पकारसे बनवाकर एक कृत्रिम गड़ पक्षीको निशानेके लिये एक वृक्ष पर रख छोड़ा था। आगे शिष्योंसे बोले, कि कुमारी ! तुम शीघ्र धनुष लेकर उसमें शर जोड़ करके उस देखे जाते हुए गिद्ध पर निशाना किये रहो मेरी बातको सुनतेही उस पक्षीके सिरका काटना पड़ेगा। ऐ वेत्रे ! मैं एक एक कर तुम सबोंमें जब जिसे जैसे नियोग करूंगा, वह उसीक्षण वैसाही करे।

श्रीशम्भायनजी बोले, कि अनन्तर अङ्गिरा-शिश्योंमें श्रेष्ठ द्रोण पहिले युधिष्ठिरसे बोले, कि हे दुर्दर्ष ! वाणसे निशाना करलो, मेरी बात पूरी है, तेही उसको चलाना। आगे शत्रुतपनेहारे युधिष्ठिर गुरुकी आज्ञासे पहिले धनुष लेकर पक्षी पर निशाना किये खड़े रहे। हे भरत-श्रेष्ठ ! द्रोणने धनुष पर गुण चढ़ाये हुए कुरुनन्दन युधिष्ठिरसे क्षण भर पीछे कहा, कि राजकुमार ! उस वृक्षपरके गिद्धको देखते हो ? युधिष्ठिर बोले, कि हां देखता हूं। द्रोणने कुछकाल पीछे फिर कहा, कि तुम इस वृक्षकी सुभकी अथवा अपने भाइयोंकी देखते हो ? युधिष्ठिर बोले, कि हां, मैं इस वृक्षकी, भाइयोंका और उस पक्षीको देखता हूं। आचार्यसे बार बार यों पूछे जाने परभी उन्होंने बार बार वैसाही कहा। इससे द्रोण उन पर अप्रसन्नचित्त होकर लाञ्छन कर बोले, कि तुम चले जाओ, यह लक्ष्य विद्ध करना तुम्हारा काम नहीं है। अनन्तर अति यशवन्त द्रोणने सब शिष्योंकी शक्ति प्रकटनेके लिये दुर्योधन आदि धृतराष्ट्रके पुत्रोंसे और भीम, नकुल, सहदेव तथा अन्य देशोंके राजकुमारोंसे भी उस प्रकार वाणके निशाने सहित खड़े रख रखकर पूछा, पर सब यह उत्तर दे देकर, कि वृक्षादि सब देखता हूँ, भाज्यार्थके निमित्त नहीं।

न्तर द्रोण कुछ हंसकर धनञ्जयसे बोले, कि वेत्रा ! अब तुमको यह लक्ष्य विद्ध करना पड़ेगा, सो वह लक्ष्यको देखो, मेरी बातको साथही साथ वाण जोड़कर क्षणभर ठहरे रहो। सञ्जसाची अर्जुन गुरुकी आज्ञासे शरासनमें वाण जोड़कर पक्षी पर निशाना जमाकर खड़े रहे। क्षणभर पीछे द्रोणने पहिलेको नाई कहा, कि अर्जुन तुम उस वृक्षपरके पक्षीको और सुभकी देखते हो ? हे भारत ! पार्थने कहा, केवल पक्षीहीको देखता हूं, वृक्षकी वा आपकी नहीं देखता हूं। अनन्तर दुर्दर्ष द्रोण प्रसन्नचित्त होकर क्षणभर पीछे पाण्डवोंमें महारथी उन अर्जुनसे बोले कि यदि तुम पक्षीहीको देखते हो तो कहो, उसकी कैसा देखते हो। अर्जुनने उत्तर दिया, कि मैं उस पक्षीका सिर मात्र देखता हूं, शरीर नहीं देखता। अर्जुनकी यह बात सुनकर हर्षके मारे उनकी देहके रीयें खड़े हो गये और उनसे बोले, कि अब वाण छोड़ो। तब पाण्डुपुत्र अर्जुनने कोई विचार न करके वाणको मारा, उससे उसीक्षण उस तेज अस्तुरेकी नाई वाणसे वृक्षपरके पक्षीका सिर कटकर नीचे गिरा। द्रोणाचार्यने वह काम पूरा होते देखकर प्रसन्नचित्तसे फाल्गुनको गलेसे लगाया और मनहीमनमें यह निश्चय किया, कि राजा द्रुपद सहायकोंके साथ युद्धमें हार जावेगा। हे भरतकुलमें श्रेष्ठ पुरुष ! उसके कुछदिन पीछे द्रोणने शिष्योंके सङ्ग गङ्गा नहाने जाकर ज्योंही जलमें देह डुबायो, त्योंही एक बलवन्त धरियारने मानो कालकी प्रेरणासे उनकी जाड़के भीतर तक काटा। द्रोण स्वयं उससे वचनमें संमथ होने परभी सब शिष्योंसे मानो उनको शीघ्रता देखनेके लिये बोले, कि तुम तुरन्त इस जलचरको नष्ट करके मेरी रक्षा करो। गरु टाणके यह बात

कहतेही वीभत्सुने पांच न रोकने योग्य वाणों से जलमें डूबे हुए जलचरको विह्वल किया। दूसरे शिष्य जो जहां थे, वहां वहीँ मूढ़वत खड़े रहे। तब आचार्य द्रोणने अर्जुनको काममें उद्योगी देखकर सब शिष्योंसे उनको श्रेष्ठ समझा और उनपर बड़े प्रसन्न हुए। धर्म-यार महात्मा द्रोणकी जाँघकी तजकर पार्थके वाणोंसे टुकड़े टुकड़े होकर परलोककी सिधारा। अनन्तर महामति भरद्वाजपुत्र अर्जुनसे बोले, कि हे महामुज। ब्रह्मशिर नामक यह अति दुर्दर्ष श्रेष्ठ अस्त्र तुमको प्रयोग और उपसंहार सहित देता हूँ, ली; मनुष्य पर कभी इसे न मारना, क्योंकि यह स्वल्पतेजस्वी मानव पर चलाये जानेसे जगन्मण्डलकीभी जला सकेगा। बेटा। तीनों लोकोंमें यह अस्त्र असाधारण करके प्रख्यात है; सो तुम इसे यत्नमें रखना और मैं जो कहता हूँ, सुनो। हे वीर। यदि कभी मनुष्यके विना कोई और शत्रु तुम्हारी विरुद्धता करे, तो युद्धस्थलमें उसकी वध करने-के लिये यह अस्त्र चलाना। वीभत्सुने दोनों हाथ जोड़के, उस बातकी मानकर उस परमास्त्रको ले लिया। तब गुरुने फिर उनसे कहा, कि इस भूमण्डल भरमें कोई जन तुम्हारे समान चापधारी नहीं होगा, तुम शत्रुओंसे जीते जानेके अयोग्य और यशवन्त होकर रहोगे।

संभव पर्वमें एकसौ चौतौस अध्याय समाप्त ।

श्रीकृष्णमानजी बोले, कि हे राजा। द्रोणाचार्य धृतराष्ट्रके पुत्रों और पाण्डवोंकी अस्त्रशिक्षामें दब देख कर क्रुप, सेमदन्त, बाहीक व्याम, विदुर और धीमान भीष्मके सामने राजा धृतराष्ट्रसे बोले, कि हे कुरुक्षेत्रके श्रेष्ठ महाराज। आपके तमारेने विद्या पढ़ ली है, अब आज्ञा हो, तो वे अपने-अपने जिज्ञा का परिचय दें। अनन्तर

महाराज। उनसे प्रसन्नचित्तसे बोले, कि हे ब्राह्मण कुलमें श्रेष्ठ महाराज आपसे अति महत् कार्य है, हालमें आप अस्त्र-परीक्षाने लिये जो स्थान ठहरावे और जहाँ जिस प्रकार उसका निर्व्याह होना निश्चय करें, उसके प्रवस की आज्ञा मुझसे कीजिये। जो अस्त्र चलानेमें पराक्रमी लोग मेरे इन पुत्रोंकी देखेंगे, आज मुझमें आखोंके बिना, देखने की शक्त मता हेतु उन लोगोंकी चाह उभड़ रही है। विदुर। पूजनीय आचार्य जैसा कहें, वह सब करो। हे धर्मप्रेमी। मैं समझता हूँ, कि इससे मेरे लिये कोई कार्य प्रिय नहीं होगा। अनन्तर राजासे सम्भाषण करके विदुरके निकलने पर महाराज भारद्वाजने वृक्ष गुल्मादियोंसे रहित, जलके सीते-सहित समभूमि देखकर उसकी मापा। अनन्तर समाजके सब लोगोंकी सूचनाके द्वारा बुलाये जाने पर बोलनेमें तेज आचार्य अच्छे नक्षत्र युक्त शुभ तिथिमें देवताके नामसे विधिपूर्वक उस स्थानका उपहार दिया। हे नराधिप। उनके नियुक्त किये हुए शिल्प करनेवालोंने उस अखाड़ेमें राजाके और नारियोंके लिये शास्त्रानुसार अच्छे सब प्रकारके अस्त्रोंसे सजे सजाये और लम्बे चौड़े देखनेके घर बनाये और नगरवासी धनियोंनेभी वहां लंघी और बड़ी बड़ी वेदी तथा मंचान बनवा रखी। हे शील लोगोंमें श्रेष्ठ! अनन्तर कुमारों के विस्मय दिखानेके निश्चय किये हुए दिनके आजने पर राजा धृतराष्ट्र मन्त्रियोंके साथ और भीम तथा आचार्यश्रेष्ठ क्रुपको आगे करके चले और स्थान-स्थानमें मोतियोंकी लड़ी लटकाये और दैर्घ्य मणियोंसे सजे सजाये सुवर्णके, सुन्दर दर्शन-भवनमें गये और बड़ी भाग्यवती गाम्भारी और कुन्तीभी दर्शन ग्रहमें गयी। दूसरी रात्रि राणियां दासियोंके साथ अपूर्व वस्त्र पहिने आनन्दकी उमंगमें वेदियों पर जा बैठीं उस

समय जान पड़ने लगा कि सानों देवीको स्त्रियां सुमेरुकी चोटीपर चढ़ी हैं। ब्राह्मण क्षत्रिय आदि चारों वर्णके लोग कुमारोंकी अस्त्र-विद्याकी योग्यता देखनेके लिये नगरसे निकलकर बड़े वेगसे वहां देखनेकी बड़ी चाहसे द्रवण भरमें एकत्र हुए। तब सम्पूर्ण रूपसे बजते हुए वाजोंके शब्द और लोगोंके आश्चर्य-पूरित कलरवसे समाज महासमुद्रके समान लहराने लगा। अनन्तर शुक्र दाढ़ी, शुक्र माला और शुक्र चन्दनसे शोभायमान, तेजवान् आचार्य द्रोण अपने पुत्रके साथ अखाड़ेमें आये। उस समय जान पड़ा, कि मानो मङ्गल ग्रहके साथ प्रकाशमान देव बादलरहित आकाशकी जा रहे हैं। महाबली आचार्यने उस स्थानमें उचित समयमें देव पूजन किया और मन्त्र जाननेवाले ब्राह्मणोंसे मङ्गलाचरण करवाया। अनन्तर पवित्र-पुण्य दिनकी कथा कहानी जाने पर नियुक्त किये हुए लोग नाना अस्त्रों और उनके उपकरण ले लेकर अखाड़ेमें जा घुसे। तब युधिष्ठिर आदि भरत-वंशियोंमें अष्ट महारथी और वीर्यवन्त कुमारगण कमर कसके जगली रक्षक, तूणीर और धनुषवाण धारणकर वहां प्रविष्ट हुए, वे बड़े छोटेके क्रमसे अति आश्चर्य अस्त्रविद्या प्रगट करने लगे। तब देखनेवालोंमें कोई कोई तो बाणोंके गिरनेके भयसे सिर नीचे किये रहे और कोई कोई बिना भय आश्चर्य चित्तसे देखने लग। कुमारगण शीघ्र लेजाने वाले घोड़ोंपर नामाङ्गसे शोभायमान नाना वाणोंकी शोभतापूर्वक चलाके लक्ष्य-बेधने लगे। तब देखनेवालोंने धनुषवाण लिये हुए कुमारोंका गन्धर्व-नगरके समान वह आश्चर्य लीला देखकर अचरज माना। हे भारत! वहाके सैकड़ों सहस्रों मनुष्य विसयसे प्रसन्नतेव ही कर एकायक चिन्नाकर 'साधु, साधु' ऐसी ध्वनि कर उठे। महाबली कुमारगण शरासन

और रथ चलानेमें, हाथीपर, घोड़ेपर चढ़ने और हायाबांहीमें नाना कौशल बार बार दिखाकर अन्तमें खड्ग चर्म लेकर फिर मारपीटमें लगकर निशानके अनुसार नाना प्रकारसे अस्त्रोंका चलाना दिखा करके, अखाड़ेमें घूमने लगे। देखनेवाले उन वीर कुमारोंके असिचर्म प्रयोगमें तेज हाथ, कौशल धीरज, झूठोंकी दृढ़ता और अपूर्व शोभा देखने लगे। अनन्तर, सदाके अहङ्कारी दुर्योधन और हकीदर गदा हाथमें लेकर एकही चोटी-वाले पहाड़ोके समान अखाड़ेमें उतरे। एक हयनीके लोभसे दो उन्मत्त हाथी जिस प्रकार चिह्लाते रहते हैं। उसके समान बड़ाई चाहने वाले वे दो महाभुज वीर कमर कसकर गल्लेने लगे। सदा गदा लिये हुए सदमत्त हस्त्रियोंके समान महाबली सुयोधन और भीम दहिनी पलट और बांयो पलटके अनुसार गोलाकार हो कर अखाड़ेमें घूमने लगे। तब विदुरने धृतराष्ट्रसे, और कुन्तीने गान्धारीकी निकट कुमारोंसे किये जाते हुए, सब हतान्तकी कह सुनाया।

संभवपर्वमें एकसौ पैंतीस अध्याय समाप्त।

श्रीशम्भायनजी बोलें, कि कुरुराज दुर्योधन और महाबली भीमके अखाड़ेमें उतरने पर देखनेवाले पक्षपातसे स्नेह कर दो दलोंमें बंट गये। कोई कोई तो कहने लगे, कि कुरुराज कैसे अच्छे वीर हैं। और दूसरे कहने लगे कि भीम कैसे अच्छे वीर हैं। चारों ओरसे इसी बातका घोर कीलाहल मच उठा; उसके अनन्तर बुद्धिमान भारद्वाज हिलोड़ते हुए समुद्रकी भांति उस अखाड़ेको देखकर प्रिय पुत्र अखत्यामासे बोले, कि यह भीम और दुर्योधन दोनों बड़े वीर्यवन्त और युद्धविद्यामें तेज हैं, सो इनसे कह दो कि, अखाड़ेमें इनसे क्रोध न उपजे। अनन्तर प्रलयकालकी भांति

लहराते हुए, जचेतटवाले समुद्र के समान उन्नत, गदा उठाये हुए भीम और सुयोधन गुरुकुमार-से रोके गये। तब आचार्य द्रोण आखाड़े में जाकर घने बादल की गड़गड़ाहट के समान बाजों की ध्वनि की रोककर बोले, कि उपेन्द्र के सदृश सर्व शास्त्रों में प्रधान और मेरे पुत्र से भी प्यारे वह इन्द्रपुत्र अब दिखाई दें। तब आचार्य की आज्ञा से तरुण अवस्था की फाल्गुन मङ्गलाचरण करने की पश्चात् गुण की चोट रोक-नेवाली चमड़े की पट्टी और उंगली रत्नक कस के बाण से पूरित नूण, धनुष और सीने के कवच पहनकर मानों सूर्य प्रकाश के समान जलते हुए और इन्द्रधनु तथा बिजली की चमक की भांति सुहाते हुए, सन्ध्याकाल के बादल के सदृश दीख पड़े। उससे आखाड़े की चारों ओर से आनन्द की ध्वनि उड़ने लगी और शंख तथा अनेक बाजे बजने लगे। यह श्रीमान् पुत्र कुन्ती के पुत्र है, यह सभली पाण्डव हैं, यही कुरुओं की रक्षा करनेवाले हैं, यही अस्त्र धरनेवालों में श्रेष्ठ हैं, यही धार्मिकों में प्रधान हैं, यही सुशीलों की शोभता और ज्ञान के परम आदर्शरूपी हैं;—दर्शकों की ऐसी, अनेक बातें सुनकर कुन्ती की स्तनदग्ध तथा आस्र से छाती भीग गयी। उन सब बड़े भारी शब्दों से नरो में श्रेष्ठ धृतराष्ट्र के कान भर जाने से उन्होंने प्रसन्नचित्त होकर विदुर से पूछा, कि हे चतुः। आखाड़े में हिली हुई हुए समुद्र की ध्वनि की भांति यह महाशब्द मानों आकाश फाड़ के ही क्यों एकायक उठा! विदुर बोले, कि महाराज! यह पाण्डुनन्दन पार्थ अर्जुन कवच पहनकर आखाड़े में उतरे हैं, उससे ऐसा घोर कीड़ाहल मच रहा है। धृतराष्ट्र बोले, कि हे महासते! कुन्तीरूपी वन से उभरे हुए पाण्डवरूपी तीन अग्नियों से मैं धन्य, वृषासक्त और रक्षित हुआ।

तब गम्भायनजी बोले, कि आखाड़े के उन

हर्षयुक्त लोगों के उत्साहित होकर कुछ शान हो जाने पर अर्जुन आचार्य की अस्त्र चलाने की दक्षता दिखाने लगे। उन्होंने अनास्र से अग्नि वासुणास्र से जल, वायु आस्र से वायु और पार्जन्यास्र से पर्वत बनाया और अतर्दीन अस्त्र से अतर्हित हो गये। वह क्षण भर में दीर्घ, क्षण भर में क्षुब्ध, क्षण भर में रथ धूँवी के निकट स्थित, फिर, क्षण भर में रथ के भीतर और क्षण भर में धरती पर उतरने लगे। शुरुप्रेमी अर्जुन वाणों से फूल आदि कीमल वस्तु, गुञ्जा और वाणाग्र आदि सूक्ष्म वस्तु और धातु पत्थर आदि भारी वस्तु कौशल से फोकने की दक्षता दिखाने लगे। उन्होंने चरते हुए, लोहे के बने सुवर के सुख में मानों एक वाण की भांति पांच वाणों की जोड़कर एक ही काल में उनकी चलाया। उन महावीर ने रस्ती पर लटके हिलते हुए गी के सींग के कोप की इक्कीस बाण छोड़कर विज्र किया। हे अनघ! शास्त्र में पण्डित कुन्तीपुत्र इस प्रकार से धनुर्विद्या में असि चलाने में और गदा फेरने में नाना योग्यता दिखाने लगे। हे भारत! वह कृत्रिम भुव अन्त होने पर था और लोगों का कीलाहल और बाजों की ध्वनि घट गयी थी, कि ऐसे समय में द्वारदेश से उठती हुई शूरता और वीरतास्त्रक वज्र के गर्जन समाय ललकार सुनी गयी। हे नरनाथ! सब आखाड़े के लोग समझने लगे, कि है, यह क्या है! कदाचिन् पहाड़ों की पांति टूट रही है। वा धरती फटी जाती है! अथवा घने जल में बादल समूह आकाश में छा रहे हैं! दर्शकों सब ऐसे ही सन्देह से उस क्षण द्वार की ओर मुंह फेर के देखने लगे। तब पञ्च तारा के समान हस्त नक्षत्र युक्त चंद्रमा की भांति आचार्य द्रोण युधिष्ठिर आदि पांच भाईयों के बीच सुन्नत लगे। शत्रुनाशी दुर्योधन के उठ खड़े होने पर उनके उत्साही सौ भाई अश्रुत्यामा के बाव

उनको घेर कर खड़े हुए। पूर्वकालमें दान-
वोंको नष्ट करनेके लिये जिस प्रकार देवराज
देवोंसे घेरे गये थे, वैसेही उस कालमें केवल
गदाधारी दुर्योधन अस्त्र-शस्त्रोंसे सुशो-
भित भाईयोंसे घेरे जाकर शोभा पाने लगे।

सम्भवपर्वमें एकमौ छत्तीस अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर देखने-
वालोंके विस्मय और पसन्न नेत्रोंसे प्रवेशका
स्थान देनेपर शत्रुओंके नगरकी जय करनेवाली
कर्ण बड़े भारी अखाड़ेमें प्रविष्ट हुए। जो
सङ्गमें जन्मे हुए कवचकी पहिरे थे, जिनका
मुख स्वाभाविक कुण्डलोंसे सुशोभित था,
जिन्होंने बड़े प्रकाशयुक्त भास्वरके अंशसे
पृथ्वीके कन्याकालिक गर्भसे जन्म लिया था,
जिनका वीर्य और पराक्रम सिंह और गजेन्द्र
समान है; जिनकी प्रभा सूर्यके समान चन्द्र-
भाको भंति और तेज अग्नि सदृश है; जो सुव-
र्णके ताड़के समान लम्बे हैं, उस सूर्यकुमार
अति गुणवन्त सिंह सदृश शरीरधारी; विशाल-
नेत्र, शत्रुकुलनाशो युवा श्रीमान् महाभुज कर्णने
खड़्ग वाधकर धनुषवाण लेकर चलते हुए
पर्वतकी भांति अखाड़ेमें घुस करके चारों
ओर आखे दौड़ा कर आचार्य द्रोण और कृप-
को मानो अनादरसे प्रणाम किया। तब
अखाड़े भरके सब लोग यह जाननेके लिये,
कि यहकौन है, चुपहो और टकटकी लगाकर
अपसन्न और आश्चर्ययुक्त हुए। सूर्यपुत्र
सुन्दर बोलनेवाली कर्णने इन्द्रपुत्र अर्जुनकी
सगा भाई करके न जानकर बादल सदृश
गभीर शब्दसे उनसे कहा, कि हे पार्थ ! तुमने
जो कार्य किया है, मैं देखनेवालोंके सामने
उससे भी विशेष कार्य करूंगा, सो तुम अपने
कामको आश्चर्य करके मत जानना। हे
बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ जन ! सूर्यपुत्रकी इस
बातके पूरी होते न होतेही सब मानो यत्रसे

उठाये जाने की भांति उसी समय निज निज
स्थानमें जा बैठे। हे मानव श्रेष्ठ ! तब दुर्यो-
धनके हृदयमें प्रीति प्राप्त हुई और अर्जुनका
चित्त क्रोध और लज्जासे अधीर हुआ।
उसके अनन्तर पार्थने उस अखाड़ेमें जो जो
कर्म किया था, सदा युद्ध चाहनेवाली महाबली
कर्णने द्रोणकी आज्ञासे वह सब कर दिखाया।
हे भारत ! अनन्तर दुर्योधन भाईयों-
के साथ कर्णकी गले लगाकर बोले, कि हे
महाभुज ! आप भले आये हैं, हे मान देने-
वाले। मेरे सौभाग्यमें आप आये हैं; अब
मैं आपका अधीन हूं, आप इस कुरु-राज्यको
मनमाने भोगिये। कर्ण बोले, कि मुझे और
किसी बातकी आवश्यकता नहीं है, केवल
मित्रताका पार्थी हूं, और पार्थसे एकवार इन्द्र
युद्ध किया चाहता हूं। दुर्योधन बोले, कि
हे शत्रुनाश ! आप मेरे साथ नाना भोगकी
वस्तु रोगते रहिये और बन्धुओंके मङ्गलच्छक
होकर सम्पूर्ण शत्रुओंकी दबाइते।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर पार्थ
अपनेकी अपमानितसा जानकर भाइयोंमें
पर्वत समान खड़े होकर कर्णसे बोले, कि
कर्ण ! जो बिना बुलाये निकट आते है और
न बुलाये जाकर अहितकी इच्छा करते है,
उनकी जो गति होती है, मुझसे प्राणखोकर
तुम उसको प्राप्त करोगे। कर्ण बोले, कि
अर्जुन ! यह अखाड़ा सबके लिये समान है,
सो मेरे जानेसे तुम्हारी क्या हानि हुई ?
क्षत्रियजीग बलहोसे प्रधान होते है, सो क्षत्रि-
योंका धर्म बलहोकी शरण लेता है, हे भारत
दुर्बलकी चेष्टाकी नाई लाञ्छनकी क्या आवश्य-
कता है ? जब तक इन गुरुके सम्मुख चोखे
वाणसे तुम्हारा सिर नही काटता है, तबतक जो
कुछ कहना हो, वाणहीसे प्रगट करो।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, अनन्तर शत्रुनगरकी
जितनेवाली धनञ्जय द्रोणचार्यकी आज्ञा पाकर

और भाइयोंके गलेसे लगकर युद्धके लिये कर्णके सामने गये । इधर कर्ण दुर्योधन और उनसे भाइयोंसे मिलकर वाणसहित शरासन लेकरके युद्धके लिये खड़े रहे । इसमें इन्द्र धनुसे सोहते हुए, बिजली तथा गर्जनसे भरे और वगुलोंसे मानी हंसते हुए वादलदलसे आकाशमण्डल ढंप गया । अनन्तर इन्द्रको निजपुत्र अर्जुनपर स्नेहवश अखाड़ेकी और ताकते देख कर सूर्यने अपने पुत्र कर्णके निकटके जलधरनेवाले बादलोंकी नष्ट किया । तब अर्जुन मेघकी छांहसे ढंपे और कर्ण सूर्यके किरणसे घिरे दीख पड़ने लगे । जिधर कर्ण थे, उधर धृतराष्ट्रके पुत्र और जिधर अर्जुन थे, उधर द्रोण, कृप और भीष्म खड़े रहे । अखाड़ा दो भागोंमें बंट गया और स्त्रियांभी दोदल हो गयीं । कुन्ती-भोजकन्या अपने पुत्र कर्ण और अर्जुनका युद्धमें प्रवृत्त होना जानकर मंहते विवश हुई । सर्व धर्मज्ञ विदुरने दासियोंको सहयतासे चन्दनके जलसे उत मूर्च्छित हुई, कुन्तीकी चेतनयुक्त किया । कुन्ती चेत पाकर युद्धके लिये सजे हुए दोनों पुत्रोंकी देखकर भयभीत बनी रही, कुछ कर नहीं सकी । अनन्तर सर्व धर्म जाननेवाले, विशेष इन्द्रयुद्धकी रीतिकी भले प्रकार जानते हुए शरासन उठाते देखकर कर्णसे बोले, कि यह अर्जुन कुरुवंशी राजा पाण्डुके पुत्र है, कुन्तीके तीसरे गर्भसे जन्म लिया है, यह तुमसे इन्द्रयुद्ध करेंगे हे महाभुज ! तुमभी जिस राज-वंशके अलङ्कार बने हो, उस कुलका वृत्तान्त और पिता माताके नाम कहो, उसके जान लेनेसे पार्थ यह निश्चय करेगी, कि तुमसे लड़ेंगे वा नहीं, क्योंकि राज-हमारगण इन्हीं कुलसे जन्म लिये हुए, सदाचार वर्जित जनमि इन्द्रयुद्ध नहीं करते ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि आचार्य कृपके इस प्रकार कहनेपर कर्णका मुह लज्जासे नीचा

होकर वर्षाजलसे घीये हुए पद्मकी नाई मलिन हो गया । तब दुर्योधन बोले, कि हे आचार्य ! शास्त्रमें यह निश्चय है, कि राजकुलमें जन्म लिये हुए, शूर और सेनापति यह तीन भूपाल हो सकते हैं, सो यदि अर्जुन भूपालके विना किसी अन्यसे न लड़ना चाहें, तो मैं अभी इन कर्णको अङ्गराज्यमें अभिषिक्त करे देता हूं ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर महाबलवन्त महारथी श्रीमान् कर्ण उसोक्षण सुगन्ध पोढ़ेपर स्थित होकर मन्त्रज्ञ ब्राह्मणोंके हारालाज, फूल और सुवर्ण-घटसे अङ्गराज्यमें अभिषिक्त हुए । महाराज ! अनन्तर कर्ण जयके शब्दके साथ अच्छे कव और चवरयुक्त होकर कुरु-नन्दन दुर्योधनसे बोले, कि हे राजाओंमें व्याघ्र समान महाराज ! आपने जो सुभकी राज्य दिया, कहिये, मैं आपको इसके योग क्या दूँ ! आप जैसा कहेंगे, मैं वैसाही करनेकी सममत हूं । सुयोधन बोले, कि मैं आपसे अच्छी मित्रताकी प्रार्थना करता हूँ, ऐसा कहे जाकर कर्णने प्रतिज्ञाके साथ उसको मान लिया और दोनों हर्षसे एक दूसरेकी गले लगाकर बड़े प्रसन्न हुए ।

सम्भवपर्वमें एकसौ सैंतीस अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर कांपता, पसीनेसे न्हाया, बूढ़ा अधिरथ लाठी धामकर लटकते हुए चादरसे कर्णको बुलाता हुआ अखाड़ेमें आन पड़चा, कर्णने उसकी देखतेही पिटगौरव वश धनुषबाणकी छोड़कर अभिषेकके जलसे भिगे हुए सिरसे प्रणाम किया । रथके सारथि अधिरथने सम्मानके साथ वस्त्रके अन्त भागसे अपने पावोंको ढंपकर राज्य पानेसे सफल मनोरथ कर्णको पुत्र कहके सम्मान प्रण किया और स्नेहसे चित्त गलजानेसे गले लगा करके अङ्गराज्यमें अभिषिक्त कर्ण

भीगे सिरको आनन्दके आंसूसे फिर भिंगीया । भीमसेन उसको देख करके कर्णको सूतका पुत्र जानकर मानो हंसीसे बोले ; कि हे सूतपुत्र ! तुम रणभूमिमें अर्जुनसे मारे जानेके योग्य नहीं हो ; तुम शीघ्र घोड़ा चलानेके निमित्त अपने कुलके योग्य पैनेको थामो । रे नराधम ! कुत्ता जैसे यज्ञीय अग्निके सामने स्थित घृत पीनेके योग्य नहीं है । वैसेही तूभी अङ्गराज्यकी भोगनेके योग्य नहीं है । भीमकी इस बातसे कर्णके होठ कांपने लगे । उन्होंने ऊंची सास लेकर आकाशमें स्थित दिननाथ पर आंख फेरी । अनन्तर महाबली दुर्योधन क्राधित होकर मदसे उन्मत्त हस्तीके समान भ्रातृवर्ग-रूपी पद्मवनसे उसीक्षण कूद उठे और निकट ठहरे हुए, भीमकर्ण करनेवाले, भीमसेनसे बोले, कि, वृकोदर ! तुमको ऐसा कहना न चाहिये था ; क्षत्रियोंका बलही श्रेष्ठ है, क्षत्रियके निन्दित होनेपरभी उससे लड़ना चाहिये । ऐसा कहा है, कि नदी और बीरोंकी उत्पत्तिका वृत्तान्त जानने योग्य नहीं है । देखो अग्निने जलसे उठकर इस चराचर भुवनको केंद्र लिया है और जिस वज्रसे दानव-वश नष्ट हुआ है, वह वज्र सुनिवर दधोचिकी हड्डीसे बना है ; जो भगवान् देवकार्तिक है, उनकी उत्पत्तिभी जानने योग्य नहीं है, क्योंकि वह अग्निके पुत्र, कृतिकाके पुत्र, रुद्रके पुत्र और गङ्गाके पुत्र कहकेभी प्रसिद्ध होते हैं । फिर यह भी तुमने सुना होगा, कि जिन्होंने क्षत्रियोंसे जन्म लिया लिया था ; देवों ब्राह्मण हुए हैं । देखो, विश्वामित्र आदिने क्षत्रिय-कुलमें जन्म लेकर अनश्वर अमर्य ब्राह्मणका पद प्राप्त किया था । अस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ आचार्य द्रोण यज्ञके कलसेसे उत्पन्न हुए थे और आचार्य कृप ने गौतमके वंशमें शरकण्डेकी लकड़ीसे जन्म लिया था, औरोंकी कथा कहनेका क्या प्रयोजन है, तुम्हाराही

जन्म जिस प्रकारसे हुआ था, वहभी मैं जानता हूँ ; यह सम्भवही नहीं होता, कि कुण्डल कवच सहित जन्म लिये हुए सर्वलक्षणयुक्त स्थैवत् इस पुरुषव्याघ्रने मृगीसे जन्म लियाही ; विशेष इन कर्णके भुजबल और आज्ञानुसारी मेरे विद्यमान रहते इन नरेश्वरको केवल अग्राज्य हीका भोगना क्या है, बल्कि यह भूमण्डल भरके एकही अधिकारी होने योग्य है । पर यदि मेरा यह कार्य किसीको असह्य जान पड़ा हो, तो वह रथपर आरुढ़ होकर दोनों पावोंके सहारे शरासन नवावे । अनन्तर अखाड़े भरमें साधुवादयुक्त बड़ा कीलाहल उठने लगा, ऐसे समयमें दिननाथ अस्ताचलको सिधारे । अनन्तर भूपाल दुर्योधन कर्णके हाथ पकड़ दोपकके उजालेमें उस अखाड़ेसे निकले । पृथ्वीनाथ । पाण्डवगण और आचार्य द्रोण, कृप और भीष्मके साथ सब उस समय अपने अपने घरको चले गये । तब देखने वालोंमें कोई अर्जुनकी, कोई दुर्योधनकी बात कहता हुआ चला गया । कुन्ती दिव्य लक्षणयुक्त पुत्रको पहिचानकर और उसको अङ्गराज्यमें अभिषिक्त देखकर स्नेहके कारण गुप्त भावसे प्रसन्न हुई । हे पृथ्वीपते ! तब कर्णको पाकर दुर्योधनके हृदयसे अर्जुनका भय जाता रहा । शस्त्र-विद्यामें परिश्रमी वीर कर्ण मीठी मीठी बातोंसे सुयोधनकी प्रसन्न करने लगे और युधिष्ठिरकीभी सम्मत्त पड़ा, कि भूमण्डल भरमें कर्णके समान धनुषधारी कोई नहीं है ।

सम्भवपर्वमें एकसी अद्वितीय अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर आचार्य द्रोणने पाण्डवके तथा धृतराष्ट्रके पुत्रोंको अस्त्र-विद्यामें शिक्षित देखकर गुरु-दक्षिणाके काल आनेपर दक्षिणाके योग्य विषयका निश्चय किया । अनन्तर शिष्योंको लिवा लाकर

दक्षिणाके वह योग्य वस्तुकी आज्ञाकर बोले, कि तुम लड़ करके पाञ्चालराज द्रुपदकी पराजय पूर्वक पकड़ कर मेरे पास ले आओ। तुम्हारा मङ्गल देवे, ऐसा करनेहीसे तुम अच्छी दक्षिणा होगी। शिष्यगण सब वह मानकर गुरु दक्षिणाके लिये अस्त्र शस्त्र लेकर रथ पर चढ़के गुरु द्रोणके साथ वेगसे पधारे। वे नरश्रेष्ठगण सब पाञ्चाल देशमें मारते पीटते हुए चले, आगे बढ़े तेजस्वी द्रुपदके नगरकी विगाड़ने लगे। दुर्योधन, कर्ण महावली युयुत्सु, दुःशासन, विकर्ण जलसन्ध और दूसरे बड़े विक्रमी क्षत्रियोंमें श्री कृष्ण कुमारगण यह कहते हुए कि “मैं पहिले मैं पहिले” अच्छे रथ पर चढ़ करके घुड़चढ़ोंसे घेरे जाकर नगरमें घुसकर राजमार्गसे चलने लगे। हे राजन् ! उस समय पाञ्चाल देशके, राजा यज्ञसेन वह सब बात सुनकर आयी हुई बड़ी भारी सेना देख करके युद्धके लिये सजकर भाइयोंके साथ भवनसे शीघ्र निकले। कौरवगण रुव बढ़ा शब्द करते हुये वाण बर्षने लगे। तब दुर्योधन यज्ञसेन श्वेत रथ पर चढ़कर रणमें पाण्डवोंके निकट आकर बहुत अधिक वाण वर्षाने लगे। श्रीवशम्पायनजी बोले, कि अर्जुन कुमारोंकी अहंकारसे क्रुद्धते देखकर पहिलेही परामर्श कर विजयश्रेष्ठ आचार्य द्रोणसे बोले, कि इनके बल दिखा लेनेके पीछे हम साहस करेंगे, क्योंकि रणस्थलमें यह कदापि भूपाल पाञ्चालकी पकड़ नहीं पावेंगे। अनघ कुन्तीपुत्र यह कहकर भाइयोंके साथ नगरसे आधेकोस की दूरी पर जा रहे, इधर द्रुपद कौरवोंकी देखकर अगणित वाणोंसे कौरवी सेनाको मोहित करके चारों ओर दौड़ने लगे। कौरवनीग युद्धस्थलमें रथ पर चढ़े हुए लड़नेमें उद्यत अकेले द्रुपदकी शीघ्रताकी देखकर भयोंके सारे मानो उस एकहीकी अनेक समझने लगे। राजा द्रुपदके कटोर वाण चारों ओर

फिरने लगे। महाराज ! अनन्तर पाञ्चालोंके घरमें सहस्रों शङ्ख, मृदङ्ग तथा नगाड़े बजने लगे और उनके सिंह रुमान गर्जन तथा ध्वनियोंमें गुण चढ़ानेके घोर शब्द आकाशमें गुंजने लगे। उससे दुर्योधन विकर्ण, सुबाहु, दीर्घलोचन और दुःशासन यह क्रोधित होकर वाण बर्षाने लगे। हे भारत ! लड़ाईमें दुर्योधन बड़े चापधारी पृथपुत्र द्रुपद वाणोंसे बहुते विह्वल होकर उसीक्षण विपक्षी सेनाकी बड़ी कटोर पोड़ा पड़ाने लगे। वह अकेले रथके पहियेके समान घूमघूमकर दुर्योधन, विकर्ण, महावली कर्ण और नाना देशके वीर राजकुमारोंकी तथा अनेक सेनाओंकी वाणोंसे डारने लगे, किसीकी उसका स्वाद बिना दिये नहीं छोड़ा। अनन्तर नगरवालोंने बर्षने वाली बादलोंके समान मूषल और लाटियोंसे कौरवोंको घेर लिया। हे भारत ! तब पुरवासियोंमें वज्रोंसे लेकर बुद्धोंतक घेर युद्धकी बात सुनकर कौरवों पर दौड़; इससे कौरवगण भागकर चित्ता चित्ताके रीते हुए पाण्डवोंकी ओर चले। तब पाण्डवगण रींघे खड़े करनेवाली सुलाईके कोलाहलकी सुनकर आचार्य द्रोणके पंख कूकर रथपर चढ़े। अर्जुनने शीघ्रतासे युधिष्ठिरसे यह कह कर मनाकरके कि “आप न लड़िये” नकुल और सहदेवकी चक्रकी रखवारीमें नियुक्त किश और सदा सेनाके आगे चलनेवाली भीमसेन हाथमें गदा लेकर चले। कुन्तीपुत्र अनघ अर्जुन शत्रुओंका शब्द सुनकर रथोंकी आग से दशो दिशा भरते हुए, भाइयोंके साथ बड़े वेगसे रणभूमिमें आगये। जिस प्रकार मगर समुद्रमें प्रवेश करता है, वैसेही हाथमें दण्ड लिये यमराजके समान भीमसेन दहलते हुए समुद्रकी भांति शब्द करती हुई पाञ्चाल सेनामें प्रविष्ट हुए। अतुल भुजवीर्य युक्त रणमें पण्डित पृथापुत्र भीम स्वयं गजप

चढ़ी हुई सेनाको और दौड़ कर और काल-
रूपी होकर गदाघातसे उसको नष्ट करने
लगे। उन सब महीधर समान हस्तियोंके
सिर भीमसेनकी गदाकी चोटसे टूट जानेपर
वेरक्तकी धार बहति हुई, वज्रकी चोट लगे
हुए, पर्वतकी भांति धरतीपर गिरने लगे।
अर्जुनके बड़े भाई हक्रोदरने अगणित गज,
घोड़े और रथ धरतीपर गिराये और असंख्य
रथी और पैदलोंको यमराजके घर भेजने लगे।
वनमें गौग्रोंके रखवारे जिस प्रकार लकड़ीसे
पशुदलको खदेड़ते हैं, वैसेही भीमसेन गज
और रथियोंको गदासे भगाने लगे।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि तब पाण्डुपुत्र
फाल्गुनने आचार्य द्रोणके प्रिय काथ्य कर-
नेमें उद्यत होकर वाणोंके द्वारा हस्तीपरसे
पाञ्चालराजको गिराया। हे राजन्। वह
प्रलयकालके अग्निके समान जलकर चारों
और घोंड़े, रथ और गजोंकी रणशय्यापर
सुजाने लगे। अनन्तर मरते जाते हुए, शृङ्गय
और पाञ्चाललोग सुखसे सिंहसमान गर्जनकर
नाना वाणोंसे पार्थकी घेरकर कठोर युद्ध
करने लगे। तब देखनेमें वह घोर युद्ध बड़ा-
हो विकराल हुआ। इन्द्रनन्दन किरीटीसे
वह सिंह-गर्जन सहा नहीं गया, वह उसी-
चण घोर वाणोंसे रणभूमिकी चारों ओर
घेरकर पाञ्चालोंको सोहित करके उनपर
दौड़े। यशस्वी कुन्तीपुत्र इतने शीघ्र वाण
जोड़ने और चलाने लगे, कि उनका टुकभो
अवसर देख नहीं पड़ा। चारों ओर साधु-
वादसहित सिंह-गर्जन होने लगा। सखर-
असर जिस प्रकार महेन्द्रपर दौड़ा था, वैसेही
पाञ्चालराज तब सत्यजितके साथ शीघ्रताकरके
अर्जुन पर दौड़े। अर्जुनने बड़े बड़े वाणों-
की वर्षा कर पाञ्चालराजको ढंप लिया। इससे
उस समय पाञ्चालोंमें ऐसी हलहलावट
उठने लगी, कि जैसी बड़े सिंहके गजदलपति

के पकड़नेको चाहनेसे उठती है। तब सत्य-
जितमी सत्यजित अर्जुनकी आति देखकर
पाञ्चालराजकी रक्षाके लिये अर्जुनपर दौड़े।
इन्द्र और विरोचनके पुत्रके समान पदार्थ
एकत्र भये। अर्जुन और सत्यजित दोनों एक
दूसरेकी सीमामें हलचल मचाने लगे। आगे
अर्जुनने मर्दा भेद करने वाले बलपूर्वक कठिन
रूपसे सत्यजितकी विद्ध किया। वह लीला
मानो आश्चर्यसे जान पड़ी। अनन्तर सत्य-
जितने उसीक्षण धनञ्जयकी पीड़ा पङ्चाई।
बड़े वेगवात् अहारथी धनञ्जयने वाण दृष्टिसे
ढंपे जाकर धन्वाके गुणकी मल कर फिर
तेजकी बढा लिया। आगे वाणोंसे सत्यजित
का शरासन काटकर टुपदकी ओर चले।
अनन्तर सत्यजितने शीघ्रतासे अधिक वेगवात्
दूसरे एक शरासनको लेकर घोंड़े, रथ और
सारथिके साथ पार्थकी विद्ध किया। पार्थने
रण-स्थलमें उससे पीड़ा पाकर उसकी क्षमा
नहीं की। वरन उसकी नष्ट करनेके लिये
वेगसे घोंड़े, भण्डे धन्वा, सुठ्ठी तथा पीठके
रखवारे और सारथि पर कुछ वाण चलाये।
अर्जुनसे एस प्रकार बार बार उनके धन्वा
काटे और घोंड़े जोतसे निकाले जाने पर उन्होंने
ने लड़ाईमें पीठ दिखाई। पाञ्चालराज सत्य-
जितको लड़ाईमें हार खाते देखकर अर्जुनपर
बड़े वेगसे वाण वर्षाने लगे। जययुक्त अर्जुन
नभी तब घोर युद्धमें प्रवृत्त हुए। उन्होंने
उनके भण्डे और धनुषको काटकर धरती पर
गिराया और पांच वाणोंसे उनके सारथी और
घोंड़ोंकी विद्ध किया। अनन्तर कुन्ती-नन्दन
धनुषवाण छोड़कर खड्ग लेकर सिंह समान
गर्जन करने लगे और एकायक कूदकर
पाञ्चाल-राजके रथको भण्डीपर जा गिरे।
धनञ्जयने ऐसे निर्भय होकर टुपदकी रथपर
चढ़कर पकड़ लिया, कि जैसे लोग समुद्रमें हल-
चल मचाकर हस्तोंकी पकड़ लेते हैं।

देखकर सब पाञ्चाल दशों ओर भागने लगे
तब धनञ्जय सम्पूर्ण सेनाओं में अपना भुज
प्रगट करके सिंहगर्जनकर वहां से लौट चला
कुमारलोग अर्जुनको लौटते देखकर सब एव
होकर उस समय महात्मा द्रुपदका नर
विगाड़ने लगे। आगे अर्जुन बोले, कि
भीम ! राजश्रेष्ठ द्रुपद कुस्वीरों के सम्बन्ध
है, सो उनकी सेनाओं मत मारो, केवल गुस्-
दक्षिणाही दीजावे।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे राजा !
महाजली भीमसेन तब अर्जुनसे रोकें जाकर
युद्ध में भले प्रकार दण्ड न देने पर भी निवृत्त
हुए। हे भरतश्रेष्ठ ! तुम्हारे लोगों ने रण-
भूमि से यज्ञसेन द्रुपदकी मन्त्री के साथ पकड़
ली जाकर आचार्य द्रोणको भेंट किया। द्रोण
उस प्रकार वश में आये अहङ्कार छोड़े और
धन खींचे द्रुपदकी देखकर पहिलेकी शत्रु-
ताको स्मरण कर बोले, कि मैने बलसे तुम्हारे
राज्यको विगाड़कर पुरीको साथ लाया है, क्या
अपने जीवनको पाकर, जो अब इस विप्रके
वश में आ गया है, पहिली मित्रताको चाहते हो ?
यह कहकरके हतकर फिर वह मनही
मन में निश्चय कर उनसे बोले, कि हे
वीर ! तुम प्राणका भय
हम ब्राह्मण हैं, सो हमारा
क्षत्रियों में चेष्टन ! बलिपन

कूदनेहीके हेतु तुम पर
प्रेम बढ़ा था, सो हे जना
मित्रता चाहता हूं।

वर देता हूं, कि तुम इस
पावोगे। हे यज्ञसेन
कोई राजाका मित्र न
लिये मैं तुमको
प्रयत्न कर रहा हूँ,
रदीके दक्षिण
उत्तर किनारे

पु
अ
रा
पु
सों
स

बने रहे । फाल्गुन स्तुरा, नाराच, भाला विपाट आदि सोधे तथा टेढ़े बड़े बड़े अस्त्रोंको चलानेमें और बड़ी दृढ़ता तथा शीघ्रतासे लक्ष्यको विड करानेमें अच्छे समर्थ हुए । द्रोणाचार्यने निश्चय किया था, कि शीघ्रता तथा सुनियमके विषयमें विभत्सुके समान जगतमें कोई दूसरा नहीं है । यह समझकर द्रोण कौरवोंकी सभामें गुडाकेश अर्जुनसे कहने लगे, कि हे भारत ! पूर्वकालमें अग्निवेश नामसे प्रसिद्ध मुनि अगस्त्यके शिष्य धनुर्वेदमें मेरे गुरु थे ; मैंने उन अग्निवेशके शिष्य होकर शिक्षा पायी थी । मैंने तपोबलसे उन गुरुसे जो वज्रसमान ब्रह्मशिर नामक अमोघ अस्त्र पाया था, जो कि सम्पूर्ण पृथ्वीको जला सकता है, उस अस्त्रको किसी दूसरेके हाथमें सौंपकर उसके विरह न होनेके विषयमें प्रयत्न किया है । गुरुने जब मुझको वह अस्त्र दिया था, तब कहा था, कि “हे भारद्वाज ! तुम स्वल्प वीर्यवाले जन पर यह अस्त्र मत मारना ।” हे वीर ! पीछे तुमने मुझसे वह दिव्य अस्त्र पाया है, कोई दूसरा इसके पानेको योग्य नहीं है, पर हे पृथ्वीनारथ ! मुनिने जो नियम बना दिया था उनको मत लांघना, हालमें अपने स्वर्जनोंके सामने मुझको गुरुदक्षिणा दो । उसके अनन्तर उनके वाञ्छित दानकी देनेमें अर्जुनके सन्मत होने पर गुरुजी बोले, कि हे अनघ ! रणस्थलमें मेरे तुमसे लड़नेकी प्रवृत्त होनेसे तुम मेरे विरुद्ध लड़ना । कुरुक्षेत्र अर्जुन “तथास्तु” कहके वह बात मानकर उनकी पावों पर प्रणाम कर योग्य उपदेशको प्राप्त हुए । समुद्र-तक सम्पूर्ण धरतीमें आपही आप वह बात उड़ी, कि इस लोकमें अर्जुनके समान चापधारी कोई वीर नहीं है, चाहे गदायुद्ध वा असियुद्ध कहिये, चाहे रथयुद्ध वा धनुषयुद्ध कहिये, हर बातमें धनञ्जय दत्त बने है । सहदेव देवाधिपति इन्द्ररूपी

आचार्य द्रोणसे सम्पूर्ण नीति शिक्षापाकर नीतिशील होकर भाइयोंके वशमें रहे । नकुल आचार्य द्रोणसे अच्छी शिक्षा पाकर चित्र-योधी और अतिरथ करके प्रख्यात और भाई-योके प्यारे बने रहे । अर्जुन आदि पाण्डव इतने पराक्रमी हुए, कि उन्होंने उन सौवीरकी जिन्हीने गन्धर्वोंसे विद्रोह मचाना तुच्छ जानकर तीन वर्ष यज्ञ किया था, कभी भयभीत नहीं हुए थे, रणशय्या पर सुलाया । वीर्यवन्त पाण्डु जिस यवनराजकी वशमें नहीं लासके थे, अर्जुनने उसकोभी परास्त किया तथा आज्ञाधीन बनाया । उस सौवीरराज वितुलकी जो अतिबली होकर कुरुओंसे सदा अहंकार करते थे, धीमान् अर्जुनने गिराया । दत्तामित्र नामक प्रसिद्ध सुमित्र सञ्जायुक्त सौवीर देशी दीरके लड़नेमें काटिवड हीने पर अर्जुनने बाणोंसे उसको रोका । अर्जुनने आप एक रथी होने परभी भीमके सहारेसे दश सहस्र रथोंके साथ पूर्व देशीय सब-राजाओं को परास्त किया और वैसेही रथ पर चढ़कर दक्षिण ओरको परास्त कर कुरुराज्यमें अनेक धन भेजा । मानवोंमें श्रेष्ठ महात्मा पाण्डवोंने पहिले इस प्रकार पराये-राज्योंको परास्त कर कर निज राज्यको बढ़ाया था । अतन्तर यह जानकर कि बड़े भारी योद्धा पाण्डवोंका बलवीर्य वृद्धत प्रसिद्ध होगया, उनपर एकायक धृतराष्ट्रका भाव बिगड़ गया, वह बड़े सोचके समुद्रमें डूबे, इससे उन्हें रात्रिको नोद नहीं आती थी ।

सम्भवपर्वमें एकसौ चालीस अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि यह सुनकर कि वीर्यवन्त पाण्डवलोंका बलसे बढ़ और बड़े तेजस्वी हुए हैं, महाराज धृतराष्ट्र दुःखी चित्तसे सोचने लगे । वह राजशास्त्रार्थमें पण्डित मन्त्रज्ञ मुनियोंमें एक कणिककी बुलाकर बोले, कि हे

श्रीको दिनों दिन

देखकर सब पाञ्चाल दशों ओर भागने लगे । तब धनञ्जय सम्पूर्ण सेनाओं में अपना भुजवल प्रगट करके सिंहशर्जनकर वहांसे लौट चले । कुमारलोग अर्जुनको लौटते देखकर सब एकत्र होकर उस समय महात्मा द्रुपदका नगर विगाड़ने लगे । आगे अर्जुन बोले, कि हे भीम ! राजश्रेष्ठ द्रुपद कुरुवीरों के सम्बन्धी है, सो उनकी सेना की मृत भारी, केवल गुस्-दक्षिणाही दीजावे ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे राजा ! महाबली भीमसेन तब अर्जुनसे रोकें जाकर युद्ध में भले प्रकार तप्त न होने पर भी निवृत्त हुए । हे भरतश्रेष्ठ ! कुमारलोगोंने रण-भूमिसे यज्ञसेन द्रुपदकी मन्त्रीके साथ पकड़ लियाकर आचार्य्य द्रोणको भेंट किया । द्रोण उस प्रकार वशमें आये अहङ्कार छोड़े और धन खोये द्रुपदकी देखकर पहिलेकी शत्रु-ताको स्मरणकर बोले, कि मैने बलसे तुम्हारे राज्यको विगाड़कर पुरीको मथ डाला है, क्या अपने जीवनको पाकर, जो अब इस विप्रके वशमें आ गया है, पहिली मित्रताको चाहते हो ? यह कहकारके हठकर फिर वह मनही मनमें निश्चय कर उनसे बोले, कि हे वीर ! तुम प्राणका भय मत करो, हम ब्राह्मण हैं, सो क्षमायुक्त हैं । हे क्षत्रियोंमें श्रेष्ठतम ! बलिपनमें सुभसे खेलने कूदनेहीके हेतु तुम पर मेरा रुद्ध और प्रेम बटा था, सो हे जनाधिप ! मैं फिर तुमसे मित्रता चाहता हूं । हे राजा ! तुमको वर देता हूँ, कि तुम इस राजका आधा भाग पाओगे । हे यज्ञसेन ! राजा न होनेसे कोई राजाका मित्र नहीं हो सकता है, इसी लिये मैं तुमको राज्य देनेके कारण ऐसा प्रयत्न कर रहा हूं । हे पाञ्चाल ! तुम भागी-दारी दक्षिण किनारेके राजा होगे और मैं उत्तर किनारेका राजा हूँगा, अब तुम चाहो

तो सुभको मित्रकरके मानो । द्रुपद बोले, कि हे ब्रह्मन् ! विक्रमी महात्मा पुरुषोंके लिये यह आश्चर्य्य नहीं है । मैं आपसे प्रार किया जाता हूं, और यह चाहता हूं, कि आपभी सुभसे सदा-स्थायी प्रीति लाभ कर सकें ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भारत ! द्रुपदके ऐसा कहनेपर द्रोणने उनकी वचनसे सुक्तकर प्रसन्नचित्तसे सत्कार करके राज्यका आधा भाग दिया । द्रुपद गङ्गातटके जन-पदोंके सहित माकन्ददेश और चर्मखती नदीतक दक्षिण पाञ्चालपर अधिकार पाकर सुन्दर काम्पिल्य नगरमें मलिन चित्तसे बसे लगे । अनन्तर द्रोणकी शत्रुता उनसे सही नहीं गयी, उन्होंने क्षत्रियबलसे द्रोणका परास करना असम्भव जाना, सो ब्राह्मणके बलसे अपनेको हीन जानकर पुत्र उत्पत्तिकी इच्छासे पृथ्वीके चारों ओर घूमने लगे । इधर द्रोणकी अहिच्छत्र नामक राज्य मिल गया । हे राजा ! धनञ्जयने जनपद समेत अहिच्छत्रा-पुरीको लड़ाईमें जीतकर आचार्य्य द्रोणकी सौंप दिया था । सम्भवपर्वमें एकसौ उनचालीस अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे पृथ्वीनाभ ! अनन्तर वर्षभर व्यतीत होनेपर धृतराष्ट्र धीरता, स्थिरता, सहनशीलता, अनिर्दयाता नौकरों पर दया, और स्थिर मित्रता गुणसे सुहावने पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरकी युवराजके पदपर बैठाया । कुन्ती कुमारने शीलता, व्रत और प्रजा समाधानसे पिताकी सुन्दर कीर्ति-सेही अपमा नाम बढ़ाया । पाण्डुनन्दनकी दरकी वनदेवजोसे सदा असि, गदा, रथके युद्धके विषयमें अच्छी शिक्षा मिलती थी । युमतसेनके समान बली भीमसेन भली भाँति शिक्षित होकर पराक्रमी भाद्योंके परम मित्र

बने रहे । फाल्गुन स्तुरा, नाराच, भाला विपाट आदि सोधे तथा टटे बड़े बड़े अस्त्रोंके चलानेमें और बड़ी दृढ़ता तथा शीघ्रतासे लक्ष्यकी विड करनेमें अच्छे समर्थ हुए । द्रोणाचार्यने निश्चय किया था, कि शीघ्रता तथा सुनियमके विषयमें विभत्सुके समान जगतमें कोई दूसरा नहीं है । यह समझकर द्रोण कौरवोंकी सभामें गुडाकेश अर्जुनसे कहने लगे, कि हे भारत ! पूर्वकालमें अग्निवेश नामसे प्रसिद्ध मुनि अगस्त्यके शिष्य धनुर्वेदमें मेरे गुरु थे, मैंने उन अग्निवेशके शिष्य होकर शिक्षा पायी थी । मैंने तपोबलसे उन गुरुसे जो वज्रसमान ब्रह्मशिर नामक असौघ अस्त्र पाया था, जो कि सम्पूर्ण पृथ्वीको जला सकता है, उस अस्त्रकी किसी दूसरेके हाथमें सौंपकर उसके विरह न होनेके विषयमें प्रयत्न किया है । गुरुने जब मुझको वह अस्त्र दिया था, तब कहा था, कि “हे भारद्वाज ! तुम स्वल्प वीर्यवाले जन पर यह अस्त्र मत मारना ।” हे वीर ! पीछे तुमने मुझसे वह दिव्य अस्त्र पाया है, कोई दूसरा इसके पानेकी योग्य नहीं है, पर हे पृथ्वीनाथ ! मुनिने जो नियम बना दिया था उनको मत लाघना, हाथमें अपने स्वर्जनोंके सामने मुझको गुरुदक्षिणा दो । उसके अनन्तर उनके वाञ्छित दानकी देनेमें अर्जुनके सन्मत होने पर गुरुजी बोले, कि हे अनघ ! रणस्थलमें मेरे तुमसे लड़नेकी प्रवृत्त होनेसे तुम मेरे विरुद्ध लड़ना ! कुरुश्रेष्ठ अर्जुन “तथास्तु” कहके वह बात मानकर उनके पावों पर प्रणाम कर योग्य उपदेशको प्राप्त हुए । समुद्रतक सम्पूर्ण धरतीमें आपही आप वह बात उड़ी, कि इस लोकमें अर्जुनके समान चापधारी कोई वीर नहीं है, चाहे गदायुद्ध वा असियुद्ध कहिये, चाहे रथयुद्ध वा धनुषयुद्ध कहिये, हर बातमें धनञ्जय दक्ष बने है । सहदेव देशधिपति इन्द्रस्तुषी

आचार्य द्रोणसे सम्पूर्ण नीति शिक्षापाकर नीतिशील होकर भाद्योंके वशमें रहे । नकुल आचार्य द्रोणसे अच्छी शिक्षा पाकर चित्रयोधी और अतिरथ करके प्रख्यात और भाईयोके प्यारे बने रहे । अर्जुन आदि पाण्डव इतने पराक्रमी हुए कि उन्होंने उन सौवीरकी जिन्हीने गन्धर्वोंसे विद्रोह भचाना तुच्छ जानकर तीन वर्ष यज्ञ किया था, कभी भयभीत नहीं हुए थे, रणशय्या पर सुलाया । वीर्यवन्त पाण्डु जिस यवनराजकी वशमें नहीं लासके थे, अर्जुनने उसकीभी परास्त किया तथा आज्ञाधीन बनाया । उस सौवीर राजवितुलकी जो अतिबली होकर कुरुओंसे सदा अहंकार करते थे, धीमान् अर्जुनने गिराया । दत्तामित्र नामक प्रसिद्ध सुमित्र सञ्जायुक्त सौवीर देशी दीरके लड़नेमें काटवड होने पर अर्जुनने वाणोंसे उसकी रोका । अर्जुनने आप एक रथी होने परभी भीमके सहारेसे दश सहस्र रथोंके साथ पूर्व देशीय सब राजाओं की परास्त किया और वैसेही रथ पर चढ़कर दक्षिण ओरकी परास्त कर कुरुराज्यमें अनेक धन भेजा । मानवोंमें श्रेष्ठ महात्मा पाण्डवोंने पहिले इस प्रकार पराये राज्योंकी परास्त कर कर निज राज्यकी बढाया था । अतन्तर यह जानकर कि बड़े भारी योद्धा पाण्डवोंका बलवीर्य बृद्धत प्रसिद्ध होगया, उनपर एकायक धृतराष्ट्रका भाव बिगड़ गया, वह बड़े सीचके समुद्रमें डूबे, इससे उन्हें रात्रिकी नोद नहीं आतीथी । सश्वपर्वमें एकसौ चालीस अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोलें, कि यह सुनकर कि वीर्यवन्त पाण्डवोंका वज्रसे बड़ और बड़े तेजस्वी हुए हैं, महाराज धृतराष्ट्र दुखी चित्तसे सीचने लगे । वह राजशास्त्रार्थमें पण्डित मन्त्रज्ञ मुनियोसे श्रेष्ठ कणिककी बुलवाकर बोले, कि हे भिराज ! पाण्डवोंकी दिना दिन

बढ़ते देखकर उन पर सुभे द्वेष हो रहा है, सो हे कणिक । उनसे सन्धि वा युद्धके बिना जो कुछ और उचित हो, सो निश्चय करके कही, मैं उसके अनुसार काम करूंगा । श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि विजित्तम कणिक धृतराष्ट्रसे इस प्रकार पूछे जाकर प्रसन्न चित्तसे राजशास्त्रके प्रमाण सहित तेजभरी बातोंमें कहने लगे, कि महाराज । मैं जो कहता हूँ, सुनिये । हे अनघ कुरुश्रेष्ठ । यह सुनकर सुभपर क्रोध न करना । राजाओंकी सदा दण्ड देनेमें उद्यत होकर अपनी बड़ाई फैलाना और स्वयं दोषवर्जित होकर पराये दोषोंको दूढ़कर उसके पीछे रहना चाहिये । राजाके सदा दण्ड देनेमें उद्यत रहनेसे लोग उससे वज्रत डरते हैं, सो सब काम दण्डहीसे पूराकर लेना । राजा शत्रुकी चूक देखकर उसके पीछे चले, पर शत्रुगण उनकी चूक न देखने पावें । कंकुआ जिस प्रकार अपना अङ्ग छुपा लेता है, वैसेही राजा सहायता, साधना और और उपाय आदिसे अपने अङ्गोंको छिपा रखे और ऐसा यत्न करना चाहिये जिसे शत्रुलोग उनकी चूकके पीछे चलने न पावें । कोई काम आरम्भकर उसकी कुछ अंश छोड़ कर पूरा कर लेना कभी उचित नहीं है । देखिये, पूरा न काट डालनेसे काटेसेभी सदा चीट लग सकती है ; हानि करनेहारे शत्रुओंको वध करनाही वज्रत प्रशंसायोग्य है ; यदि वह शत्रु बड़ा विक्रमो और योद्धा हो, तो उसकी विपतके समय आनेसे उस पर चढ़कर नष्ट कर डालना, वा ऐसा करना, कि भागजावे, इस विषयमें भला घुरा न विचारना । ऐ वैश । शत्रुके दुर्बल होनेसेभी उसकी कभी कस न समझना चाहिये ; देखिये, योद्धाभी आग धीरे धीरे आभरा पाकर पूरे वनको जला सकती है । कभी राजाको अन्धे और बहिरके वनना चाहिये, शत्रुओंके दोषको देख

करके न देखना और सुनकरकेभी न सुनना चाहिये । - तब अपने शरासनकी तिनकेसे बना हुआ समझना ; पर वनमें सीते झर, स्रग्मूहके समान सदा सावधान रहना । आते शत्रुको अपनी हथेलीके भीतर समझकर साम, दान आदि उपायोंसे मरवा डालना । शरण लो है, समझके उस पर दया दिखानी नहीं चाहिये । स्वाभाविक शत्रुकी दान दे करके वशमें लाकरभी मारना, शत्रुके नष्ट होनेसेही चिन्ता जाती रहती है, क्योंकि मरे हुए जनसे किसी प्रकार भयकी सम्भावना नहीं रहती । यदि कोई पेंहिले हानिकारी रहकर पीछे मिलता दिखावे, तो उसकीभी मारना । शत्रुओंके दुर्ग आदिपर चढ़कर ऐश्वर्यकी भेदिया लगाके मन्त्रोंकी और बलसे उत्साहको इन तीनोंको नष्ट करना और रुहाय, साधन उपाय, दिश और कालका विभाग तथा विपत्तिका प्रतिकार इन पांच अङ्गयुक्त नये अर्थों नियमोंका और भेद, दण्ड, साम, दान, मर्मा, ऐन्द्रजालिक कार्य और विपक्षियोंके किये हुए उन विषयोंकी तुच्छ समझना, इस सात प्रकारके राज्याङ्गकों सब प्रकारसे नष्ट कर डालना । पेंहिले काल और अकालका विचार न करके शत्रुकी जड़हीकी काट देना, आगे उसके सहाय और पक्षियोंकी नष्ट करना । अवलम्बस्वरूपी जड़के सम्पूर्ण उखड़ जानेसे, इसमें सन्देह नहीं है, कि उसके भरे सीमें भी रस्ते हुए, सब मरेगी, क्योंकि पेड़को जड़ कटनेसे उसकी शाखा कभी बनी नहीं रह सकती । राजा ! शत्रुसे निश्चित न रहकर छिप छिपके सदा उसके दोष दूढ़नेमें चित्तकी नियुक्तकर राज्य करना चाहिये । अन्धसे तपके, यज्ञकरके, वृद्धकी छाल पहिनकर और जटा अंजिन धरकेभी पेंहिले शत्रुओंमें विश्वास उपजाकर पीछे समय होने पर व्याकुल चढ़ जाना, क्योंकि कहा है, कि धन बटी

कुटिल हीना बद्धतही शत्रु-उपाय है। जिस प्रकार फलयुक्त शाखाकी हिलाकर पक्षे फल चुन लिये जाते हैं, वैसेही चुन चुन कर शत्रुओंकी नष्ट करना; शत्रुओंके नाशके लिये पण्डितलोग ऐसाही किया करते हैं। जबतक समय न आवे तबतक शत्रुको कन्धे पर चढाये रहना, आगे समय आनेपर पत्थर पर कलसेकी फोड़नेकी भांति नष्ट करना। हानि करने वाले शत्रुको अति कातर वाणी कहने परभी उसको मत छोड़ना, एकमरगी मार डालना, उसपर दया दिखानी कभी उचित नहीं है। शान्ति बनाये रखनेके लिये साम वा दान अथवा भेद वा दण्ड, चाहे जिस किसी उपायसे ही शत्रुको नष्ट करना।

धृतराष्ट्रने कहीं, कि सुभको समझाके कही, कि साम, दान, भेद अथवा दण्डसे क्योंकर शत्रु नष्ट किये जा सकते हैं। कणिक बोले, कि हे महाराज। पहिले वनमें नीति शास्त्र जानने वाला एक सियार रहता था, उसकी कथा कहता हूँ, सुनिये।

स्वार्थमें तेज बुद्धिवाला एक सियार बाघ, मूषा, चीता, और नेत्रल इन चार मित्रोंके साथ बसता था। उन सबोंने वनमें एक बकी मृग-दलपतिकी देखा और ऊपर चढ़नेमें असमर्थ होकर नाना परामर्श करने लगे। पहिले सियार बोला कि, ऐ बाघ। आपने इस मृगकी मारनेकी कई बार यत्न किया है, पर यह मृग-नाथ बड़ा वेगवान और बुद्धिमान है, सो आप सफल मनोरथ नहीं हो सके है, अंतरव मैं समझता हूँ कि, वह मृग जब सीता रहेगा, तब मूष जाकर उसके पांवोंको खालिगा, उसके पाव खाये जानेपर उस चलनेमें अशक्त मृगकी वाघजी पकड़ लेंगे, अनन्तर हम सब आनन्दसे उसकी खायेंगे। सियारकी यह बात सुनकर वे सब उनके अनुसार सावधान होकर काम करने लगे। पहिले मूषने मृगके पांव

खालिये, उसके पीछे बाघने उस मृगकी वध किया। तब सियारने उस मृगकी देहकी धरती पर लोटते देखकर सबोंसे कहा कि तुमलोगोंका मङ्गल हीवे, तुम नहा आओ, मैं मृगदेह की रक्षा करता हूँ। बाघादि सब सियारकी बातके अनुसार नहानेको नदीमें गये, सियार बड़े सोचसे वहां बैठा रहा। अनन्तर सबसे पहिले महाबली बाघ नहा कर वहां आया और देखा कि सियार बड़े सोचके साथ वहां बैठा है। बाघने तब उससे पूछा, कि ऐ बड़े बुद्धिमान। तुम हमसे सबोंसे अधिक बुद्धि रखतेही, फिर क्यों सोचमें हो, आओ हम अब अब मांस खाकर आनन्द लूटें। सियार बोला, कि ऐ महाभुज। आज मूषने जो बात कही है, वह सुनिये। "मूषने कहा है, कि आज मैंनेही इस मृगकी मारा है, सो बाघके बल पर धिक्कार है, कि यह मेरे भुजबलसे आज दप्त होगी। मूषके ललकारके ऐसा कहने पर इसे खानेकी मेरा मन नहीं चलता है।" बाघ बोला, कि मूषके ऐसी बात कहने पर अब सुभको चेतना आगयो, आजसे अपने हाथके बलसे वनैले जानवारोकी माहंगा, और वही मांस खाजंगा, यह कहकर वनमें चलो गया। ऐसे समयमें मूष वहां आ पड़ंचा। सियार-मूषको आया हुआ देखकर बोला, कि ऐ मूष। तुम्हारा भलाही सुनी। आज नेउरने यह कहा है, कि यह मृग बाघसे मारे जानेके कारण इसका मांस विषके समान पचानेके अयोग्य होगा, सो मैं इसे न खाजंगा, मेरी इस पर चाह दीड़तो ही नहीं है, सो आज्ञा करिये, कि मैं मूषको खाजाल। यह सुनकर मूष वेगपूर्वक वहांसे गड़हमे जा घुसा। हे नृप! अनन्तर चीता नहा कर वहां आपड़चा। तब सियार उनकी आया हुआ देखकर बोला, कि आज बाघ तुम पर अप्रसन्न हुआ है, उससे यह समझ नहीं

पड़ती, कि तुम्हें भलाई होगी; वह स्त्रीके साथ यह आरहा है। मांस भदक चीता सियारकी यह बात सुन करकेही अपनी जातिके स्वभावके अनुसार देहकी सिकोड़कर भागा। हे महाराज। उसके पीछे नेउरके वहां आने पर सियार उससे बोला, कि मैंने अपने हाथोंके बलसे बाघ, हक आदिको परास्त किया है, वे और जगहकी भाग गये हैं, अब तुम सुभसे लड़कर मनमाना मांस खाओ। नेउल बोला, कि जब बाघ हक, और बुद्धिमान मूष यह सब वीर तुमसे हार कर भाग गये, तब तुम बड़े वीर हो, तो तुमसे लड़नेका सुभमें साहस नहीं है। यह कहकर नेउल भागा। इस प्रकार बाघादि सबोंके वहासे चले जाने पर सियारने अपनी युक्ति पूरी होनेपर प्रसन्नचित्त होके अकेले मांस खाया। भूपाल लोग सदा ऐसा व्यवहार करनेसे सुखीही सकते हैं। इस प्रकार भीत जनकी डराकर वीरसे हाथ जोड़कर लोभीकी धन देकर, बराबर और हीनकी तेजी दिखाकर वशमें लाना। महाराज! यह सब आपने कह चुके औरभी कुछ कहता हूँ, सुनिये।

पुत्र, मित्र, भाई, पिता, वा गुह्य यदि शत्रुता करे, तो हित चाहनेवालीको उन्हेंभी नष्ट करना उचित है। शपथ करके वा धन दानसे अथवा विष देकर मायाका जाल फैला कर शत्रुके नष्ट करनेमें कभी मत चूकना। दो विषची आपसमें सहाय साधनोपाय आदिके हेतु शङ्का-युक्त होनेसे, जो जन अज्ञा सहित सुभसे कही हुई नीतिके अनुसार काम करेगा उसीका सौभाग्य बढ़ेगा। यदि बड़ा और मान्य-पुरुषभी कर्तव्य और अकर्तव्यको न जानता हो, हे समर्गगामी और अहङ्कारी हो तो उसेभी दण्ड देना उचित है। क्रोध होनेसेभी क्रोध न होना ऐसा चेहरा देखा करके हँसकर बातें कर क्रोधित होने परभी कभी लाज्जन

मत करना। मारनेके पहिले और मारनेके कालमेंभी सीठी बातें कहना, मारकर अन्तमें कृपा दिखाने शोक प्रगट करना और रोभी देना। शत्रुको बद्धकाल, सान्त्वना वात्सल्य, दान और सरलतासे ढाड़स दिये, इस परभी यदि वह न्यायके मार्गसे विरुद्ध चले तो उसको मारना। किसीके बड़ा अपराध करने परभी वह धर्मका आग्रह ले, तो काले वादलसे ढंपे हुए पर्वतके सदृश उसका वह दीप छिप जाता है। जो राजाके दण्डसे मारा जावे, उसका घर जला देना और जो मनुष्य बुरी रीतिसे धन जैन करते हैं, उनको और नास्तिक तथा चोरीको राज्यमें न बसने देना। शत्रुभी प्रत्युत्थान, आसन आदि युद्धके अङ्ग अथवा विषादि दान चाहें जिस किसी उपायसे ही बड़े निष्ठुर और दुश्मनेवाला बनकर मरवा लाना अर्थात् ऐसी मार मारना, कि वह फिर न उठ सके और उस-बधके विषयमें सन्देह न रहें। शङ्का देने योग्य हो वा न हो सब जगसे डरते रहना, क्योंकि किसीसे निर्भय बने रहनेसे पीछे उससे भय आजावे, तो जड़से उखड़नेका बड़ी सम्भावना होती है। अविश्वासी जनका विश्वात मत करना, और विश्वासी होनेवाले भी उसपर पूरा विश्वात करना उचित नहीं, क्योंकि विश्वासीजन से भय आजानेसे जड़में नष्ट होना पड़ता है। दूतलोगोंका भली भाँति परीक्षा करके फिर राज्य और पराये राज्य में नियुक्त रखना। पराये राज्यमें पाषण्डी तपस्वी आदिको भरतो करना। फुलवाड़ी, घूमनेका स्थान, देवमन्दिर, पानधर, पथ, मार्ग स्थान, कूप, पर्वत, वन, नदी और सब प्रकारके मनुष्य वटोरनेका स्थान, इन स्थानोंमें, और मन्त्री, पुरोहित, युवराज, भूपाल, द्वारपाल, शिबक, कारागार रखवाए, चीज वस्तु वटोरने वाले भले बुरे कामोंके ठहरानेवाले, नगरके सामी

काम बनानेहारे, धर्मस्वामी, सभापति, दण्ड-
पाल, दुर्गपाल, अस्त्रपाल, राज्यके लोचरक्षक,
और सेनापति, इन अठारहको पास गुप्त दूत
नियुक्त कर भले बुरे कामकी देखना। सदा
बातोंमें नम्र और हृदयमें कुरा रखना और
अति कठोर काम करनेमें प्रवृत्त होकरकेभी
हंसते हुए सम्भाषण करना। जो ऐश्वर्य
चाहेंगे उनको हाथ जोड़ना, शपथ करना,
खुसामद, पैरों पड़ना, आशा देना इन कामों-
का करना उचित है। नीतियुक्तजनरूपी
पौधेका आशा दानादिलपी सुन्दर फूलयुक्त
पर बिलकुल फलसे खाली होना चाहिये।
फलयुक्त जान पड़नेसेभी चढनेके अयोग्य होना
चाहिये, पक्षे समान होनेपरभी बिन पक्षेकी
नाई जान पड़ना चाहिये, ऐसा होनेसे कभी
वह टूटिगा नहीं। धर्म, अर्थ और काम यह
तीन वर्ग तीन प्रकारकी पीड़ा और तीन प्रका-
रके फल है, तिनमें फलोंको शुभ जानना और
पीड़ाओंको त्याग देना। देखिये धर्म करनेमें
बड़े अभिलाषीजन अर्थ और कामको पीड़ासे
वज्रत सताये जाते हैं, अर्थमें बड़े आसक्तजन
धर्म और कामको पीड़ासे पीसे जाते हैं और
काममें वज्रत लगे जनकोभी धर्म और अर्थको
पीड़ा सताती रहती है, सो ऐसे धर्मार्थ काम
करना, कि पीड़ादायी न हों। अहङ्कारसे
खाली, नियमयुक्त, शान्तिपूर्ण, द्वेषवर्जित,
कार्य देनेहारे और शङ्काका हाकर ब्राह्मणोंके
साथ परामर्श करना। जब आप बुरी दशमें
आजावे सहज वा कठिन चाहे जिस किसी
उपायसे हो अपनेको बचाना, आगे समर्थ
होनेपर धर्माचरण करना। मनुष्य बिना
शस्त्रमें पड़े मङ्गल लाभ नहीं कर सकता है।
पर शङ्कायुक्त होकर जीता रहने तो बड़ा लोभा-
पवान हो सकता है, जिसकी बुद्धि शोकादिसे
धेरी जाती है, उसकी नलीपाख्यान आदि पुरानी
कहानी सुनकर और बुरी दुर्गतिवाले जनकी

समान आशा देकर, कि कुछ काल बीतनेपर
तुम्हारा मङ्गल हीगा और पण्डितको सन्तोष
देनेवाले वर्तमान कामसे समझाना। जो जन
शत्रुसे सन्धि करके सुफल मनीरथके समान
निश्चिन्त हो सो रहता है, वह ऐसे जनकी
नाई विपतमें पड़कर चेतता है, कि जो वृक्षपर
सीता हुआ नीचे गिर जाकर जग उटता है।
राजाकी अस्त्र्यासे रहित होकर सदा परामर्श
कुपानेका प्रयत्न करना और स्वयं चौकस
होकर विप्रक्षियोंके भेजे हुए छिपे दूतोंकी
आशङ्कासे सदा भय और क्रोध आदिको रोक
रहना चाहिये। मनुष्य जिसप्रकार हिंसा न
करके धन नहीं पा सकता है, वैसेही राजा
कठोर कर्म और शत्रुका मर्म बिना नाश
किये लोभग्रस्त नहीं हो सकते। शत्रुको
सधकर व्याधि औ लेश देकर अन्नपान कुड़ा-
कर उरके बलको ऐसा नाश करे, जिसमें तनि-
कभी सन्देह न रह जाय। अर्थ चाहनेवालेके
मित्रताकी सभावना नहीं है, इस लिये अर्थवान
लोग अर्थ चाहने वालेसे नहीं मिलते। सो शत्रुके
वशों लानेके लिये यथोचित सम्पूर्ण कार्य पूरा
करना, कुछ बाकी मत रखना। ऐश्वर्य
चाहनेवाले सहोपालको अस्त्र्या छोड़कर सहाय
साधनपाय आदि बटीर करक विगाड़का
प्रयत्न और यत्नके साथ जसमें उत्साह करना
चाहिये। नीतियुक्त जन ऐसे करें, कि उनको
कोईभी चाहे मित्र वा शत्रुही पक्षिले समझने
न पावे, पर जब काम हाथ लगे वा पूरा
हो जावे देखलें। जब तक भय न घान पड़े,
तब तक भीतजनके समान भयसे बचनेका
उपाय सोचता रहै, पर भय आजाने पर निर्भ-
यसा बनकर मारना उचित है। दण्डसे
वशमें आवे शत्रु पर जो कृपा करता है, वह
खचरीके गर्भ धारणकी नाई अपनी मृत्युको
आपही बुलाता है। अनागत कार्यको
उपस्थित जानकर उचित विधियोंको करना,

नहीं तो एकायक उपस्थित कामके समय बुद्धि नष्ट होनेसे कोई प्रयोजनीय कार्य जगड़ सकता है। ऐश्वर्य चाहनेवाले भूपालको देशकालका विभाग कर यत्नके सहित उत्साह करना चाहिये और दैवी कर्म, धर्म, अर्थ काम यह सबभी देशकालके विभाग करके करने पड़ेगी; क्योंकि ऐसी सिद्धान्त है, कि देश और काल यह दो बड़े हितके देने वाले हैं, शत्रुके तुच्छ होने पर उसको तुच्छ समझनेसे वह ताड़की नाई धीरे धीरे जड़ फौलाता है और वनमें गिरी हुई आगको नाई खलफ कालहीके बीचमें बहृत फेल जाता है इस प्रकार थोड़ी आगको बढ़ानेसे वह आग उड़ी बड़ी वस्तुओंकी जला सकती है, तैसेही जो अपनेको सहायादिसे वटाता है, वह ढूँढ़कर अपने विपक्षियोंके वहुत बड़े होने परभी खलफ कालमें उन्हें उखाड़ देता है। शत्रुको ऐसी आशा देनी, कि वह वहुत दिनमें पूरी हो सके, आगे उस कालके आने पर कोई रुकावटका बहनाकर उसको चुपकर देना। उस रुकावटकाभी कोई हेतु दर्शाना और उस हेतुकाभी दूसरा एक हेतु दिखाकर उसको दबाये रहे। नीति जाननेवाले भूपको चमकोलि म्यानसे ढके हुए और लोमहारी उचित समय पर काम निवटारनेवाले अस्तुरकी भाँति होकर अर्थात् निर्द्वय गुमाशय, विरुद्धजन संहारी और कालापेची होकर शत्रुओंका प्राणान्त करना चाहिये। अनश्व है कुरुकुल भूषण। पाण्डव वा दूसरों पर न्यायके अनुसार व्यवहार कर ऐसा काम करिये, कि पश्चात्तापमें डूबना न हो। हे नराधिप! मुझे यज्ञ निश्चय समझें है, कि आप धन पुत्रादि सर्व मङ्गलयुक्त और विशेष जानकार हैं। इसलिये पाण्डवोंसे अपनी रक्षा करिये। हे शत्रुनाश नरनाथ। क्योंकि पाण्डव लोग भावार्थमें उड़े चलवन्त हो गये हैं। सो जैसा कि आपने कहा दिया, आप एतके

साथ वह सुनकर उचित विषयमें ऐसा प्रयत्न करिये, कि पाण्डवोंसे भय न रहे और पश्चात्ताप न हो, ऐसीही नीतिके पथपर चलिये। कश्चित् ऐसा कहकर अपने घर पधारें और कुरु नन्द धृतराष्ट्र उसे सुनकर शोकयुक्त हूँ।

एकसौ एकतालीस अध्यायका सम्भवपर्व समाप्त

श्रीवैशम्पायनजी बोले कि, अनन्तर सुगलपुत्र शकुनि, राजा दुर्योधन, दुःशासन और कर्णने एकत्र होकर एक बुरा परामर्श किया। उन्होंने कौरवी राजा धृतराष्ट्रकी आज्ञा लेकर पुनः सहित कुन्तीकी जला देना निश्चय किया। उन दुर्योधनोंका दूशारा और अभिप्राय समझनेवाले तत्त्वदर्शी निर्द्वय आंखोंकी सैन आदि जिज्ञासे उस परामर्शको समझ गये। पाण्डवोंने हितैषी सम्पूर्ण जानने योग्य विषयोंके विशेष जाचकार पापकी कूतसे खाली विदुरने यह संभन्धा, कि पुत्रोंके सहित कुन्तीको भागना ही चाहिये। आगे हवाकी तेजी सहने योग्य लहरोंमें न डूबनेवाली, यन्त्र लगी हुई मजदूर और झण्डा फहराती हुई एक नाव बना कर कुन्तीसे बोले, कि ऐ शुभे। धृतराष्ट्र इस कुत्त की कीर्ति और सन्तानको नाशने वाले बने हैं। वह उलटी बुद्धिसे शाश्वत धर्मकी विचार रहे। है। चाहे जा कुछ हो, मैंने लहर और हवाके वेगका सहनेवाली यह नाव बना कर जलमें छोड़ दी है, इससे तुम पुत्रोंके साथ मौतके जालसे बच सकोगी।

हे भरतश्रेष्ठ यशस्विनी कुन्ती वह बात सुनकर पीड़ित चित्तसे पुत्रोंके साथ नाव पर चढ़ कर गङ्गाजीमें गई थी। पाण्डव लोग विदुरकी बातसे नाव छोड़ कर दुर्योधनादि का दिया हुआ धन लेकरके बिना विघ्न वनकी गये थे। इधर एक वहेलिन किसी कारणसे पांच बेटोंके सहित उसही जलमध्यमें आके सोरही थी, जो पाण्डवोंके जलानेकी वनाया गया था।

वह द्विचारी निर्दोष होने परभी पुत्रोंके सहित भस्म होगई और वह स्नेहसे भी अधम पापात्मा पुरोचन भी जो जलानेके लिये नियुक्त हुआ था, जब भुन कर भस्म होगया, सो धृतराष्ट्र पुत्रोंका अभीष्ट पूरा न होनेसे वे सायियोंके द्वारा ठगे गये । वहां वाले सब लोग यह न जान कर, कि महात्मा पाण्डव लोग माताके साथ विदुरके परामर्शसे बच गये थे ; वारणावतनगरके लोग जतुगृहको जलते देखकरके दुःखितचित्तसे शोक प्रगट करने लगे और उस वृत्तान्तसे जो, कि जाना गया था धृतराष्ट्रकी ज्ञात करनेके लिये यह कह भेजा, कि हे कौरव ! आपकी बड़ी इच्छा पूरी भई । आपने पाण्डवोंको जला मारा है, अब अपनी आशा मित्रों—पुत्रके साथ राज्य भोगें । यह सुनकर धृतराष्ट्र, कुरुश्रेष्ठ भीष्म, विदुर और धृतराष्ट्रके वेदोंने वाधवोंके साथ शोक करते हुए पाण्डवोंको प्रतिक्रिया कर डाली ।

जनमेजय बोले, कि हे द्विज श्रेष्ठ । जतुगृहके जलने और पाण्डवोंके बचनेके वृत्तान्तकी विस्तारसे फिर सुना चाहता हूं । कुटिल जनके उपदेशसे उन्होंने जिस प्रकारसे उस कठोर निष्ठुर कार्यको किया था, वह कहै ; सुननेकी मेरी बड़ी इच्छा होरही है । श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे शत्रुनाश भूपाल । जतुगृहके जलने और पाण्डवोंके बचनेकी कथा मैं विस्तारसे कहता हूं, सुनिये । द्रुपद दुष्योधन भीष्मकी अति बलवन्त और धन-श्रयकी वृत्तविश देखकर अपार सन्तापसे जलने लगा । आगे सूर्यपुत्र और सुवलकुमार शकुनि नाना उपायोंसे पाण्डवोंके प्राण लेनेकी चेष्टा करने लगे । जब जो विपत आपड़ती थी, पाण्डवलेगभी उससे बचनेका उपाय कर लेते थे, पर विदुरके मतसे उसको फिर प्रकट नहीं करते थे । हे भारत ! पुरवासी लोग पाण्डवोंकी नाना गुणोंसे अलंकृत देखकर सब

समाजोंमें उनके गुण गाने लगे । और सब मनुष्य सभामें और चतूतरों पर मिलकर पाण्डुके ज्येष्ठपुत्र युधिष्ठिरकी राज्य पानेकी योग्यताके विषयमें कीर्त्ताहल मचाने लगे, और कहने लगे, कि प्रज्ञाचक्षु जननाथ धृतराष्ट्रने अन्ध होनेसे पहिले राज्य प्राप्त नहीं किया था, अब वह क्योंकर राजा होगये ? और सचशील महाव्रत शान्तनुकुमार भीष्मने पहिले राज्य त्याग दिया था, वह फिर उसकी नहीं लेंगे, अतएव आज हम लोग तत्क्षण बयवाले रणप्यारे और भेदके जानकार पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरकी भली प्रकार राज्यमें बैठेंगे । वह धर्मात्मा युधिष्ठिर शान्तनुनन्दन भीष्म और पुत्रोंके सहित धृतराष्ट्रकी अवश्य पूजा कर भोगनेकी नाना वस्तु देंगे । अनन्तर युधिष्ठिरके बारे में प्रजाओंकी यह सब बात सुनकर दुर्योधन द्रुपदसे बड़ा सन्तापित हुआ । वह दुष्टात्मा सन्तापयुक्त उनकी बात सह नहीं सका, सो द्वेषके मारे जलकर धृतराष्ट्रके पास गया । अनन्तर पिताको निरालेमें पाकर उचित नियमसे प्रणामकर दुःखी चित्तसे युधिष्ठिर पर पुरवासियोंके प्रेमके हेतु अनुचित चित्तसे कहने लगा कि, पिता ! मैंने आन्दोलन करनेवाले पुरवासियोंसे अशुभ बातें सुनी है ! पुरवालोंने आपका और भीष्मका अनादरकर पाण्डवकी अधीश बनानेकी कल्पना की है ; इसमें भीष्मका भी मत हीगा, क्योंकि वह स्वयं राज्य भोगकी इच्छा नहीं रखते ; पर पुरवासी लोग केवल हम सर्वोहीकी मर्मा पीड़ा देनेमें उद्यत हुए हैं, पहिले राजा पाण्डुने अपने गुणहीसे राज्य प्राप्त किया था, यद्यपि आप ज्येष्ठतःसे राज्याधिकारी होनेके योग्य थे, पर अन्धताके हेतु राज्य पा नहीं सके ; अब यदि उन पाण्डुका पुत्र उत्तराधिकारी होकर राज्य पावे, तो भविष्यतमें उसका पुत्र अवश्यही अधिकारी होगा और उसी प्रकार

सिलसिलेवार उनके वंशवाले राजा हुआ करेंगे। हे जगपति। ऐसा होनेसे हम सबोंकी पीढ़ीके क्रमसे राजवंशियोंमें न गिने जाकर सबोंकी अनादरके साथ जीना पड़ेगा। अतएव हे महाराज। ऐसी कोई अच्छी नीति ठहरावें, कि हम सबोंका पड़ाई कृपापर पेट पालना न पड़े। हे नरनाथ! पहिले यदि आप राज्यको प्राप्ति करते, तो प्रजाओंके वशमें न रहनेसेभी हमारो राज्यप्राप्तिमें कोई सन्देह नहीं रहता।

जतुग्रहपर्वमें एकसौ ब्यालीस अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि प्रज्ञानेत्र, महीपाल धृतराष्ट्र एवकी ऐसी बातें सुन और कणिकसे जो कथा सुनी थी, पूरी पूरी उसे यादकर चित्तमें दुबिधा करने लगे और शोकयुक्त हुए। आगे दुर्योधनने कर्ण, शकुनि, और दुःशासन, इन तीनोंसे सहमत हो कर युक्तिपूर्वक राजा धृतराष्ट्रसे कहा, कि आप किसी चतुर उपायसे पाण्डवोंको वारणावतमें खड़े दोजिये, ऐसा करनेसे उनसे हमको फिर कोई भय नहीं रहेगा। पुत्रकी बात सुनकर उन्होंने क्षणभर चिन्ता की, पीछे बोले कि धर्मशील, पांडु सम्पूर्ण ज्ञातियोंसे विशेष सुभक्तसे सदा धर्म अनुसार व्यवहार किया करते थे; उनको भोजन वस्त्र किमी विषयमें चाह नहीं थी। वह सदा व्रतवारी होकर मेरे हाथ सब राज्य सौंप दिये रहते थे। अब उनके पुत्र भी उनके समान धर्मशील गुणवन्त भूमण्डलमें प्रसिद्ध और पुरवासियोंके प्यारे हुए हैं। सो उस पाण्डुनन्दनको हम क्यों कर पैत्रिक राज्यसे खड़े कर सकते हैं? विशेष वह सहाय वर्जित नहीं हैं, महाराजा पाण्डुमन्त्रियोंकी सेवाको और उनके बेटे पौत्रोंकी मटा पालने पोषने के, ऐ बेटा। जब नगरके सब लोग पाण्डुसे मत्सृजत हुए हैं, उनके गल दुर्घाटिके लिये वे क्यों हमको

और हमारे वाश्योंको न धिगाड़ेगे। दुर्योधन बोले, कि हे पिता। आपकी बात ठीक तो है, पर मेरे आपके वर्तमान अहितको सोचकर सब प्रजाओंको धनमानसे पूजित करनेसे, वे हमारे बड़ेपनके लिये अवश्यही सहाय होंगी, क्योंकि हालमें धनकोष और मन्त्रीवर्ग हमारेही हाथमें हैं। अतएव हे पृथ्वीनाथ। आप किसी कोमल उपायसे शीघ्र पाण्डवोंको वारणावतमें भेजिये। हे राजन् जब कुछकाल पीछे राज्य मेरे हाथ लगेगा, तब पाण्डवगण कुन्तीके साथ फिर यहाँ लौटेंगे। धृतराष्ट्र बोले, कि हे दुर्योधन! तुमने जो बात कहा मैभी चित्तमें उसका तन्त्र उठाये रहता हूँ, पर इसे पाप अभिप्राय जानकर प्रकाश नहीं करता। भीष्म, द्रोण, कृप, विदुर इनमें कोईभी कदापि सम्मत नहीं होंगे, कि पाण्डवगण खड़े जायें। बेटा। कुरुवंशियोंमें हम और पाण्डव दोनों समान हैं, इसमें सन्देह नहीं है। सो वे महानुभाव लोग कभी दोनों पक्षोंमें किसीकी घट बढ करना नहीं चाहेंगे। सुतरां पाण्डवोंको भगाकर हम कौरवोंसे, उन महाकाओंसे यहाँ तब कि निःसन्देह पृथ्वीभरके लोगोंसे वध करे जानेके योग्य होंगे।

दुर्योधन बोले, कि भीष्म हम दोनों पक्षोंकी समान स्नेह करते हैं। द्रोणकी पुत्र अश्वत्थमा मेरेही पक्षमें है, सो इसमें रन्देह नहीं है, कि आचार्य द्रोणकी इसीपक्षमें रहना पड़ेगा, जिस पक्षमें उनके पुत्र हैं; और त्रिम पक्षमें यह पिता पुत्र दोनों रहेंगे, शारद्वज कृपभी अवश्य उसी पक्षमें रहेंगे, क्योंकि वह कभी भाज्जा और द्रोणकी नहीं छोड़ सकेंगे। विदुर हमारे अर्थसे आवद्ध हैं, और छिपकर पाण्डवोंसे मिलभी जावें, तो वह अकेले पाण्डवोंकी पक्षमें होकर हमारी कोई हानि नहीं कर सकेंगे; अतएव आप निशङ्क चिन्तमें

पाण्डवोंकी उनकी माताके सहित यहासे दूर करिये। ऐसा प्रयत्न कीजिये, कि वे आजही वारणावतमें जाय; निद्रानाशी शोकान्निमानों कठोर शूलोंकी भंति मेरे हृदयमें गड़ गया है, आप यह कामकर उसको निकाल लीजिये।

जुगुह्वपर्वमें एकसौ तैत्तलिस अध्याय समाप्त ।

श्रीकृष्णायनजी बोले, कि अनन्तर राजा दुर्योधन अपने छोटे भाइयोंसे मिलकर सम्मान और धन देकर क्रमशः प्रजावर्गकी वशमें लाये। कई-एक कार्यदत्त मन्त्रो धृतराष्ट्रकी आज्ञासे वारणावत नगरकी सुन्दर कह कह यह प्रशंसा करने लगे, कि हालमें वारणावतमें बहुत सुन्दर पशुपतिका मङ्गीत्सव आ गया है, उस उत्सवका समाज नाना-रत्नोंसे भर जायगा, उस नगरकी देखनेही उसपरहर मनुष्यका-चिन्त भुक्त जाता है। हे नरनाथ ! वारणावत नगरकी सुन्दरता इस प्रकार कही जानेपर वहा जानेके लिये पाण्डवोंकी मन-दौड़ा। अम्बिका-पुत्र राजा धृतराष्ट्रने जब समझा, कि वारणावत नगरकी देखनेकी पाण्डवोंका मन चला है, तब उसने बोले, कि एवो। यह सब लोग मुझसे बार बार कहा करते हैं, कि भूमण्डलमें वारणावत नगर बड़ा सुन्दर है, तुम वहा उत्सव देखना चाहो, तो परिवार और साधियों समेत वहा जाकर देवोंकी भंति आनन्द लूटो और गवैयों और ब्राह्मणोंकी मनमाना धन रत्नादि देते रहो। इस प्रकारसे परम तेजस्वी सरोके समान कुङ्कुमाल विहारकर अच्छी प्रीति लाभ करो और अन्तकी कुशलसे इस हस्तिनापुरमें लौट आना। युधिष्ठिरने धृतराष्ट्रका अभिप्राय समझकर और अपनेकी सहाय जानकर उनकी यह उत्तर दिया, कि आप जैसी आज्ञा करते हैं, वही होगा। अनन्तर उन्होंने शान्तनुपुत्र भीष्मसहामति विदुर-

द्रोण, वाह्लीक, कौरव सीमदत्त, कृप, आचार्यके पुत्र अश्वत्थामा, भूरिश्रवा और दूसरे माननीय जनों और मन्त्रियों, ब्राह्मणों, तपोधनों, पुरोहितों, पुरवासियों और यशस्विनी गान्धारीसे दोनतापूर्वक कोमल भावसे कहा, कि हम राजा धृतराष्ट्रकी आज्ञासे साधियों समेत जनोंसे भरे अति सुन्दर वारणावत नगरमें जायेंगे, आप प्रसन्नचित्तसे पुण्य दक्षिण कहिये, कि आपके अशीस से हम बुद्धिकी प्राप्तकर पापयुक्त न होंगे। सम्पूर्ण कौरव युधिष्ठिरकी यह बात सुनकर पाण्डवोंकी इच्छागुरुप यह बोले, कि पदमें सर्वभूतोंसे सदा तुमलोगोंका मङ्गल होवे। हे पाण्डवो! तुमपर कोई अहित न होने पावे। अनन्तर पाण्डव स्वस्थ-यन करके राज्य लाभके लिये सम्पूर्ण कर्तव्य कर्मोंकी पूराकर वारणावत नगरकी यात्राके लिये प्रस्तुत होने लगे।

जुगुह्वपर्वमें एकसौ चौवालिस अध्याय समाप्त ।

श्रीकृष्णायनजी बोले, कि हे भारत ! राजा धृतराष्ट्रके पाण्डवोंकी ऐसी आज्ञा देनेपर दुरात्मा दुर्योधनको हर्ष हुआ। आगे पुरोचन नामक मन्त्रीकी निरालेमें बुलाकर उसका दहिना हाथ ग्राम करके बोला, कि पुरोचन ! यह धन भरी धरती मेरे वशमें है, इसपर मेरा जितना अधिकार है, तुम्हारा भी उतनाही है, सो तुमकी उसकी रक्षा करनी चाहिये; देखो, तुममें अधिक विद्यासो सहायक मेरा कोई दूसरा नहीं है, कि जिससे मिलकर ऐसा परामर्श करूं, जैसा तुमसे कर सकता हूं; सो तुम इस परामर्शको भले प्रकार कुपाकर मेरे शत्रुकी नष्ट कर डालो। मैं जो कुछ कहता हूँ, वह कौशलयुक्त अच्छे उपायोंसे पूरा करो। राजा धृतराष्ट्रने पाण्डवोंकी वारणावत नगरमें जानेकी आज्ञा दी है, वे धृतराष्ट्रकी आज्ञासे पापयुक्त उत्सवों वहा विराजेंगे, अतएव तुम

करो, कि आजही खच्चरयुक्त शीघ्रगामी रथ पर वारणावतमें जासकी । वह जाकर नगर के लीरमें अनेक अर्थ खर्च कर भले प्रकार घेरा हुआ एक चौपाल घर बनवाओ ; सन, धूपआदि जितनी आग वालनेवाली वस्तु है, उनसेही वह घर बनवाना, आगे घृत, तेल, चक्की और अधिक लाहके साथ कुछ मिट्टी मिलाकर उसकी भीतीको पीतमा रखना ; और सन, तेल, घृत, लाह और लकड़ी यह सब वस्तु उस घरमें हर स्थानमें गिरा रखना । पर ऐसा करना, कि पाण्डव लोग वा कोई दूसरे विशेष परीक्षासे यह समझ न पावें, कि वह गृह आगसे जलनेवाला है । इस प्रकार गृह बनवा करके पाण्डवों और मित्रोंके साथ कुन्तीको आदरपूर्वक वहा पाण्डवोंके लिये सुन्दर शय्या, आसन और यान इस प्रकार बनवा रखना, कि पिता सन्तुष्ट हों । और यह करना, कि वारणावत नगरका कोई भी मनुष्य इस विषयमें कुछ जानने न पावे । आगे ठीक समय आनेपर अर्थात् पाण्डवोंको उस गृहमें अच्छे विश्वास पूर्वक सोते और निःशङ्क होती देखने पर उस गृहके द्वारमें आग लगाना ; इसमें सन्देह नहीं, कि उससे पाण्डव जल मरेंगे । अनन्तर प्रजा समझेंगी, कि पाण्डव उनके घरमें आग लगनेहीसे जल मरे ; सो पाण्डवोंके लिये वह कभी हमारी निन्दा नहीं कर सकेगी । पुरीचन दुर्योधनसे उस बातकी प्रतिज्ञा कर उच्छे अच्छे खच्चरयुक्त शीघ्रगामी रथ पर चला । हे राजा ! पुरीचन दुर्योधनकी आज्ञासे शीघ्रतापूर्वक वारणावतमें पहुँचकर राजकुमार दुर्योधनके कहे हुए सब काम पूरा करने लगा ।

अतुल्य पर्वमें एकमौ पैतालिस अध्याय समाप्त ।

त्रैलोक्यमायनजी बोले, कि अनन्तर व्रतशील लोग इस रथोंमें पवन समान वेगवान्

अच्छे अच्छे घोड़े जेतवाकर चढनेके कात कातर होकर भीष्म, राजा धृतराष्ट्र, महात्मा द्रोण, विदुर, कृप दूसरे छद्मोंके पाँव बूने ली ; इस प्रकार अपनेसे बड़े सब कौरवोंको प्रणाम किया और अपने जोड़ियोंकी गलीसे लगाया । आगे बालकोंका प्रणाम लेकर सब मातायोंकी आज्ञासे और उनकी सम्भाषण पूर्वक वारणावत नगरकी चले । महाप्राज्ञ विदुर तथा दूसरे कौरवोंमें प्रधान लोग और एरवासीवृद्ध शोकाकुल होकर पुरुषोंमें व्याघ्ररूपी पाण्डवोंके पीछे पीछे चले । उनमेंसे कुछ पुरवासी और जनपदवासी पाण्डवोंके चित्तको मलिन देखकर अति दुःखसे कहने लगे, कि कुरुवंशी राजा धृतराष्ट्र दुष्टबुद्धिवश सब प्रकारसे पक्षपात कर रहे हैं, वह एकवार भी धर्मकी ओर दृष्टि नहीं देते हैं । पापरहित पाण्डुपुत्र कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर, महाबली भीम और धनञ्जय, यह कभी विद्रोह रूपी पाप कर्मको इच्छा नहीं करते, सो महात्मा मोदीकुमार भी गुप रहेंगे । हाय ! कैसा गहरा दुःख है ! पाण्डवोंको पित्रराज्यका पाना भी धृतराष्ट्रसे सहा नहीं जाता ! इस अति अधर्मयुक्त कर्ममें फिर भीष्महीने क्योंकर अनुमति दी ? ऐसे अत्याचर पूर्वक पाण्डवोंको दूर करनेमें क्योंकर उनकी सम्मति हुई ? पहिली शान्तनुनन्दन राजर्षि विचित्रवीर्य और कुरुपुत्र पाण्डुने हमको पिताके समान पाला था । उन पुरुषवाच पाण्डुके स्वर्गकी सिधारने पर अब धृतराष्ट्र इन बालक राजकुमारों पर वेषयुक्त हो गये । क्या ऐसे अत्याचार पर हमारी सम्मति हो सकती है ? चाहे जो कुछ हो, युधिष्ठिर जहा जायंग, हम सब गृहकी तजकर इस नगरसे वहीं जायंगे । पुरवासीलोग दुःखित होकर ऐसा आन्दोलन कर रहे थे, कि धर्मराज युधिष्ठिर मनहीमनमें कुछकाल सोचकर दुःखयुक्त चित्तसे उनसे बोले, कि पञ्चोना

धृतराष्ट्र हमारे पिता, माननीय, तैयार गुरु है, और वही प्रधान है ; हमारा व्रत यह है, कि उन्होंने जो कुछ कहा है, उसे हम बिना शङ्का पूरा करेंगे । आप हमारे हितकारी है, हमपर कृपा करके अशीस दे देखकर निज निज घरकी लौट जावें । जब आप लोगोंसे हम लोगोंका कोई आवश्यकीय काम आ पड़ेगा, तब आप हमारे उस कामकी प्रिय और हितयुक्त जानकर करना । पुरवासीलोग युधिष्ठिरकी यह बात सुनकर प्रदक्षिण पूर्वक आशीस दे दे कातरभावसे नगरकी पधारे । उनके सम्पूर्ण रूपसे लौटनेपर सर्व नोतियोंके जानकार विदुर पाण्डवोंमें प्रधान युधिष्ठिरकी सावधान करनेके लिये कहने लगे । इसलिये कि, दूसरे समझ न सकें, स्नेच्छ भाषाकी जाननेवाले विदुर स्नेच्छ भाषाकी सम्भते हुए युधिष्ठिरसे स्नेच्छ भाषामें इशारेसे बोली, कि जो शत्रुके चेष्टित विषयकी नीति शास्त्रके अनुसार ज्ञात हो सकें, उनकी सम्भ-कर ऐसा काम करना चाहिये, कि विपदसे बच सकें । जो लोग ऐसे अस्त्रोंको, कि जो बिना लोहेसे बना हो पर शरीरको नष्ट कर देता हो और उससे बचनेके उपायकी जाननेमें समर्थ है, उनकी शत्रु बिगाड़ नहीं सकते । कक्षत्र अर्थात् टणनाशी और हिमनाशी वस्तु महाकक्षमें अर्थात् बड़े वनके भीतर बिलमें रहनेवाले जीवोंकी जला सही सकता है, इस नियमकी आज्ञाकर जो अपनी रक्षा करते है, वही जीते रहते है । जो आखोंसे नहीं देखते है, वह न तो पथ जान सकते है, और न दिशा निश्चयकर सकते है, जिनको धीरज नहीं है, वह ऐश्वर्य नहीं प्राप्तकर सकते है । तुम मेरे इस उपदेशकी भली भांति स्मरण रखना । जो एरुप शत्रुओंके विनालोहेके वने शस्त्रके वशमें नहीं है, वह साहसीके घरकी भांति देना औरसे निकलनेके पथयुक्त विलोंके द्वारा

आगसे बच सकते हैं और घूमने घामनेहीसे पथ जाने जा सकते है, नक्षत्रसेभी दिशाओंका निश्चय हो सकता है, और जो समुद्र अपनी पांच वस्तुओंकी बुद्धिपूर्वक बचा सकते है, वह शत्रुओंसे पीसे नहीं जाते । पाण्डुगुल धर्मराज युधिष्ठिर बिस्मय विदुरकी यह बात सुनकर बोली, कि मैं समझ गया ।

विदुर पाण्डवोंको उक्त उपदेश देकर कुछ दूर पीछे चल प्रदक्षिण पूर्वक सभाषण कर गृहको लौटे । भोष्म, विदुर और पुरवासी स्वोंके लौट जाने पर कुन्ती अज्ञातशत्रु युधिष्ठिरके निकट जाकर बोली, कि विदुरने स्वोंके सामने अप्रकाशित अर्थयुक्त जो बात कही, और तुमनेभी उनसे जैसी बात कही मैं उसे समझ नहीं सकी ; यदि वह हमारे जानने योग्य हो और यदि उसे जाननेसे हानि न होनेवाली हो, तो तुम दोनोंमें जो बात हुई, उसका अभिप्राय मैं जानना चाहती हूं । युधिष्ठिर बोली, कि विदुरने कहा है, कि गृहसे आग जल उठेगी, तुम यह जानकर पहिलेसे सावधान होओ ; कोई पथ तुम्हारा अनजाना नहीं है । जो जितेन्द्रिय होंगे, वही भूमजल भरका अधिकार पावेंगे । धर्मशील विदुरकी मुझसे इतना कहने पर मैंने उनसे कहा है, कि मैं सब समझ गया । श्रीशम्पायनजी वं ले, कि उसके अनन्तर पाण्डवोंने फागुनके महीनेके आठवें दिनकी रोहिणी नक्षत्रमें वारणावतकी यात्रा की । आगे वहा पड़चे हुए पाण्डवोंसे नगर-वाले जनोकी भेंट हुई । जतुगृह पर्वमें एकसौ द्वियालिस अध्याय समाप्त ।

श्रीशम्पायनजी वं ले, कि अनन्तर वारणावननगरी को सब प्रजा पाण्डवोंके शुभ आगमनकी सुनकर सुस्तीकी छोड़ शास्त्रके अनुसार सादृत्य पदार्थ लेकर नाना प्रकारके अगणित यानों पर चढ़ उनके निकट जा पड़ची । वं

निकाट जाकर जय जयकारके साथ अशोष देने हुए चारों ओर खड़े हुए। देव सट्टण पुरुषव्याघ्र धर्मराज युधिष्ठिर तब नगरके जनोंसे घेरे जाकर सुरनाथके समान शोभा पावे लगे। निष्पाप पाण्डव लोग पुरवासियोंसे सत्कार पाकर उनकी यथायोग्य अभ्यर्थना और नाना अलङ्कारोंसे सत्कार पाकर उनकी यथायोग्य अभ्यर्थना कर नाना अलङ्कारोंसे अलङ्कृत जनोंसे भरे वारणान्त नगरमें जा पहुँचे। वीर पाण्डव-नन्दन पुरमें प्रवेश कर पहिले वेद पठन आदि स्वकर्ममें नियुक्त ब्राह्मणोंके घरोंमें गये। आगे क्रमसे नगरपाल, रथी वैश्य और शूद्रोंके घरोंमें भी गये। हे भरतश्रेष्ठ। पाण्डुपुत्रगण पुरवासियोंसे पूजे जाकर पीते अगुया परीचनके साथ घरमें गये। पुरीचन उनकी अच्छी अच्छी भोजन और पीनेकी वस्तु, शय्या, उत्तम आसनादि देने लगा। बहृत मूल्ययुक्त पहिरावा पहिरे हुए पाण्डवगण पुरीचनकी सेवा और पुरवासियोंकी उपासना पाकर वहां वसने लगे। इस प्रकार दश दिनोंके व्यतीत होनेपर पुरीचनने उनकी शिव नामक उस अश्वि गृहकी बात सुनायी। गुह्यक-लोग जिस प्रकार कैलाशकी चोटी पर चढ़ते हैं, वैसेही पाण्डव-लोग पहिरावेसे सुशोभित होकर पुरीचनके वचन सुनकर उस गृहमें प्रविष्ट हुए। परम धार्मिक युधिष्ठिर उस गृहको भली प्रकार देखकर भीमसेनसे बोले, कि यही गृह आग लगनेवाली वस्तुओंसे बना होगा। हे शत्रुनाशि। घृत और लाहसे मिली हुई चर्वोंकी गन्धकी सूघनेसे स्पष्ट प्रकाश होता है, कि यह गृह आग लगनेवाली वस्तुओंसे बना है। घर बनानेमें दक्ष और विपक्षियोंके विश्वासी शिल्पियोंने सन, धूप, सरकण्डा, तण और वांस आदिकी बटोर करके घृतमें डुबा कर उनसे यह घर बनाया है। सुयोधनका

हमति पुरीचन यह समझे हुआ है,

कि सुभमें विश्वास आते देखकर हमको जलावेगा। हे पार्थ। महामति विदुर जान सके थे, कि यह विपत्त आपड़ेगी, इस लिये उन्होंने पहिले सुभकी सावधान कर दिया था। उन छोटे चचाजीने स्नेहसे हमारे हितेच्छक होकर जताया था, कि दुर्धनके वशीभूत नीच स्वभावके लोगोंने इस अहित, गृहको भली प्रकार बनाया है। भीमसेन बोले, कि जब कि आपने जान लिया है, कि यह गृह आग लगनेवाली वस्तुओंसे बना है, तब हम पहिले जहां वसे थे, वही जाय तो हमारा मङ्गल हो सकता है। युधिष्ठिर बोले, कि हम यत्नसे सावधान हो-यहाँ रहकर बाहिरी देखनेमें कोई चेष्टा न करके बाहर निकलनेका पय दृढ़ेगी। पुरीचन हमारे आकार वा किसी भावसे जान जायगा, तो उसी क्षण शोद्रतापूर्वक एकायक हमको जला मारेगा; क्योंकि पुरीचन लोकनिन्दा वा अधर्मसे भय खानेवाला नहीं है, वह बुरो बुद्धियुक्त दुर्धन की आज्ञासे ऐसा अनिष्ट करनेको प्रवृत्त हुआ है। फिरभी हमारे यहां जल जानसे पिता अह भोष क्यों क्रोधमें होने चले, वह क्रोधित होकर क्यों कौरवोंको क्रोधयुक्त करेगी, हा, ऐसा हो सकता है, कि जितने दूसरे कौरवयुद्ध है, वे धर्मके नामसे क्रोध प्रकाश कर सकते हैं, और हम जलनेके भयसे भय खाकर भाग जावें, तो राज्यलोभी सुयोधन दूतोंके द्वारा हम सबोंको मरवा सकता है, क्योंकि वह दुःराका राजपदपर बना, सहाययुक्त और बड़े ऐश्वर्यका अधिकारी है, और हम पदके बाहर, सहाय-रहित और ऐश्वर्य वर्जित है; सो इसमें सन्देह नहीं है, कि वह हमको नाना उपयोग नष्ट कर सकेगा। अतएव हम पापात्मा पुरीचन और सुयोधनकी ठगकर अनेक स्थानोंमें इसप्रकार छिपकर बास करेंगे, कि भागनेके काल हमारा पय अज्ञात नहीं रहेगा, बड़े ही

गुप्त भावसे आज ही धरतीके नीचे एक विल खोदेंगे। गुप्त-रूपसे ऐसा करनसे हमको आशङ्का नहीं रहेगी, अतएव हम सजग होकर ऐसा करेंगे, कि पुरीचन वा कोई दूसरे पुरवासी हमारा अभिप्राय न जान सकें। चतुर्गृह पर्वमें एकसौ सैंतालीस अध्याय समाप्त।

श्रीशम्पायनजी बोले, कि हे महोपाल। एक मनुष्य जो विदुरका मित्र और मिट्टी खोदनमें दक्ष था, आनके निरालीमें पाण्डवोंसे बोला, कि मैं खनिक हूँ, भूमि भली भाँतिसे खोद सकता हूँ, विदुरजीने मुझको यह कह भेजा है, कि तुम जाकर पाण्डवोंका प्रिय कार्य करो; सो पूछता हूँ, कि आपका कौनसा काम करना पड़ेगा? उन्होंने मेरा विश्वास कर कहा है, कि तुम पाण्डवोंका हित करो, अब आज्ञा कीजिये कि क्या करना है। हे पाण्डव। पुरीचन आपके इस गृहके द्वारपर कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको रात्रिकी आग लगा देगा। कुमति दुर्योधनने निश्चय किया है, कि पुरुषश्रेष्ठ पाण्डवोंको माताके साथ जला सारेंगे। विदुरने स्नेह भावोंसे आपसे कुछ कहा था, उससे आपनेभी उनको वैसाही उत्तर दिया था; यह बातही सुझपर आपके विश्वास होनेका कारण है। सत्यशील कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर बोले, कि हे सौम्य। मैं जान गया, कि तुम विदुरके प्रिय मित्र, शुद्ध स्वभावो और विश्वासी हो, और उनपर सदा तुम्हारी बड़ी भक्ति है; वह सब जानते हैं, कोई काम उनका अनजाना नहीं है; तुम विदुरके जैसे प्यारे हो, हमारेभी वैसेही प्रिय हो, इसमें कुछ विशेष नहीं है। अतएव तुम उनको जैसा समझते हो, हमकोभी वैसाही समझकर हमारी रक्षा इस प्रकारसे करो, कि जैसे वह करते थे। सुझको भी समझ आ गयो, कि दुर्योधनके मन्त्रि पुरीचनने हमारे लिये ही

यह अग्निघर बनवाया है; यह पापात्मा कुमति दुर्योधन धनयुक्त और सहाय सहित है, सो सदा हमको नष्ट करनेकी चेष्टा करता है। अब तुम यत्पूर्वक हमको इस अग्नि-घरसे बचाओ। और भी इसमें सन्देह नहीं है, कि हम यहां जल मरें, तो सुयोधनकी आशा पूरी होगी। देखो, यह उस दुरात्माकी बड़ी भारी अश्लेशाला है। इसे आश्रयकर यह बड़ा गृह ऐसा बना है, कि भीतकी जड़से अन्ततक बाहर निकलनेका कोई पथ नहीं है। विदुरने दुर्योधनके जिस सङ्कल्पित अनुचित कर्मको पहिले निश्चय रूपसे जानकर हमको सावधान किया था, अब वही विपद आ पड़ी है, अतएव ऐसा करो, कि हम पुरीचनसे गुप्तभावसे भाग सकें। खनकने वह प्रतिज्ञाकर यत्रसे एक बड़ा विल खोदना आरम्भ कर दिया। हे भारत। उस गृहके भीतर श्रीरोका अनजाना एक बड़ा विल खोदकर उसमें ऐसा द्वार लगाया, कि भूमिसे समान हो गया और पुरीचनके भयसे उस विलका मुह तैप दिया। हे महोपाल। इहित बुद्धियुक्त पुरीचन उस गृहके द्वारपर सदा रक्षा करता था। पाण्डव गणभी रात्रिकी अस्त्र शस्त्र लेकर उस गृहके भीतर रहते और दिनको वनमें घूम घूम मृगया करते फिरते थे। हे राजा! वे पुरीचनको ठगनेके लिये ठुकरा भी विश्वास न रख करके भी विश्वासीके समान, सदा असन्तुष्ट हो करकेभी सन्तुष्टकी भाँति और अति विस्मित होकर वहां बसने लगे। पर विदुरके मन्त्री उस खनिकके किना किही नगरवासीने उनका अभिप्राय नहीं जाना।

चतुर्गृहपर्वमें एकसौ अष्टतालीस

अध्याय समाप्त।

श्रीशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर उनके उसप्रकार वर्षभर वहां बस जानेपर पुरे

उनकी विश्वास रखनेवालोंकी नाईं निःशङ्क जानकर मनहीमनमें आनन्द करने लगा । कुन्तीपुत्र धर्मवीर युधिष्ठिर उसकी प्रसन्न देखकर भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेवसे बोले, कि इस पापात्मा पुरोचनने समझ लिया है, कि हममें पूरा विश्वास आगया है, सो इस कुटिलकी हमने ठग लिया है, अब हमारे भागनेका काल आगया है । हम अस्त्रशालामें आग लगा करके पुरोचनकी जलाके यहां कः मनुष्योंको छेड़कर लोगोंसे कुपकर भागेंगे !

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि महाराज । अनन्तर कुन्तीने एक दिन दान देनेके मिससे रात्रिकी ब्राह्मणोंकी भोजन कराया, इस कामके लिये वहां की वहुत स्त्रियां वहां आई थीं । हे भारत ! स्त्रियां रात्रिकी वहां पूरे सुखसे खा पीकर आनन्द पूर्वक कुन्तीकी आज्ञासे निज निज घरकी पधारीं, दैववश कालकी प्रेरणासे एक बहेलिन पंच पुत्रोंके साथ मनमाने उस भोजमें खाने की इच्छासे आई थी । हे पृथ्वीनाथ । वह बहेलिन अपने बेटोंके साथ मदिरा पीकर उन्मत्त और नशेसे विह्वल होकर उस घरहीमें सो गयी । वह एकवारही अचेत होकर मरीसी वहां पड़ी थी । अनन्तर रात्रिकी बड़ी हवा बह रही थी, और नगरके लोग सोगये थे, कि ऐसे समयमें भीमसेनने उस गृहमें जहां पुरोचन सोता था आग लगायी, आगे क्षण भरमें जतरुहके द्वारकी जलाकर अन्तमें उस गृहके चारों ओर आग लगायी । शत्रुनाशी पाण्डव चारों ओरसे गृहकी जलते हुए देखकर माताके साथ विलुप्त जा चुके । अनन्तर जलती हुई आगका कठोर तेज और घोर शब्द फैलने लगा । उसमें पुरवाले जन उस गृहकी जलते देखकर मलिनमुखसे कहने लग, कि दुष्टों-
 उनके गये हुए दमति पापात्मा पुरोचनने
 को नष्ट करनेके लिये ही यह गृह

बनवाया था, अब उसमें आग लगायी । हाय ! धृतराष्ट्र की बुद्धि कैसी कच्ची है ! उनकी उस बुद्धिपर धिक्कार है, जिस बुद्धिसे उन्होंने निष्पापी पाण्डुपुत्रोंकी शत्रुके सदृश जला दिया ! पर जिस पापिष्ठ पुरोचनने विश्वासयुक्त और निहोषी नरोत्तम पाण्डवोंको जलाया, अब वह दुरात्मा अपने कर्मफलसेही जल मरा है ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि वारणावतवाले इस प्रकार विलपते हुए उस रात्रिकी गृहकी चारों ओरसे घेरकर खड़े रहे । इधर शत्रुनाशी पाण्डवलोग माताके साथ अति दुःखी चित्त होकर लोगोंसे छिपकर उस विलसे निकलकर दृढ़ताके साथ शीघ्र चलने लगे ; पर वे सब निद्राके भोको और भयके कारण माताके साथ एकायक शीघ्र नहीं चल सके । हे राजेन्द्र ! तब भीमगामी तथा भीम-पराक्रमी भीमसेन माता और सम्पूर्ण भाद्योंकी लेकर चलने लगे । अति बल वीर्यवत और हवाकी नाईं वेगवान् तेजस्वी वृकोदर जानेके कालमें माताकी कक्षपर, नकुल और सहदेवकी गोदमें और युधिष्ठिर तथा अर्जुनके हाथ पकड़कर छातीसे पेड़ोंका तोड़ते और पावोंसे धरतीको फोड़ते हुए चले ।

जुगुह्वपर्वमें एकसौ उनचास अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर इस समय सर्वज्ञ विदुरने एक पवित्र मनुष्योंके इसप्रकारसे, कि पाण्डवोंके मनमें उसपर विश्वास हो, उस वनको भेजा । हे कुरुनन्दन ! वनमें जहां पाण्डवलोग माताके साथ नदीके जलकी नाप रहे थे, विदुरके भेजे हुए पुरुषने वहां जाकर उनको देखा । अति बुद्धिमान महात्मा विदुर गुप्त दूतके सहारे पापिष्ठ दुष्टों-
 धनके चेष्टित उन सब कामोंसे ज्ञात हुए थे,
 इसीहेतु उन्होंने उस विद्वज्जनकी वहां भेजा
 था । उस पुरुषने तब मङ्गलामय भागीरथीके

तट पर विश्वासी जनोंसे बनी, पवनके सहन-
हारी यन्त्रवाली, झण्डोंसे सुहावनी और मन
या हवाको नाई शीघ्रगामिनी पूर्व कथित
नावकी उल्टे दिखाया और विश्वासीके लिये
कहा, कि हे युधिष्ठिर ! विदुरने इशारेसे
जो कुछ कहा था, वह सुनिये । कक्षनाशी
और हिमनाशी वस्तु महाकक्षके बिल भीतर
स्थित जनकी नष्ट नहीं कर सकती है, इसप्रकार
जो जन अपनी रक्षा कर सकता है, वह जीता
रहता है । हे पाण्डव ! मैं विदुरका विश्वासी
और कामोंका जानकार हूँ । उन्होंने मुझको
इशारेकी उस बातकी कहकर यहा भेज दिया
है । उस वज्रत देखेभाले महाशयने यहभी
कह दिया है, कि हे कुन्तीपुत्र ! तुम रण-
स्थलमें कर्ण, भाद्रयोसमेत दुर्योधन तथा
शकुनिकी अवश्यही परास्त करोगे । अब, इस
में सन्देह नहीं है, कि जलमें रखी हुई, सुखसे
जानेवाली इस नावपर आप इस स्थानसे बच
जायंगे । आगे उस पुरुषने नरोत्तम पाण्डवोंकी
माताके साथ दुःखीचित्त देखकर नावपर
चढ़ा करके गङ्गाजीसे उनके साथ चलने लगा
और फिर बोला, कि विदुरने आपके नाम
लेकर सिर चूमकर गले लगाकर बार बार
कहा है, कि तुम पथमें न घबडाकर बिना
विघ्न मङ्गलपूर्वक जाओ । हे राजेन्द्र ! विदुरके
भेजे हुए उस पुरुषने नरयेष्ट वीर पाण्डवोंसे
वह बात कहते हुए नावपर गङ्गाजीकी पार
किया : आगे उनके अन्यपारमें पङ्कचनेपर वह
जय जयकारके साथ उनको अशीस देकर
अपने स्थानका गया । महात्मा पाण्डवलीग
गङ्गाजीकी पारकर उस पुरुषहोसे विदुरके
यहा पलटा समाचार देकर किसीसे न देखि
जाकर वेगपूर्वक जाने लगे ।

जनुगृहपर्वमें एकसौ पचास

अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोलते, कि अनन्तर रात्रि
बीतनेपर सम्पूर्ण नगरवाले पाण्डवोंकी भेंटके
लिये शीघ्रता से वहां आये । उन्होंने आग
बुझाकर मन्त्री पुरोचनको जनुगृहके साथ
जला हुआ पया । आगे रीते हुए चिल्लाकर
कहने लगे, कि निश्चय जान पड़ता है, कि
पापात्मा दुर्योधनने केवल पाण्डवोंको नष्ट
करनेके लियेही ऐसा किया है । इसमें सन्देह
नहीं है, कि दुर्योधनके पाण्डवोंको जलानेके
विषयमें धृतराष्ट्रकी सम्मति थी, उनकी सम्मति
नहीं रहती, तो वह मना करते । और
शान्तनुनन्दन भोष्म, द्रोण, विदुर, वृष और
दूसरे कौरवोंनेभी इस विषयमें धर्मपर दृष्टि
नहीं दी है । अब हम दुरात्मा धृतराष्ट्रसे
कहे भेजते हैं, कि तुम्हारी बड़ी आशा पूरी
हुई, तुमने पाण्डवोंको जला मारा । अनन्तर
उन्होंने पाण्डवोंकी दूढ़नेके लिये अग्निको उठा
कर बुझाते हुए, पाँचों पुत्रके सहित जलीभुनी
बहिलिनको देखा । उस समय विदुरके भेजे
हुए, उस पूर्वोक्त खनिकने उस रक्षकी साफ
करनेके मिससे दूसरे के न देखनेमें उस बिलका
द्वार तोप दिया । इसके अनन्तर नगरवालोंने
धृतराष्ट्रके निकट जाकर यह कह सुनाया, कि
पाण्डवगण मन्त्री पुरोचनके साथ जल मरे हैं ।
राजा धृतराष्ट्र पाण्डवोंकी विनाश-रूपी अति
अप्रियममाचारकी सुनकर दुःखीचित्तसे विलपते
हुए कहने लगे, कि हाय ! आज उन सब
वीरोंके माता समेत जल जानेसे मेरे भाई बड़े
यशस्वी पाण्डु सत्यही मरे । कौरवलीग वार-
णावतमें जाकर उनवीरों और कुन्तीराज-
पुत्रीका अग्नि संस्कार करें ; मेरे कुलकी प्रथाके
अनुसार जितने शुभ तथा बड़े बड़े कर्म हैं,
उनकीभी भले प्रकार करे और जिन जिन
लीगोंने वहां पर देह छोड़ी है, उनके वात्सव्यभी
वहां जावे । इस दृशमें पाण्डव और दन्तीके
लिये जितने हितकारी ही रुके, सब पनके

सहारे कर डालें। अम्बिका पुत्रने ऐसा कह-
कर ज्ञातियोंके साथ पाण्डवोंकी जलक्रिया
की। सब कौरव एकत्र मिलकर अति शोकसे
हाय हाय कर रोने लगे। किसीने हा कु-
कुलभूषण युधिष्ठिर। किसीने हा भीम !
किसीने हा फाल्गुन। किसी किसीने हा
नकुल। हा सहदेव। अथवा किसीने हा
कुन्ति। इस प्रकार कातर स्वरसे शोक करते
हुए, उदकक्रिया पूरी की और दूसरे पुरवासी
पाण्डवोंके शोकसे बहुत कातर हुए। विदुर
अल्प शोक दिखाने लगे, क्योंकि वह सच्चे समा-
चार जानते थे।

इधर महाबली पाण्डवगण माताके साथ
वारणावत नगरसे निकल करके गङ्गाजीके
किनारे जाकर मत्स्यदेवके भुजबल, सीतेके वेग
और सहाय वायुके सहारे बड़े शीघ्र अन्य पारकी
जा पड़ेंगे। वे नौकाको छोड़ कर रात्रिकी
तारोंके सहारे पथ जानकर दक्षिण और चलने
लगे। हे राजा। उनकी बड़ी बड़ी चेष्टा
से अन्तकी एक तपोवन मिला। तब नींदसे
अन्धे धके और प्यासे पाण्डवोंने भीमसेनसे
कहा, कि देखी इससे अधिक और क्या कष्ट
हो सकता है, कि हम इस सघन वनने आपड़े
हैं, अब नती दिशा निश्चय होती है और न
चल सकते हैं। नहीं जानते वह पापात्मा
पुरोचन जला वा नहीं; वह जलभी गया
हो, तो हम औरोंके बिना देखे क्योंकि इस
गहरी विपत्तिसे पार होंगे? हे भारत। अकेले
तुम्ही हम सबोंसे बली और पवनसम वेगवान
हो, तो फिर हम सबोंको पूर्ववत् ले चलो।
धर्मराजके ऐसा कहनेपर महाबली भीमसेन
कुन्ती और माताओंकी लेकर शीघ्र चलने
लगे।

जुगुप्सुपर्वमें एकसी एकावन

अथाय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि महाबली भीम
सेनके जानेके कालमें शाखापत्रवोंसे भरा हुआ,
वह वन उनकी उरुकी चोटसे डोलता हुआ,
मानो घूमने लगा। जिस प्रकार जेठ और
आपाढ़ महीनोंमें प्रबल हवा बहती रहती
है, वैसेही उन महाबलीकी जाँघकी चोटसे
पवन सनसनाने लगी; इससे निकटकी लता
और वृक्ष टूट फूटकर अच्छा पथ बनने लगा।
वह उस पथके निकटके फूल फलवाले वन
स्मृति और लतायोंको खूंदते हुए, चलने लगे।
गर्दैन आदि तीन प्रकारके अङ्गोंसे गलित अहं-
कृत पाठवर्ष अवस्थायुक्त, क्रोधित गजराज जिस
प्रकार वनके बड़े बड़े पेड़ोंको तोड़ता हुआ
चला जाता है, वैसेही वह बड़े बड़े पेड़ोंको
तोड़ते हुए, चलने लगे। गरुड़ और पवन
समान वेगवान भीमसेनकी गतिके वेगसे युधि-
ष्ठिर आदि अचेतनकी मंति होगये थे। वह
दोनों भुजरूपी पक्षवोंसे पथमें गङ्गाजीकी बहती
धारकी वार वार पार कर दुर्घोषनके
भयसे छिपकर गये थे। नदीतटके ज्वे नीचे
स्थानमें यशस्विनी कीभलाङ्गी माताको पीठ
पर लेकर वह अति कष्टसे चले। हे भारत
अष्ट। अनन्तर ऐसे एक भयानक निर्जन
वनमें जहां फल फूल जल मिलने योग्य नहीं
है और हिंसक पशु पक्षी वस्तु है, सम्यक्
समय आनपड़ेंगे। वहां गाढी अंधेरीसे भरी
समस्या आयी। भयावने पशु पक्षियोंके शब्द सुनाई
देने लगे और दिशाएँ देखी नहीं गयीं, और
बड़ी प्रचण्ड अकालिक पवन बह रही थी,
उससे वह गले सड़े पत्ते और सूखे फलवाले
छोटे बड़े पेड़ तथा लता कुछ टूटने और कुछ
नीचे गिरने लगीं, तब कौरव लोग नींदसे जकड़े
धके और प्यासे बने आगे चश नहीं रके
पानभोजन-रहित होकर उस बड़े भारी वनहीमें
बैठ गये। आगे कुन्ती प्यारके मारे विकल होकर
पुत्रोंसे बोली, कि मैं पाँच पाण्डवोंकी माता

हेकर पाचों पाण्डवों के बीचमें रहकरके भी जल की प्याससे कातर हो गयी। कुन्ती बार बार यह कहने लगी। भीमसेनका हृदय उससुनकर माटलैह तथा करुण भावसे पूरित हुआ। वह फिर चलने लगी। उसके अनन्तर निर्जन घोर महावनमें प्रवेशकर दूरतक छाह देनेवाले एक सुन्दर बड़की देखा। हे प्रभो। भरतश्रेष्ठ भीमसेन उन सबों को वहां उतारकर बोले, कि आप यहां विराजें मैं जल दूढ़ लाऊ। यहां जलमें चरनेवाले सारस पक्षियों का कलाला सुन पड़ता है, सुभको जान पड़ता है, कि यहां बड़ा जलाशय होगा। आगे वह बड़े भाईकी आज्ञासे उधरकी चली, जिधर जलमें चलनेवाले पक्षियोंकी ध्वनि सुनी जाती थी।

हे भरतश्रेष्ठ। उन्होंने वहां जाकर नहा करके जल पीया। आगे भावप्रिय भीम भाइयोंके लिये दुपट्टे में जल लेकर लौट चली। अनन्तर वेगसे उन दो कोसोंकी दूरीसे लौट आकर माताकी ओर देखकर शोक और दुःखके मारे विह्वल होकर उरग की भांति लम्बी शंस छोड़ी। वृकोदर माता और भाइयोंको धरती पर पड़े और सोये देखकर अतिशोकसे विलपने लगे, कि इससे और अधिक कष्ट क्या होना है, कि सुभ दुर्भाग्यकी भाइयोंको धरती पर सीते हुए देखना पड़ता है। पहिले वारणावत नगरमें बड़े बड़े मूल्यके विस्तारोपर जिनकी नींद नहीं आती थी, आज वे मिट्टी पर पड़कर सीते हैं। देखो, जो शत्रु दलके नाशनेवाले वसुदेवकी वरिष्ठ राजा कुन्तीराजकी बेटी, विचित्रवीर्यकी पुत्रवधू महात्मा राजा पाण्डुकी स्त्री और हमारी माता है, जो सर्व अच्छे लक्षणोंसे सुशोभित पद्म-गर्भ सदृश रूपवती, बड़ी कीमत्तावाली और इहे मूल्यवान विस्तारो पर सीने योग्य है, क्या उस इन्तुकी आज मिट्टी पर सीना सजता है ?

जिन्होंने धर्म, द्रुपद और पवन इन सब देवोंसे यह सब सन्तान प्राप्त की है और सदासे बड़े बड़े भवनोमें सीती आई हैं, वह आज यकावटके मारे धरती पर लोटती है। फिर इससे मेरे लिये और कौन दुःख देखा जायगा, कि मैं आज इन पुत्रोत्तमोंको मिट्टी के विह्वल पर पड़े हुए देखता हूं। धार्मिकवर राजा युधिष्ठिर जो तीनों लोकोंके अकेले अधिकारी होनेके योग्य है, हाय। वह आज क्यों कर सामान्य जनकी भांति यकावटके मारे मिट्टी पर सीने है। इससे और क्या अधिक दुःख होना है कि, नीले बादल समान श्रीमान अर्जुन, जिनकी बराबरी करनेवाला इस भूतलोकमें कोई नहीं है, आज छोटेसे मनुष्यको नाईं मिट्टी पर पड़े है। और यह दो जिलहे भाई जो रूप रूपमें देवोंमें अश्विनीनुभारे के सदृश द्युतिमान हैं, वे साधारण लोगों की भांति धरती पर लोट रहे हैं। जिसके कुलनाशी भयानक ज्ञाति अर्थात् पटैत नहीं है, वह ग्रामके वृद्ध ऐसा अकेला सुखसे दिन काट सकता है। देखो, ग्राम भरमें ज्ञातियोंसे खाली फल पत्रोंसे सुशोभित एकही वृद्ध रहे तो, वह वृद्ध चैय करके भले प्रकार पूजा जाता है, अथवा इस भूतलोकमें जिनके धार्मिक वीर-वर वृद्ध ज्ञाति रहते हैं, वे भी विना लेश सुखसे काल काटते हैं और वृद्धतेरेभी बली ऐश्वर्ययुक्त और मित्र वान्धवोंको आनन्द देते हुए वनमें उपजे हुए वृद्धोंकी भांति एक दूसरेके सहारे परम सुखसे काल व्यतीत करते हैं, पर कुबुद्धि धृतराष्ट्र और दुःखोपनने हमको खदेड़ा है, किन्तु देववश हम किसी तरह जलनेसे बचे। उस आगसे बचकर कटोर लेश भोगते हुए इस वृद्धके आसरमें आये हैं। अब फिर किवर जावें ? हे कुबुद्धि ! अल्प-दर्शन् ! धृतराष्ट्र ! तू अब अपनी आग प्रीति कर। सन्देह नहीं है, कि तुम्हपर

द्विगुण प्रसन्न है। रे कुमते! युधिष्ठिर तुझे मार डालनेकी आज्ञा नहीं देते, इस लिये तू जीता है। क्या आजही मैं कोपा-विष्ट होकर तुझको वेग, मन्त्री, कर्ण, क्रीटे भाईलोग और शकुनिके साथ यमराजके घर नहीं भेज सकता? पर क्या करूँ, धर्मात्मा पाण्डवोंमें अष्ट राजा युधिष्ठिर तुझ पर क्रोधित नहीं होते हैं। महाभुज हकीदरने इस प्रकार क्रोधके मारे चित्तकी मलिन करके हाथसे हाथ रगड़ दुःखके मारे लम्बी श्वास छोड़ी; आगे बुझी हुई आगकी नाईं फिर दोन चित्तसे भाइयोंकी और देखकर सोचने लगे, कि यह लोग विश्वाससे साधारण जनोंकी भाँति सो रहे हैं। सुभकी जान पड़ता है, कि इस वनके पासही नगर है, जो जगाना चाहिये; पर ये सो गये हैं, सो मैं जग रहूँ। इनकी यकावट दूर होनेसे जब यह जागेंगे, तब जल पीयेंगे। भीमसेन तब ऐसा निश्चय कर स्वयं जागने लगे।

एकसौ बावन अध्यायमें जतुग्रह पर्व समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोलि, कि वे जहाँ सेते थे, वहाँसे थोड़ी दूर पर एक सालके वृक्षपर नर-मांस पर जीता हुआ बड़ा वीर्यवन्त अति पराक्रमी वर्षाके बादलकी भाँति काला देखनेमें भयानक और भूखा हिडिम्ब नामक एक कुटिल राक्षस था। उस मांसभोजीका जङ्घा-मूल और पेट बहुत बड़ा, दोनों नेत्र पिघले, दाढ़ी और केश लाल, मुख बड़े बड़े दाँतोसे बड़ा विकराल, गला और गर्दन बड़े वृक्षके कन्धेकी नाईं और दोनों कान शङ्खकी भाँति थे। देखनेमें बड़ा भयानक उस वेदव पिघली आँखयुक्त मांसखोर भूखा करालरूप राक्षसकी दृष्टि एकाग्र होती हुई पाण्डवों पर जापड़ी। बड़ा, भारी, अति बली, घने बादलके समान, दाँत वाला और जलना हुआ मुखयुक्त

वह मांसखोर मनुष्योंको गन्ध संघकर उंगली उठाकर सिर खुजलाता रखे केश डुलाता लम्बा चौड़ा मुँह खोल बार बार उनकी देखता हुआ नरमांस खानेकी आशासे बहिनसे बोला, कि बहुत दिन पर आज मेरा बड़ा प्यारा खाना आ पहुँचा है, मांसखानेका सुख आने पर मेरी जीभसे रस गिर रहा है। मेरे आठ दाँतोंका अगला भाग बड़ा तेज है, यह बड़े दाँत जिस पर जा लगते हैं, इनकी चीट उससे सही नहीं जाती, उन दाँतोंकी आज बहुत दिनपर कोमल मांसवाली देहमें घुसाजंगा। आज मैं मनुष्योंकी गला पकड़ नसे निकाल वृक्षत गर्भ घना रक्त पीजंगा। तुम वहाँ जाओ और जानो, कि वे कौन, क्यों इस वनमें सेते हैं? सुभकी निश्चय जान पड़ता है, कि वे मनुष्य होंगे, क्योंकि मनुष्यकी तेज गन्ध मेरी नाककी सुख पहुँचा रही है, सो तुम उन मनुष्योंकी मार कर मेरे पास लेतो आओ। वे मेरे अधिकारमें सो रहे हैं, उनसे तुम कुछ भय मत खाना। हम दोनों एकत्र होकर उन मनुष्योंको देहसे मांस चुन चुन कर मनमाना खावेंगे, तुम तुरन्त मेरी बात मानकर काम करो। आज हम मनमाना मांस खाकर दोनों एकत्र होकर भाँति भाँतिके ताल देंगे हुए नाँचेगे। तब राक्षसो हिडिम्बा हिडिम्बकी यह बात सुनकर जहाँ पाण्डवलोग जाते थे, वहाँ भाट चली गयी और पहुँचकर देखा, कि पाण्डवलोग और पृथा सीते और जयके अयोग्य भीमसेन जागते हैं। राक्षस नये सालवृक्षके समान उदित और धरती भर अनुपम रूप सौन्दर्ययुक्त सुन्दर पुरुष भीमसेनको देखतेही कामदेवके वशमें ही गयी और समझा, कि यह गौरवर्ण महाभुज सिंह गर्दन अति द्युतिमान शङ्खग्रीव पद्मनेत्र पुरुष मेरे पति होनेके योग्य है। मैं कभी निष्ठ भाईको बात न मानगी, क्योंकि पति पर

जितना बल करता है, उतना भाईपर कभी नहीं करता, और इनकी मारनेसेभी भइया और मुझकी क्षणभर सुख मिलेगा, पर न मारनेसे सदा इनसे आनन्दकी उमड़में बड़ा सुख पा सकूगी। ऐसा समझकर कामरूपी राक्षसी सुन्दर मानवीरूप धरकर महाभुज भीमसेनके पास धीरे धीरे जा पड़ची। आगे सुन्दर आभूषणोंसे सजी हुई वह राक्षसी नम्र-भावसे लज्जिता सी कुछ मुसकिराती हुई भीमसेनसे बोली, कि हे पुरुषश्रेष्ठ ! आप कौन हैं, कहाँसे आये हैं। और जो यह देव-रूपी पुरुषगण सीये हैं, वे कौन हैं ? हे अनघ ! यह जो तप्त सुवर्णके रङ्गको कोमलाङ्गी रमणी घरमें रहनेकी भाति विश्वासपूर्वक इस वनमें लेटकर सी रही है, यह आपकी कौन लगती है। क्या वह नहीं जानती, कि इस वनमें राक्षस रहते हैं, यहाँ हिडिम्ब नामक पापात्मा राक्षस वसता है, वह राक्षस मेरा भाई है। हे देववत मनुष्यगण ! उस मांस भोजीने आपके मांस भोजन करनेके लिये बुरे अभिप्रायसे मुझे भेज दिया है, पर मैं आपसे सच कहती हूँ, कि देववत आपकी देखकर आपके बिना किसी दूसरेको पति बनाया नहीं चाहती। हे धर्मशील ! इसपर ध्यान देकर मुझपर यथोचित व्यवहार करिये। मेरा मन और अङ्ग सब कामके वाणसे घायल हुए हैं। मैं आपकी भज रही हूँ, आप मुझपर कृपा करें। हे महाभुज ! मैं आपका इस पुरुष-भोजी राक्षससे वचाजंगी। हे अनघ ! आप मेरे पति होंगे। हम दोनों पहाड़ पर दुर्गमें रहेंगे। मैं आकाशमें उड़नेवाली हूँ, इच्छानुसार आकाशदि नव स्थानोंमें चलती फिरती हूँ आप मेरे सङ्ग उन सब स्थानोंमें घूमकर अपार आनन्द लूटेंगे। भीमसेन बोले, कि राक्षसि इन्द्रिय निग्रहवाले मुनिके समान कौन माता और बड़े तथा छोटे भाइयोंका

त्याग कर सकता है ? और मेरे सदृश कौन मनुष्य कामसे पीड़ितकी भाति सुखसे छोटे भाई और माताको राक्षसके भोजनके लिये छोड़कर चला जा सकता है ? राक्षसी बोली, कि आप जैसा चाहेंगे मैं वही करूंगी आप, इनकी जगावें, मैं सहजहीमें सबोंको मनुष्य-खोर राक्षसके हाथसे मुक्त कर दूंगी। भीमसेन बोले, कि हे राक्षसी ! तुम्हारे दुरात्मा भाईके भयसे इस वनमें सुखसे सीये हुए भाइयों और माताको नहीं जगा सकूंगा हे भीरु सुनेत्रे ! मनुष्य, गन्धर्व, यक्ष वा राक्षसमें कोईभी मेरा पराक्रम सह नहीं सकता है। हे भद्रे ! तुम चाहे जाओ वा रहो, अथवा तुम जो चाहो हो करो, किम्बा हे सुन्दरि ! तुम अपने उस पुरुषभीजी भाईको भेजो, मैं न ता कोई विधि कहूंगा और न मना करूंगा।

हिडिम्बवधपर्वमें एकसी तिरपन
अध्याय समाप्त ।

श्रीनैशम्पायनजी बोलें, कि अनन्तर लाल-नेत्र, महाभुज, केश ऊपर छड़ा हुआ, लम्बे चौड़े मुहवाला घने बादलसमान काला और तेज दातवाला वह विकराल आकारयुक्त राक्षसनाथ हिडिम्ब हिडिम्बाकी बड़ी देरी देख उस वृक्षसे नीचे उतर पाण्डुवीके पास शीघ्र आने लगा। हिडिम्बा दैसे निकट राक्षसको गिरते देखकरकेही भयसे घबराकर भीमसेनसे बोली, कि वह देखो, दुष्टात्मा पुरुष नाशी क्रोधित होकर उतर रहा है, अब मैं जैसा कहती हूँ, आप भाइयोंके साथ वह करें। हे वीर ! मैं अपनी जातिके बलवीर्य रखनेके हेतु मनमाने मर्त्य जा सकती हूँ। आप मेरी कसरपर चढ़कर, आपका आकाशमें लेतो जाऊँ। हे शत्रुनाश ! आप इन सीते हुई माता और भाइयोंको जगावें, मैं सबोंका

लेकर आकाश मार्गमें जाऊगी, भीमसेन बोले, कि ऐ सुन्दरी ! तुम भय मत खाओ, सुभको निश्चय जान पड़ता है, कि मेरे लिये वह राक्षस बड़ा तुच्छ है; करो मेरो हिंता नहीं कर सकेगा। ऐ सुन्दरी ! तुम देखलो, तुम्हारे सामने ही मैं उसको नष्ट करता हूँ। रो भीरु ! उस नीच राक्षसकी क्या कहती हो, जितने भर राक्षस हैं, सब भी आवें, तो मेरे साथ लड़नेमें समान होकर नाश-लीलासे नहीं बचेंगे। हस्तीकी सूंडसे यह दो भुज, लोहिके सुन्दर समान दो जांघ और बड़े तथा कड़े दातोंकी देखो। ऐ सुन्दरि ! तुम आज महेन्द्रकी मंति मेरे विक्रमको देखोगी। ऐ चौड़ी कमरवाली ! तुम सुभकी मनुष्य मानकर कम न समझना। हिडिम्बा बोली, कि हे नरव्याघ्र ! आप देवरूपी हैं, मैं आपका अनादर नहीं करती, पर मनुष्यपर राक्षसका जितना प्रभाव है, वह मैं देख चुकी हूँ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भारत ! भीमसेन हिडिम्बासे यह बातें कर रहे थे, कि ऐसे समय मनुष्यखोर हिडिम्बने क्रोधपूर्वक आनकर वह बातें सुनलीं और देखा, कि हिडिम्बाने सुन्दर मनुष्यका स्वरूप लिया है। उसके केशोंमें फूलहार लगे हैं, मुह पूर्ण चन्द्रमासा शोभायमान है भौंहे, नाक, नेत्र और केश सब सुशोभित हैं, नख और त्वचा कोमल हुए हैं और सुन्दर पतला वस्त्र तथा सम्पूर्ण आभूषणोंसे सर्व शरीर बने रने हैं। उसकी ऐसा सुन्दर मानवी स्वरूप लिये देखकर पुरुष चाहनेवाली जान करके वह बड़ा कोपाविष्ट हुआ। हे क्रूरच्युत ! तब वह क्रोधके मारे अपनी बड़ी आंखोंको निकाल कर वहिनसे बोला, कि मैं भोजन चाहता हूँ, किसकी ऐसी कुमति हुई, कि मेरो उस इच्छामें विघ्न डाला चाहता है। हिडिम्बा ! तू मोहित हो मेरे क्रोधसे भय नहीं खाती ?

रो असति ! तू पुरुषकी चाहसे मेरे अप्रिय काममें हाथ डालती है ? तुझ पर धिक्कार है ! तुझसे पहिलेके अष्ट राक्षसोंके यशस्वी चन्द्रमा पर कलङ्कके धब्बे लगे। तू जिसके शरीरसे मेरा बड़ा अप्रिय करने पर उद्यत हुई है, आज मैं अभी तेरे सहित उसका काम पूरा करे देता हूँ। राक्षसअष्ट हिडिम्बा आंखें लानकर हिडिम्बासे उस प्रकार कह करके दातसे दात पीसता हुआ पाण्डवोंके बचके लिये दौड़ा। मारनेमें दक्ष राज्ञी भीमसेन उसकी आते देखकर लाञ्छनके साथ "तिष्ठ तिष्ठ" ऐसा बोले।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि भीमसेन उस राक्षसकी वहिन पर क्रोधाहित होते देखकर हंसते हुए बोलने लगे, कि रे कुमति नरखोर ! तुम्हें हिडिम्बासे क्या प्रयोजन है और इन सब सुखसे सीधे भाइयोंके जगान हो की भी क्या आवश्यकता है ? तू तुरन्त मेरे पास आ और सुभका मार। स्त्रियोंका मारना तुम्हें नहीं सीखता। विशेष एकको दोषसे दूसरोंका मारना टोक नहीं है, इस बालाने आज अपने वशमें रहकर सुभे कामना नहीं की है। कामदेवन इसके शरीरमें घुसकरकेही इस और झुकाया है। रे राक्षसकुलके यशनाशी दुराचारी अधम राक्षस ! तेने वहिनने तेरेही नियोगसे यहां आनकर मेरा रूप देखके सुभे कामना की है, सो यह भीरु अबला तेरे पाप दोषी नहीं बन सकती, कामदेवनेही यह दीप किया है, अतएव तुम्हें इस सुन्दरीकी लाञ्छन करना नहीं चाहिये। रे दुष्टात्मा ! मेरे रहते तू इस नारीकी मार नहीं सकेगा। रे नरभोजी ! तू अकेला है, अकेले मेरेही साथ तू लड़, मैं अकेलाही आज तुम्हको यमराजके पाङ्गना बनाऊंगा। आज तेरा सिर मेरे भुज बलसे ऐसे पीसे जाकर चूर हो जायगा, कि मानी बलवन्त हाथीके पावोंसे कुचल गया हो।

आज रणभूमिमें तेरे मारे जानेसे कङ्क, श्वेत, और गोमायु आनन्दसे नीचे उतरकर तेरे शरीरकी खींचने लगेंगे। पहिले तूने सदा मनुष्य खाकर जिस वनकी दूषित किथा था, आज मैं क्षणभरमें राक्षससे उस वनकी खाली बना दूंगा। रे राक्षस। सिंह जिस प्रकार बड़े गजपर चढ़ जाता है, वैसेही आज पर्वतवत तुमको तेरी बहिनके देखनेमें मैं बार बार खिचूंगा। रे राक्षस-कुलमें अधम। तेरे मारे जाने से इस वनमें रहनेवाले लोग बिना बाधा इस वनमें रहेंगे। हिडिम्ब बोला, कि रे मनुष्य। तेरे इस व्यर्थ गर्जन और व्यर्थ बातोंके कहनेसे क्या होना है? जैसा कह रहा है, उसे कर दिखाके अपनी बड़ाईकी प्रगट कर, देर मत कर। तू अपनेकी बली और पराक्रमी समझता है; पर तू कितना बल और वीर्य-वाला है, वह आज सुझसे मिलनेहीसे समझ सकेगा। मैं इस समय उनको नहीं मारूंगा, वे सुझसे सीधे रहें। रे कुबुजे। हालमें तेरे समान कड़ी बात कहनेवालेहीको नष्ट करूं। पहिले तेरी देहसे रक्त पीलगा; फिर आगे उनको मारूंगा; अन्तमें इस अप्रिय करनेवाली-कोभी मार डालूंगा। वैशम्पायन बोले, कि नरमांस खानेवाला राक्षस यह बात कहके हाथ बटाकर क्रोधसे शत्रुनाशी भीमसेनपर दौड़ा। भीम-पराक्रमी भीमने हंसते हुए उसीक्षण दौड़े आते हुए उस राक्षसके वेगसे चलाये हुए हाथोंको पकड़ लिया। वह पलपूर्वक उन फैलाने हुए हाथोंकी धामके तथा उसको इस प्रकार खिंचके कि जैसा सिंह पीटे लकड़ी पकड़ता है, वही से डाउ धनु चलाते पत्तीस छद्मकी दूरीपर ले गये। अनन्तर राक्षस पलपूर्वक पारव भीमसेनसे पीड़ित होकर उनको करके लपेटकर उड़े शब्दसे विमान लगा। कहीं उस शब्दकी सुनके

सुखसे सीधे हुए, भाइयोंकी नीद न टूटे, इस लिये महावली भीमसेनने फिर बलपूर्वक उसे पकड़ा। तब हिडिम्ब और भीमसेन दोनों दोनों पर विक्रम प्रकाश करते हुए वलसे एक दूसरेकी पकड़ने लगे। वे दोनों घाठ वर्षके क्रोधित गजोंके समान वृद्धोंकी तोड़ने तथा लताओंकी उखाड़ने लगे। उनके उस बड़े कोलाहलसे नरश्रेष्ठ पाण्डवोंने माताके साथ जगकर सामने खड़ी हिडिम्बाको देखा।

हिडिम्बवधपर्वमें एकसौ चौवन

अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि कुन्ती और पुरुष-श्रेष्ठ पाण्डेवाने जगकर हिडिम्बाका अलौकिक रूप देखकर अचरज माना। आगे कुन्ती उसकी ओर भली भांति ताकके रूपकी शोभा देखकर अचरज मान शान्त और मीठी बातोंमें धीरे धीरे बोली, कि ऐ देवकन्या समान सुन्दरी! तुम कौन हो? ऐ वरवर्णिनि! तुम किसकी स्त्री हो? तुम किस कामके लिये और कहांसे यहां आयी हो? यदि तुम इस वनकी देवी वा अप्सरा हो, तो सुझसे कहो कि क्यों यहा खड़ी हो?

हिडिम्बा बोली, कि नीले बादलकी भांति जो यह हिडिम्ब नामक राक्षसके और मेरे वसनेका स्थान है, 'ऐ भामिनि' मैं उस राक्षस-नाथ हिडिम्बकी बहिन हूँ। मेरे भाईने आपकी और आपके पुत्रोंकी हिंसा करनेकी सुझकी भेजा था। ऐ आर्षे! मैंने उस कुटिलबुद्धि भाईकी बातसे यहा आके कच्चे सुवर्ण समान अद्भुत आपकी महावली पुत्रको देखा। ऐ शुभे! जा मर्जजीवोंके मन-मन्दिरमें धूमा फिरा करते हैं, मैं आपके पुत्रकी देखनेही उम्मी मन्मथके वशमें होगयी हूँ। मैंने मदनवाणकी मन्मथ निकालना चाहा, पर किसी प्रकार मन्मथ नहीं हुँ;

अतएव आपके महावली पुत्रको मैंने मनही मनमें भर्त्ता करके वरणा किया है। अनन्तर उस राक्षसपतिने मुझको जिस काममें भेजा था, उसको देरो देखकर आपके इन पुत्रोंको नष्ट करनेकी खयहो आ गया है। आगे मेरे प्रिय धीमा! महात्मा आपके वह पुत्र बल-पूर्वक उसकी घसीटकर यहांसे कुछ दूर लेगये है। युद्धमें विक्रम दिखाकर ललकारते हुए एक दूसरेकी दड़ वेगसे पकड़ रहे हैं।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि उसकी यह बात सुन करकेही वीर्यवन्त युधिष्ठिर, अर्जुन, नकुल और सहदेव ये एकायक उटकर उस युद्ध-स्थानके निकट गये। उन्होंने देखा, कि राक्षस और भीम दोनों जयकी आशासे एक दूसरेकी पकड़कर अति बली सिंह समान खच रहे हैं, और वे एक दूसरेसे लपटकर बार बार खेंचके दावानिके धूँकी नाई धूँआ उठा रहे हैं, तथा पर्वतवत धुँसे ढंपे जाकर हिमसे ढंपे पर्वतकी भांति प्रगट होते हैं। अनन्तर अर्जुन भीमसेनकी राक्षससे पीड़ित होते देख कर हंस्ते हुए धीरेसे बोले, कि हे महाभुज भीम। आप भय मत खाना। हम आपके मादे थे, सो नहीं जान सके, कि आप ऐसे घोररूप राक्षससे भिड़ गये हैं। पार्थ! मैं आपको सहारा देनेकी खड़ा हो गया हूँ, मैंही इस राक्षसको नष्ट करूँगा, नकुल और सहदेव माताकी रक्षा करेंगे। भीम बोले, कि तुम्हारे इससे मिलनेका प्रयोजन नहीं होगा। देखो मत हड़बड़ाओ। जब यह राक्षस मेरे दोनों हाथोंके तले आ गया है, तब कभी जीता नहीं रहेगा। अर्जुन बोले, कि हे भीम। इस पापात्मा राक्षसकी देरतक जीवित रखनेका क्या प्रयोजन है? यदि मुझको जाना पड़े, तो यहां अब अधिक काल रुका नहीं जाता है। आगे पूर्वदिशा लाल और प्रातः संज्ञाका काल आ जायगा।

रौद्र मुहूर्तमें अर्थात् ब्राह्ममुहूर्तके पूर्व। दण्डकाल राक्षस प्रबल होते हैं; अतएव भीम! आप शीघ्र काम पूर्ण करिये, व इसे लेकर खेलते न रहिये; इस भीम मांसभोजी राक्षसकी त्याग दीजिये। इस पीढ़ी वह माया फैला सकता है, सो भुजव प्रगट करिये।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि भीमने अर्जुन उस बातसे क्रोधके मारे जलकर प्रलयकालिक हवाका बल सञ्जय किया और उभीक्षण की प्रगटकर बादलके रङ्गकी उस राक्षसकी देहकी सौ बारसेभी अधिक ऊपर उठाकर घुमाया तथा उसका नाम लेकर बोले, कि तू वृथा मांससे वृथाही पुष्ट और बड़ा हुआ है; तेरा बढ़नाभी व्यर्थही है; इस लिये तू व्यर्थ मृत्युके अर्थात् जिस वाङ्मयुद्धमें मरनेसे सर्ग नहीं मिलता है, उसकेही योग्य है, इससे तू व्यर्थ मृत्युकी प्राप्त करेगा! हे राक्षस! आज मैं इस वनकी शान्तियुक्त और कण्ठ रहित करूँगा। तू फिर मनुष्य मारकर छा नहीं सकेगा। अर्जुन बोले, कि आपने यदि युद्धमें इस राक्षसकी भार समझा हो, तो मैं आपको सहायता करूँ, आप इसका तुरन्त अन्त कीजिये। हे वृकोदर। अथवा कष्टों तो मैंही अकेला इसका काम पूरा करूँ। आप कार्य कर थक गये हैं, अब निवृत्त होना ठीक है।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि भीमसेनने उनकी उस बातकी सुनके बड़े क्रोधित हो वनसे राक्षसकी मिट्टी पर पीरकर पशु मारनेकी भांति नष्ट किया। राक्षसने मरनेके समय जलसे भीड़े हुए नगाड़े की नाई घोर शब्दमें चिला कर उस वनकी पूरित किया। बलवन्त महाभुज पाण्डुनन्दनने राक्षसकी हाथीसे पकड़ कर उसके मझले भागकी तोड़कर पाण्डुओंके आनन्दित किया। बलशाली पाण्डुपुत्रों

हिडिम्बकी नष्ट होती देखकर प्रसन्न चित्तसे नरश्रेष्ठ शत्रुनाशी भीमसेनकी बड़ी प्रशंसा की। अनन्तर अर्जुन महात्मा भीमपराक्रमी वक्रोदरका आदर कर बोले, कि हे विंभो ! सुभकी जान पड़ता है कि इस वनसे नगर बड़ी दूर नहीं है। चलिये, हम उस स्थानमें शीघ्र जायें, सुर्योधन हमारा समाचार नहीं पोषण। अनन्तर कुन्ती और सहारथी पुंसपोत्तम पाण्डवगण उसपर सम्मत हो वहांसे चढ़ने लगे और हिडिम्बा भी उनके साथ चली। हिडिम्बवधपर्वमें एकसौ पचपन अध्याय समाप्त।

भीमसेन हिडिम्बाकी साथ आते देखकर बोले, कि हिडिम्बे राक्षसगण मोहिनी माया धारणकर पहिली शत्रुताकी शरणा किये रहते हैं; सो तुम्हारा भाई जिस पथमें गया है, तुम उसी पथमें जाओ। युधिष्ठिर यह सुनकर बोले, कि हे पुण्ड्रव्यास भीम ! तुम क्रोधित हुए हो, तो भी स्त्रियों को मत बधो। हे पाण्डव ! शरीर से धर्म बड़ा है, सो धर्मको पालन करो। जब तुमने उस महाबली राक्षसको, जो हमको मारने आया था, मार डाला है, तब उसकी बहिन क्रोधकर हमारा क्या कर लीगी ?

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर हिडिम्बा कुन्ती युधिष्ठिरकी प्रणामकर कुन्तीसे बोली, कि ऐ आर्य ! आप जानती हैं, कि स्त्रियोंकी अनङ्गसे कितना दुःख होता है। ऐ शुभे ! भीमसेनसे इस अनङ्गपीड़ाके द्वारा मैं सतायी जाती हूँ। मैंने कालकी ओर ताककर उस गहिरें दुःखकी सह लिया था, अब सुखका समय आपहुंचा है। ऐ शुभे ! मैंने सपत्नी, मित्रों और स्वजनोंकी तजकर आपके पुण्ड्रश्रेष्ठ पुत्रकी पतिके पद पर बैठाया है। ऐ सुन्दरी यशस्विनी ! मैं सब कहती हूँ, कि यदि यह जोर जा आप मेरी जानकी न सुनगी,

तो मैं न जीजंगी; अतएव आप चाहें मूढ़ा समझकर, वो भक्त अथवा कृपापात्र जानकर सुभपर कृपा दिखायें। ऐ महाभागी ! आपके पुत्र मेरे पति इन भीमसेनसे सुभकी भिजावें, मैं इन देवहूयी प्रतिकी लेकर जहां मन चाहे, जाऊँ। आगे फिर इनकी लाजंगी ऐ शुभे ! आप मेरा विश्वास करें। आपके सुभे शरण करने पर मैं उसी क्षण आकर आप लोगोंकी मनुमाने स्थानमें ले जाऊंगी। फिरभी आप कहीं शीघ्र जाना चाहें, तो आप लोगोंकी उसी क्षण पीठपर चढ़ाकर लेनी जाऊंगी। आप प्रसन्न हों, कि भीमसेन मेरी भजना करें। विपत्तसे बचनेके लिये चाहे जिस किसी उपायसे क्यों नहीं अपनी रक्षा करनी चाहिये, और उस एक धर्मकी शरण ले करके सब कुछ दशा मान लेनी उचित है; धर्मशील जनोंके लिये विपत्तही धर्मकी रोकनेवाली है, सो जो जन विपत्तकालमें भी धर्मकी रक्षा करते हैं, वही धार्मिकोंमें उत्तम है। प्राण धरनेके लिये पुण्य है, पुण्यहीकी पण्डितोंने प्राण देनेवाला कहा है; अतएव हर किसी मना किये हुए कर्मकोभी करके प्राण बचाना चाहिये, उससे निन्दा नहीं होती। युधिष्ठिर बोले, कि ऐ सुन्दरी हिडिम्बे ! इसमें सन्देह नहीं, कि तुमने जा कहा, वह ठीक है, पर तुमने जैसा कहा, तुमकी उसी सत्यमें आवद्ध रहना पड़ेगा। भद्रे ! भीमसेनके नश्वरे आह्विक करलिये और कौतुकमङ्गल कर चूकनेपर सूर्यास्तके पूर्वतक तुम उनको भजना कर सकोगी। ऐ मनाविगके अनुसार चलनेवाली ! दिनकी इस भीमसेनसे जहां मन चले बिहारकर नित्य रात्रिकी उच्छे लाय देना।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि भीमसेन उस पर सम्मत होकर हिडिम्बासे बोले, कि ऐ निशाचरि ! सुनो, मैं सत्य करके तुमसे एक नियम करता हूँ। ऐ शुभे सुन्दरि ! जयन्त

तुमको पुत्र नहीं होगा, तबतक तुम्हारे साथ मिलूंगा । श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर राज्ञसी हिडिम्बा वह मानकर भीमसेनको ले करके उसी क्षण आकाश मार्गकी चली गयी । आगे मनकी समान तेज चलनेवाली वह राज्ञसी परम मनोहर रूप धारणकर सर्व आभूषणोंसे बनठनकर और भीठी बोली बोलती हुई समय समय पर नाना स्थानोंमें भीमसेनके साथ आनन्द लूटने लगी । कभी सुन्दर पहाड़की चोटी पर, कभी मृग पक्षियोंके शब्दसे गूँजते हुए मनोहर दिवसन्दिरमें, कभी वनदुर्गमें, कभी फूले वृक्षोंसे सुहावनी सानुमें कभी नीले तथा लाल पद्मसे सुशोभित सुन्दर सरोवरमें, कभी वैदुर्यमणि और नदीके बालू-पूरित दीपमें कभी सुन्दर वन और अमृत समान जलसे सुशोभित अक्षेतीर्थ पहाड़ी नदीमें, कभी फलवाले पौधे और लतासे सुहावने वनमें, कभी हिमाचलके कुण्डमें कभी खिले कमलोंके समान सौहते हुए अमल जल भरे तालमें, कभी मणिसुवर्ण पूर्ण सागर खण्डमें, कभी मनोहर नगर और उपवनमें, कभी पहाड़ोंकी कन्दरामें, कभी गुह्यकोंकी वामभूमिमें, कभी तपस्वियोंके स्थानमें, अथवा कभी सदासे फलफूलयुक्त मनोह्रन मानस सरोवरमें क्रीड़ाकर पाण्डव भीमसेनको आनन्द देने लगी । आगे उस राज्ञसीने भीमसेनसे भीमाकार बड़ा भारी अति बलवीर्यवन्त, बड़ा चापधारी, महान् सत्त्ववान्, बड़े बड़े हाथयुक्त अति विगवान्, बड़ी माया रचनेवाला, शत्रुनाशो अमनुष्य पर मनुष्य वीर्यसे उत्पन्न एक पुत्र प्रभव किया । उस पुत्रकी आंखें बड़ी विकट, मुँह बड़ा भारी, कान शङ्खके समान, स्वर अति भयानक, होठोंका रंग तामेकी भांति, दंत कटोले नाक लट्ठी, शरीर चंडी और पिच्छिका अथवा पाँवके डिम् टटे और ऊँचे थे । वह कुमार सम्पूर्ण पिशाच और

राक्षसोंमें बड़ा विक्रमी हुआ । हे राजा ! उस बलवन्त वीरपुत्रने बालक होने परकी यौवनको प्राप्त किया और उसकी मनुष्य लोकमें प्रचलित सम्पूर्ण अस्त्रोंमें अति उत्ति हुई । राज्ञसी जिस दिन गर्भ धरती है, उसी दिन प्रसव करती है और प्रसव किया हुआ बालकभी जन्म लेतेही, बड़लूपी होकर मनुमाना रूप धर सकता है । कमर, गर्दन, मुख, कान, और केश इन सब अङ्गोंके विग्रह होने परभी अनेक प्रभायुक्त और बड़ा चापधारी हिडिम्बाकुमार जन्म लेतेही प्रणाम करनेकी पिता माताके पाँवों पर गिरा, उन्होंनेभी उसका नाम रख दिया । उस बालकके घटके ऐसी उत्कच अर्थात् खड़े केश थे, सो हिडिम्बाने उसकी देखकर ऐसा कहा कि "इसके उत्कच घटकी भांति हैं ।" इसलिये भीमसेनने उसका नाम 'घटोत्कच' रखा । घटोत्कच स्वाधोन होने परभी पाण्डवोंका बड़ा प्रेमी था पाण्डवलोगभी उसका बड़ा करार करते थे । आगे हिडिम्बाने नियम के अनुसार कामकर यह कहके कि "कि पति रहनेका काल बीता" पाण्डवोंकी सम्भाषण पूर्वक अपना रूप ले लिया । राज्ञसीने घटोत्कचभी पितरोंसे यह कह कर कि "आप आनसे आपहुँचगा" सम्भाषण पूर्वक उत्तर और पधारा । महात्मा महेश्वरने विरह बोध वर्जित कर्णकी एक पुरुष मारनेवाली शक्ति लिये इस महारथी घटोत्कचकी विरोधी योधा बनाया था ।

हिडिम्बवध पर्वमें एकसी कृष्ण

अर्चयि र माप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर वे महा रथी महात्मा वीर पाण्डवगणा जटाधारी श्रीकृष्ण मृगचर्म तथा दत्कल पहिन कर माता कृष्णदेवी साथ तपस्वीका वेप लेकर शीघ्रतासे दशरथ

करते हुए एक वनसे अन्यवनकी ओर फिर उस-
वनसे वनान्तरमें गमन करने लगे । जानकी
समय-पथमें, मत्स्य, त्रिगर्त, पाञ्चाल, और कीचक
देशोंके भीतरके सुन्दर-सुन्दर वनखण्ड और
नाना-प्रकारके ताजतालाव देखने लगी । वे
कहीं-कहीं शीघ्रताके लिये कुन्तीकी उठा-लेते
थे ; और कहीं-कहीं सहज-चालमें सुखसे
चलकर पीछे शीघ्र चलते थे । एक-समय वे
सम्पूर्ण वेद वेदाङ्ग और तीतिशास्त्र पढ़े-रहे
थे । ऐसे समयमें पितामह व्यासजीको देखा ।
महामा कुण्डैपायनकी देखतेही शत्रुनाशी
पाण्डवगण माताके साथ-उनकी प्रणाम कर
दीनों हाथ जोड़के सामने खड़े हुए ।
व्यासजी बोले, कि हे राजर्षि ! मैंने पहिलेही
जाना है, कि धृतराष्ट्रके पुत्रोंने अधर्मसे
तुमकी निकाल बाहर किया है । इसी लिये
तुम्हारे परम-मङ्गलके निमित्त यहां आया
हूँ । तुम इस विषयमें दुःखी मत होओ,
यह सब तुम्हारे सुखके लियेही होरहे हैं ।
इसमें सन्देह नहीं, कि धृतराष्ट्रके बेटे और
तुम, दोनों पक्ष मेरे समान स्नेहके पात्र
हो ; पर जो पक्ष दीत और बालक हीता है,
मानवलोग उस परही अधिक स्नेह प्रगट
करते हैं । इस हेतु तुम पर-इस समय मेरा
अधिक स्नेह हो गया है । सुनो, इसीसे मैं
तुम्हारा हित कार्य करना चाहता हूँ । वह
सोमने सुन्दर-विनारीगकानगर देख-पड़ता
है, वहां हमारे लौटनेकी वाट ताकते हुए
रिपकर बसे रहना । वैशम्पायन बोले कि
सत्यवतीसुत धर्मात्मा-प्रभु व्यासजी पाण्डवोंकी
भली भांति डाटम-देकर मंग-लेकर उस-देखी
जाती हुई एकचक्रानगरीको जाने लगे और
और कुन्तीसेभी फिर-समझाकर बोले कि ऐ
बेटे ! जीतो रहो, तेरे पुत्र धर्मशील महात्मा
परमोत्तम धर्मराज युधिष्ठिर धर्मानुसार
परमोत्तम की अय कर पृथ्वी भरके सब

भूयोंका शासन करेंगे । इसमें सन्देह नहीं
है, कि वह भीमेमेने और अर्जुनकी भुजबलसे
सागरतक भूमेन्दलकी जीतकर भोग करेंगे ।
तुम्हारे महारथी पुत्र और माद्रीके दुमारगण
सदा अपने राज्यमें प्रसन्न मन होकर सुखसे
आनन्द करेंगे । यह राजसिंहगण धरतो-
मण्डलकी जयकर राजसूय और अश्वमेधादि
अनेक प्रचुर दक्षिणायुक्त यज्ञ करेंगे और
भोग, ऐश्वर्य तथा सुखसे मितवर्गकी कृपा
दिखाकर परम आनन्दपूर्वक पितामहका
राज्य भोगेंगे ।
और वैशम्पायनजी बोले, कि महर्षि, हे पायन
यह कहकर उनको एक ब्राह्मणके घरमें बसा-
कर युधिष्ठिरसे बोले, कि तुम यहां मेरी
अपेक्षामें रहो, मैं फिर आजंगा । तुम देश
कालकी समझकर काम करते रहोगे, तो
परम हर्ष-प्राप्त करोगे । हे नराधिप ! उन
सबोंने हाथ जोड़ पीड़ उनकी बात मान ली ।
अनन्तर भगवान् महर्षि व्यास जहांसे आये थे,
वहांकी पवारे ।
एकसौ-सत्तावन अध्यायमें हिडिम्ब
वधपर्यन्त समाप्त ।
जनमेजय बोले, कि हे हिज्जिष्ठ ! उसके
पीछे महारथी कुन्तीपुत्र पाण्डवोंने एकचक्रा-
नगरीमें रहकर क्या किया ? वैशम्पायनजी
बोले, कि महारथी कुन्तीपुत्र गण-एकचक्रा-
नगरीमें ब्राह्मणके घर कुछ काल बसे । हे
पृथ्वीनाथ ! उनदिनों वे नित्य नाना सुन्दर
प्रदेश, मरीचर और नदी देखने हुए शिवा-
पूर्वक वहां के सब स्थानोंमें घूमने थे । क्रमशः
वे अपने गुणसे नगरवालोंके प्रिय बने । वे
दिनको जो भिक्षा पाते थे । कुन्ती उनको
उस भिक्षासे मिली हुई वस्तुको अलग-अलग
वाट देती थी तब वे भोजन करते थे । भिक्षाके
जो कुछ मिल जाता था, उसका आधा

युधिष्ठिर, अर्जुन, नकुल, सहदेव, कुन्ती भोजन करते थे और, आधाभाग भीमसेन खा लेते थे। हे भरतश्रेष्ठ ! महात्मा पाण्डुओंके इस प्रकार उस राज्यमें वसते हुए कुछ काल बीत गया। अनन्तर एकदिन युधिष्ठिर आदि सब भिक्षाकी गये; दैववशसे भीमसेन भिक्षाकी न जाकर कुन्तीके साथ घरमें रहे। अनन्तर कुन्तीने उस ब्राह्मणके घरसे अति कटीली सुलाई उठते सुना। हे राजन् ! कुन्ती उनकी अत्यन्त रोते और विलपते सुनकर अच्छे स्वभावके कारण चुपचाप बैठे नहीं रह सकी, उसका हृदय दुःखसे पूरित हुआ। तब कल्याणी कुन्ती भीमसेनसे कृष्णभरी बातेमें बोली, कि बिटा। हम लोग धृतराष्ट्रके पुत्रोंसे छिपकर इस ब्राह्मणसे संस्कार पाय और शोक-रहित होकर सुखसे वस रहे हैं; इससे मैं संदेह इस सोचमें रहा करती हूँ, कि जिस प्रकार दुर्वासा आदि महात्मा लोग जिसके घरमें वसते हैं, उसका कोई हित काम कर देते हैं, वैसेही मैं क्योंकि इस ब्राह्मणका पलटमें उपकार करूँ। बिटा। उपकार करनेसे जो उसके पलटमें उपकार करता है, वही पुत्र है; और जो जितना उपकार करता है, पलटमें उसका उतना अधिक उपकार करना चाहिये। भुम्भकी निश्चय जान पड़ता है, कि इस ब्राह्मणके घरमें कोई दुःख आपड़ा होगा, उस दुःखके दूर करनेके लिये यदि इनकी कुछ सहायता कर सकें, तोभी पलटसे उपकार करना होगा। भीमसेन बोले, कि इस ब्राह्मण पर जिस कारण दुःख आ खड़ा हुआ है, उससे आप ज्ञात करें, आगे मैं जानलेने पर कठिन भी हो, तो उसके दूर करनेका प्रयत्न करूँगा।

जौतेशम्पायनजी बोले, कि हे पृथ्वीनाथ ! इस प्रकार बात चीत कर रहे थे, कि ऐसे समयमें फिर उस ब्राह्मण और ब्राह्मणीकी आवाज सुनाईकी ध्वनि सुन पड़ी। अनन्तर

कुन्तीने इस प्रकार वेगसे कि कामधेनु अपने बछड़ेके बंधे रहनेसे जिस प्रकार उसके पाव जाती है, उस महात्मा ब्राह्मणके अन्तःपुरमें जाकर देखा कि ब्राह्मण महाराज संसार मुख किये बैठे हैं और स्त्री, पुत्र तथा कन्या सहित कहते हैं, कि यह संसार केवल दुःखके जेड़, अन्याधीन और अति हानिकारी है; अतएव ऐसे अर्थ जीवन पर धिक्कार है। देखी जीने होसे परम दुःख और परम पीड़ा भोगने पड़ती है, क्योंकि जीते हुए मनुष्यकी निश्चय दुःख घेर लेता है, एकही आत्मा धर्म, अर्थ और काम इन तीनोंकी एक दूसरेसे विना विरोध किये सेवा नहीं कर सकती है, सो इनके बुरा प्रयोग होने हीसे अनन्त दुःख का गिरता है। कोई कोई पण्डित कहते हैं कि मोक्ष ही श्रेष्ठ है; पर हम संसारके प्रेमी हैं, हमसे वह किसी प्रकार होनेकी सम्भावना नहीं है; फिर अर्थ पानेके विषयमें भी सब प्रकारसे दुःख भोगना पड़ता है, देखी उपार्जनकी चाह बड़ी दुःखदायी होती है; और उपार्जन हुआ भी तो औरभी दुःख भोगना पड़ता है, क्योंकि प्राप्त किये हुए धन पर स्नेह बढ़ जाता है, सो यदि किसी प्रकार वह अर्थ नष्ट हुआ तो पूर्वोक्त दुःखसेभी अधिक दुःख घेर जाता है। ऐसा कोई उपायभी नहीं दीखता, इस विपत्तसे बचें; अथवा स्त्री-पुत्र लेकर भाग जावें। डाँड़ियाँ ! कारण करके देखो, कि जहाँ जहाँ मङ्गल होना था, मैं तथा जानका प्रयत्न किया करता था, उस समय तुम मेरी बात पर ध्यान नहीं धरती थी। वह कुबुद्धि तुम्हारी ही है, कि जब कि मैं बार बार अन्य स्थानमें जानेकी चाहने पर भी तुमने कहा था, कि "यह मेरी पतिव्रता है, यहा मैं जन्म लेकर बुद्धिहीन हूँ। इसकी त्याग नहीं सकती" प्यारी। पिता, माता और पहिलेके वाक्योंके

पाने पर बहुत दिन बीत गये थे। तिस परभी क्यों तुमने यहां बसना चाहा था ? तुमने जिस प्रकार बन्धुकी कामनासे मेरी बात पर ध्यान नहीं दिया था, वैसेही अब तुम्हारे बन्धु-नाशका समय आ पहुंचा है ; इससे तुम्हें बड़ा दुःख हो रहा है, यह तक कि इस समय मेराही नाश उपस्थित हुआ है ; क्योंकि मैं स्वयं जीता रहकर किसी प्रकार बन्धुकी त्याग नहीं सकूंगा। तुम मेरी सहचर्मचारिणी, नियमाता समान स्नेहकरनेवाली गुणवती और परमागति हुई हो। देवोंने तुम्हें मेरी मित्र सदृश नियय कर दिया है। पिता माताने तुमको गार्हस्थ्य धर्मभागिनी बनाया है, और तुम कुलीना, शीलवती, सन्तान को जननी साध्वी, अमकारिणी और सदा व्रत-शोभा भार्या हो, पहिले वरणापूर्वक यथा-विधि तुम्हारा पाणिग्रहण कर इस समय अपने जीवनकी रक्षाके हेतु क्योंकर त्याग दूंगा ? फिर जिस बालकको आज तक दाढ़ी-मूक नहीं निकली है, ऐसे अल्प अवस्थाके पुत्रहीकी वां क्योंकर मैं स्वयं त्याग दे सकता हूं ? महात्मा विधाताने सुयोग्यभर्ताके हाथमें सौंपनेके लिये जिस कन्याकी न्यायपूर्वक मेरे पास रख दिया है, जिस कन्यासे मैं पितरोंके साथ-दौहित्रज-लोकके पानेकी आशा रखता हूं, उस बालिकाको जमा कर क्योंकर स्वयं त्याग देनेकी उद्यत-होजूं। कोई-कहा-करते हैं, कि पिताका पुत्रही पर-अधिक स्नेह होता है ; और कोई-कोई कहते हैं कि कन्याही पर अधिक स्नेह होता है ; पर मेरे लिये दोनों समान हैं। जिससे सुगति मिलती है, जिससे वंशकी रक्षा होती है, और जिससे नियम सुख-मिलता है, उस पापकी कूतसे रहित बालिकाको क्योंकर त्याग देनेका साहस करूं ? मैं यदि अपने जीवनकी बलि यज्ञके परलोककी मिधाकं, तीभो दुःखो

हीलंगा : क्योंकि मेरे इनकी छोड़ जानसे यह कभी नहीं जी सकेंगे। इसमेंसे किसी एककीभी त्याग-देना बड़ा अनुचित और नितुर काम होगा ; और अपना जीवन त्यागनेसेभी यह मेरे बिना जीवन देंगे, अतएव मैं गहरी विपतमें पड़ा हूं। हाय ! इस विपतसे बचनेका उपाय नहीं दीखता। अहो ! सुभा-पर अधिकार है। आज परिवार-सहित मेरी कोई गति नहीं है, मेरी परिवार-सहित जीवन छोड़नाही मेरे लिये मङ्गलदायी है ; मेरा जीवित रहना कभी उचित नहीं है।

वक्वर्धपर्वमें एकमौ अठारव

अध्याय समाप्त ।

ब्राह्मणो बोली, कि हे ब्राह्मण ! साधारण मनुष्यकी भांति शोक करना कदापि आपको नहीं सीहता है, क्योंकि आप विद्वान हैं। अब दुःख करनेका समय नहीं है। भूमण्डल परके सब लोगोंकी अवश्यही मरना पड़ेगा, अतएव अवश्य होनेवाले विषयको दुःख करना उचित नहीं है। लोग अपने सुखके लियेही स्त्री, पुत्र, कन्या, इन सबोंकी प्रार्थना करते हैं, अतएव अपनी सुबुद्धिसे मन-पीड़ा त्याग देवें, मैं स्वयं वहां जाऊंगा। संसारमें नारीके लिये सनातन धर्म यही है, कि वह प्राण दे करकेभी पतिका हित करेंगी, अतएव उस कर्मके किये जाने पर वह इस लोकमें यश देनेवाला और परलोकमें अर्द्ध तथा आपकाभी सुखदायी होगा। हे विज-श्रेष्ठ ! मैं जो कहती हूँ, वह श्रेष्ठ धर्म है, ऐसा करनेसे आपके लियेभी प्रचुर धर्म और अर्थका कार्य होगा। देखिये जिस अभिप्रायसे स्त्रीकी प्रार्थना की जाती है, वह सुभसे आपको सिद्ध होगया है, मैं आपसे पुत्र और कन्या प्रसव कर उद्भवा हो चुकी हूँ। आप इस पुत्र और कन्याके पालने पोषने और देखने

भालनेकी संसर्ग है, सुभसे वह भली प्रकार सिद्ध होना कदापि संभव नहीं है। आप मेरे प्राण और धन सर्वके ईश्वर हैं, आपके बिना मैं क्योंकर जीऊँगी? और आपके न रहनेसे क्योंकर दो शिशु सन्तान जी सकेंगी? आपके बिना मैं विधवा और अनाथ होकर जोती रहनेसे भी क्योंकर सुपथमें रहकर इन दो बच्चोंको जिला सकूँगी? आपके साथ वैवाहिक सम्बन्धके अयोग्य कलङ्कित और गर्वित जन यदि आपकी इस कन्याको प्रार्थना करें, तो मैं क्योंकर उसकी रक्षा कर सकूँगी? जिस प्रकार पक्षी मिट्टीपर पड़ी हुई मकलीको चाहते हैं, वैसेही मनुष्यगण पतिहीनारमणीकी कामना करते हैं। हे विजयश्रेष्ठ। मेरे पतिहीन होनेसे दुरात्मा लोग मेरी कामना कर मेरे चित्तकी टाल सकेंगे हैं, ऐसा होनेसे मैं क्योंकर साधुओंके अभीष्ट पथमें रह सकूँगी? और क्योंकर आपके वंशकी एकही कन्या इस निर्दोष बालाकी पितृ पितामहोंके पथमें नियोग कर सकूँगी और क्योंकर फिर उस पूरे अभावके कालमें इस पितृहीन अनाथ बालकको आप जैसे धर्मज्ञ है, उसके योग्य वाञ्छित विद्या पढ़ा सकूँगी? अयोग्य जन, सुभको हरा कर, शूद्रोंके वैद सुनानेकी प्रार्थनाके सदृश इस अनाथ बालाकी भागेंगे, तिस पर आपकी गुणोंसे सहावनी इस कन्याकी यदि मैं अयोग्य वरकी न देना चाहूँ, तो कौआ जैसे यज्ञकी वस्तु लूट खाता है, नैसेही वे लूट कर इसकी बलपूर्वक हर ले जायेंगे। हे ब्रह्मन्! तब मैं लोकोंमें अनाथ की पाती होऊँगी, और नहीं कह सकती कि मेरी कौसी हगति होगी; ऐसी दशमें आपके पुत्रकी आपके असदृश होती और आपकी कन्याकी अयोग्य जनके वश हो जाते देखकर इसमें मन्द नही है कि मैं प्राण छोड़ूँगी।

कभी मन्द नही कि आपके और मेरे

बिना यह दो वस्ते बिना जलकी मकलीकी भांति प्राण छोड़िँगी अतएव समझ लें कि आपके न रहनेसे मैं और दो वस्ते इन तीनों हीके जीवन निश्चय नष्ट होंगे, सो मेरी समझमें सुभकी त्याग देनाही आपकी उचित है। हे ब्रह्मन्! धर्म जाननेवाले लोग किहा करते हैं, कि पुत्रवाली स्त्रियां यदि पतिके पक्ष में परलोक की सिधारे तो वह उनके लिये बड़ा भारी सौभाग्य है। मैं आपके हितके लिये पुत्र, कन्या, वासन्त और जीवन सब त्यागनेके उद्यत हुई हूँ। स्त्रियोंके लिये नाना यज्ञ, तपःनियम और दान इन सब कामोंसे सदा पतिका प्रिय और हित करनाही अधिक फल दायी है; सो मैंने जिसका करना ठान लिया है, वही दृष्ट परमधर्म और आपके तथा आपके वंशका मङ्गल करनेवाला है, परितोका मत यह है, कि स्त्री, पुत्र, प्यारे मित्र और अर्थ चाहे जितनी दृष्ट वस्तु क्यों न हो, वह सब विपत्तसे बचनेके लिये रखी जाती है, और विपत्तसे बचनेके लिये धनकी रक्षा चाहिये; धनके द्वारा स्त्रीकी बचाना और आत्माकी चाहे धनके द्वारा ही वा स्त्रीके द्वारा ही, सदा रक्षा करनी चाहिये। पण्डितोंने निश्चय किया है, कि दृष्ट और अदृष्ट दोनों फलोंहीके लिये स्त्री, पुत्र, धन और यह सब करना चाहिये एक और सम्पूर्ण कुलकी और दूसरी और आत्माकी रखर तौल करनेसे, सम्पूर्ण कुलभी आत्माके समान नहीं होते, अतएव हे आर्य! आप सुभसे काल पूरा कर लीजिये। बुद्धिके अनुसार अपनी रक्षा कीजिये—सुभकी जानकी आशा दीजिये, आप इन दो सन्तानों का पालन करना। धर्म जाननेवालोंने कहा है, कि स्त्रियोंका वध नहीं करना चाहिये और राजा लोग धर्मके जानकार होते हैं, सो वह राजा सुभकी न मारकर त्यागभोग्य सकता है।

हे धर्मज्ञ ! जब कि वहाँ पुरुषका वध निश्चय है और स्त्रीके वधके विषयमें सन्देह है, तब सुभकोही भोजना योग्य है। मैंने वृद्धत सुख कर लिया है, मेरे वृद्धत कुछ प्रियकार्य ही गये हैं, मैंने वृद्धत धर्म्मार्जन किया है और आपसे प्यारी सन्तानभी पा चुकी हूँ, अब जीवन छोड़नेमें सुभो दुःख नहीं है। मेरी सन्तान हई हैं, मैं बुढाय गयी हूँ, और आपके प्रिय कार्य करनेमें सदासे मेरी चेष्टा है, इन सबकी आलोचना करकेही ऐसी निश्चय कर दिया है। आप सुभको त्याग देकर दूसरी स्त्री पा सकेंगे : ऐसा करनेसे आपका धर्म्मभी फिर प्रतिष्ठित होगा : हे मङ्गलमय ! पुरुषको अधिक स्त्री कर लेनेसेभी धर्म्म नहीं होता। पर स्त्रीके पूर्वपतिको छोड़कर अन्य पुरुषके वशमें जानेसे बड़ा अधर्म्म होता है। आप इन सबको भलीप्रकार आलोचना करके अपना नाश करेना अनुचित मानकर अपने कुल, इन दो वधों और आत्माकी रक्षा करें। वैशम्पायनजी बोले, कि हे भारत ! वह ब्राह्मण ब्राह्मणोंकी यह बातें सुनकर उसको गले लगाकरके उसके साथ आत दुःखी चित्तसे आसू बहाने लगा।

वैशम्पायनजी बोले, कि हे धर्मज्ञ ! मैंने एकसौ उनसठ अध्याय समाप्त किये हैं।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर कन्या उन दुःखी पितामाताकी बात आर्यपण्डित सुनकर खेदयुक्त चित्तसे बोली, कि आप क्यों अति दुःखी होकर अनार्यके समान रो रहे हैं ? सम्प्रति मेरी बात सुनकर जा उचित ही करें ? इसमें सन्देह नहीं है, कि आप धर्म्मके अनुसार सुभको कभी न कभी अवश्य त्याग देंगे। मेरे समान अवश्य छोड़ो जानेवालीकी त्याग देकर सबकी रक्षा करेंगे - "सन्तानसे

तरंग" ऐसा समझ करके ही लोग सन्तान की कामना करते हैं ; अतएव आप इस कन्या रूपी नावसे वर्तमान विपतके समुद्रकी पार करें। आत्मजसे लोग इस लोक और परलोक सर्वत्र विपतसे उद्धार होजाते हैं, इसलिये पण्डित लोग उसको पुत्र कहाकरते हैं, पित्रलोकोके उद्धारके निमित्त ही सुभसे नाती की आशा करते हैं, पर मैं नाती की अपेक्षा न करके स्वयं पिताका जीवन बचा कर उनका उद्धार करूंगी। हे पिता ! यदि आप परलोककी सिधारे, तो इसमें सन्देह नहीं है, कि मेरा शिशु भाई स्वल्प कालहीके बीचमें कालके वशमें हो जायगा, आपके ओर भाईके न रहनेसे एक बारही पितरोंका पिण्डा लीप होकर बड़ा अनिष्ट होगा ; और मैं तब पिता और भ्राताके बिना बड़ी दुःखी हूंगी। मैं तब दुःख पाकर अनुचित मृत्युके वशमें हो जाऊंगी। आपके स्वल्प होकर इस विपतसे एकवारही मुक्त होनेसे माता, शिशु, भ्राता, वंश और संवरहित होंगे। विचारिये, कि पुत्र अपना स्वल्प स्त्री मित्रका स्वल्प और कन्या कष्टका स्वल्प है। सो कष्टके स्वरूप कन्याके द्वारा अपनी रक्षा करें सुभको धर्म्ममें नियुक्त कर दें। हे पिता ! मैं बोलिका हूँ, सो आपके बिना अनार्य और दीन होकर सदा जहाँ तहाँ जाना पड़ेगा, अतएव मैं इस कठिन कामकी कर कुलकी रक्षा पूर्वक फल प्राप्त करूंगी। हे विजयेश ! यदि आप सुभो छोड़कर उस राजसके आगे जायें, तो मैं बड़ी कातर हूंगी, अतएव सुभ पर कृपादृष्टि करें। हे श्रेष्ठ ! सुभको, धर्म्म और वंशकी वचनके लिये अपनी रक्षा करें। एक समय सुभको पिता त्यागनाही पड़ेगा, फिर अवही त्याग देनेमें क्या हानि है अवश्य किये जानेवाली कामके लिये काल गंवाना उचित नहीं है। इससे अधिक दुःखकी बात क्या होगी,

आपके स्वर्गकी सिधारने पर हमको सदा अन्न मांग मांग कर कुत्तोंकी नाईं फिरना पड़ेगा, और आपके बान्धवोंके समेत इस दुःखसे मुक्त और स्वस्थ होनेसे अमर लोकमें सुखसे बस सकूंगे। यह भी हमारा सुना हुआ है, कि ऐसे अनुचित काममें कन्या देनेसे, परभी पितरोंकी जल देनेसे वैदित करनेवाले बने रहते हैं; अतएव आप इस काममें मुझकी सौंप देकर स्वयं जीवित रहके यदि पितरोंकी जल दें, तो वैदित करनेवाले होंगे।

उस कन्याकी इस प्रकार नाना दुःखभरी बातें सुनकर पिता, माता और कन्या तीनों रोने लगे। अनन्तर बालक पुत्र उन सबोंकी रोते देखकर प्रसन्न नेत्र और हंसते हुए सुखसे मोठी और अस्पष्ट बातोंमें कहने लगा, कि बाबा ! मत रोओ। मायी ! मत रो। वहिन ! मत रो। - यह कहता हुआ हरिके पास एक एक बार जा भि लगा। आगे एक दण उठाकर आनन्दसे फिर बोला, कि इतने में उस राक्षस की माझंगा। उसके पिता, माता और वहिन यद्यपि बड़े दुःखमें कातर थीं, तोभी उस समय उस बालककी अस्पष्ट बात सुनकर उनकी बड़ा हर्ष हुआ। अनन्तर कुन्ती यह समझकर, कि “यह अभिप्राय प्रकाश करनेका समय है” उनके निकट जा पड़ची। अनन्तर मरे हुए लोगोंकी अमृतसे जिलाने की नाईं उनसे बोलने लगी।

एक अधपर्वमें एकसौ साठ-

अध्याय समाप्त ।

कुन्ती बाली, मैं जाना चाहती हूँ कि ऐसे दुःखका कारण क्या है? क्योंकि यदि उससे पार पानेका उपाय बन पड़े, तो कहूंगे। प्राज्ञा बोली, कि ऐ तपोधने ! तुम जो कहती हो, वह माझुषोंकी योग्य ही है; पर यह दुःख कन्या मनुष्यकी गतिके बाहर है। इस

नगरके निकट एक नामक एक महाबली राक्षस रहता है; वह पुरुषादक इस नगर और प्रदेश का अधीश है, मनुष्य मांससे पुष्ट, बली और दुष्टबुद्धि वह असुरराज सदा इस देशकी रक्षा करता है। इस देशके राजसी बलसे रक्षित होनेके कारण अन्य देश वा किसी प्राणीसे हमारे भयकी सम्भावना नहीं है। एक गाड़ी अन्न और दो भैंसे और वह मनुष्य जो उन्हें ले जाता है, यह सब उस राक्षसके भोजनके लिये वित्तके स्वरूपमें निद्रिष्ट है, इस देश का हर एक गृहस्थ अपनी अपनी पारीमें एक एक दिनके हिसाबसे निश्चय वह भोजन पड़चाता है। वहुत वर्षोंके पीछे एक एक गृहस्थके लिये यह कठोर पारी अजातो है। यदि कभी कोई इससे बचनेकी चेष्टा करता है, तो वह राक्षस स्त्री पुत्रोंके साथ उसकी मार कर खाजाता है। इस स्थलमें वैत्रकीय धृष्ट नामक स्थानमें एक राजा है; वह बुद्धिमान भूप नीतिकी आज्ञा नहीं करता; यद्यपि राक्षसके वधके लिये वह स्वयं असमर्थ है, पर यत्रसे ऐसा कोई उपाय नहीं टूटता, कि इन सब लोगोंके लिये सदा दुःख ही जाय। हमलोग जब उस दुर्जल बुरे राजाके भरोसे सदा भयभीत होकरकेभी उसके अधिकारमें रहते हैं, तब अवश्य ही इस दुःखके भोगमें ही योग्य हैं। देखो, ब्राह्मणकी कोई अपनी भूमिमें बसा नहीं सकता, क्योंकि वे किसीकी इच्छासे नहीं चलते। वे अपने गुणसे काम चारी पक्षोंके सदृश मनमाना वास करते हैं, पर मैंने उसका विपरीत काम किया है और कहाभी है, कि “पहिले भूप, तब स्त्री और पीछे धनार्जन करना, इन तीन विषयोंके सञ्चित होने पर शांति और पुत्रोंका उद्धार होता है।” इन तीन विषयोंके उपार्जनके विषयमें भी मैंने बड़ा विपरीत काम किया है, सो अब इस विषयके समुद्धाने

गिरकर बड़ा दुःखी हो रहा हूँ। आज हमारी कुलनाशी वह पारी आयी है—राक्षसके भोजनके लिये वनके स्वल्पमें एक मनुष्य सुभको देना पड़ेगा। पर मेरे पास इतना धन नहीं है, कि किसी स्थानसे एक मनुष्यको मोल लेकर दूं, और किसी स्वजनकोभी नहीं दे सकूंगा, सो ऐसा कोई उपाय नहीं देखता, कि जिससे उस राक्षसके हाथसे बच सकूं; इस लिये अति अपार दुःखके समुद्रमें डूबा हूँ। अतएव समझता हूँ, कि मैं सब वान्धवोंके साथ उस राक्षसके पास जाऊंगा, कि जिससे वह नीचाशय राक्षस एक साथ हम सबोंको खा ले।

वक्रवधपर्वमें एकठाँ एकसठ अध्याय समाप्त ।

कुन्ती बोली, कि हे ब्राह्मण! तुम इस भयसे दुःख मत मानो, मैंने उस राक्षससे वचनेका उपाय निश्चय किया है। तुम्हारा एक शिशु पुत्र और एकही व्रतशीला कन्या है, उनमेंसे किसीका, तुम्हारी स्त्रीका अथवा स्वयं तुम्हारा जाना मेरी समझमें उचित नहीं है। मेरे पाँच पुत्र हैं, उनमेंसे एक तुम्हारे उपकारके लिये उस पापी राक्षसके यहाँ जायगा।

ब्राह्मण बोले, कि मैं अपना जीवन वचनेके लिये कभी ऐसा काम नहीं कर सकूंगा, मैं अपने लिये ब्राह्मण और अतिथिके प्राण लेनेका साहस नहीं कर सकता, जो नीच वंशसे उत्पन्न और अधार्मिक हैं, वेभी ऐसे काममें हाथ नहीं डालते हैं। ब्राह्मणके उपकारके लिये जो यह विधि बनी है, कि आत्मजको त्याग देना, सुभको वही मङ्गलदायी समझना चाहिये, और मैं वैसाही करना चाहता हूँ। ब्राह्मणवध और आत्महत्या इन दोनोंमें आत्महत्याही मङ्गल-युक्त है। क्योंकि, ब्रह्मवध बड़ा पाप है, उसके करनेसे फिर वचनेका उपाय नहीं रह जाता। मैं समझता हूँ, कि

अनिच्छासे ब्रह्मवध करनेसे अनिच्छासे आत्महत्या करना मेरे लिये अच्छा है और मैं स्वयं कुछ आत्महत्यामें हाथ नहीं डाल रहा हूँ, अन्यजन सुभको मारेगा, इसका पाप नहीं लग सकता है, जान नहीं पड़ता, कि बुद्धिसे अथवा कलपूर्वक ब्रह्मवध करके सहजमें पार पा सकूंगा। पण्डितोंने कहा है, कि अतिथि वा शरण लिये झणकी त्याग देना और मांगनेवाले को मारडालना अति निहुर अनुचित कार्य है। और आपद्दर्शके जानकार पहिलेके महात्माओंने कहा है, कि निन्दित और निहुर कर्म कभी मत करना, अतएव आज मैं स्त्रीके साथ प्राण छोड़ूंगा, मेरे लिये यही अच्छा है; मैं किसी प्रकारसे ब्राह्मण-हत्या की सम्मति नहीं दे सकता। कुन्ती बोली, कि हे ब्राह्मण! मेरा भी यह निश्चय किया हुआ है, कि ब्राह्मणोंकी अवश्य रक्षा करनी पड़ेगी। सौ पुत्र भी हों, तौभी पुत्र कभी मेरे अनादरकी सामग्री नहीं होंगे। मेरे पुत्र बोर्धिवन्त, तेजस्वी और मनुमें सिद्ध हैं, सो वह राक्षस उनकी नष्ट करनेमें समर्थ नहीं होगा। सुभको निश्चय जान पड़ता है, कि मेरा पुत्र राक्षसको वह सब खानेकी वस्तु पट्टंचामो देगा और अपनी रक्षाभी करेगा। मैंने पहिले देखा है, कि बड़े बड़े बली वृद्ध राक्षस आकर मेरे पुत्रोंसे यमराजके घर भेजे गये। हे ब्राह्मण! यह बात तुम किसीसे किसी प्रकार प्रकाश मत करना, प्रकाश होनेसे विद्यार्थी लोग बड़ो इच्छासे इस विद्याके सीखनेके लिये मेरे पुत्रोंको सदा द्विक करेंगे मेरे पुत्र गुरु की आज्ञा विना अन्य किसीको जो विद्या देगे, उस विद्यासे फिर काम नहीं कर सकेंगे। ब्राह्मणने कुन्तीकी यह बात सुनकर स्त्रीके साथ अति प्रसन्न होकर अमृत सदृश उस बातकी आदर पूर्वक मान लिया। आगे कुन्ती और ब्राह्मणने एकत्र होकर

पवननन्दन भीमकी वह कटोर कार्य करनेको कहा। भीमसेननेभी उसमें सम्मति देकर प्रत्युत्तर किया था।
वक्रवधपर्वमें एकसौ बासठ अध्याय समाप्त ।

श्रीनैश्म्यायनजी बंले, कि है भारत। भीमसेनको उस कामके निकरने की प्रतिज्ञा करने पर सम्पूर्ण पाण्डव भिक्षाकी वस्तु लेकर गृहको लौट आये। अनन्तर युधिष्ठिरने आकार द्वारा वह सब व्यौरा जनकर निरालीमें बैठकर मातासे पूछा, कि मता। भीम-पराक्रमी भीम किस कामको जा रहा है? क्या आपने इसमें आज्ञा दी है? अथवा भीमने स्वयंही इसको करनेकी इच्छा की है? कुन्ती बोली, कि यह शत्रुनाशी वक्रोदर मेरी ही बातसे ब्राह्मणके उपकार और इस नगरकी सुक्ति करनेके लिये यह भारी काम पूरा करेगा।

युधिष्ठिर बंले, कि आपने यह कैसा कठिन भयानक साहस किया है? साधुगण कभी पुत्र त्यागनेकी प्रसंसा नहीं करते। और दूसरेके पुत्र बचानेके लिये अपना पुत्र त्यागना क्योंकर उचित हो सकता है? आज आपने पुत्र तजकर लोकाचारके विपरीत और वेदके विरुद्ध वर्त्म किया है। जिनके भुजबलके आसरे में हम सुखसे मीर रहे हैं; जिनके भुजबलके भरोसे हम नीचाश्रय दुर्योधनादिसे लूट लिये हुए राज्यको लौटा पानेकी आशामें हैं, जिसके अपरिमित वीर्यको स्मरणकर दुर्योधन और शकुनिकी दुःखके मार रात्रिकी निद्रा नहीं आती; जिस वीरके भुजवीर्यसे हम जतुगृहसे और दूसरी विपदोंसे पार पागये हैं और जिससे एगोचन दमराजके घर भेजा गया; यहां तक कि जिसके भुजवीर्यकी आशासे हमको ऐसा विश्वास है, कि मानो हम धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी मारकर इस नगरी हुई धरतीकी

पा चुके हैं; आपने कैसी बुद्धिसे उन भीमसेनको त्याग देना-निश्चय किया है? क्या आपने अपना ज्ञान खो दिया है? क्या दुःखसे आपको बुद्धि जाती रही है? कुन्ती बोली कि है युधिष्ठिर! तुम वक्रोदरके लिये दुःख मत करो; मैंने बुद्धिकी अल्पतासे इस काममें हाथ नहीं डाला है। वेदा। उस कामके पलटमें उपकार करनेके लिये, कि ब्राह्मणके घरमें धृतराष्ट्रके पुत्रोंके न जाननेमें संतारके साथ हम बिना कंठ बस रहे हैं, मैंने इस कामका करना निश्चय कर लिया है, क्योंकि उपकार करनेसे जो लोग पलटमें उपकार करते हैं, वान्तवमें वही पुरुष हैं, विशेष जो जितना उपकार करता है, पलटमें उसका उरुसे अधिक उपकार करना ही उचित है। जतुगृहमें भीमसेनका जितना विक्रम देखा है, और उसने जैसे हिडिम्बकी मारहाता है, उससे मुझकी विश्वास हो गया है, कि उसके देनों हाथोंका बल दश सहस्र हाथोंके समान है। जिस वक्रोदरने हाथोंकी भक्ति तुमकी वारणावत नगरसे निकाला था, उस भीमके समान बली इस धरती भरमें दोष नहीं पड़ता। जान पड़ता है, कि मेरा भीम योद्धांमें अष्ट बज्रधरनेवाले इन्द्रकीभी युद्धमें परास्त कर सकता है। हे पाण्डवगृह! भीमसेन जन्म लेतेही मेरी गोदसे पहाड़ पर गिर गया था, उससे उसके शरीरकी रगड़से पत्थरके टुकड़े पिसकर चूर-चूर होगये थे, इस कारणसेभी मैं भीमका बल जानती हूँ, इस लिये ब्राह्मणके शत्रुको नष्ट करनेका संकल्प किया है। मैंने लोभ, अज्ञानता का मोहसे इस काममें हाथ नहीं डाला है, बुद्धिसेही इस धर्मकार्यमें प्रवृत्त हुई हूँ। है युधिष्ठिर। इस कार्यसे दो प्रयोजन मिलेंगे, एक यह है, कि यहां वरुनेमें पलटमें उपकार और दूसरा महाधर्म। मैं निश्चय

जानतो हूँ, कि जो क्षत्रिय क्षत्रियका प्राण
वचाते हैं, वह इस लोक और परलोकमें अत्यन्त
यश प्राप्त करते हैं : इसमें सन्देह नहीं है,
कि क्षत्रिय होकर वैश्यकी सहायता करे, तो
भूमिजलमें सर्वत्र प्रजा उसकी प्रेमी होती है।
क्षत्रिय शूद्र वा शरण लिये हुए जनको विपत्तमें
वचावे, तो वह ऐश्वर्ययुक्त राजासे पूजे जाने-
वाले वंशमें जन्म लेता है। हे पौरवनन्दन !
पूर्वकालमें अति तेज बुद्धिमान भगवान् व्यास-
देवने मुझको यह सब उपदेश किये थे, इसी
लिये मैंने इस कामको करनेकी इच्छा की है।
वक्रवधपर्वमें एकसौ तिरसठ अध्याय समाप्त।

माताकी यह बातें सुनकर युधिष्ठिर बोले,
कि ऐ माता ! आपने इस विपत्तमें पड़े हुए
ब्राह्मण पर कृपा दिखाकर बुद्धिसे जो यह कार्य
किया है, वह बहुतही अच्छा हुआ है। इसीमें,
कि आप ब्राह्मण पर दयावती हुई हैं इसमें
सन्देह नहीं है, कि भीमसेन मनुष्य-भोजी
राक्षसका नाश कर लौट आवेगा। आप यत्न
पूर्वक ब्राह्मणसे कहकर यह स्वीकार करा
लेना, कि नगरवाले यह बात न जान सकें।
वैशम्पायनजी बोले, कि रात्रि बीतने पर भीम-
सेनने भोजनको सामग्री लेकर वहाँकी यात्रा
की, जहाँ वह राक्षस था। अनन्तर उस
राक्षसके बसनेके घरमें घुसकर वह सब भोज-
नको सामग्री आपही खाते हुए उसकी नीम
लेकर पुकारने लगे, इससे बड़ा भारी और
अति तेजस्वी वह राक्षस भीमकी बातसे क्रोधित
होकर भूमि विदारण करता हुआ वह आगया,
जहाँ भीम बैठे थे। उस राक्षसकी आँखें,
दाढ़ी और केश लाल, सुहृ कान तक फैला
हुआ और कान शङ्खके समान थे। ऐसा
विकट भयानक वह राक्षस भीमसेनकी अन्न
खाते देखकर दाँतोसे ठाँकी काटता हुआ
तीन रेखाओंके साथ गोंधकी ऊपर चढ़ाय

दीनों आखें फैलाके क्रोधसे बोला, कि किस
पर यह कुतुब्धि चढ़ी है, कि यमराजके घरको
जानेको मेरे भोजनको लिये मंगाया हुआ अन्न
मेरे सामनेही खा रहा है ? हे भारत !
भीमसेन यह बात सुनने परभी हँसतेही हँसते
राक्षसका अनादर कर सुहृको फेर कर भोजन
करने लगे, उसकी ओर आँख तक नहीं
फेरी, तब वह मांसभोजी भयानक शब्दसे
दीनों हाथ उठाकर भीमसेनको मार डालनेके
लिये दौड़ा। शत्रुनाशी वक्रोदर तब राक्षसको
अनादरसे एक बार देखकर भोजन करने
लगे। राक्षसने तब क्रोधसे जलकर भीमसेनके
पीछे खड़ा होके दीनों सुट्टियोंसे पीठ पर
मारा। भीमसेनने उस बली राक्षसके दीनों
भुजोंकी चोटसे बहुत घायल होने परभी उस
पर आँखें नहीं फेरी, एकमनसे भोजनमें
प्रवृत्त रहे। आगे महाबली राक्षस अति
क्रोधसे अश्वके समान होकर मारनेके लिये
वृक्ष उखाड़कर फिर उनपर दौड़ा। उसके
अनन्तर महाबली पुरुषेन्द्र भीमसेन धीरे धीरे
वह वृक्ष खाँ लेकर सुहृ घाँ करके प्रसन्न
चित्तसे युद्धके लिये खड़े हो गये। क्रोधके
वशसे होकर राक्षसके भीमसेन पर उस वृक्षको
फेंकनेसे वीर्यवन्त भीमसेनने हँस करके
उसी क्षण बाधे होइसे उसको धाम लिया।
यह देखकर बलवन्त राक्षस भाँति भाँतिके
वृक्ष उखाड़ कर भीम पर फेंकने लगा और
भीम भी वैसेही वृक्ष उठा कर उस पर फेंकने
लगे। महाराज ! तब मनुष्यके साथ उस
राक्षसराजका ऐसा भयानक वृक्षयुद्ध होने
लगा, कि उससे वृक्षाके वृक्ष नष्ट होने लगे।
आगे मांसभोजी बकने अपना नाम, कह कह
कर कूदता हुआ महाबली भीमसेनकी दीनों
हाथोंसे पकड़ लिया। तब महाभुज बलवन्त
भीमसेन उस महाबलवान् फुर्तीवाले राक्षसको
पूरा बल प्रयुक्त करते देखकर बलसे उसे खींचने

लगे। राक्षस भीमसे खींचे जाने परभी उनकी बलसे खींचने लगा, इससे मनुष्यभीजीही बहृत थकने लगा। उन दोनोंके वेगसे धरती ढोली और निकटके बड़े बड़े वृक्ष टूटे। अनन्तर वृकोदर राक्षसकी बल खींचे देखकर घुटनोंसे धरती पर पीस पीस कर मारने लगे। आगे उसकी पीठ पर घुटनोंकी लगा कर पीस करके-दहिने हाथसे गलेकी और बांये हाथसे कमरकी पकड़ा तथा उसकी दिगुणित अर्थात् दो भागोंमें तोड़ डाला, तब राक्षस घोर-शब्द करने लगा। हे पृथ्वीनाथ ! जब भीमसेनसे विकट राक्षस तोड़ा गया, तब उसके मुखसे रक्तवमन होने लगा।

बकवधपर्वमें एकसौ चौसठ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोलि, कि महाराज ! बड़े भारी पहाड़ समान राक्षस बकने देह टूटने पर बड़ा कौलाहल मचाता हुआ प्राण छोड़ा। उसके परिवारवर्ग उस शब्दसे भय खाकर नौकर चाकरोंके साथ घरसे निकलकर भीमके पास आगये। मारनेसे तेज महा-बली भीमसेनने उनको भयभीत और चान-रहित देखकर रुमभाया और यह कहकर, उनसे प्रतिज्ञा करा ली, कि तुम फिर कभी मनुष्य न मारना, यदि मारोगे, तो- तुमकीभी तुरन्त इसी प्रकार नष्ट होना पड़ेगा। राक्षसोंने वृकोदरकी यह बात सुनकर उस पर रुम्मात प्रकाश करके उस नियमको मान लिया। हे भारत ! तबसे नगरवाले उस नगरमें राक्षसोंकी शान्तस्वभावी देखते थे। अनन्तर भीमसेन उस मरे हुए राक्षसको लेकर नगरके द्वारपर डाल करके लोगोंके न देखनेमें चले गये। राक्षस बकके ज्ञातिवर्ग भीमसे वल-पूजक उसको मार जाते देखकर भयसे चित्तकी मलिन कर उधर उधर भागे। भीमसेनने उस राक्षसराजकी मारकर ब्राह्मणके घरमें

जाकर आशुपात सम्पूर्ण कथा कह सुनायी। अनन्तर उस प्रातःकालहीमें नगरवाले नगरमें निकलतेही पर्वतकी-चोटीके समान बड़े भारी राक्षस बककी-रक्तसे न्हाये मारे गये और गिरे हुए देखकर लोमाश्रित हुए; और एकचक्रानगरीके पुरमें जाकर वह समाचार दिया। हे राजा ! तब सहजों नगरवाले राक्षस बककी देखनेके लिये एकत्रित हुए। हे पृथ्वीनाथ ?- उन सर्वोंने अलौकिक कार्य देखकर अचरज माना और सब लोग देवता की उपासना-करने लगे। आगे यह बूझने लगे, कि “आज राक्षसकी-भोजन देनेकी किसकी पारी थी।” अन्तमें सब ठीक जान कर सर्वोंने उस-ब्राह्मणके पास जाकर विशेष समाचार पूछा। सम्पूर्ण नगरवालोंके ब्राह्मणसे वार वार पूछने पर विप्रेन्द्र पाण्डवोंका गोपन करनेके लिये बोलि, कि मैं राक्षसका भोजन देनेकी आज्ञा पाकर वस्तुओंके साथ ही रहा था, कि ऐसे समयमें एक मन्त्रज्ञ सिद्ध महात्मा ब्राह्मण सुभकी उस दशमें देखकर प्रसन्न करके इस नगरके घोर लेशके वृत्तान्तसे ज्ञात होकर डाढ़स देकर हंसते हुए बोलि, कि मैं उस दुरात्माके निकट यह अन्न ले जाऊंगा, मैं लिये कुछ भय मत करना। यह कहकर वह अन्न लेकर राक्षस बकके वनमें गये थे। इसमें सन्देह नहीं है, कि उन्होंनेही लोकाहितके निमित्त-यह काम किया होगा। अनन्तर यह वृत्तान्त सुनकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सब अचरज मानके और प्रसन्न होकर ब्राह्मणहीत्सव करने लगे। नगरवाले उस आश्चर्य वृहत् लीलाकी बात ज्ञात होकर नगरकी लौट गये। पाण्डवनाम वही वसी रहे।

एकसौ पैंसठ अध्यायमें

बकवधपर्व समाप्त ।

जनमेजय बोले, कि हे ब्रह्मा ! सुना चाहता हूँ, कि पुरुषसिंह पाण्डवोंने राजस वक्त्रके मारनेके पीछे क्या किया था ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे राजा ! पाण्डवगण राजस वक्त्रकी वध कर उस ब्राह्मणके घरमें रहकर वेद पढ़ा करते थे । अनन्तर कुछ दिनोंके पीछे एक वतशील ब्राह्मण बसनेके लिये उस ब्राह्मणके घरका आये । नित्य अतिथियोंको सेवा करने वाले उस ब्राह्मणने उस अतिथि ब्राह्मणकी भलीभांति पूजा कर बसनेको घर दिया । वह अभ्यागत द्विज वहां ठिके रह कर बातही बातमें शांति भांति की शुभ कथायें कहने लगे । नरश्रेष्ठ पाण्डवगण और कुन्तीने वह सब कथा सुननेके अभिलाषी होकर उनका आदर किया । वह भाति भातिके आश्चर्य्य देय, नगर, तोय, सरावर, अनेक आश्चर्य्य आश्चर्य्य राजांके वृत्तान्त और नाना नगरोंकी कथा सुनाने लग । हे जनमेजय ! उस ब्राह्मणने कथा पूरी होनेके कालमें पाञ्चाल देशमें यज्ञसैनीके अलौकिक स्वयंवर, धृष्टद्युम्न तथा शिखण्डिका जन्म और राजा द्रुपदके महायज्ञमें कृष्णा की उत्पत्ति इन सब बातोंका समाचार दिया । पुरुषश्रेष्ठ पाण्डवगण ब्राह्मणसे उन महात्माकी अलौकिक लीलाओंका सुनकर कथा अन्त होने पर उसका प्रसस्तपक्षसे सुनना चाह आर कहा कि हे वप्र ! अरुसे क्योंकि द्रुपद कुमार धृष्टद्युम्नकी उत्पत्ति हुई ? क्योंकि वेदीमेंसे कृष्णाका अद्भुत जन्म हुआ ? फिर क्योंकि धृष्टद्युम्नने बड़े चापधारी आचार्य्य द्रोणसे सर्वास्त्राकी शिक्षा पायी ? और क्योंकि राजा द्रुपदसे द्रोणकी जा समता थी, वह टूटो ? श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे राजा ! पुरुषार्थ प्रधान पाण्डवोंसे यह बात सुन कर वह ब्राह्मण द्रोपदीकी जन्म-कथा कहने लगे ।

चतुर्थ पर्वसे एकसौ आसठ अध्याय समाप्त ।

ब्राह्मण महाराज बोले, कि गङ्गाद्वारके निकट भरद्वाज नामक मदा-व्रतशील महाप्राज्ञ, महातपस्वी एक महर्षि रहते थे । एक समय उन्होंने गङ्गा नहानेकी जाकर देखा, कि उनके आनेके पहिले घृताची नाम्नी अप्सरा आकर नदीतट पर खड़ी है । उस समय पवनसे उनका वस्त्र उड़ने पर ऋषि उसकी नङ्गी देखकर उसी क्षण कामके वशमें हो गये । कीमार दशासे ब्रह्मचारी उस महर्षि का चित्त घृताची पर चलते ही उनका सदाका बटीरा हुआ वीर्य्य गिर गया । उन्होंने उसीक्षण उसकी द्रोण नामक पालमें रख लिया । इस प्रकार उस धीमान् ऋषिसे द्रोण नामक पुमारने जन्म लिया । वह पुमार सम्पूर्ण वेद और वेदाङ्गको पढ़ने लगा । उस समय पृपत् नामक एक राजा भरद्वाजके मित्र थे । उनके द्रुपद नामक एक पुत्र हुआ । वह क्षत्रिय पृपत्युल द्रुपदान्त्य भरद्वाजके आश्रममें जाकर द्रोणके साथ खेलता और पढ़ता था । आगे राजा पृपत्के स्वर्गका सिधारण पर राजा द्रुपद राज्यपर बैठे । द्रोणने सुना, कि परशुरामजी अपना सब धन दान कर रहे हैं, आगे जब राम सब-कुछ देकर वनमें जानेका उद्यत हुए थे, तब भरद्वाज-पुत्र वहा जाकर बोले, कि हे विजित्तम ! मेरा नाम द्रोण है, मे धनकी प्रार्थनासे आपके पास आया हूँ । राम बोले, कि हे ब्रह्मन् ! मैं सब-कुछ दान कर चुका हूँ, अब मेरा शरीर और अस्त्रही शेष है, अतएव चाहें मेरे सम्पूर्ण अस्त्र-वा-शरीर इन दोनोंमेंसे एककी प्रार्थना करो । द्रोण बोले, कि आप प्रयोग और उपसंहारके साथ सम्पूर्ण अस्त्र मुझको दे देवे, ब्राह्मण बोले, कि अनन्तर भृगु-नन्दनने "तथास्तु" कहकर उनका सम्पूर्ण अस्त्र दे दिया । द्रोणने उनका लेकर अपनी घृताची समझा । वह रामसे परस्व सम्मत ब्रह्मास्त्र पाकर और सब अस्त्रोंके पानसे अधिक प्रसन्न

झर । अनन्तर प्रतापी एरुपेन्द्र भरद्वाजनन्दनने द्रुपदके निकट आकर कहा, कि मैं तुम्हारा मित्र हूँ, द्रुपदने उत्तर दिया कि जो श्रेष्ठिय नहीं है, वह कभी श्रेष्ठियका मित्र नहीं हो सकता, जो रथी नहीं है, वही कभी रथीका मित्र नहीं हो सकता; और जो स्वयं राजा नहीं है, वह कभी राजाका मित्र नहीं हो सकता; अतएव तुम क्यों मित्र कहकर पुकार रहे हो ?

ब्राह्मण बोले, कि द्रोणजी पाञ्चाल द्रुपदकी वह बात सुनकर मनही मनमें बदला लेनेका निश्चय कर कौरवोंके हस्तिनापुर नामक नगरकी गये । अनन्तर भीष्मने उन आये हुए द्रोणके निकट पौत्रोंको शिष्य बनानेको दे दिया और नाना धन देकर उनका आदर किया । अनन्तर द्रोण द्रुपदकी हानिके निमित्त शिष्य पाण्डवोंको बुलवाकर सबसे बोले, कि हे निष्पाप राजकुमारी । सत्य कर बोली, कि तुम्हारे अस्त्रविद्यामें पण्डित होने पर तुम वह गुरु-दक्षिणा देगी, कि जिसके लिये मैंने मनमें निश्चय कर रखा है । उसको अर्जुन आदि शिष्योंने तथास्तु कहके मान लिया । जब प्रण ठाने हुए पाण्डवोंने अस्त्रविद्याकी भली भांति सीख लिया, तब आचार्य द्रोणने उनसे गुरु-दक्षिणाके लिये यह कहा, कि द्रुपद नामक राजा पृथक्के पुत्र अहिष्मत्त देशके अधीश है, तुम शीघ्र उनसे उस राज्यकी छीन कर मुझको दे दो । अनन्तर पाण्डवोंने द्रुपदको युद्धमें परास्त करके सन्तियोंके साथ बांधकर द्रोणकी भेट करो । तब द्रोण द्रुपदसे बोले, कि हे नरनाथ । मैं फिर तुमसे मित्रता चाहता हूँ, पर इस समय मैं राजा हूँ तुम राजा नहीं हो, राजा न होनेसे राजासे मित्रता नहीं हो सकती, इसलिए तुम्हारे साथ एकत्र राज्य करनेके निश्चयमें बल निश्चय किया है, कि तुम भी भागीरथीके दक्षिण किनारेके राजा होओ और मैं उत्तर किनारेका होऊँ । ब्राह्मण बोले, कि

तब पाञ्चालराज, अस्त्रविद्यामें पण्डित, जिसने धीमान् द्रोण की वह बात सुनकर बोले, कि हे महाभक्ति भारद्वाज । तुम्हारा मङ्गल है, तुमने जैसा-समझ लिया है, वही हो, कि मैं साथ तुम्हारी मित्रता सदा बनी रहे । शत्रु-नाशी द्रोण और राजा पाञ्चाल एक दूसरेसे ऐसा कहकर अनुत्तम मित्रता निश्चय कर निज निज स्थानकी चले गये । पर राजा द्रुपदके हृदयसे वह बड़ा अपमान क्षणभरके लिये भी दूर नहीं हुआ । वह उसके सेचने अति दुःखी और दुदले होने लगे ।

चैत्ररथपर्वमें एकसौ सासठ अध्याय समाप्त ।

ब्राह्मण बोले, कि राजा द्रुपद दुःख और शोकसे विकले होकर योग्य पुत्र पानेकी अभिलाषासे, कर्ममें सिद्ध अच्छे ब्राह्मणोंकी दूतों के द्वारा एक आश्रमसे दूसरेमें जाने लगे । यह चिन्ता, कि मेरी अच्छी सन्तान नहीं है उनके हृदयमें सदा जगतो थी । वह अपने अनादरके कारण अपने पुत्रों और मित्रोंको धिक्कारते हुए द्रोणका बदला लेनेके लिये सदा लम्बी शंस छोड़ा करते थे । वह बदला लेनेकी चाहने पर भी सीधेकर निश्चय नहीं कर सकें, कि श्रेष्ठिय-बलसे क्योंकर द्रोणके प्रभाव, नम्रता, शिक्षा और चरितसे बढ़ सकते हैं । अनन्तर घूमते-घूमते गङ्गाके किनारे कल्याणपाद नामक राजाकी पुत्रीके निकट ब्राह्मणोंके पवित्र स्थानमें जापहुँचे । वहाँ जो सब ब्राह्मण थे, वे सबके सब स्नातक, व्रतशील और महाभाग थे । उनमें याज और उपयाज नामक व्रतशील शसपुत्री ब्रह्मप्रेमी, संहिता पाठनें नियुक्त, काश्यप गौतमकी ऋषियोंमें श्रेष्ठ दा ब्रह्मर्षियोंकी देखकर उनको इच्छानुरूप कार्य पूरा करानेके योग्य समझा । आगे वह आलस्यकी विचारकर सम्पूर्ण कामनाओंसे उनकी उपासना करने

लगे। अनन्तर उन दोनोंमें कनिष्ठको शक्ति-
मान जानकार एकात्ममें उनकी शरण ली।
वह सम्पूर्ण कामकी वस्तुओंका लोभ दिखा,
पाँव दाव, मोठो दात कड़, अभिलाषा पूरे
कर इत्यादि उपायोंसे उन व्रतशील उपया-
जकी प्रसन्न करने लगे; एक-समय द्रुपद
विधिपूर्वक उपयाजकी पूजा कर बोले, कि हे
ब्रह्मन् उपयाज। यदि आप यह कर्म करें,
कि जिसके करनेसे मेरे द्रोणनाशी पुत्रका जन्म
हो, तो मैं आपको एक अर्बुद गौ दूंगा। हे
हिजयेंडु। यदि आपकी और किसी वस्तुकी
अभिलाषा हो, तो इसमें सन्देह नहीं है, कि
उसेभी पूराकर दूंगा। ऋषि बोले, कि मैं
यह काम नहीं कर सकूंगा। द्रुपद तिस
परभी उन ऋषिकी उपासनाके लिये फिर
सेवा करने लगे। अनन्तर १ वर्ष बीतने पर
एकदिन हिजोत्तम उपयाजने राजा द्रुपदकी
मोठो बातोंसे कहा, कि एक समय मेरे ज्येष्ठ
भाईने घने वनमें चलते समय ऐसे स्थानसे गिरा
हुआ फल उठा लिया, कि वह नहीं जानते
थे, कि वह स्थान पवित्र है वा नहीं। मैं
उनके पीछे चला था, सो उन्हे उस अयोग्य
कामकी करते देखा था। हे राजा। उन्होंने
उस दीपयुक्त वस्तुके लेनेमें कोई विचार
नहीं किया। उस फलकी देखतेही
उसके पापयुक्त दोषको समझ उनकी बुद्धिमें
ऐक्यारंभी नहीं आयो, अतएव जिन्होंने
एक स्थानमें शीवका विचार नहीं किया, वह
अन्य स्थानों क्योंकर दीप-दर्शी होयंगे, अर्थात्
वह तुम्हारे अभीष्ट विषयमें दोष नहीं देख
पावेंगे। औरभी जब वह गुरुकुलमें रहकर
संहिता पढ़ते थे, तब बड़वा औरोंकी जूठी की
हुई वस्तुभी खालीने थे, इसमें उनकी घृणा
नहीं थी; वह सदा अन्नहीका गुण गाया
करते थे। उनके उस प्रकार कामोंकी देख-
नेके कारण मैं तर्करूपी आखोंसे उनको

फलार्थी समझ रहा हूँ। हे महाराज।
तुम उनके पास जाओ; वह तुम्हारे याजनकार्य
करनेमें सममत होंगे।

राजा द्रुपद याजके चरित्रकी सुन निन्दा
करनेकी इच्छा होने परभी मनही मनमें अपने
कार्यके सोचमें उपयाजकी बातसे उनके आश-
मकी गये। वहाँ पहुँचकर पूजनीय याजकी
सब प्रकारसे पूज कर बोले कि हे विभो। मैं
आपको अस्सी सहस्र गौ दान करूँगा, आप
मेरा याजन कार्य करें। मैं द्रोणकी शत्रुता-
रूपी आगसे जल रहा हूँ, आप कृपास्वपी
जल सौंचकर मुझको शीतल करें। द्रोण
ब्रह्मविद्या और ब्रह्मास्त्र दोनोंमें दक्ष है,
इसलिये मित्रताही लड़ाईमें मुझको परास्त
किया है। वह बुद्धिमान और कौरवोंके प्रधान
आचार्य है; इस भूमण्डलमें कोई क्षत्रिय
उनसे श्रेष्ठ नहीं है। उसका धनुष छः अर-
बिके समान बड़ा है; उनका वाण-जाल सर्व
जीवोंकेही शरीरका नाश कर सकता है।
इसमें सन्देह नहीं है, कि वह महानुभव भार-
हाज ब्राह्मणके वेशमें बड़े चापधारी होकर
क्षत्रिय-तेजका सञ्चानाश कर रहे है। वह
क्षत्रिय नाशनेके लिये मानो दूसरे परशुराम
वने है। इस पृथ्वी भरमें कोईभी उनके
कठोर अस्त्र-बलको घटा नहीं सकता है।
वह आहुतियुक्त-प्रज्वलित अग्निकी भाँति
ब्राह्मतेजके साथ साथ क्षत्रियतेजकी मिलाकर
शत्रुकी जला-मारते है। उनका ब्राह्मतेज
क्षत्रियतेजसे मिलकर श्रेष्ठ होने परभी आपका
ब्राह्मतेज उनसे श्रेष्ठ है, और केवल क्षत्रिय-
बलधारी मैं उनसे हीन बना हूँ, अतएव मैं
आपको जो द्रोणसे श्रेष्ठ और विश्वके अच्चे
जानकार है, प्राप्त होकर आपके ब्राह्मतेजकी
शरण लेता हूँ। हे याज। यह काम
करें, कि जिससे मैं लड़ाईमें जयके
अयोग्य और द्रोणनाशी पुत्र लाभ

सकू; आपको दश कोटि गौदान करनेको प्रस्तुत हूँ।

याज तथास्तु कहकर याजके प्रयोगके विषयमें मनही मनमें ध्यान करने लगे; और उस कार्यको कठिन जानके निष्काम उपयाजसे सहायता करनेकी कहा। महर्षि याजने जब द्रोणनाशके लिये प्रतिज्ञा करी तब महातपा उपयाजने नरेन्द्र द्रुपदके निकट उनके पुत्र फलके लिये अतीव-साध्य कर्मकी कथा कह सुनायी और कहा, कि हे द्रुपद। आप जैसे यशस्वी और बल-वीर्यवन्त पुत्रकी कामना करेंगे, आपकी तैसाही पुत्र मिलेगा। अनन्तर भूपाल द्रुपदने जब द्रोण-विनाशी पुत्र पानेकी युक्त निश्चयकर कार्य साधनेके लिये उस यज्ञके योग्य सम्पूर्ण सामग्री इकट्ठी कर दी, तब उन्होंने यज्ञ आरम्भ कर दिया। आगे याजने हवनके होजाने पर राणीको यह आज्ञा करी, कि ऐ राज्ञी। पृथतराज वधू। तुम हवि लेनेके लिये शीघ्र मेरे पास आओ, तुम्हारे पुत्र, कन्या उपस्थित है। रानी बोली, कि हे ब्रह्मन्। मेरा सुंह कुङ्कुमादि गन्धके पदार्थोंसे पूरित है, अङ्गरागोंसे भूषितभी हूँ, अतएव मेरे अभीष्ट पुत्रके लिये आप कुछकाल विलम्ब करें, मैं शुचि हो आती हूँ। याज बोले, कि हवनके पदार्थ उपायाजसे मन्त्रयुक्त होकर याजके द्वारा पकाये गये हैं, तुम चाहे आओ वा न आओ अवश्यही उससे कामना पूरी होगी। ब्राह्मण बोले, कि याजने यह कहके अग्निसे संस्कार किये हुए हव्यकी आहुति उछोही दी त्योंही उस अग्निसे ज्वालावर्ण भीमाकृति कोरोटसे सुशोभित सुन्दर कवचयुक्त धनुःप्रमाणधारी और देवमदृश एक कुमार उत्पन्न हुआ। वह कुमार जन्म लेतेही वार बार मित्त-गर्जन करता हुआ प्रधान रथ पर चढ़ गया और उस रथ पर इधर उधर जाने लगा। यह देखकर पाञ्चाललोग आनन्दित

होके इतना चिल्लाकर “साधु साधु” कहके ऐसा भारी शब्द करने लगे, कि मानों धरती उन हर्षयुक्त पाञ्चालोंका भार सभालनेकी असमर्थ होगयी। तब आकाशवाणी हुई, कि इस राज-कुमारने द्रोणवधके लिये जन्म लिया है। यह पुत्र पाञ्चालोंका यश बढ़ानेवाला, भयतापी और राजाका शोक दूर करनेवाला होगा। आगे वेदीके मध्यसे पाञ्चालराजकुमारी सौभाग्यवती श्यामाङ्गी एक कुमारी उठी। उस कन्याके अङ्गोंकी शोभा बहुत सुन्दर, दोनों आंखें नीली, चोड़ी और पद्मपत्राशके समान, केश काले और घुघुराले, नख जंवे और तामेके रङ्गके, दोनों भीहें बड़ी शोभा देनेवाली, और स्तन बड़े तथा शोभायुक्त थे, उसकी शोभा देखकर समस्त पड़ती थी, कि मानों साक्षात् देवकन्या मानवीके स्वरूपमें प्रगट हुई थी। उसकी नोतपद्म समान देहको गन्ध कोस भरकी दूरीतक पहुचने लगी। वह देवलपिणी कन्या ऐसी अनुपम रूपवाली हुई कि देव, दानव, यक्ष आदिभी उसकी प्रार्थना करें। उस सुन्दरी कन्याके जन्म होने परभी आकाश वाणी हुई, कि “यह कन्या सम्पूर्ण नारियोंमें श्रेष्ठ और वज्रत रत्न कुञ्जोंका नाम चाहनेवाली होगी। इस सुन्दरीसे उचित समय पर देवता का कार्य पूरा होगा। इसके लियेही कौरवोंमें इस भय उपस्थित होगा।” सम्पूर्ण पाञ्चाल उसे सुनकर हर्षके मारे सिंहींको नाई ऐसी धाँधल करने लगे, कि मानों धरती उन हर्षित पाञ्चालोंका भार सभालनेकी असमर्थ हुई।

पुत्रचाहनेवाली राजा द्रुपदकी रानी उस पुत्र कन्याको देखकर याजके निकट जा पड़ायी और बोली, आप ऐसा करें, कि यह पुत्र कन्या मेरे अतिरिक्त किसी दूसरीकी माता करके जान न सके। याज राजाके प्रिय कार्यको करनेके लिये “तथास्तु” बोले, आगे ब्राह्मण

सफल मनोरथ होके बोली, कि राजा द्रुपदका यह कुमार वृष्ट अर्थात् प्रगल्भ, अति वृष्ट अर्थात् विपद्घियोंकी उन्नति न रहनेवाला और युष्मादि अर्थात् कवच कुण्डल आदिके साथ उत्पन्न हुआ है, सो इसका नाम वृष्टयुक्त हुआ, और यह कुमारी काली हुई है, सो इसका नाम कृष्णा रहा । राजा द्रुपदके महा-यज्ञसे ऐसे पुत्र और कन्याकी उत्पत्ति हुई थी । अनन्तर प्रतापी भारद्वाज, द्रोणने पाञ्चालराजके पुत्र वृष्टयुक्तकी अपने घरमें लाकर अस्त्रोंकी शिक्षा देकर पहिले लिये हुए आधे राज्यकी लेनेके पलट्टेमें उपकार किया । महामति द्रोणने यह समझ कर, कि दैवीभाव लङ्घन-योग्य नहीं है, अपनो कीर्तिकी रक्षाके लिये ऐसा कार्य किया ।

चैत्ररथपर्जमें १६८ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर महा-बली पाण्डवगण वह वृत्तान्त सुनकर श्रुतीसे बिंधे जानेकी भांति दुःखो भये । सत्य कहने-वाली कुन्ती पुत्रोंको अनमन देख कर युधिष्ठिरसे बोली, कि हमको इस ब्राह्मणके घर रहे बद्धत दिन बीते । इस सुन्दरनगरमें महात्माओंसे भिक्षा ले ले कर खेल कूदकर काल गंवाया है, यहां जितने सुन्दर सुन्दर बन और उपवन है, वह सभी वार वार देख चुके हैं । हे वीर कुसुमन्दन ! उन स्थानोंकी फिर देखनेकी अब वैसी प्रीति नहीं होती, और एक स्थानमें रहनेसे वैसी भिक्षा मिलनेकी भी सम्भावना बनी नहीं रहती ; अतएव यदि तुम्हारा मत होवे, तो हम सुखसे पाञ्चाल देशको जायं, वह स्थान पहिले नहीं देखा है, उसके देखनेसे सुख प्राप्त होगा । हे शत्रु-नाशि । सुना है, कि पाञ्चालदेश अन्तसे भरा पूरा है और वहाँके राजा यज्ञसेनभी ब्रह्मपरा-यण हैं । फिरभी एक स्थानमें सदा रहना

मेरा अभीष्ट नहीं है, यह उचितभी नहीं है । यदि तुम्हारा मत होवे, तो हम उसस्थान को सुख पूर्वक पधारें । युधिष्ठिर बोले, कि आपकी जैसी इच्छा होगी, वही हम करेंगे, और वही हमारी मङ्गलदायी होगी ; पर नहीं जानते भाईलोग क्या चाहते हैं । वैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर कुन्तीने जब भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेवसे वहाँ जानेकी इच्छा पूछी, तब वेभी उस पर स्वीकृत हुए । महाराज ! अनन्तर कुन्ती और उनके बेटे ब्राह्मणसे मिल कर महात्मा भूपाल द्रुपदके सुन्दर नगरकी गये ।

चैत्ररथपर्जमें एकसौ उनहत्तर अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले; कि जब महात्मा पाण्डव लोग ब्राह्मणके घरमें विप कर बस रहे थे, तब एक दिन सत्यवतीके पुत्र व्यासजी उनकी भेटके लिये आये । शत्रुनाशी पाण्डव गण उनकी आते देखकर उठकरके प्रणाम दण्डवत पूर्वक दोनों हाथ जोड़ करके खड़े रहे । आगे उनकी आज्ञासे वे सब बैठ गये । वह उनसे पूजे जाकर प्रीतिपूर्वक यह बोले, कि हे शत्रुनाशिया । तुम धर्ममार्गमें रहकर शास्त्रके अनुसार अपनी जीविका केंर लेते हो न ? पूजनीय ब्राह्मण लोग तुमसे पूजे तो जाते हैं ? अनन्तर भगवान् कृष्णदेवायन धर्मार्थयुक्त भाति भातिकी विचित्र कथा कह-कर फिर यह कहने लगे, कि एक तपोवनमें किसी महात्मा ऋषिको एक कन्या थी ; उसकी कमर पतली और भौंह अच्छी थी और वह बड़ी सुन्दरी और सर्व गुणोंसे सहा-वनी थी ! ऋषिकन्या अपने कर्मवश अभागी भई थी, सती और रूपवती होने पर भी पति नहीं मिला, अनन्तर वह चित्तमें दुःख मान-कर पति पानेके लिये तप करने लगी । आगे

कड़ी तपस्यासे भगवान् शङ्करकी सत्पुष्ट करने पर शङ्कर प्रसन्न होकर बोले; कि हे भट्टे ! मैं, शङ्कर तुमको वर देनेकी उद्यत हूँ और मैं, वर मांगी, तुम्हारा मङ्गल होगा । ऋषिकन्या अपने हितके निमित्त ईश्वरसे बार बार बोली, कि मैं सर्वगुणोंसे भूषित पति मांगती हूँ । वाक्पति ईशान उससे बोले, कि ऐ भट्टे ! तुमकी पाँच भरतवंशी पति मिलेंगी । कन्या वरदाता महादेवजीकी यह बात सुनकर बोली, कि हे देव ! हे विभो ! मैं आपकी कृपासे एकही पति मांगती हूँ । तब देवदेव फिर यह सुन्दर वाणी, बोले, कि तुमने यह बात कि “पति दो” पाँच बार मुझसे कही है, सो अन्य जन्ममें तुम्हारे पाँच पति होंगे ।

हे भरतकुल-भूषणी । -- उस कन्याने इन दिनों द्रुपदकुलमें जन्म लिया है । देवता-समान अतिन्दनीया कृष्णा ताम्बी वह द्रौपदी तुम्हारी पत्नी बननेकी बाट देख रही है ; सो अब तुम पाञ्चाल नगरमें जाकर वहाँ ठिके रहो । महाबली पाण्डवों । तुम निःसन्देह उस कृष्णाकी पाकर सुख पाओगे । पाण्डवोंके दादा महातपस्वी, महाभाग व्यासदेव पृथा और पार्थोंसे यह कह कर सभाषण पूर्वक चले गये ।

चैत्ररथपर्वमें एकसौ सत्तर अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि भगवान् व्यासके चले जाने पर पुरुषार्थ शत्रुनाशी पाण्डवगण ब्राह्मणकी नमस्कार-पूर्वक सत्कार करके प्रसन्न चित्तमें माताको आगे करके पांचाल नगरकी ओर चले । वे अपने उद्देशके अनुसार सीधे उत्तर ओरको चलकर, उस सोमा-चयन नामक तीर्थमें जा पहुँचे, कि जहाँ भगवान् चन्द्रशेखर विराजते हैं । वहाँ दिन बीतने पर महारथी धनञ्जय पथ दिखाने और रात्रि में एक जलतो हुई लकड़ी उठाकर

आगे आगे चले, आगे पुरुषार्थ पाण्डवोंके गङ्गा तट पर जा पहुँचे । वहाँ ईर्ष्यासे भरा हुआ एक गन्धर्वराज जलक्रीड़ाके लिये आकर सुन्दर भागोरथी-जलमें स्त्रियोंके संग निराश्रित खेल रहा था । पाण्डवगण उस नदीमें उतर रहे थे । उस महाबली गन्धर्वराजकी उनका शत्रु मिला और वह क्रोधसे जल उठे । अनन्त शत्रुनाशी पाण्डवोंकी माताके साथ आते देख कर कठोर शरासनकी फैलाकर बोले कि रात्रि आनेके पहिले जो घोर लाल सभा-काल होता है, उसके अस्त्री-लबके अतिरिक्त शेष सब मुहूर्तही कामचारी यत्न, गन्धर्व और राक्षसोंके विचरनेका काल निर्दिष्ट है ; इसको सिवाय शेष सम्पूर्ण काल मनुष्योंके कर्माचरणके निमित्त निश्चित है । यदि मनुष्य गण लोभवश धूमते घामते हुए हमारे उभ निर्दिष्ट कालमें निकट आते हैं, तो हम उन मुखोंकी नष्ट कर डालते हैं । इस लिये जो लोग रात्रिकी जलाशयमें जाते हैं, वे बड़ी भूपालभी होंगे, तो विदर्भ ब्राह्मण उनकी निन्दा करते हैं, अतएव तुम दूरे रहो, मेरे पास मत आओ । क्या तुम नहीं जानते कि मैं भागोरथीके जलमें देह-डुबा रहा हूँ ; मैं मानो और बुवेरकापित्त अङ्गारपर्ण नामक गन्धर्व हूँ, मैं अपने भुजबलहीसे काम पूरा कर लेता हूँ, किसीको क्षमा नहीं करता हूँ, मेरे अधिकारका यह वन अङ्गारपर्ण नामसे प्रसिद्ध है । मैं इस वनके भीतर गङ्गा और राक्षसी नदीमें भाँति भाँतिकी क्रीड़ा करता हूँ और विचरता हूँ । मैं बुवेरकी पगड़ीकी भाँति अर्थात् डूबा प्रिय हूँ ; लक्ष्मणों से जान पड़ता है, कि तुम राक्षस, श्रेष्ठी, गन्धर्व अथवा यत्न नहीं करो, फिर क्योंकि मेरे पास आनेका साहस किआ अर्जुन बोले, कि रे दुर्मते । समुद्र विमान चक्रका पार्श्व और गङ्गाजी यत्न सब त्याग

चाहे दिन रात वा स्थायी समय हो, किसके लिये रुके रह सकते हैं ? ऐ व्योमचर । चाहे पेटभरा वा पेट खाली हो, किसीके लिये दिन वा रात किसी समय जलभरी गङ्गाजी पर आनेका नियम नहीं है । विशेष कुसमयमें तुमकी चिट्ठानेसे हमको क्या हो सकता है ? क्योंकि हमें शक्ति है । रे कुटिल ! जो लोग लड़नेमें असमर्थ हैं, वेही तुम्हारी पूजा करते हैं । पूर्वकालमें यह गङ्गा हिमाचलकी सुवर्ण चोटोसे निकल कर सात भागोंमें बंटके समुद्र-जलसे मिल गयीं हैं । जो लोग गङ्गा, यमुना प्रवृत्ता सरस्वती, रेवस्था, शरयू, गोमती और गण्डकी इन सात नदियोंका जल पीते हैं, उसके सब पाप कष्ट जाति हैं । ऐ गन्धर्व ! आकाशमें वहनेवाली पवित्र यह गङ्गा आकाशमें जाकर देवलीकमें अलकनन्दा नामसे और पिण्डलीकमें पोषात्मा प्रौकोतारने वाली वैतरणी नामसे प्रसिद्ध हुई है । कृशाईपायनने कहा है, कि स्वर्ग तथा शुभदेनेवाले इस सुर-सीतमें जानकी किसीको मनाही नहीं है, तुम उस विनयवादीकी गङ्गाजीको क्या रोकना चाहते हो ? यह सनातन धर्म नहीं है, अतएव हम क्यों तुम्हारी बात सुनकर उस वाधारहित विनयमनाहीके पवित्र गङ्गा जलको नहीं छूयेंगे ?

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अङ्गारपर्ण यह बात सुनकर क्रोधके मारे शरिसन चढ़ाकर अति विषयुक्त सर्पके समान तलवाणोंकी वधने लगा । पाण्डुपुत्र धनञ्जयने उस जलती हुई लकड़ी और उत्तम चर्मकी घुमाकर उनके सब वाणोंकी व्यर्थ किया और बोले, कि रे गन्धर्व ! जो लोग अस्त्रोंके जानकार है, उनको विभीषिका दर्शना उचित नहीं है, क्योंकि उनके निकट वह फीनकी भांति क्षण-भरमें लोप होजाती है । हे गन्धर्व ! मैं समझता हूँ, कि गन्धर्व मनुष्यको जातिसे

पराक्रमी है, सो मैं तुमसे दिव्य अस्त्रोंके सहारे लड़ूंगा, कपटयुद्ध नहीं करूंगा । पूर्वकालमें देवराजके गुरु सबके माननीय बृहस्पति जीने अनास्र भरद्वाजकी दिया था । आगे भरद्वाजसे अग्निवेशकी मिना, अग्निवेशसे मेरे गुरु ब्राह्मणोंमें श्रीष्ठ द्रोणकी मिला उन्होंने यह सुन्दर अस्त्र मुझको दिया है । श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि पाण्डुपुत्र अर्जुनने यह कहकर क्रोधसे गन्धर्व पर उस प्रज्वलित अनास्रकी छोड़कर उनके प्रतिद्वन्द्वकी भस्म किया । वह महाबली गन्धर्व अनास्रके प्रभावसे रथसे च्युत होकर नीचे सुहकर धरती पर गिर रहे थे, कि अर्जुनने उनके मालाओंसे सजे सजाये केश पकड़ लिये, और अस्त्रकी चोटसे अचित उस गन्धर्वको खींच कर भाइयोंके पास ले आये । अनन्तर उस गन्धर्वकी कुम्भीनसी नाम्नी स्त्रीपति को रक्षाके लिये युधिष्ठिरकी शरण लेकर बोली, कि हे महाभाग ! मेरी रक्षा करें—मेरे पतिको छोड़ दें—हे प्रभो ! मेरा नाम कुम्भीनसी है, मैं गन्धर्वी हूँ, आधी शरण लीतो हूँ । तब युधिष्ठिर अर्जुनसे बोले, कि हे शत्रुमर्धनेहार ! जो शत्रु युद्धमें हारकर पराक्रम और यशसे रहित होकर स्त्रीसे बचाया जाता है, उसको कौन मार सकता है ? भैया ! तुम इसको छोड़ दें । अनन्तर अर्जुन गन्धर्वसे बोले, कि गन्धर्व ! तुमके जीवन मिल गया, चले जाओ, शोक मत करना । आज कुरुराज युधिष्ठिरने तुमकी बचानेकी आज्ञा दी है । गन्धर्व बोले, कि मेरा पर्ण अर्थात् वाहन प्रज्वलित अङ्गारकी भांति दूसरोंके छूनेके अयोग्य था, इसलिये मैं अङ्गारपर्ण नामसे प्रख्यात था ; अब तुमसे हार कर यह अङ्गारपर्ण नाम छोड़ देता हूँ, क्योंकि जब जनसमाजमें बल और वीर्यका मानही नहीं रहा, तब केवल नामके मान-नीय बने रहनेसे प्रयोजन ही क्या है ? आज

सुभी यह एक परम लाभ हुआ, कि सुभकी दिव्यास्त्र धरनेवाला मित्र मिल गया, आज सुभी सित अर्जुनकी गन्धर्वी माताकी विद्या देनेकी इच्छा हो रही है। मेरा उत्तम विचित्र रथ था, सो मैं चित्ररथ करके प्रसिद्ध था, अब वह रथ अस्त्राग्निसे जल गया, अतएव चित्ररथ होने पर भी, अब सुभकी दग्धरथ नाम मिला। हे मित्र। मैंने पहिले तपस्यासे जो गन्धर्वी विद्या लाभ की थी, आज वह विद्या तुमको देता हूँ, क्योंकि तुम मेरे प्राणदाता और महात्मा हो। जो बलसे शत्रुकी हराते मोहित करते और उस हारे हुए मोहित शत्रुके शरण लेते पर उसका प्राण दे देते हैं, वह अवश्यही कल्याण पानेके योग्य है। उस विद्याका नाम चाक्षुषी है; भगवान् भद्रुने वह विद्या सीमकी दी थी, सीमने विश्वासुकी दी और सुभकी विश्वासुसे मिली। पर वह गुरुकी दी हुई विद्या इस कायरके हाथसे नष्ट हो गयी। इस चाक्षुषी विद्याके गुरुओंका सिलसिलेवार आगम-वृत्तान्त कहा, अब उसके वीर्यकी बात कहता हूँ, सुनो। त्रिलोकमें चाहे जिस किसी पदार्थकी आखींसे देखना चाहोगे, वही देख-पड़ेगा और उस पदार्थका स्वभाव और दशा जैसी है, वह भी देखना चाहो तो देख लोगे। कृमास एक पांवके बल खड़े रह कर तप करनेसे वह विद्या मिलती है, पर तुम्हारे उस व्रतकी न किये रहने परभी मैं उसे तुमको दूंगा। हे महाराज। हमलोग उस विद्याहीके बलसे अनुभवदर्शी हो कर मनुष्योंसे विशिष्ट और देवोंके सदृश हुए हैं। हे पुरुषयष्ट। फिर मैं तुम और तुम्हारे भाइयोंमें हरेकको सौ सौ गन्धर्वज घोड़े देता हूँ; सुन्दर वरणा और मन समान वेगवान वे घोड़े देवता और गन्धर्वोंके बाहन हैं; उनकी युवावस्था वा युवावस्था नहीं है, वे कभी वेग रहित नहीं

होते। पूर्वकालमें वृत्रासुरके मारनेके निवे देवराज महेन्द्रका वज्र बना था। वह वज्र वृत्रासुरके सिर पर गिर कर सहस्र भागोंमें बंट गया। देवगण वज्रके उन अनेक भागोंकी उपासना किया करते हैं। इन तीनों लोकोंमें यशस्वपी धन उस वज्रका एक भाग है; ब्राह्मण गण जिस हाथसे अग्निमें आहुति चढ़ाते हैं उनका वह हाथ उस वज्रका एक भाग है, क्षत्रियगण जिस रथ पर चढ़कर लड़ाईमें देवता और ब्राह्मणोंके शत्रु नष्ट करते हैं उनका रथ उस वज्रका एक भाग है; वैश्यगण देवता और ब्राह्मणोंकी जो दान देकर सुखी होते हैं, उनका वह दानभी उस वज्रका एक भाग है; और शूद्रगण ब्राह्मणोंकी जो सेवा कर निज धर्मकी रक्षा करते हैं, उनकी वह सेवाभी उस वज्रका एक भाग है, अतएव घोड़े क्षत्रियोंके वज्ररूपी रथके अङ्ग होनेके हेतु मारनेके अयोग्य करके कहे गये हैं। पर रथके अङ्ग घोड़े, घोड़ियोंसे उपजते हैं, उनमें जो घोड़े गन्धर्व लोकमें जन्म लेते हैं, वे सब शूर हैं और उन का वर इच्छाधीन है तथा वे मनमाने वावान और वशीभूत होते हैं, इस लिये मेरे उन घोड़ोंसे तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा।

अर्जुन बोले, कि हे गन्धर्व। तुम जीवन नष्ट होनेके भयसे वच जाने पर प्रसन्न होकर सुभकी विद्या-वा घोड़े देनेकी उद्यत हुए हो, सो मैं उन्हें नहीं लिया चाहता। गन्धर्व बोले, महानुभाव जनोसे मिलनाही प्रीतिपूर्ण होता है, विशेष मैं जीवन पानेसे प्रसन्न होऊँ हूँ, इस लिये तुमको वह विद्या देता हूँ। हे भरतश्रेष्ठ विभक्तो! मैं जिस प्रकार तुमको वह विद्या दूंगा, वैसेही पलटमें तुमसे सनातन उत्तम अस्त्रास्त्र लूंगा। अर्जुन बोले, कि हे गन्धर्व! मैं अस्त्र देकर तुमसे घोड़े मांगता हूँ, हमारी मित्रता बनी रहे। हे मित्र गन्धर्व! बोले, कि गन्धर्वकी आनिधि

मनुष्य की जातिकी क्यों भय आ पड़चता है ; और यहभी कही, कि हम सब शत्रुनाशी साधु और वेदज्ञ होने परभी रात्रिकी चलते हुए क्यों तुमसे लाञ्छित हुए । गन्धर्व बोले, कि हे पाण्डवो । तुम गुरुकुलसे लौट आये परतौभी विवाह नहीं किया है, सो विन मायम हो ; और तुम्हारे सप्त ब्राह्मणभो नहीं हैं, इसी लिये, मैंने तुम पर चढ़ाई की थी । दक्ष, राक्षस, गन्धर्व, पिशाच, उरग और दानव यह सब धीमान है, और कुरुवंशकी कथा कहते हैं । हे वीर ! मैंनेभी नारदादि देवर्षियोंसे तुम्हारे ज्ञानशील अगले पुरुषोंके गुणकी कहानी सुनी है, और स्वयं इस सागर-गङ्गी कृष्ण धरतीमें घूमता हुआ तुम्हारे सुवंशका प्रभाव प्रत्यक्ष देखा है । हे अर्जुन ! वेद और धनुर्विद्यामें त्रिलोक भरमें प्रशंसित यशोवन्त तुम्हारे आचार्य-एतको भली प्रकार जानता हूँ । हे कुरुधरा ! तुम्हारे ज्ञानशील पित्र-पुरुष कुरुवंश बढ़ानेहारे देवोंमें श्रेष्ठ-धर्म, पवन, इन्द्र और दीना अश्विनी-कुमार और मानवोंमें श्रेष्ठ पाण्डु इन ऋषींसे विशेषरूपसे ज्ञात हूँ । तुम पाँचों भाई सम्पूर्ण शस्त्र विद्याओंमें दक्ष, अच्छे स्वभावी, महात्मा सुचरित्रवान व्रतशील और शूर हो, तुम्हारे मन और बुद्धि बड़ी अच्छी और स्वभाव अति शुद्ध हैं । हे पार्थ ! मैं यह सब जानने परभी तुमको लाञ्छन किया था ; क्योंकि भुजबल युक्त कोई पुरुष स्त्रीके सामने अपने अपमानको सहन नहीं कर सकता है ; विशेष रात्रिकालमें हमारा बल बृद्धत बढ जाता है, इस लिये मैं स्त्रीके सहित क्रोधके वशमें होगया था । हे तापत्य वंश वर्धन ! मैं जिस विधिके अनुसार तुमसे युद्धमें परास्त होगया हूँ, वह कहता हूँ, सुनो, हे पार्थ ! ब्रह्मचर्य परम धर्म है ; तुम उस धर्मको अवलम्बन किये हुए हो, इस लिये तुमसे हार

गया । हे शत्रुनाशि ! कोई विवाह किया हुआ-क्षत्रिय यदि रात्रिकालमें हम स्त्रीगोंसे लड़े, तो वह किसी प्रकार जीवित नहीं रह सकता है । हे पार्थ ! विवाह कर लेने परभी जो क्षत्रिय वेदसे अलंकृत होकर पुरोहित पर सब कार्योंका भार सौंप देता है, वह युद्धमें निशाचरोंको परास्त कर सकता है ; हे तापत्य । इस लिये मनुष्योंकी मनमाना-हरक शुभ कर्ममें दमगुणयुक्त पुरोहित नियुक्त करना चाहिये । हे मित्र ! जो वेद और शिवादि षडङ्गोंमें पण्डित पवित्र-वशी-सत्यवादी, धर्मात्मा और जितेन्द्रिय है, वही राजपुरोहित होनेके योग्य है । जिस राजाके धर्मज्ञ वाक्निपुण सुशील सुवंशी पुरोहित रहते हैं, उनकी इस लोकमें सदा जय और परलोकमें स्वर्ग-प्राप्ति होती है । राजाको अनमिले पदार्थके मिलने और मिले हुए पदार्थकी रक्षाके लिये गुणवान पुरोहित नियुक्त करना चाहिये । जो राजा अपने लिये ऐश्वर्यकी इच्छा करते हैं, उनकी सागर-सहित सम्पूर्ण धरतीको प्राप्त करनेके निमित्त सब प्रकारसे पुरोहितके मतानुसार रहना चाहिये । हे तापत्य ! कोई राजा ब्राह्मण वर्जित होकर केवल शूरता वा अभिजात्यसे धरतीको जीत नहीं सकता ? अतएव निश्चय जानना, कि जिस राज्यकी कार्य-चिन्तामें ब्राह्मणकी प्रधानता रहती है, उस राज्यकी सदा रक्षा होती है । चैत्ररथ पर्वमें एकसौ एकहत्तर अध्याय समाप्त ।

अर्जुन बोले, कि हे मित्र ! तुमने मुझको तापत्य करके पुकारा, मैं जाना चाहता हूँ, कि तापत्य शब्दका अर्थ क्या है । हे साधो ! हम कुन्तीको सन्तान हैं, इस हेतु कीर्त्तय करके प्रख्यात हैं, पर तापत्य किसका नाम है, कि तापत्य कहके पुकारे जा सकें । इसका सच्चा तत्व जाननेकी इच्छा हो रही है ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि गन्धर्वराज कुन्तीएव धनञ्जयकी वह वात सुनकर उनके निकट लोकोमें प्रसिद्ध कथाकी कहने लगे। गन्धर्व बोले, कि हे सुधोवर । मैं यह मनीहर कथा तुमसे आद्योपान्त संव कहता हूँ, जिस कारण तुमको तापय कहके पुकारा, उसकी कथा विस्तृत रूपसे कहता हूँ ज्ञान लगाकर सुनो। इन देवताकी, जिन्होंने अपने तेजसे आकाशमण्डलको भर लिया है, उनको तीनों लोकोंमें प्रशंसित तपस्विनी तपती नाम्नी एक कन्या थी, वह सावित्री की छोटी बहिन थी। तपनदेव जिस प्रकार रूपवान है, वह तपती वैसी ही रूपवती थी। कोई उसको रूपको शोभासे जान नहीं सकता था, कि वह देवकन्या असुर-कन्या, यक्ष-कन्या, गन्धर्व-कन्या राक्षस-कन्या, अथवा असुरा थी; उस बालाकी दोनों आँखें अच्छी काली और बड़ी थीं और संव अङ्ग यथायोग्य बंटे बंटाये और निन्द्याके अयोग्य थे। हे भारत। उसके पिता सविताने उस भाविनी अति रूपवती, और सुचारिणी देखकर जाना, कि उसके सदृश रूप-गुणशील और विद्यायुक्त योग्य वर तीनों लोकमें नहीं है, अनन्तर यथा कालमें कन्याकी यौवन पर चढ़ते देखकर सन्धान करनेके लिये योग्य वरकी चिन्ता करने लगे, किसी प्रकार स्थिर नहीं रह सके। हे कौन्तेय। उन दिनों ऋषिपुत्र कुरुग्रिष्ठ बलवान राजा सम्वरण सूर्यकी उपासना किया करते थे। विना अहङ्कार और वन्दन सम्वरण सेवाशील, नियमयुक्त और मुचि होकर गुह्य चिन्तसे भक्ति-पूर्वक नाना तपस्या, उपवास और नियम तथा अर्थ माला, गन्ध और दूसरे उपहार देकर दीप्यमान सूर्यकी निच्य उपासना करते थे। सूर्यदेवने उनकी कृतज्ञ धर्मज्ञ और अप्रतिम रूपवान जानकर तपतीके योग्य पति समझा। हे भारत। उसके अनन्तर उन्होंने उस प्रख्यात

कुलीन नृपोत्तम सम्वरणहीकी कन्या सम्वरणा करनेकी इच्छा की है पार्थ। जिस प्रकार प्रकाशित किरणयुक्त दिवाकर अपने प्रकाश आकाश-मण्डलको प्रकाशित करते हैं, वैसे ही भूपाल सम्वरणने अपने तेजसे महीमण्डलको उज्ज्वल किया था। और जिस प्रकार सूर्यके उगने पर ब्राह्मणगण उनकी उपासना करते हैं, वैसे ही ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि प्रजा भूपाल सम्वरणकी उपासना करती थी। वह श्रीमान भूप मित पर कीमल होकर सोमसे और शत्रु पर तेजवन्त होकर आदित्यसे बढ चढ निवले थे, हे कौरव। ऐसे गुणशील और चरितवान उस भूपालकी सूर्यदेवने तपती नाम्नी कन्याको दान करना चाहा था।

हे पार्थ। एक समय अति विक्रमी श्रीमान भूपाल सम्वरण मृगयाके लिये पर्वतके निकटके वनमें टहल रहे थे, कि ऐसे समय उनके अनुपम अश्वने भूख प्यासके मारि कातर होकर प्राण छोड़। तब वह बाहजको बिना पैदल ही पर्वत पर चलने लगे। आगे प्रशङ्कनेवा अनुपम रूपवती एक कन्या उनकी आँखोंके सामने दोख पड़ी। शत्रुबल मथनेहारि भूपाल उस कन्याको देखकर उस पर एकदम लगाये खड़े रहे प्राण और उसकी सुदृढ देखकर समझा, कि वह हरिकी प्यारी लक्ष्मी होगी अथवा प्रभाकरकी प्रभा प्रभाकरसे पृथ्वी पर गिरकर उस कन्याके स्वरूपसे प्रकाश हुई होगी। उस बालाकी तेजसरी देखे मानी अग्निकी शिखा और तेजस्यता तथा कान्तिसे मानो असल चद्रकी रेखा प्रकाश रही थी। वास्तवमें वह सुलोचना जिस पर्वत पर खड़ी रहकर प्रकाशमयी सुवर्णप्रतिमासी शोभा देरही थी, तत्प्रेता और गुचादि सहित वह पर्वत उस कन्याकी अनुपम शोभा और वेशकी वनावटसे सुवर्णका प्रतीत हो न लगा। राजा उसकी देखकर मनमोहक

तोनों लोकोकी स्त्रियोंका अनादर करने लगे, और दर्शनेन्द्रियकी कृतार्थ समझा। विचार कर देखा कि जलसे पयात जो सब सुन्दर पदार्थ देखे थे, उनमेंसे एकभी इस कन्याके समान रूपयुक्त नहीं है। उस सुन्दरीको देखतेही उसके गुण जलमें महीपालका चित्र और नेत्र फंस गये सो उनकी वह से टलनेकी सामर्थ नहीं रहो--और वह कुछभी समझ नहीं सके। फिर यह समझा, कि विधाताने सुर, असुर और मनुष्य, सबोंकी मंथन करके इस विशालाक्षी का रूप आविष्कार किया है; क्योंकि त्रिलोक भरमें इसके रूपकी शोभा की उपमा नहीं है। उस कन्याको देखतेही सुकुलीन राजा, काटनेवाले मदन वाणसे घायल होकर सोचने लग। वह कठोर कामाग्निसे जल कर दग्धभावयुक्त उस मनीहर कन्यासे समझानेकी बातोंमें बेबोले, कि ऐ-रश्मि! तुम कौन? किसकी बेटी हो? यहां क्यों खड़ी हो? ऐ-सुन्दरि! तुम इस निर्जनवनमें क्योंकर अकेली रह करती हो? तुमको सर्वज्ञ सुन्दरी और सर्व-आभूषणोंसे बनीठनी देखता हूं। ऐ सुन्दरि! तुम्ही इन सब आभूषणोंकी प्रार्थना-यें यह आभूषणकी भांति हुई हो। तुम देव-कन्या, यक्षकन्या, राक्षसकन्या, नागकन्या, गन्धर्वकन्या, वासानवकन्या, जान नहीं पड़ती हो। ऐ-मदगर्जिते! मैंने जितनी स्त्रियां देखीं वा जिनकी कथा सुनी है, उनमें कोईभी तुम्हारे सदृश जान नहीं पड़ती। ऐ-सुमुखी! पद्म-पलाश समान दो आखोंसे सुशोभित और चन्द्रमासे भी कीमल तुम्हारे मुखको लखकर मैं मदनसे मँशा जाता हूँ। महीपाल काम-पोड़ित होकर निर्जन वनमें उस बालासे इस प्रकार बोले, पर उस कन्याने कुछभी उत्तर नहीं दिया। पृथ्वीनाथके बार-बार उस प्रकार कहने पर वह प्रशस्तनयना इस प्रकार

अन्तर्हित हुई, कि जिस प्रकार बिजली मेघके भीतर छिप जाती है। भूपाल उस पद्मपलाश-लोचना बालोंको दृढ़नेके लिये बावलीकी भांति उस वनके चारों ओर घूमने लगे। इसकी अनन्तर वह उसकी न देखेकार अनेक प्रकारसे विलपनेकी पीकी चण भर चुप ही रहे।

चैत्ररथपर्वमें एकसौ बहत्तर अध्याय समाप्त ।

गन्धर्वबोले, कि अनन्तर उस नारीके अदृश्य होने पर शत्रुकुलनाशी भूपाल काम-मोहित होकर धरती पर गिर पड़े। तब सुन्दरहासिनी प्रशस्त पृथुल-नितम्बिनी तपती नाम्नी वह कन्या फिर उनकी दिखवाई दी और कामवश कुरुवंशी-अष्ट भूपालसे मुस-किराती हुई मीठी, बातोंमें बोली, कि हे शत्रु-नाशि! उठो, उठो, तुम्हारा मङ्गल है, मैं तुम भूमण्डल भरमें प्रसिद्ध प्रधान भूपाली, तुमको मोहवश होना नहीं चाहिये। तब राजाने यह मीठी बात सुनकर उस नितम्बिनो की ही सामने देखा। अनन्तर मदनको जलनरी जलचित्त यह भूपाल श्यामल अपोज्जयुक्त उस कामिनीसे तुतली बोलीमें बोले, कि ऐ नील-नेत्रे! मैं कामवश होकर तुम्हारी भजना कर रहा हूँ, तुम मुझे परे सो वृथावसे प्रसन्न होओ, मेरा प्राण निकल रहा है। हे कामेश! गर्भभूते विशालाक्षि! मदन सुभको तुम्हारे लिये ही तेज पंच वाणोंसे बिद्ध कर रहा है, किसी प्रकार शान्त नहीं होता है। हे भई प्रफुल्लचित्ते अनङ्गखपी धीरे! भुजङ्ग सुभको काट रहा है। हे वरनेने पीनायनश्रीणि! तुम उस कठोर सर्प विषसे मेरी रिश्ता करो। हे किन्नर गीतानुत्तम भाषिणी! मनीहर सर्वज्ञ सुन्दरी पड़ जानने चन्द्रवदने! अब मेरा जीवन तुम्हारे हाथमें है। ऐ भौर! तुम्हारे बिना मैं जी नहीं सकूंगा। ऐ पद्म-पलाक्षि! रतिपति सुभको बद्धत विद्धकर

रहा है। ऐ विशालाक्षि ! सुभ पर कृपा प्रगट करो। हे असित अपाङ्गि। मैं तुम्हारा भक्त हूँ, हे अङ्गने ! सुभको त्याग देना तुमको नहीं चाहिये, हे भाविनि प्रीति-योगसे मेरी रक्षा-करना तुमको अत्यन्त उचित है, क्योंकि तुम्हें देखकर स्नेह आजानेसे मेरा चित डोल रहा है। ऐ कल्याणि। - तुम्हारी - सुन्दरता देखकरके दूसरी स्त्री देखनेकी मेरी अभिलाषा नहीं होती। हे भाविनि। मैं तुम्हारे वशमें हो जाता हूँ, तुम प्रसन्न होओ; इस अधीन भक्त जनकी भजना करो। ऐ वरारोहि विशालाक्षि अङ्गने। मदनने कठोरवाणों ने मेरा मर्मभेद किया है। - ऐ कमललोचने ! मेरा शरीर कामाग्निसे जल-रहा है, तुम प्रेमसंयोगके जलसे उसकी ठण्डाकर दो। ऐ भाविनि ! तुम्हारे दर्शनसे उपजा हुआ - कठिन कामदेव कठोर पञ्चवाणोंसे सुभको - विद्ध कर रहा है, तुम आत्मदान कर उसकी आरोग्य करो। ऐ वराङ्गने। - गन्धर्व गिधिके अनुसार सुभसे विवाह कर लो। - ऐ रश्मिरु। कहा है, कि सब विवाहोंसे गान्धर्व विवाह ही श्रेष्ठ है। तपती बोलो, कि हे महाराज। आत्मदानमें मेरो प्रभुताई जहाँ है। क्योंकि मेरे पिता प्रियमान हैं। यदि सुभपर तुम्हारे वित्तकी प्रीति हो, तो पितासे प्रार्थना करो। हे नरनाथ। मैंने जिस प्रकार तुम्हारा चित्त चुरा लिया है, तुमनेभी देखतेही वैसेही मेरे हृदय पर क्रमशः वर्त्ताव किया है। हे नृपश्रेष्ठ ! स्त्री मात्रही स्वाधीन नहीं है, सो अपनी देह पर अधिकार न रहनेसे मैं तुम्हारे पास नहीं गयो; नहीं तो जिनको कुलोनता सर्वलोकोंमें प्रशंसित है उन भक्तप्यारे लोकनाथ भूपालकी कान कन्या पति प्राप्त करना न चाहती होगी ? अतएव तुम योग्य समय आने पर मेरे पिता आदित्यकी प्रणाम और नियम पूर्वक उपासना कर उनसे सुखे सांगना। हे शत्रुनाशो महा-

राज ! यदि पिता सुभको तुम्हें दान करनेका सम्मत होवें तो मैं सदा तुम्हारी वशीभूत बनी रहूँगी। हे क्षत्रियवर। मेरा नाम तपती है। मैं दूत लोक प्रकाशक, आदित्यकी कन्या और सावित्रीकी छोटी बहिन हूँ।

चैत्ररथ पर्वमें एकसौ तिहत्तर अध्याय समाप्त।

गन्धर्व बोलि, कि अनिन्दित रूपवती तपती यह कहकर उसी क्षण जंचेकी चढ गयी। राजा फिर उस भूमि पर गिर पड़े। इधर मन्त्री उनके सहगामी और सम्पूर्ण सेना योधोंके साथ राजाको ढूढ़ते हुए उस बड़े वनके भीतर उनको ऐरावतकी भाँति धरती पर पड़े पाया। उस बड़े चापधारी भूपालकी विना शर भूतजपर लीटते देखकर मानो आगसे भुज गये। आगे सम्मान पूर्वक वेगसे निकट जाकर काम-मोहित भूपाल-श्रेष्ठको इस प्रकार भूमि परसे उठा लिया, कि जैसे पिता पुत्रको उठावें। प्रज्ञा अवस्था, कीर्ति और नीतिमें वृद्ध उन मन्त्रीने उनकी उठाकर अपनी पीड़ा दूरकी। अनन्तर वह उठे हुए पृथ्वीनाथी कल्याणयुक्त मीठी बातोंमें बोलि, कि हे भक्त मनुजशार्ङ्गल। आपका मङ्गल होवे, आप भय न मानें। आगे उन भूपालकी जो रणभूमिमें शत्रुओंकी गिराते हैं उनके माँदे और भूखे प्यासे समझा, वह पद्मगन्धयुक्त ठंडे जलसे उनकी धूलसे रंगी हुई और सुकुम्हे खाली देहकी धोने लगे। अनन्तर उनसे भूपने एक उन मन्त्रीके विना सब दूसरोंकी विदा कर दिया। सब सेनाओंके राजाकी आज्ञासे चले जाने पर राजा फिर उस पर्वत पर बैठे। अनन्तर वह शत्रुदमन महाराज पर्वतवर शङ्खआचारके साथ सूर्यकी उपासना करनके लिये दोनों हाथ जोड़के सिर जंचा कर खड़े रहे और मनही मनमें क्षप्रिये

सिद्धको स्मरण करने लगे । हे नराधिप ! अनन्तर दिनों रात इस प्रकार खड़े रहने पर बारह दिनकी वसिष्ठजी वहाँ आये विश्व-आत्मा धर्मशील महर्षि योगबलसे उन संयत-चित्त भूपालका चित्त तपतीसे हरा गया जान कर उनका कार्य पूरा करनेके लिये सम्हा-रण-पूर्वक रुमभाया ।

अनन्तर सूर्यप्रकाशधारी भगवान् ऋषि सूर्यसे मिलनेके लिये भूपालको सामनेही ऊपरकी चढ़ गये, दोनों हाथ जोड़के सहस्रांशुके निकट पड़च कर यह कहके अपना परिचय दिया, कि मैं वसिष्ठ हूँ । अति तेजस्वी विवस्वान्, सुतिवरसे बेली, कि हे महर्षि ! तुम्हारा आना शुभ है, क्या चाहते हो । हे महाभाग वात्सीवर । तुम सुभसे जो कुछ प्रार्थना करोगे, वह बड़ी दुर्लभ भी होगी, तो मैं तुम्हारे उस वाञ्छित वस्तु को दे दूँगा । महातपस्वी ऋषि वसिष्ठ सहस्रांशु विवस्वान् की वह बात सुनकर उनकी प्रणाम करके बोले, कि हे विभावसो ! सावित्रीसे छोटी आपकी जो तपती नाम्नी कन्या है, मैं उसको राजा सम्वरणके निमित्त प्रार्थना करता हूँ । हे आकाशपते ! वह राजा अति कीर्तिशाली धर्मार्थ-तत्त्वोंकी जानकार और उदारबुद्धि है, सी वह आपको पुत्रीके पति होनेके योग्य वर है । दिवाकर ऋषिकी यह बात सुनकर सम्प्रदान करना ठान कर आदर-पूर्वक उस विप्रसे बोले, कि हे मुने ! राजा सम्वरण भूपोंमें श्रेष्ठ है, तुम मुनियोंमें श्रेष्ठ हो, और तपती भी नारियोंमें श्रेष्ठा है, अतः एव सम्प्रदानके बिना और क्या विचार हो सकता है ? अनन्तर सूर्यदेवने स्वयं ही सम्वरणके निमित्त महात्मा वसिष्ठके निकट सर्वोद्देशु दरो तपतीको दे दिया ।

महर्षि वसिष्ठ तपतीको लेकरके सूर्यसे वरदा होकर उस स्थानको लौट गये, जहाँ

प्रख्यात कीर्तिशाली कुरुश्रेष्ठ सम्वरण थे । वह कामसे जले भुने और तपतीके कारण हृदय जलाये राजा देववालाके समान सुन्दर-हासिनी तपतीको वसिष्ठके संगे आते देखकर अति प्रसन्न होकर शोभा पाने लगे । बादलसे गिरी हुई बिजली जिस प्रकार दशों दिशाकी उजालेसे छा देती है, वैसेही सुन्दरी तपतीने आकाशसे उतरकर अपनी शोभासे दिशाओंकी शुशोभित किया । राजाका बारह रात्रियोंका कठोर नियम अन्त होने पर विश्वआत्मा भगवान् ऋषि वसिष्ठ वहाँ आये । भूपाल सम्वरणने इस प्रकार तपस्यासे वरदाता ईश्वर सूर्यदेवकी उपासना कर महर्षि वसिष्ठके तेजबलसे तपनपुत्री तपतीको स्त्री प्राप्त किया, अनन्तर उन नर-सिंहने वसिष्ठकी आज्ञासे देव गन्धर्वोंसे सेवा किये जाते हुए उस श्रेष्ठ पर्वतही पर तपतीसे विधिपूर्वक विवाह किया । आगे उस पहाड़-ही पर विहार करनेके अभिलाषी होकर मन्त्री पर नगर राज्य वाहन और सेना आदिके रक्षाकी आज्ञा की । अनन्तर वसिष्ठ उनको जता करके निज स्थानको पधारे । नरदेव सम्वरण देवोंकी भाँति उस पर्वत पर विहार करने लगे । उन्होंने बारह वर्षतक उस पर्वतके वन और उपवनोंमें विहार किया था । हे भारतश्रेष्ठ ! सहस्रनेत्र इन्द्रने उनकी राजधानी और राज्यमें बारहवर्षतक वर्षा नहीं की । हे शत्रुनाशि ! तब वृष्टि न होनेसे स्थावर जङ्गम और सब प्रजा क्षय पाने लगी । विना वृष्टि ऐसा कठोर काल आन पड़ा, कि उनदिनों पृथ्वी पर हिम तक नहीं गिरा, सो भँला अनाज उपजनेकी कौनसी सम्भवना रहेगी ? प्रजा भूखसे विकल और भूली भटकीसी बनकर इधर-उधर घूमने फिरने लगी । राज्य और राजधानीके लोग सदा भूखे रहनेके कारण आपसकी मर्यादा खोकर स्त्री पुत्र आदि

परिवारोंकी लोड़ने लगे। वह देश भूखे तथा सुर्भाए हुए जनोंसे-पूरित होकर प्रेत-राजके नगरके समान प्रेत-पूरित प्रतीत होने लगा। हे राजन्!—सुनिश्चिष्ट भगवान् वसिष्ठ उनके राज्यको उस दशमें देखकर उसे रक्षा करनेकी चेष्टा करने लगे। वह वर्षोंतक तपतीके साथ अन्यत्र रहते हुए उस पृथ्वीनाथको लिवाय लाये अनन्तर नृपशार्दूलके-पुरमें प्रविष्ट होने पर असुरनाशी प्रभु इन्द्रने-उस राज्यपर कृपादृष्टि करी—यथानियम जल वृष्टि कर-अनाज उप-जाने लगे।—जितेन्द्रिय भूपश्रेष्ठके राज्यकी मङ्गल-चिन्तामें नियुक्त रहने पर सम्पूर्ण प्रजा अति प्रसन्न हुई। अनन्तर नरपति सम्बरणने स्त्री तपतीके साथ बारह वर्ष तक ऐसा यज्ञ किया कि जैसा शचीपतिने-शचीके साथ किया था। हे पार्थ! उस तपती नाम्नी-तपन-कन्याके-वंशमें तुमने जन्म लिया है। इसी-लिये, तुमकी तापत्य कहके पुकारा है।—हे शत्रु-सन्तापन! राजा-सम्बरणने उस तपतीसे-कुरु नामक पुत्रका जन्म दिया था। उस कुरु-वंशमें तुम्हारे जन्म लेनेके कारण तुम तापत्य-कहे जा सकते हो।

चैत्ररथपर्वमें एकसौ चौहत्तर

अध्याय समाप्त ।

वैशम्पायनजी बोले, कि हे भरतव्रंशश्रेष्ठ! अर्जुन गन्धर्वसे वह कथा सुनकर परम-भक्ति-पूर्वक पूर्ण चन्द्रमाकी भांति शोभा पाने लगे। महा चापधारी कुरुश्रेष्ठ, अर्जुन वसिष्ठके तपोबलसे अचरज मानकर गन्धर्वसे बोले, कि मित्र! तुमने जिन ऋषिका नाम वसिष्ठ करके कहा है, मैं उनका वृत्तान्त सुना चाहता हूँ। तुम आशीषान्त कहके सुनाओ। हे गन्धर्वनाथ! सुखमें बोलो, कि वह भगवान् ऋषि, जो हमारे अगले पुत्रोंके पुरोहित थे, जीव थे। गन्धर्व ने लि, कि ऋषि वसिष्ठ

ब्रह्माके मानसे-पुत्र हैं; उनकी पत्नीको नाम अरुन्धती है, जिस काम और क्रोध पर देशों नेभी जय नहीं पायी है। वे दोनों तपस्यासे परास्ति हो सदा पाँवे दाँवकर फिरे थे। अति क्रोधित होने परभी उन उदार-चित्त महर्षिने कुशिक-वंशको उखाड़ डाला था। वह महात्मा विश्वामित्रसे पुत्र नाश-रूपी-खेद पाकर शक्ति-रहनेके कारण कठोर कार्यमें प्रवृत्त नहीं हुए थे; उन्होंने यमालयसे मृतपुत्रोंको न लौटा लाकर यमराज की मर्यादाकी इस प्रकार रक्षा की थी, कि जैसे समुद्र अपने तटको नष्ट नहीं करता है। इच्छाकुवंशके भूपालोंने उन जितेन्द्रिय महात्मा की प्राप्त कर इस धरती भरका पूरा अधिकार लोभ किया था। हे कुरुनन्दन! उन राजाओंने ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठकी पुरोहित पाँकरकेही नाना-यज्ञ किये थे। हे पाण्डवश्रेष्ठ! उन्होंने उन महाराजोंकी यज्ञक्रिया इस प्रकार निर्वाह करायी थी, कि जिस प्रकार बृहस्पति-देवोंका यज्ञ कराते हैं। अतएव तुमभी धार्मिक-वैदिक धर्मके जानकार-कोई पुरोहित ढूँढो। हे पार्थ! पृथ्वी जय करनेको इच्छा रखने वाले क्षत्रियोंको राज्य वृद्धिके लिये पहिले पुरोहित नियुक्त करना चाहिये, क्योंकि पृथ्वीजयेच्छक राजा का ब्राह्मणको सामने रखना उचित है। अतएव धर्म, काम और अर्थके तत्त्व जितेन्द्रिय विद्वान् और गुणावान् कोई ब्राह्मण तुम्हारे पुरोहित होंगे।

चैत्ररथपर्वमें एकसौ पचहत्तर

अध्याय समाप्त ।

अर्जुन बोले, कि निज-निज दिव्यात्मोंमें रहनेवाले विश्वामित्र और वसिष्ठमें क्योंकर आपसमें शत्रुता उभड़ी, वह हमसे कहो। गन्धर्व बोले, कि हे पार्थ! यह वसिष्ठ

कथा सर्वलोकोंमें पुराण करके कही जाती है, मैं यथार्थ रीतिसे कहता जाता हूँ, सुनो । हे भरतश्रेष्ठ ! कान्यकुब्ज देशमें कुशिक-पुत्र गाधिके नामसे प्रख्यात एक राजा थे ; उन धर्मात्माके विश्वामित्र नामके एक पुत्र थे ; उन विश्वामित्रकी अनगनि सेना तथा वाहन थे और वह शत्रुओंके मथनेहार थे । वह एक समय मन्त्रीके साथ घने वनमें और सुन्दर निराली तथा वृक्षोंसे खाली भूमि पर मृग और वाराह विह्वल करते हुए मृगया करते फिरने लगे । हे नृपश्रेष्ठ ! वह मृग पानेको चेशामें दृक्कर और घासे वनकर वसिष्ठके आश्रममें जा पहुँचे । ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठने नरश्रेष्ठ विश्वामित्रको आते देखकर, अतिथिकी सेवाके लिये स्वागत किया । हे भारत ! उन ऋषिने कुशलक्षेम पूछ करके पाष, अर्घ, आचमनीय, वनके फल फल और पुरोडास आदि भोजनकी सामग्री देकर उनका आतिथ्य संस्कार किया । हे अर्जुन ! महात्मा वसिष्ठको कामदुषा-एक गौ थी ; ऋषि जब उस गौको कुछ कामनाकी वस्तु देनेको कहकर दृष्टते थे, उसीक्षण उसे पाते थे । उस दिन वसिष्ठकी कामनाके अनुसार, कामधेनुकी दोहनेपर ग्राम तथा वनकी औषधि, दुग्ध, अमृत, समान कर्पूर, रस, उन रसयुक्त विशेष विशेष वस्तुओंमेंसे अमृत-समान सुमिष्ट, बहुविध भोजनकी, पीनेकी, चबानेकी, चाटनेकी, चूमनेकी सामग्री और बड़े बड़े मूल्यवान् वस्त्र और रत्नादि प्राप्त हुए । मन्त्री और सेनाके साथ भूपालने उन सब सम्पूर्ण काम्य वस्तुओंसे सत-कृत होकर अति सन्तोष प्राप्त किया । और उस मनोरमा कामधेनुको देखकर बड़ा अच-रज माना । कामधेनुके शरीरकी वनावट बहुत सुन्दर थी, उसका मेरुदण्ड, पूंछ और चारो स्तन ऊर्ध्व, पार्श्व और उरुदेश सुन्दर, कान और लिलार स्थूल, आँखें स्थूल और

मेढककी नाई जंची, थन चौड़ा, पूंछ मनोहर, दोनों कान कीलोंको समान, सींग देखनेमें बहेतही सुन्दर और सिर तथा गला मोटा और चौड़ा था । हे राजा ! ऐसी सुषर नन्दिनी नाम्नी उस कामधेनुकी देखकर भूपाल गाधिकुमार अति सन्तुष्ट चित्तसे उसकी प्रशंसा कर ऋषिसे बोले, कि हे ब्रह्मा ! तुम मुझसे दश क्रीड़ गौ लेकर मुझको यह नन्दिनी दो ; अथवा हे महामुने । तुम नन्दिनीकी देकरके मेरे राज्यकी लेकर भोगों वसिष्ठ बोले, कि हे अनघ ! यह दुधारी नन्दिनी देवता, अतिथि, पितर और यज्ञके लिये रखी गयी है, सो तुम्हारे राज्यकी ले करके भी मैं इसको नहीं दे सकता । विश्वामित्र बोले, कि मैं क्षत्रिय तुम तपस्वी और वेद पढ़नेवाले ब्राह्मण हो, प्रशान्तचित्त संयत ब्राह्मणकी सामर्थ्य कहाँ ? अतएव यदि तुम दश क्रीड़ गौ लेकर मुझे इच्छा की हुई गौ नहीं दोगे, तो मैं अपना धर्म नहीं छोड़ूंगा, — वृक्षसे छीन ले जाऊंगा । वसिष्ठ बोले, कि तुम बलिष्ठ क्षत्रिय राजा और भुजवीर्य युक्त हो, अतएव तुम जैसा चाहो वैसाही करो, अधिक विचारका प्रयोजन नहीं है । शम्भुर्वराज बोले, कि हे पार्थ ! विश्वामित्र उनकी उस बातकी सुनकर सूर्य चन्द्रमा सी प्रकाशमती, उस नन्दिनीको क्रीड़ाकी मारसे कातर करे और इधर उधर बांध बांध कर बलसे हर ले जानेकी उद्यत हुए । हे पार्थ ! कल्याणी नन्दिनी हम्मा शब्द करती हुई भगवान् ऋषि वसिष्ठके सामने आकर जचे मुँह करके खड़ी रही और बहुत खदेड़ी जाकरके भी उस आश्रमसे नहीं गयी ! तब वसिष्ठ बोले, कि ऐ-भद्रे नन्दिनी ! तुम बार बार जो चिन्तातो हो, वह मैं सुनता हूँ, पर ऐ भद्रे ! जब राजा विश्वामित्र तुमको बलसे हर रहे हैं, तब मैं क्या कहूँगा ! क्योंकि मैं चमारील ब्राह्मण हूँ ।

गन्धर्वराज बोले, कि हे भरतश्रेष्ठ । नन्दिनी विस्वामित्र और उनकी सेनाओंके भयसे घबराकर वसिष्ठके बङ्गत निकट आगयी और बोली, कि हे भगवन् । मैं विस्वामित्रकी भयानक सेनाओंके कीड़ोंकी मारसे घायल होकर अनायके समान रो रही हूँ, आप मेरी क्यों उपेक्षा कर रहे हैं ? गन्धर्वराज बोले, कि नन्दिनी कातर होकर इस प्रकार रोने लगी, पर नियमशील महामुनि तिस परभी चुपचाप वा अधीर नहीं हुए । वह नन्दिनीसे बोले, कि क्षत्रियका बल तेज और ब्राह्मणका बल क्षमा है ; सो मैं क्षमा गुणसे आकृष्ट हो रहा हूँ, सो यदि तुम चाहो, तो जाओ । नन्दिनी बोली, कि हे भगवन् ! क्या आपने मुझको त्याग दिया, कि ऐसा कहते हैं । हे ब्रह्मा ! आपके न त्यागनेसे मुझको कोई बलपूर्वक नहीं लेजा सकेगा, वसिष्ठ बोले, कि हे कल्याणि । मैं तुमको नहीं त्यागता हूँ, यदि तुम रह सकी तो रह जाओ, वह तुम्हारे बङ्गड़ेको काटिन रखीसे बांध कर ले जा रहा है ।

गन्धर्वराज बोले, कि दुधारी नन्दिनी तब वसिष्ठकी "रह जाओ" यह बात सुनतेही सिर और गला ऊपर उठा कर भयानक मूर्त्ति धरकर क्रोधके मारे नेत्र लालकर वार वार हड़ारव करती हुई विस्वामित्रकी सेनाओंकी चारों ओर खदेड़ने लगी । तब फिर सेनाओंके कीड़ीकी मारसे घायल होकर और चारों ओरसे घेरी जाकर अति क्रोधित होकर जलती हुई देहकी दुपहरके सूर्यकी भांति देखनेके अयोग्य बनाया और पूँछसे बार बार बड़े बड़े अङ्गारोंकी वृष्टि करने लगी ; आगे पूँछसे पञ्चगण, धनसे द्राविड़ और शक्रगण, गोदरसे काङ्चीगण, पार्श्वभागसे श्वरगण और पीठसे पौण्ड्र किरान, धवन, सिंहल, श्वर, खड्ग, चिबुक, पुलिन्द, चीन, इन, केरल

आदि नाना स्त्रीच्छोंको बनाया । नाना वैश पहिनने वाले, नाना अस्त्र धरे हुए, वह सब उपजे हुए स्त्रीच्छोंको सेना उसक्षण उसाहित होकर विस्वामित्रके सामनेही इधर उधर फैल गयी, और उनमेंसे पाँच पाँच वा सात सातने विस्वामित्रके एक एक योद्धेको घेर लिया । आगे विस्वामित्रके देखतेही देखते उनकी सेना उन लोगोंको गहरी अस्त्र-वृष्टिसे घायल होकर और भय खाकर इधर उधर भागने लगी । हे भरतश्रेष्ठ । वसिष्ठकी सेना युद्धमें पूर्ण क्रोधित होने परभी विस्वामित्रकी सेनामें किसीके प्राण नष्ट नहीं किये, नन्दिनी ने केवल उनको दूरकी खदेड़ा । वे तोत योजन दूर भगायी जाकर घबराहटके मारे रोने लगीं और ऐसा किसीकोभी नहीं देखा कि उनकी रक्षा करे । तब विस्वामित्रने ब्रह्मतेजकी उस बड़ी आश्चर्यलीलाको देखकर क्षत्रियधर्मसे विरक्त होकर यह कहा, कि क्षत्रिय-बलपर धिक्कार है, ब्रह्मतेजका बलही बल है, बलाबल निश्चय करना ही तो तपस्याही उत्कृष्ट कही जायगी । अनन्तर उन्होंने वंश भारी राज्य और प्रज्वलित राजलक्ष्मीको देकर के भागसे विरत होकर तपमें मन लगाया । आगे तपमें सिद्ध और प्रदीप्त तेजस्वी होकर अपने तेजसे तीनों लोकोंको ध्याकर सम्पूर्ण लोकोंको तापित करके ब्राह्मण बने । आगे उन कुशिकनन्दनने इन्द्रके साथ सीमरस पान भी किया था ।

चैत्ररथ पर्वमें एकसौ छिहत्तर

अध्याय समाप्त ।

गन्धर्वराज बोले, कि हे पार्थ ! कल्माषपाद नामक अनुपम तेजोपूर्ण द्रुपदाकुवंगी एक राजा थे । एक समय वह मृगयाके निमित्त नगरसे वनकी गये । शत्रु मन्दनेहारी मृगानघोर वनमें मृग और वराहोंकी काटकूट कर

धूमने लगी । वह देरतक ऐसा करके थककर मगधासे निवृत्त हुए । इसके पहिले प्रतापी विश्वामित्रने उनकी यजमान बनाना चाहा था । युद्धमें अजेय राजा कल्माष-पाद भूख प्यासके मारे विकल होकर एकही मनुष्यके चलने योग्य सङ्कीर्ण पथसे चल रहे थे, कि सामने आते हुए ऋषियेष्ठ वसिष्ठपुत्र महात्मा मुनि शक्तिको देखा । वसिष्ठकुलके बढ़ाने-वाले महाभाग शक्ति महात्मा वसिष्ठके सौ पुत्रोंमेंसे बड़े थे । राजा उनसे बोले, कि तुम मेरे पथसे हट जाओ । ऋषि सीठी बातोंमें उनकी समझा कर बोले, कि महाराज । यह मेरा पथ है । सम्पूर्ण धर्मशास्त्रोंमें यह सना-तन धर्म करके कहा है, कि ब्राह्मणोंको पथ देना राजाका कर्तव्य है । वे पथके लिये आपसमें इस प्रकार बकवाद करने लगे और एक दूसरे को "हटो" यह कहने लगे । ऋषि धर्मके पथिक होकर पथसे नहीं हटे, राजाने भी मान और क्रोधके वश मुनिको पथ नहीं दिया । अनन्तर ऋषिके पथ न छोड़ने पर राजा ने मोहसे राज्ञसकी भाति मुनिके कीड़े मारे । तब मुनियेष्ठ वसिष्ठपुत्रने कीड़ोंकी चीटसे घायल और क्रोधसे अचेत होकर यह कहके उन भूपालको शाप दिया, कि रे नराधम ! जोकि भुक्त तपस्वीको तूने राज्ञस समान मारा, तू आजसे राज्ञस होगा, तू नरमास पर आसक्त होकर पृथ्वी पर टहला करगा, रे क्षत्रियाधम ! अब जा । तपोबलयुक्त शक्तिने यह कह कर पथ छोड़ दिया । इससे पहिले उस कल्माषपाद राजाको याजन-क्रियाके विषयमें विश्वामित्र और वसिष्ठमें आपसकी शकुता हो गयी थी, इसलिये विश्वामित्र वसिष्ठको लज्ज कर राजाके निकट गये । हे पार्थ । राजा और शक्ति उस प्रकार झगड़ रहे थे कि ऐसे समय कठोर तपस्वी प्रतापी विश्वामित्र उनके समीप जा पहुँचे । अनन्तर

नृपयेष्ठ कल्माषपादने वसिष्ठके समान तेजस्वी ऋषि शक्तिको वसिष्ठ पुत्र करके जाना । हे भारत । आगे विश्वामित्र अपनी प्रिय इच्छा-को सिद्ध करनेके लिये अपनेकी अन्तर्हित करके उन दोनोंको नाश गये । नृपोत्तम कल्माषपादने शक्तिसे शापग्रस्त होकर उनकी प्रसन्न करनेके लिये उनकी उपासना कर शरण ली । हे कुरुयेष्ठ । विश्वामित्रने उन राजाके भावको समझकर राज्ञसकी उनके शरीरमें घुसनेकी आज्ञा दी ? किङ्कर नासक राज्ञस उन विप्रर्षिके शाप और विश्वामित्रकी आज्ञासे राजाके शरीरमें जा घुसा । हे शत्रु-दमन । मुनियेष्ठ विश्वामित्र राजाकी राज्ञस जानकर वहसे चले गये । हे पार्थ । राजा शरीर स्थित राज्ञससे अत्यन्त पीड़ित होकरके कुछ संमभ नहीं स्के । अनन्तर वह वनकी लौट जा रहे थे, कि ऐसे समयमें भूखे एक ब्राह्मणने उनकी देखकर उनसे मासयुक्त भोजनकी सामग्री मांगी । मित्र पालनेवाले राजा उससे बोले, कि हे ब्रह्मा । सुहर्त भर यहाँ ठहर कर मेरे लौटनेकी बाट देखते रहें, मैं लौट कर आपकी इच्छानुरूप भोजन दे दूंगा । राजा यह कर चले गये । ब्राह्मण वहाँ राजाकी प्रतीक्षामें ठहरे रहे । हे पार्थ । महानुभव महाराजने सुखसे मनमाना धूम-घाम कर लौट करके अन्तःपुरमें प्रवेश किया । आगे वह आधी रातको उठकर ब्राह्मणसे स्वीकार किये हुए विषयको स्मरण कर उसी क्षण रसोदयेकी बुलवाकर बोले, कि उस वनमें एक ब्राह्मण भोजनकी इच्छासे मेरी बाट ताकते हैं, तुम अब वहाँ जाकर उनको मास-सहित अन्न दे आओ ।

गन्धर्व बोले, कि रसोदयेने राजाकी आज्ञाको सुनकर कहीं मास न पाकरके पीड़ितचित्त होके उनसे वह बात कह सुनायी । राजा राज्ञसयुक्त थे, सो विनासीच समझके

वार वार कहा, कि तुम नरमांस लाकर उस ब्राह्मणको खिलाओ। रसीदया "तथास्तु" कहकर वेगसी बिना भय वध्यघातियोंके घरमें जाकर नरमांस लाया। आगे-अन्नके साथ उस नरमांसको विधिपूर्वक पका कर बिना विलम्ब उन भूखे तपस्वी ब्राह्मणके निकट जाकर उनको दे दिया। ब्राह्मणने सिद्ध नेत्रोंसे उस अन्नको देखकर क्रोधयुक्त, नेत्रोंसे कहा, कि यह अन्न भोजन योग्य नहीं है; जिस ऋषिधर्मने मुझको भोजनके अयोग्य अन्न दिया है, उस मूर्खको नरमांस पर लालसा होगी, पहिले ऋषि शक्तिने जैसा कहा था, वैसाही होगा—यह राजा नरमांस पर आसक्त होकर जीवोंमें घबराहट लाकर इस पृथ्वीपर घूमा करेगा। इस प्रकार राजा पर दूसरी-वार शाप लगनेसे वह अति बलयुक्त हुआ; उससे राजाने शरीरमें घुसे हुए राक्षसके बलसे चेत खी दिया। हे भारत। अनन्तर राक्षससे इन्द्रियोंके चुराये जाने पर ऋष्यश्रुत कुक्षिकाल पीछे शक्तिकी देखकर बोले, कि तुमने मुझको अनुचित शाप दिया है, सो मैं पहिले तुम्हीसे आरम्भ कर मनुष्य खानेकी प्रवृत्त होता हूँ। राजा यह कह कर उसी क्षण उनके प्राण नष्ट कर-उनको इस प्रकार खा गये, कि जैसे व्याघ्र मनमाने पशुको खा लेता है। विश्वामित्र वसिष्ठ-पुत्र शक्तिकी मरते देख कर वार वार राक्षसकी वसिष्ठ-हीके पुत्रोंकी खानेकी आज्ञा देने लगे। वह राक्षसयुक्त राजा क्रोधित होकर महात्मा वसिष्ठके दूसरे पुत्रोंकी क्रमसे इस प्रकार खा गये, कि जैसे सिंह छोटे मृगको खाले। वसिष्ठने विश्वामित्रके द्वारा उन पुत्रोंके नष्ट होनेकी बात सुनकर पुत्र-विक्रीहके कठोर शोकको इस प्रकारसे महन किया, कि जैसे महाटिका भार धरती मझाले। उन महा-मणि मुनिगणोंने आत्मघात करना निश्चय

किया, पर तौभी कौशिक वंशके उखाड़नेकी चेष्टा नहीं की। उन्होंने सुमेरुकी चोटी परसे अपनेको गिराया, पर उससे उनकी कोई क्लेश नहीं पहुँचा, उनका पर्वतपरके पथर की ढेर पर गिरना मानों लुईके फाड़े पर गिरनेके सदृश हुआ। हे पाण्डव। वह भगवान् महर्षि पहाड़की चोटी परसे गिरकर तमरनेके हेतु महावनमें आग बाल कर उससे जा घुसे। परन्तु तब जलती हुई आगने तेजसे जलने परभी उनकी नहीं जलाया। हे शत्रु नाशि। उनकी वह आग ठण्डी जान पड़ी। अनन्तर पुत्र शोकसे विकल महामुनि समुद्र देखकर अपने गलेमें भारी पथर बांध करके उसके जलमें जा गिरे, उसपरभी न डूब कर समुद्रकी लहरके बलसे तट पर उठाये गये। तब किसी प्रकार उनकी मृत्यु न होने पर वह दुःखी चित्तसे आश्रमको लौट गये।

चैत्रथ पर्वमें एकसी सतहत्तर

अध्याय समाप्त ।

गन्धर्व बोले, कि अनन्तर भगवान् सुनि अपने आश्रमकी पुत्रोंसे खाती देखकर अति दुःखी चित्तसे फिर आश्रमसे निकले। हे कौरवनन्दन पार्थ! वह शोकयुक्त ऋषि वधमें नये जलसे भरी हुई एक बहती हुई नदीको तट परके नाना वृक्षोंकी छहरते देखकर फिर सोचने लगे कि मैं इस जल में डूबकर प्राण छोड़ूँ। आगे उन्होंने रस्सीसे अपनेको दृढ़रूपसे बांधकर उस बड़ी नदीके जलमें डुबाया। हे शत्रुबल-मथनेहार। तब उस नदीने उनकी रस्सीको काँटकर वस्त्रनकी तोड़के स्थल पर छोड़ दिया, इससे उन्होंने वस्त्रनसे मुक्त हो और उटकर उस नदीका "विपाशा" नाम रखा। अनन्तर वह शोकसे विकल एक स्थान पर रह नहीं सके; पर्वत, नदी और तालोंमें घूमने फिरने लगे। एक समय

हेमवती नान्दी नदीकी अति क्रोधो हिंसक जलजन्तुओंसे भरो हुई और भीषणाकर देखकर उसके सीतेमें जा गिरे । वह बड़ी नदी विप्रवरकी अग्निवत् अनुभवे कर सैकड़ों भागोंमें द्रुतवेगसे वह चली इस लिये तभीसे उस नदीका नाम “शतद्रू” प्रसिद्ध हुआ है । महर्षि उस भयानक नदीमें गिरकेभी अपनेको स्थल पर उठाये जाते देखकर यह समझ करके कि “इच्छानुसार प्राणत्याग नहीं कर सका,” फिर आश्रम की ओर चले । वह भांति-भांतिके पर्वत और देशोंसे होकर अन्तमें आश्रमको पार रहे थे कि ऐसे समयमें अट्यन्ती-नान्दी-उनकी पुत्रवधू-उनको पीछे जा रहो थी । तब उन ऋषिने निकट होनेके कारण पीछेसे पड़नेसे अलंकृत-पूर्णार्थयुक्त वेदपठनकी ध्वनि सुनकर पूछा कि कौन मेरे पीछे आ रहा है । पुत्रवधू बोली कि हे महाभाग ! मैं शक्तिकी तपोयुक्ता तपस्विनी स्त्री अट्यन्ती आपकी पुत्रवधू हूँ । वसिष्ठ बोले कि पुत्र ! मैंने पहिले शक्तिके सुखसे जिस प्रकार साङ्गवेदकी ध्वनि सुनी थी अब किसके सुखसे वेद पठनकी वैसी ध्वनि सुन पड़ी ? अट्यन्ती बोली कि हे मुने ! तुम्हारे पुत्र शक्तिके वीर्यसे मेरे गर्भमें एक सन्तान है वह पुत्र बारह वर्षसे ऐसा वेदाभ्यास कर रहा है आपने इसीसे वेदकी ध्वनि सुनी है । गन्धर्व बोले कि हे पार्थ ! अष्ट भाग्यमूर्त ऋषिषष्ठ वसिष्ठ अट्यन्तीकी उस बातको सुनकर प्रसन्न होकर यह समझ कर कि “मेरा वंश है” मृत्युकी इच्छासे निवृत्त हुए । हे अनघ ! वह लौटकर पुत्रवधूके संग जा रहे थे कि ऐसे समय निरालिसे बैठे हुए कल्पावपादकी देखा । हे भारत ! उस कठोर राजस्युक्त राजा कल्पावपादने मुनिकी देखकर उसीक्षण क्रोधसे उठ करके खा जाना चाहा । अट्यन्ती सामने उस कुटिल कर्म्म

वालीकी देखकर भयसे घबराकर वसिष्ठसे बोली कि हे भगवन् ! वह कठोर राजस कठोर दण्डधारी साक्षात् यमराजके समान लकड़ी उठाकर इधर आ रहा है । हे सर्ववेद-निपुण महाभाग ! धरती भरमें आपकी बिना कोई भी इसके रोकनेकी समर्थ नहीं है । हे भगवन् ! इस कठोर भयावने आकारके पोषाभासे मेरी रक्षा करें । मुझकी निश्चय जान पड़ता है कि वह राजस हम दोनोंकी खार्जानेकी उद्यत हुआ है । वसिष्ठ बोले कि बैठ । भय मत खाओ, राजससे कोई भय नहीं है । तुम जिससे वर्तमान भय देखती हो वह राजस नहीं हैं जो कल्पावपाद नामक भूमण्डलमें प्रसिद्ध राजा है वहो इस वनमें अति भयङ्कर आकार धारणकर राजसके स्वल्पमें वास कर रहे है ;—

गन्धर्व बोले कि हे भारत ! तेजस्वी भगवान् ऋषि वसिष्ठने उनको आ गिरते देखकर घोर नादसे रोका । अग्नि मन्दसे पवित्र किये हुए जलसे उनको नहला कर उस घोर शापसे मुक्त किया । वह राजा बारह वर्षतक वसिष्ठ पुत्र शक्तिके तेजसे इस प्रकार ग्रसित थे कि जिस प्रकार सूर्य राजसे ग्रसित होता है अब शापसे मुक्त होकर ऐसे तेजसे उस बड़े वनकी सुशोभित किया कि जैसे सूर्यदेव सन्ध्याकालके बादलको रंग देते है । तब राजा ज्ञान प्राप्तकर प्रणाम-पूर्वक दोनों हाथ जोड़कर ऋषिषष्ठ वसिष्ठसे बोले कि हे महाभाग ! मैं सुदास राजाका पुत्र आपका यजमान हूँ । हे मुनि अष्ट ! कहीं अब आपकी क्या इच्छा है मैं उसकी पूरी कर देता हूँ । वसिष्ठ बोले कि हे मानवेन्द्र ! मेरी जो इच्छा थी वह कालके क्रमसे पूरी हो गयी है अब तुम राजधानीमें जाकर राज्य शासन करो फिर कभी ब्राह्मण का अनोदर मत करना ! राजा बोले कि हे महाभाग ! मैं कभी ब्राह्मणका अनोदर

नहीं कहेंगा, आपके आज्ञाधीन रहकर ब्राह्मणोंकी भली भाँति पूजा कहेंगा । हे सर्व्ववेद निपुण द्विजोत्तम ! मैं आपसे वह वस्तु पानेकी इच्छा करता हूँ, जिससे इक्ष्वाकुवंशके ऋणसे मुक्तकारा पाजाऊँ । हे श्रेष्ठ ! आप इक्ष्वाकुवंशके बढ़ानेवाला रूपगुणशील अच्छा पुत्र मुझको दें । गन्धर्व्वराज बोले, कि सत्यशील द्विजोत्तम वसिष्ठने यह कहकर कि “पुत्र दूंगा” उन बड़े चापधारी राजासे अङ्गीकार किया । हे मनुजेंद्र ! अनन्तर वसिष्ठ कालानुसार उन राजाके साथ अयोध्या नाम्नी प्रसिद्ध नगरीकी गये । प्रजाओंने पापमुक्त महात्मा राजाकी आते देखकर इस प्रकार प्रसन्न चित्तसे स्वागत किया कि, जैसे देवगण देवराजकी आते देखकर प्रमुदित होते हैं । नरेन्द्रने वृद्धत दिनोंके पीछे महात्मा वसिष्ठके साथ पुण्य लक्ष्मणसे भरी हुई नगरीमें प्रवेश किया । तब अयोध्यावासी जन पुरोहितके साथ उन महीपालकी उगी हुई सूर्यकी भाँति देखने लगे । उन भूपतिने अपनी शोभासे अयोध्या नगरीकी इस प्रकार का किया कि जैसे शरत्कालमें उगा हुआ चन्द्रमा आकाशखलको सुशोभित करता है, उस कालमें राजमार्ग जलसे भिड़ीया गया और भली प्रकार साफ किया गया था और नगरके स्थान स्थानमें फहराती हुई ध्वजा और पताका सँह रही थी, सो नगर देखकर राजाका वित्त आनन्दके संगुदमें डूब गया । हे कुरुनन्दन ! तब तुष्ट और पुष्ट जनोंसे कायी हुई वह नगरी भपाल कदापपादसे इस प्रकार शोभा पाने लगी, कि जिस प्रकार अमरावती अमरनाथसे सुशोभित होती है । अनन्तर राजर्षिके अपूर्व पुरोमें प्रवेश करने पर उनकी आज्ञामें देवी राजराणी वसिष्ठकी उपासना करने लगी । सत्यवेदि वसिष्ठ दिव्यविधिके अनुसार नियम उनके उममें मिले । अनन्तर राजराणीके गर्भमें पुत्र पर महर्षि राजाके प्रणामसे पूजे जाकर

आश्रममें लौट आये । आगे बढ़ते दिन बीत गये, तिसपर भी राजाकी सन्तान नहीं हुई, तब यशस्विनी राजराणीने अश्रु अर्थात् पथरकी चोटसे कोखको फाड़ डाला । इस लिये बारह वर्षतक गर्भमें स्थित उन पुरुषबच्चेने अश्रु नामक राजर्षि होकर जन्म लिया, कि जिन्होंने पौदन्य नामक नगरको वसाया था ।

चैत्ररथ पर्वमें एकसौ अठहत्तर

अध्याय समाप्त ।

गन्धर्व्वराज बोले, कि हे राजन् ! अनन्तर आश्रममें स्थित अट्श्यन्ती दूसरे शक्तिके समान शक्तिका वंशवढ़ानेवाला पुत्र प्रसव किया । हे भरतश्रेष्ठ ! मुनिश्रेष्ठ भगवान वसिष्ठने स्वयं उस पोतेकी जात-कर्मआदि किया की । वह पुत्र जब गर्भमें था, तब वसिष्ठने परांस होना अर्थात् जीवन त्याग देना निश्चय किया था, सो वह पराशर नामसे भूमण्डलमें प्रसिद्ध हुए । धर्मात्मा पराशर जन्मसे मुनि वसिष्ठकी पिता जानकर उनपर पिताके सदृश व्यवहार किया करते थे । हे शत्रु-मंथन कुन्तीनन्दन ! एकदिन उन्होंने माता अट्श्यन्तीके सामने विप्रर्षि वसिष्ठकी पिता कहके पुकारा, अट्श्यन्ती उनकी मोठी बीबीसे सष्टरूपसे पिता कहते सुन करके आँखोंमें आँसु भरकर बोली, कि बेटा ! तुम अपने दादाकी पिता कहके मत पुकारना । हे पुत्र ! एक राक्षसने वनमें तुम्हारे पिताको खा लिया है । हे अनघ ! तुम जिनकी पिता समझ रहे हो, वह तुम्हारे पिता नहीं है, पिताके पिता हैं । सत्यवादी ऋषिश्रेष्ठ पराशरने यह बात सुन करके दुःखी होकर सर्व्व लोकोंकी नष्ट करना निश्चय किया । महा तपस्वी, वेदमें पण्डितोसे श्रेष्ठ, परिणामदर्शी नैतावरणि ऋषि वसिष्ठने उनकी सर्व्वलोक नष्ट करनेका प्रण ठानते देख कर रोका, उन्होंने जिन रीतिसे रोका वह कहता हूँ, सुनी ।

वसिष्ठ बोले, कि पहिले कृतवीर्य नामक-
प्रख्यात भूपालश्रेष्ठ पृथ्वीनाथ वेदज्ञ भृगुवंशके
यजमान थे। हे पृथ्वीनाथ ! उन्होंने सम-यज्ञके
अन्त होने पर अग्रभुक्त ब्राह्मणोंकी वृद्धत धन-
धान्यसे सन्तुष्ट किया था। अनन्तर उस
शृंगशर्हलके स्वर्गको सिधारने पर उनके वंशके
राजाओंकी धनज्ञा प्रयोजन हुआ। तब वे राजा
भार्गवोंके वृद्धत धन है, जानकर याचकको
भूति उनके पास जा पड़ेंगे। भार्गवोंसे किसी
किसीने यह सीचकर कि हमारा धन क्षय न
होने पावे धनको धरतीमें गाड़ रखा, किसी
किसीने क्षत्रियोंसे भय खाकर अपना अपना
धन ब्राह्मणोंको दान दे दिया, किसी किसीने
और कुछ समझ कर उन क्षत्रियोंकी मनमाना
धन दे दिया। ऐ बेटा ! अनन्तर किसी
क्षत्रियने भार्गवोंके घर खेद कर वृद्धत धन
पाया। तब बड़े चापधारी क्षत्रियलोग सब
मिलकर उस अतुल धनकी देखकरके शरण
लिये हुए भार्गवोंकी अनादरपूर्वक तेज वाणोंसे
मारने लगे, यहा तक कि वे भार्गवोंके गर्भमें
स्थित बालकोंकी भी नष्टकर पृथ्वी भरमें घूमने
लगे। इस प्रकार भृगुवंशके उखड़ जाने पर
भार्गवोंकी स्त्रिया भय खाकर जानके अयोग्य
हिमाचल पर भाग गयी। उनसे किसी
एक सुन्दरी नारोने पतिकुलकी रक्षाके लिये
क्षत्रियके भयसे एक जाघमें अति वीर्यवन्त एक
गर्भको धारण किया। अनन्तर एक ब्राह्मणीने
उस गर्भका हाल जान कर भयके मारे क्षत्रि-
योंके यहा चल कर कह दिया। क्षत्रिय
लोग यह सुनतेही उस गर्भको नष्ट करनेकी
उद्यत होकर चले और गर्भवती ब्राह्मणीकी
उसके तेजसे जलती हुई देखा। उस समय
गर्भमें स्थित बालक ब्राह्मणीकी जघको भेद-
कर दुपहरके तेज सूर्यकी भांति क्षत्रियोंकी
आंखें भुलस कर निकला। राजा लोग नेत्रकी
विना दृष्टि चलो जानसे मोहके वशमें होकर

चलनेके अयोग्य पहाड़की चारों ओर घूमने
लगे, आगे दृष्टि प्राप्त करनेकी आशामे उस
ब्राह्मणीकी शरण ली। उन्होंने बुझी हुई
शिखायुक्त अग्निकी भांति ज्योतिसे हाथ धी
और अचेत हांकार दुःखी चित्तसे महा भाग्य-
वती ब्राह्मणीसे कहा, कि हम आपकी कृपासे
नेत्र, पावें, तो इस पापकर्मसे निवृत्त होकर
सब घरका जाय। ऐ शोभने ! आप पुत्र-
सहित हम लोगों पर प्रसन्न होवें—आख देकर
इन राजाओंको रक्षा करें।

चैत्रयपर्वमें एकही उनासो अध्याय समाप्त ।

ब्राह्मणी बोली कि हे पुत्री ! मैं क्रोधित
नहीं हुई हूँ और न मैंने तुम्हारी दृष्टि हरलो
है, पर सन्देह नहीं है, कि मेरी जाघसे पैदा
हुआ यह भृगुवंशी कुमार तुम पर क्रोधित
हुआ है। हे पुत्री ! इस महात्मा बालक-
होने वस्तुओंका नाश स्मरण कर क्रोधयुक्त
चित्तसे तुम्हारी आखें हरली है ! हे पुत्री !
जब तुमलोग भार्गवोंके गर्भस्थित बालकोंकीभी
नष्ट करने लगे, तबसे मैंने सौवर्षतक यह गर्भ
धारण किया है। भृगुवंशके फिर हितानुष्ठान
के निमित्त कुछो अर्द्धोंके साथ सम्पूर्ण वेद- इस
बालकके हृदय-मन्दिरमें प्रसिष्ट हुए हैं। इस
बालकने पितरोंके वधकी कारण निश्चयंही तुम
लोगोंकी नष्ट करनेकी इच्छा की है ; इसीके
दिव्य तेजके बलसे तुम्हारी आंखें नष्ट हुई हैं।
हे पुत्री ! तुम लोग इस मेरी जाघसे पैदा
हुए बालकसे प्रार्थना करो, वह तुम्हारे
प्रणामसे प्रसन्न होकर आंखें दे सकता है।
वसिष्ठ बोले, कि अनन्तर सब राजालोग यह
बात सुनकर उस जाघसे पैदा हुए बालकसे
कहने लगे, कि “प्रसन्न होवें, प्रसन्न होवें”,
तब श्रीर्षने प्रसन्न होकर उनकी आंखें दीं।
इन साधुश्रेष्ठ विप्रार्पण उरुकी भेदकर जन्म
लिया था, इसलिये वह श्रीर्ष नामसे लोकोमें

प्रख्यात हुए । राजोंकी आंखें पाकर अपने स्थानकी चले जाने पर भार्गव और्वने सर्व-लोकीका परास्त करना निश्चय किया । हे बेटा । भृगुवंशके शत्रुओंकी नष्ट करनेकी चाहनेवाले महानुभाव भृगुनन्दन और्वने सर्व-लोक नष्ट करनेके लिये कठोर तपस्यामें नियुक्त होकर अपने मनकी सम्पूर्ण रूपसे निविष्ट किया । यह सोचकर कि पितामहोंकी आनन्द पड़चावेंगे कठोर तपसे सुर, असुर और नर इन सब लोगोंकी तापित करने लगे । हे बेटा । अनन्तर उनके सब पितर लोग यह जानकर पितृलोकोसे आन करके कुलके आनन्द देनेवाले, और्वसे बंली, कि हे पुत्र और्व । तुम तपोबलसे कठोर हुए हो, तुम्हारा प्रभाव हमने प्रत्यक्ष किया है, अब तुम सम्पूर्ण लोकों पर प्रसन्न होओ—अपने क्रोधको त्याग दो । पहिले जब द्रुपदोंने भार्गवोंकी हिंसा की थी, तब जितेन्द्रिय भार्गवोंने अपने वधको तुच्छ समझा था, वे उसके प्रति-विधान करनेमें असमर्थ नहीं थे । आयु बृद्धत बढ़ जानेसे जब हमकी क्लेश होने लगा, तब हमने स्वयंही द्रुपदोंसे सारे जानेकी अभिलाषा की थी । इस लिये भार्गवोंने घरमें धन गाड़कर उनकी क्रोधित किया था । हे विजोत्तम । हम स्वर्ग चाहनेवाले हैं, हमको धनसे क्या प्रयोजन है, कवेरने हमारे लिये बृद्धत धन बटोर रखा है । जब हमने देखा, कि मृत्यु किसी प्रकार हमको ले नहीं सकती, तब हमने इस उपायकी अच्छा समझा ; हे बेटा । आत्मघाती पुरुष शुभलोक नहीं पाता है, इसकी आलोचना कर हमने आत्मघात नहीं किया था । हे बेटा ! तुमने जो कर्म करनेकी इच्छा की है, वह हमारा प्रिय नहीं है । अतएव तुम सर्वलोकोंके परास्त करनेकी इच्छा रूपी पाप कर्ममें मनकी निवृत्त करो । हे पुत्र ! तुम तपके तपमें द्रिप्त इस जन्मे क्रोधको त्याग दो,

सातों लोक तो दूरकी बात है, द्रुपदोंकोभी नष्ट मत करना ।

चैत्रथ पर्वमें एकसौ अस्सी अध्याय समाप्त ।

और्व बोले, कि हे पितरो । मैंने क्रोधित होकर सर्व लोकोंके विनाशके लिये जो प्रतिज्ञाकी है, वह कभी व्यर्थ नहीं होगी, मैं व्यर्थ क्रोध और व्यर्थ प्रतिज्ञा करना नहीं चाहता । यदि मैं इस प्रतिज्ञाको पूरा न करूँ, तो क्रोधकी आग मुझको इस प्रकार जलावेगी, कि जैसे अग्नि वनको जलाता है । क्रोध किसी कारणसे आजाय, तो जो उसको रोक लेता है वह कभी पूरी रीतिसे धर्म अर्थ काम इन तीन वर्गोंके पालन नहीं कर सकता है और सर्वजय चाहनेवाले भूभी विशेष विशेष स्थानमें क्रोध दिखावे, तो उस क्रोधसे दुष्टका शासन और सृजनका पालन होता है । पहिले द्रुपदोंने जब भार्गवोंकी नष्ट किया था, तब मैंने उसके भीतर गर्भस्था पर लेटे रहकर भार्गवोंकी चिलाहट सुनी थी । जब द्रुपद-कुलपाशु लोग गर्भमें स्थित बालक तक सब भार्गवोंकी नष्ट करने लगे, तभीसे मैं क्रोधित हो गया । मेरे पितृगण और पूरे गर्भवती माता जब शोकसे विकल और भयकातर हुई थीं तब तीनोंलोकमें किमीने उनकी रक्षा नहीं की थी । जब किसीने भृगुपुत्रोंकी रक्षा नहीं की, तब मेरी शुभलक्षणयुक्ता इस माताने एक उरुसे मुझको धारणकर रखा था । देखो, इस भूमण्डलमें एक मनुष्य पाप-कर्मका नष्ट करने वाला रहे, तो कोई भी पाप कर नहीं सकता, जो लोकोंमें कोई पापकर्मका दण्ड करनेवाला नहीं रहे, तो वह तैरे पापकर्ममें प्रवृत्त होते हैं । जो अशक्तिमान और पाप रोकने योग्य होने पर भी जान बूझकर पापकर्म नहीं रोकता है, वह उस पापमें लिप्त होता है । पर राजा

वीर समर्थजनगण उस पापकर्मके रोकनेको सामर्थ रखने परभी इस लोकमें अपन जीवनको अभीष्ट जानकर मेरे पितरोंको रक्षा नहीं कर सके ; मैंने इसी हेतु क्रोधित होकर उन सब लोगोंके उस पापकर्मका प्रतिविधान करनेका उद्योग किया है, सो आपकी आज्ञा मान नहीं सकता । मैं प्रतिविधानके यत्न होकरकेभी यदि प्रतिविधानका प्रयत्न न करूँ, तो लोकोंपर फिर अत्याचारके कारण बड़ा भय आ पड़ेगा । मैंने जिस क्रोधाग्निसे लोकोंका जलानेकी इच्छा की है, यदि उसे अपने तेजसे रोक लूँ, तो वह अग्नि सुभक्तोहोज ला मारेगा । हे प्रभुगण ! मैं जानता हूँ कि आप सर्वलोकोंके हित चाहनेवाले हैं, सो ऐसी आज्ञा करे, कि मेरा और सर्वलोकोंका मङ्गल होवे । पिश्याण बोले, कि सबही लोक जलपर प्रतिष्ठित हैं, अतएव तुम्हारा जो क्रोधाग्नि सर्वलोकोंका खालिना चाहता है तुम उसको जलमें डाल दे, तबही तुम्हारा मङ्गल होगा । हे हिजब्रेष्ठ ! सब रस जलपूर्ण है, और सम्पूर्ण जगभी जलपूर्ण है, सो तुम इस क्रोधाग्निको जलमें छोड़ दो, तुम्हारा क्रोधाग्नि महासमुद्रमें रहकर जलका जलाने लगगा । हे विप्र ! जब सम्पूर्ण लोक जलपूर्ण है, तब तुमने जैसा संकल्प किया है, वह पूरा नहीं होगा । हे अनघ ! ऐसा होनेसे तुम्हारी प्रतिज्ञा भी सची ठहरगी और देव तथा मानवोंको परास्त भी नहीं होना पड़ेगा । वसिष्ठ बोले, कि अनन्तर आर्जुनने अपने क्रोधसे उपजे हुए अग्निको समुद्रमें छोड़ दिया । वह अग्नि समुद्रमें रहकर जल पीया करता है । वेदके जानकर ब्राह्मण लोग जिस महत् वड़वा मुखसे ज्ञात है, वह अग्नि वह वड़वा-मुख बनकर उस मुखसे लोकोंमें प्रसिद्ध वाङ्मय वमन करता हुआ जल पीने लगा । हे शानियोमे ब्रेष्ठ पराशर ! तुम भी सब

परलोकोंसे ज्ञात हो, तुम्हारा मङ्गल होवे, सर्व लोकका विनाश करना तुमको नहीं सोहता है ।

चैत्ररथपर्वेण एकसौ एकासी आयाम समाप्त ।

गम्य ऋषी बोले, कि विप्रर्षि पराशरने महात्मा वसिष्ठकी यह सब बातें सुनकर अपना सर्व लोकोंको परास्त करनेका क्रोध त्याग दिया । पर वह सर्व वेदोंके जानकारोंमें ब्रेष्ठ बड़े तेजस्वी शक्तिपुत्र महर्षि पराशर राक्षस-यज्ञ करनेकी प्रवृत्त हुए । अनन्तर उस महा-यज्ञके फैल पड़ने पर वह शक्तिका नष्ट होना स्मरण कर उस यज्ञमें बालकसे लेकर बूढ़े तक सम्पूर्ण राक्षसोंको जलाने लगे । वसिष्ठने यह समझ कर कि उनकी दूसरी प्रतिज्ञा भङ्ग करना उचित नहीं है, उनकी राक्षस वध करनेसे नहीं रोका । महामुनि पराशर राक्षस-यज्ञमें प्रदीप्त तीनों पावकोंके सामने मानो चौथे पावकके समान सोहने लगे । शक्ति नन्दनने हवनयुक्त शुक यज्ञसे इस प्रकार आकाश-मण्डलका प्रदीप्त किया, कि जिस प्रकार दिवाकर बादल दूर होनेसे आकाश मण्डलकी प्रकाशयुक्त करते हैं । तब वसिष्ठ आदि सम्पूर्ण महर्षिलोग अपने तेजसे जलते हुए परस्परको दूसरे प्रभाकर समझने लगे । अनन्तर उदार बुद्धियुक्त अत्रि औरोंके करनेके अयोग्य उस यज्ञको पूरा करनेकी इच्छासे उनके निकट आये । हे शत्रुनाश ! इसके पश्चात् पुलस्त्य, पुलह और महाकतु यह सब राक्षसोंके प्राण बचानेके लिये वहां आये । हे भरतब्रेष्ठ ! बहूत राक्षसोंके मारे जाने पर पुलस्त्य शत्रुमथन पराशरसे बोले, कि हे बेटा ! तुम्हारे अग्निहोत्र कार्यमें विघ्न तो नहीं है ? हे पुत्र ! क्या तुम उन निर्दोष राक्षसोंको जो तुम्हारे पिताके वधके विषयमें कुछ नहीं जानते, मारकर आनन्द प्राप्त कर

रहे हों ? ऐ बेटा ! मेरी प्रजाओंको इस प्रकार उखाड़ना तुमका नहीं चाहिये । तपस्वी ब्राह्मणोंका धर्म ऐसा नहीं है । हे पराशर ! शान्तिही उनका परम धर्म है, तुम वह धर्म करो । तुमने निष्पाप होकरके अधर्म युक्त कर्ममें हाथ डाला है । यह कर्म करके अपने पिता शक्तिको लङ्घन करना तुमको नहीं सीखता । हे वासष्ठ ! बिना कारण मेरी प्रजाओंको सम्पूर्ण उखाड़ना तुमको नहीं चाहिये, क्योंकि उस कालमें तुम्हारे पिताका जो अनिष्ट हुआ था, वह केवल उनके अपनेही शापसे हुआ था, वह अपनेही दोषसे इसलीकसे स्वर्गको सिधारे है । हे मुने ! तुम्हारे पिताको खालीना किसी राक्षसकी सामर्थ्यमें नहीं थी, पर उन्होंने आपही अपनी मृत्यु रची थी, विस्वामित्र इस विषयमें केवल निमित्तही बने थे । हे पराशर ! अब शक्ति और राजा कल्माषपाद स्वर्गका सिधार कर सुख लूट रहे हैं और महामुनि वसिष्ठके शक्तिसे लोटी जो सब पुत्र थे, वे भी देवोंके साथ परम आनन्द भोग रहे हैं, हे महामुने ! वसिष्ठ सब जानते हैं । हे वसिष्ठ-नन्दन ! इस यज्ञमें निर्दोष राक्षसोंका जो नाश हो रहा है, तुम केवल उसकी निमित्तही बन रहे हो, अतएव तुम यह यज्ञ त्याग दे, तुम्हारा मङ्गल हावे, अब यह यज्ञ पूरा करा । गन्धर्व्य बोले, कि बुद्धिमान पुलस्त्य और वासष्ठके महामुनि शक्ति-नन्दनका ऐसा कहनपर उन्होंने तब उस यज्ञका पूरा किया और सम्पूर्ण राक्षसोंने यज्ञके लिये जो अग्नि प्रज्वलित हुआ था उसकी लहमाचल-के उत्तर और बड़े वनमें छोड़ दिया । वहा अभीतक यह दीख पड़ता है, कि वह आग हर त्योहारमें राक्षस, वृक्ष और पत्थरोंका खाली है ।

चैत्रय पर्वगे एकसौ वयासी

अध्याय समाप्त ।

अर्जुन बोले, कि हे मित्र ! राजा कल्माष पादने क्यों वेदज्ञ अष्टगुरु वसिष्ठके प्रति स्त्रोके नियाग किया था ? महात्मा महर्षि वसिष्ठको क्यों धर्मको जानकर हांकर मिलनेके अयोग्य स्त्रीसे जा मिले ? क्या वह अधर्मयुक्त प्रवृत्त हुए थे ? इस विषयमें मुझे शङ्का हो रही है, तुम उसे पूर करो । गन्धर्व्य बोले, कि हे दुर्द्वेष धनञ्जय ! तुमने उस प्रजापालक राजा और वसिष्ठके विषयमें जो कुछ पूछा, वह कहता हूँ सुनी । हे भारतकेन्द्र ! वसिष्ठएव महात्मा शक्तिने जिसप्रकार शाप दिया था, वह मैंने सब सुनाया है । वह शत्रुमयन भूपाल शापग्रस्त होकर क्रोधयुक्तनेत्रसे स्त्रोके साथ नगरमें निकले, आगे निर्जैन वनमें जाकर स्त्रोके साथ घूमने लगे शापग्रस्त भूपाल अनेक प्रकारके मृगोंसे भरे भात भातिके वनके जीवोंसे पूरे नाना वृक्ष और गुरु लताओंसे ढपे और घार शब्दसे गूजते हुए उस बड़े वनमें घूमते हुए बहुत क्षुधित हुए, वह भोजनकी सामग्री ढूँढ़ते हुए थक गये थे, एक ऐसे समयमें देखा कि उस वनके एक निराले स्थानमें एक ब्राह्मण और ब्राह्मणी सैथुनकर्ममें प्रवृत्त हैं । राजाका देखकरके ही काम पूरा न होत परभी आत भयभात चित्तसे वह सब उठ भाग । राजाने उनके पीछे दौड़ कर उस दम्पतिमें ब्राह्मणका पकड़ा । अनन्त ब्राह्मणी पतिको पकड़ जाते देखकर वालो, कि हे सुव्रत महा राज ! मैं जा कहती हूँ सुना । यह सर्व लोकोंमें प्रसिद्ध है, कि तुमने स्वयंवरमें अग्न लया है और प्रसन्न न हाकर गुरुको सेवा भी किया करते हो । हे दुर्द्वेष ! अब तुम शापग्रस्त हुए हो, इसीसे तुमको ऐसा पाप करना नहीं चाहिये, इस समय मेरा शत्रुत्व आजाने पर मैं पतिसे मिल रही थी, पर मेरा मनःस्थि सफल नहीं हुआ है, अतएव मैं रूपयेष्ट ! प्रसन्न होओ, मेरे पातकों क्षमा

हो । ब्राह्मणी यह सब कहती हुई रोने लगी, पर राजाने निर्दयी-पनसे उसके पतिकी इस प्रकार खा लिया, कि जैसे व्याघ्र मृगको खाता है । तब ब्राह्मणीने क्रोधके मारे भ्रूस पर जो मास् गिराये उनसे जलती हुई आग बन-कार उस स्थानसे उजाला होगया । आगे पतिकी विच्छिन्नताके बाद, शोकसे विकल उस ब्राह्मणीने क्रोधके मारे राजार्घ कल्पापदादकी यह कह शपथ देवा कि, रे नीच । मिलनके सुखसे मेरा मनोरथ सफल होते न होतेही तुमने कुतुहलसे निष्ठुरके समान मेरे सामने हो मेरे प्यारे अति यशोवन्त पतिकी मार डाला, सो मेरे शपथसे तुम घायल होकर ऋतुकालसे स्त्रीसे मिल करकेही-उसीक्षण प्राण छोड़ोगे । तुमने जिन महार्घके पुत्रको नष्ट किया है, तुम्हारी स्त्री उन्हीसे मिल कर पुत्र प्रसव करेगी । रे नृपाधम । उसी पुत्रसे तेरे वंशकी रक्षा होगी । आइरा कुतसे उत्पन्न शुभ लक्षणयुक्त वह ब्राह्मणी राजाका यह शपथ देकर उनके सामनेही जली हुई आगमें जा घुसी । है शत्रुमधन । महाभाग वासिष्ठ तपाबलके कारण ज्ञानचक्षुसे वह सब जान गये ।

अनन्तर बहूत दिन पीछे राजार्घ शपथसे युक्त हुए । आगे एक समय मदयन्ती नाम्नी उनको राणीका ऋतुकाल आन पड़चा । राजाके उनको ऋतुरक्षाके लिये उद्यत हान पर मदयन्तीने उनको राका । राजा कामसे मोहित होन परभी शपथको बातको सुनकर बहूत घबराये, और उस शपथकी स्मरण करतेही बहूत दुःखी हुए । है नरवर ! शपथ-ग्रस्त राजाने इसी हेतु अपनी राणीकी ऋतुरक्षाके लिये वासिष्ठको नियुक्त किया था ।

चतुर्विंशत्तमः एकस्योत्तरासी
अध्याय समाप्त ।

अर्जुन बाले, कि हे गन्धर्व । तुम खन-जानते हो. सो कहो, कि वेद जाननेवाले कौन ब्राह्मण हमारे पुरोहित होनेके योग्य हैं । गन्धर्व बाले, कि वनके भीतर उत्कीचक नाम तीर्थमें देवलके छोटे भाई धौम्य नामक ऋषि तप कर रहे हैं, तुम चाह तो उनकी पुरोहित बनाओ । वैशम्पायन बाले, कि अनन्तर अर्जुन प्रसन्न होकर उन गन्धर्वकी विधिपूर्वक अन्नप्रस्थ देकर बाले, कि तुम्हारा मङ्गल होवे, तुम्हारे दिये हुए घाड़े अभी तुम्हारेही पास रहें, जब काम पड़ेगा, तब लूंगा । अनन्तर पाण्डवगण और गन्धर्व एक दूसरेकी अभ्यर्थना करके रमणीय भागीरथी तटसे अपने अपने मनमाने स्थानोंका पधारे ।

हे भारत । अनन्तर पाण्डवोंने उत्कीचक तीर्थमें धौम्यके आश्रममें जाकर उनको पुरोहित बनाया । वेदज्ञोंमें श्रेष्ठ धौम्यने वनके फलमूलासे उनको पूजित कर पुरोहित होना स्वीकार किया । साताके साथ पाण्डवान उन-ब्राह्मणकी गुरुकी भाँति पुरस्कृत कर ऐसा समझा लिया, कि राजलक्ष्मी और स्वयम्बर स्थानमें पाङ्गाली मिल गयी । वे उन गुरु रूपी पुरोहितसे मिल कर अपनेकी नाथयुक्त समझने लगे, जोकि वेदार्थतत्त्व जाननेवाले उदार बुद्धियुक्त वह ऋषि उनके गुरु हुए । धर्म जाननेवाले, सर्व विषयोंके जानकर उन द्विजने भी उनके गुरु स्वरूप नियुक्त होकर उनकी यजमान बनाया । उन्होंने बुद्धि, वीर्य, बल और उत्साहयुक्त देवोंके सदृश उन वीरोंको अपने धर्मके अनुसार राज्य पाये हुए समझा । उन ब्राह्मणके स्वस्थयन करन पर मानव श्रेष्ठ पाण्डवाने एकत्र पाङ्गाल देशको स्वयम्बर स्थानमें जाना नियुक्त किया ।

एकसौ चौरासी अध्यायमें चतुर्विंशत्तमः
पर्व समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अन्तर पुरुष-
श्रेष्ठ पाचो पाण्डव सहोत्सव युक्त पाञ्चाल देश
और पाञ्चालीकी देखनेको चले । शत्रुमथन,
नरव्याघ्र भाइयोने माताके साथ जाते समय
पथमें एक साथ मिठा कर अनेक ब्राह्मणोंको
चलते देखा । हे राजर्षि ! उा ब्रह्मचारी
ब्राह्मणोंने पाण्डवोंसे कहा, कि आप कहा
जायगे ? कहाँसे आते है ? युधिष्ठिरने उत्तर दिया
हम पाचों भाई माताके साथ मिलकर घूमा
करते है, अब एकचक्रा नगरीसे आरहे है ।
ब्राह्मणोंने कहा, कि आपलोग आजही पाञ्चाल
नगरमें राजा द्रुपदके घरकी जायें, वहां वज्रत
धन खर्च कर भारी भीड़ भड़काके से स्वयम्बर
होगा । हमभी वहां जा रहे हैं, चलें एकही
साथ जायें, वह आश्चर्य्य महीताव होगा,
पाञ्चालनाथ महात्मा यज्ञसेन राजा द्रुपदकी
सुकुमारी मनस्विनी देखनेके योग्य उस पुत्रोने
जिस देशमेंसे जन्म लिया है, जिसकी आंखि
पद्मकी भाति है, जिसका कोई अङ्ग निन्दनीय
नहीं है और जिसके नीज पद्मसी गन्ध कीस
भरकी दूरीसे भी अनुभव होतो है, स्वयम्बरा
होना निश्चय किया है । वह सुन्दरी अनिन्दि-
ताङ्गी उस महाभुज अग्नि समान प्रतापो धृष्ट-
द्युम्नकी बहिन है जिसने द्रोणकी मारनेके
लिये जलती हुई आगसे खड्ग, कवच, शर,
शरासन आदिके साथ जन्म लिया है । हम
उस द्रौपदी और महोत्सवकी देखनेको जाते है ।
उस महोत्सवमे वज्रत दक्षिणा देनेवाले, यज्ञ-
शील, स्वाध्यायमें नियुक्त, पवित्र, स्वधर्मान्वित,
महात्मा तरुण अवस्थायुक्त सुन्दर अस्त्र विद्यामें
परिष्ठित महारथो भूमिपालक राजालोग और
राज हमारगण अनेक देशोंसे आवेंगे । वे
उन स्वयम्बरके स्थान पर विजयकी आशासे
गो, धन, भक्ष्य, भोज्य आदि दान करने योग्य
अनेक सामग्री सर्वप्रकारसे दान देगे । हम
वह सब लेकर और स्वयम्बर तथा महोत्सव

देखनेकी पीछे अपनी इच्छासे घरकी लौटेंगे ।
स्वयम्बर स्थलमें नाना देशोंसे नट—प्रांते
भातिके नेश धरने वाले, वैतालिक—नङ्गल गान
वाले, सूत—पराणको क ग कहनेवाले, सागर—
बलकी सूचना देनेवाले, मह गली पहलवान और
नाचनेवाले आवेंगे । हे महाभागा ! आपभो
दान लेकर, उस आनन्दका भोगकर फिर
हमलोगोंके संग लौटना । आप सर्वोंकी देवोंको
भाति सुन्दर देखते है, स्वयम्बर स्थानमे आपके
रहनेसे द्रौपदी आपका देख करके देवदत्त
आपलोगोंमेंसे श्रेष्ठ किसीको वरणभो कर
सकती है । आपके इस भाईकी महाभुज
श्रीमान और दर्शनयोग्य कार्य्य कुशल देखते
है । इनके वर किये जानेसे देवदत्त वज्रत
धनभो प्राप्तकते है, युधिष्ठिर बोले, कि हम
सब आप लोगोके साथ द्रौपदीके उस परम
महोत्सव युक्त स्वयम्बरकी देखने जायेंगे ।

स्वयम्बर पर्वमें एकसी पचासी

अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे जनमेजय !
पाण्डव लोग ब्राह्मणोंसे वह सब बातें सुनकर
द्रुपदसे शासन किये जाते हुए दाक्षिण्य
पाञ्चालमें जाने लगे । पथमें पापके सर्पसे
खाली विसुद्ध स्वभावी महात्मा मुनि वैशम्पायनका
देखकर विधिपूर्वक उनकी पूजा की और
वे भी उनसे सत्कार किये जाकर नाना वार्ता
लापके पीछे उनको आज्ञासे द्रुपदके भवनको
और चले । स्वाध्यायमें नियुक्त, अच्छे, पवित्र,
सुन्दर-दर्शन, मोठी वाणी बोलनेवाले, महा-
रथो पाण्डवगण पथमे सुन्दर सुन्दर वन और
ताल देखकर उन स्थानोंमें ठहर ठहर कर
धीरे धीरे चलते पाञ्चाल देशमें पहुँच गये ।
वे पाञ्चाल नगर और वहाके सेनापती
देखकर एक कुम्हार के घरमें ठिके रहे ।
वहा ब्राह्मणकी चाल लेकर भोख मांग मांग

पेट पालते हुए बसे रहै ; तिससे यज्ञमें आये
हुए उन वीरोंको किसीने नहीं जाना ।

राजा यज्ञसेनकी सदा यह कामना थी,
कि पाण्डु त्रि किरोटो अर्जुनकीही कन्या दान
करें ; पर उन्होंने यह बात किसीसे प्रगट
नहीं की । हे जगमेजय ! उन्होंने कुन्ती
पुत्र अर्जुनकी स्मरण कर ऐसा एक दृढ चाप
बनवाया, कि जिसे अर्जुनके बिना, कोई दूसरा
नवा न सके, और आकाशमें स्थित एक कृत्रिम
यन्त्र बनाकर उस यन्त्रमें एक लक्ष्य जोड़वाया ।
आगे बोले, कि जो राजा इस शरासनमें गुण
चढ़ाकर उस रुजे हुए नायकसे उस यन्त्रको
पार कर लक्ष्यको विद्ध कर सकेंगे, वही मेरी
कन्याको लाभ करेंगे ।

श्रीवैशम्पायनजी बं.ले, कि हे भारत ।
राजा द्रुपदके ऐसे स्वयम्बर को सूचना देने पर
राजालोग उसे सुनकर वहां आने लगे, और
नाना देशोंसे महात्मा महर्षिलोग, महाभाग
ब्राह्मणगण और कर्ण तथा दुर्योधनादि कौरव
स्वयम्बरके देखनेके लिये आ पहुंचे । महात्मा
राजा द्रुपदने उन जब भूपालोंका स्त्कार
किया । अनन्तर परवासीलोग महासमुद्रसे
उठती हुई लहरकी भांति बड़ा कोलाहल
मचाते हुए द्रौपदीके स्वयम्बरको देखनेकी
इच्छासे निकटकी एक एक वेष्टी पर बैठने लगे ।
राजालोग भिशुमारशिर' नामके स्थानसे
होकर स्वयम्बर सभामें प्रविष्ट होने लगे ।
नगरके ईशान कोनमें अच्छी समभूमि पर
चारों ओर की बड़ेसे घिरी हुई स्वयम्बरकी
सभा शोभा पारही थी । वह सभा खन्दक
और प्राचीरोसे घेरो, हारतीरणसे जड़ी, सर्वत्र
चंदवेसे सजी, सैकड़ों तूर्योंसे बजती, अच्छे
अगुरुकी गन्धसे सुगन्धित, चन्दनके जलसे
अभिषिक्त और फूलके हारोसे भले प्रकार
सुशोभित थी । उसके चारों ओर सीनेके
जालसे सज्जके, मणिमय कुट्टिमासे सुहावने,

अच्छे अच्छे आसन और साजोंसे बनेठने
चढनेमें सुखदायी सीढ़ी युक्त, कैलासकी
चोटीकी नाईं आकाशकी चूमनेवाली जंचे
बड़े बड़े शुभ्र भवन शोभा पा रहे थे । हंत्की
गर्दनके रंगकी भांति धीले गायोंमें न रहने-
वाले जनोंसे भरे, शया और आसनोंसे सुशोभित
हिमाचलकी चोटीकी नाईं धातुओंसे रंगे
और अच्छे अगुरुकी गन्धसे सुगन्धित उन
सब भवनोंकी सुगन्ध योजन भरकी दूरीसे
भी अतुल्य होती रहो ; उन सब भवनोंके
सैकड़ों द्वार इतने लम्बे चौड़े थे, कि एक
बारही बहुत लोगोंके जानेसेभी एक दूस-
रेकी बाधा नहीं होती थी । सब भप अच्छे
प्रकार अलंकृत और एक दूसरे पर अहङ्कार-
युक्त होकर उन सब भांति भांतिके साततले
भवनोंमें जा बैठे । महासत्त्ववान अति परा-
क्रमी, महाभाग, महाप्रसाद तथा गुणयुक्त,
निज राज्योंके पालन करनेवाले, शुभकर्मोंसे
सब लोगोंके प्यारे और कृष्णागुरुसे सजे उन
सब राजसिंहोंके उन स्थानोंमें बैठ जाने पर,
द्रौपदीके देखनेके अभिप्रायसे चारों ओर अच्छी
वेदियों पर बैठे हुए नगर और जनपदवासी
उन लोगोंकी देखने लगे । पाण्डवलोग
ब्राह्मणसमाजके साथ एकत्र बैठकर राजा
पाञ्चालका महत् ऐश्वर्य लेखने लगे । नट
और नाचनेवालोंके नाच आदि और दाता-
ओंके अनेक धन रत्नोंके दानसे सुशोभित वह
सभा बहुत दिनों तक इस प्रकारसे बढ़ने
लगी । हे भरतश्रेष्ठ ! सोलहें दिन द्रौपदी
नहा धोकर और सर्व आभूषणोंसे वन ठनके
विचित्र वस्त्र पहिने दधि, अक्षत और अश्वमे
भरा हुआ सुशोभित सुवर्ण पात्र लेकर उस
सुन्दर समाज की रंगभूमि पर जा पहुंची !
सोमवशके पुरोहित मन्त्रज्ञ ब्राह्मणने शुचि
होकर फूल फैलाकर यथाविधि अग्निकी
आहुति दे दे करके हविसे हविभक्षोकी प्रसन्न

कर और ब्राह्मणोंसे स्वस्ति कहनवाकर चारों ओरके बाजोंकी धनिकी रोज़ा । हे पृथ्वी-नाथ । अनन्तर सभाके चुप होने पर वादल और नगाड़ेकी भाँति स्वरयुक्त धृष्टद्युम्नने यथाविधि द्रौपदीकी लेकर रगमें खड़े होकरके मेघके समान गम्भीर बड़े शब्दसे यह अर्थ युक्त मनोहर अच्छी बात कहो, कि हे उपस्थित भूपालो ! सुनो, यह शरामन, यह तेज पाच वाण और आकाशमें स्थित लक्ष्य दोख पड़ता है, इन पंच वाणोंसे उस यन्त्रके छिद्रकी विद्ध करना होगा, मैं सच करके कहता हूँ, कि रूपवान बली, कुलीन जो राजा इस महत कार्यको पूरा कर सकेंगे, मेरी बहिन यह कृष्णा आज उनकी भार्या होगी । द्रुपदकुमार आये हुए भूपाणोंसे यह कहकर आगे उनके नाम, गोत्र और कर्मको बात सुना कर बहिनसे कउने लगे ।

स्वयम्बरपर्वमें एकसौ क्रियासी

अध्याय समाप्त ।

धृष्टद्युम्न बोले, कि दुर्योधन, दुर्विंसह, दुर्मुख, दुष्प्रार्थण विंशति, विकर्ण, सह, दुःशसन, युयुत्सु, वायुवेग, भीमवेगरव, उग्रायुध, बलाको कनकायु, विरोचन, सुकुण्डल, चित्रसेन, सुवर्चा, कनकध्वज, नन्दक, वाङ्गशाली, तुङ्गण्ड, विकट, वीर यह सब और दूसरे महाबली धृतराष्ट्रकुमार बृहन्तरे कर्णके साथ तुम्हारे लिये आये हैं और अगणित क्षत्रिय-क्षेत्र महाभा राजालोग उपस्थित हुए हैं । मर्हि, मैत्रिल, वृषक, वृहदल, यह सब गान्धार राजकुमार आये हैं । सर्वास्वधारियोंमें श्रेष्ठ मङ्गा अश्वत्थामा और भोज अनन्त होकर तुम्हारे लिये आये हैं । बृहन्त, मणिमान, दामधर, नन्ददेव जयन्तेन, मगधराज मेघसन्धि, नन्द्यार उन्नर नामक दो पुत्रोंके साथ विराट, पाण्डेय मन्मथ, मनाविन्द, सुवर्च, और

सुनामा नामक दो पुत्रोंके साथ सुकेतु, सुचित्र, सुकुमार, वृक, सत्यधृति, सूर्यध्वज, रोचमान, नील, चित्रायुध, अंशुमान, चेकितान, महाबली श्रेणीमान, समुद्रसेनके पुत्र प्रतापो चन्द्रसेन, जलसन्ध, विदण्ड और दण्ड यह दो पिता पुत्र, पौण्ड्रक वासुदेव, वीर्यवान भगदत्त, कलिङ्ग, ताम्रलिप्त, पत्तनाधिपति, पुत्रके साथ महा रथी सदराज शल्य, वीर रुक्माङ्गद, रुक्मरथ, कौरव्य सोमदत्त, सोमदत्तके पुत्र महारथी भूरि, भूरिश्रवा, और शल एकत्र यह तीन वीर, सुदक्षिण, काम्बोज, पौरव वृद्धन्वा, वृहदल, सुषेण, औशीनर शिवि, पटच्चर निहता, कारुपाधिप, बलदेव, कृष्ण, वीर्यवन्त रौक्मिण्य, शाम्ब, चारुदेश, प्रायुज्जि, गद, अङ्गूर, सात्यकि, महामति उडव, हाडिन्ध, कृतवर्मा, पृथु, विपृथु, विदूरथ, कङ्क, शङ्ख, गवेषण, आगवह, अनिरुद्ध, समीक, सारिमेजय, वीर वातपति भिल्लि, पिण्डारक, विक्रमी उशोनर, यह सब वृष्णिगण, भगोरथ, बृहदल, मेधव, जयद्रथ, बृहद्रथ वाह्लीक, महारथी श्रुतायु, उलूक, कैतव, चित्राङ्गद, शुभाङ्गद, मतिमान वत्सराज, कोशलाधिप, शिशुपाल और विक्रमी जरासन्ध । हे भर्ते ! भूमण्डलमें प्रसिद्ध विक्रमी यह सब राजा और क्षत्रियवंशी नाना जन्मपदनाथ तुम्हारे लिये इस अच्छे लक्ष्यकी भेद करनेको इच्छा आये हैं, हे शुभे । जो इस लक्ष्यका विद्ध करेंगे उनकी तुम वरण करना ।

स्वयम्बर पर्वमें एकसौ सताशे

अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी वं.ले, कि अनन्तर कुण्डलादि अलङ्कारोंसे सजे हुए युवा नरन्धगण सबी कोई अवनको अस्त्रविद्यामें पण्डित और बली रुमझकर एक दूसरे पर अहङ्कारयुक्त होकरके अस्त्र लेकर उठके खड़े हुए । वीर्यधन, यौवन, कुल, शोल, रूप, और वीर्य

हिमाचलमें जम्मे मदमत हस्तीकी भांति
पति दर्पयुक्त होकर एक दूसरेकी निहारने
लगी और कामके वशमें होकर यह कहते
हुए; कि “द्रौपदी मेरोही होगी” एकायक
राजासबसे उतरे। रङ्गभूमिमें उतरे हुए
क्षत्रिय लोगोंने दुपदकन्याकी जय करनेकी
इच्छासे उसके चारों ओर खड़े होकर ऐसी
अपूर्व शोभा धारण की, कि जैसी देवोंने गिरि-
राज एवी उमाकी घेरकर धरी थी। वे
कामदेवके वाणों से जल कर द्रौपदीलाभकी
आशासे हृदयमें उसीका भरकर प्यारे सितों-
काभी डेप करने लगे। अनन्तर रुद्रगण,
आदित्यगण, दोनः अश्विनीकुमार, साध्यगण,
मरुतगण, यमराज, कुबेर और सम्पूर्ण देवगण,
रथों पर चढ़के वहाँ आगये। दैत्यगण,
सुपर्णगण, देवर्षिगण, गुह्यकगण, चारणगण,
विष्णवसु, नारद, ऋषि पञ्चत और अप्सरा-
ओंके साथ प्रधान प्रधान गन्धर्व वहाँ आ
पहुँचे। हलायुध, कृष्ण और कृष्णकी मतकी
माननेवाली प्रधान प्रधान वृष्णागण, अश्वकगण
और यादवगण, इधर उधर देखने लगे।
यदुवीरोमें प्रधान कृष्ण पद्मकी और दौड़ते
हुए गजराजकी भांति द्रौपदीकी और मुख किये
और भस्मसे ढंपे हुए अग्निसदृश उन उन्मत्त
हस्तीके समान पाँच पाण्डवोंकी देख कर
सोचने लगे और बलदेवजीसे बोली, कि सुभको
जान पड़ता है, कि यह युधिष्ठिर, यह भीम,
यह अर्जुन, यह नकुल और यह सहदेव है।
बलदेव जोनिभी धीरे धीरे उनको निहार कर
प्रसन्न हृदयसे जनाईनकी ओर देखा। दूसरे
वीर राजपौत्र और राजपुत्र लोग नेत्रोंकी लाल
कर होठोंकी काटते हुए द्रौपदीकी ओर
सभाव मन और नेत्र अर्पण कर द्रौपदीकोही
देखने लगे, पाण्डवोंकी और उनकी दृष्टि
भी नहीं पड़ी। पृथुवाहु-पृथापुत्र युधिष्ठिर
भीम और अर्जुन तथा महानुभव वीर नकुल

और सहदेव यह सब भी उस समय द्रौपदीकी
देखकर मदनवाणसे घायल हुए थे। तब
दिव्य गन्धकी उमड़से भरे दिव्य फूलोंसे पूरे
वेणु वीणा पणव आदिकी ध्वनिसंयुक्त और
बड़े बड़े नगाड़ोंके शब्दसे गूँजते हुए उस स्थान-
का आकाश क्षर्वत देव, ऋषि, गन्धर्व, सुपर्ण,
नाग, असुर और सिद्धोंसे भर जानेके कारण
रथोंमें आपसकी स्कावट होने लगी। कर्ण,
दुर्योधन, शाल्व, शल्य, द्रौणायनि, काथ,
सुनीय, वक्र, कलिङ्गाधिप, वङ्गाधिप, पाण्डव, पौण्ड्र,
राजा विदेह, यवनराज, यह सब राजा और
दूसरे राजाधिप पञ्चपलाशनेत्र राजपुत्र तथा
राजपौत्र लोग द्रौपदीके लिये क्रमशः विक्रम
प्रगट करने लगे। किरीट, हार, केयूर, चक्रवाल
आदि नाना आभूषणोंसे सजे विक्रमी, स्वस्ववान्
और बलवीर्यसे तरसाते और गरजते हुए वे
सब सुवाहु भूपाल बड़े भारी उस चापमें गुण
चढ़ानेकी कल्पना मनमें भी नहीं ला सके।
उन्होंने हीठोंकी फुला कर अपने बल, शिक्का,
गुण, और क्रमके अनुसार ज्यों धन्वा नवाने
और उस पर गुण चढ़ानेकी विक्रम प्रगट किया
त्योंही उसी क्षण धन्वाकी कीटिसे भगाये और
फेंके जाकर धरती पर लोट गये और चेष्टासे
मनकी हटाया; इससे उनके पहिने हुए
किरीट आदि आभूषण अङ्गसे च्युत हो
गये और वे बल खोकर वार वार हाँफते
हुए चुप हो बैठे। तब कठिन शरासनसे
भयभीत और अलङ्कारोंसे च्युत वे भूपगण
द्रौपदीकी आशा छोड़ कर हाय हाय करने
लगे। इसके पीछे सम्मानित सज्जनोंसे उस
समाजमें राजाओंके निन्दा योग्य होनेपर
वीरोमें प्रधान कुन्ती पुत्र जिष्णुने उस धन्वा पर
गुण चढ़ाने और वाण लगानेकी इच्छा की।

स्वयम्भरपर्वमें एकसी अठासी

अध्याय समाप्त ।

वैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर राजाओंके उस शरासन पर रोदा चढ़ानेसे मुख फेर लेने पर उदारचित्त जिष्णु ब्राह्मण-समाजसे उठ खड़े हुए । प्रधान प्रधान ब्राह्मण लोग बादल समान प्रकाशयुक्त अर्जुनकी जाते देखकर भृगु-चर्म कंपाते हुए कीलाहल मचाने लगे, कोई कोई दुःखी और सरे हर्षयुक्त हुए । कोई कोई बुद्धिमान निपुणतायुक्त विप्र आपसमें इस प्रकार कहने लगे, कि हे दिजगण । धनुर्वेदमें पण्डित, बली, कर्ण और शन्य आदि लोकोंमें प्रशंसित क्षत्रिय लोग जिस धन्वाकी नवा नहीं सके अस्त्रविद्याके न जानकार शक्तिमें दुर्बल एक बटु क्योंकर उस पर रोदा चढ़ा सकेगा ? इस बटुने, चपलतासे जिस अनजाने काममें हाथ डाला है, वह पूरा न हो, तो हम सब राजाओंसे हसे जायेंगे । हे ब्राह्मणों । यह ब्राह्मण-कुमार अहंकार वा क्रीतहल अथवा चपलतासे शरासन नवानेकी जा रहा है, इसकीरोकी, कि ऐसे काममें न जाय । किसी किसी ब्राह्मणने कहा, कि इससे हमारी लघुता नहीं होगी, हम राजाओंके द्वेषके पात वा हंसे जानेके योग्य नहीं होंगे । कोई कोई बोले, कि इस नये विप्रकी श्रीमान गजराजके स्रंडकी भांति विशाल गर्दन, उस और भुजधारी, हिमाचल सदृश धीरज युक्त, सिंहके खेलको नाई चालवाले और जन्मत गजसा विक्रमी देखता हूं, और इनका उत्साह जैसा है, तिरसे जान पड़ता है, कि यह कार्य इन्हीसे पूरा हो सकता है, यह ब्राह्मण बड़े उत्साही और शक्तिवान है ; इनकी शक्ति न रहती, तो यह कभी नहीं जाते । फिरभी तीनों लोकोंमें ऐसा कोईभी कार्य तीन ही है, कि जो इन सरनेवाले मनुष्योंमें ब्राह्मणका अभाव है । कठोर व्रतयुक्त जिज्ञातिगण फलाहार, वायुभक्षण अथवा निरा-हारके पितु देखनेमें दुर्बल होंगे भी तो अपने स्वयंमें प्रती रहते हैं । ब्राह्मण सकर्म किया

करें वा बुरा कर्म कियाकरें तौभी सुख वा दुःखदायी और महत् वा क्षुद्र किसी उपस्थित कार्यमें उनका अनादर करना नहीं चाहिये । देखो, जमदग्नित्र रामने क्षत्रियोंकी युद्ध परास्त किया था ; ऋषि अगस्त्यने ब्रह्मतेजसे गहरे समुद्रकी पी लिया था, अतएव तुम सब आज्ञादो कि यह महात्मा शीघ्र शरासन पर गुण चढ़ावे । आगे हिजवरोने "तथास्तु" कहा । ब्राह्मणलोग इस प्रकारकी नाना बातें कहने सुनने लगे, तब अर्जुन शरासनके निकट जाकर पर्वतकी भांति खड़े हुए । आगे उसके चारों घूमकर वरदाता देव प्रभु ईशानकी सिर नाथ कर प्रणाम किया और मनही मनमें श्रीकृष्णकी चिन्ता कर शरासनकी उठा लिया । रुक्म, सुनीथ, वक्र, राधापुत्र, दुर्योधन, शल्य और शाल्य, यह सब धनुर्वेदमें पण्डित नरमिह भूपाल अति यत्नेसे भी जिस धन्वापर रोदा नहीं चढ़ा सके थे, वीर्यवन्तोंमें दर्पयुक्त, इन्द्रानुज सदा प्रभावी अर्जुनने देखतेही देखते उस पर गुण चढ़ाया और पांच शर लेकर लक्ष्यकी भेद दिया । लक्ष्य वृद्धत विह्वल होकर उसी क्षण यन्त्रकी दैर्घ्य धरती पर गिर गया । तब आकाश माल और समाजमें अति कीलाहलकी ध्वनि उड़ी लगी देवताओंने शत्रुकुलनाशी अर्जुनके निर पर दिव्य फूल वर्षाये । सहस्रों ब्राह्मण उनकी विजयध्वजाकी भांति अपने अपने दुपट्टोंके धोर उड़ाते हुए उठ खड़े हुए । जो जोग लक्ष्य नहीं भेद कर सके थे, वे लज्जित होकर चारों ओर हाय हाय करने लगे । समाजमें आकाश मण्डलसे चारों ओर फूल वर्षने लगे । वाजे वाले तृर्थ-यन्त्रकी सौओं अङ्ग मिलाकर वज्राने लगे, और सूत मागध लोग मोठे स्वरसे स्तुति गाने लगे । शत्रुमथन राजा द्रुपद अर्जुनके देखकर प्रसन्न हुए, और सेनाओंके माथे उनकी सहायता करनेकी इच्छा की । जय वह भारी कीलाहल आरम्भ हो गया त

धार्मिकवर युधिष्ठिर वेगसे पुरुव-थेष्ठ दीनो
यमज भाइयोंकी लेकर डेरे पर चले गये ।
द्रौपदी पार्थसे लज्जका विद्ध होना देखकर
और उनकी इन्द्र सदृश निहार कर प्रसन्न
चित्तसे शुभ वस्त्र और माला लेकर उनके
पास जा पड़ची । चिन्तातीत कर्म करनेवाले
अर्जुन रंगभूमिमें द्रौपदीकी जय कर विजाति-
योंसे स्तुत होकर उम रंगभूमिसे निकले,
द्रौपदी भी उनके पीछे पीछे जाने लगी ।

स्वयम्बर पर्वमें एकसौ नवासी

अध्यय समाप्त ।

वैशम्पायन बोले, कि अनन्तर राजाके लज्ज
भेद करनेवाले उस ब्राह्मणकी कन्या दान
करनेकी इच्छा प्रगट करने पर निकटस्थित
भूपाललोग एक दूसरेकी देखकर क्रोधित हो
गये और कहने लगे, कि इस राजाने इन सब
उपस्थित नरेशोंकी तिनके के समान समझकर
इनकी लड़नकर ब्राह्मणकी योशिहरा कन्या
देनेकी इच्छा की है, यह दुरात्मा वृद्ध रोपण
करके फलनेके कालमें काट रहा है, हम
लोगोंकी अपमानित कर रहा है, इसकी
मार डालेंगे । यह दुराचारी वृद्ध क्रमके
अनुसार गुणयुक्त और सम्मानके योग्य नहीं
है, सो राजाओंके शेष करनेवाले इस दुरा-
त्माकी पुत्रके साथ मारनाही उचित है, यह
दुरात्मा सन्पूर्ण भूपालोंकी बुलवाकर सम्मा-
नके साथ अपूर्व भोजन आदिसे पूजकर अब
अपमान कर रहा है । इन महीपालोंका
समागम वैसाही हुआ है, कि जैसा देवोका
समवाय होता है, क्या इनमेंसे एकभी
इसको योग्य न समझ पड़ा ? यह प्रसिद्ध
कहावत है, कि स्वयम्बर क्षत्रियोंको लिये
विविध हुआ है, इसमें ब्राह्मणका अधिकार
नहीं है, फिरभी यदि यह कन्या किसी राजा-
की पति न बनाया जाहे, तो इसको जलती-

हुई आगमें ढीङ्कर हम अपने अपने राज्योंमें
चले जायेंगे । इस ब्राह्मणने यद्यपि चपलतासे
राजाओंका अप्रिय कार्य किया है, तौभी
इसकी मार डालना किसी प्रकार उचित नहीं
है, क्योंकि हमारा राज्य, अर्थ, जोदन, पुत्र,
पौत और दूसरे जी कुछ धन है, वह सबही
ब्राह्मणोंके लिये है । हम यहां शासन करेंगे,
तो दूसरे स्वयम्बरके स्थानोंमें फिर कभी ऐसा
नहीं होगा, सबलोग अपमानके भयसे अपने
अपने धर्मको रक्षा करेंगे । परिश्रम समान
भुजवाले, सब राजसिंह ऐसी बात कहकर
प्रसन्न चित्तसे अस्त्र लेकरके राजा द्रुपदकी
मारनेके लिये दौड़े । द्रुपदने राजाओंकी
क्रोधित होकर शरासन लिये आते लिखकर
इस भयसे कि ब्राह्मणोंके क्रोधसे कहीं क्षत्रिय-
कुल नष्ट न होजाय ब्राह्मणोंकी शरण ली ।
बड़े चापधारी शत्रुदमन पाण्डुनन्दन भीम
और अर्जुन भूपालोंको मदीन्त गजोंकी
भांति वेगसे दौड़ कर आते देखकर उनकी
ओर चले । उंगलीरक्षक पहिने हुए वह सब
राजा क्रोधके मारे अस्त्रशस्त्र उठाकर कुस्-
राजपुत्र अर्जुन और भीमसेनको मारडालनेके
लिये जा गिरे । अनन्तर वज्र समान कठोर,
महावली, आश्चर्य डरावने कार्य करने वाले,
अद्वितीय वीर भीमसेनने उन्नत गजराजकी
भांति हाथोंसे एक वृद्ध उखाड़ कर पत्नीसे
खाली किया फिर शत्रुसंघन पृथुभुज पृथा-
नन्दनने उसके पत्नीसे खाली पेड़की लेकर
पुरुषथेष्ठ अर्जुनके सम्मुख इस प्रकार खड़े
होगये, कि जैसे यमराज कठोर दण्ड लेकर
खड़े होते हैं । चिन्तातीत कर्म करने वाले
असामान्य बुद्धिमान महेन्द्र सदृश जिष्णुने
भाईका अलौकिक कार्य देखकर अचरज
माना । अनन्तर निर्भय चित्तसे चाप लेकर
खड़े हुए । चिन्तातीत कर्म करने वाले
असाधारण बुद्धिशाली दामोदर भीमार्जुनका

दृष्ट आश्चर्य्ये कार्य्य देखकर महावीर्य्यवन्त बड़े भाई हलायुधसे बोलि, कि हे सङ्घर्षण ! सिंह-बरकी भांति डोलते हुए चलने वाले जो पुरुष पांच हाथसे कुछ कम सापकी चापकी खींच रहे हैं उनका अर्जुन होना इतना निश्चय है, कि जितना मेरा कृष्ण होना निश्चय है । जो वेगसे वृद्ध उखाड़ कर एकायक भूपालोंको अन्तःकरणकी प्रवृत्त हुए हैं, वह वृकोदर होंगे । वृकोदरके बिना इस भूमण्डल भरमें कोई मनुष्य आज ऐसा कार्य्य करनेकी समर्थ नहीं होगा । हे अच्युत ! मुझको जान पड़ता है, कि इसके पहिले पद्मकी भांति प्रशस्त नेत्रयुक्त भारी सिंह समान चलनेवाले नम्र, गोरे, दीर्घ और उज्ज्वल सुन्दर नाकवाले, चार हाथ इतने लम्बे और उसके योग्य स्थूलदेह युक्त, जो पुरुष पधारे हैं, वही धर्म-पुत्र हैं, उनके साथ कार्त्तिकेयके सदृश जा दी कुमार गये हैं, वे अश्विनी-कुमारोंके पुत्र होंगे । मैंने सुना है, कि पाण्डव लोग पृथाके साथ जतुग्रहसे जलनेसे बचे थे । बिना जलके बादलके रङ्गयुक्त हलायुध आनन्दित होकर कनिष्ठ कृष्णसे बोलि, कि यह सुनकर कृतार्थ हुआ, कि बड़े भाग्यसे पुत्रोंके साथ फूफीजी बच गयी है ।

स्वयम्बर पर्वमें एकसौ नव्वे अध्याय समाप्त ।

श्री-शम्पायनजी बोलि, कि अनन्तर ब्राह्मण-लोग मृगचर्म और वसण्डल कपाति हुए बोलि, कि सन इरो, हम शत्रुओंसे लड़ेंगे, अर्जुन ब्राह्मणोंकी यह बात सुन कर हंसके लीले कि आप एक और दर्शक बन कर खड़े रहें । मैं एकड़ी तेज वाणोंसे इन सब क्रोधित राजाओंकी इधर उधर इस प्रकार तीन तेरह कण्ठों तक बोलूंगा कि जिस प्रकार मन्त्रकी जात हार मन्त्रमें अति विपरीत सर्पकी तेजसे मारा कर देते हैं । महावनी अर्जुन यह कहकर रणमें जीत लिये हुए धन्वाको ला

करके भाई भीमसेनके साथ पर्वतकी भूति अचल बने रहें । आगे भीम और अर्जुन दोनोंने इस प्रकार, कि जैसे हस्ती विपदा हस्तीपर चढ़ जाता है, रणोन्मत्त कर्णदि राजाओंको देखकर बिना भय उनकी ओर दौड़े । लड़ाई चाहने वाले राजालोग यह द्वारसे बोलि, कि युद्धस्थलमें लड़ने वाले ब्राह्मणोंमें बच किये जा सकते हैं । भूपाललोग यह कहकर उसीक्षणा ब्राह्मणों पर दौड़े । अनन्तर बड़े तेजस्वी कर्ण लड़नेके लिये अर्जुनसे इस प्रकार जा भिड़े, कि जैसे हस्ती हथनीके लिये दूसरे हस्ती पर चढ़ जाता है । महाबली मद्राधिप शल्य भीमसेनकी ओर दौड़े । दुर्योधन आदि सर्वोंने ब्राह्मणों पर चढ़ाई की । वे द्विजोंके साथ बिता यत्न धीमो लड़ाई लड़ने लगे । अनन्तर श्रीमान अर्जुन आदित्य एवं कर्णको विरुद्धमें आति देखकर बड़े भारी चापकी खींचके तेज वाणोंको मारकर बिड़ करने लगे । राधाकुमारने अर्जुनके तेज वाणोंके वेगसे मुर्झाकर अति यत्नसे उन पर आक्रमण किया । जय करने वालोंमें बड़े अर्जुन और कर्ण एक दूसरे पर क्रोधित होकर जयको आशासे ऐसी क्रुत्तीसे लड़ने लगे, कि किसीने समझ न पाया, कि उनमें कौन कब आदान संधानादि करते थे । वे एक दूसरे पर शूरता प्रगट कर यह कहके वातालय करने लगे, कि तुमने जो किया, देखो उसकी रोक लेता हूँ, मेरा भुजबल देख लो । अनन्तर सूर्य्यकुमार कर्ण अर्जुनका ऐसा भुजवीर्य्य देखकर, कि जिसकी उपमा ससारभरमें नहीं मिलती एकचित्तसे लड़ने लगे । वह अर्जुनके चलाये हुए वाणोंकी रोककर सिंहकी भांति गरजने लगे ; सेना उनके उस कार्य्यकी प्रशंसा करने लगे । आगे कर्णने अर्जुनसे कहा, कि हे द्विजातिभूष ! इस युद्ध स्थलमें तुम्हारा न चूकने वाला भुजवीर्य्य और विजयी

शस्त्र देखकर सै प्रसन्न हुआ । सै ब्राह्मण
छेड़ । सुभको जान पड़ता है, कि तुम
साक्षात् धनुर्वेद वा राम अथवा देवराज इन्द्र
वा अच्युत विष्णु होगे । तुम अपनेको गोपन
रखनेके लिये ब्राह्मणका स्वरूप लेकर भुज-
वीर्यकी आश्रय करके लड़ रहे हो, मेरे
रणभूमिमें क्रीडित होनेसे साक्षात् इन्द्र अथवा
पाण्डुनन्दन किरीटीके बिना कोई भी सुभसे
लड़ नहीं सकता है । अर्जुन कर्णकी यह
बात सुन कर बोले, कि हे कर्ण । मैं धनुर्वेद वा
राम नहीं हूँ, मैं सर्व शस्त्रधारी और योधोंमें
श्रेष्ठ ब्राह्मण हूँ । मैं गुरुकी कृपासे ब्राह्मण
और इन्द्र अस्त्रोंमें दक्ष भया हूँ । हे विज्ञ ।
तुम रह जाओ, मैं आज लड़ाईमें तुम पर
जय पानेके लिये टहरा हूँ ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि तब राधाकुमार
महारथी कर्ण यह बात सुनकर ब्रह्म तेजजी
जीतनेके अयोग्य समझ कर युद्धसे निवृत्त हुए,
दूसरी ओर विद्या और बलसे युद्धमें पण्डित
उत्पन्न गजके समान बली वीर वृकोदर और
राजा शल्य युद्ध करने लगे । वे दोनों एक
दूसरे को पुकारके सुड़ी और घुटनोंसे मारते
हुए कभी दूर फेंकने, कभी आगे खींचने,
कभी सामने लजकारने, कभी आपटके एक
दूसरेको पकड़ने और कभी धूँसा मारने
लगे । इसके पश्चात् उन दोनोंकी मारके चट
चट शब्द कानोंमें बसने लगे । वे एक दूसरे
को पत्थर पर गिरानेको फाति मार मारने
लगे । परस्पर दोनों को पकड़ने लगे । क्षण
भर पीछे कुस्वंश श्रेष्ठ भीमने शल्य का भुजोंसे
ऊपर उठाकार रणभूमि पर पटक दिया ।
वह देखकर ब्राह्मणलोग सब हंस उठे, पर
पुरुष श्रेष्ठ भीमसेनने बलशाली शल्यको ऐसे
आश्चर्यरूपसे भूमि पर पटक दिया कि, शल्यके
कुछ भी चोट नहीं लगी । अनन्तर राजा
लोग शल्यकी भीमसेनसे गिराये जाते हुए

और कर्णकी शकायुक्त देखकर भयभीत चित्तसे
शल्यकी घेर कर खड़े होगये और सब इकट्ठे
होकर साधु साधु कहके यह कहने लगे, कि यह
दो ब्राह्मण सबोंसे श्रेष्ठ हैं । विशेषरूपसे
जान लेना चाहिये, कि वह कहाँ रहते हैं,
और उन्होंने कहां जन्म लिया है । इस धरती
भरमें राम, द्रोण, पाण्डुनन्दन अर्जुन, देवकी-
जीके पुत्र कृष्ण अथवा शारदत् कृपके बिना
कौन राधाकुमार कर्णसे लड़ सकता है ?
और कौन दुर्योधनसे युद्ध करनेको समर्थ
होता है ?

वीर बलदेवजी, पाण्डुपुत्र वृकोदर वा दुर्यो-
धनके बिना कौन महाबली मद्रनाथ शल्यकी
रणभूमि पर गिरा सकता है ? अब सब कोई
ब्राह्मणसे यह लड़ाई बन्द कर दो, ब्राह्मण
अपराध भी करें तो भी सदा उनकी रक्षा
करनी चाहिये । पहिले इनका परिचय लेकर
पोछे प्रसन्न चित्तसे हम इनके साथ लड़नेको
प्रवृत्त होंगे ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि श्रीकृष्णाने भीम-
सेनका वह अलौकिक कार्य देख कर उन
की कुन्ती पुत्र करके जाना । आगे सम्पूर्ण
राजाओंको विनय कर यह कहके युद्धसे निवृत्त
किया, कि इन ब्राह्मणन धर्मके अनुसारही
द्रौपदी लाभ की है, सो इन पर द्वेष करना
उचित नहीं है । अनन्तर वे सब युद्धमें पण्डित
राजा लोग युद्ध बन्द कर आश्चर्य चित्तसे अपने-
अपने भवनोंका सिंधारे । जो सब लोग दर्शनके
लिये एकाचत्त हुए थे, वे यह कहते हुए चले
गये, कि आज रङ्गस्थलमें ब्राह्मण लोगही
प्रधान बने, पाञ्चाली ब्राह्मणोंसे वृता हुई ।
अनन्तर भीम और अर्जुन रङ्गचर्म पहिने
ब्राह्मणोंसे घेरे जाकर अति हेशसे पथ पाकर
चलने लगे । शत्रुओंसे कटे कूटे नरवीर भीम
और अर्जुन पीछे चलती हुई द्रौपदीके साथ
जनोंकी भीड़से सुक्त होकर इस प्रकार सोचने

लगे, कि जैसे पूर्णिमातिथिमें उगे हुए चन्द्र सूर्य्य शोभा प्राप्त करते हैं। इधर उनको माता कुन्ती उनके भिन्नाकर लौटनेके काल बीतने पर उनको न आते देखकर माति माति के अनिष्टकी आशंकासे यह चिन्ता करने लगी, कि कदाचित् दृतराष्ट्रके पुत्रोंने मेरे वस्त्रोंका पहिचान कर मार डाला है अथवा शत्रु मायाधारी अति गयानक रातसोने नष्ट किया होगा। महात्मा व्यासजीकोभी कैसे उलटी बुद्धि हुई थी, उन्होंने क्यों हमको इस देशमें आनेकी कहा ?

कुन्ती पुत्रस्नेहसे इस प्रकार सोच रही थी, कि ऐसे समयमें अर्जुन ब्राह्मणोंसे घेरे जाकर लोगोंके प्रायः चुप होनेके कालमें बड़े अपरान्धमें बादलसे घिरे कुदिनके मेघसेढपे शूर्य्यकी भांति उस कुम्हारके घरमें जाधुसे।

स्वयम्बर पर्वमें एकसौ एकानव्वे

अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोलि, कि महानुभव नर-
यष्ट भीम और अर्जुन परम प्रसन्न चित्तसे
याज्ञसेनीको साथ लेकर कुम्हारके घरमें
जाकर कुन्तीसे बोलि, कि मा। आज यह
भिन्ना मिली है। कुन्ती तब कुटी के भीतर
थी, कुछ न देख करके ही बोलि, कि
तुम सब मिलकर भांगी। पीछे कृष्णाकी
देखकर बोलि, कि हाय। मैंने कौसी अनुचित
वात कही है। अनन्तर वह अधर्मका भय
खाकर सोचती हुई अनन्दिता उस याज्ञसेनीका
हाय पकड़ कर युधिष्ठिरके पास जाकर उनसे
बोलि, कि बेटा ! तुम्हारे दो भाइयोंने जब
राजा द्रुपदसे इस पुत्रीको लाकर मेरे पास
भिन्ना कहके दिया, तब मैंने असावधानतासे
उस कालके योग यह बात कह डाली है, कि
तुम सब मिल करके भांगी, हे कुरुवश्यष्ट ।
भव यह कही, कि क्योंकि मेरी वह बात

भूटी न ठहरे, क्योंकि अधर्म इस राजा
पाञ्चालकी पुत्रीको छू न सके और क्योंकि
यह अपसन्न न होवे।

श्रीवैशम्पायनजी बोलि, कि नरवीर मति-
मान कुरुप्रवीर राजा युधिष्ठिर माताकी यह
बात सुनकर क्षणभर सोचके उनको समझा कर
धनञ्जयसे बोलि, फाल्गुन। तुमने इस राजपुत्री
याज्ञसेनीको जय कर लिया है, तुम्हीसे इसका
विवाह हो, तो ठीक होवे, हे शत्रुवेगसहनेवाले
तुम आग बालकर विधिपूर्वक इससे व्याह
कर लो। अर्जुन बोलि, कि हे नरेंद्र ! आप
सुभको अधर्ममें न डालें, जैसी आज्ञा करते
हैं वह धर्मयुक्त नहीं हैं, वह अनबूझा पथ
है। पहिले आपका, आगे चिन्तातीत कर्म
करनेवाले महाभुज भीमसेनका, उनके पीछे
मेरा, तब मेरे पीछे जम्मे हुआ नकुलका और
अन्तमें कनिष्ठ सहदेवका विवाह होनाही
विधिपूर्वक है। भीमसेन, नकुल, सहदेव
यह कन्या और मैं आपकी आज्ञाके अनुसारी
होते हैं, इससे जो कुछ धर्म और जिससे राजा
पाञ्चालका मङ्गल होवे, उस पर ध्यान करके
आज्ञा करे, हम लोगोंमेंसे कोईभी आपको
आज्ञा माननेसे सुहृद नहीं नाड़िगा, आपका
स्मायनजी बोलि, कि अर्जुनकी भाक्तपूर्ण स्नेह
रसभरी बातें सुनकर पाण्डवोंने राजा पाञ्चाल
की पुत्रीको आर देखा और पाञ्चाली भी
उनकी ओर देखने लगी। पाण्डुपुत्र लग
उस यशस्विनी बालाको देख करके एक दूसरेका
सुखको आर ताकके बैठ गये और सबका
चित्त उसको आर भुक्ता ! विधातान उस
पाञ्चालीका सुन्दररूप दूसरी नारियोंसे ब्रष्ट
और प्राणियोंका ऐसा मनोहर बनाया, कि
बड़े तेजस्वी पाण्डुपुत्रोंके देखतेही मदन उनके
इन्द्रियोंका मदन करके प्रगटे हुआ। मनुष्य
यष्ट कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर छोटे भाइयोंकी आज्ञा
रानी देख करके उनको हृदयके भावका समझ

गये और उस समय वेदव्योसजीकी सम्पूर्ण बातें उनके स्मरणपथमें आ पहुँची। वह भाइयोंमें आपसके विगाड़का भय कर बोले, कि शुभ लक्षणोंसे मटी हुई यह द्रौपदी हम सबोंकी भार्या हैगी।

श्रीवैशम्पायनजी बोले कि पाण्डु-पुत्रगण बड़े भाईकी यह बात सुनकर बिना कण्ठमन्त्रीमनमें उस बातकी चर्चा करने लगे।

अनन्तर कृशिवंशके प्रधान वीर श्रीकृष्णजी उनकी कस्बीर सम्भ्रम कर भार्गवकी जिस शालामें वे वीर रूप लोग टिके थे वहाँ वसुदेवजीके सङ्ग आपहुँचे। आगे रोहिणी-पुत्र और उन्होंने वहाँ बैठे हुए दीर्घ-भज अजात-शत्रु युधिष्ठिरकी और उनकी चारी और पासही बैठे अग्नि समान जलते हुए छोटी भाइयोंकी देखा। इसके अनन्तर वासुदेव श्रीकृष्ण अजमीठवंशी धर्मिकवर कन्ती-कुमार युधिष्ठिरके सामने जाकर उनके पाँव छू कर बोले मैं कृष्ण हूँ आगे वलदेवजीने भी नैसाही किया। पाण्डवगण राम और कृष्णकी देख कर प्रसन्न चित्तसे आनन्द प्रकाश करने लगे। हे भारतश्रेष्ठ! अनन्तर यदुवीर राम और कृष्ण फफ्फू वृथाके पाँव लगे। अजातशत्रु कस्बीर युधिष्ठिर कृष्णकी देख करके कुशल चैम पूछ कर बोले, कि हे वासुदेव। तुमने क्यों कर यह जाना, कि हम छिप कर यहाँ बसे हैं? कृष्णने हंसकर कहा, कि हे महाराज। अग्नि छिप रहनेसे भी कभी अज्ञात नहीं रहता और इस भूमण्डलके मानवोंमें पाण्डवोंके बिना कौन ऐसा विद्वान् दिखा सकता है? आप लोग बड़े भाग्यसे शत्रुका वेग सह कर कठोर जलनसे बचे हैं और भाग्यहीनके कारण पापात्मा धृतराष्ट्रपुत्र और उसके मन्त्रियोंका मनोरथ सफल नहीं हुआ। अब आपका मङ्गल होवे, वह मङ्गल इन दिनों औरोंके विना देखे स्थानमें छिपा हुआ है, आप बढ़ने

वाले अग्निकी भांति बढ़ते रहें। अब आज्ञा करें, कि हम अपनी रनिवासमें चले जाय, कि जिससे कोई राजा आपको न जानने पावे, अक्षय श्रीयुक्त श्रीकृष्णजी यह कहकर युधिष्ठिरकी आज्ञा लेके बलदेवजीके साथ शीघ्र वहाँसे पधारे।

स्वयम्बर पर्वमें एकसी वानच
अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि कृष्णनन्दन भीम और अर्जुन जब भार्गवके घरको जा रहे थे, उस समय पाञ्चालकुमार पृथ्व्यूज उनको पीछे पीछे छिप कर गये थे। वह साथियोंको सावधान कर पाण्डवों और दूसरोंके न जानते लसके निकट किसी एक स्थानमें छिपे थे। समुद्राकालमें शत्रुमथनेचारे असामान्य सत्त्वयुक्त महाबली भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेवने भिक्षासे लौट कर भिक्षाकी सामग्री-युधिष्ठिरकी देदी। तब दानशीला कन्तीने कहा कि भटे। तुम इस भिक्षाकी सामग्रीमें अगला भाग लेकर देवोंकी उपहार और ब्राह्मणोंकी भिक्षा दे दो और जो सब लोग अतिथि बने हैं और जो भोजन करना चाहेंगे, उनकी भी दो। आगे जो बची रहेगी, वह दो भागोंमें बाँटकर एक भाग भीमकी दो, क्योंकि यह पर्वतकी भांति बड़े भारी गोरे तरुण वीर वृकोदर नित्य वृद्ध भोजन करता है : दूसरे भागकी कः भागोंमें बाँटो, उनकी युधिष्ठिर आदि चार भाई, तुम और हम खायेंगे। राजपत्नी सती द्रौपदीने उनकी उस श्रेष्ठ वानका कोई विचार न करकेही आनन्दित चित्तसे लसकी जो कहा गया था, वह पूरा किया। इसके पीछे सबोंने भोजन किया। अनन्तर तरुणी माद्रीपुत्र सहदेवने भूमिपर कुश विहाकर सीज बनायी। आगे उस पर सब यथोपयुक्त अपना अपना मृनचर्म बिछाकर

कुसुमैष्ठोने दक्षिण ओर सिर करके शयन किया था। उनके सिरकी ओर कुन्ती और पावकी ओर द्रौपदी सो रही। द्रौपदीने भूमि पर लेटके और सबके पांवके नीचे तकियेकी भांति बनने पर नती मनमें दुःख माना और न उनकी ओर अनादर प्रगट किया। शूरतायुक्त पाण्डवगण लेट कर रथ, नाग, खड्ग, गदा, परश्वध, दिव्यास्त्र और सेना सख्खी नाना विचित्र कथाओंको कहने लगे। पाञ्चालराजपुत्र धृष्टद्युम्न पाण्डवोंको उन सब कथाओंको सुनने लगे और वहाके लोगोंनेभी राजकन्या कृष्णाको उस दशमें देखा।

अनन्तर रात्रिकी पाण्डवोंने जैसी कही थी, और वहाँ जो कुछ हुआ था सब राजा द्रुपदके पास आद्योपान्त कहनेके लिये राजकुमार धृष्टद्युम्न तुरन्त चले गये। महात्मा राजा पाञ्चाल पाण्डवोंको न प्राप्त करके दुःखी होकर पड़े थे। धृष्टद्युम्नके वहा जा पड़चने पर उससे उन्होंने पूछा, कि बेटा! कृष्णाको कौन ले गया है? कृष्णा कहाँ गयी है? किसी नीच जाति वा शूद्र अथवा कर देने वाले वैश्यने मेरी कन्याको ले जाकर मेरे सिर पर लात तो नहीं मारी है? सुन्दर माला तो शशशानमें नहीं गिरी है? किसी क्षत्रियश्रेष्ठ अथवा ब्राह्मणने मेरी कन्याको तो नहीं जोत लिया है? किसी नीच जनने कृष्णाको जीत कर मेरे सिर पर बाया पाव तो नहीं डाला है, यदि मेरी कन्या कृष्णा नरसिंह जनके साथ मिन तर चली गयी हो, तो सुभाकी दुःख नती है। हे भक्तानुभव! किसने मेरी पुत्रीको जीत लिया है। क्या कुरुवीर विचित्रवीर्यके पुत्र राजा पाण्डुके लड़के जीते है? क्या अर्जुनने धना लेकर लज्जभेद किया है?

एकही तिरानज्जे अध्यायमें
स्वयन्तर अध्याय समाप्त ।

योवैशम्पायनजी बोले, कि सीमवंश बड़े राजपुत्र धृष्टद्युम्न पिताकी यह सब बातें सुनकर प्रसन्न चित्तसे जिसने द्रौपदीको जय कर लिया था और उस विषयमें जो कुछ हुआ था, सब आद्योपान्त पितासे कहने लगे, विशेषरूपसे चौड़ी और लाल आखोंसे सुहावने वाला मृगचर्म पहिने देव सटश रूपवान जिस युवापुरुषने बड़े भारी चापमें गुण चटाकर लज्जभेद करके भूतलमें गिराया था वह तपस्वी किसीसे नहीं मिले। वह ब्राह्मणोंसे घेरे और पूजे जाकर राजोंमें इस प्रकार पराक्रम प्रगट करने लगे, कि जैसे सम्पूर्ण महर्षि और देवोंसे घेरे हुए देवराज दैत्योंमें जा घुसते हैं। कृष्णा उस पुरुषके काले मृगचर्मकी पकड़े प्रसन्न मनसे इस प्रकार पीछे पीछे चली, कि जैसे सर्पकी स्त्री सर्पराजके पीछे जाती है। तब सब राजाओंके असह्य और क्रोधयुक्त होकर युद्धके लिये दौड़ने पर दूसरे एक वीर उस पार्थिव सेनामें घुस कर इस प्रकार, कि जैसे क्रोधित यमराज दण्ड लेकर प्राणियोंकी नष्ट करते हैं, एक बड़े भारी प्राचीन वृक्षकी उखाड़ कर उससे भूपालोंको भगाने लगे। हे नरनाथ! तब राजालोग उन नरसिंह की वीरोंकी ओर ताकने लगे। वे दोनों वीर चन्द्रमा और सूर्यकी भांति सोहते हुए कृष्णाकी लेकर नगरके बाहर एक कुम्भारके घरमें जा घुसे। वहाँ अग्निकी चिन्गारोकी भांति एक बुढ़िया नारी अग्नि सटश तीन वीरोंके साथ बैठी थी; सुभाकी जान पड़ा, कि वह उनकी माता होगी। अनन्तर वह दोनों उनके निकट जाकर और उनके पाव कूकर कृष्णाको उन्हें प्रणाम करनेकी बोले। आगे कृष्णाको भिक्षा कहके उताकर उनके पास सौपके वे सब भिक्षाके लिये निकली। आगे उनके भीख लेकर लौट आनेपर कृष्णाने उनके भोजन की सामग्री लेकर उसका कुछ अंश देवोंको अर्पण किया और कुछ ब्राह्मणोंको दिया। अनन्तर शेष भाग बुढ़िया और पांच

वीरोंको परोस कर अन्तमें उसने भोजन किया । हे नरनाथ । इसके पश्चात् धरती पर मृगचर्म बिछाये जानेके पश्चात् वे उस पर भीये । कृष्णा उनके पंक्के नीचे तकियेकी भांति सो रही । तब वे वीर काले बादलके समान गभीर स्वरसे आपसमें भाति भातिकी विचित्र कथा कहने लगे । वे जो सब कथा कह रहे थे, वे कभी ब्राह्मण, वैश्य वा शूद्र जातिकी नहीं हो सकतीं ; हे महाराज ! वे जैसी युद्ध-सम्बन्धी कथा कहने लगे, उससे वे निःसन्देह क्षत्रियष्ट होंगे ! हे पिता । इसमें सन्देह नहीं है, कि हमारी आशा पूरी हुई है, क्योंकि सुन चुका हूं, कि पाण्डव अग्निसे जलनेसे बचे हैं, और उस महावीरने जिस प्रकारसे शरासनमें बिनाविलम्ब गुण चढ़ाया, जिस प्रकार सहजहीमें लक्ष्य भेद किया और उनमें आपसकी जैसी कथा सुनी, उससे निश्चय जान पड़ता है, कि येही पञ्च पाण्डव होंगे, इसमें सन्देह नहीं कि, वे माताके साथ छिपकर घूम रहे हैं ।

श्रीवैशम्पायन् बोले, कि अनन्तर राजा द्रुपदने आनन्द पूर्वक पुरोहितसे यह कहके पाण्डवोंके पास भेजा, कि आप उनके निकट जाके यह कहना, कि तुम महात्मा पाण्डुको सन्तान हो, कि नहीं, मैं तुम्हारा सुध लिया चाहता हूं । राजपुरोहित राजाज्ञाको सुनकर पाण्डवोंके पास जा क्रमसे उनमेंसे हरैकका यश गाकर राजाको किहो सब बात कहने लगे, हे अष्ट । वरदाता भूनाथ राजा पाञ्चाल आपको परिचय जानना चाहते हैं, वह इस वीरको लक्ष्य भेद करती देखकर अपार आनन्द पारावारमें गोता मार रहे हैं । आप अपनी, ज्ञाति-को और कुलकी कथा आद्योपान्त सुनाकर राजापाञ्चालके उनके साथियोंके और मेरे हृदयमें आनन्द दें ; शत्रुओंके सिर पर पांव रखें । महाराज पाण्डु राजा द्रुपदके आत्मवत थारै सखा थे, सो भूपाल द्रुपदको यह चाह थी,

कि उनकी कन्या कृष्णा सखा पाण्डुकी पुत्रवधू बने ; हे अनन्दित रूपवान वीर ! राजा द्रुपदके हृदयमन्दिरमें सदा यह कामना जगती थी, कि महाभुज अर्जुन धर्मानुसार उनकी कन्याकी ब्राह्मे, यदि वही हुआ ही, तो उनके लिये बड़ा हित, पुण्ण पूरित, यशयुक्त और सुकृत हुआ है ।

पुरोहितके नम्रभावसे यह सब कहके चुप होनेपर पाण्डवराजने उनकी ओर देख निकट स्थित भीमसेनको आज्ञा दी, कि इनकी पाय अर्घ्य दो । यह राजा द्रुपदके पुरोहित, बड़े माननीय है, भले प्रकार इनकी पूजा चाहिये । हे नरनाथ । भीमसेनने भाईकी आज्ञानुसार भली भांति उनकी पूजा की, पुरोहित ब्राह्मण पूजा लेकर प्रसन्न चित्तसे सुखपूर्णक बैठने पर युधिष्ठिर उनसे बोले, कि हे ब्राह्मण । राजा पाञ्चालने मनमाना कन्यादान नहीं किया है । उन्होंने निज धर्मके अनुसार लक्ष्यभेदका प्रण करके कन्यादान करना निश्चय किया था, तिससेही इस वीरने उनकी कन्या लाभ की है ; अब जाति कुल शील गोत्रके विषयमें पूछनेका उनकी कुछभी अधिकार नहीं है । धनुषमें रोदा चढ़ाकर लक्ष्य भेदनेही पर वह सब पूछनेके अधिकार रखी चुके हैं । उन्हींके संकल्पसे यह महात्मा सब राजाओंमेंसे द्रौपदी को जय कर लाया है, ऐसी दशमें सोमवंशी राजा द्रुपदका इस समय दुःख मानना केवल सुखसे हाथ धोनाही है । पर उनकी पी चाह है, वह पूरा होगी, क्योंकि इस अतिरूपवती राजकुमारीके लक्षण भले दोख पड़ते हैं । जिसको सामर्थ्य थोड़ी है, वह कभी उस शरासनमें रोदा नहीं चढ़ा सकता है, और जो नीच जाति अथवा व्यवहारसे ज्ञात नहीं है, वह भी कभी लक्ष्यको धेद कर धरती पर गिरा नहीं सकता है, फिरभी इस भूमण्डल भरमें किसीको ऐसी सामर्थ्य नहीं है, कि

लक्ष्यका गिरना व्यर्थ कहे, सो अब कन्याके लिये उनका दुःख मानना ठीक नहीं। युधिष्ठिर ऐसा कह रहे थे, कि राजा पाञ्चालसे एक दूत यह कहनेको बहा आया, कि अन्न बना है।

वैवाहिक पर्वमें एकसौ चौरानव्वे

अध्याय समाप्त ।

दूत बोला, कि महाराज द्रुपदने व्याहनेकी इच्छासे वराती लोगोंके लिये अच्छा अन्न बनवाया है। आप नित्यशुभ पूरा कर शीघ्र बहा आवें; वहाँ कृष्णाका विवाह होगा, विलम्ब न करें। सुवर्ण पद्मसे सुहावने, अच्छे घड़ेवाले यह सब रथ खड़े है, आप सब कीई-इन पर चढ़के पाञ्चालराजभवनमें शुभागमन करें।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर कुरु-अष्ट पाण्डव पुरोहितको विदा कर उन बड़े बड़ैयानोंमेंसे एक पर कुन्ती और कृष्णाको चढ़ाय आप एक और पर चले। इधर राजा पाञ्चालने पुरोहितसे धर्मराज युधिष्ठिरका वचन सुन उनकी जातिका पहिचान और उपहारके किये चारो वर्णयोग्य फल, सुन्दर सुन्दर माला, चर्म, वर्म, आसन, गौ, रस्सी, बीज, कृषीके दूसरे सब पदार्थ, शिल्पयोग्य काटने कूटनेके यन्त्र और क्रीड़ाकी वस्तु आदि भांति भातिके पदार्थ बटोरे। आगे चमकीला चर्म, वर्म, और ऋष्टि, सुन्दर खड्ग, घड़े, रथ, अच्छे चाप, भांति भातिके वाण सुवर्णसे सजी शक्ति प्राप्त, भूपुण्ड्री और कुठार, युद्धयोग्य भांति भातिकी दूसरी वस्तु और अच्छी-सेज, घटाटाप वज्रविध चीर आदि अनेक प्रकारकी सामग्री अलग अलग रख दी। अनन्तर कौरवराजपत्नी कुन्ती सती द्रौपदीको लेकर राजा द्रुपदके अन्त पुरमें गयी। राजमहारियोने प्रसन्न चित्तसे उनका स्वागत कर सम्मानित

किया। हे राजन्! अनन्तर राजा पाञ्चाल, तथा उनके मन्त्री, पुत्र, मित्र, टहलुवे और राजपरिवारके दूसरे लोग, सगर्भका दुपट्टा लिये आगये हुए पाण्डवोंकी सिंहासमान विक्रमी चाल, बड़े वेतसदृश आँख सर्पराजकी देहकी भांति लटके भुज और बड़े स्कन्ध देख आनन्दके समुद्रमें डूबे। वे नरयुद्ध वीरगण विना आश्चर्य और निडर चित्तसे अलग अलग पादपीठयुक्त अति सुन्दर मलय वान आसनों पर बड़े छोटिके क्रमसे बैठ गये। अनन्तर अच्छे-लिवास गहनोंसे बने ठने टहलुवे, महारिन और खिलाने, पिलानेवालेने यथायोग्य सुवर्ण और चादीके वर्तनोमें परम स्वादिष्ट राजाके भोजनयोग्य अन्न पानादि भांति भातिकी सामग्री लाकर दे-दी। हे महा-राज! पुरुषोंमें वीर पाण्डव मनमाने भोजन कर द्रुपद-हृष्ट और उपहारकी वस्तुओंमेंसे दूसरी सब तजकर केवल लड़ाई योग्य पदार्थोंकी देखने लगे। तब राजा द्रुपद और उनके पुत्र और प्रधान प्रधान मन्त्री यह देख कुन्तीकुमारोंकी राजकुमार निश्चय कर आनन्द मानने लगे।

वैवाहिक पर्वमें एकसौ पञ्चानव्वे

अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर अति-यतिमान पाञ्चाल्य द्रुपद, बड़े तेजस्वी राज-पुत्र युधिष्ठिरकी सम्भाषणा करके विना दुःख ब्राह्मणयोग्य आदरके साथ बोले, कि तुमके ब्राह्मण, क्षत्रिय, गुणवान वैश्य वा शूद्र इनमें कौनसी जाति समझू। अथवा तुम देवता तो नहीं हो, कि देखनेके लिये माया लेकर ब्राह्मणोंके स्वरूपमें टहलते हुए कृष्णा निमित्त यहां शुभागमन किया है? तुम सब कहो इस विषयमें हमको शंका हुई है। शत्रुमंथन! क्या इस शत्रुके दूर जाने

हमारे हृदयमें आनन्द जल वर्षेगा ? क्या हमारा सौभाग्य उगा है ? हे अमर डरावन ! अपनी इच्छासे सत्य वचन बोली, राजाके सामने सच कहना, जितनी शोभा है, इष्टा-पूर्त अर्थात् यज्ञादि क्रिया और बापी प्रतिष्ठा आदि पुण्यदायी कर्मभी उतनी शोभा नहीं देते, सो असत्य न कहना । हे शत्रुमयन ! मैं तुम्हारा वचन सुनके यथारोति तुम्हारी जाति-योग्य विवाह करनेका उद्योग करूँगा ।

युधिष्ठिर बोले, कि हे पाञ्चालनाथ । आप दुःख न मानें, सन्तोष लें ; सन्देह नहीं, कि आपका मनोरथ सफल हुआ है । हे महाराज । हम क्षत्रियवंशी महात्मा राजा पाण्डुके पुत्र हैं । मैं कुन्तीका ज्येष्ठ पुत्र हूँ, यह दी भीमार्जुन है, इन्हींनेही राजसभामें आपकी कन्या जय करली है ; और जहाँ कृष्ण है, वहीं यमज भ्राता नकुल सहदेव और माता विराज रही है, सो आप हमका क्षत्रिय निश्चय करलें, हे नरसिंह ! आप मनका दुःख दूर करें, पद्मिनी-समान आपकी यह कन्या एक भीलसे दूसरे भीलमें लायी गयी है । हे महाराज । आप हमारे गुरु और परम गति हैं ? सो आपसे यह सब व्योरा सच कह दिया ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे महाराज । अनन्तर शत्रु डरावने धर्मधर राजा द्रुपद पाण्डुओंका परिचय पाकर परम हर्षसे घबराकर युधिष्ठिरकी योग्य उत्तर न दे सके । वह उस हर्षकी यत्नसे दवाकर धर्मराजको काल-योग्य वचन बोले । पूछा, कि वे क्योंकर वारणावत नगरसे भागे थे । पाण्डु पुत्रने आद्यो-पात्त वह सब कथा कह सुनायी । वचनशील राजा दुसरे उनकी बात सुनकर नरनाथ धृतराष्ट्रको निन्दा करने लगे और कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरकी डाढ़स दे उनकी राज्यमें बैठानेकी प्रतिज्ञा की । अनन्तर कुन्ती द्रौपदी भीम-

अर्जुन नकुल और सहदेव राजाको आज्ञासे एक बड़े भवनमें गये । हे महाराज । वे राजा यज्ञसेनसे सन्मान पाकर उस भवनमें बसने लगे । अनन्तर राजा पुत्रोंके साथ सोच तज युधिष्ठिरसे बोले, कि आज शुभ दिने है, आज कुरुनन्दन अर्जुन विवाहके कौलिक कर्म को करके कृष्णासे विवाह करें ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे महाराज । धर्मपत्नी युधिष्ठिर उनसे बोले, कि हे नरनाथ । मुझकोभी विवाह करना है । द्रुपदने कहा, कि हे वीर । तुमही विधि पूर्वक मेरी बेटीका पाणिग्रहण करो, अथवा तुम जिससे कृष्णाको ब्याहा चाहो उसीसे ब्याहो । युधिष्ठिर बोले, हे महात्मा । द्रौपदी हम सबोंकी रानी बनेगी, क्योंकि पहिले मेरी माताने ऐसी आज्ञा की है, विशेष मेरा और भीमसेनका विवाह नहीं हुआ है, यद्यपि अर्जुनने तुम्हारी रत्नसदृश कन्याको वाजीमे जीत लिया है, पर हे राजेन्द्र । हम भाइयोंमें एक नियम है, कि रत्न पानसे हम सब एकत्र होकर भाग करेंगे । हम उस नियमके विरुद्ध चलनेका साहस नहीं रखते, सो द्रौपदी हम सबोंकी धर्मपत्नी होगी, वह अग्निके सामने बड़े छोटके क्रमसे हम सबोंसे विवाह कर । द्रुपद बोले, हे कुरुनन्दन ! शास्त्रकी विधिसे एक पुरुषकी बहुत स्त्री होती है, पर एक नारिका बहुतपति होना कभी नहीं सुना । हे कुन्ती-पुत्र ! तुम पवित्र और धर्मके जानकार होकरकेभी क्योंकर लोक और वेदके विराधी कर्ममें हाथ डाला चाहते हो ! क्यों तुम्हारी ऐसी बुद्धि हुई ? युधिष्ठिर बोले, महाराज ! धर्ममार्ग सूक्ष्म है, उसकी गति हम जान नहीं सकते । पर प्रचेता आदि पहिलेके महात्मा जिस पथसे चले हैं, हम उसी पथसे चलेंगे । हे राजन् । मेरी माताने वह आज्ञा दी है और वह मेरा भी मनमाना हुआ है ;

तो वह अवश्यही सनातन धर्म है। क्योंकि मेरे शरीरमें कभी झूठी बात नहीं निकलती, मेरा मन भी अधर्मको ओर नहीं चलता। आप इस मतसे काम करें, अधिक विचारनेका प्रयोजन नहीं है, हे पृथ्वीनाथ। इस विषयमें आप कोई शब्दा न करें। द्रुपद बोले, कि हे कुन्तीपुत्र। तुम, कुन्ती और मेरा पुत्र छष्ट-युग यह तीन मित्रोंके विचार कर ल्या करना है। निश्चय करो, मैं कल जो करना हूँ, कलंगा। श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भारत। अनन्तर कुन्ती, युधिष्ठिर और छष्टयुग यह तीन एकत्र होकर उस विषयमें विचारने लगे। ऐसे समयमें भगवान् हैपायन आपही वहाँ आ पहुँचे।

वैवाहिक पर्वमें एकसी कान्धे

अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर सब पाण्डव बड़े यशोवन्त राजा पाञ्चाल और वहाँके दूसरे लोगोंने उठ कर महात्मा कृष्ण हैपायनका स्वागत किया। महाभुव महर्षि उनका प्रणाम आदर पूर्वक लेके कुशलक्षेम पूछकर सुन्दर सुवर्णके आसन पर बैठे। पाण्डव आदि सबने अति तेजस्वी कृष्ण हैपायनकी आज्ञासे महामूल्य आसन लिये। हे पृथ्वीनाथ। पृथ्वीराजपुत्र राजा पाञ्चालने क्षण भर पीछे मञ्जुर वचन कहके महात्मा ऋषिसे द्रौपदीके व्याहृतिके विषयमें प्रश्न किया। हे भगवन! सब कहें, कि एक स्त्रीके बहुतेक पुरुषोंकी धर्मपत्नी होनेसे सत्तरताका दोष पड़ता है, कि नहीं?

व्यासजी बोले, कि वेद और लोकाचारमें प्रसिद्ध न रहनेसे यह धर्म लोप हो गया है, पर इस विषयमें तुम लोगोंमेंसे किसका क्या मत है, सुना चाहता हूँ।

द्रुपद बोले, कि हे द्विजर्षि! कहीं अनेक पुरुषोंकी एक स्त्री नहीं है; सो यह कर्म

लोकाचार और वेदके विरोधी होनेके कारण अधर्मयुक्त जान पड़ता है, पहिलेकी महात्मा-ओने भी ऐसा कार्य नहीं किया। विद्वान् जनको किसी प्रकार अधर्म मार्गमें पाव डालना नहीं चाहिये, इस लिये मैं इस काममें हाठ डालनेका साहस नहीं कर सकता हूँ, यह धर्म सुनको सदा लक्ष्मणसे भरा हुआ प्रगट हो रहा है।

छष्टयुग बोले, कि हे ब्रह्मा। आप द्विजोंमें श्रेष्ठ और तपस्विलसे बली है; कहे तो सही, कि बड़े भाई, सुमार्गी होकर क्योंकर छोटे भाई की स्त्रीसे मिल सकता है। धर्म बल्लत स्तम्भ है, सो कौनसा विषय धर्मयुक्त और कौन अधर्म युक्त है, इसका विचार नहीं कर सकते। इसीसे साहसपूर्वक यह नहीं कहा, कि द्रौपदी पाँच पुरुषोंकी स्त्री बने।

युधिष्ठिर बोले, कि मेरा वचन कभी छल-पुलट बात नहीं बोलता, मन भी कभी अधर्म पर नहीं झुकता, इस विषयमें मेरे मनकी भी प्रवृत्ति हो रही है, सो यह किसी प्रकार धर्मके विरुद्ध जान नहीं पड़ता। पुराणोंमें भी सुना है, कि जटिला नाम्नी गौतम गौतमी धर्म पालनेवाली तापसी एक कन्या थी; सात ऋषयोंने उससे विवाह किया था। और पूर्वकाल तपस्वी जितेन्द्रिय "प्रचेता" इस एक नासके दश भाई थे, वृक्षसे उपजी हुई एक मुनिकन्या उन दशों से व्याही दी। हे धर्मके जानकारोंमें श्रेष्ठ! कहा है, कि गुरु जैसी आज्ञा करत है, वही धर्मयुक्त है, और सब गुरुओंमें माता ही परम गुरु है, उन परमगुरु मातान् हमका आज्ञा दो है, कि भीखकी सामग्रीका सब मिलकर भोगो। हे द्विजात्तम! मैं इस लिये इस कर्मको परम धर्म विचारा हूँ।

कुन्ती बोली, धर्म आचरनेवाली युधिष्ठिर जैसा कहा, वह ठीकही है, मेरी वह बा

भूठी न टहर जायें, दंसलिये मैं बद्धत भय खा गयी हूं, हे ब्रह्मन् । क्योंकर मेरी उस बातकी सचाई बनी रहेगी ?

श्री यासजी बोले, कि भद्रे । तुम्हारी बातकी सचाई बनी रहेगी ; तुमने जो कहा है, वह सनातन धर्म है । हे पाह्णान । युधिष्ठिरने जो कहा है वही धर्मयुक्त है, इसमें कोई शङ्का नहीं है । यह, जिस प्रकार जिनसे सनातनधर्म करके निश्चय किया गया, वह सबसे नहीं कहूंगा, केवल तुमही सुनो ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर प्रभु हैपायन भगवान व्यासजी उठकर राजाका हाथ धामकर राजमन्दिरमें गये । कुन्ती, पाण्डव और धृष्टद्युम्न उन दोनोंकी वाट ताकते हुए वहाँ बैठे रहे, अनन्तर महर्षि हैपायन महात्मा दुपदसे यह कथा कहने लगे, कि अनेक पुरुषोंकी एक स्त्री होना धर्मके विरुद्ध नहीं है ।

वैवाहिक पर्वमें एकसौ सतानव्वे

अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि महाराज । पहिले नैसिधारण्यमें देवोंने महायज्ञ आरम्भ किया था । उस महायज्ञमें वैवस्वत यम पशु मारनेको नियुक्त हुए थे । वह उस काममें प्रवृत्त रहके किसी प्रजाको नहीं मारते थे, इससे मनुष्योंके मृत्युसे बचने पर उनका भय दिनोदिन बढ़ने लगा । अनन्तर चन्द्र, इन्द्र, वरुण, कुवेर, दोनों अश्विनीकुमार साध्यगण, रुद्रगण, वसुगण और दूसरे देवगण भुवन रचनेहारे प्रजापातके निकट जा पड़चे, और सब मिलकर मनुष्योंकी संख्या वृद्धि होनेके कारण भीतचित्तसे इन लोकोंके गुरु ब्रह्माजीसे बाले मनुष्योंकी संख्या बढ़नेसे हम बड़े भयसे उदास हैं, और सुखकी आशासे आपकी शरण लेते हैं । पितामह बोले, कि मनुष्योंसे तुम्हें क्या भय है ? तुम सब अमर हो, सा

मर्त्योंसे तुमको भय । खाना नहीं चाहिये । देवगण बोले, कि अब मर्तगण अभर्त हुए हैं, सो हम लोगोंसे कोई विशेषता नहीं रही, इस लिये हम उदास हो मर्त्योंसे अपना प्रभेद बनाये रखनेकी चाहसे यहां आये हैं । भगवान बोले, कि तपनपुत्र इस कालमें यज्ञमें बन्धे हैं, सो नरोंको मृत्यु नहीं हो रही है, पर उनके यज्ञके सम्पूर्ण कार्य जा जाने पर मानवोंका अन्तकाल आ पड़चेगा । तब यमराजका शरीर तुम्हारेही वीर्यसे सजकर और बढ़कर जीवनाशो बन जायगा । मनुष्योंको कुछ वीर्य नहीं रहेगा ।

श्रीयासजी बोले, कि अनन्तर महादली देवगण पितामहका वचन सुनकर नैसिधारण्यमें यज्ञ भूमिपर गये । वे उस ठौर ठहरे थे, कि ऐसे समयमें देखा, कि भागीरथीके जलसे एक सुवर्ण पद्मवहा जाता है, उसके देखतेही वै अचक्षु-में हो रहे, अनन्तर यह दूढ़नेके लिये, कि वह सोनेका कमल कहासे उपजा है, उनमेंसे शूरतायुता इन्द्र वहासे चल निकले । जहासे गङ्गाजी निकलती है, वहा पड़चकर उन्हीने अग्निकी शोभाके समान एक उजाली कन्या देखी । वह नारी राती हुई जलकी चाहसे गङ्गाजीमें देह डुबा रही थी । उसके आसूके बूँदें गङ्गा जलमें गिरके सुवर्ण कमल बनते जाते थे । देवराज वैसी अचक्षु लोला देखके उसके पास जाकर बाले, कि भद्रे । तुम कौन ? क्या रा रही हो ? मैं इसका व्योरा जाना चाहता हूँ । बाला बोली, कि देवराज । मैं बड़ी अभागो हूँ, तुम मेरे सग चलो, तो जान सकागी कि मे कौन और क्यों रा रही हूँ । हे महाराज । तुम मेरे साथ आओ, मैं तुम्हारे आगे चलती हूँ, रुलाईका कारण तुम देख लींगे ।

श्रीव्यासजी बोले, कि देवराज तब नारीकी यह बात सुनके उसके पीछे पीछे चलने लगे । आगे कुछ दूर जाकर पा ही । हमाचलकी

चोटी पर देखा, कि एक परम सुन्दर युवा पुरुष युवतीके साथ सिंहासन पर बैठ चौसड़ खेल रहे हैं। 'सुरनाथ' उनकी चौसड़में बड़े मगन देखके बोले, कि 'हे पण्डितवर ! जानना, कि यह तीनों भुवन मेरेही वशमें हैं। इसपर पुरुषके कोई उत्तर न देने पर इन्द्रने क्रोधके मारे फिर कहा, कि मैं भूमखल भरका अधीश हूँ। तब उन खेलते हुए पुरुषने देवराजको क्रोधित देख एकबार उनकी आँखें फेरों। देवराज उनकी आँखोंके सामने पड़तेही जड़वत बन गये। अनन्तर वह पुरुष चौसड़ खेल लेनेके पीछे उस रीतिसे झुई बालासे बोले कि तुम इस इन्द्रकी लाओ, उसकी शासन कर दूँगा, कि वह मेरे सामने फिर अहङ्कार न प्रकट करे। अनन्तर उस नारीके देवराजको लानेके लिये कूतेही देवराजके अग अवश हुए और वह धरती पर गिर पड़े। तब उन पुरुष-रूपी कठोर तेजस्वी भगवान महादेवजीने उनसे कहा, कि इन्द्र ! फिर कभी ऐसा काम न करना। तुम्हारा बलवीर्य वहुत अधिक है, सो तुम इस गड्ढेके द्वारोंके हुए बड़े पर्वतकी खोलकर बिलके भीतर जाबुसो, तुम वहाँ देखोगे कि तुम्हारे समान सूर्यवत प्रकाशमान वहुत इन्द्र हैं। तब देवराजने पर्वतराजके उस बिलके द्वारकी खोलके उसमें अपने ऐसे दूसरे चार इन्द्रोंकी देखा। वह उनकी देखते ही यह कहके दुःख करने लगे, कि "सुभकोभो ऐसी दशमें रहना न पड़े।" तब देवदेव महेश्वर क्रोधसे नेत्र फैला कर इन्द्रसे बोले कि इन्द्र ! तू इस बिलमें जा गिर, क्योंकि पहिले तूने चपलतासे मेरा अनादर किया है। इन्द्र दिभुके क्रोधित वचनसे अति कातर होकर इन प्रकार वेगसे कापने लगे, कि मैं पलाड़ परके पीपलके पत्ते हवासे उड़ाने जाकर थरथराविं। वह बिल पर चढ़े

महादेवजीसे एकायक ऐसी कठौली बात सुनते थरथराते हुए दीनों हाथ जोड़कर अनेक क्षण लेनेवाले उन कठोर दिवसे बोले, कि हे आदिनाथ ! हे भव ! तुम चराचर सहित सम्पूर्ण विश्वके देखनेवाले हैं, तुम सब कुछ जान लेते हो। तब कठोर तेजस्वी महादेवजी हस कर बोले, कि मैं उनपर कभी प्रवृत्त नहीं होता, जो लोग ऐसा अहङ्कारी स्वभाव रखते हैं। देखा, पहिले यह सब इन्द्र ऐसाही कर्म कर इस बिलमें जा गिरें हैं, सो तुमभी उसमें जाकर लोट रहो। सन्देह नहीं है, कि तुम सबका यही हाल होगा कि, तुम पापोंकी मनुष्यजन्म लेकर मर्त्यलोकमें अनेक भक्तिके कठोर कर्म करने पड़ेंगे, अनेक जीवोंकी मार कर पहिलेके जोत लिये हुए अति मूल्यवान इन्द्रजाकमें शुभागमन करोगे, तुम्हारे लिये मैंने ऐसाही निश्चय किया है। पहिले इन्द्रजाग बोले, कि हम पाँच देवलोकासे मर्त्यलोककी उस ठौरकी जायेंगे कि जहाँ साहूका मिलना कठिन है, पर हमारी प्रार्थना यह है, कि उस स्त्रीके कि जो हमारे माता होगी, धर्म, वायु, सञ्जवान और दानों आखिनोकुमार यह पाँच देव हमारे लिये गन्धधान करें। पर हम मर्त्यधाममें अनक मनुष्योंसे लड़ेंगे, आगे इन्द्रलोकमें आवेंगे।

श्रीव्यासजी बोले, कि इन्द्रजी देवपति देवसे बोले, कि मैं स्वयं न जाकर कार्य पूरा करनेके लिये निज वीर्यसे एका पुरुष उद्वेग दूँ। अनन्तर भगवान् पिनाकधारीन दया-स्वभावसे विश्वभुक्त, भूतधामा, शिवि, शान्ति और तेजस्वी इन प्रतापी पाँच इन्द्रोंकी प्रार्थना मान ली। और लोकोंके मन हरनेवाली स्वर्गकी शी, उस बालाकी मर्त्यलोकमें उनकी पत्नी बनानेका विधान कर दिया। आगे वह देव उनका साथ लेकर अप्रमय नाराणकी पास गये। भगवान् श्रीनारायणजीने वह सब जानके उस विषयमें

अपनी रूपाति दी । अनन्तर वे भूमण्डलमें जन्म ले लीं । भगवान् हरिने अपनी शक्तिरूपी कृपा और शक्त इन दो रङ्गों को दो केश उखाड़ देते । वे केश यदुवंशमें रोहिणी और देवकीके गर्भमें जाके प्रविष्ट हुए । श्रीनारायणजीके उस एक केशने बलदेवजीके स्वरूपमें जन्म लिया है, और कालीवरणका वह दूसरा केश स्वरूपके अनुसार कृष्ण बनके उपजा है । इन्द्ररूपी जो बार पुत्र उस पर्वतकी कन्दरामें बंध्ये थे उन्होंने इस मत्स्यलीलमें पाण्डवोंके स्वरूपमें जन्म लिया है । पाण्डवसत्त्वसाची इन्द्रके अशसे उपजे हैं । हे महाराज ! जो पहिले चन्द्र थे, वे इस प्रकारसे पाण्डवोंके रूपमें अवतारे हुए हैं । और जिस दिक्कपिणी स्वर्ग-लक्ष्मीकी बात कही गयी है, वही यह द्रौपदी है । यह पहिलेही निश्चय हुआ है, कि यह इन सबोंकी प्रती बनेगी । देखो, जिसका रूप चन्द्रमा और सूर्यके उजालेकी भांति है और जिसकी सुगन्ध क्रोस भरतक पड़चती है, वह क्या स्त्री देवसंयोगके बिना धरती से उठ सकती है ? हे नरनाथ ! मैं प्रीतिपूर्वक तुमको अति आश्चर्य्य दिव्य नेत्रोंका वर देता हूं, उससे तुम कृन्तीपुत्रोंकी दिव्य और पवित्र पहिलेकी देहमें देख लोगे । श्रीवैशम्पायनजी बोलें, कि अनन्तर परम उदार कर्म करनेवाले पवित्र विप्रवर, श्रीव्यासजीके तपोबलसे उस राजाकी दिव्यनेत्र देने पर राजाने सब पाण्डवोंकी यथावत पूर्वदेहमें देखा । उनकी सुवर्ण किरीटधारो, माला पहिने, अग्नि और सूर्यके समान उज्ज्वलवर्ण, उपयुक्त अलंकारोंसे मनोहर, तरुण, विशाल छातीवाले, पांचहाथसे कुछ कम ऊंचे और इन्द्ररूपी देखा । सर्व गुणयुक्त, निर्मल दिव्यवसन पहिने और अच्छी सुगन्धी मालासे रुजे पहिलेके इन्द्रोंकी भांति उन पाण्डवोंकी साक्षात् त्रिलोचन वा वसुगण, रूद्रगण, अथवा आदित्यगणके समान देखकर और इन्द्रपुत्र

अर्जुनकी साक्षात् इन्द्ररूपी निहारकर प्रसन्न हुए । आगे उस अप्रमेय दिव्य मायाकी देखके अचरज मानकर चन्द्र और अग्नि समान प्रकाशवती लक्ष्मीजी सदृश परम रूपवती, श्रेष्ठतमा उस स्वर्ग-कन्याकी उसके रूप, तेज और यशके द्वारा उनकी भार्या बनने योग्य समझा । राजा द्रुपद उस अति आश्चर्य्यलीलाकी देखकर सत्यवतीपुत्रके पांच कूकर बोलें, कि हे परमर्ष ! मुझको दिव्य नेत्र देकर इन सब आश्चर्य्य रूपोंका दिखाना आपके लिये कोई बड़ी बात नहीं है । अनन्तर डैपायन प्रसन्नचित्तसे फिर बोलें, कि एक तपोवनमें किसी महान्मा ऋषिकी एक कन्या थी, वह कन्या रूपवती युवती और सती होने परभी पति पा नहीं सकी थीं, सो कठोर तप कर शङ्करकी प्रसन्न किया । स्वयं वरदाता देवोंके ईश्वर प्रसन्न होकर बोलें, कि अपना मनमाना वर मांगो । कन्या यह सुनके हड़बड़ीसे वरदाता ईश्वरसे बार बार बोली, कि मैं सर्वगुणशील पति मांगती हूं । देवनाथ शङ्करने प्रसन्नमनसे यह कहके वर दिया, कि भद्रे ! तुम्हारे पांच पति होंगे ? शिवकी कृपा लाभ की हुई वह बाला वरदाता देवसे फिर बोली, कि हे शङ्कर ! मैं आपसे गुणशील एक पतिकी प्रार्थना करता हूं । प्रसन्नात्मा देव-देवने उससे फिर यह शुभ वचन कहा कि भद्रे ! तुमने यह कहा, कि पति दो, मुझसे पांचवार प्रार्थना की है, सो तुम्हारे पांच पति होंगे, तुम्हारा मङ्गल होवे, मेरी बात न पलटेगी, दूसरे जन्ममें तुम्हारे पंच पति होंगे । हे द्रुपद ! देवीरूपिणी अनिन्दिता वह तुम्हारी कन्या पांच मनुष्योंकी पत्नी होनेके लिये निश्चय की गयी है । स्वर्गकी श्री यह वाला कठोर तप करके पाण्डवोंके लिये महामखसे उपज कर तुम्हारी कन्या हुई है, देनोंसे सेवा जाती हुई सुन्दरी यह देवी स्वकृत कर्मसे अकेली पांच मनुष्योंकी स्त्री होगी !

इस अभिप्रायसे विधाताने स्वयं इसको रचा है। हे महाराज द्रुपद । तुमने सब कथा सुन ली, अब जो चाहो सो करो ।

वैवाहिक पक्षमें एकसौ अठानव्वे

अध्याय समाप्त ।

द्रुपद बोले, कि महर्षि । मैंने पहिले आपसे यह न सुने रहनेसे विसा विधान करनेका प्रयत्न किया था, अब विशेष ज्ञात हुआ, देवताके ठहराये हुए विषयकी कभी उपेक्षा नहीं की जा सकती है, अतएव पहिलेके ठहराये हुए विधानके अनुसारही कर्त्तव्य निश्चय करता हूं। भाग्यकी गांठ पलटी नहीं जा सकती; निजकर्मसे कुछ होता नहीं, एक वरके लिये लक्ष्य रचा था, वही अब पांचके लिये निश्चय होगया। कृष्णा पहिले जन्ममें जिस प्रकार पांच वार बोली थी, कि सुभको पतिका वर दें, उसही प्रकार भगवान् ने भी कहा था, कि तुमको पांच पतिकाही वर मिलता है; सो इस बातकी भलाई बुराई वही जानते हैं। जब भगवान् शङ्करने ऐसा विधान किया है, और इन्हीके लिये कृष्णा बनायी गयी है, तब यह चाहे धर्म वा अधर्म होवे, सुभको कोई दोष नहीं लग सकता। यह लोग विधिके विधानमें सुखपूर्वक दौपदीसे विवाह करें।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर भगवान् महर्षि धर्मराजसे बोले, कि हे युधिष्ठिर । आज शुभदिन है, चन्द्रमा पौष्टिक योग प्राप्त करेगा सो पहिले तुम आज दौपदीसे विवाह करो। भगवान् ईपायनके ऐसा कहने पर तत्समहित राजा यज्ञमेन कन्याकी व्याहनेका प्रयत्न करने लगे। वह दानके लिये यथायोग्य अनेक अच्छी अच्छी सामग्री बटोरकर और दौपदीकी भांति भांतिके रत्न अलङ्कारोंसे सजकर लिजा लाये। राजाके मित्र और

या द्राक्षणा और नमर परवामी सब

विवाहकी देखनेके लिये, प्रसन्नचित्तसे अपनी अपनी प्रधानताके अनुसार मिलकर आने लगे। राज-भवनका आंगन पद्म आदि जलसे उपजे हुए अनेक फूलोंकी बड़ी बड़ी मालासे सजा था; सम्मानित जनोंके शुभागमनसे उसकी अपूर्व शोभा हुई। वह राजभवन यथा योग्य ठौरमें सजी सजाई सेना और भक्ति भांतिके विचित्र रत्नोंसे खचित होकर ऐसी सुन्दर शोभा पाने लगा, कि जैसे आकाशमण्डल असल नक्षत्रोंकी मण्डलीसे ढपे जाकर परमरूपसे सुशोभित हो। हे प्रभो। अनन्तर जलती हुई बालुकाकी भांति तेजस्वी पुरोहित धौम्यके पाण्डवोंके अभिषेक और साङ्गलिकक्रिया कर लेने पर तरुण अवस्थावाले पाण्डव गण नाना वस्त्र आभूषणोंसे सजके सुगन्धी चन्दन लगाकर और कण्डल पहिरे गोशालामें घुसते हुए बड़े बड़े बैलोंकी भांति बड़े आनन्द की उमंगसे उस सभामें जा पहुंचे। अनन्तर मन्त्रवै जानकार वेददत्त धौम्य अग्नि स्थापन कर जलती हुई आगमें यथाविधि मन्त्र पढ़कर आहुति चढ़ाने लगे, आगे युधिष्ठिरकी लाय कर दौपदीसे गांठ जोड़ देने पर वर कन्या दोनोंने अग्निकी परिक्रमा कर पाणिग्रहण किया। देवदत्त पुरोहित उनकी विवाह-क्रिया पूरी कर युद्धमें पण्डित युधिष्ठिरकी आज्ञा लेकर राज-भवनसे पधारें। इस प्रकार महा रथी कौरववंशके बढ़ानेवाले राज-पुत्रगणने सबसे अच्छे अच्छे लिवास गहनोंसे सजके क्रमसे एक एक दिन उस सुन्दरीका पाणि ग्रहण किया, हे महाराज। महर्षि श्रीशाम-जीने इस विषयमें सुभको एक आश्चर्यलीलाकी कथा कही थी, उस महानुभव सुन्दरी दौपदीकी एक दिन विवाह हो जाने पर फिर दूसरे दिन कन्यावस्था ही जाती थी। इस प्रकार विवाह हो जाने पर महानुभव सौमिक राजा द्रुपदने अग्निकी साक्षीकर महाराजी

पाण्डवोंको पीछे कहे हुए नाना धन यौतुकमें दिया। उन्होंने सुवर्ण रासयुक्त चार घोड़ोंके साथ सुवर्णसे मढ़े हुए सौ रथ, सुवर्णकी चीटीवाले पहाड़के समान आर्य विन्दुजालसे सुशीलित सौ गज, नवयौवनसे मदमाती, मुख्यवान चीर, गहने और मालादिकोंसे बनीठनी सौ दासी, अनेक भाति मूल्यवान चीर और गहने तथा उनमेंसे हरककी अलग अलग एक एक लाख सुवर्ण मुद्रा दे दिया। अनन्तर विवाह हो जाने पर महाबली पाण्डव बहृत रत्नके साथ उस रत्नरूपी स्त्रीको लाभ कर राजा आञ्जलि की पुरीमें इन्द्रके समान विहार करने लगे।

नैवाहिक पर्वमें एकसौ निनानव्वे

अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि पाण्डवोंसे राजा द्रुपदकी मित्रता हो जाने पर वह एकवारही निडर बने; देवोंसेभी उनकी कोई भय न रहा। महात्मा द्रुपदकी पदवाली स्त्रियोंने कुन्तीके पास आके अपना अपना नाम कहकर उनके पांवपर सिर नायके प्रणाम किया। मार्गलक स्तनादि लिये हुई चौम पहिनी द्रौपदी सासके पाव पर लोटके दीनों हाथ जोड़कर सिर नाय खड़ी हुई। कुन्तीने रूपलक्षणोंसे सजी सुशीला शुभ-आचारीस्वती पुत्रवधू द्रौपदीको प्यारसे यह अशीर्ष दिया, कि ऐ कल्याणि। जिस प्रकार इन्द्रपत्नी महेंद्रकी, साहा विभावसुकी, रोहिणी चन्द्रमाकी, दमयन्ती नलकी, भद्रा कुबेरकी, अस्मन्ती वसिष्ठकी और लक्ष्मी नारायणकी प्यारी है, वैसेही तुम पतियोंकी प्यारी बनो; हे भद्रे। तुम दीर्घजीवनवाले वीरपुत्र प्रसव करो, बहृत सुख लेके, सौभाग्य पायके यश भोग करो, पतिव्रता हो, यज्ञमें दीक्षित पतियोंकी सदा साथी बनी रहो। अतिथि, पाहुने, बाल, बृद्ध और

गुरुओंकी सदा विधि पूजक सेवा करते तुम्हारा काल बीते। तुम कुरुजाङ्गलका राज्य और नगरमें धर्मराजके साथ गद्दी पर बैठो। सम्पूर्ण धरती तुम्हारे महाबली पतियोंकी पराक्रमसे जय हाकर अश्वमेध महायज्ञ द्वारा तुमसे ब्राह्मणोंकी सौंप दी जावे। हे गुणवति! पृथ्वी भरमें जो सब गुणयुक्त रत्न हैं, उनपर तुम्हारा हाथ लगे। तुम परम सुखसे शत वर्ष गंवाओ। ऐ गुणयती वधू! आज तुमकी चौम पहिनी देखकर जैसा आनन्द प्रगट करतो हूँ, तुम्हारा पुत्र उपजनेसे फिर ऐसा आनन्द लूटूंगी।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर श्रीकृष्णचन्द्रने व्याही हुए पाण्डवोंके लिये नीचे कहे यौतुक धन भेजा। उन्होंने मोती मण्डित वैदुर्यमाणचित्रित सुवर्ण अलङ्कार, नाना देशोंके दुर्लभ वस्त्र, सुन्दर कामल अच्छे अच्छे कमल तथा मृगछाल, भाति भातिकी अच्छीसे अच्छी सेज, शय्या, आसन और यान, वैदुर्यसे भलकते होरेसे खचित सैकड़ों वर्तन, भले सिखाये पढ़ाये सुन्दर लक्षणवाले हाथी, गहनोंसे भले सजे अच्छे अच्छे घोड़े, सुन्दर वरण उंचे उंचे अच्छे दांत वाले घाड़ासे जुते हुए रथ और खानसे उपजा शुद्ध सुवर्ण, ये सब वस्तु बहृत अधिक और कराड़ो सुवर्णके टुकड़े भेज दिये। अमेयात्मा मधुसूदनन पाण्डवोंकी सेवाके लिये रूप, यौवन और दयासे सुहावनी गहनोंसे बनीठनी अनेक देशोंकी सहस्र दासी दीं। धर्मराज युधिष्ठिरन गावन्दकी प्रीतिके लिये परम प्रसन्न चित्तसे वह सब सामग्री ले ली।

दोसौ अध्यायमें नैवाहिक पर्व समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर भूपालोंकी अपने अपने दूतोंसे सुध मिल गयी, कि अच्छे लक्षणवाली द्रौपदी पाण्डवोंकी पति

पा गयी है ; और जिन महात्माने धनुषकी नवाकर लक्ष्यकी विज्र किया था, वही महा धनुषवाणधारी जयशील अर्जुन है और जिन बली पुरुषने मद्रनाथ शल्यकी धरती पर पटक दिया था, जिन्होंने क्रोधके मारे युद्ध स्थलमें खड़े होकर वृक्षसे सबोंकी डराया था, उस कालमें जिन महात्माके मनमें कुछभी भय हमकी दीख नहीं पड़ता था, जिनका स्पर्शभी शत्रुओंकी भयानक जान पड़ा था, वही शत्रुनाशी भीमसेन हैं । हे महाराज ! नरेशोंने पहिले सुना था, कि पाण्डवगण मातासहित जतुगृहमें जल मरे, अब पाण्डवोंकी प्रशान्त और ब्राह्मणोंका वेश किये हुए सुनकर वे अचम्भे में हो गये । उन्होंने समझा कि पाण्डव फिर जन्म लेकर आये हैं । आगे वे पुरोचनका किया बड़ा निरुर कर्म करण कर और व धृतराष्ट्र और भीमकी धिक्कार देने लगे । अनन्तर सम्पूर्ण स्वयम्बरका कार्य पूरा होने पर द्रौपदी पाण्डवोंसे व्याही गयी सुनके वे सब भूपाल निज निज राजधानीकी पधारे ।

राजा दुर्योधन यह जानके कि द्रौपदीने अर्जुनसे विवाह किया है । अश्रुत्यामा, शकुनि, कर्ण, कृप और भाद्योंके साथ उदास होकर लौटे । आगे दुःशासन लज्जित मुखसे मन्द मन्द वचनोंमें उनसे बोले कि महाराज ! धनञ्जय ब्राह्मणके वेशमें न होता तो, कभी द्रौपदीकी लाभ नहीं कर सकता, लोग उसकी धनञ्जय कहके ठीक समझ नहीं सके थे, इसी लिये उसकी चमा कर दी थी । भैया ! पाण्डवोंके नष्ट करनेकी हमारे बड़ा प्रयत्न करने परभी वे जीते जागते हैं अतएव हमारी पुरुषतामें धिक्कार है । सो देवहीकी परम साधन कहना चाहिये, पुरुषका किया यत्न कोई कार्य नहीं दे सकता । दुःशासन आदि सब ऐसी बातें करते आर पुरोचनकी निन्दते हुए दोन और दखी चित्तसे क्षतिनापुरमें

आन पड़चे ; और पाण्डवोंकी अति बलवन्त अग्निसे बचे और द्रुपदसे मिले देखके धृष्टद्युम्न, शिखण्डी तथा सर्व प्रकारसे युद्ध दक्ष द्रुपदके दूसरे पुत्रोंको करण करण्यभीत हुए और उनका उत्साह जा रहा ।

हे मनुष्यनाथ ! यह सुनके कि पाण्डवोंके द्रौपदीकी लाभ किया और धृतराष्ट्रके पुत्र लज्जित और टूटे-फूटे अहकारके साथ लौटे हैं, विदुर प्रसन्नमनसे धृतराष्ट्रसे बोले, हमारे सौभाग्यसे कौरवगण बट रहे हैं । राजा विचित्रवीर्यके पुत्र विदुरका यह सुन करके अचम्भे में होके और बड़े प्रसन्न होकर कहने लगे कि हमारा कैसा सौभाग्य है ! कैसा सौभाग्य है ! हे भारत ! प्रसन्न नेत्र भूपाल विदुरसे सन्धिपत्रमें कहे हुए की शब्दकी सुन कर समझ नहीं सके, कि पाण्डवोंकी जीवित रहकर बढ रहे हैं । उन्होंने समझा कि द्रुपदपुत्रीने उनके ज्येष्ठपुत्र दुर्योधनसे विवाह कर लिया, अनएव उन्होंने दुर्योधनका पुत्रवधू द्रौपदीकी भाति भातिके गये और उसे लिवा लातेके लिये पुत्र दुर्योधनकी आज्ञा की । अनन्तर विदुरने दुर्योधनकी विशेषरूपसे कहा, कि सब पाण्डव दुर्योधनसे हैं, द्रौपदीने उन्हीं वीरोंसे विवाह किया है, द्रुपदने उनका बड़ा सम्मान किया है, उस स्वयम्बर-स्थलहीमें उनके सख्ती, व आदि दूसरे बलवन्त उनसे जा मिले हैं । धृतराष्ट्र बोले कि हे चत ! वे किस प्रकार पाण्डुके स्नेहपात्र हैं । उसमेंभी अधिक स्नेहके पात्र हैं । इससे उन पर औरभी प्रसन्नता हो रही है, कि वे वीरों कुशलसे रह गये, मित्रोंसे मिले और सख्ती दूसरे महाबली बलवन्त उनसे जा मिले विशेष कर ऐसे कौन राजा होगी, जिनकी जी न रहे अथवा जी बनी रहे पत्नी

राजा द्रुपदकी मित्र पाशुर कुशलयुक्त होनेकी इच्छा न रखते होंगे ।

श्रीनैशम्पाय जी बोले, कि भूपालकी यह बात सुनकर विदुरने उत्तर दिया, कि महाराज । आपकी सैकड़ों वर्षों तक सदा ऐसीही बुद्धि बनी रहे । हे नरनाथ । अनन्तर दुष्योधन और राधापुत्र धृतराष्ट्रके निकट आकर बोले, कि हम आपसे विदुरके सामने कोई दीप दश नहीं सके थे । अब एकात्त पाकर कहते हैं, सुनिये । आपकी यह कौनो इच्छा हुई ? पिता । क्या आप शत्रुओंकी बढ़तीसे अपनी बढ़ती समझ रहे हैं ? हे नरवर । क्या आप विदुरसे विपक्षियोंकी प्रशंसा कर रहे थे ? हे अनन्ध । जहां जैसा काम करना चाहिये, आप उसका उलटा करते हैं ! हे पिता ! अब सदा यह चेष्टा करनी चाहिये कि उनका बल घटे, हालमें जैसा काल आ पड़ा है, अब ऐसी युक्ति करनी चाहिये कि, वज्रोग हमको और हमारे पुत्र, वसु तथा सेनाओंकी नष्ट न कर सकें ।

विदुरारामन पर्वमें दोहो एक अध्याय समाप्त ।

धृतराष्ट्र बोले, कि तुम्हारी जैसी इच्छा है, मैं भी वही किया चाहता हूँ ; पर विदुरसे कोई आश्रय प्रगट नहीं करना चाहता, इस लिये कि विदुर द्रुपदसे भी मेरा आश्रय समझ न पावे,—मैं पाण्डवोंका गुण गा रहा था । हे सुयाधन । अब तुम्हारी समझमें जा करना उचित । नश्य हुआ है, और हे राधानन्दन । तुमने भी जैसा समझा है, वह सब कहनका यही समय है, सा इसकालमें कह दी ।

दुष्योधन बोले, कि अब हमारे विश्वासों और ब्राह्मणगण बहुत छिप करके जाय, कुन्तीपुत्र और मांशुपुत्रोंमें आपसका विवाद कर दें, अथवा राजा द्रुपद और उनके पुत्र

तथा सम्पूर्ण सन्तियोंका बहुत धन लेकर लुभावे कि, वे कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरकी त्याग दें । अथवा हमारे भेजे हुए लोगोंमें हरके अलग अलग पाण्डवोंकी इस स्थानमें बसने का दोष दर्शा कर उन्हें स्वसुरके यहाँ बसनेकी लुभावे, ऐसा करनेसेही पाण्डवोंकी वहाँ रहनेकी इच्छा होगी । अथवा कुछ उपायोंकी जानकारी दश जन ऐसा करें कि पाण्डवोंमें विवाद हो और उनमें आपसका प्रेम न बना रहे । अथवा कृष्णकी ऐसा उभाड़ें कि, उसका पतियोंसे मन टल जाय । उसके बहुत पति हैं, तो यह करना कठिन नहीं होगा । अथवा ऐसा करें कि, पाण्डवों पर द्रौपदीका प्रेम न रहे, ऐसा होनेसे द्रौपदी उन पर चिढ़ जायगी । अथवा अच्छे उपाय निकालनेवाले वहाँ जाके छिप कर ऐसा कोई उपाय करें, कि भीमको मृत्यु हो, क्योंकि उनमें भीमही बड़ा बली है, उसकेही भरोसे युधिष्ठिर हमको नहीं मानता था । भीमसेन बड़ा बली और पाण्डवोंका प्रधान अवलम्ब है । हे महाराज । उनका एकही आसरास्त्रपी उस भीमके मारे जानेपर वे तेज और उत्साहसे हाथ धोके फिर राज्य पानका प्रयत्न नहीं करेंगे । युद्धस्थलमें वकील पृष्ठरक्षक रहे, तो अर्जुन पर कोई भी जय नहीं पा सकता, पर युद्धस्थलमें वकीलकी न रहनेसे अर्जुन अर्थात् चौथा अश भी नहीं हो सकता । भीमसेनके बिना दुर्बल पाण्डव अपनेकी बल-वर्जित और हमको अधिक बलवन्त जानकी रीत्य पानका प्रयत्न नहीं करेंगे । पर याद वे यहाँ आकर हमारे अधीन और आज्ञानुसारी हों, तो हम उन पर नीतिशास्त्रके अनुसार दंड देनेकी प्रवृत्त होंगे । अथवा परम रूपवती धारी युवतीसे उनको लुभाना चाहिये, ऐसा करनेसे द्रौपदीका प्रेम उनसे टल जायगा । हे राधानन्दन । अथवा उनकी लीवा लानके

लिये दूत भेजा जायें, उनके एकत्र मिलकर आनेसे पहिले किसी उपायसे वे नष्ट किये जा सकेंगे। हे पिता ! इन सब उपायोंमेंसे आपको सभ्य में ज. दीखरहित जान पड़े, वही करें ; काल बीत रहा है, अधिक विलव करना उचित नहीं है। जब तक पृथ्वीनाथ द्रुपद पर उनका विश्वास न जमे, उसके पहिले य.य उपाय करनेसे उनसे बढ चढ़ सकेंगे, राजा द्रुपद पर उनका विश्वास ही जानसे फिर कोई उपाय न चलेगा। हे पिता ! उनको सतानेसे लिये मैंने यह उपाय निश्चय किये। यह भले है वा बुरे, आप समझ लें। कर्ण ! तुम क्या समझते हो ।

विदुरागमन पर्वमें दोस्रो दूसरा

अध्याय समाप्त ।

कर्ण ब.ले, कि हे दुर्योधन ! तुमने जो सोचा है, वह सुयुक्ति समझ नहीं पड़ती। हे कुरुनन्दन ! इसमेंसे कोई उपाय पाण्डवोंके विरुद्ध न चलेगा। हे वीर ! तुमने पहिले सूक्ष्म उपायोंसे उनकी नष्ट करनेका प्रयत्न किया था, पर उससे मनोरथ सफल नहीं हो सका था। उस समय वे अल्प अवस्था-वाले, निःसहाय और तुम्हारे निपट थे, तिस परभी उनकी कोई हानि नहीं कर सके थे। हे पुरुपार्थशूल ! अब वे दूसरे देशमें स्थित, सहायसहित और सब प्रकारसे बढ गये हैं, सो यह सुनको निश्चय जान पड़ता है, कि इस समय इन उपायोंसे उनकी कोई हानि नहीं की जा सकेगी। और लुभानेसे भी वे न भूलेंगे क्योंकि उनमें देवीशक्ति भरी है, और वे वाप दादोंके पदके चाहनेवाले हैं, उन भाइयोंने आपसका विगाड़ कर देनाभी शक्तिके नाशक है, क्योंकि जो लोग प.च भाई एक स्त्रीसे मिलते हैं, उनमें कभी आपसका विरुद्ध भाव होना सम्भव नहीं है, किसी उपाय

से कृष्णाके चित्तको पाण्डवोंसे टालना भी कठिन है, क्योंकि कृष्ण ने पाण्डवोंसे उनकी कड़ी दीन दशाके दिनोंमें विवाह किया था, अब तो वे भले अस्त्र गहने,से रुजे हैं, विशेष स्थियोंके लिये बहल पतियोंका मिलना प्रार्थनाकी बात है, कृष्णाको वह मिले है, सो पतियोंसे उसका मन टालना असम्भव है, राजा पाञ्चाल सुपथमें चलते हैं, वह धनके लोभी नहीं हैं, सो इससे सन्देह नहीं, कि उनको सब राज्य देभी दा.तो वह पाण्डवोंका नहीं छोड़ेंगे। - उन राजाके पुत्रगण गुण-वन्त हैं, विशेष पाण्डवोंके वे प्रेमी बने हैं, सो लुभा करके वे वशमें नहीं लाये जा सकेंगे, सो सुभको जान पड़ता है, कि उक्त प्रकारके किसी उपायसे पाण्डवोंको कुछ नहीं हाने-वाला है। हे पुरुषश्रेष्ठ महाराज ! इस समय हमारा यही कर्तव्य है, कि जबतक पाण्डव जूझसे न उखड़ जायं, तबतक उनकी मारते रहें। हे पिता ! इस विषयमें आप सन्मत हवें। जबतक हमारा पक्ष महान और पाण्डवका पक्ष लघु है, तबतक युद्धप्रारम्भ कर उनका मारना आरम्भ करें। इसका अन्य विचार करनेका प्रयत्न नहीं है। हे महाराज माधारीनन्दन ! जबतक उनके मित्र और बन्धु तथा वृद्धत वाहन न एकत्रित हों, उसकी पहिले ही उन पर विक्रम प्रगट करके चढ़ जाओ। जबतक राजा पाञ्चाल आत वीर्यवन्त पुत्रोंके साथ लड़ाईका उद्योग न कर सकें, उरु कालसे पाहिलेही विक्रम दिखाओ। और जबतक श्रीकृष्ण पाण्डवोंके राज्यके लिये यादवी सेना लेकर राजा पाञ्चालके भवनमें न आवें, तबसे पाहिलेही विक्रम प्रगट करो। कृष्ण पाण्डवोंके उपकारके लिये भात भातके भाग धन और राज्यकी छोड़ सकते हैं। हे भूनाथ ! महात्मा भरत विक्रमहीसे आपाके अधीश बन थे और इस

अपने विक्रमहीके द्वारा - तोनी लोक जीत लिये थे। हे राजेन्द्र ! चतुरियोंको विक्रम दिखनाही प्रशंसायोग्य है। विक्रमही शूरोका धर्म है; अतएव हम बड़ी भारी चतुरङ्गिणी सेनासे बिना विलम्ब राजा दुपदको मँथन करके पाण्डवोंको यहां लेते आवें। साम, दान वा भेद द्वारा पाण्डव नष्ट नहीं किये जा सकेंगे, सो विक्रमहीसे उनका भले प्रकार नाश करो, विक्रम दिखाके उनकी हराकर गान्धर्व सम्पूर्ण धरती पर राज्य करते रह।। हे जनाधिप ! मैं इसके बिना कार्य पूरा करनेका कोई दूसरा उपाय नहीं देखता।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि प्रतापो धृतराष्ट्र गान्धर्वानन्दनकी बात सुनके उनकी प्रशंसा करके बोले, कि हे सूतपुत्र ! तुम बड़े बुद्धिमान और अस्त्रविद्यामें पण्डित हो, सो ऐसा विक्रम युक्त वचन बोलना तुम्हारे योग्यही हुआ है। पर भीष्म, द्रोण, विदुर और तुम दोनों फिर युक्ति करके यह निश्चय करो, कि जिससे हमारा मङ्गल होवे। महाराज ! आत यशोवन्त धृतराष्ट्र भीष्माद सम्पूर्ण मन्त्रियोंको बुलवाकर युक्ति करने लगें।

विदुरागमन पर्वमें दोसौ तीसरा

अध्याय समाप्त ।

भीमजी बोले, कि हे धृतराष्ट्र ! पाण्डवोंके साथ युद्ध करना किसी प्रकार मेरा अभीष्ट नहीं है, क्योंकि मेरे लिये जैसे तुम पाण्डुभी तैसेही थे, और गान्धारीके पुत्र जिस प्रकार स्नेहके पात्र हैं, कुन्तीके पुत्रभी तैसेही हैं। सुभको जिसप्रकार उनकी रक्षा करना है, तुम्हारेभी वैसेही करना है। हे पृथ्वीपाण्ड ! वे सरं जैसे आत्मजन हैं, राजा दुर्योधन आदि सब कौरव भी तैसेही आत्मजन हैं, इसमें कोई शक नहीं है। ऐसी दशामें क्याकर उनसे लड़नको मेरो सम्मान है। तबकी

है ? हे महाराज ! उन वीरोंसे सन्धि करके उनकी आधा राज्य दे दो, क्योंकि यह उन कुरुसन्तमोंकाभी राज्य है। बेटा दुर्योधन ! तुम जिस प्रकार इसे अपना पैलिक राज्य समझ रहे हो, तैसेही पाण्डव भी अपना पैलिक राज्य जानते हैं। यदि वे यशोवन्त पाण्डव राज्यके अधिकारी न हों, तो तुम अथवा कोई दूसरा भरतवंशी क्योंकर राज्यका अधिकारी हो सकता है ? हे भरतश्रेष्ठ ! यदि तुमने ऐसा समझा है, कि "मैं धर्मानुसार राज्यका अधिकारी बना हूँ" तो पाँहली धर्मानुसार उन्हीका अधिकार हुआ है, सो मेरा मत यह है, कि प्रसन्नतासे उनको आधाराज्य दो। हे पुरुषव्याघ्र ! ऐसा करनेसे सबोंका मङ्गल होगा ! यदि इसकी विरुद्धता करी, तो हमसेही किसीका मङ्गल नहीं होगा ; और इसमें सन्देह नहीं, कि तुम्हारी बड़ी निन्दा फैलेगी। हे गान्धारी-नन्दन ! तुम कीर्तिकी रक्षा करनेका प्रयत्न करो। इस भूमण्डलमें कीर्तिही परम बल है, और कीर्ति न रखने वालीका जीवनही व्यर्थ है। हे कौरव ! जब तक किसीकी कीर्ति नहीं बिगड़ती, उसके परलोकमें सिधारने परभी तबतक वह जीवित रहता है, और कीर्ति नष्ट होने पर जीवन रहनेसे भी वह मरा कहा जाता है। हे महाभुज ! तुम कुरुकुलके याग्य धर्ममें चित्त लगाओ, और अपने पूर्व पुरुषोंकी भाँति कार्य करो। हमारे सौभाग्यहीसे पाण्डव और कुन्ती जीवित हैं। यह हमाराही सौभाग्य है, कि पापात्मा पुरीचनका कनोरय सफल नहीं हुआ और वह यमराजके घरकी जा पड़ंचा है। हे गान्धारीकुमार ! मैंने जब सुना, कि कुन्तीभोजकी पुत्रोंके पुत्र जल मरे हैं, तबसे मैं इस धरती पर किसीसे भले प्रकार भेट नहीं कर सकता हूँ। हे पुरुषव्याघ्र ! लोग कुन्तीकी उस दशामें गिरी

सुनके जिस प्रकार तुमकी दोषी जानते हैं, पुरीचनकी वैसे दोषी नहीं समझते। हे महाराज ! पाण्डवोंका जीना और उनकी फिर देखना तुमकी केवल अपना कलङ्क नष्ट होनेका हेतु करके जानना चाहिये। हे दुर्योधन ! उन सब वीरोंके जीवित रहनेसे स्वयं महेन्द्रभी उनके पैतृक राज्यकी लीनेको सामर्थ्य नहीं रखते, विशेष पाण्डव सब एकमत और धर्म पथसे चलने-वाले होने परभी तुम्हें अधिकाधिक राज्यसे अधर्म पूर्वक हटाये जाते हैं, अतएव यदि तुम जो धर्मरक्षा करनी उचित हो, यदि तुमको मेरा प्रिय-कार्य करना हो और यदि तुम अपनी भलाई चाहो, तो पाण्डवोंका आधा राज्य दो।

विदुरागमन पर्वमें दो सो चौथा

अध्याय समाप्त ।

द्रोण बोले, कि हे महाराज धृतराष्ट्र ! हमने सुना है, मान्त्रियोंके युक्तिके लिये आप पञ्चने पर धर्म, अर्थ और यश देनेवाला वचन कहनाही उनका कर्तव्य है। ऐ बेटा ! महात्मा भीमसे मैं सहमत हूँ। पाण्डवोंका अशर्माना उचित है, ऐसा कहनहोसे सनातन धर्मकी रक्षा होगी। हे भारत ! अब प्यारी पाली-बोलनेवाले किसी पुरुषका आज्ञा करें, कि पाण्डवोंके लिये वज्रत धन लेकर द्रुपदके यहा जाय। वह भेजा हुआ पुरुष वर और वधूक योग्य रत्न और अलङ्कारभी लेकर द्रुपद के सम्मुख जाकर कहे, कि हे महाराज ! आपके साथ राजा धृतराष्ट्र और दुर्योधनकी पड़नाई हानसे वे वज्रत कृतार्थ हुए और अपनेको अमन्त समझते हैं। हे भारत ! वह दूत राजा द्रुपद और धृष्टद्युम्नसे बार बार ऐसा कहे, कि आपके साथ विवाहसे जा पाइना, उनी वह वज्रत योग्य और कीरवोंके भाग्य हूँ। हे महाराज अनन्तर

वह दूत पाण्डवोंकी बार बार समझाने की बातें कहके द्रौपदीकी शुभ-सुवर्णके अनेक अलङ्कार देके राजा पाण्डुलके अवपुत्रों, पाण्डवों और कुन्तीके योग्य चोर गहने देवे। हे भरतश्रेष्ठ ! इस प्रकार द्रुपद और पाण्डवोंका समझा कर अन्तमें उनकी लानेकी बात कहे। पाण्डवोंके द्रुपदसे आनको आज्ञा पाते पर दुःशासन और विकर्ण अच्छी सेनादेके साथ उनके लीवा लानेकी जावें। आग पुरुषश्रेष्ठ पाण्डवोंके राजधानीमें आ जाते पर आप उनको सादेर पूर्वक स्वागत करना। अनन्तर वे राजाओंके मनसे पैतृक पैद पर आलस्य होवे। महाराज ! मेरा भी भीमका मत यह है, कि आपके पुत्रत्वपो उने पाण्डवोंसे ऐसा व्यवहारही आपका करना चाहिये।

कार्य बालि, कि भीम और द्रोण यह दोनों सब कार्योके विगाड़नेवाले हैं, और आपहीके दिये धन और मानसे बड़े हैं, इससे आश्चर्य होगा, कि यह आपका आपके मङ्गलका परामर्श नहीं देते। महाराज ! जो जीनें मित्रका दोह रखके शत्रुके हितको बुद्धिसे युक्त कहते हैं, वे जोकर मङ्गलकी निश्चय कर सकते हैं ? पर ऐसा नहीं है कि विपद आ पड़नेसे साधु वा असाधु मित्रकी मङ्गल वा अमङ्गलके कारण बनते हैं, क्योंकि सुख और दुःखकी जड़ भाग्यही है, देखें, विश्व आवृत्त बाल बृद्ध, सहाय वा विना सहाय, सम प्रकारके लाग सब ठारमें सब वस्तु पाजते हैं, सुना है, कि पाण्डुली राजाह नामक राजधानीमें मगधदेशो राजाओंकी प्रवीण अश्वुवीच नामक एक पृथ्वीनाथ थे। राजकाधर्म उनको टुकभी दृष्टि नहीं थी, वह इतनाही काम करते थे, कि खास खेचते और छोड़ते थे, इससे उनका सम्पूर्ण राजकाय मान्त्रियोंके हाथमें गया। महाकार्यक नामक उनका

मन्त्री पूरा अधिकार पाकर वा अपनेको बल-
युक्त जानकर राजाका अन्यादर करने लगा ।
उस मूर्ख मन्त्रीने राजाके भोगनेकी स्त्री, रत्न
और धन सब ऐश्वर्य्य आप ले लिया । आगे
यह सब लेकर उस लोभीका लोभ बढ़ा, वह
राजाका सब कुछ लेकरके भी चुप नहीं हुआ,
राज्य तक हरना चाहा, पर हमने सुना है,
कि वह मन्त्री अपनी पूरी सामर्थ्यसे चेष्टा करने
पर भी उस कार्यरहित श्वास मात्र लेते हुए
राजाका राज्य नहीं हर सका । भाग्य के
बिना कौन सा पुरुषार्थ या, कि तिससे राज्य-
को रक्षा हुई ? हे महाराज । यदि विधिने
यह राज्य आपके लिये निश्चय कर दिया
हो, तो आपके सब लोगोंके परास्त होने पर
भी यह आपहीके हाथमें बना रहेगा । यदि
भाग्यमें न रहे, तो आप चेष्टा भी करें, तो
बचा नहीं सकेंगे । हे महाराज । आप
पण्डित हैं, मन्त्रियोंमें कौन साधु है और कौन
असाधु है आपही विचार लें । और दुष्ट
अदुष्ट जनोके वचनका कार्य्य समझें । द्रोण
बोले, कि कार्य्य ! मैं समझ गया कि तुम्हारा
हृदय दोषसे भरे रहनेहीके कारण तुम ऐसा
कहते हो, पाण्डवों पर तुम्हारा द्वेष रहनेहीके
हेतु तुमने हम पर दोष लगाया । पर मैंने
जा कहा वह कुलवृद्धानेवाला और परम
हितदेनेहारा है ; यदि वह तुम्हारी समझमें
बुरा जान पड़े, तो जिससे परम हित होना
ह वही कह । वास्तवमें मुझकी निश्चय जान
पड़ता है, कि यदि मेरे कहे परम हित वच-
नकी विस्मयता की जावे, तो बिना विलम्ब और व
गुण लय पा जायेंगे ।

। वदुरागमन पत्रमें दस पाँच

अध्याय समाप्त ।

। वदुर बोले, कि हे महाराज । आपके
सब लोग निःसन्देह आपकी हितवचन कह रहे

हैं, पर आपके ध्यानके बिना उसकी रक्षा नहीं
होती है हे महाराज ! कुरुक्षेत्र शान्तनु
पुत्र भीम जो प्रिय और हित वचन बोले, आप
उस पर ध्यान नहीं देते हैं । आचार्य्य द्रोणने
अनेक हित वचन कहे, राधापुत्र कर्णको
समझमें वे आपके हितकारी नहीं हैं । हे
महाराज ! मैं सोचकर नहीं समझ सकता,
कि भीम और द्रोणसे अधिक ज्ञानी और
आपका परम मित्र कौन विद्यमान है, वे
दोनों बुद्धि विद्या और अवस्थामें वृद्ध हैं । हे
महाराज । आपपर उनका जैसा भाव है,
पाण्डवों पर भी वैसाही है । हे भारतराज ।
इसमें सन्देह नहीं, कि यह लोग धर्म और
सत्यके विषयमें दशरथके पुत्र रामचन्द्र और
गयासुरसे भी श्रेष्ठ हैं । यह दोखही नहीं पड़ता,
कि इन्होंने पहिलेभी कभी आपका कोई
अहितवाक्य कहा वा कोई हानि की हो ।
हे पृथ्वीनाथ ! आपने तो इन दोनों पुरुष-
वरोको कोई अनिष्ट नहीं किया, कि जिससे
यह आपके लिये कल्याणदायी परामर्श न
दें । विशेष यह दोनों पुरुषसिंह सत्यशील
और ज्ञानी हैं, सो हे नरनाथ । यह
आपके विषयमें कभी कुछ कुटिल वचन नहीं
बोलेंगे । हे कुरुनन्दन । मेरी समझमें यह
निश्चय किया हुआ है, कि यह दो धर्मज्ञ
पुरुष धनके लोभसे कभी पक्षपातकी बात
नहीं कहेंगे, सो इन्होंने जो कहा है, मेरी
समझमें वह आपके लिये मंगलदायी है । हे
महाराज । आपके लिये दुर्धीधनादि पत्र
जैसे स्नेहपात्र हैं, सन्देह नहीं, कि पाण्डव भी
वैसीही स्नेहपात्र हैं । जो सब मन्त्री उस विषयको
न जान कर उन पाण्डवोंके अहित का परामर्श
देते हैं, वे आपकी भलाई पर विशेष दृष्टि नहीं
देते । हे भूप । यद्यपि आपके हृदयसे अपने
पुत्रों पर विवेकता भी रहे, तो भी जो लोग
उस हृदयस्थित भावके अनुसार

इसमें सन्देह नहीं कि वे आपका अनिष्ट करेंगे। इसलिये यह दा. महातेजस्वी महात्माओं ने उस प्रकार अनुचित परामर्श नहीं कहा है, पर आपके चित्तका भाव पक्षपातरहित न होनेहीके हेतु उसे आप समझ नहीं सकते हैं। हे पुरुषव्याघ्र ! इन दोनोंने आपसे कहा है, कि पाण्डव जीते नहीं जा सकेंगे, वह भूठ नहां है, सो हमारी यही प्रार्थना है, कि पाण्डवोंसे आपकी भलाई होवे। हे नरनाथ ! क्या देवराजभो युद्धस्थलमें श्रीमान् सव्यसाची पाण्डव धनञ्जयको जय कर सकते हैं ? रणभूमिमें दश संहस्र गजोंके समान बली महात् महाभुज भीमसेनको क्या दिवगण भी जय कर सकते हैं ? रणस्थलमें क्या कोई भी जय चाहने वाले युद्धदत्त यमवतः यमज, नकुल सहदेवका पराक्रम सह सकता है ? जिस पुरुषमें धीरज, दया, क्षमा, सत्य और पराक्रम यह सब गुण सदा विराजमान है, क्या वह पाण्डवोंके ज्येष्ठ युधिष्ठिर जीते जानेके योग्य है ? विशेष राजा द्रुपद जिनके ससुर, द्रुपदके पुत्र वीर धृष्टद्युम्नादि वीर भाई जिनके साली, बलराम और सात्यकि जिनके मन्त्री हैं, रणस्थलमें क्या कुछभी उनसे जीतेजानेके अयोग्य है ? अतएव हे भारत ! रणस्थलमें उनकी अजेयता और धर्मानुसार राज्याधिकारिताकी बातोंको ध्यानमें लाकर पहिले ही उनसे योग्य व्यवहार करें। हे पृथ्वीपाल ! पुरोचनका ! क्या जो बड़े कुयशका धन्ना आप पर लग गया है, आप आज पाण्डवों पर कृपा दर्शाकर उभका धाड़ाले आगे उन पर। इस कृपाके दशानसे हमारे वंशमें सबके जीवनकी रक्षा, परम मङ्गल और चक्रियकुलको वृद्धि होगी। हे भूनाथ ! पांडाल देशीय द्रुपद वृद्धत बड़े राजा है, पहिले उनसे हमारी शत्रुता उभड़ी थी पर उनकी मित्राणिनसे हमारा पक्ष वृद्धत पड़ेगा। हे नरनाथ ! यह भी समझनेयोग्य

है, कि दशार्ह देशीयगण बली और वृद्धत हैं, कृष्ण जिस ओर रहेंगे, वे भी उसी ओर रहेंगे, सो जिस पक्षमें कृष्ण, उसी पक्षकी जय होगी। जो कार्य सामके द्वारा भले प्रकार सिद्ध हो सकता है, बिना दैवी विद्वन्ना कौन उसको युद्धद्वारा सिद्ध करना चाहता होगा ? हे महा राज ! नगर और जनपदवासी सब जन पाण्डवोंकी जीवित सुनके उनकी भेंटके लिये प्रसन्न हैं, सो अवश्यही उनका प्रिय करन चाहिये। दुर्योधन, कर्ण और सुवलपुत्र शत्रुनि यह अधार्मिक कुसमझ और बालक हैं, इनक बात किसी प्रकार सुननेके योग्य नहीं है हे गुणोंसे सजे भूप ! मैंने पहिले भी आपका कहा था, कि दुर्योधनके दोषसे यह सब प्रज नष्ट होगी।

विदुरागमन पर्वमें दो सौ छठवां

अध्याय समाप्त ।

धृतराष्ट्र बोले, कि पण्डित शान्तनुनन्दन और भगवान् ऋषि द्रोणानि जो कहा तथा तुम जो कहते हो, वह परमहित और सब सत्य है। वे सब महारथी वीर कुन्तीनन्दन जिस प्रकार पाण्डुके पुत्र हैं, वैसेही धर्मानुसार भी पुत्र हैं, और मेरेभो एतन् जिस प्रकार इस राज्यके अधिकारी हैं, इसमें सन्देह नहीं कि पाण्डुपुत्र भी वैसेही अधिकारी हैं। हे क्षत्र जाओ, मातासहित पाण्डव और देवीद्विपत्नी कृष्णाकी सत्कार करके लिवा लाओ। मेरे भीभाग्यहीसे पाण्डव जीवित हैं, मेरे भीभाग्य हीसे कुन्तीका कोई बड़ा अहित नहीं हुआ, महारथी पाण्डवोंका द्रौपदी लाभ करना भी मेरे भीभाग्यहीका फल है। हे महा प्रकाश ! बड़े भाग्यहीने हम सब बढ रहे हैं, भीभाग्यहीसे पुरोचन नष्ट हुआ, भाग्यहीके वश हमारा परम दुःख दूर हुआ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भारत ! अनन्तर विदुर धृतराष्ट्रकी आज्ञासे राजा यज्ञसेन, द्रौपदी और पाण्डवोंके लिये अनेक धन रत्न लेकर उनके निकट गये । आगे उन सर्व शास्त्रोंमें पण्डित धर्मके जानकार यज्ञसेनके पास पहुँचकर यथायोग्य नमस्कार आलिङ्गन आदि किया । राजा यज्ञसेनने धर्मानुसार उठकर विदुरको सम्मानित किया । अनन्तर वे दोनों विधिपूर्वक आपसमें कुशल पूछने पाछने लगे । हे भारत ! अति बुद्धिमान विदुरन उस स्थानमें पाण्डव और वासुदेवका देखकर स्नेहसे हृदय गलाके गलेसे लगाकर स्वास्थ्यकी बात पूछी । अनन्तर वह उनसे क्रमके अनुसार सत्कृत होकर धृतराष्ट्रकी आज्ञासे स्नेहपूर्वक बार-बार कुशल पूछने लगे । हे नरनाथ ! आगे उन्होंने पाण्डव, कुन्ती, द्रौपदी और द्रुपदके पुत्रोंकी यथोचित धृतराष्ट्रका भेजा अनेक धन और रत्न दिया ; और वह अमितचित्त विनयसे नम्राहके पाण्डव और केशवके सम्मुख द्रुपदकी प्रेमभरी बातोंमें कहने लगे, कि हे महाराज ! आप मन्ती और पुत्रोंके साथ मेरा वचन सुनें । राजा धृतराष्ट्रन मन्ती पुत्र और मित्रोंके साथ प्रसन्न होकर बार-बार आपका कुशल पूछा है । हे नरनाथ ! आपसे यह सख्खस्त्रीहिनेसे वह आप पर बहुत प्रसन्न हुए हैं । बड़े ज्ञानी शान्तनुन्दन भीष्मने सम्पूर्ण कौरवोंके सहित सब प्रकारसे आपका स्वास्थ्य पूछा है, और आपके प्रिय सखा बड़े ज्ञानी भारद्वाज द्रोणजीने आपसे संयोग पाकर उद्देशमें आलिङ्गन करके कुशल प्रार्थना किया है । हे महाराज पाञ्चाल ! धृतराष्ट्र और सब कौरव आपसे सख्खस्त्री लाभकर अपनेकी कृतार्थ मान रहे हैं । हे यज्ञसेन ! अधिक क्या कहें, आपसे वैवाहिक सख्खस्त्री प्राप्त करनेसे उनकी रजतनी प्रीति हुई । राज्य मलनेसे

उतनी नहीं होनी ; आपि यह समझकर पाण्डवोंको वहां भेज दें । कौरव लोग पाण्डवोंको देखनेके लिये बहुर्यत्र गए हैं । यह नरश्रेष्ठ पाण्डव और पृथा वृद्धत काल तक निरुद्देश थे, सो नगर देखनेको बृद्धत घबराये होंगे, कौरवों की स्त्रियां और हमारे नगर तथा जनपदवासी सर्व लोग पाञ्चाली कृष्णाको देखनेके लिये बाध देख रहे हैं ; अतएव मेरा मत यह है, कि आप पाण्डवोंकी पत्नीके साथ वहां जानेकी आज्ञा दें, विलम्ब न करें । हे महाराज ! महात्मा पाण्डवोंकी आपसे वहां जानेकी आज्ञा मिलेगी, तो मै शीघ्र जानेवाले दूत द्वारा धृतराष्ट्रको यह समाचार दूंगा । अनन्तर पाण्डव और कुन्ती कृष्णाको साथ लीके वहां जायंगी ।

दो-सौ सात अध्यायमें विदुरागमन

पर्व समाप्त ।

राजा द्रुपद बोले, कि हे महाप्राज्ञ विदुर ! इसकालमें आपने जो कहा, वही ठीक है । हे प्रभो ! इस वैवाहिक सख्खस्त्रीसे मैं भी बड़ा प्रसन्न हूं । अब इन महात्माओंको घर जानाही सब प्रकारसे योग्य है, पर स्वयं वह कहना मेरे लिये उचित नहीं है, यदि कुन्ती-पुत्र युधिष्ठिर, भीष्म, अर्जुन और पुरुषश्रेष्ठ नकुल तथा सहदेव, यहांसे जाना चाहें और धर्मज्ञ राम तथा कृष्ण आज्ञा दें, तो ले जाइये ; क्योंकि यह पुरुषव्याघ्र राम और कृष्ण सदा इनका प्रिय करने और हित साधनेमें नियुक्त हैं । युधिष्ठिर बोले, कि महाराज ! अब मैं भाइयोंके साथ आपके अधीन हूँ, आप प्रसन्न होके हमका जा कहेंगे, वही करेंगे ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर वासुदेवजीने कहा, कि मेरी समझमें जाना उचित है, पर सर्वधर्मोंके जानकार राजा द्रुपदका

जो विचार हो, वही उचित है। द्रुपद बोले कि इस कालके अनुसार महाभुज पुरुषोत्तम वीर दशार्हने जैसा विचार, मेरी समझमें वही ठीक है। अब महाभाग पाण्डव जैसे मेरे स्नेहके पात्र हैं, वैसेही इसमें सन्देह नहीं है, कि पुरुषश्रेष्ठ वासुदेवके भी स्नेहके पात्र हैं। वह जैसे इनकी मङ्गल-चिन्ता करते हैं, कुन्तीवन्दन युधिष्ठिरसे भी वैसी बन नहीं पड़ती।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे पृथ्वीनाथ। अनन्तर पाण्डव, कृष्ण और विदुर महात्मा द्रुपदकी आज्ञा पाके परम सुखसे विचार करते हुए यशस्विनी कुन्ती और द्रौपदीके साथ हस्तिनापुरमें जाने लगे। हे भारत। जननाथ धृतराष्ट्रने वीर पाण्डवोंके शुभागमनका समाचार सुनके, उनका लिवा-लानेके लिये बड़े चापधारी विकर्ण, चितसेन धनुष-धरनेवालोंने अष्ट द्रौण और गौतम कृप, इन सब कौरव पक्षके लोगोंकी भेजा। महाबली वीर पाण्डव उनसे घेरे जाके सोहते हुए धीरे धीरे हस्तिनापुरमें गये। तब वह नगर नगरवालोंके देखनेकी बड़ी चाहकी हड़बड़ी से मानो फटने लगा। पुरुषव्याघ्र पाण्डवोंकी देखके पुरवासियोंके शोक दुःख दूर हो गये। प्रिय चाहनेवाले पुरवासियोंके हृदयप्यारे पाण्डव उनसे कहे जाते हुए इस प्रकारके भांति भांतिके वचन सुनने लगे, कि यह वही धर्मपुत्र पुरुषव्याघ्र फिर आ रहे हैं, कि जो अपने परिवारोकी भांति हमारी रक्षा करते थे। आज मानो सब जनोंके प्यारे महाराज पाण्डुही हमारे प्रिय चाहनेवाले वनके, वनसे लौट आ रहे हैं। इससे बटकर हमारा कौनसा प्रिय कार्य होगा, कि आज वीर कुन्तिपुत्रगण हमारे नगरमें फिर आ रहे हैं। यदि हमने दान या ज्वन किया हो अथवा यदि हमारा स्टेरा दान नप हो, तो उसके बलसे पाण्डव

लोग इस नगरमें सैकड़ों वर्ष बसे। अनन्तर पाण्डवोंने धृतराष्ट्र, महात्मा भीष्म और गुरुजनोंके पांव कुए। आगे नगरवालोंका कुशल पूछके वार्तालाप कर धृतराष्ट्रकी आज्ञा से राज-मन्दिरमें बसने लगे। महात्मा महाबली पाण्डवोंके कुछकाल विश्राम करने पीछे राजा धृतराष्ट्र और शान्तनुपुत्र भीष्म उनकी बुलवाया। अनन्तर उनके जाने पर धृतराष्ट्रने युधिष्ठिरसे कहा, कि हे कुन्तीपुत्र! मैं जो कहूँ, भाद्योंके साथ सुनो, तुम खाण्डव प्रस्थमें जाय बसो, कि तुमसे हमारा फिर बिगाड़ न हो। तुम अर्जुनसे इस प्रकार रक्षित होकर, कि जैसे इन्द्रजीसे देवता रक्षे जाते हैं, वहां वास करो, तो तुमसे कोई छेड़ छाड़ नहीं कर सकेगा; सो तुम राज्यका आधा भाग लेकर खाण्डवप्रस्थमें रहो।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि मनुष्यश्रेष्ठ पाण्डवोंने राजा धृतराष्ट्रकी बात मानकर राज्यका आधा भाग पाके उनके पांव छूकर घन वनमें जाय खाण्डवप्रस्थमें प्रवेश किया। उन अथवा पुरुषोंने कृष्णके साथ वहां पहुंच कर उस ठौरकी देवलीककी भांति बनाया। महाराज पाण्डवोंने कृष्णदेवायनके साथ शुभ पुण्यस्थलं शान्ति-कार्य करवाकर भले प्रकारसे नर वसाया। वह नगर सागर समान बड़ी खाँ और चन्द्रमा तथा धूमिल बादल समान आकाश चूमनेवाले भवनोंकी कतारसे ऐसी शोभा पाने लगा, कि जैसी भोगवती नगरी संपासे सुशोभित होती है। उसके घरोकी किवाड़ युक्त प्रशस्त द्वारोंसे उड़नेकी चाहनेवाले पंख फैलाये गरुड़की शोभा हुई। वह अष्ट पुरी बादल दल और सन्दरपर्वत सदृश भले प्रकार संवृत, अस्त्रयुक्त, भेदनेके अयोग्य और भांति भांतिके गोपुरोंसे अच्छे प्रकार रक्षित हुई। ठौर ठौरमें दो जीभवाले सर्पवत शक्ति नामक अस्त्रोंसे घिरी, अस्त्र शिखाके लिये बड़े बड़े

भवनोसे सुशोभित योधोंसे रक्षित, तेज अद्भुत
तथा एकवारही सैकड़ों मनुष्योंके प्राणनाशी
शतघ्नीनामक अत्युक्त यन्त्रजाल और लोहेके
बड़े बड़े चक्रोंसे सुशोभित हुई, उसके पथ
चौड़े और बड़े हिसाबसे बनाये गये। उस
नगरोसे कभी देवी, देड़ छाड़की सम्भावना
नहीं रही। वह नगर घूबले रंगके भाति
भानिके अच्छे अच्छे भवनोंको कतारोसे
अमरोंकी पुरोके समान शोभायमान होनेके
कारण इन्द्रप्रस्थ कहलाया। ऐसे नगरके
सुन्दर सुभ स्थानमें पाण्डवोंकी धनभरी धनना
संश्रय भवन मण्डली, आकाश मण्डलमें चम-
कती हुई बिजलीसे जटित बादलसमान सोहने
लगी।

हे महाराज ! अनंतर संस्कृत प्राकृत
आदि देश-देशकी भाषा जानने वाले और
सत्र वेदोंके जानकार ब्राह्मणान आकर उस
ठौरमें वसना निश्चय किया। बाणक लाग
धनार्जनके अभिलाषी बनके अनेक दिशाओंसे
वहा आन लग। अनेक प्रकार शिल्प विज्ञान
जानने वाले वहा आवसे। नगरके चारों
आर सुन्दर सुन्दर फुलवाड़ी आम, आम्रनातक
कदम्ब, अशोक, चम्पा, पुन्नाग, नागकेशर,
लकुच, पनस, शाल, ताल, तमाल, वकुल,
मनोहर-फूलसहित केतक, फलके भारसे नम्र-
पानीय आम शर, लाधू, सुन्दर फूलयुक्त अझील,
जलु, पाटल, माधवो-लता कुञ्ज, करवार और
पारिजात यह सब और दूसरे नान्य फूलफलवाले
भाति भातके वृक्षसे सुहायी। वे फुलवाड़ी
अनेक प्रकारके पत्तो, उमरत, मयूरदल और
उमड़से बुहबुहाती हुई कायलकुलसे भरकर
पहिलेको अनदेखी सुन्दरता फैलाने लगी।
और अनेक प्रकारके आदर्शसदृश निर्मल रह,
भात भातिके लताग्रह, सुहावन चित्र रह,
कोड़ार्थ मट्टोके कुत्रिम पहाड़, प्रखेत लाल
आदि नाना प्रकारके पशुको गन्धसे आत

मनोहर सरीवर, हंस कारण्डव और चकवोंसे
सुहावने वनसे घिरे, भाति भतिके ताल और
बड़े बड़े सुन्दर तड़ागोंसे सुहायी। महाराज।
उस पुराणील जनोंसे पूरित महान् प्रदेशमें
जाके पाण्डवोंका आनन्द दिन दिन बढ़ने लगा।
राजा धृतराष्ट्र और भीष्मके पाण्डवोंके लिये
उस प्रकार धर्मकी अवस्था कर देने पर पाण्डव
खाण्डवप्रस्थमें वास कर आनन्दित हुए। भोग-
वती नगरी जिस प्रकार नागोंसे सोहती है
वैसेही वह नगर पञ्च पाण्डवोंसे अच्छी शोभा
पाने लगा। हे महाराज ! बलदेवजीके
साथ वीर, श्री कृष्ण, इस प्रकारसे पाण्डवोंको
राज्यमें बैठाकर उनकी सम्पत्तिसे द्वारकाको
गये।

राज्यलाभ पर्वमें दी सौ आठवां अध्याय समाप्त।

जनमेजय बोले, कि हे तपोधन ! महा-
सत्त्व महात्मा मेरे पहिलेके दादे पाण्डवोंने
इन्द्रप्रस्थमें इसको पीके क्या किया था? उनकी
भाषा द्रौपदीके द्वारा उन सबोंके संग मिलती
थी और ये महाभाग भूपति पांचों एक द्रौपदीसे
रत होते थे, फिर तिस परभी उन पांचोंमें
आपसका भगड़ा नहीं उभड़ा था, इसका
क्या कारण है? हे तपोधन ! कृष्णसे
मिलते हुए उन महात्माओंने आपसमें कैसा
व्यवहार किया था? यह सब विस्तारपूर्वक सुना
चाहता हूँ।

श्री कृष्णायनजी बोले, कि शत्रु मंथनेहार
पाण्डव धृतराष्ट्रको आज्ञासे राज्यलाभ कर
खाण्डवप्रस्थमें कृष्णके साथ गृहस्थ करने
लगे। बड़े तेजस्वी सत्यशील युधिष्ठिर राज्य
पाकर भाद्र्याके साथ धर्मके अनुसार प्रजा
पालने लगे। शत्रु विनाशी, महान् प्राज्ञ, सत्य-
धर्मशील पुरुष-येष्ट दूसरे पाण्डवगण बड़े
आनन्दसे उस स्थानमें वसे रहे। वे बड़े कोमती

राजासनो पर बैठके सम्पूर्ण पौर-कर्म्मोंको निबटारा करते थे ।

अनन्तर एकदिन वे सब महात्मा बैठे थे, कि ऐसे समयमें देवर्षि नारद मनसाने वहां आ पड़चे । बुद्धिमान युधिष्ठिरने ऋषिकों आते देखकर अपना सुन्दर आसन छोड़ दिया । अनन्तर देवर्षिके बैठने पर उन्होंने उनको विधिपूर्वक अर्घ्य देकर सम्पूर्ण राजकार्यको बाते कह सुनायी । ऋषिने पूजा लेकर प्रसन्न चित्तसे उनका अशोष देकर बैठने कहा । राजा युधिष्ठिर सुनिकी आज्ञासे बैठ गये और कृष्णके पास देवर्षिके आनेका समाचार भेजवाया । द्रौपदी वह बात सुनतेही शुचि और समाहित होकर उस ठौरमें आगयी जहाँ देवर्षि पाण्डवोंके साथ बैठे थे । धर्मचारिणी कृष्ण देवर्षिके पावोंको प्रणामकर हाथ जोड़ अवगुणितभावसे खड़ी हुई । धर्मात्मा सत्यवादी ऋषिश्रेष्ठ नारदने अनिन्दिता राजकन्याको अनेक अशोष देकर जानेकी आज्ञा दी । अनन्तर द्रौपदीके चले जाने पर भगवान् देवर्षि युधिष्ठिर आदि पाण्डवोंसे निरालेमें बोलें, कि यशस्विनी द्रौपदी अकेली तुम सबोंको धर्मपत्नी बनो है, ऐसी दशमें तुम भाइयोंमें बिगाड़ होसकता है, सो ऐसा कोई नियम करो, कि वह न होने पावे । पूर्वकालमें सुद और उपसुन्द नामक दो भाई एकत्र वसते थे । वे दूसरोंसे बड़े जानेके अयोग्य और उनका एक राज्य, एक गृह, एक सेज एक भोजन-स्थान था । उनमें सदा ऐसी मित्रता बनी रहने परभी तिलात्तमाके लिये उन्होंने एक दूसरेको मार डाला । सो है युधिष्ठिर ! तुम आपसको प्रीति बटानेवाले नाटप्रेम बनाये रखो । यह प्रयत्न करो, कि तुममें भावभेद न होने पावे ।

युधिष्ठिर बोलें, कि हे महासुने ! सुन्द और उपसुन्द किसके पुत्र थे ? क्योंकि उनमें पम्का भेद होगया ? और क्योंकि उन्होंने

एक दूसरेको मार डाला था ? और निरनारीके लिये उन्होंने एक दूसरेको मार डाला था, वह तिलोत्तमा किसकी कन्या थी ? वह बाजा चमरा वा देवकन्या थी ? हे ब्रह्म ! यह सब विस्तारपूर्वक आशोपात सुना चाहता हूं । हे तपोधन ! यह सुननेकी सुझमें बड़ी इच्छा उभरी है ।

राज्यलाभ पदमें दो सौ नौ

अध्याय संशोभ ।

श्रीनारदजी बोलें, कि हे पृथापुत्र युधिष्ठिर ! भाइयोंके साथितुम यह पुरानी कथा सुनो । पूर्वकालमें महावीर हिरण्यकशिपुने वंशमें निकुञ्ज नामक बली तेजस्वी एक दैत्यवरने जन्म लिया था । उसके बड़े पराक्रमी, बड़े वीर्यवन्त कुटिलचित्त दो कंठोर पुत्र उपजे । उन दो दैत्यराज-पुत्रोंमें एकका नाम सुद और दूसरेका उपसुन्द था वे दोनों सदा एकही विषयमें समत, एकही विषयमें दत्तचित्त और एकही कार्यके करनेवाले होंके समान सुख दुःखसे काल गवाते थे । दोनों एक दूसरेको प्यारी वाली बोलते और एक दूसरेका प्रिय कार्य करते थे, एक भाईके बिना दूसरा भाई भोजन वा गमन नहीं करता था । उन दो भाइयोंके स्वभाव और व्यवहारमें भेद न रहनेके हेतु जान पड़ता था, कि एक मानो एक मनुष्य दो भागोंमें बंट गया है । हर काममें एक बुद्ध रखनवाले वे दो बड़े वीर्यवन्त भाई क्रममें बढ़ गये । वे दोनों लोक जोतना निय्य कर विधवा पर्वत पर जाकर दोहित और समाहित होके कठोर तप करने लगे । पंडित वल्कल पाहनके और भूखप्यास छोड़के तपमें चित लगाया और सर्वशरीरमें भस्म लगाकर वायु पीकर पावके अगूठोंके बल खड़े होकर, हाथ लचे उठाकर, निमेष तड़कर और व्रत धारणकर बहुत काल तक अपने भाईको

आहुति चढ़ायो । उसकालमें यह एक आश्चर्य लीला हुई, कि विधा पर्वतने उनकी तपस्याके प्रभावसे तप कर धुआँ बमन किया था । अनन्तर देवगण उनकी कठोर तपस्या देखकर भय खाके तप नष्ट करनेके लिये विना डोङ्गे लगे । उन्होंने लुभानेवाले गन्ध और नारीसे उन दोनोंको बार बार लुभाया, पर उन दोनों बड़े अक्ल वत करनेवाले भाइयोंने किसी प्रकार व्रत नहीं छोड़ा । आगे उन्होंने फिर उग दी महात्माओंके सामने माया फैलाकर यह एक बड़ी भारी लीला दिखायी, कि उन दोनों असुरोंको माता, बहिन स्त्री और दूसरे स्वजन अलङ्कार से च्युत होके, केशसे रहित होके और वस्त्र खोके, हाथोंमें शूल लिये हुए एक राक्षससे गिराये जाके अति भय खाकर उन दोनों असुरोंसे पुकार पुकारकर ताहि ताहे चढ़ाने लगे । यह देखनेपर भी अति बड़े व्रतधारों सुन्द और उपसुन्दने व्रत नहीं छोड़ा, अनन्तर जब दोनोंमेंसे कोई भी उससे अस तुष्ट वा कातर नहीं हुआ, तब वे स्त्रियाँ और राक्षस अन्तर्हित हुए ; तिसके पश्चात् सर्वलोकोंके मङ्गलकारी प्रभु पितामहने उन दोनों महावीरोंके सामने आकर उनको वर मागनेको कहा । दृढ़ावक्रमी सुन्द और उपसुन्द दोनों भाई प्रभु पितामहदेवका देखकर दाना हाथ जोड़के खड़े हुए और दोनों एकत्र हाकर बलि, कि प्रभो पितामह ! हमारी तपस्यामें याद आप प्रीति और प्रसन्न हुए हैं, तो हमको यह वर दे, कि हम दोनों मायाके जानकार अस्त्रके जानकार, बली, कामरूपी और अमर होसके । श्रीब्रह्माजी बलि, कि तुमने जा जा प्रार्थना को उनमेंसे अमर होनके आतारत तुम्हारी सब अभिलाषा पूरी होगी । अमरताके विना और कुछ प्रार्थना ऐसी करा, कि अमर होनके तुल्य हो । दोनों लोकोंके प्रभु वननहोको दृष्टासे तुमन यह बड़ी

तपस्या प्रारम्भ की थी, इन लिये तुमको अमरता लाभ होना ठीक नहीं है । हे दोनों दैत्यवर ! दोनों लोक जय करना ही तुम्हारी तपस्याका अभिप्राय है, इस कारण मैंने तुम्हारे अमर होनकी अभिलाषा पूरी नहीं की । सुन्द और उपसुन्दने कहा कि, हे पितामह ! हम दोनोंको एक दूसरेको जीवना इत त्रलाक भरमे, स्थावर-जड़म-आदि किसीसे मृत्युका भय न रहे । पितामह बलि, कि तुमन जो प्रार्थना को और जा कहा, वही हाँसी । मैंने तुम्हारी इस प्रार्थनाके अनुसार तुम्हारी मृत्युका नियम निश्चय किया । श्रीनरिदजो बलि, कि अनन्तर पितामह सुन्द और उपसुन्दको यह वर देके तपसे निवृत्त कर ब्रह्मलोकमें गये । दोनों भाई दैत्यवर वर पाकर सब लोकोंके वधके अयोग्य होके अपने घरकी पधारें । उनके स्वजन उन दोनों मनास्त्रियोंका वर पाते और उनका मनोरथ सफल होति देखकर बड़े प्रसन्न हुए । उन दो भाइयोंने तब जटा छोड़के किरीट आदि अतिमूल्यवान् अभूषण और साफ वस्त्र पहिने । अनन्तर सार्वकालिक अकाल-कोमुदीका महात्सव करना प्रारम्भ किया । उनके स्वजन सदा आमोद प्रमोदसे काल काटने लगे । उनके घर घर भक्षण करो भोजन करो, दान करो, खेती, गीत गाना, पीओ, ऐसी शय्य सदा उधारे जाने लगे । ठौर ठौरमें दैत्योके सिंह समान गज्जिनके साथ करतालीको कठोर आहटसे सम्पूर्ण नगरमें आनन्दको उमङ्ग फैल पड़ी । कामरूपी दैत्याके बड़े आनन्दसे उस प्रकारके भाँत भातिके विचार न लगे रहनेसे उनको एक एक वर्ष एक एक दिन जान पड़ने लगा ।

राज्यलाभ पर्वमें दासों दण्ड

अर्धाय समान ।

श्रीशंभुजी बोले, कि अज्ञातकौमुदीके महोत्सवके अन्त होने पर तीनों लोकोंके अधिकार लाभ करनेके अभिलाषी होके दोनो भाइयोंने युक्तिकर सेनाओंको सजने की आज्ञा दी। उन्होंने स्वर्जन, और वृद्ध, दैत्य, मन्त्रियोंकी आज्ञासे यात्रा करनेकी क्रिया पूरी कर रात्रिकी मघा नक्षत्रमें यात्रा की। तुल्यधर्मवाली बड़ी दैत्यसेना गदा, पट्टिश, शूल, मुहर आदि शस्त्र लेकर उनके साथ चली। दोनों दैत्यराज चारणोंको विजयसूचक माङ्गलिक स्तुति पाठसे प्रशंसित होके परम हर्षपूर्वक जाने लगे। युद्धमें कठोर कामगामी वे दोनों दैत्यवर आकाश पर चढ़के देवलोककी गये। दिवगण उनके आनेकी सुध पाय पितामहका वर देना स्मरण कर अपनी अपनी ठौर छीड़के ब्रह्मलोकमें गये। तेजस्वी विक्रमो दोनों दैत्योंने इसलोक, यक्षगण, राक्षसगण और दूसरे खिचरी प्राणियोंकी जीतकर वहाँसे चले धले पातालमें वसे हुए सर्पोंकी परास्त कर समुद्र द्वीपमें स्त्री-च्छोंकी हराया। अनन्तर कठोर शासनेवाली दोनों महाबली भाइयोंने भूमण्डलकी परास्त करनेकी उद्यत होके सेनाओंकी पुकार पुकार यह कटीली बात कहो, कि राजर्षि बृन्द सहयज्ञीसे और ब्राह्मण गण हव्यकव्यसे देवोंकी तेज बल और श्रीवृद्धि पञ्चवर्ति हैं, वह सब लोग इन कायोंसे हमारी शत्रुता करते हैं; सो हम सब एकत्र होकर सर्वप्रकारसे उनको नष्ट करेंगे। वे महासमुद्रके पूर्व तट पर ऐसी निष्ठुर कल्पना कर सब सेनाओंकी आज्ञा देके चारों ओर दौड़े। उन दोनो बली भाइयोंने जिन जिन ब्राह्मणोंको यजन वा याजन करनेकी देखा, उसी क्षण उनका मारके आग बढ़ने लगे। उनकी सेना निःशङ्कचितसे मुनियोंके आश्रममें जाके उनके अग्निहोत्र ली लेके जलमें छोड़ने लगी। मरुत्मा तपोधनवन्द्य काधित ह।

शाप देने लगे, पर वह ब्रह्माजीके वरसे बच हीने लगा। उन पर वर्त्ताव नहीं कर सका। जब द्विजोंका शाप शिला पर छोड़े शिरी मुखकी भाँति व्यर्थ होने लगा, तब वे नियम छोड़कर भागने लगे। भूमण्डलमें जितने समशील, तपःसिद्ध दान्त कर्त्ताप थे, वे इस प्रकार भागे, कि जैसे गरुड़के भयसे सर्प भाग। इस प्रकार आश्रम मथने और कलसे, स्त्रव आदि इधर उधर छिरकाये तथा टूट फूट जाने पर सम्पूर्ण जग प्रलय-कारमें नष्ट होनेकी भति खाली होगया। हे महाराज! अनन्तर मुनियोंके इधर उधर छिपकर दृष्टिके बाहर हो जाने पर दोनों महावीर उनका वध निश्चय कर नाना रूप धरने लगे। वे कभी मदीकत गजका स्वरूप लेकर दुर्गमें गये, हुए तपस्वियोंकी भी नष्ट करने लगे। वे दोनों कुटल कभी सिंहका स्वरूप कभी व्याका रूप धारण करते थे और कभी दृष्टिके बाहर होजाते थे। इस प्रकार उन्होंने नाना उपायोंसे ऋषियोंको नष्ट किया? तब धरती पर यक्ष और स्वाध्याय रुक जाकर और ब्राह्मण तथा राजा नष्ट होके एकवारही यज्ञीतावका नाश होगया। सब लोक भयभीत होकर हाय हाय करने लगे। मोलिवक्त्री, हाटका कार्य, देवी कार्य, पुण्यकार्य, ववाहकार्य, कर्त्तव्यकार्य और गौरवा आदि सम्पूर्ण कार्यही रुक गये। नगर और आश्रमोंका सत्यानाश हाके केवल हड्डो, कङ्कालोंसे पृथ्वी वृद्ध भयावनी दोख पड़ने लगी। सम्पूर्ण देशमें पिष्टकार्य और वषट्कार आदि माङ्गलिक क्रियाके लोप हो जान पर जग बड़ा भयानक हो देखनेके अयोग्य हुआ। चन्द्र, सूर्य, ग्रह, तारे और आकाशमें रहनेवाली अश्विनी आदि नक्षत्र सुन्दर उपसुन्दका यह कार्य देख कर उदास हुए। वे इस प्रकार कुटल कार्यसे सब ओर पराजय कर अन्तकी

शत्रुवर्जित हो कर कुरुक्षेत्र में निवास करने लगे ।

राज्यलाभ पर्वमें दो सौ गारुह

अध्याय समाप्त ।

श्रीनारदजी बोलि, कि अनन्तर शमदमशील देवर्षि, परमार्ष और सिद्धिगण उस भारी प्राणीहत्याकी देखकर बड़े दुःखी हुए । वे तब जगत् पर कृपायुक्त हैं । पितामहके भवनमें गये । अनन्तर वहाँ पितामहको सिद्ध और ब्रह्मर्षियोंसे चारों ओरसे घिरे और देवोंके साथ बैठे पाया । वहाँ देवोंके देव महादेव, अग्नि, वायु, चन्द्र, आदित्य, इन्द्र ब्रह्मनिष्ठ ऋषिगण, वैश्वानर, वालखिल्य, वानप्रस्थ, मरीचि, अज, आवसुन्ध आर तेजोर्गव आदि भक्त भिन्न तपस्वी ऋषिगण सभी उपस्थित हुए । सम्पूर्ण महार्षिगण दुःखोचित्तसे सुन्द और उपसुन्द की कायोंका वृत्तान्त कह सुनाया उन दोनों दैत्यों जैसी धूमके साथ जो काम किया और जैसी मारा वह सब क्रमसे आयोपान्त कह सुनाया । सम्पूर्ण देवगण और परमर्षियोंने उस विषयके लिये पितामहका अनुरोध किया । अनन्तर पितामह उन सबोंका वचन सुनके क्षणभर सींचकर आकरना ठीक है, उसका निश्चय कर दुराचारी दोनों दैत्योंके वधके लिये विश्वकर्माको बुलायाया । विश्वकर्माके आने पर महाभुभव पितामहने उसकी ओर देख आज्ञा दी, कि सबोंकी प्रार्थनीया मनभावनी एक प्रमदा बनाओ । विश्वकर्मा उनकी प्रणाम कर आदरपूर्वक उनकी आज्ञा मानके यत्नसे बार बार सचिवचारकर एकसुन्दरी बाला बनाने लगा । तबलाकभरमें दर्शनयोग्य परम सुन्दर जतने स्थावर जड़म पदार्थ हैं, विश्वकर्मा उन सबोंसे चुन चुन कर देवरूपी एक कामिनी बनाके उसके अद्भुत सम्पूर्ण शरीरकी सजा

कर उसको रत्नकी प्रतिमा बनाया । विश्वकर्माके बड़े प्रयत्नसे बनायी हुई वह कन्या ऐसी रूपवती बनी, कि तीनों भुवनमें कोई भी नारी उसकी उपमाके योग्य न रही ; उसके शरीरमें ऐसा कोई सूक्ष्म स्थान भी नहीं था, कि जिस पर देखनेवालीकी आख पड़नेसे उसके अपूर्व रूपकी शोभामें फंस नहीं जाते थे । सोचात लक्ष्मीकी भांति वह कामिनो-हरके प्राणीके नयनमन चुराने लगी । विश्वकर्माने सम्पूर्ण रत्न बटारके तिल तिल चुनकर उस कन्याको बनाया था, इसलिये पितामहने उसेका नाम तिलोत्तमा रखा । अनन्तर तिलोत्तमा दोनों हाथ जोड़के ब्रह्माजीसे बोली, कि हे भूतनाथ । सुझाओ क्या करना होगा ? कहो, कि मैं क्यों साम्प्रत बनायी गयी । पितामह बोलि, कि तुम सुन्द और उपसुन्द, दोनों असुरोंके यहां चली जाओ, वहां जाय सुन्दर रूप दिखाय उनकी लुभानेकी चेष्टा करो । ऐसी चेष्टा करो, कि वे तुम्हारे रूपकी सम्पद देखके आपसमें झगड़ा लड़ें ।

श्रीनारदजी बोलि, कि अनन्तर तिलोत्तमा उनका कहना मानके प्रतिज्ञा ठानकर पितामहके पांव पर सिर नाय देवोंकी चारों ओर परिक्रमा देने लगी । उस समय भगवान पितामह पूर्व और, महेश्वर दक्षिण और, दूसरे देवगण उत्तर और और ऋषिवृन्द नाना ओरकी मुह फेरे थे । तिलोत्तमा जब परिक्रमा देती रही, तब इन्द्र और भगवान महेश्वर अति धीरज धर अपने अपने स्थानोंमें बैठे थे । महेश्वरमें बड़े वेगसे देखनेकी चाह उभड़ने पर तिलोत्तमा जब उनकी दक्षिण ओरकी गयी तब खिले पद्मपलाश समान नैत्रोंसे सुशोभित एक दक्षिण मुख निकल आया, तिलोत्तमा जब उनके पीछे गयी, तब उनका एक पश्चिम मुख निकला ; और वह

बाला जब उत्तर और गयी, तब उनको बाँधे औरसे एक मुख निकला । महिषकेभी, देखनेकी खाह रहनेके कारण जब तिलोत्तमा उनकी परिक्रमा देती रहो, तब उनके सामने पार्श्वमें और पोट पर सम्पूर्ण शरीरहीमें बड़ी बड़ी सहस्र लाल आखें निकलीं । हे पार्थ । पूर्वकालमें इस प्रकार महादेवजी चतुर्मुख और बलसूदन सहस्रसेठयुक्त हुए, और परिक्रमाके काल तिलोत्तमा जिस-जिस ओरको गयी थी, देव और महर्षियोंके मुख उस उस ओरको घूम गये थे । उस कालमें उस ब्रह्मरुभामें जो जो उपस्थित थे उनमें केवल पिता-महके बिना सब महत्माओंकी दृष्टि उस नारीकी देह पर पड़ी थी । जब तिलोत्तमा जाने लगी, तब सम्पूर्ण देव और परमर्षियोंने उसके रूपका उजाला देख, अभीष्टकामनाकी सिद्ध जाना । तिलोत्तमाके देवकार्य साधनको चले जाने पर लोकभावन हिरण्यगर्भने सम्पूर्ण देव और ऋषियोंकी विदा किया ।

राज्यलाभ पर्वमें दो सौ बारह

अध्याय समाप्त ।

श्रीनारदजी बोले, कि इधर दैत्य, सुन्द और उपसुन्द दो भाई भूमण्डलकी परास्त कर तीनों भुवनोको तुल्यरूपसे हथेली तले लाय दुख खीय बिना एकभी विरोधी अपनोंका मनोरथ रूफल जाना और देव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प, भूपाल आदिके सम्पूर्ण रत्न लेके परम सन्तुष्ट होय काल गवाने लगे । जब देखा, कि इस त्रिलोक भरमें कोईभी उनका रोकने वाला नहीं है, तब उद्योग छोड़के देवोंकी भाति परम सुखसे विचार करने लगे । माला, चन्दन, खो, सुन्दर खान, चवान और चूसनेकी गन्धग्री इन सब भाति भातिकी वस्तुओंसे अनेक प्रानन्द भोगने लगे । देवोंकी भाति कभी पर्वत पुरमें, कभी वनमें कभी फूल बाड़ीमें

कभी पर्वत पर, जब जहां मनचले विहार करने लगे । एक दिन फूलयुक्त वृक्षोंसे सुशोभित अनखखी, शिलतलवाली मिथ्याचर चंटी पर विचार करनेकी गये । वहां माने सम्पूर्ण दिव्य काम्य वस्तुओंको ले जाने पर क्रियोंके साथ प्रसुद्धित मनसे सुन्दर आसनों पर जा बैठे । नारियां उनके सन्तोषके लिये सुन्दर नाच, गीत और स्तुतिभरे, रंगी तोंसे उनकी उपामना करने लगीं । ऐसे समय तिलोत्तमा एकही लाल वस्त्र पहिन मनमाने बने ठने उस वनमें आय फूल तोड़ने लगी; और नदी तीरेमें उपजे हुए कर्णिकार फूल तोड़ती हुई उस ठौरमें दोनों दैत्यके सामने धीरे धीरे गयी । वे दोनों वृद्धत मद पीकर आखें-लालकर नशेसे चर थे, सो उस सुन्दरीकी देखतेही कामदेवके वाणसे वृद्धत घायल हुए । वे दोनों कामवश होकारके आसन छोड़के उठ कर उस नारिके पास गये और दोनोंने उस पर मन चलाया । सुन्दने अपने हाथसे उस सुन्दरीका दहिना हाथ थाम लिया और उपसुन्दने उसका बाया हाथ पकड़ा । वे एक तो वर पानेके प्रह्लाद अपने भुजवीर्यके असङ्कार, और धनरत्नके अहङ्कारसे उत्पन्न थेही, फिर तिस पर दोनों मद्य और कामके नशेसे बावलोंकी समान बने थे; सो एक दूसरेकी और भौंह चढायके भाड़ने लगे । सुन्द बोला, कि यह बाला मेरी स्त्री है, तुम्हारी गुर्यानी है, तुम छोड़ दो । उपसुन्द बोला, कि यह नारी मेरी मचरी है, तुम्हारे कंठे भाईकी बधु है, तुम त्याग दो । अनन्तर आपसमें ऐसा कहते हुए, कि "यह मेरी स्त्री है, तुम्हारी नहीं" दोनोंहीका क्रोध उभड़ा, दोनोंने उसके रूपकी शोभासे मोहित हो और उसके लिये क्रोधके मारे स्नेह खीय स्नेहकी भूलके भारी भारी गदा उठायी । उस एक नारीके लिये काममोहित दोनों

भाइयों ने बड़ी बड़ी गदा लुटाके यह कहते हुए, कि "मैंने पहिले कर थामा है, मैंने पहिले कर थामा है" एक दूसरे की बड़ी मार मारी। उस गदा की चोट से वे भयानक दोनों दैत्य मारे जाय और शरीरों का रक्त से नहाय आकाश से गिरे दो सूर्यों की भाँति धरती पर लौट गये। तब उनके मित्र, दैत्य और दैत्यो की स्त्रिया भाग कर पाताल में जाय घुसी।

अनन्तर विशुद्धात्मा भगवान् पितामह तिलोत्तमा के सत्कार के लिये देव और महर्षियों के साथ वहाँ आ पहुँचे। भगवान् पितामह ने वहाँ पहुँच कर तिलोत्तमा को वर देना चाहा। वह वर देना स्वीकार कर उससे बोले, कि भाविनि। तुम सूर्यलोक में विचर सकोगी। तुम्हारा इतना तेज होगा, कि कोई पुरुष तुमको देख तब नहीं देख सकेगा। सर्वलोकों के पितामह प्रभु हरिश्चन्द्रगर्भ ऐसा वर देके और दूसरों हाथ तीनों लोकों का अधिकार सौंप कर ब्रह्मलोक की सिधारे।

श्रीनारदजी बोले, कि हे भरतवश श्रेष्ठ। सुन्द और उपसुन्द दोनों भाई असतभावयुक्त और हरवात में एकसुत होने पर भी तिलोत्तमा के लिये क्रोधित होकर आप ही एक दूसरे की मार कर नष्ट हुए। सो स्नेह के हेतु मैं तुमको कहता हूँ, कि तुम मेरा प्रिय कर्म करना चाहो, तो ऐसा कोई नियम टहरा ला, कि द्रौपदी के लिये तुम शत्रुओं में बिगाड़ न हो।

श्रीशम्भुनाथजी बोले, कि हे महाराज। महात्मा पाण्डवों ने असत तेजस्वी महर्षि नारद की यह बात सुन कर एक दूसरे की सत के प्रसन्न उस देवर्षि के सामने हों यह नियम टहरावा कि हममें से एक भाई जब द्रौपदी से मिलेगा, तब जो दूसरा भाई उसको देखेगा, उसे बारह वर्ष ब्रह्मचारि बनके वन में बरुना लीगा। धर्मचारी पाँचों के ऐसा नियम

निश्चय करने पर महासुनि नारद प्रसन्न होय मनमानी ठौरका चले गये। हे भारत! पहिले पाण्डवों के नारद की बात से ऐसा नियम कर लेने पर उन भाइयों में आपस का बिगाड़ नहीं हुआ था।

राज्यलाभ पर्व में दो सौ तेरह

अध्याय समाप्त ।

श्रीशम्भुनाथजी बोले, कि इससे पीछे पाण्डवों ने द्रौपदी के विषय में उस प्रकार का नियम टहराके उस स्थान में वास कर अस्त्रों के प्रभाव से दूर से शत्रुओं को बर्शीकृत किया। कृष्णा उन बड़े तेजस्वी मनुष्यसिंह पाँच पाण्डवों की वश में बनी रही। कुरीवरयुक्त वन और हस्तीगण जिस प्रकार एक दूसरे का सौभाग्य बढ़ाते हैं, वैसे ही द्रौपदी और उसके पाँच पति एक दूसरे की प्रीति बढ़ाने लगे। महात्मा पाण्डवों के धर्मपथ पर चलने से कौरव मात्रही दीपकी अचसे वचके सुखपूर्वक बृद्धि पाने लगे।

हे नरनाथ। कितने दिनों बीतने पर एक ब्राह्मण के घर में कुछ चोर आकर गौ चुराने लगे। हे नृपश्रेष्ठ। लुटेरी से ब्राह्मण की गौ चुरायो जान पर ब्राह्मण क्रोध से चेत खंय खाण्डवप्रस्थ में आय दुःख प्रगट करत हुए। चला चलाकर पाण्डवों को पुकार पुकारके बोले, कि हे पाण्डवों। तुम्हारे राज्य में आज दुष्ट नीच अनुर लुटेरे एकायक मेरी गौ चुरा रहे हैं, तुम तुरन्त दौड़ो। हा। कितने दुःख की बात है। काक आकर ब्राह्मण के शान्त यज्ञका घृत हर रहा है, नीच सियार सिंह की गुफा खाली देखकर मथ रहा है, जा राजा प्रजा की रक्षा नहीं करते, और कटा भाग कर भी लेते हैं, परित्त लोग उन्ही की सख्त लोकों में पापी कहते हैं, हे पाण्डवों! चार ब्राह्मणों का धन हर रहे हैं, धर्म कर्म लोप हो रहे हैं, मैं शोकपूर्वक कोचडन डूबकर

वार वार रो रहा हूँ, सो मेरा हाथ धासवार मुझको बचाओ ।

श्रीशम्यायनजी बोले, कि कुन्तीपुत्र धन-
ज्जयने निकट आके रंते, पोते हुए उन ब्राह्मण
को सुलाई सुनी । उन महाभुजने वह सुनतेही
ब्राह्मणको भाँसे, कहके समझा कर ढाड़स
दिया, पर जिस घरमें महात्मा पाण्डवोंके
अस्त्र धर थे, उस घरमें धर्मराज युधिष्ठिर
द्रौपदीके साथ विराज रहे थे, सो वह भय
खाये ब्राह्मणकी बातसे वार वार जल उठने
परभी ठहराये हुए नियमके अनुसार अस्त्र
शालामें प्रवेश करने वा ज़ोरी रोकनेको नहीं
जा सके । ब्राह्मणको वैसी सुलाई बुनके
दुःखी चित्तसे साधने लगे, कि इन तपस्वी
ब्राह्मणकी गौ चुरायी जातो है, उन्हें बचाकर
इनको आरु सुभको अवश्य सिटाने चाहिये,
यह ब्राह्मण द्वारपर आकार रो रहे हैं, इनकी
न बचावें, तो मेरे रक्षा न करनेके हेतु राजाको
बड़ा अधर्म होगा और बचानेहोसे इन सबोंकी
इसलोकमें आस्तकता बन जायगी और अध-
र्मभी नहीं होगा । पर अब अजातशत्रुराजाके
यहाँ जानेसे उगका अनादर होगा और मेरा
भूटा व्यवहार होगा, इसमें सन्देह नहीं ।
चौर उनके सामने जानेसे सुभको वनमें जाना
भी पड़ेगा । वास्तवमें राजाका चाहे अनादर
हो, मेरा अनुचित व्यवहारके लिये अधर्म ही,
और वनमें चाहे मृत्यु ही हो, इन सबोंकी तो
मेरे घर चटाओ ले सकता हूँ, पर धर्मको
होड़ नहीं सकता, क्योंकि देह कूटने परभी
धर्म बना रहैगा । हे नरनाथ । वह ऐसा
निश्चय कर अस्त्रशालामें पुनः राजा युधिष्ठिरसे
मिले, और धनुष लेकर प्रसन्न मनसे निकल
यात्रा करने लगे कि हे विजय शीघ्र चलो,
परन्तु धनुष न भी नीचे लुटरोके बड़ो दर
जाने न जाने इस एकत्र चलकर उनके हाथसे
अस्त्र धारण करके धनको चीन ले । महाभुज

पृथापुत्र सत्यसाचो धनज्जय यह कहके देह
रक्षक कसके धनुष ले कर ध्वजा फहराते द्वार
रथ पर चढ़े और वेगसे लुटेरोंकी पड़िया
जाकर वाणोंसे काटकूट कर परास्त किया ।
आगे उन ब्राह्मणको उनकी गौ देके प्रसन्न
कर यश लिया । अनन्तर वह अपने पुरमें
लौटकर सब गुरुओंके पाव लगके उन्हें
स्वागत किये गये । कुछकाल बीतने पर
उन्होंने धर्मराजसे कहा, कि प्रभो ! मैंने
द्रौपदीके संग आपको देखकर तुम्हारे ठहराये
हुए नियमको तोड़ दिया है, तो सुभकी व्रत
पालनकी आज्ञा दें, मैं वनवासकी जाऊँ ।
धर्मराज युधिष्ठिर एकायक भाई अर्जुनकी
यह बात सुन करकेही, शीघ्रसे विकल हुए,
और कुछ टूटी फूटी बातोंमें कहा, कि "क्यों,
आगे वह मालिनचित्तसे भाई धनज्जयसे बोले
कि हे अनघ ! यदि मैं तुम्हारे लिये प्रमाणरूप
हूँ" तो मेरी बात सुनो मैं जब द्रौपदीसे विराज
रहा था, तब मेरे यहा जाके मेरा जी अप्रिय किया
है, उससे मेरे चित्तमें असन्तोष नहीं पड़ना ।
उन विषयमें मैं तुमको आज्ञा देता हूँ, सुनो ।
जब बड़े भाई स्त्रीके साथ विराजते हैं, तो
छाटके उस घरमें जानेसे हानि नहीं होती,
पर ज्योंही भाईहीका कनिष्ठके घरमें जला
नियमको विरुद्ध है । अतएव इससे तुम्हारा
धर्मलोप नहीं हुआ और मेरा मान भी नहीं
टूटा । हे महाभुज । रह जाओ, मेरी बात
मानो । अर्जुन बोले, कि मैंने आपसे सुना
है, कि छलपूर्वक धर्म करना उचित नहीं है,
सो मैं सत्यसे टल नहीं सकूँगा । सत्यनं
लेकरकेही अस्त्र धर रहा हूँ । श्रीशम्यायन
जी बोले, कि अनन्तर अर्जुन राजा युधिष्ठिर
की आज्ञा लेकर वनचर्यामें दीक्षित हो बारह
वर्ष वनवासके लिये गये ।

अर्जुन वनवास पत्रमें दो सौ चौदह

अध्याय समाप्त ।

श्रीशम्भायनजी बोले, कि अनन्तर तुम्हें
कुल कीर्तिरूपी महाभुज अर्जुन पधारे।
महात्मा वेदब्राह्मण आदि वज्रतेरे उनके
साथ चले। हे महाराज। वेदपारग और
वेदवेदाङ्गमें पण्डित, अध्यात्मकी चिन्ता
करनेवाले ब्राह्मण, गानके पण्डित, पुराणकी
कथा कहनेवाले सूत, भगवद्भक्त कथक, उर्द्धमेता
वनवासी और जो सर्वभावसे सुन्दर उपा-
स्य स्थान पाठ करते हैं, यह सब जन और दूसरे
साधियोंके संग महर्षिके साथ चलते हुए
देवराजकी भाति अर्जुन चलने लगे। भरतवंश
का बूढ़ा मणि अर्जुनने जानेके कालमें, अनेक
प्रकार सुन्दर सुन्दर वन, सरोवर, नदी,
समुद्र, भाति-भातिके देश और पुण्यतीर्थोंको
देखा। गङ्गाक्षरमें पङ्कचकर वहा वसने
लगे। हे जनमेजय। पाण्डववर विश्वहृत्मा
अर्जुनने उस स्थानमें जा अद्भुत कर्म किया था;
वह कहता हूँ सुनो। कुन्तीपुत्रके साथ ब्राह्मणोंके
वहा देवराजनेके काल वे सब ब्राह्मण नाना प्रकार-
के आगन्हात प्रगट करने लगे। हे महाराज।
गङ्गातीरमें आभषेक किये हुए पाण्डुत, नियमयुक्त
सुसागी महात्मा ब्राह्मणोंसे उन सब आगन्-
हातके प्रवाधित, और फूलोंसे सुशोभित होने
तया बाली और आहुति दिये जाने पर गङ्गा-
क्षरकी बड़ी शोभा हुई। किसी एक समय
पाण्डववर अर्जुन नहानके लिये डिङ्गीसे भरे
हुए आश्रमके निकट भागीरथीके जलमें जा-
उतरे। महाराज! वहु नहाय धौय पितरोंका
तर्पण कर आग्निकार्यके लिये जलसे उठना
चाहते थे, कि ऐसे समयमें पातालके नीचे
रहनेवाली उलूपी नाम्नी नागराज-पुत्री मदन-
की आज्ञा मानके उनकी जलमें घसोट ले गयी।
तब उन्होंने कौरव्य नामक सर्पराजके भवनमें
जाके अग्नि देखा। आगे भली प्रकार समाहित
कर उसमें अग्निकार्य कर लिया। उनके
पाण्डित चित्तसे आहुति देनेसे अग्निको बड़ा

सन्तोष हुआ। कुन्तीपुत्र अनन्तर अग्निको धी-
हीजाने पर सुसकिराते हुए नागराजकन्यासे
बोले, कि भाविनि। तुमने यह क्या सोचस-
किया? हे भीसे सुभगे। यह कौन दिख-
है? और तुम कौन? किसकी कन्या हो?
उलूपी बोली, कि मैं महाराज। ऐरावतवंशमें
उपजे कौरव्य नामक एक नागराज है, मैं
उनकी कन्या उलूपी नाम्नी पङ्कगी हूँ। हे
पुरुषव्या। तुम महानकी लिये जब गङ्गाजीमें
उतरे, तब मैं तुम्हें देख करके मदनवाग्मसे
घायल हुई। हे कुन्तेनन्दन। मेरा विवाह नहीं
हुआ, मैं किसीसे पहिले मिली नहीं; अब
तुम्हारे लिये कामसे मोहि। हुई हूँ। हे
अनघ। अब तुम आश्रमदान कर मुझे आनन्द
दो। अर्जुन बोले कि हे भरी, जलमें विरा-
जनेवाली। मैंने धर्मराजकी आज्ञासे बारह-
वर्षके लिये ब्रह्मचर्यव्रत लिया है, मोक्षपने
अधीन नहीं हूँ, तुम्हारा प्रियभोकिया चाहता
हूँ, पर मैंने पहिले कभी भूठो बात नहीं कही,
सो हे भुजङ्गमे। तुम ऐसा विधान करो, कि
अब मेरी बातकी सच्चाई बनी रहे और तुम्हारा
प्रियभी कर सकू और सुभकी अधर्ममें पड़ना
न हो। उलूपी बोली, कि हे पाण्डव। तुम
जिस निमित्त पृथ्वीका धर्मण कर रहे हो
और गुप्ते जिस प्रकार तुम्हें ब्रह्मचर्य व्रत
करनेको आज्ञा दो है, वह सब कुछ मैं जानती
हूँ। तुमने नियम किया था, कि तुम पंच
भाद्रपदेसे कोई जब द्रौपदीसे मिलता रहे,
तब जा महसे वहा जा पड़वेगा, उसको
बारह वर्षतक ब्रह्मचर्य ले वनमें जाना पड़ेगा।
तुममें आपसका वनमें जानका यह नियम
केवल द्रौपदीसे बना है, सो तुम केवल उस
धर्मकी रक्षाहीके लिये भेजे गये हो; ऐसी
दशमें तुम्हारा धर्म जिगड़नेकी कौनसी रक्षा-
वना है? हे सुन्दरनेत्र वाली पुरुष। विश्व
जनको तुम्हें वचाना उचित है, सो सुभकी

विह्वल-जान बचानेसे तुम्हारा धर्म नहीं-
विगडेगा। हे अर्जुन! यद्यपि इसमें धर्मकी-
कुछ हानि होती है, सा मुझको प्राण देनेसे
तुम्हारा वह पूराही बना रहेगा। साधुलोग
मिलन चाहते हैं नारीकी कामना पूरी
करनेका उपदेश करते हैं, सा मुझको भक्ता
जान भजी। हे प्रभो। यदि तुम इसमें
सम्मत न हो तो, मुझको मरी जान लो। हे
पुरुषोत्तम महाभुज! आज मैंने तुम्हारी
शरण ली है, मुझको प्राण देकर परम धर्म
उपार्जन करो। हे कुन्तीपुत्र! मैं अनाथ
और दोन हूँ के वार वर रीती हैं तुम्हारी
शरण लेती हूँ और कामवश होके तुम्हारे
मिलनको प्रार्थना कर रही हूँ और तुमभो
दोनों और अनाथोंकी सदा रक्षा करते हो,
सा तुमका मेरा प्रिय करना चाहिये। अत-
एव तुम अपनेको सौंप कर मेरी अभिलाषा
पूरी करो।

श्रीशम्पायनजी बाले, कि नागराज पुत्रीके
प्रतापी अर्जुनसे ऐसी बात कहन पर अर्जुनन
धर्मके उपदेशसे उसका मनमाना सम्पूर्ण कार्य-
पूरा किया। उसका उस कौरव्य नामक सर्प-
राजके भवनमें वह रात गंवा कर सूर्योदयके
समय उठे और उस नागराजपुत्रीके संग फिर
गङ्गाद्वारको लौट आये। आगे सती उलूपी
उनका यह वर देकर लौटो, कि तुम जलमें
सर्वत्र अजेय बनोगे। सन्देह नहीं है,
कि सगही जलचर तुमसे जोति जानके याग्य
होगे।

अर्जुन वनवास पर्वमें द्वा सौ पन्द्रह
अध्याय समाप्त ।

श्रीशम्पायनजी बाले, कि, अनन्तर इन्द्र
पुत्र ब्राह्मणोंसे पछिले १६८८ दिन का सब व्यास
कहके १८ मासके पास गये। आगे अगस्त्य
वटका देखकर वसिष्ठ पर्वतमें जा पड़चे और

तुङ्गनाथ नामक पर्वत पर अपनी शोचक्रिया
करके शुचि हूँ के ब्राह्मणोंकी अनेक संहस्तों
और रहदान किये। अनन्तर पुरुषोत्तम
पाण्डवग्रैष्ठ हिरण्यवर्धु नामक तीर्थमें नहाय
ध्याय वह के पुत्रस्थानका देखने लगे। अन-
न्तर ब्राह्मणोंके साथ उस स्थानमें उतर का
पूर्वदिशाका देखनेको इच्छासे चले। हे
भारत! वह क्रमसे तीर्थोंको देखने लगे,
नैमिषारण्यसे बहती हुई सुन्दर उत्पलानो
नदी, गया और यशस्विनी सहानदी गंगा,
कौशिकी, नन्दा और दूसरी नन्दा और अन्याय
तीर्थ तथा आश्रमोंकी दर्शन करते हुए
आत्माका पवित्र कर ब्राह्मणोंको अनेक गो-
दान दी। बड़ बड़ और कलिङ्ग देशमें जिते
तीर्थ और प्रांवल स्थान हैं, उन्हीं उन
स्थानोंमें जाय उनका दर्शन कर उन
स्थानोंमें ब्राह्मणोंको धन-दान दिया। हे
भरतनन्दन! जो सब ब्राह्मण कुन्तीनन्दनके
साथ जा रहे थे, वे कलिङ्ग राज्यके द्वार गया
वहाँकी पर्वत-सम्यतका जाके उनकी आश्रम
लौट गये। कुन्तीपुत्र वीर धसक्य हिजोकी
आज्ञासे थोड़े अनुयोजक संग लेकर समुद्रको
और चले। वह प्रभु कलिङ्ग देशका भी
छड़के नाना देश, आश्रम, आर वड़े वड़ भ-
नाका देखते हुए चले। क्रमसे तपस्वियों
सुशासित महेश्वर पर्वतका देखकर स्मर
तोरसे माणपुरमें जा पड़चे। हे महाराज!
वह महाभुज उस देशमें पुण्यतीर्थ और व-
स्थानोंका देखकर अन्तमें मणिपुरनाथ उग्र
वाहन नामक धर्मज्ञ सहोपालके निकट गये।
उस रूपकी चक्राङ्गदा नामकी एक सुन्दरी
कन्या थी। एक १६८८ दिन वह सुन्दरी मनमान
उस नगरमें टहलती थी, कि ऐसे समय धन-
ज्य उसको देखकर कामके वशमें जाग्य कर
अपनी अभिलाषा पूरी करनेके लिये राजा
पास पड़चकर बाले, कि हे महाराज!

महात्मा क्षत्रियका पुत्र हूँ सुभको कन्या दान दें राजा वह बात सुनकर बोले कि तुम किसके पुत्र हो ? तुम्हारा नाम क्या है ? अर्जुन बोले, कि मैं पाण्डव कुन्तीपुत्र हूँ, मेरा नाम धनञ्जय है । अनन्तर राजा सीठो बातोंमें उनसे बोले, कि हे पुरुषश्रेष्ठ । इस देशमें प्रभञ्जन नामक एक भूपति जन्म लिया था । उनकी सन्तान न होनेसे वह सन्तानकी कामनासे भले प्रकार तप करने लगे । पिनाक-धारो ईश्वर उमापति भगवान् देवदेव महादेवनें उनको कठोर तपस्यासे प्रसन्न होकर उनको वर दिया, कि पुरुषोंकी परम्परासे उनके इस वंशमें एक एक सन्तान जन्म ले । इस लिये हमारे कुलमें सदा एकही सन्तान उपजती है । मेरे सब पुरषाओंके पुत्र-उपजे थे । हे पुरुषेन्द्र ! मेरे वंश बढ़ानेवालो यह एकही कन्या हुई है । मैं इसको पुत्र करके समझता हूँ । हे भारतवर ! मैंने इस कन्याको विधि-पूर्वक पुत्रका बनाया है, इस लिये इस कन्याके गर्भ और तुम्हारे वीर्यसे जो एकपुत्र उत्पन्न होगा वह मेरी पुत्रिकाका पुत्र होगा । वह पुत्रही इस कन्याके शुल्कवत् होकर मेरे वंशको रक्षा करेगा, इस नियमसे तुम मेरी यह कन्या लो । कुन्ती-पुत्र अर्जुनने "तथास्तु" कहके मान लिया । और उस कन्यासे विवाह कर उस नगरमें तीन वर्ष गंवाया । सुन्दरी चित्राङ्गदाके गर्भसे पुत्र उपजने पर वह उसको गले लगाके और प्रेमसे सम्भाषण करके राजासे विदा होकर देश भ्रमणको निकली ।

अर्जुन वनवास पर्वमें दा सी सोलह
अध्याय समाप्त ।

श्रीकृष्णायनजी वाले, कि अनन्तर भरत-वंश में अर्जुन दाऊण समुद्रके तपस्वियोंसे सम्भाषण सब पुण्य तीर्थों गये । उस

स्थानमें अश्वमेधको फलदायी पापनाशो प्रसन्न सुपवित्र अगस्त्य, सौमद्रः पौलोम, कारभ्यास, और भारद्वाज यह पांच महातीर्थ थे । उन पांच तीर्थोंके सामने बड़तेरे तपस्वी वसते थे, पर इनके भीतर किसी तपस्वीका वास नहीं था । पुरुषश्रेष्ठ अर्जुनने उन पञ्चतीर्थोंको देखा । उन्होंने उन पञ्चतीर्थोंकी पूर्वीक्षा और धर्मज्ञ सुनियोंसे त्यागे हुए देखके उसके सामने वसे हुए तपस्वियोंसे पूछा, कि ब्रह्मवादी ब्राह्मण लोग क्यों यह पञ्चतीर्थ छोड़ देते हैं ? तपस्वीगण बोले, कि हे कुसुमन्दन ! इन पञ्चतीर्थोंके जलमें पांच ग्राह है, वे तपस्वियोंके मार डालते हैं, सो सुनिलेग इन तीर्थोंमें नहीं वसते ।

शम्भायनजी बोले, कि पुरुषोत्तम महाभुज अर्जुन तपोधनोंका वह वचन सुनके उनसे रोके जाने परभी उन सब तीर्थोंको देखने गये । वह पहिले महार्घ सखन्धी सौमद्र नामक अर्द्ध तीर्थमें पहुँच कर उसमें एकायक देहकी डुबाकर नहाने लगे । ऐसे समयमें जलके भीतर चलनेवाली एक बड़ी ग्राहने उन शत्रु-दमन वोरपुरुषोंमें व्याघ्ररूपी कुन्तीपुत्र धनञ्जयका पाव पकड़ा । महाबली महाभुज पाण्डुपुत्र उस फुत्तीले जलचर जलको लेकर बलपूर्वक तट पर उठ आये । हे महाराज ! जलचर ग्राह यशोवन्त अर्जुनसे ऊपर उठाये जातेही एक नारीके स्वरूपमें दिखाई दिया । वह बाला दिव्यरूप सुन्दरतासे चमकती हुई, कल्याणी, मनोरमा और सर्व आभूषणोंसे सजी थी । कुन्तीपुत्र धनञ्जय उस बड़ी आश्चर्य लीलाको देखके अति प्रतर्नचितसे उस नारीसे बोले, कि ऐ कल्याणी जलचर ! तुम कौन ? क्यों ऐसी बनी हो ? और क्यों पहिले ऐसा महापाप किया था ? वर्गा नामो वह नारी बोली, कि हे महाबली महाभाग ! मैं देववनमें पिराजनेवाली अश्वराज मेरा नाम वर्गा है, मैं सदासे दुर्वरकी

मेरी कामगामी शुभ-लक्षणा और चारमुखी है। किसी समय मैं उन चार सखियोंकी साथ लोक-पालके यह जा रहो यो, उस समय देखा, कि प्रशशित व्रतधारी एकान्तमें रहनेवाले परम रूपवान एक ब्राह्मण वेद पढ़ रहे हैं। हे महाराज ! उनके तपके तेजसे वह वन ढंप गया है; उन्होंने आदित्यकी भांति उस सवस्थानमें उजाला कर दिया है। हम उनकी वैसी अति तपस्या और आश्चर्य्य रूप देखकर तपमें विघ्न डालनेकी इच्छासे वहां उतरगयीं। हे भारत ! सौरभयो, समोचि, बुद्धदा, लता और मैं यह पांच एकत्र हो कर उस ब्राह्मणके यहां एकवारही जा पहुंची। हे वीर ! हम उनके लुभानेके लिये हंसने और गीत गाने लगीं, पर उस विप्रने किसी प्रकारने हमारी आर-ध्यान नहीं दिया। उनका मन निर्मल तपस्यामें निश्चल बना रहा, किसी प्रकार नहीं टला। हे क्षत्रिय-नर ! अनन्तर उन्होंने क्रोधित होके हमको यह शप-दिया, कि तुम ग्राह वनके जलमें सौ वर्ष चरा करागी।

अर्जुन वनवास पञ्चमे दीसो, सतरह

अध्याय समाप्त।

वर्गा वाली, कि हे भरतवंशोद्भूत ! अनन्तर हमन कातर होकर उन अव्युत तपोधनकी शरण-लेकर कहा, कि हे तपोधन ! हमन रूप, यौवन और कामके अहङ्कारसे यह अनुचित कार्य किया है। हे विज ! हमारी क्षमा करनी याग्य है। यही हमारे लिये मृत्युवन्त हुआ है, कि हम ऐसे जतन्द्रिय सुनिका लुभानेकी इच्छासे यहां आई है, धर्मवारी लोग विचारते हैं, कि नारी वधके अयाग्य बनायी गयी है, सो आप हमारी हिंसा न करें। हे धर्मज्ञ ! पण्डित लोग कहते हैं, कि ब्राह्मण सर्वप्राणियोंके मित्र हैं, हे कल्याण-सदगुरु ! पण्डितोंके उस वचनको सत्य मान दें। शिष्ट लोग शरण लिये हुए लोगोंकी रक्षा करते

हैं; हमने आपकी शरण ली है, सो आपको हमारी क्षमा करनी चाहिये।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे वीर ! अनन्त सूर्यवन्दमाकी उजला रखनेवाले शुभकर्मकिये धर्मात्मा वह ब्राह्मण असुराओंकी यह बात सुनके प्रसन्न हुए और बोले, कि शत और शत सहस्रका अर्थ अनन्तकालभी होता है, पर मैंने “शत वर्ष” यह शब्द कहा है, उनका अर्थ सौही होगा, अनन्तकाल नहीं होगा। तुम जलचर ग्राह वनके पुरुषोंकी पकड़ा करागी, पर शत-वर्ष पूर्ण होने पर एक पुरुषश्रेष्ठ तुमका पकड़ कर स्थल पर उठा लेगा, तब तुम फिर अपना रूप प्राप्त करागी, मेरी बात कभी झूठी नहीं ठहरेंगी। मैंने पहिले कभी-हसींभी झूठी-बात नहीं कही है। तुम्हारे कुटुम्बका पाने पर वे सब तीर्थ, नारोतीर्थ नामसे प्रख्यात होकर साधुओंके तारनेवाले और पुण्य-दायी बनेंगे। वगा बोली, कि अनन्तर हम उन ब्राह्मणकी प्रणाम कर परिक्रमा दे दुःखी चित्तसे वहांसे भागकर सोचने लगी, कि जो महापुरुष हमका स्वरूप दिलावेगी उनसे कहा थोड़े कालके बीच हमारी भेंट हो सकती है। हे भारत ! हम सब ऐसी चिन्ता करतो हुई, पल भरमें महाभाग देवार्पका देखकर प्रसन्न चित्तसे उनके पाव पर सिरनाथके लज्जामें मुह नीचे कर खड़ी रह्यो। उनके हमारे दुःखका कारण पूछने पर हमने आर्थापात सब व्योरा कह सुनाया। वह हमारी बात सुनके बोले, कि दाक्षिण-समुद्रमें प्रायः जलमरी ठोरमें पांच तीर्थ हैं, तुम वहां जाओ, देर मत करा। उस स्थानमें शुद्धात्मा पुरुषश्रेष्ठ पाण्डु पुत्र धनञ्जय तुम्हारी इस दुःखसे निर-न्दह बचावेगा। हे वीर ! हम सब उन मह-पुरुषका वचन सुनके यहां आयी थीं। हे अनन्त ! अब सचमुच तुमसे मुक्त होगई। मेरी व-चार सखी इसी प्रकार दूसरे जलमें हैं, हे वीर !

तुम इस प्रकार उन चारोंकी भी सुकृत्कर शुभ कर्मका फल लो ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भूपाल । अनन्तर वीर्यवन्त पाण्डवश्रेष्ठ अर्जुनने प्रसन्न मनसे उन सर्वोंहोंकी उस शापसे बचाया । हे महाराज । अस्त्ररायें उस जलसे उठके अपने पहिलेके रूपमें दोखपड़ीं । इस प्रकार अर्जुन उन पशुतीर्थोंका सुधारकर उनकी विदाकर देके चित्राङ्गदाकी देखनेके लिये फिर मणिपुरकी पधारे । हे राजन । तब उनके वीर्य और चित्राङ्गदाके गर्भसे उपजे बभ्रुबाहन नामक पुत्र वहा राजा हुआ । पार्थ चित्राङ्गदाका देखकर वहासे माकर्णकी ओर चले ।

अर्जुन वनवासपर्वमें दसौ अठारह अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर अति विक्रमो अर्जुन पाश्चिम प्रदेशमें जितने तीर्थ और पुण्य स्थान हैं, एक एक कर उन सर्वोंमें गये और पाश्चिम समुद्रमें जितने तीर्थ और स्थान हैं, वहा घूम घूम अन्तमें प्रभास तीर्थमें जा पहुँचे । मधुसूदन साधवने सुना, कि अति पुण्ययुक्त सुन्दर प्रभास तीर्थमें अजेय सखा बोभत्सु जा पहुँचे हैं । अनन्तर वह उनको भेटके लिये वहा गये । उस प्राभासमें कृष्ण और पाण्डवसे परस्परकी भेट होने पर दाना धारे सखा ऋषि नर और नारयनरूपी कृष्ण तथा पाण्डव एक दूसरेका गले लगाके कुशलहेम पूछकर उस ठौरमें बैठे वासुदेव अर्जुनका भक्षण वृत्तान्त सुननेको इच्छासे बोले, कि हे पाण्डव ! तुम क्यों इतने तीर्थोंमें फिरा करते हो ? अर्जुनने आर्षापान्त सब कह सुनाया । प्रभु वाश्यायने सुनकर कहा, कि यह उचितही हुआ है । अनन्तर वे दोनों प्रभासमें मनमाने विहारकर रहनेके लिये रथतक पहुँचे पर गये । इसकी पहिलेही

कृष्णकी आज्ञासे नौकारोंने पर्वत पर भंति भंतिकी भोजनकी सामग्री बनवा रखी थी, दत्तनी कि जिनसे पहाड़ छिप गया था । अर्जुन वासुदेवके साथ वहा भोजनादि कर और नट नाचनेवालोंके नाच आदि देखने लगे । आगे महामति पाण्डव उनकी यथोचित पारितोषिक देके विदा कर भले प्रकार सजो सजे पर जाकर सीये । अनन्तर महाभुज अर्जुन उस शुभ बिछौने पर लेटकर कृष्णसे भंति भतिकी नदी सोते पर्वत, वन आदि की कथा कहने लगे । हे जनमेजय ! वह इस प्रकारकी नाना कथा कहते हुए सी-गये । आगे रात बीतने पर भीटे गेते स्तुतिपाठ और वीण को ध्वनिसे जग उठे, और नित्यकृत्योंका अन्त कर यादवोंसे नमस्कार किये जाय सुवर्णके रथ पर हारकाकी गये । हे जनमेजय ! कुन्तीनन्दनके गौरवके लिये हारकापुरीके राजपथ, फुलवाड़ी और भवन आदि सब ठौर सजाये गये थे । सैकड़ों सहस्रों हारकावासी अर्जुनको देखनेके लिये राजपथ पर वेगसे पड़चने लगे, पाण्डवदर्शनके लिये सैकड़ों सहस्रों भोज वृष्णि और अश्वकवशी नर नारियोंकी बड़ी भीड़ लगी, अर्जुन भोज वृष्णि और अश्वकवशियोंसे ययायोग्य सत्कृत हुए, नमस्कार याग्य जनाका नमस्कार किया, और उनसे प्रणाम किये जाय और सब कुमारोंकी पावकगी ले रुम अवस्थावालोंकी चारचार गले लगाया । आगे कृष्णके साथ भंति भतिके रत्न तथा भाग्यकी सामग्रियोंसे भरे पूरे सुन्दर भवनमें बहुत दिन काटे ।

दसौ उन्नीस अध्यायमें अर्जुन वनवास पर्व समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर कुछ दिनों तक उस रेवतक पर्वत पर वृष्णि और अश्वकवशियोंका उक्तव होने लगा । भोजन

अश्वकवशी वीर उस गिरि सम्बन्धी उत्सवमें सहस्रों ब्राह्मणोंकी भांति भांतिकी सामग्री दान देने लगे । हे महाराज । रैवतक पर्वतकी चारों ओरकी उपत्यका और अधिव्याधियों रत्नोंसे सजे कल्पवृक्ष समान कामनाओंकी वस्तुओंसे भरे गृहोंसे सुहाने लगी । बाजावाली नाचनेवाली और गानेवाली नाना भक्तिके बाजे नाच और गीत आरम्भ कर दिये । अति वीर्यवान्त वृष्णिवंशी कुमारगण सज धज कर सुनौले रथों पर उधर घूमते हुए सुहाने लगे । सैकाड़ों, सहस्रों पुरवासी पत्नी और साथियों समेत अनेक प्रकारके यान पर टहलने लगे । कोई कोई पैदलही घूमने लगा । हे भारत । रैवतीके साथ प्रभु हलधर मधुसे मतवाली सहचर गन्धर्व्वोंसे घिरे जाय घूमने लगे । वैसेही सहस्र नारियोंके साथ वृष्णियोंके राजा प्रतपी उग्रसेन सहचर गन्धर्व्वोंसे घेरे जाय घूमने घामनेमें प्रवृत्त हुए । युद्धमें कटोर शत्रु और सुकिनी-कुमार मधुसे मतवाली हो सुन्दर माला और वस्त्र पहिने देवोंको भाति विहार करने लगे । अक्रूर, सारण, गद, वभ्रु, विरथ, निशठ, चारुदेण, पृथु, विपृथु, सत्यक, सात्यकि, भङ्गकार महारव, हाह्मिन्ध, उद्भव, और दूसरे बृहतेरोने अलग अलग स्त्री और गन्धर्व्वोंके साथ वहा टहलते हुए उस महात्सवकी शोभा बढ़ायी । इस प्रकार उस मनोहर अति आश्चर्य्य कौतूहलके वनाव होने पर वासुदेव और पार्य्य एकत्र हो टहलने लगे । उन्होंने उधर उधर घूमते समय सखियों ने धरो नाना आभूषणोंसे बनीठनी, गुम्फलक्षणोंसे जड़ी वसुदेवकन्या सुभद्राको देखा । अर्जुन उन कोलाहली वालाको देखकर के ही मदनवाणसे मोहित हुए । हे भारत ! पण्डरीकाक्ष दृष्ट्वा उनके मनकी सुभद्रा पर वृद्धत चलने देखके हँसकर बोले, कि यह क्या है ? जननीके मनमें भी काम डामाडोल मचाता है ? हे पार्य्य । यह कन्या भारणकी सगी बहिन,

मेरीभी बहिन है, इसका नाम सुभद्रा है । यह बालाही मेरे पिताकी प्यारी कन्या है । तुम्हारा चित इस पर झुका हो, तो कहो, मैं स्वयं ही पितासे यह कहूँ, तिरुसे तुम्हारा मङ्गल हो सकता है । अर्जुन बोले, कि वसुदेवकी कन्या वासुदेवकी बहिन अनुपम रूपवती यह कन्या किसके मनका मोहित न करेगी ? तुम्हारी बहिन यह सुभद्रा यदि मेरी रानी बने, तो इसमें सन्देह नहीं, कि तुमसे मेरा सर्व्व प्रकार काव्याण होगा । हे जनार्दन ? कहाँ, अब किस उपायसे सुभद्रा मिल सकती है । यदि मनुष्य को सामर्थ्य में हो तो सर्व्व प्रकारसे वह कदा वासुदेव बोले, कि हे पुरुषश्रेष्ठ पार्य्य ! स्त्रियोंका स्वयंवर विवाहका नियम तो है, पर उसकी शङ्का होरही है, क्योंकि नारयाका स्वभाव और हृदय शूरता पाण्डित्य आद पर नहीं चलता । वे पहिले देखनेमें सुन्दर पर मोहित हाती हैं । अतएव शूर, स्त्रियोंके लिये बलसे कन्या हर कर विवाह करनेके लक्ष्य नियमकी धर्मसंगण, प्रशंसा करते हैं, हे अर्जुन । तुम उस विधानके अनुसार बलपूर्व्वक इस शुभलक्षणा मेरी बहिनका हरता, स्वयंवरका प्रयाजन नहीं है, क्योंकि कान जानता है, कि सुभद्राका क्या आभरण है ? अनन्तर अर्जुन और कृष्णान क्या करना उचित है, उसका निश्चय कर इन्द्रप्रस्थमें धर्मराजके यहां शीघ्र जानेवाला दूत भेज दिया । महाबाहु पाण्डवनन्दन युधिष्ठिरने वह सब वृत्तान्ती सुनतेही उसकी आज्ञा भेजवायी ।

सुभद्राहरण पञ्चमें दोस्त दोस्त

अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले कि हे जनमेजय ! अर्जुन युधिष्ठिरकी आज्ञा पाने पर पुरुषश्रेष्ठ धनश्रुके

वासुदेवके उपदेशसे क्या करना है, ठीक कर
 उनको आज्ञा लेकर यात्रा की। वह खड्ग, कवच,
 गोधा, उकली रत्नक आदि पहिने बड़ सनाह
 हो श्रेष्ठ और सुग्रीव नामक घोड़े जोते, जाल-
 मालासे सजे, विधिपूर्वक कल्पित, सर्वशास्त्रोंके
 अनुसार बने, प्रज्वलित अग्नि समान चमकीले
 सुनीले, बादल-सदृश गभीर शब्द करनेवाले
 और वपुलीके हर्षनाशी रथ पर चढ़ आखेटके
 मिसमे चलने लगे। सुभद्रा शैलराज रैवतकका
 पूजकर परिक्रमा दे, देवाको पूजा कर और
 ब्राह्मणोंसे स्वस्ति कहलवा कर द्वारकाकी ओर
 जा रहो यो, कि ऐसे समय कामवाणसे घायल
 कुन्तीनन्दन धनञ्जयजे उसको और दौड़के
 एकायक उस सञ्जाद-सुन्दरी सुभद्राको रथ
 पर चढ़ाया। पुरुषव्या अर्जुन इस प्रकारसे
 सुन्दरी सुभद्राको लेके सुवर्णरथ पर अपने
 नगरको आर जागे लगे। सैनिकलोग सुभद्राको
 अर्जुनसे पकड़े जाते देखकर चिल्लाते हुए
 द्वारका नगरकी ओर दौड़े। उन सबोंने
 सर्व प्रकारसे दिवसभा समान उस राजसभामें
 उपस्थित हो सभापालसे अर्जुनका विक्रम-
 वृत्तान्त कह सुनाया। सभापाल उनसे सब
 वृत्तान्त सुनके सुवर्णसे सुहावनी बड़ी आहट
 मचानवाली युद्धके लिये रजनकी सूचना देनेवाली
 भरी वज्रान-लगा। भाज-वृष्णि और अधिक
 जाग उठ भरीके सदृश उदास हूँ, अनुपान
 तेज करके चार। तारसे बटुरने लग। तेज अग्नि
 जिनप्रकार अपना आधार इस्मन-पकड़ लेता
 है, वैसे-ही सहारयो पुरुषव्या वृष्णा और
 वज्र जान परम सुन्दर चादरोंसे आच्छादित
 भाग्योसे उचित आनन्दके उजाले समान चम-
 काल सैकड़ा सुनीले सिंहासना पर जा बैठे।
 देवाके सत्त्वानमका सति उनके बटुरने पर
 सभापाल उनसे अर्जुनका किया कार्य कह
 सुनाया। प्रवचनसे नटझाल कवि गार्वित वे
 औरगण उस वृत्तान्तको सुनतेही रसाञ्ज

सिंहासनोंसे उठ खड़े हुए। उनमेंसे किसी
 किसीने कहा, कि तुरन्त रणकी तय्यारी करो,
 किसी किसीने कहा, कि प्रास लाओ, किसी
 किसीने कहा मृत्युवान शरासन और बड़े बड़े
 कवच लाओ, किसी किसीने चिल्लाकर सारथीको
 पुकारके कहा, कि तुरन्त रथ जातो, कोई
 कोई शीघ्रताके लिये सुवर्ण जड़े घोड़े लेकर रथ
 जोतने लगे। तब रथ कवच ध्वजा आदि
 लानेके लिये वीरोंका कालाहल उड़ने लगा।
 अनन्तर गलिन ब्रनमाला डाले कैलासपर्वत
 रुमान नीलाब्धर पहिरे मदसे उभाले मदीनत-
 बलदेवजो बाले, कि जनार्दनके कुछ न कहतेहो
 तुम यह क्या कर रहे हो? इनका अभिप्राय न
 जान करकही तुम क्रोधके मारे गर्जन कर रहे
 हो। यह महामति कृष्ण पहिले अपना मत
 प्रकट करें, आगे वह जानके तुम वेगसे वही
 पूरा करना। अनन्तर तब जन धीमान
 हलधरकी सुनने योग्य वह बात सुनके उनका
 साधु साधु करकर चुप हो, फिर सभामें बैठ
 गये, तब शत्रुमर्दन रामने वासुदेवसे कहा
 कि, जनार्दन तुम क्यों कुछ नहीं कहते? क्यों
 उदासोन समान बैठे ताक रहे हो? अथत्त।
 हम सबने पृथापुत्रका भले प्रकार सत्कार
 किया था। वह कुबुद्धि कुलाहार तैसे
 सत्कारके योग्य नहीं है, जो सुगंशी करके
 अपना परिचय देता है, वह कामो अन्न-खाकर
 अन्नके वासनको ताड़ नहीं सकता है। यद्यपि
 ऐसा वैवाहक सख्त बनानेका मन चाहता हूँ,
 तभी कोई ऐश्वर्य चाहनेवाला पहिलेका उपकार
 कारण कर ऐसे चाहनेके कामो हाथ नहा
 डालत है! उस पाखवन हमारा अनादर
 कर और तुमको तुच्छ रस के अजनी मृत्यु-
 खड्ग सुभद्राका हर लिया है। गावन्द।
 उसने मेरा शर पर हात मारा है; मैं सदैव
 जिस प्रकार दूसरके पावको छू नहीं सकता,
 तदिहो मैं भी अभी यह न सह सकूँगा! मोक्ष, वृष्णि

और अन्धका सबोंने बादल और नगाड़ोंकी भांति उन गरजते हुए बलदेवकी बातको मान लिया ।

दोसौ इच्छीरवे अर्थात् सुभद्राहरण
पर्यन्त समाप्त ।

श्रीशम्भायनजी बोले, कि अनन्तर वृष्णि-
योंके निज निज वीर्यके अनुसार बार बार इस
प्रकार कहने पर, वासुदेव धर्मार्थयुक्त यह
बचन कहने लगे, कि अर्जुनने जो कार्य
किया है, उससे हमारे कुलका अपमान नहीं
हुआ, वास्तवमें इसका सन्देह नहीं कि
उन्होंने हमारा सम्मान बहुत बढ़ाया है । वह
जानते हैं, कि हम धनके लोभी नहीं हैं, इस
लिये उन्होंने धन देकर विवाहकी चेष्टा नहीं
की है । और स्वयंवरमें शङ्का है, सो उन्होंने
उसकाभी प्रयत्न नहीं किया । पशुकी भांति
कन्यादान किसी क्षत्रियका प्यारा नहीं है,
और कन्या बेचनाभी किसी मनुष्यकी सम्मति-
युक्त नहीं । सुभद्राको जान पड़ता है, कि इन
सब दोषोंकी भली भांति आलोचना करकेही
अर्जुनने एकायक कन्या हरली है । सुभद्रा
जैसी यशस्विनी है, पार्यभी वैसेही गुणवन्त है,
सो यह सम्बन्ध अयोग्य नहीं है ; इसकाभी
विचार कर उन्होंने कन्या बलसे हरली है ।
फिरभी भरतवंशी यशोवन्त शान्तनुवन्दन कुन्ती-
भोजके दौहित्र उस अर्जुनको ऐसा कौन है, जो
मित्र बनाना न चाहता होगा ? विशेष इस
त्रिलोकी मरमें भगनेत्र हर विरूपाक्ष महा-
देवके बिना कोईसी ऐसा नहीं देखता, जो
बलपूर्वक अर्जुनको परास्त कर सके । हे
आर्य ! उनका वह रूप, निरे वे सब वाड़े, वह
स्वयं वैस योद्धा और वैसी शीघ्रतासे शस्त्र
प्रयोग । यह सब बने रहने) इन्द्रलोक आदि
जिन भर लोक हैं, उनमें ऐसा कौन होगा जो
इसका सामना कर सके ? सो मेरा विचार

यह है; कि तुम तुरन्त दौड़कर इस वन-
धनञ्जयको डाढ़स देके लौटा लाओ । यदि
बलपूर्वक तुम सबोंकी परास्त कर
राजधानीमें जाय, तो आजही तुम्हारा
लोप हो जायगा, डाढ़स देनेसे तुम्हारी
जय नहीं होगी । हे जनाधिप ! यादों
वासुदेवकी वह बात सुन कर उसके अनु-
कार्य किया । प्रभावी अर्जुनने वृष्णि-
आदर पांय हाकापुरीमें लौटकर सुभद्रा
विवाह कर नाना प्रकार मनमाने विचार
वर्ष भर काल गंवाया । अनन्तर पुष्करतीक्ष्ण
जाय शेष काल काटने लगे । बारह
होजाने पर खाण्डवप्रस्थमें लौट राजा युधि-
रके निकट जा पड़चे । आगे वह विनयपूर्वक
राजा युधिष्ठिर और ब्राह्मणोंकी पूजा
द्रौपदीके निकट गये । द्रौपदी प्रेमकोरि
साथ उनसे बोली, कि हे कुन्तीपुत्र ! फिर यह
क्यों ? जहां सात्वतपुत्री है, वहीं जाओ ; रस्ती
बन्धी वस्तुके ढेर पर एक और भी कठिन बंध
ढालनेसे पहिलेका बन्धन अवश्यही टूट
हो जाता है, अब तुम नये प्रेमके जालमें बंध
फंसे हो, सो पहिलेका बंधा मेरे प्रेमजाल
बन्धन ढीला होगया है । धनञ्जय द्रौपदी
इस प्रकार नाना रीतसे बिलपत देकर
बार बार समझाने लगे और बार बार
मगी । अनन्तर उन्होंने लाल पाटलरपण
हुई सुभद्राके यहाँ जाय वेगसे उसका गोपी
वेष बनाके उसकी अन्तःपुरमें भेजवाया ।
वीरपत्नी यशस्विनी ताम्र रङ्गकी बड़ी पट्टी
आखवाली उस बालाने उस वेषमें और
सुहाकर परम सुन्दर भवनमें पङ्कजके पत्रों
कल्याणी कुन्तीके निकट जाय उनके पास
प्रणाम किया । कुन्तीने आत प्रसन्न हो
सुन्दरी जयो वधू सुभद्राका मिर इस
अनेक अशीम दी । अनन्तर पूगी नन्दन
समान मुखवाली सुभद्राने वेगसे द्रौपदी

निकट जाय उसकी प्रणाम किया और कहा,
कि मैं आपकी दासी आयी हूँ। कृष्णा उसी
प्रणाम उठकर माधवकी वहिनकी गले लगा
प्रतीतिपूर्वक बोली, कि तुम्हारे पतिका कोई
हस्तपत्र न रहे। सुभद्राने तब प्रसुद्धित चित्तसे
“तयास्तु” यह बात कही।

है जनमेजय। अनन्तर महारथी पाण्ड-
वगण और कुन्ती परम प्रीति पूर्वक रहने
लगे। शत्रुओंके दुःखदायी विशुद्धात्मा पण्डरी-
कात्त श्रीकृष्णाचन्द्रने जब, सुना कि पाण्डवश्रेष्ठ
प्रज्जुन इन्द्रप्रस्थमें जाकर राजधानी को पहुंचे है,
तब वह युद्धविद्यामें पण्डित महारथी वीर सेना-
ओंकी अच्छी रखवारीमें भाता और पुत्रोंसे घेरे
जाय और श्रेष्ठ वृष्णि तथा अन्यकोंसे मिलकर
बलभद्रके साथ खाण्डवप्रस्थमें आ पहुंचे। और
धीमान अति कीर्तिवन्त दाता अक्रूर, वृष्णि
सेनापति अतितेजस्वी शत्रुनाशी अनावृष्टि, बड़े
प्रशोवन्त उडव, साक्षात् ब्रह्मर्षिके चेले अति
पुद्गिमान महानुभव सत्यक, सात्यकि, सात्वत,
कृतवर्मा, प्रद्युम्न, शाब्य, निशठ, शङ्ख, चारु-
देश, विक्रमी भिल्ली, विप्रशु, सारण और
महामुज पण्डित गद, यह सब और बहूतरे
सरे वृष्णि, भोज और अन्यक अनेक यौतुक
लिकर उस स्थानमें आये। राजा युधिष्ठिरने
प्रहसुनकर, कि माधवका शुभागमन हुआ,
उनको आदर पूर्वक निवालानेके लिये नकुल
और सहदेवको भेजा। बड़े भारी वृष्णादलने
उन दो पुरुषोंसे आदर पूर्वक निवाये जाय
खाण्डवप्रस्थ पुरीमें प्रवेश किया। तब हृष्ट पृष्ट
जनोंने भरे वणिकोंसे सुहावने उस नगरकी
दोर और दोरमें फूलोंकी माला लटकती, जलती
हुई सुगन्धी अगुरुकी गन्ध डड़ती, तथा पवित्र
गन्धवाले चन्दनका रस छिरका या और वहाके
सब राजपय बाफ आर्द्र और ध्वजा पताका-
ओंसे सुहावे दे। वृष्णि, अथक और भोजोंसे
पुरुषोत्तम महामुज केशव रामके साथ

उस नगरमें, आकर सहस्रों ब्राह्मण और
पुरवासियोंसे आदर पूर्वक ग्रहण किये गये,
अन्तर इन्द्रपुरके समान राजभवनमें प्रवेश
किया। राजा युधिष्ठिरने विधि पूर्वक बलदे-
वजीकी स्वागत कर श्रीकृष्णाकी सिरसूषके
हाथोंसे गले लगाया। कृष्णने प्रसन्न मनसे
विनयपूर्वक, उनकी पूजा कर पुरुषश्रेष्ठ
भीमको विधिपूर्वक नमस्कार किया। युधि-
ष्ठिरने उन सब वृष्णि और अन्यकोंकी यथा
नियम आदरसे ग्रहण किया। उन्होंने किसी
किसीको गुरुकी भाति प्रणाम किया, किसी
किसीसे समअवस्थावालेके सदृश व्यवहार
किया और किसी कीसीको प्रेमालापसे
सम्मानित किया; और किसीने उनको प्रणाम-
किया। अति यशोवन्त श्रीमान कमलनेत्र
कृष्णने विवाहकी रीतके अनुसार वर और
वरकी आरकी लोगोंको अच्छे धन दिये और
सुभद्राकी आर्तयाके देने योग्य यौतुकके
स्वरूपमें धन दिया। उन्होंने पाण्डवोंकी
सुशोभित सारथि समेत चार घोड़ोंके काङ्गि-
णीजाल मालासे सुहावने सहस्र सुनौले रथ,
मथुरा खण्डकी तेजस्वी बहूत दूध देने
वाली दश सहस्र गौ, चन्द्रमा समान
रङ्गवाली विशुद्ध सुवर्णसे सजी सहस्र घोड़ी,
काली केशरवाली सुफेद पवन समान तेजाखनो
अच्छी सिखी-सिखायो सहस्र घोड़ी, स्नान-
पानात्नव-प्रयाग दक्ष सेवामें तेज युवती गौर
रङ्गकी सुवैद्य पहिनी, रंगोंसे कूटी, सुन्दरी
भली प्रकार दनीठनी गर्लमें सोनके सौ सुहर
पाहनी हुई सहस्र दासी वाहिक देशीय सैकड़ों
सहस्र घोड़े, भाति भातिके मूल्यवान वस्त्र
और कम्बल आदि अनेक सामग्रो प्रसन्न मनसे
दे दी, और सुभद्राकी मनुष्यके लेजाने योग्य
दश भार विशुद्ध और विन मिलावटी दो प्रकार
आनके रंगका सुवर्ण यौतुकसे दे दिया।
हलधर रामने प्रसन्न हो विवाहके विषयमें

सखस्यको बड़ाई बढानेके लिये नाना मद प्राट करनेवाले पहाड़के समान बड़े साहस प्यारे, युद्धसे सुह न मचने वाले सुवर्णहारसे सजे, सौनकती हुई घण्टालिया लटकाये बैठनेके होड़े लगाये अनेक प्रकारके सुन्दर सुन्दर सहस्र हस्ती महावित समेत धनञ्जय को दिये । वस्त्र कम्बलादि रूपी फेनभरे बड़े बड़े गज रूपी बड़े ग्राहोंसे पूर्ण और झण्डेरूपी शैवालोसे पूरे उस अनन्त धन-रत्न रूपी जलकी लहरोंके प्रशस्त पाण्डवरूपी सागरके भर जानपर वह शत्रुओंकी शोकमें डुबाने लगा । धर्मराज युधिष्ठिरने वह सब लेकर द्वाणा और अरुकोके महाराथियोंका भली प्रकार सत्कार किया । अनन्तर पुण्डवन्त जन जिस प्रकार देवलोकमें विहार करते हैं, तैसेही महात्मा कुरु, द्वाणा और अधिक वंशी लाग वहां एकत्र होकर आनन्द लूटने लगे । वे अपना अपनी प्रीतिके अनुसार बहा ठौर ठौरमें बड़े बड़े यानों पर घूम और ताल बजा वजाक नाचन गानेका बड़ा कोलोहल मचाते हुए यया याग्य व्यवहार करने लगे । आत वाय्येवन्त महारथी अत्यक्त और द्वाणा-लाग उस नगरमें बहूत दिनोंतक आनन्द उड़ा अन्तमें कौरवोंसे पूजे जाय उनके दिये अमल रत्नोंकी ली रामका आग करके द्वारका पुरोमें गय । हे भारत ! बड़े यशोवन्त महानु-भव वासुदेव अर्जुनके साथ उस सुन्दर इन्द्रप्रस्थ नगरहीन रहे आर उनके साथ यमुना तटपर भृगु शूकर विद्व करते हुए आखेटका आनन्द लेने लगे ।

अनन्तर शचीने जिस प्रकार प्रख्यात जयन्त-की प्रसव किया था, तैसेही कृष्णकी प्यारी दाम्पत्य दृष्ट्याणी सुभद्रान दार्धवाह चौड़ी-पतावाले बैल समान नखवान नरामें चले शत्रुसैन्य और अभिमन्युका प्रसव किया । वह शत्रुनाशो दक्षपथ अर्जुन-कुमार अभी

अर्थात् निर्भनचित्त मन्युयुक्त हुए थे, सी स-लोग उनको अभिमन्यु कहते थे । यज्ञ-में मयनद्वारा जिस प्रकार शमीगर्भसे य-उपजता है, वैसेही सात्वतीके गर्भसे यग-उस महारथी अभिमन्युने जन्म लिया था हे भारत । उस कुमारके जन्म होतेही वं-तेजस्वी कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने ब्राह्मणोंकी सहस्र गौ और दश सहस्र निका दा-दिया । चन्द्रमा जिस प्रकार सब-प्रजाओंका प्यारा है वैसेही अभिमन्यु बालेपनसे पिता, चचे और बाह-देवके प्यारे बने । दृष्टान्त उनके स्व शुभ जात क-किये थे । वह असाधारण बालक शुभ तिथिने चन्द्रमाके समान दिन पर दिन बढने लगा । वेदका-जानकार-शत्रुनाशो अभिमन्युने अर्जुनके आदान, सन्धान, साक्षिण-विविनवतन, स्थान, सुष्ठि प्रयोग, प्रतिवार, मण्डल और भेद-दशाङ्ग-युक्त तथा मन्त्रमुक्त, पाणिमुक्त, सुक्ता-मुक्त और असुक्त यह चार-पाद-युक्त सम्पूर्ण-दिव्य और मानुषी वेदकी शिक्षाकी । महावली अर्जुनने उनको अस्त्र-विविज्ञान और सौध और उत्सर्पण प्रसर्पण आदि सब क्रियाओंके विषयमें अच्छी शिक्षा दी, उन्होंने शास्त्रमें और प्रयोगके विषयमें उसका अपने सदृश वन्या और उसे गुणयुक्त परपराभव सर्व लक्षणोंमें भरे, कठोर, बैलके समान कम्बेवाले बड़े-मुखवाले सर्प समान, सिंह सदृश दर्पयुक्त, ब-चापधारी उत्कृष्ट गजकी भांति (वक्रासी, बादल और नगाड़ेके समान गरजन वाली पूरुषेन्द्रान्न और गूरता वीर्य तथा डोलहौलमें कृष्णकी भांति देखकर सन्तोष माना । देवराज जिसप्रकार अर्जुनका देखते थे अर्जुन उस पुत्रकी वंशका देखत रहे ।

शुभ उद्भवा पांडवालोमेंसे पांच पत्नियां पांच पञ्चत समान बड़े बोर पयसु प्रा-किये । अर्थात्तन जिसप्रकार देवकी प्र-किया था, वैसेही पांडवालीने युधिष्ठिर

प्रतिविधा, वृकोदरसे सुतसोम, अर्जुनसे अत-
कर्म, नकुलसे शतानीक, सहदेवसे अतसेन
ये पांच महागृही वीरपुत्र प्रसव किये ।
ब्राह्मणोंने शास्त्रोंके अनुसार यह जानकर,
कि युधिष्ठिरका पुत्र प्रतिविम्ब पर्वतकी
भांति शत्रुको मारने योग्य होगा, उसका नाम
प्रतिविम्ब रखा । सहज सोमयज्ञ करनेके
पीछे भीमसेनसे सोमको उजाते समान तेजस्वी
बड़े चापधारी सुतके उपजनेसे उसका नाम
सुतसोम हुआ । किरीटोके अनेक अतकर्म
कर लौटने पर उनका वह पुत्र उपजा था,
सो उसका नाम अतकर्म हुआ । कुरुवशकी
कोर्त बढानेवाले शतानीक नाम एक राजा
थे, नकुलने उस राजाके नामके अनुसार अपने
•पुत्रका नाम शतानीक रखा था और सहदेवसे
द्रौपदीके जिस पुत्रने जन्म लिया था, वह
कुत्तिका नक्षत्रमें हुआ था, सेनापात कार्तिकेय
कुत्तिकाको सन्तान थे, सो सहदेवके पुत्रका नाम
अतसेन हुआ । हे महाराज ! द्रौपदीके
दुमारामें हरकने एक दूसरेके वर्ष वर्ष भर
पीछे जन्म लिया था, वे सब एक दूसरेके हित
चाहनेवाले और यशोवन्त हुए थे । हे भरतवश
श्रेष्ठ । पुराहित धीमन्ने विधिपूर्वक उनका
जातकर्म चूड़ा उपनयन संस्कार कर्म एकके
बाद दूसरा, उसी रीतसे सब कराया । अनन्तर
सुचरित्र बालकोंन वेद पढ़के अर्जुनसे सब
।द्वय और मानुषी अस्त्रोंकी शिक्षा ली । हे
राजशार्ङ्ग ! पाण्डवोंन देवदुमारोंके समान
उन सब चीड़ों छातीवाले कुमारोंका लाभ
कर प्रशन्न हुए ।

हो सो बादसर्वे अध्यायमें यौतुक-आहरण

पर्व समाप्त ।

आश्वमेधयज्ञकी वृत्ति, कि हे भरतश्रेष्ठ ।
पाण्डवराजा धृतराष्ट्र और शान्तनुवन्दन

भीमको आज्ञासे इन्द्रप्रस्थमें बस कर दूसरे
राजाओंकी वशमें लाने लगे । आत्मा जिस
प्रकार पुण्ड्रलक्षणयुक्त शरीरकी अवलम्ब कर
सुखसे विराजती है, वैसे ही सब प्रजा धर्मराज
युधिष्ठिरकी आज्ञा कर सुखसे रहने लगी ।
नीतिमान युधिष्ठिर धर्म, अर्थ, काम इन तीनों
वर्गों की, अपने वस्तुओंकी भांति इस प्रकार
सेवा करने लगे, कि उनमें एक दूसरेका विगाड़
न उभड़ने पावे । धर्म, अर्थ, काम, मानी यह
देह धरके धरती पर उतर आये थे, राजा
युधिष्ठिर मानी उनमें एक चौथे बन कर शोभा
पाने लगे । प्रजाओंने उन राजाकी अच्छे वेद-
पाठी बड़े यज्ञकारी और सम्पूर्ण पुण्यवन्त
प्राप्त किये थे । उनके साम्राज्यके दिनोंमें
राजाओंकी लक्ष्मी न टलती, चित्त परब्रह्मकी
और भुक्ता और धर्म बद्धतही हाड पर
था । जिस प्रकार प्रयुज्यमान चतुर्विंशसे
फैला हुआ बड़ा यज्ञ सुशोभित होता है,
वैसेही धर्मराज युधिष्ठिर चार भाइयोंसे और
भी अधिक सुहाने लगे । जिस प्रकार देवगण
प्रजापातजीका घेरकर उपासना किया करते
हैं, वैसेही धीमन् आदि ब्रह्मरूप सद्गुरु प्रधान
प्रधान ब्राह्मणगण उनका चारों ओर घेरकर
उपासना करते थे । पूर्णचंद्रमा समान निर्मल
धर्मराज युधिष्ठिरकी ओर प्रजाओंकी नयन
और मन दोनों एकहीरूप भुक्त पड़े थे ।
यहो नहीं, कि प्रजा उनको राजाही जान कर
प्रेमी बनी थी, वरण वह ऐसेही कार्यसे दत्त-
चित्त होते थे, कि जिनसे प्रजाका सन्तोष
मिले । वह बुद्धिमान बड़े पाण्डव मीठी बाली
बालते थे, उनका वचन कभी झूठा, युक्तिके
विरुद्ध असत्य वा अप्रिय नहीं होता था । हे
भरतश्रेष्ठ ! वह बड़े तेजस्वी पुण्य अपने और
दूसरे सब जनोंके हित साधनमें रुदा तुल्य
भावसे रहकर परम सुखमें आनन्द गधान
लगे । उनके भाइयोंन भी अपने अपने राज

बलसे भूपालोंकी तर्फ करे बिना कण्टक प्रसुदित चित्तसे बसने लगे ।

कुछ दिन बीते, अर्जुन श्रीकृष्णसे बोले, कि कृष्ण ! अब ग्रीष्मकाल आया, यदि तुम-चाहो तो चलो हम यमुनाजोके किनारे-जाय, हे जनार्दन ! हम मित्रोंसे जूट बाधके बहा विहार कर सन्ध्याको फिर लौटेंगे । श्रीकृष्णजी महाराज बोले, कि कुन्तोपुत्र ! मेरी भी इच्छा ही रही है, कि हम मित्रोंके संग सुख-चैनसे यमुना किनारे विहार करें ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भारत । अनन्तर अर्जुन और कृष्ण आपसमें ऐसी बातें कर धर्मराजकी आज्ञा-ले मित्रोंके साथ निकले । वे अनेक पेड़ोंसे घिरो, इन्द्रपुरीकी भाति नाना घरोंसे सजी, खादिष्ट भक्ष्य, भोज्य और पानकी सामग्रीसे भरी, महामूल्य भूति-भातिकी सुगन्धी मालाओंसे सुहावनी, अच्छी-विहारको ठौरमें जा पहुंचे और नाना प्रकारके रत्नसे सुशोभित पुरीमें बिना बिलम्ब जा घुसे । साथे लाग सुखसे खेलने कूदने लगे । स्थूल-कुचवाली सुन्दर नितम्बिनी, मतवाली चाल चलतो युवती श्रीकृष्ण और अर्जुनकी आज्ञासे खेलमें प्रवृत्त हुईं, कोई वनमें, कोई जलमें-कोई घरमें प्रीतिके साथ विहार करने लगी । महाराज । तब द्रौपदी और सुभद्रा मदसे मतवाली वन-उन-सव-स्त्रियोंकी वस्त्र और-गहने देन लगी । कोई कोई नारी आनन्दित-चित्तसे नाचने लगी । कोई कोई गाने लगीं, कोई कोई रमणो हंसो ठट्टेमें मग्न हुईं, कोई-कोई अच्छी मदिरा पीने लगी, कोई-कोई एक दूसरेकी मारने, पीटने तथा रौने लगी ; और कोई-कोई रहस्य युक्ति करने लगीं, वास्तवमें जिसकी जैसी इच्छा थी, वह उसीको परनर्तन प्रवृत्त हुई । तब वह वन वंसी बोगा-रुद्र आदिके मनभावन वाजेसे भर कर वृद्धत सञ्चालना बन गया । हे महाराज ! इस

प्रकारसे बड़ा भारी उत्सव उपस्थित हो जाने पर महात्मा शत्रुघ्नके जयकारो धनञ्जय और श्रीकृष्ण निकटकी एक सुन्दर ठौरमें जाप बड़े-दामो आसनों पर बैठे । वे उस स्थानमें अतोत विक्रमके सम्पन्नमें और दूसरी भाति भातिकी कथा कहते-सुनते हुए खेलने लगे । जिस प्रकार देवलोकमें दोनों अश्विनो कुमार एकत्र विराजते हैं ; तैसेही वासुदेव और धनञ्जन प्रसुदित मनसे उस स्थानमें बैठे थे, कि ऐसे समयमें बड़े सालके वृक्ष समान लम्बे, तपे सुवर्ण सदृश उजाता-वाले, हरी और पिङ्गल रङ्गकी-चमकीली दाढ़ीसे शोभित, लम्बाई और चौड़ाईमें उपयुक्त प्रमाण सम्पन्न बालसूर्यकी भाति, पद्मपत्र-सुखयुक्त, तेजसे-प्रदीप्त पिङ्गल वरण, जटाधारी, चोर पहिने हुए एक ब्राह्मण उनके पास आया । वे लोकोमें न मित्रन योग, तेजसे प्रकाशमान दिजात्तसकी-निकट देखतेही आसन छोड़के खड़े हुए ।

— खाण्डवदाहपर्वमें द्वािसौ-तेईस
अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्त ब्राह्मणने श्रीकृष्णचन्द्रजी महाराज और अर्जुनसे कहा, कि तुम दोनों सब लोकोंमें उद्-वीर हो, इस खाण्डवप्रस्थके निकट विराज हो, मैं वृद्धत-खानेवाला ब्राह्मण हूँ सदा अपरिमित भोजन खा जाता हूँ । अब-तुममें भिक्षा करताहूँ, कि तुम भोजन देकर मुझको प्रसन्न करो । वीर अर्जुन और कृष्ण यह बात सुनके उनसे बोले, कि कहिये, कैसा भोजन भोजन करनेसे आपकी तृप्ति होगी, हम उसका प्रयत्न करेंगे । वे कैसा अन्न जनवावण, इस विषयमें आपमें बात चीत कर रहे हैं कि ऐसे अवसरमें उस ब्राह्मणरूपी भगवानन उत्तर दिया, कि मैं वैसा अन्न खाया नहीं

चाहता हूँ। मैं अग्नि हूँ, जो अन्न मेरे योग्य हो वही मुझको दो। देवराज इन्द्र सदा खाण्डव नामक बड़े वनकी रखवारी करते हैं, सो मैं उसको जला नहीं सकता हूँ। इन्द्रका सखा तक्षक नाम रूप साधियों रुनेत सदा इस वनमें वसता है, इसी लिये वह वज्रधारी सर्व प्रयत्नसे इसकी रक्षा करते हैं, साथ साथ अनेक जीव इस वनमें रहते हैं, उनको जलाने चाहने परमो मैं देवराजके तेजसे मनोरथको सफल कर नहीं सकता हूँ। वह मुझको जलते देखनेसे जलधरकी जलधारासे बुझा देते हैं, सो मनमें खाण्डवको जलानेकी बड़ी चाह रखने पर जला नहीं सकता हूँ। तुम दीनों अस्त्र-विद्यामें पण्डित हो, तुम मेरी सहायता करो, तो मैं इस खाण्डववनकी जला सकता हूँ, तभी मेरा अच्छा भोजन होगा, तुमसे मैं यही अन्न मारता हूँ। खाण्डवदाहके कालमें जो सब जीव इधर उधर भागने पर होंगे, उनकी और जलधरकी जलधाराओंको तुम अस्त्रविद्याके बलसे सब प्रकार रोकना।

श्रीजमजमेयजी बोलें कि हे ब्रह्मन् । भगवान् अग्निने ज्यों देवराजरी रक्षित अनेक जीवोंसे पूरित खाण्डव वनको जलाना चाहा था ? मुझको जान पड़ता है, कि उनके रिसाकर खाण्डवके जलानेकी चाहनेका कोई विशेष कारण होगा। हे ब्रह्मन् । मैं इसका सत्य तल जाना चाहता हूँ, सो यह कहै, कि क्यों वह खाण्डवदाह हुआ था।

श्रीवैशम्पायनजी बोलें, कि हे नरनाथ । खाण्डवदाहके विषयमें ऋषिकी स्वीकृत पौराणिक कथा आपसे कहता हूँ सुनिये । महाराज ! पुराणोंमें सुना है कि पूर्वकालमें बलवक्रमयुक्त मनेन्द्र सप्तम खेताक नामक प्रख्यात एक भूपति । उनके सट्टर धीमान् दाता और वज्रशाली कीर्ति दत्तरा नही था। उन्होंने बहुत दक्षिणा दे दे कर उज्जतिष्ठाम आदि

क्रतु और देवयज्ञ आदि पांच महायज्ञ किये थे। हे महाराज ! उनकी वृद्धि सदा केवल क्रियारम्भ, यज्ञ और नाना दान विना किसी अन्य कार्यमें बूझी नहीं रहती थी। बुद्धिमान पृथ्वीपतिके ऋत्विजोंके साथ बहूत दिनों तक यज्ञ करने पर ऋत्विजोंने धुएँ से घबराकर और उदास होके उन नरेशकी छोड़ दिया। भूपालने बार बार समभाय बुभाय उनको बुलाया, पर उनकी आखें धुंधली हो जानेसे उन्होंने फिर उस यज्ञमें आना नहीं चाहा। अनन्तर भूपालसे उन सब पुरोहितोंकी आज्ञासे दूसरे पुरोहित लाकर उस आरम्भ किये हुए यज्ञकी पूरा किया। कुछकाल बीते महीपालने एक समय सौ वर्षोंमें पूरा होनेवाला यज्ञ करना चाहा, पर उनके पुरोहितोंने उसकी पूरा करना स्वीकार नहीं किया। वेडे-यशोवन्त भूप आलस्य तज मित्रोंके साथ अतियत्नसे शिरनाथ गिड़गिड़ाय समभाय बुभाय दान दे पुरोहितोंकी हाथ जोड़ने लगे। पर अति तेजस्वी पुरोहितोंने किसी प्रकार उनका मनोरथ सिद्ध नहीं किया। तब राजर्षि रिसा कर उन आश्रमोंमें उनके विप्रोंसे कहने लगे, कि ब्राह्मणों ! यदि मैं पतित हूँ और सदा आपकी सेवामें दत्त चित्त न हूँ, तो मैं ब्राह्मणोंसे निन्दित हूँगा और आप उसी क्षण मुझको त्याग दे सकते हैं; पर जब मैं न तो पतित और आप पर अप्रसन्न चित्त हूँ, तब अनुचित रीतिसे मुझको त्यागना वा जिस क्रतुयज्ञको करनेमें मैं उत्थत हूँ उनमें बाधा देना आपके योग्य नहीं है। मैं आपकी शरण लेता हूँ, सो आप प्रसन्न होवे। हे विजवरगण ! यदि विडेववश मुझको त्याग दें, तो मुझको याज्य कार्यके लिये अन्य पुरोहितोंके निकट जाना पड़ेगा और अपना कार्य पूरा करनेके लिये समभाय दुनाय दान दे उनको प्रसन्नकर अपना काम

उनकी सच सच जताके अभिलाषा सिद्ध कर लूंगा । राजा यह वचन कह कर चुप हो रहे । अनन्तर पुरोहित लोग यह तो जानतेही थे, कि स्वयं उन नृपवरका याजन कार्य नहीं कर सकेंगे, सो क्रोध कर बोले, कि हे महाराज ! सदा आपके दैवीकर्म होती है, हम सदा उन कार्यों की कर कर थका गये हैं, तुमभी बुद्धिकी गड़बड़ीसे शीघ्रता चाहते हो, सो इन थके भादे पुरोहितोंकी त्याग कर तुमकी अन्ध पुरोहितोंका आसरा दूटना चाहिये, तुम रुद्रके यहां जाओ, वही तुम्हारे याजन कार्य करनेके समर्थ होंगे । भूप्रभूति कि उनका यह लाज्जन वचन सुनकर क्रोधके वशमें होगये, अनन्तर कैलाशपर्वत पर जाके कठोर तपस्या करने लगे । हे महाराज ! उन्होंने वहां नियमयुक्त, व्रतशील और और उपासनामें नियुक्त होके ब्रह्मत, दिनोत्तक महादेवजीकी आराधना की और, कुछकाल कभी बारहें मुहूर्त, कभी सोलहवे मुहूर्त पर फलमात्र खाते थे । उन्होंने कृपासे भले प्रकार समाहित, जड़वाङ्मय और निमेष वर्जित होके अचल जड़वत् काटे । हे भारत ! भगवान् शङ्कर उस प्रकार कठोर तपस्या करते हुए उन नृप-शार्दूलकी तपस्यासे बड़े प्रसन्न हो उनकी दर्शन देखकर बोले, कि हे नरवर ! मैं तुम्हारी तपस्या देखकर बड़ा प्रसन्न हूं, तुम्हारा मङ्गल होगा, तुम मनवाना वर मांगो । राजर्षि प्रभूति कि तेजस्वी महात्मा महादेवजीकी यह बात सुन गिरनाथ बोले, कि हे सुरेश्वर ! हे देवनाथ ! सर्व लोकोके प्रणाम योग्य भगवान् । आप यदि मुझपर प्रसन्न हुए हो, तो आप स्वयं मेरा याजन कार्य करें । भगवान् रुद्र राजाका यह वचन सुन प्रसन्न हो, लाजभरे मुद्रसे बोले, कि महाराज ! इस याजन कार्य करनेका तुम लोगोंकी अधिकार नहीं है, पर तुमने याजन-रूपी वर मागनेके लिये

कठोर तपस्या की है, सो हे शत्रुनाशी नृप ! मैं इस नियमसे तुम्हारा याजन कार्य कर सकता हूं, कि यदि तुम बारह वर्ष ब्रह्मचारी और भले प्रकार समाहित सदा विना रोक टाक आज्यकी धारसे अग्निकी तपा सको, तो जो प्रार्थना करते हो वह मुझसे प्राप्त करोगे । पृथ्वीनाथ प्रभूति कि शूलधर रुद्रकी ऐसी आज्ञा सुनकर उनका कहा सब काम करने लगे । जब बारह वर्ष बीते, तब वह फिर लोकभावन भगवान् भूतनाथके निकट जा पड़ेंगे । शङ्कर उनकी देख करकेही बड़े प्रसन्न हो बोले, कि नरनाथ ! मैं तुम्हारे कार्यसे ब्रह्मत सत्पुत्र हुआ हूँ, पर हे शत्रु दमन ! याजन कार्य करना ब्राह्मणोंकोके लिये विधिवत् है, सो मैं स्वयं इस क्षण तुम्हारा याजन करनेमें प्रवृत्त नहीं हूंगा । धरती पर दुर्वासा नामसे प्रख्यात महाभाग एक विज्ञातम है, वह मेराही अंश है । वह तेजस्वी महर्षि मेरे नियोगसे तुम्हारा याज्य कार्य करेंगे । तुम यज्ञकी सामग्री बटोरो । राजा प्रभूति कि रुद्रकी आज्ञासे राजधानीमें लौटकर यज्ञकी सामग्री फिर इकट्ठी की और पुनः रुद्रके यहां पड़ेंगे कर बोले, कि हे प्रभो महादेव ! मैं सब वस्तु तथा उपकरण संग्रह किये हैं । मेरी प्रार्थना यह है, कि आपकी कृपासे मेरी दीक्षा होवे । भगवान् रुद्र उन महात्मा महोपासकी यह बात सुनके दुःखात्मा बुलाकर बोले, कि विप्रवर ! इन महोपासना नाम प्रभूति कि है, तुम मेरे नियोगसे इनका याज्य कार्य करो । ऋषिने स्वीकार किया । अनन्तर महात्मा महोपासकी अभिलाषापूर्वक जैसा कहा गया था, वैसेही आरिदाक्षण यज्ञ प्रारम्भ हुआ । हे महाराज ! अनन्तर महोपास ही जाने पर जो सब बड़े तेजस्वी याज्य और सदस्य लोग उससे दीक्षित हुए थे, वे तुम्हारा आज्ञासे अपने अपने घरका चल गये ।

अनन्तर महाभाग दुर्वासाभी अपने आश्रमकी पधारे ।

महाराज । उस भारी यज्ञमें अपरिमित हव्य पीकर भगवान् जुताशनको विकार हो गया । वह दिन पर दिन तेजसे हाथ धोने लगे । उनके अङ्गमें ग्लानि जान पड़ने लगी । वह अपनेकी कम तेजस्वी होते देखकर सर्व-लोकोंसे पूजे जाते हुए पवित्र ब्रह्मलोकमें गये ।

आगे वहां बैठे हुए श्रीब्रह्माजीसे बोले, कि हे जगपते । अब मैं तेजरहित और दुर्बल हुआ हूं, आपकी कृपासे अपनी पूर्व प्रकृतिकी पाना चाहता हूँ । सर्वलोकोंके धाता भगवान्

अग्निका यह वचन सुनकर हंसके बोले, कि हे महाभाग । तुमने बारह वर्ष बिना रोक ठोक

वसुधारासे आहुति दिये हुए हव्यकी पान किया है, सो तुमको ऐसी ग्लानि हुई है । हव्य-

वाहन । तुम कमतेज हुए हो, इससे एकायक दुःखी मत होना, तुम स्वास्थकी प्राप्त करोगे ।

हे विभावसो । पूर्वकालमें तुमने देवोंके नियोगसे देवोंके शत्रुओंकी वासभूमि जिस

कठोर खाण्डव वनको भस्म किया था, अब उस स्थानमें अनेक प्रकारके प्राणी वसते हैं,

तुम उनकी चर्चोंसे तप्त हो और अपनी प्रकृतिकी प्राप्त कर सकोगे ; सो उस खाण्ड-

वको जलानेके लिये शीघ्र जाओ । उसकी जलानेसे तुम्हारी यह ग्लानि दूर होजायगी ।

अग्नि पितामहके मुखसे यह वचन सुन उसी क्षण बड़े वेगसे दौड़े और घोर खाण्डव

वनमें शीघ्र पञ्च क्रोधसे एकायक पवनके सहारे जल उठे । खाण्डव वनवासी सब प्राणी

उस वनकी जलते देखकर आग बुझानेके लिये निज निज शक्तिके अनुसार प्रयत्न

करने लगें । सैकड़ों रुहसों हस्ती क्रोधकर शीघ्रताके साथ सूड़से तुरन्त जल उठाके

भीषने लगें और अनेक सिरवाली सर्प क्रोधसे सुन्नो कर वेगपूर्वक वृद्धत फणोंसे

अग्नि पर जल छोड़ने लगे । हे भरतकुल प्रदीप । तैसेही दूसरे प्राणियोंने भी धूल छिरकना शाखा पीटना आदि अनेक उपायोंसे शीघ्र आग बुझायी । हव्यवाहन खाण्डववनमें वारम्बार, यहा तक कि सातवार जल उठे थे, पर इस प्रकार रोकनेकी कारण उनका मनोरथ सुफल नहीं होसका ।

खाण्डवदाह पर्वमें दोसौ चौबीस

अध्याय समाप्त ।

श्रीवेशम्पायनजी बोलें, कि अनन्तर ग्लानि-युक्त हव्यवाहन खाण्डव दाहकी आशा छोड़कर क्रोधित-चित्तसे पितामह श्रीब्रह्माजीके निकट गये और व्योरेवार उनसे सब अहवाल कह सुनाया । उन भगवानने पल भर सोच कर कहा, कि हे अन्ध ! मैंने इसका एक अच्छा उपाय निश्चय किया है, तिससे आजहो तुम देवराजके सामने खाण्डववन जला सकोगे । हे विभावसो ! नर-नारयण नामक उन सनातन दी देवताओंने देवार्थके लिये मर्त्यलोकमें अवतार लिया है । लोग उनकी अर्जुन और वासुदेव करके जानते हैं । अब वे दोनों खाण्डवके निकट विराजते हैं । तुम खाण्डव-दाहके लिये उनसे सहारा मागो, तब वन सब देवोंसे रक्षित होने परभी जला सकोगे । वासुदेव और अर्जुन वहा के प्राणियोंकी बिना-सन्देह रोक सकेंगे । हव्यवाहन यह सुन करकेही तुरन्त कृष्णार्जुनके पास गये ।

हे नृपोत्तम । अग्निने उनके सामने पड़च कर जा कहा था, वह मैंने पहिलेही आपस कहा है । हे नृपशर्दूल ! तिसके पीछे अर्जुन इन्द्रके विनात्मतासे खाण्डववनके जलानेकी इच्छा करनेवाले अग्निसे बाली, जि हे भगवान् । मेरे अनेक दिव्य अस्त्र हैं, उनसे मैं वज्रधारी सैकड़ों इन्द्रसे युद्ध कर सकता हूँ, पर युद्धकालमें मेरा वेग सर्वप्रकारसे रुक ले, ऐसा मेरे भुज

वीर्यके योग्य चाप नहीं है ; विशेष सुभकी शीघ्रतासे वाण छोड़ने पड़ेंगे, सो अनेक अच्छे वाणोंका प्रयोजन है । और मेरा जो रथ है, वह प्रयोजनके अनुसार उन वाणोंको ले नहीं सकेगा, सो पीतवरण वायु समान वेगवान् दिव्य घोड़े और बादल सदृश गरजनेवाले सूर्यकी भांति तेजयुक्त रथका प्रयोजन होगा । और इन साधवके भुजवीर्यके योग्य कोई अस्त्र नहीं है, कि जिससे यह रणभूमिमें पिशाच और सर्पोंको गिरावें । अतएव हे भगवन् । ऐसा कोई उपाय कहें, कि जिससे देवराज इस बड़े वनमें वर्षाकरनेसे हम उनको रोका सकें और यह बड़ा कार्य भली भांति पूरा हो । हे पावक ! पौरुषसे जिसकी साधना होगी, वह हम करने को प्रस्तुत है, पर युद्ध करनेके लिये जिन उपकरणोंकी आवश्यकता हो, वह आप हमको दें ।

खाण्डवदाह पर्वमें दोसौ पच्चीस
अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर भगवान् धूमकेतु हताशनने अर्जुनका यह वचन सुन जलके घर जलनाथ आदितिनन्दन लोकपाल वरुणजीकी भेंटके लिये उनको खरणा किया । जलनाथ वरुण उनका खरणा करना जानके सम्मुख आ पड़ेंगे । हताशन चाँधे लोकपाल उन सनातन देवदेव जलाधिपका आदरपूर्वक स्वागत कर बोले, कि राजा सोमने तुमको जो तूचीर और शरासन तथा क्षपिध्वज रथ दिया था, वह सब तुरन्त दे दो । पार्थ उस गाण्डीव शरासनसे और दासुदेव चक्रसे बड़ा भारी कार्य पूरा करेंगे । सो वह आजही सुभकी दे । वरुणजीने देता हूँ कहके मान लिया । अनन्तर जो धनुष बड़ा वीर्यवन्त, सर्वशस्त्र सघनयोग्य, यश और कीर्ति बढ़ानेहारा, शस्त्रोंसे काटे गानेके अयोग्य, सम्पूर्ण अस्त्रोंसे बड़ा, शत्रुसेनाको

नष्ट करनेवाला, राज्यबढ़ानेवाला सैकड़ों सहस्रों चापका सामना करने परभी न टूट फूटनेवाला, रंग विरंगके सुन्दर सुन्दर वस्त्रों रंगा, मनोहर और जिसको पूजा देवदास गन्धर्व सदा किया करते हैं, वरुणजी ने ऐसा अद्भुत धनुष और दो ऐसे तूणीर, कि किन्हीं वाण रखनेसे खर्च किये नहीं सकते, दे दिते जो रथ मन और पवनकी भांति वेगवान् पाण्डुरवर्ण बादल सदृश च दोकी नाई उजाला बाले सुवर्णसे सुशोभित, गन्धर्वोंके नगर घोड़ोंसे खींचा जाता है, जो दिव्यास्त्रों से सब उपकरणोंसे भरा और देव दानवोंके अजेय, जिसकी घरघराहट बड़ी दूरसे सुनाई देती है, जिसकी भुवनके प्रभु प्रजापति विश्वकर्माने बड़ी तपस्यासे बनाया था, जिसका रूप सूर्यसदृश दृष्टिसे देखनेके अयोग्य, जिसे परचढ़ प्रभु सोमने दानवोंकी परास्त किया था, जिसका उजाला बहुत जलता है, जिसके किरण दूर से अनुभव होते हैं, जो अक्रान्तलक्ष नद्ये बादलसमान दीख पड़ता है, जिसके ऊपर इन्द्र धनुषसदृश शोभायमान मनोहर परमसुन्दर सुनौले झण्डेकी लकड़ीकी जपर सिंहशरीर समान पराक्रमी सुन्दर दिव्य वन्दर माना सर्वलोकों का जहानेकी इच्छासे विराज रहा है, और ध्वजापताकामें प्रकीर्ण भांति भातिके भूतोंके गन्धीर कोलाहल सुनकर शत्रुसेनाकी चेतना जाती रहती है, वरुणजीने ऐसा कपिवर सहित रथ धनयुक्त दिया । अर्जुन खड्ग कवच गोदा और अङ्गरक्षक पहिनके स्नान कर अंग्रेज उस पताकाओंसे सुशोभित अनुपम सुन्दर रथकी पारक्रमा देकर देवोंको प्रणाम कर पुनात्मा जनके विमान पर चढ़नेकी भांति उस पर चढ़ और ब्रह्माके बनाये उस गाण्डीव शरासनको आनन्दसे ले लिया । अनन्तर वीर्यवन्त अर्जुनने हताशनके आगे मिर न

बल प्रकट कर उस गाण्डीवमें गुण चढ़ाया ।
बली पाण्डुनन्दनके गुण चढ़ानेके कालमें
उसका शब्द जिस जिसके कानोंमें पैठा उस
उसका हृदय थरथराने लगा, अर्जुन इस
प्रकारसे रथ, धनुष और दो सहान अक्षय
तूणीर पाकर आनन्दित चित्तसे ज्ञताशनको
सहारा देनेका समर्थ हुए, अनन्तर ज्ञता-
शनने श्रीकृष्णचन्द्रको चक्र और दायित
अस्त्र दे दिया, इससे वह भी तब अग्निकी
सहायता करनेके योग्य बने। आगे अग्निने उनसे
कहा, कि हे मधुसूदन । तुम युद्धस्थलमें इस
अस्त्रसे बिना सन्देह मानवके अतिरिक्त अन्य
प्राणियोंकीभी परास्त कर सकोगे । तुम रण-
स्थलमें इस अस्त्रसे देव, दानव, राक्षस पिशाच,
नाग और मनुष्य इनसे निःसन्देह अधिक
शक्तिमान होगे । हे माधव ! यह अस्त्र यदि
शत्रुदल पर बार बार फेंका जाय, तौभी बिना
रुकावट शत्रुनाश करता हुआ फिर तुम्हारे
हाथमें आ जायगा । अनन्तर वरुणजीने उनकी
दैत्यकुलनाशी घोरतपो वज्रसमान गरजनेवाली
कौमोदकी गदा दी, तब अस्त्रने पण्डित
अर्जुन और श्रीकृष्ण ध्वजा, रथ और शस्त्रादि
प्राप्त कर प्रसन्नचित्तसे बोले, कि हे भगवन ।
अब हम लोग सम्पूर्ण सुरासुरसे लड़नेका
समर्थ हुए, सर्पराक्षके लिये युद्ध चाहनवाले
अकेले वज्रधारी इन्द्रसे लड़ना हमारे लिये
कोई बड़ी बात न रही । अर्जुन बोले, कि हे
पावक ! तीनों लोकोंमें ऐसा पदार्थही नहीं
है, कि जिसे वीर्यवन्त चक्रपाण जनार्दन रण-
स्थलमें टहलते हुए इस चक्रसे मार नहीं
सकेंगे । मैं भी यह अक्षय तूण और गाण्डीव
धनुष लेकर सम्पूर्ण लोक परास्त करनेका
उत्साह कर सकता हूँ सो आप आजही
इच्छानुसार इस बड़े वनकी सम्पूर्ण रूपसे घेर
कर जलावे ; हम आपको सहारा देनेका
समर्थ हुए हैं ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि भगवान् ज्ञता-
शन अर्जुन और श्रीकृष्णचन्द्रके यह वचन
सुनके पावक तैजसका रूपधारण कर उस
वनको जलाने लगे । तब वह सातशिखा फैला
कर सब ओर फैलकर खाण्डववन जलाने
लगे । उस कालमें जान पड़ने लगा, कि
मानी युगके अन्त होनेवाला काल प्रकटित हो
रहा है । हे भरतवंशश्रेष्ठ ! प्रज्वलित अग्नि-
देव उस बड़े भारी वनकी पकड़ कर उसमें
घुसके बादल की गड़गड़ाहटकी भांति
भयानक शब्दसे सब प्राणियोंको थरथराने
लगे । हे भारत ! तब जलते हुए उस वनने
सूर्यकिरणोंसे रंगे हुए सुमेरु पर्वतका स्वरूप
धारण किया ।

खाण्डवदाह पर्वमें दोसी छव्वीस

अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर रथियोंमें
श्रेष्ठ श्रीकृष्ण और अर्जुन रथ पर चढ़कर उस
वनको दोनों ओर रहके चारों ओरके प्राणि-
योंकी नष्ट करने लगे । खाण्डववासी प्राणी
जहाँ जहाँ भागते दीख पड़े, वे दोनों वीर तहाँ
तहाँ दौड़ने लगे । वे दोनों महारथी रथ पर
वनके चारों ओर इतना शीघ्र फिरने लगे, कि
दोनों रथ आपसमें जुड़े हुए जान पड़ने लगे ;
तिनमें विशिष्ट दीख नहीं पड़ा । खाण्डव वनके
जलनसे सैकड़ों सहस्रों प्राणी दड़ा कीलाहल
मचाते हुए चारों ओर गिरने लगे । किसी
किसीका एक एक अङ्ग जल गया ; कोई कोई
अति तापसे जल भुनके गिरगया ; किसी किसी
जलकी आखें फूट गयी ; कोई कोई दुबकाय
गये, कोई कोई भयसे दौड़ने लगे ; किसी
किसी प्राणीने वज्रसे, किसी किसीने पितासे
किसी किसीने भाईसे लिपट कर वानस्थान
ही में प्राण छोड़े पर स्नेहवश उनकी कीड़
नहीं सके । कोई कोई देहधारी दाँतसे दाँत

पीसता अनेकवार गिरता पीटता और बहुत चक्कर खाता फिर आगमें गिरने लगा । कोई पंख जलने, कोई नेत्र जलने अथवा कोई पांव जलने पर मृत दीख पड़ने लगा । वहांके जलाशय अग्निसे तपने और उबल उठनेसे मछली कछुए आदि प्राणी इधर उधर मरे दिखाई देने लगे । उस वनमें देहियोंकी जो सब देह जली, वह सब जली देह मानों भांति भांतिको अग्निदेहके समान प्रतीत होती रहीं । उस वनसे जो सब पक्षी उड़ल रहे थे, अर्जुन उनको वाणोंसे टुकड़े टुकड़े कर कर जलते हुए अग्निमें गिराने लगे । वे प्राणी सब देह काटे जानेसे बड़ा कोलाहल मचाते हुए वेगसे कुछ ऊपर चढ़कर फिर उस खाण्डव वनही में गिरने लगे, समुद्रमथनके कालमें जैसा घोर शब्द उठा था वैसेही वाणोंसे घायल वनैले जानवरोंका बड़ा कोलाहल सुन पड़ने लगा और जलते हुए अग्निकी बड़ी बड़ी शिखा देवोंको घबराहटमें डालनेवाली वनके आकाश मण्डलमें छा गई । अनन्तर महात्मा देवगण उस अग्निकी शिखाआसे बहुत तपकर पुरमें बसे ऋषयोंके साथ असुरनाशी सहज नेत्र शतक्रतु सुरनाथके पास गये और बोले, 'क है अमर नाथ ! क्या आग्न इन अमरवृन्दको जला रहा है ? क्या अब हम सब लागोंका प्रलय काल आ गया है ? श्रीशम्पायनजी बोले, 'कि हाथो पर चढ़े हुए वृत्रनाशी उनसे वह सुनके और स्वयं देखके खाण्डव वनको रक्षाकाल लिये चल निकले । उन्होंने अनेक महारथोंसे आकाशमण्डलकी छाकर जल वपाना आरम्भ कर दिया । सैकड़ों बादल देवराजकी आज्ञासे खाण्डव वन पर रथके पहिनेको लकड़ीके समान मोटी धारसे जल वपाने लगे । सब मोटी धार अग्निके तेजसे आकाशहीमें सूख गयो, एकभी धार अग्नि पर गिर नहीं सकी । आगे नमुचिस्त्रदन इन्द्र बहुत

क्रोध कर फिर बड़े बादलोंसे अग्निके ऊपर बहुत जल वर्षाने लगे । तब वह बड़ा भारी वन अग्निशिखा और जल धारासे गीला धूसा और बिजलीसे मिला और ऊपरके बादलोंमें घिरा प्रकट होकर बड़ा भयानक दीख पड़ने लगा ।

खाण्डवदाह पर्वमें दो सौ सताइस

अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्त पाण्डुनन्दन अर्जुनने देवराजको उस प्रकार जल वर्षाते देखकर अपना उत्तम अस्त्र प्रकट करके वाण वर्षा कर उसको रोका । चन्द्रमा जिस प्रकार ओससे जगको छाय देता है वैसेही अमेयात्मा पाण्डुनन्दनने सैकड़ों वाणोंसे सम्पूर्ण खाण्डव वनको ढुपाया । वहाका आकाशमण्डल सव्यसाची धनञ्जयके फेके वाणोंसे ऐसा ढपा, कि कोई प्राणी वहासे निकल नहीं सका । पर महाबली सर्पराज तत्काल उस समय वहां नहीं था । जब खाण्डवदाह आरम्भ हुआ था, तब कुरुक्षेत्रमें गया था । उसका पुत्र बली अश्वसेन वहा था । तत्कालके उस पुत्रन आत्मसे निकलनेकी बड़ी चेष्टा की, पर अर्जुनके वाणोंसे बन्धुआ बन कर निकल नहीं सका । आगे उसकी माता सर्पकन्या उसको निकल कर बचाया । नागकन्या उसे वचानकी चाहसे उसका सिर निकल कर उसकी पूंछको निगलती हुई आकाशमार्गसे निकल रही थी, ऐसे समयमें अर्जुनने उनकी देख चीड़ों नीखवाली तेजवाणसे उस सर्पनका सिर काट डाला । शचीनाथने यह देखकर अश्वसेनकी वचानके लिये उसीक्षण पवन चला कर अर्जुनका मोहमे डाला । उस अवसरमें अश्वसेन बचकर भागा । अर्जुनने तब उस सर्पसे ठगे जाकर और वह माया देखकर आकाश

तक पङ्कचे झर भयानक प्राणियोंक। दो तीन भागोंमें काट कूट डाला। विभत्सु, वासुदेव और पावकने बृहत क्रोध कर उस कुटिल गामी सर्पको शाप दिया, कि तुम्हारी प्रतिष्ठा जाती रहेगी। अनन्तर पाण्डुपुत्रने उस वज्रनाको स्मरण कर क्रोधसे तुरन्त दौड़नेवाले वाणों से आकाश मण्डलकी क्षाय सहस्रनेत्रसे लड़ाई मचायो। देवराजनेभी उनकी युद्धमें काटवड़ देखकर अपना तीक्ष्ण अस्त्र छोड़कर आकाश मण्डलकी छा लिया। अनन्तर पवनने बड़े शब्दके साथ फैलकर सम्पूर्ण समुद्रमें हलचल मचाके अति घोर बादल बृन्द उपजाये। उन सब बादलोंसे उस ठौरमें बिजली, बज्राघात और गड़गड़ाहटके साथ जलधारा वर्षने लगी। प्रतिविधानकी शक्ति रखनेवाले अर्जुनने उन सबको दूर करनेके लिये सुन्दर वायव्यास्त्रको मन्त्र पढ़ कर छोड़ा, तिससे इन्द्रके उस वज्र और बादलोंका वीर्य तथा तेज नष्ट हुआ, और जलधारा सूखी तथा बिजली नष्ट हुई, पल भरमें आकाश मण्डल गई और अन्धरेसे साफ होगया। सुखदायी ठण्डी हवा चलने लगी और सूर्यमण्डलने पहिलेकी प्रकृति प्राप्त की, तब अरुण बिना रोक टोक देहियोंकी देहसे निकली हुई चवीसे औरभी प्रबल होकर आनन्दकी उमड़में नाना आकार धरके और बड़े शब्दसे जग भरमें शिखायें फैलाकर जल उठा। हे महाराज। सुपर्ण आदि पतंगीगण श्रीकृष्ण और अर्जुनसे उस खाण्डवदावानल की रक्षित होती देखकर अहङ्कारसे आकाशको उड़े और वज्रसमान पंख चींच और नखोंसे वासुदेव और धनञ्जयकी मारनेकी इच्छासे आकाशसे नीचे उतर आये तथा जलपेड़ा सुखवाले विसैले सर्पगण कठोर निप गिराते हुए पाण्डवके सामने आ गिरे। पाण्डुपुत्रने क्रोधकी आगसे सुलगे हुए

वाणोंसे उन सबको काट कूट डाला, सी वे देहको नष्ट करनेके लिये भले प्रकार जलते हुए अग्निमें जा गिरे। अनन्तर असुर, गन्धर्व, यक्ष राक्षस, और पद्मगण लड़नेके लिये बड़ा कोलाहल मचाते हुए दौड़े। क्रोधकी मारे तब उनका तेज बढ़ने लगा। वे अय-कण अथात् लाहिकी गंद गिरानेके यन्त्र और चक्राक्ष अथात् पत्थरके टुकड़ोंके बड़ी दूर फेंकनेका लकड़ीका बना यन्त्र, भुसुण्डी अथात् पत्थर फेंकनेका चमड़ाको रस्सीसे बना हुआ यन्त्र, यह सब अस्त्र लेके हाथ उठाकर श्रीकृष्ण और अर्जुनकी नष्ट करनेके लिये उद्यत हुए। विभत्सु उनकी अयोग्य वचन कह कहके वाण वर्षाते देखकर चोखे वाणोंसे उनके सिर मथने लगे। शत्रुकुलनाशी बड़े तेजस्वी श्रीकृष्ण चक्रसे उन सब दैत्य दानवोंकी नष्ट करनेलगे। कोई कोई आत बली दैत्य दानव शरीरसे विद्ध और चक्रसे घायल हो उत्साह छोड़ ऐसे चुप हुए, कि जैसे जलके स्रोतमें लहरकी चोटसे घूमते हुए। तबकी तीर पाके स्थिर होते हैं। अनन्तर देवोंके अधीश असुरसूदन इन्द्र आत क्रोधकर पाण्डुरवरण गज पर चढ़के धनञ्जय और श्रीकृष्ण पर चढ़ आये और वेगसे असाध अस्त्र वज्र लेकर उन पर छोड़नेको उद्यत हैं। के देवोंसे वाली, कि इस बार यह दोनो मरगी। देवोंने देवराजकी महावज्र उठाते देखकर सचने अपना अपना अस्त्र ले लिया। हे महाराज। यमराज कालदण्ड लेकर खड़े हुए, धननाथने गदा ली, वसुधेन पाश और विचित्र अशनि लिया; स्कन्द शक्ति लेकर अचल गिरि मेरुकी भांति खड़े हुए, दोनो अश्विनी कुमार हाथोंमें दीप्यमान औषधि लेकर खड़े हुए, धातान धनुष लिये, जयने नूपल लिया, महानली लठाने रिनाकर पर्वत उठाया, स्कन्दका ग्रंथ हाथोंमें देवगति लेके लड़नेको उद्यत हुआ। सद्युदेवने परमेश्वर लिखा:

अर्धमा घोर परिघ लेके घूमने लगे और मित अस्तुरके समान नोखदार चक्र लेकर खड़े रहे । भग, पूषा और सविता ययानक धनुष और निखंश लेके क्रोधसे अर्जुन और श्रीकृष्णकी ओर दौड़े । अपने तेजसे दीप्यमान महाबली रुद्रगण, वसुगण, मरुद्गण, विखे-द्विगण, और सांध्यगण, यह और दूसरे अनेक देवगण भांतिभांतिके अस्त्र लेकर पुष्पोत्तम श्रीकृष्ण और अर्जुनकी नष्ट करनेके लिये चढ़ दौड़े । तब युग अन्त होनेके कालको भांति भूतोंकी मोहनेवाली आस्रथ्ये नक्षत्र पतन आदि बुरे बुरे चिन्ह प्रगट होने लगे । युद्धमें अति कठोर अर्जुन और श्रीकृष्ण देवोंके साथ देवराजकी युद्धमें सब प्रकारसे सज्जद देखकर सज्ज शरासन लेकर निर्भय और अटल चित्तसे खड़े हुए । युद्धमें दक्ष वेदीनों वोर सब आये हुए देवोंकी बज्र समान बाणोंसे क्रोधपूर्वक सब प्रकारसे पछाड़ने लगे ; अनन्तर देवोंने कृष्णार्जुनसे बारम्बार सब प्रकार सङ्कल्प खोकर भय खायके युद्धस्थलको छोड़कर देवराजकी शरण ली । आकाशमें खड़े मुनियोंने देवोंको कृष्णार्जुनके आगे पीठ दिखाते देखकर अचरज माना । अर्जुन और श्रीकृष्णका रणस्थलमें बार बार भुजवीर्यका प्रमाण पाय देवराज वहुत प्रसन्न हुए ; और फिर लड़ने लगे । वह तब सव्यसाची धनञ्जयकी सामर्थ्य जाननेको चाहसे वहुत पत्थर वषाने लगे । अर्जुनने वहुत क्रोधकर महावेगवान बाणोंसे उस पत्थरवृष्टिको रोका । इन्द्र पत्थर वृष्टिको विफल देखकर फिर और भी अधिक पत्थर गिराने लगे । इन्द्रनन्दन वड़े तेज बाणोंसे उस भयानक पत्थर वृष्टिको रोककर पिताका आनन्द बढ़ाने लगे । अनन्तर महेन्द्रने पाण्डुपुत्रको मारनेकी इच्छासे दोनों हाथोंमें मन्दर पर्वतको वृक्षसहित एक बड़ी भारी चाटीको उखाड़ कर पंका । अर्जुनने

अजिह्मग, जलती हुई नोख वाले बड़े तेज बाणोंसे उस पछाड़की चाटीको सहज खोले तोड़ डाला । आकाश मण्डलसे चन्द्र सूर्यादि ग्रह टुकड़े टुकड़े हो गिरनेके कालमें जैसे पड़ते हैं, वह टूटी फूटी पछाड़की चाटी गिरनेके कालमें तैसीही दोख पड़ी । उस बड़ी भारी चाटीके खाड़कन पर गिर जानेके हेतु उस काल उसकी चाटसे बहुतरे प्राणियोंने प्राण छोड़े ।

खाण्डव दाहपर्वमें दोसौ अध्याय

अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर खाण्डव वनके रहनेवाले दानव राक्षस सर्प ऋक्ष भेड़िये उन्मत्त हस्ती केशरवाले सिंह, बाघ और दूसरे वनैली भूत उस पछाड़के गिरनेसे भय खाय अकुलाय भागने लगे, और श्रीकृष्ण तथा अर्जुनका अस्त्र उठाये और उस वनका सब ओरको बड़े शस्त्रसे डालता हुआ देखा । तब वे वनका चारा ओरसे जलते आर श्रीकृष्ण की अस्त्र मारते देखकर बड़ा भयानक शस्त्र करने लगे । उन सब वनैली जीवाके भयानक शस्त्र और अग्निकी चटचटाहटसे आकाश मण्डल ऐसे गूजने लगा, कि जैसे भस्म गर्जनसे गूजे । अनन्तर महाभुज श्रीकृष्ण उनका मारने लगे अपने तेजसे जलता हुआ अति जड़ी नोखवाला बड़ा भारी चक्र उठाया । उस चक्रसे दानव नशचर आदि वे सब जानवर भय खाय टुकड़े टुकड़े होय उरसा चला अन्दरके मुखसे जाय गिर । दैत्यगण श्रीकृष्णचन्द्रक चक्रसे टुकड़े टुकड़े हो आर चव्वी तथा रत्नधारसे नहाकर सम्यगकालके घने बादलकी भाँति दीखने लगे । हे भारत ! वृष्णिनन्दन श्रीकृष्ण यमराजको भाँति सहसा पिशाच, पर्शु, सर्प और पशु मारते हुए फिरने लगे । सर्व भूतोंकी आत्मा श्रीकृष्णके इस प्रकार पिशाच उर

राक्षस आदिको नष्ट करने पर उस कालमें
 इनका आकार बड़ा खूँखा जान पड़ने लगा ;
 प्राये हुए देवोंसे एकभी ऋष्यार्जुनके युद्धमें
 शय नहीं पा सका । देवोंने जब देखा, कि
 ऋष्यार्जुनके बाहुबलसे उस वनकी वचानेकी
 लिये दावानल बुझाना उनसे वन नहीं पड़ा,
 तब वे पीट दिखाकर चले गये । हे महाराज !
 अमरनाथ असुरोंको सुख सीढ़ते देख प्रसन्न
 होकर केशव और अर्जुनकी प्रशंसा करने
 लगे । अनन्तर सब स्वर्ग पतियोंके
 निवृत्त होने पर महेन्द्रको इस प्रकार
 आकाशवाणी हुई, कि तुम्हारा सखा सर्पराज
 तत्काल मारा नहीं गया, खाण्डवदाहके कालमें
 वह कुरुक्षेत्रमें गया था । हे इन्द्र ! तुम मेरे
 वचनसे निश्चय जानना, कि कोई भी किसी
 प्रकारसे वासुदेव अर्जुनका युद्धमें सामना नहीं
 कर सकेगा । यह लोग देवलोकमें प्रशंसित
 पुरातन देव नर नारायण हैं ; इनका जैसा
 वीर्य और जितना पराक्रम है, वह तुमभी जानते
 हो । यह युद्धमें अजेय और दुर्द्धर्ष है, इनको
 पराजय करना सर्व लोकोमें किसीकी सामर्थ्य
 नहीं है । यह दो पुराण ऋषिसत्तम, अमर,
 असुर, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, नर किन्नर,
 पद्म आदि सबोंके बड़े पूजनीय हैं, सो हे
 इन्द्र ! तुम देवोंके साथ यहाँसे लौट जाओ ।
 यह खाण्डवदाह विधिपूर्वकही हुआ । तब
 अमरनाथ इन्द्र वह वचन सुच जानकर क्रोध
 तन देवलोककी गये । हे महाराज ! देवोंने
 अपने नाथ इन्द्रको चले जाते देखकर सेना-
 नीके साथ उनकी राह ली । वीर अर्जुन और
 वासुदेवने सेनागण और इन्द्रकी सुख सीढ़ते
 देखकर सहनाद किया । हे महाराज !
 इन्द्रके चले जाने पर वे अनर्भय होकर
 खाण्डववनका जलाने लगे । पवन जिस प्रकार
 बादलोंको भगाता है, तैसे ही अर्जुन देवोंकी
 पराक्रम पर खाण्डवमें रहनेवाले प्राणियोंको

मारमारकर फूकाने लगे । उनके वाणोंसे काटे
 जानेसे कोई भी प्राणी वहाँसे निकल नहीं
 सका । बड़े बड़े महाबली प्राणियोंका अर्जुनसे
 लड़ना तो दूर रहा, वे उनकी ओर ताकभी
 नहीं सके । अर्जुन कभी कभी एक वाणसे सौ
 प्राणी मारने लगे । वे सब प्राणी मानों
 साक्षात् कालसे मारे जाय और प्राण छोड़
 अग्निके मुखमें गिरने लगे, वे नती नदी, नती
 तट, न खूँखी ठौर और न प्रशान कहीं भी मझल
 प्राप्ति नहीं कर सके, सभी ठौर कड़े तापसे
 तपने लगे । अगणित प्राणी दीन मनसे बड़ी
 चिल्लाहटके साथ रोने पीटने लगे, हस्ती हरिन
 और भेड़िये चिल्लाकर रोने लगे, उस शृङ्गसे
 अति दूरकी गङ्गाचर और समुद्रचर मछलियाँ
 और विद्याधर तथा उन स्थानोंके निकट
 जितने वनवासी थे, सब बहुत भय खागये ।
 हे महाभुज ! किसीका ऋष्यार्जुनसे लड़ना तो
 दूर रहा, अर्जुन और जनार्दन पर दृष्टि चला-
 नाभी वन नहीं पड़ा, जिन सब राक्षस, दानव
 और नागोंने एकत्र मिल कर दौड़के भागना
 चाहा श्रीकृष्णने उनका चक्रसे नष्ट किया, वे
 चक्रके वेगसे सिरकाटे, धड़काटे वनके प्राण
 छोड़ जलती हुई आगमें जा गिरे और दूसरे
 बड़े भारी भारी जीवभी आगके लुहमें गिरने
 लगे । तब अग्नि मांस रक्त और चर्मीसे भली
 प्रकार तप्त होय धुआ तज आकाशका चट
 गये और पिझल आखें जीभ, सुख और अंचे
 जचे वालोंको प्रजलित कर जीवोंकी चर्चों
 पोने लगे । उन ऋष्यार्जुनसे अमृत पोकर प्रसु-
 दत और तप्त होय परम सन्तोष प्राप्त किया ।
 अनन्तर मधुसूदनने एकायक देखा, कि भय
 नामक असुर तत्कालके वासस्थानसे भागा जाता
 है । और पवनके सारथि अग्नि शरीर लेके और
 जटा धरके बादलके समान शृङ्ग धारते हुए
 उसकी पकड़नेकी इच्छा कर रहे हैं, तब
 वासुदेवजी उसकी मारनेके निध चक्र उठाके

खड़े हुए । मयदानवनें उनको चक्र उठाते और अग्निको निगलनेकी इच्छा पर आते देखकर कहा, कि हे अर्जुन दौड़ो, मुझे बचाओ । अर्जुन उसका वह करुणस्वर सुनकर मानों जीवन दे करही बोले, कि मत डरो । वह दयाशील थे, सो मयको ढाढ़स दिया । अनन्तर अर्जुनके नमुचिके भाई उस दैत्यको ढाढ़स देने पर दाशार्ह श्रीकृष्णने फिर उसे मारना नहीं चाहा, और अग्निभी जलानेको प्रवृत्त नहीं हुए ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि धीमान् ज्ञताशनने अर्जुन और श्रीकृष्ण द्वारा इन्द्रसे रक्षित होकर पन्द्रह दिनमें उस वनको जलाया । उस वनके जलानेके कालमें अग्निने केवल अश्वसेन, मय और शार्ङ्गक नामक चार पक्षी इन कृशोंको नहीं जलाया ।

खाण्डवदाह पर्वमें दोसौ उनतीस

अध्याय समाप्त ।

जनमेजय बोले, कि हे ब्रह्मन् ! यह प्रगट करो, कि उस वनके जलानेके समय उस दशमें अग्निने क्यों शार्ङ्गक पक्षियोंको नहीं जलाया । अश्वसेन और मयदानव जिन उपायोंसे नहीं जले वह आपने कह सनाया है ; पर चार शार्ङ्गको न जलनेका कारण नहीं कहा ; हे ब्रह्मन् ! शार्ङ्गकोंका वचना मुझको अचरजसा जान पड़ता है ; कहो, कि वे उस अग्निदाहसे क्यों नहीं सरे ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे शत्रुदमन ! उस दशमें ज्ञताशनने जिस कारण शार्ङ्गकोंको नहीं जलाया, वह आपसे कहता हूं, सुनो । हे महाराज ! मन्दपाल नाम प्रख्यात तपस्वी पिता द्रुपशील धर्मके जानकार अति श्रेष्ठ एक महर्षि थे । वह स्वाध्यायमें नियुक्त और त्रिन्द्रिय जीके सदा तपस्या और धर्म करते थे । वह ऊर्ध्वरेता ऋषियोंको वाटसे

चलकर तपस्याके दूसरे पारको उतर गये थे । हे भारत ! जब वह देह छोड़के पितृलोकको गये, तब बटोरी हुई तपस्याका कोई फल प्राप्त नहीं हुआ । उन महर्षिने अपनी कठोर तपस्यासे उपार्जन किये हुए लोकमें न जाने पाकर धर्मराजके निकट देवोंसे पूछा, कि मेरी तपस्यासे उपार्जन किया हुआ पुण्यलोक क्यों रका है ? जिन कर्मोंके करनेसे इन सब पुण्यलोकोंमें जाया जाता है क्या मैंने उन कर्मोंको नहीं किया है ? हे देवगण ! आप कहें, कि क्यों मेरी तपस्याका फल रका हुआ है, मैं उसकी करनेकी प्रस्तुत हूं । देवोंने कहा, कि हे ब्रह्मन् ! सुनो इसमें सन्देह नहीं कि मानव गंगा क्रिया, ब्रह्मचर्य और सन्तान उपजाना इन सब विषयोंका ऋणियां वनके जल लेते हैं । यज्ञ, तपस्या और पुत्रोत्पादन इन तीन कर्मोंसे यह ऋण चुकता है । तुमने बद्धत तपस्या और यज्ञ किया है, पर तुम्हारे सन्तान नहीं है, सो यह सब पुण्यलोक तुम्हारे लिये रुके हैं । तुम पुत्र उपजाओ, तो इन श्रेष्ठ लोकोंको भोगने पाओगे । हे ब्रह्म श्रेष्ठ । अति है, कि पुत्र पिता की पुत्र नामक नरकसे बचाता है, सो तुम पुत्र उपजानेको प्रयत्न करो ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर मन्दपाल देवोंका वह वचन सुनकर सोचने लगे, कि किस योनिमें जन्म लेनेसे शीघ्र अधिक सन्तान उपज सकती है । अनन्तर उन्होंने यह सोचकर कि पक्षीकी जातिकी खलकाल में बद्धत सन्तान होती हैं, शार्ङ्गक पक्षी वनके जरिता नाम शार्ङ्गितकासे मिलकर उससे गर्भसे चार ब्रह्मवादी पुत्र उपजाये । अनन्तर वह अश्वसेन उपजे हुए वक्षोंको उनकी माताके साथ उस वनहीमें छोड़के लपिताके पास गये । हे भारत ! उन महाभागके लपिताके पास

चले जाने पर जरिता पुत्रस्त्रीहसे कातर
 हो अनेक प्रकारकी चिन्ता करने लगी । ऋषिके
 उस खाण्डव वनमें उन अण्डोंमें स्थित वच्चोंकी
 छोड़ने परभी जरिता पुत्र शोकसे कातर हो
 कर त्यागनेके अयोग्य उन वच्चोंकी छोड़ नहीं
 सकी, उनको स्नेहके मारे अपनी वृत्ति अव-
 लम्बन कर पालने लगी । अनन्तर ऋषि मन्द-
 पालने लपिताके साथ उस वनमें चरते हुए
 देखा, कि अग्नि खाण्डव वन जलानेकी आ-
 रहा है, ब्रह्मके जानकार विप्रर्षि वह सहा-
 तेजस्वी मन्दपाल जातवेदाका वह अभिप्राय
 समझकर अपनी सन्तानोंकी बालक जानके
 उनके लिये उनसे विनय करनेकी इच्छासे
 भयखाय स्तव करने लगे कि, हे अग्नि । - तुम
 सर्वलोकोंके मुखस्वरूप हुए हो, - तुम हवनके
 पदार्थ ग्रहण किया करते हो । - हे पावक !
 तुम सर्व लोकोंके हृदयमें छिप कर चरा
 करते हो । कविगण तुमको अद्वितीय कहा
 करते हैं, और तीन प्रकारका भी कहते हैं
 तथा तुमको अष्टधा कल्पना करके यज्ञ किया
 करते हैं । हे ज्ञताशन ! परमर्षिगण कहते
 हैं, कि तुम्हीने संसारकी रचा है, और
 तुम्हारे न रहनेसे आजही जगन्मण्डल नष्ट
 होता । ब्राह्मणगण तुम्हीको प्रणाम कर
 खीपुत्रोंके साथ शश्वत-लोककी जय करके
 उसमें जाते हैं । हे अग्नि । - पण्डितलोग
 तुमकी विद्युतके साथ आकाशमें स्थित मेघ
 कहते हैं । हे पावक । तुमसे शिखा
 निकलकर सर्व भूतोंकी जलाती हैं । हे
 महायुते ! कर्मोंका विधान करनेवाला
 वेद तुम्हाराही वचन है ; और यह सब
 स्थावर जड़भात्मक जीव तुम्हीसे बने हैं ।
 हे अग्नि ! पहिले तुम्हीमें जलका विधान है,
 यह सम्पूर्ण जगत तुममें स्थित है ; और सम्पूर्ण
 हवकत्व तुम्हीकी आश्रय कर विद्यमान हैं ।
 हे देव । तुम्ही दहन, तुम्ही विधाता, तुम्ही

वहसति, तुम्ही, दोनों अश्विनीकुमार तुम्ही अर्क,
 तुम्ही सोम और तुम्ही पवनस्वरूप हो ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे महाराज ।
 अति तेजस्वी मन्दपालमुनिके इस प्रकार
 अग्निकी स्तुति करने पर अग्नि उन पर प्रसन्न
 हुए और प्रीतिपूर्वक उनसे कहा, कि बोलो
 तुम्हारा अभीष्ट क्या है, मैं पूरा कर देता
 हूँ । मन्दपाल दोनों हाथ जोड़के बोले,
 कि हे हव्यवाहन । तुम जब खाण्डववनकी
 जलाओगे, तब मेरे वच्चोंकी मृत जलाना ।
 भगवान् हव्यवाहनने तत्रास्तु कहके मान
 लिया, और उस कालमें खाण्डवदाव जलाने
 के वास्ते जल उठे ।

खाण्डवदाह पर्वमें दोसौ तीस
 अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर अग्निके
 जलने पर वे शार्ङ्गकपचीके वच्चे वज्रत भय
 खाय घबरा उठे ; उनको दूँढने परभी वच-
 नेका कोई उपाय नहीं मिला । उनकी माता
 तपस्विनी जरिता वच्चोंकी वज्रत छोटे देखकर,
 दुःख शोकसे विलपती हुई कहने लगी, कि
 मेरा दुःख बढ़ानेवाला यह भयानक अग्नि
 वनकी जलाता हुआ सब ठौरमें उजाला
 करके डरावने स्वरूपमें आय रहा है । पर
 मेरे छोटे छोटे इन वच्चोंके पंख नहीं जमे
 हैं, तथा वे उड़ भी नहीं सकते और
 अज्ञान हैं, और यह गुरुषोकी एकही गति
 हैं, यह मेरे हृदय दुःखा रहे हैं । यह
 अग्नि हर घड़ी वच्चोंकी चाटता और भय
 उभाड़ता हुआ दधर आ रहा है । पर मेरे
 इन विना पंखके वच्चोंकी भागनेकी शक्ति नहीं
 है, और मुझ वक्के शीकीभी इतना सामर्थ्य नहीं
 है, कि इन सबोंकी लेकर इस विपत समुद्रसे
 भाग सकूँ ; इनकी छोड़कर भागभी
 सकती हूँ । हा ! मेरा हृदय न

रहा है। मैं किस वस्त्रेकी लेकर जाऊँ; किसको छोड़, क्या कस्तूरी जो मनोरथ सिद्ध हो? ऐ वेदो! तुम क्या विचारते हो? मैं तो सोच समझ कर तुम्हारे वचनेका कोई उपाय नहीं देखती; मैं अपनी देहसे तुमको छिपाके अन्तमें तुम सबोंके साथ जल मरूंगी। तुम्हारा निर्दयी पिता पहिले चले जानेके कालमें बोला था, कि “मेरे चार बेटोंमें ज्येष्ठ जरितारी नामक पुत्रसे वंश प्रतिष्ठित होगा; सारिस्तक नामक पुत्र सन्तान उपजायके कुल बढ़ावेगा; स्तम्बमित्त नामक पुत्र तपस्या करेगा और द्रोण नामक प्रशंसित पुत्र वेदमें पण्डित होगा।” पर अब यह दुःखदायी विपदा आ पड़ी, मैं किसी ले जा सकूंगी? क्यों करनेसे कार्यको निबटा सकूंगी। जरिता ऐसे बहुविधि सोच कर घबरा उठी; उसकी अपनी बुद्धिसे अपने पुत्रोंकी वचनेका कोई उपाय नहीं सूझ पड़ा।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि शार्ङ्गकोंने माताको इस प्रकार विलपते सुनकर कहा, कि माता! तू स्नेह छोड़कर वहां जा, कि जहां आग नहीं हो। हे माता! हम मर जायेंगे तो तेरी और सन्तान उपज सकेंगी; पर तेरे मरनेसे वंशरक्षाका उपाय न रहेगा। हे माता! अब तेरे लिये वह काल आ पड़ंचा है, जब कि हमारे साथ प्राण छोड़ना अथवा हमें छोड़के अपनेकी वचाना, इन दो विषयोंकी भले प्रकार आलोचना वही करना चाहिये, जिसके करनेसे हमारे कुलका मंगल हो, तू फिर सर्वनाशी पुत्रस्नेह मत कर, ऐसा करनेसे स्वर्गलोकदायी पुत्र चाहनेवाले पिताका सब कर्म व्यर्थ हो जायगा। जरिता बोली, कि हे पुत्रो! इस वृक्षके निकट धरतीके भीतर मूपका विल दीख पड़ता है, तुम तुरन्त इसमें जा घुसो; यहां अग्निका भय जाता रहेगा। तुम्हारे इसमें

पैठनेसे मैं धूरसे इस विलका मुह तोप दूंगी; अब प्रज्वलित अग्निसे वचनेका यही एक उपाय देखती हूँ। जब आग बुझेगी, तब मैं आकर विलके मुखसे राखका ढेर हथ दूंगी। तुम अग्निसे वचनेके लिये मेरा यह वचन मानो। शार्ङ्गोंने कहा, कि हमारे पंख नहीं जैसे हैं, हम मांसपिण्डही हैं, सो मांस खानेवाले मूप अवश्य हमको नष्ट करेंगे; इस भयकी बातको जान बूझ कर हम इसके भीतर घुस नहीं सकते। अब क्योंकर अग्नि हमें न जलावे, क्योंकर मूप हमें न खावे, क्योंकर पिताका पुत्र उपजाना व्यर्थ न होवे, क्योंकर हमारी माताका प्राण बचे, इनमेंसे किसीका एकभी उपाय नहीं देखते; सो निश्चयही हमारी मृत्यु आ पड़ची है। पर विलमें घुसती मूपसे और बाहर रहें तो अग्निसे मरेंगे; इन दो मृत्युओंके विषयमें समझ बूझके देखनेसे यही युक्ति होती है, कि अग्निसे जल मरना अच्छा है, मूपसे खाये जाना उचित नहीं है, क्योंकि शिष्ट ज्ञातानके मुखसे देह छोड़नेसे सुगति होगी विलमें मूपसे खाये जानेसे अनुचित मृत्यु होगी।

खाण्डवदाह पर्वमें दोसौ एकतीस

अध्याय समाप्त ।

जरिता बोली, कि इस गड्ढेसे एक ही मूप निकला था; एक बाज आके पावोंसे उ पकड़ ले गया है, इस विलमें तुमकी नहीं है। शार्ङ्गोंने कहा, कि हम बाज मूप ले जानेका व्योरा नहीं जानते, और ले गया हो, तो उस विलमें ढेर और मूप रह सकते हैं; उनसे हमकी विना सन्देह होरहा है; और यहां अग्नि आवे, कि न इसमें सन्देह है, क्योंकि उलटे वा अग्निका बुझनाभी देखा गया है; विलमें रहनेसे निश्चयही हमारी

हीगी और बाहर रहनेसे मृत्यु होनेमें सन्देह है। हे माता ! जिस स्थानमें मृत्युका होना निश्चय है, उससे वह किसी प्रकार अच्छा है, कि जहां मृत्युमें सन्देह है, सो न्यायके अनुसार तुमको आकाशहीको उड़ जाना उचित है, तुम्हारा जीवन बचे तो तुम दूसरे अच्छे पुत्र पासकीगी। जरिता बोली कि हे बेटो ! जब पक्षीवर बाज बिलसे मूषको लेकर वेगसे भागा था, तब मैंने उसके पीछे-दौड़कर अशीस दिया था, कि "हे बाज-राज ! तुम हमारे शत्रुको लेके भागते हो, तो तुम बिना शत्रु देवलीकमें सुनौली देह लेकर वसो।" अनन्तर उस बाजके मूषको राजाने पर मैं उसे जता कर घरकी लौट आयी। हे बेटो ! अब तुम चित्तमें कोई झग न उठाकर बिलमें जाओ, वहा तुमको कोई शङ्का न हागी; महात्मा बाजने मेरे समनेहो-मूषको खाडाला है। शार्ङ्गाने कहा, कि हे मायो ! हमने नहीं देखा, कि बाज मूषको हरले गया है, सो हम विशेष जानके बिलमें घुस नहीं सकते। जरिता लो, बेटो ! तुम मेरी बात माना, इसमें ही कोई भय नहीं है, क्योंकि न जानती हूँ, बाज मूषका हर लेगया है।

शार्ङ्गाने कहा, कि हम नहीं समझते, कि तुम उपचारसे हमारा भय भगाती हो, क्योंकि भयद्वारा वेगड़नेसे जा कर्म काया जाता वह ज्ञानसे नहीं होता है। हमने कभी तारा कोई उपकार नहीं काया, और यहभी नहीं जानतो, कि हम कान है, क्यों कष्ट उठाकर हमको ज्ञानकी चेष्टा रही हो ? देखो न तो तुम हमारी कोई शर न हम तुम्हारे कोई लगते हैं। हे मा !

शुद्धतो और उपवतो हों और पात की सामर्थ्य रखतो हो। सो तुम

निक.पोड़े जाओ, तिनसे अच्छा पुत्र पा

सकीगी। हम अग्निमें घुसकर अच्छे लोकमें जायंगे। यदि अग्नि हमको न जलावे, तो फिर तुम हमारे पास आना।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि शार्ङ्गी पुत्रोंसे यह बात सुनकर, उन्हें उस खाण्डववनमें छोड़के तुरन्त ऐसी बिन पीड़ाकी ठौरमें चली गयी, कि जहां अग्निका भय नहीं था, अनन्तर अग्नि वेगसे और तेज शिखायें लिये मन्दपात्रके पुत्र शार्ङ्गोंके खोतेके पास आये। तब उन पक्षियोंने प्रज्वलित अग्निकी देखा, और उनका ज्येष्ठ उस अग्निकी सुनाय सुनाय कहने लगा-

खाण्डवदाह पर्वमें-दोसौ वत्तीस

अध्याय समाप्त।

जरितारि बोला, कि ज्ञानी जन मृत्युकालके पहिलेसे जागते रहते हैं, उनको कभी मृत्युकी पीड़ा सहनी नहीं पड़ती। बिन चेतन जन मृत्युकाल आजाने पर सीते झुके समान रहता है, उसको मृत्युकी पीड़ा भोगनी पड़ती है; और वह मोक्षको नहीं पा सकता।

सारिच्छ बोला, हमारा यह प्राणका लेश आ गया है, तुम धीर और बुद्धिमान हो, तुम्ही हमारी रक्षा करो, क्योंकि वृद्धतेरोंसे एकही पुरुष बुद्धिमान और शूर होता है।

स्तस्त्रिमित्र बोला, ज्येष्ठ भ्राता कनिष्ठोके दाता होते हैं, सो ज्येष्ठ भ्राताही विपतसे बचाते हैं। जो ज्येष्ठ भाई न बचावे, तो कनिष्ठ क्या कर सकता है ?

द्रीण बोला, कि वह कुटिल कर्मवाला सुवर्णरेता सात जीभ सात मुह सहित वेगसे जलाता लहलहाता हमारे खोते पर आ रहा है।

श्री-वैशम्पायनजी बोले कि हे पृथ्वीनाथ ! मन्दपात्रके पुत्रोंने ऐसा कष्ट सुनकर निम प्रक्षार अग्निका स्तव किया था, वह कहता

हैं सुनो । जिरितारि बोला, कि हे जलानेवाले ! तुम वायुकी आत्मा हो, तुम लताओंकी देह हो । हे शुक्र ! तुम्हारे उपजनेका स्थान जल है और तुम जलके उपजनेका स्थान हो । हे महावीर्य ! तुम्हारी शिखा सूर्यके उजालेके समान ऊँचे नीचे पीकी, किनारे और सब जगह फैली रहती है ।

सारिच्छक बोला, कि हे धूमकेतो ! हमारी मा दृष्टिके बाहर उड़ गयी है, पिताकां भो हम नहीं पहिचानते और अभीतक हमारे पंख नहीं जमे, हम बद्धत बच्चे हैं । हे अग्नि ! अब तुम्हारे बिना हमारा बचानेहारा नहीं है ; सो तुम हमको बचाओ । हे अग्नि ! तुम्हारा जो कल्याणकारी रूप और सात शिखा है, उन्हीसे हम भय खाये और शरण लिये जड़ोंकी बचाओ । हे जातवेदे ! तुम अकेलेही ताप फैलाते हो । हे देव ! किंसी किरणको तुम्हारे बिना ताप पड़नेवाला कीड़े नहीं है । हे हव्यवाहन ! हम ऋषिपुत्र और बच्चे हैं, हमारो रक्षा करो, हमारे यहांसे अन्य स्थानका जाओ ।

स्तस्वामित्र बोला, कि हे अग्नि ! तुम अकेले सम्पूर्ण ब्राह्मणरूपी हो, तुम्ही पर यह सम्पूर्ण जगत्-विराजमान है ; तुम जीवोंको पालते हो ; तुम तजः पदार्थ हो, तुम हव्यको वहन करते हो, और तुम अच्छे हव्यरूपी हो । पण्डितोंने तुमको कारण-रूपमें एकरूपी और कार्य-रूपमें बहुरूपी जानते हैं । हे हव्यवाहन अग्नि ! तुम पहिले सृष्टिको रचते हो ; आगे काल आने पर तुम्ही बढ़कर फिर उसका नाश करते हो, सो तुम्ही सम्पूर्ण भुवनकी उत्पत्ति-स्थान हो और प्रलय स्थानभी तुम्ही हो ।

द्रोण बोला, कि हे जगपति ! तुम जीवोंके भीतर रहके बढ़कर उनका खाया हुआ अन्न नित्य पचाते हो ; सो सब भूत तुम्हारी ही

शरणमें रहते हैं । हे शुक्र ! हे वात वेद ! तुम सूर्य स्वर्ग वनके किरणसे भूमि में उपजा हुआ सब रस और धरतीमें स्थित जल ले समय समय पर फिर उसे वृष्टि दारो छोड़कर सब अनाज उपजाते हो । हे शुक्र ! तुम्हीसे यह सब पत्तेवाली लता, सरोवर और मङ्गलनिधान समुद्र उपज रहे हैं । हे की किरणधारिन् । हमारी यह देह रसनेन्द्रियोंके नाथ जलपति वरुण पर निर्भर है, अतएव तुम जब उस जलके विधाता हो, सो हमारे कल्याणकारी हो, ऐसी दशमें हमको दया नाहो तुमको उचित है, तुम आज हमको नष्ट मत करो । हे पिङ्गलनेत्र ! हे लानघ्रीत ! हे कृष्णवर्त्मन् ! हे ज्जताशन ! तुम हमसे दूर रहो, सागरके पास बने धरके समान हम छोड़ो । अत्रैशम्भायनेजी बोले, आगे जात वेदा अग्नि द्रोणकी यह बात सुन प्रसन्न हुए, और मन्दपालसे जो कुछ सुना था, वह करण कर बोले, हे द्रोण ! तुम ऋषि हो, तुम्हें जो कहा, वह वेदस्वरूप है, तुम्हारी अभिलाष पूरी करूँगा, तुम भय मत खाओ । पहिले मन्दपालने तुम्हारे लिये सुभासे कहा था, कि “जब तुम खाल्व वनको जलाओगी, तब मैं पुत्रोंको न जलाना” । हे द्रोण ! मन्दपालकी वह बात और तुम्हारी यह बात हमारे लिये बद्धत अधिक हुई है ; सो कहा, तुम्हारे लिये सुभको क्या करना होगा ? हे ब्रह्मर्षि ! तुम्हारी इस स्तुति पर मैं बड़ा कृतार्थ हुआ हूँ, तुम्हारा मङ्गल होगा । द्रोण बोला, हे ज्जताशन शुक्र ! यह सब किसी नित्य हमकी लताती हैं, सो तुम इन्ही वंशसहित जलाओ । अनन्तर अग्निने शार्ङ्गोंको जनाय जनाय उनकी प्रार्थना पूरी की, और बढ बढ़कर खाल्व वनको जलाने लग ।

खाल्वदाह पर्वमें दोसी तें तीस

अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे कौरव्य । धर वह मन्दपाल तेज प्रकाशमान अग्निसे ऐसा बचन कहने परभी पुत्रोंके लिये सोचमें रहे, किसी प्रकार मनको स्थिर नहीं कर सके । वह पुत्रके लिये मनको उदास कर लपितासे बाले, लपिते ! नहीं जानता मेरे बेटे जा चलने नहीं जानते है, कैसे है ! जब वायु चलनेके साथ अग्नि तेज होगा, तब मेरे बेटे अग्निसे बच नहीं सकेंगे, उनकी माता क्योंकि उन बच्चोंको बचा सकेगी ? वह तपस्विनी पुत्रोंको बचानेका उपाय न देखकर शोकसे विकल होगी । क्योंकि ऊपर उड़ने में असमर्थ मेरे बच्चोंको लेके हृदयमें दुःख पाय बद्धत रोती पीटती दौड़ेगी । हाँ ! बेटा जरितारि क्योंकि जीयेगा ? सारिखक क्योंकि प्राण बचावेगा ? स्तम्भमित्र क्योंकि बचेगा ? द्रोण क्योंकि रक्षा पावेगा ? मेरो वह तपस्विनी स्त्री क्योंकि जी सकेगी ? हे भारत । महर्षि मन्दपाल वनमें इस प्रकार विलप रहे थे, वह देखकर लपिता हीपवश उनसे कहने लगी, कि तुमने जिन पुत्रोंकी बात कही, उनके लिये मत सोची वे तेजस्वी और वीर्यवन्त है, अग्निसे उनको भय नहीं है, और तुमने स्वयं उन पुत्रोंको रक्षाके लिये अग्निसे कहा था । महात्मा ज्ञताशननेभी तथास्तु कहके उस बातका मान लिया था । वह लाक्षपाल हाकर कभी कही बातको वरुद्धता नहीं करेंगे, इस लिये इस विषयमें तुम्हारा चित्त स्वस्थ है, वास्तवमें तुम्हारा भगवन्सुके काथ्यका विराधो है, तुम मेरो भुवु जरिताहीको क्षरण कर व्याकुल हो रहे हो । पहिले जरिता पर तुम्हारा जैसा स्नेह था, अब सुप्त पर वैसा नहीं है, जिनके दो पक्ष हैं, वह स्त्री पुत्रादि स्वननोंका कष्टमें पड़नेसे रुह खोय उनकी उपेक्षा कर सकता है, उसको कभी आत्मपक्षकी उपेक्षा न करना

चाहिये, सो अब तुम जिसके लिये शोक करत हो, उसे जरिताहीके निवाट चले जाओ, मैंने न समझ बूझके जैसे पुंरुषकी शरण ली थी, उसीके फलसे अकेली चरों कखंगी ।

मन्दपाल बोले, तुम सुभको जैसा समझ रही हो, मैं तिस भावसे नहीं चलता हूँ । पर केवल सन्तान उपजानेहीके लिये ऐसे फिर रहा हूँ । अब मेरी उपजायी सन्तान कष्टमें पड़ी हैं । जा गये विषयकी छोड़ भावीकी आशा करता है, वह मूर्खजन लोगोंका अनादर प्राप्त करता है, सो तुम जो चाहती हो सो करी, मेरा हृदय उन सन्तानोंके लिये बड़ा उदास है, यह प्रज्वलित अग्नि वृक्षको चाटते हुए मेरे उस विकल हृदयमें अमिङ्गलका भय और दुःखही को ला रहा है । श्रीवैशम्पायनजी बोले, अनन्तर अग्निके शाङ्गीके खोताकी छोड़ कर आग बढ़नेसे जरिता रोती पीटती हुई तथा पुत्रोंका दूढ़ती फिरती वहा आ पड़ची और देखा, कि सब पुत्र वनमें अग्निसे वचे चंगे और कुशलसे है । अनन्तर वे माताको देखकर राने लग । जरिता उनके निहारकर बार बार आंसू गिरान लगी और उनको हर घड़ी चिन्तासे देखकर धीरे धीरे सबकी निकट जाके गले लगाया । हे भारत ! इस अवसरमें महर्षि मन्दपाल एकायक जा पड़चे, उनके पुत्रोंने उनको देखकर आनन्द प्रकाश नहीं किया । वह ऋषि हर पुत्र और जरिताके बार बार सम्भाषण करन लगे, पर उन्होंने भला बुरा कुछभी उत्तर नहीं दिया । आगे मन्दपाल जरिताका नाम लेकर बाले, कौन तुम्हारा बड़ा बेटा, कौन सभला, कौन तीसरा और कौन छोटा है । मैं दुःखवश बार बार तुमसे यह पूछता हूँ, तुम क्यों प्रतिउत्तर वा सम्भाषण नहीं करती हो । मैं तुम्हें छोड़के यहांसे चले जा करके शान्ति पा नहीं सका । जरिता बोली, तुमका बड़ बने, सभल, तीसरा

बेटे वा छोटे बेटेसे क्या प्रयोजन है ? पहिले तुमने मुझको हर-बातमें निरुष्ट देखा था ; जिसके पास गये थे, अब उस मधुरहासिनी युवती लपिताहीके पास जाओ । मन्दपाल बोले, नारिओंके लिये सौत वा दूसरे पुरुषके बिना इस लोक में अधिक शोचनीय वैरकी आग जलानेवाला और परलोकमें पुरुषार्थ-नष्टकारी और कुछ दोख नहीं पड़ता । सप्तर्षिके बीचमें स्थित ऋषिश्रेष्ठ महानुभव वसिष्ठ अति पवित्र-स्वभावी और सदा पत्नीके प्रेमी और हितकारी कार्यमें लग रहते थे । तिस परभी सर्व लोकोंमें प्रशंसिता सुव्रता अरुन्धतीने उन ऋषिवर वसिष्ठकी व्यभिचारका कलङ्क लगाके अनादर किया था । वह कल्याणी अरुन्धतीके वैसी अनुचित चिन्ता करने पर वह भूआं और सूर्यसमान प्रकाशवती, विन-देखे-रूपधरी कभी दीखती कभी न दोखती कुलक्षणीके समान लोगोंकी आंखोंमें पड़ती है । वसिष्ठ जैसे अरुन्धतीके अनिष्ट नहीं थे; मैं भी तैसीही तुम्हारा अनिष्ट नहीं हूँ ; मैं केवल सन्तानहीके लिये मिला हूँ ; ऐसी दशमें तुम मुझ पर अरुन्धतीके समान व्यवहार करती हो, स्त्रियोंका भार्या कहके कदापि न विश्वास करना चाहिये, उनके पुत्र होनेसे वे पातकी सेवाद काय्य अवश्य कतव्य करके नहीं समझती । श्रीवैशम्पायनजी बोलि, कि अनन्तर उनके पुत्र उनकी उपासनामें प्रवृत्त हुए, वह भी उन पुत्राको ढाढ़स देने लगे ।

खाण्डवदाह पर्वमें दोसौ चालीस

अध्याय समाप्त ।

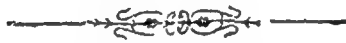
मन्दपाल बोलि, मैंने तुमको अग्निसे जल जानसे बचानेके लिये महानुभव अग्निकी जलाया था ; उस पर उन्होंने भी तथास्तु करके मान लिया था ।

मैं उन अग्निकी बात, तुम्हारे माताके धर्मनिष्ठा और तुम्हारे वीर्यकी स्मरण क पहिले यहाँ नहीं आया था । हे बेटे तुम वेदमें प्रसिद्ध ऋषि हो, अग्निभी तुम जानते है । श्रीवैशम्पायनजी बोलि, कि अनन्तर ऋषि मन्दपाल पुत्रोंको समभाय बुन पत्नीको साथ लेके वहाँसे दूसरी ठौर गये भगवान अग्निने ; इन प्रकार श्रीकृष्ण अर्जुनको सहायतासे जगतके हितके निमित्त खाण्डव वनको जलाया । उस स्थानमें और वसाकी नदी सोख कर परम पति होके अर्जुनके सामने प्रगट हुए । अनन्तर भगवान इन्द्र देवोंसे घेरे जाय आकाशमण्डल उतरकर अर्जुन और केशवसे बोलि, कि कर्म देवतालोक भी सहजमें निमटा न सकते, तुमने उसे पूरा किया है, अब मैं पर प्रसन्न हूँ, तुम वर मागो, यद्यपि पुरुष लिये वह दुर्लभ हो, तौभी तुमको दूँगा अनन्तर पार्थने इन्द्रजीसे सब अस्त्र माँगे अति द्युतिमान देवराज उन्हें देनेका क निश्चय कर बोलि, कि हे पाण्डव ! भगवान महादेव तुम पर प्रसन्न होगे, तब मैं तुमकी सब अस्त्र दूँगा । हे कुरुनन्दन ! जब उन अस्त्रोंके देनेका काल आ पड़वेगा तब मैं जान लूँगा ; मैं तुम्हारे महातपसासे तुमकी सब अस्त्र-सब वायव्य अस्त्र और अपने दूसरे अस्त्रोंको भी दूँगा ; तुम लेना । अनन्तर वासुदेवने प्रार्थना की, कि अर्जुनसे उनका सदा प्रेम बना रहै । देवराज सुबुद्धिमान श्रीकृष्णकी वह वर दिया, प्रभु देवराज इस प्रकार श्रीकृष्ण आर अर्जुनको वर देकर ज्ञताशनकी सन्भाषण करके देवलीक्ष्मण गये । भगवान पावक मृग और पक्षियोंके सहित खाण्डववनका जलाके आत तप्त होकर पन्द्रह दिनके पीछे बुझ गये । वह रक्त, मेद आर मारा खाय परम प्रसन्न

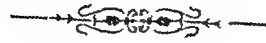
<p>हीय श्रीकृष्ण और अर्जुनसे बोले, कि तुम दोनों वीर और पुत्रोंमें श्रेष्ठ हो, मैं तुम-हीसे बड़ा सुखपाके लक्ष हुआ, अब आज्ञा करता हूँ, कि तुम्हारी गति न रुकेगी, जहाँ चाहोगे, वहीं जा सकोगे । हे भरतश्रेष्ठ !</p>	<p>महात्मा पावक उनको ऐसी आज्ञा देने पर अर्जुन वासुदेव और मयदानव यह तीन एकत्र होकर कुछ काल घूम फिरकर सुन्दर नदी तटमें जा बैठे ।</p>
---	--

दोसौ पैतीसव अध्यायमें खाण्डवदाह पर्व समाप्त ।

आदि पर्व समाप्त ।



महाभारत ।



सभापर्व ।

नारायण, नरोत्तम नर, देवी सरस्वती और व्यासजीको प्रणाम कर जय कीर्तन करे ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि श्रीकृष्णचन्द्र अर्जुन और मयदानव तीनोंके एकत्र होकर उस सुन्दर नदीके तटपर बैठने पर मयदानवने माधवके सामने अर्जुनकी वारम्बार उपासना कर दोनों हाथ जोड़के सीठी बातोंमें कहा, कि हे कुन्तिनन्दन अर्जुन ! इन क्रोधयुक्त दैत्य नाभी श्रीकृष्ण और जलाने चाहनेवाले प्रज्वलित प्रणिसे आपने मेरी रक्षा की है, सो कहें, मैं पलट्टेमें आपका क्या उपकार कहूँ ? अर्जुन बोले, कि हे महावीर ! तुम्हारे वचनहीसे सब कुछ मिल गया, अब जहाँ जी चाहे जाओ, इतनाही चाहिये, कि तुम सदा हम पर कृपा रखना और तुम परभी हमारा प्रेम बना रहे । मय बोला, कि हे पुरुषश्रेष्ठ प्रभो ! आप जायचन बोलते हैं, वह तो आपहीके योग्य है, पर तौभो मैं प्रीतिसे आपका कुछ उपकार करना चाहता हूँ । हे पाण्डव ! मे शिल्पकार्यमें दक्ष और दानवोंका विश्वकर्मा हूँ, इसी हेतु आपके लिये कुछ किया चाहता हूँ । अर्जुन बोले, कि हे अनघ ! तुम मत्स्यके मूढसे पतंजला राक्षस जानकर पलट्टेमें उपकार

करना चाहते हो, सो इस दशमें तुमसे कोई कार्य करा लेना ठीक नहीं है, पर यहभो नहीं चाहता, कि तुम्हारी कल्पना व्यर्थ हो, सो तुम श्रीकृष्णचन्द्रका कोई कार्य कर दो, उसीसे मेरा प्रत्युपकार हो जायगा । अर्जुनकी आज्ञासे जब मयदानवने वासुदेवसे प्रार्थना करी । तब उन्होंने सोना, कि इसको किस काममें लगाऊँ ? पनभर ऐसी चिन्ताकर प्रजापति लोकनाथ श्रीकृष्णचन्द्रने आज्ञा की, कि हे शिल्पदत्तदानव ! तुम मेरा प्रिय कार्य करना चाहो, तो युधिष्ठिरके लिये अग्नी इच्छानुरूप एक सभा बना दो । वह सभा ऐसी बने, कि जिसे देखकर धरती भरका कोईभी मनुष्य वैसी दूसरी सभा न बना सके और जिसमें दिव्य, आसुर वा मानवीय, सर्व प्रकारके अभिप्राय अर्थात् बनावटकी सब चतुरता देख पड़े ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि मयदानवने प्रसन्नचित्तसे वह बात मानके पाण्डवोंके नियम विमानके समान एक सभा-मत्स्यको तब बनायी । अतन्त्र कृष्ण और जित्वा देवों, यक्ष महाबलान् धर्मराज युधिष्ठिर के अग्र मयदानवके समक्ष के लिये । युधिष्ठिरने

उसकी यथायोग्य पूजा करी और उसनेभी बड़े सम्मानसे पूजा ग्रहण की। महाराज। सर्वकर्मोंके जानकार मयदानव उसकाल पाण्ड-
वोंसे दानव वृषपर्वाके विन्दु सरोवरमें किये हुए यज्ञादिकी पुरानी वधा दत्तने लगा। आगे कुछ काल तक धकावट दूरकर बड़ी चिन्तासे महात्मा पाण्डवोंकी रक्षा बनानेकी नेव डाली। महानुभव श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर आदि के मतसे बड़ा तेजोवन्त मयदानवने शुभ दिनको विधिपूर्वक पुण्यकर्म कर सहस्रों ब्राह्मणोंकी अनेक प्रकारके धन देके पायसाहसे भले प्रकार दत्त किया, आगे सर्व ऋतुओंमें सर्व सुख देनेवाली सुन्दर, मनभावनी पंच सहस्र छाद्यतक फैली रुमा भूमि दनायी।

प्रथम अध्याय समाप्त ।

श्रीदशरथायनजी बं.ले, कि पूजनीय जना-
र्हनेने खाण्डवप्रस्थमें परम प्रीतिपूर्वक, पाण्ड-
वोंसे सब भाति पूजे जाकर कुछ दिन परम
सुखसे गंवाया, आगे एक दिन पिताके दर्शनको
जाना चाहा। जगपूज्य पद्मनेत्र श्रीकृष्णचन्द्र
धर्मराज और पृथाकी सम्मानित कर अपनी
फफ्फी कुन्तीके दोनों पवोंसे लगे। पृथाने
उनको सिर सूषके गलेसे लगाया। आगे अति
यशोवत्त भगवान् हृषीकेश अपनी सुभाषिणी
वह्नि सुभद्राकी देख आनन्दके आंसुओंसे
नेत्रोंका भर उसके पास गये और बड़े प्रेमसे
सन्नेपमें उसको अर्थ पूरित, हित, उत्तरके
अयोग्य सत्य वचन बं.ले। सुभद्राने भी बार
बार उनके पांव लगकर स्वजनोसे जो कुछ
कहना या, कह दिया। वृष्णवंशी श्रीकृष्णने
वह्निनका उचित आदर कर द्रौपदी और
धौम्यकी भेंट की और धौम्यकी यथोचित
पूजा कर द्रौपदीकी सम्मानित किया और
उसके कारसे सम्मानाया। आगे पुनःपुनः विद्वान्
नारदने अर्जुनके मंग युधिष्ठिरादि भाइयोंके

निकट गये। इन्द्र जिस प्रकार अमरवृन्दसे
घेरे जाते हैं, वैसेही यदुकुलश्रेष्ठ महावली
श्रीकृष्णचन्द्र पंच भाइयोंसे घेरे गये, अनन्तर
नहा धोके शुचि होकर अलङ्कारादि परि-
यात्राकालके कर्माँको पूरा करनेको इच्छा
देव द्विजोंको माला मन्त्र, नमस्कार और ना-
प्रकारके सुगन्धित पदार्थोंसे पूजने लगे। य-
कुलश्रेष्ठ सनातन भगवान् पुण्डरीकाक्षने
कार्य कर लेनेके पीछे बाहरकी कच्चामें नि-
लके पूजनीय ब्राह्मणोंसे दधि भरे पात्र, फ-
और अक्षतसे स्वस्ति कहलाकर धन देके पा-
क्रमा की। आगे गदा, खड्ग, शार्ङ्ग आ-
अनेक अस्त्रोंसे रुजे सजाये, शैव्य तथा सुर्ग-
वादि चार घोड़ेवाले, कामगामी, गरुडध-
सुवर्ण रथ पर चढ़के शुभ दिनको, शुभ संयोग
शुभसुहृत् पर पधारे। कुरुनाथ युधिष्ठिर
उनके प्रेमसे पीछे रथ पर चढ़ और सारथि
वर दासकको अलग बैठाके आपही रथ-
रास थाम ली। दोर्घभुज अर्जुन भी रथ पर
चढ़के श्रीकृष्णको परिक्रमा दे सुवर्ण दण्डयुक्त
श्वेत चंवर डोलाने लगे। प्यारे शिष्योंके पीछे
पीछे जानेसे गुरु जिस प्रकार सुशीलित होते हैं,
शत्रुनाशी नारायण भाइयोंके पीछे चलनेसे वही
शोभा पाने लगे। अनन्तर गोविन्दने अर्जुनकी
बड़े प्रेमसे गले लगाकर युधिष्ठिर तथा भीम
सेनकी पूजा की और नकुल सहदेवकीभी गले
लगाके लाड़ दुलार किया। युधिष्ठिर आदि
नेभी कृष्णको गले लगाया, केवल दोनों
मादोश्मारोंने उसको प्रणाम किया। इस
प्रकारसे आधा योजन पथ जात्रेके पीछे शत्रुपर
जीतनेवाले धर्मके जानकार श्रीकृष्णने युधिष्ठिर
की प्रकार कर यह कहके, कि “आप लौट
जाय” उनके दोनों पांव पकड़ लिये। धर्म-
राज युधिष्ठिरने शिर सूषके यादवश्रेष्ठ कमल-
लोचन केशवके उठा कर जानिको आज्ञा दी।
इसके अनन्तर मधुसूदन “फिर आज्ञा”

त्यादि यथायोग्य सम्पादन पूर्वक अति कष्टसे उनको निवृत्त कर ऐसे प्रसन्नमनसे अपनी तरीकी गये, किंजैसे इन्द्र अमरावतीकी ओर गये। जितनी आंख चली पाण्डवोंकी दृष्टि श्रीकृष्ण परहो जमी रहो और अति प्रेमके कारण उनका मन श्रीकृष्णके पीठे पीठे चला, पर किसी प्रकार उनकी आंख और मन नहीं उक्ताया। प्रियदर्शन श्रीकृष्ण शीघ्रही उनकी दृष्टिके बाहर होगये। श्रीकृष्ण पर मन लगाये हुए पुरुषोंमें श्रेष्ठ पाण्डवगण इच्छा न रहने परभी अपने नगरको शीघ्र लौटे। तब देवकीनन्दन श्रीकृष्णभी गस्ड़ समान दासकके साथ रथ पर चढ़के द्वारकामें जा पड़ेंगे। सात्वत वीर सात्यकि उनके पीठे पीठे गये।

शैशमपानजी बोले, कि अक्षय शीलशुक्त धर्मराज युधिष्ठिर भाइयोंके साथ लौट करके वसुओंमें धरे जाय पुरीमें गये। आगे वसुओं, भाइयों और पुत्रोंको विदा कर पुरुषवर धर्मराज द्रौपदीके साथ एकात्ममें आनन्द भोगने लगे। इधर कमलनेत्र केशवभी प्रसन्न मनसे अपने सुन्दरपुरमें प्रवेशपूर्वक यदुश्रेष्ठ उग्रसेनादिसे पूज जाय और वृद्धपिता वसुदेवजी यशस्विनी माता और ज्येष्ठ भ्राता बलदेवजीकी प्रणाम कर विराजने लगे। अनन्तर प्रद्युम्न, शाम्भु, निशठ, चारुदेण, गद, अनिस्त, भानु आदि पुत्रोंको गले लगाय वृद्धाकी आज्ञासे रुक्मिणीजीके भवनमें जा विराजे।

दूसरा अध्याय समाप्त ।

शैशमपानजी बोले, कि अनन्तर मय-दानव विजयियोंमें श्रेष्ठ अर्जुनसे बोला, कि आपकी आज्ञा हा, ता अब विदा लेकर चला जाल पीठे पालगा। पहिले नैन कैला-शके उत्तर नैनाक पर्वतके निकट दानवोंके देशकालमें विन्दुसरोवरके पास एक विचित्र

सुन्दर मणि-जडित भाण्ड बनाया था, उस समय उसे सत्य प्रतिज्ञा करनेवाले वृषपर्वाकी सभामें रखा था। हे भारत। यदि वह आज तक विद्यमान हो, तो मैं नैनाकसे लौटते समय उसे लेआलंगा और आपकी यश-वढ़ावनी मनभावनी सर्वरत्नसे सुहावनी विचित्र सभा बनाजंगा। हे कुसुनन्दन! जान पड़ता है, कि उस विन्दुसरोवरमें एक बड़ी कठोर गदाभी पड़ी है। राजा वृषपर्वा ने लक्ष गदाओंके समान, बड़ा भार सहने योग्य, सुवर्ण, विन्दु जटित, शत्रुनाशी उस कठोर गदासे शत्रुओंको हननकर उसे वहाँ गाड़ रखा है। गाण्डीव जैसे आपके याग्य है, वह गदाभी वैसेही भोमसेनके योग्य है। फिरभी वरुणजीका देवदत्त नामक वज्रत वजनेवाला बड़ा भारी शङ्खभी उस सरोवरमें है; इसका सन्देह न कोजिये, कि मैं वह सब लाके आप का दूंगा। वह असुर पार्थसे ऐसा कहके पूर्वोत्तर ओरको पधारा। कैलासके उत्तर नैनाकपर्वतके निकट हिरण्यशृङ्ग नामक अनेक मणियोंसे भरा, बड़ा भारी गिरि है, वहाँ सुन्दर विन्दुसरोवर विद्यमान है। उस सरोवरके तटपर भगीरथीन श्रीगङ्गाजीके दर्शनके लिये वज्रत वर्ष गंवाये थे। हे भरतश्रेष्ठ। उस स्थानमें सर्वभूतोंके अधीश इन्द्रजीने सौ महायज्ञ करके शंभाके लिये पहिले कभी न बने मणिके दूध और सोनेके चैत्य बना रखे हैं। वही यज्ञ कर उन शत्रोनादने रिद्धि-सिद्धि लाभ को थे। अति तेजोवन्त सनातन भूतनाथ महादेव सर्व लोकोका रचके उस स्थानमें विराजमान होकर सहस्री भूतोसे पूजे जाते हैं। उस स्थानमें नर नारायण, ब्रह्मा, यम और रुद्र नक्षत्र युगोंके अन्त होने पर यज्ञ किया करते हैं। वासुदेव केशवने धर्मा संस्थापन करनेके लिये उस स्थानमें वज्रत दर्प तक सदा सदा सहित यज्ञ

किया था, और उस स्थानमें उन्होंने सुवर्ण-मालायुक्त यूप चमकीली चैत्य और दूसरी सहस्रों बनी बनायो वस्तु दान दी थीं। हे भरतनन्दन ! मयदानवने वहां जाके वृषपर्व्याकी अधिकार की हुई गदा, शङ्ख और सभा बनानेके योग्य जितनी स्फटिककी सामग्री थी, सब ले ली। यज्ञ और राक्षस लोग जो अनेक धनकी रखवारी करते थे, उस मयासुरने वहां जाके वह भी ले लिया। वह सब ले कर असुरने तीनों लोकोंमें प्रशंसित, मणिकी उस अप्रतिम सुन्दर सभाकी रचा और भीमकी वह अच्छी गदा तथा अर्जुनकी दिवदत्त नामक वह बड़ा भारी शङ्ख दिया। महाराज ! सुनौले वृक्षोंसे सुहावती वह सभा चारों ओर पांच सहस्र हाथ फैली बनी। उस सभाने सूर्य चन्द्रमाकी सीमाके समान चमकता अति सुन्दर स्वरूप प्राप्त किया। अपनी प्रभाके प्रभाव से सूर्यकी तेज-प्रभाकी भी लजाया। लोकोंमें न मिलने-वाले तेजसे मानो प्रज्वालितकी भांति आकाश-मण्डलकी छँप लिया। वास्तवमें दक्ष सुमति मयने जैसी लक्ष्मी चौड़ी, अति निर्मल, धकाबट मिटावनी, मनोहररूपिणी, अनेक चित्रोंसे सुहावनी, रत्नप्राचीर वेष्टित बहुमूल्य सभा बनायो। वैसी न तो श्रीकृष्ण चन्द्रकी न ब्रह्माजीकी और न किसी दूसरे सुरकी थी। आकाश में उड़नेवाले, महाबली, भारी देहधारी लालनेत्र शक्तिकर्णवाले, अस्त्र लिये हुए आठ सहस्र किङ्कर नामक भयावने राक्षस मयकी आज्ञासे सभाकी रखवारी करने और वहने ढोनेमें लगे थे। उक्त सभामें मयने एक बड़ा सरोवर खुदवाया। उस सरोवरमें मणिके मृणाल और सुनौले कहार कदम्ब सुहाते थे और भाति भातिके पक्षी इधर उधर खेल कूद रहे थे खिले कमल और सुनौली मछली तथा कद्रुओंसे सुहावन चित्रित स्फटिककी सीढ़ी-जानि मन्दपवनसे आन्दोलित, मोती विन्दुओंसे

खचित, महामणि शिलापट्टकी वेदोंसे चारो ओर सुमण्डित, मणि रत्नोंसे सुशोभित उस अमल जालकी देखकर कोई कोई राजकर्म्मचारी भ्रमसे उसमें गिर गये। उस सभाके चारो ओर फूलवाले, नील, टण्डी छाहवाले अनेक भातिके मनहरनेहारि वृक्ष और सुगन्धी वन तथा हंस, कारण्डव तथा चक्रवर्त्तियोंसे भरे तालाव इधर उधर सुहाते थे। गन्धवहनेवाली पवन सर्वत्र जलमें उपजे कमलोंकी सुगन्ध ले ले पाण्डवोंकी सेवा किया करती थी। महाराज ! मयने चौदह मंहीनेमें ऐसी अच्छी सभा पूरी बनाकर धर्मराजकी समाचार दिया।

तीसरा अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर नरनाथ युधिष्ठिरने मधुयुक्त, घृतमिश्रित पायसाक बद्धविध फल मूल और हरिण शूकर आदिके मांससे दशसहस्र ब्राह्मणोंकी यथायोग्य भोजन कराके सभामें प्रवेश किया। महाराज ! उन्होंने नाना दिशाओंसे आये विप्रवर्गोंकी तिलोदन, जीवन्तीशाक, हविष्यान मांसके अनेक पकवान इत्यादि बद्धविध चोबन, चूने चाटने, पीनेकी अपरिमित सामग्री और कौर चौर, गहनोंसे प्रसन्न किया और उनमेंसे हरेकको सहस्र गौ दान दी। हे भरतनन्दन ! उस कालमें पुण्यार्ह ध्वनि अर्थात् "आज कसा शुभदिन है" लोगोंका यह आनन्द कोलाहल आकाशमें गूजने लगा। कुरुश्रेष्ठ युधिष्ठिरके बाजे और फूल धूपादिकी मनहरनी गन्ध देवोंकी पूजाकर सभामें घुसने पर वहां मन्त्र, मन्त्र, नट, स्त और स्तुतिगाने वाले अपना अपना गुण प्रगट कर उनकी उपासना करने लगे। पञ्च पाण्डव ऐसी भीड़मंडाके से उक्त सभाकी प्रतिष्ठा कर अमरावतीमें बैठे देवराजकी भाति परम सुखसे वहां विराजन लगे। वहां

अनेक देशोंसे आये नरेश और ऋषि पाण्डवोंके साथ बैठते थे । असित, देवल, सत्य, सर्पमाली, महाशिरा, अश्विवासु, सुमित, मैत्रेय, शुनक, बलि, वक्र, दाल्भा, मूलशिरा, कृष्णहैपायन, गुक, सुमन्त, जौमनि, पैल, मेरे सहित व्यास जीके सब शिष्य, तित्तित्रि, याज्ञवल्क्य लोमहर्षण और उनके पुत्र, अश्वहोम्य, धौम्य, अग्नी-माण्डव्य कौशिक, दामोदरीश, स्वैवलि, पर्णाद, वरजानुक, मौञ्जायन वायुभन्नी पारा-शर्य्य, सारिक, बलीवाक, शिलीवाक, सत्यपाल, कृत-अम, जातुकर्ण, शिखावान, आलव्य, पारिजातक, महाभाग पर्वत, महासुनि मार्कण्डेय, पवित्र-पाणि, सावर्णा, भालुकि, गालव, जङ्घावन्धु, रैभ्य, कोपवेग, भृगु, हरिवन्धु, कौण्डिन्य वन्धुमाली, सनातन काशीवान, औपिज, नाचिकेत, गौतम पैङ्ग, वराह, शुनक, महातपा शाण्डिल्य काण्डिन, विष्णुजङ्ग, कालाप और कठ, धर्मके जानकार संयतात्मा और जितेन्द्रिय यह सब और वेद वेदान्तमें पाण्डित, धर्मज्ञ और पवित्र दूसरे अनेक ऋषिसत्तम बहुविध विशुद्ध पुण्य-कथा कहकर धर्मराजकी उपासना करते थे । और आमान महात्मा धर्मात्मा सुज्जकेतु, विवर्द्धन, संग्रामाजत, दुर्मुख, वीर्यवान् उग्रसेन पृथ्वीनाथ कक्षसन, अपराजित चैमक, काम्बोजराज कमठ, बड़े पराक्रमी कम्भन (जिन्होंने कालकेयआद असुरकुलनाशी वज्रधारी देवराजकी भात, अर्बले बलसे डट मर्दसे पटे शस्त्रोंमें लूटे तेजसे एकटे यवनाका कंषाया था) मद्रनाथ जटासुर, कुान्त, किरात-राज पुलिन्द, अङ्ग, वङ्ग पुण्डक पाण्ड्य, उड्डराज, अन्धक साम्ब, शत्रुनाशी शैब्य, किरातराज समना, यवननाथ चानुर, देवराज, भोज, भीमरथ, कालङ्गराज युतायुध, मगधनाथ जयसेन, सुकर्मा, चोकितान, शत्रुनाशी पुरु-केतुमान, वसुदान, वेदेह कृतचण, सुधर्मा, मानस, अति बलवन्त युतायु, दुर्दर्प अनूप-

राज, सुदर्शन क्रमजीत, पुत्रसहित शिशुपाल, कक्षधाधिप, वृष्णिवशके कठीर देवसूधी कुमारगण, आङ्गक, विष्टु, गद, सारण, अक्रूर, कृतवर्मा, शिनिपुत्र सत्यक, भोजक, अङ्गुति वीर्यवन्त द्युमत्सेन, बड़े चापधारी कैकेयगण और सोमकपुत्र यज्ञसेन यह सब और विज्ञोके जाने दूसरे बल्लतेरे क्षत्रियभी धर्मराज युधिष्ठिरकी उपासनामें लगे रहते थे । महाराज । प्रद्युम्न, शाव्य, युयुधान, सात्यकि, सुधर्मा, अनिरुद्ध, नरमेघ शैब्य आदि वृष्णिनन्दनगण और अति पराक्रमी जितने राजकुमार नृगञ्जाल पहिरे अर्जुनसे अस्त्र सीखते थे, वे भी उस सभामें उपस्थित रहते थे । इनके उपरान्त धनञ्जयके सखा तुम्बुरु, असाध्य सहित चित्र-सेन, और ताललयमें रहते, गालिवाजिमें लूटे गन्धर्व, किन्नर, और अप्सरा निवाट रहती थीं । लयस्थान तथा प्रमाणके सुजान महामन किन्नर और गन्धर्व तुम्बुरुकी आज्ञा पाय दिव्यतानसे नियमपूर्वक गाय वजाय पाण्डव और ऋषियोंकी उस सभामें प्रसन्न करते थे । स्वर्गमें देवगण जैसे ब्रह्माकी उपासना करते हैं, वैसे सत्य प्रणठाने, व्रतमाने पुरुषगण उस सभामें बैठे युधिष्ठिरकी उपासना करते थे । चौथा अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोलें, कि हे महाराज ! महात्मा पाण्डवगण आर प्रधान प्रधान गन्धर्व उस सभामें बैठे थे, कि ऐसे समयमें सबाल वेदापानपदाके जानकार, सुराके पूजनाथ, इति-हास तथा पुरानोंके जाननेवार, अतीत कल्पक विगेषज्ञ, और धर्मके तत्त्वज्ञ, शिवा कल्प-व्याकरणाद पण्डित शास्त्रोंमें असाधारण ज्ञाना परस्पर बलवत् । वाधवाक्याका एका कर्तव्यान्, वाक्योंका अलग अलग कर देन और एक कर्ममें अनेक धर्म साधन कर देने । अनेक अधिकारके अनुसार सत्त्व । नृप-प-

विषयमें बड़े पण्डित, वाग्मी अति प्रगल्भ स्वभावी, मेधावी, स्मृतिमान, नीति शील, कवि, भले बुरेके अलग करनेमें ज्ञान रखने वाले, प्रत्यक्ष, अनुमानादि प्रमाणोंसे वस्तुओंके विचारक, प्रविज्ञा हेतु अदि पांच प्रकारके अङ्गयुक्त बात्योंके गुण दोष जाननेवाले, बृहस्पतिजीके भी बात उठाने पर उनकी बातोंके क्रमसे उत्तर देनेमें समर्थ, धर्मार्थ काम मोक्ष चारों बर्गोंके सारके जानकार, योग-बलसे क्या ऊर्ध्व क्या अध, क्या तिर्थक सम्पूर्ण भूमण्डलके प्रत्यक्षदर्शी, वेदान्त-विचार और-योगविभागके जाननेवाले, भगड़ा-उठा कर देव और असुरोंकी निर्बेदयुक्त करनेके सम्पूर्ण उद्यत सन्धिविग्रहादिके तत्त्वज्ञ, अनुमानसे कार्याकार्य विभागमें अभिज्ञ, सन्धिविग्रहादि बड़े गुणो, विधि के उपदेश करनेवाले, सर्व-शास्त्रोंमें पण्डित, युद्ध और नृत्यगोतादिको चाहनेवाले, किसी कार्यसे चित्तको न हटाने-वाले, और दूसरे सब गुण रखनेवाले, आत्म तत्त्व ढूढ़नेवाले, बड़े तेजस्वी महर्षि नारदजोने पारजात, धीमान रैवत, सुमुख और सौम्य, इनके साथ लोकमण्डलमें घूमते घूमते हुए पाण्डवोंके दर्शनके लिये प्रसन्न होके मनके मानस तेज चालसे उनकी उस-सभामें आकर जय अशीससे धर्मराजकी जयजयकार तथा पूजा की। ऋषिका आते देखकर सर्व धर्मके जानकार आते नम्र व्यवहार धर्मकुमारने एकायक अनुजोंके समेत खड़े होत दशाय शिर भुक्ताय प्रणाम कर पाद, अर्घ्य याग्य आसन गो, मधुपर्क, वज्रविधि रत्नादि सर्व-कामनाओंसे उनकी पूजा की। वह भी युधिष्ठिरसे योग्य पूजा पाय प्रसन्न हुए। वेदपारग महर्षि और नारदजो पाण्डवोंसे पूजे जाय युधिष्ठिरसे धर्मार्थ-कामयुक्त यह नोचे लिखे प्रश्न किये।

नारदजी वीली, महाराज ! तुम्हारा

धन सज्जित और उचित कार्यमें व्ययित तो हो रहा है ? तुम्हारा मन धर्म पर बना तो है। और इससे चित्त जवता तो नहीं ? नरनाथ । तुम्हारे पुरपे अच्छी, ममली और बुरी प्रजासे जैसे धर्म अर्थकी रीतिसे अच्छा बर्ताव करते थे, तुमभी वैसेही करते तो हो। अर्थके लिये धर्मको और धर्मके लिये अर्थको हानि तो नहीं पहुंचाते ? अथवा हालग सुखदायी कामके वशमें हो जाय धर्मार्थ दोनोंको हनते तो नहीं ? हे परोपकारी जय-निहारी कालविहारी युधिष्ठिर ! तुम योग्य कालमें भागकर तुल्य रीतिसे धर्म अर्थ कामकी सेवा तो करते हो ? हे अनघ ! वक्तुता प्रगल्भता आदि छः राज-गुण, साम दानादि सात, उपाय और वलावल द्वारा राजाओंके चौदह भातके दोषोंका भले प्रकार जानते हो कि नहीं ? हे जयशील ! अपनी और परायी दशाकी समझ बूझकर कार्य तो करते हो ? और शत्रुओंसे हेल मिलकर कृषि वाणिज्यादि आठ प्रकारके कर्म कर लेते तो हो ? हे भरतकुल प्रदीप ! तुम्हारी दुर्गनायादि सप्तविध प्रकृति शत्रुओंसे मालहत हाकर अथवा आद्य वर्गके व्यसनी तो नहीं बनी ? वे सब भली भात तुम्हारी प्रेमी तो बने हैं ? छलो निडर दूतासि, तुमसे अथवा तुम्हारे मान्त्योंसे तुम्हारी परामर्श प्रकाश तो नहीं होता ? शत्रु, मित्र और विरागी जो कुछ करना चाहते हैं, वह जान ता लिये हा ? उचित कालमें सन्धि-विग्रह तो करत हो ? उदासोन और मध्यस्थों पर मध्यस्थताकी अबलम्बता करते हा ? हे वीर-वर ! निहीष, काज अकाजके समभदार, प्यारे, तथा अपने समान सुवंशी वृद्धोंकी मन्त्रीके पदों पर बैठाया तो है ? क्योंकि, हे भारत ! मन्त्रही राजोंको जयको जड़ है। सब शास्त्राम पण्डित मन्त्रीगण मन्त्र छिपाकर भली रीत तुम्हारे राज्यकी रक्षा तो करते हैं ? तुम

निद्राके अधीन तो नहीं होते ? उचित समय पर जागते तो ही ? हे अर्थज्ञ ! शेष निशिमें उचित अनुचितकी चिन्ता तो कर लेते ही ? अकेले अथवा अनेकोंके साथ युक्ति तो नहीं करते ? तुम्हारे गुणयुक्ति तो राज्यमें नहीं पड़ती ? थोड़ी चेष्टासे मिलनेवाले, पर बड़े फलदायी, ऐसे कार्योंकी शी आरम्भ तो करते हैं । किसी हेतुसे इसमें बाधा तो नहीं डालते ? सब कार्योंका, अन्तभाग तुम्हारी दृष्टिमें पड़ता और निःशङ्क होता है कि नहीं ? आरम्भ कर उन सब कार्योंको त्यागना तो नहीं पड़ता ? अथवा उन सबोंका प्रबन्ध बिगड़ता तो नहीं ? विश्वासी, अलोभी, प्राचीन, क्रमके जाननेवाले कर्मचारियोंसे वह सब किये तो जाते हैं ? महाराज ! लोग तुम्हारे किये गये वा किये जाते हुए कार्योंको जान तो लेते हैं ? हे वीरवर ! जो सब कार्य नहीं हुए हैं, उन्हें तो किसीने नहीं - जाना ? सर्व शास्त्रोंमें पण्डित आचार्यगण कुमार और युद्धके सुखियोंकी धर्मको शिक्षा तो देते हैं । सहस्रों मुखोंके बदले एक पण्डितकी मील लेते हैं कि नहीं ? क्योंकि पण्डित लोग बड़ी विपत्तसेभी उडार करके मङ्गल करते हैं । तुम्हारे दुर्ग, धन, धान्य, रत्न, अस्त्र, शस्त्र, जल, यन्त्र, दण्ड, शिल्पीगण और चापधारियोंसे रारे पूरे तो हैं ? मेधावी, शूर, जितेन्द्रिय और चतुर एकही राजमन्त्रीसे भी राजा वा राज-हुमार बड़े औमान हो सकते हैं, सो ऐसा कोई मन्त्री आपके यहाँ है तो ? हे शत्रुमथन परस्परके अनजानी तीन तीन प्रणिधियोंसे विपत्तियोंके पुरोहितादि अठारह तीर्थ और निज पक्षके पन्द्रह तीर्थ जान तो लेते हैं । शत्रुपक्षके न जाननेमें सदा सावधान और उत्तमान होकर उनका सब हाल जान वा लेते हैं ! विनयी, सुवंशी वहे नामी, रामे राहित और मत्तानुभव, पराहितो-

का - तुम सदा आदर तो करते हो ? कोई सरल-चित्त विधिदर्शी जन तुम्हारे अग्निहोत्र कार्यमें नियुक्त होकर यह तो जताते हैं, कि कब हवन हुआ और कब करना चाहिये ? जो तुम्हारे ज्योतिष-शास्त्रके प्रतिपादक हैं, वह सामुद्रिक-शास्त्रके अनुसार अङ्ग परीक्षामें पण्डित, -देवी अभिप्रायोंके जानकार और दैवादि विपत्तिके रोकनेमें दक्ष तो हैं ? उत्तम, मध्यम और निकृष्ट नौकर तो रखे गये ? कुलकी परम्परासे चले आते हुए, अकपट अमल-चित्त श्रेष्ठ मन्त्रियोंकी श्रेष्ठ कार्योंमें नियुक्त तो कर दिया है ? तुम्हारे कड़े दण्डसे प्रजा चिढ़ती तो नहीं ? मन्त्री लोग तुम्हारी आज्ञासे राज्य-शासन तो करते हैं ? याजक जैसे पतित जनका और नारियां कड़े स्वभावी खेक्काविहारी पतिका अनादर करती हैं, तैसे मन्त्री लोग तुम्हारा अनादर तो नहीं करते ? तुम्हारा सेनापति प्रगल्भ, शूर, मतिमान, धीरजवान, शुचि, सुवंशी, धारा और काममें दक्ष तो है । अपने सैनिकोंमें सर्व युद्धमें दक्ष, प्रगल्भ, शुद्ध चिन्त, पराक्रमी बड़े बड़े जनोंका आदर-पूर्वक सम्मान तो करते हो ? सदा सेनाओंका पावना अन्न और वेतन ठीक समयमें तो देते हो ? काल बिताकर उनको पीड़ा तो नहीं पड़वाते ? क्योंकि उचित समय पर उनकी अन्न वेतन न देनेसे वे कुगतिमें प्रभुकी हानि पड़वा सकते हैं, उस अनर्थको पण्डितलोग बड़ा अनर्थ कहते हैं । सुवंशी और धारे बड़े बड़े जन तुम्हारे हितके निमित्त युद्धमें प्रसन्न मनमें प्राण छोड़नेकी प्रस्तुत तो हैं ? गामनाधीन कोई कामात्मा जन अकेला बद्धविध रुढ़नीला स्वेच्छाने करने तो नहीं पाता । कोई कोई पुरुषार्थ प्रकटकर अपना कर्म उज्ज्वल बनाए तुमसे बड़तन्मान अथवा बड़त शत्रु और वेतन न पाने में प्रिया विनयसे उन्हें, शानसे

पक्षे लोगोंको तुम गुणके अनुसार उचित पारितोषिक तो देते हो ? हे भरतश्रेष्ठ । तुम्हारे लिये प्राण छोड़े अथवा विपनमें पड़े परिवारोंकी पालते पोषते तो हो । भय पाये वा शक्ति खोये अथवा युद्धमें हारे, शरण लिये हुए शत्रुओंको एतके सम्मान पालते तो हो । हे पृथ्वीनाथ । धरती भरके सब लोग तुमकी पक्षपातसे रहित और पिता माताकी भांति अनडरावने जानते तो है ? शत्रु वस्त्रोंकी बनाव है, सुनके तुम मन्त्र, क्रोध और उत्साह इन तीन प्रकारके बलकी भली भांति आलोचना कर उस पर शीघ्र चढ़ जाते हो कि नहीं ? हे अरिन्दम । पाषाण, ग्राह आदि वारह प्रकारके मण्डल कृत्रिम निश्चय और पराजय विशेष रूपसे जानके और सैनिकोंका अग्रिम वेतन चुकाकर देवादि व्यसन सब भली प्रकार आलोचना करके योग्य समयमें युद्धयात्रा तो करने हो ? हे शत्रुतापन । शत्रुराज्यमें आपसका बिगाड़ उभाड़नेके हेतु बड़े बड़े सैनिकोंकी योग्यताके अनुसार शत्रुकी बिन देखी बनी बनायी अच्छी वस्तुका पारितोषिक तो देते हो ? हे पृथाएव । पहिले अपनेकी जयकर जितेन्द्रिय होय पीछे अजितेन्द्रिय प्रसन्न शत्रुको परास्त करना तो चाहते हो ? शत्रुओं पर चढ़ जानेके पहिले भली प्रकार अनुष्ठान किये हुए सास, दान, भेद और दण्ड यह चार उपाय विधिपूर्वक प्रयोग तो किये जाते हैं ? अपने राज्यकी भली रीतिसे रक्षा करके पीछे शत्रुओंकी जय करनेके लिये बल विक्रम प्रगट तो करने हो ? जय करके उनकी रक्षा तो करते हो ? हे शत्रुनाशि । अष्टाङ्ग युक्त चार प्रकारके बल रखती हुई सेना बड़े बड़े योधोंसे सिखायी जाकर तुम्हारे शत्रुकी मारने तो जाती है ? हे महाराज । पराये राज्यो अनाज काटने और धर्मिकके कालको न त्याग करके युद्धमें भी लड़ना तो करते हो ? अपने और

पराये राज्यमें बहुविध नौकर चाकर बहुविध काममें नियुक्त रहकर उन कामोंकी करते और एक दूसरेकी बचाते तो हैं ? हे महाराज । तुम्हारे विश्वासी जन भोजनकी सामग्री और वस्त्र चन्दनादि तो एकत्र रखते हैं ? क्रोध शय्यगृह, वाहन द्वार अस्त्र और अन्तःपुर यह सब तुम्हारे मङ्गल चाहने-वाले भक्त नौकरोंसे रखे तो जाते हैं ? हे प्रजानाथ । रसीदया आदि भीतरी और सेनापति आदि बाहरी जनोंसे पहिले अपनी रक्षा कर पीछे पुत्रादि आत्मजनोंसे उनकी और उनमें परस्परसे परस्परकी रक्षा तो करते हो ? दिनके पहिले भागमें तुम्हारा पान, सुन्दरी, चौसड़ आदिके व्यय व्ययका हाल कोई जान तो नहीं सकता । तुम्हारी आयके आधे, तोसरे वा चौथे भागसे तुम्हारा व्यय पूजता तो है ? सदा धन धान्य देकर गुरु, ब्रह्म, वणिक, शिल्पी, शरणागत और कुदशामें पड़े जनों पर कृपा दिखाते तो हो ? आय व्ययमें लगी लेखक और गणक नित्य तुम्हारी आय व्ययका हिसाब लगाते तो है ? विषयमें चिन्तन लगाये हितैषी पार कर्मचारी बिनादोष कर्मसे निकलते तो नहीं जाते ? हे भरतनन्दन ! भली, बुरे और समस्त जन भली प्रकार जाचे जाय योग्य कर्ममें नियुक्त तो होते हैं ? हे प्रजापते । चार लोभी, शत्रु अथवा बालक तो तुम्हारे कार्यमें नहीं नियुक्त होते ? चार, लोभी, कुमार वा नारी अथवा तुमसे राज्यमें कोई बखेड़ा तो नहीं उठता तुम्हारे राज्यके किसान तो सदा प्रसन्न रहते हैं ? बड़े बड़े ताल जलसे लवालवा होकर विभागके अनुसार ठौरठौरमें बने तो हैं ? अधिकांशमें वृष्टिका कोई बड़ा प्रयोजन तो नहीं है ? हर सैकड़में चौथा भाग बटतो लेकर कृपाचित्तसे उनकी ऋण तो देते हो ? तुम्हारी कृषि, वाणिज्य, पशुपालन और ऋणदान यह चार प्रकारकी वार्त्ता तो सुचरित जनोंसे भली

प्रकार की जाती है ? हे वैद्य । वार्त्ताके प्रबन्ध रहनेहीसे लोग सुखी हो सकते हैं, भूर और आनी पांच सनुष्य पुरवासी पालन, दुर्ग-पालन, वणिक् पालन, क्षुपिका देखना भालना और दुष्टोंका शासन इन पान कार्यों में नियुक्त रहकर एकमतसे तुम्हारे जनपदोंके सङ्गलका प्रबन्ध करते तो हैं ? राज्यरक्षाके लिये ग्राम नगरके समान और प्रान्त भाग ग्रामके समान बने हैं कि नहीं ? नियम समाचार आदि भेजनेसे उा सब विषयोंका धार तुम पर पड़ता है कि नहीं ? चोर तुम्हारे पुरेकी हनकर सरा मोर जंची नीची सब तीरे लूट सचाजें तो सैनिक लोग उनकी पढ़ियाते तो हैं ? तुम स्त्रियोंकी डाढ़स दे उनकी रक्षा तो करते हो ? उनकी बातोंका विश्वास अथवा उनसे कोई गुप्त बात तो नहीं कह देते ? हे महा-राज । किसी विपत्तकी आती हुई सुन और उसकी चिन्ता कर अन्तःपुरमें सब चन्द्रनादि प्यारी वस्तु लगाके सा तो नहीं रहते ? रात्रिके दहर और तीरे भागमें सुखसे सोकर शेष अंशमें उठकर धर्मादकी चिन्ता तो करते हो । हे पाण्डित्य उचित समयमें उठके बग टककर राग्यके जानकार सलियोंके साथ दर्शन चाहनेवाले जनोका निच सेट ता करन देते हो ? हे शत्रुमयन । तालावर पहिरे गहनोंसे सजे जन अरु लिये रखपारीके निमित्त तुम्हारी दानों और खड़े ता रहते हैं । ५। दण्डयोग्य क्या पूजा दान, क्या प्रिय, क्या अद्रिय सर्वोका जाव कर यमराजकी भात टीक व्यवहार ता करते हो । हे पृथ्वीनाथ । नियम और आयधद शरीरका पीड़ा और वृद्धके दर्दसे सानाऊ पीड़ासे दचन हो, कि नन्दान पूज लपाद पडाइ । चक्रवर्त्तम और राजा तथा प्रेमयुता क्या कदा पुरा सररगी रक्षामें कन ता रहते हैं । हे पुरातन राजा । क्या नहीं जाता । कि

वादी, प्रतिवादियोंके आगे पर अभिमान वा लोभ मोहसे उनके कार्यमें उचित ध्यान नहीं देते ? विश्वास वा प्रेमसे जो तुम्हारी शरण लेते हैं तुम लोभके मारे उनकी वृत्ति ता नहीं उड़ाते ? तुम्हारे पुरवासी वा राज्यवासी जन विपत्तियोंसे क्रीत होकर दुर्दलशत्रु एकमतसे तुमसे कोई बिसद व्यवहार ता नहीं करते ? हे युधिष्ठिर । तुम्हारे वलसे तथा प्रबल तन्त्र वा सन्त्र और बल दानोंसे पिसे तो रहते हैं ? बड़े बड़े भूपाल तुम्हारे प्रेमी तो बन हैं ? तुम्हारा आदर पाय वे तुम्हारे मङ्गलके लिये प्राण तक दे देनेका कामर कसते हैं कि नहीं ? तुम सब विद्याओंमें गुणके अनुसार ब्राह्मण और साधुओंका पूजते ता हो ? क्या ऐसी पूजा तुम्हारा मङ्गल करनेवाली है । पुरुषाओंके किये वैश्वभूतक धर्म कर्ममें तुम्हारी भात ता बनी है ? वै कैसा करते थे, तुमभी वैसा करनेका प्रयत्न कर उस काममें हाथ तो डालत हो ? गुणशाली ब्राह्मण तुम्हारे सामने नित्य स्वादष्ट और गुणकारी सामग्री भाजन करते और दक्षिणा पाते ता हैं ? तुम जितेन्द्रिय होकर एक मनसे वाजपेय आर पुच्छरीक आदि यज्ञका पूरा करनेका प्रयत्न तो करते हो ? वृद्ध, छात गुरु, दवता आर तपस्वियोंका तथा कल्याणदायी चन्द्रवृक्ष आर ब्राह्मणोंका नमस्कार ता करते हो ? हे अनघ । तुम किनोका शत्रु वा क्रोध ता नहीं उठजाते हो ? पुरातन आदि महत कारनवाले सनुष्य तुम्हारे पान रहकर ख डहन ता करते हैं । हे आयुधधर । नैन आयु और यश वदानवाला और धर्माथ काम देवाता हुई जेमी दुष्ट और शत्रुओंका दात नका, तुम्हारी दुष्ट और शत्रुता बरस है । क्या दुष्टसे चरते हैं, उनका राज्य अदाय नहीं सुनता और सब राजा समूह परतना जयकर धृष्ट दुष्टा नन ता । हे कर्ण । सब दे देकर नन

हुए अनजान मन्त्री लोग लोभके वशमें होय किसी शुद्धचित्त दोषसे रहित, थोड़े जन पर झूठ झूठ चोरीका कलङ्क लगाय सब लूट पूटके उनकी हनते तो नहीं ? और समझ बूझ कर किसी सूचमुच चोरी किये दुष्ट चोरकी चुराये माल सज्जित पकड़ करके उसे मालके लोभसे छोड़ तो नहीं देते ? हे भारत । तुम्हारे मन्त्रीवर्ग घूसके लोभमें पड़के धनो हरिद्रोमें उभड़े भगड़ेका अनुचित विचार तो नहीं करते ? नास्तिकता, असत्य, क्रोध, अनवधानता, दीर्घ-सूत्रता ज्ञानियोंसे न मिलना, आलस्य, चिन्तकी चञ्चलता, एकके साथ विषयकी चिन्ता, अर्थ न जाननेवाले लोगोंसे युक्ति करना, समाधि ब्रूमे कार्यका प्रारम्भ न करना, मन्त्रणा न रखना, मङ्गल कार्यमें हाथ न लालना और विन रसमें ब्रूमे हर कार्यमें उठ खड़े होना, राजानोंके यह चौदह दाप त्याग तो देते ही ? जड़ दृढ़ होने परभी राजगण इन दोषोंसे बद्धधा विगड़ जाते हैं । हे महाराज । तुम्हारा वेदपठन, धन, स्त्री लाभ और शास्त्र ज्ञान, यह सब सफल तो हुए है ?

युधिष्ठिरने पूछा कि वेद, धन, स्त्री और शास्त्र-ज्ञान क्योकर सफल होते हैं ? श्रीनारदजी बोले, कि आत्महोवादि कर्मा करनेहीसे वेद सफल होते हैं ; दान और भोग करनेहीसे धन सफल होता है, कामवृत्तिके भरने और पुत्र उपजानेहीसे स्त्री लाभ सफल होता है और शीलता तथा सदाचार प्राप्त करनेहीसे शास्त्रज्ञान सफल होता है ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि महातपस्वी नारद मनिने फिर धर्मिकवर युधिष्ठिरसे कहा, कि महाराज । लाभकी आशसे र-
दशमें आये हुए वणिक्तोंसे कर-लेनेवाले राज-
कर्माचारी लोग उचित कर तो लेते हैं ? यह

सब वणिक तुम्हारे नगर और राज्यमें म-
गित होय और ठगे न जाय विक्रीकी सा-
ला तो सकते हैं ? तुम धर्मार्थ दिखाने
अर्थके जानकार वृद्धोंके धर्मार्थ युक्त वचन
सुनते तो हो ? नवान्न उपजनेके क-
नवोदकके हेतु, पुत्रके संस्कारके लिये
शुद्ध धर्मके निमित्त तथा पितरोंके ना-
दियोंके घृत मध तो दी जातो है ?
राज । तुम सब समयमें सब प्रकारके शि-
योंको चार महीनेके अनधिक कालके
प्रकार ठहराए हुए वेतन और वना
सामग्री तो देते हो ? शिल्पियोंका
कार्य तो जान लेते हो ? उनका सत्कार
करते हो ? हे प्रभो भरतथेष्ठ । तुम
पमें सिद्धान्तयुक्त सब प्रकारके वात नि-
करके हाथी, घोड़े और रथादिको परो-
सब उपाय ग्रहण तो करते हो ? हे भ-
नन्दन । धनुर्वेद सूत्र और नगर हित-
यन्त्रोंकी शिक्षाके सब ग्रन्थ तुम्हारे भवनमें
तो जाते हैं ? हे अनघ । मन्त्रसज्जित
प्रकार शास्त्र, ब्रह्मदण्ड अर्थात् आभिव्यक्ति
विद्या और विष देनेके सब उपाय, तुम यह
सब शत्रुनाशी विषय तो जानते हो ? तुम
अग्नि सर्पादिके हिंसक जन्तु और रोगराक्षसोंके
उपजे भयसे अपनी प्रजाको बचाते तो ?
हे धर्मज्ञ ! अथ, गूंगे लूले, देह फूटे, वि-
वस्तु और सजासियोंको उनके पताकी भाँति
बनके पालते तो हो ? निद्रा, आलस्य, भय,
क्रोध, हिलाई और दीर्घसूत्रता, करनेवाले
इन छः दोषोंको दूर तो किया है ?

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि कुर्येष्ठ महात्मा
युधिष्ठिरदेवस्वरूपो ब्राह्मणसत्तम नारदजीकी वर-
सब बात सुनकर प्रसन्न मनसे उनको प्रणामकर
और दोनों पावोंने लगकर बोले, कि आपन
प्रश्नोंके मिसमें जो सब उपदेश दिये, मैं सब
कार्य उनके अनुसार किया करूँगा, क्योंकि

आपकी कृपासे मेरी बुद्धि वृद्धत बड़ी। राजा युधिष्ठिरने यह कहनेके पीछे इसके अनुसारही कार्य किया था और समुद्रके क्षीरतक सारे धरतीको जीत सके थे। श्रीनारदजी बोले, कि जो राजा इस रीतिसे ब्राह्मणादि चारों वर्णोंकी रक्षामें सज्ज रहते हैं, वह परम सुख लूटकर अन्तमें इन्द्रलोकको जाते हैं।

पांच अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि ब्रह्मर्षि नारदको कह चुकने पर धार्मिकवर युधिष्ठिर उनकी भली भांति पूजके, उनकी आज्ञा पाय आद्योपात्त उनके सब प्रश्नोंके उत्तर दे, बोले कि भगवन! आपने जिस योग्य रूपसे निरूपित धर्म-सिद्धान्तकी बात कही, वह न्यायके अनुसारही हुआ है, मैं शक्तिके अनुसार और उचित रूपसे उस विधिकों काममें लाता हूँ। इसमें सन्देह नहीं, कि पूर्वकालमें राजोंने जो सब कार्य किये थे, वह न्यायकी रीतिसे संगृहीतार्थ हेतुमत और अर्थयुक्त है। हे प्रभो! हम उनके उस सुपथसे चलना तो चाहते हैं, पर वे जितेन्द्रिय पुरुष जैसे चले थे हमसे वैसा बन नहीं पड़ता। श्रीवैशम्पायनजी बोले कि अति तेजस्वी धार्मिकवर पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरन नारदको पूछी हुई बातोंका आदरपूर्वक वह उत्तर देके लक्षकाल पीछे उन बड़े तेजोवन्त सबल्लोकामें जानवाले दमशील देवर्षि नारदको यकावट मिटते और प्रसन्न मनसे बैठे देखकर और आपभी उनके निकट बैठके ठोक अवसर जान सभामें विराजमान राजाके सामने पूछा, कि हे ब्रह्मन्! पहिले ब्राह्मणोंने मनक अगणित लोक रचे हैं, आप मनको भांति वेगसे उनका निहारकर सदा सब ठौरमें गिरा करते हैं, सो कहे, कि आपन कहौ ऐसा सभा देखो, कि नहीं। जो मेरी इस सभामें समान सयवा इसमें भी चहुँ

हो? श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि धर्मराजका यह वचन सुनकर नारद मुनि हंरुकर सीठी बातें से बोले कि हे वेदा भारत! तुम्हारी इस मणिको दनी सभाके समान, सरो सभा मनुष्य-लोकामें नतो कभी देखी और न सुनी, पर जब तुम सुना चाहो, तब तुमसे यमराजकी, धीमान वरुण की, और कुवेर तथा ब्रह्माजीकी निर्दोष दिव्य सभाओंकी कथा कहूंगा। उन सभाओंमें दिव्य और अदिव्य अभिप्रायों अर्थात् सब लोकोंकी बनावटोंसे बनायी जाकर अनेक रूप धरे हैं। देवगण, पित्रगण, गणदेवतागण संयतन्त्रात्मा याज्ञिकगण और देवरूपो, यज्ञ करनेवाले दक्षिणायुक्त, शान्तस्वभावी मुनिगण उन सबोंकी सेवा करते हैं। श्रीनारदजीके ऐसा कहने पर सहामति युधिष्ठिर भाइयो और द्विजवरोके साथ कर जोड़कर बोले, कि हे ब्राह्मन्! हम सुना चाहते हैं; आप उन सभाओंकी कथा कहें। कौन कौन सभामें कौन कौनसी सामग्री है, लम्बाई चौड़ाईमें कौन सभा कितनी बड़ी है, ब्रह्माजीकी सभामें कौन कौन उनकी उपासना करते हैं, देवराज इन्द्र सूर्यकुमार यमराज, वरुण और कुवेर, इनकी सभामें कौन कौन उनकी उपासना करते हैं, यह सब सुननेकी हमें बड़ा बौतूहल उभड़ा है, भी है ब्रह्मर्षि! आप यह सब हमसे ठोक ठोक कहें। पाण्डुपलके यह पूछन पर श्रीनारदजी बोले, कि महाराज! मैं सब सभाओंकी कथा कहता हूँ, क्रमसे सुनो।

छटा अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे इन्द्रायि! इन्द्रजीकी सभा उन्नत उज्जाना-भरी है। उन्होंने अपने पादोंसे उनकी लाभ किया है और वह सर्वसमाप्त उज्जाना दिव्य सभा उन्होंने स्थापित की है। वह आकाशमें विराट

कामतामी सभा लब्धार्थमें देह सौ योजन, चौड़ार्थमें सौ योजन और ऊंचार्थमें पांच योजन फैली है, बुढ़ापा-शर्का यकावट-मिटावनी शङ्काभगावनी, शान्तिदायनी, मङ्गल-उपजानी सुगन्ध-आसन-धारिणी दिव्य वृक्षोंसे सुहावनी सौ बड़ी मनहरिणी है, उस सभामें देवनाथ इन्द्र केयूर लिये, किरीट धरे, निर्मल अश्वर तथा रुन्दर साजा पहिरे, अनजाने स्वरूप धर, अपनी पत्नी शची, शोभा, सम्पत्ति, श्री, व्युति तथा कीर्तिके सहित परमोत्कृष्ट आसन पर विराजते है, महाराज । यहमेवी सब मरुद्गण उस सभामें महात्मा इन्द्रकी सदा उपासना करते है । सिद्धगण, देवर्षिगण, देवगण, और सुवर्ण-माला पहिरे, आकाश धरे एकत्रित मरुद्गण दिव्यरूप बने साथियोंके साथ शत्रुदमन महाभुज देवराजको उपासना करते हैं । हे पार्थ । अमल नान्ध्याप अग्नि-समान उजाले, तेजके आले सीम याजे बुढ़ापा शोक तजे देवर्षिगण और पराशर पञ्चत, सावर्णि, गालव, शङ्ख, लिखित, गौराशरा, दुर्वासा, क्राधन, श्येन, दीर्घतमा, पवित्रवाणि, सावर्णि, याज्ञवल्का, भालुकि, उद्दालक, ध्वेत-केतु, ताण्ड्य भाण्डायनि, हविस्मान, गरिष्ठ, राजा हरिश्चन्द्र, हव्य, उदरशाण्डव्य, पाराशर्य कृषीवल, वातसन्ध, विशाख, विधाता, कल करालदन्त, लष्ठा, विश्वकर्मा, तुष्टुरु, सहस्र, सुनीय, महातपा वात्सोकि, सत्यवादी शमीक, सत्यसङ्गर प्रचेता, मेधातिथि, वामदेव, पुलह, पुलस्त, क्रतु, मरुत, मरोचि, महातपा स्याणु, काचीवान, गौतम, तार्ज्य, वैश्वानर कालक, वृक्षीय, आश्राव्य, हिरन्मय, सज्जत, देवहव्य, वीर्यवन्त विश्वकसेन, काण्व, कात्यायन, गार्ग और कौशिक, यह सब सुनि ऋषि द्वार गन्धर्व और विनयानिसे उपजे, वानिसे उपजे, वायुभक्षी, हतभक्षी आदि सब प्रकारके जीवहो इस सभामें नर्चलीकनाय

वज्रधारी इन्द्रकी उपासना करते हैं । हे पाण्डुनन्दन । स्वर्गके जल तथा सब औषधि और अन्न, मेधा, सरस्वती, धर्म अथ काम, विद्युत, जलधर बादलदल, वायुकुल स्तनयिगण, प्राचीदक्ष, यज्ञनिवटारजवाले संताप अग्नि, अम्नोपोम, इन्द्राग्नी, मित्र, सविता, अर्यमा, भग, विश्वदेवगण, सब शांतिगण, वृहस्पति, शुक्राचार्य, विश्वावसु, चित्रसेन, सुमन्तरुण, सकल यज्ञ, सब दक्षिणा, ग्रहगण स्तोत्रमन्त्र और यज्ञवाहीमन्त्र सब उस सभामें विराजते हैं । हे महाराज । वहा मनहरणी अप्सरा और गन्धर्व भाति भातिके नाच, गीत, बाजा, हंसी, स्तुतिपाठ मङ्गल कर्म और विभक्त प्रगट कर बलवृद्धनाशी सर्वगुणराशी देवनाथ इन्द्रका मन बहलाते है । अति समान प्रकाशमान माला पाँहने गहने धारण किये ब्रह्मर्षि तथा देवर्षि और वृद्धतेर दूसरे पुरुष वज्रविध विमानों पर उस सभामें जाया आया करते है । वृहस्पति और शुक्र वहा निय विराजते हैं । हे महाराज । यह और दूसरे अगणित यतंजित महात्मा और ब्रह्मव्रत भू तथा सप्तपिण्ण चन्द्रमा सदृश विमानों पर साक्षात् सीमकी भात प्रियदर्शन बनके सभामें जाते आते है । हे महाभुज । इन्द्रकी उस पुष्करमातिली नामक ऐसी देखी है, अब यमराजको सभाको व सुनी ।

सात अध्याय समाप्त ।

श्रीनारदजी बोले, कि हे युधिष्ठिर । यह राजके लिये विश्वकर्माने जा सभा रची है उसकी कथा कहना प्रारम्भ करता हूँ, धरकरा । हे पाण्डुनन्दन ! यह उजाली कल्पी सभा लब्धार्थ चौड़ार्थमें सौ योजनमें अधिक फैली है । वह सूर्य समान प्रकाश प्रगट होती है और नती वज्रत ठही और

वृद्धत गर्म हानिके कारण मनको बड़ा आनन्द
 भुङ्गता है । उस सभामें बुढ़ापा, शोक,
 भूख, प्यास, अप्रिय, दीनता, थकावट, विरोध
 कुछभी नहीं है । क्या देवता, क्या मनुष्य
 सबको चाह भरनेकी भांति भातकी सासग्री
 वहा वनी बनायी धरी है । चबाने, चूबने,
 चाटन, पीन सब प्रकार त स्वादिष्ट साजनकी
 सासग्रीका वहा ढेर लगा है, है शत्रुमथन ।
 वहाको फूलहारकी मनचुरावनी गन्धसे चारों
 दिशा प्रसुदित हो रही है, वृद्ध मनमान
 फल देते हैं ; और मीठे ठण्डे और गर्म जल
 रखे हैं । उस सभामें पवित्र राजार्घ और
 अविशुद्ध ब्रह्मार्घगण प्रसन्नमनसे सूर्यनन्दन
 यमराजकी उपासना करते हैं । हे महाराज ।
 ययाति, नहुष, पुरु, मात्याता, सोमक, नृग,
 राजार्घ तसदस्यु, कृतधीर्य, युतयवा, आरुह्यमा,
 सङ्ग, कृतवीर्य, श्रुति, निम, प्रतर्दन, शिव, मत्स्य
 पृथुलाक्ष, बृहद्रथ, वार्त्त, मरुत्त, काशक,
 साङ्गाश्व, साङ्गात, ध्रुव, चतुरश्व, सदस्वासी,
 कीर्त्तवाय्य, भरत, सुरध, सुनीय, निशठ, नल,
 देवादास, सुभना, अश्वरीष, भगीरथ जगध,
 सदस्व, वलश्व, पृथुवीर्य, पृथुव्रवा, वृषदस्व,
 वसुभना, वलवानक्षत्र, वृषभ, वृषसन, पुत्रकुत्स
 ध्वजा, रथी आष्टवण, दिलाप, महात्मा उशो-
 नर भाशानर, पुष्कराक्ष, शय्यात, शरभ,
 शचि, अङ्गारुष्ट, वण दुषन्त सञ्जय, जय, भाङ्गा-
 सार, सुनाय, निषद, वृहानर, करधम, वालुक्ष
 सुधुम्न, वलवन्त, मधु, एल, मरुत्त कापात-
 राभा, तणक, सहदेव, अङ्गुग, व्यष्ट, साश्व,
 एताश्व, प्रशावन्तु, दशरथपुत्र राम और लक्ष्मण,
 प्रतर्दन, शलका, कचसन, गय, गौराश्व, जाम-
 देना, राम, नाभाग, भूारयुक्त, महाश्व,
 पद्माश्व, जनका, वल, वारिपण, पुत्राजित जनमे-
 जय, प्रह्लाद, तणक, उपार-चर, इन्द्र, भान-
 जय, गौराश्व, वय जनय, पद्म, सुहृदन्त,
 भारयुक्त, प्रह्लादजित, आरुह्यमा, सुधुम्न,

पृथुलाक्ष, अष्टक, मत्स्यवशी सौ नरेश, नोप
 वंशी सौ राजा, हयवशी सौ भूपाल, एक सौ
 हृतराष्ट्र, अस्ती जनमेजय, सौ ब्रह्मदत्त, ईर-
 यांके एक सा, दो सौसे अधिक भीष्म, सौ
 भीम, प्रतिवन्ध, सौ नाग, सौ हय,
 सौ पलाश, सौ काश कुशाद, महाराज
 शान्तनु, तुम्हारे पिता पाण्डु, उशङ्गव; शतरथ,
 देवराज, जयद्रथ, सान्द्रयोकि सहित बुद्धिमान
 राजार्घ वृषदर्भ और वे सहस्री प्रशावन्तु
 जिन्होंने वृद्धत दक्षिणा दे देकर अगाणत बड़े
 बड़े अश्वमेध यज्ञ किये थे, यह सब कीर्त्ति-
 शाली बड़े शास्त्र ज्ञानयुक्त पवित्र राजार्घ उस
 सभामें वैवस्वतकी उपासनामें लगे हैं । और
 भी अगल्य, मतङ्ग, काल मृत्यु, यागशौलगण,
 अग्निस्वात्त, फेनप, उषप, स्वधायुक्त बर्हिषद,
 और दूसरे भूतमान पितृगण, कालचक्र,
 साक्षात भगवान् अग्नि, आवद्या कर्मयुक्त
 दाक्षिणायनमें मरे मनुष्य, समय टहरानवाले
 यमराजके नौकर चाकर और शंशप पलाश
 काशकुशादि स्वरूप लेशर उस सभामें यम-
 राजको उपासना कर रहे हैं । हे नरनाथ ।
 पितरनाथके इन सब और दूसरे अगाणत उभा-
 सदाके नाम वा कर्मोका वणन करना शक्तकी
 बाहर है । वह काम-गामनी सुन्दर सभा
 किसी प्रकार सकार्ण नहीं है । उस सभामें
 किसीके जानका मनाही नहीं है; यशस्वान्त
 वृद्धत इनों तक तप करके उसे बनाया है ।
 हे भरतनन्दन ! वह सभा अपन तेजस जलती
 और दमकती है । कठोर तप किये हुए
 शान्तस्वावा, मयवादी व्रतधारी, सुन्दर देह-
 वाले पुण्यकर्मसे पावत्र बने सन्ध्यानी जनन
 चीर पाँहरे सुन्दर कैयूर धर धारया सागर
 लटकाये, उज्जल दुष्कल समर्थ, उस सभामें
 जाते हैं । वे सब अष्टके पृथक् पृथक् और सुन्दर
 आवाजसे सुनाते हैं । सदाका समय और
 वृद्धतरी नररागायमान इति वार्त्त

सभाकी सब ठौरकी भर रही है, सर्वत्र पवित्र गन्ध और पुण्यध्वनि उड़ रही है, और मन-हरणी माला दूधर उधर बिखरी पड़ी है। उस सभामें सहस्रों धार्मिक दिव्यरूपी मनस्वी प्रजानाथ महात्मा यम महाराजकी उपासना करते हैं। महाराज। यमकी वह सभा ऐसी गुणवती है। अब वरुणकी पुष्करतीर्थ-मालिनी सभाकी कथा कहता हूँ।

आठ अध्याय समाप्त ।

श्रीनारदजी बाली, कि हे युधिष्ठिर। वरुणकी अति तेजवाली दिव्य सभा आपमें यमकी सभाके समान है। उसकी प्राचीर और तीरण शुभ्रवरण है। विश्वकर्माजीने जलके भीतर वह सभा रची है। उनकी चारो और फल-फूल धरे रत्नके दिव्य और मञ्जरी-जाल जड़े गुल्फ, नीले पीले काले स्यामले धौले लाल वरणोंके सुन्दर चदवा समान बनके सुहाते हैं। सैकड़ों सहस्रों परम सुन्दर कलिवर लिये मीठी धुन उड़ाती अनदेखी वरुणकी चाँड़या दूधर उधर उड़ती फिरती है। उस सभाका रूश् बड़ा सुखदायो है, वहाँ न तो बहृत शीत न बहृत शीघ्र ग्रीष्म होता है। उस वरुणपालो, वरुणमें धौलो, मनहरणी सभाको सब ठौरमें दिव्य आसन और दिव्य भवन बने हैं। वरुणजी दिव्य चीर और दिव्य रत्न आभूषणोंसे बन ठन वरुणानोके सङ्ग उस सभामें एकत्र विराजते हैं, माला लटकाये दिव्य-चन्दन मले दिव्य-गन्ध लगाये आदित्यगण वहाँ जलनाथ वरुणकी उपासना करते हैं। हे पृथ्वीनाथ। उस सभामें वासुकि तक्षक ऐरावण, कृष्ण, लोहित, पद्म, चित्र, कम्बल, अश्वतर, धृतराष्ट्र, बलाहक, माणमान, कण्डुधर कर्कोटक धनञ्जय, परी-गाम, कण्डुक, बलवान प्रह्लाद, मूपिकाद और जनमेजय यह सब पताको, मछलो तथा फणधारी नाग और दूसरे अगणित सर्प विन धके

चित्त से वरुणजीको उपासनामें लगे हैं। हे धरतो-नाथ। विरीचनचन्दन वालि पृथ्वीविजयो नरक-नाथ प्रह्लाद वप्रार्चत्ति, कालकञ्जादि दानव, सुहनु, दुर्मुख, शङ्ख, सुनामा, समानसुन, घटादर, महापार्श्व, क्रयन, पिठर, विश्वरूप, खरूप, वरूप, महाशिरा, दशग्रीव, वाली, मेघवासा, दशावर, टिग्भ, विट्भूत, सज्जद, इन्द्रतापनादे दैत्य दानव। दिव्य लिवाके सुहाय, माला लटकाय किरीट वमकाय सुर कुण्डलादि दिव्य गहनोंसे जगमगाय उस सभामें धर्मपाश-धारी श्रीवरुणजीकी उपासना करते हैं। उन सब सुर दानवाँने मृत्युके भयसे हाथ धो डाला और तपसे सिद्ध होय वर प्राप्त किया है। हे महाराज। चार समुद्र, गङ्गानदी, कालिन्दी, विदिशा वेण्वा, वेगवती, नर्मदा, विपाशा, शतद्रु, चन्द्रभागा, सरस्वती, द्रावती, जितस्ता, तस्त्रु, देवनदी, गोदावरी, कृष्णवेण्वा, कावेरी, किम्बुता, वशल्या, वैतरणी, तृतीया, ज्यैष्ठ्या, महानदी शान, चर्मजती, महानदी, पर्याशा, सरयू, बारवत्या, लाङ्गलो करताया, अत्रेयी, लाहल महानदा, लघन्तो, गोमती सन्ध्या और तन्नी-तसी लाकोसे प्रख्यात यह सब और दूसरे अर्धे अच्छे तीर्थ सात सरावर कूप तडाग और ताब अपना अपना स्वरूप लेंके महात्मा वरुणजी उपासना कर रहे हैं, फिरभी पृथ्वी, सब दशा, पञ्चेत और सब जलचर जीव जलनाथको उपासनामें लगे रहते हैं, राज राजेसे गन्धर्व और अप्सरा वरुणजीका स्तव करतो हूँ उस सभा सबराजता है, जितन पञ्चेत रत्नको खान और सुन्दर करके प्रसिद्ध है वे भी मीठी मोठा बातें करते हुए वहाँ बैठे हैं। वरुणके मन्त्री सुनाभ बैठे पातासे घेर जाय गोनामक पुष्करतीर्थके साथ जलनाथकी सेवा करते हैं, इस प्रकार सब जन शरीरके साथ वरुणजी उपासना करते हैं, हे भरतवंश। मैं धृमते

हुए वरुणाजीकी वह सुन्दर सभा देखी थी, अब कुवेरको सभाकी कथा कहता हूँ सुनी ।

नवां अध्याय समाप्त ।

जीनारदजी बेलि, महाराज ! कुवेरजीकी सभा लख्खार्डमें सी योजन और चौड़ार्डमें सत्तर योजन फैली है । कुवेरजीने तपके प्रभावसे खरबें वह सभा बनायी है । कैलाशशिखरके समान वह सभा ऐसी शुभ्र चमक रखती है, कि उसके सामने चन्द्रमाकी प्रभाभी भागती है । गुरुकीसे वह लिवायी जानेसे जान पड़ता है, कि मानो आकाशसे चिपटी हुई शोभायमान है । वह दिव्य गन्धभरो मनाहरो विचित्र सभा बहुविध अच्छे अच्छे रत्नोंसे खूबो जाय और सुनीली दिव्य वरणोंसे मानों विजली दलसे रगाय धनल वादलके पहाड़ का स्वरूप पाय तैरती हुई प्रतीत होती है । उज्ज्वल कुण्डलधारी श्रीमान राजा दैत्यवर्ग विचित्र वसन आभूषण पहिरे सहस्रों नारिओंसे घिरे उस सभामें दिव्य पाद पीठ लगे दिव्य चादरामें ठप्पे स्थिति समान उजाले परम आसन पर बैठते हैं । हृदय प्रमोदन शीतल पवन, उदार मन्दार वन हिलोड़कर और नन्दन कानन कशार वन और अलका नामक सरोवरकी सधु बहने कर यक्षनाथ कुवेरकी सेवा करता है । महाराज उस सभाके रभासद देव और गन्धर्व अपराओंसे घेरे जाय दिव्य तानके साथ गान करते हैं । भयंकेशो, रक्षा चक्रसेना, शुचिचिता चारुनेत्रा, हताभी, मेनका, पाण्डुकस्थना, वरुणाची सहस्रग्या, प्रवीचा, उर्वशी, इरा, वर्गी, सौरसेयी समीची, पुद्गुदा और कृता यह सब नाचने बजानमें तेज सहस्रों गन्धर्व और अमरावत उस सभामें धननाथकी उपासना करते हैं । अमर और अमरावतके सुन्दर नृत्य गीत

और बाजोंसे सभा सदा गूंजती हुई बड़ी सुहावनी बनी है । कितर और नरनाम दूसरे कुक्क गन्धर्व और मणिभद्र, धनद, खेतभद्र, गुह्यक, कशेरक, गण्डकण्ड, महावली प्रद्योत कुस्तुम्बुर, पिशाच, गजकर्ण, विशालक, वराहकर्ण, ताञ्जौष्ठ, फलकक्ष, फलौदक, हंसचूड़, शखावर्त, हेमनेत्र, विभीषण, पुष्पानन, पिङ्गल शोणितोद, प्रवालक, वृक्ष वष्पानेकीत और चोरवासा, यह सब और दूसरे सहस्रों यक्ष वहा उपस्थित रहते हैं । हे भरतनन्दन भगवती लक्ष्मोजो सदा उस सभामें वराज रही है । कुवेरनन्दन नल, कूवर, मैं और मेरे समान वहुत दूसरे और ब्रह्मर्षि, देवर्षि सब उस सभामें रहते हैं । मांसखोर राक्षसादि और अति पराक्रमी दूसरे गन्धर्व उस सभामें धनदाता महात्मा यक्षनाथकी उपासना करते हैं । हे राजशार्ङ्गल महावली भूलप्रहारी उग्रचाप-धारी पशु हिनकारो उमा विहारी, इन्द्र संहारी भगवान महादेव ताम्रक विकट, कुवड़ लालनेत्र चढे, ध्वनि घोर मेद मांसखोर बहुअस्त्र लिये पवनके आगे चलनेवाले सहस्रों भयावगे सहचर भूतनिकर सग लिये अयकित देवी भगवती सहित उस सभामें अपने सखा धर्मेशकी निकट सदा विराजते हैं । विश्वावसु, हाहा, ऊँऊ पुम्बद, पर्वत शैलूप, जान, प्रधान चित्रसेन, चित्ररथादि सैकड़ों गन्धर्वनाथ और दृढ़ सहस्रों गन्धर्व अपना लिवान पङ्क्तिन प्रसन्न मन होय धननाथकी उपासना करते हैं । अतुल्य संग विद्याधरनाथ चक्रधर्मा और सैकड़ों कितर धर्मेश कुवेरजीकी सेवा करते हैं । विष्णुपति वृष और राजनाथिप महेंद्र और गन्धमादन, यक्ष, गन्धर्व और राक्षसोंके साथ धनेशकी उपासनामें लगे रहते हैं । राजनाथ धार्मिकवर विभीषण भी प्रभाभीभावे उद्विग्न सेवा करते हैं । हिमालय, पारिप्राठ, विष्णु, वनाश, गन्धर्व, मन्त्र, दहर्, महेन्द्र, रत्नमन्दर,

इन्द्रनील, सुनाभ, उदयाचल और अस्ताचल, यह सब और दूसरे अगणित पर्वत अपना अपना स्वरूप धर मेरुको सामने रख महात्मा कुवेरकी उपासना करने हैं। भगवान नन्दीखर, महाकाल शङ्खसे कर्ण और मुखवाले सब दिव्य सहचरी काष्ठ शृङ्गीमुख, दन्तो, अति तपोवती विजया और उद्धत नर्दनयुक्त महावली खेतवृष, वहां उपस्थित रहते हैं। इनके मित्राये दूसरे राजा और पिशाचभी कुवेरजीकी उपासना करते हैं, हे भारत। कुवेर जी सहचर सहित त्रिलोकभावन भगवान देव देव उमाकान्त महादेवजीके निकट सदा जाकर साष्टाङ्ग प्रणाम कर उनकी आज्ञासे उनके समीप बैठते हैं। एक समय महादेवजीने उनसे मित्रता की और उस कालसे उनकी सभामें नित्य विराजते हैं।

हे महाराज। सब रत्नके सार शङ्ख और पद्म सब प्रकारकी निधि बटोर बटोर धनेश कुवेरकी उपासना करते हैं। धननाथ कुवेरकी उन आकाश चरती सभाकी मैंने रुमानही मन-हरणी देखा है, अब पितामह ब्रह्माजीकी सभाकी कथा कहना हूँ, सुनो।

दश अंश समाप्त ।

श्रीनारदजी बोले, कि हे भरतनन्दन। ब्रह्माजीकी उस सभाकी कथा प्रारम्भ करता हूँ कि जिसका रूप ऐसा है कि कहें नहीं कहा जाता, अब सुनो। महाराज! पूर्वकाल, सत्य-युगमें भगवान आदित्यजी स्वयम्भू ब्रह्माजीकी सभा निहार मानव लोकके देखनेकी इच्छा करके स्वर्गमें उतर मानवी रूप लेकर खेच्छासे अश्वमेधमें फिर रत्न थे। उसकाल सुभको देख, ब्रह्माजीके आनन्दसे बनी अकथनीय अन-भाव रूप धनी, अपन प्रभावसे सर्वभूत मन-हरणी दिव्य सभाकी कथा यथावत कहो यो, हे पितृवत्सव । मैंने उन सभाको अनन्त गुणोंकी

खान सुन, देखनेकी इच्छासे आदित्यजीसे यह कहा कि “हे किरणनाथ। मैं दादाजीकी शुभ सभा देखा चाहता हूँ, अतएव हे नाथ। जैसी तपस्या, जैसा कर्म अथवा जिस किसी योग औपधसे चाहें जिस प्रकार ह. वह प्रापविनाश शुभराशो सभा में देख सकूँ, सा कहें।” सह-किरणनाथ दिननाथ मेरी यह बात सुन कर कि तुम एका चिन्त हो, सहमे, वज्र में पा होता हुआ ब्रह्मव्रत करे।। इसके पश्चात् मैंने हिमाचल पर वह महाव्रत प्रारम्भ किया अतमें वह अर्थात् पाप राहित वीर्य सत्त्व आदित्य सुभको ब्रह्माजीकी सभामें लेगा हे भगवान नरनाथ! उस सभाका स्वरु शांति के वाहर है, क्योंकि पल पल पर अकथ अलग स्वरूप लेती है। हे भरतनन्दन! उस सभाका माप वा जोड़ किसे जाचा नहीं गया। वास्तवमें वैसी शोभा पति कभी मेरे देखनेमें नहीं आयी थी। सभामें बैठनेसे क्षुधा प्यास थकावट कुछ नहीं रहती और शीत ग्रीष्म किसीसे पी नहीं पड़चती वरण सदा अपूर्व सुख मिलता है। जान पड़ता है, कि वह सभा, नाना रूप धोरी जलती मणियोंकी बनी है। स्वर्ग पर खड़ी नहीं है, कभी उसका नाश नहीं वह सदा बनी रहेंगी, वह आपही अपनकी प्रकाशतो हुई स्वर्गकी सभा अनजान प्रभास सुहायो, नानाविध जलते दिव्य भावोंसे, सूर्य, चन्द्रमा और आग्नेसे ऊपर हांगयी है, और मानों। दननाथका लजातो हुई प्रकाशित रही है। हे महाराज! वह सर्व लोककी पितामह भगवान ब्रह्माजी स्वयं देवो माया अकेले सब लोक रच करके उस सभामें सदा विराजमान है। दक्ष, प्रचेता, पुलह मरीचि कश्यप, अशु, आत्र, वाशष्ठ, गौतम, आगस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रह्लाद, कर्दम आदि प्रजापति और अथर्ववेदी आग्नीरस मरीचिपायी, वा

खित्यगण, महतिजा अग्रस्त, वीर्यवन्त मार्क-
ण्डेय, जमदग्नि, भरद्वाज, सप्तर्षि, चवन, महा-
भाग दुर्वासा, धर्मिन्नावर ऋष्यशृङ्ग, महातपा
योगाचार्य, भगवान् सनत्कुमार, अमित, देवल,
तत्त्ववेत्ता, जैगीपदा, ऋषभ, अजितशत्रु, और
सत्तावीर्यमर्षण, यह सब उन सभामें ब्रह्माजीकी
उपासना करते हैं, और अष्टाङ्ग संहित आशु-
र्वेद नक्षत्रों सहित चन्द्रमा, गभस्तिमान् सूर्य,
वायुदेव, सब यज्ञ, सङ्कल्प, प्राण, मन, आकाश,
वायु, तेज, जल, धरती, रूप, रज, गन्ध शब्द,
स्पर्श, प्रकृति, त्रिचार और रचनेवाले दूसरे
पदार्थ सब अपना अपना स्वरूप लेकर ब्रह्मा-
जीकी उपासनामें सदा दत्तचित्त हैं, वे सब
बड़े द्रवशील और सहाय्य हैं। इनको सिवाय
धर्म, यज्ञ, काम, हर्ष, द्वेष, तप, दम, इत्यादि
दूसरे वृद्धविध पदार्थों उस सभामें उपस्थित
रहते हैं। गन्धर्व और अप्सराओंके विंशति-
गण और हंस, हाहा, झुंझ आदि दूसरे सात
प्रधान गन्धर्व, सब लोकपाल, शुक्र, बृह-
स्पति, बुध, मङ्गल, शनिश्चर राहु आदि ग्रह,
मन्त्र, रथचर, नाम, हरिमाण और वसुमान्
नावा कर्षा विशेष, अग्नीषोम इन्द्राग्नी आदि
दो नासने उदाहृत इन्द्र सहित देवगण,
मरुतगण, विश्वकर्मा, अष्टावसु, पित्रगण,
सब हवि, ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद
अथर्ववेद, सात शास्त्र, इतिहास, सब उपवेद,
वेदाङ्ग, गृह, यज्ञ, मेम, सम्पूर्ण देवता, दुर्ग-
तरणी, मायवी, सात प्रकारकी वाणी, मेधा,
ज्ञान, कृत, प्रज्ञा, बुद्धि, यज्ञ, रुमा, स्तुति
भक्त सामाग, भक्ति भातिनी गाथा, युक्ति
भक्त भाग्य, वृद्धविध नाटक, काव्य, कथा,
प्रयोग और कारका यह सब और दूसरे
प्राण, शुक्र एजनेवाले भी रहते हैं। हे
महाराज ! यह सब सुचरित्र देवा, राक्ष-
स, मनुष्य, पशु, पक्षी, प्रजापति, प्रकृति, दुर्ग,
देव, राक्षस, मनुष्य, पशु, पक्षी, प्रजापति, प्रकृति, दुर्ग

दिश्यं कालेचक्र वहां सदा विराजते हैं। हे
युधिष्ठिर ! अदिति, दिति, दनु, सुरसा,
विनता, इरा, कालिका, सुरभि, सरसा, गौतमी,
प्राधा, कद्रु रुद्राणी श्री, लक्ष्मी, मदा, पष्ठी
आदि देवमाता और पृथ्वी, गङ्गा, ही, स्वाहा,
कीर्ति, सुरादेवी, शची, एष्टि, असन्धती सम्वर्ति,
आशा, नियति, स्मृति और रति यह सब और
दूसरी देवी प्रजानाय ब्रह्माजीकी उपासना
करती हैं। हे भरतनन्दन ! आदित्यगण,
वसुगण, रुद्रगण, मरुतगण, विश्वदेवगण, दोनों
आश्वनीकुमार और मनके समान देवगण
पित्रगण यह भी प्रजापतिकी उपासना करते
हैं। हे पुरुष प्रवर ! पितरोंके सात गण हैं,
उनमें चारके स्वरूप हैं और तीनों बिना शरी-
रके हैं। हे महाराज ! महाभाग वैराजाद
आग्नि, वाता और गार्हपत्यादि लोकोंमें प्रसिद्ध
यह सब पित्रगण स्वर्गमें फिरते हैं, और
सम्पाद, एकशृङ्गाद, चतुर्वेदाद, और काल
आदि यह सब पित्रगण द्वा वणादि चारवर्णमें
पूजे जाते हैं, यह लोग पहिले तप्त ज्ञाय पीड़े
सोमकों तप्त करते हैं। हे महाराज ! वे
सब पित्रगण उस सभामें ब्रह्माजीकी उपासना
करते हैं। हे नरनाथ ! राक्षसगण, पिशाच-
गण, दानवगण, गुह्यकगण, नागगण, सुपर्णगण,
सब पशुगण और स्थावर जङ्गम दूसरे महा-
भूतदेव भी प्रसन्न मनसे प्रातः तेजस्वी पिता-
महर्षी उपासना करते हैं। देवराज इन्द्र,
वसुन्धर, वसराज और उमासाहस उमा-
कान्त, भव सदा वह जाते हैं। हे महाराज
कार्तिकेय, नारायणजी सदा देवार्ग, वाक्, अश्व,
क्राव्य और अन्यगणोंसे उपजे और यत्निसे
उपजे सब जीव उस सभामें उपासना करने हैं।
हे नरनाथ ! इस लोक, अमरमें स्थावर या
जङ्गम जितने पदार्थ प्राण रहते हैं, उन सब
का मैं बड़ा भक्त हूँ। मैं प्राण, पशु, पक्षी,
सभामें उपासना करता हूँ। हे महाराज !

पचास सहस्र सन्तानवान ऋषि मेरे देखनेमें आये। सब स्वर्गवासी लोग स्वेच्छासे ब्रह्माजीका वहा दर्शन, साष्टाङ्ग प्रणामादि करते हुए निज निज स्थानोंमें लौटते हैं, हे नरनाथ। सब भूतांपर दयावान, अपार धीमान अति तेजीवान, विश्वात्मा सर्वलोक-पिता स्वयम्, ब्रह्मा उस सभामें आये देवता, दिज, दैत्य, नाग, यक्ष, कालिय, गन्धर्व और अश्वरादि महाभाग पाण्डुओंकी यथोचित आदरकर सीठे सम्भाषण, सम्मान, अर्थ और भोगकी सामग्री दे दे प्रसन्न करते हैं। वह सुहावनी सभा आने और जानूवाली लोगोंसे सदा भरी रहती है। ब्रह्मर्षियोंसे पूजी जाती सर्व तेजोवती, अकावटकी भगती वह दिव्य सभा ब्रह्माजीके निज तेजसे जलती परम शोभासे भरी है। हे राजशार्ङ्गल! तुम्हारी यह सभा जिस प्रकार मनुष्य-लोकमें दुर्लभ है, सर्व-लोक दुर्लभ उस ब्रह्मा-सभाको मैंने वैसीही देखा है। हे भारत। देवलोकमें पहिले यह सब सभा सुभासे देखी गयी, अब मनुष्यलोक भरसे तुम्हारी यह सभा सबसे बढ़िया जान पड़ती हैं।

ग्यारह अध्याय समाप्त ।

युधिष्ठिर बाले, हे कथा-कहने-वालोंमें ओष्ठ दर्वि! आपन सुभसे जैसा कहा, उससे वैवस्वत यमकी सभामें प्रायः सब राजाके नाम सुन पड़े। वरुणकी सभामें अगाणत नाग, दैत्यवर, नदी, और सागरीके नाम लिये गये। धर्मशत्रुवरकी सभामें गुह्यक, गन्धर्व और अश्वरा तथा भगवान वृषभवाहन महादेवके नाम कहे गये। पतामह ब्रह्माकी सभामें महार्प, समस्त देव और शास्त्रादिका रचना बहा गया और महात्मा इन्द्रकी सभामें देव-गण, ब्रह्मावध महार्प और एक एकके नाम गान्त मय गन्धर्व कहे गये। पर हे महा-

सुने। उस सभामें आपने राजोंमें केवल राजर्षि हरिश्चन्द्रकी बात कही। सो हे संयत आत्मा! महायश राजा हरिश्चन्द्रने ऐसी कौनसी भारी तपस्या वा ऐसा क्या बड़ा कर्म किया था, कि अकेले बहो इन्द्रके सङ्ग बने हैं हे विप्रवर! त्रिलोकमें स्थित बड़े भाग्यवान् मेरे पिता पाण्डुके साथ आपकी किस प्रकार भेंट हुई। और उन्होंने आपसे क्या कहा है भगवन्। आपसे यह सब कथा सुननेसे सुभामें बड़ा कौतूहल उमड़ रहा है, सी आप कृपा प्रगटकर वह सब सुभकी कह सुनावें।

श्रीनारदजी बाले, कि हे महाराज! तुमने धीमान हरिश्चन्द्रके माहात्म्यके विषय जो कुछ पूछा, मैं तुमसे वह सम्पूर्ण कहता हूँ। वह बलवन्त भूप सब पृथ्वीनाथोंके सम्राट् थे। उनके शासनसे सबहो भूपालोंने शांति नवाया था। हे लोकनाथ! उन्होंने रथपर चढ़ कर शत्रुके प्रतापसे सातद्वीप जय किये थे। महा राज! उन्होंने पहाड़, वन और कानन सहित सम्पूर्ण धरतीमण्डलको जीत कर राव स्रय नामक महायज्ञ किया था। सब भूप उनकी आज्ञासे धनादि बटोरकर उस यज्ञमें ब्राह्मणोंको वाटनके कार्यमें नियुक्त हुए। उस यज्ञकालमें याचकोंन जो कुछ मागा था, नरनाथ हरिश्चन्द्रने प्रीतिपूर्वक उनको उम्हें पाचगुणा अधिक धन दान दिया था। और पूर्ण आज्ञातका काल आन पर उन्होंने नाग दिशा तथा देशसे आये ब्राह्मणोंका उनके मनमान भात भातके भक्ष्य, भोग्य और वज्रावध धनसे प्रसन्न किया। ब्राह्मण लोग भी जलोसे तार्पित और समुष्ट हीके सर्वत्र दक्ष कहते फिर थे, कि राजा हरिश्चन्द्र सब भूपति तेजवन्त और यशस्वी हुए हैं। हे महाराज! इस अलय हरिश्चन्द्र उन सहस्री राजाओंके भले प्रकार विराजते हैं। उन प्रतापी महान उस महायज्ञका पूरा कर साम्राज्यमें शांति

पिता होने की बड़ी शोभा प्राप्त की थी। हे भरत-
नन्दन। दूसरे जो प महायज्ञ राजसूय
करते हैं, वे भी इन्द्र के साथ आनन्द लूटते
हैं। जो लोग युद्ध में पीठ न दिखाके नष्ट होते
हैं, वे भी इन्द्रजी के सभामद वन के उनसे आनन्द
पा सकते हैं। और जो लोग कठोर तप
कर देह छोड़ते हैं, वे भी इन्द्रधाम में जाय
अनन्त सत्यत पाय नित्यकाल तक विराजते हैं।
हे कुन्तीपुत्र। तुम्हारे पिता कौरवनन्दन
प्राण्डुने भी राजा हरिश्चन्द्र का सौभाग्य देख
कर अचरज मान तुमसे कुछ कह भेजा है।
हे नरनाथ। वह सुभा की मर्त्यलोक में जाते
देखकर प्रणाम करके वाली, 'आप युधिष्ठिर की
मेरी ओर से कहना, कि तुम्हारे सब भाई
तुम्हारे वश में हैं, सो तुम सम्पूर्ण धरती जय
करने की समर्थ हो, इस लिये महायज्ञ राज-
सूय कर। तुम मेरे पुत्र हो, सो तुम्हारे
उस महायज्ञ के पूरा करने से मैं भी राजा
हरिश्चन्द्र के सदृश महेंद्र का सभासद बनकर
उनके साथ वज्रवर्ष आनन्द लूटूंगा।'

हे भारत। मैं तुम्हारे पिता की प्रार्थना
इस प्रकार से मान ली, कि याद में पृथ्वी में
जाऊँ, तो राजा युधिष्ठिर से अवश्य ही तुम्हारी
इच्छा कहूँगा। सो हे पुरुषवर। अपन
पिता प्राण्डु की चाह मिटाने का प्रयत्न
करो। उस महायज्ञ के करने से तुम भी
पुरुषार्थ के साथ इक्षेत्र सभासद बनोगे।
हे महाराज। ऐसा कहा है, कि उस
महायज्ञ के प्रारम्भ करने से बड़ी बाधा पड़
पड़ती है, यज्ञनाशी ब्रह्म राजसूय सदा उसका
दोष दूरते हैं। उस यज्ञ के काल में चातुर्व-
यिनाशी भयावर्ष युद्ध उभड़ते हैं, यहाँ तक, कि
जो है सब सम्पत्तियों के नाश हो जाने की संभावना
है। सो वाल्मिकी ने उनसे दुःखी दोष का
पहले समझना का पड़वता है। अतएव हे
राजसूय। पर सब विषय सोच विचार के जो तुम

जान पड़े, वही करो। ब्राह्मणों की चारों
वर्णों की रक्षा के विषय में सदा ध्यान लगावे
कमर कसे रहें। सबको सम्मति लो, अनन्त-
काल आनन्द लूटो, और ब्राह्मणों की धन देकर
प्रसन्न करते रहो। हे नरनाथ। तुमने जो
कष्ट पूछा, वह विस्तार पूर्वक कह सुनाया।
अब तुम्हारी आज्ञा से मैं दारुण कामें जाऊँगा।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे जनमेजय।
श्रीनारदजी पृथाकुमारों की यह कह के अपने
साथी ऋषियों के साथ चले गये। श्रीनारद के
जाने पर धरतीनाथ युधिष्ठिर भाइयों के साथ
राजसूय यज्ञ की परामर्श करने लगे।

सभाक्रिया प्रकरण प्रारंभ
अध्याय समाप्त ।

सन्तान-प्रकरण ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भरतनन्दन।
श्रीनारदजी की वह बात सुन के राजा युधिष्ठिर न
लज्जा सासली। राजसूय यज्ञ की चिन्ता करते
हुए उनका और किसी बात का सुख न रहा।
महात्मा राजर्षियों की महिमा, तथा पुण्य
कर्म के अनुष्ठान से अच्छे लोक की प्राप्ति, यज्ञ
किये हुए राजा हरिश्चन्द्र की प्रज्वालित प्रातमा
इत्यादि सुन के तथा विचार के उन्होंने महायज्ञ
राजसूय का प्रवन्ध करना चाहा। अनन्तर
राजा युधिष्ठिर सभासदों का पूज के और पलट में
उनसे पूजे जाकर यज्ञहोके लिये परामर्श
करने लगे। यज्ञ करने की बात बार बार
साधन पर उनका मन उन्हीं में आकृष्ट हुआ।
अबुन तेजवीर्ध्याविशष्ट सकल धार्मिक कर्म श्रेष्ठ
युधिष्ठिर धर्म का ध्यान कर साधने लगे, कि
वर्षाकर प्रजापति मन्त्र होगा। वह प्रजापति, पर
हृषीकेश देखाया जाता विश्व नन्द का मन्त्र करने
लगे। और कथन कि वह हनुमान् जी का प्रमाण
परी, कि जिसमें जो देता दाहिले दिव्य प्रमाण

इससे सर्वत्रसे केवल यह शब्द सुनाई देने लगा, कि साव धर्म, साव धर्म ।' सदा ऐसे एण्य कर्मोंके करनेसे प्रजा उन्हें अपने पिताकी भांति जान विश्वास करने लगी । कोईभी उनका द्वेष करनेवाला नहीं रहा, इससे उनका नाम अजातशत्रु हुआ । राजाके सबको परिवार-समान जानने, भोमके पालने धनञ्जयके शत्रुका नाश करने धीमान सहदेवके धर्मा-नुसार शासन करने और नकुलके सर्व प्रकारसे स्वाभाविक विनय जतानेसे जनपदसे भागड़ा लूटा और भयका क्षय हुआ, सब अपने अपने धर्मसे सदा अन्धे बने रहे, मनसानी वृष्टिकी सृष्टि होने लगी, सो सब जनपद सम्पदसे एक-वारही बढ़ने लगे । धार्मिकवर युधिष्ठिरके राज्यकालमें सदा उनके सुकर्म्मके प्रभावसे द्वाि-जीवियोंकी जीविका यज्ञयाग्य सामग्री पशु पालन, खेती और वाणज्य इन सबको बड़ी उत्तति हुई । छलसे प्रजाका धन गड़पना बलसे लूटना, व्याधसे कष्ट पाना, अग्निसे जलना और अकालमें मरना, इनमेंसे एक कामो रहना सुनाही नहीं गया । लुटेरे और ठगोंने राजासे वा एक दूसरेसे कभी बुरा-व्यवहार किया अथवा राजाके प्यारेजनोंने कोई अनुचित कर्म किया, ऐसा भी नहीं सुना गया, करदाता राजा लोग सन्धावेग्रहादिके कालमें सम्राटके प्रियकार्य तथा उपासना करने और नाना जातिके वाणिक अपने कामके निये राजस्व देनेको सदा आते थे, इससे देशकी दण्डो श्रीवांश हुई । केवल राजा और वणि-कोंहीसे नहीं, वरन स्वेच्छापूर्वक भोगनेवाले लोभादरहित रत्नायुगी जनांसभी देशकी दण्ड हुई थी । वास्तवमें युधिष्ठिर सब स्थानोंमें जाते, सब गुणों से सुहाते, सब सहते और सब ठार पलाशमान होते थे । महाराज ! उस साम्राज्य भोगनेवाले प्रकाशमान यशोवन्तने जो ठार अधिकार की थी, वहांवाले ब्राह्मणसे

लेकर योग्यतक सब प्रजा उनकी पितामातां भी अधिक चाहती थी ।

वासिष्ठेय युधिष्ठिरने भाइयों और सन्ति योंकी बुलाकर उनसे बारम्बार राजस्व यज्ञकी बात पूछी । तब वे एकत्रित मन्त्रीवृत्त उनके वचनका अर्थ समझ वृक्षकर आते वहिमान, यज्ञकासी युधिष्ठिरसे यह अर्थभरे वचन बोले, कि हे कुरुकुमार । जिस यज्ञमें अभिषिक्त होनेसे नरेशोंको वस्त्राजीके गुण अर्थात् सर्वाधिकारता, शीलता, दक्षि, साधनादिकी प्राप्ति होती है, स्वभावहीसे प्रजारज्जक होने परभी वे लोग सम्राटके योग्य उन सब प्रसिद्द गुणोंकी प्रार्थना करते हैं । आपभी उन गुणोंकी प्राप्त करनेके योग्य पात्र है, सो आपके मित्रवर्ग इस कालको राजस्वके लिये प्रसन्न समझ रहे हैं । शशितव्रतवाले ऋषिगण जिस अग्नि धरनेके लिये सामवेदके मन्त्रोंकी पठ कर छ स्थूल रचते हैं, हव्यसन्द अर्थात् भुज-बलादिसी उन यज्ञके करनेका काल आपके अधीन हुआ है । राजस्वयज्ञ हो जाने पर अभिषिक्त होकर राजा अग्नि-होतादि सब यज्ञका फल पाते हैं, सो वह सर्वज्ञित की जाते हैं । हे महाभुज, महाराज । आपके सामर्थ्य है, हम सब आपके वशमें हैं सो तुरन्तही आप महायज्ञ राजस्व पूरा कर सकेंगे, सो इस विषयसे अधिक विचारता प्रयोजन नहीं, बिना विचार उस महायज्ञके करन में ध्यान दें । निम्नोने अलग अलग और एकत्रित होके इस प्रकार कहा ।

हे महाराज । शत्रुमथन पाण्डुनन्दन राज युधिष्ठिरने उनका वह धर्मयुक्त प्रगल्भ अमी और वरिष्ठ वचन सुनके मनहीमनमें उसको मान लिया । मित्रोंकी वह बात सुन पा अपनी सामर्थ्यका जान राजस्व यज्ञके विषयमें उन्होंने बार बार आन्दोलन किया । धीमा और मन्त्रकी जानकारी धर्मप्राण राजा युधि

छिर मनही मनमें विलक्षण आन्दोलन कर भावगण, सहायता अर्थात्कथन धीमे। पुरीहित और वासादे अविगणसे फिर परामर्श कर बोले, सम्पाटयोग्य सहायज्ञ राजसूयके लिये मेरी जो यह चाह उभड़ी है, केवल अज्ञा और बातहीसे क्याकर वह सफल हो सकती है ?

श्री-शम्भुनाथजी बोले, कि हे प्रसन्नमन । वे धर्मनाथ युधिष्ठिरसे इस प्रकार पूछे जाय उनसे यह बोले, कि महाराज ! आप राजसूय यज्ञमें योग्य पात्र है, सो सहजही मे उसी कर लेंगे । अर्थात्क और अर्थात्क के नरनाथसे यह कहने पर, उनके मन्त्री और भाइयान उस बात का बड़ा आदर किया । बड़े बुद्धिमान जिताना पृथानन्दन युधिष्ठिर अपनी सामर्थ्य तथा देश, काल और आयुष्यकी आलोचना कर लोगोकी । हर्षिच्छासे वारम्बार मनही मनमें उस विषयकी । चिन्ता करने लगे । वास्तवमें भली प्रकार बुद्धिसे विचार कर कार्य करनेही के कारण बुद्धिमान जन नहीं टूटते हैं । यह विचारकर, कि केवल अपनही निश्चयस यज्ञ पारम्भ करना उचित नहीं है धर्मनाथ युधिष्ठिरने यत्नसे कार्यका भार अपन ऊपरसे उठाय उसका उपाय निश्चय करने के लिये जनार्दन श्रीकृष्णकी सखी लाकासे अष्ट जानक उन अनजाचन माहमावान जगन्नाथत हो वारके नरयानम स्वीच्छासे जल लिय महाभुज हारको मनही मनमें करण किया । उनके देवता समान वाक्यका पूरी आलोचना कर युधिष्ठिरने यह तक किया, कि कोईसा वस्तु उनको अनजानो नहीं है, उनके कर्म में न सिर्फ होनेवाला कोई कार्यही नहीं है और उनके समस्त कोई विषयभी नहीं है । ऐसा विचारकर उन्होंने श्रीकृष्णको करण किया । महाभुज युधिष्ठिरने इस प्रकार निश्चय-पूर्ण पर गुरुजनाके योग्य समान समाचारके बाद भीजाके गुरु गुरुकी पास तुलने ।

भेजा । यह दूत दूत करनेवाले रथ पर चढ़के यादवकुलमें पञ्चचक्र हारकावासी श्रीकृष्णके पास गया । आगे श्रीमहाराज कृष्णचन्द्र दर्शन चाहनेवाले युधिष्ठिरकी भेंटके लिये उस इन्द्र-सेनके साथ इन्द्रप्रस्थजा पधारे । शी, काव्य करनेवाले जनार्दन द्रुतगामी रथ पर चढ़के वज्रविध देश पोछे छोड़कर इन्द्रप्रस्थमें स्थित युधिष्ठिरके निकट आ पड़चे । रहने उप-स्थित होने पर उन्होंने फूफोस धर्मराज और भीमसे पिताके समान समादर पाय पीछे प्रसन्न मनसे फूफोसे भेंट किया, आगे नतुल और सहदेवसे गुरुकी भाति पूजे जाय प्रसन्नतासे प्रसुद्धित मित्र अर्जुनसे प्रसन्नमन होके आनन्द करने लगे । अनन्तर धर्मनाथ युधिष्ठिर भली ठौरमें धकावट मिटाये, निरोग देहालये अवसर पाये अव्युतके पास जाय अपना प्रयाजन जताय बोले, कि हे कृष्ण ! मैंने राजसूय यज्ञ करनेकी इच्छा की है, पर केवल इच्छाही रहनेसे वह विषय पूरा नहीं होता, जिस उपायसे वह पूरा हो सकता है, वह भली भाति तुम जानते हो । । जनसे राज सख्य हो सकता है, जो सर्वत्र पूजे जाते हैं, जो सब भू-मण्डलके ईश्वर हैं, वही राजसूय यज्ञ लाभ कर सकते हैं । मेरे मन्त्रवर्गने एकत्र होकर सुनते यह सहायज्ञ करनेका कहा है, पर मैं कृष्ण । उसकी कर्तव्यताके विषयमें तुम्हारी बातही प्रमाण है, क्योंकि कोई कोई अन-मिततावश किसी कार्यका दाय कष्ट नहीं करके, कोई कोई स्वीकृति देकर, प्रसन्नता प्रिय विषयही कष्टा करत है, और कोई कोई कष्टी प्रिय करने टहराये लगे है जो अपने लिये प्रिय जानते हैं, कार्य पूरा करने के प्रियमें लोकोप-देही कष्टान्त मारती देहा पड़ती । । हे कृष्ण, तुम जान सकते हैं, उनके लोकोप-देही कष्टान्त मारती देहा पड़ती । । हे कृष्ण, तुम जान सकते हैं, उनके लोकोप-देही कष्टान्त मारती देहा पड़ती । ।

अतएव लोकोंमे जो अच्छा हितकारी है वही सदा कही ।

तेरह अध्याय समाप्त ।

श्रीकृष्णचन्द्र वीले, कि हे महाराज । आप सब गुणोंमें ही श्रेष्ठ हैं, सी सब प्रकारही आपकी राजसूय यज्ञ करनेका अधिकार है । यद्यपि आप सब कुछ जानते हैं, तौमो मैं आपसे कुछ कहा चाहता हूं । जामदग्न्य परशुरामने जिसे क्षत्रिकुलका नाश किया था, उनसे यह लोग जो अब क्षत्रियके नामसे पुकारे जाते हैं, निकृष्ट हैं । हे धरतीनाथ । निर्देशके पात्र उन क्षत्रियोंने जैसा कौलिक नियम किया है, वह आपका जाना नहीं है । प्रसिद्ध राजाकी परम्परा और पृथ्वी परसे दूसरे अस्वतन्त्र क्षात्रतगण अपनका ऐल और इच्छाकु वशको संतान करके परिचय देत हैं । हे भरतनन्दन ! ऐल और इच्छाकुके सौ कुल हैं यथात आर भाजके वंश आत गुणवन्त और वज्रत फैले हैं, अब उनस पृथ्वी चारों ओर छा गयी है । सब क्षात्रय उन राजाओंकी सोभाग्य-लक्ष्मीको पूजा करत हैं, पर हे महाराज । हालमें जरासन्धन उन नरनाथवास्यका सोभाग्य पाय पृथ्वीनाथ वन तेजसे सब पर चढ़ सब पर बड़ाई लाभ को है और धरतीके बीच भाग, मथुरा आदिमें प्रवेश करना अपन लिय सहज जानके हमस आपसका भेद लानकी कल्पना की है । महाराज ! जो राजा सदाके प्रभु है, जो सम्पूर्ण धरतीके एक अधिकारी वन है, वही युक्तके अनुसार साम्राज्य लाभके अधिकारी है । हे पृथ्वीनाथ ! प्रतापी शिशुपालने सर्वे प्रकारसे जरासन्धका अवलम्ब कर उसके सेनापतिकी पद लिया है । अतः पराक्रमी मायाबाहा कल्पराय वक्र, जरासन्धके निकट शिवदा भाति उपस्थित रहता है । दूसरे, जामदग्न्य वन और इक्ष्वाकु दीनाने उस

अतिबली जरासन्धको शरण ली है । दत्त-वक्र कल्प और मेघवाहन, यह भी उसके वशमें होगय है । महाराज । लोकोंमे जो अद्भुत मणि प्रसिद्ध है, उस दिव्य मणिकी सिर पर लेनेवाला जो नरनाथ मुख और नरकजा शासन करते और पश्चिम देशमें वरुण समान अधिकार फैलाये रहते हैं, आपके पिताके सखा वह अतिबली यवननाथ वृद्ध राजा भादत वचन और कर्मद्वारा जरासन्धके आगे सिर नवाते हैं, पर मनही मनसे आपकी ओर भी पिताके समान भक्ति रखके स्नेहयुक्त हैं । हे पुरुषवर ! जो पश्चिम और दक्षिण प्रांतोंमें राजा है, वह कुन्तीवंशके बढ़ानेवाले दूर शत्रु नाशी आपके मामा अकेलेही स्नेहवश आपकी ओर झूले हैं । हे पुरुषवर ! जो दुर्मति चन्द्रदेशमें प्रख्यात है, इस लोकमें जो अपनको पुरुषोत्तम करके मानता है, माहसे शंख चक्रादि जेरे चिह्नोंका सदा लिये रहता है, और लाखोंमें जो वासुदेव नामसे बड़ा प्रसिद्ध हुआ है, वज्र पुण्ड्र और किरातराज्याके नाथ उस बली पोखरक राजान भी जरासन्धकी शरण ली है । पाहले सैन उसका मारा नहीं, इससे ही वह राजा मगधके वशमें होगया है, महा राज । जो पृथ्वीके चौथे भागभागों और इन्द्रके सखा है, जन्हीम विद्यावलेसे पाण्ड्य और क्रुथ काशकोका जय किया है, जनक भाई अज्ञाते परशुरामके समान वीर थे, वह शत्रुनाशी बली राजा भाज, भोशक और जरासन्धके वशमें आगय है । हम उनके कुटुम्ब हैं, सा प्रिय तथा आशावीन रहके सदा उनका प्रिय काय्य करते हैं, तस परभा वह हमारे प्रेमी न वन रहकर अप्रिय काय्यमें दत्तावत रहते हैं । हे महाराज ! वह अपना बल और कुलकी मथ्यादा न जानके जरासन्धके प्रज्वालित यशका देखकर उसके वशमें होगय है । हे प्रभा ! उत्तर दिशाके भाजाके अठारह

कुल और शूरसेन, भद्रकार, बोधस्थाल्य, पटचय, सुस्थल, सुकुट्ट, दुन्ती, कलिन्द और सहचर तथा सहोदरो के साथ शाल्यायन राज-गगा उस जरासन्ध की भयसे पश्चिम दिशा की भाग गये हैं, दक्षिण पाञ्चाल और पूर्व कोशल के राजाने दुन्ती देश को शरण ली है। मत्स्य और सप्तसपाद देशी राजगण भय खाये उत्तर दिशा का तज दक्षिण दिशा को गये हैं और सब पाञ्चाल जरासन्ध के भयसे भीत हैं। उनके निज राज्य का छाड़ कर सब ओर भागे हैं।

कुछकाल बीते भया मूर्ख कंस ने यादवों को क्षत्रिय वृद्धद्रुपुत्र जरासन्ध की कन्याओं से विवाह किया था। वे कन्या सहदेव की कानिष्ठा वाहन हैं, उनका नाम अस्ति और प्राप्त है। जरासन्ध से सम्बन्ध हों जान पर अर्थात्त वाहन उस बल से ज्ञानियों का हरा-कार बड़ाई लाभ की थी। - हे - महाराज। ऐसे व्यवहार से उसको बड़ी कुनोत प्रकाश हुई थी। उस दुरात्मा के भजवंशी बड़ राजा की उद्भूत सतान पर उन्हीं ज्ञात त्याग-न की इच्छा से हम पर आशा प्रगट की थी। उस समय मैं अक्रूर से आज्ञा कन्या सुत-कुका दान कर वलदेवजी से मिलने प्रसिद्ध वंश का मारा था, सो हमसे एक प्रकार शान्ति का जाये उद्धार हुआ। हे महाराज। इस ग्रावे हुए भय के दूर होने पर जब जरा-सन्ध युद्ध के लिये उपास्थित हुआ, तब हमने गठारह कानिष्ठ राज-वंश से यह परामर्श ले लिया की, कि हम शत्रु नाशी बड़े बड़े अस्त्रों से तान सो वप निन रुके लड़ें भी ता उसका बल-शय नहीं कर सके, जो के वह अमर-मान तज रखनवाला मशहूर है। इस ओर पश्यक नामक जेदा पुरुष उसके सहाय के वपन से मार जान के वायव नहीं है। वे मारने के बाद जरासन्ध इन तीनों के मद से मार डाला, ता वह तीनों के मार डालने के बाद

सामने खड़ा नहीं हो सकता। हे सुधीवर। यह मत केवल हमारा ही नहीं वरन सब धरती नाथों का ऐसा ही निश्चय हुआ था।

हंस नामक प्रख्यात एक बड़ा नरनाथ था। जरासन्ध के साथ हमारी उन सतरह लड़ाइयों में बलरामजी ने उस हंस को मारा था। हे भरत नन्दन। हिमावने किसी से हंस के नाश होने का समाचार पाय यह निश्चय कर, कि हंस के बिना जीवन व्यर्थ है, यमुनाजी के जल में डूब के प्राण छोड़ा। हे शत्रुकुल जय करनेवाले। हम भी लोग के सुख से हिमकवा वह हाल सुन के यमुनाजी में डूबा। हे भरतग्रह। राजा जरा-सन्ध हिमक की मृत्यु का समाचार सुनकर उदास मन से परकी ओर चला। जरासन्ध के लौटने पर हम आनन्दित मन से फिर मथुरा में बसने लगे। आगे जब पद्मपलासनयना कंश-पत्नी पति की मृत्का दुःख मान अपने पिता जरासन्ध को यह कह के बारबार उभा डने लगी, जि नरे पति नाशी का नाश कीजिये, तब हमने उन पहिली परामर्श को स्मरण कर उदास होकर भागना चाहा। महाराज। उस जरासन्ध के भय से हम यह परामर्श कर, कि कि प्रनन्त ऐश्वर्य की आप में जाट के प्रचेक सन्ध्य र लभ भार लेके पुत्र, पौत्र, ज्ञात और वान्धवों के साथ भागें, आगे सर्वासल के पश्चिम दिशा की भाग गये। हे महाराज। उस पश्चिम खरव में रैवत पहाड़ की चोटियों में सहावनी इशस्थली नाम्नी एक परम मनहरनी एरांगे जा वसे हीन दह के दुर्ग का भली प्रकार संभार किया। वह दुर्ग ऐसा बना है, कि देवी के भी जानिके ये मन्त्रों है, वह से निव्या भी सज्जों में लड़ सकने के। निशिपत्नी महाराजों का ना वर पुत्रा को नहीं। हे शत्रुनाश। जब हम निशमय जान करते हैं। मादरे के उस गठारह के रोजाना दूध के दाने दाने न - इस मन्त्रों से हम सगुण नाटने पायेंगे था र था

गये हैं, बड़ा हर्ष हुआ है । इस प्रकार जरा-सन्धके अनिष्ट करनेसे सब प्रकार दिका होके हमने सामर्थ्य रहने परभी प्रयोजनसे गोमन्त पर्वत को अवलम्ब किया है । वह पर्वत तीन याजन विस्तृत है, एक याजन के बीचमें उस पर एक एक सैन्यबूँट बना है, और हर याजनके अन्तर पर सौ सौ द्वार बने हैं, वीरोंका विक्रमही उसमें तोरणाकी भाँति भरा है, और युद्धमें कठोर अठारह क्षत्रिय-वंशी उसकी रखचारी करते हैं । हे महाराज ! हमारे कुलमें अठारह सहस्र भाई वर्तमान हैं । आहुकके सौ पुत्र हैं, उनमेंसे हर एक देवताके समान है । भाइयोंके साथ चारुदेवा घक्रदेव, सायकि, मै, बलदेवजी और मेरे समान योद्धे शास्त्र हम यह सात अति-रथी हैं । इनके अतिरिक्त जितने महारथी हैं, उनको बात भी कहता हूँ, सुनिये । श्रुतवर्मा, अनाघृष्टि, रुक्मीक, समितिष्वय, कङ्क, शङ्कु, और कुन्ती यह सात महारथी हैं । और भी अश्वक भोजके दो पुत्र तथा स्वयं वह वृद्ध भूप, यह सहावीर्यवन्त वज्रसमान देहधारी दश महारथी मध्यदेशके स्मरण करते हुए वृषाणियोंमें वसते हैं । हे भरतसत्तम ! आप नित्यकाल तक साम्राज्य भागनेके योग्य हैं, या क्षत्रियोंमें अपनेको सम्मूढ करके प्रसिद्ध करें । परं मुझे जान पड़ता है, कि अति पराक्रमी जरासन्धके जोते रहते आप कदापि सहाय्य राजसूय पूरा नहीं कर सकेंगे, क्योंकि सिद्ध जिस प्रकार महाहस्तिओंको पकड़कर गिरिराजकी अन्दरगीं बन्धुआ बनाता है, वैसेही उस जरासन्धन राजाको पराजय कर गिरिदुर्गमें पकड़ रखा है । हे शत्रुसन्धन ! राजाके द्वारा यश करनेकी इच्छासे उस जरासन्धन अति कठोर तप करके उमाकान्त महादेवजीकी उपासना कर मन्त्रोंकी शृङ्खलाको हराया है, और उनके द्वारा उक्त प्रणसिमी मुक्त हो गया है, उसने नृपा-

लोंकी सेनाओंके साथ बार बार पराजय करके अपने पुरमें लिवाकर बड़ा नाम लाभ किया है । महाराज ! उस कालमें हमभी उसके भयसे मथुरा तज द्वारावती पुरीमें भागे थे । अतएव हे कुरुनन्दन ! यदि आप यज्ञ किया चाहें, तो उर्ग राजाको कुड़ाने और जरासन्धको वधनेकी चेष्टा करें । ऐसा न करने से बड़ी भीड़ भड़कीसे उस यज्ञको प्रारम्भ कर पूरा नहीं कर सकेंगे । हे मतिमान् ! राजसूय सहाय्य पूरा करना चाहें, तो मेरी समझमें ऐसा करनाही उचित जान पड़ता है, अब आपको समझमें जैसा हो करे । अतएव दशमें स्वयं कार्य कारणको विचारकर ही उचित जान पड़े, वही करें ।

चौदह अंश समाप्त ।

युधिष्ठिर बेलि, कि हे कृष्ण ! तुम अति बुद्धिमान हो; तुम जैसा कहोगे, वैसा कहना किसीसे बन नहीं पड़ेगा; पृथ्वी भरमें तुम्ही एक शङ्का मिटानेवाली हो । देखो, हर राज्य हीमें अपने-अपने प्रियकार्य करनेवाली राजा लोग विद्यमान हैं, पर कोई साम्राज्य लाभ नहीं कर सका । वास्तवमें सम्मूढ शब्द बड़ा दुर्लभ है । जो पराये बलवीर्यको बढ़ा जानता है, वह कभी अपनी प्रशमा नहीं करता है; शत्रुसे युद्धमें सलकर जो प्रशस्त होते हैं, वही पूजनीय हैं, हे यदुकुलतिलक ! बद्धतरुसे भरे बड़े भारी मण्डलकी भाँति मनुष्यको चित्तवृत्ति बद्धत विस्तृत भाँति मतिही, और अनेक अन्धे अन्धे विषयोंमें भरो है । पृथ्वीके रदशोंमें घूम फिर मनुष्य जैसे जानकारी लाभ करता है, वैसेही बुद्धिही परम उन्नति पाय अपना सङ्कल मली भाँति जान ले सकता है, हे जनार्दन ! मैं शान्ति को प्रयत्न करनेवाला जानता हूँ । शान्ति पवन करनेसे मेरा सङ्कल ही भुकीगा । राजसूय

प्रारम्भ करके अन्त फलका पाना कठिन तपोवीर्य, बल और सम्पद इन पांच गुणों में
 जान पड़ता है। हमारे कुलमें जन्म लिये एकके सहारे सम्पाद करने दें, पर आ
 सब मनस्वी एरूप यह सक्रमते हैं, कि किसी सर्व गुणवन्त हीके साम्राज्य लाभकी इच्छा
 न किसी समय उनमेंसे कोई बड़ाई लाभ कर करते हैं; सो धर्म, अर्थ और न्याययुक्त
 सकता है, पर है महाभाग। दुरात्मा जरा-मन्त्रणाके अनुसार आपका उचित है, कि
 सन्धको कड़ेपनसे हमभी बद्धत भय खागये थे, बृहद्रथके-पुत्र जरामन्त्रकी नष्ट करें। हे
 विशेष जिसके भयसे तुमभी भीत हुए हो, हम भरतगृह। आप यह भली भांति समझके
 तुम्हारेही भुजबलके आसरेमें रह कर अपने देखें, कि सौ राजवंश्योंमें एकसी जरामन्त्र
 को ज्योकर उससे बली समझ सकते हैं? का रोक नहीं सकता। सा वह बलहीसे
 है महाभुज। यह नीच करकेही, कि तुम, साम्राज्यकी भाग रहा है। रत्नगान राजगण रत्न
 राम, भीम और अर्जुन इन चारोंसे कोई वह प्रसन्न न होकर मूर्खतासे कुनीति लीके
 उसे वधनेकी समर्थ होगा वा नहीं, मैं वार वशीभूत राजों पर चढ़ जाता है। ऐसा एकभी
 वार उदास हो रहा हूँ। अथवा मैं अधिक मनुष्य दोख नहीं पड़ता, जिससे वह प्रधान
 दश कह, सब कर्मोंगे तुम्हीं मेरा प्रमाण हों, पुरुष राजस्वका अश नहीं लेता। इस प्रकार
 तुम जो कहोगे, मैं कभी उसकी वरुद्धता नहीं कर उससे शत्रुता करेगा? पशुनाथके रहमें
 कर सकूंगा। अनन्तर वक्तवर भीमसेन यह जरामन्त्रन प्रायः सौ राजाका अधीन बनाया
 सब बात सुनकर बोले, कि जां राजा एक है। हे भरतनन्दन। आपसे दुर्बल रूप क्यों
 वारही उद्योगसे सुह मोड़ते हैं, और जा रहनेवाले पशुओंकी भांति बंझये और बलि
 दुर्बल और बिना उपाय होय बलीसे भग-चटानेके लिये निश्चय किये राजाके जीवनों
 उनको दौड़ते हैं, वे दोनों वल्लीककी भति पर जब क्षत्रियलंग सत्कारके पात्र बनने हैं,
 चतका खा डालते हैं। दुर्बल गण यदि कौनसी प्रीति रह सकती है, अरु सी मार जानें
 पालस्य छोड़कर उचित नियमसे बलियोंसे तब अवश्यही हम युद्धमें एक होकर जरामन्त्रकी
 लड़ें, तो वह जय पाके अपना अभीष्ट सिद्धकर पर जव क्षत्रियलंग सत्कारके पात्र बनने हैं,
 सकते हैं। हे महाराज। कृष्ण नीतमें जरामन्त्र से लिवाये जाय बलि चढ़ये जानकों
 अच्छे हैं, मेरा विलक्षण बल है और धनञ्जयभी निश्चय किये गये हैं, केवन चौदहही शेष दूचे
 उनकी जय कर सकते हैं, सो जैसे तीन प्रकार हैं, उनके हाथ लगते ही बल बड़ा कठिन कार्य
 शक्तिसे यज्ञ पूरा होता है, वैसेही हम भी हैं, उनको डाल सकेंगे, बली प्रदीप्त यज्ञ पासके आगे जा
 सन्धका ध्वजे। श्रीकृष्णजी बोले, कि पूरा हो जायगा। सो उन लीलाओं में जो वध
 ध जन परिणामको बातकी न समझ डाल सकेंगे, बली प्रदीप्त यज्ञ पासके आगे जा
 ही कार्यमें हाथ डालता हूँ, विश्व जन उसकी जीत सकेंगे वल नश्यती साम्राज्य
 अनजान बालकशत्रुको भी कभी हारा सुना है, पन्द्रह अ- १५ समाप्त ।
 महाराज। हमने सुना है, दुर्धर सिंह, जो कि उद्योग में साम्राज्य
 परिते साधने के दिनोंमें जीवनाह भगी-पानेका इच्छासे जान १५०००० केवल साध
 था-सीए. भरत और मरुत यह पद पर निरन्तर उद्योग १५०००० जरासन्ध
 के हार पर केवल समझाने योग्य।

लिये भेजूगा ? हे जनार्दन । मैं भीमार्जुनको अपनी दो आंखें और तुमको मन करके जानता हूँ, सो नयन मनसे हाथ धोय क्योंकर जीऊंगा ? यमराजभी जरासन्धकी भीम पराक्रमी अपार सेनाओंको पारकर परास्त नहीं कर सकते, सो उस दशमें तुम्हारा विक्रम प्रकाश करना कैसा होगा ? वरन इस विषयमें हाथ डालनेसे बड़ा अनर्थ आ पड़नेकी सम्भावना है, सो मेरी समझमें प्रस्तावित यज्ञका प्रारम्भ करना उचित नहीं है । जनार्दन । इस विषयमें मैं अकेला जो विचारता हूँ, सुनो । राजसूय यज्ञ करनेकी इच्छा से मुह मोड़नेहीकी मैं श्रेय समझता हूँ, मेरा चित्त हालमें बड़ा व्याकुल हो रहा है, मुझको निश्चय जान पड़ता है, कि राजसूय यज्ञ पूरा करनेका सामर्थ्यके बाहर है ।

श्रीवैशम्पायनजी बोलें, अर्जुन अपनी सामर्थ्यसे धनुषश्रैष्ठ गाण्डीव, दोनों अक्षय तूंग रथ, ध्वज और मनहरणी सभा यह सब वस्तु पानेके कारण साहस कर युधिष्ठिरसे बोलें, कि महाराज । चाप, अस्त्र, वाण, वीर्य, सहाय, भूमि, यज्ञ और सेना यह मनलुभावने दुर्लभ पदार्थ मैंने लाभ किये हैं । देखें, साधु समाज तथा भले प्रतिष्ठित विद्वान् जन कुलमर्यादाकी प्रशंसा करते हैं, पर मेरी समझमें वह भी बलके सदृश नहीं है ; वीर्यही पर मेरी चाह दौड़ती है । वीर्यवन्तवंशमें जन्म लेकर जिसका वीर्य नहीं रहता, वह बड़ा तुच्छ है । वीर्यहीन कुलमें जन्मलिये वीर्यवन्त नर उससे श्रेष्ठ होते हैं । हे महाराज । जो शत्रुकी जयकर बढते हैं, वह सब प्रकारसे क्षत्रिय कहे जाते हैं । क्योंकि मनुष्य कुल-मर्यादादि सब गुणोंसे रहित हो करके केवल वीर्यवन्त होवे, तो शत्रुकी जयकर सकता है, और सब गुण रहने परभी वीर्य बिना कोई कार्य नहीं कर सकता । पराक्रमके समान सब गुण, गुणीभूत है, अर्थात् अप्रधान भावमें रहने हैं । बहाने विचार करना

पुरुषकार और दैव यह तीन जयके विरोधी हैं ; सो वृद्धत बलवन्त होने परभी बहाने विचार करनेसे कोई जय पानेके योग्य नहीं है । संकता, वरन बलवन्त होने परभी उस कारण शत्रुके हाथमें मरता है । दुर्बलको जैसी हीनता घेरती है, वैसे सबलकी मोह पकड़ता है, सो जय चाहनेवालोंको वह बड़ा अनर्थकारी मोह और दीनता त्यागना उचित है । यज्ञके लिये जरासन्धकी वधकर राजाओंकी कृपा सके, तो हमारे लिये इससे बढकर अच्छा कार्य क्या हो सकेगा ? विशेष इस विषयमें मुह मोड़के बैठे रहनेसे लगे हमको निश्चय गुणरहित जानेंगे । अतएव हे महाराज । हमारे शत्रुके अयोग्य गुणोंके रहते भी आप क्यों निर्गुण समझ रहे हैं ? पहिले शान्तिकी इच्छाकर सुनि बननेसे पीके काषाय चीर जैसे सुलभ होता है, वैसेही पहिले प्रवृत्त शत्रुकी जय करनेसे हमको बिना देश साम्राज्य मिल जायगा, सो हम अवश्यही लड़ाईके लिये कामर करेंगे ।

सौलह अध्याय समाप्त ।

बासुदेवजी बोलें, कि भरतवंशमें जन्म ले विशेष कर्त्तृके गर्भमें लपके जनका जैसा होना चाहिये अर्जुनने वह प्रकटित किया देखिये, हम नहीं जानते, कि कब रात्रि वा दिनको मृत्यु होगी और भी वही नहीं सुना, कि न लड़नेसे मृत्यु नहीं होती सो विधिदर्शित नियमानुसार शत्रु पर चढ़ हीसे हृदयकी आनन्द पङ्कचता है और जयके लिये वही उचित है । उपाय रा अर्थात् उस अच्छे नियम के संयोगसे कि जि देवतादिभी विस्मृत नहीं हैं, कार्य आरम्भ जावे, तो अवश्यही पूरा होता है और दानादि उपाय वर्जित कृनियमोंके संयोग निश्चय विनाश होता है, उक्त प्रकारके मुनि

युधिष्ठिर बोले, कि हे कृष्ण ! जरासन्ध
 कौन है ? उसका बल वीर्य कितना है.
 जलमके समान जरासन्ध अग्नि समान तुमकी
 वृत्त कर क्यों नहीं जलमरा ? श्रीकृष्णजी बोले,
 महाराज ! जरासन्धका जितना वीर्य और
 पराक्रम है और उसके अनेक बार हमारा
 आगच्छ करने परभी हमन । जिस कारण उसका
 बदला नहीं लिया, वह सब कहता है सुनिने ।
 भगपदेशमे तीन अर्होद्दिष्टी सेनासे उभरले.
 इन्होंने अस्त्रकारसे फूले, रूपवाले, जैमान, वीर्य-
 शाल अतिविक्रम भरे, यज्ञके चिन्ह रदा देरने
 पर । इन्होंने इन्द्रजित् इन्द्रजित् नामक एक उन्नी
 रखा । उनका नेत्र सूर्यसमान, शरीर
 धूम्रमान रंग इषीन्द्र और नीरता उदर

की भाँति थी। हे भरतनन्दन ! सूर्यकी किरण जैसे सब ठौरकी छा लेती हैं, वैसे उनके कुल परम्पराके गुणसे धरती सरी थी। उन अति वीर्यवान्त-भूपने परम स्वयं सम्पदवतो काशीराजकी यमजकन्याओंसे विवाह किया था। उन पुरुषवरने पत्नियोंसे निरालीन यह नियम किया था, कि तुम दोनोंका मैं तुम्हें प्रेमी बना रहूँगा, कभी अल्प वा अधिक प्रेम नहीं प्रकट करूँगा। हे महाराज। गज-राज जैसे दो हयनियोंसे मिल कर सुखसे काल काटता है, वह राजा उन अपने सदृश प्रेमवती पत्नियोंसे वैसेही काल गवाते थे और दोनोंके बीच रहके गङ्गा और यमुनाके बीचमें मूर्तिमान सागर समान सुहाते थे। उस प्रकार विषयका रस चीखते हुए क्रमसे उन राजाकी यौवनदशा क़ट गयी, पर एकभी वंशधर पुत्र नहीं उपजा। भूप पुत्रकी कामनासे बह्मावध हवन यज्ञ और मङ्गलकर्म कर कर दकने परभी कुल बढावना पुत्र नहीं पासके। अनन्तर एक समय यह सुनके कि गौतम-वंश महात्मा काशीवानके पुत्र महानुभव चण्ड-कौशिक तपस्या पूरी करके मनमाने आते हुए एक वृक्षकी जड़ पर बैठे हैं, राजा वृक्ष-द्रव्यने पत्नियोंके साथ उनके सम्मुख जाय सुनियोकी देने योग्य बह्मत अच्छे अच्छे पदार्थ देकर उनका प्रसन्न किया। सत्य-प्रेमी, और सत्य कहनेहार ऋषिवर चण्डकौशिक उनसे बोले कि हे सुव्रतवारी महाराज ! तू तुम पर प्रसन्न हुआ, अब मनमाना घर मागो। वृक्षद्रव्य तप दोनों पत्नियोंके मन्त्रित उनका प्रणाम धर पुत्रमुख न देखनेके दुःखमें नयनोंसे प्राप्त भरे गदगद होकर यह वचन बोले, कि मैं बड़ा अभायी हूँ ! आश्रितक पुत्रपद नहीं पानका, न, न, न, धन निज प्रयोजन पानके लक्ष्य है। यह वचन सुनकर राजा की प्रीति, अनुरोधमदण्डोंसे मुक्त हो कर राजा का प्रयोजन पान

राजाकी यह बात सुनके सुनि इन्द्रियोंको संयत कर उस आत्मके वृक्षकी छाहमें बैठके ध्यान करने लगे। वह उस प्रकार बैठे थे, कि उनकी गोदमें शुकादिसे न काटा कूटा एक आत्म गिरा। महाप्राज्ञ सुनिवर चण्ड-कौशिक उस अद्भुत फलको लेकर सोचते हुए उसे पुत्रलाभके लिये कारण स्वरूप राजाको दे दिया और बोले, कि हे नरनाथ। तुम्हारा मनारथ सिद्ध हुआ, अब लोटकर अपने स्थान-को जाओ।

हे भरतश्रेष्ठ। नृपवर बड़े बुद्धिमान वृह-द्रथ सुनिकी यह बात सुनके उनके दोनों पावोंमें सिर लोंटाय अपने वृक्षकी पधारे और पूर्वकी प्रतिज्ञाकी स्मरण कर दोनों पत्नियोंको वह एक फल दिया। उन्होंने भी आपसमें बाटकर उस एक फलको खाया। ह्यान वाले अर्थके फलनकी निश्चयता और सुनिकी सत्यवादिताके हेतु उन दो राणियोंकी फल भोजनके कारण गर्भ हुआ। नृप वृहद्रथ उनकी गर्भवती देखकर बड़े आनन्दित हुए। हे महाप्राज्ञ भूप। अनन्तर दश महीने पूरे होने पर उन दो राजराणियोंन दो खण्ड शरीर प्रसव किये और उनमेंसे हरिकके एक आख, एक हाथ, एक पाव, आधा मुख, आधा पेट और आधा लङ्ग देखकर वे दोनों भयसे धरधराने लगीं। दोनों अबला बाहिनने उस समय आत उदास होके आपसमें परामर्श कर उन दोनों जीती देहके खण्डोंको आत दुःखसे फक दिया। उनकी दो धातयोन उन दो सुन्दर गर्भोंको भले प्रकार तपतापकर अन्त पुरसे निकलके एकमात्र एक चौराहे पर लेजाकर फक दिया। हे नरवर। मात्सरक्त खानेवाली जरा नाम्नी एक राक्षसीने उन फके हुए देह-खण्डोंको ले लिया। उस राक्षसीन तब विधवल आजा-नके कारण उसने नहजंहेमें लेजानकी इच्छासे उन दोनों देह-खण्डोंको एक किया। हे

पुरुषवर। उन दो आधी देहोंके एक दूसरे मिलते ही, एकही स्वरूप धरके एक बीर कुमार बना। हे महाराज। अनन्तर राक्षसी आश्चर्ययुक्त आखोंमें वज्रसार वच्चेकी उठानेकी चेष्टा करने परभी उठा नहीं सकी। वह बालक हाथोंसे घूमा बाधके, मुह पर रखकर मुहकी फुलाय जलधरे घने बादलसे समान गहरे शब्दसे रोने लगा। हे शत्रुमथन नरव्याघ्र। उस शब्दसे पुरवासी भय खाये राजाके साथ एकायक निकले और वह आग छोड़ी हुई, मलिन सुख वाली, दूधभरे-स्तन धरी राजराणियाभी पुत्र पानेकी आशासे एकायक दौड़ चली। तब राक्षसी उन दो राणियोंको उस दशम, राजाकी सन्तान चाहते और उस बच्चेकी बड़ा बालिष्ठ देखके सोचने लगी, कि मैं इन राजाके अधिकारमें बसती हूँ। यह परम धार्मिक और महात्मा है, विशेष पुत्र लाभके लिये बड़ी इच्छा रखते हैं, सो इनके इस बालक पुत्रको नष्ट करना मुझकी किसी प्रकार नहीं चाहिये। यह संचके वह अनशाचरी मानवी शरीर धरके मेषमाला जैसे सूर्यका छाया लेती है, वैसे उस कुमारको लेकर राजासे बोलो, कि हे वृहद्रथ। यह पुत्र तुम्हारा है। सुनिवरके प्रभावसे तुम्हारी पत्नियासे उपजा है, अब मैं दिये देती हूँ, ता। धातयान इस त्याग दिया था, मैं यत्रसे बचाया हूँ।

श्रीकृष्णजी बोलें, हे भरतवशीश्रेष्ठ। अनन्तर काशीराजको उन सुहावनी दोनों कन्याओंन उस बालक की पाय स्तनसे निकले दूधसे उसीक्षण उसे नहलाया। इसके पश्चात् राजाने सप्रहाल जानके, प्रसन्नमनसे उस सुवर्ण-वरणी मानवी रूपधारिणी राक्षसीसे पूछा, कि हे कमलगर्भ समान शोभावती! मुझे पुत्र देनेवाली तुम कान हैं? हे कन्यागो! तुम किन्हीं विचरनवाली कीई देवी

जान पड़ती ही, सो अपना ठीक ठीक हाल कहो ।

सतरह अ-ध्याय समाप्त ।

राक्षसी बोली; कि हे महाराज ! मेरा नाम जरा है, मेने राक्षसी-कुलमें जन्म लिया है । स्वच्छासे रूप ले सकती हूँ । मैं नित्य हर मनुष्यके घरमें घूमा करती हूँ । स्वयम्बू ब्रह्माजीन सुभाका पाँहले बृहदेवी नामसे दिव्य स्थापणी बनाय दानवोंके विनाशके लिये रख दिया है । जो मनुष्य पुत्रवती और नये यौवनसे मदसाती मेरी प्रतिमा अपने घरकी दीवार पर लिख रखता है, उसका मनःसन्देह मङ्गल होता है, जो नहीं रखता वह गष्ट होता है । हे प्रभो ! पुत्रसे घरी मरी काव तुम्हारे घरकी दीवार पर लिखा है और तुम्हारे चरणोंमें बसकर मे गन्ध पुष्प धूप, भजनादिका नाना सामाग्र्यसे सदा भल प्रकार पूजा जाता है, सो सदा तुम्हारे उपकारका बदलमें काइ उपकार किया चाहता थी । हे धार्मिकवर ! आज तुम्हारे पुत्रकी दा मागामें बटा देहका देणवार देव तयागसे ज्यादा उस मेन एकावत किया थाही वह एक दुसरे बना । महाराज ! तुम्हारे भाग्यहीन यह लाला जुड़ है, मैं इसका

राक्षसीने इसकी सन्धित किया अर्थात् मलाया है, सो इसका नाम जरासन्ध है । ऐसा निश्चय करके उस बालकका नामकरण किया । मगधनाथका वह बड़ा तेजीवत्त पुत्र प्रसस्त आकार धारणकर और बलवान होकर आज्ञाति प्राप्त अग्निके समान बढ़ने लगा, सो शुक पक्षीके लिये चन्द्रमाके समान पिता माताका आनन्द देने लगा ।

अठारह अध्याय समाप्त ।

श्रीकृष्णचन्द्र बोली, कि ब्रह्मकाल बीतने पर महात्मा चण्डकीशक फिर मगध देशमें आगये । राजा बृहद्रथन उनके आनपर बड़ा प्रसन्न होकर मन्त्री, पुरोहित और दा राणियों तथा पुत्रके सहित निकलके पाद्य, अर्घ्य आभूषण आदिके उनकी पूजा की । हे भरत नन्दन ! उस रूपालने राज्य-सहित उस पुत्रका उन्हे सौंप दिया । भगवान् चण्डकीशक राजा मगधकी वह पूजा लेकर प्रसन्न मनसे उनमें बोली, कि हे महाराज ! जो दिव्यनेत्रीसे सज वात जान चुका है । तुम्हारा यह पुत्र भावशतमें जा अवस्था प्राप्त करेगा, इसका जैसा रूप सत्त्व, बल और पराक्रम होगा, वह सुनो । तुम्हारा यह पुत्र ऐश्वर्यसे बटके और अकामसे चटके

कर मृत्यु से भेंटते हैं, वैसे बल्लत बल वाहन-
वाले राजगण इसको हराने में आप नष्ट होंगे ।
वर्षाकाल में नदनदियों की नाय समुद्र जैसे उठ-
लती जलभरी नदियों की पकड़ लेता है वैसे यह
राजा की उन्नत श्री की स्वयं ले लेगा । सब
प्रकार शस्य-धरो वृहती पृथ्वी जैसे शुभ तथा
अशुभ सबकी धरती है, वैसे महाबली जरासन्ध
चारों वर्णों का धरनेवाला होगा । शरीरधारी
जैसे सर्व भूतों को आत्मभूत वायु के वश में रहते
हैं, वैसे सब नरनाथ इसकी आज्ञा के अधीन
बनेंगे । अधिक क्या कहूं, सब लोकों में अति
बलवान यह मागध-प्रधान जरासन्ध त्रिपुर-
हनन, संसार-हरण महादेव रुद्र का दर्शन
करेगा ।

हे शत्रु नाश ! मुनि ने ऐसा कहते ही
कहते मानो अपना कोई कार्य स्मरण कर
नरनाथ वृहद्रथ की विदा कर दिया । मगध-
नाथ भी नगर में जाय चाति कुटुम्बों की साथ
लेय जरासन्ध की मगधराज्य में बैठा य बड़े
प्रसन्न हुए । जरासन्ध के राज्य पर बैठने पर
राजा वृहद्रथ दो राणियों की साथ वन की
पधारे । हे प्रजानाथ ! पिता तथा दोनों
माताओं के वन में जाने पर जरासन्ध अपने
वीर्य के प्रभाव से सब नरनाथों को वश में
लाया ।

और्वशर्मायनजी बोले, कि नरनाथ वृहद्रथ
तपोवन में बल्लत दिन तपकर दोनों पत्नियों के
संग स्वर्ग की सिधारे । नवीन राजा जरासन्ध
की आज्ञा के वचनानुसार सब वर पाकर राज्य
पालने लगा । हे भरतनन्दन ! उस काल में
जरासन्ध के स्वजन भूनाथ कंस के वसुदेव पुत्र
क्रोधा से मारे जान पर उनके साथ जरासन्ध को
शत्रुता उभड़ी । बलवन्त मगधनाथ ने उस
शत्रुता से गिरिद्रज से एक बड़े भारी गदा
अनगानव बार दुमा के सदुरा में टिके आश्चर्य
करना ली ओकृशाचन्द्र के नाम से फेंकी ।

वह सुहावनी गदा निनानज्जै यजन की ह्री
पर मथुरा के निकट गिरी । पुरवासियों
भले प्रकार देखके गदा गिरने का वृत्त
ओकृशाचन्द्र से कह सुनाया । मथुरा के निकट
जिस ठौर में वह गदा गिरी थी, वह गदा
सान नाम से प्रख्यात हुई । महाराज
हंस और द्विभक्त जा दो पुरुष जरासन्ध के
सहाय के दे शस्त्र से मारे जाने के अयोग्य
मन्त्रण में बड़े बुद्धिमान और नोति-शस्त्र
पण्डित थे । उन अति बलवन्त दोनों वीरों को
कथा मैंने पहिले आपसे कहा है, कि हंस
द्विभक्त और स्वयं जरासन्ध इन तीनों के मित्र
नेसे ऐसा जान पड़ता है, कि त्रिजोका भी
उनके समान नहीं हो सकता था । नकार
अन्धक और वृषिर्वांश्यों ने पराजयी वीरों
पर भी केवल इस कारण से नोचि लिये नर-
सन्ध को तुच्छ समझा था ।

उत्तीस आध्याय और सत्तमा

प्रकरण समाप्त ।

जरासन्ध वध प्रकरण ।

औवासुदेवजी बोले, कि हे शुद्धि !
हंस और द्विभक्त ने जल में डूबके प्राण छोड़े
हैं और कस भी सहाय-सहित नारा रखा
सो जरासन्ध-वध का यही ठीक अवसर है ।
सब सुरासुर भी उसको खुलाखुली लड़ाई में
परास्त नहीं कर सकते, अतएव उसको
भुजयुद्ध सेही जय करना उचित है । मुझमें
नोति है, भीम में बल है और अर्जुन हमारा
रखवारो करेंगे । अतएव तीन अग्नि जय
यज्ञ को पूरा करते हैं, वैसे हम जरासन्ध की
मृत्यु पूरा करेंगे । हम तीनों निराल्मि
उससे जा भिड़ें तो वह हममें से एक न एक में
अवश्य ही डूब युद्ध में लगेगा, अपमान, लाभ-
प्रकाश और भुजवोर्ध देखके दर्पयुक्त होकर
वह निश्चय भीम से लड़ने के लिये कम्बर कसेगा ।

लोकोंके स्वभावहोसे उभले रहनेसे मृत्यु
जैसे उनको नष्ट कर देती है, वैसे अति बलवन्त
सहाभुज भीमसेनभी उस उभले स्वभावी जरा-
सन्धको नष्ट करनेकी समर्थ होंगे । महा-
राज । आप यदि मेरा हृदय जानते हों
और सुभा पर आपका विश्वास रहे, तो और
विनम्र न करके भोमार्जुनको मेरे पास
न्यामको भूति सौंप दीजिये ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि नारायणसे
यह कहे जाय और भोमार्जुनको प्रसन्नमुखसे
पेटे देखकर युधिष्ठिरने सधर्म सहित उनसे
दिया, कि हे शत्रुनाशी अशुत । तुम मुझसे
ऐसा मत कहो, तुम पाण्डवोंके नाथ हो,
हम तुम्हारी शरणमें हैं । हे गोविन्द ।
तुम जो कहते हैं, सब युक्तियुक्त है, क्योंकि
शैलक्ष्मीजी जिनसे मुझ सोड़ती है, तुम
कभी उनके आगे नहीं जाते हो । हे जग-
न्नाथ । तुम्हारी इशारेकी बातोंसे मुझको
यह जान पड़ता है, कि मानो मैंने जरासन्धको
मार लिया, भूपालोंकी वचाया और राजसूय
यज्ञभी लाभ किया है । हे परुपथ्येष्ट । अब
अप्रसन्न मनसे यही करो, कि जिससे वर्तमान
कार्य पूरा हो । क्योंकि तुम तीनोंके बिना
मैं धर्मार्थ-कारासे वर्जित लोगोंमें पीड़ित
जनकी भूति जीनेका साहस नहीं कर
सकता । मेरा स्थिर निश्चय यह है, कि जैसे
नीरश बिना पार्य नहीं रह सकते और
पार्य बिना नीरशभी रह नहीं सकते, वैसे

सेना चलानी चाहिये । जहां भूम नीची
होती है, बुद्धिमान जन उसी ओरकी जल
ले जाते हैं, मनुष्यभी जहां गड्ढा रहता
है, वहीं जल ले जाते हैं । ऐसेही बुद्धिमान
सैनिकगण शत्रुकी निचाई और चूक समझकर
सेना चलाते हैं, सो नियमकी विधि जानने-
वाले, पसपकार रखनेवाले तिनोकीमें प्रख्यात
गोविन्दकी अवलम्ब कर अवश्य कार्य पूरा
करनेका प्रयत्न करेंगे । जो कार्य पूरा कर-
नेकी प्रार्थना करते हैं, उनकी ऐसी बुद्धि,
नीति, बल, क्रिया और उपाय रखनेवाले
श्रीकृष्णचन्द्रजीको आगे बढाना चाहिये ।
पृथागत अर्जुनभी कार्य पूरा करनेके लिये
ऐसे गुणनाथ यदनाथ श्रीकृष्णजीके साथ नने
और भीमभी अर्जुनकी बात लें, ऐसा हेने-
हीसे नीति, बल और विक्रमके विषयमें गिनि
मिडि प्राप्त होगी ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले कि युधिष्ठिरसे यह
कहे जाय, अनि तेजोवन्त श्रीकृष्णचन्द्र, और
अर्जुन तीनों भाई मित्रोंके समभावन वचनसे
सन्नापित होके वचनका स्मृतक ब्राह्मणोंके बन्ध
पक्षिरकर मगधनाथके धामकी ओर चले ।
उनकी देह मर्त्य, चन्द्रमा और अग्निके समान
स्वभावहीसे अति तेजोपणित श्री फिर निग पर
जातिगोके कार्यके लिये उमकाल उनके दोषसे
जल उठने पर वह और भी प्रदीप्त हो गये ।
युद्धमें जगन खानेवाले भीमके मज्जित नैऋत
और अर्जुनकी कर्तव्य दृष्टिसे देवदत्त

और एक पहाड़ीकी नदियोंकी पार करते हुए चले। अनन्तर वे मनहरणी सरयूके पार उतरकर पूर्व कौशल देशको निहार मिथिला तथा जाला और चर्मखती नदीकी पारकर आगेको चले, गंगा और शोणके पार उतरकर वे अक्षय उत्साहसे पूरित दोनों वीर उस समय पूर्व दिशाकी पधारके कुशाम्ब देशको छातीके समान मगधराज्यके छोरमें आ पड़चे। अनन्तर उन्होंने जलभरे गौ-पूर सुन्दर वृक्ष-धरे गौरय नामक पर्वतसे उतरकर मगधनाथको पुरी देखी।

बोस अध्याय समाप्त ।

श्रीवासुदेवजी बाले, कि हे पार्थ ! वह देखा, मगधराज्यको राजधानी कैसी सुन्दर शभा पारहो है। वह अनेक पशुभरो, सदा जलपूरी, उप-द्रवांसे रहित आर अक्के अक्के भवना से सुसम्भित है। जव जची चाटी लिये ढल्ले वृक्ष-वाले, एक दूसरसे मिले बैहार, वराह, वृषभ, ऋषिगिरि और चैतक यह पाच बड़े बड़े पर्वत मानो एक गृह वनके। गिरि-त्रजनगरोंको रख-वारी कर रहे हैं, शाखाओंके अगले भागमें फूल लगे, सुगन्ध फैलाये मनहरण कामी जन प्रेमधन लाभ वनोने मानो उन पहाड़ोंको ताप रखा है। वहा प्रशसित व्रतधारी महात्मा गौतममुनिन शूद्राणो आशोनरीसे काक्षोवानादि पुत्रोंको उपजाया था। गातमके बोध्य आर शूद्राणोंके गर्भसे जन्म लेकरके भो उस वशके उस भवनमें राजवश हानका कारण यही कहना चाहिये, कि राजा पर गौतमकी कृपा थी। हे अर्जुन ! पूर्वकालम अति पराक्रमी अहं वशादिके राजगणभो इन गातमकी कुटोम आनकर प्रमुदित हाने थे। वह देखा, गौतम-जाके आनन्दके निकट लाभ आर पीपलके वन केसा सुन्दर शभा दे रहे हैं। यहा अश्वुद-आर शत्रुघोष नामके दो शत्रुघोषी नागोंके

और स्वस्तिक तथा सुनि नागके भवन बने हैं, भगवान मनुने मागधियोंको ऐसे रचा है, कि कभी उनसे बादलोंकी कृपा नहीं जाती, कदापि उनको जलका कष्ट नहीं होता और कौशिक तथा मणिमाननेभो इन पर बड़ी दया दिखायी है उस प्रकार सब भातिसे कठोर सुन्दर अष्टगुरुका पाकर जरासन्ध अनुपम गर्भ पानमें कोई शङ्का नहीं करता है, पर आत-हम चढ़ कर उसका अहङ्कार चूरचूरकर दोगे।

श्रीवैशम्पायनजी बाले, कि ऐसा कह सुन कर अति बलवन्त वृष्णीवंशी श्रीकृष्णचन्द्र और भोमार्जुन तीनों भाई मिलके मगधपुरको आर चले। आगे वे हृष्ट जनोंसे भरे, सदा उत्सव करते हुए, औरोंकी जयके द्रव्य चारों वर्ष पूर गिरित्रजनगरमें जा पड़चे और पुरके द्वारके निकट न जाकर राजा बृहद्रथके परिवार तथा नगरवासी प्रजाओंसे पूजी जाते हुई, माग-धोंको प्यारी, लंची चैतक चोटीको भेद किया। उस स्थानमें राजा बृहद्रथने मासाद ऋषभ दैत्यपर चढ़ाई की थी और उसको हननकर उसके चर्मसे तीन भेरीका तंभ करके अप-पुरमें लटकाया था। वे तीन भेरी इतनी बड़-थीं, कि एकवार पीटनेसे सासभर उनकी धु-सुन पड़तो थी। वे भेरी दिव्य फूलोंसे सजाय जाय जहा बजती थीं, उरामन्धके वध चाह-बाले कृष्णादिने मानो उसके तिर पर चाल-गाय मागधाको प्यारी उस चैतक-चोटीके ताड़ डाला भली भाति जमी, अति कठार, बड़-भारी और सुहावनी जा पुरानी चाटी गम-मालादिसे सदा पूजो जाती थी, उक्त ती-वोरान अर्पारमित भुजबलसे उसका धड़-मारके। गरा दिया और इसके पीछे प्रस-मनसे मगधपुरमें जा घुसे।

एसे समयम वेदपारग पुरहित ब्राह्मणा-कुछ वर चिन्ह देख कर नरनाथ जरासन्ध-दिखाये और गजपर चढाय नाराज-

अर्थात् जलती हुई लकड़ीसे आरती की । प्रतापी राजा जरासन्धभी उस अशुभकी शान्तिके लिये दीक्षित और नियमयुक्त हो रहे । इधर स्नातक व्रतधारी, बिना अस्त्र भुजमात्र अस्त्र-सहित कृष्णार्जुन और भीम नगरमें आय घुमे । हे भरतनन्दन ! वे राज-मार्गसे चलते समय अपने भोजनकी सामग्री और मालाओंकी सर्वगुणयुक्त और सर्वकाभ-पूर्ण अति सुहावनी शोभा देखने लगे । राज-मार्गमें वैसी समृद्धि निहारके उन महाबली नरवरोंने मालाकारसे बलपूर्वक माला छीन ली और इनो प्रकारसे रागयुक्त सुन्दर चीर, माता और भले भले कण्डल धर हिमाचनके सिंह जैसे गोशाला देखते हुए जाते थे, वैसे जरासन्धके भवनमें गये । महाराज ! उन युद्धरत तीनों वीरोंके अगुरु चन्दनसे सुशोभित भुज शाल-वृक्षके समान सीढ़ने लगे । मगधपुरके निवासी उनकी वृहत मन-हस्तीके समान शालक्य-सदृश जड़े और किवाड़की भन्ति चौड़ी छानीवाली देखकर अचक्षुमें लौगये । नरसेठ कृष्णादि जनधरी तीनों कच्चापोंकी पीठें जड़ कर निश्चित हृदयसे प्रहार की समझी जरासन्धके निकट जा पहुंचे । प्रभावी राजा जरासन्ध उसी क्षण उत्तर कर यह संशयण कर, कि 'आपका सुभा-गमन होवे' पाए, सत्पर्क और गौदानके योग्य प्रसीध जरासन्धका विधिपूर्वक सत्कार किया । उनमेंसे । उस बाल पाए और भीम सीढ़-पाए । उनमें बड़े बुद्धिमान जैतयचन्द्र जरासन्धके यह बोले, कि हे नरनाथ ! यह 'समृद्ध' । सी इस समृद्धि का मत नहीं है, आधी राति बीतने पर तुमने प्रतीतिप-प्राप्ति । राजा जरासन्ध उत्तरी उ-शकामें उभर कर भवनमें गये । उनके आधी रात में निद्रा में एक विचित्र दृश्य हुआ ।

यह दृढ व्रत था, कि स्नातक ब्राह्मण आधी रातको भी आवें तौभी उस समय सुनतेही वह आकर उनसे भेट करता था । नृपवर जरा-सन्ध कृष्णादिके निकट पङ्कचकर उनका अद्भुत वेश देखके अवस्थामें हीगया । हे भरत-सेठ ! यहशालामें ठिके उन शत्रु-नाशी नरसेठोंने राजा जरासन्धको देखतेही एक दूररेके मुख देख कर उससे यह कहा, कि हे महाराज ! बिना विन तुमको मोक्ष-पद मिल जावे । जरासन्धने कृत्रिम ब्राह्मण वेशधारी वादव और पाण्डवांकी बैठनेकी कहा । वे सब भी बैठकर महा-यज्ञके तीन आत्म्योंके समान शोभासे जलने लगे ।

हे कुरुनन्दन ! अनन्तर नरनाथ सत्यप्रण ठाननवाला जरासन्ध गुप्तवेशधारी औकृष्णादिकी निन्दाकर बोला, कि इस नरलीकमें सब प्रकारसे मुझे विदित है कि स्नातक व्रतधारी ब्राह्मण रहस्यी धर्ममें-प्रवेश कालके बिना मालादि नहीं धारण करते, पर देखता हूं, कि तुम फूल लगाये हो, और भो तुम्हारी हृदयियोंमें धनुषमें गुण चढ़ानेके चिह्न बने हैं, सो तुम कौन हो । तुममें कृत्रिय तेज है पर ऐस विचित्र रागयुक्त चीर पहिरे और अनुचित माला लटकाये गंध लगाये अपनेको ब्राह्मण कहते हो, सो भव कही तुम कौन हो । क्योंकि राजाके लिये सत्यहीवी नड़ी शोभा है । तुम राजाके अनिष्ट करनेका भय न खाकर चेतक पर्यंतकी चौंटोजी सेद्वार का बुर्जदारमें प्रभुमें आधुमें हो ब्राह्मणका शीघ्र जानहीने प्रकट होता है, बायेने मना, । तुम्हारा यह आश्रय विनिर्दय अद्वैत कृत्रिय-योग हुआ । अतएव जरासन्ध चले तुम्हारे दया अभिप्राय । जरासन्ध इस समय भवनमें उभरकर देखा कि जरासन्ध

सत्कार नहीं लेते ही और मेरे पास आनेका प्रयोजन ही क्या है ?

जरासन्धके ऐसे कहने पर महासना बभ्रुवर श्रीकृष्णचन्द्रने कीमल गम्भीर स्वरमें उत्तर दिया, कि महाराज । तुम हमको स्नातक ब्राह्मण करके ही जानो । हे गरनाथ । ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, तीनों वर्ग ही स्नातक नियमसे रह सकते हैं और उनमें विशेष और विशेष दोनों प्रकारके सब नियम रहते हैं । उनमें विशेष नियमवाले क्षत्रिय रुद्रा सौभाग्य प्राप्त करते हैं, और भी फूल लगाये जन निश्चय श्रीमन्त होते हैं, सो हमने फूल हार लटकाये हैं । हे बृहद्रथपुत्र । क्षत्रिय लोग भुजसे जितना वीर्य प्रकाश करते हैं, बातसे उतना नहीं करते, अतएव उनके उच्चार वचन कभी प्रगल्भ नहीं होते । हे महाराज । विधाताने क्षत्रियोंके दोनों भुजोंमें ही अपना वीर्य भर दिया है, यदि वह देखना चाहो तो विना सन्देह निश्चयही देखोगी । वहिमान जन शत्रुके घरमें कुद्वारसे और बन्धुके अच्छे द्वारसे जा घुसते हैं, यही धर्म-शास्त्रको विधि है, और यह भी जाय लो, कि कार्य सिद्धकी चाहसे शत्रुके घरमें घुसकर हम उसकी दीहई पूजा नहीं लेते, यह हमारा सदासे प्रसिद्ध नियम है ।

इकीस अध्याय समाप्त ।

जरासन्ध बोले, कि हे विप्रवर्ग । स्मरण नहीं होता, कि मैंने तुमसे कब शत्रुता की है, और यह सीचकर जान नहीं सकता हूं, कि तुमसे कभी बुराई की है । यदि हानि नहीं की हों, तो सच कहो कि विना दीप तुम क्यों मुझको शत्रु समझते हो । क्योंकि सत्य बचनाही राष्ट्रोक्त नियम है । देखो धर्म-धर्ममें चोट देनेसे मनमें दुःख छा जाता है, सो नारदी क्षत्रिय और धर्मके जानकार हूं कि

जो निहीपी जन पर उस धर्मार्थमें चोट पड़चानेका कलङ्क लगाता है, वह विना सन्देह पापियोंको गतिकी प्राप्त करता है और कल्याणसे भी अपनेको हटा लेता है । तिलोक भरमें क्षत्रिय-धर्म माधु व्यवहारियोंको शुभ पड़चाता है, धर्मके जानकार लोग क्षत्रियोंके धर्मकी बड़ी प्रशंसा करते हैं ; मैंभी हालमें अपो आमाको संयत कर उस क्षत्रिय धर्ममें लगा हूं, और प्रजाओंके सामनेभी निहीपी हूं, इस परभी तुम मुझ पर धर्मार्थमें चोट पड़चानेका कलङ्क लगाते हो, इससे निश्चय जान पड़ता है, कि तुम भ्रमवश ऐसी कल्पना करते हो । श्रीकृष्णचन्द्र बोले, कि हे महामुज । कुलप्रवर कोई एक पुरुष कुल कार्यको वहन करते हैं, उन्हीकी आज्ञासे हम तुम पर चढ़ आये हैं । हे महाराज । तुम जन-संयोजके सब क्षत्रियोंको बलपूर्वक पकड़ लाये हो, ऐसा अति क्रूर दीप करके क्योंकर अपनेको निहीपी समझ रहे हो ? हे नृपवर । राजा कहके क्यों कर साधु राजोंकी हिंसा कर सकता है ? पर तुम उन राजोंकी सत्ताके रुद्रदेवके नामसे बलि चढ़ाना चाहते हो । हे जरासन्ध । तुम्हारा किया वह पाप हमको भी स्पर्श कर, सकता है, क्योंकि हम धर्म आचरने वाले हैं, और धर्मकी रक्षामेंभी समर्थ हैं । बलि चढ़ानेके लिये जरूरत तो कभी देखी नहीं गयी, फिर तुम क्यों कर नरबलिके द्वारा शत्रुके नामसे यज्ञ किया चाहते हो ? जरासन्ध । तुम मर्त्य मूर्ख हो, इसी लिये सुवर्ण होके सबकी नीं धनु नाम दिया चाहते हो । तुम्हारे विना दूसरा कौन ऐसा कर सकता है ? जो जगत् धर्म करता है, वह उस कार्यका फल पाता है, अतएव हम समयभीत जनका पक्ष लेकर ज्ञातियोंकी वृद्धिके लिये, ज्ञातनाशी तुमके नष्ट करनेके लिये यहां आये हैं । हे मन्त्र

राज ! तुम्हारी यह समझ कि क्षत्रियों
तुम्हारे बिना दूसरा वीर नहीं है, वह केवल
तुम्हारी दुड़की हीनता है, क्योंकि अपनी
वश-मथादाकी स्मृति बूझकर कौन आत्मा-
वान क्षत्रिय रणमें प्राण छोड़के अनन्त अहं
स्वर्ग पाना नहीं चाहता होगा ? हे नरवर !
तुम यह निश्चय जानते हो, कि स्वर्गके उद्देश्यसे
क्षत्रियगण रणयज्ञमें दीक्षित होके लोकोको
परास्त करते हैं। महान् वेद पढ़ना, महान्
यज्ञ, तपस्या और युद्धमें मृत्यु, यह सबही
स्वर्ग पानेके कारण है, उनमें वेद पठनादिसे
स्वर्गलाभ नभी होसकता है, पर युद्धमें मरनेसे
वैसा होनेको असंभावना नहीं है, यह स्वर्ग-
प्राप्तिका निःसन्देह कारण है। युद्धमें मृत्यु
साक्षात् इन्द्र सम्बन्धी कृपाके समान है, यह
सदा गुणोंसे भरा है; ऐसी मृत्यु लाभ कर-
केही इन्द्र दैत्योको परास्त करके जगको पालते
हैं। हे महाराज ! तुम्हारा विश्रुत जैसा
स्वर्गकी वाटके योग्य है, वैसा फिर किसका
हो सकता है ? क्योंकि वह अगणित मागधो
सेनार्योंकी सहायता और वृद्धत वड़े अवलर्पसे
भरा है। वास्तव में हे नरनाथ ! तुम
दूसरे लोकोंका अनादर मत करा, क्योंकि
मनुष्य मात्रहींग वीर्य है। ऐसे कितने ही
मनुष्य विद्यमान हैं, जो तुम्हारे समान वा
तुमसे अधिक वीर्यवान हैं। यह बात जनक
प्रबोधित है, तब तक तुम्हारा तेज गिना जा
सकता है, पर हे महाराज ! यह तेज हमारे
निधे पड़त असह्य है, इसी लिये मैं ऐसा
कहता हूँ। हे मागध ! तुम अपने समान
अंगोंसे अभिमान और दर्प करना छोड़ दो।
यज्ञ, मन्त्री और सेनार्योंके साथ मृत्युसूत यम-
राजके पर मत जासो। देखा, अहंकारमें
तुम ग पावकी हो, उनका हृदय प्रादि
भी तुम अपनेसे बड़े गिनावा अपना कर
कर गये हैं। हम प्रसन्न हैं वास्तव

नहीं हैं, केवल कलसे तुम्हें हननेको
ब्राह्मण वेश लिया है। मैं क्षत्रिकेश कृष्ण हूँ
और यह दो वीर पाण्डुके पत हैं। हे सम-
नाथ ! हम तुमको ललकारते हैं, स्थिर
होकर लड़, अथवा सब भूषणोंको छोड़ दो
और नहीं तो यमराजको जासो। जरासन्ध
बोला, कि अच्छे कृष्ण ! मैं बिना जय किये
निस्सी भूपको नहीं पकाड़ता, बिना हारे क्या
कोईभी यज्ञ बंधा रहता है ? और ऐसा
क्षत्रियही यज्ञ कौन है, जो सुप्तसे पराजित
नहीं हुआ ? यही क्षत्रियोंका उपजीव्य धर्म
करके कहा गया है, कि विक्रमसे शत्रुओंका
वशमें लाय जैना चाहे व्यवहार करे। अतएव
कृष्ण ! मे देवताके नामसे क्षत्रियोंको पकाड़ लाके
क्षत्रिय धर्म स्मरणकर हालमें भय खाव अब स्थि-
कर उन्हें छोड़ दे सकता हूँ; पर जो तुम युद्धकी
वात कहते हो, मैं व्यूहयुक्त सेनार्योंसे अथवा
अकेले एकसे देसे वा तोनसे एकवारही वा अलग
अलग चाहे जैसे ही लड़नेकी सम्मत हूँ।

श्रीशैगम्यायनजी बोले, कि राजा जरा-
सन्धने यह कह भयावने कर्म करने वाले
कृष्णादिके साथ युद्ध करने पर होके अपने
पत सप्तदेवकी राज्यमें बैठनेकी आज्ञा दी।
हे भरतचंद्र ! उप उपस्थित युद्धमें उगने
कीजित और विरुद्ध नामक सेनापतियोंको
प्रेरण लिया। हे महाराज ! पहिली इस
नरनीजने लोग उनको ही 'लंघ प्रार विशक्त'
यज्ञ नीज-प्रव्यक्त नाम कहा करने थे। हे
सुप्र ! जनधरके पतन, मृत्युशब्द, मद्यमय
वंशि-प्रवर, दिगु मद्यसूदन आकाशचन्द्रम
जगदीश, गरीज समान पराक्रमी भूमि-
भरने गति विजयो भूपाय पराक्रमी युद्ध
भीमलोके जमा, तथा यादवोंसे मारे गयेके
यज्ञमा उरग जग यज्ञदीपी जगता कर्म-
के लिये यह ही मद्य प्रवरा मद्य जगता

श्रीशम्पाठनजी बोले, कि अनन्तर वचन-प्रधान यदुनन्दन श्रीकृष्ण चन्द्रने युद्धमें प्रण ताने हुए राजा जरासन्धसे यह पूछा, कि महाराज ! हम तीनोंमें किससे तुम लड़ा चाहते हो ? कौन तुमसे लड़नेको सज धज ले । श्रीकृष्णकी यह बात सुनके उस तेजस्वी भगधनाथने भीमसे लड़ना चाहा । तब पुरोहित गीरीचना, माला और दूसरे माङ्गलिक पदार्थोंके साथ-पीड़ा-भगावनी चेत-जगावनी औषध लेके युद्धेच्छुक राजा जरासन्धके पास आये । भीम-पराक्रमी मतिमान जरासन्ध यशोवन्त बाह्यणोंसे स्वख्यन किये जाय क्षत्रिय धर्म स्वरणकर युद्धके लिये प्रस्तुत हुआ ! वह किरीट उतारके केश बाधके हिलोड़ते हुए समुद्रके समान वेगसे उठ खड़ा हुआ और भीमसे बोला, भीम ! तुमसे लड़ूंगा, देखो अष्ट जनसे हारनाभी अच्छा है । शत्रुमथन, अर्थात् तेजोवन्त जरासन्ध यह कहके बल नामक दैत्य जैसे इन्द्र पर दौड़ा था, वैसे उनकी आर दौड़ा । अनन्तर बली भीमसेन श्रीकृष्णसे परामर्श कर और उनसे स्वख्यन किये जाय लड़नेके लिये जरासन्धके पास जा पहुँचे । पीछे एक दूसरेकी पराजय चाहनेवाले भुजमात्र शस्त्र लिये हुए वे दोनों नरशार्दूल वीर अति प्रसुद्धित चित्तसे एक दूसरेसे भिड़ गये । पहिले वे एक दूसरेके कर शमके पावोंसे सन्धाषण कर ताल ठोक कर राजभवनके धरोकरों-कंपाय ललकारने लगे, आगे दोनों करोंको गलेमें वारन्वार रगड़के देहसे देह रगड़ाये फिर ललकारते रहे और चित्तहस्तादि अर्थात् हाथ सिकोड़ना, घूना बनाना आदि करके और ताल ठोकके गलेमें गला गातसे गाल रगड़के आगकी चिंगारी निकालकर सानो वज्र रच डाला । हे विभो ! वे भुजमात्र अस्त्र लिये दोनों धार पादल समान गर्जन करनेवाले एक दूसरेके मूँड़ की चाट मारके गर्जन करते हुए

हस्तीकी भाँति बाहुपाशादि अनेक प्रकारके वस्त्रन कर उरोहस्त अर्थात् छाती पर धमक मारना, पूर्णकुम्भ अर्थात् एकत्रित उद्गलियोसे सिर पर मारना इत्यादि युद्धके कौशल दिखाते एक दूसरेके सिर पर लात मारने लगे और धमकड़ासे घायल-हाथ क्रोधसे उभले दो सिंहों के समान एक दूसरेको देख देखके और बार बार पकड़ पकड़के लड़ने लगे । परस्पर अङ्गसे अङ्ग भुजोंसे भुज घायल किये और पेटपर पेट रखके परस्परकी गिराया । सुशिक्षित दोनों वीर कमर, कन्य, और पार्श्वभाग सिकोड़ सिकोड़के दोनों-करोसे पेटकी धर अपने कण्ठ और छातीके निकट लाय इस प्रकारसे एक दूसरेको सतान लगे और सब मर्यादानाशो पीठ तोड़, पूरी सूँझा, दोनों भुजोंसे पूर्णकुम्भ तथा पीड़ा, घूसोके साथ मनमाना पूर्णवेग आदि नाना-भातिसे लड़ने लगे ।

हे नरशार्दूल ! उनकी लड़ाई देखनेके लिये उस समय पुरवासी सहस्रा ब्राह्मण, क्षात्रिय, वैश्य आर शूद्र यथातक, कि स्त्री और वृद्धभी वहाँ एकात्रित थे । भीड़ इतनी लगी कि वहाँ ठुकभी स्थान न रहा । तब लड़ते हुए वीरोंके सुक्के और उलट पलटसे पहाड़ पर वज्र गिरनेके समान भयावना शब्द गाने लगा । वे दोनों महाबली थे और युद्धमें अति प्रसन्न होते थे, सो एक दूसरेकी धृक् ठूढ़ रहे थे । महाराज ! इन्द्र और धृतासुरके युद्धमें जैसा हुआ था, वैसेही भीड़ भर अखाड़ेसे लागोकी हटाय भीम और जरासन्धकी वह भयावनी लड़ाई जान लगी । प्रकर्षण, आकर्षण, अनुकर्षण, विकर्षण आदि वज्राविध-पेचोंसे एक दूसरेको खींचने और जङ्घेसे चाट पङ्कचान लगाने । अनन्तर वे दृढ़ छाती तथा दीर्घ भुजवाले हस्तीमें तेज दोनों वीर अति धीर शब्दसे एक दूसरेको निन्दा कर लीहि के परिघ समान भुजोंसे समर्थ

और संक्षिप्त पापाण-सदृश अति कठिन
प्राघातसे मारने लगे। महात्मा भीम और
जरासन्धकी वैसी लड़ाई कार्तिक सासकी
प्रथमा तिथिमें आरम्भ होय तयोदशी तक
निशिदिन बिना रोकटोक बिना भोजन चली
थी आगे चतुर्दशीकी रातकी जरासन्धने धक्का
कर कुस्ती त्याग दी। जनाईन राजाकी युद्धमें
धक्का देखकर भयावने कर्मचारी भीमकी
मानो उत्साहित करनेकी श्रुति बोली कि
शुनीनन्दन। युद्धमें धक्के शत्रुकी पीड़ा नहीं
पहुँचायी जा सकती, क्योंकि पूर्ण रूपसे पीड़ित
होनेसे वह अपना जीवन छोड़ सकता है, सी
इस दशमें राजाकोभी पीड़ा नहीं देने चाहिये,
तुम तुल्यभावसे इनके साथ लड़ो। श्रीकृष्णके
इशारेसे ऐसा कहने पर शत्रुनाशी वृकोदरने
जरासन्धकी वैशी दशा रमलके उसको हनना
चाहा। अनन्तर औरोकी जयके अयोग्य
जरासन्धकी वधनेकी लिये बलियोमें अष्ट
तुलसनन्दनने बड़ा उत्साह किया।

तेईस पण्थाय समाप्त।

नैर्धन्यायनकी बोली, कि अनन्तर भीम-
सेन जरासन्ध को नष्ट करनेकी इच्छासे आत
उत्साह लेके युद्धनन्दन श्रीकृष्ण चक्रसे बोली,
यह दृष्टिपूर्ण दृष्टि। वह पापात्मा अभी-
तक ताल जमाता और तेज दिखाता है। नोइसे
पौरुषा उचित नहीं है। पुरुषधृष्ट श्रीकृष्णने
वृकोदरकी यह बात सुनके जरासन्धके वधके
लिये मानो उनका गीता दिखाकर कहा
कि उत्तर दिया कि हे भीम। तुम्हारा जो
धर्म दृष्टिगत है और धर्मसे तुमने जो बल
प्राप्त किया है वह आज जरासन्ध पर शीघ्र
प्रयोग करो। शत्रु-दमन महात्मा भीमसेन
ऐसा ही उत्तर देकर गये जरासन्ध
के पास। तुमने जो धर्म प्रयोग किया है
उसके फलसे जरासन्ध की वध हो

उत्तम पीठ नवाय तें छुड़ा लो, इस प्रकार
उत्तम पीठकी गंभीर दृष्टि देखने लगे।
पिता जरासन्ध और गरजते हुए भीमका सखी
प्राणियाका भयदायी ऐसा कटार घन लगे
कि मगधवाली तन तन भय खाये। दृष्टि
तक कि गर्भवती स्त्रियों का गर्भभी गिर गया।
भीमसेनको मरावनी ध्वजे सुनके सान्त्वित्य
यह समझा कि कदाचित् हिमाचल दूर राजा
अथवा धरती फट रही है। अनन्तर शत्रुनाशी
तीनों साई रातकी समय प्राण छोड़े जरासन्ध
की सोतेकी मर्ति राजागरे छोड़के पहाड़
निजली। श्रीकृष्णधन्ने जरासन्धके ध्वजा-
सहित रथकी ओत कर उस पर चढ़ी और
भीमार्जुनकी चढ़ाव वाद्योंकी कारागाररी
कुड़ाया। रत्नवान रूपवर्गने पड़े मदसे
कुड़ाये जाय श्रीकृष्णके सामने गाय उनकी
नाना रत्नोंका उपहार देय प्रसन्न किया।
शस्त्रधारी शत्रु जयकारी सन्ताना बार बार
मारनका शक्ति रखनेके हेतु शत्रुभायी उल्लूक
नष्टकारी दीनो हाथसे तुल्य युद्धकारी, अर्द्ध
सहादरवाली दर्शनीय अर्जुन श्रीकृष्णकी सारा
वनाय उन सुन्दर रथपर चढ़ सन राजाके साथ
गारव्रजसे अक्षत शरीरम निकले। वायुवर
भीमार्जुनकी चढ़न और आकाशके सारा पवन
पर सब चापधारियोंका अजय दण्ड अक्षत
सुहाने लगा। दृष्टरथातकी पक्षी तारत
जलमें आसठ, नद्यत विवाशतु गिनी
उस युद्धके कालमें इन्द्र और उषस्तुल्य
पर चढ़े हैं जय श्रीकृष्ण इन पर चढ़े भय
गम सानका कर्मान्त धर्म विना नाना मानके
पूर्व, पादलके मन्त्रनदसान सारा युद्ध
नकारा जय उदयाका रथ धन सारा युद्ध
निजाने विवाह दण्ड सारा युद्ध सारा युद्ध
दण्ड दण्ड दण्ड दण्ड दण्ड दण्ड दण्ड दण्ड
सारा युद्ध सारा युद्ध सारा युद्ध सारा युद्ध
दण्ड दण्ड दण्ड दण्ड दण्ड दण्ड दण्ड दण्ड

भरतनन्दन । दिव्य चार घोंड़े जुते वायुसमान वेग रखते हुए उस दिव्य रथने श्रीकृष्णके विराजने पर कैसी अपूर्व शोभा धरी थी । उस रथमें देवतांसे बनी, श्रीठनी इन्द्र धनुषकी प्रभाकी भांति सुहासिनी एक अच्छी ध्वजा इतनी ऊंचाई पर लगी थी, कि रथसे वह मिलती नहीं थी, और वह योवन भरकी दूरीसे दीख पड़ती थी, ।

अनन्तर श्रीकृष्णने गरुड़का स्मरण किया और गरुड़भी उसी क्षण उनके निकट आ पड़चे । सर्पनाशन गरुत्मानन गहरी ध्वजारण ध्वजसोहन भूतोंके साथ उस रथ पर चढ़ बैठे, उनके बैठनेसे वह रथकी ध्वजा मानी फल कर चैत्य वृक्षके समान सोहने लगी और सहस्रों किरण छिरकाये स आकाशिक सूर्यकी भांति अधिक तेज पाय प्राणियोंके अयोग्य बनी । हे महाराज ! वह ध्वजा नती वृक्षोंसे लगती और न शस्त्रोंसे विद्ध होती, थी मनुष्यलोग उसको केवल देखतेहो थे । नरनाथ वसुने जिसे इन्द्रसे प्राप्त किया था, वसुसे वह द्रथने जिसे लाभ किया था, और वह द्रथके पीछे जो जरासन्धकी मिला था, पुरुषोत्तम श्रीकृष्णच भीमार्जुनके साथ उस बादल समान धुनसे पूरित दिव्यरथ पर चढ़के पुरीसे निकले । उन महाभुज महायशवन्त पुण्डरीकाक्षन गौरव्रजसे निकलके बाहरी खण्डमे किसी एक समतल ठौरमें कुछकाल तक विश्राम किया । हे महाराज ! उस नगरवासी ब्राह्मणादि लोगोंने विधिके अनुसार कर्मसे उनका सत्कार किया । और बन्धनसे कूटे भूपोंनेभी उनकी पूजा की । इसके पीछे राजोंने स्तुति करके उनसे यह कहा, कि हे महाभुज देवकीनन्दन । भीमार्जुनने मिलके जरासन्धकी वड़े भीलके दुश्मनीचढ़में दूवै राजोंकी उद्धार कर धर्मपालना आपके लिये कोई बड़ी बात नहीं है ।

३.३ भरमें फैले यदुनन्दन ! हम कठोर

गिरिदुर्गमें बहृत उदास होके पड़े थे, वृं भाग्यसे आपने हमको छुड़ा कर प्रदीप्त लाभ किया । हे पुरुषव्याघ्र ! हम सब प्रकारसे मिर नवाये हैं अब याज्ञा दीजिये कि का करें । आप जो कार्य करनेकी कहेंगे, वह करनेके अयोग्य होने प्रभो यह समझ लीजिये कि भूपोंने करही दिया है ।

महानचित्त हृषीकेश उनसे, हादस देकर बोले, कि हे भूषे । युधिष्ठिरने राजसूय यज्ञ करना चाहता है सो आप यह सब ज्ञात होय उम धर्ममें प्रवृत्त नरवरकी सहायता करें । हे नृपते ! अनन्तर वे पृथ्वीनाथ राजा लोग प्रसन्न मनसे उनकी वह बात मानके यज्ञ वंले कि 'सब वही करेंगे' और उनको बहृत रत्नो दिया । यदुनन्दन गोविन्दने उनपर तथा दिखाय उसका वृक्षभास ली लया । जरासन्ध पुत्र महानचित्त सहदेवनभो पुरोहितोका आकर मन्त्रों और सज्जनोंके साथ निकलके आनम्रतासे प्रणाम कर बहृत रत्न देके नरजी वासुदेवजीको उपासना की । तब पुरुषोत्तम श्रीकृष्णचन्द्रने उस भयभोत राजकुमारको गेट देकर उसके दिये हुए महामूल्य रत्नोंको ली लिया । और हर्ष सहित उसी स्थान पर उसको अभिषिक्त कर दिया । यहाभुज प्रकाशमान जरासन्ध-नन्दन श्रीकृष्ण और भीमार्जुनसे सत्कार सहित मित्रता लाभ कर और महात्माओंसे राजपद पर बैठाये जाय मागधपुरमें गया । इधर पुरुषव्याघ्र श्रीकृष्णभी भीमार्जुनके संग परम सुशोभित होय बहृत अधिक रत्नों साथ पधारे । अनन्तर अत्युत भीमार्जुनके साथ इन्द्रप्रस्थमें पड़च कर धर्ममानाथके सामने जाय प्रसन्न चित्तसे बोले, कि हे नरनाथ । भाग्यवश भीमसेनने जरासन्धकी नष्ट किया है और राजगणभी बन्धनसे कूटे हैं । हे भारत ! वृं भाग्यसे भीमार्जुन कशल सहित अद्यत देहों नगरको लौट आये ।

इसके पीछे युधिष्ठिरने परम प्रसन्नचित्तसे श्रीकृष्णका यथायोग्य सत्कारकार उनको और भीमार्जुनको गले लगाया । जरासन्धको मारे जाने पर अजातशत्रु युधिष्ठिर दोनों भाइयोंके हाथ जय पाय हर्षित हुए । आगे भाइयोंसे घेरे जाय उन्होंने आगे हुए नरनाथोंको अवस्थाके अनुसार आलिङ्गन वन्दनादि कर सत्कार और प्रजापूजक विदा कर दिया । नरनाथ लोग सब युधिष्ठिरकी आज्ञा लेकर प्रसन्नमनसे अनेक यान वाहनों पर निज निज देशोंको तुरन्त पधार । हे भारत ! महानुद्दिष्ट पुरुषशार्दूल जनार्दनने उस काल पाण्डवोंसे अपने शत्रु जरासन्धको इस प्रकारसे मारके गिराया था । वह शत्रुदमन श्रीकृष्णचन्द्र अपनी वृद्धिसे जरासन्धको मरवा करकेही धर्मनाथादि पांच पाण्डव धौम्य प्रथा, कृष्ण और सुभद्राको बुलवाकर उनकी आज्ञा लेकर, धर्मनाथके दिये हुए मन समान वेगवान उसी रथ पर चारों और धन सचाय अपने नगरको पधार । हे भरत-यष्ट ! तब युधिष्ठिर आदि पाण्डवोंने कर्म करके न थकनेवाले श्रीकृष्णकी परिक्रमा दी, अनन्तर देवकीनन्दन भगवान श्रीकृष्णचन्द्रके उरकाल सन्तान जय पाय और राजाकी टाटस देय चले जाने पर उस कर्मसे पाण्डवोंके यशकी सगन्ध और भी बढी, उससे उन्होंने दौण्डीकी प्रीति बहूत बढायी । हे भारत ! उस समय, प्रजापालन और कीर्तियोग्य धर्मार्थ कामधुक्ता जो जो कर्म होने चाहिये थे, राजा युधिष्ठिरने सब करके दिखाये थे ।

चौबीस अध्याय और जरासन्धवध

प्रकरण समाप्त ।

श्रीकृष्णचन्द्रकी वृद्धि कि अर्जुन वृद्धि
पुरुष शार्दूल, जरासन्ध, रत, भद्र, और नरनाथ
प्राप्त की वृद्धि वृद्धि वृद्धि वृद्धि वृद्धि
वृद्धि वृद्धि वृद्धि वृद्धि वृद्धि वृद्धि

दुर्ग, यश और सेना, यह सब मनमानो दुर्लभ वस्तु मेरे हाथ लगी है । इस दशाने मण्डार बढनाही मुझको उचित जान पडता है ; सो हे नृपवर । मैं सब राजोंको करदाता बनाऊंगा, शुभ तिथि, शुभ नक्षत्र, शुभ मुहूर्तमें उत्तर दिशा जय करनेको यात्रा कात्तंगा । धनञ्जयका वचन सुनकर धर्मनाथ युधिष्ठिरने कोमल गम्भीर स्वरसे उनको उत्तर दिया, कि हे भरत-वर पार्थ ! तुम योग्य विप्रोंसे स्मृति कहलाय, शत्रुओंकी शोक देने और मित्रोंका आनन्द बढानेकी यात्रा करो, अवश्य अभी लाभ करोगे, सन्देह नहीं, कि तुम नियय विजय पावोगे । युधिष्ठिरकी इस बात पर अर्जुनने बडो सेनासे घेरे जाय अग्निदेवके दिये हुए आश्चर्य्य कार्य्य करनेहारे दिव्य रथ पर चढकर विजय करनेकी यात्रा की । पुरुषार्थ भीमसेन नकुल और सहदेव यज्ञभी सब धर्मनाथके सत्कार सहित सेनाके साथ निकले । हे महाराज ! इन्द्रनन्दन अर्जुनने उत्तर दिशा, भीमने पूर्व दिशा सहदेवने दक्षिण दिशा और अस्तके जानकार नकुलने पश्चिम दिशाको जय किया । इधर प्रभावी धर्मनाथ युधिष्ठिर खाण्डवप्रस्थमें मित्रोंसे घेरे जाय परम सौभाग्य भोगने लगे ।

पचीस अध्याय समाप्त ।

श्रीकृष्णचन्द्रकी वृद्धि कि अर्जुन वृद्धि
पुरुष शार्दूल, जरासन्ध, रत, भद्र, और नरनाथ
प्राप्त की वृद्धि वृद्धि वृद्धि वृद्धि वृद्धि वृद्धि
वृद्धि वृद्धि वृद्धि वृद्धि वृद्धि वृद्धि

श्रीकृष्णचन्द्रकी वृद्धि कि अर्जुन वृद्धि
पुरुष शार्दूल, जरासन्ध, रत, भद्र, और नरनाथ
प्राप्त की वृद्धि वृद्धि वृद्धि वृद्धि वृद्धि वृद्धि

भूनाथ भूमण्डलकी सेना सहित पराजित किया। हे महाराज। शत्रुतापन सर्व-साचो उस भूमण्डलसे मिलके शाकलद्वीप और पृथ्वीनाथ प्रतिविम्बकी जीत लिया। सात-द्वीपोंमेंसे शाकल द्वीपमें जितने नरनाथ राज्य करते हैं, सेना सहित उससे अर्जुनकी बड़ी भारी लड़ाई हुई थी। हे भरतश्रेष्ठ। अर्जुनने उन बड़े चापधारियोंकी भी परास्त किया और उन सर्वोंसे मिलके प्रागज्योतिषदेश पर चढ़नेकी दौड़े। हे पृथ्वीनाथ। उस देशमें भगदत्त नामक प्रचण्ड राजा था। उसके संग अर्जुनका सति धार युद्ध हुआ। प्रागज्योतिषनाथ-भगदत्त किरात, चीन और सागर तीरके सारे अजूब-देशवासी अगणित योधोंसे मिले थे। वह नरनाथ आठ दिन लड़नेकी पौके युद्धमें नयकनेवाले धनञ्जयसे हंसते हुए यह बलि, कि हे-महाभुज, कौरवनन्दन। तुम पाण्डवाश्वनके पुत्र हो, युद्धकी शोभा बढ़ाने वाले हो, अतएव ऐसा बोर्य प्रकाश करना तुम्हारेही पता है। हे तप। मैं महेन्द्रका सखा हूँ और युद्धमें भी उससे कम नहीं हूँ, तिन परभी युद्धमें तुम्हारे सामने स्थिर बना नहीं रह सका। हे महाभुज पाण्डुपुत्र। अब तुम या चाहते हो, कहो, मैं तुम्हारा क्या करूँ। हे देव। तुम जो कहोगे, मैं अवश्य ही वह पूरा करूँगा।

अर्जुन बोले, कि कुन्तीमें सबसे प्रधान धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर, धर्मज्ञ, सत्यप्रतिज्ञ नार नरुत दक्षिणायुक्त यज्ञकारो है, मैं यही चाहता हूँ, कि उनकी साम्राज्य मिले, सो आप उनका कर दें। आप मर पताके सखा, विशद मुझ पर प्रसन्न हो रहे हैं, सो आपको मैं आज्ञा कर नहीं सकता, आप प्रीति पूज्य हों। भगदत्त जान, कि हे कुन्ती-भगदत्त। तुम मेरे जैसी प्रीतिके पात्र हो, राजा युधिष्ठिरसा वैसी है, का मैं अवश्यही

यह सब करूँगा, इसके उपरान्त, कहो, तुम्हारा और क्या करना होगा।

छत्तीसे अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, भगदत्तकी वह बात सुनके धनञ्जयने उत्तर दिया, कि आपके लिये इतनाही मानना बज्रत है। पस्पत्येष्ट महाभुज धनञ्जय इस प्रकार प्रागज्योतिषकी जीत कर उसके औरभी उत्तरको पधारे और अन्तर्गौर वहिर्गौर, उपांगरि, सब ल्य कर ली। हे महाराज। उन्होंने सब पक्ष और वहाँके भूपोंकी हराय वशमें लाय और प्रेमी दनाय सबके निकटसे धन संग्रह कर गंभीर मृदङ्ग समान ध्वनि करनेवाले रथके पाँहियोंकी आहट और गजोंके गर्जनसे धरतीको कम्पाय उनसब नरनाथोंके साथ उलूकवासी बृहन्तकी पास जाके दर्शन दिया। तब बृहन्त चतुरांगणी सेना सहित उस नगरसे निकलकर अर्जुनसे लड़ने लगा। धनञ्जय और बृहन्तमें बड़ी बड़ी लड़ाई हुई। पर अन्तमें बृहन्तसे पाण्डवका विक्रम सहा नहीं गया। वह कठोर पर्वतनाथ हुत्तीपुत्रको बज्रत असह्य जानके सब प्रकारके धन सहित उनके निकट आये। महाराज। राजा उलूकका राज्यमें बैठाया अर्जुन उसके साथ पधार और स्वल्पकालहीन सेनाविन्दुका राज्यसे ह्नुत किया। उसने पोछे वह मंदा पुर, वामदेव, रुदामा, सकुल और उत्तर उलूक देशों और वहाँ के राजोंकी अपन वशमें लाये। हे महाराज। धर्मनाथके शासनसे प्रभावी आत तेजस्वी किरीट उस ठौरमें वास करकेही सेनाओंसे उन पाँच राजोंका परास्त किया। उन्होंने सेनाविन्दुकी राजधानी देवप्रस्थमें पहुँचकर चतुरांगी वन सहित वहाँ डेरा बनाया था। अब उन पराजित राजोंसे घेर जाय पुरवशी नरनाथ

एरुपवर विश्वगण्ड पर युद्धावा की और पर्वत परकी महारथी शूरवीरोंकी रणम हराय सेना द्वारा उक्त कौरवकी रखी राजधानीकी जीत लिया। विश्वगण्डको और पर्वत परकी लुटेरोंकी युद्धमें पूरा परास्त कर क्षत्रियश्रेष्ठ पाण्डुनन्दनने उत्सव-सङ्केत नामक सात स्त्रीच्छ जातियोंको जय किया, आगे काशीर देशके क्षत्रिय वीरोंकी और दश छोटे छोटे राजोंके सहित नरनाथ लोहितकी परास्त किया। हे महाराज। अनन्तर त्रिगर्त, दासक, कीकनद आदि नाना देशी अनेक क्षत्रियवर्ग सब प्रकार कन्तीपत्रके वशमें आगये, तिसके पीछे कुरु-नन्दनने सुन्दर अभिसारी नगरी जय कर ली और उरगावासी रोचमानकीभी युद्धमें परास्त किया। तिसके अनन्तर इन्द्रकुमार किरीटि ने युद्धमें विचित्र मनीषर अस्त्रोंमें रक्षित सिंह-गरको जलसे हिलोड़ डाला, उसके पश्चात् सब सेनाके साथ सुग्री और सुमालोंको मथन कर डाला। आगे बढ़ा विक्रम दृश्य वह कड़ी लड़ाई लड़ते हुए कृष्टिल बाहीकोंकी वशमें लाय और प्रधान प्रधान सेनाकी साथ लीके दरद और काम्बोजोंकी भी जय किया। महाराज। सब लुटेरे पर्वतके उत्तर भाग आश्रय किये हुए थे और जो वनमें उमते थे, पभाजी फालगुणने उन सबोंको परास्त किया। अतः, पद्मिन काम्बोज और उत्तर क्षत्रिक यर सब एकत्र मिले थे, इन्द्रनन्दनने उन्हें भी जीत लिया। क्षत्रिकोंके साथ भी उनकी वही भारी लड़ाई हुई। वृक्षार्णवी पद्मे तारका जिस युद्धने नाशका हेतु उनी थी तिसके सङ्ग पाण्ड और क्षत्रिकोंमें गहरी लड़ाई मची थी। हे महाराज। पुरुषार्थ उरगावासी सब क्षत्रियोंकी युद्धनन्दनने जयकर, उनके युद्धदरों समान होने पाठ पढ़ करके युद्ध और उरगावासी प्रथम दिने लड़ने

मयूरके समान वरणायुक्त वेगवान और तेज दूसरे घोड़ोंकाभी कर लिया। अनन्तर लन्होने युद्धमें निष्कृत गिरि और हिमाचलकी परास्त-कार प्रेतपर्वतमें पङ्चके डेरा किया।

सताइस अध्याय समाप्त ।

श्रीनैशम्पायनजी बोले, कि पाण्डवश्रेष्ठ महा-
वीर अर्जुनने खेतगिरिका पीछे छोड़के क्षत्रिय
क्षयकारी बड़ी लड़ाई लड़ते हुए किन्नरोंकी
वासभूमि द्रुमपर्वसे रक्षित किम्बरुपर्वको
परास्तकर अपने अधीन किया। उस देशको
जयकर इन्द्रकुमार गुह्यकोसे रक्षित हाटक
नामक देशमें बिना प्रहराये जा पहुँचे। सात्व
द्वारा गुह्यकोको जीतके उन्होंने अच्छे मानस-
सरोवर और ऋषिकुल्याओंकी देखा। अनन्तर
प्रभावी कुरुनन्दन किरिंठने मावस सरोवर-
के निकट पाय हाटकोकी चार ओर गन्धर्वोंकी
रखवारोके देशोंकीभी परास्त किया। वहाँ
उन्होंने गन्धर्व नगरसे तित्तीर, कल्पाप और
मण्डूक नामक अगणित अच्छे अच्छे घाड़ीका
कर लाभ किया। वासवनन्दन मव्यमाचीने
अन्तमें उत्तर हरिवर्षके निकट पहुँचकर उस
देशको जय करना चाहा। उस स्थानमें अति
वीर्यवान्त वृहन्न देहधारी, महाबली दारपान
उनके निकट आय प्रसन्नचित्तसे यज्ञ बोलता,
कि हे पृथायुध ! तुम कदापि इस पुत्रका जय
नहीं कर सकाग, मैं हूँ अशुभ ! मारल
चाहा तो यहाँसे लौट जाओ, यहाँ तकभी
तुम्हारे लिये पहुँच है। मनुष्य हाँकर जा
पुरुष इस नगरमें घुसना है वह निश्चयही
मारा जाता है। हे वीर अर्जुन ! मैं
तुम्हें प्रसन्न हूँ, तुमको बड़ी खलव लाभ हुआ
है, यहाँसे यहाँ धार इन्द्रजी कीननके यज्ञ
दीव नहीं पहुँचा, क्योंकि वह देश उत्तर कर
है, यहाँ तुम्हें नाहरी वृक्षा है। हे कुरु-
नन्दन ! यह पुत्रकीर्ति नाम बहुत ही

पाओगी, क्योंकि मनुष्यकी देह रहते यन्हाके किसी पदार्थकी देखनेकी सामर्थ्य नहीं है। हे पुरुषश्रेष्ठ, भारत । पर यदि यन्हा और कार्य्य किया चाहो, तो कहो, तुम्हानी बातसे हम अवश्यही पूरा कर देंगे। हे महाराज । तब अर्जुन कुछ हंसकर उनसे बोले कि मैं धीमान धर्मनाथका साम्राज्य चाहता हूं, तुम्हारा यह देश यदि ऐसा-ही कि मानव लोग नहीं जा सकते हैं, तो मैं इसके भीतर जाना नहीं चाहता तुम युधिष्ठिरकी एक वस्तु करमें दो। अनन्तर उन्होंने दिव्य तीर, दिव्य आशुपण, दिव्य शौम और दिव्य मृगशाल सब करकी भांति उनको दिये। महाराज । उन पुरुष-व्याध वीरवीर अर्जुनने इस प्रकार क्षत्रियोंसे अगणित संग्राम कर उत्तर दिशाको जीता था। वह उन सब राज्योंको परास्त और अधीन करके सर्वोसे बहुविध धन रत्न और तित्तिरि, कल्पाष, शुक्रपक्षवत और मयूर सदृश, नाना पवनके समान चलनेवाले घोड़े लिये चतुरङ्गिणी सेनासे घेरे जाय फिर पुरुषश्रेष्ठ इन्द्रप्रस्थमें लौट आये और वह धन वाहन सब धर्मनाथके आगे धर उनकी आज्ञा लेकर अपने सन्धिरमें गये।

अठाइस अध्याय समाप्त ।

श्रीशैशमायनजी बोलें, कि जिस समय अर्जुनने विजयके लिये यात्रा की थी, उस समय शत्रुशोक-बढानेवाले वीर्यवन्त प्रतापी, भरतशार्ङ्गल भीमसेनभी धर्मनाथकी आज्ञा लेकर परराज्यमथने-कारे दलबल हाथी, घोड़े रथादिसहित पूर्व दिशाको पधारे थे। उन प्रभावी नरश्रेष्ठ पाण्डवने पहिले पञ्चालोंके नगरमें जाय बहुविध उपायोसे उन्हे समझाय वृथाय अल्पकालमें गुण्डक और विदेहोंको परास्त किया। उस कालमें राजा दशार्ण मधर्मान भीमसेनके साथ रोवें खड़े करनेवाली

बड़ी लड़ाई की थी। वड़े पराक्रमी भीम सेनने अति बलवन्त सुधर्माकी वह लोला देखकर उनकी प्रधान सेनापतिके पद पर बैठाया। अनन्तर वह बड़ी सेना सहित मानी धरतीको कंपाते हुए पूर्व दिशाकी ओर भी आगे चले। हे महाराज । वीरश्रेष्ठ वीरवर वृकोदरने अश्वमेधनाथ रोचमानकी साथियोंसमेत युद्धमें परास्त किया। उसके जयकर महावीर कुरुनन्दनने स्वयं चेष्टाही पूर्वदेशको जय किया। अनन्तर दक्षिण देशमें वड़े फैले पल्लिन्दी और सुमित्रवं वशीभूत किया। हे जनमेजय । इसके पश्चात् भीम धर्मनाथके शासनके अनुसार अति वीर्यवन्त-शिशुपालके लिये चले। शत्रुदमन चेदिपतिने भी पाण्डुपुत्रका वह अभिप्राय जान नगरसे निकल उनको सत्कार सहित ग्रहण किया। महाराज । तब वह पुरुषश्रेष्ठ और चेदिश्रेष्ठ दोनों मिलजुलकर दोनों कुलोंके कुशलक्षेम पूछने लगे। हे नरवर ! अनन्तर चेदिनाथ अपने राज्यका वृत्तान्त वहीके हंसते हुए भीमसे बोलें कि हे अनघ । तुम को उत्साह दिला रहे हो ? तब भीमने उन्हें धर्मनाथका अभिप्राय प्रगट किया। नरनाथ शिशुपालनेभी उनका आदर सत्कार कर वैसाही अनुष्ठान किया। हे महाराज । अनन्तर भीम वहा तेरह रात बसकर शिशुपालमें सत्कृत होके बलवाहन सहित पधारे।

उनतीस अध्याय समाप्त ।

श्रीशैशमायनजी बोलें, कि अनन्तर शत्रुदमन वृकोदरने कुमारराज्यमें श्रीश्रीमानकी ओर कोशलनाथ वृहदलको जय किया। शत्रुदमन महाबलो धर्मज्ञ दीर्घयज्ञकी स्वयं युद्ध परास्त किया, इसके पश्चात् उन प्रभावी पाण्डवश्रेष्ठने गोपाल-कक्ष, उत्तर कर्मल और संज्ञोके अधीश पार्थिवकीभी परास्त किया।

इसके अनन्तर हिमालयके किनारे पर्वतकी
अत्यन्तकालमें उन्होंने सम्पूर्ण जलोद्भव देशकी
अपना अधीन किया। भरतश्रेष्ठ वृकोदर
इस प्रकार अनेक देश जय करने लगे।
बलीवर महावीर्यवन्त भीम पराक्रमी महाभुज
पाण्डुनन्दन भीमसेनने बलसे भ्रूहट देश और
उसके निकटके शुक्तिमत पर्वतकी परास्त
किया। पीछे युद्धमें सुह सोड़ि काशीपति
सुवाहकी वशीभूत किया। इसके पश्चात् युद्धमें
भिड़ि सुपार्श्वदेशके राजपति क्रथको बलसे
परास्त किया। इसके पीछे मत्स्यदेशवासी
और उपद्रववर्जित निडर महाबली मलदाकी
पराजय कर सब पशुभूमि जीत ली और
वहा से पलटकर पृथ्वीनाथ मदधार और
सोमधेयोंको जयकर उत्तर दिशाकी चले।
बलवान् कुन्तीपुत्रने वहा बल प्रगटकर वतस्य
भूमि पर अधिकार जमाया और भर्गोंके
अधिपति, निपादनाथ और माणमत आदि
अग्रणीत भूपोका परास्त करने लगे। तब
उन्होंने आत अल्प चेष्टासे भगवान् पर्वत और
दक्षिण मलोको शीघ्रही जीत लिया। शर्मक
और वर्माकाका दादस देकर जय किया।
विदेहदेशनाथ जगत्यांत राजा जनकको आत
धन्ययुद्धसे परास्त किया और शक और
वर्मराको तलसे अधीन बनाया। वीर्यवन्त-
पाण्डुनन्दनने विदेह देशमें रहतेहो रहते इन्द्र
पर्वतकी निकटके सात भूपोको परास्त किया।
गर्ग खपथो जैन पर सुह प्रसहमाकी युद्धने
जयकर मागधाली पर चले। वहा दान,
मदधार और दूसरे पृथ्वीनाथका जयकर
गारुडसे जा पड़चे और जरासन्धनन्दन
मधेदेश। समभाव दुलाय और कर देना
कराया कराय मदीकी मद्र लिके जय पर
पद दारि। ते भारत। पाण्डुवर वृकोदरने
वर्मा इलके भारतमें माया परकोये।
महापति पृथ्वीनाथ परास्त कराय दूना किया

और उनका लड़ाईमें जीतकर और वशमें लाय
पर्वतवासी राजाको परास्त किया। महाराज।
अनन्तर उन्होंने सोदागिरिके आते बलो
राजाकी भुजदीर्घसे गहरी जड़ाईमें नष्ट किया।
आगे पृथ्वीनाथ महाबलीवासुदेव और कौशिकी
कच्छवासी राजा महीजा तेज-पराक्रमी और
बली इन दो वीरोकी युद्धमें जीत कर राजा
वज्र पर दाड़ि और पृथ्वीनाथ समुद्रसेन, चन्द्र-
सेन ताम्रलिप्त कर्कटाधिप और सुहमाधिप
तथा पहाड़ी राजाको जय कर सब र्वे च्छोकी
भी परास्त किया।

महाबली पवननन्दन इस प्रकार सब देश
जयकर और सर्वत्रसे धन संग्रह कर
लौहित्य देशमें जा पड़चे और सागरतीर
आदि जल प्रधान देशवासी सब स्त्री च्छु नरेणोका
भाति भातिके रत्न, चन्दन, अगुरु, चौर कमल
मणि, साना, चादी, विद्रुम आदि बहुमूल्य
वस्तुओंका कर देनेको बाध्य किया। स्त्री च्छु
नाथोंने उसकाल का।ट का।ट बहुत धन वपाय
महात्मा पाण्डुनन्दनकी दप लिया था। भीम
पराक्रमी भीमसेनने तब इन्द्रप्रस्थमें आय वह
सब धन धर्मनाथका दे दिया।

तात् प्रधाय समाप्त ।

श्री-मत्स्यायनजी वलि। क महाराज ! महा-
देव भी धर्मनाथका आदर पाय भीमाश्रुनके
निबलनके धानगेला इडो भारगिना मायन
दक्षिण दिशाकी पधार है। उन प्रभाया दाना
वरधारने पाण्डु नन्दनकाको सम्पूर्ण रूपमें
परान्त पर बल पूजक मत्स्यनाथका धर्मभूत
दिया। पति पर्वतनाथका महापति दन्त-
मर्मा उठकर और करदाता, जयाय उनके,
उमने दादलेमायित किया। पति उन्नाक
मत्स्य नाथकाय और सुविता। पति नाथ
पतिना मत्स्यनाथ और पद पति। देन जय
पति पतिनाथकी पति उन्नाक मत्स्य नाथ

पृथ्वीनाथ अणिमानकी बलपूर्वक जय किया और नवराज्य जीतकर कुन्ती भोज पर चढ़ दौड़े। कुन्ती भोजने प्रीतिसे उनका शासन ले लिया। हे भारत। अनन्तर सहदेव चर्मोण्वती नदीके तटपर जम्भक राज कुमारसे जा भेटे। पहिलेकी शत्रुताके कारण वासुदेवने उस वृष-नन्दनकी परास्त किया था। वह राजपुत्र सहदेवसे युद्धमें भिड़ गया, अति बली सहदेव उसको जय कर दक्षिण दिशाकी चले। वहां सेक और अपरसेकोकी परास्त कर और उनसे बहुविध रत्नोंका कर लेकर उन्होंने उन्हीके संग नर्मदाके निकटके देशोंकी यात्रा की। प्रतापी माद्रीपुत्र वहां अनेक सेनाओंसे घेरे अबन्ती देशके विन्द और अनुविन्द नामक दो वीरोंकी युद्धमें हराय उनसे रत्न संग्रह कर भाजकटपुरका पधारे। हे महाराज! वहां कठार राजा भीष्मकसे दो दिन लड़ाई हुई, अन्तमें सहदेवन उन्हें जयकर कोशलनाथ वेणातटेश कान्तारक वर्ग और पूर्व कोशलके नरेशकी युद्धमें परास्त किया। आगे नाटकेय और हेरम्बोकी युद्धमें हराय बलसे मुञ्जग्राम आधिकार किया तिसके पश्चात् नाचोन और अर्बुद नरेशोंकी तथा उस खण्डवाले सब वनेले भूपोंकी परास्त कर नरनाथ वाताधपका वशमें लाये। अनन्तर पुलन्दोका लड़ाईमें जीतके दक्षिण दिशाको और आगे बढ़े। नकुलके अनुज महाभुज सहदेव पाण्डवनाथके साथ एक दिन लड़ कर उसे हराय दक्षिण मार्गमें पधारे। वहां लोकप्रसिद्ध किस्किन्धा नाम कन्दराके निकट जाय वह बन्दरनाथ मैन्द और हिविदके साथ सप्ताह भर लड़े, पर तिसपरभी उन्हें जय नहीं कर सके, अनन्तर उन दो बड़े वन्दरोंन सहदेव पर प्रसन्न होके प्रसन्न हृदयसे प्रीतिपूर्वक उनसे यह कहा, कि हे पाण्डवगार्हूल! तुम सब भातिके ले जायो, धीमान धर्मनायका कार्य विना

विघ्न पूरा होवे। अनन्तर शत्रुवीरनाशी प्रतापी पाण्डुनन्दन नरथेष्ठ सहदेव रत्नोंको लेकर माहिष्मती नगरीमें जाय वहां राजा नीलमे लड़ने लग। उनका वह युद्ध बड़ा भयानक हुआ, तिसमें अनेक सेना नष्ट हुई और अपने प्राणकी शङ्का हुई, क्योंकि भगवान् हुताशन राजा नीलकी सहायता कर रहे थे। इस लिये सहदेवकी सेनामें उस काल घीड़े, रथ हाथी, पुस्तप और कवच चमकते हुए दीख पड़ने लगे। हे जनमेजय! कुसनन्दन सहदेव तिससे बहुत घबराये, उस विषयमें क्या उपाय करना चाहिये, कुछ समझके निश्चय नहीं कर सके।

जनमेजय बोले, कि हे विप्रवर! सहदेव यज्ञके लिये लड़ रहे थे; पर भगवान् अग्नि क्यों तिस पर शत्रुता की-? श्रीकृष्णायनजी बोले, कि ऐसी कहावत है, कि पहिले माहिष्मतीवासी भगवान् हुताशन पराधी स्त्रीके अभिलाषी करके समझे जाते थे। राजा नीलकी एक अति सुन्दरी कुमारी थी, वह अग्निहोत्रके निकट सदा बैठी रहती थी। उसके दो सुन्दर हीटोसे निकली पवन अग्निका जबतक नहीं पड़चती थी तब तक पंखी डोलानेसे भी जल नहीं उठते थे, तिससे राजा नील और दूसरोंने निश्चय कर लिया, कि उस पर अग्निका मन चला है। अनन्तर ब्राह्मणके स्वरूपमें मनमाने रमण की इच्छाकर उन्होंने उस सुन्दरी पद्मनत्रा कन्या पर मन चलाया। परन्तु धार्मिक राजा नीलने उनको शास्त्रके अनुसार शासन किया। भगवान् हव्यवाहन तिससे क्राधके मारे जल उठे। उनको देखकर राजाने अचम्भेमें हाँके धरतीकी ओर सिर झुकाय प्रणाम किया, आगे उचित कालमें उसी प्रकार सिर झुकाय उन विप्र रूपी अग्निकी कन्यादान किया। अभीष्ट सिद्ध करनेमें सबके अगुये भगवान् अग्नि राजा नीलकी

वह कन्या लेके उक्त नरनाथ पर प्रसन्न हुए और उन्हें वर मागनेकी कहा। पृथ्वीनाथ राजा नीलनेभी यह वर मांग लिया, कि मेरी सेनाकी कभी भय न हो। महाराज। तभीसे वह वृत्तान्त न जानके जो कोई भूय बलपूर्वक उस नगरीकी जय किया चाहते थे, वे अग्निसे जल मरते थे; हे कुरुवंशि। उस माहिष्मतो पुरीमें उसकाल अवलाओका भी कोई खेच्छा से ले नहीं सकता था, क्योंकि स्त्रियोंके क्तिने जानके विषयसे अग्निने वर दिया था, तिससे वे खीं रिणी वनके मनमाना वहा विचरा करती थी। हे भरतराज। तभी से राज-गणभी अग्निके भयसे उस पुरीको त्याग देते थे, पर धर्मात्मा सहदेव अपनी सेनाकी अग्निसे घेरा और भय खाया देखने परभी अचलकी भाति स्थिर बने रहें। वह शुचि होय आचमन-पूर्वक उसकाल इस प्रकार स्तुति पूरित सभापण करने लगे।

सहदेव बोले, कि हे कृष्णवर्त्मन। तुमकी नमस्कार, सारा यज्ञ प्रारम्भ केवल तुम्हारेही लिये है। हे पावक। तुम यज्ञरूपी हो, सो तुम्ही देवोंके मुख हो। तुम पवित्र करते हो, इस लिये पावक और हव्यकी वहन कराते हो। तुम्हारे लियेही देवोंकी उत्पत्ति हुई है, इस लिये तुम जातवदा हुए हो। हे विभावसा। तुम्हो चित्तमानु, सुरेश, अनल, स्वर्गद्वारदूनवाले क्षताश्रय, जालन, शिखी, वैश्वानर, पित्रेश प्रवृत्त, सूर्योत्पत्ति, भूमास्त, भगवान्, स गर्भ और विरगण्यत रा। हे कर्त्तव्य। तुम सुभक्तों तेज दा पत्न प्राण देवे, प्रणो बल दे और जल सकल महल करो। हे जलोत्पादक महाभाग सुरेश्वर जातवदा कर्त्तव्य। तुम देवोंके मुख स्वयं हो, सो सुभक्तों सदा च्यतिसे पवित्र करो। देवोंका यज्ञ प्रारम्भ और कसूर सदा दूधर कर्त्तव्य। तुम सदा दूधर रहते हो, वहाभी कर्त्तव्य। तुम सुभक्तों सदा करी। तुम धूम

केतु शिखी पापनाशी, वायुसे वन और सब प्राणियोंसे सर्वकाल ठहरे रहते हो। सब सुभक्तों मत्स्यज्योतिसे पवित्र करो। हे भगवान् अन्ने। मैंने शुचि होकर प्रसन्न चित्तसे तुम्हारी यह स्तुति की, अब सुभक्तों तुष्टि, पुष्टि, स्तुति और प्रीति दो।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, जो ऐसा आन्नेय मन्त्र पढके प्रभु अग्निका हवन करते हैं, वह ऐश्वर्य युक्त और सदा दान्त होकर सर्व पापोंसे मुक्त होजाते हैं। हे भारत! पुत्रपुत्राग्र माद्री कुमार सहदेव यह कहकी, कि हे हव्यवाहन। यज्ञके विषयमें ऐसा विज्ञ उत्पन्न करना तुमकी नहीं चाहिये, धरातल पर कुशा विष्टाय उन घवरायो भय खायो सेनाओंके सामने अग्निके लिये बैठ गये। अग्नि जिस प्रकार महासमुद्रके तटकी पार नहीं करते, वैसेही उनको लाघ नहीं सके। वह उन कुरुनन्दन नरदेव सहदेवके निकट जाय समभाय बुभाय धीरे धीरे यह बोले, कि हे कुरुकुलशीमन! उठी, मैं तुम्हारे और धर्मानाथके सब अभिप्रायोंकी जानता हूँ, केवल परीचाके लिये ऐसा किया है। हे भरतर्षभ पारुनन्दन। इन राजा नीलके हृदमें जवन्क वशधर तन्तान बनी रहेंगी तवन्क सुभक्ता इस पुरीकी रक्षा करनी पड़ेगी, पर तुम जा चाहते हो वह भी मैं पूरा कर दूँगा। हे भरतर्षभ तब सहदेवन प्रसन्नमनसे बैठ कर शिरभाय राय जाह पावककी पूजा की। अनन्तर पावक चल जाने पर पृथ्वीनाथ राजा नीलने उरनी आशसे बोधनाथ नरनाथ सहदेवके निकट जाकर मन्दार मणि उनकी पूजा की। पृथ्वी माहृष्य यह पूजा किसे करके, कर्त्तव्य पननाय दक्षिणजी और उत्तर। उन धर्मना सनायन यज्ञरहित मन्त्र न पढ़े, मायाक, वान नाथ और वनायक इनके सदा यज्ञ कर्त्तव्य। वे विज्ञायाय सुरेश्वर परमात्मनः

पृथ्वीनाथ अग्निमानकी बलपूर्वक जय किया और नवराज्य जीतकर कुन्ती भोज पर चढ़ बैठे। कुन्ती भोजने प्रीतिसे उनका शासन ले लिया। हे भारत। अनन्तर सहदेव चर्मोष्णती नदीके तटपर जम्भक राजकुमारसे जा भेटे। पहिलेकी शत्रुताके कारण वासुदेवने उस नृप-नन्दनकी परास्त किया था। वह राजपुत्र सहदेवसे युद्धमें भिड़ गया, अति बली सहदेव उसको जय कर दक्षिण दिशाकी चले। वहां सेक और अपरसेकोंकी परास्त कर और उनसे बहुविध रत्नोंका कर लेकर उन्होंने उन्हीके संग नर्मदाके निकटके देशोंकी यात्रा की। प्रतापी माद्रीपुत्र वहा अनेक सेनाओंसे घेरे अवन्ती देशके विन्द और अनुविन्द नामक दो वीरोंकी युद्धमें हराय उनसे रत्न संग्रह कर भाजकटपुरका पधारे। हे महाराज! वहा कठार राजा भीष्मकसे दो दिन लड़ाई हुई, अन्तमें सहदेवन उन्हें जयकर कौशलनाथ वेणातटेश कान्तारक वर्ग और पूर्व कौशलके नरशका युद्धमें परास्त किया। आगे नाटकेय और हेरम्बाको युद्धमें हराय बलसे सुज्जग्राम आधिकार किया तिसके पश्चात् नाचोन और अर्बुद नरेशोंकी तथा उस खण्डवाली सब वर्णलेभूपोंकी परास्त कर नरनाथ वाताधपका वशमें लाये। अनन्तर पुलिन्दोका लड़ाईमें जीतके दक्षिण दिशाको और आगे बढ़े। नकुलके अनुज महाभुज सहदेव पाण्डवनाथके साथ एक दिन लड़ कर उसे हराय दक्षिण मार्गमें पधारे। वहा लोकप्रसिद्ध किस्किन्धा नाम कन्दराके निकट जाय वह बन्दरनाथ मैन्द और हिविदके साथ सप्ताह भर लड़े, पर तिसपरभी उन्हें जय नहीं कर सके, अनन्तर उन दो बड़े बन्दरोंने सहदेव पर प्रसन्न होके प्रसन्न हृदयसे प्रीतिपूर्वक उनसे यह कहा, कि हे पाण्डवगार्दूल! तुम सग मातिके रत्न ले जाओ, धीमान धर्मनाथका कार्य विना

विघ्न पूरा होवे। अनन्तर शत्रुवीरनाथो प्रतापी पाण्डुनन्दन नरथीष्ठ सहदेव रत्नोंकी लेकर माहिष्मती नगरीमें जाय वहां राजा नीलमे लड़ने लग। उनका वह युद्ध बड़ा भयानक हुआ, तिसमें अनेक सेना नष्ट हुई और अपने प्राणकी शङ्का हुई, क्योंकि भगवान् हुताशन राजा नीलकी सहायता कर रहे थे। इस लिये सहदेवकी सेनामें उस काल घड़े, रथ, हाथी, पुस्तक और कवच चमकते हुए दीख पड़ने लगे। हे जनमेजय! कुसुनन्दन सहदेव तिससे बहुत घबराये, उस विषयमें क्या उपाय करना चाहिये, कुछ समझके निश्चय नहीं कर सके।

जनमेजय बोले, कि हे विप्रवर! सहदेव यज्ञके लिये लड़ रहे थे, पर भगवान् अग्नि क्यों तिस पर शत्रुता की? औदश्यायनजी बोले, कि ऐसी कहावत है, कि पहिले माहिष्मतीवासी भगवान् हुताशन पराधी स्त्रीके अभिलाषी करके सम्भोग जाते थे। राजा नीलकी एक अति सुन्दरी कुमार थी, वह अग्निहोत्रके निकट सदा बैठी रहती थी। उसकी दो सुन्दर हीटोसे निकली पग अग्निका जबतक नहीं पड़चती थी तब तब पंखी डोलानेसे भी जल नहीं उठते थे। तिससे राजा नील और दूसरोंने निश्चय कर लिया, कि उस पर अग्निका मन चला है। अनन्तर ब्राह्मणके स्वरूपमें मनमाने रमण की इच्छाकर उन्होंने उस सुन्दरी पद्मनेत्रा कन्या पर मन चलाया। परन्तु धार्मिक राजा नीलने उनकी शास्त्रके अनुसार शासन किया। भगवान् हव्यवाहन तिससे क्राधकी मारे जल उठे। उनकी देखकर राजाने अचक्षुमें हीके धरतीकी और सिर भुकाय प्रणाम किया, आगे उचित कालमें उसी प्रकार सिर भुकाय उन विप्र स्तुपी अग्निकी कन्यादान किया। अभीष्ट सिद्ध करनेमें सबके अगुये भगवान् अग्नि राजा नीलकी

वह कन्या लेके उक्त नरनाथ पर प्रसन्न हुए और उन्हें वर मागनेकी कहा । पृथ्वीनाथ राजा नीलनेभी यह वर माग लिया, कि मेरी सेनाको कभी भय न हो । महाराज ! तभीसे वह वृत्तान्त न जानके जो कोई भूप बलपूर्वक उस नगरीको जय किया चाहते थे, वे अग्निसे जल मरते थे, हे कुरुवंशि । उस माहिष्मतो पुरीमें उसकाल अबलाओंको भी कोई स्वेच्छा से ले नहीं सकता था, क्योंकि स्त्रियोंके छीने जानेके विषयमें अग्निने वर दिया था, तिससे वे स्त्रीरिणी बनके मनमाना वहा विचरा करती थी । हे भरतराज । तभी से राज-गणभी अग्निके भयसे उस पुरीको त्याग देते थे, पर धर्मात्मा सहदेव अपनी सेनाको अग्निसे घेरा और भय खाया देखने परभी अचलकी भाँति स्थिर बने रहे । वह शुचि होय आचमन-पूर्वक उसकाल इस प्रकार स्तुति पूरित सम्भाषण करने लगे ।

सहदेव बोले, कि हे कृष्णवर्त्मन । तुमको नमस्कार, मेरा यह प्रारम्भ केवल तुम्हारेही लिये है । हे पावक । तुम यज्ञरूपी हा, सो तुम्ही देवोंके मुख हो । तुम पवित्र करते हा, इस लिये पावक और हव्यको वहन कराते हा । तुम्हारे लियेही वेदोंकी उत्पत्ति हुई है, इस लिये तुम जातवेदा हुए हा । हे विभावसा । तुम्हो चित्रभानु, सुरेश, अनल, स्वर्गद्वार कूनेवाली ज्वाला, ज्वलन, शिखी, वैश्वानर, पिङ्गेश भवङ्ग, भूरतेजा, कुमारसू, भगवान्, स गर्भ और अहरण्यकृत हो । हे अग्ने । तुम सुभक्तों तेज दे । पवन प्राण देवे, पृथ्वी बल दे और जल सकल मङ्गल करें । हे जलोत्पादक महाभाग सुरेश्वर जातवेद अग्ने । तुम देवोंके मुख स्वरूप हो, सो सुभक्तों सत्य ज्योतिसे पवित्र करो । देवता ऋषि ब्राह्मण और असुर सदा सुन्दर रूपसे जिन सब यज्ञोंमें हवन करते हैं, वहाकी सत्यज्योतिसे सुभक्तों पवित्र करो । तुम धूम-

केतु शिखी पापनाशी, वायुसे बने और सब प्राणियोंमें सर्वकाल ठहरे रहते हो, अब सुभक्तों सत्यज्योतिसे पवित्र करो । हे भगवान् अग्ने । मैंने शुचि होकर प्रसन्न चित्तसे तुम्हारी यह स्तुति की, अब सुभक्तों तुष्टि, पुष्टि, स्तुति और प्रीति दो ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, जो ऐसा आग्नेय मन्त्र पढ़के प्रभु अग्निका हवन करते हैं, वह ऐश्वर्य युक्त और सदा दान्त होकर सर्व पापोंसे मुक्त होजाते हैं । हे भारत ! पुरुषव्याघ्र माद्री कुमार सहदेव यह कहके, कि हे हव्यवाहन । यज्ञके विषयमें ऐसा विघ्न उत्पन्न करना तुमको नहीं चाहिये, धरातल पर कुशा विछाय उँन-घवरायो भय खायी सेनाओंके सामने अग्निके लिये बैठ गये । अग्नि जिस प्रकार महासमुद्रके तटको पार नहीं करते, वैसेही उनको लाघ नहीं सके । वह उन कुरुनन्दन नरदेव सहदेवके निकट जाय समभाय बुभाय धीरे धीरे यह बोले, कि हे कुरुकुलशोभन ! उठी, मैं तुम्हारे और धर्मानाथके सब अभिप्रायोंकी जानता हूँ, केवल परीक्षाके लिये ऐसा किया है । हे भरतश्रेष्ठ पाण्डुनन्दन । इन राजा नीलके कुलमें जबतक वशधर सन्तान बनी रहेगी तबतक सुभक्तों इस पुरीकी रक्षा करनी पड़ेगी, पर तुम जा चाहते हो, वह भी मैं पूरा कर दूंगा । हे भरतश्रेष्ठ । तब सहदेवन प्रसन्नमनसे उठ कर शिरनाथ हाथ जाँड़ पावककी पूजा की । अनन्तर पावकको चले जाने पर पृथ्वीनाथ राजा नीलन उनकी आज्ञासे योधनाथ नरव्याघ्र सहदेवकी निकट आकर सत्कार सहित उनकी पूजा की । विजयी मादपुत्र वह पूजा लेके उनको करदाता वनवाय दक्षिणकी ओर पधारे । उन धर्मात्मा महाशुभ अपरिमित तेजवन्त तैयुर राजाकी वशमें लाय पौरवनायकी बलसे सताया । आगे कौशिकाचार्य सुराद्राधय आशु

अति यत्नसे अपने वशमें ले आये और सुराष्ट्र राज्यही में रह करके भीजकटके महा-मात्र धीमान साक्षात् इन्द्रके सखा भीष्मक नाथ स्वामीके निकट दूत भेजा, उसने भी वासु-देवजीको स्मरण कर तब पुत्र सहित प्रीति पूर्वक उनका शासन मान लिया; महातेजा महाबली योधपति सहदेव उनसे रत्न लेके फिर आगे चले। अनन्तर गुप्तरक तालाकट और दण्डकोंको हथेली तले लाय चुके। आगे साग-रद्वीपवासी स्नेच्छ योनिसे उपजे नगरनायगा विपादग, पुरुषादलोग, कर्ण प्रावरण नर-राक्षस योनि कालमुख वर्ग सब कोल गिरि, सुरभिपट्टन, ताम्रद्वीप, रामक पर्वत और तिमिङ्गल नरेशकी वशमें लाय दूतोंसे वन-वासी केरक नामक, एक पाद मनुष्य, सञ्जयन्ती नगरी और पाषण्ड और करहाटक देशको वशीभूत और करदाता बनाया। और भी उन्होंने पाण्ड्य, द्राविड़, उडकोरल, अश्व, ताल-वन, कलिङ्ग, और उड्कोरलोंको और मनहरणो आठवी पुरी और यवनोंका नगर इन सबोंकी दूतोंके द्वारा वशीभूत और करदायो बनाया। हे नरनाथ ! अनन्तर शत्रुदमन, धीमान, धार्मिकवर माद्रवती-पुत्रने सागर-कुलमें पञ्चकर पुलस्तगनन्दन महात्मा विभीषणके निकट प्रीति पूर्वक दूतोंको भेजा। उन्होंनेभी प्रीति-पूर्वक उनका शासन मान लिया। प्रभावी धीमान विभीषणने सहदेवके उस शासनको काल-याग्यही समझा, इस हेतु उनके निकट विवाध रत्न, चन्दन और अगुरुको लकड़ी दिव्य आभूषण, महामूल्य चीर और महाधन माण-मैन्द आवाया। इसके पीछे प्रतापी, धीमान तिसपरभी उन्हेंज्याका लौटे।

उन दो बड़े वन्दरोंमें से शत्रुदमन सहदेव इस प्रसन्न हृदयसे प्रीतिपूसमझाके और विजयके कि हे पाण्डवगार्दूलों तथा करदाता बनाके ले जाओ, धीमान धर्मैन्द, आये और

अपने उपार्जित सब धन धर्मनाथके आगे धर कर परम सुखसे वसने लगे।

एकतीस वां आय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले। कि हे जनमेजय ! अब नकुलकी विजय और कम्भोको कथ सुनाता हूँ। उन प्रभावी वीरवरने जैसे वासु-देवकी जीती हुई पश्चिम दिशाकी जीता दा वह सुनो। सतिमान नकुल बड़ी भारी सेना लेकर खाण्डवप्रस्थसे निकलकर पश्चिम दिशाको प्रचण्डसिंहनाद योधीके गर्जन और और रथोंके पहियोंकी घरघराहटसे धरातलकी कंपति चले। अनन्तर उन्होंने कार्तिकेयके प्रेमपात्र धनधान्य पूरे, गोधनभरे, अति ऐश्वर्ययुक्त रमणीय रोहि-तक पर्वत पर चढ़ाई की। वहा शूरतायुक्त उन्मत्त मयूरोंके साथ बड़ी लड़ाई हुई। इसके पीछे आत व्युतिमान पाण्डुनन्दनने सब मस्तभ्राम, वज्रत धनधान्ययुक्त शरीषक और राजर्षि आक्रोशकी वशीभूत तथा महेत्य देशको जय किया। आक्रोशके साथ उनकी बड़ी लड़ाई हुई थी। अनन्तर वज्र देशार्ण, शिव त्रिगर्त, अश्वष्ठ, मालव, पंच कर्पट और माध्यामिक तथा वाटधान-द्विजोंकी जय कर आगेको पधार। इसके पीछे फिर लौटकर पुष्करा, वासी उत्सवसंकेत नामक स्नेच्छोंकी जय किया। सिन्धुकुलमें वसे महाबली ग्राम णीयगण, सरस्वती तटके शूद्र और आभीर, मकुहे और पहाड़ी, पाचा नद, अमर पर्वत, उत्तरज्यातिष और दिव्य काट तथा हारपाल नगर यह सब उन्होंने बलसे वशीभूत किये। और रामठहारहण तथा पश्चिम देशके सब दूसरे नरनाथोंकी शूद्र, शायर, विजयी से वशमें कर चुके। हे भारतुनको करदाता नकुलने वन्दारे। उन धर्मात्मा भेजा। वन्तने तैपुर राजाकी मानायको बलसे सताया।

कुमारने मर्दोंकी राजधानी शाकलमें जाय अपने मामा शल्यकी प्रीतिपूर्वक वशीभूत किया। हे महाराज। उन नरनाथने जब सत्कारयोग्य योधपति नकुलका उचित सत्कार किया, तब वह बद्धरत्न लेकर आगे चले। पोके सागरगर्भके अति कठोर स्नेहों और पहलव, वर्चस्व, किरात गगन और शक्रोको वशीभूत किया। विचित उपायोंके जानकर कस्वर नकुल नरेशोंकी वशीभूत कर और बद्धरत्न बटोरके अन्तकी लौट आये। महाराज। दश सत्तम संत प्रति कष्टसे उन महात्माकी धन सी लेकर चल सके थे। भरतवर औमान माटीपत्र नकुलने इस प्रकारसे वासुदेवजीके जय किये और वस्त्रसे पाले जाते-हुए पश्चिम खण्डको विजयकर इन्द्रप्रस्थमें स्थित वीरवर युधिष्ठिरके समीप आकर उनके सामने सब धन धर दिया।

बत्तीस अध्याय और दिग्विजय
प्रकरण समाप्त ।

राजसूय प्रकरण ।

और्विशम्पायनजी बोले, कि धर्मनाथ युधिष्ठिरको प्रजारक्षा, सत्य पालन और शत्रुनाशके लिये प्रजा अपने अपने धर्मसे लगी रही। यथा योग्य कर लेना और धर्मके अनुसार प्रजाशासन करनेसे वादल प्रचुर जल वर्षाने लगा, सो जनपदभी बढ़ उठे। राजाके पुण्य-कर्माके प्रभावसे राज्यके सर्वप्रकार कार्य भले प्रकार निर्वह होने लगे; विशेष पशु-पालन, खेती और वाणिज्य, इनकी पूरी उत्पत्ति हुई। महाराज। सदा धर्ममानो राजा युधिष्ठिरके राज्यकाजमे लुटेरे और टगभो एक दूसरेसे झूठी बात नहीं बोलते थे और राजाके धार जनोंके मुखसे भी झूठी बोली नहीं निकलती थी। उस कालमे वृद्धिकी भी, उद्भूत उद्वि, रोगभय, अकालमृत्यु यह

सब नहीं थी। सब भूपवर्ग प्रियकार्य करना और उपासना अथवा स्वाभाविक उपहार देनेहीके लिये राजाके समीप आते थे, दूसरे कार्य अर्थात् जयादिके, अभिप्रायसे नहीं। धर्मानुसार धनार्जन द्वारा उनके विशाल भण्डारकी ऐसी वृद्धि हुई थी, कि सैकड़ों वर्षोंमें भी उसके चुक जानेकी सम्भावना नहीं थी।

कुन्तीनन्दन पृथ्वीनाथयुधिष्ठिरने अपने धन और धान्यादिका परिमाण विशेष जानके यज्ञ करनेका प्रण ठाना। उनके मित्रवर्गभी सब अलग अलग और एकत्र होकर बोले, कि “विभी। आपके यज्ञ करनेका योग्य काल आ पड़चं है, सो अब उसका प्रबन्ध करें।” वे सब ऐसी कहा-सुनी करते थे, कि ऐसे समय औकृष्णचन्द्र आ पड़चे। वह धर्मज्ञ, निश्च, वेदात्मा, दर्शनके अविषयीभूत करके विज्ञोंके निश्चय किये स्थितिशीलोंके अगुवे, जगकी उत्पत्ति और प्रलयके कारण भूत भविष्यत तथा वर्तमानके नियन्ता, सब वृष्टियोंके प्राकार अर्थात् रखवारे, विपत्तिलके अभय-दाता, शत्रुनाशी केशिस्तदन, पुरुषवर केशव, धर्मनाथके लिये बद्धविध धन रत्न लेकर वसुदेवकी सेनापतिके पद पर बैठाय बद्धबलसे मेरे जाय रथकी आहटसे परीक्षित खण्डव-प्रस्थकी बजाय वहां आजमे और पाण्डवोंके उस भरे पूरे अक्षय रत्न समुद्रके अपूर्ण भागकी पूर्णकर शत्रुओंकी शीक देने लगे। स्थैर रहित खण्डमें स्थैर उगनेसे अथवा वायु रहित स्थानमें वायु बहनेसे वहांके लोग जैसे आनन्दित होते हैं, वैसेही औकृष्णके सुभागमनसे भारत-पुरी अति आनन्दित हुई। पुरुषवर युधिष्ठिर अति आनन्दसे उनको गले लगाय और विधि-पूर्वक सत्कार कर अन्तमें सुखसे बैठे। कुशलक्षेम पूरके धीम्य वैपायन आदि ऋषिवर्ग और भीमार्जुन तथा नकुल सहदेवसे

मिलकर उनकी यह सम्भाषण किया । युधिष्ठिर बोले, कि हे देवकीनन्दन कृष्ण ! केवल तुमसेही पूरी धरती मेरे वशमें बनी है और तुम्हारी कृपासे मैंने यह अपरिमित श्रुता लाभ की है, सो हे यदुकुलतिलक, महाभुज, माधव ! मैं तुम्हारे और अनुजोंके साथ मिलकर उस उपार्जन किये हुए सब धनको हताशन और ब्राह्मणोंके पीछे खर्चनेके लिये यज्ञ किया चाहता हूँ । तुम खुले मनसे उसमें सम्मति दो, हे गोविन्द । उस विषयमें तुम अपनेको दीक्षित करो, क्योंकि तुम्हारे यज्ञ करनेसे मैं निष्पाप बनूँगा । अथवा हे विभी । इन भाइयों के सहित सुभको दीक्षित होनेकी आज्ञा दो । तुमसे आज्ञा पानेहीसे मैं अनुत्तम यज्ञका फलभागी हो सकूँगा ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि श्रीकृष्ण चन्द्रने युधिष्ठिरके गुणोंका वर्णन कर उनकी यह उत्तर दिया, कि हे राजशार्दूल । आपही सम्राट होनेके योग्य पात्र है, सो आपही महा-यज्ञ राजसूय पूरा करें, आपके फल पानेसे हम कृतार्थ होंगे । मैं आपका मङ्गल साधनेमें सन्नद्ध हूँ । आप मनमाने यज्ञका प्रवन्ध करें और सुभकोभी किसी कार्यमें नियुक्त करें । मैं आपकी सब आज्ञा पालूँगा । युधिष्ठिर बोले, कि हे हृषीकेश श्रीकृष्ण ! मेरी इच्छा होतेही जब तुम आगये हो, तब मेरा सङ्कल्प भी सिद्ध होगया और सिद्धिलाभकाभी नियय हुआ है । श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि श्रीकृष्णकी आज्ञा पाय युधिष्ठिरने भाइयोंके सहित राजसूय यज्ञके साधनोंको बटोरनेका प्रवन्ध किया । अनन्तर शत्रुदमन धर्मनाथन सहदेवको और मन्त्रियोंकी आज्ञा दी, कि इस यज्ञमें ब्राह्मणोंने जिन जिन पाद्योंको यज्ञके अङ्ग करके निश्चय किया है, तिमके अनुकूल उपकरण, मादलिक वस्तु और धौन्यकी आज्ञा की हुई । मग्रे यथाक्रमसे और यथायोग्य रीति

पर तुरन्त लेते आओ ; अर्जुनके सारथि इन्द्र-सेन विशोक और पुरु यह हमारी प्रिय कामनासे अन्नादि बटोरनेमें लगे रहें और रसगन्धयुक्त ऐसी काम्य वस्तु बनवावें, कि ब्राह्मणोंकी मनहरणी और प्रीतिदायिने होवें । योधयेष्ठ सहदेवने धर्मनाथ युधिष्ठिरके इस आज्ञा-वचनकी सुनतेही सब पूरा कर उनकी समाचार दिया । हे महाराज ! अनन्तर सत्यवतीनन्दन कृष्णदेवायननन साक्षात् देवसदृश मूर्तिमान ब्राह्मणोंकी कृतिकके कार्यमें नियुक्त किया और स्वयं उस यज्ञके ब्रह्म-कार्यमें दीक्षित हुए । धनञ्जय गातके श्रेष्ठ सुसामा नामक ऋषि उद्गाता, ब्रह्मनिष्ठ याज्ञवल्क्य अध्वर्यु, वसुपुत्र पल और धौम्य होता और उनके वेदवेदान्तदक्ष शिष्य और पुत्रवर्ग होत्र-गाता बने । उन्होंने स्वस्तिवाचन करके उक्त यज्ञके लिये उद्देश निर्देश अर्थात् सङ्कल्प करके उस विस्तृत यज्ञभूमिकी शाखा नुसार पूजा की । आगे शिल्पियोंने आज्ञा पाय वहां देवोंके मन्दिर समान सुगन्धित और लम्बे चौड़े गृह बना दिये । अनन्तर पुरुषवत् राजश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरने मन्त्री सहदेवको उसी क्षण आज्ञा की, कि तुम निमन्त्रणके लिये शीघ्र-चलनेवाले दूतोंको शीघ्र भेज दो । सहदेव तब राजाकी आज्ञा सुनके ऐसी आज्ञा दे करके, कि राज्यके सब ब्राह्मण, भूप और वैश्योंको निमन्त्रण करो, तथा शूद्रादिकीभी लाओ, दूतोंको भेज दिया ।

श्रीवैशम्पायन जो बोले, कि अनन्तर शीघ्रगामी दूतोंने आज्ञा पाय सहदेवके वाक्यानुसार सबको नेवता दिया और उनके अतिरिक्त क्या स्वजन क्या अन्यजन, ऐसे अनेक लोगोंको भी साथ लिवाय लाये । हे भारत ! तिसके अनन्तर उन ब्राह्मणोंने कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरकी राजसूयके लिये योग्य काल में दीक्षित किया । नरवर धर्मात्मा धर्मनाथ

दीक्षित होके और सहस्रों विप्रोंसे घेरे जाय भाइयों, छातियों, भित्तों अनेक दिशा देशोंसे आये अनुष्यश्रेष्ठ क्षत्रियों तथा मन्त्रियोंके सहित धूर्तिमान धर्मकी भांति यज्ञस्थानमें गये । सर्व विद्याओंमें पण्डित वेदवेदाङ्गपारग ब्राह्मणगण नाना देशोंसे वहाँ आके एकत्रित होने लगे । सहस्रों शिल्पियोंने धर्मनाथकी आज्ञासे साथी समेत उन सब विप्रोंके अलग अलग वासगृह बना दिये । उन गृहोंमें बह्विध भोजनकी सामग्री और वस्त्रादि धरे थे और वसन्तादि सब ऋतुओंके कार्य विद्यामान थे । हे महाराज ! ब्राह्मणगण भूपालसे सत्कृत होय वहाँ बस कर बह्वर्भातिकी कथा कह सुनके और नटोंके नाचादिकी देख कर काल बिताने लगे । फौजन और सम्भाषण करनेवाले उन सब प्रसन्नचित्त महात्मा विप्रोंका बड़ा कीलाहल वहाँ सदा सुन पड़ने लगा । वास्तव में वहाँ “दीयताम भुज्यताम” इस प्रकारका वातावरण ही सदा कानोंमें पैठता था । हे भारत ! धर्मराजने उनकी सैकड़ों सहस्रों गौ, शय्या, काञ्चन और नारी अलग अलग दीं । स्वर्गके शतक्रतुके समान पृथ्वीके अहिनीय वीर महात्मा युधिष्ठिरका यज्ञ इसी प्रकार से प्रारम्भ हुआ । अनन्तर नरवर राजा युधिष्ठिरने भीष्म, द्रोण धृतराष्ट्र, विदुर, कृप और उन भाइयोंकी जो उनके प्रेमी थे लिवाय लानेके लिये नकुलकी हस्तिनापुरमें भेजा ।

तेतीस अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि समरविजयी पाण्डु-नन्दन नकुलने हस्तिनानगरमें जाय भीष्म, धृतराष्ट्र और द्रोणाचार्य आदिकी उचित सत्कार सहित निमन्त्रण किया । अनन्तर वे ब्राह्मणोंकी आगे कर प्रीतिपूर्वक यज्ञ देखनेको चले । हे भरतश्रेष्ठ ! यज्ञके जानकर दूसरे सैकड़ों क्षत्रियभी धर्मनाथके यज्ञकी बात सुनके उस

यज्ञसभा और धर्मनाथको देखने की इच्छासे प्रसन्न मनसे बह्विध बह्वमूल्य रत्न बटोरके नाना दिग्देशोंसे वहाँ आ पड़चे । धृतराष्ट्र भीष्म महामति विदुर दुष्योधनादि सब भाई गान्धारनाथ सुबल, महाबल शकुनि, अचल, वृषक, महारथी कर्ण, बली शल्य, महाबली बाह्लीक, सोमदत्त, कुसुवंशी भूरि, भूरिश्रवा शल, अश्वत्थामा, कृप द्रोण, सिन्धुराज जयद्रथ, पुत्रसहित दुपद, पृथ्वीनाथ शल्य, सागरतटके जलप्रधान देशोंके सब स्नेहियोंसमेत प्रागज्योतिषनाथ महारथी नरनाथ भगदत्त, पहाड़ी राजागण, राजा बृहद्वल, पीण्डक वासुदेव, वज्राधिप, कलिङ्गनाथ, आकर्ष, कुन्तल, मालव देशीय भूपवर्ग, अन्धकगण, द्राविडवर्ग, सिंहलगण, काश्मीर देशीय भूतनाथ, तेजसी कुन्तीभोज, पृथ्वीनाथ, गौरवाहन, बाह्लीक देशीय दूसरे शूरवीर भूप, दो पुत्रों सहित विराट, महाबली मावेज्ञ, युद्धमें कठोर पुत्रसहित शिशुपाल और अनेक जनपदनाथ राजा और राजकुमार सब युधिष्ठिरके यज्ञमें आये । वलराम, अनिरुद्ध, कङ्क, सारण गद, प्रद्युम्न, शाम्ब, चारुदेष्ण, उल्मुक, निशठ, अङ्गावह और वृष्णिवंशी दूसरे वीर्यवान महारथीगण, सब आगये ; यह सब और दूसरे मध्यदेशी अगणित राजगण युधिष्ठिरके राजसूय महायज्ञमें आये । हे महाराज ! धर्मनाथकी आज्ञासे उनकी बह्वत खानेपानकी सामग्री सहित ताल और वृक्षोंसे सुहावने वासगृह दिये गये । धर्मनन्दनने स्वयं उन महात्मा नरेशोंकी पूजा की । आगे सत्कार पाय निर्दिष्ट किये हुए डेरोंकी जाटिके । वह डेरोंकी ठौर कैलाशकी चोटीसी सुहावनी, भांति भांतिकी सामग्रीसे मनहरणी, भलीबनी शुभवरणी प्रति जंची अटारिसे सब दिशा वनी सुवर्ण जात्र पद्मिनी मणिकुट्टिमसे मोहिनी, सुखसे चढ़ने, योग्य सोदियोंसे सुखदायिनी, मूल्यवान आसनोसे सुहासिनी, मातायोंसे

सुन्दर अगुरुगन्धने मन भावनी, हंस चन्द्रमामी
श्वेतवरणी होने परभी योजन भर दूरीसे
दर्शनीय लम्बे चौड़े, समान द्वारोंसे, सुख-
दायिनी नाना भांतिकी सामग्री-धारिणी और
अङ्गों पर वहुविध धातु जड़नेसे हिमाचलकी
चोटीसी मन्महिनी बनीयी आये हुए भूपोंने
वहां विश्राम कर, अन्तमें वहुत दक्षिणदाता
अगणित मन्त्रियोंके कर्ता धर्मनाथ युधिष्ठिरकी
देखा-। महाराज ! सम्पूर्ण पृथ्वीनाथ तथा
महर्षि ब्राह्मणोंसे भरी पूरी वह सभा उस
कालमें अमरवृन्दसे सुहाती स्वर्गपीठकी भांति
अति दीप्ति पाने लगी।

चौतीस अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे महाराज ।

अनन्तर युधिष्ठिर आगे बढ़कर दादा भीष्मजी
और गुरु द्रोणाचार्यकी प्रणामकर उनकी और
अश्वत्थामा, कृपाचार्य दुष्योधन तथा विवि-
शतिसे यह बोले, कि इस यज्ञमें आप सब प्रकार
सुख पर कृपा दशवि । यहां जो मेरा वहुत
धनसम्पद विद्यमान है, सब अपनाही जाने और
सब परमार्थ इच्छाके अनुसार सुखकी दे ।
दीक्षित पाण्डवज्येष्ठने यह कहके अन्तकी
सबकी यथायोग्य अविकारमें नियुक्त किया ।
भक्ष्य भोज्यके अधिकारमें उन्होंने दुःशासनकी
नियुक्त किया, राजोंकी पूजाका भार सञ्जय
पर दिया, कर्तव्य पाला गया वा नही, इसकी
पूछ पाछमें महामति भीष्म और द्रोणाचार्य
नियुक्त हुए, हिरण्य, सुवर्ण और रत्नोंकी रक्षा
तथा दक्षिणा देनेका भार युधिष्ठिरने कृपाचार्य
पर दिया और दूसरे पुरुषवरोंकीभी उन उन
कार्योंमें नियुक्त किया । वालिक, धृतराष्ट्र, सोमदत्त
और जयद्रथ यह आदरपूर्वक लिवाये जाय
स्वामीकी भांति विराजने लगे । सर्वधर्मोंके
जानकर चत्ता विदुर व्ययकारी बने और
सब प्रकारके उपहार लेने पर रहे ।

श्रीकृष्णचन्द्र, सब लोगोंके जीवनाधार होने
परभी अष्ट फल पानेकी इच्छासे ब्राह्मणोंके
पांव धोनेमें स्वयं नियुक्त हुए ।

सभा और धर्मनाथकी देखनेके अभिलाषी
बनके, वहां किसीने सहस्रसे अल्प उपहार नहीं
दिया, सबोंने वहु धन रत्न देकर धर्मनाथकी
वढ़ाया था । राजगण इस अहंकारसे धन देने
लगे, कि “कुरुनाथ युधिष्ठिर मेरेही धनसे यज्ञ
निवटार लेवे ।” महाराज ! दर्शनायी देवोंके
विमानोंका अगला भाग लगे, वहुबलयुक्त उत्त-
रकाल स्थायी सम्पूर्ण भवन इन्द्रादि लोकपा-
लोंके विमान, ब्राह्मणोंके वासस्थान, भूपोंके
लिये निर्मित नानारत्न जटित अति सम्यक्
सुशोभित विमान सट्टश विचित्र दिव्य वासण्य
और परम श्रीसम्पद सहित आये राजाहि
महात्मा कुन्तीकुमारकी वह सभा वहुत सुहा-
वनी बनी । अनन्तर युधिष्ठिरने ऐश्वर्यमें
वरुणजीके समान बनके वहुदक्षिणा सहित
षडग्निसाध्य राजसूय यज्ञका अनुष्ठान किया
और सब लोकोंकी सम्पदयुक्त सर्व प्रकार
काम्य वस्तु देकर परितप्त किया । उस उत्त-
वमें जितना अन्न पका और जितनी खानेकी
वस्तु बनी थी और जितने अगणित भोजन
किये हुए जनोंमें वार्त्तालाप हुआ था और
जितना रत्नोंका उपहार दिया गया था उसका
हिस्साब लग नहीं सकता । मन्त्र और प्राक्-
यामें पण्डित महर्षियोंसे उस यज्ञलीलाके होने
पर देवोंकी तृप्ति हुई । देवोंकी भांति ब्राह्म-
णभी उस यज्ञमें दक्षिणा अन्न और वहुत धन
पाय प्रसन्न हुए और दूसरे वर्णोंके लोगभी तृप्त
और परम हर्षित हुए ।

पैंतीस अध्याय और राजसूय

प्रकरण समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि यज्ञान्तके अभि-
प्रेक्षके दिन सत्कारपात्र महर्षि ब्राह्मण

भूपालोंके साथ अन्तर्वेदीमें गये। ब्रह्माके सामने देवर्षियोंके साथ एकत्रित अमरोंके सदृश नारद आदि महोक्ता राजर्षियोंके साथ उस अन्तर्वेदीमें विराजकर अति शोभा पाने लगे। वे अति तेजस्वी ऋषिगण उसकालमें कर्मसे अवकाश पाय नाना भांतिका विचार करने लगे। बह्मतेरे वहां आपसमें यह बक-वाद करने लगे, जि "यह ऐसा होगा, नहीं नहीं ऐसा नहीं हो सकता, यह अवश्यही ऐसा है, व्यर्थ होही नहीं सकता।" उसमेंसे कोई कोई शास्त्रनिश्चित, तर्कसहित लघुसे गौरवका अर्थ और गुरुसे लघुका अर्थ सिद्ध करने लगे। बाजगण जैसे आकाशमें उड़ते समय आभिष बकीटते हैं, वैसेही कोई कोई मेधावी जन दूस-रोंको उदाहरण सहित अर्थकी व्यर्थ करने लगे। सब भाषोंके जानकारोंके वरिष्ठ कोई कोई महाव्रत ब्राह्मण विचारसे धर्मार्थ संयुक्त वचनोंको अलापते हुए रमणे लगे। हे महो-राज। वेदयुक्त देव हिंज महर्षियोंसे वह बड़ी फैली वेदी अमल आकाश मण्डल समान सुहाने लगी। युधिष्ठिरके भवनकी उस अन्तर्वेदीके निकट उस काल कोई शूद्र वा व्रतवर्जित जन विद्यमान नहीं था।

हे मनुष्यनाथ! देवर्षि नारद लक्ष्मीयुक्त धीमान धर्मनाथके यज्ञसे उपजी वह लक्ष्मी निहारके प्रसन्न हुए। अनन्तर क्षत्रिय कुलकी वह भीड़ देखकर सोचवश हुए और ब्रह्माके भवनमें अंशवतरणके विषयमें जिसकी चर्चा हुई थी पुरावृत्त कथाकी स्मरण करने लगे। हे पुरुषश्रेष्ठ कुरुनन्दन! उस क्षत्रिय समाजकी देवोंका समाज जाने नारदने मनहीं-मनमें पद्मनेत्र हरिका स्मरण किया। सोचा, कि पहिले जिन्होंने देवोंका स्वयं यह आज्ञा दी थी कि "तुम मर्तलोकमें जन्म लेकर एक दूसरेको काटकर फिर अपने अपने लोकोकी सिधारोगे, उन अनजाने भूतेश शत्रुपुरजयी,

वीर, शत्रुनाशी साक्षात् प्रभु नारायणने अपनी प्रतिज्ञा पालनेकी क्षत्रियकुलमें जन्म लिया है। जगप्रभु भगवान् शम्भुनारायणने सब देवोंको वह आज्ञा देके स्वयं यदुग्रहमें जन्म लिया है। नक्षत्रोंमें तारानाथके समान वंशधर वरिष्ठ पुरुषोत्तम धरातल पर अन्धक और वृषाणियोंके वंशमें परम लक्ष्मी सहित विराजमान हुए है; इन्द्रादिसब देवगण जिनके बाहुबलकी उपासना करते हैं, अरिसंहारी वह हरि वर्तमानमें मनुष्यके समान प्रगट होते है। कैसे आश्चर्यकी बात है, कि यह इतने बलयुक्त क्षत्रिय कुलकी फिर मार लगे। धर्मके जानकारोंमें श्रेष्ठ अति बुद्धिमान नारद यज्ञयाजी नारायण हारिको ईश्वर जानके ऐसी चिन्ता करते हुए धीमान धर्मनाथके उस यज्ञमें अति मानसे विराजे।

महोराज! अनन्तर भीष्मजीने धर्मनाथ युधिष्ठिरसे कहा, कि हे कुलतिलक युधिष्ठिर! राजाकी यथायोग्य पूजा करो, देखी आचार्य ऋत्विक् स्नातक, सम्बन्धी, मित्र और नरेश यह ऊपुरुष अर्घ पानेके योग्य पात्र हैं। पण्डित लोग कहते हैं, कि आकर वर्षभर एकत्र बसनेहीसे वे अर्घ पाते है। यह भूप-वर्ग बह्मदिन हमारे यहाँ आये है, सो इनसे हरैकके लिये एक एक अर्घ एकत्रित करो। पर इनमें जो सबसे श्रेष्ठ है, उन्हीकी पहिले दो। युधिष्ठिर बोले, कि हे कुरुनन्दन पितामह! मुझसे कह, कि आप कौनसे असाधारण जनकी पहिले अर्घ पानेके योग्य विचारते हैं।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर शान्तनु-कुमार वीर्यवन्त भीष्मजी बुद्धिसे निश्चय कर वृष्णिकुलसे उपजे श्रीकृष्णचन्द्रकी भूमण्डल भरमें पहिले पूजा पानेके योग्य विचारके बोले, कि जैसे सब ज्योतिमानाश्रमोंमें आदित्य स तेजवन्त हैं, वैसेही इन राजाओंमें श्रीकृष्णचन्द्र

बल और पराक्रमसे अति प्रकाशित दीख पड़ते हैं। सूर्यरहित देशमें सूर्य उगनेसे और वायुसे वर्जित स्थानमें वायु-चलनेसे जैसा जान पड़ता है, श्रीकृष्णके आनेसे हमारा यह सभा-मन्दिर वैसेही प्रकाशित और प्रसुदित हुआ है। अनन्तर व्रतापी सहदेवने भीष्मजीकी आज्ञा पाय विधि पूर्वक उन-वृष्णिकुमारकी प्रधान अर्घ दिया, श्रीकृष्णने शास्त्र-दर्शित कर्मसे उसे ले लिया, परन्तु वासुदेवकी वह पूजा महाभुज चेदिनाथ शिशुपालसे सही नहीं गयी; वह सभामें भीष्म और धर्मनाथकी लाञ्छित कर श्रीकृष्णचन्द्रकी निन्दा करने लगा।

कुत्तीस सध्याय समाप्त।

शिशुपाल बोले, कि हे कौरव! महात्मा महानाचित्तोके यहां विद्यमान रहते वृष्णिकुमार राजपूजा पा नहीं सकता। अजी युधिष्ठिर! तुमने तो स्वेच्छासे श्रीकृष्णकी पूजा की, पर यह व्यवहार पाण्डवयोग्य नहीं हुआ। अजी पाण्डवो! तुम बालक हो, कुछ जानते नहीं हो, धर्म बड़ा सूक्ष्म पदार्थ है, यह स्वल्पदर्शी नदीकुमारभी चेत खोचुके है। हे भीष्म! तुम्हारा समान धार्मिक जन अपनी ही प्रिय इच्छापर कार्य करें तो लोक-समाजमें साधुओंसे निन्दनीय बनते हैं। तुमने सब नरेशोंमें राजा नामके-अयोग्य दशार्हकी जैसी पूजा की, वह क्योंकर वैसी पूजा पा सकता है? हे पुरुषवर! कृष्णकी वृद्ध जानके यदि उसकी पूजा की हो, तो वृद्ध वसुदेवके विद्यमान रहते उसका बेटा क्योंकर पूजनीय हुआ! अथवा यदि प्रिय चाहनेवाला वा सहचर कहके वसुदेवके बेटेकी पूजा की हो, तो, द्रुपदके उपस्थित रहते माधव क्योंकर पूजा गया? अथवा, हे कुरुनन्दन!

द्रोणके विद्यमान रहते-वृष्णिकुमारकी पूजा? अथवा-ऋत्विक् मानके कृष्णकी पूजा की हो, तो कृष्णहैपायनजीके उपस्थित रहते तुमने क्या जानकर कृष्णकी पूजा? हे महा-राज! स्वेच्छासे मरनेवाले, पुरुषत्रेष्ठ भीष्म विद्यमान रहते तुमने कृष्णकी क्योंकर पूजा हे कुरुनन्दन! सर्वशास्त्रोंमें पण्डित वीरवर अश्वत्थामाके उपस्थित रहते तुमने कृष्णकी क्योंकर पूजा? पुरुषत्रेष्ठ नरनाथ दुर्योधन और भरताचार्य कृपके उपस्थित रहते तुमने कृष्णकी क्योंकर पूजा की? किम्पु पुरुषाचार्य द्रुमकी छोड़के तुमने क्या समझके कृष्णकी पूजा! कठोर भीष्मकनाथ सुलक्षण नर पाण्ड्य नृपवर कुन्ती, एकलव्य और मद्रना शल्यके उपस्थित रहते तुमने क्योंकर कृष्ण पूजा करी? और भीष्म-महाबली कर्णका जो सब भूपालोंमें बलके लिये गौरवान और ब्राह्मण जामदग्न्यके-प्यारे शिष्य है, हे भारत! जिन्होंने आत्मबलके आसरेमें सब राजोंकी जय किया है, उनको छोड़के तुमने क्योंकर कृष्णकी पूजा! हे कुरुशार्दूल! यह वासुदेव न तो ऋत्विक्, न आचार्य, न राजा, कुछभी तो नहीं है, फिर तुम्हारा इसे पूजना केवल प्रिय कामनाके अतिरिक्त और क्या दूसरा कारण हो सकता है? हे भारत! इस-मधुसूदनकी प्रधान करके पूजनाही यदि तुम्हारा अभिप्राय था, तो अपमान करके लिये इन राजोंका यहा लानेका प्रयोजन था? ऐसा नहीं, कि हमने भय, लोभ वा टाढ़सके लिये इन महात्मा-कुन्तीकुमारकी कर दिया है, यह धर्मसे प्रवृत्त होकर साम्राज्यकी कामना कर रहे हैं, इसी लिये सर्वोंने इनको कर दिया है, पर इन्होंने हमारा अनादर किया। हे महा-राज! राजसमाजमें तुम्हारा राजलक्षण रहित इस कृष्णका पूजना अपमानके अतिरिक्त और क्या हो सकता है? वास्तवमें धर्मात्मा करके

धर्मपुत्रका यश फैला है ; इसमें सन्देह नहीं, कि वह बिना कारण हुआ है । क्योंकि वृष्णकुलमें उपजे हुए जिस दुरात्माने पहिले महात्मा राजा-जरासन्धकी अनुचित रूपसे मारा है, इस धर्मात्यागीको कौन धर्मात्माके समान अनुचित पूजा दे सकता है ? कृष्णकी अर्घ देनेसे युधिष्ठिरकी धार्मिकता भी जाती रही और कृपणता जानी गयी । अजी माधव ! तपस्वी कुन्तीपुत्र यद्यपि भोत और कृपण बने, तौभी तुम जैसी पूजाके योग्य हो वह तुमको भी समझना चाहिये था । अथवा घृतकी धार पाय कुत्ता जैसे निरालेमें पीकर आनन्द लूटता है, वैसे तुम भी अपनी अयाग्य पूजाको बड़त मानते होगी ; ऐसा न होता, तो तुमने योग्य बनके क्योंकर कृपणोंकी दी हुई यह पूजा मान ली ? अजो जनाईन ? मैंने जिस अपमानकी बात कही, वह ता कुछ राजापर बर्ताव नहीं करती है ; निश्चय जान पड़ता है, कि कौरव लोग तुम्हाराही अपमान कर रहे हैं । अजी मधुसूदन ! नपुसकका विवाह और अन्धका रूप देखना जैसा अयाग्य है, राजा न होकरक तुम्हारे लिये राजाके समान पूजित हानाभी वैसे हंसी की बात है । चाहे ज़ा कुछ हा, राजा युधिष्ठिरभी पाहूँ जान गये, भोष्म जैसे है, वह भी समझा गया, जिसका जैसा गुण अवगुण था, वह भी प्रगट हो गया ।

तब शिशुपाल उनसे यह कहके परमासनसे उठकर राजाके साथ सभासे निकला ।

सैंतीस अध्याय समाप्त ।

जीवैशम्पायनजी बोले, कि, अनन्तर राजा युधिष्ठिर शिशुपालको और तुरन्त दौड़े और समझाय बुझाय उससे यह मोठी वाणी बोले, कि हे नरेश ! आपने जैसी बात कही, वह पापके योग्य नहीं हुई ! इसमें परम अधर्म और अन्याय तथा कड़ापन प्रकाश होता है । हे

महाराज ! यह कभी सम्भव नहीं होसकता, कि शान्तनुनन्दन भीष्म परम धर्मकी समझ नहीं सकते, सो और का और समझकर आप इनका अनादर न कोजिये, आपसे बड़े बड़े यह सब अगणित भूप कृष्णकी पूजा सहते हैं, वैसे आपभी सहन कीजिये । हे चेदिनाथ ! कुरुनन्दन भीष्म यथार्थ रोति पर श्रीकृष्णचन्द्रके स्वरूपसे ज्ञात हैं । यह श्रीकृष्णकी जैसे जानते हैं, आप उनको वैसे नहीं समझते ।

भीष्मजी बोले, कि सब लोकोंमें बड़े बड़े श्रीकृष्णचन्द्रकी पूजा जिसे प्यारी नहीं लगती, ऐसे जनकी विनय करना वा समझाना अनुचित है । लड़ाकोंमें अष्ट जो क्षत्रिय बीर किसी क्षत्रियकी युद्धमें पराजय कर बशमें लाय त्याग देते हैं, वह उसके गुरु बनते हैं, यदुनन्दनके तेजसे हार नहीं खाये एकभी भूपाल इस राजसमाजमें दीख नहीं पड़ते । यह महाभुज अच्युत केवल हमारेही पूजनीय नहीं है, यह त्रिलोक भरके भी प्रधान पूजनीय हैं, क्योंकि बड़तेरे क्षत्रिय अष्ट युद्धमें श्रीकृष्णसे परास्त हुए हैं और सम्पूर्ण विश्व इनमें सब प्रकारसे विराजमान हैं, अतएव वृद्धोंके विद्वमान रहते मैंने श्रीकृष्णचन्द्रकी पूजा की, दूसरोंकी नहीं । हे महाराज ! इस विषयमें तुमको वैसा न कहना चाहिये था । ऐसी बुद्धि फिर कभी तुमको न घरे । मैंने बड़तेरे ज्ञानमें वृद्धोंकी उपासना की है, इन सब एकाग्रित सज्जनोकी कथाहोम गुणराशी श्रीकृष्णके साधुसम्मत अनन्त गुणवृत्तान्त सुन चुका हूँ । और भी इन धीमान महापुरुषोंने जन्मसे जा जा कर्म किये हैं उन सबोको कथा भी बड़धा भरे कानामें पंठी है । अजी चेदिनाथ ! ऐसा कदापि मत जानना, कि हम भूमण्डल भरमें साधुओंसे पूजे जानेवाले सर्व भूतोंको सुख देनहार जनाईनका केवल स्वेच्छासे अथवा सन्ध्य वा उपकारके पूजते हैं ; इनका यश, शूरता अ

वृत्तान्त विशेष जान करकेही हम इनकी पूजा करते हैं। इस सभामें बालकसे बालककीभी परीक्षा करनेमें हम नहीं चूके हैं, पर गुणमें वृद्ध जनोंकी भी अतिक्रम कर हरिही हमारे मनसे पूजनीय बने हैं। ब्राह्मणोंमें ज्ञानके वृद्ध, क्षत्रियोंमें सबसे बली, वैश्योंमें बृहत् धन-धान्यवान और शूद्रोंमें अवस्थाके वृद्धही पूजे जाते हैं। पर गोविन्दकी पूज्यताके विषयमें वेद वेदाङ्ग विज्ञान और अधिक बल यह दो मिल गये हैं, क्योंकि मनुष्यलोकमें केशवसे गुणी दूसरा कौन विद्यमान होगा? दान दाक्षिण्य शास्त्रज्ञान, शूरता लज्जा, कीर्ति, अच्छी बुद्धि, विनती, श्री, धृति, तुष्टि यह सब गुण कृष्णाहीमें सदा प्रतिष्ठित हैं, सो हे भूपो! ऐसे ज्ञानी आचार्य, पिता, गुरु, अर्थपाल, अर्चनीय अच्युतका पूजा जाना आप सब मान लीजिये। हृषीकेश ऋत्विक् गुरु, कन्यादान योग्य, स्नातक, भूप और प्यारे यह सबही कुछ बने हैं, इसी लिये हमने इनकी पूजा की। श्रीकृष्णाही सब लोकोंके उपजने और लय पानेके कारण हैं। श्रीकृष्णाहीके लिये यह चराचर विश्व रचा गया है। यही अव्यक्त प्रकृति, कर्त्ता सनातन और सर्वभूतोंसे अतीत हैं, इसी लिये अच्युत सर्वोंसे अधिक पूजनीय बने हैं। बुद्धि, मन, महान तत्व, वायु, तेज जल पृथ्वी, और जरायुजादि चार भूत, सबही कृष्णमें विराजते हैं। सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रदल, ग्रहगण, दिग्मण्डल, विदिक सबही श्रीकृष्णमें प्रतिष्ठित हैं। जैसे चारों दिनोंमें अग्निहीत, छन्दोंमें चन्द्रमा, ज्योतिषोंमें आदित्य, पर्वतपुञ्जमें सुमेरु और पंचियोंमें गरुड़ मुखिया हैं, वैसे क्या ऊँई, क्या तिल्येक, क्या अध. जगको जितनी गति ठहरायी है, उन देवादि लोकोंमें केशवही मुखिया बने हैं। पर यह अज्ञ पुरुष शिशुपाल वचनसे श्रीकृष्णकी समझ नहीं सकता है, इसी लिये सदा ऐसा सम्भाषण किया करता है।

जो कोई महानचित्त अच्छा धर्म सङ्ग करनेमें प्रवृत्त होते हैं, वह जैसे धर्मकी देखते हैं, यह चेदिनाथ वैसे देख नहीं सकता। इन बाल बृद्ध पूर्ण महान आत्मोपूरित भूषोंमें कौन श्रीकृष्णचन्द्रकी पूजाके अयोग्य मानते और कौन इनकी पूजा नहीं करते होंगे? अथवा यदि शिशुपालकी निश्चय हो, कि पूजा अनुचित हुई है, तो अनुचित पूजाके हेतु वे उचित ही, वह विना शंका वही कर लें।

अद्वितीय अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि महाबली भीमके ऐसी वक्तृता देकर चुप होने पर सहदेव उसके उत्तरमें यह अर्थयुक्त वचन बोले। हे भूपो! अपरिमित पराक्रमी केशवका मेरा पूजना तुकमें जिन नरेशोंसे सहा न जाय “वसे सब बलियोंके सिर में यह लात मारता हूं, मेरे इस वचनका वे उचित उत्तर देवें। और जितने भूप महानचित्त करके गिने जाते हैं, वे इन आचार्य, पिता, गुरु, पूजनीय और अर्घ देवके योग्यपाल श्रीकृष्णकी पूजा मान लें।

बुद्धिमान साधु राजाओंके उस प्रकार पाव दिखानेसे उनसे किसीने चंतक नहीं किया। आगे सहदेवके सिर पर फूलदाँठि ऊँई और “साधु साधु” ऐसी आकाशवाणी उच्चारी जाने लगा। सब्बशंकानाशक, सर्वलोकवेत्ता श्रीनारद जी सब भूषोंमेंसे यह स्पष्ट बाणी बोले, कि जो लाग पद्मपलाश लोचन श्रीकृष्णकी पूजा नहीं करेंगे, वे जोवतमेंभी मृत हैं, सम्भाषण योग्य नहीं हैं।

श्रीवैशम्पायनजी बोले कि ब्राह्मण और क्षत्रियोंके विशेष जानकर नरदेव सहदेवने पूजनीय जनोंकी पूजा करके वह कर्म पूरा किया। इससे श्रीकृष्ण चन्द्रके प्रधान रूप से पूजे जाने पर शत्रुनाशी शिशुपाल आँखें बाल कर क्रोधके मारे भूषोंसे बोला, सेनापतिजी!

मैं विद्यमान हूँ, फिर आप किस सीचमें पड़े हैं ? आइये, सब सजकर मिले हुए वृष्णि और पाण्डवोंसे रणमें भिड़ जायं। चेदिनाथ शिशुपाल इस प्रकार उन राजोंकी भरपूर उत्साहित कर अन्तमें उनसे यज्ञ विगाड़नेकी परामर्श करने लगा। वहां नेवतेमें आवे शिशुपालादि राजगण सब प्रकारसे क्रोधित और मुखका रंग बदले दीख पड़मे लगे, क्रोधसे चेत खींच वे सब निश्चय सिद्धान्तकर यह कहने लगे, कि हमको ऐसाही करना चाहिये, कि जिससे युधिष्ठिरका अभिषेक और श्रीकृष्णकी पूजा पूरी न होने पावे। अपनेमें समझीबुझी मनःपीड़ाहीसे राजगण ऐसी-कहासुनी करने लगे। सिंहके मुखसे आभिषेक कूट जानेसे वे गरजते हुए जैसी भयावनी मूर्त्ति प्रगट करते हैं उक्त राजोंके मित्रोंके उसकाल रोकनेसे उनकी मूर्त्तिभी वैसीही प्रगट होने लगी। श्रीकृष्णने तब यह स्पष्ट जान लिया, कि वह सेनारूपी लहर मारनेवाला अपार अक्षय राजसमुद्र लड़नेकी प्रण-ठान रहा हैं।

उनतालीस अध्याय और अर्धाह्वरण

प्रकरण-समाप्त ।

शिशुपालवध-प्रकरण ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर-इन्द्र जैसे परामर्श पूछते हैं, वैसे अति तेजस्वी शत्रु-नाशी युधिष्ठिरने उस भूपसमाजको क्रोधसे उबले सागरके समान निहार-कर मतिमानोंके प्रगुप्ता कुरुपितामह वृद्ध-भीष्मजीसे पूछा, कि है पितामह ! यह विशाल राजसमुद्र क्रोधके मारे लहरा उठा है, इस-विषयमें जैसा उपाय करना उचित हो मुझसे यज्ञमें विघ्न न हो और प्रजापति का सर्वत्र मङ्गल हो, वर्तमानमें वह सब उपाय बतावें ।

धर्मज्ञ धर्मनाथ युधिष्ठिरके ऐसा कहने पर कुरु-पितामह भीष्म यह वचन बोले, कि

हे कुरुशाईल ! तुम भय मत खाओ। क्या कुत्ता कभी सिंहकी मार सकता है ? इस विषयमें मैंने पहिलेही अच्छा शुभ उपाय ठहराया है। सिंह सीये रहनेसे कुत्ते उसके सामने आय सब भिलंके जैसे चिल्लाने लगते हैं, यह राजगण वैसे गरजते हैं, सिंहके सामने कुत्तोंके सदृश सीये वृष्णिसिंहके सामने रहकर अति क्रोधसे चिल्लाते हैं। नींदमें पड़े सिंह समान अच्युत जवलों जागते नहीं हैं, तबलों नरसिंह चेदिनाथ इनलोगोंकी सिंह बना रहा है। हे वेष्ट ! अल्पबुद्धि शिशुपाल सब भूषोंकी सब प्रकारसे यमराजके घरले जाना चाहता है। हे भारत ! शिशुपालका यह जो तेज बना है, जान पड़ता है, कि श्रीकृष्णचन्द्र निश्चयही उसे हर लेना चाहते होंगे। हे बुद्धिमानीमें श्रेष्ठ कुन्तीनन्दन ! इस कुबुद्धि चेदिनाथकी और सब भूषोंकी बुद्धि बिगड़ी है। वास्तवमें यह नरव्याघ्र साधव जव, जिसकी लेना चाहते हैं, चेदिनाथसी उनकी बुद्धि ऐसीही बिगड़ती है। हे युधिष्ठिर ! नारायण त्रिभुवन भरमें जरा-युजादि चारप्रकारके सब भूतोंकी उत्पत्ति और लयके कारण है। श्रीवैशम्पायनजी बोले, हे भारत ! भीष्मकी यह बात सुन नरेश चेदिनाथ तब उनकी तीक्ष्ण अक्षरोंके वचन सनाने लगा ।

चालीस अध्याय समाप्त ।

शिशुपाल बोला, अजी भीष्म ! क्या तुम वृद्ध होय कुलमें कलङ्क लगाते हो ? वृद्धविध विभीषिकासे सब भूषोंकी भय दिखलानेमें लजाते नहीं ? अथवा जन्मसे नपुंसकके स्वभावमें बने रहकर ऐसा धर्मवर्जित अर्थका कहना तुम्हारे योग्य ही तो है, क्योंकि तुम सब कुरुओंके बड़े हो ? जिनके तुम मुखिया बने हो, वे कौरव ठीक उसही दशमें हैं, कि जैसे एक नाव दूसरीसे मिलती अथवा जैसे एक अन्धा दूसरे अन्धकी वाट लेता है। कृष्णका

पूतना-वध आदि कर्म विशेष रूपसे कह कर तुमने हमारे हृदयमें बड़ी व्यथा पड़वाई। तुम बड़े अहङ्कारी और मूर्ख हो, तिसीसे केशवकी स्तुति गाने परभी तुम्हारी जीभ सैकड़ों भागोंमें क्यों नहीं बटती है? अति अज्ञानी मनुष्य भी जिससे ग्लानि कर सकते हैं तुम ज्ञानमें बूढ़े हो करके उस गोपालकी स्तुतिमें क्योंकर उत्साह दिखा रहे हो? अजी भीष्म! कृष्णने बचपनमें यदि एक गिड़ मारा अथवा उन युद्धको न जाननेवाली अश्व और बैलकी मारा हो, तो उनमें आश्चर्यही क्या है? और भी यदि इनने अचेत लकड़ीकी गाड़ी पाँवसे गिराई हो, तो भला कौनसा बड़ा आश्चर्य कर दिखाया! अजी भीष्म! दीमकके टेलिके समान गोवर्द्धन गिरिकी यदि इसने सप्ताह भर थामाभी हो, तो वह मेरी समझमें कोई बड़ी बात नहीं है; तुम्हारी इस बात पर, कि पहाड़की चोटी पर खेलते कूदते इसने बहूत अन्न खाया था" सबोंने बड़ा अचरज माना है। अजी धर्मज्ञ! जिस बलवानका अन्न इसने खाया था, उस कांस हीकी तो मार डाला है, क्या यह बड़े आश्चर्यकी बात नहीं है? रे कुसकुलमें नीच भीष्म! तू नहीं जानता, धर्म क्या है? अब हालमें तुझको जो इस बातका उपदेश करता हूँ, जान पड़ता है, कि तूने साधुओंकी कथामें यह नहीं सुना होगा। धर्मनिष्ठ साधुलोग संजनोंसे सदा यह उपदेश करते हैं, कि स्त्री, गौ और ब्राह्मणों पर और उस पर जिसका अन्न खाया हो और जिसके आसरेमें बसे कभी शस्त्र मत चलाना, पर अजी भीष्म! लोकोंमें तुममें वह सब व्यर्थ देख पड़ते हैं। रे कौरवोंमें नीच! यह समझ कर, कि मानी मैं कुछ नहीं जानता हूँ तू मेरे सामने केशवकी स्तुति कर कर उसको ज्ञानमें बृद्ध, बृद्ध महान् इत्यादि नानाविध बातोंमें प्रशंसा कर

रहा है। अजी भीष्म! गौ घातक और स्त्री हत्यारे होने परभी यदि तुम्हारी बातसे पूजनीय हो, तो यह उपदेश वचन कहां रहेगा। अजी भीष्म! जो ऐसा है वह क्योंकर स्तुति योग्य हो सकता है? तुम्हारी ऐसी प्रशंसाकी बातोंमें कि "यह प्राज्ञके मुखिया जगतके प्रभु हैं जनार्दनभी यह सब मान अपनेको उन सबोंके योग्य समझ रहा है, पर वास्तवमें वह सब भूठ है। गवैयेके बह्वार गानेसे भी सङ्गीत उसका शासन नहीं कर सकता; भूलिङ्ग पक्षीके समान सब प्राणी अपनी अपनी आकृति प्राप्त करते हैं। इसमें कुछभी सन्देह नहीं है, कि तुम्हारी यह प्रकृतिमें बहूत बुरी है। औरभी कृष्ण जिनका प्रधान पूजनीय और तुम जिनके बाट दिखानेवाले हो यह कहनेसे क्या बड़ जाती है, कि उन पाण्डवोंकी प्रकृति तुमसे भी नीच है। वास्तवमें तुम धर्मवान होकरकेभी साधुओंके पथसे हट जानेसे अधार्मिक बने हो, क्योंकि धर्मसे तुमने जो कर्म किया है क्या कोई ज्ञानकी बड़ाई रखने वाला वैसा कर सकता है? अजी भीष्म! अम्बा नाम धर्मवती काशीराजकी पुत्रीने और को कामना की थी, तुमने प्राज्ञ होनेकी बड़ाई रखकर क्योंकर उसे हर लिया था? तुम्हारे भाई नरनाथ विचित्रवीर्यने साधुओंकी वाट लिये तुम्हारी हँरी उस कन्याको अन्यपूर्वा कहके नहीं लिया। तुम प्राज्ञ कहनेकी ऐसी बड़ाई रखते हो, कि तुम्हारे सामनेही विचित्रवीर्यकी दो स्त्रियोंमें अन्यजन द्वारा सज्जनसे आवरण किये पथके अनुसार सन्तान उपजायी गई थी; अजी भीष्म! भला तुम्हारा धर्म का है। तुम्हारा यह ब्रह्मचर्य व्यर्थ है, या तो भ्रम नहीं तो नपुनक होनेके कारण तुमने इसे लिया है। अजी धर्मज्ञ! मैं कहीं भी तुम्हारी उन्नति नहीं देखता हूँ। तुम धर्मकी जैसी आम्बा

करते हो, तिससे निश्चय जान, पड़ता है, कि तुमने कभी पण्डितकी उपासना नहीं की है। देखो, देव-सेवा दान, पठन व्रत दक्षिणायुक्त यज्ञ, यज्ञ सब पुत्र फलके सील हवा भागके योग्य भी नहीं हो सकते। अजी भीष्म। वज्रविध व्रत उपवाससे जो कुछ पुण्य होता है, विन पुत्र जनका वह सब निःसन्देह व्यर्थ हो जाता है। तुमभी विन पुत्र वृद्ध ज्ञान हो और भूठे धर्म पर चलते हो, सो हंसकी भक्ति अत्र ज्ञानियोंसे बंधे जाओ। अजी भीष्म। ज्ञानमें पण्डित दूसरे मानवभी पहिले यह कह गये हैं, मैं भली प्रकार तुमसे वह कह सुनाता हूं, सुनो। पहिले समुद्रके निकट एक बूढ़ा हंस रहता था। वह बूढ़ा अधर्म किया करता था, पर धर्मकी कथा सुनाय सुनाय पक्षियोंको उपदेश करता फिरता था। सब कहनेवाले पक्षीगण उसको यह बात, कि तुम धर्म करो, अधर्म मत कीजो" सदा सुनते थे। अजी भीष्म सुना जाना है, कि समुद्रके जलमें चरनेवाले दूसरे पक्षीगणों पर्यन्तमें उसको भोजन जुटा देते थे और सब उसके निकट अपने अपने अण्डे धर चरते चरते सागर जलमें डूबते थे। वह पक्षीगण अपने धर्ममें सदा लावधान रह भूमि भटके उक्त पक्षियोंके गरुडे खा जाता था। परन्तु धीरे धीरे उन सब अण्डोंकी तृक जानि पर उसका एक बड़ी बुद्धि वाला पक्षी मनही मनमें भय खा गया और किसी एक दिन उसमें भी वह लीला देख ली। आगे हंसका पक्षी देख देखी है, व उस पक्षीने सब पक्षियोंसे कहा दो। अजी कुरुक्षेत्र। इसके पीछे पक्षीगणोंने प्रत्यक्षमें देख देखकर निकट आकर भूठे धर्मवादी पक्षीको मार डाला। अजी भीष्म। तुमभी उक्त हंसके धर्मसे भय खाओ, पक्षियोंने उसे जेल मारा था, तुमभी धर्मवादी होकर मार कर सकते हो, सो तुमके धर्मवादी पक्षीगण

लोग इस विषयमें एक कथा कहते हैं। उसेभी पूरी पूरी तुमसे कह सुनाता हूं। "रे हंस! कामादिसे तेरी अन्तरात्मा घायल होने परभी तू धर्मका बकवाद कर रहा है, पर अण्डा खानेके समान यह अपवित्र कर्म तेरी जातके ऊपर चढ़ जाता है।"

एकतालीस अध्याय समाप्त ।

शिशुपाल बोला, कि इस कृष्णकी दास जानके जिन्होंने इससे लड़ना नहीं चाहा था, वह महाबली बड़े पराक्रमी राजा जरासन्ध मेरे बड़े माननीय थे। जरासन्धके मारे जानेके कालमें केशव और भीमार्जुनने जो कर्म किया था, उसे कौन सुकर्म जान सकता है? इस कृष्णने कुहारसे घुसकर छलसे अपनेको ब्राह्मण कहके नरनाथ जरासन्धका प्रभाव मले प्रकार समझ लिया था। इस दुरात्माको उनके पहिले पाद्य देनेका उद्यत होने पर इसने तब धर्मात्मा वनके अपना ब्राह्मणार्थ दिखाके उसे नहीं लिया था। अजी कुरुक्षेत्र। जरासन्धने जब कृष्ण, भीम और धनञ्जयको भोजन करनेको कहा था तब कृष्णने वाधा देके बात नहीं मानी थी। रे भूर्ख! तेरे मतसे यदि यह जगका कर्त्ताही होगा तो अपनेको ब्राह्मण करके भली भांति क्यों नहीं जान लेता? सुभको सबसे बड़ा आश्चर्य यह जान पड़ता है, कि यद्यपि तुम पाण्डवोंको साधुओंके पथसे हटाते हो, तिसपर भी वे तुम्हारे अभिप्रायको भला समझते हैं, अथवा स्त्री स्वभावी वनके और अवस्था गवाके जब तुम इनके सब अर्थोंके दर्शानेवाले बने हो, तब इसमें आश्चर्य ही क्या है?

श्रीकृष्णायनजी बोले, कि उसकी कटार अक्षरोंको वज्रतेरो कटीलो बातोंकी सनम बलियोंमें श्रीष्ठ प्रतापी भीमसेन त्रावयुक्त जग। कमलदल सट्टर स्वभावकी छेले और जोरने लाल भवे दाने नेत्र और भी छेले और भवे

लाल वन गये । सब भूप त्रिकूट-चोटीके निकट वहती, तीन धारोंमें चलती गङ्गाजीके समान उनके लिलार पर त्रिशिखाकी भुक्तुटि-निहारने लगे । क्रोधके मारे दातसे दात पीसते हुए उनका मुखमण्डल मानी युगान्तके सब लोकोंकी निगलनेवाला कराल कालके समान दीख पड़ने लगा । वह महानचित्त वेगसे उठ रहे थे, कि ऐसे समयमें शशिभूषण जैसे पड़ानन को पकड़ते हैं तैसे महाभुज भीष्मजीने उनकी रोक लिया । हे भारत । पितामह भीष्मजीने भीमकी रोक कर वज्रविध वचनसे उनका क्रोधवेग शान्त कर दिया, क्योंकि लहराता हुआ महासमुद्र जैसे वर्षा वीतने पर तटकी भूमिके ऊपर नहीं चढ़ता, वैसे शत्रुदमन वृकोदर भीष्मजीकी बात पलट-नहीं सके । पर भीमसेनके क्रोधसे भरने परभी वीरवर शिशुपाल अपनी वड़ाई पर निर्भर कर कुछभी टला नहीं । हे शत्रुदमन ! सिंह जैसे छोटी मृगको टुकभी नहीं मानता, वैसे वृकोदरके वेगसे बारबार चढ़जानेकी इच्छा दिखाने परभी उनसे उसको कोई भय नहीं हुआ । भीम-पराक्रमी भीमसेनकी सब प्रकारसे क्रोधित देखकर प्रतापी चेदिनाथ हसता हुआ यह बोला, कि अजी भीष्म । उसे छोड़ दो । यह भूपवर्ग उसे अग्निसे पतङ्गकी भांति मेरे प्रभावाम्निसे जलजाति देख लेजें । अनन्तर चेदिनाथकी वह बात सुनकर प्राज्ञोंके मुखिये कुर्याष्ट भीष्मजी भीमसे पीछे कहे यह वचन बोले ।

व्याप्तिस अध्याय समाप्त ।

भीष्मजी बोले, कि यह शिशुपाल त्रिनेत्र और चतुर्भुज वनके चेदकूल में उपजा था और जन्मलेतेही गदहके समान चिन्नाया था, इस पर इसके पिता माताने वान्यवों सहित भय खाद्य वैसे विज्ञत लक्षणा देखकर इसे त्यागना

चाहा । अनन्तर स्त्री मन्त्री और पुरोहित सहित घवराये उन नरनाथ पर यह आकाशवाणी उचारी गयी, कि “हे नरनाथ । यह जी. तुम्हारा पुत्र उपजा है, यह बड़ा बली और शीमन्त होगा, सो इससे तुमको भय नहीं है, तुम बिना घवराये इस बच्चेको पालो । हे नरनाथ । तुम्हारे प्रयत्नसे इसकी मृत्यु नहीं होगी, अभी इसके मरनेका काल नहीं आया । शस्त्रसे जो इसे मारेंगे वह जन्मे हैं ” यह देववाणी सुनके माता पुत्रहोहसे वहुत दुःख मानत व उस अदृश्यभूतके उद्देशमें यह बोली, कि “मेरे पुत्रपर, जिन्होंने यह वाणी कही, वह भगवान चाहे देवता वा दूसरे कोई प्राणी हों, मैं कर जोड़ उनकी प्रणाम करती हूँ । वह सत्य करके और एक बात कहें, मैं सुना चाहती हूँ, कि कौन इस पुत्रका मारनेवाला होगा । अनन्तर फिर यह देववाणी हुई, कि जिन गोदमें रखनेसे इस बच्चेके दो अधिक भुज, पाँच सिरवाले दो सर्पोंके सदृश धरती पर गि जायगी और जिनको देखकर इसके लिलार परका यह तीसरानेत्र लोप हो जाय वही इसको मारेंगे ।”

त्रिनेत्रवान चतुर्भुज वालक और उसपर कहे देववाणीका वृत्तान्त सुनकर पृथ्वी भरके स नरेश उसे देखनेको आये । चेदिनाथने उनको यथा योग्य पूजा कर हर नरेशकी गोदमें पुत्रवंत रख दिया । इस प्रकारसे क्रमशः सहास्र वर्षोंकी गोदमें चढ़ने परभी बच्चे पर देववाणी का वर्त्ताव नहीं हुआ । दारकामें यह वृत्तान्त सुन यदुनन्दन महाबली बलराम और जनाईन यदुकन्या फृफीसे भेट करनेको उस सम चेदिनगरमें आये और ये छताके अनुसार राजराणीके पावमें लगके कुशल क्षेम पूछकर आर नोपर बैठे । अनन्तर उन दो वीरोंके पूजे जा पर राजमहिषीने वहुत अधिक प्रीतिमें स्वदामोदरकी गोदमें पुत्रको दे दिया । कुर्याष्ट

गोदमें जतिही उसके दो अधिक भुज गिर गये और निलार पर उपजा हुआ वह नेत्रभी अदृश्य हुआ। यह देखकर राणो व्यथा पाय भय खाय कृष्णसे वर मांग बीली, कि हे महा-भुज कृष्ण। मैं भयसे घबराय गयो हूँ, सुभ-को एक वर दो, क्योंकि तुम दुखियोंकी आश्रय प्रारंभ खायोंकी निर्भय करनेवाले हो। कृष्णकी ऐसी कातर वाणी सुनके यदुओके आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र उसको ढाढ़स देकर बोले, कि देवि। भय मत खाओ, सुभसे आप तो भय नहीं है। हे धर्मवति। मैं क्या वर दूँ, कहो सुभको क्या करना होगा, चाहे माय हो, वा असाध्य हो, मैं अवश्यही आपकी बात मानूँगा। श्रीकृष्णको वह बात सुनके उस समय राजमहिषीने उनसे कहा, कि हे महाबली यदुशार्दूल। मेरे लिये तुमको शिशुपालका सब दोष क्षमा करना पड़ेगा। हे प्रभो! यहो मेरी प्रार्थना है। श्रीकृष्ण बोले कि हे पूरुष। आपका पुत्र वधयोग्य भी हो तो मैं इसके सौ दोषोंकी क्षमा करूँगा, अतएव आप शोकयुक्त न हों।

भीष्मजी बोले, कि हे भीम! इस प्रकार गांधर्वकी वरसे अहङ्कारी बन करकेही यह बात कुबुज पापात्मा भूपाल शिशुपाल तुमको युद्धके लिये ललकार रहा है।

तैत्तलीस अध्याय समाप्त ।

भीष्मजी बोले, हे वृकोदर। तुम्हारे अक्षय भीमसे दान पर भी चोदपातिका युद्धमें लल-कारनको बुद्धि, उसकी अपनी नहीं जान पड़ेगी, इतना मन्देह नहीं, कि वह भीमसे शत्रुपक्षकी ही उपाय है। जालग्र-भरतकी इन हलाहलरत आज सुभको भयानक दुःख प्रदो भरत कौन नरेश वैता-रुद्धा करके रखता होगा। यह महाभुज भीष्मसे युद्धके नतीजाका भंश है, नारा-

यण निश्चयही उस तेजको हर लेना चाहते होंगी। हे कुरुशार्दूल। यह कुबुद्धि चेदिनाथ हम सबोंको अनादर पूर्वक शार्दूल सट्टश बद्धत हाकता, भिड़कता है।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि अनन्तर चेदि-नाथसे उस समय भीष्मका वह वचन सहा नहीं गया। वास्तवमें बद्धत क्रांभित होके फिर उनका प्रत्युत्तर करने लगा।

शिशुपाल बोला, अजी भीष्म! तुम भाट समान उठके सदा जिल्दो स्तुति गारहे हो, उस केशवका जा प्रभाव है, हमारे शत्रुओंका उतनाही हो। अजी भीष्म। परायी स्तुति पर यदि तुम्हारा मन चला हो, तो राजाको छोड़के क्यों इस जनार्दनका स्तव करते हो? जिन्होंने जन्म लेकर पृथ्वी फाड़ डाली, उन नरेशश्रेष्ठ बाहलीकनाथ दरदको स्तुति गाओ। अथवा जिन महाभुजके देवोंसे बने यह दो स्वाभाविक कुण्डल और तपे आदित्य समान प्रभावी दिव्य कवच सुहाते हैं, जिन्होंने इन्द्र समान पराक्रमी कठार जरासन्धको बाहुयुद्धमें जय किया आर देह अलग करदो थी, अङ्ग-राजके अधोश बाहुबलन साक्षात् सहस्रनत्र सट्टश सब चापधारियान श्रेष्ठ उन कणको स्तुति गाओ। अजी भीष्म! स्तुतिके योग्य विजातम द्राण आर अश्वत्थामा इन दो पिता-पुत्रकी सदा खुशामद करो। सुभको जान पड़ता है, कि इन दानामें एक स्त्रीधित हानसे चराचरयुक्त सब धरतीका नष्ट कर सकते हैं। अजी भीष्म। ऐसा एकभी राजा नहीं दीखता, जो युद्धमें द्रोण वा अश्वत्थामाके योग्य हासके, पर कैसे आश्चर्यकी बात है, कि इनकी स्तुति करनेको तुम्हारा जो नहीं चाहता। सागरसहित धरतीभरमें जो तुलना-रहित गिने जा सकते हैं, उन महाभुज राज-युद्धोंधनका, पल्लमें पण्डित अति विक्रमी राजा जयद्रथकी, लोकमें प्रसिद्ध पराक्रमी

किं एषाचार्य द्रुमकी, और भरताचार्य शारदत
 वृद्ध कृपकी छोड़के तुम केशवकी प्रशंसा क्यों
 करते हो? अति वीर्यवन्त भीष्मक, भूनाथ
 दन्तवक्र, यूपध्वज, भगदत्त मगधनाथ जयत्सेन,
 विराट, द्रुपद, शकुनि, बृहदश्व, अवन्तीनाथ,
 विन्द और अनुविन्द, पाण्ड, श्वेत, उत्तम महा
 भाग शङ्ख, अति माननीय वृषसेन, विक्रमी
 एकलव्य और महारथो अति वीर्यवन्त कलिङ्ग-
 नाथ, इन्हें छोड़के तुम केशवकी प्रशंसा क्यों
 करते हो? अजी भीष्म सदा स्तुति गानेही
 पर यदि तुम्हारा मन चले, तो शल्यादि भूपा-
 लोंका स्तव क्यों नहीं करते? अजो नृप ।।
 पहिले धर्ममाननेवाले वृद्धोंकोकया सुननेमें जब
 तुमने कोईभी बात नहीं सुनी है, तब मैं गाल
 बजाकर क्या कर सकता हूँ? अजो भीष्म! तुमने
 कभी यह बात नहीं सुनी है कि अपनी निन्दा वा
 प्रशंसा और परायो निन्दा वा स्तुतगान
 आर्थीकी रीति नहीं है। स्तवके अयाग्य इस
 केशवकी तुम्हारा सदा मोहवश भाक्त सहित
 स्तव करना किसीका प्रिय नहीं है। अजो
 भीष्म! केवल अपनी इच्छासे तुम कंसके
 पशुपालनेहार दास दुरात्मा जनमें क्योंकर जग
 भरकी पैठा रहे हा? अथवा यह बुद्धि भूलङ्ग
 पचीसी तुम्हारी प्रकृतिसिद्ध नहीं है, मैं तो
 यह बात पहिले कहदी थी। अजो भीष्म!
 भूलिङ्गनाम्नो एक पक्षिणी हिमाचलके पथके
 किनारे रहती है। उसके अर्थावरदी उलट
 पुलट वचन सदा सुन पड़ते हैं। वह सदा
 यह कहता है, कि “कोई साहसी कर्म मत
 करना, पर उसका यह समझ नहीं हातो,
 कि आपही बड़ा साहसी कर्म कर रही है।
 वह स्वल्पबुद्धि पक्षिणी भोजन करते हुए सिद्धके
 मुखसे दन्तीके बीचमें दवाये मांसके खण्डकी
 चोंचद्वारा खींच लेती है। अजो भीष्म! इसने
 टुकभी सन्देह नहीं है, कि वह सिद्धकी इच्छा
 पर जीती है। रे अधार्मिक! तू भी वैसी

कपटवाणी कहा करता है। इसमें सन्देह
 नहीं, कि तू भूपालोंकी इच्छा पर जीता है।
 क्योंकि लोकहिंसक कार्य करनेमें कोई तेरे
 समान विद्यमान नहीं है। श्रीनैश्म्यायनजी
 बोले, हे महाराज! अनन्तर चेदिनाथको
 बड़ी कटीली बातें सुनकर भीष्म उसे सुनाय
 यह वचन बोले, कि हा! मैं इन भूपोंहीकी
 इच्छा पर जीता तो हूँ, पर इन भूपोंकी मैं तिनके
 समानभी नहीं समझता। भीष्मके यह वचन
 कहते हो भूपवर्ग चिला उठे। उनमेंसे
 किसी किसी बड़े चापधारीके रोवें खड़े होगये,
 कोई कोई भीष्मकी निन्दा करने लगे और
 कोई कोई उनकी वह बात सुनकर बोले, कि
 “यह पापात्मा भीष्म वृद्ध हो करकेभी गर्व
 प्रगट करता है, सो इसे क्षमा करना उचित
 नहीं। हे भूपवर्ग! इस क्रोधित भीष्मका पशु
 समान मार डालनाही उचित है, अथवा सब
 मिल इसे सुखे तिनकेको आगसे भूज डालो।
 अनन्तर कुरुपितामह महानचित्त भीष्म
 राजोंके यह वचन सुनके उनसे बोले, अजो
 भूपो! देखता हूँ, बातें चुकने की नहीं है,
 क्यों कहते जाओग, क्यों क्यों बढ़तो जायंगी।
 पर अब मैं जा कहता हूँ, सब मान लगाय
 सुनो। मैं पशु समान माराही जाऊ वा तिनकों
 को आगसे भूजा जाऊ, पर तुम्हारे सिर पर
 यह भरपूर लात जमाता हूँ। अक्षय सत्त्ववान
 गोविन्दको हमने पूजा है, और वहभी यहां
 विद्यमान है। सो मरनका जिसकी बुद्धि दौड़ती
 हो, वह गदा चक्रधारी माधव श्रीकृष्णकी आज्ञा
 युद्धमें ललकारे और उसी क्षण मारा जाय इन
 देवकी देहमें ही लय हो जावे।

चौवालिस अध्याय समाप्त ।

श्रीनैश्म्यायनजी बोले, अनन्तर भीष्मका
 वचन सुन करकेही अति विक्रमी चेदिनाथ
 वासुदेवसे लड़नेकी इच्छा कर उनसे बोला,

अजी बनाईन । तुमको ललकारता हूँ, आओ मुझसे लड़ जाओ, आज पाण्डव सहित निश्चयही तुमका माहंगा । अजी कृष्ण ! तुम्हारे राजा नहीं होने परभी जिन्होंने भूपोंको छोड़के तुम्हारी पूजा की है, उन पाण्डवोंकी मैं तुम्हारे साथही सब प्रकारसे निःसन्देह नष्ट करूँगा । मैं मन्दबुद्धे । तू राजा नहीं, दास है, सो किसी प्रकार पूजायोग्य नहीं हो सकता, तिस परभी जिन्होंने लड़कोकी बुद्धिसे तुम्हें योग्य सा बनाव तेरी पूजा की है, मेरे मतसे वे निश्चयही बध योग्य हैं । राजशार्ङ्गल शिशुपाल क्रोधके मारे यह वचन बोलके गरजने लगा । उसके ऐसा कहनेके पीछे श्रीकृष्णचन्द्र पाण्डवोंके सामने राजोंसे धोमी धुनसे यह बात बोले, कि हे नरन्द्र ! यह निष्ठुरात्मा यादवीपुत्र मेरे आदि यादवोंका बड़ा शत्रु है, हम इसकी हानिकी चेष्टा नहीं करते तिस परभी यह बुराईमें कटिबद्ध होता है । हमको प्रागज्यातिपुरुषोंसे गये जानके इस निष्ठुरन मेरे पिताका भाआ होने परभी द्वारका नगरीको फूक दिया था । हे नरेश ! पहिले राजा भोज रैवतक पर्वत पर अवहार कर रहे थे । यह दुराचारी उनके सहचरोंकी मारके और बधकर अपन प्रभुकी पधारा था । मेरे पिताके अश्वमेध यज्ञमें विघ्न डालनेके लिये इस पापात्माने ताम्रजयके नामत्त अच्छे रखवारोंसे घरे परके नरन्द्रको घुराया था । तपस्वी अक्रूरकी भी यज्ञाने संवीर राज्यकी जा रही थी, इस दुराचारोंने उसकी इच्छा न रहने परभी उस शरीरको मोहसे हरण किया था । और भी मेरी माकी पुराई करनेवाले शिशुपालने कपट-यज्ञसे राजा कर्पक के वेशसे देह दुपाय उक्त यज्ञके लिये निहित विलासपतिकी पुत्री को हर लिया था । केवल फूफोंजोके लिये ही यह भारी दुखोंकी मह लेता हूँ । पर अब मेरे सामने यह प्रगट होना

सौभाग्य ही है । क्योंकि मुझ पर इसको अति विस्मयता आज आपने प्रत्यक्ष कर ली और इसने परीक्षमें मेरी जितनी हानि की है वह भी सबसुन चुके, वह चाहे जो कुछ हो, आज सब राजोंके सामने बध योग्य इस नराधमकी गर्ववश जो विस्मयता दीख पड़ी उसकी क्षमा मैं नहीं कर सकूँगा । इस मूर्खने मूढ़तासे मृत्युका अभिलाषी बनकर रुक्मिणीकी प्रार्थना की थी, पर शूद्रके वेद सुननेकी भाति उसका लाभ नहीं कर सका था ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, अनन्तर वे मिलित नरेशवर्ग वासुदेवको यह बात सुनके सब चेदिनाथकी निन्दा करने लगे । प्रतापी शिशुपाल उनका वह वचन सुनके जारसे हसकर यह बोला, अजी कृष्ण ! पहिले मेरे लिये निर्दिष्ट रुक्मिणीकी बात इस सभामें विशेष राजोंके सामने कहते तुमका लाज नहीं आती क्या ? अजी मधुसूदन ! तुम बिना दूसरा कौन अपनका पुरुष करके अपनी स्त्रीको साधु-समाजमें अन्य-पूर्वा कह सकता है ? अजी कृष्ण ! मन चले तो मुझकी क्षमा करो, नहीं तो न करो । तुम चाहो रिसाओ वा प्रसन्न हो, तुमसे मुझे क्या भय है ।

शिशुपाल ऐसा कहताही था, कि ऐसे समयमें भगवान् मधु-सूदनने मनही मनमें देख-गर्वनाशी सुदर्शन चक्रको करण किया । पल भरमें चक्र हाथने आजान पर भगवान् प्रभावकर वाक्योंमें यह बोले, कि हे भूपाल ! जिस हेतु इसके दोषोंकी क्षमा कीयी, वह सुनिये । इसकी मातान् मुझसे यह वर मागा था, कि "इसके सौ दोष क्षमा करने होंगे" और नेनेभी उनका मांगा वर दिया था । हे भूपो ! अब वह पूर्ण हुए । सो आपके सामनेही मैं इसकी माहंगा । अरिनाशी, यदुघ्नने यह कहके रिसाकर चक्रमें उसीक्षण शिशुपालका मिर काट डाला । महामुज शिशुपाल मानी वज्रसे घायल पलायन

समान गिर गया । महाराज । तब नरेशोंने देखा, कि आकाशतलसे आदिशसदृश तेजी-राशि शिशुपालकी देहसे उड़ गयी । हे नरनाथ । अनन्तर वह तेजीराशि लीकोंके नमस्कार योग्य उन कमल लीचन कृष्णके पावमें लगेकी उनकी देहमें मिल गयी । महाभुज पुरुषोत्तममें उस तेजकी प्रविष्ट होते देखकर सब राजोंने अचरज माना । श्रीकृष्णचन्द्रके चेदिनायकी मारने पर बिना वादल जलवृष्टि, प्रज्वलित वज्रपात और भूकम्प हीने लगा । वचनोंसे प्रकाशके अयोग्य उस कालमें किसी किसी भूपालने उनकी निहारके उस विषयमें चूँतक नहीं किया, कोई कोई रिसके मारे हाथसे हाथ मलते रह गये, कोई कोई क्रोधसे चेत खीय दातोंसे हाठ काटने लगे, कोई कोई छिपकर वृष्णिानन्दनकी प्रशंसा करने लगे । इस प्रकार कुछ नरेश अति रिसाये और दूसरे बीचमें रहे । महर्षिबृन्द केशवकी स्तुति गाते हुए प्रसन्न चित्तसे उठकर चल दिये । महात्मा ब्राह्मण लोगभी और महाबली महानचित्त भूपवर्ग कृष्णका विक्रम निहार प्रसन्न होय सब उनकी प्रशंसा करने लगे । आगे युधिष्ठिरने भाइयोंका काज्ञा दी, कि तुम दमघोषनन्दन वीरवर भूपालका सत्कार सहित तुरन्त सत्कारकाये कर डालो । उन्होंने तब बड़ भाईको आज्ञा पाली । पृथापुत्र युधिष्ठिरने भाइयों और उन सब राजोंसे मिलकर उस काल महीपाल शिशुपालके पुत्रका चौदराजके अधिकारमें अभिषिक्त कर दिया । अनन्तर अति तेजस्वी कुलनाथका वह सुखारम्भ किया हुआ सर्वसम्पत्तयुक्त प्रचुर धनधान्य और अन्न भरा वज्रभोजनका पूरा महा यज्ञ राजसूय केशवकी भली रखवारीमें विघ्नसे साफ और युवाओंका आनन्ददायी वनके सुहाया और युधिष्ठिरनेभी उसे पूरा किया । महाभुज भगवान् जनार्दनने शैरी-शार्ङ्ग-चक्र-गदाधारी होके अन्ततक उस यज्ञकी रक्षा की । इसके

पीछे क्षत्रिय कुलसे उपजे सब पृथ्वीनाथ यज्ञके अन्तमें अभिषिक्त धर्मात्मा युधिष्ठिरके सामने आकर बोले, कि हे धर्मज्ञ अजमीठ । आप सौभाग्य से बड़े चढ़े हैं, साम्राज्य आपकी हथेलीतले आ गया । हे महाराज ! इस कर्मसे आपने अजमीठोका यज्ञ बढ़ाया और बड़ा धर्मार्जन किया । हे नरनाथ । हम सर्व कामनाओंसे सब प्रकारसे पूजे गये हैं, अब यह कहना चाहते हैं, कि सब अपने अपने राज्यको जायंगे, सो आप वह आज्ञा दे ।

धर्मानाथ युधिष्ठिर नरेशोको यह बात सुन उनकी यथायोग्य पूजा कर भाइयोंसे बोले, कि यह सब शत्रुदमन राजगण प्रीतिसे हमारे निकट आये थे, अब निमन्त्रणकर अपने अपने राज्यमें जाते हैं, सो हमारे अधिकारके छोर-तक इन भूषणोंके साथ जाओ । धर्मचारी पाण्डवगण भाईकी आज्ञा मानें सर्व नरेशोंके पीछे यथार्थीत एक-एककर जान लगे । हे महाराज । प्रतापी धृष्टद्युम्न राजा धिराटके, धनञ्जय महारथी महात्मा याज्ञसेनके, महाबली भीमसेन भीष्म और धृतराष्ट्रके, याधर्पति द्रोणाचार्यके, नकुल-पुत्रसाहव राजा सुबलके द्रौपदीके पुत्र और सुभद्रानन्दन पहाड़ी महारथियोंके और दूसरे बड़े बड़े क्षत्रियोंके साथ चले । सहस्रों ब्राह्मणभी इस प्रकार भली पूजे जाय लौट चले । सब राजा और ब्राह्मणोंके चलेजाने पर प्रतापी वासुदेव युधिष्ठिरसे यह बोले, कि हे कुसुनन्दन । सौभाग्यसे आपने यज्ञश्रेष्ठ राजसूय कर लिया, अब आज्ञा करें, मैं द्वारकाकी जाऊँ । जनार्दनकी यह बात सुनकर धर्मानाथ उनसे बोले, कि हे गोविन्द । केवल तुम्हारी कृपासे मैंने यह बड़ा यज्ञ लाभ किया, तुम्हारीही कृपासे सब क्षत्रिय मेरे वशीभूत हुए, और अच्छे अच्छे उपहार वठोर कर मेरी उपासना की । हे अन्ध ! तुम्हारे बिना मैं कदापि प्रीति पा नहीं

स्कृता । सी तुम्हारे जानेके विषयमें क्योंकर कुछ कहें । पर क्या कहें, तुमकी अवश्य हारकानगरमें जाना है । धर्मात्मा अति योगवन्त श्रीकृष्ण चन्द्र ऐसा कहे जाय युधिष्ठिरके माथे पृथाके पास जाय प्रीतिसे बोलें, कि हे फली गणके पत्र अब सम्पन्न प्राप्तकरें कृतार्थ और संप्रदयुक्त हुए हैं । अतएव आप प्रसन्न होवें और आपकी आज्ञा पालनसे नैमी हारका जाज । अनन्तर केशवने सुमहेश और श्रीपतीसे भी विदा-कालके योग्य सन्वाषण किया । आग युधिष्ठिरके सहित अन्तःपुरसे निजमकर स्नान आन्धिक करके ब्राह्मणोंसे रक्षित कहायो । अनन्तर महाभुज दासक बादलकी देहके समान सजा सजाया रथ जीतकर आ पहुँचा । तब महानचित्त पुण्डरीकाक्षने गरुडध्वज रथको आ पहुँचते देखकर पारक्रमा दिके उस पर चढ़कर हारकाकी यात्रा की । श्रीमान धर्मानाथ युधिष्ठिर भाद्र्यों सहित महावज्रो वासुदेवके सड़ पैदल चले । तब बायींवर पहनेत्र हरि चणभर रथ ठहराव, धर्मानाथका बोलें, महाराज । सदा अप्रमन और उत्साही बनके प्रजा पालिये । बादल जैसे प्रजाओंके जिलानका कारण है, वड़ा वृक्ष जैसे पक्षियों का । जलानका स्तु है और पुर-पर जैसे अमरोंको । जलानेके उपाय हैं, वैसेही आप भक्तोंके उपजीव्य बने हैं । श्रीकृष्ण और श्रीपति ने ऐसा सन्वाषण कर एक एक लोके अपने अपने भवनोंकी पालन । महाराज । यदुवर श्रीकृष्णके हारका जाने पर तबसे राजा दुर्योधन और द्रुपद राजा नरक दास काल उन दिवस मरे ।

महाराज और शिरोपाल
प्रकरण समाप्त ।

यत प्रकरण ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भरतश्रेष्ठ । कुरुनन्दन दुर्योधनने शकुनि सहित उस सभामें टिके रहकर धीरे धीरे उसके सब भागोंकी देखा । वहा उन्होंने जो सब सुन्दर बनावटकी रीति देखी, पहिले हास्तनानगरमें कभी वैसे देख नहीं पड़ी थी । उस महान-चित्त राजा धृतराष्ट्र-पुत्रने किसी एकदिन स्फटिकके बने स्थल-भागके निकट जाय बुद्धिके मोहसे जल जान अपना चीर उतारा और उससे विमुख होनेके कारण उदास होय सभामें फिरने लगा । आगे स्फटिकके समान अमल जलभरे स्फटिकके बने फली कमलवाली एक तालको स्थल जानके वस्तु सहित जलमें जा गिरा । उसकी जलमें गिरते देखकर नौकर चाकर वृद्धत हंस और राजाकी आज्ञासे अच्छा चीर दिया । उसकी वह दशा निहारके उस समय महावली भीमसेन अर्जुन नकुल सहदेव सब हंसने लगे । रिसभरे सुयोधनसे उनकी वह हंसी सही नहीं गयी । पर बाहरी आकारको कृपायउस कालमुक्त उठाय उनकी और नहीं ताका मानो यह समझके कि जलको पार करेंगे, वह फिर चीर उतारस्थल पर आया । तिस परभी सबकोई फिर हंस उठे । एक बन्द स्फटिक कीडारकी निहारके खला जानकर दुर्योधन ज्यों प्रवेश करनेको था, त्यन्ही निरमें चोट खाय चेहरेसे छाया धी बँठा । वैसेही स्फटिकके दो बड़े बड़े किवाड़ सहित दूसरे एक स्थले हारकी बन्द जानकर दोनों छायासे खोलके निकलकर गिर पड़ा । फिर वैसेही दूसरे एक स्थले हारके निकट जाय फलिके समान बन्द जानके दान्त्य में हारके स्थानसे लौट आया । हे महाराज । नरेश दुर्योधन राजसूय मन्वायुर्जने उसी अधिका सम्यद देखके और सभामें उक्त स्थले बहविध वज्रा पाय शक्तमें युधिष्ठिरकी आज्ञासे प्रसन्न होय हास्तनानगरमें लौट आया ।

पाण्डवोंकी लक्ष्मीकी देखकर दुःखी होय चिन्तायुक्त चित्तसे जाते हुए राजा दुर्योधनकी बुद्धि पापसे पूरित हुई । कुरुश्रेष्ठ । महात्मा पाण्डवोंको प्रसन्न, सब भूषणोंकी उनके वशीभूत और बालकसे बृद्ध तक सब लोगोंकी उनका हित चाहने वाले देखकर तथा उनकी परम महिमाकी निहारके धृतराष्ट्रपुत्र खेदसे विवर्ण बना । मलिन मनसे जाते हुए वह धीमान धर्मनाथकी उम अनुपम सभा और सम्पदकी बातचीत सोचने लगा ; यहाँतक, कि वह इतना भूलासा बना, कि सुवलनन्दनके बार बार पुकारने परभी उसका कुछ उत्तर नहीं दिया । शकुनिने उसकी चंचलचित्त देखकर पूछा, कि तुम लक्ष्मी सास लेते हुए क्यों जाते हो ? दुर्योधन बोले, कि हे मामा ! महात्मा अर्जुनके अस्त्रके प्रतापसे जीती, इस सब धरतीकी युधिष्ठिरके हाथ लगते और देवलोकमें इन्द्रसे उन प्रभावी पृथापुत्रका वह यज्ञ पूरा होते देखके दुःखसे भरकर निश दिन जलनेसे मैं ग्रीष्मके अल्प जलयुक्त सरोवरके समान सूख रहा हूँ । देखिये शिशुपाल जब क्षुणासे मारे गये, तब ऐसा कोईभी वहाँ विद्यमान नहीं था, कि उनको रक्षाके लिये सहायता करे । पाण्डवोंसे बाले अग्निसे जल जाकर राजांने वासुदेवके उस दोषकी क्षमा करी थी, नहीं तो उसने जैसा अति अनुचित कार्य किया था काग कोई भी उसकी क्षमा कर सकता था ! केवल - महात्मा पाण्डुपुत्रोंके प्रभावसे वह सिद्ध हुआ था । - उसका यह एक प्रमाण देख लोजिये, कि नरेशोंने बह्विध रत्न वटोर कर वैश्योंके समान करदाता बनके पृथ्वीनाथी कुन्तीपुत्रकी उपासना करी थी । मैं हेतु करनेके योग्य था नहीं हूँ, पर तौभी युधिष्ठिरकी वैसी प्रकाशमती राजश्री देखकर डेपवल जल रहा हूँ ।

नरनाथ दुर्योधन उस अग्निसे जलकर यह

निश्चय कर, फिर गान्धारनाथसे बोला, कि हे मामा । सुभसे जीना बन नहीं पड़ेगा, मैं अग्निमें वा जलमें पैठूंगा और नहीं तो विष खाकर मर जाऊंगा । क्योंकि किस लोकमें कौन सत्त्ववान जन शत्रुकी उन्नति पर और अपनेको नोचे गिरा हुआ देखकर सह सकता है ? अब पाण्डवोंकी वैसी सीमाग्यमें देखकर मेरा सह लेना यह प्रगट करता है, कि मैं न तो नारी, न अनारी, न तो पुरुष न नपुंसक कुम्भी नहीं हूँ । क्योंकि यदि नारी होता, तो ऐसा व्यर्थ पुरुष बनके क्यों दुःख सहता, यदि नारी न हाता, तो क्षत्रियकुलमें जन्म लेकर पुरुषके कार्यसे क्यों चूकता ? यदि पुरुष होता, तो सौतकी सम्पद सहनेवाला नारीके समान सपत्नका दिया दुःख क्यों सहता ? यदि नपुंसक हाता-ता, व्यर्थ बड़ाईके अभिमानसे क्यों फूलता ? सो पुरुषका अभिमान रहते भी जब उसे नहीं दिखा सकता हूँ, तो कुम्भी नहीं हूँ, इसके बिना और क्या कहूँगा ? पूरी धरतीका अधिकार, वैसा धन सम्पद और वैसा यज्ञ देखके मेरे समान कौन दुःखी न होगा ? मैं अकेला वैसी राजलक्ष्मी हरनेकी असमर्थ हूँ, और सहायभी दोख नहीं पड़ते, सो मृत्युके साचमें हूँ । कुन्तीपुत्रकी महाजनसदृश वह अमल राजश्री निहार सुभी निश्चय जान पड़ता है, कि दैवही प्रधान है, पुरुषार्थ व्यर्थ है, देखिये, उसके नाशके लिये मैंने पाँहिले बड़ा प्रयत्न किया था, पर वह जलमें कमल समान सब पार कर बढ़ उठा है । सो मैं दैवहीकी श्रेष्ठ और पुरुषार्थकी व्यर्थ समझ रहा हूँ । क्योंकि पुरुषार्थ पर चलनेवाले धृतराष्ट्र पुत्रगण दिन पर दिन घटते हैं और दैवका आसरा ढूढ़नेवाले पृथानन्दनगण बढ़ते जाते हैं, हे मामा । वह श्री और वैसी सभा देखकर और रखवारोंकी वह हंसी सुनके अति दुःखी

वनके मानों अग्निसे मैं तपा जाता हूँ, सो आप मुझको मरनेकी आज्ञा दें। और मुझ पर इस विमर्षके छा जानेका हाल धृतराष्ट्रकी जनार्दन ।

द्व्यालीस अध्याय समाप्त ।

शकुनि बोले, कि दुर्योधन । युधिष्ठिरका प्रेम करना तुमको नहीं चाहिये, पाण्डव सदा अपना भाग्यही भोगत है । देखो, पहिले तुमने वैसे बड़े बड़े उपायोंसे बारम्बार उनको नष्ट करनेकी चेष्टा करी थी, पर वे नरव्याघ्र भाग्यकी सहायतासेही उससे बचे हैं । हे महाराज । उन्होंने द्रौपदीकी पत्नी लाभ किया है, पूर्वोक्त द्रुपद और वीर्यवन्त वासुदेवकी पत्नी लाभके सहाय प्राप्त किया है और पौत्रकर्म के अंगमें निराश न होकर उसे पाय अपन प्रतापसे बड़े चढ़े हैं, भला इस पर तुम्हारे द्वेषकी का सहायना हो सकती है ? अथवा तुमने पाण्डवकी प्रशंसा कर गाण्डीव शरासन, शर सपन भुजवीर्यके सहारे सब अपोंकी पराजित किया है, भला उसमें तुम्हारा द्वेष क्यों बढ़ेगा ? फिरभी शत्रुका दुःख हर्नहार है, तुमने अग्निसे जलनेसे मयदानवकी वचाय की उस सभाको बनवा लिया है, उस समयकी धर्मानुर नामक भवावने राक्षस उस भाई को जलाया करत है, भला इसमें तुमका द्वेष क्यों है भारत । तुमने जो अस-सहाय रही वह हीन नहीं है, क्योंकि तुम्हारे वशमें हैं, बड़े चापधारी शत्रु और उनके पुत्र, सुतपुत्र कर्ण, भीमार्जुन, युवनायक भीमार्जुन, सौमदर्शन, मैं भला कहूँ तुम्हारे सहाय हैं, इन सबके तुमभी लज धरतीका जय करो, तुमने हीन महाराज । आपकी आज्ञा हीन शत्रु के भयसे

मिलकर मैं पाण्डवोंको जय करूँगा । इनको जय करनेसे सब पृथ्वीनाथ और वज्रत धनभरी वह सभा मेरी हो जायगी । शकुनि बोला, कि धनञ्जय, वासुदेव, भीमसेन, युधिष्ठिर, ननुल, सहदेव द्रुपद, और उनके पुत्र, इनकी देवताभी युद्धमें जय नहीं कर सकते. वह सब महारथी हैं, बड़े चापधारी, अस्त्रमें पण्डित और युद्धमें कठोर हैं, पर मैं जानता हूँ, कि किस उपायसे युधिष्ठिर परास्त किया जा सकता है ! हे महाराज ! तुम उसे सुन लो और उसको मानी । दुर्योधन बोला, कि हे मामा । स्वजन और दूसरे महात्माओंकी प्रमादसे विनाश करनेके विना यदि जय करनका कोई उपाय हो, तो कहें । शकुनि बोला, कि कुन्तीपुत्र महाराज युधिष्ठिर खेल नहीं जानता है, पर चोरुड़का बड़ा प्रेम रखता है, खेलनेके लिये बुलानेसे वह कभी सुह नहीं मोड़िगा । हे कुरुकुलतिलक ! चौसड़में मुझे बड़ी दक्षता है, तीनों भुवन में मुझसे खेलनेमें तेज दूसरा नहीं है, सो चौसड़ खेलनेके लिये तुम उसको बुलवाओ । हे पुरुषवर महाराज दुर्योधन । चौसड़में मेरी जैसी चातुरी है, तिरसे मैं बिना सन्देह उसका राज्य और प्रज्वालित लक्ष्मीको जीत लूँगा । पर तुम राजाका यह बात जताओ, तुम्हारे पिता कहें, तो मैं अवश्यही उनको जय करूँगा । दुर्योधन बोला, कि हे सुवलकुमार । आप कुरुओमें ये छ धृतराष्ट्रसे न्यायक अनुसार कह सुनावें, मुझसे कहना नहीं बन पड़ेगा ।

सैंतालीस अध्याय समाप्त ।

त्रयोविंशत्यध्यायनामक । कि सुवलकुमार शकुनि गान्धारीपुत्रके साहचर्यनरनाथ युधिष्ठिरके उस महायज्ञ राजसूयके चार उसका प्रयत्न दुर्योधनकी वचनार्त सुनके उसका समाप्राय जानकर प्रिय करनेका इच्छासे जानकर

विराजमान प्रज्ञानित बड़े ज्ञानी महाराज धृतराष्ट्रके निकट जाय उसकाल यह बोला, कि हे महाराज ! दुर्योधन मलिन, दीन, मनहीन, पीला, दुबला बना है, सो आप उसकी ओर ध्यान करें । ज्येष्ठपुत्रका शत्रुसे उपजा असह्य चित्त-दहन शोक-कारण धर्ममें लाके क्यों नहीं जान लेते ? शकुनिसे इतना सुन धृतराष्ट्र दुर्योधनसे बोली, बेटा दुर्योधन ! तुम्हारा इतना कातर होनेका क्या कारण हुआ ? हे कुरुवर । यदि वह मेरे सुनने योग्य हो, तो प्रगट करो, यह शकुनि कहते है, कि तुम सैले पीले दुबले बने, पर सोच समझकर सुभाको तुम्हारे शोकका हेतु सूझ नहीं पड़ता, क्योंकि यह अपरिमित सम्पद सब तुम्हारे ही हाथमें है, तुम्हारे भाई, मित्र कभी तुम्हारा चित्त नहीं दुखाते, तुम सुन्दरसे सुन्दर चीर पहिनते हो, अच्छेसे अच्छे पलान्द खाते हो, सुन्दर घोड़ों पर चढ़ते हो, फिर तुम क्यों पीले दुबले बनते हो ? हे शत्रुजित । मूल्यवान सेज, मनहरेणी रमणी नानाविध साजसे सजे रह, मनमाने विचारस्थान यह सब देवोंकी भाति तुम्हारी आत्माके आगे प्रस्तुत है, तुम्हारी आज्ञा होतेही पल भरमें देने बनाये मिलते है, सो बेटा । ऐसी सम्पद रहतेभी तुम किस सोचमें पड़े हो ? दुर्योधन बोला, कि सुभाको खाने पहिरनका दुःख तो नहीं है, पर बुरे पुरुषके समान काल-परम्पराकी वाट ताक कर मैं गहरा सा गहरा दुःखभी सह रहा हूं । जो कोई शत्रुकी वृद्धिको सहनेमें अशक्त होवे शत्रुके दिये दुःखसे प्रजाको वचाय तथा उसे विपदमें डालकर विराजता है, वहीं पुरुष कहाता है, जो इस समझमें, कि मेरी सम्पद वज्रत जड़ै, सन्तुष्ट रहता है वह सन्तोषही उसकी जीसे रार मचाता है । अभिमान, दया और भयसे आकृष्ट होकर वह कभी उंचे पद पर चढ़ नहीं सकता है । मैं जो कुछ भोगता हूं, युधिष्ठिरकी जी देखकर उनसे मन चटता है,

कुन्तीपुत्रकी अति चमकीली राजश्रीही हमारी श्रीका काल बनो है । इस समय मैं उसकी जी तो नहीं देखता, पर तिस परभी वह मेरे मनमें मानी उकल रही है । शत्रुकी वृद्धि और अपनी हीनता देखहीके मैं मलिन, दीन, पीला, दुबला बना जाता हूं । युधिष्ठिर अठासी सहस्र गृह मेधी खातकोंकी हरेकके पीछे तीस तीस दासी लगाके पालता पोषता है ; इनके सिवाय इस देश सहस्र ब्राह्मण उसके घरमें नित्य सुवर्ण वर्तनमें अच्छा अन्न भोजन करते हैं । राजा काम्बोजने उसके यहां कदली ग्रामक छात्रों काले श्यामली, उजाले खाल और मूल्यवान कम्बल भेजे थे । राजभवनमें सैकड़ों, गजसौ खच्चर, घोड़े हाथी और तीस सहस्र जंत चरा करते है, राजा लोग उन सब उपहारोंके सहित आके एकत्रित हुए थे । पृथ्वीनाथ ! महायज्ञ राजसूयमें भूपोने कुन्ती पुत्रके लिये भाति भातिका वज्रत धन बटीराय वास्तवमें धीमान पाण्डुनन्दनके यज्ञमें जितं धन रत्नका ढेर लगा था, मैंने कहीं पहिले जाता उतना देखा और न सुना था । हे पृथ्वी नाथ । शत्रुका वह अनन्त धन देखके सद चिन्तासे आकृष्ट होके सुभाको सुख-चैन नहीं है । हीतादि वृत्ति भागनेहार गौ युक्त, सैकड़ों ब्राह्मण तीन खर्चके समान उपहार लेकर रखवारोंसे रुके जाय द्वार पर खड़े थे । वृत्त भरे सुवर्णके कमण्डल वलिके लिये लाके भीतर जा नहीं सके । देववाला द्रुपके लिये भी जो मधु नहीं ले जातीं, समुद्रजल सम्पत्ती वह मधु कासेके पात्रमें भर कर युधिष्ठिरके पास ले आयो थीं । सहस्र सुवर्णसे बने वज्रत रत्नोंसे सुहावने समुद्र-जलसे पूर्ण श्रेका और अच्छे अच्छे शंख लाके वासुदेवने उनका अभिषेक किया था । वह सब देखकर मनो मेरो देहमें ज्वर आगया था । हे पिता भरतयंष्ट ! श्रेका लेकर लोग पूर्वदक्षिण समुद्रमें जाते हैं

और पश्चिम समुद्रमें भी पधारते हैं पर खेचरी जातिके बिना कोईभी उत्तरी समुद्रमें जा नहीं सकता. अर्जुनने वहां भी जाय अपरिमित धन दंडाया था। विशेष लभ यज्ञमें औरभी आश्चर्य, लोका देखनेमें आई। वह कहता हूँ, सुनिये ऐसा संकेत निश्चय किया गया था, कि भोजनमें लगे ब्राह्मणोंकी संख्या लाख पूरीहो जाने पर एक एक वार शंख बजाया जावे। हे भारत। गरम्भार वज्रते ड़र, उस शंखकी ध्वनिको मैं सुना करता था, तिससे मेरे शरीरकी रोवें खड़े हो जात थे। महाराज! देखनेको आये बहतेरे भूपोके भर जानेमें वह सभा नचलमालाकी समान भूजावने अमल आकाशमण्डलसी सुहासिनी बनी थी। हे जननाथ। उन धीमान पाण्डवनन्दनके यज्ञमें पृथ्वीपाल नरेशवर्ग देश्योको भाति सर्वे प्रकारके राजाके साथ हिर्जाके पुरीसनेवाले बने थे। वास्तवमें जो श्री युधिष्ठिरमें विराज रही है, वह न यमराज, न इन्द्र, न ब्रह्मा, न शिव, न कसो को नहीं है। हे महाराज। पाण्डु-पुत्रकी वसो अनुपम श्री निहारके मेरा हृदय प्रभू रहा है, सुभक्तों किसी प्रकार चैन नहीं मिलता है। दुर्योधनको इस बात पर शकुन था। कि हूँ सजे पराक्रमी भारत। युधिष्ठिर-की तुमन जो यह अनुपम लक्ष्मी निहारी है, उसका पानका उपाय मुझसे सुनला। धरती पर भेर समान चौसड़ जाननवाली बहृत है। मैं चौसड़में हार जोत का भेद जानता हूँ। मुझे अनुसार वसो ड़ई वस्तुआका ज्ञान पाना भार देश कालादकी विशेषता सम-ज. युधिष्ठिरको चौसड़में प्रीति तो पर वह खिलना नहीं जानता, चौसड़ वा नो कय हराये जान पर वह अवश्यही नो भो कपटलेखे उसकी निश्चयही करता भार उसकी वड़ी सम्पदकी कय नो तुम उनका पुनवासा।

वह कहता है कि शकुनके ऐसा कहने

ही राजा दुर्योधनने उसीक्षण धृतराष्ट्रसे यह कहा, कि महाराज! यह चौसड़में दक्ष मामा चौसड़ खेलकर पाण्डु पुत्रोंकी सम्पत्त हरा चाहते हैं, सो आप उसमें आज्ञा दें। धृतराष्ट्र बोले. कि बड़े बुद्धिमान विदुर मेरे मन्त्री है, उन्हीकी परामर्शसे मैं सदा बना हूँ। सो उनसे मिलकर यह कार्य उचित है वा नहीं, इसका विचार करूंगा, क्योंकि वह बहदशी पुरुष धर्मकी सामने धर ऐसी अच्छी युक्ति कहंगा, कि जिससे दोनों और का मझल होवे। दुर्योधन बोला, हे महाराज। यदि विदुर आपसे मिलके परामर्श करेंगे, तो वह मेरी इच्छासे आपका चित टाल देंगे, आप जी हटावेंगे, आप ठुका भी सन्देह न कीजिये, कि मैं भी प्राण छोड़ूंगा। मेरे सरनेसे आप विदुरके सहित सुखो हंगे और पूरी धरतीकी भोगेंगे, मुझसे आपको का लाभ मिलना है। श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि दुर्योधनकी वह प्रेमभरी वातार वाणीका सुनके उसकी हा मे है। मिलाय धृतराष्ट्रन नांकरोंसे आज्ञा करी, कि मेरा आज्ञासे शिल्पी लोग मेरे लिये एक बड़ी विस्तृत सहलखभेवालो आर सौदार युक्त एक मनहरणी सभा रचे और वन जान पर तुम सब देशसे मणवालोका बुलवाय उस सभाकी रत्नसे खाचत करके सुखसे प्रवेश करने योग्य बनवाय मुझसे कहा। महाराज! भूपाल धृतराष्ट्रन दुर्योधनके चित्तमें शान्त पङ्कचानका ऐसा निश्चय कर विदुरके पास दूत भेजा : विदुरसे बिना पूछे वह स्वयं किसी काव्यकी कतव्यता नहीं निश्चय करते थे, और यह भी जानते थे कि चौसड़में बहृत दोष है, पर पुत्रक्षेपसे आहत थे, धीमान विदुर वह जोरा सुन, और यह समझके कि, भगव-का हार खद गया तदा सत्यानाशकी जट जसगयी, धृतराष्ट्रने पान करा। वह महात्मा ज्येष्ठ भ्राताके पास राव उनमें सर्वमें शिर

लुटाय यह बोले, कि महाराज ! मैं आपके इस निश्चयसे सहमत नहीं हो सकता हूँ। हे प्रभो ! ऐसा करें, कि पुत्रोंके बीचमें बिगाड़ न होवे। धृतराष्ट्र बोले, कि हे नृपति ! यदि देवोंकी प्रसन्नता हम पर बनी रहै, तो कभी पुत्रोंमें झगड़ा नहीं उभड़ेगा। अतएव चाहे शुभ हो वा अशुभ हो, हित हो वा अहित हो मित्रतासे चौसड़का खेल होने दो। इसने सन्देह नहीं, कि यह दैवी कार्य है। हे भारत ! मेरे तुम्हारे द्रोणके और भीष्मके निकट रहनेसे कभी दैवका कहा अनियम नहीं होने पावेगा; सो तुम पवन-समान तेज घोंड़ेवाले रथ पर चढ़के आजही खाण्डवप्रस्थको जाके युधिष्ठिरको लेते आओ। हे विदुर ! ऐसा मत कहना, कि मुझसे यह बात कही गई है; जिस दैवसे यह कार्य हो रहा है, मैं उसको प्रधान करके मानता हूँ। धृतराष्ट्रको इस बात पर विदुर यह शीघ्रते हुए, कि अब इस कुलका अन्त हो चुका बड़े दुःखी होय विजयवर भीष्मके निकट गये।

अदृतालीस अध्याय समाप्त ।

जनमेजय बोले, कि हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! हमारे दादे जिससे विपदमें पड़े, भाइयोंमें बड़ा अनर्थ मचाने वाला वह चौसड़ किस रीति पर हुआ था ? चौसड़सभामें कौन कौन राजा उपस्थित थे ? किन किनने उनको खेलनेमें बहकाया और किन किनने रोका । हे विजयवर ! मैं चाहता हूँ, कि आप विस्तृत रूपसे वह कथा कहें, क्योंकि वह पृथ्वीनाशकी जड़ था। श्रीमतीतिजी बोले, कि राजा जनमेजयके ऐसे पूछने पर सब वेदोंके जानकार महान चित्त श्रीव्यासजी के शिष्यने उस काल पूर्व कालका सब हाल कह सुनाया।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भरतश्रेष्ठ महाराज ! आप सुना चाहें तो फिर विस्तार

पूर्वक यह कथा सुनें। अश्विका-पुत्र धृतराष्ट्र विदुरका मत जानके दुर्योधनसे निरालेमें फिर यह बोले, कि विदुर ! चौसड़ खेलनेका प्रयोजन नहीं है, क्योंकर विदुरने इसकी प्रशंसा नहीं करो, यह बुद्धिमान पुरुष कभी हमारी अहित की बात नहीं कहता। विदुर जो कुछ कहते हैं, मैं उसे परम हित समझता हूँ, सो वेटा। तुम उन्हीका कहना मानो क्योंकि वही तुम्हारा हितकारी है। अमरोंके गुरु देवर्षि उदार बुद्धिमान भगवान् बृहस्पतिजीने धीमान् देवनाथको जो जो शास्त्र सुनाये थे महाकवि विदुर भेदसहित वह सब जानते हैं। हे वेटा ! मैंभी उन्हीको परामर्शसे सदा कार्य किया करता हूँ। हे नरनाथ ! अति बुद्धिमान उज्ज्वली जैसे वृष्णियोंमें प्रशंसित है, तैसीही मेघायुक्त विदुर कुरुक्षेत्रमें प्रधान गिने जाते हैं, सो वेटा ! जब वह असम्मत है, तो फिर चौसड़ मत खेले। चौसड़से मित्रोंमें बिगाड़ होना दीख पड़ता और मित्रोंमें बिगाड़ होनेसे राज्य जात रहता है, सो तुम यह इच्छा त्याग दो। पर पितृ माताका जा कर्तव्य सुना गया है उसीके अनुसार पितरोंके राज्यमें तुम बैठे हैं लिखे पड़े हैं, शास्त्रमें दक्ष भये हो, श्री गृहमें सदा पाले पोषे जाते हैं। हे महाराज तुम भाइयोंमें ज्येष्ठ होकर राज्यमें बैठे कौनसे सुन्दर पदार्थ नहीं प्राप्त करते हैं। जो भीज चोर साधारण के लिये दुर्लभ है तुम वह पाओ हो, बड़ा भारी पौत्रक राज्य तुमसे और बढ़े और सदा आज्ञा प्रचार कर स्वर्गमें पराज मान देवनाथके समान शोभा पाते हैं, इस पर भी क्यों शोक करते हैं ? वेटा ! तुम अज्ञान नहीं हो, जानने योग्य सब कुछ जानो, फिर भला कही तो सही, इस दुःखदाय शोकने क्यों तुमको घेर लिया ?

दुर्योधन बोला, कि हे महाराज ! मैं बड़ा पापी हूँ, इसीसे शत्रुकी उन्नति देखने पर मैं

खान पान कर रहा हूँ। शत्रुकी उन्नति देखनेसे जिसकी। क्रोध नहीं उमड़ता, पण्डित लोग उसे नीच पुरुष कहते हैं। है प्रभो! यह साधारण लक्ष्मी मुझे प्रीति नहीं देती, कृन्ती-पुत्रके राजलक्ष्मी विराजती हैं और पूरी धरतीका उसके पाव पर लोटती देखकर मैं गहरा दुःखसे घेरा गया हूँ, अधिक करा कहूँ, मेरा हृदय बड़ा कठोर है, इसीसे इतने दुःख परभी जीता हूँ। नोच, चित्रक, कौशुर कारभर और लोह जघमण युधिष्ठिरभवनमें टांगों की भाँति सिर नवाये रहते हैं धरतीके अन्तर्भागस्थित हिमालय, समुद्र, जलप्राय देश आदि सब रत्नाकर युधिष्ठिरसे परास्त हुए हैं। है पृथ्वीनाथ! युधिष्ठिरने मुझको ज्येष्ठ और वैद्य जानके सत्कारसहित रत्न वटोरनेमें नियुक्त किया था। वहाँ जितने रत्नसे बने बनाये अच्छेसे अच्छे पदार्थ आये थे उनका परिमाण नहीं धामता था। है भारत! उस धनके लेते मेरे हाथ रुक गये थे, मेरुधकन पर उपहार बटारनेवाले उपहार बटारनेको मेरी प्रतीक्षामें खड़े रहते थे। मयदानवने विन्दु सरावरके आस पाससे शत्रुकाके वहाँ जा एका स्फाटिक पद्मवाला बालम सरावर रचा था, उसको मैंने जलमेरा सड़ें सरावरके समान देखा था, उस अमसे ज्योंही मेरा पल उतारा त्योंही हकीदर मुझका शत्रुकी चरितसे भावित और रत्नवार्जित मानस हंस उठा। है नरनाथ! याद बन पड़ता मैं हकीदरका उसका बदला लनके लिय इस शत्रुकाके मारणा, पर याद उसे मारनका हकीदर देखा जाता। न सन्देह हमारो भी। शत्रु-पुत्रका नाम गीत होगी। है भारत! सपत्नको शत्रुका माना मुझको जला रही है। और शत्रुका, मेरा मन पाले बसही एक सच्चे शत्रुका। नमान जानके जलमें गिर गया है। पर शत्रुका नामके नाम मीठा शत्रुका मेरी शत्रुकी ही और शत्रुका भी

स्त्रियोंके सहित मेरा हृदय काटतो हुई हंसो थी। मेरा चीर भौंगने पर नौकरांन राजा की आज्ञासे दूसरा चोर लादिया था, वह भी मेरे लिये गहरा दुःख हुआ। है नाथ! और भी एक ठगनेकी बात कहता हूँ, सुनिये! ऐसा एक स्थान बना है, कि ठीक द्वारकी समान दीख पड़ता है, पर वास्तवमें द्वार नहीं है, उससे ज्यों निकलने पर था, त्योंही सिरमें बड़ी चोट आयी। तब नकुल रुहदेव दोनोंन दूरसे मुझको घायल देख कर दुःख दिखाय मुझमें मुझे धाम लिया, पर उस दशमें सहदेवन मानो मुसकिराते हुए कहा था, कि महाराज! यह द्वार नचा है, इधरसे जाइये। महाराज! भीमसेनने उस दशमें बड़े जारसे हंस कर मुझे ऐसे पुकार कहा था, कि एक "अजी धृतराष्ट्र-पुत्र!" द्वार इधर है। इनके अतिरिक्त मेरे और भी दुःखका हेतु यह है, कि पाँहली जिन सब रत्नोंका नाम तब नहीं सुना था, वे उस सभामें दीख पड़े।

उनचास अध्याय समाप्त ।

दुःखोधन बोला, है भारत! भूपालान नाना ठोरसे जा सब धन एकत्रित किया था और मैंने अपनी आंखोंसे देखा था उनका बात सुनिये। महाराज! शत्रुका वह धन देखकर मेरो बुझ जाता रहा और मैं अपने का भूल गया, अब यह सुनिये। किस देशसे कितना धन आया था। राजा कास्वजन भेड़ मूष (वहीकी रोवेसे अड़, सुवक जालसे मटे अगागत अच्छे अच्छे दुपट्टे और छाल, तीतर पक्षीके समान चिलकन तथा शहवय नाक वाली तानसा बाँटे और पालू, सभी तथा इन्द्रपल्लसे गुट तांगका साड़नी दी थी। है महाराज! मेरा धनमेकाज ब्राह्मण और शूद्र तान रत्न देखा था उपहार लाय समानेन जाने प्राय हर घर हर घर।

क्षेत्रादि वृत्ति भोगनेहारे गौयुक्त सैकड़ों ब्राह्मण घृत-भरे सुवर्ण कमण्डलका उपहार लाके भीतर घुस नहीं-सके। समुद्रतटके शूद्रगण कार्पासिककी रहनेवाली - प्यामली दुबली लख्खेवालवाली सुवर्ण अलङ्कारोंसे सजी सैकड़ों दासी, ब्राह्मणोंके योग्य अच्छे राज्जव और सृगकाल तथा गान्धार-देशी घोड़े यह सब उपहार बटोरके बटुर आये थे। सिन्धुपार और समुद्र तटके यह और पलवाड़ियोंमें उपजे जो मनुष्य देवमायक और रूहमायक धान्यसे जोविका कर लेने हैं, वे वैराम, पारद, आभीर और कितवनन बह्विध रत्न, सुवर्ण, बकरे, भेड़, गौ, जूँट आदि पशु, फलसे उपजे मधु और भाति भातिके कम्बलका उपहार लेकर सभामें जानेसे रोके जाय द्वार पर खड़े थे। प्रागज्योतिषनाथ स्नेच्छोंके स्वामी शूर बली महारथी राजा भगदत्त यवनों सहित वायुसे विगवान तेज-चलनेवाले सुजात घोड़े और दूसरे उपहार लेकर सभामें न जाने पाय द्वार पर खड़ा था। तब वह प्रागज्योतिषनाथ भगदत्त बड़े मूल्यवान मणिका बना आभूषण और अमल गजदन्तकी मूठवाले खड्ग देकर चलने पर जुआ। इनके आतिरिक्त मैने वहाँ अनेक देशोंसे आये दोनै लिलार-नेत्र औष्णिक, अन्तवासी रोम देशी नर भल्ली और एक पाव वालीकी द्वार पर रोके जाते देखा था। कर देनेको आये भूप वज्र तीरसे उपर्ज, अनेक जातिके, बड़े बड़े शरीर धारी काले गलेवाले, दूर जाने वाले, भले सिखाये पढ़ाये सब दिशाओंमें प्रख्यात, यथा प्रमाण और मनहरण वरण धारण किये दश सहस्र राषभ और अनेक सोना चांदीका उपहार ले आये थे, और वह सब देके युधिष्ठिरके यहा जा सके थे। एक पाव वाली इन्द्रगोप कीटके समान लाल शुक्ल, सन्ध्याके समय उगे बादल वरण इन्द्र-धनुषके समान शबल वरण, ऐसे नाना वर्णवाले मनको भाति तेज वनेले घोड़े और वज्रमय सुवर्ण

लाकर युधिष्ठिरकी दिया था। चोन शक औद्ध, वर्वर, वनवासी, दृष्टिवांशी, हारह कषाहिमाचल-वासी, नीप, अनूप आदि बह्विध लोग-उनकी भाति भातिकी अपरिमित वस्तु उपहारके जिये देनेको आके द्वार पर रोके गये। वज्रतवासी काले गलेवाले बड़े देह वाले सौकीस दौड़नेवाले यथा प्रमाण वर्णवाले और कूनमें कामल दशो दिसामें प्रसिद्ध, भले सिखाये पढ़ाये खर जनके सदृश बने राज्जव कोटज पट्टज आदि विनक-पासका बना चमकोला लच्छेदार पद्मसे सहस्रों चीर भेड़ोंकी कोमल चाल, बड़े बड़े तेज खड्ग, ऋष्टिक और परश्वध पश्चिम देशमें उपजे तीख-दार परशु, भाति भातिकी गन्धरुत और सहस्रों रत्नादि सहित सब उपहार लेके द्वार पर खड़े थे। शक, तुखार कङ्ग, रोमश आर शङ्खोलीग दूर चलनेहारे अगणित बड़े, बड़े गज, दश करोड़ पद्म सुवर्णादिका उपहार लाके द्वार पर रोके गये। पूर्वदेशी नरेश बड़े मूल्यवान आसन विश्वैनायान मणि काञ्चनसे बने सुन्दर कवच, भाति भातिके शस्त्र, सुवर्ण वाघ चालसे उँपे भले सिखाये बड़े सहित अनेक आकारके रथ, सुन्दर सुन्दर गज, कम्बल, अनेक भातिकी रत्न, नाराच अर्द्ध नाराच आदि बह्विध शस्त्र यह सब बड़ी बड़ी वस्तु देने परभो महात्मा युधिष्ठिरके यज्ञभवनमें जा नहीं सके।

पचास अध्याय समाप्त ।

दुर्योधन बोला, कि हे अनघ । भूपालने यज्ञके लिये युधिष्ठिरको जो अपरिमित धन दिया था, उन अनेक प्रकारके उपहारोंको देनेकी कथा कहता हूँ, सुनिये। जो सुमेरु और मन्दर गिरिवरोंके बीचमें स्थित शैलोदा नाम्नी नदीकी दोनों ओर कीचक नामक छिद्रवाली वासकी सुन्दर छाहगे बैठे सुख भोगते हैं, वह खस, एकासन, अर्द्ध प्रदर, दीर्घवेषु, पारद, कुलन्द, तन्नन, और परतन्नन भूपवर्ग चिटांटयोसे उठाये

पिपेलिक नामक द्वीप-समान सुवर्णका
 टेर लाये थे। महाबली पहाड़ीगण मंनहरण
 कालिवरणा और चन्द्रमा समान शुभ्रवरणा चँवर,
 हिमाचलके फूलोंसे उपजे वहुत स्वादिष्ट मधु,
 उत्तर कुर्से जल सहित माला, उत्तर कैलाशसे
 श्रीपद्म और दूसरे सब उपहार बटोरके सिर-
 नाय कर खड़े होके नरेश युधिष्ठिरके द्वार पर
 गीके गये थे। हे प्रभो! हिमाचलके आधे
 भागमें सूर्योदय शिखर पर, कर्ष देशीय समुद्र
 के तीरमें और लौहित्य पर्वतकी दोनों ओर
 मंनवाने भूपवर्ग और फलमूलाहारी चमड़ा
 परिधायो कुटिल शस्त्रधारी, कुटिल कार्यकारी
 किरातोंकीभी मैंने वहाँ देखा था। महाराज।
 'पृच्छग्याँ पर चन्दन, अगुरु, टेरके टेर चर्म-
 रत्न सुवर्ण और गन्धके पदार्थ, किरात जातिकी
 शश नक्षत्र दामो और दूरदेशी सुन्दर सुन्दर
 मृग तथा पक्षी बटोर बटोरके और पहाड़
 पदम्य से एकत्रित किये वहुत तेजयुक्त
 भूषण और दूसरे उपहार लेके द्वार पर
 रोके गये थे। हे पृञ्जोनाय! कौरात, दरद,
 दर्भ, शूर वैद्यमिक, श्रीदुल्हर, दुर्विभाग,
 पादर, नाभिक काशीर कुमार, घोरक, हंस-
 पक्ष, शिवतिगर्भ, गौधिय, सद्र, कैकय,
 शम्भु, कोर, तावर्, श्लेष, पल्लव, वशष्टि,
 शोभय, सुक मालक, पौण्ड्रक, कुङ्कुर शक,
 शत, पल्लव, शङ्खुशाणावत्य और गय यज्ञ सुजाति
 शीतल, शीत और शस्त्रधारी क्षत्रियगण
 शिष्ट शिष्ट नैकाड़ों सुद्रा लाये थे। हे
 भगवन्! उर, पल्लव, मगध, ताम्रलिप्त, पुरुड्रक,
 शैलविष, नागरज, पत्रोर्ग, शैशव और वज्रतेरे
 शीतल, शीत नाय राजशसन अनुसार
 शरणागते हुए कर्त गये, कि आप कालकी
 शरीर पर रखते हो और सुन्दर उपहार
 शरीरों में तारते भीतर जा सकेंगे।' आगे
 शरीर पर शस्त्रों की दोनो ओर
 शरीरों पर शस्त्रों की दोनो ओर

कक्ष-वाली कुथसे आच्छादित होनेके कारण मानो पद्म समान वर्ण वाली पहाड़ सदृश सदा उन्नत कवच लगाये, धीरज धरे अच्छे अच्छे कुलोंके दशसौ हस्ती देकर हारमें घुस सके थे। नाना दिशा तथा देशोंसे आये यह सब और दूसरे अगणित मनुष्य तथा महात्मा रत्नसे बनी वस्तु लाये थे। हे कुसुमन्दन ! महाराज ! इन्द्रके साथी चित्ररथ नामक गन्धर्वनाथने पवनके आग चलनेवाली चारसौ घोड़े दिये थे। गन्धर्व तुम्हरने प्रसन्न चित्तसे आमके पनेके रंगके सुवर्ण सदृश चमकीली सौ घोड़े दिये। शूकर नामक स्नेहके सुयोग्य भूपने सैकड़ों गज दिये। मत्स्यनाथ विराटने उपहारके लिये दो सहस्र सुवर्ण-वरण हस्ती बटोरे थे। हे नरनाथ ! राजा वसुदानने पाण्डुराज्यसे छत्तीस हाथी बैग और सत्त्वान युवा दो सहस्र सुवर्ण समान चमकीली घोड़े तथा दूसरे उपहार लाके पाण्डवोंको दिया था। हे महाराज ! राजा यज्ञसेनने चौदह सहस्र दासी स्त्री सहित दश सहस्रदास सेकड़ों गज, गज सहित छत्तीस रथ, यहा तक, कि अपना सब राज्य पाण्डवोंकी सेवामें धर दिया था। वृष्णि-नन्दन वासुदेव भी अर्जुनका मान बढ़ानेका चौदह सहस्र अच्छे हस्ती दिये, क्योंकि कृष्ण धनञ्जयकी और धनञ्जय कृष्णकी आत्मा है। अर्जुन कृष्णको जी ब्रह्म को न कहें वह सब बिना शङ्का पूरा कर सकते हैं, यही तब, कि वह धनञ्जयके लिये स्वर्गलाककीभी दाड़ सकते हैं और अर्जुनभी कृष्णके लिये प्राण तक सौंप सकते हैं। चाननाथ और पाण्डुनाथ मलयगिरिसे सुवर्णके षड़भर भरके अश्वि चन्दन-रत्न, दर्दर पर्जन्ये वज्रगिर्या पर चन्दन अगस्त्या देर, चमकीले मणिमय और सुवर्ण समान सुहावने घनले चीर यह सब पंजरके हार नहीं पा गये। मिथुन जन्मके मनुष्यका साहसक वैदिकसहित और संकीर्ण

लच्छे तथा सैकड़ों गज और कम्बलकी भेंट दी थी। लाल अपाङ्ग तथा श्याम अङ्गवाले, मनुष्य मणिके टुकड़ोंसे सजे चादरा लाके द्वारपर खड़े थे। युधिष्ठिरकी प्रीतिके लिये ब्राह्मण, अजैय क्षत्रिय, वैश्यवर्ग और शूद्रोंने भी भेंट दी थी। प्रीति और बड़े मानसे जे च्छे भी युधिष्ठिरके भवनमें गये थे। इस प्रकार उत्तम मध्यम और अधम सब भातिके कुलोंसे उपजे सब वर्णही वहा आजमे थे। नाना देसोंसे नाना जातिके लोगोंके बटुरनेके कारण जान पड़ता था कि मानो युधिष्ठिरके भवनमें समण्डल भरके लोग एकत्र आ मिले हैं। भूपवर्गकी भांति भातिका अपरिमित धन देने देखकर दुःखके मारे सुभसे मृत्यु की इच्छा हुई थी। हे महाराज। पाण्डवोंके जितने नीकर चाकर हैं और जिनके युधिष्ठिर कच्ची पकड़ी खिलाते हैं उनकी बात कहता हूं, सुनिये तीन पद्म अयुत फोलवान और घुड़-सवार सेना एक अर्बुद रथाखट्ठ और अगणित पैदल है। कहीं कच्ची भोजन-तामग्री तौली जाती हैं और पुण्य धुन सुन पड़ती है। वास्तवमें मैंने युधिष्ठिरके भवनमें सर्व वर्णोंमेंसे किसीकी विन खाया विन पीया, विन सज्जित नहीं पाया। ठासो सहस्र रहमेधी स्वातक विप्रोंकी हरेकके पोछे तीस तोस दासी नियत कर युधिष्ठिर पाल पोष रहे हैं। और वे भी सुपसन्न और सुष्टम होय उनके शत्रु-नाशकी कामना कर रहे हैं इनके अतिरिक्त युधिष्ठिर भवनमें दश सहस्र ऊर्ध्वरेता यतिलोग सुवर्ण पात्रमें भोजन करते हैं। हे पृथ्वीनाथ। कुबड़े वावने तककी भोजन मिला वा नहीं इसकी खाजके लिये द्रौपदी स्वयं झूखी रह कर पूछ पाछ करती फिरती है, हे भारत! विवाहसम्बन्धसे पाञ्चाल लोग और मित्रता से अन्यक तथा वृष्णिगण केवल यह टा कुन्ति पुत्रकी कर नहीं देते

नहीं तो और सब उनके कर-दाता बने हैं।

एकावन अध्याय समाप्त ।

दुर्योधन बोला, कि जो सब महानचित्त महाराज सत्यप्रेमी अतिव्रतक्षेमी, महाविद्यावान् अच्छे वात्सवान्, वेदान्त और यज्ञोर्मि दक्ष, धृति-रक्ष, लज्जाशील धार्मिक तथा यशोवन्त हैं, वे मूर्खभिर्पित्त राजालोग भी सब प्रकारसे युधिष्ठिरकी उपासना करते हैं। दक्षिणाके लिये राजोंसे लाये कासके बने एक एक दोहनेके पात्र सहित बद्धतेरो गाय ठौर ठौर देखी। हे भारत! अभिषेकके लिये नरेशवर्ग वहा धवराके मनसे नाना भातिके माण्ड सत्कार सहित स्वयं उठाय उठाय ले आये। राजा वालीक काञ्चन जटित-रथ लाये। राजा सुदक्षिणने उसमें कास्योजसे उपजे सादे चार घोड़े जोत दिये। महावली सुनीय प्रसन्न होय अनुकर्षण अर्थात् नीचे कि लकड़ी और चेदिनाय स्वयं उठाय ध्वजा लाये। राजा दाक्षिणात्य कवच, राजा मगध माला और पगड़ी, बड़े चापधारी वसु-दान साठ वर्ष अवस्थाके गजेन्द्र, मत्स्यनाथ सुवर्णसे आच्छादित अक्ष, एकलव्य दोनों जूते, अवन्तोनाथ अभिषेकके लिये बद्धविध जल, चेकितान तून, काशीनाथ धनुष और शाल्य शिख-धृत काञ्चन-भूषित सुष्ठियुक्त असि उठा लाये, अनन्तर बड़े तपश्चारी धोम्य और व्यासजी नारद, देवल और असित सुनियोकी आगे रख अभिषेकका कार्य करने लगे। महर्षि लोग प्रसन्न मनसे अभिषेकके निकट बैठे। जाम-दग्न सहित दूसरे वेदपात्रग महात्माभी ऐसे मन्त्र उच्चारते हुए बद्धत दक्षिणादाता युधिष्ठिरके निकट गये, कि जैसे देवलोकमें सप्तर्षि-गण देवराज इन्द्रके पास जाते हैं। उस कालमें सत्वे पराक्रमी सात्यकिने उनके सिर पर क्य

समाया । धनव्यय और भीमसेन पंखे डोलाने लगे और नकुल सहदेव खेत चंवर भालने लगे । जिस शङ्खको पूर्व कल्पमें प्रजापति जीने इन्द्रको दिया था, उस विजयकर्मासे सहस्र निष्कोमें भरी बने वरुण सम्बन्धी शंखको शिखरके ऊपर धरके समुद्र युधिष्ठिरके लिये लाया था । उस शंखसे कृष्णको उन्हे अभिषिक्त करते देखकर मैं मोहसे आकृष्ट हुआ । हे पिता ! लोग पूर्वसे पश्चिम समुद्रको जाते और दक्षिण समुद्रको भी पधारते हैं पर उत्तरी समुद्रमें खेचरी आतिके बिना कोई भी जा नहीं सकता । पाण्डवोंने उस स्थानमें भी शासन फैलाया है । शङ्खके सैकड़ों शङ्ख मङ्गलके लिये वजने लगे । उन सबोंके एकही कालमें वजनेसे बड़ा शब्द फँका, तिससे मेरी सब देहके रोंवे खड़े हो गये । वे भूप जिनको अपना कुश भी तेज नहीं है, उस शब्दसे धरती पर लोट गये । तब मन-युक्त वीर्यवान एक दूसरेकी प्यारे दिखने-प्यारे छुट्टायुग्म, पाँची पाण्डव सात्यकि और कृष्ण दृष्ट आठ उन भूपोंको घेत खीते और सुभाकी भाँति जाय धीते देखकर वज्रत हँसने लगे ।

हे भारत ! अनन्तर अर्जुनने प्रसन्न मनसे दक्षिणको सुवर्ण सिंग वाली पच सौ बैल दिये । वास्तवमें प्रभावो ब्रह्मनन्दन राजा युधिष्ठिर हरिश्चन्द्रकी भाँति इस प्रकार राज-स्य लाभ कर जैसे परम श्रीमान बने, न राजकुमार न नाभाग न यौवनाश्रु, न मनु, न कृष्णराज पृथु, न भगीरथ, न ययाति, न द्रुपद कोई भी पंसे नहीं होमके । हे विभीषण ! हरिश्चन्द्रके समान पृथा वमारकी भाँति हेतव्य नरा लीला क्योंकर मङ्गलदायी बन गये । हे नरनाथ ! अपने ही हार के लिये बल जीतनेसे वह जैसे जिधर गया है, जा-हे वैसेही विधाताने अपने धनके लिये धन को ही और कनिष्ठका लोहा बना दिया है, हे धर्म कनिष्ठकी दिन पर दिन

वृद्धि हो रही है और ज्येष्ठ निकृष्ट बने जाते हैं । हे कुसवर ! यह देखकर सब प्रकारसे आलोचना करने पर सुभाकी सुख नहीं मिलता है, इसीसे ऐसा दुबला, मैला और शोकसे बावला बना जाता हूँ ।

बावन अध्याय समाप्त ।

धृतराष्ट्र बोले, कि ऐ बेटा ! तुम मेरे सब बेटोंसे बड़े हो और बड़ी राणीके गर्भसे हो, सो पाण्डवोंका द्वेष मत करो, क्योंकि द्वेषकी इतना कष्ट होता है, कि मृत्युके कष्टसे कुछ भी विशेषता नहीं रहता । हे भरतज्येष्ठ ! युधिष्ठिर कपट करना नहीं जानता, तुम्हारे समान धन रखता और तुल्य मित्रोंसे घेरा जाता है ; विशेष किसीका द्वेष नहीं करता, सो तुम्हारे समान जनकी कब उसका द्वेष करना उचित है ? ऐ बेटा ! युधिष्ठिरके जितने अनुचर और वीर्य है, तुम्हारे भी उतने हैं, फिर तुम क्यों भाईकी लक्ष्मी हरनेकी मन दौड़ा रहे हो ? इतने लोभी मत बनी, मान जाओ, शोक न करो । पर यदि वैसी सम्पद चाहते हो, तो पुरोहित लोग सप्ततन्तु, नामक महायज्ञ करें । भूपवर्ग बड़े मानसे तुम्हारे लिये भी प्रीति सहित वज्रत धन और रत्न आभूषण ले आवेंगे । ऐ बेटा ! पराये धनको और हाथ बढ़ाना बड़े नीचका कार्य है, जो अपने धर्ममें बने रहके अपने ही धनसे प्रसन्न रहते हैं वेही सुख पाते हैं । पराये धन पानेकी चेष्टा न करना अपने कर्मका सदा उत्थम करना, और प्राप्त धनकी बचाना यही कल्याणके लक्षण हैं । विपदके कालमें न घबराकर, काममें व्यंता रहना, सदा उत्थमो धनना, अप्रमत्त और नम्रचित्त होनाही सदा लंगोका उत्थम-मूल है । देखो, पाण्डुपुत्र तुम्हारे भुज-स्वरूप हैं, सो उनकी मन कांछा, आर भाइयोंके उस धनके लिये मित्र-विगाहम

मर्त फंसो । हे महाराज ! पाण्डुके बेटोंका, कभी हेष मत करो, तुम्हारे भाइयोंका जितना धन है तुम्हाराभी उतनाही है । बेटा । मित्र बिगाड़से बड़ा अमङ्गल होता है ; देखो जो तुम्हारे दादे है वही उनके भी दादे है । हे भरतवर ! तुम्हारा चित्त बद्धत बिगाड़ा हो, तो यज्ञमें धन दान, प्रेमभरी कामनाओंका अनुभवे प्रीत शङ्का छोड़के कामिनियोंके साथ विचार कर शान्ति होओ ।

तिरपन अधोय समोपि ।

दुर्योधन बोला, कलच्छत्र जैसे दाल रिस चिख नहीं सकती, वैसेही जिसने बद्धतसे विषयोंको सुनी है, पर कुछभी धी-शक्ति नहीं रखता, वह कभी शास्त्रार्थ समझ नहीं सकता, पर आप समझ बुझके भी एक जोकसे जूड़े दूसरे जोकके समान भुझके भ्रममें डोल रहे हैं ; अथवा स्वार्थ पर आपकी दृष्टि नहीं है, या मेरा हेष कर रहे है ? वास्तवमें आपके शासनसे चलनेसे तो इन घृतराष्ट्रपुत्रोंको होचुका, क्योंकि आप चौसठसे शत्रुका धन लेनेके समान उपस्थित कार्यकी भावी अर्थात् यज्ञकालिक निश्चय करते है । जिसका बाट दिखानेवाला परायी शिष्टासे चलता है उसका बाट खीना बद्धत सेहज है, वैसे नायकसे चलाये जानेवाले क्योंकर सच्ची वाटसे चल सकते है ? महाराज । आपकी बुद्धि पक्षी होगयी, आपने वृद्धोंकी सेवा की और इन्द्रियोंकी जीत चुके हैं ; फिर हमको स्वकार्य साधन वारनेसे क्यों वारम्बार हटाते हैं ? देखिये, दृहस्पतिजीने कहा है, कि लौकिक व्यवहारसे राज्य-व्यवहार अलग है ; सो राजाकी अप्रमत्त वन सदा स्वार्थकी चिन्तामें मगन रहना चाहिये । महाराज । द्रुपदका व्योपार जयही पर बना है ; सो चाहे वह धर्म वा अधर्म हो, अवश्य ही करना चाहिये । जिससे अपनी बुद्धि निश्चित है, उसका फिर क्या विचार करना है ? हे

भरतयेष्ठ । सारथि जैसे लकड़ीसे घोड़ोंको बशमें लाता है, वैसे शत्रुकी प्रज्वलित श्री हरनेकी इच्छा रखनेवाले द्रुपदोंको बशमें करना चाहिये । चाहे गुप्त हो वा प्रकटित हो जिस किसी उपायसे शत्रु बशमें आजाय उसीकी शास्त्रोंके जानकारोंकी शस्त्र कहे सुनी है, जिससे काटा जाता है वह शस्त्र नहीं है । हे नरनाथ । दसकी कोई जिखापट्टी वा प्रमाण नहीं है, कि कौन शत्रु वा मित्र है । जो जिसकी देख पड़चाता है, वही उसका शत्रु कहा जाता है । हे महाराज । असन्तोषही सम्पदकी जड़ है, सो मैं उसकी ग्रहण कर रहा हूँ । प्रसी उन्नतिको प्रयत्न करता है वही अनियमका जानकार है । सम्पद वा धनका मंकिरना उचित नहीं है ; क्योंकि पहिले बटोरा धन किसीसे हराभी जा सकता है । कि बलसे हर लेनाही राजाका धर्म क गया है । देवराज इन्द्रने द्रोह न करनेका ठानने परभी नमुचिका सिर काटा था । श ऐसा सनातन व्यवहार करनेमें उनकी समथी, इसीसे उन्होंने ऐसा किया था । सर्प गिड़ में पड़े मेढक आदि जन्तुओंकी निजाता है, वैसे विरोध न करनेवाले राजा अरुह न छोड़नेवाले सन्तानोंकी धरती निजाती है । हे पृथ्वीनाथ । परुषका स्वभाव है वना एकभी शत्रु नहीं है ; जिसके साथ तु व्योपार रहता है, वही शत्रु है, दूसरा न बढ़ते हुए शत्रुका जो मोह वा उपेक्षा कर है, क्रमसे बढ़तो हुई व्योधिके समान वह शत्रु ही उसकी जड़की काट देता है । वृक्ष जड़से उपजी दीवक जैसे विना विलम्ब उस मार डालती है, वैसे छोटा शत्रुभी पराक्रम बढ़ता जाय ; तो दूसरे पक्षकी शीघ्रही नष्ट देता है । हे अजमीठ । शत्रुकी लज्जी आप प्रीति न दे ; देखिये, सत्वान मनुष्यकी निवारण रूप भार सिर पर चढ़ाना चाहिये ।

अन्नादि त्रीवदेहकी, स्वाभाविक वृद्धिके समान
अर्थकी उन्नति चाहता- है, वह बिना सन्देह
ज्ञानियोंमें बढा करता- है । वास्तवमें विक्रमही
शोध बढ़नेका हेतु- है । वास्तवमें सम्पद, बिना
हाथ लगे में फिर, सुखसे सी- नहीं, सकूगा ।
में चाहे उस त्रीकी लाभ करूंगा, और नहीं- तो
युद्ध- तो जाजगा । हे- महाराज ! हमारी
उन्नतिका निश्चय नहीं, पर पाण्डव- सदा बड़े-
आतं है, सो ऐसी दशमें भरे, जीनेका- क्या-
प्रयत्न है ?

चौवन अध्याय समाप्त ।

शकुनि बाला, कि- है, ज्यो-शिरोमणि
दुःखावन । पाण्डुपुत्र-युधिष्ठिरकी- जिस लक्ष्मीकी
देखकर तुम- दुःख करते हो, मैं चौसड़से उसे
भर लूंगा । हे महाराज ! उनकी वृत्तवाञ्छी ।
देखा, जाननेवाले चौसड़ द्वारा चढ़के, न जानने-
वालोंको परास्त करते हैं । हे भारत ! वाजी
मेरा चाप है, अक्ष वाण हैं, अक्षोंका भीतरा
भाग गुण है और कपट चाल, मेरा रथ है ।
दुःखावन बाला, कि महाराज ! यह चौसड़के
सुजन मामा चौमड़ खेलके, पाण्डवोंकी- राज-
द्वारलोकका उत्साह करते हैं, सो आप उसकी
आज्ञा दीजिये । धृतराष्ट्र वाले, कि मैं महात्मा
आपका पिदुरज- शासनसे बना हूं, सो उससे
मैंने यह कार्य लाचत है- वा- नहीं उसका
करना । दुःखावन- बाला, कि हे
महाराज ! विदुर पाण्डवाका हित- जतना दूढ़ते
महाराज-सा नहीं करते, सो वह बिना
आपके इस कार्यसे आपकी बुद्धि, टाल देंगे ।
महाराज परापी गुड़बल लेके पुत्रपुत्री
आपको करना चाहिये, क्योंकि कार्य-
की-सा मत पक्ष नहीं होता । नुरा
आपके भाद भयानक कार्यकी तज
कर कर पायेंगे अशक्त कीटके
बना हुआ रहने बढ जाता है ।

मनुष्यके मङ्गलके लिये व्याधिभी बाट नहीं
निहारती- और- यमराजभी त्रासरा
नहीं जोहते सो, जब- तक व्याधि नहीं- है,
तबतक- मङ्गल- पानेकी- चेष्टा करनी
चाहिये । धृतराष्ट्र- बोले, कि ऐ- बेटा !
बलियोंसे भागड़में- हाथ डालनेकी इच्छा
कदापि- मुझे प्रिय नहीं- है । देखो, शत्रुता
विकार लाती है, और वही बिना- लोहेका- बना
शस्त्र, बन जाता- है । हे राजकुमार ! भागड़ा
उपजानेवाले भयावन- चौमड़- रूपो- अनर्थको
तुम अर्थ समझ रहे- हो, किसी प्रकार एक
वार उसमें फंसनेसेही तेज- अस्त्र और सायक रचे
जाते हैं । दुःखोंधन बोला, कि पूर्वकालवाले
चौसड़की- रीति बना गये हैं, उसमें नती सत्या-
नाश और न युद्ध-लीला- होती- है, सो अब
शकुनिकी- बात पर- जी जमाय, आप शोध
सभा रचनेकी आज्ञा करे । देखिये, चौसड़में
फंसनेसे हमारे शत्रु, हराने-रूपी, स्वर्गके- द्वार
खुल जायंगे । वास्तवमें, उसके करनेवालोंके
लिये उस प्रकार- सहजमें, हाथ लगनेवाला
स्वर्गही याव्य है । ऐसा होनेसे आपसे पाण्डवों-
कीभी तुल्यता होगी, सो आप उनसे चौसड़का
प्रबन्ध कोजिये । धृतराष्ट्र वाले, कि तुमने जो कहा,
उस पर मेरा मन नहीं चलता है । हे नरनाथ-
जो तुम चाहो, सोही करो, पर उस रीति
पर- कार्य करके पीछे पड़ता-प्रोगे । क्योंकि
ऐसी अधर्मयुक्त बात कभी- हित नहीं कर
सकती । बुद्धि-विश्वसे चलनेवाले दूरदर्श
विदुरन- यह सब जाना था, अब चरित्र-प्राण-
नाशो वह बड़ा भय देववश आ खड़ा हुआ ।
देवशम्भावनजो बालि, कि दशसे चित्त
खाये महावाचन- राजा धृतराष्ट्रन- देवदोंको
अच्छ और उनसे पार पानेके अदोक्त समझके
यह बातें पढ़के पुत्रपुत्री- बात पर- मान जमाय
नापर पाण्डवों- विविध आशा दी, अब तुम
मान लगाय रहने- रहनेवाली, सुखमें- देव-

आदिसे सुहावनी सौ चारवाली, लम्बाई में सौ सौ कोस फैली, तोरण-स्फटिक नामक शीघ्र एक बढ़िया सभा रची । तब सहस्रों प्रज्ञावान शिल्पियोंने उनकी आज्ञा सुनके त्वरा लगाय शङ्का भगाय, धान जमाय वे त्रिलम्ब वैसी सभा बनाय, उसमें सब वस्तु लाय धरी । आगे प्रसन्न मनसे उस सत्य कालमें बनी, नाना रत्नोंसे बनी ठनी सुवर्णसे खची, नाना वरणोंके आसन विछी मनहरणी तथा सुहावनी सभाकी बात राजासे कह सुनायी । आगे विद्यमान नरनाथ धृतराष्ट्र मन्त्रियोंमें प्रधान विदुरसे यह बोले, कि तुम मेरी आज्ञासे राजकुमार युधिष्ठिरके निकट जाय उनकी शीघ्र यहां लेते आओ । वह भाइयोंसे मिलके मेरी यह बहुरत्नजटित मूल्यवान सजआसनोंसे आच्छादित सुन्दरतासे सुशीभित सभाकी निहारें और इसमें मित चौसड़ खेलें । श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि महाराज ! नरनाथ धृतराष्ट्रने पुत्रका मत जान और दैवकी अपार मान ऐसा किया । उस समय विज्रवर विदुर अनुचित रीति पर ऐसे कहे जाय भाईकी हांसे हा न मिलाय यह बोले, कि महाराज ! आपकी यह आज्ञा सुनके अच्छी नहीं लगती ; आप कदापि यह न कीजिये । मैं कुलका मूल उखड़नेका भय खाता हूं । हे नरनाथ ! सुभकी यह शङ्का होती है, कि चौसड़से आपके पुत्रमें भेद हूँके निःसन्देह विगाड़ मचेगा ।

धृतराष्ट्र बोले, कि विदुर । यदि दैव विरोधी न बने, तो विगाड़सेभी सुभकी दुःख नहीं पड़ेंगेगा । देखो, यह विश्व स्वाधीन नहीं है, दैववश स्थापित करनेहारे विधाता-हीके नियमसे चिह्नित हो रहा है, सो मेरे शासनसे आज तुम कुन्तीकुमार अजेय राजा युधिष्ठिरके निकट जाय उनकी तुरन्त ले आओ ।

पचपन अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि राजा धृतराष्ट्रसे वलपूर्वक नियुक्त होकर विदुर सुशिक्षित वृद्ध वेगमण्डित, श्रेष्ठ, बलिष्ठ घौड़ोंके द्वारा इन्द्र प्रस्थको महानचित्त पाण्डवोंके निकट गये । वह बड़े बुद्धिमान धर्मात्मा नरनाथ युधिष्ठिरकी राजधानीकी बाट लेके उनके समुख आय स्तुति गवइये-हिजोंसे पूजे जाय उसमें गये ; आगे कुवेरभवनके सदृश राजभवनको पाय धर्मपुत्र युधिष्ठिरके पास जा पड़ेंगे । अब मीढनन्दन सत्य-सदन साहात्म्यवान राजा युधिष्ठिरने उनकी यथावत पूजाकर अन्तमें धृतराष्ट्र और उनके पुत्रोंकी कुशल-चेम पूछी युधिष्ठिर बोले, कि हे चत्त । आपका चित उदास दीखता है, आप कुशलसे तो आये धृतराष्ट्रके बेटे, उनके विरोधी तो नहीं बने प्रजा भी तो उनके वशमें है ? विदुरजी बोले, कि हे महाराज ! ज्ञातियोंसे घेरे इन्द्र समान भाग धरे महात्मके पूरे राजा । धृतराष्ट्र पुत्रों सहित कुशलसे है ; वंचे सिर नाये पुत्रोंसे मन मिलाये शोकसे हाथ धीये मन दृढ किये अपनी उन्नति पर सन्नद्ध है । पर कुर्सीनयन तुम्हारी कुशल चेम और धनादिके व्यर्थ नाशका प्रश्न पूछके यह कहा है, कि ऐ बेटा । तुम्हारे भाइयोंकी यह सभा तुम्हारी सभाकीसी बनी है, सो तुम आय इसे निहारो । हे पौर्य ! भाइयोंसे मिलकर इस सभासे मित-चौसड़ खेली और आनन्द लूटो, तुम्हारे आनेसे हमभो प्रसन्न होगे और सब एकाग्रत कौरव भी सुख पावेंगे । हे महाराज ! महात्मा राजा धृतराष्ट्रने वहा जिन चौसड़वांजोंको नियुक्त किया है, उन कर्पाट-यांको तुम वहा बैठे पांथीगे, इसीकी कहनके लिये वहा आया हूं । सो इस राजाज्ञाकी पालन करो । युधिष्ठिर बोले, कि हे चत्त ! चौसड़ खेलनेमें हममें विगाड़ द्वीना यदि निश्चय ही, तो कौन समझ भूषाकर उस विगाड़ पर मन चलावेगा ? आपही क्या समझते हैं,

कर दीजिये, हम तो आपहीकी बात पर बने हैं। विदुरजी बोले, कि मैं भलेही जानता हूँ चीमड़ अनर्थ की जड़ है, और इसे रोकनेके विषयमें बड़ा प्रयत्न भी किया था, तिस पर भी राजाने सुभको तुम्हारे यहां भेज दिया है; सो है विद्वान्। यह सुनके जो कुछ उचित हो करो। युधिष्ठिर बोले, कि राजा धृतराष्ट्रके अतिरिक्त पुत्रोंके वहां कौन कौन दूसरे कपटी खेल्नेकी बैठे हैं? जिन चौसड़बाजोसे भिक्षुके हमको अपरिमित धनसे खेलना होगा, उसकी बात पूछता हूँ, कहिये। विदुरजी बोले, कि हे पृथ्वीनाथ। चौसड़के बड़े जानकार मर्यादा छोड़के खेलनेहारे फोकनेमें तेज काय गान्धारनाथ शकुनि, राजा विविंशति, वितसेन, सत्यव्रत, पुरुमित्र, और जय यह सब चौसड़बाज वहां उपस्थित हैं। युधिष्ठिर बोले, तब तो बड़ा बड़े बड़े कपटी धूर्त चौसड़बाज का मिले है; पर मैं क्या कर सकता हूँ, विधानकी आज्ञासे देववश यह सम्पूर्ण जगत् विद्वान् है, यह कदापि स्वाधोन नहीं है। हे भवः। पिता सदा पुत्रको इच्छासे चलते हैं; सो मेरे पुत्रका पक्षपात करनेवाले राजा धृतराष्ट्रकी आज्ञासे भगड़ीले चौसड़में फसना नहीं चाहता, पर आप सुभको जैसा कहेंगे, अवश्य वही करूंगा। फिर यदि शकुनि गाल बजाय भयं मभयं न बुलावे तो मैं बिना इच्छा उससे न खेलूंगा, मेरा सदासे यह नियम है, कि राजा से कदापि मुझ नहीं मोड़ता।

कौशल्यायनी बोले, कि धर्मनाथ विदुरसे राजा के पाठा योग्य सज्जन धर्मकी आज्ञा के अनुसार दिन रात, द्रौपदी आदि नारी के साथ रहते पधारें; कोई तेजयुक्त शत्रु और जो नर नरकी शक्ति हर होता है, उसे उचित मर्यादा दुर्ग सुभा देता है; और राजा के नामसे प्रत्येक विपत्तिका भयमें ही राजा के नामसे प्रबल प्रबल दुर्गिष्ठ

उस बुलावेका कुछ विचार न कर विदुरके साथ चले। - कालके नियमानुसार धृतराष्ट्रसे बुलाये जाकर शत्रुनाश-राजापाण्डुकुमार वाहीकदत्त रथ पर चढ़के वेश पहिरके और राजलक्ष्मीसे प्रकाशित होके ब्राह्मणोंकी आगे, कर भाइयो-सहित हस्तिनापुरकी गये। वहां पहुंचकर वह धर्मात्मा वीथ्येवन्त महाभुज प्रभु, धृतराष्ट्रके भवनमें जाय उनसे मिले। पहिले उन्होंने भीष्म, द्रोण, कर्ण, कृप और अश्वत्थामासे मिलके यथारीति वन्दन आलिङ्गनादि किये, पीछे सीमदत्त, दुर्योधन, शल्य, शकुनि, दुःशासन आदि भाइयों, जयद्रथ, सब कुत्सो, तथा जितने भूप वहां पाहिलेसे आये हुए थे, उन सबोंसे भेंट की। तिसके पीछे वह महाभुज सब भाइयोसे मिलके धीमान महाराज धृतराष्ट्रके वासगृहमें गये। वहां वह तारोसे सदा घिरी रोहिणीकी भांति पुत्रवधुओसे घिरी पतिव्रता सती गान्धारीसे भेंट कर उनके पाव लगे। और गान्धारोनेभी उनकी अशोक्त दिया। अन्तमें युधिष्ठिरने वह पिता प्रभु धृतराष्ट्रको भेंट की। हे महाराज! राजा धृतराष्ट्रने उनके और भीमसेन आदि दूसरे चार पाण्डवोंके सिरका दान लिया। कौरव-लोग सुन्दर दर्शनीय पुरुषव्याघ्र पाण्डवोंकी निहार कर सब प्रसन्न हुए। अनन्तर पाण्डव-गण सबको आज्ञासे रत्न-सांख्यत रत्नमें गये, वहां पहुंचने पर दुःशला आदि दारिद्र्य न उनकी भेंट। द्रौपदीकी परम प्रकाशमती उन्नति देखकर धृतराष्ट्रजी पुत्रवधुओंकी आर्से पीरायी। पुरुषव्याघ्र पाण्डवोंने स्वियेमें वार्त्तालापकर व्यायामपुर्जक निवृत्त हुए कर सज्जन लिया। यानी दिव्य चन्दन लगान आन्धिक कर तीकर दारिद्र्य इच्छा पर प्राप्त होनेकी शक्ति जायावत, सुन्दर अर्थ में प्रसन्न करनेकी शक्ति दधि; यानी जो दधि दान देता है, सब पाव प्रीति मज्जित करके ही दान सुनने

झर सींगये ! शत्रुपुरजयी कुरुश्रेष्ठ वह शंभुरात
रतिविहारसे कठी, वे सुखसे सीर्य, यकावट मिटाय,
वन्दियोंसे स्तुति किये जाय, सबेरे उचित समय
पर नौदसे जग उठे और आहिक कृत्य कर
जुआड़ियाकी प्रणाम नमस्कार लेते झर सुहावने
सभा-मण्डपमें गये ।

छप्पन अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि युधिष्ठिरादि
पाण्डव सभामें जाय, भूपोंसे मिल, पूजनीय
जनोंकी पूज और अवस्थाकी अनुसार सभीकी
गले लगाय और सम्भाषणादि कर बड़े मूल्यवान
चादरोसे ढंके आसनों पर विराजे । उनके
और सब दूसरे नरेशोंके आसनो पर बैठने पर
सुबलकुमार शकुनि युधिष्ठिरका पुकारके यह
बोला, कि महाराज ! चौंसड़ खेलने और
तुमका देखनेका आये भूपोंसे सभा छांगयो है ;
सब तुम्हारी बाट ताकत है ; सा अब चौंसड़
गिराय खेलका नियम बना लेना चाहिये ।

युधिष्ठिर बोले, कि हे राजन् ! कपटचौंसड़
बड़ा पाप है, इसमनता क्षात्रधर्म दाख पड़ता
और न कोई निश्चित नोति है ; फिर आप
जूएकी प्रशंसा क्यों कर रहे हैं ? देखिये, ठग-
नमें जुआड़ी जैसे बड़ाई मानते हैं ; बुद्धिमान
लाग उसकी टुकभो प्रशंसा नहीं करत है ?
सो है शकुनि ! नष्टुरकी समान हमका अनुचित
रीतिसे मत हराना ? शकुनि बोला, जो बड़े
बड़े जुआड़ो हार जीतको संभल रखते हैं,
विपक्षीको चतुरता पकड़ लेते हैं और जूएकी
वज्रविध चेष्टासे नहीं धकते हैं, वही जूएका
स्वाद जानते हैं और उसकी सब चाल सह लेते
हैं । हे पार्थ ! जूएमे हार जीतकी वाजी
हमको भय दिखा सकती है और वही इसमें
दोषयुक्त गिना जाता है, इस लिये हे महाराज !
तुम मत डरो, आओ हम खेले ; अधिक
विनन्दका प्रयोजन नहीं है, अब ठहरा ला

को वाजी बंदोगे । युधिष्ठिर बोले, कि जो
स्वर्गादि लोक दिखानेहारे इन सब कर्म
ज्ञानादिके विषयमें सदा धूमा करते हैं, उस
असित सुनिपुत्र सुनिश्चित देवलने यह कहा
है, कि जुआड़ियोंके साथ कपट करके चौंसड़
खेलना बड़ा पाप है ; धर्मसाहित युद्ध जीत-
नाही अच्छा खेल है, जूआ अच्छा नहीं है ।
आर्यपुरुष स्वेच्छ भाषा नहीं कहते और
और छल नहीं करते, काटलेता और जूआ-
चोरी बिना लड़नाही अच्छे पुरुषका व्रत है ।
हे शकुनि ! हम जिस धनसे शत्रुनुसार ब्राह्म
णोका उपकार पड़चानको, सीखनेका बड़ा
प्रयत्न करते हैं, आप मर्यादा तजके खेल कर
उसे मत हरलोजिये, शत्रुओको व्यर्थ पराजय
मत कोजिये । ठगकर सुख वा धन पाना मैं नहीं
चाहता, ठगनको इच्छा न रहन परभी
जूआड़ियाकी यह रीति सराही नहीं जाती ।

शकुनि बोला, कि हे युधिष्ठिर ! देखो
जयको इच्छास्वप्न शठताके साथ आश्रय आश्रय
के पास जाते हैं, तत्त्वज्ञाती, पुरुष शठताहीके
साथ तलक अज्ञानीके पास पड़चत हैं, और
विद्वान पुरुषभी शठताके साथ अज्ञानी
जनाके निकट जाते हैं ; वसी शठताका लाग
शठताही नहीं कहते । उसी प्रकार चौंसड़में
साशयत जन चांसड़ लेकर शठताके साथ
उन जनोका समोप जाते हैं, सा वहभी शठता
गनी नहीं जा सकती । हे युधिष्ठिर ! शठ-
ताहीके साथ अस्वस्व पुरुष अस्व न जानने
वालाके पास और बलशाली, दुबलके पास
उपास्थित हाते हैं, इसी प्रकार सब काव्योंहीमें
शठतापूर्वक व्यवहार होता है ; सो तुमभी
इस प्रकारसे भर पास आकर यदि शठताही
समंभते हो—यदि जूएमे तुमकी भय होता हो,
ता मत खेला । युधिष्ठिर बोले, कि भरा यह
व्रत निरूपित है, कि बुलाये जान पर नहीं
लौटता ह, हे राजन् ! विधाताही बलवान

हैं, मैं भी टेवके वशमें आगिया हूं; साम्प्रत यह कहो कि इस जनसमाजमें किससे मेरा खेल होगा और मुझसे हरवारे वाजी रख सकेगा कौन विद्यमान है, आगे खेलो। दुर्ग्योधन प्रत्या, कि जे पृथ्वीनाथ । मैं धनरत्न सब देता हूं, मेरे यह मामा शकुनि मेरे लिये खेलेंगे। युधिष्ठिर बोले, कि एकके लिये हमरेका खेलना भगवान् अनुचित जंचता है, जे विद्वत् ! तुमभी यह बात मानते होंगे, पर यदि विशेष इच्छा दई हो, तो खेल आरम्भ करो।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि जूआ आरम्भ करनेकी बात ठहर जाने पर, वे सब उपस्थित राजा धृतराष्ट्रकी सामने बैठकर सभा-मण्डलमें बैठे। हे भरतगन्धर्व ? भोळमें, द्रोणाचार्य, शपाचार्य, और महामति विदुर अति अप्रसन्न भिन्न उनके पीछे बैठे। महामांग देवोंके पदमिलित होनेसे स्वर्गकी जैसी शोभा होती है, उन सब सिंह-समान गर्दनवाले, अति तेजस्वी नेशोंके एकत्रित होकर अनेकानेक विभिन्न आसनो पर पृथक् पृथक् और एक एकमें दंडा दोके बैठनेपर उस रुभाकी बैसीही शोभा हुई। वास्तवमें वे सब कोई सूर्य-भर, भरताके सुशोभित और विद्वत् थे। दर्शकोंके बैठने पर, समस्त आरम्भ हुआ। युधिष्ठिर बोले, कि राजन् दुर्ग्योधन ! मैं सागर

युधिष्ठिर बोले, कि शकुने ! केवल कपट-चौसड़होसे वाजी जीतली, कया इसीलिये अहङ्कार कर रहे हो ? वेदत अच्छा आग्यो, हम सहस्रों वाजी रखकर खेलेंगे; मेरे सहस्रों सुवर्ण मुद्रा-भरे अनेक सन्दूक, कोप, अक्षय धन और अनेक सुवर्ण चांदीकी धातु हैं, हे राजन् ! मैं इस धनकी वाजी रखना हूँ, मैं इससे तुम्हारे साथ खेलता हूँ। श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि युधिष्ठिरका यह वचन सुनकर शकुनिसे कुरुकुलमें अष्ट अक्षय धनवान पृथ्वीनाथ अष्ट पाण्डवसे कहा, यह मैं जीता। महाराज युधिष्ठिर बोले, कि बादल और समुद्रके समान प्रतिष्ठाप्रचारी, सुन्दर चक्र और उपकरणधारी, घुघुर-जालसे बहारी और हृदयानन्द-कारी जो राजरथ हमको यहां लाया है और जिसे अपने पद-विक्रमसे किसी भूचर जीवकी न बचाने-हारे, प्रवेत पक्षकेसमान कान्ति-धरे, राज्यभरके प्यारे आठ अष्ट घोड़े खींचते हैं, मैं इस बार उसी जयशील पवित्र रथराजकी वाजी रखता हूँ। राजन् ! उसीसे मैं तुम्हारे साथ खेल रहा हूँ। यह सुनकर शकुनि दलपूर्वक पाशा फेंककर युधिष्ठिरसे बोला, कि यह मैं जीता। युधिष्ठिर बोले, कि महिका, शंखके कड़े तथा जुगनू आदि भक्ति भातिके मांग-काइनयुक्त अलहारीसे सज्ज-वनी, महामह्य माखभरणाधारिणी, सुन्दर

दास हैं ; वे निशदिन हाथोंमें पात्र लेके अतिथियोंको भोजन कराते हैं , हे राजन् ! इसवार मेरी उसी दासरूपी धनकी बाजी रही , उसीको लेके मैं तुमसे खेलता हूँ । यह सुनके कृलपूर्वक पाशा फेककर शकुनि युधिष्ठिरसे बोला , कि यह मैं जीता । युधिष्ठिर बोले कि हे सुबल-कुमार । मेरे सुवर्णके हीदावाले , अलङ्कृत पद्म-रागसे रङ्गे हुए , हेममाली , अच्छे दांतवाले राजोंकी बहनेयोग्य , युद्धमें सर्व प्रकारके शब्द सहनेवाले , हरकी लकड़ीके समान दन्तयुक्त , बड़ेभारी शरीरधारी , घने मेघके समान एक सहस्र मत्तहस्ती है । वे सब पुरोंकी भेदनेमें समर्थ है , और प्रत्येककी आठ आठ हस्तिनी है । हे राजन् ! अबकी मैं उसी धनकी बाजी रखता हूँ । उसीसे मैं तुमसे खेलता हूँ ।

युधिष्ठिरके ऐसा कहने पर सुबलकुमार शकुनि मानों उनकी हंसी करके बोला , कि यह मैं जीता । युधिष्ठिर बोले , कि मेरे जितने हाथी हैं , रथभी उतनेही है , वे सब सुवर्ण दण्डीवाले , झण्डोंसे सुहावने , सुशिक्षित घोड़ोंसे बने ठने और अयुत युद्ध करनेवाले , रथियोंसे सुशोभित हैं । उन सब रथियोंमेंसे हर एककी चाहे युद्ध करना पड़े वा नहीं सहस्र मुद्रातककी मासिक वेतन मिलती है , हे राजन् ! इसवार मेरी उस रथरूपी धनकी बाजी रही , उससे मैं तुम्हारे साथ खेलता हूँ । युधिष्ठिरके इतनी बात कहने पर , खिलाड़ियोंमें मन्दबुद्धि शकुनिने उनसे कहा , कि यह मैं जीता । युधिष्ठिर बोले , कि शत्रुनाशो चित्ररथने युद्धमें हारके धनञ्जयको प्रसन्न होकर , जागमर्चसम्बन्धी सुवर्णसे सुशोभित तिल्लिरि , कन्नाश घोड़े दिये थे , अबकी मेरी उन्होकी बाजी रहो , हे राजन् ! उसी धनसे मैं तुम्हारे साथ खेलता हूँ । यह सुनकर शकुनि कृलपूर्वक पाशा फेककर युधिष्ठिरसे बोला , यह मैं जीता । युधिष्ठिर बोले , कि मेरे दश सहस्र अच्छे रथ और गाड़ी हैं ; उनमें सदा अनेक

प्रकारके वाहन जुते रहते हैं ; और प्रत्येक वर्णसे सहस्र सहस्र वीर पुरुष चुनके साथ सहस्र योद्धे नियुक्त किये गये हैं । वे सब महाबली , और-पराक्रमी , हीर , पीनेवाले कौर शाली चावल भोजन करनेवाले हैं , हे राजन् ! इसवार मेरी उसी धनकी बाजी रही ; मैं उससे तुम्हारे साथ खेलता हूँ ।

यह सुनकर शकुनि कृल-पूर्वक पाशा गिरावे युधिष्ठिरसे बोला , कि यह मैं जीता युधिष्ठिर बोले , कि तामेकी पात्रोंसे आच्छादित मेरे चारसौ निधि हैं ; उनमेंसे प्रत्येक अमूल्य श्रेष्ठ , विशुद्ध , जातकष और सुवर्णके पाच द्रोणके समान है । हे राजन् ! इसवार मेरी उसी धनकी बाजी रही मैं उससे तुम्हारे साथ खेलता हूँ । यह सुनकर शकुनि कृल-पूर्वक पाशा फेककर युधिष्ठिरसे बोला , कि यह मैं जीता ।

अठावन अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले , कि इस प्रकार सर्व नाशी भयावना चौसड़ आरम्भ होने पर सर्व शङ्काओंके हरनेवाले विदुर पुकार कर धृतराष्ट्र से यह बोले , कि महाराज ! मृत्युके द्वार पर पड़चे-हुए मनुष्यको जैसे औषध पीनेकी राह नहीं होती , वैसेही आपको मेरी बात सुननेकी इच्छा नहीं हासकती है , तिस परभी मैं जो कुछ कहता हूँ , उसपर विशेष ध्यान दीजिये ! भरत-कुलका नाश करनेवाले दुर्योधन जब जब खेतही गोमायुके समान विकट स्वरसे शब्द किया । था , तब इसमें सन्देह नहीं है , कि वह अपने सब लोगोंको ध्वंश करेगा । दुर्योधनरूपी गोमायु गृहमें वास कर रहा है , आप मोहवश वह नहीं समझते हैं , साम्प्रत शुक्राचार्यके नीति पूरित वचन सुझसे सुनिये । मधुका व्यापारी मधु पाके टोलिका समझ नहीं सक्ता है , मधुके लोभसे पर्वतके उस जंचले भागमें चटके वृक्ष मधुमेंही मग्न रहता है ; सो पतन कीभी प्राप्त

करता है। यह दुर्व्योधनभी भधुके समान
 नौमद्रुमें उत्पन्न होकर भलेबुरेकी आलोचना
 नहीं करता है। यह समझ नहीं सकता है,
 कि महारथियोंसे शत्रुता-साधनके लिये शीघ्रही
 नष्ट हो जायगा। महाराज। आप जानते
 हैं, पहिले भोजोंसे विरोध रखते हुए कंशकी
 अमक यादव और भोजोंने एकामेल होके त्याग
 दिया था, उनकी आज्ञासे जब शत्रु-विनाशी
 श्रीकृष्णचन्द्रने उसका नाश किया था, तब
 सब जातियोंने आनन्दित होके सैकड़ों वर्षकी
 अधिकी प्राप्त किया था। उसी प्रकार आपकी
 आज्ञासे अज्ञेय सुयोधनका नाश करें, इस
 पापात्माका नाश होनेसे कौरवगण सुखसे
 आनन्द अनुभव करते रहेंगे। - हे महाराज।
 एक कोणके बदले इन पाण्डववत्सुपी मयूरोंको
 प्राप्त कीजिये। सियारके बदले शार्ङ्गलोंकी
 मोल कीजिये, बिना कारण शोक-समझमें मत
 श्रिये। देखिये, सज्जीवोंके अभिप्रायोंके जानने-
 वाले, सर्व शत्रुओंकी भय दिखानेवाले
 महाबाह्ये जम्बासुरकी त्यागनेके लिये महा-
 सूरोंमें यह घवन बोले थे, कि "वंशकी रक्षाके
 लिये एक पुरुषकी त्याग देना चाहिये, ग्रामकी
 रक्षाके लिये वंशकी त्याग देना चाहिये, जन-
 पण्डके लिये ग्राम और अपने लिये पृथ्वी तककी
 त्यागना चाहिये।" हे शत्रुनाशी। किसी राजाने
 "महामुखा" उगलनेवाले कई एक पक्षियोंकी
 भयानकतासे लाकर मारा था। भोग और
 भयानकता इनकर उसने सुवर्णकी आश-
 के चर्मभान और भविष्यत् दोनों कालोंके
 लिये एकही समयमें नष्ट किया था। अत-
 नक पुरुषों को आप मोरवश और धनकी
 लालचसे धरतीके भाग छोड़ न कीजिये।
 के लिये तो इस परीक्षाशी पुरुषके समान
 के लिये ही है भारत। माली जैन
 के लिये ही है यह दिखाने के लिये
 के लिये ही है यह दिखाने के लिये

वहोसे क्रमशः जमते हुए फूलोंकी लीजिये;
 अझार बनानेवालीकी भांति उन्हें जड़से न
 जलाइये। हे राजन्! एकत्रित पृथा-पुत्रोंके साथ
 ऐसा कौन है, जो लड़ सकता है? दूसरोंकी
 बात छोड़ दीजिये, इन सूरोंके साथ स्वयं
 इन्द्रभी नहीं लड़ सकते हैं।

उनसठ अध्याय समाप्त।

विदुर बोले, जूआ भगड़की जड़ है, उससे
 आपसमें विगाड़ होता है, इस लिये वज्र केवल
 भय लानेके लियेही खेला जाता है, धृतराष्ट्र-
 का यह पुत्र दुर्व्योधन उसकी शरण लेकर
 भयावनी शत्रुता रच रहा है। बड़ी भारी सेना
 रखनेवाली प्रतीप वंशी शान्तनुके पुत्रगण तथा
 बालिक आदि राजसमूह सब दुर्व्योधनके
 दोषसे होशकी दशा प्राप्त करेंगे। जैसे मद-
 माता हुआ बैल आप अपना सिंग तोड़ लालता
 है, वैसेही इस दुर्व्योधनके पागलपनके कारण
 राज्यसे मङ्गल दूर होता जाता है। हे महाराज।
 जैसे बालकसे चलाये जानेवाली नाव पर चटके
 मनुष्य बीच समुद्रमें भारी विपदकी दशामें
 होता है, उसी प्रकार जो पुरुष स्वयं वीर और
 कवि होके अपनी बुद्धिका अपमान करके
 परायी इच्छानुसार कार्य करता है, उसकीभी
 वैसेही दशा हो जाती है। दुर्व्योधन युधि-
 स्थिर से वाजी रखके खेलकर जयकी प्राप्त
 करता है, इससे आप बड़े प्रसन्न होते हैं;
 पर ऐसीही जयसे लड़ाई और उसीसे पुरुषोंका
 नाश होता है। आपने यह जो द्यूत-रूपी
 बुरे कार्यका प्रारम्भ किया है, इसका फल
 केवल नोचको और गिरना है, यह युक्ति
 करके सम्पूर्ण मन-पीड़ाओंसे आपसे चिन्तकी
 अधिकार करनेका कारण हुआ है। यद्यपि
 आपने यह नहीं सोचा होगा, कि आपसे मित्र
 युधिष्ठिरसे मङ्गला भवेगा, सोभी यह आपके
 लिये अनुचित हुआ है। हे प्रतीप-वंशी महाराज-

कुमारो ! तुम कौरवोंकी सभामें, पण्डितोंके योग्य इन वचनोंकी अवण करो; दुष्ट दुष्टों-धनकी हां में हां मिलाके भयानकरूपसे प्रज्वलित अग्निमें मत गिरो। आज्ञातशत्रु युधिष्ठिर यदि चौसड़के नशमें डूबके, क्रोधको न रोके, तो जब वृकोदर, अर्जुन और नकुल तथा सहदेव क्रोधित होंगे, तब उस घोर लड़ाईमें तुममेंसे कौन हीप अर्थात् आश्रयका स्थान बनेगा ? हे महाराज ! अपि धनकी खानि हैं ; चौसड़ न खेलके भी आपको चाहे जितने धनकी इच्छा हो उतनाही पासकी है ; पाण्डवोंसे यदि बृहत् धन जीत लें, तो उससे आपका क्या होगा ? आप तुच्छ धनके अभिलाषी न होकर पाण्डवोंकीही अर्नमोल धनके समान प्राप्त कीजिये। सुवल-पुत्रके खेलका वृत्तान्त हम जानते हैं, यह पर्वतका रहनेवाला चौसड़से अच्छी रीति ठगना जानता है, हे भारत ! शकुनि जहासे आया है, वहीं चला जावे, आप पाण्डवोंकी लड़ाईमें सन्नद्ध न कीजिये !

दुर्योधन बोला, कि हे क्षत्र । तुम धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी निन्दा करके सदा शत्रुओंके यशके घमण्डमें रहते हो। हे विदुर ! हम जानते हैं किसकी तुम प्रिय समझते हो, तुम सदा हमको मूर्खोंके समान धृष्टा करते हो। प्रिय जय और अप्रिय पराजयमें जिसकी इच्छा है, वह उसकी निन्दा और प्रशंसा करनेकी रीतिसेही विशेष रूपसे जानी जाती है, तुम्हारी जिह्वा और चित्तहीसे तुम्हारे हृदयका आशय प्रगट होता है; तुम मनही मनमें हमारे प्रतिकूल तो होही, पर भीतरी प्रतिकूलतासे तुम्हारी बाहरी प्रतिकूलता बृहत् अधिक है। हे क्षत्र । तुमको मानों, सर्पके समान हमने गोदमें स्थान दिया है, तुम बिल्लीकी तरह पालनेवालेकी हिंसा करते हो। देखो, पण्डित-लोग कहते हैं, कि पालनेवालेके विरुद्ध खड़े

होनेके समान अधिक पाप नहीं है, उस घोर पापसे तुम्हें क्यों नहीं भय होता है ? हे क्षत्र ! हम शत्रुओंकी जीतकर बड़ा भारी फल पाचुं हैं, इससे तुम हमको कठोर वचन मत कहो, शत्रुओंसे मित्रता करनेकी तुम बृहत् उद्यत हो, उस मोहके लियेही वारम्बार हमारी हिंसा करते हो, मनुष्य अनुचित वचन कहके लोगोंका शत्रु बन जाता है, और शत्रुको प्रशंसाके स्थानमें गुप्त विषयको गुप्त रखता है। अतएव हे निर्लज्ज ! तुम हमारे आश्रयमें रहके क्यों हमारे कार्यमें बाधा देते हो ? तुम्हारा जो मन चाहता है, तुम यह वही कह देते हो। अजो विदुर ! तुम हमें तुच्छ मत समझो, तुम्हारा मन हम जान चुके है, तुम वृद्धोंसे ज्ञान सीखो, लोकोंमें जो यश प्राप्त कर चुके हो उसकी रच कर दूसरोंके कार्यमें मत बझो। अजो विदुर यह ससम्भके, कि मैं कर्ता हूं, तुम आगे हमारा अपमान मत करना और अहङ्कारकी बातें न प्रगट करना ; मैं यह तो नहीं पूछता हूं, कि क्योंकर हमारा हित होगा, सो हे क्षत्र । तुम सहनशील पुरुषोंको अब मत क्रोधी बनाओ एकही पुरुष सबका शासन करता है, दूसरा शासनेहारा नहीं है; वह शासनेहारा गर्भकर्म विस्तर पर-लेटे हुए पुरुषकाभी शासन करत है, मैं उसका शासन मानता हूं। जल जैसे नीचेकी ओर जाता है, वैसेही वह सुभी जैसे नियुक्त करता है, मैं वैसेही कार्य करता हूं। जो पुरुष सिरसे पहाड़ फोड़ता है, और सर्पकी भोजन देता है, उसकी बुद्धिही उन कायोंका शासन करती है, उसी प्रकार जूआ हानिकारी होने परभी मेरी बुद्धिहीने सुभी उसमें प्रवृत्त कराया है। पर जो पुरुष बलसे औरोंका शासन करता है, वह वैसे अनुचित शासनसे शत्रुओंकी प्राप्त करता है, मित्रता दिखाते परभी पण्डितलोग उसकी तुच्छ समझते हैं जो मनुष्य तेज जलनेवाले पदार्थ कपूरकी

अन्धके बड़े श्रेयसे उसे बुझानेकी दौड़ता है, वह कहीं उसका भस्मभी शेष नहीं देख सकता है, उसी प्रकार हमलोग पाण्डवोंसे वैरकी अग्नि वाक्यके यदि शीघ्र उसे बुझानेकी चेष्टा न करें, तो वे जड़-सहित नष्ट होगी। अजी चत्तः-अन्य पक्षवाले, डाह करनेवाले और विशेष अहिम चाहनेवाले मनुष्यको कदापि गृहमें स्थान न देना चाहिये; इसलिये हे विदुर। अज्ञान मन चले, तुम वहीं चले जाओ; असतो-मारीकी भली रीतिसे समझाने बुझाने-परभी यह पतिको छोड़ देती है।

विदुर बोले, कि महाराज ! ऐसे कारण से अथात् अज्ञानके वचनोंसे नीतिशिखा देकर जो लोग आयय लिये हुए पुरुषको त्याग देते हैं तुम बिना पक्षपात यह प्रगट करो, कि तुम्हारा चरित्र कैसा है। वास्तवमें राजाका चित्त बहुत चञ्चल है, वह पहिले समझाके पाई मूल्य मारत है, अरे मन्दबुद्धि राजपुत्र ! तुम अपनेकी पण्डित और सुभक्तकी मूर्ख समझते हो। पर विचारके देखा, कि जो पुरुष अज्ञान लिये हुए मनुष्यकी पहिले मित्तके समान पूजकर पीछे दोष लगाता है, उसीकी लोग मूर्ख समझते हैं। वास्तवमें श्रोत्रियके गृहमें रहती है। यह नारीवशाली स्त्रीके समान दुष्टबुद्धि का कभी हित पथमें नही ले जाया जाता है। हे महाराज ! साठ वर्षके पति पर जैसे महाराजा मन नहीं चलता है, वैसेही हितउप-देश करनेवाले पर तुम्हारी रुचि नहीं चाहती। हे राजन ! कबसे यदि तुम हित तथा अहित के वाक्योंमें भारी वालो सुना चाहते हो, तो मैं तुम्हें लक्ष्मणसे लकड़ें और वैसीही लकड़ें दूँगा। समझने पाप चिन्तागुता के मनुष्यके मनुष्य सहायहीमें मिलते हैं। वह जो बड़ा है परन्तु हितकारी नारीके समान वह मनुष्यको देनेवाला जो बहुत कम देनेवाला है। जो मनुष्य हित तथा अहित पर

ध्यान देकर धर्मानुसार कार्य करता है और अप्रिय होने परभी हितकारी वाणी कहता है, उसीसे राजाकी सहायता होती है। महाराज ! जो मनुष्य दवाके समान व्याधि हरनेवाली, कड़वी वस्तुओंसे बनी, दुःखदायी, सन्ताप लाने-वाली कीर्त्तिनाशकारी, खूबी और दुर्गन्धी है तथा जिसे साधुलोगही पीते हैं असाधु नहीं पी सकते, उसेही पीकर शान्त हो जाओ। मैं सदा एवासहित धृतराष्ट्रके यश धनकी कामना करता हूँ, अब तुमकी जो होना है, वही होवे; तुमको मैं यह दण्डवत करता हूँ; ब्राह्मणलोग भरी स्वस्ति निर्णय करें। हे कुरुनन्दन ! पण्डित पुरुष देखनेमें विपसमान सर्पकी कदापि क्रोधित नहीं करते, मैं यत्पूर्वक तुमसे केवल इसी उपदेश-वचनकी कहता था।

साठ अध्याय समाप्त ।

शकुनि बोला, कि हे कुन्तिपुत्र युधिष्ठिर ! तुम पाण्डवोंका बहुत धन हार चुके हो, अब यदि कोई धन हारनेमें बाकी हो, तो प्रगट करो। युधिष्ठिर बोले, कि हे सुवलकुमार शकुनि ! मैं जानता हूँ, मेरा अपरिमित धन है, तुम क्यों धनकी बात पूछते हो ? तुम दश सहस्र लक्ष, करोड़, अर्बुद, सर्व निखल, शख, पद्म, मत्स्य, मयूर, पराई, वा उसके भी अधिकको बाजी रखो। हे महाराज ! मैं इस धनकी बाजी रखता हूँ, उससे मैं तुम्हारे साथ खेलता हूँ। श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि यह सुनकर शकुनि द्रुपदपूर्वक पाशा फेंककर युधिष्ठिरसे बोला, कि यह मैं जीता। युधिष्ठिर बोले, कि हे सुवलकुमार ! पर्यागमने लिखर मिथुनदीहि पूर्वजन्म मेरे अपनेज गो, घोड़े, बैल और अगमिन पकर, भेड़ आदि जो सब धन रखे हैं, इसगरी उन सबकी बाजी रखता हूँ, उसमें मैं तुम्हारे साथ खेलता हूँ। श्रीवैशम्पायनजी बोले कि यह सुनकर शकुनि द्रुपदपूर्वक पाशा फेंककर

युधिष्ठिरसे बोला, कि यह मैं जीता । युधिष्ठिर बोले, कि हे महाराज । पुर, जनपद, भूमि, ब्राह्मणोंके बिना औरोंका धन और ब्राह्मणोंके बिना अन्य सब पुरुष मेरे शेष धन बचे हैं, इसवार मेरी इसी धनको बाजी रची, उसीसे मैं तुम्हारे साथ खेलता हूँ । श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि यह सुनकर शकुनि हलपूर्वक पाशा फेंककर युधिष्ठिरसे बोला कि, यह मैं जीता । युधिष्ठिर बोले, कि हे महाराज । यह सब राजकुमार जिनसे अलंकृत होकर शोभा पाते हैं, इसपारी मेरी उन्ही कुण्डल, निष्क आदि सब राजअलङ्कारोंकी बाजी रची, इस धनसे मैं तुम्हारे साथ खेलता हूँ । श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि यह सुनकर शकुनि हलपूर्वक पाशा फेंककर युधिष्ठिरसे बोला, कि यह मैं जीता । युधिष्ठिर बोले, कि श्याम देहयुक्त, लाल नेत्र, सिंहसमान गर्दनवाले महाभुज युवापुरुष एकले नकुल की मैं इसवार बाजीमें रखता हूँ इन्हीको मेरा धन समझो । शकुनि बोला, कि महाराज युधिष्ठिर ! तुम्हारे प्यारे राजकुमार नकुल हमारे वशमें होगये, अब तुम किस वस्तुकी बाजी रखकर खेलोगे ? श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि यह कहके शकुनिने पाशाओंको लेलिया और युधिष्ठिरसे बोला, कि यह मैं जीता । युधिष्ठिर बोले, कि यह सहदेव धर्मपूर्वक शासन करते हैं, और इस लोकमें पण्डित नामसे प्रसिद्धभी हैं, मेरे बड़े प्रियपात्र होने परभी अप्रियके समान बाजी रखनेके अयोग्य, उसी राजपुत्रकी बाजी रखकर मैं खेलता हूँ ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि यह सुनकर शकुनि हल पूर्वक पाशा फेंकके युधिष्ठिरसे बोला, कि यह मैं जीता । महाराज ! तुम्हारे प्यारे इस माद्रीकुमारको मैंने जीत लिया ; जान पड़ता है, कि भीमसेन और अर्जुन इनसे भी अधिक प्रिय हैं । युधिष्ठिर बोले, कि रे मूर्ख ! नीतिकी और दृष्टि न देकर, प्रेमसे बंधे हुए

हम भाइयोंमें विगाड़की चेष्टा करना तेरे लिये बड़ेही अधर्मका आर्य्य है ; शकुनि बोला, कि हे महाराज । उन्मत्त होनेसे मनुष्य गड्ढेमें गिर जाता है, वहा स्थानके समान जड़ताको प्राप्त करता है । हे भरत-श्रेष्ठ ! तुम सुभसे बड़े और गुणवान हो, सो मैं तुम्हे नमस्कार करता हूँ । तुम मेरी अनुचित वाणीकी क्षमा करो। युधिष्ठिर । जुआड़ी लोग खेलते समय उन्मत्तके समान जो सब पागलपनेकी बातोंको कह देते हैं, उन्हें जागनेकी बात न समझिये ; सोनेकी दशमें भी कभी उनकी चिन्ता नहीं करते। युधिष्ठिर बोले, कि हे शकुने । शत्रुओंके जयकारी बलशाली जो राजपुत्र नौकाके समान बनेंकर हमेंको युद्ध-सागरके पार पहुँचाते हैं, बाजोंके अयोग्य होने परभी लोकोंमें उन महावीर अर्जुनकी बाजी रखकर मैं खेलता हूँ ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि शकुनि हलपूर्वक पाशा फेंककर युधिष्ठिरसे बोला, कि यह मैं जीता । महाराज युधिष्ठिर ! पाण्डवोंमें प्रधान चापधारो इस सव्यसाची धनञ्जयकी तो मैं जीत चुका । अब तुम्हारी बाजोंके योग्य जो शेष बचा है, तुम्हारे प्यारे उस भीमसेनकी बाजी रखकर खेलो । युधिष्ठिर बोले, कि हे महाराज दानवोंके शत्रु इन्द्रके समान जो एकले हमारे पथ दिखानेवाले तथा युद्धमें सबसे पूर्व चलने वाले हैं, जो वक्र-दर्शों, धन्वाकी भांति भौंवाले महाका, सिंहसमान गर्दनवाले और रुद्रा अमर्षसे पूरित हैं, वाहुबलमें जिनके समान कोई दूसरे पुरुष विद्यमान नहीं हैं, जो शत्रुनाशी इसभूमण्डलके गदा-धारियोंमेंसे सबके अग्रगण्य हैं, बाजोंके अयोग्य होने पर भी उस राजकुमार भीमसेनकी बाजी रखकर मैं खेलता हूँ ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि शकुनि हलपूर्वक पाशा फेंककर युधिष्ठिरसे बोला, कि यह मैं जीता । हे कुन्तीपुत्र तुम वहुत धन, बाड़े,

पार्थ यह तक कि भाइयो तकको भी हार चुके; अब यदि तुम्हारा कोई धन जीतनेमें शेष हो, तो कहो। युधिष्ठिर बोले, कि मैं अब भाइयोसे बड़ा और उनका प्रेम-पात्र हूं, मात्स्यनमें स्वयं पराजित होने पर जो कार्य करना होता है, मैं स्वयं जीते जाकर उसी कार्यको करनेको प्रस्तुत हूं !

शैवशम्पायनजी बोली, कि यह सुनकर
हनुमन्तक शत्रुनि पाश फेककर युधिष्ठिरसे
बोला, कि यह मैं जोता। महाराज! तुम्हारा
अपनेको पराजित करना बड़ा पाप हुआ,
इसमें सन्देह नहीं है, कि शेष धन रहते अपनेको
पराजित करना पापका कारण है।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि बड़ा भारी
कृपाहीन शकुनि बाजीके विषयमें युधिष्ठिरसे
इतनी बातें कहके वहाँ बैठे हुए, प्रसिद्ध वीरोंके
बाध पाण्डवोंमेंसे प्रत्येककी हारका वृत्तान्त
कहकर फिर युधिष्ठिरसे बोला, कि महाराज !
अब भी तुम्हारी प्यारी स्त्री हारजानेमें शेष बची
है, बी तुम पाञ्चालकी कन्या कृष्णाकी बाजी
रखें, उस बाजीसे खेलकर अपनेको फिर
शोतना । युधिष्ठिर बोले, कि जो न नाटी न
मर्ना, न दूधली न माटी है, उस नीले घुघरीले
शालग्रामी शरदकालके पद्म-समान नेत्रवती,
शारदीय पद्मरूप गन्धवती, शारदीय पद्मपर
रंगी लक्ष्मीके समान रूपवती और लावण्य
तथा मोभाग आदिमें लक्ष्मीरूपणी है, उसी
पाञ्चालकन्याकी बाजी रखकर तुमसे खेलता
हूँ । 'सुन्दर-पद्म' लक्ष्मीके समान गुण-
वती है, क्योंकि उसका पुरुष कासना करता है,
उसके दया, मार्ग दण्ड सम्यक्, चाहे शील-सम्पद
किस किसी बातकी कहिये, हर दिपथमें जो
बाध-विघ्न बाध के, सबकुल तथा प्रिय-कृद्दने-
वाले और उसके चर्च तथा कामकी निन्द वारने-
वाले किसी भी मनुष्य दन्ता करता है,
जो वह पुरुष के जो सुखें भिन है, जो मनुष्य

पीके सोती और सबसे पहिले जागते हैं और गौ तथा भेड़ चराने-वाले तक सबलोगोका समाचार-लेती है ; पसीनेके बूंदोंसे जिसका मुखमण्डल कमल और बेलाके समान शोभा धारण करता है, जो वेदोसदृश सुमधुमा दीर्घ-केश ताम्रवदता तथा न वज्रत लोमयुक्त है, इसी प्रकारकी सर्वाङ्ग-सुन्दरी पाञ्चाल कुमारी द्रौपदीकी वाजी रखकर खेलता हूँ ।

और्वैशम्पायनजी बोलि, कि धीमान धर्म-
राजके इतनी बात कहने पर समाधि बैठे बूढ़ोंके
मुखसे “धक्कार है ऐसे शब्द निकलने लग ।
है महाराज ! सम्पूर्ण सभा एकही वार हिलीड़
उठी, राजोंकी शीकने घेर लिया, भीष्म.द्रोण,
कृप, आदिको पसीना निकलने लगा . 1 वदुर
सिर धामकर मानो चेत खीके नीचे मुह किंय
सर्पकी भाँत स्वासा कीड़ते हुए । चन्तागं मग्न
हुए । परन्तु धृतराष्ट्र वज्रत प्रसन्न होके वार वार
यह पूछने लग, कि क्या जीता, क्या जीता । बाहरके
भावसे चित्तके भावकी कृपा नहीं रुके । कर्ण
दुःशासन आदिके साथ वज्रत हर्षयुक्त हुए ; पर
दूसरे सभ्योके नेत्रोंसे बारिधारा निकलने लगी ।
जीतनेके अहङ्कारसे उद्वलता हुआ सुबलकमान
यज्ञ कहके, कि यह जीता उन पाशापाश ।
फिर ले लिया ।

एकसठ अध्याय समाप्त ।

दुखोपधन बोला, कि हे जन्म ! तारां,
पाए-बोकी मगसोचनेवाली प्यारी नारी
द्रीपदीको लेत नाचो, परत तु नालत मी
शीः आके घर भाई खीर वहा कामिला के रात
माय रत्न । विदुर बोले कि हे मन्द-पुत्र !
तुम बडे मूर्ख हो, दुर्गीसे ऐसी कटोर बात
करी । तुम निम बर नसे कपनेसे, धरत बने
हो तुमसे उमकी नमन बहा जे हो तुम जिह
जगधारा धर मरुज नई हो, दुमरा (३५) तुम
नही जे तारे तुम मा जेके पाए-बोकी लेत

कर रहे हो। रे दुरात्मा। सम्पूर्ण क्रोध-
 पूरित महाविषयुक्त सर्पसमूह तुम्हारे सिंर पर
 बैठे हैं, उनको अब अधिक क्रोधित करके तुम
 यमराजका पाहुना मत बनो। मेरी समझमें
 कृष्णा किसी प्रकारसे दासीपन प्राप्त नहीं कर
 सकती है, क्योंकि युधिष्ठिरने अपनी प्रभुताई
 खोकर उसे बाजीमें रखा था। बास जैसे अपने
 नाशके लिये फल धारण करता है, वैसेही यह
 धृतराष्ट्रका पुत्र दुर्योधन चौसड़ खेलता है, इस
 विनाश-कालमें वह नहीं समझ सकता है, कि
 चौसड़ बड़े भयावने बैरका कारण होता है।
 अन्य जनके मर्मस्थानमें आघात और पुरुषार्थ
 पर अहङ्कार न करना चाहिये, चौसड़ आद
 नीच कार्योंसे शत्रुको वशमें नहीं लाना चाहिये,
 और मनुष्योंके जिन वाक्योंसे दूसरोंके चित्तमें
 हलचल मच सकती हैं, ऐसी जलानवाली,
 नरकलानवाली वाणी कदापि न कहनी चाहिये।
 एक मनुष्यके मुखसे लम्बी चौड़ी बातें उच्चारि
 जाती हैं, पर उससे घायल होकर दूसरा मनुष्य
 निशदिन शकम डूबा रहता है, वह सब
 वाक्यरूपों में अन्य मनुष्योंके मर्मस्थानमें हो
 जा अगरत है, इसलिये पण्डित पुरुषका आरासे
 कदापि वसी बात न कहनी चाहिये, यह प्रसङ्ग
 है कि एक बकरा किसी मछुहका बार लगी
 जड़ मछली पकड़नका वसीका नगल गया था,
 इसपर मछुहन ज्यादा उस बकरके सिरका
 धरता पर रखके उक्त अस्त्रका खोचा,
 त्याही बकरका गला कट गया, अतएव
 तुम पाण्डवास वसी भयावनी शत्रुता मत करा,
 तुम जैसे कड़ी बात कहते हो, पृथा-पुत्र वसी
 एकही बात नहीं कहते। नीच मनुष्य कुत्ताको
 तरह क्या बानप्रस्थ क्या गृहमंथा या पूण
 विधावान तपस्वी, सबका ऐसा कठोर वचन
 कहा करता है। धृतराष्ट्रका पुत्र अब यह
 नहीं नमझ सकता है, कि ठगपन नरकका
 भयावने द्वारके समान है; चौसड़के प्रवन्धमें

कुरुओंके बहतेरे दुःशासन के साथ उसके
 साथी बने हैं। यदि लौकी सदा जलमें
 डूबे, पत्थर जल पर बहता रहे और नाव
 जलमें डूब जावे तथापि धृतराष्ट्रका मूर्ख पुत्र
 दुर्योधन मेरे पथरूपी वचनोंपर ध्यान नहीं
 देता है; इससे निश्चय जान पड़ता है, कि यह
 कुरुओंका नाशकारी होगा, जब मित्रोंके
 युक्तिपूर्ण हितकारी पथ-समान वचन सुने नहीं
 जाते हैं, केवल लोभकी ही वृद्धि होती है, तब
 अवश्यही कठोर सर्वनाशी विनाश उपस्थित
 होगा।

वासठ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि धृतराष्ट्रकुमार
 दुर्योधनने अहङ्कारसे उन्मत्त होकर "क्षत्ताप
 धिक्कार है" यह कटुवचन कहके समामें स्थित
 आज्ञावाहीकी आर निरीक्षण किया। आ
 प्रधान आर्याके समाजमें उससे यह वचन
 बाला, कि आज्ञावाही! तुम जाके द्रापदीके
 ले आओ, पाण्डवोंसे तुम्हें कोई भय नहीं है।
 यह क्षत्ता केवल भयवशही विपरीत बात कहा
 करते हैं, विशेष यह सदा हमारी अवनतिकी
 कामना करते हैं।

श्रीवैशम्पायनजी बाले, कि कुत्ता जैसे
 सिंहके भवनमें प्रवेश करता है, वह सूतपुत्र
 आज्ञावाही राजाकी आज्ञा पाय वैसेही पाण्ड-
 वाके वासगृहमें शीघ्र जाके उनकी राणी
 द्रापदीके निकट जाकर उससे यह वचन बोला,
 कि द्रोपद। युधिष्ठिरके चौसड़से उन्मत्त होने
 पर दुर्योधनने तुम्हें जीत लिया है, सा तुम
 धृतराष्ट्रके भवनमें चलो। हे याज्ञसेन!
 दासोका कार्य करानेके निमित्त मैं तुम्हें ले
 जाऊंगा। द्रोपदी बोली, कि आज्ञावाही! तुम
 ऐसी बातें क्योंकर कहते हो? कौन राज-
 कुमार स्त्रीको दाव रखकर खेलता है? चौसड़-
 के नशमें उन्मत्त होने पर राजा युधिष्ठिर

निन्देह सुगंध वने थे, नहीं तो क्या उनको कोई दूसरी दावकी वस्तु नहीं थी, आज्ञावाही बोला कि जब उनकी कोई दूसरी वस्तु शेष नहीं थी, तभी अज्ञातशत्रु युधिष्ठिरने तुम्हें दाव लगाकर खेला था। हे राजपुत्री! उस राजाने पहिले भाद्योंकी, पीछे अपनेकी, आगे तुम्हें दावने रखा था। द्रौपदी बोली, कि हे सत-पुत्र! तुम एकवार जाओ, सभामें उस वार्मडिये से पहे, कि उन्होंने पहिले अपने का हारा वा सुभे १ हे, सतपुत्र! तुम पहिले यह वृक्ष आयो, पीछे ले जाना, मैं राजका अभिप्राय जानकर अन्तको दुःखी विजय जाजगी।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि उस समय आज्ञावाहीने सभामें लौटकर द्रौपदीका वह वचन सुनाया; नरन्दीमें बैठे हुए युधिष्ठिरसे यह प्रश्न, कि द्रौपदीने आपसे पूछा है, कि किम्के प्रभु बनके तुमने हमें! चौसड़में हारा है। क्या पहिले अपनेकी हारा है, या मुझे? आज्ञावाहीने यह बात कही, पर युधिष्ठिर मानो चेतन तथा जीवन-मन्त्रित्तम समान बैठे रहे; उसकी बातोंका न ध्यान न पड़ा कोई उत्तर नहीं दिया। तब द्रौपदी बोली, कि पाजाली यहीं आके इस प्रश्नको नष्ट, उसके और इनके बीच जो कुछ कहानी है, सब लोग सुने।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि सत आज्ञावाहीने राजासे पगम चलकर मानो इसी क्षणके बंला कि राजपुत्री! वह कहानी मैं तुम्हें कहूँ; समझ पड़ता है, कि द्रौपदीने आज्ञावाही दगा था पहंचो है। हे राजपुत्री! द्रौपदीने जब तुमको कहने का प्रयत्न करने से, तब वह फिर कहने का प्रयत्न नहीं कर सके। द्रौपदीने कहा कि तुमने इसीसे यह प्रश्न रखा है।

है; पर लोग धर्महीकी एक मात्र परम पदार्थ कहते हैं। वह रक्षित है, तो अवश्यही हमारे लिये शान्तिका विधान करेगा। वह धर्म कौरवोंको न त्याग देवे। तुम कौरवोंके निकट जाकर हमारा यह धर्मानुसारी-वचन पूछो, वे सब नीतिमान अथवा धर्मात्मा लोग निश्चय करके जो कहेंगे, मैं अवश्य वही करूँगी आज्ञावाहीने द्रौपदीका वह वचन सुनकर सभामें जाके प्रकाश किया; पर सभ्यगण दुर्योधनका बड़ा आग्रह देखकर नीचे मुंह किये बैठे रहे, कुछ नहीं बोले।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भरतअथवा। इस बीचमें युधिष्ठिरने दुर्योधनके उस अभिप्रायकी सुनकर द्रौपदीके पास एक विखासी दूतकी यह कहके भेज दिया, कि पाजाली यद्यपि रजस्वला होनेके कारण अधोनीवी तथा एक वस्त्र पहिने हुई है, तथापि रोते रोते ससरके सामने आवे। हे महाराज। उस बुद्धिमान दूतने कृष्णके भवनमें शीघ्र जाकर धर्मराजके निश्चय किये हुए मतकी प्रकाश किया। इधर आज्ञावाहीका वचन सुनकर दुःखसे आच्छादित, दीनभावयुक्त पाण्डवगण प्रतिज्ञाद्वारा बांधे रहनेके कारण कुछ निश्चय नहीं कर सके, कि क्या करना चाहिये। अनन्तर राजा दुर्योधनने उन्हें दुःखी देखकर प्रसन्न होके सतकी आज्ञा की, कि आज्ञावाही। उसे यहाँ ले आओ, कौरवगण प्रत्यक्षमें उसके प्रयोगका उत्तर देवे।

दुर्योधनके यह वचन कहने पर उसके योगीभक्त आज्ञावाही सतपुत्र द्रुपदद्वाराके अधीन भीत होकर फिर सभामें बोला कि मैं तुम्हारे साथ कहूँगा तब दुर्योधनने कहा, दृष्टान्त। मैंने यह दृष्टान्त सतपुत्र सामने रख कर रखा है तो तुम सब द्रौपदीकी प्रवृत्ति पर विचारो, खाजिलतासे हाथ धीरे हुए मत, तुम्हारा क्या उत्तर रहे। अनन्तर उस गुरु पण्डित ने

आज्ञा सुनकर, नेत्रोंकी लाल किये उठा, और महारथी पाण्डवोंके वासगृहमें प्रवेश करके राजपुत्री द्रौपदीसे यह बोला, कि पाञ्चाली । आओ, आओ तुम हारी गयी हो, हे कृष्णा । अब लज्जा तज, दुःखोंधनको निहारो, हे विशाल कमल-नयना । अब कुरुओं की सेवा करो, हमने धर्मानुसार तुम्हें प्राप्त किया है ; आओ सभामें चलो । दुःशासनके इस प्रकार कहने पर द्रौपदी अति कातर होकर उठी अश्रुद्वारा मैले हुए मुखमण्डलको हाथोंसे पोछ कर जिधर कुरुश्रेष्ठ बृहन्नजा धृतराष्ट्रकी नारी-गण थीं, उसी ओर कातर भावसे चली । तब दुःशासन क्रोधसे भरकर बेगपूर्वक राजेन्द्रपत्नी द्रौपदीके पीछे कहता हुआ दौड़ा और उसके काले लम्बे घुघराले बालको पकड़ लिया । जो केश राजसूय महायज्ञमें मंत्रोंसे पवित्र किये हुए जलद्वारा शिक्त हुए थे, उन्हें धृतराष्ट्रके पुत्रने पाण्डवोंके बलका निरादर करके पकड़ लिया । दुःशासन अति लम्बे बालवाली, दुःखिनी नाथवाली द्रौपदीको अनाथवतीके समान सभाके पास लाकर जैसे वायु केलीको खींचता है, वैसेही खींचने लगा । वह खींची जातो हुई मुड़े शरीरवाली द्रौपदी धीरेसे बोली, कि मैं रजस्वला हूँ और भक्तोंके दुःखहारी जयशील कृष्णाको बचाने अर्थ पुकारने लगी ।

दुःशासन बोला, कि हे याज्ञसेनि । चाहे तुम रजस्वला-ही, वा एकवस्त्रा ही अथवा वस्त्र रहितही क्यों न हो, जुएमें जीती गयी हो, अतएव दासी बनी हो, दासियोंको स्वामीकी इच्छानुसार वस्त्रादि दिया जाता है ।

वैशम्पायन बोले, विखरेकेशवाली आध-गिरे वस्त्र-वाली दुःशासनसे खींचीजातो हुई लज्जा-क्रोधसेजलती हुई द्रौपदी धीरेसे यह बोली :—

सभामें ये सब शास्त्रज्ञ कृपावान् इन्द्रके समान मेरे बड़े लोग बैठे हैं, इनके आगे मैं ऐसी

नहीं खड़ी रह सकती हूँ । रे दुष्टकर्म्मकारिन् । अनार्थ कर्म्म मत कर, मुझे सभामें वस्त्रहीन मत कर, रे दुष्ट । यदि इन्द्रादि देवभी तेरी सहायता करेंगे, तौभी पाण्डव तुझे क्षमा न करेङ्गे । महात्मा धर्मपुत्र धर्ममें स्थित है, और धर्म सत्त्व है, उसे महात्माही जान सकते हैं, मैं गुणोंके अतिरिक्त अपने पतिके दोषोंकी वचनसे भी सुनना नहीं चाहती । कुरुवीरोके मध्यमें जो तू मुझ रजस्वलाकी खींचता है, सो कर्त्तव्य नहीं है, तुझे कोई भी कुत्सित नहीं कहता है, निश्चय ये सब तेरे मतमें है । धिक्कार है, भरत वंशी क्षत्रियोंकी, निश्चय इनसे धर्म नष्ट होगया और क्षत्रियोंका चरित्रभी नष्ट होगया जो आज सभामें बैठे स कुरुवशी कुरु-समुद्रवेलाकी नष्ट देख रहे हैं द्रोण, भीष्म महात्मा विदुर और राजा धृतराष्ट्र इन सबकी कुछ भी वीर्यबल नहीं है, जे मुख्यलोग मेरे परम धर्मकी कुछभी नहीं सुनते ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, इस प्रकारसे रोती हुई वह समग्रमा कुपितपतियोंको कटाक्षोंसे देखने लगी, और अपने कटाक्षसे पाण्डवोंका क्राध प्रदीप्त कर दिया । पाण्डवोंकी राज्य, धन, रत्न और मुख्य वस्तुओंके नाश होनेसे ऐसा दुःख नहीं हुआ था, जैसे लज्जा और क्रोधभरे द्रौपदीके कटाक्षोंसे हुआ । दुःशासनने जब देखा, द्रौपदी अपने पति पाण्डवोंकी देखती है, तब संज्ञाशून्य द्रौपदीको बलसे खींचकर शब्द सहित हंसकर बोला, तू तो दासी है । कर्ण यह वचन सुनकर शब्दसहित हंसता हुआ प्रसन्न होकर दुःशासनकी प्रशंसा करने लगा और गान्धारदेशके सुबलराजाका पुत्र शकुनि भी दुःशासनकी प्रशंसा करने लगा । कर्ण शकुनि और धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी छोड़कर वज्रा और जितने सभासद थे सबकी सभामें द्रौपदीकी खींचती देखकर महादुःख हुआ ।

भीष्म बोले, हे सुभगी ! धर्म अत्यन्त सूक्ष्म है, अतएव तुम्हारे प्रश्नका ठीक विवेक हम नहीं कर सकते ; जो पुरुष स्वामी नहीं है, सो पराधीन बनको पण नहीं कर सकता ; पत्नी स्वामीकी आधीन है ; युधिष्ठिर ऋद्धिभरी सब पृथिवीको जीत सकते हैं, परन्तु धर्मको नहीं छोड़ेंगे ; इसीमें पहिले कहा था, मैं जीता गया इसलिये हम तुम्हारे प्रश्नका उत्तर ठीक नहीं दे सकते हैं ; पर जूमें अद्वितीय (असामान्य) शत्रुनिने तुम्हें पण करनेको कहा अर्थात् राजाने अपनी इच्छासे तुम्हें पण नहीं किया और युधिष्ठिर उस व्यक्ती को नहीं मानते, अतएव हम ठीक नहीं कह सकते ।

द्रौपदी बोली, राजाने जूमें अभ्यासरहित ही करभो, जूमें निपुण अनाथ्य द्यूतप्रिय दुष्टात्मा अर्जुनसे अपने आपकी हार करभो सुभगी ! मैं क्यों बलाया और शत्रुओंके मनोरथ पूर्ण किये ? कौरव और पाण्डवोंमें अग्रगण्य कौरवने, अग्रह भावयुक्त, लज्जामें प्रवृत्त, ज्ञान और निरादर सहित होकर पहिले मैं गरीबको हारा, पीछे यह जूआ खेला । मैं समझती थी जितने कुरुवंशी बैठे हैं, यह पुत्र ही कुरुवंशीके नाथ है, सो सब लोग मेरे प्रश्नका उत्तर दयायोग्य हैं ।

भीष्मसेन बोले, इस प्रकारसे रीती और अपने शत्रु पत्नियोंकी देखती हुई द्रौपदी, नामन कटिन, कड़ुवा, दुय्यारावचन शरीर, इस शिखरी हुई, रजस्तला, पतित-वस्त्रोंमें लेशमें भयंग्य, द्रौपदीकी देखकर युधिष्ठिर पर महाक्रोध हुआ ।

इस प्रकार समाप्त ।

भीष्मसेन बोले, हे युधिष्ठिर ! जूखारीलोगोंके लिये धर्म अत्यन्त सूक्ष्म है, सो वे उनकी जूमें लज्जा देते हैं, अतएवभी हम कर सकते हैं ।

था इसी प्रकारसे और राजाने जो जो धन भेंट किया था, वाहन, धन, कवच, शस्त्र, राज्य, अपना शरीर और हम सबकी जुएमें आप हारगये, तब इतना क्रोध हमको नहीं भया ; क्योंकि हमारे सर्वस्वके आप स्वामी हैं ; हम इसको अधर्म मानते हैं, जो आपने द्रौपदीको पण किया ; यह वाला इस कर्ममें अयोग्य थी, यह पाण्डवोंको पति प्राप्त करकेभी आपके कारण कुछ दुरात्मा पापी कौरवोंसे लेश पा रही है, हे राजा ! इसके कारण मैं अपना क्रोध तुम्हारे पर डालता हूं, हे सहदेव ! अग्नि ले आओ हम तुम्हारे सामने बलसे इनका हाथ जलावेंगे ।

अर्जुन बोले, हे भीमसेन ! तुमने पहिले ऐसी वाणी कभी नहीं कही थी ; निश्चय ज्ञात होता है, कि तुम्हारा धर्म लज्जारहित शत्रुओंने नाश कर दिया, शत्रुओंका मनोरथ सफल करने योग्य नहीं हैं ; तुम उत्तम धर्महीका आचरण करो ; धर्मासाधियोंकी ज्येष्ठभाईका अनादर करना नहीं चाहिये, राजा क्षत्रियोंके धर्मकी मरणा करके शत्रुओंकी (उन्हीकी) इच्छानुसार जूआ खेलते हैं, सो कर्म हमारी कीर्तिकी बटानेवाला है ।

भीमसेन बोले, हे अर्जुन ! यदि हम ऐसा न समझते, तो जलनी हुई अग्निमें बलसे इनके छायाको जला देते ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले इस प्रकार से पाण्डवोंकी दुखित और द्रौपदीकी शिखरी लेश देखकर धृतराष्ट्रका पुत्र विषमं वश होना हे राजानोगो ! द्रौपदीने जो प्रश्न किया है उसका उत्तर दो, क्योंकि प्रयत्न विवेक न करनेसे शीघ्र ही नरक होता है, हे भीष्मसेन ! धृतराष्ट्र दीर्घजीव लक्ष्मणके पुत्र के रूप में मेरा दुर्दिमान विद्वान्, वे लोग कदाभी सर्वत्र जाते हैं, अतएव पुत्र द्रौपदीका और कुरुवंशीके द्रौपदीका प्रश्नको मैं ही हूं ।

क्यों नहीं देते ? और-और, जो-अन्यदेशोंके राजालोग हैं, सो काम और क्रोधको छोड़कर मतिके अनुसार उत्तर दें, द्रौपदीने सभामें यह वाक्य कहे। इस प्रकारसे विकर्णने बह्मत्वार सभासदोंसे कहा परन्तु किसीने अच्छा-वा, बुरा कुछभी उत्तर न दिया। विकर्णने सब राजोंसे पुनः कहकर हाथसे हाथको लगाकर सांस लेकर ऐसा कहा, हे पृथिवीपालगण ! आपलोग इस प्रश्नको कहो वा मत कहो, मैं यहां जो न्याय समझता हूं सो कहता हूं। राजोंके निमित्त चार दुष्कर्म कहे हैं, मृगया (शिकार), मद्यपान, जुआ, और स्त्रियोंपर अधिक आसक्ति, जब पुरुष इनकामोंमें आसक्त होता है, तो धर्मको छोड़कर गमन करता है और इन सबके किये काम जगत्में पण नहीं माने जाते। सो यह द्रौपदी-पण युधिष्ठिरने मत्त होकर और जुआरियोंसे प्रेरित होकर किया है, ये अनिन्दिता द्रौपदी साधारण रूपसे सब पाण्डवोंकी स्त्री हैं और राजा अपने शरीरकी हार चुके; तब इसको पण किया, और शकुनिने कहा, तब युधिष्ठिरने इसे पण किया, ये सब हेतु विचारकर मैं जानता हूं कि द्रौपदी जीती नहीं गयी। विकर्णके ये वचन सुनकर सब सभासद विकर्णकी प्रशंसा और शकुनिकी निन्दा करने लगे। ये शब्द बह्मत समय तक रहा, जब समाप्त भया तो राधापुत्र कर्ण महाक्रोध करके हाथ पकड़कर बोला :—

विकर्णके अनेक प्रकारके विपरीत लक्षण दीखते हैं, जो उसीके विनाशके मूल हैं, जैसे वनमेंसे उत्पन्न अग्नि वन ही को नाश करती है। ये सब राजालोग द्रौपदीसे पूछनेपरभी कुछ न बोले, क्योंकि वे जानते हैं, कि द्रौपदी धर्मसे जीती गयी है, हे धृतराष्ट्रके पुत्र ! तुम केवल मर्खतासे वकते हो, क्योंकि तुम बालक

होकर सभाके बीचमें बूढ़ों कोसी बात करते हो। हे दुर्योधनानुज ! तुम धर्मको ठीक नहीं जानते, इसीसे जितो हुई द्रौपदीको विन-जितो बताते हो, हे धृतराष्ट्रपुत्र ! जब पाण्डवाग्र युधिष्ठिरने जुवेमें अपना सर्वस्व लगा दिया, तब द्रौपदीको विना, जितो कैसे कहते हो ? हे भरतर्षभ ! द्रौपदीको युधिष्ठिरके सर्वस्वमें ही तब तुम द्रौपदीको अजिता किस हेतु मानते हो, द्रौपदी पाण्डवोंके वचनसे क्रीत हुई और अनुज्ञात हुई तब कैसे अजिता हो सकती है; यदि तुम कहो कि इसको एक वस्त्र धारण किये सभामें लाना अधर्म हुआ, सोभी मैं कहता हूं तुम सुनो। हे कुरुन देवतोंने स्त्रियोंके निमित्त एकही पति बना है और यह अनेक की स्त्री है अतः निश्चय वेश्या है, इसको सभामें एकवस्त्रा वा नङ्गीही होना हमारी बुद्धि कीई भी आश्चर्य नहीं है। जो पाण्डव धन था, उसमें यह भी थी; इस कारण शकुनीने इसे धर्मसेही जीता है, हे दुःशास यह विकर्ण बालक है और पाण्डवोंके विवाद करता है। अतएव तुम पाण्डव द्रौपदीके वस्त्र उतार लो।

हे जम्भोजय ! पाण्डवलोग यह वचन सुनकर अपना वस्त्र उतार कर सभामें बैठ गए हे राजन् तब दुःशासन सभाके बीचमें बल द्रौपदीका वस्त्र खींचने लगा।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, जब द्रौपदीका वस्त्र खींचा गया, तब उसने कृष्णको स्मरण किया हे गोविन्द ! हे दारिकावासिन् ! हे गोपीज प्रिय ! हे केशव ! क्या तुम नहीं जानते कि कौरवोंने मेरा अपमान किया है ! हे नाथ हे रमानाथ ! हे व्रजनाथ ! हे दुःखनाशन ! जनार्दन ! कौरवसमुद्रमें डूबती हुई मेरी रक्षा करो ! हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महायोगिन् ! हे विश्वात्मन् ! हे विश्वभावन ! हे गोविन्द

होशियारी के बीचमें मुझ दासोकी रक्षा कीजिये ।
 मैं राजा । इस प्रकारसे जगदीश्वर कृष्णको
 करके अपना सुख आच्छादित करके
 द्रौपदी सभामें रोयी । उसी समय द्रौपदीका
 वचन सुनकर कृष्ण कृष्णसे आर्द्र हो गये ;
 अपनी शयाकी क्रीड़ा पैरोही दीड़े । जब
 द्रौपदी कूटनेके लिये कृष्ण । विष्णु । नरना-
 रायण । इस प्रकारसे रक्षाके निमित्त पुकारने
 लगी, तब महात्मा धर्मरूपी कृष्णने आकर
 उसके वस्त्रमें बास किया । हे राजन । जब
 द्रौपदीका वस्त्र खींचा गया, तो वस्त्रकी भीतरसे
 चमकता और उसमेंसे अन्य, इस प्रकारसे रंग
 विरंगके अनेक वस्त्र निकलने लगे । यह फल
 उनके पावनका था, तब सभामें महा-हाहाकार-
 का महागज उठा ; इस महा अद्भुत कार्यकी
 देखकर सब राजालोग द्रौपदीकी प्रशंसा और
 हतव्यपुत्रकी निन्दा करने लगे, तब राजाके
 धर्म-क्रोधसे ओठ फरकाते हुए, हाथसे हाथकी
 मजकूर, और गद्दसे भीमने यह प्रतिज्ञाकी ।

भीमभन बोले, हे लोकके वासी चतुरियो ।
 तुम सब मेरे यह वचन सुनो जो पहिले किसोने
 नहीं कहे और न कौन कहैगा, यदि मैं इस
 पाप-दुर्गुणी भरतकुलकलह, दुःशासनका हृदय
 क्रोधसे चीरकर भुझूं रुधिर न पीयूँ तो हे
 राजालोग ! मैं अपने पुरुषालीनकी गति को
 प्रमद करूँ ।

हे सभापणजी बोले भीमके ऐसा कठिन
 वचन सुनकर सब लोग उनकी
 हतव्यपुत्रकी निन्दा करने लगे,
 सब सभामें द्रौपदीके वस्त्रका रंग
 रंगत सब दुःशासन धक कर और लज्जित
 होकर बैठ रहा । इस प्रकारसे पाण्डवोंकी
 निन्दा सब सभासदोंके मुखमें हतव्यपुत्रकी
 निन्दा ही प्रबल निकली । हत-
 व्यपुत्रकी निन्दा करने लगे, सब सभासद करने
 लगे द्रौपदीका नाम और राजा जो नहीं

कहते हैं ? तब हाथ उठाकर सब सभासदोंकी
 निवारण करके सब धर्मज्ञोंमें अष्ट विदुर यह
 बोले, हे सभासदो ! द्रौपदी प्रज्ञा करके अना-
 थके समान रोती है, तुम लोग उत्तर नहीं
 देते, इससे धर्मनष्ट होता है । राज-सभामें
 दुःखी, जलते अग्निके समान प्रवेश करता है,
 परन्तु सभासद सत्य और धर्मसे उसकी शांत
 करते हैं, अतएव आर्य्य पुरुष सत्यधर्मसे सत्य
 प्रश्नको काम क्रोध त्याग कर वर्णन करें । हे
 राजालोग ! जिस प्रकारसे विकर्णने प्रश्नका
 उत्तर दिया था, वैसेही आपलोगभी बुद्धिके
 अनुसार उत्तर कहिये, जो सभासद धर्मकी
 जानकर सभामें प्रश्नका उत्तर न दे, सो उस
 पापके आधि फलका भागी होता है, और जो
 धर्मदर्शी सभासद प्रश्नके उत्तर को झूठा वा
 उलटा कहे, सो झूठके पूरे फलको प्राप्त करता
 है । पण्डित लोग इसही स्थानमें इस प्रहाद
 और आंगिरस मुनिके इतिहासका उदाहरण
 देते हैं । प्रहाद नामक दैत्यराज था और
 उनके पुत्रका नाम विरोचन था, सो एक
 कन्याके निमित्त आङ्गिराके पुत्र सुधन्वासे
 उसेका विवाद हुआ ; हमने सुना है, कि उन
 दोनोंसे ऐसा विवाद हुआ कि, एक कहता था
 हम कुलीन हैं और दूसरा कहता था हम
 कुलीन हैं । इसवादमें दोनोंने प्राण पर्यन्त
 पण किया, तब उन दोनोंने जाकर प्रहादसे
 पूछा, कि तुम्हें सत्य कही हम दोनोंमेंसे
 कुलीन कान है ? प्रहाद सुधन्वाकी देखकर
 असत्य बोलनेसे डरे, तब सुधन्वा क्रोधसे ब्रह्म-
 दण्डके समान जलता हुआ बोला, हे प्रहाद !
 यदि तुम झूठ कहोगे, वा झूठ न कहोगे, तो इन्द्र
 तुम्हारे शिरकीदण्डसे मौख्य कर देगा । प्रहाद
 सुधन्वाका यह वचन सुनकर दीधम्भने अपने
 समान आपने कहा, तब प्रहाद महाविस्मय
 व्यक्त्य मुनिके पास गए पृथ्वराज । प्रहाद बोले,
 ईश्वरभगवन् ! तुम देव, अमर और ब्रह्मण्य

सब धर्मोंको जाननेवाले हो, यह धर्मकष्ट उपस्थित है, इससे कहिये कि जो प्रश्नको उत्तरको न दे अथवा उल्टा उसको, कौन लोक मिलते हैं।

कश्यप बोले, हे प्रह्लाद! जो प्रश्नको उत्तरको जानता हो और काम क्रोध वा भयसे न कहे उसको गलीमें वस्त्रोंकी फासी सहस्रवार पड़ती है और जो साक्षी दोनों पक्षोंकी बात कहे सोभी अपने निमित्त हजार वस्त्रोंपाश ग्रहण करता है; उसको एक वर्ष पूर्ण होनेसे एकपाश छूटता है, अतएव जाननेवाले पुत्रको सत्यही कहना चाहिये। जिस सभामें अधर्मसे धर्म बढ़ ही और सभासद उस असत्यको न निकाल, वहां सभासद अधर्मसे विद्वे होते हैं। उस पापका आधाभाग सभापतिको प्राप्त होता है, एक चरण कर्त्ताको और एक चरण उन सभासदोंको प्राप्त होता है, जो निन्दितकी निन्दा नहीं करते, जहां निन्दायोग्यकी निन्दा करो जाती है, वहां सभापति और सभासद पापसे मुक्त हो जाते हैं, और वह पाप केवल कर्त्ताहीको प्राप्त होता है। हे प्रह्लाद! जो पूछनेवालेसे मिथ्या कहते हैं, सो सात पहले और सात आगेके यज्ञादिको नष्ट करते हैं, जो दुःख कीने हुए धनवालेको होता है, जो पुत्र मारनेवालेको, तृणीकी, अपने धनसे नष्टकी, पतिसे हीन स्त्रीकी, राजासे पकड़े हुए को, अपुत्र स्त्रीकी, व्याघ्रसे आहतकी, साक्षियोंसे नष्टकी, और जो दुःख सौतवालो स्त्रीको होता है, वह सब दुःख देवताओंमें समान कहे हैं, जो भूठ कहता है, उसको यह सब दुःख प्राप्त होते हैं। सुननेसे, धारण करनेसे, और प्रत्यक्ष देखनेसे साक्षी कहता है, अतएव साक्षी सत्य कहनेसे धर्म और अर्थसे नष्ट नहीं होता है।

कश्यपका ऐसा वचन सुनकर प्रह्लादने अपने पुत्रसे कहा, तुमसे सुधन्वा अष्ट हैं, सुभसे अङ्गिरा अष्ट हैं, और सुधन्वाको माता तेरी

मातासे अष्ट है, हे विरोचन! यह सुधन्वा अब तेरे प्राणोंका स्वामी है। सुधन्वा बोले, तुमने पुत्र स्नेह छोड़कर धर्मको ग्रहण किया; अतएव मैं तुम्हारे पुत्रको तुम्हें देता हूं, अब ये सौ वर्ष पश्यन्त जीवें।

विदुर बोले, हे सभासदो! आप इस प्रकारसे धर्मको जान कर द्रौपदी के प्रश्नका उत्तर दो जयें। श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि विदुरके वचनको सुनकर राजालींग कुक्षुन बोले, कर्णने दुःशासनसे कहा, तुम इस दासीकी घरमें पड़ंचा दो। तब कांपती हुई, लज्जावती, पाण्डवोंकी देखतो हुई तपस्विनी द्रौपदीको सभाके बीचमें दुःशासन खींचने लगा।

६४ अध्याय समाप्त। द्रौपदी बोली, पहिले मेरे प्रश्नका उत्तर देना उचित था, सो किसीने न दिया। सु यह बलवान् बलसे खींचता है, अतएव अत्यन्त व्याकुल हुई हूं, इस कुरि-सभामें स कीरवोंकी प्रणाम करती हूं। यह अपरा मेरा नहीं है।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि जब दुःशासन उसे खींचता वह तपस्विनी द्रौपदी सभामें गि गयो और यो कहकर रोजे लगी।

द्रौपदी बोली, जिस सुभे स्वयंवरके स्थानमें आयु राजाके अतिरिक्त किसीने भी कही न हो दिखा था, सो मैं आज सभामें प्रा हुई हूं, जिसकी घरमें केभी सूर्य और वायुनेर्म नहीं देखा था; इस सुभे आज सभामें सब देख रहे हैं, जो पाण्डव कभी सुभे कूत हुए वा परगी चूमा नहीं करते थे, सो इस दुष्टपर चम कर रहे हैं; जान पड़ता है, कि कुछ समयमें विपरीत हो गया, जो सब कीरव लोप इस दुःखके अयोग्य वहका ऐसा रेश देख रहे हैं इससे अधिक नीचकर्म क्या होगा? जो

सभाकी सभाके मध्यमें आयी, अब राजोंका धर्म कहाँ गया ? मैंने पहले सुना था कि स्त्री धर्मसभामें नहीं बुलायी जाती; सो सनातन धर्म कुरुवंशमें नष्ट होगया; पाण्डवोंकी स्त्री, द्रुपदकी वधिन, श्रीकृष्णकी सखी ! हीकर सभामें कैसे रहें। हे कौरव लोगो ! धर्मराजकी महेश्वरगर्भमें उत्पन्न धर्मपत्नी हूँ, सो तुम सब सुनी दासी वा अदासी जो कहो सोई मैं कहूँ, यह कौरवोंका यश नाशक सुदृढ़ दुःशासन मुझसे हेश दे रहा है, जिसे मैं बल्लतकाल पर्यन्त नहीं सह सकती। हे राजा लोगो ! हे कुरुवंशयो ! सुनी तुम जितो वा विनाजितो जो मानते हो, सो मैं सुनना चाहती हूँ, सुनकर बैसाही कहूंगी।

भीम बोले, कि हे कल्याणि ! हम पहलेही धर्मकी गाँत कह चुके हैं, कि उसे महात्मा ही लागभो नहीं जान सकते, लोकमें ब्रह्माण्ड पर्यन्त जिसे धर्म कहें, सोई धर्म है; चाहे यह मथुरादाक बाहरभो हो ताभो उत्तम कहा जाता है, धर्मकाय्य भारी काठन और भयंकर है; इसमें हम तुम्हारे प्रश्नका निश्चय नहीं कर सकते। हम निश्चय करके कह सकते हैं, कि द्रुपद गोत्र इस कुलका नाश होनेवाला है, ऐसा हम समझते हैं, यह कौरवलोग लाभ मोहमें आगल होगये, जिन इस लागाकी तुम बहू हो, सो अब इस दृढ़ कुलमें उत्पन्न हुए हैं, हम धर्मराजकी भागसे पातत हो गये। हे पांडवल ! धर्मराज यह समझ ऐसा काठन उपास्यत है, कि तुम धर्मराजका देखतो हो; देखा ये धर्मराज नहीं, धर्मके जाननवाले हैं, पर वंशधर धर्मराजका प्रश्न हमें वैठे हैं, नैराश हो प्रश्न दुःशासन की प्रमाण है, य हो धर्मराजका प्रश्न नहीं कह सकते हैं।

॥ ४४ ॥

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि इस प्रकारसे कुरुरीके समान बल्लत रोती हुई देवी द्रौपदीको देखकर कोईभी राजा दुःश्योंधनके भयसे न बोला, जब - दुःश्योंधनने सब राजागुरु और राजपौत्रोंको चुप देखा, तो हंसता हुआ द्रौपदीसे ऐसा बोला।

दुःश्योंधन बोला, कि हे याज्ञसेनि ! यह तेरा प्रश्न उदारवीर्य भीमसेन, अर्जुन, महर्देव और तेरे पति नकुलके अधीन रहें, ये लोग इसका उत्तर कहें, हे पांडवल ! ये सब लोग आचार्यके मध्यमें कहें, कि युधिष्ठिर द्रौपदीके स्वामी नहीं हैं, तेरे निमित्त ये सब युधिष्ठिरकी भूठा कह दें, ता तू दासीभावसे झूट जायगी, अथवा धर्ममें स्थित इन्द्रके समान महात्मा धर्मराजही कहें, कि ये तुम्हारे स्वामी हैं वा नहीं ? इनके कहनके पश्चात् तुम शीघ्रही एकका पात बनाली, इस सभामें ये सब कुरुवंशी लोग तुम्हारे ही दुःखसे दुःखित हो रहे हैं तुम्हारे मन्दभाग्य पातयाका देखकर ये आच्यसब कुछ भी नहीं बोलतें।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कुरुराज दुःश्योंधनके ये वचन सुनकर सब सभामंड उनकी प्रशंसा करने लगे, परस्पर नव चामनभो करने लगे, और तब उस सभामें महा हाहाकार शब्द उठा, उन बातको सुनकर कौरवोंकी सभामें महा आनन्द हुआ, सब राजालोग प्रशंसा पाकर धार्मिक कुरुराजकी प्रशंसा करने लगे, उन सब राजालोगोंने युधिष्ठिरकी ओर देखकर य क्या कहेंगे, इस अपेक्षा में सुखी नोया जय्या, अथवा सभामें अपराधन पावत, भीम नकुल ज सहदेव जो कौरवोंके समान मरें, जानूँ न हुआ। यह वह यह सभा में हो गया, तो चन्द्रचिह्न १२०० रुद्रर राजाके प्रश्न करके भीमसेन बोले,

भीमसेन बोले, यदि ये सभामें धर्मराज जगत्पुत्र हुए होन इस जगत् में प्रभु हैं

तो हमें कदापि चंभा न करते; हमारे पुण्य, तप और प्राणोंके भी ये ईश्वर है, यदि ये अपनेको अजित मानें, तो हमें सबही बिनाजित हैं, भूमिमें चलनेवालों कोई भी मनुष्य द्रौपदीके केशको स्पर्श करके मुझसे जोता नहीं छूट सकता, तुम लोग इन मोटे और लम्बे मेरे हाथोंको देखो, इनके बीचमें आकर इन्द्रभी छूट नहीं सकता, मैं धर्मपाशमें बंधा हुआ हूँ, धर्मराजके गौरव और अर्जुनके निरोधसे ये सङ्कट भोगता हूँ, यदि धर्मराज मुझको आज्ञा दें तो जैसे सिंह बुद्ध हरिणोंको नाश करता है, वैसेही इन पापी धृतराष्ट्रपुत्रोंकी चरणसे पीस डालूँ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, तब भीमसेन भीष्म द्रोणाचार्य और विदुर कहने लगे कि जो तुम कहते हैं, सो सब यथार्थ है, तुम सब कुछ कर सकते हो; पर इस समय चंभा करो।

६६ अध्याय समाप्त ।

कर्ण बोला, कि हे भट्टे ! ये तीन पुरुष-निर्वन होते हैं; दास, पुत्र, और पराधीन स्त्री; नियम है, दासकी स्त्री, हीन-पतिवाली और दासका धन-ये स्वामी होके होते हैं, हे राज-पुत्र ! राजा दुर्योधनके घरमें जाकर जो काम मिले सो करो, अब तुम्हारे पति धृतराष्ट्रके सब पुत्र हैं, पाण्डव नहीं। हे भामिनि ! तू दूसरा पात कर ले जिससे दासीका दुःख प्राप्त न हो; दास-भावमें स्त्रियोंकी पतियोंमें कामवृत्ति अवाध्य है, यह तुम्हें मालूम है; कि नकुल, भीमसेन, अर्जुन, सहदेव और युधिष्ठिर ये सब हार गये। हे याज्ञसेनि, तुम दासी होगयी और ये पराजित पाण्डव तुम्हारे पति नहीं रहें। क्या कुन्तोपुत्र युधिष्ठिर जन्ममें प्रयोजन, पराक्रम और कुरुषार्थको नहीं मानते, जो पाञ्चालराज द्रुपदको पुत्रीकी जुएमें लगा दिया।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि परम क्राधी भीमसेन कर्णके ये वचन सुनकर, दुःखी होकर राजाके वशवर्त्ता और धर्मपाशसे बड़ होनेके कारण लालनेत्र करके कर्णको जलाने लड़ेके समान सांस लेकर ऐसा कहने लगे।

भीमसेन बोले, कि हे राजन् ! हम कर्णके ऊपर कुछभी क्रोध नहीं करते, क्योंकि इसने ठीक वैसेही कहा, जैसा दासकी कहना चाहिये। हे नरेन्द्र ! यदि आप द्रौपदीकी पण न करते, तो कप्राशत्रु लोग मेरे आगे ऐसा बोलते।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि भीमसेनके ऐसे वचन सुनके राजा दुर्योधनने चुप बैठे अचेतन युधिष्ठिरसे ऐसा कहा। हे महाराज ! भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव आपकी आज्ञामें स्थित हैं, सो आप यदि द्रौपदीकी अजित मानते हैं, तो इसके प्रश्नका उत्तर दो। कुन्तोपुत्र युधिष्ठिरसे ऐसा कहकर, ऐश्वर्यके मदसे मोहित दुर्योधन अपने वस्त्रोंको उठाकर हंस्ते हुए द्रौपदीकी ओर देखकर कर्णका उत्साह बढ़ानेके निमित्त और भीमको धर्षित करनेके वास्ते केलेके खंभके समान, सब लक्षणयुक्त हाथीके सूँड़के समान सुन्दर वज्रके समान कठिन द्रौपदीके सामने बाँझड़ा दिखलाने लगा। भीमसेन उसको देखकर लाल लाल नेत्रोंकी फैलाकर सब सभाकी सुनाते हुए राजाके मध्यमें दुर्योधनसे ऐसा बोला, यदि मैं महायुद्धमें इसकी जाँघकी गदासे न तोड़ूँ, तो जिन लोकोंमें मेरे पितामह लोग गये हैं उसमें न जाऊँ। जैसे जलते हुए वृक्षकी जलती हुई खोखरोमेंसे अग्नि निकलती है, तैसेही क्रोधभरे भीमसेनके सब रोम-बिंदुओंसे अग्नि निकलने लगी। विदुर बोले, हे प्रतिपेय-वंशीत्यन्त राजा लोगो ! अब जो भीमसेनसे महाभय उत्पन्न हुआ, उसे देखो और जानो कि प्रारब्धवशसे कुरुवंशमें यह भयानक नीति उत्पन्न हुई है; धृतराष्ट्रके पुत्रोंने महा अन्याय

दिया, जो सभामें स्त्रीसे ऐसा प्रलाप करते हैं, क्रुशंगके योग और कुशल सब नष्ट हो गये, क्योंकि यह लोग पापयुक्त मन्त्रोंका विचार करते हैं, हे कौरवी ! तुम यह धर्म जानो, कि उहा धर्म नष्ट होता है, सो सभा दूषित होती है, यदि राजा अपने हारनेके प्रथम द्रौपदीको हारते तो इसके ईश हों जिस धनको अनीश ज़रमें लगावे, सो इसके ऐसा धन है अथवा जोतनेवालेकी मिल नहीं सकता, शकुनीके इस वचन को सुनकर काश्यप नष्टमति होगये। दुर्योधन बोला, कि हे काश्यप ! मैं भीमसेन अर्जुन, नकुल और सहदेवों का धर्म स्थित हूं, ये लोग यदि युधिष्ठिरकी अनीश कह दें, तो तू दासभावसे छूट जायगी।

अर्जुन बोले, हे कौरवी ! ये महात्मा कौसलपुत्र धर्मराज जसे पहिले हमारे स्वामी थे, परन्तु अब अपने को हार गये तब किसके ईश हो सकते हैं। आपही लोग जान लीजिये।

भीमसेनयनजी बोले, उसी समय महाराज धर्मराजके घरमें और वनशालामें एक सियार (मोड़ह) पाकर उसस्वरसे बोलने लगा; यह भी गंध और भयानक पक्षी भी घोर शब्द करता कि उस शब्दको तबज्ञ विदुर और गांधारीने सुना, भीम द्रोणाचार्य और विद्वान् कृपाचार्य सहस्त्रसे स्वस्ति स्वस्ति ऐसा कहने लगे। तब विदुर विदुर और गांधारीने इसे सुनकर राजा दुर्योधन को राजा धृतराष्ट्र के पास बुला देने पराये।

धृतराष्ट्र बोले, हे मन्त्रवृत्त दुर्जिनीतं दुर्योधन ! तू इस दुष्टा तू नरकीटकी सभाके लिये मेरी इतनी खबर करता है, धिमेय कर केनेके द्रौपदीसे देना लेकर दुर्योधन जान-बूझकर मेरी सभाका तत्त्वज्ञान धृतराष्ट्र के लिये दुर्योधन द्रौपदीसे ऐसा कहने के लिये।

उत्तम हो, तुम धर्मपरायण और प्रतिव्रता हो, जो तुम्हारी इच्छा हो, हमसे वर मांगो।

द्रौपदी बोली, हे भरतर्षभ ! यदि आप मुझको वर देना चाहते हो, तो मैं मांगती हूं, दीजिये। सर्वधर्मकर्त्ता श्रीमान् युधिष्ठिर दासभावसे छूटें और मनस्वी मेरेपुत्र प्रतिविंध्यको कोई राजकुमार यह न कहे, कि ये दासपुत्र हैं; पहले राजपुत्र होकर राजोंसे लालित होकर इसको दासपुत्र होना अयोग्य है।

धृतराष्ट्र बोले, हे कल्याणि ! हे भद्रे ! जो तुमने मांगा, सो हमने दिया, परन्तु हमारे मनमें यह होता है कि तुम एक वरदानके योग्य नहीं हो, अतएव दूसरा वर मांगो हम देंगे।

द्रौपदी बोली, हे राजन् ! भीमसेन, अर्जुन नकुल और सहदेव इन चारोंको धनुष और रथके समेत मांगती हूं, ये दासभावसे मुक्त हों।

धृतराष्ट्र बोले, हे महामार्ग ! हे नन्दिनि ! जो तू चाहती सो, ऐसाही हो, अब तीसरा वर मांगो, तुम मेरी सब वृद्धियोंमें उत्तम और धर्मचारिणी हो।

द्रौपदी बोली, हे भगवान् ! लोभ पापका मूल है, मैं उसे करना नहीं चाहती, हे राज-सत्तम ! मैं तृतीय वर मागनेमें अयोग्य हूं, वैश्यकी एकवर चढ़ी और स्त्रीकी दो राजाकी तीन और ब्राह्मणकी सो वर मागनेका अधिकार है, हे राजन् ! मेरे पति पाप दाम-कर्मसे उत्तीर्ण हुए; अब अपने पुण्य कर्मोंसे अनेक कल्याणोंको प्राप्त कर लेंगे।

६७ अध्याय समाप्त ।

कह्यो बोले, कि हमने मद्रथीने जिसकी रूपवती स्त्री सुनी थी, उनमेंसे ऐसा कर्म किशो-का भी नहीं सुना था, अतएव द्रौपदीका दास्य और कौरवोंका द्रौपदी का धर्मराज

तो हमें कदापि चमा न करते, हमारे पुण्य, तप और प्राणोंके भी ये ईश्वर है, यदि ये अपनेको अजित मानें, तो हमें सबही बिनाजित हैं, भूमिमें चलनेवालों कोई भी मनुष्य द्रौपदीके केशको स्पर्श करके मुझसे जोता नहीं छूट सकता, तुम लोग इन मोटे और लम्बे मेरे हाथोंको देखो, इनके बीचमें आकर इन्द्रभी छूट नहीं सकता, मैं धर्मपाशमें बंधा हुआ हूँ, धर्मराजके गौरव और अर्जुनके निरोधसे ये सङ्कट भोगता हूँ, यदि धर्मराज मुझको आज्ञा दें तो जैसे सिंह चुट्टा हरिणोंको नाश करता है, वैसेही इन पापी धृतराष्ट्रपुत्रोंकी चरणसे पीस डालूँ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, तब भीमसेन भीष्म द्रोणाचार्य और विदुर कहने लगे कि जो तुम कहते हैं, सो सब यथार्थ है, तुम सब कुछ कर सकते हो ; पर इस समय चमा करो।

६६ अध्याय समाप्त ।

कर्ण बोला, कि हे भद्र ! ये तीन पुरुष-निर्धन होते हैं ; दास, पुत्र, और पराधीन स्त्री ; नियम है, दासकी स्त्री, हीन-पतिवाली और दासका धन ये स्वामी होके होते है, हे राज-पुत्र ! राजा दुर्योधनके घरमें जाकर जो काम मिले सो करो, अब तुम्हारे पति धृतराष्ट्रके सब पुत्र हैं, पाण्डव नहीं हैं, हे भामिनि ! तू दूसरा पात कर ले, जिससे दासीका दुःख प्राप्त न हो ; दास-भावमें स्त्रियोंकी पतियोंमें कामवृत्ति अवाध्य है, यह तुम्हें मालूम है ; कि नकुल, भीमसेन, अर्जुन, सहदेव और युधिष्ठिर ये सब चार गये हैं याज्ञसेनि, तुम दासी होगयी और ये पराजित पाण्डव, तुम्हारे पति नहीं रहें। क्या कुन्तीपुत्र, युधिष्ठिर रणमें प्रयोजन, पराक्रम और कुशल नहीं मानते, जो पाञ्चालराज द्रुपदकी जुएमें लगा दिया।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि परम क्राधी भीमसेन कर्णके ये वचन सुनकर, दुःखी होकर राजाके वशवर्त्ता और धर्मपाशसे बड़ होनेके कारण लालनेत्र करके कर्णको जलाने लगे समान सांस लेकर ऐसा कहने लगे।

भीमसेन बोले, कि हे राजन् । हम कर्णके ऊपर कुछभी क्रोध नहीं करते, क्योंकि इसने ठीक वैसेही कहा, जैसा दासकी कहना चाहिये। हे नरेंद्र ! यदि आप द्रौपदीकी पण न करते, तो कप्राश्लु लोग मेरे आगे ऐसा बोलते।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि भीमसेनके ये वचन सुनके राजा दुर्योधनने चुप बैठे अचेत युधिष्ठिरसे ऐसा कहा। हे महाराज ! भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव आपके आज्ञामें स्थित हैं, सो आप यदि द्रौपदीके अजित मानते है, तो इसकी प्रज्ञा उत्तर दी कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरसे ऐसा कहकर, ऐश्वर्यमदसे मोहित दुर्योधन अपने वस्त्रोंको उठाके हंसते हुए द्रौपदीकी ओर देखकर कर्णके उत्साह बढ़ानेके निमित्त और भीमको धर्षित करनेके वास्ते केलिके खंभके समान, सब लक्षणयुक्त हाथीके सूड़के समान सुन्दर बज्रके समान कठिन द्रौपदीके सामने बाँझड़ा दिखलाने लगा। भीमसेन उसको देखकर लाल लाल नेत्रोंको फैलाकर सब सर्माकी सुनते हुए राजाके मध्यमें दुर्योधनसे ऐसा बोला, यदि मैं महायुद्धमें इसकी जाघकी गदासे न तोड़ूँ, तो जिन लोकोंमें मेरे पितामह लोग गये है उसमें न जाऊँ। जैसे जलते हुए वृक्षकी जलती हुई खोंखरोमेंसे अग्नि निकलती है, तैसेही क्रोधभरे भीमसेनके सब रोम-छिद्रोंसे अग्नि निकलने लगी। विदुर बोले, हे प्रतियोग-वंशीत्यन्त राजा लोगो ! अब जो भीमसेनसे महाभय उत्पन्न हुआ, उसे देखो और जानो कि प्रारब्धवशसे कुसुवंशमें यह भयानक नीति उत्पन्न हुई है ; धृतराष्ट्रके पुत्रोंने महा अत्याच

किया, जो सभामें स्त्रीसे ऐसा प्रलाप करते हैं, कुर्वशके योग और कुशल सब नष्ट हो गये, क्योंकि यह लोग पापयुक्त मत्त्वोंका विचार करते हैं, हे कौरवी ! तुम यह धर्म जानो, कि जहां धर्म नष्ट होता है, सो सभा दूषित होती है, यदि राजा अपने हारनेके पहिले द्रौपदीको हारते, तो इसके ईश होते, जिस धनको अनीश जुएमें लगावे, सो स्वप्नके ऐसा धन है अथवा जोतनेवालीकी मिल नहीं सकता; शकुनीके इस वचन को सुनकर कौरव नष्टमति होगये। दुर्योधन बोला, कि हे याज्ञसेनि ! मैं भीमसेन अर्जुन, नकुल और सहदेवके बाह्यमें स्थित हूं, ये लोग यदि युधिष्ठिरकी अनीश कह दें, तो तू दासभावसे कूट जायगी।

अर्जुन बोले, हे कौरवी ! ये महात्मा कुन्तीपुत्र धर्मराज जुएसे पहिले हमारे स्वामी थे, परन्तु जब अपने को हार गये तब किसके ईश हो सकते हैं। आपही लोग जान लीजिये।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, उसी समय महाराज धृतराष्ट्रके घरमें और यज्ञशालामें एक सिंघार (गोदड़) आकर उच्चस्वरसे बोलने लगा; तब हो गये और भयानक पक्षी भी घोर शब्द करने लगे, उस शब्दको तत्वेन विदुर और गान्धारीने सुना, भोम द्रोणाचार्य और विद्वान् कृपाचार्य उच्चस्वरसे खस्ति खस्ति ऐसा कहने लगे। तब विद्वान् विदुर और गान्धारीने इसे घोर उत्पात जान दुःखी होकर राजा धृतराष्ट्र से कहा, वह ऐसा बोले।

धृतराष्ट्र बोले, हे मन्दबुद्धे दुर्बिनीत दुर्योधन ! तू नष्ट हुआ, तू कुर्वशोंकी सभाके बीचमें स्त्रीसे ऐसे वचन कहता है, विशेष कर धर्मपत्नी द्रौपदीसे। ऐसा बोलकर दुःखसे बान्धनेके हित-चाहनेवाले महात्मा तत्त्वबुद्धि धृतराष्ट्र सान्त्वनापूर्वक पाञ्चाली द्रौपदीसे ऐसा बोले कि हे पाञ्चालि ! तुम मेरी सब बड़्गोमें

उत्तम हो, तुम धर्मपरायण और प्रतिव्रता हो, जो तुम्हारी इच्छा हो, हमसे वर मांगो।

द्रौपदी बोली, हे भरतर्षभ ! यदि आप मुझको वर देना चाहते हो, तो मैं मांगती हूं, दीजिये। सर्वधर्मकर्त्ता श्रीमान् युधिष्ठिर दासभावसे कूट और मनस्वी मेरेपत्र प्रतिबिम्बकी कोई राजकुमार यह न कहे, कि ये दासपुत्र है; पहिले राजपुत्र होकर राजासे लासित होकर इसको दासपुत्र होना अयोग्य है।

धृतराष्ट्र बोले, हे कल्याणि ! हे भद्रे ! जो तुमने मांगा, सो हमने दिया, परन्तु हमारे मनमें यह होता है कि तुम एक वरदानके योग्य नहीं हो; अतएव दूसरा वर मांगो हम देंगे।

द्रौपदी बोली, हे राजन् ! भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव इन चारोंकी धनुष और रथके समेत मांगती हूं, ये दास भावसे युक्त हों।

धृतराष्ट्र बोले, हे महाभाग ! हे नन्दिनि ! जो तू चाहती सो, ऐसाही हो, अब तीसरा वर मांगो, तुम मेरी सब बड़्गोमें उत्तम और धर्मचारिणी हो।

द्रौपदी बोली, हे भगवान् ! लोभ पापका मूल है, मैं उसे करना नहीं चाहती, हे राजसूतम् ! मैं तृतीय वर मागनेमें अयोग्य हूं, वैश्यकी एकवर, क्षत्री और स्त्रीकी दो राजाकी तीन और ब्राह्मणकी सो वर मागनेका अधिकार है, हे राजन् ! मेरे पति पाप दासकर्मसे उत्तीर्ण हुए; अब अपने पुण्य कर्मोंसे अनेक कल्याणोंकी प्राप्त कर लेंगी।

६७ अध्याय समाप्त ।

कर्ण बोले, कि हमने मनुष्योंमें जितनी रूपवती स्त्री सुनी थी, उनमेंसे ऐसा कर्म किसीका भी नहीं सुना था, अत्यन्त क्रीधप्राप्त पाण्डव और कौरवोंकी द्रौपदी ही शांतिरूप

झड़े ; बिनानावके जलमें डूबते हुए पाण्डवोंकी यह पाञ्चाली पौर लेजानेकी नौका होगयी ।
 श्रीवैशम्पायनजी बोले, परम क्रीधी भीम-
 सेनने जब सब कौरवोंके मध्यमें ऐसे वचन सुने,
 पाण्डवोंकी उनकी स्त्री गति भई तो दुर्मन
 होकर ऐसा कहने लगे ।
 भीमसेन बोले, कि देवल मुनिने पुरुषमें
 तीन ज्योति लोक प्रकाशक कही है ; पुत्र,
 कर्म और विद्या, इन तीनों ज्योतियोंसे प्रजा
 स्रष्ट हुई है, अशर्ण अपनी अशून्य प्राणहोन
 और जाति श्रुत होता है तब ये ही तीनों पुरुष-
 की गति है । हे धनञ्जय ! सो समझो हमारी
 स्त्रीके स्पर्ष करनेसे हमने इनकी ज्योति जान
 ली तब ऐसे पुत्र नीच कैसे न हों ?
 अर्जुन बोले, कि हे भारत ! उत्तम पुरुष
 नीचसे उक्त वा अनुक्त कठिन बातोंको उत्तर
 नहीं देते, महात्मा केवल सुतहीका स्मरण
 करते हैं, और को स्मरण भी नहीं करते पूजनीय
 महात्मा स्वयं ही प्रत्युपकारकी जान लेते हैं ।
 भीमसेन बोले, कि हे राजेन्द्र ! हे भारत
 युधिष्ठिर ! मैं यहांसे निकलता हूँ इन सब आये
 हुए शत्रुओंको समूल नाश करता हूँ । हे भारत ।
 इनसे वादविवाद करनेसे क्या लाभ, अभी
 हम मारे देते हैं, आप सब पृथिवीका राज्य
 कीजिये । भीमसेन ऐसा कह कर छोटी तीनों
 भाइयोंके सङ्ग जैसे सिंहलोग चूड़े हरिणोंको
 देखते हैं, वैसेही सबको बार-बार देखने लगे,
 उस समय अलिष्टकर्मों अर्जुनने उनकी ओर
 देखकर शान्त किया, परन्तु अतः क्रममें जलने लगे
 सब कान आदि कुछ मार्गसे भीमसेनके पतङ्गे
 निकलने लगे ; उस समय उनका मुख टेढ़ी
 भौहयुक्त तथा ऐसा कठिन होगया जैसा युगके
 अन्तमें लक्ष्मणारी यमराजका हो, तब युधिष्ठिरने
 उस वाङ्मशालीकी हाथसे निवारण किया और
 कहा, कि ऐसा मत करो शान्त होकर बैठो ।
 क्रोधमे लालनवाले महाबाहु

भीमसेनकी निवारण करके हाथ जोड़कर
 धृतराष्ट्र पिताके पास गये ।
 ६८ अध्याय समाप्त ।
 युधिष्ठिर बोले, कि हे महाराज ! हे
 भारत ! हमको आज्ञा दीजिये, हम आपका
 कौन प्रियकार्य करें, आप हमारे स्वामी हैं,
 हम सदा आपकी आज्ञामें रहना चाहते हैं ।
 धृतराष्ट्र बोले, कि हे अजातशत्रु ! तुम्हारा
 कल्याण हो, तुम निर्जिघ्र कल्याणपूर्वक हमसे
 आज्ञा लेकर धनके समेत अपने राज्यका शासन
 करो, और मुझ उड़े इस पथ्य रूप कल्याणमय
 शासनकी स्मरण रखो, हे ध्यारे युधिष्ठिर !
 तुम धर्मकी गतिको जानते हो तुम विनोत
 और वृद्धोंके उपासक हो । हे भारत ! जब
 बुद्धि है, तहां शान्ति है, तुम शान्ति हो जाओ
 क्योंकि शस्त्र काठहीमें लगता है, पत्यार
 नहीं ; जो उत्तम पुरुष है, सो बैरकी नहीं
 जानते ; गुणहीको देखते हैं, दोषोंको नहीं ;
 विरोधभी नहीं करते ; परायण कल्याण करने
 वाली साधु सुकृतहीको स्मरण करते हैं, बैरकी
 कदापि नहीं ; द्वेषक्रियाकी भी महात्मा नहीं
 देखते, हे युधिष्ठिर ! विवादमें जो कठोर बात
 कहे, सो पुरुष अधम है, जो उसके उत्तरमें
 कठोर बोले सो मध्यम है, जो उसे सुनकर भी
 कुछ न कहे सो उत्तम पुरुष है, कही वा बिना
 कही कठोर बातोंके धीर पुरुष उत्तर नहीं
 देते, महात्मा लोग जाननेवाले आत्मज्ञान पाकर
 सुकृतहीको स्मरण करते हैं, और किये हुए
 बैरकीभी भूल जाते हैं । साधुलोग धर्मकी
 मर्यादाको छोड़नेवाले नहीं होते और प्रिय-
 दर्शन होते हैं, ऐसाही तुमने इस समागममें
 आचरण किया, हे तात ! मेरी और गान्धारीकी
 ओर ध्यान देकर दुर्योधनकी कठोर बातोंको
 हृदयमें मत रहने देना । हे भारत ! मुझ अप
 पर ध्यान देना, यह अपूर्वद्यूत मेरी अनिच्छाहीसे

झुआ है, हे राजन् । मित्रोंके देखनेकी और पुत्रोंके बल अबलकी हम जानते हैं; इससे कौरवोंको कुछभी सोच नहीं है जिनके तुम शासन करनेवाले हो । जहां सब शास्त्र जानने-वाले बुद्धिमान् विदुर मन्त्री हैं, तुममें धर्म अर्जुनमें धैर्य, भीमसेनमें पराक्रम पुरुषाग्रगण्य नकुल और सहदेवमें विनय है, वहां क्या शोच है । हे अज्ञातशत्रु । आपका कल्याण ही, खाण्डवप्रस्थकी जाओ, तुम्हारे भाइयोंमें खेह ही, तुम्हारा मन धर्मकी धारण करे ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भरतर्षभ । (जम्भोज्य) उस प्रकार से धृतराष्ट्रकी बात सुनकर और, “जो आपने कहा सो सब वैसाही होगी” यही प्रतिज्ञा करके भाइयोंके सङ्ग चले, वे लोग द्रौपदीके सङ्ग मेघके समान रथोंमें बैठकर नगरश्रेष्ठ इन्द्रप्रस्थकी प्रसन्न मनसे चले ।

६६ अध्याय समाप्त । भूतपर्व समाप्त ।

अथ अनुभूतपर्वारम्भः ।

जम्भोज्य बोले, कि रत्नधनसङ्ग्रह और बान्धवोंके समेत सब पाण्डवोंके धृतराष्ट्रकी आज्ञा सुनकर धृतराष्ट्रके पुत्रोंका मत कैसा, झुआ ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे राजन् । जब बुद्धिमान् धृतराष्ट्रने पाण्डवोंकी जानकी आज्ञा दी, तब सुनतेही दुःशासन शोभतासे अपने भाई दुर्योधनके पास गया, हे भरतर्षभ । वहां जाकर चत्वरियोंके समेत बैठे हुए राजा दुर्योधन-से दुःखित होकर यह वचन बोला ।

दुःशासन बोला, कि हे महारथलागों । जो दृष्टसे यह सब धन उपाज्जन किया था, सो अब इस बुद्धिने नष्ट कर दिया, यह सब धन कौनके वशमें होगया; तब दुर्योधन कर्ण को सुलपुत्र शकुनी यह सब पाण्डवोंके प्रति-पादों होकर परस्पर मन्त्रणा करके विचित्र-नीति धृतराष्ट्रके पास शीघ्र जाकर मीठी-

बाणीसे ऐसा कहने लगे । दुर्योधन बोले, हे राजन् । आपने क्या वहस्पतिकी कही यह नीति नहीं सुनी है जो देवतोंके विद्वान् पुरोहितने इन्द्रसे कही थी, हे शत्रुसूदन । शत्रु-लोग सब प्रकारसे नाश करने योग्य हैं; क्योंकि ये तुम्हारे युद्धादिसे अहित करेंगे सो हम लोग पाण्डवोंकेही धनसे राजालोगोंकी पूजा करते अर्थात् पाण्डवोंका धन और राजोंकी देकर यदि पाण्डवोंसे लड़ेंगे, तो क्या वे, राजा हमारी ओर न होंगे ? कठिन विघ्नभरे क्रोधयुक्त नाशकी उपस्थित सर्पोंको कांठ और पीठमें धारण करके कौन त्याग सकता है ? हे तात । शस्त्र और रथ प्राप्त करके, सर्पके समान क्रुद्ध पाण्डव हमारा नाश कर देंगे, अर्जुन महातुणीर धारण करके गाण्डीव धनुषकी लेता झुआ, क्रोधसे देखता झुआ भीम भारी गदाकी उद्यत करके शीघ्रता सहित अपने रथमें बैठकर, नकुल खड्ग और अर्जुनचन्द्र तुल्य ढाल लेकर, सहदेव और राजाभी इङ्गिताकार करते गये हैं, ऐसा हमने सुना है, वे लोग अपने रथोंके वेगसे रथ समूहोंको पीछे करते हुए बद्ध-शस्त्र सहित सेना इकट्ठी करनेकी यहासे गये हैं, वे हमसे बहुतही अपमानित हुए हैं, हम न करेंगे, भला द्रौपदीका क्लेश उनमेंसे कौन सह सकता है ? हे पुरुषर्षभ ! हम वनवासके अर्थ पाण्डवोंसे जुआ खेलें, यही उनको वशमें करनेका एक उपाय है; जुएमें हारनेसे वे या हम बारहवर्ष पथ्यन्त मृगशाल धारण करके वनमें बसें और तेरहवें वर्ष पुरुषमय स्थानमें रहें पर कोई जान न सके, यदि जान ले तो पुनः बारहवर्ष वनमें रहें, ऐसा जुआ पुनः हीय फाँसे छोड़कर पाण्डव लोग पुनः जुआ खेलें, हे राजन् । हे भरतर्षभ । हमको यह परम कर्तव्य है क्योंकि शकुनि अश्वविद्याकी अच्छी प्रकारसे जानता है, हे राजन् ! हे परन्तप । यदि वे लोग १२ वर्षतक वनवास रूप व्रतकी धारण

करेंगे, तो इतने राज्यमें हमारी जड़ जम जायगी, तब अपने मित्रोंको लेकर बलवान् महासेना ठीक करके उनको जीत लेंगे, यह मन्त्र आपकी प्रिय लगना उचित है ।

धृतराष्ट्र बोले, कि यदि वे दूरभी निकल गये हो-तौभी उल्टे शीघ्र लौटाके ले आओ, पाण्डव आकर पुनः जुआ खेलें ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, उस समय द्रोण, भीष्म, कृप, सीमदत्त, बाह्लीक, विदुर, अश्वत्थामा बलवान् युयुत्सु, भूरिश्रवा, और महारथ विकर्ण, ये सब एकबार कहने लगे, अब जुआ न होना चाहिये और अब शांति हो परन्तु पुत्रप्रिय धृतराष्ट्रने पाण्डवोंके बुलानमें अर्धदर्शी कामरहित बान्धवोंकी कोईभी बात न सुनी ।

७० अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे महाराज । अनन्तर शंकासे पीड़ित पुत्रह्वयुक्ता धर्मवती गान्धारी राजा धृतराष्ट्रसे ऐना कहने लगी, जब यह दुर्धन उत्पन्न हुआ था, तबही विदुरने कहा था कि इस कुलकलङ्ककी मार डाली-हे भारत । जो उत्पन्न होतेही शियारके समान शङ्क करने लगा था-कौरवोंमें निश्चय करके इस कुलका नाशक है, हे भारत । हे प्रभो । आप अपने दोषसे मत डूबिये, बालकोंके समान बुद्धि धारण मत कीजिये ।

अब आप घोर कुलक्षयमें कारण मत हजिये, कौन वैध वेपुलको तोड़ता कौन बुझी आगकी धौकता है, हे भरतर्षभ । शान्त पाण्डवोंकी कौन क्षुपित कर सकता है, आप अजामीदवंशमें उत्पन्नको क्षरण करते कुन्ती-पुत्रको कौन क्षुपित कर सकता है और नैभी क्षरण कराजड़ी । हे राजन् । दुर्गुणको कल्याण वा हानि शास्त्रभी नहीं जता सकता है और बूढ़ा बालकोंके ऐसी बुद्धिवाला नहीं होता । पुत्रोंकी तुम्हारी आज्ञामें रहना

चाहिये, तुमसे भिन्न होकर वे नष्ट होंगे । संज्ञय । इसही लिये इस कुलकलङ्ककी मेरे वचनसे तुम त्यागदी, परन्तु हे नराधिप ! तुमने पुत्रस्नेहसे विदुरका कहना नहीं माना, उसका कुलनाशरूप यह फल अब प्राप्त भये मनसे धर्मसे और नोतिसे-युक्त जो तुम्हारी बुद्धि है, सो वैसीही रहनी चाहिये, उन्नत मत ही । जो लक्ष्मी दुष्टकर्मसे प्राप्त होती है, सो नाश कारिणी है, और जो उत्तमतासे प्राप्त होती है, वह प्रौढ है, पुत्र और पौत्र पर्यन्त स्थिर रहती है । हे महाराज ! यह सुनकर महाराज धृतराष्ट्र धर्मदर्शिनी गान्धारीसे बोले, कि भलेही इस कुलका नाश-हाजाय, मैं निवारण नहीं कर सकता हूँ, उनकी जैसी इच्छा है वैसाही हो, पाण्डव पुनः आवें औ इनके सङ्ग जुआ खेलें ।

७१ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि तब बहुत दूर गये कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरसे बुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्रको आज्ञासे प्रातिकामी सूत ऐसा कहने लगा, हे राजन् युधिष्ठिर । आपके पिताने ऐसा कहा है कि सभा उपस्थित है, यहा आओ और अक्ष फेंककर जुआ खेलो ।

युधिष्ठिर बोले, कि प्रारम्भके घल पुरुष शुभ अशुभ सबकी प्राप्त करता है, यदि पुन हमको जुआ खेलनाही तो यह निश्चय है कि पुरुष शुभ और अशुभ कर्मसे निवृत्त नहीं हो सकता है, बूढ़े की आज्ञासे पुनः जुवेमें जाना है, यद्यपि मैं जानता हूँ कि, जुआ नाशकर है तथापि निवृत्त होनेसे असमर्थ हूँ ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि यद्यपि सुवर्णका जन्तु हाना असम्भव है, तथापि राम हिरनके प्रति लोभी हुए, इससे निश्चय होता है कि, जिन पुरुषोंका निरादर होनेका होता है, उनकी बुद्धि प्रायः विपरीत हो जाती है । इस प्रकारसे कहते हुए और शकुनीकी माया

जानते हुए भी युधिष्ठिर भाइयों के समेत पुनः
जुए के स्थान में पहुँचे । वे पाचो महारथ भरत-
कुल-सिंह अपने मित्रों के हृदयों को कंपाते हुए
पुनः उस सभा में प्राप्त हुए, देवसे पीड़ित सर्वलोक
विनाशार्थ पुनः जुए के निमित्त सुखसे बैठे ।

शकुनि बोले, कि हे भरतप्रभ-युधिष्ठिर !
जो धन बूढ़ने आपको दे दिया, सो तुमने भी
मान लिया, अब सो महाधन एकही दावपर इस
कार से लगाइये, यदि आपलाग जीते तो हम-
लोग हरिणका चर्म ओढ़कर बारहवर्ष वन में
हैं और तेरहवें वर्ष मनुष्यमय स्थान में । छपकर
हैं यदि कोई जानले तो पुनः बारहवर्ष वन में
है । अथवा यदि हम जीते तो आप
इसके सहित मृगचर्म धारण करके बारह
वन में रहें और तेरहवें वर्ष में पुरुषमय
स्थान में छिपकर एक वर्ष वास करें, यदि प्रगट
हो जाय तो पुनः वन में बारह वर्ष रहें, जब
ऐसे तेरह वर्ष बीत जायें तो पुनः अपना राज्य
प्राप्त । हम या आप, हे युधिष्ठिर ! हे भारत ।
इसी नियमसे पुनः पाशा फेंक कर जुआ खेलिये ।
तब सब सभासद घबड़ा कर हाथ उठा कर
बगसे कहन लगे ।

सभासद बोले, कि अः धिक्कार है बान्ध-
वों को, जो युधिष्ठिरको उपस्थित भय बता नहीं
देते हैं, यह अपनी बुद्धिसे समझें वा न समझें ।
श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि इस प्रकारसे
महाराज युधिष्ठिर अनेक प्रकारके पुरुषोंकी
दुर्बलता सुनते हुए भी लज्जा और धर्मके वशमें
शकर पुनः दूत खेलने लगे । युधिष्ठिर जानते
थे तो भी यह निश्चय करके कि कुरुवंशका
अधिकांश समीप है, पुनः जुआ खेलने लगे ।

युधिष्ठिर बोले, हे शकुनि ! मेरे समान
मनुष्योंको पालनेवाला राजा बुलाये जाकर निवृत्त
नहीं होसकता है, अतएव मैं तुमसे जुआ
खेलता हूँ ।

शकुनि बोले, कि हे पाण्डवों ! गाय घोड़ा

वैल अनन्त बकरी भैसे-हाथी कोष सुवर्ण
सब दासो दास यह सब हम एकही दावपर
बनवासार्य लगाते हैं, तुम या हम जो हारे सो
वन में रहें और तेरहवें वर्ष मनुष्यमय स्थान में
छिपकर रहें । हे पुरुषप्रभ ! हम इसी प्रति-
ज्ञासे जुआ खेलते हैं, हे भारत ! एकही
वारके पाशा फेंकनेसे ऐसा हो जाय । युधिष्ठिरने
यह सब स्वीकार किया । और शकुनिने
पाशा उठाया, बस शकुनिने कह दिया, कि
युधिष्ठिर हार गये ।

७२ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, तब हारे हुए कुन्ती
पुत्रोंके वनवास के वास्ते दीक्षित होकर
क्रमसे चर्म और वस्त्रोंकी धारण किया ।
शत्रुओंको दमन करनेवाले पाण्डवोंको
राज्यसे भ्रष्ट और चर्मधारी बनको जाते
हैं । देखके दुःशासन बोला, कि मेहात्मा
दुर्योधनका राज्य अखण्ड हुआ पाण्डवोंके
हारके महाविपत्तिको प्राप्त हुए हैं । आज सब
देवता हमारे ऊपर प्रसन्न हैं, क्योंकि हम-
लोग शत्रुओंसे गुणमें बढ़े, अवस्थामें बढ़े और
प्रशंसाके योग्य हैं । कुन्तीपुत्र अनन्त नरकमें
बहुत कालके वास्ते गिराये गये, राज्य और
सुखसे सदाके लिये रहित होगये । जो धनके
अभिमानसे धृतराष्ट्रके पुत्रोंको हंसते थे वही-
पाण्डव धनरहित होके बनको जायेंगे । विचित्र
कंच और प्रकाशयुक्त दिव्य वस्त्र इनकी उतारे
जाय, यह सब मृगचर्म पहिरें जैसा शकुनिके
जुएमें इनकी प्राप्त हुआ है । जो सदा यही बुद्धि
रखते थे कि हमारे समान जगतमें कोई नहीं
है वह पाण्डव अब अपने आपको नपुंसक
और वीर्यहीन समझें । जैसे मृगचर्म यज्ञोंमें
महात्मा लोग धारण करते हैं वैसे ही अबलवान्
पाण्डवोंके मृगचर्मकी देखिये ।

महा बुद्धिमान् राजा द्रुपदने पाण्डवोंकी

कन्यादान देके कुछ भला कार्य नहीं किया । आश्चर्य है कि याज्ञसेनीके नपुंसक-पृथानन्दन पति हों । हे द्रौपदि ! वनमें मलिन वस्त्र मृगचर्मधारोर्निर्धन तथा प्रतिभारहित पाण्डवोंको देखकर तू क्या प्रसन्न होगी ? यहा पर और जिसे तेरो इच्छा हो उसे पति कर ले । यह सब कुरुवंशी जो यहां इकट्ठे है, इनमेंसे एकको पति बनाले, जिसेसे तेरा समय वया न जाय । जैसे नपुंसक मनुष्य निष्फल, जैसे धानकी भूसी निष्फल होती है, वैसेही पाण्डव निष्फल हैं । नपुंसककी सेवा करनेसे केवल कंष्टही होता है, पाण्डवोंकी सेवा करनेसे तुम्हें क्या मिलेगा ? ऐसे निर्लज्ज-वाक्य पाण्डवोंको धृतराष्ट्रके पुत्रने सुनाये । महाक्रोधी भीमसेन उन वचनोंकी सुनके ज़चे खाससे उसकी निन्दा करके ऐसे बोले जैसे हिमाचलका सिंह सियारकी दबाता है ।

भीमसेन बोले, कि दुष्ट और पापियोंके समान तू निष्फल बकता है, शकुनकी विद्यासे राजोंके बीचमें गाल बजाता है । जैसे तू वचनके बाणसे हमको बीधता है, वैसेही मैं युद्धमें तुम्हें इनका स्मरण कराऊंगा । जो लोग क्रोध वा लोभके बशमें हों के तेरी रक्षा करने आवेंगे उनको साधियोंके सहित यमराजके घर भेजूंगा ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि मृगछाल पहिने भीमसेनके ऐसे कहने पर शकुनि कुरुवंशियोंके बीचमें निर्लज्ज झाके नाचकर गौगो कहने लगा । भीमसेन बोले, कि हे निर्लज्ज ! तू करोड़-वाक्य कह सक्ता है, क्योंकि तेरे बिना कोन ऐसा है जा छलसे धनलेकर वकवाद करे । यदि तेरी छातीको चीरकर भीमसेन खून न पिये तो उत्तम लोकको प्राप्त न हो । धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी सब धनुर्धारियोंके सम्मुख मारकर शोग्र ही शान्तिकी पाऊंगा, यह मैं सत्य तुमसे कहता हूं । जब पाण्डव

लाग समासे चले तब राजा दुर्योधन-सिंहके समान गतिवाले भीमसेनकी चालके समान चालसे चलने लगा । भीमसेनने तिरछा हाँके कहा, हे मूढ़ ! इससे क्या होता है, शोग्रही तुम्हें साधियोंके सहित मारकर स्मरण कराऊंगा । ऐसे अपना अपमान देखके वा बलुवा अपने क्रोधकी रोककर राजा युधिष्ठिरके पीछे चलते हुए रुभाके बीचमें भीमसेनने यह वाक्य कहा ।

भीमसेन बोले, कि मैं दुर्योधनको माखंगा अर्जुन कर्णको मारेंगे, पाशके छली शकुनिको सहदेव मारेंगे । फिर मैं सभाके बीचमें यह बड़ी बात कहता हूं, जब हमारा युद्ध होगा तब देवता उसे सत्य करेंगे । युद्धमें इस पापी दुर्योधन को गदासे माखंगा, इसके सिरकी अपने पैरसे पृथ्वीपर फेंक दूँगा, इस वचनवीर कटुबादी दुःशासनके खूनको सिंहके समान पीजंगा ।

अर्जुन बोले, सज्जनोंके बीचमें भीमसेन वा कहत है, वह केवल वचनसे ही नहीं कहते वरण अबसे तेरे वषमें जो हागा उसे आप लोग देखेंगे । भीमसेन बोले, दुर्योधन, कर्ण, शकुन और चौथे दुःशासनका साधर प्रायवी पीवेगो । अर्जुन बोले, हे भीमसेन ! निन्दा करनेवाले, दुष्टाका मार्ग । दरखानवाले, कुबुद्धि और बकवादी कणका युद्धमें मैं माखंगा । भीमकी प्रसन्नताके वास्ते अर्जुन प्रतिज्ञा करने लगे, कि कर्णके साँझियोंको मैं बाणोंसे माखंगा । जा अरुं राजा-लाग, बुद्धके भ्रमसे मेरे साथ युद्ध करेगी, उन सबका बाणाके द्वारा मैं यमघरका भेजूंगा । यदि हिमाचल अपने स्थानसे चलायमान हो जाय, स्थै प्रकाश रहित हो जाय, चन्द्रमाकी शीतलता नष्ट हो जाय । आजसे १३ वें वर्षमें यदि दुर्योधन आदर पूर्वक हमको राज्य न देगा तो यह सब सत्य हागा ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, अर्जुनके ऐसे कहने पर श्रीमान् माद्रीनन्दन सहदेव भारी भुआकी

हिलाकर क्रोधसे लालनेत्र करके सर्पके समान
 श्वास लेते हुए शकुनिको मारनेके इच्छुक
 होके ऐसा वचन बोले । हे मूढ़ ! हे गान्धार-
 देशीय जनोके यशनाशक ! तू जो पाशोंकी
 बद्धत मानता है, यह युद्धमें तीक्ष्ण वाणोंसे
 तेरी रक्षा न करेंगे । जैसे भीमसेनने बन्धु-
 वान्धवोंके सहित तेरे वास्ते वचन कहा, मैं उस
 कर्मको करूंगा । हे शकुनि ! याद तू चलि-
 योंके धर्मानुसार युद्धमें खड़ा होगी, तो भाइयों
 सहित युद्धमें शीघ्रही तुझे मारूंगा । हे
 राजन् ! सहदेवका वचन सुनके, परम सुन्दर
 नकुल यह वचन बोले, राजा द्रुपदको कन्या
 द्रौपदी इस जुएमें धृतराष्ट्रके जिन पुत्रोंने दुर्ध्या-
 धनकी प्रसन्नताके वास्ते रखे वचन सुनाये हैं,
 उन कुकर्मी कालप्रेरितोंका मैं यमके घरकी
 भेजूंगा । महाराज युधिष्ठिरकी आज्ञासे द्रौपदी
 की दशाको याद करके, बद्धत शीघ्र पृथ्वीको
 धृतराष्ट्रके पुत्रसे सुनी करूंगा । वैशम्पायन बोले
 इसप्रकारसे वह सब वशाल भुजधारो नरासह
 बद्धत प्रातः करके धृतराष्ट्रके पास पहुंचे ।

७३ अध्याय समाप्त ।

युधिष्ठिर बोले में भरतवंश्यांतथा ब्रह्म-
 पितामहका, राजा सोमदत्तकी तथा राजा
 शालीका प्रणाम करता हूँ, द्रोणाचार्य,
 अश्वत्थामा तथा और राजाको प्रणाम करता
 हूँ, धृतराष्ट्रके पुत्राक, जुहार करता हूँ ।
 युयुत्सु सञ्जय और अन्य सभासदास भेंट करके
 जाता हूँ, फिर आकर आपलागासे मिलूंगा ।
 अश्वत्थामायनजी बोले, सबलोग लाज्जित हुए,
 किसीन युधिष्ठिरसे कुछ न कहा, किन्तु
 बुद्धिमान् युधिष्ठिरका सवने मनसे ही कल्याण
 कहा । विदुर बोले, आर्या, राजपुत्रो कुन्ती
 हमारी और वडा है, नित्यही उन्हें सुख
 करना उचित है, इस कारणसे वह वनको जानेके
 योग्य नहीं हैं । वह आदरके साथ यहीं मेरे घर

रहेंगी, हे कुन्तीपुत्री । आपलोग इसे समझाविं
 आपका सदा कल्याण हो । पाण्डवोंकीले, जैसा
 आप कहते हैं, आपको वैसाही उचित है, आप
 हमारे चचा हैं, पिताके समान हैं । हे विदुर
 जैसी आप आज्ञा करते हैं, वैसाही हम करेंगे,
 आप हमारे गुरु हैं, हम आपको सेवक हैं और
 जो हमारे करनेयोग्यही वह भी आप बतलावें ।
 विदुर बोले, हे भरतश्रेष्ठ युधिष्ठिर ! यही
 मेरा उपदेश समझी, कि कोईभी, अधर्मसे
 हारा हुआ अपनी होरमें दुःखी नहीं होता
 तुम धर्मको जानते हो, युद्धमें जीतनेवाले
 अर्जुन हैं भीमसेन शत्रुओंको मारनेवाले, नकुल
 धन इकट्ठा करनेवाले, नियममें चलानवाले
 सहदेव, ब्रम्हको जाननेवालोंमें उत्तम धीम्य है ।
 धर्म और अर्थमें चतुर धर्म करनेवाली, द्रौपदी
 है । आप लोग आपसमें सबसे सब प्यारे हैं, सब
 सुन्दर हैं, शत्रु आप लोगमें फूट नहीं डाल
 सक्ता, आपको यह कौन नहीं चाहेगा ? यही
 आपका सब कल्याण है, जो आप मनकी,
 स्थिर रखते हैं, शत्रु चाहें, इन्द्रके तुल्यभी
 क्यों नहीं, इसे नहीं जीत सक्ता है । पहिले
 समयमें हिमाचल पर्वतपर । सार्वर्ण्य मनून
 आपकी शिखादीप्ति हास्तनापुरसे कृष्णपायन
 व्यासने आपको शिखा दीधी, भृशुतुङ्ग चित्रमें
 परशुरामने, द्रुपदतो नदीके तट पर महोदिवन,
 महर्षि असितका उपदेश आपन सुना है ।
 कल्माषी नदीके तटपर आप मनु मानके शिष्य
 हुए थे, नारद आपको सदा देखते हैं । आपको
 यह पुरोहित धीम्य कृषि हैं । वह कृषियोंसे
 पूजी बुद्धि परलोकमें भी तुम्हें त्याग न करें, हैं
 पाण्डुपुत्र अपने बुद्धिसे इलाकें पुत्र पुंस्रवाकी
 जीत लिये हैं । और बलसे आपने राजाकी
 जीता है, धर्मके आचरणसे ऋषियोंकी जीता
 है ; मनकी धारणासे इन्द्रकी जय, क्रोधका
 जीतनेसे यमराजकी जय, दानसे कुबेरकी
 जय, और इन्द्रियोंकी वश करनेमें वरुणकी

आपकी प्राप्त हो। परीपकारके वास्ते अपने शरीरकीभी देना, चन्द्रसे सौम्यभाव, जलसे जीना, भूमिसे चमा, सम्पूर्ण तेज सूर्यमण्डलसे, वायुसे बल और सम्पूर्ण प्राणियोंसे तुम्हें सम्पत्ति प्राप्त हो। तुम निरोग रहो, तुम्हारा कल्याण हो, फिर तुम्हें लौटकर आयेज्जनोंकी मैं देखूंगा। हे युधिष्ठिर। धर्ममें तथा सब कामोंमें उचित कार्य करना। हैं भरतवंशी जगतमें तुम्हारा कल्याण हो। कृतार्थ और कल्याणयुक्त तुमको फिर आया हुआ हम लोग देखें, तुम्हारे पिछले दुखोंको कोई नहीं जानता है। श्रीवैशम्पायनजी बोले, विदुरके ऐसे कहे जाने पर सत्यप्रण युधिष्ठिरने तथास्तु कहके भीष्म और द्रोणाचार्यकी प्रणाम करके प्रस्थान किया।

७४ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, युधिष्ठिरके चलने पर द्रौपदी, यशोवती कुन्तीकी बन्धना तथा और स्त्रियोंसे मिलकर चलने लगी, उस समय पाण्डवोंके रनिवासमें हाहाकारका शब्द भर गया। कुन्तीभी द्रौपदीका जाती हुई देखकर बहृत सन्तापयुक्त शोकसे विह्वल बाणोंसे कष्टके साथ यह बोली। हे पुत्र। दुःखको पाकर तुमका शोक करना न चाहिये, क्योंकि तुम स्त्रियोंके धर्मकी जाननेवाली, शील और आचारसे युक्त हो। हे शोचस्विते। तुम्हें मैं क्या उपदेश करूँ, तुम आपही साध्वी और गुणयुक्त हो, तुमने दोनो कुलोंको आभूषित किया। हे पापवर्जिते। यह कुरुलोग भाग्यवान् है जो तुमने इकट्ठा जलाया नहीं। तुम सुखसे जाओ मेरे ध्यानसे तुम्हारी वृद्धि हो। होनवाले कार्योंमें स्त्रियोंको विकार नहीं होता है, बड़े जनोंके धर्मसे तुम राक्षत हो, शीघ्रही तुम्हें कल्याण प्राप्त होगा, मेरे पुत्र सुहृदेवकी वनमें सदा रखवाली करना, जिससे

यह दुःख पाके शोक न करे। देवी द्रौपदी तथास्तु कहके नेत्रोंसे आसू बहाती हुई, रजसे भरे एक वस्त्रकी पहिने हुए, सिर खाली चली। उसरोती चिंहाती हुईके पीछे पीछे कुन्तीभी चली। पश्चात् अलङ्कार और वस्त्र रहित, मृगचर्म ओढ़े हुए, लज्जासे कुछ नीचा मुख किये हुए, अपने पुत्रोंको, प्रसन्नमुखवाले, शत्रुओंसे और शोकयुक्त मित्रोंसे युक्त देखा। उस दशमें पुत्रोंको देखकर मात-प्रेमसे पुत्रोंको गलेसे लगाकर बहृत विलाप करने लगी। कुन्ती बोली, सत्यधर्मकी करनेवाले शुद्धवृत्ति और स्थितिवालोंको दृढ़भक्त तथा देवतोंकी पूजा करने वालोंको दुःख कैसे प्राप्त हुआ, यह कैसी डलटी गात हुई। यह किसके क्रोधका पाप तुम्हारी वृद्धिमें मैं देखती हूँ। यह मेरे ही भाग्यका दोष है, जो मैंने उत्तम गुणोंसे युक्त होकर भी दुःख भागनके वास्ते तुम्हें उत्पन्न किया था। तुम लोग सम्पत्तिके बिना, वनमें कैसे बसोगे, वीर्य सत्व, बल, उत्साह और तेजसे भरे कैसे दोन बनोगे। यदि मैं जानती कि वनमें रहनाही तुम्हारा निश्चय है, तो पाण्डुके मरनेके पश्चात् शतशृङ्ग पर्वतसे हास्तिनापुरमें न आती। मैं तुम्हारे तप और वृद्धियुक्त पिताको धन्य मानती हूँ जो पुत्रशोकसे प्रयमही स्वर्गको चले गये। धर्मज्ञ कल्याणी माद्रीका भी मैं धन्य मानती हूँ जो इन्द्रियोंसे जाननेके अयोग्य परम गतिका प्राप्त होगई। रति मति और गतिमें जो सदा सज्ज रहनेवाली जिसकेवल जोनाही धारा है, मुझ दुःखिनीको धिक्कार है। हे पुत्रा! तुम्हें नहीं छोड़ूंगी वनकी मैंभी चलूंगी, हाय। द्रौपदि। भुम्हें क्यों छोड़ती है? प्राणोंका धर्म नाशवान है, तो ब्रह्माने किस प्रमादसे मेरा अन्त नहीं बनाया, जो अवस्था मुझे नहीं छोड़ती है। हा! द्वारकावासी। वलरामके अनुज। मुझे और इन नरोत्तमोंको दुःखसे क्यों नहीं बचाते हैं? जो मनुष्य तुम्हें अनादि और

अनन्त समझके तुम्हारा ध्यान करते हैं, उनकी तुम रक्षा करते हो। यह कहावत अब झूठी कैसे होगई यहलोग सर्वर्म, माहात्म, यश और वलसे पूर्ण हैं दुःख भोगनेके योग्य नहीं हैं, इन पर दया कीजिये। नीतिके, तत्त्वार्थोंकी जाननेवाले कुलनाथ भीष्म, द्रोण और कृपाचार्य आदिके बैठे हए यह विपद कैसे आगई। हाँय महाराज पाण्डव। तुम कहाँ हो? शत्रुओंसे हारे हुए पाण्डवोंकी क्यों त्यागते हो? हे सहदेव! तुम नौट आओ। तुम सुभी प्राप्तिसेभी धार हो। हे माद्रीनन्दन। कुन्तीके समान सुभी मत त्यागी। यदि सत्यकी पालनेवाले तेरे भाई वनकी जाते हैं तो जाते हैं, तू मेरी रक्षाको धर्म यहाँ प्राप्तकर। वैशम्पायन बोलें, कि इस प्रकारसे विलाप करती हुई कुन्तीकी प्रणाम करके, दुःखसे पूरित हो पाण्डवलोग वनकी चले गये। विदुर उस दुखिनी कुन्तीकी समझाकर और आपसी दुःखी वनके घरमें ले गये। धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी स्त्रियाँ जुएमें द्रौपदीके वस्त्र खींचने और वनकी जानेकी कथा सुनके वज्रत रोने और कुंसे लोगोंकी निन्दा करने लगीं। अनेक स्त्रियाँ मुखपर हाँथ रखके वज्रत देर तक सोचती रह गईं। उस समय राजा धृतराष्ट्र अपने पुत्रोंके अन्यायका ध्यान करके शान्तिकी प्राप्त न हो सके।

राजा धृतराष्ट्रने शोकसे व्याकुल और चञ्चलचित्त होके विदुरकी बुलाया। तब विदुर राजा धृतराष्ट्रके घर पर गये। नरोधिप धृतराष्ट्रने विदुरसे पूछा।

७५ अश्वमेध अमाप्त ।

श्रीशम्पायनजी बोलें, कि तब आए हुए शेषदर्शी विदुरसे अम्बिकापुत्र राजा धृतराष्ट्र इसा सहित ऐसा कहने लगे।

धृतराष्ट्र बोले, हे चत्त। कुन्तीपुत्र भीष्मराज युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल

और सहदेव ये पाचीपाण्डुपुत्र किस प्रकारसे वनकी जाते हैं। धौम्य और यशस्विनी द्रौपदी कैसे वनकी जाती है, सो सब सुननेकी हम इच्छा रखते हैं। तुम उनकी चेष्टा हमसे कहो। विदुर बोले कुन्तीके पुत्र युधिष्ठिर वस्त्रसे अपने मुखकी छिपोंकर जाते हैं, भीम अपनी विशाल बाहुओंकी देखते, अर्जुन बाण उड़ाते उड़ाते राजाके पीछे गमन करते हैं, माद्रीके पुत्र सहदेव अपने मुखकी लिप करके और अत्यन्त सुन्दर नकुल भी विह्वलचित्त होकर अपने सब शरीरकी मिट्टीसे पोतकर राजाके पीछे जाते हैं। विशालनेत्रा सुन्दरी द्रौपदी वालोंसे मुखकी छिपा कर राजाके पीछे रोती हुई जाती है। हे राजन्। हाथमें कुशलिये भयानक यम है देवता जिनका ऐसे सोमवन्दके मन्त्रोंकी गाते हुए धौम्यभी जाते हैं।

धृतराष्ट्र बोले, हे विदुर! पाण्डव लोग अनेक प्रकारके रूप बनाकर वनकी जाते हैं, इसमें क्यों कारण है, सो तुम सुझसे कहो।

विदुर बोले, यद्यपि तुम्हारे पुत्रोंसे क्लृप्त गया है, राज्य और धन छीना गया है, तथापि बुद्धिमान् धर्मराजकी बुद्धि धर्मसे विचलित नहीं हुई; हे राजन्। महाराज युधिष्ठिर आपके पुत्रोंसे सदा धिन करते हैं, अतएव क्रोधसे आँख नहीं खोलते और पाण्डुपुत्र राजाने यह भी विचारा कि मेरे कठिन नेत्रोंसे प्रजा जल न जाय, अतएव वह अपना मुख आच्छादित करके जाते हैं, जिस निमित्त भीमसेन हाथोंकी देखते हैं, हमसे सुनिये, बाहु-धन अभिमानी भीम अपना विशाल बाहु दिखाते- इसलिये जाते हैं, कि हमारे समान बाहुवली कोई नहीं है। अपने वल और द्रव्यके अनुसार कर्म बताते हुए और बाण वर्षाकी बताते हुए कुन्तीपुत्र अर्जुन उड़ाते राजाके पीछे जाते हैं, जैसे असंलग्न रूपसे उड़ता है, वैसेही

पर असंख्य बाण वर्षाते हैं, यह व्रतान्तके निमित्त अर्जुन बाण वर्षाते जाते हैं। अब मेरे सुखको कोई न जान सके इस निमित्त नकुल सुख लेपकर जाति है। मार्गमें स्त्रियोंका मन मेरे ऊपर न आवे इसलिये सहदेव सब अङ्गमें सिट्ठो पीतकर जाति है, एकवस्त्रा रोती हुई खुले केशवाली, रजस्वला रुधिरसे भरे वस्त्रवाली, द्रौपदी यह कहती जाती है, कि जिनके करनेसे मेरी यह दशा हुई है, अब से चौदहव वर्ष उनको, स्त्रियाभी पति पुत्र भाई और प्यारे पुरुषोंके मर जानेसे बृद्धत रुधिरसे युक्तशरीरवाली, खुले केशवाली, रजस्वला इस प्रकारसे उनकी जलदान करके हस्तिनापुरमें प्रवेश करेगी। हे भारत। नैऋत कुश बनाकर यमदेव देवतावाले साम वैदीय मन्त्रगाते धौम्य गीत कहते हुए आगे जाते हैं, कि जब महा युद्धमें सब कौरव मारे जायंगे तब उनके गुरुभी इन्होंने मन्त्रोंका गान करेङ्गे। हे महाराज। नगरवासी प्रजागणों, कह कह रोते हैं, हाय हाय देखो यह हमारे स्वामी लोग बनकी जाते हैं, धिक्कार है बूढ़े कुरुवंशियोंकी जिनका मूर्ख लोगोंके समान कर्म है, धिक्कार है उनको जो लोभसे पाण्डुपुत्रोंको राज्यसे निकालते हैं, हाय हम सब पाण्डुनन्दनके बिना आज अनाथ होगए, दुष्ट लोभी कौरवोंसे हमें कुछभी प्रीति नहीं है, इसप्रकारसे सब दुःखित होकर बार बार रो रहे हैं, इस प्रकारसे मनस्वी कुन्तीके पुत्र आकार और दार्द्र्यतासे कहते हुए बनकी जाते हैं, इस प्रकारसे जब वे पुरुषव्याघ्र हस्तिनापुरसे चले, तो बिना बार्दर विजुली चमकी कम्प हुआ। हे राजन्। बिना समय स्थिर ग्रहण हुआ, नगरकी बार्द और उल्कापात हुआ, हे राजन्। मासखानेवाले गिद्ध सियार और कञ्च देवताओंके स्थान स्रशान कोठे और अटारियों पर बोलते हैं, यह महाकठिन उत्पात सब भरतवंशके हेतु आपकी मन्त्रनासे प्रत्यक्ष होते हैं।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि इस प्रकारसे दोनों राजा धृतराष्ट्र और बुद्धिमान विदुर जहां वार्ता कर रहे थे वहां कौरवोंकी सभामें नारद मुनि आये। महर्षि लोगोंके संयुक्त आतेही वह भयानक वार्ता कहते लगे; अबसे चौदहव वर्ष दुर्योधनके अपराध और भीमसेन तथा अर्जुनके बलसे समस्त कुरुकुल नष्ट हो जायगा। इस प्रकारसे कहकर बृद्धत ब्राह्मलक्ष्मीको धारण किये हुए, ब्रह्मकृषियोंमें उत्तम भगवान् नारद आकाशमें जाकर अन्तर्धान हो गए, तब दुर्योधन कर्ण और सुबलपुत्र शकुनी इन सबने द्रोणाचार्यको आश्रय जानकर सब राज्य उनकी अर्पण कर दिया। अनन्तर द्रोणाचार्यने क्रीधी दुर्योधन, कर्ण, दुःशासन और सब कौरवोंसे कहा, ब्राह्मणोंने देवपुत्र पाण्डवोंको अवध कहा है, परन्तु मैं अपने बलके अनुसार भक्ति पूर्वक सब प्रकारसे शरणागत राजसहित धृतराष्ट्रपुत्रका अनुगामी हूं, परन्तु प्रारब्धबलको छोड़ नहीं सकता हूं, आज पाण्डवलोग जुमें हारकर धर्मपूर्वक बनकी जा रहे हैं, वे बारह वर्ष वनमें रहेंगे, वे इस ब्रह्मचर्यव्रतका आचरण करके क्रोधके वशमें ही बैर निकालेंगे, सी बैर महादुःखका कारण होगा, हे राजन्। मैंने सखाभावके युद्धमें दुपदको भ्रष्ट किया है, अतएव उसने एक यज्ञ किया जिसमें मेरे मारनेवाला पुत्र हो। यज्ञ और उपयज्ञ करके बृद्धतपसे उसने अग्निवेदीके मध्यसे धृष्टद्युम्न पुत्र और समधमा द्रौपदीपुत्री प्राप्त की। सो धृष्टद्युम्न सम्बन्धसे पाण्डवोंका साला हुआ है, अतएव पाण्डवोंके प्रियकाममें निरत है, मुझे उससे बृद्धतही भय है, अग्निवर्षा देवदत्तक चक्रधनुष और वाणयुक्त धृष्टद्युम्नसे मुझे मूर्तिमान् सुत्युके ऐसा भय भान होता है, सो शत्रुनाशक धृष्टद्युम्न पाण्डवोंके पक्षमें है, जो युवा अर्जुन रथी और महारथी वीरोंकी सरव्यामे अगाड़ी गिना जाता है, यदि उससे मेरा युद्ध हो तो, हे कौरवों

जगतमें इससे अधिक और क्या दुःख होगा ? धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्यकी मृत्यु है, यह बात जगत्-में प्रसिद्ध है, और धृष्टद्युम्नभी मेरे मारनेकी प्रसिद्ध और बलसे भी जगत्में वज्रतही प्रसिद्ध है । सो निश्चय करके तुम्हारे कारण अब वह उत्तमकाल आगया, सो अब शीघ्र कल्याणका यत्न करो, पाण्डवोंके वनमें जानेसे अच्छा नहीं हुआ, यह तुम्हारा सब सुख वैसाही क्षणभंगी है, जैसी हेमन्तऋतुमें ताड़की छाया । महा-यज्ञोंको करो, भोगो, दादो, दो, अन्धसे चौदहवें वर्ष महा नाशमें पड़ोगे । द्रोणाचार्यके ऐसे वचन सुनकर धृतराष्ट्र ऐसा कहने लगे ।

हे विदुर ! गुरुजीने सत्य कहा, तुम पाण्डवोंकी लौटा लाओ और यदि वे न फिरें तो अच्छी रीतिसे जाय, शस्त्र, रथ पदाति और सब भोगकी कस्तु उनकेसड़ रहें ।

७६ अध्याय समाप्त ।

अवैशम्पायनजी बोले, हे महाराज जब पाण्डव शरकरव नकी चलेगए, तब धृतराष्ट्रकी चिन्ता हुई। चिन्ता सहित स्वांस लेते हुए उठकर बैठे उस राजा धृतराष्ट्रसे सञ्जय ऐसा कहने लगे । सञ्जय बोले हे पृथिवीनाथ । धनसे पूर्ण पृथिवीकी प्राप्त करके और हे राजन् । पाण्डवोंकी राज्यसे निकालकर अब कौन बात सोचते हो ।

धृतराष्ट्र बोले, कि जिसकी युद्ध विशारद, महारथ बलवान् पाण्डवोंसे वैर हीनेवाला है, वह विना सोच कैसे रह सकता है ?

सञ्जय बोले, हे राजन् यह महावैर जिससे दोनोंका नाश जड़समेत होगा, सो आपहीके करनेसे हुआ है, भीष्म द्रोण विदुरके निवारण करने पर भी तुम्हारे निर्लज्ज मूर्ख पुत्र दुर्योधनने भीष्मकी से कहा कि धर्मचारिणो पाण्डवोंकी सभी स्त्रीकी सभामें लेही आओ । देवता भीष्मकी पराभव चाहते हैं, उसकी बुद्धि नष्ट कर देते हैं, सो उसे विपरीतही दीख पड़ता है,

जब बुद्धि विपरीत होती है और नाश उपस्थित होता है, तब अन्याय हृदयमें न्यायको स्थान ही नहीं देता है, उस पुरुषकी अनर्थ अर्थरूप और अर्थ अनर्थरूप दीखने लगते हैं, और वेही उसे प्रिय लगते हैं : काल लाठी लेकर किसीका शिर नहीं फोड़ता है, विपरीत दिखलाना यही कालका बल है, तपस्विनी अयोनिसे उत्पन्न रूपवती अग्निसे उत्पन्न पाञ्चाली द्रौपदीकी सभाके बीचमें पारकर्षणकरके यह महालोमहर्षण भयानक वैर उत्पन्न किया गया है, जुआरियोंके बिना कौन उस सब धर्मकी जाननेवली यशस्विनीकी सभामें लासकता है, ऋतुमती उक्त सुमुखी रुधिरसे भरे हुए एकवस्त्र ली द्रौपदीने नष्ट होने धनवाली राज्यसे भ्रष्ट हतवस्त्र नष्ट श्री सब कामोंसे हीन दासत्वकी प्राप्त धर्मकी फांसीमें वंधे हुए पराक्रमके असमर्थ पाण्डवोंकी देखा ; क्रीधयुक्त अयोग्य दुःखी कृष्णाकी कौरवोंकी सभामें दुर्योधन, कर्णने अनेक कड़वी बातें कही, हे राजन् ! यह सब सुभा कठिन भान होता है ।

धृतराष्ट्र बोले, कि हे सञ्जय ! द्रौपदीके दुःखात्तेहीनेहीसे पृथिवी भस्म होजा सकती है, मेरे पुत्रोंका अब नाश हीगा, धर्मिष्ठा धर्मराजकी स्त्री, रूप और यौवनसे संयुता द्रौपदीकी सभामें आते देखकर कुत्सकुलकी सब स्त्री गान्धारीके समेत रोती थीं, अब भो वे नित्य प्रजाकी स्त्रियोंके सङ्ग बैठकर सोचती हैं । संध्या समय सत्र और अग्निहोत्र नहीं होते । सभामें द्रौपदीके कर्षण करनेसे ब्राह्मण क्रुद्ध होगए, वायु घोर चलने लगा, आकाशमें वज्रका शब्द होने लगा, आकाशसे बिजली गिरने लगी प्रजाकी भय उत्पन्न करते हुए, राजने विना समयसूर्यकी ग्रहण किया, रथ शालाओंमें आग लग गई, भरतवंशियोंके अकल्याणके निमित्त ध्वजा टूट गई, दुर्योधनकी अग्निशालामें सियारो घोर शब्द करने लगे, सब ओर से उनके शब्द सुनकर गधे बोलने लगे ।

द्रोण भीष्म, कृपाचार्य, बांहीक और महात्मा
सौमदत्त मेरे पास आए ; तब मैंने विदुरसे
प्रेरित होकर कहा कि मैं द्रौपदीको इच्छा-
नुसार वर देता हूँ, तब द्रौपदीने पाण्डवोंकी
अदासत्त मागी रथ धनुषके समेत मैंनेभी उल्ले-
खनेकी आज्ञा दी, उसी समय महापण्डित सब
धर्मोंके जाननेवाले विदुरने कहा कि वस जब
द्रौपदी सर्भामें आई कुरुकुल तब वहीँ तक था,
यह जो पाञ्चालराजकी पुत्री द्रौपदी है, सो
लक्ष्मी है, प्रारब्धसे पाण्डवोंके पीछे फिरती है,
उसका दुःख, पाण्डव, महाबलवान्, सत्यसन्ध
वासुदेवसे रक्षित महबल वृष्णिवंशी, और
पाञ्चाल नहीं सह सकेगी, जब पञ्चालियोंसे

वेष्टित अर्जुन और उनके बीचमें महाबाहू
भीमसेन कालदण्डके समान गदा की घूमाता
झुआ पड़चेंगा, तब अर्जुनके गाण्डीव धनुषका
शब्द सुनकर भीमकी गदाके वेगकी सहनेमें कोई
भी राजा समर्थ न होगा। कौरवोंसे मैं पाण्डवोंको
सदाबलवान् मानता हूँ, अतएव उनसे सन्धि
चाहता हूँ युद्ध नहीं। देखो, तेजस्वी महाबल-
वान् राजा जरासन्धकी भीमने युद्धमें हाथोंहीसे
मार दिया। हे सञ्जय! उस भीमसे हमारी संधि
हो ऐसा यत्न शङ्का छोड़कर दोनों पक्षमें कीजिये।
हे महाराज ! ऐसा करनेसे ती परम कल्याणकी
आशा होगी, इस प्रकारसे विदुरने कहा।

७७-अध्याय समाप्त ।

सभापर्व सम्पूर्ण ।

महाभारत ।

वनपर्व ।

नारायणकी, नरश्रेष्ठ नरकी, सरस्वती
देवीकी और व्यासकी प्रणाम करके जय
कीर्तन करें।

जनमेजय बोले, कि हे द्विजोत्तम ! धृ-
तराष्ट्रके पुत्र और उनके मन्त्रीवर्गसे जुएमें छल
द्वारा हारकर और उन दुरात्माओंके, अत्यन्त
शत्रुताकी उत्पन्न करनेवाले दुर्वाक्य सुनकर
क्रोधसे भरे कुरुकुलकी बढ़ानेवाली पाण्डुपुत्र
भरे प्रपितामहोंने क्या किया था ? इन्द्रके
समान तेजवान् वह कुन्तीपुत्र अचानक ऐश्वर्यसे
भ्रष्ट और सङ्गनेके अयोग्य दुःखको पाकर
वनमें कैसे विहार करते थे ? उस विपदके
समयमें कौन कौनसे मनुष्य उनके सङ्ग गये थे ?
अथवा किस रीतिसे उनको भोजन आदि प्राप्त
होता था ? यहा वह महात्मा लोग कैसे
आचरणसे कहा निवास करते थे ? हे
ब्राह्मणश्रेष्ठ ! उन शत्रुघाती वीर महात्माओंके
गारहवर्ष कैसे कटे थे ? अथवा नारियोंमें
मुख्य, पतिव्रता, राजपुत्री, महाभाव्यवतो, सदा
तप्य बोलनेवाली द्रौपदी, दुःख-भोगनेमें अयोग्य
होकरभी वनवासके कठोर दुःखभोगमें समयकी
कैसे बिताती थी ? हे तपोधन ब्राह्मण ! यह
जब कथा आप मुझसे विस्तारपूर्वक कहिये ।
उन महाधनी और महावीर्यवान पाण्डुओंके
कर्मपरित आपसे सुननेके लिये मेरा चित्त
कमल चढ़ा हो रहा है।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे महाराज ।
धृतराष्ट्रके मन्त्रीवर्ग और दुरात्मा पुत्रोंसे
हारकर और कुपित होकर पाण्डव लोग
हस्तिनापुरसे चले । वे सब शस्त्रधारण करके
द्रौपदीके सहित ऋद्धि सिद्धिसे भरे नगरके
द्वारसे निकलकर उत्तर दिशाको चलने लगे ।
इन्द्रसेन आदि १५ राजमन्त्री स्त्रियोंको सङ्ग
लेकर रथमें चढ़के शीघ्रताके साथ उनके पीछे
चले ; पुरवासी प्रजागण पाण्डुओंके वनगमनकी
सुनके, शोकसे व्याकुल होकर, सब लोग परस्पर
मिलके और भयकी त्यागकर, भीष्म, द्रोण कुंभ
और विदुरकी निन्दा करके कहने लगे, कि
जहांपर सुबलराजाका पुत्र शकुनि, कर्ण और
दुःशासनके मतमें रहके पापात्मा दुर्योधन राज्य
करनेकी इच्छा करता है, वहांपर हम समस्त
प्रजागण, हमारा कुल, हमारे घर और धन
आदि सबही नष्ट भये । जहांपर पापियोंकी
सहायतासे पापात्मा दुर्योधन राज्य करनेकी
इच्छा करता है वहापर हमारा कुल, आचार,
धर्म और धन कुछभी नहीं बचेगा ; वस सुखकी
सम्भावना कहां ! यह दुर्योधन गुरुद्रोही
आचारभ्रष्ट, स्वजनत्वागी, धनका लोभी,
अभिमानी, नीचस्वभाव तथा दयारहित है ;
यह जहापर राजा होगा, वहांपर सम्पूर्ण
पृथ्वीका नाश होजायगा, इस कारणसे जितेन्द्रिय,
शत्रुओंकी जीतनेवाले, लज्जाशोल, कीर्तिमान्,

धर्मके आचरण करनेवाले, दयाके सागर, महात्मा पाण्डवगण जिस देशको जाते हैं, हमलोगोंकीभी उसी देशमें जाना अच्छा जान पड़ता है, चलो हमलोग उसी देशको चलें ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि प्रजागण इस प्रकारसे कहके कुन्तीपुत्र और माद्रीनन्दनोंके पीछे चले । पश्चात् उन्होंने पाण्डवोंके समीप जाकर, हाथ जोड़के कहा, कि आप का कल्याण हो, आप इस दुःखी प्रजागणको त्यागकर कहा जायगी ? आपने जिस स्थानमें जानेको मनमें विचारा है, हमभी वहाँ चलेंगे । दयारहित वैरियोंने अधर्मसे आपके राज्यको जुएमें जीत लिया है, इसकी सुनके हम सब लोगोंका चित्त लज्जित व्याकुल हो गया है ; हम लोग आपके भक्त अनुरक्त, मित्र, आपका प्रिय और हित करनेवाले हैं, इस लिये हमलोगोंकी त्याग देना आपके योग्य नहीं है, हमलोग कुराजाके राज्यमें बसकर विनाशको प्राप्त होना नहीं चाहते हैं । हे मनुष्यश्रेष्ठगण ! अच्छे और बुरेके सङ्ग जो गुण और दोष मनुष्यमें उत्पन्न होते हैं उनका व्योरा हमलोग आपसे कहते हैं, आप लोग सुनिये । जिन प्रकारसे वस्त्र, जल और तिल यह सब वस्तु जिन फूलोंके सङ्गमें रहती है उन्हींकी सुगन्धसे युक्त हो जाती है, ऐसीही मनुष्योंमेंभी अच्छे और बुरेके सङ्गसे शुभ और अशुभगुण उत्पन्न होजाते हैं । क्योंकि मूढ़ मनुष्यके प्रातःदिन सङ्ग करनेसे मोह राशिको वाढ़ जाता है, ऐसीही सज्जनका सङ्ग धर्मका उत्पन्न करनेका कारण होता, इसी हेतुसे शान्तिपरायण मनुष्यको बुद्धिमान, उत्तम चरित्रवाले, वृद्ध और तपस्वियोंका सङ्ग करना चाहिये । जिन लोगोंकी विद्या, कुल और धर्म यह तीनों निर्मल हैं, उनका सङ्ग करना शास्त्रके पढ़नेसे भी उत्तम है । कारण उनकी ही सेवा करनी । हम लोग शास्त्रमें लिखे किसी

कर्मका अनुष्ठान विना कियेही साधुलोगोंके सङ्गमें रहके पुण्यको प्राप्त कर सकेंगे । पापियोंको सेवा करनेसे हम लोगोंकी केवल पापही मिलेगा । मनुष्यलोग धर्मात्मा होकर भी यदि प्रसादु मनुष्यका दर्शन, स्पर्श अथवा वात चीत, यहा एक स्थानमें निवास करें, तो वह भी नीच हो जाते हैं और चित्तकी शुद्धिरूप सिद्धि नहीं पसक्त है । पुरुषकी बुद्धि नीचके सङ्गसे नीच होती है, मध्यमके सङ्गसे मध्यम और उत्तमके सङ्गसे उत्तम बुद्धि हाती है, जो सब उत्तम गुण वेदमें कहे हैं, लाकाचारमें चलित है, जो सज्जनोंके द्वारा माने जाते हैं, जो धर्म, काम और अर्थका देनेवाले हैं, और लोकमें प्रसिद्ध हैं, वह सबही संक्षेप और विस्तार रूपसे आपलोगोंमें वर्तमान है, इस कारणसे हम लोग अपने अपने कल्याणकी इच्छा करके ऐश्वर्यशुभगुणयुक्त लोगोंके पास रहनेके अभिलाषी हुए हैं । युधिष्ठिर बोले, हे ब्राह्मणादि प्रजागण ! जिस कारणसे आपलोग हमारी आर स्नेह और दयायुक्त होकर हमलोगोंमें कोई गुण न होने परभी हमें गुणवान् कह कर वर्णन करते हैं, इसी कारणसे हमलोग धन्य हुए हैं । हम अपने भाइयोंके सहित जो कुछ आपसे कहते हैं, उसे आपलोग हमारे स्नेह और दयाके वश होके मिथ्या नहीं करेंगे । हस्तिनापुरमें हमलोगोंके पितामह भीष्म, राजा धृतराष्ट्र, विदुर, हमारी माता, और मित्र हमलोगोंके वास्ते शोकसे व्याकुल हो रहे हैं, आपलोग हमारे हित करनेकी इच्छासे उन सबकी वृद्धि यत्नसे पालन करना । आपलोग हमारे वनकी जानेके कारण वृद्धत सन्तापयुक्त होकर वृद्धत दूर चले आये हैं, इसलिये हमारे वाक्यसे आपलोग फिरके घर जाके हम लोगोंके आत्मीयजनोंको ऐसा समझा कर कि हम उन्हें आपलोगोंकी सौंपे जाते हैं, उन लोगों पर प्रीति रखियेगा ; इसहीसे हमको

गोके मनका परम कार्य और, सत्कार तथा सन्तोष होगा ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि वह प्रजा धर्म-राजके द्वारा ऊपर लिखी रीतिसे समभायी जाकर, हा महाराज । हा महाराज । कहके भयानक आर्तस्वरसे विलाप करने लगी, क्या करे, विना आज्ञाके कोई सङ्ग नहीं जा सक्ता है, कुन्तीपुत्रके गुणोंको स्मरण करते हुए, महादुःखी होकर पाण्डवोंका सङ्ग छोड़नेकी इच्छा न रहने परभी प्रजागण विवश होके लौटे । पुरवासियोंके लौट जाने पर पाण्डव-लोग जुड़े जुड़े रथोंपर चढ़के गङ्गातट पर जहा प्रमाण नामक बड़ा भारी बटव चढ़ा, वहां पहुंचे । वह लोग जिस समय गङ्गाके तटपर खड़े उक्त महावटके पास आये, उसी समय सन्ध्या होगयी, उन वीरोंने गङ्गाके शुद्ध जलको स्पर्श करके उस रात्रिकी वहीं निवास किया; उन्होंने रात्रिकी गङ्गाजलके सिवाय और कुछ भोजन न किया । इसी प्रकारके दुःखसे उन्होंने वह रात्रि व्यतीत करो, पाण्डवोंके स्नेहसे कितनी ही अग्निहीत करनेवाली और कितनीही विना अग्निहीतवाली ब्राह्मण अपने शय्य और वस्त्र बांधवों सहित उनके सङ्ग चले आये थे । महाराज युधिष्ठिर उन ब्रह्मवादी ब्राह्मणोंके मध्यमें अत्यन्त शोभायमान हुए, वह भयानक सन्ध्या-काल ब्राह्मणोंको प्रकाशित हंसकी आर्ग, वेद पाठ और आपसकी बोलचालसे मनोहर हो गया, उन ब्रह्मण्येष्ठोंने हंसोंके समान मीठे स्वरसे कुरुकुल-प्रधान युधिष्ठिरकी धैर्य देकर उनका चित्त बहलाते वह सब रात बिता दी ।

वनपर्वमें पहिली अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि रातके वोतनेपर वनरा होतेही भिक्षाके अन्नको खानेवाले ब्राह्मण-लोग, वनमें जानेकी उद्यत हुए पाण्डवोंके कर्म बाधकर खड़े हुए । कुन्तीपुत्र राजा युधि-

ष्ठिरने उक्त समुख खड़े देखकर कहा, कि इस समय हमारा सर्वस्व हरा गया, हमारा राज्य छिन गया, हम औरहित हैं, और हम, फल मूल तथा मांस भोजन करके वनकी जायंगे, इसलिथे निश्चय जान पड़ता है कि, यदि आप-लोग हमारे सङ्गमें अनेक दीपोंसे भरे व्याघ्र और हिंसा करनेवाले जन्तुओंसे सेवित वनमें चलेंगे, तो आपलोगोंकी अनेक दुःख होंगे । जिसके आश्रयमें रहके ब्राह्मणलोग दुःख पाते हैं, चाहे वह देवताभी हो, तौभी उसका नाश हो जाता है, हमती मनुष्यही है, हमारे आश्रय में यदि आप लोग क्लेश पावेंगे तो हमलोग अवश्य नष्ट हो जायंगे, इस वास्ते आपलोग यहांसे लौटकर जहां इच्छा हो, वहां चले जाइये । ब्राह्मण लोग बोले, कि हे महाराज ! आप-लोगोंकी जीर्गति होगी हमलोगभी उसी गतिकी प्राप्ति होनेकी इच्छा करते हैं, हमलोग सङ्गमेंकी जाननेवाली और आपके प्रेमी है, हमें छोड़ना आपको याग्य नहीं है, देखिये देवता-लोगभी अपने भक्तोंपर दया करते हैं, विशेषतः हमलोग सदाचारयुक्त ब्राह्मण है, हमपर आपका दया करना अवश्य चाहिये । युधिष्ठिर बोले, कि हे ब्राह्मणवृन्द ! हमारोभी ब्राह्मणोंपर सदा परम भाक्त रहती है, किन्तु क्या करें इस समय सहायहीन होनेसे हमकी शिथिल होना पड़ा है ; यह हमारे भाई लोग आपकी सेवाकी वास्ते जा फल मूल और मृगोंका मांस लावेग वही शोकसे उत्पन्न दुःखसे मोहित होरहे हैं, औरोंसे अपने राज्यका छिना जाना तथा द्रौपदीके अपमानसे वह लोग वृद्धत घबड़ा रहे हैं, इस कारणसे इस कालमें उन लोगोंकी फल-मूल आदिकी लानेके वास्ते नियुक्त करनेमें मेरा उत्साह नहीं होता है । ब्राह्मण बोले, महाराज ! आपको हमारे पालनके वास्ते चिन्ता करनी नहीं होगी, हम लोग अपने भोजनकी आपही लाकर समय बितावेंगे । ईश्वरके ध्यान

और जपसे आपके कलेराण करनेमें तत्पर रहेंगे तथा मनीहर कथा कहके आपके साथ सन्तोष पावेंगे । युधिष्ठिर बाले, ऐसा होनेसे हम ब्राह्मणोंके साथ सदा आनन्दसे रह सकते हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं, हम अपनी हीनतासे आपकी हीनताभी देखते हैं, कारण कि आप दुःख भागनेके योग्य नहीं, तोभी हमारे प्रेमके वश होके, दुःख सहकर आपही भोजनके पदार्थ लाकर आहार करेंगे, यह हम कैसे देख सकेंगे; धृतराष्ट्रके पापो पुत्रोंका धिक्कार है, जिनके कुकर्मसे इस प्रकारको दुर्घटना हुई ।

श्रीवैशम्पायनजी बाले, कि इसप्रकारसे कहकर महाराज युधिष्ठिर शोकसे व्याकुल हो धरती पर बैठ गये, पश्चात् अध्यात्मतत्त्वका जातनेवाले तथा सांख्ययोगमें निपुण शैनक नामका एक विद्वान् राजासे कहने लगे, हे महाराज ! संहसों शोकके स्थान और सैकड़ों भयके स्थान मूर्ख-हीको आश्रय करते हैं, पण्डितकी आश्रय नहीं कर सकते हैं । जा कर्म ज्ञानके विरोधी, मुक्तिमें विघ्न करनेवाले और बद्धत दास्युक्त है, ऐसे कर्मोंमें आपके समान बुद्धिमान् नहीं लगते हैं । हे महाराज ! पण्डितलीग जिस बुद्धिको सब दुःखों की नाश करनेवालो कहके वशेन करते हैं वही श्रुत और स्मृतसे भरी, आठ अङ्गवाली बुद्धि आपमें विराजमान है, इससे आपसे पुरुषाको धनके कष्टसे वा दुःखसे चलने याग्यमार्ग, वा अपन सम्बन्धियोंके आपत कालमें, अथवा मन सम्बन्धी वा शरीरसम्बन्धी दुःखन दुःखी हाना उचित नहीं है । पहिले समयमें महात्मा लागोने चित्तको स्थिर करनेवाले सिद्धान्त कहे हैं, उल्लेख कहेता हूं सुनिये । यह जगत् मन और देह इन दोनोंके निमित्तही दुःखसे पीडित होता रहता है । इसी मानसिक और हेह सम्बन्धी दुःखांको शान्तिका उपाय संचिप और विस्तारसे कहता हूं, सुननेको तयार होजिये । व्याधि, आनेष्ट प्राप्त, अम और प्यारी वस्तुको अप्राप्त, इन चार

कारणोंसे शरीरमें दुःख उत्पन्न होता है, औषधादिके सेवनसे व्याधि और सदाचिन्तासे दूर रहने रूप यागसे अधा "मनका दुःख" दूर होता है । बुद्धिमान वैद्यलोग पहिलेही प्यारी बात, सुखभोग और प्रसङ्गसे रोगी मनुष्यके मनोगत दुःखकी शान्त करते हैं, जैसे तपेझर लोहेके टुकड़ेसे घड़ेमें भरा जल तप जाता है, ऐसेही मनके दुःखसे शरीरभी तप जाता है, इस कारणसे ज्ञान रूपी जलसे मनके दुःखकी अग्निको बुझा देनाही कर्तव्य है । मनका सन्ताप दूर होनेसे शरीरकी ताप बुझ जाती है । मनुष्योंका स्नेह ही दुःख भय, शोक, हर्ष और रोग इन सबका कारण है, प्रीति होनेसे ही विषयोंकी चिन्ता और विषयोंमें प्रीति यह दो बिकार मनमें उत्पन्न होते हैं, यह दोनों बिकार कलेराणकी नाश करनेमें यद्यपि एक से है, तोभी पहिली विषय-चिन्ता बद्धत बड़ी है । जैसे घड़की खाखर के भीतर रहनेवाली आग घड़का जड़के सहित नाश करदेती है, ऐसेही थोड़ीभी विषय-प्रीति मनुष्यके धर्म और अथका नाश करदेती है । जा मनुष्य विषयका त्यागी हो उसे, विषयसे विरक्त नहीं कहते हैं, कि तु जो मनुष्य विषय प्राप्तिमें दोषोका समझता है, वही विषय-त्यागी कहोता है, वह त्यागीही वैराग्यकी पात्र है, वही शत्रुता रहित स्वतन्त्र होता है । इस हेतुसे धन टुकड़ठा करके मित्रोंसे प्रेम करनेकीभी इच्छा मत करना ; तथा अपने शरीरसे उत्पन्न झर स्नेहकी ज्ञानसे निवारण करना । जैसे कमलके पत्ते पर जल नहीं लगता है, वैसेही उन नित्य वस्तुका पानेमें उद्योग करनेवाले, शास्त्रज्ञ शुद्धचित्त और प्रसिद्ध विवेकी मनुष्योंके अन्तःकरणमें स्नेह नहीं लग सकता है । जा मनुष्य विषय प्रीतिमें फसता है, उसी मनुष्यके अन्तःकरणमें विषयको अभिलाषा उत्पन्न होकर उसे दुःख होता है, अनन्तर उसके चित्तमें विषय भोगकी इच्छा उत्पन्न होती है, उसके पीछे

विषय-

प्रतिदिन मनुष्यको पीड़ा देती है और
 पापकर्ममें लगी होती है, इस विषय दृष्टाको दुर्बुद्धि
 लोग नहीं छोड़ सकते हैं, मनुष्यका शरीर वृद्ध
 होता है, पर दृष्टा वृद्ध नहीं होती है, इस लिये
 दृष्टाको प्राणनाशक रोग हो सकता है, जो
 मनुष्य विषय दृष्टाको त्याग करके संता है वही
 सुखी होता है, इस विषय दृष्टाका आदि और
 भक्त नहीं है, यह प्रीतियों का अन्तःकरणमें
 बैठकर अतिके समान उल्लास करती है, जिस
 प्रकार से काठ अपने अङ्ग से उत्पन्न हुए अग्नि से
 विनाश होता है, वैसे ही अपनी आत्मा की
 पुराने चाहनेवाला मनुष्य अपने अङ्ग से उत्पन्न
 हुए लोभ से जलता है, जैसे फूल से
 सब प्राणियों को भरी होता है, वसाहि चौर से,
 भाजा से, आग से, जल से और अपने कुटुम्बियों से
 धनवान् मनुष्यको डरता है, जिस प्रकार से
 मांस यदि आकाशमें रहे, तो पक्षीगण, पृथ्वी में
 रहितों मांस खानेवाले जंतु, और जल में रहे,
 तो मछली उसे खाती है, वैसे ही धनवान् लोग
 जहां रहते हैं, वही उल्लास विपत्ति घेरती है,
 धनही अनेक मनुष्यों के वास्ते अनर्थको जड़
 होता है, इस कारण से जो मनुष्य धनकी
 कलशणकारी, समझके उसमें ललित होता है,
 वह सच सुखको नहीं पास करता है, दुर्बुद्धिमान्
 मनुष्य जानता है, कि धनकी प्राप्ति, लोभ
 का कारण तथा कृपणता अभिमान डर
 इन सब दुखों की जड़ों की वल
 दिखिये धनकी कामना में, जैसा
 दुख धनकी
 और दुखमाल तथा धनकी नाशमें
 है, धनसे दुख दूर करने वास्ते
 है, वह लोग भी धन के वास्ते
 इस लिये धन के
 चिन्ता करना उचित नहीं है, जो
 है, वह असन्तोष से समय की

वितति है, और पण्डित लोग सदा सन्तोष के
 अमृत में अन्तःकरण की भिगाये रहते हैं, कोई
 भी मनुष्य कभी विषय दृष्टा के पार नहीं जा
 सकता है, न सन्तोष ही परम सुख वर्णन किया
 गया है, पण्डित लोग, जीवन यौवन क्षीप
 रतों का द्रकट्टा करना, प्रभुता और धार
 मनुष्य के पास रहना, इन सब वस्तुओं को
 अनित्य जानकर उनमें इच्छा नहीं रखते हैं,
 इस कारण से दुख सहकर भी धन के कामना की
 त्यागना योग्य है, जिस कारण से धन के कामना
 वाले मनुष्य कभी उपद्रव रहित नहीं देखे
 जाते हैं, इसी निमित्त धर्मात्मा लोग उसी की
 प्रशंसा करते हैं, जिसकी धन में प्रीति नहीं
 रहती है, जो पुरुष धर्म के वास्ते धन कामना को
 उद्योगाकरते हैं, उस उद्योग की अपेक्षा क्रिया
 रहित होना उत्तम है, क्योंकि अंग में लगी
 दुई की चक्की की चक्की से धोने की अपेक्षा को चक्की
 न चूना ही उत्तम है, हे युधिष्ठिर! जो आपको
 धर्म से प्रीति होती, धन में इच्छा रहित बनी,
 युधिष्ठिर बोलो, हे ब्राह्मण! मैं ब्राह्मणों के
 पालने के वास्ते ही धन की इच्छा करता हूँ,
 लोभ से वा अपने भोग विलास के वास्ते मुझे
 धन की कामना नहीं है, हमारे ऐसे
 पुरुष गृहस्थाश्रम में रहके अपने आश्रम में
 रहनेवालों को बिना पालन किये कैसे निश्चित
 रह सकते हैं, जैसे सब प्राणियों को अपने
 कुटुम्बों को भोजन बांट देना उचित है,
 वैसे ही गृहस्थ की सन्यासी और ब्रह्मचारी पाक
 क्रियारहित मनुष्यों को भोजन देना आवश्यक
 है, यदि मली मनुष्य के घर में अतिथि और
 अभ्यागत लोगों के वास्ते और कोई देने योग्य
 वस्तु न हाताती, आसन के वास्ते पेट, रहने की
 स्थान, प्रेरे धोने को जल और सन्तोष देने की
 भी ठेक चन्-इन सिक्का कभी अभाव नहीं होता
 है, गृहस्थ मनुष्य रोगी की शय्या, धन के मांटे की
 आसन, ग्यासे की जल, और भूखे की भोजन

देता है । जो घरपर कीड़े अतिथि आवे तो उस पर स्नेहदृष्टि रखना, बड़ी अज्ञासे मनहो मनमें प्रसन्न होना, मीठे वचनसे उसे सन्तुष्ट करना, खड़े होकर आसन देना, हाथ उठाकर उनके सम्मुख जाना और यथायोग्य उसकी पूजा करना यह सब गृहस्थके नित्यधर्म हैं । जो मनुष्य अग्निहोत्र, गौकी सेवा, तथा पुत्र, स्त्री सेवक, जाति और अतिथिका पालन पोषण करने विही मनुष्य धर्मके कर्मसे उत्पन्न हुए पापद्वारा भस्म होते हैं, इसी कारणसे गृहस्थ मनुष्य अपने भोजनकेवास्ते पाक और पितर देवता, और अतिथियोंकी पूजाके उद्देश्यको छोड़के पशुकी न मारे, तथा पितर, देवता और अतिथि को विनादिये मारे हुए पशुका मांस न खाये; बरन सायंकाल और प्रातःकाल कुत्ते, चाण्डाल और पक्षियोंके वास्ते पृथ्वीमें अन्न रखके वैश्वदेव नामक वलि प्रदान करे, जो मनुष्य प्रतिदिन पितर देवता और अतिथिको भोजन करानेके पश्चात् यज्ञसे बचा भोजन करता है वही मनुष्य अमृत भोजन करता है, इस अतिथिसेवनरूपी यज्ञमें अतिथिको स्नेह भरी दृष्टिसे देखना, मनकी प्रसन्न और मिठिवाणीसे प्रसन्न करना, अतिथिके पोछे जाना, अन्न आदिसे अतिथिसेवा करना यह पाच प्रकारको दक्षिणा देनी चाहिये । जो गृहस्थ राहसे थके हुए मनुष्यको कुपणताको छोड़के भोजन कराता है वही महापुण्यको पाता है, पाण्डतलोग कहते हैं, कि जो लोग गृहस्थाश्रममें रहके इस प्रकारसे आचारकी पालन करते हैं, उनकी परम धर्म होता है; हे दिजवर ! इससे आपका प्रयोजन क्या है उसे प्रकाश कीजिये ।

श्रीनक, वीले, हा कष्ट । हा शोक । इस संसारका स्वभावही उलटा है, देखिये, भले मनुष्य जिस कार्यसे लज्जित होते हैं, दुष्ट मनुष्य उसीसे प्रसन्न होते हैं, बुद्धिहीन मनुष्य मोह, और प्रीतिके वशमें तथा इन्द्रियोंके प्यारे काममें

फंसके लिङ्ग और पेटकेवास्ते अनेक लोगोंकी अन्न और जल दिया करते हैं । जैसे दुष्ट और विगड़े हुए व्योडोंके द्वारा सारथी राहमें गिरता है, वैसेही हरनेवाली इन्द्रियोंके द्वारा विचकर परमार्थ ज्ञानसे विहीन, हाँकर वही बुद्धिहीन मनुष्य नष्ट होता है । ऊँही इन्द्रियोंमेंसे कीर्त इन्द्रिय अपने विषयकी ओर जाता है, उस समय मनुष्यका अन्तःकरण उसी विषय भोगकी कामना करता है, इस प्रकारसे जिस मनुष्यका अन्तःकरण विषय-भोगकी ओर दौड़ता है, उसी मनुष्यकी उस विषयकी भोगनेमें इच्छा और प्रवृत्ति उत्पन्न होती है, उस समय, जैसे पतङ्ग अग्निकी लीयवे रूपसे मोहित होकर उसमें गिरता है, उसी प्रकारसे विषय-भोगके सङ्कल्प रूप कामनाके वाणसे बिंधकर लोभकी अग्निमें गिरता है, पश्चात् वह मूर्ख मनुष्य इच्छाके अनुसार आहार विहारसे महामोहसे भरे सुखमें डूबकर आत्मतलकी नहीं जानता है; बस कर्म, आवद्या और विषय तृष्णासे चक्रके समान भ्रमित होकर इस संसारमें ब्रह्मासे तिनकेतक भूमिमें फिरने वाली आकाशमें चरनेवाली, और जलचर आदि योनियोंमें वारम्बार जन्म लेते हैं; महाराज ! अज्ञानी जीवोंको ऐसीही गति होती है । जो मनुष्य कल्याणकारी धर्मके आचरणसे मुक्ति पानेके पात्र हैं, उनको गति सुनिये । कर्म करने योग्य हैं और कर्मत्यागने योग्य है, यह दोनो प्रकारके वेदवाक्य हैं, इस कारणसे यह सब धर्म अभिमान रहित होके करे :—यज्ञ, वेद-पठना, दान, तपस्या, सत्यका आचरण, क्षमा इन्द्रियोंकी जीतना, और अलोभ यह आठ प्रकारका धर्म मार्ग कहा गया है, इनमेंसे पहिले कहे चार पितृलोकके मार्गको लेजाते हैं, इस विषयमें जो कर्म करने योग्य कहके वर्णन किये गये हैं, उनकी अभिमान रहित होके करे तथा अन्तमें लिखे देवयानके नामसे प्रसिद्ध है, इनकी महात्मा लोग सदाही करते हैं । परन्तु

शुद्धचित्त होके ऊपर लिखे अष्टाङ्ग धर्मको करना चाहिये । इस कारणसे जो मनुष्य संसारके जीतने अर्थात् मोक्ष पानेकी इच्छा रखते हैं, वह अच्छी भावना भली भांति इन्द्रियोंकी जीतना, भलीभांति विशेष व्रत, भलीभांति गुरुसेवा, भली भांति वेदोंका पढ़ना, भलीभांति अन्नका त्याग और भली भांति चित्तकी रोक-कर कर्मोंको करते हैं । देवता लोगोंने राग द्वेष रहित होकरही ऐश्वर्यकी पाया है । रुद्रगण, साध्वगण, आदित्यगण, वसुगण और दोनो अश्विनीकुमार इसो भांतिके ऐश्वर्यसेही इस प्रजागणका पालन करते हैं । हे कुन्ति-नन्दन ! आप भी पूरोरीतिसे श्रममें तत्पर होके तपकी सिद्धि और योगकी सिद्धिकी प्राप्तिकरने आदिसे पितृवृत्तसे मुक्त होकर पिता मातारूपी सिद्धिकी पाया है और यज्ञ-आदि कर्मोंको करके कर्ममयी सिद्धिकी पाया है, इस समय ब्राह्मणोंका पालन करनेके वास्ते तपस्यासे सिद्धि प्राप्त करनेकी इच्छा कीजिये, तपसे सिद्ध हुआ मनुष्य जो इच्छा करता है तपके प्रभावसे वही कर सकता है । इस कारणसे तपस्याको आश्रय करके अपने मनोरथकी पूरा कीजिये ।

द्वितीय अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर शौनकके इन सब वचनोंकी सुनके, पुरोहितकी बुलाके भाइयोंके सभमें बैठके कहने लगे । हे भगवान् ! मैं वनकी जानेके वास्ते उद्यत हूं, मैंभी यह पाठमें निपुण ब्राह्मण मेरे साथी मान हूं, अब इनकी पालत करने और दान करनेमें समर्थ नहीं हूं, इस कारणसे मैं बहुत ही दुःखी हूँ, पर इनकी छोड़भी नहीं सकता हूँ, इसलिये मुझे कैसा कर्म करना चाहिये, वह आप मुझे उपदेश दीजिये ।

हित धीम्य युधिष्ठिरके इस प्रस्तावकी सुननेके पश्चात् एक मुहूर्तभर समाधिसे उस विषयकी विचार कर कहने लगे, कि पहिले समयमें सविता सूर्य सब प्राणियोंकी भूखसे अत्यन्त दुःखी देखकर उन प्राणियों पर पिताके समान दयालु हुए, इसी हेतुसे वह उत्तरायणमें जाके अपनी किरणोंसे जलकी उठाते हैं, और दक्षिणायनमें उष्णता (गर्मी) की धारण करके पृथ्वीपर विराजमान रहते हैं, जब वह खेतोंमें गर्मी पड़चाते हैं, उसके पश्चात्, औषधियोंके स्वामी चन्द्रमा उसी उठाये हुए जलसे अन्तरीक्षमें मेघ-उत्पन्न करके जल बरसाते और औषधियोंकी उत्पन्न करते हैं । वसन्त ऋतु सूर्यही चन्द्रमाके तेजसे सेचन और खेतीके अङ्कुर रूपमें निकलकर ६ रसयुक्त पवित्र औषधियोंके रूपमें उत्पन्न होते हैं, यह औषधिही संसारमें प्राणियोंका अन्न होती है, जिस कारणसे सम्पूर्ण प्राणियोंके जीवनका आधार अन्नही सूर्यकी कृपासे होता है, और सूर्यही सब प्राणियोंके पिता रूप हुए हैं, इसी कारणसे आप सूर्यके ही शरणागत होजिये । उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए राजालोग पूरोरीतिसे तपस्याको आश्रय करके ही प्रजाको दुःखसे उद्धार किया करते हैं, देखिये धीम्य, कार्तवीर्य, पुथु और नहुष इन राजोंने तपस्या और समाधिकी अवलम्बन करके ही प्रजाका विपत्तसे उबारया । हे धर्मात्मन् ! आपभी शुद्ध कर्मवाले हैं, आपभी उल्लोके समान तपस्या करके ब्राह्मणोंका पालन कीजिये ।

जनमेजय बोले, कुसकुलके सुकुट राजा युधिष्ठिरने ब्राह्मणोंके वास्ते विचित्ररूपी सूर्यकी किस प्रकारसे तपस्या की थी । श्रीवैशम्पायन बोले, हे राजेन्द्र ! आप भलीभांति सुनिये, मैं पूर्णरीतिसे उसका वर्णन करता हूँ, आप शुद्ध और शान्त चित्तसे सुनिये । हे महाबुद्धिमान् ! धीम्य ऋषिने महात्मा युधिष्ठिरसे जा सूर्यके

एकसौ आठ नामके स्तोत्रकी वर्णन किया था, उसे सुनिये । सूर्य, अर्यमा, भग, त्वष्टा, धाता, प्रभाकर, पृथिवी, जल तेज, आकाश, वायु, परायण, सोम, वहस्पति, शुक्र, बुध, मङ्गारक, इन्द्र, विवस्वान्, दीप्ताशु, शुचि, शौरि, शनैश्वर, ब्रह्मा, विश्वा, रुद्र, स्कन्द, वैश्रवण, यम, विद्युत् जठर और भौतिक अग्नि, तेजः पति, धर्मध्वज, वेदकर्त्ता, वेदाङ्ग, वेदवाहन, सत्य, त्रेता, द्वापर, सबमलोंका आश्रय कलियुग, कला, काष्ठा, सुहर्त, रात्रि, प्रहर, सम्बत्सर करनेवाले, अश्वत्थ कालचक्र, सनातन, कालपति प्रजापति, विश्वकर्मा, तमोनाशक, वरुण, सागर अंशु जीमूत, जीवन, शत्रुनाशी, भूताश्रय, सब प्राणियोंसे नमस्कार करनेयोग्य, भूतपति, सृष्टा, सम्बर्त्तक, वज्रि, सवादि, अलोलुप, अनन्त, कपिल, कामप्रद भानु, सर्वतोमुख, जय, विशाल, वरद सब धातुओंकी सीचनेवाले, मन, सुवर्ण, भूतादि, शीघ्रगामी प्राणोंका आधार, धन्वन्तरि, धूमकेतु, अदिति पुत्र, आदिदेव, द्वादशाक्षा, अरविन्दाक्ष, पिता, माता, पितामह स्वर्गद्वार, मुक्तिद्वार, त्रिपिष्टप, देहकर्त्ता, प्रशान्तात्मा, विश्वतोमुख चराचरात्मा, सूक्ष्मात्मा, विश्वतोमुख, दयावान् मैत्रेय, स्मरण करने योग्य, महातेजवान् सूर्यके यह १०८ नाम स्वयम्भून् वर्णन किये थे । देवता, पितर, और यक्षलीग जिसकी सेवा करते हैं, अरु, निशाचर और सिद्धगण जिसकी वन्दना करते हैं, जा उत्तम सुवर्ण और अग्निके समान, प्रकाशयुक्त हैं ऐसे भास्करकी कलापणके निमित्त, नमस्कार करता हूँ । जो मनुष्य सूर्य निकलनेके समय एकाग्रचित्त होके इस स्तोत्रकी पढ़ते हैं, वह पुत्र, स्त्री, धन, रत्न, स्मरणशक्ति, तथा धराणाशक्ति और बुद्धिकी पाते हैं । यदि मनुष्य परमदेव सूर्यके इस स्तोत्रकी शुद्ध और स्थिरचित्तसे पाठ करे, तो शोकरूपी अपार दावानलसे कूट जाय और मनवाञ्छित सिद्धिकी पासकता है ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, राजा युधिष्ठिरने धौम्यसे इन समयानुसार वाक्यों की सुनके ब्राह्मण प्रतिपालन रूपी धर्म चिन्ता करके दृढ नियम और शुद्धचित्त होकर मनकी संयममें, लगाके घोर तपस्याका आरम्भ किया । वह पुत्र तथा नैवेद्य आदिसे सूर्यकी पूजा करके जलमें धसकर सूर्यके सम्मुख खड़े हुए । उन धर्मात्माने इन्द्रियोंकी जीतके योगकी आश्रय और वायु भक्षण करके तथा गङ्गा जलकी कूकर प्राणायामके अनुष्ठानमें कुछ समयकी बिताया, पश्चात् शुद्ध और मौनी होके स्तुति करना आरम्भ किया । हे सूर्य ! तुम जगत्के नेत्र, तुम सब प्राणियोंके आत्मा, तुम चराचरके आत्मा, तुम चराचरके उत्पत्ति स्थान और तुमही सम्पूर्ण क्रियावानोंके आधार हो । तुमही समस्त ज्ञानियोंकी गति, तुमही योगीजनोंका परम आश्रय, तुमही मुक्ति चाहनेवालोंका खुला मुक्तिद्वार और तुमही सब लोकोंके आधार हो । तुमहीसे सब लोक प्रकाश पाते हैं, तुमहीसे इस जगत्की शुद्धता प्राप्त होती है, तुमही क्लेशरहित भावसे इस जगत्की पालन करते हो, ऋषिलीग तुम्हारी पूजा करते हैं, एवम् वेदपाठी ब्राह्मणोंग अपनी अपनी शाखाओंमें लिखे मन्त्रोंसे समय पर तुम्हारी उपासना करते हैं ।

सिद्ध, चारण, गन्धर्व, यक्ष, गुह्यक, और सर्प ब्रह्माग्नेवास्ती तुम्हारे शीघ्रगामी दिव्यरथके पीछे पीछे फिरा करते हैं । इन्द्र और उपेन्द्रके सहित तैंतोस देवता और विमानविहारी गणोंने तुम्हारी उपासना करके ही सिद्धि पाई है, उत्तम विद्याधरोंने दिव्यमन्दारकी फूलमालासे तुम्हारी पूजा करकेही शीघ्रमनोर्थ प्राप्त किया है; गुह्यक गण तथा दिव्य और मानुष सातपितरोंने तुम्हारी कृपासेही प्रधानता पायी है; वसुगण, रुद्रगण, साध्यगण, मरीचिगण, सिद्धगण, और बालखिला आदि सबोंने

आपकी प्रणाम करके उत्तमता पाई है । ब्रह्म-
लोकसे आदिलेके साती लोकोंमें कोई पदार्थ
ऐसा नहीं है, जिसे आपसे भिन्न कहा जाय,
संसारमें वलयुक्त और भी अनेक महत् पदार्थ
हैं, पर उनमेंसे कोई भी आपके समान
प्रभाव युक्त और दीप्रिमान नहीं है,
सम्पूर्ण ज्योति तापमें ही निवास करती है,
समस्त ज्योतिके स्वामी तुमही हो; सत्य
सत्त्व और सम्पूर्ण सात्विक भाव तुममें ही
विराजमान है, भगवान् विष्णु जिससे दैत्योंके
अभिमानकी नाश करते हैं, उस सुनाय चक्रकी
तुम्हारेही तेजसे विश्वकर्माने बनाया था;
तुम्ही प्रोक्त ऋतुमें अपना किरणोंसे, शरीरधारी
औषधी और रसोंके तेजकी खींचकर फिर वर्षा
कालमें बरसा देते हो, तुम्हारी किरणोंसे तपती
है, जलाती है, और वर्षा ऋतुमें मेघवनके गरजती
चमकाती तथा बरसाती है शीतवातसे जो मनुष्य
पोषित हो उसकेवास्ते जैसी सुखकारी आपकी
किरण होती है वैसी अग्नि वा कल्ल कदापि
सुखकारी नहीं होती है, तुम्ही १३ दीपयुक्त
पृथिवीकी अपनी किरणोंसे प्रकाशित करते
हो, तुम एकलेही तीनोंलोकका कल्याण
करनेमें प्रवृत्त होते हो, यदि जगत्में तुम्हारा
उदय न हो, तो यह सम्पूर्ण जगत् अन्धा हो
जाय, तथा बुद्धिमान् लोगभो धर्म, अर्थ और
काममें प्रवृत्त न हो सकें; ब्राह्मण, क्षत्रिय और
वैश्य तुम्हारीही कृपासे, अग्नाधान, पशुवन्ध,
इष्टिमन्त्र, यज्ञ और तपस्या आदि क्रियाओंकी
करते हैं, सहस्र युगका समय जो ब्रम्हाका
एकदिन प्रसिद्ध है, कालकी जाननेवाली पण्डित
लोग उसका आदि और अन्त तुमकीही मानते
हैं; तुमही मनु, मनुष्य, और मन्वन्तरोके सहित
सम्पूर्ण जगत्के तथा ईश्वरके ईश्वर हो, महा-
देवके समयमें तुम्हारे क्रोधसे निकली सन्वर्त
कामक अग्नि इस त्रिलोकीकी भस्म कर देती
है, तुम्हारी किरणोंसे उत्पन्न हुआ अनेक

वर्णसे शोभायमान महामिथिल एरावत और
बज्रके सहित उदित होके सम्पूर्ण जगत्की जलसे
डूबा देते हैं, पुनर्वार तुमही १२ मूर्ति धारण
करके अपनी किरणोंसे एकार्णव समुद्रकी सुखा
देते हो, आचार्य लोग तुमकी इन्द्र कहके
कीर्तन करते हैं, तुमही विष्णु, रुद्र, प्रजापति,
अग्नि, सूक्ष्ममन, प्रभु, और सनातन ब्रह्म
निष्कपित होते हो, पण्डितलोग तुमकी हंस,
सविता, भानु, अशुमालो, वषाकपि, विवस्वा,
मिहिर, पूषा, मित्र, धर्म, सहस्र-किरण,
आदित्य, तपन, गोपति, मार्तण्ड, अर्क, रवि,
सूर्य, शरराय, दिनकर, दिवाकर, सर्पसन्नि,
धामकेशी, विरोचन, शीघ्र चलनेवाली, अन्धकार
नाशक, हरिताश्व, कहके कीर्तन करते हैं,
जो मनुष्य शान्तचित्त और अहङ्कार रहित
होके सप्रसी वा छठकी तुम्हारी पूजा करता
है लक्ष्मी उसकी सेवा करती है; जो एकार्ण
चित्तहोके तुम्हारी पूजा और वन्दना करते हैं
उनकी मानसिक शारीरिक तथा और और
कोई विपद नहीं सताती है, जो लोग तुम्हारे
भक्त हैं, वह सब रोग और पापोंसे छुटे सुखी
और अधिक कालतक जीते रहते हैं; हे
अन्नके स्वामी ! मैं अज्ञापूर्वक सबके अतिथि
सत्कार करनेकेवास्ते अन्नकी इच्छा करता हूँ,
तुम मुझे पूर्ण रीतिसे अन्न दो, विजली, वज्र
आदिकी प्रवर्तन करनेवाली, अरुण, और दण्ड
आदि जिन सेवक लोगोंने आपको आश्रय लिया
है मैं उनकी वन्दना करता हूँ तथा सुप्ति और
वन्धन करनेवाली, क्षुधा, तंद्री, और गौरी
भूतमाताओंके शरणागत होके उनको नमस्कार
करता हूँ; वह हमारी रक्षा करें ।

और्वैश्वन्यायनजी वीले, कि हे महाराज ।
युधिष्ठिरके इस प्रकारसे जगत्की पवित्र करने-
वाले सूर्यकी स्तुति करनेपर सूर्यदेव उनपर
प्रसन्न होकर जलती हुई अन्निके समान प्रका-
शमान शरीरसे उनके समीप प्रकट हुए, और

बोले, हे मनुष्यों के स्वामी । तुम्हारे मन की इच्छा-पूरी होगी, हम १२ वर्ष तक तुमको अन्न दान करेंगे, तुम हमसे तामे की बनी हुई बटली की ग्रहण करो । हे व्रतधारी ! अन्न, फल, मूल, साग वा मांस जो कुछ इसमें बनेगा, उसे जब तक द्रौपदी इस पात्र से परोसैगी तब तक चावने और चूसने के योग्य सब प्रकार के अन्न इसमें भरे रहेंगे, तुमको १४ वर्ष में राज्य प्राप्त होगा ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि भगवान् सूर्यदेव ऐसे कहके उसी स्थान पर अन्तर्धान होगये जो मनुष्य जिस वर की इच्छा करके युधिष्ठिर के बनाये इस सूर्य के स्तोत्र का एकाग्रचित्त से पाठ करेगा सूर्यदेव उसे वहीं वर देते हैं, चाहे कोई स्त्री वा पुरुष प्रतिदिन इसका पाठ करे वा सुने उसे यदि पुत्र की इच्छा हो तो पुत्र, धन की इच्छा हो तो धन, विद्या की हो तो विद्या, प्राप्त होती है; स्त्री वा पुरुष जो कोई हरदिन दोनों सन्धियों में इसका पाठ करे वा वह किसी विपद में फंसा हो तो उससे छुट जाता है, यदि किसी वध में हो तो उससे छूट जाय, युद्ध में जय पावे, बहूत धन पावे और सब पापों से छुट जाता है और मरने के पश्चात् सूर्यलोक में जाता है । पहिले समय में इस स्तोत्र को ब्रह्माने इन्द्र को इन्द्र ने नारद को और नारद ने धौम्य को दिया था, युधिष्ठिर ने धौम्य से इसे पाके अपने वाकित फलों को पाया था ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि धर्म को जानने-वाले युधिष्ठिर सूर्य से वर पाकर जल से निकले और धौम्य के दोनों चरणों की बन्दना की, एवम् भाद्र्यों की गले से लगाया । हे महाराज । पश्चात् वह द्रौपदी के सहित रसोई घर में जाकर उससे आदर पाके रसोई बनाने की क्रिया को आरम्भ किया । जिस अन्न से भोजन बनता था, वह यदि थोड़ा भी हो हो तो भी, चावने योग्य, चूसने योग्य चाटने योग्य और पीने योग्य सब प्रकार के भोजन अचय हो जाते थे । महा-

राज युधिष्ठिर उसी अन्न से ब्राह्मणों को भोजन कराते थे, ब्राह्मणों को भोजन कराने के पश्चात् भाद्र्यों को भोजन कराते थे फिर आप भोजन करते थे उसके पीछे द्रौपदी के भोजन करने के पश्चात् सूर्य का पात्र खाली हो जाता था फिर उसमें कुछ नहीं रहता था, सूर्य के समान तेजवान् महाराज सूर्य से ऐसा वाकित वर, पाके ब्राह्मणों की इच्छा के अनुसार अन्न दान करने लगे । इसके पश्चात् वह लोग धौम्य से स्वस्ति-वाचन कराके ब्राह्मणों के सहित काम्यक बनको चले गये ।

इति तीसरा अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि पाण्डवों के बनको जाने पर सुख से बैठे हुए अम्बिकानन्दन, प्रज्ञा चक्षु राजा धृतराष्ट्र ने व्याकुल चित्त होकर, महा बुद्धिमान् धर्मात्मा विदुर से कहा, हे विदुर । तुम शत्रु के समान शुद्ध बुद्धिवाले हो, धर्म के अति सत्त्व तात्पर्य के जाननेवाले हो, कुरुकुल में किसी के साथ तुम्हारी शत्रुता नहीं है, अतएव इस समय वही सम्मति हमें दो, जिससे कौरवों का और हमारा कल्याण हो । इस समय कौरवों की जैसी दशा है उसके अनुसार शीघ्रता के साथ हमें क्या करना चाहिये, पाण्डवों के बनको जाने के कारण से घबड़ाये हुए नगर निवासी हम लोगों पर कैसी भक्ति रखते हैं ? पाण्डव लोग हमको किस रीति से जड़ सहित नहीं उखाड़ सकेंगे ? तुम इसका कोई अच्छा उपाय बताओ, क्योंकि कोई अच्छा कर्म ऐसा नहीं है जिसे तुम न जानते हो । विदुर बोले, हे महाराज । मनुष्य के अर्थ काम और मोक्ष यह त्रिवर्ग धर्म से होते हैं, पण्डित लोग राज्य की भी धर्म से ही करते हैं, इस लिये आप धर्म के अनुगामी होके अपनी शक्त के अनुसार अपने पुत्र और पाण्डु के पुत्रों का पालन कीजिये । हे कुरुनन्दन । आपके पुत्र दुर्योधन और शकुनि

आदि पापी जनोने सत्यवक्ता युधिष्ठिरकी सभामें बुलाकर जुएमें हराया है, इसीसे वह लोग धर्मसे रहित हो गये हैं। आपके पाप दूर करनेके वास्ते केवल यही उपाय दीख पड़ता है, इसके करनेसे आपके पुत्र निष्पाप होके जगत्में अच्छीतरहसे प्रतिष्ठा पा सकेंगे, आपने जो पाण्डवोंको पहिले राज्य दिया था, फिर उन्हें वही मिल जाय, तो आपके धर्मकी रक्षा हो; क्योंकि अपने धनसे सन्तुष्ट रहना और पराये धनमें इच्छा न करना राजा लोगोंके वास्ते परम धर्म लिखा है, आप पाण्डवोंके राज्यको उन्हें दे दीजिये जिससे आपका अयश और आपसकी फूट दूर होजायगी तथा धर्मभी दृढ़ रहेगा, इस समय जिसमें पाण्डवोंकी सन्तोष हो और शकुनिका अपमान हो ऐसाही काम आपकी सब कामोंसे मुख्य समझके करना होगा, कारण यह है कि ऐसा करनेसे आपके पुत्रोंका नाश होनेसे बचा हुआ सौभाग्य उदय होगा, इसलिये शीघ्रतासे इस कार्यको कीजिये, यदि मेरे बताये कर्मको आप न करेंगे तो अवश्यही कुरुकुलका नाश होगा, क्योंकि भीमसेन वा अर्जुन यदि क्रुद्ध होंगे तो शत्रुकुलको शेष न छोड़ेंगे, हे राजन् ! जिनके अस्त्रविद्यामें निपुण योद्धा अर्जुन बायें और दहिने दोनों हाथोंसे एकसे वाण चला-नेमें समर्थ, जिनको धनुष संसारका सार गाड़ीव, तथा जिनके योद्धा महाभुज भीम, उनको तीनोलोकमें क्या कोई कार्य असाध्य है ? महाराज ! मैंने पहिलेही आपके पुत्र जिनके समय कुलके कलशके वास्ते इस वस्त्रके त्याग देनेकी कहा था, तब आपने इस हितकारी कार्यको न किया, इस समय भी आपकी हित कामनासे पाण्डवोंके पाने योग्य राज्यको उनको देनेके वास्ते कहता हूं, यदि आप न करेंगे तो पीछे आपकी दुःख-मंश होगा। यदि आपका पुत्र पाण्डवोंके

सङ्ग मिलकर और प्रेमयुक्त होकर राज्य करनेमें सममत हो तो आपकी प्रसन्नहोनेके वास्ते दुःखपानेकी कोई सम्भावना नहीं है, नहीं तो आप भविष्यत् सुखके वास्ते कुलके अहितकारी अपने पुत्र दुर्योधनको कैद करके पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको राज्यका अधिकार दीजिये। अजातशत्रु युधिष्ठिर राग द्वेषकी छोड़कर यदि राज्य करने लगेंगे तो सम्पूर्ण राजालोग तत्क्षणही वनियोंकी समान हमलोगोंकी सेवा करने लगेंगे। हे राजन् ! दुर्योधन, कर्ण और शकुनि प्रसन्नतासे पाण्डवोंकी सेवामें नियुक्त हों, दुःशासन सभाके बीचमें भीमसेन और द्रौपदीसे चूमा मांगे, आप युधिष्ठिरका आदरके सहित राज्याभिषेक करें। महाराज ! आपने जो सुभसे पूछा था उसमें इसके सिवाय और क्या कहूं, मैंने जो कहा उसको करने हीसे आप कृतकार्य होंगे।

दृतराष्ट्र बोले, हे विदुर ! तुमने पाण्डवोंके और हमारे लिये उनके हितकारी और शुभकारी सम्पूर्ण वाक्य कहे, वह मेरे मनमें नहीं समाये; तुमने इस समय किस कारणसे ऐसा निश्चय किया ? तुमने जो पाण्डवोंके कलशके निमित्त ऐसे वचन कहे उससे जान पड़ता है, कि तुम हमारे हितकारी नहीं हो। मैं उनके वास्ते पुत्रको कैसे त्याग करूंगा ? पाण्डव हमारे ही पुत्र हैं, इसमें सन्देह नहीं, पर दुर्योधन मेरी कायासे उत्पन्न हुआ है, वस वह मेरा शरीर है; ऐसे स्थल पर पाण्डुपुत्र और मेरे पुत्र दोनोंको एकसा समझ कर क्या कोई कह सकता है, कि दूसरेके वास्ते अपने शरीरको त्याग कर दो ? हे विदुर ! मैं तुम्हारा बड़ा मान्य करता हूँ, पर तुम मुझसे सदाही कठोर वचन कहते हो, इसलिये जैसे खांटी स्त्री अपने प्यारे वचनोंसे समझाई जाने पर भी पानका त्याग करती है, ऐसीही तुम मुझ परित्याग

करो, अथवा यहीं रहो, या जहा तुम्हारी इच्छा हो वहां जाओ। श्रीवैशम्पायनजी बोले, हे महाराज। राजा धृतराष्ट्र ऐसा कहके हठात् रणवासमें उठके चले गये, पश्चात् विदुरभी यह कहके कि इनका कुल अब नहीं बचेगा, जिस स्थानमें पाण्डव थे, वहीँको चले गये।

चतुर्थ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कुरुकुल सिंह पाण्डवलोग अपने सेवकोंके समेत वनवासकी इच्छा करके गङ्गा तीरसे कुरुक्षेत्रकी चले, सरस्वती दृष्यती और यमुनाके तट पर एक वनसे दूसरे वनको ऐसे बराबर पश्चिम दिशाको चले, अनन्तर सरस्वतीके तट पर मारवाड़ जागल देशकी समभूमिमें मुनिप्रिय काम्यक नाम वनको देखा। हे राजन्। जिधर तिधर, अनेक मृग और पक्षियोंसे सेवित काम्यक वनमें मुनियोंसे सत्कृत और शान्त होकर ठहरे सदा पाण्डवोंके दर्शनाभिलाषी विदुर रथपर आरुढ़ होकर एकलेही ऋद्धिभरे काम्यक वनमें आये। तब विदुरने शीघ्रगामी अश्वयुक्त रथको हारा काम्यक वनमें जाकर देखा, कि महात्मा धर्मराज एकांतमें द्रौपदी, ब्राह्मण और भाद्र्योंके समेत बैठे हैं, उस समय विदुरकी दूरसे आते देखकर सत्यसन्ध राजा युधिष्ठिरने अपने भाई भीमसेनसे कहा, कि नजाने यह विदुर हमसे क्या कहनेकी आते है, क्या यह शकुनीके वचनसे हमें जुएके निमित्त बुलानेकी आते है? क्या अब दुरात्मा शकुनी जुएमें हमारे शस्त्रोंकी जीतेगा? हे भीमसेन! यदि वे हमको बुलावेगी, तो हम निवृत्त होनेमें असमर्थ होगी और जब गाण्डीवकी हमें जुएमें हार जायेंगे, तो फिर हमें राज्य कैसे मिलेगा? श्रीवैशम्पायनजी बोले, हे महाराज। तब सब पाण्डवोंने खड़े होकर विदुरको सत्कार र्वक लिया। अजमीद-वशाद्भव विदुरने भी

आदर पाके पाण्डवोंकी यथोचित आशीर्वाद दिया, जब विदुर स्वस्थ हुए तो नरसिंह पाण्डवोंने उनके आनिका कारण पूछा, विदुरने विस्तार पूर्वक सब समाचार जैसे अम्बिकापुत्र धृतराष्ट्रने इनके सङ्ग कह दिया था, सुनाया।

विदुर बोले, हे अजातशत्रु। हितोपदेश द्वारा रक्षा करनेवाली मुझसे पूजा और प्रीति कर समता प्राप्त करके धृतराष्ट्रने यों पूछा, कि पाण्डवोंके इस प्रकारसे जाने पर उनको और हमको जा पथ्य हो सो तुम कहो, मैंने भी कौरव और धृतराष्ट्रको जो उचित और करने योग्य था सो कहा, परन्तु उनकी यह मेरा कहना प्रीतिकारक न हुआ और मैंने नैर उत्तम न समझा, हे पाण्डवी। जो परम कल्याणकी बात थी, सो मैंने उनसे कही परन्तु अम्बिका पुत्र धृतराष्ट्रने उसे न सुना, जैसे रोगीकी पथ्य अच्छा नहीं लगता है, वैसेही उल्ले मेरा कहना अच्छा न लगा, हे अजातशत्रु। जैसे वेदविद्के घरमें दुष्टा स्त्री कल्याणकी नहीं प्राप्त करने देती, तैसेही धृतराष्ट्रभी कल्याणकी प्राप्त नहीं होंगे, जैसे अल्पवयस्का स्त्रीकी साठवर्षका पति सुखदायक नहीं होता, तैसेही इतकी बुद्धिभी लाभदायक नहीं है, जैसे कमलसे पत्तेमें रखा हुआ पानी नहीं ठहरता तैसेही धृतराष्ट्रके मनमें पथ्यवातभी नहीं ठहरती। हे राजन्। इससे निश्चय हुआ है, कि कुरुवशका नाश निश्चयही होनेवाला है। धृतराष्ट्र परम कल्याणकी प्राप्त नहीं होंगे, हे भारत। तब धृतराष्ट्रने मुझसे क्राध करके कहा, कि जहा तुम्हारी इच्छा हो, तुम वही चले जाओ, मैं अबसे नगर और पृथिवीको पालनामें तुम्हारी सहायता नहीं चाहता हूँ, हे नरेन्द्र। इस प्रकार धृतराष्ट्रसे त्यक्त होकर तुम्हें सिंखानेकी आया हूँ; सो मैंने जा कुछ सभामें कहा था और जा पुन. कहता हूँ, सो धारण करो। जो वैरियाँ

कठिन केश पाके चमा करता हुआ समयको
दिताता है, वह जैसे थोड़ी अग्नि बढ़कर सबको
जलाती है, तैसे ही शत्रुओंको जलाकर एकला
सब पृथिवीका भोग करता है, हे राजन् ।
जिसने अपना धन सहायोंमें बाटा है, उसके
दुःखके वही सहायही भागी होते हैं, यही
उपाय सहाय मिलनेका है, और सहाय लेना
पृथिवी मिलनेका कारण है, हे पाण्डव ।
रुहायोंसे मिथ्या वचन न कहने चाहिये, जो
आप खाय, सो उल्लेखी सद्गुणों खिलाना उचित
है, उनके आगे अपनेको बड़ा न समझो, ऐसे
राजा वर्द्धित होते हैं ।

५ अध्याय समाप्त ।

युधिष्ठिर बोले, कि आप जो कहते हैं,
सो मैं परमबुद्धि धारण कर स्वस्थ होकर
सब ऐसेही करूंगा, औरभी देश और कालके
अनुसार सुभी करने योग्य जो हो सो कहिये मैं
सबही करूंगा ।

श्रीशम्पायनजी बोले, कि हे भारत । जब
विदुर पाण्डवोंके आश्रमको चले गये, तब
महाबुद्धिमान् धृतराष्ट्रको महा चिन्ता हुई ।
उन्होंने सोचा कि विदुरको सन्धि विग्रहादि
विद्या पाण्डवोंको बुद्धिकारिणी होगी, यह
विचारकर सभाके द्वारपर आये और विदुरको
स्मरण करके राजाके सामने चेतन शून्य होकर
पृथिवीमें गिरपड़े, पुनः सञ्ज्ञा प्राप्तकर और
पृथिवीसे उठकर समीप खड़े सञ्ज्ञयसे राजाने
ऐसा कहा, मेरा भाई और मित्र साक्षात् मानों
धर्मही था, उसे स्मरण करनेसे मेरा हृदय
कटा जाता है, तुम मेरे उस धर्मज्ञ भाईको
मिल ले आओ । ऐसा कहते हुए राजा रोने
लगे, पशुनाथसे जलते हुए मोहसे विदुरको
स्मरण करते हुए और भाईको प्रीतिसे दुःखी
होकर राजाने सञ्ज्ञयसे पुनः यह वाक्य कहा,
हे सञ्ज्ञय ! तुम शीघ्र जाकर जानो, कि मेरा

भाई विदुर जीता है, वा नहीं, सुभ पापीने उसे
क्रोधसे त्याग कर दिया, उस पण्डित, अपार
बुद्धिमान् मेरे भाईने कभी मेरा किञ्चित भी
दोषयुक्त काम नहीं किया, किन्तु वह परम
बुद्धिमान् मुझसे परम प्रिय कार्यको प्राप्त हुआ
है । हे प्राज्ञ ! उसे तुम ले आओ, नहीं तो
मैं अपने प्राण को त्याग दूंगा । महाराजके
ऐसे वचन सुनके प्रमाणकर (वृद्धतश्चक्षुः) ऐसा
कह कर सञ्ज्ञय काम्यक-वनको चले, सञ्ज्ञय
शीघ्रही काम्यक वनमें जाकर जहां पाण्डव थे
वहां पहुंचे और हरिणचर्म धारणकिये विदुर
और शस्त्रोंको धारण किये तथा ब्राह्मणोंके
सहित बैठे भाइयोंसे रक्षित, देवतोंसे परितृत
इन्द्रके समान महाराज युधिष्ठिरको देखा ।
सञ्ज्ञयने युधिष्ठिरको देखकर पूजा की और
भीम, अर्जुन, नकुल तथा सहदेवने यथायोग्य
उनका आदर किया, जब वे सुखसे बैठे, तो
अपने आनेका कारण कह कर विदुरसे ऐसा
कहने लगे ।

सञ्ज्ञय बोले, हे क्षत्रिय ! अम्बिकापुत्र राजा
धृतराष्ट्र तुम्हारा स्मरण करते हैं, सो तुम शीघ्र
चलकर उन्हें देखो और जिलाओ । हे नरश्रेष्ठ ।
तुम कुरुनन्दन पाण्डवोंको सम्मति और राजाओंमें
सिंह धृतराष्ट्रकी आज्ञासे चलो ।

श्रीशम्पायनजी बोले, कि सञ्ज्ञयके ऐसे वचन
सुनकर बुद्धिमान् स्वजनके प्यारे विदुर युधिष्ठिर-
की सम्मतिसे पुनः हस्तिनापुरको चले आये,
उनको देखकर अम्बिकापुत्र तेजस्वी धृतराष्ट्र
ऐसा कहने लगे, हे पापराहित ! हे धर्मज्ञ !
तुम प्रारब्ध हीसे आये हो, प्रारब्धहीसे तुम
सुभी स्मरण करते हो, हे नरपुरुष ! आज कल
सुभी तुम्हारे दुःखसे जब निद्रा हाती है, तो
अपने शरीरको लक्ष्मीहीन देखता हूँ, राजा
धृतराष्ट्र विदुरको गोदमें बिठलाकर और माया
सूत्रकर कहने लगे, कि हे अपाप ! मैंने जो
तुम्हें कहा, सो चमा करो ।

विदुर बोले, कि हे महाराज ! आप हमारे बड़े हैं, मैंने सब क्षमाही किया है, आपके दर्शन-का अभिलाषी होकर मैं प्राप्ति हुआ हूँ । हे नरसिंह ! धर्मज्ञ लोग दीनोंके पक्षपाती होते हैं, मुझे जैसे पाण्डुके पुत्र है, तैसेही आपके पुत्रभी है, परन्तु वे दीन हैं, यह विचार कर उनपर मैं क्षमा करता हूँ ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि इस प्रकारसे महातेजस्वी दोनों भाई परस्पर वार्तालाप करके विदुर और धृतराष्ट्र बहृत प्रसन्न हुए ।

६ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि जब दुर्मति धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनने सुना, कि विदुर पुनः आये और राजाने उन्हे शान्त किया है, तो महादुःखसे जलने लगा । तब शकुनी कर्ण और दुःशासनको बुलाकर अबुद्धिस्वपी अन्धकारमें प्रवेश करके ऐसे कहने लगा, 'महा बुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्रका मन्त्री पाण्डवोंका मित्र उनका हिताभिलाषी विदुर लौट आया । जबतक पाण्डवोंके लौटानेकेलिये विदुर इन राजाकी बुद्धिको न फेरे तब तक मेरे हितकेलिये कुछ मन्त्रणा करनी चाहिये, यदि मैं किसी प्रकारसे पाण्डवोंको यह आया हुआ देखूंगा, तो बिना प्रतिबन्धकेभी निराहार होकर सूख जाऊंगा, विष खाकर, शत्रुसे, अथवा अग्निमें प्रवेश करके मरजाऊंगा; परन्तु ऋद्धियुक्त पाण्डवोंको नहीं देख सकूंगा ।'

शकुनी बोले, कि हे प्रजानाथ ! हे महाराज ! आप क्यों मूर्खोंके समान बुद्धिमें पड़े हैं ? पाण्डवलोग प्रण करके गये हैं, वे ऐसा नहीं करेंगे । हे भरतकुल सिंह ! हे प्यारे दुर्योधन ! वे लोग सत्यवाक्यमें स्थित हैं, तुम्हारे पिताके वचनको कदापि ग्रहण करके पुनः नगरमें आही जायेंगे, तो हम सब प्रतिज्ञा करके काय्य व्यवहारका निश्चय करलेंगे और हम सब

राजाके कार्योंमें मध्यस्थ रहते हैं, सावधान होकर पाण्डवोंके छिद्र (दोष) देखते रहेंगे । दुःशासन बोले, हे मामा ! हे महाप्राज्ञ ! जो तुमने कहा सो सब ठीक है, तुम्हारे कहनेमें सदा मेरी बुद्धि प्रसन्न होती है ।

कर्ण बोले, कि हे दुर्योधन ! हम सब यथायोग्य तुम्हारे हितको देखते रहते हैं ; हे राजन् हम सबका एक मत है ; वे वीर पाण्डव लोग बिना समय बिताये नहीं आवेंगे और यदि लोभसे आही जायें, तो पुनः जुएमें जीत लो ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि जब कर्णने राजा दुर्योधनसे ऐसा कहा, तो वह अति प्रसन्न हुए और मुह फेरलिया । कर्ण यह देख कर शुभनेत्र फैलाकर शरीरको उद्यत करके क्रोधमें भरके दुःशासन, शकुनी और राजासे ऐसा बोले, हे राजालोगो ! मेरा जामत है, सो सुनो ; हम सब राजाके दास हैं ; हाथके समान इनका प्रिय कार्य करेंगे, हम सब आलस्यरहित होकर केवल राजाके प्रियके हित बैठेही नहीं रहेंगे, अर्थात् कार्यभी करेंगे, चलिये हम सब सन्नद्ध होकर रथोंमें बैठकर शस्त्रोंकी धारण करके सेना लेकर वनवासी पाण्डवोंके मारनेको चलें, सब जब शान्त होकर अविदित जीतकी प्राप्ति होंगे अर्थात् मरजायेंगे, तो धृतराष्ट्र पुत्र और हम सभी विवादरहित हो जायेंगे, जब तक पाण्डव दुःखी हैं, जबतक शोकमें भरे हैं, जबतक मित्रोंसे हीन हैं, मेरे सिद्धान्तेमें तबही तक वह जीतने योग्य है । सूतपुत्रके यह वचन सुनकर उन सबोंनेही प्रशंसा करी और बहृत अच्छा कहने लगे । निश्चय करके सब द्रुकट्टी होकर अपने अपने रथोंपर चढ़कर पाण्डवोंकी मारनेको चले, उन सबोंको चलते हुए जानके, ज्ञाननेत्रसे देखकर भगवान् शुद्धात्मा कृष्णदेवपायन गार्ग्य मुनि आये, लोकपूजित भगवान् व्यासमुनि

उनको जानेसे निषेध करके शोध घुंतराष्ट्रके पास जाकर ऐसा बोली ।

७ अध्याय समाप्त ।

श्रीव्यासजी बोली, कि हे महाप्राज्ञ घुंतराष्ट्र । सब कौरवोंका हित वचन जो हम तुमसे कहते हैं, सो सुनो । हे महाबाहो ! दुर्योधनादिके हलसे हारकर पाण्डवोंका वनको जाना हमारा प्रियकाम नहीं हुआ । हे भारत । यह लोग तेरहवर्ष पूरे होनेपर अपने क्लेशोंको स्मरण कर क्रोधित होके कुंस्कूलमें विष बरसावेंगे, सो यह पापात्मा भेदबुद्धि तुम्हारा पुत्र सदा क्रोधी दुर्योधन राज्यके निमित्त पाण्डवोंसे द्वेष करता है ; इस मूर्खबुद्धिकी निवारण करना ही अच्छा है, यह शान्त हो ; अन्यथा वनवासी पाण्डवोंकी मारनेकी इच्छासे अपने प्राण खो देगा । जैसे महाबुद्धिमान् विदुर, भीष्म, हम, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य हैं, तैसेही आपभी साधु हैं, हे महाप्राज्ञ । अपने पुरुषोंसे लड़ना उत्तम नहीं, परन अधर्मको बढ़ानेवाला और यशनाशक है, अतएव आप उसे मर्त कीजिये, हे भारत । दुर्योधनकी जैसी समीक्षा (विचार पूर्वका भेदबुद्धि) है, हे राजन् । उसीसे महा विग्रह हो जायगी । हे राजन् । अथवा यह तेरा पुत्र सहायहीन एकला वनको चला जाकर पाण्डवोंके सङ्ग रहै, तब तेरे पुत्रको पाण्डवोंके प्रेमसे प्रेम उत्पन्न हो- तो हे नरनाथ । यह कृत्य हो जावेगा, परन्तु यह भी दुर्लभ है, क्योंकि हे महाराज । यह सुना है, कि पुत्र होनेमें जिसका जा स्वभाव होता है, सो कभी भी नहीं छूटता है, यह तो कहिये कि भीष्म, द्रोण, विदुर और आप इस कार्यमें क्या मानते हैं ? क्योंकि पहिलेही तुम्हें यह कहना था । विना कर्तव्यके विचारे अर्थनाश

८ अध्याय समाप्त ।

घुंतराष्ट्र बोली, कि हे भगवन् । हे सुने । यह जुआ मुझे भी प्रिय नहीं था, पर जान पड़ता है कि प्रारब्धके वशमें होकर मैंने यह काम किया । न भीष्म, न द्रोण, न विदुर और न यह गान्धारीकी जुआ अच्छा लगा, परन्तु भूलसे हो गया । हे भगवन् । हे प्रियव्रत । मैं दुर्योधनकी मूर्ख-जानकरभी पुत्र स्नेहसे क्लिष्ट नहीं सकता हूं ।

व्यास बोली, कि हे विचित्रवीर्यके पुत्र नरनाथ । आपने सत्य कहा, पुत्रसे अधिक प्रिय और काँइभी नहीं है, इन्द्रकी भी जब सुरभीने अश्रुपातसे बोधित किया था, तो यही माना था कि अन्य वस्तुओंके बढ़ने परभी पुत्रके समान कोई वस्तु नहीं है । हे प्रजापति । यहां हम इन्द्र और सुरभीका संवादरूप ब्रह्म-उत्तम इतिहास कहते हैं, हे राजन् । एक समय गायोंकी माता सुरभी रोती हुई स्वर्गमें गई तब इन्द्रने उसके ऊपर कृपा करी ।

इन्द्र बोली, कि हे शुभे । तुम क्यों रोती हो कही देवता मनुष्य और नागोंमें कुशल तो है, क्योंकि तुम्हारा रोना कम नहीं है ।

सुरभी बोली, हे इन्द्र । हे सुराधिप । तुम्हारी कोई क्षति नहीं दीखती है, मैं अपने पुत्रको देखकर सोचती हूँ, इसी लिये रोती हूँ । देखो यह मेरा पुत्र दुर्बल होने परभी भार खींचता है, तौभी यह इसे कोड़ेसे मारते हैं, हलमे जीतकर पीड़ा देते हैं, हे सुराधिप । उल्लण्ठनसहित बैठे झर, पिटते हुए देखकर मुझे दया होती है, और मेरा मन दुःखी होता है । उनमें जा बलवान् है, सो मारी घुरमें जुड़ा है, दूसरा जो दुर्बल और मांस रहित है, हे वासव । सो कठिनतासे भारको लेचलता है मैं इसीका शोच करती हूँ । हे इन्द्र । देखो कोड़ेसे पिटनेपरभी और भारसे वार वार दुःखित होनेपरभी उस भारको नहीं लेचल सकता है, मैं उनहीके दुःखसे पीड़ित होकर अत्यन्त

हं, और मेरे नेतोंसे आस करुणा सहित बहती हैं ।

इन्द्र बोले, कि हे सुशोभने ! तुम्हारे सहस्रों पुत्र पीड़ित हो रहे हैं, परन्तु तुम एकहीको पीड़ित देखकर क्यों रोतो हो ।

सुरभी बोली, कि हे शक्र ! यद्यपि सुभी सहस्र पुत्र समानही है, तथापि दीन पुत्रपर अधिक दया है ।

व्यास बोले, कि हे कौरव्य ! सुरभीका यह वचन सुनकर इन्द्र अत्यन्त विस्मित हुए, हे राजन् ! उन्होंने जाना कि पुत्र शरीरसेभी अधिक प्यारा होता है, उसी समय वहां पृथिवी पर बहृतही जलवर्षा और भगवान् इन्द्रने वैल जोतनेवालोको विघ्न कर दिया । सो जैसे सुरभीने कहा था, तैसेही तुम्हारे पुत्रभी इकट्ठे होगए है । हे राजन् ! हीन पुत्रपरभी अधिक कृपा होतीही है । हे पुत्र ! जैसा पाण्डु मेरा पुत्र था, तैसेही तुमभी हो और वैसेही महाबुद्धिमान विदुरभी है, इसीस्नेहसे यह सब कहने आयाहं, यह बात है, कि तुम्हारे एक सौ एक पुत्र है, और पाण्डुके पांचही दीखते है, वेभी होन और दुःखित है, यह लोग कैसे जीयेंगे कैसे बढेंगे अतएव पाण्डुवोंपर मेरा चित्त दुःखी होतां है । हे राजन् ! यदि तुम कौरवोंको जिलाना चाहते हो, तो अपने पुत्र दुर्योधनको शान्त करो ।

६ अध्याय समाप्त ।

धृतराष्ट्र बोले, कि हे यहाप्राज्ञ मुने ! जो आपने अहा सो सत्य है, आप हमारे पिता है, इस बातको हम और यह सब राजालोग जानते हैं । हे मुने ! आप जिस प्रकारसे कुरुकुलका उद्दय चाहते है, वैसेही सुभसे भीष्म विदुर और द्रोणनेभी कहा था, यदि आप सुभसे कृपापात्र समझते है, और कुरुकुलपर आपकी दया है, तो मेरे दुरात्मा दुर्योधन पुत्रको उपदेश कीजिये ।

व्यास बोले, हे राजन् ! यह देखो पंडे ! भाई पाण्डुवोंको उपदेश किये भगवान् मैत्रेय ऋषि हमें देखनेको यहीं चले आते हैं । हे राजन् ये महाऋषि न्यायानुसार इस दुर्ग शान्तिके अर्थ तुम्हारे पुत्र दुर्योधनको उपदेश करेंगे, हे कौरव्य ! यह सुनि जो कहें, शङ्कारहित होकर करने योग्य है, इनका कार्य न करनेसे यह क्रोधयुक्त होकर तुम्हारे पुत्र को शाप देंगे ।

औरैशम्पायनजी बोले, कि व्यास ऐसा कह कर चले गए और मैत्रेयमुनि आये, पुत्रों समेत राजा धृतराष्ट्रने उनके लिये अर्घ्य क्रिया करी । सुनियामें अष्ट मैत्रेय जब शाव भये, तब अश्विकापुत्र धृतराष्ट्र विनय पूर्वक ऐसे बोले से भगवन् ! कहिये आप कुरुजागल देशमें सुखसे तो आये, कहिये वीर पाचोभा पाण्डव कुशलसे तो है, वे भरतकुलमें रह शान्त करना चाहते हैं, या नहीं, कहिये कुरुवंशी भाईचारा तो न टूटेंगा ?

मैत्रेय बोले, मैं तीर्थयात्रासे घूमता हुआ कुरुजागलदेशको प्राप्त हुआ हूं । हे प्रभा ! काम्यक वनमें प्रारब्धसे धर्मराजको देखा हम महात्माको जग और नृग चर्मवारी बनवासी देखनेके निमित्त अनेक सुनियोंके समूह आये है । हे महाराज ! वहा आपके पुत्रोंका जुषा रूपी अन्याय और भूल सुनो, सो अब महा उपस्थित है । हे प्रभा ! आपसे सदासे वृद्ध प्रीति और स्नेह है, अतएव मैं कौरव कल्याणार्थ आपके पास आया हूं । हे राज आप और भीष्मके जीते यह उचित नहीं कि आपके पुत्र परस्पर विरोध करे । हे राज अभीतो तुम आपही युद्ध और अशुभके निवार करनेकी पशुकी रस्तीके समान उपस्थित आप इस उठे धार अन्यायकी क्यों देखते अर्थात् क्यों नहीं शान्त करते । हे कुरुनन्द ! तुमने सभाके मध्यमें जो चोरके ऐसा काम किया

ससे तुझ सुनियोंके सङ्गमें बैठकर शोभा नहीं ले हो ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, तब भगवान् मैत्रेय पिराज दुर्योधनकी ओर मुख करके मीठी-णीसे बोले ।

मैत्रेय बोले, हे दुर्योधन । हे महाबाही । कहनेवालोंमें श्रेष्ठ । हे महाभाग । हम जो हमारे हितके वचन कहते हैं, सो सुनो, हे राजन् । नरसिंह पाण्डवोंसे द्वेग मत करो अपना, पाण्डव, कौरव और सब लोकका प्रयत्न करो, वे सब पुरुषोंमें सिंह शूर तेजस्वी महायुद्धकारी दशसहस्र रथियोंके बलवाले और जूके समान दृढ़ शरीरवाले हैं; वे सब सत्य-व्रतधारी सब वीर्याभिमानी हिङ्गुमूक वक्ता आदि एतद्वर्गमें मुख्य, कामरूपी देवशत्रु राक्षसोंके मारनेवाले हैं, अभीमार्गमें जाते हुए रात्रिकी पर्वतके समान अचल भयानक शरीरवाला किर्मीर उन महातमाओंके मार्गको रोक कर बड़ा था, तब युद्धप्रिय बलवानोंमें श्रेष्ठ भीमने अपने बलसे उसे पशुके समान जैसे सिंहछोटे हरिणको मारता है, मारडाला, हे राजन् । देखो दिग्विजयने भीमसेनने दश सहस्र गजके समान बलवाले महापराक्रमी जरासन्धको कैसे मारडाला था, श्रीकृष्ण उनके सम्बन्धी हैं, धृष्ट-पुष्पादि दुपदपुत्र उनके सारे हैं, जरा और दुर्युधत्त पुरुष उनसे कौन युद्धमें लड़ सकता है, हे भरतर्षभ । उन पाण्डवोंके सङ्ग हमारी सन्धिही होनी उचित है, हे राजन् । हमारी बात मानो; क्रोधके वशमें मत हो ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, हे राजन् । इस वचन कहते हुए भगवान् मैत्रेय के सामने उनके मृदुके समान अपनी जंघापर झुककर अपना हाथ मारा और हंसकर दुर्योधनको खींचने लगा, दुर्बुद्धि दुर्योधन ने मिर नोचाकरके बैठ रहा । जब मैत्रेयने देखा, कि यह दुर्योधन हमारे

वचनकी सुश्रुषा नहीं करता और पृथिवीको खींचता है, हे राजन् । तब मैत्रेय मुनिको क्रोध आया । सुनियोंमें श्रेष्ठ मैत्रेय क्रोधके वशमें होकर और ब्रह्मासे प्रेरित होकर दुर्योधनकी शाप देनेका विचार करने लगे । तब क्रोधसे लालनेत्र करके उन्होंने जलस्पर्श किया और दुष्टोंके अशुभा धृतराष्ट्रके पुत्रको मैत्रेयने शाप दिया; जिस लिये तैने मेरा अनादर करके मेरा वचन न माना, अतएव उस अभिमानका फल शीघ्रही प्राप्तर । तेरे किये द्रोहसे महा-युद्ध उपस्थित होगी, उसमें बलवान् भीम गदासे तेरी जंघाकी तोड़िगा । ऐसा सुनकर धृतराष्ट्र मुनिको यह कहते हुए कि यह बात ऐसे न हो, प्रसन्न करने लगे । मैत्रेय बोले, हे राजन् । यह तेरा पुत्र यदि शमकी प्राप्ति होगी, तो हे तात ! मेरा शाप न होगी, नहीं तो अवश्यही होगी ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि तब दुर्योधनके पिता राजा धृतराष्ट्र भीमके बलकी लज्ज करके हुए मैत्रेयसे कहने लगे, कि भीमने किर्मीरको कैसे मारा, सो कहिये ।

मैत्रेय बोले, अब हम तुमसे कुछ न बोलेंगे, क्योंकि तुम्हारे पुत्रकी अज्ञा नहीं है, मेरे जाने-पर यह विदुर तुमसे सब कहेंगे । ऐसा कह कर मैत्रेय मुनि जहासे आये थे वहीँकी चले गये । किर्मीर-वध न सुननेको इच्छासे दुर्योधनभी बाहर चला गया ।

१० अध्याय समाप्त ।

आरण्य पर्व सम्पूर्ण हुआ

अथ किर्मीर वधपर्व ।

धृतराष्ट्र बोले, कि हे विदुर । हम किर्मीरका मारा जाना सुननेकी इच्छा रखते हैं; तुम कहो, कि उस राक्षस और भीमसेनका सामना कैसे हुआ ।

विदुर बोले, कि मनुष्योंमें अधिक कर्म करनेवाली भीमका यह कर्म जो मैंने पहले सुना, है, सो सुनो । हे राजेन्द्र । पाण्डव लोग यहासे जुएमें हारकर जो चले, तो तीन दिनरातमें काम्यक नामक वनमें पहुँचे । हे नरनाथ । जब रात्रिका आधा भाग बीत गया और मनुष्यभक्षी राक्षसोंके विचरनेका समय हुआ, तब उस वनकी मनुष्यभक्षी राक्षसोंके भयसे तपस्वी गोपाल और वनमें रहनेवालोंने दूरहीसे त्याग दिया था । हे राजन् । हे भारत । पाण्डवोंने उस वनमें प्रवेश किया, तो उनके मार्गका अवरोध करके प्रज्वलित नेत्र अति भयानक उक्त राक्षस मिला । वह अपने हाथोंकी विस्तारित करके और मुखकी भयानक बनाकर जिस मार्गसे पाण्डव आते थे, उसे रोककर खड़ा हो गया, आठदातोंकी प्रत्यक्ष करके, लाल प्रकाशमान जंघे केशयुक्त सूर्यकिरण विजली और वक्-पंतियुक्त मेघके समान, भयानक राक्षसी मायाकी विस्तार करता हुआ, महाशब्दकरता हुआ, गरजते हुए मेघके समान राक्षस आके खड़ा हो गया । उसके शब्दसे डर कर और स्थलचर पक्षी सब औरसे बोलना बन्द करके एकत्र बैठ गये । उस समय उसके नादसे वनमें मृग, गैंड़ा, भैंसा, रीछ इधर उधर भागने लगे । ऐसा भान होने लगा मानो वनही चलता है, वनकी लता उसकी जंघा की हवासे घायल होकर मानो भयपूर्वक तामेके-रङ्गवाली पल्लवक्षुपी हाथोंसे दूरके वृक्षकी भी आलिङ्गन करने लगी । उस समयमें बड़ा कठिन वायु बहने लगा, धूलसे पूरित होनेके कारण आकाश ताराहीन भान होने लगा, जैसे पाच इन्द्रियोंके अर्थोंका अतुल शोक रिपु होता है, तैसेही पाच पाण्डवोंका अज्ञात शत्रु राक्षस मार्गमें आया । काले हरिणके चर्म ओढ़े पाण्डवोंको दूरसे देखकर सैनाक पर्वतके समान मार्गका अवरोध करके

खड़ा हो गया, उनको देखकर कमलानयने द्रौपदी डरी । उसने ऐसा भयानक रूप पहले कभी नहीं देखा था, अपनी आंखों बन्द कर लिया । दुःशासनके हाथसे खींचे हुए बिखरेकेशवाली द्रौपदी पाच पर्वतोंके बीचवाली नदीके समान व्याकुल हो गयी । मूर्च्छित होती द्रौपदीको पाचों पाण्डवोंने ऐसे संभाल लिया जैसे विषयोंमें लीन पाच इन्द्री रतिको ग्रहण करती है । अनन्तर पाण्डवोंके आगेही उस राक्षसी घोर मायाकी बीर्यवान् धीमन्यने राक्षसोंके नाश करनेवाली विविध मन्त्रोंका भलीभाँति प्रयोग करके नाश कर दिया । वह महावक्त्र माया-नष्ट होतेही क्रोधसे नेत्र खोलकर दृक्क्षिप्त मूर्ति धरनेवाला क्रूर कालके समान दीखने लगा । तब महा बुद्धिमान् राजा युधिष्ठिरने उससे कहा तुम कौन और किसका पुत्र है ? कह हम तुम्हारा क्या काम करे ? तब धर्मराज युधिष्ठिरसे उस राक्षसने यह कहा, मैं वक्त्रका भाई हूँ किम्भीर नामसे प्रसिद्ध हूँ, इस शून्य काम्यक वनमें सुखसे रहता हूँ, मैं सदाही मनुष्योंको युद्धमें जीतकर खाता हूँ । तुमलाग कौन हो, मेरा भोजनरूप होकर मेरे घरमें आये हो, अब मैं तुम सबको युद्धमें जीतकर खाजाजंगा ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि हे भारत युधिष्ठिरने उस दुरात्माका यह वचन सुनव अपना नाम और जाति आदि सब कह सुनाये । युधिष्ठिर बोले, हम पाण्डुपुत्र धर्मराज कदाचित् तुमनेभी सुना ही, सो हम भीमर और अर्जुनादि सब भाद्र्योंके संग राज्य होनेसे वनमें रहनेकी इच्छासे इस घोर वन में घरेमें आये हैं ।

विदुर बोले, कि यह सुनकर किम्भीर युधिष्ठिरसे बोला, कि वृद्धतम समयसे मेरे मन्त्र स्थित यह वलि आज देवोंने भेज दिया । भीमसेनके मारनेके अर्थही शस्त्राकी उद

करके सब पृथिवीमें घूमता हूँ, परन्तु इसी-नहीं पाता-था, सो आज इस-अपनेभाईके-मारने-वालेकी प्रारब्धहीसे पाया हूँ, हे राजा-! इसीने पहले कपटसे ब्राह्मण वेष धारण करके वैतकीय वनमें मेरे-भाईकी-विद्या-बलकी आश्रय करके-मारहाला था, इसकी अपना बल कुछभी नहीं है, और मेरे-प्यारे मित्र वनवासी हिड़म्बकी भी इसी दुरात्माने-मारा है, और उसकी बचनकीभी छीन लिया। सो यह मूर्ख हमारे घूमनेके समय आधी रातकी मेरे इस महावनमें आगया : अब मैं वह पुराना वैर इससे निकालूँगा और इसके वज्रत रुधिरसे वक्का तर्पण करूँगा। आज मैं अपने भाई और मित्रके कृणसे उद्धार होकर, इस राक्षसोंकी बैरीकी मार कर परम शान्तिकी प्राप्ति होऊँगा। हे युधिष्ठिर। इसे पहले वक्के को छोड़ दिया था, परन्तु आज तुम्हारे देखते ही मैं इसे खोजता हूँ : जैसे अगस्त्यने वातापीको खाकर पचालिया था, तैसेही आज मैं इस महापराक्रमी भीमसेनकी मारकर और खाकर पचा जाऊँगा। इस प्रकारसे सुनकर धर्मात्मा युधिष्ठिरने क्रोधकरके कहा, कि ऐसा नहीं हो सकता। तब महाबाहु भीमसेन दश व्याम (दोनों हाथोंकी फैलाकर जो मान हो उसे व्याम कहते हैं) के वृक्षकी उखाड़कर उसे पतवारहित कर दिया। उसी समय क्षणमात्रमें अर्जुनने वज्रके समान गाण्डीव धनुषको सज्जित किया। हे भारत। भीमने अर्जुनको निवारण करके दौड़कर घोर शब्द-वाले राक्षससे कहा, कि रे ! खड़ा रह। ऐसा कहकर अपने कच्छकी बांधकर बलवान् भीम क्रोधसे होठ चवाते हुए हाथसे हाथकी मलकर दस हाथमें लेकर वेगसे राक्षसकी ओर चले। तब उस यमदण्डके समान वृक्षकी उसके सिर-पर मारा जैसे दूध वज्र-मारता है। उसके घूमनेसे उस राक्षसकी कुछ भी दुख न हुआ, उसने वज्रके समान जलती हुई लूक

भीमसेनकी मारी। योधोंमें श्रेष्ठ भीमसेनने उस लूककी शी, तासे-बाँधे चरणदे पकड़कर-पुनः-राक्षसकी-ओर फेंका; तब-किर्मीरभी शीघ्र वृक्ष-उखाड़कर-दण्डधारी-यमके-समान क्रुद्ध होकर भीमकी ओर दौड़ा, उस समय दोनोंका वृक्षयुद्ध होने लगा, जिससे-वृक्ष नाश होने लगे। उस-समय इन दोनों का ऐसा युद्ध हुआ, जैसे पहले स्त्रीकी इच्छावासे बालि और सुग्रीव दोनों भाइयोंका हुआ-था। उनके सिरमें लगनेसे वृक्ष-अनेक टुकड़े हो होकर गिरने लगे, जैसे दो-मतवाले हाथियोंके शरीरमें लगनेसे कमलकी डंटी-चूर्ण-ही जाती है, तैसेही इन दोनोंके शरीरमें लग-लगकर-अनेक वृक्ष मूँजके समान चूर्ण-ही-गये। उस-वनमें-बकले, रजके समान फैल गये। हे भरतर्षभ। इस प्रकारसे राक्षसोंमें मुख्य-किर्मीर और पुरुषोंमें श्रेष्ठ भीमसेनका वृक्षयुद्ध-सहस्रतमात्र होता रहा। तब राक्षसने क्रोधसे भरकर-एक शिला युद्धमें स्थिर भीमकी मारी; परन्तु भीमसेन किञ्चित्भी चलायमान न हुए, तब राक्षस शिलाकी चोटसे स्थिर भीमसेनकी ओर हाथ फैलाकर ऐसा दौड़ा; जैसे-युद्धमें किरण विस्तारकरके राहु सूर्यकी ओर जाता है। तब वे दोनों परस्पर-युद्ध करते हुए-एक दूसरेसे लिपटकर खींचने लगे। दोनों ऐसे-शांभत हुए, जैसे बड़े वृष (बैल) लड़ते हैं। उस समय उन दोनोंका ऐसा घोर दारुण भयानक वाज्युद्ध भया, जैसे नाखून और दातशस्त्रवाले उन्मत्त दो व्याध्रोंका युद्ध होता है। वृक्षा दुर्घोषधनके विगाड़से और वाज्रबलसे उन्मत्त, द्रौपदीके समामें लानेसे क्रुद्ध भीमसेनका बल बढ़ने लगा। जैसे एक मतवाला हाथी दूसरे मतवाले हाथीको पकड़ता है, तैसेही भीमने उस राक्षसकी क्रोधकर हाथोंसे पकड़ा। तब बलवान् राक्षस-नेभी इन्हीं वैसेही पकड़ा; तब बलवानोंमें उत्तम भीमने उसे बलसे गिरा दिया; तब युद्धमें

दोनों बलवानोंके हाथोंके रंगड़े जानेसे ऐसा शब्द हुआ, जैसे बांसोंके फटनेसे होता है। तब भीमने बलसे उसे पटककर और युद्धमें पकड़कर जैसे प्रबल वायु वृक्षकी घुमाता है, तैसेही घुमाया, तब दुर्बल राक्षस बलवान् भीमके बलसे युद्धमें क्लेशित होकर प्राण निकालता हुआ भीमकी खींचने लगा; तब भीमसेनने जाना कि यह राक्षस अब थके गया, तब जैसे पशुको रस्तीसे बांधते हैं, तैसेही हाथोंसे उसे कसा। भूरीभरके समान शब्द करनेवाले राक्षसकी वली भीमने चेतना रहित करके बद्धत देरतके घुमाया, उस राक्षसकी तड़पता हुआ जानकर पाण्डुनन्दनने हाथोंसे पकड़कर शीघ्रतासे पशुके समान मार डाला। उसकी कटि (कमर) जघासे दवाकर हाथोंसे कण्ठकी दवाया; अनन्तर टूटे-गात्र-निकले राक्षसकी पृथिवीमें मल कर यों बोले, रे पापी! तू यमके स्थानमें जाकर भी हिङ्गम्ब और बककी आसू न पोंछ सकेगा। क्रोधी पुरषोंमें श्रेष्ठ वीर भीमने नष्टबल नष्टभूषण तड़फते हुए बिना प्राणवाले उस राक्षसकी छोड़ दिया। उस मेघके समान रूपवाले राक्षसके मरने पर द्रौपदी की आगीकर अनेक गुणोंसे भीमसेनकी प्रशंसा करते हुए पाण्डव-लोग प्रसन्न होकर हौतवर्नकी चले।

विदुर बोले, हे नरनाथ! हे कौरव! धर्म-राजके बचनसे इस प्रकार भीमसेनने किष्कीरकी युद्धमें मारा। इस प्रकारसे अपराजित युधिष्ठिरने उस वनकी निष्कण्ठक किया, तब द्रौपदीके सङ्ग धर्मज्ञ पाण्डवलोग वहा ठहरे। वे सब भरतकुलसिंह द्रौपदीकी आश्वसन करके प्रसन्न मनसे प्रेमपूर्वक भीमसेनकी प्रशंसा करने लगे, भीमसेनके बाहुबलसे जब वह राक्षस नष्ट हो गया, तब वीर पाण्डवोंने शुद्ध निष्कण्ठक उस वनमें प्रवेश किया, स

जाते हुए उस फैले पड़े भयानक

दुष्टात्मा राक्षसकी महावनमें भीमके बलसे मरा हुआ देखा। हे भारत! वहा जो ब्राह्मण आये थे, उनमें मैने यह वार्ता सुनी।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, राक्षसोंमें श्रेष्ठ किष्कीरकी बध इस प्रकार भीमने किया। यह सुनके राजाने दुःखीके समान भारी सास लिया।

११ अध्याय और किष्कीर

वधेपूर्व समाप्त।

अथाञ्जुनाभिगम पर्वारम्भः ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि जब भोजवशी तथा अश्वकवंशियोंने सुना, कि पाण्डव लोग दुःखित होकर बनकी गये हैं, तो सबलोग वन-हीमें आये। धृष्टद्युम्न, चेदिके राजा, धृष्टकेतु, लोकमें विदित महावीर और कश्मीरी सब भाई यह सब धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी निन्दा करते हुए हम क्या करें, ऐसा कहते हुए क्रोधसे भरे पाण्डवोंकी देखनेकी वनमें आये। वे सब क्षत्रियोंमें सिंह लोग श्रीकृष्णकी आगे करके धर्मराज युधिष्ठिरके चारों ओर बैठे। कुरुश्रेष्ठ युधिष्ठिरसे प्रणाम करके दुःखी होकर श्रीकृष्ण कहने लगे।

श्रीकृष्ण बोले, दुःस्थायन कार्य शकुनी और चौधे दुरात्मा दुःसासनका रुधिर भूमि पीवेंगी। इन सब दुष्टोंकी इनके संगियोंकी और जो राजा उनकी सहायता करेंगे, उन सबकी युद्धमें मार कर हम सबलोग धर्मराज युधिष्ठिर को पुनः राज्य देंगे, क्योंकि क्ली मारने योग्य है, यह सनातन धर्म है।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, पाण्डवोंके निरादरसे मानों प्रजाकी मज्जा कर देंगे ऐसे कुपित श्रीकृष्णकी अञ्जुनने शान्त किया। अञ्जुनने श्रीकृष्णको क्रोधयुक्त देखकर महात्मा सत्य-कीर्ति कृष्णके पूर्व देहकृत कर्म कहे। अञ्जुन पुरुष (साख्य शास्त्रोक्त) प्रमाणरहित सत्य अपारतेज प्रजापतियोंके पति विष्णुलोकनाथ बुद्धिमान् श्रीकृष्णके गुण इस प्रकार कहने लगे।

अर्जुन बोले, हे कृष्ण । पहले समयमें तुमने दश सहस्र वर्ष तक गरुमादन पर्वतपर साय-गृह मुनि (सायं गृह उसे कहते हैं, जो जहां सांभ हो जाय वही घर मान ले) ही तप किया था, और हे कृष्ण । तुम ग्यारह सहस्र वर्ष पर्यन्त पुष्कर क्षेत्रमें केवल जलही पीकर रहे थे, तथा सौ वर्षतक वायु भक्षण करके और उर्ववाह होकर विशाल बदरिकाश्रममें एक चरणसे खड़े रहे थे, तैसीही उत्तरीय वस्त्र छोड़कर मांसरहित केवल नाड़ीयुक्त शरीरसे सरस्तीनदीके तटपर बारह वर्षके यज्ञमें रहे थे । हे कृष्ण । तैसीही पुण्यात्मा पुरुषोंके योग्य प्रभासक्षेत्रमें जाकर भी तुम दिव्य सहस्र-वर्ष तक लोकस्थितिके निमित्त खड़े रहे थे, मुझसे व्यासने ऐसा कहा था, हे कृष्ण । तुम क्षेत्रज्ञ हो, सब जगतके आदि हो, हे केशव । आप सबके अत्त हो, तुम तपनिधान हो, भूमिसे उत्पन्न नरक दैत्यकी मारकर तुम कुण्डल लाये थे, हे कृष्ण । तुमने प्रथम उत्पन्न पीढ़ीके यज्ञके अर्थ प्राप्त किया, उससे यज्ञ करके लोक सिंह और सब लोकोंके जोतने-वाले तुमने युद्धमें सब दैत्य और दानवोंको मारा तब इन्द्रका सर्वेश्वर पद देकर हे केशव । तुमने मनुष्यलोकमें जन्म लिया । हे महा-बाही । हे परन्तप ! सो तुम नारायण होकर हरि हुये ; ब्रह्मा, चन्द्र, सूर्य, धर्म, धाता, (धारण करनेवाले) यम अग्नि, वायु, कुबेर, रुद्र, काल, आकाश, पृथिवी और दिशा तुम्ही हो । तुम उत्पन्न नहीं होते चर और अचरके गुरु हो हे पुरुषोत्तम ! तुम बनानेवाले हो । हे मधुराक्षके नाशक । हे कृष्ण । अति तेजस्वी तुमने अंतराय वनमें सबसे उत्तम देव्यष्टल प्राणिके सर्व अनेक यज्ञ किये थे, हे जनार्दन ! वहाँ एक एक वनमें सौ सौ सुवर्णके भाग दिये थे, हे यदुनन्दन । तुम दितिके पुत्र होकर जलमें इन्द्रसे ईंटे भार और विष्णुके नामसे

प्रसिद्ध हुए थे, हे शत्रुनाशक ! तुमने बालक होकर आकाश, पाताल और पृथिवीको अपने तेजसे तीनही चरणसे लङ्घन किया । तुम तेजस्व होकर आकाश और स्वर्गमें प्राप्त होकर सूर्यके रथपर चढ़कर सूर्यको प्रकाशित करते हो, हे कृष्ण । हे नाथ । तुमने अनेक (सहस्रों) अवतार लेकर सैकड़ों अधर्मी असुरोंको नाश किया है, तुमने तांतकी फायोंको काटे दिया और निमुन्द नरकासुरका नाश करके प्रागज्योतिषपुरका मार्ग शुद्ध कर दिया । नगरमें पुरुषोंके सहित शिशुपाल, जरासन्ध शैव्य और शतधन्वाको तुमने जीता, तैसीही तुमने सूर्यके समान तेजयुक्त मेघके समान शब्दवाले रथपर चढ़कर भोज वंशोत्पन्ना रुक्मिणीकी युद्धमें जीतकर प्राप्त किया, तुमने क्रोधसे इन्द्रद्युम्न और कसेरुमान् यवनकी मारा है, आकाशमें घूमनेवाली नगरके स्वामी शल्वकी मारकर उसके नगरकी पृथिवीमें गिराया, इस प्रकार तुमने इतनोंकी युद्धमें मारा, इसके पश्चात् और भी सुनिये । कार्तवीर्यके समान भोजकी तुमने इरावतीके युद्धमें मारा, हे जनार्दन । और सुनियाकी प्यारी भोगवती हारिकाकी अपने वशमें करके समुद्रकी प्राप्त करते हो, हे मधुसूदन ! हे दाशार्ह । क्रोध धूर्तता, असत्य, निर्लज्जता, टेढ़ापन यह आपमें कुछ भी नहीं है, स्थानमें बैठे हुए अपने तेजसे प्रदीप्त आपके पास आकर महामुनिलोग अमय मागते हैं, हे मधुसूदन । हे परन्तप । युगके अन्तमें सब प्राणियोंकी नाश करके सबका आत्मामें मिलाकर आप जगत्स्वरूप हो जाते हैं, हे वशिष्ठवंशोद्भव युगके आदिसे तुम्हारे नाभिकमलसे चराचरके गुरु ब्रह्मा जगत् बनानेवाले उत्पन्न भये, उनके मारनेके निमित्त घोर राक्षस मधु और कैटभ उद्यत हुए ; उनका यह कुकर्म देखकर आपका क्रोध हुआ, तब आपके मस्तकसे तीननेत्रवाले शूलधारी शिव उत्पन्न

भये ; इस प्रकार ब्रह्मा और शिव दोनोंही आपके शरीरसे उत्पन्न भये हैं, मुझसे नारदने कहा है, कि यह दोनों तुम्हारी आज्ञासे पालनेवाले हैं। हे नारायण ! हे कृष्ण ! तैसीही तुमने पहले समयमें चित्ररथ वनमें महा यज्ञ किया था। अन्य पुरुषोंने ऐसे यज्ञ बद्धत दक्षिणायुक्त न किये न करते हैं, और न करेंगे। हे देव ! जो कर्म बालक-पनमें महाबलवाले तुमने बलदेवकी सहायतासे किये, सो और से न होंगे, कैलासमें ब्राह्मणोंके संग तुम रहेंगे।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि कृष्णरूप पाण्डु-पुत्र अर्जुन महात्मा कृष्णसे यह सब कहकर चुप हो गये, तब कृष्णने ऐसा कहा, हम तुम हैं, और तुम हमारेरूप हो, जो हमारे भाव हैं, सो सब तुम्हारे हैं ; जो तुम्हारे द्वेषी है, सो हमारा द्वेष करते हैं, जो तुम्हारे अनुगामी है, सो हमारे मित्र है, तुम दुःखसे वर्षण करने योग्य नर हो और हम भक्तदुःखनाशक नारायण हैं, हम दोनों नरनारायण ऋषि जगतमें समय पाकर प्राप्त हुए हैं। हे कुन्तीनन्दन ! तुम मुझसे अभिन्न मैं तुमसे अभिन्न हूं, हे भरतर्षभ ! हमारा और तुम्हारा भेद जाननेके योग्य नहीं है।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि उस वीर-समाजमें जहां राजालोग उद्यत बैठे थे, जब महात्मा श्रीकृष्णने ऐसे वचन कहे, तो महावीर धृतराष्ट्र-आदि भाइयोंसे वेष्टिता शरणकी इच्छा करने-वाली द्रौपदी शरणपरायन भाइयोंसे युक्त बैठे हुए श्रीकृष्णसे बोली।

द्रौपदी बोली, मुझसे असित देवलमुनिने आपके विषयमें कहा है, कि पूर्वकालमें आपही अकेलिये और जगत्में आप प्रजापति हैं, आप सब लोकोंके बनानेवाले हैं, हे दुर्द्धर्ष ! (दुःखसे करने योग्य) आप विष्णु हैं। हे मधु- (मधु नामक दैत्यके नाशक) आप

यज्ञ स्वरूप हैं। जमदग्नि मुनिने कहा है, कि आप पूजक और आपही पूजाके योग्य हैं। ऋषियोंने तुम्हें चमत् रूप कहा है, हे पुरुषोमें श्रेष्ठ ! तुम सत्स्वरूप हो, कश्यपने तुम्हें सत्वसे उत्पन्न कहा है ; नारदने तुम्हें साध्य-देवता और शिव आदिका ईश्वर तथा प्राणि-योंके नाथ कहा है, हे पुरुषोमें व्याघ्र श्रीकृष्ण ! जैसे बालक खेल बनाकर उससे खेलते हैं, तैसीही आप ब्रह्मा, शिव और इन्द्रादिकी वार-वार बनाकर खेला करते हैं ; हे नाथ ! आकाश आपके सिरसे, पृथिवी चरणोंसे व्याप और यह लोक तुम्हारे पेटसे व्याप हैं, आप सनातन पुरुष हैं, विद्या तपसे तपकर आप तप-हारा-आत्मा भावना करनेवाली और आत्माके दर्शनसे तप मुनियोंमें उत्तम हो, युद्धमें से न फिरनेवाली, पुण्यात्मा, सब-धर्म युक्त राज-ऋषियोंकी आपही गति है। हे पुरुषसिंह ! तुम विभू, तुमही प्राणियोंके स्वामी हो, तुमही सुकर्मोंके कर्त्ता हो, लोक, लोकपाल, नक्षत्र, दशो दिशा, आकाश, चंद्रमा और सूर्य यह सब आपहीमें प्रतिष्ठित हैं। मर्त्यलोक-वासियोंमें मानव धर्म और देवतोंमें अमरता यह सब आपहीके अधीन है, हे महाबाही ! सब लोकोंके काम आपहीमें प्रतिष्ठित हैं, हे मधु-सूदन ! सो आपसे मैं विनयपूर्वक अपने दुःखोंको कहती हूं, आप सब जगत्के जो दिव्य और मनुष्य हैं उसके स्वामी हैं, हे कृष्ण ! हे विभो ! मैं पाण्डवोंकी स्त्री, तुम्हारी सखी और धृष्टद्युम्नकी बहिन हूं, तो मेरी ऐसी स्त्री किस प्रकार-सभामें खींची गयी, कापती इई रजस्वला रुधिरसे भीजी-एकवस्त्र-धारिणी मैं कौरवोंकी सभामें खींची गयी, सभामें राजोंके मध्यमें मुझे रुधिरसे-भींगी देखकर पापी धृतराष्ट्रके पुत्र हंसने लगे। हे मधुसूदन ! वे लोग दासी बनाकर पाण्डव पात्राल और यादवोंके जीते मुझे भोग करना चाहते थे, हे

कृष्ण । जो मैं भीष्म और धृतराष्ट्रकी पुत्र-
वधू थी उस मुझे उन्होंने बलसे दासो बनाया ।
युद्धमें अष्ट महाबलवान् इन पाण्डवोंकी
में निन्दा करती हैं, जो अपनी यशस्विनी
धर्मपत्नीके लेशकी देखते हैं, हे जनार्दन ।
भीमके बलकी और अर्जुनकी गाण्डीव
धनुषकी धिकार है, जो मुझे चुद्रोंसे खिंचतो
देखकर हमा कर रहे हैं, महात्माओंने यह
धर्ममार्ग नित्य कहा है, कि थोड़े बलवाले
पतिभो अपनी स्त्रियोंकी रक्षा करते हैं, जब
स्त्रीकी रक्षा होती हैगी सन्तान रक्षित होता
है, अतएव उसे जाया कहते हैं, स्त्री भी पतिकी
रक्षा करती है, कि भर्ता मेरे उदरसे कैसे उत्पन्न
होगा । यह पाण्डव लोग शरणागतकी कदापि
नहीं त्यागते हैं, परन्तु शरणमें आई सुभकी
उद्गीर्णभी रक्षित न किया, देखो मेरे पांच-
पातियोंसे महातेजस्वी पांचपुत्र हुए हैं, हे
जनार्दन । इनको भी देखकरके रक्षा किये
जाने योग्य हैं, युधिष्ठिरसे प्रतिविन्ध, भीमसे
सुतसीम, अर्जुनसे अतकीर्ति, नकुलसे शतानीक
और सहदेवसे अतकर्म पुत्र हुए हैं, यह सब
सत्य पराक्रमी हैं । हे कृष्ण ! जैसे प्रद्युम्न हैं,
वैसेही यह भी सब महारथ है, यह सब धनु-
क्षेत्रियोंमें अष्ट, युद्धमें शत्रुओंसे अजेय है, न
जाने यह सब दुर्बल धृतराष्ट्रकी पुत्रोंकी क्यों
हमा कर रहे हैं, उद्गीर्णने इनका राज्य अध-
र्मसे हन लिया । इन सबकी दांस बनाय एक
बल धारिणी रजसूला सुभकी सभामें खींच-
वाये । हे मधुसूदन । गाण्डीव धनुष अर्जुन,
भीम तथा तुम्हारे बिना जगत्में किसीसे भी
अभिय (रोद सहित) नहीं हो सकती है ।
कितने कृष्ण ! भीमके बल और अर्जुनके
यशार्थकी धिकार है, जो दुष्टोंधन इनके
जगत्सर्व भरभी जीवित है । उसन इन
कष्टदायकोंकी माताके समेत राज्यसे निकाल
दिया । उस पापीने इनकी ब्रह्मचर्याविस्थामें

बालकपनमें पढ़ते समय भीमसेनके भोजनमें
विष मिलाय दिया था । हे महाबाहो ! नवीन
तीक्ष्ण अधिक कालकूटकी (विषविशेष) अन्नकी
सहित बिना विकारही भीमने आयुशेष रह-
नेके कारण उसे पचालिया था । प्रमाण नामक
वट-वृक्षके नीचे विश्वास सहित तटपर सीते
हुए भीमसेनकी बाधकर गङ्गामें डालके वह
आप नगरकी चला गया था । हे कृष्ण ! जब
महाबली महाबाहु कुन्तीपुत्र भीमसेन जागे
तब सब वस्त्रन तोड़कर खड़े हो गये । हे
कृष्ण ! भीमके सब अङ्गोंमें उसने कठिन विषले
सर्पोंसे कटवाया तथापि शत्रुनाशन भीम न
मरे, जब भीम, जगी तो सब सर्पोंकी मार-
डाला । औ उसकी सारंगी कीभी हाथसे मारा ।
फिर वारणावतमें यह बालक अपनी माताके
सङ्ग जब सीते थे तब उसने आग लगा दी ।
मला ऐसा कौन कर सकता है ? जहा महादुःखमें
पड़ी, आगसे घिरी-सीती हुई हमारी सासने
पाण्डवोंसे यो कहा, हाय मैं मरी अब कैसे
शान्ति होगी, मैं अनाथ बालक पुत्रोंके संग
यहीं नष्ट हो जाऊंगी । वहा महाबाहु वायुके
समान वेग और बलवाले भीमने कुन्ती और
भाइयोंकी आश्रय दिया और कहा, कि जैसे
उड़नेवाली पक्षियोंमें अष्ट गरुड़ उड़ता है,
वैसेही मैं भी उड़ जाऊंगा, आपलोगोंकी
कुद्भी भय नहीं है ; तब कुन्तिकी वाई गोदने
राजाकी दहनीमें नकुल और सहदेवकी कन्धी-
पर तथा अर्जुनकी पीठपर चढ़ाकर सबके
समेत एकवार उड़कर बलवान भीमने भाई
और माताकी आगसे बचाया । तब यशस्वी पाण्ड-
व लोग अपनी माताके संग वहासे रातकी चले,
तो महा वीर वनमें पहुँचे जो हिड़म्ब राजसका
घर था वहां वे यकी हुई दुःखिनी माताके
समेत सी रहे थे । सीते हुएोंके पास हिड़म्बा
नाम्नी राक्षसी आयी ; उसने माताके संग
पृथिवीमें सीते पुत्र पाण्डवोंकी देखकर कामसे

मैं सुनते ही अत्यन्त उद्दिग्धचित्त होकर आपकी देखनेकी इच्छासे बद्धत शीघ्र यहा चलाआया। हे भरतर्षभ ! हे महाराज ! हम महादुःखमें पड़े हैं, क्योंकि हम भाइयोंके समेत आपको इस देखमें देख रहे हैं।

८१३ अध्याय समाप्त ।

युधिष्ठिर बोले, कि हे वृष्णिनेन्दन कृष्ण ! तुम द्वारिकामें क्यों नहीं थे, तुम किस परदेशकी गये थे और उस परदेशमें तुमने क्या कार्य किया।

श्रीकृष्ण बोले, कि हे भरतर्षभ ! हे कौरव-श्रेष्ठ ! शाल्वकी मारनेके अर्थ मैं उसके सौभ-पुरमें गया था। इसका कारण यह हुआ, कि पूजाके निमित्त आपके राजसूय यज्ञमें मैंने महातेजस्वी महाबाहु महायशस्वी दमघोषके पुत्र वीर राजा शिशुपालकी मारा था; सो शाल्वराजा उस क्रोधकी शान्त नहीं कर सका, वह दुरात्मा क्रोधके वशमें होकर स्वमान कर सका। हे भारत ! जब मैं आपके पास आया था, तब उसने शिशुपालको मरना सुनकर क्रोधके वशमें होकर शून्य द्वारिकाकी घेर लिया, जब निर्लज्जेके समान अपने सौभपुरकी (यह नगर उत्तम प्रकाशमान धातुओंसे बना था और अकाशमें घूम सकता था) लेकर द्वारिकामें आया तो वृष्णीवंशी राजकुमारोंने उससे युद्ध किया। तब उस दुर्मतिने उन बालक वृष्णिवंशियोंकी मारकर नगरके उपबनकी सब और नाशकर दिया। हे महाबाहो ! तब उसने कहा, कि वह दुष्टबुद्धि वसुदेवका पुत्र, वृष्णकुलका अधम कृष्ण कहां है ? मैं उस युद्धकी इच्छावालेका अभिमान युद्धमें नाश करूंगा। हे आनर्त्तलीगो ! तुम संत्य कहो, वह जहा होगा, मैं वहीं जाऊंगा, उस कस और केशीके मारनेवालेकी मारकर लौटूंगा। मैं शल्व धारण करता हूं, कि उसे विना

मारे कदापि न फिखंगा। 'वह कहां है, वह कहा है'—ऐसे कहता हुआ सौभका राजा मुझसे युद्धकरनेकी इच्छासे इधर उधर दौड़ने लगा और कहने लगा, कि आज उस पापी विश्वासघाती, दुष्ट, शिशुपालके मारनेके क्रोधसे भरा हुआ कृष्णकी मैं-यमकी धरकी भेजूंगा। जिस पाप स्वभाववालेने मेरे भाई राजा शिशुपालकी मारा है, आज मैं उसकी मारूंगा। जिस कृष्णने मेरे भाई बालक वीर प्रसन्न राजा शिशुपाल को बिना युद्धके मारा, मैंभी उसे मारूंगा। हे राजन् ! यह इस प्रकारसे कहता हुआ, इच्छानुसार चलनेवाले नगरके सहित मुझे गाली देता हुआ, आकाशकी चला गया। हे कौरव्य ! जब मैं आपके पाससे गया, तो उस दुष्टबुद्धि 'भार्त्तिकावत' देशी दुष्टात्मा राजा शाल्वने जो मेर लिये किया था, सो सब सुना। हे कौरव्य ! तब मैं भी क्रोधसे व्याकुल होकर निश्चय करके उसके मारनेका विचार करने लगा। मैं आनर्त्त देशका विनाश अपना निरादर उस दुष्कर्मीका बड़ा हुआ अभिमान, यह सब विचार कर रहे पृथिवीनाथ ! सौभके नाश करनेको चला। हे नरनाथ ! मैंने जाकर उसे समुद्रके द्वीपमें देखा। तब मैंने पाण्डव्य शङ्खकी वजाया और शाल्वकी युद्धमें बुला कर मैं स्थित हुआ। तब उन दानवों और मुंक्षु सुहर्त्त भर युद्ध हुआ। तब मैंने सबकी वशमें कर लिया और पृथिवीमें गिरा दिया। हे महाबाहो इसही कारणसे मैं अन्यायमय द्यूतके समयमें हस्तिनापुरमें नहीं आ सका और न आप लोगोंकी दुःखी सुनकर शीघ्रतासे पहुँच सका।

१४ अध्याय समाप्त ।

युधिष्ठिर बोले, हे वसुदेवनन्दन ! हे महाबाहो ! हे महामते ! इस बातकी आपसे

सुननेसे मेरी लप्पि नहीं होती है, अतएव
सौभव्यकी विस्तार पूर्वक कहिये ।

श्रीकृष्ण बोले हे भरतश्रेष्ठ ! हे महाबाही !
हे नरनाथ ! मैंने शिशुपाल की मारा ऐसा
सुनकर शल्व हारिकाकी आया । हे पाण्डु-
नन्दन ! उस दुष्टात्माने पुरीकी घेर लिया और
आकाशकीभी व्यूह रचना करके घेर लिया ।
और आकाशमें स्थिर होकर जहा युद्ध हो, वही
जाकर उस नगरमें युद्ध करने लगा । ध्वजा,
तोरण (वनाये द्वार) युक्तानगरीकी सब ओरसे
घेर लिया । योद्धाओंके रहनेके स्थान, विष्ठा
और मूत्र त्याग करनेके घर झड़ास, (बुर्ज)
यन्त्र (कल) सुरङ्ग खोदनेकी शस्त्र, लोहेके
कटहरे लगी सड़कें, अटारी, नगरके द्वार,
चक्रग्रहणी, (जहासे लड़नेकी रहती है, मोर्चा
वा कैप) अग्निसमेत लूक, अंब पोथिका,
(शत्रुओंके मारनेकी पत्थर और काष्ठ जहां
रखे जाते हैं) कुप्पियोंके स्थान, भेर, पण
धानक (बाजा) तोमर, अंकुश, शतघ्नी, (तोप)
लागल, भुशुंडी (शस्त्रविशेष) पत्थर और
गुड़के स्थान (जहा गुड़ रहता है, और पत्थर
ओंके आनेपर उसे तापकर उनके ऊपर टाकते
हैं) शस्त्र परशुध, लोहा, चमड़ा, डाल,
आमय औषध सहित गुड़के गोलीसे
पूर्णशुद्ध । सान्द्र, गद, और उज्ज्व करके युद्धशस्त्र
विधिके अनुसार अनेक रथ सहित रथशाला है
हरशाल । अति विख्यात वश, शत्रुओंकी
निवारण करनेमें समर्थ, युद्धमें प्रकाश बल पुस्तक,
इन वस्तुओंके सहित हारिकाको शल्वने घेर
रखा । मध्य गुल्म (जहां बैठकर चारों ओरके
शत्रुओंकी देख और उनसे लड़ सकें) के रक्षा
भरनेवालोंसे रक्षित शत्रुओंके गुल्मको भगानेके
शाले सहित पुरीकी घेर लिया ।

उसही समय प्रमादसे रक्षा करनेवाले,
अस्त्र, और लव्वादिने पताकासहित घोड़ा-
शत्रुओंकी चटाकर यह घोषणा दिलादी,

कि राजा शल्व सैतवारोंको मार डालेगा ।
अतएव कोईभी पुरुष सुरा (मद्य) न पीये ।
यह सब करके वंशी और अकवंशी अप्रमत्त
होकर स्थिर हुए । तब ध्वनको रक्षा करने-
वालोंने आनर्त्त दिशवासी पुरुष नट, (नाटक
करनेवाले) नाचनेवाले, गानेवाले, पुरुषोंकी
शीघ्रही नगरसे बाहर बसनेकी आज्ञा दीदी ।
सब पुल तोड़ दिये, नानोंकी रोक दिया, नहरके
फांटोंकी कीलोंसे दृढ़कर दिये । हे कुशश्रेष्ठ !
एक कोश पर्वत कुए और बावड़ीभी कीलोंसे
दृढ़कर दीं और भूमि नीची जंची करदी । एक
तो हारिका स्वभाव हीसे काठिन और सुरक्षित
शस्त्रसहित थी, परन्तु हे अनघ ! उस समय
सभी सुरक्षित, गुप्त, और शस्त्रोंके सहित ऐसी
शोभित हुई, जैसा इन्द्रका स्थान, बिना मुद्राके
(चिह्न वा टिकट) न कोई नगरमें जाने और
न कोई बाहर निकले सकता था, हे राजन् ।
उस सौभयतिकी चढ़ाई में हारिकाकी छोटी
गलियोंमें चांतरोंपर हाथी घोड़े सेना पूरित हो
गई । वेतन, भोजन, शस्त्र, वस्त्र प्राप्त करके सब
सेना यथोचित सज्ज हो गई, हे महाभुज । उस
सेनामें कोई छोटी वेतनवाला, कोई अति कम
वेतनी, (पेंशनपानेवाला) न कोई अनुग्रहसे
युद्ध करनेवाला था, न कोई ऐसा था, कि जिसका
बल देखा न गया हो । हे राजन् । हे कमल
नेत्र । उस समय हारिका अनेक कुशल पुरुषोंसे
रक्षित हुई ।

१५ अध्याय समाप्त ।

श्रीकृष्ण बोले, हे राजन् । उस नगरीमें
सौभयति शल्वराजाने हाथी घोड़े युक्त महामेना-
लेकर प्रवेश किया । उस समय हमारे महा-
समुद्रमें शल्व राजाकी हार्दी, घोड़े, रथ, और
पदाति, संयुक्त सेनानि प्रवेश किया । श्मशान,
देवताके स्थान, वनई, विल आदि) और
चितासम्बन्धी वृक्ष, इनकी छोड़कर और मद्य

स्थानोंमें सेना पूरी हो गई, सेनाके छोटे, छोटे टुकड़ोंसे नगरकी खिड़कियां बन्द हो गईं; हे नरनाथ ! शाल्वके शिविर (सेना-निवास बा-कैप) में गुप्तरीतिसे प्रवेश करनेकी किसीकी-सामर्थ्य न हुई । हे कौरव ! हे भरतर्षभ ! सब शस्त्रोंसे संयुक्त सब शस्त्रनिपुण, रथ, घोड़े, हाथी, पैदलोंसे पूर्ण पताकायुक्त, सन्तुष्ट, बली, ऐश्वर्य-सहित लक्षणयुक्त विचित्र शस्त्र और कवचयुक्त विचित्र रथ, विचित्र धनुषयुक्त सेनाकी शाल्वने-जैसे वेगसे गरुड़ दीड़ता है तैसेही नगरकी ओर चलाया । जब उस शाल्वकी सेनाकी नगरकी ओर आता देखा, तो वृष्णिवंशके कुमार निकलकर युद्ध करने लगे, हे कौरव ! शाल्व राजाके उस वेगकी न सहकर चारुदेशा, साम्ब, और महारथ प्रद्युम्न यह लोग, सन्नद्ध हो, रथोंपर चढ़कर विचित्र आभूषण और ध्वजा धारण करके शाल्वके अनेक योधोंसे युद्ध करने लगे; साम्ब धनुषकी धारण करके, शाल्वकी सेनापति मन्त्रीसे प्रसन्न होकर युद्ध करने लगे । हे भरतश्रेष्ठ ! जाम्बवतीके पुत्रने उसपर ऐसी वाण वर्षा करी, जैसे इन्द्र-जलवर्षाता है । हे महाराज ! उन महा वाणोंकी वर्षाकी क्षेम-वृद्धि सेनापति ऐसी निपुणतासे सहने लगा जैसे महावर्षाकी हिमाचल सहता है । हे राजेन्द्र ! तब क्षेमवृद्धि सेनापतिने साम्बके प्रति-सायाके समेत महाशर छोड़ा । अनन्तर साम्बने उसके मायामय शरजालकी मायाहीसे छा लिया । जब क्षेमवृद्धि सेनापति उनके वाणोंसे विद्ध हुआ, तो तेज घोड़ोंके रथसे युद्धको छोड़कर भाग गया । जब शाल्वका क्रूर सेनापति भाग गया, तो बलवान् वेगवान् नामक दैत्य मेरे पुत्र साम्बके आगे उपस्थित हुआ । हे राजेन्द्र ! जब वृष्णिवंशी साम्बकी वेगवानने युद्धमें लक्ष किया, तो वीर साम्ब उसके वाणोंके वेगकी धारण कर, स्थिर रहा, हे कुन्तिपुत्र युधिष्ठिर ! तब सत्य-पराक्रम, वीर साम्बने शोधतासे वेगवती गदाकी

धुमाकर वेगवान् की मारा, तब उसके लगनेसे वेगवान् मरकर पृथिवीपर ऐसा गिरा जैसे वायुके लगनेसे जड़ उखड़कर वृक्ष गिरता है । उस महाअसुर वीरकी भयानक गदासे मार कर मेरे पुत्रने उस महासेनामें घुसकर महा युद्ध किया । हे राजन् ! चारुदेशाके संग शाल्व की आज्ञासे महारथ महाधनुषधारी, विविध नामक राक्षस युद्ध करने लगा । उस समय चारुदेशा और विविध का ऐसा घोर युद्ध हुआ, जैसा पहिले समयमें द्रुपद और इन्द्र का हुआ था । वे दोनों परस्पर, एक दूसरेकी क्रुद्ध होकर वाणोंसे काटने लगे, महा बलवान् सिंहोंके समान दोनों गर्जने लगे; तब रुक्मिणीनन्दन चारुदेशाने अग्नि और सूर्यके समान तेजबाले शत्रुनाशक वाणकी महास्त्र मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके धनुषपर चढ़ाया । हे राजन् ! महावीर चारुदेशाने उस वाणकी चढ़ाकर क्रोधमें भर विविधकी ललाकारके उसको मारा । विविध उसके लगनेसे प्राणरहित होकर पृथिवीमें गिर पड़ा । विविधकी मरा और सेनाकी घबराई हुई देखकर शाल्व मनोगामो सौभपर चढ़कर स्वयंही आया । हे नरनाथ ! सौभपर आकर शाल्वकी देखकर दारिकाकी जितनी सेना थी, सबही व्याकुल होगयी, हे कौरव ! हे महाराज ! तब प्रद्युम्नन निकलकर और यादवोंको उस सेनाका स्थिर करके ऐसा कहा । आप सब लाग खड़े रहिये, देखिये मैं राजाके समेत सौभका युद्धमें निवारण करता हूँ । हे यादवो ! मैं शाल्वको सेनाका सभी धनुषकी कुटिलतासे कूटे लोहिके सर्पोंके समान वाणोंसे नाशकर देता हूँ । आपलाग स्वस्थ होजिये, डर मतकीजिये, शाल्व अभी मर जाता है, मुझसे लड़कर यह दुष्टात्मा सौभके संहत नष्ट हो जायगा । हे वीर पाण्डुनन्दन ! जब प्रद्युम्नन प्रसन्न होकर ऐसा कहा, तो

सब सेना स्थिर हुई और सुखपूर्वक युद्ध करने लगी ।

१३ अध्याय समाप्त ।

श्रीकृष्ण बोले, कि हे भरतकुलसिंह ! रुक्मिणीपुत्र प्रद्युम्न यादवोंसे ऐसा कहकर सन्न प्रोढ़ोंसेयुक्त सुवर्णमय रथपर चढ़कर मफुलाये यमराजके समान मत्स्यसहित ध्वजा युक्त, मानो आकाशकी जाते हैं, ऐसे प्रोढ़ों सहित रथपर चढ़कर शत्रुकी सेनाके आगे आये । वीर प्रद्युम्न अपनी धनुषकी शत्रुओंकी दिखाते हुए बलसे टड़ारध्वनि करते हुए कवच खड़ा हाथ और अङ्गुलियोंमें लोहेके रत्नाञ्जल धारण किये विजली समान धनुष दहनी और वाई और घुमाते हुए समस्त सौभवासी देवगणकी मोहित करने लगे । उस समय शत्रुओंकी मारते हुए प्रद्युम्न कवच धनुष पर बाण चटाते हैं, कवच खींचते हैं, और कवच छोड़ते हैं, इन सब बातोंकी कोईभी नहीं जान सकता था, न इनके सुखका कुछ रंग बदला और न शरीर चलायमान हुआ, केवल सिंहके समान इनका पराक्रमभरा सङ्घ सब लोग सुनते थे । रथके ऊपर सब मछुरिओंमें सुगन्ध मत्स्य सुखफलाए हुए ध्वजामें लगा हुआ सानके दण्डमें वेधा शाल्वकी सेनाका डराता हुआ शोभा देने लगा : तब युद्धकी इच्छायुक्त प्रद्युम्न वेगसे शाल्वहीके आगे बढ़करनको स्पर्शित हुए । हे कुरुकुलका बढ़ानेवाले रत्नाय । उस महायुद्धमें वीर प्रद्युम्नके सङ्घ सेभरा शाल्व युद्धका उपस्थित हुआ । मरसे शत्रुजत उन्नत शाल्व सौभरथसे रथपर प्रद्युम्नकी वेधित करता हुआ युद्ध करता लगा, उन दोनोंका युद्ध बलि और इन्द्रकी हस्ति स्वर्लोक देखने लगे । हे वीर । हे कौरव्य योमान् बलवान् शाल्वराज के भय सेनेके, पनाका, ध्वजा, और टाट

युक्त रथपर चढ़कर तूण धारणकर प्रद्युम्न पर बाण बरसाने लगा । तब शाल्वकी मोहित करते हुए प्रद्युम्नने शीघ्रता सहित बाहुबलसे युद्धमें बाणोंकी वर्षा करी, उन सब बाणोंसे शाल्वमहा कोष केरके मेरे पुत्रपर जलती हुई अग्निके समान बाणोंकी छोड़ने लगा, महाबलवान मेरे पुत्रने उसके सब बाणोंको काटकर अपने तीक्ष्णबाणोंको छोड़ा । हे राजे द्र । रुक्मिणीनन्दनने शाल्वका बाणोंसे विद्धकर मर्मभेदो एक बाण शीघ्रता सहित युद्धमें छोड़ा । मेरे पुत्रका वह पंखयुक्त बाण उसके मर्मस्थानको भेदकर हृदयमें प्रवेशकर गया, उससे वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा । शाल्व राज वीरकी चेतनारहित होनेपर दैत्यलोग पृथिवीकी धारण करते हुए भागने लगे, हे पृथिवीनाथ । शाल्वकी सेनामें हाहाकार होने लगा । हे कौरव्य । तब चैतन्य होके शाल्व उठा और महाबल शाल्व वेगसे प्रद्युम्नपर बाण छोड़ने लगा, महाबाहु महावीर प्रद्युम्न समरमें उन बाणोंसे सन्धिस्थानामें पीड़ित होकर रथपर मूर्च्छित हो गए, उस रुक्मिणीनन्दनकी मूर्च्छित करके शाल्व पृथिवीको शब्दसे पूर्ण करता हुआ महाशब्द करने लगा । हे भारत ! जब मेरा पुत्र युद्धमें मूर्च्छित हुआ, तो वह बड़े बड़े और काठन बाणोंकी छोड़ने लगा, हे कौरव्य ! तब युद्धमें उसके अनेक बाणोंसे पीड़ित होकर प्रद्युम्न चेतारहित हो गये ।

१७ अध्याय समाप्त ।

श्रीकृष्णजी बोले, जब बलवानामें ये छ प्रद्युम्न शाल्वके बाणोंसे पीड़ित हुए, तब सब दृष्टि-वंशोलोग नष्ट संकल्प होकर सेनामें व्यथित हो गये : उस समय समस्त दृष्टि और अश्रुकोमे हाहाकार होने लगा । परन्तु प्रद्युम्नकी मूर्च्छित देखकर शत्रु अति प्रसन्न हुए । उनकी

मूर्च्छित देखकर दारुका पुत्र शिखित सारथी
वेगवान् घाड़ोयुक्त रथके समेत युद्धसे शीघ्र
बाहर ले गया, जब रथ थोड़ीही दूर गया, तो
समहारथोंकी जीतनेवाली प्रद्युम्न चैतन्य होकर
सारथीसे ऐसा कहने लगे, हे सूरत ! तुमने क्या
किया जो युद्धसे सुखफरे लौट जाते हो,
यह युद्धमें वृष्णिवंशियोंका धर्म नहीं है, हे
सूरतपुत्र ! क्या तुमको युद्धमें शिल्पको देख
कर कुछ भ्रम हो गया ? युद्धको देखकर
कुछ दुःख हुआ सुभसे सत्य सत्य कहो ।
सूरत बोला, हे कृष्णपुत्र ! मुझे न मोह
हुआ, न मुझे भय हुआ, परन्तु मैंने यह
समझा कि शल्व आपसे भारी वीर है, यह
पापी वंश वलवान् है, इसी लिये मैं धीरे धीरे
युद्धमें हटा जाता हूँ क्योंकि, यह नियम है कि
युद्धमें सारथी रथी (रथमें बैठे योधों) की
रक्षा करे । हे आयुष्मन् ! मेरा धर्म है आपकी
रक्षा करना और आपका धर्म मेरी रक्षा करना
है, सारथी रथीकी रक्षा करे यह विचार कर
मैं युद्धसे चला हूँ । हे संक्षिणीनन्दन ! मैंने
विचार है, कि तुम अकेले और यह दानव
अनेक है, युद्ध समान नहीं है, अतएव मैं युद्धसे
चला जाता हूँ ।
हे युधिष्ठिर ! सूरतके ऐसे वचन सुनकर
प्रद्युम्नने सूरतसे कहा कि हे सूरत ! तुम
रथकी पुन लौटाओ, हे दारुकापुत्र ! तुम
ऐसा काम फिर कभी मत करना, जीते हुए
मुझे युद्धसे पुन कभी मत हटाकर ले जाना,
जो युद्धको त्याग दे उसकी, गिरेकी, “हम
तुम्हारे हैं” ऐसा कहते हुए को स्त्रीको,
बालककी, रथहीन, धरायेकी, जिसके शस्त्र
टूटे हों, ऐसे पुरुषोंकी जो मारे सो वृष्णिकुलमें
उत्पन्न नहीं हुआ । हे दारुकापुत्र ! तुम
सूरतवंशमें उत्पन्न हुए हो, सूरतवंशमें कुशल
हो, और युद्धमें यदुवंशियोंके धर्मकी जानते
हो । हे सूरत ! तुम मेनाके अग्रभागमें उपस्थित

यदुवंशियोंका पूरा धर्म जानकर पुन कभी
इस प्रकारसे युद्ध मत छोड़के भागना । मुझे
युद्धसे भगा पीठपर घाव खाये, भान्त युद्धसे
लौटा हुआ देखकर दुराधर्ष गदाग्रज, कृष्ण
क्या कहेंगे । महाबाहु, मदसे भरे नीलवस्त्रधारी
कृष्णको बड़े भाई बलदेव आकर मुझे क्या
कहेंगे ? शिनीके पौत्र पुरुष सिंह महा धनु
धारी सात्यकी मुझे क्या कहेंगे ? मुझे युद्धसे
भगा देख महावीर साय्व, दुर्धर्ष चारुदण्ड, गद,
सोरण, और महाबल अक्रूर मुझे क्या कहेंगे ?
हे सूरत ! शूर, मानयुक्त, शान्त, नित्यही
पराक्रमके अभिमानी, यदुवंशियोंकी स्त्रियां
इकट्ठी होकर मुझे क्या कहेंगी ? यह सब
यही कहेंगी कि, यह प्रद्युम्न भयसे महायुद्धको
त्याग करके भागा आता है, इसे धिक्कार है,
मुझे अच्छा कदापि न कहेंगी । हे सूरत !
मुझे और मेरे समान पुरुषोंकी धिक्कार शब्द
सुनना मत्स्यसेभी अधिक दुःखदाई है, तुम
ऐसी युद्धसे कभी मत भागना । श्रीकृष्ण
हारिकाका भार मेरे ऊपर देकर भरतकुलसिंह
युधिष्ठिरकी यज्ञमें गए हैं, सो इस समय शत्रुको
छोड़ना उचित नहीं है । हे सूरत ! महावीर
कृतवर्मा युद्ध करनेको आते थे, सो मैंने उन्हें
“आप यहीं रहिये मैं शल्वकी निवारण
करूंगा” यह कहकर आनेसे रोक दिया ।
हृदिकपुत्र कृतवर्माभी मुझे समर्थ जानकर
लौट गए । सो मैं युद्धसे भागकर उस महारथसे
मिलकर क्या कहूंगा ? जब दुराधर्ष शङ्ख
धारी महाबाहु श्रीकृष्ण आविष्ट, तो मैं उनसे क्या
कहूंगा ? सात्यकी, बलदेव, तथा और य
वंशियोंसे जो नित्यही मेरे समान होनेको इच्छा
किया करते हैं, उनसे भला मैं क्या कहूंगा
हे सूरत ! इस युद्धसे भागकर और पीठपर
वाणोंसे आहत होकर विवश होकर तुम मुझ
ले आवि, अन्यथा मैं कदापि न आता । हे सूरत
पुत्र ! तुम शीघ्र मेरे रथकी घुमाओ, और मेरे

पुनः आपत्तिमें भी मत करना, है स्त । मैं युद्धसे पीठ पर वाणोंसे आहत भीरु बन जीना उत्तम नहीं समझता । है स्तपुत्र ! तुमने कभी मुझे नपुंसकके स्मरसे व्याकुल रणसे भगा हुआ देखा है ? है दारुकात्मज मेरी युद्धकी इच्छा रहने परभी, तुमने युद्ध छोड़ दिया, यह वहुत अनुचित किया सो पुनः युद्धकी चलो ।

१८ अ० १५ समाप्त ।

श्रीकृष्ण बोले, कि हे कौन्तेय ! जब स्तने प्रद्युम्नके ऐसे वचन सुना, तो बलियोंमें अष्ट प्रद्युम्नसे मोठी कोमल बातोंसे ऐसा बोला ! हे राक्षसीनन्दन ! युद्धमें घोड़ोंकी हाकनमें मुझे कुछभी भय नहीं है, और इसमें भी कुछ मिथ्या नहीं है, कि मैं वृष्णिवशियोंके युद्ध को जानन-वाला हूं, परन्तु हे आयुधमन् । सारथियोंके लिये, यह उपदेश प्रसिद्ध है, कि सारथिको रथकी रक्षा करनी चाहिये, और आप अधिक व्यायत हांगए थे, हे वीर ! आप शाल्वके बाणोंके भारी आघातसे मूर्च्छित हुए थे, तबहीं मैं युद्धसे ले आया था । हे यादवमुख्य केशव-नन्दन ! अब आप अपनी इच्छानुसार मूर्च्छामें जागे हैं, सो अब युद्धमें मेरी घाड़ें हाकनकी बांधका देखिये, मैं दारुकाका पुत्र हूँ, और उन्हींसे मैंने यथायाग्य शिक्षाभी पाई है, मैं निर्भय हाकर इस विस्तृत शाल्व सेनामें प्रवेश करता हूँ ।

श्रीकृष्ण बोले, कि हे वीर ! स्तन ऐसा कहकर घाड़ोंकी रश्मि (लगाम) ठोककर युद्धका चार वगसे चलाया । उस समय स्तन अपनी ऐसी विद्या प्रगट करो कि वांचित कक्षाकार गति, यमक, (सदृश सदृश अनंक कल्प) पथमक (असदृश मण्डल) वांचित गति, और चित्र दाक्षिण गतिसे घाड़ाका कक्षाकार बना, हे राजन् । काड़ा लगन चार

लगाम उद्यत हीनेसे वह उत्तम घोड़ें ऐसे चले, मानो आकाशकी उड़ जायंगे, हे नरनाथ ! उस समय घोड़े स्तका हस्तलाघव जानकर ऐसे वेगसे चले मानो पृथिवी इनके चरणोंसे स्पर्श नहीं होती है । है भरतकुल सिंह ! उस समय स्तने थोड़ेही यत्नसे शाल्वकी महा-सेनाकी बाईं ओर कर दिया, यह देखकर सब लोगोंकी बड़ा आश्चर्य हुआ । जब प्रद्युम्नका रथ दहिनी ओर आया तो शाल्वकी महाक्रोध भया, और तीन वाण स्तकी मारा । है महावाही ! दारुकाके पुत्रने उसके वाणवेगकी कुछभी ध्यानमें न लाकर पुनः अपने रथकी उसके दहनी ओर पड़चाया । है वीर ! तब शाल्वने अनेक प्रकारके वाण मेरे पुत्र रुक्मिणी-नन्दनके ऊपर छोड़े, उन वाणोंकी दूरहीसे शत्रुनाशक रुक्मिणीपुत्रने हंसते हंसते अपने हस्त लाघवका दिखाते हुए तीक्ष्णवाणोंसे काट दिया, शाल्व अपने वाणोंकी प्रद्युम्नके वाणोंसे कटा हुआ देखकर दारुण राक्षसी मायाका आश्रय करके वाण छोड़ने लगा, प्रद्युम्न राक्षसी मायाका प्रयोग जानकर उस दैत्य अस्त्रको ब्रह्मास्त्रसे काटकर और अनेक प्रकारके वाण छोड़ने लगे । वह रुधिर पीनेवाले वाण शाल्वके अस्त्रकी काटकर उसके शिर, मुख, और हृदयमें प्रवेश कर गए, तब शाल्वका मूर्च्छा होगई और वह गिर पड़ा । जब चुद्र शाल्व वाणोंसे पीड़ित होकर गिरा तो रुक्मिणीनन्दनने दूसरा शत्रुनाशन वाण निकाला, वह समस्त यदुवाश्योंसे पूजित सर्पके समान तेज, जलती आगके समान प्रकाशित, वाणकी धनुषपर चढ़ात देखकर आकाशमें महा हाहाकार जाने लगा, इंद्र, और कुवेरके समेत सब देवताोंने शीघ्रही वायु और नारदकी प्रद्युम्नके समीप भेजा, दोनोंन आकर रुक्मिणीपुत्रमें देवताओंके वचन कहे, हे वीर ! यह शाल्वराज तुमसे बध्य नहीं है और हम वाणमें कोईभी

अवध्य नहीं है, अतएव तुम इस वाणकी मत छोड़ो, ब्रह्माने इसकी सत्य देवकीनन्दनकी बनाया है, सी ब्रह्माकी यह प्रतिज्ञा मिथ्या न हो; अतएव तुम इस वाणकी मत चलोओ। यह सुनकर प्रदुम्न अत्यन्त प्रसन्न हुए और उस वाणकी धनुषसे उतारकर तूणिमें रख लिया।

हे राजेन्द्र ! इतनेमें शालुनेभी संज्ञा प्राप्तकर परम विमन हो प्रदुम्नके वाणोंसे पीड़ित होकर शीघ्र सेना समेत भागना आरम्भ किया, वह क्रूर यादवोंके वाणोंसे पीड़ित हो द्वारिकाकी छोड़ सौभपर बैठकर आर्काशकी चला।

१६ अध्याय समाप्त ।

श्रीकृष्ण बेली, हे नरनाथ ! जब आपका राजसूय यज्ञ समाप्त हुआ तो मैंने जाकर देखा, कि द्वारिका उससे मृत्त हुई है। हे महाराज ! मैंने जाकर देखा तो द्वारिकाका तेज नष्ट हो गया था, पठन पाठन रहित, कहीं यज्ञ नहीं, स्त्री बिना भूषण, और नगरके चारों ओरके वाण कुरूप हो गये थे, मुझे यह सब देखकर शङ्का उत्पन्न भई तो मैंने हृदिकपुत्र (व्रतवर्मासे) पंथा कि हे नरशार्ङ्ग ! इस नगरके वृष्णवंशी स्त्री पुरुष धवड़ाये क्यों हैं, इसका कारण मुझसे कहो। हे राजसत्तम ऐसा पूछनेसे व्रतवर्माने मुझसे विस्तार सहित यह सब कथा जिसे प्रकारसे शाल्वने नगरकी घेरा था और जैसे छोड़ा था कहो। हे कुन्त्येष्ट ! मैंने यह सब सुनकर शाल्वके नाश करनेका मनमें विचार किया। हे भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ ! तब मैंने नगर निवासी, राजा उग्रसेन, और वसुदेवकी धीरज देकर सब यदुवंशियोंकी प्रसन्न करते हुए यह वचन कहा। हे यादवलोगो ! आपलोगोंकी उचित है, कि सदा नगरमें सावधान रहें और मुझे शाल्वके मारनेकी जाने दं, मैं अब बिना उसके मारे द्वारिकापुरीकी लौट कर न आऊंगा, मैं सौभ नगरके सहित शाल्वकी नष्ट करके आपलोगोंकी

पुनः देखूंगा, अब शत्रुओंकी भय देनेवाली दंडुमी तीनों स्वरों (नीचे और मध्यम) के सहित बजाई जाय, हे भरतर्षभ ! जब मैंने सबकी धीर दिया तो वे सब प्रसन्न होकर कहने लगे कि “आप जाइये और शत्रुओंकी जीतिये”। उन प्रसन्न चित्तवाले वीरोंसे आशीर्वाद लेकर ब्राह्मण श्रेष्ठोंसे स्वेस्तिवाचन सुनकर और शिवकी शिरसे प्रणाम करके सैव्य, सुग्रीव, घोड़ेसे युक्त रथ पर चढ़कर हे महाराज ! सब दिशाओंकी प्रसन्न करता पाञ्चजन्य शङ्खकी वजाकर हे पुरुषव्याघ्र ! जयशील सन्तुष्ट चतुरङ्गिणों महा सेनाकी लेकर मैं चला। अनेक देश, पर्वत, वन, सर, और नदियोंकी पार होकर मार्त्तिकावत देशमें पहुँचा। हे पुरुष व्याघ्र वहां जाकर सुना कि शाल्व सौभ सहित समुद्रके तटकी गया है, तब मैं भी उसके पीछे हो वहांकी चला गया, हे शत्रुनाशक ! तब मैंने महा तरङ्ग वाली समुद्र पर प्राप्त करके देखा कि शाल्व सौभके सहित समुद्रके मध्यमें स्थित है। ज्येष्ठाक्षिरा वंश दुश्मा मूझे दूरहीसे देख विस्मयके सहित, युद्धके अर्थ मुझे पुकारने लगा। तब मैंने मर्म भेदी अनेक बाण चलाये, परन्तु मेरे तीक्ष्णबाण पार्श्वसे छूटकर उसके नगरमें प्राप्त नहीं होते थे, अतएव मुझे महाक्रोध उत्पन्न भया, हे नरनाथ ! वहभी पापी, दैत्योंमें नीच दुर्धर्ष, शाल सहस्रों बाण मुझपर वर्षण करने लगा, मेरे सैनिक, सत्त, घोड़े और रथ की वाणोंसे भर दिया। हे भारत ! परन्तु हमलोग उसके वाणोंका विचार न करके युद्ध करतेही रहे, तब हमारे ऊपर शाल्वकी सेना पुरुषोंने सहस्रों तीक्ष्णबाण छोड़े, तब उनके उन तोक्ष्ण बाणोंसे मेरे घोड़े रथ दारुक सारथीकी राक्षसोंने छालिया। हे वीर ! मैं मेरा सारथी, घोड़े रथ, और मेरी सेना, यह वाणोंसे छिपनेके कारण कुछ भी न देखने लगे, हे कलीपुत्र ! तब मैंनेभी सहस्रोंबाण दिश-

मन्त्रोंसे मन्त्रित करके धनुषपर चढ़ा कर चलाए ।
 हे भारत ! उस समय सौभके आकाशमें लीन
 रहनेके कारण मैं और मेरे सैनिक कोई भी
 उसे न देख सकते थे, मानों एक कोश पर
 है । तब शत्रुओंके देखनेवाले सब लोगोंने
 मुझे ताली और सिंहके समान शब्दोंसे प्रसन्न
 किया । वे लोग ऐसे भान होते थे मानो यह
 सब रङ्गवाटीमें स्थित है । मेरे और राक्षसोंके
 विचित्रपंखवाले बाण शत्रुओंके शरीरमें ऐसे
 प्रवेश करने लगे जैसे अग्निमें पतझड़ । तब मेरे
 तीक्ष्ण बाणोंसे मरते हुए और समुद्रमें गिरते
 हुए राक्षसोंसे सौभमें महाघोर शब्द हुआ । लोग
 बिना हाथ, बिना कन्ध, कवचके समान दीख-
 नेवाले, घोर शब्द करते हुए समुद्रमें गिरने
 लगे, जो दानव समुद्रमें गिरता था उसकी
 समुद्रके जलु खाजाते थे । तब मैंने, गायके दूध
 कदपुष्प, और चन्द्रमा, कमलकी डण्डी, तथा
 चादीके समान खेत, पाञ्चजन्य शङ्खकी शक्तिसे
 वजाया । सौभपति शालुने उन राक्षसोंकी
 समुद्रमें गिरता हुआ देखकर, महामायाकी
 युक्त होकर मुझसे युद्ध किया ; तब गदा, हल,
 प्रास, परशुध, खड्ग, शक्ति, वेत्र पास दण्ड,
 कनप, बाण, पाटिश, और भुशुण्डी मेरे ऊपर
 निरन्तर बरसने लगे, मैंने उसमायाकी माया-
 षोसे ग्रहण करके नाश कर दिया, जब वह
 माया नष्ट होगयी तो पर्वतके छेड़ोंसे वह युद्ध
 करने लगे, तब अन्धकार हो गया, पुनः प्रकाश
 भया, पश्चात् सुदिन (मेषरहित दिन) फिर
 सुदिन (मेषोंसे स्रष्टे छिप गया) क्षणमें शीत,
 और क्षणमात्रमें उष्ण होने लगा । हे भारत !
 मैंने शत्रुओंकी शक्ति बरसने लगते थे, इस
 माया करके वह शत्रु मुझसे युद्ध
 करना लगा, सो सब जानकर मैंने मायाहोसे
 नाश कर दिया, तब समय पाकर सब
 शत्रुओंमें उसकी पूर्ण कर दिया, हे
 भारत ! उसी समय मैंने आकाशमें सौ

सूर्यके समान प्रकाश देखा, थोड़ेकालमें देखा
 कि सौ चन्द्रमा और लाखों तारे निकल रहे
 हैं । हे कुन्तीपुत्र ! उस समयमें दिन है कि
 रात है, और कौन दिशा किधर है, यह कुछभी
 नहीं जानपड़ा, हे कुन्तीनन्दन ! उस समय
 मुझे भ्रम ही गया, तब मैंने, प्रजा अस्त्र धनुषपर
 धारण किया अनन्तर वह अस्त्र वायुसे ऐसे
 धुना गया जैसे सूई धुनी जाती है, यह युद्ध
 महाघोर भया, जब मुझे चांदना दीखने लगा,
 तो मैं पुनः शाल्वसे युद्ध करने लगा ।

२० अध्याय समाप्त ।

श्रीकृष्ण बोले, कि हे महाराज ! वह पुरु-
 षोंमें सिंह-महोशत्रु शाल्वराज इस प्रकार
 मुझसे युद्ध करके पुनः आकाश हीकी चला
 गया, तब शतृषी महामदा, प्रकाशमान
 विशूलो मूसल, और खड्ग मेरे ऊपर जयकी
 इच्छा रखनेवाला वही शाल्व बरसाने लगा,
 तब मैंने भी शीघ्रता सहित उन सब शस्त्रोंकी
 दूरही आकाशमें निवारण करके दीदी, और
 तीन तीन, टुकड़े करदिये, तब आकाशमें महा
 शब्द हुआ । तब उसने तीक्ष्ण धारवाले सहस्र-
 बाणोंसे मेरे घोड़े सारथी और रथकी भर
 दिया, हे वीर ! तब विद्ध हीके दारुकने मुझसे
 कहा कि मेरे अङ्ग शाल्वके बाणोंसे कटे जाते
 हैं, मैं शाल्वके बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित हुआ
 हूं, परन्तु युद्धमें स्थिर रहनाही मेरा धर्म है,
 वह जानके स्थिर हूं वास्तवमें स्थिर रहनेकी
 शक्ति मुझे नहीं है । मैंने उसके यह कर्तुणा,
 मय वचन सुनकर उसकी देखा तो जानपड़ा कि
 शाल्वके बाणोंसे इसे बहुतही पीड़ा हुई है ।
 उसके न सिरमें न हृदयमें न शरीरमें और न
 दोनो हाथोंमें ही पाखवच्छेद मैंने बाणोंसे
 विविधा शरीर न पाया । उस समय सारथीके
 शरीरोंमें बाण लगनेसे ऐसी रुधिरकी धारा
 बहती थी जैसे वर्षा होनेसे पर्वतमें गिरने

भरने भरते हैं। मैंने अपने सारथीको युद्धमें लगाम पकड़े शाल्वके वाणोंसे पीड़ित दुःख-सहित देखकर उसको आश्वासन किया; हे महाबाही! हे युधिष्ठिर! इस समय एक महाराज उग्रसेनका सेवक द्वारिकाका रहने-वाला, शीघ्रतासहित रथ लेकर मेरे पास आया, और आकर दुःखसे भरे मित्रके समान उग्रसेनकी बात सुनसे कहने लगा, कि द्वारिका-पति वीर उग्रसेनने आपसे ऐसा कहा है कि हे केशव! तुम्हारे पिताका मित्र उग्रसेन तुमसे जो कहता है, सो मानो, तुम द्वारिकाको लौट आओ हे वृष्णिनन्दन! जब तुम यहासे चले गए तो हे दुर्धर्ष! यहां शाल्वने आकर वसुदेवको बलसे मार डाला, हे जनार्दन! अतएव युद्ध करना व्यर्थ है, तुम लौट आओ, तुम द्वारिकाही-की रक्षा करो, यही तुम्हारा परम कर्त्तव्य है, मैं उसका यह परम अप्रिय वचन सुनकर यह निश्चय न कर सका कि सुभी क्या कर्त्तव्य और क्या अकर्त्तव्य है, मैं मनसे सात्यको, बलदेव, और महारथ प्रद्युम्न की निन्दा करने लगा, हे कुरुनन्दन! मैंने यह विचार किया कि पूर्वोक्त वीरोंको द्वारिका और पिताकी रक्षा करनेकी छोड़कर सौभसे युद्ध करनेकी आया-हं। महाबाहु शत्रुनाशक बलदेव जीवित है, सात्यकी, प्रद्युम्न और वीर्यवान् चारुदेष्ण तथा साम्ब प्रभृति वीर जीवित हैं या नहीं? यह सोच कर मेरा मन महादुःखको प्राप्त हुआ, हे नरव्याघ्र मैंने सोचा कि इन सबके जीते साक्षात् वज्रधारी इन्द्रकी भी शक्ति नहीं है, कि वसुदेवको मार सके; और वसुदेव मारे गए इससे निश्चय यह सब बलदेव आदि मारे गए, यह सुभी निश्चय होगया। हे महाराज! इस प्रकारसे मैं अपने सब नाशको विचारता हुआ विकल होकर शाल्वसे युद्ध करने लगा। हे महाराज! तब मैंने देखा कि मेरे पिता सौभसे गिरे, उस समय

सुभी महामोह उपस्थित हुआ, हे नरनाथ! मेरे पिताके गिरते समय ऐसा रूप प्रकाशित हुआ जैसे पुण्य नाश होने पर ययाति का हुआ था, मैली खुली पगड़ी, फैलेवस्त्र और केशवाले मेरे पिताके गिरते हुए, ऐसा प्रकाश हुआ जैसे पुण्य नाश होनेसे तारा टूट कर गिरता है। तब उत्तम शार्ङ्गधनुष मेरे हाथसे गिर पड़ा, हे कौतेय! मैं मोहसे व्याकुल होकर रथको शय्यामें बैठ गया, हे भारत! जब मेरी सेनाने सुभी रथमें प्राण-रहितके समान मूर्च्छित पड़ा देखा, तो सब लोग हाहाकार करके रोने लगे, दानी हाथ, और दानो पैर फैलाकर गिरते हुए मेरे पिताका रूप गिरते हुए शकुनीके समान शोभित हुआ, हे महाबाही! गिरते हुए मेरे पिताका शूल और पट्टिशधारी अनेक योधा मेरे हृदयको कंपाते हुए काटने लगे, हे वीर! तब क्षण भरमें मैंने मोहको त्याग करके उस महायुद्धमें देखा, कि न वहा सौभ, न शत्रु शाल्व, और न वृद्ध पिता है, तब मेरे मनमें यह निश्चय हो गया, कि यह मायाही है, तब मैं पुनः बोधित हुआ, और सैकड़ों वाण छोड़ने लगा।

२१ अध्याय समाप्त।

हे भरतश्रेष्ठ! तब मैं उत्तम धनुष ग्रहण करके वाणोंसे राक्षसोंके शिर प्रायवर्षों गिराने लगा, मैं सापके समान, महा तेजस्वी, ऊर्ध्वगामी, उत्तम पखवाले, वाण शार्ङ्गधनुषसे शाल्वको लक्ष करके छोड़ने लगा, हे कुरुकुलोत्पन्न! तब सौभ मायासे ऐसा क्षिप गया, कि सुभी दिखाई न देने लगा, तब सुभी विस्मय हुआ, हे महाराज! तब कटे शिरकेशवाले राक्षस सुभी गाली देने लगे, तब मैंने स्वस्थतासे स्थिर होकर शब्दवेधी वाण शीघ्रतासहित उनके मारनेकी चलाए, तब शब्द वन्द हो गया, तब मैंने प्रकाशमान सूर्यके समान तेजवाने,

शब्दवेधी वाणों से उन सब राक्षसोंको मार-
 डाला, जिन्होंने वह शब्द किया था, हे महाराज ।
 जब वह शब्द बंद हो गया तो पुनः
 हसरी और शब्द हुआ, मैंने वहांभी वाणोंसे
 वैसेही राक्षसोंकी मारा, हे भारत । इस
 प्रकारसे दशोंदिशाओंमें नीचे और ऊपर
 ऐसाही शब्द हुआ, मैं सब और राक्षसोंको
 ऐसेही मारता रहा, हे वीर । तब मैंने प्राग्-
 ज्योतिषपुरमें जाकर पुनः सौभकी अपने नेत्रोंको
 मोहित करते देखा, तब लोकको नाश करने-
 वाला, दारुण शरीरवाला, दानवों मंचा शिला
 वर्षण करके मुझसे लड़ने लगा, हे महाराज ।
 मैं बारबार शिला वर्षणसे पीड़ित होकर ऐसा
 दीखने लगा, जैसा पहाड़में विल, हे महाराज ।
 मैं घोंडे और सारथीके समेत पर्वतोंके मारे,
 अदृश्य हो गया, तब वृषावशी मेरे सैन्यवाली
 भयसे व्याकुल होकर चारों ओरकी भाग गए,
 हे महाराज । जब मैं किसीको न दीखने
 लगा तो स्वर्ग, आकाश, और भूमि सबमे
 हाहाकार मच गया, हे राजा । तब मेरे
 मित्रलोग दुःख शोकसे भरकर मलीन-मन
 होकर रोने पीटने लगे, हे अच्युत । हे वीर ।
 एतुषोभे प्रसन्नता और मेरे मित्रोंमें दुःखनं
 प्रवेश किया, जब मुझी संज्ञाप्राप्त हुई तो यही
 पक्ष सुना कि शालुने कृष्णकी जीत लिया । तब
 मैंने इन्द्रके ध्यारे शस्त्र पर्वतनाशक वज्रका प्रयोग
 करके उन सब पर्वतोंकी नाश कर दिया, हे
 महाराज अनंतर पर्वतको अधिक मारसे दुःखी
 होकर मेरे घोंडे कांपने लगे, मन्दबल मन्द
 प्रवृत्त हो गए, जैसे मेघ समूहकी फाड़कर
 उदय होता है वैसेही मुझी पर्वत जालसे
 फूट गया देखकर मेरेसब बान्धव प्रसन्न हुए,
 पर्वतोंके दोन्धसे व्याकुल अल्पबल मन्द
 प्रवृत्त होकर देखकर स्तनने उसके अनुकूल
 होकर कहा, कि वह आप भलीप्रकारसे देखिये
 वह महाराज खड़ा है, हे कृष्ण ! अब इसकी

छोड़ना उचित नहीं है, उत्तम यज्ञ कीजिये, हे
 महोवाह । हे केशव । अब आप शालुसे कीमलता
 और मित्रताको छोड़ दीजिये, अब दूरी जीता
 मत छोड़िये शीघ्रही जीत लीजिये, हे वीर ।
 बलवानकीभी उचित है, कि अपने दुर्बल शत्रुकी
 न छोड़ें, सब यज्ञोंसे शत्रु मारनेहीके योग्य है; हे
 पुरुष शर्हील । हे प्रभो । यदि शत्रु अपने घरभी
 बैठा हो तो उसे बिना युद्धभी मार डालना चाहिये
 न कि युद्धमें स्थित की । हे वृषाकुलश्रेष्ठ । यह
 मृदु युद्धसे वशमें नहीं आवेगा न यह आपका
 मित्र है, अतएव आप इस शालुकी नाश कीजिये
 समय नष्टमत कीजिये, इसने आपसे युद्ध किया,
 हारिकामें उपद्रव किया, हे कुन्तीपुत्र । मैंने
 सारथीके यह बचन सुनकर जाना कि यह ठीक
 कहता है, तब मैंने युद्धमें अपने चित्तकी लगाया,
 शालुके मारने और सौभके गिरानेकी बुद्धि
 करी, और सारथीसे कहा कि तुम क्षणमात्र
 स्थिर रहो, तब मैंने नचूकने योग्य, दिव्य, न
 भेदने योग्य, महाबलवान, सब सहनेवाला,
 मंचा प्रकाशमान, दानवोंका अन्त करनेवाला,
 अग्नि अस्त्र धनुषपर धारण किया, युद्धमें यज्ञ,
 राक्षस, दानव, और दुष्कर्मों राजोंका भञ्ज
 करनेवाला, जैसी छुरीकी धार होती है, वैसा
 निर्मल, काल और यमके समान, शत्रुओंके
 नाशक चक्रकी मैंने अभिमानित करके उससे
 कहा कि तुम अपने बलसे मेरे जो यज्ञ शत्रु
 है, उनकी और सौभकी नष्ट कर दो । ऐसा कह-
 कर मैंने क्रोधसे और हाथके बलसे उसकी
 शालुकी और छोड़ा, उस समय सुदर्शन चक्रके
 आकाशसे गिरते ऐसा रूप प्रकाशित हुआ,
 जैसे प्रलयकालमें दूसरे सूर्यका, उसके टूटतेही
 सौभ तेजहीन हो गया, उसने सौभकी बीचमें
 ऐसा काट दिया, जैसे आरा वृक्षको काटता है,
 जैसे शिवके वाणसे नष्ट होकर त्रिपुरासुरका
 नगर पृथिवीपर गिरा था वैसेही मेरे चक्रने
 कटकर सौभ पृथिवीमें गिर गया । अब वह

नगर गिर गया, तो चक्र वेगसे पुनः मेरे हाथहीमें आगया, मैंने उसे लेकर पुनः शालुकी और चलाया, तब शालुने एक भारी गदा चक्रमें मारी परन्तु चक्रने उसे शालुके समेत दो टुकड़े कर दिया, और तेजसे प्रकाशित होनेलगा, जब वीर शालु मर गया, तो दानव लोग मेरे वाणोंसे पीड़ित होकर भयसे हाहाकार करते हुए सब दिशाओंको भागने लगे, तब मैं अपने रथको सौभके समीप लेजाकर आनन्दसे शंख बजाकर अपने मित्रोंको आनन्दित किया, और सौभ मेरुके शिखरके समान जलने लगा, उसके स्थान और अटारियोंको जलते देखकर स्त्रियां भाग गयीं ।

हे राजन् ! मैंने इस प्रकारसे सौभको तोड़ शालुकी मार पुनः द्वारिकामें आकर अपने मित्रोंको प्रसन्न किया, हे शत्रुनाशन ! यही कारण हुआ जो मैं जुएके समय हस्तिनापुरमें नहीं आया, अन्यथा या तो दुर्भीषण जीताही न रहता, या ऐसा जुवा ही न होता, अब मैं क्या करूं ? मेरी वही दशा है, जैसे बांध टूटने पर पुल बाधनवालीकी होती है ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, महाबाहु श्रीमान् मधुदैत्य नाशक श्रीकृष्ण युधिष्ठिरसे ऐसा कहकर पाण्डवोंकी आज्ञाले चलने लगे, महाबाहु कृष्णने धर्मराज युधिष्ठिर और भीमसेनकी प्रणाम करी उन दोनोंने उनके माथेको स्पर्श अर्जुनसे मिले, तथा नकुल और सहदेवने उल्लेख दण्डवत करी, धौम्यने आशीर्वाद दिया, द्रौपदीने आंसुवोंसे पूजाकरी, तब कृष्ण सुभद्रा और अभिमन्युकी सोनेके रथपर चढ़ाकर सग ले चले, तब पाण्डवोंसे पूजित हो और युधिष्ठिरको समुभाय सूर्यके समान तेजयुक्त, सैव्यसुग्रीव, घोड़ों सहित रथपर चढ़कर द्वारिकाकी चले गए । जब श्रीकृष्ण चले गए तो धृष्टदुश्मन्भी द्रौपदीके पाचोपुत्रोंकी अपने सङ्ग लेकर निज नगरकी गए, धृष्टकेतुभी (गिशपालके पुत्र और नकुलके

साली) अपनी वहन (करेणुमती) को सङ्ग लेकर पाण्डवोंसे मिलकर रम्य-शक्तिमती नगरीको गये, पञ्चात कैकेय लोगभी (सहदेवके साली) महा तेजस्वी युधिष्ठिरकी आज्ञालेकर और पाण्डवोंसे विदा होकर अपने स्थानकी चले गये, ब्राह्मण, वनिये तथा अन्य सङ्ग रहनेवाले लोग पाण्डवोंके वज्रत कहने परभी पाण्डवोंको छोड़नेकी इच्छा न करने लगे, हे महाराज ! हे भरतर्षभ जनमेजय ! यह उस काम्यक वनमें महात्माओंका विचित्र समागम हुआ, तब महाराज युधिष्ठिरने ब्राह्मणोंका सम्मान करके अच्छे कालमें अपने पुरुषोंकी आज्ञादी कि हमारे रथ योजित करो ।

२२ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि जब दशार्द्रदेशके स्वामी (श्रीकृष्ण) चले गए, तो युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल सहदेव, द्रौपदी और धौम्य पुरोहित, यह सब उत्तम बड़े बड़े घोड़ोंसे युक्त रथोंपर चढ़कर वेद वेदांग जाननेवाले ब्राह्मणोंकी सुवर्ण, निष्क (१०२ सुवर्णकी मुद्रा अथवा कणभूषण विशेष) भोजन, देकर शिवके समान वनकी चले उनके वीसे कर्मचारीभी शस्त्रनिपुण, धनुष, शस्त्र, प्रकाशमान वाणज्या (रोदा) यन्त्र (कल) शाहक, लेकर सब लोग आगे पीछे चले, पश्चात् सुभद्राके वस्त्र, धाय, दासी, और आभूषण, लेकर इन्द्रसेन द्वारिकाकी गया, तब कुरुकुलश्रेष्ठ धर्मराजके समीप जाकर सब उदार पुत्रवासियोंने उनकी प्रदक्षिणा करी, कुरु जाड़ल देशके रहनेवालोंसे मुख्यलोग और ब्राह्मणोंने प्रसन्न होकर उनसे कुछ वार्तालाप किया, और महाराजनेभी भाद्र्योंके समेत उन सबसे प्रसन्न चित्तसे बात करी, कुरुदेशवासी प्रधान लोगोंकी भक्ति देखकर महात्मा महाराज युधिष्ठिर वहां ठहर गए, कुरुकुलसिंह महात्मा युधिष्ठिरने उन प्रजाके पुरुषोंसे वैसाही भदा

क्रिया जैसा पिता-पुत्रोंसे करता है और उन लोगोंभी उन कुरुक्षेत्र महाराजसे वैसाही भाव क्रिया जैसा लोग पितासे करते हैं। तब सब कुरुक्षेत्रीयोंकी प्राप्त करके सब पुरुषोंने आंसु-वर्षोंसे मुखको भरके लज्जित होकर हा नाथ हा धर्मराज । ऐसा कहा, फिर वे सब उनको चारों ओर बैठ गए ; वह लोग कहने लगे, कि कुरुक्षेत्रियोंमें श्रेष्ठ प्रजाके स्वामी धर्मराज, हमारे पिताके समान है, हम उनके पुत्र समान हैं, वे पुत्रके समान नगर और देश निवासियोंकी छोड़ कर कहीं जाते हैं ? निर्लज्ज धृतराष्ट्र-पुत्रकी धिक्कार है, शकुनी और पापी कर्णकी धिक्कार है । हे नरनाथ ! जो लोग महात्मा आपके निमित्त अनर्थ करते हैं, उनकी धिक्कार है । जो महात्मा देवके समान उपमा रहित इन्द्रप्रस्थ नगर वसाकर रहे थे, वह अप्रमाण कर्मकर्ता धर्मराज उसे छोड़ कहां जाते हैं ? जिस देवसभाके समान सभाकी महात्मा मयने उपमा रहित बनाया था, उसे देवरचित देव मायाके समान छोड़कर धर्मराज कहां जाते हैं ? इस प्रकारसे कहते हुए प्रजाके मुखेलियोंसे अर्थ और धर्मके जाननेवाले, तेजस्वी अर्जुनने उच्च स्वरसे यों कहा, महाराज वनमें वास करके शत्रुओंके यशको नाश करके पुनः उन वस्तुओंको ग्रहण करेंगे, आपलोग, द्विजाति-योंमें मुख्य मिले हो वा अलग हो उनकी प्रशंसा करके आपलोग धर्म और अर्थकी वार्त्ता करते रहियेगा इसीसे हमारी परम सिद्धि होगी ' हे अर्जुन ! अर्जुनका यह वचन सुनकर शत्रुणादि सब वर्ण उनकी प्रशंसा कर महा-पुरुषकी प्रदक्षिणाकर महाराज, भीमसेन, युधिष्ठिर, महर्षि, द्रौपदी, और धौम्य एरोहित के साथ संगकर निरानन्द होकर युधिष्ठिरके पास यथोचित पालन कर अपने अपने गृहों लौट गए ।

॥ अध्याय समाप्त ॥

श्रीवैशम्पायनजी, बोले, जब वे प्रजागण सब पुरुष चले गए तो सत्यपालक धर्मात्मा, कुन्ती-पुत्र युधिष्ठिर सब भाद्र्योंसे ऐसा बोले, बारह वर्ष पर्यन्त हम लोगोंकी यहीं वसना है, सो तुम लोग इसमहावनमें ऐसा स्थान ढूँढो जहां बृहत हरिण, पक्षी और फल हों । जो स्थान रम्य, सत्पुरुषोंसे कल्याण मय हो, जहां इन सब वर्षोंकी हम सुखसे बिता सकें । लोक-गुरु मनस्वी धर्मराजके ऐसे वचन सुनकर अर्जुन उनका गुरुके समान सन्मान करके कहने लगे ।

अर्जुन बोले, कि हे भरतर्षभ ! आप वृद्ध ऋषियोंके उपासक है, अतएव मनुष्यलोकमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसे आप नहीं जानते हैं, आपने जगतमें व्यास आदि ब्राह्मणोंकी सेवा करी है, जो देवलोकसे ब्रह्मलोक बड़ासे गन्धर्व लोक और अप्सरालोक आदि सब स्थानोंकी जाते हैं, जो सदाही सब लोकोंके द्वारमें घूमा करते हैं, आपने उन नारदकी सेवा करी है । इसमें कोई सन्देह नहीं कि आप ब्राह्मणोंके अभावोंको जानते हैं । हे राजा ! कल्याणके कारणकी आपही जानते हैं, हे महाराज ! जहां आपकी इच्छा हो हम सब वहीँ निवास करेंगे, यह हैतवन नामक तड़ाग है, इसमें पवित्र जल भरा है, यह वन रम्य है, इसमें पुष्प, फल, और पक्षी, वृद्धत हैं, मुझे यही अच्छा भान होता है, कि हमलोग द्वादशवर्ष पर्यन्त यहीं विहार करें, हे महाराज ! यदि आपकी रुचि हो तो यहीं निवास कीजिये ।

युधिष्ठिर बोले, हे अर्जुन ! तुमने जा कहा सीही मेरोभी इच्छा है, अतएव हम सब अब पुण्य हैतवन नामक तड़ागको चलते हैं ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, तब वे सब धार्मिक-लोग वहांसे अनेक ब्राह्मणों संग लै पुण्यमय हैतवन सरका चले गये, वहां युधिष्ठिरके

मिलनेकी अग्निहोत्री, निरग्नी, (जो अग्निहोत्र न करें) वेद पढ़ानेवाले, और वनके रहनेवाले भिक्षुक लोग आये । सैकड़ों ब्राह्मण, तपसे सिद्ध व्रतिलोग आये, वे लोग अनेक ब्राह्मणोंके सहित पाण्डवोंसे मिलकर रम्य हैतवनसरके समीपको चले गये, पाण्डव लोगोंने उनके सहित पुण्यहैतवन तड़ागको वसे, वहाँ महाबलों राजेश्वर युधिष्ठिरने वसन्तमें फूले हुए साल, ताड़ महुवा, नीप (कदम्ब आदि) राल, अर्जुन (वृक्ष विशेष) और कचनारको देखा कि वृक्षोपर बैठकर भीरु चक्रवा, चकीर, मोरनी, के किला मीठे मीठे स्वरोंसे शब्दकर रहे हैं, हस्तिनियोंके यूथके समेत अनेक मतवाले पञ्जाड़के समान शरीरवाले यूथपति हाथियोंकी अनेक सण्डली पड़ी है । अनन्तर सुन्दर राजाने सरस्वतीपर जाकर, जटावल्कलधारी, पवित्र, तपस्वी, धर्ममात्मीके, निवास वनमें अनेक सिद्ध और ऋषियोंके गणको देखा, तब अपने भाई और पुरुषोंके सहित रथोंसे उतरकर जैसे इन्द्र स्वर्गमें प्रवेश करते है तैसे ही राजाने वनमें प्रवेश किया । अनन्तर उन धर्मज्ञोंमें अष्ट धर्मज्ञकी इच्छा रखनेवाले सिद्ध और चारण, इकार्ठे होकर आए, तथा औरभी वनवासी तपस्वीलोगोंने आकर महाराजकी चारों आरसे घेर लिया, तब महाराजने सब विद्वानोंकी प्रणाम किया, उन्हेंनिभो इनकी देवता और राजाके समान पूजा । तब धर्म जानने वालोंमें उत्तम युधिष्ठिरने हाथ जोड़कर सब ब्राह्मणोंके सहित वनमें प्रवेश किया, अनन्तर वह धर्मज्ञ पुण्यात्मा राजा, महा तपस्वीओंसे पृथके-समान सत्कार पाकर पूजा ग्रहण करके एक फल भरे भारी वृक्षकी छायामें बैठ गये, उनके बैठनेके पश्चात् भीमसेन, द्रौपदी, अर्जुन, नकुल, सहदेव, तथा और सब लोग अपने रथोंसे उतर कर उसी वृक्षके नीचे बैठ गये, लताओंसे भरनेके कारण भुकी हुई

शाखावाला वह वृक्ष, धनुर्धारी पांच पाण्डवोंसे ऐसा शोभित हुआ, जैसे बड़ा पर्वत पांच यूथपाल हाथियोंके बैठनेसे शोभित होता है ।

२४ अध्याय समाप्त ।

श्रीशैशमायनजी बोले, इन्द्रके समान महाराज पाण्डुके योग्य पुत्र होनेपरभी दुःखसे उस वनमें निवास करते हुए; उत्तम सरस्वती नदीके तट पर उस वनमें महानुभाव, कुरुकुलसिंह राजा युधिष्ठिर उत्तम मूल और फलोंसे यति, मुनि और समस्त ब्राह्मणोंकी तप करतें थे । उसी वनमें राजपुरोहित महा तेजस्वी धीम्य प्राण्डवोकी यज्ञ और पैटक क्रिया पिताके समान करतें थे । राज्यसे नष्ट हुए वनवासी श्रीमान् पाण्डवोंके आश्रममें, महा तेजस्वी, मार्कण्डेय मुनि अतिथि होकर आए, कुरुकुलसिंह सत्यपराक्रम, अनुपम महामनस्वी युधिष्ठिरने जलती अग्निके समान तेजस्वी, ऋषि, देवता, और मनुष्योंसे पूजित ऋषिकी आते देखकर पूजा करी । उन सर्वज्ञ मुनिने द्रौपदी, युधिष्ठिर भीमसेन, और अर्जुनको देखकर मनसे रामका स्मरण किया और महात्मा महातेजस्वी मार्कण्डेय तपस्वी लोगोंके मध्यमें हसने लगे । तब धर्मराजने कुछ विमन होकर उनसे कहा कि यह सब मुनीश्वर लोग लज्जित, बैठे हैं, आप सब तपस्वियोंके सामने प्रसन्नचित्तसे मुझे देखकर हंसते हैं, इसका कारण क्या ?

मार्कण्डेय बोले, हे तात । हे पार्थ । मैं न प्रसन्नतासे हूं, न आश्चर्य करता हूं न मुझे कुछ आनन्दका अभिमान भया है, मैं तुम्हारी इस आपत्तिकी देखके सत्यव्रत, दशरथपुत्र, रामका स्मरण करता हूं । वह राजाभी लक्ष्मणके समेत पिताकी आज्ञासे वनमें वसे थे, मैंने उन्हें ऋणमूक पर्वतके समीप धनुष धारण किये घूमते देखा था, यमके शासक नमुचीके नाशक सहस्र-

नेत्र इन्द्रके समान महात्मा, पापरहित, धर्म-
पालक, दशरथके पुत्र रामने वनमें वास किया
था; वह इन्द्रके समान प्रभाव युक्त महानुभाव,
युद्धमें अजेय, रामभी सब भोगोंको छोड़ कर
वनमें वसे थे, इससे क्या बल रहते अधर्म करना
उचित है? अर्थात् अशुचित है, है तात।
नाभाग और भगीरथादि राजोंने इस पृथिवी-
को समुद्र पर्यन्त जीतकर उससे परलोकको
जीता। अतएव शक्ति होने परभी अधर्म न
करना चाहिये, है पुरुषश्रेष्ठ। अलर्क सत्यव्रत
काशिराज, कुरुपदेशके राजा; यह सब लोग
राज्य और धनको छोड़कर वनमें रहे थे अतएव
शक्ति रहनेपरभी धर्मही कर्तव्य है, है कुरुश्रेष्ठ
देखो यह सप्त ऋषि ब्रह्माके नियमको पालन
करते हुए, आज पर्यन्त आकाशमें प्रकाशित है,
बल रहतेभी क्या अधर्म करना योग्य है? है
नरेन्द्र। महाबलयुक्त पर्वतके समान शरीर-
वाले, दन्तारे हाथियोंको देखिये कि यह
ब्रह्माकी आज्ञाहीसे चलने हैं, बल रहनेपर भी
धर्मही कर्तव्य है। है नरेन्द्र। सब प्राणियोंकी
देख यह वैसेही स्थिर है, जैसे ब्रह्माने योजित
किया है। अपनी योग्यताके अनुसार सदाही
धर्म करते हैं, बल रहनेपरभी अधर्म न करना
चाहिये। है कुन्तीपुत्र। सत्य, धर्म, उचित वृत्ति
आर लज्जासे सब प्राणियोंको उल्लङ्घन करके
अंगार यश, तेजयुक्त सूर्यके समान प्रकाशित
हैं, है महानुभाव। तुम प्रतिज्ञाके अनुसार कठिन
तपस्सकी काटकर अपने तेजसे प्रकाशित
लक्ष्मीको कारवोंसे ग्रहण करोगे।

शशम्पायनजी बोले सुहृद् लोगोंके सहित,
सर्वस्वको मध्यमें बैठे हुए युधिष्ठिरसे, मार्क-
ण्डेय महर्षि ऐसा कहकर धैर्य सहित पाण्डवों
को धर कर उत्तर दिशाकी चले गए।

॥ अध्याय समाप्त ॥

श्रीशशम्पायनजी बोले, महात्मा पाण्डवोंके
बसनेसे, वह महाबल ब्राह्मणोंसे पूर्ण हो गया,
उस समय वेदशब्दसे पूर्ण हैतवन सब ओर से
ब्रह्मलोकके समान भान होता था, वहां चारों
ओर ऋग्वेद, यजुर्वेद और ब्राह्मण ग्रन्थहीकी
ध्वनि सुन पड़ती थी, वहां पाण्डवोंके धनुषोंका
शब्द, और ब्राह्मणोंके वेदपाठका शब्द होनेसे
ऐसा भान होता था कि मानी ब्रह्माने ब्राह्मण
और क्षत्रियोंको बनाकर पुनः मिलाया है,
अनन्तर बकदालभ्य मुनि ब्राह्मणोंसे परिकृत
संध्यामेंवैते हुए, कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरसे कहने
लगे, है पृथापुत्र। देखो इस हैतवनमें तपस्वी
ब्राह्मणलोगोंका संधीपासनका समय है, देखो
अग्नि जल रही है, है महाराज! देखो यह
आपसे रक्षित होकर इस पुण्यक्षेत्र वनमें भृगु-
वशी, अङ्गिरावंशी, वशिष्ठवंशी, ज्ञव, काश्यप,
महाभाग अगस्त्य, और उत्तम व्रतधारी अत्रि-
वंशीत्यन्त, व्रतधारी जगतके श्रेष्ठ ब्राह्मण
लोग आपके सङ्ग होकर संधीपासन करते-
हैं। है कौरव। है कौन्तेय। मैं जो वचन
कहता हूँ, सो तुम भाइयोंके समेत अवगण करी,
ब्राह्मण, क्षत्रियोंसे और क्षत्रिय ब्राह्मणोंसे मिले
हैं, यह दोनों प्रकाशित होकर शत्रुओंकी वैसेही
नाश कर सकते हैं, जैसे अग्नि और वायु मिलकर
वनको नाश कर देते हैं। है तात। क्षत्रियोंको
उचित है, कि विना ब्राह्मणके ऐश्वर्य और इस
लोकके जीतनेकी इच्छा न करे। और क्षत्रिय धर्म
जाननेवाले, द्रोह रहित, ब्राह्मणका प्राप्तकर
राजा अपने शत्रुओंकी जीतता है! प्रजापालन
और उत्तम धर्म करता हुआ राजा ब्राह्मणकी
आहुति कर दूसरे तोर्यको न जाय, देखो राजस
बलिका कामके अनुसार क्षत्रियहीन लक्ष्मी प्राप्त
हुई थी, ब्राह्मणकी आराधना करनेसे उसने
पृथिवीकी प्राप्त किया था अन्तकी जब ब्राह्मणोंमें
दुष्टता करी तब नष्ट हो गया। जो ब्राह्मणकी
सेवा नहीं करता उसे लक्ष्मी अधिक समझना

प्राप्त नहीं होती है। जिस विनयवान् अन्य वर्णों के पुरुषों को ब्राह्मण शासन करता है, उससे समुद्र पर्यन्त जगत् नम्र होता है। जैसे हाथियों के युद्ध में महावंत (हाथीवान्) के बिना योद्धा का बल घट जाता है, तैसेही ब्राह्मण से रहित क्षत्रिय का बल हीन हो जाता है, ब्राह्मण की उपमारहित विद्या और क्षत्रिय का असामान्य बल, यह दोनों यदि मिलकर कार्य करें, तो लोक में आनन्द होता है। जैसे वायु की सङ्ग लेकर अग्नि बड़े भारी काष्ठ आदिके समूहों को भी भस्म कर देता है, तैसेही ब्राह्मण की सहायता से क्षत्रिय बड़े शत्रुओं को भी नाश कर देता है, बुद्धिमान् क्षत्रिय, बिना प्राप्त हुई वस्तु की प्राप्ति और प्राप्त हुई की वृद्धि के अर्थ अपनी बुद्धि को ब्राह्मण ही में लगावे, हे युधिष्ठिर ! तुम अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति और प्राप्ति की वृद्धि तथा तीर्थों के यथार्थ स्थापन के निमित्त यशस्वी, वेद जाननेवाले, पण्डित, बद्धशत, ब्राह्मण ही को अपने यहां वसाओ, तुम्हारी वृत्ति ब्राह्मणों में सदा बद्धत ही उत्तम है, अतएव तुम्हारा यश सब लोकों में प्रसिद्ध है।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि जब बकदाल्भ्य मुनिने युधिष्ठिर की ऐसी प्रशंसा करी, तो सब मुनिलोग पुनः प्रसन्न होकर बकदाल्भ्य की प्रशंसा करने लगे। हैपायन (व्यास) नारद, जामदग्नि पृथुश्रवा, इन्द्रद्युम्न, भालक, कृतचेता, सहस्रपात, कर्णश्रवा, सुज्ज, लवणाश्रु, काश्यप, हारीत, स्थूणकर्ण, अग्निवेश, शौनक, कृतवाक्, असुवाक्, बृहदश्व, विभावसु, ऊर्ध्वरेता, वृषामित्र, सुहीत, और होत्रवाहन, इत्यादिकों लेकर दूसरे अनेक व्रतधारी ब्राह्मणलोग महाराज युधिष्ठिर की वैसेही पूजा करने लगे, जैसे इन्द्र की ऋषिलोग करते हैं।

२६ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले वनवासी शोक और दुःखसे भरे हुए पाण्डव संध्यासमय द्रौपदी समेत बैठकर वार्त्तालाप करने लगे। अनन्त सुन्दरी, पण्डिता पतिव्रता, पाण्डवों की प्यारी, द्रौपदी धर्मराजसे ऐसा कहने लगी। द्रौपदी बोली, उस पापी, निर्लज्ज, दुरात्मा, धृतराष्ट्र पुत्र की, हमारे दुःख पानेसे निश्चय कुछ भी दुःख नहीं है। हे राजन् ! जिस दुष्टने मेरे समेत आपको वनवास देकर हरिण चर्म उढ़ाकर कुछ भी दुःख नहीं पाया, जिसने धर्म परायण आपको स्तुतीवात सुनायी, जो पापी, दुरात्मा सुख के योग्य, दुःख के अयोग्य, आपको इस दुर्दश में डालकर आप वन्धुओं के सहित सुख भोगता है; निश्चय उस दुर्मति, दुष्कर्मी का हृदय लोहेका है। हे भारत ! जब आप हरिण चर्म धारण करके वन को चले थे, उस समय दुर्धन, कर्ण दुरात्मा शकुनी और उस उग्र दुष्ट, दशार्जन, इनहीं पापियों के नेत्रसे आंसू नहीं गिरी थीं। हे कुरुसत्तम ! और जितने कीरव थे वे सब दुःखसे भरकर रोने लगे थे। हे महा राज ! आपके पहिले पलङ्ग का स्मरण कर और इस शयनस्थान को देखकर मैं सुख के योग्य और दुःख के अयोग्य आपको ही सोचती हूँ। वह हाथीदंत का बना हुआ, रुभा के मध्य में शोभित, रत्नों से जड़ा हुआ, आपका सिंहास स्मरण करके और यह कुशा के आसन को देखकर मुझे शोक घेरे लेता है, हे महाराज ! जिस आपकी रुभा के मध्य में सहस्रों राजे वेष्टित देखा था, आज उनहीं आपको एव और दुःखी देखकर कहिये तो मेरे हृदय कैसे शान्ति हो सकती है। हे भारत ! जि मैंने आपको चन्दन से लिप्त-शरीर तथा स समान तेजयुक्त देखा है, सो मैं आज धूल, अ मैलेभरे शरीरवाले आपको देखकर मर्त्ति हुई जाती हूँ। हे राजेन्द्र ! जिस मैंने आप उत्तम निर्मल रेशम के वस्त्रधारण किये देख

था, सो मैं आज आपको चर्मा ओढ़े देखती हूँ,
 हे महाराज । जो सीनेके वर्तनमें रखकर
 सहस्रों ब्राह्मणोंकी सब कामनायुक्त (यथेच्छा)
 उत्तम संस्कार किया हुआ, अन्त आपके घरसे
 मिलता था, जो ब्रह्मचारी और घरमें रहनेवाले
 यतियोंकी उत्तम गुणयुक्त भोजन दिया था, जो
 सब कामको प्राप्त करके सहस्रों ब्राह्मण पहिले
 घरमें पूजे जाते थे, हे राजन् । हे नाथ । वह
 सब अब न देखनेसे मेरे हृदयकी क्या शान्ति
 होगी ! हे महाराज । जिन आपके भाइयोंकी
 कुण्डलधारी युवा रूप लोग परम उत्तम
 संस्कार किये सुखादु अन्न भोजन कराते
 थे, उनहीं सबको अब वनमें फल, मूल, और
 मांस खाकर जीते देखती हूँ । हे नरनाथ !
 इन दुःखोंके अयोग्य तुम्हारे भाइयोंकी यह दशा
 देखकर मेरा मन शान्त नहीं होता है । हे
 महाराज । इन भीमसेनकी दुःखित और वन-
 वासी देखकर इनके दुःखका ध्यान करके क्या
 आपकी यह काल प्राप्त होनेपर भी क्रोध नहीं
 बढ़ता ? यह भीमसेन एकलाही युद्धमें धृत-
 राष्ट्रके सब पुत्रोंकी नाश करनेकी शक्ति रखते
 हैं, यह केवल आपकी प्रतिज्ञाकी पालनेके
 निमित्त सब सह रहे हैं । जो दो वाहुवाले
 अर्जुन सहस्र वाहुवाले अर्जुन कृतवीर्य है हयके
 तुल्य हैं, जो बाणोंको शीघ्र चलाने और शत्रुके
 मारनेमें यमराजके समान हैं, जिनकी शस्त्रके
 प्रतापसे सब राजालोग लघु बनकर आपके
 घरमें ब्राह्मणोंके समीप भाये थे, देव और
 दानवोंसे पूजित नरसिंह अर्जुनकी चिन्तायुक्त
 होकर हे महाराज ! आपकी क्रोध क्यों नहीं
 बढ़ता ? दुःख सहनेके अयोग्य, और सुखभोग-
 के योग्य कुन्तीनन्दनकी वनमें आये हुए
 आपकी क्रोध नहीं आता, इसीसे मुझे
 दुःख होता है । जिसने एकही रथसे देवता
 और सदाके जीता, उसको वनवासी
 आपकी क्रोध क्यों नहीं बढ़ता है ?

जिन्होंने अज्ञत रूपवाली सवारी, हाथी और
 घोड़ोंसे आच्छादित होकर वज्रपूर्वक राजोंसे
 धन लिया था, जो एकहीवार पाचसौ बाण
 छोड़ते हैं उन अर्जुनकी वनवासी देखके
 आपका क्रोध क्यों नहीं बढ़ता है ? श्यामवर्ण-
 वाली, उद्यमी, युवा और युद्धमें तलवार ढाल
 चलानेवालोंमें अष्ट नकुलकी वनमें देखके
 आपका क्रोध क्यों नहीं बढ़ता है ? हे यधि-
 शिर ! मनोहर रूपवाली शूर वीर माद्रीपुत्र
 सहदेवकी वनवासी देखके आप क्यों चमा
 करते हैं ? नकुल सहदेव जो दुःख भोगनेके
 योग्य नहीं हैं, उन दोनोंको दुःखी देखकर
 आपका क्रोध क्यों नहीं बढ़ता है ? हे राजन्
 राजा द्रुपदके कुलमें उत्पन्न हुई, महात्मा
 पाण्डुकी पुत्रवधू, धृष्टद्युम्नकी बहिन, और
 अनुकूल रहनेवाली मुक्त वीरपत्नीकी वनमें
 फिरती देखके आप क्यों चमा करते हैं ? हे
 अष्ट, निश्चय होता है, कि यथार्थमें तुमकी
 क्रोधही नहीं है । इसीसे तुम्हारा मन अपने
 भाइयोंकी और मुझे देखके पीड़ित नहीं
 होता है । चतुर्थ शब्दका यही अर्थ है, कि
 जिसमें क्रोध हो वही चतुर्थ है और जिसमें
 क्रोध न हो वह चतुर्थ नहीं है, अब मैं तुममें
 उरुका विपरीत भाव देखती हूँ । हे कुन्ती-
 नन्दन ! जो चतुर्थ समय पाकर क्रोध नहीं
 करता है, सबप्राणी उसकी सदा निन्दा करते
 हैं । इस कारणसे तुमको शत्रुओं पर कदापि
 चमा न करनी चाहिये, इसमें सन्देह नहीं
 है, कि शत्रु लोग क्रोधसेही मारे जायेंगे ।
 ऐसीही जो चतुर्थ चमा योग्य समयमें शान्त
 नहीं रहता है, वह सब प्राणियोंका अप्रिय
 होजाता है और उसके यह लोक और परलोक
 दोनों नाश हो जाते हैं ।

द्रौपदी बोली, इस विषयमें इस पुराने इति-
हासका लोग उदाहरण दिया करते हैं, जिसमें
प्रह्लाद और विरोचनके पुत्र बलिका सम्वाद
वर्णित है। महाबुद्धिमान् धर्म-तत्वों को
जाननेवाले सुरोके स्वामी प्रह्लादसे उनके पीते
बलिने पूछा, कि है तात। मुझे इनमें बड़ा
सन्देह है, कि क्षमा उत्तम है, वा क्रोध उत्तम
है ? मैं आपसे पूछता हूँ, आप यथार्थ कहिये।
हे धर्मज्ञ ! जो इनमें उत्तम हो, उसे आप
सशय-रहित होके कहिये, जैसी आज्ञा होगी
वैसाही मैं करूँगा। ऐसा प्रश्न करनेवाले,
बलिसे निश्चय-पूर्वक जाननेवाले पितामह
प्रह्लाद यों वर्णन करने लगे। प्रह्लाद बोले, न
सदा क्रोधही उत्तम है, और न सदा क्षमाही
श्रेष्ठ है। हे प्यारे। इनको तुम सन्देह-
रहित होके समझ लो; हे तात। जो सदा
क्षमा करता है, उसे बहुत दुःख भोगने पड़ते
हैं, उसके सेवक उसका अनादर करते हैं,
शत्रुलोग उससे उदासीन रहते हैं। हे पुत्र।
क्षमावाले मनुष्यको कोई प्राणी प्रणाम नहीं
करता है, इस कारणसे सदा क्षमा करना-
पण्डितोंके वास्तेभी मना है। क्षमाशील
मनुष्यके सेवक निन्दा करके बहुतसे दोषोंको
धारण करते हैं, मन्दबुद्धि सेवकलोग क्षमा-
शीलका धन छीनना चाहते हैं। सबारी, वस्त्र
आभूषण, शय्या, आसन, खानेपीनेकी सम्पूर्ण
सामग्री अधिकारी लोग सब ले लेते हैं। क्षमा-
शीलके अधिकारी लोग इच्छाचारी, वेप वना
रहते हैं, और स्वामीकी आज्ञानुसार कोई-
वस्तु नहीं देते हैं। सेवकलोग क्षमाशीलको
मालिकके समान आदर नहीं करते हैं;
अनादर करनाभी बुरा है। क्षमा करनेवालेको
सेवक दूत, पुत्र, तथा और लोगभी गाली देते
हैं। क्षमावालेकी स्त्री उसकी निन्दा करती
है और स्वेच्छाचारिणी हो जाती है, और
नित्यही स्वामीकी सेवाको छोड़कर उत्सवोंमें

लगी रहती है। यदि स्त्रियोंकी स्वामी कुछभी
दण्ड न दे, तो स्त्री दुष्ट होकर कुकर्म करने
लगती है, हे विरोचननन्दन ! इन दोषोंके
सिवाय और भी बहुतसे दोष क्षमाशील लोगोंको
भोगने पड़ते हैं। आगे क्रोधी लोगोंके दोषोंकी
समझो। उचित स्थानमें नित्यही रजीगुणसे
आहत और क्रोधसे पूरित होकर नित्यही
अपने आधीन पुरुषोंकी जो दण्ड देता है, सो
क्रोधके वशमें होनेसे अपने मित्रोंका विरोधी
बनता है, और जगत्में मित्रोंसे द्वेषकी प्राप्ति
होता है, अर्थात्, मित्रलोग उससे द्वेष रखने
लगते हैं; मित्रोंके द्वेषसे धनका नाश होता
है, तब उस पुरुषको सब लोग धिक्कार देने
लगते हैं, तब अनादर दुःख द्वेष और मोहको
प्राप्त होते हैं। अनन्तर उसके शत्रुभी उत्पन्न
होते हैं, जो क्रोधके वशमें होकर अन्यायसे
मनुष्योंको दण्ड देता है, सो शत्रुही ऐश्वर्य,
मित्र और प्राणियोंकीभी नष्ट करता है। जो
अपने उपकारी और चीरोंकी बलसे दण्ड देता
है, उससे लोकके पुरुष ऐसा डरते हैं, जैसा
बिलमें बैठे हुए सापसे, और जिससे जगत्के
लोग घबड़ाते हैं, उसका कल्याण कैसे हो सक्ता
है ? यह निश्चय है, कि वहलोग समय देख-
कर उसको हानि अवश्य करते हैं; अतएव
सदा क्रोधहीसे नहीं रहना चाहिये और न
नित्य साधु होकर रहना उचित है। जैसा
समय हो वैसाही तेज वा शान्त स्वभाव रखना
चाहिये। जो समय पाकर शान्त और समय
पाकर तेज होता है, वह इस लोक और पर-
लोकमें सुखको प्राप्त करता है। पण्डित लोगोंने
जो क्षमाके समय कहे हैं; जिनकी पुरुषोंकी
कदापि न छोड़ना चाहिये, उनको हम विस्तार-
सहित कहते हैं तुम सुनो। जिसने पहिले कोई
उपकार किया हो और पश्चात् भारी अपराधभी
किया हो, उसका वह अपराध पूर्ण उपकारके
बदले क्षमाकर देना चाहिये। जो मुख निर्बुद्धि

होनेके कारण कोई अपराध करे, तो वहभी क्षमा करने योग्य है, क्योंकि सबलोगोंका पण्डित होना सुलभ नहीं है । जो दुष्टात्मा जानकर थोड़ा अपराधभी करे और कहै कि मैंने बिना जाने किया है, उस पापीको अवश्य मारडालना चाहिये । यदि ऐकही अपराधको वृद्धतसे पुरुष मिलकर करें, तो उन सबहीको क्षमाकर देना चाहिये । यदि उनमेंसे किसी एकपर थोड़ाभी दूसरा अपराध पाया जाय, तो उसे दण्ड देना उचित है । यदि बिना जाने, कोई पुरुष किसी अपराधको करे, तो उसकी परीक्षा उत्तमरूपसे करके क्षमा करना चाहिये, क्योंकि क्षमाही से साधु और असाधु दोनों मारे जाते हैं; क्षमासे कुछ सिद्धि नहीं होती, अतएव अत्यन्त तेज होनाही मृदु-भाव है । देशकाल, अपना बल और दुर्बलता देखकर सबकार्य करना उचित है, क्योंकि अदेश और असमयमें कोई कार्य नहीं होता; अतएव देश और कालको देखो और ऐसा भी कहा है, कि लोकके भयसेभी अपराधको क्षमा करना चाहिये । इस प्रकारसे क्षमाके समय कहें हैं । इन सबसे भिन्न एक तेजका काल कहा है; सो है महाराज । लोभी, निरन्तर अपराध करनेवाले धृतराष्ट्रके पुत्रोंसे आपका तेज काल प्राप्त हुआ है, मेरो बुद्धिमें अब कौरवोंके ऊपर क्षमा करनेका समय नहीं है; इस तेजकालमें आप उन पर तेजपात कीजिये । अत्यन्त कोमल राजाका अनादर होता है, और अत्यन्त तेज राजासे पुरुष घबड़ाते हैं; जो भयसे अनुसार कोमल और तेज होजाता है, वही राजा होनेके योग्य है ।

२० अध्याय समाप्त ।

युधिष्ठिर बोले, हे सुन्दरि ! क्रोधही पुरुष-को नाश कर देता है, और फिर क्रोधहीसे वृद्धि होता है । हे महापण्डित ! तुम निश्चय जानो

कि क्रोधही हानि और लाभका मूल है । जो पुरुष क्रोधको नाश करता है, उसका कल्याण होता है । हे शुभे ! जो पुरुष सदाही क्रोधके वशमें रहता है उसकी नाशका कारण वही परम क्रोधही जाता है । क्रोधही प्रजाके नाशका मूल है, सो ऐसे लोक नाशक क्रोधको मेरे समान पुरुष कैसे कर सक्ता है ? क्रोधी पुरुष कठिन बात बोलता है, और माननीय पुरुषोंका भी निरादर कर देता है; क्रोधी नहीं जान सक्ता, कि यह बात कहनेके योग्य है या नहीं । कोई ऐसा काम नहीं है, जिसे क्रोधी न कर सके । कोई ऐसी बात नहीं है, जिसे क्रोधी न कह सके; क्रोधी अबध कोभी मार सक्ता है, और बध की पूजा करसक्ता है; क्रोधी अपन जीवनको भी नष्ट कर सक्ता है । यहो सब दाप देख कर इस लोक और परलोकमें उत्तम कल्याणकी इच्छा करनेवाले महात्माओंने क्रोधको जीता है । हे द्रौपदी ! पाण्डतासे त्यागन योग्य उस क्रोधका हमारे समान पुरुष कैसे कर सकता है ? यही विचार कर हमें क्रोध नहीं बढ़ता । जो क्रोधीके ऊपर क्रोध नहीं करता, वह अपनका और दूसरका महाभयसे बचाता है, अतएव वह दानाकावय्य है । याद दुर्बल मूर्ख बलवान क्रोधोके ऊपर क्रोध करे, तो अपन शरीरका नाश करता है । हे द्रौपदी ! जो अनात्माजत् अपनी अत्माका नाश करता है, उसका स्वर्गवास नाश होता है, अतएव दुर्बलका उचित है, कि अपने क्रोधको वशमें रखे । जो विद्वान बलवान हान परभी लेश सहता है, और लेश देनेवालेको लेश नहीं देता, वह स्वर्गमें आनन्द करता है; अतएव जाननेवाले दुर्बल वा बलवान पुरुषको क्षमाही करने उचित है । हे कृष्ण ! क्रोधसे विजय करना, दोनों लोकोंमें प्रिय है; भूटसे मत्त अच्छा है और निर्लज्जतासे लज्जा अच्छी है । उस वृद्धन द्रौपदीसे भरे हुए साधुनिन्दित क्रोधको दुर्भीषणके

मारनेके निमित्त मेरे समान पुरुष कैसे कर सकता है ? जिसको दीर्घदर्शी पण्डित-लाग-तेजस्वी कहते हैं, निश्चय-करके क्रोध-उसके हृदयमें नहीं रहता । जो उत्पन्न-क्रोधको अपनी बुद्धिसे नाश करता है तत्त्वदर्शी विद्वान-लोग उसीको तेजस्वी कहते हैं ; हे सुशोणि । क्रोधी पुरुष कार्यको ठोक नहीं जान सकता ; क्रोधी पुरुष अकर्तव्य और मर्यादाको भी नहीं जान सक्ता है । क्रोधी पुरुष अवश्यको भी मार डालता है ; मान्य पुरुषोंको भी दुःख देता है ; अतएव उत्तम पुरुषको उचित है, कि क्रोधको दूर ही रखे । कार्यमें कुशलता, शत्रुओंका हानि-चिन्तन, शत्रुओंके जीतनेकी शक्ति, यह जो तेजके गुण है ; सो क्रोधी नहीं प्राप्त हो सकते । हे महाप्राज्ञे । जो पुरुष क्रोधको छोड़ता है, उसका तेज भली भांति बढ़ता है । तेजस्वी पुरुषका क्रोध समय-पर सहने योग्य नहीं होता । मूर्खलोग क्रोध-हीका तेज कहते हैं और मनुष्यमें रजोगुण लोकके नाशार्थ ही दिया गया है, अतएव उत्तम-चरण करनेवाले पुरुषको क्रोध छोड़ देना चाहिये । क्रोधी पुरुष अपने उत्तम धर्मसे नष्ट हो जाता है । हे आनन्दिते ! यदि मूर्खलाग उत्तम कामोंको नाश जाय, तो क्या हमारे समान पुरुष भी वैसे ही करें ? याद मनुष्यान् पृथिवीके समान क्षमा करनेवाले पुरुष न हों, तो साम्बहो न हों ; क्योंकि क्रोध विग्रहका मूल है । दुःखी पुरुष गुरुको भी दुःख दे और गुरुके मारनेपर भी गुरुको मारे इस प्रकार अधर्म फैलनेसे लोकका नाश होसक्ता है । गाला देनेपर दूसरेको गाली-दे, पीटनेसे पीट, मारनेसे मारे, पिताको पुत्र, पुत्रको पिता, पतिको स्त्री और स्त्रीको पति-क्रोधके वशमें होकर मार डाले । हे कृष्ण ! इस प्रकार लोकमें क्रोध फैलनेसे संसारमें जन्म होना बन्द हो सक्ता है । हे शुभानने ! जन्मका मूल मिल ही है । हे द्रौपदि । इस प्रकारका क्रोध होनेसे प्रजा भी ब्रह्म ही नष्ट हो सकती है, अतएव क्रोध

प्रजाके नाशका मूल है, और दुःखका कारण है, पृथिवीके समान क्षमावान पुरुष लोकमें दीखते हैं, अतएव प्रजाका जन्म और कल्याण होता है, हे सुशोभने । पुरुषको उचित है कि जगत्में क्षमा करता रहे, क्योंकि क्षमाहीसे जगत्में जन्म और कल्याण होता है । - जा पुरुष गाली सुनकर मार खाकर क्रोधी होनेपर भी बलवान् पुरुषको क्षमा करता है, जो पण्डित-उत्तम पुरुष प्रभाववान् होकर भी क्रोधको अपने वशमें रखना है, उसको अक्षयः स्वर्ग मिलता है । जो मन्द-बुद्धि क्रोधके वशमें रहता है, सो इस लोक और परलोकमें भी नष्ट होता है । हे कृष्ण ! क्षमावान् महात्मा काश्यपने क्षमावान पुरुषोंकी जो कथा कही है, उसका उदाहरण पण्डितलोग इसी स्थान पर देते हैं । - क्षमाही धर्म है, क्षमाही यज्ञ है, क्षमाही वेद है और क्षमाही सुननेका फल है । - जो पुरुष इसकी अच्छी प्रकार जानता है वही सब क्षमा करनेमें समर्थ है । - क्षमाही ब्रह्म है, क्षमा सत्य है, क्षमा ही और क्षमाही हिंसी ; क्षमा जय है, क्षमा ही पवित्रता है, और क्षमाहीसे जगत् स्थिर है । जो लोक वेद जाननेवाले ब्रह्मवेत्ता और तपस्वियोंकी मित्र हैं, क्षमावान पुरुष भी उनकी लोकोंको प्राप्त करता है । अग्निहोत्र कर्म करनेवाले पुरुषोंके दूसरे लोक हैं ; परन्तु क्षमावान पुरुषोंको परम-पूजायुक्त ब्रह्मलोक प्राप्त होता है । तेजस्वी पुरुषोंका तेज क्षमा ही है । तपस्वियोंकी ब्रह्म क्षमा ही है । सत्यवान् पुरुषोंकी क्षमा ही योग्य है । क्षमा ही इन्द्रियोंको वश करनेका फल है ।

हे कृष्ण ! ऐसी क्षमाकी हमारे समान पुरुष किस प्रकार छोड़ सकता है ? जिस क्षमामें ब्रह्म, सत्य, यज्ञ और लोक प्रतिष्ठित हैं । अतएव जाननेवाले पुरुषको सदा क्षमा ही करना उचित है । जब पुरुष क्षमा करता है, तब उनको ब्रह्म प्राप्त होता है । क्षमावानके

निमित्त यह लोक और परलोक सुखदायक है। इस लोकमें क्षमावान् पुरुषकी सम्मान और परलोकमें उत्तम गति प्राप्त होती है। जिस पुरुषकी क्षमाकी क्रोध नाश कर देता है, उसकी उत्तम लोक नहीं प्राप्त होती, इस हेतु क्षमा उत्तम वस्तु है। हे द्रौपदी ! क्षमावान् पुरुषोंकी यह कथा काश्यप मुनिने कही है, तुम यह सुनकर शान्त हो और क्रोध मत करो। क्षमा करनेसे शान्तनुपुत्र हमारे दादा भीष्म और देवकीपुत्र श्रीकृष्ण प्रशंसा करेंगे, गुरु गौणाचार्य, विदुर, कृपाचार्य, सञ्जय क्षमा ही की प्रशंसा करेंगे। सोमदत्त युयुत्सु, द्रोणपुत्र अश्वत्थामा और हमारे पितामह व्यासदेव क्षमाही की वर्णन करते हैं। इन सबके कहनेसे युद्धकी उद्यत राजा धृतराष्ट्र शान्त होकर हमको राज्य देंगे, ऐसा हमारी बुद्धिमें निश्चय होता है। यदि न देंगे तो लोभसे नष्ट हो जायेंगे। हे सुन्दरि ! मैं जैसा पहले निश्चय किया करता था, सोई भरतकुल नाशका यह दारुण समय प्राप्त हुआ है। दुर्योधन क्षमा करनेमें असमर्थ है; अतएव राज्यके योग्य नहीं है। मैं राज्यके योग्य हूँ, अतएव क्षमा करना भी मुझको उचित है,—यही धर्मज्ञोंका चरित्र है और यही सनातन धर्म है। मैं तत्त्ववचार करके क्षमा और लज्जाकी धारण करता हूँ।

२६ अध्याय समाप्त ।

द्रौपदी बाली, हे महाराज ! मैं उस परमे-
श्वर और प्रारब्धकी नमस्कार करती हूँ,
जिन्होंने आप दादासे प्राप्त राज्यकी प्राप्तिमें
आपकी बुद्धिको उलट दिया है। कर्मसे
यह उत्तम मध्यम और नीचयोनि अलग
होती है, अतएव कर्मही निश्चल है।
हमें मोक्षकी इच्छा होती है। जगतमें धर्म
नहीं है, क्षमा साधुता या दृष्ट कर्मसे
मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकता; अत-

एव कर्मही नित्य है। हे भरतवंशावतंश !
देखिये आप और आपके महातेजस्वी भाई-
लोग जिस दुःखके योग्य नहीं थे, उस कठिन
दुःखकी प्राप्त हुई हैं। हे भारत ! मैं जानती
हूँ कि राज्यके समयमें और इस समय भी
धर्मसे प्रिय आपकी और कुछ नहीं है, आप
जीवनसे भी धर्मको अधिक मानते हैं; इसकी
देवता, ब्राह्मण और गुरुलोग भी जानते हैं,
कि आपका राज्य और जीवन धर्महीके
निमित्त हैं। मुझे यह निश्चय है कि आप
भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, और मुझको
भी त्याग सकते हैं; परन्तु धर्मकी नहीं
होड़ेंगे। मैंने आर्य पुरुषोंके मुखसे यह सुना
था कि धर्मरक्षक राजाकी धर्मही रक्षा करता
है, परन्तु जान पड़ता है, कि वह धर्म आपकी
रक्षा नहीं करता। हे पुरुषसिंह ! आपकी बुद्धि
सदैव धर्ममें इस प्रकार रहती है, जैसे छाया
पुरुषके पीछे फिरा करती है। हे महाराज !
सब पृथ्वीका राज्य प्राप्त होने पर भी आपने कभी
अपने समान पुरुषोंका अपमान नहीं किया, न
कभी आपकी नीच पुरुषोंकी तरह अभिमान
कदापि उत्पन्न हुआ। हे महाराज ! आपने
निरन्तर ही स्वाधा और पूजासे ब्राह्मण, देवता
और पितरोंकी तृप्ति की है। हे भारत ! आप
मोक्षकी इच्छा रखनेवाले सन्नप्राप्ति और
गृहस्थ ब्राह्मणोंकी सदा इच्छानुसार तप
करते रहते हैं। हे महाराज ! जो मैं दासियों
समेत मोनेके पात्रमें ब्राह्मणोंको भोजन कराती
थी, सो आज वनवासियोंसे लोहेके पात्र प्राप्त
करती हूँ, आपके पास कोई ऐसी वस्तु नहीं
है, जो ब्राह्मण लोगोंकी दीजाय। हे राजन् !
यह जो आपके घरमें शान्तिके निमित्त बलि-
वस्तुदेव कर्म होता है, इसमें ब्राह्मण और
यतिधियोंकी देकर जो वन्दता है, उसीको
खाकर आप जीते हैं। कान्य और नैमित्तिक
पद-नहित यह और औरभी कर्म राज्य नष्ट

होनेपर, चारोभाइयोंके सहित इस महावनमें वास करके भी आप करते है, इससे जान पड़ता है, कि धर्मकी आपने अभीतक नहीं छोड़ा। हे महाराज ! मुझको एकसन्देह है, कि आपने अश्वमेध, राजसूय, और गोसव पुण्डरीक आदि महायज्ञ करके ब्राह्मणोंको वज्रत दक्षिणा दी है, और जुएमें विपरीत बुद्धि धारण करके राज्य, धन, भाई और मुझे भी हारा है। हे कोमल सीधे कहनेवालोंमें श्रेष्ठ ! सत्यवादी ! आपकी बुद्धि किस प्रकार जुएमें लगी थी ? हे महाराज ! मुझको अत्यन्त शोक होता है, और मनको ग्लानि प्राप्ती है, जब आपको और अपनेको इस दुःखमें पड़े हुए देखती हूं। ईश्वरके वशमें लोक स्थित है, अपने वशमें नहीं। ऐसे स्थानपर इस पुराने इतिहासका उदाहरण देते हैं। पहले कर्मके बीजका आश्रय लेकर ईश्वरही सुख, दुःख, प्रिय और अप्रिय फलका विधान करते है। हे नरवीर ! हे राजा ! जिस प्रकार कटावतनी नचानेवाले पुरुषके वशमें रहती है, वैसेही यह जगत्भी ईश्वरके वशमें रहता है। हे भारत ! ईश्वर आकाशके समान सबमे व्याप्त होकर कल्याण और पापके फलको यथायोग्य देते है। जैसे पक्षी डोरमें बंधकर अवश हो जाता है, वैसेही जगत्भी अपना और दूसरेका स्वामी नहीं है। जैसे नाकमें रस्सी डालनेसे बैल बेवश होजाता है, जैसे पानीकी धारामें आकर बृच्च अपने समूहसे टूटकर बहने लगता है, और उसका बहनाभी उसके वशमें नहीं है, यह सब परमेश्वरकी आज्ञासे होता है ; मनुष्य अपने अधोन होकर कदापि किसी समयमें कोई कार्य नहीं करता है। यह मूर्ख जीव अपने सुखका स्वामी नहीं है। ईश्वरहीकी प्रेरणासे स्वर्ग और नरकको प्राप्त करता है। हे भारत ! जिस प्रकारसे तिनकेका अग्रभाग बलवान वायुके वशमें होकर झिलता है वैसेही समस्त प्राणी लोगभी ईश्वरके

वशमें रहते हैं। ईश्वर उत्तम और नीच कर्म करते हुए जगत्में व्यापक होकर घूमते है, परन्तु किसीको दिखाई नहीं देते। यह शरीर परमेश्वरका स्थान होनेपरभी हेतुमात्र है, इसीके द्वारा ईश्वर शुभ और अशुभ कर्म कराते है, देखो, परमेश्वरकी कैसी माया है। कि एक प्राणी दूसरे प्राणीको मायासे मोहित होकर नष्ट करता है। जैसे सूर्यकी किरण सब ओर फैलती है, वैसेही प्राणीलोगभी सर्वत्र फैले हैं, परन्तु तत्त्वदर्शी मुनियोंने जैसा उपदेश किया है, यह लोग उससे उलटही आचरण करते है। मनुष्यलोग जिन जिन कामोंको दूसरे प्रकार मानते हैं, ईश्वर उनही कामोंको दूसरे प्रकारसे करते है, और कभी नहीं भी करते। जिस प्रकारसे चेतना-रहित, चेष्टाशून्य काष्ठके काष्ठसे, पत्थरकी पत्थरसे और लोहेकी लोहेसे काट देने है, है युधिष्ठिर ! उस प्रकारसे वह सबका प्रपितामह आपही उत्पन्न होनेवाले भगवान् ब्रह्मा प्राणियोंको प्राणियोंसे नष्ट करते है। जिसप्रकारसे बालक खेलौनोंकी बनाकर खेलता है, वैसेही परमेश्वर भी समस्त प्राणियोंका अपनी इच्छानुसार संयोग और वियोग करा खेलते है। हे राजा ! जिस प्रकारसे सामा पुरुष क्रोधके वशमें होके आचरण करते है, अथवा जैसे माता और पिता आचरण करते हैं, वैसे सब प्राणियोंमें ब्रह्मा आचरण नहीं करता क्योंकि देखते है कि उत्तम आचरणयुक्त लज्जवान पुरुष खानेसे भी दुःखी और चिन्ता पीड़ित रहते है, और दुष्टलोग आनन्द करते हैं,—देखिये आपको यह आपत्ति और दुर्घोष धनको सुख हो रहा है। हे कुन्तीनन्दन ! यह देखकर मैं विषम-दर्शी ब्रह्माकी निन्दा करता हूँ। आर्य शास्त्रको छोड़नेवाले, क्रूर, अधर्म और लोभी धृतराष्ट्रपुत्रको लक्ष्मी देकर ब्रह्मा का फल पावेंगे ? यदि किया हुआ कर्म कर्ताके छोड़ और किसीको प्राप्त नहीं होता, तो पा

कर्मका फल ईश्वरहीको होता होगा, क्योंकि वही सबका प्रेरक है। यदि किये हुए कर्मका पाप कर्ताको नहीं प्राप्त होता, तो इसमें बलही कारण होगा, अतएव सुभी दुर्बलोंका बड़ा शोच है।

३० अध्याय समाप्त।

यधिष्ठिर बोले, हे याज्ञसेनि ! तुमने जो उत्तम विचित्र और कीमल बचन कहा, सो हमने सुना परन्तु यह सब वेदके विरुद्ध होनेसे नास्तिकोंका वाच्य है। हे राजपुत्री ! मैं कर्मके फलकी इच्छासे नहीं दौड़ता हूं, मेरा यही प्रण है,—देता हूं, यह वस्तु देने योग्य है, यज्ञ करता हूं और यह करने योग्य है। हे कश्यप ! मैं घरमें रहनेवा कहीं, शक्ति अनुसार यही कर्म करता हूं और यही पुरुषको करने योग्य है, चाहे फल हो वा न हो। हे सुश्रीणि ! मैं गानेशले कर्मोंकी उलझन करके उत्तम पुरुषोंका कर्म देखकर धर्म करता हूँ, परन्तु उसके फलकी इच्छा नहीं रखता। हे कृष्ण ! मैं अपने स्वभाव और मनसे धर्मकी धारण किया है, जो पुरुष धर्मका व्यापार करता है अर्थात् धर्म करके इसके फलकी इच्छा करता है, वह हीनपुरुष धर्मज्ञानियोंमें नीच माना जाता है। जो धर्मको दोहता चाहता है अर्थात् उसके फलकी इच्छा करता है, और जो पापी नास्तिकतामें धर्म करके उसमें शङ्का करता है, वह धर्मके फलका नष्टो प्राप्त होता। मैं ठीक प्रमाणसे कहता हूँ कि तुम धर्ममें शङ्का करो अर्थात् धर्ममें शङ्का करनेवाले अप्रती नाश पाते होती है। जिस दुरात्मा धर्ममें शङ्का करके ज्ञाप प्रणीत पुस्तकोंमें लिखे, वह वेदसे शूद्रके समान सब लोकोंसे नीचे गिरा हुआ होता है। हे मनास्वान ! धर्मका उत्तम ज्ञान उत्पन्न करने के लिये बालक भी योग्य हो

परन्तु धर्म करनेवाले वृद्धोंमें गिना जाना चाहिये। जो पापी, मन्दबुद्धि शास्त्रको छोड़कर धर्ममें शङ्का करता है, वह शूद्र और चोरीसे भी नीचे गिना जाता है। देखो तुमने अपनी दृष्टिसे देखा कि, महातपस्वी महात्मा धर्महीसे बद्धत कालतक जोते हैं। देखो व्यास, वशिष्ठ, मैत्रेय, नारद, लोमश और शुक्र आदिको लेकर और भी अनेक महर्षि लोग धर्महीसे ज्ञानको प्राप्त हुए हैं। तुम इन सबकी प्रत्यक्ष देखतो हों, कि यह लोग दिव्य याग सहित शाप और अनुग्रहमें समर्थ देवतोंसे भी उत्तम हैं। हे पापरहिते ! यही लोग प्रत्यक्ष और आगम (प्रमाणविशेष) की वृद्धिसे जगतके आदिमें करने याग धर्मको वर्णन करते हैं। हे कल्याणि ! हे राणि ! यही सब विचारकर तुमको उचित है, कि मूर्ख मनसे ब्रह्मा और धर्ममें आशेष आर शङ्का न करा, बालक सब पण्डितोंकी पागल जानता और मानता है। धर्ममें शङ्का करनेवाले पुरुषकी उपमा भी मूर्ख बालकके अतिरिक्त और किसीसे नहीं हो सकती। मूर्ख-लाग अपनेहोकी प्रमाणमानके धर्मका अपमान करते हैं और समझते हैं, कि यह जगत् इन्द्रियोंके सुखहीके निमित्त है, और धर्मका कुछ नहीं मानते हैं। जो पापी, कृपण सदा धनहीको चिन्ता किया करते हैं, और धर्म करनेमें शङ्का करते हैं, उनका प्रायश्चित्त भी नहीं है। जो पापी काम और लोभके बशमें हाकर प्रमाणको छोड़के वेद और शास्त्रको निन्दा करता है, सो नरकमें पड़ता है। हे कल्याणि ! जो उत्तम बुद्धिवाला पुरुष शङ्का-रहित होकर सदा धर्मही करता रहता है, सो उत्तम अन्तरहित सुखका भागता है। जो मूर्ख वेदके प्रमाणको नाश कर धर्मका नहीं पालता और शास्त्रकी मन्त्रादाका नहीं मानता, वह अनेक जन्मोंमें भी सुखको नहीं प्राप्त होता। हे भार्गवि ! जिसकी वेदका प्रमाण और

श्रेष्ठाचार माननीय नहीं है, उसको न इसलोक और न परलोक में सुखप्राप्त होता है। हे कृष्ण ! जिस धर्मको महात्मा लोग करते हैं, उसमें तुम श्रद्धा मत करो। यह प्राचीन धर्म सर्वज्ञ सर्वदर्शी महात्मा ऋषियों ने कहा है, हे द्रौपदि ! स्वर्ग जानेकी इच्छा करनेवाले मनुष्यको धर्मही एक ऐसी नाव है जैसे समुद्र-से पार जानेवाले बनियेको नौका। हे अनन्ति ! यदि धर्म करनेवाले पुरुषोंसे क्रिया हुआ धर्म फल-रहित होता, तो यह जगत् प्रतिष्ठाशून्य अधकारमें डूब जाता। यदि तप, ब्रह्मचर्य, यज्ञ, पढ़ना, दान, साधुता यह निष्फल होता तो कोई भी मोक्षको प्राप्त न होता, सब पशुजीविकासे जीते कोई भी विद्या और धनको प्राप्त न करता, कोई भी हमसे पहिला, उनसे पहिला और पहिलेसे पहिला धर्म न करता। यदि धर्ममें वञ्चना होती, और यदि क्रिया निष्फल होती, तो ऋषि, देवता, गन्धर्व असुर और राक्षसलोग समर्थ होकरभी आदर सहित धर्मको क्यों करते ? हे कृष्ण ! यह सबलोग ब्रह्माको फलके देनेवाले जानकर धर्म करते हैं, और ऐसाही सनातन नियम है। सो धर्म और अधर्म फलसे रहित नहीं है, क्योंकि जगत्में विद्या और तपका फल दोखता है, इस लिये धर्म वा अधर्मको निष्फल नहीं कहा जाता। हे कृष्ण ! तुम अपने जयज्ञा स्मरण करो और यह भी बताओ, कि प्रतापवात् शृष्ट्युन्म कैसे उत्पन्न हुए हैं। हे सुचिस्मिन् । धीरपुरुष कर्मके फलको पाता है, और थोड़ेहीमें सन्तुष्ट भी हो जाता है, इसका उदाहरण जो हमने दिया सोही वज्रत है। मूर्ख, निर्बुद्धिलोग वज्रत फल पाकरभी सन्तुष्ट नहीं होते, क्या उनको मरने के पश्चात् धर्मका कुछ कल्याण प्राप्त होगा ? हे भामिनि ! वेद सुननेवालोंके सत्कर्म और पापियोंके कुकर्म फलकर उदय उन्नति या विनाश देवताकोभी गुप्त रहता है, अर्थात्

वेभी कठिनासे जान सकते हैं। जो पुरुष यह जानते हैं, कि यह सब प्रजा, इनही विषयोंमें मोहित रहती है, उनको सहस्र कल्पोंमें भी कल्याण लाभ नहीं होता। यह विषय देवों करके रहित है और देवताकी माया वज्रत गूढ़ है, इसको आशा रहित, शान्त, तपसे पापको जलाये हुए ब्राह्मणलोग मनकी प्रसन्नतासे देखते हैं। फल न देखनेसे धर्म और देवताओंमें श्रद्धा नहीं करनी चाहिये। दुष्टतासे रहित होकर यत्न करके सदा यज्ञ और दान करना चाहिये; ब्रह्मनि अपने पुत्रोंसे कहा था, कि धर्मका फल इसी लोकमें है। यह सनातन धर्म है, इसका अर्थ कश्यप ऋषिने जाना था। हे कृष्ण ! यह सब जानकर तुम्हारा संशय कुहरके समान नष्ट होना चाहिये। यह सब सत्य है, यह निश्चयकर तुम नास्तिक भावको त्याग दो। सब-जगत्के बनानेवाले ईश्वरकी गाली मत दो। उनका ध्यान करो, उनको नमस्कार करो। तुम्हारी बुद्धि नष्ट न होनी चाहिये। हे कृष्ण ! जिसको कृपा और भक्ति है, सो पुरुष मोक्षको प्राप्त करता है, तुम उस उत्तम देवताका अपमान कदापि मत करो।

३१ अध्याय समाप्त ।

द्रौपदी बोली, हे कुन्तीनन्दन ! मैं कदापि धर्मका अपमान नहीं करती हूँ, और जगत्के स्वामी परमेश्वरका अपमानभी नहीं करती हूँ। हे भारत ! पर तु दुःखसे आकुल हूँ, अतएव निरर्थक बकती हूँ, और पुनःभी उकूगी, आप प्रसन्नचित्त होकर सुनिये। हे शत्रुनाश ! यह निश्चय है, कि जाननेवालेको कर्म करनाही चाहिये, क्योंकि विना कर्म किये स्थावरो (नहीं चलनेवाले) को छोड़कर कोई भी जीता नहीं रह सकता। हे युधिष्ठिर ! जिस दिन गायका वच्चा उत्पन्न होता है, उस

दिनसे धीमीना, यह सब कर्मोंके वृत्तियोंको प्राप्त होता है। हे भरतकुलसिंह जङ्गमो (चलनेवालो) में विशेषकर अपने कर्मके फलोंको पानेकी इच्छा इस लोक और परलोकमें करते है। हे भारत। सब प्राणी अपनी प्रारब्धको भोगते है, और कर्मके फलोंको जगत्के सामने प्रत्यक्ष भोग करते है। ईश्वर और धर्मभी कर्मके अनुसारही फल देता है। सब प्राणी अपने अपने प्रारब्धको भोगते है। देखो यह वगुला भी जलमें अपने कर्मका फल भोग रहा है। विना कर्म किये झर किसी प्राणीको प्रवृत्ति कहीं नहीं होती, अतएव पुरुषको उचित है, कि कर्म करे और उसका नाश न करे। सो तुम खानि मत करो, उभी कर्मको करो। जो कर्म करता है, वह फलकी पाता है, उसका कार्य और धनवृद्धि होती है। यदि हिमाचलमेंसे निरन्तर हिम काटा ही जाय, तो एक दिन वह भी नष्ट हो सकता है। यदि जगत्में कर्म न किया जाय तो सब प्रजा नष्ट हो जाय, और यदि कर्मका फल न हो, तो यह सब प्रजा विध्वंसित न हो। कहीं कहीं कर्मका फल मनुष्योंका नहीं भी देखता है, क्योंकि लोकमें कोई भी उलटी वृत्तिका नहीं प्राप्त होता। जगत्में जो मन्त्र और आपवाहोसे कर्मसाध को निश्चय करते है, प्रारब्ध नास्तिक हठवादी है, यह दाना कर्मोंसे बुद्धका प्रधान मानते है। जो मूर्ख कर्मोंसे भरसे विना यत्न किये सुखसे जी रहेते है, वह वैसेही नष्ट होते है कि कदा घड़ा पानान पड़नेसे। जो बुद्धि समर्थ होने परभी उपाय नहीं करते, दुर्जन अनायके समान वृद्धत काल की वृत्ति जिस किसीको अकस्मात कहीसे भी मिल जाता है, उसकी लोग हठ कहते है। जो कर्मोंसे किसीका यत्न नहीं करता है। हे भरतकुलसिंह पुरुष जिसका नाम प्रारब्ध

कहते है, जो देवताको आराधनसे होती है, निश्चय करके उसहीकी देवभी कहते है। जिस फलको जगत्में पुरुष अपना कर्म करके प्रत्यक्ष प्राप्त करता है उसे पुरुषार्थ कहते है। हे पुरुषोत्तम जो कर्म बिना कारणके स्वभावहीसे होजाय, उसे स्वाभाविक जानो। इस प्रकारसे हठ देव, स्वभाव और कर्मसे पुरुषकी जो जो फल प्राप्त होते है, सब पूर्वजन्मके फल है। सब प्राणियोंको ईश्वर ब्रह्मा भी उन हेतुआसे पुरुषोंके कर्मोंको अलग करके प्राणियोंकी भुगवाते है। इस जगत्में पुरुष जो कुछ शुभ और अशुभ कर्म करता है, वह सब पूर्व जन्मका फल है। इसका कारण देहही है। ब्रह्मा प्राणियों कर्मके अनुसार फल देते है, और वह उसका अवश होकर भोगता है। हे कुन्तीनन्दन। परमेश्वर सब प्राणियोंको उनही कर्मोंकी भुगवाते है और यह भी अवश होकर उसहीको भोगता है, जो इसके किये हुए है। हे वीरपुरुष। बुद्धपूर्वक पाँहले मनमें निश्चय करता है, पश्चात् उसहीका कर्मसे करता है अतएव इसका कारण जोत हो है। हे पुरुषासह। मे कमाका अग्नवानमें अरुमर्थ ह, परन्तु घर और नगर अच्छा वा बुरा मित्रना यह कर्मका फल है। बुद्धिमान पुरुषका इसकी साधिका उपाय अपनी बुद्धिसे एसीही निश्चय करना चाहिये—जैसे तलमें तेल, गायमें दूध और काठमें अग्नि है। पश्चात् अनक कारणोंसे उसको सिद्धिमें पुरुषकी प्रवृत्ति होती है, परन्तु सिद्धि कर्मके फलके अनुसारही होती है। विशेष कर्ममें यह ज्ञान होता है, कि यह कुशलसे किया है, अतएव कर्ताकी साधुतापूर्वक प्राप्त हुआ है, और अमुक कर्म अशुभतासे किया गया है। यदि पुरुष कर्मसाध विषयमें कारण न होता, तो उन्ने यत्न और तड़ाग आदि कर्मका फल प्राप्त न होता, और कहींका किसी शुभ शिष्ट न होता। पुरुष कर्म

करनेमें प्रधान है, अतएव कर्मकी सिद्धि और नाशमें उसहीकी प्रशंसा और निन्दा होती है । सब कर्मोंकी कोई हठसे, कोई प्रारब्धसे और कोई कोई उपायसे कर्मकी सिद्धि बतलाते हैं, यह तीन प्रकारका भेद कहा है । कोई कोई कहते हैं यह सब ठीक नहीं है, क्योंकि हठ और दैव दोनोंही अदृश्य हैं, किन्तु जगत्में अर्थ प्राप्ति कुछ हठ और कुछ दृश्य अर्थसे होती है, इससे यह निश्चय हुआ, कि अर्थसिद्धिमें प्रारब्ध, हठ और स्वभाव दोनोंही कारण हैं । तत्वदर्शी पण्डित लोग जानते हैं, कि इन तीनोंको छोड़कर चौथा कारण और कुछ नहीं है । ईश्वरभी प्राणियोंकी इसहीके अनुसार दृष्ट वा अनिष्ट फल देता है । यदि ऐसा न हो, तो कोईभी पुरुष कृपण न हो । यदि प्रारब्ध न हो, तो पुरुष जिस जिस कामकी इच्छासे जो कर्म करता है वह सबही सिद्ध होने चाहिये । जो पुरुष ऊपर कहे तीनों उपायों के द्वारा अपने कार्योंकी सिद्धि और असिद्धि नहीं देखते हैं, वह लोग मरों जड़ देहके समान जड़ है । भगवान् मनुका यह निश्चय है, कि सदाही कर्म करना चाहिये, क्योंकि कर्म न करनेसे पुरुष चेष्टाहीन हो जाता है । हे युधिष्ठिर ! इस लोक में कर्म करनेसे फलसिद्धि अवश्यही होती है, परन्तु आलसी लोग इसकी नहीं मानते । हे राजेन्द्र ! यदि कर्म करनेसे सिद्धि न हो, तो उसकी जाने, कि यह हमारे पूर्वकर्मफलका प्रायश्चित्त था, अब इसके करनेसे हम उद्धार हो गये । जो आलसी सोता रहता है, वह अवश्य दरिद्री होता है, और जो उद्योगी कर्म करता है, वह अवश्य उसके फलकी प्राप्ति करके सुख भोगता है । जो संशयरहित धीरलोग है, वे लग संशय-युक्त लोगोंकीही अर्थरहित जानते हैं, निःसंशय व्यक्तिकी कदापि अर्थरहित उहीं समझते हैं । सो आज कल हमलोग अतिशय करके अनर्थमें पड़े हैं, इस अनर्थ निवारणकी उपाय यदि

आप कुछ कर्म करते होते, तो यह अवस्था हम लोगोंको न होती । यदि आपके अनुष्ठित कर्मसे कार्यसिद्धि न हो, तो वही, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव और आपको भी राज्य अप्राप्तिका सम्पूर्ण रूपसे प्रमाण कहके बोध होगा, तो राज्यकी आशा त्यागके उद्वेग रहित हो सकते हैं । जैसे अन्यान्य लोगोंका कर्म सफल होता-दोखता है, वैसेही हम लोगोंका भी होसकता है, परन्तु बिना कर्म किये पहिले वह कैसे निश्चय बोध होगा ? कर्म करनेवालोंही कर्म करने पर उसके उचित फल जान सकता है । जैसे हलसे भूमिकी जोतकर किसान बीज बोता है, और दैवकी कारण समझके चुप चाप बैठा रहता है, यदि वृष्टि न हो तो किसानका क्या दोष है ? इससे ज्ञात होता है, कि दूसरे कारणसे भी फलकी सिद्धि होती है । बुद्धिमान् पुरुषकी उचित है, कि यह मेरा अपराध है, और यह नहीं है, यह विचारकर आत्माको दोष न दे । मैं ही भारत ! इस कर्मके करनेमें हमकी सिद्धि नहीं होगी, ऐसा ससम्भार पुरुषकी पहिलेही कर्मसे निवृत्त नहीं होना चाहिये, क्योंकि इसमें दो कारण दूसरे होते हैं, सिद्धि, असिद्धि, प्रवृत्ति और अप्रवृत्ति इत्यादि । अनेक भाव मिलकर कर्मकी सिद्धि हुआ करती है । यदि पुरुषमें गुण ही न हो, तो कर्मका फल थोड़ा अथवा नहींभी होता है, और जब आरम्भ ही न किया जाय, तो फल और गुण दोनोंही नहीं दीखते हैं । जो बुद्धिमान् पुरुष देश, काल, उपाय, मङ्गल और स्वस्तिकी कर्म सिद्धिमें शक्तिके अनुसार प्रयोग करता है, उसकी सिद्धि प्राप्त होती है । इन सब कर्मोंमें पराक्रमही उपदेश करनेवाला है, अतएव पराक्रमही कर्मका कारण दीखता है । बुद्धिमान् पुरुष जहांपर अनेक गुणोंसे अपने कल्याणकी देखे, तहां शान्तिहीसे कर्मसिद्धिका

उपाय करे। हे युधिष्ठिर ! यदि वह कर्म शान्तिसे न सिद्ध हो, तो शत्रुके दुःख और परदेशके समयको देखता रहे, ऐसा करनेसे समुद्र और पर्वतकी जीत सकता है, पुरुषोंकी क्या कथा है। प्रारब्धसे युक्त पुरुष सदाही शत्रुके छिद्रको देखता है, वह अपनेको और शत्रुको दोनोंहीकी ऋण राहित करता है। पुरुषको उचित है, कि अपनेको कभीभी छोटा न समझे, क्योंकि अपना निरादर करनेसे कभीभी उत्तम कर्मकी सिद्धि प्राप्त नहीं है भारत। इस प्रकार यह कर्मसिद्धिकी होती। व्यवस्था कही, परन्तु इसकी सिद्धि कालके अनुसारही होती है। हे भरतकुलसिंह ! मेरे पिताने एक पण्डित ब्राह्मण को पहले समयमें घरमें रखा था, उसीने यह सब कहा था। जब ब्राह्मण मेरे भाइयोंकी वृहस्पतिकी कही हुई नीति पढ़ाता था, तब मैंने भी घरमें अपने भाइयोंके पास बैठकर यह सब सुना था। हे युधिष्ठिर ! जब मैं पिताकी गोदमें सुननेको इच्छासे बैठी थी, तब उस ब्राह्मणने सात्वता सहित सुभको यह सब पढ़ाया था।

३२ अध्याय समाप्त ।

श्रीशस्यायनमुनि वीले, द्रोपदीका यह वचन सुनकर परम क्रोधी भीमसेन क्रोधकर राजाके पास आकर ऐसा कहन लगे, सत्पुरुषोंके योग्य धर्मसे युक्त राज्यको प्राप्त कोजिये ; धर्म, अर्थ और कामसे हीन होकर हम लोगोंकी अपेक्षियोंके समान वनमें रहना उचित नहीं। यदि अपने हमारे राज्यकी धर्म, साधुता और योग्यता नहीं लिया केवल कपटसे लेलिया है, तब हमारे राज्यको इसही प्रकारसे भिड़का भोजन सियार, बलवानका रक्षक जलका भास हुता लेता है।

इन्द्रको भी नहीं थी, परन्तु आपकी कर्तव्यसे हमलोगोंके जोतेही हमारा राज्य इस प्रकारसे छिन गया, जैसे लूलेका देरफल और लंगड़ेकी गाय छिन जाती है। हे भारत ! आपकी धर्मलाभमें निश्चय युक्त जानकर आपकी प्रीतिकी इच्छासे हमलोग इस महा दुःखको सहते हैं। हे भरतकुलसिंह ! आपकी आज्ञासे अपने शरीरकी वशसे करके हमलोग अपने मित्रोंको दुःखी और शत्रुओंको आनन्दित कर रहे हैं। आपकी आज्ञाके अनुसार हम लोग जा धृतराष्ट्रके पुत्रोंको नहीं मारते यह हमारे पापका फल प्रत्यक्ष हो रहा है। आप अपनी इस हरिणोंके समान दुर्दशाकी देखिये। हे राजन् ! यह दुर्बलाकी दशा है, कदापि बलवान् इसमें नहीं पड़ते। इस दशाको कृष्णा, अर्जुन, अभिमन्यु, समस्त यज्ञ्य वंशी, मैं, नकुल और सहदेव कदापि अच्छी नहीं कहते। हे राजन् ! आप धर्म धर्म ऐसंहो बकते हुए सदा व्रतीसे दुःखी होकर ग्लानि पाकर नपुसकोंकी जीवकामें पड़े हैं। दुष्ट असमर्थ मनुष्य लोग अपने प्रयाजनका नाश करनवाली ग्लानिकी प्राप्त करके लक्ष्मीप्राप्त करनेकी इच्छा करते हुए अपने प्रिय कार्योंको करते हैं। हे राजन् ! आपता तत्वदर्शी हैं और हम लोगोंके पुरुषार्थका देखनेवाले हैं, सो आप निर्लज्जता धारण करके अनर्थकी ओर दृष्टि नहीं करते। धृतराष्ट्रके पुत्रलोग हम लोगोंको क्षमा करने पर असमर्थ समझते हैं, इस दुःखसे युद्धमें मरना अधिक नहीं है, क्योंकि यदि युद्धमें हमलोग धर्मके सहित सब मर जायें तो अच्छा होगा, क्योंकि मरकर उत्तम लोकोकी प्राप्त करेंगे। हे भरतर्षभ ! अथवा उन सबको मारकर हम लोग समस्त पृथ्वीको प्राप्त करेंगे, तभी हमारा कल्याणही होगा, अधिक कीर्तिकी रखनेवाले देरका ददला लेनेकी इच्छाएँ अपने धर्ममें

स्थिर हम लोगोंको सर्वथा युद्धही करना चाहिये, दूसरोंके राज्य छीन लेने, पर, अपने निमित्त युद्ध करना भी प्रशंसाही है, निन्दा नहीं ! हे राजन् ! जिससे मित्र और अपनो हानि हो, वह धर्म नहीं है, क्योंकि उससे अधर्म बढ़ता है, हे तात ! जिस प्रकारसे मरे हुएको सुख और दुःख छोड़ देते हैं, तैसेही धर्ममें दुर्बल नित्य अधर्मी पुरुषको धर्म और लय छोड़ देते हैं । जिसका धर्म धर्महीके लिये है, वह पण्डित नहीं किन्तु लोभको भागी है, और वह धर्म इस प्रकार नहीं जानता तैसे अन्धा सूर्यकी किरणको । जिसका कर्तव्य केवल अपनेही वास्ते है, वहभी अनर्थका पण्डित है, जैसे वनमें जीवकी रक्षा करनेवाला राजाका नौकर । जो निन्दित पुरुष अत्यन्त लोभी महालोभ करता है, और मोक्ष तथा कामको नहीं देखता है, वह ब्राह्मणके मारने-वालेके समान मारहालनेके योग्य है । जो निरन्तर कामहीको देखता है, अर्थ और धर्मपर दृष्टि नहीं देता, उसके मित्र, अर्थ और धर्म सब नष्ट हो जाते हैं । अर्थ उस धर्मसे हीन पुरुषका नाश होजाता है, जैसे पानी नष्ट होनेसे मछली मर जाती है । इस कारण पण्डितलोक धर्म और अर्थको नष्ट नहीं करते हैं, जैसे अरणीसे आग उत्पन्न होती है, तैसेही इससेभी काम उत्पन्न होता है । धर्मसे अर्थ और अर्थसे धर्म होता है, इन दोनों का ऐसाही सम्बन्ध है, जैसे मेघ और समुद्रका । धनकी प्राप्तिमें जो इच्छा होती है, वही सङ्कल्प कहता है, इसका कुछ शरीर नहीं है । हे राजन् ! धनको चाहवाला पुरुष बढ़नेवाले धर्मकी चाहता है, और कामको चाहनेवाला मनुष्य धनकी चाहता है, कामके सिवाय और किसी चीजको नहीं देखता, क्योंकि कामसे दूसरा काम सिद्ध नहीं हो सकता । पण्डितोंने कहा है, कि जैसे काष्ठसे जलकर भस्मही

होता है, वैसे कामसे दूसरा काम सिद्ध नहीं होता । हे राजन् ! जिस प्रकारसे वधिव प्रक्षियोंको पकड़कर मारता है, तैसेही अधर्म भी प्राणियोंका नाश करता है । जो दुर्बल काम और लोभके वशमें होकर, धर्मकी ओर ध्यान न दे, वह इस लोक और परलोकमें सब प्राणियों करके मारने योग्य है । हे राजन् ! आप कामके संग्रहको अच्छी प्रकार जानते हैं, और इसके उत्पत्ति एवं नाशकोभी जानते हैं । हे राजन् ! उसके नाश और प्राप्ति के विच्छेदसे बूढ़ा और मरनेसे जो अनर्थ होता है, सो हम लोगोंमें प्राप्त है । पांचों इन्द्रिय मन और हृदय इनकी विषयोंमें चलानेसे जो आनन्द होता है, मेरी बुद्धिमें उसेही काम कहते हैं, यहभी कर्महीका फल है । इस प्रकारसे अर्थ, धर्म और कामकी विचारकर पुरुषको उचित है, कि अर्थ, धर्म और कामोंमेंसे एकहीकी सेवा न करे, किन्तु सदैव सबकी धारण करता रहे । शास्त्रको यही विधि है, कि दिनके पहले भागमें धर्म, मध्यमें धन और अन्तभागमें कामको चिन्ता करना चाहिये ऐसीही सब दिन व्यवहार करना उचित है । और यहभी शास्त्रकी विधि है, कि अवस्थाके पहले भागमें काम मध्यमें धन, और अन्तमें धर्म करना उचित है । हे वक्ताओमें गेष्ठ ! समय जाननेवाले पण्डितको उचित है, कि अर्थ, धर्म और कामकी समयके अनुसार करें । हे महाराज कुरुनन्दन ! सुख चाहनेवाले पुरुषोंके लिये लोभ ही सबसे उत्तम पदार्थ है, बुद्धिको स्थिर करके उसहीका उपाय करना चाहिये । हे राजन् ! आप शीघ्रही मोक्षका उपाय कीजिये वा राज्य प्राप्तिमें यत्नवान् हजिये ; क्योंकि रोगीके समान जो नर केवल दुःखहीका साधन है, मैं आपके धर्म और चरित्रकी जानता हूँ, परन्तु आपको योग्य समझकर धर्मसे प्रेरित होकर आपसे मित्र लोग ऐसा

कहते हैं । हे राजन् । इसलोक और पर-
लोकों का दान, यज्ञ, पण्डितों की पूजा, वेद पढ़ना
और माधुता यही उत्तम बलवान धर्म है ।
हे राजन् । हे पुरुषसिंह ! इन सब धर्मों को
और सब गुण रहने पर भी धनहीन पुरुष नहीं
कर सकता । राज्य धर्म से होता है, धर्म से
उत्तम और कोई वस्तु नहीं है और धर्म
बिना अधिक धन के नहीं हो सकता । हे
राजन् । धन भीख मागने अथवा नपसकता से
कदापि प्राप्त नहीं हो सकता, वह केवल
धर्मबुद्धि ही से मिलता है । हे पुरुष शार्ङ्गल
आपका भिक्षा मागना अनुचित है । क्योंकि
यज्ञ ब्राह्मण का कर्म है । इससे धन प्राप्त कर-
ने का उपाय कीजिये, क्षत्रिय की भीख मागना
वनिय और शूद्र की जीविका करना अनुचित
है । क्षत्रिय का धर्म केवल अपना बल ही है ।
हे कन्तीनन्दन । अपने धर्म का ग्रहण करके
धृतराष्ट्र के पुत्र तथा अन्य आर्य और शत्रुओं को
मर्ते स्रज लेकर नाश कीजिये । विद्वान्, बुद्धि-
मान महात्माओं में जचे वनिये, क्योंकि आप
भीषता की योग्य नहीं हैं । हे राजेन्द्र । जाति
और सनातन धर्म को जानिये, आप अत्यन्त
तनसे उत्पन्न हुए हैं, जिससे सब जगत् हरता
है । हे महापराज । आपके लिये ब्रह्मान प्रजा
पालन ही सनातन धर्म बनाया है वनवास नहीं ।
हे कन्तीनन्दन । इस लिये आप हीन होकर
प्रजापति की आज्ञा को तोड़ कर मनुष्यों को अपने ही
धर्म से बर्बाद कर रहे हैं । हे इन्द्रनन्दन ।
आप इस शिथिलता का शङ्क कर क्षत्रिया-
न का हृदय जगत् कर बल की ग्रहण करके
अपनी परमा धारण कीजिये । हे राजन् ।
किसी राजान केवल धर्म से पृथ्वी को नहीं
सुखी करता, बल्कि शत्रु की प्राण जिया, उसे
शत्रु कर के बर्बाद करके जीवित को पकड़ता है
और उसे अपने धर्म से भीषणों को भोजन देकर
अपनी शक्ति को बढ़ावा देता है । पण्डित

उत्पन्न भये और खूब बड़े हुए भाई दैत्यों की
देवतों ने कुलही से जोता था । हे राजशार्ङ्गल ।
बलवान ही को सब पृथ्वी मिलती है, यह जान-
कर आप परम कुल करके भी शत्रुओं की
जीतिये । हे राजन् । अर्जुन के समान धनु-
र्दारी और मेरे समान गदाधर कोई पुरुष
न है, सौर न होगा । हे राजन् । हे पाण्डव ।
अत्यन्त बलवान पुरुष भी बल से युद्ध कर
सकता है, अतएव आप प्रमाण और
उत्साह से शत्रुओं से सन्धि करने के विचार में मत
पड़िये, बल ही धन का मूल है, और अनुत्साह
इससे उलटा अर्थात् अनर्थ का मूल है, जैसे जाल में
वृक्ष की छाया सुखदाई नहीं होती । हे कन्ती-
नन्दन ! धन की इच्छा करने वाले पुरुष की
बीज के समान धन को छोड़ना भी होता है ;
इससे आपका कुछ भी सन्देह न हो, कि जहा
उन्नति न हो तहां अनर्थ भी अर्थ के समान होता
है । वहा प्रतिज्ञा नहीं करनी चाहिये, वह
प्रतिज्ञा केवल गधे की खुजलाने के समान होती
है । हे मनुष्येन्द्र ! जो पुरुष इस प्रकार से
प्रतिज्ञारूपी थोड़े धर्म को छोड़ देता है, सो
बहुत बड़े धर्म को प्राप्त होता है, और वही
यज्ञ भी कृष्ण जाता है । पण्डित लोग मित्र
साधन शत्रु की मित्रों से भेद कर देते हैं, तब
मित्रों से पृथक् हुए मूर्ख शत्रु की वशमे कर लेते
हैं । हे राजन् । बलवान पुरुष भी बल ही से
युद्ध करता है, क्योंकि उद्यम और प्रियवास से
राजा के वशमे प्रजा नहीं होती । हे राजन् !
जिस प्रकार से बृहत्सी मधुमची इकट्ठी होकर
मधु लेने वाले पुरुष की व्याकुल कर देती है, उसी
प्रकार से दुर्बल लोग भी इकट्ठे होकर बलवान
शत्रु को मार सकते हैं । हे महापराज । जिस
प्रकार सूर्य अपनी किरण से प्रजा की रक्षा और
नाश करता है, तैसी आप भी सूर्य के समान
करिये । हे राजन् । विधिपूर्वक प्रजा का
पालन ही सनातन धर्म है, जो हमारे पितामहाने

किया था । हे राजन् । अत्यन्त तपस्या करने-से भी क्षत्रियों वैसे गति नहीं मिलती, जैसे युद्ध में विजय पाने अथवा मरने से मिलती है । आपकी इस आपत्तिकी देखकर जगत में यही निश्चय हुआ है, कि सूर्य से तेज और चन्द्रमा से चादिनी भी छूट सकती है । हे राजन् । आपकी प्रशंसा और दुर्व्योधनकी निन्दाके अर्थ अनेक स्मर इस जगत में अलग अलग हो रहे हैं । हे राजन् । आपने जो मोह, कृपणता, लोभ, भय और कामके कारण से असत्य नहीं कहा, इसहीकी अधिक प्रशंसा होकर ब्राह्मण और कौरव लोग इससे जितना पूर्वकी भित्तकर कह रहे हैं ; सत्यसन्धता इसहीकी कहते हैं । हे राजन् ! पृथिवीके प्राप्त करने में राजा जो कुछ पाप करता है, सो सबके पीछे अधिक दक्षिणावाले यज्ञोंको करने से नष्ट होजाते हैं । जिस प्रकार अन्धकारसे चन्द्रमा छूटता है, इसही प्रकारसे राजा भी ब्राह्मणोंका सहस्रों गाव देकर, पापसे छूट जाता है । हे कुन्तिनन्दन, युधिष्ठिर । पुर और राज्यवासी प्रायः सबही बूढ़े और बालक मिलकर आपकी प्रशंसा कर रहे हैं । जिस प्रकार चमड़ेकी कुप्पीमें दूध, जैसे दोगले में वेद, जैसे चौर में सत्य और जैसे स्त्री में बल होता है, वैसेही दुर्व्योधन में राज्य भी है, इस समय स्त्री और बालक भी सबके आगे ऐसाही कहते हैं । हे शत्रुनाशन ! हम लोगोंके सहित आप इस अवस्थाको प्राप्त हुए अतएव हम सब मरे हुए के समान हैं ; जिनके देखते आप इस उपद्रव में पड़े हैं । हे महाराज ! सो आप सब शस्त्रोंसे युक्त रथ पर चढ़ करके ब्राह्मणोंको धन देनेकी इच्छा करके वेग सहित युद्धकी चलिये । सब अस्त्रोंके जाननेवाले दृढ़धनुषयुक्त भाद्योंके समेत ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन सुनके इसही समय हस्तिनापुर पर चढ़ाई कीजिये । जिस प्रकार हवासुरके मारनेवाले इन्द्र अपने भाई मरुतोंके समेत अपने शत्रुओंकी जीतते हैं,

हे महाबल कुन्तीनन्दन । वैसेही आप भी धृतराष्ट्रके पुत्रोंको मारकर लक्ष्मीकी प्राप्ति कीजिये । गिद्धके पंखोंसे युक्त सापके समान विषसे भरे हुए गाण्डीव धनुषसे कुटे हुए वाणोंके स्पर्शको जगत में कौन सह सकता है ? हे भारत । जगत में कोई मनुष्य, हाथी, घोड़ा ऐसा नहीं है, जो वेगसे लंगी हुई मेरी गदाकी चोटको सह सके । क्या हम लोग सृष्ट्रय केकय और वृष्णिकुलसिंहकी सहायता लेकर युद्धसे राज्यकी प्राप्ति नहीं कर सकते हैं ? हे राजन् । हम लोग श्रीकृष्णका बल लेकर और महासेनाके सहित होकर क्या शत्रुके हाथ में गयी हुई पृथ्वीको नहीं ले सकते हैं ?

— ३३ अध्याय समाप्त । —

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महानुभाव सत्यव्रत, अजातशत्रु, महाराज युधिष्ठिर भीमसेनका यह वचन सुननेके पीछे धैर्यके साथ ऐसा कहने लगे । युधिष्ठिर बोले, हे भारत । तुम जो वचन रूपी वाणोंसे मेरे शरीरकी पीड़ा देते हुए क्षीण करते हो, सो निःसन्देह तुमकी उचितही है, मैं तुम्हारी निन्दा नहीं करता, क्योंकि मेरीही दुष्टतासे तुम लोग दुःख में पड़े हो ; मैं धृतराष्ट्र पुत्रसे राज्य लेनेकी इच्छा करके जुआ खेलने लगा था, परन्तु दुष्ट कपटी शकुनिने दुर्व्योधनके सुखकी इच्छासे मुझसे छल किया, वह पापी पर्वत देशीय शकुनी महाकली है । उसने सभाके बीच में मायारहित मुझकी पासेसे जीत लिया । हे भीमसेन । इसही निमित्त तुम वन में वसे हो । सभामें शकुनिके विषम और सम पासोंकी इच्छाके अनुसार देखकर अपने वशमें रहनेकी शक्ति मुझमें न रही, क्योंकि क्रीध पुरुषके धैर्यकी नाश कर देता है । हे भीमसेन । शरीर, पुत्रपार्थ, अभिमान और वीर्यसे बंधने पर वशमें नहीं रह सकता,

हम तुम्हारे वचनकी निन्दा नहीं करते, परन्तु यह कहते हैं, कि यह बात ऐसीही होनी थी। हे भीमसेन ! उस धृतराष्ट्रके पुत्र राजा दुर्योधनने राज्यकी इच्छा करके हमकी इस दुःखमें डाला और दासभी बनाया। जहां द्रौपदीही शरण हुई थी, तुम और अर्जुनभी इस बातकी जानते हो कि हमकी सभामें दूसरी-वार बुलाकर कहा था, कि हे राजपुत्र ! हे अज्ञातगती ! अब एकही दावपर यह पण करो कि यदि तुम हारो तो भाइयोंके सहित अपनी इच्छानुसार वारह वर्ष वनमें वास करो, और तेरहवें वर्षमें सब भाइयोंके सहित गुप्त रूपसे रहो, हे भारत ! हे तात ! तुमको गुप्तरूपमें रहते हुए हमारे दूत ढूँढ़ेंगे, यदि कहीं देख लेंगे, तो पुनः वारह वर्ष इसही प्रकार पुनः वनमें रहना होगा, हे कुन्तीकुमार ! आप निश्चय करके इसकी समझ लीजिये ! हे भारत ! यदि आप हमारे दूतोंको कुलकर उनकी पहचानमें न आवेंगे तो हम कौरवोंकी सभामें सत्य कहते हैं, कि वे पाँचों नदीयुक्त देश आपहीके होंगे। हे भारत ! यदि हमलोग आपसे हारें तो ऐसीही वनमें वासकर भोग करेंगे, उस राजाने कौरवोंके आगे सभामें सुभसे ऐसा कहा था, तब नीच जुआ हुआ, उसमें हमलोग हार गये और सब वनकी निजाले गये ; इस प्रकार इन देशोंमें दुःखसे दक्षिणोंके समान वनमें घूमते हैं, इतने परभी दुर्योधनकी शान्ति प्राप्त न हुई और अपने वश-वर्ती मन्त्रियोंकी हमारे सारनेकी इच्छासे वे वनमें हीके दुःखकी सन्तुष्ट किया। हमने परिणतोंके आगे सन्धि करके कौन-कौनकी जीत सकता है, जो धर्मको नाशकर देव भ्रष्ट करता है, उस राज्यसे उत्तम पुरुषका क्या भय है ? हे वीर ! जिस समय उसने हमारी परिणतोंको मारा था, उसी समय तुम्हें इस प्रकार करना उचित था, जब तुम्हें

मेरा हाथ जलाते हुए अर्जुनने निवारण किया था, तभी तुम्हें क्या पाप हुआ था ? तुमने प्राप्तकालकी कृपा और पुरुषार्थकी जानकर आपत्तिकी स्वीकार करकेभी उस समय क्या नहीं कहा था ? अब समयके पश्चात् हमको अतिशय कठिन वार्ता क्यों बोलते हो। मैं द्रौपदीकी दुःखित देखकर जहरके रस पीये हुएके समान तप होनेपर भी शान्त हूँ। हे भरतवीर ! हम कौरवोंकी सभाके बीचमें प्रतिज्ञा करके उसकी नष्ट करनेमें समर्थ नहीं हैं। अतएव तुमको उचित है, कि अपने सुखके समयकी प्रतिज्ञा करो ; जैसे माली फलके पकनेके समयकी देखता है। जब वीर अपने शत्रुकी फलपुष्पके सहित दृढ़ होनेपर नाश करता है, तो उसकी अपने वलसे महागुण प्राप्त होता है, और वही वीरलोकमें जीवित रहता है ; उसही वीरकी जगतमें समस्त लक्ष्मी प्राप्त होती है। शत्रु उसहीसे नीचे होते हैं, जैसे देवता इन्द्रकी सेवा करते हैं, तैसेही मित्रलोग-भी जीविका पाकर उसकी सेवा करते हैं। मेरी इस सत्य प्रतिज्ञाकी सुनो, मैं अमृत, जीवन, राज्य, पुत्र, यश, धन और सब वस्तु-आंकी धर्मकी एककलाके समानभी नहीं समझता हूँ।

३४ अध्याय समाप्त ।

भीमसेन बोले, हे महाराज ! सन्धि होनेके कालकी प्रतिज्ञा करना तो ठीक है, परन्तु कालरूपी अप्रमेय पक्षीसे और सर्वनाशक अनन्त प्रवाहसे कौन बच सकता है ? आप प्रत्यक्ष देखते हैं, कि सब मनुष्य कालके बन्धनमें बंधे हैं, और काल भी प्रत्यक्ष है, मनुष्यलोग फल और फेनके समान अनित्य हैं, हे कुन्ती-नन्दन ! जिस प्रकारसे सुरमा रुईके लगनेमेंभी गिर जाना है, तैसेही पुरुषकी आयु थोड़ी समयमेंही नष्ट होती है। तब पुरुष अपने

काथ्योंकी किसप्रकार कर सकता है ? या तो पुरुष अपने आयुके कालको ठीक जाना ही सो समयकी प्रतीक्षा कर सकता है, हे राजन् । समयकी प्रतीक्षा करते करते हम लोगोंकी अवस्थामें से तेरह वर्ष कम ही जायंगे और मरने का समय समीप आजायगा, यह आप जानते हैं कि शरीरवालोंकी मरना अवश्य है ; अतएव मरनेके पहलेही राज्य प्राप्ति का यत्न करना अवश्य है । जो भूमि भाररूप पुरुष इस मेरी बातको अनुचित मानता है, सो बैरका बदला न लेकर गायके समान दुःखी होता है । जो पुरुष अल्पबल वीर्य होनेपर भी अपने बैरका बदला नहीं लेता, उस वृथा जन्मवालेका जन्म वृथाही है । आप तो नाथ, सुवर्णके स्वामी है, और आपकी कीर्ति पृथुके समान है, अतएव युद्धमें शत्रुको मारकर अपने हाथसे जीते हुए धनको भीग कीजिये, हे राजन् । हे शत्रुनाशन । छली बैरियोंको मारकर जो शीघ्रही नरकमें जाता है, वह नरकभी स्वर्गके समान है । हे महाराज । क्रोधसे उत्पन्न हुआ दुःख अग्निके दाहसेभी कठिन है, जिससे जलकर मैं न दिनको और न रातको सोता हूं । दुःखियोंमें जो सब लोकके धनुर्धारियोंका अपमान करता है, जो सब धनुष खींचनेवालोंमें श्रेष्ठ है, सो अर्जुन अपने स्थानमें दुःखी सिंहके समान पड़ा रहता है, निश्चय यह अपने हृदयकी अग्निको बड़े हाथीके समान हृदयहीमें रखता है । नकुल सहदेव और वीर-प्रसविनी बूढ़ी माता आपहीके प्रियकेवास्ते मूर्ख और गंगेके समान बैठी हैं, यज्ञियोंके समेत सब वाम्भवलोग आपहीका प्रिय चाहते हैं । केवल मैं और द्रौपदी ही दुःखसे पीड़ित हूं, मैं जो कुछ करता हूं, सो सब आपका प्रिय ही है । हम सब दुःखसे व्याकुल और युद्धकी इच्छा रखनेवाले हैं । हे राजन् । इससे अधिक पापयुक्त

आपत्ति और क्या होगी, कि नीच थोड़े बलवाले दुष्टलोग हमारे राज्यको छीन कर भीग करते हैं ? हे परन्तप । हे राजन् । आप शोलरूपी दोषसे घिनमें पड़े हुए लज्जाके वशमें होकर केशोंको सहते है, इसकी कोई भी प्रशंसा नहीं करता । हे राजन् । जिसप्रकार वेदपाठी पण्डित मूर्ख और मन्दके समान आचरण करता है, तैसेही आपकी बुद्धि भी द्रव्यनाशिनी हो गयी है । यह बुद्धि परमार्थदर्शी क्षत्रियोंकी नहीं होनी चाहिये । तुम घृणासे युक्त ब्राह्मणके समान बने हो, तब क्षत्रियोंमें जन्म तुमने क्यों लिया था ? क्योंकि इस जातिमें प्रायः कठोर बुद्धिवाले पुरुष जन्म लेते हैं । आपने मनुके कहे हुए राजधर्म, सबही सुने हैं, हे महाराज पुरुषसिंह । जैसे आप दुष्ट, मूर्ख और मन्दके समान आचरण करते हैं तैसेही आपकी बुद्धि भी द्रव्यनाशिनी हो गई है । यह बुद्धि परमार्थदर्शी है, हे पाण्डुनन्दन । जैसे सूर्य आकाशमें छिप कर नहीं घूम सकता है, वैसेही जगत्में विदित आप भी अपना रूप छिपाकर जगत् में नहीं रह सकते हैं, और फूलके समेत महाशाल वृक्ष जैसे वृद्धत जलवाले देशमें नहीं छिप सकता तैसेही आपभी नहीं छिप सकेंगे । जिसप्रकार सफेद हाथी जगत्में नहीं छिप सकता, तैसेही अर्जुन भी छिपा हुआ नहीं रह सकता, यह सिंहके समान बलवान् बालक नकुल और सहदेव किसप्रकार छिपकर रहेंगे ? हे पार्थ । यह जगत् विदित वीर राजपुत्री उत्तम कीर्तिवाली द्रौपदी कैसे छिप कर रहेगी, हे राजन् । यह समस्त प्रजा सुभक्तों की बालकपनसेही जानती है ; सो मैं अपना छिप कर रहना भी ऐसेही जानता हूं, जैसे मेरु पर्वतको छिपाना । हे राजन् । हमने अनेक राजा और राजपुत्रोंकी उनके राज्यों से निकाल दिया है, वह अब दुर्योधन के सङ्गी हुए हैं । सो वह भी अब

शान्त न जाँग, वहलोग अवश्यही दुर्धनकी प्रिय कामनासे हमारे विपरीत आचरण करेंगे, वहलोग अवश्य हमलोगोंकी दूढ़नेके निमित्त क्रिपे झूटोंकी भेजेंगे। जब वेलोग हमको जान लेंगे, तब हमको महामय होगा, अभीतक हमको वनमें तेरह महीने बीते है, सो यही तेरह वर्षके समान समझने चाहिये; पण्डित-लोगोंने कहा है, कि जैसे सोमकी प्रतिनिधि प्रतिका होती है, वैसेही एक वर्षका प्रतिनिधि एक मास होता है। अथवा साधुओंके वाहन बेलकी भोजन देनेसे झूठ बोलनेका पाप नष्ट होता है, अतएव हे महाराज! आप शत्रु-ओंके मारनेमें यत्न कीजिये, क्योंकि सब शत्रियोंकी युद्धसे अधिक धर्म कोई नहीं कहा है।

२५ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, पुरुषोंमें सिंह शत्रु-नाशन हन्तीपुत्र युधिष्ठिर भीमसेनके ऐसे वचन सुनकर सांस लेकर विचारने लगे, कि मैंने सब धर्म आपत्ति और सुखमें वर्णोंके निश्चय सुने है। परन्तु जो उनको देखता है, वही सबको देखता है, मैं कठिनतासे जानने योग्य धर्मकी गतिको अच्छे प्रकार जानता हूँ? तब मेरुके समान दुर्धनको किस प्रकार पीस सकता हूँ? इस प्रकार एक मुहूर्त मात्र ध्यान करके और अपने मनमें निश्चय करके भीमसेनसे अशित बात कहने लगे।

युधिष्ठिर बोले, हे महाबाहो! हे भारत! शत्रुओंके सर्व जाननेवाले भीम! तुमने जो कहा! सो सब ऐसीही है, परन्तु मेरे इन शत्रुओंकी सुनी, हे भीमसेन! हे भारत! जो सब धर्म केवल माहमहीसे किये जाते हैं, वही ही दुखही देते हैं। हे महाबाहो! जो सब धर्म पूरे विचारके उत्तम पुरुषोंसे ही प्राप्त होते हैं, उनका प्रयोजन अवश्य

सिद्ध होता है, परन्तु प्रारब्ध उसमेंभी रहती है, तुम जो केवल चञ्चलता और बलके अभिमानसे इस महाकर्मका आरम्भ करना चाहते हो, उससे मेरा विचार सुनो, देखो, उनकी और भूरिश्रवा, शल्य, बलवान जलसन्ध, भीष्म, द्रोण, कर्ण, बलवान अश्वत्थामा और दुर्धन आदि धृतराष्ट्रकेपुत्र यह सबही दुखसे जीतने-योग्य, अस्त्र शस्त्रोंकी जाननेवाले, सदैव युद्ध करनेवाले हैं। और हम लोगोसे दुःखित राजा और राजपुत्र कौरवोंसे मिले हैं, उनसे उनका प्रेम बढ़ा बढ़ गया है, वह सब लोग जैसा दुर्धन का हित करेंगे, वैसा हमारा नहीं। वह लोग धन और बलसे पूर्ण पुत्र और मन्त्रियोंके समेत सब भोगोंसे सयुक्त अपनी अपनी मात्राके अनुसार अलग अलग होकर युद्धमें अनेक यत्न करेंगे उनको दुर्धनने अधिक माना है, अतएव मुझे निश्चय होता है, कि वह लोग युद्धमें अपना प्राणतक भी देंगे। यद्यपि भीष्म, द्रोण और कृपाचार्यकी वृत्ति उनमें और हममें समान है, तथापि मेरी बुद्धिमें वहलोग भी अवश्यही राजपिण्ड देंगे, अतएव वह लोग अपने दुःखसे देने योग्य प्राणको भी युद्धमें देंगे। हे महाबाहो मेरी बुद्धिमें वह लोग सब शस्त्रोंके जाननेवाले हैं। इन्द्रके सहित देवता भी उनको नहीं जीत सकते। उनमें भी कर्ण सदाही क्रोध करनेवाला युद्धमें लोग नव अस्त्रोंका पण्डित अंगेश कवचसे सयुक्त जीतने योग्य नहीं है। हे भीम! इन नव महा-वीरोंकी युद्धमें विना जीते हुए महायज्ञोन तुम दुर्धनको किस प्रकार मार सकते हो? हे वृकोदर! मैं इसी बातके शीघ्रमें और कर्णका हस्त-लाघव और सब धनुर्धारियोंमें अधिकता विचारता हूँ रात और दिन नहीं नीता हूँ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, महाराज! यह वचन सुनकर और नव टीक समन्वयतामान्य होके भीमसेन चुप हो गये। जहाँ पाण्डुपुत्र

युधिष्ठिर और भीमसेन इस प्रकारसे बात कर रहे थे, तहां सत्यवतीके पुत्र महायोगीश्वर व्यासदेव आये, आकर पाण्डवोंसे यथायोग्य पूजा पाकर कहनेवालोंमें श्रेष्ठ व्यासदेव युधिष्ठिरसे ऐसा कहने लगे ।

व्यासदेव बोले, हे युधिष्ठिर ! हे महाबाहो ! मैं तुम्हारे हृदयकी बातकी जानता हूँ, यही बिचाकर तुम्हारे पास शीघ्रतासे आया हूँ । हे भरतर्षभ ! भीष्म, द्रोणाचार्य कृपाचार्य, दुर्योधन, अश्वत्थामा और राजपुत्र दुःशासनसे जो भय तुम्हारे हृदयमें उत्पन्न हुआ है, हे शत्रुनाशन ! उसको मैं विधिपूर्वक कर्मसे नाश करूंगा, तुम उसको सुनकर बुद्धिकी स्थिर करके अपने कर्मसे ठोक करो । हे राजेन्द्र ! उसको करके तुम अपने दुःखोंको नाश करो, तब पराशरके पुत्र महात्मा व्यासदेव युधिष्ठिरकी एकान्तमें ले जाकर उत्तम अर्थ सहित वचनकी कहने लगे । हे भरतसत्तम ! तुम्हारे परम कल्याणका समय आया है, धनुर्द्वारी अर्जुन युद्धमें सब शत्रुओंकी जीतेंगे । मेरी दी हुई मूर्तिमती सिद्धिकी ग्रहण करो । इस विद्याका नाम मति है, तुमको दुःखी जानकर देता हूँ, जिसकी प्राप्त करके महाभुज अर्जुन सिद्ध करेगा । अस्त्र शस्त्र लेनेके निमित्त इन्द्र और शिवके पासभी जा सकेगा, हे पाण्डव ! इसके तप और पराक्रमसे अर्जुन वरुण, कुबेर और यम आदिक देवतोंकीभी देख सकेगा । यह महात्मा नर नामक ऋषि है ; नारायण सदाही इनके सहायक है ये पुराने सनातन अजेय, और अच्युत देवता है, यह महाबाहु इन्द्र आदि लोकपाल और शिवसे शस्त्र लेकर बड़े बड़े कर्मकी सिद्ध करेंगे । हे पृथिवीनाथ ! हे कुन्तीपुत्र ! अब आप इस वनकी छोड़कर किसी दूसरे वनमें, जो आप लोगोंकी प्रिय हो, उसमें निवास करें, क्योंकि एक स्थानमें बद्धत दिन तक रहना अच्छा नहीं, और समस्त

ऋषिलोगभी घबड़ा जाते हैं, हरिन, वृक्ष, और औषधियोंकाभी नाश हो जायगा, क्योंकि तुम अनेक ब्राह्मणोंकी भोजन देते हो ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि इस प्रकारसे सत्यवतीके पुत्र बुद्धिमान व्यासने कहकर पवित्र धर्मराजको विद्या दो और लोकके तत्वकी जाननेवाले भगवान व्यासदेव युधिष्ठिरको आज्ञा देकर वहीं अन्तर्ज्ञान हो गये । महात्मा युधिष्ठिरने केवल मुखहीसे उस विद्याकी स्मरण कर लिया था, अतएव बराबर स्मरणही करते रहे । तब व्यासदेवके वचनसे प्रसन्न होकर दैतव्यसे सरस्वतीके तटपर वाले काम्यक वनकी चले । हे महाराज ! उनके सङ्गही जिस प्रकार इन्द्रके पीछे ऋषिलोग चलते हैं, तैसेही शिवा जाननेवाले सहस्रों ब्राह्मण उनके पीछे चले । हे भरतर्षभ ! अनन्तर महात्मा पाण्डवलोग अपने मन्त्रों और दल वलके समेत काम्यक वनमें निवास करने लगे । हे राजन् ! वे लोग धनुर्वेदका अभ्यास करते हुए वेदकी सुनते हुए शृङ्गाणोंसे हरिणोंका मारकर विधिके अनुसार पितर और देवतोंकी तर्पण करते हुए कुछ दिन तक वहां बसे ।

३६ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, हे पुरुषसिंह जनमेजय ! किसी दिन बैठे हुए धर्मराज युधिष्ठिरने महात्मा व्यासकी प्रशंसा करके कुछ हंसकर धर्म जाननेवाले अर्जुनकी हाथसे छूकर शान्ति पूर्वक ऐसा कहा । महात्मा धर्मराज वनवाससे दुःखित अर्जुनको देखकर सुहृत् मात्र ध्यान करते रहे ; अनन्तर एकान्तमें ऐसा कहने लगे ; युधिष्ठिर बोले, हे अर्जुन ! इस समय भीष्म, द्रोण, कृप कर्ण और अश्वत्थामा चारों चरणसे धनुर्वेद उपस्थित हैं । वह लोग दैव, ब्राह्म और मानुष अस्त्र प्रयोगकी यत्न और चिकित्साके समेत पूर्णरूपसे जानते

हैं। उन सबलोगोंकी दुर्योधनने खूब सेवा करी है; दुर्योधनने उन सबकी विभाग करके मन्तृष्ट किया है, और गुरुके समान मानता है। दुर्योधनकी प्रीति सब योद्धाओंसे अधिक है, आचार्योंकी उसने मन्तृष्ट किया है, अतएव वह लोग उसकी शान्ति चाहते हैं। वहलोग युद्धके समयमें अपनी शक्तिको उठा न रखेंगे। इस समयमें खान, वन, समुद्र, नगर और गांवके सहित सब पृथ्वी दुर्योधनके वशमें है। तुम हमारे अत्यन्त प्रिय हो और यह बोझभी तुम्हारे ही ऊपर है। हे शत्रुनाशन! इस समय जो करनेके लायक काम है, सो तुमसे कहते हैं, कि हे तात! कृष्णद्विपायने मुझे यह मन्त्र दिया है, जिसका प्रयोग करनेसे यह समस्त जगत् प्रकाशित होता है, हे तात। तुम उसी मन्त्रको लेकर उत्तम समय पाकर उग्र तप करके देवताओंके प्रसादको प्राप्त करो। हे भरतर्षभ! तुम धनुष, कवच और खड्गको धारण करके मुनिके समान होकर अपने जानेका स्थान किसीकी न बताते हुए उत्तरकी दिशाकी चले जाओ। हे धनञ्जय! इन्द्रके पास सब दिव्य अस्त्र हैं, क्योंकि वृत्वासुरसे हरकर देवताोंने सब अस्त्र इन्द्रको दे दिये थे, तुम उन सब अस्त्रोंको एकही स्थानमें पाओगे। तुम इन्द्रकी उपासना करो, वह तुमको सब अस्त्र देगा। मैंने तुमको दीक्षित किया, तुम भी चले जाओ।

श्रीकृष्णायनजी बोले, महात्मा धर्मराज बुध्विहारे ऐसा कहकर अर्जुनको वह मन्त्र दिया और उनकी विधिपूर्वक दीक्षा दी। अर्जुन वृद्ध भाई बुध्विहारे छोटेभाई वीर अर्जुनकी जानेकी आज्ञा दी, अर्जुन धर्मराजके आज्ञा पाव इन्द्रके देखनेको इच्छासे पर्वत पर उठ्यो और ले कवच, तलवार, धनुष और पद्म हवनके द्रव्यसे अर्जुनकी मुखा कर सम्मलेकर हनराष्ट्र-

पुत्रोंके मारने और चलनेकी इच्छासे महावाह्य अर्जुन धनुष लेकर आकाशकी ओर देखने लगे। कुन्तीपुत्र अर्जुनकी धनुष लेकर जाते हुए देखकर ब्राह्मण सुसिद्ध और अदृश्य देवता कहने लगे, हे कुन्तीपुत्र! तुम जो चाहते हो, उसे शीघ्र प्राप्त करो, ऐसा कहकर ब्राह्मणलोग अर्जुनको जय आशीर्वाद देने लगे और बोले, कि हे कुन्तीपुत्र मन्त्र साधन करो, अवश्य तुम्हारीही विजय होगी। शालजे समान कंधावाली वीर अर्जुनको जाते हुए देखकर सबके मनकी ग्रहण करके द्रौपदी कहने लगी।

द्रौपदी बोली, हे कुन्तीनन्दन! तुम्हारे उत्पन्न होनेके समयमें तुम्हारे निमित्त कुन्तीने जो कुछ चाहा था, सो सिद्ध हो, और तुम जो कुछ चाहते हो सोभी सिद्ध हो। हम चातुर्यो-के वंशमें भिक्षासे जीनेवाली कोई उत्पन्न न हो, ब्राह्मणोंकी नमस्कार है। मुझको यह बड़ा दुःख है, कि जो पापी दुर्योधनने गौ कर्कके हंसी की थी, उससेभी यह अधिक दुःख है, कि उसने जो सभाके मध्य अनेक अशुक्त बात कही थी, उससेभी तुम्हारा वियोग अधिक दुःख जान पड़ता है, कि आजसे तुम्हारे भाई लोग तुम्हारे ही कम्पोंकी कथाको-कह कहके समय वितारेंगे। कुन्तीनन्दन। हम लोगोंकी आशामें भोग, धन और जीविकासे सन्तोष नहीं होगा, क्योंकि हमारा सबका सुख तुम्हारे ही अधीन है, और तुमही वृद्ध कालके लिये परदेशी होते हो। हे कुन्तीनन्दन! हमारा जोनामरना राज्य और ऐश्वर्य तुम्हारे ही अधीन है, जाओ, और कुशलको प्राप्त करो। हे पापराजिन! हे महाबल! तुम किसी बलवानसे विरोध भग करना, शीघ्र विजयके निमित्त जाओ; देख्यो तुम्हें वश है, मैं परनेहार और कर्मकी नमस्कार करती हूँ। हे श्री कृष्ण, हे विद्वान्, हे पार्वती, हे लक्ष्मी और सरस्वती उद्दमर

मार्गमें तुम्हारी रक्षा करें, तुम वृक्षोंके पूजने-
वाले और बड़े भाईके आज्ञाकारी कुशलसे
आओ, इस निमित्त मैं वसु, रुद्र, सूर्य, विष्णु-
देव और साध्योंकी शरण जाती हूँ, वे तुम्हें
शान्ति प्रदान करें, हे कुन्तीनन्दन । आकाश
और भूमिमें फिरनेवाले तुम्हारा कुशल करें,
दिव्य प्राणी आदिको लेकर और जो विघ्न-
कारी ज तु है उन सबसे ईश्वर तुम्हारी
कुशल करें ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, यश भरी द्रौपदी इस
प्रकार अर्जुनको आशीर्वाद देकर चुप हो
रही । अनन्तर भाई और धैर्यकी प्रदर्शना
करके महाबाहु अर्जुन उत्तम धनुषकी धारण
करके चल दिये । इन्द्र योगधारी तेजस्वी बल-
वान अर्जुनके चलनेसे मार्गके जितने प्राणी थे,
सब हट गये । हे जन्मजय । शत्रुनाशन
अर्जुन तपस्वियोंसे सेवित अनेक पर्वतोंको
देखते हुए दिव्य, पवित्र और देवतोंसे युक्त
हिमाचल पर्वत पर पहुँचे, महात्मा अर्जुन
योगसे युक्त होकर वायुके समान गति धारण
करके एकही दिनमें पवित्र हिमाचल पर्वत पर
पहुँच गये । अनन्तर हिमाचल और गन्ध-
मादनसे पार होकर निद्रासे शून्य रातदिन
चलते हुए अनेक कठिन पर्वतोंको पार हुए,
अनन्तर जब अर्जुन इन्द्रकील नामक स्थान
पर पहुँचे तो आकाशवाणी हुई कि यहाँ
ठहरो । उसको सुनकर पाण्डुनन्दन अर्जुन
चारों ओर देखने लगे, तो वृक्षकी जड़में बैठे
हुए एक तपके तेजसे प्रकाशमान पिङ्गल वर्ण-
युक्त जटाधारी था, उस महातपस्वीने आगे
खड़े अर्जुनको देखकर कहा, हे तात ! तुम
धनुष, कवच, बाण, अगुलित्वाण और तरकस
धारण किये क्षत्रियोंके धर्ममें स्थित कौन हो,
और यहाँ क्यों आये हो ? यह स्थान आनन्द-
क्रोधसे रहित तपस्वी शान्त ब्राह्मणोंका है,
यहाँ शस्त्रका क्या काम है ? यहाँ धनुषसे कुछ

प्रयोजन नहीं, यहाँ कभी युद्ध नहीं होता ।
हे तात ! तुम इस धनुषको फेंक दो, क्योंकि
तुम परम गतिको प्राप्त हुए हो । हे
वीर ! जिस प्रकार कोई दूसरा पुरुष नहीं
बोल सकता, तैसीही तेज और बलसे भरा
हुआ बह ब्राह्मण किञ्चित् हंसते हुए
अर्जुनसे बोला, परन्तु अर्जुनका कुछ भी
धैर्य और निश्चय उसके कहनेसे चलित
न हुआ । अनन्तर वह ब्राह्मण प्रसन्न होकर
हंसता हुआ अर्जुनसे ऐसा बोला, हे
शत्रुनाशन । तुम्हारा कल्याण हो, मैं इन्द्र
हूँ, जो तुम्हारी उच्छा ही सी वरदान मांगी;
तब कुरुकुलके बढ़ानेवाले शूरवीर अर्जुन
इन्द्रकी बात सुनकर ऐसा बोले, हे भगवा ।
मेरी यही इच्छा है और यही वरदान मुझको
दीजिये, कि मैं आपसे सब शस्त्रोंको प्राप्त करूँ ।
तब प्रसन्न होकर हंसते हुए इन्द्र बोले, हे धन-
क्षय ! इस स्थान पर पहुँच कर शस्त्रोंसे तुम
कौनसा कार्य करोगे ? दूसरा वरदान मांगी,
क्योंकि तुम परमगतिको प्राप्त हुए हो, अतएव
जिस लोकमें जानेकी इच्छा हो, कहो । ऐसा
सुनकर इन्द्रसे अर्जुन बोले, हे देवराज ! लोभ
और कामके वशमे होकरभी मैं देवपद अथवा
सब देवतोंके राजाके सुखको भी इच्छा नहीं
करता हूँ, मैं अपने भाइयोंको वनमें छोड़
और वैरका बदला बिना लिये यदि किसी
लोकमें जाकर सुख भोगूँ, तो अनेक वर्षोंतक
अपकीर्तिको प्राप्त करूँगा । वृत्रासुरके मारनेवाले
सब लोकोंसे पूजित इन्द्र पाण्डुपुत्र की यह बात
सुनकर, कोमलता सहित शान्ति पूर्वक ऐसा
बोले, हे तात ! जब तुम शूलधारी, तीन
नेत्रवाले, भूतोंके स्वामी, शिवका दर्शन करोगे,
तब हम तुमका सब शस्त्र देंगे । हे कुन्तीनन्दन !
अब तुम परमेश्वर शिवके दर्शनका यत्न करो,
उनका दर्शन होनेसे सिद्ध होकर स्वर्गमें आओगे ।
अर्जुनसे ऐसा कहकर इन्द्र वहाँ अन्तर्धान हो

गये। और अर्जुनभी वहीं बैठकर योग्य करने लगे।

३७ अध्याय समाप्त ।

अर्जुननाभिगमनपर्व समाप्त ।

अब कौरवपर्व लिखा जाता है ।

राजा जनमेजय बोले, हे भगवन् ! हे वेदज्ञाननेवालोंमें श्रेष्ठ ! कठिन कर्म करनेवाले अर्जुनको जिस प्रकार शस्त्र प्राप्त हुए उस कथाकी मैं विस्तारसे सुनना चाहता हूं। जिस प्रकारसे वह तेजस्वी, पुरुषसिंह, महाबाहु, अर्जुन मनुष्य रहित वनमें वेडरके समान गये, वहां रहकर उन्होंने भगवान् शिव और इन्द्रकी किस प्रकार प्रसन्न किया ? हे ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ ! हे सब जाननेवाले ! हम यह सब क्या आपकी लुपासे सुननेकी इच्छा रखते हैं, क्योंकि आप देवता और मनुष्योंकी सब बातोंकी जानते हैं। हे ब्राह्मण ! हमने सुना है, कि युद्ध करनेवालोंमें श्रेष्ठ युद्धोंमें अपराजित अर्जुनने शिवके सङ्गमें महावीर अद्वितीय, सौम्यार्पण युक्त किया था। पुरुषोंमें सिंह वीर अस्तीपुत्रोंकी दीनता आनन्द और विषययुक्त कथाओंकी सुनकर बड़े बड़े शूरवीरोंकी जयभी काप गये थे। अर्जुनने जो जो कर्म किया सो, सो सब कहिये, क्योंकि अर्जुनके रहितगे सोडामी नरा काम नहीं देख पड़ता, शत्रु, उस शरवीरके सब चरितोंकी हमसे शक्ति।

शम्भुदेवजी बोले, हे कुस्वशियोंमें श्रेष्ठ ! मरणाग अर्जुनकी इस अद्भुत कथाकी मैं सुनना हूँ, जिस प्रकार गावरी संस्पर्श होने लगाने लिये समागत हुआ, उन शम्भुकी ही भाँति कहता हूँ। हे राजा ! हम सुनते हैं। महाराज दुर्बिष्टकी कथाके उद्देश्य इन्द्र और शिवकी देखनेकी शक्ति देकर शत्रु और शत्रुकी मृत्युकी

खड्गकी लेकर महाबलवान्, महाबाहु, अप्रमाण पराक्रमवाले अर्जुन कार्यसिद्ध करनेकी उत्तरकी और हिमाचलके शिखरकी ओर चले। हे राजन् ! मनकी स्थिर करनेवाले सब लोकोंमें विख्यात महारथ अर्जुन निश्चय करके परम योगसे युक्त होकर महा घोर काटोंसे भरे हुए वनकी एकलीही चले, उन्होंने अनेक फल फूलसे भरे हुए अनेक प्रकारसे पक्षियोंसे भाँति भाँतिके हरिणोंसे भरे हुए सिद्ध और चारणोंसे युक्त वनकी देखा। कुन्ती-पुत्र अर्जुनके चलनेसे मनुष्यरहित उस वनमें आकाशमें शंख और पटङ्ग वजने लगे। आकाशसे पृथ्वीमें फूलोंकी वर्षा होने लगी। बादलोंके समूहने आकाशकी सब ओरसे घेर लिया, अर्जुन कठिन कठिन वनोंकी पार होकर महापर्वत हिमाचलके शिखरपर पङ्च कर शोभित हुए, वहां उन्होंने फूल वृक्षोंके ऊपर मीठे शब्द करनेवाली पक्षियों और हीरेके समान निर्मल जलवाली महावेगवती अनेक नदियोंकी देखा, उनके तटपर हंस, कारण्डव, सारस, कीकिला, मयूर और कौस्तुभ आदि पक्षियोंके आनन्दमय शब्द सुने। महारथ अर्जुन उस मनोहर वनमें पवित्र ठहरे और निर्मल जलवाली नदियोंकी देखकर महा प्रसन्न हुए, तब उस रमणीय वनमें रमते हुए और उग्र तपकी करते हुए महा तेजस्वी अर्जुनने इस प्रकार निवास किया, कि तिनकेका वस्त्र, हरिणका चमड़ा और दण्डकी आभूषण किया। जो पक्षे वृक्षसे गिर जायें उसीको खाने लगे फिर एक महीनेतक तीन तीन दिनमें एक एक फल खाना प्रारम्भ किया, दूसरे महीनेमें उससे तिगुने समय अर्थात् दस दिनमें एक एक फल खाने लगे, तीसरे महीनेमें पक्ष पक्षमें एक एक फल ग्राह्य किया। जब चौथा महीना प्रारम्भ हुआ, तब भगवान् ने चंद्र पर्वत के शिखर पर आकर रहने लगे।

उस समय पाण्डुनन्दन महाबाहु अर्जुन उर्ध्वाङ्ग होकर बिना, किसी आश्रयके केवल चरणके अंगूठेहीसे खड़े-रहे। महात्मा महातेजा अर्जुनकी जटा सदाही न बान्धनेके कारण विजली सहित वादलके समान हो गई। तब सब मुनीश्वर लोग पिनाकधारी देव शिवके पास अर्जुनका महातप निवेदन करनेकी गये। मुनीश्वर लोग महादेवकी प्रणाम करके अर्जुनके तपकी प्रशंसा करके बोले, कि यह महातेजस्वी कुन्तीपुत्र हिमाचलपर बैठकर दिशाओंकी आधार करते हुए अपार और उग्र तप कर रहे हैं। हे देवतोंके नाथ ! हम सब उसकी इच्छाकी नहीं जानते, आप-साधुता पूर्वक उसे निवारण कीजिये, आत्मज्ञानी मुनियोंके यह वचन सुनकर पार्ष्वतीपति जगत्-स्वामी शिवने ऐसा कहा,—

श्रीमहादेवजी हे बोले, मुनीश्वरो ! तुम अर्जुनका कुछ दुःख मत करो, जैसे आये हो, तैसेही सुखसे आलस्यरहित होकर शीघ्र चले जाओ। मैं उसके मनके सङ्कल्पको जानता हूँ, उसकी स्वर्ग ऐश्वर्य और आयु बढ़नेकी इच्छा नहीं है; जो कुछ उसकी इच्छा है, मैं उसे अभी करता हूँ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, शिवके ऐसे वचन सुनके सत्यवादी मुनि लोग प्रसन्न होकर अपने घरकी चले गये।

— ३८ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि जब महात्मा सब तपस्वीलोग अपने अपने घरकी चलेगये, तब सब पापके नाश करनेवाले भगवान् शिव सोनेके वृक्षके समान किरातका वेष धारण करके महामेषकी शिखाके समान शरीर बनाकर उत्तम धनुष और सर्पके समान बाणोंकी धारण करके देहधारी अग्निके समान वेगसे चले। अपने समान वेषधारी भूतोंके सहित

श्रीमान् शिवजी किरात वेषधारिणी अनेक स्त्रियोंकी सङ्गमें लेकर उस वनमें पहुँचे। हे भारत ! हे महाराज ! उस समय उस वनकी शोभा औरही हो गई। क्षणमात्र वह वन शब्दरहित हो गया, उस समय पक्षी और भरनोंका शब्दभी बन्द हो गया, उन्होंने कठिन कर्म करनेवाले अर्जुनके पास आकर अद्भुत दर्शनवाले मूक नामक दनुके पुत्रकी देखा। वह राक्षस सूअरका वेष बनाये हुए क्रोधसे दीप्त, मारने की इच्छासे अर्जुनकी देख रहा था, तब अर्जुनने गाण्डीव धनुष और सर्पके समान बाण लेकर धनुष पर रोदा चढ़ाके शब्दसे वनकी पूरित करते हुए उस राक्षससे कहा, तू जो मेरे मारनेकी इच्छासे यहां आया है, इस लिये पहले मैं ही तुमकी यमके घरमें पहुँचाता हूँ। जब किरातरूपी महादेवने दृढ़ धनुषधारी अर्जुनकी देखा, कि यह इसकी मारना चाहता है, तो उनकी निवारण करके कहने लगे, कि इसकी मारनेकी इच्छा पहले मैंने की है, अतएव तुम इसकी मत मारो, परन्तु अर्जुनने उनके वचनका निरादर करके उसकी बाण मारा; ठीक उसी समयमें उसीकी लक्ष्य करके महा तेजस्वी किरातनेभी वज्र और अग्निकी ज्वालाके समान बाण मारा, उन दोनोंके वे दोनों बाण एकही समयमें पर्वतके समान कठिनमुख राक्षसके शरीरमें लगे, जिस प्रकार एकही समयमें दो वज्र लगनेसे पर्वतमें शब्द होता है, वैसेही उसके शरीरमें दो बाण लगनेसे शब्द हुआ; वह राक्षस अनेक प्रकाशमान बाणोंके लगनेसे मर गया, और फिर दूसरा शरीर धारण किया, तब शत्रुनाशन अर्जुनने स्त्रियोंके सहित किरात-वेषी सोनेके समान वर्णवाले एक पुरुषकी देखा। कुन्तीपुत्रने प्रसन्नचित्तसे हंसकर उससे पूछा, कि तू कौन है जो इस घोर वनमें स्त्रियोंके भण्डके समेत फिरता है ? हे सोनेके रङ्गवाले

वहण । तुम क्यों इस वीर वनमें घूमते हुए
 करने नहीं हो ? तुमने हमारे मारे हुए स्वर
 को क्यों मारा ? इस राक्षसकी पहिली यहाँ
 आन पर मैंने ही मारा था, पीछे तुमने वाण
 मारा, कामसे वा निरादरसे मारा हो, परन्तु
 तुम मुझसे जीते हुए अब नहीं बच सकते;
 क्योंकि तुमने जो कर्म किया, यह सुगयासे
 विरुद्ध है, इस हेतुसे तुमको मारकर अभी
 पर्वतसे गिरा दगा । पाण्डुपुत्रके ऐसे वचन
 सुनकर किरातने हंसकर मीठी वाणीसे सव्य-
 सात्री अर्जुनसे ऐसा कहा, हे वीर ! हमको
 इस वनमें देखकर तुम मत डरो; क्योंकि हम
 पनवासी हैं और यह भूमि हमारी ही है इस
 लिये हमारे ही योग्य है, हे तपोधन ?
 तुमने दुःख सहकर इस वनमें क्यों वास किया
 है ? क्योंकि अनेक जन्तुओंके सहित इस
 वनमें हमारा ही घर है । तुम अग्निके समान
 तेजस्वी, सुखके योग्य और सुकृमार हो, तब
 इस शून्य वनमें कैसे वास करोगे ?

अर्जुन बोले, हम अग्निके तुल्य वाण और
 गार्गीय धनुषका आश्रय करके अग्निके समान
 इस वनमें वास करते हैं, यह राक्षस जो मेरे
 मारने की इच्छासे स्वरका विष वनाके यहाँ
 फँसा था इनको मैंने मारा है ।

किरात बोले यह तो मेरे ही धनुषके कुटे
 हुए वाणोंसे मरकर यमके स्थानकी गया
 है इसकी पराक्रमसे यह पृथ्वी पर सोया
 है, परन्तु मैंने ही इसको लक्ष्य बनाया था,
 इस लिये यह मेरा ही धन है, और
 इसी वाणसे मरा है, हे मूर्ख ! बलके
 बलवानसे जब एक करके अपने दोष दूसरों
 के दोषों से, यह न कदापि मुझसे लीता हुआ
 कोई वस्तु है, इस सब से बलके समान वाणों-
 के ही वन में हम रहते रहते । अपनी परम
 शक्तिसे हमने ही वाणोंकी भी छोड़ी ।

अर्जुन बोले, मैंने तुमको मारा

क्रोध हुआ और वाणोंसे किरात की मारने
 लगे, किरातभी अर्जुनकी, “अरे मूर्ख ! ऐसा
 बार बार कहते हुए उनके वाणोंको सहने
 लगे और कहने लगे कि इनसे भी अधिक
 सन्धिभेदक वाण चलाओ, ऐसी सुनकर
 अर्जुनने साहससे अनेक वाण मारे । उस
 समय वह दोनों बार-बार युद्ध करते हुए
 शोभित होने लगे और परस्पर एक-दूसरेको
 साँपके रुमान विष-भरे वाणोंसे मारने लगे ।
 तब अर्जुनने किरात पर वादलके समान
 वाणोंकी वर्षा करी और शिव भी प्रसन्न चित्तसे
 वाणोंकी वर्षाको सहने लगे । पिनाकधारी
 शिव एक मुहूर्तमात्र उस वाणवर्षाको सह
 करके भी पर्वतके समान अचल हो खड़े रहे
 और शरीरमें एक घाव भी न हुआ । जब
 अर्जुनने देखा, कि मेरी वाणोंकी वर्षासे यह
 क्षिप गया । तब परम आश्चर्यमें आकर साधु
 साधु ! कहने लगे और ऐसा बोले कि, यह बड़े
 आश्चर्यकी बात है, कि यह हिमाचल शिखरवासी
 कीमल अङ्गवाला पुरुष गाण्डीव धनुषसे कुटे
 हुए वाणोंकी बिना दुःखके सह रहा है, यह
 कौन है ? क्या यही साक्षात् शिव हैं ? अथवा
 कोई यक्ष, राक्षस या देवता हैं ? क्योंकि
 मेरी धनुषसे कुटे हुए सन्नद्ध वाणोंकी देव
 पिनाकधारी शिवकी छोड़कर और कोई भी
 नहीं सह सकता है । जो हो यदि यह
 शिवकी छोड़कर देवता वा कोई यक्षही क्यों
 नहीं, अब मैं इसकी कठिन वाणोंसे यमके
 घरमें पहुँचाऊँगा । ऐसा कहकर अर्जुनने
 प्रसन्नचित्तसे सन्धियोंके तोड़नेवाले वाणोंका
 इस प्रकार धारा लगा दी जैसे सदा अपने
 किरणोंकी सब जगह पहुँचा देता है । किन्तु
 भगवान् शूलधारी, लोकनाथ, शिव उन वाणों-
 कीभी प्रसन्नचित्तसे इस प्रकार ग्रहण करने
 लगे, जैसे शिवाकी उपाके पर्वत सहता है ।
 हे राक्षस ! तब क्षण भरमें अर्जुनके वाण

समाप्त हो गये। अनन्तर अपने वाणोंको समाप्त देखकर अर्जुनकी महाभय होने लगा, तब अर्जुनने उसी भगवान् अग्निका ध्यान किया, जिसने इनकी पहली खाण्डव वनमें अक्षय तूणीर दिये थे, और विचारने लगे, कि अब मेरे सब वाण समाप्त हो गये, धनुषसे क्या करूँ ? और यह पुत्र मेरे सब वाणोंको ग्रास किये जाता है। जिस प्रकार भालेसे हाथीकी मारते हैं, तैसेही अब मैं भी इसकी गाण्डीव धनुषके अगाड़ीके भागसे मारकर दण्डधारी यमराजके स्थानको पहुँचाऊँगा, ऐसा विचारकर महातेजा अर्जुनने धनुषसे किरातका गला फाँसकर उसे रींदकी फाँसीसे खींच करके वज्रके समान मुक्तोंसे बद्ध मारा। कुन्ती-नन्दन शत्रुनाशन अर्जुन जब इस प्रकार धनुष से युद्ध करने लगे, तब पर्वतके समान किरातने इनके धनुषकीभी ग्रासकर लिया, धनुष नष्ट होनेके पश्चात् युद्ध समाप्त होनेकी इच्छासे अर्जुन खड़ लेकर वेगसे दौड़ा, जो पर्वतकीभी काट सकता था उस तेज खड़की कुरु-नन्दन अर्जुनने अपने भुजाके बलसे भर कर किरातके शिरमें मारा, परन्तु उसके शिरमें लगनेसे वह उत्तम खड़भी टूट गया, तब अर्जुन शिला और वृक्षोंसे युद्ध करने लगे, परन्तु किरातरूपी भगवान् शिव उन शिला और वृक्षोंकी भी सहने लगे। अनन्तर महाबली अर्जुनके मुखसे मारे क्रोधके धुआँ निकलने लगा, अनन्तर अर्जुन दुराधर्ष भगवान् किरातरूपी शिवके शरीरमें वज्रके समान सँभुके मारने लगे। अनन्तर किरातरूपी भगवान् शिवभी वज्रके समान दारुण मुक्तोंसे अर्जुनकी मारने लगे। उस अर्जुन और किरातके युद्धमें दोनोंके मुक्तोंका शब्द होने लगा जिसके सुननेसे रोम खड़े होते थे। वह युद्ध ऐसा हुआ जैसा वृषासुर और इन्द्रका हुआ था। तब बलवान् अर्जुनने किरातकी हृदयसे मारना

आरम्भ किया और किरातनेभी चेष्टा रहित अर्जुनकी मारा। उन दोनोंके हाथ और हृदयके घिसनेसे शरीरमें अंगारे और धुएँ सहित अग्नि निकलने लगी, अनन्तर महादेवजीने पीड़ित अर्जुनके शरीरकी पीड़ा दी और अपने तेजसे उनके तेजकी खींच कर उनके चित्तकी मोहित कर दिया। हे भारत। शरीरके पीड़ित और देव देव महादेवसे अव-रुद्ध होकर अर्जुन पिण्डके समान हो गये। अनन्तर महादेवसे पीड़ित होकर अर्जुन चेष्टाहीन होकर निर्वलके समान पृथ्वीमें गिर पड़े और सांसभी बन्द होगया, परन्तु क्षणमात्रके पश्चात्ही अत्यन्त दुःखित रुधिरसे भर शरीरवाली अर्जुन चैतन्य होकर उठे, तब शरण देनेवाली भगवान् पिनाकधारी शिवकी शरणमें गये, और मिट्टीकी खण्डिल बनाकर उसपर महादेवकी माला चढ़ाई। तब कुन्तीनन्दन अर्जुनने वही माला किरातके शिरपर देखी, तब आनन्दके वशमें होकर अपनी दशाकी प्राप्त हुए, और किरातके चरणोंमें गिर पड़े, तब ही शरीर आश्चर्ययुक्त अर्जुनसे प्रसन्न होव मेधके समान गम्भीर वाणीवाली शिव कह लगी। श्रीमहादेवजी बोले, हे फाल्गुन। हे तुम्हारे असाधारण काम शूरवीरता और धारणाशक्तिसे प्रसन्न हुए, और जाना, कि तुम्हारे समान क्षत्रिय कोई नहीं है, हे पाप रहित। तुम्हारा पराक्रम और तेज मेरे समान है; हे महाभुज! हे महारथश्रेष्ठ! तुमसे प्रसन्न हूँ। मुझे देखी, मैं तुम्हें दिवदृष्टि देता हूँ, तुम पूर्ण समयके ऋषि हो; तुम युद्धमें सब शत्रुओंकी जीतनेवाली हो, तुम्हारा शत्रु चाहे देवताभी हों तौभी तुमसे पराजित होंगे। मैं प्रसन्नतासे तुम्हें यह अस्त्र देता हूँ इस निवारण करनेके अयोग्य शस्त्रकी तुमसे धारणा करनेमें समर्थ हो।

श्रीनैमिषायनजी बोले, कि तब विष्णुधारी

देवीके देव महादेवकी पार्वतीके सहित अर्जुनने देखा। घुटनोंको पृथ्वीमें लगाकर शिरसे प्रणाम करके शत्रुओंके नगरकी जीतनेवाली अर्जुनने महादेवकी प्रसन्न किया। अर्जुन बोले, कि हे जटाधारी! हे सब देवतोंके स्वामी! हे सूर्यनेत्र! हे जगतके संहार करनेवाले! हे देवोंके देव! हे नीलकण्ठ! मैं आपकी सब कारणोंका कारण जानता हूँ। आपही सब देवतोंकी गति हैं, आपसेही जगत् उत्पन्न होता है। आप तीनों लोकोंके देवता, असुर और मनुष्योंसे अजेय हो। दक्षके यज्ञनाश करनेवाले आपको नमस्कार है! कपाल नेत्रवाले सर्जको नमस्कार है, वर्षा करनेवाले, शूलपाणीको नमस्कार है। पिनाकधारी सूर्यरूपी पवित्र देहवाले ब्रह्मारूपी आपको मैं प्रसन्न करता हूँ; गणेशरूपी जगत्के कल्याण करनेवाले तीनों लोकोंके कारण प्रधान पुरुषसे भी उत्तम सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म हे हर! आपको प्रणाम है। मेरी विपरीत बुद्धिकी क्षमा कीजिये। हे भगवन्! मैं आपके दर्शनकी इच्छासे ही इस पर्वत पर आया हूँ। यह पर्वत, तपस्वि-कोंका स्थान और आपका प्यारा है, मैं आपकी नमस्कार करता हूँ। हे महादेव! जो मैंने वह साक्षर किया, वह मेरा दोष नहीं है, क्योंकि मैंने प्रश्नसे आपके साथ युद्ध किया है। हे हर! मैं आपकी शरण हूँ, मेरा पराध क्षमा कीजिये।

श्रीकृष्णायनजी बोले, कि वृषभध्वज महादेव अर्जुनका सुन्दर हाथ पकड़के बोले, कि हे अर्जुन! तुम शान्त हो। फिर दोनों हाथों से अर्जुनकी हातीसे लगाकर शान्त होनेकी चेष्टा की।

१८ अष्टमोऽध्याय समाप्त ।

श्रीकृष्णायनजी बोले, पूर्व जन्मसे तुम नरक में जाते थे क्योंकि तुम्हारे साथी थे।

वदरिकाश्रममें हजारों वर्ष तुमने तपस्या की थी। तुममें तेज है, वे पुरुषोत्तम विष्णुमें तेज है, तुम्हीं दोनोंसे जगत् स्थित है, तुमने इन्द्रके राज्याभितिकमें मेघके गर्जनके समान टङ्कारवाली धनुषकी ग्रहण करके दानवोंको मारा था। यह गाण्डीव धनुष तुम्हारे ही हाथके योग्य है; धनुषकी मैंने मायाके बलसे व्यर्थ किया था; तुम्हारे तर्कश वाणीसे कभी खाली न होंगे। हे कुरुनन्दन! तुम्हारा शरीर निरोग रहेगा। हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ, जो तुमकी इच्छा हो, वर मागो, तुमसे मर्त्यलोकमें वा स्वर्गमें कोई पुरुष श्रेष्ठ न होगा। हे शत्रुओंकी दमन करनेवाले! तुम क्षत्रीधर्ममें प्रधान गिने जाओगे।

अर्जुन बोले, हे भगवन्! यदि आप मुझ पर प्रसन्न होकर वर देते हैं, तो मैं पाशुपतास्त्र मांगता हूँ, जो ब्रह्मशिर नामक भयानक बड़ा पराक्रमी प्रलयमें जगत्को नाश करता है, उसी अस्त्रकी मैं लेना चाहता हूँ। हे भगवन्! कर्ण, भीष्म, कृपाचार्य और द्रोणाचार्यसे युद्ध होनेवाला है, जिससे युद्धमें तुम्हारी कृपासे मैं उनको युद्धमें जीतूँ, जिसके प्रतापसे मैं युद्धमें दानव, राक्षस, भूत, पिशाच, गन्धर्व और सर्पोंको भक्ष कर सकूँ। जिसकी अभिर्भावित करनेसे सहस्रो भाले तेज दर्शनीवाली गदा और विप्लवे सर्पके समान खड्ग उत्पन्न होते हैं; हम जिससे भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, और सदा ही कठारवादी सूतके पुत्र कर्णसे युद्ध कर सकें। हे भगवन्! हे भगवन्! यह मेरी प्रथम इच्छा है जो आपकी कृपासे इतक उप- होकर समर्थ हूँगा।

श्रीकृष्णजी बोले, हे विभी! हम तुमकी अपना प्यारा पाशुपतास्त्र दलाने और मोद करनेकी क्रियाके समेत देने हैं, क्योंकि तुम हमसे योग्य हो। इन्द्रकी इन्द्रधनुष और बाण भी नहीं जानते मनुष्योंकी नों कदा ही कदा है। हे कृष्ण-

नन्दन । इस शस्त्रकी कदापि कहींभी साहससे किसी पुरुषके ऊपर मत छोड़ना, क्योंकि थोड़े तेजवालेपर छोड़नेसे यह सब जगत् को भस्म कर सकता है । चर और अचर जगत् में कोई ऐसा नहीं, जो इससे न मर सके, इसके चलानेके समय इसकी मन, वचन, नेत्र और धनुषसे चलाना चाहिये ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कुन्तीनन्दन अर्जुन शिवके ऐसे वचन सुनकर पवित्र हो उनके पास बैठे, और शिवजी बोले, ग्रहण करो । तब शिवजीने, मूर्तिधारी कालके, समान उस शस्त्रकी चलाने और निवृत्त करनेकी गुप्त क्रियाओंके समेत, अर्जुनकी पढ़ा दिया । वह शस्त्र जिस प्रकार पार्वतीनाथ त्रिनेत्र शिवकी आताया, तैसेही अर्जुनको भी आगया, और अर्जुननेभी प्रसन्न चित्तसे ग्रहण किया । उस समय ग्राम, नगर, समुद्र, खान, पर्वत, वन, वृक्ष, और देशोंके समेत पृथ्वी हिलने लगी । उस समय आकाशमें सहस्रों शंख नगाड़े भेर, बजने लगे । महातेजवाले अर्जुनके यहाँ शस्त्र मूर्ति धारण करके वहाँ आया, इसको सब देव और दानवोंने देखा । श्रीमहादेवजी महाराजने अर्जुनको अपने हाथसे स्पर्श किया, तब उसका जितना पाप था, सब नष्ट हो गया । अर्जुनने प्रणामकर हाथ जोड़के शिवकी ओर देखा, तब शिवने आज्ञा दी, कि तुम स्वर्गकी जाओ । तब पुरुषों में अष्ट अर्जुनकी देवतोंके स्वामी जितेन्द्रिय महाबुद्धिमान् पर्वतमें सोनेवाले पार्वतीनाथ जगत्के उत्पन्न करनेवाले शिवने पिशाच और राक्षसोंके नाश करनेवाला महाधनुष गाण्डीव दिया । तब पुरुषोंमें अष्ट अर्जुनके सामनेही शिव ऐसी उत्तम व्रात कहकर सफेद कन्दरावाले पची और महर्षियोंसे सेवित पर्वतकी छोड़कर आकाशकी चले गये ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, जिस प्रकार सब जगत्के देखते हुए सूर्य अस्त हो जाता है, तैसेही भगवान् वृषभध्वज, पिनाकधारी शिवभी अर्जुनके देखते देखते अन्तर्धान हो गये । हे जनमेजय ! तब मैंने साक्षात् शिवकी देखा, ऐसा विचार कर अर्जुन बार बार आश्चर्य करने लगे । आहा ! मैं धन्य हूँ, मैं कृपाका पात्र हूँ, जो मैंने साक्षात् तीननेत्रवाले भक्त दुःखनाशक वरदान-दाता शिवकी देखा और हाथसे कुआ, अब मैं कृतार्थ हुआ, अत्यन्त आनन्दकी प्राप्त हुआ, मैंने युद्धमें सब शत्रुओंकी जीत लिया और मेरे सब प्रयोजन सिद्ध हो गये । इस प्रकारसे विचारते सँहा तेजस्वी अर्जुनके पास जलचर जलशुषोके समेत शूद्रवाले श्रीमान् वरुण सर्व दिशाओंकी प्रकाश करते हुए आये, इन्द्रियजित वरुणके सङ्ग नदें, नदी, दैत्य, साध्य, देवता और जलजन्तु भी आये । अनन्तर सोनेके समान वर्णवाले यक्षोंके समेत भगवान् कुबेर तेजस्वी विमानमें बैठकर वहाँ आये, उनके आनेसे आकाश प्रकाशमान हो गया । अर्जुनने श्रीमान् धनेश्वरको अद्भुत दर्शनवाला देखा । उसके पश्चात् सब लोकोंको नाश करनेवाले श्रीमान् प्रतापवान् यमराजभी रूप और विना रूपवाले लोकभावन पितरोंकी सङ्ग लेकर वहाँ आये । यमराज दण्ड धारण किये हुए थे । भगवान् अचिन्त रूपवाले नवलोकके नाश करनेवाले सूर्यके पुत्र यमराज दोनों लोकोंकी प्रकाश करते हुए गुह्यके सिद्ध, गन्धर्व और सर्पोंकी सङ्ग लेके विमानमें बैठे प्रलयकालके सूर्यके, समान तेज धारण करके वहाँ आये । वे सब लोग हिमाचलके प्रकाशमान और विचित्र शिखरपर आकर तपस्वी अर्जुनकी देखने लगे । उरी क्षणमें सफेद छत्रसे शोभायमान ऐरावतके ऊपर स्थित इन्द्राणी और देवतोंके युक्त भगवान् इन्द्रभी वहाँ आये, उनकी शोभा ऐसी जान पड़ती थी, जैसे तारोंके बीचमें चन्द्रमा । जिस

प्रकारसे सुख काशित होता है, वैसेही भगवान् इन्द्रभी देवता और तपोधन ऋषियोंसे स्तुति सुनते हुए पर्वतके शिखरपर शोभित हुए । तब दक्षिण दिशामें बैठे हुए, संवत् धर्मके जानने-वाले श्रीमान् यमराज मेघके समान गम्भीर वाणीसे अम्हे वचन बोले, हे अर्जुन ! तुम सब आये हुए लोकपालोको देखो, हम तुमको दिव्य दृष्टि देते हैं, तुम हमारे दर्शन करनेके योग्य हो । हे तात ! तुम पहले महाबल नर नामक ऋषि होकर आनन्द करते थे, अब प्रतापी आज्ञासे मनुष्य हो गये हो । हे पाप-रहित ! वसुके अवतार महाक्रमी धर्मात्मा भीम पितामह तुमसेही युद्धमें मारे जायंगे । भरद्वाजके पुत्र द्रोणाचार्यसे रचित चतुर्योकी मेना महा पराक्रमी दानव जी मनुष्य बने हैं, हे कुरुनन्दन ! निवातकयच दानव और जीमवेत्ताकके तपानेवाला सूर्यके तेजसे महावीर कर्ण उत्पन्न भया, उसकोभी तुमही मारोगे । हे धनञ्जय ! औरभी अनेक देव और दान-वाले भगवत् अवतार भये हैं, हे शत्रुनाशन ! हे कुरुनन्दन ! वे सब लोग अपने अपने कर्मके अनुसार तुम्हारे हाथसे युद्धमें मरकर गति पायेंगे । हे फाल्गुन ! तुमने साक्षात् महादेवका युद्धमें प्रसन्न किया है, इस विषय तुम्हारी कीर्ति जगत्में अचय होकर फैल रहीगी । तुम कृष्णके सङ्ग होकर आकाशमें उतारोगे, अब वह हमारा महाभारत दण्ड नामक शस्त्र ग्रहण करो, इस प्रकार तुम्हारे बड़े भारी भारी काय्ये सिद्ध होंगे ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, तब कुरुनन्दन ! अर्जुन और भीमके विधिमत्तक युद्धमें अनेक उक्त शस्त्रोंका प्रयोग हुआ । तब मेघके समान गाम्भीर्यसे श्रीमान् यमराज वरुण पश्चिम दिशामें उड़ते हुए, हे कुरुनन्दन ! हे

बड़े और लालनेवाले ! तुम चतुर्योमें श्रेष्ठ हो और चतुर्योके धर्ममें रहनेवाले हो, देखो हम जलके स्वामी वरुण हैं, हम यह निवारण करनेके अयोग्य पाश तुमको देते हैं, तुम इसको विधिके समेत ग्रहण करो । हे वीर ! मैंने इससे तारकामय युद्धमें भारी भारी सहस्रो राक्षसोंको मारा था, हे महाबल ! मेरे प्रसादसे इसको ग्रहण करो, तुम्हें क्रोध आनेपर इससे यमभी नहीं छूट सकता है । जब तुम इसको लेकर युद्धमें घूमोगे तो नासन्देह पृथ्वी चतुर्योमें सूनी हो जायगी ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि जब अर्जुनको वरुण और यम दिव्यशस्त्र देचुके तो कलाश-वासी कुवेर बोले, हे पाण्डुपुत्र ! हे महाबल ! हे महाबुद्धिमान ! जीवनके अयोग्य तुमको देखकर हम अत्यन्त प्रसन्न हुए, हे सव्यशाचिन ! हे महावाही ! हे पूवदेव सनातन ! पहले कल्पमें हम और तुम सङ्गही रहते थे, हे भरत-पौत्र ! तुम्हारा दर्शन करके हम तुम्हें यह दिव्य शस्त्र देते हैं ; इसके बलसे दुःखसे जीवन योग्य देव दानवोंको भी युद्धमें जीत सकागे, हे शत्रुनाशन ! सुभने इस शस्त्रका तुम शीघ्र ही ग्रहण करो, तुम इसके प्रतापसे दृतराष्ट्रपुत्रको सेनाका जला दाग । यह शस्त्र सुभका अत्यन्त प्रिय है, इसका नाम प्रज्ञापन है, इसमें तर्जवल और वायु द्रव्य है, पहले भयमम् जब महात्मा शिवन त्रिपुरासरका माग था, तब इसको चलाया था, इसीप्रकार प्रतापसे सब राक्षस भक्त हो गये हैं । हे सव्यपराक्रम ! हे मेरुके समान दृढ़ ! यह शस्त्र तुम्हारे अत्यन्त उपस्थित है, और तुमही इसे पारण करनेके योग्य हो । तब महाकाय महाबल कुरुनन्दन अर्जुनने कुवेरके शस्त्रको विधिपूर्वक ग्रहण किया । तब देवराज इन्द्र नन्दन और महादेव नमस्त गम्भीर वाणीसे अर्जुनजीको आज्ञा करके हुए ऐसा बोले, हे कुरुनन्दन ! हे

और पुरातन देवता हो, अब देवतोंकी भक्तिसे उत्तम सिद्धिकी प्राप्त हुई हो, हे महा-तेजस्वी ! हे शत्रुनाशन ! अब तुम स्वर्ग चलनेकी सन्नद्ध हो जाओ, क्योंकि तुम्हें देवतों का भारी कार्य करना है। हे कौरव ! तुम्हारे निमित्त मातलिके सहित रथ आने वाला है वहां चलकर तुमको हम दिव्य शस्त्र देंगे। उस पर्वतके ऊपर सब लोकपालोंकी इकट्ठे देखकर बुद्धिमान् कुन्तीपुत्र अर्जुन आश्चर्य प्रकट करने लगे अनन्तर महातेजस्वी अर्जुनन आये हुए, लोकपालोंकी वचन-जल और फलोंसे विधिपूर्वक पूजा करी, तब मनके समान गतिवाले देवता लोग अर्जुनका सम्मान करके अपने अपने मार्गोंसे चले गये। उस समय पुरुषसिंह अर्जुनने आनन्दसे शस्त्र प्राप्त करके अपनेकी कृतार्थ और पूर्ण आनन्दयुक्त माना।

४१ अध्याय समाप्त ।

वनपर्वमें कैरातपर्व समाप्त हुआ ।

अथ इन्द्रलोकाभिगमनपर्व ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, लोकपालोंके जानेके पश्चात् शत्रुनाशन अर्जुन इन्द्रके रथको नार्ग देखने लगे, बुद्धिमान् गुडाकेश अर्जुनके विचारते समय मातलियुक्त तेजसे भरा हुआ आकाशको अश्वकारोंसे शून्य बादलोंकी फाड़ता और मेघके समान दिशाओंकी पूरित करता हुआ, इन्द्रका रथ आया; उसमें खड्ग, मयानक शक्ति, उग्र-दर्शनवाली गदा, दिव्य प्रभाव वाले प्रास, महातेजवाली विजली, अशनी, गोलोंके समेत यन्त्र, वायुसे चलनेवाली वन्दूक, और जिसमें भारी शरीरवाले कठिन जलते मुख-वाले सफेद अभ्रकके समान हाथी थे, महाशब्दवाले उपलोके सहित जिसकी बड़ेबेगवाले दस सहस्र घोड़े ले चलते थे, जिसके देखनेसे दृष्टि बन्द हो जाती थी। वह रथ मायासे भरा हुआ था, उसमें नीले कमलके समान वर्णवाली, सीनेके

वांसमें बंधी हुई महातेजवाली ध्वजाकी अर्जुनके देखा। अनन्तर तपे हुए सीनेसे भूषित रथमें बैठे हुए रथको देखकर महाबाहु अर्जुन इन्द्र देवताही जानके वितर्क करने लगे; ऐसे विचारते हुए अर्जुनके पास आकर मातलि नम्र भावसे कहने लगे।

मातलि बोले, हे इन्द्रपुत्र ! श्रीमान् इन्द्र आपको देखना चाहते हैं, आप शीघ्र ही इस इन्द्रके रथमें चढ़िये। आपको पिता, देवतोंमें श्रेष्ठ, इन्द्रने ऐसा कहा है, कि कुन्तीपुत्र अर्जुनकी सब देवता लोग देखें। यह देखिये! देवता, ऋषि, गन्धर्व और अस्सराओंके सहित इन्द्र आपको देखनेकी इच्छासे खड़े हैं। अब आप इन्द्रकी आज्ञासे इस लोकसे देव-लोककी चलिये। शस्त्र ग्रहण करके पुनः इसी लोकमें आइये।

अर्जुन बोले, हे मातलि ! अब तुम इस रथ पर चढ़ो, जिसको महाभाग्यवान् राजालोग महादक्षिणायुक्त राजसूय और अश्वमेध यज्ञोंसे भी नहीं प्राप्त कर सकते हैं। जिस उत्तम रथ पर देवता भी नहीं चढ़ सकते हैं, इस दिव्य रथको महा-तपस्याओंसे भी कोई देख और छू नहीं सकता, चढ़नेको तो कथाओं का है। मैं साधो ! जब तुम इस पर चढ़कर घाड़ोंकी ठीक करोगे, तब मैं भी उत्तम मार्ग पर महा-त्माके समान इस रथ पर चढ़ूंगा।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, इन्द्रके सारथी मातालि ऐसे वचन सुनकर शीघ्रता सहित रथ पर चढ़े और लगाम पकड़कर घाड़ोंकी ठीक किया। तब कुरुनन्दन अर्जुन प्रसन्नचित्त होकर गङ्गामें स्नान कर मन्त्र जपने लगे, अनन्तर विधि और न्याय पूर्वक पितरोंका तर्पण करने लगे, पश्चात् पर्वतराजसे प्रार्थना करने लगे, हे पर्वत ! तुम स्वर्गकी इच्छा रखनेवाले साधु, पुण्यात्मा, पुण्यकर्मा मुनियोंके आश्रय हो। हे शैल ! तुम्हारे प्रसादसे ब्राह्मण,

हवि, और वैश्व स्वर्गमें जाकर दुःखरहित
हीकर देवतोंके सङ्ग आनन्द करते है, । हे
पर्वतराज । हे महाशैल । हे मुनियोंके आश्रय ।
हे तीर्थवासी ! हम तुम पर थककर सुखसे
रहे । अब तुम्हारी आज्ञा लेकर जाते हैं,
हमने तुम्हारे नीचेके भागमें अनेक कुज,
नदी, झरने और पुण्यतीर्थ देखे, सुगन्धियुक्त
फल खाये, तुमसे निकली सुगन्धिसे भरे हुए,
अमृतके समान स्वादवाले झरनोंके जल पीये ।
हे पर्वत । हम तुम्हारे यहां वैसेही सुखमें
रहे, जैसे पुत्र पिताकी गोदमें । हे शैलराज ।
हे प्रभो । अस्सराओंसे संयुक्त और वेद शब्दसे
पूरित तुम्हारे शिखरपर हमने परम सुखसे
निवास किया, हे शैल । हमने तुम्हारी कन्दरा-
ओंमें सर्वदा सुखसे विहार किया और अब
हम जाते हैं, यदुओंके मारनेवाले अर्जुन पर्वतसे
इस प्रकार आज्ञा लेकर दिव्य रथके ऊपर ऐसे
बहे जैसे सूर्य अपने रथपर प्रकाश करते हुए
चरते हैं । बहुत कर्मयुक्त दिव्यरूप उस रथपर
बैठकर बुद्धिमान अर्जुन प्रसन्न मनसे आकाशकी
ओर । परन्तु धर्म करनेवाले महात्मा मनुष्योंका
रास्ता उन्होंने न देखा, उन्होंने आकाशमें देखा,
कि बहुतकृपवाले सहस्रो विमान घूमते हुए
चिह्नित है, वहां न सूर्य न चन्द्रमा और न अग्नि
प्रकाश करते हैं । किन्तु पुण्यात्मा लोग
उन्हीं प्राप्ति अपने प्रकाशसे आपही प्रकाशित
हो रहे हैं, भाग जाकर पाएबने देखा कि, वहां
न होट और नहे प्रकाशमान तारा-लोक
गोचर है, सो सब रूप धारण किये हुए
जगत् कर रहे हैं । भाग जाकर देखा, कि
उन्हीं अग्नि सिद्ध और हुम्न भरे हुए वीर
के चरणों से आपही प्रकाशित हो रहे हैं ।
आकर देखा, कि सहस्रो पुरुष अपने
अनेक कर्मों पर जाते हैं । भाग जाकर
देखा, कि सहस्रो गन्धर्वोंकी देखा ।
कि अग्नि और अस्सराओंके गन्धर्वोंके

प्रभावसे प्रज्वलित लीकोंकी देखकर विक्षित
हुए । मातलि सारथिसे इन सब लीकोंका
वृत्तान्त पूछा और उसनेभी प्रसन्न होकर कहा,
कि हे कुन्तीपुत्र । यह सब लोक पुण्यके
प्रतापसे स्थित हैं, जिसकी आप पृथ्वीपर तारा-
रूपसे देखते थे । इसके अनन्तर अर्जुनने वहां
जयशैल चार दांतवाले कैलाशपर्वतके शिखरके
समान जंचे ऐरावत हाथीकी इन्द्रलोकके द्वार
पर देखा । जहां पुण्यात्मा मान्वाता रहते हैं,
उस लोककीभी अर्जुनने देखा । इसी रीतिसे
स्वर्गलोककी देखते हुए यशस्वी अर्जुनकी
इन्द्रकी अमरावती पुरी दीख पड़ी ।

४२ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, अर्जुनने सिद्ध और
चौरणोंसे सेवित और सब ऋतुओंमें फूलनेवाले
पवित्र वृक्षोंसे युक्त रमणीय अमरावती पुरीकी
देखा । वहां पवित्र पर्वतोंकी पवित्र सुगन्धिसे
युक्त पवित्र वायु सेवित हो बुलानेवालोंके समान
दिव्य पुष्पोंसे सेवित अस्सराओंसे सेवित दिव्य
नन्दनवनकी देखा, जो लोग तप और अग्नि-
होत्रकी न करने वाले अपण्यात्मा, पापी युद्धसे
भागनेवाले, यज्ञ व्रत और वेदसे हीन हैं, जिन
लोगोंने तीर्थमें स्नान नहीं किया, यज्ञ निन्दक,
यज्ञ और दान विमुख, चूट, यज्ञनाशक
कदापि नहीं देख सकते हैं । जिन पवित्र वनकी
मदिरा पीनेवाले, गुरुकी सेजपर सोनेवाले, मांस
खानेवाले, और दुरात्मा लोग कदापि नहीं
देख सकते हैं । अर्जुनने उस दिव्य गीर्वाण
युक्त दिव्य नन्दनवनकी देखते हुए इन्द्रकी पुरी
पुरीमें प्रवेश किया । वहां जाकर विगासवाले
अर्जुनने देखा, कि सहस्रो विमान मनुष्यों
इच्छानुसार घूम रहे हैं, सहस्रो बेटे हैं, और
सहस्रो जवानोंकी उपस्थित है । वहां सहस्रो
गन्धर्व और अस्सराओंसे युक्त गन्धर्व और
पुण्यकी सुगन्धिसे भरे हुए वायुमें स्थित होकर

और पुरातन देवता ही, अब देवतोंकी भक्तिसे उत्तम सिद्धिकी प्राप्त हुए ही, हे महा-तेजस्वी ! हे शत्रुनाशन ! अब तुम स्वर्ग चलनेकी सन्नद्ध हो जाओ, क्योंकि तुम्हें देवतोंका भारी कार्य करना है। हे कौरव ! तुम्हारे निमित्त मातलिके सहित रथ आने वाला है वहां चलकर तुमको हम दिव्य शस्त्र देंगे। उस पर्वतके ऊपर सब लोकपालोंकी दृष्टि देखकर बुद्धिमान् कुन्तीपुत्र अर्जुन आश्चर्य प्रकट करने लगे अनन्तर महातेजस्वी अर्जुनन आये हुए, लोकपालोंकी वचन-जल और फलोंसे विधिपूर्वक पूजा करी, तब मनके समान गतिवाले देवता लोग अर्जुनका सम्मान करके अपने अपने मार्गोंसे चले गये। उस समय पुरुषसिंह अर्जुनने आनन्दसे शस्त्र प्राप्त करके अपनेको कृतार्थ और पूर्ण आनन्दयुक्त माना।

४१ अध्याय समाप्त ।

वनपर्वमें कैरातपर्व समाप्त हुआ।

अथ इन्द्रलोकाभिगमनपर्व ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, लोकपालोंके जानेके पश्चात् शत्रुनाशन अर्जुन इन्द्र के रथक्रानार्ग देखने लगे, बुद्धिमान् गुडाकेश अर्जुनके विचारते समय मातलियुक्त तेजसे भरा हुआ आकाशको अश्वकारोंसे शून्य बादलोंको फाड़ता और मेघके समान दिशाओंको पूरित करता हुआ, इन्द्रका रथ आया, उसमें खड्ग, भयानक शक्ति, उग्र-दर्शनवाली गदा, दिव्य प्रभाव वाले प्रास, महातेजवाली विजली, अशनी, गोलोंके समेत यन्त्र, वायुसे चलनेवाली बन्दूक, और जिसमें भारी शरीरवाले कठिन जलते मुख-वाले सफेद अभ्रकके समान हाथी थे, महाशब्दवाले उपलोंके सहित जिसकी बड़ेबेगवाले दस सहस्र घोड़े ले चलते थे, जिसके देखनेसे दृष्टि बन्द हो जाती थी। वह रथ मायासे भरा हुआ था, उसमें नीले कमलके समान वर्णवाली, सोनेके

वांसमें बंधी हुई महातेजवाली ध्वजाकी अर्जुनके देखा। अनन्तर तपे हुए सीनेसे भूषित रथमें बैठे हुए रथको देखकर महाबाहू अर्जुन इन्द्र देवताही जानके वितर्क करने लगे; ऐसे विचारते हुए अर्जुनके पास आकर मातलि नम्र भावसे कहने लगे।

मातलि बोले, हे इन्द्रपुत्र ! श्रीमान् इन्द्र आपको देखना चाहते हैं, आप शीघ्र ही इन्द्रके रथमें चढ़िये। आपको पिता, हे तोंमें श्रेष्ठ, इन्द्रने ऐसा कहा है, कि कुन्ती अर्जुनकी सब देवता लोग देखें। यह देखि देवता, ऋषि, गन्धर्व और असुराओंके सवि इन्द्र आपको देखनेकी इच्छासे खड़े हैं। आप इन्द्रकी आज्ञासे इस लोकसे देव-लोक चलिये। शस्त्र ग्रहण करके पुनः इसी लोक आइये।

अर्जुन बोले, हे मातलि ! अब तुम इस रथ पर चढ़ो, जिसको महाभाग्यवान् राजा भी नहीं प्राप्त कर सकते हैं। जिस उत्तम रथ पर देवता भी नहीं चढ़ सकते हैं, इस दिव्य रथको महा-तपस्याओंसे भी कोई देख और नहीं सकता, चढ़नेको तो कथाहो क्या है। साधो ! जब तुम इस रथ पर चढ़कर घाड़ोंकी ठीक करोगे, तब मैं भी उत्तम मार्ग पर महात्माके समान इस रथ पर चढ़ूंगा।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, इन्द्रके सारथी मातलि ऐसे वचन सुनकर शीघ्रता सहित रथ पर चढ़े और लगाम पकड़कर घाड़ोंकी ठीक किया। तब कुरुनन्दन अर्जुन प्रसन्न होकर गङ्गामें स्नान कर मन्त्र जपने लगे, अनन्तर विधि और न्याय पूर्वक पितरोंका तर्पण करने लगे, पश्चात् पर्वतराजसे प्रार्थना करने लगे, हे पर्वत ! तुम स्वर्गकी इच्छा रखनेवाले साधु, पुण्यात्मा, पुण्यकर्मा मुनियोंके आश्रय हो। हे शैल ! तुम्हारे प्रसादसे प्राण

दिव्य, और वैष्णव स्वर्गमें जाकर दुःखरहित होकर देवतोंके सङ्ग आनन्द करते हैं, । हे पर्वतराज ! हे महाशैल ! हे मुनियोंके आश्रय ! हे तीर्थवाले ! हम तुम पर थककर सुखसे रहे । अब तुम्हारी आज्ञा लेकर जाते हैं, हमने तुम्हारे नीचेके भागमें अनेक कुज, नदी, झरने और पुण्यतीर्थ देखे, सुगन्धियुक्त फल खाये, तुमसे निकली सुगन्धिसे भरे हुए, अमृतके समान स्वादवाले झरनोंके जल पीये । हे पर्वत ! हम तुम्हारे यहां वैसेही सुखमें रहे, जैसे पुत्र पिताकी गोदमें । हे शैलराज ! हे प्रभो ! अस्सराओंसे संयुक्त और वेद शब्दसे पूरित तुम्हारे शिखरपर हमने परम सुखसे निवास किया, हे शैल ! हमने तुम्हारी कन्दराओंमें सर्वदा सुखसे विहार किया और अब हम जाते हैं, शत्रुओंके मारनेवाले अर्जुन पर्वतसे इस प्रकार आज्ञा लेकर दिव्य रथके ऊपर ऐसे चढ़े जैसे सूर्य अपने रथपर प्रकाश करते हुए चढ़ते हैं । अद्भुत कर्मयुक्त दिव्यरूप उस रथपर चढ़कर बुद्धिमान अर्जुन प्रसन्न मनसे आकाशकी चली । परन्तु धर्म करनेवाले महात्मा मनुष्योंका रास्ता उन्होंने न देखा, उन्होंने आकाशमें देखा, कि अद्भुतरूपवाले सहस्रों विमान घूमते हुए फिरते हैं, वहां न सूर्य न चन्द्रमा और न अग्नि प्रकाश करते हैं । किन्तु पुण्यात्मा लोग पुण्यसे प्राप्त अपने प्रकाशसे आपही प्रकाशित हो रहे हैं, आगे जाकर पाण्डवने देखा कि, वहां जो छोटे और बड़े प्रकाशमान तारा-लोक स्थित हैं, सो सब रूप धारण किये हुए प्रकाश कर रहे हैं । आगे जाकर देखा, कि राशमें ऋषि सिद्ध और युद्धमें भरे हुए वीर लोग अपने तेजसे आपही प्रकाशित हो रहे हैं । आगे जाकर देखा, कि सहस्रों पुरुष अपने स्वर्गसे चले जाते हैं । आगे जाकर देखा, कि समान तेजवाले सहस्रों गन्धर्वोंकी देखा । अथ, ऋषि और अस्सराओंके गणोंके अपने

प्रभावसे प्रज्वलित लोकोंकी देखकर विस्मित हुए । मातलि सारथिसे इन सब लोकोंका वृत्तान्त पूछा और उसनेभी प्रसन्न होकर कहा, कि हे कुन्तीपुत्र ! यह सब लोक पुण्यके प्रतापसे स्थित हैं, जिसकी आप पृथ्वीपर तारा-रूपसे देखते थे । इसके अनन्तर अर्जुनने वहां जयशील चार दांतवाले कैलाशपर्वतके शिखरके समान ऊंचे ऐरावत हाथीकी इन्द्रलोकके द्वार पर देखा । जहां पुण्यात्मा मान्वाता रहते हैं, उस लोककीभी अर्जुनने देखा । इसी रीतिसे स्वर्गलोककी देखते हुए यशस्वी अर्जुनकी इन्द्रकी अमरावती पुरी दीख पड़ी ।

४२ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैष्णवायनजी बोले, अर्जुनने सिद्ध और चारणोंसे सेवित और सब ऋतुओंमें फूलनेवाले पवित्र वृक्षोंसे युक्त रमणीय अमरावती पुरीकी देखा । वहां पवित्र पुष्पोंकी पवित्र सुगन्धिसे युक्त पवित्र वायु सेवित हो बुलानेवालोंके समान दिव्य पुष्पोंसे सेवित अस्सराओंसे सेवित दिव्य नन्दनवनकी देखा, जो लोग तप और अग्नि-होतृकी न करने वाले अपुण्यात्मा, पापी युद्धसे भागनेवाले, यज्ञ व्रत और वेदसे हीन हैं, जिन लोगोंने तीर्थमें स्नान नहीं किया, यज्ञ निन्दक, यज्ञ और दान विमुख, चुद्र, यज्ञनाशक कदापि नहीं देख सकते हैं । जिस पवित्र वनकी मंदिरों पीनेवाले, शुरुकी सेजपर सोनेवाले, भांस खानेवाले, और दुरात्मा लोग कदापि नहीं देख सकते हैं । अर्जुनने उस दिव्य गीतोसे युक्त दिव्य नन्दनवनकी देखते हुए इन्द्रकी प्यारी पुरीमें प्रवेश किया । वहां जाकर विशालवाह अर्जुनने देखा, कि सहस्रों विमान मनकी इच्छानुसार घूम रहे हैं, सहस्रो बैठे हैं, और सहस्रो जानेकी उपस्थित हैं । वहां सहस्रो गन्धर्व और अस्सराओंसे स्तुति सुनते हुए और फूलोंकी सुगन्धिसे भरे हुए वायुसे सेवित होकर

अर्जुनने उस नगरीमें प्रवेश किया। वहाँ अनेक देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षियोंने प्रसन्न चित्तसे पुण्य-कर्मकारी अर्जुनकी पूजा करी, अनन्तर इन्द्रकी आज्ञासे ऋषियोंकी आशीर्वाद दिव्य वातोंकी शब्द सुनते हुए अर्जुनने शंख और नगरोंसे शोभित उस मार्गमें प्रवेश किया, जो जगत्में तारा, देवमार्गके नामसे विख्यात हैं। अर्जुनके चारों ओर स्तुति करनेवाले संगमें थे। उस मार्गमें साध्य, अश्विनीकुमार, मरुत, विश्वदेव, सूर्य, वसु, रुद्र, निर्मल ब्रह्मर्षि, दिलीप आदि अनेक राजर्षि, तुम्बुरु, नारद और हाहा हह गन्धर्व मिले। कुरुनन्दन अर्जुनने इन सबसे यथायोग्य भेंट करी, अनन्तर शत्रुनाशन अर्जुनने इन्द्रको देखा। तब महाबाहु कुन्ती-नन्दन अर्जुनने उत्तम-रथसे उतरकर अपने पिता देवराज इन्द्रकी सेनेकी दण्डवाले सफेद छत्रसे शोभित दिव्य गन्धभरे हुए पंखेसे सेवित विश्वावसु आदि स्तुति करनेवाले गन्धर्व और ब्राह्मणोंमें सुख ऋक्, यजु, साम वेदके मन्त्रोंसे स्तुति सुनते हुए साक्षात् देखा, तब कुन्तीनन्दनने उनके पास जाकर सिरसे प्रणाम किया, तब इन्द्रने अपने लम्बे और मोटे हाथोंसे उनकी पकड़ा। तब इन्द्रने अपने घरमें देवता और ऋषियोंसे सेवित पवित्र इन्द्रासन पर अर्जुनकी विठलाया और शत्रुनाशन इन्द्रने इनके माथेकी संघा अपने गीदमें विठलाया। उस समय विनयसे नम्र अर्जुन इन्द्रकी आज्ञासे पवित्र पवित्र इन्द्रासनपर दूसरे इन्द्रके समान तेजस्वी बसकर बैठे। तब इन्द्रने पवित्र सुगन्ध भरे हुए हाथसे शान्तिपूर्वक प्रेमसे अर्जुनका उत्तम सुख कूआ, अनन्तर रोदा और वाण खींचनेसे कठोर सोनेके, स्वर्णके समान, अर्जुनके लम्बे और सुन्दर हाथोंकी कूने लगे। वज्रके लेनेके चिह्नयुक्त हाथोंसे शान्तिपूर्वक धीरे धीरे अर्जुनके हाथोंकी स्पर्श किया। इन्द्र प्रसन्न हुए।

अर्जुनकी देखकर तर्प नही होते थे।

शत्रुनाशके इस कर्मसे मानो अर्जुनकी आर्चिता थी, वे दोनों सभामें एक आसनपर बैठे हुए ऐसे शोभित हुए, मानो अभावसकी सूर्य चन्द्रमा एकही समय उगे हैं। उस समय गानेमें कुशल तुम्बुरु आदि श्रेष्ठ गन्धर्व घृताचो, मेनुका, रम्भा, पूर्वचित्ती स्वयंप्रभा, उर्वशी, मिश्र केशी, दरागौरी, वसुथिनी, गोपाली, सहजन्त्या, कुम्भयोनी, अजगरा, चित्तसेना और मोठेखर वाली सहा और अनेक अप्सरा आदि लेकर अनेक कमलनयनी अप्सरा लोग सिद्धोंके चित्तकी प्रसन्न करनेके निमित्त, पतली कमर और कमलित स्तनवाली, मन, बद्धि और चित्त हिरनेवाली कंठाक्षवाली नाच और मोठे खर सामवेदके मन्त्रोंकी गा रही थीं।

अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, अनन्तर इन्द्रकी इच्छा जानकार देवता और गन्धर्वोंने शीघ्रता सहित पादसे अर्जुनकी पूजा करी। अनन्तर अर्जुनकी पाद और आचमनीय दिकर इन्द्रने स्थानमें पड़चा दिया। अर्जुन इस प्रकारसे अपने पिताके स्थानमें सुखसे रहते हुए चलाने और सीकनेकी क्रियाके समेत शस्त्रोंकी सीखने लगे। इन्द्रका धारों दुखसे सहने योग्य वज्र नामक शस्त्र, मेघ और मयूरके समान लक्षणवाला महा अशनी शस्त्रकी ग्रहण किया। इस प्रकार सुखपूर्वक इन्द्रकी आज्ञासे पाँच वर्ष अर्जुन बहा रहे, अनन्तर अस्त्रोंकी सीखकर कुन्ती-पुत्रने अपने भाइयोंकी स्मरण किया, तब समय आनेपर शस्त्र सीखे हुए अर्जुनसे इन्द्रने कहा कि हे कुन्तीनन्दन अब तुम चित्रसेन गन्धर्वसे नाचन और गाना सीखो और जो नाच मर्त्यलोकमें नहीं हैं, उनकी अच्छे प्रकार सीखो; उससे तुम्हारा कल्याण होगा। ऐसा कहकर इन्द्रने अपने मित्र चित्रसेनकी सोप दिया। अर्जुन उसकी पास जाकर सुखपूर्वक रहने लगे। यद्यपि

उनसे गीत, नाच और बाज सीखे, तौभी जुएके अभिमानकी स्मरण करके आनन्दको न प्राप्त हुए, उनके चित्तमें दुःशासन और सुबलके पुत्रके मारनेका क्रोध भरा ही रहता था, तौभी नाचने गानेमें कभी कभी अत्यन्त प्रेम उत्पन्न होनेके कारण नाचने गाने और बजानेकी विधिको प्राप्त किया। अर्जुनने नाचने गानेके अनेक गुण और वजानेके सब भेदोंकीभी प्राप्त करनेपर सुख न पाया और निरन्तर शत्रुनाशन अर्जुन अपने भाई और कुन्ती माताहीका स्मरण रहे।

४४ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, इन्द्रने चित्रसेन गन्धर्वसे कहा, कि अर्जुनके नेत्र उर्वशीसे लगे जान पड़ते हैं, अतएव तुम अप्सराओंमें श्रेष्ठ उर्वशीकी लेकर अर्जुनके पास जाओ, अस्त्र प्राप्त किये हुए और पूजित अर्जुनकी स्त्री पुरुषके संयोगसे सुख ही। इन्द्रकी ऐसी आज्ञा सुनकर ऐसाही करूंगा, यह कहकर गन्धर्वराज अप्सराओंमें उत्तम उर्वशीके घर गये। सुखसे बैठी हुई उर्वशीने चित्रसेनकी देखकर प्रसन्न चित्तसे उनका स्वागत किया, तब चित्रसेन हंसकर यों बोले, कि हे सुश्रोणि ! तुमको यह भली भाँति-ज्ञात ही, कि मैं देवतोंके स्वामी महाराज-इन्द्रसे भेजा हुआ यहाँ आया हूँ। जो मनुष्य और देवतोंमें अपने स्वभावहीके गुण बल्यी, शील, रूप, व्रत, दान, बल, वीर्य और वेदमें प्रसिद्ध है, जो शरीर बिंद्या-ऐश्वर्यादिसे भरा हुआ है, जो किसीकी निन्दा नहीं करता है, जिसने अङ्ग, उपाङ्ग और उपनिषदोंके रहित चारों वेद और पाँचवें पुराणकी पढ़ा है, जिसने पठते समय गुरुसे सुश्रुषा सहित आठ वर्षकी बुद्धिको प्राप्त किया है, जिसने ब्रह्म-पुरुषकी रक्षा करनेवाला, अभिमानी करके न

कहनेवाला, लक्ष्मी देखनेवाला प्रियवादी है, जो अन्न और पीनेकी वस्तुओंकी वर्षानेवाला, सत्यवादी पूजित, रूपवान, अहङ्कार रहित, भक्तोंपर कृपा करनेवाला सुन्दर, युद्धमें स्थिर है, जो प्रशंसा करने योग्य अपने गुणोंसे इन्द्र और वरुणके समान है, उस अर्जुन वीरकी तुम भी जानती हो, वह तुम्हारे चरणका सेवक बना है। हे कल्याणि ! इस हेतुसे वह दीन भी तुम्हारा संग करके स्वर्गके फलकी पावे, अतएव इन्द्रकी आज्ञासे ऐसाही करो।

अनिन्दित उर्वशी चित्रसेनके यह बचन सुनके हंसकर अपना बद्ध मान समझ कर प्रेम पूर्वक चित्रसेनसे ऐसा बोली, हे चित्रसेन तुमने जो अर्जुनके यह सब गुण कहे, इन सब-गुणोंकी सुनकर मैं पहिलेहीसे उसके निमित्त कामसे व्याकुल ही रही हूँ। अब मैं अर्जुनसे प्रेम करूँ इससे अधिक आनन्द और क्या होगा ? मैं इन्द्र और तुम्हारी आज्ञा और अर्जुनके गुणोंसे काममें व्याकुल हुई हूँ, तुम जाओ मैं अर्जुनके स्थानमें जाकर अवश्य इस सुखकी प्राप्त करूंगी।

४५ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, कृतकृत्य गन्धर्वकी उत्तम हंसनेवाली उर्वशीने विदा करके अर्जुनसे मिलने की इच्छासे स्नान किया और कामके वाण और अर्जुनके रूपसे पीड़ित उर्वशीने प्रकाशमान उत्तम आभूषण और हृदय-प्रिय गन्धमाला धारण करी, अनन्तर कामसे अत्यन्त व्याकुल चित्तसे दिव्य विस्तरके पलङ्ग पर बैठकर चित्तके संकल्प और मनोरथोंसे अबध्य मनवाली उर्वशी अर्जुनकी अपने पास आया हुआ जानकर विचार करने लगी, अनन्तर जब भारी अन्धकार मन्थाके समय चन्द्रमा उदय भया तो उत्तम वर्णवाली उर्वशी अर्जुनके स्थानको चली। कोमल गुंथी हुई

लम्बी कुसुद आदि फूलोंसे शोभित उस सुन्दरीकी वेणी उस समय अत्यन्त शोभित होती थी ; भौंहोंके चलने, भीठी वीली, शोभा और मुखके भोलेपनसे मानों चन्द्रमाकी लजाती हुई चली, दिव्य चन्द्रनादि सुगन्धि और चारसे शोभित उसके दोनों कूच कास्पित होते थे, कूच अत्यन्त भारी होनेके कारण चरण चरणपर नीची होकर चलती थी, विचित्र रीसरजिसे शोभित उसका मध्य शरीर अत्यन्त शोभा दे रहा था, पहाड़के समान भारी जंघे और कठोर नितम्ब कर्जनीसे शोभित कामदेवके स्थानके ऐसे भान होते थे, जिनको देखकर दिव्य ऋषियोंका मनभी चलित हो जाय, ऐसी जङ्घा कलङ्करहित सी दिखलाई देती थी, गम्भीर गुल्फवाले चरण तामेके समान, लाल अङ्गुली कूनेके समान जंघीपांवपीठ पायजेवके शब्दसे अत्यन्त शोभा दे रही थी, थोड़ा मद्यपान सन्तोष और कामदेवके विविध विलासोंसे उर्वशी देखनेके योग्य बनी थी। स्वर्गमेंभी देखनेके योग्य शरीरवाली वह विलासिनी सिद्ध, चारण, गन्धर्वोंको आश्चर्य देती हुई चली ; बादलके रङ्गवाले उस पतले वस्त्रोंमें वह ऐसी शोभित हुई, जैसे पतले मेघके बीचमें आकर आकाशमें चन्द्रमाकी कला चलती है। क्षण भरमेंही उत्तम हंसनेवाली, मन और पवनके समान गतिवाली उर्वशी अर्जुनके स्थानमें पङ्कचो। वहाँ द्वारपालोंने उसको आई हुई देखकर जाके अर्जुनसे निवेदन किया, 'हे नर-श्रेष्ठ' उत्तम नेत्रवाली उर्वशी आपके मनोहर और निर्मल स्थानमें शङ्कितचित्त होकर इस रात्रिमें आयी है, अर्जुनने उर्वशीको देखते ही लज्जाके मारे अपने नेत्र बन्द कर लिये और प्रणामकरके गुरुके समान पूजा की।

अर्जुन बोले, 'हे देवि। हे अप्सराओंमें श्रेष्ठ उर्वशी। हम तुमको शिरसे प्रणाम करते हैं, हम तुम्हारे दास उपस्थित हैं, आज्ञा करो।

अर्जुनके ऐसे वचन सुनकर उर्वशी संज्ञासे रहित होगयी और गन्धर्वोंके सब वचन कहने लगी। उर्वशी बोली 'हे परुषोत्तम। मुझसे चित्रसेनने जैसा कहा और मैं जिस हेतु यहां आयी हूं सो सब कहती हूं, 'हे परुषश्रेष्ठ। मनको हरनेवाले इन्द्रके उत्सवमें जहां तुम, रुद्र, आदित्य, अश्विनीकमार, वसु, महर्षिभूज, राजर्षिश्रेष्ठ सिद्ध, चारण, और महासर्पोंके समूहके सामने जो तुम्हारे आनेके कारणसे उत्सव हुआ था, जहां सबलोग ऋद्धियोंसे प्रकाशमान, अग्नि, सूर्य और चन्द्रमाके समान शरीरवाले अपने अपने स्थान और मानके अनुसार बैठे थे 'हे इन्दुनन्दन' 'हे विशालनेत्र' जहां गन्धर्व लोग बीन बजा रहे थे, और उत्तम मनीहारी गीत गाये जाते थे, जहां उत्तम आसरा नाच रही थीं, 'हे कन्तीगन्ध' वहां तब विना पलक लगाये केवल मेरी ओर देख रहें थे, 'तुम पवित्र देवोंके समागममें तम्हां पिताकी आज्ञा पाकर सब देवता लोग अपने अपने स्थानकी गये। 'हे शत्रुनाशन' तिस प्रकारसे सब अप्सराभी विदा होकर अपने स्थानकी गयीं और सबभी विदा होकर अपने अपने स्थानकी चले गये। तब इन्द्रकी आज्ञासे चित्रसेन गन्धर्वने मेरे घरमें जाकर ऐसा कहा कि 'हे उत्तम वर्णवाली। तुम्हारे लिये इन्द्रने हमको भेजा है, 'तुम अपना, मेरा और इन्द्रका प्रियकार्य करो, 'हे सुश्रीणी। तुम इन्द्रके तुल्य यज्ञमें वीर उदार गुणसे भरे हुए अर्जुनकी वरणा करो, 'उनकी और तुम्हारे पिताकी आज्ञा पाकर तुम्हारी सुय्या करनेकी तुम्हारे स्थानमें आयी हूं। 'हे पापरहित शत्रुनाशन' मैं तुम्हारे गुण और कामदेवमें व्याकुल हुई हूं, और मेरीभी यही इच्छा थी।

औनैश्वर्यायनजी बोले, अर्जुनने उसके ऐसे वचन सुनकर लज्जामें भरकर अपने हाथोंमें कानोंको बन्दकर लिया और ऐसा कहने लगे,

हे भामिनि । हे वरानन । जो तुम कह रही हो, सो हमारे सुननेके योग्य नहीं है, क्योंकि तुम निश्चय करके हमारी गुरुपत्नीके समान हो, जैसे शची, कुन्ती और माद्री हैं, तुमभी हमको वैसीही हो, हे कल्याणि । इसमें कोईभी विचार और सन्देहका स्थान नहीं है, मैं जो तुमको सभामें भलो भात देखा था, उसका कारण सुनो, मैं यह विचारता था, कि यही कौरववंशकी माता है । हे फूले हुए कमलके समान नेत्रवाली । हे शुभे । हे अच्छे हंसनेवाली । यही विचारकर मैं तुम्हारे प्रसन्न मुखको देख रहा था । हे कल्याणि । हे अप्सरा ! तुम सुभको दूसरे प्रकार देखने योग्य नहीं हो । तुम सुभी गुरुसे भी गुरु हो, क्योंकि हमारा वंश तुमहीसे चला है ।

उर्वशी बोली, हे कुरुनन्दन वीर । हमारा विवाह किसीसे नहीं हुआ है, इस हेतु तुम सुभका माताके समान कहने योग्य नहीं हो । क्योंकि पुरुषके वंशके पुत्र और पौत्र अपने तपके बलसे जायदा आये हैं, सो सब हमसे विहार करते हैं, वे लोग कुछ विचार नहीं करते । हे इच्छापूर्न करनेवाली ! कामदेवसे व्याकुल भक्त दुःखनो सुभका तुम जानकी आज्ञा मत दा । अर्जुन बाले, हे उत्तम सुखवाली । हे आनन्दित । हम जो तुमसे कहते हैं, सो सब दिशाओंके देवता तथा तुमभी सुनो । हे पापराहिते । सुभका जैसे माद्री, शची, और कुन्ती है, तैसीही तुमभी हो, क्योंकि तुमसे हमारा वंश चला है, तुम हमको मातासे भी अधिक हो । हे उत्तम वर्णवाली ! हम तुमकी शिरसे प्रणाम करते हैं । हम तुम्हारे दास हैं, तुम हमको माताके समान सिद्ध करो ।

शैशम्यायनजी बोले, अर्जुनके ऐसे वचन सुनकर उर्वशीकी महाक्रोध हुआ और मोह करके कापती हुई अर्जुनकी शपथ देने

लगी । उर्वशी बोली, मैं तुम्हारे पिताकी आज्ञासे कामके वशमें होकर आपही तुम्हारे घरमें आयी थी और तुमने हमारा सम्मान नहीं किया । इसवास्ते तुमको मैं शपथ देती हूँ, कि तुम स्त्रियोंके बीचमें मानसे रहित होकर नपुंसकके समान नाचनेवाली बनोगी और सब लोग तुम्हें यह कहेंगे, कि यह पुरुष नहीं है । इसप्रकारसे अर्जुनकी शपथ देकर फड़कते हुए ओठवाली उर्वशी सांसलीतो हुई पुनः शीघ्र ही अपने घरकी लौट आई । अनन्तर प्रातःकाल होनेसे शत्रुनाशन पाण्डुपुत्र अर्जुनने शीघ्रतासे चित्रसेन गन्धर्व्वको बुलाकर रातका सब समाचार जिस प्रकार उर्वशीने शपथ दिया था, जैसीका तैसा कह दिया और चित्रसेन गन्धर्व्वने सब समाचार इन्द्रसे कहा, तब हाथीके बाहेनवाले इन्द्रने अर्जुनको एकान्तमें बुलाकर शान्ति पूर्व्वक हंसते हंसते ऐसे वचन कहे, हे ताते । हे सत्तम । तुमको पाकर कुन्ती अच्छे पुत्रकी माता कहाई । हे महाभुज । हे मानव । तुमने अपने धैर्य्यसे ऋषियोंकी भी जीत लिया । हे ताते ! उर्वशीने जो तुमको शपथ दिया है, उससे तुम्हारा कलरावही होगा । हे वीर ! हे पापरहित । तुम लोगोंका वनवासके तेरहवें वर्षमें पृथिवीमें छिपकर रहना होगा, इस शपथका फल वहीं प्राप्त होगा वहीं नपुंसकता और नाचनेके बेषका एकवर्षतक धारण करके पुनः तुम पुरुष होगे । आगे शत्रुनाशन अर्जुन इन्द्रके ऐसे वचन सुनकर परम प्रसन्न हुए और शपथके सोचको भूल गये । और यशस्वी चित्रसेन गन्धर्व्वके सङ्गमें रहकर स्वर्गमें महात्मा अर्जुन आनन्द करने लगे । जो पुरुष पाण्डुपुत्र अर्जुनके इस चरित्रकी सदा सुनते हैं, उनका चित्त कहींभी पापके कामोंमें नहीं लगता । देवराज इन्द्रके पुत्र अर्जुनका यह पवित्र चरित्र सुनकर राजा लोग पाप, क्रोध,

दम्भ आदि सब पापोंसे कूटकर स्वर्गमें आनन्द करते हैं ।

४६ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, कि एक समय इन्द्रकी देखनेकी इच्छासे घूमते हुए महर्षि लोमश इन्द्रके घर गये, वहां जाकर महासुनिने इन्द्रकी नमस्कार किया और उनके आधे आसन पर बैठे हुए अर्जुनकी देखा, तब इन्द्रसे दिये हुए आसन पर ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ लोमश महर्षियोंसे पूजित होकर बैठे । अनन्तर उन्होंने यह विचारा, कि यह कुन्तीका पुत्र चली किसप्रकार इन्द्रके आसन पर बैठा है । इसने कौन पुण्य किया था, जिससे लोकोंकी जीत लिया, कौनसे पुण्यसे यह देवतासे नमस्कार करने योग्य स्थानको प्राप्त किया ? वृषासुरके नाशक शचिके स्वामी इन्द्रने लोमशके मनकी बात जानकर हंसकरके ऐसा कहा । हे महर्षि ! तुम्हारे मनमें जो सन्देह हुआ है, उसका कारण सुनो, जिसकी तुम मनुष्य देखते हो, यह मनुष्य नहीं है । हे महर्षि ! यह महाभुज कुन्तीमें हमारे बीथ्यसे उत्पन्न भया है, अस्त्र सीखने और किसी कारणसे यहा आया है । हे ब्रह्मण ! हमको आश्चर्य्य है, कि आप इस पुराने ऋषिको भी नहीं जानते है । हम इसका सब वृत्तान्त कहते है, आप सुनिये । जो पुराने ऋषियोंमें उत्तम थे, वेही दोनों अब कृष्ण अर्जुन हुए है, यह दोनों तीनों लोकमें प्रसिद्ध है, सोई नर और नारायण ऋषि किसी कार्यके वशसे पृथ्वीमें अवतार लेकर पवित्र लक्ष्मीको धारण कर रहे हैं । हे विप्र ! जिस पवित्र आश्रमको देवता और महात्मा मुनि भी नहीं देख सकते है, वही पवित्र जगत-विदित वदरिकाश्रम इन नरनारायणका स्थान है, जहासे सिद्ध चारणोंसे सेवित गङ्गा चली है । यह दोनों कार्यवश होकर पृथ्वीमें उत्पन्न भये है । हे ब्रह्मर्षि !

यह दोनों महातेजस्वी महाबलवान भूमिके भारकी उतारेंगे । जो निवातकवच नामक राक्षस वरदानसे मोहित होकर अत्यन्त उन्नत हुए हैं, और जो हमारे अप्रिय कार्योंमें प्रवृत्त है, जो वरदान पाकर देवताओंकी मारनेका उपाय करते है, और देवताओंकी कुछ नहीं समझते है, जो महाबलवान घोर दनुके पुत्र पातालमें रहते हैं, जिनसे युद्ध करनेमें कोई भी देवताओंका भुल्लू समर्थ नहीं है, सो महात्मा विशु नामक कपिलदेव थे, वही जीतनेके अयोग्य हरि पृथ्वीमें उत्पन्न हुए है, हे विभी ! पहले समयमें सागरकी खीदते हुए महाबलवान सगरके पुत्रोंकी रसातलमें मारा था, वही महात्मा अर्जुनकी संग लेकर युद्धमें हमारा महत् कार्य करेगी । हे द्विजोत्तम ! इसमें कोई सन्देह नहीं, कि वे महातडागमें जाकर सर्पके समान निवातकवच राक्षसोंकी दर्शन ही मात्रसे नष्ट कर सकते हैं, परन्तु तेजके समूह मधुनाशक कृष्णको थोड़े कार्यके वास्ते जगना अच्छा नहीं, क्योंकि वे जागकर सब जगत्की भस्म कर देंगे । अतएव यही वीर अर्जुन उनके मारनेमें समर्थ है, उनकी मारकर यह पृथ्वीमें जायंगे । इस हेतु तुम हमारी आज्ञासे मनुष्य लोकमें जाओ और वहा काम्यक-वनवासी वीर युधिष्ठिरसे भेंट करा और हमारे वचनसे सत्यवादी धर्मात्मा युधिष्ठिरसे यह कहना, कि तुम अर्जुनके निमित्त कुछ सोच मत करा, वह शीघ्रही शस्त्र सीखकर आवगे, क्योंकि बिना अधिक वाहुवल और शस्त्रोंमें अभ्यासके किये कोईभी भीष्म और द्रोणादिकांकी युद्धमें जीतनेको समर्थ नहीं है, अब महाबाहु और महामनस्वी अर्जुन शस्त्रोंको सीखकर दिव्य नाचने गाने और वाजेकी विद्याके पार होगये है । हे नरनाथ ! जबतक वह यहा आवे, तबतक आपभी सब भाइयोंके समेत उत्तम तीर्थोंको देखिये । हे शत्रुनाशन ! हे राजेन्द्र !

पुण्य तीर्थोंको देखकर दुःख और पापसे रहित होकर सुखसे राज्यको भोग करेंगे । हे द्विजश्रेष्ठ ! आप तपस्वी वलके समेत पृथ्वीमें घूमते हुए उनकी रक्षा कीजियेगा । हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! नीचे ऊंचे दुःखसे जानने योग्य पर्वतोंमें घोर राक्षसलोग रहते हैं, आप उनसे उनकी बचाइये । जब इन्द्र ऐसा कह चुके तब अर्जुनभी विनयपूर्वक लोमश ऋषिसे बोले, हे ऋषि ! आप अवश्य पाण्डुनन्दन राजाकी रक्षा कीजिये, महाराज जैसे तीर्थोंमें घूम सकें और दान दे सकें, आप वैसाही यत्न कीजिये ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, महा तपस्वी लोमश ! मैं ऐसाही करूँगे, यह प्रतिज्ञा करके काम्यकानकी इच्छासे पृथ्वीको चले काम्यकान वनमें जाकर शत्रुनाशन कुन्तीपुत्र धर्मराज युधिष्ठिरकी भाई और तपस्वियोंके सङ्ग बैठे हुए देखा ।

४७ अध्याय समाप्त ।

राजा जनमेजय बोले, हे विप्र ! अपार तेजवाली अर्जुनका यह अद्भुत कर्म सुनकर महा बुद्धिमान धृतराष्ट्रने क्या किया ? श्रीवैशम्पायन बोले, हे राजन् ! ऋषियोंमें श्रेष्ठ व्यासदेवसे अर्जुनकी इन्द्रलोक-यात्रा सुनकर अश्विकाके पुत्र राजा धृतराष्ट्र सञ्जयसे ऐसा कहने लगे ।

धृतराष्ट्र बोले, हे सूत ! हे सारथे ! मैंने बुद्धिमान अर्जुनका सब कर्म सुना । कहो तुमनेभी कहीं कुछ सत्य सत्य सुना है ? मूर्ख बुद्धिवाला दुर्मति केवल स्त्री प्रसंगमें निश्चयवाला भरा पापी पुत्र समस्त पृथ्वीका नाश करेगा । जिस महात्मा युधिष्ठिरकी वाणी सदाही सत्य है, जिसकी और लड़नेवाला अर्जुन है, वही युधिष्ठिर तीनों लोकका राजा होगा । पङ्कजवाले केशरयुक्त तेज वाणोंको चलाते समय अर्जुनकी

आगे युद्धमें मृत्युभी नहीं टहर सकती है, मेरे दुष्टात्मा पुत्र सबही मृत्युके वशमें हुए हैं, जिनका युद्ध अजेय पाण्डवोंसे होनेवाला है । मैं जानता हूँ, कि गाण्डीव धनुषधारी अर्जुनके समान कोईभी लड़नेवाला योद्धा नहीं है । मैं रात्रि दिन यही सोचता रहता हूँ, कि कौन सा वीर रथपर चढ़कर अर्जुनसे लड़ेगा ? यदि भीष्म और द्रोणाचार्य हम लोगोंसे कर्णके समेत फिर जाय तो जगतमें महासन्देह होगी और हमारी जयभी नहीं होगी और याद यह उनसे लड़ेंभी तीभी विजयमें सन्देहही है, क्योंकि कर्ण दयालु और अनुचितकर्त्ता है, और गुरु, द्रोणाचार्य बूढ़े हैं । उधर अर्जुन पूरा पद्माक्रमी, उद्योगी, बलवान और महाक्रोधी है । सब पाण्डव लोगोंसे महायुद्ध होकर हमारी हानि होगी, क्योंकि ये सब लाग सब अस्त्र जाननेवाले वीर और यशस्वी हैं । वह लोग युद्धमें जीतने योग्य नहीं हैं, इस हेतुसे सब राज्यकी इच्छा करते हैं । अब मुझे यह निश्चय होगया, कि जबतक अर्जुन वा यह सब न मारे जायगे, तबतक शान्ति न होगी परन्तु अर्जुनकी मारने और जीतनेवाला जगतमें कोई नहीं है । किस प्रकार उसका यह क्रोध शान्त हो और हमसे सन्धि हो । उस इन्द्रके समान वीरने खाण्डव वनमें आगका सन्तुष्ट किया था, उसीने राजसूय यज्ञमें सब राजोंको जीता-था । हे सञ्जय ! हे तात ! जिस प्रकार बज्र पहाड़ोंका नाश करता है, वैसेही अर्जुनके ढाड़ें हुए वाण मेरे सब पुत्रोंको नाश करेंगे । जैसे सूर्यकी किरण जगतको जलाती है, वैसेही अर्जुनके हाथसे कूटे हुए वाण मेरे पुत्रोंका नाश कर देंगे । मुझको अभीसे अर्जुनके रथके शब्दसे डरी डरईके समान अपनी सेना देखता है । ईश्वरने वाणोंको निकालते और चलाते समय युद्धमें स्थिर रहनेवाले अर्जुनको ब्रह्माने सर्वनाश करनेवाला

आततायी काल बनाया है, हम जिस प्रकार उसको जीत सकें, सी उपाय तुम कहा ।

४८ अध्याय समाप्त ।

सज्जय बेली, हे राजन् । हे पृथ्वीनाथ । आपने जो दुर्योधनके विषयमें कहा सी सब सत्य है, यह कदापि झूठ नहीं होगा । यशस्विनी धर्मपत्नी द्रौपदीकी सभामें आयी हुई देख कर तेजस्वी पाण्डव महाक्रोधके वशमें झुर है, दुःशासनके उन कठोर विग्रहकारी बचनों और कार्यकी वाणियोंको स्मरण करके मेरी बुद्धि नष्ट सी हुई जाती है । हे महाराज । मैंने यह सुना है, कि ११ रूपधारी शिवको अर्जुनने महायुद्धमें धनुषसे प्रसन्न किया है, जटाधारो सब देवताके स्वामी भगवान् शिव उनको भक्ति जाननेकी इच्छासे आपही किरातका वेष धारण करके युद्ध करनेकी आये थे । अनन्तर कौरव सिंहपराक्रमी अच्युत अर्जुनसे मिलनेको सब लाकपाल आये थे, उन्होंने सब अस्त्र उनको दिये हैं, हे महाराज । अर्जुनको छोड़कर और कोई भी पुरुष जगत्में ईश्वरके साक्षात् दर्शन नहीं कर सकता, हे राजन् जो आठ मूर्तिवाले शिवसे भी युद्धमें नहीं हारें, उस अर्जुनसे लड़नेको समर्थ कोई भी वीर नहीं देखता । यह आपात्त सभामें द्रौपदीकी खींचनवाली पाण्डवोंका क्रोधित करनेवाली तुम्हारे पुत्रोंके उत्पन्न को है । यह आर्वात्त घोर, कठिन और रोमकी खड़ो करनेवाली है, जब दुर्योधनने द्रौपदीको अपनी जङ्घा दिखाई थी, तब क्रोधसे फड़कते हुए आठवाली भीमसेनने सत्यवाणी कही थी कि, रे पापी ! मैं तेरह वर्ष बीते घोर वेगवाली गदासे तेरी जङ्घाको तोड़ूंगा । तैने जुआरूपी पाप किया है । वे सब लोग शस्त्र चलानेमें अछ महातेजस्वी सब शस्त्रीकी जाननेवाले देवतासे भी हारने योग्य नहीं है । मुझको निश्चय है, कि वे लोग

अपनी स्त्रीकी सभामें देखकर बड़े क्रोधित हुए हैं, सी युद्धमें तुम्हारे पुत्रोंका नाश करेंगे ।

धृतराष्ट्र बेली, हे सूत ! कठोर बात बोलनेवाले कर्णने क्या बुरा काम किया, जो द्रौपदीके सभामें बुलाकर यह बैर उत्पन्न किया ? मैं पापी पुत्र अब भी बैठे रहूँ, क्योंकि उनका बड़ा भाई गुरु विनयके समेत स्थिर है, दुः दुर्योधन मुझका आख और चेष्टास राहत देख करभी मेरे वचनको नहीं सुनता, आर कर्ण, शकुनि, आदि मूर्ख और पापी मन्त्री हैं सो उसके दासोंका निरन्तर बढ़ातही चले जाते हैं । सामान्य रूपसेभी यदि अर्जुन वाणियोंको छोड़े, तो मेरे पुत्र भस्म हो सकते हैं, और क्रोध की ता कदाहो क्या है । अर्जुनके हाथ और महाधनुषसे कूटे हुए दिव्यमन्त्रसे मन्त्रित वाण देवताओंको भी नाश कर सकते हैं, जिसके साक्षात् तोनलोकके नाथ कृष्ण मन्त्री, रक्षा करनेवाले और मित्र हैं, वह किसको नहीं जीत सकता ? हे सज्जय । यह बड़ आश्चर्यकी बात है, जो सुनते हैं, कि अर्जुनने अपने हाथसे महादेवसे युद्ध किया, और सब लागाके देखते हुए कृष्ण की सहायतासे जी आत्मको सजुष्ट किया था, सो तुम जानतेही हो । मुझे निश्चय है, कि मेरे पुत्र शकुनि आदि अपने मन्त्रियोंके समेत भी भोम, अर्जुन और कृष्णके क्रोधित हानपर स्थिर न रह सकेंगे ।

४९ अध्याय समाप्त ।

राजा जनमेजय बेली, हे महासुत । राजा धृतराष्ट्रने वीर पाण्डवोंको वनकी निकालकर जो कुछ सोच किया, सो सब व्यर्थही था, क्योंकि महारथ पाण्डवोंका क्रोधसे पोड़ित होकर क्रोध करानवाले अल्पबुद्धि राजपुत्र दुर्योधन पर कैसे क्षमा कर सकते थे । अब आप हममें यह कहिये, कि पाण्डवोंका वनमें रहकर क्या

भोजन करते थे ? काग वह लोग नगरको वस्तु खाते थे, अथवा वनमें उत्पन्न हुई ?

श्रीवैशम्पायनजी बोले, वनमें उत्पन्न हुए अन्न और शुद्ध वाणोंसे मारे हुए हरिण ब्राह्मणोंको भोजन कराकर पुरुषसिंह पाण्डवउन्हींको खाते थे, महाबाणधारी महावीर पाण्डव लोगोंको वनमें वसते हुए जानकर, अग्निहीन और अग्निहीन अनेक ब्राह्मण उनके सङ्ग रहते थे, महाराज युधिष्ठिर अपने पवित्र वाणोंसे अनेक खाने योग्य वनमें रहनेवाले हरिणोंको मार कर वेदपाठी महात्मा सहजों ब्राह्मण और दशमोक्त जाननेवाले महान्यायोंको भोजन देते थे । पहले ब्राह्मणोंको दत्त करके तब आप भोजन करते थे उनके समाजमें कोई भी बुरे रङ्गवाला, रोगी, दुबला, बलहीन, दुखी और डराऊ नहीं दीखता था । महाराज धर्मराज युधिष्ठिर अपने जाति भाइयोंको प्यारे पुत्रोंके समान और सहोदर भाइयोंको जातिके सहित पालते थे । यशस्विनी द्रौपदी अपने सब पतियोंको माताके समान भोजन कराकर पीछे आप भोजन करती थी । पूर्वकी और राजा, दक्षिणकी और भीमसेन और अर्जुन पश्चिम तथा उत्तरकी और नकुल और सहदेव धनुषको लेकर सदाही हरिणोंका नाश करनेकी जाते थे, इस प्रकार उन चारों पाण्डवोंने अर्जुनके विना पढ़ते, जीतते और यज्ञ करते पाँच वर्ष बिताये ।

५० अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् ! उनके मनुष्योंसे अधिक और अद्भुत चरित्र सुनकर राजा धृतराष्ट्र चिन्ता, शोक और क्रोधसे बाहुल होगये । हे पुरुषसिंह ! हे जन्मेजय ! पश्चिमापुत्र राजा धृतराष्ट्र लम्बी और गर्म शस्त्र लेकर सञ्जयसे मन्त्रणा करते हुए ऐसे बोले, हे सून ! रात और दिनको एक एक

क्षणमात्रभी सुभक्तोंको शान्ति प्राप्त नहीं होती है, मैं रातदिन उस जुएकी अनीतिहीको स्मरण करता हूँ । उन सब भाइयोंका न सहने योग्य तेज, धैर्य, धारणा शक्ति और परस्परकी प्रीति ऐसी है, जो पुरुषोंमें नहीं होती । तिनमें भी देवतोंके पुत्र देवतोंके समान तेजस्वी नकुल और सहदेव युद्धमें दृढ़ धनुषवाले, दूरतक वाण फेंकनेवाले, सदाही युद्धमें स्थिर रहनेवाले, जल्दी वाण चलानेवाले, महाक्रोधी, शीघ्रता करनेवाले, हैं । वे दोनों जब भीम और अर्जुनकी अगाड़ी करके युद्धमें आवेंगे, तो सिंह और अश्विनी कुमारके समान उनके वेगकी कोई भी न सह सकेगा । हे सञ्जय ! मैं अपनी सेनाका अभीसे नाश देख रहा हूँ । मुझे यह निश्चय है, कि वह दोनों वीर महारथ और युद्धमें असामान्य हैं; वे दोनों द्रौपदीके उस दुःखको देखकर कदापि क्षमा न करेंगे । महा धनुषधारी वृष्णिवंशी और महा-तेजस्वी पाञ्चालदेशी क्षत्रिय लोग जब सत्यवादी, महात्मा कृष्णसे रक्षित होकर पाण्डवोंकी सङ्गमें लेकर युद्धमें आवेंगे, तो मेरे पुत्रोंके समेत मेरी सब सेना नष्ट होजायगी । हे सूतनन्दन ! राम और कृष्णसे शिक्षित वृष्णिवंशी सेनाके वेगकी कोईभी नहीं सह सकता है । उनलोगोंके बीचमें जब महा परक्रमी धनुषधारी भीम वीरों के नाश करनेवाली पाताल पर्यन्त फोड़नेवाली गदाकी लेकर युद्धमें घूमेगा, तैसेही गाण्डीव धनुषका बिजलीके समान घोर शब्द और भीमकी गदाका वेग कोईभी राजा सहनेकी समर्थ न होगा, उस समय मैं अपने मित्रोंकी बातोंकी स्मरण करूँगा, जो दुर्योधनके वशमें होकर पहले मैंने नहीं करी थी ।

सञ्जय बोले हे महाराज ! आपने यह बड़ी भारी भूल करी है, जो सामर्थ्य रहने पर भी अपने पुत्रको मोहसे जुएसे नहीं रोका । जब अच्युत मधुनाशक श्रीकृष्णने सुना, कि पाण्डव

लोग जुएमें हार गये, तो तुरंतही काम्यक-वनमें पाण्डवोंके पास आये, धृष्टद्युम्न आदि द्रुपदके पुत्र, विराट, धृष्टकेतु और महारथ कैकय लोग यह सब युधिष्ठिरके पास वनमें गये थे। उन्होंने पाण्डवोंकी हारा हुआ देखकर जो कुछ उनसे कहा सो मैंने दूतोंसे सुना है। वही आपसे निवेदन करता हूं, उस समागममें श्रीकृष्णने युधिष्ठिरसे जो वार्ता करी, सो सुनिये। युधिष्ठिरने कृष्णसे कहा कि आप युद्धमें अर्जुनके सारथीका काम कीजियेगा और कृष्ण भगवानने कहा, कि हमें ऐसा ही करेंगे, पाण्डवोंको उस दशमें देखकर कृष्णको महा क्रोध हुआ, और हरिणके चमड़ेको पहने हुए युधिष्ठिरसे ऐसा बोले, हे महाराज। पहले मैंने जो राजसूय यज्ञके समयमें इन्द्रप्रस्थमें पाण्डवोंको लक्ष्मी देखी थी, सो दूसरे राजोंको दुर्लभ है। जिस महायज्ञमें शस्त्र, भय और तेजसे पीड़ित अङ्ग, वङ्ग, पौण्ड्र, उह, चोल द्राविण और अम्यक आदि राजा, समुद्रवासी बङ्गत जलवालि-देश-निवासी और सब देशोंके राजा, सिंहलके उत्तम राजा, लङ्काके राजा तथा और स्नेहल्लोग पश्चिमके सब राजा, समुद्रके बीचमें रहनेवाले राजा, पल्लव, दरद, सब, किरात, यवन, शक, नोर, ह्यण, चीन, तुषार, सैन्धव, जागुड़, रामठ, सुराट, स्त्रीराज, तङ्गण, कैकय, मालव और काश्मीर आदि अनेक महाराजोंको उस अभिषेकमें आये हुए मैंने देखा था। हे महाराज। वह आपकी चलनेवाली और चञ्चल लक्ष्मी जिन्होंने ली है, मैं आपसे आज्ञा लेकर उनकी छीन लाजंगा। हे कौरव्य! मैं, बलराम, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, अक्रूर, गद, शाम्ब, प्रद्युम्न, उग्रसेन, महावीर धृष्टद्युम्न और शिशुपालपुत्र धृष्टकेतु यह सब मिलकर अभी युद्धमें दुर्योधन, कर्ण, दुशासन और शकुनि आदि सबको मार कर लक्ष्मीको प्राप्त करेंगे। हे भारत। तब आप अपने सब

भाइयोंके समेत धृतराष्ट्रकी लक्ष्मीको प्राप्त करके हस्तिनापुरमें वसते हुए सब पृथ्वीका राज्य कीजिये, अनन्तर उस वीरसमाजमें जहां महावीर धृष्टद्युम्न आदि अनेक वीर बैठे थे, राजा युधिष्ठिर ऐसा कहने लगे। युधिष्ठिर बोले, हे जनाईन! हम तुम्हारी सच्ची प्रतिज्ञाको स्वीकार करते हैं, हे महाबाहो। आप हमारे शत्रुओंको सेनाके समेत मारेंगे, परन्तु मैंने राजोंके बीचमें तेरह वर्ष पथ्यन्त वनमें रहनेकी प्रतिज्ञा की है, सो आप तेरह वर्षके पश्चात् इस अपनी प्रतिज्ञाको सत्य कीजियेगा। धर्म राजके ऐसे वचनको सुनकर धृष्टद्युम्न आदि सभासदोंने क्रोधयुक्त कृष्णको शीघ्रही समया नुसार मीठे वचन कहकर शान्त किया और सब वीरोंने श्रीकृष्णके सामने द्रौपदीसे यह प्रतिज्ञा की, कि हे देवि। तुमकी दुःख देनेके कारण दुर्योधन अपने प्राणको त्याग करेगा। हे देवि। तुम शोच मत करो और हमारी प्रतिज्ञाको सत्य मानो, जिन लोगोंने तुमकी जुएमें हरी हुई देखकर हंसा है, उनके मांस सियार और पची खायंगे, जिन्होंने तुम्हारे बाल पकड़कर सभामें खोचा है, उनके सिरोंकी गिड़ और सियार खीचेंगे; और उनके रुधिरको पीयेंगे। हे पात्रालि। तुम अपनी दृष्टिसे देखोगी, कि जिन्होंने तुमकी दुःख दिया है, उनके शरीरोंकी पृथ्वीमें मांस खानेवाले पची खींचते फिरते हैं, और मांस खा रहे हैं, और जिन्होंने देखा है, उन सबके मरे हुए सिरोंका रुधिर भूमि पीयेगी। हे भरतर्षभ। उन सब महातेजस्वी शूरवीर सब लक्ष्मणोंसे भरे वीरोंने इस प्रकार धर्मराजके सामने ऐसी प्रतिज्ञा की है। अनन्तर धर्मराजने उन सबको तेरह वर्षके पश्चात् युद्धके निमित्त निमन्त्रण दिया, वे सब महारथ लोग श्रीकृष्णकी अगाड़ी करके युद्धमें आवेंगे। बलराम, कृष्ण, अर्जुन, प्रद्युम्न, शाम्ब, सात्यकी, भीमसेन, नकुल, सहदेव,

काशीरके राजाके पुत्र, पांचाल-राजके पुत्र और मत्स्य देशका राजा, ये सब लोकमें प्रसिद्ध वीर और अजेय हैं। ये महात्मा लोग महासेनाके सहित धर्मराजकी सहायता करेंगे। कौन ऐसा वीर है, जो इन केशरी सिंहके समान क्रोधित वीरोंके आगे युद्धमें अपने जीवनकी इच्छा कर सके ?

धृतराष्ट्र बोले, मुझसे जो विदुरने जुएके समय कहा था कि हे नरनाथ ! यदि आप पाण्डवोंकी जुएमें हराइयेगा तो निश्चय कुरु-वंशका अन्तकाल होगा, और पृथ्वीमें रुधिरकी महाधारा बहेगी। हे सत्त। मुझसे विदुरने पहले जो कहा था, निश्चय वैसाही होगा। इसमें कोई सन्देह नहीं, कि तेरह वर्ष बीतने-पर पाण्डवोंसे और हमसे महायुद्ध होगा।

५१ अध्याय समाप्त ।

इन्द्रलोकाभिगमन पर्व समाप्त ।

अथ नलोपाख्यान ।

राजा जनमेजय बोले, महात्मा अर्जुन जब शस्त्र लेनेकी इच्छासे इन्द्रलोकको गये तो युधिष्ठिर आदि पाण्डवोंने क्या किया ?

श्रीवैशम्पायनजी बोले, जब महात्मा अर्जुन शस्त्र लेनेकी इच्छासे इन्द्रलोकको गये, तो पाण्डवलोग द्रौपदीके सहित दुःखी होकर काम्यकवनमें वास करने लगे। एक दिन निराली घासपर एकान्तमें बैठे हुए द्रौपदीके सहित भरतकुलके श्रेष्ठ पाण्डवलोग रोंते हुए शोकसे पीड़ित होकर अर्जुनके बियोगसे महादुःखित भये, अर्जुनके बियोग और राज्यके नाशसे महादुःखित पाण्डव युधिष्ठिरसे महावाज भीमसेन ऐसा बोले, हे महाराज ! जिसमें हमलोगोंके प्राण स्थिर है, सो पुरुष-अर्जुन आपकी आज्ञासे तप करनेकी गया है जिसके नाश होनेसे पुत्रोंके समेत पाञ्चाल-वंश हम सात्यकी और श्रीकृष्ण निःसन्देह

सबही मर जायेंगे। जो महात्मा अर्जुन आपको आज्ञासे वनमें जाकर अनेककृशोंकी सह रहा है, उससे अधिक दुःख और क्या होगा ? जिसके बाहुबलका आश्रय करके हम सब महात्मा लोग अपनेकी युद्धमें अजेय और पृथ्वीको प्राप्त ही संभ्रमते हैं, जिस धनुर्धारीके भरोसे मैंने सभामें शकुनिके सहित सब धृतराष्ट्र पुत्रोंको नहीं मारा, सो हम सब लोग श्रीकृष्णसे रक्षित बाहुबली होनेपरभी केवल आपकी आज्ञा पालनेके निमित्त इन सब कृशोंकी सह रहे हैं, हम सबलोग श्रीकृष्णकी सङ्ग लेकर कर्ण आदिकी मारकर अपने बाहुबलसे जीती हुई पृथ्वीका राज्य करेंगे, केवल आपहीके जुएरूपी दोषसे इस आपत्तिमें पड़े हैं। हमारी वही दशा है, जैसे महा पराक्रमी, महावीर पुरुषका कोई मूर्ख सर्वस्व कीन ले। हे महाराज ! आपकी क्षत्रियोंके धर्मकी ओर देखना चाहिये। हे महाराज ! वनमें रहना क्षत्रियोंका धर्म नहीं है, पण्डितोंने राज्यही क्षत्रियोंका धर्म और परम धर्म कहा है, क्षत्र-धर्मका जाननेवाला राजा मान्यका-स्थान और मार्ग होता है, हे महाराज ! अर्जुनको वनसे बुलाकर और श्रीकृष्णकी सङ्ग लेकर इस बारह वर्षकी पहिलेही धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी मारना उचित है। हे महाराज ! हे महामते ! हे प्रजानाथ ! मैं सेनाका उत्तम व्यूह बनाकर धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी वीरसे यमलोककी भेजूंगा। शकुनिके सहित धृतराष्ट्रके सब पुत्र, कर्ण, दुर्योधन या और जो युद्ध करनेकी आर्षेंगे, उन सबकी मैं एकलाही माखूंगा। हे महाराज ! जब मैं इन सबकी मार चुकूंगा, तब आप वनसे नगरकी ओर आइयेगा। ऐसा करनेसे आपकी कुछ दोष नहीं होगा, हे तात। हे शत्रुनाशन ! फिर हमलोग अनेक यज्ञोंसे सब पापोंकी नाश करके उत्तम स्वर्गको लाभ करेंगे। हे महाराज ! यदि आप बालकोंके समान हठी

और दीर्घसूत्र (आलसी) और धर्मपरायण न हों, तो यह सब काम ऐसेही ही सकता है। ऐसा कहा है कि कलियोंकी कलहीसे मारना चाहिये, क्योंकि कलीके सङ्ग कल करनेसे पाप नहीं होता। हे महाराज। हे भारत। धर्मात्मा लोगोंने धर्म विषयमें कहा है कि एक रात दिन एक वर्षके बराबर है। हे महाराज। हे नाथ। वेदमेंभी ऐसाही लिखा है, कि दुखमें एक दिन रात एक वर्षके समान बीतता है। यदि आप वेदकी प्रमाण मानते हैं, तो जान लीजिये कि तेरह वर्षका समय बीत गया। हे राजन् हे शत्रुनाशन। कालकी बितानेसे सेनाके समेत दुर्योधनका मारना कठिन होगा, क्योंकि वह सब पृथ्वीके राजोंकी अपनी ओर कर लेगा; हे राजेन्द्र। जूएके प्यारे आपने जूआ खेला और हम सब लोगोंकी इस बिना जानी आपत्तिमें डाला। हम उस देशकी नहीं देखते, कि जहां वह दुरात्मा दुर्योधन इतोंके द्वारा हम लोगोंकी न न जान सके। हम लोगोंकी जानकर वह दुरात्मा कलसे पन वनवासकी भेजेगा, हे महाराज। यदि किसी प्रकारसे वह पापी हमकी उस समय न जान सके, तो इस आपत्ति के पार गये हुए आपको जूमें जोत लेगा, और आप जूमें बुलानेसे अश्वही जायंगी, वह दुष्ट पासोंकी विद्यामें बड़ा प्रवीण है, फिरभी हम लोगोंकी वनहीमें घर बनाना होगा। हे महाराज। यदि हम लोगोंकी आप जीवन भर दुःखी बनाना चाहें, तो सब धर्मोंकी कीजिये। हे महाराज। यह निश्चय है, कि कलीकी कलहीसे मारना चाहिये, मैं आपकी आज्ञा पाकर शक्तिके अनुसार मन्दबुद्धि दुर्योधनको वैसेही मार डालगा, जैसे अग्नि एक स्थानमें भड़काकर सबको जला देती है। आप मेरे वचनोंकी सत्य मानिये। श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन्। धर्मराज युधिष्ठिरने भीमसेनके ऐसे

वचन सुनकर उनको शान्तकर उनका माथा सूंघकर ऐसे वचन कहे, हे महाबाहो। इसमें कोई सन्देह नहीं, कि तुम अर्जुनकी सृष्टि लेकर तेरहवर्षके पश्चात् दुर्योधनकी मारोगे। हे कुन्तीनन्दन। तुम जो कहते हो कि समय आगया सो झूठ बोलनेकी मेरी शक्ति नहीं है। हे कुन्तीपुत्र। यह समय बीतने के पश्चात् तुम पापी कली दुर्योधनकी नाश करना। जहां धर्मराज युधिष्ठिर भीमसेनसे ऐसा कर रहे थे; तहां महाभाग महोत्तपि वृहदश्व आये। महोत्तमा धर्मराज युधिष्ठिरने उन धर्म करनेवाले मुनिको वहां आये हुए देखकर शास्त्रविधिके अनुसार मधुपर्क आदिसे उनकी पूजा करी; उनकी सुखसे बैठा हुआ देखकर बैठे हुए महोत्तमा युधिष्ठिर अनेक दिन वचन कहने लगे। हे भगवन्। कल बुद्धिवाले पाशोंके पण्डितोंने मुझे बुलाकर मेरे धर्म राज्यकी छीन लिया, कल की न जाननेवाले धर्मात्मा मेरी प्राणसेभी अधिक प्यारी स्त्रीकी पापमें निश्चयवालोंने कलसे सभामें बुलाया। दूसरी बार मुझकी जूमें जीतकर हरिणके चमड़ेके वस्त्र पहिनाकर इस घोर महा वनमें भेज दिया, मैं इस वनमें दुःखी होकर रहता हुआ अब जूकी अनेक बातोंकी सरण करता हूं। जूके अधिकारमें कही हुई बातोंकी सुनकर और अपने हृदयके भावोंकी सरण करके रात्रि भर चिन्ताही करता हूं। जिस गाण्डीव धनुषधारी अर्जुनमें हमारे प्राण वसते हैं, उस महोत्तमाके बिना मैं निर्बलके समान होगया हूं। शस्त्र सोख कर आये हुए प्रियवादी, गम्भीर आलसरहित, दयावान अर्जुन की मैं कब देखूंगा? मेरी बुद्धिमें मेरे समान दुःखी राजा कोई नहीं है। क्या मेरे समान मन्दभाग कोई है? क्या आपने किसीकी ऐसा देखा है? क्या सुना है?

वृहदश्व बोले, हे पाण्डव! हे राजन्!

आप जो कहते हैं, कि मेरे समान कोई भी कहीं मन्दभाग्य नहीं हुआ ; हे पाप-रहित । यदि आप सुननेकी इच्छा करें, तो उस राजाकी कथा कहूँ, जो पृथ्वीमें आपसे भी अधिक मन्द-भाग्य हुआ है ।

श्रौतैश्मयायन-मुनि बोले, महाराज युधिष्ठिरने उनके ऐसे वचन सुनकर कहा, कि मैं अपने समान देशको प्राप्त हुए राजाकी कथा सुननेकी वृद्ध इच्छा रखता हूँ, आप कहिये । वृहदश्व बोले, हे पाण्डव । हे अच्युत । आप भाद्र्योंके समेत सावधान होकर, जो राजा आपसे भी ज्यादा दुःखी हुआ है, उसकी कथा सुनिये । निषध देशमें वीरसेन नामक एक विख्यात राजा हुआ था । उसके पुत्रका नाम नल था ; वह धर्म और धनका पण्डित था । हमने सुना है, कि उसको भी पुष्करने छलसे जुएमें जीत लिया था, वह भी स्त्रीके सहित महा-दुःखी होकर वनमें वसा था । हे राजन् ! वनमें रहनेके समय दास रथ, भाई और मित्र कोई भी उसके सङ्ग न थे, आप तो देवतोंके समान भाई और ब्राह्मणोंके सहित वनमें वास करते हैं, इससे आप सोचनेके योग्य नहीं हैं । युधिष्ठिर बोले, हे कहनेवालोंमें श्रेष्ठ । मैं महात्मा नलके चरित्रको विस्तारसे सुनना चाहता हूँ, आप कहिये ।

५२ अध्याय समाप्त ।

श्रौतैश्मयायन-मुनि बोले, वीरसेनके पुत्र सब गुणसे भरे, रूपवान, घाड़िकी विद्याके पण्डित, और बलवान् नल नामक राजा हुए, उन्होंने नलके समान सब राजाके शिर पर निवास किया, जैसे सूर्य अपने तेजसे सबके ऊपर रहता है । वे ब्राह्मणोंके पूजक, वेदके जाननेवाले, और निषधदेशके राजा, जुएके प्यारे, सत्-वादी, महाशक्तिके स्वामी, पुरुष और स्त्रीके प्यारे, उत्तर इन्द्रियजित, रक्षा करनेवाले, धनुर्धारया

में श्रेष्ठ नल साक्षात् मनुके समान थे, वैसेही विदर्भ देशमें महापराक्रमी, शूर, सब गुणोंसे युक्त राजा भीम थे । परन्तु राजा भीमकी कुछ सन्तान नहीं थी, उन्होंने संतानके निमित्त अनेक उत्तम यत्न किये, हे भारत । एक दिन उनके पास दमन नामक महर्षि आये, धर्मजानवाले राजा भीमने स्त्रीके सहित उन तेजस्वी ऋषिकी सत्कार पूर्वक राणीको सङ्ग लेकर सेवा की । तब दमन ऋषिने स्त्री सहित राजाकी यह वरदान दिया कि तुम्हारे एक कन्या रत्न और महायशस्वी उदार तीन पुत्र होंगे, अनन्तर वैसेही हुआ । राजाने पुत्र और पुत्रीके नाम रखे, कन्याका नाम दमयन्ती, पुत्रोंके नाम दम, दान्त और दमन हुए । यह सब लोग तेजस्वी, सब गुणोंसे पूर्ण महापराक्रमी हुए । दमयन्ती रूप, तेज, यश, लक्ष्मी और सौभाग्यसे तीनों लोकोंमें विख्यात और सुन्दर कमरवाली हुई । एक समय सुन्दर शरीरवाली दमयन्ती सब भूषण पहनकर साखियोंके बीचमें वषाकी बिजलीके समान शोभित थी ; वह विशालनेत्रा अत्यन्त रूपवती होनेके कारण लक्ष्मीके समान शोभित हुई । उसके समान रूपवती देव, यक्ष, और मनुष्योंमें किसीने भी न देखी और न सुनी । वह सुन्दरी बाला देवताके चित्तको भी प्रसन्न करती थी ; और पुरुषोंमें सिंहे, नलभी पृथ्वीमें अपनेसे रूपवान् किसीको नहीं देखते थे, मानो सच्चा कामदवहान् रूपधारण किया है । दमयन्तीकी साखयाने दमयन्ताके नाम आनन्दसे नलके रूपका और कई पुरुष नलके आगे दमयन्तीके रूपका वरण किया करते थे । हे कुन्तोपुत्र ! इस प्रकारसे उन दानाम वना रूप देखभो केवल शुभ सुनके अत्यन्त प्रेम बढ़ गया, और सङ्गही कामदेव उन्हें लगा । तब नल अपने हृदयसे वे सङ्गनेमें असमर्थ होकर रणवासके समान एकलाही रहने लगे ।

अनन्तर उन्होंने उस वनमें सीनेके पखवाले हंसोंकी देखा और उनमें से एकको पकड़ लिया ; तब उस हंसने नलसे कहा, कि हे राजन् ! मैं तुम्हारा बड़त प्यारा काम करूंगा, अतएव तुम मुझको मारना मत । हे नैषध ! मैं दमयन्तीके पास जाकर तुम्हारी वार्ता इस प्रकारसे कहूंगा, कि जिससे वह तुमकी छोड़कर कदापि दूसरे पुरुषकी इच्छा न करेगी । राजाने हंसकी यह बात सुनकर उसे छोड़ दिया, वे सब हंस आकाशकी उड़के विदर्भ पहुँचे । वहाँ जाकर दमयन्तीके घरमें उतरे तब सखियोंके समेत दमयन्ती उन विचित्ररूपी पक्षियोंकी देखके प्रसन्न होकर शीघ्रता सहित पकड़नेकी दौड़ी । तब सब हंस उन कन्याओंके झुण्डमें इधर उधरकी भागने लगे । तब एक एक हंसके पीछे एक एक कन्या हो गई । जिस हंसके पीछे दमयन्ती दौड़ी वह घरमें घुस गया और वहाँ मनुष्योंकी बोली बनाकर दमयन्तीसे ऐसा बोला, हे दमयन्ति ! निषध देशमें नल नामक राजा अश्विनीकुमारके समान रूपवान है, मानों साक्षात् कामदेवने मूर्ति धारण करी है । उसके समान सुन्दर कोईभी पुरुष नहीं है, हे उत्तम रङ्गवाली ! हे सुमध्यमे ! यदि तू उनकी स्त्री बने तो तेरा जन्म और रूप सफल हो । हमने सब देवता, गन्धर्व, मनुष्य, राक्षस और सर्पोंकी देखा है, परन्तु उनके ऐसा सुन्दर कोईभी नहीं मिला ; तुमभी स्त्रियोंमें रत्न हो और नलभी पुरुषोंमें श्रेष्ठ है, उत्तम-हीका मिलना उत्तम है । हे राजन् ! हंसकी ऐसी बात सुनकर दमयन्तीने हंससे कहा, कि तुम नलसे जाकरभी ऐसाही कह दा । हे प्रजानाय ! विदर्भ राजकन्याकी बातकी स्वीकार करके हंस वहाँसे चले और और नलसे आकर सब कह दिया ।

५३ अध्याय समाप्त ।

श्रीवृहदश्व सुनि बोले, हे भारत । हंसकी वाणी सुनतेही दमयन्ती अपनी स्वस्थ दशामें न रही, उसी दिनसे चित्तासे व्याप्त, दीन, दुर्बल होगई, मुखका रङ्ग बदल गया ; बार बार सांस लेने लगी, उत्पत्तके समान केवल ऊपरहीकी देखने लगी, केवल ध्यानहीमें रहने लगी, शरीरका रङ्ग पीला होगया, कामदेवने हृदयमें स्थान बनाया, उसका सेज, भोग और आनन्दमें कहींभी चित्त न लगने लगा ; निद्राने दिन और रात नेत्रकी छोड़ दिया, केवल हाय हाय करके रोने लगी । दमयन्तीकी इस शीघ्रनीय दशाकी देखकर उसकी सखियोंने चिन्हीसे जान लिया और विदर्भराजसे उसकी सब दशा कह सुनाई । राजा भीमने सखियोंके सुखसे अपनी पुत्रीकी यह सब दशा सुनकर उसके महा कार्यका विचार किया । मेरी पुत्री आज कल अत्यन्त अस्वस्थके समान क्यों दीखती है, अनन्तर राजाने देखा, कि इसकी यौवन अवस्था प्राप्त हुई, अब इसका स्वयम्बर अवश्य करना चाहिये । अनन्तर राजाने सब राजोंकी निमन्त्रण दिया और कहला भेजा, कि हे वीर लोग ! इस स्वयम्बरको आकर देखिये, सब राजालोग भीमकी आज्ञा सुन दमयन्तीका स्वयम्बर जान हाथी घोड़े और रथोंके शब्दसे पृथ्वीकी पूर्ण करते हुए विचित्र माला और आभूषणोंकी धारण करके देखने योग्य सेनाकी सङ्ग ले विदर्भ नगरमें आये । महाबाहु राजा भीमने उन आये हुए सब सहस्रा राजोंकी यथायोग्य पूजा करी, वे सब लोग पूजा पाकर वहाँ ठहरें ।

इसी बीचमें देवर्षियोंमें मुख्य महात्मा पर्वत और नारद घूमते हुए इन्द्रलोकमें गये । यह दोनों महाबुद्धिमान महाव्रतधारी सुनि पूजायुक्त इन्द्रके भवनमें गये, अनन्तर भगवान् इन्द्रने इन दोनोंकी पूजा करके दुशल और सर्वगत आनन्द पूछा । नारद बोले, हे देव ! हे ईश्वर ! हे मधवन् ! हम लोग सदा

कुशली रहते हैं, हे विभी । सब जगतके राजा लोग भी आनन्दसे हैं । श्रीवृहदश्व मुनि बोले, नारदके ऐसे वचन सुनकर ब्रह्मासुरके मारने-वाले इन्द्र ऐसा कहने लगे ; हे मुने । जो चलो लोग, पृथ्वीके स्वामी, प्राण देकर युद्ध करनेवाले हैं ; जो युद्धमें बिना भागे हुए शस्त्रसे प्राण देते हैं, यह लोक जिस तरह मेरे लिये अक्षत है, उनकी भी है ; उन अपने प्यारे शूर वीर-चत्त्रियोंको जो पाहुने होकर मेरे यहां आते थे, आजकल नहीं देखता हूं, वे सब धर्मज्ञ चलो कहा है ? इन्द्रके वचन सुनकर नारद कहने लगे ।

नारद बोले, हे भगवन् । जिस कारणसे चलो नहीं देखते सो आप सुनिये, विदर्भ-राजकी पुत्री जिसका नाम दमयन्ती है, जिसके समान रूपवती स्त्री पृथ्वीमें कोई नहीं है, हे इन्द्र । उसका स्वयम्बर शी ग्रीही होनेवाला है, वहीं सब राजा और राजपुत्र जाते हैं, हे वृत्र-नाशक ! उसीको प्राप्त करनेको इच्छासे सब राजा लोग अधिक बल लेकर गये हैं, क्योंकि वह मनुष्यलोकमें रत है । उसी समय इन्द्रके पास समस्त लोकपाल और देवतोंमें श्रेष्ठ अग्नि-देव भी आगये उन्होंने भी नारदके सब वचनोंको सुनकर वहां जानेका निश्चय किया । हे महाराज । अनन्तर वे सब लोग अपने अपने साथियोंको लेकर वाहनों पर चढ़कर उस विदर्भ-नगरको आये, जहां सब राजा लोग थे । हे कुन्तीनन्दन । राजा नल भी सब राजाओंको आए हुए सुनकर दमयन्तीको इच्छासे प्रसन्न चित्तसे स्वयम्बरमें आये । मार्गमें आते देवतोंने पृथ्वीमें स्थित नलको ऐसा देखा, कि मानो साक्षात् कामदेवही सम्पदाओंके सहित रूप धारण करके आया है, लोकपालोंने उन्हें सूर्यके समान तेजस्वी देखकर और उनके रूपसे विभूत होकर अपनी इच्छाको छोड़ दिया । तब सब देवतोंने अपने अपने विमानोंकी रोक

कर पृथ्वीमें आकर नलसे कहा, हे नैषध । हे राजेन्द्र । आप सत्यव्रतधारी हो, सो हमारी सहायना करो, हे पुरुषोत्तम श्रेष्ठ हमारे दूत बनी ।

५४ अध्याय समाप्त ।

श्रीवृहदश्व मुनि बोले, हे भारत ! देवतोंके ऐसे वचन सुनकर नलने देवतोंसे प्रतिज्ञा की, कि हम आप लोगोंका दूत कार्य्य करेंगे, अनन्तर हाथ जोड़कर बोले, आप लोग कौन हैं ? और जिसके पास मुझको भेजना चाहते हैं, वह कौन है ? और यह भी कहिये कि हम आप लोगोंका क्या काम करेंगे ? नलके ऐसे वचनकी सुनकर इन्द्र बोले, कि हम लोग देवता हैं, और दमयन्तीके निमित्त यहां आये हैं । हम इन्द्र, यह अग्नि, और यह वरुण हैं, हे महाराज । यह सब पुरुषोंका नाश करनेवाली यमराज है, तुम दमयन्तीसे हम लोगोंके आनेका समाचार ऐसे कहना कि इन्द्र आदिक सब लोकपाल तुम्हारे देखनेको आये हैं । वह लोग तुमको प्राप्त करनेको इच्छा करते हैं । इन्द्र, अग्नि, वरुण और यम इनमेंसे जिनको तुम्हारी इच्छा हो, उसी एकको पाति बना लो । इन्द्रके ऐसे वचन सुनकर नल हाथ जोड़कर बोले, आपलाग एक प्रयोजनके लिये आये हुए मुझको भेजनेके योग्य नहीं है, हे लोकपालो । अपने मनमें सङ्कल्प की हुई स्त्रीको किस प्रकार छोड़ सकता हूं, और दूसरेके निमित्त ऐसे वचनोंको कैसे कह सकता हूं ? देवतालोग बोले, हे नैषध । आपने पहले कहा था, कि हम इस कार्य्यका करेंगे, सो अब करनाही होगा, जाइये देर मत कीजिये ।

श्रीवृहदश्व मुनि बोले, निषधराज देवोंके ऐसे वचन सुनकर बोले, हे देवलोगो ! दमयन्तीका स्थान वज्रत रक्षित है, सो मैं वहां कैसे जा सकूंगा ? इन्द्रने कहा कि हम तुमको पञ्चा

देंगे । हे युधिष्ठिर ! नल उनके वचनकी स्वीकार करके दमयन्तीके स्थानमें गये । वहां सखियोंके समेत दमयन्तीको देखा, वह अपने शरीरकी शोभा और तेजसे प्रकाशमान हो रही थी, वह उत्तम वर्णवाली, बद्धत सुकुमारी पतलीकमर और अच्छे नेत्रवाली इस प्रकार विराजमान थी, मानो अपने तेजसे चन्द्रमाका निरादर कर रही है । उस उत्तम हंसनेवालीको देखतेही नलके शरीरमें कामदेव बढ़ने लगा, परन्तु सत्य कहनेके अभिप्रायसे उसने कामको रोका । अनन्तर दमयन्तीकी सखी नलको देखकर उसके तेजसे घबड़ाकर अपने अपने आसनोंसे उठीं, और परम सन्देहको प्राप्त हुईं और प्रीति तथा आश्चर्यके सहित नलकी सब प्रशंसा करने लगीं, परन्तु कोई उनसे बोले न सकीं । केवल मनहीमें पूजा करने लगी । इस महात्माके रूप, तेज और धैर्यकी धन्य है, यह कोई देवता, यक्ष, गन्धर्व है, अथवा न जाने कौन है । वे सब उत्तम स्त्रियां उसके तेजसे घबराकर और लज्जाके वशमें होकर नलसे कुछभी न कह सकीं । अनन्तर हंसते हुए वीर नलसे हसकर बात करनेवाली आश्चर्यवती दमयन्ती बोली, हे पाप रहित ! हे उत्तम शरीरवाले ! हे मेरे कामदेवके बढ़ानेवाले ! तुम कौन हो ? और यहा देवतोंके सम्मान आप क्यों आये हो ? आते हुए तुमको किसीने क्यों नहीं देखा ? क्योंकि मेरे स्थानकी बद्धतही रक्षा है, और राजाकी आज्ञाभी कंठोर है । विदर्भराज-पुत्रीके ऐसे वचन सुनकर नल कहने लगे ।

नल बोले, हे कल्याण ! मैं नल हूं और देवतोंका दूत बनकर यहां आया हूं । हे सुन्दर ! वह आपकी प्राप्त करना चाहते हैं, तुम किसी एक देवताको पति बनालो, उन्हीकी शाक्तसे मैं छिपकर यहा आया हूं, सुभको यहां आते न किसीने देखा, न किसीने रोका, हे भद्रे ! हे शुभे ! इसी लिये सुभको देवतोंने

भेजा है । अब जैसी तुम्हारी इच्छा हो तैसा करो ।

५५ अध्याय समाप्त ।

श्रीवृहदंशु मुनि बोले, दमयन्ती नलके वचन सुनतेही देवतोंकी अर्द्धापूर्वक प्रणाम करने लगी, और नलसे कहने लगी कि हे राजन् ! आप सुभसे विवाह कीजिये, कहिये मैं आपका कौन कार्य करूं । हे महाराज ! मैं और मेरा जो कुछ धन है, सो सब आपहीका है । हे नाथ ! आप विश्वासपूर्वक मुझसे विवाह कीजिये । हे वीर ! हे राजन् ! हंसीकी बात मेरे चित्तकी दुःख दे रही है, मैंने केवल आपहीके बुलानेकी इच्छासे इन सब राजोंकी बुलाया है । हे मानव ! यदि आप भक्तिवाली सुभको ग्रहण नहीं कीजियेगा, तो मैं विष, अग्नि, जल अथवा रस्सीके प्रयोगसे मर जाऊंगा । दमयन्ती के वचन सुनकर नल बोले कि, देवतोंकी छोड़कर मनुष्यकी इच्छा क्यों करती हो ? मैं महात्मा ईश्वर लोकपालोंकी चरणधूलिके समान भी नहीं हूं, अतएव, तुम अपने चित्तकी उन्हींमें लगाओ, क्योंकि देवताका द्वेष करके पुरुष नष्ट हो जाता है, अतएव हे सुन्दर ! तुम हमारी रक्षा करो, किसी उत्तम देवताको पति बनाओ, तुम निर्मल वस्त्र, विचित्र माला और भारी आभूषण प्राप्त करके आनन्द करना, जो अग्नि सब देवताका स्वामी है, जा इस सब पृथ्वीको जला सकता है, कौन स्त्री उसको पति नहीं करना चाहती ? जिसके दण्डके भयसे सब प्राणी धर्म करनेकी इच्छा करते हैं, उसको पति बनानेकी किसको इच्छा नहीं होगी ? धर्मात्मा, महात्मा, दैत्य और दानवोंके मारनेवाले सब देवताके स्वामी इन्द्रकी पति बनानेकी इच्छा किस स्त्री को न होगी ? यदि तुम्हारी इच्छा हो तो शङ्खा रहित होकर लोकपालोंमें अष्ट वरुणकी पति बनाओ, इस मेरे वचनकी

मित्रके, वचनके, समान मानो। निषधराज नलके ऐसे वचन सुनकर दमयन्ती शोककी आँसुओंसे नेत्रोंकी भरकर देवतोंकी नमस्कार करके आपहीकी अपना पति बनाती हूँ, मेरे इस वचनको आप सत्य मानिये। ऐसा सुन हाथ जोड़कर निषधराज बोले, हे कल्याणी! मैं दूत बनकर आया हूँ, देखो मेरा शरीर कांपता है। हे भद्रे! मैं जो तुमसे कहता हूँ, सो मानलो। अनन्तर उत्तम हंसनेवाली दमयन्ती रोती हुई धीरे धीरे राजा नलसे बोली, हे नरनाथ! हे राजन्! मैंने एक पाप-रहित उपाय ठीक किया है, जिसके करनेसे आपको कुछ दोष न होगा, हे अष्ट! मेरे स्वयम्बरमें सब राजा इन्द्र आदिक देवता और आपभी बैठियेगा, हे नरव्याघ्र! हे नरईश्वर! सब लोकपालोंके आगे मैं आपहीकी वर कसूंगी; ऐसा करनेसे आपको कुछ दोष न होगा। विदर्भ राजपुत्री निषधराज नलसे जब ऐसा कह चुकी, तब राजा नल उसी स्थानकी चले गये, जहाँ देवता लोग थे। महेश्वर और लोकपाल इन्हे फिरते देखके सब वृत्तान्त पढ़ने लगे। हे पोषरहित राजन्! तुमने क्या उत्तम हंसनेवाली दमयन्तीकी देखा है? कही उसने हम लोगोंको क्या कहा है? नल बोले, मैं आप लोगोंकी आज्ञासे दमयन्तीके उस भवनमें गया, जिसकी रक्षा बद्धतसे पहरेवाले करते थे, और जो चारो ओर खाईसे घिरा हुआ है, आपही लोगोंके प्रतापसे विदर्भ राजपुत्री दमयन्तीके सिवाय मुझे वहाँ कोई न देख सका, पश्चात् मैंने सखियोंको देखा और उन्होंनेभी मुझे पहिचाना। हे देवपतिगण! वह सब मुझे देखकर आश्चर्य करने लगीं। हे देवगण! मैंने प्रसन्नमुखी दमयन्तीके सामने आपलोगोंकी कृपाकी कहा। वह आपलोगोंके संकल्पकी हमके मुझे ही व्याह्निके वास्ते उद्यत हुई और बोली, हे निषधराज! आप और देवता सब

मिलके मेरे स्वयम्बरकी सभामें आना। मैं उनके समीप आपकी बसूंगी। हे महाभुज! ऐसा करनेसे आपको कोई दोष नहीं होगा। हे लोकपालगण! मैंने सब ठीक वहाँकी बात कह दी, अब जो आपलोगोंकी इच्छा हो वही ठीक है।

५६ अध्याय समाप्त ।

श्रीबृहदश्व सुनि बोले, पश्चात् राजा भीमने शुभकाल, पवित्र मुहूर्त और तिथिमें राजा लोगोंकी स्वयम्बरकी सभामें बुलाया। राजा-लोग उसे जानकर कामबाणसे पीड़ित हो, दमयन्तीको पानेकी इच्छासे शीघ्रता के साथ स्वयम्बरकी सभामें आये। जिस रीतिसे सिंहका भ्रुण्ड पर्वतमें जाता है, उसी प्रकारसे वह लोग तीरण और बन्दनवारसे सजे हुए सीनेके खश्योंसे शोभायमान रङ्गमण्डपमें पहुँचे। उत्तम मणिजटित कण्डलोंको धारण किये, सुगन्धसनी मालाओंकी पहने राजालोग अनेक प्रकारके आसनोंपर आकर बैठे तो सभाकी शोभा बद्धतही मनोहर जान पड़ने लगी। नाग-लोगोंसे भरी हुई भोगवती-परीके समान वा सिंहोंसे पूर्ण पह्लाड़की गुफाके समान वह भूपालोंसे पूरित सभा शोभाको प्राप्त होने लगी। परिषदके समान मोटी और मनोहर विशाल भुजा पांच क्रणधारी सर्पके समान भान होती थीं। इस प्रकार जैसे अन्तरिक्षमें तारागण शोभायमान होते हैं, वैसेही राजा लोगोंकी शोभा दीख पड़ने लगी। इसके अनन्तर सुन्दर मुखवाली दमयन्ती अपने रूप और लावण्यसे राजा लोगोंके नेत्र और मनकी खींचती हुई राजसभामें आई। उन सब महात्मा राजालोगोंकी दृष्टि दमयन्तीके जिस जिस अङ्गपर पड़ी, वहीं रह गयी, अर्थात् वहाँसे और जगह न जा सकी। हे भारत! इसके पश्चात् सभामें बैठे राजालोगोंके नाम और

कुलोंका वर्णन होनेके पश्चात् दमयन्तीने एकही खलपके पांच पुरुषोंको सभामें बैठे देखा और उन सबको एकही आकृति और रङ्गका देखकर सन्देहमें पड़ी और राजा नलको न पहचान सकी । वह सुन्दरी उन पांचोंमेंसे जिसको देखती थी, उसीको नल समझती थी, उसको इससे बड़तही शोक हुआ और बुद्धिसे तर्क करने लगी । कि मैं किस प्रकारसे देवतोंको पहचानूं और कैसे राजानलको समझूं ? हे भारत । विदर्भ-राज-नन्दिनी ऐसा विचार कर बड़तही व्याकुल हुई । उसने जो पहले देवतोंके लक्षण सुने थे, उनको याद करके मनमें कहने लगी, कि वृद्धोंसे जो मैंने देवतोंके चिन्ह सुने हैं, उनमें से एक भी इन देवतोंमें नहीं दीखते; ऐसे बारम्बार चिन्ताकरके निश्चय किया, कि मुझे इस समय-देवतोंकी शरणमें जानेके अतिरिक्त और कोई उपाय अपने कल्याणका नहीं सूझता । तब दमयन्तीने हाथ जोड़कर देवतोंकी नमस्कार करके कहा, कि मैंने जिस समयसे हंसोंकी वाणी सुनी थी, तबही निषध-देशके राजा नलकी पति बनानेका सङ्कल्प किया था । हे देवता लोगो । आप सत्यके प्यारे हैं, मेरे सत्यकी रक्षा कीजिये नलकी मुझे वतला दीजिये । मैंने यदि मनसे भी व्यभिचारकी इच्छा न की हो, तो मेरे सत्यकी रक्षा करनेकी देवता लोग नलको वतला दें । जिन देवतोंने नलकी मेरा पति बना दिया है, वही देवतालोग सत्यकी रक्षा करनेके वास्ते नलकी मुझे बता दें, और मैंने नलको पानेके वास्ते ही यह स्वयम्बर रचा है । यदि यह सत्य हो, तो देवता लोग मुझे नलकी बता दें । महेश्वर लोकपाल अपने अपने रूपको धारण कर लें, तो मैं पुण्यकीर्ति-राजा नलको पहचान लूं । देवतालोग विदर्भ राज-पुत्रीके शोक और विलापसे भरे वाक्योंकी सुनकर और राजा नलमें उसकी सच्ची प्रीति

शुद्ध प्रेम, मनकी शुद्धि और भक्तिकी जानकारी अपने अपने रूपको धारण कर लिया, पश्चात् दमयन्तीने देवता लोगोंको आचारहित पसीना रहित पलकके खोलने और बन्द करनेसे रहित नेत्रवाले न मुझनिवाली भाला पहने देखा और राजा नलकी आया-सहित मुझनिवाली भाला पहने, पसीनायुक्त, पलक भारते नेत्रयुक्त भूमिमें स्थित देखा । हे पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर । दमयन्ती देवता लोगोंको और राजा नलको पहचानकर लज्जायुक्त और प्रसन्न हुई । हे भारत । सुन्दरवर्णवाली दमयन्तीने जब उसे पति बना लिया, राजा लोगोंने महा हाहाकार आरम्भ किया, और देवता एवं महर्षिगण साधु साधु कहके राजा नलको प्रशंसा करने लगे । हे कुरुनन्दन ! वीरसेनके पुत्र नलने दमयन्तीकी धीरज देके कहा, हे कल्याणि । तुमने देवता लोगोंकी छोड़के मुझे वर किया, इस कारण आजसे मुझे अपना आज्ञाकारी पति समझना । हे मन्दहासिनी ! मैं तुमसे सत्य कहता हूं, कि जबतक मेरे शरीर में प्राण रहेगा, तबतक मैं तुम्हारा रहूंगा । दमयन्तीने भी हाथ जोड़के राजा नलसे ऐसीही विनती की । उन दोनोंने परस्पर ऐसी प्रीतिमान होकर अग्नि आदि देवोंकी मनसे नमस्कार किया भीमपुत्री और नलको विवाह होनेके अनन्त बड़े प्रतापी लोकपाल और देवतोंने राजा नलकी आठ वर दिये । इन्द्रने यज्ञमें प्रव्यक्त देने और शुभ गति पानेका वर दिया । अग्निदे यह वर दिया कि जहां इच्छा करोगे अग्नि प्रत्यक्ष होगा और अग्नि सदृश लोक होंगे । यमने वर दिया, कि अन्नके उरसकी जानोगे तथा धर्ममें तुम्हारी रहेगी । वरुणने कहा, कि जहां करोगे वहीं जल तुम्हें प्राप्त होगा, एवं भरी एक भाला भी दो । इस लोकपालोंने दो दो वरदान दिये । त

लोकपाल स्वर्गकी चले गये । राजालोग नल और दमयन्तीके विवाहकी देखकर विस्मित और प्रसन्न होके अपने अपने स्थानकी चले जानेके अनन्तर महात्मा राजा भीमने प्रसन्नचित्त होके नल और दमयन्तीके विवाहकी शेष रीति समाप्त की । मनुष्यश्रेष्ठ निषधराज नलने अपनी इच्छाके अनुसार कुछ दिनतक वहां निवास करके राजा भीमसे आज्ञा लेकर अपने नगरकी प्रस्थान किया । है राजा नल जैसे देवराज इन्द्र सचीके साथ विलास करते हैं, वैसेही राजा नल दमयन्तीके साथ विलास करने लगे, सूर्यके समान प्रतापी राजा नल प्रजाका धर्मपूर्वक प्रतिपालन करते हुए उनके मनकी प्रसन्न रखने लगे । वह बुद्धिमान राजा नलके पुत्र ययातिके समान अश्वमेध तथा और और दक्षिणायुक्त यज्ञोंको करने लगे, एवं स्वर्गपति इन्द्रके समान वन और उपवन आदि मनोहर स्थानोंमें दमयन्तीके सहित विहार करने लगे । उस महात्मा राजा और दमयन्तीसे एक कन्या और पुत्र उत्पन्न हुए, पुत्रका नाम इन्द्रसेन और कन्याका नाम इन्द्रसेना रखा गया । है पृथ्वीनाथ वह नरनाथ समय समय पर यज्ञ और विहार करते हुए धनमयी पृथ्वीका पालन करने लगे ।

५७ अध्याय समाप्त ।

श्रीवृहदश्व मुनि बोले, भीमपुत्री दमयन्तीके राजा नलकी वर करनेके पश्चात् महा तेजस्वी लोकपालगण स्वर्गकी जाते थे, तब उन्होंने पक्षमें हापरके सहित कलियुगकी आते देखा । और वृषासुरके मारनेवाले इन्द्रने उसे ऐसे कहा, कि है कलियुग ! तुम हापरके सहित कहाकी जाते हो ? पश्चात् कलियुगने उसे कहा, कि मेरा मन दमयन्तीके ऊपर है, इसलिये उसके स्वयम्बरमें जाके उसे हरा । इन्द्रने हंसकर उससे कहा कि वह

स्वयम्बर हो गया । भीमपुत्रीने हम लोगोंके सामने राजा नलकी पति बनाया । इन्द्रके ऐसे कहतेही कलियुगने क्रोध करके सब देवतोंसे पुकारके कहा, कि लोकपाल देवतोंकी छोड़के उसने मनुष्यकी पति बनाया, इसी निमित्त उसको कठिन दण्ड देनाही न्याय है । कलियुगकी इस बातकी सुनकर सब देवता लोगोंने उत्तर दिया, कि दमयन्तीने हमारी आज्ञाके अनुसारही नलकी पति बनाया है, कही तो कौन ऐसी स्त्री है जो सब गुणसे भरे नलकी पति बनाना न चाहती हो । जिसने सम्पूर्ण व्रत किये है चारो वेदोंको इतिहासके सहित पढ़ा है, जिसके घरमें यज्ञोंके द्वारा देवतालोग नित्यही दत्त होते हैं, जो कभी हिंसा नहीं करता, सत्यवादी, दृढ़ प्रतिज्ञावाला लोकपालोंके समान पराक्रमी जो पुरुषसिंह राजमें, सत्यमें, धैर्यमें, ज्ञानमें, तपस्या दम और श्रममें, सर्वदाही स्थिर रहता है, है कलियुग ! ऐसे पुरुषकी जो दण्ड देनेकी इच्छा करता है, वही मूर्ख दण्ड भोगता है, तथा अपने आपकी विनाश करता है । है कलियुग ! ऐसे गुणयुक्त पुरुषकी जो दण्ड देनेकी इच्छा करे वह अगाध नरक कुण्डमें डूबता है । देवता लोग कलियुग और हापरसे ऐसे वचन कहके स्वर्गकी चले गये । तत्पश्चात् कलियुगने हापरसे कहा है हापर ! नल पर जो मेरा क्रोध हुआ है उसे मैं नहीं रोक सकता । मैं उसे राज्यसे भ्रष्ट और दमयन्तीसे पृथक् कर दूंगा तुम पाषेमें बैठकर मेरी सहायता करनेकी चेष्टा करो ।

५८ अध्याय समाप्त ।

श्रीवृहदश्व मुनि बोले, पश्चात् कलियुग हापरसे ऐसी प्रतिज्ञा करके निषधराजके पास आया और नलके दोषोंकी देखनेकेवास्ते वृद्धत दिनों तक नगरमें निवास करता रहा, बारह वर्षके पश्चात् कलियुगने राजा नलका एक दीप

करनेसे किसी नगर निवासीने मेरा सत्कार न किया वेही आज पची होकर मेरा बख्त भी कीनते हैं। हे देवि! मैं परम दुःखकी प्राप्त, और मूर्छित तेरा पति हूँ। मेरा बचन तेरा हितकारी है। यह देखो, अनेक मार्ग चलनेवाले लोग ऋक्षवान और उज्जैनको जा रहे हैं। यह लोग इसे पहाड़के पार होते हैं। यह देखो यही समुद्रमें जानेवाला उष्ण जलधुत विन्धाचल है। फल और मूलोंसे भरे हुए इन ऋषियोंके अश्वोंको देखो। यह मार्ग विदर्भ देशकी जाता है, और यह अयोध्याका मार्ग है। हे उत्तम! इसके आगे दक्षिण देश है, और यह दक्षिणका मार्ग है। हे भारते! सावधान दुःखसे पीड़ित राजा नलने दमयन्तीसे एकवार ऐसे वचन कहे। तब दमयन्ती सुकते हुए कहसे रोती हुई दुःखसे व्याकुल होकर निषध-राजसे दीनता भरे हुए वचन बोली, हे महाराज! आपके वचनोंकी चिन्ता करके मेरा हृदय धवड़ाता है, और सब शरीर बार बार गिरे जाते हैं। हे महाराज! राज्य बख्त और धनसे हीन आपको इस निज्जनमें एकलौ छोड़कर कैसे चली जाऊँ? हे महाराज! इस घोर वनमें चलते चलते जब आप थक जायेंगे, भूख प्यास और चिन्तासे व्याकुल होंगे, तब मैं आपके सुखके निमित्त आपके परिश्रमको दूर करूँगी। सत्य कहती हूँ, कि वीर्योंके मतमें दुःख रोगकी औषध स्त्रीके समान और नहीं है।

राजा नल बोले, हे सुमन्त्र! हे दमयन्ती! यह बातें सत्य हैं, कि दुःखी पुरुषके लिये स्त्रीके समान और औषधि नहीं है, हे अनिन्दित! मेरी इच्छा तुम्हें छोड़नेकी कदापि नहीं है, मैं अपने प्राणको छोड़ सकता हूँ, परन्तु तुम्हें नहीं। हे भीरु! तुम शङ्का मत करो। दमयन्ती बोली, हे महाराज! यदि आप सुभे छोड़नेकी इच्छा नहीं करते हैं, तो विदर्भ नगर

का मार्ग क्यों बताते हैं? हे नरनाथ! मैं जानती हूँ कि आप सुभको नहीं छोड़ेंगे, परन्तु आपका चित्त किसीने कीन लिया है, इसे छोड़ सकते हैं। हे पृथ्वीनाथ! हे नरोत्तम! आप सुभको कठिन मार्ग दिखलाते हैं। हे देवतुल्य! इसीसे सुभको शोक बढ़ता है, यदि आपकी यह इच्छा हो कि यह अपने आपकी यश चली जाय, तो मैं और आप सिद्धही चलेंगे। यदि आपको अच्छा लगे तो ऐसाही कीजिये। हे मानदेनेवाले! मेरे पिता आपकी बहन सेवा करेंगे।

६१ अध्याय समाप्त ।

राजा नल बोले, हे दमयन्ती! यह ठीक है, कि जैसा तुम्हारे पिताका राज्य तैसा मेरा राज्य, परन्तु दुःखमें वहाँ कदापि न जाऊँगा। मैं अत्यन्त ऋद्धिके सहित वहाँ जाकर तुम्हारे आनन्दको बढ़ाता था, और राज्यादिकसे भ्रष्ट होकर वहाँ जाके तुम्हारा शक्रका कैसे बढ़ाऊँगा?

और वह दुःख सुन बोली, हे युधिष्ठिर! राजा नल ऐसा कहते हुए, आधे बख्तवाली कल्याणी दमयन्तीका वर वार शान्त करन लगा। वह दाना भूख और प्याससे व्याकुल होकर एक ही बख्त आड़े हुए इधर उधर घूमते हुए किसी स्थानमें पड़चे और थकाकर वहाँ ठहर गये। निषधदेशके महाराज! उस स्थानमें पड़कर विदर्भराजकी सहित पृथ्वीहीमें सी गये। वह महाराज बख्त और विहीनसे हीन घूमते भूरे हुए थकाईसे व्याकुल होकर पृथ्वीही में सी गये। अनन्तर कल्याणी, यशसे भरी हुई, कामलाङ्गी दमयन्तीभी दुःखसे व्याकुल होकर अत्यन्त निद्राके वर्णमें हा गई। हे प्रजानाथ! दमयन्ती तो सागई, परन्तु नलकी शोकसे व्याकुल होनेके कारण पहलेकी समान निद्रा न आई। वह राज्यनाश, सब वस्तुओंसे छूटना और वनमें

रहना इत्यादि चिन्तासे व्याकुल होगये । नल शोधने लगे, क्या मेरा कुछ कार्य करना अथवा न करना अच्छी होगा ? क्या मेरा मरना अथवा दमयन्तीको छोड़ना अच्छा होगा ? क्योंकि यह मेरी प्यारी मेरे ही करनेसे इतने दुःखमें पड़ी है । क्या मेरे छोड़नेसे यह अपने-बापके यहा चली जायगी ? निसन्देह यह पतिव्रता मेरे ही कारण दुःख पारि रही है, छोड़नेमें भी सन्देह है । कदाचित्त कहीं इसे सुख मिल ही जाय । हे नरनाथ । नलने बार-बार विचार-कर निश्चय किया कि दमयन्तीको छोड़ने हीमें कल्याण है । इस पतिव्रता मेरी भक्त, यशोंमें भरी हुई महा भाग्यवतीको मार्गमें कोई भी अपने बशसे ग्रहण नहीं कर सकता है । राजा नलको बुद्धिको दुष्ट कलियुगने इस प्रकार फेर दिया और उसने निश्चय कर लिया कि दमयन्तीको छोड़ना ही ठीक है । राजाने अपनेको वस्त्रहीन और उसको एक वस्त्र ओढ़ देख, उसका आधा वस्त्र फाड़ लिया । वस्त्र फाड़ते समय राजाने विचारा कि मैं अपने प्यारीका आधा वस्त्र कैसे फाड़ू ? कदाचित्त यह जाय जाय । ऐसा विचारते हुए राजा उस स्थानमें इधर उधर घूमने लगे । हे राजन् । अनन्तर राजा नलने अपने खड्गको निकाल दमयन्तीका आधा वस्त्र काट लिया और उसका पहनकर विदर्भराजपुत्री दमयन्तीको अचेत सोते ही छोड़, चल दिया । थोड़ी दूर जाकर मोहसे व्याकुल हा फिर लौटे और दमयन्तीका देख निषध देशके महाराज खूब रोये, और विचारने लगे, जिस दमयन्तीका सूर्य और वायु भी नहीं रोक सकते थे, वह मेरी प्यारी आज अनाथकी समान भूमिमें सोरही है । हाय यह उत्तम सज्जनवाली, सुन्दर सुखवाली जब अपने आधे वस्त्रको फटा हुआ देखेगी तब इसकी क्या दशा होगी । यह अवश्य उन्नत हो जायगी । महाराजपुत्री, उत्तम, पतिव्रता सुभसे अलग

होकर इस हरिन ओर सांपोसेभरे झर घोर वनमें एकली, कैसे घूमेगी ? हे महाभाग । तुम धर्मसे भरी हो, इस लिये सूर्य, वसु, रुद्र, अश्विनो कुमार, वायु और वरुण तुम्हारी रक्षा करें । हे महाराज कलियुगसे बुद्धि नाश होनेके कारण । राजानल जगत्में असमान स्त्रिपवाली अपनी प्यारी स्त्री वनमें छोड़कर चल दिये । राजानल बार-बार जाकर कलियुग और प्रेमके वशमें लौट आतीथे । उस समय उनका हृदय फटकर दो टुकड़ा हुआ जाता था ; जैसे कोई भूलमें भूलता है, वैसे ही नल आते और जाते थे । अन्तको कलियुगके वशमें होकर राजानल प्यारी स्त्रीको वनमें सोती हुई छोड़ बहृत रोते झर चले गये । हे राजन् नष्ट बुद्धिवाले कलियुगके वशमें होकर दुःखी । राजानल अपनी स्त्रीको शून्य वनमें एकली छोड़ चले गये ।

हे राजन् अधीय संमप्राप्ति ।
श्रीवृहदश्व मुनि बोलें, हे राजन् । नलके जानेके पश्चात् परिश्रम दूर हीनसे उत्तम सुखवाली दमयन्ती जागे और पुरुष रहित वनमें अपने पतिको न देखकर बहृत डरी । शोक और दुःखसे व्याकुल होकर, हे महाराज ! हे महाराज ! हे नैषधेश्वर ! हे नैषधेश्वर ! कह कह कर चिल्लाने लगी । हा नाथ । हा महाराज । हा स्वामी । आपने क्या मुझको छोड़ दिया ? मैं इस पुरुषरहित वनमें व्याकुल हुई हूँ । हाय मैं मरी ! हे महाराज आप धर्म और सत्यवादी है । सत्य वचन कह कर अब इस शून्य वनसे प्यारी, भक्तिवती, एकली, सोती हुई अपनी स्त्रीको छोड़कर कहाँ चले गये ? हे महाराज ! मैंने आपका कोई भी दोष नहीं किया था, हे महाराज ! हे नरनाथ ! आपने जो लोकपालों के आगे वचन कहे थे, उनकी झूठ करना आपको उचित नहीं है । हे पुरुषसिंह ! ईश्वरने विना समय

मनुष्यकी मृत्यु नहीं बनाई है, इसी कारणसे आपकी प्यारी स्त्री आपसे कूटने पर भी अवतक जीती है, हे पुरुषसिंह ! हे दुर्द्वेष !, बस हंसी समाप्त होगई । अब मैं इस वनमें बहते-उरी हूँ, शोघादर्शन दोजिये । हे नैषधराज ! आप मुझको देखते हैं, परन्तु पूछनेसे क्यों नहीं बोलते ? आप लताओंसे निकलकर मुझसे बात क्यों नहीं करते ? हे महाराज ! आप निर्लज्जके समान मुझ एकलीकी रोती हुई देखकर क्या धैर्य नहीं देते ? हे राजेन्द्र ! मुझे अपनी, अथवा और किसी वस्तुका कुछ शोच नहीं है, परन्तु आप एकले किस दशमें पड़े हैं, यही शोच है । हे महाराज ! भूख, प्यास, और थकाईसे व्याकुल होकर जब आप सन्ध्यासमय किसी वृक्षकी जड़में बैठेंगे, वहाँ मुझको न देख कर आपकी क्या दशा होगी ? अनन्तर दमयन्ती महाशोकसे व्याकुल होकर ऊपर उपर दौड़ने लगी । कभी गिरती, कभी भयसे व्याकुल हाँकर छिपती, कभी रोती और कभी वकती थी। इस प्रकार शोकसे व्याकुल होकर पतिव्रता भीमपुत्री बार-बार ऊँचे सास लेकर रोती हुई ऐसा कहने लगी । हे नैषध ! ज। पुरुष किसी पुरुषको दुःखसे व्याकुल हुआ देख आप दुःख सहता है; उस पुरुषको और भी अधिक दुःख हाता है । जिस पापीने महात्मा नलको इतना दुःख दिया है, वह भी मेरे पापसे जन्म भर दुःखोही रहे । वह महाराज नलकी स्त्री इस प्रकार रोती हुई उस सिंहाद जन्तुओंसे भरे हुए वनमें अपने प्रतिकी टढ़ने लगी । उस समय भीमपुत्री उन्मत्तके समान रोती हुई बार-बार हाय-महाराज ! हाय महाराज ! ऐसा कहती हुई उस वनमें घूमने लगी । कुरुराके समान रोती हुई, शोचती हुई, घूमती हुई उस भीमपुत्रीको आकर भूख और-प्याससे व्याकुल अजगरने ग्रहण किया । अजगरके ग्रास होते समय दमयन्तीने शोकसे व्याकुल अपना कुछ शोच

न करके राजा नलका शोक किया, और बोली, हे नाथ ! हाय इस वनमें यह अजगर मुझको अनाथके समान खाता है, आप मेरी रक्षा क्यों नहीं करते हैं । हे नाथ ! हे नैषध ! आप मेरे बिना अब कैसे हैं ? आप मुझे छोड़कर कैसे चले गये ? हे महाराज ! जब आप इस पापसे कूटकर अपने धन, राज्य और बुद्धिकी प्राप्ति करंगे, तब भूख प्याससे व्याकुल आपके परिश्रमको कौन दूर करेगा ? हे राजशार्दूल ! हे पापरहित ! आप मुझे छोड़कर क्या सुख पाते हैं, ? इस प्रकार रोती हुई दमयन्तीके वचन सुनकर उस घोर वनमें आया हुआ व्याधा वेगसे उसकी ओर दौड़ा । उस कमलनैनोको अजगरसे ग्रस्त देखकर व्याधा और भी वेगसे दौड़कर वहाँ पहुँचा और उसने अपने तीक्ष्ण शस्त्रसे सर्पका सिर काट दिया । अनन्तर वह सर्प बिना प्राणका होकर पृथ्वीमें लाट गया । इस व्याधाने दमयन्तीको सापके सुखसे छुड़के खानकराकर कुछ खिलाकर और धैर्य देकर पूछा, हे मृगनैनी तू किसको स्त्री है, और इस घोर वनमें क्यों आई है ? हे भामिनि ! तू इस घोर आपात्तमें कैसे पड़ गई ? हे भारत ! दमयन्तीने उसके ऐसे वचन सुनकर अपना सब वृत्तान्त पूरा कह सुनाया । अनन्तर उस आधे वस्त्रवाला, पीनस्तनी, सुश्रीणी, नवीन कामपात्री, पूर्णचन्द्रमाके समान सुखवाली, घूँघरवाली बालावाली और टेढ़ी भोहवाली दमयन्तीको देख व्याधा कामदेवके वशमें हा गया । अनन्तर कामसे व्याकुल व्याधा दमयन्तीको सुन्दरों जान सीठी वाणोंसे शान्त करता हुआ बाला, और पतिव्रता दमयन्तीभी उस दुष्टका कामसे व्याकुल देख तोत्र क्रोधसे व्याकुल होगई । वह दुष्टात्मा चुद्र, पापबुद्ध, जलतो हुई, अग्निके समान दुर्द्वेष दमयन्तीसे काम चेष्टा करनेका यत्न करने लगा । अनन्तर दुःखसे भरो हुई दमयन्तीने उस दुष्टकी क्रोधसे भरकर शपथ दिया,

हे चतुर्व्याध । यदि मैंने निषधराजको सिवा अपने चित्तसेभी दूसरेको पति बनानेकी इच्छा न करी हो, तो तू अभी प्राणहीन हो पृथ्वीमें गिरजा । दमयन्तीके ऐसे वचन सुनतेही व्याध जले हुए वृक्षके समान बिना प्राणका होकर पृथ्वीमें गिर पड़ा ।

इह अध्याय समाप्त ।

श्रीबृहदश्व सुनिः बोले, हे महाराज । कमलनेनी दमयन्तीने उस व्याधकी भारकर भयसे व्याकुल हो मनुशंशुन्या भिगुरोंके शब्दसे भरे हुए, अनेक प्रकारके पत्तियोंसे संयुक्त स्लेच्छ और चोरोसे सेवित शाल, वास धाय, पीपल, तेंदू, ईगुदो, कंचनार, बहेड़ा, नीम, हिलनेवाला ढांक, जामुन, अम लोध, विल, वेत पद्माक्ष, आवला, कदम्ब, पारसपोपर, गूजर, वैर, विल, वगद, त्रिरोजी, ताड़, खजूर हड़, बहेड़ा आदि वृक्षोंसे भरे हुए, अनेक प्रकारकी धातुओंसे चित्रित पर्वत अति सधन कुच्छ, विचित्र गुफा, नदी, झडाग, अनेक प्रकारकी वावड़ी पत्ती और हरिणोंको देखती हुई वनमें घूमने लगी । और घोर रूपवाले अनेक पिशाच सर्प और राक्षसोंको देखने लगी, उसने थोड़े और बड़त, जलवाले तालाब, पर्वतोंके समूह, बहुत दर्शनवाले झरने, और नदियोंको देखा । अनन्तर विदर्भराजनन्दिनीने अनेक भैंसे, गूजर, रीछ और वनसर्पोंके झुण्डके झुण्ड देखे तेज, यश और परम लक्ष्मीसे भरी हुई दमयन्ती इस प्रकार नलकी खोजती हुई वनमें एकली घूमने लगी । पतिके शोकसे पीड़ित विदर्भ राजपुत्री इस प्रकार घोरवनमें घूमती हुई किसीसे भी न डरी । एक दिन विदर्भ राजा की एक शिलाके ऊपर बैठकर अपने पतिके शोकसे व्याकुल हो इस प्रकार रोने लगी । दमयन्ती बोली, हे निषधराज ! लंचे कर्मवाले कर्मपाथो । आप मुझको निलैन वनमें छोड़

कर कहां चले गये ? हे नरव्याध ! आप भारी दक्षिणावाली अश्वमेधादि यज्ञ करके मुझसे झूठे क्यों बोले ? हे वीर ! हे नरश्रेष्ठ ! महातिजेस्विन् । हे राजा शार्दूल । हे कल्याण । आपने जो मुझसे कहा था, उसका स्मरण कीजिये । हे पृथ्वीनाथ ! जो कुछ हंसोंने आपसे कहा था और आपने जो कुछ कहा था, उसका स्मरण कीजिये । हे नरव्याध ! यह निश्चय है कि अङ्ग और उपाङ्ग तथा विस्तारके सहित चारों वेद पढ़नेका फल एक और और एकला सत्य एक और होता है । हे शत्रुनाशन ! हे नरनाथ ! हे वीर ! इस लिये आप अपने पहले कहे हुए वचनोंको सत्य कीजिये हाय वीरनिल ! मैं आपसे छूट गई । हे पाप रहित ! इस घोरवन में आकर आप हमसे क्यों नहीं बोलते हैं ? यह देखिये भूखसे व्याकुल भयानक शरीरवाला घोर वनोंका राजा मुझे खाना चाहता है, आप क्यों नहीं मेरी रक्षा करते हैं ? हे कल्याण महाराज ! आप पहले मुझसे कहा करते थे, कि तिर सिवा मेरी प्यारी और कोई नहीं है । अब उन पहले कहे वचनोंको झूठ न कीजिये । हे नरनाथ ! मैं आपकी प्यारी स्त्री इस घोरवनमें उन्मत्तके समान रोती फिरती हूं । आप सदा ही मुझको चाहते थे, अब मैं आपको देखना चाहती हूं तो क्यों नहीं बोलती है ? हे पृथ्वीनाथ ! आज सामान्य स्त्रियोंके समान एक वस्त्रके निमित्त रोती हुई दुर्बल, दीन, पीली वर्णवाली, मलिन अनाथके समान एकली वनमें घूमती हुई मुझसे क्यों नहीं बोलते हैं ? हे आर्य्य ! शत्रुनाशन ! हे विशालनेत्र ! जैसे कोई हरिनी अपने झुण्डसे छूट एकली होकर दुःखी होती है मेरी भी वही दशा हुई है । इससे पहले मुझकी रोती हुई आप कदापि नहीं देख सकते थे । महाराज ! इस महावनमें मैं एकली पतिव्रता दमयन्ती आपकी पुकार रही हूं, आप मुझसे

क्यों नहीं बोलते हैं ? उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए हैं शील भरे ! सुन्दर ! पुरुषोष्ठ ! आज मैं इस पर्वतमें तुमको नहीं देखती । हैं निपधराज ! इस महावीर सिंह और व्याघ्रोंसे भरे हुए वनमें सोते हुए बैठे हुए वा चलते हुए कौनसे पुरुषसे आपको पूछे ? हे मेरे शोकके बढ़ाने-वाले पुरुषोष्ठ ! मैं तुम्हें देखनेकी व्याकुल हुई हूं मैं किससे पूछू कि तुमने इस वनमें कहीं राजा नलकी देखा है ? मैं किससे कहूं कि तुमने इस वनमें कहीं सुन्दर रूपवाली, महात्मा शत्रुघ्नके नाशक, कमलनेत्र उस नलकी कहीं देखा है कि जिसकी मैं दूढ़ती हूं ? मुझसे ऐसी मीठीवाणी कौन कहेगा कि जिसकी तुम दूढ़ती हो, वह नल यही है । यह चार दांतवाला वनका राजा, बड़े ओठवाला शाईल मेरे आगे ही चला जाता है, देखी मैं शङ्कारहित होकर इसके सामने जाती हूं । हे सुगोंके राजा ! हे सिंह ! तुम इस वन और हरिणोंके राजा हो, और मैं विदर्भराजकी पुत्री शत्रुओंके नाश करनेवाली महाराज नलकी स्त्री दमयन्ती हूं । हे सिंह ! पतिको दूढ़ने-वाली एकली शोकसे पीड़ित मेरे समीप आकर कि हो का तुमने कहीं नलकी देखा है ? यह अनकर मुझे बड़ता धैर्य होगा । हे सुगेन्द्र ! हे आप नलका समाचार मुझे न दे सकें; इतना मुझको खीची जाइये, जिससे मैं इस महा भर से कूट जाऊं । देखी इस वनमें मुझको इस गो हुई देखकर भी, यह सिंह मुझे कुछ नहीं भरे आता । यह समुद्रमें जानेवाली, मोटे जलसे समय भरा नदी और यह पवित्र जंघे शिखावाला वार हाय - रङ्गोंसे रंगे हुए मनोहर सुन्दर कहती हुई उस मुझसे शोभित है । अनेक समान रोती हुई, भए पत्थरोंसे विराजमान भीमपुत्रीको आकर भू मानो इस वनकी ध्वजा अजगरने ग्रहण किया । अजरअर, रीक, सहस्रों समय दमयन्तीने शोकसे व्याकुल पक्षियोंके शब्दसे

पूरित कंचनार, अशोक, वकुल, पुन्नाग साव, अमलतास और पीपल आदि फूल भरे हुए वृक्षोंसे शोभित पक्षियोंके सहित नदी शिखरोंसे भरे हुए इस पर्वतराजहीसे राजाका समाचार पूछती हूं । हे भगव हे पर्वतश्रेष्ठ ! दिव्यदर्शन विदित ! देनेवाली । कल्याणरूप पर्वत ! आपकी न स्कार है । आप मुझको राजपुत्री, राजाकी और राजाकी स्त्री प्रख्यात दमयन्ती जानि महारथ विदर्भ देशके राजा चारोवर्णकी कर देनेवाली भीम मेरे पिता हैं, वह दक्षिणी वाली अश्वमेध और राजसूय यज्ञोंके कर वाले शत्रुओंकी लक्ष्मीकी छीननेवाली, सुन भारी शरीर और नेत्रवाली, ब्राह्मणोंके भक्त, उच्चरितवाली सत्यवादी, सबका प्रिय चाहनेवाली शीलवान, बलवान, महालक्ष्मीमान, धर्म पवित्र, उत्तम प्रकारसे विदर्भ देशकी राजा भीम है, मुझको उनकी पुत्री जानिये, मैं जो आपके पास आई हूं सो निपदेशके महाराज अपने नामके सदृश गुणवा राजा वीरसेनकी विद्ध हूं, उन राजाके वीर, श्रीमान सत्यपराक्रम, राजा नल जो अपने बाप दादाके राज्यको पालते हैं, जो सब शत्रुओंके नाशक, श्यामसुन्दर, ब्राह्मणोंके भक्त वेदके जनिनेवाली पण्डित, धर्मकर्त्ता, सोमपीति वाले, अग्निहोत्री, यज्ञकर्त्ता, दाता, योद्धा पृथ्वीके उत्तम शासनकर्त्ता, और जो पवित्र कीर्तिके नामसे प्रसिद्ध हैं, आपके यहां आई मुझको उनकी श्रेष्ठ स्त्री जानिये । पर्वतसे उत्तम । लक्ष्मी और पतिसे कूटी हुई नाथरहित, देखसे व्याकुल पतिको दूढ़ती हुई मैं यहां आई हूं हे पर्वतश्रेष्ठ ! तुमने अपने इन जंघे जंघे शिखरोंसे कहीं राजा नलकी देखा है ? मेरा प्यारापति गजेन्द्रके समान पराक्रमी, बुद्धिमान, विशालबाहु, समान निपददेशके महाराज नलकी कहीं तुमने

देखा है ? हे पर्वत श्रेष्ठ ! अपनी पुत्रीके समान दुःखसे व्याकुल हुई मुझको वचन कहकर क्यों नहीं धीरज देते हो ? हे वीर हे तेजस्वी ! हे धर्मज्ञ ! हे पृथ्वीनाथ ! यदि आप कहीं इस वनमें छिपे हैं तो मुझे दिखाई दें नहीं देते ? - हाय मैं मोठो, बादलके समान गभीर अमृतके समान दमयन्ती ऐसी भाणी महात्मा नलके मुखसे कब सुनेंगी ? हे पृथ्वीनाथ ! अपने शोकके नाश करनेवाली, अपने कुलकी रीतिपर चलनेवाली, भयसे व्याकुल मुझको क्यों नहीं धीर्य देते हो ? हे महाराज ! वह राजपुत्री दमयन्ती पर्वतश्रेष्ठसे ऐसे वचन कहकर पुनः उत्तरकी ओर चली । वह सुन्दरी निरन्तर तीन दिन और रात चलतीही रही, तब उसने सुन्दर वनसे शोभित अनेक ऋषियोंके आश्रमोंकी देखा । उनमें पवित्र तौलकर खानेवाले, इन्द्रियजित, संयमी, वशिष्ठ, भृगु और अत्रि आदिक अनेक ऋषि रहते थे । उसने उस आश्रमको जलभची, वायुभची, पत्रभची, जितेन्द्रिय, महाभाग, स्वर्ग-मार्ग देखनेकी इच्छावाली, वकलेके वस्त्रवाली सुनियोंसे शोभित देखा । वह आश्रम तपस्वि-योंके वास करनेसे अत्यन्त मनोहर था । उस अनेक पत्नी हरिन और बन्दरोसे युक्त तपस्वि-योंसे भरे हुए, आश्रमको देखतेही दमयन्तीके चित्तमें स्थिरता हुई । अच्छी भकुटो अच्छेवाल, अच्छे कुच, अच्छी कमर, अच्छे दात और अच्छे मुखवाली तेजस्वी, कमलननी, वीर-की पुत्रीकी प्यारी स्त्रियोंमें रत्न तपस्विनी दमयन्ती उस आश्रममें गई । वहाँ जाकर उसकी सुनियोंकी प्रणाम कर नम्रभावसे खड़ी हुई । सब तपस्वी श्रेष्ठोंने उसका स्वागत किया, उसी यज्ञयोग्य पूजा करके सब सुनियोंने कहा और कहा कि हम तुम्हारा कौन कहें ? - यह सुनकर उत्तम मुखवाली दमयन्ती बोली कि हे तपस्वियों ! हे पाप

रहितो ! कहो तुम्हारे हरिन और पत्नी तो कुशलसे हैं ? आपलोगोंके अग्निहोत्र कर्म और अपने अपने धर्म कार्य तो कुशलसे होते हैं न ? उन्होंने कहा हे यशस्विनी ! हम सब कुशलसे हैं । हे सुन्दरि ! कहो तुम कौन हो ? और क्या चाहती हो ? हम सब तुम्हारे रूप और तेजकी देखकर परम आश्चर्यकी प्राप्त हुए हैं, धैर्य धरो, धवरोओ मत । हे अतिन्दिते ! हे कल्याणि ! क्या तुम इस वनकी अथवा इस पर्वतकी या इस नदीकी देवी हो ? - दमयन्ती बोली, हे ब्राह्मणा ! मैं न इस वनकी न इस पर्वतकी और न इस नदीकी देवी हूँ । हे तपद्रव्यवाले ऋषियों ! मुझको मानुषी जानो ; मैं अपने वृत्तान्तकी विस्तारसे कहती हूँ, आपलोग सुनिये । विदर्भ देशमें भीमनामके राजा है, हे ब्राह्मणश्रेष्ठो ! मैं उसकी पुत्री हूँ और निषध देशके राजा बुद्धिमान, यशस्वी वीर, युद्धजेता, प्रजानाथ, नल मेरे पति हैं । वह देवतोंकी पूजामें रत, ब्राह्मणोंके प्यारे, निषधवंशके रक्षक, महा तेजस्वी, महा बलवान, सत्यवादी धर्मज्ञ, पण्डित, सत्यसन्ध शत्रुनाशन, ब्राह्मणोंके भक्त देवतोंमें तत्पर, लक्ष्मीवान, शत्रुओंके नगरोंको जीतनेवाले, राजोंमें श्रेष्ठ, इन्द्रके समान तेजस्वी, विशालनेत्र, चन्द्रमुख, शत्रुनाशन, महा यज्ञोंके कर्ता, वेद और वेदाङ्गोंके पार-गामी, युद्धमें शत्रुनाशन, सूर्य और चन्द्रमाके समान तेजस्वी, महाराज नल मेरे पति हैं । उन धर्मपरायण महाराजकी किसी छली, अनार्य, पापी जुएके जाननेवालेने बुलाकर उनका राज्य और सब धन जुएमें जीत लिया । उसे राजोमेंमिंह नलकी स्त्री पतिके दर्शन चाहनेवाली मुझे विख्यात दमयन्ती जानो । मैं वन, पर्वत, तड़ाग, नदी पलवल और सब वनोंमें अपने युद्धके जीतनेवाली, महात्मा शस्त्र जाननेवाली पति नलकी दूढ़ती दुःखसे व्याकुल फिरती हूँ, कहिये आपके इस रम्य तपोवनमें

निषध देशके राजा नल आये है ? हे ब्राह्मण ! जिसके निमित्त मैं इस घोर भरी आपत्तिमें पड़कर इस घोर सिंह और शार्दूलोंसे भरे हुए वनमें घूम रही हूँ, हे ब्राह्मणों ! यदि मैं कुछ दिन राततक राजा नलको न देखूंगी तो अपने शरीरको छोड़कर परम पदकी प्राप्ति करूंगी । उस पुष्पसिंहके बिना जीनेसे मेरा क्या प्रयोजन है ? मैं अपने पतिके शोकसे पीड़ित कब तक जीऊंगी ? भीमपुत्री दमयन्तीको वनमें इस प्रकार रोती हुई एकली देखकर सत्यदर्शी तपस्वी लोग ऐसा कहने लगे । हे कल्याणि ! हे शुभे ! अब तुम्हारा कल्याण होनेवाला है, हमलोग तपसे देखते हैं, कि तुम निषध देशके राजा शत्रुनाशन नलकी शीघ्रही देखोगी । हे भीमपुत्री ! धर्मक्षेत्रोंमें श्रेष्ठ, सुखी, सब पापोंसे छूटे हुए सब रत्नोंसे युक्त, शत्रुओंकोभी देनेवाली, मित्र शोकनाशन, कल्याणसे भरे हुए, अपने पति राजा नलकी उसी देशमें राज्य करते हुए शीघ्रही देखोगी । वह ब्राह्मणलोग नलकी प्यारी राजपुत्री दमयन्तीसे ऐसा कहकर अपने आश्रम और अग्निशालाके सहित अन्तर्धान हो गये । सुन्दर शरीरवाली राजा वीरसेनकी वह दमयन्ती बहुत आश्चर्यमें आकर विचारने लगी कि क्या मैंने यह स्वप्न देखा था ? यह क्या आश्चर्य हुआ ? वह मुनि और उनका आश्रम कहाँ गया । वह पक्षी और पुष्पोंसे शोभित मनोहर जलवाली नदी कहाँ गई ? और वे उत्तम फूलोंसे भरे हुए, हृदयके प्यारे पर्वत कहाँ गुप्त हो गये ? उत्तम हंसनेवाली भीमराजकी पुत्री कुछ समय तक ऐसा विचार करके अपने पतिके शोकसे व्याकुल और विवर्ण मुखवाली होगई ; आसुवोंसे पूर्ण नेत्रवाली दमयन्ती आगे चलकर एक अशोक वृक्षको देख रोती हुई ऐसा कहने लगी, वह वृक्ष फूलोंसे भरा नवीन पत्तोंसे भरा, पक्षियोंसे शोभित था । उसको देख दमयन्ती विचारने लगी, आहा !

इस वनमें यह वृक्ष शोभासे भरा हुआ, फल और पुष्पोंसे पूर्ण पर्वतके समान शोभित है । हे अशोक ! हे प्रियदर्शन ! मुझको शोक रहित करो । तुमने शोक और भयसे रति राजा नलकी कहाँ देखा है ? वही शत्रुओं नाश करनेवाला राजानल दमयन्तीका प्यार पति है, उस निषध देशके राजा मेरे प्यारे तुमने कहाँ देखा है ? वह एक वस्त्रधारी कोमल दुःखसे पीड़ित, वीर इसी वनमें अथे ; हे अशोकवृक्ष ! जैसे मैं शोक रहित हो जा बैसाही यत्न करो । तुम्हारा नाम अशोक है हमारे शोकको नाश करके यथार्थनामा बने वह उत्तम स्त्री दमयन्ती अशोकसे ऐसे वचन कहती हुई महाघोरवनमें पड़ची । उसने वनमें जाकर अनेक पर्वत, अनेक वृक्ष, अनेक नदी, अनेक मृग और अनेक पक्षियोंकी देख गुफा, पर्वतके नीचे स्थान और विचित्र नदियोंकी देखा, उत्तम हंसनेवाली दमयन्ती नलकी ढूँढ़ती इस प्रकार दूर चलकर एक स्थान पड़ची । उसने वहाँ जाकर देखा कि एक हाथी घोड़े और रथोंसे भरी हुई बड़ी भारी सेना शीतजलवाली सुन्दर दीनों और वेतवाली उत्तम, जलपूर्ण चौड़ी नदीकी तरती है । वही नदी सारस, कर्मरी, चकवोंके शब्दसे शोभित थी । नलकी स्त्री यशस्विनी दमयन्ती उस सेनाकी देख उसकी ओर जा, उसके बीचमें पड़ची, जिस समय वह उत्तमके समान शोकसे व्याकुल आधे वस्त्रकी धारण किये दुर्बल, विवर्ण मुखवाली, मलिन और विखरे केशवाली उस सेनाके मध्यमें पड़ची तो उसकी देख कोई परुष दधर उधर भयसे भागने लगे, कोई चिन्ता करने लगे, कोई हंसने लगे, कोई उसकी निन्दा करने लगे । हे भारत ! कोई कपाकर उसका समाचार पूछने लगे, कि हे कल्याणि ! तुम कौन और किसकी हो ? इस वनमें क्या दृष्टी हो ? हम तुमको देखकर भयसे व्याकुल हुए

हैं। क्या तुम मानुषीही हो? हे कल्याणि। हम तुम्हारी शरण हैं, तुम सत्य कहो, क्या तुम इस वन अथवा पर्वत दिशाओंकी देवी हो? हे अनन्दिता। तुम यही या राक्षसी अथवा देवी हो? तुम हमारा कल्याण करो। हे कल्याणि! जैसे यह हमारा भुण्ड सुखसे चला जाय और हमारा कल्याण हो, वही यत्न तुम करो। वस भुण्डके ऐसे वचन सुनकर पति-शोकसे पीड़ित राजपुत्री साध्वी दमयन्ती भुण्डपति, बूढ़े, बालक और जो उनमें थे उन सबसे ऐसा बोली। तुम सब मुझको राजाकी पुत्री, राजाकी वज्र और राजाकी स्त्री जानो। मैं अपने-पति-का दर्शन चाहती हूँ। विदर्भ देशका राजा भीम मेरा पिता है और निषध देशका राजा महाभाग नल मेरा पति है, मैं उसी अपराजित नलको ढूँढ़ती फिरती हूँ। यदि तुमने पुरुषसिंह, शत्रुनाशन, मेरे प्यारे नलको कहीं देखा हो, तो शीघ्र कहो? उस सुन्दर अङ्गवालीके ऐसे वचन सुन, शुचि-नामक भुण्डपति अपने भुण्डके सहित ऐसा बोला। है-कल्याणि। हे शुचि! मैं भुण्डका स्वामी हूँ, मेरे वचन सुनो। हे यशस्विनी! इस मनुष्यरहित वनमें, हाथी, गेंडा, भैंसा, शार्ङ्ग, रीछ और हारनोकी तो सर्वत्र देखता हूँ, परन्तु मैंने नल नामक पुरुषको कहीं नहीं देखा, इस घोरवनमें मैंने तुम्हारे सिवा और किसी मनुष्यको नहीं देखा, अब यही तो राजा भगवान् मणिभद्र हमसे प्रसन्न हो। अनन्तर उस बनिये और भुण्डसे दमयन्ती बोली, कि वह पुरुषोका भुण्ड कहाँ जाता है, यह मुझसे कहो। सार्यवाह बोला, हे राजपुत्री! यह बनियोंका भुण्ड चन्देरीके राजा सुवाङ्गके ग्रन्थका वासी है, और लाभके निमित्त अन्य पुरुषोंको जा रहा है।

६४ अध्याय समाप्त।

श्रीबृहदश्व मुनि बोले, सुन्दर अङ्गवाली दमयन्ती उसके वचन सुन अपने पतिके दर्शनकी इच्छासे उसीके सङ्ग आगिकी चली। अनन्तर वज्रत समय बीतनेपर महाघोर वनमें उन सब बनियोंने चौकोना पट्टोंसे भरा झुआ, मनोहर, वज्रत व्यास और इन्धनसे संयुक्त फूलोंसे शोभित अनेक प्रकारके पक्षियोंसे सेवित निर्मल, मीठे, मनोहारी और ठण्डे जलसे भरे हुए सौगन्धिक नामक तड़ागकी देखा, और बाहनोंके थकनेके कारण उन्होंने वहीं ठहरनेकी इच्छा की। अनन्तर उन्होंने अपने भुण्डपतिकी आज्ञा लेकर उसी उत्तम वनमें तड़ागके पश्चिम ओर निवास किया। अनन्तर आधी रातके समय जब शब्द शान्त हो गया और वह थके हुए बठीही सो रहे, तब मदरूपी भरनोंसे व्याकुल पर्वतकी नदीमें जल पीनेकी इच्छासे एक हाथियोंका भुण्ड आया, उसने उस भुण्डमें अनेक हाथियोंको देखा, वे उन पाले हुए हाथियोंको देख मारनेकी इच्छासे वेगसे मदमें भरे हुए उनकी ओर दौड़े, जैसे पर्वतके शिखर टूटके पृथ्वीमें गिरते हैं, वैसेही वे हाथीभी दौड़े। उन हाथियोंका वेग महादुःसह हुआ। उस समय हाथियोंके दौड़नेसे और वृक्षोंके गिरनेसे वनका मार्ग नष्ट हो गया। अनन्तर तड़ागका मार्ग रुकनेसे उन हाथियोंने बनियोंको मारना आरम्भ किया। पृथ्वीमें सीते हुए, शरणकी इच्छा करते हुए लोग महा हाहाकार करने लगे। नींदसे व्याकुल बठीही लाग वनके कुञ्जोंकी ओर दौड़ने लगी, कोई हाथियोंके दाँतसे, कोई सूड़ और कोई चरणोंसे मरने लगे। अनेक जंट घोड़े, और पुरुषोंसे भरे हुए उस भुण्डके पुरुष रात्रिमें इधर उधर दौड़नेके कारण एकसे-एक मिलकर मरने लगे। वे लोग घोर शब्द करते हुए पृथ्वीमें गिरने लगे। कोई वृक्षोंपर चढ़ गये, कोई गढ़ीमें गिरके मर गये। हे राजन्!

प्रारब्धसे उस हाथियोंके भुण्डने उस भारी-पुरुष दलको इस प्रकार नष्ट कर दिया । दोनों लोककी भयभीत करनेवाला, महाघोर शब्द उस पुरुष दलसे उठा, मानो कहीं आग लग रही है, शीघ्र दौड़ो। हमको बचाओ, यह रत्नोंके ढेर नष्ट होते है, इनकी ले जाओ, यह धन वज्रत है, मैं भूँठ नहीं कहता हूँ । ऐसेही कहते हुए, सब लोग भयसे व्याकुल होकर दूधर उधर भागने लगे और कातर होकर विचारने लगे कि इसकी फिर आकर ले जायंगे । जब इस प्रकार महाघोर पुरुष नाशका समय आया, तो भय से व्याकुल दमयन्तीभी जागी, उस कमलनैनी वालाने ऐसी आपत्ति पहली कभी नहीं देखी थी । उस सब लोक भयङ्कर आपत्तिकी देखकर जम्माई और सांस लेती हुई, भयसे व्याकुल होकर उठी, उसमें जो वचे थे, वे सब रुधिरसे भीगे हुए, भयसे व्याकुल हुए, ऐसा कहने लगे यह किसके कर्मका फल है, निश्चय हम लोगोंने महायस्वी मणिभद्र और श्रीमान भगवान यक्ष नाथ कुवैरकीभी पूजा नहीं करी अथवा विघ्नकारियोंको पूजाभी हमने पहली नहीं की, और यह जा उन्मत्तके समान स्त्री अमानुष धाररूप बनाकर हमारे सङ्ग आई, जिसकी हमने पहलीही भयानक माया बताया था सो निश्चय कोई राक्षसो, वा भयङ्कर पिशाचिनी है, इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह उसीके पापका फल है । यदि हम उस अनेक दुःखदायिनीको देखें तो अवश्यही लाठी देला तिनके काठ और मुक्कोसे मार डालें । वही हमारे दलके नाश करनेवाली है ! दमयन्ती उनके कठोर और खुरखे वचन सुनकर अपने शरीरके बचानेकी इच्छासे उस दुःखको स्मरण करती हुई लज्जा और भयसे भरकर वनकी ओर भागी और विचारने लगी, हाय मेरे ऊपर ब्रह्माका कैसा घोर क्रोध हुआ है कि जिससे कल्याण प्राप्ति नहीं होती,

यह कौनसे कर्मका फल है ? मैं अपने कर्मको अच्छे प्रकार स्मरण करती हूँ, परन्तु मैं कभी मन वचन और कर्मसे थोड़ाभी पाप नहीं किया है, न जाने कौन से कर्मका फल है ? निश्चय मेरे पूर्व जन्मका यह महापाप उदय हुआ है, जिससे इस प्रकार दुर्दशा पड़ी हूँ । पतिके राज्यका नाश मित्रों बियोग, पति और सन्तानोंसे छूटना, नाश रहित होना, विज्रत सांपोंसे भरे हुए वनमें वा यह कष्ट आपत्ति है । अनन्तर जब दूसरे दिन हुआ तो उस दलमें जो मरनेसे बचे थे वे उस दुःखको शीघ्रते हुए उस वनसे भागे और पिता-पुत्र तथा मित्रोंका शीघ्र कर लगे । हे नरनाथ ! विदर्भराजपुत्री वहां शीघ्र करने लगी कि, न जानूँ मैंने कौनसा पाप किया है । देखो, इस निर्जन वनमें एक आदमि और मेरा महाभुण्ड मुझको मिला था, मेरे मन्द भाग्यके कारण उसकोभी हाथियोंके भुण्डने मार डाला, अवश्य अभी मुझको और भी दुःख भागना शेष है । मैंने बूढ़ोंसे सुना है कि बिना समयके कोई पुरुष नहीं मरता इसीसे इन हाथियोंनेभी मुझको नहीं मारा मैंने वाल्यावस्थामें भी मनसे और कर्मसे कोई पाप नहीं किया, जिसका फल यह दुःख हुआ है, इससे जान पड़ता है, कि बिना प्रारब्ध पुरुषको कुछ फल प्राप्त नहीं होता । मुझे निश्चय होता है, कि स्वयम्बरमें ज। लाकपाल लोग आये थे, मैंने नलके अर्थ उनका निरादर किया था, अवश्य उनही देवतोंके प्रभावसे मुझे यह बियोग हुआ है । वह दुःखसे भरी हुई पतिव्रता, सुन्दरी दमयन्ती इस प्रकार रोती हुई विलाप करने लगी । अनन्तर मरनेसे जो बचे थे, उनमेंसे थोड़े वेद जाननेवाले ब्राह्मणोंने शरत्कालकी चन्द्रमाको कलाके समान दमयन्तीको मार्गमें देखा । अनन्तर वह वाला दमयन्ती वज्रत कालतक चलती चलती

एक दिन सन्ध्या समय चेदि देशके राजा सत्य-
दर्शी सुवाङ्मके नगरमें पड़ची, और एकही
वस्त्र पहने हुए उस उत्तम नगरमें गई। उस
बिहल, दुर्बल, हीन, खुले केशवाली, मलिन
दमयन्तीकी उन्मत्तके समान आते हुए सब
नगरवासियोंने देखा उस नगरमें प्रवेश करती
हुई दमयन्तीके पीछे खेलनेवाले नगरके लड़के
चले, वह उनके सहितही राजाके स्थानके
समीप पड़ची। लड़कोंसे घिरी हुई दमयन्ती-
की महलमें बैठी हुई राजमाताने देखके
धायसे कहा, कि तू इसको हमारे घरमें बला ला,
देखो इस शरण चाहनेवाली बालाका यह
लड़के दुःख दे रहे हैं, इसके रूपसे मेरा घर
चांदना हुआ जाता है; यह विशालनैनी
लक्ष्मीके समान रूपवाली कल्याणी, उन्मत्तके
समान फिर रहो है। वह धाय सब लड़कोंकी
दूरकर दमयन्तीका उत्तम महलमें ले गई, उससे
आश्चर्य सहित राजमातान पूछा कि, हे दिव्यस्व-
रूपे! तुम इस आपात्तमें पड़करभी ऐसी
उत्तम शोभाका धारण करती हो, जैसे बाद-
लोंमें वज्रलोचमकती हो, हमसे कहा कि तुम
कौन और किसकी हो? भूषणोंसे रहितभी
तुम्हारा स्वरूप मानुषीक ऐसा नहीं दीखता।
तुम्हारा कोईभी सहाय नहीं है? क्या तुम
पुरुषोंसे नहीं घबराती हो? राजमाताके ऐसे
वचन सुनकर दमयन्ती बाली, मैं पतिव्रता, मानुषी,
सन्तानपूरके रहनेवाली, अपनी इच्छासे निवास
करनेवाली दासी हूँ, केवल फल मूल खाकर
इस सन्ध्याही वहीं रह जातो हूँ, मेरा पति
सख्य गुणोंसे भरा हुआ और मेरा प्रिय है,
भी उस वीरकी वैसीही भक्त हूँ; और नित्यही
आपके समान उनके पीछे चलती हूँ। प्रार-
म्भिक उनको जुएकी अत्यन्त इच्छा हुई, वह
सब कुछ चार गये, और अकेले वनकी
दिये, मैंभी उन व्याकुल और उन्मत्तके
अपने वीर पतिके सङ्गही उनको धैर्य

बधाती हुई सङ्गही वनकी चली। एक दिन
वह वीर वनमें भूखसे अत्यन्त व्याकुल हुए और
उस एक वस्त्रकीभी इसी कारणसे खो बैठे।
अनन्तर मैं उस विमना, नङ्गे, और चेतना रहित
पतिके सङ्गही एक वस्त्र धारण किये हुए वनमें
घूमने लगी और कई राततक नहीं सोई, अन-
न्तर एक दिन सुभको सोती हुई छोड़ मेरा
आधा कपड़ा फाड़ वह कहीं को चले गये।
अब मैं वियोगसे जलती हुई, अपने पतिको
ढूँढ़ती हुई, उसे अपने प्यारेको कमलकी गुठ-
लीके समान अपने हृदयमें देखती हुई फिर
रही हूँ। उन देवतोंके समान रूपवाले प्राण-
नाथकी कहींभी नहीं पाती हूँ। उस रीती
हुई आंसुओंसे पूर्ण आंखवाली दमयन्तीके ऐसे
वचन सुन राजमाता बोलीं। हे कल्याणि!
हे भद्रे! तुम यहीं निवास करो, मेरा तुमसे
परम प्रेम है, तुम्हारे पतिको मेरे पुरुष दूँगी
अथवा इधर उधर धूमता हुआ वह आपही
यहां आजायगा। हे भद्रे! तुम यहां रह-
कर अपने पतिको प्राप्त करोगी। राजमाताके
वचन सुन दमयन्ती बोली, हे वीरजननी! यदि
आप सुभसे यह सब प्रण करें तो मैं रह सकती
हूँ। मैं जठा नहीं खाजंगी, पैर नहीं धोखंगी
और यदि कोई मेरी इच्छा करे तो वह आपसे
प्राणदण्ड पावे। यह मेरा प्रण है। और
अपने पतिके ढंढनेवाले ब्राह्मणोंकी मैं रोज
देखा करूँ। यदि आप यह सब स्वीकार करें
तो मैं निःसन्देह यहां रह सकती हूँ। इसके
अन्यथा मेरा निवास हृदयमेंभी सम्भव नहीं है।
यह सुन राजमाता प्रसन्न हो बोली, जो तुम्हारा
प्रण है, सो सब मैं ऐसीही करूंगी! हे राजन्!
राजमाता दमयन्तीसे ऐसा कहकर अपनी पुत्री
सुनन्दासे बोलीं, हे सुनन्दे! यह सैरिन्ध्री
साक्षात् देवकपिणी है, और तुम्हारी समान
अवस्थावालीभी है, इस हेतु तुम इसको अपनी
सखी बनालो। इसके सङ्ग रहकर तुम प्रसन्न-

चित्तसे सदाही आनन्द करो । सुनन्दा माताके वचन सुन परम प्रसन्न हुई, और अपनी सब सखियोंके सहित दमयन्तीकी सङ्ग ले अपने स्थानकी गई । दमयन्ती वहां-सब भोगोंकी प्राप्त करके राजपुत्रीसे पूजित हो, आनन्दसे रहने लगी ।

६५ अध्याय समाप्त ।

और वह दश मुनि बोले, हे प्रजानाथ युधिष्ठिर । राजानल दमयन्तीकी छोड़कर महा-वनमें घूमने लगे, अनन्तर एकस्थानमें जलती हुई आगकी-देखा और उसके बीचमेंसे उसने यह शब्द सुना । हे नल । पुण्यश्लोक ! शीघ्र आओ, दौड़ो, कुछ भय मत करो । यह सुनतेही नल उस आगके बीचमें घुस गया और वहां जाकर देखा कि एक सर्पोंका राजा कुण्डलाकार बैठा था । नलकी देखतेही वह नाग हाथ जोड़ कर कांपता हुआ ऐसा बोला, कि हे नरनाथ ! मेरा नाम कर्कोटक नाग है । मैंने महातपस्वी महर्षि नारदका दर्शन किया, था, उन्होंने क्रोधमें भस्मकी मुष्मकी शपथ दिया कि जबतक राजानल यहां न आवे, तबतक तू स्थावरके समान यहीं पड़ा रह, जब तू उनको देखेगा तबही मेरे शपथसे छूटगा । हे महाराज मैं उनके शपथसे एक चरणभी नहीं चल सकता हूं । आप मेरी रक्षाकीजये, मैं आपको कल्याणका उपदेश करूंगा । मेरे समान कोईभी नाग नहीं है ; मैं आपका मित्र हूंगा, अब मैं हलका बन जाता हूं, तुम मुष्मकी उठाकर शीघ्र ले चलो । ऐसा कहकर वह नागराज अंगूठेके समान शरीरवाला हो गया । नल उसकी उठाकर अग्निरहित, देशमें लेगये, वह साप अग्निसे छूटा । जब नलने, उसके छोड़नेकी इच्छा की, तो वह सर्प आकाशसे जाकर कहने लगा कि, हे नल । तुम अपने चरणोंकी गिनगिनकर कुछ दूर चलो, हे

महावाही ! हम तुम्हारे-वस्ती, कुछ कल्याणका उपदेश करेंगे । तब नल अपने पैरोंकी गिनने लगा, तब उस नागने दशवें चरण नलकी काट लिया, उसके काटतेही नल वह सुन्दर स्वरूप नष्ट हो गया । नलने अपने शरीरकी कुरूप देख महा आश्चर्य किया अनन्तर रूपधारी सर्पकी देखा । तब कर्कोटक नाग नलकी शान्त करता हुआ-ऐसा-कह लगा, जिसमें पुरुषलोक तुमकी न जान सके इसीलिये तुम्हारे रूपकी मैंने नष्ट कर दिया है, हे नल ! तुम जिसके कारणसे हलमें पड़े कर इस दुःखको भोग रहे हो, मेरे विषसे वह कलि दुःख पावेगा । हे महाराज ! मेरे दुःख भरे शरीरवाला कलियुग जबतक तुमकी नहीं छोड़ेगा, तबतक महा दुःख सहैगा । हे महाराज ! जिसने तुमकी विना अपराधके दुःख दिया है, वह स्वयम्हो दुःख पावेगा, तुम हमारी रक्षा की है, तुमने अपने क्राधसे उसकी हानि नहीं चाही, अब तुमकी सिंहादि तीक्ष्ण दाढ़वाले और शत्रुओंसेभी कुछ भय नहीं होगा । हे नरनाथ ! मेरे प्रसादसे तुमकी वेद जाननेवालोंसेभी भय नहीं होगा । हे राजा ! मेरे विषकी पीड़ाभी तुमकी नहीं होगी । तुम युद्धमें निरन्तर जीततेही रहोगे हे राजा ! अब तुम इस दिशाको, चले जाओ और अपना नाम वाङ्मय सूत-बताना, राजा ऋतुपर्णकी पास जाना, क्योंकि वह जुएकी विद्यामें वहुत निपुण है । हे निषधराज । वह रम्य नगरी अयाध्याका राजा है । तुमसे घोड़ेकी विद्या सीखकर तुमकी जुएकी विद्या सिखला देगा । इच्छाकुवंशमें उत्पन्न हुए श्रीमान् राजा, ऋतुपर्ण, तुम्हारे मित्रभी हो जायेंगे । तब तुम पाशोंकी विद्याकी वान जाओगे, तो परम कल्याणकी प्राप्त होगी । तब तुम अपने पुत्र और राज्यकी प्राप्त करोगे, मैं तुमसे सत्य कहता हूं, मनमें कुछ शोक मत

करी। हे राजन् जब तुम अपने रूपको चाँही तो इस वस्त्रको ओढ़कर मेरा सारण करना, इस वस्त्रके ओढ़तेही तुम अपने रूपको प्राप्त हो जाओगे, ऐसा कहकर उसने नलको दो दिव्य वस्त्र दिये। हे कौरव । हे राजन् ! नागराज नलसे ठीक ऐसा कहकर और वस्त्र देकर वही अन्तर्धान हो गये।

६६ अध्याय समाप्त।

श्रीवृहदश्व मुनि बोले, नागके अन्तर्धान होनेके पश्चात् राजा नल वहाँसे चले और दसवें दिन राजा ऋतुपर्णके नगरमें पहुँचे और राजाके पास जाकर ऐसा बोले, मेरा नाम बाहुक है, घोड़ोंके हाकनेकी विद्यामें मेरे समान पृथ्वीमें कोई नहीं है, बड़े कठिन धन-चयके समयमें मैं भन्त दे सकता हूँ और भोजन बनानाभी सबसे अच्छा जानता हूँ, जगतमें जितनी शिल्पविद्या है, उन सबको अच्छी प्रकार जानता हूँ, औरभी जो कठिन कर्म है, सबको कर सकता हूँ। हे ऋतुपर्ण ! आप हमको नौकर रख लीजिये। ऋतुपर्ण बोले हे बाहुक ! तुम्हारा कलापण हो, तुम हमारे यहाँ रहो, रथके शीघ्र चलानेमें सदाही बद्धि रहती है। हे सुत ! तुम ऐसा उपाय करो जिससे मेरे रथके घोड़े शीघ्र चल सकें, तुम आजसे मेरी घुड़शालके स्वामी हुए, आजसे तुमको दश सहस्र सोनेकी मुद्रा प्रति मास मिला करेंगी, वार्षिक और जीवल तुम्हारी आज्ञामें रहा करेंगे। हे बाहुक ! इन दोनोंके सङ्ग आनन्द करते हुए तुम मेरे यहाँ रहो।

श्रीवृहदश्व मुनि बोले, कि राजाके ऐसे पत्न सुनें, सत्कार पाकर राजा नल वार्षिक और जीवलके सङ्ग अयोध्यामें निवास करने लगे। राजा नल वहाँ निवास करने हुए दमयन्तीकी चिन्ता करते रहते थे, उसके समय नित्य यह बात कहा करते थे,

“वह तपस्विनी भूख प्यास, और थकाईसे व्याकुल होकर कंहां सीती होगी ? और अपने मन्दभाग्यका सारण करती हुई कौनसे स्थानमें सीती होगी ?” नलको यह बात प्रति दिन कहते सुनकर, एकदिन जीवलने पूछा, कि हे बाहुक ! तुम रातको किसका नित्य सारण करते हो ? सो मैं सुननेकी इच्छा रखता हूँ, हे आयुष्मन् ! तुम किसकी स्त्रीका सारण करते हो। प्रश्नको सुनकर नल बोले, कि किसी मन्दबुद्धिवाले पुरुषकी एक बहूत प्यारी स्त्री थी, यह चंद्र वचन उसीका है। कभी वह मूर्ख पुरुष किसी प्रयोजनसे उस स्त्रीसे विकुड़ गया; विकुड़नेके पश्चात् वह मूर्ख दुःखसे पीड़ित होकर शोकसे जलता हुआ रात दिन निश्वरहित घूमता है, और रात्रिमें उसका सारण करके इस श्लोककी गाथा करता है, वह समस्त पृथ्वीको घूमकर कुछ जीविका प्राप्त करके उसीका सारण करता हुआ दुःखमें अयोग्य होने परभी पुनः पुनः उसीका सारण करता है; क्योंकि वह स्त्री महादुःखके समयभी उसके सङ्ग महावनको चली गई थी। उस पापीने उसकी वनमें अकेली छोड़ दिया। यदि प्रारब्धवश दुःखसे जीतीभी होगी, तो वह अकेली मार्गकी न जानेनेवाली उस दुःख सहनेके अयोग्य बाला भूख और प्याससे व्याकुल होकर सिंहोंसे भरे हुए घोर वनमें घूमती होगी। हे आर्य्य ! इस प्रकारसे उस मन्दभाग्य मन्दबुद्धिने अपनी स्त्रीको छोड़ दिया। इस प्रकार राजा नल दमयन्तीका सारण करते हुए उस राजाके घरमें छिपकर रहने लगे।

६७ अध्याय समाप्त।

श्रीवृहदश्व मुनि बोले, जब राजा नल अपनी स्त्रीके सहित वनको चले गये, तो राजा भीमने नलके दर्शनकी इच्छासे अनेक ब्राह्मणोंकी भेजा। बहूत घन देकर कह दिया कि तुम लोग नल

और मेरी पुत्री दमयन्तीको हेरी ; इस कर्मके सिद्ध हो जाने पर अर्थात् नलका पता लग जाने पर तब जो कोई दोनोंको यहां ले आवेगा वह एक सहस्र गौ पावेगा, और उसको ब्राह्मणोंमें नगरके समान गांव मिलेगा । - यदि नल वा दमयन्तीको यहां न ला सके और केवल पताही लगा दे, तो भी एक सहस्र गौका मूल्य पावेगा । ऐसे वचन सुन ब्राह्मण लोग प्रसन्न हो सब और को चल दिये । वे लोग नगर और राज्योंमें स्त्रीके सहित नलको ढूढ़ने लगे परन्तु कहीं भी नल वा दमयन्तीका पता न पाया । अनन्तर सुदेव नामक ब्राह्मण उनकी दंढता चेदिपुरीमें जा निकला । - उसने वहां राजाके स्थानमें दमयन्तीको देखा कि राजाके पुण्यह-वाचनके समय सुनन्दाके सहित बैठी थी, परन्तु वह असाधारण रूप मन्द होनेसे दमयन्ती ऐसे जान नहीं पड़ती थी जैसे धूपसे छिपे हुए सूर्यकी किरण । उस विशाल नैनीकी अधिक दुर्बल और मलिन देख सुदेव ब्राह्मणने अनेक कारणोंसे निश्चय किया कि यही दमयन्ती है । सुदेव बोला, कि जैसा इस स्त्रीको मैंने पहले देखा था वैसीही अब भी है । आज इस लोक-सुन्दरीको लक्ष्मीके समान देखकर मैं कृतार्थ हो गया । यह पूर्णचन्द्रमाके समान रूपवाली, थोड़ी अवस्थावाली, सुन्दर पयोधरवाली, सब दिशाओंको अपने तेजसे अन्धकाररहित कर रही है ; यही उत्तम कमलसमान बड़े नेत्रवाली साक्षात् लक्ष्मीके रुमान है, यही चन्द्रमा की किरणके समान सबलोगोंकी धारी है ; यही विदर्भरूप तड़ागसे दैवके दोषसे मनरूपी-कीचड़से भरी झई साक्षात् मनालिनी (कमलकी डण्डीके) समान है, इसका रूप पतिके शोकसे दीन होनेसे ऐसा जान पड़ता है, जैसे राजसे ग्रसित चन्द्रमा सहित पूर्णमासीकी रात्रिही, अथवा सूखी झई नदीका तट । अहा ! इसका रूप कैसा होगया है ? जैसे टूटे पत्रवाले

कमलोंसे भरी झई, डरे हुए पत्तियोंके हाथीकी सूंडसे टुटी झई कमलनीका रूप हो । रक्तागठित स्थानोंमें रहनेके योग्य, यह सुकुमारी, कोमलाङ्गी, इस समय ऐसी आपत्तिमें पड़ी जैसे सूर्यकी किरणसे जली हुई कमलमनाली (डण्डी) । रूप और उदारतासे भरी झई, भूषणोंके योग्य दमयन्ती इस समय विभूषणोंके, आकाशमें नीले बादलोंसे ढाई चन्द्रमाकी किरणके समान शोभित हो रही है, यह काम, भोग, और धारे वस्तुओंसे रहित होकर भी केवल पतिके दर्शनकी इच्छासे अपनी दुःखी जीवनकी धारणकर रही है, कि आभूषणोंके भी स्त्रीको पतिही आभूषण है, य सुन्दरी होनेपर भी विना पतिके शोभित नहीं होती । - यदि इसको त्यागकर नल जीता और इसके शोकसे व्याकुल नही तो बड़े कठोर कर्मकी कर रहा है । इस नीलकेशी कमल नैनी सुखके योग्य, दमयन्तीको दुःखिनी देखकर मेरा मन भी दुःखसे व्याकुल हुआ जाता है, या सुन्दरी साध्वी अपने पतिसे मिलकर इस दुःख पार कब जायगी ? जैसे रोहिणी चन्द्रमासे मिलकर सुखी होती है, तैसे यह कब होगी । निश्चय राजा नल इससे मिलकर अपने कुटुम्ब राज्य और पृथ्वीको पाकर प्रसन्न होंगे । अबस्था, शील और कुलसे राजा नलही इस कमलनैनीके योग्य है । सुभी, उचित है कि उस अप्रमेय बलवान राजा नलकी स्त्रीको धीरज दूँ ; क्योंकि यह अपने पतिके दर्शनकी अत्यन्त इच्छा रखती है, मैं इस पूर्णचन्द्रमुखी, दुःखन देखनेवाली, दुःखसे व्याकुल, शोकवती, दमयन्तीकी आश्वासित करूंगा ।

श्रीबृहदश्व मुनि बोले, सुदेव ब्राह्मण अनेक कारणोंसे अपने मनमें निश्चय कर और इसकी लक्ष्मणोंसे पहचान दमयन्तीके पास जाकर ऐसा बोला । हे विदर्भराजनन्दिनि ! मैं तुम्हारे भाईका धारा मित सुदेव नामक ब्राह्मण

राजा भीमके वचनसे तुम्हें यहाँ दूढ़नेकी आया
है। हे रानी ! तुम्हारे माता पिता और
वहाँ रहनेवाले चिरंजीव तुम्हारे दोनों बालक
कुशलसे हैं, परन्तु केवल तुम्हारे ही निमित्त
तुम्हारे भाई लोग निर्जलके समान हो गये हैं,
और तुम्हें दूढ़नेवाले सैकड़ों ब्राह्मण पृथ्वीमें
धूम रहे हैं।

श्रीवृहदश्व मुनि बोले, हे युधिष्ठिर ।
दमयन्तीने सुदेवको पहचानकर क्रमसे अपने
सब वस्तुओंका समाचार पूछा, अनन्तर अपने
भाईके भित्त, ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ, सुदेवको देखकर
शोकसे व्याकुल दमयन्ती बहृत रोई। अनन्तर
उसकी रोती हुई, और सुदेवसे एकान्तमें कुछ
बात करती हुई देखकर सुनन्दा शोकसे व्याकुल
होगई, और अपनी मासे कहने लगी कि आज
एक ब्राह्मणके सङ्ग बात करतो हुई सैरिन्धी
बहृत रो रही है। यदि तू जान सके तो जान।
अनन्तर वैदिराजकी माता रनवाससे निकल
कर उस स्थानपर पहुँची जहाँ दमयन्ती ब्राह्म-
णसे बात कर रही थी, हे राजन् । अनन्तर
राजमाताने सुदेव की एकान्तमें बुलाकर पूछा,
कि यह सुन्दरी किसकी पुत्री और किसकी
स्त्री है, अपने वस्तु और पतिसे कैसे अलग
होगई ? हे ब्राह्मण । तुम इस पतिव्रताके सब
चरित्रको जानते हो, सो सब मैं भी सुनेकी
इच्छा रखतो हूँ, इस देवकपिणीका सब वृत्तान्त
ममसे कहो हे राजन् । ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ
वैशम्पैयने राजमाताके ऐसे वचन सुनकर सुखसे
ठहकर दमयन्तीका सब वृत्तान्त इस प्रकार
कहना आरम्भ किया कि—

— ६८ अध्याय समाप्त ।

सुदेव बोले, कि महा तेजस्वी धर्मात्मा
भीम नामक विदर्भके राजा हैं। यह कल्याणो
पुत्रीकी पुत्री है। निषेध देशके राजा वीरसेनके
पुत्रविमान पतिव्रती राजा नलकी स्त्री

है, उस महाराजकी भाईने जुएमें हरेके
राज्यसे निकाल दिया, वह दमयन्तीके
सङ्ग ही बनकी चले गये, अब न जाने कहाँ हैं।
सो हम लोग दमयन्तीके निमित्त पृथ्वीमें घूमते
हैं, आज हमने इसकी तुम्हारे स्थानमें पाया,
मानुषियोंमें इसके समान रूप वाली कोई नहीं
है। इसके भीहोंके बीचमें जो मसा दीखता है,
सो जन्म होसे है, मैंने इस सुन्दरीके पद्म-
तुल्य मुखपर यह छिपा हुआ मसा देखा, यह
मैलसे ऐसा छिप गया है, जैसे मेघसे चन्द्रमा ;
ब्रह्माने ऐश्वर्यके निमित्त यह इसका हिङ्ग
वना दिया है। प्रदिपदाकी मन्दकान्ति
चन्द्रमाकी कलाशोभित नहीं होती है। इसका
रूप शरीरमें मैलके भरनेसे भी अभी नष्ट नहीं
हुआ है, देखो स्थानादि न करने पर भी यह
सोनेके समान प्रकाशित हो रही है। यह
देवी इस शरीरसे केवल इस मससे ही पहचानी
जाती है। जैसे किसी वस्तुसे ढकी हुई आग
उष्णतासे पहचानी जाती है। हे राजन् ।
सुदेवके ऐसे वचन सुनकर राजमाताने दम-
यन्तीके मुखका मैल दूर करके उसके मसके को
देखा। मैलके दूर होनेसे उसका मुख ऐसा
शोभित होने लगा जैसे मेघरहित आकाशमें
चन्द्रमा । हे भारत । राजमाता और सुनन्दा
उस मसके देखकर दमयन्तीसे लपटकर कुछ
समयतक रोती रहीं। अनन्तर आसुवोंकी
पोंछकर राजमाता धीरेसे ऐसा बोली, इस
चिह्नसे मैंने पहचान लिया तू मेरी बहनकी
पुत्री है, हे सुन्दरी ! मैं और तुम्हारी माता
दशार्ण देशके राजा महात्मा सुदामाकी
पुत्री हैं, उसने तुम्हारी माताकी राजा
भीमसे और मुझकी राजा सुबाहुसे व्याहा
था। तू जब मेरे पिताके घरमें उत्पन्न
हुई थी तबही मैंने तुम्हें देखा था। हे
भामिनी ! जैसा तुम्हारे पिताका घर और
ऐश्वर्य है, वैसा मेरे घरकी भी जानी। दमयन्ती

उसको बचको भिन्न अत्यन्त प्रसन्न रहई।
 होराज्ञान अनन्तर दमयन्ती अपनी मौसीको
 प्रणाम करके ऐसा बोली। मैं छिपकर भी तुम्हारे
 घर में सुख से रहती हूँ। तुमने मेरे सब मनोरथोंको
 पूर्ण किया। तुम मेरी सदा रक्षा करो। हे
 माता। मुझकी यह निश्चय है कि अब मुझको
 इस सुख से अधिक सुख का स्थान कहीं मिलेगा
 अब मैं निर्वहता दिन से परदेश में भूमिती हूँ।
 अब मुझे आज्ञा दो। मेरे दोनों बालक पिता
 और भगता से रहित दुःख से व्याकुल वहाँ न
 जानी कैसे रहते हैं। यदि तुम मेरा कुछ प्रिय
 काम करना चाहती हो तो मैं विदर्भ देश को
 जाने की इच्छा करती हूँ। अतएव शीघ्र बाहन को
 आज्ञा दो। हे राजन। दमयन्ती को मौसी ने
 प्रसन्न होकर कहा कि बहुत अच्छा अनन्तर
 अपने पुत्र की आज्ञा से भारी सेना से रहित
 करके माल की से विठ लाकर औसती दमयन्ती
 को विदर्भ देश को भेज दिया। हे भरत अर्थात्
 उसको सङ्ग हो खाने पीने और पहनने की वस्तु
 भेजी। अनन्तर दमयन्ती वहाँ से चल कर
 घोंडे की दित के पश्चात् विदर्भ नगर में पंहुच
 गई। सब बन्धु लोग उसको देख कर बहुत
 प्रसन्न हुए और उसका सम्मान करने लगे।
 यशस्विनी देवी दमयन्ती ने बान्धव दोनों बालक
 माता पिता और सब सुखी वर्ग को सुखी देख
 कर प्रसन्न विधिसे देवता और सब ब्राह्मणों
 को पूजित करे। राजा भीम ने सुदेव ब्राह्मण
 की एक सहस्र गौ, शंख और वज्र दत्त
 देकर प्रसन्न किया। यह दान सजाने अपनी
 पुत्री को देखते ही दिया। हे राजन ! तू को
 हँस दमयन्ती ने उस रात्रि को अपने पिता की
 घर में वृत्ति था। अनन्तर सुन्दर दमयन्ती अपनी
 माता से कहने लगी। दमयन्ती बोली हे माता
 मैं तुम से सत्य कहती हूँ कि यदि तुम मेरा
 जीना चाहती हो तो पुरुषों में और नल को
 दूँ देने का यत्न करो। दमयन्ती को ऐसे वचन

सुनकर उसको माता अत्यन्त दुःखित रहई
 लगी। कुछ भी उत्तर न दे सकी। रात्रि की ऐसी
 दशा देख कर सब रत्न सभ से हाहाकार हो
 लगा और सब अत्यन्त रोने लगे।
 राजा भीम से राजा ने कहा
 दमयन्ती अपने पुत्रिका शिष्ट करती है।
 राजन। उसने लज्जा को त्याग कर
 ऐसा कहा है कि तुम्हारे हस्त हलोग
 दूँ देने का यत्न करो। यह सुनकर राजा
 अपने वश में रहने वाले ब्राह्मणों को
 कि तुम लोग राजा नल को दूँ देने का यत्न
 राजाने उनको सब और भेज दिया।
 दमयन्ती ने उन से ऐसा कहा कि तुम लोग
 राज्यों में भ्रम कर ऊपर जाऊँ इसी
 कहना कि हे प्यारे। तुम कल से मेरा
 वस्त्र को फाड़ कर निज न वस्त्र में प्यारे
 पीछे चलने वाली मुझे वस्त्रों से तो हँस
 कहा। जले गये। तुमने मेरे
 वह वाला वस्त्र ही आधा वस्त्र पहने
 दुःख से जलती हूँ। अब तक भी वैसी ही है
 वीर। हे राजन। उस रोने पर
 शोक से व्याकुल स्त्री को प्रसन्न करो और
 वचन का उत्तर दो। यह सुन
 इसी के समान और भी तुम अपने
 कहना कि जिस से वे हमारे ऊपर उपा
 जैसे वायु के सङ्ग होकर अग्नि
 है। तैसे ही मेरा शरीर भी विरह से
 और यह भी कहना कि स्त्री सदा ही
 रक्षा और पोषण करने योग्य
 जानने वाली आप इन
 नष्ट करते हैं। आप तो पण्डित कुलीन और
 दयावान, सदा से प्रसिद्ध हैं। मुझे शङ्का होती
 कि मेरे ही भाग्य से
 किया। हे जनरथ। यह है पुरुषोत्तम
 मेरे ऊपर राजा कृपा कीजिये।
 आप ही से सुना है कि।

धर्म है ।" ऐसा कहनेपर यदि तुम लोगोंसे कोई कुछ कहे तो उसका पता लगाना कि यह कौन है, और यहाँ क्या करता है ? है ब्राह्मण-श्रेष्ठ ! यदि तुम्हारे वचन सुनकर कोई कुछ उत्तर दे तो उसका वही वचन स्मरण करके सुझसे आकर कहना, तुम लोग आलस्य रहित होकर ऐसा उपाय करना कि जिसमें वह पुरुष ऐसा न जाने कि यह लोग दमयन्ती की आज्ञासे इन वचनों को कहते-फिरते है, और तुम शीघ्र हमारे पास आना । चाहे वह धनवान वा निर्धन अथवा असमर्थ हो क्यों न हो, उसका सब समाचार जान लेना । वे ब्राह्मण-दमयन्ती के वचनों को सुनकर दुःखी, नलके, दूढ़ने की, सब और चले गये । है राजन् । वे ब्राह्मणलोग नगर, राज्य, गाँव और आश्रमों में वही वचन कहते हुए नलकी, दूढ़ने लगे, परन्तु कहीं भी न पाया । है प्रजानाथ ! दमयन्ती ने जैसे उन वचनों को कहा था, वे ब्राह्मणलोग भी वैसे ही सबको सुनाने लगे ।

६६ अध्याय समाप्त ।

श्रीवृहदश्वसुनि बाले, वृद्धतकाल-वीतनेपर पर्णाद नामक ब्राह्मण लौटकर विदर्भ नगर में जाय-दमयन्तीसे ऐसा वचन वाला । है भीम-पुत्री ! मैंने दूढ़ते दूढ़ते भङ्गासुरी की पुत्र राजा ऋतुपर्ण के यहाँ राजा नलकी देखा । है महाभाग ! पहाजनों के बीच में मैंने तुम्हारे वचन सुनाये, सुनकर राजा ऋतुपर्ण कुछ भी न बोले और शीघ्र ही उनका समासद कुछ भी न बोला, परन्तु पण्डा की आज्ञा लेकर एक वाहुके नामक राजाका नौकर एकान्त में जाकर सुझसे कहने लगा । वह उस राजाका सूत है, और छोटे बाला कुक्षप-या, परन्तु भोजनों के उत्तम भोजन और रयके शीघ्र हाकने में वृद्धत हो चतुर होकर बार बार खास लेता हुआ सुझसे पूछकर ऐसा बोला, जो कुलीन स्त्री

दुःखों में पड़के भी अपने ही से अपनी रक्षा करती है, निःसन्देह उन्हीं पतिव्रताओं ने स्वर्ग को जीत लिया है, उत्तम स्त्रीलोग पतिसे कूटनेपर भी क्रोध नहीं करती हैं, और उसके चरित्रों को कहकर प्राणों को धारण करती हैं ; उसे सुखों से भ्रष्ट होकर तो उसको छोड़ दिया ; इससे उसको क्रोध करना उचित नहीं । भोजन चाहनेवाली जब उसके वस्त्रों पक्षी लोग लेकर उड़ गये और वह दुःखों से जलने लगा तो उसे निर्दोषी पर क्रोध करना उचित नहीं, चाहे वह सत्कार की पाती हो या न पाती हो, तौ भी राजसे भ्रष्ट, लक्ष्मी से हीन और दुःखों से पीड़ित पतिपर क्रोध करना अनुचित है । उसके यह वचन सुनकर मैं शीघ्र ही यहाँ चला आया । अब तुम्हारी जो इच्छा हो सो करो, और राजासे भी निवेदन कर दीजिये । है प्रजानाथ ! पर्णाद के ऐसे वचन सुनकर रोती हुई दमयन्ती अपनी माता को एकान्त में बुलाकर ऐसा बोली । है माता ! यह बात तुम राजासे मत कहियो, मैं तुम्हारे सामने ब्राह्मणश्रेष्ठ सुदेव की बुलाती हूँ, यदि तुम मेरा प्यारा काम करना चाहती हो, तो ऐसा उपाय करो कि जिसमें इस बात का मेरे पिता न जाने, जैसे सुदेव ने सुझको बान्धवों से मिला दिया, तैसे ही यह पुनः भी जाय, देर न करें । है माता ! अयोध्या नगरी में राजा नल ठहरे है, उनको लेने की सुदेव ही जाय । अनन्तर पर्णाद का अम दूर होने के पश्चात् सुन्दरी दमयन्ती ने उनको वृद्धत धन देकर प्रसन्न किया और कहा कि नल के आने पर तुमको और भी धन दूँगी । है ब्राह्मणश्रेष्ठ ! मैं तुम्हारे इस कार्य से शीघ्र ही अपने पति से मिलूँगी, तुमने यह हमारा बड़ा कार्य किया जो दूसरे से नहीं हो सकता था, ब्राह्मण ने उसके वचन सुन दमयन्ती को वृद्धत धीरेज दिया ; और अच्छे आशोर्वादा से प्रसन्न करके धन और मान से कृतार्थ होकर अपने घर की गया । है

युधिष्ठिर । अनन्तर दुःख और शोकसे भरी हुई दमयन्तीने, अपनी माताके आगे सुदेवकी बुलाकर, ऐसा कहा । हे सुदेव । तुम अयोध्यामें मनके समान शीघ्र जाकर वहाँके राजा ऋतुपर्णसे ऐसा कहना कि भीमकी पुत्री दमयन्ती, पुनः अपना स्वयम्बर करना चाहती है, वहाँ सब राजा और राजपुत्र जा रहे हैं, हे शत्रुनाशन ! मैंने दिन गिन लिये हैं, वह स्वयम्बर कलहीकी होगा, यदि तुम्हारी इच्छा हो तो शीघ्र जाओ; क्योंकि दूसरे दिनका सूर्य निकलतेही वह पतिकी वरण कर लेगी। वीर नल अभी तक जीते हैं, वा मर गये इसका कुछ पता नहीं है । हे महाराज ! दमयन्तीके वचनको स्वीकार कर सुदेव अयोध्यामें पहुँचा और राजा ऋतुपर्णसे सब बात कह सुनाई ।

७० अध्याय समाप्त ।

श्रीबृहदश्व मुनि बोले, हे युधिष्ठिर । सुदेवके ऐसे वचन सुनकर राजा ऋतुपर्ण बाहुकसे मोठे वचनोंसे शान्तिपूर्वक ऐसा बोले, हे घोड़ोंके तल जाननेवाले बाहुक ! दमयन्तीका स्वयम्बर है, सो हम एकही दिनमें विदर्भ नगर पहुँचना चाहते हैं, कहीं यह हो सकता है ? हे कौन्तेय ! राजाके ऐसे वचन सुन राजा नलका हृदय फटने लगा, परन्तु महामना नल धीरज धारण करके स्थिर रह गये, और ऐसा विचारने लगे, कि क्या दमयन्ती ऐसा कह सकती है ? क्या सचही वह स्वयम्बर करती है ? या उस दुःखसे मोहित स्त्रीने हमारे ही लिये यह बड़ा उपाय रचा है ? हाय बड़े दुःखकी बात है कि तपस्विनी कृपण दमयन्तीभी मुझ चुद्र पापवृद्धिसे कूटकर दूसरा पति करना चाहती है । स्त्रियोंका स्वभाव बड़ा चञ्चल होता है, और मेरा दोषभी घोर था । अथवा हो सकता है, कि इतने दिन अलग रहनेसे दमयन्तीकी मेरा प्रेम न रहा हो । वह

पतलीकमरवाली मेरे शोकसे घबड़ा रही होगी, परन्तु मुझसे निराश होने परभी वह ऐसा कर्म नहीं कर सकती, विशेषतः सन्तान रहते । इसमें जो सत्य वा झूठ होगा वहाँ जाकर सब निश्चय जान लूँगा, ऋतुपर्णकी इच्छासे मैं अपना कार्य सिद्ध करूँगा । ऐसा विचारकर, दोन मनवाले बाहुकने हाथ जोड़कर राजा ऋतुपर्णसे ऐसा कहा, हे महाराज ! मैंने आपके वचनको माना, अब मैं आपके सहित एकही दिनमें विदर्भ नगर पहुँचूँगा । हे युधिष्ठिर ! अनन्तर राजा ऋतुपर्णकी आज्ञासे बाहुकने घुड़सालमें जाकर घोड़ोंकी परीक्षा करी । राजा ऋतुपर्णसे कहा कि, शीघ्रता करो । उनकी ऐसी आज्ञा सुन, नलने बार बार विचारकर घोड़ोंकी अच्छी प्रकार परीक्षा करी । अनन्तर मार्ग चलनेमें समर्थ दुबले दुबले घोड़ोंको बाहर निकाल लाये । वे घोड़े तेज बल और शीलसे भरे हुए, अच्छे खेतके उत्पन्न, वुरे लक्षणोंसे रहित, मोटी नाक, भारी ओठवाले, दश भौरियोंसे रहित, सिन्धु देशके उत्पन्न हुए, और वायुके समान शीघ्र जाननेवाले थे । उनको देखकर राजा कुछ क्रोधकरके बोले कि, तू यह क्या करना चाहता है ? हम तुमसे घोड़ा खाने योग्य नहीं है । ये थोड़े बलवाले घोड़े हम लोगोंको कैसे लेजा सकते हैं ? और इनसे हम इतनी दूर कैसे पहुँचेंगे ? बाहुक बोले, कि घोड़ोंके माथेमें एक, सिरमें दो काखमें और हृदयमें दो दो भौरी हो, वही घोड़ा बलवान और चलनेमें असाधारण होता है, निश्चय ये घोड़े एकही दिनमें विदर्भ नगर पहुँचेंगे, अथवा जिन घोड़ोंको आप आज्ञा दें उनकी मैं जीतूँ । ऋतुपर्ण बोले, हे बाहुक ! तुम घोड़ोंके तल जाननेमें निपुण हो, जिनकी तुम समर्थ जानो उनकी शीघ्र जीत लो । अनन्तर रथविद्यामें निपुण नकने कुछ और

गैलसै भरे हुए उत्तम चार घोड़ोंकी रथमें जाता । अनन्तर राजा ऋतुपर्ण शीघ्रता सहित उस रथपर चढ़े । उनके चढ़तेही चारों घोड़े पृथ्वीपर बैठ गये । तब श्रीमान् पुरुषोंमें श्रेष्ठ राजा नलने उन घोड़ोंकी ठोका चुन्नकारा, और लगाम पकड़कर ठीक किया, तब वे घोड़े तेज और बलसे भर गये । अनन्तर नलने घोड़ोंकी हाका । जब वे अत्यन्त वेगसे चलने लगे, तो वार्ष्णीय सूतकी हांकनेके स्थानपर बैठा दिया । अनन्तर वाङ्मकके हांकनेसे वे घोड़े ऋतुपर्णकी मोहित करते हुए रथकी लेकर आकाशमें पहुच गये । उन घोड़ोंकी वायुके समान चलते हुए देखकर श्रीमान् अयोध्याके राजा परम आश्चर्य करने लगे । नलके सारथी वार्ष्णीयने वाङ्मकके उस रथकी शब्दकी सुनकर, लगाम पकड़नेकी रीति देखकर तथा वाङ्मककी अश्वविद्या देखकर विचारा, क्या यह इन्द्रका सारथी मातली है ? क्योंकि और वाङ्मकभी वैसेही सब लक्षण दीखते हैं । प्रथम घोड़ोंके कुलके तलकी जाननेवाली साक्षात् शालिहीन है । उन्होंनेही यह उत्तम पुरुषका शरीर धारण किया है, अथवा शत्रुओंके जोतनेवाली यह साक्षात् नलही है ? जान पड़ता है, कि महाराजहीने यह रूप धारण किया है, क्योंकि जिस विद्याकी महाराज नल जानते थे, उसीकी वाङ्मकभी जानता है, और राजा नल और वाङ्मककी बुद्धिभी समानही दीखती है, तथा नल और वाङ्मककी अवस्थाभी कही जानपड़ती है । यदि यह महाराजकी नहीं है, तो उनहीके सिखाये हुए कोई । अनेक महात्मा लोग इस पृथ्वीपर अपने आपको छिपाकर देवविधानकी ग्रहण करके स्वकी विधिके अनुसार घूमते हैं ; अतएव, मेरी वृद्धि का कुरूप देखकर मेरी बुद्धि का नहीं होना चाहिये, परन्तु प्रमाणहीन मेरी बुद्धिभी नष्ट हो सकती है । देखो

इसकी अवस्था नलहीके समान है । अन्तकी मैं निश्चय कह सकता हूँ कि सब गुणोंसे भरे हुए नलहीने अपना नाम वाङ्मक रख लिया है । हे महाराज । राजा नलके सारथी वार्ष्णीयने ऐसा विचारकर अपने हृदयमें निश्चय कर लिया कि राजा नल येही हैं । अनन्तर राजा ऋतुपर्ण वाङ्मककी अश्वविद्याकी देखकर वार्ष्णीय सारथीके सहित बहुतही प्रसन्न हुये । उस एकाग्रता उत्साह घोड़ोंका पकड़ना और परम यत्नको देखकर राजा अत्यन्तही प्रसन्न हुए ।

७१ अध्याय समाप्त ।

श्रीवृहदश्व सुनि बोली, हे राजन् युधिष्ठिर । अनन्तर वह रथ पक्षीके समान आकाशमें खेलता हुआ शीघ्रही नदी, पर्वत, वन और तड़ागोंके पार हो गया । इस प्रकार चलते हुए रथपर बैठे हुए शत्रुनाशन राजा ऋतुपर्णने अपने दुपट्टेकी पृथ्वीमें गिरा हुआ देखा । अनन्तर राजाने बहृत शीघ्र प्रसन्न होकर नलसे कहा कि मैं अपना दुपट्टा लेना चाहता हूँ, हे महाबुद्धि ! तुम इन बहृत शीघ्र चलनेवाली घोड़ोंका इतने समयतक रोकती कि जबतक वार्ष्णीय मेरे दुपट्टे की उठा लावे । नलने ऋतुपर्णसे कहा कि आपका दुपट्टा बहृत दूर गिरा है ; उसकी कोई लानेमें समर्थ नहीं है ; क्योंकि वह चारकोश पीछे रह गया । ऐसे कहते हुए राजा ऋतुपर्णने उस वनमें एक फली और फूले हुए बहिरुके वृक्षको देखा । उसको देखकर राजाने शीघ्रता सहित कहा कि हे सूत ! तुम मेरी अश्वविद्याकी कुशलताकी देखो, सब कोई सब विद्याकी नहीं जानता, एक पुरुषमें सब ज्ञान नहीं रहते हैं । हे वाङ्मक । इस वृक्षमें जितने फल और पत्ते हैं, उनकी छीड़कर जितने गिर गये हैं, उन सबमें एकसौ एक पत्ते हैं । हे वाङ्मक, दोनो शाखाओंमें पांचकरीड़ पत्ते हैं, इन दोनो

शाखाओंसे जो छोटी शाखा चली है, उन सबमें दो हजार एक सौ उनचास फल हैं। तब वाङ्मकने रथको रोककर राजासे कहा, हे राजन्! आप परीक्षको बातको कहते हैं, मैं इस वहेड़ेके वृक्षको काटकर आपकी बातका निश्चय करूँगा, क्योंकि इस गणित विद्यामें परीक्षवाद नहीं है। हे महाराज! मैं आपके आगेही इस वृक्षको काटता हूँ, क्योंकि मैं नहीं जानता कि यह सत्य है, वा झूठ? हे नरनाथ! मैं आपके सामने वृक्षको काटता हूँ, कुछ देर तक वार्षीय घोंड़ोंकी लगाम पकड़े रहूँ। तब राजाने नलसे कहा कि हे सूत! यह समय देर करनेका नहीं है। परम यत्नवान् वाङ्मकने कहा कि कुछ थोड़ी देर आप ठहरिये, अथवा आपके मार्गमें ईश्वर कल्याण करे, वार्षीयकी सारथी बनाकर चले जाइये। हे कुसुमन्दन! वाङ्मकके ऐसे वचन सुनकर राजाने उससे शान्तिपूर्वक कहा कि हे वाङ्मक! जगतमें तुमही एक सारथी हो, दूसरा नहीं। हे हयकोविद! तुम्हारेही कर्तव्यसे मैं विदर्भ नगरको जा रहा हूँ। मैं तुम्हारी शरण हूँ, तुम विघ्न मत करो, यदि तुम स्थिर रहते रहते विदर्भ नगरमें मुझी पहुँचाओगे, तो जो तुम कहोगी सोई तुम्हारा काम करूँगा। वाङ्मकने कहा कि मैं इस वृक्षके पत्ताका निश्चय करके अगाड़ी चेलूँगा। आप मेरे इस वचनकी स्वीकार कीजिये। अनन्तर राजाने इच्छा न रहतेभी कहा कि अच्छा गिनी। हे पोषरहित! मैं वृक्षकी एक शाखाके काटनेकी आज्ञा देता हूँ। हे अश्वतत्त्व! तुम एक शाखाके पत्ते गिनकर प्रसन्न हो। अनन्तर नलने रथसे उतरकर शीघ्रही उस वृक्षकी काटडालों और उसके फलोंको गिना, राजाने जितने बतलाये थे, ठीक उतनेही पाया, तब आश्चर्य करके राजासे कहने लगे, हे राजन्! मैंने यह आपका वल अद्भुत दिखा।

हे नरनाथ! मैं इस विद्याकी यथावत सीखना चाहता हूँ। शीघ्र चलनेकी इच्छावाले राजां कहो कि तुम मुझको जुवा और गिननेकी विद्यामें निपुण जानो। वाङ्मक बोले, पुनर्पर्मम्। यह विद्या मुझी सिखला दीजि और मुझसे घोंड़ोंकी विद्या सीख लीजिये राजा ऋतुपर्णने भारी काम और घोंड़ोंकी विद्याके लोभसे उसके वचनकी स्वीकार कर लिया। अनन्तर राजाने कहा कि हे वाङ्मक! यह जुवेकी हृदय विद्या तुम हमसे यथावत ग्रहण करो, और घोंड़ोंकी विद्या तुम्हारेही हृदयमें रहे। ऐसा ऋतुपर्णने नलको जुएकी सब विद्या सिखला दी। जुएका तब सोखतेही नलके शरीरसे कलियुग निकल गया। तब निघ्नधराज नल को क्रोध करके कालियुगका श्राप देना चाह। अनन्तर कलियुगने हाथ जाड़कर डरते हुए ऐसा कहा, हे महाराज! आप क्रोधको शान्त कीजिये, मैं आपको बहुत बड़ाजगा। आपसे छुटते समय इन्द्रसेनको माताने मुझको श्राप दिया था, उससे मैं बहुत पीड़ित हुआ हूँ। मैं अप्रसाजित। मैंने आपके शरीरसे ककरोटक नागकी विषसे रात दिन जलते हुए महा दुःखसे वास किया है, मैं आपको शरण हूँ, आप मेरे वचन सुनिये, जगतमें जो कोई आलस्य रहित होकर आपका चरित्र वर्णन करेगा, उसको मुझसे उत्पन्न हुआ दुःख कदापि न होगा। यदि शरण आये भयसे पीड़ित मुझको आप श्राप न देंगे, तो मेरा कहा हुआ वचन सत्य होगा। राजा नलने ऐसा सुनकर अपने क्रोधको शान्त किया। तब कलियुग भयसे पीड़ित होकर उसी वहेड़ेके वृक्षमें चुस गया, परन्तु कलियुग और राजा नलको इन बातों को किसीने भी न सुना और न कलियुगका किसीने दिखा। अनन्तर शत्रुनाशन निघ्नधराज तेजस्वी नल सब दुःखोंसे रहित हो फलोंकी

गिन कलियुगकी दूरकर परमतेज और आन-
न्दसे पूर्ण हो रथपर चढ़ शीघ्रता सहित
घोड़ोंको हांकने लगे। उस दिनसे कलियुगके
प्रविष्ट होनेसे वहेड़ेका वृक्ष नीच हो गया। अनन्तर
वे घोड़े फिरभी पक्षियोंके समान उड़ने लगे।
महायशस्वी राजा नलने अपने अन्तःकरणसे
घोड़ोंको विदर्भ देशकी ओर चलाया, राजा नलके
जानेके पश्चात् कलियुगभी वृक्षसे निकल अपने
घरको चला गया। हे राजन्! राजा नलभी
कलियुगके निकलनेसे सुखी होगये, परन्तु
केवल कुरुपक्षीसे दुखी रहे।

अध्याय समाप्त ।

श्रीवृहदश्व सुनि बोले, अनन्तर सत्यपराक्रम

राजा, ऋतुपर्ण सन्ध्या समय विदर्भ नगरके

द्वारपर पहुँचे, और द्वारपालोंने यह समाचार

राजा भीमको दिया। राजा ऋतुपर्ण, राजा

भीमकी आज्ञा पाकर कुण्डलपुरमें गये, उस

समय नलने रथमेंसे ऐसा शब्द निकाला जिससे

दश दिशा पूर्ण होगई। उस रथके शब्दको

सुनकर नलके घोड़े ऐसे प्रसन्न हुए जैसे पहले

नलको देखकर होते थे। दमयन्तीने नलके

उस रथ शब्दको ऐसा सुना जैसे वर्षा कालमें

मेघ गर्जता है। दमयन्तीको रथका महाशब्द

सुनकर परम आश्चर्य हुआ। जैसे नलके

हांकनेसे शब्द होता था, तैसीही घोड़ोंका शब्द

वह भी था। उस महाराजके रथके शब्दको

पहलोपर बैठे हुए मोर और अपने

जानोंमें बंधे हुए हाथी और घोड़ोंने सुना,

तैसीही मोर और हाथी घोड़े उधरहीकी मुह

रके ऐसा शब्द करने लगे, जैसे मेघके गर्जन

करते हैं। दमयन्ती बोली, यह रथका

यह पक्षीको पूर्ण करता हुआ मेरे हृदयको

कमल कर रहा है, निश्चय यही राजा नल हैं।

अब यदि राजा नलके चन्द्रमाके समान मुखकी

रहने लगे। यदि उस असंख्य गुणवाले वीरको न

प्राप्त करूंगी, तो निःसन्देहही मर जाऊंगी।

यदि आज उस वीरके कोमल हाथोंके बीचमें

प्रवेश न करूंगी, तो निःसन्देह पृथ्वीमें न रहूंगी।

यदि आज मेघके समान गम्भीर बाणीवाले

निषधराजकी न पाऊंगी, तो सीनेके समान

अग्निमें जल मरूंगी। यदि आज सिंहके समान

तेजस्वी मतवाले हाथीके समान बली राजा

नल मुझको न प्राप्त होंगे, तो अवश्यही प्राण

देदूंगी। मैं उनके झूठे वचन, अपकार, और

पुरानी बातोंकी एकान्तमें भी उनकी इच्छासेभी

स्मरण नहीं करूँगी। हमारा निषधराज

समर्थ, दैर्घ्यवान, वीर, दाता, और सब राजोंसे

बड़ा है; और वह नीच कर्मको नहीं करता,

तथा दूसरी स्त्रियोंके सङ्ग नपुंसकके समान है।

मैं रोज दिन उसके गुणोंकी स्मरण करती हुई

समय वितती हूँ। उसी प्यारके बिना मेरा

हृदय शोकसे फटा जाता है। हे राजन्! दम-

यन्ती इस प्रकार रोती हुई चेतना रहितसी हो

गई। अनन्तर नलके देखनेकी इच्छासे जंची

अटारीपर चढ़ गई। तब नगरके बीचकी

सड़कमें वाणाय सारथीके सहित रथमें बैठे हुए

राजा ऋतुपर्ण और बाहुककी देखा। बाहुक

और वाणाय रथसे उतरे, घोड़ोंको रथसे अलग

करके रथको स्थापन किया। महाराज ऋतु-

पर्णभी रथसे उतरकर महा पराक्रमी भीमसे

मिलनेकी चले। राजा भीमने उनका वज्रत

आदर और सत्कार किया, राजा ऋतुपर्ण उनसे

आदर पाकर मनोहर कुण्डिनपुरमें रहे और

बार बार स्वयम्बरकी सामग्रीको देखनेका

यत्न करने लगे, परन्तु कुछ न जान पड़ा।

अनन्तर राजा भीमने उनको बुलाया और

स्त्रियोंकी करतूतकी न जाननेवाले राजा भीमने

ऋतुपर्णसे कहा कि आपका स्वागत हो, महा-

राज! किस निमित्त यहाँ आये हैं सो कहें।

राजा भीम यह नहीं जानते थे, कि यह हमारी

पुत्रीके निमित्त आये हैं। बुद्धिमान सत्यपरा-

क्रम कोशलराज राजा ऋतुपर्णने भी किसी राजा और राजपुत्रको वहां न देख स्वयम्बरका कोई समाचार न जान, राजा भीमसे ऐसा कहा कि मैं केवल आपको प्रणामही करनेको आया हूं। राजा भीम भी आश्चर्य, युक्त होकर मनमें चिन्ता करने लगे, कि चार सौ कोससे भी अधिक दूर पर इनका स्थान है, इतने दूरसे अनेक गांवोंको नाप्रकर थोड़े कार्यके निमित्त यह क्यों आये ? अवश्य यह कारण नहीं है, जो ही प्रातःकाल सबही जान जायंगे। विचारकर ऋतुपर्णसे बोले, आप बद्धत थके हुए हैं, अब विश्राम कीजिये। ऐसा कह कर उनकी विसर्जन किया। राजा ऋतुपर्ण भी भीमसे सत्कार पाकर प्रसन्न हुए। अनन्तर राजसेवकोंके सहित उस स्थानको गये जो उनके ठहरनेको ठीक किया गया था। राजा ऋतुपर्णके जानेके पश्चात् वाङ्क भी वार्षीयके सहित रथ लेकर रथशालामें गये। वहां जाकर रथसे घोड़ोंकी खोल कर शास्त्रके अनुसार घोड़ोंकी सेवा करके घोड़ोंकी प्रसन्न करके आप रथके जुए पर बैठ रहे। दमयन्तीने भी रथमें ऋतुपर्ण और वार्षीयको देखकर शोकसे व्याकुल होकर शोचा कि यह कौनसे सारथीके रथका शब्द हुआ ? यह शब्द तो नलहीके रथका है परन्तु निषधराजको नहीं देखती। जान पड़ता है कि वार्षीयने भी इस विद्याको सीख लिया है, इसीसे इस रथका महाशब्द नलके रथके समानही हुआ है; अथवा राजा ऋतुपर्ण भी उनही गुणोंसे भरे हैं, जो राजा नलमें थे; क्योंकि इस रथका शब्द नलके रथके समान हुआ है। हे राजन् ! सुन्दरी दमयन्तीने इस प्रकार अनेक तर्क वितर्क करके राजा नलके दूढ़नेकी एक दूती भेजी।

७३ अध्याय समाप्त ।

दमयन्ती बोली, हे केशिनि ! तुम जाकर देखो कि यह विरूप छोटे हाथोंवाला सौ कौन है, जो रथके जुए पर बैठा है हे भद्रे ! हे अनन्दिते ! तुम इस पुरुषके पा जाकर यथायोग्य सावधान होकर भीठे बचन कुशल पूछना; मुझे बद्धत शङ्का होती है कि महाराज नल यही हैं। तुम इस प्रकार बात बन कर कहना कि इसका मन और हृदय सत्पुष्ट हो, और बातोंके अन्तमें वही पर्णदेवी बात कहना। हे सुश्रीणि ! हे अनन्दिते ! वह जो कुछ उत्तर दे, उसको तुम ध्यान देकर सुनना। दूती उसको बचनको सुनकर वाङ्क से जाकर बोली और कलप्राणि दमयन्ती भी अटारीपर चढ़कर देखने लगी। केशिनी बोली, हे मनुषेन्द्र ! कहिये आप कुशलसे तो है ? हे पुरुषकिंह ! आगे दमयन्तीने आपसे जो अच्छे वचन कहे हैं सो सुनिये। आप तीन अपने घरसे कब चले थे ? और यहां क्यों आये हैं ? यह सब कहिये। यह सब संत्य संत्य कहिये, विदर्भराज पुत्री सुनना चाहती है। वाङ्क बोली, कि महात्मा कोशलराज राजा ऋतुपर्णने आज प्रातःकाल किसी ब्राह्मणसे यह सुना था, कि दमयन्ती कलहो दूसरा स्वयम्बर करना चाहती है। इसी निमित्त चार सौ कोस चलनेवाले वायुके समान शीघ्रगामी घोड़ों की रथमें जीतकर महाराज यहां आये हैं और मैं इनका सारथी हूं। केशिनी बोली, यह जो तुम्हारे संग तीसरा पुरुष है, यह किसका सारथी और कौन है ? तुम कौन और किसके सुत हो ? यह कर्म तुमने कहां सीखा था ? वाङ्क बोली, यह पुरुषशोक राजा नलका सारथी है, हे भद्रे ! इसका नाम वार्षीय है, राजा नलके भाग जानेसे अब ऋतुपर्णके यहां नौकर है। मैं भी घोड़ोंकी विद्यामें निपुण हूँ, राजा ऋतुपर्णने मुझको सारथी और भोजन बनानेके काममें प्रतिष्ठित किया है। केशिनी बोली,

हे बाहुक ! क्या वाणीय जानता है, कि राजा नल कहां हैं और तुमसे यह सब बात उसने कैसे कही ? बाहुक बोले, यह तो उत्तम राजा नलके वालकोंको यहां पङ्गचाकर इच्छानुसार चला गया था, इसे निषधराजका समाचार क्या मालूम है ? हे यशस्विनी ! महाराज नलको इस लोकमें कोई पुरुष नहीं जानता है, क्योंकि वह अपने रूपको छिपाकर घूमते हैं, नल अपनेको आपही जानता है, क्योंकि उसके पहले चिह्न उसको कदापि नहीं वतला सकते। केशिनी बोली, जो ब्राह्मण अयोध्यामें पहले गया था, उसने जाकर स्त्रीके यह वचन वहां बार बार सुनाये थे, कि हे वीर ! आप कुलसे मेरे आधेवस्त्रको फाड़कर प्रीतिवाली अपनी प्यारी मुझको वनमें सांते झुंए छोड़कर कहां चले गये ? आपने उसको जैसी आज्ञा करी थी, वैसीही वह आपका मार्ग देख रही है, वह विरहसे जलती हुई उसी आधे वस्त्रको मोड़े हुए है। हे राजन् ! उसे दुःखसे सदा रोती हुईके ऊपर कृपा कीजिए। हे वीर ! उसके वचनका उत्तर दो। हे महामते ! उसी वचनको तुम अपने मुखसे कहो, अनिन्दिता दमयन्ती सुनना चाहती है, और तुमने जो उसका उत्तर दिया था, राजपुत्री वहभी सुनना चाहती है।

श्रीवृहदश्व मुनि बोले, हे कुसुमन्दन ! केशिनीके ऐसे वचन सुनकर राजा नलका हृदय फटने लगा, और आंखें आंसुवोंसे भर गईं, राजा नल अपने दुःखको सम्हालकर दूर कण्ठसे रोते हुए ऐसा कहने लगे। बाहुक बोले, जो पातिव्रता कुलीन स्त्री दुःखोंमें अपने भी अपना रक्षा अपनेहीसे करती हैं, निन्देह वह स्वर्गकी जीत लेती हैं। कुलीन स्त्री पतिसे दूर रह करभी क्रोध नहीं करती हैं, नम स्त्रियां अपने पतिके चरित्रोंकी कहानी को धारण करती हैं। यदि दुःखमें

पड़े हुए मूर्ख राज्य और सुखसे कूटे हुए भोजन चाहनेवाले पक्षियोंसे छीने वस्त्रवाले दुःखसे जलते हुए पतिने उसको छोड़भी दिया, तो उसपर क्रोध करना उचित नहीं ! ऐसी अवस्थामें कोईभी सुन्दरी पतिपर क्रोध नहीं कर सकती। राज्य और लक्ष्मीसेही नहीं बल्कि सुखोंसेभी भ्रष्ट, भूख और प्याससे व्याकुल पतिपर कोईभी स्त्री क्रोध नहीं कर सकती है, चाहे वह पतिसे सत्कार पाये हो वा न पाये हो। इस प्रकार केशिनीसे वचन कहते हुए नल परम दुःखी हुआ। अपने आंसुकी रीक न सके और अधिक रोने लगे। हे भारत ! तब केशिनीने दमयन्तीके पास जाकर सब बात कह सुनाई और उसकी चेष्टाभी सुना दी।

७४ अध्याय समाप्त ।

श्रीवृहदश्व मुनि बोले, हे राजन ! नलके वचन सुनकर दमयन्तीको अत्यन्त शोक हुआ, और नलके प्रति शङ्का करके केशिनीसे बोली, हे केशिनी ! तू फिर जा और बाहुककी परीक्षा कर। उसके पास जाकर उसके सब चरित्र देख और उससे बातचीत करती रह। हे भामिनि ! वह जो कुछ काम करे उसके कारणको खूब विचार करना, वह जो काम करे उसकी भली भांति देखना। हे केशिनी ! वह तुझसे यदि बहुत हठसेभी आग और पानी मांगे तभी मत देना। यह सब उनको बातें देख और जानकर उनका सब कारण चाहे दैव वा मानुष हा मुझसे सब कहना औरभी उसमें जो असंख्य गुण तुझी जान पड़े वह सब मुझसे आकर कहना। दमयन्ती के वचन स्वीकार करके केशिनी पुनः बाहुकके पास गई और उसके सब लक्षण देख और सुनके दमयन्तीके पास आई और जो कुछ देखा था, सो सब कारणोंके सहित कह सुनाया।

केशिनी बोली, हे दमयन्ती ! मैंने ऐसा पुरुष पहले कभी न देखा और न सुना था । यह सब जल और स्थलमें परम शुद्धिसे रहता है ; झोटी हारमें भी नीचा होकर नहीं जाता, परन्तु उसमें भी सुखहीसे प्रवेश करता है । बड़त छोटा रहने पर भी जिसके वास्ते बड़ा मार्ग हो जाता है । राजाने ऋतुपर्णके निमित्त अनेक प्रकारके भोजनकी सामग्री और अनेक पशुओंके मांस भेजे थे, और उनको दोषड़े भी भेजे थे सो वाङ्मकके देखते ही वे घड़े सब जलसे भर गये । तब वाङ्मकने उसी जलसे सब वस्तुओंकी धोया । अनन्तर उसने एक सुठ्ठी तिनके लेकर सूर्यको दिखाया, तब उनमें अग्नि जल उठी । यह सब आश्चर्य भरे उसके काम देखकर यहां आई हूं । हे शुभे ! और भी मैंने उनमें एक आश्चर्य देखा कि अग्नि कूनेसे उनका शरीर नहीं जलता और जल उसकी इच्छासे शीघ्र बहता है । इससे भी अधिक एक आश्चर्य उसमें देखा, कि फूल उठाकर वह अपने हाथसे धीरे धीरे मलने लगा, परन्तु पुष्प मलने पर भी वैसे ही रहे, वरन ज्यों ज्यों मलता था, त्यों सुगन्धि बढ़ती जाती थी, यह सब अद्भुत बात देखकर मैं तुम्हारे पास दौड़ी हुई आई हूं । श्रीवृहदश्व मुनि बोली, दमयन्तीने उसके वचन सुनकर कर्मा और चेष्टासे जान लिया कि नल आगये । उसने अपने पतिके लक्षण वाङ्मकमें पाकर शङ्कासे भरकर रोते हुए मीठी वाणीसे केशिनीसे कहा ; हे भामिनि ! तू पुनः जा और उन्मत्त वाङ्मकने जो मांस बनाया है, उसमेंसे जो कुछ चौकेके बाहर निरा हो उसको यहा लेआ । वह दमयन्तीकी प्यारी केशिनी वहां गई और गिरा हुआ मांस जो अत्यन्त उष्ण था उसे शीघ्रही ले आई । हे कुरुनन्दन ! उसने मांस दमयन्तीको दे दिया, दमयन्तीने पहले अनेक बार नलका पकाया हुआ मांस

खाया था, अतएव उस स्वादको जानती थी, अनन्तर उसको खाकर दमयन्तीने निश्चय जान लिया कि यह सारथी नहीं नलही हैं । तब बहुत रोने लगी, अनन्तर पानीसे मुखको धोकर बहुत दुःख करके अपनी लड़की और लड़के को केशिनीके सङ्ग नलके पास भेजा । भारत ! नलने इन्द्रसेन और इन्द्रसेना के देख कूदकर दोनोंको लपटा लिया । अनन्त उन्हें अपनी गोदीमें बैठा लिया । देवताओं समान दोनों बालकोंको अपनी गोदमें बिटलाकर दुःखसे भरे हुए वाङ्मक जंचे सारो रोने लगे । अनन्तर अपने इस विकारको दिखलाकर राजा नल लड़कोंको अलग करके केशिनीसे बोली, हे भद्रे ! यह दोनों बाल भरे बालकोंके समान हैं, इसी लिये इन दोनोंको देखकर मैं रोने लगा । हे भद्रे ! तुमको यहीं बार बार आते देख लोग हममें किसी दोषकी शङ्का न करें, क्योंकि हम परदेशी अतिथि हैं, इस लिये तुम्हारी जहांकी इच्छा हो तहां चली जाओ ।

७५ अध्याय - समाप्त ।

श्रीवृहदश्व मुनि बोली, हे राजन ! केशिनीने बुद्धिमान पुण्यश्लोक नलका सब समाचार दमयन्तीसे कह दिया, दमयन्तीने वह सब समाचार सुनकर दुःखसे भरे नलके दर्शनकी इच्छासे केशिनीको अपनी माताके पास भेजा, कि मैंने नलकी शङ्कासे वाङ्मकको संव परीक्षा करी, अब केवल रूपही में सन्देह रह गया है, सो मैं आप जाकर परीक्षा करना चाहती हूं । हे मातः ! या तो उसको यहां बुला दोजिये, चाहे पिता जानें वा न जाने, इस कार्यको कीजिये । पुत्रीके ऐसे वचन सुनकर रानीने राजाको सब कह सुनाया, तब राजाने अपनी पुत्रीके उस अभिप्रायको जाना और राजकी आज्ञा पाकर नलको वहां बुलाया, वहां दमयन्ती

रहती थी । राजा नल दमयन्तीको देखतेही शोक और दुःखसे भर गये और आंसूसे भीज गये । सुन्दरी दमयन्तीने नलको उस अवस्थामें देखकर महा शोक किया । हे महाराज ! अनन्तर कषाय-वस्त्र पहने जटाधारिणी मैलसे भरी हुई दमयन्ती वाहुकसे ऐसा बोली, हे वाहुक ! तुमने पहले कभी कोई ऐसा धर्मज्ञ पुरुष सुना है, जो अपनी स्त्रीको वनमें सोती हुई छोड़ कर चला जाय ? पवित्रकीर्ति राजा नलके सिवा ऐसा कौन होगा जो निरपराधिनी यकाईसे पीड़ित अपनी प्यारी स्त्रीको शून्य वनमें छोड़कर चला जाय ? मैंने उस राजाका मूर्खता वश न जानं कौन अपराध किया था, जिससे वह मुझको वनमें सोती हुई छोड़ गया ? मैंने साक्षात् देवतोंकी छोड़कर उसको स्वयम्बर में पहले वरण किया था, न जानूं पुत्रवाली, भक्तिवती मुझको उसने कैसे छोड़ दिया ? देवतोंके सामने अग्निको साक्षी देकर उसने कहा था कि मैं तेरा हूँ । परन्तु न जानें वह प्रतिज्ञा कहाँ चली गई ? हे शत्रुनाशन युधिष्ठिर ! राजा नल दमयन्तीके ऐसे वचन सुन शोकसे भरो आंसूओंसे अपने मुखको बार बार भिगीने लगे ; अत्यन्त काली आंखोंसे अधिक आंसू बहाती हुई शोक पीड़ित दमयन्तीसे नल ऐसा बोले, हे भोस् ! जिस कर्मसे मेरा राज्य नष्ट हुआ है, वह मैंने नहीं किया था, और जिससे तुमको छोड़ा था, वह कर्मभी कलियुगनेही किया था जिसकी रात दिन मुझको शोचते हुए श्वासके समय दुःखिनो तुमने शापसे नष्ट किया था, वही कलियुग तुम्हारे शापसे जलता हुआ मेरे शरीरमें वास करता था, वह तुम्हारी बापकी अग्निसे जलकरभी मेरे शरीरमें अग्निके स्थान शत्रु होकर वास करता था । हे शुभे ! मैं पापसे और तपस्या न करनेसे हमारे इस दुःखका भन्त ऐसेही होनेको था । हे विपुल-

श्रीणि । जब वह पापी मेरे शरीरसे निकल गया तो मैं तुम्हारेही निमित्त यहां आया हूँ, और मेरा कुछभी प्रयोजन नहीं था । स्त्री अनु-रक्त और व्रतधारी पतिको छोड़कर दूसरा पति कैसे कर सकती है ? हे भोस् ! यह काम तुम्ही ऐसीसे ही सकता है, क्योंकि राजाकी आज्ञासे सब पृथ्वीमें दूत लोग यह कहते फिरते हैं, कि भोमपुत्री अपनी इच्छासे कामके अनुकूल अपने योग्य दूसरा पति वरण करेगी । इसही बातको सुनकर राजा ऋतुपर्ण यहा आये हैं । दमयन्ती रीते हुए नलकी यह बात सुन हाथ जोड़कर डरसे कांपती हुई यों कहने लगी, दमयन्ती बोली, हे कलगाण ! हे नरनाथ ! आप मुझमें दोषकी शङ्का करनेके योग्य नहीं हैं, क्योंकि मैंने देवतोंकी परित्याग कर आपको पति बनाया है । आपहीके निमित्त ब्राह्मणलोग सब और गये हैं, उन्होंने मेरे वचनकी जिस रूपसे दशदिशाओंमें गाया है । हे राजन् ! उनहीमेंसे एक विद्वान् पर्याद नामक ब्राह्मणने राजा ऋतुपर्णके घर अयोध्या-पुरीमें आपको देखा उसने आपसे जो कहा और आपने जो उसको उत्तर दिया वही आपके बुलानेमें मुझको उपाय जान पड़ा । हे पृथ्वी-नाथ ! आपके सिवा पृथ्वीमें कोई पुरुष ऐसा नहीं है, जो एक दिनमें घोड़ोंके द्वारा चारसी कोस चल सके । हे नरनाथ ! मैं अपने सत्यसे आपके चरण छूकर कसम खाती हूँ, कि मैंने घूमते हुए मनसेभी कुछ पाप नहीं किया, यदि मैंने कभी कुछ पाप किया ही तो यह लोकमें घूमनेवाले वायु मेरे प्राणको नाश करें, यदि मैंने पाप किया ही तो यह सब जगत्में घूमने-वाले सूर्य मेरे प्राणको नाश कर दे । यहि मैंने कुछ पाप किया ही तो यह चन्द्रमा जो सबके मनमें साक्षीके समान घूमते हैं, ये तीनों देवता सबलोककी धारण करते हैं, यह सत्य कहे, यदि मैंने झूठ कहा ही तो यह मुझकी छोड़

दें। जब दमयन्तीने ऐसा कहा तो आकाशमें घूमनेवाले वायु बोले कि हे नल। हम तुमसे सत्य कहते हैं, कि इसने कुछभी पाप नहीं किया, हे राजन् ! दमयन्तीका सुन्दरशील समुद्र रक्षित ही है। हे नल। इसने कुछभी पाप नहीं किया, इसके तीनवर्षके हमलोग साक्षी है, हे राजन् ! इसने यह भारी उपाय आपहीके निमित्त किया है, क्योंकि तुम्हारे सिवाय कोईभी चार सौ कोस एक दिनमें नहीं चल सकता है, हे पृथ्वीनाथ ? आप दमयन्तीसे दमयन्ती आपसे मिली अब आपको कुछभी और सन्देह नहीं करना चाहिये, अब स्त्रीको सग लेकर जाइये, पवनके ऐसे कहतेही आकाशसे फूल बरसने लगे, देवतोंने नगाड़े बजाये, और उत्तम पवन चलने लगा, हे भारत। राजा नलने यह अद्भुत बात देखकर दमयन्तीसे शङ्काओंकी छाड़ दिया और उसको ग्रहण किया, अनन्तर राजा नलने नागराज कर्कोटकका स्मरण करके उस देव वस्त्रको ओढ़ा, उसके धारण करतेही नलने अपने पहले रूपको पाया। आनन्दिता दमयन्तीने अपने पातका अपने रूपमें देखकर उससे लपटकर उच्च स्वरसे रोना आरम्भ किया। राजा नलभी अपनी स्त्रीसे लपट गये, अनन्तर पहले रूपसे शांभित होकर अपने पुत्रोको लपटा कर आनन्दित किया, अनन्तर सुन्दररूपवाली विशाल नैनी दुःखसे भरी झई दमयन्तीने नलके सिरको अपनी छातीसे लगाकर बहृत देरतक स्वांस लिया, तैसेही शोकसे भरे हुए पुरुषसिंह नलनेभी सुन्दर हसनेवाली मैलसे भरी झई दमयन्तीको लपटाकर बहृत देर निवास किया। अनन्तर दमयन्तीकी माताने प्रसन्न होकर नल और दमयन्तीका सब वृत्तान्त राजा भीमसे कह सुनाया। हे राजन् ! तब राजा भीमने कहा कि मैं भीरको शीघ्रसे पवित्र होकर दमयन्तीके सहित सुखसे बैठे हुए नलको देखंगा। हे राजन् !

अनन्तर नल और दमयन्तीने बहृत आनन्दसे उस रातकी वनकी पुरानी कथा कहते कहते विता दिया, वे दोनों परस्पर आनन्दकी इच्छासे प्रसन्न होकर राजा भीमके स्थानमें रहते लगे। राजा नल इस चौथे वर्षमें अपनी स्त्रीको पाकर और सब कामोंकी सिद्ध करके परम आनन्दको प्राप्त हुए, दमयन्तीभी अपने पतिको प्राप्त करके इस प्रकार आनन्दमें मग्न हुई, जैसे आधा अन्न उत्पन्न होनेके समय पानीको प्राप्त करके पृथ्वी आनन्दित होती है, भीमपुत्री दमयन्ती अपने पतिको प्राप्त होनेसे सब दुःखोंकी शान्त करके निद्राको छाड़ आनन्दसे भर भर अपने मनको बढ़ाकर ऐसी शोभित हुई, जैसे चन्द्रमा निकलनेसे रात्रि।

७६ अध्याय समाप्त।

श्रीबृहदश्व सुनि बोले, उस रात्रिकी विता कर प्रातःकाल होतेही राजा नल उत्तम वस्त्र और आभूषण पहन कर दमयन्तीके सङ्ग बैठे थे, उसी समय राजा भीमकी आते देखा, नलने देखतेही विनयपूर्वक अपने श्वसुरकी प्रणाम किया, तब सुन्दरी दमयन्तीनभी अपने पिताकी दण्डवत करी। राजा भीमने अत्यन्त प्रसन्न होकर राजा नलको लपटा लिया और पुत्रके समान यथायोग्य पूजा करके उनकी बहृतही धीरज दिया, राजा नलको पतिव्रता दमयन्तीके सहित देखकर राजा भीमने उनकी बहृत पूजा करी। राजा नलनेभी उस पूजाकी विधिपूर्वक ग्रहण किया और आपनेभी राजाकी यथोचित सेवा की। उस दिन उस नगरमें चारी और महा आनन्दके शब्द होने लगे। इस प्रकारसे नलके आनेके दिन सब पुरुषोंने बहृत आनन्दउत्सव नगर पताका और ध्वजाओंसे सजाया गया, राजमार्ग (बड़ी बड़ी सड़कें) जलसे छिड़की गई, दोनों ओर फूलोंसे शोभित किये गये, सब नगरवासियोंने अपने अपने द्वारपर बन्दन-वार

और फूलोंको माला लगा दीं, देवतोंके सब स्थानोंमें उत्सव होने लगे । राजा ऋतुपर्णने भी यह सुना कि वाङ्मक नलही था, उसको दमयन्तीसे मिला सुनकर ऋतुपर्णको बहुत प्रानन्द हुआ । अनन्तर राजा ऋतुपर्णने नलने मिल कर अपना अपराध क्षमा कराया, बुद्धिमान राजा नलनेभी अनेक हेतु दिखलाकर राजा ऋतुपर्णका अपराध क्षमा किया । कहनेवालोंमें श्रेष्ठ तत्वके जाननेवाले राजा ऋतुपर्ण राजा नलसे आदर पाकर आश्चर्यसे ऐसा कहने लगे, हे निषधराज । हे पृथ्वीनाथ । आप प्रारब्धहीसे अपने कुटुम्बसे मिले हैं, चाहिये जब आप छिपकर मेरे घरमें रहते थे, तब मैंने आपका कोई अपराध तो नहीं किया ? अथवा यदि मैंने कभी कुछ जानकर वा बिना जाने आपका कुछ अपराध किया हो, तो आप उसे क्षमा कीजिये । राजा नल बोले, हे राजन् ! आपने मेरा कुछ अपराध नहीं किया, और यदि कियाभी है, तो मैं क्षमा करता हूँ क्योंकि आप हमारे पहलसे सम्बन्धी और मित्र हैं । हे नरनाथ ! आपका उचित है, कि अब हमसे औरभी प्रोत्त बढ़ावे, मैं सब कामका प्राप्त करके आपके घरमें ऐसे निवास किया है, जैसे पहली अपने घरमेंभी नहीं किया था ; यह घोड़ाकी विद्या जो सुभमें है, सो आपहीकी है, हे राजन् ! यदि आप चाहें, तो इसको सीख लीजिये, राजा नलने ऐसा कहकर घोड़ेकी विद्या ऋतुपर्णको सिखा दी । ऋतुपर्णनेभी उस विद्याकी विधिपूर्वक ग्रहण किया, भद्रासुरीकेपुत्र राजा ऋतुपर्णने अर्धविद्याके तत्वका ग्रहण करके राजा नलको जुवेका तत्व सिखा दिया और द्वारा सारथी लेकर अपने घरको चले गये । राजन् । ऋतुपर्णके जानेके पश्चात् राजा नल कुछ दिनों पुरम में रहने लगे ।

७७ अध्याय समाप्त ।

श्रीवृहदश्व मुनि बोले, हे राजन् । निषधराज नल एक महीना वहाँ रहकर राजा भीमकी आज्ञासे थोड़े मनुष्योंके सहित निषध देशको चले । एक सुन्दर रथ, सत्तर हाथी, पचास घोड़े और छःसौ पैदल उनके संग थे, राजा नल अपने वेगसे पृथ्वीको कंपाते हुए शीघ्र ही अपने देशमें पहुँचे । वीरसेनके पुत्र महा मनस्वी राजा नल पुष्करके पास जाकर ऐसा बोले, कि मैंने बहुत धन कमाया है, पुनः जुआ खेलो, दमयन्तीके सहित और मेरा जो कुछ धन है सो सब एकही दावपर लगा देता हूँ, हे पुष्कर तुमभी अपने सब राज्यको एकही बार लगा दो । मैंने यह निश्चय कर लिया है, कि एकही दांवमें प्राणतक लगा देने चाहिये, अतएव पुनः जुआ खेलो, यह सदाका धर्म है, कि जुएमें दूसरेका धन वा राज्य जीतकर दूसरे दाव पर उसीको पुनः लगा देना चाहिये यदि तुम्हारी जुआ खेलनेकी इच्छा न हो तो युद्ध रूप जुआ खेला, हे राजन् । एक रथपर तुम चढ़ो और एक पर मैं, या तुम सुभे मार डालो, या मैं तुम्हें, क्योंकि यह हमारे पुरखोंकी आज्ञा है, कि वंशके राज्यको जैसे हो तैसे प्राप्त करना चाहिये । हे पुष्कर । अब इन दोनों बातोंमेंसे एककी निश्चय कर लो । चाहे जुआ खेलो, चाहे युद्धमें धनुषको खींचो । राजा नलके ऐसे वचनको सुनकर पुष्कर हंसने लगा, और निश्चय ही अपनी जीत समझके बोला हे निषध ! तुमने प्रारब्धहीसे जुएके निमित्त इस धनको उत्तान किया है, प्रारब्धहीसे तुम आजतक अपने कुटुम्बसे मिले हुए हो । हे राजन् । हे महाभुज ! इस जीते हुए धनके सहित दमयन्ती भूषणोंके समेत अब सुभको ऐसे मिलैगी जैसे स्वर्गमें इन्द्रकी अप्सरा । हे राजन् । मैं आजही तुम्हारा स्मरण करता था और मार्गभो देखता था, क्योंकि सुभे बिना मित्रोंके जुएन सुख नहीं मिलता, अब मैं सुन्दर मखवाली

अनिन्दिता दमयन्तीको जुएमें जीत कर कृतकृत्य हंगा क्योंकि वह सदासे मेरे हृदयमें बास करती है, पुष्करके ऐसे सम्बन्ध रहित और निरर्थक बचन सुनकर राजा नलको महाक्रोध हुआ और खड्ग निकाल कर उसका सिर काटनेको उपस्थित हुए । महाक्रोधसे लालनेत्र करके राजा नल बोले, बिना ही जुआ खेले इतना क्यों बकता है ? जुआ जीत कर बकना । तब नल और पुष्करका जुआ होने लगा । अनन्तर राजानलने एकही दांवमें पुष्करका राज, धन प्राण, और रत्न सब कुछ जीत लिया । अनन्तर पुष्करको जुएमें जीत, राजानल हंसकर पुष्करसे बोले, हे राजोंमें नीच ! अब यह सब राज्य मेरा होगया, अब इसमें कुछ बाधा नहीं रही, तेरी शक्ति नहीं है जो दमयन्तीको देख सकै । हे मूर्ख ! अब तू अपने कुटुम्बके सहित उसी दमयन्तीका दास बन गया । रे मूढ़ ! तैने जो पहले मुझको जीता था, वह तेरा कर्म नहीं था वह कलियुगका काम था, दूसरेका दोष तुझे नहीं देना चाहता, अतएव मैं तेरे प्राणको छोड़ देता हूं, तू सुखसे जीता रह, जो कुछ तेरा अंश और कार्य था सो सब तुझेही दे देता हूं । हे वीर ! मैं तुमसे वैसाही प्रीति रखूंगा, तुम्हारा प्रेम मेरो ओरसे कम न होगा । हे पुष्कर ! तुम मेरे भाई हो, सौवर्षतक जीते रहो । सत्यपराक्रम राजा राजा नलने अपने भाईको ऐसे प्रसन्न करके वारं वार गलेसे लगाकर उसको अपने धर जानेकी आज्ञा दी । पुष्करने राजा नलसे इस प्रकार प्रसन्न होकर हाथजोड़ प्रणामकर ऐसा कहा, हे राजन् ! आसको कीर्ति अक्षय्य हो, आप सुखसे सहस्र वर्षतक जीते रहें क्योंकि आप मेरे प्राण और पृथ्वीको छोड़ते हैं । ऐसा कहकर राजासे सत्कार पाकर पुष्कर प्रसन्न होकर अपने पुरुषोंके सहित अपने नगरको घना, राजा नलने सेना और उत्तम नौकरोके

सहित सूर्यके समान तेजस्वी पुष्करको सुख और धनके सहित विदा करके लक्ष्मी और शोभासे भरे हुए अपने नगरमें प्रवेश किया, वहां जाकर निपधराजने अपने नगरवासियोंको प्रसन्न किया, नगरवासियोंका भी रोवा रोवा प्रसन्न हो गया और मन्त्री आदि सब पुरवासी हाथ जोड़कर ऐसा बोले, हे राजान् ! आज हम सब इस नगरमें ऐसे प्रसन्न हुए जैसे इन्द्रकी पाकर देवता ।

७८ अध्याय समाप्त ।

श्रीवृहदश्व सुनि बोले, हे राजन । जब सब नगर शान्त हो गया, और वह उत्सव समाप्त हुआ तो राजाने वृद्धत सेना भेजकर दमयन्तीको वहीं बुला लिया, दमयन्तीको शत्रुनाशन पिताने अत्यन्त सत्कार करके विदा कर दिया । दमयन्तीके पिता पराक्रमी और महात्मा थे, तब पुत्रके सहित दमयन्ती अपने नगरमें आई तो राजा नल ऐसे आनन्द करने लगे जैसे नन्दनवनमें इन्द्र । महा यशस्वी राजा नल जम्बूद्वीपके राजोंमें प्रकाश करने लगे और फिर अपने राज्यका शासन पहिलेके समान करने लगे । दक्षिणाओंके सहित अनेक यज्ञ करीं, हे राजेन्द्र ! वैसेही आपभी थोड़ेही दिनमें अपने मित्रोंसे मिलियेगा । हे नरश्रेष्ठ ! हे पुरुषर्षभ । जुआ खेलकर शत्रुनाशन राजा नलने स्त्रीके सहित इस प्रकार महा दुःख पाया था, हे पृथ्वीनाथ । राजा नलने तो वनमें एकल रहकर ऐसा दुःख पाया और फिर आनन्दभी किया । हे पाण्डव ! तुम तो अपने भाई और द्रौपदीके सहित इस वनमें आनन्द करते हुए धर्मकी चिन्ता करते हो । आपके सङ्ग तो वेद और वेदाङ्गोंके जाननेवाले अनेक ब्राह्मण हैं, इसमें तुमको कौन दुःख है । कर्कोटक नाग, दमयन्ती, नल, और राजर्षि ऋतुपर्षकी कथा कलियुगकी नाश करती है । हे प्रजा-

नाथ ! यह कथा कलियुगकी नाशक है, आपके समान पुरुषोंको उचित है, कि इसको सुनकर धीरज धारण करें। पुरुषार्थ स्थिर नहीं है, यह विचारकर आप उदय और हानिकी कुछ चिन्ता न कीजिये, हे नरनाथ । इस इतिहासकी सुनकर धैर्यधारिये शोच मत कीजिये । आप दुःखमें पड़कर शोच करनेके योग्य नहीं हैं । बुद्धिमान पुरुष प्रारब्ध लौटने और पुरुषार्थ नष्ट होनेपर रोते नहीं हैं, जो कोई इस नलके इतिहासकी कहेंगे या सुनेंगे, वे कभी दरिद्री न होंगे, उनकी अनेक प्रकारकी धन मिलेंगे । और उन लोगोंकी सब कोई धन्य कहेंगे । इस उत्तम पुराणके सुननेसे पुरुषकी पुत्र, पौत्र, उत्तम प्रतिष्ठा, पशु, आरोग्यता प्राप्त होते हैं, और प्रेम बढ़ता है । जो तुम डरसे डरते हो कि दुर्योधन मुझे पुनः जुएमें बुलावेगा और जोत लेगा, सो यह डर तुम्हारा मैं दूरकर देता हूँ । हे कुन्तीनन्दन ! हे राजन ! मैं जुएके तत्वकी जानता हूँ, सो प्रसन्न होकर तुम्हें देता हूँ ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोलि, तब राजा युधिष्ठिरने प्रसन्नचित्त होकर कहा कि हे भगवन् ! मैं यथार्थ रूपसे जुएके सत्वकी जानना चाहता हूँ । अनन्तर बृहदश्व मुनिने महात्मा पाण्डवकी जुएका तत्व सिखा दिया, और स्नान करनेकी हयतीर्थ तीर्थमें चले गये । उनके जानेके पश्चात् युधिष्ठिरने आए हुए तपस्वी ब्राह्मणों और तीर्थ और वनोंसे पाये हुए महात्माओंसे सुना कि बुद्धिमान अर्जुन वायु भक्षण करके उग्र तपस्याकर रहे हैं, दृढ व्रतवाले अर्जुन जैसा तप करते हैं, वैसा किसीनेभी तप नहीं किया निश्चय व्रतवाले कुन्तीनन्दन अर्जुन ऐसे तपस्वी हुए हैं, मानो शम्भु श्रीमान् धर्मही शरीर धारण करके तपस्याकर रहे हैं । पाण्डुनन्दन कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर अपने प्यारे भाई अर्जुनकी इस प्रकार

महा वनमें तपस्या करते हुए सुनकर जलते हुए हृदयसे शरणकी इच्छा करके अनेक विधि ज्ञान जाननेवाले ब्राह्मणोंसे पूछने लगे ।

७६ अध्याय समाप्त ।

नलीपाख्यान पर्व समाप्त ।

अथ तीर्थयात्रा पर्व प्रारम्भ ।

राजा जनमेजय बोलि, हे भगवन् ! जब मेरे परदादि अर्जुन-काम्यक वनसे चले गये तब उनके विना पाण्डवोंने क्या किया ? क्योंकि मुझे ज्ञान पड़ता है, कि जैसे देवतोंकी गति विष्णु है, वैसीही पाण्डवोंकी गति सेनाओंकी जीननेवाली महा धनुर्धारो अर्जुन थे, मेरे प्रपितामह लोग उस इन्द्रके समान पराक्रमी, युद्धसे न हारनेवाले, वीर अर्जुनके विना वनमें कैसे रहे ?

श्रीवैशम्पायन मुनि बोलि, हे तात ! जब काम्यक वनसे सत्यपराक्रम अर्जुन चले गये, तो पाण्डव लोग शोक और दुःखसे व्याकुल हो गये । जैसे पक्षीके पंख काटके डोरमें बांध दिते हैं और उसका मन प्रसन्न नहीं रहता तैसीही पाण्डवभी व्याकुल हो गये । उस कठिन कर्मकारी अर्जुनके बिना वह वन ऐसा हो गया जैसे कुवेरके विना चैत्ररथ (कुवेरका वाग) । हे जनमेजय ! अर्जुनके विना पुरुषसिंह पाण्डव दुःखसे उस वनमें वास करने लगे । हे भरतश्रेष्ठ ! वे महा रथ पाण्डव पराक्रमसे दिन दिन ब्राह्मणोंके निमित्त खानेके योग्य अनेक हरिणोंकी मारते थे । शत्रुनाशन पाण्डवलोग नित्यही यज्ञके निमित्त हरिणोंकी मारकर ब्राह्मणोंकी खिलाते थे । हे राजन् ! अर्जुनके जानेके पीछे पुरुषसिंह पाण्डवलोग अप्रसन्न होकर उस वनमें वसने लगे । एकदिन अपने मध्यम पति अर्जुनकी स्मरण करती हुई द्रौपदी धवराये हुए युधिष्ठिरके पास आकर ऐसा बोली । जो दो हाथवाला अर्जुन सहस्र हाथवाले अर्जुनके

समान है, उसके बिना यह वन सुभको नहीं सोचाता ; एक अर्जुनके बिना सुभे यह पृथ्वी शून्य दीखती है ; औ यहभी बद्धत आश्चर्य्य है, कि यह फूले फले वृक्ष अर्जुनके बिना वैसे सुन्दर नहीं दीखते, उस नीले मेघके समान सुन्दर, मर्तवाले हाथीके समान चलनेवाले, कमल नेत्र अर्जुनके बिना यह काम्यक वन सुभे नहीं सोचता । जिसके धनुषका शब्द वज्रके समान सुनाई पड़ता था, उस अर्जुनके बिना सुभे सुख नहीं मिलता । हे महाराज ! द्रौपदीका ऐसा वचन सुनकर शत्रुनाशने भीमसेन बोले, हे सुमध्यसे । हे भद्र ! तुम जो कहती हो, सो बात हमारे ही मनकी है, उसके सुननेसे हमारा मन ऐसा प्रसन्न होता है, जैसे अमृतके पीनेसे । जिसके हाथ लम्बे, मोटे, मुँहरके समान कठोर, रोड़की ठेठसे युक्त, धनुष और खड्गके धारण करनेवाले, सीनेके वाजू बन्दोंसे शोभित पाँच फनवाले साँपके समान है, उस पुरुषसिंहके बिना यह वन ऐसा दीखता है, जैसे बिना सूर्यके आकाश । जिसके हाथोंके बलके आश्रयसे कुरुवशी और पाञ्चाललोग इकट्ठे हुए देवतोंकी सेनासेभी नहीं डरते हैं, जिस महात्माके हाथोंके आश्रयसे हमलोग शत्रुओंको जीते हुए और पृथ्वीको प्राप्तही समुभक्ति है, उस वीर अर्जुनके बिना इस काम्यक वनमें हम रहनेको समर्थ नहीं हैं । हमको सब दिशा अन्धेरेसे भरी हुई दीखती हैं । तब पाण्डुपुत्र नकुल रोते हुए ऐसा कहने लगे । नकुल बोले, जिस अर्जुनके युद्धमें दिव्य कामोंको देखकर देवताभी प्रशंसा करते हैं, उसके बिना वनमें कैसे चित्त लगेगा ? जिस महा तेजस्वीने उत्तर दिशामें जाकर महा बल गन्धर्व्वराजको जीत कर उत्तम घोड़े प्राप्त किये थे, जिसने जनहो तीरके समान रड़वाले तेजस्वी, वायुके समान चलनेवाले घोड़ोंको राजसूय महायज्ञमें अपने प्यारे भाईको प्रेमसे दिये थे, उस भीमके

छोटे भाई, दृढ़ धनुवाले अर्जुनके बिना इस द्वीप निवासके योग्य काम्यक वनमें रहनेकी हमारी इच्छा नहीं है । सहदेव बोले, जिस महारथने, पहले राजसूय यज्ञमें युद्धसे जीते हुए अनेक धन और कन्याओंको राजाको समर्पण किया था, और जिस महा तेजस्वीने कृष्णकी सम्पत्ति युद्धमें सब यादवोंको जीतकर सुभद्राको ग्रहण किया था, उस अर्जुनके आसनकी शून्य देखकर मेरा हृदय कभी भी शान्त नहीं होता । हे महाराज ! हे शत्रुनाशन ! उस वीरके बिना यह वन हमको अच्छा नहीं लगता, इस लिये हमारी इच्छा इस वनकी छोड़ देनेकी है ।

८० अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, इस प्रकार द्रौपदीके सहित अपने भाइयोंको अर्जुनके दर्शनकी इच्छावाला जान और उनकी बातें सुनते हुए धर्मराज युधिष्ठिर बैठे थे, इतनेहीमें तेजकी लक्ष्मीसे प्रकाशमान, जलती हुई अन्निके समान तेजस्वी हेवर्षि नारदजीकी देखा । उनके देखतेही धर्मराज युधिष्ठिर भाइयोंके समेत खड़े हो गये, और महात्मा नारदजीकी यथा योग्य पूजा करी । कुरुकुल श्रेष्ठ, श्रीमान्, प्रकाशमान्, राजा युधिष्ठिर अपने भाइयोंके सहित ऐसे शोभित हुए, जैसे देवतोंके सहित इन्द्र । जैसे सावित्री वेदोंकी और पर्व्वतकी सूर्यको किरण नहीं छोड़ती हैं, तैसेही द्रौपदीभी धर्म सहित अपने पतियोंके सङ्गही रहती थी । हे पापरहित ! भगवान् नारदजीने उस पूजाकी ग्रहण किया, और समयानुसार धर्मराजको समुभक्त लगे । धर्मराज महात्मा युधिष्ठिरसे नारदजी बोले कि हे धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ ! आपकी क्या इच्छा है ? कहिये हम आपको क्या दें ? ऐसा सुन धर्मराज युधिष्ठिर भाइयोंके सहित देव समान नारदजीकी प्रणाम कर हाथ जोड़ ऐसा बोले । हे सुव्रत !

महाभाग ! जब सब लोकोंसे पूजित आप
 भूसे प्रसन्न हुए, तो आपकी कृपासे मैं अपने
 सब कार्योंकी सिद्धिही समझता हूँ । हे पाप-
 रहित ! यदि आप भाइयोंके सहित मेरे ऊपर
 अनुग्रह करना चाहते हैं, तो मेरे सन्देहकी
 प्रायोग्य नाश कीजिये । जो पुरुष तीर्थ यात्राके
 निमित्त समूची पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करता है,
 उसकी क्या फल होता है ? यह आप पूर्ण
 रीतिसे कहिये । नारद बोले, हे राजन् !
 आप सावधान होकर सुनिये, जिस प्रकार बुद्धि-
 मान भीष्मने पुलस्त्य मुनिसे सुना था, सो मैं
 कहता हूँ । पहिले धर्मचारियोंमें श्रेष्ठ भीष्म
 पितरोंके व्रतकी धारण करके मुनियोंके सहित
 गङ्गातीरपर बसते थे । हे राजन् ! देव और
 ऋषियोंसे सेवित पवित्र और पुण्य देश गङ्गाके
 तटमें महा तेजस्वी भीष्म देवता, पितर और
 ऋषियोंकी शास्त्र विधिके अनुसार तर्पण करते
 हुए निवास करते थे । एक दिन महा यशस्वी
 भीष्मने जप करनेके समय अद्भुत स्वरूपवाली
 पुलस्त्यमुनिको देखा । उन्होंने सहातपस्त्री
 पुलस्त्यकी तेजसे प्रकाशित देखकर परम
 आनन्द प्राप्त किया और महा आश्चर्यमाना ।
 हे भारत ! वहां आये हुए पुलस्त्यमुनिको
 देख धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ भीष्मने विधिपूर्वक
 उनकी पूजा करी, पवित्र होकर अपने मनको
 स्थिरकर उनको अर्घ्य दे, शिरसे प्रणाम कर,
 ऋषियोंमें श्रेष्ठ पुलस्त्यको इस प्रकार अपना
 नाम सुनाया । हे सुव्रत ! आपका कल्याण हो,
 मैं आपका दास भीष्म हूँ, आज आपका दर्शन
 होनेसे मेरे सब पाप कट गये । हे महाराज !
 बुधिष्ठिर । धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ भीष्म ऐसा
 सब बात जोड़ चुप हो बैठ गये । कुरुकुलश्रेष्ठ
 भीष्मकी वेदपाठ और नियमसे दुर्बल देख
 पुलस्त्यमुनि अत्यन्त प्रसन्न हुए ।

८१ अध्याय समाप्त ।

श्रीपुलस्त्य मुनि बोले, हे धर्मज्ञ ! तुम्हारे
 इस परिश्रम इन्द्रिय निग्रह और सत्यसे हम
 परम सन्तुष्ट हुए हैं । हे महाभाग ! हे पाप-
 रहित ! तुम्हारा यह धर्म और पिताकी भक्ति
 देखकर हम बहुत प्रसन्न हुए हैं । हे पुत्र !
 हे भीष्म ! हे कुरुकुलश्रेष्ठ ! हे पापरहित !
 हम तीनों कालकी देखते हैं, तुम जो कहीगीं
 सोई तुमको देंगे, कही हम तुम्हारा कौन काम
 करें । भीष्म बोले, हे महाभाग ! सबलोगोंसे
 पूजित ! जब आप हमसे प्रसन्न हुए, तो हम
 अपने सब कार्योंकी सिद्धिही समझते हैं, आपके
 देखनेसे सब कार्य सिद्ध हुए । हे धर्मधारियोंमें
 श्रेष्ठ ! यदि आप हमारे ऊपर कृपा करते हैं,
 तो हमारे सन्देहकी नाश कीजिये । हमारे
 हृदयमें तीर्थोंके विषयमें कुछ धर्म विषयक
 सन्देह हैं, उनको हम सुनना चाहते हैं, आप
 कहिये, हे देवतुल्य ! हे ब्राह्मण ऋषि ! जो
 पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करता है, उसकी क्या फल
 होता है ? सो आप निश्चय करके कहिये ।
 पुलस्त्य मुनि बोले, हे पुत्र ! हम तुमसे तीर्थके
 फलकी कहते हैं, सावधान मनसे सुनो, यह
 ऋषियोंके सुनने योग्य है । जिसके हाथ, पांव,
 मन विद्या और कीर्ति वशमें होती हैं, वही
 तीर्थोंके फलकी भोगता है, जो सब धरोसे
 लौटकर एक किसी स्थानपर सन्तुष्ट होकर
 रहता है, जिसकी अहङ्कार नहीं होता, वही
 तीर्थोंके फलकी भोगता है ; जो रुल और
 कार्योंके आरम्भसे दीन, थोड़ा खानेवाला,
 इन्द्रियजित और सब पापोंसे रहित होता है,
 वही तीर्थोंके फलकी भोगता है । हे राजेन्द्र !
 जो क्रोधसे रहित सत्य और शीलसे भरा
 हुआ पक्का व्रतधारी, अपने समान सब प्राणि-
 योंको देखनेवाला हो, वही तीर्थोंके फलकी
 भोगता है । जो यज्ञ ऋषियोंने देवताके निमित्त
 कहा है, जिनका फल इस लोक और
 परलोकमें होता है, उन यज्ञोंकी दरिद्री पुरुष

नहीं कर सकता; क्योंकि यज्ञमें अनेक सामग्री और बहुत वस्तुओंका विस्तार चाहिये। उन यज्ञोंको राजाही लोग कर सकते हैं, और कहीं कहीं धनवान् पुरुषभी करनेमें समर्थ होते हैं, परन्तु थोड़े धनवाले, सहाय रहित, एकले, साधनहीन, पुरुष नहीं कर सकते। हे नरनाथ! हे योद्धोंमें श्रेष्ठ! जो विधि दरिद्रोंके लिये यज्ञ फलके समान कही है, उसको सुनिये। हे भरतसत्तम! यह ऋषियोंका परम गुप्त मत है, कि पवित्र तीर्थोंमें जाना यज्ञोंसेभी अधिक फलदायक है, यीर्थोंमें सोना और गजदान न करकेभी, तीन रात तीर्थोंमें रहनेसे दरिद्र पवित्र होता है, भारी भारी दक्षिणावाली—अग्निष्टोमादि यज्ञ करनेसे जो फल होते हैं, सो इन तीर्थोंमें जानेसेभी होते हैं। देवतोंका तीर्थ पुष्कर नामक मर्त्यलोकमें है, वह तीनलोकमें विख्यात है, महाभागी पुरुषको वहां जाना उचित है, हे महामते! पुष्कर तीर्थमें तीनों सन्ध्याओंके समय दश करोड़ तीर्थ इकठ्ठे होते हैं, वहां सूर्य, वसु, रुद्र, साध्य, मरुत, गन्धर्व और अप्सरा सदाही निवास करते हैं। हे महाराज! जहां देवता, दैत्य और ब्रह्मर्षिलोग महा पुण्यके सहित तप करके दिव्य योगको प्राप्त होते हैं, उस पुष्करका जो मनस्वी पुरुष मनसेभी ध्यान करता है, वह सब पापोंसे पवित्र होकर स्वर्गमें जाकर पूजित होता है। हे महाराज! उस तीर्थमें सब लोकोंके पितामह परम प्रीतिके सहित सदाही निवास करते हैं। हे महाभाग! पुष्करमें पहले देवता और ऋषिलोग, पवित्र पुण्यके सहित तप करके परम सिद्धिको प्राप्त हुए हैं। पितर और देवतोंकी पूजा करनेवाला पुरुष यदि उसमें स्नान करे, तो अश्वमेध यज्ञसे बारह गुने फलको पाता है। यदि पुष्करमें रहनेवाले एक ब्राह्मणकोभी भोजन करावे तो उस कर्मके प्रतापसे इसलोक और परलोक

में आनन्द करता है, साग, नीन, फल याज्ञिक आप खाय, वही ब्राह्मणको अदा सहित खिलावे, उसी कर्मके फलसे बुद्धिमान पुरुष अश्वमेधके फलको प्राप्त करता है। हे राजसत्तम! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, कोई ही उस तीर्थमें स्नान करके फिर गर्भमें नहीं आता, विशेष करके जो कार्तिककी पूर्णिमासीको पुष्करमें स्नान करता है, उसको अक्षय ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। हे भारत! जो संन्या और प्रातःकाल हाथ जोड़कर पुष्करका स्नान करता है। उसे तीर्थ स्पर्श करनेको प्राप्त होता है। चाहे पुरुष वा स्त्री ही उसने जब भरमें जो पाप किया हो, वह सब पुष्करमें स्नान करतेही नष्ट होजाते हैं। जैसे सब देवतोंमें पहले विष्णु हैं, वैसेही सब तीर्थोंमें आदि पुष्कर है। राजन्! जो पवित्र और इन्द्रिय जित होकर बारह वर्ष पुष्करमें रहे, वह सायुज्य मोक्ष पाता है, और ब्रह्मलोकमें बसता है। जो सो वर्षतक अग्निहोत्र करे और जो एक कार्तिकी पूर्णिमासीमें पुष्कर स्नान करे, उन दोनोंको समान ही फल होता है। तीन सिखण्ड और तीन पुष्करादि भरमें सिद्ध है, किन्तु इसका कारण हम नहीं जानते। पुष्कर में जाना, तप करना, दान करना बहुत कठिन है, जो थोड़ा भोजन करने वाला इन्द्रियोंकी वशमें, वारके प्रदक्षिणके पश्चात् बारह रोजतक पुष्करमें रहता है, वह जन्ममार्गमें जाता है, देवता ऋषि और पितरोंसे सेवित मार्गमें जाकर सब काम पाकर अश्वमेधके फलको प्राप्त करता है। हे राजन्! जो पितर और देवतोंकी पूजा करनेवाला अगस्त्य सरमें जाकर तीन रात रहना है, उसे अग्निष्टोम यज्ञका फल होता है। जो शाक और फलोंकी खाता है, उसे कुमार भाव प्राप्त होता है। हे भरतर्षभ! वहासे लक्ष्मीसे भरे हुए लोक पूजित कण्वमुनिके आश्रममें जाय। उसका

नाम धर्मारण्य है, वह पवित्र स्थान और
मादिस्थान है, जहाँ जाते ही पुरुष सब पापोंसे
कूट जाता है; वहाँ इन्द्रियजित और अल्पा-
हारी होकर यदि पितर और देवतोंकी पूजा
करे तो सब काम पूर्ण होते हैं, और यज्ञका
फल मिलता है। उसकी प्रदक्षिणा करके
ययातियन नामक तीर्थमें जाय, वहाँ जातेही
अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। वहाँसे
अल्पाहारी और जितेन्द्रिय होकर महाकाल
तीर्थमें जाय, वहाँ करोड़ तीर्थोंका स्पर्श होनेसे
अश्वमेधका फल मिलता है। आगे धर्म
जाननेवाला पुरुष भद्रवट नामक तीर्थमें जाय।
यह स्थान पार्वतीनाथ शिवका है और तीनों
लोकोंमें विख्यात है। वहाँ शिवके दर्शन कर-
नेसे सहस्र गौदानका फल होता है, और
शिवके प्रसादसे गणेशका फल मिलता है।
सहस्रके सहित, शत्रुओंसे रहित, वृद्धिसे भरा
हुआ, पुरुषोंमें अष्ट यात्री वहाँसे चलकर तीनों
लोकोंमें विख्यात नर्मदा नदी पर जाय, वहाँ
देवता और पितरोंकी तर्पण करनेसे अग्नि-
ष्टोम यज्ञका फल होता है। आगे ब्रह्मचारी
और जितेन्द्रिय होकर दक्षिण समुद्रके तट पर
जाय, वहाँ जानेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल
मिलता है और चढ़नेको विमान प्राप्त होता
है। आगे जितेन्द्रिय और जिताहार होकर
वर्मणवतो (चम्बल) नदीके तट पर जाय;
वहाँ जानेसे रान्तदेवकी करोड़हुई अग्निष्टोम-
यज्ञका फल प्राप्त होता है। हे धर्मज्ञ! हे
युधिष्ठिर! वहाँसे हिमाचलके पुत्र अर्बुदमें
जाय, जहाँ पहले पृथ्वीमें कंद था, वहाँ तीनों
लोकोंमें विख्यात वशिष्ठमुनिका आश्रम है, वहाँ
रात रहनेसे हजार गौदानका फल
प्राप्त होता है। हे नरयष्ट! यदि जितेन्द्रिय
और वहाँ पिंड तीर्थका स्पर्श करे तो सौ
गौदानका फल पावे। हे राजन्! वहाँसे
व्यास तीर्थमें जाय, जहाँ भगवान्

अग्नि आपही निवास करते हैं। हे वीर!
अग्निका सारथी ज्वलन जी देवतोंका मुख
है, जो मनुष्य पवत्रि हो मनको स्थिरकर वहाँ
स्नान करे, और तीन रोज वास करे, तो अग्नि-
ष्टोम यज्ञका फल पाता है। वहाँसे सरस्वती
और समुद्रके सङ्गमकी जाय, तो उसे सहस्र
गौदानका फल होता है, और स्वर्ग मिलता
है। हे भरतर्षभ! वह तीर्थ अग्निके समान
तेजसे भरा हुआ है, वहाँ मनकी स्थिर करके
समुद्रमें स्नान करे, तीन दिन वहाँ निवास
करके पितर और देवतोंका तर्पण करे तो
अश्वमेध यज्ञका फल पाता है और चन्द्रमाके
समान तेजस्वी होता है। हे भरत-
सत्तम! वहाँसे वरदान तीर्थको जाय। हे
युधिष्ठिर! विष्णुने इसी स्थानमें दुर्वासोको
वर दिया था। आगे पुरुष जिताहार
होकर द्वारिका पुरीकी जाय, वहाँ पिण्डारक
तीर्थमें स्नान करे तो वज्रत सुवर्ण प्राप्त होता
है, हे महाभाग! हे शत्रुनाशन! उस तीर्थमें
अब भी पद्मके समान एक मुद्रा दिखाई देती
है। हे कुरुनन्दन! यह परम आश्चर्य्य है
कि वहाँ लिशूल और पद्मके चिह्न दीखते हैं।
हे पुरुषर्षभ! वहाँ महादेव निवास करते हैं।
हे भारत! वहाँ सिन्धु और समुद्रके सङ्गममें
जाय, वहाँ मनकी स्थिर करके समुद्रमें स्नान
करे और पितर देवता तथा ऋषियोंका तर्पण
करे। यहाँ स्नान करनेसे अपर्ण तेजसे प्रकाशित
वसुणलोक मिलता है। हे युधिष्ठिर! वहाँ
शङ्खकर्णेश्वर महादेवकी पूजा करनेसे महात्मा
लाग कहते हैं कि अश्वमेधसे दशगुण फल
होता है। हे भरतर्षभ! हे कुरुवरयष्ट!
आगे प्रदक्षिण करके तीन लोकमें विख्यात
दम्पो नामक तीर्थमें जाय; वह सब पापोंका
नाश करनेवाला है, वही ब्रह्मादिक देवता
शिवकी पूजा करते हैं। वहाँ स्नानकर जल पी
देवतोंसे वांछित शिवकी पूजाकर पुरुष जन्म

भरके पापोंसे कूटता है । हे पुरुषव्याध ! हे नरश्रेष्ठ ! इसी स्थानपर सब देवतोंने दमोकी स्तुति की थी । वहां स्नान करनेसे अश्वमेधका फल प्राप्त होता है । हे राजन ! पहली लोक कर्त्ता विष्णुने दैत्य और दानवोंको मारकर इसी स्थानपर पवित्रता पाई थी । हे धर्मज्ञ ! वहांसे वसुधारा नामक तीर्थकी जाय, उसकी सब देवता लोग स्तुति करते हैं, वहां जानेहीसे अश्वमेधका फल मिलता है । हे कुरुश्रेष्ठ ! सावधान और जितेन्द्रिय होकर स्नान करना चाहिये, वहां देवता और पितरोंकी तपस्या करनेसे विष्णुलोक मिलता है । हे भरतर्षभ ! इस तीर्थमें वसुओंका तड़ाग है, वहां स्नान करनेसे पुरुष वसुओंका प्यारा हो जाता है । हे नरश्रेष्ठ ! आगे सिन्धुत्तम नामक तीर्थमें जाय, वहां स्नान करनेसे सब पापोंका नाश और वज्रत सुवर्ण मिलता है । हे महाराज ! आगे पवित्र और शीलवान पुरुष भद्रतुङ्ग नामक तीर्थपर जाय । वहां जानेसे ब्रह्मलोक प्राप्त होता है, और भीक्षु होती है । आगे कुमारिका तीर्थ जो इन्द्रतीर्थके नामसे प्रसिद्ध है, जिसकी सिद्ध लोग सेवा करते हैं, वहां स्नान करनेसे पुरुषकी स्वर्ग मिलता है । वहीं सिद्ध सेवित रेणुका तीर्थ है, उसमें स्नान करनेसे ब्राह्मण चन्द्रमाके ससान निर्मल हो जाता है । आगे जितेन्द्रिय और जिताहार होकर पञ्चनद तीर्थपर जाय, वहां जानेसे पाच यज्ञका फल प्राप्त होता है, इसके नाम पहली कह चुके हैं । हे राजेन्द्र ! वहांसे उत्तम भीमा स्थानपर जाय, वहां स्नान करनेसे पुरुष देवीका पुत्र होता है, उसका रङ्ग तपे हुए सोनेके समान हो जाता है, वहां जानेसे लाख गोदानका फल होता है । वहांसे तीनलोकमें विख्यात श्रीकुण्ड तीर्थपर जाय, वहां ब्रह्माकी नमस्कार करनेसे सहस्र गोदानका फल होता है । हे धर्मज्ञ ! वहांसे उत्तम विमला तीर्थकी जाय, जहां अवतकभी

सोने और चादीके रङ्गवाली मछली दीखती है, वहां स्नान करनेसे पुरुषको इन्द्रलोक मिलता है, वह पुरुष सब पापोंसे कूटकर भीक्षुकी पाता है । आगे वितस्ता नदीमें जाकर स्नान करे और वहां पितर तथा देवताओंका तर्पण करे । हे भारत ! इस तीर्थमें स्नान करनेसे वाजपेय यज्ञका फल होता है । हे महाराज ! वहांसे काश्मीर देशकी जाय, वहां तक्षक नागका वन जो सब पापोंका नाश करनेवाला है, उसमें जाकर वितस्ता नदीमें स्नान करे, ऐसा करनेसे वाजपेय यज्ञका फल मिलता है, और सब पापोंसे कूटकर मुक्ति हो जाती है । वहांसे तीन लोकोंमें प्रसिद्ध बड़वा तीर्थमें जाय, यहां विधिपूर्वक सायंकालकी सन्ध्यामें स्नान करे, वहांपर शक्ति अनुसार सूर्यकी नैवेद्य दे । पण्डित लोग कहते हैं, कि पितरोंके निमित्त वहां जो दान किया जाय सो अक्षय होता है । हे नरनाथ ! गन्धर्व ऋषि, पितर, देवता, अप्सरा, गुह्यक, किन्नर, यक्ष, सिद्ध, विद्याधर, पुरुष, राक्षस, दैत्य, रुद्र और ब्रह्मा उसी स्थानमें विष्णुका भोग लगा कर विष्णु को प्रसन्न करते हैं । उसी स्थानपर इन लोगोंने ऋग्वेदकी सात सात ऋचा पढ़कर विष्णुकी स्तुति की थी, और विष्णुजीने उनके ऊपर प्रसन्न होके उनकी वही आठ सिद्धि दी थी । औरभी उनकी इच्छानुसार अनेक सिद्धि देकर भगवान विष्णु वही अन्तर्ज्ञान हो गये थे, जैसे मेघोंमें विजली । हे भारत ! इसी लिये उस तीर्थका नाम सप्तचक्र है । वहां पर सूर्यकी नैवेद्य देनेसे लाख गोदान, हजार राजसूय यज्ञ, और हजार अश्वमेध यज्ञोंका फल होता है । हे राजेन्द्र ! वहांसे चलकर रुद्र तीर्थकी जाय, वहां महादेवकी पूजा करनेसे अश्वमेधका फल मिलता है । आगे ब्रह्मचारी और सावधान होकर माणिक्य तीर्थकी जाय वहां एक रात रहनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल होता है । हे राजेन्द्र ! वहांसे लोक

विख्यात देविका तीर्थमें जाय । हे भरतर्षभ । वही पर सब ब्राह्मण उत्पन्न हुए थे । आगे तीनों लोकमें विख्यात भूलपाणि रुद्रके स्थानमें जाय, वहां पर देवता लोग वास करते हैं । हे भारत । वहां स्नान करके पुरुषकी शीघ्रही सिद्धि मिलती है, वहां यज्ञ करे और करावे, वहांकी बालू, फूल, और जलको कूनेसे पुरुष मरनेके पश्चात् शोचसे रहित होता है, अर्थात् मोक्ष पाता है देव और ऋषियोंसे सेवित पवित्र देवोका वह स्थान दो कीस चौड़ा और दशकोश लम्बा है । हे धर्मज्ञ । वहांसे क्रमके अनुसार दीर्घसत्र तीर्थ पर जाय, जहां ब्रह्मादिक देवता, सिद्ध और महा ऋषिलोग दीक्षित हो कर बड़े बड़े यज्ञकी करते हैं । हे राजेन्द्र । हे शत्रुनाशन ! हे भारत । तीर्थसत्र दीर्थमें जानेहीसे राजसूय और अश्वमेधका फल है, आगे जिताहार नियमधारी पुरुष विनसन तीर्थमें जाय जहां मेरुके शिखर पर सरस्वती अन्तर्धान हुई है । आगे चमश शिवोद्भेद और नागोद्भेद तीर्थ देखते हैं, तहां चमसोद्भेद तीर्थमें स्नान करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है । शिवोद्भेदमें स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल होता है, और नागोद्भेदमें स्नान करनेसे पुरुषकी नागलोक मिलता है । हे राजेन्द्र ! आगे हर्माभिशयान तीर्थमें जाय, हे भारत । जहां कार्तिकीमें ईश्वर रूपधारी पुष्कर दीखते हैं । हे भरतश्रेष्ठ ! हे महाराज ! वे लोग प्रतिवर्ष सरस्वतीमें आते हैं । हे भरतर्षभ । हे पुरुषसिंह ! वहां स्नान करनेसे पुरुष सदा दिनमें चन्द्रमाके समान प्रकाशित हो जाता है । हे कुरुनन्दन ! वहांसे देवता और पितरोंकी पूजा करनेवाला नियमधारी पुरुष हजार कीठी तीर्थमें जाकर स्नान करे, वहां स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल होता है और उसके कुलकाभी उद्धार हो जाता है ।

हे धर्मज्ञ । वहांसे सावधान होकर रुद्रकोटि तीर्थमें जाना चाहिये, जहां पहली मुनियोंका समूह शिवके दर्शनकी इच्छासे आया था, और उन्होंने वहां अत्यन्त प्रसन्न होकर हम पहली शिवजीका दर्शन करेंगे, हम पहली शिवजीका दर्शन करेंगे, ऐसा विवाद किया था, हे राजन् । हे भारत । उनलोगोंने ऐसाही विवाद किया था, हे राजन् । हे भारत । वे लोग ऐसाही विवाद करते हुए आगेकी चली, हे महाराज । तब योगेश्वर शिवजीनेभी महात्मा ऋषियोंके क्रोधकी अप्रकाश करनेके निमित्त सब ऋषियोंके आगे अपने अनेक स्वरूप बनाया और उनको सब ऋषि अलग-अलग देखकर कहने लगे कि शिवकी हमने पहली देखा । अनन्तर उन महात्मा मुनियोंकी परम भक्तिसे शिव प्रसन्न हुए और ऐसा वरदान दिया कि आजसे तुमलोगोंका धर्म बढ़ेगा । हे पुरुषव्याध । उस रुद्रकोटि तीर्थमें स्नान करनेसे पुरुष पवित्र होता है, और अश्वमेधका फल मिलता है, तथा कुलकाभी उद्धार होजाता है । हे राजेन्द्र । वहांसे लोकविख्यात सरस्वतीके सङ्गमको जाय, जहां चैत्र शुक्ल चतुर्दशीके दिन विष्णुकी उपासना करने के लिये ब्रह्मादिक देवता और तपस्वी ऋषिलोग आते हैं । हे महाराज । वहां स्नान करके वज्रत सुवर्णकी पाता है, और ब्रह्मलोकको जाता है और सब पापोंसे शुद्ध होजाता है । हे नरनाय । वहां ऋषियोंके यज्ञ समाप्त हुए थे, वहां रहनेसे हजार गौ दानका फल होता है ।

८२ अध्याय समाप्त ।

श्रीपुलस्त्यमुनिवोले, हे राजेन्द्र । वहांसे प्रशस्ति कुरुक्षेत्रको जाय, जहांके दर्शनहीसे सब प्राणी पापोंसे छूट जाते हैं, जो कोई सदा यही कहता रहे कि मैं कुरुक्षेत्रको जाऊंगा, वहां वसूंगा वह सब पापोंसे छूट जाता है,

वायुसे उड़ती हुई वहाकी धूलभी यदि पापीके शरीरसे लग जाय तो सब पापीसे कुड़ाकर परम गतिकी पहुँचाती है । सरस्वतीसे दक्षिण और दृषदतीसे उत्तर कुरुक्षेत्रमें जो पुरुष बसते हैं, वह सब स्वर्गवासी हैं । हे युधिष्ठिर ! वहा धीर पुरुष एक महीना रहै, जहा ब्रह्मादिक देवता, ऋषि, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, और सर्पलोग निवास करते हैं । हे भारत ! वहीँसे वे लोग महा पवित्र ब्रह्मक्षेत्रको जाते हैं । हे युधिष्ठिर ! जो मनसेभी कुरुक्षेत्रकी इच्छा करते हैं, वे सब पापीसे दूटकर ब्रह्मलोकको जाते हैं । हे कुरुनन्दन ! अद्यायुक्त कुरुक्षेत्रमें जानेसे पुरुषको अश्वमेध और राजसूयका फल होता है, वहाँ मचकुक् नामक यक्ष द्वारपालको नमस्कार करनेसे हजार गोदानका फल होता है, हे धर्मज्ञ ! वहासे अति उत्तम सतत नामक विष्णुके स्थानको जाय, हे राजेन्द्र ! वहा सदाही नारायण वास करते हैं, वहा तीनलोकके कर्त्ता विष्णुकी प्रणाम करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है, और विष्णुलोकभी प्राप्त होता है । हे भारत ! वहासे चलकर तीनलोक विख्यात परिप्लव नामक तीर्थमें जाय, वहाँ जानेसे अग्निष्टोम और अतिरात यज्ञका फल प्राप्त होता है । हे नरनाथ ! वहासे पृथिवीतीर्थमें जाकर हजार गोदानका फल लाभ करे । आगे तीर्थसे वी पुरुष सालूकिनी तीर्थमें जाय ! वहा दशअश्वमेधसे स्नान करनेसे दश अश्वमेधका फल प्राप्त होता है । आगे सर्पोंके उत्तम तीर्थ नागदेवीमें जाय वहा जानेसे अग्निष्टोमका फल और नागलोक मिलता है । हे धर्मज्ञ ! वहाँसे तरन्तु नामक द्वारपाल तीर्थको जाय वहा एक रात्रि रहनेसे हजार गोदानका फल होता है । वहाँसे पञ्चनद (पञ्चाव) देशमें जाकर कीटि तीर्थमें स्नान करै वहाँ अश्वमेधका फल होता है । अश्विनी

कुमार तीर्थमें जानेसे पुरुष रूपवान् होजाता है । वहाँसे उत्तम वाराह तीर्थमें जाय, जहा वाराह रूपधारी विष्णुने वास किया था । हे नरश्रेष्ठ ! वहा स्नान करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल होता है । हे राजेन्द्र ! वहाँसे जयन्तीमें जाकर सोमतीर्थका स्नान करे, वहाँ पुरुषकी राजसूय यज्ञका फल मिलता है, यहा हंस तीर्थमें स्नान करनेसे हजार गोदानका फल होता है । हे नराधिप ! आगे तीर्थसे वी पुरुष कृतशीच तीर्थमें जाय वहाँ जानेसे कमलको प्राप्त होता है, और पवित्र होजाता है, वहासे महात्मा शिव मुञ्जवट नामक स्थानको जाय, वहा एकरात रहनेसे गणेशका पद मिलता है, वहाँ विख्यात पक्षिनी तीर्थ है, उसमें स्नान करनेसे पुरुष सब कामोंको प्राप्त होता है । हे भरतर्षभ ! वही कुरुक्षेत्रका द्वार है आगे प्रदक्षिण करके वहाँ स्नान करे आगे पुष्कर सन्मिती तीर्थमें स्नान करे, वहाँ पितरों और देवतोंका तर्पण करे, वहाँ यमदम्निके पुत्र महात्मा परशुरामने भारी काम किया था, हे राजन् ! वहा जानेसे पुरुष कृतकृत्य होजाता है, और अश्वमेधका फल मिलता है । आगे तीर्थसे वी पुरुष सावधान होकर रामसरमें स्नान करै, हे राजेन्द्र ! तेजस्वी परशुरामने वहाँ शीघ्रता सहित क्षत्रियोंकी मारकर पाच तड़ाग बनाये हैं, हे पुरुषव्याघ्र ! यह बात विदित है, कि उन्हीं तड़ागोंको परशुरामने रुधिरसे भरकर अपने पितर और पूर्वं पितरोंका तर्पण किया था, तब उनके पितर उनसे प्रसन्न होकर बोले, हे राम ! हे महाभाग ! हे भार्गव ! हे विभो ! हे महातेजस्वी ! हम तुम्हारे इस पित्रभक्ति और पराक्रमसे बहुत प्रसन्न हैं । हे महाभाग ! तुम्हारा कल्याण हो, जो तुम्हारी इच्छा हो वरदान मांगो, हे राजेन्द्र ! अश्व चलानेवालोंमें अष्ट परशुरामने आकाशमें बड़े

इष्ट पितरोंके ऐसे वचन सुनकर हाथजोड़कर कहा, यदि आपलोग मुझसे प्रसन्न हुए हैं और मेरे ऊपर कृपा करना चाहते हैं, तो मैं आपकी प्रसन्नता चाहता हूँ और पुनः आपलोगोंके तर्पण करनेकी इच्छा रखता हूँ और यहभी वरदान मांगता हूँ कि, मैंने जो क्रोधमें भरकर चतुर्विधोंका नाश किया है, आप लोगोंकी कृपासे उस पापसे छूट जाऊँ और मेरे यह तालाव जगत विख्यात तीर्थ होजाय, परशुरामके ऐसे उत्तम वचन सुनकर पितरलोग परम प्रसन्न होकर आनन्दके सञ्चित बोले, हमारे आशीर्वादसे तुम्हारा तप बढे और तुमने क्रोधमें भरकर जो चतुर्विधोंका नाश किया है, तुम उस पापसे छूट गये क्योंकि वे लोग अपने कर्मसे मरे हैं, और तुम्हारे यह तालाव निःसन्देह तीर्थ होजायेंगे। जो कोई तुम्हारे इन तीर्थमें स्नान करके अपने पितरोंका तर्पण करेगा उसको पितर लोग प्रसन्न होकर जगत्में दुर्लभ कामनाको देंगे और सनातन स्वर्गमें पहुँचावेंगे। पितर लोग इस प्रकार परशुरामकी वरदान देकर रामसे वार्त्तालापकर वहाँ अन्तर्धान होगये। हे राजेन्द्र ! महात्मा भृगुवंशी परशुरामके तीर्थमें इस प्रकार स्नान करके ब्रह्मचारी और व्रतधारी हो परशुरामकी पूजाकर वृद्धतः सुवर्णको प्राप्त करता है। हे कुरुह ! वहाँसे वंशमूलक तीर्थमें जाय, वहाँ स्नान करनेसे वंशका उद्धार होता है, वहाँसे यशोधन तीर्थमें जाय, हे भरतसत्तम ! उसमें स्नान करनेसे निःसन्देहही शरीर शुद्ध हो जाता है। शरीर शुद्ध होनेसे उत्तम और शुभ लोकोंको प्राप्ति होती है। हे धर्मज्ञ ! वहाँसे तीनलोक विख्यात लोकोद्धार तीर्थमें जाय, जहाँ पहली जन्मकृता विष्णुने लोकोंकी धारण किया है। हे राजन् ! उस उत्तम तीर्थमें स्नान करनेसे पुरुष अपने लोगोंका उद्धार करता है, जो मन स्थिर करके त्रैतीर्थमें स्नान करे,

वहाँ देवता और पितरोंकी पूजा करनेसे उत्तम लक्ष्मी मिलती है; आगे ब्रह्मचारी हो मनको स्थिर कर, कपिला तीर्थमें जाय, वहाँ स्नान करके पितर और देवतोंकी पूजा करे तो सहस्र कपिला गौके दानोंका फल मिलता है, फिर मन स्थिर करके पितर और देवतोंकी पूजा करे इससे अग्निष्टोम यज्ञका फल और सूर्य लोक मिलता है। आगे गोभवन तीर्थमें जाकर तीर्थसेवो पुरुष क्रमसे स्नान करे, तो हजार गोदानका फल पाता है। हे कुरुनन्दन ! वहाँसे तीर्थसेवो पुरुष शाकम्भरी तीर्थको जाय, वहाँ देवीके स्थानमें स्नान करनेसे उत्तम रूप मिलता है। हे राजेन्द्र ! वहाँसे द्वारपाल मरुतुक स्थानकी जाय, यह तीर्थ सरस्वतीमें महात्मा यक्षराजका स्थान है। हे राजन् ! उसमें स्नान करनेसे पुरुषको अग्निष्टोम यज्ञका फल होता है, हे राजेन्द्र ! वहाँसे उत्तम पुरुष (ब्रह्मावर्त्त) विठुर तीर्थको जाय, वहाँ स्नान करनेसे पुरुषकी ब्रह्मलोक मिलता है, हे राजेन्द्र ! वहाँसे उत्तम सुतीर्थककी जाय, वहाँपर सदाही पितर और देवता निवास करते हैं। पितर और देवतोंका पूजक पुरुष वहाँ स्नान करे, तो अश्वमेधका फल और पितरलोक मिलता है। हे राजेन्द्र ! अश्वमेधके बीचमें स्नान करके काशीश्वर तीर्थमें स्नान करे, तो सब दुःखोंसे छूटकर ब्रह्मलोक को जाता है, हे राजन् ! वहीं मातृतीर्थमें स्नान करना चाहिये। उसमें स्नान करनेसे सन्तान और भारी धन बढ़ता है ! आगे नियमधारी जिताहारी पुरुष शीत वनमें जाय, हे महाराज ! उसमें महा तीर्थ है, जो अन्य पुरुषोंको दुर्लभ है, हे नरनाथ ! वह जाते हुएही देखने मात्रसे पुरुषको पवित्र कर देता है। हे भारत ! उसमें वार धोनेसे पुरुष पवित्र होता है। हे महाराज ! वहाँ जो तीर्थ है, उसका नाम स्वाविष्णोमाय

है उसमें विहान् तीर्थपरायण सुनिलोग स्नान करके परम प्रसन्न होते हैं। हे राजेन्द्र ! पवित्र आत्मावाले सुनीश्वर उस तीर्थमें प्रारण्यामोंके द्वारा अपने रुजोंको दूर करके पवित्र हो मोक्ष पाते हैं, हे पुरुषसिंह उसही स्थानमें दशाश्वमेध नामक तीर्थ है, उसमें स्नान करनेसे पुरुष मोक्ष पाते हैं। हे राजेन्द्र ! वहांसे चलकर विख्यात मानस तीर्थमें जाय, जहां व्याधका सर लगनेसे तैरते हुए हरिन मनुष्य होगये थे उस तीर्थमें ब्रह्मचारी और सावधान चित्त होकर स्नान करनेसे पुरुष सब पापोंसे छुटकर स्वर्गमें जाता है, हे पृथ्वीनाथ ! मानस तीर्थसे एककोस पूर्वकी ओर सिद्ध सेवित आपिंगा नाम नदी है, वहां जाकर जो पुरुष देवता और पितरोंका आद्र करके सबई खाता है, उसे बहुत फल होता है, वहां एक ब्राह्मणको भोजन करानेसे करोड़ ब्राह्मणोंका फल होता है, वहां स्नान देवता और पितरोंकी पूजा करनेसे और एक रात रहनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल होता है। हे भारत ! वहांसे चलकर ब्रह्मादुम्बर नामक ब्रह्माके उत्तम स्थानपर जाय, हे राजेन्द्र ! हे नरनाथ ! वहां सप्तऋषियोंके और महात्मा कपिलके कुण्डमें स्नान करके पवित्र हो मनको स्थिरकर ब्रह्माके दर्शन करने चाहिये, उनका दर्शन करनेसे सब पाप छुटकर ब्रह्मलोक मिलता है। हे राजेन्द्र ! वहांसे जाकर दुर्लभ कपिल कुण्डमें स्नान करे, तो सब पाप जलकर अन्तर्धान होजाते हैं। हे राजेन्द्र ! वहांसे चलकर लोक विख्यात शरक तीर्थ पर जाय, वहां कृष्णपक्षकी चतुर्दशीमें शिवका दर्शन करनेसे सब कामोंकी प्राप्ति करके स्वर्गको जाता है। हे कुरुनेन्दन ! स्वर्गतीर्थमें तीन करोड़ तीर्थ इकट्ठे हैं, वहां रुद्रकोटि कुएं और तालाबोंमें स्नान करना चाहिये। हे भरत-सत्तम ! वहीं इलासद नामक तीर्थ है, वहां

स्नान, पितर और देवतोंकी पूजाकरके पुरुषकी दुर्गति नहीं होती और वाजपेय यज्ञका फल मिलता है। हे पृथ्वीनाथ ! किम्हान और किञ्जुष्य नामक तीर्थोंमें स्नान करनेसे अनन्त जय और दानका फल मिलता है। हे भारत ! जितेन्द्रिय श्रद्धावान पुरुष को स्पर्श करके कलशी तीर्थमें स्नान करे तो अग्निष्टोम यज्ञका फल पाता है। हे भरतश्रेष्ठ ! शरक तीर्थके पूर्वकी ओर महात्मा नारदका तीर्थ है, जिसका प्रसिद्ध नाम अम्बाजम्ब है, उस तीर्थमें स्नान करके प्राण छोड़नेसे नारदकी आज्ञासे पुरुष उत्तम लोकोंको जाता है, शुकपक्ष की दशमीको पुण्डरीक तीर्थमें जाकर स्नान करनेसे पुण्डरीक यज्ञका फल मिलता है। हे महाराज ! यहांसे त्रिविष्टप नामक लोक विख्यात तीर्थ को जाय, वहां पाप नाशिनी तारिणी नामक प्रसिद्ध नदी बहती है, उसमें स्नान करके शूलधारी शिवकी पूजा करनेसे सब पापोंसे छूट पुरुष-मोक्षको प्राप्त होता है। हे राजेन्द्र ! वहांसे उत्तम फलको वनमें जाय, वहां सदाही देवता लोग रहते हैं, वे लोक सहस्रों वर्षतक महा तप करते हैं, वहां दृष्यवती नदीमें स्नान करके देवता और पितरोंकी पूजा करनेसे अग्निष्टोम और अतिरात यज्ञका फल मिलता है, हे भरतसत्तम ! यह सब देवतोंका तीर्थ है। आगे पाणिखात तीर्थमें स्नान करके पितर और देवतोंकी पूजा करनेसे पुरुषको हजार गो दानका फल मिलता है। हे भारत ! वहां स्नान करनेसे अग्निष्टोम, अतिरात राजसूय यज्ञोंका फल और ऋषिलोक मिलता है। हे राजेन्द्र ! वहांसे उत्तम मिश्रक तीर्थमें जाय। हे राजशार्दूल ! हमने सुना है, कि महात्मा व्यामने ब्राह्मणोंके निमन उस तीर्थमें सब तीर्थोंको मिला दिया है, जिस पुरुषने मिश्रकमें स्नान किया, मानो उसने सब तीर्थमें स्नान कर लिया, वहांसे चलकर

नियमधारी जिताहारी पुरुष व्यासके वनमें जाय, वहाँ मनोजव तीर्थमें स्नान करनेसे हजार गोदानका फल होता है। आगे पवित्र पुरुष ध्रुवटी तीर्थमें जाकर देवी तीर्थमें स्नान करे, वहाँ देवता और पित्रोंकी पूजा करनेसे देवीकी आज्ञासे हजार गोदानके फलकी पाता है। हे भारत ! जहाँ दृष्यती और कोशिकी के सङ्गममें आहारको जीतकर स्नान करता है, वह सब पापोंसे छूट जाता है आगे व्यास स्थली नामक तीर्थमें जाय जहाँ बृद्धिमान यासन पुत्रशोकसे व्याकुल होकर शरीर-छाड़नेकी इच्छा करी थी, और देवताोंने पुनः उठाया था, हे राजेन्द्र ! उस स्थानमें जानेसे हजार गोदानका फल होता है। आगे त्रिलोचन नामक कुण्डपर जाकर तिल दान करनेसे सब ऋणासे छूट कर साक्षका प्राप्त करता है। हे महाराज ! वेदी तीर्थमें स्नान करनेसे पुरुषको हजार गोदानका फल मिलता है। हे पुरुषसिंह ! आगे हय और सुदिन नाम दो तीर्थ लोक विख्यात है, उनमें स्नान करनेसे सूर्यलोक मिलता है, आगे मृगधूम नामक लोक विख्यात तीर्थमें जाय। हे राजन् ! वहाँ गङ्गासे स्नान करनेसे और शिवकी पूजा करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल होता है। देवीके तीर्थमें स्नान करनेसे पुरुषको हजार गोदानका फल मिलता है, वहाँसे तीनों लोकमें विख्यात वामनक तीर्थमें जाय, वहाँ विष्णुपदमें स्नान करके जो पुरुष वामनकी पूजा करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो। विष्णु लोकको जाता है, कुलम्पन नामक तीर्थमें स्नान करनेसे कुल पवित्र होता है। जहाँ मरुतीके पवन तडागमें स्नान करनेसे विष्णुलोक मिलता है। देवताके तीर्थमें स्नान करनेसे इन्द्रकी पूजा करनेसे देवताके प्रतापसे लोक मिलता है। हे नरवरद्वेष्ट ! हे नरकादिक गालिहोव और शालि सूर्य

नामक तीर्थोंमें विधिपूर्वक स्नान करनेसे गोदानका फल होता है। हे नरद्वेष्ट ! हे भरत-सत्तम सरस्वतीके श्रीकृष्ण नामक तीर्थ में स्नान करनेसे पुरुषको अग्निहोत्र यज्ञका फल होता है। हे कौरव ! वहाँ नैमिषारण्यकी जाय है राजेन्द्र ! वहाँ नैमिषारण्यवासी तपस्वी लोग तीर्थयात्राके अभिप्रायसे पहले कुरुक्षेत्रको जाते थे, हे भरत सत्तम ! जिस श्रीकृष्णमें ऋषियोंको बड़ा सन्तोष प्राप्त होता है, उस कृष्णमें स्नान करनेसे मनुष्यको अग्निष्टोम यज्ञका फल होता है, वहाँसे कन्या तीर्थ पर जाना चाहिये, कन्या तीर्थमें स्नान करनेसे दो हजार गोदानका फल मिलता है। वहाँसे ब्रह्माके तीर्थ पर जाय, वरदाणावरमें स्नान करके मनुष्य ब्राह्मण हो जाता है, शुद्धात्मा ब्राह्मण परम-गतिको पाता है, हे नरद्वेष्ट ! वहाँसे सोम तीर्थमें जाय, साम तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्य चन्द्र-लोकमें जाता है। हे नरपाल ! वहाँसे सप्त-सारस्वत तीर्थमें जाय, जहाँ जगत् प्रसिद्ध महर्षि मङ्गण नामक ऋषि रहते हैं,। पहले समयमें मङ्गणक ऋषिके हाथमें कुशका काटा लगनेसे शाकका रस निकला था, वह ऋषि शाकरसको देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ और नाचने लगा, उसे नाचता देखकर चर और अचर जी कुछ वहाँपर थे सब नाचने लगे, तब ब्रह्मादिक देवताने महादेवसे विनती करी कि महाराज आप ऐसा उपाय कीजिये जिससे वह ऋषि न नाच, महादेव उस नाचते हुए ऋषिके पास आये और देवताकी हितकामनासे ऋषिसे बोले, हे धर्मज्ञ महर्षि ! तुम किसवास्ते नाचते हो ? कौन सा तुमको आनन्द मिला है ? ऋषि बोले, धर्ममार्गमें स्थित है ब्राह्मणद्वेष्ट ! तुम क्या नहीं देखते हो कि मेरे हाथसे शाकका रस निकला जिसको देखकर मैं बड़े आनन्दके साथ नाच रहा हूँ, हसकर महादेव उस ऋषिसे बोले, हे ब्राह्मण ! मैं तो इसे देखकर

कुछ आश्चर्य नहीं मानता, हे नरश्रेष्ठ । ऐसा कहेको बुद्धिमान महादेवने अपनी अंगुलीसे अपने अंगूठेको काटा अङ्गूठेमेंसे वर्षाके समान रूपेण भस्म निकली, उसको देखकर वह ब्राह्मण वहुत लज्जित हुआ और पैरोंमें गिरा, कहने लगा मैं भस्मसे उत्तम किसीको नहीं जानता, देव और दानवोंकी तुम्ही गति हो, हे शूलधारी । तुम्ही इस चराचर जगत्को प्रलयमें नाश करते हो, तुमको देवता लोगभी नहीं जान सकते हैं मेरी क्या कथा है । हे पाप रहित । सब ब्रह्मादिक देवता तुमहींको देखते हैं, हे लोकेश । तुमहीं सब लोकोंके कर्मा करानेवाले और सर्वरूप हो । तुम्हारे ही आश्रयमें सब देवता लोग भय रहित होकर आनन्द करते हैं, ऐसे स्तुति करके ऋषि यज्ञादेवसे बोले, हे महादेव । तुम्हारी कृपामें मेरा तप नष्ट न हो । ब्रह्मर्षिके वचन सुन महादेव प्रसन्न होकर बोले, हे ब्राह्मण । हमारे प्रसादसे तुम्हारा तप सहस्र गुणा बढ़े, हे महासुने । हम आता तुम्हारे सहित इस आश्रममें वास करेंगे । तुम्हारे पुरुष सप्त सारस्वत तीर्थमें स्नान करके भी प्रजा करेंगे, उनको इसलोक और परलोकमें कोई वस्तु दुर्लभ न होगी, वे लोग निःसन्देह सरस्वतीके लोकमें जायेंगे । ऐसा कहकर महादेव वही अन्तर्धान हो गये । हे भारत । वहाँसे तीनलोक विख्यात औपमण तीर्थमें जाय जहाँ शत्रुके हितकी इच्छामें ब्रह्मादिक देवता तपस्वी ऋषि और भगवान् कार्तिकेय नित्य नित्य संघामें निवास करते हैं । हे पुरुष-व्याघ्र । वहाँसे नव पाप नाशन कपालमोचन तीर्थमें जाय वहाँ स्नान करनेसे सब पाप कूट जाते हैं, हे एरुपसिंह । वहाँसे अग्नि तीर्थमें जाय, वहाँ स्नान करनेसे अग्निलोक मिलता है, और कुलका उदार होता है । हे भरतसन्तम । शर्मिष्ठा तीर्थ है, उसमें स्नान

करनेसे पुरुष ब्राह्मण ही जाता है, ब्राह्मण यहाँ जन्म लेकर पवित्र हो मनकी स्थिरता उसमें स्नान करनेसे ब्रह्मलोकमें जाता है, श्री निःसन्देह सात पुरुषोंकी पवित्र करता है, राजेन्द्र । हे नरपाल । वहाँसे तीनलोक विख्यात कार्तिकेयके प्रथूदक तीर्थमें जाय वहाँ नचाकर पितर और देवताओंकी पूजा क पुरुष या स्त्रीने जानि या विना जानि मनुष्य बुद्धि जो कुछ पाप किया हो वह सब वहाँ स्नान करनेहीसे नष्ट हो जाता है हे भारत । उस स्नान करनेमें अश्वमेध यज्ञका फल और स्वर्ग लोक मिलता है । ऋषियोंने कुरुक्षेत्रकी पवित्र कहा है, कुरुक्षेत्रसे सरस्वती सरस्वतीसे तीर्थ और तीर्थसे भी प्रथूदक तीर्थ पवित्र है जो जप करता हुआ उत्तम प्रथूदकतीर्थ प्राण छोड़ता है वह मरनेके देखे फिर नहीं भोगता । हे राजन् । सन्त कुमार शत्रु और महात्मा व्यासने ऐसा सब पापोंसे कूट पुरुष नियमधारी पुरुष प्रथूदक है राजेन्द्र । वहाँसे कुरुक्षेत्र श्रेष्ठ । प्रथूदक वहाँ सदाही देवता ही है, वहाँ बुद्धिकी वटाता सहस्रों वर्षतक महा है नरश्रेष्ठ । महात्मा इती नदीमें स्नान करके प्रथूदक तीर्थमें स्नान करनेसे पापी पुरुष भी स्वर्गकी चले जाते हैं, हे राजन् । हे भरत सन्तम ? वही मधुसूत नामक तीर्थ है, उसमें स्नान करनेसे हजार गौका फल होता है । हे राजेन्द्र । वहाँसे पवित्र लोग विख्यात सरस्वती में लाय, वहाँ तीन दिन ब्रह्महत्यासे कूट जाता है, पितरात यज्ञका फल मिलता है वहाँ स्नान करनेसे पुरुष पवित्र होते हैं । हे कुरुक्षेत्र । वहाँ अक्षकोल नामक तीर्थ है, उन तीर्थको ब्राह्मणोंने हितकी इच्छामें दर्भीने बनाया था, वहाँ व्रत और उपनयन

अथवा उपवास करनेसे कृपा और मन्त्रोंसे युक्त होनेसे पुरुष ब्राह्मण हो जाता है, और जो मन्त्र और कृपासे हीन पुरुषभी हो वे भी स्नान करनेसे चीर्णव्रती और विद्वान् हो जाते हैं, यह बड़े आदमियोंका देखा हुआ है, हे नरयेष्ट । उस तीर्थमें दभीनि चारों समुद्र मिला दिये हैं, वहा स्नान करनेसे पुरुषकी दुर्गति नहीं होती और उस पुरुषकी चार हजार गोदानका फल होता है । हे धर्मज्ञ । वहासे सतसहस्र नामक तीर्थको जाय वहाँ लोक विख्यात सत और सहस्रक नामक दो तीर्थ हैं, दोनोंहीमें स्नान करनेसे हजार गोदानका फल होता है, वहा जा कुछ दान वा व्रत करते हैं, वह हजार गुणी होजाते हैं । हे राजेन्द्र । वहामें उत्तम, रेसाका तीर्थमें जाय, वहा पितर और देवताकी पूजा करनेवाला पुरुष स्नान करे तो सब पापोंसे शुद्ध होकर अग्निष्टोम यज्ञका फल प्राप्त होता है । आगे क्रीध और और इन्द्रियोंकी जीतकर विमोचन तीर्थका स्पर्श करे वहा स्नान करनेसे दान लेनेके सब पाप छुट जाते हैं । आगे ब्रह्म चारों ओर जितेन्द्रिय होकर पञ्चवटी तीर्थमें जाय, वहा जानेसे वज्रत पुण्य होता है, और स्वर्गलोक मिलता है, जहा साक्षात् योगेश्वर वृषवाहन शिव निवास करते हैं । उनकी पूजा करनेसे भीर वहां जानेहोसे पुरुष सिद्ध हो जाता है । आगे अपने तेजसे प्रकाशित तेजसे और शरणातीर्थमें जाय, जहां ब्रह्मादिक देवता और तपोधन मुनियोंने मिलकर देवतोके ज्ञापति स्वामकार्तिकका अभिषेक किया था, हे कुरुकुलयेष्ट । तेजस तीर्थसे पूर्वकी और उत्तर तीर्थ है, उसमें ब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय होकर स्नान करनेसे सब पापोंसे शुद्ध हो पुरुष स्वर्गलोक को जाता है । आगे नियमधारी और नियमधारी होकर स्वर्गहार तीर्थमें जाय, वहां स्वर्गलोक और ब्रह्मलोकमें जाता है,

हे नरनाथ । वहासे तीर्थसेवी पुरुष अनरक तीर्थ को जाय, हे राजन् । वहा स्नान करनेसे पुरुष दुर्गतिमें नहीं पड़ता । हे राजन् । वहा साक्षात् ब्रह्मा नारायणादि सब देवतोके सहित निवास करते हैं । हे राजेन्द्र । हे कुरुकुलयेष्ट । वहाँ पार्वतीका स्थान है, उनके दर्शन करनेसे पुरुष दुर्गतिमें नहीं पड़ता है । हे राजन् । वहाँ साक्षात् पार्वतीनाथ शिवके दर्शन करनेसे पुरुष सब पापोंसे छूट जाता है । हे शत्रु नाशन । वहासे जाकर पद्मनाभ नारायणके दर्शन करे, उनके दर्शन करनेसे पुरुष प्रकाशमान होकर विशुलोकको जाता है । आगे सब देवतोके तीर्थमें स्नान करे, हे पुरुषसिंह । ऐसा करनेसे पुरुष सब पापोंसे छूट चन्द्रमाके समान प्रकाशित होता है । हे नरनाथ । तीर्थसेवी पुरुष स्वस्तिपुरको जाय, वहा प्रदक्षिणा करनेसे हजार गोदान का फल होता है । हे राजन् । आगे पावन तीर्थमें जाय, वहा जाकर पितर और देवतोकी पूजा करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल होता है । हे भरतर्षभ, वहाँ गङ्गाहृद नामका कुवा है, हे पृथ्वीनाथ । उसमें तीन करोड़ तीर्थ पड़े हैं । हे राजन् । उससे स्नान करनेसे पुरुषका स्वर्गलोक प्राप्त होता है । हे राजन् । आगे नाद्योंमें स्नान आर शिवकी पूजा करनेसे गणेशका पद मिलता है, और कुलका उधार होता है, आगे तीन लोकमें विख्यात स्याणुकटङ्गको जाय, वहा स्नान करनेसे और एक रात्री रहनेमें शिवलोक मिलता है । आगे बदरीपालन तीर्थमें जाय, वहा वशिष्ठमुनिका आश्रम है, वहा तीन दिन व्रत करके बैरखाना चाहिये, और जो पुरुष बारह वर्ष निरन्तर बैरही खाता रहै उसका उतनाही फल होता है, जितना उस तीर्थमें तीन दिन व्रत करनेसे, वहा रहकर जो सत्य वीर और नियमधारी होय तो ब्रह्मलोक मिलता है । हे राजेन्द्र । वहासे

तीनलोक विख्यात तेजराशि महात्मा सूर्यके स्थान पराजयकी जाय वहा स्नान करके सूर्यकी पूजा करनेसे पुरुष सूर्यलोकको जाता है, और अपने कुलका उद्धार करता है, हे नरनाथ ! तीर्थसेवी पुरुष आगे जाकर सोम तीर्थमें स्नान करे, उसमें स्नान करनेसे पुरुषकी निसन्देह चन्द्रलोक मिलना है। हे धर्मज्ञ ! वहासे दधीच मुनिके आश्रमपर जाय हे राजन्। यह तीर्थ तीनलोकीमें विख्यात और परम पवित्र है, इसी तीर्थमें स्नान करनेसे तपस्याके समुद्र अङ्गिरामुनि विद्वान् होगये थे, उस तीर्थमें स्नान करनेसे पुरुषको अश्वमेध यज्ञका फल होता है, और निसन्देह सारस्वत गति प्राप्ते होती है। वहासे नियमधारी ब्रह्मचारी जिताहारी पुरुष कन्या तीर्थमें जाकर तीन दिन व्रत करे, ऐसा करनेसे दिव्य सौ कन्या और स्वर्गलोक मिलता है। हे धर्मज्ञ ! वहासे सन्निहिती तीर्थको जाय, जहा बृहत पुण्यवान् ब्रह्मादिक देवता और तपोधन मुनि महीने महीने आते है, चन्द्रग्रहणमें कुरुक्षेत्रमें स्नान करनेसे सौ अश्वमेध का फल होता है, और सब इच्छा पूर्ण होती है। हे नरनाथ ! जितने पृथ्वी और आकाशमें तीर्थ है, वे सब नदी, कुण्ड, तड़ाग, झरने, तलैया और वावड़ी तथा अन्य तीर्थभी निसन्देह अमावसके दिन प्रति मास कुरुक्षेत्रमें आते है, इसी निमित्त कुरुक्षेत्रका दूसरा नाम सन्निहिती है, पुरुष उसमें स्नानकर और जल पो ब्रह्मलोकमें जाता है ! सूर्यग्रहणकी अमावसमें जो की कोई वहा श्राद्ध करता है, उसका फल सुनो ; उत्तम रीतिसे करी ऊँई हजार अश्वमेध यज्ञका फल उस पुरुषकी केवल स्नान करनेसे मिलता है। पुरुष वा स्त्रीने जा कुछ पाप किया हो सो निसन्देह स्नान करनेसे नष्ट होजाता है। और पद्मके रङ्गवाले विमान पर बैठकर ब्रह्मजाता है। आगे द्वारपाल मचकुन्द

नामक यज्ञ को प्रणाम करके कांठि तीर्थमें स्नान करनेसे बृहत सुवर्ण मिलता है। हे भरत सत्तम ! वही गङ्गाङ्गद नामक तीर्थ है, उसमें धर्म जाननेवाला ब्रह्मचारी पुरुष सावधान होकर स्नान करनेसे पुरुषको राजसूय और अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। पृथ्वीमें नैमिषारण्य आकाशमें पुष्कर और कुरुक्षेत्र तीनों लोकमें श्रेष्ठ है। कुरुक्षेत्रकी धूल को वायुसे उड़ती है, उससेमी महापापी पुरुष मोक्ष पा सकता है सरस्वतीके दक्षिण और दृषदतीके उत्तर कुरुक्षेत्रमें जो पुरुष निवास करते है, वे स्वर्गवासी है, जो पुरुष एकवारभी कहै कि मैं कुरुक्षेत्रको जाजंगा और वहा निवास करूंगा वह सब पापोंसे कूट जाता है। कुरुक्षेत्र पवित्र ऋषियोंसे सेवित और ब्रह्मवेदी है, उसमें जो पुरुष रहते है वे सोचने योग्य नहीं है। तरलुक, परशुरामके तड़ाग और मचकुन्द तीर्थका जो बीच है, उसी पवित्र भूमिका नाम कुरुक्षेत्र है, इसीको समस्तपञ्चकभी कहते है। यह ब्रह्माकी उत्तर वेदी है।

८६ अध्याय समाप्त ।

श्रीपुलस्त्य मुनि बोले, हे महाराज ! वहासे उत्तम तीर्थपर जाय, जहा महाभाग धर्मने उग्र तपकी किया था और उन्हाहीने इस पवित्र तीर्थको अपने नामसे विख्यात किया है, वहा स्नान करनेसे धर्मवान् और सावधान पुरुष अपने सात कुलके पवित्र करता है। हे राजेन्द्र ! वहासे ज्ञानपावन तीर्थमें जाय, वहां जानेसे अग्निष्टोम यज्ञका कल और मुनिलोक मिलता है, हे राजन् ! वहासे सौगन्धिक वनकी जाय वहा ब्रह्मादिक देवता, तपोधन ऋषि, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, किन्नर, और सर्प लोग निवास करते है, पुरुष वहां प्रवेश करनेसे सब पापोंसे कूट जाता है, हे राजन् ! वहासे नदियोंमें श्रेष्ठ पद्मना देवी नाम पवित्र सरस्वतीमें स्नान करे, वह अश्व

एक विलमे निकलता है, वहां पितर और देव-
 तोंकी पूजा करने से अश्वमेधका फल मिलता
 है, वहीं अत्यन्त दुर्लभ ईशानाध्युषित नामक
 तीर्थ वल्मीकसे कः सम्पा (यज्ञमें एक नांपनेके
 लिये दण्ड बनाया जाता है, उसकी सम्पा कहते
 हैं) की दूरीपर है, जानसे पुरुष की हजार
 कपिला दान और अश्वमेधका फल मिलता है।
 हे पुरुषव्याघ्र ! हमने यह भविष्य पुराणादिक
 पुस्तकोंमें सुना है, कि इस तीर्थमें जाकर
 सुगन्धा, शतकुम्भा और पञ्च यज्ञा आदि तीर्थोंमें
 जानसे स्वर्ग लोक मिलता है, हे राजन् ! वहीं
 त्रिशूलखात नामक तीर्थ है, उसमें स्नान करके
 देवता और पितरोंकी पूजा करनेसे मरनेके
 पश्चात् निःसन्देह गणेशका पद मिलता है। हे
 राजेन्द्र ! वहांसे उत्तम तीनलोकोंमें विख्यात
 उत्तम शाकम्भरी देवीके स्थानपर जाय, जहां
 दिव्य हजार वर्षतक व्रतधारिणी भगवतीने
 एक एक महीनेमें शाक खाके तप किया था।
 हे भारत ! देवीकी भक्तिसे पूरित तपोधन
 मुनीश्वर वहां आये, भगवतीने उसी शाकसे
 उनकाभी सत्कार किया, उसी दिनसे उस
 देवीका नाम शाकम्भरी हुआ। शाकम्भरी
 देवीमें जाकर पुरुष पवित्र सावधान और ब्रह्म-
 चारी होके तीन दिन शाक खाय, जो पुरुष
 गारह वर्षतक शाक खाकर रहै उसका जो
 फल होता है, वही फल वहां तीन रोज शाक
 खानसे होता है। हे भारत ! आगे तीनलोकमें
 विख्यात स्वर्ण तीर्थमें जाय, वहां पहले विष्णु
 व शिवकी प्रसन्न करनेके निमित्त तप किया था
 और देवदुर्लभ वरदानों को पाया था। हे
 भारत ! शिवने प्रसन्न होकर विष्णुसे कहा
 था कि तुम सबलोकोंके प्यारे होकर कृष्णावतार
 धारण करोगे। इससे कुछ सन्देह नहीं कि
 अब जगत् तुमहीको प्रधान मानेगा। हे राजेन्द्र !
 वहां जाकर शिवकी पूजा करनेसे अश्वमेधका
 फल और गणेशका पद मिलता है, हे राजेन्द्र !

आगे धूमावतीमें जाकर तीन दिन व्रत करे,
 ऐसा करनेसे निःसन्देह मनोवाञ्छा सिद्ध होती
 है। हे धर्माज्ञ ! देवीके दहनी और रथावर्त
 (चक्र) तीर्थ है, वहां जितेन्द्री और अंदावान
 होकर उस चक्रके उपर चढ़े तो परम गतिकी
 प्राप्ति होता है। हे भरतकुलसिंह ! उसकी
 प्रदक्षिणा करके सब पाप नाश करनेवाले धारा
 तीर्थमें जाय, वहां बुद्धिमान पुरुष स्नान करे।
 हे पुरुषसिंह ! हे नरनाथ ! ऐसा करनेसे वह
 पुरुष सोचसे रहित होजाता है। हे राजेन्द्र !
 वहांसे महापर्वतको प्रणाम करके जो स्वर्ग-
 द्वारके समान गङ्गाद्वार नामक तीर्थ है, वहां
 जाय, वहां सावधान होकर कीर्ति तीर्थमें
 स्नान करनेसे पुण्डरीक यज्ञका फल मिलता
 है, और कुलका उद्धार होता है, वहां एक रात
 रहनेसे हजार गोदानका फल होता है। आगे
 सप्त गङ्गा त्रिगङ्गा और शक्रावर्त तीर्थमें जाय,
 उन पवित्र तीर्थोंमें विधिवत पितर और देव-
 तोंकी पूजा करनेसे उत्तम लोक मिलते हैं।
 वहांसे चलकर कनखलमें स्नान करे वहां तीन
 दिन रहनेसे पुरुषकी अश्वमेधका फल और
 स्वर्गलोक मिलता है। हे नरनाथ ! वहांसे
 तीर्थसेवो पुरुष कपिला वटकी जाय, वहां एक-
 रात रहनेसे हजार गोदानका फल होता है।
 हे राजेन्द्र ! आगे महात्मा नागराज कपिलके
 तीर्थमें जाय, यह तीर्थ तीनों लोकमें विख्यात
 है, हे नरनाथ ! हे कुर्येष्ठ ! उस नाग तीर्थमें
 स्नान करनेसे हजार कपिला गोदानका फल
 होता है। आगे शान्तनुके उत्तम तीर्थ लालन
 तीर्थमें जाय, हे राजन् ! वहां स्नान करनेसे
 पुरुषकी दुर्गति नहीं होती। जा पुरुष गङ्गा
 और यमुनाके सङ्गममें स्नान करता है उसकी
 दश अश्वमेधका फल होता है और कुलका
 उद्धार हो जाता है। हे राजेन्द्र ! वहांसे लोक-
 विख्यात सुगन्ध तीर्थमें जाय, वहां जानसे
 पुरुष सब पापोंसे कूट ब्रह्मलोकको जाता

है। हे नरनाथ। वहासे तीर्थसेवी पुरुष रुद्रावर्त तीर्थको जाय वहां स्नान करनेसे स्वर्ग लोक मिलता है। हे नरनाथ। आगे सरस्वती और गङ्गाके सङ्गममें जाय, वहासे आगे चल कर विधि पूर्वक भद्रकर्णेश्वर महादेवको पूजा करे, ऐसा करनेसे पुरुषको दुर्गति नहीं होतो और स्वर्गलोक मिलता है। हे राजेन्द्र। आगे तीर्थसेवी पुरुष कुब्जाम्नादेशमें जाय, वहा जानेसे हजार गोदानका फल और स्वर्गलोक मिलता है। हे नरनाथ। आगे तीर्थसेवी पुरुष अस्मन्तीवट तीर्थमें जाय, वहा ब्रह्मचारी होकर समुद्रके जलका स्पर्श करे वहा तीन रात रहनेसे अश्वमेध यज्ञका फल और सहस्र गोदानका फल मिलता है, और कुलका उद्धार होजाता है। आगे ब्रह्मचारी और सावधान होकर ब्रह्मावर्त तीर्थको जाय, वहा जानेसे अश्वमेधका फल और चन्द्रलोक मिलता है, वहासे उस स्थान पर जाय जहासे यमुना निकली है, और यमुनाके जलसे स्पर्श करनेसे अश्वमेधका फल और स्वर्गलोक मिलता है। आगे तीनलोक पूजित दवीसंकमण तीर्थमें जानेसे अश्वमेधका फल और स्वर्गलोक मिलता है, वहांसे उस स्थानमें जाय, जहासे सिन्धु नदी निकली है, वहा पर सिद्ध और गन्धर्व रहते है, वहा पाच रात रहनेसे वज्रत सुवर्ण मिलता है। आगे पुरुष परम दुर्लभ वेदो तीर्थमें जाय, वहा जानेसे अश्वमेधका फल और स्वर्गलोक मिलता है। वहासे ऋषिकुण्डमें जाय, वहा वशिष्ठमुनिका दर्शन कर उस वशिष्ठके आश्रमसे चले कर ब्राह्मणलोग ऋषिकुण्डमें जाय वहा स्नान करनेसे पुरुषके सब पाप कुट जाते है। वहा पितर और देवताको पूजा करनेसे ऋषिलोक मिलता है, हे नरनाथ। यदि शाक खाकर वहां एक महीना रहे तो ऋषिलोक मिले। हे, वहासे भृगुतुङ्ग तीर्थमें जानेसे अश्व-

मेध यज्ञका फल मिलता है। आगे वीर प्रमोच तीर्थमें जानेसे सब पाप कुट जाते है। हे भारत। यदि उस तीर्थमें मघा और कृतिका नक्षत्रमें जाय तो अग्निष्टोम आर अतिरात यज्ञका फल मिलता है, वही विद्या तीर्थमें सन्ध्या करनेसे और वहा स्नान करके सब पापनाश होति है उसी मघा आश्रममें रातको रहे यदि निराहार होकर एक रात वहा रहे तो उत्तम लोक मिलते है। दिनके छठे भागमें भोजन करके एक महीना उस स्थानमें रहनेसे सब पापोंसे शुद्ध होता है, और वज्रत सुवर्ण मिलता है और दश पहल और दश अगाड़ी वशोका उद्धार हाता है। आगे ब्रह्मके स्वावतशिकामें जाय, तो अश्वमेधका फल होता है और शुक्राचार्यकी जाति मिलती है। आगे सिद्धोसे सेवित सुन्दरिका तीर्थमें जाय, वहा जानेसे पुरुषका रूप सुन्दर हो जाता है यह पुरुषोंने निश्चय किया है। आगे ब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय होकर ब्राह्मणी तीर्थमें जाय वहा जानेसे पद्मवर्ण विमान पर बैठकर पुरा ब्रह्मलोकको जाता है, वहासे पवित्र ऋषि सेवित नैमिषक्षेत्रमें जाय, वहा देवताके साथ ब्रह्मा सदा वास करते है। नैमिषारण्यको ढूँढनेसे आधा पाप और जाननेसे सब नष्ट हो जाता है, वहापर तीर्थसेवी धीरपुरुष एक महीना रहे क्योंकि पृथ्वीमें जितने तीर्थ हैं वे सब नैमिषारण्यमें रहते है। हे भारत। यदि जिताहार और नियमधारी होकर वहां स्नान करे तो गोमेध यज्ञका फल होता है, हे भारत सत्तम। जो पुरुष निराहार होकर नैमिषारण्यमें मरता है, उसके सात कुलका उद्धार होजाता है, और महात्मालोग ऐसाभी कहते है कि वह सब लोकोंमें जाकर आनन्द करता है। हे भरतसत्तम। नैमिषक्षेत्र नित्य और पवित्र है। आगे वहासे गङ्गाभेद तीर्थमें जाय, वहा जानेसे पुरुषको

अश्वमेध यज्ञका फल होता है, और ब्राह्मण होजाता है । आगे सरस्वती नदीमें जाकर पितर और देवोंकी पूजा करनेसे निःसन्देह सरस्वती लोक मिलता है, वहांसे चलकर ब्रह्मचारी और सावधान हो कर वाहुटा नदीमें स्नान करे, वहां एक रात रहनेसे स्वर्गलोक मेजता है । हे कौरव ! वहां रहनेसे देवसत्ता शासक यज्ञका फल होता है, वहांमें एगमात्मा मुनियोंमें भरी हुई पवित्र सीखती नदीको जाय वहां पितर और देवोंकी पूजा करनेसे अश्वमेधका फल होता है, वहांके ब्रह्मचारी और सावधान होकर विसला वटकी जाय, वहां एक रात रहनेसे स्वर्गलोक मिलता है, वहांसे सरयूके उत्तम तीर्थ गोप्रतार (गुमारघाट) को जाय, हे महाराज ! जह से राम अपने नौकर सेना और बाहनोंके सहित स्वर्गकी गये थे, हे महाराज ! उस तीर्थके तेज और रामकी कृपासे तथा निश्चयसे उस गुमार घाटमें स्नान करनेसे सब पापोंसे शुद्ध होकर स्वर्गलोक मिलता है । हे कुरुनन्दन ! आगे गोमतीके राम तीर्थमें स्नान करनेसे पुरुषकी अश्वमेध यज्ञका फल होता है और कुलका उद्धार हो जाता है । हे भरतकुलसिंह ! वही सतसाहसक तीर्थ है, यदि जिताहारो और नियमधारी होकर उसका स्पर्श करे तो पुरुषकी हजार गोदानका फल होता है । हे राजेन्द्र ! वहांसे चलकर उत्तम भट्ट स्थानकी जायतो पुरुषको अश्वमेध यज्ञका फल होता है । हे गरनाथ ! यदि कोटि तीर्थमें स्नान करके स्वामकार्तिकी पूजा करे तो हजार गोदानका फल होता है, और वह पुरुष तेजस्वीभी होजाता है, वहांसे काशीपुरी को जाय, और वहां शिवकी पूजा करे और अश्वमेध यज्ञमें स्नान करनेसे राजसूय यज्ञका फल होता है, हे कुरुनन्दन ! वहांसे अविनाशक तीर्थमें जाय, उन देवका दर्शन करनेकी परंपरा ब्रह्मामें दृष्ट जाता है, वही

प्राण छोड़नेसे मोक्ष होती है, हे राजेन्द्र ! आगे दुर्लभ मारकण्डेय तीर्थको जाय, आगे लोक विख्यात गङ्गा और गोमतीके सङ्गममें जाय, वहां जानेसे अग्निष्ठोम यज्ञका फल होता है और कुलका उद्धार हो जाता है, वहांमें ब्रह्मचारी और सावधान होकर गयाको जाय, वहां जानेसे अश्वमेध यज्ञका फल होता है, वही तीनलोक विख्यान अक्षयवट तीर्थ है, वहां पितरोंके निमित्त जो कुछ दान किया जाता है, सो अक्षय होजाता है वहां महानदीमें स्पर्श करके पितर और देवोंकी पूजा करनेसे अक्षय लोक होजाता है, आगे धर्मवनमें जाकर ब्रह्मसरमें स्नान करे वहां एक रात रहनेसे ब्रह्मलोक मिलता है, उस तालाबमें ब्रह्माने उत्तम यज्ञकण्ड बनाया था उसकी प्रदक्षिणा करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल होता है, हे राजेन्द्र ! तहांसे लोक विख्यात धेनुक तीर्थमें जाय, वहां एक रात रहकर तिलकी गाय बनाकर दान करना चाहिये ऐसा करनेसे पुरुष सब पापोंमें छूट चन्द्रलोकको जाता है । हे राजन् ! उस स्थानमें अवतक भी विचित्र गजका चिह्न बछड़ेके सहित बना है, और वह चिह्न पर्वत पर चरती हुई गजका है । हे भारत ! वही बछड़े सहित गजका पादका अभीतक दीखती है । हे नृपमन्त्र ! हे राजेन्द्र ! वहां उनका स्पर्श करनेसे जो कुछ पाप किया है, सब नष्ट होजाता है । हे राजेन्द्र ! वहांसे गडवटकी जाय, वह वृद्धिमान देवका स्थान है, वहां भस्मसे स्नान करके शिवकी पूजा करनी चाहिये, वहां ब्राह्मण बारह वर्ष तक बकलेके वस्त्र पहन कर व्रत करे तो सब पाप नष्ट हो जाते हैं । वहांसे गीत शब्द युक्त उद्यत नामक पर्वतको जाय हे भरतकुलसिंह ! वह सावित्रीकी पादुका दीखती है । वहां व्रतधारी ब्राह्मण सध्यापसना करे, वह एकदिन सध्या करनेसे बारहवर्षकी सध्याका फल होता है, वहां

जानेसे-पुरुष-जन्मके-दुःखसे-कूट जाता है, जो पुरुष एकमात्र तक गयासे-रहता है, निःसन्देह उसके कुलका-उद्धार होता है, हे राजेन्द्र । यदि एक पुत्रभी गयाको चला जाय और अश्वमेध करे अथवा काले बैलकी छोड़ देतो वहुत पत्नीकी इच्छा क्यों करे, हे राजन् । वहांसे तीर्थसेवी पुरुष फल्गुको जाय, वहां जानेसे अश्वमेध यज्ञका फल और संधासिद्धि मिलती है, हे युधिष्ठिर ! हे राजेन्द्र । हे महाराज । वहांसे सावधान पुरुष धर्मप्रस्थकी जाय वहां सदाही धर्मवांस करते हैं, वहां-कुएंके-पानीसे स्नान करनेसे पुरुष पवित्र होता है पितर और देवताका तर्पण करनेसे पुरुष सब पापोंसे कूट स्वर्गको जाता है, वहीं पर-आत्मदर्शी-महामुनि मतङ्गका आश्रम है, उस सुन्दर अम और शोकके नाश करनेवाले आश्रममें जानेसे पुरुषकी गोमेध-यज्ञका फल मिलता है, वहां धर्मका स्पर्श करनेसे-अश्वमेध-यज्ञका फल होता है । हे राजेन्द्र ! हे पुरुषसिंह ! वहांसे-ब्रह्माके उत्तम-स्थानकी जाय वहां-ब्रह्माकी पूजा करनेसे अश्वमेध-और-राजसूय-यज्ञोंके फल होते हैं । आगे तीर्थसेवी पुरुष राजगृह तीर्थको जाय वहां-तीर्थोंका स्पर्श करनेसे पुरुषकी कंची-वानके-समाग-आनन्द होता है, वहां पवित्र पुरुष यक्षिणीको-नैवेद्य-लगाके-भोजन करे, तो यक्षिणीके प्रसादसे पुरुषकी ब्रह्महत्या कूट जाती है, मणिनाग तीर्थमें जानेसे हजार-गोदानका फल होता है । हे राजेन्द्र ! मणिनाग तीर्थकी उत्पन्न हुई वस्तुओंको जो पुरुष खाता है, उसको सर्प काटनेका विष नहीं चढ़ता, वहां एक रात रहनेसे हजार-गोदानका फल हाता है, वहांसे ब्रह्मर्षि गौतमके प्यार-वनमें जाय, वहां-अहल्या कुण्डमें स्नान करनेसे मातृ मिलती है, गौतमके आश्रममें जानेसे पुरुष अपनी शोभाको प्राप्त करता है । हे धर्मज्ञ ! वहां तीनलोकोमें एक तड़ाग है, उसमें स्नान करनेसे

अश्वमेधका फल होता है, वहांसे आगे राजर्षि जनकका कुवा है, उसकी देवता लोगभी पूजा करते हैं, उसमें स्नान करनेसे विंशुलोक मिलता है, वहांसे सब पाप नाश करनेवाले विनसन तीर्थको जाय, वहां जानेसे वाजपेय यज्ञका फल और चन्द्रलोक मिलता है, हे धर्मज्ञ । वहांसे चलकर सब तीर्थोंके जलमें उत्पन्न गण्डकी नदीको जाय, वहांके जानेसे वाजपेय यज्ञका फल और सूर्यलोक मिलता है, वहांसे तीनलोक विख्यात विसत्या नदीको जाय तो अग्निष्टोम यज्ञका फल और स्वर्गलोक मिलता है । हे धर्मज्ञ ! वहांसे अधिवद्ग वनको जाय, वहां जानेसे निःसन्देह गुह्यकोके सहित आनन्द करता है, वहांसे सिद्ध सेवित कम्पना नदीकी जानेसे पुण्डरीक यज्ञका फल और स्वर्गलोक मिलता है । हे पृथ्वीनाथ ! महाेश्वरी घासमें जानेसे अश्वमेधका फल मिलता है और कुलका उद्धार होता है । हे नरनाथ ! देवपोखरमें जानेसे पुरुषकी-दुर्गति नहीं होती और अश्वमेधका फल होता है । अनन्तर ब्रह्मचारी और सावधान पुरुष सोमपद तीर्थको जाय, वहां महाेश्वर-पदमें स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल होता है, हे राजेन्द्र । हमने सुना है, कि-वहां करोड़ तीर्थ-इकट्टे है, पहले उन तीर्थोंको दुरात्मा राक्षस ले गया था तब जगत-कर्त्ता विष्णुने कच्छप रूप धारण करके उससे छीनकर वहीं-स्थापन कर दिये हैं । हे युधिष्ठिर ! उस तीर्थ कोटिमें स्नान करनेसे पुण्डरीक यज्ञका फल और विंशुलोक मिलता है । हे राजेन्द्र !- वहांसे नारायणके स्नानकी जाय, हे भारत ! वहां सदा विष्णु वास करते हैं, जहां ब्रह्मादिक देवता तपोधन ऋषि, आदित्य, वसु और रुद्र, विष्णुकी उपासना करते हैं, वहांपर अद्भुत कर्मवाले सालिग्राम नामक विष्णु निवास करते हैं, उस अव्यय, वरदान देनेवाले, लोकनाथ विष्णुके दर्शन करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल और

विशुलोक मिलता है, हे राजेन्द्र । वहां दान करनेसे सब पाप नष्ट होते हैं, उस कुएँ चारों समुद्र वास करते हैं, वहां जलका स्पर्श करनेसे पुरुषकी दुर्गति नहीं होती, वहाँ वरदान देनेवाले अव्यय महादेवका स्थान है, उनका दर्शन करनेसे पुरुष ऐसा शोभित होता है, जैसे मेघसे कूटकर चन्द्रमा आगे जातिसर तीर्थको स्पर्श करनेसे और स्थिर चित्त तथा पवित्र होकर स्नान करनेसे पुरुष कामदेवके समान हो जाता है, वहांसे माहेश्वरपुरमें जाकर शिवकी पूजा करनी चाहिये, वहां व्रत करनेसे मनकी इच्छा पूरी होती है, वहांसे सब पापोंके नाश करनेवाले वाँवन तीर्थको जाना चाहिये वहां विशुक्के दर्शन करनेसे पुरुषकी दुर्गति नहीं होती । वहांसे कुशिकके आश्रमकी जाय, यहस्थान सब पापोंका नाश करनेवाला है, वहां सब पापोंका नाश करनेवाली कौशिकी नदीमें स्नान करने । पुरुषकी राजसूय यज्ञका फल मिलता है । हे राजेन्द्र । वहांसे चम्पका-रण्यको जाय, वहां एक रात रहनेसे हजार गोदानका फल होता है, वहांसे अत्यन्त दुर्लभ जौष्टिलतीर्थमें जाकर एक रात रहनेसे हजार गोदान का फल होता है, वहां पार्वतीके सहित महातेजस्वी शिवके दर्शन करनेसे पुरुषकी भित्वावर्णका लोक मिलता है, वहां तीन रात रहनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल होता है, वहां एक कन्या सन्नेद्य तीर्थमें जाय वहां ब्रह्मचारी और स्थिर मन होकर रहनेसे मनु प्रजापतिका लोक मिलता है हे भरतर्षभ । उत्तम व्रतधारी ऋषियों ने कहा है कि कन्या सन्नेद्यमें जो थाड़ा स्नान होता है, वह अक्षय होता है, वहांसे तीन लोक विख्यात सिवीरि तीर्थमें जाय, वहां यज्ञमेध यज्ञका फल और विशुलोक मिलता है । हे नरशार्दूल । जा पुरुष सिवीरा तीर्थमें दण्ड दान देता है, वह दुःख रहित इन्द्र-लोक जाता है, वहाँ तीन लोकमें विख्यात

वशिष्ठ मुनिका आश्रम है, उसमें स्नान करनेसे वाजपेय यज्ञका फल होता है, वहांसे देव और ऋषिसंवित देवकूट तीर्थमें जानसे अश्वमेध यज्ञका फल और कुलका उद्धार होता है । हे राजेन्द्र । वहांसे कौशिक मुनिके तड़ागकी जाय जहां कुशिक यज्ञविश्वामित्र मुनिको महा-सिद्धि प्राप्त हुई थी । हे भरतर्षभ ! हे वीर । वहां कौशिकीके कुण्डपर एक महीना रहनेसे अश्वमेध यज्ञका फल होता है, सब तीर्थोंसे उत्तम उस महा तड़ाग पर रहनेसे पुरुषकी दुर्गति नहीं होती, वहांसे तीन लोक विख्यात अग्निधारा तीर्थ पर जाय उसमें स्नान करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल होता है, वहांसे पर्वतके समीप ब्रह्म सरमें जाकर अनादि देव वर देनेवाले विशुक्के दर्शन चाहिये, ब्रह्मसरमें स्नान करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल होता है, उसही ब्रह्मसरसे निकल कर जगत्के पवित्र करनेवाली एका धारा है, उसमें स्नान करनेसे पुरुष रुमभ लेता है कि मैं कृतार्थ हुआ, वहां छूटे कालका व्रत करनेसे पुरुष ब्रह्महत्यासे कूट जाता है । हे धर्मज्ञ । वहांसे तीर्थ सेवी पुरुष तीन लोक विख्यात महादेवो गौरीके शिखर पर जाय, वहां शिखर पर चढ़के स्नानकुण्ड में स्नान करनेसे वाजपेय यज्ञका फल होता है, वहां स्नान करनेसे पितर और देवता-की पूजा करनेवाले पुरुषको अश्वमेध यज्ञका फल और इन्द्रलोक मिलता है । आग ब्रह्म-चारी और सावधान होकर ताम्बारा तीर्थ की जानेसे अश्वमेध यज्ञका फल और ब्रह्मलोक मिलता है । हे नरनाथ ! नन्दिनीमें देवकुएँ में स्नान करनेसे नरमेध यज्ञका फल मिलता है, आगे कालका कौशिकी और अरुणाके सङ्गम-में स्नान करके तीन दिन व्रत करनेसे पुरुष सब पापोंसे कूट जाता है, वहांसे पण्डित उर्वशी तीर्थ सोमाद्रम और कुम्भार्णायमकी जानेसे पुरुष जगत्में पूजाके योग्य हो जाता है, आगे व्रतधारी होकर कोकामुख तीर्थमें जाय, वहां

जानेसे पुरुष कामदेवके तुल्य होजाता है, यह पुराने पुरुषोंने देखा है। ब्राह्मण प्राचीन नदीमें स्नान करनेसे पवित्रात्मा होजाता है। और सब पापोंसे छूटकर इन्द्रलोकमें जाता है, वहांसे पवित्र ऋषभहीपमें जाकर क्रोड्वासुरके मारने वाले स्वाम कार्तिकका दर्शन करके सरस्वतीको दर्शन करके सरस्वतीका स्पर्श करनेसे पुरुष विमानमें चढ़कर शोभित होता है। हे महाराज ! वहांसे मुनि सेवित श्रीदालक तीर्थमें जाय, वहांसे ब्रह्मर्षि सेवित धर्मतीर्थमें जानेसे वाजपेय यज्ञका फल मिलता है और विमानमें बैठकर पुरुषकी पूजा मिलती है, वहांसे चम्पामें जाकर गङ्गामें स्नान करे और उल्हार्त तीर्थमें जानेसे हजार गोदानका फल होता है।

— ८४ अध्याय समाप्त ।

पुलस्त्य मुनि बोले, हे राजेन्द्र ! वहां उत्तम सम्बद्धा तीर्थमें सम्योपासन करे और वहांका जल स्थापन करनेसे पुरुषकी निःसन्देह विद्या मिलती है। हे राजन् ! जिस तीर्थको पहिले रामने अपने प्रभावसे लालकर दिया था, उसमें जानेसे पुरुषको बृहत् सुवर्ण मिलता है। आगे करतोया नदीमें जाकर तीन दिन व्रत करनेसे पुरुषको अश्वमेध यज्ञका फल होता है, यह नियम प्रजापतिका किया हुआ है। हे राजन् ! पण्डित लोग कहते हैं, कि गङ्गा और सप्तद्रुके सङ्गममें स्नान करनेसे दस अश्वमेधका फल होता है। हे राजन् ! पुरुष गङ्गाके दूसरे पारमें जाकर स्नान करता है और वहां तीन रोज व्रत करता है, तो वह पुरुष सब पापोंसे छूट जाता है, वहांसे सब पापोंके नाश करनेवाली वैतरणी नदी पर जाय, वहां विरजा तीर्थमें स्नान करनेसे चन्द्रमाके समान निर्मल होजाता है, सब उसका पाप नष्ट हो जाता है, हजार गोदानका फल मिलता है, और कुलका उद्धार होता है, वहांसे जोग और ज्योतिरथी नदीके

सङ्गममें जाय, वहां पवित्र होकर पितर और देवतोंका तर्पण करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल होता है। हे राजन् ! आगे उस स्थानमें जाय, जहां सोणा और नर्मदा अलग हुई हैं, वहां वंसोंके भुण्डका स्पर्श करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल होता है। हे नरनाथ ! आगे कोशल देशमें न जाकर ऋषभ तीर्थमें स्नान करे, वहां तीन दिन व्रत करनेसे वाजपेय यज्ञका फल होता है, वहां जानेसे हजार गोदानका फल होता है, और कुलका उद्धार हो जाता है, वहांसे कोशला देशमें जाकर काल तीर्थका स्पर्श करे तो निःसन्देह ग्यारह सांड़ छोड़नेका होता है। हे राजन् ! पुष्पवतीका स्पर्श करके तीन दिन व्रत करनेसे सहस्र गोदानका फल और कुलका उद्धार होता है, वहांसे बदरिका फल तीर्थमें स्नान करे, हे भरत सत्तम ! बदरिका तीर्थमें स्नान करनेसे पुरुषकी दीर्घ आयु होती है, वहांसे चलकर चम्पामें जाय, वहां गङ्गामें स्नान करके दण्ड तीर्थका दर्शन करनेसे हजार गोदानका फल होता है, वहांसे पवित्र पुष्पोंसे भरी हुई चपेटिकामें जाय, वहां जानेसे वाजपेय यज्ञका फल होता है, और सब देवता लोग उसको पूजा करते हैं, वहांसे परशुरामके आश्रम महेश्वर पर्वत पर जाय, वहां राम तीर्थमें स्नान करनेसे पुरुषका अश्वमेध यज्ञका फल होता है। हे कुरुनन्दन ! हे कुर्य्युष्ट ! वहींपर मतङ्गकुदार नामक तीर्थ है, उसमें स्नान करनेसे पुरुषको हजार गोदानका फल होता है, वहांसे श्रीपर्वतमें स्नान करे वहां शिवकी पूजा करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल होता है, महातेजस्वी, शिव पार्वतीके सहित वहीं निवास करते थे और देवतोंके सहित ब्रह्मा वहीं निवास करते थे, वहां पुरुष पवित्र और स्थिर मन होकर देवहृद स्नान करे—तो अश्वमेध यज्ञका फल और परम सिद्धि मिलती है, वहां से

पाण्ड्य देशमें जाकर देव पूजित ऋषभ पर्वत-
पर जाय तो वाजपेय यज्ञका फल और स्वर्गमें
आनन्द मिलता है, वहांसे अप्सरागणोंसे सेवित
कावेरी नदीकी जाय, है राजन् ! उसमें स्नान
करनेसे पुरुषकी हजार गोदानका फल होना
है, वहांसे चलकर समुद्रके तीरेपर जाकर कन्या
तीर्थका स्पर्श करे है राजे ! उस जलके स्पर्श
करनेहीसे सब पाप छूट जाते हैं । आगे तीन
लोक विख्यात समुद्रके बीचमें स्थित संवलीक
पूजित कर्म तीर्थको जाय, जहां ब्रह्मादिक
देवता, तपोधन ऋषि, भूत, यक्ष, एशिाच,
किन्नर, बड़े बड़े सर्प सिद्ध चारंग, गन्धर्व्व,
मनुष्य, सर्प, नदी, समुद्र और पर्वत आकर
शिवकी उपासना करते हैं, वहां शिव की पूजा
करके तीन दिन व्रत करनेसे अश्वमेध यज्ञका
फल और गणेशका पद मिलता है, यदि वहां
दस दिन रहें तो पुरुष परम पवित्र हो जाता
है, वहांसे तीनलोक पूजित गायत्रीके स्थानमें
जाय वहां तीन दिन रहनेसे हजार गोदानका
फल होता है, है नरनाथ ! है राजन् ! यह
गायत्रीका प्रत्यक्ष उदाहरण दीखता है । कि
यदि कोई सहरजाति (जिसकी माता दूसरी
हो और पिता दूसरी जाति हो) का उत्पन्न
हुआ पुरुष अच्छी रीतिसे भी गायत्री पढ़े तौभी
वह गायत्री स्वरसे होन, कन्द रहित गावके
गीतके समान उच्चारण होती है । औरभी
उदाहरण है, कि यदि ब्राह्मणके सिवा कोई
दूसरा वर्ण वहां जाकर गायत्री पढ़े तो उसकी
करण नहीं होती, वहांसे चलकर दुर्लभ
वर्तुन सुनिकी वावड़ी में स्नान करे, वहां स्नान
करनेसे पुरुष सुन्दर और ललित होजाता है,
वहांसे वेणु तीर्थमें जाकर यदि तीन रात व्रत
करे तो पुरुषकी मोर और हंस सहित विमान
मिलता है, वहांसे सदाही सिद्धासे सेवित गोदा-
वरी नदीकी जाय, वहां स्नान करनेसे गोमिध
का फल और वासुकीका उत्तम लोक प्राप्त

होता है वहां वेणु नदीके सङ्गममें स्नान करनेसे
अश्वमेध यज्ञका फल होता है, आगे ब्रह्मचारी
और सावधान होकर कुसुम्व नामक तीर्थमें
जाय, वहां तीन दिन रहकर स्नान करनेसे
अश्वमेध यज्ञका फल होता है, आगे वरदा-
सङ्गममें स्नान करनेसे हजार गोदानका फल
होता है, आगे ब्रह्मस्थानमें जाकर व्रत करनेसे
हजार गोदानका फल और स्वर्गलोक मिलता
है, वहांसे वनमें जाकर कृष्णवेणुके जलसे
उत्पन्न झर देवहृद तीर्थमें स्नान करे, वहां
जातिस्तर तीर्थमें स्नान करनेसे पुरुषकी अपने
पूर्व जन्मका स्मरण होजाता है, वहीं पर इन्द्र
सौ यज्ञकरके स्वर्गकी गये हैं । है भारत ! वहां
जातेही अग्निष्टीम यज्ञका फल होता है, तब
सर्वहृद तीर्थमें स्नान करनेसे हजार गोदानका
फल होता है, वहांसे चलकर पवित्र वावड़ी
और नदियोंमें श्रेष्ठ पयास्वि पर जाकर पितर
और देवतोंकी पूजा करनेसे हजार गोदानका
फल मिलता है, है भारत ! है राजन् ! वहांसे
चलकर दण्डकारण्यमें जाय पवित्र तीर्थका
स्पर्श और स्नान करनेसे हजार गोदानका
फल मिलता है, वहांसे शरभङ्ग और महात्मा
शुकके आश्रम पर जानेसे पुरुषकी दुर्गति नहीं
होती और कुल पवित्र होजाता है, वहांसे
परशुराम सेवित शूर पाकर तीर्थमें जाय, वहां
राम तीर्थमें स्नान करनेसे वज्रत सुवर्ण मिलता
है, आगे जिताहारो और ब्रह्मचारी होकर
सप्त गोदावर तीर्थमें स्नान करे, वहां स्नान
करनेसे पुरुषकी महापुण्य और स्वर्गलोक
मिलता है, आगे ब्रह्मचारी और नियमसे
भोजन करनेवाला होकर देवतोंके मार्गमें
जानेसे पुरुषकी देव सत्र यज्ञका फल होता है ।
आगे ब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय होकर तुष्ट
कारण्यकी जाय, वहीं पर पहले सारस्वत मुनि
वेद पढ़ाते थे जब वेद नष्ट हो गये तब अङ्गिरा
मुनिके पुत्र सुखपूर्वक ऋषियोंके वस्त्रोंमें

बैठ गये, तहां विधिपूर्वक यथोचित उन्हांने ओंकारकी उच्चारण किया ऐसा करते ही सब मुनियोंकी यह पाठ याद हो गया वहीं देवता, ऋषि, वरुण, अग्नि, प्रजापति, विष्णु शिव और सब देवोंके सहित महा तेजस्वी भगवान् ब्रह्माने महा तेजस्वी भृगु ऋषिकी यज्ञ करनेकी विठ-लाया था तब भगवान् भृगु मुनिने विधिपूर्वक ऋषियोंके काय्योंकी यथोचित ठहरा दिया वहां भृगुने विधिपूर्वक शिवसे अग्निकी सन्तुष्ट किया, तब सब देवता और ऋषि अपने अपने घरकी चले गये। हे राजन् । उस तुङ्गक नामक बनमें जातेही पुरुष या स्त्रियोंके सब पाप नष्ट हो जाते हैं, उस स्थानमें नियमधारी धीर पुरुष थोड़ा भोजन करके यदि एक महीना रहे तो ब्रह्मलोककी जाता है, वहांसे मेधाविक तीर्थकी जाय वहां पितर और देवतोंका तर्पण करे तो अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है, और स्मरण शक्ति तथा धारणा शक्ति बढ़ती है। यहीं पर कालिञ्जर नामक पर्वत है, वहां देवहृद तीर्थमें स्नान करनेसे हजार गोदानका फल होता है। जो कोई कालिञ्जर गिरि पर्वतमें जाकर आप स्नान करे अथवा दूसरेको स्नान करावे तो निश्चन्द्रेह स्वर्गलोककी जाता है। वहांसे पर्वतों में अष्ट चित्रकूटकी जाय, वहां सब पापोंकी नाश करनेवाली मन्दाकिनी में स्नान करके पितर और देवतोंकी पूजा करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल और मोक्ष मिलती है। हे धर्मन् ! वहांसे अत्यन्त उत्तम भटके स्थानकी जाय, वहां देवतोंके सेनापति स्वाम कार्तिक सदाही निवास करते हैं। हे नृप-अष्ट ! वहां जानेहीन सिद्धिलाभ होती है आगे कीटि तीर्थमें स्नान करनेसे पुरुषकी हजार गोदानका फल होता है, उसकी प्रदक्षिणा करके जेष्ठ तीर्थकी जाय, वहां महादेवकी पूजा करनेसे पुरुष चन्द्रमाके समान प्रकाशित हो-जाता है। हे भरतर्षभ । हे महाराज । हे युधि-

ष्ठिर । हमने सुना है कि उस कुण्डमें चार समुद्र बसते हैं। हे राजेन्द्र । पितर और देवतोंकी पूजा करनेवाला नियमधारी पुरुष वहां स्नान करनेसे पवित्र होकर मोक्षको प्राप्त होता है, हे राजेन्द्र । वहांसे शृङ्गवेरपुरकी जाय वहीं दशरथ कुमार रामचन्द्र गङ्गापार हुए हैं। हे महाबाहो । उस स्थानमें ब्रह्मचारी और सावधान होकर गङ्गास्नान करनेसे पुरुष पापोंसे कूट जाता है और मोक्षको प्राप्त होता है। हे महाराज । वहांसे मंजुवटकी जाय, वहां बुद्धिमान शिवका स्थान है, वहां शिवकी पूजा और प्रदक्षिणा करनेसे गणेशका स्थान मिलता है और वहां गङ्गास्नान करनेसे सब पाप कूट जाते हैं। हे राजेन्द्र । वहांसे ऋषि पूजित प्रयाग की जाय, जहां ब्रह्मादिक देवता, दिशा, दिग पाल, लोकपाल, साध्य, लोकपूजित पितर, सनत्कुमार आदिक महाऋषि, अङ्गिरादिक निर्मल ब्रह्मर्षि, नाग, सुपर्ण, सिद्ध, चक्रवर् (सूर्यादिक आकाशचारो) नदी, समुद्र, गन्धर्व अप्सरा और प्रजापतिके सहित भगवान् विष्णु निवास करते हैं, प्रयागमें तीन कुण्ड हैं, उनके बीचमें सब तीर्थोंके सहित अत्यन्त वेगवती गङ्गा और तीनलोक विख्यात भगवती यमुना बहती है, वही जगत्की पवित्र करनेवाली यमुना गङ्गासे आकर मिली है, जहां गङ्गा और यमुना मिली है, वह स्थान पृथ्वीकी जड़ा है, प्रयागकी ऋषयोंने पृथ्वीकी योनि कहा है, प्रयाग प्रतिष्ठानपुर (भासी) कम्बलाश्वतरतीथ और भोगवती यह ब्रह्माकी वेदी है, हे युधि-ष्ठिर । उसमें यज्ञ और वेद मूर्ति धारण करके रहते हैं, हे राजन् । वहां ऋषि ब्रह्माकी उपासना करते हैं, चक्रवर्ती और देवता लोग यज्ञ करते हैं। हे भारत । हे राजन् । इसी लिये प्रयाग परम पवित्र है, मुनिलोग तीन लाकड़ तीर्थोंसे प्रयागकी अधिक कहते हैं, उस तीर्थमें जानसे और उसका नाम स्मरण

करनेसे पुरुष मृत्युके भय और पापोंसे छूट जाता है, उस लोक विख्यात गङ्गा और यमुना-सङ्गममें जो स्नान करता है, उसको राजस्य और अश्वमेधका फल होता है, है भारत ! यह संस्कार करी हुई देवतोंके यज्ञ करनेकी भूमि है, वहां थोड़ा दान देनेसे भी बद्ध हो जाता है। है तात ! न वेदके वचनसे और न लोकके वचनसे प्रयागमें मरनेकी बुद्धिकी त्यागना चाहिये, है कुरुनन्दन ! जो एक करोड़ दस हजार सात तीर्थ कहे हैं वे सब प्रयागहीमें निवास करते हैं, तीनो वेद आत्मविद्या और सत्य बोलनेका जो कुछ पुण्य होता है, सो पुण्य गङ्गा-यमुनाके सङ्गममें स्नान करनेसे पुरुषकी मिलता है, वहा राजा वासुकीका स्थान है, उसका नाम भोगवती है, उस उत्तम तीर्थमें स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल होता है वहीं तीनलोक विख्यात हंसप्रवत नामक तीर्थ, है। है कुरुनन्दन ! प्रयागहीमें गङ्गाके तटपर दशाश्वमेध नामक तीर्थ है, कुरुक्षेत्रके समान गङ्गाका जहा स्नान करे वहा ही फल होता है, परन्तु कनखलमें विशेष फल है और प्रयागमें बद्ध अधिक फल है, यदि हजारो पाप करके भी पुरुष गङ्गाजलमें स्नान करता है, तो वह गङ्गाजल उसके पापको ऐसेही नष्ट करता है, जैसे अग्नि इन्धनको, सतयुगमें सब तीर्थोंमें स्नान करनेसे पुण्य होता था, त्रेतामें पुष्कर तीर्थ है, कलियुगमें तो गङ्गाही प्रसिद्ध है। पुष्करमें तप करे, महालयमें दान दे और मलयमें शर्ममें प्रवेश करे और भृगुतुङ्ग तीर्थमें भोजन करे, पुष्कर, कुरुक्षेत्र गङ्गा और मगध देशीय तीर्थोंमें स्नान करनेसे पुरुषके सात पुरखापवित्र हो जाते हैं, गङ्गा देखनहीसे शापोका नाश करती है कीर्ति और कल्याणको बढ़ाती है, स्नान करने और जल पीनेसे सात कुलको पवित्र होती है। है राजा ! पुरुषकी हड्डी जब गङ्गाजलमें रहती है, तबवक वह पुरुष

स्वर्गमें रहता है, जो पवित्र तीर्थ और पवित्र देवतोंके स्थानमें जानेसे पुण्य होता है, और उससे स्वर्ग मिलता है वह सब उतना चिर-स्थायी नहीं होता है, जितना गङ्गास्नान करनेसे होता है, गङ्गाके समान कोई तीर्थ, विष्णुके समान कोई देवता और ब्राह्मणोंके समान कोई पूज्य नहीं है, ऐसा ब्रह्माने कहा है, है महाराज ! जहा गङ्गा है, वह देश तपोधन है, जो देश गंगाके तटपर है, वह सिद्ध क्षेत्र है, यह सत्य बात ब्राह्मण, साधु, पुत्र, मित्र, शिष्य और नौकरके कानमें कह देनी चाहिये, यह गङ्गातट धन्य, पवित्र, स्वर्गदायक, उत्तम, पुण्यदायक, रम्य, पवित्र करनेवाला, धर्म बढ़ानेवाला, महा ऋषियोंके पाप नाश करनेवाला, गुप्त स्थान है, ब्राह्मणोंके बीचमें इस मन्त्रकी पढ़नेसे पुरुष निर्मल हो जाता है, और स्वर्ग मिलता है, यह तीर्थोंकी वंशावली लक्ष्मी, स्वर्ग, पुण्य और बुद्धिकी देनेवाली है, उसका कीर्तन करनेसे शत्रुओंका नाश होता है, अपुत्रकी पुत्र और निर्धनकी धन मिलता है, इसके पढ़नेसे क्षत्री विजय करतो है, वनियेकी धन मिलता है, शूद्रकी इच्छा पूरी होती है, ब्राह्मण पण्डित होजाता है। जो पुरुष पवित्र होकर इस तीर्थ माहात्म्यकी सुनता है, वह अपने अनेक जन्मोंकी कारण करके स्वर्गमें आनन्द करता है, जो तीर्थ जाने योग्य हैं, उनमें जाय और जो नहीं जाने योग्य हैं, उनमें सब तीर्थके दर्शनकी इच्छा करनेवाले पुरुष मनहीसे चलो जाय। इन तीर्थोंमें वसु, साध्य, सूय्य, मरुत, अश्विनीकुमार देवतोंके समान ऋषि और पुण्यात्मा लोग स्नान करते हैं। है कौरव ! है उत्तम व्रतवाले युधिष्ठिर ! ऐसेही आपभी इन तीर्थोंमें जाइये : आप नियमोंका धारण करके पुण्योमें पुण्योको बढ़ाते हुए तीर्थोंको जाइये; आप निश्चित कार-णोंकी देखकर, आस्तिकता देखकर और

वेदोंके प्रमाणकी मानकर तीर्थयात्रा कीजिये । हे राजन् । जिन तीर्थोंकी शास्त्रदर्शी महात्मा लोग जा सकते हैं, उन्हींको आप जाइये, क्योंकि उन तीर्थोंको अत्रती दुष्ट, अपवित्र और चोर नहीं जा सकते हैं । हे कौरव्य ! उन तीर्थोंमें दुष्ट बुद्धिवाले पुरुष स्नान नहीं कर सकते; आप ही सदा धर्म और अर्थके जानने-वाले उन तीर्थोंमें जा सकते हैं । हे राजन् । आपने धर्मसे पिता पितामह, प्रपितामह, और उनसेभी पहले पुरखा तथा ऋषि लोगोंको सन्तुष्ट किया है । हे इन्द्रसमान ! आपको वसुओंके लोक मिलेंगे । हे भीष्म ! आपकी महाकीर्ति इस जगत्में बहूत दिनतक रहेगी ।

नारद मुनि बाली, हे युधिष्ठिर ! इस प्रकार भीष्मसे कहकर प्रसन्नात् पूर्वक प्रसन्न चित्तसे भगवान् पुलस्त्य मुनि भीष्मकी सम्मतिसे वहाँ अन्तधान होगये । हे कुरुशार्दूल ! भीष्मभी शास्त्रोंको देखके पुलस्त्यके वचनसे पृथ्वीमें घूमने लगें । हे राजन् । इस प्रकारसे यह सब पापोंके नाश करनेवाली पुण्योत्तरी हुई महा भाग्यवती तीर्थयात्रा प्रतिष्ठानपुर (भांसी) में समाप्त हुई । जो पुरुष इस प्रकारसे पृथ्वीके तीर्थोंमें घूमता है; उसका मरनेके पश्चात् सेकड़ों अश्वमेधोंका फल होता है । हे कुन्ती-नन्दन ! आपको उससे आठ गुण फल होगा, जैसे कुरुवंश सिंहा भीष्मको हुआ था; क्योंकि तुम ऋषियोंके अगुआ हैं, इसीसे तुमका आठगुण फल होगा, और आज कलके तीर्थ राक्षसोंसे भर गये हैं, हे कुरुनन्दन ! हे राजेन्द्र ! आपके सिवाय उन तीर्थोंमें आर कोई नहीं जा सकता है । जो पुरुष इस देवर्षि कथित तीर्थ-माहात्म्यको कथा-रूपसे पढ़ेंगे, उनके सब पाप छूट जायेंगे । हे महाराज ! उन तीर्थोंमें ऋषयोंमें प्रधान वाल्मीकि कश्यप, आत्रेय, कुण्डजठर, विश्वामित्र, गौतम, आसत, देवल, मार्कण्डेय, गालव, भरद्वाज, वशिष्ठ, उद्दालक

मुनि सौनक व्यास तपस्वियोंमें श्रेष्ठ शुकदेव, मुनि-श्रेष्ठ दुर्वासा, और महातपस्वी जाबाली इत्यादि अनेक तपोधन महर्षि लोग आपका मार्ग देख रहे हैं । हे महाराज ! तीर्थोंमें जानसे इन मुनियोंके दर्शन होगे । हे महाराज ! यह देखी ये महा तेजस्वी लोमश ऋषि आपके पास चले आते हैं, आप इनके सङ्ग ही तीर्थोंको चले जाइये । हे राजन् । क्रमके अनुसार इस तीर्थोंमें आप मुक्तसेभी मिलेंगे, जैसी राजा महाभिषको कीर्ति हुई थी, वैसीही आपकीभी होगी । हे राजशार्दूल ! जैसे राजा ययाति और राजा पुरीरवा धर्मात्मा थे, तैसीही आपभी अपने धर्मसे शोभित हैं । हे राजन् ! जैसे राजा भगीरथ, और राजा राम विख्यात थे, वैसीही सूर्यके समान तेजस्वी आपभी विराजमान हैं । जैसे मनु इच्छाकु महा यशस्वी पुरु और पृथु थे, तैसीही आपभी विख्यात हैं । हे महाराज ! जैसे वृत्वासुरके मारने-वाले देवराज इन्द्रन सब शत्रुओंका मारकर जगत्का राज्य किया था, हे कमलनभ ! तैसीही आपभी अपने धर्मसे पृथ्वीका जीत और शत्रुओंका मारकर प्रजाको पालियेगा, जैसे कृतवीर्यके पुत्र अर्जुन प्राप्त हुए थे, तैसीही आपभी धर्मसे प्राप्त हुए जियेगा ।

श्रीवेशम्पायन मुनि बाली, भगवान् नारद इस प्रकार युधिष्ठिरसे कहके युधिष्ठिरकी सम्मतिसे वहाँ अन्तधान होगये । धर्मात्मा महाराज युधिष्ठिरभी उसका सुनकर उसका अर्थ विचारकर ऋषियोंसे उस पुण्यका कहन लग ।

८५ अध्याय समाप्त ।

श्रीवेशम्पायन मुनि बाली, राजा युधिष्ठिरने बुद्धिमान नारदकी और अपने भाइयोंकी सम्मति जानकर अपने पितामहके समान धीन्य मुनिका बलाकर ऐसा कहा, कि मैंने सत्यपराक्रम पुरुष-

मिंह महाबाहु आचारवान् पराक्रमी अर्जुनकी
 अस्त्रोंके लिये भेजा है ; वह तपोधन हमारा
 अत्यन्त भक्त है, और शस्त्रोंके जाननेमें महात्मा
 कृष्णके समान है । हे ब्राह्मण ! मैं शत्रुनाशन
 महातेजस्वी अर्जुन और कृष्णको वैसाही
 जानता हूं, जैसा कि प्रतापवान् व्यास जानते
 हैं, यह कमलनेत्र और नारायणके अवतार
 हैं, भगवान् नारदभी इनकी ऐसाही जानते हैं,
 और मुझसे सदा कहा करते हैं, और मैंभी
 जानता हूं, कि ये नरनारायण ऋषिके अवतार
 हैं । हमने अर्जुनको समर्थ जानकरही भेजा
 है ; हमने यह जान लिया था कि यह इन्द्र-
 पुत्र अर्जुन इन्द्रसे कम नहीं हैं, अतएव इन्द्रकी
 दर्शन करने और उनसे शस्त्र लेनेकी भेजा है ।
 देखिये भीम और द्रोण महारथ हैं, कृपा-
 चार्थ और अश्वत्थामा सहजजहोमें जीतने योग्य
 नहीं हैं, यह सब महारथलोग दुर्योधनके
 सह युद्धमें आवेंगे, यह सब लोग वेदोंके जान-
 नेवाले और शस्त्रोंके पण्डित हैं, औरभी जिनने
 महाबलवान् पुरुष हैं, वे सब अर्जुनहीसे
 युद्ध करनेकी इच्छा करते हैं । देखिये यह
 दिव्य अस्त्रोंके जाननेवाला सूतपुत्र कर्णभी
 महारथ है, वह सब शस्त्रोंके जाननेवाला वायुके
 समान जलो, शस्त्र है ज्वाला जिसकी और
 पालियोंका शब्द है, अग्नि शब्द जिसका
 वह प्रलय कालकी महा अग्निके समान कार्य
 शब्दोपधनरूपी वायुसे प्रेरित होकर मेरी सेना
 समूहकी निःसन्देह भस्म कर देगा । उस
 पररूपी महा अग्निको कृष्ण वायुसे प्रेरित
 हो शस्त्र अग्निवाला भेद घोटिरूपी वक्त्रमाला
 रहित गारुड इन्द्र धनुषवाला अर्जुन मेघ,
 एतद्वाणधारा रूपी पानीसे युद्धमें बुझा देगा,
 इन्द्रसे सब शत्रुओंके नाश करनेके निमित्त
 मेरी आज्ञाकी आज्ञा करेगा, वह सब शत्रुओंके
 नाश करनेके समर्थ है । मुझे यह निश्चय है,
 मैं इन सब शत्रुओंको नहीं जीत सकते ।

हमलोग उस पाण्डुपुत्र शत्रुनाशन अर्जुनकी
 शस्त्र लानेके समय तक देखते हैं, क्योंकि वह
 इस भारको लेकर कुछभी दुःखी नहीं हुए ।
 हे ब्राह्मण ! हम लोग उस वीर अर्जुनके
 विना इस काम्यक वनमें द्रौपदीके सहित सुख
 नहीं पाते हैं । अतएव आप कोई ऐसा वन
 वतलाइये जो उत्तम पवित्र फल और अन्नसे
 भरा हो, और जो परम रमणीय हो, जिसमें
 ऋषिलोग रहते हों, जिस वनमें रहकर हम
 लोग सत्य-पराक्रम वीर अर्जुनका मार्ग देखें ।
 हमलोग उसको ऐसाही चाहते हैं, जैसा
 किसान मेषको, अथवा अनेक प्रकारके ऋषि-
 योंसे सुने हों । तलाव और पर्वतोंका हमसे
 वर्णन कीजिये । हे ब्राह्मण ! सुभको विना
 अर्जुनके इस वनमें रहना अच्छा नहीं लगता
 अतएव मैं दूसरी दिशाकी जाना चाहता हूं ।

॥ ८६ ॥ अध्याय समाप्त ॥

श्रीशम्पायन मुनि बोले, कि उन सब
 पाण्डवोंको उदास और उत्सुक देखकर बृह-
 स्पतिके समान धौम्य मुनि धैर्य देकर ऐसा
 बोले, हे पापरहित ! हे भरतर्षभ ! ब्राह्मणों-
 से कहे हुए आयम, दिशा, तीर्थ और पवित्र
 पर्वतोंको मैं कहता हूं, तुम सुनो । हे नरेन्द्र !
 जिनके सुननेसे आप अपने भाई और द्रौपदीके
 सहित स्वस्थ रहजियेगा, हे पाण्डव ! हे नरो-
 त्तम ! जिनको सुननेसे आपको वृद्धत पुण्य
 होगा और वहां जानेसे सौगुण पुण्य होगा ।
 हे युधिष्ठिर ! अब मैं आपसे स्मृतिके अनुसार
 राजर्षिसेवित पूर्व दिशाका वर्णन करता हूं,
 हे भरत ! उस राजर्षिसेवित पूर्व दिशामें
 नैमिषारण्य नामक तीर्थ है, जहां सब देवोंके
 अलग पवित्र तीर्थ है, जहां रमणीय, पवित्र
 देव और ऋषियोंसे सेवित गोमती नदी बहती
 है, वही देवोंकी यज्ञका स्थान और वही
 यज्ञके निर्मानयमराजने पाण्डवोंको मारा था ।

उसी पूर्व दिशा में पवित्र राजर्षि जयका सत्कार किया हुआ एक पर्वत है, वहीं पर देवता और ऋषियोंसे सेवित ब्रह्मसर तीर्थ है, हे पुरुषसिंह । उस स्थानमें जाने के निमित्त पुराने लोग कहते हैं, कि वज्रतसे पुर्वोकी दृष्टा करनी चाहिये, कोई भी तो गयाको जायगा । हे राजन् । चाहे अश्वमेध करे चाहे काले, रङ्गकी सांड़ छोड़े, चाहे गयाको जाय इन तीनों कर्मोंका महान फल है, कि दश अगली पीढ़ियोंका उद्धार होजाता है । हे नरनाथ ! वहीं महानदी और गयसिर नामक तीर्थ है, वहीं पर ब्राह्मण लोग अक्षयवट बतलाते हैं, जहां पितरोंकी पिण्ड देनेसे अक्षय होता है, हे नरनाथ । वहीं पर पवित्र जलवाली फल्गु नामक महानदी है । हे भरतर्षभ । उसी दिशामें वज्रत फल और मूलवाली कौशिकी नामक नदी है, तपोधन विश्वामित्र वहीं ब्राह्मण बने थे, उसी पूर्व दिशामें जलवाली गङ्गा बहती है, जहां राजा भगीरथने भारी दक्षिणावाली अनेक यज्ञ करी थीं । हे कौरव्य ! पाञ्चाल देशमें उत्पलवन नामक तीर्थ है, जहां कुशिक-पुत्र विश्वामित्रजी मनुष्योंसे अधिक बुद्धि देखकर गये थे, कान्यकुब्ज देशमें विश्वामित्रने सोमपान किया था और ब्राह्मण बने थे हे वीर । उसही पूर्व दिशामें पवित्र ऋषिसेवित लोक-विख्यात गङ्गा और यमुनाका उत्तम सङ्गम है, जहां पहिले भगवान ब्रह्माने यज्ञ करी थी, इसीसे उसका नाम प्रयाग हुआ है । हे राजेन्द्र ! हे नरनाथ । वहीं पर अगस्त्य मुनिका आश्रम है वही तपस्वियोंसे सेवित तापम वन तीर्थ है । आगे कलिञ्जर गिरि पर हिरण्य विन्द नामक तीर्थ है, वहीं पवित्र पर्वतोंमें अष्ट कल्याणदायक अगस्त्य मुनिका पर्वत है, हे कौरव्य । वहीं महात्मा भार्गवका आश्रम महेंद्र पर्वत है । हे कुन्तीनन्दन !

पहले वहीं यज्ञ करी थी, हे प्रजानाथ

युधिष्ठिर । पहले वहां पवित्र गङ्गा एक तालाबमें भरी थीं उस पवित्र कुण्डका नाम ब्रह्मसर है, वहां पर अनेक पापरहित महात्मा लोग रहते हैं, उसका दर्शन परम पवित्र है, उसके नामको महात्मा लोग मङ्गलदायक और पवित्र बतलाते हैं, वही मतङ्ग ऋषिका कुण्ड है, और वहीं उनका उत्तम आश्रम भी है, वहीं कुण्डका जल तथा वज्रत फल फूल और जलसे रम्य पर्वत भी है, जहां पर राजा नल प्यासे होकर गये थे और उसके जलकी पीकर आनन्दित हुए थे, वहीं तपस्वियोंसे सेवित देववन तीर्थ है, वहां पर्वतके शिखर पर वाङ्मदा नदी और गंगा बहती है, उस स्थानमें तीर्थ, नदी, पर्वत और पवित्र आश्रम है । हे महाराज । यह मैंने पूर्व दिशाके तीर्थ आपसे कहे । अब शेष तीन दिशाओंके तीर्थोंकी सुनिये, उनमें भी अनेक नदी पर्वत और पवित्र आश्रम है ।

८७ अध्याय समाप्त ।

श्रीधीम्य मुनि बोलें हे भारत । अब मैं दक्षिणके तीर्थोंकी बुद्धिके अनुसार विस्तार सहित कथा कहता हूं, आप सुनिये, उस दक्षिण दिशामें वज्रत आश्रम जज्ञ और तपस्वियोंके सहित कल्याण देनेवाली गोदावरी नदी बहती है, उसी दक्षिण दिशामें पापके भयको नाश करनेवाली हरिणा और पक्षियोंसे शोभित मुनियोंके आश्रमोंसे भरी ऊई वेणा और भीमरथो नामक दो नदो बहती हैं । हे राजन् ! उसही दिशामें राजर्षि नृगकी नदी है इसका नाम पयाज्ञि है, वह अनेक पक्षियोंसे सेवित रमणीय ओर वज्रत जलसे भरी है, उसी स्थानमें महायोगी और महा यशस्वी मार्कण्डेय मुनिने यजमान राजा नृगकी वशावली वर्णन करी है, हमने सुना है, कि उस स्थानमें प्रत्यक्ष ही सोम पीकर इन्द्र और दक्षिणा पाकर

ब्राह्मण लोग आनन्दित हुए थे, वहाँ पर्योश्रीमें और उत्तम वारह तीर्थमें उठे हुए या पृथ्वीमें पड़े हुए अथवा वायुसे चलित पुरुषका, जन्म भरका पाप नाश होता है, जहां स्वर्गसे भी जंचा निर्मल शिवका त्रिशूल है, उसको देखनेसे पुरुष शिवपुरको जाता है। मेरा यह सिद्धान्त है, कि जलसे भरी हुई नदी और सब तीर्थ एक और और पर्योश्री एक-और होय तौभी पर्योश्रीही अच्छी है, वरुण अंत नामक पर्वतवज्रत फूल और फलोसे भरा हुआ पवित्र मटरका वन है, वहाँ यूप भी बने हैं, हमने सुना है, कि प्रवेणीसे उत्तरकी ओर चलनेसे कण मुनिका पवित्र आश्रम मिलता है। और उधर मुनियोंके अनेक वन हैं। हे तात। उधरही महात्मा यमदग्निका वेदो शूरपारक नामक तीर्थ है, वहाँ परम रमणीय पत्थरोंसे भरी पुनश्चन्द्रा नाम्नी नदी है। हे कौन्तेय। वहाँ प्रशोक तीर्थ है, उस तीर्थमें मुनियोंके वज्रत आश्रम हैं, हे युधिष्ठिर। आगे पाण्ड्यदेशमें अगस्त्य और वरुण तीर्थ हैं। हे भरतर्षभ। सही पाण्ड्यदेशमें वज्रत पवित्र स्त्री ऐसी है। विवाहही नहीं करतो हैं, वहाँ ताम्रपर्णी नामक नदी है। हम उसका वर्णन करते हैं। प सुनिये। हे भारत। जिस स्थानमें देवता गोंन वज्रत कल्याणकी इच्छासे आश्रम बना रतप किया था उसही देशमें तीन लोक ज्ञात गोकर्ण महादेव हैं। हे तात। उधर-कल्याण-दायक सुन्दर वज्रत ठण्डे जलसे। हुआ तडाग है, उसका पापो पुरुष नहीं करते हैं। वहाँ घास मूल और फलोसे भरा। देवताके पर्वतके समान अगस्त्य मुनिके आश्रम है। उधरही मणिमय शोभा-कल्याण दायक वैदूर्य पर्वत है, उसी स्थान वज्रत फल मूल और जलसे शोभित अगस्त्य का आश्रम है। हे नराधिप। अब हम। देशके पवित्र स्थान, आश्रम, नदी और

तडागोंका वर्णन करते हैं। हे युधिष्ठिर! वहां चमसोज्जेद नामक तीर्थ है, ब्राह्मणलोग उसका वज्रत महात्मा करते हैं, आगे समुद्रमें देवताओंका प्रभास नामक तीर्थ है, वहां पिष्ठा-रक नामक तीर्थ है, उसमें अनेक ऋषि लोग रहते हैं उधरही शीघ्र सिद्धि देनेवाला उज्जयन्त नामक तीर्थ है। हे युधिष्ठिर। उसी स्थानके लिये ब्रह्मर्षियोंमें अष्ट नारदने यह पुराना श्लोक कहा है, उसको आप सुनिये, “जो पुरुष पत्नी और मृगोंसे भरे, हुए सुराष्ट्रदेशमें पवित्र उज्जयन्त पर्वत पर तप करता है, उसको स्वर्ग मिलता है। उसी देशमें पवित्र हारिका-पुरी है, वहां साक्षात् सनातन धर्मरूपी कृष्ण निवास करते हैं। जो ब्राह्मण वेद और ज्ञान-को जानते हैं, वे कृष्णकी महात्मा और सना-तन धर्म बतलाते हैं, कृष्ण पवित्रोंसे परम पवित्र पुण्यमें परम पुण्य मङ्गलोंके मङ्गल, कमलनेत्र, देवताओंके देवता और सनातन है, कृष्ण अव्यय (अविनाशी) व्ययात्मा, दीव्य (जीव) और परमेश्वर हैं, वेही मधुरान्नसके नाश करनेवाले अचिन्त्यात्मा भगवान् कृष्ण हारिकामें वास करते हैं।

अध्याय समाप्त ।

श्रीधीम्य मुनि बोले, हे राजन्! अब हम पश्चिम दिशाके आनर्त देशमें जो पवित्र और पुण्यमें भर हुए स्थान हैं, उनको आपसे कहते हैं। हे भारत। उस देशमें प्रियङ्ग और नौपके वनोंमें बैठत पश्चिमकी बहन वाली नर्मदा नामक नदी है, हे भारत! हे कुरुक्षेत्र। तीनलोकके सब तीर्थ पावत्र आश्रम, नदी, पर्वतोंके राजा, ब्राह्मणोंके मन्त्रित सब देवता असुर, ऋषि और चारण यह पुण्यमें भर हुए नर्मदाके जलमें स्नान करनेको आते हैं, वहाँ विश्वा मुनिका आश्रम है। वहाँ पर पुरुषवाहन कनेरका जन्म हुआ था

उधरही पवित्र कल्याण-दायक, पर्वतोंमें अष्ट ।
 वैदूर्य शिखर नामक पर्वत है, जहा हरे पत्तो-
 वाले सदा फूले फले अनेक वृक्ष हैं, हे महा-
 राज । हे पृथ्वीनाथ । उसही पर्वतकी चोटी
 पर देवता और गन्धर्वोंसे सेवित पवित्र फुल-
 पद्म नामक तलाव है । हे राजन् । उस देव
 और ऋषियोंसे सेवित एगमय स्वर्गके रमान
 पर्वतमें अनेक आश्चर्य देखते हैं । उस पर्वत-
 में राज ऋषियोंके अनेक कुण्ड हैं, हे राज ।
 हे शत्रुनाशन वहाँ विष्णुसिद्धकी पवित्र नदी
 है उसी नदीके तट पर नहुषके पुत्र राजा
 ययाति स्वर्गमें गिरे थे, और पुनः सनातन धर्म
 लोकको गये थे । वहाँ पवित्र तलाव और
 मैनाक पर्वत है, उधरही बृहत फल और
 मूलोंमें भरा हुआ नीलगिरि पर्वत है । हे
 युधिष्ठिर । वहाँ कक्षसेन मुनिका पवित्र आश्रम
 है । हे पाण्डव । उधरही विख्यात अश्विन
 मुनिका आश्रम है, वहा पुरुष लोग थोड़ीही
 तपस्यासे सिद्ध हो जाते हैं । हे महा-
 राज । उधरही आत्मदर्शी मुनियोंका जम्बु-
 मार्ग है । हे शान्तोंमें अष्ट । उधरही बृहत
 पक्षी और हरिणोंमें भरा हुआ आश्रम है । हे
 महाराज । उधरही सदा मुनियोंसे सेवित
 केतमाला और मैना नामक नदी है । हे पृथ्वी-
 नाथ । उधरही गङ्गाधर है, उसही और
 पवित्र ब्राह्मणोंसे भरा हुआ प्रसिद्ध सैन्धववन
 है, उधरही ब्रह्माका पुष्कर नामक तड़ाग है,
 वहाँ नैखानस, सिद्ध और ऋषियोंके प्रिय आश्रम
 हैं, वहा निवास करनेके निमित्त ब्रह्मा गये
 थे, हे कुरु-अष्ट । हे धर्ममात्रोंमें अष्ट ।
 हमने यह कथा सुनी है, कि जा मनस्वी पुरुष
 पुष्कर जलकी मनसे भी इच्छा करता है, उसके
 सब पाप नाश होजाते हैं, और स्वर्गका आनन्द
 मिलता है ।

८६ अध्याय समाप्त ।

श्रीधौम्य मुनि बोले, हे राजशार्दूल । उत्तर
 दिशामें जो पवित्र स्थान हैं, उनका वर्णन हम
 आपसे करते हैं, सुनिये, हे वीर । पृथ्वीनाथ ।
 अब जो हम कथा आपसे कहते हैं उसको
 सावधान होकर सुनिये और उस कथामें अद्वा
 कीजिये । हे पाण्डव । उत्तर दिशामें महा-
 पवित्र सरस्वती और मालिनी नदी है, उसी
 और महाविश्वती समुद्रगामिनी यमुना नदी है
 जहां अत्यन्त पवित्र सुन्दर पल्लवावतरणा तीर्थ
 है, जहा सारस्वत यज्ञ करनेसे ब्राह्मण लोग
 उक्त लोकोंकी प्राप्ति करते हैं, हे पाप रहित ।
 जहा पवित्र कल्याणोंका देनेवाला अग्निसिद्ध
 नामक तीर्थ है, हे भारत । जहा सहदेवने
 सम्पा (दण्डविशेष) लगाकर यज्ञ किया था । हे
 युधिष्ठिर । इसही स्थानमें इन्द्रने यह कथा
 कही थी जिसकी लोकमें अभीतक ब्राह्मणलोग
 गाते हैं । हे पुरुषशार्दूल । यमुनाके तट पर
 सहदेवने अग्नि सेवा कही थी, वहा उन्होंने
 मैकड़ों सहस्रों दक्षिणा सहित यज्ञ करे थे, हे
 राजन् । उसी स्थानमें महायशस्वी चक्रवर्ती,
 राजा भरतने एकसौ अड़तालीस अश्वमेध करे
 थे । हे तात । वहांसे आगे ब्राह्मणोंका कार्य
 सिद्ध करनेवाला अत्यन्त पवित्र शरभद्र मुनिका
 विख्यात आश्रम है, हे कल्पीनन्दन । सरस्वती
 नदीकी पण्डित लोग सदाही सेवा करते हैं ।
 हे महाराज । जहा पहले वारुखित्य मुनियोंने
 यज्ञ करी थीं । हे युधिष्ठिर । उसी देशमें
 महापण्डवती दृषदतीनदी है, हे पुरुषशार्दूल ।
 आगे पाञ्चाल देशमें पाञ्चात्य वट है ।
 हे कल्पीनन्दन । उसी पृथ्वीमें अनन्त यशवाले
 उत्तम व्रतधारी महा तेजस्वी महात्मा दालभ्य
 मुनिका दालभ्य घोष आश्रम है यह आश्रम
 परम पवित्र और तीनों लोकमें विख्यात है । हे
 महाराज । उसी देशमें नर और नारायण
 ऋषि निवास करते हैं । हे भरतसन्तम । यह
 दोनों वेदके जानने वाले वेदके पण्डित और वेद-

विद्याके जाननेवाले है, यह दोनों सदाही पवित्र
बड़ी यज्ञोकी किया करते है, आगे विसाखयूप
नामक तीर्थ है, जहां पहले इन्द्र वरुण आदि
प्रनक देवतोंने मिल कर तपस्या करी थी,
इसीसे यह आश्रम वहुत पवित्र है, उसी देशमें
महाभाग महायशस्वी, महामुनि यमदग्निने
रमणीय पलास वनमें यज्ञ किये थे, वहा सब
नदियोंमें श्रेष्ठ नदियां अपना अपना जल लेकर
यमदग्नि ऋषिके पास आई थीं, हे महाराज !
इस स्थानमें स्वयं विश्वावसुने महात्मा यमदग्नि-
के यज्ञको देखकर यहश्लोक गाया था । “यह
कहते हुए महात्मा यमदग्निके यज्ञमें देवता
नदी और ब्राह्मण स्वयंही आये और सहृदसे
तप हुए, उसी देशमें गन्धर्व, यक्ष राक्षस और
अप्सरओंसे सेवित किरात और किन्नरोंका
देश उत्तम पर्वत है । हे युधिष्ठिर ! उसी
देशमें वेगसे पहाड़का ताड़ करगड़ा निकली है
उस स्थानका नाम गङ्गाद्वार है, हे राजन् !
उसी देशमें ब्रह्मऋषियोंसे सेवित सनत्कुमारका
स्थान पवित्र कनखल तीर्थ है उधरही पुरुरवा
नामक पर्वत है वही राजा पुरुरवा गये थे,
हे राजा ! उधरही महर्षि सेवित भृगुतुङ्ग
नामक पर्वत है, वही महात्मा भृगुन तप
किया था । हे भरतकुलसिंह ! जा भूत-
भक्षित और वर्तमान कालमें स्थिर रहनेवाले
सनातन नारायण विशु पुरुषोत्तम हैं, उनही
महायशस्वी विशुकी पवित्र शिला भी उधरही
है । हे राजन् ! उसी देशमें तीनो लोक विख्यात
एवम् पवित्र आश्रम है, जहां गङ्गाका उष्णजल
बहता है, यह जल पहले ठण्डा था । हे
राजन् ! वदर्कान्नमके पास सुवर्ण सिकता नामक
तीर्थ है, जहाजाकर महाभाग महातेजस्वी ऋषि
और देवता लोग परमेश्वर नारायणकी प्रणाम
करते हैं, जहा परमात्मा सनातन देवनारायण
रहते हैं, वहा सब जगतके पवित्र तीर्थ
रहते हैं । यह स्थान पवित्र ब्रह्मतीर्थ और

तपका वन है, वह स्थान सब पुरुषोंका पर
मेश्वर और परमपवित्र है, वहाही पर साक्षात्
परमेश्वर निवास करते हैं, जिनको जानकर
शास्त्रको देखनेवाले महात्मा लोग सोचसे
कूटजाते हैं, वेही सब जगतके उत्पन्न करने
वाले सबसे उत्तम और सनातन देव है, जहा
आदि योगी नारायण विराजमान है वहा सब
देवता ऋषि, सिद्ध और तपोधन मुनि निवास
करते हैं, हे महाराज ! यह स्थान पवित्रोंसे
भी अधिक पवित्र है, इस विषयमें आपको कुछ
भी शङ्का न होनी चाहिये, हे पृथ्वीनाथ ! इस
पृथ्वीमें इतनेही पवित्र तीर्थ हैं । हे महाराज !
हमने जो यह पवित्रतीर्थ आपसे वर्णन किये
इन सबमें वसु, साय, सूर्य वायु, अश्विनो
कुमार और महात्मा देवतोंके समान ऋषि लोग
निवास करते हैं । हे कुन्तिनन्दन ! इन तीर्थोंमें
आप ब्राह्मण और महाभाग भाइयोंके सहित
आनन्दसे घूमिये ।

६० अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि वीले, हे कौरवनन्दन
जहा धौम्य मुनि युधिष्ठिरसे ऐसा कह रहें
थे, उस स्थानमें महातेजस्वी लोमश मुनि आये
उनकी देखतेही राजा युधिष्ठिर अपने पुरुष
और ब्राह्मणोंके सहित इस प्रकार खड़े हुए
जैसे महाभाग इन्द्रको आते देख स्वर्गमें
देवता लोग खड़े हो जाते हैं । धर्मराज महा-
राज युधिष्ठिरने उनकी यथा योग्य पूजा करके
उनके घूमने और वहा आनेका प्रयोजन
पूछा महात्मनस्वी लोमश मुनिने पाण्डुपुत्रका
प्रश्न सुनके पाण्डवोंकी प्रसन्न करते हुए भीठी
वाणीसे यों कहा, हे कुन्तिनन्दन ! मैं अपना
इच्छासे सब लोकोंमें घूमता हूँ अभी इन्द्रके
स्थानमें गया था, वहा इन्द्रको देखा, वही
तुम्हारे भाई और अर्जुनका इन्द्रके आये आसन
पर बैठे हुए देखा, हे पुरुषशङ्कर अर्जुनको

ऐसा देखकर मुझे महा आश्चर्य हुआ, तब इन्द्र ने मुझसे कहा कि तुम पाण्डवोंके पास जाओ, सो अब मैं महात्मा इन्द्र और अर्जुनकी आज्ञासे भाइयोंके सहित आपके देखनेकी आया हूँ, हे पाण्डुनन्दन ! हे तात ! हे राजन् ! जो कुछ मुझे कहना है सो आप द्वीपदी और ऋषियोंके सहित सुनिये, हे नाथ ! हे भरतकुलसिंह ! आपने अर्जुनको जिस अस्त्रके निमित्त भेजा था, वह असाधारण अस्त्र उन्होंने शिवसे ले लिया, उन्होंने अपने तपसे शिवको वहीं बुलाया था, जो अस्त्र महा कठोर और अमृतसे उत्पन्न हुआ है वही ब्रह्मसिर अस्त्र अर्जुनको शिवसे मिला है, हे युधिष्ठिर ! अर्जुनने उस शस्त्रकी मन्त्र, संहार और प्रायश्चित्तके सहित सीखा है । हे कुन्तिनन्दन ! अर्जुनकी इन्द्र, वरुण, यम, और कुबेरसे वज्र और दण्ड आदिके सब शस्त्र मिल गये हैं, महापराक्रमी अर्जुनने औरभी दिव्य अस्त्र शीख लिये हैं और विश्वावसुपुत्रसे नाचने गाने और वज्रानकी विद्याकी अच्छी प्रकार सीख लिया है, इस प्रकार तुम्हारे छोटे भाईसे छोटा भाई कुन्तोपुत्र अर्जुन अस्त्रावद्या और गन्धर्व विद्याकी सीखकर सुखसे स्वर्गमें रहते हैं और हे युधिष्ठिर ! मुझका देवराज-इन्द्र ने जिस निमित्त आपके पास भेजा है, सा सुनिये मुझसे उन्होंने या कहा है । कि हे दिजोत्तम ! आप मनुष्य लोकमें जाकर मेरे वचनानुसार युधिष्ठिरसे ऐसा कहियेगा कि, आपके भाई अर्जुन शीघ्रही शस्त्रोंकी सीख और जा कार्य देवतासे नहीं हो सकता है, उस भारी देवकार्यको करके आपके पास आवेंगे, इतनेमें आपभी भाइयोंके सहित तप कीजिये, क्योंकि जगत्में तपके बराबर कोई वस्तु नहीं है, तपहीसे परम पद मिलता है, हे भरतकुलसिंह ! हम सत्यधारी महा वीर्यवान्, महायुद्धमें असमान भी महायुद्धोंके जाननेवाले महाधनुषधारी

वीर महा अस्त्रवाले सुन्दर स्वामकार्तिक समान सूर्यके पुत्र कर्णको अच्छी प्रकार जानते हैं, तैसीही जेबे कम्बोंवाले जन्महीसे महापराक्रमी अर्जुनकी भी हम भली भाँति जानते हैं । हे वीर ! यह निश्चय है कि कर्ण अर्जुनसे सोलह भागवें समानभी योद्धा नहीं है, जब अर्जुन आवें तब वह भय जो कर्णकी ओरसे आपके हृदय है, सबही निकल जायगा । हे शत्रुनाश आपके मनमें जो तीर्थ यात्राकी इच्छा है, सो निःसन्देह लीमश ऋषि आपसे सब वर्णन करेंगे । हे भारत ! तपकरनेसे और तीर्थमें जानेसे क्या-क्या फल होते हैं, सो सब महर्षि लीमश आपसे कहेंगे, परन्तु आप उनके वचनोंकी झूठा न समझियेगा ।

६१ अध्याय समाप्त ।

श्रीलीमश मुनि बोलि, हे युधिष्ठिर ! अब अर्जुनने जो कुछ आपसे कहा है सो आप सुनिये, उन्होंने कहा है, कि हे लीमश ! आप मेरे भाई युधिष्ठिरकी धर्मकी शोभाका उपदेश कीजिये, हे तपोधन ! आप परम धर्म-तप और श्रीमान् राजा लोगोंके सनातन धर्मकी अच्छी प्रकार जानते हैं, आप परम पवित्र धर्मकी उत्तम रीतिसे जानते हैं, इसही लिये पुण्य तीर्थोंमें पाण्डवोंके रुझ जानका कार्य आपकी समर्पण करते हैं, जिस प्रकार महाराज तीर्थमें जाय और गौ दान करें, आप सब प्रकारसे वैसाही यज्ञ कीजियेगा, और यहभी कहा है कि, धार, वन और दुःखसे जाने योग्य स्थानोंमें आप राक्षसोंसे महाराजकी रक्षा कीजियेगा, आपसे राक्षत हाकर महाराज सब तीर्थोंमें जा सकेंगे, जिस प्रकार दधोच मुनि इन्द्रके सङ्ग और सूर्यके सङ्ग अङ्गिरा मुनि रहते हैं, हे दिजोत्तम ! तैसीही आपभी पाण्डवोंके सङ्ग रहकर उनकी रक्षा कीजिये, क्योंकि पर्वतोंके समान शरीरवाले अनेक राक्षस लोग अनभि

निवास करते हैं, राजाको आपसे रक्षित देख-
कर वे लोग उन्हें अपने घरोंमें न ले जा सकेंगे ।
सो अब मैं आपके सङ्ग सब तीर्थोंकी जाजंगा,
और वहाँ सब भयोंसे आपकी रक्षा करूँगा ।
हे कुन्तिनन्दन ! मैंने सब तीर्थोंकी दो दो बार
देखा है, अब तीसरी बार आपके सङ्ग चलकर
देखूँगा, हे महाराज ! हे युधिष्ठिर ! यह तीर्थ-
यात्रा पुण्य करनेवाले मनुआदिके राजर्षि-
योंसे सेवित और भयकी नाशकरनेवाली है, हे
कीरव्य ! इन तीर्थोंमें टेढ़ा, पापी, मूर्ख, पातकी
और दुष्टबुद्धि पुरुष स्नान नहीं कर सकता है,
आप सत्य बोलनेवाले, धर्मज्ञ, और सदासे
धर्मवर्द्धि हैं, इन तीर्थोंकी करनेसे आप फिर भी
सबके सङ्गसे अलग हो जायेंगे ! हे पाण्डव !
हे कुन्तिनन्दन ! राजा भीमरथ, राजा ययाति
और गय आदिक राजा लोग जैसे थे वैसेही
। तुमभी हो ।

युधिष्ठिर बोले, मैं इतना प्रसन्न हुआ हूँ
आपकी इस बातकी कुछ उत्तर नहीं दे
ता, क्योंकि जिसका कारण इन्द्र करे, उससे
किस प्रारब्धी कौन होगा ? जिसको आपका
नहीं, जिसका भाई अर्जुन है और जिनका
कारण करे उससे अधिक प्रारब्धी और
न होगा, जो भगवान् इन्द्रने मुझको तीर्थ
नकी आज्ञा दी है, सो ता धौम्य मुनिके
इन्में मैंने फहलेही विचार है । हे ब्रह्मण !
मैं यह निश्चय कर लिया है कि जिस दिन
आप चलनेका इच्छा करेंगे मैंभी उसी दिन
तीर्थ यात्राकी चलूँगा, और्वैशम्पायन मुनि बोले
युधिष्ठिरके चलनेकी इच्छा देख लोमश मुनि
जान लगे कि हे महाराज ! आप थोड़े पुरु-
षोंके अपने सङ्ग लीजिये, क्योंकि थोड़े पुरुष
सर्वत्र सुखमें चलना होगा । युधिष्ठिर बोले, जा
को और ब्रह्मण भीख मागकर खाते हैं, और
भय नाम मार्गका परित्रस और शीतके
दुखोंमें नहीं बच सकते, जो ब्राह्मण भीठा

भोजन करते हैं, जो पके हुए अन्नमें चटनीमें पानीकी
वस्तुओंमें और मासमें अच्छे बुरका विचार
करते हैं, वे सब लौट जायें और वे लोग भी
हमारे संगसे लौट जायें जो रसोई बनानेवालोंके
सहायक हैं, जो लोग हमसे यथोचित वृत्तिपात
है, वे भी हमारे संगसे लौट जायें, जो राज्यके
लोग राजभक्तिके कारण हमारे सङ्ग हैं, वे सब
महाराज धृतराष्ट्रके पास चले जाय, वे उन
सबको समयके अनुसार जो जिसका वेतन है
देंगे, याद वे महाराज उन पुरुषोंका उचित
वेतन नदेंगे तो हमारे प्यारे काम करनेवाले
दुष्टदुग्ध सबका पालन करेंगे । और्वैशम्पायन
मुनि बोले, उसी समय अनेक राज्यवासी लाग
राजाकी आज्ञाकी वीक्षसे पीड़ित होकर अनेक
ब्राह्मण यती और प्रधान लोग हास्तीनापुरकी
चले गये, उन सबको राजा युधिष्ठिरके प्रेमसे
अम्बिकापुत्र महाराज धृतराष्ट्रने अपने यहाँ
रख लिया और धनदेकर सन्तुष्ट किया, अनन्तर
कुन्तीपुत्र महाराज युधिष्ठिर थोड़े ब्राह्मणोंके
सहित प्रेमपूर्वक लोमश मुनिके सङ्ग तीन
दिन काम्यकवनमें और रहे ।

६२ अध्याय समाप्त ।

और्वैशम्पायन मुनि बोले, कुन्तीपुत्र महाराज
युधिष्ठिरको चलते हुए देख बनवासी तपस्वी
उनके पास आकर ऐसा बोले, हे राजन् ! आप
भाइयोंके सहित लोमश मुनिको सग लेकर
पावन तीर्थोंकी जानेवाले हैं, हे पाण्डव ! हे
महाराज ! आपका उचित है कि हम लोगों-
को भी सङ्ग ले चलिये, क्योंकि हम लोगोंके
बिना आप सिंहादि जन्तुओंमें भरे हुए दुखसे
जाने योग्य घोर अगम्य तीर्थोंमें नहीं जा सकेंगे,
हे नरनाथ ! हे कीरव ! आपके भाई लोग
बड़े सखीर धनुषादिओंमें बैठे हैं, आप लोगों-
से रक्षा पाकर हम लोग भी तीर्थ कर सकेंगे,
हम लोग आपकी रक्षा में लगे हैं

और स्थानोका पवित्र फल पावेंगे। हे नरनाथ । आपकी कृपासे हम लोग रक्षित होकर तीर्थोंमें स्नान करके पापोंसे कूट पवित्र होंगे, हे नरनाथ । आपभो महाराज कृतवीर्यके पुत्र, राजर्षि अष्टक, लोमपाद और चक्रवर्ती वीर राजा भरतकी गतिको प्राप्त करजियेगा, वह लोक परम कठिनतासे प्राप्त होते है। हे पृथ्वीनाथ । हम लोग आपके सङ्ग जाकर प्रभास तीर्थ, महेन्द्र आदिक पर्वत, गङ्गा आदिक नदी और प्लक्ष आदिक वृक्षोंके देखनेकी इच्छा करते हैं, यदि आपकी ब्राह्मणोंमें कुक्षुभी प्रेम हो तो महाराज ! हमारे इन वचनोंकी स्वीकार कीजिये इससे आपका कृत कल्याण होगा, हे महाबाही । विसव तीर्थ तप नाश करनेवाली राक्षसोंसे भरे है । उन सबमें आप हमारी रक्षा करनेके योग्य है, जो तीर्थ धौम्यने और बुद्धिमान नारदने जो तीर्थ कहे थे, वेही महा तपस्वी देवर्षि लोमशनेभी कहे, हे नरनाथ ! आप विधिपूर्वक उन तीर्थोंका दर्शन कीजिये और हम लोगोंको भी सङ्ग ले लीजिये, लोमश मुनि सबकी रक्षा करेंगे । राजा उन मुनियोंके वचन सुनकर आसुओंसे नहा गये, अनन्तर वीर भीमसेन आदिक भाइयोंकी सम्मती लेकर पाण्डव सिंह युधिष्ठिरने कहा कि बद्धत अञ्छा, अनन्तर लोमश और पुरोहित धौम्यकी आज्ञा लेकर अपने भाई और सुन्दराङ्गी द्रौपदीके सहित महाराजने उस वनसे चलनेका विचार किया, उसी समय महाभाग व्यास, पर्वत और नारद, काम्यक वनमें युधिष्ठिरकी देखनेकी इच्छासे आये, महाराज युधिष्ठिरने उन सबकी पूजा उचित विधिसे करो । अनन्तर महाभाग मुनीश्वर लोग युधिष्ठिरसे पूजित होकर ऐसा कहने लगे, ऋषि लोग बोले, हे युधिष्ठिर ! हे भोम ! हे नकुल ! हे सहदेव ! आपलोग अपने मनकी शान्त कीजिये, मनको पवित्र करके शुद्ध होकर तीर्थोंको जाइये, मुनि-

योंने कहा है । कि शरीर शुद्ध होनेहीसे व्रत हो सकता है, ब्राह्मणोंने कहा है कि मन पवित्र होनेसे जो बुद्धि शुद्ध होती है, उसीको मुनीश्वर लोग देवव्रत कहते है, हे नरनाथ ! शुद्ध मनही पवित्रताका कारण है, आप लोग अपनी बुद्धिको पवित्र और सबकी मित्र बनाकर तीर्थोंको जाइये, जब आपलोग शरीरके निष्क और व्रतोंसे शुद्ध होंगे और पूर्वोक्त देवव्रत धारण करेंगे, तब तीर्थोंका यथायोग्य फल पावेंगे । अनन्तर द्रौपदीके सहित पाण्डवों प्रतिज्ञा करी कि हम ऐसाही करेंगे, तब देवर्षि और ब्राह्मणलोग स्वस्ति पाठ करने लगे हे राजेन्द्र ! अनन्तर वीर पाण्डवोंने लोमश व्यास, नारद और पर्वतके चरणोंमें प्रणाम किया, अनन्तर अगहन मास समाप्त होतेही धौम्य ऋषि और उन वनवासी ऋषियोंके सहित चले, जटा और मृगचर्मधारी पाण्डवलोगने नटूटने योग्य कवच पहन और लाठी हाथमें लेकर चले, उनके सङ्ग पन्दरह रथ थे, और इन्द्रसेन आदिक सारथी, रसीदय, सेवक और प्रधान प्रधान कर्मचारीभी सङ्ग थे, हे जनमेजय ! वे सब लोग शस्त्र लिये, कवच-वास्ये वाण भरे तूणीर लगाये पूर्वकी ओर मुह करके चले ।

६३ अध्याय समाप्त ।

महाराज युधिष्ठिर बोले, हे मुनिसन्त ! यद्यपि हम ऐसे दुःखमें पड़े हैं, कि दूसरे राजाकी कभी ऐसा दुःख न हुआ होगा तभी हम अपनेकी उत्तम गुणोंसे हीन नहीं समझते, हे लोमश ! हम जानते है, कि हमारे शत्रुलोग अधर्मी और गुणहीन है, तभी न जाने उनकी बुद्धि क्यों होती जाती है । श्रीलोमश मुनि बोले, हे राजन् ! हे कुन्तीपुत्र ! अधर्मी पुरुष अधर्महीसे बढ़ते है, इसमें आपको कदापि दुःख न करना चाहिये, क्योंकि यह नियम है कि पुरुष पहले अधर्मसे बढ़ता है, फिर उस

सुख मिलता है, पश्चात् वह शत्रुओंकी जोतता है, तब उसके पीछे जड़के सहित नष्ट हो जाता है, है पृथ्वीनाथ । मैंने अनेक राक्षस और दैत्योंकी देखा है, कि पहले वह अधर्मसे बढ़े और नष्ट होगये । है नाथ । मैंने पहले मत-युगमें देखा था कि देवोंने धर्मको धारण किया और राक्षसोंने धर्मको छोड़ा, है भारत । देवता लोग तीर्थोंमें गये और राक्षस लोग न गये, उनकी अधर्मका अभिमान पहलेही हो गया था अहङ्कारसे अभिमान, अभिमानसे क्रोध, क्रोधसे निर्लज्जता, निर्लज्जतासे दुष्कर्मोंमें प्रवृत्ति और दुष्कर्म करनेसे उनका सर्वनाश होगया, उन अधर्म, निर्लज्ज और मिथ्या व्रत-धारियोंकी लक्ष्मी और धर्मने शीघ्रही छोड़ दिया अनन्तर लक्ष्मी देवताओंकी यहा और दरिद्र राक्षसोंकी यहाँ वास करने लगा, अनन्तर अभिमानसे नष्ट चित्तवाले लक्ष्मीहीन दैत्य और राक्षसोंकी यहा कलियुगने वास किया, उन लक्ष्मी रहित, कलिरहित अभिमानसे नष्ट, पा और बुद्धिहीन राक्षसोंका शीघ्रही नाश होगया, राक्षस लोगोंका यश हीन होनेसे सर्वनाश होगया, तब देवता लोग समुद्र, नदी, और जल प्रादि पवित्र स्थानोंमें तीर्थ करनेकी शीघ्र ही देवता लोग धर्मवान थे, है पाण्डव । लोगोंने तप, यज्ञ, दान और आशिर्वा-दानसे अपने सब पापोंको दूर किया और अनेक कष्टोंकी प्राप्त किया इसी प्रकारसे देवता लोग आनन्दके सहित विहार करने लगे तीर्थोंमें धर्मने लगे इसीसे उनकी लक्ष्मी मिली है राजेन्द्र । इसी प्रकार भाइयोंके सहित तीर्थोंमें स्नान करनेकी लक्ष्मीकी प्राप्त कीजियेगा । है नृप, जिव औशीनर भगीरथ, जल और परुरवा आदि राजोंने स्नान करके तपस्या करी दो और तीर्थ धारणोंके दश वर्ष पवित्रहण दो

तैसेही आपभी पवित्र हैजियेगा, है प्रजा-नाथ । जिस प्रकारसे उनकी लक्ष्मी यश और पुण्य मिले थे वैसेही आपकी वहुत लक्ष्मी मिलेजी, जैसे इच्छाकुने पत्र और वान्धवोंके सहित आनन्द किया था, जैसे मुचकुन्द, मान्धा-ता और राजा मस्तने पवित्र कीर्तिकी लाभ किया था और जैसे तपस्याके बलसे देवता और देवकृषि लोग आनन्द करते है, तैसेही आप भी आनन्द कीजियेगा, जैसे राक्षस लोग नष्ट होगये, तैसेही भूतराक्षके पुत्रभी अधर्म और मोहके वशमें होनेसे निन्द्य ही नष्ट होंगे ।

६४ अर्थात् समाप्त ।

श्रीशंभुनाथ मुनि बोले, वीर पाण्डव लोग सब पुरुषोंके सहित इस प्रकार क्रमसे जहाँ तहा वसने हुए नैमिषारण्य तीर्थमें पहुँचे । है भारत । है राजन् । है जनमेजय । पाण्डव लोगोंने उस तीर्थमें जाकर गोमतीमें स्नान किया और अनेक गौ तथा वहुत धन दान किया । अनन्तर कन्या तीर्थ, अश्वतीर्थ, गो तीर्थ, कालकोटि और विप्रप्रस्थ पर्वतमें जाकर पितर और देवताओंकी पूजा करी तथा ब्राह्म-णोंकी वहुत दान देकर तप किया, है पृथ्वी-नाथ । वहाँसे चलकर उन लोगोंने वाङ्गदा-नदीमें स्नान किया । है पृथ्वीनाथ । वहाँसे देवताओंके यज्ञ स्थान प्रयागमें पहुँचे, वहाँ जाकर स्नान करके व्रत और उत्तम तप किया, सत्य वादी पाण्डवोंने गङ्गा और यमुनाके नङ्गममें स्नान करके ब्राह्मणोंकी वहुत धन दान किया वहाँसे महात्मा पाण्डव लोग मुनि भक्ति प्रजापतिकी वेदी पर गये, है राजन् । है भारत । उस स्थानमें ब्राह्मणोंकी रहित पाण्ड-वोंने जाकर निवास और उत्तम तप किया, है राजन् । इस प्रकार ब्राह्मणोंकी वनचारी पण्डितोंके मार्ग और उत्तम धर्म मन्त्र करने

हुए पाण्डव लोग गयामें पहुँचे, जहाँ धर्मराज महात्मा राजागयने पर्वतका संस्कार किया है, हे महातेजस्विन् । वहीँ राजर्षि पुण्यात्मा राजागयने अपने नामसे गयसिर नामक तीर्थ स्थापन किया है, वहीँ वैत्र हृत्तोसे शोभित उत्तम घाटवाली-रमणीय फल्गु नामक महा नदी है, जहाँ पवित्र शिखावाला उत्तम दिव्य पर्वत है, वहीँ पर मुनि सेवित उत्तम ब्रह्मसर नामक तीर्थ है, जहाँसे भगवान् अगस्त्य मुनि सूर्यके पास गये थे, हे पृथ्वीनाथ । वहीँ पर सनातन धर्मराज युधिष्ठिरने बास किया उसके पासही सब नदियोंका एक सीता है, जहाँ पर साक्षात् पिनाकधारी महादेव सदा वास करते हैं, वहाँ वोर पाण्डवोंने वर्ष भर वास किया, उस स्थान पर रहकर महात्मा युधिष्ठिरने ऋषि यज्ञ किये, जहाँ महा अक्षयवट है, जिसका फल अक्षय है, जहाँ यज्ञ करनेसे अक्षय पुण्य होता है उसी स्थानमें युधिष्ठिरने वहाँ यज्ञ किया था और सब लोगोंने स्थिर मन होकर व्रतभी करे थे, उस समय उस देशके तपोधन सहस्रों ब्राह्मण युधिष्ठिरके पास आये थे, उस समय महाराजे युधिष्ठिरने वेदोक्त विधिके अनुसार उस यज्ञकी समाप्त करके तेज और तपसे भरे हुए सब वेदोंके जाननेवाले ब्राह्मणोंसे महात्माओंकी-मभामें बैठकर पवित्र वार्तालापभी किया था, उस-मभामें विद्या और व्रतसे पूर्ण ब्रह्मचारी संमठ-मुनिने अमूर्तरयसके पुत्र राजा गयकी कथा इस प्रकार कही, समठ बोलि, हे भारत । राजा अमूर्तरयस के पुत्र राजर्षि श्रेष्ठ राजा गयने जा जा पुण्यकर्म किये थे, सो मैं आपसे कहता हूँ आप सुनिये, हे राजन् । राजा गयने यहाँ पर वज्रत अन्न और दक्षिणाके सहित यज्ञ की थी, हे मुँ पचाड़के समान-सैकड़ों अन्नके ढेर आपलीइहा घीव और दहीकी सैकड़ों नहर पवित्र क - जहाँ वज्र-मूल्यवाले पके हुए

अन्नोंके प्रवाह वह रहे थे, हे राजन् । वह राजा रोज रोज ऐसाही दान प्रति दिन देता था हे भारत । जब-वह दक्षिणा देते थे तो वेदका शब्द आकाश त पूरित हो जाता था, उस समय वेदके शब्द सिवाय और कुछ नहीं सुनाई देता था, राजन् ! उस पवित्र शब्दसे आकाश और दक्ष दिशा पूरित होजाती थीं, यह अद्भुतकर्म नित्यही करते थे । हे भरतकुल सिंह । जिस अन्न और पानसे तप्त होकर सब देशे पुरुष लोग उनहीको वार्ता करते थे, । गयके यज्ञमें कौनसे-पुरुषकी खानेकी इच्छा रह गई ? वचे हुए भोजनके इक्कीस पचाड़ समान ढेर पड़े हैं, वहाँ तेजस्वी राजर्षि गय जैसी यज्ञ करी, वैसी न-किसीने की और करेगा । राजा गयको यज्ञमें देवता लोग ऐसे त हुए कि दूसरी यज्ञमें भोजन करनेकी इच्छा उनको न रही, जैसे बाख्के, कनके, जैसे आकाश तारे और-जैसे बरसते हुए-मेघकी धाराके कोई नहीं गिन सकता, तैसेही राजा गयने दक्षिणाओंकी भी कोई नहीं गिन सकता है । हे कुरुनन्दन ! इसीप्रकारसे राजा गयने इस ताला-वके-तटपर अनेक यज्ञ करी है ।

— १५ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोलि, अनन्तर वज्रत दक्षिणा देनेवाले कुन्तीपुत्र महाराज युधिष्ठिर वहाँसे चले और अगस्त्याश्रममें पहुँचकर दुर्ज-यास्थान (जहाँ अगस्त्यने वातापीकी माराया) में ठहरे, वहीँ कहनेवालोंमें श्रेष्ठ । धर्मराजने लोमशसे प्रश्न किया कि अगस्त्य मुनिने इस स्थान पर वातापीकी क्यों मारा था ? कहिये उस मनुष्योंके नाश करनेवाले राजसमें क्या शक्ति थी ? और महात्मा अगस्त्य मुनिकी किस निमित्त क्रोध हुआ था ? श्रीलोमश मुनि बोलि, हे कौरवनन्दन । इस मणिमति परीमे पड़ने

समयमें इल्लल नामक-राक्षस हुआ था, वातापी उसका पुत्र था, उसने एक तपस्वी ब्राह्मणसे कहा कि हे भगवन् ! आप इसे प्राशिक्षा दीजिये कि जिससे मेरे इन्द्रके समान होता हो, परन्तु उस ब्राह्मणने उसको इन्द्रके पुत्र वेदा न दिया, -इससे-राक्षसने ब्राह्मणके ऊपर महा क्रोध किया। हे राजेन्द्र ! उसी देनसे ब्राह्मणभक्षी-इल्लल राक्षसने यह उपाय किया कि अपने भाईको-मायासे बकरा बनाया, वह वातापी नामक राक्षस उसी समय बकरा पान गया, तब इल्ललने उसको काटकर भोजन- बनाकर ब्राह्मणोंको खिला दिया, उसके जानेसे सब ब्राह्मण मर गये, उसको-यह राशोनाद था कि जिस मरे हुए पुरुषका नाम लेकर वह पुकारे सो फिर शरीरधारण करके होता हुआ बोलने लगता था, अनन्तर एक दिन सने अपने भाईको बकरा बनाकर उसे भोजनमें सिद्धकर उसी ब्राह्मणका खिला दिया, भोजनके पश्चात् इल्ललने अपने भाई वातापीका तम लेकर जंघे खरसे पुकारा, तब वह ब्राह्मण गृध्रक, बलवान, मायावी, वातापी अपने भाईका जंघा खर-सुनकर उस ब्राह्मणका ट फाड़कर उसी समय बाहर निकल आया, राजन् ! हे प्रजानाथ ! वह महा असुर वातापी ब्राह्मणके पेटसे बाहर निकलकर मने लगा, हे राजन् ! इस प्रकार वह दुष्ट बल प्रति दिन ब्राह्मणोंको भोजन कराकर नका नाश करने लगा। एक दिन भगवान् मुनिने देखा कि सब पितर लोग नीचा किये गढ़ोंमें पड़े हैं, तब उन्होंने पूछा कि हे लोगोंकी यह क्या दशा है ? वेदपाठी कापत हुए कहा कि हमारी सन्तान का गई इसी निचे हम इस आपत्तिमें पड़े हैं भगवन् ! हम तुम्हारे पितर हैं, काँड़े पृथ नहीं हैं, इसीसे हम इस पृथ के प्रति हम पृथ नहीं उत्पन्न करी

तो हम नर्कसे न छूटेंगे, इस लिये तुम पुत्र उत्पन्न करो। सत्यवादी तेजस्वी अगस्त्य मुनिने कहा कि हे पितर लोगो ! हम आप लोगोंकी आज्ञा पालेंगे, आप लोग अपने मानसिक दुःखको दूर कीजिये, अनन्तर भगवान् अगस्त्य ने विचारा कि मैं कौनसी स्त्रीमें विवाह करूँ ? उन्होंने पुत्र उत्पन्न करनेके निमित्त कोई स्त्री अपने समान न पाई, उन्होंने सतीगुणके सब भागोंकी लेकर, उन्हीं उन्हीं शरीरोंमें एक स्त्री रची, उसको रचकर महा तपस्वी अगस्त्य मुनिने उस स्त्रीको तप करते हुए विदर्भ-राजको अपने निमित्त दे दिया, हे राजन् ! वह कन्या विजुलोके समान सुन्दर शरीर वाली और उत्तम मुखार्विन्दवाली राजाके घरमें उत्पन्न हुई, राजा विदर्भने उसको उत्पन्न हुई देख प्रसन्नतापूर्वक सब ब्राह्मणोंसे कह सुनाया। हे पृथ्वीनाथ ! यह सुन सब ब्राह्मण वहुत प्रसन्न हुए और उस कन्याका नाम लोपामुद्रा रक्खा। हे राजन् ! यह सुन्दर रूप-वाली कन्या अपने पिताके घरमें ऐसे बटने लगी, जैसे जलमें कमलिनी और अग्निमें ज्वाला। जब वह यौवन अवस्था प्राप्त हुई तो अलङ्कार सहित सौ कन्या और सौ उत्तम दासी उसके सग रहने लगीं। वह तेजस्विनी लोपामुद्रा उन सौ कन्या और सौ दासियोंके बीचमें ऐसी शोभित हुई जैसे आकाशमें रोहिणी, हे महाराज ! उस शील पावक और आचारसे भरी हुई कन्याको यौवन अवस्था आने परभी महात्मा अगस्त्यके भयसे किसीने अपना स्त्री न बनाया, उस सत्यवती लोपामुद्राने अपने रूपसे अप्सराओंको और शीलसे अपने पिता और वशके पुरुषोंकी प्रसन्न किया, अपनी पुत्रीको यौवन अवस्थामें देख विदर्भ राजने विचार किया कि इस किसको दू।

श्रीलौमशमुनि बोले, जब अगस्त्य मुनिने देखा कि लोपामुद्रा गृहस्थीके योग्य हुई तो विदर्भ राजके पास जाकर ऐसा बोले । हे राजन् ! पुत्र उत्पन्न होनेकी इच्छासे मैं विवाह करना चाहता हूँ, इसी निमित्त आपके यहां आया हूँ, आप लोपामुद्राकी मुझे दे दीजिये, मुनिके ऐसे वचन सुनकर राजा चेतना रहित होगये और कुछ उत्तर न दे सके, राजाने मुनिको लोपामुद्रा देना स्वीकार न किया, अनन्तर राजाने अपनी स्त्रीसे सब समाचार कह सुनाया और यहभी कहा कि यदि मुनीश्वर क्रोध करेंगे तो सबकी भस्म कर देंगे । माता पिताको इस प्रकार दुःखी देख । लोपामुद्रा बोली कि हे पित । आप मेरे निमित्त कुछ दुःख मत कीजिये मुझे अगस्त्यको देकर अपना उद्धार कीजिये । हे प्रजानाथ ! पुत्रीके वचन सुन विदर्भराजने विधिपूर्वक लोपामुद्राका विवाह अगस्त्यके सङ्ग कर दिया । अगस्त्य मुनिने लोपामुद्रा को प्राप्त करके उससे ऐसे वचन कहे कि तुम बहुत मूल्यवाले वस्त्र और भूषणोंकी उतार दो, उसने अपने पतिके वचन सुनकर सुन्दर और बहुत मूल्यवाले वस्त्र एवं भूषण उतार दिये, अनन्तर उस कमलनैनोको लेके लम्बे केश शोभायमान जड़ावाली लोपामुद्राने बकलीके बने हुए वस्त्र और हरि-नकी खालका ओढ़ा, वह विशालनैनो ठीक अपने पातके समान रूपवाली बन गई । अनन्तर महात्मा अगस्त्य मुनि अपनी अनुकूल स्त्रीके सहित गन्ताहारमें जाकर मन्ना घोर तप करने लगे, लोपामुद्राभी अपने पतिमें परम मान पाकर उनकी सेवा करने लगी तैसही भगवान् अगस्त्यभी अपनी स्त्रीमें परम प्रेम करने लगे । इस प्रकार बहुत समय बीतने पर भगवान् अगस्त्य मुनिने तपसे भरी हुई लोपामुद्राका एक समय ऋतुके पश्चात् स्नान

प देखा, भगवान् अगस्त्य मुनि उसकी

सेवा, पवित्रता, इन्द्रियनिग्रह, शोभा और रूपमें प्रसन्न होकर उससे मैथुन करनेकी इच्छा करने लगे, तब लोपामुद्राने हाथ जोड़ कर लज्जा में भरकर नम्र भावसे भगवान् अगस्त्यमें ऐसे वचन कहे कि निःसन्देह पा सन्तानहीके निमित्त स्त्रीका विवाह करता है और जो आपकी इच्छा है, सो काम आप में सङ्ग कर सकते हैं, परन्तु हे विप्र ! मैं आप पिताके घरमें बहुत अच्छे स्थानमें रहती हूँ आप वैसेही स्थान और शय्या पर मेरे साथ मैथुन करनेकी योग्य हैं, मेरी इच्छा है, कि उत्तम भूषणोंसे भूषित, उत्तम मालाधार आपके सङ्ग मैं भी दिव्य आभूषण पहनकर इच्छानुसार विहार करूँ, अन्यथा यह गिरा रङ्गे कपड़े पहनकर मैं आपके संग विहार नहीं करूँगी, हे विप्र ऋषि । यह वस्त्र और आभूषण संस्यके योग्य नहीं हैं । श्रीअगस्त्य मुनि बोले कि हे लोपामुद्रा ! हे कल्याणि ! हे सुमध मेरे और तेरे घरमें इतना धन नहीं है, कि जितना तेरे बापके घरमें था । लोपामुद्रा बोली हे तपोधन ! आप अपने तपके बलसे जगतके जितना धन है, उस सबकी एक चीण भरमें आ सकते हैं । श्रीअगस्त्य मुनि बोले, यह तुम्हारा कहना सत्य है, परन्तु ऐसा करनेसे मेरा तप चीण हो जायगा, इस लिये ऐसा उपाय बतलाओ जिसमें मेरा तप नष्ट न हो । लोपामुद्रा बोली हे तपोधन । मेरी ऋतुक बहुत थोड़ा समय बाकी रहा है, और दूध प्रकारसे मैं तुम्हारे पास आनेकी कदापि उच्छ नहीं करती हूँ और तुम्हारे धर्मकीभी न करना नहीं चाहती हूँ, इस लिये मैंने जो कुछ सो पूर्ण कीजिये श्रीअगस्त्य मुनि बोले, हे सुभगे हे कल्याणि ! यदि तुमने अपने मनमें ऐसा ही निश्चय किया है, तो मैं धन लेनेकी जाता हूँ तुम यहाँ रहो ।

श्रीलामश मुनि बोले, हे कौरव्य ! अनन्तर अगस्त्य मुनि राजा श्रुतपर्वाकी सब राजोंसे अधिक जान उहाँके यहां धन मांगनेको गये, राजा श्रुतपर्वा ने जब सुना कि अगस्त्य मुनि आये हैं, तो अपने मन्त्रियोंके सहित कार्यके अन्तमें सत्कारपूर्वक उनकी लेनेको गये, राजाने विधिपूर्वक उनकी पूजा करके हाथ जोड़ बूझा कि कहिये आपने कैसे कृपा करी ? श्रीअगस्त्य मुनि बोले, हे राजा ! हम आपके यहां धन मांगनेकी इच्छासे आये हैं, जिससे दूसरेको दुःख न हो इतना धन आप अपनी शक्तिके अनुसार हमको दीजिये । श्रीलामश मुनि बोले, तब उस राजाने अपनी प्राप्ति और व्यय अगस्त्य मुनिसे कह सुनाई और कहा कि हे विद्वन् ! यदि इसमेंसे आप उचित समझे तो धन ले जाइये । अनन्तर अगस्त्य मुनिने उसका आय और व्यय समान जानकर किसीको दुःख देना उचित न जाना अनन्तर राजा श्रुतपर्वाकी अपने संग ले राजा, ब्रह्मस्वके यहां गये । राजा ब्रह्मस्वने इन दानाको विधिपूर्वक अपनी सीमापर आकर ग्रहण किया, पूजा करनेके पश्चात् राजा ब्रह्मस्वने दानोंसे कहा कि कहिये क्या आज्ञा है, और कैसे आप लागोने कृपा करी हैं ? श्रीअगस्त्य मुनि नाले, हे पृथ्वीनाथ ! हम दानो आपके यहां धनकी इच्छासे आये हैं, सो शक्तिके अनुसार जिसमें दूसरेका हानि न हो उतना धन आप हम दानोकी दीजिये । श्रीलामश मुनि बोले, अनन्तर राजा ब्रह्मस्वने अपनी प्राप्ति और व्ययकी पूर्ण दिखलाकर कहा कि यदि आप दानोकी इच्छा हो तो इसमेंसे ले जाइये । इस बुद्धिवाले अगस्त्य मुनिने विचारा कि दानो प्राणीको दुःख देना उचित नहीं, अनन्तर दानो पुरुष धन लेनेकी इच्छासे पुरुषोंके पुत्र सु राजाके यहां गये, राजा वसदस्युने अगस्त्य मुनि राजा श्रुतपर्वा और राजा ब्रह्मस्वकी आया धन सीमा पर उनके पास जाकर पूजा

करी, अनन्तर महा मनस्वी इच्छाकु वंशोय- राजावसदस्युने तीनोंके आनेका कारण पूछा । श्रीअगस्त्य मुनि बोले, हे पृथ्वीनाथ ! हम सब लोग धनकी इच्छासे आपके यहां आये हैं, सो अपनी शक्तिके अनुसार जिसमें दूसरेको हानि न हो इतना धन आप हमको दीजिये । श्रीलामश मुनि बोले तब राजाने अपना लाभ और व्यय पूरा सुना दिया और कहा कि यदि आप लोग उचित समझे तो इसी धनमेंसे ले जाइये, तब अगस्त्य मुनिने उनका लाभ और व्यय समान देखकर अपने मनमें विचारा कि इस धनमेंसे कुछ लेनेसे सब प्राणियोंको दुःख हीगा । अनन्तर सब राजोंने परस्पर विचार कर महामुनि अगस्त्यसे कहा कि हे ब्राह्मण ! इस जगत्में इल्लल नामक राजसही धनवान है अतएव चालिये हम सब लोग उसीके पास धन लेतकी चले, श्रीलामश मुनि बोले, अनन्तर उन सबने यही निश्चय किया कि विना इल्ललके पास चले धन नहीं मिल सकता, तब वे सब लोग इकट्ठे होकर इल्लल राजसके पास गये ।

६८ अध्याय समाप्त ।

श्रीलामश ऋषि बोले, जब इल्लल राजसने सुना कि महामुनि अगस्त्यके सहित तीन राजा लोग आते हैं, तो अपने मन्त्रियोंके सहित अपनी सीमापर आकर उनका पूजा करी अनन्तर राजसामें उन्हें इल्ललने उन चारोंका सत्कार किया, अनन्तर अपने भाईको काटकर खूब अच्छा भोजन बनाया, अनन्तर वे तीनों राजाप्रलोग उस राजसको वकराक्षुष बनकर कटते हुए देख बहृत घबराये और चेतना रहित होगये । अनन्तर ऋषियोंमें उन्हें अगस्त्य मुनिने तीनों राजोंसे कहा कि आप लोग कुछ मन्देह न कोजिये मैं इस राजसकी खानाजंगा । अनन्तर महामुनि अगस्त्य दुरी आमनने बैठे और इल्लल राजस भी

हंसता हुआ उनका मोजन परीसने लगा, एकले अगस्त्य मुनिही बातापीके सब मोसकी खा गये। खानिके पश्चात् इल्ललने बातापीका नाम लेकर पुकारा, अनन्तर महात्मा अगस्त्य मुनिकी एक अधोवायु (पाद) हुआ। हे तांत! उसका ऐसा शब्द हुआ जैसे मेष गर्जता ही। हे राजन्! इल्ललने फिर पुकारा कि हे बातापी! तुम इस ब्राह्मणके पेटसे निकल आओ, तब अगस्त्य मुनिने हंस कर कहा कि अब वह राक्षस कहा निकल सकता है, वह तो मेरे पेटमें पच गया। इल्लल अपने भाईको पचा हुआ देख वज्रत घबराया और मन्त्रियोंके सहित हाथ जोड़ कर बोला, कहिये आप सब लोग यहां किस प्रयोजनके लिये आये हैं? हम आपलोगोका कौनसा कार्य करें? तब हंसते हुए अगस्त्य मुनि इल्लल से बोले, हे असुर। हम तुमको वज्रत धनवान समुभांत है और हम धनकी इच्छा रखनेवाले है, यह तोनों राजा अधिक धनी नहीं हैं, और मुझकी वज्रत धनकी इच्छा है, सो तुम अपनी शक्तिके अनुसार जिसेमें दूसरोंको दुःख न हो उतना धन हमका दा। तब इल्लल राक्षसने अगस्त्य मुनिसे कहा कि याद आप यह कह सकें कि मैं आपको कितना धन देना चाहता हूं, तो मैं आपको धन दूं। श्रीअगस्त्य मुनि बोले, हे असुर। तेरे मनमें एक एक राजाको दस दस हजार गौ और उतनाही सुवर्ण देनेकी इच्छा है। हे महासुर। तैने मुझे इन सबसे दुगुना धन, एक सोनेको रथ और दो घोड़े देनेका विचार किया है। कहो मैंने जान लिया कि नहीं? अब तुम जल्दी सोनेकी रथ लाओ तब राक्षस वज्रत घबराया और उससे भी अधिक धन अगस्त्य मुनिकी दिया उस रथमें सुराव और विराव नामक दो घोड़े लगे थे, वे सब धन और अगस्त्यके सहित तीनों राजा अगस्त्यके आगे चले। अनन्तर वे तीनों राजा और

अगस्त्य मुनि आश्रम पर पहुँचे, वहाँसे अगस्त्यकी आज्ञानुसार राजालोग अपने अपने घरोंको चले गये, अगस्त्य मुनिने उस धनसे लोपामुद्रा की सब इच्छा पूरी करी, लोपामुद्रा बोली, हे भगवन्। आपने मेरी सब इच्छा पूर्ण करी, इस लिये अब मुझमें एक वीर्यवान पुत्रकी उत्पत्ति कीजिये। श्रीअगस्त्य मुनि बोले हे कल्याणि। हे सुन्दरि! हम तुम्हारे चरित्रसे वज्रत सन्तुष्ट हुए हैं पुत्र उत्पन्न करनेमें जो मेरा विचार है सो तुमसे कहता हूँ सुनी, कहो तुम्हारे हजार पुत्र हों, या हजारके समान सौ हों, या कि सौके समान द्वासी हों, या हजारके समान एकही हों? लोपामुद्रा बोली, हे तपोधन हमको हजार पुत्रके समान एकही पुत्र ही, क्योंकि हजार दुष्टपुत्रोंसे एक महात्मा विद्वान् पुत्र अच्छा होता है। अगस्त्य मुनिने उस वचनकी स्वीकार करके अर्धावर्ती लोपामुद्राका सङ्ग किया। अनन्तर लोपामुद्राने गर्भकी धारण किया और अगस्त्य मुनि वनकी चले गये, उनके जानके पश्चात् लोपामुद्राने सात वर्ष तक गर्भकी धारण किया, सातवें वर्ष उसके गर्भसे अग्निके समान तेजस्वी महाकाँवो दृढस्यु नामक पुत्र उत्पन्न हुए, वे उत्पन्न होतेही अग और उपांगोंके सहित चारों वेदोंकी पठने लगे। अगस्त्यके पुत्र महा तेजस्वी और महीं तपस्वी हुए, महा तेजस्वी दृढस्यु, बालक अवस्था हीमें पिताके घरमें ईश्वरको बीभ उठाने लगे थे इसीसे उनका नाम इन्धवाह हुआ। हे राजन्! ऐसे उत्तम पुत्रको देख कर मुनि वज्रत प्रसन्न हुए। हे भारत। इस प्रकार उन्होंने उत्तम पुत्रको उत्पन्न किया, तब उनके पितर इच्छानुसार लोकोंमें गये, उसी दिनसे इस स्थानका नाम अगस्त्याश्रम है। इस प्रकार प्रह्लाद गोत्रोत्पन्न बातापी देवकी अगस्त्य मुनिने नाश किया, यह गुणीस भरा हुआ और रमणीय स्थान उसी अगस्त्य मुनिका

। हे युधिष्ठिर ! यह पवित्र गङ्गा पृथ्वीमें सी विराजमान है, जैसे वायुसे लड़ती हुई वज्रा आकाशमें शोभित होती है । हे राजन् ! सि नागराजकी स्त्री शिखर, जंघे स्थान और गलाओं पर विराजनेसे शोभित होता है, तैसेही गाम्भी विराजमान है, यह दक्षिण दिशाको गतांके समान रक्षा करती है, यही पहले श्वकी जटासे निकली थी, यह समुद्रकी गङ्गा स्त्री है, इस पवित्र नदीमें आप इच्छानुसार स्नान कीजिये । हे युधिष्ठिर ! हे महाराज ! यही देव और ऋषिसेवित तीन लोक विख्यात भृगु मुनिका आश्रम है, जिसका स्पर्श करनेसे रामका गया हुआ तेज प्राप्त हुआ था । हे पाण्डव ! तुम यहां स्नान करो, यहां स्नान करनेसे जा तेज तुम्हारा दुष्टोन्धन ले लिया है, सो सब प्राप्त होगा, ऐसेही राम-काभी पुनः तेज मिल गया था ।

और श्रमायन सुनि बोले, हे जनमेजय ! वहां पर महाराज युधिष्ठिरने द्रौपदी और अपन भाइयोंके सहित स्नान करके पितर और देवताका तर्पण किया, उससे स्नान करतेही युधिष्ठिरका तेज वज्रत बढ़ गया और शत्रुओंसे जीतन योग्य न रहे, तब कुसुमन्दन युधिष्ठिरने लोमश मुनिसे प्रार्थना किया कि हे भगवान् ! पहले समयमें परशुरामका तेज क्यों नष्ट हुआ था, और फिर उनको तेज क्यों प्राप्त हुआ था ? लोमश मुनि बोले, हे राजेन्द्र ! आप परशुराम और रामकी कथाको सुनिये, महात्मा दशरथके पुत्रका नाम राम था, वे राजाके नाश करनेके वास्ते साक्षात् विष्णुका अवतार थे, हमने उनकी अयोध्यामें दशरथके धर्म उत्पन्न होति देखा था, और परशुराम भगवान् के वंशजके वीर्यसे रेणुकाके गर्भमें उत्पन्न हुए थे, वे निष्कर्मकारी दशरथपुत्र रामके पुत्र के रूपमें सुनकर आश्चर्यचकित होकर कहा कि, गङ्गा, और उन धनुषकी अपन भंग

लिये गये, जिससे उन्होंने क्षत्रियोंका नाश किया था, उन्होंने अपने मनमें विचार लिया था कि आज वह रामचन्द्रके बलकी परीक्षा करेंगे । जब राजा दशरथने सुना कि परशुराम हमारी सीमा पर आये हैं, तब उन्होंने अपने बड़े पुत्र रामकी उनको लेनेके लिये भेजा, परशुरामने देखा कि राम अस्त्र शस्त्रोंको धारण किये हुए खड़े हैं । हे कौन्तेय ! तब परशुरामने हंसकर रामचन्द्रसे ऐसा कहा, हे राजेन्द्र ! मैंने वज्रत रोजतेके इस धनुषको धारण किया है, यदि आपकी कुछ सामर्थ्य हो तो इसकी वज्रत यत्नसे चढ़ाओ, उनके वचन सुनकर रामने कहा कि हे भगवान् ! हम आपके ऊपर आक्षेप नहीं कर सकते और हमभी क्षत्रियोंके धर्ममें कुछ नीच नहीं हैं, विशेषतः इच्छाकुर्वशीय क्षत्रिय तो बाहुबलसेही प्रसिद्ध हैं । उनके ऐसे वचन सुन, परशुराम बोले, कि हे राघव ! वक्तोंसे कुछ नहीं होगा, यदि शक्ति हो तो धनुषको चढ़ा ला, अनन्तर क्षत्रियोंके नाश करनेवाले परशुरामके हाथसे रामने क्रोधमें भरकर धनुष ले लिया, हे भारत ! बलवान् रामने खेलके समान धनुष पर रोदा चढ़ा कर सबको आश्चर्य दिते हुए टट्टार करा, उस वज्रके समान धनुषके शब्दका सुनकर सब प्राणी डरगये, अनन्तर दशरथकुमार रामन परशुरामसे कहा कि हे ब्राह्मण ! हमने यह धनुष चढ़ा लिया, अब कौहय आपका हम कौनसा काम करें ? तब यमदग्निके पुत्र महा-तेजस्वी परशुरामन रामको एक वाण दिया और कहा कि इसकी काननक खोंचा, लोमश मुनि बोले, परशुरामके ऐसे वचन सुन क्रोधमें भरकर राम कहने लगे कि हे भार्गव ! हमने सुना है, कि आप अभिमानमें भर हुए हैं, और चमाशील हैं, ब्रह्माके प्रसादसे तुम्हें क्षत्रियोंका विशेष तेज प्राप्त हुआ है, निश्चय इसी कारण तुम हमसे विवाद करते हैं, देखा हम

तुमको दिव्य दृष्टि देंते हैं, तुम हमारे रूपको देखो । तब परशुरामने रामके शरीरमें सूर्य, वसु, रुद्र, साध्य, वायु, पितर, अग्नि, तारे ग्रह, गन्धर्व, राक्षस, यक्ष, नदी, तीर्थ ऋषी, बाल-खिल्य, सनातन ब्रह्मभूत, सब देवर्षि, समुद्र, पर्वत, उपनिषदोंके सहित यज्ञ, शरीर, धारो सामवेद, धनुर्वेद, मेघोंके समूह, विजुली, और वर्षा देखे । - तब भगवान् रामस्वरूपी विष्णुने उस बाणकी चढ़ाकर छोड़ दिया, उसके छोड़तेही सब जगत् सुखे वज्र, विजुली, घूला, और मेघोंके वर्षासे पूरित होगया, उसी समय पृथ्वी कांपने लगी, घोर शब्द होने लगे, उसी समय रामने परशुरामका तेज छीन कर उनकी विकल कर दिया, बाण रामके हाथसे कूटतेही प्रकाशित होने लगा, उसी समय परशुरामको मूछा होगई, याड़े समयके पश्चात् परशुराम चैतन्य हुए, परन्तु उन्होंने अपनेमें विष्णुका तेज न पाया- अनन्तर रामको आज्ञा से वे महेन्द्र पर्वतकी चले गये, अनन्तर महातपस्वी परशुराम लज्जित और भीत होकर वहीँ वास करने लगे, अनन्तर एक वर्ष बीतनेके पश्चात् तेज रहित, दुःख सहित, परशुरामसे पितर लोग कहने लगे, पितर बोले, हे पुत्र ! तुमने विष्णुके पास जाकर यह काम अच्छा नहीं किया, क्योंकि वे सदासे पूजनीय और माननीय है । हे पुत्र ! अब तुम पवित्र बधूसर नामक नदीमें स्नान करो, वहा स्नान करनेसे तुम्हें फिर वही तेज मिल जायगा, वहा तपोदक नामक कुण्ड है, वहीँ-तुम्हारे पड़दादा भृगुने महा तप किया था । - हे कुन्तो नन्दन ! हे पाण्डुपुत्र ! परशुरामने अपने पितरोंके वचन सुनके वैसाही किया, तब इस तीर्थमें स्नान करनेसे उन्हें फिर वही तेज प्राप्त होगया । हे महाराज ! इस प्रकार शूद्र कर्मावाले परशुरामने स्नान करके रामसे छीने हुए तेजको प्राप्त किया था ।

राजा युधिष्ठिर बोले, हे हिजोत्तम ! मैं महाऋषि अगस्त्य मुनिके कम्मोको विस्तार पूर्वक सुनना चाहता हूँ । श्रीलोमश मुनि बोले, हे राजा ! यह अद्भुत अमानुषी दिव्य कथा आप सुनिये, हे महाराज । अनन्तर तेजस्वी अगस्त्यके चरित्रकी हम कहते हैं । - सत्युगमें महा योद्धा, वीर, परम-दारुण, कालकेय नामक राक्षस उत्पन्न हुए थे उन सबोंने वृत्वासुरको अपना राजा बनाया, फिर अनेक शस्त्र और अस्त्र लेकर इन्द्र-आदिक देवतोंके ऊपर चढ़ाई करी, तब देवतोंनेभी इन्द्रकी अगाड़ी करके वृत्वासुरके मारनेका यत्न किया, अनन्तर सब देवता लोग ब्रह्माके पास गये; उनकी हाथ जोड़ी और स्तुति करसे हुए देख ब्रह्मा बोले, कि हे देवतो ! आप लोगोंने जो कुछ काम करनेकी इच्छा करो है, सो हम सबही समुप-गये है, हम वह उपाय बतलाते हैं, जिससे तुम वृत्वासुरको मारोगे । एक उदार बुद्धिवाला दधीच नामक ऋषि है, तुम सब लोग इकट्ठे होकर उसके पास जाकर वर मागो, वह मुनि परम धर्मात्मा है, इस लिये प्रसन्न होकर तुम्हें वर देगी, तब तुम सब लोग इकट्ठे होकर विजयकी इच्छा करके दधीच मुनिसँ कहना कि आप तोना लाकके हितके निमित्त अपनी हड्डी हमकी दीजिये, वे अपने शरीरको छोड़कर हड्डी तुमको देंगे, तब तुम लोग उन्ही-हड्डीयोसे दृढ़ और महा धार वज्र बनाना, वह वज्र महाशत्रुओका नाश करनेवाला होगा उसमें एककान होगा, उसका शब्द बड़ा भयानक होगा, उसही वज्रसे इन्द्र वृत्वासुरका मारेंगे, हमने सब उपाय तुमसे कह सुनाया तुम लोग इसकी शीघ्रही करो । देवता लोग ब्रह्माके वचन सुन उनकी आज्ञा ले नारायणकी अगाड़ीकर दधीचके आश्रम पर गये, वज्र आश्रम सरस्वती पार अनेक वृक्ष और लताओंसे शोभित था, उसमें भौंर गंजत फिरते, जहा

क्रीकिल आदिक अनेक पक्षी और जन्तु बोल रहे थे, भैमी स्त्रवर, हरिन चमरी और शार्दूल आदि सब जन्तु बिना भय जहाँ एकही संग चरते थे जहाँ भनवारे हाथी हथिनियोंके समेत तलावों में क्रीड़ा और शब्दकर रहे थे, जहाँ सिंह और व्याघ्रादिकोंके शब्दसे एक गुञ्जार उठती थी, जहाँ गुफा और कन्दराओंमें रहनेवाले जन्तुओंके शब्दोंसे वन गुञ्जार रहा था, जो वन किसी किसी स्थानमें स्वर्गके समान सुन्दर था उस दधीचके आश्रम पर देवता लोग आये, उन्होंने तेज और लक्ष्मीसे भरे हुए दधीचकी ब्रह्मा और सूर्यके समान प्रकाशमान देखा। हे राजन् । देवताोंने उनके चरणमें प्रणाम करके अपना अपना नाम सुनाया और ब्रह्माके कहे हुए वरदानकी मांगा। अनन्तर दधीचने वहुत प्रसन्न होकर ऐसा कहा, हे देवता । जो वरदान तुम लोगोंने मांगा, हम वहुत प्रसन्न होकर वही तुमको देते हैं, हम अपनी इच्छासे अपने शरीरको छोड़ते हैं। पृथ्वीमें अष्ट जितेन्द्रिय महात्मा दधीचने प्राणकी उसी समय छोड़ दिया, तब देवताोंने ब्रह्माके उपदेशके अनुसार उनकी हड्डियोंकी ग्रहण किया, देवताोंने प्रसन्न होकर अपने विजय का निश्चय कर लिया, अनन्तर उन्होंने विश्वकर्माकी जाकर हड्डी दी और शस्त्र उतारनेकी कृपा, विश्वकर्माने उन हड्डियोंसे पुरुषार्थक शस्त्र बनाया, उस शस्त्रका नाम वज्र-रत्न, अनन्तर उस उग्ररूप वज्रकी विश्वकर्मा लेकर इन्द्रके पास गये और प्रसन्न होकर ऐसा कहने लगे हे देव । इस वज्र शस्त्रसे आप उस पराक्षसकी भन कीजिये, राक्षसोंके मरनेके पश्चात् आप आनन्दपूर्वक सब वन्धुओंके सहित स्वर्गका राज्य कीजिये। विश्वकर्माके वचन पर इन्द्रने प्रसन्न होकर वज्रकी ग्रहण किया।

१०० अष्टमः सर्गः ।

श्रीलीमश मुनि बोले, अनन्तर इन्द्रने वज्रको धारणकर और बलवान देवतासे रक्षित हो, नगर द्वार पर पड़े हुए वृत्तासुरसे युद्ध करनेकी चले, वृत्तासुरके संग शस्त्रधारी महाशरीरवाले राक्षस ऐसे ऐसे बड़े थे, जैसे शिखरधारी पर्वत हीते हैं। हे भरतश्रेष्ठ । उस समय देवता और दानवोंका एक जगभर महा घोर लोकभयङ्कर युद्ध हुआ, उस समय वीरलोगोंके हाथसे चलते हुए और शत्रुओंके शरीर पर गिरते हुए खड्गोंका और दूसरे खड्गके लगकर टूटनेका महा घोर शब्द हुआ हे राजन् । उस समय जो सिर कट कटकर आकाशसे पृथ्वी पर गिरते थे, उनकी शोभा ऐसी भान जाती थी, जैसे ताड़के फल गिरनेसे शोभा होती है, कालकेय राक्षस लोग सीनेके कवच पहनकर परिष आदि अस्त्रोंको लेकर देवताओंकी कोर ऐसे दौड़े जैसे जंगती आगवाले पर्वत, देवता लोग इनकी अभिमानके साथ और वेगसे दौड़ते हुए देख उनके वनकी न सह सके और भयसे इधर उधर भागने लगे, उनकी भयसे इधर उधर भागते हुए और राक्षसोंकी बढ़ते हुए देखकर सहस्रनेत्र इन्द्रकी महा दुःख हुआ और स्वयम् इन्द्रभी वृत्तासुरके भयसे घबराकर नारायणकी शरण गये, सनातन परमेश्वरने इन्द्रकी उरा हुआ देख उनमें अपना तेज दिया, उस तेजसे इन्द्रका वहुत बल बढ़ गया। इन्द्रकी विष्णुके तेजसे युक्त देखकर सब देवता और निर्मल महर्षियोंनेभी अपना अपना तेज इन्द्रको दे दिया। इन्द्र विष्णु, देवता और महाभाग ऋषियोंके तेजकी प्राप्त करके वहुतही बलवान हुए, जब वृत्तासुरने देखा कि इन्द्र बलसे भरकर हमारे सामने युद्धमें आया है, तो महाशब्दसे गर्जने लगा, उसके धार शब्दसे पृथ्वी, दिशा, आकाश और सब पर्वत चिलने लगे। उस धार शब्दकी सुनकर और भयसे आदर होकर इन्द्र

उसे मारनेकी वज्र छोड़ा, हे राजन् । वह सीनेकी मालाधारी राक्षस वज्र लगनेसे मरकर महा पर्वतके समान पृथ्वीमें ऐसा गिरा जैसे विष्णुके कूटकर सन्दराचल गिरा था । उस महा राक्षसके मरनेके पश्चात् इन्द्र उससे तालावमें घुसनेकी भागी, उन्होंने न अपने हाथसे वज्रको कूटते और न हवासुरकी मरते जाता । अनन्तर सब देवता और महर्षियोंने इन्द्रकी प्रसन्न होकर स्तुतिकी और हवासुरके मरनेसे दुःखी राक्षसोंकी मार डाला । अनन्तर राक्षस लोग देवताके भयसे समुद्रमें घुस गये, जल और जलजन्तुओंसे भरे हुए समुद्रमें जाकर राक्षस लोग तीनों लोक विनाश करनेकी सम्मति करने लगे, उनसे जो जो बुद्धिमान दैत्य थे, वे अच्छे उपायोंको विचार करने लगे, वहां पर समय और प्रारब्धके वशसे उन दैत्योंकी सम्मतिमें यही घोर बात निश्चय ठहरी कि पहले विद्या और तपसे भरे हुए मुनियोंका नाश करना चाहिये, क्योंकि सब लोक तपस्याहीसे स्थिर हैं, अतएव पहले तपनाश करनेका ही उपाय करना चाहिये । जो कोई जगत्में तपस्वी, धर्मज्ञ और धर्मके जाननेवाले हैं, पहले उन्हींका नाश करना चाहिये, क्योंकि उनके मरनेहीसे सब जगत्का नाश हो जायगा, उन निर्वुद्धि लोगोंने इस प्रकार जगत्के नाशका निश्चय किया और वहुत प्रसन्न हुए । अनन्तर समुद्रके बीचमें किला बनाकर उसही वस्त्राके स्थान रत्नाकरमें रहने लगे ।

१०१ अध्याय समाप्त ।

श्रीलोमश मुनि बोले, हे महाराज ! कालीय दैत्य लोग जलके स्थान समुद्रमें रहकर जगत्का विनाश करने लगे । वे राक्षस लोग क्रोधसे भरकर मुनियोंके पवित्र आश्रम और तीर्थोंमें

जाकर क्रोधसे भरकर प्रति रात्रि सात मुनियोंका नाश करने लगे, उन दुष्टात्माओंने वशिष्ठ मुनिके आश्रममें जाके एक सौ अठ्ठासी ऋषियोंको खा लिया और नव तपस्वियोंको और नाशकर दिया, ब्राह्मण भेषित चवन मुनिके पवित्र आश्रममें जाकर राक्षस लोग फल मूल भक्षी सौ मुनियोंको खा गये । इसी प्रकार भरद्वाज मुनिके आश्रम पर जाकर नियमधारी, ब्रह्मचारी, वायु भक्षी बीस ऋषियोंको खा गये, इस प्रकार वे लोग रात्रिकी मुनियोंको खाकर दिनमें समुद्रमें घुस जाते थे । इस प्रकार भुज बलसे उत्पन्न राक्षस लोग रात्रिमें सब आश्रमोंमें जाकर वाधा करने लगे । वे कालीय लोग कालके वशमें होकर अनेक ब्राह्मणोंका नाश करने लगे । हे पुरुषश्रेष्ठ ! उन मुनियोंके मारनेवाले दैत्यको कोई पुरुष नहीं जानता था, परन्तु मुनिलोग प्रातःकाल हीनेसे देखते थे कि अनेक तपस्वी पृथ्वीमें मरे हुए पड़े हैं । मरे हुए मुनि मांस, रुधिर, मज्जा और आतोंसे रहित पृथ्वीमें पड़े रहते थे, उस समय उन मुनियोंकी हड्डीयांसे पृथ्वी ऐसी शोभित हुई, जैसी शङ्खोंके ढेरसे, उस समय टूटे हुए कलश श्रुवे-अग्नि भष्ट अग्निहोत्रोंसे पृथ्वी भर गई । कालीय राक्षसोंके भयसे पीड़ित जगत् वेद पाठ, वषटकार, यज्ञ, क्रिया और उत्सवोंसे रहित हो गया । हे नरनाथ ! इस प्रकार ऐसा कर्म होनेसे पुरुष लोग कम होने लगे, तब भयमें पूरित होकर अपने वचावके निमित्त मनुष्य इधर-उधर भागने लगे, कोई गुफामें, और कोई झरनोंमें घुस गये तथा कोई मरनेके भयसे अपने प्राणोंकी छोड़ने लगे, कोई महावीर धनुषधारी परम प्रसन्न होकर राक्षसोंके दृढ़नेमें यत्न करने लगे, परन्तु उनको वे समुद्रवासी राक्षस न मिले, अनन्तर यत्नकर बैठ रहे, वहुतसे नष्टभी हो गये । हे नरनाथ ! इस प्रकार जगत्में आपत्ति आनेसे सब यज्ञ

और उत्सव नष्ट होगये, तब देवोंतीकी वज्रत दुःख हुआ, तब भयसे व्याकुल होकर इन्द्रादिक देवोंने सम्रति करी, अनन्तर यह सब शरण देनेवाले देवोंकी, देव जगत्पति नारायणकी शरण गये, तब सर्व देवोंने अपरोजित मधु नाशक नारायणसे ऐसे वचन कहे । हे प्रभो ! हमारे और सब जगत्के उत्पन्न करनेवाले पालन करनेवाले और नाश करनेवाले है, यह सब चर और अचर जगत आपहीका बनाया हुआ है, हे कमलनेत्र ! पहले जब पृथ्वी समुद्रमें डूब गई थी, तब आपने सूकरका रूप बनाकर उसका उद्धार किया था । हे पुरुषोत्तम ! आपने पहले नरसिंह रूप बनाकर आदि दैत्य महा बलवान हिरण्य काशिकुको मारा था, जिस वली नामक महा असुरकी कोई प्राणी नहीं मार सकता था, उसको आपने वावन रूप धारण करके तीन लोकसे भट कर दिया था, जा महाशस्त्रधारो यज्ञीका नाश करनेवाला जम्भ नामक राक्षस था, उसकोभी आपहीने मारा था, हे प्रभुसूदन ! आपने इसकी आदि लेकर औरभी अनेक कर्म ऐसे किये हैं, आप हरे हरे देवोंकी गति हैं हे देवदेवेश ! अब जो कार्य उपस्थित हैं, सो हम लोग आपसे निवेदन करते हैं, आप देवता इन्द्र और सब लोगोंको महा भयसे रक्षा कीजिये ।

१०२ अध्याय समाप्त ।

देवतालोग बोले, हे प्रभो ! आपकी कृपासे बार प्रकारकी प्रजा बढ़ती हैं, वे बढ़कर हे भो और कृपासे देवताकी पूजा करते हैं, इस प्रकार एक दूसरेके आययसे लोक बढ़ते हैं, आपकी कृपा और रक्षा करनेसे सब जगत् सुखी रहते हैं । अब सब लोगोंकी महा भय प्रसन्न हुआ है, इस लिये जानते कि रात्रिमें कभी भी प्राणियोंकी मार जाता है

प्राणियोंकी नाश होनेसे पृथ्वीका नाश और पृथ्वीकी नाश होनेसे स्वर्गका नाश हो जायगा । हे महाबाहो ! हे जगत्पति ! केवल आपकी कृपासे सब लोग वच सकते हैं । जब आप रक्षा करेंगे, तब कोईभी नष्ट नहीं होगा । विष्णु बोले, हे देवतो ! प्रजाकी नाशका कारण हमने जान लिया, तुम लोगोंसे कहते हैं, तुम लोग सुखी होकर सुनो, जो परम कठोर कालियक नामक राक्षसोंका एक दल प्रसिद्ध है, जिसने वृत्रासुरका आश्रय लेकर सब जगत्की दुःख दिया था, वेही लोग इन्द्रसे वृत्रासुरको मरा हुआ देखकर अपने जीवनकी रक्षाके निमित्त समुद्रमें घुस गये हैं, वेही लोग घोर वक्र और ग्राहोसे भर झर समुद्रमें रहते हैं, वेही रात्रिको निकलकर ऋषियोंका नाश करते हैं, उन लोगोंका नाश नहीं हो सकता क्योंकि वे लोग समुद्रके बीचमें रहते हैं, इस लिये तुम लोगोंको समुद्रके नाश करनेका उपाय करना चाहिये, और अगस्त्यके सिवाय समुद्रको काँडे नहीं सोख सकता है और विना समुद्र सूखे राक्षसोंका नाश होना असम्भव है । देवता लाग विष्णुके ऐसे वचन सुन ब्रह्माकी आज्ञा ले अगस्त्यके आश्रम पर गये वहाँ जाकर उन्होंने वरुणके पुत्र महार्तजस्वी अगस्त्यकी ऋषियोंके सहित बैठा हुआ देखा, देवता लोग मित्रावरुणके पुत्र महान्मा तपके समूह अपने कर्मोंसे प्रशंसनीय अगस्त्यकी देख वज्रत प्रसन्न हुए और स्तुति करते हुए कहने लग । देवता वाले, जब नहुषके पुत्रसे जगत् अत्यन्त दुःखित हुआ था तब आपहीने शरण दी थी, और उस लोक कण्टककी आदहीने स्वर्गसे गिराया था, पर्वतोंमें डेढ़ विन्ध्याचल सूर्यके क्रोधसे अत्यन्त बटन लगा था, परन्तु अब आपके वचनको ग्रहण करके नहीं बटना है । जब प्रजा अत्यन्त और नष्ट, नष्ट होने लगती है, तब आपही स्वामी जाकर

इसकी रक्षा करते हैं। इरे-इए देवतोंकी सदासे आपही गति है। हम लोग आपसे वरदान मांगनेको आये हैं, क्योंकि आप वरदान देनेमें समर्थ हैं।

१०३ अध्याय समाप्त ।

राजा युधिष्ठिर बोले, हे महासुने । आप इस कथाको विस्तारपूर्वक कहिये कि, विन्ध्या-चल एकदम क्रोध करके इतना क्यों बढ़ गया था ? इस कथाको सुननेकी मेरी बहुत इच्छा है। श्रीलोमश मुनि बोले-हे महाराज । जब विन्ध्याचल पर्वतने देखा कि सूर्य उदय और अस्तके समय सुवर्णमय पर्वतराज मेरुकी प्रदक्षिणा करते हैं, तब सूर्यसे कहा कि हे सूर्य, जैसे तुम प्रतिदिन मेरुकी प्रदक्षिणा करते हो, तैसे हमारीभी प्रदक्षिणा किया करो। पर्वतराजके ऐसे वचनकी सुन-सूर्य बोले, कि हम कुछ अपनी-इच्छासे मेरुकी प्रदक्षिणा नहीं करते हैं, वरन जिस परमेश्वरने इस जगतकी बनाया है, उसीने हमारे निमित्त यह मार्गभी बना दिया है। सूर्यके ऐसे वचन सुन विन्ध्याचलकी महाक्रोध हुआ और चन्द्र-माके मार्ग रोकनेकी इच्छा करी, अनन्तर सब देवता लोग मिलकर पर्वतोंके महाराज विन्ध्याचलके पास आये, उन्होंने अनेक उपाय किये कि जिसमें विन्ध्याचल न बढ़े, परन्तु विन्ध्याचलने उनका कोई भी वचन न माना। अनन्तर वे सब देवता लोग तपस्वी और धर्म धारियोंमें श्रेष्ठ अद्भुत बलवाले आश्रममें बैठे हुए अगस्त्य मुनिके पास जाकर अपना प्रयोजन सुनाने लगे। देवता बोले, हे दिजीलम ! यह पर्वतराज विन्ध्याचल अत्यन्त क्रोधके वशमें होकर सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्रोंके मार्गोंको रोकना चाहते हैं। हे महाभाग ! आपके सिवाय इनको और कोई भी नहीं निवारण

अगस्त्य मुनि देवतोंके वचन सुनकर अपनी स्त्रीके सहित विन्ध्याचलके पास गये, विन्ध्याचल भी उनके दर्शनको आये, तब अगस्त्य मुनि विन्ध्याचलसे कहा कि हे पर्वतोंमें श्रेष्ठ ! हम किसी विशेषकार्यसे दक्षिण दिशाकी जान चाहते हैं, इसलिये तुम हमको मार्ग दी जावतक मैं उधरसे लौटकर आज तबतक ऐसेही रहकर हमारा मार्ग देखना। हे पर्वत राज । जब मैं उधरसे लौट कर आऊंगा तब तुम अपनी इच्छानुसार बढ़ना। हे शत्रुनाशन अगस्त्य मुनि इस प्रकार विन्ध्याचलसे प्रतिश्र करवाकर अवतक भी दक्षिण दिशसे लौट कर नहीं आये, हमने जिस प्रकार विन्ध्याचल नहीं बढ़ता है, सो सब कथा आपसे कही। ज्ञातुमने हमसे अगस्त्य मुनिके प्रभाव पूछा था, सो हमने कहा। अब जिस प्रकार अगस्त्य मुनिके वरदानसे देवतोंने कालिय-राक्षसोंका नाश किया सो कथा सुनिये, हे महाराज। देवतोंके पूर्वोक्त वचन सुन मित्रावरुणके पुत्र अगस्त्य मुनिके कहा कि तुम लोग हमारे पास क्यों आये हो ? कही हमसे कौन वरदान मांगना चाहते हो ? मुनिके ऐसे वचन सुनकर देवता लोग बोले, हे महात्मन् ! हम लोग जानते हैं कि आप समुद्रका पीकर हमारा कार्य कोजिये, आपके ऐसा करनेसे हम लोग देवतोंके शत्रु कालिय दैत्योंकी परिवारके सहित नाश कर देंगे। देवतोंके वचन सुनकर अगस्त्य मुनिके कहा कि हम ऐसाही करेंगे। अगस्त्य मुनि बोले कि जिसमें लोकोंका उपकार हो सो आप लोगोंका काम हम सुखपूर्वक करेंगे ऐसा कहकर अगस्त्य मुनि सिद्ध ऋषि और देवतों के सहित नदियोंके पति समुद्रके पास गये। हे उत्तम-व्रतधारी । उनके पीछे मनुष्य, सर्प, गन्धर्व, यक्ष, और किन्नर चले। महात्मा अगस्त्यके सङ्ग उनका अद्भुत कर्म देखनकी इच्छासे सब लोग इकट्ठे होकर घोर शब्दों

समुद्रके तटपर पहुँचे, उन्होंने समुद्रकी ऐसा
देखा मानी तरङ्गोंसे नाच रहा है, वायुसे घूम
रहा है, और फेनोंके समूहोंसे हँस रहा है,
जिसकी तरङ्ग कन्दराओंमें भर रही है, अगस्त्यके
सहित देवता, गन्धर्व महाराज, और महाराज
ऋषिलोग ग्राह, मगर और अनेक पक्षियोंसे
भरे हुए समुद्रके तट पर पहुँचे।

१०४ अध्याय समाप्त ।

श्रीलामश मुनि बोले, कि वरुणके पुत्र
भगवान अगस्त्य मुनि जब समुद्रतट पर पहुँचे,
तब सब देवता और ऋषियोंसे कहने लगे, देखो
हम सब लोकके हितके निमित्त समुद्रकी पीति
है। आपलोगोंकी जो कुछ काम करना हो,
सा शीघ्र कीजिये, भित्वावरुणके पुत्र अमर-
अगस्त्य मुनिने ऐसा कहकर सब जगत्के आगे
काधमें भरकर समुद्रकी पीलिया, जब इन्द्र
आदिक देवताोंने देखा कि अगस्त्य मुनि सब
समुद्रकी पीगये तो परम आश्चर्य करके स्तुति
गार पूजा करने लगे। देवता, कहने लगे, हे
लोकभावन। तुम हमारे रक्षा करनेवाले और
रक्षण करनेवाले हो, तुम लोकोंके स्वामी हो
हमारी कृपासे जगत् नष्ट नहीं होता है,
प्रकार महात्मा अगस्त्यकी देवता लोग
श करने लगे और गन्धर्व लोग सब और
पने धाजेवजाने लगे, दिव्य फूलोंकी वर्षा होने
ली तब अगस्त्य मुनिने समुद्रकी जलसे रहित
दिया, समुद्रकी जलसे रहित देखकर
प्रलयान देवताोंने परम प्रसन्न होकर दिव्य
धारण करके राक्षसोंको मारना आरम्भ
या। भगवान महात्मा स्वर्गवासी बलवान
के पीछे जाकर दानव लोग उनके
के सह सजे पहले तो वे लोग तपस्वी
के तपमें नष्ट हुए थे, फिर जो कुछ यज्ञ
के यज्ञों में थे उनकी देवताोंने नाश कर
के उनके प्राणोंको हटाया और दाजू बन्द

धारी दानव लोग मरते समय ऐसे शोभित हुए
जैसे फूलें हुए हैं। हे पुरुषश्रेष्ठ। जो कुछ दानव
मरनेसे वचे, वे सब पृथ्वीकी फाड़कर पातालमें
चले गये। जब दानव लोग नष्ट हो गये, तब अगस्त्य
मुनिकी स्तुति कर देवता लोग बोले, हे महाबाहो।
आपकी कृपासे हम लोगोंने जगत्में बहुत सुख
प्राप्त किया, आपहीके तेजसे धार पराक्रमी
कालिय दानवोंका नाश हुआ। हे लोक भावन।
आपने जो समुद्रका जल पिया है, उसकी फिर
कीड़ दीजिये जिसमें समुद्र भर जाय उनके
वचन सुन मुनियोंमें श्रेष्ठ भगवान अगस्त्य
मुनि बोले, हे देवता। वहे सब जल
हमको पच गया, अब तुम लोग कोई
दूसरा उपाय सोचो, आपलोग कोई ऐसा
उपाय कीजिये जिसमें समुद्र भर जाय।
महात्मा अगस्त्य मुनिके ऐसे वचन सुन सब
देवता लोगोंकी बहुत आश्चर्य और दुःख
हुआ, आपसमें सम्मति करके मुनीश्वरकी
प्रणामकर सब लोग अपने अपने घरकी धूलें
गये। हे महाराज। विशुकी सहित सब
देवता लोग समुद्रकी पूरा करनेका विचार
करते हुए ब्रह्माके यहाँ गये, जाकर हाथ
जाड़ समुद्रकी सब कथा सुना दी।

१०५ अध्याय समाप्त ।

श्रीलामशमुनि वाले, सब देवताओं लोकके
पितामह ब्रह्मा ऐसा बोले, हे देवता लोग।
तुम सब लोग अपने अपने लाकाका चले जाओ
समुद्र बाड़। इनमें आपका भर जायगा,
उसके भरनका कारण अपने जातिके निमित्त
महाराज भगवत् हांगे। ब्रह्माके वचन सुनकर
सब देवता लोग अपने अपने घरकी चले गये
आर समुद्र पूर्ण करनेके समयको प्रतीक्षा
करने लगे। मुनिश्चिन्तित बोले हे मुने। हे
ब्रह्मन्। जानि कैसा धार आया। या नष्ट
भगवत्के सादर्यसे समुद्र जैसे भर गया था। हे

तपोधन । हम इस राजाके उत्तम चरित्रकी आपसे विस्तारपूर्वक सुनना चाहते हैं । श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महात्मा धर्मराजके ऐसे वचन सुन ब्राह्मणोंमें अष्ट लोमश मुनि महात्मा समुद्रका महात्म्य इस प्रकार कहने लगे । श्रीलोमश मुनि बोले, इक्ष्वाकुलवंशमें प्रताप रूप, तेज और बलसे भरे हुए सगर नामक राजा हुए । उनके कोई पुत्र न थे । उन्होंने हैहय-वंश और और तालजङ्घवंशी क्षत्रियोंको जीतकर सब राजोंकी अपने वशमें किया और अपने राज्यका पालन करने लगे । हे भरतकुल सिंह ! उनकी जो स्त्रियाँ, वे दोनों रूप और यौवनके अभिमानसे भरी रहती थीं । एकका नाम वैदर्भी और दूसरीका नाम शैव्या था, राजा अपनी स्त्रियोंके सहित पुत्रकी इच्छासे कैलाश पर्वत पर जाकर महा तप करने लगे, हे राजेन्द्र । महात्मा राजा सगर महातप और महायोग करने लगे, तब तीन नेत्रधारी त्रिपुरासुरके सारनेवाले शङ्कर, जगतके स्वामी, पिनाक और शूलधारी, तीन नेत्रवाले उग्र, सबके स्वामी अनेक रूपधारी पार्वतीनाथ शिव उसके पास आये । महाराजने वरदान देनेवाले शिवको देखतेही अपनी स्त्रियोंके सहित प्रणाम किया और हमको पुत्र हो, यह वरदान मांगा । अनन्तर राजोंमें अष्ट सगरसे प्रेम सहित शिव महाराजने कहा, हे नरनाथ ! तुमने हमसे इस समय पुत्र होनेका वरदान मांगा, इस लिये हम प्रसन्न होके तुम्हें यह वरदान देते हैं कि तुम्हारी केवल एक स्त्रीसे अभिमानसे भरे हुए महा शूरवीर नाठ हजार पुत्र होंगे, वे सब लोग एकही दिन एकही स्थानपर नष्ट हो जायेंगे । और एक स्त्रीके वंशकी रक्षा करनेवाला महा शूरवीर एक पुत्र होगा । सगरसे ऐसा कहकर भगवान् शिवजी वहाँ अन्तर्धान होगये और राजा सगरभी अपने नगर को चले

गये, अपनी दोनों स्त्रियोंके महित वरसे आनन्द करने लगे । हे पुरुषार्थ ! सगरकी कमलनेनी वैदर्भी और शैव्या हे स्त्रियोंके गर्भ रह गया, अनन्तर समय होने पर वैदर्भी स्त्रीने एक तूम्बी उत्पन्न की और शैव्यास्त्रीके देवताओं के समान रूप एक पुत्र उत्पन्न हुआ, तब राजा-सगरने तूम्बीको फेंक देनेका विचार किया उसी आकाशसे गम्भीर स्वरवाली एक वाणी हुई, हे राजन ! आप ऐसा साहस मत कीजिए इस तूम्बीके भीतर-पुत्र है और इस-तूम्बी भीतरसे जो बीज निकले, उनकी यत्रसे कीजिये ; आप इस तूम्बीके बीजोंकी घीसे हुए किसी पात्रमें रखिये, तब आपकी हजार पुत्र मिलेंगे, हे महाराज ! शिव जो तुमको साठ हजार पुत्र देनेका आशीर्वाद दिया था, वे सब इसी तूम्बीमें हैं ।

१०६ अध्याय समाप्त ।

श्रीलोमश मुनि बोले, हे राजन ! राजा सगरने यह आकाशवाणी सुनी, तो पूर्वक वैसाही काम किया, अर्थात् राजा एक एक बीजको अलग अलग करके उन भागोंका घोंके बर्तनोंमें पृथक् पृथक् रखे और पुत्रोंकी रक्षाके निमित्त एक एक सब बर्तनोंके समीप रख दी । फिर बड़ा काल बीतनेके पश्चात् महा तेजस्वी महा साठ हजार पुत्र हो गये । हे राजन सगरके सब पुत्र शिवजीका कृपासे हुए । वे बड़े कठोर, क्रूरकर्म करनेवाले, और आक धूमने वाले हुए । युद्ध करनेवाले, महा सगरपुत्र देवता-गन्धर्व और राक्षसोंका देन लगे । उनसे पीड़ित होकर सब प्राणी देवताके सहित ब्रह्माकी शरणमें गये लोकोंके पितामह ब्रह्माने उन सबसे कहा हे देवता लोगो ! तुम सब प्राणियोंके स

अपने अपने स्थान को चले जाओ, थोड़ी ही समय में
 सगर के सब पुत्रों का अपने किये हुए कर्मों के
 अनुसार सर्वनाश हो जायगा । हे पृथ्वीनाथ ।
 ब्रह्मा के ऐसे वचन सुनके ब्रह्मा की आज्ञा
 ले सब देवता लोग अपने अपने घर की चये
 गये । हे भरतकुल सिंह ! बृहत् समय
 में जिनके पश्चात् बलवान राजा सगर ने अश्वमेध
 यज्ञ करना आरम्भ किया और घोड़ा छोड़ा,
 वही साठ हजार पुत्र उस घोड़े की रक्षा करने
 लगे । वह घोड़ा सब भूमि में घूमने लगा,
 जब घोर दर्शन वाले जल-रहित समुद्र के तट
 पर आया तो अत्यन्त यत्न से रक्षा करने पर भी
 वहाँ अन्तर्धान हो गया, हे तात ! जब सगर के
 पुत्रोंने उस घोड़े को न देखा, तो अपने पिता के
 पास आकर उसके गुप्त होने और छिप जाने के
 सब वृत्तान्त कह सुनाये । राजा सगर ने आज्ञा
 दी कि तुम सब दिशाओं में घोड़े की खोज करो ।
 हे महाराज ! वे लोग पिता की आज्ञा सुन सब
 दिशाओं में और सब पृथ्वी में घोड़े का ढूँढ़ने लगे;
 परन्तु उन सबन अत्यन्त दूढ़न पर भी
 घोड़ और घोड़े के चोर का न पाया । तब
 अपन पिता के पास आ हाथ जोड़ कहने
 लग कि हे तरनाथ ! हम लोगोंने समुद्र, वन,
 तीप नदी, नद, कन्दरा, पर्वत और वना की
 भाँहत सब पृथ्वी का आपकी आज्ञानुसार ढूँढ़ा
 परन्तु न कहीं घाड़ा और न कहीं घाड़े का
 पता मिला । यह वचन सुनते ही राजा को
 क्रोध हुआ । हे राजन् ! प्रारब्ध वशसे राजा
 सगर अपने पुत्रों से कहा कि तुम लाग घोड़े-
 की खोज करो । फिर भगव्य देशाम जाओ, हे
 राजन् ! अपना उस घोड़े का खोज तुम लाग यहाँ
 रखो । अपन पिता के वचन का स्वीकार
 कर सब पुत्रों ने घोड़े की खोज शुरू की ।
 अनन्तर उन्होंने
 पृथ्वी पर घोड़े की पंखें जड़े देखा तब वे
 घोड़े की खोज उस पंखों की खोज करने लगे । वह

बिल समुद्र था । अनन्तर सगर के पुत्रोंने
 कुदर और गधालों से उसकी यत्पूर्वक खोजना
 आरम्भ किया । उस समय खुदने से वस्त्रों के
 स्थान समुद्र की बड़ा दुःख हुआ, चारों ओर से
 समुद्र खुदने से उसमें रहनेवाले असुर, सर्प
 राक्षस और अनेक प्रकार के जन्तु सगर पुत्रों से
 पीड़ा पाकर घोर शब्द करने लगे । उस
 समय सैकड़ों सहस्रो जन्तु शिर, दिह, चर्म
 और सन्धियों से नष्ट भष्ट दीखने लगे । इस
 प्रकार समुद्र खोदते खोदते सगर के पुत्रों की
 बृहत् समय बीत गया, परन्तु घोड़ा कहीं न
 मिला । अनन्तर सगर के पुत्रोंने महाक्रोध
 किया, तब उत्तर और पाताल के कोने में खाद-
 ना आरम्भ किया, और पाताल तक खोदते-
 चले गये, वहाँ देखा कि, घाड़ा पृथ्वी में घूम
 रहा है और उसके पास ही ज्वाला के साँहत
 जलती हुई अग्निके समान तेजस्वी महात्मा
 कपिलजी भी बैठे हैं ।

श्रीलोमश मुनि बोले, हे राजन् ! वे उस
 घोड़े की देखकर बृहत् प्रसन्न हुए और
 उनके रोम खड़े हो गये । अनन्तर महात्मा
 कपिलजी का निरादर करके काल के वशमें
 हीकर महाक्रोध के साँहत घोड़ा पकड़ने की
 दौड़े । हे महाराज ! उनका यह व्यवहार
 देख महात्मा कपिल मुनिकी महा क्रोध
 हुआ । जिन कपिल मुनिका जगत् के पुरुष
 कृपा कहते हैं, उन्होंने अपन नेत्र खोल
 सगर के पुत्रों पर अपना तेज छोड़ा । उसके
 लगते ही सगर के मन्दबुद्ध पुत्र भस्म हो गये,
 उनके भस्म होते ही महा तपस्वी नारद मुनि
 सगर राजा के घर गये और उसका वह सब
 वृत्तान्त कह सुनाया । राजा सगर ने मुनिके
 मुख से वह सब वृत्तान्त सुनकर दुःख समय तक
 शाक करके शिव के वचन का स्मरण किया ।
 अनन्तर सगर ने असमर्थता के दूरे अपने
 अनुमान की बुझाकर कहा कि हे तात ! हमारे

जो परम तेजस्वी साठ हजार पुत्र थे, सो सब हमारी आज्ञानुसार काम करनेके कारण कपिल मुनिके तेजसे नष्ट होगये। और तुम्हारे पिताकी हमने पहलीही निकाल दिया है। हे पापरहित! उसके निकाल देनेसे मैंने धर्मको रक्षा और नगर निवासियोंका हित साधन किया था।

शुषिष्ठिर बाल, हे तपोधन। राजसिंह सगरन दुःखसे छोड़ने योग्य वीरपुत्रको किस लिये घरसे निकाल दिया था? श्रीलोमश मुनि बोले, कि राजा सगरकी श्रैष्या नामके स्त्रीसे असमञ्जस नामके पुत्र उत्पन्न हुआ था, वह नगरवासियोंके दुर्बल लड़कोंका गला और शरीर पकड़कर नदीमें फेंकने लगा। तब नगरके लोग शोक और भयसे पीड़ित होकर राजा सगरके पास आ हाथ जोड़ कहने लगे, कि हे महाराज! आप दूसरे राजासे तथा और डरोसे हम लागाकी रक्षा करने वाले हैं, अतएव असमञ्जसके घर भयसे हम लोगोंको रक्षा काजये। नगरनिवासियोंके घर वचन सुन राजामें अष्ट सगर क्षणमात्र दुःख करके अपन मान्त्यासे बोले, कि तुम लोग हमारे पुत्र असमञ्जसको इसी समय नगरसे निकाल दो। हे मान्त्या! याद आप लोग हमारा कुछ प्रिय कार्य करना चाहते हैं, तो इस कामका शोध होकर। हे पृथ्वीनाथ! राजा सगरके वचन सुन मान्त्योंन असमञ्जसका उसही समय नगरसे निकाल दिया। हे नरनाथ! महात्मा राजा सगरने प्रजाके हितको दृष्ट्वासे जिस प्रकार अपन पुत्र असमञ्जसका नगरसे निकाल दिया था, सो सब कथा हमन तुमसे कहो; अब राजा सगरने महा धनुषधारी अंशुमानसे जो कुछ कहा, सो सब कथा हम आपसे कहते हैं, आप सुनिये। सगर बोले, हे पुत्र! तेरे पिताके निकालने, साठ पुत्रोंके मरने और घोड़ेके न मिलनेसे

मेरा शरीर भस्म हुआ जाता है। हे पौत्र! दुःखसे सन्तप्त और यज्ञमें विघ्न होनेसे दुःखित मेरा घोड़ा लेकर नरकसे उधार करो। अंशुमान महात्मा सगरके वचन सुन एवमस्तु कह परम दुःखके सहित उस स्थानको गये, जहाँ सगरके पुत्रोंने पृथ्वी खा दी थी; वे उसी मार्गसे पातालकी चले गये। जाकर महात्मा कपिल और घोड़ेको देखा, उन्होंने तेजके समूह ऋषियोंमें अष्ट बृद्ध कपिल मुनि को देख शिरसे प्रणाम किया और अपना प्रयोजन कह सुनाया। हे महाराज! हे भारत! धर्मात्मा कपिल मुनि अंशुमानसे वृद्धत प्रसन्न हुए और बोले कि तुम्हारी जो इच्छा हो वही वरदान हमसे मांगो। तब उन्होंने यज्ञ पूर्ण होनेको इच्छासे पहली घोड़ा मांगा, और दूसरा यह वरदान मांगा कि हमारे पितर लोग पवित्र हो जायें। तब मुनियोंमें अष्ट महा तेजस्वी कपिल मुनिने अंशुमान से कहा कि, हे पापरहित! तुम्हारा कल्याण हो, तुमने जो कुछ मांगा सो हमने दिया। तुममें सत्य, क्षमा और धर्म स्थिर है, तुमसे सगर पवित्र और पिता पुत्रवान हुए, तुम्हारे ही इस प्रभावसे सगरके पुत्र स्वर्गको जायंगे और तुम्हारा ही पोता स्वर्गसे गङ्गाको लावेगा। हे पुरुष अष्ट! तुम्हारा पाता सगरके पुत्रोंको पवित्र करनेके निमित्त शिवजीको प्रसन्न करके गङ्गा लावेगा, तुम्हारा कल्याण हो, इस यज्ञके घोड़ेकी यहांसे ले जाओ, हे तात! महात्मा सगरके यज्ञकी समाप्ति करो। अंशुमान, महात्मा कपिलके ऐसे वचन सुनकर घोड़ेका ले महात्मा सगरकी यज्ञशालामें आये, और महात्मा सगरके चरणोंमें प्रणाम कर उनके पुत्रोंके मरनेका वृत्तान्त जैसा देखा और सुना था, कह सुनाया। सगरनेभी अंशुमानका माथा सृषा। राजा सगर उस घोड़ेकी लेकर यज्ञशालामें आये और उन सब वृत्तान्तोंको सुनकर उन्होंने अपने पुत्रोंका शोक छोड़ दिया

घोर अंशुमानका-सम्मानकर यज्ञको समाप्त किया। अनन्तर यज्ञ-समाप्तकर राजा सगरने सब देवताओंकी सम्मतिसे वरुणके स्थान समुद्रको अपना पुत्र बनाया । 'हे कमलनेत्र ।' इस प्रकार राजा सगरने बहुत दिन राज्य करके अपने पोते अंशुमानको राज्यका भार दे स्वर्ग-यात्रा करी, धर्मात्मा-अंशुमानभी सागरान्त पृथ्वीका वैसेही राज्य करने लगे, जैसे इनके दादा करते थे। राजा अंशुमानको पुत्र दिलीप हुए। दिलीप परम धर्म्मज्ञ थे, राजा अंशुमान दिलीपको राज्य देकर स्वर्गको चले गये। राजा दिलीप अपने पुत्रोंका इस प्रकार मरना सुनकर और उनकी गतिकी विचारकर दुःखसे जलने लगे, और गङ्गाके लानेके लिये परम यत्न करने लगे। परन्तु बलके अनुसार बहुत यत्न करने परभी गङ्गाको पृथ्वीमें न ला सके। उनके भगीरथ पुत्र हुए, ये महा श्रीमान् धर्म्म करनेवाले, सत्यवादी और द्वेष रहित थे, राजा दिलीप भगीरथको राज्य दे आप वनकी चले गये। हे भरतर्षभ । वनमें जाकर राजा दिलीप कुछ समयके पश्चात् सिद्धि और योगके बलसे अपने शरीरको ढाड़कर स्वर्गको गये।

१०७ अध्याय समाप्त ।

श्रीलोकेश मुनि बोले, हे राजन् । राजा भगीरथ महा धनुषधारी महारथ और चक्रवर्ती राजा हुए। उनकी देखकर सब जगतके मन भार नेतोंको आनन्द होता था। महाबाहु भगीरथने उद सुना कि हमारे पिता लोगोंकी मशाम्मा कपिलने सक किया था, और उनका धर्म नहीं मिला, तब दुःखित मन होकर अपना राज्य मन्त्रोंकी दे आप हिमाचलको चले गये। हे भगीरथ : उन्होंने अपने मनमें विचार, कि इस समय पापोंकी उलाहल गंगाकी आराधना करने, हे भगीरथ : उन्होंने जाकर अनेक

मंत्रोंमें चारों ओर भौंगे हुए, नदी, कुक्ष और नितम्बीसे शोभित गुफाओंमें बैठे हुए सिंह और व्याघ्रोंसे सेवित विचित्र शरीर और अनेक प्रकारके शब्दवाली पक्षियोंसे विराजमान, भौरे, हंस, सारस जल कुक्कुट, मोर शतपल, कीयल, चक्रौर, असिता-पांग और पुत्रप्रिय आदि पक्षियोंके शब्दोंमें शोभित, तलावोंमें पद्मोंके समूहसे विराजमान, सारसोंके मीठे वचनोंसे भूषित, पर्वतोंमें अष्ट हिमाचलकी देखा-जिसकी शिलाओंपर किन्नर और अप्सरा आनन्द कर रहे थे, जहाके वृक्ष दिग्गजोंके दातोंसे चिंर गये थे, जहां विद्याधर लोग आनन्द कर रहे थे, जो अनेक रत्न और विष से भरे हुए दीजीभ वाले सर्पोंसे प्रकाशित हो रहा था, जो हिमाचल के कहीं-कहीं चांदीके और कहीं अञ्जनके समान वर्णवाला था। उस पर महा-राज भगीरथ पहुंचे, वहां जाकर पुरुषोंमें अष्ट भगीरथने फल मूल और जल भक्षण करके एक सहस्र वर्षतक घोर तप किया, जब दिव्य सहस्र वर्ष बीत गया सब महानदी गंगाजी अपना स्वरूप धारण करके भगीरथके सम्मुख आईं। गंगाजी बोली, हे महाराज । तुम हमसे क्या चाहते हो ? जो तुम कही सोही हम करें और जो तुम कही सोही हम दें। गंगाजीके ऐसे वचन सुन हिमाचलकी पत्नी भगीरथ बोली, हे वर देनेवाली महानदी । मेरे पितामह लोग घोरिकों दृढ़ते दृढ़ते महात्मा कपिलके समीप गये थे, उन्होंने उनकी नष्ट कर दिया, मगर महात्माके साठ हजार पुत्र भगवान् कपिलके क्रोधसे जगभरमें भका हो गये; इस प्रकार नष्ट हुए मगर पुत्रोंकी स्वर्गमें वास भी न मिला; हे महानदी । जब तक आप उनके शरीरोंकी अपने जलसे स्नान न करावेंगी, तब तक मगरके पुत्रोंकी स्वर्ग न होगा, हे महानदी । हे महाभाग । मगरके पुत्र हमारे पुत्रोंकी स्वर्गमें पहुँचादिये यही वरदान

हम आपसे मांगते हैं । श्रीलौमश मुनि बोले, लोकपूजिता गंगाजीने राजाके वचन सुन प्रसन्न हो भगीरथसे कहा है महाराज । हम निःसन्देह तुम्हारे वचनको करेंगी, परन्तु हमारा वेग बहुत घोर है उसे धारण करनेकी पृथ्वीमें कोई नहीं है, हे नरनाथ । उसकी नीलकण्ठ-शिवजीही धारण कर सकते हैं, हे महाबाहो । तुम वर देनेवाले शिवजीकी तपस्यासे प्रसन्न करो, वही महादेव स्वर्गसे गिरी हुई हमको अपने सिर पर धारण करेंगे । वह पितरोंके हितके निमित्त तुम्हारी इच्छा पूर्ण करेंगे । हे राजन् । महाराज भगीरथने गंगाजीके वचन सुन कैलाश पर्वतमें जा घोर तपस्या करके शिवजीको प्रसन्न किया । तब राजा भगीरथने अपने पितरोंके स्वर्गमें जानेके निमित्त शिवसे यही वरदान मांगा, कि आप गंगाजीकी अपने सिर पर धारण कीजिये ।

— १०८ अध्याय समाप्त । —

श्रीलौमश मुनि बोले, हे महाराज । राजा भगीरथके वचन सुन देवतोंकी प्रिय कामनासे भगवान शिवजीने उनके वचनको स्वीकार करके कहा, कि हे महाभाग ! हे राजोत्तम ! हम स्वर्गसे गिरती हुई कल्याणपवित्र देवनादीकी तुम्हारे हितके निमित्त धारण करेंगे, हे महाबाहो ! शिवजी भगीरथसे ऐसे वचन कह नानाशस्त्रधारी गणोंके संग हिमाचल पर पहुँचे । वहाँ आकर पुरुषोंमें श्रेष्ठ भगीरथसे बोले कि, हे महाबाहो ! अब तुम पर्वतराजपुत्री गंगाकी प्रार्थना करो, जब वे नदियोंमें श्रेष्ठ गंगा स्वर्गसे गिरेंगी तो हम धारण करेंगे । शिवजीके वचन सुन अपने मनको स्थिर और विनीत कर भगीरथने गंगाजीका ध्यान किया, उनके ध्यान करतेही और शिवजीका बैठे हुए देख पवित्र जलवाली रमणीय गंगा स्वर्गसे गिरी । गंगाको गिरते हुए देख देवता, महाऋषि, गन्धर्व, सर्प,

और यक्ष लोग देखनेकी इच्छामें आये । उसी समय हिमाचलकी पुत्री गंगा स्वर्गसे गिरी । जिसमें बड़ी बड़ी तरंग उठती थीं, जो मछरी और ग्राहोंसे भरी हुई थी, हे राजन् । उस गंगाकी शिवजीने अपने शिर पर भूषणके समान धारण किया । हे राजन् ! वह तीन धारावाले गंगाजी शिवजीके शिर पर मोतीकी मालाके समान शोभित होने लगीं । जो गंगाजी समुद्रमें जानेवाली, फेनसे भरी हुई, जलसे पूर्ण है, सो ऐसी विराजमान हुई, जैसी हंसकी पंक्ति, कहीं भौरोंमें कुटिल, कहीं कहीं जलसे भरी हुई, उस समय गंगाजीकी फेनरूपी कपड़ा पहननेसे ऐसी शोभा बढ़ी जैसी सुन्दरी स्त्रीकी । कहीं जलका घोर शब्द होने लगा, इस प्रकार आकाशसे गिरती हुई गंगाकी शोभा बढ़ी । अनन्तर पृथ्वीमें आकर गंगाजीने भगीरथसे कहा, कि हे पृथ्वीनाथ । हे महाराज ! मैंने तुम्हारे लिये पृथ्वीमें अतार लिया है, कहीं अब मैं कौनसे मार्गसे चलूँ ? राजा भगीरथने लोक पूजित शिवजीके सिरमें गंगाजीको स्थापन करके अपने पुरखोंकी पवित्र जलसे स्नान करानेके निमित्त उधरही चले जिधर महात्मा सगरके साठ हजार पुत्र मरे पड़े थे । अनन्तर शिवजीभी देवतोंके सहित गंगाजीको धारण करके पर्वत श्रेष्ठ कैलाशको चले गये । अनन्तर राजा भगीरथने गंगाकी समुद्रतक पहुँचा दिया, गंगाने वरुणके स्थान समुद्रको अपने जलसे पूर्ण कर दिया, राजा भगीरथ ने गंगाकी अपनी पुत्री बनाया और मनोरथ पूरा करके अपने पुरखोंकी जलदान किया । हे महागज ! आपने जो हमसे गंगाका वृत्तान्त पूछा था, सो हमने आपसे सब कहा । इस प्रकार स्वर्ग मर्त्य और पातालमें जाने वाली गंगा समुद्रकी पूर्ण करनेके निमित्त पृथ्वीमें आयी थी और इस प्रकार महात्मा अगस्त्यने समुद्रकी पीया थी और इस प्रकार वातापी राक्षसका नाश

हुआ था। अब आप जो हमसे पूछें सो हम कहें।

१०८ अध्याय समाप्त ।

त्रैलोक्यमायन मुनि बोले, हे भरतकुल सिंह महेन्द्र ! तब कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर क्रमसे नते पाप भयका नाश करनेवाली नन्दा और नन्दा नदीके तट पर पहुँचे, वहाँपर सुन्दर मरूट नामक पर्वत पर जाकर राजा युधिष्ठिरने अनेक अद्भुत भावोंकी देखा। जहाँ ज्योंमेष और आले वायुके वशसे स्थिर थे उनके भयसे पुरुष ऊपर नहीं जा सकते थे, सीसे पुरुषोंको महा दुःख होता था जहाँ दाहो वायु चलता था और सदाही जल बरता था, जहाँके शब्द सुनाई देते थे, परन्तु देनेवालेका रूप नहीं दीखता था, जहाँ आकाशकी और भोरकी भगवान् अग्निके दर्शन मिलते थे, जहाँ तपके नाश करनेवाली सखी पुरुषोंकी काटती थी, जहाँ जानेसे चित्तकी अज्ञानता होती थी, जहाँ जानेसे घरके पुरुषको मरण करते थे, महाराज युधिष्ठिरने ऐसे ऐसी अनेक विचित्र बातोंकी देखी। अनेक ऋषिसे इसका कारण पूछा। श्रीलामश मुनि बोले, हे शत्रुनाशन ! हमने इस विषयकी जैसा सुना है, वंसाही आपसे कहते हैं। आप एकाग्रचित्त होकर सुनिये। इस मरूट नामक पर्वतमें एक ऋषभ नामक वृद्ध ऋषि थे, उनकी कई सौ वर्षकी अवस्था थी, परन्तु वे परम काष्ठ थे। उन्होंने अपने शत्रु सुनकर महाकाष्ठसे पर्वतसे काट कर जो काष्ठ वहाँ आकर लुप्त हो गये। तब उनका वरसेगा, अनन्तर सुानन करके वायुम कष्टाक शब्द मत बारी, जहाँ लुप्त होकर मेषका शब्द निवारण करके महाराज ! इस प्रकार उस महाकाष्ठकी अग्नि होकर अनेक अद्भुत क्रमसे

किये और अनेक कर्मोंको रोक दिया। हे राजन् ! हमने सुना है, कि पहले समयमें देवता लोग नन्दापर गये थे और मनुष्य लोग भी उनके दर्शनकी इच्छासे उनके पीछे गये थे। वहाँ इन्द्रादिक देवतोंने पुरुषोंकी दर्शन देना नहीं चाहा। तब यह विघ्नरूपी दुर्ग बनाया है। यह देश इसके बीचमें है, हे कुन्तीनन्दन ! तबहीसे मनुष्य लोग इस पर्वतकी देखभी नहीं सकते हैं और चढ़नेकी तो कथाही क्या है ? हे कुन्तीनन्दन ! बिना तप किये हुए, इस महा पर्वतकी कोईभी पुरुष नहीं देख सकता है, अतएव तुम सावधान हो जाओ। हे भारत ! इसही स्थान पर देवतोंने उत्तम उत्तम यज्ञ किये हैं, जिनके चित्र अभीतक दीखते हैं, देखी यह कुशाके समान घास, विष्णुके समान भूमि और यूपके समान अनेक वृक्ष लगे हैं। हे पृथ्वीनाथ ! हे भारत ! यहाँपर अब भी अनेक देवता और ऋषि बसते हैं, उनहीके अग्निहोत्रकी अग्नि प्रातः काल और सन्ध्या समय दीखती है। हे कुन्तीनन्दन ! वहाँ स्नान करनेसे उसही समय पाप नष्ट हो जाता है, इस लिये हे ऋष्येष्ट ! आप अपने भाइयोंके सहित यहाँ स्नान कीजिये, यहाँ स्नान करनेके पश्चात् तुमको कौशिकी नदी मिलेगी, जहाँ विश्वामित्र मुनिने घोर तप किया था। राजा युधिष्ठिरने अपने पुरुषोंके सहित नन्दामें स्नान किया, वहाँसे पवित्र, रम्य, सुन्दर, शीतल जलवाली कौशिकी नदीको चले। श्रीलामश मुनि बोले, हे भरतकुल सिंह यही पवित्र देवर्षी कौशिकी है, यहाँ विश्वामित्र मुनिका रमणीय आश्रम है, और यह महाकाष्ठ ऋष्य मुनिका पवित्र आश्रम है। यही जन्तुय तपस्वी काश्यप मुनिके पद ऋष्यशृङ्गा नामक वृक्ष था था, जहाँ अनेक तपके प्रभारसे जल बरसाया था। जहाँके भयसे जन्तुमने इन्द्रके वपुः बरी थी, यह काश्यप

हम आपसे मांगते हैं। श्रीलौमश मुनि बोले, लोकपूजिता गंगाजीने राजाके वचन सुन प्रसन्न हो भगीरथसे कहा है महाराज। हम निःसन्देह तुम्हारे वचनको करेंगी, परन्तु हमारा वेग बहुत घोर है उसे धारण करनेकी पृथ्वीमें कोई नहीं है, हे नरनाथ। उसकी नीलकण्ठ-शिवजीही धारण कर सकते हैं, हे महाबाहो। तुम, वर देनेवाले शिवजीकी तपस्यासे प्रसन्न करो, वही महादेव स्वर्गसे गिरी हुई हमको अपने सिर पर धारण करेंगे। वह पितरोंके हितके निमित्त तुम्हारी इच्छा पूर्ण करेंगे। हे राजन्। महाराज भगीरथने गंगाजीके वचन सुन कैलाश पर्वतमें जा घोर तपस्या करके शिवजीकी प्रसन्न किया। तब राजा भगीरथने अपने पितरोंके स्वर्गमें जानेके निमित्त शिवसे यही वरदान मांगा, कि आप गंगाजीकी अपने सिर पर धारण कीजिये।

अध्याय समाप्त ।

श्रीलौमश मुनि बोले, हे महाराज। राजा भगीरथके वचन सुन देवतोंकी प्रिय कामनासे भगवान् शिवजीने उनके वचनकी स्वीकार करके कहा, कि हे महाभाग। हे राजोत्तम! हम स्वर्गसे गिरती हुई कल्याणपवित्र देवनदीकी तुम्हारे हितके निमित्त धारण करेंगे, हे महाबाहो। शिवजी भगीरथसे ऐसे वचन कह नानाशस्त्रधारी गंगाके संग हिमाचल पर पड़ंचे। वहाँ आकर पुरुषोंमें श्रेष्ठ भगीरथसे बोले कि, हे महाबाहो। अब तुम पर्वतराजपुत्री गंगाकी प्रार्थना करो, जब वे नदियोंमें श्रेष्ठ गंगा स्वर्गसे गिरेंगी तो हम धारण करेंगे। शिवजीके वचन सुन अपने मनका स्थिर और विनीत कर भगीरथने गंगाजीका ध्यान किया, उनके ध्यान करतेही और शिवजीका बैठे हुए देख पवित्र जलवाली रमणीय गंगा स्वर्गसे गिरीं। गंगाकी गिरते हुए देख देवता, महाऋषि, गन्धर्व, सर्प,

और यज्ञ लोग देखनेकी इच्छामें आये। उसी समय हिमाचलकी पुत्री गंगा स्वर्गसे गिरीं। जिसमें बड़ी बड़ी तरंग उठती थीं, जो मछरी और ग्राहोंसे भरी हुई थी, हे राजन्। उस गंगाकी शिवजीने अपने शिर पर भूषणके समान धारण किया। हे राजन्। वह तीन धारावाली गंगाजी शिवजीके शिर पर मतीकी मालाके समान शोभित होने लगीं। जो गंगाजी समुद्रमें जानेवाली, फेनोंसे भरी हुई, जलसे पूर्ण है, सो ऐसी विराजमान हुई, जैसी हंसकी पंक्ति, कहीं भौरोमें कुटिल, कहीं कहीं जलसे भरी हुई, उस समय गंगाजीकी फेनरूपी कपड़ा पहननेसे ऐसी शोभा बढ़ी जैसी सुन्दरी स्त्रीकी। कहीं जलका घोर शब्द होने लगा, इस प्रकार आकाश से गिरती हुई गंगाकी शोभा बढ़ी। अनन्तर पृथ्वीमें आकर गंगाजीने भगीरथसे कहा, कि हे पृथ्वीनाथ। हे महाराज। मैंने तुम्हारे लिये पृथ्वीमें औतार लिया है, कहीं अब मैं कौनसे मार्गसे चलूँ? राजा भगीरथने लोक पूजित शिवजीके सिरमें गंगाजीको स्थापन करके अपने पुरखोंकी पवित्र जलसे स्नान करानेके निमित्त उधरही चले जिधर महात्मा सगरके साठ हजार पुत्र मरे पड़े थे। अनन्तर शिवजीभी देवतोंके सहित गंगाजीकी धारण करके पर्वत श्रेष्ठ कैलाशकी चले गये। अनन्तर राजा भगीरथने गंगाकी समुद्रतक पड़ंचा दिया, गंगाने वरुणके स्थान समुद्रको अपने वरसे पूर्ण कर दिया, राजा भगीरथ ने गंगाकी अपनी पुत्री बनाया और मनोरथ पूरा करके अपने पुरखोंकी जलदान किया। हे महाभाग। आपने जो हमसे गंगाका वृत्तान्त पूछा था, सो हमने आपसे सब कहा। इस प्रकार स्वर्ग मर्त्य और पातालमें जाने वाली गंगा समुद्रकी पूर्ण करनेके निमित्त पृथ्वीमें आयी थी और इस प्रकार महात्मा अगस्त्यने समुद्रकी पीया या और इस प्रकार वातापी राक्षसका नाश

आ था । अब आप जो हमसे पूछें सो हम कहें ।

१०६ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे भरतकुल सिंह जनमेजय । तब कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर क्रमसे चलते पाप-भयका नाश करनेवाली नन्दा और परम नन्दा नदीके तट पर पहुँचे, वहाँपर सुन्दर ऋषभकूट नामक पर्वत पर जाकर राजा युधिष्ठिरने अनेक अद्भुत भावोंको देखा । जहाँ सहस्रों मेष और अली वायुके वशसे स्थिर थे जिनके भयसे पुरुष ऊपर नहीं जा सकते थे, इसीसे पुरुषोंको महा दुःख होता था जहाँ सदाही वायु चलता था और सदाही जल वरसता था, जहाँके शब्द सुनाई देते थे, परन्तु पढ़नेवालेका रूप नहीं-दोखता था, जहाँ सन्ध्याको और भोरको भगवान् अग्निके दर्शन होते थे, जहाँ तपके नाश करनेवाली सक्की पुरुषोंको काटती थीं, जहाँ जानेसे चित्तकी वज्रत ग्लानि होती थी, जहाँ जानेसे घरके पुरुषको क्षरण करते थे, महाराज युधिष्ठिरने ऐसी ऐसी अनेक विचित्र बातोंकी देख लोमश ऋषिसे इसका कारण पूछा । श्रीलोमश मुनि बोले, हे शत्रुनाशन । हमने इस विषयको जैसा सुना है, वैसाही आपसे कहते हैं, आप एकाग्रचित्त होकर सुनिये । इस ऋषभकूट नामक पर्वतमें एक ऋषभ नामक गान्धर्व्ये थे, उनकी कई सौ वर्षकी अवस्था थी, परन्तु वे परम क्रोधो थे । उन्होंने किसीके वचन सुनकर महाक्रोधसे पर्वतसे कहा कि जो कोई यहाँ आकर कुछ बालेगा उसके ऊपर हम वरसेगा, अनन्तर मुनिन क्रोध करके वायुसे कहा कि शब्द मत करो, यहाँ बालेगा उसका मेषका शब्द निवारण प्रयास । हे महाराज । इस प्रकार उस महा-पर्वतके क्रोधके वशसे होकर अनेक अद्भुत कर्म

किये और अनेक कर्मोंको रोक दिया । हे राजन् ! हमने सुना है, कि पहले समयमें देवता लोग नन्दापर गये थे और मनुष्य लोग भी उनके दर्शनकी इच्छासे उनके पीछे गये थे । वहाँ इन्द्रादिक देवोंने पुरुषोंको दर्शन देना नहीं चाहा । तब यह विघ्नरूपी दुर्ग बनाया है । यह देश इसके बीचमें है, हे कुन्तीनन्दन । तबहीसे मनुष्य लोग इस पर्वतको देखभी नहीं सकते हैं और चढ़नेकी तो कथाही क्या है ? हे कुन्तीनन्दन ! बिना तप किये हुए, इस महा पर्वतको कोईभी पुरुष नहीं देख सकता है, अतएव तुम सावधान हो जाओ । हे भारत ! इसही स्थान पर देवोंने उत्तम उत्तम यज्ञ किये हैं, जिनके चिह्न अभीतक दीखते हैं, देखो यह कुशके समान घास, विह्वलके समान भूमि और यूपके समान अनेक वृक्ष लगे हैं । हे पृथ्वीनाथ । हे भारत । यहाँपर अब भी अनेक देवता और ऋषि बसते हैं, उनहीके अग्निहोत्रकी अग्नि प्रातःकाल और सन्ध्या समय दीखती है । हे कुन्तीनन्दन । वहाँ स्नान करनेसे उसही समय पाप नष्ट हो जाता है, इस लिये हे कुरुक्षेत्र ! आप अपने भाइयोंके सहित यहाँ स्नान कीजिये, यहाँ स्नान करनेके पश्चात् तुमको कौशिकी नदी मिलेगी, जहाँ विश्वामित्र मुनिने घोर तप किया था । राजा युधिष्ठिरने अपने पुरुषोंके सहित नन्दामें स्नान किया, वहाँसे पवित्र, रम्य, सुन्दर, शीतल जलवाली कौशिकी नदीको चले । श्रीलोमश मुनि बोले, हे भरतकुल सिंह यही पवित्र देवनदी कौशिकी है, यही विश्वामित्र मुनिका रमणीय आश्रम है, और यह महात्मा काश्यप मुनिका पवित्र आश्रम है । यहाँ जतन्द्रिय तपस्वी काश्यप मुनिके पुत्र ऋष्यशृङ्गका जन्म हुआ था, उन्होंने अपने तपके प्रभावसे जल वरसाया था, जिनके भयसे अकालमें इन्द्रने वर्षा करी थी, वह काश्यपके

हम आपसे मांगते हैं । श्रीलौमश मुनि बोले, लोकपूजिता गंगाजीने राजाके वचन सुन प्रसन्न हो भगीरथसे कहा है महाराज । हम निःसन्देह तुम्हारे वचनको करेंगी, परन्तु हमारा वेग बहुत घोर है उसे धारण करनेकी पृथ्वीमें कोई नहीं है, हे नरनाथ । उसकी नीलकण्ठ-शिवजीही धारण कर सकते हैं, हे महाबाहो । तुम वर देनेवाले शिवजीकी तपस्यासे प्रसन्न करो, वही महादेव स्वर्गसे गिरी हुई हमको अपने सिर पर धारण करेंगे । वह पितरोंके हितके निमित्त तुम्हारी इच्छा पूर्ण करेंगे । हे राजन् । महाराज भगीरथने गंगाजीके वचन सुन कैलाश पर्वतमें जा घोर तपस्या करके शिवजीकी प्रसन्न किया । तब राजा भगीरथने अपने पितरोंके स्वर्गमें जानेके निमित्त शिवसे यही वरदान मांगा, कि आप गंगाजीकी अपने सिर पर धारण कीजिये ।

१०८ अध्याय समाप्त ।

श्रीलौमश मुनि बोले, हे महाराज । राजा भगीरथके वचन सुन देवतोंकी प्रिय कामनासे भगवान शिवजीने उनके वचनको स्वीकार करके कहा, कि हे महाभाग ! हे राजोत्तम ! हम स्वर्गसे गिरती हुई कल्याणपवित्र देवनदीकी तुम्हारे हितके निमित्त धारण करेंगे, हे महाबाहो । शिवजी भगीरथसे ऐसे वचन कह नानाशस्त्रधारी गंगाके संग हिमाचल पर पड़चे । वहाँ आकर पुरुषोंमें श्रेष्ठ भगीरथसे बोले कि, हे महाबाहो ! अब तुम पर्वतराजपुत्री गंगाकी प्रार्थना करो, जब वे नदियोंमें श्रेष्ठ गंगा स्वर्गसे गिरेंगी तो हम धारण करेंगे । शिवजीके वचन सुन अपने मनको स्थिर और विनीत कर भगीरथने गंगाजीका ध्यान किया, उनके ध्यान करतेही और शिवजीका बैठे हुए देख पवित्र जलवाली रमणीय गंगा स्वर्गसे गिरी । गंगाकी गिरते हुए देख देवता, महाऋषि, गन्धर्व, सर्प,

और यक्ष लोग देखनेकी इच्छासे आये । उसी समय हिमाचलकी पुत्री गंगा स्वर्गसे गिरी । जिसमें बड़ी बड़ी तरंग उठती थीं, जो मकरी और ग्राहोंसे भरी हुई थी, हे राजन् । उस गंगाकी शिवजीने अपने शिर पर भूषणके समान धारण किया । हे राजन् ! वह तीन धारावाले गंगाजी शिवजीके शिर पर भोतीकी मालाके समान शोभित होने लगीं । जो गंगाजी समुद्रमें जानेवाली, फेनोंसे भरी हुई, जलसे पूर्ण है, सो ऐसी विराजमान हुई, जैसी हंसकी पंक्ति कहीं भौरोमें कुटिल, कहीं कहीं जलसे भी हुई, उस समय गंगाजीकी फेनरूपी कपड़ पहननेसे ऐसी शोभा बढ़ी जैसी सुन्दरी स्त्रीकी । कहीं जलका घोर शब्द होने लगा, इस प्रकार आकाश से गिरती हुई गंगाकी शोभा बढ़ी । अनन्तर पृथ्वीमें आकर गंगाजीने भगीरथसे कहा, कि हे पृथ्वीनाथ ! हे महाराज ! मैं तुम्हारे लिये पृथ्वीमें औतार लिया है, कहीं अब मैं कौनसे मार्गसे चल ? राजा भगीरथने लोक पूजित शिवजीके सिरमें गंगाजीको स्थापन करके अपने पुरखोंकी पवित्र जलसे स्नान करानेके निमित्त उधरही चले जिधर महाका सगरके साठ हजार पुत्र मरे पड़े थे । अनन्तर शिवजीभी देवतोंके सहित गंगाजीकी धारण करके पर्वत श्रेष्ठ कैलाशकी चले गये । अनन्तर राजा भगीरथने गंगाको समुद्रतक पड़चा दिया, गंगाने वरुणके स्थान समुद्रको अपने वस्त्र पूर्ण कर दिया, राजा भगीरथने गंगाकी अपनी पुत्री बनाया और मनोरथ पूरा करके अपने पुरखोंकी जलदान किया । हे महागज ! आपने जो हमसे गंगाका वृत्तान्त पूछा था, मैं हमने आपसे सब कहा । इस प्रकार स्वर्ग मर्त्य और पातालमें जाने वाली गंगा समुद्रकी पूर्ण करनेके निमित्त पृथ्वीमें आयी थी और इस प्रकार महात्मा अगम्यने समुद्रकी पीया था और इस प्रकार वातापी राक्षसका नाश

हम था। अब आप जो हमसे पूछें सो हम कहें।

१०८ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे भरतकुल सिंह भूमेजय ! तब कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर क्रमसे लते पाप भयका नाश करनेवाली नन्दा और रम नन्दा नदीके तट पर पहुँचे, वहाँपर सुन्दर मकूट नामक पर्वत पर जाकर राजा युधिष्ठिरने अनेक अद्भुत भावोंको देखा। जहाँ इसी मेघ और आले वायुके वशसे स्थिर थे उनके भयसे पुरुष ऊपर नहीं जा सकते थे, सो पुरुषोंको महा दुःख होता था जहाँ वही वायु चलता था और सदाही जल वरसा था, जहाँके शब्द सुनाई देने थे, परन्तु नेवालेका रूप नहीं दीखता था, जहाँ प्राची और भोरकी भगवान् अग्निके दर्शन होते थे, जहाँ तपके नाश करनेवाली सखीयोंकी काटती थीं, जहाँ जानेसे चित्तकी ग्लानि होती थी, जहाँ जानेसे घरके को स्ररण करते थे, महाराज युधिष्ठिरने ऐसी अनेक विचित्र बातोंको देख श ऋषिसे इसका कारण पूछा। श्रीलोमश बोले, हे शत्रुनाशन ! हमने इसको जैसा सुना है, वैसाही आपसे कहते आप एकाग्रचित्त होकर सुनिये। इस मकूट नामक पर्वतमें एक ऋषभ नामक जूये थे, उनकी कई सौ वर्षकी अवस्था परन्तु वे परम क्रोधो थे। उन्होंने वे वचन सुनकर महाक्रोधसे पर्वतसे कि जो कोई यहाँ आकर कुछ बोलिगा ऊपर हम वरसेगा, अनन्तर मुनिनरके वायुसे कहा कि शब्द मत करो, बोलिगा उसका मेघका शब्द निवारण। हे महाराज ! इस प्रकार उस महाक्रोधके वशसे होकर अनेक अद्भुत कर्म

किये और अनेक कर्मोंको रोक दिया। हे राजन् ! हमने सुना है, कि पहिले समयमें देवता लोग नन्दापर गये थे और मनुष्य लोग भी उनके दर्शनकी इच्छासे उनके पीछे गये थे। वहाँ इन्द्रादिक देवतोंने पुरुषोंकी दर्शन देना नहीं चाहा। तब यह विघ्नरूपी दुर्ग बनाया है। यह देश इसके बीचमें है, हे कुन्तीनन्दन। तबहीसे मनुष्य लोग इस पर्वतकी देखभी नहीं सकते हैं और चढ़नेकी तो कथाही क्या है ? हे कुन्तीनन्दन ! बिना तप किये ऊँए, इस महा पर्वतकी कोईभी पुरुष नहीं देख सकता है, अतएव तुम सावधान हो जाओ। हे भारत ! इसही स्थान पर देवतोंने उत्तम उत्तम यज्ञ किये हैं, जिनके चिह्न अभीतक दीखते हैं, देखो यह कुशाके समान घास, विष्टीनेके समान भूमि और यूपके समान अनेक वृक्ष लगे हैं। हे पृथ्वीनाथ ! हे भारत ! यहाँपर अबभी अनेक देवता और ऋषि बसते हैं, उनहीके अग्निहोत्रकी अग्नि प्रातःकाल और सन्ध्या समय दीखती है। हे कुन्तीनन्दन ! वहाँ स्नान करनेसे उसही समय पाप नष्ट हो जाता है, इस लिये हे कुरुश्रेष्ठ ! आप अपने भाइयोंके सहित यहाँ स्नान कीजिये, यहाँ स्नान करनेके पश्चात् तुमको कौशिकी नदी मिलेगी, जहाँ विश्वामित्र मुनिने घोर तप किया था। राजा युधिष्ठिरने अपने पुरुषोंके सहित नन्दामें स्नान किया, वहाँसे पवित्र, रम्य, सुन्दर, शीतल जलवाली कौशिकी नदीको चले। श्रीलोमश मुनि बोले, हे भरतकुल सिंह यही पवित्र देवनदी कौशिकी है, यही विश्वामित्र मुनिका रमणीय आश्रम है, और यह महात्मा काश्यप मुनिका पवित्र आश्रम है। यहाँ जितेन्द्रिय तपस्वी काश्यप मुनिके पुत्र ऋष्यशृङ्गका जन्म हुआ था, जिन्होंने अपन तपके प्रभावसे जल वरसाया था, जिनके भयसे अकालमें इन्द्रने वर्षा करी थी, वह काश्यपके

पुत्र तेजस्वी गृन्गी ऋषि हरिणीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे, यह श्रुत वार्ता लोमपाद राजाके राज्यमें हुई थी, जिनकी जल वरसनेके पश्चात् राजा लोमपादने अपनी पत्नी शान्ता इस प्रकार दान करी थी जैसे सूर्यने सावित्री । राजा युधिष्ठिर बोले, हे ब्राह्मन् । काश्यप मुनिके वीर्य और हरिणीके गर्भसे ऋष्यशृङ्ग मुनिका जन्म किस प्रकार हुआ ? क्योंकि यह योनि सम्बन्धके विरुद्ध जान पड़ता है, कैसे कैसे उन्होंने तप किया ? और अकालके समयमें उस वज्रिमान बालकके भयसे वृत्रासुरके मारनेवाले इन्द्रने क्यों जल वरसाया था ? और जिसने उस हरिजन्तुपी महामुनिके चित्तको लभाया था, वह व्रत धारिणी राजपत्नी शान्ता कैसी रूपवती थी, हमने सुना है, कि राज ऋषि महाराज लोमपाद परम धार्मिक थे, तब उनके राज्यमें इन्द्रने क्यों नहीं पानी वरसाया था ? हे भगवान् । इस सब कथाको आप हमसे विस्तारपूर्वक और ठीक ठीक कहिये हमको सुननेकी वृत्त इच्छा है, श्रीलोमश मुनि बोले हे महाराज । तपसे आत्मदर्शी प्रजापतिके समान तेजवाले अमीष वीर्य विभाण्डक नामक ऋषिके जिस प्रकार प्रतापवान् ऋष्यशृङ्ग पुत्र हुए सो कथा हम आपसे कहते हैं, सुनिये । तेजस्वी काश्यप मुनिके पुत्र शृङ्गी ऋषि बालक होने पर भी वृद्धोंके समान थे, देवतोंके समान तेजस्वी काश्यप मुनि एक बड़े तड़ागके तट पर बैठकर तप करते थे, एक दिन उन्होंने जलमें स्नान करते उर्बशी अम्बराको देखा, देखतेही उनका वीर्य स्वलित होगया, हे राजन् । उस वीर्यको एक हरिणी पी गई, वह हरिणी वृत्त प्राप्ती थी, इस लिये गर्भिणी हो गई । वह हरिणी पहली जन्ममें देवकन्या थी, ब्रह्माके शापसे हरिणी बनी थी और ब्रह्माने यह भी कह दिया था, कि जब तेरे गर्भसे मुनिका जन्म होगा तबही तू इस यानिसे कूटेगी, ब्रह्माका वचन अमीष होनेके

कारण और होनेवाले कार्यके अवश्य होनेके कारण उस हरिणीके गर्भसे महामुनि ऋष्यशृङ्ग का जन्म हुआ, ऋष्यशृङ्ग तप करनेके निमित्त मदा वनहीमें रहने लगे । हे राजन् । महात्मा ऋष्यशृङ्ग मुनिके सिर पर दो सीं थे, इसी लिये उनका नाम ऋष्यशृङ्ग हुआ । हे नरनाथ । उन्होंने अपने जन्ममें पिताके शिवाय दूसरे पुरुषोंको नहीं देखा था, इस लिये उनकी इच्छा ब्रह्मचारीही होनेमें रही । उसही समय महाराज दशरथने यज्ञ किया था । उस समय अङ्गदेशके राजा का नाम लोमपाद था । उस लोमपाद ने बुद्धिके भ्रमसे एक ब्राह्मणको कहा कि हम तुमको दान देंगे परन्तु फिर नहीं दिया, इस लिये महाराज लोमपादको ब्राह्मणोंने त्याग दिया, प्रारब्ध दश और पुरोहितोंके दोषसे उसके राज्यमें नौ वर्ष तक वर्षान हुई, तब प्रजाको महा दुःख हुआ, तब राजा लोमपादने जल वरसानमें समर्थ तपस्वी और महात्मा ब्राह्मणोंसे पूछा कि जिस उपायसे जल वरसै सो कहिये । तब पण्डित लोगोंने अपनी बुद्धिके अनुसार समाधि बताया । उस सभामें एक मुनिने राजासे कहा कि हे राजेन्द्र । आपसे ब्राह्मण लोग क्रुद्ध होगये हैं, इसका प्रायश्चित्त कीजिये । हे पृथ्वीनाथ । आप काश्यप मुनिके पुत्र ऋष्यशृङ्गको बुलाइये वह केवल ब्रह्मचारी हैं, वे स्त्रियोंके सुखको कुछभी नहीं जानते और वनवासी हैं, यदि महात्मा ऋष्यशृङ्ग आपके राज्यमें आवें तो उनही समय वर्षा होय, इस बातमें कोईभी सन्देह नहीं है । हे युधिष्ठिर । राजा लोमपादने ब्राह्मणोंके ऐसे वचन सुन पवित्र स्थानमें जाकर अपना प्रायश्चित्त किया और ब्राह्मणोंके प्रसन्न कर फिर अपने घरमें आये, तब प्रजाने सुना कि महाराज आगये तो वृत्तही आनन्दमाना, अनन्तर अग्रराज लोमपादने मन्त्र जाननेवाले मन्त्रियोंको बुलाकर उनसे वृत्त ऋष्यशृङ्ग

मुनिके बुलानेका यत्न किया, उन्होंने
पाख जाननेवाले सब अथोंके पण्डित नीति
नेपुण मन्त्रियोंकी सम्मतिसे ऋष्यशृंगके
बुलानेका उपाय स्थिरकर मुख्य वैश्याओंकी
बुलाया, अनन्तर राजाने प्रवीण वैश्याओंसे
कहा कि तुम किसी यत्रसे ऋषिपुत्र ऋष्यशृंगको
यहा ले आओ हे सुन्दरि ! उनके चित्तकी
लुभाकर विश्वास देकर हमारे राज्यमें ले
आओ । वैश्याओंको राजाके वचन सुन इधर
राजाका और उधर ऋषिका भय हुआ, अनन्तर
सब वैश्याओंने मलीन वर्ण और दुःखित होकर
कहा कि हे महाराज ! यह काम होनेके योग्य
नहीं है, तब एक बूढ़ी स्त्री राजासे बोली, कि
हे महाराज ! मैं उस तपोधन ऋषिके लानेका
उपाय करूंगी, परन्तु आप आज्ञा दीजिये कि
जो मेरी इच्छा हो वही करूँ, तब मैं ऋषिपुत्र
ऋष्यशृङ्गको ला सकूंगी । राजाने उसके मनका
सब आभवाय जानकर उसको वज्रत धन और
अनेक प्रकारके रत्न दिये, हे राजन् ! वह बूढ़ी
स्त्री रूपसे भरी हुई नवौन यौवनवाली स्त्रिया-
को सगमें ले शाप्रही वनको चली गई ।

११० अध्याय समाप्त ।

शैलामश मुनि बोले, हे महाराज ! उस
बूढ़ी स्त्री राजाको आज्ञा मान उनकी कार्य-
वाहके निमित्त अपनी बाँझ और राजाको
आज्ञासे अनेक फूल फले बनाये हुए वृक्षासे
आभूत अनेक प्रकारके गुल्मोंके साँहत मीठे
फल और फलासे भरा हुआ, परम रमणीय
आशय दर्शनवाला एक नावोंका स्थान बनाया,
और उस नावकी शृङ्गऋषिके आश्रमके समीप-
की बाध दिया और आश्रमसे समीपही पुरुषोंके
अनेक प्रकारके विहार करने लगी । एक
दिन काश्यप मुनिका एकान्तमें बैठे देख अपनी
विधवा पुत्रीको सब कार्य समझा उनके पास
रह, वह बुद्धिमती वैश्या नित्य तप करनेवाली

मुनिके आश्रममें जाकर काश्यप मुनिके पुत्र
शृङ्गऋषिको देखकर कहने लगी । वैश्या
बोली, हे मुने ! कहिये आपके आश्रममें कुशल
तो है ? आपके यहा फल मूल तो उत्पन्न हुए
हैं ? कहिये आप आनन्दसे विहार तो करते
हैं ? मैं आज आपकी देखनेहीको यहा आई
हूँ, कहिये आपके आश्रमके तपस्वी लोग तो
अच्छे हैं न ? कहिये, उनका तप तो आनन्दसे
होता है ? परम तेजस्वी आपके पिता काश्यप
मुनि आपसे प्रेम करते हैं न ? हे ऋष्यशृङ्ग !
आपका वेदपाठ तो होता है ?

श्रीऋष्यशृङ्ग मुनि बोले, हम तुमको ज्योति-
के समान प्रकाशमान देखकर प्रणाम करनेके
योग्य जानते हैं, हम धर्मके अनुसार पाय,
अर्घ्य, फल और मूल देते हैं, यह कुशका
आसन पड़ा है, और इस पर यह काली हरि-
का चमड़ा बिछा है, इस पर आप सुखसे बैठि-
ये । हे ब्रह्मन् ! आपका कहा आश्रम है ?
और आपका क्या नाम है ? और कौनसा देव
समान व्रत तुमने धारण किया है ? वैश्या
बोली, हे काश्यप पुत्र ! हमारा रमणीय आश्रम
इस पर्वतके पास यहासे वारह कास है, हमको
प्रणाम करना आपका धर्म नहीं है, और
हम जलका भी स्पर्श नहीं करेंगे, हे ब्रह्मन् !
हम आपको प्रणाम करने याग्य हैं,
परन्तु आप हमको प्रणाम करने याग्य नहीं
हैं । आपका परम धर्म हमसे लपटनाही है ।
श्रीऋष्यशृङ्ग मुनि बोले, हम तुमको पके हुए
भिलावे, आमले, इगदी, धन्वन और पोपलके
फल देते हैं, आप सुखसे भोजन कीजिये ।
शैलामश मुनि बोले, उस वैश्याने उन सबको
पारत्याग करके ऋष्यशृङ्ग मुनिको उत्तम उत्तम
भाजन दिये । मुनि उसके रूपको देख और
भक्षणकर वज्रत प्रसन्न हुए, तब उस वैश्याने
उनका सुगन्धसे भरी हुई माला विचित्र प्रकाश-
मान वस्त्र और पीनेको उत्तम उत्तम चीज देई,

फिर प्रसन्न होकर हंसने और खेलने लगी । अनन्तर एक गेंद लेकर फली जूझ लताके समान अनेक हाव भाव दिखाती हुई वहीं खेलने लगी, कभी मुनिके शरीरोंमें अपने शरीरकी रगड़ती और कभी उनसे लपट जाती थी, कभी लज्जाहीन और मतवाली होकर राल, अशोक, और फूले हुए तिलोंके फूलोंसे खेलती थी, इस प्रकार उसने महर्षि काश्यपके पुत्र ऋष्यशृङ्गको लुभा लिया । अनन्तर ऋष्यशृङ्गको विकार सहित देख उनके शरीरकी वार वार मल उनकी ओर देखती हुई अग्नि-होत्रका छल करके धीरे धीरे चली गई । उसके जानेके पीछे ऋष्यशृङ्ग कामदेवसे उन्मत्त होगये । एकान्तमें बैठ करके केवल उसहीका ध्यान करने लगे, और रोगीके समान सांस लेने लगे, उसही समय पिङ्गलवर्ण नेत्रवाले नखूनतक रूआसे घिर हुए, वेदपाठी, समाधि करनेवाले कश्यप मुनिके पुत्र विभाण्डक मुनि आये, उन्होंने अपने पुत्रकी विपरीत एकान्तमें बैठे ध्यान करते, वार वार स्वास लेते केवल ऊपरकी देखते हुए देख बूझा, हे पुत्र ! तुम आज समाधि क्या नहीं लाते हा ? तुमने अपन अग्निहोत्रको आज क्यों, भुला दिया ? क्या आज तुमने स्रक और अ्रुवेका स्पर्श नहीं किया ? क्या तुमने आज गौके पास बछड़ेकी नहीं छोड़ा ? हे पुत्र ! हम आज तुमकी और दिनके समान न देख कर केवल चिन्तारत देखते हैं, आज तुम इतने दीन क्यों हो ? हमारे पीछे आज यहा कौन आया था ?

१११ अध्याय समाप्त ।

श्रीऋष्यशृङ्ग मुनि बोले, यहा आज एक जटाधारी आये थे, न वज्रत वज्रत लम्बे और न वज्रत छूटे थे, उनका रङ्ग सानेके समान नेत्र कमलके समान थे, भूषणासे साक्षात् देवता जान पड़ते थे, महा रूपवान् स्तब्धके

समान तेजस्वी, चिकने और गोरे शरीरवाले थे, उनके नेत्र काले, जटा सुगन्धसे भरी काली वज्रत लम्बी और सोनेकी रस्सियोंसे गुहो थीं, उनके कण्ठमें एक भूषण ऐसा प्रकाशित था जैसे आकाशमें विजुली, और हृदयमें दो पिण्ड थे, वे वज्रत मनोहर और रोमरहित थे, उनका नाभिदेश वज्रतही सुन्दर था, उनकी कमर अत्यन्त पतली मानी शरीरमें थोही नहीं और उनके वस्त्रोंके भीतर एक सोनेकी कढ़नी अत्यन्त शोभित थी और एक विचित्र वस्तु उनके पैरमें थी जिससे शब्द होता था, उनके हाथोंमें बजनेवाली नौगरी इस प्रकार शोभित थीं, जैसी मेरी यह कमलमाला । जब वह चलते थे तो वे सब भूषण ऐसे बजते थे, जैसे तालावमें मतवाली हंस वालते हैं । उनके वस्त्र ऐसे सुन्दर थे, जैसे हमारे नहीं हैं, उनका मुख ऐसा सुन्दर था कि जिसको देखकर मेरा चित्त वज्रत प्रसन्न हुआ, उनकी कोकिलके समान बाणी सुनकर मेरा हृदय व्याथित हो गया । उसका स्वास ऐसा सुगन्धित था जैसे वसन्त ऋतु की वायु । हे तात ! वह ब्रह्मचारी उत्तम गन्ध और वायुसे सावत हाकर वज्रत सुन्दर भात हाता था, उनकी जटा अत्यन्त संस्कार करी हुई और माथेके सामन से दाभाग दिखाई देती थीं, उनके कान पर अत्यन्त रूपवाले समान दा आभूषण थे, वे ब्रह्मचारी एक बैनके फलका दाक्षिण हाथम लेकर वार वार उस भूमिकी आर फेकते और अद्भुत रूपसे उछालते थे, हे तात ! उसका वार वार मार कर वे इस प्रकार कापते थे जैसे वायु लगन से वृक्ष कापता है, उस देव पुत्रके समान ब्रह्मचारीका देख मेरे हृदयमें परम प्रेम और आनन्द उत्पन्न हुआ है, उसने मेरे शरीरसे अपन शरीरका मिलाकर मेरे मुख पर अपनी जटाआका डाला, अनन्तर अपने मुखमें मेरे मुखको मिलाकर कुछ शब्द कहा, उनके

सुभको वहुत आनन्द हुआ, मैंने पाद और यह फल उनकी दिये, परन्तु उन्होंने ग्रहण नहीं किये, और कहा कि हम व्रत करते हैं, अनन्तर उन्होंने सुभको कुछ खानेकी वस्तु दई, मेरे लाये हुए फलमें उनके फलोंके समान स्वाद नहीं थे, जैसे उन फलोंके बकले थे, ऐसे इन फलोंके नहीं है। उस सुन्दर रूपवाली ब्रह्मचारीने सुभको बहुत स्वादवाला जल पीनेकी दिया, जिसके पीतेही सुभको अत्यन्त आनन्द हुआ और सुभे जान पड़ा कि, पृथ्वी चल रही है, उन्होंने सुभको गन्धसे भरी हुई, रेशममें गुही हुई विचित्र रूपवाली माला दई है, जो तपसे प्रकाशमान ब्रह्मचारी यहा आये थे, उनके जानसे मेरा चित्त उन्मत्तके समान हो गया है, और शरीर जले जाते हैं, मेरी इच्छा है कि या ता मैंही उनके आश्रमको पीछे चला जाऊं या वेहो यहा आकर सदा रहें। हे तात ! मैं अब उनके आश्रमको जाता हूं देखू उन्होंने कौनसा ब्रह्मचर्य धारण किया है ? मेरी इच्छा है कि उन आर्यधर्मवाली ब्रह्मचारीके सङ्ग रह कर वैसाही तप करूं जैसा वे करते हैं। हे तात ! उनके सङ्ग रहन और वैसीही काम करनेका मेरी इच्छा हृदयको दुःखित कर रही है।

११२ अध्याय समाप्त ।

श्रीविभाण्डक मुनि बाले, हे पुत्र ! अनेक राक्षस लोग ऐसाही अद्भुत रूप धारण करके वनोंमें घूमा करते हैं, वे लोग वहुत बलवान रूपवाले और तपस्यामें विप्रेकारी होते हैं। हे तात ! वे परम सुन्दर रूपवाले राक्षस अनेक उपाय करके मुनियोंका लुभा लेते हैं, उन उत्तम रूपवालासे लाभित होकर कामसुख और लाकसे मुनि लोग नष्ट हो जाते हैं। स्थिर मनवाले कल्याणकी इच्छा करनेवाले मुनीश्वर लोग अत्यन्त प्रार्थना

करने पर यदि उनकी सेवा करने लगते हैं, तो लोग तपमें विघ्न करके मुनिकी कामकी और भुका देते हैं, इस लिये उन्हें नहीं देखना चाहिये। हे पुत्र ! यह जो माला तुमको उसने दई थी और पीनेकी वस्तु तुम्हें दी थी, ये सब पापियोंके योग्य हैं, वह जल नहीं बरन मद्य था, यह उत्तम गन्ध और परम प्रकाशवाली माला मुनियोंके योग्य नहीं है। इस प्रकार अपने पुत्रके मनमें उस स्त्रीको राक्षसरूप स्थिर करके उसको दूढ़ने लगे, जब तीनदिन दूढ़ने पर न पाया तो अपने आश्रमको चले गये, जब चौथे दिन विभाण्डक मुनि वेदोक्त विधिके अनुवार फल लेनेकी गये, तब खूब सुन्दर वेष बनाकर वह वैश्या ऋष्यशृङ्ग मुनिकी लुभानेके निमित्त आश्रम पर आई, उसको देखतेही ऋष्यशृङ्ग मुनि प्रसन्न हो गये और उसी समय पृथ्वीमें गिर पड़े और उससे कहने लगे कि तुम जल्दी आओ जबतक हमारे पिता यहा न आवें तभीतक तुम्हीं यहा रहना हागा, अनन्तर उस वैश्याने काश्यपके पुत्र ऋष्यशृङ्गका अपन सङ्ग लेकर उस नावमें बैठ दिया और उनको अनेक उपायोंसे प्रसन्न करतो हुई राजा लोमपादके घरमें पहुँची। अनन्तर उस वैश्याने सुन्दर नावका ऐसे स्थान पर खड़ा किया, जहाँसे आश्रम देखता था, अनन्तर ऋष्यशृङ्गकी नावसे उतार वैसीही नावके आश्रम और विचित्र वनमें बैठ गया। राजा लोमपाद विभाण्डक मुनिके पुत्र ऋष्यशृङ्गका अपन रानवासमें ले गये, उन्होंने वहा जाकर देखा कि मध्व प्रवेश हुआ, और सब जगत् जलसे, पूर्ण हो गया, अनन्तर राजा लोमपादन सब काम सिद्ध करके ऋष्यशृङ्ग मुनिकी अपनी शान्ता नामक पुत्री दई और जिसमें उनका क्रोध शान्त हो, इस लिये अनेक गौ और वाहन दिये, अनन्तर राजान अनेक पशु देकर वीर पशुपालासे कहा कि जब विभाण्डक मुनि अपने आश्रम पर

आकर तुमसे अपने पुत्रके समाचार पूछें तो, हाथ जोड़कर कहना कि, हे भगवान् ! यह सब पशु और वाहन आपके पुत्रही के हैं, हम सब आपके दास और वचनसे बंधे हैं, कहिये आपका कौनसा काम करें। अनन्तर महाक्रोधो विभाण्डक मुनि मूल और फल ले अपने आश्रम पर आकर अपने पुत्रको ढूढ़ने लगे, जब न पाया, तो महा क्रोध किया, उन्होंने क्रोध करके विचारा कि अवश्य राजाने कुछ विधान किया है, उस समय मुनिको ऐसा क्रोध हुआ मानो पृथ्वीको फाड़ डालेंगे। अनन्तर चम्पापुरी, अङ्गराज अङ्गदेश और राजाके नगरोंकी भस्म करनेकी इच्छासे चले, मार्गमें काश्यप मुनि अत्यन्त थक गये और भूखसे बड़बड़ा व्याकुल हो गये, तब ऋद्धियोंसे भरे हुए अनेक गोपालोंको देखा, उन ग्वालोंने उनकी राजाके समान पूजा करो और विभाण्डक मुनि रातभर उन्हींके सङ्ग रहे, सुनोश्वरन उनसे अत्यन्त सत्कार पाकर पूछा कि ये सब गो और गापाल किसके हैं ? उन्होंने कहा कि यह सब धन आपहीका है, आपहीके पुत्रने उपार्जन किया है। इसी प्रकार विभाण्डक मुनि स्थान स्थान पर पूजा पाते और मीठो वाणी सुनते हुए चले, इससे उनका क्रोध भी शान्त हो गया। अनन्तर वे राजाके नगरमें पहुँचे, राजाने उनकी बड़बड़ा पूजा करी, जब विभाण्डक मुनिने अपने पुत्र ऋष्यशृङ्गका स्वर्गमन्दिरके समान राजाके भवनमें बसवा दिया देखा और अपने पुत्रकी स्त्री शान्ताका भी विजुलीके समान रूपवती देखा। हे नरनाथ ! विभाण्डक मुनि पुत्रवधु शान्ता, पुत्रके धन और गावोंका देख अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनके क्रोधभी शान्त हो गया, वे राजाको प्रशंसाभी करने लगे। अनन्तर सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी विभाण्डक मुनि अपने पुत्रको वहाँ रहनेकी आज्ञा देकर बोले कि जब तुमको

पुत्र उत्पन्न होजाय और इस राजाके सब काम कर चुको, तब वनहीको चले आना, अनन्तर ऋष्यशृङ्ग मुनिने वैसाही किया और जहाँ इनके पिता थे वहाँको चले गये। हे नरेन्द्र ! जिस प्रकार आकाशमें रोहिणी चन्द्रमाकी सुन्दरी, अरुन्धती वशिष्ठीकी, लोपामुद्रा अंगस्थकी, दमयन्ती नलकी, और नारायणी तथा इन्द्रसेना मुद्गलकी सेवा करती, थीं तैसेही अनुकूलाचारिणी शान्ता भी प्रीतिके सहित वनवासी ऋष्यशृङ्गकी सेवा करने लगी। हे अजमीठ वंशोत्पन्न युधिष्ठिर ! यह पुण्य कीर्तिवाला तालाब उनहीका है। हे राजन् ! इसमें स्नान करके कृतकृत्य और शुद्ध होकर दूसरे तीर्थोंको चालिये।

११३ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे जनर्मजय ! पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर वहासे कौशकी पर गये, वहासे क्रमसे सब तीर्थ और देवस्थानोंमें जाते हुए गङ्गा और समुद्रके सङ्गममें पहुँचे, उन्होंने पांच सौ नादियाँके सङ्गममें स्नान किया, अनन्तर महा-राजवीर युधिष्ठिर अपने भाइयोंके साहित, कालङ्ग देशको आर समुद्रके तटसे चले। श्रीलामश मुनि बोले हे कुन्तीनन्दन ! यही कालङ्ग देश है, यहो वैतरणी नदी है, यहाँ धर्मन देवताकी शरण लेकर यज्ञ करी थी। यहा ऋषयोंके साहित यह यज्ञवाला पर्वत शांभु है, इसके उत्तर और अनेक ब्राह्मण लोग रहते हैं। यह पर्वत स्वर्ग जानवाली पुरुषोंका विमानके समान है, इसी स्थानमें पहले ऋषयोंने अनेक यज्ञ किये थे। हे राजेन्द्र ! यहाँ पर शिवजीन यज्ञके नामसे पशुका मारा था, अनन्तर उस पशुका लेकर शिवजीने कहा कि यह हमारा भाग है; जब वह पशु गुप्त हो गया तो, स्वतन्त्र शिवजीसे कहा कि तुम दूसरेके धनका अपना मत बतलाओ, सब धर्मका नष्ट मन

करी। अनन्तर सब देवतोंने शिवजीकी स्तुति करी, अनन्तर वह यज्ञ समाप्त हुआ तब देवतोंने उनका तर्पण और मान किया, तब उन्होंने उस पशुकी छोड़ विमान पर चढ़ स्वर्गयात्रा करी। हे युधिष्ठिर ! उसी दिनमें शिवका यज्ञमें भाग स्थिर हुआ, और देवतों ने शिवके भयसे यह सङ्कल्प किया कि, यह भाग सब भागोंसे उत्तम होगा। इस स्थानमें जो पुरुष इस कथाको कहकर जलको कृता है, उसको देवलोकका मार्ग दीखने लगता है, श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर द्रौपदीके सहित महाभाग पाण्डव लोग वैतरणीके पार उत्तर पितरोंका तर्पण करने लगे। युधिष्ठिर बोले हे लोमश ! हम इस जलको स्पर्श करते-ही तपके बलसे मनुष्य स्वभावसे कूट गये। हे सुव्रत ! अब आपकी कृपासे हमको सब लोक दीखने लगे, जप करनेवाले महात्मा बैखानस मुनियोंका शब्द सुनाई देता है। श्रीलोमश मुनि बोले, हे युधिष्ठिर ! हे पृथ्वीनाथ ! जो शब्द आपकी सुनाई देता है, सो यहांसे तीन लाख योजन पर है, अतएव आप चुप रहिये। हे पृथ्वीनाथ ! हे राजेन्द्र ! यह जो वन दीखता है, सो ब्रह्माका है। इसीमें प्रतापवान विश्वकर्माने यज्ञ किया था, उसी यज्ञमें ब्रह्माने महात्मा कश्यपकी पर्वत और वनोंके सहित पृथ्वी दे दी थी। हे कुन्तीनन्दन ! कश्यप मुनिके पास जातेही पृथ्वी रोने लगी और क्रोध करके ब्रह्मासे बोली हे भगवन् ! आप मुझको किसी पुरुषकी सत दीजिये, मैं आपके इस अमोघ दानसे रसातलकी चली जाऊंगी। हे पृथ्वीनाथ ! पृथ्वीकी रीति हुए देख, भगवान कश्यप मुनि उसको प्रसन्न करने लगे। हे पाण्डव ! पृथ्वी उनके तपसे प्रसन्न होकर पुनः प्रलम्ब निकली और यज्ञकी वेदीके समान शोभित होने लगी, हे राजन् ! इसी लिये यह पृथ्वी वेदीके समान दीखती है आप इस पर

बैठिये तो आपकी वृद्धत बल हीगा। हे राजन् ! यह वेदी समुद्रमेंसे निकली है, आप इसके ऊपर बैठकर एकलेही समुद्रकी पार हो जाइये और हम ऐसा स्वस्ति मन्त्र पढ़ेंगे जिससे आप इसके ऊपर बैठ सकें। हे आजमीढ़ ! यह वेदी पुरुषकी कूनेहीसे समुद्रमें चली जाती है। हे देवेश ! आप जगतके रक्षक और स्वामी हैं, हम आपकी प्रणाम करते हैं, आप इसे खारे जलके समुद्रमें रक्षा कीजिये। अग्नि, मित्र योनि, जल, देवी, विष्णु ये सब अमृतकी नाभी हैं। हे पाण्डव ! आप इस मन्त्रकी पढ़कर इस वेदी पर बैठिये। हे पाण्डव ! पुरुषकी उचित है, कि आगे लिखे हुए मन्त्रकी पढ़कर समुद्रमें जाय। मन्त्र यह है, “हे समुद्र ! अग्नि तुम्हारी योनि, और यज्ञ तुम्हारा देह है, तुम विष्णुके वीर्यकी धारण करते हो, तुम मोक्षके साधन हो। हे पाण्डव ! इस प्रकार सत्यवादी पुरुष नदियोंके पति समुद्रमें जाय। हे कुरुक्षेत्र ! इस मन्त्रके बिना पढ़े जलके स्वामी समुद्रकी कुशासेगी नहीं कूना चाहिये। श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर महात्मा युधिष्ठिर स्वस्ति मन्त्र सुनकर समुद्रमें गये, और लोमशकी आज्ञानुसार महेन्द्र पर्वत पर एक रात्रि रहे।

११४ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, राजा युधिष्ठिरने वहां एक रात वास करके भाइयोंका वृद्धत सत्कार किया और लोमश मुनिने युधिष्ठिरसे वहांपर भृगुवंशी, अङ्गिरावंशी वशिष्ठवंशी और कश्यपवंशी ऋषियोंका वर्णन किया। उन ऋषियोंके पास जाकर राजर्षि युधिष्ठिरने हाथ जोड़के प्रणाम किया। परशुरामके अनुचर अकृतब्रह्मवीरसे कुशल प्रश्न किया, आप कब भगवान परशुरामका दर्शन ऋषियोंकी करावेंगे ? उसी उत्सवमें मैं भी भृगुवंशी रामके दर्शन करना चाहता हूं। अकृतब्रह्म बोले, अन्त्यामी भगवान परशुरामने

आपको आते हुए जान लिया है, आपमें परशुरामकी बड़ी प्रीति है, वह आपको शीघ्रही दर्शन देंगे। - चतुर्दशी, - और अष्टमीको ऋषि लोग परशुरामका दर्शन करते हैं, आजकी रात्रि बीतने पर कल चतुर्दशी होगी। युधिष्ठिर बोले आप भगवान् यमदग्नि-पुत्र परशुरामके सङ्ग रहनेवाले हैं, आपने उनके पहले कर्मोंको प्रत्यक्ष देखा है, सो आप अब यह कहिये परशुरामने क्षत्रियोंको युद्धमें क्यों और कैसे जीता ? - अकृतव्रण बोले, हे राजशार्दूल ! मैं आपसे महा उत्तम इतिहास भृगुवंशी यमदग्नि के पुत्र परशुरामके चरित्रोंका वर्णन करता हूँ, कि कैसे हैहयवंशी कृतवीर्यके पुत्र अर्जुन को परशुरामने मारा था। हे पाण्डव ! उस अर्जुनके हजार हाथ थे। दत्तात्रेयकी कृपासे उसको सुवर्णका विमान, हजार हाथ और सब ऐश्वर्य प्राप्त हुआ था, उनके रथकी गति कहीं नहीं रुकती थी, वह रथ पर चढ़के सर्वत्र घूमता था। वरदानके अभिमानसे देवता, यक्ष और ऋषियोंको तथा सम्पूर्ण प्राणियोंको चारों ओर पीड़ा देने लगा, तब सब देवोंने इकट्ठे होके देवताओंके देवता असुरारि सत्यपराक्रमी विष्णुसे विनय की। हे भगवन् ! संसारकी रक्षाकेवास्ते अर्जुनको मारिये, वह हैहयवंशका स्वामी दिव्य विमान पर बैठके सचीके स्वामी इन्द्रको दुःख देता है। ऐसा सुनके भगवान् विष्णु कर्तवीर्य अर्जुनके नाश करनेका इन्द्रसे विचार करने लगे। देवपति इन्द्रने संसारके कल्याणका विचार बताया ; उसको सुनके संसारके पूजने योग्य विष्णु अपने पवित्र आश्रम बदरिन्दारण्यको चले गये। हे युधिष्ठिर ! उसी समयमें एक महाबली राजा कन्नौज देशमें था। जिसका गांधी नाम जगत्में प्रसिद्ध था। वह राजा वनमें वसनेके वास्ते गया और वनहीमें लरुके असुराके समान एक कन्या उत्पन्न हुई, भृगुवंशी ऋचिकने उस कन्याको राजासे मांगा। गांधी

ऋचिकसे बोले हे सत्यव्रती ब्राह्मण ! हमारे कुलके अनुसार पुरुषोंने रीत बाध दी है कि, जो तुम हजार स्यामकर्ण घोड़े सुभे देखो, तो मैं अपनी कन्याका तुमसे विवाह करूँ, अन्यथा मैं तुमको कन्यादान नहीं कर सकता हूँ। ऋचिक बोले कि मैं आपको एक हजार स्यामकर्ण घोड़े दूँ आपकी कन्या मेरी स्त्री हो। - अकृतव्रण बोले हे युधिष्ठिर ! ऐसी प्रतिज्ञा करके ऋचिक वरुणसे जाकर कहा, एक हजार पाण्डु रत्न स्यामकर्ण घोड़े सुभे दीजिये, मैं इन्हें देकर अपना विवाह करूँगा। वरुणने ऋचिकको एक हजार स्यामकर्ण घोड़े दिये। कन्नौज देशमें गङ्गाके तटपर जहां वे घोड़े आकर खड़े हुए, उसका नाम अश्वतीर्थ हुआ। तब राजा गांधीने अपनी सत्यवती नामकी कन्या ऋचिककी देदी। हे राजन् ! इस विवाहमें देव लोग वरात आये थे। देवताओंको देख, हजार घोड़े दे, ऋचिक मुनि धर्मके सहित उस कन्यासे विवाह करके स्वेच्छासे विहार करने लगे। हे राजन् ! भृगुवंशश्चैष्ठ भृगु मुनि जब सुना कि ऋचिकका व्याह होगया, तो उनको देखनेको आये। अपने पुत्रको स्त्रीके सहित देखके वहुत प्रसन्न हुए। जब ऋचिक मुनिने देखा कि हमारे पिता आये, तो दोनों स्त्री पुरुष खड़े होगये और प्रीतिके सहित देव पूजित पिताकी पूजा करो, उनको विठलाकर दोनों हाथ जोड़के खड़े रहें। तब भगवान् भृगु मुनिने प्रसन्न होकर वहुतसे कहा, हे सुभगे ! तुम्हारी जो इच्छा हो हमसे सोई वरदान मांगो, हम देनेको उपस्थित हैं। सत्यवतीने अपने स्वसुरको प्रसन्न करके कहा कि हे भगवन् ! आप हमको यह वरदान दीजिये कि हम और हमारो माता पुत्रवती हों। श्री भृगुमुनि बोले, जिस दिन तुम्हारा और तुम्हारी माताका ऋतुदान हो और पुसवनका दिन आवे, उस दिन तुम्हारी माता प्रोषणमें और

तुम गूलरके वृक्षसे लपट जाना । हे भद्रे ! हम तुमको यह दी-पात्र देते हैं, मैंने विराटरूप भगवानकी उपासना करके इनकी पाया है, इन दोनोंमें प्रसाद है; यह तुम खाना और यह अपनी माताको देना । ऐसी कंठके भृशु सुनि अन्तर्धान हो गये । अनन्तर जब उन दोनों स्त्रियोंका ऋतुकाल आया तो वृक्षके आलिङ्गन और प्रसादके पात्रोंमें उलट पुलट होगया, अनन्तर भगवान भृशुने वृक्षत समय व्यतीत होनेके पश्चात् दिव्य दृष्टिसे यह बात जानली, और फिर उसी स्थान पर प्राये । महीं तेजस्वी भगवान भृशुने अपनी पुत्रवधू सत्यवतीसे कहा, हे भद्रे ! तुमने अपनी डीर नहीं खाई और वृक्षके लपटनेमेंभी उल्टा हुआ । हे सुभ्र ! तुमको तुम्हारी माताने उग लिया, इसलिये तुम्हारा पुत्र होगा तो ब्राह्मण परन्तु उसकी वृत्ति क्षत्रियोंकी ऐसी होगी और तुम्हारी माताका पुत्र क्षत्री होकर ब्राह्मणका धर्म करेगा, यद्यपि वह महां बलवान होगा, परन्तु कर्म साधुओंका करेगा । तब सत्यवतीने अपने श्वसुरकी बारबार प्रसन्न किया और कहा कि हे भगवान ! चाहे हमारा पीता ऐसाही हो, परन्तु पुत्र ऐसा न हो । हे पाण्डव ! भृशुने कहा कि ऐसाही होगी । तब सत्यवती वृक्षत प्रसन्न हुई, समय आने पर सत्यवतीकी पुत्र उत्पन्न हुआ, उनका नाम यमदग्नि हुआ । भृशुवंशवर्द्धन वह पुत्र परम तेजस्वी और वीर्यवान हुए, उन्होंने बड़े होकर सब वेदोंको पढ़ा । सूर्यके समान तेजस्वी यमदग्नि अपने कर्मोंके द्वारा अनेक ऋषियोंसे पूज गये । हे पाण्डव ! हे भरत कुलसिंह ! उन्होंने समस्त धनुर्वेदको पढ़ा और चारों प्रकारके शस्त्र सीखे ।

११५ अध्याय समाप्त ।

अकृतव्रण बोले, महा तपस्वी यमदग्निने चारों वेद पढ़कर महा तप किया । अनन्तर वे प्रसेन नामक राजाके यहां गये; वहां जाकर उन्होंने राजाकी पुत्री रेणुकासे व्याह किया, भार्गव-पुत्र यमदग्नि रेणुका स्त्रीकी प्राप्त करके अपने आश्रम पर आये और आज्ञाकारिणी स्त्रीके सहित तप करने लगे । रेणुकाकी गर्भसे परशुरामके सहित पांच पुत्र हुए, उन सबमें छोटे परशुराम थे । किसी समय जब फल खानेवाले सब लड़के वनको फल लेने चले गये, तब व्रतधारिणी रेणुका स्नान करनेकी गई; वहां पर मृतिकावतके पुत्र राजा चित्ररथकी पद्ममाला धारण किये स्त्रियोंके सहित दृच्छानुसार जलमें क्रीड़ा करते देख और उनको अत्यन्त धनवीन देख रेणुकाकी दृच्छा उनसे व्याभिचार करनेकी हुई । उनको देखतेही रेणुका जलहीमें स्खलित होगई, अनन्तर डरसे कांपती हुई वह अपने आश्रमकी आई, पर यह सब समाचार उनके पतिने जान लिया । महा तेजस्वी वीर्यवान यमदग्निने उसकी स्खलित, ब्रह्मण तेज और वीर्यसे रहित देखकर बहुत धिक्कार दिया । उसी समय रेणुकाके बड़े बेटे स्वप्नश्वरण आये, उनके पीछे सुसेन, श्रवसु, और विश्वावसु भी आगये । भगवान यमदग्निने उन सबकी क्रमसे रेणुकाके मारनेकी आज्ञा दी, परन्तु उन सबने माताके स्नेहसे कुछभी उत्तर न दिया । तब भगवान यमदग्निने क्रोध करके उन सबको शाप दिया । शाप सुनतेही वे सब हरिन और पक्षियोंकी समान बुद्धिहीन और मूर्ख होगये । उसी समय शत्रुओंके नाश करनेवाले परशुराम आश्रममें पहुंचे, महा तपस्वी यमदग्निने उनसे कहा कि हे पुत्र ! अपनी इस पोपिनी माताकी मार डाली और इसका कुछभी दुःख मत करो । परशुरामने उसी समय फरसा लेकर अपनी माताका सिर काट डाला । हे महाराज ! यह देखकर महात्मा यमदग्निका क्रोध उसी समय

शान्त हो गया और प्रसन्न होकर बोली, हे तांत !
हे धर्मज्ञ ! तुमने हमारे वचनसे यह घोर
कर्म किया है, इस लिये तुम्हारे हृदयमें
जितनी इच्छा हो उतना वरदान सुझसे मांगो ।
परशुरामने अपने पितासे यह वरदान मांगे कि
हमारी माता जी जाय, उसकी हमारे मारनेका
स्मरण न रहे, हमारे भाई पूर्वके समान अपनी
अवस्थामें आजायें, युद्धमें हमारे समान कोई
वीर न हो, और हमारी आयु बृद्ध हो । हे
भारत ! महा तपस्वी यमदग्निने प्रसन्न होकर
परशुरामकी सब वरदान दिये । हे पृथ्वीनाथ !
किसी दिन इनके पुत्र फिर ऐसीही वनकी चले
गये थे, उसी समय अनूप-देशके स्वामी वीर
कृतवीर्यके पुत्र वहाँ आये । उनके आश्रम पर
प्रहंचनसे रणकाने उनकी पूजा करो, परन्तु वे
युद्धके मदसे उत्पन्न थे, इस लिये उस पूजासे
प्रसन्न न हुए । उन्होंने उस आश्रमके बड़े बड़े
वृक्षोंकी तोड़ डाला, भूमिकी नष्ट भष्ट कर
दिया । रणुका गाली दण्ड आती, परन्तु कार्त-
वीर्यने अपने वनसे उनके गोध और बकड़ोंको
कीन लिया । जब परशुराम अपने आश्रम पर
आये तो यमदग्निने सब कथा कह सुनाई ।
परशुरामने रोती हुई गऊका शब्द सुनकर
महा क्रोध किया । अनन्तर विचित्र धनुष धरिण
करके कृष्ण-वशवर्ती कार्तवीर्यके पीछे दौड़े,
भर-भर शत्रुनाशन परशुरामने तीक्ष्ण वाणोंसे
कार्तवीर्यके पार्ष्वके समान हजार हाथोंको
काट डाला । हे राजन् ! परशुरामने युद्धमें
पराक्रम करके कृतवीर्यके पुत्र अर्जुनको युद्धमें
मार डाला । इसके पश्चात् अर्जुनके वंशवाले
क्षत्री परशुरामसे वैर रखने लगे । एक दिन
परशुरामके पीछे उन लोगोंने आश्रममें आके
परशुरामके पिता तपस्वी, तेजस्वी, वीर्यवान
और युद्ध न करनेवाले यमदग्निको मार डाला ।
हे युधिष्ठिर ! जिस समय कार्तवीर्यके पुत्र
मारने लगे, उस समय वे बार बार

परशुरामका नाम लेकर चिल्लाने लगे । जब
शत्रुनाशन अर्जुनके पुत्र अपने वाणोंसे यमदग्निको
मारकर चले गये, और यमदग्निभी स्वर्गको
मरकर गये, तब भृगुनेन्दन परशुराम कुश
लेकर अपने आश्रम पर पहुँचे । अपने पिताको
इस प्रकार मरा हुआ देख दुःखमें भरकर रोये
और चिल्लाने लगे ।

११६ अध्याय समाप्त ।

औपरशुराम बोली, हे तांत ! मेरेही अप-
राधसे उन चंद्र, मूर्ख कार्तवीर्यके पुत्रों
आपको हरिनके समान वाणोंसे मारा है, हे
तांत ! आप तो धर्मके जाननेवाले उन
मार्गमें चलनेवाले और सब प्राणियोंके हितु थे,
आपकी मृत्यु इस प्रकार क्यों हुई ? उन
देहोंने कौन-सा पाप नहीं किया, जिन्होंने तप
करते हुए, युद्ध न करनेवाले, बड़े, आपको
वाणोंसे मार डाला ? वे निर्लेख लोग धर्म
जाननेवाले और युद्ध न करनेवाले आपकी मार-
कर अपने मस्ती और बान्धवोंसे क्या कहेंगे ?
हे नरेनाथ ! इस प्रकार महा तेजस्वी परश-
ुरामने बृद्ध होकर अपने पिताका प्रिय कार्य
करनेवाले, शत्रुनाशन परशुरामने अपने पिताकी
अग्निमें जलाया और सब क्षत्रियोंके नाश क-
रनेकी प्रतिज्ञा करी । अनन्तर महा बलवान परश-
ुरामने अत्यन्त क्रोध कर अनेक शस्त्रोंकी धारण
कर कालके समान रूप धारणकरके कृतवीर्यके
वंशकी नाश करने लगे । हे क्षत्रियसिंह ! कृतवीर्यके
वंशी क्षत्रियोंके सङ्ग और जो क्षत्री आये थे
शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ परशुरामने उनकाभी नाश
कर दिया । इस प्रकार महात्मा परशुरामने
इक्ष्वाकुसवार पृथ्वीको क्षत्रियोंसे रहित कर दिया
और समस्तक पञ्चकतीर्थमें जाकर क्षत्रियोंके
सुधिरसे पांचतलावोंको भर दिया । भृगुवंश
परशुरामने उनही तलावोंमें अपने पिताकी
तर्पण किया, वहाँ उन्होंने साक्षात् कृष्ण

दर्शन किया। ऋचिक सुनिने परशुरामको उस कर्मसे रोका; तब प्रतापवान परशुरामने यज्ञ करके इन्द्रकी प्रसन्न किया, और यज्ञ करानेवालोंको सब पृथ्वी दे दी। उसी यज्ञमें परशुरामने महात्मा कश्यपकी एक सोनेकी चौकी दी थी, जो तालीस हाथ लम्बी और छत्तीस हाथ चौड़ी थी। अब अनन्त पराक्रमी परशुराम इसी महेंद्राक्षर पर्वतपर रहते हैं। हे राजन्! अनन्तर कश्यप मुनिकी स्मृतिसे खण्डक वनके रहनेवाले ब्राह्मणोंके उस चौकीकी टुकड़े टुकड़े करके बांट लिया। इस प्रकार परशुराम और जगत्के रहनेवाले क्षत्रियोंसे वैर हुआ था, और इस प्रकार महा तेजस्वी परशुरामने पृथ्वीको जीता था।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, पश्चात् चतुर्दशीके दिन महा तेजस्वी परशुरामने ब्राह्मण और भाइयोंके सहित धर्मराज, युधिष्ठिरको दर्शन दिया। महाराज युधिष्ठिरने भाइयोंके सहित परशुरामकी पूजा करी। हे राजेन्द्र! राजोंमें अष्ट धर्मराजने ब्राह्मणोंको भी पूजा करी। परशुरामने युधिष्ठिरकी पूजाको ग्रहणकर फिर उनकी पूजा करी और कहा कि आप एक रात्रि यहा निवास कीजिये, तब सब एक रात वहा रहे। फिर दक्षिणकी ओर चले।

११७ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले अनन्तर महानुभाव महाराज युधिष्ठिर पवित्र तीर्थोंमें धूमते समुद्रके तटपर ब्राह्मणोंसे सेवित अनेक तीर्थोंको देखने लगे। हे भारत। वहासे उत्तम चरित्र पाण्डुके पुत्र राजा युधिष्ठिर अत्यन्त पवित्र मुद्रगामिनी प्रशस्ता नाम नदी पर पड़चे। परीक्षितनन्दन! वहांभी उन्होंने स्नान करके पितर और देवताका तर्पण किया। ब्राह्मणोंकी वहुत धन देकर समुद्रगामिनी नदी की ओर चले, अनन्तर पाप रहित

महाराज वीर युधिष्ठिर द्राविड़ देशमें जाकर समुद्रके तटपर अत्यन्त पुण्युक्त अग्रस्थ तीर्थ और महा पवित्र चारी तीर्थमें पड़चे, वहा पर उन्होंने धनुषधारियोंमें अग्रगण्य अर्जुनके उन कर्मोंको सुना जिनकी मनुष्य लोग नहीं कर सकते हैं। वहां पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरकी महर्षियोंने वहुत पूजा करी, इससे वे बहुत प्रसन्न हुए। हे पृथ्वीनाथ! हे जन्मजय! इस प्रकार द्रौपदी और भाइयोंके सहित पृथ्वीनाथ युधिष्ठिरने सब तीर्थोंमें स्नान किया और अर्जुनका पराक्रम सुनके बहुत प्रसन्न हुए। समुद्रके तटवाले उन तीर्थोंमें महाराज युधिष्ठिरने एक सहस्र गोदान किया; अनन्तर अर्जुनके नामसे गोदानका सङ्कल्प किया। हे राजन्! समुद्रके तटके अनेक तीर्थोंको देखते देखते अत्यन्त पवित्र सूरपारक तीर्थमें पड़चे। वहा जानेसे उनके काम पूर्ण होगये। वहासे कुछ दूर समुद्रके तटपर चलकर उस जगत् प्रसिद्ध वनमें पड़चे जहां अनेक देवता और अनेक धर्मपरायण राजोंने तप किया था। वहा दृढ़ लम्बे हाथ वाले महाराज युधिष्ठिरने धनुषधारियोंमें अग्रगण्य ऋचिक पुत्रको वेदीकी देखा, उस पवित्र वेदीके चारों ओर अनेक ऋषि लोग बैठे थे और पुण्य करनेवाले महात्मा उनकी पूजा करते थे। वहासे पृथ्वीनाथ महात्मा महाराज युधिष्ठिर वसु, वायु, अश्विनीकुमार, यमराज, सूर्य, कुबेर, इन्द्र, विष्णु, परमेश्वर, आदित्य, शिव, चन्द्रमा, सूर्य, वरुण, साध्यगण ब्रह्मा, पितरोंके सहित रुद्र, सरस्वती, और ऋद्धगणोंके आश्रम तथा अन्यभी जो पवित्र और मनोहर आश्रम थे, उन सबको देखने लगे। उन सब तीर्थोंमें महाराजने अनेक ब्राह्मणोंसे व्रत कराकर वहुत रत्न दान दिया और आपनेभी सब तीर्थोंमें स्नान किया और फिर सूरपाकर तीर्थमें पड़चे। वहासे समुद्रके तट हीनकर चलते और सब तीर्थोंके दर्शन

करते हुए जगत् प्रसिद्ध ब्राह्मण और मस्त-
गणोंसे कहे हुए, प्रभास तीर्थमें पहुँचे । वहाँ
जाकर अपने भाइयोंके सहित विशाल और
लाल नेत्रवाले महाराज युधिष्ठिरने स्नान
किया; फिर द्रौपदी और सब ब्रह्मणोंने
लोमश मुनिके सहित स्नान किया; अनन्तर
महाराजने पितरों और देवतोंका तर्पण किया ।
वहाँ पर वह बारह दिन रहे और केवल
वायुही भक्षण किया । वहाँ पर धर्मधारियों-
में अष्ट युधिष्ठिरने बारह दिन चारों ओर अग्नि
जला कर तापी । जब यह समाचार इारिका-
पहुँचा, तब वृष्णवंशियोंमें अष्ट श्रीकृष्ण और
वलरामने भी सुना कि स्वयं महाराजही अग्नि
तापकर तप कर रहे हैं, उसी समय अपनी
सेनाकी सङ्ग लेकर अजमीढ़ वंशीत्यन्त युधि-
ष्ठिरके दर्शनको आये । वहाँ जाकर वृष्णि
वंशियोंने देखा कि पाण्डव लोग मैलसे भरे
हुए शरीरवाले पृथ्वीमें बैठे हैं । दुःखके अयोग्य
द्रौपदीको दुःखमें पड़ी देख सब लोग जंचे
स्वरसे रोने लगे । अनन्तर महापराक्रमी महाराज
युधिष्ठिरने वलराम, श्रीकृष्ण, कृष्णके पुत्र
साम्ब, और सात्यकी आदि वृष्णवंशियोंकी
यथायोग्य धर्मके अनुसार पूजा की । अनन्तर
उन सब लोगोंने भी उस पूजाको ग्रहण
करके पाण्डवोंका सत्कार किया । फिर जैसे
इन्द्रके चारों ओर देवता लोग बैठते हैं, तैसही
युधिष्ठिरको घेरकर यादव लोग बैठ गये ।
अनन्तर महाराजने वनवासका सब चरित्र
और अर्जुनकी इन्द्रलोक यात्रा कह सुनाई ।
यह सुनकर और पाण्डवोंकी अत्यन्त दुर्बल
देखकर महानुभाव यादव लोग अपनी आंखोंसे
आंसू बहाने लगे ।

॥ १२ ॥ अध्याय समाप्त ।

राजा जन्म जय बोले, है तपोधन । महानु-
भाव पाण्डव लोग जब प्रभास तीर्थमें पहुँचे

और जब यदु वंशी उनके दर्शनको आये
तो उनका क्या वार्तालाप हुआ ? क्योंकि व
शास्त्रोंके जाननेवाले महात्मा पाण्डव और
यादव लोग परस्पर बहुतही प्रेम रखते
थे । श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजा ।
समुद्रके तीर प्रभास क्षेत्रकी पवित्र भूमिमें भी
यादव लोग महाराजके चारों बैठे; उन सब
बीचमें गौके दूध, कुन्दके पुष्प, चन्द्रमा और
मृणालके समान सुन्दर रूपवाले हलधारी क-
मालासे विराजमान श्रीवलरामजी श्रीकृष्ण
कहने लगे । वलदेवजी बोले हे कृष्ण ! धर्म
करनेसे किसीकी उन्नति और अधर्म
करनेसे अवनति नहीं होती, क्योंकि देखो
महात्मा युधिष्ठिर जटा और भोजपत्रके बल
धारण करके वनवासका दुःख सह रहे
हैं, और दुष्योधन पृथ्वीका राज्य करता
है, पृथ्वी क्यों नहीं फट जाती ? इसीसे मूर्ख
अधर्मको धर्मसे अच्छा समझते हैं । राज्य
पाकर दुष्योधनको बढ़ते और महाराजको
दुःख पाते देख आज सब प्रजाओंमें चारों ओर
यही शब्दा फैल रही हैं कि अब क्या करना
होगा ! बड़े आश्चर्यकी बात है कि धर्मराज
धर्म करनेवाले, सत्यवादी और महादानी
महाराज युधिष्ठिर तो राज्यसुखसे भ्रष्ट हो
और अधर्माको बढ़ा रही हैं; हम नहीं जानते
कि भरतकुलके प्रधान पाण्डवोंका घरसे निकाल
भोग्य, द्रोण, वृद्ध राजा धृतराष्ट्र किस प्रकार
सुख भाग रहे हैं ? पाप रहित पाण्डवोंको
वनका निकाल राजामें प्रधान पापी धृतराष्ट्र
परलोकमें जाकर पितरोंकी सभामें बैठ कैसे
कहेगी कि हमने सब लड़कोंके सङ्ग समान ही
आचरण किया था ? न जाने कुन्तीके पुत्रोंकी
वनमें निकालके वह अन्धा राजा अपनी बुद्धि
कुण्ठ देखता है, या नहीं ? क्योंकि उसका
जन्मभी राजाहीके वशमें हुआ है । हमको
नियत होना है कि अब वह पुत्रोंके अधिन

शीघ्र ही पिटलोंककी भूमिमें जाकर वहाके सुव-
र्णके समान फूले हुए वृक्षोंकी शीघ्र ही देखेंगे ।
जिसने जंचे कन्धेवाले विशालनेत्रवाले युधिष्ठिर-
की शस्त्र और भाइयोंके सहित निःशङ्क होकर
वनको निकाल दिया है, अवश्य उस धृतराष्ट्रकी
ऊपर कही 'दशा' होगी । जो विशालबाहु
भीमसेन शस्त्रोंके विनाही शत्रुओंकी महासेना
का विनाश करते है, जिनका शब्द सुनतेही
शत्रुओंकी सेना विष्टा और मूर्त परित्याग करने
लगी है, वेही अनेक शस्त्र और वाणोंके धारण
करनेवाले वेगवान भीमसेन आज भूख, प्यास,
और मार्गकी थकाईसे दीन हो रहे है, ये
अपने पूर्व सुखोंकी स्मरण करते हैं । हमें
नश्य है, कि ये उस वंशका सर्वनाश कर देंगे,
योंकि इनके समान पृथ्वीमें कोईभी नहीं है,
तो भीम शीत और वायुसे दुःखित होकर क्या
तुझमें अपने शत्रुओंका नाश न करेंगे ? जिन
महारथ और वेगवान भीमसेनने एक रथसे
पूर्वदेशके सब राजाओंकी सेनाके सहित जीत
लिया था, वेही आज मुनियोंके वस्त्र पहनकर
वनमें दुःख सह रहे है, जिन वेगवान सहदेवने
दक्षिण देशके और सिन्धु नदीके तटवासी सब
राजोंकी एकलैहोने जीत लिया था, वेही आज
मुनियोंका वेष धारण करके वनमें दुःख सह
रहे है, जो युद्धमें उत्तम महा बलवान सहदेवने
पश्चिमके सब राजाओंकी एकही रथसे जीत लिया
था, वही आज जियधारी मलिनस्तूपी होकर
फल मूल खाया वनमें वास करते है, जो
महारथ द्रुपदके यज्ञकुण्डसे निकली थी,
सो पातव्रता द्रौपदी दुःख सहने में अयोग्य
होनेपरभी वनमें दुःख सह रही है । ये
सब करनेके योग्य दुःख सहनेके अयोग्य
नान बर्गमें सुख, वायु इन्द्र और
भविष्यीकुमारके पुत्र पाण्डव लाग स्त्रीके
सहित धर्मपुत्र युधिष्ठिरके सङ्ग किस प्रकार
दुःख सह रहे हैं ? दुर्योधनकी बढ़ते

हुए देख पर्वतोंके सहित पृथ्वी क्यों नहीं फट
जाती है ?

११६ अध्याय समाप्त ।

सात्यकी बोले, हे राम ! अब यह समय
दुःख करनेका नहीं है, और न समय बीतने पर
कुछ उपाय हो सकता है, यद्यपि युधिष्ठिर हम
लोगोंसे कुछ नहीं कहते है, तथापि यह नियम
है, कि जो लोग नाथसहित होते है, वे अपनेसे
कोई काम नहीं करते है, उनके कार्य सहा-
यक लोग ऐसेही सिद्ध करते है, जैसे ययातिके
कार्योंकी शिवि आदिने करे थे, हे राम !
उन लोगोंके सब कार्य स्वामी लोग अपनीही
इच्छासे करने लगते है, परन्तु ये पाण्डव लोग
सनाथ होने परभी, अनाथके समान दुःख भोग
रहे है, न जाने, बलराम, श्रीकृष्ण, प्रद्युम्न और
साम्ब और हमारे, जीतिभी महा राज युधिष्ठिर
भाइयोंके सहित वनमें वसते है, न जाने, तीन
लोकके स्वामी श्रीकृष्ण, इनके नाथ क्यों कहते
है ? वस अब इसी समय विचित्र कवच धारण
करनेवाली यादवोंकी समस्त सेना हस्तिनापुर
पर चढ़ाई करे, इसही समय, वान्धवोंके सहित
दुर्योधन यादवोंकी सेनासे मरकर यम लोकको
जाय, आप अपने क्रोधसे पृथ्वीको वैष्टित कर
सकते है जिस प्रकार इन्द्रने वृतासुरको मारा
वैसेही सारङ्ग धनुषधारी कृष्णभी दुर्योधनका नाश
करे जो हमारे भाई, मित्र और गुरु कृष्णके प्राणके
समान अर्जुन है, वे भी बैठे रहे, क्योंकि मनुष्य
सुपुत्र और शय्यका शत्रुके मारने वास्ते बाह्यते है,
इसी लिये मैं दुर्योधनका उत्तम शस्त्र और सपके
समान तथा अग्निके समान वाणोंसे शिर काटगा,
उसकी सब सेनाको अपने तीक्ष्ण खड्गसे काटकर
दुर्योधनके सब अनुचरोंको काटकर समस्त
कौरवोंका क्षय करूंगा । हे रोहिणी पुत्र ! सब
वीरलोग भयानक युद्धमें प्रसन्नता पूर्वक मेरे शस्त्रों-
की चतुरता देखें, समस्त कुरुवीर प्रलयकालकी

समान धूमती हुई देखा, तपोवत्से युक्त महर्षि-
ने बड़ी धीमी-बोलीसे कुछ कहा, सुकन्याने
ऋषिकी-कीमल-वाणीको कुछभी न सुना,
तत्पश्चात् वामीके भीतर च्यवन मुनिकी चमकती
हुई आखोंको उस कन्याने देखा, बुद्धिके मोहसे
सुकन्याने च्यवन ऋषिकी आखोंमें यह क्या है,
ऐसा कहते हुए कांटे-चुभो दिये, नेत्रोंके फूट-
नेसे क्रोधी च्यवन ऋषिकी बड़ा क्रोध हुआ,
तभी राजा शर्यातिकी सेनाका विष्टा और मूत्र
वन्द हो गया । सेनाके मूत्र और विष्टा-वन्द
होजानेसे सब लोग घबराये, राजाने सब सेनासे
पूछा कि तप करनेवाले वृद्ध विशेषतः क्रोधी
महात्मा च्यवनका आज किसने अपराध किया ?
चाहे ज्ञानसे वा अज्ञानसे जिसने अपराध किया
वह शीघ्र कह दे । सैनिकोंने कहा कि महा-
राज ! हम नहीं जानते किसने अपराध किया
है । तब राजाने बड़ती क्रोधसे वन्धुवात्सवोंसे
पूछा, उन्होंनेभी कहा मेहाराज हम नहीं
जानते किसने अपराध किया है, तब सुकन्याने
सेनाके सब मनुष्य तथा अपने पिताकी दुःखी
देखके यह वचन कहा, महाराज ! मैंने वनमें
धूमनेके समय एक वामीमें चमकता हुआ कोई
जीव देखा था, उसे जुगनुके समान चमकता
देखके पास जाके बाँध दिया । सुकन्याकी बात
को सुनके राजा शर्याति शीघ्रतासे वामीके पास
गये, वहा जाके तपस्या और अवस्थामें बड़े
च्यवनकी देखा और सेनाके दुःख-निवारणके-
निमित्त हाथ जोड़के प्रार्थना करी, कि हे
महर्षि ! कन्याने जो अज्ञानसे आपका अपराध
किया है, उसे क्षमा कीजिये, भृगु पुत्र च्यवनने
राजासे कहा कि तुम्हारी कन्याने रूप और
योवनके अभिमानसे मेरे नेत्रोंको फोड़ा तथा
मेरा अपमान किया है, इस लिये तुम्हारी
कन्याको लेकरही मैं क्षमा करूंगा, हे पृथ्वी-
नाथ ! मेरे वचनकी सत्य समझो । श्रीलामश
ऋषि बोले, हे युधिष्ठिर ! ऋषिके वचन सुन

कर राजा शर्यातिने विना विचारे च्यवनको
अपनी कन्या दे दी, उस कन्याको लेकर च्यवनने
अपने क्रोधको शान्त किया, राजा शर्याति अपनी
सेनाके सहित नगरकी चले गये । सुकन्या
ऋषिको पति पाकर बड़ी प्रीतिके साथ तपःश्री
नियममें स्थित होके पतिकी सेवा करने लगी
अग्नि और अतिथियोंकी सेवाकी देखके च्यवन
ऋषि उससे बहुत प्रसन्न हुए ।

— १२२ अध्याय समाप्त । —

श्रीलामश ऋषि बोले, किसी समय धूमने
हुए अश्विनी कुमार-देवतोंने स्नान किया हुआ
सुकन्याको देखा, इन्द्रकी पुत्रीके समान मनो-
हर गात्रवाली सुकन्याकी देख करके अश्विनी-
कुमारोंने यह वर्चन कहे । हे सुजघने ! हम
तुम्हें जानता चाहते हैं, कि तुम किसकी स्त्री
हो ? सुकन्याने लज्जित होके कहा, हे देवतोंमें
उत्तम अश्विनीकुमारों ! तुम सुभी-राजा शर्या-
तिकी कन्या और च्यवन ऋषिकी स्त्री समझो ।
अश्विनीकुमारोंने इसको कहा कि पिताने बूढ़े
सड़केसे तुम्हारा विवाह कर दिया, इस वनमें तुम
विजलीके समान शोभायमान हो, तुम्हारे समान
रूपवाली स्त्री देवतोंमेंभी हमने नहीं देखी,
अलङ्कार और उत्तम वस्त्रोंसे रहितभी तुम इस
वनको शोभाकी बढ़ाती हो, सब आभूषणोंसे युक्त
उत्तम वस्त्र पहरे जैसे स्त्री शोभित होती है,
उनसेभी उत्तम तुम विना आभूषणोंके शोभित
हो, किस कारणसे तुम ऐसे वृद्ध पतिकी सेवा
करती हो जो तुम्हारे भरणपोषणमें असमर्थ
है ? तुम च्यवनकी छोड़ कर हम दोनोंमेंसे
एकको पति बनाओ, अपने यौवनकी तथा मत्त
गँवाओ । सुकन्या ऐसे वचन सुनके बोली, हे
देव-वैद्यो ! सुभी तुम अपने पति च्यवनमें प्रीति
वाली समझो और कदापि ऐसे कटोर वचन
मत कहो । तब अश्विनीकुमार बोले कि हम
तुम्हारे पतिको रूपयुक्त जवान बना देंगे, तुम

अपने पतिकी जल्दी बुला लाओ। उनके वचनकी सुनके सुकन्या चवन ऋषिके पास गई, और अश्विनीकुमारोंके वचनको सुनाया। चवनने कहा कि बहुत ठीक है। अश्विनी-कुमारोंने कहा कि इस तालावमें स्नान करनेकी चवन ऋषि जायें, तत्क्षणही रूपकी लालसामे चवन ऋषि उस तलावमें घुस गये। अश्विनी-कुमार भी उनके पीछे तलावमें घुसे; एक सुहृ-र्तके पश्चात् वह तीनों दिव्यरूपवाले जवान उत्तम कुण्डल पहने रूप युक्त होकर तालावसे निकले और सुकन्यासे बोले कि हे उत्तम वर्ण-वाली! हे सुन्दरी! हम तीनोंमेंसे तेरी जिसे इच्छा हो एककी पति बनाने। हे सुशोभने! जिस पर तेरी प्रीति हो, उसहीकी पति बना। सुकन्याने सबको समान रूप और समान अवस्थावाले देखकरभी अपने पतिकी ही पति वरण किया। चवन ऋषि रूप, यौवन और स्त्रीकी पाके बहुत प्रसन्न हुए और अश्विनी-कुमारोंसे बोले, जैसे तुमने मुझे रूप और युवा अवस्थासे युक्त किया है, वैसेही मैं तुमकी सोम-पान कराऊंगा, देवराज इन्द्रकी तुम्हारे सामने पराजित करूंगा। चवन ऋषिके ऐसे वचन सुनके अश्विनीकुमार प्रसन्नचित्त होके स्वर्गकी चले गये और चवन ऋषि तथा सुकन्या आनन्दसे विहार करने लगे।

१२३ अध्याय समाप्त ।

श्रीलोकेश ऋषि बोले, राजा शर्यातिने सुना कि चवन ऋषिकी यौवन और स्वरूप प्राप्त हुआ है, अपनी सेनाके सहित चवन ऋषिके शयन पर आये। चवन और सुकन्याने राजा शर्याति और उनकी स्त्रियोंका बड़ा आदर किया; ऋषिसे आदर पाकर राजा शर्याति कुछ दिन तक वहा अनेक प्रकारकी उत्तम कथा सुनते कुहकाल तक रहे, चवन ऋषि राजा शर्यातिसे बोले, हे राजन्! तुम सामग्री इकट्ठी करो

मैं तुम्हें यज्ञ कराऊंगा। चवन ऋषिके वचनकी सुनकर बड़ी प्रसन्नतासे राजाने यज्ञ करना स्वीकार किया, उत्तम दिनमें यज्ञकी सब सामग्री इकट्ठी करके राजा शर्यातिने यज्ञ मण्डप बनवाया। हे राजन्! भृगुपुत्र चवनने उस मण्डपमें राजा शर्यातिसे यज्ञ आरम्भ कराया। हे राजन्! युधिष्ठिर! उस यज्ञमें जो आश्चर्यकी बात हुई सो सुभासे सुनो। चवन ऋषिने अश्विनीकुमारोंकी सोम दिया। राजा इन्द्रने चवन ऋषिकी सोम देनेसे वारण किया। इन्द्र बोले यह दोनों अश्विनीकुमार स्वर्गमें देवतोंकी दवा करते हैं इस लिये इनकी सोमदान करना उचित नहीं है। श्रीचवन ऋषि बोले, हे इन्द्र! यह दोनों बड़े महात्मा, बड़े उत्साही, रूप और धनसे युक्त हैं, उन्होंने मुझे देवतोंके समान वृद्धावस्था रहित किया है, हे पुरन्दर! तुम और सब देवता यज्ञभाग पावें, पर ये क्यों न पावें? यह भी तो देवता हैं। इन्द्र बोले, हे चवन ऋषि! यह दोनों चिकित्सा करनेवाले, कामरूपी और मनुष्य लोकमें घूमनेवाले हैं, तब किस रीतिसे सोमकी पाने योग्य है? ज्योंही इन्द्र इस वचनकी दूसरीबार कहना चाहते थे, त्योंही भृगुपुत्र चवनने इन्द्रका अनादर करके अश्विनीकुमारोंकी सोम प्रदान किया। अश्विनीकुमारोंकी सोम देते देखकर बल-नाशक इन्द्रने ऐसे वचन कहे, हे चवन! यदि तुम इन दोनोंकी सोम दोगे तो मैं तुम्हारे घोर वज्र मारूंगा। ऐसा कहने परभी इन्द्रकी तरफ देखके चवनने अश्विनीकुमारोंकी सोम प्रदान किया। तब इन्द्रने चवन ऋषिके ऊपर वज्र चलाया, चवन ऋषिने इन्द्रके हाथकी स्तम्भित कर दिया। चवनने मन्त्रसे अग्निकी प्रज्वलित करके देवराज इन्द्रकी भस्म कर देनेकी इच्छा करी। तब उस यज्ञकुण्डसे महापराक्रमी मद नामक महा असुर उत्पन्न हुआ। इस महा असुरके शरीरकी देखनेमें

सब कोई सुर और असुर असमर्थ हुए, उसका मुख निकली हुई दाढ़ोंसे महा भयङ्कर जान पड़ता था उसका एक ओठ पृथ्वी पर और एक आकाशमें लगा था, चार दाढ़ उसकी सौ सौ योजनकी थीं और दांत दस दस योजनके थे, अटारीके शिखरके समान जंचे तथा लिशू-लके समान तीक्ष्ण दात थे। पर्वतके समान दोनों हाथ बहुत लम्बे, नेत्र सूर्य चन्द्रमाके समान और मुख प्रलयकी अग्निके समान था, उसकी चपल जीभसे जान पड़ता था, कि जगत् की अभी चाट जायगा, वह राक्षस बड़े क्रोधसे इन्द्रकी तरफकी दौड़ा, इसके शब्दसे सब जगत् भर गया।

१२४ अध्याय समाप्त ।

श्रीलीमश ऋषि बोले, उस भयानक रूप-वाली राक्षसकी मुह पसारे आता हुआ देखके इन्द्र भयसे बहुत व्याकुल हुए, उनके दोनों हाथ स्तम्भित होगये। तब इन्द्र च्यवन ऋषिसे ऐसा बोले कि, हे भार्गव। आजसे यह दोनों अश्विनी कुमार सोमरस पीनेके योग्य हुए, इस मेरे वचनको सत्य समझके मेरी रक्षा करो, हे विप्रर्षे। तुम्हारा वचन कदापि मित्या नही होगा, यह अश्विनीकुमार-यज्ञमें भाग पाने योग्य हुए, यह तुम्हारा प्रताप प्रकाशित रहेगा, इस सुकन्याके पिताका यश जगत्में प्रसिद्ध हो, इस लिये मैंने तुम्हारे प्रतापका प्रकाश किया, हे भृगुनन्दन। तुम मेरे ऊपर कृपा करो, जैसा तुम चाहते हो वैसा ही हो। इन्द्रके ऐसा कहने पर महात्मा भृगुनन्दनका क्रोध शान्त हुआ और इन्द्रकी मदने छोड़ दिया। वह मद मद्यपानमें, स्त्रियोंमें-जुएमें और शिकारमें जा बसा, हे राजन्। युधिष्ठिर! इस रीतिसे मदकी स्थगित करके इन्द्रकी अश्विनीकुमार तथा अन्य देवताओंको शान्त करके च्यवन ऋषिने अपने यशकी जगत्में फैलाया

और सुकन्याके सहित वनमें विहार करने लगे, उनही च्यवन ऋषिका यह तलाव है। इसमें तुम अपने भाइयोंके सहित स्नान करके पितरोंका तर्पण करो, हे भारत। इस तीर्थके देखके फिर शिकताक्ष तीर्थकी चलो, सैन्धवारण में चलके छोटी छोटी नदियोंके दर्शन करो पुष्कर तीर्थमें चलके वहांके जलका स्पर्श करो महादेवके मन्त्रकी जपनेसे तुम्हें परम सिद्धि प्राप्त होगी। हे राजन्! यह हापर और कति युगकी सन्धि है, यह सामने सब पापोंका ना करनेवाला आचीक पर्वत दीखता है, इस बंदिमान मरुतगण निवास करते हैं। हे युधिष्ठिर! यहां देवताओंके अनेक प्रकारके स्थान हैं यही चन्द्रमा तीर्थ है, जिसकी अनेक ऋषि उपासना करते हैं, वैखानस वालखिल्या और वायु भक्षी पावकगण यहीं रहते हैं। तीन ऋषी तीन भरने यहां परम पवित्र है, उनकी प्रदक्षिणा करके जल स्पर्श कीजिये, राजा शान्त नरपति सुनक और नरनारायण ऋषि यहीं उत्तम स्थानकी प्राप्त हुए हैं। यहां देवत लोग और पितर लोग सदाही निवास करते हैं, इस आचीक-पर्वतकी तुम पूजा करो। पृथ्वीनाथ! यहां पर अनेक ऋषियोंने यश करके सोमपान किया है, यहीं अक्षय प्रवाह वालो यमुना है, नकुल, सहदेव, द्रौपदी भी और हम सब आपके सङ्गमें यहां चलते हैं या इन्द्रका पवित्र भरना है, यहां धाता विधात और वसुण ऊपरसे आते हैं। हे राजन्! यहां प्रशान्त चित्तवाले परम धर्मात्मा कीमल वडिवाले मैत्र लोग निवास करते हैं। हे राजन्! यही महर्षि लोगोंसे सेवित यमुना है जिस पर अनेक प्रकारके पुण्य यज्ञ हुए हैं यहीं पर महा धनुर्धारी राजा माम्नाता सौमिक और साहदेवी यज्ञ करी थीं।

१२५ अध्याय समाप्त ।

राजा युधिष्ठिर बोले, हे ब्राह्मण ! राज-
शाहल तीनों लोकोंमें विख्यात राजा मान्धाता
युवनाश्वके पुत्र कैसे हुए थे ? और किस
प्रकारसे ऐसी उत्तम गतिको प्राप्त हुए थे,
जिससे तीनों लोक उनके ऐसे वशमें हो गये थे,
जैसे विष्णुके हैं, हे ब्राह्मण ! मैं उन बुद्धिमान्
इन्द्रके समान यज्ञकारी राजा मान्धाताके
चरित्र सुना चाहता हूँ उस अतुल पराक्रमी
राजाके जन्मका वृत्तान्त आप कहनेमें कुशल
है । श्रीलोकेश ऋषि बोले, हे राजन् ! आप
वधान होके उस महात्मा राजाके चरित्र
निये, जैसे लोकमें उनका नाम मान्धाता
से है हुआ । इन्द्राकु वंशमें युवनाश्व नामक
जा हुए थे, जिन्होंने बहुत दक्षिणावाली यज्ञ
री थी । एक हजार अश्वमेध करके औरभी
हत्त सी यज्ञ करी थीं । यह राजा अपुत्र था इस
लिये मन्त्रियोंको राज्य सौंपकर वनकी चला
या । शास्त्रमें लिखी विधिके अनुसार योगाभ्यास
रने लगा । एक समय राजा भूख और
पाससे व्याकुल हुआ, भृगु ऋषिके आश्रममें गया,
सी रात्रिमें भृगुने सौदुम्न राजाके वास्ते पुत्रेष्टि
श करी थी, राजा युवनाश्व सौदुम्नसे पहले
आश्रम में पहुँचा, जहाँ मन्त्रसे पवित्र किये
ए कलशमें जल भरा रखा था । ऋषि लोग
करकर सब सी रहे थे, राजाने जाकर उसी
समय ऋषियोंसे जल मागा, परन्तु सूखे कण्टका
कीमल शब्द ऋषियोंने न सुना, तब राजाने
वृक्षके पास जाकर जल पिया और बहुत
पान्त हुआ । जब ऋषि लोग उठे तो उन्होंने
वृक्षको जलसे खाली देखा और सब लोगोसे
पूछा कि यह किसका निन्दित कर्म है ? राजा
युवनाश्वने कहा, कि यह कर्म मेरा है । भृगुने
पूछा कि यह तुमने अच्छा कर्म नहीं किया,
यह पुत्रके वास्ते मन्त्रोंसे शुद्ध किया गया
है, मैंने तप करके पुत्रके वास्ते यह जल रखा
है लिये, हे अतुल पराक्रम ! तुम्हारे

ऐसा प्रतापी पुत्र उत्पन्न होगा जो अपने बलसे
इन्द्रकीभी परास्त करेगा, क्योंकि हम अपने
तपोबलको मिथ्या नहीं कर सकते हैं, यह ठीक
है, कि प्रारब्ध बहुत बलवान है, मैंने जो अपने
तपके बलसे जल मन्त्रित किया था, उसके प्रता-
पसे तुम्हारे बड़ा पराक्रमी पुत्र उत्पन्न होगा.
हम लोग तुम्हारे वास्ते अद्भुत पुत्रेष्टि यज्ञ
करेंगे, जिससे तुम्हारे इन्द्रके समान पुत्र उत्पन्न
होगा और गर्भधारणका दुःखभी तुमको प्राप्त
न होगा । तब सी वर्ष पूरे होनेके पश्चात्
महात्मा राजा युवनाश्वकी बायीं कीख फटी
और सूथेके समान एक पुत्र उत्पन्न हुआ,
परन्तु राजा युवनाश्व मर नहीं, यह एक बड़ा
अद्भुत कर्म हुआ, महाराज महा तेजस्वी इन्द्र
उस पुत्रको देखनेके वास्ते आये । इन्द्रसे देव-
तोंने कहा, इसे कौन पालेगा, इन्द्रने अपनी कन
अंगुली उस बालकके मुखमें दे दी और कहा
कि मैं इसकी पालूँगा । तबही इन्द्रादिक देव-
तोंने उस बालकका नाम मान्धाता रखा ।
इन्द्रकी कन अङ्गुलीकी पीकर वह बालक बढ़ने
लगा, उस बालकको ध्यान मात्रसे धनुर्विद्या,
वेद विद्या सब प्राप्त हुई, आजगव नामक धनुष
सींगके बने वाण, काटनेके अयोग्य कवच, तत्-
क्षण उसको प्राप्त हुये । इन्द्रने अपने हाथसे
उसका अभिषेक किया, राजा मान्धाताने तीनों
लोककी ऐसे वशमें किया, जैसे विष्णु तीनों
लोककी वशमें रखते है, उसका राज्यचक्र
कहींभी खण्डित नहीं था, अनेक प्रकारके रत्न
उस राजर्षिको आपही मिल गये । उसके
राज्यकी पृथ्वी सम्पूर्ण धनोंसे भरी थी, उसने
अनेक प्रकारके यज्ञ किये, उचित धर्मों तथा
यज्ञोंके करनेसे इन्द्रके आधे आसनको उसने
प्राप्त किया, उस महा तेजस्वी राजाने सम्पूर्ण
पृथ्वी समुद्र और नगरोंके सहित एक दिनमें
जीती थी, उसके यज्ञ मण्डपोंसे सब पृथ्वी व्याप्त
हुई कहींभी खाली न रही, सुनते है, कि राजा

मान्धाताने दश हजार पद्म गोदान ब्राह्मणोंको दिये थे । बारह वर्षकी अनावृष्टिमें उसने खेतों के उत्पन्न करानेकीवास्ते इन्द्रकी ईर्ष्यासे वर्षा की थी, उस राजा मान्धाताने चन्द्रवंशी गान्धार देशके राजाको सेषके समान गर्जते हुए तीक्ष्ण वाणोंसे मारा था, उस बुद्धिमान राजाने चारों प्रकारकी प्रजाकी रक्षा की थी, उसने अपने तपके तेजसे तीनों लोकोंको तपाया था, उस सूर्यके समान तेजस्वी राजाका पवित्र कुसुद्वैतमें यह यज्ञस्थान है । हे राजन् ! यह मैंने आपसे राजा मान्धाताके चरित्र और जन्मकी कथा कही ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, ऐसे लोमशके वचन सुनके कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने फिर लोमशसे प्रश्न किया ।

१२६ अध्याय समाप्त ।

राजा युधिष्ठिर बोले, हे कहनेवालोंमें श्रेष्ठ । राजा सोमक कैसा पराक्रमी और कैसा कर्म करनेवाला था, यह आप मुझसे ठीक ठीक कहिये, श्रीलोमश ऋषि बोले, हे युधिष्ठिर ! धर्म परायण सोमक नामक एक राजा था, उसके समान सौ स्त्री थीं, उसने पुत्र-उत्पन्न करनेके लिये बहूत यत्न किये, पर कोई पुत्र न हुआ । जब राजा बूढ़ा हुआ तब जन्तु नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ माताओंने उसे लीके पिछ्वाड़में फेंक दिया । हे पृथ्वीनाथ ! जब उस जन्तुकी चौंटियोंने काटा, तब उसने भयानक शब्द किया, तब सब माताओंने बहूत दुःखी होकर जन्तुकी रोनेसे रोका, परन्तु राजा सोमकने अपने मन्त्रीगण और पारिषदांके बीचमें बैठे हुए उसका शब्द सुन लिया, उसी समय कृत्ताकी भजकर निश्चय किया कि वह काहेका शब्द है कृत्तान जो ठीक वृत्तान्त था सो राजासे आकर कह दिया । राजा सोमक उस बातके सुनकरही मन्त्री और ऋत्वि-

जके सहित शीघ्रता से उठके रनिवासमें गये और वहांसे पुत्रकी लीकेसभामें आवैठे । महाराज सोमक बोले, एक पुत्रवालेको धिक्कार है, एक पुत्रवालेसे बिना पुत्रका मनुष्य अच्छा । प्राणी सदा सन्देहमें रहता है, इस लिये पुत्रकी इच्छासेही सौ स्त्रियां रखी हैं, पर उनमेंसे किसीकेभी पुत्र नहीं । किसी प्रकारसे यह एक पुत्र जन्तु उत्पन्न हुआ भी है, तौभी किसी योग्य नहीं, इससे अधिक सुखे का दुःख होगा ? मेरी और मेरी स्त्रियों की अवस्थाभी व्यतीत होगई, इस कारण हम सबके प्राण इसी जन्तुमें लगे रहते हैं, यदि ऐसा कोई उपाय हो, जिसमें मेरे सौ पुत्र उत्पन्न हों, यदि वह कर्म कठिनभी होगा तौभी मैं अवश्य करूंगा । ऋत्विज बोले, कि ऐसा कर्म है, जिससे सौ पुत्र हो सकते हैं, हे सोमक ! यदि तुम उसे कर सकी तो मैं कहूं ? राजा सोमक बोले, कि चाहे करने योग्य हो या न करने योग्य हो जिससे मेरे सौ पुत्र हों, आप उस कर्मकी कहिये । ऋत्विज बोले, हे राजन् ! आप जन्तुसे यज्ञ कीजिये तो आपके सौ पुत्र होंगे । जब चर्वीकी होमकी जायगी, तब उसके घूबेकी संधके तुम्हारी सब स्त्रियोंके पुत्र उत्पन्न होंगे, उस यज्ञमें मरनेसे उसी स्त्रीके जिसका यह अब पुत्र है, उसीके फिर उत्पन्न होगा, और इसकी कोखमें सीनेका एक चिह्न रहेगा ।

१२७ अध्याय समाप्त ।

राजा सोमक बोले, हे ब्राह्मण ! जो जो काम करने चाहिये सो सब आप आरम्भ कीजिये मैं पुत्रकी इच्छासे आपके वचन करूंगा । श्री लोमश ऋषि बोले, तब उस ऋत्विजने सोमक यज्ञ आरम्भ करके जन्तुको मारना चाहा, पर जन्तुओंकी माता पुत्रकी जीवनमें लगी और हाहा करके रा कर फहर्न लगीं ; हा हमारा

नाश हुआ, दहना हाथ पकड़के जन्तुकी माता खींचती थीं और बायां हाथ ऋत्विज चींचता था, जैसे मृगी रोती है, इस प्रकार सब माता रोती थीं, ऋत्विजने बलसे बालकको खींच कर उसकी चर्बीसे हवन किया, स्त्रियोंने उस गन्धको संधके महा हाहाकार मचाया, यज्ञके प्रतापसे सब स्त्रियोंके गर्भ रूढ़ गया। दशवें महीनेमें राजा सीमकके एकसौ पुत्र उत्पन्न हुए। जन्तु सबसे बड़ा हुआ, सब माताओंको जैसा जन्तु प्यारा था वैसा और पुत्रकोई नहीं था। उसकी कोखमें सुवर्णका चिह्न था, जन्तु सब भाइयोंमें अधिक गुणवान था। राजा सीमकका ऋत्विज कुछकालके पश्चात् मर गया और राजा सीमक भी मरे। राजा सीमकने नरकमें जाके देखा कि ऋत्विज नरकमें दुःख भोग रहे हैं, राजा सीमकने ऋत्विजसे पूछा है ब्रह्मण। तुम किस कारणसे नरकमें दुःख भोगते हो? नरकको अग्निमें जलते हुए उस ब्राह्मणने कहा, हे राजन्! मैंने जो तुमको यज्ञ कराया था उसी कर्मका यह फल भोगता हूँ। राजा सीमकने इस वचनको सुनके धर्मराजसे कहा कि मेरे ऋत्विजको छोड़ दीजिये मैं इस अग्निमें प्रवेश करूंगा, मेरे वास्ते यह ब्राह्मण नरककी अग्निमें जल रहा है। धर्मराज बोले, हे राजन्! दूसरेके कर्मके फलको दूसरा नहीं भोग सकता है, यह तुम्हारे कर्मके दूसरे लोक देखो तैयार है। राजा सीमक बोले कि मैं इस ब्रह्मवादीको छोड़के पुण्य लोकोंमें जानेकी इच्छा नहीं रखता, देवतोंके स्थानमें मैं इस ब्राह्मणके सहितही रहनेकी इच्छा रखता हूँ, हे धर्मराज। नरकमें वा स्वर्गमें हम दोनों जायही रहेंगे, क्योंकि हम कर्ममें दोनों समान हैं, पुण्य वा पापका फल हम दोनोंका समान ही होगा। धर्मराज बोले कि हे राजन्! जो इच्छा है तो तुमभी इसकी साथ कर्मोंको भागो, पश्चात् उत्तम गतिकी प्राप्त होगी। श्रीमश मुनि बोले हे राजन्! उम कमलनेत्र

राजाने अपने गुरुके सहित नरक भोग करके पाप रहित हो, नरककी त्याग किया। पश्चात् अपने कर्मसे मिले अति उत्तम सुखोंकी प्राप्त किया, गुरुके प्यारे उस राजाने गुरुके सहित स्वर्गमें सुखभोग किया। हे राजन्! युधिष्ठिर। यह सामने उस राजाका आश्रम है, यहां पर कःरात्रि निवास करनेसे मनुष्यकी उत्तम गति प्राप्त होती है, हे कुरुमुख्य। हम लोग इस आश्रम पर कःरात्रि रहके अपनी धकार्दे उतारेंगे।

१२८ अध्याय समाप्त ।

श्रीलीमश ऋषि बोले हे राजन्। इसही स्थानमें स्वयं प्रजापतिने द्रष्टि नामक यज्ञ करी थी, उस यज्ञमें पूर्ण एक सहस्र वर्ष लगा था। इस स्थानमें अम्बरीष, और नाभाग राजाने यज्ञ करके दश हजार पद्म गौ ब्राह्मणोंकी दी थीं। उन्होंने तप और यज्ञसे परम सिद्धिकी प्राप्त किया था, इस लिये यह देश पुण्यकर्मोंका यज्ञकारी-नृप, पुत्रके नामसे प्रसिद्ध है। हे कुन्तीनन्दन। वह ययाति राजा चक्रवर्ती अनन्त तेजस्वी और इन्द्रसे सदा करनेवाली थे, यह देश उनहीकी यज्ञ करनेका है, देखो इस स्थानमें अनेक अग्नि स्थापन करनेके स्थान शोभित है, मानो ये सब ययातिकी यज्ञभूमिमें स्थापन कर रहे हैं, देखो यह एक पत्तवाली शमीकी शाखा और यह पद्मपत्र कैसा उत्तम है। आगे परशुरामका तालाव और नारायणका आश्रम है, यह देखो यह महा तेजस्वी ऋचिकपुत्रने अपने तेजसे विचरते हुए इस भूमिकी चादिके समान सुन्दर बना दिया है, यहां जो ओखली और मूसलधारिणी पिशाचीने एक झाक पड़ा था सो हम आपसे कहते हैं, हे कुरुनन्दन! आप उसे सुनिये। पिशाची कहती है। हे ब्राह्मणी। क्या तू युगन्धर नामक पर्वत देशमें दही खाकर अच्युत स्थलमें रातको निवास करके और भतलय स्थानमें

स्नान करके यहां पुत्रके सहित रहना चाहती है ? एक दिन रहकर यदि दूसरे दिन यहां रहनेकी इच्छा करेगी तो दिनमें तेरी यही दशा होगी जो मेरी है और रात्रिमें इससेभी अधिक दुर्दशा होगी । हे भरतसत्तम ! हे कुन्तीनन्दन ! यह कुरुक्षेत्रका द्वार है, हम लोग एक रात्रि यहां निवास करेंगे । हे राजन् ! यहीं नहुषपुत्र राजा ययातिने यज्ञ करके अनेक रत्न दान किये थे । इसी स्थानमें उनसे इन्द्र प्रसन्न हुए थे, यह यमुनाके तट पर लक्षावतण नामक उत्तम तीर्थ है, पण्डित लोग इसीको स्वर्गका द्वार बताते हैं । हे तात ! इसी स्थान में परम ऋषि ब्राह्मणोंने सारस्वत यज्ञ करे थे इस स्थानमें यूप उलुखल और यज्ञके कलश मिलते हैं । हे राजन् ! इसी स्थानमें राजा भरतने अश्वमेध यज्ञ करनेके निमित्त स्याम-कर्ण घोड़ा छोड़ा था । यहींसे उन्होंने धर्म-पूर्वक सब पृथ्वीको प्राप्त किया था । हे पुरुष-व्याघ्र ! इसी स्थानमें राजा भरतने उत्तम यज्ञ किया था, उसीसे ऋषियोने मुख्य सम्वर्त मुनिसे भेंट हुई थी । हे राजेन्द्र ! आप इस जलको स्पर्श कीजिये, तब आपकी सब लोक दीखने लगेंगे । जो पुरुष इस जलको स्पर्श करता है, वह सब पापोंसे छूटकर पवित्र हो जाता है ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, जब पाण्डवोंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिरने भाद्रयोंके सहित उस जलमें स्नान किया तो महर्षि लोग उनकी स्तुति करने लगे, अनन्तर महाराजने लोमशसे कहा कि हे सत्यविक्रम ! अब हम अपने तपके बलसे सब लोकोंकी देखते हैं, हम यहांसे बैठे पाण्डवोंमें श्रेष्ठ सफेद घोड़ेजाले अश्विनको देख रहे हैं । श्री लोमश ऋषि बोले, हे महा-बाहा ! आप जा कहते हैं, सो सब सत्य है, इस पुण्यकर्मजाले पुरुषोंसे सीवत पवित्र सरस्वती नदीका महर्षि लोग देखते हैं । हे कुरुश्रेष्ठ ! इसमें स्नान करनेसे आप सब पापोंसे

छूट जायेंगे । यहीं देव ऋषियोंने अनेक सारस्वत यज्ञ किये हैं । हे कुन्तीनन्दन ! इस स्थानमें राजर्षि तथा अन्य ऋषियोंनेभी अनेक यज्ञ किये हैं । हे भरतश्रेष्ठ ! यह बीस कोस लम्बी और बीस कोस चौड़ी प्रजापतिकी वेदी है, इसी स्थानमें महात्मा कुरुने यज्ञ करे थे ।

१२६ अध्याय समाप्त

श्रीलोमश ऋषि बोले, हे राजन् ! इस स्थान पर मरनेसे पुरुषोंको स्वर्ग प्राप्त होता था । हे राजन् ! इस स्थानमें सहस्रों पुरुष मरनेको आते हैं, पहले एक यज्ञमें वहुत दक्षिणा पाकर एक ऋषिने यह आशीर्वाद दिया कि जो पुरुष इस स्थानमें मरेगा, वह स्वर्गको जीत लेगा । हे प्रजानाथ ! यह रम्य सरस्वती नदी है और यह पवित्र औवमती नदी है, यह सरस्वतीके तट पर विनसन नामक तीर्थ है, हे वीर ! यह निषाद देशका द्वार है, और उनही निषादोंके दोषसे सरस्वती पृथ्वीमें चली गई है, निषाद लोग मुझको न पहचानो । यही चमशोर्द्धेद तीर्थ है, जहां सरस्वती प्रगट हुई है । यहीं सरस्वतीके पास सब समुद्रगामिनी और पवित्र नदी आती हैं । हे शत्रुनाशन ! यह सिन्धुका महातीर्थ है, यहीं लापामुद्राने आकर अगस्त मुनिसे विवाह किया था । हे सूर्यके समान तेजस्वी ! यह प्रभास नामक तीर्थ प्रकाशित हो रहा है, यह तीर्थ इन्द्रका परम प्यारा पवित्र और पापाका नाशक है, वह विष्णुपद नामक उत्तम तीर्थ दीखता है, यह सब पापोंके नाश करनेवाली, रम्य, व्यासा नदी है, इसी स्थानमें पुत्रशोकसे व्याकुल भगवान् वशिष्ठ मुनि अपने शरीरको पीठते पृथ्वीमें गिर गये थे, फिर प्राप्ति हाकर उठे थे, इसी लिये इस नदीका नाम विपासा है । हे शत्रुनाशन ! यह परम पवित्र काश्मार देश है, यहां पावत्र महर्षि लोग राम

करते हैं, आप उसको भाइयों के सहित देखिये ।
 हे भारत । इसी स्थानमें उत्तरके सब ऋषि,
 नङ्गपुत्र ययाति काश्यप और अग्निका सम्वाद
 हुआ था, हे महाराज । यह मानसका द्वार है,
 यहां श्रीमान् रामने एक वर्ष वास किया था,
 इस सत्यविक्रम देशका नाम वातिक खण्ड है,
 इसकी सीमा विदेह देशके उत्तरतक है । हे
 कौन्तेय । हे पुरुषसिंह । इस देशमें एक बृद्धत
 विचित्र बात है, कि जब युगका अन्त होनेकी
 होता है, तब पार्वती और पार्षदों के सहित
 कामरूपी शिवके दर्शन यहीं होते हैं । इस
 तलावमें कल्याण चाहनेवाली, यज्ञ करनेवाली
 पुरुष अपने परिवारके सहित चैत्रमें शिवका
 यज्ञ करते हैं, आप इन्द्रियजित और अद्वावान
 होकर इस जलका स्पर्श कीजिये, तो आपके
 सब प्राप नष्ट हो जायंगी और उत्तम लोगोंको
 प्राप्त हजियेगा, इस तीर्थका नाम उज्जानक है,
 जहां स्वामकार्तिक और अरुन्धती के सहित
 भगवान् वशिष्ठ मुनि शान्त हुए थे, इस तड़ागका
 नाम कुशवान है, इसमें सौदलका कमल होता
 है, यहीं क्रोध जीतनेवाली रुक्मिणी शान्त हुई
 थीं । हे पाण्डव ! तुमने जो समाधियोंका संक्षेप
 सुना है, अब उनको अपनी दृष्टिसे देखोगे ।
 यह भगुतुङ्ग नामक पर्वत है । हे राजेन्द्र !
 सब पापोंके नाश करनेवाली ऋषि सेवित
 निर्मल और शीतल जलसे भरी हुई बितस्ता
 नदीको देखो । आगे जला, उपजला और
 यमुना नदीको देखो । हे भारत ! जहां यज्ञ
 करके उषीनर राजा इन्द्रके तुल्य होगये थे ।
 हे पृथ्वीनाथ ! उसकी देव सभामें आकर अग्नि
 और इन्द्रने परीक्षा करी थी, जिस समय राजोंमें
 बड़े उषीनर यज्ञ कर रहे थे तबही अग्नि और
 इन्द्र वरदान देनेकी इच्छासे उनकी परीक्षा
 करने आये । इन्द्र बाज और अग्नि कवूतर
 बना । अनन्तर बाजके भयसे व्याकुल,
 प्राण चाहनेवाले कवूतररूपी अग्नि राजा

उषीनरको जङ्घापर बैठ गये और भयसे व्याकुल
 होने लगे ।

१३० अध्याय समाप्त ।

बाज बोला, हे राजन् । सब जगत्की राजा
 लोग आपकी धर्मात्मा कहते हैं, तब तुमने
 यह कर्म धर्मविरुद्ध क्यों किया है ? हे राजन् ।
 मैं भूखसे बृद्धत व्याकुल हूं और यह कवूतर
 मेरा भोजन है, अतएव तुम धर्मके लोभसे
 इसकी रक्षा मत करो, तुम्हारा धर्म नष्ट हो
 चुका । राजा बोले, हे महाहिज । तुम्हारे
 भयसे व्याकुल होकर प्राण वचानेकी इच्छासे
 यह हमारे पास आया है, हम रक्षा क्यों करें ?
 हे बाज ! इसकी प्राणरक्षा करनेमें क्या तुमकी
 धर्म नहीं-दोखता है ? देखो यह कवूतर
 सम्भ्रान्त और तड़पता हुआ मेरे पास आया है,
 इसका परित्याग करना अच्छा नहीं है । हे
 बाज । जो पुरुष ब्राह्मण अथवा लोकमाता
 गौकी मारता है, और जो शरणागतका त्याग
 करता है, उन तीनोंको समानही पाप होता
 है । - बाज बोला, हे पृथ्वीनाथ ! आहारसे सब
 जगत्के जंतु उत्पन्न होते हैं, आहारसे बढ़ते
 हैं, और आहारहीसे जीते हैं । अत्यन्त दुःखसे
 ढोड़ने योग्य वस्तुको ढोड़कर पुरुष कई दिन
 जी सकता है, परन्तु भोजनको ढोड़कर जीना
 असम्भव है, इस लिये भोजन न पानेसे मेरे प्राण
 शरीरको ढोड़कर प्रस्थान करेगे । हे धर्मा-
 त्मन् ! मेरे मरनेसे मेरी स्त्री और पुत्र सब मर
 जायंगे । तुम एक कवूतरके प्राणकी रक्षा
 करके अनेक प्राणोंका नाश करते हो । जिस
 धर्मसे धर्मका नाश हो, वह धर्म नहीं वरन्
 कुमार्ग है । हे सत्यविक्रम ! जिसमें किसीका
 विरोध नहा, वही धर्म कहाता है । हे पृथ्वी-
 नाथ ! यदि धर्ममें दो स्थानोंपर विरोध हो,
 उन दोनोंका हलका और भारोपन विचारलें,

जिसमें कुछ बाधा न हो उसी धर्मको करें । हे राजन् । हम दोनोंके हलके और भारीपनका पहले निश्चय कीजिये, तब जिसमें कल्याण दीखे सोई काम कीजिये । राजा बोले, हे पक्षिश्चष्ट । तुम बृहत् कल्याणसे भरी हुई बातोंको कहते हो क्या तुम धर्मके निश्चय करनेवाले साक्षात् पक्षिराज गरुड़ ही ? तुम धर्मसे भरी हुई अनेक विचित्र बातोंको कहते हो, इससे हमको जान पड़ता है कि कोई बात तुमको अविदित नहीं है, तुम शरणागतको त्याग किस प्रकार अच्छा समझते हो ? हे विचित्रम । तुम केवल अपने भोजनके निमित्त इतना विवाद कर रहे हो, तुम अत्यन्त इससे अधिक भोजन पा सकते हो : गाय, बैल, सूअर, भैंसा वा हरिन अथवा और जो तुम्हारी इच्छा हो, सोही हम तुमको दे सकते हैं । बाज बोला, हे महाराज ! मैं सूअर, बैल हरिन या और किसी जन्तुको नहीं चाहता हूँ, मुझे दूसरे जन्तुसे क्या प्रयोजन है ? हे क्षत्रियश्चष्ट ! हे पृथ्वीनाथ । ईश्वरने जो भक्षण मेरे निमित्त भेजा है, आप मेरे उस कबूतरको मुझे दे दीजिये । हे राजन् ! यह बाज कबूतरको खाता है, तुम सार-रहित केलिके खम्भके समान धर्मको मत करो । राजा बोले, हे खेचर ! मैं इस धनसे भरे हुए शिवि-राज्यको तुम्हें दे दूंगा अथवा और जो तुम्हारी इच्छा होगी, सोभी दूंगा, परन्तु इस शरण आये पक्षीको न छोड़ूंगा । हे पक्षिसत्तम ! जिस कर्मसे तुम इस पक्षिके प्राणको छोड़ो सो कहो, मैं वही करूंगा, परन्तु इस कबूतरको न छोड़ूंगा । बाज बोला, हे राजन् उषीनर ! यदि तुमको इस कबूतरमें बृहत्ही प्रेम है, तो अपने शरीरके मांसको कबूतरकी वरावर तोलो । हे नृपोत्तम ! जब वह इसके समान हो जायगा, तब उसको खाकर मैं बृहत् प्रसन्न हूंगा । राजा बोले, हे बाज ! तुमने जो हमसे मागा सो देना स्वीकार ग्रहण किया,

अब हम अपना मांस इस कबूतरके समान तोलकर तुम्हें देते हैं ।

श्रीलोमश मुनि बोले, हे पृथ्वीनाथ ! हे कुन्तीनन्दन ! परम धर्मके जाननेवाले राजा उषीनरने अपने मांसको अपने हाथसे काटा और तराजूपर रखकर तोलने लगे, तोलते समय कबूतर अधिक डूँगा, तब राजा उषीनरने पुनः मांस काटकर चढ़ाया, जैसे जैसे राजा मांस चढ़ाते गये तैसे तैसे कबूतर भारी होता जाता था । जब राजाके शरीरमें मांस न रहा तब आपही तराजूपर बैठ गये बाज बोला, हे धर्मज्ञ ! हम इन्द्र और या कबूतर अग्नि है, केवल आपके धर्मकी परीक्षा करनेके लिये यज्ञशालामें आये थे । हे प्रजा नाथ ! तुमने जितना अपने शरीरका मांस काटा है, उतनी ही तुम्हारी कीर्ति जगत्में बढ़ेगी । हे पार्थिव ! जबतक लोकमें मनुष्य रहेंगे तबतक तुम्हारी कीर्ति जगत्में रहेगी और तुमभी सनातन स्वर्गमें वास करोगे । ऐसा कहकर इन्द्र और अग्नि स्वर्गकी चले गये । राजा उषीनरभी अपने कर्माकी समाप्त करके अपने तेजसे प्रकाशित होकर स्वर्गकी चले गये । हे राजन् ! उसही महात्मा उषीनरके स्थानको हमारे सहित देखो । हे राजन् ! इस स्थानमें सनातन मुनि और देवता लोगोंकी ब्राह्मण लोग देखते हैं ।

१३१ अध्याय समाप्त ।

श्रीलोमश मुनि बोले, हे नरेन्द्र ! जो जगत्में मन्त्र जाननेवालोंमें श्रेष्ठ उद्दालक मुनिके पत्र श्वेतकेतु प्रसिद्ध हैं । आप उनके आयुष्यको देखिये, यह परम पवित्र आयुष्य अनेक प्रकार के सदा फलनेवाले वृक्षोंसे शोभित है । यज्ञ श्वेतकेतुने साक्षात् सरस्वती की मनुष्य रूप धारण किये हुए देखा था, और कहा, था, कि हमने जान लिया तुम साक्षात् सरस्वती हो, उस गुणमें कभी-कभी अष्टावक्र और पहले उद्दालकके पत्र

श्वेतकेतु ये दोनों मामा भानजे हैं, और वेद-
जाननेवालोंमें श्रेष्ठ हैं, और दोनोंही जगत् प्रसिद्ध
हैं। अष्टावक्र और श्वेतकेतु ये दोनों राजा
जनककी यज्ञशालामें गये थे और दोनों मामा
भानजोंने ब्रह्म-शास्त्रार्थ किया है कौन्तेय ।
आप अपने भाइयोंके सहित इस पवित्र
आश्रममें प्रवेश करके उपासना कीजिये, इन्होंने
महात्माने—जनकके—यज्ञमें जाकर—शास्त्रका
विचार किया था, इन्होंने बाल्यावस्थाहीमें राजा
जनककी सभामें जाकर शास्त्रार्थ किया था,
अनन्तर नदीमें स्नान करने चले गये थे ।

राजा युधिष्ठिर बोले, हे लोमश ! महात्मा
अष्टावक्र किसके पुत्र थे, इनका क्या प्रभाव था ?
किस प्रकार उन्होंने बन्दीकी निग्रह किया था ?
इस सब आप हमसे कहिये । श्रीलोमश मुनि
बोले, हे राजा ! उद्दालक मुनिके एक कहीड़
नामक शिष्य थे, वे गुरुकी ब्रह्म सेवा करते
और उनहोके घरमें रहते थे । इस प्रकार ब्रह्म
देन पढ़ते रहे । जब उद्दालक मुनिने कहीड़को
प्रपना भक्त जाना, तब शिष्योंके सहित उसकी
रीक्षा करी । अनन्तर अपनी पुत्रीका उससे
विवाह कर दिया । अनन्तर कहीड़की स्त्रीकी
गर्भ रक्षा, वह गर्भ अग्निके समान प्रकाशमान
था । एक दिन उस बालकने गर्भहीमेंसे पितासे
कहा कि हे पिता ! तुम समस्त रात्रि पढ़ते हो
रहते हो, सो यह सम्यक् पाठित नहीं होता
है । मैंने आपके प्रसादसे इस गर्भमें रहके ही
सहित चारो वेद और निखिल शास्त्र
अध्ययन किया है, इसी निमित्त मैं कहता हूँ,
यह आपके द्वारा समीचीन रूपसे पाठित
होता है । महाराज ! शिष्योंके मध्यमें
कहाड़ने अपनी निन्दा सुनकर
क्रोध किया और उस गर्भके बालककी शपथ
किया कि तू गर्भहीमेंसे बोलता है, इस लिये आठ
महीने देहा हागा । अनन्तर कहीड़ मुनिका
पुत्र उत्पन्न हुआ, वह आठ जगहसे टेढ़ा था,

और इसी लिये उनका नाम अष्टावक्र था और
महर्षि उद्दालकके पुत्र श्वेतकेतु अष्टावक्रके मामा
और अवस्थामें समान थे । एक दिन अष्टावक्रके
जन्मके पहले जब उनकी माता गर्भसे ब्रह्म
दुःखिनी हुई, जब अपने पतिकी प्रसन्न करके
धनकी इच्छासे ऐकान्तमें ऐसा बोली, हे महर्षे !
अब दशम महीना आगया, हम क्या करें, आपके
घरमें कुछभी धन नहीं है, जिससे मैं इस आप-
त्तिसे पार हूँ । कहीड़ मुनि अपनी स्त्रीके ऐसे
वचन सुन धन लेनेकी राजा जनकके यहाँ गये,
वहाँ बन्दीसे उनका विवाद हुआ, उसने कहीड़को
विवादमें जीतकर पानीमें डबा दिया । जब उद्दा-
लक मुनिने यह सब समाचार सुना कि हमारे
दामादकी बन्दीने पानीमें डबा दिया है, तो
उन्होंने अपनी पुत्री सुजातासे कहा कि तुम
यह समाचार अष्टावक्रसे मत कहना । जब
अष्टावक्रका जन्म हुआ, तब भी उन्होंने इस
बातकी न सुनी । अष्टावक्रने उद्दालककी पिता
और श्वेतकेतुकी भाईके समान जाना । एक
दिन बारह वर्षकी अवस्थामें अष्टावक्र उद्दालक
मुनिकी गोदमें बैठे थे, उभी समय श्वेतकेतु आये
और उन्होंने अष्टावक्रका हाथ पकड़ कर खींच
लिया, तथा रोते हुए अष्टावक्रसे कहा कि यह
तुम्हारे पिताकी गोद नहीं है । अष्टावक्रने
उनके दुष्ट और कठोर वचनोंकी सुनकर हृद-
यमें महादुःख किया और घरमें जाकर अपनी
मातासे पूछा कि हमारे पिता कहाँ हैं ? सुजा-
ताने उनके वचन सुन शपथ डरकर सब समा-
चार कह सुनाया । अष्टावक्रने सब समाचार
अच्छी प्रकार जान कर रातकी श्वेतकेतुसे कहा
कि हमने सुना है, राजा जनक अद्भुत यज्ञ कर
रहे हैं, चलो हमभी वहाँ चलें । वहाँ ब्राह्म-
णोंका विवाद सुनेंगे धन लावेंगे और भोजन
करेंगे । वहाँ जानसे वेदका शब्द सुनकर हम-
लोगोंकी चतुरता आजायगी । अनन्तर दोनों
मामा भानजे राजा जनककी अदिभरी यज्ञ-

शालाकी चले । मार्गमें राजा जनक मिल गये उनके पुत्रोंने कहा कि हटो बची । यह सुनकर अष्टावक्र मुनि बोले ।

१३२ अध्याय समाप्त ।

श्रीअष्टावक्र मुनि बोले, अन्धेकी बाहरेकी, स्त्रीकी और भारले चलनेवालेकी मार्ग देना चाहिये । राजा और ब्राह्मणोंके मध्यमें ब्राह्मणहीकी मार्ग देना चाहिये अर्थात् राजाहीकी हटना उचित है राजा जनक बोले, हम आपको यह मार्ग देते हैं, जिधर इच्छा हो उधर चले जाइयें, इन्द्रभी ब्राह्मणोंको प्रणाम करते हैं, क्योंकि अग्नि थोड़ीभी कम नहीं होती । श्रीअष्टावक्र मुनि बोले, हे नरेन्द्र ! हम तुम्हारे यज्ञका तमाशा देखनेकी इच्छासे आये हैं, सो हमारी इच्छा है, कि आपका द्वारपाल हमको भीतर जानेको आज्ञा दे । हे इन्द्रयन्त्रके पत्र ! हम यज्ञ देखने, विदाद करनेकी आये हैं, सो यह दोनों द्वारपाल क्रोध रोगसे जले जाते हैं, और हम दोनोंको भीतर नहीं जाने देते । द्वारपाल बोला, तुम दोनों आज्ञाकारियोंकी हम प्रणाम करते हैं, आप हमारे वचन सुनिये, यहां कोई बालक ब्राह्मण यज्ञशालामें नहीं जाने पाता है, जो वेदके ज्ञान नेवाले और बूढ़े ब्राह्मण हैं, वही भीतर जाते हैं ।

श्रीअष्टावक्र मुनि बोले, यदि यज्ञशालाके भीतर बूढ़े ही ब्राह्मण जाने पाते हैं, तो हमको भी जाने दो, क्योंकि हमभो बूढ़े व्रतधारी और वेदसे भरे हुए हैं, हम लोग सुश्रुषा सहित जितेन्द्रिय ज्ञानी, वेदपाठी और प्रतिष्ठावान हैं, तुम हमको बालक मत समझो, क्योंकि थोड़ी अग्निभी जलानेमें समर्थ होती है ।

द्वारपाल बोला, हे अज्ञ ! यदि तुम वेदकी जानते हो तो एक अक्षरसे विराजमान अनेक रूपवाली वेदमयी वाणीको कहा ? क्योंकि इसलोकमें ज्ञानो वहुत दलभ है, तुम अपनी मिथ्या प्रणाम क्यों करते हो ।

श्रीअष्टावक्र मुनि बोले, तुमको नहीं मालूम होता कि अधिक बढनेसे कुछ लाभ नहीं होता, देखो सेंमरका वृक्ष वहुत बढ जाता है, परन्तु उसके फलके भीतर कोई खानेके योग्य नहीं होती और अनेक छोटी वृक्षोंके फल उत्तम होते हैं । इस लिये वे छोटेही वृक्ष

द्वारपाल बोला, देखो छोटे बालक हीसे विद्या पढ़कर ज्ञानी होते हैं, और वही बड़ेभी हो जाते हैं । थोड़ी अवधि की भी ज्ञान नहीं पासकता है, तब तुम बहोकर बड़ोंके समान क्यों बातें करते हो ।

श्रीअष्टावक्र मुनि बोले जिसको सिर होजाता है, उसे बूढ़ा नहीं कहते, जो वा भी ज्ञानी हो, पण्डित लोग उसको बूढ़ा कहें । अधिक अवस्था, पके बाल, धन वस्तुओंकी पाँकर कोई अछ नहीं है ऋषियोंने यही कहा है कि जो वेद जानते हैं, वही हम लोगोंमें बूढ़ा है, हे द्वारपाल ! हम राजसभामें जाकर बन्दीकी देखना चाहें, तुम सुवर्णमालाधारी राजासे जा हमारा वृत्तान्त कह दो । हे द्वारपाल ! थोड़ी देरमें देखोगे, कि हम सभामें जा पण्डितोंके सङ्ग विवाद करेंगे और अत्यन्त विवाद करके उस सूतकी भी लेंगे । आज विद्यासे भरे हुए ब्राह्मण लोचन पुरोहित, नगरवासी और राजा यह लोग हमारी विद्याकी देखेंगे । चाहे शास्त्रार्थमें जीते, चाहे हारे, परन्तु यज्ञशालामें जायेंगे अवश्य ।

द्वारपाल बोला, हम बड़े बड़े ज्ञानी पण्डितोंकी सभामें दश वर्षके लड़केकी ली जायें ? परन्तु किसी उपायसे तुमकी वली चलते हैं, किन्तु तुम उत्तम यज्ञसे वञ्चन जाकर अष्टावक्र बोले, हे राजन् ! जनक ! तुम सम्राट और सब ऋषियोंमें हुए हो, तुमने यज्ञके ऐसे कर्म किया है, कि

पहले राजा यथातिने किया था । हमने सुना है कि तुमने बहुत बादके जाननेवाले वन्दी को अपने घरमें रखा है, जो उससे शास्त्रार्थ में चार जाता है; उसीको तुम्हारे काम वाले पुरुष लोग शङ्कारहित होकर जलमें डुबा देते हैं । हम ब्राह्मणोंसे यह बात सुनकर यहां बाद करनेको आये हैं । कच्ची वह वन्दी कहा है ? जैसे सूर्य तारोंके तेजकी नाश करता है, तैसीही हम उसको शान्त कर देंगे ।

राजा जनक बोले, तुम हमारे सामने बनाही वन्दीको बिद्या जाने कहते हो कि हम उसको जोत लेंगे । विना बादीकी विद्या कभी ऐसा कहना अनुचित है, बड़े बड़े वेद ज्ञानवाले, लोग उससे विवाद करते हैं । जान गड़ता है, कि तुम उसके विद्यावलकी नहीं जानते हो । बड़े बड़े प्रखित ब्राह्मण लोग उसके प्रागे ऐसे दोखते हैं, जैसे सूर्यके सामने तारे । जोलाग वन्दीका जीतनकी दृक्कासे आते हैं, वन्दीका द्वैतहो उनकी सब शभा नष्ट हो जाती है । है, तात । बड़े बड़े विद्याभक्त लोग उसका देखकर रुभासे निकल जाते हैं, तब तुम उसके सामने कीसे ठहरोगे ?

श्रीअष्टावक्र मुनि बोले, उसने हमारे समान प्रखितोंसे कभी विवाद नहीं किया है, इसीसे सिद्ध बन रहा है, और बैहर हाकर बकता है । आज हम उसका अवश्य जीतेगे । हमसे शरण पर उसको वही दशा होगी, जैसे पाँड़िया दूतसे गाड़ोकी ।

राजा जनक बोले, जिसके एक एक अशसे तीस अवयव हैं ऐसे द्वादश अशविंशष्ट, चौबीस पर्व और तीनसी-साठ अशोंसे अदित जा वस्तु है, के अर्थको जो जानता है, वही परम कवि है ।

श्रीअष्टावक्र मुनि बोले, चौबीस पर्व छानाभि, गरुड प्रधि और तान सो साठ आराकी सहित जा नियचसननाला चक्र है, सा तुम्हारी रक्षा कर ।

राजा जनक बोले, जा शरीररूपी रयम

दी छोड़ि जुते है, जिनका गिरना वाज पक्षीके समान भोन होता है, देवताओंके बीच उन दोनोंके गर्भको कौन धारण करता है ? और वेभी किसे उत्पन्न करते हैं ।

श्रीअष्टावक्र मुनि बोले, हैं राजन । वह आपके घरमें कभी न आवें, वे शत्रुओंहीके घरमें रहें, वे वायु सारथिके गर्भसे उत्पन्न होते हैं । और इन दोनों वस्तुओंसे उत्पन्नभी हुआ करते हैं ।

राजा जनक बोले, कौन ऐसा जंतु है, जो सीनेके समय आंख बन्द करके नहीं सोता । वह कौन है, जो उत्पन्न होके नहीं चलता । वह कौन है, जिसकी हृदय नहीं है, और वह कौन है, जो वेगसे नहीं बढ़ता ।

श्रीअष्टावक्र मुनि बोले, संख्यो सोते हुए आंखोंका नहीं बन्द करता, अग्रा उत्पन्न होकर नहीं चलता । पत्थरको हृदय नहीं है, और वेगसे नदी बढ़ती है ।

राजा जनक बोले, हम तुमकी पुरुष नहीं समझते, तुम साक्षात् देवता हो । हमें निश्चय है, कि तुम बालक नहीं, वरन बूढ़े हो । हमने जान लिया कि तुम्हारा समान बाद करजवाला कोई नहीं है । इस लिये हम तुमको बता देते हैं, कि वही वन्दी खड़ा है ।

१३३ अध्याय समाप्त ।

श्रीअष्टावक्र मुनि बोले, है उग्रसैन्यपालक महाराज ! यहा बड़े बड़े राजा लोग बैठे हैं, उनके बीचमेंसे हम वादयामे अष्ट वन्दीकी नहीं पहचान सकते, परन्तु जैसे दूध और पानी मेंसे हंस दूधको ग्रहण करता है, तैसीही इन सबके बीचमेंसे हम वन्दीको दूढ़ लेते हैं । आज वह हमसे वादमें नहीं चाल सकेगा, उसकी वही दशा हांगी, जैसे नदी बढ़कर शान्त होजातो है । अरे वादी । तू हमारे सामने खड़ा रह, आज तेरी वही दशा होगी, जा प्रलय कालका अग्निजलको हीतो है । तू निश्चय जान कि जैसे साता हुआ लुह जागता है, और

जैसे विधेला सर्प अपने ओंठोंका चाटता है, उस समय उन दानोंके सिरपर लात मारे और वह अपना बचना चाहे, वैसीही दशा तेरीभी है, जैसे कोई दुर्बल पुरुष अपने बलके अभिमानसे पर्वतमें आघात करता है, पीछेसे उसोके हाथ आर-नाखूनोंमें घाव-हाजाते हैं, परन्तु पर्वतकी कुकभो नहीं-हाता, तैसेही आज तेरीभी दशा होगी। - जैसे मैनाक पर्वतके निकटमें अन्य सब पर्वत और बैलके समीपमें बछड़े निकट हैं, वैसेही मिथिलाधपके निकट अन्य सब-राजा-ही निकट है। - हे राजन् जनक ! जैसे सब देवतामें इन्द्र श्रेष्ठ है, और जैसे सब नाद्योंमें गङ्गा श्रेष्ठ है, तैसेही सब राजाओंमें तुमभी श्रेष्ठ हो, इस लिये शीघ्र उस वन्दोको-हमारे सामने बुलाओ।

श्रीलामश सुनि बोले, हे राजन् । इस प्रकार अष्टावक्र सुनि सभाके बीचमें गर्जन लगें। अनन्तर क्राध करके वन्दोसे बाले, कि तुम-हमारे वचनका उत्तर दो और हम तुम्हारे वचनका उत्तर-देगें।

वन्दो बाले, जिस प्रकार एक अग्नि वज्रधा-रूपसे प्रज्वालित होता है और एक सूक्ष्म इस सार विश्वका प्रकाश करता है, वैसेही एक वोर अथात् बुद्धितत्त्वं, शब्द स्पर्श आदि उपहारस्वरूप विषयोंके सहार पालनकर्त्ता जा आत्मा, त्वक् प्रभृति इन्द्रिया हैं, उनका राजा, नियन्ता तथा प्रभु होकर "मैं" "यह" इत्यादि प्रकारसे प्रकाशमान होते हुए अन्यान्य वादियोंके अभिमत तत्त्वस्वरूप अरातिका विनाशकें हुआ है।

अष्टावक्र बोले, जिस प्रकार इन्द्र और अग्नि दो देवता, नारद और पर्वत दो देवार्थ, अश्विनी-कुमार दो देवता, रथके दो चक्र और विधाताके सहारे विहित भाष्या आर पात दो जन परस्पर मित्रभावसे विचरण किया करते हैं; उसी प्रकार दो वस्तु अथात् बुद्धि और चैतन्य दोनों परस्पर मित्र-भावयुक्त होकर विषयानुभव

प्रभृति कार्य निर्वह किया करते हैं, वैसे बुद्धिही नहीं।

वन्दो बोले, कर्म-हेतुसे यह सब प्रजा विविध जन्म ग्रहण करती है, तीन वेद मालत हो वाजपेयाद समस्त कर्म प्रातःपादन करते अध्ययुगल तोनों कालमें यज्ञकर्मका अनुष्ठान किया करते हैं, स्वर्ग, मर्त्य और नरका विविध लोक कर्मजानत भाग करन होते हैं और वेदमें कर्मजानत विविध ज्योतिष का हैं; इसलिये चाहे बुद्धि वा अन्य जिस कि पदार्थका कर्त्तृत्वाद क्या न सिद्ध होवे, वा कर्मकेही अधीन है।

अष्टावक्र बोले, ब्राह्मणोंके चारि आश्रम हैं; चारो वर्ण ज्ञान-यज्ञ निर्वह किया करते हैं; और विराट हिरण्यगर्भ, ईश्वर तथा तुरीय-साक्षात्कार ये चारि अवस्था हैं; इन चारों अवस्थाओंके वाचक अकार, उकार, मकार और अर्द्धमात्रा ये चार वर्ण अथात् आम् हैं; इस विषयमें चार पदयुक्त वाक्य वदामन्त्रां सव्वेदा वर्णित हुए हैं; इसलिये ज्ञानसे तुरीय-साक्षात्कार ज्ञान पर कर्त्तृत्व भातृत्वाद अलोक प्रातःपन्न होते हैं, अतएव कर्म भी अलोक है।

वन्दो बाले, जिस प्रकार ग्राहपत्य प्रभृति पञ्चआश्रम, अग्निहोत्र आदि पञ्चयज्ञ और पातकन्दके प्रत्येक चरणमें पाच अक्षर रहते हैं, उसी भात आत्मा, त्वक्, नेत्र, जिह्वा, आर नासिका, ये पांच इन्द्रिया शब्दादि पञ्च विषयोंकी ग्राहक होती हैं। ये शब्दादि पञ्च-विषय-स्वात उपादेय कहके लोकमें प्राप्त हैं आर शरीरान्तवृत्ता चैतन्य प्रमाण, विषय, विक्लप, तन्द्रा और स्मृत इन पांचके सहार माना पञ्चावध शिखामें समाहित हुए हैं, यह वदाम दाखता है, अतएव तुरीय-साक्षात्कार असम्भव है।

अष्टावक्र बोले, जिस प्रकार अग्नि की

कही अन्नाधानकी दक्षिणा का गौ, सर्ववेद-
विहित सायस्व-यज्ञ अर्थात् एकाहसाय यज्ञ
का है, कालचक्र-कृत का है और कृत्तिका
कुंजन समान रूपसे प्रसिद्ध है, उसही भाति
श्रीवादि पांच और मन एक, इन का इन्द्रियोंके
समान रूपसे कर्तृत्व-भोक्तृत्वादि कहने
होंगी।

बन्दी बोले, शब्दादि विषयोंके प्रत्येक
विषयमें आसक्त, उक्त श्रीवादि का और बुद्धिवृत्ति
एक, इन सातों इन्द्रियोंकी सप्तकृषि तथा
सप्त पुरुषरूप पशु भी कहा जाता है, जब
इनकी भौम-विषयमें आसक्ति होती है, तब
इन्हें ग्राम्यपशु कहते हैं और जब इनकी
दिव्य विषयमें आसक्ति होती है, तब इन्हें
वन्यपशु कहा जाता है, येही प्रत्येक सप्त ग्राम्य
वा वन्यपशु एक आत्माको शब्दादि विषयों
तथा तत्त्व-विषयजनित सुखलाभ करा देते हैं,
आत्मा भी तत्त्व-विषयजनित सुख अनुभव
करता है; इस लिये जैसे एक बीणा सात
तारोंसे संयुक्त होकर वाद्यध्वनि निष्पन्न करता
है, वैसेही उक्त श्रीवादि सात तत्त्वोंके सहारे
देहधारीके कर्तृत्वादि निष्पन्न हुआ करते हैं।

अष्टावक्र बोले, शब्दादि विषय, उक्त
श्रीवादि सात और अहंबुत्ति एक, इन अष्टविध
इन्द्रियोंमें प्रवेशाधिकारी होनेसे अष्टविध
कहके वर्णित हुए हैं, जिस प्रकार शणस्त्रसे
ने अष्टसंख्य गोणी सैकड़ों परिमाणों धारण
करते हैं, वैसेही शब्दादि विषय अष्टविध होने
पर भी सैकड़ों सख्यामें गिने जाते हैं। जिसके
आनन्द-कणोंसे सब प्राणी आनन्द लाभ करते
हैं, वह परमानन्द अद्वैत-आत्मा उक्त अष्टविध
इन्द्रियोंमें उपलब्ध होता है, क्योंकि द्वैत-रूप
अज्ञान, समस्त विषयोंन्द्रिय संयोगरूप यज्ञमें
पुरुषरूप पशुवन्धनके स्थान उक्त श्रीवादि
ग्राम्य कोणयुक्त यूपरूप होकर विद्यमान
है, अतएव वेदमें भी श्रुत हुआ है कि,

शब्दादि-विषयक अष्टविध वासना तत्त्वत-इन्द्रिया-
धिष्ठात्री देवतामें ही विद्यमान रहते हैं;
आत्मामें नहीं रहते; और परमानन्दस्वरूप
आत्मा ज्ञात होनेसे वह द्वैत-अज्ञानका, विनाश
शक होता है, अतएव तुरीय-साक्षात्कार
असम्भव नहीं है।

बन्दी बोले, जिसप्रकार पितृयज्ञमें अग्नि
जलानेके लिये नवधांसक विहित हुआ है,
प्रत्येक चरणमें नौ अक्षर रहनेसे वैसे चारि
चरणमें एक सहती कन्द होता है; और एकसे
लगाय नौविध अङ्गके मेलसे सब गिनती पूरी
होती है, वैसेही सत्त्व, रज और तम इस त्रिगुणा-
त्मिका अज्ञानरूपणी प्रकृतिके प्रत्येक गुण
अपने और दूसरेके अंशमें मेलकर त्रिविध होनेसे
वे नवविध होकर तत्त्व-अंशके बहुत्व तारतम्य
अनुसार अनेक भांतकी सृष्टि सम्पादन किया
करते हैं, यह पण्डिताने कहा है, इस लिये
जब द्वैत-अज्ञानसे समुदाय सृष्टि होना कहा
गया है, तब उसका विनाश होना स्वीकार
नहीं किया जा सकता, अतएव उसके रहने
तुरीय-साक्षात्कारकी क्या सम्भावना है?

अष्टावक्र बोले पण्डिताने दशों इन्द्रियोंकी
जीवोंके सम्बन्धमें कहा है, आत्माके सम्बन्धमें
नहीं, जैसे स्त्रियां गर्भविशिष्ट होकर दश
महीने तक गर्भ धारण करती हैं, वैसेही
आत्मा मायाके सहारे अहंबुत्ति प्रस्थातमें
समन्वित होकर ही हजारहों जीव रूपसे
उपलब्ध होता है, यथार्थमें वह सङ्गरहित
है। इस तत्त्वज्ञानके उपदेशों दश जन हैं
और अधिकारी भी दश जन हैं। अतएव
आत्माका स्वरूप ज्ञान होनेसे यह माया
प्रकृति अलीक कहके जोध होंगी, इसलिये
इसकी सनाही असम्भव है। इस परमाद्य
ज्ञानके उपदेशक वा आधिकारी कोई काई होते
हैं, और इसके चेष्टी भी कोई कोई हुआ
करते हैं।

वन्दी बोले, एकादश इन्द्रियां शब्दादि विषयोंमें अवस्थान करती है, इसलिये ये शब्दादि विषय भी एकादश संख्यामें गिने जाते हैं। जीवरूप पशुके बन्धनके निमित्त ये ग्यारह विषय ग्यारह यूपस्वरूप हुए हैं; उक्त शब्दादि ग्रहणजनित हर्ष विषादादि ग्यारह प्रकारके विकार स्वर्गमें देवताओंको भी रोदन कराया करते हैं; इसलिये हैत-प्रकृतिका कार्य-जो विषययन्द्रिय संयोग है, इससे कुटकारा पाकर स्वरूप-ज्ञान अर्थात् तुरीय-साक्षात्कार होना मनुष्योंके पक्षमें सुदूर-पराहत है।

अष्टावक्र वाले, बारह महीनेका-सम्बत्सर होता है और प्रत्येक चरणमें बारह अक्षर रहनसे वैसे चारि चरणमें जगतीकुन्द होता है, ऐसा वर्णित है, कि तु ध्यानवन्त यागी लोगोंन इन्द्रियोंके अपने अपने विषयगमनके व्यावर्तक बारह व्रत कहे हैं, और प्राकृत यज्ञ द्वादशाहमें पूरा करना होता है, यह भी कहे हैं। अर्थात् जिस प्रकारसे माससङ्घातसे सम्बत्सर और अक्षरसङ्घातसे जगती कुन्द आतारक्त नहीं है, उसी भांति मूढ़ लोगोंकी विवेचनामें इन्द्रिय सङ्घातसे अतिरिक्त एक शुद्ध-चैतन्य रहना बाधगम्य नहीं होता, किन्तु ध्यानवन्त यागी लोग धर्म सत्य, तप, दम, अमात्सर्य, ह्री, तितोहा, अनसूया, दान, शास्त्रबुद्धि, धृति-आरक्षमा इन बारह प्रकारके-व्रतोंका अनुष्ठान करते हुए चित्तशुद्धि लाभ करके उसके सहारे जिस प्रकार बारह दिन प्राकृत यज्ञका विहित काल कहेके निर्दिष्ट होने पर भी इन बारह दिनोंका साधारण दिनोंके अन्तर्भूत और साधारण दिनोंके अतिरिक्त भी स्वीकार किया जाता है, वैसेही इन्द्रिय-सङ्घातके अन्तर्भूत और इन्द्रिय सङ्घातसे आतारक्त शुद्ध चैतन्यरूप अद्वैत-ब्रह्म उपलब्धि करते हैं।

वन्दी बोले, पण्डितोंने त्रयोदशी तिथिका

अष्ट कहा है और पृथिवीकी त्रयोदश तीर्थ-युक्ता कहे हैं, अर्थात् ऐसी बात नहीं है कि यह तत्त्वज्ञान केवल धर्म, सत्य प्रभृति द्वादश प्रकारके उक्त महाव्रत अनुष्ठित होनेसे ही होगा। वल्कि यह देश कालकी अपेक्षा करता है, अतएव कोई कोई पण्डितोंने कहा है, तत्त्वज्ञान ब्रह्मलोकस्थ जीवोंकी सर्वकालमें होसकता है और मर्त्यलोकमें सत्ययुगमें-होनामें सम्भव है।

श्रीलोमश मुनि बोले, महाराज! यह आधा श्लोक कहके वन्दी चुप-होगये। अनन्तर अष्टावक्रने उसके अपरार्द्धश्लोकको इस प्रकार कहके पूरा किया—

शुद्ध चैतन्यरूप अद्वैत-ब्रह्म अग्नि, वायु और सूर्यकी भांति असङ्ग ह्राके भोजी मन, बुद्धि, अहङ्कार और उससे अतिरिक्त दश-इन्द्रिया, इन त्रयोदश तत्त्वोंके विषय भागरूप यज्ञमें प्रवृत्त होते हैं, वह केवल शुद्ध चैतन्यका आच्छादक इन्द्रजालक अज्ञान कर्तृक बोध मात्र होता है, यथार्थमें सत्य नहीं है। क्योंकि पूर्वोक्त धर्मादि-बारह प्रकारके व्रत अनुष्ठित होनेसे ही इस अज्ञानकी अतिक्रम करके मन, बुद्धि प्रभृति उक्त त्रयोदश तत्त्वकी संहार कर देते हैं। अतएव यह-तत्त्वज्ञान अवश्यही पुष्पके यज्ञसाध्य होता है, देशकालकी अपेक्षा नहीं करता।

तिसके अनन्तर उस समय सभासदांने यज्ञदीक्षित वरुणके पुत्र उस वन्दीको चुप और नीचे मुख किये चित्तायुक्त और अष्टावक्रका वादविचारसे वाक्निपुणता प्रकाश करते देख महाकीलाहल ध्वान किया।

जब इस प्रकार महाराज जनककी यज्ञ-शालामें शब्द उठा और यज्ञ समाप्त हुई। तब सब वेदके जाननवाले ब्राह्मणान् प्रीतिसे सहित हाथ जाड़ कर अष्टावक्रकी पूजा करो।

श्रीअष्टावक्र मुनि वाले, इसी वन्दान पहलें

अनेक ब्राह्मणोंको बाद में जीते कर जलमें डुबा दिया है, इसे लिये यह भी उसी दर्शको प्राप्त हो, अर्थात् जलमें डुबा दिया जायें।

वन्दो बोले, मैं राजा वरुणको पुत्र हूँ मेरे पिताने हादशवर्षकी यज्ञ करी है। हे जनक ! तुम्हारे ही यज्ञके समय वहाँभी यज्ञ हुआ है, इसी लिये मैंने अनेक ब्राह्मणोंको वहाँ भेजा है, वे सब लोग वरुणकी यज्ञ देखनेको गये थे, और फिर चले आते हैं, हम पूजने योग्य अष्टावक्र मुनिकी पूजा करते हैं, जिनके प्रतापसे हम अपने पिताके पास जाते हैं।

श्रीअष्टावक्र मुनि बोले, जो सब ब्राह्मण समुद्रके जलमें डुबाये गये हैं, वे लोग पण्डित होकर भी वन्दोके वाक्य-कौशल अथवा वितर्क-कौशलसे ही पराजित हुए हैं, मैंने वन्दो कर्तृक कुतर्काण्वमें मज्जित उनको वाक्य-मेषांके संहारे जिस प्रकार उद्धार किया है, वैसेही सदसद्विवेकशील पण्डित लोग मेरे उन वचनोंकी परीक्षा करें। जिस प्रकार सदसद् वृत्तज्ञ अग्नि स्वभावसेही दाहक होकर भी अपने तेजसे सत्याभिसम्भी लोगोंके शरीरको जलाती है, वैसेही सदसद्विवेकशील पण्डित लोग मन्दवादी वालक वा पुत्रके वाक्य की भी परीक्षा करके ग्राह्य वा अग्राह्य किया करते हैं। हे महाराज जनक ! बोध होता है, आप श्लेष्मात्मक वृक्षके फल या पत्र व्यवहारसे तेजहीन होकर मेरा वचन सुनते हैं, अथवा स्तुति करनेवालोंको स्तुतिसे आपका अन्तःकरण आमोदित हुआ है, इस निर्मित्तसे ही आप अंजुशाहते हाथों की भाँति उन्नेजित होकर भी मेरा वचन नहीं ग्रहण करते हैं।

राजा जनक बोले, हे ब्राह्मण ! हम तुम्हारी वैशेष्य वाणीको सुनते हैं, तुम्हारी वाणीके अर्थान काई पुरुष नहीं कह सकता है, तुमने वन्दोको विवादमें जीत लिया है इस लिये

हम वन्दोकी तुम्हें देते हैं, तुम्हारी जो इच्छा हो सी करो।

श्रीअष्टावक्र मुनि बोले, हे राजन् ! इस वन्दोके जीते रहनेसे मुझे कोई लाभ नहीं है, इसे लिये इसकी मेरे पिताके समान जलमें डुबा दीजिये।

वन्दो बोला, हम राजा वरुणके पुत्र हैं, इस लिये जलमें डूबनेसे कुछ भय नहीं करते, अब अष्टावक्रभी अपने पिता-कहोड़को जो बद्धत कालसे नष्ट होगये हैं, देखेंगे।

श्रीलोमश मुनि बोले, अनन्तर वे सब ब्राह्मण लोग महात्मा वरुणसे पूजित होकर जनककी समामें खड़े होगये।

श्रीकहोड़ मुनि बोले, हे जनक ! पुरुष लोग इसी लिये अनेक कर्म करके पुत्रकी इच्छा करते हैं, देखो जो कर्म हम न कर सके, सो हमारे पुत्रने किया। हे जनक ! दुर्बलको बलवान, मूर्खको पण्डित और अज्ञानीको भी ज्ञानी पुत्र होसकता है। चाहें बलवानका निर्वल, पण्डितका मूर्ख और बुद्धिमानका निबुद्धि-पुत्र क्यों न हो, तीभी न होनेसे अच्छा है।

वन्दो बोले, हे राजन् ! तेज फरसा लेकर स्वयं यमराज युद्धमें आपके शत्रुओंके सिर काटें और तुम्हारा कल्याण हो। हे राजन् ! तुम्हारी यज्ञमें और क्या (वेदके एक प्रकारके मन्त्र) सामवेदके मन्त्र, अच्छो प्रकारसे गाये जाते हैं, और देवता लाग प्रसन्न होकर साक्षात् रूपसे पवित्र भागोंको ग्रहण करके सामपान करते हैं।

श्रीलोमश मुनि बोले, हे राजन् ! जब सब ब्राह्मण लाग अत्यन्त तेजकी धारण करके प्रगट हुए तब राजा जनकने आज्ञा दी कि, इस वन्दोको समुद्रमें डुबा दो, राजा जनकको आज्ञासे वन्दोने उन सब प्रतापो विप्रोंके सामने समुद्रमें प्रवेश किया। अनन्तर सब ब्राह्मणोंने विधिपूर्वक अष्टावक्रकी पूजा करो। और अष्टावक्रने अपने पिताकी पूजा करी, अनन्तर

अपने मामा स्वेतकेतुके सहित अपने आश्रम को चले गये । अनन्तर अष्टावक्रके पिताने अष्टावक्रकी गोदमें लिया, फिर कहा कि तुम समझा नदीमें स्नान करो, उस नदीमें स्नान करते ही अष्टावक्रके सब अङ्ग समान होगये । हे युधिष्ठिर ! उसी दिनसे यह समझा नदी पवित्र होगई है, इसमें स्नान करनेसे पाप नष्ट होजाते हैं । आपभी अपनी स्त्री और भाइयोंके सहित इसमें स्नान कीजिये । हे कुन्तीनन्दन ! इस नदीमें आप स्त्री, भाई, और ब्राह्मणोंके सहित स्नान करके हमारे सिद्ध भक्ति सहित पवित्र होकर हमारे पवित्र तीर्थोंकी चलिये ।

१३४ अध्याय समाप्त ।

श्रीलामश मुनि बोले, हे राजन् ! इस नदीका नाम पहले मधविला था, वही अब समझा नामसे प्रसिद्ध हुई है, यह कईमिल नामक तीर्थ है, यहीं राजा भरतका अभिषेक हुआ था, यहीं समझा नदीमें स्नान करके वृत्रासुरके मारनेके पश्चात् अलक्ष्मीवान इन्द्र सब पापोंसे कूट थे । हे भरतकुलसिंह ! यह मैनाक पर्वतके कोनमें विनसन नामक तीर्थ है, यहीं पहले समयमें अदितिने पुत्र होनेके निमित्त ब्रह्मोदन धकाकर खाया था । हे पाण्डव ! आपलोग इस पर्वतराजके ऊपर चढ़िये, तब सब पापों और अलक्ष्मीसे छूटियेगा । हे राजन युधिष्ठिर ! यह सब ऋषियोंका प्यारा कनखल तीर्थ है, यह महा नदी गंगा वह रही है, पहले समयमें भगवान सनत कुमार मुनि यहीं सिद्ध हुए थे, हे अजमीढ़ वंशात्पन्न युधिष्ठिर ! तुम इसमें स्नान करनेसे सब पापोंसे कूट जाओगे । यह पवित्र तलाव है, यह भृगुतुङ्ग पर्वत है, हे कुन्तीनन्दन ! यह तुषाणी गङ्गा है, यहां तुम मन्त्रियोंके सहित स्नान करा, यह स्थूलसिरा नामक मुनिका रमणीय आश्रम है, हे कुन्तीनन्दन ! यहां अभिमान और क्रोधको

कोड़ दी । हे पाण्डव ! यह श्रीमान रैभ्य मुनि का आश्रम है, जहां भरहाज मुनिके पुत्र यवक्रोत मारे गये थे, राजा युधिष्ठिर बोले, प्रतापवान भरहाज मुनि कैसे थे ? और उनका पुत्र यवक्रोत क्यों मारा गया था ? हम इस सचरितकी सुनना चाहते हैं, क्योंकि देवत ऋषियोंके कर्म सुननेसे आनन्द होता है ।

श्रीलामश मुनि बोले, भरहाज और रैभ्य दोनों मित्र थे, ये आनन्द से इस स्थान पर रहते थे, रैभ्यके सर्वावसु और परावसु नाम दो पुत्र थे । हे भारत ! भरहाजके एक यवक्रोत नामक पुत्र था, रैभ्य विद्वान और पुत्रवान थे, इन दोनोंकी बालकपनसेही वृद्ध कीर्ति जगत्में प्रसिद्ध थी । पापरहित यवक्रोतने अपने पिताकी अत्यन्त तपस्वी और सत्कारित तथा रैभ्यकी पुत्रवान और ब्राह्मणों पूजित देखा तो अत्यन्त सन्ताप करने लगे । फिर क्रोधमें भरकर तेजस्वी यवक्रोतने वेद जाननेके निमित्त घोर तपस्या करी । उस महा तपस्वीने जलती हुई अग्निमें अपने शरीरकी तपाया, तब उनके तपसे इन्द्रकी भय हुआ । हे युधिष्ठिर ! अनन्तर इन्द्र यवक्रोतके पास आकर बोले कि तुम किस लिये इस घोर तपको कर रहे हो ? यवक्रोत बोले, हे देवपूजित ! हमको बिनाही पढ़े सब वेद आजायें, इसलिये हम इस घोर तपको करते हैं । हे पाकशासन ! हम केवल पढ़नेहीके निमित्त इस परिश्रमको कर रहे हैं । हे कौणिक ! हम तपके वजसे सब विद्याओंको जानना चाहते हैं, क्योंकि वेदोंकी गुरुमुखसे पढ़नेमें बहुत समय लगता है, इसीलिये हमने यह परम यत्न किया है ।

इन्द्र बोले, हे ब्राह्मण ! जिस मार्गसे तुम जाना चाहते हो, वह मार्ग नहीं है, इसमें सब विद्या अच्छी नहीं होगी, जाओ तुम गुरुमें पढ़ो ।

श्रीलामश मुनि बोले, हे भारत ! ऐसा कहकर इन्द्र चले गये, और अनन्तर पराक्रमी

यवक्रीत फिर भी घोर तप करने लगे । हमने सुना है कि, यवक्रीतने बहुतकाल तक घोर तप किया और उनके तपसे इन्द्रादिक देवता तप्त होने लगे । उनकी इस प्रकार घोर तप करते देख इन्द्रने आकर फिर रीका और कहा कि, जो तुम चाहते हो सो होना अमंश्व है, तुम अपने पितासे वेद पटो, तब सबका अर्थ ज्ञान जाओगी ।

यवक्रीत बोले, हे देवराज ! यदि तुम मेरी इच्छा पूर्ण न करोगे, तो मैं फिर भी महा नियम धारण करके घोर तप करूँगा । हे देवराज ! यदि तुम मेरी इच्छाकी पूर्ण न करोगे तो हम अपने शरीरोंकी काट कर अग्निमें होम कर देंगे ।

श्रीलोमश मुनि बोले, जब इन्द्रने जाना कि ये तपसे निवृत्त नहीं होंगे, तब बुद्धिमान इन्द्रने एक यक्ष-रोगी, कई सौ वर्षके बूढ़े तपस्वी ब्राह्मणका वेष बनाया और जिस तीर्थमें यवक्रीत स्नानादि करते थे, उस स्थानमें गंगाके बाँससे पुल बनाने लगे, जब यवक्रीतने इन्द्रका कहना न माना तो इन्द्रने गंगाकी बाँसमें पूर्ण कर दिया, इन्द्र यवक्रीतको दिखाकर रोज-गंगामें एक मुठी बाँस छोड़ते थे, इस प्रकार मुनिश्रेष्ठ यवक्रीतने इन्द्रका यत्न देखकर उनसे हँसकर कहा कि हे ब्राह्मण ! तुम यह क्या यत्न करते हो ? क्या यह तुम्हारा यत्न निरर्थक न होगा ?

इन्द्र बोले, हे तात ! इसमें तैरनेमें बटोही पुरुषोंकी बहुत दुःख होता है, इस लिये हम गङ्गाकी बाँसमें बाँध देंगे । तब उत्तम ज्ञान होजायगा ।

श्रीयवक्रीत मुनि बोले, हे तपोधन ! इस प्रकारके महा वेगकी तुम नहीं बाँध पाओगे, तुम इस न होने योग्य कामकी संतान होओगे ।

इन्द्र बोले, जैसे तुमने नहींने योग्य कामका

आरम्भ किया है, तैसेही हमनेभी इस कामका आरम्भ किया है ।

श्रीयवक्रीत मुनि बोले, हे देवराज ! जैसे तुम्हारा काम निरर्थक है, तैसेही यदि मेरा कामभी निरर्थक हो, तो जितनी तुम्हारी शक्ति हो, उतना यत्न करो ।

श्रीलोमश मुनि बोले, यवक्रीतने जो जो वरदान मांगे, सोई सोई इन्द्रने दिये, इन्द्रने कहा कि हे महा तपस्वी ! तुमको इच्छानुसार सब वेदोंका ज्ञान हो जायगा । हे यवक्रीत और जो कुछे तुम चाहोगे सोई सिद्ध होगे । इस प्रकार इन्द्रसे वरदान पाकर यवक्रीत अपने पिताके पास गये ।

यवक्रीत बोले, हमको और हमारे पिताको सब वेदोंका अर्थ दिखाई देता है, हम इन्द्रसे वरदान पाकर सबसे अधिक होगये ।

श्रीभरद्वाज मुनि बोले, हे तात ! इच्छानुसार वरदान पानेसे तुमको अभिमान हुआ, इस अभिमानसे तुम्हारा शीघ्रही विनाश होगा । इस देवताकी कही हुई कथाका यही उदाहरण दिया जाता है । हे पुत्र ! पहली समयमें एक वीर्यवान् वालधी नामक ऋषि हुए थे उन्होंने पुत्रके शोकसे व्याकुल होकर घोर तप किया था, अनन्तर उसने इन्द्रसे यह वरदान माँगा था, कि हमारा पुत्र मनुष्योंसे अधिक आयुवाला हो, परन्तु देवताोंने इस वरदान को न दिया, और कहा कि मनुष्य अपने धर्मासे रहित नहीं हो सकता है, इस लिये तुम्हारा पुत्र निमित्त आयुवाला होगा ।

वालधी मुनि बोले, हे देवता ! जो यह पर्वत स्थिर है, वही मेरे पुत्रकी निमित्त आयुवाला हो । श्रीभरद्वाज मुनि बोले, कुछ दिन पश्चात् वालधी मुनिको पुत्र हुआ, जब उस पुत्रने यह सब कथा सुनी तो बड़ा अभिमान और मुनियोंका निरादर किया, इस प्रकार वह मुनियोंका निरादर करता हुआ

पृथ्वीमें घूमने लगा, एक दिन महा तेजस्वी बुद्धिमान धनुषाक्ष मुनिसे भेंट हुई, उनकाभी इसने वैसेही निरादर किया, तब धनुषाक्षने क्रोध करके उसको शाप दिया कि तू भस्म होजा, पर वह भस्म नहीं हुआ। जब वीर्यवान धनुषाक्ष मुनिने देखा कि यह न मरा। तो उसके निमित्त परमायु पर्वतको भैंसोंसे नष्ट कराया निमित्त शरीर नष्ट होनेसे उसका प्राणभी नष्ट होगया, अपने पुत्रको मरा हुआ देख उसके पिता-रोने लगे, तब सब मुनियोंने उनको रोते हुए देख जो कुछ कहा सो हम तुमसे कहते हैं कोई पुरुषभी प्रारब्धको नाश नहीं कर सकता है, इसीसे धनुषाक्ष मुनिने पर्वतको भैंसोंसे नाश कराया है, इस प्रकारसे तपस्वियोंके वालक लोग अभिमानसे भरकर शीघ्रही नाश हो जाते हैं। हे पुत्र। यह रैभ्य और उनके दोनों पुत्र महा तपस्वी हैं, तुम इनसे उचित व्यवहार नहीं करते हो, तुम उनसे अच्छा व्यवहार करो, वे महा तपस्वी और महा क्रोध करके तुम्हें नाश करनेमें समर्थ हैं।

यवक्रीत बोले, आप दुःख न कीजिये, हम ऐसाही करेंगे, जैसे आप हमको मान्य हैं, तैसेही रैभ्यभो है।

श्रीलीमश मुनि बोले पितासे ऐसे मीठे वचन कहकर यवक्रीत सुखसे और आनन्दसे घूमने लगे, परन्तु अन्य ऋषियोंको दुःख देने लगे।

१३५ अध्याय समाप्त ।

श्रीलीमश मुनि बोले, इस प्रकार आनन्दसे घूमते हुए एक दिन यवक्रीत वैशाख महीनेमें रैभ्य मुनिके आश्रममें गये, उस फूले वृक्षोंसे शोभित परम रमणीय आश्रममें रैभ्य मुनिके बेटेकी बहूको कितनीके समान घूमते हुए देखा, निर्लज्ज यवक्रीतने कामके वशमें होकर उस लज्जावतीसे कहा कि तू हमारे पास आ ! वह स्त्री यवक्रीतके चरित्रको जानती थी, इस लिये उसने शाप भयसे डरकर और रैभ्यके तेजका

धान करके, वैसेही होगया, कहके जाने लगी, तिसके अनन्तर महनी मनमें वितर्क करके उसे निर्जनमें गोपन भावसे रखा। हे शत्रुनाशन। उसी समय रैभ्य मुनि भी अपने आश्रममें आगये उन्होंने परावसुकी स्त्री और अपने पुत्रकी बहूको रोते हुए देख, उसकी शान्त करके मीठे वचनसे सब समाचार पूछा। उस सुन्दरीने यवक्रीतका सब हाल उनसे कहा सुनाया, और जो उसने कहा था सो भी सुना दिया। यवक्रीतका यह सब समाचार सुनकर रैभ्यका चित्त महा क्रोधसे जलने लगा। महाक्रोधी रैभ्य मुनिने अपनी एक जटा उखाड़के अग्निमें मन्त्रोंसे हवन करी, उसके हवन होतेही एक सुन्दरी स्त्रीरूपिणी कृत्या उनके पुत्रवधूके समान रूपवाली उस हवन कुण्डसे उत्पन्न हुई, तब मुनीश्वरने दूसरी जटा उखाड़के फिर अग्निमें हवन करी, तब हवन कुण्डसे एक विकराल दर्शन और भयानक नेत्र-वाला राक्षस उत्पन्न हुआ, उन दोनोंने रैभ्य मुनिसे कहा कि हम तुम्हारा कीनसा कार्य सिद्ध करें ? रैभ्य मुनिने क्रोध करके कहा कि तुम यवक्रीतको मार डालो। वे दोनों यवक्रीतको मारनेको चले, जब वे यवक्रीतके पास पहुंचे, तो महात्मा रैभ्यकी बनाई हुई स्त्रीने यवक्रीतका कमण्डल ले लिया और उसकी मोहित कर दिया, अनन्तर जूठे मुँह कमण्डल रहित यवक्रीतको देखकर वह राक्षस त्रिशूल लेकर उनकी ओर दौड़ा, जब यवक्रीतने उस राक्षसकी हाथमें त्रिशूल लिये और अपने मारनेकी दृष्टिसे आते हुए देखा तो वहांसे उठ कर तलावकी ओर भागे, वहां जाकर उन्होंने तालावकी जलसे रक्षित देखा, तब वहांसे दौड़ कर नदी पर गये, उसकोभी सखी हुई पाया, इस प्रकार सब जगह घूम कर चौप और शूलधारी राक्षससे पीड़ित होकर अत्यन्त भयमें अपने पिताकी यज्ञशाला

हुंसे । हे राजन् ! उसकी हार पर रक्षा करने-
वाला एक अन्धा शूद्र बैठा था, उसने यवक्रीतकी
बलसे पकड़ा, तब ये वहीं खड़े रह गये ।
जब राक्षसने यवक्रीतकी शूद्रसे पकड़ा हुआ
देखा, तो एक त्रिशूल उसकी छातीमें मारा,
उसके लगनसे यवक्रीत मर गये । यवक्रीतको
मोर कर राक्षस पुनः रैभ्य मुनिके पास आया,
और उनकी आज्ञासे उस स्त्रीके सहित वहीं
रहने लगा ।

१३६ अध्याय समाप्त ।

श्रीलामश मुनि बोले, हे कुन्तीनन्दन !
जब भरद्वाज मुनि सन्ध्याकर्म करके उठे, तब
हाथमें कुशा लेकर अपने आश्रमको गये, पहले
जब भरद्वाज मुनि अपने आश्रम पर आते थे,
तब सब अग्नि उनकी देख कर खड़ो हो जाती
थी परन्तु उस दिन पुत्रके मरनेके कारण
कोई अग्नि नहीं उठी । महातपस्वी भरद्वाजने
अग्निहोत्रमें विकार देखकर उस घरकी रक्षा
करनेवाले शूद्रसे पूछा कि हे शूद्र ! आज यह
सब अग्नि हमारा दर्शन करके क्यों नहीं
प्रसन्न होती है ? और तुमभी सब दिनके
समान प्रसन्न नहीं दीखते, कहीं आश्रममें
कुशल तो है ? मन्दबुद्धि मेरा पुत्र रैभ्यकी
आश्रममें तो नहीं गया था । तुम सब समाचार
भीय कहो । हमारा मन शुद्ध नहीं होता है ।

शूद्र बोला, वह मन्दबुद्धि तुम्हारा पुत्र
रैभ्य मुनिके आश्रममें गया था, और
उसकी बलवान शूलधारी राक्षसने मार डाला,
न पड़ा है, वह पीड़ित होकर इस अग्नि-
होत्रमें आया था, परन्तु मैं बलसे उसकी
रक्षा किया, वह पवित्र और जलकी
आश्रममें आया था, परन्तु मेरे पकड़नेसे
उसकी सब आशा नष्ट होगई, तब उस शूल-
धारी राक्षसने वेगसे दौड़कर उसकी मार
डाली । भरद्वाज मुनि उस शूद्रके ऐसे अप्रिय

वचन सुनकर अपने मरे हुए पुत्रका उठाकर
बहुते दुःखसे रोने लगे ।

भरद्वाज बोले, हे तात ! तुमने ब्राह्मणोंके
निमित्त बड़ा भारी तप किया था और यह
इच्छा करी थी कि हमको बिनाही पढ़े
ब्राह्मणोंके सब वेद आजायें, और तुम अत्यन्त
शौलवान होने परभी महात्मा ब्राह्मणोंका
अपराधही करते रहे, हे तात ! हमने
तुमसे कहा था कि, रैभ्यके आश्रमको मत जाना,
परन्तु तुम उसी काल और यमराजके समान
आश्रमको देखनेको गये, और वह दुष्टबुद्धि
महा तेजस्वी रैभ्य मुक्त बूढ़ेका एकही पुत्र
है, यह जानता हुआभी महाक्रोधके वशमें
होगया । हे पुत्र ! अब मैं तुम्हारे शोक और
रैभ्यके कर्मसे अपने प्यारे प्राणकी त्यागता हूँ,
जैसे मैं पुत्रके शोकसे व्याकुल होकर शरीर
छोड़ता हूँ, तैसेही रैभ्यका बड़ा पुत्र रैभ्यकी
शोघही नाश करेगा । वे पुरुष बद्धत सुखी
है, जिनको पुत्र नहीं उत्पन्न हुआ है, जिन्हाने
पुत्रशोककी नहीं देखा, वे सुखसे घूमते हैं, जनका
हृदय पुत्र शोकसे व्याकुल हो गया है, वे अपने
प्यारे मित्रोंकीभी शपथ देते हैं, तब उनकी बरा-
बर पापी और कौन हागा ? तुमको मरा हुआ
देखकर मैंने अपने प्यारे सखाकी शपथ दिया है ।
ऐसी भारी आपत्ति मेरेसिवा और किसकी पड़ेगी ?

श्रीलामश मुनि बोले, भरद्वाज मुनिने बद्धत
विलाप करके अपने पुत्रका दाहकर्म किया,
अनन्तर उसी जलती हुई अग्निमें आपभी प्रवेश
कर गये ।

१३७ अध्याय समाप्त ।

लामश मुनि बोले, हे महाराज ! उसी
समय महा प्रतापवान रैभ्यके यजमान
बृहद्युम्न राजाने यज्ञका आरम्भ किया,
बुद्धिमान बृहद्युम्नने अवावसु और परावसु
रैभ्यके पुत्रोंको यज्ञमें परस्पर सहायक बनाया ।

हे कुन्तीनन्दन । वे दोनों अपने पिताकी आज्ञासे यज्ञ सम्पादनके लिये गये, आश्रममें रथ्य और परावसुकी स्त्री रही। अनन्तर एक रोज रातकी अकेले परावसु अपने आश्रमकी आये, आश्रममें एकले अपने घरमें अपनी स्त्रीकी देखने गये, तब उन्होंने देखा कि काले हरिणका चमड़ा ओढ़े उनके पिता जनमें बैठे हैं, उन्होंने उस घोर अंधियारी रात्रिमें निद्रामें होकर अपने पिताकी न पहचाना, उन्होंने जाना कि यह कोई हरिण घूमता फिरता है, परावसुने अपने शरीरकी रक्षाके लिये उस हरिणकी मार डाला । हे भारत । जब उन्होंने जाना कि यह हमारे पिता थे, तब उनका सब प्रेतकर्म करके उसी यज्ञमें गये और अपने छोटे भाईसे कहा कि, हे तात ! हमने हरिनके भ्रमसे पिताको मार डाला और तुम इस यज्ञके भारकी कदापि नहीं सम्भाल सकोगे । इसलिये तुम हमारे ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त करो क्योंकि मैं एकला भी इस यज्ञके कर्मको समाप्त कर सकता हूं

अर्वावसु कीले, तुम बुद्धिमान राजा ब्रह्मदुस्त्रकी यज्ञका कर्म कर। और मैं इन्द्रियोको वशमें करके तुम्हारे निमित्त ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त करता हूं ।

श्रीलौमश मुनि बोले, हे युधिष्ठिर । इस प्रकार उस ब्रह्महत्याके पापसे पार होकर अर्वावसु मुनि पुन उस यज्ञमें आये, जब परावसुने अपने भाईकी यज्ञमें आते हुए देखा तो आनन्दसे गद्गद होकर राजासे बोले, कि हे राजन् । इसने ब्रह्महत्या करी है, इसलिये यह यज्ञमें न आने पावे, यदि यह तुमका देख लीगा, तो निःसन्देह तुमका वृद्धत दुःख होगा ।

श्रीलौमश मुनि बोले, हे प्रजानाथ । राजा ब्रह्मदुस्त्रने पुरोहितके ऐसे वचन सुनकर सब पुरुषोंकी आज्ञा दी कि यह यज्ञ न आने पावे, पुरुषोंसे वारित होनेके नम्र अर्वावसुने बार बार कहा कि मैंने कोई ब्रह्महत्या नहीं की है, परन्तु

किसीनेभी न सुना और सब कहने लगे कि वृहत्यारा है । तब उसने पुन कहा कि यह ब्रह्महत्या मेरे भाईने करी थी, परन्तु मैंने प्रायश्चित्त करके उनकोभी इस पापसे छुड़ा दिया । तबभी किसीने न सुना, तब महा तपस्वी अर्वावसु क्रीधसे व्याकुल और चुप होकर जनमें चले गये, वृद्धा जाकर घोर तपसे सूर्यकी आराधना करने लगे । वृद्धा उन्होंने अत्यन्त गुप्तसूर्य मन्त्रका पाठ किया, अनन्तर साक्षात् अर्वावसुने सूर्यने शरीर धारण करके उनका दर्शन दिये ।

श्रीलौमश मुनि बोले, हे नरनाथ । अर्वावसुके उस कर्मसे सब देवता प्रसन्न हुए, अनन्त देवताोंने उन्हें श्रेष्ठ और परावसुका प्रत्याख्यान किया । फिर आग्न आदक देवताोंने उसकी वरदान दिये, तब उसने यह वरदान मागा कि हमारे पिता जीजाय, हमारे भाई निरपराध हों, पिताको उनके मारनेका क्षरण न रहे इस और हमारे भाई पापसे छूटे भरद्वाज भी यवकीर्त जीजायं, तथा हम वेदकी प्रतिष्ठा करें उस ब्राह्मण श्रेष्ठकी देवताोंने यह वरदान दिये हे युधिष्ठिर ! तब वे सब लोग जोगये । अनन्त आग्न आदक देवतासे यवकीर्त बोले कि, हे देवश्रेष्ठ । हमने वाधवत वेद पढ़ा और अनन्त व्रतभी करे, तब ऐसे तपस्वी सुभको रथ्यमुनिने इस प्रकार क्यों मारा ? सब देवता लोग बोले, हे यवकीर्त सुने । तुम ऐसी बात मत कहो, तुमने विना गुरुके सुखपूर्वक वेदाकी पढ़ा है, और उन्होंने वृद्धत केशसे गुरुको प्रसन्न करके वृद्ध कालमें वेदाकी पढ़ा है ।

श्रीलौमश मुनि बोले कि हे राजगर्दल इस प्रकार सबका जवाकर और यवकीर्तसे ऐसा कहकर इन्द्रादक देवता स्वर्गका चले गये । यह उन्होंनेका पवित्र आश्रम है, इसमें वृक्ष सदा फूल और फल रहते हैं, प्राय यज्ञ एक रात्रि बनिये तो सब पापोंमें दृष्ट जायेगा ।

श्रीलोमश मुनि बोले, हे भारत ! यह उशीर-
बीज, मैनाक और खेतपर्वतकी देखो, हे
कौन्तेय ! तुम काल पर्वतके पार हुए हो, हे
भरतर्षभ ! यह गङ्गाकी सात धारा शोभित हो
रही हैं । यह विरजस तीर्थ है यहां सदाही
अग्नि जलती रहती है, इस अद्भुत तीर्थकी पुरुष
नहीं देख सकता, यहांपर तुम स्वस्थचित्त होकर
समाधि लगाओ और इन तीर्थोंकी देखो, यह
देवतोके खेलनेका स्थान है, यहां चरणका चिह्न
लगा है, इस कीभी देखो, हे कुन्तीनन्दन ! तुम
काल शैल पर्वतके पार हुए हो, अब हम लोग
खेतगिरि और मन्दराचलमें प्रवेश करते हैं
जहां माणवर यक्ष और कुवेर रहते हैं, यहां
अठ्ठासी हजार शीघ्रगामी यक्ष लोग रहते हैं,
और उनसे चौगुने यक्ष और किंपुरुष रहते हैं,
वे लोग यक्षराज मणिभद्रके सङ्ग अनेक रूप
शस्त्रोंकी धारण करके रहते हैं, उनकी यहां
पर बहुत शक्ति बड़ी है, उनकी गति वायुके
समान है, वे वह मनुष्य भी स्वर्गमें गिरा सकते
हैं । हे कुन्तीपुत्र ! ये पर्वत बलवान राक्षस
और यक्षोंसे राक्षस हैं । तुम यहां समाधि
करो । हे कुन्तीनन्दन ! जो कुवेरके मन्त्री है,
तथा रौद्र मैत्र और राक्षस हैं, हम लोग उन
सबमें मिलेंगे, तुम अपने बलकी ठीक करो,
देखो यह चौबीस कोस ऊंचा कैलास पर्वत है,
यह वदरिकाश्रम है जहां सब देवता लोग आते
हैं, हे राजन् ! हमारे तप और भीमसेनके
बलसे रक्षित होकर आप इस कुवेरके स्थानकी
देखेंगे । जहां असंख्य यक्ष, राक्षस किन्नर
नाग, सुय्या और गन्धर्व रहते हैं । वरुण,
वृषभदेव, वसुना, पर्वत, वायु,
अश्विनीकुमार, देवता, नदी और सब तालाव
इस पर्वतकी कल्याण करे । हे देव ! हे गङ्गा !
तुम्हारे शब्दकी सीनेके पर्वतसे सुनते हैं,
इन पर्वतोंमें अजमीड़ वशीत्यन्त महाराज
युधिष्ठिरकी रक्षा करो । हे सुभगी ! हे पर्वत-

राजपुत्री ! यह महाराज उन पर्वतोंमें प्रवेश
करना चाहते हैं, तुम इनकी कल्याण दो ।
लोमश मुनिने इस प्रकार समुद्रगामिनी गङ्गाकी
प्रार्थना करके राजासे कहा कि अब आप
सावधान हो जाइये । युधिष्ठिर बोले, आज
लोमश मुनिकी अपूर्व भ्रम हुआ है, जान
पड़ता है, कि यह देश बहुत दुःखसे प्रवेश
करने योग्य है, इस लिये सब लोग सावधान
होकरके रहें ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर महाराजने
भीमसेनकी आज्ञा दी, हे भीम ! हे महाबली !
तुम बहुत यत्नसे द्रौपदीकी रक्षा करो, क्योंकि
अर्जुनके जानिके पश्चात् द्रौपदी-भयके समयमें
तुम्हारीही शरण लेती है, इसके पश्चात् महा-
राजने नकुल और सहदेव का माथा सघ
कर और शरीरकी स्पर्श करके कहा कि तुम
लोग कुछ मत डरो, सावधान होकर चलो ।

१३६ अध्याय समाप्त ।

राजा युधिष्ठिर बोले, हे भीम ! इन
स्थानोंमें अनेक बलवान राक्षस लोग छिपे हुए
रहते हैं, यहां अग्नि और तपके सहित चलना
चाहिये । हे कुन्तीनन्दन भीम ! यहां बलके
आश्रयसे भूख और प्यासकी परित्याग करो,
तुम अपने बल और कुशलताका आश्रय करो,
हे कौन्तेय ! तुमने कैलासयात्राके पात लोमश
मुनिके वचन सुने, अब बुद्धिसे विचार करो कि
द्रौपदी किस प्रकार चल सकेगी ? अथवा
सहदेव धीन्य, सारथि, पुरनिवासी, सब नौकर,
रथ घोड़े और हेश सहनेवाले सब ब्राह्मणोंके
सहित तुम लौट जाओ । हे विशालनेत्र भीम !
हम तीनों अर्थात् हम नकुल और लोमश मुनि
आहारकी जीतकर व्रत करते हुए चले जायेंगे,
जबतक हम लौटकर आवें, तबतक तुम साव-
धान होकर द्रौपदीकी रक्षा करने हुए गङ्गा-
वारमें रहकर हमारा मार्ग देखना ।

भीमसेन बोले, हे महाराज । राजपुत्री कल्याणी द्रौपदी यकार्दसे दुःखित होने परभी केवल अर्जुनके देखनेकी इच्छासे जाती है, और आपभी बिना अर्जुनके देखे घबरा रहे हैं, वह अर्जुन निद्राके स्वामी और युद्धमें अपराजित हैं, तब सुभे सहदेवकी और द्रौपदीकी आप क्यों छोड़ते हैं ? ब्राह्मण और नौकर-लोगोंकी चला जाना चाहिये, सारथी नगरके रहनेवाले या और जिसकी आप चाहें लौटा दीजिये, मैं इस राक्षसीसे भरे हुए घोर पर्वतमें आपको कदापि नहीं छोड़ सकता हूँ, हे पुरुष-व्याघ्र । यह पतिव्रता राजपुत्री द्रौपदी और सहदेव आपको छोड़ कर कदापि नहीं लौट सकते हैं, क्योंकि यह आपके भक्त हैं, सुभे अर्जुन बद्धत प्यार है, इस लिये मैं कदापि नहीं लौटकर जाऊंगा । हम सब अर्जुनके देखनेकी उत्काण्ठित हैं, इसलिये लौट नहीं सकते, यह अनेक कन्दराओंसे भरा हुआ पर्वत याद रथमें बैठकर चलने योग्य न होगी तो पैरोही चलेगे, हे राजन् । हम द्रौपदीकी अपने कन्धेपर बिठाके ले चलेंगे, आप कुछ सन्देह मत कीजिये, हमारी बुद्धिमें आता है, कि जहा द्रौपदी नहीं चल सकेगी, तहा ऐसाही करेगे । आप कुछ सन्देह मत कीजिये, बालक नकुल और सहदेव जहा दुःखसे जानें योग्य मार्गमें नहीं जा सकेंगे, तहा इनका भी मैं ले चलूंगा । राजा युधिष्ठिर बोले, हे भीम । तुम्हारे बलकी वृद्धि हो, तुम जो यशस्वनो द्रौपदी ही सहदेवकी ले चलनेका कहते हो, इस लिये हम आशीर्वाद देते हैं, कि तुम्हारा यह बल, कीर्ति और धर्म बढ़े, तुम नकुल सहदेव और द्रौपदीका ले चलना चाहते हो, इससे तुम्हें कहीं यकार्द और निरादर नहीं होगा ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर सुन्दरी द्रौपदी हसकर महाराजसे कहने लगी कि हे

कुन्तीनन्दन । आप मेरे लिये कुछ दुःख न कीजिये मैं आपही चलूंगी ।

श्रीलोमश मुनि बोले, हे कुन्तीनन्दन । उस गन्धमादन पर्वत पर तपस्याके बलसे जा सकते हैं, हम सब तपस्याके बलसे चलेंगे । हे कीर्त्तिया हम, तुम, भीमसेन, नकुल सहदेव और द्रौपदी चलकर अर्जुनकी देखेंगे ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, जिस समयसे सब लोग प्रसन्नतापूर्वक ऐसा कह रहे थे, उसही समय हिमाचल पर एक पुरुषोंका समूह दीख पड़ा, जिसमें अनेक हाथी, घोड़े, किरात, तड़ण, पुलिङ्ग, देवता थे । उस भूण्डमें अनेक आश्चर्य दीखते थे, वह देश राजा सुबाहुका था । जब सुबाहुने पाण्डवोंकी देखा, तो उनकी वद्धत पूजा और सम्मान किया और अपने राज्यकी सीमा तक परम प्रीतिसे पाण्डवोंकी सङ्ग गया । पाण्डव लोगभी उसकी पूजासे वद्धत प्रसन्न हुए और उसके राज्य भरमें सुखन्दिर रहे, अनन्त जब प्रातःकाल हुआ तो हम वेदवाग पैरों हीसे हिमाचलको चले, इन्द्रसेन आदि सारथी नगर निर्वासो तथा रसोद्विया, द्रौपदीकी दासी, तथा और सब नौकरोंकी कुलिन्द देशके राजा सुबाहुकी रक्षामे छोड़ दिया । महावीर्य महारथ पाण्डव लोग पैरोही चले, वे लोग धीरे धीरे प्रसन्नता पूर्वक द्रौपदीके सहित उस देशसे निकल गये ।

१४० अध्याय समाप्त ।

राजा युधिष्ठिर बोले, हे भीम । मैं नकुल, सहदेव और द्रौपदी । तुम सब हमारी बातोंका सुनो, जा कर्म पुरुष का किया हुआ है, उसका नाश नहीं होता, देखा इस वनके जतु लोग कैसे घूम रहे हैं ? हम लोग अत्यन्त भ्रमण और दुःखित होने परभी परस्पर बातचीत करते हैं, और असमर्थ होने परभी अनुबन्ध

देखनेकी इच्छासे चले जाते हैं, इसीसे जैसे अग्नि लगनेसे स्तब्ध जलती है, तैसीही मेरा शरीर भी जला जाता है, अब तकभी वीर अर्जुन लौटकर नहीं आये। हे वीर ! मैं जो दुःखसे व्याकुल हो रहा हूं, सो द्रौपदी केशकर्पण आदि केशोंको स्मरण करके जला जाता हूं। मैं नकुलसे बड़े महा पराक्रमी, अजेय, महाधनुर्धारी अर्जुनको न देखनेसे जला जाता हूं। हे वृकोदर ! मैं तुम लोगोंके सहित रम्य वन तड़ाग और तीर्थोंमें अर्जुनके देखनेकी घूमता हूँ। हे वृकोदर ! पांच वर्ष हुआ कि सत्यसन्ध अर्जुनको हमने नहीं देखा, उन स्यामसुन्दर, निद्राकेखामी सिंहके समान तेजस्वी महाबाहु, सब शस्त्रोंकी, जाननेवाली युद्धमें निपुण, असमान धनुषधारी अर्जुनको न देखनेसे हमारा शरीर जला जाता है, वह अर्जुन युद्धमें इस प्रकार घूमते हैं, जैसे प्रलयकालमें क्रोध करके यमराज। वह मतवारे हाथी और सिंहके समान कन्धेवाले महावीर हैं, वह महावीर धन और पराक्रममें इन्द्रके समान हैं, नकुल सहदेव से बड़े सफेद घोड़ेवाले और महा पराक्रमी हैं, वह महा दुःखमें पड़े हैं, वह उग्र धनुर्धारी अर्जुन अजेय हैं, उनके न देखनेसे हमारा शरीर जला जाता है, वह सदाही क्षमा करनेवाले और बुरी बात सुनकर भी शरणागत और कोमल मार्गवाले पुरुषको सुख देनेवाले हैं। यदि कुल और मायासे उनको कोई मारना चाहे तो साक्षात् बज्रधारी इन्द्रकी भी काल और विषके समान हो जाते हैं, वह महापराक्रमी, महावीर प्रतापवान, ह्वावान अर्जुन शरण आये हुए शत्रुकी भी निर्भय कर देते हैं। वह हम सब लोगोंके आगे युद्धमें शत्रुओंके मारनेवाले, सब रत्नोंके लानेवाले और सबके सुखदायक हैं, उसही महापराक्रमीके प्रतापसे हमारे घरमें पहले अनेक रत्न आये हैं, सब अब द्रव्योपधनके हुए हैं। हे वीर

सभा तीनों लोकोंमें विख्यात हुई है, जो पराक्रममें कृष्णके समान और युद्धमें कार्तवीर्यके समान है, उस युद्धमें अजेय अर्जुनकी हम नहीं देखते हैं, जो अर्जुन महापराक्रमी शत्रुनाशन, अजेय, बलराम, कृष्ण और तुम्हारे समान बलवान है, उसको हम नहीं देखते, जो बाहुबल और प्रभावमें इन्द्रके तुल्य, बेगमें वायुके तुल्य और क्रोधमें सनातन शत्रुके समान है, जिसका मुख चन्द्रमाके तुल्य है, हम सब लोग उसी पुरुषसिंह अर्जुनके देखनेकी गन्धमादन पर्वतमें प्रवेश करते हैं। हे वीर ! हे महाबाहो ! अब हम लोग उस उत्तम पर्वतकी देखेंगे। जहां विशाल बदरिकामय तथा नरनारायणका स्थान है, उस पर्वतमें सदा गन्धर्वलोक निवास करते हैं, हमलोग महातप करते हुए पैरोंही राक्षसोंसे सेवित परम रमणीय कुबेरकी पीखरकी देखेंगे। हे वृकोदर यह देश बाहनों पर चलनेका नहीं है, इस देशमें दुष्ट लोभो और क्रोधी पुरुष नहीं आसकते हैं, हे भीम ! हम सब लोग शस्त्रोंको धारण करके महाव्रतधारी ब्राह्मणोंके सहित अर्जुनके दूढ़नेको जायेंगे। हे कुन्तीनन्दन ! जा अपवित्र पुरुष इस देशमें आता है, उसे मक्खी, मच्छर, सिंह व्याघ्र और अनेक साप मिलते हैं, परन्तु हम लोग अर्जुनके देखनेकी इच्छासे भोजन करके और आत्माकी अपने वशसे करके गन्धमादन पर्वत पर जायेंगे।

१४१ अध्याय समाप्त ।

श्रीलोकेश मुनि जीले, हे पाण्डवो ! तुम सब लोगोंने नदी, पर्वत, नगर, जङ्गल शीमान तीर्थ और सुन्दर जलोको देखा है, अब यह मार्ग दिव्य गन्धमादन पर्वतको जाता है, इस लिये तुम लाग सावधान और पवित्र हो जाओ क्योंकि अब पुण्य कर्म वाले दिव्य ऋषि और देवताके स्थानमें चलना होगा। हे राजन् ! महानदी अलकनन्दा बह रही है, हे भीम ! इसमें

सदाही देवता और अपिलीग स्नान करते हैं यह बदरिकाश्रममें आती है, यह सदाही महात्मा वालखिल्या और आकाशगामी महात्मा गन्धर्वोंसे पूजित और सेवित है, इसी स्थान पर उत्तम स्वरवाले मरीचि, पुलः भृगु और अङ्गिरा सामगान करते हैं, इस स्थान पर देवताओंमें अष्ट इन्द्र मस्त और अश्विनीकुमारोंके सहित स्मृता करते हैं, इस नदी पर दिन रातमें अपने समय पर सूर्य चन्द्रमा, नक्षत्र और ग्रह सब आते हैं, हे महाभाग ! इसहीके जलकी शिवने सिर पर धारण किया है । यही नदी गङ्गाहारेमें गई है, इसहीमें लोक स्थिर है, हे तात । आप सब लोग मनको बशमें करके इस भगवती गङ्गाके तट पर जाकर प्रणाम कीजिये, महात्मा लोमशके वचन सुनकर सब पाण्डवोंने नियम पूर्वक आकाशगङ्गाकी प्रणाम किया । धर्म करनेवाले पाण्डवलीग गङ्गाकी प्रणाम करके प्रसन्नचित्तसे सब ऋषियोंके सहित अगाड़ी चले, आगे उन सब लोगोंने दूसरे मेरु पर्वतके समान सफेद और सब ओरको फैला हुआ एक हड्डियोंका ढेर देखा, पाण्डवोंने उसका देखनेकी इच्छा करी । तब वचनके जानने वाली महात्मा लोमश कहने लगे, कि हे पाण्डवो ! तुम लोग हमारी बातको सुनो, यह जो श्रीमान् कौलामके शिखरके समान ढेर देखते हो, सो महात्मा नरक दैत्यकी हड्डी है, यह पर्वतके पत्थरके ऊपर पड़ी है, इस लिये पहाड़के समान दोखती है, यहा पुरातन देव परमात्मा विष्णुने इन्द्रके हितकी इच्छामें नरकासुरकी मारा था, उस महामनस्वीने दश हजार वर्षतक घोर तपस्या करके अपने बल और विद्यासे इन्द्रके पदकी चाहा था, वह दैत्य तपीबल और महावाह्वलसे दिन दिन बलवान् होता जाता था और सबको दुख देता था हे पापरहित ! जब इन्द्रने उसके तप और पराक्रमको देखा तो भयमें व्याकुल होकर

घबड़ा गये, उन्होंने सर्वव्यापी परमेश्वर श्रीमान् अविनाशी विष्णुका ध्यान किया, उसी सम विष्णु वहां प्रगट होकर प्रकाशमान होने लगे तब सब देवता और ऋषियोंने उनकी स्तुति करी, जलते हुए भगवान् अग्नि उनकी देखकर तेजसे रहित होगये, वे उनके तेजसे डर गये वर देनेवाले सब देवताओंके स्वामी विष्णुकी देख कर बज्रधारी इन्द्रने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और अपने भयका प्रयोजन कह सुनाया विष्णु बोले, हे इन्द्र ! तुमको जो नरक नामक दैत्यराजसे भय हुआ है, सो हम जानते हैं, वा अपने तपके कर्मसे इन्द्रके स्थानकी चाहता है सो हे देवेन्द्र ! आप थोड़ी देर शान्त रहजिये उसकी अत्यन्त तपसे सिद्ध होने परभी मा डालूंगा, अनन्तर महातेजस्वी विष्णुने उस राक्षसकी हाथसे एक तमाचा मारकर उसके सब तेजकी नाश कर दिया, वह मर कर पर्वतके समान पृथ्वीपर गिर पड़ा, यह हड्डियोंका ढेर उसी मरे हुए मायावीका है, अब हम विष्णुका दूसरा चरित्र तुमसे कहते हैं, जिस प्रकार समस्त पृथ्वी नष्ट होकर पातालमें डूब गई थी, और विष्णुने एक दांतवाले शूकरका रूप धारण करके उसका उद्धार किया था ।

राजा युधिष्ठिर बोले, हे भगवन् ! आप इस कथाकी हमसे विस्तारपूर्वक कहिये । किस प्रकार चार सौ कोस तक पृथ्वी, समुद्रमें डूब गई थी और किस प्रकारसे भगवान् विष्णु ने उसका उद्धार किया था ? समस्त अश्वोंके उत्पन्न करनेवाली महाभागिनी स्थिर जगतकी धारण करनेवाली भगवती पृथ्वी किस प्रकार सौ योजन नीचे चली गई थीं, और हे दिव्य मनस ! भगवान् विष्णुका अपार पराक्रम किसने प्रकाश किया था ? हम इस सब कथाको विस्तार सहित सुनना चाहते हैं ।

श्रीलोमश मुनि बोले, हे युधिष्ठिर ! तुमने जो कथा हमसे पृकी सो सब हम कहते हैं,

म सुनी, हे तात । पहिले समयमें जब भयङ्कर तयुग वर्तमान था, तब भगवान् आदिदेव विष्णुने यज्ञका अधिकार स्थापन किया था । उस समय न कोई मरता और न कोई त्यक्त होता था; परन्तु बुद्धिमान् विष्णुके इस नियम समयमें पक्षी, पशु, गाय और करी वृद्धत-वृद्ध गये, हे पुरुषशार्दूल ! सी प्रकारसे हजारों, लक्षों, करोड़ों पुरुषभी मृत्युमें वृद्ध गये । जैसे वर्षामें पानी बढ़ता है, सिन्ही प्रजाभी बढ़ने लगी । हे तात । जब ऐसा भयङ्कर समय आया, तब अत्यन्त वीर्यसे पीड़ित पृथ्वी चार सौ कोस नीचेकी चली गई । पृथ्वी अत्यन्त भारसे दुःखित होकर दुःखित चित्तसे वरदान देनेवाले भगवान् विष्णुके शरणमें गई ।

पृथ्वी बोली, हे भगवान् । मैं आपकी कृपासे वृद्धत दिनतक यहीं रहनेकी इच्छा करती हूँ, क्योंकि वीर्यसे अत्यन्त व्याकुल होनेके कारण, अब उस कामको नहीं कर सकती हूँ । हे भगवान् ! आप हमारे इस भारको उतारनेमें समर्थ हैं । हे नाथ ! मैं तुम्हारी शरण हूँ तुम मेरी रक्षा करी । भगवान् अविनाशी विष्णुने पृथ्वीके वचन सुनकर प्रसन्न हो इन अक्षरोंकी कहा ।

श्रीविष्णु भगवान् बोले, हे पृथ्वी ! हे रत्नोंकी धारण करनेवाली ! तुम जो भारसे पीड़ित हुई हो, इसलिये कुछ शीघ्र मत करो, हम तुम्हारे भारको अभी उतारते हैं, तब तुम हलकी हो जाओगी ।

श्रीलीमश मुनि बोले, पञ्चतकुण्डल धारिणी पृथ्वीकी विदा करके महा तेजस्वी भगवान् विष्णुने एक दांतवाले शूकरका रूप धारण किया; उनके नेत्र जलती हुई अग्निके समान भयङ्कर जागये । और उनके मुखसे अनेकलज्ज लगा, उन्होंने अपने प्रकाशमान दांत पर पृथ्वीकी रख लिया, अनन्तर विष्णुने चार सौ कोस पृथ्वीका उद्धार

किया । जब भगवान् विष्णुने पृथ्वीका उद्धार किया तब सब देवता और तपोधन ऋषिलोग धवराने लगे, उस समय आकाश, पाताल और मर्त्यलोकमें हाहाकार होने लगा, उस समय देवता और मनुष्य कोई भी नहीं बैठा था, तब अनेक देवता और ऋषि लोग सुखसे बैठे हुए, तेजसे भरे ब्रह्मोंके पास गये, उन देवराज सर्व लोकसांघी ब्रह्माके पास जाकर सब देवता हाथ जोड़कर बोले, कि समस्त लोक और चराचर भयमें व्याकुल हुए हैं, हे देवनाथ ! सब समुद्र उथले पुथले हो रहे हैं, यह पृथ्वी चार सौ कोस चली गई है, यह क्या कारण है ? और किसके प्रभावसे समस्त जगत् व्याकुल हो रहे हैं ? आप इन सबका कारण हमसे कहिये ।

ब्रह्मा बोले, हे देवता ! तुम लोगोंकी राक्षसोंसे कभी और कहीं भी भय नहीं है, जगत्के भयका कारण हमसे सुनी । जो श्रीमान् सर्वव्यापी अविनाशी विष्णु हैं, उनके प्रभावसे यह समस्त जगत् इस अवस्थाको प्राप्त हुआ है । परमात्मा विष्णुने समस्त पृथ्वी का सी योजनसे उद्धार किया है, तुम लोग सब संशयोंकी छीड़ दो, इसी कारण इस जगत्में संचोभ हुआ है ।

देवता बोले, हे भगवान् ! विष्णु कौनसे स्थानमें प्रसन्न होकर पृथ्वीका उद्धार कर रहे हैं । आप उस स्थानकी हमसे कहिये हम लोग वहां जायेंगे । ब्रह्मा बोले, तुम लोग जाओ, वे नन्दनवनमें खड़े हैं, वह देखो यहींसे भगवान् श्रीमान् विष्णुका तेज दीखता है; यह लोक पूजित भगवान् विष्णु वराह-रूप धारण करके पृथ्वीका उद्धार कर रहे हैं, इनका रूप इस समय प्रलयकालकी अग्निके समान दीखता है । हे देवता ! इनके हृदयमें श्रीवत्सचिन्ह गोभित है, श्रीलीमश मुनि बोले, तब सब देवता ब्रह्माके वचन सुन और उनका प्रणाम कर, उनके सहित विष्णुके पास जाकर वहां वराहमूर्तिका दर्शन करके ब्रह्माकी आज्ञा कर स्थापन करने

हुए यथायोग्य स्थानमें गये । श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे जनमेजय ! लोमश मुनिके वचनकी सुनकर पाण्डव लोग प्रसन्न होकर उनकी आज्ञानुसार आगेकी चले ।

१४२ अध्याय समाप्त ।

श्रीलोमशमुनि बोले, शूरवीर-पाण्डव लोग धनुष, तूणीर, वाण, और खड्गकी धारण करके तथा अंगुलियोंमें प्रज्ञा पहनके चले, वे सब धनुषधारियोंमें अष्ट महातेजस्वी पाण्डव लोग सब ब्राह्मणोंकी प्रणाम करके द्रौपदीके सहित गन्धमादनकी चले, उन्होंने पर्वत पर तालाब, नदी, शिखर, झरने और बहृत छायावाले वृक्षोंकी देखा, उन सब दिशोंमें अनेक देव ऋषि निवास करते थे, वहां सदा फूलनेवाली वृक्ष शोभित थे, वीर पाण्डवोंने केवल मूल और फलहीका आहार करना आरम्भ किया, अनन्तर अनेक जातिके पक्षी और हरिणोंको देखते हुए नीचे और जंचे देशमें घूमते हुए पर्वत पर पड़ंचे, उस पर्वतमें ऋषि, सिद्ध, देवता और किन्नर वास करते थे, तथा वह देश अप्सरोंकी अत्यन्त प्रिय था । हे प्रजानाथ ! जिस समय महात्मा वीरपाण्डव लोग गन्धमादन पर्वत पर पड़ंचे, उस समय महावषा और भारी आंधी आई । उन आधीसे पत्थरोंके सहित ऐसी धूल उड़ी, कि जिससे पृथ्वी और आकाश भर गया । उस समय धूल उड़नेसे न कोई किसीकी देख सकता था और न एक दूसरेसे बात कर सका । हे जनमेजय ! उस समय आखोंके आगे केवल अन्धेरा दीखता था, उस वायुके संग पत्थरके किनके उड़के आखोंमें भर जाते थे, वायुके वेगसे अनेक वृक्ष टूट टूटकर पृथ्वीमें गिरते थे, तथा औरभी पत्थर आदि का घोर शब्द होने लगा । उस समय वायुसे मोहित पाण्डवोंकी ऐसी शब्दा उत्पन्न हुई कि, क्या स्वर्ग पृथ्वीमें गिरेगा ? क्या पृथ्वी फट

जायगी ? क्या इस पर्वतके दो टुकड़े हो जायेंगे ? पाण्डव लोग भयसे व्याकुल होकर वृक्ष, पर्वत और नीची पृथ्वीकी हाथोंसे टटोलने लगे । अनन्तर महाबल भीमसेन द्रौपदीके सहित अपनी धनुषकी धारण करके एक वृक्षके नीचे खड़े हुए, महाराज और धीम्य मुनि उस महाबलमें छिप कर बैठ गये, सहदेव अग्नि लेकर पर्वतमें छिप गये, नकुल, महा तपस्वी लोमश तथा और ब्राह्मण लोग भयसे व्याकुल होकर इधर उधर पृथ्वीके नीचे छिप रहे । जिस समय वह घोर वायु कुछ मन्द हुआ और वह आकारे शान्त हुआ, तब बड़ी बड़ी धाराएँ घोर वर्षा आई । उस वर्षामें मेघोंका चटख शब्द ऐसे वेगसे हुआ, जैसे वज्र गिरता है । अनन्तर महा प्रकाशवाली विजली मेघोंमें घूमने लगी, उसके पश्चात् वायुसे प्रेरित होकर चारों ओर पत्थरोंकी धारा बरसने लगी । उन पत्थरोंसे सब पर्वत पूर्ण हो गया । हे प्रजानाथ ! उसके थोड़ी देर पश्चात् समुद्रतक जाँचवाली अनेक नदी फेन और तरङ्गोंके सहित चारों ओरसे बहने लगीं । उन नदियोंमें भारी भारी तरङ्ग और फेन बहने लगे । उस समय नदियोंके तेजसे वृक्षोंके टूटनेका महा शब्द हुआ । थोड़ीही देरमें वायु वर्षा नदी और शब्द सब समाप्त हो गये, और सूर्य उदय होगया । हे जनमेजय ! तब वे सब लोग डकड़ें हुए और वायु धीरे चलने लगा । वीर पाण्डव लोग धीरे धीरे गन्धमादनकी ओर फिर चले ।

१४३ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज ! जब महात्मा पाण्डव लोग एक कोस चले तो पैरों चलनेमें अयोग्य पाञ्चालराजपुत्री तपस्विनी द्रौपदी अत्यन्त कोमला होनेके कारण नका उस वायु और वर्षाके दुःखसे अत्यन्त बच गई । उस समय वह कमलनैनी दुःखमें कापने लगी ।

और अपने सुन्दर हाथोंसे अपने जाघोंकी दबाने लगी। द्रौपदीने गजके सुण्डके समान दोनों जाघोंकी मिला दिया, अनन्तर केलेके मान कांपती हुई वृष्णीमें गिर पड़ी। उस सुन्दर स्वारविन्दवाली द्रौपदीको टूटी हुई लताके समान गिरते हुए देख बलवान नकुलने दीड़-र संभाला। नकुल बोले हे राजन् ! हे भारते ! हे कमलनैनी पाञ्चालराजपुत्री द्रौपदी अत्यन्त पृथ्वीमें गिरना चाहती है, आप इसकी खिये, हे महाराज ! यह कोमल चालवाली द्रौपदी इस दुःखके योग्य नहीं थी, अब अत्यन्त पक्क गई है, आप इसकी धीर्य दीजिये ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, नकुलके वचन सुन महाराज, भीमसेन और सहदेव वेगसे दाड़े। महाराजने द्रौपदीके सुखका रङ्ग बदला हुआ और उसको अत्यन्त दुःखिनी देख बहुत दुःख किया और उसको अपनी गोदमें बैठाकर राने लगे। राजा युधिष्ठिर बोले, हाय यह सुरक्षित स्थानोंमें उत्तम पलङ्ग पर सोनके और सुख करनके योग्य सुन्दर वर्णवाली द्रौपदी किस प्रकार पृथ्वीमें गिर गई ? इस सुख भोगने याग्य द्रौपदीके सुकुमार चरण और कमलके समान सुख मेरे दाँपसे काला हा गया है, सुभ निबुद्धिने जुवेमे मत्त होकर यह क्या काम किया, जा द्रौपदीका सङ्गले इस हार-पासे भर हुए जङ्गलको चला आया। महा-राज द्रुपदने यह समझा था, कि यह कमल-को, कल्याणो पाण्डवोंकी स्त्री हाकर सुख करेगी, परन्तु सुभ पापोंके कुकर्मोंसे आज जो द्रौपदी उन सब बातोंकी लजाकर और अत्यन्त पक्क कर पृथ्वीमें पड़ी सा रहो है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, जहा धर्मराज युधिष्ठिर इस प्रकार रा रहे थे, तहा धोम्य राजा सब ब्राह्मण लग आय, वे सब लोग महा-पाशान्वाद देकर और प्रशंसा करके पुमाने लगे और विघ्नके नाश करने-

वाले, अनेक मन्त्रोंको पढ़कर उत्तम क्रिया करने लगे। जब महा ऋषियोंने शान्तिके अर्थ वेदके मन्त्र पढ़े, पाण्डवोंने बार बार शीतल ठण्डे हाथोंसे छाया और ठण्डे पानीके सहित बहृत हवा करी, तब द्रौपदीको कुछ सुख प्राप्त हुआ और धीरे धीरे चैतन्य हो गई। अनन्तर पाण्डवोंने दोन तपस्विनीको उठाकर छगछाला पर लिटा दिया, और सब लोग चारो ओर बैठ गये। नकुल और सहदेव द्रौपदीके उत्तम लक्षणयुक्त लाल कमलवाली चरणोंको धनुषकी ठेठवाले हाथोंसे धीरे धीरे मलने लगे, और महाराज युधिष्ठिर उसकी समझाने लगे और भीमसेनसे ऐसा बोले, हे भीम ! हे महाबाहो ! अगाड़ीके बहृत पर्वत दुःखसे जाने योग्य और हिमसे भरे हुए हैं, उनमें द्रौपदी कैसे चल सकेगी ? भीमसेन बोले, हे राजेन्द्र ! आप कुछ शौच न कीजिये, मैं आपको द्रौपदीको नकुल और सहदेवकी अपनी पीठपर चढ़ाकर ले चलूंगा। हे पापरहित मेरा पुत्र घटोत्कच जो हिङ्गुवाके गर्भसे उत्पन्न हुआ है, वह मेरे समान बलवान महा वीर्यवान है, सो आपकी आज्ञासे हम सबको ले चल सकता है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महाराज ! धर्म-राज भीमसेनका वचन सुनकर उनका समादर करके बोले कि "ऐसाही होवे" तब धर्मराजकी आज्ञा मान भीमने अपने राक्षसपुत्र घटोत्कचका स्मरण किया, महात्मा घटोत्कच पिताके स्मरण करतही आपहुंचा और हाथ जोड़कर सब पाण्डवोंकी प्रणाम किया। महा-बाहु घटोत्कचने ब्राह्मणोंकी प्रणाम करके आशीर्वाद पाया। अनन्तर महापराक्रमी अपने पिता भीमसेनसे बोला, मैं आपकी आज्ञा-नुसार सेवा करनेको आया हूँ। हे महाबाहो ! आप हमको शीघ्र आज्ञा दीजिये, हम निःसन्देह सब कामोंकी करेंगे, भीमसेनने अपने राज-म

पुत्रके वचन सुन उसकी अपने-शरीरमें लपटा लिया ।

— १४४-अध्याय समाप्त । —

महाराज युधिष्ठिर बोले, हे भीम-यह राक्षसोंमें अष्टबलवान्, सत्यवादी, हमारा भक्त-घटोत्कच हमारा औरस पुत्र (अपने वीर्यसे उत्पन्न) है । अब यह हम लोगोंकी शीघ्र ले चले, हे भीम ! हे महापराक्रमी हम तुम्हारे बाहुबलसे रक्षित होकर सुखसे गन्धमादनकी चलेगें ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, पुरुषसिंह भीमने अपने भाईकी आज्ञा सुनकर शत्रुनाशन घटोत्कचकी आज्ञा दी । भीमसेन बोले, हे हिङ्गवानन्दन ! हे तात ! हे आकाशमें चलनेवाले ! देखो यह अपराजिता तुम्हारी माता अत्यन्त थक गई है, और तुम सुखसे दृष्टानुसार चल सकते हो, इस लिये तुम हम सब लोगोंकी कन्ध पर बिठाकर आकाश मार्गसे चलो, तुम्हारा कल्याण ही, तुम धीरे-धीरे चलना, जिसमें द्रौपदीकी दुःख न हो ।

घटोत्कच बोला, हम अकेलेही-महाराज, धीम्य, द्रौपदी, नकुल और सहदेवकी ले जा सकते हैं और जिस परभी आप हमारे सहायक हैं, तब क्या सोच है ? हे पापरहित ! हमारे संगके सैकड़ों शूरवीर लोग आकाशमें चलने और दृष्टानुसार रूप बनानेमें समर्थ हैं, वे हमारे संग सब ब्राह्मणोंकी ले चलेंगे । अनन्तर महावीर घटोत्कचने द्रौपदी और पाण्डवोंकी अपने कन्ध पर बिठाया और सबने ब्राह्मणोंकी अपने ऊपर चढ़ा लिया, महात्मा महतिजस्वी लीमश यागमार्गसे दूसरे-सूर्यके समान प्रकाशित होते हुए आपही आकाशमें चलने लगे । राक्षसराज घटोत्कचकी आज्ञासे और राक्षसोंने सब ब्राह्मणोंकी अपने कन्ध पर चढ़ा लिया, और सब लोग चल दिये । अनेक रमणीय वन

और वागीकी देखते हुए ये सब लोग बड़ा नारायणकी ओर चले । वे लोग अत्यन्त के चलने लगे । इन लिये पाण्डवोंकी दूसरा मार्गभी थोड़ा जान पड़ा । उन्होंने मा अनेक रत्नोंकी खान, राक्षसोंसे भरे हुए वे धातुओंसे-रङ्गे हुए पर्वत, किन्नर, वन विद्याधर, किंपुरुष और गन्धर्वोंसे भरे देशोंकी देखा ; उन्होंने वीर, चमरी, वन हरिन, सूअर, नीलगाय और भैंसोंसे भरे जङ्गलोंकी देखा, अनेक नदी, जल, आ प्रकारसे-हरिण, वन्दरोंसे शोभित वनकी दे मतवारे पक्षियोंके सहित अनेक वृक्षोंकी दे हुए अनेक देशोंकी नाघते हुए उत्तरके दे घूमते हुए बद्ध आश्चर्यवाले कैलासपर्वत देखा, उसी पर्वतके नीचे नर और नारायण आश्रमकी देखा । उस स्थानमें अनेक फले वृक्ष लगे थे, पाण्डव उस मनीहर सुन उत्तम कृपावाले परम शोभायुक्त स्थानकी दे कर बद्ध प्रसन्न हुए वह स्थान चिकने, कीम सुन्दर सुन्दर बड़ी बड़ी और जची शाखा शोभित, मोठे और तीव्र फलोंसे भरे हुए दि वृक्षोंसे शोभित महर्षिभुण्डसे सेवित म मतवारे पाक्षियोंके समूहोंसे पूजित था । देशमें कोई मच्छर-कसीका न हो, काटता और अनेक फल मूल तथा जुतरही घाससे पू था, जहा नित्यही गन्धर्व लोग निवास करते । जहां स्वभावसे समानभूमि, सुन्दर स्थान और हिमसे शीतल कण्टकराहित पृथ्वी थी, यहां सब पाण्डव लोग ब्राह्मणोंके सहित राक्षसों कन्धोंसे धीरे धीरे उतरे । हे राजन् ! अनन्त पाण्डवोंने अष्ट ब्राह्मणोंके सहित नर नारायण रमणीय आश्रमका देखा । वह स्थान अश्वका भूख, शीत गर्मी, दीप और शोकसे रक्षित वह स्थान परम पवित्र और-सूर्यकी किरणों भरा था । हे महाराज ! ब्राह्मणोंकी कल्याण युक्त और ब्रह्मर्षियोंसे सेवित था, उच्च स्थान

कोई भी पापी नहीं जा सकता । जहाँ अनेक बलि होम और दिव्य चन्दनादिकी सुगन्धि आ रही थी, जहाँ दिव्य फूल शोभायमान थे, जहाँ अनेक बड़ी बड़ी अमिश्रिता सुवा और वस्त्र विराजमान थे, जहाँ बड़े बड़े जनक कलश और अनेक यज्ञकी सामग्री रखी थी, जो स्वान सब पुरुषोंकी शरण देनेवालों, वेद शब्दसे पूरित, परम रमणीय, शकईका नोश करनेवालों शोभासे भरा वर्णन करनेके अयोग्य, देव समान फल मूल खानेवाले हरिणचर्मधारी महात्मा [श्व और आग्निके समान, तपसे आत्मदर्शी, ज्ञानके जाननेवाले, यज्ञ परायण, ब्रह्माके समान भागी, वेदवादी, ब्रह्म ऋषियोंसे शोभित ।] बुद्धिमान महाराज महा तेजस्वी पवित्र जा-युधिष्ठिरने सब ब्राह्मणोंकी पूजा करी जाके वासी दिव्य ज्ञानवाले ब्राह्मणोंने जव गाना कि महाराज युधिष्ठिर आये है, तब बहूत मन्त्रोंके सहित सब लोग उनके पास आये, आग्निके समान तेजस्वी महात्मा वेदपाठी लोग आश्रण लाग महाराजका प्रीतिके सहित शशोवाह देन लग, और पावत्र फल मूल और जलसे उनका सत्कार करने लगे, धर्मराज युधिष्ठिरने उनकी दो हुई पूजाका आनन्दके सहित ग्रहण किया । हे पापराहित । अनन्तर दि-वेदाङ्गके जाननेवाले सहस्रो ब्राह्मण द्रौपदी और अपने भाइयोंके सहित महाराजने उस द्रुके समान पावत्र दिव्य गन्धोंसे भरें हुए महाहर नारायणके आश्रममें प्रवेश किया । हा धर्ममात्मा युधिष्ठिरने देव ऋषियोंसे पूजित, गङ्गाके तटपर विराजमान नर और नारायणेश्वरके आश्रमको देखा । पुरुषसिंह पाण्डव भी उस आश्रमका देखकर बहूत प्रसन्न हुए, भीटे दिव्य फल और ब्रह्मर्षियोंकी देखा, पाण्डव लोग उस स्थानमें देखकर भी साजने उभी स्थानमें रहने और जगद्गुरु कोड़ा करने लगे । वहाँसे वे लोग

अनेक पक्षियोंसे युक्त सैनिके शिखरवाले मैनाक पर्वत और सुखदायक वृन्दसरको देखने लगे, उस मनोहर, सब समय फूलनेवाले पुष्पोंसे शोभित, फूल और फूलोने नीचे झरे वृक्षोंसे विराजमान सैहन्त्री कीर्लकोंके शब्दसे शोभित, चीकने पत्तोंवाले तथा शीतल छायावाले, मनोहर वृक्षोंसे विराजमान वनमें द्रौपदीके सहित विहार करने लगे, पाण्डव लोग विचित्र सुन्दर जलसे भरें हुए, उत्तम कमलोंसे सब और शोभित सुन्दर तलावोंको देखते हुए विहार करने लगे । हे राजन् । द्रौपदीके सहित पाण्डवोंकी प्रसन्न करनेके निमित्त सुगन्धवाला शीतल वायु चलने लगा । महात्मा पाण्डव लोग सबको पवित्र करनेवाली, शीतल, निर्मल कमलोंसे युक्त, माणरचित घाटवाली दानो और वृक्षोंसे शोभित, दिव्य फूलोंसे भरी हुई, मनकी प्रीतिकी बढानवाली गङ्गाकी वदारका-श्रमके नीचे देखने लगे । उस अत्यन्त दुःखसे जाने योग्य, देव ऋषियोंसे शोभित देशमें भांगी-रथीके पावत्र जलसे पाण्डव लोग पितराका तपण करन लगे । कुरुकुलात्यन्त कुर्तानन्दन पाण्डव लोगोंने अत्यन्त पवित्र हाकर उस स्थानमें देवता और ऋषियोंका तर्पण किया और वेदमन्त्रोंका जपा । पुरुषसिंह वीर महा तेजस्वी पाण्डवलाग द्रौपदी और ब्रह्मणोंके सहित उस स्थानमें विहार करन लगे ।

१४५ अश्वत्थसमाप्त ।

श्रीवशम्पायन सुान बोलें, पुरुषसिंह वीर पाण्डवलाग उस स्थानमें अत्यन्त पावत्र हाकर अर्जुनके देखनेकी इच्छासे क्रांतिन रहे । एक दिन पूर्व और उत्तरका वायु बहने लगा । तब इच्छानुसार एक सहस्र दलका कमल वायुमें उड़ता हुआ वहाँ पहुँचा । उस सुन्दर आग दिव्य गन्धयुक्त पवित्र कमलका वायुमें उड़ा हुआ और पृथ्वीमें पड़ा हुआ द्रौपदाने देखा,

सुन्दर सुगन्धयुक्त सुन्दर कमलकी सुन्दरी द्रौपदीने देखकर बहूत प्रसन्नतासे भीमसेनसे कहा । हे भीम ! इस उत्तम हमारे प्यारे दिव्य, गन्धयुक्त कमलकी तुम देखो । हे शत्रुनाशन ! मैं यह कमल धर्मराजकी देना चाहती हूँ । तुम हमारी प्रसन्नताके निमित्त इसकी ले आओ । हम लोग आश्रममें ले जायेंगे । हे कुन्तीनन्दन ! यदि मैं तुम्हारी प्यारी हूँ, तो तुम ऐसे बहूतसे कमल सुभकी ला दो, मैं इन सबको अपने आश्रम काम्यक बनकी ले जाऊँगी । सुन्दर कटाक्षवाली अनिन्दिता द्रौपदी ऐसी कह उस कमलकी लेकर महाराजके पास चली गई, पुरुषसिंह भीमसेन अपनी प्यारी रानीका अभिप्राय जान जिधरसे वायु आता था, उधरहीकी चले, उन्होंने यह विचार किया कि जिधरसे वायु आता है, उधरही यह कमल होगा । भीमसेन फूल लेनेकी इच्छासे शीघ्रता सहित चलने लगे, उन्होंने सोनेकी पीठवाली धनुष और सर्पके समान विषभरे बाण लिये, सिंहके समान क्रोधमें भरकर वहाँसे मतवाली हाथीके समान चले । उस महा धनुषधारी और महाबाणवाले भीमकी सब प्राणी देखने लगे । न उन्हें थकाई, न ग्लानि, न भय और न कुछ सन्देह होता था । कभी कभी शीतल वायुभी उनकी सेवा करने लगा । बाहुबलसे भरे हुए द्रौपदीका प्रिय चाहनेवाले, शोक और भयसे रहित बलवान भीम चलते चलते एक पर्वतके ऊपर पहुँचे । वहाँ न्यायशील भीमसेनने नीली शिलावाले अनेक वृक्ष लता और गुच्छोंसे शोभित पर्वतकी देखा, वहाँ अनेक किन्नर लोग निवास करते थे । जहाँ अनेक धातुओंसे रड़े हुए उत्तम उत्तम वृक्ष लगे थे, उस पर्वतका नाम गन्धमादन था, वह सर्वत्र रमणीय होनेसे ऐसा सुन्दर जान पड़ता था, मानो सब भूषणोंके सहित यह पृथ्वीका हाथ ऊपरकी जाता है, अनन्तपराक्रमी

भीम उन सब चीजोंकी देखते और अभिप्रायोंकी हृदयमें विचारते कीयल और भीरोवं शब्दकी सुनते सब ऋतुमें फूलनेवाले फूलोंके सुगन्धिको सुँघते उसकी शोभामें आँख, काँ और मनको लगाये मतवाँरे हाथीके समान झूमते हुए चलने लगे । तब अनेक पक्षि फूलोंकी गन्धोंकी लेकर गन्धमादनकी शीतल वायु उनकी सेवा करने लगा, उससे उनका सब परिश्रम दूर हुआ और सब रीतें खूब होगये । महापराक्रमी भीमने गन्धर्व, यक्ष, देवता और ब्रह्मर्षियोंसे सेवित गन्धमादन पर्वतकी देखा, वहाँसे भी शत्रुनाशन भीम फूल लेनेकी आगे चले । वहाँसे आगे चलकर भीमने अनेक धातुओंकी रेखाओंसे शोभित सोने और चादियोंके रङ्गवाले शिखरोंकी ऐसा देखा, मानो यह सब पर्वतकी अगुली लगी है । उस पर्वत पर अनेक वृक्ष शाश्वत थे, नीचे भागमें जो बादल आते जाते थे, उससे ऐसा जान पड़ता था, मानो यह पर्वत पख लगाए नाच रहा है । उसमें जा झरनोंके पानीके कणका लग गये थे, उससे उनकी शोभा ऐसी जान पड़ती थी, मानो अनेक मोतियोंके हार लटक रहे हैं, उसमें अनेक गुहा और सुन्दर झरन शाश्वतमान थे, अनेक नाचते हुए झरने अस्सराओंके पायजंबका शब्द और नाचते हुए सारोंकी ध्वनि आनन्द बढ़ा रही थी, जिसकी शिला दिग्गजोंके दाँत घिसनेसे फट गई थीं, वहाँ जा नदियोंके जल बह रहे थे, उससे ऐसा जान पड़ता था, मानो यह इस पहाड़का दुपट्टा नीचे गिर गया है, चारों ओर सावधान उत्तम अन्न सुखसे खड़े थे, उस पहाड़के हरिन निर्भय होकर भीमसेनका तमाशा देखने लगे । उस पहाड़के अनेक कुञ्ज भीमके वेगसे चलायमान होगये । भीमसेन भी प्रसन्न होकर वहाँ आनन्द करने लगे । युवा सिंहकी मारनेमें समर्थ सुन्दरबाली सोनेके समान रङ्गवाले विशाल देव मतवाँरे

हाथीके समान बलवान, मतवारे हाथीके समान वेगवान, मतवाले हाथीके समान लाल नेत्रवाले और अपने बलसे मतवारे हाथीको रोकनेवाले भीमसेन उस पहाड़ पर वेगसे चलने लगे । उस स्थानमें भीमसेनकी पतिके सहित एकाग्र बैठी हुई अदृश्य यक्ष और गन्धर्वोंकी स्त्री देखने लगीं । पाण्डुनन्दनको देख वह लोग कहने लगीं, क्या यह साक्षात् रूपका अवतार है ? इस प्रकार दृष्टाधनके दिये हुए अनेक दुःखोंको चरण करते हुए, और वनवासमें द्रौपदीके प्रियकार्यको निश्चय करते हुए, रमणीय गन्धमादन पर्वत पर भीमसेन विहार करने लगे, एक समय उन्होंने विचारा कि अर्जुन स्वर्गको गये है, और मैं फल लेनेको इधर आया हूँ, इस समय महाराज युधिष्ठिर क्या करेंगे, निश्चय पुरुषोंमें यह महाराज प्रेम और थोड़ा बल होनेके कारण नकुल और सहदेवकी न छोड़ेंगे । हमको किस प्रकार यह फूल शीघ्र मिलेगा ? पुरुषसिंह भीमसेन ऐसा विचारकर गरुड़के समान वेगसे चलने लगे । उनकी दृष्टि और मन पर्वतके फूलोंमें लगे रहे, द्रौपदीके वचन-ग्रहण करके अपने चरणोंसे पृथ्वीकी कंपाते हुए अनेक हाथियोंके भुण्डोंकी वायुके समान वेगसे उड़ाते हुए, महाबलसे सिंह व्याघ्र और हरिणोंकी मारते हुए, अनेक वृक्षोंकी तोड़ते और चीरते हुए वेगसे लता और बल्लिरियोंकी खींचते हुए मतवारे हाथीके समान एकसे दूसरे और दूसरेसे तीसरे पर्वतों पर जाने लगे । जैसे बिजलीके सहित मेघ गरजता ही, वैसेही भीम भी वज्रत गर्जते हुए चलने लगे । उस शब्दसे जाग करके बड़े बड़े सिंह और भैंसे जमुहाते हुए पहाड़ोंको छोड़ छोड़ भागने लगे । उस शब्दसे डरकर अनेक मतवाले हाथी हथिनियोंके सहित उस वनका छोड़ दूसरे वनोंको जाने लगे । उस शब्दको सुनकर सूअर, हरिण, भैंसे, व्याघ्र, कछुआ, नीलगाय तथा और भी वनमें रहने

वाले जन्तुओंके भुण्ड घोर शब्द करने लगे । चकवा चकवी, मोर चकीर, हंस, जलसुरग, तोते, कोकिल और सारस चेतनारहित होकर इधर उधरकी भागने लगे । बड़तेरे सिंह, व्याघ्र, हाथी और हथिनी मदसे भरकर भीमकी ओर दौड़े ; उनकी भीमने वाणोंसे मारा । वाणोंके लगनेसे वे सब भयसे व्याकुल होकर विष्ठा और मूत्र परित्याग करने लगे, और मुंह फैलाकर घोर शब्द करने लगे । तब श्रीमान भीमसेनने क्रोध और बलसे भरकर हाथीसे हाथी और सिंहसे सिंहकी लड़ाना आरम्भ किया । बलवान पाण्डुनन्दनने अनेक जन्तुओंको तमाचोंसे मार डाला । सिंह, व्याघ्र और रीछ भीमसेनसे पीड़ित और भयसे व्याकुल होकर उनकी छोड़कर भागने लगे और विष्ठा मूत्र परित्याग करने लगे । उन सबको छोड़कर श्रीमान महाबली पाण्डुनन्दन अपने शब्दसे दिशाओंकी पूर्ण करते हुए ए वनमें पड़ गये । महाबाहु भीमसेनने उस गन्धमादनके वनमें एक रमणीय बृहत योजन तः विस्तृत केलिके वनकी देखा । महाबलवान भीमसेन उस वनके जन्तुओंकी घबराते हुए उस वनमें घुस गये । महाबलवान भीमसेन वृक्षोंकी तोड़ते हुए इस प्रकार चले, जैसे मतवाला हाथी चलता है । उनके चलनेसे तोड़के समान अनेक केलिके वृक्ष टूट टूट का गिरने लगे । वृक्षसिंहके समान अभिमानी महा तेजस्वी बली भीमसेन वेगसे उन सब वृक्षोंके इधर उधर फेंकने और घोर शब्द करने लगे अनन्तर बड़े बड़े जड़ली जन्तु उस वनसे निकल कर भागने लगे । भैंसे, हरिन, वन्दर, और सिंह वहाँसे भाग भाग कर तालावोंमें घुसने लगे । उन सबके और भीमसेनके घोर शब्दसे वनके रहनेवाले हरिन और पक्षी व्याकुल हो गये । उस हरिन और पक्षियोंके शब्द को सुनकर जलमें रहनेवाले अनेक पक्षी भीगी पंजोमें

सुन्दर सुगन्धयुक्त सुन्दर कमलकी सुन्दरी द्रौपदीने देखकर बहृत प्रसन्नतासे भीमसेनसे कहा । हे भीम ! इस उत्तम हमारे प्यारे दिव्य गन्धयुक्त कमलकी तुम देखी । हे शत्रुनाशन ! मैं यह कमल धर्मराजकी देना चाहती हूँ । तुम हमारी प्रसन्नताके निमित्त इसकी ले आओ । हम लोग आश्रममें ले जायेंगे । हे कुन्तीनन्दन ! यदि मैं तुम्हारी प्यारी हूँ, तो तुम ऐसे बहृतसे कमल सुभकी ला दो, मैं इन सबको अपने आश्रम काम्यक बनकी ले जाऊंगी । सुन्दर कटाक्षवाली अनिन्दिता द्रौपदी, ऐसे कह उस कमलकी लेकर महाराजके पास चली गई, पुरुषसिंह भीमसेन अपनी प्यारी रानीका अभिप्राय जान जिधरसे वायु आता था, उधरहीकी चले, उन्होंने यह विचारा कि जिधरसे वायु आता है, उधरही यह कमल होगा । भीमसेन फूल लेनेकी इच्छासे शीघ्रता सहित चलने लगे, उन्होंने सोनेकी पीठवाली धनुष और सर्पके समान विषभरे बाण लिये, सिंहके समान क्रोधमें भरकर वहासे मतवाले हाथीके समान चले । उस महा धनुषधारी और महाबाणवाले भीमकी सब प्राणी देखने लगे । न उन्हें थकाई, न ग्लानि, न भय और न कुछ सन्देह होता था । कभी कभी शीतल वायुभी उनकी सेवा करने लगा । बाहुबलसे भरे हुए द्रौपदीका प्रिय चाहनेवाले, शोक और भयसे रहित बलवान भीम चलते चलते एक पर्वतकी ऊपर पहुँचे । वहा न्यायशील भीमसेनने नीली शिलावाले अनेक वृक्ष लता और गुच्छोसे शोभित पर्वतकी देखा, वहाँ अनेक किन्नर लोग निवास करते थे । जहा अनेक धातुओंसे रड़े हुए उत्तम उनम वृक्ष लगे थे, उस पर्वतका नाम गन्धमादन था, वह सर्वत्र रमणीय होनेसे ऐसा सुन्दर जान पड़ा था, मानो सब भूषणोंके सङ्घित यह पर्वत ऊपरकी जाता है, अनन्तपराक्रमी

भीम उन सब चीजोंकी देखते और अभिप्रायोंकी हृदयमें विचारते कोयल और भौरीके शब्दकी सुनते सब ऋतुमें फूलनेवाले फूलान्नी सुगन्धिकी सुघते उसकी शोभामें आँखें का और मनको लगाये मतवाले हाथीके सम झूमते हुए चलने लगे । तब अनेक पवि फूलोंकी गन्धोंकी लेकर गन्धमादनकी शीत वायु उनकी सेवा करने लगा, उससे उन सब परिश्रम दूर हुआ और सब रीवें ख होगये । महापराक्रमी भीमने गन्धर्व, यक्ष, देवता और ब्रह्मर्षियोंसे सेवित गन्धमादन पर्वतकी देखा, वहाँसे भी शत्रुनाशन भीम फूलनेकी आगे चले । वहासे आगे चलकर भीमने अनेक धातुओंकी रेखाओंसे शोभित सी और चादियोंके रङ्गवाले शिखरोंकी ऐसा देखा मानो यह सब पर्वतकी अगुली लगी है । उस पर्वत पर अनेक वृक्ष शाश्वत थे, नीचे भाग जो बादल आते जाते थे, उससे ऐसा जान पड़ता था, मानो यह पर्वत पर ख लगाए नाच रहा है उसमें जा झरनेके पानीके कणका लग गये थे उससे उनकी शोभा ऐसी जान पड़ती थी, मानो अनेक मोतियोंके हार लटक रहे हैं, उसमें अनेक गुहा और सुन्दर झरन शोभायमान थे, अनेक नाचते हुए मारीकी ध्वनि आनन्द शब्द और नाचते हुए मारीकी ध्वनि आनन्द बढ़ा रहो थी, जिसकी शिला दिग्गजोंके दाँत घिसनेसे फट गई थीं, वहा जा नदियोंके जल बह रहे थे, उससे ऐसा जान पड़ता था, मानो यह इस पहाड़का दुपट्टा नीचे गिर गया है, चारों ओर सावधान उत्तम अन्न सुखसे खड़े थे, उस पहाड़के हरिन निर्भय होकर भीमसेनका तमाशा देखने लगे । उस पहाड़के अनेक कुञ्ज भीमके वेगसे चलायमान होगये । भीम भीमसेन भी प्रसन्न होकर वहा आनन्द करने लगे । युवा सिंहकी मारनेमें समर्थ सुन्दरवाली सोनेके समान रङ्गवाले विंगल देव प्रसन्न

हाथीके समान बलवान, मतवारे हाथीके समान
 वेगवान, मतवाले हाथीके समान लाल नेत्रवाले
 और अपने बलसे मतवारे हाथीको रोकनेवाले
 भीमसेन उस पहाड़ पर वेगसे चलने लगे । उस
 स्थानमें भीमसेनकी पतिके सहित एकाग्र बैठी
 हुई अदृश्य यक्ष और गन्धर्वोंकी स्त्री देखने
 लगी । पाण्डुनन्दनकी देख वह लोग कहने
 लगीं, क्या यह साक्षित रूपका अवतार है ?
 इस प्रकार दूर्योधनके दिये हुए अनेक दुःखोंकी
 करण करते हुए, और वनवासमें द्रौपदीके
 प्रियकार्यका निश्चय करते हुए, रमणीय गन्ध-
 मादन पर्वत पर भीमसेन विहार करने लगे, एक
 समय उन्होंने विचारा कि अर्जुन स्वर्गको गये है,
 और मैं फल लेनेको इधर आया हूँ, इस समय
 महाराज युधिष्ठिर क्या करेंगे, निश्चय पुरुषोंमें
 येष्ठ महाराज प्रेम और थोड़ा बल होनेके
 कारण नकुल और सहदेवकी न छोड़ेंगे ।
 हमको किस प्रकार यह फूल शीघ्र मिलेगा ?
 पुरुषसिंह भीमसेन ऐसा विचारकर गरुड़के
 समान वेगसे चलने लगे । उनकी दृष्टि और
 मन पर्वतके फलोंमें लगे रहे, द्रौपदीके वचन-
 ग्रहण करके अपने चरणोंसे पृथ्वीको कंपाते हुए
 अनेक हाथियोंके झुण्डोंकी वायुके समान वेगसे
 उड़ते हुए, महाबलसे सिंह व्याघ्र और हरिणोंको
 मारते हुए, अनेक वृक्षोंकी तोड़ते और चीरते
 हुए वेगसे लंता और बल्लिरियोंकी खींचते
 हुए मतवारे हाथीके समान एकसे दूसरे और
 दूसरे तीसरे पर्वतों पर जाने लगे । जैसे
 जलीके सहित मेष गरजता हो, वैसेही भीम
 वृक्ष गलिते हुए चलने लगे । उस शब्दसे
 करके बड़े बड़े सिंह और भैंसे जमुहाते हुए
 शायोंकी छोड़ छोड़ भागने लगे । उस शब्दसे
 अनेक मतवाले हाथी हथिनियोंके सहित
 वनका छोड़ दूसरे वनोंकी जाने लगे । उस
 शब्दकी सुनकर सुभर, हरिण, भैंसे, व्याघ्र,
 शेर, नीलगाय तथा और भी वनमें रहने

वाले जन्तुओंकी झुण्ड घोर शब्द करने लगे ।
 चकवा चकवी, मोर चकीर, हंस, जलमुरग,
 तोते, कीकिल और सारस चेतनारहित
 होकर इधर उधरकी भागने लगे । बड़तेरे
 सिंह, व्याघ्र, हाथी और हथिनी मदसे भरकर
 भीमकी ओर दौड़े ; उनको भीमने वाणोंसे
 मारा । वाणोंके लगनेसे वे सब भयसे व्याकुल
 होकर विष्ठा और मूत्र परित्याग करने लगे,
 और मुह फौलाकर घोर शब्द करने लगे । तब
 श्रीमान भीमसेनने क्रोध और बलसे भरकर
 हाथीसे हाथी और सिंहसे सिंहकी लड़ाना
 आरम्भ किया । बलवान पाण्डुनन्दनने अनेक
 जन्तुओंको तमाचोंसे मार डाला । सिंह, व्याघ्र
 और रीछ भीमसेनसे पीड़ित और भयसे
 व्याकुल होकर उनकी छोड़कर भागने लगे
 और विष्ठा मूत्र परित्याग करने लगे । उन
 सबको छोड़कर श्रीमान महाबली पाण्डुनन्दन
 अपने शब्दसे दिशाओंकी पूर्ण करते हुए एक
 वनमें पहुँचे । महाबाहु भीमसेनने उस गन्ध-
 मादनके वनमें एक रमणीय वृक्षत योजन तक
 विस्तृत केलिके वनकी देखा । महाबलवान
 भीमसेन उस वनके जन्तुओंकी घबराते हुए,
 उस वनमें घुस गये । महाबलवान भीमसेन
 वृक्षोंकी ताड़ते हुए इस प्रकार चले, जैसे
 मतवाला हाथी चलता है । उनके चलनेसे
 ताड़के समान अनेक केलिके वृक्ष टूट टूट कर
 गिरने लगे । नृसिंहके समान अभिमानी महा-
 तेजस्वी बली भीमसेन वेगसे उन सब वृक्षोंकी
 इधर उधर फेंकने और घोर शब्द करने लगे ।
 अनन्तर बड़े बड़े जङ्गली जन्तु उस वनसे निकल
 कर भागने लगे । भैंसे, हरिन, वन्दर, और
 सिंह वहाँसे भाग भाग कर तालावोंमें घुसने
 लगे । उन सबके और भीमसेनके घोर शब्दसे
 वनके रहनेवाले हरिन और पक्षी व्याकुल हो
 गये । उस हरिन और पक्षियोंके शब्द की
 सुनकर जलमें रहनेवाले अनेक पक्षी भीम पंक्तोंमें

उड़ने लगी। भरतकुलमिंह भीम उन जलके पक्षियोंको देख उनहीके पीछे चले, और थोड़ी-दूर जाकर एक सुन्दर और बहत बड़े तालाब पर पहुँचे। उस तालाबके चारों ओर सोनेके रङ्गवाले कैलेके वृक्ष लगे थे; वे जब वायुसे हिलते थे, तब ऐसा जान पड़ता था, मानों ये सब इस तालाबके पंखे हैं, और इसकी सेवा करते हैं। महाबलवान भीमसेन इस अनेक कमलभरे तडागको शीघ्रही पार होकर जंजीररहित मतवाले हाथीके समान क्रीड़ा करने लगे। महातेजस्वी भीम कुछ देर उस तालाबमें क्रीड़ा करके फिर वेगसे अनेक वृक्षोंमें भरे हुए वनकी ओर चले, अगाड़ी जाकर बहत बलसे अपने शंखको बजाया और उस शब्द और भीमसेनके घोर शब्द तथा तालकी ध्वनिसे पर्वतकी गुफा-गुझार हो उठी। उस वज्रके समान घोर शब्द सुनकर पर्वतकी गुफाओं में सोये हुए सिंह उठे और घोर शब्द करने लगे। हे जम्बेजय! सिंहोंके शब्दको सुनकर हाथी डरसे व्याकुल होगये, और शब्द करने लगे। इन शब्दोंसे पर्वत पूरित होगया; उस हाथियोंके शब्दको सुनकर और अपने भाई भीमसेनको आता जान, महाकपीश्वर हनुमानने विचारा, कि भीम स्वर्गको न चले जाय; इसलिये स्वर्गके मार्गको अपनी पंखसे रोककर बैठ रहे। कैलेके वृक्षोंसे पूरित मार्गको अपने भाईकी रक्षाके निमित्त रोक और आपसी वहीं बैठ कर विचार करने लगे, कि भीम इस ओर न आवें और यदि आवें भी तो शपथ अथवा वर्षणा प्राप्त हों। ऐसा विचारकर महाबाहू हनुमानने जमुहाई ली, और उमी कैलेके वनमें सी रक्ते। हनुमानकी जमुहाईका ऐसा शब्द हुआ, जैसे कहीं विजुली गिरती है। पश्चात् उन्होंने वज्रके समान अपनी पंखों फटकाया। उस पंखके शब्दसे पर्वतकी ओर वज्रके समान घोर शब्दने पर्वत

हिलने लगे, और अनेक शिखर टूट टूट कर पृथ्वी पर गिरने लगे। उस पंखके शब्दसे मतवाले हाथियोंका शब्द मन्द होगया। यह घोर शब्द समस्त वन और पर्वतोंमें फैल गया। उसको सुनतेही भीमसेन के सब रीवें खड़े होगये और उसकी ठूढ़नेकी प्रसन्नचित्त भीमसेन उस कैलेके वनमें घूमने लगे। अनन्तर महाबाहू भीमसेनने उस वनके बीचमें एक भारी शिलापर सोते हुए वानरराज हनुमानको देखा। उनका तेज, रङ्ग, शब्द और चञ्चलता विजुलीके समान थी, वे कन्धके ऊपर सिर धर सोते थे, उनके सिरके बाल बहत कठिने होते थे, कन्धा और शरीर अत्यन्त मोटा होनेके कारण कमर बहत पतली थी, बड़े बड़े रीवोंसे भरी हुई पंख जो उनके सिर से जंची खड़ी थी, वह ध्वजाके समान जान पड़ती थी, उनके ओठ बहत पतले तथा जिह्वा और मुखका रङ्ग लाल था, भौंह चलायमान दांत और दाढ़ निकली हुए और अगाड़ीसे तेज तथा मुखके भीतरके सफेद दांतोंसे उनका मुख किरण सहित चन्द्रमाके समान विराजमान था; वालों सहित गला ऐसा दिखाई देता था मानो फूला हुआ अशोक वृक्ष है। उस सोनेके कदली वनमें महातेजस्वी हनुमान अपने तेजसे प्रकाशमान होते हुए, ज्वालाके सहित अग्निके समान विराजमान थे। वह पिङ्गल वर्णवाने नेत्रोंसे शत्रुनाशन भीमकी ओर देख रहे थे। उस महाघोर वनमें बुद्धिमान महाबाहू भीमसेनने भारी शरीरवाने वानरोंमें अष्ट हनुमानकी स्वर्गका मार्ग रोकते हुए हिमाचलके समान देखा। उनकी देख महाबलवान भीमसेन भय-रहित होकर उनके समोप पहुँचे और वज्रके समान घोर शब्दसे गर्ज्ज। उस शब्दको सुन कर हस्तिन और पक्षी भयने व्याकुल हो गये। महासाहसी हनुमानने भी अपने पिङ्गल वर्णके नेत्रोंका कुछ खोलकर भीमकी ओर

देखा और निरादरके सहित कहने लगे । हनुमान बोले, मैं रोगसे पीड़ित होकर सुखसे सो रहा था, तुमने मुझे क्यों जगा दिया ? तुम जाननेवाले हो, इसलिये तुम्हें जन्तुओं पर दया करना उचित है, तीर्थक्षेत्रों में उत्पन्न हुए प्राणी धर्मको नहीं जानते, परन्तु मनुष्य लोग बुद्धिमान होते हैं, इसी लिये वे लोग जन्तुओं पर दया करते हैं, तुम्हारे समान बुद्धिमान लोग मन वचन और कर्मसे निन्दित तथा धर्मनाशक कार्यों में कैसे प्रवृत्त हो सकते हैं ? जान पड़ता है, कि तुम धर्मको नहीं जानते हो, तुमने पण्डितों की सेवा नहीं की, तुम मूर्ख और मन्दबुद्धि हो, इसीसे वनके जन्तुओंको दुःख देते फिरते हो, कहो तुम कौन और किस लिये इस मनुष्यरहित घोर वनमें आये हो ? हे पुरुषसिंह ! कहो अब कहा जाना चाहते हो ? यह पर्वत जानेके योग्य नहीं है, यह स्वर्गका मार्ग है, इसमें कोई पुरुष बिना सिद्धगतिके नहीं जा सकता है, हे समर्थवीर ! हम कृपा करके तुमको आगे जानेसे रोकते हैं, तुम हमारे वचनको सुनो और धैर्य धरो, तुम यहाँसे आगे किसी प्रकार नहीं जा सकते हो । हे पुरुषसिंह ! हम तुमको स्वागत करते हैं, यह अमृतके समान फल और मूल खाओ, सब अगाड़ीको मत जाओ, नहीं तो वृथा ही प्राण नाश होजायगा । हे नरश्रेष्ठ ! हमारे सहितकर वचनको तुम ग्रहण करो ।

१४६ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले बुद्धिमान वानर-
ज हनुमानके वचन सुनकर, शत्रुनाशन
भीमसेन कहने लगे । भीम बोले
कौन और किस लिये बन्दरका वेष बनाये
हैं ? हम ब्राह्मणोंसे नीचे क्षत्रिय
हम बन्दरकी कौरवकुलमें क्षत्रियोंकी गर्भसे
जायके वीर्यसे उत्पन्न हुए हैं, वायुपुत्र

तथा भीमसेन नामसे प्रसिद्ध हैं । कुरुकुलवीर
भीमके वचन सुन हंसकर हनुमान कहने लगे ।
हनुमान बोले हम बन्दर हैं, तुमको इच्छा-
नुसार मार्ग नहीं देंगे, तुम यहींसे लौट जाओ
नहीं तो हमारा तुम्हारा विरोध हो जायगा ।

भीमसेन बोले, हे वानर ! चाहे विरोध
हो वा मैत्री हो सो हम तुमसे कुछ नहीं
पूछते हैं, तुम हमको मार्ग दो नहीं तो
हमसे दुःख पाओगे ।

हनुमानजी बोले, हम रोगसे अत्यन्त
पीड़ित हैं, इसलिये नहीं उठ सकते, यदि
तुमको अवश्य जाना है, हमको लांघकर
चले जाओ ।

भीमसेन बोले, निर्गुण परमात्मा सब ज्ञानोंके
जाननेवाले परमेश्वर शरीरमें वास करते हैं,
हम उनका निरादर करके तुमको लांघ नहीं
सकते, यदि हम प्रमाणांसे उस भूतभावन पर-
मेश्वरको न जानते होते, तो तुमको और इस
पर्वतको ऐसे लांघ जाते, जैसे हनुमानने समु-
द्रको लांघा था ।

हनुमान बोले, हे नरश्रेष्ठ ! हम आपसे
पूछते हैं कि जिसने समुद्रको लांघा था, वह
हनुमान कौन हैं ? यदि आपको समय हो
तो कहो ।

भीमसेन बोले, हमारे भाई रामायनमें
विख्यात श्रीमान् वानरोंके राजा बुद्धि और
साहससे भरे हुए प्रशंसनीय गुणोंसे युक्त हनुमान
हमारे भाई हैं, उन्होंने रामकी स्त्री सीताके
निमित्त चारसौ कोसके चौड़े समुद्रको एक
तलाइमें लांघा था, वे मज्जातेजस्वी वानरराज
हमारे भाई हैं ; हम तेज, पराक्रम और
बलमें उनहीके समान हैं, इसी लिये तुमको
युद्धमें जीत सकते हैं, तुम हमारी आज्ञासे
हट जाओ, हमको मार्ग दो या हमारा परा-
क्रम देखो । यदि तुम हमारी आज्ञाकी न
मानोगे तो हम तुमको अभी मार डालेंगे ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, भीमसेनकी बल और वीर्यसे अत्यन्त उत्पन्न देख हृदयमें हंसकर हनुमान कहने लगे, हे पापरहित । आप प्रसन्न हजिये, हमकी पूंछ उठानेकी शक्ति नहीं है, इस लिये मेरे ऊपर कृपा करके पूंछ हटाकर आप चले जाइये । श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, बल अभिमानसे भरे हुए भीमसेनने हनुमानकी हीनबल और हीन-पराक्रम जाना और अपने मनमें बिचारा, इस क्षुद्रबलवाले, बन्दरकी पूंछ पकड़कर अभी यसके घरमें पड़ंचा दूंगा । महाकपि हनुमानकी पूंछको हंसकर अभिमानके सहित बायें हाथसे उठाने लगे, परन्तु उसे हिला भी न सके । अनन्तर महाबलवान भीमसेनने दोनों हाथोंसे इन्द्रायुधके समान पूंछको उठाना चाहा, परन्तु न उठा सके, बल्लत बल करनेसे भीमसेनकी आंखें और मुंह फैल गये, भौंह फटने लगीं, परन्तु हनुमान की पूंछ न उठी । श्रीमान् भीमसेनने बल्लत यत्न किया तोभी न उठा सके । तब लज्जासे नीचे मुख करके हनुमानके पास खड़े होगये, और हाथ जोड़ प्रणाम कर कहने लगे, कि हे कपिशार्दूल । आप प्रसन्न होइये, हमारी कुवाणियोंकी क्षमा कीजिये, यदि हमसे छिपाने योग्य नहीं और हम सुनते योग्य हों, तो आप कहिये आप सिद्ध हैं ? या देवता हैं ? अथवा गन्धर्व हैं ? यद्वा गुह्यक हैं ? आपने यह वानरका रूप क्यों धारण किया है ? हे पापरहित । हम शिष्यके समान आपके शरणागत हैं ।

श्रीहनुमानजी बोले, हे शत्रुनाशन । हमारे जाननेकी जो आप इच्छा करते हैं, सो हम भव कहते हैं, आप सुनिये । हे कामननयन । हम केशरीवानरकी स्त्रीके गर्भसे जगत्के आयु वायुके वीर्यसे उत्पन्न हुए हैं, हमारा नाम हनुमान वानर है, सूर्यके पुत्र सुग्रीव और पुत्र वालि थे, वे दोनों सब वानरोंके राजा

थे, वानरोंके यूथपाल इन दोनोंकी और मेरी सेवा करते थे, हे शत्रुनाशन । ये सब महा पराक्रमी थे, हमारा और सुग्रीवका ऐसा प्रेम था जैसा अग्नि और वायुका है, राजा वालि किसी कारणसे सुग्रीवसे अप्रसन्न होगये, तब सुग्रीवने बल्लत दिनतक मेरे सहित ऋष्यमूक पर्वत पर निवास किया, उसी समय विष्णुके अवतार दशरथके पुत्र महावीर महापराक्रमी रामचन्द्र पृथ्वीमें घूम रहे थे । धनुषधारियोंमें ये ठ राम अपने पिताका प्रिय काम करनेसी इच्छासे स्त्री, भाई और धनुषके सहित दण्डकारणसे रहते थे, जनस्थानसे उनको स्त्रीको छल और बलसे राजसराज दुरात्मा बलवान रावण चुरा कर ले गया । हे पापरहित । उस समय सुवर्ण और रत्नोंके हरिणका रूप बना कर मारोचने पुरुष-सिंह रामको छल लिया था ।

१४७ अध्याय समाप्त ।

श्रीहनुमानजी बोले, जब रामकी स्त्री चुराई गई, तब वे उसकी दृढ़ने हुए ऋष्यमूक पर पड़ंचे, वहां एक शिखर पर बैठे हुए वानरसिंह सुग्रीवको देखा, अनन्तर महात्मा रघुवण्णराम और सुग्रीवका प्रेम होगया, उन्होंने वालिको मारकर सुग्रीवको राज्य दिया । सुग्रीवने राजा होकर सैकड़ों सन्नद्धों वानर सीताके दृढ़नेकी भेजा, हे महावाही । हे पुरुषसिंह । मैं भी उसी समय करोड़ों वानरोंके सहित सीताके दृढ़नेकी दक्षिणकी ओर गया, तब महात्मा सम्पाति नामक वृद्ध गिदने कहा कि सीता लङ्गामें है, तब मैं उत्तम कार्य करनेगाली रामचन्द्रका कार्य करनेकी सी योजनके चौद सप्तको लांघ गया । हे भरतकुलयेष्ट । तब मैंने अपने पराक्रमसे मकरोंके स्थान समुद्रको पार होकर देवतोंकी पत्नीके समान उनवराज पत्नी सीताको लङ्गामें देखा । मैं रामकी प्यारी विदेहराज-नन्दिनी दिव्य रूपवाली सीता मैं

मिल कर अटारी महल और फाटकोंके सहित लड़ाको जलाकर और वहां रामका नाम सुनाकर पुनः लौट आया। कमलनेत्र रामने मेरे वचन पर विश्वास करके अत्यन्त बुद्धिसे समुद्रका पुल बांधा और करोड़ों बानरोंको सग लेकर समुद्र के पार गये, फिर अपने पराक्रमसे सब राक्षसोंका नाशकर युद्धमें लोकोंके दुःख देनेवाले राक्षसोंके राजा रावणको भाई, पुत्र और बान्धवोंके सहित मार डाला, फिर लड़ामें राक्षसराज विभीषणको राजा बनाया, विभीषण धार्मिक भक्त और अपने दासोंके ऊपर कृपा करनेवाले थे। तब रामने नष्ट वेदकी श्रुतिके समान अपनी स्त्रीको प्राप्त किया। अनन्तर महायशस्वी राम अपनी पतिव्रता स्त्रीके सहित शीघ्रतासे अयोध्यापुरीमें पहुँचे, शत्रुओंसे जीतनेको अयोग्य अयोध्यामें रघुनन्दन निवास किया, जिस दिन कमलनेत्र राजामें श्रीष्ठ महाराज रामचन्द्र राजगद्दी पर बैठे, उसी दिन मैंने उनसे यह वरदान मागा था, के हे शत्रुनाशन राम। जब तक आपकी यह कथा पृथ्वीमें रहै तभी तक मैंभी जीता रहूँ, अब उन्होंने कहा कि ऐसा ही हो। हे शत्रुनाशन भीम। तबसे सुभी सीताकी कृपासे सब सुखकी वस्तु यहीं प्राप्त हो जाती है। राम ग्यारह सहस्र वर्ष राज्य करके स्वर्गकी चले गये। हे पापरहित। तबहीसे अप्सरा और अश्वर्ष रामके चरित्रको गाकर सुभी प्रसन्न किया करते हैं, हे कुरुनन्दन। इस मार्गमें कोई मनुष्य नहीं जा सकता है, इसी लिये मार्ग निमित्त मैंने रोका है। हे भारत। मैं विचार कि यह देवताका मार्ग है, इसमें भी मनुष्य नहीं जा सकता है, तुम्हें कोई दुःख है, तुम जिस लिये प्रायश्चित्त वह तालाब यही

इष्टमार्ग है समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, प्रतापवान महाबाहु भीमसेनने हनुमानके वचन सुन कर उनकी प्रीतिके सहित प्रणाम किया और प्रसन्न चित्त हैं। सीटे वचनसे ऐसा कहने लगे, जगतमें हमारे समान धन्य पुरुष कोई नहीं है, क्योंकि हमने आपका दर्शन किया, आपने जो हमको दर्शन दिया, सो बहूत कृपा करी, हे वीर! हम एक इच्छा और रखते हैं, आपने जिस समय जल जन्तुओंके स्थान समुद्रको लांघा था, उस समय जो अनुपम रूप धारण किया था, वही हम देखता चाहते हैं, उसके देखने से हम बहूत प्रसन्न होंगे, और आपके वचनका विश्वासभी करेंगे।

भीमसेनके वचन सुन तेजस्वी हनुमान हँस कर कहने लगे, उस रूपकी देखनेमें तुम अथवा और कोई पुरुष समर्थ नहीं है, क्योंकि वह समय और वह अवस्था दूसरी थी। वह सब अब नहीं है, सत्ययुगमें त्रेतामें और तथा द्वारपरमें औरही हो जाता है। यह समय नाश होनेका है, अब हमारा रूप वैसा नहीं है। पृथ्वी, नदी, वृक्ष, पर्जन्य, सिद्ध देवता और ऋषि लोग युग युगमें समयके अनुसार वर्त्ताव करते हैं, समयके अनुसारही बल और शरीर उत्पन्न और नाश होते हैं, हे कुरुनन्दन। उस बल और शरीरकी धारण करके अब हम नहीं रहते हैं, इस युगके अनुसार वर्त्ताव करते हैं, क्योंकि काल बड़ा कठिन है, इससे तुम उस रूपके देखनेकी इच्छा मत करो।

भीम बोले, हे वीर। तुम हमसे युगीकी संख्या और उनके अलग अलग धर्म, उस समयके पुरुषोंका वीर्य कार्य उत्पत्ति, विनाश और सुख दुःखोंका वर्णन करो।

हनुमान बोले, हे नात! सबसे पहिले कृत युग (गुप्तयुग) था, उसमें जो पुरुष उत्पन्न होते थे, वे सब हनारही थे, इससे उसका नाम हनारुग था, यह सब युगोंमें उत्पन्न था,

उसमें सब लोग सनातन धर्मही को करते थे, उस युगमें धार्मिक दुःखी नहीं होता था, और न किसीकी सन्तान मरती थी। देव, दानव, यक्ष गन्धर्व, राक्षस, और सर्प इनमें इतर विशेष भाव न था, अर्थात् ये सब ही सब लोगोंके साथ बात चीत करते थे। हे तात ! उस सत्ययुगमें वेचना और लेनाभी नहीं था, न ऋग, यजु और सामवेदोंके वर्ण थे, न पुरुषोंकी कोई क्रिया थी और सङ्कल्प मात्रही फल प्राप्त होते थे। शस्य फलादिके लिये मनुष्यसाध्य कर्षणादि की अपेक्षा नहीं करनी ऐसी थी। सन्त्रास धर्म था, उस सतयुगके आदिमें न कहीं रोग न इन्द्रियोंके बलकी हानि थी, न कोई कहीं रोता था, न किसीको अभिमान वा विकार था, न कोई किसीसे लड़ता था, न किसीसे लड़ाई झगड़ा होता था, न कोई किसीसे बेर करता था, न कोई आलसी और न कोई चगली करनेवाला था, उस समय न भय, न दुःख न ईर्ष्या और न डाह था, इसीसे योगीश्वर लोग परम ज्ञानको प्राप्त करके मोक्षको पाते थे। उस समयमें सब जगतकी आत्मा नारायणका सफेद रङ्ग था, उस सतयुगमें ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र निज वर्णाचित लक्षणसे सयुक्त थे, सब लोग अगना अपना कर्म करते थे, सब लोग समान आश्रय, समान आचार, समान ज्ञान, समान कर्म और समान समान धर्मवाले थे, सब लोग एकही देवकी उपासना करते थे, अलग अलग धर्म होने परभी सब लोग एकही वेदके आश्रयसे एकही धर्मको करते थे। चारों आश्रमोंके उचित कर्म करके और समयके अनुसार धर्म करके सब लोग मोक्षको प्राप्त करते थे, सतयुगमें चारों वर्णोंका सनातन धर्म चारा चरणसे पृथ्वीमें था। हे तात यह सतयुग सतरज और तमोगुणसे रहित था, हमने सतयुगके धर्म कहे अब के सुनो।—

त्रेतायुगका मुख्य धर्म यज्ञ करना था इसमें एक चरण धर्म कम हो गया था और विष्णुका रङ्ग लाल हो गया था, सब पुरुष क्रिया और धर्म करते थे इसहीसे सत्य वृत्ति होते थे, उस युगमें अनेक प्रकारकी क्रिया धर्म और यज्ञ होते थे, त्रेतामें सङ्कल्प सि होते थे, क्रिया और दानके फलभी ठीक ठी होते थे, उस त्रेतायुगमें सब लोग अपने आप धर्मकी क्रियाओंको करते थे, सब जप और दानमें निपुण थे सत्यसे कभीभी ना हटते थे।

हापर युगमें धर्मके दो चरण रह गये। और विष्णुका रङ्ग लाल हो गया था। इस हापर युगमें कोई द्विवेदी कोई एक वेद और कोई एक दमसे वेद शून्य हो गया। इस प्रकार अलग अलग शास्त्र होनेसे सब क्रियाभी अलग अलग हो गई थी, सब तप और दानमें प्रवृत्त हो गये थे, उस समय रजोगुण अधिक हो गया था, कोई एक वेद कोभी नहीं पढ़ सकता था, इसीसे वेदों अनेक टुकड़े हो गये, इस युगमें सतोगुण नाश हो गया था, इसीसे कोई कोई सत्य बोलनेवाला रह गया था, सत्यनाश होनेसे अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न हो गये, इसी युग प्रारम्भ वशसे अनेक काम आदि और दोष उपद्रव उत्पन्न हो गये, उनसे अत्यन्त पीड़ित हो कर कोई पुरुष तपस्या, कोई सत्य और काम सिद्ध होनेके लिये अनेक प्रकार यज्ञोंकी करने लगे। हे कुन्ती नन्दन ! इस प्रकार हापर युगमें प्रजासं धर्म नष्ट हो गया। अब हम कलियुगके धर्म कहते हैं।

कलियुगमें धर्मका एकही चरण शेष। इस युगमें विष्णुका रङ्ग काला हो गया है, वेदकी क्रिया और धर्म सब नष्ट हो जायगा। इस प्रकारकी दृष्टि (अतिवृद्धि, अनावृद्धि, मूर्ख टोड़ी, राजाकी युद्ध आदि) द्वांगी। अब

ट्रेकारके रोग आत्सु क्रीधादिका दोष उपद्रव, मानसिक दुःख और भूख प्यास अधिक हो जायगे। युग बदलनेसे धर्म बदलता है, धर्म बदलनेसे लोक बदल जाता है, लोकके नाश होनेसे जगत्के चलानेवाले नियमोंका नाश होजाता है, यह सब होनेसे प्रार्थना भी निष्फल हो जाती है, इस कलियुगको आये थोड़ाही समय बीता है, अभी यह युगके बदलनेका समय है। हे शत्रुनाशन। तुम जो हमारे उस रूपकी देखनेकी इच्छा करते हो, सो ऐसे निरर्थक कामके करनेकी कौन पुरुष इच्छा करता है ? हे महाबाहो। तुमने जो हमसे युगोंका नियम पूछा था, सो हमने तुमसे सब कहा, तुम्हारा कल्याण हो, तुम यहाँसे चले जाओ।

१४६ अध्याय समाप्त ।

भीमसेन बोले, हम आपके पहले रूपकी विना देखे किसी प्रकारसे नहीं जायगे, यदि आप हमारे ऊपर कृपा करते हैं, तो उस रूपकी हमें दिखलाइये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, भीमसेनके ऐसे वचन सुनकर, वानरराज हनुमानने हंसकर उनकी वह रूप जो उन्होंने समुद्र लाघते समय बनाया था दिखला दिया। अपने भाई भीमसेनकी प्रियकामनासे हनुमानने अपने शरीरका वहुत विस्तार किया, हनुमानका शरीर वहुत पटनसे वह कैलिका वन टूटने लगा और सब पर्वत कापने लगे, उस समय अत्यन्त शरीर पटनसे हनुमान दूसरे पर्वतके समान शोभित होने लगे, उस समय हनुमानके लालनेत्र, तेज शत, टेढ़ी भौ और लम्बो पूँखसे दशो दिशा आप होगईं, इसहुल्लनन्दन भीमसेनने अपने भाई हनुमानका ऐसा रूप देखकर वहुत आश्चर्य किया और बारबार प्रसन्न होने लगे। भीमसेनने सूर्यके समान तेजस्वी सोनाके रंगके समान शरीरवाले और जलते हुए

आकाशके समान हनुमानको देखके अपने नेत्रोंको बन्द कर लिया। तब भीमसेनको आश्चर्य दिलाते हुए हनुमान कहने लगे, हे पापरहित भीम। तुम हमारे इतने ही रूपकी देख सकते हो, यदि तुम्हारी इच्छा ही तो हम और भी अपने शरीरकी बढ़ावें ? हे भीम। शत्रुओंके युद्धसे तेजके सहित शरीर बढ़ता है।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, हे राजन्। जनमेजय। भीमसेन उस अद्भुत भयानक और बिम्बाचलके समान हनुमानके रूपकी देखकर भ्रान्त होगये और शरीरके सब रीयें खड़े होगये तब भीमसेन प्रसन्नचित्तसे हाथ जोड़कर हनुमानसे कहने लगे हे महावीर। हे नाथ। हमने आपका यह बड़ा भारी शरीर देखा, अब आप इसे फिर छोटा कर लीजिये क्योंकि मैं आपके इस प्रमाणरहित शरीरकी देखनेमें समर्थ नहीं हूँ, इसका तेज सूर्यके समान और विस्तार जीतनेमें अयोग्य सूर्य मैनाक पर्वतके तुल्य है, हे वीर। मेरे हृदयमें इस बातका वहुत आश्चर्य होता है कि आपके सग रामचन्द्र रावणके पास कैसे गये थे, क्योंकि आप अकेलेही अपने बाहुबलसे समस्त लका की वाहन और वीरोंके सहित नाश कर सकते थे। हे वायुपुत्र। जगतमें कोई वस्तु ऐसी नहीं है जो आपको न मिल सके, अकेले आपहीसे लड़नेकी रावणकी शक्ति नहीं थी।

श्रीवैशम्पायन मुनिजी बोले, वन्दरोंमें यह हनुमान भीमके ऐसे वचन सुन गम्भीर और मोठी वानीसे बोले हे महाबाहो ! तुम जो कहते हो सो सब ठीक है, हे भीम। हे भारत ! वह नीच राक्षस रावण हमसे लड़नेमें समर्थ नहीं था, परन्तु यदि मैंही लोक कण्ठक रावणकी मार डालता तो रघुनन्दनकी कीर्तिका नाश हो जाता, इसीसे मैंने उसका छोड़ दिया था, वीर राम राक्षसोंमें नीच रावणको बान्धवोंके सहित मार कर सीनाको

अपनी पुरीमें लाये और और अपनी कीर्त्तिको स्थापन किया । हे महाबुद्धिमान् ! अब तुम चले जाओ, तुम अपने भाईको सेवा करना तुम्हारा मार्गमें कल्याण होगा, वायु तुम्हारी रक्षा करे, हे पुरुषश्रेष्ठ । यह सौगन्धिक बनका मार्ग है, आगे जाकर यज्ञ और राक्षसोंसे रक्षित कुवेरके वागीचोंको देखोगे । तुम वहा जाकर जल्दी अपने हाथसे फूल मत तोड़ना, क्योंकि पुरुषोंको उचित है कि देवताओंको विशेष करके माने, हे भरत कुलसिंह । देवता लोग बलि, होम, नमस्कार, मन्त्र और भक्तिसे प्रसन्न होते हैं, हे तात । साहस मत करो, अपने धर्मको पालो, अपने धर्ममें स्थित हो कर परम धर्मकी जानते रहो और उसे प्राप्त करो, कोई पुरुष दिना धर्मको जाने, और विना बूढ़ोंकी सेवा किये बृहस्पतिके तुल्य होने परभी धर्म और अर्थको नहीं पासकता । अधर्म जहां धर्मके नामसे प्रसिद्ध होता है और धर्म जहां अधर्मके नामसे पुकारा जाता है उसको अच्छी तरह जान लेना चाहिये, मूर्ख लोग उसमें मोहित हो जाते हैं । आचारसे धर्म उत्पन्न होता है, धर्मसे वेद स्थित है, वेदसे यज्ञ और यज्ञोंसे देवता स्थित है, वेदोक्त विधिसे देवता लोग अपना निवाह करते हैं और बृहस्पति तथा शुक्रकी कही नीतिसे मनुष्य अपना निवाह करता है, राजसेवा व्यापार और उपदेश करनेकी आजीविकासे द्विजाति लोग अपना निर्वाह करते हैं, वेद दण्डनीति और व्यापार इन तीन विद्याओंके जाननेवाले संसारमें अपनी आजीविका करते हैं, यदि वेद विद्या और व्यापार विद्या नष्ट हो जाय तो संसारमें कोई प्राणी न जीवै और जपनीति नाश हो जाय तो यज्ञ संसार मर्यादारहित हो जाय, वाणिज्य और धर्म यदि इस संसारमें न हो तो सब प्रजा न ही प्राप्त हो जाय, यही तीनो विद्या मिल

कर धर्मको उत्पन्न करती हैं और धर्मसे प्रजा स्थित है । द्विजातियोंका परम धर्म सत्य है, यज्ञ करना, वेद पढ़ना, और दान करना यह साधारण धर्म है । यज्ञ करना, वेद पढ़ाना यज्ञ कराना और दान लेना यह ब्राह्मणों विशेष धर्म है, प्रजापालन क्षत्रियका, व्यापारसे प्रजाका पालन करना वैश्यका और द्विजातिकी सेवा करना शूद्रोंका विशेष धर्म है, शूद्र लोगोंको मागना, व्रत होमका करना तथा शुभ कुलमें रहके वेद पढ़ना मना है, हे कुन्तीपुत्र । तुम्हारा धर्म क्षत्रीय अर्थात् प्रजाका पालन करना है, तुम जितेन्द्रिय होकर अपने धर्मको पूरा करो, वेदकी जाननेवाले बुद्धिमान महात्मा वृन्दोंसे सलाह करके प्रजापालन करना राजाका धर्म है, और बुरे व्यसनवाला राजा नष्ट होता है, बन्धन और कृपाको जब राजा प्रजामें फैलाता है तब संसारमें मर्यादा स्थित रहती है, इस कारणसे देशमें किलोंमें शत्रु और मित्रोंकी सेनाओंमें अपने आप दूत भेजके जानना चाहिये कि किसकी बढ़ती और किसकी घटती है । राजोंका उपाय, बुद्धि, मन्त्र, बल, कृपा, और क्रोध चतुरता यही कार्यको सिद्ध करनेवाले होते हैं । साम, दान, भेद, दण्ड और त्यागसे राजाको अपने सब कार्यको सिद्ध करना चाहिये । राजाको उचित है कि कहीं अपना विस्तार दिखलावे और कहीं छोटा बन जाय, हे भरतसत्तम । मन्त्रीहीके आधीन राज नीति है दूतभी मन्त्रके आधीन है इस वाम्ते विद्यामानोंके साथ मन्त्र करना चाहिये, स्त्रियोंसे, बालकोंसे, मूर्खोंसे, लोभियोंसे, मन्त्र कभी नहीं करे, जिनमें उन्मादिके लक्षण पाये जाते हैं उनसे भी मन्त्र नहीं करना चाहिये, विद्वानोंसे समर्थोंसे सलाह करे उनहींसे अपना काम करे, कोमल स्वभाववाले नीतिके जाननेवालोंसे राजकार्य करावे और मूर्खोंसे कोई काम न करावे, धर्मात्माओंको धर्म काममें, पण्डितोंका

धनके काममें, स्त्रियोंमें नपुंसकोंकी, खोटे कामोंमें खोटे आदमियोंकी नियुक्त करे, अपने मनुष्योंसे अथवा दूसरे मनुष्योंसे कार्य विगड़ने अथवा सुधरनेकी बुद्धि तथा शत्रुओंके बलाबलकी जान लेना चाहिये ।—जिन मनुष्योंकी बुद्धि उत्तमहो उन पर राजाकी कृपा करनी चाहिये और जो मर्यादाकी तोड़नेवाले दुष्ट हों उनकी बन्धनमें डालना चाहिये । जब राजा बन्धनमें और कृपा करनेमें प्रवृत्त होता है तब संसारमें यश स्थित रहता है । हे कुन्तीनन्दन । हमने यज्ञ कठिन राजधर्म तुमसे कहा अब सब धर्मोंकी विचार कर अपने धर्मकी धारण करो । तप, धर्म, इन्द्रिय निग्रह, और पूजन से ब्राह्मण लोग स्वर्गकी जाते हैं, वैश्य लोग दान, अतिथि पूजा, क्रिया और धर्मसे स्वर्गकी जाते हैं, क्षत्री लोग बल और प्रजाके पालनसे स्वर्गकी जाते हैं, चण्वी लोग दण्डके उचित विधानसे काम और क्रोध, द्वेषसे रहित होकर पण्डितोंकी गति की प्राप्ति होते हैं ।

१५० अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय । तब हनुमानने अपनी दृष्टानुसार अपने उस बड़े भारी शरीरको घटा लिया, फिर दोनी हाथ फैलाकर भीमसे मिले । हे भारत । अपने भाई हनुमानसे मिलतेहो भीमसेनकी तब चक्का दूर ही गई और बलवान भीमसेनने जाना कि मुझे बहुत बल बढ गया और मेरे शरीरमें जो ऊँचम नहीं है, अनन्तर हनुमानने शरीरमें जास भरकर भीमसे प्रेमके रुचित भाव वा प्रकाश कि है वीर । तुम अपने शरीरकी उल्लेखनीय शक्ति की वीर्यपूर्ण प्रशंसा करने लगे । हे महाबल । मैंने जो शरीरके शरीरसे भी लौट कर आता हूँ वह भी हमारा स्थान न उताना, देश और शरीर शरीरका देव शरीरकी शक्ति शक्ति

समय हुआ है, तुमकी देखने और श्रीरामचन्द्रके स्मरण करनेसे मेरे नेत्र सुफल होते हैं जगत्के हृदयकी सुख देनेवाले, सीता सुख कमलके स्पर्श, रावण अन्धकारके दिवाकर, श्रीरामरूपी विष्णुका स्मरण करनेसे हमकी आनन्द होता है, हे कुन्तीनन्दन । हमारा दर्शन करनेसे तुमकी अनन्त फल होगा, हे भारत । तुम हमको अपना भाई समझ कर वरदान मांगो, हे महाबल । यदि तुम कहो तो हम हस्तिनापुर जाकर उन चंद्रवृत्तराष्ट्रके पुत्रोंकी नाश कर दें, यदि तुम कहो तो हम एक शिलासे उस सब नगरकी चूर कर दें ?

श्रीवैशम्पायनजी बोले, हे राजन् जनमेजय । भीमसेनने महात्मा हनुमानके वचन सुन, प्रसन्न होकर कहा, हे महाबाहो । हे बानरराज । आपने हमारे निमित्त जो कुछ कहा सो सब किया हुआ समझिये, आपका कलत्राण ही आप सुख पर कृपा कीजिये । जिन पाण्डवोंके आप नाथ हैं वह सब सनाथ ही हैं, हे तेजस्विन् । आपकी तेजसे हम शत्रुओंकी जीतेंगे । भीमसेनके ऐसे कहने पर हनुमान भाईपन और मित्र भावसे भीमसेनसे बोले कि मैं तुम्हारा प्रिय कार्य करूँगा तुम्हारे शत्रुओंकी सब सेनामें धन्य कर जब तुम सिंहके समान गर्जन करोगे तब मैं अपनी गर्जनसे तुम्हारी गर्जनकी बढा दगा, गर्जनकी ध्वजा पर बैठकर शयानक रूपसे गरजूँगा, जिससे तुमलोग शत्रुओंके प्राण सुखसे नाश कर सको, मैं, ऐसे यत्नही करूँगा । इस प्रकारसे हनुमान पाण्डुपुत्र भीमसेनसे बात चरके भीमसेनकी राह बताके वही अन्तर्धान होगये ।

१५१ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् ! बानरो-
त्तम हनुमानके चले जाने पर बलवानोमें श्रेष्ठ
भीमसेन हनुमानके बतलाये मार्गसे गन्धमादन
पर्वत पर इधर उधर घूमने लगे, हनुमानके
उस शरीर और अनुपम शोभा और दशरथ
पुत्र श्रीरामचन्द्रके प्रभाव और महात्मप्रकी स्मरण
करते हुए भीमसेन वहांसे चले। भीमसेन मनो-
हर बन, मार्ग, खिले फूलवाले वृक्ष, तलाव, नदी
और भाति भातिके फूलोंसे भरे छोटे बन और
हाथियोंके झुण्ड वरसाऊ मेघोंके समान देखते
हुए चले, चंचल अंगवाले हरिनोंसे शोभायमान
वनकी मार्गमें देखते हुए शीघ्रताके साथ भीम-
सेन चले। वनके भैसे, बाराह, और शार-
दूलोंसे भरे वनकी निडर भावके साथ देखते
हुए चले, भाति भातिके फूलोंकी सुगन्धि और
ताम्रके रंगवाले कीमल पत्तोंसे पूर्ण वृक्ष हवासे
कांपते हुए ऐसे जान पड़ते थे मानो भीमसेनसे
क्षमा मांगते हों। पद्मोंके संपुट लगे हुए जिन
पर भीरे गूंजते हैं ऐसे मालुम होते थे मानो
भीमसेनकी कोई भेट देता है, मार्गमें पर्वतोंकी
शोभा और भाति भातिकी धातु तथा फूलोंकी
शोभाको देखते हुए द्रौपदीके वचनकी स्मरण
करते हुए भीमसेन वृद्धत शीघ्र चले, जाते जाते
कुछ दिनके पश्चात् ऐसे वनमें पहुंचे जहां हरिन
वृद्धत मुखसे विचरते थे। उस वनमें एक नदी
ऐसी देखी जिसमें सोनेके रङ्गके कमल खिले थे,
उस नदीके किनारे पर हंस सारस और चकवे
मनोहर शब्द कर रहे थे। वह नदी ऐसी जान
पड़ती थी कि मानो पर्वतकी माला है। उस
नदीमें मछावली भीमने चित्तकी प्रसन्न करने-
वाले सूर्यके समान तेजवाले कमलोंका समूह
देखा, उसको देखकर अपनी मनसाको सुफल
हुई जान मनसे उस द्रौपदीका ध्यान किया जो
वनवाससे वृद्धत दुःखी हुई थी।

१५२ अध्याय समाप्त !

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि भीमसेनने उ-
मनोहर कमलनी वाली तलावके पास जाक
देखा, कि राजस उसकी चारों ओरसे रक्षा क-
र रहे है। कुवेरके स्थानके पास पर्वतके झरनों
उत्पन्न हुई, मनोहर और घनी छायावा-
ल वृक्षोंसे घिरी हुई, हरे हरे कमलोंसे पू-
र सुवर्ण रंगके कमल जिसमें खिले थे, अने-
भातिके पक्षी जिसमें शब्द कर रहे थे, जिस
घाट बड़े सुन्दर थे, जिसमें कीचका ना-
न था, जिसमें स्वच्छ जल भरा था, पर्वतके
कन्दराओंसे उत्पन्न हुई अद्भुत रूप वाले
नदी पर जाकरके अमृत समान शीत-
जल कुन्तीपुत्र पाण्डवने देखा और पीय
उस मनोहर दिव्य सुगन्धवाले ऐसे कमलों
भरी जिनकी दण्डी लहसुनियेके रंग
समान थी, जिसके समीप हंस और
सारस आदिक बोल रहे थे, और जिन
निर्मल केशर झड़ती थी यह पोख-
महासा कुवेरकी क्रीड़ाका स्थान था। इस
पर गन्धर्व और अप्सरांके सहित देवतालीन
बिहार करते थे, दिव्य ऋषि यज्ञ किम्पुत्र
और राजस इस पोखरकी रक्षा करते थे, विश-
वाके पुत्र कुवेरने यह पोखर रक्षित थी, मछा-
वली कुन्तीपुत्र भीमसेन वह देख कर वृद्धत
प्रसन्न हुए। उस पोखरकी क्रोधवश नाम
राजस कुवेरकी आज्ञासे रक्षा करते थे, यह
सहस्रों राजस विचित्र राजस विचित्र शस्त्र और
वस्त्र पहिने हुए वहां खड़े थे, वे लोग कुन्ती-
पुत्र भीमसेनकी मृगचर्म और सुवर्णके आभूषण
पहिने, शस्त्र लिये, निडर देखके आपसमें कहने
लगे, कि यह पशुपतिंश शस्त्र लिये और मग-
चर्म ओढ़े जो यहाँ आया है, सो क्या करना
चाहता है ? यह जानना चाहिये। तब वह
सब राजस मछाभुज तेजस्वी भीमके पास
जाकर पूछने लगे कि तुम मुनियोंका वेश
धारण किये और शस्त्र लिये जो यहाँ

आये जो सो तुम्हारे क्या प्रयोजन है ? हमसे कही ।

१५३ अध्याय समाप्त ।

भीमसेन बोले, हे राक्षसों ! मैं राजा पाण्डुका पुत्र धर्मराज युधिष्ठिरका भाई भीमसेन हूँ, मैं भाद-
योंके सहित इस वदरिकाश्रम पर आया हूँ इस
वदरिकाश्रममें पाञ्चालराजपत्नी द्रौपदीने वायसे
फेंका हुआ एक कमल देखकर वैसीही और
कमलोंकी चाहता, हे राक्षसों ! मैं उनहीं मनो-
हर अंगवाली धर्मपत्नी द्रौपदीके चाहते हुए
कमलोंकी लेने आया हूँ । राक्षस बोले, हे
पुरुषयेष्ट ! यह कुवेरकी क्रोड़ाका स्थान है
यहां मरण धर्मवाले मनुष्योंकी विचार करने-
की आज्ञा नहीं है, हे वृकोदर ! यहां पर
देवर्षि, यज्ञ और देवता लोग यक्षराज कुवेर-
की आज्ञा पाकर जल पीते और विचार करते
हैं, हे पाण्डव ! गन्धर्व लोग और अप्सरा
यहां पर विचार कर सकती हैं, यदि कोई
अन्यायसे महाराज कुवेरका अनादर करके
विचार करनेकी इच्छा करता है, तो वह नष्ट
कर दिया जाता है । उस कुवेरका अनादर
करके तुम कमल लेना चाहते हो, तब कैसे
कहते हो कि हम धर्मराज युधिष्ठिरके भाई
हैं, पहले कुवेरकी आज्ञा लेलो, तब इस पोखर
पर विचार करना, यदि ऐसा न करोगे, तो
इस पोखरकी कृष्ण नहीं देख सकोगे । भीम-
सेन बोले, हे राक्षसों ! मैं धनेश्वर कुवेरकी
अज्ञ तो नहीं देखता हूँ, यदि उन महाराजकी
अज्ञ भी तो उनसे कब मांगनेकी इच्छा नहीं
करता हूँ यह अनातन धर्म है, कि राजा
जिसकीसे सब मांगते नहीं हैं, मैं क्षत्रिय-
की उड़ता नहीं चाहता हूँ । यह पोखर
जिसकीसे सबकी है, वैसीही सब प्राणियोंकी है ।
इसकी जोर किसीसे मांगता नहीं है ।

औरैशम्पायनजी बोले, ऐसे सब राक्षसोंसे
कहकर महाबली और महाक्रोधी भीमसेन
उस पोखरमें घुस गये, तब चारों तरफसे राक्षसोंने
वचन द्वारा ऐसा मत करो कहा, प्रतापवान्
भीमसेनसे ऐसा कहते हुए राक्षसोंकी क्रोध
आगया, महोपराक्रमी और महातेजस्वी भीम-
सेनने उन सब राक्षसोंको क्षुद्र समझ कर उस
तालाबमें स्नान किया । परन्तु राक्षस लोग
उनको रोकने लगे, वे लोग क्रोध करके चिल्लाने
लगे, कि इसको पकड़ो, बांधो, काटो, खा
जाओ और पकालो । ऐसा कह नेत्रोंकी
फैला कर और शस्त्रोंकी लेलेकर भीमसेनकी
ओर दौड़े भीमसेनभी सोनेसे चित्रित
यमदण्डके समान भारी गदाकी लेकर वेगसे
उनकी ओर दौड़े और कहने लगे, खड़े
रहो, खड़े रहो । तीक्ष्ण पराक्रमी राक्षस
लोगभी भीमसेनकी मारनेकी इच्छासे गदा
तोमर और पट्टिश आदि शस्त्रोंकी लेकर वेगसे
भीमसेनकी ओर दौड़े, जो भीम वायुके वीर्यसे
कुत्तीके गर्भमें उत्पन्न हुए थे, वह वेगवाने
शत्रुओंसे अजेय थे, वही महान्मा उन राक्षसोंके
सब वाणोंकी काटने लगे, भीमसेनने अपने
वाणोंसे उस पोखरके पास सैकड़ों राक्षसोंकी
मार डाला । वीर राक्षसोंने जब उनके विद्या-
बल बाहुबल और वीर्यको देखा, तो असमर्थ
होकर भागने लगे, वज्रतसे राक्षस उनकी
मारनेकी इच्छासे संज्ञाहीन होकर आकाशकीं
उड़ने लगे, अनेक क्रोधसे व्याकुल होकर कैला-
शके शिखरोंमें छिपने लगे । शत्रुओंके जीतने-
वाले भीमसेनने इन्द्रके समान उन राक्षसोंकी
जीतकर उस पोखरमें जाके अपने लिये कमल
तोड़ लिया, उस पोखरके अमृत समान जलको
पीनेसे भीमसेनका बल और वीर्य उत्तम हो
गया, फिर उन्होंने उत्तम भुगन्निवाले अनेक
कमलोंकी तोड़ लिया । राक्षस लोगोंने
भीमके बल और भयने व्याकुल होकर कुवेरके

पास जा उनके बल और वीर्यका वर्णन किया । कुवेर उनके वचन सुन हंसकर कहने लगे, हम जानते हैं, कि भीमसेन द्रौपदीके लिये कमल लेनेको आया है । राक्षस लोग कुवेरकी आज्ञा लेकर फिर उसी पोखर पर आये । उन्होंने कुसकुलश्रेष्ठ भीमसेनको उसी पोखरमें इच्छानुसार विचार करते देखी ।

१५४ अध्याय समाप्त ।

श्रीनैशम्पायनजी बोले, हे जनमेजय । तब भीमने वहुत श्रेष्ठ मलसे रहित अनेक कमलोंको ले लिया, उस समय बड़ा श्रेष्ठ वायु बहुत वेगसे चलने लगा, जिससे भीम शीघ्र ही नीचेको आसके, उस समय युद्धके सगुन होने लगे, वहुत भय देनेवाली विजली शब्दके सहित आकाशसे गिरी, सूर्य अन्धकार क्षिपनके कारण तेजसे रहित हो गये ; समस्त जगत्में ऐसा अन्धकार छाया, कि किसीकी कुछ न देखने लगा । जहां भीमसेन अपने पराक्रमसे स्थिर थे, वहां एक घोर शब्द हुआ, समस्त पृथ्वी चलायमान होगई, आकाशसे धूल बर्षने लगी, सब दिशा लाल होगई, पक्षी और हरिन गधेके समान शब्द करने लगे और भी अनेक घोर उत्पात होने लगे । इन सबको देखकर कहनेवालोंमें श्रेष्ठ धर्मराज युधिष्ठिर कहने लगे, कि न जाने हमसे कौन युद्ध करेगा । हे महायुद्ध करनेवाले नकुल सहदेव । तुम्हारा कल्याण हो, युद्ध करनेकी तय्यार हो जाओ, हम इन सब लक्षणोंको देखकर जानते हैं, कि अब युद्ध करनेका समय आगया । महाराजने ऐसा कह कर चारों ओर देखा, तो भीमको न पाया, तब शत्रुनाशन महाराजने नकुल सहदेव और द्रौपदीसे पूछा, कि हे द्रौपदी ! यद्धमें घोर कर्म करनेवाले महापराक्रमी हमारे भाई भीमसेन कहा हैं और क्या हैं ? क्या उस उल्हासी वीरने कोई युद्ध

आरम्भ किया है ? हमको यह युद्धके उत्पात अकस्मात् दिखलाई देने लगे हैं, इससे भी भय होनेकी शंका है । महाराजके ऐसे वचन सुन उत्तम हंसनेवाली मनस्विनी, महाराजके पटरानी द्रौपदी कहने लगी ।

द्रौपदी बोली, हे महाराज । वह जो फल वायुसे उड़ कर आया था, मैंने उसको देखकर भीमसेनको प्रसन्न करके कहा, कि हे वीर । यदि आप-ऐसे कमल और कहीं देखें, तो उन सबको शीघ्र ले आइये तो मैं बहुत प्रसन्न होजंगी । महाबाहु पाण्डुनन्दन भीम, मुझे प्रसन्न करनेकी इच्छासे उत्तर और पूर्व की ओर उन्ही फूलोंको लेने गये हैं । द्रौपदीके वचन सुन महाराजने नकुल और सहदेवसे कहा, कि जिस मार्गसे भीमसेन गये हों, हम सबकीभी उसी मार्गसे शीघ्र चलना चाहिये सब राक्षस लोग दुर्बल और थके हुए ब्राह्मणोंको ले चलें । हे षटोत्कच । हे देव तुल्य । तुम द्रौपदीको ले चलो, हमको निश्चय होता है, कि भीमसेन वहुत दूर चले गये, क्योंकि वह वायुके समान शीघ्र चल सकते हैं । वह गरुड़के समान शीघ्र चलनेवाले हैं, वे चाहें तो पृथ्वीको लांघें और चाहें तो आकाशकी उड़ जायें और अपनी इच्छानुसार जितना चाहें कूद सकते हैं । हे राक्षसों ! हम तुम लोगोंके पराक्रमसे उनकी हटने जाया चाहते हैं । भीमसेनने कभी पहली बिटपाटी स्त्रियोंका अपराध नहीं किया है । हे जनमेजय । उन मार्ग जाननेवाले राक्षसोंने प्रसन्नचिन्तसे महाराजकी आज्ञाको स्वीकार कर, लीमग सुनिके सहित पाण्डव और अनेक ब्राह्मणोंकी अपने ऊपर चढाके कुवेरकी पोखरकी ओर गमन किया । हे राजन् ! जब सबने शीघ्रता सहित जाकर उस मनोहर वन, सुगन्धित कमलोंमें भरी हुई पोखर और उसके तट पर बैठे हुए मनस्वी महात्मा भीमसेनकी देखा और

उनके पास जो विशाल नेत्रवाले यक्षलोग मरे पड़े थे, उनकोभी देखा। उन मरे हुए यक्षोंके सिर हाथ और जङ्घा टूट गई थीं और महात्मा भीमसेनभी उन्हींके पास बैठे थे। भीम क्रोधसे अपने नेत्रोंकी खोलते और बन्द करते, ओंठोंकी चवाते और दोनों हाथोंसे गदाको उठाये हुए बैठे थे। उस समय वह प्रलयकालके यमराजके समान दिखते थे। महा-राज युधिष्ठिर उनकी देख कर लपट गये और मोठे वाणीसे बोले, कि हे कुन्ती नन्दन ! यह तुमने क्या किया ? तुम्हारा कल्याण ही ऐसा प्रयोग्य साहस देवताओंकी प्रिय नहीं है। हे वृकोदर ! यदि तुम हमारी प्रीति चाहते हो, तो ऐसा फिर न करना ; अब उन फूलोंकी लेकर इस कामकी समाप्त करो। उसी समय पोखरसे अनेक शस्त्रधारी देवताओंके समान रूपवाले उस वनकी रक्षा करनेवाले लोग प्रकट हुए। हे जम्भोजय ! वे सब धर्मराज युधिष्ठिर महर्षि लोमश, नकुल, सहदेव तथा अन्य उत्तम ब्राह्मणोंकी देखकर विनय पूर्वक प्रणाम करने लगे, महाराजने उनकी वज्रत शान्त किया, तब वे सब प्रसन्नता पूर्वक वहाँ बैठे। सुसुलभ पाण्डवलीग कुवेरकी मङ्गलतिसे अर्जुनका मार्ग देखते हुए थोड़े दिन इस गन्धमादन पर्वत पर रहे।

भोगस्त्रिकाद्वार प्रकरण और १५५ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन सुनि बोले, एक दिन इस स्थानसे निकल कर महाराज युधिष्ठिरने द्रौपदी, अपने भाई, और ब्राह्मणोंसे ऐसा कहा कि हमलोगोंने पवित्र और सुखदायक तीर्थ तथा वनकी प्रसन्न रक्षा करने वनोंकी देखा, इन तीर्थोंकी रक्षा करने देवता और महात्मा सुनियोने स्थापन किया था, इन सबकी ब्राह्मणलोग नियमानुसार रक्षा करेंगे, हमने पर्वतके शीर्षोंके चरित और शीर्षोंके चरित तथा राजकुमारोंकी जनक

प्रकारकी सुन्दर सुन्दर कथा उनके कलापाण-दायक आयुर्मोमें सुनी। हमने ब्राह्मणोंके सहित सब तीर्थोंमें स्नान कर फल और जलसे सब देवताओंकी पूजा की, देश और समयमें मिलनेवाले मूल और फलोसे पितरोंके तर्पणभी किया। गङ्गाद्वारसे चलकर अनेक सुन्दर पर्वतों की देखते हुए अनेक पक्षियोंसे शोभित हिमाचल पर्वत को देखा ; इला, सर-स्वती, सिन्धु, यमुना और नर्मदादि अनेक रम-णीय नदियोंमें ब्राह्मणोंके सहित स्नान किया। रमणीय पर्वत, सब तालाव तथा पवित्र समुद्रमें महात्माओंके सहित स्नान किया। विशाल नरनारायणके आयुर्मोका दर्शन, सिद्ध ऋषि और देवताओंसे पूजित विधिपूर्वक पोखरकी देखा है। ब्राह्मणों ! हमको महात्मा लोमशने क्रमके अनु-सार सब स्थानोंके दर्शन कराये, यह सिद्ध सेधित और पवित्र कुवेरका स्थान है। हे भीम ! आगे चलने योग्य नहीं है, हे भीम ! अब आगे कैसे चलीगे, इसका विचार करो।

श्रीवैशम्पायन सुनि बोले, जिस समय राजाओंके स्वामी महाराज युधिष्ठिर ऐसा कह रहे थे, उसी समय आकाश-वाणी हुई कि हे राजन् ! इस कुवेरके स्थानसे आगे कोई नहीं जा सकता, इस लिये जिस मार्गसे आये हो उसीसे नर-नारायणके आयुर्मो, बदरी नामक प्रसिद्ध तीर्थको चले जाओ ; हे कुन्ती-नन्दन ! वहाँसे तुम वज्रत फूल और फलोंसे रमणीय सिद्ध और चारणोंसे सेवित वृषपर्वतके आयुर्मोको देखोगे ; हे कुन्तीनन्दन ! वहाँसे चलकर सुखपूर्वक आर्तिप्रेषणके आयुर्मोमें रहना। तब कुवेरके स्थानकी देखोगे। उसी समय पवित्र, दिव्य, गन्धवाले सुख स्पर्श वायुने फूलकी वर्षा की, उन सबने उस आकाशसे आड़े आड़े दिव्य वाणीकी सुनकर वज्रत आयुर्मो किया। दिगम्बर कर राजा, ब्राह्मण और ऋषि-योंकी वज्रत आयुर्मो हुआ। उस परम आयुर्मो-

मयो बाणीकी सुन धौम्य मुनि बोले हे भारत !
इसका कोई उत्तर देनेके योग्य नहीं है । महा
राज उस सब वचनकी स्वीकार कर भीमादि भाई,
द्रौपदी और सब ब्राह्मणोंके सहित बदरिकाश्रम
की लौट आये और वहां सुखसे रहने लगे ।

नरनारायणाश्रम प्रत्यागमनप्रकरण और
१५६ अध्याय समाप्त ।

अथ जटासुर बध प्रकरण ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले हे राजन् जनमेजय ।
जब भीमसेनके पुत्र घटोत्कच तथा अन्य राक्षस
चले गये और पाण्डव लोग ब्राह्मणोंके सहित
अर्जुनका मार्ग देखते हुए बिश्वास पूर्वक रहने
लगे, तब एक दिन भीमसेनके बिना, इच्छानु-
सार घूमते हुए धर्मराज, नकुल, सहदेव और
द्रौपदीकी एक राक्षसने हर लिया । वह अपनेकी
मन्त्र और शास्त्रोंके जाननेवाला उत्तम ब्राह्मण
कह कर पाण्डवोंके तूणोर और धनुषको तथा
द्रौपदीको भी हरण करनेकी अभिलाषसे
पाण्डवोंकी उपासना करता था । इस प्रकार
उस दुष्टात्मा पापवृद्धि जटासुर नामक राक्षसने
बहुत यत्न किया उसकी इच्छा थी कि समय
पाकर मैं द्रौपदीको हर ले जाऊंगा, हे राजेन्द्र !
महाराज युधिष्ठिरने उसको राखसे छिपे हुए
अग्निके समान न पहिछाना और उसका पालन
करते रहे । हे शत्रुनाशन ! एक दिन जिस
समय भीमसेन शिकार खेलने, घटोत्कच अपने
दासोंके सहित ऊपर ऊपर घूमने और लोम-
शादिक तपोधन महर्षि लोग स्नान करने और
फूल लेने चले गये, उसी समय वह राक्षस भयानक
रूप बनाकर पाण्डवोंके पास आया । उसने शस्त्र
द्रौपदी महाराज नकुल और सहदेवकी लेकर
वहांसे चल दिया, परन्तु पाण्डुनन्दन सहदेव बहुत
यत्न करके उसके हाथसे अपनी कौशिक नाम
तलवार छोनकर खड़ा हुआ और निकल गये
और बड़े वेगसे अपने खड्गकी कोपसे निकाल

कर दीड़े, अनन्तर जिधरको भीमसेन गये
उधरहीको पुकारने लगे । महापराक्रमी सह
जिस समय भीमसेनको पुकारते थे, उसी स
महाराजने राक्षससे कहा कि रे मूर्ख ! तेरा
नष्ट हुआ जाता है और तू उसे नहीं देखता । कि
किसी स्थलमें मनुवंशियोंके बीच जो तिर्ह
योनिवाले हैं वे और उनके सिवाय अन्य प्र
भी तथा विभीषणकरके राक्षस लोग धर्ममें
किया करते हैं, राक्षस लोग धर्मके मूल स
हैं, राक्षसही लोग उत्तम धर्मकी जानते हैं,
सब बातोंकी परीक्षा करके तुम्हें धर्म नियम
सार निवास करना चाहिये । रे राक्षस ! देव
ऋषि, सिद्ध, पितर, गन्धर्व, राक्षस, सर्प, पशु,
योनियोंमें उत्पन्न हुए कीट और चींटी आदि
मनुष्योंसेही जीते हैं तुम्हारी जीविका भी मनु
हीसे है इसलोकके बढ़नेसे तुम्हारा लोक
बढ़ता है, इस लोकके दुःखी होनेसे देवता
दुःखी होते हैं, विधिपूर्वक देव और पितर कर्म
पूजित होकर देवताभी प्रसन्न होते हैं, जब प्रजा
कोई रक्षा करनेवाला न रहा तो सुख और
कहांसे होगा । रे राक्षस ! राजाका किञ्चित्
निरादर न करना चाहिये, रे मनुष्योंकी ख
वाला ! हमलोक शक्तिके अनुसार देवता
ब्राह्मणोंकी पूजा करके यज्ञसे वचा हुआ
खानेवाले हैं ; हम कुछभी अधर्म नहीं व
है, हम गुरु और ब्राह्मणोंकी सदा प्रा
समान मानते हैं । पुरुषकी उचित है कि श्र
मिल और बिश्वाससहित पुरुषकी दुःख न
जिसके आययसे रहे और जिनका अन्न
उसे दुःख देना न चाहिये । तू हमारे आन्न
सुखपूर्वक रहा है और हमने तेरा सम्मान
किया है, सो तू हमारा अन्न खाकर हमने
हरण करता है, ऐसा करनेसे तेरी बुद्धि अन्न
और मरण सबही हथा हो जायगी, अतएव
तू ऐसा कर्म करके हथा मत हो । यदि
महादुष्ट और सब धर्मोंसे रहित हो,

हमारे शस्त्र हमको दे दे, और युद्ध करके
द्रौपदीको लेजा। यदि तू अज्ञानसे इन कामोंको
करेगा, तो तुझे केवल अपकीर्ति और अधर्मही
प्राप्त होगा। रे राक्षस! तू इस मनुष्य
जातिमें उत्पन्न हुई स्त्रीको लेजाता है, यह बद्धत
विषम काम है। ऐसा कहकर महाराज युधि-
ष्ठिर बहुत भारी होगये, उनके बोझसे वह
राक्षस शीघ्र न चल सका, तब महाराजने
द्रौपदी, नकुल और सहदेवसे कहा कि तुम
लोग कुछ भय मत करो, मैंने इस मूर्ख
राक्षसकी गतिकी नाश कर दिया है और
महाबाहु भीमसेनभी बहुत दूर नहीं है,
जब वह यहा आजायेंगे तो यह राक्षस जीता न
बचेगा। हे महाराज! जब सहदेवने उस
मूर्ख राक्षसको देखा, तो महाराज युधिष्ठिरसे
कहने लगे, कि हे महाराज! इससे अधिक
कौन बात होगी कि जो क्षत्री युद्धके सामने मरे
या शत्रुको जीतले। हे शत्रुनाशन! यातो
हमही इसको जीत लेंगे या यही सुभी जोत
लेगा। हे महाबाहु! हे नरनाथ। यही
युद्धका देश और काल है; हम अभी इसकी
शर डालेंगे। हे सत्यपराक्रम। यही क्षत्रि-
योंके धर्मका समय है, यदि हम युद्धमें मर गये,
तो अच्छी गतिकी प्राप्त होंगे। हे महाराज।
यदि स्थिरास्त होनके पहिले यह राक्षस जीता
जाय तो हम अपनेको क्षत्री न कहेंगे।

रे राक्षस! खड़ा रह। खड़ा रह! हम
तुझे पुत्र सहदेव हैं, हम तुमको अभी मार-
र पृथ्वीन सुला दगे अथवा तूही हमको मार
र द्रौपदीको लेजाना। जब सहदेव ऐसा
कहे, उसी समय इच्छानुसार घूमते हुए,
पृथ्वी के समान गदा लिये हुए भीमसेन
पहुँचे। उन्होंने युधिष्ठिर, नकुल और
द्रौपदीको राक्षससे एकट्टे हुए, तथा सहदेवकी
मृत्यु और राक्षससे बात करके देखा।
भीमसेन ने हुए राक्षसकीभी मार्गहीसे

भीमसेनने देखा। महा बलवान भीमसेन
प्रारब्धके बलसे इधर-आ निकले थे। जब
उन्होंने देखा कि द्रौपदी और मेरे भाइयोंको
राक्षस लिये जाता है तो क्रोधसे व्याकुल होकर
राक्षससे कहने लगे। रे पापी! जब तू
शस्त्रोंकी परीक्षा करता था तभी हमने तुझको
पहचान लिया था। परन्तु मैंने तेरे मारनेपर
ध्यानही नहीं किया था। इसीसे तू आज तक
बचा रहा, हमने विचारा था, कि अतिथि,
ब्राह्मण, प्रियवादी और हमारे प्रिय कामोंका
करनेवाला है। जो ब्राह्मणरूप धारण किये
हुए राक्षसकी जानकर मारता है, सोभी
नरकमें जाता है और तेरे मरनेका समयभी
नहीं आया था। इसीसे तू बचा रहा, समयकी
बड़ी विचित्र गति है, क्योंकि तुझे द्रौपदीके
हरलेजानेकी बुद्धि हुई, निश्चय अब तेरे मरनेका
समय आगया। रे राक्षस! तैने यह कालरूप
सूतसे बन्धी हुई, बंसीकी निगला है, अब तू
मंछलोके समान मर जायगा; तैने अपने मनमें
निश्चय करके जिस देशको जाना चाहा था, अब
तू वहा नहीं जासकेगा। वरन जिस देशको
वक और हिड़म्ब गये हैं, उसी मार्ग को तूभी
जायगा। भीमसेनके ऐसे वचन सुन राक्षसकी
बहुत डर हुआ, तब वह उन सबकी छोड़ युद्ध
करनेकी खड़ा हाँगया और क्रोधसे आँटोंकी
फरकाता हुआ भीमसेनसे बोला, कि रे
पापी! हमको कोई दिशा अगम्य नहीं है
परन्तु तेरेही लिये इतनी देर कर रहे थे, जिस
जिस राक्षसका तैने मारा है हमने उन सबका
नाम सुना है, आज तेरे सुधिरसे उन सबकी
जलदान करेगे। राक्षसके ऐसे वचन सुन भीम
क्रोधसे अपने आँटाकी चाटने लगे, उनका
स्वरूप उस समय ऐसा हाँगया जैसा प्रलय
कालमें घमराजका होता है। भीमसेनने अपने
हाथोंकी स्पर्श करके राक्षसकी और देखा,
और जब राक्षसने देखा कि भीम युद्धके लिये

मेरी ओर दौड़े आते हैं तो क्रोधसे बार बार ओठोंको चाटता हुआ भीमकी ओर ऐसे दौड़ा जैसे इन्द्रके पकड़नेकी बलि दौड़ा था। उस समय जटासुर और भीमसेनका घोर बाहुयुद्ध हुआ, तब नकुल और सहदेव क्रोध करके राक्षसकी ओर दौड़े परन्तु कुन्तीनन्दन भीमने उनकी रोका और कहा कि तुम लोग देखते रहो हम ककेलीही इस राक्षसको मार डालेंगे। हे राजन् ! हम अपने भाई, धर्म, कर्म और इष्टकी शपथ करते हैं कि हम अकेलीही इस राक्षसको मारेंगे। इस प्रकार परस्पर बड़ाई करते हुए भीमसेन और राक्षस बाहुयुद्ध करने लगे। उन दोनों क्रोधियोंका युद्ध देवता और दानवके समान हुआ, वे दोनों वृक्ष उखाड़ उखाड़ कर एक दूसरेकी मारने लगे, दोनों महापराक्रमी वीर मेघके समान गर्जने लगे, उन वीरोंके पैर लगनेसे बड़े बड़े वृक्ष टूटने लगे। एक दूसरेकी मारनेकी इच्छासे महायुद्ध करने लगा, उन दोनोंका वृक्षयुद्ध ऐसा हुआ जैसा पहले समयमें स्त्रीकी इच्छावाले सुग्रीव और बालिका हुआ था। वे दोनों वृक्षोंकी उखाड़ उखाड़ और घुमा घुमाकर मारने लगे, तथा बार बार गर्जने लगे, उन्होंने सब वृक्षोंकी उखाड़ उखाड़ कर जो मारा वे सब मंजके समान होकर पृथ्वी पर गिर गये, भीम राक्षसकी और राक्षस भीमकी मारनेकी इच्छा रखते थे इसी लिये एक दूसरेकी ऊपर शिला बरसाने लगे। यह युद्ध थोड़ी दूर तक हुआ; शिला फेंकते हुए राक्षस और भीम ऐसे शोभायमान हुए जैसे महा मेघोंके सहित दो पर्वत। महाबलवान जटासुर और भीमसेन वज्रके समान भारी शिलाओंकी चलाते हुए युद्ध करने लगे, अभिमानसे भरे हुए महापराक्रमी भीम और जटासुर एक दूसरेकी अपने हाथसे पकड़ कर हाथीके समान खींचने लगे, फिर वे दोनों महान्ता सुक्केसे युद्ध करने लगे,

तब महा कटकट शब्द होने लगा। अनन्तर भीमसेनने पांच फणिके सर्पके समान अपने हाथका सुक्का बनाकर राक्षसके कण्ठमें मारा। उस सुक्केके लगनेसे राक्षस बहुत दुःखित होगया। जब भीमसेनने देखा कि यह राक्षस अब वृद्धत धक गया है, तो उसको बलसे उठा कर पृथ्वीपर पटक दिया। देव समान महाबाहु पाण्डुनन्दन भीमसेनने राक्षसको पृथ्वीपर पटककर उसके सब शरीरको चूर कर दिया, एक सुक्का मारकर उसका शिर शरीरसे अलग कर दिया, उस समय उसके दात आंख बारह निकल गये। जैसे ताड़का फल वृक्षसे गिरता है, तैसेही राक्षसका शिर खूनसे भीगकर पृथ्वीमें गिर गया। महाधनुर्धारी भीमसेन जटासुरकी मारकर महाराज युधिष्ठिरके पास गये। तब सब ब्राह्मण लोग भीमसेनकी इस प्रकार स्तुति करने लगे, जैसे मरुत गण इन्द्रकी स्तुति करते हैं।

तीर्थयात्राप्रकरण और उसके अन्तर्गत
जटासुर वधप्रकरण समाप्त ।
१५७ अध्याय समाप्त ।

अथ यक्ष-युद्धप्रकरण आरम्भ ।
श्रीवैशम्पायन सुनि बोले, हे राजन् जनमेजय ! जब जटासुर मारा गया, तब महाराज कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर फिर बदरिकाश्रममें आकर रहने लगे। एकदिन महाराजने अपने सब भाई और द्रौपदीकी बुलाकर अर्जुनका स्मरण करके कहा, कि हमलोगोंको वनमें विहार करते हुए चार वर्ष बीत गये, अब पाचवा वर्ष आरम्भ हुआ है और इसी वर्षमें अर्जुन आनेको कह गये हैं, हमलोग अर्जुनका मार्ग देखनेको फले हुए पुष्पोंसे शोभित, मतवाली कीकिल, भौरे मोर और चातक प्रभृति सबसे शोभायमान, व्याघ्र, सुश्रभ भैंसे, नीलगाय हरिन कुत्तेके पैरवाले जन्तु, (भड़िया आदि) सर्प स्रृक्ष (हरिन) आदि पशुओंसे सेवित, कुम्भ

हुए सौ और हजार दलके कमल और नील-
कमल (लीलोफर) में भरे हुए, देवता और
मुनियोंसे सेवित, पवित महापुण्य दायक खेत-
गिरि पर चलकर रहे। यहाँ भी हमलोगोंने
अर्जुनके देखनेकी इच्छासे निवास किया;
महातेजस्वी अर्जुन यहीं आनेकी कह गये थे,
हमलोग पांच वर्ष तक यहीं रहेंगे क्योंकि
वह कह गये है कि हम यहीं आवेंगे, हम शत्रु-
नाशन गाण्डीव धनुषधारी अर्जुनको देवलोकसे
गाया हुआ यहीं देखेंगे। ऐसा कह महाराजने
व ब्राह्मणोंको अपने पास बुलाया और उन
तपस्वियोंसे सब कारण कह सुनाया। अन-
न्तर सब पाण्डवोंने महा तपस्वी और प्रसन्न
ब्राह्मणोंकी प्रदक्षिणा की ब्राह्मणोंनेभी प्रसन्न
होकर कुशल पूर्वक और आनन्दसे रहनेका
आशीर्वाद दिया। ब्राह्मणलोग बोले, हे भरत-
कुलसिंह! हे धर्मराज! अब तुम्हारे सुखके
दिन आवे, अब आप शीघ्रही राज-धर्मके
अनुसार उस दुःखको पार होकर पृथ्वीका
पालन करेंगे। महाराज उन सब तपस्वियोंके
वचनको ग्रहण करके, अपने भाई और ब्राह्म-
णोंके सहित वहाँ चले। शत्रुनाशन, महा-
तपस्वी, उत्तम व्रतोंके धारण करनेवाले, महा-
राजवृद्धिद्वि, अपने भाइयोंके सहित लोमशसे
सहित होकर राजसोंकी सड़ ले, कहीं पैरों
पार कहीं राजसोंपर चढ़कर चलने लगे।
महाराज वृद्धिद्वि अनेक लेशोंको न विचारते
हैं सिवाय पार व्याघ्रोंसे भरी हुई, उत्तर दिशा-
की चले। मार्गमें कैलाश सैनाक, गन्धमादन
और हिमाचल पर्वतोंको देखा, पर्वतोंके
ऊपर गन्धर्व नखदायक नदियोंको देखते हुए
दो दिनों हिमाचल पर्वतके ऊपर पहुँचे।
पाण्डवोंने गन्धमादनसे हिमाचल
हृषीकेशके आश्रमको देखा। वह स्थान
पश्चिम अनेक वृक्षोंसे वृद्धि और सरनोके
पर्वतोंके ऊपर उच्चोत्तरी शीमायमान था।

शत्रुनाशन पाण्डवलोगोंने थकाई दूर करके,
राज-ऋषि धर्ममात्मा वृषपर्वीके पास जाकर
उन्हें प्रणाम किया। राज-ऋषि वृषपर्वीने
भरतकुलसिंह पाण्डवोंका पुत्रके समान आदर
किया। शत्रु-नाशन पाण्डवलोग वृषपर्वीसे
सत्कार पाकर सात दिनों तक उनके आश्रममें
रहे; आठवें दिन लोकविख्यात वृषपर्वी मुनिको
बुलाकर, महाराजने जानकी आज्ञा मांगी और
एक एक ब्राह्मणका नाम सुनाकर महाराजने
वृषपर्वीको दे दिया और समयके अनुसार वस्तु-
ओंके समान सत्कार किये हुए अपने सेवकों-
कीभी महामात्मा वृषपर्वीको दे दिया। यज्ञ-
पात्र, रत्न और भूषणभी पाण्डवोंने वृषपर्वीके
आश्रममें छोड़ दिये, वीति और आनेवाले रम-
यकी जाननेवाले विद्वान महामात्मा वृषपर्वीने
भरतकुलसिंह पाण्डवोंको पुत्रके समान शासन
किया। तब महामात्मा पाण्डवलोग वृषपर्वीकी
आज्ञा लेकर उत्तरकी चले। उनकी चलते
हुए देख महातेजस्वी महाराज वृषपर्वी ब्राह्म-
णोंके सहित उनके पीछे चलने लगे। कुछ दूर
चलकर महाराज वृषपर्वी उनकी आशीर्वाद दे
और मार्ग बताकर लौट आये, इत्तीनन्दन
युधिष्ठिर अनेक पक्षियोंसे भरे हुए वनकी
देखते हुए भाइयोंके सहित पैरोंही चलने
लगे। पाण्डव लोग अनेक वृक्षोंसे भरे हुए
पर्वतके स्थानोंमें निवास करते हुए, चौथे दिन
उस पर्वतपर पहुँचे। वह पर्वत अनेक बड़े बड़े
मेशोंके समान सुन्दर और जलसे भरा हुआ था,
उसके अनेक शिखर मणि और सोनेके समान थे।
जैसे वृषपर्वी मुनिने मार्ग बताया था, वे लोग
वैसेही अनेक पर्वतोंकी देखते हुए, गमन करने
लगे। पर्वतके ऊपर दुःखसे जानें योग्य अनेक
गुफाओंकी देखते हुए, तथा उनकी सगवसे
लाभते हुए चले। वीन्य, त्रीपदी, घाट व और
महानृपि लोमश, ये सब सहजी चले, वे लोग
अनेक वृक्ष और पक्षियोंके शब्दोंसे शोभित

अनेक वृक्ष, लता और वन्दरोंसे सेवित पवित्र कमलोंसे भरे हुए तालावोंसे शोभित माखवान पर्वतपर पहुँचे। महाभाग पाण्डवलोग सिद्ध और चारणोंसे सेवित किम्पुरुष देशमें पहुँचे। आगे प्रसन्न पाण्डवोंने गन्धमादन पर्वतको देखा उसमें अनेक विद्याधर, किन्नरी, हाथी, सिंह और व्याघ्र वसते थे। जहाँ अनेक शरभोंके शब्द चले आते थे, अनेक हरिनलोग सुखसे विचार करते थे। आगे पाण्डवोंने नन्दन वनके समान गन्धमादन वनको देखा। वे पाण्डवलोग मन और हृदयको प्रसन्न करनेवाली उस वनमें घुसे; वे वीरलोग शरण देनेवाली वनमें घुसे, द्रौपदी और महात्मा ब्राह्मणोंके सहित वीर पाण्डवलोग कानोंको सुख देनेवाली पक्षियोंके मीठे मीठे शब्दोंको सुनते हुए, सब ऋतुमें फलनेवाली फलोंसे भरे हुए वृक्षोंका देखते हुए, फलोंके भारसे पृथ्वीको कुँते हुए आम, अमड़ा, बहेड़ा, नारियल, तेन्दु, मजाक, अंजीर, अनार, नीम्ब, कटहल, बड़हल, मोच, खजूर, अमलबेत, परावत, चीद्र, नीप, (कदम्बादिक) मनोहर बेल, कैय, जामुन, खसारी वैर, वरगद गूलर, पिलखन, पीपल, चक, भेंडावा, आमला हैड़, गोंदनी, करौदा, आदि अनेक वृक्षोंको देखते हुए और उनके अमृतके समान फलोंको देखते हुए महात्मा पाण्डवलोग चले। पाण्डव लोगोंने केतकी, चम्पा, अशोक, जसरी, कमल, पारिजात, कचनार, देवदारु, शाल, ताड़ तेजपात, हींग, साबू, सेमर, अशोक, सीसो और रालके वृक्षोंको देखा। चकोर, शतपत्र, भौर, तोते, कोयल, वरे हरंके, जीव, प्यारे पपीहा, तथा और औरभी अनेक पक्षी सब कानको सुख देनेवाली मीठी मीठी बोली बोल रहे थे। जिस वनमें कदम्ब चकवी, चकवे, कुमरी, जलकुकुट, सारस ब्रम्ह, वज्रले और टीटोरी आदि अनेक पक्षी झोंकर जलमें क्रीड़ा कर रहे थे जहाँ

तड़ागोंमें कमलके मध्यसे कूटे हुए, केश रङ्गसे रङ्गे हुए भौर मीठे मोठे स्वरसे गा थे; पुरुष सिंह पाण्डवलोगोंने गन्धमादनपर कमलके वनोसे भरे हुए अनेक तालावों देखा, उन्होंने लताके धरोमें बैठे हुए; मे शब्दोंको सुनकर पञ्चम स्वरसे गाने हु मदसे भरे हुए, विचित्र शिखावाले अने मोरोंको मीठेस्वरसे गाते हुए देखा उनमें कोई मोर प्रसन्न चित्तसे वनको देखता हुआ नाच रहा था। कोई अपनी प्यारी मोरनी सङ्ग विचार कर रहा था। कोई लता और बलियोंके बीचमें बैठा हुआ वनको देख रहा था। कोई इन्द्रजवके वृक्षके उपर उद्यत रूपसे बैठा था, कोई आनन्दसे अपनी वाणीकी बोलता हुआ वृक्षको शाखापर सुकुटके समान बैठा था। पाण्डवोंने कामदेवके शस्त्रोंके समान अनेक फूलें हुए कमल और सोनेके रङ्गवाले फूलोंको देखा। कानके आभूषणके समान फूलें हुए अनेक टाकोंको देखा। नवीन वनमें फूलें हुए, कुरैआके अनेक पक्षोंकी देखा; उन्होंने वनमें विराजमान सफेद और काले दणको देखा, उन फूलोंकी शोभा कामदेवके वाणोंके समान थी, जिनको देखतेही पुरुष कामदेवके वशमें हो जाते हैं। यह सब फूल वनमें विराजमान थे, कामदेवके वाणके समान आमकी मञ्जरियों पर भी गूँज रहे थे। उस वनमें कोई फल मीनके रङ्गवाले और कोई अग्निके समान रंगवाला था, कोई फूला हुआ वृक्ष लाल, कोई मणिके समान रङ्गवाला था। शाल, आम, नूस, पाटली, और मौलसरीके वृक्ष पर्वतके शिखरों पर मालाके समान विराजमान थे। उस पर्वत पर निर्मल स्फटिकके समान खच्छ पाण्डुर रंगके पखवाले कलहस और सारसोंके शब्दसे शोभायमान अनेक तालावोंको देखा। उन तालावोंमें सफेद और नीले

वमल तथा सुन्दर और टण्डुल भरा था ।
 और पाण्डव लोग इसे प्रकार चारों और सुगन्ध
 से भरे हुए उत्तम रसवाले फल, फूल, मनोहर
 तलाव, अत्यन्त रमणीय वृक्ष, कमल, उत्पल,
 पण्डरीक आदि अनेक फूलोंकी सुगन्धिसे प्रसन्न
 होते हुए और शीतल वायुसे सेविन होते हुए
 वनमें पड़चें। उस वनके आश्चर्यको देख
 पाण्डवोंके मन बहुत प्रसन्न हुए । तब महाराज
 युधिष्ठिरने बहुत प्रसन्न होकर भीमसेनसे
 कहा कि, भीमसेन । देखो यह गन्धमादन
 पर्वत कैसी शोभासे भरा हुआ है, देखो इस
 वनमें जैसे रमणीय वृक्ष अनेक प्रकारकी लता,
 पत्र और फलोंसे भरे हुए विराजमान है, ये
 मृत्तोंके गुच्छे कोकिलोंके झुण्डके सहित कैसे
 शोभायमान हैं, इस वनमें वृक्ष कांटावाला
 प्रयवा विना फना हुआ नहीं है, देखो इस
 जालावमें कमल फूल रहे हैं, इसमें चयिनियों-
 के सहित हाथी विहार करते फिरते हैं ।
 देखो इसमें अनेक कमल उत्पल और नीली
 कमल फूल रहे हैं, इन सब फूलोंसे यह पोखर
 शोभायमाना धारणी लक्ष्मीके समान विराज-
 मान है । इस उत्तम वनमें यह अनेक पुष्पोंकी
 शोभासे शोभित वृक्ष लगे हैं । हे भीम । देखो ।
 इन वृक्षों पर अनेक भोरे गीत गाते फिरते
 हैं । यह सब स्थान देवताओंके खेन करनेके है ।
 हे भीम । ये स्थान मनुष्योंके आने योग्य
 नहीं हैं, अब हमलोग यहाँ आके मनुष्य
 के प्राप्ति तथा निवृत्ति होगये देखो इन
 शोभासे भरी हुई लता और उत्तम वृक्ष
 प्रसन्न कैसे मिले हैं और उन पर जो
 पक्षियोंने सहित मोर बैठे हैं, उनके शब्दकी
 शक्ति और शतपत्र, मतवारी कीकिल
 के ये सब फूल और फले वृक्षोंपर
 लगे हैं, देखो जाल, पोले और गुलाबों
 की लता वृक्षों पर बैठे हुए एक दूसरे-
 से बातें करती हैं । इसी प्रकार काली रंगशो धान

पर बैठे हुए सारस सब पुष्पोंकी प्यारी मोठी
 बोली बोल रहे हैं । चकवा भौरा और लोह-
 पृष्ठ आदि पक्षी और चार दांतवाले श्वेत हाथी
 हथिनियोंके सहित विहार कर रहे हैं, ये ताड़के
 समान जंघे और पर्वतके समान मोटी हाथी इस
 मणिके समान जलकी मथ रहे हैं । देखो, यह
 शिखरों परसे अनेक झरनोंसे जलकी धारा बह
 रही है । देखो शरद ऋतुके मेघके समान और
 सूर्यके समान अनेक धातु इस पर्वत पर
 विराजमान हैं । कहीं अञ्जनके समान काली
 और कहीं सोनेके समान रङ्गवाली धातु
 विराजमान है, कहीं हरताल, कहीं सिद्धरफ
 और कहीं मनःशिला धातु ऐसे विराजमान हैं,
 जैसे सन्ध्याके मेघ । कहीं खरहेके रुधिरके समान
 गीत बह रहा है । कहीं सफेद और काली
 मेघके समान अनेक धातु प्रातःकालके सूर्यके
 समान विराजमान हैं । हे भीम । यह अनेक
 शोभासे भरे हुए धातु इस पर्वतकी शोभित
 कर रहे हैं । वृषपर्वा मुनिके कहनेके अनुसार
 ये गन्धर्व लोग अपनी स्त्रियोंके सहित
 विहंग्म कर रहे हैं । हे कुन्तीनन्दन । इन
 पर्वतोंपर किम्पुरुष सम-तालके सहित गीत
 गा रहे हैं और वेदका शब्दभी आता है ।
 हे भीम । यह शब्द सब प्राणियोंकी प्यारा है ।
 हे भीम । उस पवित्र देवगदी गङ्गा को तुम
 देखो, अनेक कलहंस किन्नर नृग और पक्षी
 विहार कर रहे हैं, इसमें अनेक धातु और नदी
 विराजमान हैं । गन्धर्व, अष्टरा, मनोहर वन
 अनेक प्रकारके सी सिरवाले सपोसे विराज-
 मान हैं । हे शत्रुनाशन भीम । इन सब वस्तु-
 ओसे विराजमान पर्वत-राजकी देखो ।

श्रीशम्भयन मुनिजी बोले, शत्रुनाशन शत्रु-
 नाशन पाण्डव लोग जब उस उत्तम गतिकी प्राप्ति
 हुए तबभी प्रसन्न चित्तसे पर्वतराजके दर्शन
 करनेमें लग्न न हुए । तब अनेक पक्षि
 फले वृक्षोंके विराजमान राजवर्षि धार्ष्टि

मुनिके आश्रम पर पहुँचे । अनन्तर उन्होंने महा-तपस्वी दुर्बल, मांसरहित और सब धर्मोंके पार जानेवाले आश्रिषेण मुनिकी दर्शन किया ।

१५८ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनिजी बोले, हे राजन् । महाराज-युधिष्ठिरने अपना नाम सुनाकर आश्रिषेण मुनिकी सिरसे प्रणाम किया । उन मुनिने तपसे सब पापोंकी जला दिया था । अनन्तर द्रौपदी, भीमसेन, तपस्वी नकुल और सहदेवने प्रणाम किया, और राजश्रापे आश्रिषेणके चारों ओर बैठे । इसके पश्चात् धर्म जाननेवाले पाण्डवोंके पुरोहित धौम्य मुनिने उन मुनिसे रीतिके अनुसार वार्त्तालाप किया । अनन्तर महाराज आश्रिषेण मुनिने अपनी ज्ञान-दृष्टिसे जाना कि, कुरुवंशी पाण्डु राजाके पुत्र आये हैं, तब उन्होंने सबका सत्कार किया । महारतपस्वी आश्रिषेणने कुरुकुलसिंह युधिष्ठिरकी भाद्र्योके सहित बैठाया और कुशल पूछो और बोले कि हे कुन्तीनन्दन ! तुम्हारी वृत्ति-धर्ममें है न ? तुम माता और पिताकी सेवा तो करते हो ? कहो तुम अपने गुरु, बूढ़े और दैव्योंकी पूजा तो करते हो ? तुम्हारी बुद्धि कभी पाप कर्ममें तो नहीं जाती ? कहो तुम्हारी बुद्धि धर्म करने और पाप छोड़नेमें तो है ? हे एरण्येष्ठ । तुम न्यायके अनुसार धर्म करके कहते तो नहीं हो ? तुमसे यथार्थ पूजित होकर साधुलोग प्रसन्न तो रहते हैं ? कहो वनमें रहकर धर्म तो करते हो ? हे कुन्तीनन्दन । कहो तुम्हारे आचरणोंसे धौम्यको दुःख तो नहीं होता ? तुम्हारा धर्म, तप, शील, पवित्रता और अलक्ष तो ठीक है न ? हे कुन्तीनन्दन । कहो तुम अपने कुलका धर्म करते हो ? हे कुन्तीनन्दन । जिस मार्गसे राजर्षि लोग गये हैं, तुम उसीसे चलते ? हे पाण्डव । हे पितृनन्दन । पितरलोग

अपने अपने वंशमें उत्पन्न हुए पत्योंकी देख प्रसन्न और दुःखी होते हैं वे लोग विचारते हैं कि, हम इसके सुकर्म से सुख और कुकर्मसे दुःख पाते हैं । पिता, माता, अग्नि गुरु और आत्मा जो पुरुष इन पापोंकी पूजा करते हैं, उनके-दोनों लोक सुधरते हैं, ।

राजा युधिष्ठिर बोले, हे भगवन् । आप जो कुछ कहा ठीक है । हम अपनी शक्ति और न्यायके अनुसार सब कर्म करते हैं, यह सब धर्मके काम है । श्रीआश्रिषेण मुनि बोले-प्रतिपदा और पूर्णमासीके दिन इस पर्वत पर जल और वायु भक्षण करनेवाले मुनि लोग आकाशसे आकर इकट्ठे होते हैं । हे कुन्तीनन्दन । किम्पुरुष कामी लोग अपनी पतिव्रता स्त्रियोंके सहित इन पर्वतके शिखरों पर दिखाई देते हैं । कौषिकके वने हुए निर्मल वस्त्र और मालाधारण करके अनेक गन्धर्व और असुर लोग यहाँ आते हैं । हे राजन् । सुन्दर रूपवाले विद्याधर उत्तम मालाओंकी धारण करके इस पर्वत पर आते हैं । वृष और गरुडादिक भी यहाँ आते हैं । प्रतिपदा और पूर्णमासीकी इस पर्वतके ऊपर भैरव शङ्ख और नगरोंका शब्द सुनाई देता है । पाण्डवो । तुम वहाँ जानेकी बुद्धि मत करना यहाँ बैठ कर इन सब शब्दोंकी सुनना । हे भरतकुलसन्तम । यहाँसे आगे मनुष्य लोग नहीं जा सकते हैं आगे देवतोंके विचार करनेकी जगह है । हे भारत । यहाँ पर जो गरुड चपलता करता है, उसका सब जन्तु द्रोपदारन है और राक्षस लोग उसे मार डालते हैं । हे युधिष्ठिर । इस कैलाश शिखरके पार सिद्ध और देवऋषि लोग जा सकते हैं । हे शत्रुनाशन युधिष्ठिर । जो चपलता करके यहाँ आगे जाना चाहता है, उसकी राक्षस लोग भाँज आदिसे मारते हैं । हे तात । इस स्थानपर प्रतिपदा और पूर्णमासीकी नरवाहन महागुण

कुवेर अप्सराओंके सहित आकर यहाँ दर्शन देने हैं। सूर्यके समान तेजस्वी यज्ञ और पाक्षियोंके स्वामी कुवेरको शिखर पर बैठे हुए सब लोग देखते हैं। देवता दानव सिद्ध और कुवेरके विचार करनेका यह स्थान है। हे भरतसत्तम ! हे तात ! इस शिखर पर बैठ कर कुवेर तुम्हसे गन्धर्वसे गीत और सामवेद सुनते हैं। हे युधिष्ठिर ! इस पर्वतके रहनेवाले सब प्राणी इन सब आश्चर्यको यहाँसे बैठकर देखते हैं, तुम लोग सुनियोंके खाने योग्य सुरस फलोंको खाकर अर्जुनके आने तक यहाँ रहो परन्तु कभीभी चपलता मत करना। हे तात ! तुम यहाँ सुखसे निवास और विचार करके शेषमें शस्त्रोंसे जीती हुई पृथ्वीका पालन करना।

१५६ अध्याय समाप्त ।

राजा जनमेजय बोले, हे तपोधन ! आर्ति-प्रेम सुनिके आश्रमपर पहुँचकर मेरे परदादा पाण्डुके पुत्र दिव्य पराक्रमी महात्मा पाण्डव लाय उस गन्धमादन पर्वतपर कितने दिन रहे और महा पराक्रमी महा वीर्यवाले लोकवीर पाण्डवोंने वहाँ रहकर कौनसे कर्म किये सो सब तमसे कहिये, महाबाहु भीमसेनने उस समालय पर्वतपर रहकर कौन कौन काम किये ! हम उनके पराक्रमका विस्तार पूर्वक सुनना चाहते हैं। हे ब्राह्मणचन्द्र ! उनसे और यहाँसे कैसे सुन हुआ ! उनकी कुवेरका दर्शन कैसे हुआ ! भगवान् आर्ति प्रेमाने कहा था कि कुवेर आते हैं, तो कहिये, कि उनकी कुवेर-का दर्शन कैसे हुआ ! क्योंकि पाण्डवोंका अति उत्तमसे हमारी दामि नहीं होती है।

य प्रसन्नमनसः सुनि बोले, हे राजन् जनमे-
जय ! भगवान् आर्ति प्रेमाने अपनी उन्नत-
वर्णसे सुनते हैं, महावीरोंका सुनकर वेनाही
होता, हे राजन् पवित्र विमलचलपर रहते हुए,

सुनियोंके खाने योग्य रसभर फलोंको और शुद्ध वाणोंसे मारें हुए हरिणोंके मांसको और अनेक प्रकारको मोठी वस्तुओंको खाते हुए निवास करने लगे। इस प्रकार सब पाण्डवोंको वहाँ रहते हुए, पाचवा वर्ष आरम्भ हुआ, उस समय लोमश सुनि अनेक प्रकारकी कथा कहते रहे। हे पृथ्वीनाथ ! घटोत्कच राक्षसोंके सहित “हम उचित तमयपर आवेगें” यह कहकर पहिलेही चला गया। महात्मा पाण्डव लोगोंको उस आश्रमपर रहते और अनेक आश्चर्यको देखते हुए अनेक महीने बीत गये। महात्मा पाण्डवोंके विचार करते समय अनेक व्रतधारी पवित्रआत्मा सुनि और चारणलोग उनकी देखने आये। भरतकुलचन्द्र पाण्डवलोगभी उनसे दिव्य वार्तालाप करने लगे। एक दिन महाकदमे रहनेवाले समृद्धियुक्त महासापको गन्डुने पकड़ा, उसके पकड़नेसे पर्वत हिल गया और वृक्ष टूटने लगे। इस आश्चर्यको सब प्राणियोंके सहित पाण्डवोंने देखा। उसके पश्चात् वायुने पर्वतके शिखरसे सुगन्धसे भरे हुए सुन्दर फूलोंको पाण्डवोंकी ओर उड़ाता। उन पाच राजके फूलोंको मित्रोंके सहित पाण्डवोंन और यशस्विनी द्रौपदीने देखा। तब उचित समयपर सुन्दर शिलापर सुखसे बैठे हुए महाबाहु भीमसेनसे द्रौपदी बोली, हे भरतकुलसिंह ! गन्डुके पंखोंसे उटे हुए, वायुने महाबलसे यह पाच राजके फूल फेंके हैं। जो सब प्राणियोंके आगे अश्वरथा नदीने बह रहे हैं। तुम्हारे भाई सत्यवादी महात्मा अर्जुनने खाण्डव वनमें गन्धर्व, साप, राजस और इन्द्रकीभी निवारण कर दिया था; और मायावी राजसोंको मारकर गाण्डीव धनुजको प्राप्त किया था। हे भीम ! तुम्हारा तेज और बाहुबल बहुत बड़ा है। हे इन्द्रकुल पराक्रम ! तुमको कोई नहीं जीत सकता और तुम्हारे तेजस्वी दोई नहीं रक्ष सकता; तुम्हारे

पराक्रमसे सब राक्षसलोग डरते हैं ! हे भीम-
सेन ! तुम्हारे पराक्रमसे दशो दिशा कांपती हैं,
तुम्हारे मित्रलोक सुखदेनेवाले मालाधारो इस
पर्वतके शिखरकी सुख और निर्भयतासे देखें !
हे भीम ! बद्धत दिनसे हमारी इच्छा थी,
कि तुम्हारी वाङ्मरचित होकर इस पर्वतके
शिखरकी देखती। शत्रुनाशन महाबाहु भीम-
सेनने द्रौपदीके वचन सुन अपने शरीरसे प्रहार-
प्राप्त उत्तम बैलके समान उसकी इच्छानुसार
करनेकी इच्छा की। श्रीमान्, सिंह और
शार्दूलके समान गतिवाले, सोनेके समान रङ्गवाले,
मनस्वी, बलवान्, अभिमानी, शूर, लालनेत्र
और जंघे कन्धेवाले, मतवाले हाथीके समान
बली, सिंहके समान दांतवाले, शालके समान
जंघे, महात्मा, सर्वाङ्गसुन्दर, संखके समान
कण्ठवाले महाबाहु भीमसेनने स्वर्णपीठ धनुष,
खड्ग और तूणीरकी धारण किया। अनन्तर
सिंह तुल्य उद्धत और मतवाले हाथीके समान
भय और मोहको छोड़कर चले। मतवाले
हाथीके समान गतिवाले भीमकी धनुष वाण
धारण किये सब प्राणियोंने सिंहके समान
चलते देखा। पाण्डुनन्दन भीमने द्रौपदीका
आनन्द बढ़ानेके निमित्त हाथमें गदाले शोक
और भयको छोड़ पर्वतके शिखरकी ओर गमन
किया। उनको न ग्लानि न डर न परिश्रम
और न कभी दुष्टता आती थी। महाबली
भीमसेन, अनेक ताड़ोंके समान लज्जे घोर रूप
और एक मार्गवाले शिखर पर चढ़ गये उनकी
देख किन्नर सर्प मुनि और राक्षस प्रसन्न होने
लगे। वहां चढ़कर भीमने कुवेरका घर देखा,
वह स्थान सोने और स्फटिकका बना हुआ
अनेक स्थानोंसे घिरा हुआ था। चारों ओर
सोनेका बना हुआ, रत्नजड़ी भीत और
वाणोंसे शोभित था, पर्वतसे भी उंची अनेक
अटारो द्वारतोरण और ध्वजाओंसे शोभायमान
था, उस स्थानके चारों ओर अनेक विलासिनी

नाचती और गाती फिरती थीं। जिसमें लगे
झड़ पताका वायुसे हिल रही थी, भीम
धनुषको आड़ करके ये लोग हमें न देख स-
ऐसा विचार करके दुःखसे कुवेरके नगर
देखा। सुगन्धिसे भरा हुआ सब प्राणियों
सुख देनेवाला गन्धमादनका वायु बहा चल
लगा। भीमसेनने उस शिखर पर अनेक द-
वाले विचित्र सौन्दर्यधारी परम शोभायुक्त अने
वृक्षांको देखा, भीमसेनने अनेक रत्नोंसे सि-
ंहए विचित्र मालाधारी कुवेरके स्थानको देखा।
महाबल भीमसेन अपने हाथमें धनुष और ख-
धारणकर प्राणका प्रेम छोड़ पर्वतके समान
स्थिर होकर बैठ गए अनन्तर शत्रुओंकी
कांपनेवाली शङ्खकी बजाया धनुष और तालाका
घोर शब्द किया। उस शब्दकी सुनकर
राक्षसोंके रोएं खड़े हो गये, अनेक गन्धर्व और
राक्षस लाग भीमसेनकी ओर दौड़े। यक्ष
और राक्षस लोगोंने अपने हाथोंमें गदा,
परिघ, खड्ग, शूल, शक्ति और परशु आदि
अनेक शस्त्रोंकी धारण किया। हे जनमेजय !
तब उन राक्षस और भीमसेनका युद्ध होने
लगा। भीमसेनने महाबलवाले मायाके सज्जित
राक्षसोंके कूटे हुए शूल शक्ति और परशु
आदि शस्त्रोंकी अपने बाणोंसे काट दिया,
भूमिमें और आकाशमें खड़े हुए तथा गर्जते हुए
राक्षसोंके शरीरोंकी अपन बाणोंसे काट दिया,
उस समय महाबली भीमसेनके ऊपर रुधिरकी
वृष्टि होने लगी, गदा और परिघधारी राक्ष-
सोंसे चारों ओर रुधिरकी धारा बहने लगी,
भीमसेनके बाहुबलसे कूटे हुए बाणोंने राक्षसोंके
शिर और शरीरको काटना आरम्भ किया।
उस समय राक्षसोंसे छिपे हुए भीमसेनका रूप
ऐसा दीखने लगा जैसा बादलसे घिर हुए
सूर्यका। उनके बाण ऐसे चलते थे जैसे
सूर्यकी किरण। मत्स्य पराक्रमी भीमसेनने
अपने बाणोंसे राक्षसोंका कालिया ! राक्षसों

भीमसेनकी बहुत डराया और अनेक प्रकारके
 वुरे वुरे शब्दभी कहे, परन्तु भीमसेनकी कुछभी
 डर न हुआ। यह लोग भीमके डरसे व्याकुल
 और वाणोंसे पीड़ित होकर अपने अपने
 शस्त्रोंकी डाल डालकर घोर शब्द करने लगे।
 राजस और यक्षलोग महा धनुषधारी भीम-
 सेनके भयसे आकुल होकर गदा, शूल, शक्ति
 और परश्वर्धोंकी छोड़ छोड़ कर दक्षिणकी
 ओर भागे। उनमें महापराक्रमी माहाबाहु
 मणिमान नामक राजस कुवेरका मित्र था।
 वह महाबली और महापुरुषार्थी मणिमान
 राजस सब राजसोंकी युद्धसे भागते देख कर
 अपना स्वामिभाव दिखाने लगा। और बोला,
 कि तुम सबलोगोंकी एक मनुष्यने हरा दिया।
 तम कुवेरसे जाकर क्या कहोगे? मणिमान
 राजस सब राजसोंसे ऐसा कहकर शक्ति, शूल
 और गदा धारण करके भीमसेनकी ओर
 गेड़ा। जब भीमने उसकी मतवारे हाथीके
 समान वेगसे आते हुए देखा, तो उसके हाथमें
 अत्यन्त तीक्ष्ण तीन बाण मारे। उन बाणोंकी
 शक्तिसे महाबली मणिमानकी महाक्रोध हुआ
 और एक भारी गदा भीमसेनकी मारी। भीमने
 उस महाघोर गदाको आकाशसे गिरती हुई
 देख, शिलाको काटनेवाली अनेक वाणोंकी
 मारा। परन्तु वे सब बाण उसमें लग
 कर टूट गये और उसके वेगकी रोक
 नहीं। तब महापराक्रमी बलवान भीमसेनने
 शत्रुकी रीतिसे मणिमानकी गदाको व्यर्थ
 दिया। उसी समयमें मणिमानने लोहेकी
 तीरोंके दवाली एक घोर सांगी भीम-
 सेन मारा। वह घोर शब्दवाली शक्ति
 और भीमसेनके दहने हाथमें लगी, वह
 भीमसेनकी घोर शक्ति भीमसेनके हाथमें
 लगी। अन्तर पराक्रमी
 भीमसेन महाधनुषधारी भीम उस शक्तिके
 सहित भर कर गदा लेकर राजसका

और दौड़े, भीमने सीनेके पतसे जड़ी हुई शत्रु-
 ओंका भय बढ़ानेवाली लोहेकी गदाको हाथमें
 लेकर घोर शब्द किया और वेगसे दौड़कर
 वह गदा मणिमानकी मारा। महाबल मणि-
 माननेभी एक तीक्ष्ण शूल भीमसेनकी मारा,
 गदा-युद्ध-निपुण भीमसेनने उस तीक्ष्णकी
 अपनी गदासे तोड़ डाला। फिर उसके मार-
 नेकी दौड़े, जैसे सापके मारनेको गरुड़ दौड़ता
 है। महापराक्रमी भीमसेनने आकाशमें बूदके
 गर्जकर वह गदा मणिमानकी मारा, वायुके
 समान वेगवान भीमसेनके हाथसे बूटकर
 इन्द्रके बज्रके तुल्य वह गदा उस राजसके
 हृदयमें लगी, उसके लगनेसे वह राजस
 पृथ्वी पर गिर कर मर गया। महापराक्रमी
 भीमने उस राजसकी ऐसा मारा, जैसे
 सिंह बैलकी मारता है। जब राजसने उसे
 मरा हुआ देखा, तो सब वचे हुए राजस उत्तर
 दिशाकी भाग गये।

१६० अध्याय समाप्त ।

श्रीकृष्णायन मुनि बोले, हे राजन जनमे-
 जय । महाराज युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव,
 धर्म्य और द्रौपदीने जब अनेक प्रकारके घोर
 शब्द और गुफाओंकी गुञ्जार सुनी, तो चारों
 ओर देखने लगे। तब भीमसेनकी न पाकर
 सब लोग व्याकुल हो गये। अन्तर द्रौपदीकी
 आर्ष्टिपण मुनिके आश्रममें दौड़के वीर पाण्डव-
 लोग शस्त्रोंकी लेकर पहाड़ पर चढ़ गये। जब
 महारथ शत्रुनाशन महाधनुषधारी पाण्डव-
 लोगोंने उस शिखरपर भीमसेनकी देखा और
 भीमसेनके हाथ मर नष्टकृत हुए, वह घोर-
 वाल बलवान महावीर्यवान राजसको पड़े
 देखा, तब उनके दीर्घने भीमकी गदा खड़े
 और धनुष धारण विधे इस प्रकार विनाशमान
 देखा, जैसे दैत्य की मारकर दैत्य विनाशमान
 होते हैं, तब महारथ पाण्डवोंने यह भाव

भीमसेनको गलीमें लपटा लिया और उस उत्तम गतिकी प्राप्त होकर सब लोग एक स्थानपर बैठ गये । उन धनुषधारी महावीरोंके बैठनेसे वह पर्वतका शिखर ऐसा विराजमान हुआ, जैसे महाभाग लोकपालोंके बैठनेसे स्वर्ग । महाराज युधिष्ठिरने कुवेरका स्थान और उन मरे हुए राक्षसोंको देखकर भीमसेनसे कहा, हे भीम ! तुमने यह काम चाहे साहससे किया हो, या भूलसे किया हो, परन्तु करने योग्य नहीं था । यह काम ऐसाही हुआ, जैसे निरर्थक सुनिकी हत्या । धर्मके जाननेवाले सुनियोंने कहा है, कि राजाके विरुद्ध कोई काम न करना चाहिये । हे भीमसेन ! तुमने यह काम देवतोंके विरुद्ध किया । हे कुन्तीनन्दन ! जो कोई अर्थ और धर्मका निरादर करके पापकर्ममें अपनी बुद्धिकी लगाता है उसको निश्चय पापका फल मिलता है । यदि तुम हमारा प्रिय काम करना चाहते हो, तो फिर ऐसा काम कभी नहीं करना ।

त्रैलोक्यपति मुनिजी बोले, अर्थ और धर्मके जाननेवाले धर्मात्मा कुन्ती-पुत्र युधिष्ठिर अपने बलवान भाईसे ऐसा कहकर चुप हो गये । परन्तु महा तेजस्वी युधिष्ठिर इसी बातको अपने मनमें विचारते रहे ।

भीमसेनके मारनेसे जो राक्षस वचे थे, वे सब मिलकर कुवेरके स्थान पर गये, वे लोग वेगसे चलकर कुवेरके पास पहुँचे, वहाँ जाकर भीमसेनके भयसे रोने लगे । अस्त्र शस्त्र छोड़कर भागे हुए, रुधिरसे भीगे, बाल खुलेवाले राक्षसलोग कुवेरसे कहने लगे । हे धनेश्वर ! आपके सब वीर जो गदा, परिश्र, खड्ग तोमरोंने युद्ध करते थे, उन सबको एक मनुष्यने मार डाला । हे देव ! आपके सब सेवकोंको उस पुरुषने पर्वतके ऊपर चढ़कर मार डाला । हे यक्ष-राक्षसोंके नाथ ! उस एक धने महापराक्रमी महाक्रोधो राक्षसोंकी

मार डाला । हे देव ! आपके मित्र मणिमानक सहित वे सब राक्षस निर्व्वलके समान मरे हुए पड़े हैं, हम लोग भागकर आपके पास आये हैं । जो कुछ उस पुरुषने कर्म किया था, सो हमने आपसे कह सुनाया, अब जो इच्छा हो सो कीजिये । कुवेरने उनके वचन सुन बहुत क्रोध किया और लाल नेत्र करके कहने लगे, कि यह क्या हुआ ? कुवेरने भीमसेनका दूसरा अपराध जान महाक्रोध किया और बोले, कि हमारा रथ लाओ, अनन्तर पर्वतके शिखरके समान ऊँचा और मेघके समान गम्भीर कुवेरके रथको गन्धर्व्व और यक्षोंने जता । उसने सोनेकी मालाधारी सब गुणोंसे भरे नेत्रवाले, तेज, बल और-गुणोंसे युक्त रत्नोंसे विभूषित बहुत शीघ्र चलनेवाले सुन्दर घोड़े जोते गये, वे घोड़े विजयके शगुन दिखाते हुए शब्द करने लगे, भगवान् कुवेर रथपर बैठकर देवता और गन्धर्व्वोंसे स्तुति सुनते हुए चले, महातेजस्वी महात्मा यक्षराज कुवेरकी चलते हुए देख लाल नेत्र महाबलवान सोनेके समान रङ्गवाले बड़े शरीरवाले एक सहस्र राक्षसलोग शस्त्रोंकी धारण करके और कवच पहनकर उनके संग चले । वे सब राक्षसलोग वेगसे आकाशमें कूदते हुए, मानी आकाशकी खींचने लगे । इस प्रकार गन्धर्वादनकी और चले, उस कुवेरसे रत्न घोड़ोंका शब्द सुन और यक्ष तथा राक्षसों सहित महात्मा कुवेरकी आतं पाण्डवोंने देखा ; सुन्दर कुवेरकी देखतेही पाण्डवोंके रोंखड़ु हो गये । कुवेरने भी महारथ और महा पराक्रमी पाण्डवोंको धनुष और खड्ग धारण किये हुए देखा, तब कुवेर उनसे बहुत प्रसन्न हुए कुवेर देवताके कामकी इच्छा करके पाण्डवों प्रसन्न होगये । हे राजन् ! उसी समय पर्वतके शिखरपर कुवेरके संग चलनेवाले महापराक्रमी पक्षीके समान उड़ते हुए अन्य राक्षस थे । जब उन्होंने कुवेरकी प्रशंसा

महाराज महि जेलि ते रापह जवमि-
महाराज वधिदिरते ऐमा कचजर
असांनस जेलि ते कच-जवमि । ते
जेलि ते कच-जवमि जवमि जवमि

कुवेर बोले, हे नरेश्वर ! कुशावती स्थानमें
देवतोंकी एक सभा हुई थी, उस सभामें मेभी
तीन सौ महापद्म सेवकोंके सहित गया था,
मेरे सङ्ग शस्त्रधारी अनेक घोर रूपवाले यक्ष-
भो थे, सुभी मार्गमें मुनियों उ अगन्य मिले ।
वे यमुनाके तीर पर फले हुए वृक्ष और अनेक
पक्षियामें शोभित वनमें तेजके समूह आग्निकी
समान प्रकाशमान बैठे थे । वे स्थंकी और
मुख किये घोर तप कर रहे थे । हे पृथ्वी-
नाथ ! मेरे मित्र राक्षसोंके राजा आमाव
सगिमानने नृपतिता अज्ञान अभिसान और
भक्तों वह यक्ष दिया, वह यक्ष आकाशमें गिर
कर सहस्र अगन्यके किर पर गिरा, वे अपनी
दृष्टिसे दक्षिदिशाओंकी भक्त करने हुए सुभमें
बोले, हे धनेश्वर ! तेरे दृष्टाका मित्रने तेरे
आगे जो सेवा निरादर किया है, उसका प्रत्येक
तुम ही ही मिलेगा, वह तुम्हारा दुश्मन
मित्र बन कर मेनाके मित्र बन कर सगन्य

हाथसे मारा जायगा; इन सबके मरनेसे तुम्हें भी बहुत हेश होगा, जो तुम्हारी आज्ञाको पालन करेगा, वह अपने पत, पौत्र और सेनाके सहित इस शापसे बचेगा। हे महाराज ! मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यने पहिले यह शाप मुझे दिया था, आज तुम्हारे भाई भीमने उस शापसे हमें कुड़ा दिया।

— १६१ अध्याय समाप्त ।

कुवेर बोले, हे युधिष्ठिर ! धृति, दक्षता, देश, समय और पराक्रम यही लोकमें कार्य करनेके पात्र हेतु है। हे भारत ! धृति-शोल और यत्नमें कुशल, अपने अपने कर्मोंको करनेवाले, पराक्रम और विधानके जाननेवाले पुरुष सतयुगमें होते-थे। बुद्धिमान देश कालके जाननेवाले धर्मों और सब विधानोंका पण्डित क्षत्री ब्रह्मकाल तक पृथ्वीका राज करता है। हे क्षत्रिय श्रेष्ठ ! हे वीर ! हे कुन्तीनन्दन ! जो पुरुष इस प्रकार सब कामोंमें वर्त्ताव रखते हैं, उनको इस लोकमें यश और परलोकमें उत्तम गति मिलती है। देखो वृषासुरके मारनेवाले इन्द्र देशकालके अनुसार पराक्रम करके वसुओंके सहित स्वर्गमें देवतोंके राजा हो गये, जो मूर्ख केवल क्रोधके वशमें होकर कर्मको नहीं देखता है, वह केवल पापके फलही को भोगता है। जो समय और कर्मको नहीं जानता है, वह कर्मोंके न जाननेवाला मूर्ख दोनों लोकमें नष्ट हो जाता है। जो मूर्ख वृथा क्रोध करता है, उसका इस लोकमें और परलोकमें नाश हो जाता है। जो केवल साहसके वशमें होकर पाप करता है और जो दुष्टात्मा सब कर्म करनेको इच्छा करता है, उसकी निश्चयही पाप होता है। हे पुरुष-सिंह ! यह तुम्हारा भाई भीमसेन अधर्मको जाननेवाला, अभिमानी, बालबुद्धि, क्रोधी और भय-रहित है, तुम इसको अपनी आज्ञा में

रखो। हे महाबाह ! हे मनुष्येन्द्र ! तुम राजर्षि आर्ष्टिषेणके आश्रम पर जाकर ब्राह्मणोंके सहित शंकासे रहित होकर रहो। गन्धर्व, किन्नर और वनवासी लोग हमारी आज्ञासे तुम्हारी रक्षा करेंगे। हे धर्म जानने-वालोंमें श्रेष्ठ ! हे राजन् ! यह तुम्हारा भाई भीमसेन जो केवल साहसहीसे युद्ध करता है तुम इसको रोको। हे राजन् ! आजसे वनवासी लोग तुम्हें देखेंगे; तुम्हारी रक्षा करेंगे; ये लोग तुम्हारे लिये अन्न, खादु जल तथा औरभी अनेक प्रकारकी वस्तु ला दिया करेंगे। हे युधिष्ठिर ! जैसे इन्द्रके अर्जुन, वायुके भीम, धर्मके तुम, अश्विनीकुमारके नेकुल और सहदेव योगसे उत्पन्न हुए पुत्र हैं और वे लोग जैसे तुम्हारी सबकी रक्षा करते हैं, तैसेही हम भी तुम्हारी रक्षा करेंगे। अर्थके तत्त्वज्ञ और सब धर्मोंके जाननेवाले भीमसेनके छोटे भाई अर्जुन स्वर्गमें कुशलसे हैं। हे तात ! जो स्वर्गकी सम्यग्ज्ञा इस लोकमें दुर्लभ है वे सब जन्म भरसे अर्जुनमें स्थित हैं, महातेजस्वी अर्जुनसे दम (इन्द्रियोंकी जीतनेकी शक्ति) दान, बल, बुद्धि, लज्जा, धृति शक्ति और उत्तम तेज है। हे पाण्डव ! महा बलवान अर्जुन कभी भूलसेभी बुरा काम नहीं करता है; कोई पुरुष उसे झूठा नहीं कहता है। हे भारत ! महाका कुरुवशकी कीर्ति बटान-वाले अर्जुनको देवता और गन्धर्वभी मानते हैं। अब वह इन्द्रके घरमें शस्त्रविद्या सीखते हैं। हे कुन्तीनन्दन ! जिसने धर्मसे सब राजों को अपने वशमें किया था वही महातेजस्वी शान्तनु तुम्हारे भाई गाण्डीव धनुषधारी अर्जुनके कर्मोंसे प्रसन्न हो रहे हैं, महाका और महाबलवान अर्जुन अपने कुल में श्रेष्ठ हैं। तुम्हारे प्रपितामह सब राजाओं के राजा महाराज शान्तनु ने पितर देवता, ऋषि और ब्राह्मणोंकी पूजा करके यमुनाके तट पर

मात अश्वमेधयज्ञ की थी। वही महाराज आज वर्गमें हैं और तुम्हारी कुशल पूछते हैं।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, कुवेरकी ऐसे बचन उन पाण्डव लोग बहुत प्रसन्न हुए। अनन्तरं ऋकुलसिंह भीमने शक्ति, गदा खड्ग और धनुषकी रोदेसी रक्षित करके चलनेकी इच्छा की और कुवेरकी प्रणाम किया। तब शरणागतकी रक्षा करनेवाले कुवेरने शरणागत भीमसे कहा कि तुम अपने शत्रुओंकी मारनेवाले और मित्रोंके आनन्द बढ़ानेवाले हो। हे भरतकुलसिंह पाण्डवो। तुम लोग जब अपने रमणीय आश्रमोंमें रहोगे, तब यज्ञलोग तुम्हारी रक्षा करेंगे। हे शत्रुओंके नाश करनेवालो। तुम्हारा कोई काम कभी नष्ट न होगा। अर्जुनभी शीघ्रही शस्त्रोंको सीख साक्षात् इन्द्रके घरसे आवेंगे। गुरुओंकी राजा कुवेर उत्तम कर्मवाले युधिष्ठिरसे ऐसा कहकर अन्तर्धान हो गये। उनके पीछे रत्न विभूषित अनेक पुष्पमालासे विराजमान विमानों पर चढ़कर अनेक यज्ञऔर राजस कुवेरके स्थानकी चले, पक्षियोंके शब्दके समान घोड़ोंका शब्द ऐसा होता था, जैसा इन्द्रके नगरमें ऐरावतका शब्द होता है। वह कुवेरके घोड़े तैषकी चीरते और वायुकी पीते शीघ्रतासे आकाश की चले। तब कुवेरकी आज्ञासे मरे हुए राजसोंके शरीर पर्वतसे उठाके फेंके गये, वहिमान सगस्त्य मुनिने जो राजसोंकी शपथ दिया था, उसका अन्त इस युद्धमें हुआ सहाय्य करनेवाले उस स्थानमें उस रात्रिकी व्यतीत भया। राजसोंने उनका बहुत सम्मान किया।

१६२ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे शत्रुनाशन कुवेरने उदय होने पर धौम्य ऋषि ऋषिसे सन्निहित निरुद्धिवा समाप्त करके पर्वत पर गये। पाण्डवोंने आर्ति देना

और धौम्यकी प्रणाम करके हाथ जोड़के सब ब्राह्मणोंकी पूजा की। तब धौम्य मुनिने युधिष्ठिरका दहना हाथ पकड़ कर और पूर्व दिशाको देखकर, कहा है महाराज। इस समुद्रपर्यन्तकी भूमिकी घेरे हुए यह पर्वतराज मन्दराचल विराजमान है। हे पाण्डव। पर्वत और वनोंसे शोभायमान इस दिशाकी इन्द्र और कुवेर रक्षा करते हैं, वहिमान और सब धर्मोंकी जाननेवाले लोग इसी दिशामें इन्द्र और कुवेरका स्थान बतलाते हैं। इसी कारणसे धर्मकी जाननेवाले ऋषि, सिद्ध, साध और देवता लोग उदय होते सूर्यकी उपासना करते हैं। धर्मकी जाननेवाले और सब प्राणियोंके स्वामी राजा यम मृतलोगोंके गम्य इभी दक्षिण दिशामें निवास करते हैं। यह संयमन नामक परम पवित्र और अद्भुत प्रेतराजका ऋद्धिसिद्धिसे भरा स्थान है। सूर्य जब इस पर जाते हैं तो सत्यसे स्थिर होते हैं और पर्वतराज पर जाकर अस्त होते हैं, वहिमान लोग उसे अस्ताचल कहते हैं, इस पर्वतराज और समुद्रमें निवास करते हुए सद्यराज वरुण प्रजाकी रक्षा करते हैं। उसउत्तर दिशामें सहा वीर्यमान कत्याणकारी मेरु है इसीमें ब्रह्माकी जाननेवाले जीव प्राप्त होते हैं इसी पर्वतराजमें प्रजापतिके ज्ञान वाले जीव प्राप्त होते हैं। इसी पर्वतराजमें प्रजापतिने प्रथम सृष्टि रची थी। दक्ष आदि ब्रह्माके मानसिक सात पृथ्वी इसी पर्वतराज मेरुपर निवास करते हैं, हे राजन्। वसिष्ठादि सप्तऋषि इसी पर्वतपर उदय होके इसी पर्वत पर अस्त होते हैं। वह देखी अन्तर्गत रक्षित मेरुका शिखर है इसीपर देवताके सन्निहित ब्रह्मा निवास करते हैं। जिनकी सब प्राणियोंकी रक्षित करते हैं। वही अनादि अनन्त नारायण ब्रह्माके स्थानमें परम प्रजापतिमान हैं, उनके तैष भू स्थानकी देवतालोग भी नहीं देख सकते हैं। वहाँ सूर्य और अस्तिका प्रकाश नहीं होता है।

अपने तेजसे अत्यन्त प्रकाशमान हैं, जिसकी देवताभी नहीं देख सकते हैं, वही महात्मा विशुका स्थान है पूर्वदिशामें नारायणका स्थान मेरु पर्वत पर अत्यन्त शोभायमान है, जिसमें प्राणियोंके स्वामी अपनेसे आप उत्पन्न होनेवाले और सम्पूर्ण जगतकी प्रकाश करनेवाले विराजमान हैं । हे कुसुमसत्तम । इस स्थानमें ब्रह्म-ऋषिही नहीं पङ्गवते हैं तो और ऋषि कैसे पङ्गवेंगे ? हे पाण्डव । यहाँ कोई तारा प्रकाश नहीं होते हैं ; अचिन्त्य आत्मा भगवान् विशु यहीं निवास करते हैं, इस स्थानमें यति लोग नारायणकी भक्ति करके वहाँ पङ्गवते हैं यह स्थान अक्षय अव्यय और अविनाशी है । हे युधिष्ठिर । तुम इसे प्रणाम करो, हे युधिष्ठिर । इस मेरु पर्वतकी सूर्य और चन्द्रमा प्रति दिन प्रदक्षिण करते हैं, हे निष्पाप कुसुमन्दन । जितने तारागण हैं इस पर्वतराजको प्रदक्षिण करते हैं । सन्ध्यासमय अस्ताचल पर अस्त होकर दिवाकर उत्तरे दिशामें प्राप्त होता है मेरुको प्रदक्षिण करके प्रातःकाल फिर पूर्वदिशामें सब प्राणियोंका हित करनेवाला सूर्य गतिसे मासादि कालका विभाग करता है । ऐसेही भगवान् चन्द्रमा सब तारागणके सहित गमन करते हैं ; मेरु पर्वतसे चलकर सब प्राणियोंको प्रकाश देते हुए मन्द्राचलकी जाते हैं । जैसे सूर्य चलते हैं, ऐसेही अन्धकारको नाश करते जगतको प्रकाश करते चन्द्रमा भी गमन करते हैं । जब सूर्यके दक्षिणायन होनेसे शरदऋतु होती है, जब सूर्य सब स्थावर और जड़म प्राणियोंका तेज खींच लेते हैं, तभी प्राणियोंकी आत्मा और जमुआई आदि आती है ; इसीसे सब प्राणियोंकी निद्रा आती है । जिस ऋतुमें भगवान् सूर्य तेजको खींचते हैं उस ऋतुको ग्रीष्मऋतु कहते हैं । फिर अपनी किरणासे भगवान् सूर्य जल धरति हुए सब प्रजाका पालन करते हैं । वर्षा, और धूपसे स्थावर, जड़म प्राणियोंको सुख

पङ्गवते हुए सूर्य सदा गमन आगमन किया करते हैं । हे कुन्तीनन्दन ! इस रीतिसे कालका विभाग करते और प्राणियोंको सुख देते सूर्य विचरते रहते हैं, सूर्यकी गति सदा ऐसीही रहती है । यह कभी स्थिर नहीं होती है । प्राणियोंका तेज लेकर फिर उन्हींको फेर देते हैं, सब प्राणियोंको आयु और रात दिन पल घड़ी आदिका विभाग सूर्यकी गति होसे होता है ।

१६३ अध्याय समाप्त ।

श्रीशम्भुनायन मुनि बोले, अर्जुनके दर्शनकी इच्छासे उस पर्वत पर रहते हुए उत्तम व्रत धारी महात्मा पाण्डवोंकी बहुत प्रसन्नता और आनन्द हुआ । उन बलवान् शुद्ध कर्म करने वाले, सत्य बोलनेवाले, धारणाशील, पाण्डवोंके पास अनेक गन्धर्व और ऋषि लोग आये, जैसे स्वर्गमें जानेसे मनुष्यगण प्रसन्न होते हैं, तैसेही अनेक फले हुए वृक्षोंसे युक्त उस पर्वत पर रहनेसे महात्मा पाण्डवभी प्रसन्न हुए । पर्वतके शिखरोंको मयूर और हंसोंके शब्दसे तथा फूले हुए वृक्षोंसे विराजमान देखते हुए पाण्डव वहाँ रहने लगे । साक्षात् कुवेरकी उस उत्तम पर्वत पर हंस और सारसादि पक्षियोंसे युक्त कमलोंसे भरी कई उत्तम तटवाली पोखर बनी थी । जैसे राजा कुवेरके विहार करनेके स्थान चाहिये तैसेही ऋद्धियोंसे भरे हुए अनेक मणियोंसे युक्त फूलोंकी मालासे विराजमान वह स्थान मनोहर बना था । पाण्डव लोग अनेक रंगवाले सुगन्धसे भरे हुए मेघोंके जलसे छाये हुए अनेक वृक्षोंकी देखते हुए उस पर्वतके शिखर पर रह कर तप करने लगे । हे पुरुषप्रवोर । उस पर्वत पर रहते हुए पाण्डवोंकी पर्वत और औपधियोंके तेजसे दिन और रातमें कुछ भेद नहीं जान पड़ा । पुरुषसिंह पाण्डव लोगोंने ब्रह्म

स्थावर और जंगम रहते हैं, जिस तेजस्वीको विभावसु कहते हैं, उस सूर्यके उदय और अस्तको देखा। वीर पाण्डवोंने सूर्यके उदय और आगमनको देखा, तथा उनके तेजसे सब दिशाओंको व्याप्त देखा, वेदपाठी सदा क्रिया करनेवाले धर्म और पवित्रतामें निरत सत्यवादी पाण्डव लोग वहीं रह कर महारथ अर्जुनका मार्ग देखने लगे। पाण्डवोंने यह विचारा, कि हम लोग इसी स्थान पर श्री अर्जुनसे मिलके प्रसन्न होंगे, इस लिये वे लोग वहीं रह कर तप और योग करने लगे। अर्जुनकी चिन्ता करते हुए और पर्वतोंके विचित्र बनोंको देखते हुए उनके दिन और रात वर्षके समान बीतने लगे। जब महात्मा अर्जुन धौम्यकी आज्ञासे जटा बना कर वनको गये थे, उसी वनसे पाण्डव लोगोंको प्रसन्नता नहीं हुई थी। उन लोगोंका चित्त जिस दिन मतवाली हाथीके समान चलनेवाली अर्जुन अपने भाई युधिष्ठिरकी आज्ञानुसार काम्यक वनसे चले थे, उसी दिनसे पाण्डव लोग शोकसे व्याकुल हो गये थे। हे भारत। जब अर्जुन इन्द्रके पास गये थे तब पाण्डवोंको एक एक दिन एक एक महीनेके समान बीतने लगा था। अर्जुन पांच वर्ष इन्द्रके दानमें रहे थे और उनसे सब अस्त्रोंकी सीखा। अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, वायु, विष्णु, शिव, परमेश्वर, प्रजापति, यम, धाता, सूर्य, अश्विनी और कुबेरके शस्त्रोंकी प्राप्त कर, तब इन्द्रको प्रणाम और उनको प्रदक्षिणा कर उनकी आज्ञा लेकर परम प्रीतिके लिये अर्जुन प्रसन्न होकर गन्धमादन पर गये।

१६४ अध्याय समाप्त ।

अब दूसरा प्रकरण समाप्त ।

अथ निवात-कवच युद्ध ।

श्रीशैशम्पायन मुनि वीले, एकदिन अर्जुनकी चिन्ता करते समय पाण्डवोंने विजलीके समान प्रकाशमान घोड़ोंके सहित आते हुए एक रथको देखा, उसको देखते ही वह लोग बहुत प्रसन्न हुए। वह रथ मातली सारथीके सहित आकाशकी प्रकाश करता हुआ ऐसा शोभित होने लगा, जैसे बादलोंके बीचमें बिना धुँएकी मसाल शोभित होती है। हृदयमें माला और नवीन आभूषणोंकी धारणा किये उसमें इन्द्रके समान पराक्रमवाली अपने तेजसे प्रकाशमान अर्जुन बैठे थे। इस प्रकार वह रथ पर्वतपर पहुँचा। तब माला और सुकुटधारी बुद्धिमान अर्जुनने पहले धौम्य फिर युधिष्ठिर और पीछे भीमसेनके चरणोंको छूकर प्रणाम किया। उसी समय नकुल और सहदेवने अर्जुनको प्रणाम किया। फिर अर्जुन द्रौपदीसे मिलकर अनन्तर युधिष्ठिरके पास नम्र भावसे बैठे। अनन्तर पराक्रमवाली युधिष्ठिर अर्जुनसे मिलकर प्रसन्न हुए और अर्जुनने भी अपने भाईकी वहुत प्रशंसा कर उनकी प्रसन्न किया, जिसपर चढ़कर नमुचिके मारनेवाले इन्द्रने दैत्योंके सात गणोंको नाश किया था, महा पराक्रमी पाण्डवोंने उस इन्द्रके रथको प्रदक्षिणा की। प्रसन्नचित्त पाण्डवोंने मातलीका सत्कार इन्द्रके समान किया और सब देवतोंका यथा योग्य कुशल पूछा, मातलीने भी पाण्डवोंकी पुत्रके समान शिष्टा दी। फिर यममान तेजवाले रथपर चढ़कर इन्द्रके पास चले गये। उनके जानेके पश्चात् पुरुष और देवताओंमें चन्द्र इन्द्रके पुत्र राजसोके मारनेवाले अर्जुनने युधिष्ठिरको शत्रुओंके द्वेष हुए उससे रूपपाते धनदिने। अनन्तर सूर्यके समान प्रकाशवाले अनेक आभूषण अपनी धारी द्रौपदीकी द्विज अनन्तर सूर्य, चन्द्रमा और अग्निने समान प्रकाशवाले हुत्तयान में ही पाण्डव और

ब्राह्मणोंमें अष्ट सुनियोंके बीचमें बैठकर सब पहिली कथाओंको कहने लगे, कि मैंने इस प्रकार इन्द्र, वायु और सद्मात शिवसे शस्त्र सीखे । मैंने अपने शील और समाधिके बल इन्द्रके सहित देवतोंको प्रसन्न किया, इस प्रकार शुद्धकर्म्मवाले अर्जुनने अपने स्वर्गमें रहनेकी कथा संक्षेपसे कही, अनन्तर नकुल और सहदेवके सहित सो रहे ।

१६५ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, जब रात बीत गयी, तब अर्जुनने अपने भाइयोंके सहित महाराज युधिष्ठिरको प्रणाम किया, उसी समय आकाशमें सब प्रकारके देवतोंके बाजेका शब्द सुना । हे भारत । उसी समय रथके पहियोंके शब्द आने लगे । इसी शब्दके संग सांप, हरिन और पक्षियों का शब्दभी आने लगा, पीछे सूर्यके समान प्रकाशमान विमानों पर बैठे हुए गन्धर्व और अप्सरा इन्द्रकी घेरके जाने लगीं । उसी समय उत्तम घोड़ीसे युक्त, सीनेके बने हुए, मेषके समान शब्दवाले रथ पर चढ़ कर अपने तेजसे प्रकाशमान इन्द्र पाण्डवोंके पास आये, सहस्र नेत्रवाले इन्द्र पाण्डवोंके पास आकर रथसे उतरे । महात्मा देवराज इन्द्रकी देख धर्मराज युधिष्ठिर अपने भाइयोंके सहित उनके पास गये । वज्रत दक्षिणा देनेवाले युधिष्ठिरने विधिके अनुसार यथा योग्य इन्द्रकी पूजा की । महातेजस्वी धनञ्जय भी इन्द्रकी प्रणाम करके उनके पास दासके समान खड़े हो गये, महातेजस्वी कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने पास खड़े हुए अर्जुनका माथा सूँघा । पापरहित जटाधारी इन्द्रकी तपस्या करनेवाले अर्जुनको देख कर और इन्द्रकी पूजाकरके वज्रत प्रसन्न और दीन राजासे बुद्धिमान इन्द्र बोले, हे कुन्तीनन्दन । हे पाण्डव ! हे राजन् ! तुम इस सब पृथ्वीका राज्य करोगे । तुम्हारा कल्याण हो, तुम फिर

काम्यक वनकी चले जाओ । हे राजन् । पाण्डुनन्दन अर्जुनने वज्रत यत्न करके हमसे सब शस्त्रोंको सीखा है, इस तीन लोकमें इन जीतनेवाला कोई नहीं है । सहस्र नेत्रवाले कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरसे ऐसा कहकर महाकृपोंसे स्तुति सुनते हुए प्रसन्नतासहित स्वर्ग चले गये । जो विशन् कुविरके घरमें रहनेवाले पाण्डव और इन्द्रके इस समागमको ब्रह्माव्रतधारी होकर एकवर्ष तक पढ़ता है, रोगरहित और सुखी होकर सौ वर्ष जीता ।

१६६ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनिजी बोले, हे जनमेजय जब इन्द्र चले गये, तब अपने भाई और द्रौपदीके सहित अर्जुनने महाराज युधिष्ठिरको प्रणाम किया । महाराज प्रसन्न होकर अर्जुनको माथा सूँघ कर गदगद बाणीसे कहने लगे, अर्जुन । तुमने इतना समय स्वर्गमें क्यों बिताया ? तुमने इन्द्र और शिवको कैसे प्रसन्न किया, तुमने किस प्रकार शस्त्रोंको प्राप्त किया हे शत्रुनाशन । भगवान् इन्द्रने हमारे माँ कहा, कि हम अर्जुनसे वज्रत प्रसन्न हैं । तुमने कौनसा उनका प्रियकार्य किया ? हे महातेजस्वी । हे पापरहित । हम इन सब कथाओंकी विस्तारपूर्वक सुना चाहते हैं । हे धनञ्जय । हे शत्रुनाशन । तुमसे इन्द्र और शिव कैसे प्रसन्न हुए थे ? तुमने इन्द्रका कौनसा प्रियकार्य किया था, तुम इन सब कथाओंके हमसे कहो । अर्जुन बोले, हे महाराज । हम इन सब कथाओंकी तुमसे कहते हैं, हमने जैसे भगवान् शिव और इन्द्रको प्रसन्न किया सो आप सुनिये । हे शत्रुनाशन । आपकी वताई हुई विद्याकी पढ़कर आपकी मायासे नुसार तपकरनेकी इच्छासे मैं वनकी चला । काम्यक वनसे चल कर भद्रवृक्ष पर्यन्त पहुँचा और वहा तप करने लगा, एक दिन

वहाँ रहने पर दूसरे दिन एक ब्राह्मण मिले ।
 हे कृत्तीनन्दन ! उन्होंने मुझसे पूछा तुम कहा
 जानेकी चाहते हो, तब मैंने उससे सब सत्य
 सत्य कह दिया । हे राजन् ! उनने मेरी
 सत्यवाणीकी सुनकर प्रीतिके सहित मेरी पूजा
 की और मुझसे अत्यन्त प्रेम किया, अनन्तर
 प्रसन्न होकर मुझसे कहने लगे, हे भारत ! तप
 करो, तपस्याके बलसे तुम शीघ्रही शिवकी
 देखोगे, तब मैं उनके वचनसे हिमाचल पर
 चढ़ गया, वहाँ जाकर एक महीने तक फल
 और मूल खाकर तपस्या करने लगा । दूसरे
 महीनेकीभी मैंने केवल जल खाकर बिताया ।
 हे पाण्डुनन्दन ! मैं तीसरे महीनेमें निराहार
 होकर तप करने लगा, मैंने चौथे महीनेमें ऊर्ध्व-
 बाहु होकर बिता दिया, परन्तु मेरे प्राण उस
 महीनेमेंभी नहीं निकले, यह बड़ा आश्चर्य
 हुआ, पाँचवें महीनेका एक दिन बीतनेपर एक
 प्राणी भूकरका रूप बनाकर मेरे पास आया ।
 यह अपने हाथ और खुरोंसे पृथ्वीकी खोदने
 और ज़ातीसे रगड़ने लगा तथा बारबार घूमने
 लगा, उसके पीछेही एक किरात धनुष बाण
 और खड्गकी धारण किये अनेक स्त्रियोंकी
 सहित मेरे पास आया, उसी समय मैंने अक्षय
 तूणीर और धनुषकी धारण करके भयानक
 भूकरको एक बाणसे मारा, उसी समय उस
 किरातने भी अपने धनुषकी खींचकर मेरे
 हृदयकी कंपाते हुए उस सूत्ररकी एक कठोर
 धारा मारा । हे राजन् ! तब उस किरातने
 मुझसे कहा कि सूत्ररकी मैंने पहिले मारना
 चाहा था तुमने खगयाधर्मके विरुद्ध उसकी
 मार मारा ! अब हम इन कठिन बाणोंसे
 तुम्हारे अभिमानकी नाश करदेते हैं ; खड़े
 रहो, ऐसा कह कर उस बड़े शरीरवाले धनुष
 धारण मुझे लटोरे बाण मार, मैंने भी उसकी
 धारण लटोरी उठाने आ लिया, अनन्तर मैंने
 उसकी धारण लटोरी उठाने आ लिया, अनन्तर मैंने

उठा लिया, जैसे वज्रसे इन्द्र पर्वतकी । थोड़ी
 देरमें उसके एक शरीरके सैकड़ों और
 हजारों शरीर होगये, मैंने उन सबकी
 अपने बाणोंसे मारना आरम्भ किया । हे
 महाराज ! फिर सब शरीर मिलकर एकही
 किरात होगया । मैं फिर उसकी बाण मारने
 लगा, कभी वह बड़े शरीर और छोटे सिर
 वाला और कभी वह छोटे शरीर बड़े सिर
 वाला होकर मुझसे युद्ध करने लगा । हे
 भरतकुलसिंह ! जब मैं उसकी अपने बाणोंसे
 जीतनेमें असमर्थ हुआ तब मैंने वायुकी अस्त्र
 चलानेकी इच्छा करी ; परन्तु यह अस्त्र भी
 उसे न मार सका, यह देख मुझे महा आश्चर्य
 हुआ । हे महाराज ! फिर मैंने विशेष रूपसे
 उस किरात पर अपने शस्त्र चलाये । कभी
 स्थूलाकर्षण और कभी घोर बाणोंके जाल-
 से उसकी छा लिया, मैंने कभी पतंगे कभी
 पत्थरोंकी वर्षा की । हे महाराज ! उसने
 मेरे सब शस्त्रोंकी ग्रासकर लिया । अनन्तर
 मैंने ब्रह्मशिर अस्त्र चलाया । मेरे उस महा
 अस्त्रके चलतेही उसने अनेक बाण निकाल
 कर बटने लगे । अनन्तर उस अस्त्रके
 तेजसे सब आकाश और दिशा प्रकाशमान
 हो गयी, हे राजन् ! महा-तेजस्वी किरातने
 वह ब्रह्मशिर अस्त्र भी शान्त कर दिया ।
 उसके व्यर्थ होतेही मुझकी वज्रत भय लगा,
 पर मैंने अक्षय तूणीर और धनुष लेकर फिर उस
 किरात पर बाण चलाये, परन्तु वह उन बाणों
 की भी खागया । जब मेरे सब प्रस्त्र और शस्त्र
 नाश होगये, तब मैंने उससे बाहुयुद्ध किया ।
 कभी तमार्च और कभी मुर्खोंके जैने उस
 किरातकी मारा, उस समयके पद्मान मैं मूर्च्छित
 होकर पृथ्वीमें गिर गया । हे महाराज ! वह
 किरात इसके पद्मान समान मित्रोंके मारने
 चलाया । तब मुझे बहुत आश्चर्य
 हुआ । हे महाराज ! तब मैंने पद्मान समान

शिवने दूसरा रूप बनाया और अद्भुत वस्त्र धारण करके मेरे पास आये । देवतोंके स्वामी भगवान शिवने किरातका रूप छोड़कर अपना दिव्यरूप धारण किया और मेरे पास आकर खड़े हो गये, मैंने देखा कि भगवान शिव पार्व-
तोके सहित सर्प और पिनाक-धनुषको धारण किये खड़े हैं । शूलधारी भगवान शिवने मुझसे युद्धमें प्रसन्न होकर कहा कि हे शत्रुनाशन । मैं तुमसे प्रसन्न हूँ । तब उन्होंने दो अक्षय तूणोर और धनुष मुझको दिया और कहा कि जो तुम्हारी इच्छा हो सो वरदान मांगो । श्रीशिवजी बोले, हे कुन्तीनन्दन । हम तुमसे बद्धत प्रसन्न हैं : कहो हम तुम्हारा कौन काम करें । हे वीर । जो तुम्हारी इच्छा हो, सो मांगो । तब मैंने हाथ जोड़कर उनकी शिर से प्रणाम करके शस्त्रोंका वरदान मांगा, तब मैंने हंसकर भगवान शिवजीसे कहा, कि हे भगवान् । मैं सब देवतोंके वाणोंको जानना चाहता हूँ । तब भगवान शिवजीने मुझसे कहा कि हमने तुमको यह वरदान दिया ; यह मेरा रुद्रास्त्र है, हे पाण्डव । सो हम तुमको देते हैं । तब शिवने हमको पाशुपत अस्त्र दिया । तब भगवान महादेवने मुझसे प्रसन्न होकर कहा कि इस शस्त्रको कभी भी किसी पुरुषके ऊपर न चलाना, इसके चलाते-ही सब जगत थोड़ा तेजवाला होनेसे भस्म हो जायगा । हे धनञ्जय । जब तुमको कोई बलवान शत्रु पीड़ा दे, तबही इसको चलाना, अत्यन्त वाणोंकी वर्षा हो, तभी इसको चलाना । इस शस्त्रको कोई नाश नहीं करता, इस शस्त्रके समान कोई दूसरा शस्त्र नहीं है । हे महाराज । जब मुझसे श्रीशिवजी प्रसन्न हुए, तब वह शस्त्र मूर्ति धारण करके मेरे आगे आखड़ा हुआ । वह शस्त्र शत्रुओंका नाश करनेवाला और सेनाओंका काटनेवाला है । वह शस्त्र घोर कठोर और राक्षसोंका नाश करने

वाला है, तब मैं शिवजीकी आज्ञासे वहीं रहने लगा और मेरे देखतेही श्रीशिवजी वहीं अन्तर्धान होगये ।

१६७ अध्याय समाप्त ।

अर्जुन बोले, हे महाराज । मैं उस रात्रि भर प्रसन्न होकर वहीं रहा । महात्मा शिवने मेरे ऊपर बड़ी कृपा की । जब प्रायः काल हुआ, तब मैंने प्रातःकालकी संध्या की, फिर उसी ब्राह्मणको देखा जिसको पहली देखा था, तब मैंने उससे सब कथा कह सुनायी । मैंने उससे कहा, कि हमको साक्षात् शिवके दर्शन हुए हैं । हे राजेन्द्र । तब उस ब्राह्मणजीने मुझसे प्रसन्न होकर कहा, कि तुमने शिवका ऐसा दर्शन किया, जैसे पहली और किसीने नहीं किया था, हे पापरहित । तुम इसी स्थानमें यम आदि लोकपालोंके सहित इन्द्रकी देखोगे और वे तुमको अनेक शस्त्र देंगे । हे राजन् । वह ब्राह्मण ऐसा कहकर हमसे लपट गया । अनन्तर वह सूर्यके समान ब्राह्मण अपनी इच्छानुसार चला गया, उसी दिन दीपहरके पश्चात् पवित्र वायु बहने लगा, मुझे ऐसा जान पड़ा, कि यह लोक नवीन होगया । मेरे पास हिसाचल पर्वतके ऊपर दिव्य सुगन्धोंसे भरी हुई अनेक नवीन माला प्रगट होने लगीं, उसके पश्चात् मेरे चारों ओर दिव्य और वद्धत शब्दवाले वाजे बजने लगे । उसके पश्चात् मैंने इन्द्रकी मनोहर स्तुति सुनी, अनन्तर देवतोंके राजा इन्द्रके आगे अंग गन्धर्व और अश्वरा गीतगाने लगी । विमान-पर चढ़े हुए मरुतगण इन्द्रके अनुचर और स्वर्गमें रहनेवाले देवता मेरे पास आये, इन्द्रकी पीछे भूपणोंसे श्रूयित घोंडांसे युक्त रथपर बैठे हुए शची और सब देवतोंके सहित इन्द्र आये । हे महाराज । उसी समय अर्पण तेजरी प्रकाशमान मनुष्यवाहन कुबेरने भी मुझे दर्शन देने,

मैंने दक्षिणकी दिशामें बैठे यमको देखा ;
 वरुण और इन्द्रको भी अपने अपने स्थानों
 पर बैठे देखा । हे महाराज । हे एरुपसिंह ।
 तब उन सब देवतोंने मुझे प्रसन्न करके कहा,
 हे सबसाची । हम सब लोकपाल तुम्हारे
 पाम आये हैं तुम हमारे दर्शन करो । तुमने
 देवतोंके कामके लिये शिवका दर्शन
 किया है, हम लोगोंसे भी शस्त्रोंकी ग्रहण
 करो । हे महाराज । तब मैंने प्रसन्न होकर
 उन सब देवतोंकी प्रणाम किया और उनसे
 अनेक प्रकारके शस्त्रोंकी लिया । हे शत्रुनाशन ।
 जब मैं सब शस्त्रोंकी ग्रहण कर चुका । तब
 सब देवता लोग अपने स्थान पर चले गये, देव-
 तोंके राजा इन्द्र भी अपने उत्तम प्रकाशवाले
 रथ पर चढ़कर मुझसे बोले, कि हे अर्जुन ।
 तमकी भी स्वर्गकी चलना चाहिये । हे धन-
 धन्य । तुम्हारे आनेके पहिलेही हम सब
 बातोंकी जान गये थे । हे भरतकुलसिंह ।
 हमके पश्चात् हम तुमकी अपना दर्शन देंगे ।
 हे पाण्डव । तुमने पहले बहुत तीर्थोंमें स्नान
 किया है, और तुमकी चलना चाहिये, तमका
 फिरभी उत्तम तप करना उचित है । हे शत्रु-
 नाशन । तमकी आवश्यक ही स्वर्गमें चलना होगा ।
 हमारी आज्ञामें मातली आवेंगे और तमकी ले
 पायेंगे, तुमकी महात्मा मुनीश्वर और देवता
 लोग जानते हैं । तब मैंने इन्द्रसे कहा, हे भगवान्
 हे देवताके स्वामी । आप हमसे प्रसन्न हजिये
 हम शस्त्रविद्याके लिये आपकी अपना गुरु
 आते हैं । तब बोले, हे शत्रुनाशन । हे तात ।
 मैं सब शस्त्रोंके जाननेवाले और निरुप-
 रण करनेवाले हूँ । हे पाण्डव । जिस
 शस्त्रके लिये तम आज्ञा पाये हो वे सब शस्त्र
 हमसे होंगे । तब मैंने कहा कि हे
 भगवान् । हम सब प्रतिपादके जिन
 शस्त्रोंके लिये आपकी आज्ञा पर आये हैं
 वे सब शस्त्रोंके लिये हमसे होंगे ।

बिना इन शस्त्रोंकी नहीं चलाऊंगा । हे
 देवनाथ । आप उन सब शस्त्रोंको हमें
 दीजिये, इसके पश्चात् मैं उन लोकोंको जाऊंगा,
 जिनकी शस्त्र जाननेवाले जाते हैं । इन्द्र बोले
 हे धनधन्य । मैंने जो यह सब कहा, सो तुम्हारी
 ही परीक्षाके लिये कहा, तुम हमारे पुत्र
 हो, इस लिये यह सब कहा । हे भारत । तुम
 हमारे घरमें चल कर सब शस्त्रोंकी सीखो,
 वहां तुमकी वायु, अग्नि, वसु, वरुण और मरुत
 गणा अस्त्र सिखावेंगे । तुम साध्य, पितामह,
 गन्धर्व, नाग यक्ष, राक्षस, वैष्णव नैऋत और
 हमारे सब शस्त्र सीखोगे । हे कृष्णनन्दन ।
 जितने शस्त्र मुझकी आते हैं, उन सबकी तुम
 सीख लो । ऐसा कह कर इन्द्र वहाँ अन्त-
 र्दान हो गये । एक दिन हमने उत्तम घोड़ोंसे
 युक्त इन्द्रके रथकी देखा वह रथ दिव्य
 मायामय और मातलीसे युक्त था । हे महा-
 तेजस्वी महाराज । जब सब लोकपाल चले
 गये, तब मातलीने मुझसे कहा, कि तुमकी
 देवराज इन्द्र देखना चाहते हैं । हे महाबाहू ।
 अब तुम चलनेकी उपस्थित हो । उसके पश्चात्
 सब काम करना, तुम इसी शरीरसे स्वर्गकी
 चलो और दिव्य लोकोंकी देखो । हे भारत ।
 महम्म नेत्रवाले इन्द्र तुमकी देखना चाहते हैं ।
 जब मातलीने ऐसा कहा, तब मैं वन और
 हिमाचलसे आज्ञा ली । अनन्तर मैं उस पर्वत-
 की प्रदक्षिणा करके रथपर चढ़ स्वर्गकी चला
 और मातलीनेभी उन वायुके समान चलनेवाले
 घोड़ोंकी छाका । घोड़ोंकी विद्याकी जानने-
 वाले मातलीने रथमें बैठे हुए सब शस्त्रों
 देखा । हे राजन् । मातली बोले, कि वह
 मुझकी परम आश्चर्य दीप्त रहा है,
 कि इन दिव्य रथमें स्थित होकर हमारा
 निरुपद्रवसे एक पलभी विचलित नहीं होता
 है, हे भरतर्षभ । मैंने प्रसन्न होकर आज्ञा
 देवराजकी भी दिव्यभित भावपूर्ण देगा गया

है; किन्तु तुम ऐसे भ्रमशाशील रथमें यथा-स्थानमें ही बैठे हो, इससे तुम्हारे ये सब कार्य इन्द्रको भी अतिक्रम किये हैं, ऐसाही मुझे बोध होता है। ऐसा कह कर मातलीने आकाशमें रथ-हांका और स्वर्गमें पङ्कचा। हे महाराज। मातलीने मार्गमें मुझे अनेक विमान दिखाये तब वह रथ घोड़ोंके सहित आकाशमें चलने लगा, तब ऋषि और देवता लोग उस रथकी पूजा करने लगे, तब मैंने इच्छानुसार चलनेवाले अनेक ऋषियोंको देखा मैंने महातेजस्वी गन्धर्व और अप्सरोंके प्रभावोंकी देखा, देवतोंके नन्दन आदिक वागभी देखे। इन्द्रके सारथी-मातलीने मुझको अमरावती और इन्द्रके घरकी दिखाया। वह अमरावतीपुरी दिव्य कामके देनेवाले वृक्षोंसे शोभित थी वहां न सूर्यका प्रकाश, न गर्मी, न सर्दी, न थकाई, न धूल, न बुढ़ापा, न शोक न दीनता, और न दुर्बलता थी। हे शत्रुनाशन! वह देवतोंकी ग्लानिभी नहीं थी, न क्रोध, न लोभ और न राक्षसोका प्रवेश। हे राजन्। उस अमरावती पुरीके सब प्राणी सदा सन्तुष्ट रहते हैं। वहाके वृक्ष सदा फलनेवाले और हरे पत्तोंसे युक्त रहते हैं वहांकी पोखर अनेक प्रकारके सुगन्धवाले कमलोंसे भरी हुई, पवित्र और सुगन्धवाले वायुसे युक्त रहते हैं। वहाकी भूमि अनेक रत्नोंसे खिचे हुए फूलोंसे विराजमान थी। वहा अनेक हरिन और पक्षी मोठे मोठे स्वरोंसे शब्द कर कर रहे थे। अनेक देवता लोग विमानोंमें बैठे हुए आकाशमें घूम रहे थे; तब मैंने वसु, रुद्र साध्य और मरुत लोगोंकी देखा। मैंने अश्विनीकुमार और सूर्य आदि सब देवतोंकी पूजा की। उन्होंने भी मुझे दीर्घ, यश, तेज, बल, शस्त्र और विजय में निपुण जानकर मेरी पूजा करी और कहा कि, देव और गन्धर्व पण्डित अमरावतीपुरीमें करो, तब मैं हाथ जोड़ कर देवतोंके

राजा-हजार नेत्रवाले इन्द्रके पास गया उन्होंनेभी प्रसन्न होकर मुझे अपना आधा आसन दिया। इन्द्रने वहुत आदरके सहित हमारे शरीरकी स्पर्श किया। मैं वहा देव और गन्धर्वोंके सहित निवास करने लगा। शस्त्रोंकी सीखने लगा। वहां विश्वावसु पुत्र चित्रसेन मेरा मित्र हो गया। हे राजा उसीने मुझे नाचने और गानेकी सब वि सिखा दी। मैं जब सब शस्त्रोंकी सीख चुक तब आदर सहित स्वर्गमें रहने लगा। इन्द्रके घरमें रहता हुआ, अपनी इच्छानुसार सब सुखोंकी भोगने लगा। मैंने उत्तम गी और वाजोंके शब्द सुने तथा नाचती हुई उत्तम अप्सराओंकीभी देखा। हे भारत। उस सब बातोंकी तुच्छ समझा और केवल श सीखनेहीकी उत्तम समझता रहा, तब इस कामसे इन्द्र अत्यन्त प्रसन्न हुए। हे राजन् इस प्रकारसे मैंने इस समयकी स्वर्गमें बिताया जब इन्द्रको यह विश्वास हो गया, कि इनके सब शस्त्रोंकी विद्या आगई, तब उन्होंने अपने हाथसे मेरे शिरकी स्पर्श करके कहा, कि हे वीर। तुम्हारे समान कोई अस्त्र जाननेवाला नहीं होगा, क्योंकि तुम सदा सावधान, निपुण सत्यवादी, जितेन्द्रिय, ब्राह्मणोंकी-पूजनेवाले और शस्त्रोंकी जाननेवाले हो। तुमकी अब युद्धमें देवताभी नहीं जीत सकते हैं। और मनुष्योंकी तो बातही क्या है। तुम अप्रमेय और युद्धमें जीतनेके अयोग्य हो तुमने पन्द्रह शस्त्रोंकी प्राप्त किया है। हे कुन्तीनन्दन। पाँची विधियोंमें तुम्हारे समान कोई नहीं है। तुम शस्त्रोंकी चलाना और लौटाना दोनों बातोंकी जानते हो, तुम प्रायश्चित्तके विधानकीभी जानते हो। हे शत्रुनाशन! तुम दूसरेके वागसे हारे हुए अपने वागकी तेज कर सकते हो। इस समयमें तुम द्रुपद गुरुका काज करो। हम जानते हैं, कि तुम इस कामकी कर सकोगे इसीसे तुमसे कहा है।

तब मैंने देवराज इन्द्रसे कहा, कि जो काम
करने योग्य है, उसकी आप ज़ाची सम-
झिये। तब बल और वृषासुरकी मारनेवाली
इन्द्रने हंस कर मुझसे कहा, कि कोई काम
ऐसा नहीं है कि जिसकी तुम न कर सकी,
यात्रा कल मेरे शत्रु, निवातकवच बहुत बड़
गये है। वे लोग समुद्रके बीचसे दुर्ग बना कर
रहते हैं। इनकी संख्या तीन करोड़ है और
उनका रूप, बल तथा तेज समानही है। हे
कृत्सीनन्दन! तुम वहाँ जाकर उन सबकी
जीतो, इसमें तुम्हारे गुप्त प्रसन्न होंगे। तब
भीरके समान रगवाली घोड़ोंकी मातलीने रथमें
बाँड़ा। उस महातेजवाली दिव्य रथकी इन्द्रने
मुझे दिया और इस दिव्य किरीटकी अपने
हाथसे मेरे मिर पर बाधा, इन्द्रने मुझे अपने
समान आभरण और उत्तम कपवाली इस
अभेद्य कवचकी पहिराया। मेरी गान्धीव
धनुष पर इस न टूटनेवाली रोदेकीभी चढ़ा
दिया, तब मैं उस सुन्दर रथ पर बैठ कर
वहाँसे चला, इसी रथ पर बैठ कर पहले
इन्द्रन विरोचनके पुत्र बलिकी जीता था।
उस रथके शब्दसे सब देवता सचेत होगये
और उन्होंने मुझकी इन्द्र मान लिया
और मैं सड़ चले। मुझको देखकर देवताोंने
ः॥ कि हे अर्जुन! तुम कौन काम करनेकी
गति हो? तब मैंने सब युद्धका समाचार उनसे
सुनाया। मैं कहने लगा, कि हे महाभाग
आप रणित देखता। मैं निवातकवच दैत्योंकी
मारने जाता हूँ। तुम लोग हमे आशीर्वाद दो।
मैंने देवताओंसे प्रसन्न होकर मेरी वेशी स्तुति
की इन्द्रकी करते हैं। देवता बोले, कि
मैंने इसी रथपर चढ़कर शत्रु दैत्योंकी मारा
और इसी रथ पर चढ़कर नमुचि, बल, वृष,
और भीर नरकासुरकी मारा था। इन्द्रने
मुझसे कहा, सबकी लाखों करोड़ों
दैत्योंकी मारा है। हे कृत्सीनन्दन!

तुमभी इस रथपर चढ़कर युद्धमें निवातकवच
दैत्योंको अपने पराक्रमसे मारोगे; ऐसेही इन्द्रभी
युद्धमें दैत्योंको मारा करते हैं। यह सब शङ्खोंमें
श्रेष्ठ शङ्ख है, इसीसे तुम सब दैत्योंका जीतोगे।
महात्मा इन्द्रने पहले समयमें इसी शङ्खसे सब
लोकोंकी जीत लिया था। तब मैंने देवताओंकी
स्तुति सुनकर इस देवदत्त शङ्खकी ग्रहण
किया। मैं कवच, शङ्ख बाण और धनुषकी
धारण करके युद्धकी इच्छासे घोर दानवीके
स्थानकी चला।

१६८ अध्याय समाप्त।

अर्जुन बोले, हे महाराज! मैं महाऋषि-
योंसे स्तुति सुनता हूँ और समुद्रपर पड़चा;
मैंने घोररूपवाली जलके स्वामी भयानक उदधि
देखा। उसमें फेनके सहित बड़ी बड़ी तरङ्ग
उठती ऐसी जान पड़ती थीं, मानो पर्वत धड़
रहे हैं। समुद्रमें सहस्रों नाव रत्नोंसे भरी
झड़ खड़ी थीं। उसमें बड़ी बड़ी मकरी, कच्छप
मगर और पर्वतके समान बड़े बड़े ग्राह घूम
रहे थे। जलमें डूबे हुए सहस्रों शङ्ख ऐसे
दीख पड़ते थे, जैसे रात्रिमें पतले मेघसे ढके
हुए तारे दीखते हैं, समुद्रमें सहस्रों रत्न
दिखाई देते थे। उसमें बड़ा घोर वायु उठता
था और सब उत्तम समुद्रका वेग दिखाई देता
था। मैंने समुद्रके बीचमें दानवीसे भरा हुआ एक
नगर देखा, वहाँ जातेही रथयागकी जाननेवाले
मातली पातालकी चले; उस समय उनके रथके
शब्दसे सब प्राणी कापने लगे। उस मेघके
समान रथके शब्दकी सुनकर राक्षसोंने जाना
कि इन्द्र आते हैं। तब वे सब उद्विग्न होगये।
सब दानव सावधान होकर धनुष और बाणकी
धारण करके खड़े होगये। उनलोगोंने अथवा
हरकर खड़्ग, शूल, फल, गदा और भुज
धारण करके अपने नगरके दरवाजे बन्द कर
दिए। उन लोकांने इस प्रकार अपनी रक्षा

की, कि कोईभी न देखने लगा। तब मैंने प्रनन्न होकर सहा शब्दवाले देवदत्त शंखकी धीरे धीरे बजाया, उस शब्दके आकाशमें जानिसे घोर गुञ्जार उठी, उस शब्दसे बड़े बड़े समुद्रके जन्तु डरके समुद्रमें छिपने लगे। तब निवात-कवच लोग अनेक विचित्र शस्त्रोंकी धारण करके तथा उत्तम उत्तम भूषणोंकी धारण करके मेरे आगे आये। वे लोग लोहेके भाले, गदा, मूशल, पट्टिश, खड्ग और चक्रकी धारण करके लड़नेकी आये। शतघ्नी, भुषुण्डी और खड्गकी धारण करके सहस्रों राक्षस लोग बाहर निकले। हे भरतकुलसिंह। तब मातलीने मार्गको खूब विचार कर रथको समान भूमिमें स्थापन किया। उन शीघ्र चलनेवाले घोड़ोंके हांकनेसे और शीघ्र चलनेसे उनकी गतिको कोई नहीं जान सका, यह देख सुभी बड़ा आश्चर्य हुआ। तब उन दानवोंने सहस्रों प्रकारके बाजे बजाये और अपने घोर शब्दसे सब दिशाओंको पूरित करने लगे। उस शब्दको सुन कर समुद्रमेंसे पर्वतके समान सहस्रों मकरी उकलने लगीं, तब सैकड़ों हजारों दानव लोग तीक्ष्ण बाणोंकी छोड़ते हुए मेरी ओर दौड़े। हे भारत। उस समय मेरा और उन दानवोंका घोर युद्ध हुआ, उस घोर युद्धमें अनेक निवात-कवच मरने लगे। तब देवर्षि दानवऋषि सिद्ध और ब्रह्मऋषियोंके भण्ड आकाशसे उस घोर युद्धको देखने आये, वे लोग मेरी जीत चाह कर सीठी और अनुकूल वाणीसे मेरी स्तुति करने लगे, ऐसेही तारकासुरके युद्धमें मुनियोंने इन्द्रकी स्तुति की थी।

१६६ अध्याय समाप्त।

अर्जुन बोले, हे महाराज। तब वे सब निवातकवच लोग शस्त्रोंकी धारण करके मेरी ओर दौड़े, महारथ निवातकवचोंने गर्ज कर रथके मार्गको रोक दिया और मेरे चारों

ओर खड़े होकर मेरे ऊपर शस्त्र बरसाने लगे। अनेक महाबलवान दानव लोग मेरे ऊपर शूल पट्टिश और भुषुण्डी चलाने लगे। वह शूल गदा और शक्तियोंकी घोर वर्षा उनके चारों कूट कर मेरे रथ पर गिरने लगी। बहुत निवात-कवच राक्षस युद्धमें मेरी ओर दौड़े। धनी कालके समान रूपवाले घोर शस्त्रोंकी धारण किये मेरी ओर आये। मैंनेभी युद्धमें एक एक राक्षसोंके शरीरमें शीघ्र चलनेवाले तीक्ष्ण बाणोंकी गाण्डीव धनुष पर चढा कर मारे मेरे तीक्ष्ण बाणोंने उन सब राक्षसोंकी युद्ध विमुख कर दिया। तब मातलीने उन शीघ्र चलनेवाले घोड़ोंको हांका, वे वायुके समान शीघ्र चलनेवाले घोड़े अनेक मार्गोंसे मातलीके हांकनेके अनुसार चलने हुए अनेक राक्षसोंके नाश करने लगे, मातलीने उस रथके पश्चिम नीचे दबाकर सैकड़ों राक्षसोंकी मारा। राक्षस लोग लोटे जन्तुओंके समान उस पश्चिम नीचे दबने लगे। घोड़ोंके खुर, रथके पश्चिम और मेरे बाणोंका घोर शब्द होने लगा, उस शब्दसे सैकड़ा दानव मरने लगे। कोई धनुष धारण किये ही मन गया, किसीका सारथ मरा तो वह आपही घोड़ोंकी हांकने लगा। उन शस्त्र चलानेवाले दानवोंने चारों ओरमें सुभी घेर कर शस्त्र चलाये। तब तो मेरा मन धवरा उठा, उस समय मैंने मातलीके विचित्र बलकी देखा। उन्होंने बहुत यत्नसे शीघ्र चलनेवालों घोड़ोंको स्थिर किया, तब मैंने उन राक्षसोंकी शस्त्रोंके सहित सहस्रों दलवे और विचित्र शस्त्रोंसे काट डाला। हे शत्रु नाशन। मेरे इस अद्भुत कर्मकी देखकर इन्द्रकी सारथी घोर भालतो बहुत प्रसन्न हुए। कोई राक्षस घोड़ोंके खुर और रथके पश्चिमों कोट खाकर भाग गये और कोई कोई भाग कर फिर लौट आये, निवातकवच दानवोंका हमारा डोह करते पड़े वीरिणोंमें तब

ऊपर बाणोंको वर्षा करने लगे । तब मैंने
मृदुओं और सैकड़ों दानवोंको अपने हथके
और विचित्र बाणोंसे मारा, मैंने उन बाणोंकी
वृक्षान्त मन्त्रसे मन्त्रित करके चलाया था, तब
वे महारथ लोग मेरे बाणोंसे पीड़ित होकर
क्रोधसे व्याकुल हो गये । वे लोग इकट्ठी होकर
शक्ति और शूलासे मुझे मारने लगे । हे भारत ।
तब मैंने इन्द्रके प्यारे महातेजस्वी माधव नासक
शस्त्रको चलाया, तब मैंने उस शस्त्रके बलसे
उन राक्षसोंके कीड़े झरसहस्रों खड़्ग, विग्रह,
यौग तीमनोंको काट दिया । उनके सब
शस्त्रोंको काट कर मैंने क्रोधसे उन एक एक
राक्षसोंके शरीरमें दस दस बाण मारे, उस
समय गाण्डीव धनुषसे भीरोंके समान बाण कूट
रहे थे । ऐसा देख सातली मेरी प्रशंसा करने
लगा और उन दानवोंके बाणभी ऐसीही
कूट रहे थे, सातली उनको भी प्रशंसा
करने लगे, तब मैंने अपने बाणोंसे उन
बाणोंको काटना आरम्भ किया । वे राक्षस
मुझसे पीड़ित होकर फिर इकट्ठी हुए और
पारी घोरसे मेरे ऊपर बड़े बड़े बाण बरसाने
लगे । तब मैंने अपने बाणोंसे उनके सब
बाणोंको काट दिया, फिर गाँव चलनवाले
प्रकाशमान बाण उनके शरीरोंसे सारे, बाण
लगनेसे उनके शरीर कट गये और रुधिर बहने
लगा, उस समय उनकी शोभा ऐसी दिखाई
दी थी, जैसी व्याकालमें पर्वतोंके शिखरोंकी ।
मैंने बज्र, समान कठोर और सीधे चलने-
वाला बाणोंसे राक्षस लोग घबड़ा गये, मेरे
बाणोंसे उनके शरीरोंके सौ सौ टुकड़े हो गये
और जल और नेत्र छीन हो गये । तब मैंने
मृदुओं से सावाहन करने लगे ।

— सावाहन समाप्त ।

— तब मैंने ऊपर
ऊपर उड़ते समान दिग्गजोंसे

लगीं, उनसे मुझको बहुत पीड़ा हुई । मैंने
सबको बज्रके समान कठोर इन्द्रके सबसे युक्त
वेगवाले घोरबाणोंसे काट दिया । जब शिलाओंकी
वर्षा कट गयी, तब अग्नि बरसने लगीं, उसके
सङ्गही आगके पतङ्गोंके समान पत्थरका चूरा
बरसने लगा । जब वह वर्षा बन्द हुई, तो बहुत
पानी बरसने लगा, उन आकाशसे गिरती हुई
सहस्रों जन धाराओंसे दिशा लागयी । जल-
धारां गिरने, घोर वायुके शब्द और मेघोंके
गर्जनसे दैव्योंको कुम्भभी न दीख पड़ा । वे
धारा आकाश और पृथ्वीमें टा गयी थीं । इससे
मुझे बहुत भ्रम हुआ, वे निरन्तर बरसने लगीं;
तब मैंने इन्द्रके बताये हुए दिव्य प्रकाशमान
और घोर शोषण शस्त्रको चलाया । उसके
चलतेही वह जल सूख गया । जब मैंने पत्थर,
वायु अग्नि और जलको नष्ट कर दिया, तब
दानवोंने फिर मायाकी प्रकाश किया और
अग्नि बरसाने लगे । तब मैंने जल बाणसे उस
अग्निको बुझा दिया और पर्वत राखसे वायुके
वेगकी नाश कर दिया । हे सच्चारज । जब
मैंने इस सब मायाकी नष्ट कर दिया, तब युद्धमें
मतवादे सब दानवोंने मिलकर अनेक माया प्रगट
की, तब अग्नि, वायु और पर्वतोंके अनेक
शस्त्र मेरे ऊपर बरसाने लगे, वे सब शस्त्र महा-
घोर रूपवाले और भयानक थे, यह मायाभरी
शस्त्रकी घण मुझे युद्धमें बहुत पीड़ा देने लगी,
अनन्तर सब और घोर शस्त्रकार फैल गया ।
उस घोर और कठोर शस्त्रकारसे सब जगमगा
गया । तब मैंने बड़े युद्धमें पिशाच हुए और
सातलीयां चढ़ाये, उनसे दावसे मारिका
कोटा पर्वतमें गिर पड़ा और उन्हाते चढ़ाकर
मुझसे कहा, तू मेरे शस्त्रों से उड़ा दी
उनकी दावाया जगमगा है, मुझसे बहुत भय
लगा, तब मैंने मुझसे आनन्दित होकर
कहे कि हे मायाकार ! तू मेरे शस्त्रोंसे
उन्हाते चढ़ाकर उन्हाते चढ़ाकर उन्हाते चढ़ाकर

जो घोर युद्ध हुआ था, मैंने उसको देखा था, जिस समय सम्बरासुर मारा गया था; उस समयभी महायुद्ध हुआ था, तबभी मैंही इन्द्र का सारथी था, ब्रह्मासुरके युद्धमेंभी मैंनेही घोड़ोंकी हंका था। इसी प्रकार मैंने बलि और इन्द्रके घोर युद्धकोभी देखा है। ये सब युद्ध महाघोर थे और मैं सबमें था; परन्तु ज्ञानरहित कभी नहीं हुआ था। हे पाण्डव! जान पड़ता है, कि ब्रह्माने प्रलय करनेकी इच्छा की है, क्योंकि यह युद्ध बिना जगत्के नाश किये समाप्त न होगा। मातलीके ऐसे वचनको सुनकर मैंने अपनेकी आपही धीरज दिया और दानवोंके मायाबलको भुलाता हुआ मातलीसे बोला, हे सूत! तुम कुछ मत डरो; खड़े रहो। हमारे बाहुबल शस्त्र और धनुषकी शक्तिको देखो, हम इसी समय इस सब राक्षसोंकी घोर माया और उग्र तपको नाश कर देंगे। हे महाराज! मैंने ऐसा कहकर देवताओंके हितके लिये सब प्राणियोंकी मोहने वाली अस्त्र मायाको प्रगट किया। मेरी उस मायासे महातेजस्वी दानव लोग पीड़ित होकर अनेक प्रकारकी माया करने लगे। कभी जगत् गुप्त होता था और कभी जलमें डूब जाता था। प्रकाश होनेसे मातली घोड़ोंकी ठीक करके उस घोर संग्राममें घूमने लगे। तब वे दानव मुझको देखकर जलने लगे। मैंने अन्तर पाकर कितनीहीकी मारडाला। इस प्रकार जब निवातकवचका युद्ध हो रहा था, तब एकबार सब दानव गुप्त होगये।

१७१ अध्याय समाप्त ।

अर्जुन बोले, हे महाराज! वे दैत्य लोग मुझसे गुप्त होकर युद्ध करने लगे और अनेक प्रकारकी मायाभी करने लगे। मैंनेभी अदृश्य गन्धके उलझे युद्ध किया, मेरी गार्गीव धनुषसे मैंने उन वाण राक्षसोंकी काट काट पृथ्वीपर

गिराने लगे। मैंने अपने वाणोंको दिव्य मन्त्रित करके छोड़ा। निवातकवच लोग मुझसे पीड़ित होकर मायाकी छोड़ अपने नगरकी भाग गये। जब दानवलोग भागे और सबके शरीर दीखने लगे, तब मैंने देखा, कि सैकड़ों, सहस्रों राक्षस मरे पड़े हैं। उनके पासही सहस्रों भूषण, शस्त्र कवच और गात्रभी कटे पड़े हैं। मेरे घोड़े एकचरणभरभी नहीं चल सकते थे, तब वे आकाशमें उड़ कर खड़े होगये। तब निवात कवचलोगभी आकाशमें छा गये और वहाँसे गुप्त होकर शिला वर्षाने लगे। उनमेंसे कोई दानव-पृथ्वीमें खड़े होकर मेरे घोड़ोंके पैर और-रथके पहियोंकी खींचने लगे। मेरे घोड़े और पहियोंको पकड़कर मुझे चारों ओरसे पहाड़ोंसे मारने लगे। उन्होंने इतने पहाड़ वर्षाये, कि जिस स्थानमें मैं खड़ा था, वह छिप गया, मैं उन पर्वतोंसे छिपने और घोड़ोंके पकड़ जानेसे बल्लत पीड़ित हुआ। इसकी मालतीने जान लिया। तब मातलीने डरे हुए मुझसे कहा, कि हे अर्जुन! तुम डरो मत। इस समय तुम वज्रअस्त्रकी छोड़ो। हे महाराज! मैंने उसकी वचन सुन इन्द्रके पार घोर वज्रको छोड़ा, मैं ऐसे स्थानपर खड़ा हुआ, जो चलने योग्य नहीं था। वहाँसे मैं अपनी धनुषकी मन्त्रित करके वज्रके समान अत्यन्त तीक्ष्ण अनेक वाणोंकी छोड़ा। उन वज्रके समान वाणोंने दानवोंकी माया और दानवोंकी नाश कर दिया, वे वाण उनके शरीरोंमें वज्रके समान प्रवेश कर गये। वे सब दानव लोग उस वज्रके वेगसे मर कर शागमों मिल मिल कर पृथ्वीमें गिरने लगे। जो दानव आकाशमें खड़े हुए मेरे घोड़ोंकी पकड़ रहे, मेरे वाण उनके हृदयमें घुस गये और उनके यमकेवर प्रकट दिये, उस समय उन पर्वतोंके समान राक्षसोंके शरीरोंसे पृथ्वी ऐसा भर गई थी, भानो अनेक पर्वत पड़े हुए हैं। उस

पुष्पों में मेरे घोड़े सारथी और मेरी कुलुभी
 ज्ञानि न हर्ष, यह देख कर मुझे बहूत आश्चर्य
 हुआ । तब मातली ने हंसकर मुझे कहा, कि
 हे अर्जुन ! जो बल तुममें है, सो देवतोंमें भी
 नहीं है । जब सब राक्षस सर गये, तब
 स्त्रिया इस प्रकार रोने लगीं जैसे शरद ऋतुमें
 सारस बोलते हैं । तब मैं मातलीके संग नगर
 के भीतर गया, मेरे रथके शब्दों को सुन निवात
 कवचोंकी स्त्रिया डरने लगीं । उन मयूरकी
 गान रगवाले दश हजार घोड़े और सूर्यके
 गान रथकी देख कर स्त्रियोंके सहस्रों भुण्ड
 पर उधर भागने लगे । उन डरी हुई भागतो
 वयाके भूषणोंके गन्धमें ऐसा जान पड़ने लगा
 भा पर्जन्यसे गिरती हुई शिलाओंका शब्द
 जाता है, काइ डरी हुई स्त्री अपने रत्नजटित
 रांग धुम गयीं । मैंने उस विचित्र और देव-
 ताके नगरमें भी अंष्ट्र नगरको देख मातलीसे
 या, इस उत्तम नगरमें देवतालोक क्या नहीं
 काम करते हैं । क्योंकि यह नगर अमरावती
 भी प्रज्ञा दीखता है । मातली बोली, हे
 अर्जुन ! पहले यह नगर हमारा और
 तुम्हारा स्थान था, परन्तु निवातकवचोंने
 इसी हमलागोंकी निकाल दिया था । उन्होंने
 इतने अपन तपसे ब्रह्माका प्रसन्न किया । फिर
 इस स्थानमें रहनेके लिये और देवतासे अजय
 पितृका परदान मागा । तब भगवान् ब्रह्माने
 मुझे कहा, कि तुम अपने रहनेको दूसरा
 स्थान ढूँढ करों । उस स्थानमें सब देवताकी
 स्त्रियोंकी समग्रोत्तरी चाहिये और तुमही
 इस शरीर धारण करके इन सबका नाश
 करो । अर्जुन ! तबने इन दानवोंका नाश
 किया, तबने तुम्हें दिया । जिन दानवों
 का नाश हुआ, उनका देवताभी नहीं
 भोजन करे । भारत । जालक यानेके
 को, तबने सब परदान मागा । तबने
 मातलीके कहाने का नाश किया ।

दानवोंके मारनेके लिये इन्द्र ने तुमको सब शस्त्र
 सिखाये हैं । अर्जुन बोले, तब मैं सब दानवों-
 को मार और उस नगरको शान्तकर फिर
 मातलीके सहित स्वर्गको चला ।

१७२ अध्याय समाप्त ।

द्विरणुपुरवासी दानववध पकरण ।

अर्जुन बोले, हे महाराज ! जब मैं स्वर्गकी
 लौटा आता था, उसी समय एक बड़ा आश्चर्य
 दिखाई दिया । मुझे सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि-
 के समान प्रकाशवाला इच्छानुसार धूमता हुआ
 एक नगर दिखाई दिया । उसमें अनेक रत्नोंके
 वृक्षोंपर बैठे हुए पक्षी भीटें स्वर सुना रहे
 थे । उसके भीतर सदा प्रसन्न रहनेवाले पुलोम
 और कालकञ्ज वशी दानव निवास करते थे ।
 उस नगरके चार द्वार थे, परन्तु चारोंही बड़े
 दुःखसे जाने योग्य थे । उसकी अटारी और
 महल बहुत सुन्दर थे । वन नगर रत्नोंसे जड़ा
 हुआ दिव्य और विचित्रदिखाई देता था, उसके
 चारों ओर फूल और रत्नोंसे जड़े वृक्ष विराज-
 मान थे । उन वृक्षोंपर मनाहर और दिव्य
 पक्षी बोल रहे थे । उस नगरके चारों ओर
 अनेक राक्षस लोग प्रसन्नतामयित गूल राक्ष
 और मूषल लिये माला धारण करि इस रहे
 थे । मैंने उस विचित्र देव्यनगरका देखकर
 मातलीसे पूछा, कि यह किसका नगर
 है । मातली बोली, पुलोम और कालकञ्ज
 नामक महा असुर हुए थे, उन्होंने देवताओंके
 सहस्र वर्षतक ज्ञान माग किया । तब उनका
 तप समाप्त हुआ, तब ब्रह्मा इन्हें पर देनकों
 पाये । उन्होंने यह परदान मागा कि हमारे
 पुत्रोंको दुःख नहीं, हमको देवता, मानव और
 सर्प न मार सक और हमारा मन्त्र-
 नैज्ज्वा रमणीय नगर आकाशमें बना कर ।
 हमारा सब रत्न भर नगरका देवता, मन्त्र,
 महर्षि, गन्धर्व, गन्धर्व और राक्षस

न जीत सकें। तब ब्रह्माने कालकेय दानवोंके निमित्त उस नगरकी बनाया था। हे वीर। वहीं वह नगर आकाशमें देवतोंमें खाली घूमता था। इसमें पुलोम वंशी और कालकञ्ज वंशी दानव रहते थे। इस नगरकी रक्षा पुलोमवंशी और कालकञ्ज वंशी करते थे। इस नगरका नाम हिरण्यपुर जगत्में प्रसिद्ध था। यह दानव इस नगरमें निर्भय और मृत्युके डरसे रहित होकर रहते थे। ब्रह्माने प्रथम वर देते समय कह दिया था, कि इन दानवोंकी मनुष्योंसे मृत्यु होगी। हे अर्जुन। वज्र लेकर इन महादानवोंका नाश करो। अर्जुन बोले, हे राजन्। तब मैंने उन दानवोंका देवता और राक्षसोंसे मारनेके अयोग्य समझ कर मातलीसे कहा, हे सूत शीघ्रही इस नगरमें चलो, जितने इन्द्रके शत्रु हैं, वह चाहे अब भी हों तभी मैं उनकी शस्त्रसे मास्तगा। तब मातली मुझे दिव्य रथके सहित शीघ्रताके साथ हिरण्यपुरमें ले गये। वह दानव मुझकी देखकर विचित्र आभूषण और वस्त्र पहिनकर रथोंपर चढ़ मेरे सम्मुख आये तब सर्पके समान वाण, भाले वरकी, तोमर आदि शस्त्रोंसे दानव-लोग मुझे बड़े क्रोधके साथ मारने लगे। हे महाराज। तब मैंभी अस्त्रविद्याके बलसे उनके शस्त्रोंको निवारण करने लगा। मैंने रथकी चाल और वाणोंकी वर्षासे दानवोंकी प्रेमा मोहित किया, कि वे आपसमेंही लड़ने लगे। उन मोहित हुए दानवोंके मिर मेरे वाणोंसे कटकर गिरने लगे। जब दानव मरने लगे, तब सब दानवोंमायासे अपने नगर सहित उड़ गये। तब मैंने वाणोंकी वर्षासे उनके मार्गको रोक दिया। वह आकाशमें उड़नेवाला नगर सूर्यके समान वरदानके प्रतापसे दानवोंकी इच्छानुसार पृथ्वीमें या आकाशमें सुखमें रहता था कभी आकाशकी चला जाता था, कभी पृथ्वी पर जाता था, और कभी जलमें डूब जाता था।

था। वह नगर अमरावतीके समान इच्छा चारी था। उसे मैंने वाणोंकी वर्षासे रोक लिया। हे नरेश्वर। मैंने उस नगरकी वाणोंसे जालसे घेर लिया विशेष ध्यान करनेवाले में लोहेके वाणोंसे वह नगर छिन्न भिन्न होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। हे राजन्। मेरे वाणोंसे वे दानवभी व्याकुल होकर चक्रर खाने लगे। तब मातलीने रथकी पृथ्वीपर उतारा, मैं पृथ्वीपर आकर उन युद्ध करनेवाले दानवोंके माठ हजार रथ देखे, वह सब मुझसे लड़नेके वास्ते खड़े थे, मैंने ऐसे तीक्ष्ण वाणोंसे जिनमें पक्षियोंके पङ्क्त लगे थे, दानवोंकी आच्छादित कर लिया, वह लोग युद्धमें ऐसे उमड़े, जैसे समुद्रकी तरङ्ग उमड़ती हैं। मैंने यह समझा कि, यह लोग मनुष्योंसे युद्धमें शमर्थ नहीं हैं, तब दिव्य अस्त्रोंका क्रमसे चलाना आरम्भ किया। मेरे छोड़े हुए दिव्य अस्त्र चारों तरफ फैल गये और उनसे दानवोंका मार्ग रुक गया। परन्तु दानव लोगोंका उन अस्त्रोंसे कुछ भी पीड़ा न हुई और वे दानवोंके शस्त्रोंसे पाड़त हुआ गया और मुझे बहुत भय मालूम होने लगा। तब मैं चित्तसे महादेवकी शरण गया, जगतका कल्याण हो, ऐसा कह कर मैं शत्रुओंको नाश करनेवाला भयानक रुद्रास्त्र छोड़ा। उस वाणकी गण्डोघ धनुष पर बढ़ते समय मैंने देखा कि, तीन सिर, ना नत्र ऊँचाय वाला पुरुष जिसके जलती हुई आगकी समान केश हैं, और भयानक सर्पोंके वस्त्र बनाये गए, भा सम्मुख खड़ा है, मैंने धीरे-धीरे भयानक महादेवकी नमस्कार करके नाश करनेकी इच्छासे दानवोंकी ऊपर शस्त्र छोड़ा। हे भारत-उम शस्त्रक छोड़ते दो सहस्रहोस्तप प्रकट हो गये। हे पृथ्वीनाथ। उस समय युद्धमें दानवोंमें सिंह व्याघ्र, रीक, भैंसे, आप, गी, गार्दल, जाली, मुण्डके भाल, वन्दर, कृष्ण, मयूर, चित्त, कर्दमाना, प्रेत, मृत, गिर, गरुड़, नमरागा

देवता, श्येपि गन्धर्व, पिशाच, यक्ष, - असुर, पुच्छक, हरिण हाथीके समान मुहवाली मधुरी, उग्र, माधारण सफुरी, घोड़के समान मुहवाली मधुरी, अनेक शस्त्र धारण किये धनुष, गदा, पुद्गलधारी राजस तथा और भी अनेक रूप धारण किये जन्तु प्रकट हुए । उन सबसे भगत व्याप्त हो गया । उसी समय तीन सिर, चार दांत, चार सुह और चार हाथवाले अनेक राजस भर भरकर गिरने लगे । वे राजस मांस, गदा और अस्थियांसे भर गये थे । उस समय वज्र, अग्नि और सूर्यके समान तेजवाने मेरे बाग चलने लगे । मैंने पर्वतके समान कठोर बागोंसे क्षणभरमें सब टानवांकी मार ली । ते भारत ! तब मैंने गाण्डीव धनुषसे दूधे हुए बागोंसे मरे हुए राजसोंकी देख विपरासुरकी मारनेवाले शिवजीकी प्रणाम किया । मैं शिवजीके बागोंमें मरे हुए दिव्य भूषणोंमें भूषित राजसोंकी देखकर आनन्दित हुआ । इन्द्रके भारथी सातली इन बातोंकी सुनकर बहुत प्रसन्न हुए । देवतांसेभी दुःसाध्य कर्म करत देख इन्द्रकी भारथी सातलीने मेरी प्रणाम की और बहुत प्रसन्न होकर मुझे बोधवार कहा, कि हे अर्जुन ! तुमने जो कर्म किया उसकी देवता और राजसभी मार कर सकते थे । इस कर्मकी साक्षात् देवता राजा इन्द्रभी नहीं कर सकते थे, वे आकाशमें चलनवाला नगर देवता और पृथ्वीकी चरवाहा, हे वीर ! तुमने इस कर्मका उपलब्धि और वीर्यके चलते विश्व को नष्ट करने और नगर के नष्ट होने- के बाद भी शक्ति रखते हुए सब मारी हुई शक्ति समान होती हुई नगरकी बाहर निकल कर प्रतिक्रिया होती होती पछोपर पछोती, बड़ी शक्ति से तो हुई मिरांती । राजा ! तुमने नगर पर पृथ्वीपर गिरा दिया । तुमने नगर को और हाथोंसे नष्ट

होकर शोक और कुरुषुतामें भर गया । इस लिये उसकी शोभाभी नष्ट हो गयी । जिस प्रकार इन्द्रजालका बता हुआ नगर, जैसे हाथीके बिना तालाव और जैसे सूखे वृक्षोंवाला वन शोभित नहीं होता है, तैसेही वह नगर दीखने लगा । अनन्तर सुभकी प्रसन्नचित्त और सब कामकी समाप्त देखकर मातलीने शीघ्रही इन्द्रके घर पहुंचा दिया । मैं हिरण्यपुरके सब राजसोंकी मार निवात-कवचोंका नाशकर इन्द्रके पास गया । मेरे सब कर्मोंकी मातलीने इन्द्रसे विस्तारपूर्वक कहा । ते महातेजस्विन ! मैंने जैसे हिरण्यपुरका नाश किया था, जैसे मायाको निवारण किया था और जैसे महातेजस्वी निवात कवचोंकी मारा था सो सब कथा मातलीने इन्द्रसे कही । इस कथाकी सुन कर सहस्र नेत्रवाले इन्द्र बहुत प्रसन्न हुए और मरुत-गणोंके सहित श्रीमान् इन्द्र मेरी बहुत प्रशंसा करने लगे । अनन्तर देवराज इन्द्रने मुझे प्रमत्त करके ये भीट वचन कहे, हे शत्रुनाशन ! जो कर्म तुमने किया इसकी देवता और असुरभी नहीं कर सकते थे, हे धनञ्जय ! यह कर्म तुमने मेरे निमित्त किया है, अब तुममें स्थिर होकर सदा ऐसेही कर्म करना । तुम सावधान होकर तुममें सब शस्त्रोंकी चलावना, क्योंकि तुमसे देवता, दानव, राजस, यक्ष, असुर पक्षी और सर्पादि कोईभी नहीं लड़ सकता है, हे कर्त्तव्यन्त ! तुम्हारे चलते जीती हुई पृथ्वीका महाराज धर्मात्मा शुभाश्वर पान्दन करेगा ।

इति १०३ अध्याय समाप्त ।

अनुव्रतानि । जब इन्द्रकी यह प्रशंसा हो गयी तब ये शत्रुओंकी जीत लगे, चार नर इन्द्रके भूयः शरीरन बाधारे पात देव, ता. १२ । तब देवराज इन्द्र मुझसे बोले, कि हे मातली ! यह तुमने नष्ट किया था । मातलीने कहा

पृथ्वी पर कोई मनुष्य ऐसा नहीं है जो तुमको किसी प्रकारसे भी जीत सके ; हे पुत्र । भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण और शकुनी सब राजाओंकी संग लेकर भी युद्ध करें तो भी तुम्हारे सोलहवें भागके समान नहीं होंगे । अनन्तर भगवान् इन्द्रने मुझे यह अभेद्य कवच ; सोनेकी दिव्य माला और बद्धत शब्दवाला देवदत्त शंख दिया, फिर इन्द्रने अपने हाथसे यह क्रीट मेरे सिर पर बाधा, फिर दिव्य वस्त्र और बड़े बड़े सुन्दर आभूषण दिये । हे महाराज ! मैं इस प्रकार पूजित होकर इन्द्रके पवित्र घरमें गन्धर्व-पुत्रोंके सहित रहा । एक दिन देवतोंके सहित बैठे हुए इन्द्रने प्रसन्न होकर मुझसे कहा कि हे अर्जुन ! अब तुम्हारे जानेका समय होगया, अब तुम्हारे भाई तुमको क्षरण करते होंगे । हे महाराज ! मैं इस प्रकार जूएके दुःखको क्षरण करता हुआ पाच वर्ष तक इन्द्रके घरमें रहा, फिर इस गन्धर्वादन पर्वतके शिखर पर भाइयोंके सहित बैठे हुए आपका दर्शन किया ।

युधिष्ठिर बोले; हे धनञ्जय ! तुमने प्रारब्धसे सब शस्त्रोंकी प्राप्त किया प्रारब्धसे देवतोंके राजा भगवान् इन्द्रकी प्रसन्न किया, हे शत्रु-नाशन पापरहित अर्जुन ! तुमने प्रारब्धसे पार्ष्वती सहित शिवकी अपने युद्धमें प्रसन्न किया, तुमको प्रारब्धसे लोक-पालोंके दर्शन हुए, प्रारब्धसे हमारी उन्नति होती है और प्रारब्धहीसे तुम लौट कर आये हो । अब मैं सब नगरोंके सहित पृथ्वी और हृतराष्ट्रके पुत्रोंकी अपने वशमें समझता हूँ । हे भारत ! अब हम उन शस्त्रोंकी देखना चाहते हैं, जिनसे तुमने बलवान् निवातकवच दानवोंको मारा था । अर्जुन बोले हे महाराज ! मैं प्रातःकाल आपको उन सब शस्त्रोंको दिखाऊंगा जिनसे मैंने निवातकवच दानवोंको मारा था ।

श्रीवैशम्पायन सुनि बोले, अर्जुन इस प्रकार अपने आनेकी सब कथा कहकर भाइयोंके सहित सौगये ।

हिरण्यपुरवासी प्रभृति निवानकवच युद्धप्रकरण और १७४ अध्याय समाप्त ।

अथ अस्त्रप्रदर्शन प्रकरण ।

श्रीवैशम्पायन सुनि बोले, हे राजन् जनमेजय ! उस रातके बीतने पर महाराज युधिष्ठिर अपने भाइयोंके सहित उठे और नित्य कर्म करके अर्जुनसे बोले, हे कुन्तीनन्दन ! जिस अस्त्रोंसे तुमने दानवोंको मारा है, उन सबका हमें दिखाओ । हे भारत ! हे राजन् ! तब पाण्डुनन्दन अर्जुनने देवतोंके दिये हुए सब अस्त्र महाराजको दिग्वानेके लिये यथा योग्य पवित्र होकर बद्धत तेजवाली दिव्य कवचकी पहिनकर सुन्दर तीन बांसवाली पर्वत शिखर स्तूपी रथ पर बैठ कर विराजमान होने लगे । फिर उन्होंने देवदत्त शंखको बजाया । अनन्तर कुन्तीनन्दन महाराज अर्जुन गारुडीव धनुष धारण करके विराजमान हुए फिर दिव्य अस्त्रोंकी दिखाने लगे । जिस समय अर्जुनने उन अस्त्रोंका प्रयोग किया और पैर-ही पैर पृथ्वीपर घुसने लगे, उस समय वहाँ वृक्षोंके सहित पृथ्वी काप उठी, समुद्र और नदी उमड़ने लगी, पर्वत गिरने लगे, वायुका चलना, सूर्यका तेज और अग्निका जलना बन्द हो गया । हे जनमेजय ! हिजोंकी वेदका पढ़ना भूलने लगा, भूमिवासी सब प्राणी व्याकुल होकर अर्जुनको निवारण करने लगे, सब उन शस्त्रोंसे कापने लगे और हाथ जोड़कर अर्जुनसे जीवन प्रार्थना करने लगे । उन शस्त्रोंकी चलने हुए देख अग्नि, ब्रह्मापि, सिद्ध और महर्षि लोग अर्जुनकी रोकने लगे । उनके पशु-मनुष्य लोकपालोंके सहित प्रता और मन गरीब

सहित शिव वहाँ आये। अनन्तर दिव्य सुगन्धिसे भरा हुआ वायु अर्जुनके चारों ओर चलने लगा, गन्धर्व लोग देवतोंकी आज्ञासे एक गीत गाने लगे और अप्सरा नाचने लगीं। हे राजन्! उसी समय देवतोंके भेजे हुए नारदने जाकर अर्जुनसे कहा कि हे अर्जुन। इन दिव्य अस्त्रोंकी मत चलाओ, हे भारत। इनकी बिना स्थानके कभी नहीं चलाना चाहिये और स्थान पाकरभी इन्हे बिना सहादुःख पड़े नहीं चलाना चाहिये; हे भारत। इनके चलानसे सहादोष होता है, यदि तब इनकी रक्षासे रखोगे तो समय पर ये वज्रतनु देगधाली और बलवान होंगे, यदि रक्षासे न रखोगे तो यह सब लोगोका नाश कर देंगे, तुम फिर कभी ऐसा मत करना। हे युधिष्ठिर। अब अर्जुन शत्रुओंके मारनेके लिये युद्धमें इन अस्त्रोंकी चलाविंग, तब तुम देखलेना।

और शम्भुगयाहन सुनि बोली, हे जनमेजय ।
 शम्भुगयाह को निवारण कर सब देवता अपने अपने
 घर चले गये । देवताओं के जाने के पश्चात् वीर
 शम्भुगयाह लोग प्रसन्न चित्त से द्रौपदी के सहित
 गये बन में रहने लगे ।

ज्ञान प्रदर्शनप्रकारण और

१७५ अध्याय समाप्त ।

॥४॥ राजगणप्रवर्तण प्रवर्तण ।

राज्य जनसंख्या घटती, है वैश्वन्यायन जब
राज्यजनोन्मुखी और वर्तमान इन्द्रकी यज्ञसि
मानी गिराकर सीट गाने तब पाएवर्तानि
काय

॥ गन्धायनं मुनिं वीक्ष्य, किं राजन जनमेजय ।

प्रमाण प्रमाणों के सहित नरनाथ

सर्वोत्तम लोकोत्तम

समाप्त पर्यंत पर निवार करणे

१. नमो भगवते वासुदेवाय नमः ॥ १ ॥

१०५

हुए विचार करने लगे। राजपुत्र पाण्डवोंको कुवेरको कृपासे स्थान मिले, वे लोग किसी प्राणीके धनकी इच्छा नहीं करते थे। वह समय उनके आनन्द का था। अर्जुनसे मिल कर पाण्डव लोग चार वर्ष तक वहाँ रहे। यह चार वर्षका समय उनके एक रात्रिके समान बीता। इस रीतिसे वनमें सुखसे रहते हुए पहले ६ और अबके ४ सब सिलाके १० वर्ष व्यतीत हुए, तब तेजस्वी इन्द्रके समान भीम और अर्जुन तथा नकुल, सहदेवन आदि में राजाके पास बैठ कर प्यारे और हितने वचन कहे। हे कुरु राज ! हम लोग आपकी प्रतिज्ञाको सत्य करने और आपके प्रिय करने हीकी इच्छासे वनकी छोड़ कर दुर्योधनको मारने नहीं गये थे। हे महाराज ! हम लोग अत्यन्त सुखके योग्य होने पर भी वनमें अनेक दुःखको सह रहे हैं; हमको वनमें रहते हुए ग्यारहवां वर्ष आरम्भ हो गया, अब हम लोग उस अधम बुद्धिरहित दुर्योधनकी वधना करके अज्ञातवासकी विता कर सुख पावेंगे। हे महाराज ! जब हमलोग आपकी आज्ञासे शंकरहित होकर पानके वनकी छोड़ छिपकर दूर देशमें घूमेंगे, तब वे लोग नहीं जानेंगे कि पाण्डव लोग कहाँ हैं, इसलिये वे लोग हमको जान नहीं सकेंगे, हम एकवर्ष छिपे हुए रहकर उस मूर्ख दुर्योधनमें सर्पोंको लीन लेंगे; हे नरदेव ! हे धर्मराज ! आप उस अधम पुरुष दुर्योधनमें अपने धैर्यका बदला लेकर फल और पुण्यके सज्जित इस पक्षीको प्राण कीजियेगा, और दुर्योधनकी उसमें से गिराई सज्जित मार डालियेगा। हे नरेश्वर ! यह देश स्वर्गके समान है, हम लोग यहाँ रह कर दुःखको नाश कर सकेंगे, हे भारत ! यदि आप दुर्योधनकी न जानेंगे तो आपकी प्रिय कीर्ति नष्ट हो सकती और यह सब कष्ट हमलोगों की हीकी प्रियता, हे नर देव ! प्रियता के

कर सकियेगा । हे नरेश्वर ! हे भारत । आप इन सब कार्योंके करनेमें समर्थ हैं, आप कुवेर सेभी छोन सकते हैं, अब आप शत्रुओंके मारने और अपनी वृद्धिका उपाय कीजिये । हे धर्मराज । आपको घोर तेजका साक्षात् इन्द्रभी नहीं सह सकते हैं, आपको सब देवताओंके सहित कुवेर और वल्गुभी युद्धमें नहीं जीत सकते हैं, हे नरदेववर्य ! आपके हित करनेके निमित्त साक्षात् श्रीकृष्णजी और कृत्यकी तैयार है, ये लोग बलसे असाधारण हैं और इन लोग भी युद्धमें सामान्य नहीं हैं, यादवोंके सहित श्रीकृष्ण और वल्लभमें अनपस अर्जुन तथा अप्रतिम बल से युद्ध करने को उपस्थित हैं, हे नरदेव । ये वीरोंमें अष्ट नकुल और सहदेव सब शस्त्रोंमें निपुण हैं । हम सब लोग युद्धकी जाननेवाले हैं, हम सब रात्रिसे आपके बैरियोंको मारेंगे ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन जनमेजय । धर्म और अर्थके जाननेवाले महातेजस्वी धर्मपुत्र महाराज महात्मा युधिष्ठिरने अपने भाइयोंकी सम्मति जान-कुवेरके स्थानकी प्रदक्षिणा की ; नदी, तालाब और स्थानोंसे आकाशानी । अनन्तर पर्वतको देखते हुए मार्गको भूलने लगे । अनन्तर मृदु बुद्धि महात्मा धर्मराजने पर्वतकी प्रार्थना की, कहा कि हे पर्वतराज । हम सब कर्मोंको समाप्त कर अपने भाइयोंके सहित शत्रुओंकी जीतकर जब राज्य प्राप्त करोगे तब तुम्हें देखनेकी फिर आवेगी । ऐसा कान् कर्णेश्वरके स्वामी महाराज युधिष्ठिर अपने सब भाई और सब दानवोंके सहित उन्नी मार्गसे चन्दने लगे जिन मार्गसे आवे थे वृष्टोत्सव इन सबकी अपने ऊपर चढ़ा कर पर्वतों पर चलने लगे । महात्मा सनातनपि नामश उन्नी सबकी चलते देख पिताके समान पिता देकर स्वर्गको गये । महात्मा शर्मिष्ठाकी जिज्ञासु न

पुरुषश्रेष्ठ पाण्डव लोग स्वरणीय तपोवन तीर और बड़े बड़े तालावोंको देखते हुए वहाँ चले ।

१७६ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन जनमेजय । जिस समय भरतकुलसिंह पाण्डव लोग उस करने, दिग्गज, किन्नर और पक्षियों विराजमान पर्वतके सुखनिवासको छोड़कर चलने लगे तो उनका चित्त प्रसन्न न हुआ परन्तु जब कुवेरके स्थान मेघके समान सच्च कौलाशको देखा तब बहुत प्रसन्न हुए । जंगे पर्वतोंके शिखर सिंहोंके स्थान अनेक भूले करने और नीचे जंगे स्थानोंको देख बहुत प्रसन्न हुए और अनेक पक्षी और हाथी योंसे भरे हुए बनीको देखकर प्रसन्न होते हुए खड्ग और धनुषधारी पाण्डवलोग चलने लगे भरतकुलसिंह पाण्डवलोग रम्य वन, नदी तालाव, पर्वतकी गुफा और झरनोंमें निवास करते हुए चलने लगे । वे लोग पर्वतमें वसते हुए अचिन्त्यरूप कौलाश पर्वतसे पार हो गये । अनन्तर आश्रमोंमें अष्ट वीर सभी हर वृषपञ्चाके आश्रममें पहुँचे । वहाँ उन सबकी राजकृषि वृषपञ्चाने पूजा और पाण्डव लोगभी शोकसे रहित हो गये और सब कथा विस्तारपूर्वक कही और अपने पर्वतमें रहनेका वर्णन किया । महात्मा पाण्डव लोग देवकृपियोंसे भरे हुए उस आश्रममें साय-पूर्वक एक रात रहे, वहाँसे चल कर बदरिकाश्रममें पहुँचे । महानुभाव पाण्डव लोग बदरिकाश्रममें ठहरे । वहाँ उन्होंने शोकशान्त होकर कुवेरकी पोखरको देखा, वहाँ अनेक देवता और सिद्ध निवास करते थे । महात्मा पाण्डवकी पुत्र सब मनुष्योंमें अष्ट पाण्डव लोग सुखसे उसे देख कर इस प्रकार विहार करने लगे, जैसे निर्मल वृक्षार्पि लोग नन्दननमें

नदियोंके तटोंपर हंस और सारस विराजमान थे । जहाँ मेघोंके समान सघन देवदारु, हरि चन्दन, राल और अगरके वनकी देखने लगे, वहाँ महाबलवान भीमसेन शुद्ध वाणोंसे हरिनोको मारते हुए निर्जन स्थानोंमें घूमने लगे । महापराक्रमी महाबाहु भीमसेन अपने बलसे हरिन, शूकर और भैंसोंको मारने लगे । दशहजार हाथीके समान बलवाले अनेक मनुष्योंको युद्धमें रोकनेवाली सिंह और शार्दूलके समान पराक्रमी भीमसेन घूमने लगे । वे अपने बलसे वृक्षोंको तोड़ते और चीरते सब वनकी अपने शब्दसे पूरित करने लगे ; भीमसेन सुखी होकर पर्वतके शिखरको तोड़ते ऊपर उधर घूमने लगे । वे कभी वेगसे कूदते, कभी दौड़ते कभी उछलते और कभी अपने हाथोंके शब्दसे ताड़ वृक्षोंका कपाते विचार करने लगे । अभिमानी भीमसेनके वनमें घूमनेसे महाबलवान हाथी महापराक्रमी सिंह गुफाओंसे निकल निकल भागने लगे । भीम कहीं दौड़ते, कहीं बैठते और कहीं धीरे धीरे चलते थे । पुरुषसिंह भीम अपने रहनेवालोंके समान निर्भय होकर उस घने वनमें हरनोंका दूढ़ने और अद्भुत नाद करने लगे । तब उनके शब्दसे गुहाशायी सप भी भयभोत हुए । वेगसे अतिक्रमकारी भीमसेन उनके पीछे पीछे चले । देवतोंके समान महाबलवान भीमसेनने एक बड़े भारी शरीरवाले भयानक सर्पको देखा, वह सर्प एक पर्वतकी खींचमें गुफाको अपने शरीरसे रोकके हुए बैठा था । उस सर्पका शरीर पर्वतके समान बड़ा था । उसका रङ्ग विचित्र हलदीके समान था, उसके नेत्र लाल और तावेके समान थे । वह सब प्राणियोंकी हरानेवाला काल और यमके समान भयानक सर्प जिह्वासे हीठाको चाट रहा था, उसके स्वासके संग निकले हुए विषसे सब जन्तु डर रहे थे, वह सर्प क्रोध करके भीमकी निकट पाके

वेगसे भीमके दोनों हाथोंसे लपटे गया । उस सर्पके लपटतेही भीमका सब बल और उत्कर्ष संज्ञा नष्ट हो गई । भीमसेनका जो बल दस हजार हाथियोंके समान था, जो भीमकी भुज और सब पुरुषोंसे अधिक थीं, वही तेजस्वी भुज सर्पके वशमें हो गई । भीम पराक्रम करने पर भी उससे छूट न सके । उसके वरदान वशमें होकर दश हजार हाथीके बलकी भी भूल गये । उन्होंने अपने छूटनेके लिये बड़ा यत्न किया, परन्तु छूट न सके ।

- १७८ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय । जब तेजस्वी भीमसेन सर्पके वशमें होगये तब उसके विचित्र और अद्भुत बलकी विचारने लगे और बोले, कि हे पन्थग । हे सर्पश्रेष्ठ तुम कौन हो ? और हमसे कौनसा काम कराना चाहते हो ? हम राजा पाण्डुके पुत्र महाराजा धर्मराज युधिष्ठिरके छोटेभाई भीम हैं, हममें दश सहस्र हाथीका बल था, परन्तु नजाने तुमने कैसे हमको वशमें कर लिया, मैंने युद्धमें सैकड़ों सिंह, केशरी, व्याघ्र, भैंसे और हाथियोंकी मार डाला । मैंने युद्धमें अनेक महाबलवान राक्षस, पिशाच और सपोंको मारा है, मेरे पराक्रमकी कोईभी नहीं सह सकता है, हे सर्पश्रेष्ठ । तुमकी ज्या कोई विद्यामान है ? अथवा किसीने तुमको वरदान दिया है ? क्योंकि मैं अत्यन्त पराक्रम करने पर भी तुमसे छूट नहीं सकता हूँ, मेरी बुद्धिमें आता है, कि मनुष्योंका पराक्रम मृदा है, क्योंकि तुमने मेरे दश हजार हाथीके बलकी छीन लिया ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, जब अद्भुत कर्म करनेवाले भीमने ऐसा कहा, तो सर्पने उनका अपने शरीरद्वारा चारों ओरसे लपेट लिया था । महाबाहु भीमसेनके दोनों भुज ऊँटुकर

आता है, कि मेरे सरने से वे दोनों किसी यांश न रहेंगे। आपके शरीरसे बंधे हुए भीमर्न इस प्रकार बहृत विलाप किया। परन्तु कूट न सके। उसी समय कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरने अनेक अशशुन देखे, तब वे बहृत घबड़ाये। उनकी दाहिनी ओर खड़ी होकर सियारी घोर शस्त्रसे रौने लगी और उस आश्रमसे दोष दिशाकी ओर खड़ी होकर अनेक सियारी भयानक शस्त्रसे रौने लगीं। एक पंख, एक चरण और एक आखवाले अनेक भयानक पक्षी अपने सुखसे रुधिरकी गिराते हुए सूर्यकी ओर घूमने लगे। उस समय धूलसे भरा हुआ घोर वायु बहने लगा। सब हरिन और पक्षी वाईं ओरकी बोलते हुए जाने लगे। पीछेसे काला कौआ जाओ जाओ कहने लगा और दहना हाथ पाव फरकने लगा। हृदय और वाया चरण जलने लगा और दहने नरमें अशुभ चिह्न होने लगे। हे जनमेजय। बुद्धिमान धर्मराज बहृत भयसे व्याकुल होकर द्रौपदीसे पूछने लगा, कि भीमसेन कहा है? तब द्रौपदीने कहा, कि भीमसेनकी गये बहृत देर हुई है। यह सुन महाबाहु युधिष्ठिर धीम्यसुनिके सहित चले और अर्जुनसे बोले, कि तुम द्रौपदीकी रक्षा करना तथा नकुल और सहदेवसे कहा कि तुम लोग ब्राह्मणोंकी रक्षा करना। महात्मा धर्मराज उन्हीके चरणोंके चिह्न पर चलते हुए भीमकी ढूँढ़ने लगे। वे वहासे पूर्वकी ओर चले, वहा उन्हीन मतवाले हाथियोंकी सर पड़े देखा और वहाँ भीमसेनके चरणोंके चिह्नोंको देखा, फिर हजारों सहस्रों हरिन और सैकड़ों सिंहोंको सरा पड़ा हुआ देखा। वह महाराज भी उन्ही सानेसे चले। सजा पराक्रमी भीमके वायुसमान चलनसे उनकी जघासे उठे हुए वायुसे सानेके वृक्ष वृक्षोंके गिरि दे, महात्मा धर्मराज उन्हीके चरण चिह्न पर

एक पक्षतकी खाँहसे पहुँचे। वहा

सूखी वायु चल रही थी और किसी वृक्षपर पत्ता नहीं था। वह स्थान जलसे रहित और कटीले वृक्षोंसे भरा हुआ था। वहाको पृथ्वी तथा उस कठिन स्थानमें पत्थरोंके टुकड़े और छोटे छोटे वृक्ष भरे थे। वहाँ उन्हीने उसी सुर्ग जघर स्थानमें सर्पसे पकड़े हुए अपने भाई भीमसेनको निश्चेष्ट हुए देखा।

१७६ अध्याय समाप्त ।

श्रीनैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय। युधिष्ठिरने सर्पसे पकड़े हुए अपने प्यारे भाईसे ऐसे वचन कहे। हे कुन्तीपुत्र। तुम इस आफतमें कैसे पड़ गये? और यह सर्पको समान शरीरवाला सर्प कौन है? भीमने बड़े भाईको देखकर सब कथा अपने पकड़े जानेकी काह सुनाई।

भीमसेन बोले, हे आर्य्य। यह महाबलवान् नहुष नामक राजर्षि है, इन्हीने मुझे खानिकी पकड़ा है। महाराज युधिष्ठिर बोले, हे आयुष्मन्। तुम हमारे अत्यन्त पराक्रमी भाईको छोड़ दो, हम तुम्हारे क्षुधा निवारण करनेके लिये दूसरा भोजन देंगे। सर्प बोला, यह राजपुत्र हमारे सुखमें आचुके हैं, इसलिये हम इन्हीको खायेंगे, तुम चले जाओ, यहा उडा होना योग्य नहीं है, यहा रहनेसे तुमभी कल हमारे भोजन बनोगे। हे महाबाही। यह हमारा प्रण है, कि जो हमारे पाप आता है, उसकी हम खजाते हैं। हे तात। तुमभी हमारे पाप आवे हो और तुम्हारा भाई प्राणाहीन हमारे पास आयये है, अब हम दूसरे आहारकी इच्छा नहीं करते हैं। महाराज युधिष्ठिर बोले, हे सर्प। तुम देव हो, या देवकी या सर्पकी जो जो सत्य कहो, तुमसे मैं युधिष्ठिर पूछ रहा हूँ, हे नरप। तुमने भीमसेनकी क्या पकड़ा है? तुम कौनसे भोजनसे प्रसन्न हो सकते हो? हम तुम्हारे

प्रसन्नता के लिये कौनसा भोजन ले
ले।

सर्प ने लि है पापरहित । इस तुम्हारे
सखा ब्रह्म नामक राजर्षि हैं । हे नरनाथ ।
स ब्रह्मसारे पञ्चवीं पीढ़ीमें आयुके पुत्र हैं
इसने अपने पशुक्रोध, तप, यज्ञ और वेद पाठसे
अनेक लोकोंके ऐश्वर्यको प्राप्त किया था। उस
आत्माको प्राप्त करके सुखो बहूत अभिमान
करता है। मेरी पालकीमें रहकर ब्राह्मण लगते
हैं उन उस ऐश्वर्यसे उत्सन्न होकर वाच्यों-
का अपमान किया। मैं उसी अपमानके
कारण भगवान् स्वर्ग के श्रापसे इस दशाको
प्राप्त हुआ हूँ। हे पृथ्वीनाथ । मैं पालूँ व । इस
आत्माके पुत्र परभी मेरी बुद्धि नष्ट नहीं हुई।
तभी उन्हीं अशान्ता अगस्त्यकी कृपा है।
अनेक दिनके बने सागरे भोजनके लिये तुम्हारे
पाँवोंका पकाड़ा है, इस लिये मैं इसको नहीं
पारगा और न इसका भोजन लूँगा। यदि तुम
मेरे पाँवोंका उत्तर दो तो मैं तुम्हारे भाई भीम
से मिलूँ हूँ।

सहाराज युधिष्ठिर बोले, हे सर्प । तुम
अपने पाँवोंको नहीं, इस शक्तिके अनुसार तुम्हें
पाने के लिये उनका उत्तर देगी, जिस
से तुम जान सकते हैं उन्हींका। तुम
मैंने सुना है सर्प अस्त्रों के ज्ञानात्मा बन

हे युधिष्ठिर ! इस जगत्में ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य
और शूद्र चार वर्ण हैं, ये चारों अपौरुषेय
वेदका प्रमाण मानते हैं, यदि किसी शूद्रमें
सत्य, दान, दृढता, शीलता, अहिंसा और
दया हो, तो क्या वह भी ब्राह्मणही हो
जायगा ? तुमने जो कहा, कि ब्रह्ममें
सुख और दुख नहीं है और वही ब्रह्म
जानने योग्य है, तो तुम एक ऐसे प्राप्तिहीन
योगी स्थानको कहो, कि जो सुख और दुःखमें
रहित हो क्योंकि हमको ऐसा कोई पद नहीं
देख पड़ता। सहाराज युधिष्ठिर बोले, हे
सर्प । जो ये लक्षण शूद्रमें हैं, और ब्राह्मणमें
नहीं हैं तो वह शूद्र शूद्र नहीं हैं और वह
ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं हैं। हे सर्प जिससे ये
लक्षण हो वह शूद्र ब्राह्मण है और यदि ये
लक्षण ब्राह्मणमें न हों तो वह ब्राह्मणभी
शूद्रही है। हे सर्प । जो तुमने कहा,
कि “कोई वस्तु सुख दुःखमें रहित जानने
योग्य नहीं है और कोई पद ऐसा नहीं है
जिसमें सुख और दुःख नहीं हो।” हे सर्प ।
ऐसा बांध जाता है कि, सुख दुःखसे रहित
कोई वस्तु नहीं है, सा जन्म गर्माग मरणा
नहीं और सदास गमना नहीं है, तब कोई पद
सुख और दुःखसे रहित नहीं है। अथवा
जिस प्रकार शातना और जयाताके जना

जातिकी परीक्षा होनी बहुतही कठिन है। हम देखते हैं, कि दूसरे वर्णकी स्त्रीसे दूसरे वर्णका पुत्र उत्पन्न करता है, वचन, मैथुन, जन्म और मरण सब पुरुषोंका समान-ही होता है। यह 'यजामहे' वेदवाक्य प्रमाण है और हमको मानने योग्य है, इसीसे पण्डित सब चरित्रकी प्रधान मानते हैं। जब लड़का उत्पन्न होता है, उसका नाल काटा जाता है उससे पहिलेही जातिकर्म्म किया जाता है, उस कर्म्ममें उस बालककी माता सावित्री और पिता आचार्य होना है। भगवान् स्थायश्व मनुनेभी अपनी स्मृतिमें ऐसाही कहा है, कि जब तक बालक वेद न पढ़े, तब तक वह शूद्र बन रहता है। हे राजेन्द्र। सब वर्णोंकी संस्कार आदि क्रिया को जाने परभी यदि उनमें संचरितता न रहे, तो सद्धरत्वको बलवान् निश्चय करे। हे सर्प। इसलिये जिनमें सुसंस्कृत चरित्र दिखाई दे उसे ही पहिले मैंने ब्राह्मण कहके वर्गन किया है। सर्प बोले, हे युधिष्ठिर! हमने तुम्हारे सब वचन सुने अब हम तुम्हारे भाई भीमसेनको नहीं खायंगी।

१८० अध्याय समाप्त।

महाराज युधिष्ठिर बोले, आप इस लाकमें वेद और वेदाङ्गोंके जाननेवाले हैं सो हमसे कहिये, कि कौन कर्म्म करनेसे मनुष्यकी उत्तम गति जाती है? सर्प बोले, हे भारत। पाठकी दान देना, धार वचन कहना सत्य बोलना और किसीको दुःख न देना इन्हीं कर्म्होंसे पुरुष स्वर्ग जाते हैं।

युधिष्ठिर बोले, हे सर्प। दान अहिंसा और छापी वाणी इन चारोंमें कौन अधिक दान कम है। सर्प बोले, हे युधिष्ठिर। दान, वचन, अहिंसा और मीठीवाणी इन सबकी बराबरी और हटाई केवल कार्यके अनुसार होती है। कहीं दानमें सत्य और सत्यमें दान

अधिक होजाता है। हे पृथ्वीनाथ। हे मनुष्य। कहीं अहिंसासे मोठी वाणी और कहीं मीठी वाणीसे अहिंसा बढ़ जाती है। राजन्! हमने यह सब कहा अब और तुम्हारी इच्छा ही सी कहो, हम तुमसे कहीं महाराज युधिष्ठिर बोले, हे सर्प। शरीर न होनेके पीछे स्वर्ग किस प्रकार मिलता है और कर्म्मका फल अवश्य प्राप्त होता है। उसका प्रमाण है, इन सब विषयोंको तुम हमसे कहो। सर्प बोले हे राजन्। मैंने अपने कर्म्होंसे तीन दशा देखी। मैं पहिले मनुष्य था फिर देवता हुआ फिर सर्प होगया। निश्चय ही पुरुष मनुष्य लोकमें दान और अहिंसादिक कर्म्म करके स्वर्गके सुखको भोगता है। हे राजेन्द्र। हे तात। उसका उस कर्म्मके करनेसे मनुष्य वा किसी नीच योनिमें जन्म होता है। हम इसे विशेष वर्णन करते हैं। काम, क्रोध, लोभ और हिंसा करनेसे मनुष्य मनुष्यतासे नष्ट होकर तिर्यक योनियोंमें जन्म लेता है। नीच योनियोंके जो कर्म्म हैं, सो मनुष्यको लिये हैं। गाय और घोड़े आदिको भी देव भाव दीख पड़ता है। हे तात। जन्तु इस प्रकार तीन गतियोंको प्राप्त होता है, ब्राह्मण लोग केवल नित्य परमात्माका ध्यानही करते हैं। हे तात। जीवात्मा बार बार जन्म लेकर सुख और दुःखको भोगता है, जीवात्मा अपने कर्म्मानुसार प्रजाके लक्षणोंकी चिन्ता करते हैं।

राजा युधिष्ठिर बोले, हे सर्प। शत्रु, सार्ध, स्तूप, इस और गन्धका आधार क्या है? हे महासते। इन पाचोंको बुद्धि एकहीवार नहीं ग्रहण कर सकती है, तुम यह सब हमसे कहो।

सर्प बोले, हे चिरञ्जीव। जो प्राण मनुष्य इन्द्रिय तथा स्थूल और सूक्ष्म शरीरोंमें युक्त है सोई कर्म्मके अनुसार सब फलोंको भोगता है। उसकी भोग करनेके आधार ज्ञान, बुद्धि मन

श्रीवैशम्पायन मुनिजी बोले, महाराज नहुप ऐसा कहकर उस सर्पके शरीरको छोड़ और तब शरीर धारण कर स्वर्गको चले गये । श्रीमान् धर्मशास्त्रा महााराज युधिष्ठिरभी भीमसेन और धौम्यमुनिके सहित अपने आश्रमकी लौट आये । अनन्तर धर्मराज युधिष्ठिरने सब ब्राह्मणोंसे उस कथाको कह सुनाया । उसको सुन सब ब्राह्मण और अर्जुन, नकुल, सहदेव और यशस्विनी द्रौपदीन बहुत लज्जा किया । ब्राह्मण लोग पाण्डवोंके कल्याणके निमित्त भीमसेनसे कहने लगे, कि ऐसा फिर व भी न करना । वे लोग भीमके दुःसाहसकी निन्दा करने लगे । पाण्डव लोगोंने महावली भीमसेनको भयसे कटा हुआ देख बहुत आनन्द किया ।

अजगर प्रकरणा और १८१ अध्याय समाप्त ।

अथ मार्कण्डेय समस्या प्रकरणा ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, उसी स्थानपर निवास करते हुए पाण्डवोंके सब प्राणियोंकी सुख देनेवाला, उष्णता नाशक वर्षा काल आगया । बड़े गर्जनेवाले मेघोंने आकाशको छा लिया वे काले काले मेघ रात और दिन बरसने लगे । वर्षाकालमें रहनेवाले सूर्यके नेत्रको रोकनेवाले निर्मल बिजलीके टुकड़े चमकने लगे । पृथ्वीमें धानके खेत हरे होगये । सर्प आदि जन्तु उन्मत्त होकर घूमने लगे, जलसे भरनेके कारण पृथ्वी सबको धारी लगने लगी । पृथ्वीमें इतना जल भर गया, कि जिनसे नीचा ऊँचा जल और थला कुदमी न जान पड़ने लगा । उन समय उसी जलमें भरी हुई बड़ी बड़ी नदियोंकी तरङ्ग वाणके समान शीघ्र चलने लगी और सब नदी तथा वन शोभासे भर गये । उस समय जलसे भौंगनेके कारण वनोंमें सूअर, हरिन और पक्षियोंके अनेक शब्द सुनाई देने लगे । पपीहा मीर और कीकिल उन्मत्त होकर नाचने और गाने लगे । मनवाने मेड़क

आनन्दसे शब्द करने लगे । इस प्रकारके मेघोंके शब्दसे भरी हुई वर्षा ऋतु पाण्डवोंने उसी वनमें बिता दी । अनन्तर सारस और हंसोंको आनन्द देनेवाली शरत् ऋतु आगयो । उसके आतेही सब वन प्रसन्न दीखने लगा । नदियोंके पानी और आकाशके तारे निर्मल होगये । इस प्रकार महात्मा पाण्डवोंने हरिन और पक्षियोंसे भरी हुई कल्याणदायिनी शरत् ऋतुको देखा । उस ऋतुमें धूलसे रहित मेघोंसे शीतल चन्द्रमा और तारोंसे विराजमान, रात्रि दीखने लगी । सब पोखरीमें कमल कुम्द खिल गये, सब नदी शीतल और निर्मल जलसे भरी हुई दीखने लगीं । आकाशके समान निर्मल तटवाली और वेंटके वृक्षोंसे विराजमान पवित्र सरस्वती अत्यन्त सुन्दरी होगयी । महाधनुषधारी वीर पाण्डव लोग निर्मल जलसे भरी हुई सुन्दर सरस्वती नदीको देखते हुए आनन्दसे विहार करने लगे । हे जनमेजय ! उन महात्माओंकी शरत् कालकी कार्तिकी पूर्णमासी उसी स्थानपर आगयी । पुण्य कर्म करनेवाले महातपस्वी ब्राह्मणोंके सहित भरत कुलश्रेष्ठ पाण्डवलोग उसी स्थानपर उत्तम योग करने लगे । जब अगहनका कृष्णपक्ष आरम्भ हुआ, उसी दिन पाण्डवलोग धौम्य मुनि, सारथी और नगर निवासियोंकी सङ्गले काम्यक वनकी चले गये ।

१८२ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय । युधिष्ठिर आदि सब पाण्डवलोग द्रौपदीके सहित काम्यक वनमें पड़ंचे । वहाँ मुनियोंसे बहुत सत्कार पाकर द्रौपदीके साथ रहने लगे । जब विश्वासयुक्त पाण्डव लोग उस वनमें रहने लगे, तो अनेक ब्राह्मणलोग उनके पास आने लगे । एक दिन एक अर्जुनके धारे मित्र ब्राह्मणने कहा, कि हे अर्जुन !

महाबुद्धिमान् महाबाहुर् जितेन्द्रिय औकृष्णजो
 महार पास आवेंगे, क्योंकि उन्होंने आपलोगों-
 का यहां आनेका समाचार सुन लिया है । कृष्ण
 दा आपलोगोंके दर्शन और कल्याणकी चाहते
 हैं । वेदपाठ और तपकी करनेवाले महा-
 पत्नी विरजोवी मार्कण्डेयभी आपलोगोंके
 पास शीघ्रही आवेंगे । जिस समय वह बाह्यग
 मा कह रहा था, उसी समय शैव्य और सुग्रीव
 वृद्धोंसे युक्त रथपर बैठे हुए, महारथ कृष्ण
 देखायी दिये । जैसे शचीके सहित इन्द्र आते
 हैं, तैसेही सत्यभामाके सहित देवकीनन्दनभी
 पाण्डवोंको देखने आये । बुद्धिमान कृष्णने
 यमें उतरकर प्रसन्न हो युधिष्ठिर और बल-
 रान भीमसेनको प्रणाम किया । धौम्यकी पूजा
 की तथा नकुल और सहदेवने कृष्णकी प्रणाम
 किया, तथा अर्जुनसे मिले और द्रौपदीको
 गन्त किया । दशार्हदेशके स्वामी कृष्णने अपने
 शरीर अर्जुनकी वज्रत दिनपर प्राया हुआ देख
 कर धार कण्ठसे लगाया । इसी प्रकार कृष्णकी
 शरीर पटराणी सत्यभामाभी पाण्डवोंको प्यारी
 प्यारी द्रौपदीसे मिली । तब पाण्डवानों
 परीक्षित और भीमकी सहित कृष्णकी पूजा की
 और उग्रसे कशन प्रण पूजा । औमान् विहा-
 र तथा कृष्ण अर्जुनसे मिलकर ऐसे शोभित
 हुए जैसे भगवान् शिव साक्षात् स्वामकार्त्तिकसे
 भगवान् शोभित होते हैं । औकृष्णजीने पाण्डव
 के पास और धौम्य परीक्षितकी पूजा करके

प्रसन्नमें नहीं होते, आप कामके उग्रमें होकर
 कोई काम नहीं करते, आप कभी लोभके
 वशमें होकर धर्मका उद्वेग नहीं हैं । इसीसे
 सब मनुष्य आपको धर्मराज कहते हैं । हे
 पार्थ । हे राजा । आपमें दान, सच, तप,
 अज्ञा, बुद्धि और धारणा निवान करती है ।
 आपने इसी सबके द्वारा भोगोंकी प्राप्ति किया
 है । आपको इसका सदा धर्ममें रहती है ।
 हे पाण्डव । जिस समय कुरुवंशियोंकी सभामें
 सब पुरुषोंने द्रौपदीके उस दुःखकी देखा, उस
 अधर्मको आपके सिवाय और कौन क्षमा कर
 सकता था । आप निस्सन्देह सब मनुष्योंकी
 प्राप्ति करके शीघ्रही प्रजाकी पालन करेंगे ।
 जिस समय आपकी प्रतिज्ञा समाप्त होगी, उसी
 समय हम सब लोग कौरवोंकी जीतनेका यत्न
 करेंगे । दशार्हदेशके स्वामी आनूपाने धौम्य,
 भीम, युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव और द्रौपदीमें
 कहा कि, आपलोगोंकी प्रारम्भहीसे प्रसन्न भान
 मोख कर गये हैं । दशार्ह देशके स्वामी
 औकृष्णने पुरुषोंकी सन्निधि में द्रौपदीने
 कहा, कि तुम प्रारम्भहीसे अन्तमें मिली हो ।
 मैं यादमें नि । मैं याद । तुम्हारे सुग्रीव के पास
 दक्षिणी धनुर्वेद जीतनेमें लक्ष्य करती है,
 तुम्हारे पठनदा अपने मन्त्रोंमें अन्तर्गत पावन-
 कोकी प्रारम्भ है । हे द्रौपदी । मैं याद यादमें
 प्रारम्भित होकर और तुम्हारे पितृ प्रारम्भित
 प्रारम्भित होकर और तुम्हारे पितृ प्रारम्भित

तुम्हारे पुत्रोंकोभी शिक्षा देंगे । तुम्हारे पुत्र गदा खड्ग तथा ढाल धारण करनेमें निपुण है, उनको आलस्य रहित कुमार अभिमन्यु रथ और घोड़ा चलानेकी विद्या सिखावेंगे, प्रद्युम्नभी तुम्हारे पुत्र और अभिमन्युकी अच्छी प्रकार शिक्षा देंगे और शस्त्रोंकी सिखा कर उनके पराक्रमसे प्रसन्न होंगे । हे याज्ञसेनी ! तुम्हारे पुत्र आनन्दसे सब देशोंको देखते हुए हारकाकी जायं, इनके संग एक एक रथ, एक एक हाथी और एक एक घोड़ाभी जायगा । अनन्तर धर्मराज युधिष्ठिरसे कृष्णने कहा कि हे धर्मराज ! दशार्ह देशके कुमार और कुकुरान्धक वंशी सूरवीर क्षत्री लोग केवल आपकी आज्ञाका मार्ग देख रहे हैं, हे राजन् ! जहा आपकी आज्ञा हो वहाही ये लोग रहें । हे राजन् ! आपके शत्रुओंकी सेना बलरामके धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे नष्ट हो । हे नरेन्द्र ! मथुराकी सब सेना हाथो, घोड़े और रथके सहित जहा आपकी आज्ञा हो वहा रहे, हे धर्मराज ! पापियोंमें अष्ट धृतराष्ट्रका पुत्र दुर्योधन उसी मार्गको जाय जिसको भूमिका पुत्र और शाल्व गया है । हे नरेन्द्र ! आपने जो सभामें प्रतिज्ञा की थी, जब तक वह समाप्त न हो तब तक जहा आपकी इच्छा हो रहिये, फिर तो यादवोंके बाणोंसे नष्ट हुए और अपने शत्रुओंसे रहित हस्तिनापुरकी देखेंहींगे, हे महाराज । इस समयको क्राध और पापसे रहित होकर कहीं इच्छानुसार बस कर विता लीजिये, फिर तो शोक रहित होकर राज्यके सहित प्रसिद्ध हस्तिनापुरकी जाइयेहीगा । महात्मा कृष्णकी ऐसे वचन सुन युधिष्ठिरने उनकी वहुत प्रशंसा की और हाव जोड़ कर कहने लगे, कि हे केशव ! निरन्देह आपही पाण्डवोंकी गति है और पाण्डव लोग आपहीके शरण है, निरन्देह समय आने पर आप इन सब कर्मोंकी निरति करेगी । हम अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार

वनमें बारह वर्ष बिता चुके । हे केशव ! अब हम लोग तेरहवें वर्षको विधिपूर्वक द्विप क वितावेंगे, फिर पाण्डवोंकी आपही शरण है हे कृष्ण ! आपकी सदा ऐसीही बुद्धि चाँहिye पाण्डव लोग सत्यकी पालते है । हे केशव पाण्डव लोग स्त्री पुत्र और वाम्भवोंके सहिदान और धर्मकी पालते है और ये सब आप हीके शरण है ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे भारत ! जिस समय धर्मराज युधिष्ठिर श्रीकृष्णसे ऐसा क रहे थे, उसी समय कई सहस्र वर्षोंके हुए, महात्मा, धर्मात्मा, जरा और मरण रहित, रूप और उदारतासे भरे हुए, महात्मा मार्कण्डेय दिखाई दिये । उस समय उनका स्वरूप ऐसा था, जैसे पचीस वर्षके पुरुषका उन कई हजार वर्षके बूढ़े तपस्वीकी आं झए देख सब ब्राह्मण और श्रीकृष्णकी सहि पाण्डवोंने उनकी पूजा की । अनन्तर ज मुनि पूजा पाकर सावधान होकर बैठ गये, त ब्राह्मण और पाण्डवोंकी सम्मतिसे श्रीकृष्ण बोले कि हे मुने ! सब पाण्डव, ब्राह्मण, द्रौपदी, सत्यभामा और हम आपके उत्तम वचनोंके सुननेकी इच्छा रखते है, हे मार्कण्डेय ! आप हमसे सदाचार राजा और स्त्रियोंकी तथा सुनियोंकी पवित्र कथाओंको कहिये ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, जिस समय ये स लोग एक स्थान पर बैठे थे, उसी समय पाण्डवोंकी देखनेकी इच्छासे पवित्र देवर्षि नारदभी आपहुंचे । उन महात्माकी आते देख पुरुषसिंह बुद्धिमान पाण्डवोंने विधि पूर्वक पाय और अर्घ्यसे पूजन की । देवर्षि नारदनेभी उर्मा क्षणसे मार्कण्डेयसे कहा, आप कुछ कदा कहिये । समयके जाननेवाले नारद प्रसन्न होकर बोले कि, हे ब्रह्मर्षि ! पाण्डव लोग जो कथा सुनना चाहते है सो कथा आप कहिये । नारदके ऐसे वचन सुन महामुनि मार्कण्डेय

बाने, आप लोग क्षण भर चुप रहिये, इसके पीछे हम कुछ कहेंगे। महात्मा सनातन मार्कण्डेयके ऐसे वचन सुन पाण्डव लोग सब वाद्योंके सहित चुप होकर मार्कण्डेयका मंच देखने लगे; उस समय उनका ऐसा तेज बटा, जैसे मध्याह्न समयसे सूर्यका तेज बटता है।

श्रीशंभुसुतः मुनिर्वाले, हे राजन् । कुरु-
राजशुद्धिद्वारेण जयं देखा किं अब महामुनि
कुरु कहना चाहते हैं, तव हाथ जोड़ कर कथा
पूजने लगे । हे मुने ! आप पुराने देवता, दैत्य,
महात्मा मुनि और सब राजर्षियोंके चरि-
त्रोंको जानते हैं, हमारे पूजनीय सेवनीय और
महादेवके प्रियारे देवकीनन्दन श्रीकृष्णभी हम-
लोगोंसे मिलनेको यहां आगये हैं । अपनेको
मुखसे भ्रष्ट और धृतराष्ट्रके पुत्रोंको धनवान
पदा प्रभुतावान देखकर मेरी बुद्धि भ्रमती है,
हे मुने । अच्छे और बुरे कर्मोंका करनेवाला
रूप है और वही फलको भोगता है तो ईश्वर
किस तरहसे कर्ता हुआ ? हे ब्रह्म जानने
वालों ! ये ठीक ! सुख दुःखरूपी कर्मके
फलको जीव इसी जन्ममें भोगता है, वा
अन्य जन्ममें ? जीव शरीरको त्याग कर
अन्य वा अगम्य कर्मोंको भोगता वा इसी शरीरसे
भोगता ? हे शंभुवंशी । सुख और दुःखोंका
फल जो किष्ट मरे हुए जीवके कर्म यही
होता है वा परलोकमें नग जाते हैं ?

१. असाध्य बुद्धि है कि कल्पनालीने
 २. असाध्य बुद्धि है कि कल्पनालीने
 ३. असाध्य बुद्धि है कि कल्पनालीने
 ४. असाध्य बुद्धि है कि कल्पनालीने
 ५. असाध्य बुद्धि है कि कल्पनालीने
 ६. असाध्य बुद्धि है कि कल्पनालीने
 ७. असाध्य बुद्धि है कि कल्पनालीने
 ८. असाध्य बुद्धि है कि कल्पनालीने
 ९. असाध्य बुद्धि है कि कल्पनालीने
 १०. असाध्य बुद्धि है कि कल्पनालीने

सकल्य कभी निष्फल न जाते थे । सत्य जोलने
वाले सत्यव्रत तथा ब्रह्माके समान पुण्यात्मा
पुराने मनुष्य होते थे, सब मनुष्य देवताओं के समान
स्वतंत्र आकाश में विचरते थे, वह लोग स्वतन्त्र-
तासे विचरते थे, उन लोगों का सरना अपने
अधीन था, धोड़ी बाधावाले रोग रहित और
उपद्रव रहित और सिद्ध मनोरथ वाले होते थे
देवता और महात्मा मुनियों के दर्शन करने
वाले सब धर्म्मांको प्रत्यक्ष करनेवाले दानी मद
मत्कार से रहित सहस्र वर्ष की अवस्थावाले,
सहस्र पुत्रवाले पुरुष होते थे । उसके अनन्तर
मनुष्यलोक कालान्तरमें पृथ्वील्लभात्मक विच-
रनेवाले, काम क्रोध से अभिभूत और माया
व्याजोपजीवी हुए । वे अशुभ और पाप कर्म
करने से पापयोनियो में जन्म लेते हैं, वे लोक
ससार में बार बार दुःख पाते हैं वे लोक काम
और क्रोध से भरकर माया और लालसे जीते हैं,
अन्त में लोभ मोह से पीड़ित होकर शरीर को
ढीढ़ते हैं, उनकी बुद्धि सकल्य ज्ञान गौर शक्ति
धोड़ी होती है, वे लोक सबकी दुःख दिनवान
और सबसे शका रखनेवाले होते हैं, वे लोक
प्रायः पाप लक्षण युक्त होते हैं, वही लाग नीच
कुल में उत्पन्न होते हैं, वही लोग दृष्टांत यार
दुःखदाई होते हैं और वही लाग खोड़ी
अवस्था और दुष्टकर्म करनेवाले होते हैं, वे
पापी नास्तिक और हृद्दर्शी होते हैं, वे
कलीनन्दग ! भरे हुए परुषों की शक्ति दर्शाते,
बहुमान संतो ने । जैसे किसी व्यक्ति का नाम
परम जननी मे भगवान् है, उसी प्रकार यह
दर्शनों को सब को उच्च प्राप्त कर वा भाग्य
मद से ही हमने हमने क्या करते हैं। विशेषता
है । सदार्थ मानने से । यदि कार्य किया
है, सत्य ही नहीं जानने याद तब तक कि
वे, यह प्रस्तावना कर के अपना जीवन प्रतिष्ठ
निर्देश को चलाए ताकि इस देश में सुख शांति
हो । ऐसे दुर्भाग्य होने से ।

जन्म लेते लेते अन्तर नहीं मिलता है, इसी प्रकार यह जोव निरन्तर जन्म लेता है, इसका किया हुआ कर्म कृपाके समान सड़ ही रहता है, चाहे वह पापकर्म हो वा पुण्यकर्म उसका फल अवश्यही होता है। मरनेके समय जो कर्म शेष हो पुरुषको वैसेही फल होते है, ज्ञानीलोग पापी और धर्मीको जान लेते है। हे युधिष्ठिर। हमने यह मूर्खोंकी गति तुमसे कही, अब ज्ञानियोंकी उत्तम गतिको सुनो। सब वेदकी पढ़नेवाले मनुष्य तथा व्रत और गुरुओंको पूजा करके और सत्य बोलकर अपनी आत्माको जानते है। सुशील उत्तम भातिवाले क्षमा, दान और तेजसे भरे हुए मनुष्य दूसरी योनियोंमें जन्म लेनेसेभी उत्तम लक्षण युक्त होते है, वे मनुष्य इन्द्रियोंको अपने वशमें रखते है। इसलिये रोगरहित होते हैं, उनको रोग और भय कम होते है, इससे उनको कुछ उपद्रव नहीं होता है, वे लोग अपनी ज्ञान-दृष्टिके द्वारा मरते उत्पन्न होते और किसी यनिमें जन्म लेतेही अपनी आत्माको जान लेते है। वे दूसरी आत्माकीभी जान सकते हैं, वे महात्मा ऋषिलोग शास्त्र और बुद्धिसे सब कामको सिद्ध करते है, वे लोग इस कर्मभूमिमें जन्म लेकर फिर स्वर्गको जाते हैं। हे राजन्। तुमका इसमें कुछ सन्देह न होना चाहिये, यह बात ठीक है, कि कर्मका फल कुछ प्रारब्ध और कुछ अपने कर्मोंसे मिलता है। हे कहनेवालों में श्रेष्ठ। यहा हम तुमसे एक उपमा कहते है उसको सुनो, हे युधिष्ठिर। हम इस मनुष्य-लोकहीमें कल्याणको श्रेष्ठ मानते है। हे युधिष्ठिर। कोई पुरुष ऐसे होते है जिन्हें इस-लोकमें सुख होता है, कोई ऐसे होते है, जिन्हें परलोकमें सुख होता है, कोई ऐसे होते है, जिन्हें दोनोंलोकमें सुख होता है और कोई मनुष्य ऐसेभी होते हैं, जिन्हें किसी लोकमें नहीं होता है। हे शत्रुनाशन। देखो जो

लोग धनवान है, वे अनेक आभूषणोंको पहनकर इसलोकमें आनन्द करते है, परन्तु उनकी पर-लोकमें सुख नहीं मिलता और जो लोग तप, योग तथा वेदपाठ करके अपने शरीरको निर्बल कर देते है, उनको इसलोकमें कुछ सुख नहीं होता परन्तु परलोकमें सुख मिलता है। जो लोग इसलोकमें पहिले धर्म करते हैं, फिर उसी धर्मसे धन उपार्जन करते हैं, पीछे उसी धनसे पुत्र और स्त्रीके सहित यज्ञादि उत्तम उत्तम कर्म करते है, उनको इस लोकमें और परलोकमें दोनों जगह सुख मिलता है। जो मूर्खलोग विद्या पढ़ें न तप करें न दान करे और न सत्कार बढ़ानेका उपाय करें उन्हें कहीं कुछ सुख नहीं मिलता। आप सबलोग महाबलवान दिव्य वीर्ययुक्त और सब शत्रुओंके मारनेवाले हैं। आपलोगोंने देवतोंके कार्योंके निमित्त परलोकसे आकर इसलोकमें अवतार लिया है, और इसलोकमें आकर अनेक विद्याओंको पढा है। हे सर्ववीरो। आपलोग इस लोकमें तप, आचार युक्त और विहारशील हो करके विधिपूर्वक देवऋषि, और पितरोंका तर्पण करते हैं। इसलिये अपने कर्मोंके अनुसार आप सब लोग पुण्यलोकोंके निवासस्थान स्वर्गको जायेंगे। हे कौरवेंद्र। आप अपने इस हेशको देखकर दह शङ्का मत कीजिये।

१८३ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन जनमेजय महात्मा मार्कण्डेयके ऐसे वचन सुनकर पाण्डव लोग बोले, हमलोग ब्राह्मणोंके महात्मोंके सुनना चाहते हैं, आप कहिये। पाण्डवोंके ऐसे वचन सुन महातपस्वी महावीर्यवाने शास्त्रोंके जाननेवाले मारकण्डेय मुनि उत्तर लगे।

श्रीमारकण्डेय मुनि बोले, हे महाराज हेहयवंग चलानेवाले शत्रुनाशन उपमा

अज्ञान राजकुमार शिकार खेलने गये :
 उस वृक्ष और तिनकेसे भरे जङ्गलमें घूमते
 हुए राजाने एक कटीमें बैठे हुए काले हरिनका
 चमड़ा ओटे एक मुनिको देखा. राजाने उसे
 दारुन जानकर मार डाला पीछे उसके शीकसे
 राजा बहुत व्याकुल हो गये और अपने कर्षसे
 पड़त पड़ताने लगे। कमलनेत्र राज-कुमार
 वृक्षमें चलकर विख्यात हैहयवंशो राजाके
 पान नाकर पड़ंचे और उनसे सब वृत्तान्त कह
 मनाया। हे नात। उन्होंनेभी मूल फल
 गानेवाले मुनिका मरना सुन और कुमारको
 देव व्रत दाख किया। वे सब लोग यह कहने
 लगे कि यह मुनि कौन किसका पुत्र है। ऐसा
 कह उसके वंशवालोंकी चारों ओर दंढने लगे.
 दूरते दूरते शीघ्रही कश्यपगोत्र अरिष्टनेमी
 मुनिके गायममें पड़ंचे। उन सबने महाका व्रत-
 पारी अरिष्टनेमी मुनिकी प्रणाम किया और
 उनके पास बैठे; और मुनिनेभी उनकी पूजा
 करना चाहा परन्तु उन सबने महात्मासे कहा.
 कि हे महात्मा। हम लोग पूजा आपसे लेने
 योग्य नहीं हैं, क्योंकि हम लोगोंने एक ब्राह्म-
 णासार डाला है यह कर्म हमने पूर्ण
 करने की प्रार्थना किया है। उन सबके ऐसे वचन
 सुन मुनिने कहा कि आप लोगोंने कौनसे
 विधान से ऐसा सार डाला है आप समझें

आश्चर्य माना और कहने लगे यह क्या आश्चर्य-
 की बात है, यह मरा हुआ ब्राह्मण कैसे जी
 गया? क्या यह तपका बल है. कि जिससे यह
 फिर जी गया? हे ब्राह्मण! यदि यह कथा
 हमारे सुननेके योग्य ही तो कहिये. हम सुनना
 चाहते हैं। मुनि बोले. हे राजन्। हम लोगोके
 ऊपर मृत्युकी सायर्थ कभी नहीं चल सकती।
 हम इसका कारण संक्षेपमें तुमसे कहते हैं.
 इसने योगही कारण है. हम लोग सदा सत्यहीको
 अपने चित्तमें रखते हैं। झूठ कभी नहीं बोलते।
 हमलोग सदा अपनेही धर्मको करते हैं। इस
 लिये हमको मृत्युका भय नहीं है। जो ब्राह्म-
 णोके लिये सुखदायक कर्म हैं, हमलोग
 उसीको करते हैं. पापकी बात कभी नहीं
 करते हैं, इसीसे हमको मृत्युका भय नहीं
 है। हमलोग अन्न और जलसे अतिथियोंकी
 पूजा करते हैं, तथा अपने परिवारवर्गकी स्वयं
 भोजन कराकर वचे हुए अन्नको खाते हैं. इसीमें
 हमको मृत्युका भय नहीं है। हम लोग
 इन्द्रियोंकी वशमें करके जमा, दान शील
 और तोर्ध सेवन करते हैं, तथा पवित्र और
 तेजस्वी स्थानोंमें योगनिद्रा महापुरुषोंके संमगर्ष
 निवास करते हैं, इसीमें हमको मृत्युका भय
 नहीं है। हे महात्मा सुनिये। हमने यह
 सब विधान आपलोगोंसे सत्तपसे देखा. अब

इच्छासे अत्रि मुनि चले । हमने सुना है, कि मार्गमें चलते चलते उनको यह इच्छा हुई, कि बृद्धत धन लेना अच्छा नहीं है, क्योंकि धर्म-हीसे सब कार्य सिद्ध होते हैं, द्रव्यसे नहीं । महा तपस्वी अत्रिने ऐसा विचारकर बनको जानेकी इच्छा की । फिर अपनी स्त्री और एत्योंको बुलाकर कहा, कि तुम लोग बनको चलो, वहां चलने से सब उपद्रव रहित और बृद्धत सुख 'भोज' मिलेगा । यह सुन उनकी स्त्री धर्मके सहित बोली, कि तुम महात्मा वैश्यके पास जाकर बृद्धतसा धन मांगो, वह राजर्षि यज्ञ कर रहे हैं, वे तुमको बृद्धत धन देंगे, धन लाकर नौकर और एत्योंको बांट कर फिर जहांको इच्छा हो तहां चले जाना, धर्म जाननेवाले मनु प्रभृति पुरुषोंने इसीको धर्म कहा है । अत्रि बोले, हे महाभागे । सुभसे महात्मा गौतमने कहा है, कि राजर्षि वैश्य धर्म और सत्यव्रतमें स्थिर हैं । परन्तु वहांके ब्राह्मण दूसरे ब्राह्मणका द्वेष करते हैं । मैंने जबसे गौतम मुनिके वचन सुने हैं, तभीसे वहां जानेकी इच्छा त्याग दी है, मैं जब वहां जाऊंगा, तो वे सब कल्याण अर्थ और धर्मसे भरी हुई मेरी वाणीके उत्तरमें निरर्थक वाणी कहेंगे । हे महाप्राज्ञ । यदि तुमको यही प्रिय है, तो मैं जाऊंगा । राजा वैश्य सुभको बृद्धत दान और गौ देंगे । महा तपस्वी अत्रि अपनी स्त्रीसे ऐसा कह कर राजा वैश्यकी यज्ञकी चले, वहां गया जाकर राजा वैश्यकी स्तुति करने लगे । अपने कुशल भरे वचनोंसे राजाकी पूजा करते अत्रि मुनि बोले, हे राजन् । तुम धन्य हो, तुम जगतके स्वामी हो । तुम आदि राजा हो, मेनि लोग तुम्हारी स्तुति करते हैं, तुम्हारे सिवाय और कोई मनुष्य धर्मको नहीं जानता है । उनके वचन सुनकर महा तपस्वी गौतम क्रोध करके बोले, हे अत्रि । तुम ऐसे वचन कभी नहीं कहना, हमारे आदिराजा इन्द्र हैं, वेही

प्रजापति हैं और वेही आदि राजा हैं । जान पड़ता है, कि तुमको बुद्धि नहीं है, इसीसे तुम ऐसा कहते हो । हे युधिष्ठिर । गौतम ऋषिके वचन सुन अत्रि कहने लगे, कि हमने जो कहा सो सत्य कहा, जैसे इन्द्र राजा हैं, तैसे येभी हैं, तुमही भ्रममें पड़कर भूलते हो । हम जानते हैं कि तुमको ज्ञान और बुद्धि कुछ नहीं है । गौतम बोले, हे अत्रि । हम सब जानते हैं, तुमही भूलते हो, तुम इस सभामें बैठकर राजाकी प्रसन्न करनेकी स्तुति करते हो, तुम परम धर्मको नहीं जानते हो, और प्रयोजन को नहीं समझते हो । तुम मूर्ख और बालक हो, तुमको कोई किस कारणसे बूढ़ा कह सकता है ?

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, जिस समय सब मुनियोंके आगे ये दोनों इस प्रकार विवाद कर रहे थे, उसी समय यज्ञमें बैठे हुए सब मुनिले कहने लगे, कि ये लोग किस लिये विवाद कर रहे हैं ? इन दोनोंको किसने सभामें आ दिया ? ये यज्ञके किस अधिकारमें नियुक्त हैं ? ये लोग जंचे शब्दसे क्यों बोल रहे हैं ? तब सब धर्मके जाननेवाले काश्यप कहने लगे कि तुम दोनों जिस प्रयोजनके लिये विवाद कर हो, सो हमसे कहो । तब सभामें बैठे हुए स मुनियोंसे गौतम बोले, कि हे ब्राह्मणी । हम दोनों तुमसे प्रश्न करते हैं, तुम सुनो । अत्रि कहा है, कि राजा वैश्य ब्रह्मा है, सुभको इसमें बृद्ध सन्देह है । उनके वचन सुन महात्मा मुनिले शीघ्रही वहांसे चले और धर्मके जाननेवाले सनत्कुमार मुनिके पास पड़चे और अपने सेव कथा कह सुनाई । महात्मा सनत्कुमारने उनके वचन सुन धर्म और अर्थके सहित उत्तर दिया । सनत्कुमार बोले, जैसे अग्नि और वायु मिलकर वनको भस्म कर देते हैं, तैसे ब्राह्मण और क्षत्री मिलकर शत्रुओंका नाश करते हैं । राजाहीकी धर्म और प्रजापति

हैं, राजाहीकी इन्द्र गुरु, धाता और बृहस्पति
वर्तते हैं - जो चक्री जगतका स्वामी है, उसको
प्रवर्ति और सञ्चाट कहते हैं। जो इन सब
: में राजाकी स्तुति करता है उसकी कीर्ति
विना नहीं करता है। पछले समयमें राजा-
योग धर्मके उत्पत्ति-स्थान, युद्ध जीतनेवाले
मन्त्र, शीघ्र स्वर्ग देनेवाले, शीघ्र विजय करने
वाले और विशुके नामसे प्रसिद्ध थे। राजा
उन उत्पत्ति स्थान पड़ली बातोंको जाननेवाले
थे और धर्मके प्रवर्तक राजाकी आज्ञासे डरे
थे, मन्त्रियोंने धर्मका रक्षक बनाया है, जैसे
अपने तेजसे नरककारको नाश करता है,
इसी राजाभी अपने तेजसे अधर्मका नाश
करता है। शास्त्र देखनेसे भी ऐसाही जान
ता है, कि राजा सबसे प्रधान है और राजा
का शत्रु लहनेसेभी राजाही प्रधान जान
ता है। मार्कण्डेय मुनि बोले, हे युधिष्ठिर।
रामचन्द्रजी सुनकर राजा वैष्णव वज्रत प्रसन्न
हुए और उन्होंने अटिसे कहा, कि हे विप्र-
वर्यन मुझे सर्वदेवसंक्षित और मनष्यों !

तुमको वज्रत धन
तुमको उत्तम वस्त्र और आभू-
षण दिये एक सहस्र श्यामा दासी
द्वारा मेरी सुता चार दमभार
के मुन। हम सत्य कहते हैं,
तुमको सर्वज्ञ कहते हैं। महा-

तार्क्ष्यने सरस्वतीसे प्रश्न किया था। उस प्रश्नका
सरस्वतीने जो उत्तर दिया, सो हम आपसे
कहते हैं।

तार्क्ष्य बोले, हे सर्वाङ्गसुन्दरी। ऐसा कौन
कल्याणदायक कर्म है; जिसकी करनेसे मनुष्य
अपने धर्मसे नष्ट न हो, तुम हमारे इस
प्रश्नका उत्तर दो, जिससे हमारा धर्म नष्ट
न हो। हे सुभगे। कौनसे समयमें और
किस प्रकारसे अग्नि-होत्र करना चाहिये, कौन
कर्म करनेसे मेरा धर्म नष्ट न हो, तुम हमसे
उस कर्मको कहो जिसकी करनेसे हम रजो-
गुणरहित होकर सुखसे लोकोमें घूम सकें।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, जब तार्क्ष्य मुनिने
प्रेम सहित सरस्वतीसे प्रश्न किया। तब उत्तम-
बुद्धियुक्त धार्मिक तार्क्ष्य मुनिसे सरस्वती कहने
लगीं। सरस्वती बोलीं, जो मनुष्य पवित्र और
सावधान होकर वेद पढ़ता है तथा ब्रह्मका
जानता है, वही दिव्य स्वर्गको जाता है
और देवताओंके सहित आनन्द करता है। उस
स्वर्गलोकमें रमणीय सुन्दर बड़ी बड़ी पवित्र
जलसे भरी झर्रें पीखर हैं, जिनकी देवताएँ
सब शोक नष्ट हो जाते हैं, जिनमें दासी कीचड़
नहीं है, जहाँ सोनेके वन अनेक कमल विराज-
मान हैं, जिन पीखरोंमें उत्तम मत्स्य धार
कर रही हैं, उन्ही पीखरोंके दण्डपर अनेक
लोग उत्तम सुगन्ध और अनेक आभूषण पहना

इच्छासे अत्रि मुनि चले । हमने सुना है, कि मार्गमें चलते चलते उनको यह इच्छा हुई, कि बृद्धत धन लेना अच्छा नहीं है, क्योंकि धर्म-हीसे सब कार्य सिद्ध होते हैं; द्रव्यसे नहीं । महा तेजस्वी अत्रिने ऐसा विचारकर वनको जानेकी इच्छा की । फिर अपनी स्त्री और पत्नीको बुलाकर कहा, कि तुम लोग वनको चलो, वहां चलने से सब उपद्रव रहित और बृद्धत सुख 'भोक्ष' मिलेगा । यह सुन उनकी स्त्री धर्मके सहित बोली, कि तुम महात्मा वैश्यके पास जाकर बृद्धतसा धन मांगो, वह राजर्षि यज्ञ कर रहे हैं, वे तुमको बृद्धत धन देंगे, धन लाकर नौकर और पत्नीको बांट कर फिर जहांको इच्छा हो तहां चले जाना, धर्म जाननेवाले मनु प्रभृति पुरुषोंने इसीको धर्म कहा है । अत्रि बोले, हे महाभागे । मुझसे महात्मा गौतमने कहा है, कि राजर्षि वैश्य धर्म और सत्यव्रतमें स्थिर हैं । परन्तु वहांके ब्राह्मण दूसरे ब्राह्मणका द्वेष करते हैं । मैंने जबसे गौतम मुनिके वचन सुने हैं, तभीसे वहां जानेकी इच्छा त्याग दी है, मैं जब वहां जाऊंगा, तो वे सब कल्याण अर्थ और धर्मसे भरी हुई मेरी वाणीके उत्तरमें निरर्थक वाणी कहेंगे । हे महाप्राज्ञ । यदि तुमको यही प्रिय है, तो मैं जाऊंगा । राजा वैश्य मुझको बृद्धत दान और गौ देंगे । महा तपस्वी अत्रि अपनी स्त्रीसे ऐसा कह कर राजा वैश्यकी यज्ञको चले, वहां गया जाकर राजा वैश्यकी स्तुति करने लगे । अपने कुशल भरे वचनोंसे राजाकी पूजा करते अत्रि मुनि बोले, हे राजन् । तुम धन्य हो, तुम जगतके स्वामी हो । तुम आदि राजा हो, मेनि लोग तुम्हारी स्तुति करते हैं, तुम्हारे सिवाय और कोई मनुष्य धर्मको नहीं जानता है । उनके वचन सुनकर महा तपस्वी गौतम क्रोध करके बोले, हे अत्रि । तुम ऐसे वचन कभी नहीं कहना, हमारे आदिराजा इन्द्र हैं, वेही

प्रजापति हैं और वेही आदि राजा हैं । जान पड़ता है, कि तुमको बुद्धि नहीं है, इसीसे तुम ऐसा कहते हो । हे युधिष्ठिर । गौतम ऋषिके वचन सुन अत्रि कहने लगे, कि हमने जो कहा सो सत्य कहा, जैसे इन्द्र राजा है, तैसे ये भी हैं, तुमही भ्रममें पड़कर भूलते हो । हम जानते हैं, कि तुमको ज्ञान और बुद्धि कुछ नहीं है । गौतम बोले, हे अत्रि । हम सब जानते हैं, तुमही भूलते हो, तुम इस सभामें बैठकर राजाकी प्रसन्न करनेको स्तुति करते हो, तु परम धर्मको नहीं जानते हो, और प्रयोजन को नहीं समझते हो । तुम मूर्ख और बाल हो, तुमको कोई किस कारणसे बूढ़ा क सकता है ?

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, जिस समय सब मुनियोंके आगे ये दोनों इस प्रकार विवाद कर रहे थे, उसी समय यज्ञमें बैठे हुए सब मुनिली कहने लगे, कि ये लोग किस लिये विवाद कर रहे हैं ? इन दोनोंको किसने सभामें आ दिया ? ये यज्ञके किस अधिकारमें नियुक्त हैं ? ये लोग जंचे शब्दसे क्यों बोल रहे हैं ? तब सब धर्मके जाननेवाले काश्यप कहने लगे कि तुम दोनों जिस प्रयोजनके लिये विवाद कर रहे हो, सो हमसे कहो । तब सभामें बैठे हुए सब मुनियोंसे गौतम बोले, कि हे ब्राह्मण । हम दोनों तुमसे प्रश्न करते हैं, तुम सुनो । अत्रि कहते हैं, कि राजा वैश्य ब्रह्मा हैं, मुझको इसमें वृद्धत सन्देह है । उनके वचन सुन महात्मा मुनिली शीघ्रही वहांसे चले और धर्मके जाननेवाले सनत्कुमार मुनिके पास पहुँचे और अपनी सेव कथा कह सुनाई । महात्मा सनत्कुमारने उनके वचन सुन धर्म और अर्थके सहित उत्तर दिया । सनत्कुमार बोले, जैसे अग्नि और वायु मिलकर वनको भस्म कर देते हैं, तैसेही ब्राह्मण और क्षत्री मिलकर शत्रुओंका नाश करते हैं । राजाहीको धर्म और प्रजापति कहते

राजाहीको इन्द्र शक्र, धाता और बृहस्पति मानते हैं, जो जगती जगतका स्वामी है, उसको उपासित और मन्त्राष्ट कहते हैं। जो इन सब कामोंमें राजाकी स्तुति करता है उसकी कोई हानि नहीं करता है। पहिले समयमें राजा-धर्मके उत्पत्ति-स्थान, युद्ध जीतनेवाले इन्द्र, शीघ्र स्वर्ग देनेवाले, शीघ्र विजय करने वाले और विष्णुके नामसे प्रसिद्ध थे। राजा धर्मके उत्पत्ति-स्थान पहली बातोंकी जाननेवाले और धर्मके प्रवर्तक राजाकी आज्ञासे दूरे न रहनेवाले धर्मका रक्षक बनाया है, जैसे अपने तेजसे अन्धकारकी नाश करता है, वैसे राजाभी अपने तेजसे अधर्मका नाश करता है। शास्त्र देखनेने भी ऐसाही जानता है कि राजा सबसे प्रधान है और राजा श्रेष्ठ कहनेसेभी राजाही प्रधान जानता है। मार्कण्डेय मुनि बोले हे यधिष्ठिर। निम्नलिखित सुनकर राजा वैष्णव वृद्धत प्रसन्न हुए और उत्तरीन अत्रिसे कहा, कि हे विप्र-महाराज मुझे सर्वदेवसंस्कृत और मनुष्यों।

राजा चर्चलिये हम तुमकी वृद्धत धन और तुमकी उत्तम वस्त्र और आभूषण लिये एक सहस्र श्यामा दासी और चार सौनकी मुद्रा चार दमभार के भुन। हम सत्य कहते हैं, जो राजा सर्वज्ञ कहते हैं। महा-भारतमें इस सब धनकी न्याय पूर्ण

तार्च्यने सरस्वतीसे प्रश्न किया था। उस प्रश्नका सरस्वतीने जो उत्तर दिया, सो हम आपसे कहते हैं।

तार्च्य बोले, हे सर्वाङ्गसुन्दरी। ऐसा कौन कल्याणदायक कर्म है; जिसकी कारनेने मनुष्य अपने धर्मसे नष्ट न हो, तुम हमारे इस प्रश्नका उत्तर दो, जिससे हमारा धर्म नष्ट न हो। हे सुभगे। कौनसे समयमें और किस प्रकारसे अग्नि-होत्र करना चाहिये, कौन कर्म करनेसे मेरा धर्म नष्ट न हो, तुम हमसे उस कर्मको कहो जिसकी करनेसे हम रजो-गुणरहित होकर सुखमें लोकोमें प्रसक्तों।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, जब तार्च्य मुनिने प्रेम सहित सरस्वतीसे प्रश्न किया। तब उत्तम-बुद्धियुक्त धार्मिक तार्च्य मुनिसे सरस्वती कहने लगीं। सरस्वती बोली, जो मनुष्य पवित्र और सावधान होकर वेद पढ़ता है तथा ब्रह्मको जानता है, वही दिव्य स्वर्गको जानता है और देवतोंके सहित आनन्द करता है। उस स्वर्गलोकमें रमणीय सुन्दर नड़ी बड़ी पवित्र जलसे भरी हुई पोखर हैं, जिनकी देखतेही सब शोक नष्ट हो जाते हैं, जिनमें कभी कीचड़ नहीं है, जहां सोनेके वने अनेक कमल विराजमान हैं, जिन पोखरोंमें उत्तम मत्स्य विराज कर रहे हैं, उन्ही पोखरोंके नटवर पर्यटन लोग उत्तम सुगन्ध और अन्य आनन्ददायक पदार्थ किये, सोनेके समान राजाकी आज्ञा से

इच्छासे अत्रि मुनि चले । हमने सुना है, कि मार्गमें चलते चलते उनको यह इच्छा हुई, कि बृद्धत धन लेना अच्छा नहीं है, क्योंकि धर्म-हीसे सब कार्य सिद्ध होते हैं; द्रव्यसे नहीं । महा तेजस्वी अत्रिने ऐसा विचारकर वनको जानेकी इच्छा की । फिर अपनी स्त्री और पत्नीको बुलाकर कहा, कि तुम लोग वनको चलो, वहां चलने से सब उपद्रव रहित और बृद्धत सुख 'मोक्ष' मिलेगा । यह सुन उनकी स्त्री धर्मके सहित बोली, कि तुम महात्मा वैश्यके पास जाकर बृद्धतसा धन मांगो, वह राजर्षि यत्न कर रहे हैं, वे तुमको बृद्धत धन देंगे, धन लाकर नौकर और पत्नीको बांट कर फिर जहांको इच्छा हो तहां चले जाना, धर्म जाननेवाले मनु प्रभृति पुरुषोंने इसीको धर्म कहा है । अत्रि बोले, हे महाभागे । मुझसे महात्मा गौतमने कहा है, कि राजर्षि वैश्य धर्म और सत्यव्रतमें स्थिर हैं । परन्तु वहांके ब्राह्मण दूसरे ब्राह्मणका द्वेष करते हैं । मैंने जबसे गौतम मुनिके वचन सुने हैं, तभीसे वहां जानेकी इच्छा त्याग दी है, मैं जब वहां जाऊंगा, तो वे सब कल्याण अर्थ और धर्मसे भरी हुई मेरी वाणीके उत्तरमें निरर्थक वाणी कहेंगे । हे महाप्राज्ञ । यदि तुमको यही प्रिय है, तो मैं जाऊंगा । राजा वैश्य मुझको बृद्धत दान और गौ देंगे । महा तपस्वी अत्रि अपनी स्त्रीसे ऐसा कह कर राजा वैश्यकी यज्ञको चले, वहां गया जाकर राजा वैश्यकी स्तुति करने लगे । अपने कुशल भरे वचनोंसे राजाकी पूजा करते अत्रि मुनि बोले, हे राजन् । तुम धन्य हो, तुम जगतके स्वामी हो । तुम आदि राजा हो, मेनि लोग तुम्हारी स्तुति करते हैं, तुम्हारे सिवाय और कोई मनुष्य धर्मको नहीं जानता है । उनके वचन सुनकर महा तपस्वी गौतम क्रोध करके बोले हे अत्रि । तुम ऐसे वचन कभी नहीं कहना, हमारे आदिराजा इन्द्र हैं, वेही

प्रजापति हैं और वेही आदि राजा हैं । जान पड़ता है, कि तुमको बुद्धि नहीं है, इसीसे तुम ऐसा कहते हो । हे युधिष्ठिर । गौतम ऋषिके वचन सुन अत्रि कहने लगे, कि हमने जो कहा सो सत्य कहा, जैसे इन्द्र राजा है, तैसे येभी हैं, तुमही भ्रममें पड़कर भूलते हो । हम जानते हैं कि तुमको ज्ञान और बुद्धि कुछ नहीं है । गौतम बोले, हे अत्रि । हम सब जानते हैं, तुमही भूलते हो, तुम इस सभामें बैठकर राजाकी प्रसन्न करनेको स्तुति करते हो, तुम परम धर्मको नहीं जानते हो, और प्रयोजन को नहीं समझते हो । तुम मूर्ख और बालक हो, तुमको कोई किस कारणसे बूढ़ा कह सकता है ?

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, जिस समय सब मुनियोंके आगे ये दोनों इस प्रकार विवाद कर रहे थे, उसी समय यज्ञमें बैठे हुए सब मुनिलोग कहने लगे, कि ये लोग किस लिये विवाद कर रहे हैं ? इन दोनोंको किसने सभामें आने दिया ? ये यज्ञके किस अधिकारमें नियुक्त हैं ? ये लोग जंचे शब्दसे क्यों बोल रहे हैं ? तब सर्व धर्मके जाननेवाले काश्यप कहने लगे कि तुम दोनों जिस प्रयोजनके लिये विवाद करते हो, सो हमसे कहो । तब सभामें बैठे हुए सब मुनियोंसे गौतम बोले, कि हे ब्राह्मण । हम दोनों तुमसे प्रश्न करते हैं, तुम सुनो । अत्रि कहते हैं, कि राजा वैश्य ब्रह्मा है, मुझको इसमें बृद्धत सन्देह है । उनके वचन सुन महात्मा मुनिलोग शीघ्रही वहांसे चले और धर्मके जाननेवाले सनत्कुमार मुनिके पास पड़चे और अपनी सेव कथा कह सुनाई । महात्मा सनत्कुमारने उनके वचन सुन धर्म और अर्थके सहित उत्तर दिया । सनत्कुमार बोले, जैसे अग्नि और वायु मिलकर वनको भस्म कर देते हैं, तैसे ही ब्राह्मण और क्षत्री मिलकर शत्रुओंका नाश करते हैं । राजाहीको धर्म और प्रजापति कहते

, राजाहीकी इन्द्र शक्र, धाता और बृहस्पति
 ति है, जो चली जगतका स्वामी है, उसकी
 प्रति और सम्राट कहते हैं। जो इन सब
 त्रैलोक्यसे राजाकी स्तुति करता है उसकी कोई
 क्षति नहीं करता है। पहले समयमें राजा-
 गधर्मके उत्पत्ति-स्थान, युद्ध जीतनेवाले
 राज, शीघ्र स्वर्ग देनेवाले, शीघ्र विजय करने
 वाले और विष्णुके नामसे प्रसिद्ध थे। राजा
 उनके उत्पत्ति स्थान पहली बातोंको जाननेवाले
 प्र और धर्मके प्रवर्तक राजाकी आश्रयसे उरे
 प, मुनियोंदे धर्मका रक्षक बनाया है; जैसे
 सूर्य अपने तेजसे अन्धकारको नाश करता है,
 वैसी राजाभी अपने तेजसे अधर्मका नाश
 करता है। शास्त्र देखनेसे भी ऐसाही जान
 जाता है, कि राजा सबसे प्रधान है और राजा
 का शब्द कहनेसेभी राजाही प्रधान जान
 जाता है। मार्कण्डेय मुनि बोले, हे युधिष्ठिर।
 तब निम्नपक्ष सुनकर राजा वैष्णव वज्रत प्रसन्न
 हुए। अनन्तर उन्होंने अतिसे कहा, कि हे विप्र-
 देव! तमने मुझे सर्ववैशक्ति और मनुष्यों।
 के लिये कहा, इसलिये हम तुमको वज्रत धन
 देते हैं। तब तुमको उत्तम वस्त्र और आभू-
 षण धारण किये एक सहस्र श्यामा दासी
 दिये। दस अड़ार सोनेकी मुद्रा और दसभार
 सोनेकी, हे मुने। हम सत्य कहते हैं,
 तब तुमको सर्वज्ञ कहते हैं। महा-
 तपस्वी उस सन धनकी न्याय पूर्वक
 गये। फिर महातपस्वी तेजस्वी अति
 तपस्वी चले गये। बड़ा जाकर महात्मा
 तपन परपर जाकर वह सब धन पुत्रों-
 के लिये देया, फिर तप करनेकी इच्छासे
 चले गये।

॥ २५ ॥ अथाय नमाम् ।

॥ २५ ॥ अथाय नमाम् ।
 ॥ २५ ॥ अथाय नमाम् ।

तार्क्ष्यने सरस्वतीसे प्रश्न किया था। उस प्रश्नका
 सरस्वतीने जो उत्तर दिया, सो हम आपसे
 कहते हैं।

तार्क्ष्य बोले, हे सर्वाङ्गसुन्दरी। ऐसा कौन
 कल्याणदायक कर्म है; जिसकी करनेसे मनुष्य
 अपने धर्मसे नष्ट न हो, तुम हमारे इस
 प्रश्नका उत्तर दो, जिससे हमारा धर्म नष्ट
 न हो। हे सुभगे। कौनसे समयमें और
 किस प्रकारसे अग्नि-होत करना चाहिये, कौन
 कर्म करनेसे मेरा धर्म नष्ट न हो, तुम हमसे
 उस कर्मको कहो जिसकी करनेसे हम रजो-
 गुणरहित होकर सुखसे लोकीमें भ्रम सकें।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, जब तार्क्ष्य मुनिने
 प्रेम सहित सरस्वतीसे प्रश्न किया। तब उत्तम-
 बुद्धियुक्त धार्मिक तार्क्ष्य मुनिसे सरस्वती कहने
 लगीं। सरस्वती बोलीं, जो मनुष्य पवित्र और
 सावधान होकर वेद पढता है तथा ब्रह्मकी
 जानता है, वही दिव्य स्वर्गको जाता है
 और देवतोंके सहित आनन्द करता है। उस
 स्वर्गलोकमें रमणीय सुन्दर बड़ी बड़ी पवित्र
 जलसे भरी झई पोखर है, जिनको देखतेही
 सब शोक नष्ट हो जाते हैं, जिसमें कुछभी कीचड़
 नहीं है, जहां सोनेके बने अनेक कमल विराज-
 मान हैं, जिन पोखरोंमें उत्तम मत्स्य विहार
 कर रहे हैं, उन्ही पोखरोंके तटपर धर्मात्मा-
 लोग उत्तम सुगन्ध और अनेक आभूषण धारण
 किये, सोनेके समान रङ्गवाली अनेक अपमरा-
 ओके सङ्ग विहार करते हैं। जो पुरुष गादान
 करते हैं, सो उत्तम लोकको जाते हैं। गाड़-
 दान करनेसे सूर्यलोक, वस्तुदानसे चन्द्रलोक
 और सोना देनेसे देवलोक प्राप्त होता है। जो
 पुरुष सुन्दर रङ्गवाले बड़े और दृढके मण्डित
 उत्तम गो दान देता है, उस गौके चितने सीम
 रहते हैं, उन्ने वर्ष देवलोकमें रहता है।
 जो पुरुष हलके चलने योग्य बड़ग वज्रवाण
 धरमें जुड़ने योग्य नदीन वैद्यका दान करता है,

उसे दस गौ दानका फल मिलता है। जो पुरुष कांसेकी दोहनी द्रव्य और वस्त्रके सहित कपिला गौ दान करता है, उसकी वही गौ उन्ही गुणोंके सहित कामना सिद्ध करनेवाली होकर मिलती है। जितने गौके रोवें हैं, गौ दान देनेवाले पुरुषकी उतनेही फल मिलते हैं। जो पुरुष गौदान करता है, उसके पत्र पौल और सब कलका उद्धार हो जाता है। जो दक्षिणा कांसेकी दोहनी धन और वस्त्रके सहित सीनेके बनवा कर तिल गौदान करता है उसकी सुखसे वस लोक मिलता है। हे राजन् । जो पुरुष गौदान करता है, उसकी वह गौ दानवोंसे घिरे हुए घोर अन्धकारसे भरे नरक रूपी महा तस्दृसे नौका वग कर उद्धार करती है। जो पुरुष ब्राह्मणको कन्या दान करता है वा पृथ्वी दान करता है अथवा और भी अनेक प्रकारके दान करता है, उसे सुखसे इन्द्रलोक प्राप्त होता है। जो शीलवान पुरुष नियमपूर्वक सात वर्ष अग्नि-होत्र करता है, वह सात अगले और सात पिदले पुरुषोंका उद्धार करता है। ताचर्य्य सुनि बोले, हे सरस्वती । अग्नि-होत्रका सनातन नियम क्या है ? तुम हमसे कहो, हम 'दस विद्याकी तुमसे पढकर प्राचीन अग्निहोत्र व्रतको धारण करेंगे। सरस्वती बोलीं, अपवित्र अवेदचारी और मूर्खको अग्निहोत्र न करना चाहिये, क्योंकि देव पवित्रताको चाहते हैं, वे अपवित्र और अशुद्ध-वालेसे दो ऊई आहुतिकी नहीं ग्रहण करते। अग्निहोत्र करानेवालेकी उचित है कि सर्वसे अग्निहोत्र कर्म न करावे, क्योंकि मूर्ख पूरा कर्म नहीं कर सकता है। हे कश्यपमनि । जिय ब्राह्मणका कुल और शील कुछ नहीं जाना जाता है, उसे भी अप्योदिय कहते हैं, इस लिये उससे यज्ञ न करावे, जो दर्परहित लोग अज्ञा और रात्र्यवतके सहित अग्निहोत्र कर्म करते हैं, तदा उनीसे वचे हुए

अन्नको खाते हैं, उनको उत्तम सुगन्धयुक्त गोलोक और देवलोक प्राप्त होता है।

ताचर्य्य बोले हे दिव्यरूपणी । हम अपनी बुद्धिकी स्थिर करके तुमसे पूछते हैं कि तुम कौन हो ? तुम हमको बुद्धिमें प्रविष्ट ब्रह्म रूपिणी और देवी जान पड़ती हो। सरस्वती बोलीं, हे कश्यप ! मैं ब्राह्मणोंके अग्निहोत्र आदि सत्कर्मसे प्रकट परापर विद्यारूपा सरस्वती हूं, तुम्हारे सन्देह नाश करनेकी आई हूं मैं यहां जो तुमसे कहती हूं सो सब सत्य है।

ताचर्य्य बोले, हमने तुम्हारे समान कोई तेजस्वी स्त्री नहीं देखी। तुम साक्षात् लक्ष्मी समान हो। हे सुभगे। तुम्हारा रूप और शोभा दिव्य है और तुमको देवी बुद्धि है।

सरस्वती बोली, हे मनुष्यश्रेष्ठ विद्वान विप्र । यज्ञमें जिन सब काष्ठमय लौहमय और प्रार्थिव वस्तुओंका उपयोग होता है और ऋत्विक् लोग जो कुछ अष्टवस्तु उत्पादित करते हैं, मैं उसीसे सम्बद्धित अप्यायित तदा रूपवती होती हूं। तुमने जो सुभी प्रज्ञावती तथा मेरा दिव्यरूप दर्शन किया, उससे बोध होता है, कि तुम्हें अवश्य सिद्धि प्राप्त हुई है।

ताचर्य्य बोले, धीरे सुनि लोग रुन्धन विश्वासी होकर जिसे परम श्रेय विवेचना कर इन्द्रियनिग्रहादि करके जिसमें प्रवेश करते हैं, आप उस शोकातीत परमश्रेष्ठ पदार्थ सोच स्वरूपका मेरे निकट दर्शन करिये। ज्ञानी लोग जिस पुरातन परम पदार्थको श्रेष्ठ जानते हैं, मैं उसे नहीं जानता।

सरस्वती बोलीं, स्वाध्यायशील वेद जगनेवाले लोग तपोधन सज्जय और व्रत पुण्ययोगमै जिसे प्राप्त हाकर शोक रहित और निमुक्त होते हैं, वही परसे भी परतर प्रसिद्ध पुरातन परब्रह्म हैं। उस परब्रह्ममें भागदान अनन्त शाखायुक्त, शब्दादि विषयरूप पदार्थ गन्धमय अपारिच्छिन्न ब्रह्माण्डरूप केन्द्रित

गकाशिन है। उसके अविद्यारूप मूलसे भोग-
वासनारूपी निरन्तर प्रवाहवती नदिया उत्पन्न
होती हैं। वे आपातरमणीय पुण्यगन्धा
नदियां समुद्रको भाति मधुर और जलकी तरह
हृदयिक भोगज सुखाको प्रसवण करती हैं।
भून जोकी तरह अकुर-उत्पादन-शक्तिहीन,
पिष्टकी भाति अन्नक द्विद्रयुक्त, मासवत्
हिंसालभ्य, शाककी भाति अल्पसार, पायसकी-
तरह सुखराचक तथा पाकमें गुस्तर और
कीचड़की भाति, चित्तकी मर्लन करनेवाली जो
वाल्मीकी तरह परस्पर असींशष्ट पुत्र वित्तादि
वासनारूपी महानदिया हैं, वे विविध विषय
भागस्यान स्वरूप उक्त वित्त, वृक्षकी शाखा
शाखामें प्रवाहित हुआ करती हैं। इन्द्र
प्राण और मस्तकण जिसकी प्राप्ति के लिये
यज्ञयजन करते हैं, वह परब्रह्मही मेरा
प्रायस्थान है, वे विद्यारूपी सरस्वती हैं।

ब्राह्मण माहात्म्य प्रकरण और

१८६ अध्याय समाप्त ।

ववस्वतमनु और मत्स्यावतार उपाख्यान ।

अश्वमेधाधान मुनि बाले, हे राजन् !
भगवन् ! तव महाराज युधिष्ठिरन माकण्डेय
आपसे कहते हैं, कि आप हमसे ववस्वतमनुको
धारते कहिये, श्रीमान्ण्डेय मुनि बाले, हे
राजन् ! हे नरशार्दूल ! स्थूयक्ष पुत्र महान-
मान महाप्रतापवान् और प्रजापातक समान
मनुज हैं जो बार वीतल बल लक्ष्मी और
विष्णु के चार अस्त्रासनी आधक हो गये।
महाप्रताप ! उन्होंने वदारकाश्रमसे जाकर
मनुजों को एक चरणसे छेड़ कर बार तप
भोग, उत्तम दश सत्सत्त वष तक अपना
भोग और गार नवाजा स्थिर करके धार तप
भोग, उत्तम दश सत्सत्त वष और जटाधारा
भोग और उत्तम दश सत्सत्त वष और जटाधारा
भोग और उत्तम दश सत्सत्त वष और जटाधारा
भोग और उत्तम दश सत्सत्त वष और जटाधारा

बहुत छर लगता है। हे सुव्रत ! तुम उन
सब मत्स्योंसे हमारी रक्षा करो, हमको उन
मत्स्योंसे जीना बहुत दुर्लभ है और हमारी यह
सदाकी वृत्ति है, कि एक मत्स्य दूसरेको खा
जाता है, इस लिये तुम हमको इस घोर दुःखसे
छड़ाओ, जैसी इस उपकारका बदला तुमको
दूंगा। मनु उसके वचन सुन कृपासे-पूर्ण हो
गये और उसको अपने हाथसे पकड़ लिया, तब
मनुने उसको एक चन्द्रमाके समान निर्मल
पानीसे धरे हुए पात्रमें छोड़ दिया। हे राजन् !
वह मत्स्य मनुजों से सत्कृत होकर उसी पात्रमें
वढ़ने लगा। मनुभी उसको अपने पुत्रके समान
पालने लगे। कुछकालमें वह मत्स्य बहुत बड़ा
हो गया और उस वरतनमें उसका शरीर न
समाया। तब वह बोला, कि हे भगवन् !
आप मेरे लिये कोई दूसरा स्थान बताइये।
भगवान् मनुने उस मत्स्यको उस वरतनसे उठा-
कर एक बड़ी भारी-बावड़ीमें डाल दिया। हे
शत्रु नाशन ! बहुत वर्ष बीतनेसे वह मत्स्य बहाभी
बहुत बढ़ गया। हे कमलनन्द ! वह बावड़ी
आठ कोस लम्बी चार कोस चौड़ी थी, परन्तु
वह मत्स्य इतना बढ़ा कि उसमें भी चल फिर न
सका। हे प्रजानाथ ! उसने एक दिन मनुसे
फिर कहा, कि हे पिता ! हे तात ! हे भगवन् !
तब तुम सुसज्जित मनुष्यकी प्यारी स्त्री गङ्गामें डाल
दो अबवा और आपका जैसी इच्छा हो। वह
कीजिये। हे पापराहत ! मैं छल और कपटकी
छेड़ कर आपकी पास रहना चाहता हूँ,
क्योंकि मैं आपका कर्म कारणसे इतना बड़ा हुआ
हूँ। भगवान् इन्द्रियजित् मनु मत्स्यके वचन सुन
मत्स्यको गङ्गामें डाल दिया। हे शत्रु नाशन !
वह गङ्गामें बहने लगा तब उसने एक दिन
फिर मनुसे कहा। हे नाथ ! हे भगवन् ! मैं
गङ्गामें बह कर गङ्गा नदीना हूँ इस लिये
आप प्रताप रात्रि मेमका मनुष्यमें पाड़
दाइये। तब मनुने उसका गङ्गामें उठाकर

समुद्रमें छोड़ दिया । हे कुन्तीनन्दन ! जिस समय मनु उस मत्स्यकी लेकर समुद्रकी चले । तब वह सुगन्ध भरे वायुसे बहृत प्रसन्न हुआ, जब मनुने उसे समुद्रमें डाला, तब वह हंस कर बोला, कि हे भगवन् । आपने हमारी समयके अनुसार रक्षा की है इस लिये आपकी जो काम करने हैं, सो हम कहते हैं सुनिये । हे भगवन् । हे महाभाग । थोड़ेही दिनमें इस सब चर और अचर जगतकी प्रलय होगी, यह समय सब लोगोंके नष्ट होनेका आया है, इस लिये हम आपकी हितकी बात सुनाते हैं । यह समय स्थावर और जड़मके नाश करनेका आया है, इसलिये आप एक नाव बनाइये और उसमें दृढ़ रखी बान्धिये । हे महामुने ! जब प्रलयका समय आवेगा, तब आप सप्तऋषियोंके सहित उसी नावमें चढ़ियेगा और उसी नावमें सब जगतके वस्तुओंके बीजोंकी रक्षा पूर्वक क्रमसे रख लीजियेगा ! हे मुनेजनप्रिय । हे तापस । आप उस नावमें बैठ कर हमारा मार्ग देखना । तब हम आवेंगे आप हमारे सिर पर सींग देख कर हमको पहचान लेना । हे मुने ! हमने आपसे सब कह दिया । अब हम जाते हैं, आप बिना मेरी सहायता उस घोर जलको तैर नहीं सकते हैं ; हे विभी ! आप मेरे वचनमें शङ्का मत कीजियेगा । मत्स्यके वचन सुन मनुने कहा, कि हम ऐसाही करेंगे । अनन्तर वे दोनों परस्पर आजा लेकर दृक्छानुसार चले गये । हे महाराज ! उनके पश्चात् मनुने उसके कहनेके अनुसार सब जगतकी वस्तुओंके बीज इकट्ठा किया । फिर एक सुन्दर नावमें बैठ कर घोर तरङ्गवाले समुद्रमें तरन लगे । अनन्तर मनुने उस मत्स्यका ध्यान दिया । मनुके ध्यान करतेही वह मत्स्य एक सींग धारण करके मनुके पास पड़चा । हे भरतसत्तम ! हे प्रजानाथ ! हे शत्रुनाशन ! हे पुरुषध्यात्र ! उस महामत्स्यसे उस सींगवाले

मत्स्यको मनुने पर्वतके समान शरीर धारण किये हुए देखा । तब मनुने उस रखीको मत्स्यके सींगमें बांध दिया । हे पुरुषध्यात्र ! जब मनुने उसके सींगमें वह रखी बांधी, तब वह वेगसे उस नावको समुद्रमें खींचने लगा । हे नरनाथ ! मत्स्यके खींचनेसे वह समुद्रमें तैरने लगी । उस समय वह नाव समुद्रकी तरङ्गसे नाचने लगी और उसके शब्दसे शब्द करने लगी । वह वायुके वेगसे समुद्रमें चपला स्त्रीकी भांति घूमने लगी । हे शत्रुनाशन ! उस समय नावकी ऐसी दशा हुई, जैसे मतवाली स्त्री नाचती है, उस समय दिशा और पृथ्वी कुछ नहीं दीखती थीं । हे नरश्रेष्ठ ! उस समय आकाश और सब दिशा जलमय दीखती थीं । हे भरतकुलसिंह ! जब जगत जलमें डूब गया था उस समय केवल सप्तऋषि मत और वह मत्स्य दिखाई देते थे, इस प्रकार वे सब बहृत वर्षोंतक समुद्रमें घूमते रहें और वह मत्स्यभी उन सबको आलस्य रहित होकर समुद्रमें खींचता रहा । हे कुन्तीनन्दन ! इस प्रकार नावकी खींचते खींचते वह हिमाचलके सबसे ऊँचे शिखर पर पड़चा, वहां पड़कर उसने कुछ हसकर ऋषियोंसे कहा, आप लोग बहृत शीघ्र इस नावको हिमाचलके शिखरमें बांध दीजिये, विलम्ब करना उचित नहीं है । यह सुन उन मुनियान बहृत शीघ्र उस नावको हिमाचलके शिखरसे बांध दिया । जिस दिशा हिमाचलके शिखरसे उस मत्स्यकी कहनेसे नाव नाधी गई थी उसका नाम अबतक नाव-बधनहा है । हे कुन्तीनन्दन ! अनन्तर उसे मत्स्यन ऋषियोंसे कहा, कि मुनि लोग हमहीका प्रज्ञापात करते हैं, हमारा ही नाम ब्रह्मा है, हमने सब वस्तु धारण करके आप लोगोंको इस भयसे मुक्त है, अब मनु सब जगतके देवता, असुर, मनुष्य तथा औरभी चराचर सृष्टिका जननि, यह सब करनेसे इनकी सृष्टि करनेकी पाप उत्पन्न

और हमारी कृपासे ये सृष्टि करनेमें
मूर्खता नहीं। ऐसा कहकर मत्स्य अन्तर्धान
होगया। तब वैवस्वत मनुने सृष्टि बनानेकी
इच्छा की, परन्तु बना न सके। तब उन्होंने
घोर तप किया, उसके पीछे उन्होंने सृष्टि बनाना
आरम्भ किया। हे भरतकुलसिंह। वैवस्वत
मनुने सृष्टिकी बनाया। हे युधिष्ठिर। यह उपा-
ख्यान मत्स्यपुराण नामसे वर्णित हुआ है। हमने
यह पवित्र कथा तुमसे कही। जो इस मनुके
चरित्रकी आदिसे अन्ततक पढ़ता है, उसके सब
पाप नष्ट हो जाते हैं और सुख तथा धनसे पूर्ण
होकर परलोकमें सुखपाता है।

वैवस्वत मनु, मत्स्योपाख्यान और

१८७ अध्याय समाप्त ।

मार्कण्डेय नारायण सम्वाद ।

श्रीशम्भायन मुनि बोले, हे राजन् जनमे-
जय। इस कथाकी सुन धर्मराज युधिष्ठिरने
तपस्वी मार्कण्डेयसे फिर प्रश्न किया। हे महा-
मुनि! आपन अनन्त सहस्र युग देखे हैं, आपके
रुमान महाला ब्रह्माकी छोड़कर और कोई
हूँ नहीं है। हे ब्राह्मण। इस देवता दान-
वाद राहत जगत्स प्रलय कालमें तुमही
आकाशकी पास जाते हो, जब प्रलय बीत
जातो है और ब्रह्मा जागते है, तब तुमही
अपनी मण्डली सृष्टिकी देखते हो। हे विप्र!
आपने चार प्रकारकी सृष्टि बनायी है।
तब मनु और ब्रह्माकी सब दिशाओं फैला
देया है। हे राजर्षि। आपन समाधि लगा
कर ब्रह्माकी पतासह साक्षात् ब्रह्माकी
मण्डली परी है। आपन अनन्त वार अपने
मनसे तप किया है, आपने चार तप करके
मनो-बलसे प्रदीप्त हो जाते हैं। आप
मनो-बलसे रहस्य कहें। जब पुरुष शरीर-
को छोड़कर अलग हो जाते हैं तब भी आपकी स्तुति
होगी और उतना ही सम्मान है। तीन

वनाने-वाले कामरूपी विष्णुके हृदयकमलकी
खीलकर अनेक वार देखा है। आपने पहली
सृष्टिमें परम वैराग्य करके विष्णुके हृदयकी
देखा है। इसीसे आपकी बुढ़ापा और शरीरकी
नाश करनेवाली मृत्यु दुःख नहीं देती है; हे
विप्रश्रेष्ठ। आपको यह सब ब्रह्माकी प्रसादसे प्राप्त
हुआ है। जिस समय अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा,
आकाश और पृथ्वी कुछ विशेष नहीं थी, जब
समस्त जगत्में जल छा गया था, जिस समय
देवता और असुरोंके सहित सब चर और
अचर नष्ट हो जाता है, जब अनेक महासर्प
उत्पन्न होते हैं, जिस समय कमलगर्भमें रहने-
वाले ब्रह्मा निद्राके वशमें होकर अपने शरीरकी
मूल जाते हैं, तब अकेले आपही उनके पास
खड़े रहते हैं। हे विजित्तम! आपने यह सब
दृशा अपने आँखोंसे देखी है; इस लिये हम
कारणोंके सहित सब कथा आपसे सुना चाहते
हैं। हे विजित्तम! जगत्में कोई ऐसी बात
नहीं, जिसकी आप न जानते हो; इस लिये
हम आपसे कथा सुनना चाहते हैं।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हम आपसे यह
सब कथा कहनेकी पहली आपही उत्पन्न होत
वाले पुराण अव्यय भेद-रहित सूक्ष्म निर्गुण
और सगुण ब्रह्मकी प्रणाम करते हैं। हे
पुरुषव्याघ्र। वे वेही पीताम्बरधारी श्रीकृष्ण हैं,
वेही जगत्के कता नाश करनेवाले और सब
जगत्की आत्मा हैं; वेही सबसे बड़े आद्य
और विचित्र नामोंसे प्रसिद्ध हैं, वेही अनादि
अनन्त सप्त प्राणियोंके कारण और जगत्के
कर्त्ता हैं और वेही पराक्रमके मूल हैं, वे जगत्को
जानते हैं और इनको वेद भी नहीं जानते हैं।
हे राजसूक्तम। वेही सब प्राणियोंके स्थान हैं।
हे पुरुषव्याघ्र। जब सृष्टिका आदि होता है,
उस समय देवदेव परिसमाप्त हो जाते हैं, वे
तक नष्ट हो जाते हैं, उनकी स्तुति चार मा-
स तक होती है और उतना ही सम्मान है। तीन

सहस्र वर्षका त्रितायुग होता है और उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांश भी तीन तीन सौ वर्षकी होती है। हापर युग दो सौ वर्षका तथा उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांश भी दो दो सौ वर्षकी होती है। कलियुगका परिमाण एक सहस्र वर्ष है, उसके सन्ध्या और सन्ध्यांश भी सौ सौ वर्षके होते हैं; सन्ध्या और सन्ध्यांशका परिमाण समान ही है। कलियुग बीतनेसे सत-युग आता है। यह द्वादश सहस्र वर्षोंकी युक्त संख्या हमने आपसे कही, इसी द्वादश सहस्र वर्षकी ब्रह्माका दिन भी कहते हैं; इसी समयमें ब्रह्मा सब जगत्की बनाते हैं। हे पुरुषसिंह! इसके पीछे जो समय होता है उसमें ब्रह्मा तब जगत् की अपने स्थानमें विसर्जन करते हैं, इसी समयकी प्रलय कहते हैं। हे कुन्तीनन्दन! जब इस प्रलयके होनेको थोड़े दिन रह जाते हैं अर्थात् एक सहस्र वर्ष शेष रह जाते हैं, तब सब पुरुष झूठ बोलने लगते हैं। हे कुन्तीनन्दन! उस समय यज्ञ, दान, व्रतादि कर्मोंके स्थानों पर उनके समान छाटे छाटे कर्म चलने लगते हैं, उस समय ब्राह्मण लोग शूद्राके कर्म करने लगते हैं। और शूद्र लोग धन उपार्जन करने लगते हैं, अथवा शूद्र लोग क्षत्रियाका कर्म करके जोविका पालन करते हैं। हे तात! कालयुगमें ब्राह्मण लोग यज्ञ, वेद पाठ, दण्ड और मृगचर्मसे रहित हो जायग, वे लोग सर्वभक्षों और जपसे रहित हो जायग। शूद्र मन्त्रका जपने लगेंगे! हे पृथ्वीनाथ! जब ऐसा घोर समय आवेगा, तब जानना कि अब प्रलय जानवाली है। उस समय जगत्का सब राजा श्लेष्म हो जायंग, वे लोग झूठ बोल बोल अन्याय और पापसे राज्य करेंगे। हे पृथ्वीनाथ! अश्व, शक, पुलस्त्य, यवन, काम्बाज, बाल्हिक और आभीर लोग राजा होंगे। हे वरात्तम! उस समय कोई ब्राह्मण अपने धर्मका पालन नहीं कर सकेगा, इनो प्रकार क्षत्री और वैश्यभी

अपने अपने कर्मोंको छोड़ देंगे। कलियुगमें पुरुष थोड़े बल, थोड़े पराक्रम, थोड़े वीर्य, थोड़ी अवस्था, थोड़ा उत्साह, थोड़ा शरीर और थोड़े साहसवाले होंगे। अनेक नगर मनुष्योंसे शून्य होजायंगे। सब और हस्ति और सर्पही दिखाई देंगे। कलियुगमें सब लोग कहते फिरेंगे, कि हमने भी वेद पढ़ा है, हमने भी वेद पढ़ा है। शूद्र लोग ब्राह्मणोंको झूठे और ब्राह्मणलोग शूद्रोंको झूठे कहेंगे। हे पुरुषसिंह! युगके अन्तमें वृद्ध जन्तु उत्पन्न होंगे। हे पृथ्वीनाथ! उस समय नासिका सब सुगन्धियोंको नहीं सँभ सकेगी। रसोंमें इतना स्वाद नहीं रहेगा। मनुष्योंको बृद्ध सन्तान होंगी, परन्तु सबकी छोटी शरीर होंगे और कोई भी शील और आचारको नहीं करेगा। उस समयमें स्त्रीलोग सुखसे मैथुन करेंगी; उस समय सब नगरोंमें अकाल पड़ जायगा। उस पुरुष अन्न बेचनेवाले। ब्राह्मण लोग वेद बेचनेवाले और स्त्रीलोग योनि बेचनेवाली हो जायगी। हे पृथ्वीनाथ! गाय बृद्धत कस दूध देने लगेंगी, वृद्धों पर फल बृद्धत कस आवेंगे, कौवे बृद्धत बढ़ जायेंगे, ब्राह्मण लोग ब्राह्मणका मारन वाले और मिथ्यावदों राजाओंसे प्रतिग्रहग्रहण करने लगेंगे। लोभ और मोहसे भरे हुए धार्मिक चिह्नधारा हाथर बार बार चार करनसे प्रवृत्त होंगे; अहंकार लोग राजाके पोडित होकर वज्रपापुष्यक अदसंग्रह करने लगेंगे। द्विज लोग कपटसे सुलभोंका वेष बना कर घूमेंगे। कालयुगमें ब्राह्मण लोग दुर्गादाल और नाखूनीका दढ़विन, धनके लालच अनक लोग ब्रह्मचारी होंगे, कोई आचमन ठीक नहीं रहेगा। सब लोग सादरा धान लेंगे, सब लोग सुसज्ज आसन पर बैठन लेंगे, उस समयके पुरुष केवल मांस और लोभसे दृष्टान्तहीनो अपना कर्म समझेंगे।

पुरुषव्याघ्र । उस समयके पुरुष अनेक पाख-
 न्दोंसे पराये और पराये अनेकों प्रशंसा करने-
 वाले होंगे । उस युगके अनेकसे ठीक समय पर
 इन्द्र वर्षा नहीं करेगा और बीज भी अच्छी
 प्रकारसे उत्पन्न नहीं होंगे, ब्राह्मणादिक सब
 वर्ग हिंसा करने लगेंगे, उस समय सब और
 पापोंका फल दिखाई देने लगेगा । हे पृथ्वी-
 नाथ । उस समय जो धर्म करेगा, वही थोड़े
 दिन जीवेगा । इस लिये सब जान जायेंगे कि
 धर्म कुछ वस्तु नहीं है, उस समय सब लोग
 उत्त करके कपटकी बातोंको बनावेंगे । बनिये
 लोग अनेक प्रकारके छल करेंगे धर्मज्ञोंकी
 धानि और पापियोंकी वृद्धि होगी । धर्म
 हीन और अधर्म बलवान् हो जायगा, धर्म
 करनेवाले पुरुष थोड़े दिन जीनेवाले और
 दारिद्री होंगे, अधर्मी लोग दीर्घायु और धन-
 वान् होंगे, उस युगके अन्तसे अधर्मी लोग
 नगरोंमें आनन्द करेंगे । वे लोग अनेक अध-
 र्मोंसे प्रजाको ठगेंगे । थोड़ा धन इकट्ठा
 होनेसे भी उन लोगोंको बहुत अभिमान
 होगा । उस समयके पुरुष अपने धनको बहुत
 प्रशंसासे व्यवहार करेंगे, वे पापी लोग दूसरेके
 धन बनका बहुत उपाय करेंगे, वे निर्लज्ज लोग
 अपना नातना कहेंगे, इस तरह हमारा कही
 माला १ । पुरुषोंका खानेवाले जन्तु, पक्षी
 और चरान् लोग नगरोंकी बागोंमें और
 पहाड़ोंमें बिचार धारन लगेंगे । इस अथवा
 पुरुष अपना लड़का सात अथवा आठ
 महीने लड़कासे उत्तम उत्पन्न करेगा,
 पक्षी अपने आनेसे पुरुष बूढ़े हो जायेंगे
 पुरुषोंका बहुत काम होगा । हे महा-
 राज । इस युगके पुरुष तरुण और तरुण
 पुरुषोंका जायेंगे । उस समयकी स्त्रियां
 पुरुषोंसे पतनी प्राप्ति के लिये दाल और
 पुरुषोंसे पतनी प्राप्ति के लिये दाल और
 पुरुषोंसे पतनी प्राप्ति के लिये दाल और
 पुरुषोंसे पतनी प्राप्ति के लिये दाल और

लेंगी, वे लोग अपने जीते पतिकी छोड़ दूसरोंसे
 व्यभिचार करेंगी । हे महाराज ! जब ऐसा
 घोर युगका अन्त आवेगा, तब अनेक वर्षों तक
 जल नहीं वर्षेगा । हे पृथ्वीनाथ । उस समय वे
 थोड़े पराक्रमवाले जीव भूखसे व्याकुल होकर
 मर जायेंगे । उस समय बहुत प्रकाशमान सूर्य
 उदय होंगे, वे सब समुद्र और नदियोंके जलको
 सुखा देंगे । हे भरतकुलसिंह । इस समय जो
 लाल और हरे तिनके और काठ दिखाई देते
 हैं, वे सब भस्म हो जायेंगे, उस समय सब जगत-
 की जलाने वाली आग सूर्यसे सुखाये हुए
 जगत्में वर्षेगी, वह इस पृथ्वीको भस्म करके
 पातालको जायगी, वहां दानव और यक्षोंकी
 भस्म करेगी, नाग लोग और पृथ्वीको जला कर
 इन सबके नीचे चली जायेंगी और वहां भी
 क्षण भरमें सब वस्तुओंकी भस्म कर देगी । तब
 अस्सी लाख और अस्सी हजार कोस तक एक
 अशुभ वायु चलेगी । वह सबकी भस्म कर
 देगी । वही अग्नि देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष
 और राक्षसोंके सहित सब जगत की जलावेगी ।
 उसके पश्चात् विजलीके सहित हाथियोंके
 समान शरीर अद्भुतरूपी भेष आकाशमें उठेंगे,
 उनमें कोई नील भेषके समान रूप वाले, कोई
 लाल कोई काली और कोई पीली होंगे, कोई
 हल्दिके समान सुन्दर कोई कौबिके गण्डके
 समान रूपवान् कोई कमलके पत्तोंसे सुन्दर
 और कोई सिगरिके समान रंगवाले होंगे ।
 कोई भेष नगरके समान कोई हाथियोंके
 ऊँड़के समान शरीरवाले, कोई अन्तके
 समान वाले और कोई नगरके समान होंगे ।
 हे महाराज । उस समय कोई विजलीकी
 मालासे शोभायमान शरीरवाले और शत्रु
 करने हुए भेष निकलते हैं : तब वह भेष समस्त
 आकाश समुद्रमें जा जाते हैं, उनमें वह पृथ्वी
 समस्त पर्वत और उनमें रहित पर्वत होकर
 उनमें मर जाती है । हे दत्तपर्वत । तब यह

घोर शब्द करनेवाले मेघ परमेश्वरकी आज्ञासे चारों ओरसे पृथ्वीको डुबा देते हैं, बहृत जल वर्षाति हुए सम्पूर्ण पृथ्वी की भर देते हैं, वह घोर भयानक जल अग्निकी भी नाश कर देता है । परमेश्वरकी भेजे हुए वह मेघ बारह वर्ष तक जल वर्षाकर प्रलय करते हैं । हे भारत । तब समुद्र अपनी मर्यादा छोड़कर पर्वतोंकी डुबाने लगता है । सब पर्वत पृथ्वी सहित जलमें डूब जाते हैं । वह भ्रान्त मेघ वायुसे इधर उधरकी नाश होते हैं । हे नरनाथ ! तब उस भयानक पवनकी ब्रह्मा पीकर कमल पर सो रहते हैं । उस महा प्रलयके घोर समयमें चर, अचर, देवता, असुर, यक्ष, राक्षस, मनुष्य, पशु, पक्षी और वृक्षादि नष्ट होजाते हैं । तब मैं अकेला केवल एकार्णवमें घूमा करता हूं । हे राजसत्तम । उस समुद्र पूरित घोर जलमें प्राणियोंको बिना देखे मैं बहृत विकल हुआ, तब बहृत दूर तक तैरता हुआ चला गया ; दूर तक जाने परभी कहीं पर आश्रय न मिला ; तब मैं थक कर बैठ गया ; तब मैंने एक समय उस जलमें बड़ाभारी विशाल बड़ देखा । हे पृथ्वीनाथ । उस वृक्षकी एक बहृत लम्बी शाखामें दिव्य आभूषण पहिने हुए फूले कमलके समान नेत्रवाले और कमलके समान मुखवाले एक बालककी देखा, हे पृथ्वीपाल । उस बालक की देख कर हमको बड़ाही आश्चर्य हुआ, कि संसारके नाशके समय यह बालक कैसे बचा । हे प्रजानाथ । मैं यद्यपि योगदृष्टिसे भूत भविष्यत वर्तमानको देखता था तभी उस बालकको न जान सका । तब अलसीके फूलके समान जीवत्समणि पहरे हुए साक्षात् लक्ष्मीपतिके समान वह मुझे मालूम हुआ । तब वह कमलनेत्र बालक मुझसे कहने लगा, हे भार्गव । मैं तुमको जानता हूँ, कि तुम धके हुए मार्कण्डेय मुनि विद्याम चाहते हो । हे मार्कण्डेय । जब तक विद्याम करना चाहिये, तब तब हमारे

यहां आकर विद्याम करो, पश्चात् मेरे शरीरमें प्रवेश करके आनन्दसे रहो, तब तुम पर प्रसन्न हैं । हे राजन् । तब उस बालकके ऐसे वचन सुनके मुझे अपने अधिक जीने और अपने मनुष्यपने पर ध्यान आया । तब उस बालकने अपने सुखकी बहृत फैलाया, मैं वेदश होकर उसके मुहमें घुस गया । तब मैंने उसके पेटमें जाकर देखा, कि सम्पूर्ण पृथ्वी समेत नगर और वन विराजमान हैं, गङ्गा, जमुना, सतलज, सीता, कौशल्या, चम्पल, वैश्वति, चन्द्रभागा, सरस्वति, सिन्धु, व्यासा गोदावरी, बस्तीका सारा, ताम्बा, वेणा, पवित्र जलवाली वेणा, क्षुण्णवेणा, महानदी, इरामा, वितस्ता, कावेरी, शोणभ, विशल्या, पुनपुना, हे महाराज । जिन नदियोंकी मैंने पृथ्वीमें देखा था, उन सब नदियों । उस महात्मा बालकके पेटमें देखा । हे शानाशन । अनेक जल जन्तुओंसे भरे रत्नोंखान समुद्र की भी मैंने वहां देखा, उ बालकके पेटमें आकाशमें प्रकाशलान सूर्य चन्द्रमा और अग्निकी देखा, हे राजन् । अनेक वनोंसे शोभायमान ऐसी पृथ्वीकी देखा, जिस सहस्रों ब्राह्मण यज्ञ कर रहे थे, अनेक क्षत्रि लोग प्रजापालनमें तत्पर, वैश्य खेतीमें लगे थे, शूद्र लोग द्विजातियोंकी सेवामें लगे थे । उसके पेटमें कुछ दूर आगे चलके हिमालय पर्वतकी देखा । हेमकुट, निपध, चण्डीर भरे हुए खेतगिरी की देखा । हे राजन् गन्धमादन पर्वत की, मन्दराचलकी, नीलगिरी महापर्वत मेरुकी भी देखा । महेन्द्र पर्वतकी विन्ध्याचलकी, मलयगिरकी पारपात पर्वतकी इनकी आदि लेके और जितने पर्वत हैं सबके उस बालकके पेटमें देखा । यह सब पर्वत अनेक रत्नोंसे भरे हुए विराजमान थे । हे राजन् । सिंह, व्याघ्र शूकर आदि अनेक प्रकारके जीव जन्तुओंको उसके पेटमें देखा । मैं उसके पेटमें इधर उधर विचरने लगा । हे

नरसिंह । उसको कोखमें धूमते सैने इन्द्रादिक सम्पूर्ण देवताओंकी देखा । साधु, रुद्र, आदित्य गुह्यक, पितर, सर्प, नाग, सुपर्ण, वसु, अश्विनि-कुमार गन्धर्व, अप्सरा, ऋषि, यक्ष, दैत्यों और दानवोंके समूहोंकी सैने वहां देखा । हे नरनाथ । सैने वहां पर सिंहिकाके पुत्र देव-शत्रु, केतु आदिक तथा जड़लके सब चर अचरकी जा इस लोकमें देखा था, उन सबोंकी महात्मा बालकके पेटमें देखा । इस जगत्की दिखते हुए मैं फलाहार करके जीने लगा । हे राजन् ! उस बालकके पेटमें मैं इसी तरह कई सौ वर्ष तक धूमता रहा । परन्तु उसके शरीरका अन्त न मिला । हे पृथ्वीनाथ । मैं उसके शरीरमें घूमता और सोचता था, कि इस पुरुषके शरीरका अन्त कहा है, परन्तु मुझे उसका अन्त न मिला । तब मैं उसी वरदेनेवाली देवताकी विधि पूर्वक मन और कर्म्मद्वारा शरणमें गया । हे नरनाथ । तब मैं उस महात्माके सासके सब बाहर आपड़ा । हे पृथ्वीनाथ । उस बटकी शाखा पर सम्पूर्ण जगत्की लेकर वह बालक विराजमान था । मैं बाहर आकर औवलमणिसे आभूषित उस बालक की देखा । तब उसने महा शोभायमान पीतवस्त्रधारी प्रसन्नमुखसे कहा, "नमोऽस्त्ये । तुम मेरे शरीरमें घूमनेसे बहुत दुःख भोगे हो ; हे राजन् । तब मेरी एक सुहृद् ने पाताल गयी इष्टि उत्पन्न हुई । तब मैंने अपने ही पुत्र हुआ देखा । उसकी ताविके समान यह प्रातिष्ठित कामन लंगलियोंसे शोभायमान शरीरोंकी निर पर रख कर प्रणाम करने और इस अत्युन्नत प्रतापी बालकके भावकी श्रद्धा निवृत्त हो हाथ जोड़कर उनकी आज्ञा मानना और प्रणाम करके प्रणाम करने ही है । हे नाथकी और आपकी आज्ञा मानना चाहता हूँ । मैं आपके शरीरमें भीतर चला गया था ।

वहाँ मैंने आपके पेटमें सम्पूर्ण जगत्को देखा था। हे देव ! आपके शरीरमें देवता, दानव, राक्षस, यक्ष, गन्धर्व, नाग आदि सब चराचर विराजमान हैं। हे देव ! आपकी कृपासे मेरी सृति नष्ट नहीं होती है ; मैं आपके शरीरसे निकलकर शीघ्रतासे बाहर आया हूँ और आपको जानना चाहता हूँ कि आप कौन हैं ? हे कमल-नयन ! आप बालक होकर और सब जगत्को पीकर इस जगह क्यों सोते हैं ? आप यह सब वृत्तान्त सुझसे कहिये। हे शङ्खनाशन ! किस-कारणसे सम्पूर्ण जगत आपके शरीरमें है ; और कितने काल तक आप इस स्थान पर रहेंगे, मैं इन सबको जाननेके वास्ते पूछना चाहता हूँ। आप विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये, जो मैंने आपके शरीरमें देखा यह बड़त विचित्र है। हे राजन् युधिष्ठिर ! मेरे ऐसे वचन सुन कर वह प्रकाशमान देवोंके देव ऐसे वचन सभी समझाते हुए बोले।

१८८ अध्याय सप्तम ।

देव बोले, हे ब्राह्मण ! सुखी यद्यार्थ रूपसे
देवता लोग भी नहीं जानते हैं, कि तु तुम्हारी
प्रीतिसे मैं इस प्रलयके वृत्तान्तको सुनाता हूँ,
तुम पितृभक्त हो और मेरी शरण पावे हो,
विशेषतः तुमने ब्रह्म-चर्य भी बद्धत किया है।
हे विप्रर्षे ! पुराने कर्म करनेवालोंने जलकी
नार संज्ञा लिखी है। वह नार त्रिमूर्ता श्रान
हो उसे नारायण कहते हैं। हे ब्राह्मण मैं ही
नारायण सम्पूर्ण जगतका उत्पन्न करनेवाला
और नाश करनेवाला हूँ, मैं ही विष्णु, मैं
ब्रह्मा, मैं देवताका स्वामी इन्द्र, मैं ज्येष्ठ
और मैं ही प्रेतोका स्वामी राजा यस हूँ। मैं
शिव, चन्द्रमा काश्यप, और प्रजापति तथा अन्य
विद्वान्ता और यज्ञ हूँ। मेरा मुख सूर्य, पैर
पृथ्वी, गर्दी, चन्द्रमा नेत्र, गला रोहिणी, शिरा
वान, यज्ञ एमीना आकाश गर्भ, शरीर इन्द्र

है। हे ब्रह्माणीतम। मैंने भारी दक्षिणा वाली सैकड़ों यज्ञ की है, वेदको जाननेवाले मुझ यज्ञस्थितकी पूजा करते हैं, पृथ्वीमें क्षत्रिय राजा लोग स्वर्गकी इच्छासे मेरे लिये यज्ञ करते हैं, ऐसेही वैश्य लोग स्वर्ग जीतनेकी इच्छासे मुझे पूजते हैं। मैं चारों समुद्रों और मेरे पर्वतको धारण करता हूँ। मैं ही पहले वाराह रूप धारण करके जलमें डूबती हुई पृथ्वीको निकाल लाया था। हे द्विज-सत्तम। मैं ही बड़वानल होकर सम्पूर्ण जलको पी जाता हूँ और फिर उगल देता हूँ। ब्राह्मण मेरा मुख, क्षत्रिय भुजा, वैश्य जघा, शूद्र चरण हैं। ऋग्वेद सामवेद, यजुर्वेद, और अथर्ववेद मुझसे ही उत्पन्न होते हैं और फिर मुझ-हीमें लय ही जाते हैं। परमस्थानवाले अपने आत्माकी आहुति करनेवाले और काम क्रोध, राग, द्वेषसे रहित, अङ्गहारशून्य, आध्यात्मविद्याको जाननेवाले यति ब्राह्मण मेरी ही उपासना करते हैं। मैं ही प्रलयको अग्नि प्रलयका वायु और प्रलय का सूत्र हूँ। हे ब्राह्मणात्तम। यह जितने प्रकाशमान तारा दीखते हैं, उन सबकी मेरी रोवा समझो। रत्नखान समुद्र और चारों दिशाकी मेरी आढ़ना और विद्यावन समझो। यह सब वस्तु मैंनेही देवतोंकी कार्यसिद्धिके लिये अलग अलग रचो है। हे द्विजसत्तम। काम, क्रोध, लोभ, माद, हर्ष, भय, यह सब मेरेही रोवे हैं। जिन उत्तम कामोंका करनेसे मनुष्योंको स्वर्ग मिलता है, वह सब तप, दान, सत्य और हिंसा मेरी बनाई और मेरे ही शरीरमें रहनेवाली है। मेरी इच्छासे जगत्की सब प्राणी चेष्टा करते हैं, अपन मनसे नहीं। भली भाँति वेदको पढ़नेवाले शान्तआत्मा क्रोधको जीतनेवाले द्विजाति लोग जो अनेक प्रकारकी यज्ञ करते हैं, उन्हेकी मैं प्राप्त होता हूँ। बुरे कर्म करनेवाले, लोभी, कृपण, अपने

आत्माके शत्रु मुझे नहीं पा सकते हैं। हे द्विज। जब जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होती है, तब तब मैं अवतार लेता हूँ। जब हिंसा करनेवाले देवताओंके मारनेके योग भयानक राक्षस उत्पन्न होते हैं, तब मैं पुष्पाक्ष सुकर्म करनेवाले मनुष्योंके घरमें मनुष्य शरीर धारण करके उत्पन्न होता हूँ। सुर असुर, गन्धर्व और राक्षसोंको बनाकर प्रलय-कालमें सबका नाश कर देता हूँ, फिर सृष्टिके कालमें अचिन्ताशरीर धारण करता हूँ। इसमें केवल मनुष्योंके शरीरमध्यादा बाधनाही कारण है सतयुगमें मेरा स्वरूप ध्वेत, त्रेतामें पीत हापरमें नाल और कलियुगमें काला रहता हूँ। उन कलिकालमें अधर्मके तीन भाग रहते हैं। ज अन्त काल प्राप्त होता है, तब मैं अकेला तीनों लोकोंके सम्पूर्ण चराचरको नाश कर देता हूँ तीन मार्गवाला, संसारमें व्यापक, सब लोकों सुख देनेवाला प्रकट होता हूँ। हे ब्राह्मण मैंनेही इस कालचक्रको चला रहा हूँ, मैं सब भूतोंकी शान्त करनेवालेकी उद्योगमें लगा वाला हूँ। हे मुनियामें उत्तम। सब भूतों मेरा आत्मा सम्यक् प्रणिहित है, किन्तु मुझमें कोई भी यथार्थ रूपसे नहीं जानता है। हे विप्रेन्द्र। मैंनेही सबमें व्यापक हूँ, संसारमें सब भक्त मेरी पूजा करते हैं। हे द्विज। तुम जो मेरे शरीरमें दुःख पाया, वह सब तुम्हा वास्ते सुख और कल्याण देनेवाला होगा। हे तुम संसारमें स्थावर, जड़म देखते हैं यह सब मेरी ही आत्मा है। मेरे शरीरका आधा भाग ब्रह्मा है और आधा शिव चक्र, पद्म धारी मैं नारायण हूँ। हे विप्रर्षि। जब तक चारा युग हजार बार बीतते हैं, तबतक मैं सब प्राणियोंकी मोहित करता हूँ, तबतक मैं सब प्राणियोंकी मोहित करता हूँ। हे मुनिसत्तम। उसी प्रलयकालमें मैं यहा सी रहा हूँ। यद्यपि मैं बालक नहीं हूँ, तभी बालकरूप मैं तबतक रहूँगा जो

तक ब्रह्मा न जागें। हे ब्राह्मणोत्तम । मैं ब्रह्मरूपी हूँ, मैंने तुम्हें वरदान दिया है। मैं तुमसे वज्रत प्रसन्न हुआ हूँ। तुम जो स्थावर जड़मकी जलमें डूबा हुआ देखकर घबराये थे, इसलिये मैंने शरीरके भीतर तुम्हें जगत् दिखलाया। जब तुम मेरे शरीरके भीतर गये थे, तब सम्पूर्ण जगत्को देखकर घबड़ा गये थे और थक गये थे, इस लिये हमने शीघ्रतासे तुमको बाहर निकाल दिया। मैंने अपने उस स्वरूपकी तुमसे वर्णन किया जिसे देवता और असुर नहीं जान सकते हैं। हे विप्रर्षभ । जब तक ब्रह्मा न जागें, तब तक सुखपूर्वक तुम यहीं विश्राम करो। तब सब लोकोंके पितामह ब्रह्मा जागेंगे तब फिर मैं सृष्टिका आरम्भ करूँगा। आकाश पृथ्वी ज्योति, वायु और जल जो कुछ लोकमें चाहिये सबको मैं बनाऊँगा। मार्कण्डेय मुनि बोले, हे प्यारे। वह अद्भुत देव ऐसा कहकर अन्तर्धान होगये। मैंने वहाँ पर और अनेक प्रकारकी सृष्टि देखी। हे राजन्। उस प्रलयमें मैंने वज्रत आश्चर्य देखा। हे सब धर्म कर्म करनेवालोंमें श्रेष्ठ। जिस कमलनेत्र देवताकी उस समय देखा था, ये वही जनार्दन तुम्हारे मन्दस्त्री हैं, इन्हींके वरदानसे मेरी क्षति नष्ट नहीं होती है। हे कल्पीनन्दन। इन्हींकी कृपासे मरना मेरे प्राचीन है और मेरी आयु बड़ी है। यह वही वशिष्ठावंशी पुराण-पुरुष व्यापक भक्तिगता महाभुज क्रीड़ा करनेवाली है। यहो धाता विधाता जगत्के धारण करनेवाले मादिन्द्र प्रजापति और प्रभु हैं। मैंने देखकर मुझे स्मरण आगया, कि यही व्यापक आदि देवपति वस्त्वहारी हैं। यही सब प्राणियोंके माता पिता हैं। हे कुरु-श्रेष्ठ ! तुम इन्हीं के भक्त बनकर उनकी शरणमें जाओ।

मार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन्। मैंने-
इसा श्रेष्ठदेव कैसे वचन सुनकर कृपाकी

नमस्कार करने लगे, कृष्णने भी पुरुषसिंह पाण्डवोंका शान्त किया

मार्कण्डेय नारायण सम्वाद और
१८६ अध्याय समाप्त ।

कलियुग विवरण ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन्। कुन्ती पुत्र युधिष्ठिरने महासुनि मार्कण्डेयसे जगत्की हानेवाली गति और अपने कर्तव्यकी फिर पूछा। राजा युधिष्ठिर बोले, हे भार्गव ! हे महासुने। तुम्हारा वृत्तान्त वज्रत आश्चर्यका देनेवाला है, इस कलियुगमें धर्म नाश होने पर क्या होगा ? मनुष्य कैसे पराक्रमी कैसे आहार विहारवाले, कितनी अवस्थावाले और कैसे वस्त्र-वाले होंगे। युगके नाशमें मनुष्य कैसे होंगे तथा कौनसी अवविज्ञा पाकर फिर सतयुग आवेगा ? हे सुनि। विस्तारपूर्वक आप मुझसे कहिये, यह जुझे वज्रत आश्चर्य झालूम देता है। इस प्रकारसे मुनिने छ मार्कण्डेय युधिष्ठिरके वचन सुन करके हाशावशी कृपा और पाण्डवोंसे कहने लगें।

मार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन्। प्रथम जो मैंने देखा, सुना तथा अनुभव किया है, और हे राजेन्द्र। देवादि देव विष्णुकी कृपासे नसारका भविष्यत वृत्तान्त जमा है जानता हूँ, उसकी अनुसार कलियुगका वृत्तान्त कहता हूँ सुनो। सतयुगके मनुष्योंसे ऊपररहित धर्म हृषिकेश चारा धरोंसे विलक्षण था। हे भरतर्षभ। त्रेतायुगमें धर्मके तीन भाग थे और एक भाग अधर्मसे नष्ट हो गया था, तबपरमें आये धर्मकी अधर्मन नष्ट कर दिया, हे भरतमत्स्य। कलियुगकी सन्धिमें धर्मके तीन वज्र नष्ट हो गये और कलियुगमें शेष धर्मका मनुष्योंमें रहता है। हे राजा। मनुष्य, पराक्रम, धर्म, बल और मनुष्य युगके नाश हुआ करता है। हे युधिष्ठिर। मनुष्य के जन्म, मृत्यु, शरण

कपटसे धर्य करतें हैं, सबही धर्मको बेचनेवाले होते हैं । पण्डित मानी वही सत्यको घटा देते हैं, और सत्यकी हानिसे मनुष्योंकी अवस्था थोड़ी होती है । आयुके क्षीण होनेसे आजीविका नहीं करसक्ते हैं । कलियुगके मनुष्य विद्याहीन, विज्ञानरहित और लोभो होते हैं । काम और क्रोधसे पूरित वैरसे भरे हुए एक दूसरेको मारनेकी इच्छा करनेवाले ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रोंके समान तप सत्यसे रहित हो जायंगे । नीच उत्तम और उत्तम नीच हो जायंगे । हे राजन् । युगके अन्तमें सब लोग ऐसे ही जायंगे । वस्त्र सनके बनने लगेंगे और धान्य कोरदूषक अष्ट होंगे; पुरुष केवल अपना स्त्री हीकी प्यार करेंगे । मछलीका व्यवहार करके जीयेंगे । बकरी तथा भेड़ीकी दुहेंगे, गौ नष्ट हो जायंगी । जो व्रतकी धारण करनेवाले हैं, वेभी लोभी हो जायंगे, आपसमें एक दूसरेकी चोरी करेंगे । सारामारी करेंगे, जप नहीं करेंगे, नास्तिक हो जायंगे, चोर हो जायंगे नदियोंके किनारेपर औषधियोंको बेवेंगे और वेभी थोड़ी फलवाली होंगी । जो व्रतधारी ब्राह्मण हैं, वेभी लोभके वश होकर पितरोंके आन्नमें भोजन करेंगे । पितापुत्रका अन्न भोजन करनेवाले और पुत्र पिताका अन्नके भोजन करनेवाले होंगे । भोजनका व्यवहार बहुत उलट पुलट हो जायगा । ब्राह्मण लोग व्रत नहीं करेंगे वेदकी निन्दा करेंगे । कुतर्कोंसे मोहित होकर यज्ञ होम कुछ नहीं करेंगे, किसान लोग नोची भूमिमें खेतो करेंगे । हलमें गौको जोड़ेंगे, एक वर्षके बछड़ेको जीतेगे । हे राजन् । पिता पुत्रको और पुत्र पिताको मार कर निन्दित नहीं होंगे, सम्पूर्ण पृथ्वी स्नेहसे भर जायगी, सब क्रिया और यज्ञसे रहित हो जायंगे, सब लोग आनन्दसे और उतावसे रहित हो जायगे । प्रायः मनुष्य कृपण होंगे, भाई और विधवासे धन हरेगे; थोड़े

वीर्य और वलवाले कारकश, लोभ मोहसे भरे अपनी प्रशंसासे प्रसन्न होनेवाले मनुष्य होंगे, कपट व्यवहारसे पूरित, जूआ खेलनेवाले और पापी राजा होंगे । हे कुन्ती-पुत्र । परस्पर बैरवाले, पण्डित मानी और लोककण्टक स्त्री कलियुगमें होते हैं; प्रजाकी रक्षासेही लोभी अहंकारी पाखण्डी केवल दण्ड देनेवाले स्त्री होते हैं । हे भारत । साधु लोगोंकी दवा कर उनके धन और स्त्रीको दुष्ट लोग हरते हैं । न कोई कन्यादान भागता है और न कोई कन्या दान देता है । युगके अन्तमें आपही सब परस्पर विवाह करते हैं । राजा लोग असन्तोषी सब उपायोंसे पराये धनको छीननेवाले, युगके अन्तमें होते हैं । हे राजन् । युगके अन्तमें सब जगत् स्नेह हो जायगा, एक हाथ दूसरे हाथकी वस्तुको चोरावेगा । सब लोग सत्यको छिपावेंगे, सब लोग अपनेकी परिणत मानेंगे, बालकोंकी बुद्धि बूढ़ोंकीसी और बूढ़ोंकी बालक कीसी होजायगी । जब युगका अन्त आवेगा, तब डरपोका लोग अपनेकी वीर कहेंगे और वीर लोग डरपोका होकर बैठेंगे । एक दूसरेकी विश्वास नहीं करेगा, सम्पूर्ण जगत् लोभ और मोहसे भर जायगा, अधर्मकी वृद्धि और धर्मका नाश हो जायगा । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य कोईभी अष्ट नहीं रहेगा, सब गूढ़ हो जायंगे । युगके अन्तमें नामकी केवल शब्द बर्ण रह जायगा । पुत्र पिताको और पिता पुत्रको नाश करेंगे, स्त्री पतिकी सेवा नहीं करेंगी, नो गेहूँ, आदि अन्न उत्पन्न होगे वन देशान्तरमें चले जायंगे । हे राजन् । युगके अन्तमें स्त्री और पुरुष सब इच्छाचारी हो जायंगे, कोई भी एक दूसरेकी बातको नहीं सुनेगा । हे युधिष्ठिर । सब जगत् स्नेह हो जायगा । कोई मनुष्य देवताको पूजा अर्चासे नहीं करेगा, हे नरनाथ । कोई न किसीका गुन हीना किसीका चेला होगा, सब जगत् अन्धकारमें

हो जायगा । युगके अन्तमें मनुष्यकी परस आयु सोलह वर्षकी होजायगी । तब युगके अन्तमें सब प्राणी नष्ट हो जायंगे, पाचवें या छठें वर्षमें कन्याके पुत्र होगा । सातवें वर्षके मनुष्य पुत्र उपजावेंगे । हे राजन् । युगके अन्तमें पति स्त्रीसे और स्त्री पतिसे सन्तोष न पावेंगे । हे राजन् । युगके अन्तमें थोड़े धनवाले मनुष्य होंगे, वृथा इन्द्रियवाले और न कोई क्लृप्ता दानी होगी । देश इकानोंसे भर जायगे । चौराहे शिवालियोंसे भर जायंगे और स्त्रियोंके शरीर पर रोस भर जायंगे, सब लोग स्त्रीच्छाचारी हो जायेंगे, सब भक्ष्य खायेंगे, सब कठोर कर्म करनेवाले हो जायेंगे । हे राजन् । इसमें द्वाय भी सन्देह नहीं है । हे भरतय्योष्ठ । वे देने और लेनेके समय सब सबकी ठगेंगे, हे राजन् । युगका अन्त अनेपर ज्ञानकी विना जाने लोग आपही सब क्रिया करेंगे । अपनी रुचिके अनुसार वरतेंगे, स्वभावहीसे सब लोग कर्म करेंगे, तीभी परस्पर सब आपसमें प्रगमा जरेंगे । हे राजन् । कलियुगके मनुष्य धर्म और वृद्धोंकी वृथाही नष्ट करेंगे, हे राजन् । सबकी अपने जोनेकी शंका रहेगी, सब लोग लोभसे भरे ब्राह्मणोंको मारेंगे और उनके धर्मसे भोग करेंगे । ब्राह्मण लोग शूद्रोंके डरसे शराकार मचावेंगे, कीड़े जगतमें उनकी रक्षा करनेवाला न होगा । वे इधर उधर मारेंगे, हे राजन् । जड़ जीवोंके नाश करनेवाले भयानक प्राणियोंके जिसका सन्ध होगे, तब भयानक प्राणियोंकी जिसका सन्ध होगा । हे सुसकुलनाथ । हिमालय पर्वत पर दुर्गस पहाड़ीपर भयकी मारेंगे, हे राजन् । राजद्वारसे पीड़ित हो राजा भी ऐसे प्रहारायेंगे जैसे बधिरोंसे प्रहारायेंगे । यह राजाकी प्रजा करभारसे पीड़ित हो जायेंगे । हे सत्पिता । युगके अन्तमें राजा अपने राज्यको त्यागकर पतनक भवने में जायेंगे, धन उपदेश करेंगे और

ब्राह्मण उनके ओता तथा उपासक होंगे । यह सब लोक विपरीत हो जायंगे, हृदयोंकी बनी हुई कुटियोंकी लोग पूजा करेंगे और देवतोंकी त्याग देंगे, शूद्र लोग ब्राह्मणोंकी सेवा न करेंगे । ऋषियोंके आश्रममें, ब्राह्मण और देवतोंके स्थानमें, अटारियोंमें, नागोंके स्थानोंमें हृदयें भर जायंगे, द्विभाव जाता रहेगा, हे राजन् । युगके अन्तमें यह लक्षण होगी । पृथ्वी भयानक मालूम होने लगेगी, सब लोग मांस खाने और मदिरा पीने लगेंगे । अकालमें मेष वर्षने, मनुष्योंकी क्रियाका समय न रहेगा, शूद्र ब्राह्मणोंसे वैर करेंगे, पृथ्वी स्त्रीच्छोसे भर जायगी, ब्राह्मण लोग कर भारसे पीड़ित होकर इधर उधर भाग जायेंगे, सब देश एकसे हो जायेंगे । नशोंसे व्याकुल रहेंगे, आश्रमोंकी कोई पावेगा नहीं, सब लोग फल मूल खाकर जीवेंगे । हे राजन् । जब ऐसे मर्यादा-रहित लोग हो जायेंगे, तब युगका अन्त समझना । शिष्य गुरुका उपदेश नहीं सुनेंगे, गुरुका अप्रिय कार्य करेंगे, आचार्योंकी दरिद्र लोग निन्दा करेंगे, सभी धर्मके वास्ते नहीं धन लेनेके वास्ते । युगके अन्तमें सब प्राणियोंका अभाव हो जायगा, दिशा जलने लगेंगी, तारें छिप जायेंगे, प्रकाशित चीज उलटी हो जायेंगी, वायु भयानक उलटा चलने लगेगा, अनेक उल्कापात भयकी बढ़ाने वाले हुआ करेंगे ; ६ और सूर्योके मरित द्यु सूर्य प्रकाशित होंगे, भयानक शब्द होंगे । दग्गा जलने लगेंगे, राजा सूर्य दिवस भयानक इन्द्र अकाल वर्षा करेंगे, स्वतः यत्न उत्पन्न नहीं होगा, स्त्री अपने पतिवोंको कट, भान कहेंगी गाली देंगी, पतिवोंके धनकी भी न मानेगी, पुत्र माना पिताप्रेमसे मारेंगे, स्त्री पतिवोंको मारेंगी, प्रहारी दरिद्र भयानक होंगे, हे महाराज । जिना के भक्तों का भयानक प्रहारा होगा, युद्ध युद्धमें बहुत अधिक लोग मारेंगे करनेवालोंकी मारेंगे, युद्ध में बहुत

ठहरनेकी स्थान मिलेगा. वह रात्रिको मार्गमें विश्राम करेंगे, कौन्हे । नाग, पक्षी, मृग भयानक और लखे शब्द करेंगे । मित और सखन्धियोंको मनुष्य छोड़ देंगे, जन्मभूमि और देशको त्याग देंगे, और नगरोंमें जा बसेंगे । हा पुत्र हा प्यारे । ऐसे एक दूसरेके लिये रोते हुए मनुष्य पृथ्वी पर मरेंगे । युगनाशकी ऐसी भयानक अवस्थामें क्रमसे ब्राह्मण लोग नष्ट हो जायंगे, । कुछ कालके पश्चात् दैवकी कृपासे फिर संसारकी वृद्धि होगी । जब सूर्य, चन्द्रमा और बृहस्पति पुण्य नक्षत्रमें आवेंगे, तब फिर सतयुग होगा । उस समयमें प्रारम्भ मेघ समय पर वर्ज्ये, नक्षत्र प्रकाशित होंगे, सब ग्रह आकाशमें अपनी शुद्ध गतिसे चलेंगे, रोग जाता रहेगा सुकाल होगा । हे राजन् । उस समयमें कलकि विष्णु-यश नामक ब्राह्मण उत्पन्न होगा, वह महा-बली, पराक्रमी, महा बुद्धिमान, होगा । सम्मल गावके एक ब्राह्मणके घरमें उत्पन्न होगा, उसे शस्त्र और बाहुन आपसे आप प्राप्त होगा, उसके पास बड़े बड़े योधा अस्त्र शस्त्र लिये आपही आजायंगे, वह धर्मसे जगत्की जीत कर एक चक्रवर्ती राजा होगा वह इस व्याकुल हुए जगत्की प्रसन्न करेगा, वह तेजस्वी उदार-बुद्धि ब्राह्मण जगत्की रक्षा करेगा, वह कलियुगका अन्त करेगा और सब छोटे छोटे स्त्रीच्छोंकी ब्राह्मणोंके सहित नाश करेगा ।

कलियुग विवरण और

१६० अध्याय समाप्त ।

मार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन् । इस तरहसे दस्युओंका नाश करके अश्वमेध यज्ञ करके वह सम्पूर्ण पृथ्वीकी ब्राह्मणोंकी दान कर देगा. पवित्र मर्यादाकी स्थापित करके वह आप रमणीय वनकी चला जायगा, संसारके मनुष्य उसकी उपदेशके अनुसार सुकर्म्म करेंगे ब्राह्मणों-

के उपदेशानुसार सत्यमें फिर कल्याण हीगा काला मृगचर्म ब्रह्मचारी ओढ़ेंगे, त्रिशूल आदि शस्त्र क्षत्री लोग धारण करेंगे । वह ब्राह्मणश्रेष्ठ कलकि अपने जीते हुए देशमें धर्मकी स्थापन करके ब्राह्मणोंसे प्रशंसा पाकर ब्राह्मणोंको सम्मान करके पृथ्वी परसे शत्रुओंका नाश करके विचरेगा । डाकू लोग हाय मा, हाय वाप, हाय प्यारे ऐसा भयानक शब्द करके कलकिके हाथसे मारे जायंगे, तब हे भारत । अधर्मका नाश और धर्मकी वृद्धि होगी उस सतयुगमें सब मनुष्य क्रियावान होंगे । बाग, तलाव, पेखर, देवतोंकी स्थान, यज्ञ और क्रिया आनन्द पूर्वक सतयुगमें सब लोग करेंगे । ब्राह्मण साध, मुनि तपस्वी, सत्य बोलनेवाले, प्रजाके लोग होंगे । पृथ्वीमें बोये हुए बीज अच्छे फल देंगे, सब ऋतुओंमें खेती उत्तम होगी । सब मनुष्य दान, तपस्या, व्रतमें लगे रहेंगे, ब्राह्मण लोग जप, यज्ञ और धर्म कामोंमें चित्त लगाये रहेंगे, वैश्य लोग व्यापार करेंगे । हे राजन् । ब्राह्मण ह् कर्म्मोंकी करनेवाले, क्षत्रिय बलवान, शूद्र तीनों वर्णोंकी सेवा करनेवाले होते हैं । यह धर्म सतयुग लेता, हापरमें रहते हैं । कलियुगका धर्म पहिलेही कह चुका हूं । हे पाण्डव । स युगोंकी संख्या तुमकी मालूम होगयी । यह मैंने तुमसे इसके भूत और भविष्यत सब कहा, इस तरहसे मैंने संसारको गति दीर्घ आयु होनेके कारण आपही देखी और भोगी है, उसीके अनुसार तुमसे वर्णन की । हे अक्षय धार्मिक वर । धर्म सन्देह मिटानेकी वास्ते भाइयोंके सहित मेरे वचनकी सुनो । हे धर्म करनेवालोंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिर । तुमको अपना चित्त धर्महीमें लगाना चाहिये ; क्योंकि धर्मात्मा इस लोक और परलोकमें सुखी रहता है । हे पापरहित । मैं तुमसे कल्याणकारी वचन कहता हूँ उनकी, सभी ब्राह्मणका कर्म्म अपमान तुम मत करना । ब्राह्मण क्रोध करने

पर प्रतिज्ञा पूर्वक संसारका नाश कर सकता है ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, पुरुषश्रेष्ठ बुद्धिमान तेजस्वी महाराज युधिष्ठिर मार्कण्डेयका वचन सुनकर बोले, हे मुनि । हम प्रजाकी रक्षा करनेके किये कौनसे धर्मको करें, वह कौनसा कर्म है, जिसमें मेरा धर्म नष्ट नहो ? मार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन् । तुम कृपावान सब प्राणियोंके हिताभिलाषी निन्दा रहित, सत्यवादी, मीठे शिष्यायुक्त प्रजाकी रक्षामें तत्पर रहकर धर्म करो, अधर्मोंकी त्यागी, देवता और पितरोंकी पूजा करो ; जो कुछ कि तुमने प्रमादसे पाप किया हो उन्हें दानसे जीतो, अभिमान करना बृथा है, सदा शीलयुक्त रहो, सम्पूर्ण पृथ्वीकी जीतकर आनन्दसे भोगो, यह मैंने तुमसे भूत और भविष्यत धर्म कहा । हे प्यारे । पृथ्वीमें तुमसे कोई भूत और भविष्यत छिपा नहीं है । इस लिये अपने हृदयमें लेशकी धारणा मत करो । हे तात । बुद्धिमान लोग दुःखी होकर भी मोहको प्राप्त नहीं होते । हे महाभुज । यह सब देवतोका समय है, इसमें सब प्रजा कालकी श्रेणीसे मोहित होती है, तुम मेरे वक्ते धर्माने शका मत करना । मेरे वचन शकारहित हैं । मेरे वचनोंमें शंका करनेसे तुम्हारा धर्म लोप होगा । हे भरतर्षभ । तुम वनम कालमें उत्पन्न हुए हो, इस लिये मनसे अपने वचनमें मेरे कहे कर्मोंको करो ।

राजा युधिष्ठिर बोले, हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! जो धर्मने आर्त्ताकी सुख देनेवाले उत्तम वचन कहे, वे पापको हम प्राणकी ऐसीही कल्पते हैं, जैसे सुख, शोभ, भय और मरुत को ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, बुद्धिमान मार्कण्डेय ! तुम वचन सुनकर हृष्ट और प्रसन्न रहकर प्रसन्न हुए विप्रजिह्व

समान शोभावाले जो लोग वहां आये थे, बुद्धिमान मार्कण्डेयकी उत्तम और पुरानी कथा सुनकर सब विस्मित हुए ।

१६१ अध्याय समाप्त ।

महाराज जन्मेजय बोले, हे ब्रह्मण । आप फिर ब्राह्मणोंके माहात्म्य वर्णन करिये । जो कि महातपस्वी मार्कण्डेय मुनिने पाण्डवोंके निकट वर्णन किया था ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् । मार्कण्डेय मुनिसे पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर फिर ऐसा बोले, कि आप और कुछ ब्राह्मणमाहात्म्य वर्णन कीजिये । मार्कण्डेय बोले, ब्राह्मणोंके चरित सुनो । इक्ष्वाकुकुलमें उत्पन्न हुए अयोध्याके राजा परीक्षित एक समय शिकार खेलने गये । वह अकेले घोड़े पर चढ़े हुए एक हरिणके पीछे शरकी चले गये । चलते चलते मार्गमें राजाकी वज्रत प्यास लगी और थकाई भी आगयी ; राजाने वज्रत सघन वनका टुकड़ा देखा । राजा उस वनके टुकड़ेके बीचमें चले गये, वहां पर उन्होंने एक बड़ा मनोहर तालाब देखा और घोड़ेके सहित उसमें नहाके तब राजा स्वस्थ होकर कमलोंकी डटी (नाल) घोड़ेके आगे डालकर पोखरके किनारे बैठ गये । तब राजाने सोनेके समय मीठे स्वरके गीत सुन गीतोंकी सुनकर राजा सोचने लगे कि यज्ञ मनुष्य नहीं, पर गीत किसका है । इसके पश्चात् राजाने एक परम मनोहर रूपवाली कन्याकी फूल बीजते हुए देखा, वह कन्या राजाने समीप आई । राजाने उस कन्यासे पृष्टा, कि तुम कौन और किसकी कन्या हो ? वह बोली, मैं कन्या हूँ । राजा बोले, मैं तुमको लेना चाहता हूँ । तब कन्याने कहा, तुम इस समय एक प्रतिज्ञा करने मुझे ले सकने हों, मैं यज्ञ मन्त्र कहती हूँ । राजाने कहा, कौनसे समय तक प्रतिज्ञापूर्वक

ले सकती हूँ ? कन्याने कहा, जबतक सुभी जल न देखे । राजाने कहा ठीक है । राजाने उससे विवाह करके परम आनन्दके साथ मौनी होकर उससे क्रीड़ा की । राजाके वहीँ बैठे बैठे सेना आ गई । कन्या राजा और सेनाको छोड़ अलग बैठ गई ; तब राजाने उसे समझाकर और सम्मान करके पालकीमें चढ़ाया और अपने नगरमें लाके एकान्तमें क्रीड़ा करने लगे । राजा उसकी क्रीड़ामें ऐसे मग्न हुए, कि किसीको उनके दर्शनभी न होते थे । एक दिन प्रधान-मन्त्रीने उनके समीपचारिणी स्त्रियोंसे पूछा कि क्या करना चाहिये ? स्त्रियोंने कहा कि मैं अद्भुत लीला देखती हूँ, कि राजाके क्रीड़ास्थानमें जल नहीं जाता । राजा एक अपूर्व स्त्री लाये हैं, उसने उनसे कहा है कि, सुभी जल न दिखाना । राजा उसकी बात स्वीकार करके उसके सङ्ग क्रीड़ा करते हैं । तब प्रधान-मन्त्रीने एक बाग ऐसा बनवाया जिसमें पुष्प और फूलोंसे भरे वृक्ष थे किन्तु जल नहीं था । साधवीलताकुञ्ज-जालके बीचमें एक अमृतके समान जलसे भरी झड़ बावड़ी बनाई थी । तब एकान्तमें जाकर राजमन्त्रीने कहा महाराज । एक विचित्रवन जलरहित बना है, आप उसमें चलके विचार कीजिये । राजा मन्त्रीके वचनसे उस स्त्रीके सहित उस वनमें गये । एक दिन राजाकी विचार करते करते प्यास लगी और वृद्धत थक गये, तब राजाने उस साधवीलताकुञ्जको देखा । तब राजा उस स्त्रीके सहित उस घरमें गये और स्वच्छ जलसे भरी उस बावड़ीको देखा और उसके किनारे पर रानीके सहित बैठ गये, रानीको जहर्न लगे देखी, यह क्या सुन्दर जल है, इससे तुम स्नान करो । रानी राजाके वचन सुनके उस जलमें धनी और फिर न निकली । राजाने उस बावड़ीका मद्य जल निकलवा कर उसे वृद्धत दूटा पर वह कहीं न मिली, किन्तु उस

बावड़ीके एक गढ़में एक मेढकका शब्द सुना । मेढककी देखकर राजाने आज्ञा दी कि सब मेढकोंको मार डालो । जो कोई मेढककी मार लावेगा उस राज्यसे धन मिलेगा । जब मेढकोंका भयानक वध आरम्भ हुआ, तो मेढक भयके मारे दशों दिशाकी भागने लगे और मेढकराजसे जाकरके अपने दुःखको कहा । मेढकराजने तपस्वीका रूप धारण करके राजाके पास जाकर कहा, हे राजन् । क्रोधके वशमें न हो, कृपा करो, निरपराधो मेढकोंको मत मारो । यहां पर पुराणके दोश्लोक हैं । हे राजन् । तुम क्रोधको छोड़ी मेढकोंको न मारो, अविवेकीपुरुषका धन नष्ट हो जाता है, मेढकोंके मारनेसे तुम्हारी स्त्रीका शोक दूर नहीं होगा । इस अधर्म करनेसे तुम्हारा कोई हित नहीं होगा । ऐसे शोकसे भरे हुए वचन राजाने सुनकर कहा, हे विद्वन् । इन दृष्टीं मेरी स्त्रीको खा लिया है, इस लिये मैं इनपक्षमा नहीं कर सकता हूँ, मेढक मेरे मारनेयोग्य हैं, आप न रोकिये । राजाके वचन सुन मेढकराज वृद्धत व्याकुल हुआ और कहने लगा । महाराज । कृपा कीजिये, मैं आयु नामक मेढकोंका राजा हूँ वह मेरी शोभना नामक कन्या थी, यह उसीकी दुष्टता है, इसी तरह उसने अनेक राजोंको ठगा है । राजाने मेढकराजसे कहा, कि उस कन्याको तुम सुभी देदो । मेढकराजने कन्यादान राजाको दे दिया और कन्यासे कहा, कि तुम इस राजाको सेवा करो, ऐसा कहकर अपनी कन्याको मेढकराजने शाप दिया, कि जिस कारणसे तैने वृद्धत राजाकी ठगा है, इसलिये तेरे प्रसादसे तेरी सत्ता न ब्राह्मणभक्त न हो । राजा परीक्षित उन स्त्रीनी पाकर ऐसा आनन्दित हुआ, मानी तोनल्लोका राज्य उसे मिला, आनन्दकी यांत्र आँखोंमें भरकर मेढकराजसे बोला, कि आपने मुझे कृतार्थ किया । मेढकराजभी अपनी कन्या

उपदेश देकर चले गये। कुछ कालके पीछे उस राजाको उसी कन्यासे तीन पुत्र उत्पन्न हुए, एकका नाम शल, दूसरेका दल, तीसरेका बल उनमेंसे बड़े शलको राजा राज्य देकर तपस्या करनेकी इच्छासे वनकी चले गये। एक समय राजा शल रथमें बैठकर शिकार खेलनेकी गया, दौड़ते हुए मृगकी देखकर राजाने मारथीकी कहा कि शीघ्र मेरे रथकी इसकी पीछे ले चलो। मारथी बोला, हे राजन् ! तुम इस मृगकी नहीं पकड़ सकते हो; यदि तुम्हारे रथमें बामी घोड़े जुते होतेतो आप पकड़ सकते तब राजाने सूतसे कहा, कि बतला बामी घोड़े कहा है ? नहीं तो मैं तुम्हें और खच्चरोंकी मारडालूंगा, राजाके ऐसे वचन सुनके सूत बरा और वामदेव ऋषिके शापसे डर कर कुछ न बोला। तब राजाने खड्ग उठाकर सूतसे कहा, कि जल्दी बतला नहीं तो मैं तुमको मारता हूँ। तब सूत घड़त डर कर बोले, हे महाराज ! वामदेव ऋषि के घोड़े, मनके समान चलनेवाले हैं। ऐसा सुन कर राजाने सूतसे कहा, वामदेव मुनिके आश्रम पर चल, ऋषिके आश्रमपर जाकर राजा ऋषिसे बोले, हे भगवन् ! मेरे राजमें विधा हुआ मृग भागा जाता है, आप मुझे घोड़े दीजिये, ऋषिने कहा अच्छा देता हूँ, परन्तु अपना काम करके शीघ्र मुझे लौटा देना। राजा ऋषिसे घोड़े लीके ऋषिके आश्रम पर उनकी रथमें जोड़ कर मृगकी मारने लगे, चलते चलते राजाने मनने कहा कि यह घोड़े समान हैं इस लिये ब्राह्मणके आश्रममें योग्य नहीं हैं, वामदेवकी यह आज्ञा नहीं देना चाहिये, ऐसा कह कर राजा पलट लिये और अपने नगरकी ओर चले गये। तब राजा विचार कि राजा युवा है। अपने नगर की ओर चले गये, तब राजाकी निम्न

पश्चात् अपने शिष्यको वामदेवने राजाके पास भेजा, वामदेवने कहा, हे आत्रेय । राजासे जाकर कहना, कि तुम्हारा कार्य सिद्ध हो गया, अब छोड़ देदो। आत्रेयने राजासे जाकर ऐसाही कहा। राजाने आत्रेयको उत्तर दिया, कि यह रत्नके समान छोड़ राजाके योग्य हैं, ब्राह्मणोंको छोड़ोसे क्या काम, चाप जाइये। आत्रेयने आकर वामदेवसे राजाके वचन कह दिये। राजाकी अप्रिय बातोंको सुनकर वामदेवको बड़ा क्रोध हुआ और आपही राजाके पास जाकर छोड़ो मांगे, पर राजाने न दिये। वामदेव बोले, हे राजन् । तुमने इन छोड़ोंसे अपना काम पूरा कर लिया, अब सुभी देदो, ब्राह्मण और क्षत्रियोंमें वहुत भेद है। वरुण तुमको अपने फांसीसे गलीमें न बांधे वैसा करो। राजा बोले, हे महर्षि वामदेव। ये वहुत सीधे और स्वरूपवान दोवैल ब्राह्मणोंकी सवारीके योग्य हैं, इन्हें तुम लेकर जहां इच्छा हो जाओ, ब्राह्मणको व्रत वेदाध्ययन है। वामदेव बोले, हे राजन् । वेदही हमारे मुख्य हैं, तीभी इस लोकमें यह मेरी सवारी है, इसलिये सुभी देदो। राजा बोले, हे वामदेव। मैं तुम्हे चार गधे देता हूं, उन पर चढ़कर जहां चाहो वहां जाओ, अथवा यह वायुके समान चालवाली खज्जरी लेलो, परन्तु यह दोनों घामो छोड़ क्षत्रियोंके योग्य हैं, इस लिये मेरे समझो। वामदेव बोले हे राजन् । यह ब्राह्मणोंकी घोर प्रतिज्ञा है, कि अपराधी क्षत्रियोंको जेल नहीं देते। इस लिये चार भयानक राक्षसोंको मैं आज्ञा देता हूं, कि वे तुम्हें त्रिगुल धारण करके मार डालेंगे। राजा बोले, हे वामदेव ! जो तुम्हें ब्राह्मण जानते हैं, उन सब पर वचनमें कभी नहीं मारते, अब मेरी आज्ञा मनुष्यवारी वीर शिष्य मर्दित तुम्हें मार डालेंगे। वामदेव बोले हे राजन् । यह जोड़ मेरे हैं, 'वामोऽपि हि दया' ऐसा उक्ति क्या कोई जानने से,

पर तुम जो जोना चाहते हो तो मेरे घोड़े मुझे दे दो। राजा बोले हे द्विज। ब्राह्मणोंकी शिखार खेलना नहीं होता, मैं असत्य वादीको दण्ड दूंगा और इसीसे मैं उत्तम लोक को प्राप्त होऊंगा। वामदेव बोले, हे राजन। ब्राह्मणोंको मन और वचन सेभी दण्ड नहीं दिया जाता। जो श्रेष्ठ विद्वान है, वही इस लोकमें जीते है।

श्री मार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन। वामदेवके ऐसे बोलतेही घोररूपी राक्षस हाथमें त्रिशूल लिये आकर राजाको मारने लगे। तब राजाने कहा, कि चाहे इच्छाकु वंशका नाश हो जाय, चाहे दल मारा जाय, तौभी वामदेवके घोड़े नहीं दूंगा। ऐसे कहतेही कहते राक्षसोंने राजाको मार डाला। इच्छाकुवंशियोंने राजा शलको मरा हुआ देख, उसके छोटे भाई दलको राज्यतिलक दिया, तब वामदेवने राज्यमें आकर कहा, कि ब्राह्मणोंका धन दे दो, क्योंकि यह सब धर्मोंमें लिखा है, कि ब्राह्मणोंका धन कभी नहीं रखना चाहिये, हे राजेन्द्र। यदि तुम अधर्मसे डरते हो तो मेरे घोड़े जलदो दे दो। वामदेवके वचन सुनके राजा दलन क्रोध करके स्तनसे कहा, कि मेरा विषसे मरा हुआ वाण ले आ जिससे बिंधकर वामदेव दुःखी होकर पृथ्वीमें गिर जाय। वामदेव बोले, हे राजा! मैं जानता हूँ कि तुमका दश वर्षका पुत्र है, वह तेरो पटरानीसे उत्पन्न हुआ है। श्रेष्ठ जित का नाम है, मेरे घोर वचनसे प्रेरित होकर इस घोर वाणोंसे अपने प्यासे पत्रक मार।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, वामदेवके ऐसे वचन सुनकर राजाने उस वाणको छोड़ा और उस वाणने रणवासमें जाकर उसके राजपुत्रको मार डाला। तब वह वज्रन क्रोध करके बोला हे इच्छाकुवंशिय राजगण। मैं तुम्हारे कल्याणके लिये अभी इस ब्राह्मणको मार डालता हूँ, मेरा महानेजस्वी दूसरा वाण लाओ और मेरे

पराक्रमको देखो। वामदेव बोले जो इस विषसे मुझे वाणको मेरे ऊपर चलाना चाहता है, इस लिये तू इस वाणको मेरे ऊपर नहीं चला सकेगा। राजा बोले, हे इच्छाकु वंशियो। तुम मुझे देखो कि मैं वाण नहीं चला सकता हूँ, अब यह ब्राह्मण वामदेव दीर्घआयुही जीता रहे। वामदेव बोले, हे राजेन्द्र। तू इस वाणसे अपनी स्त्रीको स्पर्शकर, तब तेरा कल्याण होगा। राजाने वैसाही किया, तब राजाकी पटरानी मुनिसे बोली कि हे वामदेव। प्रतिदिन इस निर्लज्ज पतिकी अच्छा उपदेश करती रहती थी। ब्राह्मणोंकी सेवाके वाहे कहती रहती थी, इस कारणसे मुझे उत्तम लोक प्राप्त हो। वामदेव बोले, हे सुलोचने। तूने दोनों राजकुलको पवित्र किया, जो तेरी इच्छा हो सो वर मांग, मैं तुम्हें दूंगा। हे राजपुत्री। तू अपने कुलके मनुष्योंकी और इच्छाकुकुलके राज्यकी रक्षा कर। रानी बोली, हे भगवन्। मैं यही वर मांगती हूँ कि मेरा पति पापसे छूट जाय। राजाका एत और भाइयोंके रक्षित कल्याण हो। हे ब्राह्मणोत्तम। मैं यही वर मांगती हूँ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, रानीके ऐसे वचन सुनके वामदेवने कहा ऐसीही हो। राजा दलभी वामदेवका वचन सुनकर प्रसन्न हुआ और वामीघोड़े देकर वामदेवकी प्रणाम किया।

ब्राह्मण साक्षात्पर और

१६२ अध्याय समाप्त।

वक्क इन्द्र सम्वाद ।

श्रीवैशम्पान मुनि बोले, हे राजन्। युधिष्ठिर ब्राह्मण और ऋषि लोग, फिर मार्कण्डेय मुनिसे पूछने लगे कि हे महामुनि। वक्की दीर्घ अवस्था क्यों हुई ?

श्रीमार्कण्डेय मुनि उन लोगोंसे कहने लगे, कि राजर्षि वक्त्र दोष आयु थे, इसमें कुछ मन्देह नहीं है। हे भारत ! ऐसा सुनके धर्म-राज युधिष्ठिर भाइयोंके सहित मार्कण्डेय मुनिसे पृच्छने लगे; हे भगवन ! वक्त्र और दालम्ब नामक महाया चिरजीवी सुने जाते हैं, वक्त्र दोनो राजर्षि इन्द्रके मित्र हैं। मैं यह सुनना चाहता हूं, कि राजा इन्द्रसे और इनसे कैसे समागम हुआ और उन्होंने कैसे सुख देख सके, आप मुझसे सब कहिये। श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, कि भयानक देवासुरसंग्रामके समाप्त होनेपर इन्द्र महाराज तीनो 'लोकोंके' स्वामी हुए, उस समयमें मेघ ठोक वरसते थे, प्रजा धर्मात्मा निरोग सुख और सम्पत्तिसे भरी थी। मय मनुष्य अपने धर्ममें स्थिर और प्रसन्न चित्तसे रहते थे। सब प्रजाको सुखी देखकर राजा इन्द्र प्रसन्न हुए, एक दिन ऐरावत हाथीपर चढ़कर प्रजाको देखनेके लिये चले। चित्र विचित्र आश्रम, नदी, नगर ऋद्धि मिद्धिसे भरे हुए देश प्रजापालनमें निष्णा राजा, वावड़ी, नगाव, पांखर और ब्राह्मणोंसे सेवित तीर्थोंकी दृष्टिसे पक्षीपर उतर। हे राजन् ! पूर्व-दिशमें मनोहर अनेक वृक्षोंसे पूरित समुद्रके रूपपर एक देश देखा, उसमें अनेक लृग और पक्षियोंमें पूर्ण एक मनोहर पवित्र आश्रममें वक्त्र रहते थे। इन्होंने महाराज इन्द्रकी देखकर बहुत प्रीति करी। अर्घपाद और आसन और लज्जी पूजा की। जब महाराज इन्द्र स्वर्ग चले गये, तब इन्द्रने वक्त्रसे प्रश्न किया है, 'इन्द्रदेव मुने' तुम्हारी अवस्थाकी एक लाख प्रश्न गये', मुन्नि कहो कि अधिक जीने-की मनाशांती का सुख होता है। वक्त्र बोले, विराट् विराट् उनके महान् वान जरना में, वक्त्र लीला नहीं, दूनेके मर-दूनेके मरना होता है, यही उनकी दृष्टि है। वक्त्र, पालन, और मित्रोंका नाम और

लोगोंके संग रहना इससे अधिक क्या दुःख होगा ? हे देवराज ! जगतमें धनहीन होकर रहना इससे अधिक दुःख नहीं है, दीर्घजीवी लोग कुलहीनोके कुलकी वृद्ध और बालोंके कुलका क्षय और अनेक प्रकारके संयोग वियोग देखते हैं । हे इन्द्र ! तुम इसको जानते हो, कि कुलहीनोंके कुलकी वृद्धि और नाश कैसे होती है । देवता, दानव गन्धर्ज, मनुष्य, यक्ष, राक्षस, और सर्पोंके नाशको देखना बहुत बड़ा भारी दुःख है ; अपने कुलमें उत्पन्न हुए अनेक मनुष्योंको दुःखी देखके छोटे कुलवालोंके वशमें हुआ देखकर धनाढ्योंको दरिद्र देखके किसी दुःख नहीं होता ? लोकमें वृद्ध ही विपरीत धर्म देखते हैं । ज्ञान रहित मनुष्य सुखी और विज्ञान दुःखी देख पड़ते हैं , हे देवेन्द्र । मनुष्य जन्ममें अनेक लेश और अनेक दुःख है । इन्द्र बोले, हे महाभाग ! हे ऋषियोंसे सेवित । आप सुझसे यह भी कहिये कि दीर्घ-जीवियोंको क्या सुख मिलते हैं । वह सुनि बोले, हे देवेन्द्र । हे भगवन ! कुमिठके आचर्य न करके दिनके आठवें या द्वादसवें भागमें जो अपने घरमें नाग पना खाते हैं अपने मित्रोंमें बैठते हैं इससे अधिक सुख क्या होगा ? क्योंकि उनमें बैठनेमें दिनको गिनती नहीं जान पड़ती है । जो अपने उलमें उत्पन्न हुए नागको अपने घरमें खाता है, उसके बगल कोई सुखी नहीं है और जो स्मरके आचर्यमें रहता है उसके बगल सुखी कोई नहीं है । अपने घरमें बैठ कर नाग और पत्नी खाना भी बहुत उत्तम है परन्तु हमारे घरमें उत्तम खाने जल्दा भी उत्तम नहीं है, मत्ता-पानी जल्दा है, जिसे पानेके घरमें उत्तम उत्तम खाने खाने होते हैं परन्तु भी वेगही है । हे देवेन्द्र ! यह सबकी स्फुट नान्द है । हमारे घर में सोया करेवालोंके मत्ता-पानी जल्दा है ।

उस पापी दुष्टकी धिक्कार है, जो अतिथि और पितरोंकी विना दिये खालीता है। जो मनुष्य अपने घरमें पितृ और अतिथिको देकर पवित्र अन्न खाते है, उनके बगबर कोई सुखी नहीं है। हे इन्द्र ! अपने अन्नको समान खादु और पवित्र और कोई अन्न नहीं है। जो गृहस्थ अपने घरमें अतिथिको देके भोजन करता है, वह अतिथि जितना ग्रास खाता है, उस गृहस्थकी उतनेही सहस्र गौदानका फल होता है और उसने जो पाप किया है, सो सब नष्ट हो जाता है। जो अतिथिको भोजन कराकर दक्षिणा देता है उसके सब पाप नष्ट हो जाते है, अतिथि जिस समय भोजन करके कुत्ता करते हैं, गृहस्थके सब पाप उसी समय नष्ट हो जाते हैं। हे युधिष्ठिर ! इन्द्रने वक् सुनिसे इस कथाको आदिसे लेकर अनेक उत्तम कथा कही सुनी, फिर उनकी आज्ञा लेकर स्वर्गको चले गये।

वक् इन्द्र सम्वाद और

१६३ अध्याय समाप्त ।

राजन्य माहात्म्य ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय ! महात्मा मार्कण्डेयके ऐसे वचन सुन पाण्डवोंने फिर प्रश्न किया, कि हे भगवन् ! हमने महाभाग ब्राह्मणोंके चरित्र सुने, अब आप महात्मा राजाओंके चरित्र कहिये। महा-ऋषि मार्कण्डेय बोले, कि अब आप लोग महात्मा राजाओंके चरित्र सुनिये। कुरुवंशमें एक सुहोत्र नामक राजा हुए थे, वे एकादन महर्षियोंके दर्शन करनेको गये उन्होंने मार्गमें बैठे हुए राजा उशीनरके पुत्र राजा शिविकी अपने आग खड़ा हुआ देखा। उन दोनोंने परस्पर अवस्था और गुणके अनुसार पूजा की। उन दोनोंने अपने-अपने दूसरेके समान पूजा, इस शिवे एकने

दूसरेको मार्ग न दिया; तब वहां भगवान नारद आये और कहने लगे, कि आप लोग एक दूसरेके मार्ग रोके क्यों खड़े हैं ? तब वे दोनों नारदसे कहने लगे, कि हे भगवन् ! पहले कर्म करनेवाले महात्माओंने कहा है, कि जो उत्तम हो अथवा समर्थ हो उसीकी मार्ग देना चाहिये और हम लोग परस्पर समभावान्न हो गये हैं; इस लिये विचारसे हमें जान नहीं पड़ता, कि कौन किसी मार्ग दे। उनके वचन सुन नारदने सुहोत्रकी सखोधन करके यह तीन श्लोक पढ़े, हे कौरव ! क्रूर कीमलसे क्रूरता, कीमल क्रूरसे कीमलता, साधु असाधुसे साधुता करते हैं और साधु साधुसे उत्तम कर्म क्यों नहीं कर सकते हैं ? देवतोंमें क्या यह नियम नहीं है, कि किये हुए कामके बदले सौगुना उपकार करे, अवश्य है। तुम दोनोंमें उशीनरके पुत्र शिवि साधु शीलवान है। मनुष्यको उचित है कि कृपणकी दानसे, भूँटेकी सत्यसे, दुष्टकी क्षमासे और काठोरकी सीधे कर्मसे जीते। तुम दोनों उदार हो; अब तुम लोगोंमें जो श्रेष्ठ हो, वह पहले चला जाय। ऐसा कह नारद चुप होगये। तब राजा सुहोत्रने उशीनरके पुत्र राजा शिविकी प्रदक्षिणा की और उनके वज्रत सुकर्मोंकी प्रशंसा कर मार्ग देके चले गये। हमने यह नारदका कहा हुआ राजन्यमाहात्म्य कहा।

१६४ अध्याय समाप्त ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन् युधिष्ठिर ! अब हम दूसरे राजाका चरित्र कहते हैं। महाराज नहुषके पुत्र महाराज ययाति हुए वे अपने राज-महिमामें पर अपने नगरनिवासियोंसे घिरके बैठे थे, उसी समय एक ब्राह्मण प्राया और कहने लगा, कि हे राजन् ! हम गुरुके लिए आपसे एक प्रति जातृपी भोग्य मंगते हैं, राजा बोले, कही क्या प्रतिज्ञा चाहते हो ?

ब्राह्मण बोले, हे राजन् । इस लोकमें भिक्षा मागनेसे वहुत शत्रुता होती है, सो हम आपसे पूछते हैं, कि आप हमारी प्यारी वस्तुको कैसे दीजियेगा ? राजा बोले, मैं जो वस्तु देता हूँ, और जो नहीं देना चाहता, उसको सुनता नहीं हूँ, जो वस्तु प्राप्त होने योग्य हो उसे सुनकर और देकर वहुत प्रसन्न होता हूँ, मैं तुम्हें एक हजार गौ दूँगा क्योंकि मुझे मागनेवाला ब्राह्मण वहुत प्रिय लगता है, मुझे मागनेवाले पर क्रोध कभी नहीं होता, जिस वस्तुको देता हूँ उसका सोच नहीं करता, ऐसा कह कर राजाने उस ब्राह्मणकी गौवं दे दिया ।

१६५ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन सुनि बोले, हे जनमेजय ।
ऐसा सुन फिर युधिष्ठिर बोले कि हे मार्कण्डेय !
आप हमसे फिर राजाओंके भाग्यका वर्णन
कीजिये । श्रीमार्कण्डेय सुनि बोले, हे महा-
राज । वृषदर्भ और सिंदुका नामक दो राजा
हूँ, वे दानोही नीति और अस्त्र जाननेवाले
थे, तिनमें राजा सिंदुकाकी यह छान हुआ, कि
राजा वृषदर्भ बात्यावस्थासे यह जानता है कि
ब्राह्मणकी सोनं और चादोके सिवाय कुछ
नहीं देना चाहिये । एकादिन एक वेदपाठी
ब्राह्मण राजा सिंदुकाके पास आया और आशी-
र्वाद देकर गुरुके निमित्त भिक्षा मागी ।
ब्राह्मण बोला, हे राजन् । आप हमकी एक
एक पांडे दीजिये । उनसे राजा सिंदुका बोले,
हमारी पांडे एतन्ना देनेकी तह्यै है, इस
लिए आप राजा वृषदर्भके पास जाइये, वह
राजा राजन धर्मके जाननेवाले और ब्राह्मणोंके
भावों, आप उनसे शिखा लिये, वह अवश्य
देगा, आपकी आज्ञा । अनंतर वह ब्राह्मण
राजा वृषदर्भके पास गया और उसने एतन्ना
देकर वापस आया और राजा सिंदुकाके पास
आकर उसने राजान के कहने पर पांडे
देकर वापस आया, कि इस निरपराध

सुभको क्यों मारते हो, अनन्तर उस ब्राह्मणने राजाकी शप देना चाहा; तब राजाने कहा हे विप्र ! जो अपना धन दूसरेको न दे उसको शप देना क्या ब्राह्मणका कर्म है। ब्राह्मण बोले, हे राजाधिराज। सुभको आपके पास राजा सिंदुकने भीख मागनेकी भेजा था, उनको आज्ञासे मैंने आपसे भीख मागो, राजा बोले, हे ब्राह्मण ! हमको आज जो कुछ करमें मिलेगा सो सब तुमको देदेंगे, जिसकी हमने कोड़िसे मारा है, उसको हम प्रसन्न क्यों न करेंगे ? ऐसा कहकर राजाने उस ब्राह्मणको एक दिनमें जितना धन प्राप्त किया सत्र दे दिया। वह धन एक सहस्र षोड़हेंसे अधिक था।

महाराज और एक इतिहास सुनिये। एक समय देवताने विचार किया कि हम लोग पृथ्वी पर चलकर राजा उशीनर के पुत्र शिविकी परीक्षा करें, ऐसे कहके अग्नि और इंद्र वहां आये अग्निने कबूतर का रूप धारण किया और स्वर्ग खाने की इच्छा करके इंद्र वाजका रूप धारण करके उसके पीछे दौड़े, कबूतर दिव्य सितावन पर बैठे हुए राजा की गोद में जा पड़े, तब पुरोहित राजा से बोले, कि हे राजन्! वाजके डरसे यह कबूतर रत्ना के लिये आपकी गोद में आपड़ा है आप इसे प्राणदान दीजिये, आप धन दान दीजिये, क्योंकि कबूतर का गिरना बहुत बुरा है। तब कबूतर राजा से बोला, कि हे राजन्! मैं वाजके डरसे प्राण रत्ना के लिये आपके पास आया हूं, मैं तुम्हारे कर्षि हूं, कबूतर जानने प्राण रत्ना के लिये आया हूं, आप ही मेरे प्राण हैं, मैं अब प्रत्यक्ष आप को देख रहा हूं, तब राजा, ईश्वरीय चित्तवाक्या, आश्चर्य तथा प्रश्न करने लगा कि मैं क्या करता हूं, वेदका स्वरूप मनुष्य के समान नहीं होता है, तब राजा ने कहा कि मैं तुम्हें प्राण दान देता हूं, तब कबूतर

बाजको मत दें, अपने अङ्गोंकी त्यागकर कवू-
तरके अङ्गोंमें प्राप्त होकर तुम्हारे पास प्राण
रक्षाके लिये आया हूँ, तब बाज राजासे बोला,
हे राजन् । संसारकी गति ऐसी है, कि कभी
कोई किसीका पुत्र और वही उसका पिता हो
जाता है, हो सकता है कि यह कवूतर पूर्व
सृष्टिमें तुम्हारा पिता था, अब तुम इसे अपना
पिता समझके मेरे भोजनमें चित्र मत करो ।
राजा बोले, ऐसी बात कवूतर और बाजका
बोलते हुए किसीने नहीं देखा था । यह दोनों
कौन हैं, इनको जानकर कोई काम करना
चाहिये, जो डरे हुए शरणागतको शत्रुकी
देता है, उसके राज्यमें वर्षा ऋतुमें जल नहीं
बरसता, बीया हुआ अन्न उत्पन्न नहीं होता,
समयके ऊपर यदि वह किसीसे रक्षा चाहे, तो
रक्षा नहीं मिलती है, उसके बालक थोड़ी ही
अवस्थामें मर जाते हैं, उसके माता पिता अधिक
नहीं जीते । जो डरे हुए शरणागतको
शत्रुकी देता है, उसकी पूजा देवता लोग ग्रहण
नहीं करते हैं, वह उदारता-रहित हो जाता
है, और उसका अन्न नष्ट हो जाता है, स्वर्ग-
लोकसे शोध पतित होता है, जो डरे हुए
शरणागतको शत्रुकी देता है, उसपर इन्द्रादिक
देवता वज्र मारते हैं । हे बाज ! मैं तुम्हीं
मांस और भात पकाकर खिलाजंगा पर इस
कवूतरका नहीं दूंगा । बाज बोला, हे राजन् !
मैं मांससहित भात खाना नहीं चाहता
और इस कवूतरसे अधिक मांस भी नहीं
चाहता, देवताने मेरे वास्ते आज यह भोजन
भेजा है, इस लिये इसे तुम मुझे दे दो, क्योंकि
और पक्षी नहीं मिलता है । राजा बोले, हे
बाज ! तुम बेल मुझसे लेजाओ परन्तु उस डरे
हुए दुबले पतले कवूतरकी मत मारो, हे बाज !
यह कवूतर समययुक्त ऋतुकी भाति प्रतिपालन
योग्य है, यह मुझे निश्चय बोध होता है । मैं
प्राणकी दे सकता हूँ, पर इस शुभ गुणयुक्त

कवूतरकी मत मारो, तुम जानते हो कि यह
कवूतर बड़ा सहाया है, तुम मुझे लेश मत
दो, हम कवूतर नहीं देंगे, जिस रीतिसे मेरी
शिविदेशके निवासो प्रशंसा करें वैसेही
तुमकी कहना चाहिये, कहीं मैं तुम्हारा
नया प्रिय कार्य करूँ ? बाज बोला हे राजा ।
इस कवूतरके बराबर अपनी दहिनी जङ्घाका
मांस सु तो दो, तो यह कवूतर कुं, शिविदेशो
तुम्हारी प्रशंसा करें और मेराभी प्रिय कार्य
हो । तब राजाने अपनी दहिनी जङ्घाका मांस
काटकर तराजूपर रखा, पर कवूतर भारी
हुआ । फिर और मांस काटकर चढ़ाया,
तौभी कवूतर भारी हुआ । ऐसीही राजाने
अपने सब शरीरका मांस काटकर चढ़ाया,
परन्तु कवूतर भारी हुआ, तब राजा आपही
तराजूपर बैठ गया, राजाका यह चरित्र बुरा
नहीं हुआ । राजाके इस वृत्तान्तको देखकर
'शिविराजसे कण्ठकी रक्षा हुई' ऐसा कहके
बाज अन्तर्धान हो गया । राजा कवूतरसे
बोले, कि शिविदेशवासी जानें कि तुम कौन हो
और बाज कौन था, क्योंकि ईश्वरके सिवाय
कोई ऐसा काम नहीं कर सकता, हे भगवन ।
आप मेरे प्रश्नका उत्तर दीजिये । कवूतर बोला, हे
राजन् । मैं धूमकेतु आगि हूँ और वज्रधारी इन्द्र
बाज है, हे सुरधाके पुत्र । हम तुम्हारे शीलकी
जाननेके लिये यहाँ आये थे, जो तुमने तल-
वारसे काटकर मेरे वास्ते मांस दिया है, यह
मैं तुम्हारे अंगका चिन्ह शुभ मनोहर बनाये
देता हूँ । यह सब सुवर्णका हो जायगा और
सुगन्धियुक्त होगा, तुम यशके साथ इन प्रजा-
ओंका पालन करो, देवता, ऋषि तुम्हारा
आदर करेंगे, तुम्हारे कटे हुए स्थानसे
कपातराज नामक पुत्र उत्पन्न होगा । कपातराज
वज्रत बड़ा तेजस्वी और तुम्हारे कुलका यग
बढानेवाला होगा ।

शिविचरित और १८६ अध्याय समाप्त ।

श्रीशैलसुताय नमः मुनि बोले, हे राजन् जनसे-
 य ! महाराज युधिष्ठिरने मार्कण्डेय मुनिसे
 फेर प्रश्न किया, कि आप हमसे फिर राजाओंका
 वरित्र कहिये । मार्कण्डेय मुनि बोले विश्वा-
 मित्रके पुत्र राजा अष्टककी अश्वमेध यज्ञमें
 उनके भाई प्रतर्दन वसुमना, और औशीनर आये
 थे । जब राजाका यज्ञ समाप्त हुआ, तब वे अपने
 भाइयोंके साथ रथ पर बैठ कर चले और
 मार्गमें आते हुए नारदकी प्रणाम करके बोले,
 कि हे भगवन् । आप इस रथ पर चढ़िये,
 नारद मुनि उनके वचन सुनकर रथपर चढ़े ।
 तब राजाके एक भाईने नारदसे कहा कि हे
 भगवन् ! मैं आपको प्रसन्न करके कुछ पूछना
 चाहता हूँ, नारद बोले पूछो । राजाके भाईने
 कहा, कि हम सब लोग आयु और शुभासे पूर्ण है
 भी उन्नत समय तक रहने योग्य स्वर्ग की जाते
 हैं ; सो आप कहिये कि हम सबमेंसे पहले
 पृथ्वीपर कौन गिरेगा ? नारद बोले पहले
 अष्टक गिरेगा । राजाके भाईने पूछा, इसका
 कारण क्या है ? नारद बोले, एक समय हम
 अष्टकके घरमें रहते थे, उसी समय एक दिन मैं
 और अष्टक रथमें बैठ कर घूमनेकी गये थे,
 पक्षी मैं एक सहज गी इकट्ठी देखकर अष्टकसे
 पूछा कि यह सहज गी कौनकी है, इन्हीन
 कथा, कि मेरी है और हमने इनका उत्तर्गकर
 छोड़ा दिया है । अष्टकने अपनी उन्नत प्रशंसा
 की, इसीलिये यह पहले स्वर्गसे गिरेगा ।
 राजाके भाई बोले, कि जा हम तीनों स्वर्गकी
 जायें तो पहले कौन गिरेगा ? नारद बोले कि
 मैं पहले प्रतर्दन गिरेगा, इसका वह कारण
 है कि मैं पहले इससे घर पर रहता था, एकदिन
 मैंने रथपर चढ़कर घूमने गया, तब एक
 पक्षी मेरा और उम्मे जाता, कि तुम अपने
 रथ पर चढ़ो, इसके पक्षी कि मैं घर पर लौट
 आऊँ तब तुमसे मिले दे दूँगा । तब राजा-
 के भाई बोले कि मैं भी दूँगा । तब इन्होंने दूर

घोड़ा दे दिया, इतने हीमें दूसरा ब्राह्मण घोड़ा
 मांगनेकी आगया, तब इन्होंने वायां घोड़ा भी
 दे दिया, उसी समय तीसरा घोड़ा मांगनेवाला
 एक और ब्राह्मण आया, उसी समय प्रतर्दनने
 तीसरा घोड़ा भी दे दिया ; उसी समय चौथा
 घोड़ा मांगनेवाला ब्राह्मणभी मिला, तब इसने
 कहा घर चल कर देंगे, उन्हीने कहा, कि
 अभी दो । तब इन्होंने वह घोड़ा भी उसकी
 दे दिया और हाथसे रथको खींचने लगा और
 कहा, कि अब हमारे पास कुछ नहीं है जो ब्राह्मण
 मांगेंगे । जो देकर अस्थायी करता है, वह स्वर्गसे
 गिराया जाता है । इसीसे यह पहले गिरेगा ।
 राजाके भाईने प्रश्न किया, कि यदि हम तीनों
 स्वर्गकी जायें तो पहले कौन गिरेगा । नारदने
 कहा, कि पहले वसुमना गिरेगा, उन्हीने कहा,
 कि क्यों ? नारदने कहा, कि मैं पहले समयमें
 घूमता हुआ वसुमनाके घरमें गया था । वसुना
 पुष्परथके वास्ते स्वस्तिवाचन हुआ । जब
 ब्राह्मण लोग स्वस्तिवाचन कर चुके, तब ब्राह्म-
 णोंकी गप्परथ दिखाया गया । मैंने उस रथकी
 प्रशंसा की, राजाने कहा हे भगवन् । मैंने
 रथकी प्रशंसा की, यह आपका ही रथ है ।
 फिर एक बार मैं रथकी प्रशंसा की राजाने घर
 गया, तब भी राजाने यही वचन कि आपका
 ही रथ है । तब मैंने तीसरी बार स्वस्ति
 वाचन किया तब राजाने ब्राह्मणोंके सम्मुख
 मैंने कहा कि आपने पुष्परथकी प्रशंसा अच्छी
 प्रशंसा की । इसी हेतु रथ प्रदान करनेके
 द्वारा प्रशंसा वचनके कारण यह पहले गिरेगा ।
 राजाका भाई बोला, इस रथपर चढ़के आपके
 रथ पर ही जा सकता है, सो तीन जायेंगे ।
 नारदने कहा कि शिवि जायेंगे और मैं उतरता
 हूँ । राजाने कहा, इससे क्या कारण है ?
 नारदने कहा, कि मैं गिरिजे सम्मुख हूँ ।
 यदि किसी ब्राह्मणने इससे कहा था कि मैं
 उतर सकता हूँ । तब ब्राह्मणने गिरिजे कर

महाराज ! कहिये मैं क्या कहूँ ? तब इनसे उस ब्राह्मणने कहा, हे राजन् । तुम्हारा बृहद्गर्भ नामक पुत्र है, उसे काटकर पकाओ, मैं भूखे बैठा हूँ, तब राजाने पुत्रको काटकर पकाया और थालीमें परसकर रखा तथा ब्राह्मणको खोजने लगे; जब राजा ब्राह्मणको खोजते थे तभी आकर किसीने राजासे कहा, कि वह ब्राह्मण तुम्हारे नगर, घर, धनके स्थान, शस्त्रके स्थान, घुड़शाल, और हाथीखानेको बड़े क्रोधसे जला रहा है, तब राजा शिविने नगरमें जाकर ब्राह्मणसे कहा, हे भगवन । अन्न तय्यार है; उस समय शिविके मुखका वर्ण वैसाही था; पर ब्राह्मणने लज्जासे शिर नीचे कर लिया और कुछ उत्तर न दिया। तब शिविने हाथ जोड़कर ब्राह्मणको प्रसन्न किया, कि महाराज । भोजन कीजिये, एक मूहूर्तके बाद ब्राह्मण राजा शिविसे बोला, हे राजन् । तुमही इसको खाओ; राजाने कहा, बड़त अच्छा । ऐसा कहकर ज्योंही मांस खानेकी उठाया, तभी ब्राह्मणने राजाका हाथ पकड़ लिया और बोला, हे राजन् । तुमने क्रोधको जीत लिया, ब्राह्मणके वास्ते तुम सब कुछ दे सकते हो । ऐसा कहकर ब्राह्मणने राजाकी पूजा की । राजाने आंख उठाकर देखा तो समस्त राजकुमार खड़ा है । उत्तम सुगन्धि लगाये हुए, उत्तम वस्त्र पहने लड़केको देखकर ब्राह्मण वहीं अन्तर्धान हो गया । नारद बोले, कि ब्रह्माने इस रीतिसे राजा शिविकी परीक्षा ली थी, उस ब्राह्मणके अन्तर्धान होनेपर मन्त्रीने राजासे पूछा, आपने क्या जानकर ऐसा किया था ? राजा शिवि बोले, कि हम इस कर्मकी यश, अर्थ और भोगकी इच्छासे नहीं करते हैं । हम केवल यह जानते हैं, कि इस कर्मकी पापी लोग नहीं कर सकते; इसी लिये करते हैं, परिणतलोग सदा अच्छा कर्म करते हैं, और हमारी बुद्धिभी सदा अच्छेही

कर्ममें लगती है, शिविके इस परम चरित्रके हमने तुमसे कहा ।

राजन्य सौभाग्य वर्णन और

१६७ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमे जय । समस्त ऋषियों और पाण्डवोंने मार्कण्डेय मुनिसे पूछा, कि आपसे अधिक जीनेवाला कोई है ? उन्होंने कहा, कि राजा इन्द्रयुम्न सुभसेभी अधिक जीनेवाले हैं । वे पुण्य नष्ट होनेसे जब स्वर्गसे गिराये गये, मेरे पास आये थे और कहा था, कि तुम हमको इन्द्रयुम्न जानो, तब हमने उनसे कहा कि हम सब गावोंमें केवल एकरात निवास करते हैं, और बराबर तपसे अपने शरीरकी सुखा देते हैं, इस लिये हम नहीं जानते हैं, कि यह कौन हैं । इन्द्रयुम्नने सुभसे कहा कि आपसेभी पुराना कोई और है ? मैंने कहा, सुभसेभी पुराना एक प्रावारकर्ण नामक उलूहिमाचलमें रहता है, वह सुभसेभी बूढ़ा है, तुम उसके पास जाओ, परन्तु वह हमसे बहुत दूर रहता है । तब वह इन्द्रयुम्न घोड़ा हो गया और मैं उसपर चढ़कर उसके पास गया । तब राजा इन्द्रयुम्नने उस उलूसे पूछा, कि तुम हमको जानते हो, तब उसने थोड़ी देर विचार कर कहा, कि हम तुमको नहीं जानते हैं; फिर राजर्षि इन्द्रयुम्नने उस उलूसे कहा, कि कही तुम्हारे पास कोई तुमसेभी ज्यादा बूढ़ा है ? तब उसने कहा, कि हमसेभी बूढ़ा नाडीजंघ नामक वक्त्रला है, वह इन्द्रयुम्न नामक तलावमें रहता है, सो हमसे बहुत बूढ़ा है, तुम उसके पास जाओ और उससे पूछो । तब इन्द्रयुम्न, मैं और वह उलू उस नाडीजंघ नामक वक्त्रलेके पास गये, तब हमलोगोंने उससे पूछा कि तुम राजा इन्द्रयुम्नको जानते हो ? उसने थोड़ी देर विचारकर कहा कि

हम राजा इन्द्रद्युम्नको नहीं जानते हैं, तब हमने उससे पूछा कि कोई तुमसे अधिक बड़ा भी है? उसने कहा कि इसी तालाबमें एक अकूपार नामक कछुआ रहता है, वह हमसे भी अधिक बड़ा है। तुम लोग उसकी पास जाकर पूछो कदाचित् वह तुमको जानता हो। तब उस वज्रुलीने हमलोगोंसे और उस कछुएसे परिचय करा दिया। हम लोगाने जाकर कहा, कि हम लोग तुमसे कुछ पूछनेको आये हैं, तुम बाहर आओ, ऐसा सुनकर कछुआ तलावसे बाहर निकला। जहाँ हम लोग खड़े थे, तलावके उसी किनारे आया। हम लोगोंने उसे आते देखकर पूछा, कि तुम राजा इन्द्रद्युम्नको जानते हो? उसने एक महर्त्त ध्यान करके आखोंमें आंसु भर कर उद्दिग्धचित्त होकर हाथ जोड़कर कापते हुए कहा, कि क्या मैं इन्हें नहीं जानता हूँ? इन्होंने हजार यज्ञ की थो, जो इन्होंने दक्षिणामें गौर्वें दी थीं, उस चक्रमणसेही यह तालाव बना है, जिसमें मैं रहता हूँ। जब यह कछुबेने कहा, इसकी सुनकर देवलोकसे रथ आया और शब्द हुआ, हे इन्द्रद्युम्न। तुम्हारे वास्ते स्वर्ग तैय्यार है, जहाँ चाही वहाँ जाओ तुम कीर्तिवाले हो, जहाँ इच्छा हो वहाँ जाओ, पुण्य कर्मका शब्द जयतक स्वर्ग और पृथ्वीपर रहता है, तबतक कर्म करनेवाला जोता है, जिस किसी प्राणीका अपयग जगतमें जयतक रहता है, तबतक वह देवलोकमें रहता है, इस कारणसे मनुष्योंकी इस उत्तम कर्म करना चाहिये और बुरे कर्मोंसे चित्तको हटाकर उत्तम कर्मोंमें लगाया चाहिये। इसकी सुनकर राजा बोले, मैं तुम वहाँ रहूँ, जब तक हम इन दोनों लोकों की इच्छा मान पर न पहुँचा आये। वह एक मुनि और प्रवारकन उन्नीकी स्थानों पर बैठ कर उसी रथ पर चढ़ कर अपने चतुर्दश भक्तों के साथ गये। हे पाण्डव! ऐसे नैन

चिरजीवितामें वृत्तान्त देखे हैं। पाण्डव बोले, आपने वज्रत अच्छा किया, जो स्वर्गसे गिरे राजा इन्द्रद्युम्नको फिर स्वर्गमें पहुँचाया। मार्कण्डेय ऋषि फिर पाण्डवोंसे कहने लगे, कि इसी रीतिसे देवकीनन्दन कृष्णने नरकमें पड़े हुए राजा नृगकी कष्टसे कुड़ाकर स्वर्गमें पहुँचाया था।

राजस्य माहात्म्य वर्णन और

१६८ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, राजा युधिष्ठिर राजा इन्द्रद्युम्नका वृत्तान्त महात्मा मार्कण्डेय मुनिसे सुनकर फिर उनसे पूछने लगे, हे मुनि! पुरुष कौनसी अवस्थामें दान देकर इन्द्रलोककी प्राप्त होता है। बालकपनमें वा युवा अवस्था वा गृहस्थाश्रममें जसे फल होता है, वह सब आप सुझासे कहिये। मार्कण्डेय मुनि बोले, चार मनुष्योंके दान दया है, पुत्रहीनका जन्म दया है, जो धर्मसे हीन है, उनका जीवन दया है, पराये घरमें जो खाता है जो अपने वास्ते पकाते हैं उनका भी जन्म दया है। धर्मसे पतित ब्राह्मणोंकी दान देना और चोरकी दान देना बुरा है, झूठ बोलनेवाले गुरुकी दान देना पापीकी और कृतघ्नकी दान देना ग्रामयाजक (जो नौग्रहादिकके पूजन कराते हैं), वेद वेचनेवालेकी, शूद्रोंके परोक्षितकी दान देना बुरा है। ब्राह्मणोंमें जो नीच है, उनकी दान देना, जिन्होंने वैश्या रखी हैं उनको दान देना, स्त्रियोंकी दान देना मपेरीकों दान देना, नौकरोंकी दान देना, वह सोलह दान दया है। जो पशुपक्ष, भयसे वा शोधसे दान को देता है, वह उसका फल गर्भमन्त्र होकर प्राप्त होता है। अन्य कोई गृहित दान दितान्त्रियोंकी देनेसे उसका फल दाना हवावन्दाने भोगना है। इन्द्रास्त्री मन्त्र पदमन्त्रादिमें ब्राह्मणोंकी दान दानकी इच्छासे देना चाहिये। राजा युधि-

छिर बोले, चारों वर्णोंके दाग देनेमें कौन विशेषतासे मनुष्य तरते हैं? मार्कण्डेय मुनि बोले, जप, मन्त्र, होम और वेद-पाठसे मनुष्य तरता और तारता है, जो मनुष्य ब्राह्मणोंको प्रसन्न करते हैं, उनसे सब देवता प्रसन्न होते हैं, ब्राह्मणोंके वचनसे स्वर्ग प्राप्त होता है, पितर और देवताओंकी पूजासे और ब्राह्मणोंकी सेवासे तुमको अक्षय पुण्यलोक प्राप्त होगी, इसमें कुछ सन्देह नहीं है, जिसको स्वर्गमें जानेकी इच्छा हो, उसे चाहिये, कि जब कफसे कण्ठ घिर जाय और चेतनारहित हो जाय तब ब्राह्मणोंकी पूजा करे। आइके समयमें बुरे वर्णवाले, बुरे नाखूनवाले, कुष्ठरोगी, छली, कपटी, कुण्ड (जो स्त्रीके पाँत रहते हुए और से उत्तपन्न हुआ है) और गोलक (जो विधवा जारसे पुत्र उत्पन्न करे) तथा जो ब्राह्मणोंके जीविका करता हो, उनकी आज्ञासे भोजन न कराना चाहिये। जो आज्ञा निन्दित होता है, वह करनेवालेकी अग्निसे समान भस्म करता है, आज्ञासे गूंगी, अन्धे, आदिक वृद्धा जो आते हैं, उन्हें वेदपाठों ब्राह्मणोंके संग भोजन न कराना, और दानभी न देना चाहिये, हे युधिष्ठिर। जो शक्तिमान वेद जाननेवाले ब्राह्मण हों; उनकी दान देना चाहिये, वही दाताको तारते हैं, और अपनाभी निस्तार करते हैं, जैसे पुण्य अतिथिको भोजन करानेसे होता है, वैसा होम करनेसे, स्नान करनेसे, अग्निहोत्र करनेसेभी नहीं होता है। हे युधिष्ठिर। इस कारणसे अतिथिको भोजन करानेमें तुम सदा यत्न करो, अतिथिको जो स्थान, भोजन, जल और घी देते हैं, वह यमराजके यहां नहीं जाते हैं। देवताका स्थान स्वच्छ करने, ब्राह्मणोंके जूठ उठाने, शरीर दवाने और गन्धादि लगानेसे जो पुण्य होता है, वह गोदानसेभी अधिक होता है, कपिला गौके दान सब गौ-दानोंसे अधिक है, इसवास्ते कपिलाको आभूषण पह-

नाकर ब्राह्मणको देना चाहिये। वेदपाठों दरिद्र, गृहस्थ, अग्निहोत्र करनेवाले, तथा उपकारी ब्राह्मणोंको दान देना चाहिये, भारत! ऐसीको दान देना चाहिये। धनवानको धनदान न करे, धनवानको दान देनेमें कोई भी फल नहीं होता है। एक गौ एक हीको दान देनी चाहिये अनेकको नहीं यदि दान की हुई गौ पुनः दी जाती है, तब वह कुलके तीन पुरुषोंको नाश करती है दान देनेवालीका और ब्राह्मण दोनों निस्तार नहीं करती। जो अस्सीरत्नी पारामा शुद्ध सुवर्णका दान करता है, उसको सौ सुवर्णके मुद्रा दान करनेका फल होता है। जब बलवान धूरमें लगान योग्य बैलको दान करता है, वह दुःखोंको तरके स्वर्गलोकको जाता है जो पाण्डित ब्राह्मणको पृथ्वी दान देता है उसके पीछे सब कामना पूरी होती है और जगतके मनुष्य उसका यश गाते हैं। मार्ग चलते चलते जिनके शरीर थक गये हैं, पथ पर धूल चढ़ गई हो उन थके हुएको जो अन्न देनेको कहता है उसको भी अन्न देनेके समान फल होता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं, इस वास्ते तुम अन्न दानही करो। जो पका हुआ अन्न ब्राह्मणको देता है उसके समान फल जगतमें कोई नहीं पाता है। अन्नही सब जगतमें उत्तम है उससे अधिक कोई दस्त नहीं। अन्नको प्रजापात और समुत्सर कहते हैं, समुत्सर का अर्थ यज्ञ है और यज्ञही सब जगत स्थिर है। इसवास्ते सब चराचरके जीव धारण करनेवाला अन्न है अन्तसे उत्तम कोई पदार्थ नहीं है। जो लोग बाघों, तलाव, कूवे और धर्मशाला बनवाते हैं अन्न दान करते हैं और सींठी वाणी बोलते हैं, वे शमनवाक्य नहीं सुनते। बड़े पारिवर्त्मसे उत्पन्न किया अन्न और इकट्ठा किया धन जो सुशील ब्राह्मणोंको देता है, उसको सम्पूर्ण

युधिष्ठिर बोले, हे सुनि । मैं बारम्बार धर्म
सम्बन्धी पवित्र कथा सुनना चाहता हूँ । मार्क-
ण्डेय सुनि गेले, हे राजा । मैं चार भी धर्म
कथा कहता हूँ, जो सब पापोंका नाश करती
हैं । तुम चित्त लगा कर उसे सुनो । जो
पुष्करमें कापला गो दान करेगा उसका फल होता
है वही फल ब्राह्मणोंके घर धर्ममें होता
है । जबतक ब्राह्मणोंके घरोंमें धर्म
पूछी भोगी रहती है, तब तक पितर लोग
समस्तके पक्षमें जल पीने में ब्राह्मणोंका आदर
करते हैं, प्रसन्न होते हैं, आत्म देनेमें
प्रमाणित प्रसन्न होते हैं, जबतक ब्राह्मणोंके घर
मांस खिच दी जाती है, उसका स्वाद भी ब्राह्मणों-
को दान देनेवालोंमें से बुरा माना जाता है, ब्राह्मणों

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् ! बड़े पापधर्मोंमें आकर राजा युधिष्ठिर भाइयाके सहित मार्कण्डेय मुनिसे फिर पूछने लगे, कि हे महामुनि ! मनुष्य लोकसे यमलोक कितनी दूर है, उसका कैसा मार्ग है और उसको पुत्रप किस उपायसे तर सकता है । मार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन् ! हे धर्म करनेवाला मैं येष्ट ! यह प्रश्न सबसे गुप्त और प्रावत्र है और ऋषि लोग इसका आदर करते हैं । मैं इसको तुमसे वर्णन करता हूँ । हे नरनाथ ! मनुष्य लोकसे शियासी हजार योजन यमलोक है । वहाँ आकाश शून्य है । वह मार्ग जलरहित है , घोर वनसे भरा है , उस मार्गमें न छाया न वृक्ष है जहाँ बैठकर मनुष्य अपनी थकाई उतार । यमको आज्ञानुसार दूत बलसे मनुष्याका खाचते हैं । मनुष्य, स्त्री, और पक्षा आदि सब प्राणी वहाँ दुःखी होते हैं । जन्तुओं का बाढ़ी दान दिया है , वे सुखसे मरते हैं , जन्तुओं को दान किया है , उनका पहा जाता मिश्रता है । जन्तुओं अन्न दान किया है वे भूखसे व्याकुल नहीं होते और जन्तुओं को दान नहीं किया वे भूखसे व्याकुल होते हैं । बल देनपाल बस्त्र पहन कर और गौरव बस्तु नहीं दान दिया , वे नंगे जाते हैं । गरीब देनपाल भानूपण पहरे हुए जाते हैं । गरीब देनपाल मन सुखासे पूरित होकर भक्त देनपाल हीरहरित और घरके देनपाल पर चटक जाते हैं । बलके देनपाल भक्ति और ध्यानरहित जाते हैं । गरीब देनपाल जीवनमार्गकी प्रज्ञा के बिना चलते हैं । गरीब देनपाल

और उसी समय गौदान करनेसे महादान करनेका पुण्य होता है, हे युधिष्ठिर ! उत्पन्न होनेवाले बछड़ा और गौके जितने रोम हैं उतने हजार वर्षतक देनेवाला स्वर्गमें निवास करता है। जो सुवर्णमें नाक और खुर मढ़कर गौकी तिलसे लादकर तथा सुवर्णके आभूषण पहराकर दान करता है, वह स्वर्गको जाता है। जो ब्राह्मण दान लेकर किसी महात्माको दे देता है, उसकी सम्पूर्ण पृथ्वी दान करनेका फल प्राप्त होता है। जो ब्राह्मण जांघोंके बीचमें हाथ रखकर चुपचाप भोजन करता है, वह यजमानकी तारनेमें समर्थ है, जो अपेय वस्तुओंको नहीं पीते हैं; जो वेदका पाठ नित्य करते हैं, वही ब्राह्मण तारने योग्य है; हव्य कव्य सबकी ब्राह्मण लेनेके योग्य हैं, जो दान महात्मा ब्राह्मणको दिया जाता है, वह ऐसा होता है, जैसा जलती हुई अग्निमें होम करना। क्रोधही ब्राह्मणका शस्त्र है; ब्राह्मण शस्त्रसे नहीं लड़ते हैं, जिसपर क्रोध करते हैं, उसको ऐसा नाशकर देते हैं, जैसा इन्द्र वज्रसे राक्षसोंको मारते हैं, हे पाप-रहित युधिष्ठिर ! मैंने तुमसे यह धर्मकी कथा कही। इस कथाको सुन कर नैमिषारण्यके तपस्वी प्रसन्न हुए थे, हे राजन् । इस कथाको सुननेवाले मनुष्य शोक, भय, और पापसे रहित हो जाते हैं ।

युधिष्ठिर बोले, हे धर्म जाननेवालोंमें श्रेष्ठ ! कौनसे कर्मसे ब्राह्मण सदा पवित्र रह सकता है, मैं उसे सुननेकी इच्छा रखता हूँ। मार्कण्डेय मुनि बोले, पवित्रता तीन प्रकारकी है, वचनकी, कर्मकी और जलकी। जो इन तीनों पवित्रताओंसे युक्त रहता है, वही स्वर्गको जाता है, जा प्रातःकाल और सायंकालकी सन्ध्यामें गायत्रीकी जपते हुए उपासना करते हैं, वे पापरहित और पवित्र हो जाते हैं, वह चाहे सम्पूर्ण पृथ्वीका दान लेले भी उसे कुछ दोष

नहीं है, यदि सूर्यादिक आकाशके ग्रह बुरी दृष्टि रखते हों, तो वहभी कल्याणकारी होजाते हैं, जितने मासभरकी घोर जन्तु हैं, वह कोई भी उसे दुःख नहीं दे सकते हैं, वेद पढ़ने या दान लेने और यज्ञ करानेसे ब्राह्मणोंकी कुछभी दोष नहीं होता, क्योंकि ब्राह्मण जलती अग्निसे समान हैं, चाहे अच्छी तरह वेद पढ़ें हों वा न पढ़ें हों, चाहे प्राकृतही पढ़ें हों वा संस्कृत पढ़ें हों उनका अपमान न करना चाहिये, क्योंकि वे राखसे ढंपी हुई अग्निसे समान हैं, जैसे मर्घटमें जलनेसे अग्निकी दोष नहीं लगता ऐसीही ब्राह्मणकी विद्या न पढ़नेसे दोष नहीं लगता है, नगर चाहे छाड़दिवारी, द्वार, अटारी आदिसे कैसाभी शोभायमान क्यों न हो, पर ब्राह्मणके बिना उसकी शोभा नहीं होती। वेदकी जाननेवाली ज्ञानी, तपस्वी, ब्राह्मण जहा रहते हैं, उसीका नाम नगर है। हे राजन् ! गावमें अथवा जङ्गलमें जहा ब्राह्मण रहते हैं उसीको नगर कहते हैं, और वही तीर्थभी माना जाता है, रक्षा करने वाला राजा और तपस्वी ब्राह्मणकी नमस्कार करके मनुष्य पापोंसे छूट जाता है। पवित्र तीर्थोंमें स्नान करना पवित्र लोगोंका नाम लेना और सज्जनोंसे बातचीत करनाही उत्तम कर्म कहाता है, सज्जनोंके सङ्गसे और मीठी वाणीसे जिन्होंने अपने आत्माकी पवित्र किया है, उन्हींको पवित्र कहते हैं; तीन दण्डका धारण करना, जटा बढ़ाना, सिरमुड़वाना मौनी होना, छाल पहनना, मृगचर्म पहनना, व्रत करना, स्नान करना, अग्निहोत्र करना, वनमें रहना और शरीरकी सुखाना, यदि भाव शुद्ध न हों तो सबही मिथ्या है। हे राजन् ! विषय विशुद्धिके बिना इन नेत्र आदि छः इन्द्रियोंका रोकना कठिन नहीं है, किन्तु अनुपभोगरूप अमृतत्वही दुष्कर है, उनमें सबका विकार देनेवाले मनको रोकना

वृद्धतही काठिन है। जो मन वृद्धि और कर्मसे पाप नहीं करते, वही तपस्वी है, शरीरको सुखानवाले तपस्वी नहीं हैं। जिनको अपने जाति-वालों पर दया नहीं है; उसे कुटुम्ब पालनसे धर्म नहीं होता है वह केवल हिंसा करता है। ससारत्यागी जाना तप नहीं कहलाता है, जो घरमें रहकर पवित्र रहता है, वही मुनि है, सम्पूर्ण जीवों पर दया करनेहोसे सब पापोंसे छूट जाता है, पापकर्म अन्न न खानसे नहीं छूटते अन्नके न खानसे केवल मांस और इड्डीका पिञ्जरा शरीरही दुःख पाता है। अज्ञानसे कर्म करनेका केवल क्लेशही फल होता है, किन्तु पापका नाश नहीं होता है; पुण्य करनेहोसे मनुष्य शुद्ध होता है। धनके त्यागनेसे फल मूल और वायुके खानसे भयवा मौन धारणसे शुद्ध नहीं होता है। न गिर सुड़ानसे न कुटोमें रहनेसे, न जटा बढ़ानेसे न काटा पर सानसे, न अन्न त्याग करनेसे, न अग्निहोत्र करनेसे, न जलमें डूबनेसे और न पृथ्वी पर सानसे धर्म होता है, क्योंकि विना ज्ञानमें और उत्तम कर्म करनेसे मनुष्य जरा भरण और व्याधियोंसे छूटकर उत्तम गतिकी प्राप्ति नहीं होता है। जैसे अग्निमें जला बीज फिर उत्पन्न नहीं होता, ऐसाही ज्ञानसे जले रूप होश फिर आत्मा नहीं आते हैं, जीवसे उठे हुए होश ऐसे नाश हो जाते हैं, जैसे सुसुद्रसे पत्ता झाँककर समुद्रफेन मिट जाता है। जिससे अज्ञान ही उस एक श्लोक वा आधे श्लोककी उत्तम समझना चाहिये। कोई दो श्लोकों का अथवा एक चरणसे कोई सौ श्लोकों और कोई हजारश्लोकोंसे मोक्षका उपाय समझते हैं। ज्ञानके जाननेवाले वृद्ध कहते हैं, कि निश्चयी मोक्षका लक्षण यह है कि जिससे उसने इस लोक और परलोक का नाश हो जाता है। वेद पढ़नेका उपाय नहीं है, ज्ञानी लोग

बेदसे ऐसा डरते हैं, जैसे अग्निसे मनुष्य डरते हैं। हे राजन्। तुम सुखे तर्काको त्याग कर श्रुति और स्मृतिकी धारण करो। एक अक्षय ब्रह्महीका तर्कोंसे सिद्ध करके धारण करो। जिसके साधन उलटे हैं, उसको बुद्धि कभी ठोक नहीं खाती। पहले यज्ञ पूर्वक वेदकी पढ़ना, वेद ब्रह्मका स्वरूप है, वेदही तत्व है, उसके जाननेसे जीवको ब्रह्मज्ञान होता है। वेदमें लिखा है आशीर्वाद और कर्म तथा प्राणियोंका प्रभाव ये सब युगके अनुसार फल देते हैं। इन्द्रियाकी निर्मलता और इन्द्रियाका रोकना अनाहारदिव्यव्रत कहलाता है। अन्नका त्यागना नहीं; इसलिये इन्द्रियोंका रोकना चाहिये। तपसे स्वर्ग मिलता है, दानसे भोग मिलता है, ज्ञानसे मोक्ष मिलता है, और तोर्यज्ञानसे पाप छूटता है।

श्रीवैशम्पायन मुनि वाले, हे राजन्! महा तेजस्वी राजा युधिष्ठिर मार्कण्डेय मुनिसे वाले, हे महाराज। आप मुझसे दानकी उत्तम विधि कहिये। मार्कण्डेय मुनि वाले, हे राजेन्द्र युधिष्ठिर! जा तुम मुझसे दानधर्मकी विधि पछते हो, सो मुझे भी प्यारा है। हे राजन्! श्रुति और स्मृतिमें लिखा दानका सार है, सो मैं कहता हूँ सुना। हे युधिष्ठिर! पीपलकी छायामें वा जहाँ पीपलकी हवा आती हो, वहाँ आश्रय करनेसे इस कल्पतक नष्ट नहीं होता, जा मनुष्य धर्मशाला बनवाकर और उमंग अन्न आदि भरवाकर दान करता है, उसका सब यशोंका फल होता है; जा नदीमें नरने वा रथमें जातनेवाले घोड़े दान करता है, वह महा पापोंसे उठ जाता है। जो ग्रहण पूर्णमासी और अमावस्यका दान करता है, उसे अक्षय फल प्राप्त होता है, पदेन पदेन दान करनेसे दूना घर में सुखीपन दान करनेसे दस गुना फल पाता है अन्न और दान तथा तुल्यका दान करनेसे दस गुना फल पाता है।

संक्रान्तिमें दान करनेसे कियासो गुणा और वष विशेषमें दान करनेसे सौगुणा अधिक फल होता है। जा सूर्य और चन्द्रमाके ग्रहणमें दान देता है, उसको अक्षय फला होता है; ऋतुमें दान करनेसे दस गुणा, अयनमें सौ गुणा, ग्रहणमें सहस्र गुणा, मेष और तुलाकी संक्रान्तिमें अनन्त फल होता है। भूमिके देनेवाले भूमिको नहीं पाते हैं, वाहनके देनेवाले वाहन पर चढ़कर नहीं जाते हैं, किंतु जो जो वस्तु ब्राह्मणोंको देता है, वह दूसरे जन्ममें पाता है; अग्निकी सन्तान सुवर्ण है, विष्णुकी सन्तान पृथ्वी और सूर्यको सन्तान गौ है, जा सुवर्ण, गौ और पृथ्वी दान करता है, उसको तीनों लोक दान करनेका फल प्राप्त होता है, तीनों लोकसे दानसे बढ़कर कल्याण करनेवाला कोई धर्म नहीं है, इसलिये विमल बुद्धिवाले दानहोको संसारमें प्रधात मानते हैं।

२६६ अध्याय समाप्त ।

भारकण्डेय समस्या प्रकरण ।

श्रीवैशम्पायन मुनिबोले, हे राजन् ! महा-राज युधिष्ठिर राजर्षि इन्द्रयुम्नकी कथा महा-भाग मार्कण्डेय मुनिसे सुनके तपोवृद्ध निष्पाप दोषायु मार्कण्डेयसे पूछने लगे, हे धर्मज्ञ । आप देवता, दानव, राक्षस, राजवंश, और ऋषिवंशको जानते हैं, हे द्विजात्तम । इस संसारमें आपसे कुछ छिपा नहीं है। हे मुने । आप सर्प, मनुष्य, राक्षस गन्धर्व, अप्सरा, देव यक्ष और किन्नरोंको दिव्य कथाको जानते हैं, हे द्विजात्तम । मैं प्रसिद्ध इच्छाकुवशी राजा कुवल्या-श्वकी उस कथाको ठीक ठीक सुनना चाहता हूँ, जिससे वह धुम्भुमार नामको प्राप्त हुए थे । हे भृगुवर्णिगोम उत्तम ! कुवल्याश्वका यह उलटा नाम कैसे हुआ आप मुझसे कहिये ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् । युधि-ष्ठिरके ऐत वचन सुनके महामुनि मार्कण्डेयने

धुम्भुमारकी कथाको आरम्भ किया । श्रीमाके-ण्डेय मुनि बोले, हे राजन् युधिष्ठिर । मैं तुमसे धर्म भरो राजा धुम्भुमारकी कथा कहता हूँ, तुम सुनो । जैसे इच्छाकुकुलमें उत्पन्न हुए राजा कुवल्याश्व धुम्भुमार नामको प्राप्त हुआ था, वह कथा तुम सुनो । हे कौरव ! हे भारत ! महर्षि उत्तङ्ग एक प्रसिद्ध ऋषि थे, उनका आश्रम किसी रमणीय समृद्ध भूमि देशमें था । हे राजन् । उत्तङ्गने विष्णुको प्रसन्न करनेकी इच्छासे अनेक वर्षतक धीर तप किया । उत्तङ्गसे प्रसन्न होकर विष्णुने साक्षात् दर्शन दिये । विष्णु भगवानको देखकर उत्तङ्गने अनेक प्रकारकी स्तुति करो । उत्तङ्ग मुनि बोले, हे देव । तुमनेही देवता दैत्य मनुष्यो संहित सम्पूर्ण प्रजाको तथा अचर और चर जगत्को बनाया है, तुमने ब्रह्मा और वेदको रचा, है, है महा प्रकाशयुक्त देव । आकाश तुम्हारा सिर, सूर्य और चन्द्रमा तुम्हारे नेत्र, वायु श्वास और अग्नि तेज है, हे अच्युत । सम्पूर्ण दिशा तुम्हारा हाथ और समुद्र कोख है, हे मधुसूदन । पर्वत तुम्हारी पिण्डरी और अन्तरीक्ष जङ्घा है; देवो पृथ्वी तुम्हारे चरण और औषधि तुम्हारे रीम है; हे देव । इन्द्र, चन्द्रमा, अग्नि, देवता, असुर और नाग लोग सम्पूर्ण तुम्हारी स्तुति करते हैं, हे जगत्पते । तुम सब प्राणियोंमें व्यापक हो । महापराक्रमी यागी तथा महर्षि लोग तुम्हारी स्तुति करते हैं, हे पुरुषोत्तम । तुम्हारे प्रसन्न रहनेसे जगत्में प्रसन्नता रहती है, और तुम्हारे क्रोध करनेसे जगत्में भय फैल जाता है, तुमही एक जगत्के भयनाश करनेवाले हो । तुमही देवता और मनुष्योंके सुख देनेवाले हो, तुमहीने तीनों पंरसे तीनों लोकोंकी कीनाया, बढ़े हुए दैत्योका तुम्हींनाश किया था, तुम्हारेही प्रतापसे देवताओंकी परम पद मिला है, हे महाशोभायमान देव । तुम्हारेही ब्राह्मणसे दैत्योकी पराजय हुई, तुमही मय

प्राणियोंके कर्त्ता और हर्ता ही, तुम्हारी आराधनासे देवताके सुखकी वृद्धि होती है। हे राजन्! इस प्रकारसे महात्मा उत्तङ्गकी स्तुतिको सुनकर विष्णु भगवान् उत्तङ्गसे बोले, हे उत्तङ्ग! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ, तुम वर मांगो। उत्तङ्ग बोले, हे महाराज! मुझे आपके दर्शन हुए, इसीसे सब वर प्राप्त हो गया। तुमही मनातन पुरुष और जगतके रचनेवाले हो। विष्णु बोले, हे विजयसत्तम। मैं तेरे धीरे स्वभावसे प्रसन्न हुआ। तुम मुझसे अवश्य वर मांगो। हे राजन्! विष्णुके ऐसे वचन सुनके उत्तङ्गने शाय जाड़कर वर मांगा। उत्तङ्ग बोले, हे यागवन। हे कमलनयन। यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं, तो यही वर दोजिये, एक मेरी बुद्धि महा धर्म, सत्य, और दान्ति याँकी जीतनेमें लगे। हे आर आपकी भाँतिमें सदा अभ्यास रहूँ। भगवान् विष्णु बोले, हे ब्राह्मण। मेरी कृपासे उसकी हागा, वह यागमी तुम्हें प्राप्त हागा, जिस देवतालाग जानते हैं, इस यागके प्रतापसे उन सत्कारका महा कार्य करागे, हे ब्राह्मण! भूमर नामक असुर संसारका नाश करनेका महा तप करेगा, इच्छाक कुलमें महा पराक्रमी वृहदश्व राजा हागा, उसका पुत्र शुद्ध आर राजा कुवल्याश्व नामका हागा। कुवल्याश्व यागयाग पारावन करेगा, फिर तुम्हारे धर्मके पक्ष में पुमार हागा। हे राजन् युधिष्ठिर! इतना कहकर विष्णु वही पन्तडान चलाये।

पुष्करपाख्यानमें

रत्न सभाय समाप्त।

राजा विष्णु बोले, हे राजन् युधिष्ठिर! मैं तेरे धीरे स्वभावसे प्रसन्न हुआ। तुम मुझसे अवश्य वर मांगो। हे राजन्! विष्णुके ऐसे वचन सुनके उत्तङ्गने शाय जाड़कर वर मांगा। उत्तङ्ग बोले, हे यागवन। हे कमलनयन। यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं, तो यही वर दोजिये, एक मेरी बुद्धि महा धर्म, सत्य, और दान्ति याँकी जीतनेमें लगे। हे आर आपकी भाँतिमें सदा अभ्यास रहूँ। भगवान् विष्णु बोले, हे ब्राह्मण। मेरी कृपासे उसकी हागा, वह यागमी तुम्हें प्राप्त हागा, जिस देवतालाग जानते हैं, इस यागके प्रतापसे उन सत्कारका महा कार्य करागे, हे ब्राह्मण! भूमर नामक असुर संसारका नाश करनेका महा तप करेगा, इच्छाक कुलमें महा पराक्रमी वृहदश्व राजा हागा, उसका पुत्र शुद्ध आर राजा कुवल्याश्व नामका हागा। कुवल्याश्व यागयाग पारावन करेगा, फिर तुम्हारे धर्मके पक्ष में पुमार हागा। हे राजन् युधिष्ठिर! इतना कहकर विष्णु वही पन्तडान चलाये।

आव हुए। हे युधिष्ठिर। आवहीने आवस्ती नगरी वसायी है, राजा आवके पुत्र वृहदश्व और वृहदश्वके कुवल्याश्व पुत्र हुए; राजा कुवल्याश्वके इक्कोस हजार पुत्र उत्पन्न हुए। सब पुत्र विद्या पढ़े हुए और बलवान् जीतनेमें अयोग्य थे, समय प्राप्त होनेपर राजा वृहदश्वने अपने पुत्र कुवल्याश्वकी शूर और धार्मिक समझके राज्य दे दिया। राजा वृहदश्व अपने पुत्रकी राज्य देकर तप करनेकी इच्छासे वनको चले गये। मार्कण्डेय मुनि बोले, हे नरनाथ युधिष्ठिर। राजा वृहदश्वकी वनमें जाता हुआ सुनके ब्राह्मणोंमें उत्तम उत्तङ्गने निवारण किया। उत्तङ्गने कहा, हे शस्त्र जाननेवालोंमें श्रेष्ठ नरोत्तम। आप प्रजाकी रक्षा कीजिये; आपकी रक्षासे हमलोग निर्भय रहते हैं, हे राजन्! तुम्हारी रक्षासे पृथ्वी निर्भय रहती है, इसलिये तुम वनकी जानके योग्य नहीं हो, प्रजाकी रक्षा करनेमें जैसा महा धर्म है, वैसा वनके जानने नहीं है, तुम अपनी बुद्धि को विपरीत मत करो। हे राजन्! प्रजापालन धर्मकी पहली राजालोग करते आये हैं, तुम उसीकी करो राजाकी प्रजाकी रक्षा करनी चाहिये। हमलाग उत्तम होकर तप नहीं कर सकते हैं। हे राजन्! मेरे आचमके समीप मारवाड़ देशमें समुद्रकी वानुकासे एक उच्छालक नाम तीर्थ है, जो बहुत बड़ा है, लम्बा और चौड़ा है, वहीं पर महा भयानक महा पराक्रमी मधु देवका पुत्र धन्व नामक देव भूमिमें भोतर रहता है। हे राजन्! उसकी मारकर तुम जंगलकी जाना; वह राजा ममारकी नाग परने और देवताकी शक्तिसे जाली भयानक तप कर रहा है। हे राजन्! उस देवकी देवता, देव, राक्षस, मर्त्य, वृक्ष और मनुज सभी मार सकते हैं। इतना कह कर देव दे दिया। हे राजन्! तुम्हारा वनवासी, वन में मारो, इसमें उत्तङ्गने उत्तर दिया।

करो ; उसको मारनेसे तुम्हारी अक्षय कीर्ति होगी ; वह दुष्ट बालूके भीतर सोता है ; एक वर्षके पश्चात् जब यह सांस लेता है, तब पृथ्वी वन और पर्वतोंके सहित हिल जाती है और उसके सांससे बहुत धूल उड़ती है, उसके श्वासका वायु सूर्यमण्डल तकको हिला देता है और सात दिनतक उस वायुसे धूआं और अग्नि निकलती रहती है तथा पृथ्वी हिलती रहती है। इस कारणसे मैंभी अपने आश्रम पर नहीं रह सकता हूं। हे राजेन्द्र ! संसारकी हित-कामनासे आप उसका नाश कीजिये, उस असुरके मरनेसे संसार सुखी रहेगा, मेरी बुद्धिमें तुम उसके नाश करनेमें समर्थ हो। हे राजन् ! जब तुम उसको मारोगे, तब विष्णुका अंश तुममें आवेगा, मुझे विष्णुने पङ्क्ति वरदान दिया है, कि जो उस घोर राक्षसको मारेगा, उसके शरीरमें विष्णुका अंश आकर सहाय होगा। हे राजेन्द्र ! तुम विष्णुका तेज धारण करके उस महा पराक्रमी घोर राक्षसका नाश करो, हे पृथ्वीनाथ ! वह महा पराक्रमी और तेजस्वी राक्षस थोड़े बलवालीसे सौ वर्षमें भी नहीं मारा जायगा।

धृन्धुमारोपाख्यानम्

२०१ अध्याय समाप्त ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, राजर्षि बृहदश्व उत्तङ्गके ऐसे वचन सुन हाथ जोड़कर बोले, हे ब्राह्मण ! तुम्हारा वचन सत्य होगा, मेरा यह पुत्र कुवल्याश्व बुद्धिमान शीघ्र लड़नेवाला पराक्रमी तुम्हारे प्यारे कामको करेगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं ; इसके सब पुत्र ऐसे पराक्रमी हैं, कि जिनके हाथही शस्त्र हैं। हे महाराज ! मैंने शस्त्र त्याग दिये हैं, इस कारणसे आप मुझे जाने दीजिये। उत्तङ्ग मुनिने कहा, कि ऐसा ही होगा। राजा अपने पुत्रको मुनिके कार्य करनेकी आज्ञा देकर उत्तङ्गके पाससे चले गये।

राजा युधिष्ठिर बोले, हे तपोधन ! वह महापराक्रमी दैत्य कौन, किसका पुत्र और किसका पोता था ? ऐसा पराक्रमी दैत्य तो मैंने कभी नहीं सुना। हे महाबुद्धिमान ! मैं उसकी कथा विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूं।

मार्कण्डेय मुनि बोले, हे नरनाथ युधिष्ठिर ! मैं ठीक ठीक विस्तारपूर्वक उसकी कथा कहता हूं, तुम सुनो। जब सम्पूर्ण जगत जलमें डूब गया, और सब चर अचर नष्ट हो गये, तब जगतके कर्ता अविनाशी विष्णु जिनकी सिद्ध और मुनि संसारका महेश्वर कहते हैं, अपने योग-बलसे जलपर नागराज शेषके फणपर सो रहे। हे महाभाग ! अच्युत लोक-कर्ता भगवान विष्णुकी वही नागका फण शय्या हो गयी। सोते हुए विष्णुकी नाभीसे सूर्यके समान प्रकाशवाला कमल उत्पन्न हुआ और उस कमलसे ब्रह्मा उत्पन्न हुए। सम्पूर्ण लोकोंके गुरु ब्रह्मा सूर्यके समान प्रकाशवाले चार मुखयुक्त चारों वेद लिये अपने प्रभावसे प्रगट हुए। ब्रह्मा किसीसेभी हारने योग्य नहीं थे, कुछकालके पश्चात् महापराक्रमी दो दैत्य वहां आये। उनका नाम मधु और कैटभ था, उन दैत्योंने महा शोभायमान विष्णुको दिव्य सांपके फणपर सोते हुए देखा। सर्पका फण बहुत योजनों तक लम्बा और चौड़ा था, उस पर किरीट और कौस्तुभ मणि तथा पीताम्बर धारण किये, विष्णु सोते थे। विष्णुका शरीर शोभा और तेजसे विचित्र और हजारों सूर्योके समान शोभायमान था, विष्णु तथा कमलनयन ब्रह्माको कमल पर बैठे हुए देखकर मधु और कैटभको महा आश्चर्य हुआ। तब मधुकैटभने महा तेजस्वी ब्रह्माको डराया, महा यशस्वी ब्रह्माने उनके डरसे कमलकी उंडीकी धृष हिलाया, उससे विष्णु जागे। विष्णुने जागकर महावली दोनों दैत्योको देखा, उनकी देखकर विष्णुने कहा, हे महावली दैत्यो ! तुम्हारा

कल्याण हो, हम तुमसे प्रसन्न होकर तुमको वर देते हैं। महा अभिमानी बलवान दैत्यों ने ईश्वर कहा, हे महाराज। हम दाता हैं, जो तुम्हारी इच्छा हो, हमसे वर मागो, हम तुम्हें पाना विचार देंगे। भगवान विष्णु बोले, हे पराक्रमी वीरो। मैं तुमसे वर मागता हूँ, तुम दोनों के समान कोई मनुष्य बलवान नहीं है, तुम सत्य पराक्रमी हो, इस लिये तुम सुभी यही वरदान दो, कि मैं तुम्हें मार डालूँ, संसार के कल्याण के लिये मैं यही वर मागता हूँ। मधुकैटभ बोले, हे पुरुषोत्तम। हम दोनों सत्य धर्म को करनेवाले हैं, हमने कभी इसमें भी भूठ नहीं बोला, हमारे सम्मान जगतमें बल, रूप, शूरता, धर्म, तपस्या, दान, शील और दान्यों को रोकनेमें कोई नहीं है, हे केशव। हमका बड़ा दुःख प्राप्त हुआ, पर कालकी गातका कोई नहीं राक सकता है, सा अब तुम अपने कहे हुए प्रश्नका पूरा करो। हे देव। हम दोनों अनरहित स्थानमें मरना चाहते हैं, और यह भी चाहते हैं, कि मरनेके पक्षि हम दोनों तुम्हारे पास हो। हे देवतामे उत्तम। ऐसा कार्य भाजिय जिससे हमारी इच्छा पूर्ण हो। श्रीविष्णु आशयन कहा, कि मैं सब ऐसाही करूँगा। १५। पशुन भव स्थानको जलसे भरा देखकर राजाक इनको कहा मारें। पक्षि विचारा कि मार डाला जलन लगे नहीं है, तब उसोपर मधु के अश्रुओं का शरका रखके तेज धारवाले शरने काट डाला।

धर्ममार्गपात्रानने

१५५ अथवा ननास।

भयानक तप किया, जब तप करते करते उसके शरीरकी नसें दीखने लगीं, तब ब्राह्मणे उसे वर दिया। धुम्धुरने ब्रह्मासे यह वर मागा, कि मैं दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और सपोसे न मारा जाऊँ ब्रह्मणे कहा, कि ऐसाही होगा। धुम्धुर ब्रह्माके चरणोंको नमस्कार करके वहाँसे चला गया और अपने पिताका स्मरण याद करके प्रथम विष्णुके मारनेका पङ्कचा। वहाँ जाकर महा क्रोधो धुम्धुरने अनेक देवता और गन्धर्वोंको मारा; विष्णुका महा आकुल करके बालूसे भरे हुए उज्जालक तीर्थमें चला गया; हे भरत-पर्व। उस दुष्ट पापात्माने आकर मारवाड़ देशको महा कष्ट दिया; हे नरनाथ। वह उत्तङ्गके आश्रममें आकर वृद्धत उपद्रव करने लगा, वह भूमिके नीचे बालूमें छिपा रहता था, यह मधु कैटभका पुत्र महा पराक्रमी जगतका नाश करनेके लियेही साता था। उसे अपने तपका बड़ा बल था। उत्तङ्ग ऋषिके आश्रमके पास जब सास लेता था, तबही अग्नि निकलतो थी। हे राजा युधिष्ठिर। राजा दुवलयाश्व अपने इक्कीस हजार पुत्रोंके सहित दल बल लेकर उत्तङ्गके साथ राक्षसके मारनेको चले। जब राजा चले, तब विष्णुका तेज उनके शरीरने आगया। उत्तङ्गके तपके प्रतापसे जगतकी रक्षा करनेकी विष्णुका तेज राजाके आया। जब राजा दुवलयाश्व लड़नेको चले, तब आकाशमें देवता लोगोंने घोर शब्द किया, कि धुम्धुर आज मारा जायगा। देवता लोगोंने आकाशसे ादव जनोंको प्रेरणा करी और दुन्दभा मारा। जब इतिमात राजा दुवलयाश्वने प्रस्थान किया तब शायद पाद चलने लगी। इन्द्र इस कारणसे ईश्वर मारने लगे, कि इन्द्रने धुम्धुर उड़े। हे राजा युधिष्ठिर। तब धुम्धुर रहता था शरीरमें मरने की विचार देवताओं का आशने दीखने लगे। भयानक मरने की इच्छासे देवता और मनुष्य ने ऊपर से

सहित वहां इकट्ठे होगये। विष्णुके तेजके प्रतापसे राजा कुवल्याश्व अपने पुत्रोंके सहित चारों ओर धुन्धुरकी दूढ़ने लगे। राजा कुवल्याश्व और उनके पुत्रोंने उस बालुकामें खोद खोदकर समुद्र बना दिया। सात दिनके पीछे खोदते खोदते महाबली धुन्धुरका शरीर उस बालुकामें मिला। उसका शरीर सूर्यके समान प्रकाशमान था। हे राजशार्दूल! उस समय धुन्धुर प्रलयकालकी अग्निके समान पश्चिम दिशाको सोया हुआ था। राजा कुवल्याश्वके पुत्रोंने चारों ओरसे उसे घेर लिया और तीक्ष्ण वाण, गदा, मूषल, पट्टिश, परिघ, और खड्गसे मारने लगे। उनकी मारसे क्रोध करके महाबली धुन्धुर दैत्य उठा और सब अस्त्रोंको खागया। उसके मुखसे प्रलय कालके अग्निके समान अग्नि निकली और राजाके पुत्रोंकी जलाने लगी मुखसे उत्पन्न हुई अग्निसे जगत ऐसे जलने लगा, जैसे कपिलके क्रोधकी अग्निसे सगरके पुत्र जले थे। हे राजन्! वह कर्म सब लोगोंकी अद्भुत मालुम होने लगा। राजाके पुत्र जब अग्निसे जल गये। तब महात्मा कुवल्याश्व उस कुम्भ-कर्णके समान दैत्यपर दौड़े। जब उस राजाकी देहसे वज्रत सा जल निकला, तब राजाने जल-मय निज तेजसे दैत्यकी अग्निको शान्त किया। योगी कुवल्याश्वने अपने योग-बलसे दैत्यकी अग्निको शान्तकर उस महा पराक्रमी दैत्यको भस्म करनेके वास्ते ब्रह्मास्त्र छोड़ा। हे राजेन्द्र! हे भरतकुल श्रेष्ठ। ब्रह्मास्त्रने उस दैत्यको भस्म कर दिया। राजा कुवल्याश्व उस महासुरको भस्म करके इन्द्रके समान शोभायमान हो गये। हे राजन्! धुन्धुमारके मारनेसे राजा कुवल्याश्व धुन्धुमार नामसे प्रसिद्ध हुए। देवता और महर्षियोंने प्रसन्न होकर राजा कुवल्याश्वसे कहा कि हम लोग तुमसे प्रसन्न हैं, जा इच्छा हो सो वर मागो। राजा कुवल्याश्वने हाथ

जोड़ और प्रसन्न होकर कहा, महाराज। मैं यही वर मागता हूँ, कि मैं ब्राह्मणोंको दान देजं, शत्रुओंसे न जीता जाजं विष्णुसे मेरी मित्रता रहे; प्राणियोंसे द्वेष न करूँ और धर्ममें प्रीति रहे तथा स्वर्गमें सुभी अक्षय का मिले। सब देवतोंने प्रसन्न होकर कहा कि ऐसाही होगा। ऋषि, गन्धर्व, और बुद्धिमान महात्मा उत्तङ्गने आदरके सहित राजाको आशीर्वाद दिया। देवता और ऋषि लोगभी अपने आश्रमपर चले गये। हे राजन् युधिष्ठिर। राजा कुवल्याश्वके उस युद्धमें तीन पक्ष बच गये—एक दृढाश्व, दूसरा कपिलाश्व और तीसरा चन्द्राश्व। हे राजन्। उन्होंने दृष्ट्वाकुवंशकी परम्परा चली आती है। इस प्रकारसे राजा कुवल्याश्व धुन्धुरकी मारनेके लिये धुन्धुमार नामसे प्रसिद्ध हुए। यह धुन्धुमार का चरित्र पुराणकी बढ़ानेवाला और कीर्तिकी विस्तार करनेवाला है, जो पढ़े वा सुने वा पतवान, धर्मात्मा, दीर्घायु, और धनवान होता है, उसकी रोगोंका भय नहीं होता है, और सुखी रहता है।

धुन्धुमारोपाख्यान और
२०३ अध्याय समाप्त ।

श्रीनैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जन्मे जय। तब भरतश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरने मह तेजस्वी मार्कण्डेय मुनिसे धर्मका कठिन प्रश्न किया कि हे भगवन! मैं स्त्रियोंका उत्तर धर्म सुनना चाहता हूँ, क्योंकि यह धर्म बहुत सूक्ष्म है, आप कृपा करके मुझसे कहिये; मैं विप्रमैं। सूर्य, चन्द्रमा, वायु पृथ्वी और अग्नि ये प्रत्यक्ष देवता हैं, ऐमेही पिता, माता, भगवान और गुरुभी प्रत्यक्ष देवता हैं। जैसे वे स गुरुलोग मान्य हैं, वैसेही पतिव्रता धर्म मानने योग्य हैं। पतिव्रताओंका धर्म बहुत कठिन जान पड़ता है, इस लिये आप पति

ताओंका माहात्म्य हम लोगोसे वर्णन
नहीं। हे निष्पाप ! सब इन्द्रियोको रोककर
ब्रह्मपतिकोही देवता मानना और उसीका
पूजन करना मुझको बहुत कठिन जान पड़ता
है। माता, पिताकी सेवा और पतिकी सेवा
करना और स्त्रीधर्म इससे कठिन और धर्म
जिन्हें दीख पड़ता है। अच्छे आधारवाली
स्त्रियाँ जो आदरके सहित व्रत करती हैं वह
बहुतही कठिन काम करती हैं। जो स्त्री
अत्यधीन होती है, जो दश महीने तक गर्भ धारण
करती है, जो पुत्र उत्पत्तिके समर्थ प्राणसंकट
और मर्त्य दुःखकी पाकर भी पुत्र उत्पन्न
करती है, फिर बड़े स्नेहके साथ पुत्रकी पालती
है और जो स्त्री कुकर्ममें डूबकर बुरे काम
करती है, यह सब मुझे बहुत कठिन जान
पड़ते हैं। हे ब्राह्मणोत्तम ! क्षत्रियोके धर्मका
मरभी मुझसे कहिये, महात्माओंकाभी धर्म
करना कठिन है। हे कहनेवालोंमें श्रेष्ठ !
इस प्रश्नको आप यथावत कहिये, मुझे सुननेकी
इच्छा है।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन् ! हे
रतश्रेष्ठ ! मैं इस कठिन प्रश्नके उत्तरकी
इच्छा हूँ आप सुनें, कोई आचार्य्य माताकी
गणना काय आचार्य्य पिताकी अधिक मानते
हैं। वह माता बहुत कठिन काम करती है,
पुत्रोंका पालन करती है। तपस्या, देव-
ताओंकी पूजा और शिष्टा आदि उपायोंसे पिता
को पूजा करता है, इसरीतिसे बड़े कष्टके
पुत्रका पुत्रकी पाकर पिता और माता
का पालन करते हैं। कि यह पुत्र कैसा होगा,
पिता और माता पुत्रसे वश कीर्ति,
पुत्र-पत्नी और धनकी आशा रखते हैं।
पुत्र-पत्नी और धनकी आशा पूरी करता है,
पुत्रका पालन करता है। अतः माता

हे राजन् ! स्त्रियोंके वास्ते आहु, व्रत और यज्ञ
आदि कोई क्रिया नहीं लिखी है; स्त्री जो
पतिकी सेवा करती है, उसीसे उसकी स्वर्ग
मिलता है। हे राजन् युधिष्ठिर ! इसी प्रक-
रणमें प्रतिव्रता स्त्रीका धर्म कहता हूँ, तुम
सुनो।

प्रतिव्रतीपाख्यानमें

३०४ अध्याय समाप्त ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, किसी देशमें एक
जातिश्रेष्ठ, वेद पढ़नेवाली, तपस्वी, धर्मात्मा
कौशिक नामक ब्राह्मण रहते थे। वे श्रेष्ठोंके
सहित वेद पढ़ते थे। एक दिन वे किसी
वृक्षके नीचे बैठे वेद पढ़ रहे थे और उस वृक्ष
पर एक बगुली छिपी हुई बैठी थी। उसने
ब्राह्मणके ऊपर बीट कर दी, उसको देखकर
ब्राह्मणने बहुत क्रोध किया और क्रोधसे बगु-
लीको देखा। ब्राह्मणके देखनेसे बगुली
मरकर पृथ्वीपर गिर गई। बगुलीका पृथ्वीपर
गिरा देख ब्राह्मणके बहुत दया आई और
सोचने लगे कि मैंने क्रोधके बशमें हीकर यह
बड़ा बुरा काम किया।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, ऐसे कहकर वह
ब्रह्मण ब्राह्मण गावमें भोज्य मागने चले गये;
गावमें जाकर उत्तम कुलोंसे भिक्षा मागने लगे।
मागते मागते एक उत्तम कुलके घर जाकर
भिक्षा मागी और कहा, कि कुछ दी। तब
कुलाने बड़ा खड़े रहने लगे। वह स्त्री
वरतन माग रही थी, इनतहीमें उसका पति
मुखसे व्याकुल होकर घरमें आया और स्त्री
पतिको देखकर ब्राह्मणका भोज्यदेना मना
गई। और अपने पतिको पाद, पायमल और
आसन देने लगी। इस स्त्रीने अपने पति-
को बड़ा भोज्य मागने देना मना कर दिया
तब वह राजन् हुआ और वह स्त्री भोज्य
मागने पर न चले गयी।

चित्तके अनुसार चलती थी, मन वचन, व कर्मसे कभी दूसरे पुरुषकी इच्छा नहीं करती थी; वह सब प्रकारसे पतिहीकी सेवा करती थी; वह उत्तम कर्म करनेवाली घरके कामोंमें चतुर और कुटुम्बका हित करनेवाली थी और पतिका सदा हित चाहती थी। देवता और अतिथिकी सेवा और सास ससुरका अच्छीतरहसे आदर करती थी। सदाही इन्द्रियजित रहती थी। जब उसका पति भोजन कर चुका, तब उसने देखा कि ब्राह्मण बाहर खड़ा है। हे भरतसत्तम ! उसे पतिकी सेवा करते करते जब ब्राह्मणकी याद आई, तब वह पतिव्रता बद्धत लाज्जित हुई और भिदा लेकर ब्राह्मणके पास गई। ब्राह्मण बोली, हे उत्तम स्त्री ! तुम मुझे “खड़ा रहो” ऐसा कहकर चली गई और फिर मुझका विदा न किया।

श्रीमाकण्डेय मुनि बोली, हे राजा ! ब्राह्मणको तेज और क्रोधसे जलते हुए देखकर वह पतिव्रता शान्तिपूर्वक बोली, हे विद्वान् ! आप क्षमा कीजिये, मैं पतिकी देवता मानती हूँ, वह भूखे थे, उनकी सेवा करने लगी। ब्राह्मण बोली, हे पतिव्रते ! तैने ब्राह्मणकी छोटा और पतिकी बड़ा समझा ? ब्रह्मभो ब्राह्मणोंको नमस्कार करते हैं, फिर मनुष्य किस गिन्तीमें है। हे अभिमानि ! तैने बृजोंके वचन नहीं सुने, ब्राह्मण अग्निके समान होते हैं, पृथ्वीको जला सकते हैं। स्त्री बालो, हे विप्रर्षे ! मैं वगुली नहीं हूँ, हे तपोधन ! आप क्रोधकी छोड़िये, क्रोध करकेही मेरा क्या करेंगे ? उसपर मैं ब्राह्मणका अपमान नहीं करती हूँ और ब्राह्मणोंकी देवताके समान मानती हूँ; हे पापरहित ब्राह्मण ! मेरे इस अपराधको आप क्षमा कीजिये, मैं ब्राह्मणोंके तेजको जानती हूँ, जिन्होंने क्रोधसे समुद्रको खारो और पीनेके अयोग्य बना दिया, मैं ऐसे आत्म-

ज्ञानी महा तपस्वी सुनियोकीभी जानती ; जिनके क्रोधकी दण्डकवनकी अग्नि अवत नहीं बुझती है, ब्राह्मणोंके अनादरसे दुष्टा महा असुर बातापी अगस्त्य ऋषिके पेटमें गया, हे ब्राह्मण ! ब्राह्मणोंके अनेक प्रभ सुननेमें आते हैं; ब्राह्मणका क्रोधभी भा और कृपाभी भारी होती है, हे पापरहित मेरी इस भूलकी आप क्षमा कीजिये, ब्राह्मण ! पतिकी सेवा करना जो धर्म है, मुझे बद्धतही प्यारा है, मेरे पति देवताके देवता हैं, उसी सामान्य धर्मको मैं करती हूँ हे ब्राह्मण ! पतिसेवाका जैसे फल है उस तुम देखलो। तुमने वगुलीको अपने क्रोध जला दिया था, उसका मैंने जान लिया, ब्राह्मणश्रेष्ठ ! क्रोधही शरीरमें रहनेवाला है, जो क्रोध और माहका त्याग देता उसीको देवता लोग ब्राह्मण कहते हैं, ससारमें सत्य बोली, गुस्का सन्तुष्ट करे और मार खाकर नहीं मार, उसीकी देवता लोग ब्राह्मण कहते हैं, जो इन्द्रियोंको जीतनेवाला वेदपाठो, पवित्र और कामदेवका जीतनेवाला है, उसीकी देवता लोग ब्राह्मण कहते हैं जिस धर्मात्मा बुद्धिमानको अपन समान जान दीखता हो, उस धर्म करनेवालीकी देवता लोग ब्राह्मण कहते हैं। जा वेद पढ़े और पढ़ा यज्ञ करे वा करावे, दान लेकर यथाशक्ति दान दे उसका देवता लोग ब्राह्मण कहते हैं, जा ब्रह्मचारो सत्यव्रता वेदपाठ ब्राह्मणमें अष्ट अपन पढ़ने पढाने सावधान रहे, उसे देवता लोग ब्राह्मण कहते हैं ब्राह्मणकी इतने कर्म हैं, जा सत्य वाला है, जिसका मन झूठमें न जाता है, वह ब्राह्मण है। ब्राह्मणका धर्म वेद पढ़ना मनको विषयसे राकना, शुद्ध रहना इन्द्रियोंको जीतनाही कहते हैं। हे ब्राह्मण ! मैं धर्मको जगनेवाली महात्मा लोग सत्य

गड़ताकोही धर्म कहते है : धर्म जानना बड़नडी कठिन है . वह धर्म सत्यहीमें रहता है । बड़लोगोंकी आज्ञा है, कि धर्ममें वेदही प्रमाण है, है ब्राह्मण । धर्म बड़त प्रकारका दोखता है । आपभी वेदपाठी पवित्र और धर्मको जाननेवाले हैं, परंतु मेरी बुद्धिमें आप धर्मको यथावत नहीं जानते । है ब्राह्मण । यदि आप धर्मको नहीं जानते हैं, तो जनकपुरीमें जाकर धर्मवधिकसे पूछिये । जनकपुरीमें मातापिताकी सेवा करनेवाला, सत्यवादी, इन्द्रियजित एक व्याधा रहता है. वह तुमको धर्मका उपदेश करेगा । है विजोत्तम । है ब्राह्मण । तुम्हारा कलगाण हो, जो मैने बड़त कहा, उसकीभी आप चूमा करने योग्य है । है अनिन्दित । है ब्राह्मण । स्त्री किमीकीभी मारने योग्य नहीं है, और तुम तो धर्मको जानते हो । ब्राह्मण बोले, है कलगाणि । मेरा क्रोध चला गया, मै तुमसे बड़त प्रसन्न हूँ, तुमने मेरे अभिमानको दूर किया. मेरा कलगाण हुआ, तुम्हारा कलगाण हो, मै जनकपुरी जाऊंगा और अपना काय्ये सिद्ध करूंगा ।

आमार्जुनदेव मुनि बोले, उस पतिव्रतासे भिदा होकर कौशिक ब्राह्मण अपनी आत्माकी भिक्षा धरते हुए अपने घरकी चले गये ।

पतिव्रतापाछान और

२५५ अथ समाप्त ।

उसीकरके मुनि बोले, है राजन् शुध धर्म स्वीकारें और संपूर्ण वचनाका करण करें । जो धर्म अपने आत्माको नन्द्य करत है, पापपञ्च समान नष्ट गये । सत्य धर्म में धर्म और धर्मवधिक ब्राह्मण बोले विद्वान् धर्मवधिक पर बड़ा करके जनकपुरीकी जाऊंगा । धर्मवधिक धर्मको जानने-

उन्ही तपोधन व्याधके पास जाके धर्मको लक्षण पूछूंगा । ऐसे विचार कर और स्त्रीके वचनोंकी श्रद्धा करके तथा वगुलीकी करण करके जनकपुरीकी बड़े आनन्दके साथ गये । वह बड़तसे गाव, वन, और नगरीकी लाघते हुए महाराज जनकसे रक्षित मिथिला पुरीकी चले । उन्ही । धर्म, यज्ञ, और उत्सवोंसे भरी हुई मिथिला पुरीको देखा । उसमें महल, दुमहली, और अनेक अटारियां विराज-यीं । उस रमणीय नगरीमें कौशिक मुनिने प्रवेश किया । जहा अनेक विमान घूमते फिरते थे, जहा अनेक सुन्दर सुन्दर वजार और उत्तम उत्तम मार्ग विराजमान थे, जहा अनेक हाथी, घोड़े, रथ और घोड़ा लोग घूम रहे थे, जहा पुष्ट और प्रसन्न लोग विचार कर रहे थे, जहा सदाही उत्सव हुआ करते थे, उस मिथिलापुरीको जाकर कौशिक मुनिने देखा । वहा जाकर उन्होंने धर्म-व्याधका घर पूछा और ब्राह्मणोंन वता दिया । वहा जाकर उन्होंने उत्तम नामधारी व्याधकी देखा । उन्होंने देखा वह तपस्वी भैंसोंके मासको घेच रहा है, उस समय वहापर मास लेनेवालोंकी महा भीड़ थी, इसलिये ब्राह्मण अलग जाकर एकान्तमें बैठ गये । उस व्याधन जाना कि एक ब्राह्मण आये हैं, तब बड़त धवराकर उठा और जहां एकान्तमें ब्राह्मण बैठा था, परा आया और कहन लगा, है पतिव्रता । है भगवन । इस आपकी प्रणाम करता है : धार आपका स्वागत करते हैं, आपका वन्दन होता है । हम व्याध हैं, काह्ये आपका योग्य काम करें । आपसे जो एक पतिव्रता कहन करता हूँ, वह तुम समाधाय लीजो । धर्म, यज्ञ, उत्सव, कामका सब बात है, नानक सब बात है । ऐसा मुने उस ब्राह्मणके लिये कहा । ब्राह्मण उस बड़तसे प्रसन्न होकर गया । धर्मवधिक

स्थान कुदेशमे है। हे पापरहित। यदि तुम्हारी इच्छा हो तो घरकी चलो। ब्राह्मणने प्रसन्न होकर कहा कि बह्मन्त अच्छा चलो। औमार्क-ण्डेय मुनि बोले, तब वह व्याध ब्राह्मणकी आगी करके घरकी चला। उसने अपने घरमे जाकर उस ब्राह्मणकी आसन दिया, तब पाद अर्घ और आचमनसे पूजा की। ब्राह्मणने उसकी पूजाकी ग्रहण किया। तब सुखसे बैठकर उस व्याधसे पंखा कि जे। कर्म तुम करते हो सो हमारी बुद्धिमें तुम्हारे योग्य नहीं है, हे तात ! हम तुम्हारे इस घोर कर्मकी देख कर बह्मन्त दुःख करते है। व्याध बोला, हे विप्र। यह हमारे पिता प्रपितामहका कर्म है और हमारे कुलके योग्य है, हम अपने कर्मकी करते है, इस लिये आपकी क्रोध नहीं करना चाहिये। ब्राह्मणने पहिले सब जातियोंके अलग अलग कर्म बना दिये है, यज्ञ करके हम वृद्ध पिता माताकी सेवा करते है; हम सत्य कहते है, हम कभी किसीकी निन्दा नहीं करते है, देवता अतिथि और सेवकोसे जो अन्न बचता है उसे खाते है, वुरकी वा बलवान कीभी निन्दा नहीं करते; हे ब्राह्मणोत्तम। पूर्वकृत कर्मका फल कर्त्ताको प्राप्त होता है। खेती, की रक्षा और व्यापार यह जगतका जोवन है, राजनीति, दण्ड, और वेद विद्यासे ही जगतकी स्थाति है, शूद्र का कर्म सेवा वैश्यका कर्म खेतीकरना, क्षत्रीका युद्ध करना और ब्राह्मणका कर्म ब्रह्मचर्य तपस्या, वेदपाठ और सत्य बोलना है। राजा धर्मसे प्रजाकी रक्षा करता है, इसीसे प्रजा अपने कर्मोंकी करती है, जो अपने कर्मोंकी नहीं करते है उन्हें दण्ड देकर राजा उनके कर्ममें लगाता है, राजासे प्रजाका सदा डरना चाहिये; राजा प्रजाको कुकर्मोंसे ऐसा निवारण करता है। जैसे मृगकी वाणोसे मारते है। हे ब्राह्मण। इस राजा जनककी नगरीमे कोई भी कुकर्मों नहीं है, चारो वर्ण

अपने अपने कर्मकी करते हैं, यह राजा जनक ऐसा धर्मात्मा है। कि यदि इनका पुत्र भी दुर्वृत्त वा दण्डनीय हो, तो ये उसे भी दण्ड देते हैं और किसी धर्मात्मासे ग्लानि नहीं करते। जो राजा सब प्रजाकी धर्ममें लगाता है उसकी लक्ष्मी, और राज्य बढ़ता है, क्षत्रियोंका परम धर्म दण्डही है। राजा अपने धर्महीसे लक्ष्मीको बढ़ानेकी इच्छा रखते हैं, राजाही चारों वर्णोंका रक्षक होता है। हे ब्राह्मण। मैंने आपसे पशुओंकी नहीं मारा, परन्तु दूसरेके मारे हुए पशुओंकी बेचता हूँ, मैं मांस भक्षण नहीं करता, हे ब्राह्मण। मैं ऋतु कालहीमें अपनी स्त्रीके पास जाता हूँ और सदा व्रत करता हूँ, केवल रात्रिमें एक समय भोजन करता हूँ, हे ब्राह्मण। जो प्राणी शील रहित है, वह कभी शीलवान हो जाते है; हिंसा करनेवाला धर्मात्मा होजाता है। राजाके धर्मसे प्रजा धर्मात्मा और राजाके अधर्मसे अधर्मी होजातो है, भयानक लोग, बौने, कुबड़े बड़े सिरवासे, नपुंसक, बहरे और अश्लील लोग राजाके अधर्मसे होते हैं, इसी कारणसे यह राजा जनक प्रजाकी पालत है; सब प्रजाके ऊपर कृपा रखते है, इसीसे सब प्रजा धर्ममें लगी रहती है। हे ब्राह्मण। जो लोग मेरी निन्दा करते है, और जो स्तुति करते हैं, उन दोनोंकी अच्छे कर्मोंसे प्रसन्न करनेकी चेष्टा करता हूँ। जो अपने धर्मके अनुसार सेना रखकर प्रजाके धर्मको रक्षा करते हैं, वही राजा कहलाते हैं, और लोग चोर है, जो कि कुछ आजीविका उपाय नहीं करते है। अपना सामर्थ्यके अनुसार अन्न दान करते हैं, वही धर्मात्मा है। मान्य लोगोंको पूजा करना, सब प्राणियोंमें दया रखना और त्याग इससे समान मनुष्योंका और कोई उत्तम गुण नहीं है। हे ब्राह्मण ! भूटको त्याग, विना कर्मों

[illegible]

लोभी और मूर्खही पाप करने हैं, अधर्म धर्मसे ऐसे छिप जाता है जैसे घाससे कान्ना छिप जाता है। जिनकी मनके रोकनेकी गति है, उनके सब वचन धर्मकी आज्ञासे होते हैं। लोभी और मूर्खमें सब हो सकता है, परन्तु शिष्टाचार नहीं हो सकता है।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन् । उस
महा बुद्धिमान ब्राह्मणने धर्म व्याधसे पूछा कि
हे महामते । शिष्टाचारकी मैं कैसे जान ?
हे धर्म करनेवालोंमें यद्य । आपसे यह सन-
नेकी इच्छा रखता हूँ, आप मुझमें कहिये ।
धर्मव्याध बोला, हे ब्राह्मण ! उत्तम शिष्टा-
चारमें यह पांचही धर्म प्रधान हैं, यज्ञ, दान,
तप, वेद पढ़ना और मत्य । जो काम और
क्रोधकी वशमें करके दम्हा, लोभ और क्षु-
लता त्यागके धर्महीमें गल्लष्ट रहती हैं, उन्हीं
शिष्ट लोग शिष्टरूप कहते हैं ।

[illegible]

जो औरोंकी बुद्धि देते हैं, आचार्यके वचनोंमें स्थित रहते हैं, वेही धर्मके जाननेवाले हैं। जो नास्तिक मर्यादाको नष्ट करनेवाले दुष्ट पापियोंके सङ्गमें रहते हैं, उनको त्यागकर और धर्मात्माओंको सेवा करके, जिसमें काम और मगर भरे झर हैं ऐसी पञ्चइन्द्रियरूपी नदीको धारणाकी नाव बनाकर जन्मके दुःखोंसे तरना चाहिये। क्रमसे बुद्धि द्वारा धर्मको इकट्ठा करके शिष्टाचारमें तत्पर होनेसे महात्मा ऐसे होजाते हैं, जैसे प्रेतवस्त्र। अहिंसा, और सत्य बोलनाही जगत्का कल्याणकारी धर्म है, अहिंसाही परम धर्म है और वह सत्यमें रहता है। सत्यमें स्थित होनेसे मनुष्यकी सब वृत्ति ठीक हो जाती है, सत्यही शिष्टाचारमें सबसे प्रधान है। आचार ही सज्जनोंका धर्म है, और धर्मही सज्जनोंका लक्षण है। जैसा प्राणी होता है, उसका वैसाही स्वभाव होता है, पापी क्रोध, और कामको प्राप्त होता है, और आत्माघाती दोषको पाता है। जो काम न्यायसेयुक्त होता है, उसे धर्म कहते हैं, और जो अनाचारसेयुक्त होता है, उसे अधर्म कहते हैं, यही शिष्टोंकी आज्ञा है। जो क्रोध नहीं करते, किसीकी निन्दा नहीं करते, अभिमान और चञ्चलताको त्यागते हैं, वे शुद्धस्वभाववाले सज्जन शिष्ट कहलाते हैं। वेद विद्यामें निपुण शुद्ध बुद्धिमान गुरुकी सेवा करनेवाले महात्मा शिष्टाचारी कहलाते हैं, उन कठार कर्म करनेवाले महात्माओंके सुकर्महीसे भय नाश होता है, उस आश्चर्यकारी पुराने अचल सदाचारको करनेवाले बुद्धिमान महात्मा स्वर्गको जाते हैं। जो लोग आस्तिक अभिमान रहित ब्राह्मणोंको पूजनवाले, वेदको सुननेवाले होते हैं, वेही महात्मा लोग स्वर्गगामी होते हैं। धर्म तीन प्रकारका है, एक वेदमें लिखा, दूसरा धर्मशास्त्रमें लिखा, और तीसरा शिष्टाचार।

विद्याओंका पढ़ना और तीर्थोंमें स्नान करना धर्म कहलाता है। सज्जन, क्षमावान, सत्य बोलनेवाले, शुद्ध रहनेवालोंके आचारको देखनेवाले, सब प्राणियोंपर दया करनेवाले सदा हिंसासे रहित, मोठा बोलनेवाले ब्राह्मणके प्यारे होते हैं। जो शुभ और अशुभ कर्मोंके फल और कर्मके विपाकको जानते हैं, वेही शिष्ट कहते हैं। न्याय और गुणसे भरे, झर लोकके कल्याण करनेवाले सज्जन उत्तम मार्गमें तत्पर रहके स्वर्गको जीतते हैं। दानी, अर्द्ध बुरेको जाननेवाले, दीनोंपर दया करनेवाले, पूजनीय वेदही जिनका धन है, वे तपस्वी शिष्ट कहते हैं। शिष्ट लोग ससारका उपकार करते हैं, वे धनी नहीं होते, स्त्रियोंसे पीड़ित रहते हैं, किन्तु जो कोई सज्जन उनके यहा जाता है, उनको अपनी शक्तिके अनुसार दान देते हैं, केवल अपने शरीरके निरवाहको अपना सुख समझते हैं, इस प्रकारसे सज्जन ससारमें बद्धत वर्षतक जीते हैं। अहिंसा, सत्य वचन, सरलता, किसीसे नैरन करना, अभिमानरहित होना, लज्जा, त्याग दम, श्रम, बुद्धि, धारणा, और संसारके ऊपर दया करना, काम क्रोधको त्यागना, यह जिनमें गुण हैं, वेही साधु कहते हैं। जो न किसीसे वैर करें, सत्य वाले, सबपर दया रखे वही दयालु साधु लोग ससारमें धर्म मार्गपर चलते हैं, वेही शिष्टाचारका करते हैं, उन लोगोंकी धर्मका निश्चय होता है। निन्दा न करना, क्षमा, शान्ति, सन्तोष, मधुर वचन, काम क्रोधका त्याग, शिष्टाचार, और वेदमें लिखे कर्मोंका करना येही साधुके कर्म हैं। सदाही धर्मके अनुसार शिष्टाचारको करते हैं, और बुद्धि तथा प्रसन्नताके आश्रयसे साधुओंके सब भय कूट जाते हैं। हे ब्राह्मणात्तम साधु लोग ससारके पुण्य पापके भरे चारोंको देख कर विचार करते हैं। हे ब्राह्मणोंमें उत्तम मैं न

विष्टाचार देखा और सुना था सी सब तुमसे
कहा ।

विजव्याध सम्वादमें-

२०६ अध्याय समाप्त ।

श्रीम.क.देव मुनि बोले, हे राजन् युधिष्ठिर ।
वह धर्मव्याध फिर बोला, हे ब्राह्मण । जो मैं
कर्म करता हूँ, वह निःसन्देह भयानक है,
तौभी प्रारब्ध बलवान है । जो पहले किये
कर्म हैं, उनका फल अवश्य होता है, यह
मैं किये पापाका फल हूँ ; इस दीपका छोड़-
नका वास्ते मैं यत्न करता हूँ, तौभी यह नहीं
हटता, प्रारब्ध बलवान है । हे ब्राह्मणोत्तम ।
मैं कर्मका निमित्त ही मांस मैं हूँ । जिन
पशुओं का मांस मैं बेचता हूँ, उनको
मनुष्यों के भोजन होने के कारण पुण्य ही
मिला है । देवता, अतिथि, पितर और सेव-
कों की पूजा जिन औषधि, वस्त्र, पशु, मृग, और
अन्यो के मांस से की जाती है, वे पुण्यात्मा ही
हैं । हे ब्राह्मण ! अपन शरीर के मांस
मैं के कारणसे उत्तीरने के पुत्र राजा शिविकी
मम सर्ग प्राप्त हुआ था । पहिले समयमें
आरतिदेवकी रसोई में दो हजार पशु मार-
ते थे, प्रतिदिन दो हजार गाँधोका मांस
आरतिदेवकी रसोईमें पकता था, उस
मांस नंतरमें बड़ा जोर्ति फला था । हे
ब्राह्मण ! आप जानते हैं कि चौमासमें पशु-
को मारना चाहिये । आरतिभी मांसकी
होती है । एताभा वेदमें लिखा है ।
एतद्मांसं पशुना मारते ह, मांस
को लिये मनुष्यान् आशा दी है, जि-
से पितृमांसका सञ्चार किया जाता है
कर्मका फल । यदि ज्ञान लोग पहले
मनुष्य न बनते तो मांस नर खाने
न पड़ता । आ देवता और पितृजी
को मांस पकृत न हो, मैं मांस खाता

हूँ, उसे कुछ दीप नहीं होता है । वेदोंमें
यही लिखा है कि, मांस न खाना चाहिये
है, इसका अर्थ यह है, जैसे जो ऋतुकाल-
में स्त्रीप्रसङ्ग करता है, वह ब्रह्मचारो कह-
लाता है, तैसेही योगी और अयोगी समझके
मांसकी विधि और अविधि है । पूर्वकालमें
शापके कारणसे राजा सीतासने मनुष्यकी
भक्षण किया था ; हे ब्राह्मण । मैं इसे अपना
कर्म समझकर नहीं त्यागता हूँ । मेरे पुरुषा
भी यही कर्म करते थे, इससे मैं भी इसी
व्यापारसे जीता हूँ । हे ब्राह्मण ! अपने
कर्मकी त्यागनाही जगत्में अधर्म दोखता है,
और जो अपने धर्मको करता है, वही धर्मात्मा
है । कर्मके निर्णयमें यह अनन्त ग्रन्थोंमें
देखा गया है, कि ब्रह्माने जिसका जो कर्म
बना दिया है, वह उसे नहीं छोड़ता । मनुष्य-
को चाहिये कि भयानक कर्म करनेके समय
यह विचारता रहे, कि मैं इस कर्ममें कैसे
कुटू और सुकर्म कैसे करूँ । तब उस कर्मका
निर्णय अवश्य ही जायगा । मैं दान, सत्य
वांछने और गुरुकी सदा सेवामें लगा रहता
हूँ हे ब्राह्मण । ब्राह्मणोंकी पूजा आदि
धर्म सदा करता हूँ । अभिमानमें विषाद नहीं
करता हूँ । हे ब्राह्मण कोई लोग स्वर्गीयों
उत्तम समझते हैं पर यह भी इंसाने भरा
हुआ है । जब पृथ्वीमें चल चलाने हैं, उसमें
बहुत भूमिमें रहनेवाले जीव मरते हैं,
और भी बहुतसे जीव जो अलग भूमि
हैं वे मरजाते हैं इन्हीं में जानना
है, जिसेनी करनवाले पशुपाद, मारकर
खाते हैं । हे राजन् ! और वितनरी न ग पशु क,
काटते हैं, इससे मैं जानता हूँ कि इंसान और
फलमें बहुत जोड़ खाते हैं, अनेकों भनक
जीरह हैं, इसमें मैं जानता हूँ मनुष्ये इन्हीं
प्रतिभेमें भरा हुआ है । एक मनुष्य दूसरी
मनुष्यकी खाती है, इन्हीं में जानना है कि

जीवही जीवका आधार है। एक प्राणी दूसरे प्राणिका भोजन है, जगतमें व्यवहार ऐसेही चलते हैं। मनुष्य चलनेके समय पैरोंसे अनेक जीवोंको मारते हैं, इससे मैं जानता हूँ, कि बैठते चलते सोते अनेक जीवोंकी हिंसा मनुष्य करते हैं। ज्ञानी और विज्ञानी लोगभी बिना हिंसाके नहीं जी सकते हैं, यह जगत् जीवोंसे भरा हुआ है। जिन्होंने अज्ञानसे अहिंसाको धर्म कहा है, उन्होंने जगत्को हिंसामय देखकर आश्चर्य प्रकाशित किया, तब उन्होंने यह निश्चय किया कि जगत्में कोई अहिंसक नहीं है। हे ब्राह्मण ! जो महात्मा लोग अहिंसामें तत्पर रहते हैं, वेभी हिंसा करते हैं; परन्तु वे हिंसाको कम करनेकी चेष्टा करते रहते हैं। बड़े कलमें उत्पन्न हुए, पुरुष महां घोर कर्म करकेभी लज्जित नहीं होते। एक मित्र दूसरे मित्रको, पक्ष शत्रु दूसरे शत्रुको कर्म करते हुए नहीं देखता। एक वन्धुकी उन्नतिकी दूसरा वन्धु नहीं देख सकता; कितने ही पण्डित-मानी मूर्ख गुरुकी निन्दा करते हैं। हे ब्राह्मण ! इस प्रकारसे जगत्में बहुत उलट पलट दीखते हैं, इससे मैं भी जानता हूँ, केवल वचनसे धर्म-धर्मकर्मको कहनेमें बहुत लोग समर्थ हैं, परन्तु जो स्वधर्मकर्म करता है, जगतमें कीर्ति उसीकी होती है।

द्विज व्याध सग्वदमें २०७ अध्याय समाप्त ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे धर्मके जानने-वालोंमें श्रेष्ठ यधिष्ठिर ! उस चतुर ब्राह्मणसे धर्मव्याध ऐसा बोला। हे ब्राह्मण ! वृद्धोंकी आज्ञा है, कि धर्ममें प्रमाण वेदही है, सूक्त और अनिन्दित धर्मकी बहुतसी शाखा हैं। प्राणके नाश होनेमें और विवाहमें झूठ बोलना अहितवे; कहीं झूठसे सच और कहीं सचसे झूठ प्राप्त होता है। ऐसा निश्चय है, कि जो प्राणियोंका हितकारी ही वही सत्य है, कहीं

धर्मका उलटाही फल ही जाता है, धर्मके सूक्ष्मताको तुम देखो। जो बुरा काम करता है, और जो अच्छा काम करता है, दोनोंका फल मनुष्यको अवश्य प्राप्त होता है, जब मनुष्यकी बुरी दृष्टि होती है तब यह देवतोंकी निन्दा करता है; परन्तु अपने किये दोषको नहीं जानता; इसी मनुष्य मूर्ख चञ्चल और कृतघ्न सदाही सदा दुःखके द्वन्द्वमें पड़े रहते हैं, उनकी बुद्धि गुरु की शिक्षा और पुरुषार्थभी रक्षा नहीं करते इस लिये यदि पुरुषका क्रिया फल पराधीन होता तो जो व्यक्ति जिस कामनाकी इच्छा करता उसकी वही प्राप्त होती। यह पुरुषावां क्रियाका फल पराधीन न हो तो बुद्धिमान चतुर और शिक्षायुक्त मनुष्य निष्फल और कर्महीन न दिखलाई पड़ें। जगत्में वे मनुष्य सदा हिंसा करते हैं, वे संसारके ठगों तत्पर रहते हैं, और वेही सुखी दीखते हैं कितनेही लोग पुरुषार्थकी छोड़कर बैठे रहते हैं, परन्तु उनकी लक्ष्मी प्राप्त हो जाती है। कितनेही लोग अनेक कर्म करनेपर भी लक्ष्मी नहीं पाते। पुत्रके कामनावाले कितनेही देवतोंकी पूजा करते हैं, तप करते हैं, परन्तु उनके दस महोना गर्भमें रहकर कुल-कलंक पुत्र उत्पन्न होता है। बहुतसे लोक पिताके सञ्चय किये हुए धनसे भोग विलास करते हैं। हे ब्राह्मण ! मनुष्योंको रोग और व्याधिभी कर्मसे ही उत्पन्न होती है। चतुर वैद्य लोग व्याधियोंको ऐसा नाश करते हैं, जैसे वधिक शूरीका नाश करते हैं, किन्तु जिनकी व्याधि भोगनी है, उनके रोग औषधियोंसे भी नहीं छूटते हैं। हे ब्राह्मण ! बहुतसे बलवान लोग भोजनकामो दुःख भोगते हैं, इस प्रकारसे संसार शोक और मोहसे भरकर चिन्नाता है। प्रारम्भकी नदीमें बलवान फलोंके द्वारा सब प्राणी जीते

जाते हैं। हे ब्राह्मण! यदि स्वाधीनता रहती तो कोई न भरता, कोई जराजीर्य न होता, कोई अप्रिय विषयकी कामना न करना, वल्कि सब अपनी सब प्रकारकी कामना चरितार्थ करते। सब मनुष्योंकी यही इच्छा रहती है, कि हम जगतसे जचे रहें और ऐसेही यथा शक्ति उद्योगभी करते हैं, परन्तु फल सबको नहीं होता। कोई जिनके जन्मकालके मङ्गल मन्त्रव समान जंच दोखते हैं उनके कर्मोंके फल बहुत विषम दीख पड़ते हैं। हे ब्राह्मण! कोईभी आप नहीं बढता, इस जगतमें पहली कर्मोंकीही सिद्धि दीखती है, हे ब्राह्मण! वेदोंमें लिखा है कि जीव सनातन है, सब प्राणियोंके शरीर अचल नहीं हैं, शरीरके नाश होने पर कर्मानुसार जीव दूसरे शरीरमें जाता है।

ब्राह्मण बोले हे कर्म जाननेवालोंमें श्रेष्ठ! जीव सनातन किस रीतिसे है, सो मैं सुनना चाहता हूं आप कहिये। व्याध बोला कि इसके नाश होनेसे जीवका नाश कभी नहीं होता। मूर्ख लोग भ्रम्याही कहते हैं, कि पशुक मनुष्य मर गया। जीव दूसरे शरीरमें जाता है, शरीरका भेदही केवल मरना कहलाता है। दूसरेके किये कर्मके फलकी संसारमें दूसरा मनुष्य नहीं भोग सकता, जो जिस कर्मका करता है, उसे वह अवश्य भोगता है, भार कर्मका नाश कभी नहीं होता है। इन्द्रात्मा लोग अच्छे और पापी नीच होते हैं, मनुष्य अपने कर्मोंके अनुसार जन्म लेता है, और कर्मोंके अनुसार ही वह फल भोगता है। मनुष्य के दो प्रकार के हैं, एक है नरकंठ। पाप और पुण्य के अनुसार इस मनुष्यकी किस प्रकार नीच और उच्च जाति प्राप्त होती है। व्याध बोला, हे भगवन्! इस मनुष्यका लोग गर्भोधानसे कर्मोंका फल कैसे देखते हैं? इस जन्म के कर्मोंका फल कैसे देखते हैं? इस जन्म के कर्मोंका फल कैसे देखते हैं?

उत्पन्न होता है, उसके अनुसारही जीवकीभी पाप और पुण्यके वशमें होकर शुभ अथवा अशुभ योनियोंमें जन्म लेना पड़ता है। उत्तम कर्म होनेसे देवता, मध्यम कर्म होनेसे मनुष्य, भ्रमवाले कर्म करनेसे नीच और पाप कर्म करनेसे पशु आदि क्षयोनियोंमें जन्म लेना होता है। इस प्रकार यह जीव अपने कर्मोंके वशमें होकर जन्म मरण और बुढ़ापा आदि भेदा दुःखोंमें सदा पड़ा करता है। पापोंके वशमें होकर सहस्रो नीच योनि और नरकोंकी भोगकर पापोंकी भोग करता है। इस प्रकार यह जीव अपने कर्मोंकी भोगकर मरता है, तब उन पापोंकी नाश करनेके लिये अच्छी योनि प्राप्त होती है। जब उस योनिमें जाकर यह नवीन कर्म किया करता है, तब फिर उन कर्मोंके भोगोंकी भोगता है। जीवकी निरन्तर ऐसीही दशा रहती है, जैसी अपश्य खानसे रोगियोंकी। इस प्रकार यह जीव दुःखोंसे भरा रहता है, और दुःख भोगता रहता है, तीनों यह अपनेका सुखीही मानता है। जब इसके कर्मोंके अन्त हो जाते हैं, तब यह सब बन्धनोंसे छुट जाता है। इस प्रकार यह जीव दुःखोंसे पूर्ण होकर कुम्हारके चाकके समान घूमता है। यदि यह जीव उमा अवस्थामें कर्मासे निवृत्त और शुद्ध हो जाय, तो वह जीव याग और तपकी करता है, तो वही जीव उस याग और तपके वशमें होकर मोक्षकी प्राप्त करता है। यदि उस समय उन सब कर्मासे निवृत्त और पवित्र जायगा उत्तम मोक्षकी प्राप्त करता है। जीव पापोंकी भोगने भोगने पापका अन्त नहीं पाता है, इसका फल करना चाहिए और पापोंकी दृष्टि से ना चाहिए, निन्दान करनेवाले कोन इसका फल मरना, भय और शर्म पाते हैं, जिससे मनुष्य नरक गया है, जो निन्दित है, विद्वान् इसका फल किसे कहें? इसका फल किसे कहें? इसका फल किसे कहें?

प्राप्त होता है। इस वास्ते सज्जनोंकी चाहिये कि सदा शिष्टोंके समान आचरण करें। ऐसी आजीविका करे, जिसमें संसारकी दुःख न पड़ें; अपने धर्मसे मनुष्यकी वर्तना चाहिये, शास्त्रमें शिष्टोंके बड़तसे उपदेश लिखे हुए हैं, बुद्धिमान धर्मही अवण करते हैं, धर्महीसे जीते हैं, धर्महीसे तुमभी अपनी आजीविका करो। गुणवान लोग धर्महीकी मूलकी दृढ़ करते हैं, धमात्माका चित्त सदा प्रसन्न रहता है, धमात्मा दृष्ट मित्रके सहित लोक परलोक दोनोंमें सुख भागते हैं। शब्द, स्पर्श, और गन्धके धमात्माही स्वामी होते हैं, यही धर्मका फल है। हे ब्राह्मण ! धर्मके फलकी पाकर जब मनुष्य सन्तुष्ट नहीं होता, तब उसकी वैराग्य आता है, ज्ञानदृष्टि हानसे संसारके दोषोंमें नहीं फँसता, अपनी इच्छानुसार विचार करता है, किन्तु धर्मकी नहीं त्याग करता है, पर संसारका नाशवान समझकर सबकी त्यागनका यत्न करता है, तब मोक्षका उद्योग करता है, इस प्रकार धमात्मा सुखी होता है, और पापीको त्यागता है, ऐसाही मनुष्य धामक कहाता है, वही धर्म और मोक्षका प्राप्त करता है। तपही प्राणियोंके वास्ते परम कल्याणकारी है, उसके फल शम, और दम है। तपसे मनुष्य अपनी इच्छानुसार फलका पाता है, और इन्द्रियोंको जीतके सत्य और दमसे ब्रह्मपदको प्राप्त हाता है। ब्राह्मण बाले, हे व्रतधारी ! इन्द्रिय किन्हे कहते हैं ? इन्द्रियोंका कैसे जीता जाता है ? इन्द्रियोंके जीते जानेका क्या फल है ? और वह फल कैसे प्राप्त हाता है ? इन सबको मैं ठोक जानना चाहता हूँ।

।हज व्याध सम्वादमें।

१०८ अ. १५ समाप्त।

उनसे कहा सो मैं कहता हूँ, सुनो। धर्मशाष बोला, पहले मनुष्यका मन विज्ञानकी ज्ञानमें प्रवृत्त होता है, तब विज्ञानलाभ होनेपर काम क्रोधको पाता है, पीछे उस काम क्रोधके चरितार्थ निमित्त महत् कर्मका आरम्भ करता है, फिर अपने प्यारे रूप वागन्धादि विषयोंका अभ्यास करता है, तब मनुष्यकी राग उत्पन्न होता है, रागसे द्वेष, द्वेषसे लोभ और लोभसे मोह होता है। तब लोभसे भरे और राग द्वेषसे युक्त मनुष्यकी बुद्धि धर्ममें नहीं जाती है। जो धर्म करता है, सो केवल कपटसे धन प्राप्ति लिये है, जो धन कपटसे प्राप्त करता है उसको पापमें लगाता है, उसे जो बन्धु बान्धव लोग पण्डित महात्मा कुकर्मसे रोकते हैं उनकी युक्तिके साथ उत्तर देता है। ऐसे पुरुषको तीन प्रकारका अधर्म प्राप्त होता है; एक मनसे पापकी चिन्ता करना, दूसरे वचनसे पाप करना, तीसरे कर्मसे पापकी करना। उस अधर्मीके सब उत्तम गुण नष्ट होजाते हैं, पापियोंसे इसकी मित्रता होती है, इससे लोक और परलोकमें दुःख भोगता है। हे ब्राह्मण ! पापियोंको यह गात होती है, अब धमात्माओका वृत्तान्त सुनो। धमात्मा पहलेही बुद्धिसे दोषोंकी देखते हैं, सुखके तत्त्वको जान कर साधुओंकी सेवा करते हैं, तब उनकी बुद्धि धर्ममें लगती है। ब्राह्मण बोले, हे व्याध ! तुम सत्य धर्म कहते हो, तुम्हारे समान धर्मका कहनेवाला कोई भी नहीं है, तुम्हारा प्रभाव दिव्य है, मेरी बुद्धिमें तुम ऋषि ही हो। व्याध बोला, ब्राह्मणओ महाभाग्यवन्त और सब वर्णोंके पित्रस्वरूप हैं, संसारियोंकी चाहें, कि उन्हींका प्रिय कार्य करे। हे ब्राह्मणोत्तम ! जो उनका काम है, सो मैं तुमसे कहता हूँ। ब्राह्मणोंकी नमस्कार करना चाहिये; अब मैं तुमसे ब्राह्मी विद्या कहना हूँ, सुनो। यह सब जगत जीतनेके अयोग्य है; इस महा भूतान्त

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन् युधिष्ठिर ! ब्राह्मणके ऐसे वचन सुनकर धर्मव्याधने जो कुछ

गमसे परे कीडं पदार्थ नहीं है, यही ब्रह्म है ।
 ३ महाभूत आकाश, वायु, अग्नि, जल, और
 धी हैं । इनके स्पर्श गन्ध आदि पाच गुण हैं ।
 उनके भी गुण परस्परमें संक्रामित होके दृढ़
 हैं । इन्हीं पाँचोंसे पाच इन्द्री उत्पन्न
 होती हैं, दृढा चैतन्य मन है, सातवीं बुद्धि और
 तटवा अहंकार है, इन्द्रियोंमें रजोगुण तमो
 गुण, और सती गुण मिले रहते हैं, इस प्रकार
 सत्रह पदार्थ अव्यक्त कहाते हैं, सब इन्द्रियोंके
 सहित उनके गुणसे गुण मिल करके चौबीस
 कति कहाती है । यह सब मैंने तुमसे कहा
 और अब तुम क्या सुनना चाहते हो ।

हिज व्याध सम्वादनं २०६ अध्याय समाप्त ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन् । धर्म-
शास्त्रके ऐसे वचन सुनके ब्राह्मणने फिर मनको
धीमातकी बढानेवाला प्रश्न किया। ब्राह्मण बोले,
हे व्याध ! हे धर्म करनेवालोंमें श्रेष्ठ ! जो
पद्मभूत कहलाते हैं, उनमेंसे एक एकका गुण
अलग अलग है, सो आप कहिये । व्याध बोला,
हे ब्राह्मण ! भूमि, जल, अग्नि, वायु, और
आकाश इनमेंसे पूर्व पूर्वके अधिक गुणवाले
और पिछले कम गुणवाले हैं, हे ब्राह्मण !
पृथ्वीमें पाच गुण, जलमें चार गुण, तेजमें तीन
गुण और आकाशमें एक वायुमें भी दो
गुण हैं । शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध
ये पांच गुण पृथ्वीमें हैं, इसीसे पृथ्वी अधिक
गुणवाली कहाती है । शब्द, स्पर्श, रूप, और
रस ये चार गुण हैं : शब्द, स्पर्श, रूप ये तीन
गुण तेजमें हैं, शब्द और स्पर्श वायुके गुण हैं
और केवल शब्द आकाशका गुण है । न
शब्द : यह पञ्चगुण सब तत्वोंके हैं और
इसमें अन्तर्निहित है, यह एक दूसरी नहीं
है, क्योंकि एक दूसरेके बिना नहीं रह
सकते । यह सबकी प्रकृति बनती रहती है,
इसमें अन्तर्निहित सब तत्व हैं । हे ब्राह्मण

ये गुण समय परही मिलते हैं ; और समय परही अलग भी हों जाते हैं। सब धातु पञ्चभूतोंसे ही बनती है, इन्हींसे सम्पूर्ण चर और अचर व्याप्त है, इन्द्रियोंके द्वारा जितने पदार्थ बनते हैं, वे सब विनाशा और अविकारो हैं ; जो इन्द्रियोंसे अलग हैं, वही अविकारो है, जैसे अपने शब्दादि विषयोंको इन्द्री ग्रहण करती हैं। जीव इन्द्रियोंको धारण करनेवाला है, इससे उसकी सत्ताप होता है। जो आत्माको सब जगत्में और जगत्का आत्मामें देखता है, वही पूर्ण ज्ञानी सब प्राणियोंको देखता है। जो सब अवस्थामें सब प्राणियोंका देखनेवाला है, उस ब्रह्म समान महात्माको अशुभकर्म नष्ट प्राप्त होते हैं। अविद्या भर झूठे त्वेषोंका जा लाभ गया है, वह महात्मा संसारमें प्रकाशमान ज्ञान मार्गसे मोक्षको प्राप्त होता है; जो तिनकर्म ब्रह्म तकमें अविकारो परमेश्वरका व्यापक देखता है, वह शरीररहित अनुपम बुद्धिमान परमेश्वरका जाननेवाला और योगी कहलाता है। हे ब्राह्मण ! जो तुमने पूजा, वस्त्र मंत्र तपसे सिद्ध होता है, इन्द्रियोंको जीतनेमें ही तप होता है, और प्रकारमें नहीं। जो स्वर्ग नरकको प्राप्त होता है, वह इन्द्रियोंको जीतने और न जीतनेमें ही होता है, सम्पूर्ण योगकी विधि इन्द्रियोंको जीतना ही है, ये ही तप भार नरकके मूल हैं, इन्द्रियोंकी न जीतनेमें ही जीवकी दोष प्राप्त होती हैं। उस योग दान्त्योका अपन यशमें कर लिया है, तब उसके निम्न ही मित्र प्राप्त होती हैं; या तो इन्द्रों और इंद्र के मनकी ही शक्ति है, वह भया दैत्ययोका पाता है जिन्हें इन्द्रकी अज्ञान और पाप में ही तब मूर्ख है। या तो ईश्वर की शक्त है, या तो साक्षात् रूपमें देवदेवता, सब भावों को ही जीतने में ही है, इनकी शक्ति का लक्षण जलकर पुनः होकर महान् महात्म्या के तत्व में है, जो ईश्वर की इन्द्रियोंके मनमें ही

कर अच्छे मार्गमें चलते हैं वेही अच्छे कहाने वाले हैं ; जो इन्द्रिय दूधर उधरकी घीड़के समान मार्गमें भागती हैं, उनको जो रोकता है वही उत्तम सारथी मनसि इन्द्रियोंको जीतता है; और जो अनेक मार्गमें चलनेवाली इन्द्रियोंके पीछे मनको दौड़ाता है, उसकी बुद्धि ऐसी नष्ट होती है, जैसे वायु नावको जलमें डुबाता है। जो शब्दादिक विषयोंको मोहमें नहीं फंसता है, वही ध्यानके फलको प्राप्त होता है।

हिजव्याध सम्वादमें

२१० अध्याय समाप्त।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन् युधिष्ठिर ! इस प्रकारसे धर्म व्याधके सूक्ष्म धर्म कहने पर उस सावधान ब्राह्मणने फिर सूक्ष्म प्रश्न किया। ब्राह्मण बोला, हे धर्म व्याध ! सतीगुण रजोगुण और तमोगुणके गुणोंको आप यथावत कहिये। धर्मव्याध बोला, तुम जो हमसे पूछते हो, सो हम उन तीनोंके गुणोंको भिन्न भिन्न कहते हैं, सुनो। तमोगुण माहको बढ़ानेवाला, रजोगुण जगतके कार्योंमें लगानेवाला और सतीगुण प्रकाश करनेवाला है। इसीसे सतीगुण उन सबमें उत्तम गिना जाता है। तमोगुणसे अविद्या, मूर्खता, निद्रा, इन्द्रियोंकी चञ्चलता, क्रोध और आलस्य बढ़ता है। जो वचनचतुर, विचारशील मनुष्योंमें उत्तम, पराई निन्दा न करनेवाला, बहूत कामोंको करनेको इच्छा रखनेवाला, कठोर और अभिमानी होता है, वह मनुष्य रजोगुणी है। जो ज्ञानयुक्त, धीर, निरालसी हो, जो पराई निन्दा नहीं करता हो, क्रोध रहित हो, बुद्धिमान और दानी हो, वह मनुष्य सतीगुणी होता है। सतीगुणी मनुष्य संसारी मनुष्योंके कर्मसे दुःखी होता है। जब उसे ज्ञान होता है, तब वह संसारी मनुष्योंकी

लगा रहता है, अहङ्कार उसे थोड़ा होता है और उसका स्वभाव सीधा होता है। सतीगुणी मनुष्योंकी सब दुःख शान्त रहते हैं। सतीगुणी मनुष्योंकी कभी किसी कर्मोंका सम्बन्ध नहीं होता। शूद्र मनुष्य सतीगुणके प्रतापसे वैश्व होता है, और वैश्यत्वसे क्षत्रियत्व प्राप्त होता है, फिर सुकर्म करनेसे वह ब्राह्मणत्वको प्राप्त होता है। हे ब्राह्मण ! हमने इन सब गुणोंके गुण कहे अब तुम और क्या सुनना चाहते हो ?

हिज व्याध सम्वादमें २११ अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण बोला, विज्ञानाभिधेय तेजोमय धातु, पार्थिवधातुको प्राप्त होकर किस निमित्त देहाभिमानो होता है ? और प्राणादि वायु नाड़ीमार्ग आश्रय करके किस प्रकार शरीरको विचेष्टित करता है ? श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन् युधिष्ठिर ! ब्राह्मणने धर्मव्याधसे जो प्रश्न किया, धर्मव्याधने महात्मा ब्राह्मणकी उत्तर दिया। व्याध बोला, हे ब्राह्मण ! प्रकाशमय विज्ञानात्मा चिदात्माकी आश्रय करके शरीरका चेतन्य सम्पादन करता है। प्राण उस चिदात्मा और विज्ञानात्मामें वर्तमान रहके विचेष्टमान होता है। प्राणही सब जगतको रक्षा करता है। वही प्राण सब शरीरका पालन करता है, भूत और भविष्यत जो कुछ है सब प्राणहीमें स्थित है, सब प्राणियोंमें प्राणही अंश है, और हम उसी प्राणयनि ब्रह्मकी उपासना करते हैं; प्राणही सब जन्तुओंकी आत्मा, और सनातनपुरुष है। महत्सत्त्व बुद्धि, अहङ्कार और प्राणही शब्द आदिके विषय हैं; सब जीव स्थानोंमें प्राणहीसे पाये जाते हैं, पोछे प्राणहीसे सब अपनी अपनी गतिको प्राप्त होते हैं। मूत्राशय, विषागुदा, और जठराग्निमें प्राणही रहता है, रजो

नसे बुद्धि अन्य धर्ममें लगती है, और इस लोक तथा परलोकमें निश्चल तथा शाकरहित स्थान प्राप्त होता है; मुनिको चाहिये, कि नित्य तप और दान करें, आत्माकी जीतें; किसीके सङ्ग न रहे; तपहीका अभ्यास करें; इससे अप्राप्य स्थानभी प्राप्त होता है; गुणी और अगुणी दोनोंसे निःसङ्ग होकर अकेलेही कार्य करना ये ब्रह्मज्ञानीका एक पद सुख करना है, जो मनुष्य सुख और दुःख दोनोंको त्यागता है, वह सशयरहित होकर ब्रह्मको प्राप्त होता है। हे ब्राह्मणोत्तम ! जैसा मैंने धर्म सुना था वैसा तुमसे कह सुनाया, आगे तुम्हारी सुननेकी क्या इच्छा है।

हिज व्याध सम्वादमें

२१२ अध्याय समाप्त ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन् युधिष्ठिर ! ऐसे सम्पूर्ण मोक्ष धर्मोंकी सुन चुकनेके अनन्तर दृढ़ प्रीतिवाला ब्राह्मण फिर धर्मव्याधसे बोला, कि जो तुमने कहा सो सब न्यायसे युक्त है, धर्म विषयमें तुमसे कोई बात छिपी नहीं है। व्याध-वाला, हे ब्राह्मणोत्तम ! मुझे जिससे यह सिद्धि प्राप्त हुई, मेरे उस प्रत्यक्ष धर्मको देखो। हे भगवन् ! तुम जल्दी खड़े होजाओ और घरमें चलके मेरे माता पिताको देखो।

श्रीमार्कण्डेय - मुनि बोले, हे राजन् ! ब्राह्मणने घरके भीतर जाकर वज्रत मनोहर अटारो और स्थानोंकी देखा, वह घर देवतोके घरके समान था और देवतोंसे पूजा जाता था। वह स्थान पलङ्ग आसन तथा गन्धोंसे पूरित था, उस घरमें उज्ज्वल वस्त्र पहने हुए, भोजन किये, परम सत्पुष्ट व्याधके मातापिता आसन पर बैठे थे। धर्म व्याध उन्हें देखकर उनके पैरों पर जा गिरा। वृद्ध बोले; हे धर्मके जाननेवाले ! उठ, उठ धर्म तेरी रक्षा करे, तेरी दीर्घआयु

हो, तेरी सेवासे हम वज्रत प्रसन्न हैं, तेरा गति तप और बुद्धि वज्रत पवित्र है; हे पुत्र ! देवतोंमें भी हमारे सिवा तुम्हें और देवता को नहीं है, ब्राह्मणकी पूजा करनेसे तुम्हें सब और दम सब प्राप्त हुआ है; हे पुत्र ! हमारे सेवा करनेसे तेरे ऊपर पितामह प्रपितामह सबही प्रसन्न हैं, मन कर्म और वचनसे जैसे हमारी सेवामें तेरी बुद्धि है ऐसी और कर्म नहीं है; हे पुत्र ! जैसे जमदग्निके पुत्र परशुरामने वृद्ध माता पिताकी सेवा की-थी ऐसीही तुमने भी हमारी सेवा की है। तब व्याधने उस ब्राह्मणके आनेका वृत्तान्त अपने माता पितासे कहा, तब उन्होंने ब्राह्मणसे कहा, तुम्हारा आगमन अच्छा हुआ। ब्राह्मणने सत्कार पूर्वक दोनों वृद्धोंसे कहा, कि अपने पुत्र और सेवकों सहित कुशलसे तो है ? तुम दोनोंका शरीर निरोग तो है ? दोनों वृद्ध बोले, हे ब्राह्मण ! हमारे सेवकोंमें और घरमें कुशल है, तुम तो निर्विघ्न यहा आये ?

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन् ! तब उस ब्राह्मणने प्रसन्न होकर कहा कि मैं कुशलसे आया। तब धर्मव्याध ब्राह्मणकी ओर देख कर बोला हे ब्राह्मण ! यह दोनों मेरे माता पिता हैं, यह मुझे देवतोंसेभी परम देवता है, ऐसेही मैं इनकी पूजा करता हूँ। जैसे सब संसारके इन्द्रादिक पतिस देवता माननीय है, वैसेही मुझे ये दोनों वृद्ध माननीय हैं; जिस प्रकारसे ब्राह्मण लोग देवतोंकी भेंट चढ़ाते हैं ऐसेही मैं सावधान होकर इनकी भेंट दूँगा। हे ब्राह्मण ! यह मेरे माता पिताही मेरे लिये परम देवता हैं। इन्हींकी मैं फल फल, और रत्नोंसे सदा पूजा करता हूँ, विश्वामन्य लोग जितनी पूजाके योग्य अग्नि कहते हैं, मैं उन सबके योग्य इन्हींको जानता हूँ। वृद्ध और चारों वेद यही माता पिता हैं इन्हींके वास्ते मेरे प्राण, स्त्री, मित्र और यत्न हैं।

पुत्र और स्त्रीके सहित इनकी सदा सेवा करता हूँ, वरण धोता हूँ, मैं आपही इनकी स्नान कराता हूँ, वरण धोता हूँ, और भोजन कराता हूँ, मैं सदा इनमें प्यारी वाणी बोलता हूँ, कभी बटोर वचन नहीं बोलता, जो अधर्म काम भी इनमें प्रिय हो, तो वह भी मैं करता हूँ। ऐसेही इनकी सेवाको परम धर्म जानके मैं सेवा करता हूँ, यह सबका यही धर्म है, अपने माता पिताकी सेवा करनी।

विज व्याध सन्वादनं २१३ अध्यात समाप्त ।

कैमार्कण्डेय मुनि बोले, इस प्रकारसे ब्राह्मणका माता, पिताका दर्शन करा कर धर्म व्याध फिर ब्राह्मणसे बोला, कि जिससे मेरी ऐसी दिव्य दृष्टि है, यह माता पिताके वंशका ही फल है। पतिसेवा करनेवाली सत्यश्रीला पतिव्रताने तुमसे कहा था कि जनक पुरीको जाओ, धर्मव्याध तुमको धर्मका उपदेश करेगा। ब्राह्मण बोला उस सत्यश्रीला पतिव्रताके वचनको श्रवण करके मैं समझता हूँ, कि तुम अवश्य गुणवान् हो। व्याध बोला मैं ब्राह्मणोंमें छेड़। जब उस पतिव्रताने तुमसे मेरा विषयनं कहा था, तब उमने मुझे अवश्य जानहीदमें देख लिया होगा। हे ब्राह्मण ! तुम्हारे ऊपर दयादृष्टि करके हमने यह सब देखलाया, अब तो मैं तुम्हारे हितके वचन कहता हूँ, सी सुनो। तुमने अपने माता पिताका पनादर किया, बिना उनकी आज्ञा के घरनको निकल गये, यह तुमने बहुत बुरा धर्म किया, तुम्हारे श्रावमें हड माता पिता पड़े हैं यह तुम अब उनके प्रसन्न होनेके लिये पर जाओ : तुम तपस्वी नृपतिव्रत कहलेंगे कहेलाके हो सब प्रकारसे तुमको पनादर करना प्रसन्न करना चाहिये, इन में से तुम यश करो और इनमें बिलग्न न हो, हे ब्राह्मण ! हे तुम्हारे भविकी जान

कहता हूँ, अभी चले जाओ। ब्राह्मण बोला हे धर्मव्याध ! मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हुआ, तुम्हारा कल्याण हो, तुम बहुत गुणवान् हो। व्याध बोला, हे ब्राह्मण ! तुम देवतोंके समान धर्म करनेनाले हो, तुम माता पिताके पास जाकर और आलस्य रहित होकर माता पिताकी सेवा करो, मैं इससे बड़ा कोई धर्म नहीं देखता हूँ। ब्राह्मण बोला, मैं प्रारब्धही से यहा आया और और प्रारब्धहीसे तुमसे भेंट होगई ; तुम्हारे समान धर्मकी जाननेवाले मनुष्य दुर्लभ हैं, सहस्रो मनुष्योंमें धर्मका जानने वाला एकही होता है ; हे पुरुषच्रेष्ठ ! तुम्हारे सत्यसे मैं प्रसन्न हुआ, मैं नरकमें गिरा जाता था, तुमने उससे मेरा उद्धार किया, जैसे स्वर्गमें गिरते हुए राजा ययातिकी उनके पुत्रीके पुत्रोंन उद्धार किया था, हे पुरुषशार्दूल ! वैसेही तुमने मेरा उद्धार किया। माता पिताकी सेवा मैं अवश्य करूंगा, अविवेकी मनुष्य धर्मको नहीं जानता है, शूद्रयोनिमें उत्पन्न हुए मनुष्योंकी धर्म जानना बहुत कठिन है, मैं तुमकी एक विशेष कारणसे शूद्र नहीं मानता हूँ, हे महाबुद्धिमान ! जिस विशेष कर्मसे तुम शूद्र हुए हो उसका मैं जाननेका इच्छा रखता हूँ, तुम इच्छापूर्वक कहा। व्याध बोला हे ब्राह्मणोत्तम ! ब्राह्मणोंका मैं पनादर नहीं कर सकता हूँ, हे पापरहित ! पहले मेरे कर्मका सुना, मैं पहले जन्ममें एक ब्राह्मणका पुत्र पैदा और बेटाहीका जाननेवाला ब्राह्मण था, मैं अपनेही देवसे इस धर्मका प्राप्त हुआ हूँ, एक धर्मदेवका जाननेवाला राजा मेरा मित्र था, उमने मेरा सत्यसे मुझे भी धर्मदेवका बोला बोला पनादर कराया। एक दिन राजा पनादरों गया, बहुतसे देव और मानवोंकी भी बहुत सेवा था, यमों काकर राजा बहुतसे मनुष्योंका पनादर, पनादर करते करते इस धर्म का प्राप्त हुआ।

वहां जाके भी मैंने एक वाण चलाया, तो वह वाण उस ऋषिको लगा, बाण लगतेही ऋषि पृथ्वीमें गिर पड़े और दीन होकर कहने लगे कि मैंने किसीका अपराध नहीं किया और वह कौनसा पापी है, जिसने मेरे वाण मारा है, हे ब्राह्मण । मैं उसे मृग समझकर पास गया वहां जाके ऋषिको देखा और अपने कुकर्मको देखकर बहुत दुःखी हुआ । उस ऋषिको पृथ्वीमें शब्द करते हुए पड़ा देखकर मैंने कहा, हे ब्राह्मण ! मैंने यह अज्ञानसे अपराध किया, उस तपस्वीने क्रोधसे भरके मुझसे कहा, कि तू शूद्रयोनिमें व्याध होगा ।

द्विज व्याध सम्वादमें

२१४ अध्याय समाप्त ।

व्याध बोला, हे ब्राह्मणोत्तम । इस प्रकारसे जब मुझे ऋषिने शाप दिया, तब मैंने ऋषिको दीन बाणीसे ताहि ताहि कहके प्रसन्न किया । मैंने हाथ जोड़कर कहा, महाराज ! मैंने यह कर्म अज्ञानसे किया था, आप क्षमा कीजिये । तब ऋषि बोले, कि मेरा दिया शाप भूठा नहीं होगा, किन्तु तौभी तेरी प्रार्थनासे मैं कुछ कृपा करता हूं । शूद्र जन्ममेंभी तुम्हें धर्मका ज्ञान बना रहेगा, माता और पिताकी तू परम सेवा करेगा, उनकी सेवा करनेसे तुम्हें परमसिद्धि प्राप्त होगी, पहले जन्मका ज्ञान रहेगा और स्वर्गको प्राप्त होगा । मेरे शापके समाप्त होने पर फिर तू ब्राह्मण होगा । इस प्रकारसे महा तेजस्वी ऋषिने मुझे शाप दिया था । हे ब्राह्मण । फिर मेरे ऊपर उनने कृपा भी करो । मैंने उनके शरीरसे वाण निकाला और उन्हें आश्रममें पड़ चाया, उनके प्राण नष्ट नहीं हुए । यह मैंने अपने पूर्व कर्मोंका वृत्तान्त तुमसे कहा । इस जन्मके पीछे मैं स्वर्गको जाऊंगा । ब्राह्मण बोला, हे महाभाग ! इसी प्रकारसे मनुष्यका सुख और दुःख प्राप्त होता है,

तुमने अज्ञानसे यह कर्म किया था, लोकके वृत्तान्तकी जाननेवाले । हे धर्मपरायण ! इन सब कर्मोंके दोषोंकी भोगवा फिर सुख होगा, मेरी बुद्धिमें इस समयभी तुम ब्राह्मण हो । जो ब्राह्मण-कुलमें उत्पन्न होकर नीच कर्म करे वह अवश्यमेव शूद्र तुल्य है और जो शूद्र सत्य धर्म करता हो तो उसे भी हम ब्राह्मण ही मानते हैं ! मनुष्य कर्मोंके दोषसे ही अच्छी और बुरी गतिकी प्राप्त होता है, हे नरोत्तम ! मैं तुमको दोष-रहित जानता हूं । तुम घबड़ाओ मत, तुम्हारे समान बुद्धिमान शोक नहीं करते हैं, जो लोग संसारकी गतिकी जानते हैं और धर्म करते हैं, वे लोग कदापि शोक नहीं करते हैं । वह व्याध बोला, हे ब्राह्मण । बुद्धिसे मनके दुःख और औषधोंसे शरीरके दुःख दूर होते हैं । यह जो ज्ञानकी शक्ति है, सो मूर्खोंके समान नहीं हो सकती है, जिस कर्ममें हानि दीखती है, पुरुष उससे शीघ्रही विरक्त हो जाता है, यदि उसका कुछ उपाय दीख पड़ता है, तो उसका उपाय करने लगता है, सोचसे कुछ नहीं होता है, केवल पुरुषकी दुःख हो होता है । जो ज्ञानीलोग दुःख और सुख दोनोंको छोड़ देते हैं, वे ही ज्ञानसे तप्त होकर सुखकी भांगते हैं, वे ही लोग पण्डित कहाते हैं । जो लोग सन्तोष नहीं करते हैं, वे लोग मूर्ख हैं और पण्डित लोग असन्तोषहीकी मूर्ख समझते हैं । असन्तोषका अन्त नहीं है, इस लिये सन्तोषही परम सुख है । जो लोग मार्गसे चलकर अपने स्थानको देखते हैं, उनका सोच नहीं होता है । पुरुषको कभी दुःख नहीं करना चाहिये, क्योंकि दुःखही बड़ा भारी विष है । दुःख मूर्ख पुरुषोंकी इस प्रकार नष्ट कर देता है, जैसे क्रोधी सर्प बालकको काट खाता है, पर कृपाका समय आनेसे जिसकी दुःख हुआ, वह तेजसे जीन होजाता है, तब पुरुषाव नहीं

कर सकता है। जो कर्म किया है, उसका फल अवश्य होता है, केवल सोच होनेसे किसी कर्ममें पुरुष कूटता नहीं है। यदि किसी दुःखका उपाय दिखाई भी दे, तो पुरुष बिना सोचेही उसको करने लगता है। यदि वह सिद्ध न हो, तो कुछ उसमें दुःख नहीं करे। जो पण्डित लोग बुद्धिके पार हो गये हैं, वे बोते हुए कामको ऐसेही होनेवाला मानते हैं। फिर पण्डित लोग कुछ सोच नहीं करते हैं, क्योंकि वे लोग परम-गतिको देखते हैं। हे पण्डित! हमभी कुछ सोच नहीं करते हैं, क्योंकि हम समयको देखते हुए यद्वा स्थित हैं। हे ब्राह्मण! हम इन्ही सब कारणोंको देखकर कुछ सोच नहीं करते हैं।

ब्राह्मण बोला, हे व्याध ! हम तुम्हारा इस सोच नहीं करते हैं ; क्योंकि तुम बुद्धिमान और पण्डित हो, तुम्हारी बुद्धि वृद्धत उत्तम है, तुम ज्ञानसे भरे और धर्मको जानने-वाले हो । हे धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ । तुम्हारा आज्ञा हो तुम सावधान होकर धम्म करो। हम अब जानेकी आज्ञा मागते हैं , धर्म तुम्हारी रक्षा करे, हमको आज्ञा दो ।

कामाक्षीय मुनि बोले व्याधने हाथ जोड़
कर ब्राह्मणसे कहा, कि व्रजत अच्छा। अन-
न्तर ब्राह्मण व्याधकी प्रदक्षिणा करके चल
रहे। ब्रह्मसे जाकर उस ब्राह्मणने माता
और पिताकी प्रदक्षिणा करी और माता
दिगम्बरी उसकी उचित प्रशंसा करी। ई
संग्रह - धर्म जानने वालोंने नष्ट - ई
संग्रह - हमने जो धर्मसे पूछा था, सो सब धर्म
संग्रह - हमसे कहा, हमने पतिव्रताका
संग्रह - ब्राह्मणका धर्म और पिता, माता-
संग्रह - हमसे कहा, यह सब धर्म व्याधने
संग्रह - कहा था।

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

परम अद्भुत वृत्तान्त कथा, यह वृत्तान्त वद्वत हो
अच्छा था ; इसमें यह समय सुभाकी मुहूर्तकी
समान व्यतीत हो गया, और मैं धर्म सुनकर
तप नहीं हुआ ।

पतिव्रता माहात्म्यमें हिजव्याध सम्वाद और
२१५ अध्याय समाप्त।

त्रैवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजर्जन-
जय ! इस धर्मकी कथाको सुनकर धर्मराज
युधिष्ठिरने फिर मार्कण्डेय मुनिसे पूछा । महा-
राज युधिष्ठिर बोले, हे महर्षि ! पहले समयमें
अग्निदेवता किस प्रकार वनमें गये थे ? और
महा तेजस्वी अद्विराने किस प्रकारमें अग्निके
नष्ट होने पर अग्नि होकर यज्ञोक्ती अहुतिकी
भोग किया था ? हे भगवन ! अग्नि तो
एकही है, फिर वह अनेक कर्मोंमें अनेक
कैसे हो जाते हैं, हम इस कथाको सुनना
चाहते हैं । हम कार्तिकेयकी उत्पत्ति सुनना
चाहते हैं । वे शिशुके पुत्र किस प्रकारमें हुए,
और कैसे अग्निके पुत्र हुए ? उनकी गङ्गा
और ज्ञानिकाने किस प्रकार उत्पन्न किया, हे
भगवन् ! हे महामुनि ! हमें इन सब
कथाओंके सुननेकी बहुत इच्छा है आप
यथावत् रूपसे कहिये ।

त्रैलोक्ये मुनि मोहि के मन्त्रालय
 रचित लग इसी स्थान पर इस मन्त्रालय
 यथाका उदाहरण देते हैं । जिस प्रकार याम
 कृष्ण ह्वाकर तब करके निम्न प्रकार के
 गये हैं जिस प्रकार भगवान् यामिन् यामिन्
 यामिन् यामिन् के हीन जिस प्रकार यामिन् यामिन्
 यामिन् यामिन् के हीन जिस प्रकार यामिन् यामिन्
 यामिन् यामिन् के हीन जिस प्रकार यामिन् यामिन्
 यामिन् यामिन् के हीन जिस प्रकार यामिन् यामिन्

१. मद्रास प्रांत : मद्रास प्रांत में मद्रास नगर में १९३१ ई. में १००
 मद्रास प्रांत में मद्रास नगर में १९३१ ई. में १००
 मद्रास प्रांत में मद्रास नगर में १९३१ ई. में १००
 मद्रास प्रांत में मद्रास नगर में १९३१ ई. में १००

वहां जाके भी मैंने एक बाण चलाया, तो वह बाण उस ऋषिको लगा, बाण लगतेही ऋषि पृथ्वीमें गिर पड़े और दीन होकर कहने लगे कि मैंने किसीका अपराध नहीं किया और वह कौनसा पापी है, जिसने मेरे बाण मारा है; हे ब्राह्मण ! मैं उसे मृग समझकर पास गया वहां जाके ऋषिको देखा और अपने कुकर्मकी देखकर बहुत दुःखी हुआ। उस ऋषिको पृथ्वीमें शब्द करते हुए पड़ा देखकर मैंने कहा, हे ब्राह्मण ! मैंने यह अज्ञानसे अपराध किया, उस तपस्वीने क्रोधसे भरके मुझे कहा, कि तू शूद्रयोनिमें व्याध होगा।

इज व्याध सस्वादमे

२१४ अध्याय समाप्त ।

व्याध बोला, हे ब्राह्मणीत्तम ! इस प्रकारसे जब मुझे ऋषिने शाप दिया, तब मैंने ऋषिको दीन बाणीसे ताहि ताहि कहके प्रसन्न किया। मैंने हाथ जोड़कर कहा, महाराज ! मैंने यह कर्म अज्ञानसे किया था, आप क्षमा कीजिये। तब ऋषि बोले, कि मेरा दिया शाप झूठा नहीं होगा; किन्तु तौभी तेरी प्रार्थनासे मैं कुछ कृपा करता हूं। शूद्र जन्ममेंभी तुम्हें धर्मका ज्ञान बना रहेगा, माता और पिताकी तू परम सेवा करेगा, उनकी सेवा करनेसे तुम्हें परमसिद्धि प्राप्त होगी, पहिले जन्मका ज्ञान रहेगा और स्वर्गको प्राप्त होगा। मेरे शापके समाप्त होने पर फिर तू ब्राह्मण होगा। इस प्रकारसे महा तेजस्वी ऋषिने मुझे शाप दिया था। हे ब्राह्मण ! फिर मेरे ऊपर उनने कृपा भी करो। मैंने उनके शरीरसे बाण निकाला और उन्हें आश्रममें पड़ा चाया, उनके प्राण नष्ट नहीं हुए। यह मैंने अपने पूर्व कर्मोंका वृत्तान्त तुमसे कहा। इस जन्मके पीछे मैं स्वर्गको जाऊंगा। ब्राह्मण बोला, हे महाभाग ! इसी प्रकारसे मनुष्यका सुख और दुःख प्राप्त होता है,

तुमने अज्ञानसे यह कर्म किया था; लोकके वृत्तान्तकी जाननेवाली। हे धर्मपरायण ! इन सब कर्मोंकी दोषोंकी भोगकर फिर सुख होगा, मेरी बुद्धिमें इस समयभी तुम ब्राह्मण हो। जो ब्राह्मण-कुलमें उत्पन्न होकर नीच कर्म करे वह अवश्यमेव शूद्र तुल्य। और जो शूद्र सत्य धर्म करता हो तो उसे भी हम ब्राह्मण ही मानते हैं। मनुष्य कर्मों दोषसे ही अच्छी और बुरी गतिकी प्राप्त होता है; हे नरोत्तम ! मैं तुमको दोष-रहित जानता हूं। तुम घबड़ाओ मत, तुम्हारे समान बुद्धिमान शोक नहीं करते हैं, जो लोग संसारकी गतिकी जानते हैं और धर्म करते हैं, वे लोग कदापि शोक नहीं करते हैं। वह व्याध बोला, हे ब्राह्मण ! बुद्धिसे मनके दुःख और औषधोंसे शरीरके दुःख दूर होते हैं। यह जो ज्ञानकी शक्ति है, सो मूर्खोंके समान नहीं हो सकती है, जिस कर्ममें हानि दीखती है, पुरुष उससे शीघ्रही विरक्त हो जाता है, यदि उसका कुछ उपाय दीख पड़ता है, तो उसका उपाय करे लगता है, सोचसे कुछ नहीं होता है, केवल पुरुषकी दुःख हो होता है। जो ज्ञानीलोग दुःख और सुख दोनोंको छोड़ देते हैं, वेही ज्ञानसे तृप्त होकर सुखकी भोगते हैं; वेही लोग परित्त कहते हैं। जो लोग सन्तोष नहीं करते हैं, वे लोग मूर्ख हैं और परित्त लोग असन्तोषोहीकी मूर्ख समझते हैं। असन्तोषका अन्त नहीं है, इस लिये सन्तोषही परम सुख है। जो लोग मार्गसे चलकर अपने स्थानको देखते हैं, उनका सोच नहीं होता है। पुरुषको कभी दुःख नहीं करना चाहिये, क्योंकि दुःखही बड़ा भारी विष है। दुःख मूर्ख पुरुषोंकी इस प्रकार नष्ट कर देता है, जैसे क्रोधी सर्प बालकको काट खाता है, पर कृपाका समय आनेसे जिसकी दुःख हुआ, वह तेजसे झीन होजाता है, तब पुरुषार्थ नहीं

कर सकता है। जो कर्म किया है, उसका फल अवश्य होता है, केवल सोच होनेसे किसी कर्मसे पुरुष-कूटता नहीं है। यदि किसी दुःखका उपाय दिखाई भी दे, तो पुरुष बिना सोचेही उसकी करने लगता है। यदि वह सद् न हो, तो कुछ उसमें दुःख नहीं करे। जो पण्डित लोग बुद्धिके पार हो गये हैं, वे बोते हुए कामको ऐसेही होनेवाला मानते हैं। फिर पण्डित लोग कुछ सोच नहीं करते हैं, क्योंकि वे लोग परम गतिको देखते हैं। हे पण्डित ! हमभी कुछ सोच नहीं करते हैं, क्योंकि हम समयको देखते हुए यहां स्थित हैं। हे ब्राह्मण ! हम इन्ही सब कारणोंको देखकर कुछ सोच नहीं करते हैं।

ब्राह्मण बोला, हे व्याध ! हम तुम्हारा कुछ सोच नहीं करते हैं; क्योंकि तुम बुद्धिमान और पण्डित हो, तुम्हारी बुद्धि वज्रत उत्तम है, तुम ज्ञानसे भरे और धर्मको जाननेवाले हो। हे धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ ! तुम्हारा कल्याण हो, तुम सावधान होकर धर्म करो, हम अब जानेकी आज्ञा मांगते हैं, धर्म तुम्हारी रक्षा करे, हमकी आज्ञा दो।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, व्याधने हाथ जोड़ कर ब्राह्मणसे कहा, कि वज्रत अच्छा। अनन्तर ब्राह्मण व्याधकी प्रदक्षिणा करके चल दिये। वहांसे जाकर उस ब्राह्मणने माता और पिताकी प्रदक्षिणा करी और माता पितानेभी उसकी उचित प्रशंसा करी। हे युधिष्ठिर ! हे धर्म जाननेवालोंमें श्रेष्ठ ! हे तात ! तुमने जो हमसे पूछा था, सो सब धर्म हमने तुमसे कहा, हमने पतिव्रताका माहात्म्य ब्राह्मणका कर्म और पिता, माताकी सेवा तुमसे कही, यह सब धर्म व्याधने ब्राह्मणसे कहा था।

महाराज युधिष्ठिर बोले, हे सब धर्मोंके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ ! हे मुनिवर ! आपने हमसे

परम अद्भुत वृत्तान्त कहा, यह वृत्तान्त वज्रतही अच्छा था, इससे यह समय सुभको सुहृत्तके समान व्यतीत हो गया, और मैं धर्म सुनकर तप नहीं हुआ।

पतिव्रता माहात्म्यमें द्विजव्याध सम्वाद और २१५ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय ! इस धर्मकी कथाको सुनकर धर्मराज युधिष्ठिरने फिर मार्कण्डेय मुनिसे पूछा। महाराज युधिष्ठिर बोले, हे महर्षे ! पहले समयमें अग्निदेवता किस प्रकार वनमें गये थे ? और महा तेजस्वी अङ्गिराने किस प्रकारमें अग्निको नष्ट होने पर अग्नि होकर यज्ञोंकी अद्भुतिकी भोग किया था ? हे भगवन ! अग्नि तो एकही है, फिर वह अनेक कर्मोंमें अनेक कैसे हो जाते हैं, हम इस कथाको सुनना चाहते हैं। हम कार्तिकेयकी उत्पत्ति सुनना चाहते हैं। वे शिवके पुत्र किस प्रकारसे हुए, और कैसे अग्निके पुत्र हुए ? उनको गङ्गा और कृत्तिकाके किस प्रकार उत्पन्न किया ? हे भृगुकुलश्रेष्ठ ! हे महामुनि ! हमें इन सब कथाओंकी सुननेकी वज्रत इच्छा है, आप यथार्थ रूपसे कहिये।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे महाराज ! पण्डित लोग इसी स्थान पर इस पुरानो कथाका उदाहरण देते हैं। जिस प्रकार अग्नि क्रोधित होकर तप करनेके लिये वनकी चले गये थे, जिस प्रकार भगवान् अङ्गिरा आपही अभिन हो गये थे और जिस प्रकार उन्होंने आग्न होकर अपने तेजसे सब जगतकी अन्धकारकी नाश किया था, सो सब कथा हम आपसे कहते हैं।

हे महाबाहो ! पहले समयमें महाभाग अङ्गिरा मुनिने अपने आश्रमपर बैठकर अग्निकी घोर तपस्या की थी। अनन्तर अङ्गिराभी अग्निके स्वरूप हो गये, उनके तेजसे सब जगतमें प्रकाश

हो गया । अङ्गिराकी तपस्याके तेजसे अग्निकी वज्रत दुःख होने लगा, इससे तेजस्वी अग्नि वज्रत मलिन होगये और कोई काम न कर सके ; तब भगवान् अग्निने विचारा, कि ब्रह्माने सब लोकोंके निमित्त नवीन अग्नि बनाई है, और तपस्या करते करते हमसे तेज नष्ट हो गया ; अब हम कैसे अग्नि हों । फिर अग्निने दूसरी अग्निके समान महामुनि अङ्गिराको देखा ! अनन्तर भगवान् अग्नि डरते डरते और धीरे धीरे अङ्गिरा मुनिके पास गये, तब अङ्गिराने अग्निसे कहा, कि तुम पुनः शीघ्र ही अग्नि हो जाओ, क्योंकि तुम तीनों लोकमें विख्यात हो । हे अन्धकार नाश करनेवाले ! प्रथम कालमें ब्रह्माने तुमहीकी अन्धकार नाशक अग्नि बनाया था, इससे तुमही पुनः अग्नि हो जाओ ।

अग्नि बोले, हे महामुनि ! जगतमें मेरी कीर्ति नष्ट हो गई है और तुम अग्नि हो गये हो, इससे जगतके सब पुरुष तुमहीका अग्नि जानेंगे, सुभक्तो नहीं । हम तुमका अग्नि की शक्ति देते हैं, तुम प्रथम अग्नि अर्थात् सूत्रात्मा बना । हम दूसरी अग्नि अर्थात् विराट् होगी ।

अङ्गिरा बोले, हे अग्नि ! तुम पुण्य करा, और तिमिरापहारी हव्यकव्यवाही अग्नि हो जाओ और सुभक्ता अपना प्रथम पुत्र बनाओ ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन् युधिष्ठिर ! अङ्गिराके ऐसे वचन सुन अग्निने वैसाही किया । अङ्गिराकेभी पुत्रका नाम वृहस्पति हुआ, उस अङ्गिराके पुत्रका सब देवतोंने माना वह अग्निका पहला पुत्र हुआ । सब देवतोंने वहां आके उससे ब्रह्मजिज्ञासा किया । अनन्तर उन्होंने देवतोसे सब कारण कह सुनाया ; फिर अङ्गिराने उसे देवताओंका पुरोहित बना दिया ; देवतोंने अङ्गिराका वह सब वचन ग्रहण किया । तभी से ब्राह्मणोंने यज्ञ तेजस्वी

अग्निके अनेक नाम रखे, इसमें कर्कशी प्रधान है ।

आङ्गिरसोपाख्यानमें

२१६ अध्याय समाप्त ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे कुरुकुल-नन्दन ! ब्रह्माके जो दूसरे पुत्र अङ्गिरा है, उनकी शुभा नामो भाय्या यी ; उसको सन्तानकी कथा सुनिये ।

उनके पुत्रोंके नाम ये हैं—वृहत्कीर्ति वृहत्कीर्ति, वृहन्मना, वृहन्मन्त, वृहदब्रह्मा, वृहद् भास और वृहस्पति । इन सब सन्तानोंमें एक भानुमति नामक कन्या बड़ी सुन्दरी हुई । वह अङ्गिराकी प्रथम पुत्री थी । और अङ्गिराकी दूसरी पुत्रीका नाम रागा हुआ । सब जगतने जेतुओंने उससे वज्रत अनुराग किया, इससे उसका नाम रागा हुआ । जगतके पुरुष जिसको शिवकी पुत्री कहते हैं, जो अत्यन्त सूक्ष्म होनेके कारण दृश्य और अदृश्य है, उसका नाम सिनीवाली है, वह अङ्गिराकी तीसरी पुत्री है । जो अपनी किरणोंसे सबको देखती है, उस चौथीका नाम अर्चिषमति है । जिसमें यज्ञकी आहुति पाकर देवता लोक प्रसन्न होकर सन्तुष्ट होते हैं, उनकी उस पांचवीं कन्याका नाम हविषमति है, अङ्गिराकी छठी कन्याका नाम माहिषमति है, उसीका नाम यज्ञोंमें अङ्गिरसी भी है । हे महामते ! अङ्गिराके सातवीं कन्याका नाम महामति है । जिसका देख कर जगतके मनुष्य विस्मित हो जाते हैं, जिसमें चन्द्रमाका कुछ अंश नहीं रहता, अङ्गिराके उस आठवीं पुत्रीका नाम कुङ्ग है ।

आङ्गिरसोपाख्यानमें

२१७ अध्याय समाप्त ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे महाराज युधिष्ठिर ! वृहस्पतिकी जो यशस्विनी स्त्री थी, उसी

अग्नि नामक छः पुत्र उत्पन्न हुए । यज्ञोंको आहुतिमें जिस अग्निको नाम पहिले लिया जाता है, वह महावृत्त अग्नि बृहस्पतिका पुत्र है ; उसका नाम शामयू है, चातुर्मास और अश्वमेध यज्ञोंमें जिसके निमित्त पशु दिया जाता है, जो अनेक जलती हुई ज्वालाओंसे प्रकाशमान होता है जो वही एक अग्नि बलवान है । शामयूकी असाधारण स्त्री थी, जो धर्मसे उत्पन्न हुई थी, उसका नाम सत्या था और दीप्त अग्नि उसका पुत्र हुआ और तीन उत्तम व्रत धारण करनेवाली कन्या हुई, जो अग्नि यज्ञोंमें पहिले शाकल्यसे पूजा जाता है, उसके पहिले पुत्रका नाम भरद्वाज है । जो सब पूर्णमास यज्ञोंमें सुवासे आहुति पाता है, उस अग्निको नाम भरत है ; वह शामयूका दूसरा बेटा है । उसकी और भी तीन कन्या है उन तीनोंको नाम भरतस्वामी । उसकी भरती नामक एक कन्या है । हे भरतसत्तम ! अग्निको भरत और प्रजापतिकी अग्नि पुत्र है, वह सबसे बड़ा है । भरद्वाजकी स्त्रीका नाम वीरा है, ब्राह्मण लोग उसकी पूजा चन्द्रमाके समान शाकल्यसे करते हैं । जो घीसे दूसरे चन्द्रमाके संग पूजा जाता है, वह रथोंका स्वामी है और उसका नाम कुम्भरेता है, उस कुम्भरेताकी स्त्रीका नाम सरयु है, उसके पुत्रका नाम सिद्ध है, उसने अपने विजसे सूर्यकी कृपा लिया, वह आग्नेय कर्मोंको प्राप्त करता है, महात्मा लोग इसका आह्वान करते हैं, जो कभी तेज, यश और लक्ष्मीसे नष्ट नहीं होता, जो सदा केवल पृथ्वीकी स्तुति करता है, उस अग्निको नाम चवन है, जो सब पापोंसे रहित पावन और समयके अनुसार धर्म करनेवाला है, जो अपनी पावन ज्वालाओंमें जलता रहता है, वह विपाक नामक अग्नि उसका पुत्र है ; जो राते हुए पुरुषोंको दुःखोंसे कुड़ाता है उस अग्निको नाम निष्कृति है, वह सदाही शोभाय-

मान रहता है ; जिससे रोगी लोग आपँही शब्द करते रहते हैं, उस अग्निको नाम स्वन है और वह पूर्वोक्त अग्निको पुत्र है, उससे सब रोग उत्पन्न होते हैं ; जो अग्नि सब जगतके पुरुषोंकी बुद्धिको अपने वशमें रखता है, विद्वान लोग उसका नाम विस्वजित्त बतलाते हैं ; हे भारत । जो अग्नि सब प्राणियोंके अन्तरमें रहती है, जिससे सब भोजन पचता है, उसका नाम विश्वभुक् है, इस अग्निकी ब्रह्मचारी, व्रतधारी ब्राह्मण लोग सदाही पाकयज्ञमें पूजते हैं ; इसकी प्यारी स्त्रीका नाम गोमती है, उसीमें सब धर्म करनेवाले लोग कर्म करते हैं ; जो परम दारुण अग्नि है, जो समुद्रकी पोता है उसका नाम बाहुवाग्नि है ; जो प्राण नामक अग्नि ऊपरकी जाती है, कवियोंने उसका नाम ऊर्ध्वगामी रक्खा है, जिसके निमित्त द्वारपर बलि दी जाती है, उसका नाम सृष्टिकृत है ; जो अग्नि शान्त पुरुषोंमें क्रोध रूप होकर बसती है, जो क्रोधी पुरुषोंमें तेज-रूप होकर बसती है, हम जानते हैं, कि वह पूर्वोक्त अग्निकी कन्या है, वह बड़ी दारुण है उसका नाम स्वाहा है । स्वर्गमें जिसके समान रूपवान कोई नहीं है, जिसकी तुलना नहीं हो सकती है, उस अग्निको नाम काम है । जो अग्नि रथपर चढ़कर माला पहनकर और धनुष धारण करके सब शत्रुओंको नाश करती है, जिसकी स्तुति तीन उच्च पदोंसे करी जाती है, उस महाभाग अग्निको नाम ग्रन्थ है, उसीसे महा काव्य उत्पन्न हुए हैं और उसका समास्वास कहते हैं ।

आगिरसोपाख्यानम्

२१८ अध्याय समाप्त ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि वीले, हे राजन् युधिष्ठिर । काश्यपके पुत्र वाशिष्ठ वाशिष्ठके पुत्र प्राण, प्राणके पुत्र अग्नि उनके पुत्र अद्विरा । चवन और

स्वर्चक इन्होंने पुत्रके लिये कई सी वर्षोंतक घोर तप किया ; उन्होंने कहा, कि हमको ऐसा धार्मिक पुत्र हो, जो यशमें ब्रह्माके समान हो ; जब उन्होंने पञ्च महा व्याघ्रकी ओर ध्यान किया उसी समय पांच वर्णवाला महा तेजस्वी एक तेज उत्पन्न हुआ । - हे भारत ! उसका सिर-अग्निके समान, हाथ सूर्यके समान, त्वचा और नेत्र-स्वर्णके समान और उसकी जङ्घा काली थी । उन पांचोंने अपने तपके बलसे उस बालकको पांच रंगका बनाया, इसलिये उस बालकका नाम पाञ्चजन्य रखना पड़ा । - उससे पांच वंश चले । उसने १०००० (दश हजार) वर्ष घोर तप किया ; उसके पुत्रका नाम अग्नि-हुआ, और उस अग्निहीसे उनके पितरोंका वंश चला । अनन्तर शिरसे बृहद्रथ, मुखसे विष्णु, नाभिसे शिव, बलसे इन्द्र, प्राणसे वायु और अग्निको उत्पन्न किया । हाथोंसे उदात्त और अनुदात्त स्वर और मन आदि इन्द्रियोंका उत्पन्न किया, इन सबके पश्चात् पितरोंके पांच-पुत्रोंको उत्पन्न किया । उन पांचमसे बृहद्रथका प्रणधो, काश्यपका महत्तर, अङ्गिराका भानु और वर्चका सौमर पुत्र हुआ । प्राणके पक्षीय अनुदात्त पुत्र हुए, और उन्होंने पन्द्रह यज्ञोंके नाश करनेवाले पुत्र उत्पन्न किये । - नमसे पांचोंके ये नाम हैं, सुभीम, अतिभीम, भीमवल, भीम, अवल येहो पांच यज्ञोंको नाश करनेवाले हैं, और तपसे बने हैं ।

सामित्र, अर्तिमित्र, मित्रज्ञ, मित्रवर्द्धन और मित्रधर्मा, इन पांच देवतोंको भी तपसे बनाया है, सुरप्रवीर, वीर, सुरेश, सुवचस और सुरहन्ता इन पांचाकीभी तपसे बनाया । ये सब पांच पांच मिलकर तीन स्थानोंमें अलग अलग रहने लगे । ये सब लोग स्वर्गहीमें बैठे यज्ञोंका भोग करते हैं ; वे लोग उनके द्रष्टा कार्य्योंको नाश करते हैं और ये लोग यज्ञकी गन्धसे सब

यज्ञोंके शाकल्यको नष्ट करते हैं और खा जाते हैं ; तब चतुर लोग वेदीके बाहर दान देने लगे ; इसी कारणसे ये लोग उस वेदीमें नहीं जाते हैं, जिताकी अग्निके घीको अपने पंखोंसे ले जाते हैं, जब मन्त्रोंसे इनकी शान्ति कर दी जाती है, तब ये लोग यज्ञोंको नाश नहीं करते हैं । - तपका पुत्र बृहद्रथ भूमिमें रहता है अग्निहोत्रके प्रारम्भमें ब्राह्मण लोग उसकी पूजा करते हैं, तपका पुत्र रथन्तर जिसे विराट अग्नि कहते हैं ; उस मित्रविदकी यज्ञकता लोग हवि कहते हैं, इन पुत्रोंके सहित महा यपस्वी तप ब्रह्म प्रसन्न हुए ।

आङ्गिरसोपाख्यानमें-

२१६ अध्याय समाप्त ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, बड़े भारी नियमोंसे भरत नामकी अग्नि उत्पन्न हुई । - पृथिवीली अग्नि पृष्टिमति अग्नि सन्तोष और पृष्टिकी देती है । सब प्रजाका भरण पोषण करती है, इसीसे इसका नाम भरत है । जो शिव नामकी अग्नि है, वह शिवकी पूजा करती है और सब दुखोंको दूर करती है । इससे इसका नाम शिव है, तपके बड़े भारी फलकी देखकर वह तप करने लगे, तब उसके पुरन्धर नामक पुत्र उत्पन्न हुए, बाफसे बाफ उत्पन्न होकर वह मनुष्योंकी अग्नि दीखने लगा । - मनु नामक अग्निने प्रजापत्य किया । वेदको जाननेवाले ब्राह्मण लोग अग्निको शत्रु कहते हैं । जलती हुई अग्निको ब्राह्मण लोक आवसत्य कहते हैं, तपके पञ्चयज्ञ नामक पांच पुत्र उत्पन्न हुए ; वे सब महातेजस्वी तपसे स्वर्णके समान रूपवान थे ; जब अग्नि बहने चलाते थक गई और सूर्यभी थक गये तब भयानक असुर और अनेक भातिके मनु उत्पन्न हुए ; मनुके तपके पुत्र अङ्गिराने स्वर्ग बनाया । वेदपाठी ब्राह्मण उसकी उपासना

हते हैं; सूर्यकी स्त्रियोंकी ऊँ पुत्र उत्पन्न
 र। दुर्बल मनुष्योंकी जो शक्ति देता है, उस
 श्रेयके पहिले पुत्र अग्निको बल देनेवाला
 होते हैं, सूर्यका दूसरा पुत्र वह है, जो
 अन्त मनुष्योंके हृदयमें क्रोध उत्पन्न करता
 , पूर्णमासी और अमावसके दिन जिसमें यज्ञ
 न्या जाता है, उस अग्निका विष्णु, धृतिमान
 और अङ्गिरा नाम है। इन्द्रके सहित जिसकी
 राशयण आहुति दी जाती है, उस अग्निकी
 राशयण कहते हैं, वह भी सूर्यके वंशमें है,
 ऋतुमें जिसमें आहुति दी जाती है, वह अग्नि
 सूर्यके वंशमें हैं। अग्नि और चन्द्रमासे रात्रि
 नामक कन्या उत्पन्न हुई; वह कन्या मनुसे व्याही
 गई और उससे पाँच पुत्र उत्पन्न हुए, जो वर्षा
 ऋतुके चार महीनेमें पूजा जाता है, वह अग्नि
 मेघोंके साथ रहता है, उसका नाम वैश्वानर
 है वह मनुका प्रथम पुत्र है। मनुका दूसरा
 पुत्र विश्वपति नामक अग्नि है, वही इस जगत्का
 स्वामी है, और जब जगत् अन्नपरिपाक करता
 है, तब सृष्टकृत नामक अग्नि घोड़ी आहुतिकी
 ग्रहण करनेवाला है। हिरण्यकश्यपोंकी
 रोहिणी नाम्नी कन्या थी, वल सृष्टकृत नामक
 अग्निकी स्त्री हुई। जो प्राणियोंके शरीरमें
 प्राणोंके आश्रयसे रचा करता है, उसका नाम
 प्रजापति है, उसका पुत्र सन्निहित नामक
 हुआ जो शब्द रूपका साधक है, इसकी दो
 गति है, एक कृष्ण एक शुक्ल। यह अग्नि
 निष्पापियोंको पापी बनाता है, यह क्रोधके
 आश्रयमें रहता है, लोग जिसे कपिल और
 परम ऋषि कहते हैं, वह कपिल नामक अग्नि
 साख्य योगका प्रवर्तक है, जिसे सब विचित्र
 कर्मोंमें सब मनुष्य आगे रखते हैं उन अग्निका
 नाम अग्रणी है। इन ऊपर लिखी अग्नियोंके
 सिवा और भी दूसरी दूसरी अग्नि पृथ्वीमें बुरे
 अग्निहोत्रोंके प्रायश्चित्त करनेकी बनाई गई हैं;
 वह अग्नि वायुके योगसे परस्पर मिल जाय,

तब अष्टाकपाल यज्ञ करना चाहिये; इससे
 शुचि नामक अग्नि प्रसन्न होती है; दक्षिणाग्नि
 जब दूसरी अग्निसे मिलती है तब अष्टाकपाल
 नामक यज्ञ करना चाहिये, इससे सेविति
 नामक अग्नि उत्पन्न होती है। जब अग्नि
 कहीं बनेमें लगे तब अष्टाकपाल यज्ञ करना
 चाहिये। यदि रजसला स्त्री अग्निहोत्रकी
 स्पर्श करले तो अष्टाकपाल नामक यज्ञ करना
 चाहिये, इससे सुमति नामक अग्नि प्रसन्न
 होती है। जब किसीकी मरा हुआ सुने वा पशु-
 ओका नाश होते देखे तो अष्टाकपाल यज्ञ
 करे, इससे सरभीमान अग्नि प्रसन्न होती है।
 यदि किसी दुःखके कारण ब्राह्मण तीन रात्रि
 तक यज्ञ न करे, तो अष्टाकपाल यज्ञ करे उससे
 उत्तरोग्नि प्रसन्न होती है; अमावस और पूर्ण-
 मासीके दिन अतिथिकृत अग्निके प्रसन्न करनेकी
 अष्टाकपाल यज्ञ करे यदि सौरीकी अग्नि
 अग्निहोत्रमें छिप जाय तो अष्टाकपाल यज्ञ
 करे, तो अग्नि प्रसन्न होती है।

२२० अध्याय समाप्त।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोलें, हे राजन्। युधि-
 ष्ठिर। जलमें जो सह नामक अग्नि रहती
 है, जिसका नाम भूपति और भूति है, उसकी
 प्यारी स्त्रीका नाम मुदिता था, उसने अग्निको
 उत्पन्न किया, उसी अग्निकी सब जगत्का जीवन
 कहते हैं, उसीका नाम आत्मा और भुवनमती
 है, वह ब्राह्मणोंके वंशमें उत्पन्न हुआ है, जो
 सब जगत्के बड़े बड़े जीवोंके स्वामी है, वही
 भगवान् अग्नि सब जगत्में घूमते हैं। जो सह
 पति नामक अग्नि है वही सब यज्ञोंमें पूजी
 जाती है वही अग्नि इस सब जगत्की आहु-
 तिकी खाते हैं वही महाभाग अग्नि सत्वके
 खाने वाली और महा अद्भुत है वही अग्नि जलसे
 उत्पन्न हुई है; उन्हींका नाम भूपति भूमती
 और महत् स्वामी है, उस अद्भुत अग्निका पुत्र

भरत ज्ञाता ; वह भरत सब-मरे हुए शरीरोंको जलाता है और अग्निष्ठोमादिक यज्ञमें स्थापित किया जाता है, वही अग्नि सबसे प्रथम है, देवता लाग उसीकी दृढ़ते है । जा अग्नि सबका प्रभु है, उसका नाम नियत है । जब नियतने अथर्वाकी देखा, तब भयसे समुद्रमें घुस गये, तब देवता लाग सब ओर दृढ़ते समुद्रमेंभी गये । जब अग्निने अथर्वाकी देखा तो ऐसे वचन बोले—हे वीर, हम बहुत दुर्बल है तुम अबसे देवतोंकी आहुतियोंकी भोजन करो, तुम पिंगाक्ष अग्निके पास जाओ, यह हमारा प्रिय कार्य है, इसकी तुम करो । अग्नि अथर्वको भेज कर दूसरे देशकी चले गये । उनके जानेका समाचार मरुतियोंने कह दिया ; तब अग्निने क्रोध करके मरुतियोंका शाप दिया, कि तुमकी शरीरधारी अनेक प्रकारसे खायगी । अनन्तर अग्निने अथर्वसे सब वृत्तान्त कह दिया, तब देवतोंने अग्निको हित चाहकर बहुत समझाया परन्तु अग्नि यज्ञकी आहुतियोंको ग्रहण न कर सके और अपने शरीरको छोड़ दिया । अग्नि अपने शरीरको छोड़ कर पृथ्वीमें घुस गये वहां जाकर उन्होंने सब धातुओंकी अलग अलग उत्पन्न किया, अग्निके पोषसे गन्धक हड्डियोंसे देवदारु, कफसे स्फटिक और पित्तसे मरकत मणी उत्पन्न हुई । यज्ञत (तापातला) से काला लाहा उत्पन्न हुआ । इन काठ पाषाण और लाहसे प्रजा अनेक सुख पाने लगी । नाखूनसे अभ्रक और नसोंसे मृगे उत्पन्न हुए । हे राजन् ! अग्निके और शरीरोंमें अनेक धातु उत्पन्न हुई । इस प्रकार अग्निने शरीर छोड़ा और महा तपस्या करा । फिर भृगु और अङ्गिरा आदि ऋषियोंने बहुत तपसे अग्निको स्थिर किया । तब महा तेजस्वी अग्नि प्रज्वलित होकर उठे । जिस समय उन्होंने ऋषियोंकी देखा, उसी समय समुद्रमें घुस गए ; अग्निके नष्ट होतेही सब जगत भयसे

व्याकुल हो गया और सब अथर्वाकी पूजा करने लगे । उस समय देवता लोगोंने भी अथर्वाकी पूजा की । अनन्तर अथर्वने सब जगतके आगे समुद्रकी मथा और अग्निको निकाला । इस प्रकारसे भगवान् अथर्वने नष्ट अग्निको पुनः जगतमें प्रकाशित किया । उसी दिनसे अग्नि पुनः जगतके सब यज्ञोंकी भोज करने लगी । इस प्रकार वेदोंमें कहे हुए अनेक प्रकारके अग्नि उत्पन्न हुए ; वे लोग सब देशोंमें घूमते हैं, यही लोग विद्वान् कहते हैं ; सिन्धु पंचनद, देविका सरस्वति, गङ्गा, शत कुन्धा, शरद, गण्डक, चरमण्वती, मही, मेरा, मेधातिथि, ताम्रा, वैत्रवती, कौशिकी, तमसा, नर्मदा, गोदा वरी, वेणा, उपवेणा, भीमा, वडवा, भारती, सुप्रयागा, कावेरी, मुरमुरा, तुङ्गवेणा, कृष्णवेणा और श्रेष्ठा, ये सब नदी उन देवतोंकी माता हैं । इस अद्भुत अग्निकी प्रियानामो स्त्री है, उनके जेठे पुत्रका नाम विभु है । हमने जितनी प्रकार की अग्नि कही उतनेही सोमयज्ञ भी हैं । अग्नि वे वगमें ब्रह्माकी अग्निरूप मानस पुत्र उत्पन्न हुए हैं, जब अग्निने पुत्र उत्पन्न करनेकी इच्छा की, तब उन्होंने अग्नियोंकी अपने शरीरमें धारण किया । तब उस महात्मा ब्राह्मणके शरीरसे अग्नि उत्पन्न होने लगे, हे महाराज ! हमने इस प्रकारसे आपसे इन सब महात्मा अग्नियोंका वर्णन किया । ये सब अनन्त श्रीमान् और असंस्कारके नाश करनेवाले हैं, अद्भुत अग्निका महात्म्य वेदमें लिखा है । ऐसाही सब अग्नियोंका महात्म्य है । इन सबमें एकही प्रथम अग्नि है, उसीका नाम भगवान् अङ्गिरा भी है ; उसीसे अग्निष्ठोम यज्ञके समान अनेक ज्योति उत्पन्न हुई है । हमने अग्निको जब तुमसे कहा, वही अग्नि अनेक मन्त्रोंके यज्ञमें आहुति भोग करती है ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे पापरहित युधिष्ठिर ! हमने तुमसे अग्निके अनेक वंशोका वर्णन किया। अब हम बुद्धिमान स्वामकार्तिकके जन्मका वर्णन करते हैं, आप सुनिये। हे कुरुकुलसेठ ! जो अग्निके विचित्र पुत्र महातेजस्वी स्वामकार्तिक उत्पन्न हुए उनकी कथा हम कहते हैं। परम तेजस्वी कीर्तिको बढ़ाने वाले और ब्राह्मणोंके भक्त कार्तिकेय ऋषियोंकी स्त्रियोंके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। पहले समयमें जब देवता और राक्षसोंका युद्ध हुआ था, तब घोर रूप दानवोंने देवतोंकी जीत लिया। जब इन्द्रने अपनी समस्त सेनाको दानवोंसे मरता हुआ देखा तब सेनापतिके निमित्त बहुत चिन्ता करने लगे। इन्द्र विचारने लगे कि मुझको कोई ऐसा सेनापति मिलना चाहिये जो महापराक्रमी हो और जो देवतोंकी सेनाको भागते देख अपने बलसे उसकी रक्षा कर सके। ऐसा विचार, इन्द्रमानस नामक पर्वतपरें गए; वहां जाकर बहुत चिन्तासे इस प्रयोजनको विचारने लगे, उसी समय इन्द्रने एक रोती हुई स्त्रीका दीन शब्द सुना। वह कहती थी कि कोई पुरुष मेरी और आवे, मेरी रक्षा करे, मेरे निमित्त कोई पति बतावे या वह स्वयमही मेरा पति हो। इन्द्रने उससे कहा कि तू कुछ मत डर, तुझे कोई भय नहीं है। अनन्तर इन्द्रने किरीट धारण किये, गदा हाथमें लिये, एक कन्याके सहित आगे खड़े हुए केशीको देखा। तब इन्द्रने केशीसे कहा, हे दुष्ट ! तू इस कन्याको क्यों दुःख दे रहा है, तू मुझे वज्रधारी इन्द्र मानकर इसे छोड़ दे।

केशी बोला, हे मार्कण्डेय ! हे इन्द्र ! तुम इस कन्याको छोड़ दो, क्योंकि मैं इससे विवाह करना चाहता हूं, यदि तुम अपने जीवकी रक्षा करना चाहते हो तो इसको छोड़कर अपने नगरको भाग जाओ। ऐसा कह केशीने

मारनेकी गदा चलाई। इन्द्रने उस गदाको आते देख वज्रसे काट दिया। अनन्तर केशीने क्रोध करके इन्द्रके मारनेकी एक पर्वतका शिखर चलाया। इन्द्रने उसे भी अपने वज्रसे काट दिया। हे राजन् ! जब यह पर्वतका शिखर कटकर पृथ्वीपर गिरा तब वही केशीके सिरमें लगा। अनन्तर केशी बहुत पीड़ित होकर उस कन्याको छोड़-वहासे भागा, जब केशी वहांसे भाग गया, तब इन्द्रने उस कन्यासे कहा कि हे सुन्दर रूपवाली ! तू कौन है, और किसकी पुत्री है, और यहां क्या कर रही है।

२२२ अध्याय समाप्त ।

कन्या बोली, मेरा नाम देवसेना है, और मैं प्रजापतिकी पुत्री हूँ, मेरी एक बहिनका नाम दैत्यसेना है, उसको पहिलेही केशीने छीन लिया था, हम दोनों बहिन प्रजापतिकी आज्ञासे सदा सखियोंके सहित इस वनमें खेलनेकी आती थीं, यह महा बलवान केशी सदासे हम दोनोंकी इच्छा करता था; मेरी बहिन दैत्यसेनाभी इसकी इच्छा रखती थी, परन्तु मैं नहीं। सो यह दैत्यसेनाको ले गया और मुझको तुमने अपने बलसे बचा लिया। हे भगवन् ! हे देवराज ! अब मैं तुम्हारी आज्ञानुसार किसी महा बलवानकी अपना पति बनाना चाहती हूँ।

इन्द्र बोले, तुम मेरी माताकी बहिन हो, क्योंकि मेरी माताभी दक्षप्रजापतिकी पुत्री है; हम अपना बल तुमकी सुनाना चाहते हैं। कन्या बोली, हे महाबाही ! मैं अवला हूँ, और मेरे पिताके वरदानसे मेरा पति महा बलवान होगा; उसको सब देवता और राक्षस नमस्कार करेंगे। इन्द्र बोले, हे देवि ! तुम्हारे पतिका बल कैसा होगा सो हमसे कहो। कन्या बोली, हे इन्द्र ! जा देवता, दानव, यक्ष,

किन्नर, सर्प, राक्षस, और दुष्ट दैत्योंको जीतने वाला और महा बलवान महा वीर्यवान होगा और जो तुम्हारे सहित सब प्राणियोंको जीतेगा वही ब्राह्मणोंका भक्त और कीर्तिका बढ़ाने वाला मेरा पति होगा ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, उस कन्याके ऐसे वचन सुन, इन्द्र बहुत विचार करने लगे कि यह कन्या जैसे पतिका विचार कर रही है, वैसा कोई नहीं है । उसी समय सूर्यके समान तेजस्वी इन्द्रने उदय होते हुए सूर्यकी और सूर्यमें प्रवेश होते हुए, महाभाग चन्द्रमाकी देखा उस समय अमावस्या और रौद्र मुहूर्त था ; उसी समय इन्द्रने उदयाचल पर देवता और दानवोंको युद्ध करते देखा । इन्द्रने बड़े बड़े लाल मेघोंसे भरी हुई प्रातःकालकी संध्याको देखा । अनन्तर भगवान इन्द्रने समुद्रकी भी लाल जलसे भरा हुआ देखा, इन्द्रने देखा कि भृगु और अङ्गिराओंसे अनेक-प्रकारके मन्त्रों सहित दी हुई आहुतिको ग्रहण करके अग्नि सूर्यमें प्रवेश कर रहे हैं । उसी समय २४ पर्व भी सूर्यको ग्रहण करने लगे ; उसी समय रौद्र, धर्म, सूर्य और चन्द्रमा एक हो गये । चन्द्रमा और सूर्यको एक देख इन्द्र बहुत विचार करने लगे, कि इस रौद्र समयमें चन्द्रमा और सूर्य मिले हुए दीखते हैं ; इससे जान पड़ता है कि इसी रात्रिके अन्तमें घोर युद्ध होगा । इन नदी और समुद्रोंमें लाल जल बह रहा है, ये सियारी अपने मुखसे अग्निकी निकालती हुई और घोर शब्द करती हुई सूर्यकी ओर देख रही हैं । यह सूर्य, चन्द्रमा और अग्निका मिलता बहुत अद्भुत और भयानक है ; जो चन्द्रमा अग्निका पुत्र होगा-कोई इस कन्याका पति होगा । इन्द्र ऐसा विचारकर ब्रह्मलोकको गए और उस कन्याकी अगाड़ी करके ब्रह्मासे कहने लगे, कि कोई बड़ा शूरवीर पुरुष इस कन्याका पति होने

योग्य बताइये । ब्रह्मा बोले, हे दानवनाशन ! मैंने इस कार्यको पहलेही विचारा था, एक महा बलवान बालक उत्पन्न होनेवाला है, वही तुम्हारा सेनापति होगा । हे शतक्रतो ! वही बलवान बालक इस कन्याका पति होगा । ऐसा सुन इन्द्रने और उस कन्याने ब्रह्माको प्रणाम किया । अनन्तर इन्द्र देवऋषियों पास गये । - वहां वशिष्ठ आदि ब्राह्मण लोग ब्रह्माकी तपस्या करके यज्ञमें सोम पीनेकी इच्छासे इन्द्रादि देवतोंके सहित यज्ञ करने लगे । जब अग्नि प्रज्वलित हुई तब वे लोक आहुति देने लगे । सब महात्मा ऋषि, लोग विधिके अनुसार अग्निमें हवण करने लगे । अनन्तर देवतोंने अद्भुत अग्निकी सूर्यमण्डलसे बुलाया । भगवान अग्नि ब्राह्मणोंकी वाणीके वशमें होकर उस यज्ञ स्थानमें प्रकट हुए । तब सब ब्राह्मणोंने मन्त्रोंको पढ़कर आहुति दी, भगवान अग्निनेभी उस आहुतिको ग्रहण करके ऋषि और देवता-लोगोंको भाग दिया । यह समाप्त होनेके समय अपने लोककी जाते हुए अग्निने महात्मा ऋषियोंकी स्त्रियोंकी अपने आसन पर बैठी और सुखसे सोती हुई देखा । सोनेके समान रंगवाली, चन्द्रमाकी कलाके समान निर्मल अग्निकी ज्वाला और तारोंके समान सुन्दर ऋषियोंकी उंन स्त्रियोंकी देख कर अग्नि कामके वशमें हो गए ; उनकी इन्दी वशमें न रहीं । फिर अग्निने विचारा कि यह कर्म हमारा अन्यायका है, ये ब्राह्मणोंकी स्त्रियां पतिव्रता और कामरहित हैं, मैं किस प्रकारसे इनसे कामचेष्टा करूं ; बिना किसी कारणके मैं इनको देख और छू नहीं सकता हूं, इस लिये इनके घरकी अग्निमें प्रवेश करके इनकी देखूंगा ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, ऐसा विचार करके उनके घरकी अग्निमें प्रवेश किया और वहाँ अपनी ज्वालाओंसे उन स्वर्गके समान रंगवाली

स्त्रियोंकी कूने लगे और उनके रूपकी देखकर प्रसन्न होने लगे; इस प्रकार वह बद्धत दिन रहनेसे अग्नि उन स्त्रियोंके वशमें हो गये और उनमें अपने चित्तकी लगा दिया; जब अग्निका हृदय कामसे जलने लगा, तब उन्होंने निश्चय कर लिया कि अब हम शरीर छोड़ देंगे, परन्तु जब ब्राह्मणोंकी स्त्रियां उनको न मिलीं, तब वे वनकी चले गए।

स्वाहा नामक दक्षकी पुत्रीने पहले अग्निको अपना पति बनाना चाहा था। और वह बद्धत दिनसे अग्निके दोषोंकी ढूढ़ रही थी। परन्तु अग्निदेव सदा सावधान रहते थे, इससे निन्दा रहित स्वाहाकी कोई दोष न मिला। जब उन्हें इन सब बातोंको जान लिया कि अब अग्नि-देव कामके वशमें होकर वनकी गए है, तब उसने विचारा कि अब अग्नि कामके वशमें हुए है; सो मैं सातों ऋषियोंकी स्त्रियोंका रूप बना कर उनके पास जाऊँ, मुझे जब वे कामके वशमें देखेंगे तब अवश्यही रूप और कामसे मोहित होजायंगे ऐसा करनेसे अग्निकी प्रीति और मेरा कार्य सिद्धि होगी।

२२३ अध्याय समाप्त।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे नरनाथ युधिष्ठिर! अझिरा ऋषिकी स्त्रीका नाम शिवा था। वह रूप, शील और गुणोंसे भरी थी। स्वाहा पहले उसीका रूप बना कर वनमें अग्निके पास गई और जाकर कहने लगी कि हे अग्नि! मैं कामसे बद्धत व्याकुल हूँ, तुम मेरे सङ्ग मैथुन करा, यदि ऐसा नहीं करोगी तो मैं मर जाऊँगी, हे हताशन! मैं अझिरा ऋषिकी स्त्री हूँ, मेरा नाम शिवा है, नव ऋषियोंकी स्त्रियोंने वध्मति करके मुझे तुम्हारे पास भेजा है।

अग्नि बोले, तुमने आर सब सप्त ऋषियोंकी स्त्रियोंके कैसे जाना कि मैं कामके वशमें हूँ।

शिवा बोली, तुम सदासे हमारे प्यारे हो, हम सब तुमसे बद्धत डरती हैं, तुम्हारे चिन्होंसे हम लोगोंने पहिचान लिया, तब सब ऋषि-पत्नियोंने मुझे तुम्हारे पास भेजा है, हमको इस समय कामदेव बद्धत पीड़ा दे रहा है; तुम शीघ्र हमारे सङ्ग मैथुन करो, क्योंकि और ऋषियोंकी स्त्री हमारा मार्ग देख रही होंगी।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, अनन्तर अग्निने प्रसन्न होकर स्वाहाके सङ्ग मैथुन किया। स्वाहा देवीने भी प्रसन्न होकर अग्निका सङ्ग किया। अनन्तर उनके वीर्यकी अपने हाथमें ले लिया और विचारने लगी कि वनमें जो कोई मुझे देखेगा वह ब्राह्मणी और अग्निकी दोषी जानेगा; इसलिये गूँडीका रूप बनाना चाहिये, ऐसा करनेसे सुखपूर्वक वनसे चली जाऊँगी।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, ऐसे विचार, स्वाहादेवी गूँडीका रूप बनाकर उस महा वनसे चली। अनन्तर पर्वत पर शरोंके वनकी देखा, जो विष भरे हुए सात सिर वाली अद्भुत सर्प, राक्षस, पिशाच, घोर भूत, राक्षसी, वन-जन्तु और अनेक प्रकारके पक्षियोंसे भरा हुआ था। उस घोर पर्वतके ऊपर जाकर स्वाहा देवीने उस वीर्यकी एक सोनेके कुण्डमें छोड़ दिया। इस प्रकार स्वाहा देवीने सातों ऋषियोंकी स्त्रियोंका रूप बनाकर अग्निसे मैथुन किया, परन्तु वशिष्ठकी स्त्री असुन्धतीका दिव्य रूप न बना सकी, क्योंकि असुन्धती बड़ी तपस्विनी और पतिव्रता थी। हे कुरुसत्तम! इस प्रकार स्वाहा देवीने छः बार प्रतिपदाके दिन अग्निके वीर्यकी उसी सोनेके कुण्डमें डाला, उस कुण्डसे कुछ दिनोंके पश्चात् एक पुत्र उत्पन्न हुआ उसी समय सब ऋषियोंने इसकी पूजा करी और उसका नाम स्कन्द रक्खा। उस बालकके छः मुख, १२ हाथ, १२ कान, १२ नेत्र थे; परन्तु गला और हृदय एकही था। वह

बालक द्वितीयाको पिण्ड रूप रहा तृतीयाको बालक रूप हो गया, और चौथी उसकी सब अङ्ग अलग अलग हो गये। उस समय बिजलीके सहित लाल मेघ आकाशमें दीखने लगे। उन लाल मेघोंमें वह बालक ऐसा दोखने लगा जैसे प्रातः कालका लाल सूर्य उदय होता है। उसने उत्पन्न होतेही उस धनुषकी ग्रहण किया जिसके देखनेसे प्रायः सब लोगोंके रोवे खड़े हो जाते थे। यह वही धनुष था जिसकी त्रिपुरासुरके नाश करनेके समय शिवने चढ़ाया था; उस धनुषकी चढ़ाकर बलवान कार्तिकेय बहृत गरजन लगे उस शब्दसे समस्त चर और अचरके सहित तीना लोक मूर्च्छित होने लगे। उस महा मेघके समान शब्दकी सुनकर महानाग चित्र और ऐरावत दौड़े; सूर्यके समान तृजस्वी बालकने उनकी आते देख एक-एक हाथसे पकड़ लिया एक हाथसे शक्ति और एक हाथसे बड़े शरीरवाले महा बलवान कुक्कुटकी पकड़कर खेलने लगे, और घोर शब्द करने लगे। अनन्तर दा हाथमें उत्तम शङ्ख लेकर बजाने लगे। उस शब्दका सुनकर सब बलवान ज तु डरने लगे, कार्तिकेय अपने दो हाथोंकी बारबार आकाशकी ओर चलाने लगे। उस समय खेलते स्वामकार्तिककी ऐसी शमा बढ़ी कि मानो तीनी लोकको वह खा जायगी। महा बलवान स्वामकार्तिक उस पर्वतपर ऐसे शोभायमान हुए जैसे उदयाचल पर सूर्य। विचित्र पराक्रमी स्वामकार्तिक उस पर्वत पर बैठकर सब दिशाओंको देखने लगे और अनेक प्रकारकी वस्तुओंका देखकर पुनः गर्जन लगे। उस शब्दकी सुनकर समस्त प्राणी लाग डरकर भागने लगे। फिर ध्वरा कर सब उन्हीकी शरण गए। जा बलवान जन्तु उनकी शरण गए उन्हीका ब्राह्मणोंन उनका पार्षद कहा है, महाबाहु स्वामकार्तिक उन सब जीवोंकी शान्त करके वहांसे उठे और

धनुष चढ़ाकर उस पर्वतकी ओर बाण चलावे लगे। उन्होंने अपने बाणोंसे हिमाचलके पुत्र कोंच पर्वतकी विदीर्ण कर दिया। उसी समय वहांसे हंस और गिड़ उड़कर मेरु पर्वतपर चले गये; उनके बाणोंसे वह पर्वत दीन शब्द करता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसके गिरनेसे, और पर्वतों परभी घोर शब्द होने लगा। बलवानोंमें श्रेष्ठ स्वामकार्तिक उस घोर शब्दको सुनकरभी कुछ न डरे, और शक्तिकी लेकर गर्जने लगे। जब उन्होंने उस निर्मल शक्तिकी उस श्वेत पर्वतकी ओर चलाया तो उसके लग नसे उसका शिखर कटकर गिर पड़ा। महात्मा स्वामकार्तिककी बाण और शक्ति लगनेसे वह पर्वत डरकर पृथ्वी छोड़ आकाशकी उड़ने लगा। अनन्तर पृथ्वीभी कटकर चारों ओर गिरने लगी। उसके पश्चात पृथ्वीभी बहुत दुःख पाने लगी; फिर दीन होकर स्वामकार्तिकके पास आई और शरण पाकर पुनः बलवान हो गई। अनन्तर सब पर्वतोंने उनकी प्रणाम किया और पृथ्वीपर बैठ गए। अनन्तर शुक्र पक्षकी पञ्चमोको सब लोगोंने स्वाम कार्तिककी देखा

२२४ अध्याय समाप्त।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन् युधिष्ठिर! जब महाबलवान, स्वाहासे स्वामकार्तिक उत्पन्न हुए, तब पृथ्वीमें अनेक प्रकारके घोर उत्पात उठने लगे। स्त्री और पुरुषां, परस्पर बर होने लगा। शीत और उष्णका कुछ प्रमाण न रहा। आकाश, दिशा और सब पृथ्वी प्रकाशत हो गई। महा ऋषि लोगोंने अब इन घोर उत्पातोंका देखा ता घबड़ाकर लोगोंकी शान्तिके, निमित्त शान्ति शान्त कहने लगे। जा ऋषि लोग उस चतुरथ वनमें रहते थे, सब कहने लगे, कि अग्निने यह हमारे अस्त परम अनर्थ किया है। वे लोग कहने लगे

कि अग्निने कः ऋषियोंकी स्त्रियोंसे इस बालकको उत्पन्न किया है, कोई कहने लगे कि वह तो गरुड़ी थी। जिन पुरुषोंने उस स्वाहा देवीके रूपको देखा था, वे लोग कहने लगे कि यह कर्म स्वाहा देवीका ही है। जब उस गरुड़ीने ये सब वचन सुने तब स्वामकार्तिकके पास जाकर कहने लगी कि मैही तेरी माता हूँ। जब सप्त ऋषियोंने सुना कि इस प्रकार हमारी स्त्रियोंके गर्भसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ तब अपनी अपनी स्त्रियोंको सबने छोड़ दिया परन्तु भगवान् शिशुने असम्यक्ती देवीको नहीं छोड़ा। जब तब वनवासी कहने लगे कि सप्त ऋषियोंकी स्त्रियोंसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ है, तब स्वाहा देवीने जाकर कहा कि यह पुत्र हमारा है। रन्तु इस बात पर किसी ऋषिकी विश्वास न आ। इन सब वृत्तान्तको विश्वामित्र मुनि लो भाति जानते-थे, क्योंकि उन्होंने उस सप्त पितोंको यज्ञमें अग्निकी कामवश हुआ देखा और अग्निकी पीछे गुप्त रूपसे वनकीभी गए और वही स्वाहादेवीका सब चरित्रभी देखा। तब उन्होंने सब वृत्तान्त सप्त ऋषियोंसे सुनाया, अनन्तर विश्वामित्रही पहले स्वामकार्तिककी शरण गए, और एक दिव्य स्तोत्रभी बनाया। विश्वामित्र महा मुनिने स्वामकार्तिकको १३ जात कर्म और मङ्गल कर्मभी किये। विश्वामित्र मुनिने स्वामकार्तिकका महात्म्य कुक्कुट और देवीका ध्यानभी वही किया, और पार्षदोंका पूजनभी किया। विश्वामित्र मुनिने यह सब कर्म लोकके हितके नामत्त किया। इस लिये विश्वामित्र मुनि स्वामकार्तिकके बड़े प्रिय हुए। अनन्तर विश्वामित्र मुनिने स्वाहाका सब रूप बनकर सप्त ऋषियोंसे कहा कि तुम्हारी स्त्रियोंका दोष नहीं है, उन्होंने विश्वामित्रके वचन सुन अपनी अपनी स्त्रियोंको ले

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, जब देवतोंने सुना कि स्वामकार्तिक उत्पन्न हुए, तब सब इन्द्रके पास जाकर कहने लगे, कि हे शक्र। कार्तिकेय बलवान है, इस लिये इनकी शीघ्रही जीत लीजिये, बिलम्ब न कीजिये, यदि आप इन्हीं न मारेंगे तो यही इन्द्र ही जायगा। हे महाबल। यह हमारे सहित-तोनी लोकोंकी जीत लेगा। इन्द्र बोले, हे देवतो! यह बालक बलवान है, हम और लोकोंके कत्ता ब्रह्माभी इसकी युद्धमें नहीं मार सकते हैं। हम इस बालकके बलकीभी नहीं सह सकते। देवता लोग कहने लगे, हे इन्द्र! क्या-तुममें इतना बल नहीं है, जो इस लड़केकी जीत सकी? इस लिये अब जितनी-लाक माता है, सब स्वामकार्तिकके पास जाय और उसके बलकी नाश करें। सब लोक माता-उनके वचनकी ग्रहण करके कार्तिकेयके पास गई परन्तु उनका अनन्त बल देखकर सब दुःखित हो गई और उनका जीतनेमें असमर्थ समझकर, उन्हींकी शरण गई और उनसे कहने लगीं कि हे महाबल! तुम हमारे पुत्र हो जाओ। तुम सब लोकोंकी प्रसन्न करा, हम सब तुम्हारे प्रेमसे विकल हैं; तुम हमारा दूध पीओ। उनके वचन सुन भगवान् स्वामकार्तिकने उनका दूध पीनेकी इच्छा करी। अनन्तर उनका दूध पीकर उनकी बलवान प्रशंसा करी। उसी समय अपने पिता अग्निकी आते हुए देखा, तब अग्निने स्वामकार्तिककी बड़ी प्रशंसा करी और लोक माताओंके सहित उनके चारों ओर रक्षा करनेको बैठ गए। लाक माताओंके क्रोधसे जो स्त्री उत्पन्न हुई थीं वह हाथमें विशूल लेकर स्वामकार्तिककी पुत्रके समान रक्षा करने लगीं। जालाल समुद्रकी कन्या थी वहभी स्वामकार्तिककी पुत्रके समान रक्षा करने लगी! यह कन्या बड़ी कठिन स्वाभाव वाली और रक्त पीनेवाली थी और नैगमेय नामक

अग्नि बकरेका मुह बनाकर उस बालककी खेलीनेके समान खेलाने लगी ।

१२५ अध्याय समाप्त ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन् युधिष्ठिर । ग्रह, उपग्रह, ऋषि लोकमाता और अग्नि आदिक देवता तथा पार्षद लोग बहृत प्रसन्न हुए । इनकी आदि लेकर और भी सब देवता लोग और लोकमाता कार्तिकेयके चारों और बैठ गए । जब देवराज इन्द्रने अपने विजयमें सन्देह देखा । तब ऐरावत पर चढ़ सब देवतोंकी सङ्ग ले और वज्र धारण करके कार्तिकेयके मारनेको इच्छासे शीघ्र चलने लगे । जब कार्तिकेयने महाउग्र, महातेजस्वी, महानाद करनेवाली विचित्र ध्वजा, कवच, और धनुषधारिणी सेनाको देखा, तो उसको मारनेकी चले । हे युधिष्ठिर । जब महाबलवान इन्द्रने कार्तिकेयको आते देखा, तब उनके मारनेकी इच्छासे, और देवतोंको प्रसन्न करनेकी इच्छासे गर्जने लगे । इन्द्रका शब्द सुनकर सब ऋषि और देवता लोग उनकी पूजा करने लगे । इस प्रकार इन्द्र कार्तिकेयके पास पहुँचे, वहाँ पहुँचकर भी इन्द्रने देवतोंके सहित सिंहके समान शब्द किया । उस शब्दकी सुनकर कार्तिकेयभी समुद्रके समान गर्जने लगे । उनके शब्दकी सुनकर समुद्रके समान देवतोंकी सेना घबड़ा गई, और चेतनारहित होकर इधर उधर घूमने लगी । जब अग्निके पुत्र कार्तिकेयने देखा कि देवता लोग हमें मारनेकी आए हैं, तब उन्होंने बड़ी क्रुठिन घोर अग्निकी ज्वाला उनकी ओरकी छोड़ी, उससे सब देवतोंकी सेना जलने लगी और काप काप कर पृथ्वी पर गिरने लगी किसीका सिर, किसीका शरीर, किसीका वाहन, किसीका शस्त्र जलने लगा । उस समय जलते हुए देवतोंकी ऐसी शोभा भई

जैसे गिरते हुए तारोंकी शोभा होती है, अनन्तर जलते हुए देवता कार्तिकेयकी शरण गए । जब सब देवतोंने इन्द्रकी छोड़ दिया तो युद्धकी शान्ति हो गई । इन्द्रने कार्तिकेयको मारा ; वह वज्र कार्तिकेयके दहने कन्धमें लगा तब महात्मा कार्तिकेयके कन्धसे एक नवी पुरुष उत्पन्न हुआ । वह युवा सीनेका कवच पहने शक्ति और दिव्य कुण्डल धारण किया । जो पुरुष वज्रके लगनेसे उत्पन्न हुआ उसका नाम विशाख हुआ । जब इन्द्र अग्निके समान दूसरे पुरुषकी देखा, तो जोड़कर कार्तिकेयकी शरण गए । तब कार्तिकेयने सेनाके सहित उन्हें अभय दान दिया । तब सब देवतालोगोंने प्रसन्न होकर कार्तिकेय प्रणाम किया ।

१२६ अध्याय समाप्त ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन् युधिष्ठिर । अब कार्तिकेयके पार्षदोंके नाम सुनिये । ये सब विचित्र रूपवाले हैं, इनका जब वज्र लगनेके समय कार्तिकेयके शरीरसे हुआ था, यही बड़े कठार पार्षद लोग बालकोंकी और गर्भोंकी नष्ट कर देते हैं । उसी समय वज्र लगनेसे कार्तिकेयके शरीरसे महा बलवान कन्याभी उत्पन्न हुई थीं । उन कुमारोंने विशाखको अपना पिता माना । अनन्तर वे भगवान् आगमुख हाकर कार्तिकेयका रक्षक बन करन लगी । पश्चात् वह सब कन्या, अपने पुत्र, और मातृगणाके सहित आनन्द करन लगीं । उसी दिनसे संसारके पुरुषान् महाबलवान कार्तिकेयकी सब बालकोंका पिता मान लिया हैं, उसी दिनसे पुत्रोंकी रक्षा रखनवाले और पुत्रवाले पुरुष कार्तिकेयकी पूजा करन लगे । जो आगसे कन्या उत्पन्न हुई थी, व सब कार्तिकेयके पास आकर बन लगी । क हम् लोग वदा करे । कुमार

हे कार्तिकेय । हमलोग बहुत उत्तम हैं ; इससे सब जगतकी माता होना चाहती हैं, तुम हमारे इस प्रियकार्यकी सिद्ध करो । कार्तिकेय बोले, बहुत अच्छा, तुम लोग सब प्रलग अलग हो जाओ । उत्तम बुद्धिमान कार्तिकेय बार-बार कहने लगे कि तुम लोग माधी शिवा और आधी अशिवाके नामसे सिद्ध होओ । तब लोकमाता कार्तिकेयकी प्रपना अपना पुत्र मानकर चली गई ।

उनके नाम ये हैं,—काकी, हलिमा, मालिनी, वृहलिता, आर्या, पलाला, और वैमित्रा । यही सात लोक माता कहाती हैं । इनका जो शिशु नामक पुत्र हुआ वह बड़ा भयङ्कर लाल नेत्रवाला और दारुण स्वभाव था । यह पुत्र कार्तिकेयके प्रसादसे उत्पन्न हुआ था ; यह कार्तिकेय और लोकमातासे उत्पन्न हुए आठ वीर हैं । कागमुख अग्निके सहित नौ होते हैं । हे राजन् । कार्तिकेयके छः सुखोंमेंसे जो बीचका मुख है, वह बकरेका है, लोकमाता सदाही उसकी पूजा करती रहती है ; यह सुख छःहों सुखोंसे उत्तम है । विशाखने इसीसे दिव्य शक्तिको बनाया था । इस प्रकारसे यह सब वृत्तान्त शूल पक्षकी पञ्चमोकी हुआ और षष्ठीको महाघोर युद्ध हुआ ।

२२७ अध्याय समाप्त ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन् युधिष्ठिर ! अनन्तर, महा तेजस्वी कार्तिकेय सोनेकी माला, मकर, और सुकुट-धारण करके एक स्थानपर बैठे । उस समय महा तेजस्वी लाल नेत्रवाले, वस्त्र धारी तीक्ष्णदातवाले, मनीहर, सब णोसे, युक्त, तीन लोकके धार वरदान देने, शूर, वीर, युवा, धनुषधारी कार्तिकेयकी करनेको साक्षात् रूप धारण करके लक्ष्मी । उस समय महा यशस्वी कार्तिकेय

शोभासे युक्त ऐसे शोभायमान हुए, जैसे पूणमासीके चन्द्रमा । उसी समय महात्मा ऋषियोंने कार्तिकेयकी पूजा करी और ऐसा कहने लगे ।

ऋषि लोग बोले, हे हिरण्यगर्भ । तुम्हारा कल्याण ही, तुम जगतका कल्याण करो, तुमने कही दिन जन्म लेनेके पश्चात् सब लोकोंकी वशमें कर लिया, हे देवश्रेष्ठ ! तुमने फिर उन सब देवतोंको अभय दान दिया है ; इस लिये तुम इन्द्र हो जाओ ; तब हम लोगोंकी किसीका भी भय नहीं होगा । कार्तिकेय बोले, हे ऋषियो । इन्द्र तीन लोकला कौनसा हित करता है, और किस प्रकार देवतोंको रक्षा करता है । ऋषि लोग बोले, इन्द्र सब प्रजामें तेज और बलकी स्थापन करता है, जब प्रसन्न होता है, तब सब कामोंकी सिद्ध करता है, दुष्टोंका नाश और साधुओंका पालन करता है, वही बलनाशक इन्द्र सब प्रजाका शासन करता है ; सूर्यके अभावमें सूर्य, चन्द्रमाके अभावमें चन्द्रमा, अग्निके अभावमें अग्नि, वायु, पृथ्वी, जलके अभावमें उन्हीका रूप धारण कर लेता है, यही सब इन्द्रके कार्य हैं ; इन्द्रही सबसे अधिक बलवान है, तुम सब बलवानोंमें श्रेष्ठ हो ; इस लिये तुमही हमारे इन्द्र हो जाओ । इन्द्र बोले, हे महाबाहो । हे सत्तम । तुम हम लोगोंको सुख देनेवाले हो इस लिये तुमही इन्द्रासनपर अपना अभिषेक करो । कार्तिकेय बोले, हे शक्र । हमको इन्द्र होनेकी इच्छा नहीं है, तुमही तीनो लोकोंका राज्य करो हम तुम्हारे दास हैं, तुम सदा विजयकी इच्छा रखो । इन्द्र बोले, हे वीर ! हे तात ! हे महाबल । तुम्हारा बल विचित्र है, तुम्हारे देवतोंके शत्रुओंकी जोती क्योंकि तुम्हारा अधिक बल देखकर लोक हमारा निरादर करने लगे, जब हम निर्व्वल होकर इन्द्रासनपर बैठेंगे तो सब लोक सावधान होकर हमारे और तुम्हारे

भेदका यत्न करेंगे ; जब हममें तुममें भेद हो जायगा तब सब लोक दो दल हो जायगा ; उस समयमें हमारा तुम्हारा अवश्यही युद्ध होगा ; उस युद्धमें तुम हमको अवश्य जीतोगे इस लिये तुम अभीसे इन्द्र हो जाओ ; इसमें विलम्ब मत करो । कार्तिकेय बोले, हे इन्द्र ! तुम्हारा कल्याण हो, तुमही हमारे और तीन लाक के राजा हो ; हम तुम्हारे दास हैं ; कहां कौन सी आज्ञा पालन करे, इन्द्र बोले हे महाबल ! हे स्कन्द ! यदि तुम सत्य-सत्य यह बात निश्चय करके कहते हो, तो हम तुम्हारी आज्ञासे इन्द्र होंगे और यदि तुम हमारी आज्ञा पालन करना चाहते हो, तो सुनो ; हमारी यही इच्छा है कि तुम देवतोंके सेनापति बनो । कार्तिकेय बोले, हे इन्द्र ! दानवोंके नाश, देवतोंकी कार्यसिद्धि, तथा गौ और ब्राह्मणोंके हितार्थ हमको देवतोंका सेनापति बनाओ ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, उसी समय सब देवतोंके सहित इन्द्रने स्वामकार्तिकको सेनापति किया उस समय ऋषियोंसे पूजित कार्तिकेय अत्यन्त शोभायमान हुए, वह सीनेका छत्र उनके सिरपर लगा हुआ ऐसा विराजमान हुआ जैसे साक्षात् अग्निका मण्डल । विश्वकर्माकी बनाई हुई सीनेकी माला साक्षात् यशसी शिवने अपने हाथसे पहिराई । उस समय शिव पार्वतीके सहित आए थे उन्होंनेभी कार्तिकेयकी पूजा करी । ब्राह्मणोंने शिवका नाम अग्नि लिखा है, इस लिये कार्तिकेय शिवहोके पुत्र हुए । शिवने जो वीर्य त्याग किया था वही पर्वत पर्वत हो गया था, उस पर्वतपर कृतिकाने अग्निकी इन्द्रकी बनाया था ।—सब देवतोंने शिवसे कार्तिकेयकी पूजित देखकर कहा कि अग्निमें प्रवेश करके शिवने इस पुत्रको उत्पन्न किया है ; उसी दिनसे सब लोग कार्तिकेयको शिवका पुत्र कहने लगे । हे भारत ! शिव, अग्नि, स्वाहा देवी, और छः माताओंसे

कार्तिकेयका जन्म हुआ है । ये कार्तिकेय सब देवतोंमें अष्ट और शिवके पुत्र हुए । निर्मल लाल वस्त्र धारण किये अग्निनन्दन कार्तिकेय ऐसे शोभायमान हुए जैसे लाल मेघोंके बीचमें सूर्य । उसी समय अग्निने एक कुक्कुट दिया और एक लाल ध्वजा दो । वह ध्वजा रथपर लगकर ऐसी शोभायमान हुई, जैसी फैली हुई प्रलय कालकी अग्नि । जो सब प्राणियोंको चेष्टा और शान्ति है, वही शक्ति अपना रूप धारण करके कार्तिकेयने आगे आई, वही शक्ति उनके संग उत्पन्न हुए कर्वचमें प्रवेशकर गई और वही शक्ति युद्धमें समय सदा प्रगट हो जाती है । हे नरनाथ ! शक्ति, धर्म, बल, तेज, शोभा, सत्य, वदती, ब्राह्मणता, चेतनता, भक्तोंकी रक्षा, दुष्टोंका नाश करना और लोकोंका पालन करना, ये सब गुण कार्तिकेयके जन्महीसे उत्पन्न हुए, हे हे महाराज ! इस प्रकार सब देवतोंने कार्तिकेयका अभिषेक किया । उस समय कार्तिकेय सब भूषणोंको धारण करके ऐसे शोभायमान हुए जैसे प्रसन्न चन्द्रमाका मण्डल । उस समय देवतोंके बाजे, बजने लगे देवता तथा गन्धर्व गाने लगे और अप्सरा नाचने लगी । इनको आदिले और भी बृहत् लोग प्रसन्न हुए । उस समय देवता और पिशाचोंके बीचमें बैठकर अग्निनन्दन कार्तिकेय बृहत् शोभायमान हुए, और देवता उनका देखने लगे । उस समय कार्तिकेयकी ऐसी शोभा बढ़ी जैसी प्रातःकाल उदय होते हुए सूर्यकी । अनन्तर इनके पास सहस्रों देवतोंकी सेना आने लगी । वे सब लोग चारों ओरसे कहने लगे कि तुम हमारा स्वामी हो ; तब कार्तिकेयने उन सबकी आज्ञा किया । उन्होंनेभी कार्तिकेयकी शान्ति और पूजा करी । जब इन्द्र कार्तिकेयका अभिषेक कर चुके, तब उस देवसेना कन्याका चरण किया जिसको उन्होंने राजससे उड़ाया था ।

इन्द्रने विचारा कि ब्रह्माने इसीकी इस कन्याके लिये पति बनाया था। ऐसा विचारकर इन्द्र उस कन्याकी आभूषण पहिराकर कार्तिकेयके पास ले आये; तब इन्द्र कार्तिकेयसे कहने लगे कि हे देवतोंमें श्रेष्ठ। यह कन्या है, जब तुम उत्पन्न नहीं हुए थे, तबही ब्रह्माने तुम्हारे लिये इसको बनाया था; इस लिये तुम इसका दहना हाथ विधिके सहित अपने कमलके समान हाथसे ग्रहण करो। इन्द्रके ऐसे वचन सुन कार्तिकेयने देवसेनासे विधि पूर्वक विवाह किया। उस विवाहमें मन्त्रके जाननेवाले बृहस्पतिने मन्त्र गाये और होम करी, इस प्रकार देवसेना कार्तिकेयकी स्त्री भई। वह विवाह पष्ठी तिथिकी हुआ था; इस लिये इसी तिथिकी पहली ब्राह्मण लोग सुख और लक्ष्मीकी देनेवाली कहते हैं; इसीके सिनिवाली, कृह, सदवृत्ती और अपराजिता नाम हैं। जिस समय देवसेनाने कार्तिकेयको अपना पति बनाया, उसी समय लक्ष्मीभी प्रपना शरीर धारण करके कार्तिकेयके पास आई। पञ्चमी तिथिकी कार्तिकेय लक्ष्मीवान हुए थे, इसीसे उस तिथिका नाम औपञ्चमी है। श्रेष्ठकी कार्तिकेयका विवाह हुआ था, इसीसे पष्ठीकी महातिथि कहा है।

२२८ अध्याय समाप्त।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन् युधिष्ठिर। जिस समय कार्तिकेय देवतोंके सेनापति हो चुके और परम शोभासे विराजमान होने लगे उसी समय सप्त ऋषियोंकी स्त्री उनके पास आईं। वे सब धर्मकी और व्रतकी धारण करनेवाली थीं, परन्तु ऋषियोंने उनकी छोड़ दिया था। वे सब कहने लगीं, हे पुत्र। हम लोगोंकी हमारे देव-समान पतियोंने विना कारणही क्रोधवश छोड़ दिया है, इस लिये हम लोग धर्मसे नष्ट हो गई हैं,

किसीने हमारे पतियोंसे कह दिया कि तुम हमारेही गर्भसे उत्पन्न हुए हो, इन सब सत्य-वातोंकी सुनकर तुम हमारी रक्षा करो, हे प्रभो। तुम्हारी कृपासे हमको अक्षय स्वर्ग होगा, हम सब तुमको अपना पुत्र बनाना चाहती हैं; यह कार्य करके तुम अमृत हो जाओ। कार्तिकेय बोले, हे निन्दारहित ब्राह्मणियों! तुम सब हमारी माता हो, हम तुम्हारे पुत्र हैं, और जो कुछ तुम्हारी इच्छा हो सब सिद्ध होगी।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, कार्तिकेयने इन्द्रसे कहा कि, हे इन्द्र। हम तुम्हारा कौन सा कार्य सिद्ध करें। इन्द्र बोले, हे कार्तिकेय। अभिजित रोहिणीसे छोटी है, परन्तु वह रोहिणीसे बड़ी होना चाहती है, इसी लिये वह तप करनेकी वनमें गई है, इसी लिये मैं धौबड़ा, रक्षा हूं, क्योंकि अभिजित नक्षत्र आकाशसे नष्ट होगया है, रोहिणी उससे बड़ी होना चाहती है, इसी लिये वह तप करनेकी वनमें गई है इसी लिये तुम ब्रह्माके यहां जाकर समयका विचार करो। ब्रह्माने पहली धनिष्ठाकी आदि गिना है। सबसे पहली रोहिणी थी इस प्रकार यह संख्या स्थित है। इन्द्रके यह वचन सुनकर कृत्तिका आकाशकी चली गई। वही कृत्तिका सात सिरके समान दिखाई देती है, उसका देवता अग्नि है। विनताने कार्तिकेयसे कहा कि तुम हमारे पिण्ड देनेवाली पुत्र हो, इस लिये मैं सदा तुम्हारे सङ्ग रहना चाहती हूँ।

कार्तिकेय बोले, तुमने कहा सी ऐसाही होगा, हम तुम्हें प्रणाम करते हैं, तुम हमें पुत्रप्रेमसे पालन करो और पुत्रवधूसे पूजित होकर यहां सुखसे रहो।

मार्कण्डेय मुनि बोले, इसके पश्चात् सब लोकमाता कार्तिकेयसे कहने लगीं कि हम सब लोकोंकी माता हैं, और सब पण्डित लोग

स्तुति करते हैं हम तुम्हारी माता होना चाहती है, तुम हमारी पूजा करो।

कार्तिकेय बोले, हे लोकमाता! तुम सब हमारी माता हो और हम तुम सबके पुत्र हैं, जो तुम्हारी इच्छा हो सो मुझसे कहो मैं उसकी पूर्ण कछंगा। लोकमाता बोलौं, पहले जो लोकमाता थीं उनके जो स्थान थे सो हमको मिलें और उनको न मिलें; हमारी सब लोक पूजा करें और उनकी न करें। हे देवसिंह! उन्होंने तुम्हारे कारणसे हमारी सन्तानको छीन लिया है सो हमें फिर दो।

कार्तिकेय बोले, वह सब सन्तान नष्ट हो गई, अब तुम लोगोंको नहीं मिल सकती हैं, यदि तुम लोगोंकी इच्छा हो तो दूसरी प्रजा तुम्हें दें।

लोकमाता बोलौं, हे कार्तिकेय! हम उन लोकमाताओंकी प्रजा भोग करना चाहती हैं, तुमको छोड़कर और जो कुछ उनका हो हमको दे दो। कार्तिकेय बोले, हम बहूत कष्टसे यह प्रजा तुमको देते हैं, तुम लोग उनकी रक्षा करना, क्योंकि तुमको सब साधु लोग नमस्कार करते हैं।

लोकमाता बोलौं, हे कार्तिकेय! तुम्हारा कल्याण हो, हम प्रजाकी तुम्हारी इच्छानुसार रक्षा करेंगी, तुम्हारे संग बहूत दिन तक रहनेकी हमारी इच्छा है।

कार्तिकेय बोले, जब तक सन्तान १६ वर्षकी हों, तब तक तुम अलग अलग रूप बनाकर उनकी रक्षा करो, हम तुम लोगोंको शिवकी अव्यय आत्माकी देगें उसके सहित सुखसे पूजापाकर यहां बसो।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, उसी समय कार्तिकेयके शरीरसे प्रजाके भोग करनेके लिये एक पुरुष उत्पन्न हुआ, उसका सोनेके समान रंग था, वह हीतेही भूखसे व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर गया। उसी समय कार्तिकेयकी

आज्ञासे वह स्रष्टा रूपो ग्रह हो गया ब्राह्मणेने उसीको स्कन्दापस्वार कहा है। जो बड़ी कठिन विनता है उसीको शकुनी ग्रह कहते हैं। जो पूतना नामक राक्षसी है वह बड़ा दुःख देने वाली और घोर रूपणी है, उसीको पूतना ग्रह भी कहते हैं, जो भयानक रूपवाली पिशाची है उसे शीत पूतना कहते हैं; वह स्त्रियोंके गर्भसे बालकोंको निकाल लेती है। अदितिका नाम रेवती है, उसका ग्रह रेवती है, वह भी बड़ा घोर है और बालकोंको दुःख देता है, जो दिति नामक दैत्योंकी माता है उसका नाम मुखमण्डिका है वह सदा बालकोंकी मांस खाया करती है। हे कुरुनन्दन! जो हमने कार्तिकेयके उत्पन्न हुए लड़की और लड़के कहे सो सब भी बालकोंको दुःख देने वाली और महा ग्रह हैं वे सब इन स्त्रियोंके पति और बड़े दुष्ट कर्म करनेवाले हैं, यही बालकोंकी नाश कर देले हैं। हे राजन्! जो सुरभी नामक गौओंकी माता है उसने ऊपर शकुनी चढ़कर पृथ्वीके बालकोंको खाजाता है। हे नरनाथ! सरमा नामक जो कुत्तोंकी माता है वह भी स्त्रियोंकी निकाल लेती है। कुरंगनिलया जो वृक्षोंकी माता है वह बड़ी साधु वरदान देनेवाली और जन्तुओंके ऊपर कृपा करने वाली है। इसी लिये पुत्र चाहने वाले पुरुष कुरंजुवेके वृक्षमें उसे प्रणाम करते हैं। ये अन्य अठारह ग्रह हैं; वे सब मांस और मद्यकी अत्यन्त प्रिय मानते हैं, और सात दिन तक स्तुतिका स्थानग रहते हैं। कटु सूक्ष्म रूप धारण करके गर्भमें घुस जाता है, और स्त्रीके गर्भकी खाजाती है तब उसके गर्भसे नाग उत्पन्न होता है। जो गन्धर्वोंकी माता है, सो गर्भकी लेकर चली जाती है, इसीसे स्त्रियोंका गर्भ छिप जाता है। जो अप्सराओंकी माता है सो गर्भकी ग्रहण करती है। इसीसे स्त्रीका गर्भ नष्ट हो जाता है। जो काम

समुद्रकी कन्या है जिसने कार्तिकेयको दूध पिलाया था, उसका नाम लोहितायनी है ; उसकी पूजा कदम्ब वृक्षमें होती है । जैसे पुरुषोंमें शिव हैं ; तैसेही स्त्रियोंमें आर्या है ; यह आर्या कार्तिकेयकी माता है ; उसकी पूजा अलग अलग कार्योंमें की जाती है , मैंने यह सब ग्रह कहे । जब तक १६ वर्षका बालक होता है , तब तक ये सब दुःख देते हैं । जो हमने पुरुष और स्त्री ग्रह कहे इन सबकी स्कन्द ग्रह जानना चाहिये ; इन सबकी पूजा धूप, दीप और स्नानसे करनी चाहिये ; इनकी शान्तिके निमित्त कार्तिकेयके नामसे बलिदान करना चाहिये । इस प्रकार पूजा पाकर ये सब अच्छा फल देते हैं । हे राजेन्द्र ! ये सब लोग पूजा पाकर पुरुषोंका वीर्य और आयु बढ़ाते हैं । अब हम शिवकी नमस्कार करते हैं और उन ग्रहोंका वर्णन करते हैं जो १६ वर्षके अवस्थाके पीछे बालकोंको दुःख देते हैं ।

जो पुरुष सोते अथवा जागते हुए देवतोंको देखता है, और फिर शीघ्रही पागल होजाता है, उस ग्रहका नाम देवग्रह है । जो बैठे या सोये हुए पितरोंकी देखता है, और फिर उत्पन्न हो जाता है, उसे पितृग्रहका दोष जानना चाहिये । जो सिद्धोंका अपमान करता है, और जिसे सिद्ध लोग क्रोधित होकर शाप देते हैं, फिर जो पागल हो जाता है, वह सिद्ध ग्रहका दोष है । जो पागल अनेक सुगन्धियोंको सूंघे और अनेक रसोंको खाय उसे राक्षस ग्रह जानना चाहिये । जिसके शरीरमें गन्धर्व प्रवेश करता है और वह शीघ्रही पागल हो जाता है, उसे गन्धर्व ग्रह जानना चाहिये । जिसके ऊपर प्रेत चढ़ता है, और वह पुरुष पागल हो जाता है, उसपर पेशाव ग्रह जानना चाहिये, जिस पुरुषपर अथ विगड़नेसे यक्ष लोग आते हैं ; और वह पागल हो जाता है, उसको यक्ष ग्रहका दोष

है । जो पुरुष वात, पित्त, और कफके दोषोंसे पागल हो जाता है, उसकी चिकित्सा शास्त्रानुसार करनी चाहिये । जो पुरुष विकलतासे, भयसे, और कठोर वस्तुके देखनेसे पागल हो जाता है, उसके चित्तको शान्त करना चाहिये । कोई ग्रह खेलनेकी इच्छा करता है, कोई खानेकी इच्छा करता है, और कोई साधारण इच्छा रखता है ; इस प्रकार ग्रहोंकी तीन इच्छा होती हैं । ७० वर्षकी अवस्था तक पुरुषोंकी ये सब ग्रह दुःख देते हैं ; इसके पीछे ज्वरही ग्रहके समान हो जाता है । जो पुरुष इन्द्रियजित, पवित्र, दाता, सदा आलस रहित, अज्ञान और आस्तिक होता है, उसे ग्रह लोग छोड़ देते हैं , हमने यह सब ग्रहोंका विधान कहा । जो पुरुष भगवान शिवके भक्त हैं, उनकी ग्रह दुःख नहीं देते ।

२२६ अध्याय समाप्त ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन् युधिष्ठिर । जिस समय कार्तिकेयने लोकमाताओंका प्रिय कार्य किया, उसी समय स्वाहा देवीने कुमारसे कहा कि तुम हमारे गर्भसे उत्पन्न हुए पुत्र हो, इस लिये मैं तुम्हारे दुर्लभ प्रेमको चाहती हूं । तब कार्तिकेयने उनसे कहा कि तुम हमारे किस प्रकारके प्रेमको चाहती हो ? स्वाहा-देवी बोलीं, हे महाभुज । मैं दक्षकी प्यारी कन्या हूँ मेरा नाम स्वाहा है, मैं बाल्यावस्था-हीसे अग्निको अपना पति बनाना चाहती थी, हे पुत्र ! वह मुझको नहीं जानते थे, कि यह मेरी इच्छा करतो है, हे पुत्र ! मैं सदाही अग्निके सङ्ग वसना चाहती हूँ ।

कार्तिकेय बोले, हे स्वाहे ! ब्राह्मण लोग यज्ञोंमें मन्त्रोंके सहित जो हव्य और कव्य देंगे, उसमें स्वाहा शब्द उच्चारण करेंगे । इसी प्रकारसे तू आजसे अग्निके संग वसेगी । हे

सुन्दरी ! अच्छे कर्म करनेवाले महात्मा लोग आजसे ऐसाही करेंगे ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन् युधिष्ठिर ! स्वामकार्तिकेयके ऐसे वचन सुनकर स्वाहा देवी ब्रह्मत स तुष्ट हुई और कार्तिकेयने उनकी ब्रह्मत पूजा करी । उसी दिनसे स्वाहा देवी अपने पति अग्निके सङ्ग रहती हैं । उन्हीं-नेभी कार्तिकेयकी पूजा करी । अनन्तर प्रजापति ब्रह्माने कार्तिकेयसे कहा कि तुम त्रिपुरासुरके नाश करनेवाले अपने पिता महादेवके पास जाओ ; महादेवने अग्निका और पार्वतीने स्वाहादेवीका रूप धारण करके तुमको उत्पन्न किया है ; तुमको युद्धमें कोई नहीं जीत सकता ; जो शिवने अपने वीर्योंको पार्वतीकी योनिमें स्थापन किया था, वह इसीसे इस पतिका नाम ईजिक है , जो वीर्य शेष रह गया, वह लाल समुद्रमें गिर गया था, इस प्रकार इस वीर्यके पाच टुकड़े हो गये थे ; इसी लिये अनेक प्रकारके ग्रहभी उत्पन्न हुए हैं, ये जो मांस खानेवाले हैं ; ये सब तुम्हारे पार्षद हो । पिताके प्यारे कार्तिकेयने उनके वचनोंको स्वीकार करके अपने पिता महादेवकी पूजा करी ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन् युधिष्ठिर ! जो पुरुष धनकी इच्छा रखते हैं, उन्हें उन गणोंकी पूजा आकके फलोंसे करना चाहिये ; जो लोग किसी रोगको शान्त करना चाहते हैं, वे सामान्य पूजा करें । मिश्रिक और अमिश्रिक ये दोनों शिवसे उत्पन्न हुए हैं, इस लिये बालकोंके हित चाहनेवाले पुरुषोंकी उचित है कि इन दोनोंको सदा प्रणाम करें । सन्तान चाहनेवाले पुरुषोंकी उचित है, कि जो मासभक्षिणी वृक्षवासिनी, वृद्धि नामक देवी है, उनको वृक्षोंमें प्रणाम करे । हमने इस प्रकारसे असंख्य पिशाचोंके गण कहे ; अवहम घण्टा और पताकाका जन्म कहते हैं ; आप सुनिये ।

ऐरावतकी जो दो घण्टे हैं, उनका नाम वैजयन्त है । वे दोनों बुद्धिमान कार्तिकेयको दिये गए थे । उनमेंसे एक विशाखका है, और एक कार्तिकेयका है । कार्तिकेयके घण्टेका नाम पताक और विशाखके घण्टेका नाम लोहिता है । देवतोंने जो कार्तिकेयको खेले दिये थे, उन्हींसे सब देवता और पिशाचोंके सहित कार्तिकेय खेलने लगे । महा तेजस्वी वीर कार्तिकेयसे वह उत्तम वनवाला पर्वत शोभायमान हो गया । उस समय उस पर्वतकी ऐसी शोभा बढ़ी जैसी सूर्यके निकलनेसे उत्तम गुफावाले मन्दराचलकी । फले हुए, सन्तान कनेर, पारिजात, गुड़हल, अशोक और कदम्बादि वृक्षोंके वनसे तथा अनेक प्रकारके दिव्य पशु और पक्षियोंसे वह श्वेत पर्वत वृद्ध शोभायमान हुआ, उस पर्वत पर मेघ, वाने और उछलते हुए समुद्रके समान शब्दवाले सब देवता, देवऋषि, दिव्य गन्धर्व अम्बरा और लोग नाचने लगे, और प्रसन्न होकर गाने लगे । वह शब्द उस पर्वत पर पूरित हो गया । इस प्रकारसे इन्द्रके सहित सब जगत उस श्वेत पर्वतपर कार्तिकेयकी देखने लगा, इससे कभी उन लोगोंका दुःख नहीं होता था ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, जिस समय भगवान् कार्तिकेयका सेनापति पद पर अभिषेक हुआ उसी दिन भगवान् शिवभी पार्वतीके सहित सूर्यके समान तेजस्वी रथ पर चढ़ प्रसन्न होकर भद्र बटकी चले गए । उनके उस उत्तम रथमें एक सहस्र सिंह जुड़े थे । वह रथ उत्तम समय पाकर स्वच्छ आकाशकी उड़ने लगा । उसके चलनेसे ऐसा जान पड़ता था, मानो यह आकाशकी खा जायगा । रथसे समस्त चर और अचर डरने लगे । वे सिंह अपने गलेके वालोंको फेलाकर आकाशमें उड़ने लगे । उस समय पार्वतीके सहित महादेव उस रथमें बैठे हुए ऐसे शोभित हुए जैसे इन्द्र-धनुष

रहित मेघोंके बीचमें विजलीके सहित सूर्य ।
 उनके आगे, सब गुह्यकोंके सहित भगवान्
 कुबेर पीछे चले । कुबेर देवता पुष्पक विमानके
 ऊपर चढ़कर चले । वरदान देनेवाले वृष-
 णह्वन भगवान् शिवके पीछे ऐरावतपर चढ़कर
 सब देवतोंके सहित इन्द्र चले, और उनकी
 दहनी और माला आदि सब आभूषणोंको
 गिराकर जृम्भक नामक यक्ष और राक्षसोंको
 सङ्ग लेकर अमोघ नामक महायक्ष चले ।
 इनके दहनी और विचित्र युद्ध करनेवाले अनेक
 देवता रुद्र और वसु लोग चले ! महा घोर
 रूपधारी यमराज मृत्यु सब रोगोंके सहित
 शिवको चारों ओरसे घेरकर चले । शिवके
 पीछे महाघोर तीन धारवाला विजय नामक
 त्रिशूल चला । उसके पीछे उग्र फासीको धारण
 करनेवाले जलके राजा भगवान् वरुण जल
 जंतुओंके सहित चले । विजय नामक त्रिशूलके
 पीछे शिवका पाँटिश चला । गदा मूषल और
 शक्ति आदिक उत्तम शस्त्रोंके सहित पाँटिशके
 पीछे उत्तम प्रकाशवाला शिवका छत्र चला ।
 उसके पीछे महाऋषियोंसे सेवित कमण्डलु
 चला । उसके पीछे शम्भासे भरा झुआ दण्ड
 चला, इन सबके पीछे भृगु और आङ्गिरादिक
 ऋषियोंके सहित विमल रथपर चढ़कर शिव
 चले । इसके चलतेही इनके तेजसे सब देवता
 लोग प्रसन्न होने लगे । उनके पीछे ऋषि,
 देवता गन्धर्व, सर्प, नदी, तलाव, समुद्र, अप्सरा,
 नक्षत्र, ग्रह, देवताके बालक और अनैक प्रकार
 की स्त्रियाँ चलीं । वे सब सुन्दरी स्त्रियाँ शिवके
 ऊपर फूल वषाने लगीं । शिवको नमस्कार
 करके मेघभी उनके पीछेही चले । शिवके सफेद
 वस्त्रको चन्द्रमाने धारण किया, चमरोको वायु
 और अग्निने हाथमें लिया । हे राजन् ! उनके
 पीछे राजऋषियोंके सहित स्तुति करते हुए
 भीमसे भरे इन्द्र चले । पार्वतीके पीछे गौरी,
 श्यामा, केशिनी गान्धारी और मिवसा चलीं ।

उनके पीछे कवियोंकी जितनी विद्या हैं वे सब
 चलीं । उनके पीछे सब लोकोंके सुख देनेवाले
 पिङ्गल नामक यक्षराज चले । इस प्रकारसे
 सुखपूर्वक भगवान् शिव कैलाशसे चले । शिवके
 आगे और पीछे किसीकी गति नहीं हुई शिव-
 को जगतके लोग अच्छे कर्मोंसे प्राप्त करते हैं,
 शिव परम देवता है, उनहींका नाम शिव, रुद्र,
 ईश और पितामह है, जगतके लोग उन्हीं
 महादेवकी अनेक प्रकारसे पूजते हैं । इस
 प्रकारसे, देवतोंके सेनापति कृत्तिकाके पुत्र
 ब्राह्मणोंके जाननेवाले भगवान् कार्तिकेयभी
 देवतोंकी सेनाके सहित शिवके पीछे चले ।
 इसके अनन्तर भगवान् शिवने कार्तिकेयसे
 कहा कि तुम सदा आलस्य रहित होकर सातवें
 वायु स्कन्धकी रक्षा करो ।

कार्तिकेय बोले, हे नाथ । हम सातवें
 वायु स्कन्धकी रक्षा करेंगे और जो कुछ हमारे
 योग्य काम हो सो हमें शीघ्र कहिये ।

श्रीशिवजी बोले, हे पुत्र । तुम सदा हमारे
 कार्योंकी देखते रहो, ऐसा करनेसे और
 हमारी भक्ति करनेसे तुम्हारा परम कल्याण
 होगा ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, कार्तिकेयसे ऐसा
 कहकर और उनको अपने हृदयसे लगाकर
 शिवने विदा किया । जब कार्तिकेय चले गये
 तो वहा वज्रत उत्पात होने लगे । हे महा-
 राज । उस उत्पातसे सब देवता मोहित हो
 गए । उसी समय आकाश और सब तारे जलने
 लगे, और तीनो लोक मूर्खोंके समान जड़ हो
 गये । पृथ्वी हिलने लगी और पृथ्वीमेंसे एक
 घोर शब्द होने लगा । समस्त जगतमें अन्ध-
 कार हो गया । इस घोर उत्पातको देखकर
 शिव और महा भाग्यवती पार्वती तथा और
 भी देवता आदिक सब घबड़ा गए । जब इस
 प्रकार सब लोग मूर्च्छित हो गए, उसी समय
 एक पर्वत और मेघके समान शरीरवाला राक्षस

दिखाई दिया । वह अनेक प्रकारके शस्त्रोंको धारण किये और गर्जता हुआ शिव और देवतोंकी ओर दौड़ा । उसके सङ्ग औरभी अनेक राक्षस थे । यह एक राक्षसोंकी सेना थी । वह सब राक्षस लोग देवतोंकी सेनापर वाण बरसाने लगे । उसी समय देवतोंकी सेनापर पर्वत, शतघ्नी, प्रास, खड्ग और परिघ आदि अनेक शस्त्र वर्षने लगे, उन शस्त्रोंके लगनेसे क्षण भरमें युद्धसे देवतोंकी सेना बिमुख हो गई, और भागने लगी । किसीका घोड़ा किसीका हाथी, किसीका रथ, और किसीका शस्त्र कट गया । उस समय दानवोंसे पीड़ित देवतोंकी सेनाकी ऐसी शोभा हुई जैसे आगसे जलते हुए बनकी । जैसे जलते हुए वनमें वृक्ष गिरते हैं, तैसेही सिर और हाथके हीन देवता लोग गिरने और भागने लगे । वे लोग युद्धसे पीड़ित होकर भागने लगे, परन्तु उन्हें कोई अपना स्वामी न देख पड़ा । जब इन्द्रने देवतोंको भागते हुए देखा, तब बलिके मारनेवाले इन्द्र अपने दलको धीरज देकर कहने लगे, हे शूरवरो ! तुम्हारा कल्याण हो, भयको छोड़ दो और शस्त्रोंको धारण करो तुम लोग युद्ध करनेकी इच्छा करो और किसी दुःखको धारण मत करो ; इन दुष्ट घोर राक्षसोंको जीत लो तुम लोगोका कल्याण हो, तुम सब हमारे सहित इन राक्षसोंसे लड़नेकी चली । इन्द्रके वचन सुनकर देवतोंकी विश्वास हुआ और इन्द्रकी आगे दूरके दानवोंसे युद्ध करना आरम्भ किया । उस समय सब देवता महाबली मस्त, महाभाग साध्य और वसु लोग दानवोंसे युद्ध करने लगे । क्रोधित देवतोंने जो शस्त्र चलाए सो राक्षसोंके शरीरमें प्रवेश करके रुधिर पीने लगे । उनके शरीरोंकी कंद करके तीक्ष्ण वाण पृथ्वीपर गिरने लगे । उस समय उनकी ऐसी शोभा दिखाई देती थी जैसे पर्वतोंसे सर्प गिरते हैं । उस समय उन मरे हुए राक्षसोंके शरीर

वाणोंसे कट कट कर पृथ्वीमें इस प्रकारसे गिरने लगे, जैसे आकाशसे बादल गिरता है । उस समय समस्त दानवोंकी सेना देवतोंके वाणोंसे व्याकुल होकर भागने लगी । तब सब देवता लोग प्रसन्न होकर गर्जने लगे, और अनेक वाजोंकी बजाने लगे । इस प्रकार देवता और दानवोंमें घोर युद्ध हुआ । उस समय उस युद्धभूमिमें मांसका कीचड़ हो गया था । देवतोंकी दानव और दानवोंकी देवता मारने लगे । उसी समय मेरी आदिक अनेक बाजे बजने लगे, और दानव लोग सिंहके समान घोर शब्द करने लगे । उसी समय उस घोर दानवोंकी सेनामेंसे महाबली महिष नामक दानव निकला । वह एक भारी पर्वत लेकर देवतोंकी ओर दौड़ा । उसको मेघोंके बीचमें सूर्यके समान आते हुए देखकर अनेक देवता लोग उसकी ओर दौड़े । महिषने भी देवतोंकी ओर दौड़ कर उस पर्वतकी फेंका । हे राजन् ! उस पर्वतके गिरनेसे दश सहस्र देवता मर गए । उस समय दानवोंके सहित महिषने सबकी हराया था । वह फिर देवतोंकी ओर ऐसा दौड़ा जैसे छोटे हरिनकी ओर सिंह दौड़ । उसको आते देख इन्द्रादिक देवता डरसे शस्त्रोंकी छाड़कर भागे । तब वह महिष क्रोध करके शिवके रथकी ओर दौड़ा और शिवके रथका पकड़ लिया । जिस समय महिषासुर शिवके रथकी ओर दौड़ा था उसी समय पृथ्वी और आकाशसे घोर शब्द हान लगा, ऋषि लोग डरने लगे, उस समय मेघके समान शरीरवाले राक्षस लाग गर्जने लगे ; उस समय सब जगत चेतनारहित हागया, उस समय भगवान् शिवन महिषासुर को मारना आरम्भ किया ; परन्तु उस दुष्टकी मृत्यु कार्तिकेयके हाथसे थी, इसलिये शिवने कार्तिकेयको स्मरण किया । महिषासुरने भी शिवके रथको देखकर घोर शब्द किया, उससे देव

लोग प्रसन्न हुए और देवता लोग डरे । जब देवतोंके लिये ऐसा भयानक समय उपस्थित हुआ, तब क्रोधसे सूर्यके समान प्रकाशमान कार्तिकेय आये । वे लाल कपड़े और लाल माला पहिरे थे ; उनके घोड़े लाल थे । महाबाहु कार्तिकेय सोनेका कवच पहिन कर, सूर्यके समान प्रकाशमान सोनेके वर्णवाले रथ पर बैठकर यज्ञमें आए, उनको देखतेही दैत्योंकी सब सेना भागने लगी । उसी समय महाबलवान कार्तिकेयने महिषको मारने-वाले प्रकाशमान घोर शक्तिको छोड़ा । उसी समय उस शक्तिने महिषासुरकी काटकर पृथ्वी-पर गिरा दिया । सिरके कटतेही महिषासुर गिरकर मर गया । उस सिरके गिरनेसे उत्तर कुशदेशका १६ योजनका द्वार बन्द हो गया ; इसीसे वह देश जाने योग्य नहीं रहा ; अबतकभी मनुष्य उस कुशदेशमें उसी द्वारसे सुख-पूर्वक जाते हैं । वह शक्ति अनेक दानवोंको मारकर फिर कार्तिकेयके हाथमें आगई । फिर बुद्धिमान कार्तिकेयने अपने वाणोंसे अनेक दानवोंको मारा फिर कार्तिकेयके घोर पार्षदोंने सहस्रों डरे हुए दानवोंको मार खाया । उन्होंने क्षण भरमें सब दानवोंको नाश कर दिया । जैसे अश्वकारको सूर्य, वृक्षोंकी अग्नि और मेघोंका वायु नष्ट कर देते हैं, तैसेही कार्तिकेयने अपने बलसे दानवोंको नाश कर दिया । कार्तिकेयने इन सबको मारकर शिवकी प्रणाम किया, देवतोंने उनकी स्तुति करी । उस समय कार्तिकेयकी ऐसी शोभा बढ़ी जैसे प्रकाशमान सूर्यकी । जिस समय शत्रुओंकी नाश करके कार्तिकेय शिवके पास गए, उसी समय इन्द्रने कार्तिकेयको अपने हृदयसे लगाकर कहा, हे कार्तिकेय ! तुमने महिषासुरकी मारा उसकी ब्रह्मदेवता वरदान दिया था । हे जीतनेवालोंमें श्रेष्ठ ! इन्होंने देवतोंकी-तिनकेके समान मान रखा था । हे महाबाहु ! तुमने इस देवतोंके काटकी

नाश किया, जिन्होंने हमकी पहली दुःख दिया था उन सब दैत्योंकी तुमने मारा । ये सब महिषके सन्तान थे और तुम्हारे गणोंनेभी सैकड़ों दैत्योंको खाया । तुमको युद्धमें कीर्ति नहीं जीत सकता है तुम भगवान शिवके समान हो । हे देव ! तुम्हारा जो यह प्रथम कर्म है सो प्रसिद्ध हो जायगा और तुम्हारी अक्षय कीर्तिभी तीनो लोकोंमें प्रसिद्ध होगी । हे महाबाहु ! सब देवता लोग तुम्हारे वशमें रहेंगे । कार्तिकेयकी ऐसी स्तुतिकर और भगवान शिवकी आज्ञा लेकर इन्द्र देवतोंके सहित चले गए । भगवान शिवभी भद्रवटकी गए । देवता लोगभी अपने अपने घरकी चले गए । भगवान शिवने चलते समय देवतोंसे कहा कि तुम कार्तिकेयकी हमारे समान देखना । कार्तिकेयने एकही दिनमें सब दानवोंको मारकर तीनो लोकोंकी जीत लिया, तब सब ऋषि-लोगोंकी पूजा करने लगे । जो ब्राह्मण कार्तिकेयके जन्मकी इस कथाकी पढ़ते हैं, वे सब इस लोकमें सुख पाकर मरनेके पीछे कार्तिकेयके लोकको पाते हैं ।

२३० अध्याय समाप्त ।

महाराज युधिष्ठिर बोले, हे भगवन ! हे हिजोत्तम ! हम महात्मा कार्तिकेयके उन नामोंकी सुनना चाहते हैं जो तीनो लोकोंमें विख्यात हैं ।

श्रीवैशम्पायन सुनि बोले, हे राजन जनमेजय ! महाराज युधिष्ठिरके ऐसे वचन सुन महातपस्वी मार्कण्डेय कहने लगे ।

श्रीमार्कण्डेय सुनि बोले, आग्नेय, स्कन्द, दीप्तकीर्ति, अनामय, मयूरकेतु, धर्मात्मा, भूतेश, महिषनाशन, कामोजतु, कामद, कान्त, सत्यवादी, भुवनेश्वर, शिशु, श्रीद्र, चण्ड, दीप्तवर्ण, सुभावन, अमा, अनघ, रौद्र, प्रिय, चन्द्रानन, दीप्त-शक्ति, प्रशान्तात्मा, भद्रकृत, कूटमीहन,

षष्ठीप्रिय, पवित्र, मातृवत्स, कन्याभर्ता, स्वाहा-
पुत्र, विभक्त, खेतीसुत, प्रभूनेता, विशाख,
नगमेय, दुर्जर, सुव्रत, बाल, रणप्रिय, आकाश-
गामी, ब्रह्मचारी, शूर, शरवनोज्ज्वल, विश्वा,
देवसेनापति, वासुदेवप्रिय और प्रिय कर्त्ता । ये
कार्तिकेयके दिव्य नाम हैं । इनको जो कोई
पढ़ता है, उसको निःसन्देह स्वर्ग, कीर्ति
और धन मिलता है ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हम उन कार्त्तिके-
यकी इन नामोंसे स्तुति करते हैं जो ब्राह्मण
और शक्तिके सहित निवास करते हैं । हे
कुरुप्रवीर । जो कार्त्तिकेय ऋः सुखवाले शक्तिको
धारण करते हैं, जो बड़े वीर हैं आप उनकी
स्तुति सुनिये ।

हे कार्त्तिकेय ! तुम ब्राह्मणभक्त वेद-
विधिसे उत्पन्न हुए, ब्रह्मके जाननेवाले, ब्रह्मा
और शिवके भक्त, वेदपाठियोंमें श्रेष्ठ, ब्रह्मके
प्यारे, ब्राह्मणोंके समान सत्यव्रत धारी, और
ब्राह्मणोंकी मोक्ष देनेवाले हो । तुम स्वाहा,
स्वधा, पवित्र, मन्त्रोंसे पूजित, जगत्में विख्यात
और ऋः जिह्वावाले हो । तुम वर्ष, अमृत, ऋः
महीने, पक्ष, मास, अयन, और दिशा हो ! तुम
कमल-नेत्र, कमल मुख, सहस्र मुख, सहस्र बाहु,
लोकपाल, यक्ष तथा राक्षस और देवतोंके
स्वामी हो । तुम सेनाके स्वामी, महा तेजस्वी,
जगतके स्वामी, जगतके उत्पन्न करने वाले,
सहस्रमुख, सहस्र तुष्टि और सहस्र वस्तुओंको
खानेवाले हो । हे देव ! तुम्हारे सहस्र सिर
हैं, तुम अनन्तरूप, सहस्र चरणवाले, और
शस्त्रधारी हो । तुम गङ्गा, स्वाहा, पृथ्वी और
कृत्तिकाके पुत्र हो । हे ऋः सुख ! तुम कुक्कुटके
सङ्ग खेलते हो, तुम अपनी इच्छानुसार शरीर
धारण करते हो, तुमही शिवा हो, तुमही
चन्द्रमा, वायु, धर्म, पर्वत और इन्द्र हो । तुम
सनातनोंसेभी सनातन हो, स्वामियोंकेभी स्वामी
हो । तुम सत्यकर्त्ता, दैत्य नाशक शत्रुओंके

जीतने वाले, और देवतोंमें श्रेष्ठ हो । तुम
सूक्ष्म, तप, ब्रह्मके जाननेवाले और ब्रह्म हो ।
हे महात्मन् । तुम्हारे तेजसे अर्थ धर्म और
काम पूरित होते हैं । हे लोकनाथ । तुमसे
सब जगत व्याप्त है, हमने अपनी शक्तिके अनु-
सार तुम्हारी स्तुति करी । तुम्हारे वारह
नेत्र और वारह हाथ हैं ; हम तुमकी प्रणाम
करते हैं, इससे आगे हम तुम्हारी गतिकी
नहीं जानते हैं । जो ब्राह्मण सावधान होकर दस
कार्त्तिकेयके स्तोत्रको पढ़े, सुने या सुनावे वह
धन, आयु प्रकाशमानयश शत्रुजय, पुत्र, पुष्टि
और सन्तोषकी प्राप्ति होकर अन्तमें कार्त्तिकेयके
लोककी जाता है ।

२३१ अध्याय समाप्त ।

मार्कण्डेय समास्था पर्व समाप्त ।

अब द्रौपदी सत्यभामा पर्व लिखते हैं

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय !
जहां महात्मा ब्राह्मण और पाण्डव लोग बैठे
थे, वहां द्रौपदी अत्यभामा सङ्ग आईं वे दोनों
हंसती हुई सुखसे एक स्थान पर बैठ गईं । हे
राजेन्द्र । वे दोनों बह्मन दिनोंमें मिली थीं इस
लिये परस्पर प्रिय बातें करने लगीं वे दोनों
कुरुवंशी और यदुवंशियोंकी उत्तम उत्तम कथा
कहने लगीं, अनन्तर कृष्णकी प्यारी पटरानी
सत्राजितकी पुत्री सत्यभामा द्रुपदकी पुत्री
द्रौपदीसे बोली, हे द्रौपदी । तुम पाण्डवोंके
सङ्ग कैसे रहती हो । हे सुन्दरि । वे पाँचोंही
लोकपालोंके समान हैं और परस्पर वदन्तही
प्रीति रखते हैं कहो वे पाँचों तुम्हारे वशमें
कैसे रहते हैं, तुम्हारे ऊपर क्रोध तो नहीं
करते ? हे सुन्दरी ! वे पाँचों तुम्हारे वशमें
कैसे रहते हैं ? वे पाँचों सुन्दर हैं इन पाँचोंकी
तुम अपने वशमें कैसे रखती हो वे सब हमसे
कहो । हे पाञ्चालि ! व्रत, तप, स्नान, मन्त्र,
औपधि, विद्या, जप, होम, वे सब तुम हमसे

कहो, अथवा और कोई सौभाग्य बढ़नेको ऐसी युक्ति कहो जिससे कृष्ण सदा हमारे वशमें रहे, महा यशस्विनी सत्यभामा ऐसा कहकर चुप हो रही, तब पतिव्रता द्रौपदी बोली, हे सत्यभामे ! तुम हमसे दुष्ट स्त्रियोंके समान कर्म पकती हो, जिस मार्गमें असत कर्म हैं उसमें कोई उत्तर किस प्रकार दे सकता है ? तुमको ऐसे सन्देह और प्रश्न नहीं करने चाहिये, क्योंकि तुम कृष्णकी प्यारी स्त्री और बुद्धि-मती हो । यदि पति इस बातकी जान जाय कि हमारी स्त्री मन्त्र करती है तो वह उससे ऐसे घबड़ाने लगता है, जैसे घरमें बैठे हुए सर्पसे । घबड़ाए हुए पुरुषको शान्ति कहा ? और शान्ति-रहितको सुख कहाँसे होगा ? इस लिये मन्त्रसे पति स्त्रीके वशमें नहीं हो सकता, शत्रुओंकी दी हुई औषधिभी शरीरको नाश करने वाली और अनेक रोगोंकी उत्पन्न करती है नकी यदि पुरुष जिह्वा अथवा लचासे सेवन करे तो उसमें जो चूर्ण हो उनसे वह पुरुष वश नष्ट हो जाता है, अनेक स्त्रियोंने अपने पतियोंको जलोदरी, कुष्ठे, बालवाले, नपुंसक, खूँ बहरे और अन्धे कर दिया है, वे स्त्री ही पापिनी हैं पापियोंके सङ्ग ऐसे ऐसे कर्म करनेवाली हैं । स्त्रियोंको कदापि अपने पतियोंके सङ्ग ऐसे कर्म नहीं करने चाहिये । सत्यभामे ! हे यशस्विनि ! मैं जिस सत्यवृत्ति-महात्मा पाण्डवोंके सङ्ग वर्त्ताव करती हूँ, उस सबकी तुम सुनो ।

मैं सदा, काम, क्रोध और अहङ्कारकी छोड़कर स्त्रियोंके सहित पाण्डवोंकी सेवा करती हूँ । मैं अपने पतियोंको सदा विनय पूर्वक सेवती हूँ और अपने आत्माकी सदा अपने वशमें रखती हूँ । मैं अभिमानरहित होकर पतियोंके चित्तकी रक्षा करती हूँ, मैं अपने पतियोंकी बुरी बात, बुरे स्थान, बुरी दृष्टि, बुरी चेष्टा, बुरी गति और बुरे चिन्होंसे डरती

रहती हूँ । मैं अग्नि, सूर्य और चन्द्रमाके समान महा-तेजस्वी दृष्टि मात्रसे शत्रुको नाश करनेवाली महा बोर्यवान प्रतापी पतियोंकी सेवा करती हूँ । चाहे देवता हो, मनुष्य हो, चाहे सुन्दर हो या आभूषण धारण किये हो और कैसाही द्रव्यवान क्यों न हो परन्तु मैं दूसरे पुरुषसे प्रेम नहीं करती । मैं अपने पतियोंसे पहले स्नान और भोजन कभी नहीं करती, मैं उनको बिना बिठलाये कभी नहीं बैठती । जब मेरे पति किसीखेत, गांव अथवा वनसे घरमें आते हैं, तब मैं उठकर खड़ी हो जाती हूँ, तथा उनको आसन वा जल देती हूँ । मैं अपने घरके वरतनोंको धोती हूँ, अन्न-को निर्मल रखती हूँ और उनकी समयपर सब देती हूँ । अपने शरीरको वशमें रखती हूँ, अपने अन्नको छिपाकर रखती हूँ और अपने घरको बूझारती रहती हूँ ; मैं वचनसे भी दुष्ट स्त्रियोंके समान अपने पतियोंका निरादर नहीं करती ; मैं अपने पतियोंकी सेवामें तनक भी आलस नहीं करती हूँ मैं कभी बिना हंसीको बातपर नहीं हंसती हूँ, कभी द्वारपर खड़ी नहीं होती, सुभी बागमें रहना अच्छा नहीं लगता ; मैं कभी अधिक नहीं हंसती ; मैं क्रोधके स्थानमें कभी नहीं जाती ; मैं सदा सत्य बोलती हूँ और पतियोंकी सेवा करती हूँ, सुभी पतियोंसे अलग रहना अच्छा नहीं लगता ; जब मेरे पति कभी कुटुम्बके निमित्त कहीं परदेशको जाते हैं, तब मैं अपने मनकी स्थिर करके व्रत करती हूँ ; जिसकी पति नहीं खाते और मेरे पति जिन वस्तुओंकी सेवा नहीं करते, मैं भी उन वस्तुओंको छोड़ देती हूँ । हे सुन्दरि ! मैं उपदेशके अनुसार सब काम करती हूँ, मैं सदा आभूषण पहनकर पतिका प्रियकार्य करती हूँ मेरी सासने जो कुछ कुछ कुटुम्बके-वास्ते धर्म कहे थे मैं वही सब करती हूँ,

भिक्षा पूजा, आद्य पर्वोंमें भोजन आदिका बनाना, सबकोंका मान्य और सबका आदर तथा सेवा दिन रात आलस्य रहित होकर करती हूं, मैं अपने चित्तको स्थिर करके सदा विनय और नियमोंकी धारण करती हूं; मेरे पति भले, पण्डित, सत्य, और धर्मके पालनेवाले हैं, और वेही क्रीधमें सर्पके समान हैं, मैं सबको सेवा करती हूं। मेरी यह सम्मति है कि सदा पतिके आश्रयसे रहनाही स्त्रियोंका सनातन धर्म है, स्त्रियोंकी पतिही देवता है, पतिका अप्रिय कार्य नहीं करना चाहिये; मैं कभी अपने पतियोंकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं करती हूं; अत्यन्त दुःख होनेपर भी कभी उनकी बुरे शब्द नहीं कहती हूं, अपनी सास और ससुरकी सेवा करती हूं, हे सुन्दरि! मैं सदा सावधान रहती हूं; नित्य उठकर पतियोंकी सेवा करती हूं, और बूढ़ोंकी भी सेवा करती हूं; इसीसे मेरे पति मेरे वशमें रहते हैं, वीर-माता और सत्यवादिनी अपनी सास कुन्तीकी सेवा मैं अपने हाथोंसे करती हूं मैं आपही उनकी भोजन और वस्त्र देती हूं, मैं कभी अपनी सासका निरादर नहीं करती हूं, मैं कभी अपनी सासको भोजन और वस्त्र देनेमें विलम्ब नहीं करती हूं, मैं कभी अपनी पृथ्वीके समान साससे नहीं बोलती हूं; हमारे घरमें पहले आठ सहस्र ब्राह्मण नित्य सोनेके पात्रोंमें भोजन करते थे, अठासी हजार गृहस्थ वेदपाठो ब्राह्मण भोजन करते थे; और अस्सी तथा तीस ब्राह्मण और भोजन करते थे, दश सहस्र ब्रह्मचारी और ऊर्ध्वरेता यति सोनेके पात्रोंमें पका हुआ अन्न पाते थे, उन सब वेदपाठी ब्राह्मणोंकी मैं खान पान और वस्त्रोंसे पूजती थी, महात्मा कुन्ती-नन्दन महाराज युधिष्ठिरकी एक लाख दासी थीं वे सब शूखके समान कण्ठवाली, आभूषणधारिणी गलेमें सोनेके आभूषण पहिने और वज्रत मूल्यकी माला

धारण करनेवाली थीं। वे सब परम सुन्दरी, चन्दन लगानेवाली, मणिजटित स्वर्णके आभूषण पहिने नाचने गानेमें निपुण थीं। उन सबके नाम भोजन वस्त्र और कर्मोंकी मैं जानती हूं, बुद्धिमान कुन्तीनन्दनकी और भी एक लाख दासी हैं, जो रात्रि दिन हाथमें पात्र लिये अतिथियोंको भोजन कराया करती हैं। जो एक लाख हाथी महाराज युधिष्ठिरके पीछे चलते थे और जो इन्द्रप्रस्थमें रहते थे, उन सबकी संख्या और नियमोंकी मैं जानती हूं और उन सबकी अपनी आज्ञामें रखती थी। महाराज युधिष्ठिरके यह सब सामग्री संग रहती थी, मैं रणवासके दासोंके सहित और मन्त्रियोंसे लेकर अपने राज्यके ग्वालों पर्यन्त सब दासोंके कार्योंकी भली भांति जानती हूं; मैं महाराजके राज्यके आय और व्ययकी नित्य देखती थी। हे कल्याणि! हे यशस्विनि! मैं पाण्डवोंके सब कर्मोंकी जानती हूं। गारत कुलसिंह पाण्डव सब कुटुम्बका भार मेरी ऊपर छोड़ कर आप केवल उपासना करते थे। हे सुन्दरि! मैं दुष्ट कर्मोंकी और आयुके नाश करनेवाले कर्मोंकी कभी नहीं करती हूं। मैं अपने सब सुखोंको छोड़कर रातदिन परिश्रम करती हूं। जो वर्णके समान सदा भरा रहने वाला रत्न पूरित समुद्रके समान धर्म करनेवाले मेरे पतियोंका जो कीप है मैं उस सबकी जानती हूं। चाहे रात्रि हो वा दिन हो। मैं सदा ही अपने पतियोंकी सेवा करती हूं। मैं कभी अपने पतियोंकी भूखा और प्यासा नहीं रहने देती हूं। पाण्डवोंकी सेवा करनेमें मैं रात्रि और दिनको समान ही समझती हूं; मैं प्रातःकाल उनसे पहले उठती हूं रात्रिको सबसे पीछे सोती हूं। हे सत्यमति! मेरा प्रतिदिनका यही काम है मैं इन्हीं सब कार्योंसे अपने पतियोंकी वशमें रखती हूं और दुष्ट स्त्रियोंके कार्योंकी कभी नहीं करती हूं।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, द्रौपदी के धर्म सहित वचन सुनकर धर्मचारिणी सत्यभामा बोलीं, हे पाञ्चालि ! हम तुम्हारी शरण हैं ; हमने हंसीसे ये सब तुमसे कहा था ।

२३२ अध्याय समाप्त ।

द्रौपदी बोली, हे सत्यभामे ! मैं जो तुमसे मार्ग कहती हूँ, इसमें कुछ भ्रम नहीं है ; यही पतिके वश करनेका प्रधान कार्य है । हे सखि ! यदि तुम अपने पतिको दूसरी स्त्रियोसे कुड़ाना चाहती हो, तो इसी मार्गपर चलो । हे सखि ! तीनों लीकोंमें पतिके समान कोई देवता नहीं है, इनके प्रसन्न होनेसे सब काम सिद्ध होते हैं ; कुपित होनेसे सर्वनाश हो जाता है । उसीके प्रसन्न होनेसे अनेक प्रकारके भोग, शय्या उत्तम दर्शन, वस्त्र, माला, गन्ध, स्वर्ग, यह लोक और परम कीर्ति प्राप्त होती है । हे सत्यभामे ! सुख करनेसे सुख नहीं मिलता, इससे पतिव्रता स्त्री दुःख भोगकर सुखकी प्राप्त होती है । सो तुम प्रेम, प्रीति और सेवासे कृष्णको प्रसन्न करो । तुम उनको उत्तम उत्तम माला पहनाओ और धीरे धीरे उनको प्रसन्न करो ; उनके शरीरपर उत्तम उत्तम गन्ध लगाओ और औरभी उत्तम उत्तम कर्म्म करो, जिसमें कृष्ण यह जाने कि ये हमारी प्रिया है, वेही सब कर्म्म तुमकी करने चाहिये । जब तुम अपने पतिका शब्द द्वारपर सुना उसी समय अपने शरपर खड़ी हो जाओ, जब तुम्हारे पाँत आसनपर बैठ जाय, तब उनके पैर धीओ । जब तुम्हारे पति किसी कार्यकी दासीकी भेजें, तब तुम उठकर आपही उसे कर लिया करा, ऐसा करनेसे कृष्ण जानेंगे कि सत्यभामा हमारी मनसे सेवा करती है । यदि तुम्हारे पति तुमसे कोई साधारण बातभी कहें तोभी तुम उनकी किसी से मत कहना । यदि कोई तुम्हारी बात कृष्णसे कुछ कहें तो उससे तुम कुछ

विरक्त मत होना ; तुम उन सबकी अनेक प्रकारके भोजन बनाकर खिलाना । जो तुम्हारे पतिके भक्त, प्यारे और मित्र हों उन सबकी अच्छा भोजन दिया करो और जो तुम्हारे पतिसे द्वेष करते हों, उनसे अलग रहनेकी इच्छा करते हों, कपट करके अलग रहते हों, उन पुंसोंके सङ्ग कभी थोड़ी भूलसे भी मत होना । बहृत बोलनेकी त्याग कर दो । यद्यपि प्रद्युम्न और सान्त्व तुम्हारे पुत्र हैं, परन्तु उनके सङ्गभी एकान्तमें मत बैठना, कुलीन, पापरहित और पतिव्रता स्त्रियोंकी अपनी सखी बनाओ, दुष्ट पराया निरादर करनेवाली, बहृत भोजन करनेवाली, चोरोंको पास मत आने दो ; ये जो धर्म हमने तुमसे कहा सो यश और सीभाग्यका बढ़ानेवाला है, इससे सब काम सिद्ध होते हैं और शत्रुओंका नाश होता है । तुम बहृत मूल्यवाली आभूषण पहार कर तथा उत्तम गन्ध और माला धारण करके अपने पतिकी सेवा करो ।

२३३ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय । मार्कण्डेय आदि ऋषि और महात्मा पाण्डवोंके सङ्ग अनेक उत्तम वार्तालाप करके श्रीकृष्ण उनसे विदा हुए । जब रथपर चढ़नेका समय हुआ, तब उन्होंने सत्यभामाको बुलाया । सत्यभामा द्रौपदीसे मिलकर प्रेमके सहित मीठे वचन कहने लगी, हे कृष्ण ! तुम किसी बातसे घबड़ाना नहीं तुम कभी दुःख मत उठाना, कभी रातिमें नहीं जागना, थोड़ेही समयमें देव तुल्य पाण्डव लोग सब पृथ्वीको जोतेंगे और तुम महाराणी बनोगी ; हे द्रौपदि ! तुम्हारे समान शील और लक्षणावाली स्त्री बहृत दिन तक दुःख नहीं भोगतीं ; मैंने सुना है कि तुम अवश्यही इस सब भूँमिकी वैरियोसे रहित करके अपने पतियोके सहित

भोग करोगी; हे द्रुपदनन्दिनि ! धृतराष्ट्रके पुत्रोंको मारकर और सब बैरको पूरा करके महाराज युधिष्ठिर राजा होंगे; इस उत्सवको तुम आप देखोगी; जो कुरुवंशियोंकी स्त्री अभिमानसे मोहित होकर तुमको चलते देखकर हंसी थीं, उन सबके सङ्कल्प नष्ट हो जायंगे; हे कृष्ण ! दुःखके समयमें जिन्होंने तुम्हारे अप्रिय कार्य किये हैं, वे सब यमलोकको जायंगे; तुम्हारे जो प्रतिविम्ब, अतिसौम, अतकर्मा, शतानोक और अतसेन पुत्र हैं वे सब कुशल-पूर्वक शस्त्रविद्या सीख चुके हैं; अभिमन्युके समान प्रीतिपूर्वक द्वारिकामें रहते हैं; जैसे तुम उन्हें प्रेम करती हो वैसेही सुभद्राभी तुमसे परम प्रीति करती हैं, वह तुम्हारे दुःख और सुखसे दुःखी होती है; प्रद्युम्नकी माता भी तुम्हारे पुत्रोंको सब प्रकारसे मानती है और श्रीकृष्णभी उनपर बद्धत ध्यान रखते हैं। हमारे ससुर वसुदेवजी तुम्हारे पुत्रोंके भोजन और वस्त्रोंका सदा ध्यान रखते हैं, बलराम आदि सब यदुवंशी तुम्हारे पुत्रोंको मानते हैं, हे भामिनि ! हम तुम्हारे पुत्रोंको प्रद्युम्नके समान मानती हैं।

इस प्रकारसे अनेक सत्य और प्यारे वचन कहकर सत्यभामा कृष्णके रथको और चलीं। कृष्णकी प्यारी सत्यभामाने द्रौपदीको प्रदक्षिणा करी और प्रणाम किया। अनन्तर श्रीकृष्णके रथपर बैठ गई। श्रीकृष्णनेभी हंसकर द्रौपदीको प्रसन्न किया। फिर अपने रथपर चढ़कर द्वारकाकी चले गये।

२३४ अध्याय समाप्त ।

द्रौपदि सत्यभामा सम्वादपर्व समाप्त ।

अब घोषयात्रा पर्व लिखते हैं।

महाराज जनमेजय बोले, हे द्विजोत्तम ! पुरुषोंमें त्रैलोक्य ! पाण्डवलोग जब इस प्रकार वनमें रहकर शीत, उष्ण, वायु और घामसे

दुबले होकर उस पवित्र तालावके तटपर पड़ें तब उसके पश्चात् उन्होंने क्या किया ?

श्रीवैशम्पायन बोले, जब महात्मा पाण्डुलोग उस पवित्र तालाव पर पड़ें, तब अपने सङ्गके सब पुरुषोंकी विदा करदिया और वे उन्होंने अपना घर बना लिया और आस पास वन तथा नदियोंकी देखते हुए घूमने लगे महात्मा वीर पाण्डुवाके पास उस वन वेदके जाननेवाले महात्मा ब्राह्मण लगे आये। उन्होंने उन सब ब्राह्मणोंकी पूछ करी। एकदिन एक कथा जाननेवाले ब्राह्मण पृथ्वीमें घुमता हुआ कौरवों पास गया। उसने वहाँ जाकर विचित्रवीर्यके पुत्र महाराज धृतराष्ट्रकी पत्नी। अनन्तर कुरुकुल अष्ट बूढ़े महाराज धृतराष्ट्रने उस ब्राह्मणका बद्धत सत्कार किया और बैठनेको आसन देकर पाण्डुवाका कुशल पूछा। तब उस ब्राह्मणने सब पाण्डुवाकी कथा सुनाई। जहाँ महाराजने पाण्डुवाकी सुना कि वायु और घामसे परम दुर्बल हो गए हैं, और घोर दुःखमें पड़े हैं, वह वीरपत्नी द्रौपदी अनाथ समान लेशोंकी भोग रही है, तब महाराज विचित्रवीर्यके पुत्र धृतराष्ट्रकी बद्धत रूप आई। राजवंशी पाण्डुवाकी इस प्रकार वनमें दुःखको नदीमें बहते हुए सुनकर दुःखमें पोड़ित होकर लम्बा स्वास लेकर हीन वचन बोलें। महाराजने इस सब कर्मकी अपने कर्म जानकर बद्धत दुःख पाया, परन्तु अपने वचनका स्थिर करके कुछ बोलें महाराज कहने लगे, हाय हमारे बड़े पुत्र सत्यवादी, पवित्र, उत्तम कर्म करनेवाले अज्ञातशत्रु धर्मराज किस प्रकार पृथ्वीसे सोते होंगे, वे पहले हारिनके रोवाकी गह पर सोते थे; जिन इन्द्रके समान महाराज युधिष्ठिरका स्तुत करनवाले सूत और बान्धवोंके समूह गाते थे; वे अब पृथ्वीमें भ्रम

होंगी और सिंह आदि मारनेवाले पशुओंके शब्दसे जागते होंगे ; महाक्रोधी भीमसेन वायु और घामसे दुबले हो गये होंगे ; वे किस प्रकार द्रौपदीके आगे पृथ्वीपर सोते होंगे ; निश्चय भीमसेन इस दुःखसे योग्य नहीं थे, इस प्रकार मनस्वी सुकुमार अर्जुनभी धर्मराजके शर्म होकर अपने दुःखी शरीरसे दुःख सहते होंगे और पृथ्वीपर सोते होंगे, अर्जुन, नकुल, सहदेव, द्रौपदी, और भीमकी सुखसे भ्रष्ट देख-कर महातेजस्वी युधिष्ठिर सांपके समान क्रोधके श्वास लेते होंगे, नकुल और सहदेवभी दुःख सहनेके योग्य नहीं हैं, परन्तु इस समय महा दुःख सह रहे हैं ; वे लोग देवतोंके समान भीमल हैं ; वे लोग निश्चय रात दिन जागते होंगे और शान्त नहीं होंगे, परन्तु सत्य और धर्मके वशमें हैं ; वायुके पुत्र, वायुके समान गवाले, वायुके समान बलवान, भीमसेन धर्मराजके धर्मपाशमें बन्धे हुए हैं, तो भी क्रोधके शर्म होकर स्वास लेते होंगे ; वे पृथ्वीमें सोते हुए हमारे पुत्रोंके नाशकी इच्छा करते होंगे, परन्तु सत्य और धर्मके वशमें होकर कुछ कर नहीं सके, वे अपने समयकी विता रहे हैं और युद्धका समय देख रहे हैं, जिस समय महाराज युधिष्ठिरका हलसे जोता था और दुःशासनने कठोर वचनकी कहा था वे सब भीमसेनकी ऐसा जला रहे हैं जैसे अग्नि ई धनकी जलाती है, महाराज युधिष्ठिर कभी आपका ध्यान नहीं करेंगे ; और अर्जुनभी उनके सङ्ग रहेंगे, वनमें रहनेसे भीमका क्रोध ऐसा बढ़ेगा जैसे वायु लगनेसे अग्नि बढ़ती है, भीमसेन उस क्रोधसे जलकर हाथसे हाथका पकड़ रहे होंगे, वे हमारे पुत्र और पातांके मारनका विचार करते और घोर गरम गरम श्वास लेते होंगे, गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन और भीमसेन काल और यमराजके समान मरने हैं, वे दोनों अपने शत्रुओंको मारण

करके नहीं सोते होंगे, वे लोग युद्धमें शत्रु-वोंकी सेनापर बज्रके समान बाणोंकी छोड़ते हैं, दुर्योधन, शकुनी, कर्ण, और दुःशासन, ये सब महा मूर्ख हैं ; ये लोग केवल अपने प्रयोजनकी देखते हैं और हानिको नहीं देखते ; इन्होंने जुवा खेलकर युधिष्ठिरका राज्य छीन लिया है ; पुरुष शुभ और अशुभ कर्म करके उनके फलका मार्ग देखता है ; फिर उनका फल पाकर मोहकी प्राप्त होनेसे अपने वशमें नहीं रहता है, फिर उस पुरुषकी मोह कैसे हो सकती है ? जब खेत अच्छी प्रकारसे सींचा जाय, फिर बीज बोया जाय, पश्चात् समयपर जलभी वर्षे, फिर उसमें अन्न क्यों नहीं उत्पन्न होगा ? यदि प्रारब्धही उलट जाय तो अन्न नहीं उत्पन्न हो सकता ; जो अच्छा कर्म नहीं था, सोई शकुनीने किया परन्तु उत्तम कर्म करने वाले युधिष्ठिरने उस समयभी अच्छा कर्म किया और मैंने अपने दुष्ट पुत्रके वशमें होकर ऐसा कुकर्म किया, जिससे कुरुवशका अन्त समय आगया । निश्चय वायु बहताही है, चाहे उसे कोई चलावे वा न चलावे ; गर्भणी सन्तान उत्पन्न करतीही है, निश्चय दिन होनेसे रात्रिका नाश और रात्रि होनेसे दिनका नाश होताही है, यदि पुरुषकी ज्ञान हो तो किस प्रकारसे धन इकट्ठा हो सकता है, दूसरे राजा लोग किस प्रकारसे इकट्ठा करेगी और किस प्रकारसे कोई किसीको देगा ; प्राप्तिका जो समय है, सो भी अनर्थका हा जायगा, तब सब कर्म किस प्रकारसे और कहां सिद्ध होगी वह धन किस प्रकारसे बंट सकता है और किस प्रकारसे उसका खर्च हो सकता है, तथापि उसकी रक्षा करनी होती ही है, क्योंकि रक्षा न करनेसे वह सहस्रो मार्ग बनाकर निकल जाता है, इससे किये हुए कर्मका फल अवश्य होता है । देखो अर्जुनका कैसा बल है, यह बलसे इन्द्र लोक ही आया ; वहांसे चार प्रकारके दिव्य

शस्त्र सीखके पुनः इस लोकमें आगया ; ऐसा कौन पुरुष है, जो इसी शरीरसे स्वर्गमें जाय और फिर आनेकी इच्छा करे ? दिव्यज्ञानवाले अर्जुनने अनेक मूर्ख कौरवोंको कालके वशमें देखकर क्रोध नहीं किया ; धनुषधारो अर्जुन, वह घोर वेगवाला गाण्डीव धनुष और वे अर्जुनके दिव्य बाण इस लोकमें इन तीनोंका तेज कौन सह सकता है। राजाके यह वचन सुन कर सुवलपुत्र शकुनीने कर्णसे सब कह सुनाये। वह मूर्ख सुनकर बहृत ही प्रसन्न हुआ।

२३५ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोलि, हे राजा जनमेजय ! महाराज धृतराष्ट्रके ऐसे वचन सुन शकुनीने कर्ण और दुर्योधनसे ऐसा कहा। हे भारत ! तुमने अपने बलसे वीर पाण्डवोंको वनवास दिया, अब इस समस्त पृथ्वीका इस प्रकार भाग करो जैसे इन्द्र स्वर्गका भोग करता है। हे नरनाथ ! पूर्व, पश्चिम, उत्तर, और दक्षिणके रहनेवाले सब राजा तुमको कर देते हैं, जो प्रकाशमान लक्ष्मी पहिले पाण्डवोंके पास थी सो भाइयोंके सहित आपने प्राप्त करी है, हे राजन् ! हम लोगोंने जो लक्ष्मी इन्द्रप्रस्थमें युधिष्ठिरके पास देखी थी सो सब तुम्हारे पास दीखतो है, हे राजेन्द्र ! तुम्हारे शत्रु लोग बहृत समय तक दुःख भागेंगे। हे महाबाहो ! तुमने अपनी बुद्धि और बलसे राजा युधिष्ठिरकी लक्ष्मीको छोन लिया है। हे शत्रुनाशन ! आज सब राजालोग तुम्हारे वशमें हैं, वे सब लाग कहते हैं कि “हे महाराज ! हम आपके आज्ञापालक हैं, कहिये कौनसा काम करे” ; हम लोग आपके आज्ञापालक हैं। आज समुद्र, पर्वत, वन, गाव, नगर, और खानोंके सहित सब पृथ्वी तुम्हारे वशमें है। जिस प्रकार ब्राह्मण और

राजोंसे पूजित सूर्य प्रकाशित होता है, तैसेही आप अपने बलसे प्रकाशमान हैं। जैसे सूर्यके सहित जल, मरुतोंके सहित इन्द्र और तारोंके बीचमें चरमा प्रकाशित होता है, तैसेही कुरुवंशियोंके बीचमें आप विराजमान हैं। जो लोग तुम्हारी आज्ञा नहीं पालते और जो आपके वचन को नहीं मानते वे ही पाण्डव लोग लक्ष्मीसे रहित होकर वनमें वसते हैं। हे महाराज ! हम लोगोंने सुना है कि पाण्डव लोग वनवासो ब्राह्मणोंके सहित हैत वनमें एक तलाबके तटपर वसते हैं। हे महाराज ! आप अपनी लक्ष्मीसे सूर्यके समान तेजस्वी होकर पाण्डवोंको पीड़ा देनेके लिये हैत वनकी चलिये। हे नरनाथ ! आप राज्यमें स्थित हैं, पाण्डव लोग राज्यसे भ्रष्ट हैं ; आप लक्ष्मीसे युक्त, वे लक्ष्मीसे हीन हैं, और आप परम बुद्धिसे भरे हैं, अब वहा चलकर बुद्धिहीन पाण्डवोंका देखिये, आपको नृप पुत्र ययातिके समान लक्ष्मीसे भरे हुए और अपने पुरुषोंके सहित विराजमान हीन पाण्डव लोग देखें, हे नरनाथ ! जिसको प्रकाशमान लक्ष्मीको शत्रु और मित्र देखते हैं, वही कार्य करनेमें समर्थ होता है, जिस सुखी पुरुषका शत्रु लाग दुःखी होकर देखें, उससे अधिक सुखी कौन होगा ? -नको ऐसा हो दशा होता है, जैसे किसी पर्वत पर चढ़े पुरुषका पृथ्वीमें खड़ा हुआ मनुष्य देखे। हे राजासंह ! पुत्र धन आर राज्यके प्राप्त होनेसे इतना सुख नहीं होता, इतना शत्रुओंका दुःख देखनेसे होता है। ऐसा कौन पुरुष है, जो धनवान् हाकर आयमपर बैठे हुए और सुनियोंके वस्त्र पहने हुए अर्जुनको दुःखी देख कर प्रसन्न न हो ? तुम्हारी सब स्त्रिया अच्चे अच्चे वस्त्र पहनकर वगुले और हरिन के चर्मधारिणी दुःखित द्रौपदीकी देख ; इससे उनको बहृत दुःख होगा और तुम्हारी स्त्रियोंकी आभूषण पहिरे देखकर द्रौपदी

भूषण रहित अपने शरीरकी बद्धत निन्दा करेंगे; हे राजन् । तुम्हारी स्त्रियोंको देखकर जैसा द्रौपदीको दुःख होगा, तैसा सभामें नहीं हुआ था ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय । राजा दुर्योधनसे ऐसे वचन कहकर शकुनी और कर्ण चुप हो गए ।

२३६ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, कर्णके वचन सुनकर राजा दुर्योधन बद्धत प्रसन्न हुए और फिर न होकर ऐसा बोले । हे कर्ण ! तुमने जो हा सी सब हमारे मनमें है, पर तु पाण्डवोंके स जानेकी आज्ञा महाराज हमको नहीं देगे, महाराज धृतराष्ट्र पाण्डवोंके निमित्त या करते हैं और उनकी हम लोगोंसे अधिक जानते हैं । यदि महाराज हमारी सम्मति से जान जायेंगे तो आनेवाले समयकी रक्षा करनेकी कदापि आज्ञा न देंगे; हे महातेजस्वी गवासी पाण्डवोंके दुःख देनेके सिवा हैत नमें हम लोगोंको और कोई काम नहीं है, मैं जानते हो कि जुएके समय विदुरने हमसे मसे और शकुनीसे कैसे कैसे वचन कहे थे, न सब वचनोंका और राजाके रोनेको धारकर, हम चलने और न चलनेकी कुछ हों कह सकते हैं, हमभी बद्धत प्रसन्न हों, द्रौपदीके सहित भीम और अर्जुनको वनमें ख पाते देखें । हम इस सब पृथ्वीकी पाकर तने प्रसन्न नहीं होंगे, जितने बगुले वा हरिन चर्म ओढे पाण्डवोंको देखकर । इससे और अधिक सुख क्या होगा जो मैं द्रुपदकी वी द्रौपदीकी गुरुवा वस्त्र पहिने हुए नमें बैठी देखू ? हे कर्ण ! मुझे इससे अधिक और क्या सुख होगा जो मुझे धर्मराज युधिष्ठिर और भीमसेन परमलक्ष्मीके युक्त देखें ? हेतु मुझे कोई हैत वनमें चलनेका उपाय

नहीं देखता, जिससे राजा हमें वनमें जानेकी आज्ञा दें । इस लिये तुम दुःशासन और शकुनीके सहित कोई ऐसा उत्तम उपाय विचारो जिससे हम लोग वनको जा सकें, मैं भी वन जानेकी आज्ञा मांगनेके लिये प्रातः कालही महाराजके पास जाऊंगा यदि वहां कुसकुल अथ भीष्म बैठे होंगे तो उनसे सब वृत्तान्त कहूंगा; इससे तुम और शकुनी कोई उत्तम उपाय विचारो, पश्चात् भीष्म और महाराजके वचन सुनकर और भीष्मकी आज्ञा लेकर चलनेका विचार करेंगे । अनन्तर सबने राजाके वचनकी स्वीकार किया और सब लोग अपने अपने घरकी चले गए । प्रातः काल होतेही कर्ण राजाके पास आए और हंसकर कहने लगे, हे पृथ्वीनाथ । हमने एक उपाय विचारा है, उसको आप सुनिये । हैत वनमें गौ और ग्वाले रहते हैं, वे सब आपका मार्ग देख रहे होंगे, इस लिये राजासे यही कहना चाहिये, तो वे हमको जानेकी आज्ञा देंगे; हे पृथ्वीनाथ ! आप उनसे कहना कि, हे महाराज ! “हमें गौ देखने जाना आवश्यक है,” तब वे आपको जानेकी आज्ञा देंगे । कर्ण और दुर्योधनका ऐसा निश्चय सुनकर शकुनी बोले, हमने इस उपायको बद्धत उत्तम सोचा है, अब महाराज हम लोगोंको अवश्य जानेकी आज्ञा देंगे । ऐसा निश्चय करके वे सब लोग ताली बजाकर हंसने लगे । अनन्तर सब राजा धृतराष्ट्रके पास गए ।

२३७ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय । महाराजके पास जाकर उन सबने कुशल पूछी और राजाने उनसे कुशल प्रश्न किया । तब उनमेंसे समंग नामक ग्वालेने कहा कि, हे महाराज । सब गौ समीपही हैं । इसके पश्चात् राजामें अथ नरनाथ धृतराष्ट्रसे कर्ण

और शकुनी कहने लगे, हे कुसकुलश्रेष्ठ ! आज कल्ह गाय वैल रमणीय वनमें हैं, उनको देखने तथा नवीन बछड़ोंको संख्या चिन्न देनेका समय भी आगया है, और इस समय आपके पुत्रको आह्वित करना भी उचित है, आप दुर्योधनको जानेकी आज्ञा दीजिये । महाराज धृतराष्ट्र बोले, हे तात ! आह्वित खेलना तो उचितही है, परन्तु म्वालोंके विश्वासपर नहीं जाना चाहिये, क्योंकि हमने सुना है कि पुरुषसिंह पाण्डव लोग भी वहां ही है । इस लिये हमारी यह इच्छा नहीं है कि तुम लोग आपही वनको जाओ । हे राधा-पुत्र ! उन सब लोगोंको तुमने कुलसे जीता है और वे लोग वनमें रहते रहते बृद्धत दुर्बल होगये हैं, वे लोग नित्यही तप करते हैं ; पाण्डव महारथ हैं ; सुभी विश्वास है कि धर्म-राज युधिष्ठिर, कभी क्रोध नहीं करेंगे, परन्तु भीमसेन महाक्रोधी है और द्रुपदकी पुत्री साक्षात् अग्निही है ; और तुम लोग अभिमानसे मोहित हो ; इससे उनका अपराध अवश्यही करोगे, तब वे तुम सब लोगोंको अपने तपसे भस्म कर देंगे, यदि वे पाचों भाई शस्त्र धारण करके और कवच पहन कर क्रोध करेंगे, तो तुम लोगोंको वाणोंसे भस्म कर देंगे । यदि तुम सब लोग इकट्ठे होकर उनसे युद्ध करोगे तो बृद्धत अधर्म होगा, और जीत नहीं सकोगे ; महाबाहु अर्जुन इन्द्रलोकसे सब शस्त्राको सीखकर वनमें आये हैं ; जब अर्जुनने शस्त्र विद्या नहीं सीखी थी, तभी उसने सब पृथ्वीको जीत लिया था । फिर अबतो सब शस्त्रविद्या सीख ली है, वह महारथ अर्जुन अब तुम लोगोंको क्यों न मारेगा ? यदि तुम लोग हमारे वचन सुनकर वहां जाओगे तो महा दुःख उत्पन्न होगा ; क्योंकि पाण्डव लोग वन-वाससे घबड़ा रहे हैं, अथवा कोई तुम्हारी सेनाका एरूप युधिष्ठिरकी कुछ हानि करेगा

तो वही मूर्खतास्वपी दीप तुम्हारा नाश कर देगा । हे दुर्योधन ! इस लिये हमारी यह इच्छा नहीं है, कि तुम आपही वहां जाओ, वरन् अन्य उत्तम पुरुष गौ और बैलोंकी संख्या करनेको जायं ।

शकुनी बोले, हे महाराज ! युधिष्ठिर वृद्ध धर्म जाननेवाले हैं, और उन्होंने सभामें प्रतिज्ञा करी है, इससे वे अवश्यही १२ वर्ष वनमें रहेंगे, सब पाण्डव लोग धर्मात्मा और उत्तम कार्य करनेवाले हैं ; इससे कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर हम लोगों पर कभी क्रोध नहीं करेंगे ; हम लोगोंकी इच्छा आखेट खेलनेकी नहीं है ; हम केवल गौ और बछड़ोंकी गिनने जाते हैं ; हम लोग वहां जाकर कोई अनर्थ नहीं करेंगे और न पाण्डवोंके आश्रम पर जायंगे ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, शकुनीके ऐसे वचन सुन महाराज धृतराष्ट्रने मन्त्रियोंके सहित दुर्योधनको वन जानेकी आज्ञा दी ; परन्तु प्रसन्न होकर जानेको न कहा । गान्धारीपुत्र दुर्योधन पिताकी आज्ञा पाकर कर्ण दुःशासन बुद्धिमान शकुनी तथा अन्य सब भाइयोंके सहित वनकी चले । भरतकुलश्रेष्ठ दुर्योधन के संग बृद्धत सेना और सहस्रों स्त्रियां भी चलीं । जब महाबाहु दुर्योधन वनमें तालाव देखनेकी चले, तब नगरनिवासी लोग भी स्त्रियोंके सहित उनके पीछे चले । दुर्योधनके सङ्ग आठ सहस्र रथ तीन सहस्र हाथी नौ सहस्र घोड़े और अनेक सहस्र पैदल चले । महाराज दुर्योधनके सङ्ग छकड़े, वाजार, बनिये, भाट, और सैकड़ों सहस्रों आखेट करनेवालेभी चले । दुर्योधनके चलनेके समय ऐसा घोर शब्द हुआ, जैसा वर्षा कालमें घोर वायुका शब्द होता है । उस समय दुर्योधनकी सेना दो कोसमें ठहरी ।

२३८ अध्याय समाप्त ।

श्रीकृष्णायन मुनि बोले, हे राजन् जनमे-
जय ! दुष्योधन इस प्रकारसे वनकी देखते
हुए अपनी गोशालाके पास पड़ने और
गौवोंके समीपही जल वृक्ष और सब गुणसे
भरे हुए स्थानमें हिरा किया । महाराजके
पासही कर्ण शकुनी और उनके सब भाइयोंके
डरे हुए । अनन्तर दुष्योधनने सहस्रों गौवोंको
देखा और उनके अङ्ग तथा चिह्नभी देखे और
नवीन बछड़ोंको संख्या चिन्ह दिये और पुराने
बछड़ोंकोभी गिना और फिर उस गिनतीको
नई गिनतीसे मिलाया । जिन गौओंके नोचे
छोटे छोटे बछड़े थे, उनकी गिनती अलग
अलग करी ; उनमें जो तीन वर्षके बछड़े थे
उनकी अपने सङ्ग ले लिया और शेष बछड़ोंको
गिनकर वहीं छोड़ दिया । अनन्तर कुरुकुल
श्रेष्ठ दुष्योधन ग्वालोंने मिलकर वृद्धत प्रसन्न
हुए । पश्चात् दुष्योधनके सङ्गवाले नगरनिवासी
और देवतोंके तुल्यसेनाके लोग उस वनमें इच्छा-
नुसार खेलने लगे । अनन्तर गानेवाले और
नाचनेवाले ग्वाले और उनकी कन्या आभूषण
पहरकर दुष्योधनके पास आईं । - तब राजाने
स्त्रियोंके सहित प्रसन्न होकर उन सबको उचित
धन, भोजन और अनेक प्रकारकी पीनेकी वस्तु
देी । तब उन सब ग्वालोंने राजा दुष्योधनको
भैंसे, रीछ, हरिन, नीलगाय और वराहोंकी
गिनती बताई । तब उस रमणीय वनमें दुष्यो-
धनने अपने वाणोंसे हाथी आदि अनेक जन्तु-
ओंको मारा और हरिनोंको पकड़वाया । इस
प्रकार दूध दहीको भोजन करते हुए और
न्दर वनकी देखते हुए वनके मतवाले भौरे,
और मतवारे भौरेके शब्द सुनते हुए क्रमसे
विष्व हैतवनमें पड़ने । वहां मतवाले भौरे
और भौरे शब्द कर रहे थे । वह वन मौलसरी,
गग आदि रमणीय वृक्षोंसे भरा था । उसी
में परम ऋद्धिसे भरे हुए, साक्षात् वज्रधारी
के समान प्रतापी महाराज युधिष्ठिरभी

निवास करते थे । उस दिन कुरुकुलश्रेष्ठ
महाराज युधिष्ठिर बारह दिनका राजर्षियज्ञ
कर रहे थे, उस यज्ञको उन्होंने दिव्य विधिसे
आरम्भ किया था । बुद्धिमान पृथ्वीनाथ महाराज
युधिष्ठिरने द्रौपदी और अपने भाइयोंके सहित
उसी तड़ागपर यज्ञ आरम्भ किया था । हे
भारत ! उसी समय दुष्योधनने अपने सहस्रों
सेवकोंको आज्ञा दी कि तुम लोग शीघ्र विहार
करनेके लिये स्थान ढूँढो । वे सब लोग उनके
वचनको स्वीकार करके स्थान ढूँढनेके लिये
उसी हैतवनके तलावकी ओर जाने लगे । जिस
समय उन्होंने वनमें प्रवेश किया, उसी समय
गन्धर्व लोग निशरण करने लगे । जिस समय
दुष्योधनकी सेनाने उस वनमें प्रवेश किया था,
उससे पहिलेही अलकापुरीसे चलकर गन्धर्व-
राज अपनी सेना सहित वहां आये थे । उनके
सङ्ग अनेक अप्सरा और देवतोंके पुत्रभी थे ;
उन सबसे उस तलावका तट भरा हुआ था
और वे लोग वहां विहार कर रहे थे । राजा
दुष्योधनके सेवक यह सब देखकर वहांसे लौट
गये और राजासे सब समाचार कह सुनाया ।
राजाने उनके वचन सुनकर महायुद्ध करने-
वाले सैनिकोंको भेजा और आज्ञा दी कि
गन्धर्वोंको वनसे निकाल दो, वे सब राजाके
वचन सुनकर गन्धर्वोंके पास गये और ऐसा
कहने लगे कि, महाराज धृतराष्ट्रके पुत्र महा-
बलवान राजा दुष्योधन यहां विहार करनेको
आना चाहते हैं, इसलिये तुम लोग भाग-
जाओ । उनके ऐसे वचन सुन गन्धर्व लोग
हंसने लगे और कठोर वचन कहने लगे कि,
तुम्हारा दुष्योधन नामक राजा महामूर्ख है,
वह कुछभी नहीं जानता, जो स्वर्गमें रहनेवाले
हम लोगोंपर वनियोंके समान आज्ञा करता
है, और तुम लोगभी नूर्ख ही, निःसन्देह तुम
लोगोंको कुछभी बुद्धि नहीं है, जो उस नूर्खके
वचनोंकी हम लोगोंसे कहने आये हो । इस

लिये तुम लोग उस कुस्वंशी राजाके पास लौट जाओ, नहीं तो हम अभी तुम सबको यम-राजके पास भेजेंगे। वे सब गन्धर्वोंके वचन सुन राजा दुर्योधनके पास गये।

२३६ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय । तब उन सब सैनिकोंने गन्धर्वोंके सब वचन दुर्योधनसे कह सुनाए, और जब प्रतापवान धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनने देखा कि मेरी सेनाकी गन्धर्वोंने निवारण कर दिया, तब महा क्रोधसे भर गए और अपनी सेनाकी आज्ञा दी कि हमारा अप्रिये कार्य करनेवाले इन अधर्मी गन्धर्वोंकी मारो, यदि साक्षात् इन्द्र भी देवतोंके साथ बिहार करते हों तो उन्हें भी यहांसे निकाल दो। दुर्योधनकी आज्ञा सुनतेही धृतराष्ट्रके सब पुत्र और महा बलवान सहस्रों योद्धा लोग युद्धकी उपस्थित हुए। तब उन सब लोगोंने गन्धर्वोंकी अपने बलसे व्याकुल करके और अपने घोर शब्दसे दर्शों दिशाओंको पूर्ण करके, उस वनमें प्रवेश किया। तब उन गन्धर्वोंने इन सबको शान्तिपूर्वक निवारण किया, परन्तु ये उनको निरादर करके वनमें घुस गए। जब धृतराष्ट्रके पुत्रोंने उनके वचनोंको न सुना, तब उन गन्धर्वोंने जाकर चित्रसेनसे कह दिया। महा क्रोधी गन्धर्वराज चित्रसेनने सुनतेही सब गन्धर्वोंकी आज्ञा दी कि, इन अधर्मी कौरवोंकी मारो। हे भारत। गन्धर्वराजकी ऐसी आज्ञा सुन गन्धर्वलोग शस्त्र लेकर कौरवोंकी ओर दौड़े। जब कौरवोंने शीघ्रगामी गन्धर्वोंकी शस्त्र लिये अपनी ओर आते देखा, तब सब लोग इधर उधर भागने लगे। परन्तु सूतपुत्र कर्ण युद्धकी छोड़कर न भागा। जब कर्णने उस महासेनाकी आते हुए देखा, तो घोर वाणोंकी वर्षा करके, उसे निवारण करने लगा। सूतपुत्र कर्णने

दूरप्रवत्सदन्त और लोहेके वाणोंसे चण भरमें गन्धर्वोंकी सेनाको व्याकुल कर दिया। महारथ कर्णके वाणोंसे अनेक गन्धर्वोंके सिर पृथ्वी पर गिर गये बुद्धिमान कर्णके वाणोंसे व्याकुल होकर सहस्रों गन्धर्व लोग फिर युद्ध करनेको लौटे, उस समय वह समस्त रणभूमि गन्धर्वोंने भरी जड़ दीखती थी। जिस समय चित्रसेनकी सेना फिर लौटी, तब राजा दुर्योधन, सुवल् पत्र शकुनी, दुःशासन और विकर्ण आदि धृतराष्ट्रके पुत्र गस्डके समान रथोंपर बैठकर गन्धर्वोंकी मारने लगे, दुर्योधनकी सेना कर्णकी आगि करके मचायुद्ध करने लगी। उस समय दुर्योधनकी सेनाने रथयुद्ध किया दुर्योधनकी सेनाने गन्धर्वोंकी सेनाकी अपने वाणोंसे जीत लिया। तब गन्धर्व लोगभी उनसे घोर युद्ध करने लगे। यह युद्ध महाघोर और लोमहर्षक हुआ। तब दुर्योधनकी सेनाके वाणोंसे पीड़ित होकर गन्धर्व लोग ढीले पड़ गये दुर्योधनने सैनिक लोग गन्धर्वोंकी व्याकुल देखकर गत लगे, जब महाक्रोधी चित्रसेनने देखा कि गन्धर्व लोग युद्धमें व्याकुल हो गए, तब क्रोध करके और उन सबके मारनेकी इच्छा करके अपनी उठा, चित्रसेनने उस समय गन्धर्वों मायाकी प्रकाश किया। चित्रसेनकी उस मायासे सब कौरव लोग मोहित हो गये। हे भारत। उस समय दुर्योधनके एक एक योधाके सङ्ग दश दश गन्धर्व युद्ध करने लगे। हे राजन्। उस समय गन्धर्वोंके वाणोंसे दुर्योधनकी सब सेना पीड़ित हो गई और योद्धा जीनेकी इच्छासे भागे। जब दुर्योधनकी रथ सेना इधर उधर भागने लगी, तब अकेला कर्णही पर्वतके समान खड़ा रहा। उस समय दुर्योधन कर्ण और सुवल्पुत्र शकुनी अत्यन्त घावोंसे पीड़ित होकर भी युद्ध करते रहे। तब सहस्रों गन्धर्व लोग इकट्ठे होकर कर्णके मारनेकी इच्छासे कर्णकी इच्छासे युद्ध करने लगे। महाबलवान गन्धर्व

पाँच चारों ओरसे कर्णके ऊपर खड़, परिघ, मूल, और गदा छोड़ने लगी । किसीने कर्णके रथके पहिये, किसीने ध्वजा, किसीने धुरी, किसीने घोड़े किसीने सारथी, किसीने छत्र, किसीने कलश, और किसीने रथके बन्धन काट डाले । उस समय सूतपुत्र कर्णका रथ फटकर तिलके समान हो गया । तब कर्ण खड़ और ढाल लेकर रथसे नीचे उतरा और विकर्णके रथपर चढ़कर युद्धसे भागा ।

२४० अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन सुनि बोलें, हे राजन् जनमेजय ! जिस समय महारथ कर्ण गन्धर्वोंसे हारकर और युद्धको छोड़कर भागा, उस समय दुर्योधनके देखते देखते उनकी सब सेना भाग गई । उस घाट युद्धसे केवल महाराज दुर्योधन-ही नहीं भागे, जब दुर्योधनने उस महासेनाको अपना आर आते देखा तब वाणोंकी घोर वषा करने लगे । गन्धर्वोंने उनकी वाण वषापर कुछभी ध्यान नहीं दिया और उनको चारों ओरसे घेरकर मारने लगे । उस समय दुर्योधनके रथके पहिये धुरी, ध्वजा, सारथी, घोड़े और जुआ तिल तिल होकर पृथ्वीपर गिर गये और दुर्योधनभी मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिरे तब महाबाहु चित्रसेनने उनको जीतही पकड़ लिया । जिस समय महाराज दुर्योधन पकड़े गए, उस समय रथपर बैठे हुए दुःशासनका भी गन्धर्वोंने पकड़ लिया, वावशती, चित्रसेन, बिन्द, और अनुबिन्द, तथा आर सब राज-स्त्रियोंको पकड़कर चित्रसेनन चल दिया । उस समय दुर्योधनकी सब सेना भाग गई । जिस समय राजा पकड़े गये उस समय दुर्योधनके शत्रुके एकड़े, वनिये सब वाहन और सेनाके सब लोग पाण्डवोंको शरण गये ।

सेनाके लोग बोलें, हे महाबाहो ! हे युधिष्ठिर ! महा बलवान धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनका

गन्धर्व लोग पकड़े लिये जाते हैं, आप लोग उनको कुड़ाइये । दुःशासन, दुर्बिंसह, दुर्जय, दुर्मुख, और सब राजस्त्रियोंकी बांधकर गन्धर्व लोग लिये जाते हैं, आप लोग कुड़ाइये, इस प्रकारसे रोते हुए दुर्योधनके मन्त्री लोग महाराज युधिष्ठिरकी शरण गए । इस प्रकारसे दुर्योधनके बड़े मन्त्रियोंकी दीन और युधिष्ठिरसे भीख मांगते देखकर भीमसेन बोले, बड़त यत्न करके हाथी और घोड़ोंको इकट्ठा करके जो कार्य हमकी करना था, सो गन्धर्वोंने कर लिया, जहा कुछ और होना था तहाही कुछ और हो गया । यह जुआ खिलानेवाले राजा धृतराष्ट्रकी वुरी सम्मतिका फल हुआ ; हम लोगोंने यह सुना था कि असमर्थोंके शत्रुओंको कोई दूसरा ही मार देता है, परन्तु गन्धर्वोंने यह अमानुष कर्म हमारे, अगिही किया ; हमारी प्रारब्धसे जगतमें हमारे बैठे बैठे हमारे सिरसे इस वीरको उतार दिया । हम लोग शीत, बात और घामको सहकर दुर्बल हो गये हैं और यह दुर्वृद्धि सुखी होकर हम दुःखियोंको देखने आया था, महा अधर्मी दरात्मा दुर्योधनके जा लोग सड़ी हैं, वे ही इस समय उसका निरादर देख रहे हैं ; जिन्होंने यह शिक्षा दी है, उन लोगोंने बड़ा अधर्म किया है । हम तुम लोगोके आगे कहते हैं किन्तु पाण्डव लोग बड़े निटुर हैं । जिस समय कुन्तीनन्दन भीमसेन क्रोधसे भरकर ऐसा कह रहे थे, उसी समय राजा युधिष्ठिरने कहा कि, यह समय कठोरवचनका नहीं है ।

२४१ अध्याय समाप्त ।

महाराज युधिष्ठिर बोलें, हे तात ! कौरव लोग इस समय हमारो शरण आये हैं, ये लोग भयसे व्याकुल होकर शरणकी इच्छा करते हैं, तब तुम ऐसे वचन इनसे क्यों कहते हो ?

हे वृकोदर ! अपने वंशमें अनेक प्रकार कलह और भेद हो जाते हैं, पर तु कुलके धर्म नष्ट नहीं होते हैं । यदि कोई अन्य पुरुष अपने कुलके पुरुषकी किसी प्रकारका दुःख देना चाहे तो वंशमें अच्छे लोग उसको नहीं सह सकते हैं, मूल्य दुर्व्योधन जानता था, कि हम लोग यहां बद्धत दिनोंसे रहते हैं, तौमी उसने हमारा निरादर करके यह अप्रिय कार्य किया, दुर्व्योधनके पकड़े जानेसे और स्त्रियोंके अन्यत्र जानेसे हमारा वंश नष्ट हो जायगा । हे पुरुषसिंहो ! शरणागतकी रक्षा करनेको और वंशका उद्धार करनेको तुम लोग शीघ्र उठो, देर मत करो ; सब युद्धकी सामग्री ठीक कर लो । अर्जुन, नकुल, सहदेव और तुम चारो वीर अपराजित हो, तुम लोग शीघ्र ही पकड़े हुए दुर्व्योधनको कुड़ाओ ; हे पुरुषसिंहो ! ये धृतराष्ट्रके पुत्रोंके निर्मल रथ शस्त्रोंके सहित खड़े हैं ; इन सबपर सोनकी ध्वजा लगी है, शस्त्रविद्या जाननेवाले सूत बैठे हैं ; तुम लोग आलस्य-रहित होकर इन रथोंपर बैठकर गन्धर्वोंसे युद्ध करनेका सङ्कल्प करो । हे वृकोदर ! सामान्य क्षत्रीय लोगभी शरण आयेकी अपनी शक्तिके अनुसार रक्षा करते हैं, तब तुम क्यों नहीं रक्षा करते हो ? ऐसा कौन उत्तम पुरुष होगा, जिसके आगे हाथ जोड़कर शत्रु शरण मागे और वह उसकी रक्षा न करे ? देवतासे वरदान पाना, राज्य पाना, पुत्रका उत्पन्न होना, और शत्रुको किसी दुःखसे कुड़ाना ये चारो आनन्द समान हैं । हे भीम ! इससे अधिक आनन्द क्या होगा जो दुर्व्योधन तुम्हारी शरण आया है और तुम्हारे बाहुबलसे अपने जीवनकी इच्छा करता है ? हे वीर यदि मैं यज्ञ न करना चाहता तो आपही युद्धको जाता ; मुझे इसमें कुछ विचार नहीं है । हे भीम ! तुम शान्तिहीनसे दुर्व्योधनको कुड़ा लेना, यदि ऐसे न कुड़ा सको तो औरभी यत्न करना,

यदि गन्धर्वराज शान्तिसे दुर्व्योधनको न कुड़े तो कोमल युद्ध करके कुड़ा लेना, यदि कोमल युद्धसेभी न कुड़े तो घोर युद्ध करके शत्रुओंको अपने वंशमें कर लेना और दुर्व्योधनको कुड़ा लेना ; हे वृकोदर ! हमारो इतनाही उपदेश करनेको शक्ति है, क्योंकि इस समय हमारा यज्ञका कर्म फैल रहा है ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले महाराज युधिष्ठिरके ऐसे वचन सुन अर्जुनने ऐसा उत्तर दिया और कौरवोंके कुड़ानेकी प्रतिज्ञा की ।

अर्जुन बोले, यदि गन्धर्व लोग दुर्व्योधनको शान्तिसे नहीं कुड़ाएंगे तो आज भूमि गन्धर्वराजके रुधिरकी पीयेगी । सत्यवादी अर्जुनकी ऐसी प्रतिज्ञा सुनकर कौरव लोग बद्धत प्रसन्न हुए ।

२४२ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजा जनमेजय ! महाराज युधिष्ठिरके ऐसे वचन सुन भीमसेन आदि बद्धत प्रसन्न होकर उठे । पुरुषसिंह महारथ पाण्डवोंने सीनेसे खिंचे हुए विचित्र और अभेद्य कवचोंकी पहना और दिव्य शस्त्रोंकी धारण किया । अनन्तर वे सब लोग धनुष धारण करके ध्वजा सहित रथोंपर बैठे उस समय पाण्डवोंकी ऐसी शोभा बढ़ी जैसे जलती हुई अग्निको । वे लोग उत्तम घोड़ावाले अच्छे साराथियोंसे युक्त रथोंपर बैठकर शीघ्र चले । उस समय महारथ पाण्डवोंकी युद्ध करनेकी चलते हुए देख कौरवोंकी सेना गर्जने लगी और जोते हुए महारथ गन्धर्व लोगभी क्षण भरमें वेडरके समान उस वनमें आये । चारो पाण्डवोंको युद्धसे आते हुए देखते ही गन्धर्व लोग लौटे । चारों वीर पाण्डवोंको लोकपालोंके समान उद्यत देखकर गन्धर्वोंने अपनी सेनाको उद्यत किया । बुद्धिमान युधिष्ठिरके वचनके अनुसार पाण्डवोंने

पहले कीमल युद्ध किया, परन्तु मूर्ख गन्धर्वोंने दुर्योधनको छोड़ना स्वीकार न किया। तब शत्रुनाशन अर्जुनने महावीर गन्धर्वोंसे शान्तिपूर्वक कहा कि मेरे भाई राजा दुर्योधनको छोड़ दो। यशस्वी अर्जुनके ऐसे वचन सुन गन्धर्व लोग हंसकर अर्जुनसे कहने लगे, हे तात ! हम केवल इन्द्रहीकी आज्ञा मानते हैं और उन्हीकी आज्ञासे सुखपूर्वक पृथ्वीपर घूमते हैं; हे भारत ! वे हमको जैसी आज्ञा देते हैं वैसाही हम हम करते हैं, उनके सिवा और हमको आज्ञा देनेवाला पृथ्वीमें कोई नहीं है। गन्धर्वोंके ऐसे वचन सुन कुन्तीपुत्र अर्जुन फिर कहने लगे, गन्धर्व राजने जो नीच कर्म किया सो उनके योग्य नहीं था दूसरेको स्त्रियांको पकड़ना, मनुष्योंके सङ्ग रहना यह उनको उचित नहीं, इस लिये तुम लोग महाराज युधिष्ठिरकी आज्ञासे महापराक्रमी धृतराष्ट्रके पुत्रोंको, और उनको स्त्रियोंका छोड़ दो। हे गन्धर्वों ! याद तुम शान्त भावसे धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी नहीं छोड़ीगे, तो हम दुर्योधनको अपने बलसे कुड़ा लेंगे। ऐसा कहकर अर्जुन गन्धर्वों पर तोच्छ वाण छोड़ने लगे, बलवान गन्धर्व लोगभी पाण्डवोंके ऊपर वाणोंकी वर्षा करने लगे और पाण्डव लोगभी गन्धर्वोंके ऊपर बाण छोड़ने लगे, उस समय बलवान पाण्डवों और गन्धर्वोंका घोर युद्ध होने लगा।

२४३ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन सुनि बोले, हे राजन् जनमे-
ष्य ! तब सोनेको माला पहिरे गन्धर्वोंने पाण्ड-
वोंकी चारों ओरसे घेरकर दिव्य वाण चलाना
आरम्भ किया, उस युद्धमें एक और चार पाण्डव
और एक और सहस्रों गन्धर्व थे, परन्तु जो
बादही युद्ध करते रहे, यह बड़ी अद्भुत बात हुई।
गन्धर्वोंने जैसे कर्ण और दुर्योधनके रथको

घेरा था तैसेही वाणोंकी वर्षा करके पाण्डवोंकी
भी घेर लिया। जब पुरुषसिंह पाण्डवों
सहस्रों गन्धर्वोंको अपनी ओर आते देखा,
तब वाणोंकी वर्षा करनी आरम्भ करी। गन्धर्व
लोग पाण्डवोंके वाणोंसे पीड़ित होकर उनके
रथोंके पास न आसके क्रोधी अर्जुनने क्रोधी गन्ध-
र्वोंके ऊपर दिव्य अस्त्र चलाये। उन वाणोंके
लगनेसे सहस्रों गन्धर्व लोग मर गये। अनन्तर
बलवान अर्जुनने अग्निवाण चलाया, उससे अनेक
गन्धर्व लोग मर गये। इसी प्रकार महा-
धनुषधारी भीमनेभी अनेक गन्धर्वोंकी तीक्ष्ण-
वाणोंसे मारा। गन्धर्व लोग महारथ पाण्ड-
वोंके दिव्य वाणोंसे पीड़ित होकर दुर्योधनको
सङ्ग लेकर आकाशकी उड़ गये। जब अर्जुनने
गन्धर्वोंकी आकाशकी ओर उड़ते देखा, तो
चारों ओरसे वाणोंके जालमें फँस गया। वे
लोग वाणोंके जालमें ऐसे फँस गये जैसे पक्षी
लोग-पंजरेमें फँसते हैं। तब उन लोगोंने
अर्जुनके ऊपर गदा शक्ति, और खड्गोंकी वर्षा
करी। परम शस्त्रोंके जाननेवाले अर्जुन उस
शस्त्रवृष्टिका काटकर अपने वाणोंसे गन्धर्वोंकी
सेनाका काटने लगे। उस समय आकाशसे
गिरते हुए शिर, पैर, और हाथोंकी ऐसी
वृष्टि हुई जैसे कहीं पत्थर वर्षते हों। उस
समय गन्धर्वोंको बहुत भय उत्पन्न हुआ।
भूमिमें खड़े हुए महात्मा अर्जुनके वाणोंसे
गन्धर्व लोग पीड़ित हो गए। तब उन्होंने
आकाशसे अर्जुनके ऊपर वाण वर्षाये। महा-
तेजस्वी अर्जुनने उनकी वाण वर्षाको काटकर
अपने वाणोंसे उनका शरीर काटना आरम्भ
किया। कुरुनन्दन अर्जुनने स्थूणाकर्ण इन्द्र-
जाल, सौर, आग्नेय, और सौम्य वाण चलाये।
उस समय गन्धर्व लोग अर्जुनके वाणोंसे ऐसे
पीड़ित हुए जैसे इन्द्रके वाणोंसे देव पीड़ित
होते हैं। जो गन्धर्व आकाशकी उड़ते थे
उनकी अर्जुन अपने वाणोंसे रोकते थे, जो लोग

युद्ध करनेकी आते थे, उनकी भी अर्जुन अपने वाणोंसे निवारण कर देते थे। गन्धर्वोंकी अर्जुनकी वाणोंसे पीड़ित देखकर गन्धर्वराज चित्रसेन गदा लेकर अर्जुनकी ओर दौड़े। जब अर्जुनने उनकी अपनी ओर आते देखा, तब उनकी लोहेकी गदाकी अपने वाणसे काटकर सात टुकड़े कर दिये। जब चित्रसेन गन्धर्वने अपनी गदाकी अर्जुनके तेज वाणोंसे कटा हुआ देखा, तो मायासे अपने शरीरकी छिपा लिया और अर्जुनसे युद्ध करने लगे। तब वीर अर्जुनने अपने दिव्य वाणोंसे गन्धर्वके दिव्य वाणोंकी काट दिया। तब महात्मा अर्जुनके वाणोंसे निवारण होकर गन्धर्वराज अपनी मायासे अन्तर्धान हो गया, तब अर्जुनने अपने दिव्य आकाशगामी वाणोंसे वाण चलाते हुए गन्धर्वराजको मारा। उस समय अर्जुनने क्रोध करके अन्तर्धान चित्रसेनके ऊपर शस्त्रमेदी वाण छोड़े। जब अर्जुनका प्यारा मित्र चित्रसेन महात्मा अर्जुनके वाणोंसे बहूत पीड़ित हुआ, तब अपने शरीरको प्रगट कर दिया और बोला, मैं तुम्हारा प्यारा सखा चित्रसेन हूँ। कुसकुलसिंह अर्जुनने अपने प्यारे मित्र चित्रसेनकी युद्धमें दुर्बल देखा तो अपने वाणको लौटा लिया; जब पाण्डवोंने देखा, कि अर्जुनने अपने शस्त्रका रोक लिया, तब सबने अपने धनुष, वाण और घाड़ोंको रोक दिया; चित्रसेन, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेवने परस्पर प्रेम किया और रथोहोमें बैठ रहे।

२४४ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय । तब महा तेजस्वी और धनुषधारी अर्जुनने गन्धर्वोंके मध्यमें हसकर चित्रसेनसे कहा, हे वीर ! तुमने यह क्या बुरा कर्म किया जा कोरवोंकी पकड़ लिया; तुमने स्त्रियोंके सहित दुर्योधनको कपड़ा। चित्रसेन बोला, हे अर्जुन !

हमने इस दुष्ट दुर्योधन और कर्णका यह अभिप्राय जाना था, कि यह आप लोगोंकी वनवाससे दुःखित देखकर क्लेश देनेकी आशा है; इसने यह विचारा था, कि पाण्डव लोग दुःखी हैं, इस लिये हम उनको देखने चले, और ये सब लोग यशस्विनी द्रौपदीकी देखनेके लिये आये थे; इन सबके अभिप्रायकी जान कर इन्द्रने मुझसे कहा, कि तुम हैत वनमें जाओ और मन्त्रियों सहित दुर्योधनकी पकड़ लाओ और युद्धमें भाद्योंके सहित अर्जुनकी रक्षा करना, क्योंकि वह तुम्हारा प्यारा मित्र और शिष्य है; हे अर्जुन ! हम इन्द्रकी इस आज्ञाकी मानकर यहीं आये हैं, हम इन्द्रकी आज्ञासे इस दुष्टको बांधकर इन्द्रके यहाँ ले जायेंगे।

अर्जुन बोले, हे चित्रसेन । यदि तुम हमारा प्रिय करना चाहते हो तो महाराज धर्मराजकी आज्ञासे हमारे भाई दुर्योधनको छोड़ दो।

चित्रसेन बोले, यह महापापी, सदा असन्तापी है; यह सदा धर्मराज और द्रौपदीकी निन्दा किया करता है, इस लिये यह छोड़नेके योग्य नहीं है; इसकी इच्छाआका महा राज युधिष्ठिर नहीं जानते है, इस लिये हम सब धर्मराजके पास चलते हैं, वे जैसी आज्ञा देंगे वैसाही किया जायगा।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तब वे सब महाराज युधिष्ठिरके पास गए और उनसे सब वृत्तान्त कह सुनाया। महाराजने गन्धर्वोंका वचन सुन सब कौरवोंका कुड़ा दिया और गन्धर्वोंकी बहूत प्रशंसा करी।

महाराज बोले, तुम सब लोग बहूत बड़े बलवान और समर्थ हो, तुम लोगोंने हमारी प्रार्थनासे इस दुष्ट दुर्योधनको भाई और गन्धर्वोंके सहित नहीं मारा, तुम लोगोंने इस दुरात्माका छोड़ दिया, इससे हमारे कुलका निरादर नहीं हुआ, अब तुम लोगोंकी

जो इच्छा ही सो मांग ली, हम तुम लोगों-
की देखकर बहृत प्रसन्न हुए; अपनी इच्छा-
नुसार हमसे सब वस्तु प्राप्त करके यहांसे शीघ्र
चले जाओ। महाराज बृद्धिमान धर्मराजको
आज्ञा पाकर गन्धर्व लोग बहृत प्रसन्न हुए
और अप्सराओंको सङ्ग लेकर चले गये। युद्धमें
कौरवोंने जिन गन्धर्वोंको मारा था, इन्द्रने उन
सबपर अमृतकी वर्षा करी तवावे सब जी गये।
पाण्डवोंने अपने भाइयोंकी और रानियोंकी
कुड़ाकर बहृत सुख पाया। उस समय कुरु-
कुलकी स्त्री और कुमारोंने महारथ पाण्ड-
वोंकी बहृत प्रशंसा करी। पाण्डव लोग उस
रत्नमें ऐसे विराजमान हुए जैसे देहधारी
अग्नि। अनन्तर गन्धर्वोंसे कुटे हुए दुर्योधनसे
भाइयोंके सहित महाराजने शान्तिपूर्वक ऐसे
वचन कहे, हे तात! ऐसा साहस फिर कभी
मत करना, क्योंकि साहसी पुरुषकी सुख नहीं
होता, हे कुरुनन्दन! तुम्हारा कल्याण हो,
भव तुम घरको जाओ, और मनमें किसी
प्रकारका दुःख मत करना।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन्। धर्म-
राज युधिष्ठिरकी आज्ञा दुर्योधनने पाकर
धर्मराजको प्रणाम किया और लज्जासे नीचा
सुह करके नगरको चला। उस समय दुर्यो-
धनकी ऐसी दुर्दशा हो गई थी, मानो इसकी
किसी इन्द्रीमे कुछ शक्ति नहीं है। जब दुर्यो-
धन चला गया, तब वीर कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर
भाई और तपोधन ब्राह्मणोंसे पूजित होकर
प्रसन्नता पूर्वक उस वनमें ऐसे विहार करने
लगे जैसे देवतोंके सहित इन्द्र।

२४५ अध्याय समाप्त।

महाराज जनमेजय बोले, हे द्विजोत्तम। जान
रहता है, कि जो दुरात्मा दुर्योधन सदा अभि-
मानके वशमें रहता था, जो सदा अपनी प्रशंसा
करता था जो सदा अभिमानी रहता

था, जो अपने बल और उदारतासे पाण्डवोंका
नीच मानता था, जो पापी दुर्योधन सदा
अहङ्कारकी बात करता था, उसकी जब
शत्रुओंने जीतकर बांध लिया और फिर
पाण्डवोंने कुड़ाया तब उसकी हस्तिनापुरमें
जाना बड़ा कठिन हुआ होगा। हे वैशम्पायन!
लज्जा और शोकसे व्याकुल दुर्योधनने किस
प्रकार नगरमें प्रवेश किया? इस कथाकी
विस्तार पूर्वक कहिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज। जब
धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन धर्मराजसे विदा हुए,
तब लज्जासे नीचामुह करके दुःखसे रोते हुए
चले। उस समय राजा दुर्योधनकी बृद्धि
शोकसे नष्ट हो गई थी, वे अपने निरादरकी
सोचते हुए, चतुरङ्गिणी सेनाके सहित नगरको
चले। थोड़ी दूर जाकर घास और जल सहित
स्थानमें डेरा किया। वहां हाथी घोड़े, रथ
और पैदलोंकी उचित स्थानमें ठहराकर, आप
एक रमणीय सुन्दर स्थानमें अग्निके समान
प्रकाशमान पलङ्कपर बैठ गये। उस समय
दुर्योधनकी शोभा ऐसी हो रही थी, जैसे
राजसे ग्रहण किये हुए चन्द्रमाकी। उसी
समय कर्ण आकर ऐसा बोले, हे गान्धारीपुत्र।
तुम प्रारब्धहीसे जीते हो, प्रारब्धहीसे हम फेर
तुमसे मिले है, प्रारब्धहीसे तुमने कामरूपी
गन्धर्वोंकी युद्धमें जीता। हे कुरुनन्दन! युद्धमें
विजय करनेवाले तुम्हारे महारथ भाइयोंकी
हम प्रारब्धहीसे देखते है, हम तुम्हारे साम-
नेही गन्धर्वोंके युद्धमें भाग आये थे; हम
भागती हुई सेनाकी स्थिर नहीं कर सके, मेरे
शरीरमें वाणोंके बहृत घाव हो गए थे, इस
लिये हम युद्धसे भाग गए थे, हे भारत! यह
बहृत आयुर्धकी बात है, कि जो आप लोग
स्त्री, सेना और वाहनोंके सहित उस अमानुष
युद्धसे बच आए; आपके शरीरमें कहीं घाव-
भी नहीं हुआ; हे महाराज! आपने अपने

भाइयोंके सहित इस युद्धमें जो कर्म किया, इसका करनेवाला इस लोकमें और कोई नहीं है ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, कर्णके ऐसे वचन सुन राजा दुर्योधन राकर कहने लगे ।

२४६ अध्याय समाप्त ।

राजा दुर्योधन बोले, हे राधापुत्र ! तुम इस वृत्तान्तको नहीं जानते हो; इस लिये हम तुम्हारे वचनका निरादर नहीं करते हैं, क्योंकि तुम यह जानते हो कि गन्धर्वोंको हमने अपने बलसे जीता है । हे महाबाहो ! हमारे भाइयोंने बहुत समय तब गन्धर्वोंसे युद्ध किया, परन्तु जब गन्धर्वोंने मायायुद्ध किया और वे लोग आकाशको चले गये तब हम लोग उनके सङ्ग युद्ध नहीं कर सके; तब हमलोग हार गये और उन्होंने हमको बाध लिया, हमारे दास, पुत्र स्त्री, मन्त्री, सेना और बाहन सब पकड़े गए, उस समय हम लोग बहुत दुःखित हुए और गन्धर्व लोग हमको लेकर आकाशको उड़ गए; उसी समय हमारे महारथ मन्त्रियोंने युद्ध करनेवाले पाण्डवोंसे दीन होकर कहा कि हे पाण्डव ! ये धृतराष्ट्रके पुत्र महाराज दुर्योधनको भाई, मन्त्री, और स्त्रियोंके सहित पकड़कर गन्धर्व लोग आकाशको लिये जाते हैं, आप लोगोंका कल्याण ही, स्त्रियोंके सहित राजाको छोड़ाइये, देखो इन गन्धर्वोंने कौरवोंकी सब स्त्रियोंको पकड़ लिया है, इनके छुड़ानमें आप लोग कुछ विचार मत कीजिये । मन्त्रियोंके ऐसे वचन सुन धर्मात्मा युधिष्ठिरने अपने भाइयोंको प्रसन्न करके हमारे छुड़ानेको आज्ञा दी, अनन्तर पुरुषसिंह पाण्डव लोग उस स्थानपर आकर शान्तिपूर्वक ऐसा बोले, यद्यपि ये लोग महारथ और युद्धमें समर्थ थे, तौ भी उन लोगोंने शान्तिपूर्वक गन्धर्वोंसे हम लोगोंकी मागा । जब गन्धर्वोंने

हम लोगोंको न छोड़ा तौ अर्जुन, भीम, नकुल, और बलवान सहदेवने गन्धर्वोंके ऊपर बाणोंकी वर्षा करनी आरम्भ करी; उस समय उन गन्धर्वोंने युद्धको छोड़ दिया और प्रसन्नता सहित हम लोगोंको लेकर स्वर्गको चले; तब हम लोग बहुत दूर नहीं गये, उस समय हम लोगोंने देखा कि गन्धर्व लोग पाण्डवोंके बाणोंमें फंस गये और अर्जुन दिव्य बाण चला रहे हैं; जब गन्धर्वोंने सब दिशाओंकी अर्जुनके तीक्ष्ण बाणोंसे पूरित देखा तब प्रगट हो गया । अनन्तर चित्रसेन और अर्जुन मिले और एक दूसरेसे कुशल पूछने लगे; तब लोगोंने युद्धके वस्त्र उतार लिये और एक हो गए; अनन्तर अर्जुनने चित्रसेनकी और चित्रसेनने अर्जुनकी पूजा करो ।

२४७ अध्याय समाप्त ।

दुर्योधन बोले, चित्रसेनसे मिलकर शत्रु नाशन अर्जुनने हंसकर वीरोंके समान ऐसे वचन कहे, हे वीर गन्धर्वश्रेष्ठ ! आप हमारे भाइयोंको छोड़ दीजिये, क्योंकि पाण्डवोंके जोते हुए, इन लोगोंकी ऐसी दुर्दशा नहीं होनी चाहिये, हे कर्ण ! महावीर अर्जुनने ऐसे वचन सुन चित्रसेन गन्धर्वने वे सब बातें कह सुनाई जो हम लोगोंने चञ्चल समझ विचारि थी, चित्रसेन गन्धर्वने कहा कि ये तुम लोगोंको दुःखसे व्याकुल दिखनेकी आयी थे, हे कर्ण ! जिस समय गन्धर्वने यह सब समाचार कहा उस समय मेरी लज्जा यह दशा हुई कि मैं पृथ्वीमें घुस जाऊँ, अनन्तर पाण्डव और गन्धर्व युधिष्ठिरके पास आये और हमारी सब बातोंको उनसे निवेदन किया; मैं स्त्रियोंके आगे दीन भावने शत्रुओंके वशमें हुआ, इससे बढ़के और अधिक दुःख मुझे क्या होगा, जो मैं युधिष्ठिरके पास बांधकर खड़ा किया गया । जिनका मैंने कहा

निरादर किया था, जिनका मैं सदासे शत्रु हूँ, उन्होंने सुभ दुर्वहिकी शत्रुओंकी हाथसे कुड़ाया, उन्होंने सुभकी जीवदान दिया; हे वीर। यदि मैं उस युद्धमें मर जाता तो वज्रत अच्छा होता, परन्तु यह निरादर बज्रत बुरा हुआ, यदि सुभको गन्धर्व लोग युद्धमें मार डालते, तो पृथ्वीमें मेरा यश वज्रत फैलता और इन्द्र लोकमें अक्षय सुख प्राप्त होता, हे पुत्रसिंह। अब हमने जो निश्चय किया है सो तुम सुनो, अब हम इस स्थान पर रहकर व्रत करेंगे, तुम लोग घरकी जाओ, हमारे सब भाई लोग भी हस्तिनापुरकी जायें; कर्णदिक जो हमारे मित्र और वान्धव है, वे सब दुःशासनको अगाड़ी करके हस्तिनापुरकी जायें, मैं शत्रुओंसे निरादर पाकर हस्तिनापुरकी नहीं जाऊंगा, मैं अपने मित्रोंकी प्रसन्न और शत्रुओंकी दुःखी करता था सो अब शत्रुओंको सुख और मित्रोंको दुःख देनेवाला हो गया, मैं हस्तिनापुरमें जाकर राजासे क्या कहूंगा? भीष्म द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, विदुर, सज्जय, बाल्हीक, भूरिश्रवा तथा और जो वृद्ध ब्राह्मण है, एवम श्रेणी तथा मूर्ख और महात्मा लोग जो हैं वे सब हमको देखकर क्या कहेंगे? और मैं उन्हें क्या उत्तर दूंगा? जो हम पहले शत्रुओंकी सिर पर रहे हैं और उनकी छातीपर अपना पराक्रम प्रगट किया है, और अब अपनेही दोषसे नष्ट हो गये, अब उन लोगोंसे जाकर हम क्या कहेंगे? दुष्ट लोग। लक्ष्मी, विद्या और ऐश्वर्यकी पाकर वज्रत दिन तक सुख नहीं भोगते, इन्हींसे हम अभिमानमें भर गए थे, हमने यह वज्रत बुरा कर्म किया, यह कर्म हमारे योग्य नहीं था इसीसे अब हमको महा सशय उत्पन्न हुआ है, इस कर्मकी हमनेही अपनी मूर्खता और दुर्वहिसी किया है; इस लिये अब यहीं पर जल छोड़कर प्राणत्याग कर देंगे, ऐसा

कीन बुद्धिमान होगा जो शत्रुओंसे जीवदान पाकर जीता रहे? हम परम अभिमानी और शक्तिसि हीन हैं, इसी लिये शत्रुलोग हमको हंसते हैं, महाबलवान पाण्डव लोगोंने निरादरकी सहित हमारी और देखा।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, ऐसा कहकर महाराज दुर्योधनने दुःशासनसे कहा कि हे दुःशासन। हे भारत। तुम हमारे वचनोंकी सुनो, अब हम तुम्हारा अभिप्रेत करते हैं; तुम आजसे राजा हो जाओ तुम कर्ण और शकुनीकी अपना सहायक बनाकर समस्त पृथ्वीका पालन करो। हे दुःशासन। तुम अपने भाइयोंका इस प्रकार पालन करना जैसे इन्द्र मरुतोंको पालते हैं, तुम्हारे भाई लोगभी तुम्हारी ऐसीही सेवा करेंगे जैसे देवता लोग इन्द्रकी, तुम सदा सावधान होकर ब्राह्मणोंकी सेवा करना, वन्धु और मित्रोंकी सदा पालना अपनी जातिके ऊपर ऐसीही दृष्टि रखना जैसे विष्णु देवतोंके ऊपर रखते हैं, बूढ़ोंकी अच्छे प्रकार सेवा करना; अब तुम मित्रोंको प्रसन्न करो और शत्रुओंकी दुःख देकर पृथ्वीका पालन करो। ऐसा कहकर दुःशासनकी अपने हृदयसे लगाया और जानिकी आज्ञा दी, दुर्योधनके ऐसे वचन सुन दुःशासन वज्रत दौन हुए और आखोंमें आसू भरकर रोते हुए हाथ जोड़कर दुर्योधनके चरणपर गिर पड़े और बड़े भाईसे बोले, कि आप प्राण छोड़िये। ऐसा कहकर पृथ्वीपर गिर गए फिर अपनी आसूओंसे दुर्योधनके चरणोंकी धोते हुए दुःशासन बोले, कि जो आप कहते हैं, सो आपके कहनेकी अनुसार नहीं होगी; चाहे पृथ्वी फट जाय स्वर्गकी टुकड़े हो जायें, सूर्य, शीतल और चक्रमा उष्ण हो जाय, चाहे वायु अपनी गतिकी छोड़ दे, चाहे हिमाचल चलने लगें, चाहे समुद्रका पानी सूख जाय, चाहे अग्नि टंही हो जाय, परन्तु मैं

आपके बिना राज्य नहीं कसंगा। फिर बार बार दुःशासन कहने लगे कि आप प्रसन्न हजिये, आपही सौ वर्ष तक हमारे राजा रहिये। ऐसा कह कर दुःशासन जंचे स्वरसे रोने और अपने बड़े भाईके चरणोंपर गिर पड़े इस प्रकार जहां दुःशोषण और दुःशासन रोते थे, तहां दुःखसे भरे कर्ण आए और ऐसा कहने लगे, हे कौरवो! तुम लोग सामान्य पुरुषके समान क्यों रो रहे हो? तुम लोगोंकी क्या मूर्खता प्रगट हुई है? सोच करनेवाले पुरुषका शोक नष्ट नहीं होता, जब सोचसे शोक नष्ट नहीं होता तब सोच करनेसे क्या लाभ है? आपलोग सोचमें क्या सामर्थ्य देखते हैं? आप लोग स्थिर हजिये, शोक करके शत्रुओंको प्रसन्न मत कीजिये, हे राजन्। पाण्डवोंने जो आप लोगोंकी शत्रुओंके हाथसे छड़ाया सो ऐसा करना उनको उचित ही था, क्योंकि राज्यमें रहनेवालोंकी राजाकी सेवा करनी ही चाहिये, आप उनकी सदा रक्षा करते हैं, इसीसे वे लोग सुखपूर्वक वनमें वसते हैं, इस विषयमें आपको साधारण पुरुषोंके समान सोच नहीं करना चाहिये; तुम्हारा व्रत देखकर तुम्हारे भाई लोग दुःख सह रहे हैं। हे राजन्। आपका कल्याण ही उठकर अपने भाइयोंकी प्रसन्न करो।

२४८ अध्याय समाप्त ।

कर्ण बोले, हे राजन्। आपके साहस छोड़नेका कारण हमको नहीं जान पड़ता, इसमें क्या आश्चर्य हुआ, जो पाण्डवोंने आपको छड़ा दिया? हे महाराज। राजा लोग तो शत्रुओंके वशमें हीही जाते हैं, तब सेना और प्रजाको उनको कुड़ानाही धर्म है, हे शत्रुनाशन! प्रजाका परम धर्म है कि राजाके जानते अथवा बिना जाने राजाका प्रियकार्य करे; प्रधान पुरुष लोग प्रायः शत्रुओंकी

सेनाको घबड़ा देते हैं, फिर आप यज्ञोंमें पकड़े जाते हैं, और सेनावाले लोग फिर उनको कुड़ा लेते हैं, जो लोग सेनाके हैं और जो लोग राज्यमें वसते हैं; उन सबकी मिलकर राजाका कल्याण करना चाहिये; यदि आपके राज्यमें रहनेवाले पाण्डवोंने अपनी इच्छासे आपको छड़ा दिया तो उसमें दुःख माननेकी कौनसी बात है? हे राजन्। यह वृद्ध दुःखकी बात होतो जो राजोंमें अथ आप अपनी सेनासे सहित जाते होते और पाण्डव लोग आपसे ऊपर चढ़ाई करते। पाण्डव लोग बड़े शूरवीर बलवान और यज्ञमें स्थिर रहनेवाले हैं, वे लोग आपके सहायक हैं, क्योंकि उनके सब रत्नोंका आप भोग करते हैं, देखिये पाण्डव लोग तो वनमें जन्तुओंके समान मूर्खसे रहते हैं। हे राजन्। आपका कल्याण ही, अब आप उठनेमें विलम्ब मत कीजिये, राज्यमें रहनेवाले पुरुषोंकी अवश्यही राजाकी सेवा करनी चाहिये; हे शत्रुनाशन। हे राजेन्द्र। यदि आप हमारे वाक्योंकी न मानें तो हम आपके चरणोंकी सेवा करते हुए आपके सङ्ग ही रहेंगे, हे पुरुषसिंह। हे राजेन्द्र। हम आपके बिना नहीं जी सकते हैं।

श्रीवैशम्पायन सुनि बोले, जब राजा दुःशोषणसे कर्णने ऐसे वचन कहे, तब भी महाराज उठनेकी इच्छा न करी और अपने मनमें विचारा कि अब हम स्वर्गहीकी जायेंगे।

२४९ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन सुनि बोले, हे राजन् जनमेजय। महाक्रोधी शत्रुनाशन महाराज दुःशोषणकी इस प्रकार वृत्तिमें बैठे हुए देख सुबलपुत्र शत्रुकी शान्तिपूर्वक कहने लगे, हे कौरव। कर्णने जो कुछ आपसे कहा सो आपने अच्छी प्रकार सुना, आप हमारी उपासना करी हुई लक्ष्मीकी मूर्खतासे क्यों छोड़ते हैं? हे नरनाथ।

जानते हैं कि आप मूर्खतासे अपना प्राण परित्याग करते हैं और हमको यहभी जान पड़ता है, कि आपने बूढ़ोंकी सेवा नहीं करी; जो उपस्थित सुख और दुःखको नहीं रोकता उसका उसी प्रकारसे नाश हो जाता है जैसे मिट्टीका कच्चा वर्तन पानीमें गल जाता है। हे राजेन्द्र ! भोत, नपुंसक, आलसी, असावधान, व्यसनी, और दुष्ट राजाकी प्रजा नहीं मानती आप तो पाण्डवोंका सत्कार करते हैं, इस लिये ऐसे समयमें शोक अनुचित है, क्योंकि पाण्डवोंने अपने धर्मके अनुसार ही काम किया है; जहां आपको प्रसन्न होना चाहिये तहां शोक करते हैं, यह बहुत विपरीत बात है; हे महाराज ! आप प्रसन्न हजिये; शरीरको वृथा नष्ट न कीजिये, अपने पुण्यका स्मरण कीजिये पाण्डवोंका राज्य उनकी देवार यश और धर्मको प्राप्त कीजिये; ऐसा करनेसे आपको सब कोई कृतज्ञ कहेंगे और पाण्डवोंसे सोभावृत्ति भी बना रहेगा, पाण्डवोंके पितामहका राज्य उनको लौटानेसे जगतमें आपकी कीर्ति स्थिर रहेगी।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, शकुनोके ऐसे वचन सुनकर और वीर दुःशासनको चरणोंमें पड़ा हुआ देखकर राजा दुर्योधनने शत्रुनाशन दुःशासनको अपने सुन्दर हाथोंसे उठाकर उनका माथा प्रेमसे संघा, कर्ण और शकुनोके वचन सुनकर राजा दुर्योधनको बहुत निराशा हुई और लज्जासे व्याकुल होगए, अनन्तर प्राधर्म भरके कहने लगे कि मुझे धर्म धन, सुख, ऐश्वर्य और राज्यसे तथा अनक प्रकारके भागोंसे कुछ प्रयोजन नहीं है, तुम लोग हमें दुःख मत दा, तुम लोग घरकी चली जाओ। मैं अपनी बुद्धिकी स्थिर करके ये निश्चय किया है, कि अब प्राण छाडगा, अब तुम सब लोग हास्तनापुरकी चली जाओ और हमारे धर्मकी सेवा करना। राजाका ऐसा वचन सुन

वे लोग शत्रुनाशन दुर्योधनसे कहने लगे कि हे राजेन्द्र ! हे भारत ! आपकी छोड़कर हम लोग नगरमें कैसे प्रवेश करेंगे ? इस लिये आपको जो दशा होगी सोही हम सबकी भी होगी।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय ! महाराज दुर्योधन इस प्रकार मन्त्री, भाई, मित्र और वात्सवोंके अनेक प्रकारके वचन सुनकरभी अपने निश्चयसे चलायमान न हुए। छतराष्ट्रपुत्र राजसिंह महाराज दुर्योधनने पृथ्वीमें कुशाका आसन बिछाया और जल आदिसे पवित्र होकर उसपर बैठे। उस समय महाराजने कुशके आसनपर बैठकर काली हरिणका चमड़ा ओढ़ लिया और अपने वचनको अपने वशमें किया, अर्थात् मौन हो गये। उस समय महाराजने केवल स्वर्ग जानेहीका ध्यान किया। अपने मनकी वशमें करके बाहरकी सब क्रियाओंको त्याग दिया। महाराजका ऐसा निश्चय देख देवता, दानव, पातालमें रहनेवाले घोर राक्षस और जिनको देवोंने पहिले जीता था उन सबने अपने पक्षका नाश विचारकर अथर्ववेदकी रीतिसे यज्ञ करना आरम्भ किया। वेद जाननेवाले ब्राह्मणोंने वहस्पति और शुक्रके कहे हुए, मन्त्रोंसे अथर्ववेद और उपनिषदोंके अनुसार मन्त्र जपना और यज्ञ करना आरम्भ किया। वेद और वेदाङ्गोंके जाननेवाले उत्तम व्रतधारी ब्राह्मण लोग अग्निमें खीर और दूधकी आहुति देने लगे। हे राजन् ! इस प्रकार आहुति देनेके समय यज्ञकुण्डसे एक स्त्री उत्पन्न हुई और कहने लगी कि हम क्या करें ? तब सब दैत्य प्रसन्न होकर उससे बोले, कि व्रतमें बैठे हुए छतराष्ट्रपुत्र राजा दुर्योधनकी हमारे पास ले आओ; वह स्त्री उनके वचन को स्वीकार करके वहांसे चली और क्षण भरमें राजा दुर्योधनके पास पहुँची और दुर्योधनकी लेकर पुनः दानवोंके पास गई,

दुर्योधनको देख सब दानव लोग प्रसन्न हुए और अभिमान सहित करने लगे ।

२५० अध्याय समाप्त ।

दानव लोग बोले, हे राजेन्द्र । भरतकुल-
श्रेष्ठ दुर्योधन । आप शूर वीर और महात्मा
पुरुषोंसे युक्त होकरभी अन्न जलका परित्याग
क्यों करते हैं ? जो पुरुष अपने शरीरका नाश
करता है, वह नरकगामी होता है, और पृथ्वीमें
उसकी कीर्तिभी नष्ट हो जाती है, आपके
समान बुद्धिमान लोग विरुद्ध, पापमय और
सर्वनाशक कार्योंकी नहीं करते हैं, हे
राजन् । आप इस धर्म अर्थ और सुखको नाश
करनेवाला बुद्धिको त्याग दीजिये, इससे आपका
प्रताप और यश नाश होजायगा और शत्रुवाको
सुख होगा, हे प्रभा । अब आप यथार्थ
वाक्ताका सुनिये हम आपके शरीरकी उत्पात्त-
का वर्णन करते हैं । हे राजन् ! पहिले,
समयमें हम लोगाने शिवकी तपस्या करी थी,
तब आपको प्राप्त किया था, हे राजेन्द्र ।
आपका जो नाभीके ऊपरका शरीर है, सो बज्र-
से बना हुआ है, हे पापराहित । आपका जा-
नीचेका शरीर है, सो भी अस्त्र और शस्त्रोंसे
नहीं कट सकता उसको देवोंने फूलोंसे बनाया
है । इसीसे वह स्त्रियोंको वहुत प्यारा है, हे
नृपोत्तम ! इस प्रकार आपका शरीर ईश्वर
और देवोंने बनाया है, हे राजशार्दूल । आप
देवता हैं मनुष्य नहीं । महा बलवान भगदत्त
आदि क्षत्री लोग दिव्य शस्त्रोंके जाननेवाले
और महा शूरवीर हैं, वे सब आपके शत्रु-
ओंका नाश करेंगे, आप कुछ सन्देह न
कीजिये, आपकी कुछ भय नहीं है, आपकी
सहायताके लिये अनेक दानवोंने पृथ्वीमें अव-
तार लिया है, भीम, द्रोणाचार्य और कृपा-
चार्यके शरीरमें अनेक दानव लोग प्रवेश
करेंगे : वे लोग उनके वशमें होकर लज्जा

और मोहको छोड़कर आपके शत्रुओंसे युद्ध
करेंगे, हे कुसकुल श्रेष्ठ । उस युद्धमें कोई
पुत्र भाई, पिता, वान्धव, शिष्य, जाति, बालक
और बूढ़ोंको नहीं मानेंगे । सब लोग परस्पर
घोर युद्ध करेंगे ; वे पुरुषोंसह क्षत्री लोग
किसीका मोह नहीं करेंगे, और परवश होकर
दूरसे युद्ध करेंगे ; उस घोर युद्धमें वीर लोग
प्रसन्न भी होंगे, और दुःखी भी होंगे, सब लोग
प्रारब्धके वशमें होकर विज्ञानसे रहित हो
जायेंगे, सब लोग परस्पर कहेंगे कि तुम
हमसे जीते नहीं वचोने, वे सब वीर शस्त्र,
अस्त्र, धारण करके वलपूर्वक अपनी अपनी
स्त्राधा करेंगे और जगतका नाश करेंगे,
महात्मा पांचा पाण्डवभी घोर युद्ध करेंगे, और
उन सबका नाश करेंगे, आज कलह अनेक
दैत्य और राक्षसोंने क्षत्री जातिमें अवतार
लिया है, वे लोग अत्यन्त पराक्रम करके आपके
शत्रुओंसे युद्ध करेंगे, हे पार्थिव । वे लोग गदा
मृशल और वड़ वड़े शस्त्रोंसे लड़ेंगे । हे वीर !
आपके अन्तःकरणमें जा अर्जुनका भय है,
हमने उस अर्जुनके मारनेका भी उपाय किया
है, जा नरकासुर नामक राक्षस मारा गया
था, उसीने अब कर्णका अवतार लिया है, उसी
वीरको स्मरण करके अर्जुन और कृष्ण उससे
युद्ध करेंगे, समर्थ कर्णभी अपने बलसे अर्जुन-
को युद्धमें जीतेगा, कर्ण महारथ और शस्त्र
चलानेवालोंमें श्रेष्ठ है, इससे सब शत्रुओंका
जीतेगा, इसीका जानकर बज्रधारी इन्द्र
अर्जुनकी रक्षा करनेके लिये कणसे कुसकुल
कावच लेंलेंगे, इसी लिये हमलोगोंन भी
सप्तपत्तक नामक सहस्रों दैत्य और राक्षसोंको
इस काव्यपर नियुक्त किया है, आप विचार
न करं वे लोग अर्जुनका युद्धमें मारेंगे, हे
राजन् ! आप शत्रुओंका मारकर इस पृथ्वीका
राज्य करेंगे, हे राजन् ! आप कुछ दुःख मन
कीजिये, क्योंकि आप दुःखकी योग्य नहीं हैं,

हे कौरव ! आप यदि मर जायगे, तो हमारा शूल नष्ट हो जायगा, हे वीर आप चले जाइये ; ऐसी बुद्धि फिर कभी मत करना, आप सदा हमारो गति हैं । इसी प्रकार देवता लोग पाण्डवोंकी मानते हैं ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, ऐसा कहकर दानवोंने राजासंह दुर्योधनकी अपने हृदयसे लगा कर बहुत समझाया और पुत्रके समान उनका सम्मान किया । हे राजेन्द्र ! उन्होंने मीठे वचन कहकर दुर्योधनकी बुद्धिको स्थिर कर दिया और जानकी आज्ञा दर्श, तथा विजय होनेका आशीर्वाद दिया । फिर उस स्त्रीने महाराज दुर्योधनको उसी स्थानकी पङ्खा दिया जहाँ वे अन्न और जलकी छोड़ कर बैठे थे । राजाको वहाँ पर पङ्खाकर और उनकी आज्ञा लेकर वह चलो गई । उस स्त्रीके चले जानेके पश्चात् राजा दुर्योधनने इन सब बातोंकी खपके समान जाना और अपने मनमें निश्चय किया कि हम पाण्डवोंको युद्धमें जीतेंगे । महाराज दुर्योधनने कर्ण और संसप्तकगणोंका पाण्डवोंके मारनेमें समर्थ आर अपना मित्र समझा । इस प्रकार धृतराष्ट्रपुत्र दुर्बुद्धि दुर्योधनने अपने मनमें दृढ़ आशा करली । दुर्योधनने जाना कि कर्ण नरकासुरका अवतार है, यह अवश्य पाण्डवोंकी जीतगा और यह अर्जुनके मारनेके लिये दुष्ट बुद्धि करता रहता है । महावीर संसप्तक राक्षसभी रज और तमगुणका आश्रय करके भोम द्राणाचाय्य और कृपाचाय्य आदिके शरीरमें प्रवेश करेंगे, तब उन सबकी बुद्धि पलट जायगी और वे लोग अर्जुनके मारनेका उपाय करेंगे, वे लोग जैसा हमसे प्रेम करते हैं वैसा पाण्डवोंसे नहीं करते । हे राजन् दुर्योधनने इस सब वृत्तान्तको किसीसे नहीं कहा । प्रातः काल होतेही विकर्त्तनके पुत्रने हाथ जोड़ कर महाराज दुर्योधनको प्रसन्न करके, उनसे

हेतुके सहित ऐसे वचन कहे, कि कोई मरकर शत्रुओंकी नहीं जीतना और जोता हुआ पुरुष अनेक सुख देखता है ; हे कौरव ! मरे हुए पुरुषको सुख और जय कहासे प्राप्त होंगे ? महाबाहु कर्णने राजा दुर्योधनको अपने हाथसे पकड़कर कहा कि हे राजन् । यह समय शोक भय और मरनेका नहीं है, अब आप उठिये ; क्यों सोते हैं ? और क्यों शीघ्र करते हैं ? आप तो अपने बलसे शत्रुओंकी दुःख देनेवाले हैं, फिर मरनेकी इच्छा क्यों करते हैं ? यदि आपको युद्धमें अर्जुनका बल देखकर कुछ भय हुआ होता हम आपसे, सत्य कहते हैं कि हम युद्धमें अर्जुनकी मारेंगे, जब तेरह वर्ष बीत जायेंगे, और हम धर्मपूर्वक शस्त्रोंकी ग्रहण करेंगे, तब सब पाण्डवोंकी आपके बशमें कर देंगे । कर्णके ऐसे वचन सुन तथा दैत्योंका उत्तरणकर और सब लोगोंकी प्रणाम करते देख, महाराज दुर्योधन उठे । उन्होंने दैत्योंके वचनसे अपने मनमें स्थिर किया कि अब हम पाण्डवोंका अवश्य जीत लेंगे । ऐसा विचार कर राजाने अपनी सेनाकी चलनेकी आज्ञा दर्श, रथ सारथी, घोड़े और पैदलोंसे भरो हुई वह सेना शांभत हुई । खेत छल, चमर, पताका, रथ, हाथी, घोड़े और पैदलोंसे वह सेना शांभत होन लगी । उस समय सेनाकी ऐसी शोभा बढ़ी जैसे शरद ऋतुमें मघ राहित आकाशकी । ब्राह्मण लोग उनका आशीर्वाद देने लगे । उस समय धृतराष्ट्रपुत्र राजा दुर्योधन चक्रवर्ती महाराज युधाष्ठिरके समान शांभत हुए । राजा दुर्योधन लक्ष्मीसे परम प्रकाशमान थे, स्तुति करनेवाले लोगोंसे माला और प्रणामका ग्रहण करते हुए चले । हे राजेन्द्र ! राजा दुर्योधनके सङ्ग कर्ण और जुवारी शकुनी चले । राजासह दुर्योधनके पीछे कुरुकुलअष्ट दुःशासनादि सा भाई, भूरिश्रवा सोमदत्त, और

दुर्योधनको देख सब दानव लोग प्रसन्न हुए और अभिमान सहित करने लगे ।

२५० अध्याय समाप्त ।

दानव लोग बोले, हे राजेन्द्र ! भरतकुल-श्रेष्ठ दुर्योधन ! आप शूर वीर और महात्मा पुरुषोंसे युक्त होकरभी अन्न जलका परित्याग क्यों करते हैं ? जो पुरुष अपने शरीरका नाश करता है, वह नरकगामी होता है, और पृथ्वीमें उसकी कीर्तिभी नष्ट हो जाती है, आपके समान बुद्धिमान लोग विरुद्ध, पापमय और सर्वनाशक कार्योंकी नहीं करते हैं, हे राजन् ! आप इस धर्म अर्थ और सुखको नाश करनेवालो बुद्धिको त्याग दीजिये, इससे आपका प्रताप और यश नाश होजायगा और शत्रुवाको सुख होगा, हे प्रभा ! अब आप यथार्थ वाक्ताका सुनिये हम आपके शरीरकी उत्पात्तका वर्णन करते हैं । हे राजन् ! पहिले, समयमें हम लोगाने शिवकी तपस्या करी थी, तब आपका प्राप्त किया था, हे राजेन्द्र ! आपका जो नाभीके ऊपरका शरीर है, सो वज्रसे बना हुआ है, हे पापरहित ! आपका जो नीचेका शरीर है, सो भी अस्त्र और शस्त्रोंसे नहीं कट सकता उसको देवोंने फूलोंसे बनाया है । इसीसे वह स्त्रियोंको बहुत प्यारा है, हे नृपोत्तम ! इस प्रकार आपका शरीर ईश्वर और देवोंने बनाया है, हे राजशर्द्धूल ! आप देवता है मनुष्य नहीं । महा बलवान भगदत्त आदि क्षत्री लोग दिव्य शस्त्रोंके जाननेवाले और महा शूरवीर हैं, वे सब आपके शत्रुओंका नाश करेंगे, आप कुछ सन्देह न कीजिये, आपको कुछ भय नहीं है, आपकी सहायताके लिये अनेक दानवोंने पृथ्वीमें अवतार लिया है, भीष्म, द्रोणाचार्य और कृपाचार्यके शरीरमें अनेक दानव लोग प्रवेश करेंगे ; वे लोग उनके वशमें होकर लज्जा

और मोहको छोड़कर आपके शत्रुओंसे युद्ध करेंगे, हे कुरुकुल श्रेष्ठ ! उस युद्धमें को पुत्र भाई, पिता, बान्धव, शिष्य, जाति, बालक और बूढ़ोंको नहीं मानेंगे । सब लोग परस्पर घोर युद्ध करेंगे, वे पुरुषोंसह क्षत्री लोग किसीका मोह नहीं करेंगे, और परवश होकर दूरसे युद्ध करेंगे ; उस घोर युद्धमें वीर लोग प्रसन्न भी होंगे, और दुःखी भी होंगे ; सब लोग प्रारब्धके वशमें होकर विज्ञानसे रहित न जायेंगे, सब लोग परस्पर कहेंगे कि तुम हमसे जीते नहीं वचोने, वे सब वीर शस्त्र अस्त्र, धारण करके बलपूर्वक अपनी अपनी स्थाणा करेंगे और जगतका नाश करेंगे, महात्मा पांचा पाण्डवभी घोर युद्ध करेंगे, और उन सबका नाश करेंगे, आज कलह अन्तर्गत है, और राक्षसोंने क्षत्री जातिमें अवतार लिया है, वे लोग अत्यन्त पराक्रम करके आपसे शत्रुओंसे युद्ध करेंगे, हे पार्थिव ! वे लोग गद मूशल और बड़े बड़े शस्त्रोंसे लड़ेंगे । हे वीर ! आपके अन्तःकरणमें जो अर्जुनका भय है, हमने उस अर्जुनके मारनेका भी उपाय किया है, जो नरकासुर नामक राक्षस मारा गया था, उसीने अब कर्णका अवतार लिया है, उसीने वैरको स्मरण करके अर्जुन और कृष्ण से युद्ध करेंगे ; समर्थ कर्णभी अपने बलसे अर्जुन को युद्धमें जीतेगा, कर्ण महारथ और शस्त्र चलानेवालोंमें श्रेष्ठ है, इससे सब शत्रुओंका जीतेगा, इसीका जानकर वज्रधारी अर्जुनकी रक्षा करनेके लिये कर्णसे युद्ध कर लेंगे, इसी लिये हमलोगों भी संसप्तक नामक सहस्रो दैत्य और राक्षसोंको इस कार्यपर नियुक्त किया है ; आप विचार न करें वे लोग अर्जुनका युद्धमें मारेंगे, राजन् ! आप शत्रुओंका मारकर इस राज्य करेंगे, हे राजन् ! आप कुछ दुःख कीजिये, क्योंकि आप दुःखकी योग्य नहीं

हे कौरव ! आप यदि मर जायगे, तो हमारा बल नष्ट हो जायगा, हे वीर आप चले जाइये, ऐसी बुद्धि फिर कभी मत करना, आप सदा हमारी गति हैं। इसी प्रकार देवता लोग पाण्डवोंको मानते हैं।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, ऐसा कहकर दानवोंने राजासिंह दुर्योधनको अपने हृदयसे लगा कर बहुत समझाया और पुत्रके समान उनका सम्मान किया। हे राजेन्द्र ! उन्होंने सीटे वचन कहकर दुर्योधनकी बुद्धिको स्थिर कर दिया और जानेकी आज्ञा दई, तथा विजय होनेका आशीर्वाद दिया। फिर उन स्त्रीने महाराज दुर्योधनको उसी स्थानको पहुँचा दिया जहाँ वे अज्ञ और जलकी लीड़ कर बैठे थे। राजाको वहाँ पर पहुँचाकर और उनकी आज्ञा लेकर वह चलो गइ। उस स्त्रीके चले जानेके पश्चात् राजा दुर्योधनने इन सब बातोंकी स्वप्नके समान जाना और अपने मनमें निश्चय किया कि हम पाण्डवोंका युद्धमें जीतेंगे। महाराज दुर्योधनने कार्य और असप्तकगणका पाण्डवोंके मारनेमें समय और प्रपना मित समझा। इस प्रकार धृतराष्ट्रपुत्र बुद्धि दुर्योधनने अपने मनमें दृढ़ आशा करली। दुर्योधनने जाना कि कार्य नरका-गुरका अवतार है, यह अवश्य पाण्डवोंकी गतिगा और यह अर्जुनके मारनेके लिये दुष्ट बुद्धि करता रहता है। महावीर सप्तकगणसमी रज और तमगुणका आश्रय करके भीम द्राणाचाय्य और कृपाचाय्य आदिके शरीर-प्रवेश करेंगे, तब उन सबकी बुद्धि पलट जायगी और वे लाग अर्जुनके मारनेका उपाय करेंगे, वे लाग जैसा हमसे प्रेम करते हैं वैसा पाण्डवोंसे नहीं करते। हे राजन् दुर्योधनने इस सब वृत्तान्तको किसीसे नहीं कहा। प्रातः राजा होतेही विकर्त्तनके पुत्रने हाथ जोड़ कर महाराज दुर्योधनको प्रसन्न करके उनसे

हेतुके सञ्चित ऐसे वचन कहे, कि कोई मरकर शत्रुवाँकी नहीं जीतना और जोता हुआ पुरुष अनेक सुख देखता है; हे कौरव ! मरें हुए पुरुषको सुख और जय कहासे प्राप्त होंगे ? महाबाहू कर्णने राजा दुर्योधनको अपने हाथसे पकड़कर कहा कि हे राजन् ! यह समय शोक भय और मरनेका नहीं है, अब आप उठिये; क्या सोते हैं ? और क्या शोक करते हैं ? आप तो अपने बलसे शत्रुवाँको दुःख देनेवाले हैं; फिर मरनेकी इच्छा क्यों करते हैं ? यदि आपकी बुद्धिमें अर्जुनका बल देखकर कुछ भय हुआ होता हम आपसे सत्य कहते हैं कि हम युद्धमें अर्जुनको मारेंगे, जब तैरह वप बीत जायगे, और हम धर्मपूर्वक शस्त्रोंका ग्रहण करेंगे, तब सब पाण्डवोंकी आपके वशमें कर देंगे। कर्णके ऐसे वचन सुन तथा दैत्याकात्तरणकर और सब लोगोंकी प्रणाम करते देख, महाराज दुर्योधन उठे। उन्होंने दैत्योंके वचनसे अपने मनमें स्थिर किया कि अब हम पाण्डवोंकी अवश्य जीत लेंगे। ऐसा विचार कर राजाने अपनी सेनाकी चलनेकी आज्ञा दई। रथ सारथी, घोड़े और पदलोसे भरो हुई वह सेना शांभत हुई। स्वेत छत्र, चमर, पताका, रथ, हाथी, घोड़े और पैदलोंसे वह सेना शांभत हान लगा। उस समय सेनाकी ऐसी शांभा बढ़ी जैसे शरद ऋतुमें मध राहत्त आकाशकी। ब्राह्मण लाग उनका आशीर्वाद देने लगे। उस समय धृतराष्ट्रपुत्र राजा दुर्योधन चक्रवर्त्ती महाराज युधाष्ठिरके समान शांभत हुए। राजा दुर्योधन लक्ष्मीसे परम प्रकाशमान थे, स्तुति करनवाले लोगोंसे माला और प्रणामका ग्रहण करते हुए चले। हे राजेन्द्र ! राजा दुर्योधनके सङ्ग कर्ण और जुवारो शकुनो चले। राजासिंह दुर्योधनके पीछे कुरुकुलसे छ दुःशासनादि सा भाई, भूरिश्वा सांभदत्त, और

महावाहो ! पाण्डवलोग तुम्हारी सीलहवीं कलाकोभी नहीं पा सकते हैं । पुरुषव्याघ्र और अत्यन्त बड़े हुए राजा लोगभी तुम्हारे समान नहीं हैं । हे महाधनुषधारी । अब तुम धृतराष्ट्र और यशस्विनी गांधारीके दर्शन करो, वह तुम्हारे ऊपर ऐसी शृंषा करेगी जैसे अदिती इन्द्रके ऊपर । हे पृथ्वीनाथ । उस समय हस्तिनापुरमें महा हाहाकार शब्द होने लगा ; कोई कर्णकी प्रशंसा और कोई उसकी निन्दा करने लगा, तथा कोई चुपचाप होकर बैठ गया, इस प्रकार शस्त्रधारियोंमें अष्ट कर्णने थोड़ेही समयमें पर्वत, वन, आकाश, समुद्र, नीचे ऊंचे देश, गांव, नगर, द्वीप, और जलके सहित सब पृथ्वीके देशोंकी जीत लिया, अनन्तर धन लेकर राजा दुर्योधनसे मिले । हे शत्रुनाशन जनमेजय । रनिवासमें जाकर वीर कर्णने गांधारीके सहित राजा धृतराष्ट्रके दर्शन किये, और उनकी पिताके समान प्रणाम किया । राजानेभी प्रेमसे कर्णकी अपने हृदयसे लगाकर विदा किया । उस दिनसे दुर्योधन और सुवलपुत्र शकुनीने जान लिया कि कर्ण पाण्डवोंको जीत लेगा ।

— २५३ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय । सूतपुत्र शत्रुनाशन कर्णने इस प्रकार पृथ्वीकी जीतकर दुर्योधनसे कहा हे शत्रुनाशन । हे दुर्योधन ! हे कौरव । तुम हमारे वचनोंकी सुनो और जो हम करते हैं सो करो । हे नृपोत्तम । इस समय पृथ्वीमें तुम्हारा शत्रु कोई नहीं है, इस लिये तुम इस पृथ्वीका इस प्रकार पालन करो जैसे शत्रुओंकी नाश करके महात्मा इन्द्र पालन करते हैं ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, कर्णके ऐसे वचन सुन राजा दुर्योधनने कर्णसे कहा, हे पुरुष-
ह । जिसके तुम ऐसे सहायक और भक्त

हो और जिसके लिये तुम सदा उद्यत रहते हो, उसकी कोई बात दुर्लभ नहीं है । मेरे मनमें जा इच्छा है, उसकी तुम सुनो । जबसे मैंने राजा युधिष्ठिर का वृहत् राजसूय यज्ञ देखा है, तबसे मेरोभी इच्छा राजसूय यज्ञ करनेकी हुई है, इस लिये तुम राजसूय यज्ञका प्रवन्ध करो । कर्ण बोले हे नृपोत्तम । इस समय सब राजालोग तुम्हारे वशमें हैं, अब तुम ब्राह्मणोंको निमन्त्रण भेजो, हे भरतर्षभ ! अब तुम विधिपूर्वक यज्ञकी सब सामग्री इकट्ठी करो और महायज्ञ राजसूयका आरम्भ करो । हे पृथ्वीनाथ । कर्णके ऐसे वचन सुन राजा दुर्योधनने पुरोहितको बुलाकर कहा कि तुम हमारे लिये दक्षिणा और विधिके सहित राजसूय यज्ञका आरम्भ करो । राजाके ऐसे वचन सुन ब्राह्मण अष्ट पुरोहित कहने लगे, हे कौरवश्रेष्ठ । हे नृपोत्तम । युधिष्ठिरके जीते हुए तुम राजसूय-यज्ञ नहीं कर सकते हो, क्योंकि एक कुलमें दो राजसूय नहीं हो सकती और अभी तुम्हारे पिता धृतराष्ट्रभी जीते हैं, इससेभी तुम राजसूय यज्ञ नहीं कर सकते हो । हे पृथ्वीनाथ । हे राजेन्द्र । आप हमारे वचन सुनिये । राजसूयके समान औरभी यज्ञ है, यदि सब राजालोग तुम्हारे वशमें हैं तो तुम उसी यज्ञको करो, सब राजालोग तुमको धन दें । अब एक हल मंगवाइये और उससे यज्ञभूमिकी ठीक कराइये और वहांपर उत्तम सस्वार किया हुआ यज्ञ रखवाइये, वहांपर सावधान होकर सत्पुरुषोंके करने योग्य विष्णुयज्ञका आरम्भ कीजिये, इस यज्ञका सनातन विष्णुके सिवा और किसीव नहीं किया है, यह महायज्ञमें अष्ट राजसूयके समान है, हे राजेन्द्र । हम आपका कल्याण चाहते हैं, ईश्वर करे यह आपका यज्ञ निर्वन्त समाप्त हो, ब्राह्मणोंके ऐसे वचन सुन राजा दुर्योधनने कर्ण शकुनी और

भाइयोंसे कहा कि हमको ब्राह्मणोंके सब वचन प्रिय लगते हैं, यदि तुम लोगभी स्वीकार करो तो शीघ्र कहो। राजाके वचन सुन सब लोगोंने स्वीकार किया। तब राजाने छल चरानेवाले और चित्रकारीको यज्ञशाला बनानेकी आज्ञा दी। उन्होंने वचन सुनते ही सब बना दिया।

२५४ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय । अनन्तर महा बुद्धिमान विदुरने सब चित्र-कारोंके सहित राजा दुर्योधनसे निवेदन किया कि हे राजन् । हे भारत । यज्ञशाला बन गई और यज्ञ करनेका समयभी आगया ; हमने बहुत धन लगाकर सोनेका हलभी बनवा लिया। विदुरके ऐसे वचन सुन, राजा दुर्योधनने यज्ञ आरम्भ होनेकी आज्ञा दी। तब बहुत धन और बहुत अन्नके सहित यज्ञ आरम्भ हुआ। उस यज्ञमें राजा दुर्योधनने विधिके अनुसार दीक्षा ली। तब राजा धृतराष्ट्र महा यशस्वी विदुर, भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, और यशस्विनी गान्धारी बहुत प्रसन्न हुए।

नन्तर उन्होंने शीघ्र जानवाले दूतोंको राजा और ब्राह्मणोंको बुलानेको भेजा। वे लोग शीघ्र चलनेवाले वाहनोपर चढ़कर चल दिये। नमैंसे एक दूतसे दुःशासनने कहा कि, तुम शीघ्र हीत वनको जाओ और वहाँ विधिपूर्वक आपी पाण्डवोंको न्योता देआवा, तथा वहाँ होनेवाले ब्राह्मणोंकोभी न्यायके अनुसार निमन्त्रण दीजिया। वह दूत पाण्डवोंके पास गया और प्रणाम करके कहने लगा, हे महाराजमें प्रेष्ठ। कुसकुलोत्तम राजा दुर्योधन अपने लालसे पृथ्वीको जीतकर और बहुत धन प्राप्त करके यज्ञ करते हैं, इस लिये वहाँ अनेक राजा और ब्राह्मण जा रहे हैं हमको महात्मा दुर्योधनने आपके समीप भेजा है ; महाराज दुर्योधन आपको यज्ञमें निमन्त्रणा देते हैं और

उनकी इच्छा आपकी यज्ञमें बुलानेकी है, इस लिये आप चलकर उस यज्ञको देखिये। दूतके वचन सुन राजमिह राजा युधिष्ठिर बोले; प्रारब्धहीसे राजा दुर्योधनने इस उत्तम यज्ञका आरम्भ किया, वह पूर्व पुरुषोंकी कीर्तिको बढ़ानेवाले है, हमलोगोंकी इच्छाभी उस यज्ञमें जानेकी है, परन्तु इस समय किसी प्रकार जानहो सकते, क्योंकि हमको तेरह वर्ष वनमें रहकर प्रतिज्ञा पूरी करनी है। महाराजके ऐसे वचन सुन भीम बोले, हे दूत। महाराज धर्मराज युधिष्ठिर उस समय हस्तिनापुर जायगे, जब अस्त्र और शस्त्रोंकी अग्निमें दुर्योधनकी आहुति दे चुकेंगे, तेरह वर्षके पश्चात् जब युद्ध होगा उसमें क्रोधी कर्णके सङ्ग धृतराष्ट्रके पत्नीकी आहुति दी जायगी। तभी हम सब लोग हस्तिनापुरको जायगे, इस यज्ञको महाराज धर्मराजही करेंगे, हमारे सब वचन तुम दुर्योधनसे कह देना। हे राजन् । और किसी पाण्डवोंने कठोर वचन नहीं कहा। वह दूत वहाँसे राजा दुर्योधनके पास गया और सब कह सुनाया। अनन्तर अनेक राजा और महाभाग ब्राह्मण लोग हस्तिनापुरमें आये। राजा दुर्योधनने उन सबकी पूजा शास्त्रविधि और क्रमके अनुसार करी। राजा लोगभी पूजा पाकर बहुत प्रसन्न हुए। राजा धृतराष्ट्र सब कौरवोंके सहित बहुत प्रसन्न होकर विदुरसे बोले, हे विदुर। जिसमें सब लोगोंकी सुख मिले और जिससे सब लोग सन्तुष्ट रहें, तुम वैसाही यत्न करो। धर्म जाननेवाले विदुरने उनकी आज्ञाको स्वीकार कर प्रमाणके अनुसार सब वर्णोंकी पूजा करी। विदुरने प्रसन्न होकर भोजन, पीनेकी वस्तु, माला, सुगन्धि, और वस्त्रोंका उचित प्रवन्ध कर दिया। राजा दुर्योधनने इस प्रकार कुछ दिन डेरोंमें निवास किया, फिर शास्त्र और क्रमके अनुसार सब राजोंकी प्रसन्न करके विदा किया, फिर ब्राह्मणोंको धन देकर उनकोभी

विदा किया । इस प्रकार यज्ञ समाप्त करके कर्ण, शकुनी और अपने भाइयोंके सहित राजा दुर्योधनने हस्तिनापुरमें प्रवेश किया ।

२५५ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय । जब महाधनुषधारी राजा दुर्योधनने नगरमें प्रवेश किया, तो सूत और नगरवासी उनकी स्तुति करने लगे ; उनके ऊपर धानके लावे और चन्दनका चूर्ण वरसने लगा । वहां कोई कहने लगा कि, हे राजन् । यह तुम्हारा यज्ञ प्रारम्भसे निर्बिघ्न समाप्त हुआ । कोई कहने लगे, कि यह तुम्हारा यज्ञ युधिष्ठिरकी यज्ञके ऐसा नहीं हुआ, यह युधिष्ठिरके यज्ञके सोलहें भागकी भी नहीं पाता है, उनके भित्त कहने लगे, कि यह यज्ञ सब यज्ञसे बड़ाकर हुआ है, इसी यज्ञके करनेसे पवित्र होकर ययाति, नहुष, माम्बाता और भरत स्वर्गको गये हैं, इस प्रकारसे अपने भित्तोंके वचन सुनते हुए, राजा दुर्योधनने नगरमें प्रवेश किया । फिर अपने घरमें जाकर माता, पिता, भीष्म, द्रोणाचार्य, और बुद्धिमान विदुरको प्रणाम किया, तथा औरभी सब बूढ़ोंको प्रणाम किया । फिर उनके छोटे भाइयोंने राजा दुर्योधनको प्रणाम किया, अनन्तर राजा भाइयोंके सहित मुख्य आसनपर बैठे । उस समय सबके बीचमें खड़े होकर कर्ण राजासे कहने लगे, हे भरत-श्रेष्ठ । यह तुम्हारा महायज्ञ प्रारम्भहीसे समाप्त हुआ ; अब जिस समय मैं पाण्डवोंको युद्धमें मार चुकूंगा और आप राजसूय यज्ञ करेंगे, तब फिर मैं आपकी पूजा करूंगा । कर्णके वचन सुन महायशस्वी धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन बोले, हे कर्ण । तुमने सत्य कहा, हे नरश्रेष्ठ । जब दुष्ट पाण्डव लोग युद्धमें मार जायेंगे, तब तुम फिर हमारी ऐसी वृद्धि । ऐसा कहकर राजा दुर्योधनने

कर्णकी अपने हृदयसे लगाया, और राजसूय यज्ञका विचार करने लगे । अनन्तर राजेमें श्रेष्ठ राजा दुर्योधन कौरवोंसे बोले, हे कौरवो । वह कौनसा दिन होगा जब हम यज्ञमें श्रेष्ठ राजसूय यज्ञको करेंगे, यह कर्म पाण्डवोंको मारकर करना होगा । ऐसा सुन कर्ण बोले, हे राजन् । मैं जब तक अर्जुनको युद्धमें नहीं मार लगा, तब तक पैर नहीं धोऊंगा, मैं सब कहता हूं, कि बिना अर्जुनके मारे मांस नहीं खाऊंगा, और मद्यभी नहीं पीऊंगा । मैं आजसे सुरा और मांसरहित व्रत करता हूं, कि मुझसे जो भिक्षुक जो कुछ मांगेंगे सोही दे दूंगा । जब इस प्रकारसे कर्णने युद्धमें अर्जुनके मारनेकी प्रतिज्ञा करी, तो महारथ धृतराष्ट्रके पुत्र घोर शब्द करने लगे, उन सबने जाना कि हम पाण्डवोंको जीत लेंगे । अनन्तर महाराज दुर्योधनने सभाको विसर्जन किया, जैसे इन्द्र चैत्ररथमें प्रवेश करते हैं, तैसेही दुर्योधननेभी अपने घरमें प्रवेश किया । वे सब लोगभी अपने अपने घरकी चले गये । महा धनुषधारी पाण्डवोंने जबसे दूतके वचन सुने थे, तबहीसे परम चिन्ता करने लगे, और उनको किसी समय सुख न प्राप्त हुआ, फिर पाण्डवोंके दूतोंने आकर महाराज युधिष्ठिरसे कर्णकी प्रतिज्ञा कह सुनाई । हे महाराज । कर्णकी प्रतिज्ञा सुन उसका अद्भुत पराक्रम विचार तथा उसके अभेद्य कवचकी चिन्ता करके धर्मराज वहुत घबड़ाने लगे । अनन्तर सोचते सोचते और क्लेशोंको विचार महाराजके चित्तको शान्ति न प्राप्त हुई, तब महामा धर्मराजने अनेक हाथी और सुगोंसे भरे हुए दैतव्यकी शोडनेकी इच्छा करी । उधर धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनभी अपने घोर भाइयोंके सहित पृथ्वीका राज करने लगे । भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, और युद्ध जीतनेवाले सूपुत्र कर्णके सङ्ग रहकर राज्यमें सब कार्य

करने लगे, महाराज, दुर्धन सव राजांका प्रिय कार्य करने लगे, और अनका यज्ञ करके ब्राह्मणोंको वहुत दक्षिणा देने लगे । तब वीर दुर्धनने अपने मनमें निश्चय किया कि, धनको देना और भोगनाही इसका फल है । ऐसा विचार अपने भाइयाका प्रियकार्य करने लगे ।

२५६ अध्याय समाप्त ।

घोषयात्रा पर्व समाप्त ।

अथ मृग स्वप्नोद्भव पर्व आरम्भ ।

राजा जनमेजय बाली, है महामुने ! दुर्धनको बुझाकर महाबलवान पाण्डवोंने उस वनमें बस कर कौन कार्य किया, सो आप हमसे कहिये । श्रीवैशम्पायन मुनि बाली, एक दिन कुन्तीपुत्र धर्मराज युधिष्ठिर वनमें सो रहे थे, उसी समय रोते हुए हरिन लोग उनके पास आए । उनका रोते हुए हाव जाड़े खड़े देख राजाधिराज धर्मराजने पूछा कि तुम लोग कौन हो ? और हमसे क्या कहना चाहते हो ? सा कहो । महावश्वी कुन्तीपुत्र पाण्डव-येष्ट धर्मराजके वचन सुन हारन बाली, है महाराज । है भारत । हम लोग हरिण है, आपने जबसे इस वनमें वास किया है, तबसे हमारी जाति नष्ट होगई, इसलिये आप दूसरे वनमें निवास कीजिये, आपके भाई लोग शूर, वीर और शस्त्र विद्याके जाननेवाले हैं, उन्होंने वनमें रहनेवाले जन्तुओंकी नाश कर दिया है, है महामते । अब हम लोग बीजमात्र रह गये हैं, इस लिये आप कृपा कीजिये, है राजेन्द्र युधिष्ठिर ! आपको कृपासे हम फिर भी बच जायेंगे । सब प्राणियोंका हित करनेवाले महाराज धर्मराजने जब उन हरिनोंको कांपते रहे और थाड़ा देखा, तो वहुत दुःखसे भरकर बहने लगे कि तुम लोग जैसा कहते हो हम वैसा ही करेंगे । ऐसा स्वप्न देख कर राजामें येष्ट धिष्ठिर प्रातःकाल उठे, और अपने भाइयोंकी

बुलाकर हरिनोंके ऊपर कृपा करके कहने लगे कि हमसे स्वप्नमें हरिनोंने ऐसा ऐसा कहा है, कि हमारा वंश नष्ट होगया अब आप हमारे ऊपर कृपा कीजिये, उन्होंने सत्यही कहा है, हम लोगोंकी वनमें रहनेवाले जन्तुओं पर कृपा करनी चाहिये, हम लोगोंकी अब एक वर्ष और आठ महीने इस वनमें रहते होंगे, तबसे हम इन्हीं हरिणोंकी खारहे हैं, अब हम लोग फिर मरु देशमें उत्तम काम्यक वनका चल, वह वन वहुत रमणीय तथा वहुत हरिन और घाससे भरा हुआ है ; उसमें जो विन्दसर नामक तलाव है, उसके तटपर विहार करके हम लोग शेष समयको बिता देंगे । धर्मराजकी आज्ञा सुन, धर्म जाननेवालोंमें येष्ट पाण्डव लोग, ब्राह्मण, सङ्ग रहनेवाले इन्द्र सेनादिक सारथी और दूतोंके सहित वहासे चल दिये, वे लाग पवित्र, शुद्ध और जलसे भरें हुए सागोंसे चलते चलते पवित्र और तपस्वियोंके स्थान काम्यक वनमें पहुँचे । जैसे पुण्यात्मा लोग स्वर्गमें प्रवेश करते हैं, तैसे ही भरतकुलयेष्ट पाण्डवोंने, ब्राह्मणोंके सहित काम्यक वनमें प्रवेश किया ।

२५७ अध्याय समाप्त ।

मृगस्वप्नोद्भव पर्व समाप्त ।

अथ ब्रीहिट्रोणि पर्व आरम्भ ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बाली, है राजन् जनमेजय । महात्मा पाण्डवोंको वनमें बसते और दुःख सहते ग्यारह वर्ष बीत गये, सुख करने योग्य पाण्डवोंने फल और मूल खाकर तथा दुःख सहकर इन ग्यारह वर्षोंको व्यतीत किया । महात्मा पाण्डव लोग अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार अपने उचित समयको विचारकर दुःख सहते रहे । महाबाहु राजऋषि युधिष्ठिर अपने कर्मका अपराध और अपने भाइयोंका दुःख देखकर कभी सुखसे नहीं सोते थे । उनकी

जुएके समय और उससे उत्पन्न हुए दुःखोंके विचार करनेसे ऐसी पीड़ा होती थी, जैसे हृदयमें बाण लगनेसे। जिस समय महाराजको कर्णके कठोर वचन स्मरण होते थे, उस समय दीन होकर स्वास लेते थे, और क्रोधके विषसे व्याकुल हो जाते थे। अर्जुन, नकुल, सहदेव, यशस्विनी द्रौपदी और महातेजस्वी तथा सबसे अधिक बलवान् भीम युधिष्ठिरके मुखको देखकर दुःख सहते थे। पुरुषसिंह पाण्डव लोग अपने अच्छे समयकी आता हुआ देख, अपने समयकी उल्हास और क्रोधसे विता रहे थे। उसी समय सत्यवतीके पुत्र महा योगी पाण्डवोंके देखनेकी इच्छावाले, व्यासदेव आए। महात्मा व्यासकी आते देख कुन्तोपुत्र युधिष्ठिर खड़े हुए, और उनको विधिपूर्वक आसन दिया। उनको बिठलाकर इन्द्रोदित धर्मराजभो उनसे कथा सुननेकी इच्छा करके उनके पास बैठ गये। कुन्तोपुत्र युधिष्ठिरने हाथ जोड़कर व्यासकी स्तुति करी। पाण्डवोंको दुर्बल और फलमूल खाते हुए देखकर महाशय्य व्यासको वदत दया आई, और रोकर कहने लगे, हे युधिष्ठिर ! हे महाबाह ! हे धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ ! तुम हमारे वचनोंकी सुनो, विना तप किये कोई पुरुष लोकमें सुख नहीं पाता है ; प्रायः सब लोग सुख और दुःखहोमें पड़े रहते हैं। कैसा भी बुद्धिमान क्यों न हो, और कैसा भी विद्वान् क्यों न हो कोईभी अनन्त सुखको प्राप्त नहीं होता, इस लिये उदय और अस्तका जाननेवाला पण्डित न सोचता है, और न प्रसन्न होता है ; इस लिये पुरुषको उचित है कि, सुख और दुःखके समयको बिता दे। जैसे किसान समयके अनुसार सब काम करता है, तैसेही सबकी करना चाहिये ! तपसे अधिक और कोई वस्तु नहीं है। तपसे मोक्ष प्राप्त होती है, हे भारत ! ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो तपसे न मिल सके। हे युधिष्ठिर !

महात्माओंने धर्मके ये लक्षण कहे हैं—सत्य, कोमलता, क्रोध न करना, दान दम, शम, किसीके सुखको देखकर दुःखी न होना, हिंसा न करना, पवित्रता और इन्द्रियोंकी अपने वशमें रखना, हे महाराज ! यही धर्मके दश लक्षण हैं, इन्हींसे महात्मा लाग पवित्र होते हैं ; अधमी पापी और मूर्खलोग इन दशोंका आदर नहीं करते हैं ; इसीसे वे लोग नीच यानियोंमें जन्म लेते हैं और सुखको प्राप्त नहीं होते। इस लोकमें जो कर्म करता है, वही परलोकमें प्राप्त होता है ; इस लिये शरीरकी तप और नियमोंसे युक्त रखना चाहिये, पुरुष को उचित है, कि अच्छा समय प्राप्त होनेपर प्रसन्न होकर, और दुष्टताको त्यागकर प्रणाम और पूजाकर शक्तिके अनुसार दान करे, सत्य वादीको आयु अधिक होता है, वह अनायासही कोमलताका प्राप्त कर लेता है, क्रोध और दाह रहित पुरुष मोक्षको विरक्त हो जाता है, जितेन्द्रिय और शान्त पुरुषको कभी क्षेम नहीं होता। जिसने अपने मनका वशमें कर लिया है, वह दूसरेकी लक्ष्मीका देखकर दुःखी नहीं होता, जो अन्नका विभाग और दान करता है, वह सदा सुखी रहता है, हिंसा न करनेवाले पुरुषको कभी राग नहीं होता, जो मानने योग्य पुरुषका मान्य करता है, वह उत्तम कुलमें उत्पन्न होता है, जितेन्द्रियको कभी कोई दुःख नहीं होता। जो नियमके अनुसार अपने बुद्धिको अच्छे करता है, वह उसही उत्तम बुद्धिके प्रभावसे अच्छे कुलमें जन्म लेता है, और उसका बुद्धिमान भगवान्। हे महासुन ! दान धर्म और तपमें कौन अधिक गुणवाला है ? और कौन अधिक कठिन है ? ओ व्यासदेव बोले, हे तात ! पृथ्वीमें दानसे कठिन और कोई धर्म नहीं है, क्योंकि पृथ्वीमें पुरुषोंको धनका वदत लाभ रहता है, और वह धन वदत कठिननाईसे प्राप्त होता है,

है। देखा पुरुष अपने प्यारे प्राणांकी आशा छोड़कर समुद्र और जल्लोंमें पुन जाते हैं, हे महामते। कोई पुरुष धनकी वञ्छा में रहे तो और गौरवा करते हैं, कोई धनके लोभमें मागोंमें दौड़ते हैं। और उस दान धर्ममें, उसी दुःखसे उत्पन्न हुए धनकी त्यागना चाहता है, इससे हमारी वृद्धि दानके समान कोई कठिन धर्म नहीं है तथा उत्तम समयमें उत्तम देशमें सत्पात्रका दिया जाता है, वही उत्तम दान कहाता है। जो अन्यायसे उत्पन्न हुआ धन दान दिया जाता है, वह देनेवालेको दुःखसे नहीं छुड़ा सकता है। हे युधिष्ठिर! जो थोड़ा-थोड़ा भी दान उत्तम समयमें सत्पात्रको दिया जाता है, और उस समय मन शुद्ध होता है, तो वह दान देनेके पश्चात् अनन्त फलका होता है। यहा हम एक पुराना इतिहास तुमसे कहते हैं, जो द्रोणी धान देनेसे मुहलकी ल मिला था, सो तुम सुना।

२५८ अध्याय समाप्त ।

महाराज युधिष्ठिर बोले, हे भगवन्! महात्मा मुहलने किस विधिसे और कौनसे समयमें किसको एक द्रोणी धान दान किया। जिस महात्माके दानधर्मसे साक्षात् श्रीकृष्ण भगवान प्रसन्न हुए, हम उनके जन्मको न्य मानते हैं।

श्रीव्यासदेव बोले, हे राजा! कुन्तीक्षेत्रमें एक मुहल नामक ब्राह्मण थे। वह जितेन्द्रिय शीलोज्ज्वलवृत्तिवाले, सत्यवादी, डाह रहित, अतिथिसेवक और क्रियावान थे। उनकी भक्ति कबूतरके समान थी, अर्थात् अधिक संग्रह नहीं करते थे। महा तपस्वी मुहल इष्टो नामक यज्ञ करते थे। वे स्त्री और पुत्रोंके रहित एक पक्षमें भाजन करते थे। वह कबूतरकी वृत्तिसे, एक द्रोणी धान इकट्ठा करते थे, उसीसे क्लृप्त रहित होकर पूर्णमासी

और अमावशका यज्ञ करते थे, शेष अतिथि और देवताओंके देते थे, उससे जो बचता था, उसे खाकर अपने शरीरका निर्व्वाह करते थे। महाभाग मुहलके आयसपर सब पक्षोंमें तीन लोककी स्वामी साक्षात् इष्ट आते थे, महात्मा मुहलल सुनि शीलाञ्ज वृत्ति करके सब पक्षोंमें यज्ञ समाप्त करके अतिथियोंको अन्न दिया करते थे, और दान करते समय परम प्रसन्न रहते थे। महात्मा मुहलका एक द्रोणी धान, अतिथियोंको देखकर बढ़ जाता था, वे दुष्टतासे रहित थे, इसीसे उनके एक द्रोणी अन्नमें सौ पणित ब्राह्मण भोजन कर लेते थे। सुनिके त्याग वलसे वह अन्न बढ़ता जाता था। इस प्रकार दान करनेवाले उत्तम वृत्तिधारी महात्मा मुहलका नाम सुन कर दिग्वासा दुर्व्वासा उनके पास आए। हे पाण्डव दुर्व्वासान अद्भुत पागलका वेष बनाया, और अनक प्रकारकी कठोर वाणी बोलते हुए आए और कहने लगे, हे विजित्तम! हम अन्नकी इच्छा करके तुम्हारे पास आए हैं। महासुनि मुहलने कहा, कि आपने वृद्ध अच्छा किया। ऐसा कहकर दुवासाको पाय, अर्घ, और आचमन दिया। उसके पश्चात् भूख दुर्व्वासाका, अतिथि मुहलने अन्न दिया, और व्रतधारी मुहलने, उस पागलसे परम अज्ञा करो। फिर पागलरूपधारी दुर्व्वासान, वह खाद भरा अन्न सब खालिया। भाजन करनेसे जा अन्न बच रहा उसका उस पागलने अपने शरीरमें लगा लिया, और फिर जधरसे आया था जधरहीका बला गया। इस प्रकार जब बुद्धिमान शीलोञ्जवृत्ति मुहलने, दूसरे पक्षमें यज्ञ किया तो फिर उसी प्रकारसे दुर्व्वासा आए, और सब अन्न खागये। तब महात्मा मुहल भूखही रहकर, शीलोञ्जवृत्ति करने लगे। इस प्रकार भूखा रहने पर भी कार्य करनेसे भी भूख उनकी दुःख न दे सकी। महात्मा

मुद्गलकी क्रोध, दुष्टता, अभिमान और बुद्धि भ्रम भी न हुआ; स्त्री पुत्र भी भूखे रहने लगे ! इस प्रकार मुनिश्रेष्ठ दुर्वासाने कुँवार मुद्गलका सब अन्न खा लिया; परन्तु शुद्ध मुद्गलको मनमें कुछ भी विकार न देखा, वरन उनका मन सदा शुद्धही पाया। तब महात्मा दुर्वासा प्रसन्न होकर मुद्गलसे बोले, कि इस लोकमें तुम्हारे समान शुद्ध दानी कोई नहीं है, तुमने अपने धैर्यसे क्षुधाका धर्म और जिह्वाको शक्तिको जीत लिया, यह जिह्वा रक्तको चाहनेवाली है, इस लिये पुरुषको अवश्यही रसोकी ओर खींचती है, प्राण भोजनसे स्थिर रहते हैं, मन बड़ा चञ्चल है, मनको एकाग्र करके, इन्द्रियोंको वशमें रखना यहो तप कहाता है, परिश्रमसे उत्पन्न किये धनको शुद्ध मनसे देना उद्भूत कठिन है; तुमने यह सब कर्म उचित रीतिसे किया, हम तुमसे वद्भूत सुखी हैं, तुम्हारे शरीरमें इन्द्रियोंका जीतना, धैर्य, अन्नादिक वाटनेकी रीति शम, दम, दया, सत्य, और धर्म स्थित है; तुमने अपने कर्मोंसे स्वर्गलोकको जीत लिया है; तुम परम गतिको प्राप्त हुए हो, तुम्हारे दानको धन्य है, तुम्हारे दानको देवता प्रशंसा करते हैं, तुम इसी शरीरसे स्वर्गको जाओगे; हे सत्तम व्रतधारी ! तुम धन्य हो। जिस समय दुर्वासामुनि, मुद्गलसे ऐसा कह रहे थे, उसी समय विमानपर बैठकर देवतोंका दूत आया। वह विमान दिव्य सुगन्ध घण्टे घुघुरु हंस और सारससे युक्त था, तथा इच्छा अनुसार चलता था, वह देवदूत मुद्गलसे कहने लगा कि हे महामुने ! तुमने अपने कर्मोंसे इस विमानको प्राप्त किया है, अब इसपर बैठो तुम परमसिद्धिको प्राप्त हुए हो। तब दूतके ऐसे वचन सुन मुद्गल मुनि बोले, हे देवदूत ! हमारी इच्छा है, कि आपसे स्वर्गवासियोंके लोको सुनें, आप कहिये स्वर्गमें रहनेवालोंमें

क्या गुण हैं ? उनका क्या धर्म और क्या नियम हैं ? स्वर्गमें क्या सुख और क्या दीप है ? हे विभो ! हम आपको अपना मित्र जानकर वे सब बातें पूछते हैं, क्योंकि कुलीन महात्मा अपने मित्रको उद्धार करनेवाला कहा है हमारे किये हुए प्रश्नोंका जो सत्य और उचित उत्तर हो सो कहिये, उसको सुनकर मैं उचित होगा सो करूँगे।

२५६ अध्याय समाप्त ।

देवदूत बोले, हे महर्षे ! तुम्हारी बुद्धि वद्भूत अच्छी है, क्योंकि आप मानने योग्य परम उत्तम स्वर्गके सुखको भी मूर्खके समान विचार रहे हैं, इस लोकसे ऊपर स्वर्गलोक है, उसीको स्वर्लोक भी कहते हैं। उसके ऊपर एक देवतोंका मार्ग है, उसमें सदा ही देवतोंने विमान घूमा करते हैं। हे मुद्गल ! उस मार्गमें बिना तप और यज्ञ किये कोई नहीं जा सकता है, वहाँ असत्यवादों और नास्तिकोंकी गति नहीं है, उस स्थानपर धर्मात्मा मनको वश करनेवाले, शान्त, जितेन्द्रिय, साधु, दान, धर्म करनेवाले और युद्धमें सरे हुए वीरलोग जाते हैं, वहाँ शम और दमस्त्वपी धर्म करनेसे उत्तम कर्म करनेवाले महात्मा लोग जाते हैं। हे ब्रह्मन् ! देवता साय विष्णुदेव, महर्षि, यम, धाम, गन्धर्व और अप्सरादि देवजातियोंके लोक भिन्न भिन्न हैं। वे सब लोक परम प्रकाशमान सब सुख और तजोसे भरे हुए परम सुन्दर हैं। वहाँ भयानक और अशुभ वस्तु कुछ नहीं है, वहाँ मेरु पर्वत और देवतोंकी अनेक वाटिका है, वहाँ मेरु पर्वत सोनिका है। उसके ऊपर नन्दन आदि अनेक वाग लगे हैं, उनमें पुरुष कर्म करनेवाले महात्मा लोग विहार करते हैं, वहाँ रूख, प्यास, ग्लानि, शीत और गर्मी कुछ नहीं है, वहाँ वद्भूत अच्छे सुगन्धित फल हैं; वहाँका वायु वद्भूत शीतल है, वहाँके प्रभु

कानकी वज्रत प्यारे लगते हैं। स्वर्गमें जो कपया-
त्ताप और दुःख वहाँ है। हे मुने! स्वर्गलोक
ऐसा है, उसको मज्जात्वा अपने कर्मसे प्राप्त कर
सकते हैं, वहाँके रहनेवालोंके शरीर कर्मके
अनुसार अग्निसे होते हैं। वहाँ कोई माता
और पितासे उत्पन्न नहीं होता। वहाँ किसीको
पसीना, दुर्गन्धि, विष्टा, मूत्र और रज नहीं
होते। वहाँ देवतोंकी दिव्य गन्धवाली और
मनोहर माला कभी कुम्हलाती नहीं है। हे
ब्राह्मण! स्वर्गवासी लोग दिव्य विमानोंपर
बैठकर घूमते हैं। वहाँ दाह, शोक, घटाई,
मोह और दुष्टता किसीकी नहीं है। हे
महामुने! उन स्वर्गमें मज्जात्वा लोग निवास
करते हैं, हे मुनिराज! इस प्रकार एक लोकके
ऊपर दूसरा लोक है, जो जिसमें ऊपर है वह
अपने नीचेवाले लोककी पुष्टि और अधिक
गुणवान मानता है। हे ब्रह्मन्! उन सबके
आगे ब्राह्मणोंके लोक परम सुन्दर और तेजसे
रि हैं। उन्हींमें अपने शुभ कर्मोंसे पवित्र
होकर ऋषि लोग जाते हैं। उन स्थानमें रिभ
मक देवता रहते हैं, वे देवतोंके भी देवता
हैं, उनके लोकसे आगे लोक कोई नहीं है।
मता भी उनकी पूजा करते हैं, वे सब लोक
अनेही तेजसे प्रकाशमान रहते हैं, उनमें सब
हि प्राप्त होती है, उनमें रहनेवालोंकी स्त्री,
और किसी वस्तुका दुःख नहीं है, वे लोग
भी आहुति नहीं देते और न अमृत भोजन
ते हैं, उनलोगोंका शरीर दिव्य है, उसको
ई नहीं देख सकता है, उन्हें सुखकी कुछ
हा नहीं है, वे लोग देवतोंके देवता और
तन हैं, फलके अन्तमें मज्जा प्रलय होने-
उनका शरीर नष्ट नहीं होता उनकी
पा, मृत्यु, सुख, प्रीति, दुःख, रोग और
कुछ नहीं है। हे सुहृन्! देवता लोग
भी उन गतिकी इच्छा करते हैं, वह गति
परम दर्लभ और अगोचर है, ये तीस प्रकारके

देवता हैं, जिनके लोकोंमें बुद्धिमान दानी लोग
विधिपूर्वक अच्छे कर्म नियम और दान करके
जाते हैं, वही दानियोंकी उत्तम गति तुमको
प्राप्त हुई है। अब तुम अपने तपके तेजसे
प्रकाशमान होकर उस सुखकी भोग करो। हे
विप्र! यही स्वर्गादि उत्तम लोकोंकी सुख हैं, हमने
स्वर्गके गुण तुमसे कहे, आगे स्वर्गके दोषोंका
वर्णन करते हैं। हे सुहृन्! पुरुष स्वर्गमें जाकर
कर्मोंका जो कुछ फल भोगता है उसके आगे
और कुछ नहीं कर सकता, इनमें कर्मका
मूलकट हो जाता है, कर्म नष्ट होनेसे वह
मनुष्य पुनः पृथ्वीमें गिरा दिया जाता है; यही
स्वर्गका बड़ा भारी दोष है, और असन्तोष,
दूसरेकी परम लक्ष्मीकी देखकर दाह होना,
तथा नीचे स्थानमें जन्म होना ये ही परम
दोष हैं। वहाँसे जो गिराया जाता है उसकी
बुद्धि नष्ट हो जाती है, और वह रजोगुणसे
भर जाता है। जिस समय किसीके स्वर्गसे
गिरनेके दिन आते हैं, तब उसकी माला
सूखने लगती है; उसी दिनसे उसको अपने
गिरनेका भय होजाता है। हे सुहृन्! ये
दाहण दुःख ब्रह्मादिक देवतोंको भी होते हैं
और इनकी छोड़कर स्वर्गमें एक और भी
परम अष्टगुण है कि जो वहाँसे गिराया जाता
है, उसका जन्म मनुष्यके यहाँ होता है, मनुष्य-
मेंभी वह महाभाग और सुखी होता है;
यदि वहाँ उसने अच्छा कर्म न किया तो परम
नीचताकी प्राप्त होता है। हे ब्राह्मण! यह
कर्म-भूमि इसीको फलभूमि भी कहते हैं।

सुहृन् बोलो, हे देवदूत तुमने स्वर्ग लोकके
जड़त दोष वर्णन किया, अब जो निर्दोषलोक
हों, उसका वर्णन हमसे कीजिये। देवदूत बोले
हे ब्राह्मण! ब्रह्मलोकसे ऊपर विष्णुपद है,
वह शुद्ध सनातन और ज्योतिस्वरूप है उसको
परब्रह्म कहते हैं वहाँ कोई विषयी, पाखण्डी,
लोभी, क्रोधी, मोह और द्वेषसे भरा हुआ

पुरुष नहीं जाता है। परन्तु समता, अहंकार और वैररहित महात्मा जाते हैं। हमने तुमसे यह सब कहा। हे साधो। अब तुम हमसे जो पूछोगे सो हम कृपा करके कहेंगे; अब तुम चलनेमें विलम्ब मत करो। श्रीआसदेव बोले, देवदूतको ऐसे वचन सुन मुझल मुनि अपनी बुद्धिसे विचार करने लगे, और विचार कर देवदूतसे बोले, हे देवदूत। हम तुमको प्रणाम करते हैं, तुम्हारी जहां इच्छा हो वहांको चले जाओ, हम ऐसे दोषोंसे भरे जग स्वर्गमें जाना नहीं चाहते, हम ऐसे सुखसे सम्बन्ध नहीं रखते जहांसे गिरनेके समय महा दुःख और घोर पश्चान्नाप हो, ऐसे स्थानमें नहीं जाना चाहिये, हम अपने वनहींको स्वर्ग समझते हैं, यहां अनेक देवता घूमनेको आते हैं, जहां जाकर कोई सोच और व्यथा नहीं होती है, जहांसे कभी कोई नहीं गिरता हम उसी स्थानमें जाना चाहते हैं। ऐसा कहकर मुझलने देवदूतको विदा किया और आप धर्मपूर्वक शीलोच्छ्व वृत्ति करने लगे। फिर स्तुति, निन्दा ढेला काठ, पत्थर और सोनेको समान ही समझने लगे। इस प्रकार ज्ञान ध्यान और योगसे पवित्र होकर कुछ कालमें पवित्रबुद्धि प्राप्त करिके सनातन मोक्षको प्राप्त हुए। हे कौन्तेय। अब आपभी शोकको परित्याग कीजिये, आप राज्यसे भट्ट हुए हैं, परन्तु फिर उसी राज्यको तपके बलसे पावेंगे। पुरुषको सुखके पश्चात् दुःख और दुःखके पश्चात् सुख हुआ ही करता है, ये दोनों इस प्रकार घूमते हैं जैसे रथके पहिये। हे महापराकमी! तेरह वर्षके पश्चात् तुम अपने वंशके राज्यको प्राप्त करोगे, अब तुम अपने मनके दुःखका दूर करो।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, भगवान बुद्धिमान व्यासदेव शुविष्टिरसे ऐसा कहकर तप करनेकी इच्छासे फिर अपने आश्रमको चले गये।

२६० अध्याय समाप्त।

आगे द्रौपदी हरण पर्व लिखते हैं।

राजा जनमेजय बोले, हे द्विजोत्तम! जब महात्मा पाण्डव लोग इस प्रकार वनमें रहकर मुनियोंसे विचित्र कथा सुनते हुए विचार करते थे, और सूर्यकी दी हुई अक्षयवीकी बनी हुए अन्नसे द्रौपदीके खानेतक ब्राह्मण और अतिथियोंको तप करते थे, तथा वनमें उत्पन्न हुए अनेक प्रकारके हरिणोंका मांस खाकर रहते थे। तब दुरात्मा दुर्योधन आदि धृतराष्ट्रके पुत्रोंने उनके सङ्ग कैसा वर्त्ताव किया हे वैशम्पायन। हे भगवान्। हे महामने आप इन सब कथाओंको हमसे कहिये हम जानते हैं, कि धृतराष्ट्रके पुत्र, शकुनी, दुःशासन और कर्णके वचनोंमें रहते थे।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज। जब दुर्योधनने पाण्डवोंकी वृत्ति नगरवासियों समान सुनी, तो उनकी ओरसे अपने चित्त पाप धारण किया। उसी प्रकार कपटी दुरात्मा कर्ण और दुःशासनादिकोंके सङ्ग अनेक प्रकार दुष्टसम्पत्ती करने लगा। उसी समय महा तपस्वी महायशस्वी धर्मात्मा दुर्वास मुनि अपने दस सहस्र शिष्योंके सहित आए। महा क्रोध दुर्वासको देख दुर्योधन बहुत नम्र भाव अपने भाइयोंके सहित खड़े हो गये, और उनके अतिथिके समान सत्कार किया। राजा दुर्योधन आपही सेवकके समान उनकी सेवा करने लगे। दुर्योधन उनके शापसे डरकर दिन रात अलस रहिय होकर दुर्वास मुनिका सत्कार करने लगे। कभी दुर्वास मुनि कहते थे, कि नराधिप। हमको भूख लगी है, खानेका देना। ऐसा कहकर खान करनेको जाते थे, और बहुत बलवत् विलम्ब करके लौटते थे, आकर राजा कह देते थे कि हमको भूख नहीं है, हम न खायेंगे। कभी अकस्मात् कहते थे, कि हम भोजन करायो। कभी आधी रातकी उत्तम भोजन बनवाकर नहीं खाते थे, और उस

निन्दा करने लगते थे। इस प्रकार व्यवहार करनेवाले दुर्वासा मुनिकी सेवा करनेमें राजा दुर्योधनने कुछ कल और क्रोध न किया। तब दुर्वासा मुनि प्रसन्न होकर कहने लगे, हे भारत ! तुम्हारा कल्याण ही, जगतमें कोई ऐसी धर्मकी वस्तु नहीं है, जो हमारे प्रसन्न होनेसे न मिल सके, अब जो तुम्हारी इच्छा ही सो हमसे मांगो हम तुम्हें देंगे।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महाऋषि जितेन्द्रित दुर्वासा मुनिके ऐसे वचन सुन राजा दुर्योधनने जाना कि हमारा जन्म फिर हुआ। उन्होंने पछिलेही कर्ण और द्रुपदसे, यह सम्मति कर रखी थी, कि दुर्वासा मुनिसे यह वरदान मांगेंगे, अनन्तर राजा दुर्योधन बहुत सन्न होकर शिष्य सहित दुर्वासासे कहने लगे, हे ब्रह्मन् ! जिस प्रकार आप हमारे यज्ञांतिथि होकर आये हैं, तैसेही हमारे भाई महाराज युधिष्ठिरके यज्ञ जाइये ; वे हमारे लमें बड़े, श्रेष्ठ, धर्मात्मा, गुणवान और शीलवान हैं, आज कल भाइयोंके सहित वनमें आस करते हैं। उनके यहां आप उस समय जाइयेगा, जब यशस्विनी राजपत्नी सुन्दरी द्रौपदी ब्राह्मण और अपने पतियोंको भोजन करा चुकी हों, और आपभी खाकर सुखसे बैठे हों। दुर्वासा मुनिने दुर्योधनसे कहा, कि तुम्हारी प्रीतिसे हम ऐसाही करेंगे। ऐसा कहकर दुर्वासा अपने स्थानको चले गये, और राजा दुर्योधनने अपने शरीरको कृतार्थ माना। दुर्योधनने प्रसन्न होकर कर्णका हाथ पकड़ लिया, कर्णभी बहुत प्रसन्न होकर भाइयोंके सहित राजासे बोले, हे कौरव ! प्रारब्धसे तुम्हारे सब कार्य सिद्ध होते हैं, प्रारब्धसे तुम्हारी वृद्धि होती है, प्रारब्धसे तुम्हारे शत्रु-लोग घोर दुःख सागरमें पड़े हैं, अब पाण्डव लोग दुर्वासाकी क्रोधरूपी अग्निमें जल जायेंगे, वे अपने किये हुए पापोंसे अपार अन्धकारमें

पड़ेंगे, श्रीवैशम्पायन मुनि बोले हे राजन् ! इस प्रकार वे दुर्योधनादिक कली लोग बहुत प्रसन्न हुए, और हंसते हंसते अपने घरको चले गये।

२६१ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर कभी सुखसे बैठे हुए पाण्डवोंके पास दश सहस्र शिष्योंके सहित, दुर्वासा मुनि आए। उस समय द्रौपदीभी खा चुकी थी, दुर्वासाकी आति देख श्रीमान् महाराज युधिष्ठिर भाइयों सहित खड़े होगए, और हाथ जोड़कर उत्तम आसन पर बिठलाया। फिर उनकी यथायोग्य पूजा करके भोजन करनेको कहा, महाराज बोले, हे भगवन् ! आप नित्यकर्म करके शीघ्र लौट आइये। पापरहित दुर्वासा मुनिभी शिष्योंके सहित स्नान करनेको चले गये, और मनमें विचारने लगे, कि वे हमको शिष्योंके सहित कहांसे भोजन करावेंगे। जब मुनि लोग सावधान होकर स्नान करने लगे उसी समय स्त्रियोंमें श्रेष्ठ पतिव्रता द्रौपदी उनके लिये अन्नका सींच करने लगी परन्तु कहीं अन्नका ठीक न देखा। तब द्रौपदीने अपने मनसे कष्ट-विनाशक कृष्णका ध्यान किया। द्रौपदी बोली हे कृष्ण ! हे देवकीनन्दन ! हे अविनाशी ! हे वासुदेव ! हे जगन्नाथ ! हे शरणागत दुःख विनाशन ! हे जगतके आत्मा ! हे जगतके कर्त्ता ! हे जगतके नाशक ! हे नाथ ! हे शरणागत पालक ! हे गोपाल ! हे प्रजापाल ! हे परब्रह्म ! हे चित्तकी वृत्तियोंकी चलानेवाले ! मैं तुमको प्रणाम करती हूँ, हे श्रेष्ठ ! हे वरदान देनेवाले ! हे अनन्त ! तुम अशरणोंके शरण देनेवाले हो, हे पुराणपुरुष ! तुमको प्राण, मन और इन्द्री नहीं जान सकते हैं, तुम जगतके स्वामी हो, तुमहीको परमस्वामी कहते हैं, तुम शरणागतको रक्षा करते हो,

इस लिये हम तुम्हारी शरण हैं ; तुम हमारी रक्षा करो; तुम नीले कमलके समान वरणवाले, लाल कमलके समान नेत्रवाले, पीताम्बर और कौस्तुभ धारी हो, तुम्ही जगतके आदि और अन्त हो, तुम्ही-की परायण कहते हैं ; तुम्ही ज्योतिः स्वरूप परब्रह्म हो, आप जगतकी आत्मा हो, तुम्हारे सब ओर सुख हैं तुम्ही सब जगतके बीज हो, तुमही सब सस्यदाके स्थान हो, हे देवेश । जो पुरुष तुमकी अपना स्वामी मानता है उसको किसी आपत्तिमें भय नहीं होता, जैसे पहिले तुमने सुभको सभामें दुःशासनसे छुड़ाया था, तैसीही इस कष्टमें भी उद्धार करो । और्वैशम्पायन मुनि बोले, जगतके स्वामी भक्तवत्सल देवतोंके देवता कृष्णने द्रौपदीकी ऐसी स्तुति सुन उनके महाकष्टको जान लिया । अपने वास सेजपर बैठी हुई रुक्मिणीकी छोड़ हारिकासे श्रीकृष्ण दौड़े और बहृत शीघ्र द्रौपदीके पास आ गए । श्रीकृष्णको देखकर द्रौपदीने प्रसन्न होकर प्रणाम किया और दुर्वासा मुनिके आनेका सब समाचार कह सुनाया । तब कृष्णने कहा, कि हे द्रौपदी । मैं भूखसे अत्यन्त व्याकुल हो रहा हूं, हमको शीघ्र भोजन दो । तब द्रौपदीने लज्जित होकर कहा कि स्वर्गकी दी हुई वटुईमें मेरे भोजन करने तक अन्न रहता है, हे देव । अब मैं भोजन कर चुकी हूं, इससे कुछ नहीं है । तब कमलनेत्र कृष्णने कहा, हे द्रौपदी । मुझे बहृत भूख लगी है, इससे विलम्ब करनेका समय नहीं है, शीघ्र वटुई लाकर हमें दिखा दो । तब द्रौपदीने वटुई लाकर दिखा दी । कृष्णने उसमें एक चावल लगा हुआ देखकर खालिया और द्रौपदीसे कहा, कि इस चावलसे जगतके आत्मा यज्ञका भोग करने वाली परमेश्वर प्रसन्न हों । पथातलेश विनाशक महाबाहु कृष्णने सहदेवसे कहा, कि तुम

शीघ्र जाओ और सब मुनियोंकी भोजनके लिये शीघ्र बुलाओ । तब महायशस्वी सहदेव शीघ्र मुनियोंको बुलाने गये । दुर्वासा आदि मुनिभी ज्ञान और सन्ध्या कर चुके थे, परन्तु सब मुनि अत्यन्त तप्त होगये थे और डकार आने लगे थे । तब दुर्वासा मुनिको देखकर सब शिष्य लोग कहने लगे, हे विप्रर्षे ! आप राजाके यहां भोजन बनवाकर ज्ञान करनेकी आये हैं और अब कण्ठ तक पेट भर गया । अब वहां जाकर हम कैसे खायेंगे ? हम राजाके यहां जाकर उनसे क्या कहेंगे ? और क्या करेंगे ? दुर्वासा मुनि बोले, कि राजर्षि युधिष्ठिरके यहां हम लोगोंने वृथाही भोजन बनवाया, इससे हमने उनका महा अपराध किया है, ऐसा न हो कि वे लोग हमको अपने क्रोध भरे नेत्रोंसे भस्म कर दें, मैं ब्रह्मा राजर्षि अश्वरीषके प्रभावकी शरण करके हरिमर्तोसे बहृत डरता हूं, सब पाण्डव लोग महात्मा, धार्मिक, शूर, विद्वान्, यती और तपस्वी हैं ; वे लोग उत्तम आचार करनेवाले और कृष्णके भक्त हैं, इस लिये हम लोगोंकी इस प्रकार भस्म कर सकते हैं कैसे स्वर्गके देवकी अग्नि । इस लिये उन लोगोंकी बिना पूछेही भाग जाना चाहिये ।

और्वैशम्पायन मुनि बोले, अपने गुरु दुर्वासा मुनिके ऐसे वचन सुन, पाण्डवोंसे डरकर सहदेव मुनि लोग दश दिशाओंको भाग गये, सहदेव भी उनकी नदीपर न पाकर उस वन चारों ओर दंढ़ने लगे । तब वहांके रक्षकोंने मुनियोंने सहदेवसे कह दिया, कि वे महात्मा लोग भाग गये । अनन्तर सहदेवने यह सन्तान्त महाराज युधिष्ठिरसे विवेदन कर दिया तब महात्मा पाण्डव लोग कुछ समय तब दुर्वासाके लौटनेका मार्ग देखते रहे, अकस्मात् आधी रातकी आकर दुर्वासा की झल्लेंगे, इस प्रारब्धके दुःखसे हम

कैसे पार होगे । जहाँ इस प्रकारसे पाण्डव लोग विचार कर रहे थे, और बार बार जंचे खास ले रहे थे, तहाँ श्रीकृष्ण पत्यक्त होकर आए और कहने लगे, कि हँ पाण्डवों । महाक्रोधी दुर्वासा मुनि तुम लोगोंको दुःख देंगे, ऐसा विचार कर और द्रौपदीका ध्यान देखकर मैं शीघ्र तुम्हारे पास आता हँ ; दुर्वासा मुनिसे तुम लोगोंको किञ्चित् भय नहीं है, वे तुम्हारे डरसे पहिलेही भाग गये हैं । जो लोग सदा धर्म करते हैं उनकी कभी दुःख नहीं होता, तुम्हारा कल्याण ही । हम द्वारिकाको जाते हैं, इस लिये आज्ञा दो ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, श्रीकृष्णके वचन सुन द्रौपदी सहित सब पाण्डव लोग प्रसन्न हुए और आनन्दपूर्वक कृष्णसे कहने लगे, हे गोविन्द । हम दुःखसागरमें डूबते थे, तुमने सबके समान हमारा उद्धार किया, तुम्हारा कल्याण ही द्वारिकाको जाओ । पाण्डवोंकी ऐसी आज्ञाको सुन श्रीकृष्ण द्वारिकाको चले गये । महाभाग पाण्डव लोग भी प्रसन्नता पूर्वक वनोंको देखते हुए विहार करने लगे । हे राजन् । तुमने जा पूछा था सो हमने कहा । इस प्रकारसे दुष्ट धृतराष्ट्रपुत्र वनवासी पाण्डवोंके सङ्ग दुर्व्यवहार किया करते थे ।

२६२ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, इस प्रकार महा-रथ भरतकुल अष्ट पाण्डव लोग उस अनेक हरिनोसे भरे हुए काम्यक वनमें देवतोंके समान विहार करने लगे । सब ऋतुओंमें उत्तम हुए अनेक फूलोंको देखते हुए और अनेक वनोंमें रहते हुए विहार करने लगे । इसके समान पाण्डव लोग सदाही वनमें आखेट करते थे । एक दिन वे सब पुष्पसिंह शत्रुनाशन पाण्डव लोग चारों दिशाको आखेट खेलने गये, और द्रौपदीको लगविन्दकी आज्ञासे

आयमहीये छोड़ गये थे, और महा तेजस्वी परोक्षित धौम्य मुनि भी वहाँ रह गये थे । उसी समय महायशस्वी वृद्धचक्रके पुत्र सिन्धु देशके राजा विवाह करनेको इच्छासे शाल्व-देशको जाते थे । उनके सङ्ग राजाओंके योग्य सेना सेवक और अनेक राजपुत्रभी थे, और मार्गमें काम्यक वनमें ठहर गये । उस निर्जन वनमें उन्होंने पाण्डवोंकी प्यारी स्त्री द्रौपदीको अपने द्वारपर खड़ी हुई देखा ; द्रौपदी अपने तेजसे प्रकाशमान हो रही थी उसके तेजसे वह वन ऐसा प्रकाशमान हो रहा था, जैसे नीला मेघ विजुलीसे । उनकी सेनाके सब लोग हाय जोड़कर द्रौपदीको देखने लगे और कहने लगे, क्या यह कोई अप्सरा है ? या देवकन्या है ? अथवा देवतोंकी बनाई हुई कोई माया है । द्रौपदीको देखकर सिन्धु देशके राजा वृद्धचक्रके पुत्र जयद्रथ विस्मित हो गये, और उनके चित्तमें दुष्टता आगई । अनन्तर जयद्रथके कामसे पोषित होकर राजा कोटिकाख्यसे कहा, कि यह सुन्दरी किसकी स्त्री है ? हमें जान पड़ता है, कि यह मानुषी है, यदि यह स्त्री हमको मिले तो विवाहसे कुछ प्रयोजन नहीं है, मैं इसीको लेकर अपने घरकी चला जाऊंगा, हे सौम्य । तुम इसके पास जाकर पूछो कि तुम कौन हो ? कहाको ही ? और इस काटोंसे भरे हुए वनमें क्यों आई हो ? यदि यह लोक-सुन्दरी उत्तम मुख दांत और पतली कमर-वाली मेरे वशमें हा जाय तो मैं कृतकृत्य हो जाऊंगा, हे कोटिकाख्य । तुम इसके पास जाओ और पूछो कि तुम्हारा स्वामी कौन है । जयद्रथके ऐसे वचन सुन कुण्डलधारी कोटिकाख्य अपने रथसे उतरा और द्रौपदीके पास जाकर इस प्रकार पूछने लगा, जैसे कोई सियार सिंहकी स्त्रीसे पूछता है ।

२६३ अध्याय समाप्त ।

कोटिकाख्य बोला, हे सुन्दर भौह वाली । तू कौन है ? और इस कदम्बकी शाखाको पकड़े यहां क्यों खड़ी है ? तू इस वनमें ऐसी प्रकाशमान है, जैसे रात्रिमें पवनसे कम्पित होकर अग्निकी ज्वाला प्रकाशित होती है, तुम अपने रूपसे अत्यन्त प्रकाशमान हो. क्या इस वनमें तुम कुछभी नहीं डरती हो ? तुम कोई देवी हो ? कि यक्षी हो ? कि दानवी हो ? अथवा अप्सरा हो ? वा किसी उत्तम दैत्यकी स्त्री हो ? अथवा साक्षात् सर्पराजकी पुत्री हो ? या इस वनकी देवता हो ? अथवा किसी निशाचरकी स्त्री हो ? या राजा, वरुन, यम, कुबेर, चन्द्रमा, धाता, विधाता, सूर्य, इन्द्र, आदि किसीकी स्त्री हो ? हम तुमको नहीं जानते, न तुम्हारे स्वामीकी जानते हैं, इसीसे यह प्रश्न करते हैं, हे भट्टे ! हम तुम्हारे मानकी बढ़ाकर तुम्हारे नाथकी और तुम्हारी जन्मभूमिकी जानना चाहते हैं, तुम हमसे अपने पति बन्धु और कुलका वर्णन करो और यह भी कहो कि तुम इस वनमें क्या करती हो ? मैं राजा सुरथका पुत्र हूं, मेरा नाम कोटिकाख्य है, ये जो सीनेके रथमें अग्निके समान तेजस्वी पुरुष बैठा है, जिसके नेत्र कमलके समान सुन्दर हैं, इस वीरका नाम क्षेमङ्कर है, और यह त्रिगर्त देशका राजा है, उसके आगे जो महा धनुष-धारी राजपुत्र बैठा है, जिसके नेत्र बह्मत बड़े हैं, जो तुम्हारी ओर देख रहा है, वह कुलिन्द देशके राजाका पुत्र है, यह सदाहो पर्वतपर निवास करता है, यह जो तड़ागके समीप श्याम-सुन्दर युवा पुरुष खड़ा है, सो अयोध्याके राजा सुभवका पुत्र है, हे सुन्दरी ! यह सब शत्रुओंका नाश करता है, हे सुभगे ! जिसके रथके पीछे बारह सौवार देशके राजपुत्र जाते हैं, जां लाल घोड़ोंके रथोंपर जलती हुई अग्निके समान बैठे हैं, उनके नाम ये हैं, अङ्गा-

रक, पुञ्जर, गुप्तक, शत्रुञ्जय, सञ्जय सुप्र वृद्ध, भयङ्कर, भमर, रवि, सूर, प्रतप, और कुह्न; जिसके पीछे छः सहस्र रथी अनेक हाथी घोड़े और पदाती जाते हैं, वही सौवीर देशका राजा जयद्रथ है, ये जा उनके पीछे महाबलवान युवा पुरुष जाते हैं, इनके नाम बलाहक और अनीकविदारणादि हैं, ये सब राजा जयद्रथके भाई हैं, इनसे रक्षित होकर राजा जयद्रथ इस प्रकार विराजमान हो रहे हैं, कि जैसे मरुतगणसे इन्द्र, हे सुकेशी ! हम तुमको नहीं जानते हैं, इससे कहो कि तुम किसको बेटी हो ?

२६४ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन सुनि बोले, शिवीवश श्रेष्ठ कोटिकाख्यके ऐसे वचन सुन राजपुत्री द्रौपदीने कदम्बकी शाखा छोड़ दो, और अपने वस्त्रको समाल तथा उस मूर्खको ओर देखकर बोली, हे नरेन्द्रपुत्र ! मैं तुमको जानतो हूं, मेरे समान कोई स्त्री तुमसे बात नहीं कर सकती है, यहां कोई स्त्री वा पुरुष नहीं है जो तेरे वचनका उत्तर दे, मैं इस समय यहां अकेली हूं, इस लिये तेरे वचनका उत्तर नहीं दूंगी, क्योंकि धर्म शास्त्रमें लिखा है, कि अकेली स्त्री किसीसे बात न करे, परन्तु मैं तुमकी जानती हूं, तू राजा सुरथका पुत्र है, और तेरा नाम कोटिकाख्य है, इस लिये तुमसे अपने वस्त्र और प्रसिद्ध वशका वर्णन करतो हूं, हे शैव्य ! मैं राजा द्रुपदकी पुत्री हूं, मेरा नाम द्रौपदी है; प्रासङ्ग खाण्डवप्रस्थके राजा युधिष्ठिर भोमसेन अर्जुन, नकुल और वीर सहदेव मेरे पति हैं; वे सुभका यहां बिठलाकर चारों दिशाओंका आखेट करने गये हैं, पूर्वको आर महाराज, दक्षिणको भोमसेन, पश्चिमको अर्जुन, और उत्तरको नकुल तथा सहदेव गये हैं, उन पांचों महारथके आनेका समय भी यही है, इस लिये

तुम लोग अपने रथोंसे उतरकर यहीं ठहरो ; महाराज धर्मराज अतिथियोंका वहुत सत्कार करते हैं, वे तुमको देखकर वहुत प्रसन्न होंगे। चन्द्रमुखी द्रौपदी ऐसा कहकर अपनी सुन्दर पर्णकुटीमें चली गई।

२६५ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय। द्रौपदीके ऐसे वचन सुन कोटिकाख्य जयद्रथके पास गया और सब अतिथियोंके बीचमें उसके वचन कह सुनाया। तब जयद्रथने कोटिकाख्यसे कहा कि जब यह स्त्री कुछ बात करती है, तो मेरा मन उसही पर चला जाता है, यह सब स्त्रियोंमें सुख्य है। तुम इसके पाससे कैसे चले आये, हे महाबाहो। हम तुमसे सत्य कहते हैं, कि इसको देखकर और सब स्त्रियां सुभको दासी सी दिखाई देती हैं, उसने मेरे मनको अपने वशमें कर लिया है; हम हमसे कहो कि यह मानुषी है? कोटिकाख्य बोला, हे राजन्। यह यशस्विनी द्रौपदी है, वह पाँचो पाण्डवोंकी पतिव्रता प्यारी स्त्री है, पाँचो पाण्डव इसकी मानते हैं, सो तुम इससे स्वी करके अपने देशको चलो। श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, कोटिकाख्यके ऐसे वचन सुनकर जयद्रथ बोले, कि हम द्रौपदीको देखेंगे। ऐसा कहकर दुष्ट जयद्रथ पवित्र कुटीमें इस प्रकार आया, जैसे सिंहके घरमें सियार जाता है। पाँच जयद्रथके सङ्ग गये; वे पाँच उसके भाई जयद्रथ वहाँ जाकर द्रौपदीसे बोला, सुन्दरमुखवाली। तू कुशलसे हो? तेरे पाँचों तो अच्छे हैं न? जिनको तू कुशल चाहती। अच्छे हैं न? द्रौपदी बोली हे राजेन्द्र। अच्छेही? तुम्हारे राज्यमें कोपमें और मैं तो कुशल है? कहो तुम सौवीर सिंधु शिबिदेशका धर्मसे राज्य करते हो? ने सुना है, कि तुमने औरभी वहुतसे

देशोंको अपने राज्यमें मिलाया है, श्रीमान महाराज युधिष्ठिर अपने भाइयोंके सहित कुशलसे हैं, हे राजपुत्र। इस जलसे पैर धोकर, इस आसन पर बैठ जाइये। हम आपकी खानिकीलिये पाँच सौ हरिन देंगे, प्रशतान्यकू (वे सब हरिनोंकी जाती है) शरभ, खरहे, रोक, रुरु, शम्बर, हरिन, सूवर, और मैसे आदि अनेक जन्तु तुमका दंगे, स्वयम् महाराज युधिष्ठिर ही आपका सत्कार करेंगे। जयद्रथ वाला, हे सुन्दरी। हमारा यहाँ सब कुशल है, तुमने जो कुछ कहा हमको सो सब प्राप्त होगया, अब तुम रथपर बैठकर-हमारे संग चलो और सुखसे समय बिताओ, पाण्डव लोग मूर्ख हैं, उनकी लक्ष्मी और राज्य नष्ट होगये हैं, तुम वनवासियोंकी स्त्री होनेके योग्य नहीं हो, तुमको मूर्ख निर्धन युधिष्ठिरकी सेवा करके संग नहीं रहना चाहिये, पाण्डव लोग वहुत दिनके लिये लक्ष्मी और राज्यसे नष्ट होगये हैं, उनको सेवा करनेसे तुम्हें कुछ लाभ नहीं है; केवल क्लेशही भागना है, हे सुन्दरी। तुम पाण्डवोंको छोड़ हमारी स्त्री होजाओ, तब अनेक सुखोंका प्राप्त करोगी, तुम हमारे सङ्ग सिन्धु और सौवीर देशका राज्य करो।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, जयद्रथके ऐसे वचन सुनकर सुन्दर मुख और भकुटिवाली द्रौपदी वहाँसे भागी और अपने पतियोंका मार्ग देखती हुई जयद्रथसे बात करने लगी, २६६ अध्याय समाप्त ।

सुन्दरी द्रौपदी कहने लगी, हे मूर्ख! तू यशस्वी, तोच्छ विप्रवाली, महारथ इन्द्रके समान पराक्रमी, यज्ञ और सर्पोंके जातनेवाले धार्मिक पाण्डवोंकी क्यों क्रोधित करता है? हे सौवीर। चाहे घरमें रहनेवाला हो चाहे वनवासी हो अथवा पूर्ण विद्वान तपस्वी भी क्यों न हो किसीको भी पाप करना

अच्छा नहीं है, जैसे तू बकता है वैसेही कुत्ते भी भोंका करते हैं; मैं जानती हूँ कि तेरे संगकी चतियोंमें कोई भी ऐसा वीर नहीं है, जो पातालमें गिरते हुए तुझको अपने हाथसे पकड़कर निकाले, तू बड़ा मूर्ख है जो धर्म-राजको जीतनेको कहता है यह बात वैसेही है जैसे कोई मूर्ख एक लट्ठी हाथसे लेकर कहे कि मैं हिमाचलके नीचे घूमते हुए, पर्वतके समान शरीरवाले मतवारे हाथीको उसके यूथके बीचमेंसे पकड़ लूँगा, जिस समय क्रोधी भीम-सेनको युद्धमें देखकर भागेगा तब विचारेगा कि हाथ मैंने मूर्खतासे सोते हुए, महाबलवान सिंहके बालोंको खींचा था, तू जिस समय बलवान अर्जुनसे युद्ध करेगा उस समय कहेगा कि महाबलवान पर्वतकी गुफामें उत्पन्न हुए, सोते हुए, सिंहको वृथा जगाया, जिस समय वीर नकुल सहदेव तेरे आगे युद्ध करनेको आवेंगे उस समय तू कहेगा मैंने सोते हुए दो जोभ वाले विषसे भर हुए दो काले साँपोंकी पूछ पर वृथा लात मारी, जिस प्रकार बास कोला और नलका वृक्ष फल लगनेसे नष्ट हो जाता है, जैसे कर्कटी गर्भको धारण करके अपना प्राण नाश कर देती है, तैसेही सुभको दुर्व्याज्य कहकर तू भी नष्ट हो जायगा। जय-द्रथ बोली, हे द्रौपदी! पाण्डव लोग जैसे हैं उनको हम अच्छी प्रकार जानते हैं, तेरी इन डरावनी बातोंसे हम डर नहीं सकते, हे द्रौपदी! हम उस सनातन वंशमें उत्पन्न हुए हैं जिसमें राजोंके सत्रह कर्म्म, छः गुण विराज-मान हैं और पाण्डव लोग इन सबसे रहित हैं, सो तू शीघ्र हाथी अथवा रथपर चढ़ले क्योंकि केवल वचन मात्रसे हम तुझको नहीं छोड़ेंगे, या दीन होकर सौवीर देशके राजाकी प्रसन्न-कर। द्रौपदी बोली, मैं बहूत बलवती हूँ परन्तु इस समय तुमसे दुर्बलके समान बात कर रही हूँ, मैं अपने पकड़े जानपर भी तुमसे

दीन वचन नहीं कहूँगी, क्योंकि जिसके दृढ़नेके साक्षात् कृष्ण और अर्जुन एक रथपर बैठकर चलेगी, उसे साक्षात् इन्द्रभी नहीं हार सकते हैं, और चूँकि मनुष्योंकी कथाही क्या है? जिस समय साक्षात् अर्जुन रथपर बैठकर अपने शत्रुओंके मनको निराश करते हुए तुम्हारे सेनामें घुसैंगे उस समय तुम्हारी सेना ऐसे ना-हो जायगी जैसे अग्निलगनेसे सूखा काठ, जिस समय अन्यक और दृष्टावशियोंके समेत साक्षात् श्रीकृष्ण तुम्हसे युद्ध करनेको आवेंगे, श्रीकाशमीर देशके सब राजपुत्र प्रसन्न होकर युद्ध करनेको उपस्थित होंगे, तब तू कुछभी नहीं कर सकेगा, जिस समय गाण्डीव धनुषकी रोहसे कूटकर घोर वेगवाले अर्जुनके बाण तेरी सेनामें आकर घोर शब्द करेंगे, तब तू दया करेगा। जिस समय महावेगवाले अग्निमें पड़े पतंगोंके समान अर्जुनके बाणोंकी ओर वीर अर्जुनकी देखेगा, उस समय तू अपनी इस बुद्धिकी निन्दा करेगा, जिस समय शम्भु, पञ्च और गाण्डीव धनुषका शब्द करके अर्जुनके बाण तेरे हृदयके स्थिरको पीवेगे, उस समय न जानें तेरा मन कैसा होगा? रे अधम! जिस समय गदा हाथमें लेकर भीमसेन युद्धमें आवेंगे, और जब नकुल तथा सहदेव क्रोधके विषकी छोड़ते हुए सब ओरसे तेरे ऊपर बाणोंकी वर्षा करेंगे, उस समय तू बहूत दिन तक दुःख भागेगा; जिस प्रकार मैं अपने महात्मा पतियोंका मनसेभी निरा-दर नहीं करती हूँ उसी सत्यसे मैं तुमको पाण्डवोंके वंशमें पड़ा हुआ और भीमसेनके हाथसे वाल पकड़कर खिचता हुआ देखूँगी, मैं घबड़ाकर तुम्हें दुष्टके हाथसे खिच कर चलना अच्छा नहीं समझती, मुझे निश्चय है कि जब महात्मा पाण्डव लोग आवेंगे तब मैं कर्म्यक वनमें आजंगी।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोली, विशालतनो द्रौपदी इस प्रकारसे उन सबकी उगती हुई

भयसे कांपने लगी, और जयद्रथसे कलने लगी कि तू सुभे सत दुये, और तरमे धौम्य परोहितकी पुकारने लगी । उसी रमठ जयद्रथने द्रौपदीका दुपट्टा पकड़ा और द्रौपदीने उसे एक भाटका दिया, वह पापी भाटका लगनेसे उस प्रकार पृथ्वीमें गिर पड़ा, जैसे जड़ काटनेसे वह गिर पड़ता है, परन्तु फिर उठकर उसने भयसे द्रौपदी की पकड़ लिया । तब द्रौपदी उसके स्वांस लेने लगी और परोहित धौम्यकी प्रणाम करने लगी । तब जयद्रथने खींचकर द्रौपदीकी प्रपने रथपर बिठला लिया । औधौम्यसुनि बोले हैं जयद्रथ । पाण्डवोंको बिना जीते तुम द्रौपदीको नहीं ले सकते हो क्योंकि क्षत्रियोजा सनातन धर्म रखती है, तब युधिष्ठिरादिक पाण्डवोंके सङ्ग पाप करके महा दुःखमें पड़ेगा । और्वैशम्पायन सुनि बोले, ऐसा कहकर महात्मा धौम्य राजपत्नी यशस्विनी द्रौपदीके रथके पीछे पैदलोंके मद दौटने लगे ।

२६७ अध्याय समाप्त ।

और्वैशम्पायन सुनि बोले, उसी समय जगत सिद्ध धनुषधारियोंमें ओष्ठ पाण्डव लोगभी बारा ओरसे हरिन, और भैंसोंकी मारकर एक स्थानपर इकट्ठे हुए । उस समय वनमें हरिन और हाथी घूम रहे थे, और पक्षी शब्द करते फिरते थे । इन सबके शब्दोंको सुनकर महाराज युधिष्ठिरने अपने भाइयोंसे कहा, देखो यह हरिन और पक्षी लोग स्वर्णकी ओर मुख करके घोर शब्द कर रहे हैं; हमको जान पड़ता है कि कुछ घोर उपद्रव होगा, हमको निश्चय है कि किसी शत्रुने हमारे आश्रमको घेर लिया है, मेरा मन बहुत घबड़ाता है, बुद्धि क्रोधसे नष्ट हुई जाती है, इस लिये तुम शीघ्र लौटो, हमको और हरिन मारनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है, हमें इस समय काम्यक वन ऐसा दीखता है कि जैसे किसी

उत्तम तड़ागमेंसे गरुड़ने सर्पको निकाल लिया हो, जैसे किसी धन धान्य भरे राज्यमेंसे राजा निकल गया हो, जिस प्रकार किसी घड़ेका जल हस्ती पी गया हो और वे शोभा रहित होगये हों, ऐसीही इस वनकी शोभा सुभे दीखती है । तब पाण्डव लोग महाराजकी आज्ञा सुनते ही, मिथ् देशके घोड़ोंसे युक्त रथोंपर बैठकर वायुके समान वेगसे चले । पुरुषवीर पाण्डव लोग अपने महारथोंपर बैठकर, आश्रमकी ओर आए । जिस समय वे लोग आश्रमकी ओर चले, उस समय अनेक भियार उनकी वाई ओर बोलने लगे, तब महाराजने भीमसेन और अर्जुनसे कहा, कि देखो, सियार हमारे वाई ओर बोल रहे हैं, इससे निश्चय होता है कि, दुष्ट धृतराष्ट्रपत्नीने हमारे आश्रमपर आकर कोई घोर उपद्रव किया है । इस प्रकार ये लोग बात करते चले आते थे । इतनेहीमें देखा कि द्रौपदीकी प्यारी धात्री और दूतकी स्त्री रो रही है । उसी समय इन्द्रसेन शीघ्र रथसे उतरा, और दौड़कर धात्रीके पास गया तथा कहने लगा कि हे धात्री । तू पृथ्वीमें पड़ी हुई क्यों रो रही है ? तेरा सुख क्यों सूख गया है ? तेरे सुखका बरण क्या दीन होगया है ? कहो पाण्डवके समान क्षपवाली विशालनेनी राजपुत्री द्रौपदीको कोई दुष्ट समुद्र, पृथ्वी और स्वर्गमेंसे ले गया होगा, तो वहांसे भी पाण्डव लोग द्रौपदी को ले आवेंगे, क्योंकि धर्मराज उनके लिये बहुत दुःख कर रहे हैं । जगतमें ऐसा कौन वीर है जो शत्रुनाशन क्लेश सहनेवाले पाण्डवोंकी प्यारी स्त्रीको ले जाय ? यह काम तो वैसेही हुआ जैसे कोई मूख उत्तम रत्नको बुरा ले, सुभको यहां द्रौपदी नहीं दीखती है, वह द्रौपदी पाण्डवोंका हृदय है, आज पाण्डवोंके तीक्ष्ण वाण किसके हृदयको कूदकर पृथ्वीमें प्रवेश करेंगे, हे धात्री । तू कुछ सोच मत कर

शीघ्र बता दे, द्रौपदीको कौन ले गया ; क्योंकि तेरे कहनेसे पाण्डव सब शत्रुओंको मारकर द्रौपदीको छीन लावेंगे। इन्द्रसेनके वचन सुन अपने सुखकी पोंछकर धात्री बोली, हे सारथे। इन्द्रके समान पांच पाण्डवोंका निरादर करके जयद्रथ द्रौपदीको खींचकर ले गया। देखो अभी रथोंके पहियेभी मार्गमें लगे हैं, अभी टूटे हुए हत्थोंके पत्ते मलीन भी नहीं हुए, इससे जान पड़ता है कि अभी द्रौपदी दूर नहीं गई; तुम शीघ्र दौड़ो और इन्द्रतुल्य पाण्डवोंकी युद्धके वास्ते भेजो; उनसे कहो कि धनुष और बाण लेकर शीघ्र द्रौपदीको ढूँढ़ें; जबतक कोई दृष्ट द्रौपदीके शरीरको न ढूँढ़े, सब तक कोई तृप्तको अग्निमें घीकी आहुति न दे, जब तक कोई स्नानमें माला न चढ़ावे, जब तक ब्राह्मणोंके बीचमें कोई कृत्ता सीम न पोये, जबतक महावनमें आखेट खेलकर कोई सियार उत्तम तालावमें स्नान न करे, जबतक कोई कृत्ता यज्ञकी खीरकी न खाए, जबतक द्रौपदीके उत्तम नेत्रवाले चन्द्रमाके समान सुखकी कोई दृष्ट न हुए, इतनेही समयमें इन मार्गोंसे तुम लोग शीघ्र दौड़ो; महाराज युधिष्ठिर बोली, हे भद्रे। तुम हमसे ठोक कहो, हम लोगोंके सन्मुख कठोर वचन मत कहो; हम अनेक राजा और राजपुत्रोंको अपने बलसे मार सकते हैं। ऐसा कहकर पाण्डव लोग शीघ्र उसी मार्गसे चले और अपने धनुष पर सर्पके समान रोदे चढ़ाने लगे। थोड़ी दूर जाकर पाण्डवोंने सेनाके घोड़ोंके खुरोंसे उड़ती हुई धूलिकी देखा; आगे चलके देखा कि पदातियोंके बीचमें पाण्डवोंकी पकारते हुए धौम्य चले जाते हैं। तब दोन पाण्डवोंने धौम्यकी शान्त किया, और कहा कि आप सुखसे धीरे धीरे आइये, ऐसा कह पाण्डव इस प्रकार वेगसे दौड़े कि, जैसे सांस खानेकी वाज दौड़ता है। उसी समय पांचो पाण्डवोंने अपनी प्यारी

स्त्रीको जयद्रथके रथमें बैठी हुई देखा। द्रौपदीको देखते ही, पाण्डवोंका क्रोध अग्निके समान तेज हो गया, और बार बार ललकारने लगे।

२६८ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोली, भीमसेन और अर्जुनको देखकर जयद्रथकी सेनाके क्रोधी चली लोग, घोर शब्द करने और पाण्डव लोग भी गर्जने लगे। तब उस वनमें महा घोर शब्द होने लगा। कुरुकुल अष्ट पाण्डवोंकी ध्वजाओंकी देखकर नीच राजा जयद्रथ रथमें बैठी द्रौपदीसे कहने लगा हे द्रौपदी। ये पांचो महारथ तेरे पति आते हैं, हे सुकेशी। तू हमसे दन पांचोंका अलग अलग वर्णन कर। द्रौपदी बोली रे, मूर्ख। इन पांचोका नाम सुनकर का करेगा, ये मेरे पांचो पति महा धनुषधारी और महावीर हैं, तैने इनका घोर निरादर किया है; इससे निश्चय कर ले कि तेरी सेनामें कोई जोता नहीं है, मैं भाइयोंके सहित धर्मराजकी देखकर अब तुझसे कुछ नहीं डरती; रे मूर्ख। तूने मुझसे प्रश्न किया है, इससे पाण्डवोंका वर्णन करना ही मेरा धर्म है। जिसकी रथकी ध्वजापर, सुन्दर रूपवाले नन्द और उपनन्द मृदङ्ग बज रहे हैं, जिस धर्म और अर्थ जाननेवालेके पीछे अनेक महात्मा लोग चलते हैं, जिसका रङ्ग शुद्ध सोनेके समान है, जिसकी नासिका जंचो और नेत्र बड़े हैं, ये ही कुरुकुल प्रधान मेरे पति धर्मराज युधिष्ठिर हैं, ये ही महात्मा शरण आये शत्रुकी भी प्राणदान देते हैं; ये वज्रत धर्मात्मा और महावीर हैं, अरे मूर्ख। तू शस्त्र और अस्त्रोंकी छोड़ कर तथा हाथ जोड़कर इनकी शरण जा, तब तेरा कल्याण होगा; ये जो शाल वृक्षके समान जंचे विशालवाह्य टेढ़ी भौं, और भुकुटीवाले रथमें बैठे हैं जो अपने होठोंकी दातसे चबा रहे हैं, उन्हींका नाम भीमसेन है, जिसके कर्माँकी

देखकर महा बलवान वीरोंने इन्हें साधु पदवी दी है, जिसके अमानुष कर्मने भीम ऐसा नाम प्रसिद्ध किया है, ये वही हमारे स्वामी भीमसेन हैं, इनका अपराध करके कोई जीता नहीं बचता; ये अपने वैरको कभी नहीं भूलते हैं, ये बिना वैरका अन्त किये शान्त नहीं होते। जो धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ बुद्धिमान तेजस्वी जितेन्द्रिय पुरुष वीर राजा युधिष्ठिरके शिष्य और भाई हैं वही अर्जुन नामक हमारे पति हैं। ये काम क्रोध लोभ और मोहसेभी कर्म और धर्मको नहीं छोड़ते और कभी अधर्मका काम नहीं करते; येही शत्रु नाशक अग्निके समान तेजस्वी कुन्तीपुत्र अर्जुन हैं। जो सब धर्म और अर्थके निश्चयोंकी जानते हैं, वही सब डरनेहार पुरुषोंका भय नाश करते हैं, जिनके समान पृथ्वीमें कोई सुन्दर नहीं है, पाण्डव लोग सदा जिनको रक्षा करते हैं, जो पाण्डवोंकी प्राणसे भी अधिक प्यारे हैं, उन्हींका नाम नकुल है। जो खड्गसे विचित्र युद्ध करते हैं जिनका हाथ बल्लतशीघ्र चलता है वही अद्वितीय वीर सहदेव हैं। अरे मूर्ख! तुम वीर सहदेवके कर्मको युद्धमें इस प्रकार देखोगे जैसे इन्द्रके कर्मको राक्षस लोग देखते हैं। ये महात्मा तेजस्वी शस्त्रविद्याके जाननेवाले और धर्मराजके प्रियकार्यकर्ता हैं, वही महात्मा सहदेव चन्द्रमा और सूर्यके समान तेजस्वी सब भाइयोंमें छोट और पाण्डवोंके प्रिय हैं, इनके समान पृथ्वीमें कोई पण्डित, वक्ता बुद्धिमान और निश्चयकर्ता नहीं है, वे ही हमारे स्वामी सहदेव भूरवीर क्षमावान और महापण्डित हैं। ये प्राणोंको त्याग दें, अग्निमें प्रवेश कर जाय, परन्तु अधर्म कभी नहीं करेंगे। ये मनस्वी सदा शत्रियोंके पालनेवाले महावीर और कुन्तीकी प्राणके समान प्यारे हैं। अब तुम्हारी सेनाकी दशा है, कि जैसे रत्नोंसे भरी झड़्ड टूटी नाव समुद्रके बीचमें किसी मछलीकी पीठमें धरी

हो। अब थोड़े समयमें तुम देखोगे कि पाण्डवोंने तुम्हारी सब सेनाका नाश कर दिया। जिन पांचों पाण्डवोंका मैंने वर्णन किया उन्हींका तुमने निरादर किया है; यदि तुम इनसे जीते बच जाओ तो तुम्हारा दूसरा जन्म हीगा।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, उसी समय इन्द्रके समान पांचो पाण्डव लोग डरी झड़्ड और हाथ जोड़ती पैदलसेनाको छोड़कर जयद्रथकी प्रधान सेनापर क्रोध करके बाणोंकी वर्षा करने लगे, और अश्वकार कर दिया

२३६ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, पाण्डवोंका युद्ध करते देख सिन्धु देशका राजा जयद्रथ अपने साथी राजोंसे कहने लगा कि, तुम लोग शस्त्र चलाओ दौड़ो, स्थिर रहो, युधिष्ठिर भीमसेन अर्जुन नकुल और सहदेवकी युद्धमें देखकर सिन्धु और सौवीर देशके क्षत्री गर्जने लगे। उस समय रणभूमिमें घोर शब्द होने लगा, सिंहके समान बलवान पाण्डवोंको देख अनेक क्षत्री लोग युद्ध करनेकी उपस्थित हो गये। उस समय सोनेसे खिची झड़्ड लोहेकी गदाको लेकर भीमसेन जयद्रथकी ओर दौड़े। तब भीमसेनके आगे महारथ सेनाकोलिये हुए कीटिकाख्य आया। और उस सेनाने भीमके ऊपर शक्ति, तोमर तथा बाणोंकी वर्षा करनी आरम्भ करी; परन्तु उनसे भीम कुछभी न डरे और वीरोंके सहित चौदह हाथियोंको तथा अनेक पैदलोंको मारकर पृथ्वीमें गिरा दिया। उनके मरनेसे जयद्रथकी सेनाका मुख टुट गया। अर्जुनभी सेनाके आगे लड़ते हुए महारथ पांच सौ वीरोंको मारा और जयद्रथको हूढ़ने लगे। उस समय धर्मराजने भी सुवीर देशोत्पन्न शस्त्र वाले सौ वीरोंको क्षण भरमें मार डाला। उस समय वीर नकुल खड्ग लेकर अपने रथसे उतरे और पैदल सेनामें प्रवेश किया और इस प्रकार

वीरोंके शिर काटकर पृथ्वीमें गिराने लगे, जैसे कोई किसान बीज बोता है। सहदेवने अपने रथको गजसेनाकी ओर चलाया और इस प्रकार वीरोंके शिर काटकर गिराने लगे जैसे हत्थोसे मरे हुए पक्षी गिरते हैं। उसी समय त्रिगर्त देशका राजा गदा लेकर अपने रथसे उतरा और महाराजके चारों घोड़ोंको मार दिया। जब कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरने त्रिगर्त-राजको अपने पास खड़ा देखा तो अर्द्धचन्द्रसे उसके हृदयको विदीर्ण कर दिया। उसी समय वह वीर अपने मुखसे रुधिर गिराता हुआ जड़ कटे हुए वृक्षके समान पृथ्वीमें गिर पड़ा। तब इन्द्रसेनके सहित महाराज पृथ्वीमें उतरे और सहदेवके रथपर चढ़ गये। उसी समय नकुलसे युद्ध करनेको क्षेमङ्गर और महामुख आए। वे दोनों ओरसे वर्षाकालके मेघके समान, बाण और तीसरीकी वर्षा करने लगे। उसी समय नकुलने एक एक खड्गसे दोनोंको मार दिया। उसही समय त्रिगर्त देशके राजा सुरथ अपने हाथीको चलाकर नकुलसे युद्ध करनेके आये। सुरथके हाथीने नकुलके रथको धुरीको पकड़कर रथको उलट दिया। नकुल भी निडर होकर खड्ग और ढाल लेकर रथसे नीचे उतरे, और एक स्थानमें पर्वतके समान अचल होकर खड़े हो गए। तब सुरथने क्रोध करके घण्टा भूषित और विशाल सुण्डवाले हाथीको नकुलके मारनेको चलाया। जब नकुलने उस हाथी को अपने पास आते हुए देखा, तो अपने खड्गसे दातोंके समेत उसका सुण्ड काट दिया। वह हाथी सुण्ड कटनेसे महाशब्द करके पृथ्वीमें गिर गया और उसके चढ़े हुए वीर भी उसके नीचे दबकर मर गये। वीर माद्रीपुत्र नकुलने इस महा कर्मको सिद्ध करके भीमसेनसे युद्ध करते हुए कोटिकाख्यके सारथीको अपने बाणोंसे मार दिया। राजा कोटिकाख्यने यह न जाना कि बलवान भीमसेनने हमारे सारथीको

मार डाला। तब उसके घोड़े इधर उधर घूम लगे। जब शस्त्र चलानेवालोंमें अष्ट भीमसेन देखा कि कोटिकाख्य युद्धसे भागा, तो ए प्राससे उसको मार डाला। वीर अर्जुन अपने तोख बाणोंसे वारह सौवीर के राज पुत्रोंके धनुष और शिर काट दिये शिवो, इच्छाकु, त्रिगर्त, और सिन्धु देश जो वीर युद्ध करनेको आये उन सबको अर्जुन मार डाला। अर्जुनके मारे हुए ध्वजा और पताकोंके सहित अनेक महारथ और हाथ पृथ्वीमें गिर गये। उस समय बिना शरीर और बिना शरीरके शिर समस्त रथ भूमिमें भर गये। कुत्ते गिद्ध सियार और कौबोने तप्त होकर रुधिर पिया और मा खाया। अपने सङ्गके सब वीराका मरा हुआ देख, सिन्धुराज जयद्रथ वज्रत डरा, और द्रौपदीको छोड़कर भागनेकी इच्छा करने लगा जब इस प्रकार सेनामें हाहाकारका शब्द हुआ तो जयद्रथने कहा कि द्रौपदीको रथसे उतारो और फिर द्रौपदीको छोड़कर घोर वनकी ओर भाग गया। जब धर्मराजने देखाकी धौम्यके सहित द्रौपदी पृथ्वीमें खड़ी है, तो उसको सहदेवके रथपर चढ़ा लिया। जयद्रथके भागते ही उसके सब सेना इधर उधर भाग गई। उस समय भीमसेन प्रत्यक्ष और गुप्त बाणोंसे उन सबको मारने लगे। तब अर्जुनने कहा कि, जिस दुष्ट अपराधसे हम लोगोंको महा कष्ट हुआ है वह जयद्रथ युद्धमें नहीं देखता, अब वह जयद्रथको दूढ़ना चाहिये, क्योंकि इन निरपराधियोंको मारना उत्तम नहीं है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, बुद्धिमान अर्जुन ऐसे वचन सुन युधिष्ठिरके पास जाय, यदि भीमसेन कहने लगे, हे राजन्। सब शत्रु मारे गये और बचे हुए इधर उधर भाग गये, अब आप द्रौपदी, नकुल, सहदेव महात्मा धौम्यको सङ्ग लेकर आयमकी

राद्वय, और वहा गकर द्रौपदीको शान्त-
 होजिये । यदि मूर्ख जयद्रथ पातालमें भो घुस
 गयगा, और साक्षात् इन्द्रभी उसका सारथी
 लेगा, तो भी आज वह मुझसे जीता नहीं
 चिगा । महाराज युधिष्ठिर वाले, हे महा-
 राहो । यद्यपि जयद्रथ बड़ा दुष्ट है, तो भी
 मैं उसको मारना मत, क्योंकि उसके मरनेसे
 दुःशला विधवा हो जायगी, और यशस्विनी
 गान्धारी कोभी बड़ा दुःख हीगा ; तुम इन
 दोनोंका स्मरण करके उचित कर्म करना ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महाराजके ऐसे
 वचन सुन क्राधसे व्याकुल लज्जावती पण्डिता
 द्रौपदीभीम और अर्जुनसे बोली, यदि तुम मेरा
 प्रयकार्य करना चाहते हो, तो पापी दुर्वाङ्गि पुस्-
 तधम कुलकलङ्ग जयद्रथको अवश्य मार-
 लाना, जा शत्रु स्त्रीको छेन, राज्यको छेन,
 इस दुष्टको भीख मांगने परभी जीता छोड़ना
 चाहिये । राजा और द्रौपदीके ऐसे वचन
 सुन पुरुषसिंह भीम और अर्जुन जयद्रथके
 मारनेका चले, राजाभी द्रौपदी और पुरोहित
 सब लेकर आश्रमको लौट आये । उन्होंने
 अपने आश्रमपर आकर मार्कण्डेय आदि मुनि-
 योको देखा । वे सब ब्राह्मण लोग, सावधान
 होकर द्रौपदीका साचकर रहे थे । उसी समय
 अपने भाई और द्रौपदीके सहित महा पाण्डव
 युधिष्ठिरभी अपने आश्रमपर पहुँच गये । जब
 ब्राह्मणोंने देखा कि सिन्धु और सौवीर
 के वीरोंको जीतकर महाराज आये और
 द्रौपदीको भी देखा तो वज्रत प्रसन्न हुए । महा-
 राज युधिष्ठिर ब्राह्मणोंके बीचमें बैठ गये ।
 द्रौपदी नकुल और सहदेवके सहित आश्रमके
 भीतर चली गयी ।

जब भीमसेन और अर्जुनने सुना कि जय-
 एक कोस तक भाग गया, तो अपने हाथसे
 द्रौपदीको शीघ्र हाकने लगे । उसी समय
 अर्जुनने एक अद्भुत कर्म किया अर्थात् एक

कोससे जयद्रथके घोड़ोंकी मार दिया, अत्यन्त
 कठिन समयमें भी अर्जुनको श्रम नहीं होता
 था, और वे दिव्य अस्त्रोंके जाननवाले थे,
 इसहीसे दिव्य मन्त्रोंके बलसे कठोर कामोंकी
 भी सिद्ध कर लेते थे । अनन्तर भीमसेन और
 अर्जुन क्रोध करके जयद्रथके पाँके दौड़े, जब
 डर डर, व्याकुल और अकेले जयद्रथने देखा कि
 मेरे घोड़े और सारथी सब मारे गये, और
 अर्जुन वज्रत पराक्रम कर रहे हैं, तब रथका
 छोड़कर घोर वनमें भागा । जब अर्जुनने देखा
 कि सिन्धुराज भाग जाते हैं, तो पुकार कर
 कहने लगे कि हे वीर । तुमको भागना उचित
 नहीं है, क्या दूरी बलसे दूसरेकी स्त्रीको
 छेनना चाहते थे ? तुमकी अपने सङ्ग्रियोंकी
 छोड़कर भागना उचित नहीं है, शत्रुओंकी
 आगेसे भागना तुम्हारा धर्म नहीं है । अर्जुन-
 के ऐसे उचन सुनकरभी जयद्रथ न लौटे, तब
 भीमसेनने कहा हे मूर्ख ! खड़ा रह, खड़ा
 रह, ऐसा कहके उसके मारनेकी वेगसे दौड़े ।
 तब दयावान् अर्जुनने कहा कि इसको
 मत मारो ।

२७० अध्याय समाप्त ।

द्रौपदी हरण पर्व समाप्त ।

अब जयद्रथ विभीक्ष्ण पर्व लिखते हैं

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमे-
 जय । जब राजा जयद्रथने देखा कि भीम और
 अर्जुन हमारे पीछे शस्त्र लिये चले आते हैं, तो
 प्राणको बचानेकी इच्छासे सावधान होकर
 भागने लगा । तब बलवान् भीमसेनने रथसे उतर
 कर दौड़ते हुए जयद्रथके बाल पकड़ लिये,
 और उठाकर पृथ्वीमें पटक दिया, और
 उसके सिरपर लात मारने लगे । तब दयावान्
 अर्जुनने क्राधी भीमसेनसे कहा, कि हे कौरव !
 महाराजने आज्ञा दी है कि दुःशलाको
 विधवा न करना । भीमसेन बोले, यह पापी

दुराचारी हमसे जीता वचनके योग्य नहीं है, इस पुरुषाधमने दुःख न भोगनेके योग्य द्रौपदीको दुःख दिया है, परन्तु हम क्या करें राजा सभीके ऊपर कृपा कर देते हैं, और तुम भी मूर्खतामें हमारे सब कामोंमें बाधा देते रहते हो। ऐसा कहकर भीमसेनने अर्जुनसे वांगसे जयद्रथके सिरके बाल मूड़ दिये, और उसके सिरपर पांच चोटो रख दी, और उसको गाली देकर कहा रे मूर्ख ! यदि तू अपने जीनेकी इच्छा करता है तो हम जो कहते हैं उसको सुन ; तू सब पण्डितोंकी सभामें कह दे कि हम पाण्डवोंके दास हैं तब तेरा जीवदान दिया जायगा, युद्धमें जीते हुए शत्रुओंको ऐसाही करना चाहिये। ऐसा कहकर शत्रुनाशक पुरुषसिंह भीम उसकी खींचने लगे। तब उसने कहा कि हम चलकर महाराजके आगे ऐसेही कह देंगे। तब भीमसेनने धूलमें लिपटे हुए, मूर्च्छित जयद्रथको बाध लिया और रथमें डाल दिया। तब भीमसेन और अर्जुन राजाके पासको चले और जाकर बांधे हुए जयद्रथको आगे खड़ा कर दिया। तब महाराज जयद्रथको बंधा हुआ देख उसे और अपने भाइयोंसे कहा कि इसे छोड़ दो और महाराज भीमसेनसे बोले, कि इस मूर्खको द्रौपदीके पास ले जाओ और जाकर द्रौपदीसे कहो कि यह पापी पाण्डवोंका दास होगया, अब यदि हमारी आज्ञा मानतो है तो जीता छोड़ दो। द्रौपदीने युधिष्ठिरको और देख भीमसेनसे कहा कि, यदि यह महाराजका दास होगया और तुमने इसके सिरपर पांच शिखा भी रख दी तो अब इसे छोड़ दो। तब भीमसेनने राजा जयद्रथको छोड़ दिया। जयद्रथन कूटकर महाराज युधिष्ठिर और सब मुनियोंकी प्रणाम किया तथा वज्रत व्याकुल होकर बैठ गया। तब दयावान धर्मराज युधिष्ठिर जयद्रथसे कहा कि तुमको हम दास

भावसे छोड़ा देते हैं, अब जहाकी तुम्हारी इच्छा हो तहांको चले जाओ, परन्तु ऐसा कभी फिर कभी न करना ; तुम दूसरेको स्वीकृति रखते हो, इस लिये तुम्हें धिक्कार है तुम चद्र हो और तुम्हारे सहायक भी हैं, तुम्हारे सिवा कौन नोच पुरुष ऐसे कर्मोंकरेगा, जब महाराज युधिष्ठिरने उस पापी जयद्रथको निर्व्वलके समान बैठे हुए देखा, तो उसके ऊपर कृपा करो और कहा कि जयद्रथ ! तुम्हारा कल्याण ही, तुम अपने धर्म रथ और पैदलोंके सहित चले जाओ, सब धर्म करते रहना और अधर्ममें अपनी बुद्धिकभी मत लगाना। राजाके ऐसे वचन सुन लज्जासे नीचे मुख करके जयद्रथ चला गया। हे राजन ! जयद्रथ वहांसे गङ्गाद्वार तीर्थको गया और वहां जाकर पार्व्वतीपति शिवको तपस्या करने लगा। शिव उसके घोर तपसे प्रसन्न हुए। अनन्तर त्रिनेत्र शिवने प्राण छोड़कर उसकी दी हुई बलिकी ग्रहण किया, और उससे कहा कि जो तेरी इच्छा हो सो कर दान माग। तब उसने कहा कि मैं पापी पाण्डवोंको रथके सहित युद्धमें जीतूं। तब शिवने कहा ऐसा नहीं हो सकता क्योंकि पाण्डव लोग, अजेय और अवध्य हैं, परन्तु तुम अर्जुनको छोड़कर और सब पाण्डवोंके युद्धमें वारण कर दोगे क्योंकि अर्जुन न नामक देवताके अवतार हैं, इन्होंने नारायण के सहित वदरिकाश्रममें वज्रत तप किया है उनको लोकमें कोई भी नहीं जीत सकता, वे देवतांसेभी अजेय हैं, हमने उनकी दिव्य पाश पत वाण दिया है और लोकपालोंने भी अपने अपने सब अस्त्र अर्जुनको दिये हैं, जब समस्त युगके अन्तमें प्रलय होती है, तब अनन्त अमृत की मूर्ति जगको आत्मा अव्यक्त भगवान विष्णु समय प्राप्त होनेसे अग्नि रूप धारण करके पर्व्वत, समुद्र हीप, वन नाग लोक पाताल और

तलातलके सहित सब जगतकी भस्मा कर देते हैं। उस समय आकाशमें घोर शब्दवाले विजु-लीके सहित अनेक वर्णके मेघ प्रगट होते हैं, तब वे सब मेघ चारों ओरसे वर्षनेसे सब अग्नि नष्ट हो जाती है। उस समय इन मेघोंकी धारा बहत भारी होती हैं इनके जलसे देश पूर्ण हो जाता है, उस जलमें सब चर और अचर डूब जाते हैं, चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह और सब तार नष्ट हो जाते हैं; यह प्रलय जब चारों युग सहस्र सहस्र बार बीत जाते हैं तब होता है। उस समय सहस्र चरण सहस्र नेत्र और सहस्र सिर वाली नारायण सीनेकी इच्छा करते हैं। तब महातेजस्वी सहस्र सूर्यके समान प्रकाशमान कुन्द, चन्द्रम, हार, गो दुग्ध, कमलकी दण्डी और कुमदके फूलके समान सुन्दर सहस्रफण धारी शेषनागका पलंग बनाकर भगवान विष्णु समुद्रके बीचमें सो रहते हैं। वह रात्रि तमोगुणसे व्याप्त हो जाती है। जब भगवान विष्णु सती गुण अधिक होनेसे जागते हैं। उस जगतको शून्य देखते हैं। इस स्थान पर पण्डित लोग इस स्त्रीकका उदाहरण देते हैं। जलका नाम नारा है वही नारा है अयन अर्थात् निवासस्थान जिसका उसको नारायण कहते हैं। उस अव-स्थानमें अर्थात् जागनेके समय भगवान सना-तन विष्णु जगत उत्पन्न करनेके लिये ध्यान करते हैं, ध्यान करते ही उनकी नाभीसे एक कमल उत्पन्न होता है, उस कमलसे चार मुखवाले ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं वे उसी कमलके ऊपर बैठकर शून्य जगतको देखते हैं। इसके पश्चात् ब्रह्मा अपने मनसे मरीचि आदि नौ पुत्रोंको उत्पन्न करते हैं ये नवों ब्रह्माके समान ही होते हैं। उन्होंनेहीने स्थावर जड़म जगतको रचा है, उन्होंने ही यक्ष, राक्षस, पिशाच, भूत, सर्प और मनुष्य उत्पन्न होते हैं, परमेश्वर ब्रह्माका रूप धारण करके जगतको रचते हैं, विष्णु वनके रचा करते हैं और शिव वनके नाश

करते हैं, यह तोनों मूर्ति ईश्वरहीकी है, हे सिन्धुराज। तुमने कभी वेदपाठी ब्राह्मणोंसे कहे हुए विष्णुके अद्भुत कर्म नहीं सुने। जब समस्त पृथ्वी जलसे डूब गयी तब भगवान विष्णु शून्य-आकाशमें घूमने लगे। उस समय विष्णुकी ऐसी शोभा हुई जैसे वर्षाकालकी रात्रिमें जुगनूकी। उसी समय भगवान विष्णु पृथ्वीको दूढ़न लगु, तब उन्होंने डूबी हुई पृथ्वीको देखा, और विचारा कि हम कौनसा रूप धारण करके पृथ्वीको रचे। तब भगवानने दिव्यदृष्टिसे देखा और जलक्रीड़ा करनेको इच्छा की। तब सूअरका रूप धारण किया। भगवानने वह वचनमय शूकररूप वेदके समान धारण किया था। वह स्वरूप सी योजन लम्बा और दश योजन चौड़ा था, उसकी शोभा महा पर्वतके समान थी, एक दात बहत प्रकाशमान और विशाल था, उस नील मेघके समान सूअरका शब्द महा मेघके समान था। भगवान विष्णु यज्ञ वराहका रूप बनाकर जलके भीतर घुस गये। फिर एक दातपर सब पृथ्वीको उठा ले आये, और उसको अच्छे स्थानपर रख दिया, उसकी पश्चात् भगवानने विचित्र रूप धारण किया। वह शरीर आधा सिंह आधा मनुष्यका था। तब दैत्य-राजकी सभामें गये और हाथकी मलने लगे, देवशत्रु दितिपुत्र आदि दैत्य हिरण्यकशिपुने उस विचित्र मनुष्यको देखकर क्रोधसे लाल नेत्र कर लिये, और हाथमें त्रिशूल लेकर मारनेका उपास्थित हुए। काली मेघके समान शब्दकारी दितोपुत्र वीर हिरण्यकशिपु नरसिंहको मारने दोड़ा। उसी समय बलवान नरसिंहने अपने तीक्ष्ण नखूनोंसे, हिरण्यकशिपुका पेट चीर दिया। इस शत्रुनाशक दैत्यको मारकर फिर भगवान कमलनेत्र विष्णुने वामन रूप धारण किया, यह वामन अवतार कश्यपकी स्त्री अदि-तोके गर्भसे पूरे सहस्र वर्षमें हुआ था। भगवानके अवतार लोकके हितके लिये हैं। वामनका

स्वरूप वर्षाकालके मेघके समान और नेत्र वज्रत प्रकाशमान थे । बामन दण्ड कमण्डल जटा और यज्ञापवीत धारण करके, तथा श्रीवत्समणिको हृदयमें धारण करके बृहस्पतिकी सहायतासे बलिके यज्ञमें गये, इन बामनरूपी बामनकी देखकर बलि प्रसन्न होकर कहने लगे, हे विप्र ! हम तुम्हारे दर्शनसे वज्रत वज्रत प्रसन्न हुए हैं, कहो तुमको क्या दें, तब बामनने बलिकी आशीर्वाद् देकर कहा, हे दानवराज ! हमको तीन चरण पृथ्वी दीजिये । तब बलिनने प्रसन्न होकर अनन्त तेजस्वी बामनको तीन चरण पृथ्वी दी, उसी समय भगवान् विष्णुने अपने पराक्रमसे अद्भुत रूप धारण किया । तब अपने तीन चरणोंस भापकर समस्त पृथ्वीका राज्य इन्द्रका दे दिया । हमने तुमसे यह बामन अवतारको कथा कहो, इसीसे सब देवता उत्पन्न हुए हैं और इसी करके जगतका नाम वैष्णव है । भगवान् विष्णु दुष्टाका नाश और धर्मको रक्षाके लिये अवतार लेते हैं, वही विष्णु अब यदुवशमें उत्पन्न हुए हैं, उन्हीका नाम श्रीकृष्ण रखा गया है, वह अनादि और अजन्मा देवताके देवता हैं, उनको सब लाक नमस्कार करते हैं । विद्वान् लोग उनके गुणोंको गाते हैं, उनको कोई नहीं जीत सकता । हे सिन्धु देशात्पन्न ! वही कमलनेत्र अतुल पराक्रमी शङ्ख चक्र गदा श्रीवत्स और पीताम्बरधारी कृष्ण उन शस्त्र जाननेवाले पाण्डवोंके सहायक हैं । जिस समय शत्रुनाशक श्रीकृष्ण अर्जुनको रथपर बैठाकर युद्ध करेंगे, उस समय देवता भी अर्जुनको नहीं जीत सकते और पुरुषको तो क्या शक्ति है ? अर्जुनको छाड़कर और सब युधिष्ठिरकी सेना तथा चारों पाण्डवोंको तुम एक दिनमें जीत लोगे । श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, त्रिपुरासुरके मारनेवाले दक्षयज्ञ विनाशक पार्वतीनाथ सब पापोंके नाश करनेवाले भगवान् शिव ऐसा कहकर अनेक शस्त्रधारी

बामन, भयङ्कर, बड़े विशाल नेत्र, और कानवाले घोर पार्षदोंके सहित वहीं अन्तरधान हो गये । हे राजशार्ङ्ग ! जब त्रिनवधारी पार्वतीनाथ भगवान् शिव अन्तर्धान हुए तब मूर्ख जयद्रथ भी अपने घरको चला गया, और पाण्डव लोग उसी काम्यक वनमें रहने लगे ।

२७१ अध्याय समाप्त ।

जयद्रथविमोक्षण पर्व समाप्त ।

अथ राम उपाख्यान पर्व

राजा जनमेजय बोले, द्रौपदी हरणके पश्चात् अत्यन्त क्षोभ सहकर पुरुषसिंह पाण्डवोंने क्या किया ?

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय । इस प्रकार द्रौपदीको छुड़ाकर और जयद्रथको युद्धमें जीत कर धर्मराज युधिष्ठिरने मुनियोंका सत्कार किया । उन महा ऋषियोंके बीचमें विराजमान मार्कण्डेय महार्षि महाराज बोले, हे भगवन् । आप सब देव ऋषियोंमें प्रधान हैं और भूत भविष्यतके जाननेवाले हैं, सो मेरे हृदयमें जो सन्देह है, आप इसको नाश कीजिये, हे भगवन् ! यह द्रौपदी किसीके गर्भसे उत्पन्न नहीं हुई, इसका जन्म यज्ञ कुण्डसे हुआ है, यह धर्म करनेवाली और धर्मके जाननेवाली द्रौपदी हम लोगोंकी स्त्री और महात्मा पाण्डुकी वधू है, इसको भी ऐसे दुःख होते हैं जैसे किसी पांवत् पुरुषको चोरी अथवा भूठ बोलनेका दोष लगे, इससे जान पड़ता है, कि काल और प्रारब्ध बड़ा बलवान् है, जो वात होनेवाली होती है, उसको कोई नांघ नहीं सकता, द्रौपदीने कभी कोई पाप नहीं किया है, कभी उसने ब्राह्मणोंका निरादर नहीं किया है, यह सदा धर्मही करती रही है, उसका मूर्ख दुर्बुद्ध जयद्रथ बलसे उठा ले गया, द्रौपदीके चुरानसे उस मूर्खके बाल मूड़े गये, वह दुष्ट सहायोंके

सहित हार गया हमने उसकी सेनाकी नाश करके द्रौपदीकी छोन लिया, इस वनमें निवास करना, आखेट खेलकर जीविका चलानी, हरिनोकी हत्या करना, और अन्यायके द्वारा जातिसे अलग रहना, इसमें अधिक पोर हमको दुःख क्या होगा? आपने हमारे समान मन्दभाग्य पुरुष कोई देखा या सुना है?

२७२ अध्याय समाप्त ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन युधिष्ठिर । रामने आपसेभी अधिक दुःख पाया था, बलवान राक्षसराज दुर्वि रावणने उनके आयसमें कुल करके उनकी स्त्री सीताकी चुरा लिया था, उसीने जटायु गिद्धकी भी मार डाला था तब रामने सुग्रीवका आयस लिया, समुद्रका सेतु बाधा, लङ्काको जलाया और तीक्ष्ण बाणोंसे रावणकी मारकर सीताकी छोन लिया । राक्षसराज युधिष्ठिर बोले, हे भगवन । राम कौन कुलमें उत्पन्न हुए थे? उनका बल और पराक्रम कैसा था? रावण किसका पुत्र था? और उन दोनोंका वैर क्यों होगया था? इन सब कथाओंकी हम आपसे सुनना चाहते हैं, आप इस कथाकी कहिये ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे पृथ्वीनाथ । इच्छाकु वंशमें अज नामक महाराज उत्पन्न हुए थे, उनके पुत्रका नाम दशरथ था । दशरथ महाराज परम वेदपाठी और पवित्र थे । उनके चार पुत्र हुए, चारोंके नाम ये थे राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न । ये चारों धर्म और अर्थके जाननेवाले तथा महा पराक्रमी थे । रामकी माताका नाम कौशल्या, भरतकी माताका नाम कैकेयी, तथा शत्रुघ्न लक्ष्मण और शत्रुघ्न सुमित्राकी पुत्र थे । हे राजन् । मिथिला देशके राजा जनककी पुत्रीका नाम सीता था, उनको साक्षात् ब्रह्माने बनाया था, यही सीता रामचन्द्रकी पटरानी थीं । हमने राम और सीताका जन्म

तुमसे कहा, अब रावणका जन्म वर्णन करते हैं । रावणके दादाका नाम साक्षात् ब्रह्मा है ; वेही सब लोकोंके करनेवाले महा तपस्वी और स्वयम् उत्पन्न होनेवाले हैं । उनके प्रिय मानसिक पुत्रका नाम पुलस्त है, उस पुलस्तकी गङ्गा नामक स्त्रीके गर्भसे वैश्रवण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, वह वैश्रवण अपने पिताकी छोड़कर ब्रह्माके पास चला गया, तब उनके पिताकी वृद्धत क्रोध हुआ और उन्होंने अपने शरीरसे एक दूसरा पुत्र उत्पन्न किया, उस पुत्रका नाम विश्वा रखा; उस पुत्रको वैश्रवणके नाश करनेका बनाया था, परन्तु ब्रह्माने पहिलेही प्रसन्न होकर वैश्रवणकी अमर और कुवेरका पद दे दिया था और लोकपाल भी बना दिया था, तब शिव उनके मित्र होगये, और उनकी नलकूवर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । तब ब्रह्माने राक्षसोंके समेत लङ्काको कुवेरकी राजधानी बनाया और इच्छानुसार चलनेवाला पुष्पक नामक विमान दिया और यज्ञोंका स्वामी बनाकर राजका पद दिया ।

२७३ अध्याय समाप्त ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे महाराज युधिष्ठिर । क्रोधयुक्त पुलस्त मुनिके आधे शरीरसे जो विश्वा नामक मुनि उत्पन्न हुए थे, उन्होंने क्रोध करके कुवेरकी ओर देखा, तब कुवेरने जाना कि, ये महात्मा हमारे पिताके क्रोधसे उत्पन्न हुए हैं । फिर उनके प्रसन्न करनेका उपाय करने लगे । नरवाहन राक्षसनाथ कुवेर वृद्धत दिनतक लङ्कामें राज्य करते रहे, फिर उन्होंने विश्वाको पुष्पोत्कटा, राका और मालिनी नामक तीन राक्षसी दियो । वे तीनों महात्मा विश्वाको प्रसन्न करनेकी उपाय करने लगीं । हे भरतशर्दूल । वे सुन्दरी परस्पर अपना अपना कल्याण चाहती थीं । तब भगवात विश्वाने प्रसन्न

होकर-तीनोंकी वरदान दिया कि तुम्हारे तीनोंके एक एक पुत्र होगा, ये तीनों पुत्र तुम्हारी इच्छाके अनुसार लोकपालोंके समान होंगे। तब पुष्पोत्कटाके दो पुत्र हुए एकका नाम कुशकर्ण और दूसरेका नाम रावण था; ये दोनों महा बलवान और राक्षसोंके राजा हुए, मालिनीके विभीषण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, राकाकी खर और सूर्पनखा नामक दो सन्तान हुई; इन सबमें विभीषण वज्रत सुन्दर क्रियावान और धार्मिक हुआ, इन सब भाइयोंमें रावण सबसे बड़ा था, इस लिये वही राजा हुआ। यह दश मुख रावण महा पराक्रमी महाबली और महा उत्साही था। कुशकर्ण सब भाइयोंमें अधिक बलवान और युद्धमें वीर था, खर छली, युद्धवीर दुष्टबुद्धि धनुष विद्याका जाननेवाला, ब्राह्मणोंका शत्रु और मांस खानेवाला था। सूर्पनखा सिद्धोंको विघ्न करनेवाली और दुष्टा थी। ये चारों भाई वैदिके पण्डित व्रतधारी और वीर थे। ये सब अपने पिताके सङ्ग गन्धमादन पर्वतपर रहने लगे। एक दिन उन्होंने अपने पिताके सङ्ग बैठे हुए परम लक्ष्मीवान नरवाहन कुबेरकी देखा और तब उन सबको महाक्रोध हुआ और तप करनेका निश्चय किया। अनन्तर इन चारोंने घोर तपसे ब्रह्माको प्रसन्न किया। रावण एक सहस्र वर्षतक एक चरणसे खड़ा रहा और सावधान होकर पांच अग्नि तापने लगा। कुशकर्ण पृथ्वीमें सोकर व्रत करने लगे, विभीषण एक सूखे पत्ते खाकर तप करने लगे, ये उदार बुद्धि तब भी कुछ दिनतक उपवास करके जप करते रहे। खर और सूर्पनखा प्रसन्न होकर तप करनेके समय उन सबकी सेवा और रक्षा करते रहे। एक सहस्र वर्षके पश्चात् रावणने अपना सिर काटकर अग्निमें जला दिया, तब जगतके स्वामी ब्रह्मा प्रसन्न होगये और इन सबके पास आकर वरदान देनेकी कहा, तथा

तप करनेसे निवारण किया। ब्रह्मा बोले, हे पुत्रो! हम तुम लोगोंसे प्रसन्न हुए, अब जो चाहो सो वरदान मांगो, परन्तु अमर नहीं होगे जितने सिर तुमने अग्निमें होम किये हैं उतने सब तुम्हारी इच्छानुसार उत्पन्न होजायेंगे, तुम्हारा शरीर कुत्तर नहीं होगा तुम इच्छानुसार रूप धारण कर लोगे और युद्धमें सब शत्रुओंकी जीतोगे। रावण बोले, गन्धर्व, देवता, अमर, यक्ष, राक्षस, सर्प और गन्धर्वोंसे मेरी मृत्यु न हो। ब्रह्मा बोले, हे रावण! तुम्हारा कल्याण ही तुमने जिन सब लोगोंका नाम लिया उनसे मृत्यु नहीं है, तुमको मनुष्यके सिवा और कोई नहीं मार सकेंगे।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, ब्रह्माके वचन सुन रावण वज्रत प्रसन्न हुआ और जाना कि मनुष्योंकी हम खानेवाली हैं, मनुष्यसे हमको क्या भय है। तब कुशकर्णने ब्रह्माजीसे कहा हमको निद्रा अधिक मिली और सदा हमारे चित्तमें तमोगुण वर्तमान रहे। उसकी यही वरदान देकर ब्रह्मा विभीषणसे बोले, हे पुत्र! हम तुमसे प्रसन्न हुए हैं, अब जो तुम्हारी इच्छा हो, सो वरदान मांगो। विभीषण बोले, हे भगवन्! मैं यह वरदान मांगता हूँ कि अत्यन्त आपत्ति पड़ने पर भी मेरी बुद्धि अधर्ममें न जाय और मुझको बिना पड़े ब्रह्मास्त्र आजाय। ब्रह्माजी बोले, हे शत्रुनाशन! तुमने राक्षस योनिमें उत्पन्न होकर भी अधर्मको ग्रहण न किया, इससे हम तुमको अमर बनाते हैं। श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे पृथ्वीनाथ! रावण राक्षसने इस प्रकार ब्रह्माजीसे वरदान पाकर युद्ध करके लज्जा कीन ली। भगवान् कुबेर लज्जाकी छोड़कर गन्धर्व यक्ष और राक्षसोंके सहित गन्धमादनको भाग गये। तब रावणने वहां जाकर उनसे पुष्पक विमान कीन लिया; तब कुबेरने रावणको शाप दिया कि यह विमान तुम्हको नहीं ले जा सकेगा और जो

तेरा मारनेवाला होगा वह इसपर चढ़ेगा, हम तुमसे बड़े हैं, तैने हमारा अपमान किया है, इसलिये तू बहुत दिन नहीं जीवेगा। मरणा विभीषण धर्मात्माओंके भागकी स्मरण करके परम लक्ष्मणके सहित कुबेरके सङ्ग घूमते रहे। भगवान् कुबेरने प्रसन्न होकर विभीषणको पुत्र और राजाओंका सेनापति बनाया। उसी समय मनुष्य मन्त्री राजस मन्त्री बलवान पिशाच और सवने मिलकर रावणकी राजा बनाया। रावणने राजा होकर देवता और दानवोंसे युद्ध करके रत्नोंको छीन लिया। रावण काम-क्षपी और आकाशचारी था। इससे सब जीवोंकी सुलाया, इसलिये उसका नाम रावण हुआ। उसने राजा होकर देवताओंकी बहुत दुःख दिया।

२७४ अध्याय समाप्त ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे महाराज युधिष्ठिर। तब एकदिन ब्रह्मर्षि, सिद्ध और देवर्षि लोग अग्निकी आगे करके ब्रह्माजीके पास गये। अग्नि बोले, हे भगवन्। आपने जो महाबलवान रावणको वरदान देकर अवध्य कर दिया है; जो अब सबको बहुत दुःख देता है, वह महाबलवान रावण सब जगत्की बाधा दे रहा है, इसलिये, आप हमारी रक्षा कीजिये, आपके सिवा और कोई रक्षा नहीं कर सकता है। ब्रह्मा बोले, हे अग्नि। उसकी देवता और दानव कोई नहीं मार सकते हैं, इसलिये उसका जीतना बहुत कठिन है, इसी लिये भगवान् विष्णुने हमारी प्रार्थनासे जगत्में अवतार लिया है, शस्त्र चलानेवालोंमें श्रेष्ठ विष्णुही इस कामको सिद्ध कर सकते हैं। श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, अनन्तर ब्रह्माजीने सब देवताओंके सहित इन्द्रसे कहा कि तुम लोग विष्णुकी सहायताके लिये रीढ़ और बानरोंकी स्त्रियोंके गर्भमें अवतार लो और अपने वीर्यसे बलवान

पुत्रोंकी उत्पन्न करो। ब्रह्माके ऐसे वचन सुन देवता दानव और गन्धर्वोंने अपने अपने अंगोंसे अवतार लेनेकी सम्मति करी। उसी समय भगवान् ब्रह्माने दुन्दभी नामक गन्धर्वोंसे कहा कि तुम देवताओंके कार्यकी सिद्धिके लिये पृथ्वीमें अवतार लो। वरदान देनेवाले ब्रह्माजीकी आज्ञा सुन दुन्दभी नामक गन्धर्वोंने पृथ्वीमें अवतार लिया और उसका नाम मन्थरा हुआ। इन्द्रादिक देवताोंने उत्तम उत्तम बानरोंकी स्त्रियोंके गर्भमें पुत्र उत्पन्न किये। इसी प्रकार रीढ़ोंकी स्त्रियोंके गर्भमें भी पुत्र उत्पन्न हुए। वे सब लोग बल और यशमें देवताओंके समान थे; पर्वतोंकी शिखरोंकी तोड़ सकते थे; शाल ताड़ आदि वृक्ष ही उनके शस्त्र थे; उन लोगोंका बल अत्यन्त था। वे लोग इच्छानुसार शरीर और बलकी धारण कर सकते थे, सब लोग युद्ध विद्याके पण्डित सहस्र हाथियोंके समान बलवान वायुके समान तेज चलनेवाले और इच्छानुसार निवास करनेवाले थे। भगवान् ब्रह्माने ये सब प्रवच्य करके मन्थराकी सब काम वता दिया। मन्थरा ब्रह्माके वचन स्वीकार करके इधर उधर घूमने लगी और बैर करानेके लिये समय देखने लगी।

२७५ अध्याय समाप्त ।

महाराज युधिष्ठिर बोले, हे भगवन्। आपने राम आदिका जन्म हमसे वर्णन किया, अब आप उनके वन जानेका वर्णन कीजिये, दशरथके पुत्र वीर राम और लक्ष्मण यशस्विनी सीताकी सङ्गमें लेकर वनकी क्यों गये थे? श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे नरनाथ। जब महाराज दशरथके चार पुत्र उत्पन्न हो गये तब दशरथ परम प्रीतिसे क्रिया कर्म और बड़ोंकी सेवा करने लगे, महाराजके चार पुत्र महा तेजस्वी वेद और वेदाङ्गोंके जाननेवाले धनुर्वेदके पारगामी और ब्रह्मचारी

थे । अनन्तर महाराजने चारों पुत्रोंका विवाह कर दिया । उस समय महाराज दशरथ वृद्धत प्रसन्न हुए । उन चारों भाइयोंमें बड़ेका नाम राम था । उनसे प्रजा वृद्धत प्रसन्न रहती थी । बुद्धिमान राम वृद्धत साधु थे, इसीसे उनके पिता वृद्धत प्रसन्न रहते थे । हे भारत । जब बुद्धिमान दशरथने देखा कि मैं वृद्ध होगया तब धर्म जाननेवाले मन्त्री और पुरोहितोंको बुलाकर रामको युवराज करनेकी सम्मति पूंछी । मन्त्रियोंने भी उचित समय जानकर स्वीकार किया । हे कुरुनन्दन ! महाराज दशरथ लाल नेत्रवाले, महाबाहु, मत्तवाले हाथीके समान चालवाले, जंचे कन्धे और काले बालवाले, महातेजस्वी, इन्द्रके समान योद्धा वृहस्पतिके समान बुद्धिमान, सब धर्मोंके जाननेवाले, सब विद्याओंके पण्डित, सबके प्यारे, जितेन्द्री, शत्रु-वोंकी भी मनोहर, दुष्टोंकी दण्ड देनेवाले, धर्मात्माओंके रक्षक बुद्धिमान और जीतनेवाले रामकी देखकर वृद्धत प्रसन्न हुए । महा तेजस्वी दशरथ बलवान रामके गुणोंकी विचारकर अपने पुरोहितसे बोले, हे ब्रह्मन् ! आपका कल्याण हो, आज प्रातःकाल पुष्य नक्षत्र आवेगा, इससे सब सामग्री इकट्ठी करो और रामकी निमन्त्रण दे आओ । महाराजकी ऐसी आज्ञाकी सुन मन्थरा कैकेयीके पास गई, और अच्छा समय जानकर कहने लगी, हे कैकेयी । आज राजाने तुमकी महा दुःख देनेका उपाय किया है, हे दुर्भागिनी । यदि तुमकी घोर सर्प काट ले और तू मर जाय तो अच्छा हो, कौशल्या बड़ी भाग्यवती है, जिसका पुत्र प्रातःकाल राजा होगा, तुम बड़ी दुर्भागिनी हो जिसका पुत्र राजा न हुआ । मन्थराके ऐसे वचन सुन महा सुन्दरी कैकेयी सब आभूषण पहिनकर वेदीपर बैठी और राजाकी एकान्तमें बुलाकर विनय करके हंसती हुई भीठे वचनसे बोली, हे सत्यप्रतिज्ञ महा-

राज । तुमने जो हमको दो वरदान दिये थे, उनको आज सत्य कीजिये । महाराज बोले, कल्याण । जो तुम्हारी इच्छा हो सो वरदान मांगो, हम तुम्हें देंगे तुम्हारे कहनेसे न मांगो योश भी पुरुष मारा जायगा और मांगो योश छोड़ दिया जायगा, कहो कौनसे निषेध की धनी कर दूं और कौनसे धनीकी निषेध कर द ; ब्राह्मणोंके धनकी छोड़कर और कुछ मेरे पास है, सो सब तुम्हारे कहनेसे दान कर सकता हूं, मैं पृथ्वीमें राजोंका महाराज हूं, चारों वर्णकी रक्षा करता हूं, इससे मैं तुम्हारी इच्छा हो सो वरदान तुम शीघ्र मांगो राजाके ऐसे वचन सुन और अपनेको प्रसन्न जान कैकेयी बोली, तुमने जो रामके अभिषेक लिये सामग्री इकट्ठी की हैं, उससे भरतका अभिषेक हो और राम वनकी जाय । राजाने ऐसे कठोर और अप्रिय कैकेयीके वचन सुनकर कुछ न कहा और व्याकुल होगये । जब बलवान रामने इस समाचारकी सुना तो महाराजकी प्रतिज्ञा सत्यही ऐसा कहकर वनकी चले गये । उनके पीछे धनुष धारण करके श्रीमान लक्ष्मण भी उनके सङ्ग चले, उनके पीछे विदेह राजा नन्दिनी सीता भी चलीं । रामके जानेके पश्चात् महाराज दशरथ स्वर्गकी चले गये । जब कैकेयीने देखा कि राम वनकी चले गये, तब भरतकी बुलाकर कहा कि राजा दशरथ तो स्वर्गकी चले गये और राम लक्ष्मण वनवासी होगये अब तुम इस बड़े भारी राज्यकी प्रवृत्ति करो । माताके ऐसे वचन सुन धर्मात्मा भरतकी कहा, हे कुलकलङ्घिनी मा । तैने धनके लोभसे अपने पतिकी मार डाला और अयशकी शोच मेरे सिर पर धर दी ; अब तू प्रसन्न होकर अपनी इच्छानुसार काम कर । ये कहकर भरत रोने लगे । अनन्तर सब सभासदोंकी बुलाकर सबके आगे कहा कि यह काम मेरी सम्मतिसे नहीं हुआ ; कैकेयीने अपनी इच्छा

अनुसार किया है। अनन्तर भरत रामकी लौटा-
नेके लिये चले। सबसे पहिले कौशल्या,
सुमित्रा और कैकेयी चलीं; उनके पीछे शत्रुघ्नके
सहित भरत चले, फिर वशिष्ठ और वामदेव
महाऋषियोंके सहित सहस्री ब्राह्मण, उनके
पीछे नगर और सेनाके लोग चले। भरतने
वत्कूट पर्वत पर लक्ष्मणके सहित रामको
देखा कि मुनियोंका वेष धारण किये धनुष
बाणमें लिये बैठे हैं। रामने भरतको वज्रत सम-
झाया और कहा कि मेरे लौटनेसे पिताके
चन असत्य हुआयगी। तब भरत अयोध्याको
लौट आये और रामकी खड़ाजं रखके नन्दि-
राममें राज्य करने लग। रामने जाना कि
वहा फिर भी नगर निवासी आवेगे, तब वहांसे
वहा, घार वनकी चले गये, वहासे सरभङ्ग
मुनिके आग्रहपर पङ्कच वहा सरभङ्ग मुनिकी
जा करके दण्डकारण्य वनकी चले गये, वहा
मण्णोय गोदावरोके तटपर रहने लगी, उस
नसे सूर्पनखाके कार्यसे जनस्थान निवासी खर
रामक राक्षससे घोर वैर होगया। धर्मप्रिय
रामने मुनियोंकी रक्षाके निमित्त चौदह
हस राक्षसोंको मारा उसी युद्धमें महा
बलवान खर और दूषणभी मारे गये। तब
हिमान रामने उस वनकी धर्मस्थान बना
लिया। उन राक्षसोंके मरनेके पश्चात
सूर्पणखा लङ्कामें रावणके घर गई और
वर्चिकृत होकर रावणके चरणोंमें गिर पड़ी।
सूर्पणखाके मुखका रक्त सुख गया था। सूर्प-
णखाकी यह दशा देख रावणको बड़ा क्रोध
हुआ। वह अपने दातोंसे दांतको चावने
लगा और सिंहासनपर कूदने लगा। तब
रावणने अपनी सभाको विसर्जन किया और
सूर्पणखाको एकान्तमें बुलाकर पूछने लगा, हे
कन्या! मेरा निरादर करके तुम्हारी यह दशा
किसने कर दी? कौन घोर विशूलपर बैठ-
कर अपने शरीरको काटना चाहता है? किसने

जलतो जुड़ अग्निकी अपने सिरहाने रखकर
सुखसे सोनेकी इच्छा करी है? कौन सूर्प विष
भरे सर्पकी लातमें मारना चाहता है? कौन
घोर बलवान सिंहके दात उखाड़ता चाहता
है। ऐसा कहते हुए रावणके कान नाकसे
अग्निकी ज्वाला निकलने लगीं, उस समय
रावणको ऐसी शोभा हुई जैसे रातमें जलते
हुए दृक्की। तब सूर्पणखाने रामका सब बल
कह सुनाया और कहाकी चौदह सहस्र
राक्षसोंके सहित खर दूषणभी मारे गये।
तब रावणने सूर्पणखाको शान्त किया और
रामके मारनेका विचार करने लगा। राजा
रावणने अपने सब नगरका प्रबन्ध ठीक किया,
उसके पश्चात रथपर बैठ त्रिकूटाचल और कात
पर्वतको नांघकर रमणीय समुद्रकी देखता
हुआ, आकाश मार्गसे गोकर्णकी ओर चला।
वह गोकर्ण शूलधारो महात्मा शिवका अत्यन्त
प्रिय स्थान है; वहा रावणने जाकर भारीचकी
देखा; वह भारीच पहिलेहीसे रामके डरके
मारे उस स्थानमें आपड़ा था।

२७६ अध्याय समाप्त ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन युधि-
ष्ठिर! रावणको देखकर भारीच बबड़ाकर
उठा और फल तथा मूलसे उसको पूजा करी।
जब सुखपूर्वक राक्षसराज आसर पर बैठे, तब
भारीच बोला, हे राक्षस नाथ! आप यहा किस
लिये आये हैं? यदि वह काम बज्रत कठिन
ही तोभी सिद्ध ही जानिये। तब पण्डित रावणने
अर्थ जाननेवाले भारीचसे तब वृत्तान्त अर्थपूर्वक
कह सुनाया। तब भारीच बोला, हम तुमको
सावधान नहीं देखते, कहा तुम्हारे नगर
और घरमें कुशल तो है? कही तुम्हारे आधीन
राजा लोग तुम्हारी सेवातो करते हैं? तब
रावणने रामके सब पराक्रमको भारीचसे कह
सुनाया और क्रोध करके सब यत्तिभी कह

सुनाई । रावणके वचन सुन मारीच कहने लगा कि रामसे वैर करना वृथा है, क्योंकि हम उनके पराक्रमकी जानते हैं, उस महात्माके वाणवेगकी इन्द्र भी नहीं सह सकते हैं, उसी पुरुषसिंहने मुझे यहां फेंक दिया है, किस मूर्खने तुमको यह नाशका द्वार बता दिया है । तब रावणने क्रोधसे डराकर मारीचसे कहा है मारीच ! जा तू मेरे वचनको नहीं मानेगा तो हम तुमको अभी मार डालेंगे । मारीचने विचार कि श्रेष्ठ पुरुषके हाथसे मरना अच्छा है, अब मेरी मृत्यु प्राप्त हो गई । ऐसा विचार कर मारीच वाला, कहा हम तुम्हारी सहायताके लिये कौनसा कर्म करें ? तब दशमुख रावणने कहा कि तुम अपने शरीरकी रक्त और सोनेका बनाओ और हरिनका रूप धारण करके रक्तके सींग बनाओ, ऐसा विचित्र रूप बनाकर जब तुम सीताके आगे जाओगे तो वह अवश्य तुम्हारे मारनेके लिये रामको भेजेगी ; जब राम आश्रमसे निकलके चले जायंगे, तब सीता मेरे वशमें हो जायगी, तब मैं सीताको लेकर लङ्काकी चला आऊंगा, तो राम आप-हो मर जायंगे, वह दुर्बुद्धि राम स्त्रीके वियोगमें कभी जीता नहीं रहेगा, इस लिये तुम हमारी यही सहायता करो । मारीचने उसके वचनको स्वीकार करके अपना आज्ञा किया, फिर दुःखी होकर रावणके साथ चला । जब ये दोनों उत्तम कर्मकारो रामके आश्रम पर पहुँचे तब उन दोनोंने वही कर्म किया जिसकी सम्मति पहिले कर चुके थे । रावणने तीन दण्ड धारण किये और सिर मुड़ाकर कमण्डलु धारण किया और मारीचने हरिनका रूप धारण कर लिया । तब वे दोनों रामके आश्रम पर पहुँचे । मारीचने अपना रूप सीताको दिखाया, तब सीताने रामसे कहा कि इस हरिनको मारो । राम उनकी प्रसन्नताके लिये धनुष लेकर शीघ्र दौड़े और सीताकी रक्षाके

लिये लक्ष्मणको वहाँ छोड़ गये । राम तुषीर और खड्ग धारण करके उस हरिनके पीछे इस प्रकार दौड़े जैसे हरिण रूपधारी प्रजापतिने पीछे शिव दौड़े थे । उस समय मारीच कहीं प्रगट और कहीं गुप्त हो जाता था, इस प्रकार राम मारीच के पीछे वृद्धत दूरतक दौड़े गये । तब बुद्धिमान रामने जान लिया कि यह राक्षस है, तब धनुषपर महा वाणको चढ़ाकर मारा उस वाणके लगनेसे मारीचने मरते समय रामका ऐसा शब्द बनाकर लक्ष्मण और सीताको पुकारा । उस रीनके शब्दकी सुनकर सीता उसी ओरको दौड़ी तब लक्ष्मणने सीतासे कहा, है भीरु ! जगतमें ऐसा कौन है जो रामको मारेगा ? इस लिये शङ्का करना वृथा है, तू एक क्षणके पश्चात अपने पति रामके दर्शन करोगी । लक्ष्मणके ऐसे वचन सुन सीताकी वृद्ध दुःख हुआ और रो कर कहने लगी, रे नृप ! मैं सती और पतिव्रता हूँ, मेरा चरित्र जो मेरा आभूषण है, जो बात तू अपने हृदयमें विचारता है, वह कभी नहीं होगी, मैं किसी शत्रुके आत्महत्या करूँगी अथवा पर्वतसे गिरकर मर जाऊँगी या जलती हुई अग्निसे प्रवेश कर जाली परन्तु सिंहरूपी रामको छोड़ तुम सियारकी इच्छा नहीं करूँगी । रामके प्यारे उत्तम चरित्र वाली लक्ष्मणने सीताके ऐसे कड़े वचनोंकी सुनकर अपने कानोंकी बद्ध बंध लिया और धनुष उठाकर जिधरका राम गये थे, उधरहीको चले गये, परन्तु पीछे फिर कर सीताको देखते ही रहे । लक्ष्मणके जानेके पश्चात रावण रामके आश्रममें आया, उस दुष्ट रावणने सन्यासीका वेष बनाया । उस समय रावणकी ऐसी दशा हुई जैसे राखसे क्षीपी अग्नि की । उस दुष्टने पतिव्रता सीताकी रक्षा के लिये नकी इच्छा करी । जब धर्म सीताने देखा कि हमारे आश्रमपर एक आया है, तब उन्होंने उसे खानकी फ

ल दिये, तब उसने उन सबका निरादर किया और अपना रूप धारणकर सीतासे बोला, हे ते ! मैं राक्षसराज रावण हूँ, मेरी रम्य लङ्का-सी समुद्रके पार है, अब तुम मेरे सब स्त्रियोंके सहित मेरे सङ्ग वहीं विचार करना । हे सुन्दरी ! तुम रामको छोड़ दे और मेरी स्त्री हो जा । सुन्दरी सीताने रावणके ऐसे कठोर वचनोंको सुनकर अपने कानोंकी बन्द कर लिया, और कहा कि ऐसा नहीं हो सकता, मैं सब तारे पृथ्वीमें गिरें चाहे पृथ्वी फट जाय, मैं अग्नि ठण्डी होजाय, पर मैं रामको नहीं छोड़ूंगी ; भला मतवाली हाथीकी स्त्री स्रग्धरको काबू कर सकती है ? भला ऐसी कौन सी स्त्री होगी, जो सङ्ग और दाखके मद्यकी पीकर काजोकी दृष्टि करे ? रावणसे ऐसा कहकर सीता अपनी कुटीके भीतर चली गई उस समय क्रोधके मारे सीताके आँठ फरकने लगी, और हाथोंको चलाने लगी । तब रावणने दौडकर सीताको पकड़ लिया, और कठोर वचन कहने लगा । अनन्तर सीताके बाल पकड़कर कुटीसे खींच लिया । उस समय सीता मूर्च्छित हो गई । तब रावण उसको उठाकर आकाशको उड़ गया, तब तपस्विनी सीता हा राम हा लक्ष्मण कहकर रीने लगी । तब पर्वत पर बैठे हुए जटायुने सीताको देखा ।

२७७ अध्याय समाप्त ।

आमार्कण्डेय सुनि बोले हे राजा युधिष्ठिर ! सम्पातीका भाई गरुडका पुत्र सहावीर जटायु नामक गिद्धराज महाराज दशरथका मित्र था, जब उसने देखा कि मेरी पुत्रवधू सीताको रावण लिये जाता है, तो क्रोध करके राक्षसनाथ रावणके पीछे दौड़ा और कहने लगा, हे निशाचर ! तू सीताको छोड़ दे, मेरे आगेसे तू इसको नहीं छोड़ेगा तो हमसे जीता नहीं रहेगा । ऐसा कहकर रावणको अपने पक्षोंसे

मारने लगा । गिद्धके पक्षों और चींचसे चोट लगनेके कारण रावणके शरीरमें अनेक घाव होगये और उनमें इस प्रकार रुधिर बहने लगा कि जैसे पहाड़के झरनोंसे जल बहता है । रामके प्रिय गिद्धसे पीड़ित होकर रावणने खड्गसे जटायुके पर काट दिये ; उस वर्षते हुए मेघके समान गिद्धको भारकर रावण सीताके सहित आकाश मार्गसे चला, सीताने जहा नदियोंका आश्रम देखा और नदी तथा तलाव देखा वहीं अपना एक एक भूषण डाल दिया । मनस्विनी सीताने एक पर्वतके शिखर पर पांच वन्दरोंको बैठे देखा, वहाँ उन्होंने अपना दिव्य वस्त्र डाल दिया । वह पोला वस्त्र वायुसे उड़ता हुआ, उन पांच वन्दरोंके बीचमें इस प्रकार गिरा कि जैसे पांच बादलोंके बीच विजुली गिरती है । आकाशमें चलनेवाला रावण भी पक्षीके समान उड़ता हुआ अनेक द्वार मन्दिर और अटारियोंसे शोभायमान विश्वकर्माकी बनाई हुई दिव्य रमणीय लङ्कापुरीमें पहुँचा और सीताके सहित अपने मन्दिरमें प्रवेश किया ।

इस प्रकार जब रावण सीताको ले गया, तब बुद्धिमान राम भी हरिनको मारके लौटे । तब उन्होंने देखा कि लक्ष्मण चले आते हैं । तब रामने लक्ष्मणसे कहा, हे लक्ष्मण ! तुम इस राक्षस भरे बनमें अकेली सीताको छोड़कर किस प्रकार चले आये । रामने सग रूपधारी राक्षसके सङ्ग चले आने और लक्ष्मणके आगमनकी विचारकर बहुत सोच किया । फिर लक्ष्मणको निन्दा की और कहने लगे, हे हे लक्ष्मण ! शीघ्र आश्रमको चलो, देखो सीता जीती है या नहीं, लक्ष्मणने सीताके सब कठोर वचनोंको कह सुनाया । सुनकर रामका हृदय जलने लगा । तब वे दोनों आश्रमको चले । मार्गमें पर्वतके समान पड़े हुए जटायुको देखा । राम और लक्ष्मणने उसको राक्षस जानकर धनुष खींचा और उसकी ओरकी दौड़े । उसने

कहा तुम लोगोंका कल्याण हो ; मैं मन्त्राराज दशरथका मित्र जटायु नामक गिड़ हूँ। उसके वचन सुनकर उन दोनोंने धनुषकी उतार लिया, और कहने लगे कि यह हमारे पिताका नाम लेनेवाला कौन है? तब दोनोंने उसके पास जाकर देखा कि एक पक्ष कटा हुआ पक्षी, पड़ा है। तब गिड़ने सीताके निमित्त रावणसे लड़नेका और अपने मृत्युका सब हाल रामसे कह सुनाया। अनन्तर रामने गिड़से पूछा कि रावण किस ओर गया है। तब जटायुने अपने सिरकी हिलाकर दक्षिणकी ओर बता दिया। उसी समय जटायु मर गया। तब रामने अपने पिताके मित्रकी क्रिया करी। फिर राम अपने आश्रमपर आये। आश्रमकी नष्टभष्ट और सहस्रों सियारोंसे भरा हुआ देख शोक और दुःखसे व्याकुल होगये। अनन्तर शत्रुनाशन राम और लक्ष्मण सीताके दुःखसे व्याकुल होकर दक्षिणकी ओरकी चले, तो राम और लक्ष्मणने उस घोर वनमें राक्षस और फिरते हुए हिरनोंके अनेक झुंड देखे। उस समय उस वनमें जन्तुओंका ऐसा घोर शब्द हो रहा था जैसे आग लगनेसे होता है। थोड़े समयके पश्चात् उन्होंने कवच नामक राक्षसकी देखा, वह मेघ और पर्वतके समान शरीर वाला शालके वृक्षके समान ऊँचा बड़ा मुख और बड़ा पेट-वाला था। उस राक्षसने लक्ष्मणकी अपने हाथसे पकड़ लिया। उसके पकड़नेसे लक्ष्मण रोने लगे। जब उस राक्षसने लक्ष्मणकी पकड़ कर अपने मुखमें डालना चाहा, तब लक्ष्मण रोककर रामसे कहने लगे कि हमारी इस दशाको आप देखिये, हे आर्य्य। सीताका चुराया जाना, हमारी यह दशा, पिताका मरना और राज्यका नष्ट होना ये सब आपत्तियाँ एकही बार आपके ऊपर पड़ीं, हमारी प्रारब्धमें यह नहीं था कि सीताके सहित अयोध्याको जायं

और वहाँ सनातन राजसिंहासन पर बैठा आपको देखें; जो पुरुष आपका कुश लावा और हृवसे अभिषेक होते देखेंगे उनको धन्य है, जब आप राजसिंहासन पर बैठेंगे तो आपके मुखकी ऐसी शोभा होगी कि जैसे बादलसे निकले हुए चन्द्रमाकी। इस प्रकार कहकर लक्ष्मण रोने लगे। अनन्तर आपत्ति कालमें भी धीरराम बोले, हे पुरुषसिंह! तुम किसी प्रकार बचड़ाओ मत हमारे आगे यह राक्षस क्या वस्तु है? तुम इसके दहिना हाथकी काट दो मैं बाएँकी काटता हूँ। ऐसा कहकर रामने तौलख खड्गसे उसकी बाईं भुजाको इस प्रकार काटकर गिरा दिया कि जैसे कोई तिलकी शाखाको काटता है। उसी समय वलवान, लक्ष्मणने अपने भाई रामको खड़ा हुआ देखकर अपने खड्गसे उस राक्षसका दहिना हाथ काट लिया। अनन्तर उसने हाथसे छूटकर एक खड्ग उसकी पशुलीमें मारा तब वह राक्षस मर कर पृथ्वीमें गिर गया, तब उसके शरीरसे एक दिव्य पुरुष निकला और वह आकाशमें जाकर सूर्यके समान प्रकाशमान होने लगा। तब पण्डित राम उससे पूछा कि तू कौन है? हमकी तुम्ह देख कर वज्रत आश्चर्य्य होता है, तुमने अपनी इच्छा अनुसार यह रूप क्यों धारण किया था? तब उस गन्धर्व्वने रामसे कहा कि मैं विश्वासे नामक गन्धर्व्व हूँ, मैंने ब्राह्मणकी शापसे राक्षस योनिमें जन्म लिया था, लङ्कावासी राक्षस रावण सीताको ले गया है सो तुम सुग्रीवके पास जाओ, वह तुम्हारी सहायता करेगा, यह ऋष्यमुख पर्व्वतके तटपर हंस और सारंगभरा हुआ पद्मा नामक तड़ाग है, इसका जल वज्रत सुन्दर है, उसी ऋष्यमूक पर्व्वतपर वार मन्त्रियोंके सहित सुग्रीव निवास करते हैं, वे सुवर्ण मालाधारी वानरराज वालिके भाई हैं, तुम उनसे जाकर अपना सब दुःख कह देना

वह भी तुम्हारे समान शीलवान है, अवश्य तुम्हारी सहायता करेंगे। हम इतना कह सकते हैं कि तुम अवश्य सीताको प्राप्त करोगे क्योंकि वानरराज सुग्रीव रावणको धरकी जानते हैं। ऐसा कहकर वह महा तेजस्वी दिव्य पुरुष अन्तर्धान हो गया। तब वीर राम और लक्ष्मणकी वज्रत आश्चर्य ज्ञा।

२७८ अध्याय समाप्त ।

श्रीमार्कण्डेय सुनि बोले, हे राजन् युधिष्ठिर ! तब सीताकी दुःखसे व्याकुल राम वहाँसे चले और अनेक कमलोंसे भरे हुए पद्मों पर पड़े। वहाँ अमृतकी समास सुगन्धि वाले शीतल वायुके लगनेसे रामकी सीताका स्मरण हुआ। महाराज राम कामसे व्याकुल होकर सीताकी स्मरण करके रोने लगे। तब लक्ष्मणने उनसे कहा है आर्य्य। तुम्हारे ऐसे पुरुषकी दुःख न होना चाहिये, उत्तम आचारसे रहनेवाले पुरुषकी रोगा नहीं चाहिये, आपकी उचित है कि सीता और रावणकी दूढ़ें; फिर अपने बल बुद्धिसे रावणके मारनेका उपाय कीजिये, बलिये हम वानरराज सुग्रीवसे मिलें, मैं आपका दास, शिष्य और सहायक हूँ, इससे घबड़ाइये मत। लक्ष्मणके अनेक वचनोंकी सुनकर राम सावधान हुए और उपायका विचार करने लगे। रामने पद्मोंके जलमें स्नान किया और पितरोंका तर्पण किया। फिर दोनो आगिकी चले, वहाँसे चलकर राम और लक्ष्मण अनेक कुल और मूलसे भरे हुए ऋष्यमूक पर्वत पर पहुँचे। उन्होंने पर्वत पर बैठे हुए पाँच पन्द्रहोंको देखा। तब सुग्रीवने हिमाचलके समान शरीरवाले बलिमान मन्त्रीको रामके पास भेजा। तब उससे वार्त्तालाप करके वे दोनो सुग्रीवके पास गये। हे महाराज ! तब रामने सुग्रीवके साथ बैठो करी और अपना धर्म प्रयोजन कह सुनाया, तब सुग्रीवने रामकी

सीताका वह वस्त्र दिखाया जो सीताने जाती वार गिरा दिया था। तब रामने सुग्रीवकी बाँद-रोंका राजा बनाया और अपने हाथसे उसका अभिषेक किया। फिर रामने बालिके मारनेकी प्रतिज्ञा करी और सुग्रीवने सीताके लानेकी प्रतिज्ञा करी। तब उन्होंने परस्पर विश्वास करके मित्रताको दृढ़ किया। फिर वे सब लोग युद्धकी इच्छा करके किष्किन्धाको गये। किष्किन्धाके द्वार पर जाकर सुग्रीव बड़े बेगसे गजी। सुग्रीवका शब्द सुनतेही बालिको महा क्रोध हुआ और उससे युद्ध करनेकी इच्छा करके चन्ना चाहा। तब उसकी स्त्री ताराने उसको निवारण किया और कहने लगी कि बलवान वानर सुग्रीव जिस प्रकार गर्ज रहा है इससे जान पड़ता है कि अवश्य इसका कोई सहायक है, इस लिये तुम युद्ध करने मत जाओ; वानर-राज सुवर्ण मालाधारो पण्डित, चन्द्रमुखी ताराकी वचन सुनकर बोला तुम सब जन्तुओंकी बोलीकी जानती हो बुद्धिसे विचार करो कि सुग्रीवने किसका आश्रय लिया है। अनन्तर चन्द्रमुखी ताराने एक सुहृत्तक विचार कर कहा कि हे वानरराज ! आप सब विचारकी सुनिये। दशरथ पुत्र रामकी स्त्रीकी रावण चुरा कर ले गया है, वही धनुषधारो राम सुग्रीवके मित्र हुए है, उनके भाईका नाम महाबाहु लक्ष्मण है, वे सुमित्राके पुत्र युद्धमें अपराजित और बुद्धिमान है, वेही सुग्रीवके कार्य्य सिद्धिके लिये उपस्थित हुए हैं; द्विविद मयन्द, वायुपुत्र हनुमान और ऋक्षराज जाम्बवान ये चारों सुग्रीवके मन्त्रीभी सुग्रीवके समान हैं, ये सब लोग बुद्धिमान बलवान और महात्मा हैं, सुग्रीव रामके आश्रयसे तुमकी मारनेमें समर्थ है, उससे युद्ध करनेकी मत जाओ। वानरराज बालिने उसके वचनकी स्वीकार न किया और जाना कि यह सुग्रीवसे मिली है। तब ताराकी बालिने छोड़कर वहाँसे चल दिया और मात्य-

वान पर्वतके नीचे खड़े हुए सुग्रीवसे कहने लगा कि मैंने तुझको युद्धमें जीत लिया था, तब तू अपने जीवको लेकर भाग गया था, मैंने भी जाति जानकर तुझको छोड़ दिया था; अब मरनेके लिये इतनी शीघ्रता करके क्यों आया? बालिके ऐसे वचन सुनकर शत्रुनाशन सुग्रीवने चेतुके सहित रामको सुनाकर बालिके कहा, हे राजन् । आपने मेरा राज्य छीन लिया, मेरी स्त्रीको छीन लिया तब मैंने विचारा कि अब मैं जीकर क्या करूंगा, इस लिये अब युद्ध करनेको आया हूँ । ऐसा कहकर बाली और सुग्रीव अनेक प्रकारसे युद्ध करने लगे; कभी शिला और कभी वृक्षोंसे मारते थे, कभी मुक्के और दांतोहीको शस्त्र बनाते थे; कभी एक दूसरेको पृथ्वीमें रगड़ता था कभी दोनों खड़े होकर युद्ध करने लगते थे, दोनों नाखून और दांतोंके लगनेसे रुधिरसे भीग गये । उस समय उन दोनोंकी ऐसी शोभा हुई जैसे फूले हुए टेसूकी । उन दोनोंके रूपमें भेद कुछ न दिखाई दिया तब हनुमानने सुग्रीवकी एक माला पहिनादी उस मालासे सुग्रीवकी ऐसी शोभा बढ़ी जैसी मेघोंसे सहा पर्वत मलयाचलकी शोभा होती है । जब रामने सुग्रीवके गलेमें चिह्न देख लिया, तब सहा धनुषपर बाण चढ़ाकर खींचा और बालिको लक्ष्य बनाया । उस समय रामके धनुषकी टङ्गार ऐसे वेगसे हुई जैसे किसी यन्त्र (कल) की होती है । जिस समय वह बाण बालिके हृदयमें लगा उस समय बालि घबड़ाकर पृथ्वीमें गिर पड़ा, उस बाणके लगनेसे बालिका हृदय फट गया, और सुखसे रुधिर गिरने लगा । जब बालि पृथ्वीमें गिर गया तब उसने लक्ष्मणके सहित रामको खड़ा देखा । तब उसने रामको अनेक गालियां दी और मूर्च्छित होकर पृथ्वीमें गिर गया । तब चन्द्रमाके समान तेजस्वी बालिके मरनेके पश्चात् सु. किष्किन्ध्यामें गया, और वहा चन्द्रमुखी

ताराके समेत सब राज्यकी प्राप्त किया । राम भी सुन्दर माख्यवान पर्वतके ऊपर वर्षा ऋतु भर रहे । सुग्रीव बुद्धिमान रामकी सेवा करते रहे ।

जब रावण अपनी रमणीय लङ्कापुरीमें पहुँचा, तब सीताको नन्दनके समान एक वागमें रख दिया, परन्तु रावण कामसे व्याकुल हो गया । सीता भी उस सुनियोंके आश्रमके समान अशोक वनमें तपस्विनीका वेष धारण करके रागका स्वरण करने लगी । सुन्दरी सीता उपवास करने केवल रामका स्वरण करने लगी; कभी फलमूल खा लेती थीं । राक्षस राज रावणने सीताको रक्षाके लिये अनेक राक्षसियोंकी रख दिया । वे राक्षसियां प्राण खड्ग, त्रिशूल, फरसा और मुद्गर आदि अनेक शस्त्रोंको धारण करके सीताके पास रहने लगीं, कोई एक नेत्रवाली, किसीके दो नेत्र किसीके तीन नेत्र, किसीके माथेमें नेत्र, किसीके बड़ी जिह्वा और किसीके जिह्वाही नहीं, किसीके तीन स्तन, किसीके एक चरण, और किसीके तीन जटा थीं, इत्यादिक अनेक रूपवाली राक्षसियां सीताकी रक्षा करने लगीं । उनके नेत्र बड़े प्रकाशमान और बड़े बड़े तथा उनके बाल भी प्रकाशमान रूपवाले थे । वे राक्षसियां दिन रात आलस रहित होकर सीताके पास बैठी रहती थीं । वे दारुण पिशाचरूपधारी राक्षसियां विशालनेनी सीताको डराया करती थीं । वे लोग कहती थीं, कि यह दुष्ट हमारे स्वामी रावणका निरादर करके जीती है इस लिये हम इसकी खाजायें, चीरडालें, तिनके समान टुकड़े कर डालें । वे सब लोग सीताको डराकर बार बार ऐसे ही वचन कहती थीं । तब सीता रामके शोकसे व्याकुल होकर और राम लेकर इस प्रकार उत्तर देती थी, हे स्वामी । तुम हमको शीघ्र खाजाओ, क्योंकि मैं अपने

। नेका लोभ नहीं करती हं, क्योंकि उन घुघ्राले बालवाले रामके बिना जीकर मैं क्या करूंगी, इसी लिये मैं निराहार होकर अपने जीवनको त्यागना चाहती हूँ; मैं अपने शरीरको इस प्रकार सुखा दूंगी, कि जैसे ताड़के वृक्षपर सर्पिनो। मैं रामको छुड़कर दूसरे पुरुषकी कभी इच्छा नहीं करूंगी। हमारी इस प्रतिज्ञाको सत्य जानकर जो उच्छ्वास हो, सो करो। घोर शब्द-वाली राक्षसिया सीताके ऐसे वचन सुन वे सब समाचार कहनेकी राक्षसराज रावणके पास गईं। जब वे सब राक्षसिया वहाँसे चली गईं तब धर्म जानने वाली प्रियवादिनी त्रिजटा नामक राक्षसी सीताको प्रसन्न करके बोली, हे वैदेही! हे सखी! हम तुमसे एक बात कहती हैं, तुम उसका विश्वास करो, तुम भयको छुड़ दो और हमारे वचनोंको ग्रहण करो बुद्धिमान राक्षसश्रेष्ठ बूढ़ा अविन्ध रामका हित चाहता है; उसने हमसे कह दिया था, कि तुम सीतासे जाकर हमारे वचन कहना और प्रसन्न करके उसको धीरज देना, तुम्हारे पति श्रीमान राम लक्ष्मणके सहित सुखी हैं, उन्होंने इन्द्रके समान तेजस्वी वानरराज सुग्रीवसे मित्रता करी है, और तुम्हारे लिये वज्रत उद्योग कर रहे हैं, तुम इस नीच रावणसे कुछ भय मत करो; जिस समय यह अजितेन्द्रिय दुष्ट रावण नलकूबरकी स्त्री रत्नाके पोछे दौड़ा था, तबही नलकूबरने इसको शाप दिया था, तबसे यह किसी स्त्रीके सङ्ग हठ नहीं कर सकता, तुम्हारे पति बुद्धिमान राम सुग्रीव और लक्ष्मणके सहित शीघ्र यहाँ आवेंगे, और तुमको इस दुःखसे छुड़ा देंगे, मैंने महा धीर अशुभ स्वप्न भी रातमें देखा है, उस स्वप्नका फल यह होगा, कि यह दुर्वृद्ध कुलनाशक रावण मारा जायगा, यह दुष्ट राक्षस महापापी सुद्रक्मकर्ता, स्वभावहीसे भयङ्कर है, यह कालके वशमें होकर

सदा सब देवतोंका डाह करता है; इस दुष्टके लक्षण मैंने स्वप्नमें देखे हैं, मैंने यह देखा है, कि दशमुख रावण तेलमें स्नान करके और सिर मुड़वाके कीचमें स्नान करता है, और गन्धोंके रथपर बैठकर नाचता है, और वे कुम्भकर्ण आदि राक्षस लालमाला चन्दन लगाकर तथा वस्त्र और बालोंसे रक्षित होकर दक्षिण दिशाको जाते हैं, केवल विभीषण ही सफेद माला चन्दन द्रव्य और पगड़ी धारण करके सफेद पर्वतके ऊपर बैठे हैं। विभीषणके चारों मन्त्रो सफेद मालाकी धारण करके हम लोगोंको इस दुःखसे छुड़ावेंगे, मैंने उन लोगोंका भी सफेद पर्वतके ऊपर बैठे देखा है, और यह भी देखा है, कि वे समस्त पृथ्वी तुम्हारे पति रामके वाणोंसे व्याप्त हो रही है और उनका यश जगत्में फैल रहा है। लक्ष्मण हड्डियोंके पर्वत पर बैठे हुए, मधु और घी खा रहे हैं, तथा अपने तेजसे सब दिशाओंको जला रहे हैं; तुमको भी मैंने स्वप्नमें इस प्रकार देखा है, कि तुम रुधिरमें भीग रही हो और सिंहसे रक्षित होकर उत्तरकी ओर जाती हो। हे वैदेही! तुम लक्ष्मणके सहित अपने पतिसे मिलकर शीघ्र आनन्दको प्राप्त होगी, सन्देह मत करो। कमलनैनी सीता त्रिजटाके ऐसे वचन सुनकर प्रसन्न हुई और उसने अपने पतिसे मिलनेकी दृढ़ आशा करी। उसी समय वे घोर राक्षसिया वहाँ आ गईं, उन्होंने सीताके सङ्ग त्रिजटाको बैठे हुए देखा।

२७६ अध्याय समाप्त ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन युधिष्ठिर। अनन्तर पतिके शोकसे व्याकुल, दुःखिनी, मलिन वस्त्रधारिणी, रोती हुई मणिमात्र भूषण धारिणी, पतिव्रता राक्षसियोंके बीचमें शिलापर बैठी हुई सीताके पास कामपीडित रावण आया। जो रावण देव, दानव, गन्धर्व

यज्ञ, राक्षस और किमपुरुषोंसे भी युद्धमें नहीं हारता था, वह कामके वागसे पीड़ित होकर अशोक बाटिकासे सीताके पास आया। दिव्य वस्त्र; मणिमय कुण्डल और विचित्र माला तथा विचित्र मुकुटधारी रावणकी शोभा ऐसी जान पड़ती थी, जैसी मूर्तिधारी बसन्तकी। अनेक आभूषण धारण करनेपर भी उसकी शोभा कल्पवृक्षके समान नहीं थी, बरन ऐसा जान पड़ता था जैसा फूलने फलनेपर भी अश्विनका वृक्ष भयङ्कर होता है। रावण उस सुन्दरी सीताके पास जाकर इस प्रकार खड़ा हुआ जैसे रोहिणीके पास शनिश्चर। काम-पीड़ित रावणने सीतासे इस प्रकार वातालाप किया जैसे कोई उरी हुई हरिनोसे। रावण बोला, हे सीता। तूने अपने पतिके ऊपर बहुत कृपा करी। हे सुन्दरी। अब हमारे ऊपर कृपा करो और वस्त्रादिकी धारण करो, हे सुन्दर मुखवाली। बहुमूल्य वस्त्र और आभूषणोंकी धारण करके हमारी सेवा करो, ऐसा करनेसे तुम हमारी स्त्रियोंमें श्रेष्ठ बनोगी; हे सुन्दर वरणवाली। मेरे यहां अनेक देव तथा गन्धर्वकी कन्या और स्त्रियां हैं, और दैत्य तथा दानवोंकी स्त्रियां भी हैं चौदह कड़ोर पिशाच मेरे दास हैं, और अट्ठाइस कड़ोर राक्षस मेरे वचनमें रहते हैं, वे सब लोग मनुष्योंके खानेवाले, और घोर कर्म करनेवाले हैं उनसे तिगुने यज्ञ लोग मेरे वशमें हैं, उनसे जो वचे वे सब मेरे भाई कुवैरके दास हैं, हे भद्रे। अप्सरा गन्धर्व और लोग मुझे देखकर इस प्रकार खड़े हो जाते हैं जैसे मेरे भाई कुवैरको, मैं साक्षात् महासुनि विश्रवाका पुत्र हूं, जातिका ब्राह्मण हूं, सुभक्तकी सब लोग पञ्चम लोकपाल कहते हैं, मेरा यश सब जगतमें फैला है, मेरे घरमें चलनेसे तुम्हें दिव्य भोजन वस्त्र और पीनेकी वस्तु मिलेंगी, जो जो वस्तु इन्द्रके घरमें मिल सकती हैं, सो मेरे यहां भी

प्राप्त होंगी, अब तुम वनवासके दुःखोंकी छोड़ दो। हे सुन्दरी। तुम मेरो स्त्री हो जाओ, मैं तुमकी मन्दोदरीके समान मानूंगा। रावणके ऐसे वचन सुन सुन्दर मुखवाली सीता एक तिनकेकी अपनी आंखोंके आगे करके और नेत्रोंसे जल धारा बहाती हुई बोली प्रतिव्रता सीता चंद्र रावणसे कहने लगी, हे राक्षसेश्वर। तुमने जो मुझ अभागिनीसे कहा, सो मैंने अत्यन्त दुःखित होकर सुना, हे भद्र। तुम्हारा कल्याण हो, तुम अब इस इच्छाको छोड़ दो; मैं प्रतिव्रता और दूसरेकी स्त्री हूं; इससे तुमको प्राप्त नहीं हो सकती, मैं मनुष्य जातिमें उत्पन्न हुई हूं, इससे तुम्हारा कुछ उपकार नहीं कर सकती, मुझकी विवश करके स्त्री बनानेसे तुमकी कुछ लाभ नहीं होगा; तुम्हारे पिता ब्रह्माके पौत्र और ब्रह्माके समान है, तुम धर्मका पालन नहीं करते हो, फिर लोकपाल कैसे हुए? तुम्हारे भाई शिवके मित्र धनेश्वर कुवैर हैं, क्या तुमकी उनका नाम लेते कुछ भी लज्जा नहीं आती?

रावणसे ऐसा कहकर सीता रोने लगी, और कांपने लगी, सीताने अपने सिर और मुखकी ठक लीगा और पृथ्वीको देखने लगी। सीताके रोते समय उनकी बड़ी वेणी इस प्रकार हिलने लगी, जैसे चिकने शरीरवाली काली नागिन सांस लेते समय हिलें। सीताके कठोर वचनोंकी सुनकर दुर्वाह रावण बोला, हे सीता। कामदेव भले ही अपनी इच्छानुसार दुःख दे, परन्तु मैं उत्तम हंसनेवाली तुमसे विना तुम्हारी इच्छा कुछ नहीं करूंगा, मैं तुम्हारे सङ्ग कुछ नहीं कर सकता। क्योंकि तुम अब तक हमारे भोजन मनुष्यका स्वरण करती हो। सुन्दरी सीतासे ऐसा कहकर राजसराय रावण वहीं अन्तर्धान हो गया, अर्थात् अपने घरकी चला गया, सीताभी शोकसे व्याकुल

होकर सब राक्षसियोंके समेत त्रिजटाके सङ्ग उसी वनमें रहने लगी ।

२८० अध्याय समाप्त ।

श्रीमार्कण्डेयमुनि बोले, हे राजन युधिष्ठिर । सुग्रीवसे रक्षित होकर लक्ष्मणके सहित रामने वर्षाऋतु भर पर्वतपर निवास किया । वर्षाके पश्चात् आकाश निर्मल होगया, चन्द्रमा शुद्ध होकर उदय होने लगा, नक्षत्र और तारा प्रकाशित होने लगे । उस समय कमल कुमुदिनी और नीले कमलकी सुगन्धिसे सुगन्धित पर्वतके शीतल वायुने रामकी जगाया, अर्थात् रामने जाना कि शरद ऋतु आगई । तब परम धर्मरत्ना रामने रावणके घरमें बंधी हुई, सीताका स्मरण करके और दुःखसे व्याकुल होकर वीर लक्ष्मणसे कहा हे लक्ष्मण ! तुम किष्किन्धाको जाओ और बानरराज सुग्रीवकी देखो, वह स्त्रियोंके वशमें होगया है ; जान पड़ता है, कि वह कृतघ्नी केवल अपने प्रयोजनकी पण्डित है, मैंने उस कुलाधमकी राज्य दिया, मेरे प्रतापसे बन्दर, लंगूर और रीक उसकी सेवा करते हैं, हे रघुकुलोत्तम ! हे महाबाह्वा ! जिस लिये मैंने तुम्हारी सहायतासे किष्किन्धामें बालिकी मारा है, उसी अवस्थाकी वह नीच बन्दर सुग्रीव नहीं जानता । हे लक्ष्मण ! मुझे जान पड़ता है, कि वह मूर्ख मित्रताकी पालन करना नहीं जानता, उस मूर्खकी बुद्धि बद्धत कम है, इसीसे उसने उपकार करनेपर भी हमको नहीं माना, तुम जाकर देखो कि यदि वह सीताके लिये कुछ उद्योग न कर रहा हो और केवल कामके वशमें सीता हो, तो जिस मार्गसे बालि गया है, और जिस मार्गमें सब जगतके प्राणी जाते हैं, उसी मार्गमें तुम सुग्रीवकी भोजना, यदि बानर-राज सुग्रीव हमारे लिये कुछ उद्योग करता हो, तो उसकी रक्षा शीघ्र ही हमारे पास चली आना । बड़ोंकी

आज्ञा पालनेवाली लक्ष्मण अपने भाईकी ऐसी आज्ञा सुन धनुष, रीदा, और बाणोंकी लेकर किष्किन्धाकी चले । उस किष्किन्धाके द्वारपर जाकर नगरके भीतर लक्ष्मण चले गये । जब बानरराज सुग्रीवने सुना, कि लक्ष्मण क्रोध करके किष्किन्धामें आये हैं, तब आपही उनके पास आए और उचित पूजा करी । निर्भय लक्ष्मणने सुग्रीवसे रामके सब वचन कह सुनाये । रामकी आज्ञा सुन सुग्रीव हाथ जोड़कर स्त्री पुत्र और दासोंके सहित पुरुष-सिंह लक्ष्मणसे कहने लगे, हे लक्ष्मण ! मैं दुर्बुद्धि कृतघ्न और निर्लज्ज नहीं हूँ, मैंने जो सीताके दूढ़नेका उपाय किया है, सो सुनिये । मैंने सब दिशाओंकी प्रधान बन्दरोंकी भेजा है, और सबकी एक महीनेका समय दिया है, वे सब लोग समुद्र पर्वत और नगरोंके सहित समस्त पृथ्वीमें सीताको ढूँढ़ते हैं, उनसे कोई गाव, नगर, वन और खान न बचैगी, अब उस महीनेमें पांच दिन शेष है अर्थात् पूरा होनेवाला है, तब तुम रामके सहित सीते वचनकी सुनाओ । बुद्धिमान बानरराज सुग्रीवके ऐसे वचन सुन तेजस्वी लक्ष्मण शान्त हुए, और सुग्रीवकी प्रशंसा करने लगे, फिर सुग्रीव और लक्ष्मणने मातृवान पर्वतपर जाकर रामसे सब वृत्तान्त कह सुनाया । इस प्रकार सहस्रों बानर पूर्व पश्चिम और उत्तरकी दिशाकी देखकर लौट आये, परन्तु दक्षिणकी कोई भी न गया । उन सबने आकर रामसे कहा, कि हम समुद्र पर्यन्त सब पृथ्वीका देख आये, परन्तु सीता और रावणकी कहीं न पाया । जा बानर दक्षिणकी ओर गये थे, राम उन्हींका मार्ग देखने लगे, और दुःखसे प्राणोंकी धारण करते रहे । दो महीने बीतनेके पश्चात् वे लोग दक्षिणसे लौटे और सुग्रीवके बागमें जाकर फल खाने लगे । तब उनके रक्षकोंने जाकर सुग्रीवसे कहा, कि हे बानरराज ! जिस मधु-वनकी रक्षा बालिने

और आपने की थी, उसको हनुमान खाते है, बालिपुत्र अङ्गद तथा और जो बानर लोग दक्षिणकी ओर सीताको ढूँढ़ने गये थे, वे सब मधुवनकी खा रहे हैं। उन सबके ऐसे वचन सुन सुग्रीवने विचारा, कि जो सेवक कार्य सिद्धि कर लेते हैं, वे ही ऐसे ऐसे काम कर सकते हैं, हमें जान पड़ता है, कि वे लोग सीताको देख आये हैं। अनन्तर बुद्धिमान वानरराज सुग्रीवने ये सब समाचार रामसे कहा। रामने भी अनुमानसे जान लिया, कि ये लोग सीताको देख आये हैं। हनुमान आदि वानर सावधान होकर महाराज सुग्रीव तथा राम और लक्ष्मणके पास गये। रामने हनुमानका मुख और चेष्टा देखकर जान लिया, कि इसने सीताको देखा है। हनुमान आदि बन्दरोंने प्रसन्न होकर सुग्रीव लक्ष्मण और रामको प्रणाम किया। तब रामने बाणोंके सहित धनुष उठाके उन लोगोंसे कहा, क्या तुम लोग हमको जिलाआगे ? क्या तुम लोग कार्यसिद्धि करके आये हो ? क्या हम सब शत्रुओंको युद्धमें मारकर फिर सीताको पावेंगे ? क्या हम अयोध्यामें फिर राज्य करेंगे ? हम प्रण करते हैं कि बिना शत्रुओंको युद्धमें मारे, बिना स्त्रीके सन्यासीके समान नहों जोयगे। रामके ऐसे वचन सुन हनुमान बोले, हे राम ! हम आपसे प्रिय समाचार कहते हैं, हमने सीताको देखा है। जब हम पर्वत और गुफाओंके सहित सब दक्षिण दिशाका ढूँढ़ चुके और समय बीतनेसे थक भी गये, तब एक गुफा दिखाई दी, वह वज्रत योजनकी लम्बी और अन्धकारमय थी। उसके भीतर वज्रत जन्तु रहते थे। तब हम लोग उस गुफाके भीतर घुस गये। वज्रत दूर जाकर हमने सूर्यका प्रकाश देखा, और वहाँ एक सुन्दर स्थान भी देखा। हे राघव ! वह स्थान मय नामक दैत्यका था, वहाँ एक प्रभावती नामकी स्त्री तप करती थी। उसने हम

लोगोंकी अनेक प्रकारके भोजन और पीनेकी वस्तु दी। उसकी खाकर हम लोग शान्त हुए और उसके बताये हुए मार्गसे चलने लगे। उस गुफासे निकलते ही हम लोगोंने समुद्रके तटपर सह्य मलय और ददुर नामक पर्वतोंको देखा। तब हम लोगोंने अपने जीनेकी आश छोड़ दी—घबड़ाये और वज्रत डरे। तब हम लोग मलय पर्वतपर चढ़े, और समुद्रको देखने लगे। समुद्र कई सौ योजनका चौड़ा, मछली, मगर आदि जलजन्तुओंका स्थान और परम भयानक था। उसकी देखकर हम लोग वज्रत डरे और दुःखित हुए। तब हम सब यह सङ्कल्प करके बैठ गये, कि हम सब लोग अब कुछ न खायेंगे। उसके पश्चात् हम लोग वार्ता लाप करने लगे, तो गृधराज जटायुका वृत्तान्त आगया, उसको सुनते ही पर्वतके शिखरके समान शरीरधारो, भयानक, गरुड़के समान शरीरवाले एक पक्षीकी देखा। वह हमारे पास आकर हमारे खानेका विचार करने लगा, कि भाई तुमलोग कौन हो जो हमारे भाई जटायुका वृत्तान्त कह रहे हो ? मैं सम्पाति नामक पक्षीराज हूँ, जटायु मेरा छोटा भाई है, हम लोग सूर्यको देखने चले थे; देखी मेरे यह पख जल गये, परन्तु जटायुके पङ्ख नहीं जले थे, मैं अपने भाई प्यारे पक्षीराज जटायुको नहीं देखा, मैं पङ्ख जलनेसे इस पर्वतके ऊपर गिर गया। तब हमने आपका यह सब समाचार उससे संक्षेप रीतिसे कहा। सम्पाति हमारे अप्रिय वचनोंको सुनकर वज्रत दुःखी हुआ और हमसे पूछने लगा, कि राम कौन है ? सीता किस प्रकार चुराई गयी ? और जटायु क्यों मारा गया ? हम इस सब वृत्तान्त को तुम लोगोंसे सुनना चाहते हैं। तब हमने आपकी सब कथा कह सुनाई और अपने सब जल छोड़नेका कारण भी कह दिया। तब पक्षीराज सम्पातिने हमलोगोंसे कहा, कि हम

जङ्गाको और रावणकी जानते है, लङ्का समु-
 द्र के पार त्रिकूटाचल पर्वत पर बसती है वहाँ
 जाता है। हम इस बातकी निश्चय जानते है,
 कि सीता वहाके सिवाय और कहीं नहीं
 ।। हम लाग उसके वचन सुनकर खड़े
 हो गये। समुद्र नाशनेके लिये विचार करने
 लगे। हे शत्रुनाशन ! जब हम लोगोंने समु-
 द्रसे पार होनेका उपाय कोई न देखा, तब
 आयुका आश्रय लेकर मैं समुद्रकी नांघ गया,
 समुद्र चार सौ कोस चौड़ा है, मैंने समुद्रके
 बीचमें एक राक्षसीकी भी मारा ; फिर लङ्कामें
 जाकर पतिव्रता सीताका दर्शन किया। वह
 अप्सिनी अत्यन्त दुःखिनी, जटाधारिणी, मलिन
 शरीरवाली, उपास और तप करती हुई आपके
 दर्शनकी इच्छा कर रही हैं। जब मैंने अनेक
 राक्षसोंसे जान लिया, कि यही सीता है,
 तो एकान्तमें जाकर कहने लगा, हे सीते !
 मैं जातिका वानर, पवनका पुत्र हनुमान्,
 रामका दूत बनकर आया हूँ मैं आकाशमें
 उड़कर आकाश मार्गसे लङ्कामें आया हूँ,
 राजपुत्र राम और लक्ष्मण कुशलसे है, सब
 वानरोंके राजा सुग्रीव उनकी रक्षा करते है,
 राम और लक्ष्मण तुम्हारे कुशल पछते है ;
 उनके मित्र सुग्रीवनेभी तुमसे कुशल प्रश्न किया
 है, तुम्हारे पति राम सब वानरोंके सहित यहा
 प्रावेंगे, हे देवि ! तुम निश्चय जानो कि हम
 राक्षस नहीं हैं, बन्दर हैं। मेरे वचन सुन
 सीताने क्षणमात्र ध्यान करके कहा, कि मुझसे
 प्रविन्ध नामक राक्षसने पहिले ही कहा था, हे
 महाबाहो ! एक अविन्ध नामक बुद्धिमान
 बूढ़ा राक्षस है, उसने हमसे कहा था, कि
 तुम्हारे समान सुग्रीवके भन्तो है, तब सीताने
 हमसे कहा, कि तुम जाओ और चलते समय
 यह भाँष भी हमको दी। पतिव्रता सीता
 इसीसे जीती थी। उन्होंने निश्चयके लिये हमसे
 यह कथा भी कही है हे पुरुषसिंह ! तुमने

चितकूट नामक पर्वतपर कीएके मारनेकी
 सौं क चलाई थी। अनन्तर मैं पकड़ा गया,
 फिर मैंने लङ्काकी जला दिया ; तब आपके
 पास आया हूँ। हनुमानके ऐसे वचन सुन
 रामने उनकी बहूत प्रशंसा करो।

२८१ अध्याय समाप्त।

श्रीमार्कण्डेय सुनि बोले, हे राजन युधि-
 श्ठिर ! उसी समय सुग्रीवकी आज्ञासे उत्तम
 वानर लोग रामके पास आये। सहस्र करोड़
 वानरोंके सहित बालिके समुद्र सुषेण नामक
 बन्दर रामके पास आये। महाबलवान वानर-
 राज गज और गवय सौ करोड़ वानरोंकी
 लेकर आये। घोर रूपवाला गवाक्ष नामक
 लंगूर साठ सहस्र करोड़ वानरोंकी लाया।
 गन्धमादन बन्दरके सङ्ग सौ हजार करोड़
 वानर आये। पनस बन्दर दसकरोड़ बन्दर
 लाये, बड़े महा बलवान दधिमुखके सङ्ग माथे-
 पर त्रिपुण्ड्र धारण किये काली मुखवाले घोर
 कर्मचारी वानरोंकी महा सेना आई। जाम्ब-
 वानके सङ्ग सौ हजार कराड़ रीछ आये।
 इत्यादि लेकर औरभी असंख्य वानर आये।
 उनके शरीर पर्वतोंके समान, शब्द सिंहके
 समान, धं, व लाग दधर उधर धूमने लग।
 तब उनका शब्द चारा आर फैल गया। किसी
 का शरीर पर्वतसा, किसीका शरीर शरद
 ऋतुके मेघके समान था। वे लोग कूदने लग,
 और धूल उड़ाते हुए, लङ्काकी आरकाँ चल।
 यह वानराको महासेना भरें हुए समुद्रके
 समान शोभत हुई। उस दिन सेना सुग्रीव
 की आज्ञासे वहाँ रहो। अनन्तर उत्तम तीर्थ
 सुहर्त और नक्षत्रकी रामने उस सेनाका व्यूह
 बनाया और वहासे चल दिये, उसके मुखकी
 हनुमान और जङ्गाको रक्षा निर्भय लक्ष्मण
 करने लगे। कबच पहिने हुए रामचन्द्र और
 लक्ष्मण उन बन्दरोंके बीचमें ऐसे शोभायमान

हुए, जैसे तारोंके बीचमें सूर्य और चन्द्रमा वह बन्दरोंको सेना शाल, ताड़ और शिलाके शखल लिये हुए ऐसी शोभायमान थी, जैसे सूर्योदयके समय धानका खेत । नल, नील अङ्गद, क्राथ, मयन्द और द्विविदसे रचित वह महासेना रामके कार्य सिद्ध करनेकी चली । अनेक भातिके उत्तम उत्तम फल मूल, मद्य मांस और जलसे भरे हुए, सुखदाई पर्वतमें निवास करती हुई, वह बन्दरोंकी सेना खारी समुद्रके तटपर पड़ची । वह सेना अनेक पताकाओंसे शोभायमान दूसरे सागरके समान जान पड़ती थी । उस दिन उसने समुद्रके तटके बनमें निवास किया । तब दशरथ पुत्र रामने सब मुख्य बानरोंके अनुसार सुग्रीवसे यह वचन कहा, कि आपने समुद्र बांधनेका कौन सा उपाय साचा है ? यह सेना बड़ी भारी है, और समुद्र भी अति दुस्तर है । वज्रतसे अभिमानी बन्दर कहते हैं, कि हम लाग समुद्रका लाघकर ही पार चले जायंगे, परन्तु यह उपाय सबके करने योग्य नहीं है । किसीने वेड़े बाधकर पार उतरनेका उपाय बतलाया, परन्तु रामने सबकी शान्त करके कहा, कि पार जानका यह कोई भी उपाय नहीं है । इससे सब बानर समुद्रको नाघ नहीं सकेंगे, क्योंकि सौ योजन विस्तारवाले, समुद्रका नाघनेमें सब बानर समर्थ नहीं हैं । इतनी अधिक नौका भी नहीं है, जिनसे सम्पूर्ण सेना पार जा सके और व्यापारको नौकाओंको रोककर व्यापारकी हमारे ऐसे पुरुष कैसे बन्द कर सकते हैं । हमारी सेना बज्रत बड़ी है, किन्तु पानसे शत्रु नाश कर सकता है, इस कारणसे नौका या वेड़ोंके द्वारा सेनाको पार करना अच्छा नहीं मालूम होता है, मैं इस समुद्रको उपायसे ही तर जाऊंगा, उस उपायसे समुद्र सुभी अवश्य मार्ग देगा । यदि समुद्र सुभी मार्ग न देगा तो मैं अग्निके समान

प्रज्वलित और निवारण करनेके अयोग्य शस्त्रोंसे उसे भस्म कर दूंगा । इस प्रकारसे कहके लक्ष्मणके सहित राम समुद्रके तटपर कुशासन बिछाकर बैठ गये । इसके पश्चात् स्वप्नमें समुद्र रामके पास आया, वह नद और नदियोंका स्वामी जलजन्तुओंसे पूर्ण समुद्र मोठे वचनसे बोला, हे नरश्रेष्ठ । कहिये मैं आपकी क्या सहायता करूं ? मैं आपको जाति और इच्छाकुलवंशमें उत्पन्न भया हूं । औराम उससे बोले, हे नद और नदियोंके स्वामी । मैं सेनाके वास्ते मार्ग चाहता हूँ, जिस मार्गसे जाकर मैं पुलस्त्यकुलकलङ्क रावणको मारूं । यदि तुम मांगनेसे सुभी न दोगे तो मैं मन्त्रोंसे पूरित दिव्य अस्त्र और वाणोंसे तुमको सुखा दूंगा ! रामके ऐसे वचन सुनके समुद्र वज्रत घबड़ा कर और हाथ जोड़ कर बोला, हे राम । मैं तुमको रोकना नहीं चाहता, मैं तुम्हारा विघ्नकारी नहीं, मेरे वचनको सुनके जो उचित हो सो करो, यदि मैं तुमको और तुम्हारी सेनाको मार्ग दे दूं तो और लोग भी धनुषको बलसे सुभ्रपर आज्ञा चलावेंगे । तुम्हारी सेनामें नल नामका बानर शिलो (स्थान बनानेवाला) है, वह विश्वकर्माका पुत्र अपने पितासे भी अधिक बलवान है, वह जो काट टण वा पत्थर सुभ्रमें डालेगा, उन सबका मैं अपने ऊपर ही रख लूंगा, और वही तुम्हारा सेतु (पुल) हो जायगा । जब समुद्र ऐसा कहकर अन्तर्धान होगया, तब रामने नलसे कहा कि तुम सेतु बांधो । तुम इस कार्यमें समर्थ हो । इस उपायसे रघुवंशी रामने समुद्रका सेतु बंधवाया । इस सेतुकी चौड़ाई चालीस कोस और लम्बाई चार सौ कोसकी थी । यह सेतु अबतक भी नलसेतुके नामसे जगतमें प्रसिद्ध है । वहीं राक्षसेन्द्र रावणका भाई धर्मशास्त्रा विभीषण अपने चार मन्त्रियोंके सहित रामके पास आया । रामने बड़े आदर

से विभीषणको ग्रहण किया। सुग्रीव को यह शङ्का हुई कि यह दूत होगा, परन्तु जब राम और लक्ष्मण उसकी सत्य चेष्टा पाकर प्रसन्न हुए, तब उसका वृद्धत सम्मान किया। सम्पूर्ण राक्षसोंका राज्य उसे दिया और अपना मन्त्री तथा लक्ष्मणका मित्र बनाया। हे राजन् अधिष्ठिर। विभीषणको सम्प्रतिमे एका महीनेमें सेनाके सहित राम समुद्र पार गये, इसके पश्चात् लङ्कापुरीमें जाके वन्दरोने बड़े बड़े बाग नष्ट कर दिये। इसके अनन्तर रावणको शुक और सारण नामक दो मन्त्री वानरका रूप करके सेनामें आए, उन्हें विभीषणने पकड़ लिया। जब उन्होंने फिर राक्षसका रूप धारण किया, तब रामजी आज्ञामें वन्दरोने सम्पूर्ण सेना दिखलाके सेनासे बाहर निकाल दिया। सेनाको लङ्काके समीप उपवनमें ठहराकर बुद्धिमान अङ्गदको दूत बनाकर रावणके समीप भेजा।

२८२ अध्याय समाप्त ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, अज्जलसे पूर्ण, अनेक भांतिके पुष्पोंसे भरे उस वनमें सेनाको स्थापन करके विधि पूर्वक रक्षा करने लगे। रावणभी शास्त्रमें लिखी हुई विधिसे युद्ध सामग्री इकट्ठी करने लगा। लङ्का स्वाभाविकीसे शत्रुओंके जोतनेके अयोग्य दृढ़ क्वार-दिवाली और खाईमें अथाह जल भरा हुआ था, जिसमें मछली और नाके भरे हुए थे। लङ्काके सात द्वारोंमें खैरके किवाड़ लगे हुए थे। वे किवाड़ ऐसे यत्नोंसे युक्त थे, कि उनको कोई भी नष्ट नहीं कर सकता था, अनेक स्थानोंपर भूत और विष्ठा त्यागनेके स्थान बने थे, तथा गालाके ढेर लगे थे, कहीं सर्पोंके ढेर, कहीं राल और वाहदके ढेर लगे थे, कहींपर मूसल, आलातवान तीसर, खड्ग पर-शु और तापोंके ढेर लगे थे, कहीं पर मद्य,

कहीं मधु सुहर रक्खे थे, नगरके सब द्वारोंमें अनेक भांतिके चल और अचल बुर्ज बने थे जिनमें अनेक पैदल और हाथी घोंड़े रहते थे। अङ्गद लङ्काके द्वार पर जाके “रावण” यह सूचना देके भीतर गये। राक्षसोंको सभामें अङ्गदकी ऐसी शोभा हुई, जैसी मेघोंके बीचमें सूर्यको। अङ्गद मन्त्रियोंके सहित बैठे हुए रावणके पास जाकर रामचन्द्रके मन्देश इस प्रकारसे कहने लगे, कि हे राजन्। सहायशस्त्री कौशलापति रघुवंशी रामने समयानुसार तुमको यह वचन कहे हैं, उन्हें तुम मानो और वैसेहो करो, अनीति करने वाले पापी राजाको पाकर देश और नगर नष्ट हो जाते हैं, अकेले तुमने बल पूर्वक सीताको हर कर मेरा अपराध किया है, किन्तु और निरपराधी लोग मारे जायेंगे, तुमने जो बलके अभिमानसे अनेक वनवासी ऋषियोंको मारा है, देवतोंसे अभिमान किया है, राजऋषियोंका नाश किया है, रोतो हुई स्त्रियोंको मारा है उन सब पापोंका फल अब उदय हुआ। हे निशाचर! तुम पुरुष वनके मुझसे लड़ो, मैं मन्त्रियोंके सहित तुमको मारूंगा मुझ मनुष्यके धनुषका प्रताप देखा, जानकीको शीघ्र छोड़ दो, यदि न छोड़ोगी तो मैं तोच्छ जगतको वाणोंसे निशाचरोसे रहित करूंगा। ऐसे कठोर वचनको सुनकरावण क्रोधमें भरके क्षमा न कर सका। अपने स्वामीकी चेष्टाको जाननेवाले चार राक्षस अङ्गदके शरीरमें लिपट गये, जैसे शार्दूलके अङ्गमें पक्षी लिपटते हैं, अङ्गमें लिपटे हुए राक्षसोंके सहित अङ्गद राजभवनकी छत पर उड़ गया। बेगके साथ उड़नेसे वे चारों निशाचर पृथ्वीमें गिर गये, उनका हृदय फट गया। अङ्गद राजभवनकी छतसे उड़ कर लङ्कापुरीको नाघकर सुबेल पर्वतके समीप आये। रामचन्द्रके समीप जाकर अङ्गदने सब कथा सुना दी और रामसे

आदर पाके अङ्गदने विश्राम किया । पश्चात्
 रघुनन्दन रामने बन्दरोंकी सब सेनाकी भेजकर
 लङ्काकी द्वार दिवालीको तुड़वा डाला ।
 पश्चात् विभीषण और जाम्बुवानकी सङ्ग लेकर
 लङ्का लङ्काके द्वार पर पहुँचे । सोनेके समान
 रङ्गवाले सौ हजार बन्दरोंका यूथ युद्ध करने
 को लङ्कामें पुहुँचा, लम्बी जांघवाले, धुएँके
 समान रङ्गवाले तीन करोड़ रीछ युद्ध करनेकी
 चले हैं राजन् ! उस समय बन्दरोंके उड़ने
 और गिरनेसे ऐसी । धूल उड़ी कि सूर्य छिप
 गये, धानोंकी बाल, सिरसके फल, प्रातः कालके
 सूर्य और सनक समान रङ्गवाले बन्दरोंसे
 नगरको द्वारदिवालोंकी पूरित देखके बालक
 बूढ़े और स्त्रियोंके सहित सब राक्षस विस्मित
 हो गये । बन्दरोंने मणियोंके खम्भे और
 पत्थरोंके स्थानोंको तोड़के गिरा दिया, यन्त्रोंको
 तोड़के इधर उधर फेंक दिये, तोपोंकी
 गोलोंके सहित उठाकर लङ्कामें घोर शब्द
 करके फेंकने लगे, द्वारदिवालीके समीप
 जितने राक्षस थे, वे बांनरोंके भयसे इधर
 उधरको भाग गये । उसके पश्चात् राजा-
 चाको पाके कामरूपी भयङ्कर आकारवाले
 हजारों राक्षस शस्त्रोंकी वर्षासे बन्दरोंकी
 डराते और द्वारदिवालीकी शोभाकी बढ़ाते
 लङ्कासे निकले । उन भयानक शरीरवाले
 राक्षसोंने क्षण भरमें द्वारदिवालीको बन्दरोंसे
 खाली कर दिया । अनेक बानर त्रिशूलोंसे
 कटकर पृथ्वीमें गिर पड़े और खम्भे तथा
 वृक्षोंकी मारसे राक्षस भी बहृत पृथ्वी गिरे ।
 बन्दर और राक्षस परस्पर केश पकड़के
 लड़ने लगे, दांत और नाखूनोंसे काटकर
 एक दूसरेकी खाने लगे, बन्दर और राक्षस
 शब्द करके पृथ्वीपर गिरतेहुए भी नहीं छोड़ते
 थे, रामने भी बाणोंकी ऐसी वर्षा की जैसे
 मेघ जलको वर्षा करते हैं । रामके बाण
 लङ्कामें जाके राक्षसोंको मारने लगे, लक्ष्मण

विना श्लेशके धनुष धारण करके बाणोंसे दुर्ग
 (किले), के राक्षसोंको मारने लगे, । इसके
 अनन्तर रामकी आज्ञासे लङ्काकी ध्वंश करके
 बांनरोंकी सेना अपने डेरोंकी फिर आई ।

२८३ अध्याय समाप्त ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन् युधि-
 श्ठिर । जब रामकी सेना अपने डेरोंमें आई
 तब रावणके सेवक पिशाच और छोटे छोटे राक्ष-
 सोंके भुण्ड उनके पीछे आये, उन भुण्डोंके सहित
 पर्वण पतन, जम्भ, खर, क्रोध वशहरी, प्रसज, अरुज,
 प्रघस आदि थे । तब उन दुरात्माओंकी मायाकी
 जाननेवाले विभीषणने उनकी अन्तर्धान
 मायाका नाश कर दिया । हे राजन् युधिष्ठिर ।
 अन्तर्धान मायाके नाश होते ही वे राक्षस
 बन्दरोंको दीखने लगे । बांनरोंने उन सबको
 मारके पृथ्वीमें गिरा दिया । तब रावण क्रोध
 करके राक्षस और घोर पिशाचोंकी सेना
 सङ्ग लेकर चला । युद्धशास्त्रको जाननेवाला
 साक्षात् इन्द्रके समान रावणने इन्द्रव्यूह बनाकर
 बन्दरोंकी घेर लिया । रघुवंशी रामने सेनाके
 सहित रावणको आया देखके वृहस्पति वृक्ष
 वनाके रावणकी घेर लिया । तब राम और
 रावणका, लक्ष्मण और मेघनादका, सुभीषण
 और विरूपपाक्षका, तार और निषटका,
 कातुण्ड और नलका, पटुश और पनसका,
 बाहु युद्ध होने लगा । उस बाहु युद्धका काव्य
 रोंकी डरानेवाला ऐसा भयानक शब्द बढ़ा
 जैसा देवासुर संग्राममें हुआ था । रावणकी
 शक्ति शूल और खड्गकी वपासे रामकी
 बहृत पीड़ित किया । ऐसे ही तीक्ष्ण बाणोंसे
 रामने रावणकी व्याकुल कर दिया, मेघनादकी
 दने लक्ष्मणकी ओर लक्ष्मणने मेघनादकी
 तीक्ष्ण बाणोंसे व्याकुल किया ; ऐसे ही विभीषणकी
 प्रहस्तकी और प्रहस्तने विभीषणकी
 तेज बाणोंसे व्याकुल किया । इन शस्त्रधारियोंकी

युद्ध वृद्धत भयानक हुआ, कि जिससे तीन लोकके चराचर व्याकुल होगये ।

२८४ अध्याय समाप्त ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, कि हे राजन् । तब घोर युद्ध करनेवाले प्रहस्तने शीघ्रताके साथ दौड़कर और गर्जकर विभीषणके गदा मारी । उस भयानक गदासे पीड़ित होकर इक्ष्वाकु विभीषण हिमाचल पर्वतके समान खड़े रहे, और कुछ भी कम्पायमान न हुए । इसके पश्चात् जिस शक्तिमें सौ घण्टे लगे हुए थे, उसे यन्त्रसे युक्त करके विभीषणने प्रहस्तके सरकी ओर छोड़ा । उस वज्रके समान शक्तिके तगनेसे प्रहस्तका सिर कट गया । उस समय वह सा दीखने लगा, जैसे हवासे गिरा हुआ । प्रहस्तको मरा हुआ देखकर धूमराक्ष ढ़े वेगसे बन्दरोंकी ओर दौड़ा, उसकी भयानक मेघोंके समान सेनाकी आते हुए खकर मुख्य मुख्य वानर भागे, मुख्य बन्दरोंकी भागते हुए, देखकर पवनपुत्र बन्दरोंमें मुख्य हनुमान आए । पवनपुत्र हनुमानो युद्धमें खड़ा हुआ देखकर, चारोंरसे बन्दर युद्ध करनेकी फिरे । हे राजन् । समय राम और रावणकी सेनाके युद्धका एक शब्द होने लगा । उस भयानक युद्धमें वरका कीचड़ होगया । धूमराक्षने बन्दरोंकी ओर घेर लिया । उसकी युद्धमें आते देखकर, शत्रुओंको नाश करनेवाले पवन-हनुमानने बड़े वेगसे ललकारा । उस मुख्य और मुख्य बन्दरका जयकी दृष्टिसे ऐसा एक युद्ध हुआ, जैसा प्रह्लाद और इन्द्रका, सने गदा और परिघादि शस्त्रोंसे हनुमान-मारा, और हनुमानने शाखायुक्त वृक्षोंसे राक्षसोंकी व्याकुल किया । इसके पश्चात् पुत्र हनुमानने वृद्धत क्रोध करके धूमराक्षको सारथी और घोड़ोंके सहित मार डाला ।

राक्षसोत्तम धूमराक्षको मरा हुआ देखकर बन्दरोंने सेनाके अन्य राक्षसोंकी वृद्धत नाश किया । वानरोंके मुँहोंसे पीड़ित होकर राक्षस अपनी आशाओंको त्यागकर लङ्काको चले गये । मरनेसे जो राक्षस बचे थे उन्होंने लङ्कामें आकर राजा रावणसे सब वृत्तान्त कहा । उन राक्षसोंसे रावणने युद्धमें प्रहस्तकी और महावीर धूमराक्षको मरा हुआ सुनकर वृद्धत जवाब खास लिया, और आसनसे उठकर कहा कि यह समय कुम्भकर्णके योग्य कर्म प्राप्त हुआ है । ऐसा कहकर वृद्धत सीनेवाले कुम्भकर्णको अनेक भातिके बाजोंसे जगाने लगा । बड़े यत्न और दुःखसे कुम्भकर्णको जगाकर राक्षसराज रावण सुस्त होकर बैठा और महा बलवान कुम्भकर्णसे बोला, हे कुम्भकर्ण ! तुम धन्य हो, तुम्हारी ऐसी प्रबल निद्रा है, जो तुम इस घोर भयकी भी नहीं जानते हो, कि राम बन्दरोंके सहित समुद्रकी तरफ और हम सबका अपमान करके लङ्का-हीमें घोर उपद्रव कर रहा है, मैं जनक-नन्दिनी सीता नामकी उसकी स्त्रीकी चुरा लाया हूँ, उसके ली जानेकी राम समुद्रपर सेतु बाधके लङ्कामें आये है, और हमारे प्यारे प्रहस्तादिकको उसने मार डाला है, हे शत्रु-नाशन । तुम्हारे सिवाय उसको मारनेवाला और कोई नहीं है, हे बलवानोंमें श्रेष्ठ । तुम कवचादि पहनकर युद्धके लिये जाओ, हे शत्रुओंकी दमन करनेवाले । तुम युद्धमें रामादिक शत्रुओंको नाश करो, दूषणके छोटे भाई बज्रवेग और प्रमाथी वृद्धतसी सेना लेकर तुम्हारे पीछे जायंगे । हे राजन् युधिष्ठिर ! इस प्रकारसे बलवान कुम्भकर्णकी आज्ञा देकर राक्षसपति रावण बज्रवेग और प्रमाथीकी आज्ञा देने गया । दूषणके छोटे भाइयोंने रावणकी आज्ञा मानकर और कुम्भकर्णकी आगे करके नगरसे प्रस्थान किया ।

२८५ अध्याय समाप्त ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन् । कुम्भ-
कर्णने अपने सेवकोंके सहित नगरसे बाहर
निकलके दृढ़ मुष्टिवाली बन्दरोंकी सेनाको
आगे खड़े देखा । उस सेनाको देखके कुम्भ-
कर्णको रासके देखनेकी इच्छा बढी । तब
उसने धनुषबाण लिये लक्ष्मणकी देखा । अन-
न्तर बन्दरोंने चारो ओरसे बड़े बड़े वृक्ष उसके
ऊपर डालना आरम्भ किया, नाखूनोंसे अनेक
बन्दर उसे काटने लगे, अनेक प्रकारसे बन्दर
उससे युद्ध करने लगे । अनेक प्रकारके शस्त्र
और वृक्षोंसे पीटकर कुम्भकर्ण हंसा और बन्द-
रोंको खाने लगा । बल, चण्डबल और वज्रबाहु
नामके बन्दरोंकी कुम्भकर्णने मारकर गिरा
दिया । कुम्भकर्णके इस भयानक कर्मका देखकर
बन्दरलोग इधर उधरको भागने लगे । तार
आदिक सेनापति बन्दरोंकी डरसे चिल्लाते
और भागते हुए देखकर निडर सुग्रीव कुम्भ-
कर्णकी ओरकी दौड़ा और कुम्भकर्णके समीप
आके शालका एक वृक्षके लगनेसे कुम्भकर्णकी
बोध हुआ और दोनों हाथोंसे पकड़के सुग्रीवकी
ले चला । इस दशाकी देखके मित्रोंको आनन्द
देनवाले सुमित्रा-नन्दन लक्ष्मण कुम्भकर्णकी
ओरकी चले और पंख लगे हुए बाणोंकी कुम्भ-
कर्णके ऊपर छोड़ा । शत्रुओंको नाश करनेवाले
लक्ष्मणके बाण कुम्भकर्णके शरीरका छेदकर
पृथ्वीमें घुस गये । हृदयके भेद जानसे
कुम्भकर्णने वानरराज सुग्रीवकी छोड़ा दिया ।
पश्चात् शिला लेकर कुम्भकर्ण लक्ष्मणकी
ओर आया । उसकी हाथ उठाये आता
देखके शीघ्रताके साथ तोक्षण बाणोंसे
लक्ष्मणने उसके हाथको काट दिया, तब कुम्भ-
कर्ण चतुर्भुजी हो गया । लक्ष्मणने शिला शस्त्रके
साहत उन हाथोंकी काटके गिरा दिया, तब
कुम्भकर्ण अनेक पैर और अनेक हाथवाला
ग, लक्ष्मणने ब्रह्मास्त्रसे उसेभी काट डाला ।

दिव्य अस्त्रके लगनेसे महा बलवान कुम्भकर्ण
रणभूमिमें ऐसे गिर गया, जैसे विजुलीके लग-
नेसे शाखा सहित वृक्ष गिर पड़ता है । वृत्रासुर
के समान बलवान कुम्भकर्णकी पृथ्वीमें मरा
हुआ देखकर राक्षसलोग भयसे इधर उधरका
भागने लगे । राक्षस योधाओंकी इधर उधरकी
भागते देखकर दृषणके दोनों भाइयोंने उन्-
हें राका और युद्ध करते हुए लक्ष्मणके सम्मुख
आये । इन दोनों वज्रवेग और प्रमाथीकी
क्रोधसे भरे और सम्मुख आये देखकर सुमित्रापुत्र
लक्ष्मणने गरजकर अपने धनुषपर बाण चढ़ाया,
तब बुद्धिमान लक्ष्मणका और दृषणके भाइयोंका
भयानक युद्ध हुआ । लक्ष्मणने बाणोंकी वर्षासे
उन्हे का लिया, और दोनों ओरोंने भी लक्ष्मणके
ऊपर बहुत बाणोंकी वर्षा करी । इस रीतिसे
एक सुहृत् तक वज्रवेग और प्रमाथीके सह
लक्ष्मणका भयानक युद्ध होता रहा । इससे
पश्चात् पर्वतके शिखरको लीके पवनपुत्र हनु-
मानने वज्रवेगके प्राणका नाश कर दिया और
नीलने पहाड़ उठाकर महा बलवान प्रमाथीके
प्राणको नाश किया । इसके अनन्तर राम
और रावणकी सेनाका परस्पर भयानक युद्ध
होने लगा । बन्दर सहस्रों राक्षसोंकी और
राक्षस सहस्रों बन्दरोंकी मारने लगे, परन्तु
अधिक राक्षसही भरे, बन्दर नहीं ।

२८५ अध्याय समाप्त ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन् युधि-
ष्ठिर । कुम्भकर्ण प्रहस्त और महा शस्त्रधारी
धूमराक्षको युद्धमें मरा हुआ सुनकर रावण
अपने पुत्र मेघनादसे बोला कि, हे शत्रुनाशन !
तुम लक्ष्मणके सहित राम और सुग्रीवकी
मारो, हे सुपुत्र ! तुमने इन्द्राणीके स्वामी
सहस्रनेत्रवाले वज्रधारी इन्द्रको युद्धमें जीतकर
बड़ा यश प्राप्त किया है, हे शस्त्रधारिण !
हे शत्रुनाशन ! गुप्त और प्रकट दिव्य शस्त्रोंके

मेरे शत्रुओंकी नाश करो, है पापरहित ।
 राम लक्ष्मण और सुग्रीव भी तुम्हारे बाणोंकी
 नहीं सह सकते हैं, तब उनके सेवक कैसे सह
 सकेंगे, जिस कार्यकी कुम्भकर्ण और प्रहस्त
 नहीं कर सके उसे तुम करो । युद्धमें जाके तुम
 खरका बदला लो, है महाभुज । तुम आज
 तोष्ण बाणोंसे सेनाके सहित शत्रुओंकी मारके
 मुझे ऐसा आनन्द दो जैसे पहिले इन्द्रको जीत-
 कर दिया था, है राजन् युधिष्ठिर । इन्द्रकी
 जीतनेवाले मेघनादने कहा बृहत अर्च्छा ऐसा
 ही कहेंगा, ऐसा कहके युद्ध करनेकी चला ।
 तब समरभूमिमें जाके अपने नामकी स्पष्ट
 शोतिसे सुनाके शुभ लक्षणयुक्त लक्ष्मणकी युद्धके
 स्थलपर ललकारा । लक्ष्मण भी बाण सहित
 धनुषको लेके धनुषकी टङ्गारसे लोगोंका डराते
 हुए ऐसे चले जैसे सह छाटे हारना पर
 दोड़ता है । है राजन् ! जयको इच्छा करनेवाले
 और परस्पर डाह रखनवाले लक्ष्मण और मेघ-
 नादका भयानक युद्ध हुआ । जब रावणका पुत्र
 बाणोंसे पार न पासका, तब बलवानास अर्छ
 मेघनादने लक्ष्मणके ऊपर तोमर छाड़ि ।
 साम्रापुत्र लक्ष्मणन ताभराका आत हुए देख
 कर ताच्छावाणोंसे काटकर गिरा दिया ।
 लक्ष्मणके ताच्छावाणोंसे जब तामर कटकर
 पृथ्वीमें गिर गये, तब बालपुत्र श्रीमान अङ्गद
 एकवृक्ष लेकर मेघनादकी आर दाड़ और बड़
 वेगस राक्षसके सिरमें उस वृक्षका मारा । बल-
 वान मेघनाद उससे कुछ भा व्याकुल न हुआ,
 और प्रास अङ्गदके मारनका उठाया । लक्ष्मणन
 उस प्रासका काटकर गिरा दिया । तब रावणकी
 पुत्र मेघनादने अङ्गदकी बाई काखमें एक गदा
 मारी । बलवान बालिके पुत्र अङ्गदने उस
 गदाका सहकर बड़े क्रोधके साथ एक वृक्ष
 मेघनादके मारनेका चलाया । है राजन् युधि-
 स्ठिर । उस वृक्षसे मेघनादके रथके घोड़े और
 गारथी मर गये । तब रथ उतरकर रावणका

पुत्र मेघनाद अन्तर्धान हो गया । बृहत माया
 जाननेवाले मेघनादकी अन्तर्धान हुआ जानकर
 राम वहापर आए और अपनी सेनाकी रक्षा
 करने लगे । तब वह राक्षस वर पाये हुए,
 बाणसे राम और लक्ष्मणकी मारने लगा ।
 राम और लक्ष्मण भी अन्तर्धान हुए मेघनाद-
 पर बाणोंको वर्षा करने लगे । मेघनादने
 बड़ा क्रोध करके पुरुषसिंह राम और
 लक्ष्मणपर सैकड़ों सहस्रों बाण चलाये । तब
 शिला लेकर बन्दर लोग उस छिपे हुएकी दूढ़-
 नेकी वास्ते आकाशमें चढ़ गये । छिपे हुए मेघ-
 नादने उन बानरों और राम लक्ष्मणपर बाणों-
 की वर्षा करी । मेघनादके बाणोंसे व्याकुल
 होकर राम और लक्ष्मण दोनों भाई ऐसे गिरे,
 जैसे सूर्य और चन्द्रमा गिरते हैं ।

२८६ अध्याय समाप्त ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, है राजन् ! उन
 राम लक्ष्मण दोनों भाइयोंका गिरा हुआ दिख-
 कर रावणकी पुत्र मेघनादने वर पाये हुए
 शस्त्रोंसे उन्हें बाध लिया वह दोनों वीर
 मेघनादसे बंधकर युद्धमें ऐसे शोभायमान
 हुए, जैसे पिच्छरमें पक्षी । राम और
 लक्ष्मणका पृथ्वीमें गिरा, और बंधा हुआ
 देखकर बन्दरोंके सहित सुग्रीव वहापर आये
 और उनकी घेरकर बैठ गये । सुग्रेण, मयन्द,
 द्विविद, कुसुद, अङ्गद, हनुमान, नोल, तार, नल
 और सुग्रीव सब वहीं आगये । तब उस
 स्थानमें काथ्य सिद्ध करनेवाले, विभीषणन आके
 प्रज्ञास्वसे राम लक्ष्मणका सचेत किया, और
 सुग्रीवने मन्त्रयुक्त वाशल्या नामक औषधीसे
 घाव रहित किया । राम लक्ष्मण सचेत घाव-
 रहित और सावधान होकर बैठ गये । है
 राजन् युधिष्ठिर । तब विभीषण सावधान, हुए
 द्रव्याकुवशो रामसे हाथ जोड़कर ऐसे वचन
 बोले, है महाराज ! कुवेरकी आज्ञासे यह

गुह्यक जल लेके आपके पास आया है । हे शत्रुको दुःख देनेवाले । यह जल छिपे झण्डे को दिखानेके वास्ते कुबेरने आपके लिये भेजा है, इस जलसे नेत्रोंको धोते हो छिपे झण्डे प्राणियोंको आप देखेंगे, और जिस मनुष्यको आप देंगे, वहभी देखेगा । रामने बहूत अच्छा कहकर उस संस्कार किये, जलको ले लिया, और उससे लक्ष्मण राम सुग्रीव जाम्बुवान, अङ्गद, मयन्द द्विविद और नीलने अपने नेत्रोंको धोआ और जैसा विभीषणने कहा था, वैसाही हुआ । जो वस्तु नेत्रोंसे नहीं दीख सकती है, वे सब लोग क्षण भरमें देखने लगे । हे राजन् युधिष्ठिर । मेघनाद अपने कार्यको समाप्त करके अपने कर्मको पिताके पास कहने गया । और कहकर फिर युद्धमें आया, उसको युद्धकी दृष्टिसे आता हुआ देखकर लक्ष्मण उसको ओर विभीषणकी सम्मतिसे दौड़े । सन्ध्या बन्दन करनेके पूर्वही उसको मारनेकी दृष्टिसे बड़े क्रोधसे साथ लक्ष्मणने बाण छोड़े । हे राजन् । जोतनकी दृष्टि करनेवाले इन दोनोंका ऐसा भयानक युद्ध हुआ, कि जैसे इन्द्र और प्रह्लादका । रावणके पुत्र मेघनादने सुमित्राके पुत्र लक्ष्मणको व्याकुल किया, और सुमित्राके पुत्र लक्ष्मण अग्निके समान बाणके लगनसे क्रोधसे भरके मेघनादको आठ बाण मारे । मेघनादने सर्पके समान आठ बाण लक्ष्मणको मारे । लक्ष्मणने भी तीन बाण मेघनादको मारके उसकी जा गात करो, सो तुम मुझसे सुनी । एक बाणसे धनुषके सहित उसके हाथ काट दिये, और दूसरे बाणसे बाणयुक्त दूसरा हाथभी काटकर गिरा दिया ; तीक्ष्ण धारवाले तीसरे बाणसे चमकीले कुण्डलोसे युक्त सिरको काट दिया । मेघनादके सिर और भुजाओंकी काटकर बलवानोंमें अष्ट लक्ष्मणने सूतकी भी तीक्ष्णशस्त्रोंसे मार डाला ; तब उस रथकी घोड़े लड़्डामें ले गये, रावणने उस रथकी अपने पुत्रसे खाली देखा : पुत्रकी

मरा हुआ देखकर रावणका हृदय भयसे व्याकुल होगया । रावण शाक और मोहसे व्याकुल होकर सीताको मारनेकी उद्यत हुआ । अशोक वाटकामें रहनेवाली रामका दर्शन चाहनेवाली सीताकी मारनेके लिये खड़ उठाके रावण चला । उस दुर्बुद्धिकी पाप कर्ममें निश्चय देखके अविन्द शान्त करनेके लिये ऐसा बोला, हे राक्षसेन्द्र । तुम प्रकाशमान बड़े राज्यमें स्थित हो, इस लिये स्त्रीको मारने योग्य नहीं हो । जब स्त्री तुम्हारे बन्धन और वशमें है, तो मरी हुई है, देखके काटनेसे यह नहीं मरेगी किन्तु इसके पातकी मार डालो, तो यह आपही मर जायगी । हे राक्षसेन्द्र । तुम्हारे बलके समान साक्षात् इन्द्र भी नहीं है, तुमने अनक बार युद्धमें देवताका व्याकुल किया है । इस प्रकार अनक प्रकारकी बातसे क्रोधी रावणका आवृत्तन समझाया और रावणने भी उसके वचनोंकी ग्रहण किया । तब रावणने युद्धमें चलनेका निश्चय किया, और खड़ लेकर रथ सजानकी आज्ञा दी ।

२८७ अध्याय समाप्त ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन् ! प्यारे पुत्रके मारे जानेपर रावणकी बड़ा क्रोध हुआ । तब रत्न जाटत सोनके रथपर बैठके युद्धका चला । अनक प्रकारके शस्त्र लिये चार राक्षसोंसे घेरा हुआ, रावण बन्दरोंके सेनापातियोंसे लड़ता हुआ रामकी ओर चला । उस क्रोध युक्त रावणकी आँत झण्डे देखकर मन्द नील, नल, हनुमान और जाम्बुवानन सेनाके सहित, रोंका इन मुख्य वानर और रीक्षान वृक्षोंसे रावणकी सेनाका रावणके समुखी वनाश किया । शत्रुओंसे अपनी सेनाका वनाश हात देखकर राक्षसराज मायावी रावण भागा रची । रावणके शरीरसे शक्ति आदि शस्त्रधारी सैकड़ों सहस्रों राक्षस निकलते दीखने लगे ।

रामने दिव्य अस्त्रोंसे उन राक्षसोंको मारा ।
राक्षसपति रावणने फिर माया रची । सहस्रों
राम और लक्ष्मण उत्पन्न कर दिये, वह माया-
के राम और लक्ष्मण धनुष बाण लेकर राम
और लक्ष्मणको मारनेकी वास्ते दौड़े । उन
मायाके राक्षसोंकी आति हुई देखकर और
भ्रम रहित होके राम लक्ष्मणसे यह गूढ़ वचन
बोले, हे लक्ष्मण ! इन अपने रूपवाले पापी
राक्षसोंको मारो । ऐसा कहके राम अपने
समान रूपवाले राक्षसोंको मारने लगे । इसके
अनन्तर इन्द्रका सारथी मातली सूर्यके समान
प्रकाशमान हरे घोड़े जिसमें लगे थे, उस
रथकी लेके रामके पास आया ।

मातली बोला, हे काकुत्स्थवंशो राम !
यह हरे घोड़ेसे युक्त रथ इन्द्रका उत्तम
वैतरथ है, इससे सँकड़ा और सहस्रों दिव्य
दानवोंको इन्द्र युद्धमें नाश करत है, हे पुरुष-
सिंह ! इस रथपर चढ़कर रावणको मारिये,
बलम्बन कीजिये । मातलीके ऐसे वचन
सुनके रामको रावणकृत मायाहीकी शङ्का
हुई । तब विभीषण बोले, हे पुरुषासह
राम ! यह दुरात्मा रावणकी माया नहीं
है, इस कारणसे इन्द्रके प्रकाशयुक्त रथपर
शीघ्र चढ़िये । तब राम विभीषणसे बहुत
अच्छा कहके रथपर चढ़े, और क्रोधमें भरके
रावणकी ओर चले, तब सब लोग हाहा-
कार करने लगे, आकाशमें देवतालोग अनेक
भातिके बाजे बजाने लगे । हे राजन् ! उस समय
राम और रावणका ऐसा युद्ध हुआ कि जिसको
उपमा दूसर युद्धकी नहीं हो सकती । तब
रावणन इन्द्रके बज्रके समान एक महा धार
विशूल ऐसा फेका जैसे ब्रह्मदण्ड । रामने उस
विशूलका तीक्ष्ण बाणसे काटकर गिरा दिया ।
उस कठिन कर्मका देखकर रावणकी बड़ा भय
हुआ । तब रावणने सहस्रों तीक्ष्ण बाण और
अनेक भातिके शस्त्र रामके ऊपर चलाये ।

ऐसेही अनेक प्रकारकी शक्ति, तीक्ष्ण कूरे
रावण कीड़ने लगा । रावणकी उस मायाकी
देखकर वन्दर दशो दिशाको भागने लगे । तब
रामने उत्तम पंखलगे हुए, सोनसे आभूषित
बाणकी तरकससे निकालकर ब्रह्मास्त्रसे युक्त
किया । उस बाणकी देखकर इन्द्रादिक देव-
तोंने समझा कि रावणकी थोड़ी आयु रह
गई । तब रामने रावणके नाश करनेवाले ब्रह्म-
दण्डके समान भयानक और अनुपम बाणकी
कीड़ा । हे राजन् युधिष्ठिर ! उस बाणके
कीड़तेही रावण घीड़े और रथके सहित जलने
लगा । तब रावणकी मरा हुआ देखके गन्धर्व्व
और चारणोंके सहित देवता लोग बहुत प्रसन्न
हुए । रावणकी पञ्जतलोंने त्याग दिया, ब्रह्मा-
स्त्रके तेजसे वह भस्म हो गया । रावणकी
शरीरकी धातु, मांस और रुधिर ऐसे जले
कि कहीं भस्म भी न मिली ।

२८८ अध्याय समाप्त ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन् !
श्रीरामचन्द्र देवके शत्रु चुद्र रावणकी मारकर
लक्ष्मण और अपने मित्रोंके सहित बहुत प्रसन्न
हुए रावणके मारने पर देवता और ऋषियोंने
जयकारयुक्त आशीर्वादोंसे महाबाहु रामकी
स्तुति करी । कमलनयन राम पर सब देवता
और गन्धर्व्व फूलोंकी वर्षा करने लगे, रामको
यथायोग्य पूजा करके तब देवता अपने अपने
स्थानकी चले गये । हे युधिष्ठिर ! उस समयके
उत्सवसे आकाश पारपूर्ण हो गया । शत्रुके
नगरकी जीतनेवाले महायशस्वी रामने रावणकी
मारनेके पश्चात लड़ा विभीषणकी दे दी ।
इसके पश्चात विभीषणसे पूजित सीताकी आगे
करके अवनम नामक बुद्धिमान बुढ़ा मन्त्री लङ्कासे
बाहरका चला । रामके पास आके, दीन
होके काकुत्स्थवंशो रामसे बोला, हे महात्मन् !
इस सञ्चरित्रवाली देवी जानकीकी ग्रहण

कीजिये। इच्छाकुनन्दन रामन उसके ऐसे वचन सुनके रथसे उतरकर आंसुओंसे भर नेत्रवाली जानकीको देखा। शोकसे व्याकुल हुई मलीन अङ्ग और वस्त्रवाली जटा बांधे हुए रथमें बैठी उस जानकीको देखके घबड़ाकर राम बोले, हे वैदेही। जो मेरे करने योग्य कार्य था उसे मैंने करके तुमको कुड़ा दिया, हे भद्रे! सुभे पति पाके तुम राक्षसके घरमें बूढ़ी न हो जाओ ऐसा विचारकर रावणको मैंने मारा है, सुभसा मनुष्य धर्मकी जानकर पराये हाथमें गई स्त्रीकी एक मुहुर्त भर भी क्योंकर रख सकता है। हे मिथिलेशपूत। चाहे तुम अच्छे चरित्रवाली हो, चाहे बुरे चरित्रवाली हो मैं तुम्हें अब ऐसे नहीं रख सकता जैसे कुत्तकी चाटी हुई खीरकी। हे राजन्! इस प्रकार वचनकी सुनके वज्रत दुःखो होके सीता केलेके समान पृथ्वीपर गिर पड़ी। सीताके हृदयमें जो आनन्द उत्पन्न हुआ था, वह क्षण भरमें ऐसा नष्ट हो गया जैसे दर्पणसे कलई। तब सब बन्दर लक्ष्मणके सहित मरे हुएकी समान होगये। तब शुद्धात्मा कमलसे उत्पन्न हुए, युगके कत्ता ब्रह्माजी रामका दीख पड़े। इन्द्र, अग्नि, वायु, यम, और कुबेर, निर्मल सप्त ऋषि तथा दिव्य प्रकाशयुक्त राजा दशरथ हसयुक्त विमानपर बैठे हुए आकाशमें दोख पड़े। उस समय देवता और गन्धर्वोंसे भरा हुआ आकाश ऐसा जान पड़ता था, जैसा शरद ऋतुमें ताराओंसे भरा हुआ अन्तरीक्ष। तब यशस्विनी सीताने सबके दीर्घम खड़े हंकर चोड़ी छातीवाली रामसे कहा, हे राजपुत्र! मैं आपके सम्मुख काई झूठ नहीं कहती हूँ, सा आप सुनें स्त्री पुरुषोंको जा गात है जा सब प्राणियोंके हृदयमें विराजमान वायु हैं, याद मैंने पाप किया है। ता वही प्राणका नाश कर दें; अग्नि, जल, आकाश, पृथ्वी और वायु मेरे प्राणोंको नाश करें, यदि मैंने पाप किया हो।

हे वीर। यदि मैंने स्वप्नमें भी तुम्हारे सिव दूसरे पुरुषका चिन्तन न किया हो, तो परमेश्वर तुमहीको मेरा पति बनावे। हे युधिष्ठिर। वानरोंको आनन्द देनेवाली पवित्र आकाशका हुई। वायु बोले, हे रघुनन्दन। मैं चलनेवाला वायु हूँ, मैं सत्य सत्य कहता कि तुम सीताको अपनी स्त्री बनाओ, निष्पाप है। अग्नि बोले हे रघुनन्दन। सब प्राणियोंके भीतर रहता हूँ, जन नन्दनाने कुछ भी अपराध नहीं किया है वरुण बोले हे राम। सब प्राणियोंके शरीर रस मेरा ही उत्पन्न किया है, आपसे कहा हूँ कि जानकीकी ग्रहण करो।

ब्रह्मा बोले, हे साधु। हे सचरित्र। तु राजऋषि धर्ममें वर्तमान हो; तुमने यह आश्चर्यकी बात नहीं कही, हे वीर। तुम देव, दानव, गन्धर्व, सर्प, यक्ष और महाप्राणोंकी शत्रुकी मारा, रावण मेरे ही वरदानसे पाई। सब प्राणिहोके मारनेके योग्य हुआ था, कु कालसे वह किसी कारणसे बचा रहा। फिर अपने नाशके वाक्य उस दुष्टने सीताको चुराया। नल कुबेरके शापसे मैंने सीताकी रक्षा की। रावण का यह शाप था कि यदि किसी स्त्रीका स्पर्श करेगा तो तेरे सिरके सीं दुबुद्ध हो जायंग; हे द्रवतुल्य राम! तुमको इससे दुःख भी शङ्का न करनी चाहिये, तुमन बड़ा भारी कार्य किया है, अब सीताको भी ग्रहण करो।

दशरथ बोले, हे पुत्र! मैं तुम्हारा पिता दशरथ हूँ, तुम्हारा कल्याण हो, हे पुरुषोत्तम। मैं तुम्हें राज्य देता हूँ, ग्रहण करो।

राम बोले, हे राजेन्द्र! याद आप मेरे पिता है तो, मैं आपका प्रणाम करता हूँ, आपकी आज्ञासे मैं मनोहर अवाध्या नारीको जाऊंगा।

ओमाकण्डेय सुनि बोले, हे राजन् युधिष्ठिर! राजा दशरथ फिर प्रसन्न होकर बाहर

नेत्रवाली रामसे बोली; कि तुम अयोध्याको जाओ, हे महा सुन्दर ! वनमें तुमको चौदह वर्ष व्यतीत हो गये हैं। तब देवताओंको नमस्कार करके मित्रोंसे आनन्दित होके रामने सीताको ऐसे ग्रहण किया, जैसे इन्द्र शचीको ग्रहण करते हैं। तब शत्रुके जीतनेवाले रामने अविन्ध्यको वरदान दिया, और त्रिजटा राक्षसीको भी प्रसन्न किया। तब ब्रह्मा रामसे बोली, कि इन्द्रादिक देवताओंसे वर मागो। रामने धर्ममें स्थिति और शत्रुओंसे जय मागी तथा राक्षसोंसे मरे हुए, बन्दरोका जीना भी मागा। ब्रह्माने कहा ऐसेही हो। ब्रह्माके ऐसे वचन कहते ही सब बन्दर चैतन्य होकर खड़े हो गये। तब महा भाग्यवतो सीताने हनुमानकी यह वरदान दिया। हे पुत्र जब तक रामका यश जगत्में रहे तब तक तुम जीते रहो, मेरी कृपासे तुमको दिय भाग प्राप्त हो। इसके पश्चात् कठार कर्म करनेवाले बन्दरोंके सम्मुख इन्द्रादिक देवता अन्तर्धान हो गये। इन्द्रका सारथी मातली रामको जानकीके साथ देखर बहृत प्रसन्न हुआ, और मित्रोंके बीचमें यह वचन बोला, हे सत्य पराक्रम। देव गन्धर्व, यक्ष, मनुष्य और सपोंके दुःखको तुमने दूर किया, जब तक पृथ्वी रहेगी तब तक देव, दानव, यक्ष, गन्धर्व और राक्षसोंके सहित सब लोग तुम्हारा यश गावेंगे, ऐसा कहकर ओर रामकी आज्ञा लेके सूर्यके समान प्रकाशयुक्त रथपर चढ़कर मातली चला गया। उसके पश्चात् सीता और लक्ष्मणका सङ्ग लेकर सुग्रीवादिक बन्दरोंके सहित राम चले। लङ्कामें रक्षाका प्रबन्ध करके विभोषणभी रामके सङ्ग चला। आकाशगामी पुष्पक विमानमें बैठके फिर उसी सैतुके मार्गसे समुद्रको तरे। इच्छानुसार चलेवाले पुष्पक विमानके द्वारा मान्दियोंके सहित राजेन्द्रिय राम वहा समुद्रके

तटपर पहुँचे जहाँ पहिले रहे थे। वहाँ कुछ काल राम ठहरे और बन्दर रीछ और लंगूरोंकी यथायोग्य पूजा करके उन लोगोंकी विदा किया। इसके पश्चात् सुग्रीव और विभीषणके सहित किष्किन्धा पुरोको चले। पुष्पक विमानमें बैठे हुए सीताकी अनेक वन दिखाते शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ राम किष्किन्धापुरीमें पहुँचे, कार्य सिद्ध करनेवाले अङ्गदको युवराजका तिलक दिया। तब सुग्रीवादिक लक्ष्मणके सहित जिस मार्गसे आये थे उसी मार्गसे अपनी अयोध्या नगरीमें प्राप्त हुए। वहा पहुँचके हनुमानकी भरतके पास दूत भेजा। भरतकी इच्छाओंको जानकर जब वायुपुत्र हनुमान फिर रामके समीप लौट आये, तब रामने नन्दोग्रामसे भरतका देखा कि मलिन वस्त्र, मलिन अङ्ग, आगे खड़ाजं धरे हुए आसनपर बैठे हैं। हे पुरुषश्रेष्ठ युधिष्ठिर। भरत और शत्रुघ्नसे मिलकर राम और लक्ष्मण बहृत प्रसन्न हुये, भरत और शत्रुघ्न भी राम लक्ष्मण और सीताका दर्शनकर बहृत आनन्दित हुए। भरतने सत्कार करके रामको राज्य सौंप दिया। इसके पश्चात् वशिष्ठ और वामदेवने पवित्र दिनमें रामका राज्याभिषेक किया। राज्य पाकर रामने अपने प्रियमित्र सुग्रीव और पुलस्त, नन्दन विभीषणको अनेक प्रकारके भोगोंसे सत्कार करके तथा राजनीतिका उपदेश करके घर जानेको दुःखके साथ विदा किया। रघुनन्दन रामने पुष्पक विमानकी पूजा करके कुवेरको दे दिया। इसके पश्चात् गामतोके तटपर देवऋषियोंके सहित दश अश्वमेध यज्ञ किया।

२८६ अध्याय समाप्त ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोली, हे राजनू युधिष्ठिर। पहिले समयमें महा तेजस्वी रामने इस प्रकार वनमें वास करके घोर दुःख भोग किया था, हे-

पुरुषसिंह । हे शत्रुनाशन । तुम चलो हो, और अपने बाहुबलके आश्रयसे चलते हो, इस लिये कुछ सोच मत करो; तुम्हारे कर्म सन्देहसे रहित हैं, तुम्हारे कर्मोंको किञ्चित् दूसरा नहीं कर सकता, जिस मार्गमें तुम चलते हो, उसमें चलनेसे इन्द्रादिक देवता और राक्षसोंको भी दुःख होता है; बज्रधारी इन्द्रने मरुत गणोंकी सहायतासे वृत्र नमुची, और दीर्घजिह्वा राक्षसीको माराया; आप भी सब प्रकार सहायवान हैं, जिसके भाई साक्षात् अर्जुन हैं, वे कौनसी वस्तुको नहीं जीत सकते, यह बलवानोंमें श्रेष्ठ महा पराक्रमी भीम, युवा महा धनुषधारी नकुल और सहदेव आपके सहायक हैं, तब आप क्यों सोच करते हैं ? हे शत्रुनाशन । आपके भाई मरुत्गणके सहित इन्द्रकी सेनाको भी जीत सकते हैं, हे भरतकुल-श्रेष्ठ । आप महा धनुषधारी देवहूषी अपने भाइयोंकी सहायतासे सब शत्रुओंको जीतेंगे । देखिये इसी समय दुष्ट बलवान उन्मत्त सिन्धुराज जयद्रथने द्रौपदीको चुरा लिया था, उसको जीतकर तुम्हारे महात्मा भाइयोंने द्रौपदीको छीन लिया, और रामने तो बिना किसीकी सहायताही महा पराक्रमी राक्षसराज रावण को युद्धमें मारा और सीताको छीन लिया । हे राजन् । आप अपनी बुद्धिसे विचारिये कि रामके वन्दर रोक और लगूर मित्र थे, उनमें कोई भी मनुष्य नहीं था । हे भरतर्षभ । हे पुरुषश्रेष्ठ ! हे शत्रुओंको तपानेवाले । इस लिये अब आप उत्तम साहस कीजिये, क्योंकि आप ऐसे महात्माओंको सोच करना नहीं चाहिये ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, बुद्धिमान मार्कण्डेयके ऐसे वचन सुन महाबलवान महाराजने दुःखकी त्याग दिया, और फिर ऐसा कहने लगे ।

२६० अध्याय समाप्त ।

रामोपाख्यान पर्व समाप्त ।

आगे पतिव्रता-महात्म्य पर्व लिखेंगे ।

महाराज युधिष्ठिर बोले, मैं न अपना, न अपने भाइयोंका, और न राज्य नष्ट होनेका इतना सोच करता हूँ, जितना इस बातका कि राजपुत्री द्रौपदीका, इसने जुरके समयमें दुष्टोंके हाथसे वृद्ध दुःख पाया और हम लोगोंका उद्धार भी किया, फिर वनमें जयद्रथने अपने बलसे इसको चुरा लिया । आपने पहिले कभी द्रौपदीके समान पतिव्रता और महाभाग्यवती कोई स्त्री देखी वा सुनी है ?

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन् युधिष्ठिर । आप कुलीन स्त्रियोंके चारित्र्योंको सुनिये । हम राजपुत्री सावित्रीका वर्णन करते हैं, उन्होंने भी वृद्ध दुःख उठाये थे । मद्रदेशमें धर्मात्मा धर्म जाननेवाले ब्राह्मणोंके भक्त सत्यवादी जितेन्द्रिय यज्ञकर्त्ता दानी प्रजाके प्यारे सब जगतका कल्याण करनेवाले क्षमावान अश्वपति नामक राजा थे । उनकी वृद्ध अवस्था बीतने परभी कोई पुत्र उत्पन्न न हुआ । तब उनकी वृद्ध दुःख हुआ । पुत्र उत्पन्न करनेवाले परम नियम और ब्रतोंको वह राजा कर्त्त लगा । समयपर थोड़ा भोजन करके जितेन्द्रिय और ब्रह्मचारी रहता था । हे राजसत्तम । गायत्रीसे सैकड़ों सक्खों वार हवन करके दिनके आठवें भागमें थोड़ा भोजन करता था, ऐसे नियमसे जब वह अठारह वर्ष पूरा का चुका, तो गायत्रीने उठके बड़ी प्रसन्नताके साथ राजाको दर्शन दिया । वर देनेवाली गायत्रीने राजासे यह कहा—

गायत्री बोली, हे राजन् । मैं तुम्हारे शुद्ध ब्रह्मचर्य जितेन्द्रियता और भक्तिसे प्रसन्न हूँ हूँ, हे अश्वपति मद्रराज । जो तुम्हारी इच्छा हो सो वर मागी, तुम कभी धर्मको न छोड़ना । राजा अश्वपति बोले, हे देवि । मैंने पुत्र और धर्मके लिये यह नियम किया था, मैं दस

बढ़ानेवाले बड़तसे पुत्र हों मुझसे ब्राह्मणों ने कहा था कि पुत्र हो परम धर्म है ; यदि आप प्रसन्न हुई है तो पुत्र दीजिये ।

गायत्री बोलीं, हे राजन् ! मैंने पहिले ही तुम्हारे इस अभिप्रायकी समझकर ब्रह्मासे कहा था, मेरे प्रतापसे और ब्रह्माकी आज्ञासे तुम्हारे एक बड़ी तेजस्वी कन्या होगी, हे राजन् । तुम इसका उत्तर कुछ मत दो, मैं ब्रह्माकी आज्ञासे प्रसन्न होकर तुमको वर देतो हूं ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन् ! गायत्रीके वचनोंकी अङ्गीकार करके राजाने फिर गायत्रीकी स्तुति करी । तब गायत्री अन्तर्धान हो गई, तो राजा अपने नगरको चले आये, और अपने राज्यमें रहकर धर्मसे प्रजाका पालन करने लगे । कुछ काल बीतने पर राजाकी बड़ी स्त्रीको गर्भ रहा ; उस मानिनी राजपुत्रीका गर्भ ऐसे बढ़ने लगा, जैसे आकाशमें एकपक्षका चन्द्रमा बढता है । पूर्ण समयपर कमलनयनी कन्याका जन्म हुआ । राजाने प्रसन्न होकर जन्मकालकी सब क्रिया करी । सावित्रीने प्रसन्न होकर यह कन्या दी थी । इस कारणसे ब्राह्मणोंने और पिताने उस कन्याका नाम सावित्री ही रक्खा । वह राजकन्या साक्षात् लक्ष्मीके समान क्रमसे बढ़ने लगी, और कुछ कालमें यौवनवती होगई । उस क्षीण कटि और उत्तम अङ्गवाली सोनेकी मूर्तिके समान कन्याकी देखकर सबलोग देवकन्या समझते थे । उस कमलनयनीकी तेजसे भरी हुई देखके उसके तेजसे घबड़ा कर कोई भी ब्याहनेकी इच्छा नहीं करता था । एक दिन सावित्री व्रत करके और सिरसे स्नानकर देवता और अग्निकी पूजा कर पिताके पास गई । लक्ष्मीके समान रूपवाली सावित्री पिताके चरणोंमें प्रणाम करके हाथ जोड़के पिताके पास बैठ गई । अपनी कन्याको यौवनवती तथा देवतोके समान

रूपवाली देख और उसके योग्य कोई वर न पाके राजा दुःखित हुआ । राजा बोले ; हे पुत्री ! तेरे विवाहका समय प्राप्त हुआ, किन्तु मुझसे कोई विवाहको नहीं कहता है, इस कारणसे तुम आपही अपने गुणोंके समान अपने पतिकी दूँढ ली, जो तुमसे विवाहकी इच्छा करे तुम मुझे उसको दिखाना, मैं विचार कर उसके सङ्ग तुम्हारा विवाह कर दूँगा । मैंने पढ़ते हुए, ब्राह्मणोंसे धर्मशास्त्रमें सुना है, हे कल्याणी । मैं तुमसे जो कहता हूं उस वचनकी तुम सुनो । जो पिता कन्याका विवाह न करे वह निन्दाके प्राय है, जा पति स्त्रीको ऋतुकालमें इच्छाकी पूरी न करे, वह निन्दाके योग्य है, पतिके मर जानेपर जा पुत्र माताकी रक्षा न करे वह भी निन्दाके योग्य है । हे पुत्री । मेरे इस वचनकी सुनके तू शीघ्रतासे पतिकी खोज कर मुझसे कह, जिससे मैं देवतोंकी निन्दाके योग्य न रहूं, ऐसा ही काम तुमको करना चाहिये ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन् ! राजाने अपनी पुत्रीसे ऐसा कहके वृद्ध मन्त्रियोंकी यात्राकी सामग्री इकट्ठी करनेकी आज्ञा दी । तब करनेवाली सावित्री पिताके चरणोंकी प्रणाम करके और लज्जायुक्त होके पिताके वचनोंकी मानकर बड़त शीघ्र चली । सावित्री सोनेके रथमें बैठके वृद्ध मन्त्रियोंके साथ राजार्घ्योके मनोहर तपोवनकी चली । वनमें जाके वृद्ध और मानने योग्य लोगोंके चरणोंकी प्रणाम करती हुई सब वनमें घूमन लगी । हे तात ! सब तीर्थोंसे धन देती हुई, और मुख्य ब्राह्मणोंकी सेवा करती हुई, राजकन्या सावित्री अनक देशोंमें फिरने लगी ।

२६२ अध्याय समाप्त ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले हे राजन् ! एक समय मद्रराज अपनी सभामें नारदके सहित बैठे हुए, कुछ वार्त्तालाप कर रहे थे । उसी

समय सब तीर्थोंमें घूमकर मन्त्रियोंके सहित सावित्री अपने पिताके घर आई। नारदके सहित अपने पिताको बैठा हुआ देखकर दोनोंके चरणोंको प्राणाम किया।

नारद बोले, यह तुम्हारी पुत्री कहां गई थी? और कहांसे आई है? किस कारणसे तुम यवती कन्याका विवाह नहीं करते हो?

राजा अश्वपति बोले, हे नारद। इसी कार्यके लिये मैंने इसे भेजा था। अभी यह आई है, इससे सुनना चाहिये कि किसकी इसने स्वामी बनाया।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, पिताके वचन सुनकर सावित्री ऐसे बोली।

सावित्री कहने लगी शाल्व देशमें एक धर्मात्मा क्षत्री द्युमत्सेन नामसे प्रसिद्ध थे, वह पश्चात् अन्ध होगये। उनके जब नेत्र नष्ट होगये और उनका पुत्र बालक था, तब उनके पड़िले शत्रु-ओंने उनके राज्यको छीन लिया, द्युमत्सेन बालक पुत्र और स्त्रीके सहित वनमें जाके तप करने लगे। उनका पुत्र जो नगरमें उत्पन्न हुआ और तपोवनमें बड़ा वही सत्यवान मेरा पति होने योग्य है, यही मैंने मनसे सङ्कल्प किया है।

श्रीनारद मुनि बोले, हे राजन्। तुम्हारी सावित्री कन्याने बड़ा पाप किया, जो विना जाने गुणवान सत्यवानको अपना पति बनाया। उसके पिता माता सत्य बोलते थे, इसी कारणसे ब्राह्मणोंने उसका नाम सत्यवान रक्खा। यह बालक अवस्थासे घोड़ोंको बद्धत प्यार करता था, इसलिये मट्टेके घोड़े बनाया करता है घोड़ोंके चित्र भी खींचा करता है इस कारणसे उसको चित्राश्व भी कहते हैं।

राजा बोले, हे नारद। इस समय वह राजाका बालक तेजस्वी, वृद्धिमान, सत्यवान, वीर और माता पिताका भक्त है वा नहीं?

नारद बोले, हे राजन् वह बालक सूर्यके

समान तेजस्वी, वृहस्पतिके समान बुद्धिमान इन्द्रके तुल्य वीर और पृथ्वीके सदृश हम शील है।

राजा अश्वपति बोले, वह राजाका पु सत्यवान दाता, ब्राह्मण-भक्त, रूपवान उदा तथा मनोहर है वा नहीं?

नारद बोले, वह राजा सकृत्तिके पुत्र रत्नदेव तुल्य अपनी शक्तिके अनुसार दान देनेवाला ब्राह्मण भक्त, सत्यवादी; तथा उद्योगरके शिवीके समान वीर है। ययातिके सम उदार, चन्द्रमाके तुल्य मनोहर अश्विन कुमारोंके समान रूपवान द्युमत्सेनका है। वह दान देनेवाला, नम्र, वीर, सत्यवान जितेन्द्रिय, मित्रतायुक्त ईर्ष्यारहित, लक्ष और शोभासे युक्त है; उसमें सदा सीधा रहता है, संक्षेपसे, प्रयोजन यह है कि तब वृद्ध और शीलवृद्ध उसकी प्रशंसा करते हैं।

राजा अश्वपति बोले, हे भगवन्। आप सब गुणोंसे भरा उस बालकको कहां, उसमें जो कुछ दोष हो सो भी कहिये।

नारद बोले, हे राजन्। उसमें एक ही दोष है जो सब गुणोंकी छिपा लीता है। वह दोष किसी यत्नसे दूर होन योग्य नहीं है। वह एक दोष यही है कि वह अवसे एक वर्ष मर जायगा।

राजा बोले, हे सावित्री। तुम जाओ और दूसरा पति करो, उसके एक ही दोषने सब गुणोंको छिपा लिया। जैसा मुझसे देवपूजित भगवान नारदने कहा कि एकही वर्षमें वह अपने शरीरको त्याग देगा।

सावित्री बोली, हे पिता। अंश अथात् पति सम्पत्तिको विभाग निर्णायक गुटिक एकही बार गिरती है, कन्या एकही बार दी जाती है, दान एकहीबार दिया जाता है, ये तीनों एकही बार होते हैं। वह बड़ी अवस्था वाला ही, या थोड़ी आयु वाला ही।

गुणवान हो, वा गुण रहित हो, मैं एक बार पति बना लिया अब मैं दूसरा पति नहीं करूँगा, मनसे निश्चय करके वचनसे कहा जाता है, फिर वही कर्मसे किया जाता है, इसमें मेरा मन ही साक्षी है।

नारद बोले, हे नरोत्तम। तुम्हारी पुत्रीकी बुद्धि स्थिर है; वह इस धर्मसे कदापि नहीं हट सकती है, जो सत्यवानसे गुण है, वे दूसरे पुरुषमें नहीं है, इस कारणसे मैं उसीका कन्या देना उत्तम समझता हूँ।

राजा बोले, हे भगवन्। जो आपने कहा सो अटल है, ऐसाही मैं करूँगा, क्योंकि आप मेरे गुरु हैं।

नारद बोले, तुम्हारी सावित्री कन्याका विवाह निर्विघ्न हो। जो कुछ मुझसे उपकार होसकेगा, मैं करूँगा। तुम्हारा कल्याण हो।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन्। ऐसा कहकर नारद स्वर्गको चले गये, और राजा अपनी कन्याके विवाहकी सामग्री इकट्ठी करने लगे।

२६३ अध्याय समाप्त।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन्। कन्यादानके लिये, नारदके वचनको स्थिर रखके, राजा अश्वपति विवाहके योग्य सब सामग्री जोड़ने लगे। उसके पश्चात् बृद्ध ब्राह्मण, ऋत्विक् और पुरोहितको सङ्ग लेकर कन्याके सहित उत्तम दिन विचारके मेधारण्य वनको चले। हे राजन्। वे ब्राह्मणोंके सहित पैदलही द्युमत्सेनके आश्रमपर पहुँचे। वहाँ जाकर महाभाग राजा द्युमत्सेनकी शाल बृक्षके नीचे कुशके आसनपर बैठे हुए देखा। राजा अश्वपतिने राजर्षि द्युमत्सेनकी यथा योग्य पूजा करके अपना वर्णन किया। द्युमत्सेनने भी धर्म, आसन और गोदानसे पूजा करके अनेक प्रयोजन पूछा। राजा अश्वपतिने

अपने अनेकानेक सब प्रयोजन कह सुनाया। राजा अश्वपति बोले, हे राजर्षि। यह सुन्दर सावित्री नामकी मेरी कन्या है, इसे आप धर्मानुसार अपनी पुत्रवधू बनानेके वास्ते ग्रहण कीजिये ?

द्युमत्सेन बोले, हे राजन्। हम लोग राज्यसे अष्ट हैं, सदा तपस्वियोंका धर्म करते हैं, वनवासके अयोग्य तुम्हारी कन्या आश्रममें किस प्रकार रहेगी ?

राजा अश्वपति बोले, हे राजन्। सुख और दुःख सदा नहीं रहते हैं; इस बातकी मैं जानता हूँ और मेरी कन्या भी जानती है, तब आपको मुझसे ऐसे वचन कहना उचित नहीं। मैं निश्चय करके आपके पास आया हूँ, मेरी आशाकी आप नाश न कीजिये, मैं आपका मित्र और दास हूँ, तथा दूसरे प्रेम पूर्वक आया हूँ, आप मुझसे ऐसे वचन न कहें, आप मेरे योग्य हैं, मैं आपके योग्य हूँ मेरी कन्याकी अपनी पुत्रवधू और सत्यवानकी स्त्री बनाइये।

द्युमत्सेन बोले, हे राजन्। मेरा विचार पहिले ही तुमसे सम्बन्ध करनेका था, परन्तु इस समय राज्य अष्ट होनेके कारण मैं ऐसा कहता हूँ। जो मेरा पहिला अभिप्राय था सो अब पूर्ण होगया, तुम मेरे अतिथि हो। जो अच्छा हो सो करो। इसके पश्चात् आश्रमके सब ब्राह्मणोंका बुलाकर दोनों राजोंने सावित्री सत्यवानका विधि पूर्वक विवाह किया। राजा अश्वपति कन्या तथा और अनेक प्रकारके दान करके परम आनन्दके साथ अपने घरको चले गये। सत्यवान भी सब गुण भरी स्त्रीको पाकर प्रसन्न हुए, और सावित्री इच्छानुसार बर पाके प्रसन्न हुई। जब सावित्रीको पिता चले गये, तब सावित्रीने अपने वस्त्र और आभूषण उतारकर वकले और गेहूँके रंग वस्त्र पहिन लिये। सेवासे

और अपने उत्तम गुणोंसे सावित्री सबको प्रसन्न करने लगी। सासको शारीरिक सेवा और बस्त्र भोजनादिसे एवम ससुरकी मीठे वचनोंसे सेवा करने लगी, पतिकी मीठे वचनोंसे, चतुरतासे एकान्त क्रीड़ासे प्रसन्नता पूर्वक सेवा करने लगी। हे राजन् युधिष्ठिर! इस प्रकारसे उस आश्रमपर रहते हुए उन तपस्वियोंका काल व्यतीत हुआ। नारदके वचनको स्मरण करके सावित्रीका मन सदा मलीन रहता था।

२६४ अध्याय समाप्त ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन् युधिष्ठिर! कुछ काल व्यतीत होनेके पश्चात् सत्यवानके मरनेका समय आगया। सावित्री नारदके वचनानुसार रोज दिन गिना करती थी। जब सावित्रीने जाना कि अबके चौथे दिन सत्यवान मर जायगा, तभी तीन दिनके उपवासका व्रत धारण कर लिया। राजा द्युमत्स्यने सावित्रीके नियमको सुन बहुत दुःख किया, और सावित्रीको समझाते हुए, उठके ऐसा वचन कहा।

राजा द्युमत्स्यने बोले, हे राजपुत्री। यह तुम्हारा व्रत कठिन है, तीन रात बिना अन्न रहना बहुत दुस्तर है। सावित्री बोली, हे तात! तुम कुछ दुःख मत करा, मैं इस व्रतको पूरा करूंगी, उद्योगसे मैंने इस व्रतको किया है, और उद्योगही सब कार्यका मूल है। राजा द्युमत्स्यने बोले, मैं यह कहनेमें समर्थ नहीं हूँ, कि व्रतको तोड़ दो, किन्तु हमारे समान मनुष्योंको यह कहना उचित ही है, कि व्रतको पूरा करो।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन् युधिष्ठिर! ऐसा कहके राजा द्युमत्स्यने चुप रहगये, और सावित्री काष्ठके समान दृढ़ होके व्रत करने लगी। हे पुरुषत्रेष्ठ युधिष्ठिर! जब प्रातःकाल होते

सत्यवानके मरनेका दिन आया, तब सावित्रीने ऐसा विचार करके कि आजही मरनेका दिन है, अग्निको जलाके हवण किया। सूर्यके उदय होतेही सन्ध्या वन्दन करके आश्रममें सम्पूर्ण बृद्ध ब्राह्मण और सास ससुरकी प्रणाम कर हाथ जोड़के सावित्री खड़ी हुई, सब लोगोंसे उसे आशीर्वाद दिया कि तू कभी विधवा न हो। तपोवनके निवासी तपस्वियोंकी वाणीको सावित्रीने बड़े ध्यानसे सुनी, और मनसे उन वाणियोंको ग्रहण किया। जैसा नारदने कहा था, उसी मुहूर्त्त और समयको विचारती हुई सावित्री दुःखसे बैठी रही। एकान्त में बैठी हुई, राजकन्या सावित्रीसे सास और ससुर प्रीति पूर्वक बोले, जैसा तुमने व्रत किया था, सो पूरा हुआ, भोजन करो।

सावित्री बोली, सूर्यके अस्त होनेपर जब मेरी कामना पूर्ण होगी, तब मैं भोजन करूंगी, यही मेरी प्रतिज्ञा है।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन् युधिष्ठिर। जिस समय सावित्री ऐसा कह रही थी, उसी समय सत्यवान कन्धपर फरसा रखे वनको चले। अपने पतिसे सावित्री बोली, हे स्वामी। आप अकेले वनको जान योग्य नहीं हैं, मैं भी आपके सङ्ग चलूँगी, आपको कोई नुखाना नहीं सकती हूँ।

सत्यवान बोले, हे भामिनि! पाँदल तुम कभी वनका नहीं गई हो, इस समय तुम व्रतस्थको हूँ। पैदल कैसे चलाओगी?

सावित्री बोली, व्रतसे मुझे ग्लानि वा पराश्रय नहीं है, आप मुझे न रोकाय।

सत्यवान बोले, यदि तुमको चलनेमें उत्साह है, तो मैं तुम्हारा प्रिय काम करूँगा, मैं माता पितासे आज्ञा ले ला। जिससे मुझे दास न लगे।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन् युधिष्ठिर! सास और ससुरकी प्रणाम करके सावित्री

कहने लगी, यह मेरे स्वामी फल लानेके लिये बनको जाते हैं, आप दोनोंकी आज्ञासे मैं भी बन जानेकी इच्छा करती हूँ, मुझसे इस समय विरह सहा नहीं जाता, गुरु और अग्निहोत्रके वास्ते तुम्हारा पुत्र बनको जाता है ; इस लिये रोकने योग्य नहीं है, कुछ कम एक वर्ष मुझे यहा आये होगया, मैं आज्ञासे बाहर कहीं नहीं निकलो, किन्तु मेरे फलोंसे भरे हुए बनका देखनेको इच्छा है ।

द्युमत्सेन बोले, जबसे सावित्रीके पिताने कन्यादान किया है, तबसे मेरी पुत्रवधूने कोई बात मुझसे नहीं मागी, इस लिये जो इसकी इच्छा है, सा पूर्ण हो, हे पुत्रो ! सत्यवानकी मार्गमें कोई विघ्न मत करना ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन् ! सास और ससुरसे आज्ञा लेकर यशस्विनी सावित्री मुखसे हसती हुई, आर हृदयसे दुःख करती हुई चली। वह फूले हुए कमलके समान नववाली माराकी मुण्डसे भर हुए, विचित्र और मनाहर बनाका देखने लगी। पावत्र जलसे भरी नदी और फले वृक्षोंसे भर पर्वताका मोठे वचन बालनवाली सावित्रीका सत्यवान दिखलाने लग। नन्दा रहित सावित्री नारदके वचनको स्मरण करके और अपने पातको देखकर पातका मरा हुआ देख कर बहुत दुःखित हातो धी। धीरे धीरे अपन पातके पीछे चलती हुई उसी कालका सोचती थी, उस दुःखसे उसका हृदय दाटुकड़ा हुआ जाता था ।

२६५ अध्याय समाप्त ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन् युधिष्ठिर ! सत्यवानने फल तोड़कर टाकरी भर ली, पश्चात् लकड़ी तोड़न लगा लकड़ी उखाड़ते हुए सत्यवानके शरीरमें पसोना लगाया। उस परिश्रमसे सत्यवानके सिरमें

पीड़ा होने लगी। तब वह अपनी प्यारी स्त्रीके पास आया और थककर ऐसे वचन बोला, इस परिश्रमसे मेरे सिरमें पीड़ा होने लगी है, हे सावित्री ! मेरे अङ्ग टुटते हैं, हे थोड़ा बोलनेवाली। मैं अपनेको स्वस्थ नहीं देखता हूँ, मेरे सिरमें शूल वेधनेके समान पीड़ा होती है, हे कल्याणी। इस कारणसे मैं सोनेकी इच्छा करता हूँ, बैठनेकी शक्ति मुझमें नहीं है। सावित्री अपने पतिके निकट जाके उसके सिरको अपनी जङ्घापर धरके पृथ्वीमें बैठ गई। तब वह तपस्विनी नारदके वचनको स्मरण करती हुई उस मुहूर्त्त और दिनको मिलाने लगी। एक क्षणके पीछे उसने लालबख्शवाली सूर्यके समान प्रकाशयुक्त एक पुरुषको देखा, काले दात और लाल नेत्रवाले, हाथमें फासी लिये सत्यवानके पास बैठे उस पुरुषको देखकर सावित्री धीरे धीरे अपने पातको सिरको पृथ्वीमें रखके खड़ी हुई और हाथ जोड़के हृदयमें कापती हुई ऐसा वचन बोली।

सावित्री बोली मैं जानती हूँ कि आप देवता हैं क्योंकि ऐसा शरीर मनुष्योंका नहीं होता, विस्तारपूर्वक कहिये कि आप कौन हैं ? और क्या करना चाहते हैं ?

यमराज बोले, हे सावित्री। तुम पातव्रता और तपसे भरी हुई हो, इससे मैं तुमसे बोलता हूँ, हे कल्याण ! तुम मुझे यमराज समझो, इस तुम्हारे पात सत्यवानको अवस्था पूर्ण होगई, इससे मैं बान्धकर इसे लेजानेको आया हूँ।

सावित्री बोले, हे भगवान ! मैंने सुना है कि मनुष्योंके लेनेको आपके दूत आया करते हैं, ता आप स्वयम् किस कारणसे आये ?

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन् ! ऐसा सुनकर भगवान पितरराज सावित्रीके प्रसन्नार्थ विस्तारसे अपनी इच्छासे कहने लगे। यह

धर्मवान गुणसागर सत्यवान मेरे दूतोंके लेजाने योग्य नहीं था, इस कारण मैं स्वयम आया हूँ। हे राजन्। इसके पश्चात् सत्यवानके शरीरसे अंगुष्ठमात्र पुष्पको यमराजने बाधके निकाला। तब सत्यवानका शरीर सास प्राण और चेष्टारहित तथा देखनेमें अप्रिय होगया। यम उसको बांधकर दक्षिणकी ओरको चले। नियम और व्रतोसे सिद्ध, महाभाग पतिव्रता दुःखसे व्याकुल सावित्रीभी यमके पीछे पीछे चली।

यमराज बोले, हे सावित्री। तुमको जहां तक पतिके सङ्ग जाना चाहिये था, वहांतक तुम आई अपने पतिसे तुम ऋणमुक्त होगई अब तुम लौट जाओ इसकी क्रिया करो।

सावित्री बोली जहां मेरे पतिको कीर्ति लेजाय वा आपही मेरा पति जाय, वही सुभी भी जाना चाहिये यह सनातन धर्म है। तप, गुरुभक्ति पातक्षेह, व्रत और आपकी कृपासे मेरी गाँत कहीं नहीं रुक सकती। हे यम। तत्वकी जाननेवाली पण्डित सात पग सङ्ग चलनेकी मित्रता मानते हैं, मैं मित्रताको समझके जो कहती हूँ, उसे सुनो। अज्ञानो लोग वनमें नहीं रहते, न धर्म करत, न गुरुकुलमें निवास, न परिश्रम कर सकते हैं, विज्ञानहीसे उन कर्मोंको मनुष्य करता है। इस लिये धर्मही प्रधान है। सज्जन जिसे मानते हैं, वह एकही धर्म सबके मानने योग्य है दूसरे वा तीसरे धर्मकी इच्छा न करै। इस लिये महात्मा लोग धर्महीको प्रधान कहते हैं।

यम बोले, हे सावित्री। मैं तुम्हारे स्पष्ट स्वर व्यञ्जनयुक्त वाणीसे प्रसन्न हुआ। इसके जीवनके सिवाय जा तुम्हारी इच्छा हा सो वर मागो, मैं तुम्हें दगा।

सावित्री बोली, हमारे आश्रममें राज्यसे नष्ट अन्धा मेरा ससुर है, वह पुत्रयुक्त बलवान और राजा है, यहो वर दोजिये।

यम बोले, हे निन्दारहित सावित्री। जो तुमने कहा मैं वही वर देता हूँ, जान पड़ता है, कि मार्गकी थकाई तुम्हें आगई इस लिये अधिक श्रम मत करो, लौट जाओ।

सावित्री बोली, हे देवराज। सुभी पतिके सङ्ग थकाई नहीं आती, क्योंकि पतिही मेरा आश्रय है, इस कारणसे जहां मेरे पतिके लिये जाते हैं, मैंभी वहीँ चलंगी और मैं वचन सुनिये। सज्जनोंसे एक बारभी मिलन उत्तम उससे भी सज्जनोंसे मित्रता करना उत्तम है, सज्जनोंका सङ्ग निष्फल नहीं होता, इससे सज्जनोंके समागमहीमें रहना चाहिये।

यमराज बोले, हे भामिनी। तुमने जो वचन कहा, वह मनके अनुसार पण्डितोंकी बुद्धि बढ़ानेवाला और हितकारो है, इस कारणसे सत्यवानको जिलानके सिवाय जो इच्छा हो सो वर मागो।

सावित्री बोली, मेरे बुद्धिमान ससुरका पहिले जो राज्य नष्ट हो गया है, उस राज्यकी वह फिर प्राप्त हो, और मेरे ससुर धर्मका पारित्याग न करें, यहो दूसरा वर मागती हूँ।

यमराज बोले, हे सावित्री। तुम्हारे ससुर फिर अपने राज्यकी पावेंगे, और धर्मका कर्म नहीं छोड़ेंगे, हे राजपुत्री। अब तुम्हारे कार्यको मैं सिद्ध किया, तुम लौट जाओ।

सावित्री बोली, हे यमराज। आपने प्रजाकी नियमसे रखा है, आप सबके नियन्ता हैं, सबका कर्मका फल देते हैं; इसीसे आपका नाम यम है। आप मेरी वाणीको सुनिये, मैं वचन और कायासे किसी प्राणीका हान न करना, सबपर दया करना, दान देना, यह सज्जनोंका सनातन धर्म है। इस जगत्में मनुष्य शक्तिहीन है, महात्मा लोग शत्रुपरभी दया करते हैं।

यमराज बोले, प्यासेको जैसे जल मिले, इस प्रकारसे तुमने यह वाणी कही, इसलिये

सत्यवानकी जिलानेकी भिन्न जो तुम्हारी इच्छा
। हो सो वर मागो ।

सावित्री बोली, मेरा पिता राजा होकर
भी पुत्रहीन है, उसके सौ पुत्र हों जिससे मेरे
पिताका कुल चले यह तीसरा वर मागती हूँ ।

यमराज बोले, हे राजपुत्री । तुम्हारे पिताके
कुलको बढ़ानेवाले बड़े तेजस्वी सौ पुत्र होंगे,
हे कल्याणि । तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हुआ,
तुम ब्रह्म दूर आ गई हो, लौट जाओ ।

सावित्री बोली, तुम सूर्यके पुत्र बड़े प्रतापी
हो, इससे तुम्हें पण्डित लोग वैवस्वत कहते
हैं, प्रजा तुम्हारी आज्ञासे शम दममें रहती
है, इससे तुम्हारा नाम धर्मराज है, मनुष्योंको
जैसा विश्वास सज्जनोंमें होता है, वैसा अपनी
आत्मामेंभी नहीं होता, इससे महात्मासे
सब प्रार्थना करते हैं । महात्मा सब प्राणि-
नोंके मित्र होते हैं, इसीसे विधिप करके सब
प्राणी महात्माओंका विश्वास करते हैं ।

यमराज बोले, हे कल्याणि । जैसा तुमने
चन कहे ऐसे तुम्हारे सिवाय और किसीसे
ने नहीं सुने । इससे मैं प्रसन्न हुआ हूँ, इसके
विनेके सिवाय और जो चाहो, सो वर
मागो ।

सावित्री बोली, हे देव । मेरे गर्भसे और
सत्यवानके वीर्यसे हमारे कुलको बढ़ानेवाले
सत्यवान सौ पुत्र उत्पन्न हों, यह मैं मांगती हूँ ।
यमराज बोले, हे स्त्री । तुम्हारे वलवान
सौ पुत्र होंगे, तुमको ब्रह्म परिश्रम न हो ।
इस लिये लौट जाओ, अब ब्रह्म दूर
आ गई हो ।

सावित्री बोली, सज्जनोंकी धर्ममें प्रवृत्ति
रहती है, सज्जन कभी दुःखी नहीं होते, न
मरताते हैं, सज्जनोंका सङ्ग निष्फल नहीं
होता, सज्जन अभयदान देके फिर नहीं
मोटाते, वे भूत और भविष्यतके आश्रय हैं, साध-
क सत्यसे सूर्यको और तपसे पृथ्वीको धारण

करते हैं, सज्जन कभी दुःखी नहीं होते । हे
यमराज । यह व्रत आर्थोंसे करने योग्य है, इस
सनातन धर्मकी जानकी साधजन पराया उप-
कार करते हैं, और दूसरोंसे अपने उपकारकी
इच्छा नहीं रखते, सज्जनोंपर जो दया की जाती
है, वह नाश नहीं होता, अर्थ और मान भी
नष्ट नहीं होता, इस कारणसे महात्माओंमें
धर्म रहता है, और वह धर्मकी रक्षा करते हैं ।

यमराज बोले, हे भामिनी । तुम जो जो
धर्मके अनुसार और मनकी प्यारी बातोंकी
कहती हो, सो सब गम्भीर अर्थोंसे भरी हुई
हैं । हे पतिव्रते । तुम्हारी बातोंकी सुनकर
हमारी भक्ति बढ़ती जाती है, इस लिये तुम
विधिप वर मांगो ।

सावित्री बोली, हे वरदान देनेवाले । तुमने
जो हमको सौ पुत्र होनेका वरदान दिया है,
मैं उसीकी सिद्धि चाहती हूँ, इस लिये मैं ये
वरदान मागती हूँ कि मेरे पति जी जायं
क्योंकि मैंभी बिना पतिके मरे हुएके समान हूँ,
मैं बिना पतिके कोई सुख नहीं भोगना चाहती,
मैं बिना पतिके घरमें नहीं जाना चाहती, मैं
बिना पतिके धनकी इच्छा नहीं करती, और
न बिना पतिके जो सकती हूँ । तुमहीने पहले
तुम्हको वरदान दिया है कि तुम्हारे गर्भसे और
सत्यवानके वीर्यसे सौ पुत्र उत्पन्न होंगे । सो
तुमही हमारे पतिको लिये जाते हो, तब उस
वरको सिद्धि कैसे होगी ? इस लिये मैं यह
वरदान मागती हूँ कि मेरे पति जी जायं,
क्योंकि उनके जीनेहीसे आपके वचन सिद्ध होंगे ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन् ! सूर्य-
पुत्र यमराज सावित्रीके वचन सुनकर प्रसन्न
हुए, और सत्यवानको फांसीसे छोड़कर कहने
लगे, हे भद्र । हे कुलनन्दिनो । हमने तुम्हारे
पतिको छोड़ दिया, ये रोगरहित स्तुति करनेके
योग्य और अर्थोंकी सिद्ध करनेवाला होगा,
इसकी अवस्था चार सौ वर्षकी होगी, ये तुम्हारे

सहित धर्मपूर्वक अनेक यज्ञोंको करके लोकमें कीर्तिको प्राप्त करेंगे, जो इसके बोर्यसे और तुम्हारे गर्भसे सौ पुत्र उत्पन्न होंगे वे सब राजा बलवान पुत्र पौत्रोंसे युक्त जगतमें विख्यात और बृद्धत समय तक तुम्हारे नामसे प्रसिद्ध रहेंगे । तुम्हारे पिताके बोर्यसे तुम्हारी माताके सौ पुत्र उत्पन्न होंगे, वे सब लोग मालवीसे उत्पन्न होनेसे कारण मालव नामसे प्रसिद्ध होंगे । तुम्हारे सौ भाई देवतोंके समान बलवान तथा पुत्र और पौत्रोंके सहित बृद्धत दिनतक आनन्द करेंगे । महा प्रतापी यमराज सावित्रीको ऐसा वर देकर और उसको पीछेको लौटाकर अपने घरको चले गये । जब यमराज चले गये और सावित्रीने अपने पतिको प्राप्त कर लिया, तब सावित्री पुनः उसी स्थानपर आई जहां उसके मरे हुए पतिका शरीर पड़ा था । वह अपने पतिको मरा हुआ देख, उसके पास गई और उसके सिरको अपनी गोदमें रखकर भूमि पर बैठ गई, उसी समय सत्यवान जागे और सावित्रीसे कहने लगे । उस समय सत्यवान प्रेमसे अपनी स्त्रीको बार बार इस प्रकार देखने लगे, जैसे कोई परदेशसे आकर अपनी स्त्रीको देखता है ।

सत्यवान बोले मैं बृद्धत समय तक सोता रहा, तुमने क्यों नहीं जगाया ? वह जो काला पुरुष सुभको खींचता था, सो अब कहा गया ?

सावित्री बोली, हे पुरुषसिंह । तुम मेरी गोदमें बृद्धत देर तक सोते रहे, पुरुषोंको नियममें रखनेवाले भगवान यमराज अपने घरको चले गये । हे राजपुत्र । तुम बृद्धत थक गये हो । और तुम्हारी निद्राभी खुल गई है, यदि तुमको उठनेकी शक्ति हो ता उठो; देखो यह समय आधी रातका है ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन् । उसी समय सत्यवान चैतन्य होकर इस प्रकार उठे, जैसे कोई सुखसे सोकर उठता है । तब सब

दिशाओंको और वनको देखकर सावित्री बोली, हे पतली कमरवाली । मैं सदा फल खाकर रहता हूं आज तुम्हारे सहित फल लेने वनको आया था परन्तु काठ उखाड़ते समय मेरे सिरमें पीड़ा हुई, उस दुःखसे अत्यन्त पीड़ित होकर खड़ा न हो सका, तब तुम्हारी गोदमें सो रहा मुझको यहां तक सब स्मरण है । हे सुन्दरी । जब मैं तुम्हारी गोदमें सोया, तब मेरा मन निद्राके वशमें हो गया, इसके पश्चात् सुभको घोर अन्धकार दिखाई दिया, फिर मैंने एक महातेजस्वी पुरुषको देखा, हे सुन्दरी । यदि तुम इस वृत्तान्तको जानती हो तो सुभसे कहो । क्या मैंने स्वप्न देखा था अथवा ये सब सत्य हैं ?

सावित्री बोली, अधिक बात करनेसे रात बीत जायगी, इस लिये मैं तुमसे यह सब वृत्तान्त प्रातःकाल कहूंगी । हे उत्तम व्रत धारी । तुम्हारा कल्याण हो उठी और चले कर अपने माता पिताको देखो । यह अंधियारी रात है, सूर्य अस्त होगया है, हे घोर शब्द करनेवाली राक्षस प्रसन्न होकर घूम रहे हैं, वनमें घूमते हुए हरिनोंके पैरोंमें लगकर पत्तोंका शब्द हो रहा है, ये सियारी दक्षिणकी मुंह करके घोर शब्द कर रही हैं, ये कभी कभी पश्चिमकी मुंह करके भी घोर शब्द करने लगती हैं, इससे मेरा हृदय कापा जाता है । सत्यवान बोले, इस वनमें घोर अन्धकार छा गया है; इससे मार्ग नहीं दिखाई देता और तुम चल भी नहीं सकती ।

सावित्री बोली, हे राजपुत्र । इस वनमें आग लग रही है और एक वृक्ष जल रहा है, उससे वायुसे उड़कर कहीं कहीं अग्नि दिखाई देती है । मैं वहांमें अग्नि ले आती हूं और इन लकड़ियोंमें लगाती हूं, तब चांदमा होनेसे मार्ग दिखने लगेगा । आप अपने दुःखको दूर कीजिये, यदि आप पीड़ा

कारण इस समय न चल सकें, और इस समयकारसे भरे हुए वनमें मार्गकी न देख सकें तो आपकी आज्ञानुसार हम इसरात भर इसही वनमें रहें, प्रातःकाल जब सूर्य उदय होगा तब यहांसे चलेंगे ।

सत्यवान बोले, मेरे सिरकी पीड़ा दूर होगई और सब शरीर सावधान है ; इस लिये मेरी इच्छा है, कि तुम्हारी प्रसन्नतासे अपने माता पिताका दर्शन करूँ । मैं पहिले कभी इतने समय तक आश्रमसे बाहर नहीं रहा । सम्भ्रा होतिही मेरी माता मुझे बाहर नहीं निकालने देती है, दिनको यदि मैं कहीं जाता हूँ, तो मेरे माता पिता घबड़ाने लगते हैं ; निश्चय मेरे पिता आश्रमवासियोंके सहित दूढ़ते फिरते होंगे, मेरे मातापिताने बहुत दुःखसे मुझको प्राप्त किया है, उन्होंने उसी समय कहा था, कि तुम शीघ्र आना, मुझे बहुत चिन्ता है, कि आज मेरे लिये उन दोनोंकी क्या दशा हुई होगी । उनको बिना देखे मुझको भी बहुत दुःख होता है । उन दोनों बूढ़ीने बहुत प्रीतिके सहित चलते समय रोकर मुझसे कहा था, हे पुत्र ! हम दोनों तुम्हारे बिना क्षण भरभी नहीं जी सकते हैं, जबतक तुम नहीं आओगे तबतक हमारा जीना कठिन है, तुम हमारी शिष्टि, वंशके कीर्ति, पिण्डदाता और कीर्तिके बढ़ानेवाले पुत्र हो, मेरे माता और पिता दोनों बूढ़े हैं ; मैं उनकी लाठी हूँ ; इस रात्रिमें मुझको न देखकर उनकी क्या दशा हुई होगी ; मैं इस निद्राकी बहुत निन्दा करता हूँ ; उस अनुपकारिणीके कारणसे मेरे माता पिताकी और मुझे इतना दुःख हुआ, मैं इस समय घोर आपत्तिमें पड़ा हूँ, क्योंकि बिना माता पिताके देखे, जी नहीं सकता, निश्चय मेरे अश्वे पिता घबड़ा-एक एक आश्रमवासीसे मेरा समाचार

बूझ रहे होंगे । हे सुन्दरी ! मुझे अपना इतना सोच नहीं है, जितना पिता और पतिव्रता माताका है ; क्योंकि वे दोनों मेरेही कारणसे घोर दुःखमें पड़े हैं ; उनके जीनेसे मैं भी जी सकता हूँ, क्योंकि उनकी पालन करना और उनका प्रिय काम करनाही मेरा धर्म है ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन् ! पिताके प्यारे पिताके भक्त धर्मात्मा सत्यवान ऐसा कहकर दुःखसे व्यकुल होकर और अपने हाथोंको फैलाकर ऊंचे स्वरसे रोने लगे, धर्म करनेवाली सावित्री अपने पतिको शोकसे व्याकुल देखकर और उनकी आसुओंको अपने हाथसे पोंछकर कचने लगी, कि यदि मैंने कुछ तप किया हो, यदि मैंने अग्निमें कुछ आहुति दी हो, तो उस पुण्यसे मेरे ससुर और सासको यह रात्रि सुखसे बीते, मुझे क्षरण नहीं है कि मैंने कभी खेलनेमेंभी झूठ बोला हो । वही शक्ति मेरे सास और ससुरकी रक्षा करे ।

सत्यवान बोले, हे सावित्री ! मैं अपने माता पिताके दर्शन करना चाहता हूँ, इस लिये तुम शीघ्र चलो विलम्ब मत करो । हे सुन्दरमुखी ! मैं अपने आत्माको शपथ करके सत्य कहता हूँ, कि यदि मेरे मातापिताको कुछ भी अनिष्ट हुआ हागा, तो मैं नहीं जीऊंगा, यदि तेरी बुद्धि धर्ममें है, यदि तुम मुझे जिलाना चाहती हो, और मेरा प्रिय कार्य करनेकी तुम्हारी इच्छा है, तो शीघ्र आश्रमको चलो ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन् ? अपने पतिके ऐसे वचन सुन सुन्दरी सावित्रीने उठकर अपने बालोंको बाधा, तब हाथ पकड़कर अपने पतिको उठाया, सत्यवानने उठकर अपने शरीरकी छाथसे पोछा, फिर सब दिशाओंको देखकर फलकी टोकरीको देखने लगे, तब सावित्री बोली, कि इन

फलोंको आप प्रातःकाल ले जाइयेगा, आपके कल्याणके निमित्त मैं कुल्हाड़ी ले चलती हूँ, फिर सावित्रीने उस फलके टोकरेको एक वृक्षमें बांध दिया, और कुल्हाड़ी उठाकर अपने पतिके पास आई। गजगामिनी सुन्दरी सावित्री दाहिने कन्धेपर अपने पतिका हाथ रखकर और बाये कन्धेपर कुल्हाड़ी रखकर चली।

सत्यवान बोले, हे सुन्दरी। आश्रमके समीप आनेसे मैं सब मार्गोंको जान गया, और वृक्षोंके बीचमें विजली चमकनेसे भी सब मार्ग देखने लगे। हे सुन्दरी। अब हम उसी स्थानमें आगये जहाँसे फल तोड़े थे, अब मार्गका कुछ विचार न करो, सुखसे चली चली। आगे ढांकके बनमें दो मार्ग आवेंगे, उसमेंसे उत्तरकी ओर-वाला जो मार्ग है, उसीसे तुम शीघ्र चलना; मैं बृहत सावधान और बलवान होगया हूँ। अब मेरी इच्छा माता पिताके देखनेकी है, सावित्री और सत्यवान इस प्रकार बात करते हुए आश्रमकी ओरकी चले।

२६६ अध्याय समाप्त ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन् युधिष्ठिर। उसही समय महाबलवान राजा द्युमत्सेनकी दृष्टि ठीक होगई, और वे प्रसन्न होकर जगतकी सब वस्तुओंको देखने लगे। तब वे अपनी शैव्या स्त्रीके सहित सब आश्रममें अपने पुत्रको ढूँढ़ने लगे, परन्तु उसे न पाकर बृहत दुःखी हुए। तब वे दोनों स्त्री पुरुष रात्रिहीमें आश्रम, वन नदी और तलावोंमें अपने पुत्रको ढूँढ़ने लगे, किसीका शब्द सुनकर अपने पुत्रकी शङ्काकर उधरहीको देखने लगते थे, और कहने लगते थे कि वह सावित्रीके सहित सत्यवान चला आता है, इस प्रकार घूमनेसे उन दोनोंके पैरोंमें घाव हो

गये, और स्थिर बहने लगा, उनके शरीर कुशके काटोंके लगनेसे छिद गये, तब वे उक्त तके समान इधर उधर घूमने लगे, अनन्तर आश्रमके रहनेवाले ब्राह्मण उनके पास गये और उनको समझाकर आश्रममें ले आये, तपोधन वृद्ध ब्राह्मणोंने स्त्री सहित राजा द्युमत्सेनसे पुराने राजोंकी कथा कही, उनको सुनकर वे दोनों बूढ़े स्थिर हुए, और अपने पुत्रके बाल चरित्रोंको स्मरण करते बृहत दुःखसे उसका मार्ग देखने लगे; फिर वे दोनों बूढ़े बृहत दुःखसे व्याकुल होकर पुत्र। हा पतिव्रता बहू। तुम दोनों का हो। ऐसा कहकर रोने लगे, तब सत्यवादी सुवर्चा नामके ब्राह्मण कहने लगे।

सुवर्चा बोले, सावित्री तप सत्य और आचारसे भरी है, इससे हम जानते हैं, कि सत्यवान जीता है।

गौतम मुनि बोले, मैंने अङ्गोंके सहित वेदोंको पढ़ा है, मैंने बृहत तप और वाक्ताव्यसे ब्रह्मचर्य साधन किया है, मैंने सावधान होकर समस्त व्रतोंको किया है, और विधि सहित वायु भक्षण तथा उपवासभी किये हैं, उसही तपके बलसे सबके कर्मोंको जानता हूँ, मैं सत्य कहता हूँ, कि सत्यवान बृहत सुखी है।

शिष्य बोला, हमारे गुरुजीके मुखसे जो कुछ वचन निकला है, सो कभी मिथ्या नहीं होगा, इससे हम जानते हैं, कि सत्यवान जीता है।

ऋषिलोग बोले, हमें खूब निश्चय है कि सावित्रीके शरीरमें विधवा होनेका कोई लक्षण नहीं है, इससे हम जानते हैं, कि सत्यवान जीता है।

श्रीभरहाज मुनि बोले, सत्यवानकी स्त्री सावित्री तप, सत्य और शुद्धाचारसे भरी है, इससे हम जानते हैं कि सत्यवान जीता है।

श्रीदालभ्य मुनि बोले, हमने अपनी दृष्टि

सावित्रीके व्रतोंको देखा है, उसने निरन्तर कई उपवास किये हैं; इससे हम जानते हैं कि सत्यवान जीता है।

श्रीआपस्तम्ब मुनि बोले, देखो यह शान्ति दिशामें पक्षी और हरिण बोल रहे हैं, इससे हम जानते हैं, कि सत्यवान जीता है।

श्रीधौम्य मुनि बोले, तुम्हारा पुत्र सुलक्ष्णों से युक्त सब जगत्का प्रिय और दीर्घमायु है; इससे हम जानते हैं कि सत्यवान जीता है।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन्। जब सत्यवादी तपस्वी महात्माओंके ऐसे वचन सुने और उन सबका विचार करके राजा दुर्मत्सेन कुछ शान्त हुए उसही समय सावित्री भी प्रसन्न होती हुई अपने पति सत्यवानके सहित आश्रममें आ पहुँची।

ब्राह्मण लोग बोले, हे पृथ्वीनाथ। हम लोग पुत्र और दृष्टि सहित आपको देखकर बहुत प्रसन्न हुए हम लोग आपकी वृद्धि चाहते हैं। प्रारब्धहीसे सावित्री और सत्यवान मिले हैं और आपके नेत्र ठोक हुए हैं, तीनोंको पाकर आप प्रारब्धहीसे वृद्धि लाभ करेंगे। हम सब लोगोंने जो पहिले कहा था, उसमें कुछ भी सन्देह नहीं है अब शीघ्रही आपकी उन्नति होगी उसी समय फिर ब्राह्मणोंने अग्नि जलाई और राजाके समीप बैठ कर अग्निहोत्र करने लगे। उसी समय एक ओर सावित्री बैठ गई।

तब उन सबने ब्राह्मणोंकी आज्ञासे शोकको दूर किया, तब ऋषियोंने राजाके समीप बैठकर सत्यवानके सहित राज-पुत्र सत्यवानसे पंथा।

ऋषि लोग बोले, हे राजपुत्र! तुम अपनी स्त्रीके सहित पहिलेसे क्यों नहीं आये? तुमने इतनी अधिकरात्रि क्यों कर दी? वहाँ ऐसा विशेष कार्य क्या हो गया था? तुम्हारे न आनेसे तुम्हारे माता पिताकी बहुत दुःख हुआ, हम लोग इसके कारणको नहीं जानते, तुम हमसे कहा।

सत्यवान बोले, मैं अपने पिताकी आज्ञा लेकर सावित्रीके सहित बनको गया। वहाँ काठ उखाड़ते समय मेरे शिरमें पीड़ा हुई। मैं वहाँ सो गया और बहुत समय तक न जागा, जैसा मैं आज सीया वैसे पहिले कभी नहीं सीया था, इसलिये आप कुछ दुःख न कीजिये, इसी लिये मुझे इतनी रात्रि होगई इसके सिवाय और कोई कारण नहीं है।

गौतम मुनि बोले, अकस्मात् तुम्हारे पिताके नेत्र खुल गये, इसका कारण तुम नहीं जानते सावित्री कहेंगी। हे सावित्री! तुम आदि अन्तकी जानती हो हम तुमकी तेजमें गायत्रीके समान जानते हैं यदि इसमें कोई गुप्त बात न हो तो तुम हमसे वर्णन करो, क्योंकि तुम इसके सब कारणोंकी जानती हो।

सावित्री बोली, हे ब्रह्मन्। आपने जो कहा सो सब सत्य है। आप लोगोंका सङ्कल्प भंटा नहीं है और इसमें कोई गुप्त बात भी नहीं है, मैं सब सत्य सत्य कह देती हूँ। मुझसे महात्मा नारदने मेरे पिताके घरमें कहा था, कि तुम्हारे पतिको मृत्यु होजायगी, सो दिन आजही था, इस लिये मैंने इनका सग नहीं छोड़ा। जब यह वनमें सो गये, तब साक्षात् यमराज अपने दूतोंके सहित इनके पास आये, और इनकी फासीमें बाधके दक्षिणकी ओर ले चले, उसी समय मैंने सत्य वचनसे जगत्के स्वामी भगवान यमराजकी स्तुति करी, तब उन्होंने मुझको पाच वरदान दिये मेरे ससुरकी राज्य और नेत्र प्राप्त हों मैंने ये दो वरदान ससुरके लिये मागे। अपने पिताके सो पुत्र, अपने सो पुत्र, ये दो वर—प्राप्त किये। पाँचवां वर मैंने अपने पतिके लिये मांगा, जिससे सत्यवानकी चार सौ वर्षकी अवस्था हुई। मैंने अपने पतिके जिलानेके लियेही यह व्रत किया मैंने सब कारण विस्तार पूर्वक आप

कहा । आज मैं बहुत प्रसन्न हूँ, मेरा सब दुःख नष्ट होगया ।

ऋषिलोग बोले, हे सुन्दरी ! तुमने राजा द्युमत्सेनके कुलको घोर दुःखके तलावमें डूबनेसे बचा लिया ; वह तलाव घोर अन्धकार और दुःखोंसे भरा था । हे सुशीले ! तुम बहुत कुलीन पतिव्रता और साध्वी हो ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे राजन् ! इस प्रकार सब मुनियोंने पतिव्रता सावित्रीकी प्रशंसा करी फिर वे सब लोग राजा द्युमत्सेन और सत्यवानकी सन्मतिसे प्रसन्न होकर अपने अपने घरकी चले गये ।

२६७ अध्याय समाप्त ।

श्रीमार्कण्डेय मुनि बोले, हे महाराज युधिष्ठिर ! जब वह रात्रि व्यतीत होगई और सूर्य उदय हुए तब सब मुनि लोग राजा द्युमत्सेनके पास आये, वे सब महर्षि लोग सावित्रीकी कथा कहते कहते टप नहीं होते थे ; इस लिये बार बार कहते जाते थे । हे राजा ! उसी समय शाल्व देशसे राजा द्युमत्सेनके मन्त्री आये, और उनमेंसे प्रधान मन्त्री राजा द्युमत्सेनसे कहने लगा, कि हमने आपके शत्रुको मार डाला । राजा द्युमत्सेनने जब सुना, कि हमारा शत्रु बन्धुबान्धव और सेनाके सहित नाश होगया, और हमारे सब मन्त्री लोग एक मत होकर हमको राज्य देना चाहते हैं, वे लोग कहते हैं कि राजा द्युमत्सेन चाहे अन्ध हो चाहे नेत्रवान हो, हम उनहीको राजा बनावेंगे ऐसाही निश्चय करके ये लोग यहाँ आये हैं, तब राजा द्युमत्सेन बहुत प्रसन्न हुए । तब एक मन्त्री कहने लगा, हे महाराज ! यह आपकी चतुरङ्गिणी सेना उपस्थित है, आपका कल्याण हो । नगरमें आपकी विजय हुई है, अब चलकर बहुत दिनतक अपने पिता पितामहका राज्य कीजिये । जब

मन्त्रियोंने राजाको नेत्रवान और तेजवान देखा, तब सब लोगोंने प्रसन्न होकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया । तब राजा द्युमत्सेनने बहुत प्रसन्न होकर आश्रममें रहनेवाली बड़े ब्राह्मणोंकी प्रणाम किया । अनन्तर अपने मन्त्रियोंके सहित नगरकी चले गये, अनन्तर श्रेष्ठ महा तेजस्विनी सावित्रीके सहित एक पालकी बैठकर सेनाके सहित चलीं, नगरमें पहुँचने पश्चात् पुरोहितोंने राजा द्युमत्सेनका अभिषेक किया और महात्मा सत्यवानकी युवा बनाया, बहुत समय बितनेके पश्चात् सावित्री सौ पुत्र उत्पन्न हुए । वे सब महा बलवान और युद्ध करनेवाली थे, इसी प्रकार सावित्री पिताके भी सौ पुत्र उत्पन्न हुए । इस प्रकार सावित्रीने पिता, माता, सास, ससुर, पति और कुलको दुःखसे उद्धार किया । इस प्रकार शीलवती कल्याणी द्रौपदी भी सावित्रीके समान आप लोगोंके कुलका उद्धार करेंगी ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय ! मार्कण्डेय मुनिके ऐसे वचन सुन पापु पुत्र महात्मा युधिष्ठिर शोक और दुःख राहित होकर काम्यक वनमें रहने लगे जा पुरुष इस सावित्रीको कथा सुनता है, वह सदा सुखी रहता है और उसके सब प्रयाजनभी सिद्ध होजाते हैं ।

२६८ अध्याय समाप्त ।

पतिव्रता महात्मप्रपञ्च समाप्त ।

अथ कुण्डलाहरण पर्व ।

राजा जनमेजय बोले, हे ब्रह्मन् ! इन्द्र आश्विनानुसार लोमश मुनिन जा राजा युधिष्ठिर आकर कहा था, कि जिस घोर भयका तुम किसे नहीं कहते है, अज्जुनके यह भय हम उसका नाश करेग, हे महा तपासन् क्या वह घोर भय कर्णहीसे था ? क्या धर्म

युधिष्ठिरने यह समाचार किसीसे नहीं कहा था ?

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजशार्ङ्ग ! हम तुमसे इस कथाको कहते हैं, तुम हमारे वचनका विश्वास करो। जब पाण्डवोंको वनमें रहते रहते बारह वर्ष बीत गये, और तेरहवां वर्ष आरम्भ हुआ तब पाण्डवोंके हित करनेवाले इंद्रने कर्णसे भिक्षा मांगनेका विचार किया, हे महाराज। जब सूर्यने जाना कि इंद्र कर्णके पास कुण्डल लेनेको आवेंगे, तब वे कर्णके पास गये, उस समय कर्ण महामूल्य पलङ्गपर उत्तम विछौना बिछाये सो रहे थे, जब महात्मा, सत्यवादी, ब्राह्मण-भक्त कर्ण सोते थे, उसी समय सूर्यने अपना पुत्र जानकर कर्णपर बड़ी कृपा की, सूर्यने परम सुन्दर वेदपाठी ब्राह्मणका रूप बनाया, और कर्णका कल्याण करनेके लिये ऐसा कहा, हे कर्ण ! हे तात ! हे सत्यवादीयोमें श्रेष्ठ ! हे महाबाहो ! तुम हमारे हितके वचनोंको सुनो, हम तुम्हारे प्रेमसे कहते हैं, तुम्हारे पास पाण्डवोंका कल्याण करनेके लिये इंद्र आवेंगे, वे ब्राह्मणका रूप बनाकर तुमसे कुण्डल मागेंगे, उन्होंने तुम्हारे और जगतके स्वभावको जान लिया है, वे अच्छी प्रकारसे जानते हैं, कि तुम मागनेवालीको सब कुछ देते हो, और किसीसे कुछ मागते नहीं हो, हे तात ! तुम्हारा यह स्वभाव है, कि ब्राह्मण धनादि कुछ वस्तुको मागता है, तुम उसे मना नहीं करते, तुम्हारा यह स्वभाव जानकर इंद्र आपही कुण्डल और कवच मागनेका तुम्हारे पास आवेंगे, तुम उनकी कुण्डल मत देना और शक्तिके अनुसार उनको प्रसन्न कर लेना, इसीमें तुम्हारा परम कल्याण होगा, हे तात ! जब वह तुमसे कुण्डल मागें तब तुम और धन देकर उसको निवारण करना, स्त्री, गज, अनेक प्रकारक रत्न और अनेक प्रकारके धन देना ; परन्तु इंद्र

तुमसे कुण्डलही मागेंगे। हे कर्ण ! यदि तुम सङ्ग उत्पन्न हुए सुन्दर कुण्डलोंको दे दोगे, तब तुम्हारी आयु नष्ट हो जायगी और तुम मर जाओगे, तुम हमारे वचनोंको निश्चय मानो, कि जबतक तुम्हारे शरीरमें कवच और कुण्डल है, तबहीतक तुमकी कोई शत्रु युद्धमें नहीं मार सकता है। हे कर्ण ! ये रत्न रूपी कवच और कुण्डल अमृतसे उत्पन्न हुए हैं। तुमको अपना जीवन प्रिय है, तो इनको रक्षा करो।

कर्ण बोले, हे भगवन् ! आपके समान हमारा कल्याण करनेवाला कौन होगा ? आपने हमारे हितके वचन कहे, अब आप हमसे कहिये, कि ब्राह्मण वेषधारी आप कौन हैं।

ब्राह्मण बोले, हे तात ! मैं सूर्य हूँ, और प्रेमके ज्ञशमें होकर तुम्हारे पास आया हूँ, और तुमसे यह सब कह दिया है, तुम हमारे वचनको कराओ, तो तुम्हारा कल्याण होगा।

कर्ण बोले, जिसके साक्षात् सूर्य स्वामी हैं, ऐसे कर्णका सदा कल्याण ही है, आप हमारे वचनोंको सुनिये। आपने हमारे हितके लिये यह सब कहा, परन्तु हम आपकी स्तुति करते हैं, और हम आपका प्रणाम करके विनय करते हैं, कि यदि आप हमसे प्रेम करते हैं, तो हमका इस व्रतसे निवारण न कोजिये, हे सूर्य ! हमारे इस व्रतका सब जानता है, मरा यह प्रण है, कि मैं ब्राह्मणोंका अपन प्राणभी दे दगा, हे आकाशगामयामें श्रेष्ठ ! यदि पाण्डवोंका कल्याण करनेके लिये ब्राह्मणका वेष बनाकर इंद्र मेरे पास भिक्षा मागनेमो आवेंगे, तो मैं कुण्डल और उत्तम कवचको दे दूंगा, हे देवश्रेष्ठ ! मेरो यह इच्छा है, कि मेरे यशका नाश न हो। मेरे समान पुरुषोंको उचित है कि प्राणोंकी रक्षा न करके यशकी रक्षा करे, क्योंकि यशके संहित मरण

उत्तम है, यदि बलि और वृत्रासुरके मारनेवाले इन्द्र मेरे पास भिक्षा मांगनेको आवेंगे, तो मैं कवच और कुण्डल दे दूंगा, यदि पाण्डवोंके कल्याणके निमित्त इन्द्र मुझसे कवच और कुण्डल मांगनेको आवें तो मेरी वृद्ध कीर्ति बढ़ेगी । हे सूर्य ! मैं अपना शरीर देकरभी कीर्तिकी रक्षा चाहता हूं, क्योंकि कीर्ति-वानकी स्वर्ग मिलता है और कीर्तिहीनका नाश हो जाता है । कीर्ति माताके समान पुरुषकी रक्षा करती है, अपकीर्ति जोते हुए पुरुषका भी नाश कर देती है, हे सूर्य ! इस पुराने श्लोकमें साक्षात् ब्रह्माने कीर्तिको पुरुषकी आयु बताया है, इस लोकमेंभी कीर्ति आयुको बढ़ाती है, सो अब मैं अपने सङ्ग उत्पन्न हुए कवच और कुण्डलको देकर अनन्त कीर्तिको प्राप्त करूंगा, ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक दान देकर घोर कर्म करके युद्धमें अपने शरीरको छाड़ूंगा, मैं सब शत्रुओंको जीतकर अपने यशको रक्षा करूंगा, जा लोग युद्धमें जीवदान मांगेंगे उन्हें अभय दूंगा, बूढ़े बालक और ब्राह्मणोंकी महा भयसे छुड़ाकर इस लोकमें यश और परलोकमें सुख प्राप्त करूंगा, मैं अपना जोव देकर भी यशको रक्षा करूंगा, यहो मेरा प्रण है, अब मैं ब्राह्मण वेषधारी इन्द्रको कवच और कुण्डल देकर यशको प्राप्त करूंगा !

२६६ अध्याय समाप्त ।

सूर्य बालि, हे कर्ण ! तुम अपना, मित्रोंका पुत्रोंका, माताका, स्त्री और पिताका अहित कर्म मत करो, हे शरीरधारियोंमें श्रेष्ठ ! पुरुषको उचित है कि जो कर्म शरीरके अनुकूल हो उसीको करे, क्योंकि शरीर रहनेसे इस लोक और परलोकमें यश स्थिर होता है, तुम अपना शरीर देकर जो कीर्तिकी इच्छा करते हो, इससे निन्देह तुम्हारा

शरीर नाश हो जायगा, जीवतेके शिष्य, पिता, माता, पुत्र आदि सब वास्य लोकार्थको करते हैं, हे पुरुषसिंह ! हे महातेजस्वी ! राजा लोग भी पौरुष करके कीर्ति का लाभ करते हैं, परन्तु कीर्ति जीतेही कार्य सिद्ध कर सकती है, और मरनेके पश्चात् शरीर जल गया, तब कीर्ति किस का आवेगी मरा हुआ, मनुष्य कीर्तिको देख नहीं आता, जोता कीर्तिको भोगता है, मरने की कीर्ति ऐसेही है कि जैसे मरे हुए माला पहिनानी, हम तुमको भक्त जानकर ये सब हितकी बात कहते हैं, क्योंकि भक्तोंकी रक्षा करना हमारा काम है, हे महाभुव ! हम तुमको अपना परम भक्त मानते हैं तुमको भक्त देखकर हमकोभी भक्ति उत्पन्न हुई है, इससे तुम हमारे वचनोंको ग्रहण करो, इसमें कुछ देवतोंकी वनाई हुई गुण बातभी है, इसी लिये हम तुमसे कहते हैं कि हमारे वचनोंमें शङ्का मत करो, तुम देवतोंको नहीं जान सकते हो । इससे यह पूरी बात हम तुमको नहीं सुनाते हैं, तुम समयपर आप जान लोगी, हे राधापुत्र ! हम तुमसे बार बार वही बात कहते हैं कि, तुम इन्द्रको अपने कुण्डल मत देना, हे महातेजस्वी ! इन दोनों कुण्डलोंसे तुम्हारी ऐसी शोभा होती है, जैसे विशाखाके वीरम आकाशमें उदय हुए चन्द्रमाको, तुम इस बातका निश्चय जाना कि जोते हुए पुरुषकी कीर्ति सहायक है, इस लिये इन्द्र जब तुमसे कुण्डल लेनेका आवे, तब मना कर देना, हे पापराहित ! जब देवराज इन्द्र तुम्हारे पास कुण्डल मागनेका आवे तब तुम अनक प्रकारकी बात करके, उनको कुण्डल न देना तुम देवराजको, इच्छाकी बार बार निवारण करना, तुम मीठे हेतुके सहित मनोहर वचनसे इन्द्रकी बुद्धिको अपने वशमें कर लेना, हे पुरुषसिंह !

वनपर्व ।

म सदाही अर्जुनसे युद्ध करनेकी इच्छा रखते ही। वही वीर अर्जुन तुमसे युद्ध करनेकी आवेंगे, यदि साक्षात् इन्द्रभी अर्जुनके मित्र हों तो भी कुण्डलोंके सहित तुमको नहीं मार सकते हैं, हे कर्ण। यदि तुम अर्जुनके जीतनेकी इच्छा करते हो, तो ये सुन्दर कुण्डल इन्द्रको मत देना।

३०० अध्याय समाप्त ।

कर्ण बोले, हे सूर्य। मैं आपका भक्त हूँ, परन्तु आप सुझको जानते हैं कि जगतमें कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जिसको मैं न दान करूँ, हे सूर्य सुझको जैसा आप प्रिय है, तैसी स्त्री पुत्र मित्र और अपना शरीरभी नहीं है, जगतकी यह रीति है कि महात्मा लोग अपने भक्तोंके ऊपर कृपा और उनका कार्य सिद्ध करतेही हैं, हे सूर्य। आप निःसन्देह इन सब बातोंको जानतेही हैं कि कर्ण मेरा प्यारा भक्त है, वह कभी किसी दूसरे देवताकी उपासना नहीं

करता, इस लिये तुमने यह सब हमसे कहा है, अब हम आपके चरणोंमें सिरसे प्रणाम करते हैं, और बार बार यही वरदान मांगते हैं कि आप हमारे इन सब अपराधोंकी क्षमा कीजिये, हम इतना सत्य से नहीं डरते, जितना झूठसे विशेषकर हम पण्डित ब्राह्मणोंसे अधिक करते हैं, मैं अपना जीव देनेमें भी कुछ विचार नहीं करता, तुमने जो हमसे अर्जुनकी बात कही, सो उसके लिये कुछ आप अपने मनमें दुःख न कीजिये, मैं अर्जुनको युद्धमें जीत लूँगा। हे देव। तुम हमारे अशस्त्र बलको जानते हो।

हमने परशुराम और महात्मा द्रोणाचार्य जीसे अशस्त्र विद्या सीखी है, हे देव-श्रेष्ठ! आप हमारे इस व्रतको जानतेही हैं, इस लिये यदि इन्द्र हमारा शरीरभी मांगेंगे तो हम दे देंगे।

सूर्य बोले, हे तात। यदि तुम इन्द्रकी अपने सुन्दर कुण्डल दो, तो उनसे अपने विजयके

लिये वरदान मांग लेना, तुम उनसे कहना कि हे इन्द्र। तुम हमसे नियम कर लो तो हम कुण्डल दें हे कर्ण! तुम इन कुण्डलोंके सहित सब प्राणियोंसे अवध्य हो, परन्तु दानवनाशन इन्द्र तुमसे कहेंगे कि, अर्जुन तुमको मारेंगे, ऐसा कहकर वे तुमसे कुण्डल ले लेंगे, तब तुम बार बार अच्छी बातें कहकर, प्रसन्न करना, इस प्रकार तुम देवराज इन्द्रकी आराधना करना तब तू, म्हारा कल्याण होगा, जब इन्द्र प्रसन्न हों, तब उनसे कहना कि आप हमको शत्रुओंके नाश करनेवाली अमोघशक्ति दीजिये, हे सहस्राक्ष। तब हम आपको अपने उत्तम कुण्डल और कवच देंगे, हे कर्ण। जब इन्द्र इस विषमकी मान लें तब तुम अपने कवच और कुण्डल देना, हे कर्ण। उस शक्तिसे युद्धमें तुम अपने शत्रुओंका नाश करोगे, हे महाबाहो! वह, इन्द्रकी शक्ति सैकड़ों सहस्रों शत्रुओंको मारे विना पुनः हाथमें नहीं आती है।

श्रीवैशम्पायन सुनि बोले, सूर्य कर्णसे ऐसा कहकर वहीं अन्तर्धान हो गये, तब कर्णने सन्ध्या करनेके पश्चात् अपने देखे हुए, स्वप्नकी और रातकी बातोंकी सूर्यसे कह दिया, इस सब समाचारको सुनकर राजाके जीतनेवाले भगवान् सूर्यने हंसकर कहा कि यह सब सत्य है, शत्रुनाशन राधापुत्र कर्ण इस सबकी सत्य जानकर शक्तिकी इच्छा कर इन्द्रका मार्ग देखने लगे।

३०१ अध्याय समाप्त ।

राजा जनमेजय बोले, हे तपोधन! वह कौनसी गुप्त बात थी जो सूर्यने कर्णसे नहीं कही? कर्णके कवच और कुण्डल कैसे थे, और कहासे उत्पन्न हुए थे; हम सब कथाको सुनना चाहते हैं, आप कहिये।

श्रीवैशम्पायन सुनि बोले, हे राजन् जनमेजय

हम आपसे सूर्यकी गुप्त बात तथा कर्णके कवच और कुण्डलोंका वर्णन करते हैं, हे राजन् ! पहिले समयमें राजा कुन्तिभोजके पास एक ब्राह्मण गया, वह महा तेजस्वी सुन्दर लम्बा जटामूक और दण्डको धारण किये, सुन्दर नवीन शरीरवाला तेजसे प्रकाशित होता हुआ, आगौर वर्ण और मीठे वचनवाला वेद-पाठी था, वह महा तपस्वी ब्राह्मण राजा कुन्तिभोजसे कहने लगा, हे कलरहित ! यदि तुम्हारी इच्छा हो तो हम तुमसे एक भिक्षा-मांगें, तुम अपने दासोंके सहित हमारे वचनोंको स्वीकार करो, हे पापरहित ! यदि तुम हमारे वचनोंको स्वीकार करो तो हम तुम्हारे घरमें रहें, हम अपनी इच्छानुसार बाहर जायेंगे और इच्छानुसार आवेंगे हे राजन् ! मेरी शय्या और आसनपर कोई बैठने न पावै, तब राजा कुन्तिभोजने प्रसन्न होकर ब्राह्मणसे कहा आप जैसा कहते हैं वैसाही होगा, मेरी प्रथा नामक यशस्विनी कन्या है, वह बड़ी शीलवती धर्मचारिणी सती और साध्वी है, वह आपकी पूजा और सत्कार करेगी, आप उसके शीलकी देखकर प्रसन्न हजियेगा, ऐसा कहकर राजाने उस ब्राह्मणकी पूजा करी, तब विशालनैनी कुन्तिको बुलाकर कहने लगे, हे पुत्री ! यह महाभाग ब्राह्मण हमारे घरमें रहनेकी इच्छा करते हैं मैंनेभी इनकी यहां रखनेकी प्रतिज्ञा किया है, हे पुत्री तुम इस ब्राह्मणकी सेवा करो, तुम हमारे वचनकी सदाही सत्य करना, यह तपस्वी ब्राह्मण जो तुमसे मांगे सो देना कभी कल मत करना, ब्राह्मणही परम तेज है ब्राह्मणही परम तप है ब्राह्मणोंके ममस्कार करनेहीसे आकाशमें सूर्य तपता है, वातापी नामक दानवने ब्राह्मणका सम्मान नहीं किया था इसीसे उसका नाश होगया और तालजड़का भी इसीसे नाश

हुआ है हे पुत्री ! हम इस महा भार तुम्हारे सिर दिते हैं; तुम सावधान होकर ब्राह्मणकी सदा सेवा करना हे नन्दिनी ! तुम्हारे स्वभावकी बालकपनसे जानते हैं ब्राह्मण गुरु और बन्धुओंकी समानही जानते हैं तथा सेवक सख्त्स्नी और मित्रमें भी सदा तुम्हारी समान प्रीति है, तुम मुझे अपनी माताको जैसा मानती हो वैसाही सब मानना होगा, रनवासमें और नगरमें तुम असत्पुष्ट कोई नहीं है, हे सुन्दरी ! तुम्हारे सेवकोंमें भी समान प्रीति है, मैं तुमको आदेकर कहता हूं कि, हे बाले हे पृथे ! तुम उत्तम वंशमें उत्पन्न हुई हो, और वीरपुत्री मैं तुमसे वज्रत प्रेम भी करता हूं तुम्हारे पिताने प्रसन्न होकर तुम्हें मुझे दी है ! तुम वसुदेवकी बहिन हो, और मेरी सब पुत्रियोंमें श्रेष्ठ हो, मैंने तुम्हारे पितृसे पहिले ऐसीही प्रतिज्ञा की थी, इससे तुम मेरी पुत्री हो, तुम उत्तम कुलमें उत्पन्न और पाली हुई हो, निरन्तर सुखहीमें रही हो, हे सुन्दरी ! प्रायः स्त्रीलीन बाला भावसे दुष्ट कर बैठते हैं, परन्तु वे दुष्ट कुलमें उत्पन्न हैं और बन्धन रहित होते हैं, हे पृथे ! तुम राजकुलमें उत्पन्न हुई हो और रूपमें तुम्हारा अद्भुत है, इससे तुम्हारे समागम और कोई स्त्री चतुर नहीं है, इसलिये तुम अभिमान नहीं करो और कलकी छोड़कर वरदा देनेवाले ब्राह्मणकी सेवा करो, हे कल्याणी ! ऐसा करनेसे निश्चय तुम्हारा कल्याण होगा, यदि ब्राह्मण क्रुद्ध होगा तो वह तेरे सब वंशकी भस्म कर देगा ।

३०२ अध्याय समाप्त ।

कुन्ती बोली हे राजन् ! मैं सावधान होकर ब्राह्मणकी सेवा करूंगी आपकी प्रतिज्ञाकी कभी भूठी नहीं करूंगी, हे राजेन्द्र ! मैं

कहती हूँ कि ब्राह्मणोंकी पूजा करना मेरा स्वभावही है तिसमें भी आपका प्रिय कार्य करनेसेही मेरा कल्याण होगा। चाहे ओ ब्राह्मण दिनमें आवे चाहे रात्रिमें आवे चाहे सध्यग्रामें आवे अथवा ओ आधो रात्रिहीकी क्यों न आवें परन्तु मैं ऐसी सेवा करूंगी कि उन्हें कभी क्रोध न होगा, हे राजेन्द्र ! मुझकी ब्राह्मणकी सेवा करनेसे बहुत लाभ होगा, हे नरोत्तम ! आपकी आज्ञामें रहनेसे मेरा बहुत हित होगा। हे राजेन्द्र ! आप सावधान रहजिये, मैं बिना अपराधके ब्राह्मणकी सेवा करूंगी, मैं सत्य कहती हूँ कि हमारे घरमें रहनेसे ब्राह्मणकी कुछ दुःख नहीं होगा। हे पापरहित ! जिससे ब्राह्मण प्रसन्न हो और जिसमें आपका लाभ हो, मैं वैसाही यत्न करूंगी आप अपने मनके दुःखको दूर कीजिये, हे पृथ्वीनाथ ! महाभाग ब्राह्मण लोग पूजा करनेसे तार सकते हैं और क्रोध करके नाश कर सकते हैं, मैं इन सब बातोंकी विचार कर ब्राह्मण अथ तपस्वीकी सेवा करूंगी, आपकी मेरे कारणसे कुछ दुःख नहीं होगा, हे राजेन्द्र ! दूसरोंके अपराधसे भी ब्राह्मण लोग राजका नाश कर देते हैं, जैसे च्यवन मुनिने सुकन्याके अपराधसे राजा श्यांतीकी शपथ दिया था, मैं परम यत्न करके नियम पूर्वक ब्राह्मणकी सेवा करूंगी, हे नरेन्द्र ! जैसे तुमने कहा यह सब काम वैसाही होगा। कुन्तीके इस प्रकारके वचन सुन, राजाने उसकी अपने हृदयमें लगाया, और उसको सब कार्य समझा दिया।

राजा बोले, हे भर्तृ ! तुम इन सब कार्योंको श्रद्धा रहित होकर करना, हे अनिन्दिते ! इसमें तुम्हारा मेरा और कुलका कल्याण होगा, महा यशस्वी राजा कुन्तिभोजने यह कह कन्या ब्राह्मणकी दे दी, फिर ब्राह्मणभक्त राजाने ब्राह्मणसे कहा, हे ब्राह्मण ! यह मेरी कन्या जन्मसे सुखमें रहो है, और अभी इसकी

अवस्था बहुत कम है, यदि आपका कोई अपराध करे तो क्षमा कीजियेगा, महाभाग ब्राह्मण लोग बूढ़े बालक और तपस्वियोंपर अपराध करनेसे भी क्रोध नहीं किया करते। हे द्विजोत्तम ! ब्राह्मणोंकी चाहिये कि चाहे कोई कैसाही अपराध करे उसपर शान्ति रखे और उत्साह तथा शक्तिके अनुसार पूजा ग्रहण करे, जब ब्राह्मणने कहा बहुत अच्छा, तब राजाने प्रसन्न होकर चन्द्रमाकी किरणोंके समान युक्त घर ब्राह्मणकी दिया, उस स्थानमें शयन करनेका आसन और आहारादिकी सब वस्तु रखी हुई थी, राजपुत्रीने उस आलसयुक्त ब्राह्मणकी बड़े रत्नके साथ सेवा करनी आरम्भ की, कुन्तीने बहुत शुद्ध होकर देवताके समान विधि पूर्वक ब्राह्मणकी सेवा करी।

२०३ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् ! उस व्रत करनेवाली ब्राह्मणकी उस कन्याने शुद्ध मनसे सेवा करके प्रसन्न किया, वह ब्राह्मण कभी यह कहके कि मैं प्रातःकालही आजंगा, सन्ध्याकी कहके रात्रीको आता था, परन्तु सब समयमें खाने वा पीने योग्य भोजन वह कन्या तयार रखती थी, अन्नादिक तथा शय्या और आसन आदिसे सेवा करनेमें उस कन्याको अद्वा प्रतिदिन बढ़ती जाती थी, कम नहीं जाता थी, ब्राह्मणके अप्रिय वचन तथा घुड़की सहकरभी कुन्तीने कभी ब्राह्मणका अनादर न किया, कभी वह ब्राह्मण बिना समयके आता था और कभी समय पर भी नहीं आता था, और बहुत दुर्लभ भोजन मागता था, जो वह मागता था, वह सब बना हुआ, पाता था, कुन्तीने उसकी शिष्यके समान पुत्रके तुल्य अथवा पुत्रवधूके समान सेवा करी, हे राजेन्द्र ! मनकी इच्छाके अनुसार ब्राह्मणका निन्दारहित कुन्तीने प्रसन्न किया, वह ब्राह्मण उत्तम कुन्तीके शील और

व्रतसे प्रसन्न हुआ, और बड़े यत्नसे उसके कलत्राणकी चिन्ता करने लगा, कुन्तीका पिता सन्ध्यासमय प्रातःकाल वृक्षता था कि हे पुत्री ! तुम्हारी सेवासे ब्राह्मण प्रसन्न है या नहीं ? यशोवती कुन्ती अपने पिता राजा कुन्तिभोजसे यही कह देती थी कि ब्राह्मण बहुत प्रसन्न है, तब राजा कुन्तीभोजभी बहुत प्रसन्न होते थे, इस प्रकारसे जब एक वर्ष पूरा होगया, और उस ब्राह्मणने कुन्तीका कोई दोष न देखा तब कुन्तीके कलत्राण चाहनेवाले ब्राह्मणने कहा, हे कलत्राणी ! मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ, जो तुम्हारी इच्छा ही सो वर मागो वह बहुत कठिनभी होगा, तौ भी मैं दूंगा, जिससे तुम्हारा जगतमें यश हो । कुन्ती बोली, हे वेदके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ ! जो तुम और मेरे पिता प्रसन्न हुए, तो मेरे सब कार्य सिद्ध हुए, ब्राह्मण बोला कि हे अक्लुहंसनेवाली ! जो तुम मुझसे वर नहीं मागती हो तो देवतोंके बुलानेके वास्ते यह मन्त्र देता हूँ, इसे ग्रहण करो इस मन्त्रसे तुम जिस जिस देवताको बुलाओगी वही तुम्हारे वशमें ही जायगा, कामना सहित या कामना रहित जिस देवताको बुलाओगी वही इस मन्त्रके प्रतापसे तुम्हारा सेवक हो जायगा ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, ब्राह्मणके शापके भयसे दूसरी बार कुन्ती उनके वचनका उत्तर न दे सकी, तब उस ब्राह्मणने उत्तम अङ्गवाली कुन्तीको अथर्ववेदमें लिखा हुआ मन्त्र उपदेश किया, कुन्तीको मन्त्र उपदेश करके राजा कुन्तिभोजसे ब्राह्मणने कहा मैं तुम्हारी कन्याकी सेवासे बहुत सुखी रहूँ, तुम्हारे घरमें सुखी रहूँ, इसी कारणसे तुम्हारे घरमें कलत्राण होगा, ऐसा कहकर वह ब्राह्मण वही अन्तर्धान होगया । राजा कुन्तीभोज उसकी अन्तर्धान हुआ देखके बहुत आश्चर्य करने लगे, और कुन्तीकी पूजा करी ।

२०४ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, जब वह ब्राह्मण चला गया, तब कुन्तीने उस मन्त्रके दिव्य हुए बलाबलका विचार किया, उस महात्माने मुझे यह मन्त्र कैसा दिया है, इसके बलकी शीघ्रही विचारना चाहिये, इस प्रकारसे जब कुन्ती चिन्ता कर रही थी, उसी समय उसकी अचानक रजस्वलापन जात पड़ा, उसे देखके कुन्ती बहुत लज्जित हुई, तब महलपर उत्तम शय्याके ऊपर बैठी हुई कुन्तीने पूर्व दिशामें निकलते हुए, सूर्यको देखा, कुन्तीने मन और दृष्टि सूर्यमण्डलमें लगा दी सूर्यके रूपसे कुन्तीको कुशभी लेश न हुआ, कुन्तीकी दृष्टि दिव्य होगई तब उसने कुण्डल और कवचके सहित सूर्यदेवकी प्रत्यक्ष रूपसे देखा, उसका पहिले हीसे उस मन्त्रके बलकी देखनेका विचार था, तब उसने सूर्यकाही आह्वान किया, कुन्तीने प्रणाम करके सूर्यके नामकी आहुती दी, तब वज्रत शीघ्रताके साथ सूर्य वहाँ आगये, पिङ्गल वर्ण कबूतरके समान कण्ठवाले महाबाहु आभूषण पहिने अपने तेजसे दिशाओंका प्रकाश करते हुए, योगसे अपने दो स्वरूप बनाके सूर्यदेव कुन्तीके पास आये, और कुन्तीसे शान्तिपूर्वक ऐसे वचन बोले ।

सूर्य बोले, हे रानी ! मैं मन्त्रके प्रतापसे तुम्हारे वशमें होगया हूँ, कहो मैं तुम्हारा क्या काम करूँ, कुन्ती बोली, हे भगवान ! आप जहांसे आए हैं आप वहींको चले जाइये मैंने क्रीड़ा खेलसे तुमको बुला लिया था ।

सूर्य बोले, हे सुन्दर अङ्गवाली ! वैसा तुम कहती हो, मैं वैसेही चला जाऊँगा, किन्तु देवताको बुलाके द्रव्य भोजना अङ्ग नहीं, हे कल्याणि सूर्यके वीर्यसे कवच कुण्डल धारण किये, अनुपम तुम्हारे पुत्र हो, हे हाथीके समान चालवाली । तुम मुझ

यह वरदान दो कि तुम्हारी इच्छाके अनुसार पुत्र उत्पन्न हो। हे कल्याणी। मैं फिर चला जाऊंगा, यदि तुम मेरे वचनकी न करोगी तो मैं ब्राह्मणकी तुम्हारे पिताको पाप दूंगा, और तुम्हारे वास्ते उन सबको भस्म कर दूंगा। तेरे मूर्ख पिता कीभी भस्म कर दूंगा, मैं तेरे अन्यायको नहीं जानता था, तेरे स्वभावकी बिना जाने मैं यहां आगया, इंद्रादिक देवता सब मुझे लज्जित करेंगे, मुझे ठगा हुआ मुझे देखेंगे। हे भामिनी! मैं इंद्रादिक देवतोंको अन्तरीक्षमें देखो, मैं दिव्यदृष्टि तमकी प्रथम दी थी जिससे तुमने मुझे देखा था।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तब कुन्तीने विमानोंमें बैठे हुए, सूर्यके समान प्रकाशयुक्त देवतोंको देखा उनकी देखके कुन्ती लज्जित हुई और सूर्यसे ऐसे वचन बोली, हे गोपते। आप अपने विमानमें चले जाइये मैंने बालकभावसे आपका यह अपराध किया है माता पिता तथा और बड़े लोग इस शरीरको दान करनेमें समर्थ होते हैं मैं धर्मको नाश नहीं कर सकती हूं, स्त्रियोंका परम धर्म अपनी देहको रक्षा करना है, हे सूर्य! मैंने मन्त्रका वल जाननेके लिये आपको बुलाया था, सोभी बालक भावसे आप मुझे बालिका जान कर चमा कोजिये।

सूर्य बोले, कि जा मैं बालिका समझके तुम्हारे अपराधको चमा कर द तो और लोगभी ऐसाही अपराध करेंगे, तुम आपका मुझे दान करो इससे तुमको शान्त प्राप्त होगा, मुझका वृथा जाना उचित नहीं है, मैं अपने लाकमें जाके सब देवतासे हंसने पायूँगा, इस लिये तुम मुझसे सङ्गम करा, ऐसा करनेसे तुम्हारे मेरेही समान पुत्र उत्पन्न होगा और सब लाकमें तुम्हारी कीर्ति होगी।

३०५ अध्याय समाप्त।

वैशम्पायन मुनि बोले, कि वह कन्या अनेक भातिके भीठे वचन कह करके भी सूर्यको निवारण न कर सकी, जब अन्धकारको निवारण करनेवाली सूर्यको निवारण न कर सकी तब सूर्यके शापसे डरी कुन्तीने विचारा कि ये बिना अपराध किये मेरे पिताको तथा दुर्बसा ब्राह्मणको क्रोध करके शाप देंगे, बालकपनमेंभी जो मोहसे पाप किया जाता है, वहभी यशस्वियोंके द्वारा फलको देता है, मैं अब भयसे व्याकुल हुई सूर्यको किस प्रकारसे आत्मदान करूं।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन्। वह कन्या भयसे व्याकुल मोहसे भरी लज्जित होके बारम्बार विचारनं लगी, हे पृथ्वीपाल! कुन्ती सूर्यके भयसे व्याकुल स्त्रियोंसे लाज्जित शापसे डरकर सूर्यसे ऐसा वचन बोली।

कुन्ती बोली, हे देव! मेरे पिता माता और वन्धु बान्धव लोग जीते हैं, उनके जीते हुए मैं धर्मको नाश नहीं कर सकती, यदि वेद विधिका छोड़कर मैं तुमसे सङ्गम करूँ तो मेरे पिताकी कीर्ति नाश हो जायगी, और जो तुम सबको धर्म मानते हैं तो बिना बन्धवोंके दिये मैं तुमसे सङ्गम नहीं करूँगी, हे देव। आत्मदान बल्लत कठिन है, मैं सती हूँ किस प्रकारसे आत्म दान करूँ, प्राणियोंका यश और आयु तुमसेही स्थिर है।

सूर्य बोले, हे मन्द हंसनेवाली। तुम्हारे माता पिता और गुरु लोग तुम्हारे स्वामी रहेंगे, कन्या सब कामोंमें स्वतन्त्र रहती है, इसीसे वह कन्या कहलाती है, हे उत्तम वर्णवाली। जो तुम काम करागी वह अधर्म नष्ट होगा, जिसे मैं कहता हूँ वह अधर्म क्योंकर हो सकता है? हे उत्तमवर्णवाली। स्त्री और पुरुष बन्धन रहित है, इच्छाको रोकनाही विकार कहाता है, इस

वास्ते तम सुभसे सङ्गम करके फिर कन्या हो जाओगी, तुम्हारा पुत्र बड़ा बलवान और कीर्तिवान होगा ।

कुन्ती बोली, हे अन्धकारके दूर करनेवाले ! यदि तुमसे कुण्डल कवच धारण किये पुत्र हो तो मैं प्रसन्न हूँ,

सूर्य्य बोले, हे कन्याणी ! तुम्हारा पुत्र बड़ा बलवान और कुण्डल कवच धारण किये होगा ।

कुन्ती बोली, यदि मेरा पुत्र गर्भसे कुण्डल कवच पहिने ही तो जैसा आप कहते हैं, वैसेही मेरे साथ सङ्गम कीजिये, परन्तु मेरा पुत्र रूप तेजमें आपके समान तथा धर्मात्मा हो ।

सूर्य्य बोले, अदितीने मुझे प्रकाश युक्त कुण्डल दिये थे, वे मैं तुम्हारे पुत्रको दंगा, और यह उत्तम कवच भी दंगा ।

कुन्ती बोली, हे भगवन् ! यदि आपके कहनेके अनुसार मेरे पुत्र हो, तो मैं तुमसे सङ्गम करूँ ।

वैशम्पायन मुनि बोले, ऐसा कहके राहुके शत्रु आकाशचारी सूर्य्य कुन्तीके पास गये, और उसकी नाभीको स्पर्श किया, तब वह कन्या सूर्य्यके तेजसे विकल होगई और मूर्च्छित होकर शय्यापर गिर पड़ी ।

सूर्य्य बोले, हे सुन्दरी ! हम तुमको प्रसन्न करेंगे, तुम्हारे गर्भमें सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ पुत्र होगा, और तुम फिर कन्या होजाओगी ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजेन्द्र ! जब कुन्तीने देखा कि महातेजस्वी सूर्य्य सुभसे सङ्गम करनेको उपस्थित है, तब लज्जासे उनके वचनको स्वीकार किया, फिर लज्जासे व्याकुल होकर टूटी हुई, लताके समान मूर्च्छित होकर शय्यापर गिर गई तब सूर्य्यने अपने तेजसे उसको पूरित कर दिया, और अपनी आत्माको उसके शरीरमें प्रवेश किया, परन्तु

उसका कन्या भाव नष्ट नहीं किया, तब कुन्तीको फिर संज्ञा प्राप्त हुई ।

३०६ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् ! जनमेजय ! उसी दिन कुन्तीको गर्भ रह गया, तब वह गर्भ शुक्लपक्षके चन्द्रमा समान बढ़ने लगा, कुन्ती अपने वान्धवोंके भयसे गर्भको छिपा लगी, इससे किसीने नहीं जाना कि सुन्दरी कुन्तीको गर्भ है, धात्रीके सिवाय और कौन स्त्री उसके गर्भको नहीं जान सकी

वह अपने घरमें रहकर गर्भकी रक्षा करती रही, अनन्तर उत्तम वर्णवाली कुन्तीने गर्भसे देवताके समान पुत्र उत्पन्न हुआ और कुन्ती सूर्य्यकी कृपासे फिर कन्या होगई वह बालक कवच और सोनेके समान प्रकाशमान सुन्दर कुण्डल धारण किये उत्पन्न हुआ उसके नेत्र सिंहके समान और कर्ण बैलके कर्णके समान ज च थे, उस बालकके उत्पन्न होतेही कुन्तीने अपनी धात्रीके सङ्ग सम्मति करके उस लड़केको एक मोमसे लिपी हुई सुन्दर विसृष्ट कोमल सोनेके योग्य कण्डीमें लिटाकर नदीमें बहा दिया, कुन्ती जानती थी कि कन्या गर्भको धारण नहीं कर सकती है, तौ भी पुत्रके प्रेम्से रोने लगी पुत्रको नदीमें बहाते समय कुन्तीने रोकर जो कुछ वचन कहे सो सुनिये, हे पुत्र ! आकाश पृथ्वी स्वर्ग और जलमें रहने वाले प्राणी तुम्हारी रक्षा करें, तुम्हारा मार्ग कलप्राण ही तुम्हें कोई शत्रु दुःख न दे, हे पुत्र ! जो तुम्हारा शत्रु तुम्हारे समीप आवे, वं भो तुम्हारा मित्र हो जाय, जलमें बलवान् स्वामी वरुण और आकाश गामी पवन तुम्हारी रक्षा करें, जिन्होंने दिव्य विधिसे तुमको मुक्त दिया था, वह सब तेजधारियोंमें श्रेष्ठ तुम्हारे पिता सूर्य्य तुम्हारी रक्षा करें, वसु, रुद्र, वायु, विश्वदेव, मरुत, इन्द्र, दिशा, और दिग्पति

आदि सब देवता सुख और दुःखसे तुम्हारी रक्षा करें; मैं जब तुम्हें विदेशमें भी देखूंगी, तब इसही कवचसे पहिचान लूंगी, है पुत्र ! तुम्हारे पिता सूर्यको धन्य है जो अपनी दिव्य दृष्टिसे, तुम्हें नदीमें बहता हुआ देखेगी, है देव पुत्र ! उस स्त्रीको धन्य है जो तुमको अपना पुत्र बनावेगी और ध्यासमें जिसका तुम दूध पीयोगे, उस स्त्रीने कौन स्वप्न देखा होगा, जो सूर्यके समान तेजस्वी दिव्य कवच कुण्डलधारी पद्मके समान लाल वर्णवाली, सुन्दर केशवाली तुमको अपना पुत्र बनावेगी ? उन स्त्रियोंको धन्य है जो तुमको पृथ्वीमें चलते हुए, तीतली-बानी बोलते हुए और धूलमें लिपटे हुए देखेंगी है पुत्र ! उन पुरुषोंको धन्य है जो तुमको जीवन अवस्थामें हिमाचलके वनमें उत्पन्न हुए सिंहके समान बलवान देखेंगे इस प्रकारसे वृद्धत राकर कुन्तीने उस बालकको अश्व नदीके जलमें बहा दिया, फिर कमलनयनी कुन्ती उसही आधीरातके समय पुत्रके शोकसे व्याकुल होती हुई, अपनी धात्रीके सङ्ग पिता पुत्रके भयसे नगरको चली आई और शोकसे व्याकुल होकर राजभवनमें चली गई। वह कण्ठी अश्व नदीमें बहती बहती नरमरावतीमें पड़ची, वहाँसे जमुनामें और जमुनासे गङ्गामें बहतो सूतको राजधानी चम्पापुरीमें पड़ची, वह बालक गङ्गाकी तरंगोंसे कभी ऊँचा और कभी नोचा हो जाता था। इस अमृतसे उत्पन्न हुए कवच और कुण्डलकी धारण किये, वह बालक प्रारब्धमें जोता हुआ चम्पापुरीमें पड़चा।

३०७ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, है राजन् जनमेजय ! उसही समय राजा धृतराष्ट्रका मित्र अधिरथ नामक सूत अपनी स्त्रीके सहित गङ्गास्नान करने गया था अधिरथकी सुन्दरी

स्त्रीका नाम राधा था, उसके समान सुन्दरी पृथ्वीमें कोई नहीं थी परन्तु उसके पुत्र नहीं था, वह सदा पुत्रके लिये अनेक यत्न किया करती थी, उसने नदीमें बहती हुई कड़ीकी देखा, इतनेहीमें वह घाससे ढकी हुई हाथसे पकड़ने योग्य सुन्दर कण्ठी गङ्गाकी तरङ्गोंसे बहतो हुई राधाके पास आ गई, तब सुन्दरी राधाने उसे खेल जानकर पकड़ लिया, फिर अपने पति अधिरथसे कह दिया, अधिरथने अनेक यत्नोंसे उसके पासके जलकी छटाकर उसे निकाल लिया, और उससे दो पहरके सूर्यके समान तेजस्वी कवच और कुण्डलधारी सुन्दर मुखवाली एक बालकको देखा, तब अधिरथ अपनी स्त्रीके सहित वृद्धत आश्रय करने लगा, और उस बालकको गोदमें लेकर अपनी स्त्रीसे बोला, है सुन्दरी ! यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि यह देवपुत्र हमका प्राप्त हुआ, इसमें कुछ सन्देह नहीं कि देवतोंने मुझे पुत्र-राहित्य जानकर यह पुत्र दिया है, ऐसा कहकर उस पुत्रकी अपनी स्त्रीको दे दिया, राधाने उस दिव्यरूपी कमलके समान सुन्दर लक्ष्मीवान देवपुत्रका ग्रहण किया, और विधिपूर्वक पालने लगे, बलवान कार्यभार बड़े होने लगे। इसके पश्चात् राधाके गर्भसे अनेक पुत्र उत्पन्न हुए, ब्राह्मणान् कार्यको सीनका कवच और कुण्डल धारण किये हुए देखकर वसुषेण नाम रक्खा और फिर अधिरथके वृष पुत्र हुए, कुन्तीनभी दूतोंके सुखसे सुना कि वह दिव्य कवचधारी बलवान बालक सूतके घरमें पलता है। अधिरथ सूतने जब देखा कि मेरा पुत्र बड़ा होगया, तब उसे पढ़नेके लिये हस्तिनापुर भेज दिया, कार्य बड़ा आकर द्रोणाचार्यके यहां रहने लगे, और उनसे धनुर्वेद पढ़ने लगे। कुछ दिनोंके पश्चात् महा बलवान कार्य और दुर्योधनसे मित्रता हा गई, कार्यने द्रोणाचार्य कृपा-चार्य और परशुरामसे चार प्रकारको वाण

विद्या सीखी, अनन्तर लोकमें महा धनुषधारियोंमें गिने जाने लगे, फिर इन्होंने दुर्योधनसे मित्रता करके पाण्डवोंसे शत्रुता कर ली, वे सदा महात्मा अर्जुनसे युद्ध करनेकी इच्छा रखते थे, और अर्जुनका डाह किया करते थे, हे पृथ्वीनाथ ! इसही प्रकार अर्जुनभी इनसे सदा युद्ध करनेकी उपस्थित रहते थे, क्योंकि उन्होंने उनका बल देख लिया था । हे महाराज ! यही गुप्त बात थी जो कर्णसे सूर्यने कही थी । इस प्रकार कर्ण कुन्ती के गर्भमें सूर्यके वीर्यसे उत्पन्न हुए थे कर्णको दिव्य कवच कुण्डल धारण किये हुए देखकर राजा युधिष्ठिर सदा दुःखित होते थे, वे जानते थे कि कर्णको युद्धमें कोई नहीं मार सकता है, हे राजेन्द्र ! जिस समय दिनके मध्यमें कर्ण स्नान करनेके पश्चात् हाथ जोड़कर सूर्यको प्रणाम करते थे, उसही समय धन मागनेके लिये अनेक ब्राह्मण उनके समीप आते थे, जगतमें कोई ऐसी वस्तु नहीं थी जो उस समय कर्ण ब्राह्मणोंकी न दें, एक दिन इन्द्र ब्राह्मणका वेष बनाकर कर्णके पार भिक्षा मागनेको आये, कर्णने उनका वज्रत सत्कार किया ।

३०८ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजा जनमेजय ! उस कपटवेधी ब्राह्मणकी आया देखकर कर्णने उसका आदर किया, पर उसके मनकी न समझा । अधिरथपुत्र कर्णने ब्राह्मणसे कहा कि मैं तुमको क्या दूँ ? सुवर्णके अलङ्कार कण्ठमें भूषण पहिरे स्त्री, गांव अथवा बज्रतसी गौ ?

ब्राह्मण बोला, मैं सीनेके आभूषणवाली अथवा प्रीतिको बढ़ानेवाली और वस्तुओंकी लेना नहीं चाहता हूँ, यह किसी भिखारोको देना । यह जा तुम्हारे सङ्ग उत्पन्न हुआ, कवच और कुण्डल है, उनको अपने शरीरसे उतार

कर मुझे दो, हे पापरहित ! यही मैं मांगता हूँ । हे शत्रुनाशन ! यही मेरा सब लाभ उत्तम लाभ है, यही आप मुझे दीजिये ।

कर्ण बोले, हे ब्राह्मण ! मैं तुमकी पृथ्वी, और अनेक वर्षोंका भोजन दे सक्ता हूँ, किन्तु कवच और कुण्डल नहीं दगा ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजा ! इस प्रकारसे उस ब्राह्मणसे कर्णने अनेक वाक्य कहे पर उसने कोई दूसरा वर न मांगा । कर्णने अपनी शक्तिके अनुसार उस ब्राह्मणको शान्त किया और उनकी पूजा करी परन्तु वह ब्राह्मणने कोई दूसरा वर न मांगा । वह हंसकर राधापुत्र कर्णने ब्राह्मणसे कहा हे ब्राह्मण ! यह कवच और कुण्डल मातृ गर्भसे ही मेरे सङ्ग उत्पन्न हुआ है, इससे मैं शत्रुओंसे मारनेके अयोग्य हूँ, इसही कारणसे इसे नहीं उतार सकता हूँ । हे ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ ! तुम मुझसे वज्रतसा निष्ठ रहकर, कुशकतासे पूर्ण पृथ्वीका राज्य हो । हे ब्राह्मणसे श्रेष्ठ ! जब मैं अपने सङ्गमें उत्पन्न हुए कुण्डल और कवचसे हीन हो जाऊँ तब शत्रु लोग मुझे मार डालेंगे ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजा ! भगवान् इन्द्रन दूसरा वर न मागा, तब कर्ण फिर हंसके ऐसे वचन कहे । हे देवता स्वामी ? मैं आपका पहिलेही जान गया था । परन्तु यह उचित नहीं है कि मैं आपको वर दूँ । आप साक्षात् देवपति इन्द्र हैं, आपको चाहिये कि मुझे वर दें, आप सब प्राणियों के स्वामी हैं । हे देव ! यदि मैं आपको कुण्डल और कवच दे दूँ तो मैं शत्रुओंसे मारनेयोग्य होजाऊंगा, और आपकी जगतमें हंसी हूँगी । हे इन्द्र ! इस कारणसे आप एक प्रण करके मुझसे कवच और कुण्डल लीजिये ।

इन्द्र बोले, जब मैं तुम्हारे पासकी आता था तबही सूर्यने मुझे जान लिया था, इसी

तुमको मेरा हाल मालुम होगया । हे कर्ण !
जैसा तुम कहते, हो वैसाही ही, मेरे बज्रको
कोड़के जो तुम्हारी इच्छा हो सो वर मांगो ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तब कर्णने प्रसन्न
चित्त होके इन्द्रसे कहा, और शत्रुओंको नाश
करनेवाली तथा युद्धमें निवारण होनेके अयोग्य
शक्ति मांगी ।

कर्ण बोले, हे इन्द्र । कुण्डल और कवचके
बदलेमें सेनाके मध्यमें शत्रुओंको नाश करने-
वाली अव्यर्थ शक्ति दीजिये । इन्द्र थोड़े समय
तक विचार करके कर्णसे बोले, हे कर्ण ! तुम
मुझे कुण्डल और कवच देकर मुझसे शक्ति
ग्रहण करो, यही हमारा तुमसे प्रण है । यह
शक्ति मेरे हाथसे कूटकर सैकड़ों दैत्योंको नाश
करके फिर मेरे हाथमें चली आती है । हे
सुतपुत्र ! वही अमोघशक्ति तुम्हारे हाथसे
कूटकर एक शत्रुको मारकर फिर मेरे पास
चली आवेगी ।

कर्ण बोले, मैं युद्धमें गर्जते और दौड़ते
एकही शत्रुको मारना चाहता हूँ, एकही
शत्रुसे मुझे भय है ।

इन्द्र बोले, हे कर्ण ! बलवान युद्धमें गर्जते
हुए जिस एक शत्रुको मारना चाहते हो,
उसको महात्मा कृष्ण रक्षा करते हैं । वेदके
जाननेवाले पण्डित लोग जिसे जीतनेके अयोग्य
बराह और नारायण कहते हैं, वही कृष्ण
तुम्हारे शत्रुकी रक्षा करते हैं ।

कर्ण बोले, हे भगवन् ! जैसा आप कहते
हैं, वैसाही ही, एक प्रतापी बोरकी मारनेके
वास्ते आप अमोघ शक्ति दीजिये । इन्द्र बोले, हे
कर्ण ! तुमको कभी युद्धमें भय न होगा, और
न तुम्हारे शरीरमें कभी घाव होगा क्योंकि
तुम भठको इच्छा नहीं करते हो । हे कर्ण !
जैसा तुम्हारे पिताका वर्ण और तेज है, वैसाही
ध्वसे तुम्हाराभी तेज और वर्ण होगा ।
तुम्हारे पास और शस्त्र हों यदि उस

समय तुम इस अमोघ शक्तिको सावधानतासे
रक्षित होकर चलाओगे तो यह शक्ति तुम्हा-
रेही आकर लगेगी ।

कर्ण बोले, हे इन्द्र ! जब मुझे अपने
प्राणोका सङ्कट जान पड़ेगा तब मैं इस इन्द्रकी
शक्तिको चलाऊंगा, जैसा आपने कहा है,
वैसाही करूंगा ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महीपाल ! तब
कर्णने जलती हुई, शक्तिको लेकर तीक्ष्ण
शस्त्रोंसे अपने सब अङ्गोंको काट डाला, अपने
अङ्गोंको काटते समय कर्णके मुखपर
कुछभी विकार न आया, इस प्रकारसे
कर्णको अपने अङ्गोंको काटते हुए, देखके
देवता दानव और मनुष्योंने भयानक शब्द
किया, उस समय आकाशमें दुन्दभी वजने
लगी, और फूलोंकी वर्षा होने लगी, कर्णको
अपने अङ्ग काटकर हंसते हुए देखकर देवतोंने
फूलोंकी वर्षा की ! कर्णने अपने अङ्गोंसे निकाल-
कर गोलाही कवच इन्द्रको दे दिया, ऐसेही
कानोंको काटकर कुण्डलभी दे दिये, इसही
कर्मसे सुतपुत्रका नाम कर्ण हुआ था । इन्द्र
कर्णको कलकर तथा लोकमें कर्णको
यशस्वी बनाके और पाण्डवोंके कार्यकी पूरा
हुआ समझके हंसते हुए स्वर्गको चले
गये । धृतराष्ट्रपुत्र कर्णको कला हुआ सुनके
बहुत दीन और मान रहित होगये, वननि-
वासी पाण्डव लोग कर्णकी उस दशाको सुनके
बहुत प्रसन्न हुए ।

राजा जनमेजय बोले, हे भगवन् ! उस
समय पाण्डव लोग कहां रहते थे ? उन्होंने
इस घ्यारी बातकी किससे सुना था ? बारह
वर्षके पश्चात उन्होंने क्या किया ? यह सब
आप मुझसे कहिये ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, द्रौपदीकी प्राप्त
करके और सिन्धुदेशके राजा जयद्रथकी भगा-
कर, काम्यक वनमें मार्कण्डेय ऋषिसे ब्राह्मणोंके

सहित देवता और ऋषियोंके पुराने चरित
सुनते हुए पाण्डव वहीं रहने लगे ।

३०६ अध्याय समाप्त ।

कुण्डलाहरण पर्व समाप्त ।

राजा जनमेजय बोले, हे महामुने ? जब
द्रौपदी हरी गई, तब पाण्डवोंने बहुत क्लेश
उठाया, पश्चात् द्रौपदीको पाकर पाण्डवोंने
क्या किया ?

श्रीवैशम्पायनमुनि बोले, हे राजन् । इस प्रकारसे
द्रौपदीके हरे जानेपर कठिन क्लेशको पाकर
महाराज युधिष्ठिर अपने भाइयोंके सहित
काम्यक बनको त्यागकर मनोहर खादयुक्त फल
मूलसे भरे, अनेक भातिके वृक्षोंसे पूर्ण हैतवनको
चले गये । व्रत करनेवाली थोड़ा भोजन
करनेवाली पाण्डव द्रौपदीके सहित हैत बनमें
रहने लगे । राजा युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन,
नकुल और सहदेवने द्रौपदीके सहित उस बनमें
रहकर ब्राह्मणोंके हितके वास्ते बहुत दुःख
पाया । उन कुरुकुलश्रेष्ठोंने जो उस बनमें
रहकर सुख और दुःख भोगे उनका वर्णन
करता हूँ सुनो । हैत बनमें एक तपस्वी
ब्राह्मणकी अरणी और मथानीसे एक हरिन
आके अपने सिरको रगड़ने लगा ; उस हरिनके
सोंगमें उस ब्राह्मणकी अरणी और मथानी फंस
गई, हे राजन् जनमेजय । उस अरणी और
मथानीको लेके वह बड़े वेगसे चलनेवाला
महामृग ब्राह्मणके आश्रमसे शीघ्रही भाग
गया । हे कुरुसन्तम । वह ब्राह्मण अपनी
अरणी और मथानीको ले जाते देखकर बड़ी
शीघ्रतासे अग्निहोत्रकी देखनेके वास्ते अपने
आश्रम पर गया । उस ब्राह्मणने हैत बनमें
महाराज युधिष्ठिरकी भाइयोंके सहित बैठे
हुए देखा, ब्राह्मणने उनके पास जाकर बड़े
दुःखके साथ यह कहा, हे महाराज । मेरी
अरणी और मथानी एक वृक्षमें लटकी हुई थी,

एक हरिन आके उस वृक्षसे अपने शरीरको
रगड़ने लगा, रगड़ते हुए हरिनके सोंगमें
मेरी अरणी और मथानी उलझ गई । वह
बड़े वेगवाला महामृग शीघ्रताके साथ उन्हे
लेकर चला गया । हे पाण्डव लोगो । उस
हरिनके पैरोंके चिह्नसे उस हरिनको पकड़
कर मेरी अरणी और मथानीको आप ला
ला दीजिये जिससे अग्निहोत्रका नाश न हो ।

३१० अध्याय समाप्त ।

महाराज युधिष्ठिर ब्राह्मणके वचनोंके
सुनके बहुत दुःखी हुए, और धनुष लेके भा
योंके सहित उठे । सब पाण्डव कवच पहनकर
और धनुष धारण करके उस मृगके पैरोंके
चिह्नपर चल दिये, कुछ दूर जाके उन्हें वह
मृग मिल गया । महारथी पाण्डव लोग
कानतक खींचकर वाण मारते थे, तभी समीप
खड़ा हरिन उन वाणोंसे न वेधा गया । उस
यत्न करनेवालोंकी दृष्टिसे वह मृग अटक
होगया, हरिनके गुप्त होनेसे पाण्डवोंकी बड़ा
दुःख हुआ, उस घोर बनमें पाण्डव लोग भूख
और प्याससे व्याकुल होकर एक बड़की ठंठी
छायामें जा बैठे । जब पाण्डव लोग छायामें
जा बैठे, तब दुःखके साथ क्रोध करके नकुल बड़े
भाई युधिष्ठिरसे बोले, हे राजन् । हमारा
कुलमें कभी धर्मका लोप नहीं हुआ, और न
कभी आलस्यसे अर्थका नाश हुआ है, परन्तु
हम किस कारणसे संकटमें ग्रस्त हुए हैं ।

महाराज युधिष्ठिर बोले, आपत्तिके कारण
कोई मर्यादा नहीं होती, आपदाओंका कोई
निमित्त और कारणभी नहीं होता, पुण्य और
पापका विभाग धर्मही करता है ।

भीमसेन बोले, जब प्रतिकामी द्रौपदीको
दासके समान सभामें लाया था, तब मैंने उसकी
नहीं मारा, इसही कारणसे हम लोगोंको यह
कष्ट प्राप्त हुआ है ।

अर्जुन बोले, सूतपुत्र कर्णने बहुत कठोर वचन कहे थे, और मैंने उन्हें क्षमा कर दिया, इसही कारणसे हम लोगोंको यह कष्ट मिला है ।

सहदेव बोले, जब शकुनिने आपकी जुएमें जीता था, तब हमने उसे नहीं मारा इसही कारणसे हम लोगोंको कष्ट मिला है ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, इसके अनन्तर महाराज युधिष्ठिर नकुलसे ऐसा वाक्य बोले, हे माद्रीनन्दन । तुम वृक्षपर चढ़के दशों दिशाओंको देखो, कहीं समीपमें जलके किनारे वाले वृक्ष और पानी है या नहीं, देखो यह तुम्हारे भाई प्यासे हो रहे हैं । नकुलभी बहुत अच्छा कहके शीघ्रताके साथ वृक्षपर चढ़ गये, और चारों ओरको देखके अपने बड़े भाईसे बोले, हे राजन् । मैं जलके तटपर होनेवाले अनेक वृक्षोंको देखता हूँ, सारसोंका शब्दभी सुनाई देता है, वहाँ अवश्यही जल होगा । तब सत्यवादी कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर बोले, हे सौम्य । तुम शीघ्रतासे तरकसमें जल भरकर लाओ । नकुल "बहुत अच्छा" कहके बड़े भाईकी आज्ञासे वहाँको चले जहाँ पानी था और बहुत शांघ वहाँ पड़च गये । नकुलने विमल जलको सारसोंसे घिरा हुआ देखके पीनेकी इच्छा करी, इतनेहीमें नकुलने आकाशवाणी सुनी ।

यक्ष बोला, हे प्यारे । साहस मत करो, मेरे प्रश्नोंका उत्तर देके जल पीना और लेभी जाना । नकुलने यक्षके वाक्यका अनादर करके जल पीया किन्तु जल पीतेही नकुल पृथ्वीमें गिर पड़े । जब नकुलको देर हुई, तब राजा युधिष्ठिरने शत्रुओंको नाश करनेवाले सहदेवसे कहा, हे पापरहित । हमारे भाईको लगे उद्भूत देर हुई इससे तुम जाकर भाईके रहित पानीको ले आओ । सहदेवभी "बहुत अच्छा" कहके उसही ओरको गये और वृक्षके समीप जाके अपने भाई नकुलको

पृथ्वीमें मरा हुआ पड़ा देखा । सहदेव भाईके शोकसे और प्याससे वृद्धतही व्याकुल होकर पानी पीनेकी चले । तब आकाशवाणी हुई, हे प्यारे ! हठ मत करो, पहिले मेरे प्रश्नोंका उत्तर दो फिर जल पीयो और लेभी जाओ । प्यासे सहदेवने उस वचनका अनादर करके ठण्डा जल पीया, और पीकर गिर पड़े । इसके पश्चात् युधिष्ठिरने अर्जुनसे कहा, हे शत्रुओंको दुःख देनेवाले अर्जुन ! तुम्हारे दो भाई जल लेनेकी गये हैं, तुम जाके दोनों भाइयोंकी और जलको ले आओ । हे तात ! हम दुःखियोंका तुमही आश्रय हो । ऐसे वचन सुनके धनुष बाण और नङ्गा खड्ग लेकर अर्जुन उस तलावपर पड़च । वहाँ स्थित घोंड़ेवाले अर्जुनने जो जल लानेकी पहिले दोनों भाइ गये थे, उन दोनों पुरुषसिंहोंको पृथ्वीमें पड़ा हुआ देखा । सोए हुएके समान उन दोनों भाइयोंको देखके अर्जुनकी बड़ा दुःख हुआ तब धनुष चढ़ाके अर्जुन उस सब वनको देखने लगे, अर्जुनने उस वनमें किसी प्राणीको न देखा, तब थककर पानी पीनेकी चले । जब अर्जुन जल पीनेकी चले तब बिना शरीरकी वाणी सुन पड़ी । हे अर्जुन ! क्या तुम पानी पीना चाहते हो ? सो तुम बलसे नहीं पी सकते हो, हे भारत । यदि मेरे प्रश्नोंका उत्तर दोगे तो जल पीयोगे, और लेभी जाओगे । अर्जुनको जल पीनेसे जब रोका, तब अर्जुनने कहा कि प्रत्यक्ष हाँके सुम्मे रोको; मेरे वाणोंसे छिदकर फिर ऐसे न बोलोगे । अर्जुनने ऐसे कहके वाणोंको दिव्य अस्त्रोंसे युक्त करके शब्दवेधो रीतिसे चारों ओर वाणवर्षा करनी आरम्भ की । हे भरतवंशी जनमेजय ! कानों तक खींचकर निवारण होनेके अयोग्य वाणीकी वर्षा करके अर्जुनको वृद्धत प्यास लगी । अर्जुनके वाणोंसे आकाश भर गया ।

यक्ष बोला, हे कुन्तीपुत्र । इस उपायसे

कुछ फल नहीं होगा, मेरे प्रश्नोंका उत्तर देके जल पियो बिना प्रश्नोंका उत्तर दिये, जल पीतेही मर जायेंगे। सव्यसाची अर्जुन इस बातको सुनके उस यक्षकी वशीका अनादर करके जल पीने लगे, और जल पीके मर गये। इसके पश्चात् कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने भीमसेनसे कहा। हे शत्रुओंकी तपानेवाले। नकुल सहदेव और अर्जुन वज्रत देरसे जल लेनेकी गये हैं, परन्तु कोईभी अवतक नहीं आये तुम जाकर सब भाइयोंकी और जलको ले आओ भीमसेनभी “वज्रत अच्छा” कहके वहीं पहुँचे। जहाँ उनके भाई मरे पड़े थे, उनकी देखकर भीमसेन वज्रत दुःखी और व्याससे व्याकुल हो गये। महाबली भीमसेन समझा कि यह कर्म किसी यक्ष वा राक्षसका है, भीमसेनने विचार किया यहाँ पर युद्ध अवश्य करना चाहिये, ऐसा विचार कर भीमसेन जल पीनेकी चले।

यक्ष बोला, हे प्यारे। हठ मत करो; पहिले मेरे प्रश्नोंका उत्तर देके जल पीयो और ले जाओ। भीमसेन यक्षकी बातको सुनके और तेजस्वी यक्षके प्रश्नोंका उत्तर बिनाही दिये जल पीकर पृथ्वीमें गिर पड़े। तब नरश्रेष्ठ कुन्तीनन्दन राजा युधिष्ठिर बारम्बार चिन्ता करके उठे, उस समय युधिष्ठिरका मन जलने लगा। युधिष्ठिरने उस वनमें प्रवेश किया जिसमें किसी मनुष्यका शब्द नहीं सुन पड़ता था, रूख बनेले सुख और अनेक प्रकार पक्षी जिस वनकी सेवा करते थे, जो नीले और धीले वृक्षोंमें शोभायमान था, जिसमें सीरे और पक्षी शब्द कर रहे थे। यशस्वी युधिष्ठिरने उस वनमें जाके कमलोंसे भरे उस तालावकी ऐसा देखा मानो इसे विश्वकर्माहीने बनाया है। वह तलाव कमलिनियोंसे भरा सन्धु भरे उत्तम जातिके कमलोंसे पूर्ण, केतकी, कनेर और पीपलके वृक्षोंसे घिरा हुआ था, थके हुए

राजा युधिष्ठिर उस तलावकी देखकर सुखको प्राप्त हुए।

३११ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजनू जनमेजय ! महाराज युधिष्ठिर गिरे हुए लोकपालोंके समान अथवा प्रलयकालमें इन्द्रके समान अपने भाइयोंकी मरा हुआ देखा अर्जुनकी धनुष बाण फेंके मरा हुआ पड़ा देखके ऐसाही भीमसेन और नकुल तथा सहदेवकी पड़ा हुआ देख जचे मास लेकर शीकर आंसू बहाने लगे। अपने सब भाइयोंकी मरा हुआ देखकर महा बलवान युधिष्ठिर चिन्तासे व्याकुल होके विलाप करने लगे। हे भीमसेन ! हे महाभुज ! तुमने प्रतिज्ञा करी थी कि मैं युद्धमें दुर्योधनकी जङ्घा गदासे तोड़ंगा, हे वीर ! आज तुम्हारे मरनेसे वह प्रतिज्ञा व्यर्थ होगई। हे महाभुज ! हे कसकुलकी कीर्तिके बढानेवाले। तुम्हारी बाणी आज झूठी होगई। हे अर्जुन ! देवतोंकी बाणी झूठ कैसे होगई ! देवता लोगोंने तुम्हारी उत्पत्तिके समयही कहा था कि कृन्तिपुत्र अर्जुन इन्द्रके समान होगा, तुमको सब प्राणी कहते थे कि, न इन्द्र राज्यलक्ष्मीयो अर्जुन फिर लौटावेंगे युद्धमें इसको जीतनेवाला कोई न होगा और जिसका युद्धमें यह न जीस सके ऐसा कोई नहीं होगा, वही अर्जुन मेरी आशायोंके नाश करके पृथ्वीमें कैसे पड़ा है, वही महाबल अर्जुन किस प्रकारसे मृत्युके वशमें होगये कि अर्जुनकी हस लोग अपना नाथ जानते थे वह अर्जुन आज क्योंकर मर गये ? सदा शत्रुके मारनेवाले रणमें मत्त नकुल और सहदेव कि प्रकारसे शत्रुके वशमें होगये। जो अर्जुन और भीमसब अस्त्रोंकी जानने वाले थे उनकी तथा नकुल और सहदेवकी पृथ्वीमें पड़ा देखकरभी जो मरा हृदय नहीं फटता है, इससे मैं जानता हूँ, कि मरा

हृदय लोहेसे भी कठोर है । हे पुरुषोर्मि अष्ट
जोगी । तुम सब देश, काल तथा शास्त्रके
जाननेवाले, तप करनेवाले और क्रियायुक्त
होकरभी अपने योग्य बिना कर्म कियेहो क्यों
सोते हो ? हे जीतनेके अयोग्य भाइयो ।
बिना घाव खाये, बिना धनुष बाणको चलाए
वेतनारहित होके पृथ्वीमें क्यों पड़े हो । बुद्धि-
मान राजा युधिष्ठिर पर्वतकी तलहटोके
समान अपने भाइयोंको सुखसे सोया देखकर
शोकसे बहृतही व्याकुल हुए । ऐसेही शोक
करते करते राजा युधिष्ठिर अपने भाइयोंकी
मृत्युके कारणको विचारने लगे । और यहभी
विचारने लगे कि सुभी इस समय क्या करना
उचित है, महाबुद्धिमान महाभुज देश और
कालके विभागकी जाननेवाले राजा युधिष्ठिरको
कुछभी निश्चय न जान पड़ा । तब धर्मपुत्र
राजा युधिष्ठिर अपने मनका स्थिर करके अनेक
विचार करके बुद्धिसे विचारने लगे कि
उन वीरोंका किसने मारा है, इनके शरीरमें
कोई अस्त्रभी नहीं लगा है, न यहापर किसीके
रिश्ते लगे देखते हैं, मैं जानता हूँ कि वह कोई
प्रहृत जीव है, जिसने मेरे भाइयोंको मारा है ।
यदि चित्तको एकाग्र करके विचारूंगा वा जल
की निश्चय करूंगा, हा सकता है कि दुर्धर्मा-
नने गुप्त रीतिसे कोई उपाय किया है अथवा
कुटिल बुद्धिवाले गान्धार देशके राजा शकुनिने
कोई छल किया है, उसका करने याग्य और
करने याग्य सब कार्य एकसे ही देखते हैं ।
इस पापीका कौन विश्वास कर सकता है ?
अथवा किसी दुरात्मा गुप्त दूतका यह काम है,
इस प्रकारसे बुद्धिमान युधिष्ठिर अनेक भातिके
विचार करने लगे, परन्तु उनका मन ऐसे शुद्ध
न हुआ जैसे दूषित जल । महाराज युधिष्ठिरने
विचार कि मेरे हुए भाइयोंका वर्ण नहीं
बिगड़ा है, उनके मुख अभोतक प्रसन्न हैं । इन
एक एक महा बलियोसे मृत्यु के सिवाय और

कोईभी नहीं लड़ सकता है । ऐसा विचार
करके महाराज युधिष्ठिर जलमें धसे जलमें
धसतेही युधिष्ठिरने आकाशवाणी सुनी ।

यक्ष बोला, हे राजपुत्र ! मैं शिवार और
मकरिओंका खानेवाला वगुला हूँ, मैंनेही
तुम्हारे चार भाइयोंको मारा है, यदि मेरे
प्रश्नका उत्तर न दोगे तो तुमभी इनके साथ
पाचवें बनोगे । हे प्यारे । हट मत करो, पहिले
मेरे प्रश्नका उत्तर देके जल पियो और लेभी
जावो ।

युधिष्ठिर बोले, मैं पंछता हूँ कि तुम कौन
हो ? रुद्र, वसु वा मरुद्गणके प्रधान देवता हो,
ऐसा प्रश्न पक्षी नहीं कर सकता है । हिमाचल
पारिपात्र, विन्धाचल और मलय पर्वतके समान
मेरे चार भाइयोंको किसने मारके गिराया है ।
हे बलवानोंमें अष्ट । जिस कर्मकी देवता गन्धर्व
यक्ष और राक्षस युद्ध करके नहीं कर सकते,
उस महा कार्यको तुमने किया है । मैं नहीं
जानता हूँ कि दैवकी क्या इच्छा है, सुभी बड़ा
आश्चर्य दुःख और शोक है, इस ही कारणसे
मेरा चित्त धवड़ा रहा है, हे भगवन् ! इसही
कारणसे मैं पूछता हूँ कि तुम कौन हो ? जो
यहा निवास करते हो ।

यक्ष बोला, हे राजन् । तुम्हारा कलराण
हो, मैं यक्ष हूँ, मैंनेही तुम्हारे तेजस्वी भाइयोंको
मार डाला है ।

श्रीवैशम्पायन सुनि बोले, तब उस कलराण
रहित कठोर अक्षरोंसे भरी बाणीको सुनके
राजा युधिष्ठिर सावधान होके खड़े होगये ।
राजा युधिष्ठिरने वृक्षके ऊपर बैठे हुए भयानक
नेत्र और बड़ी देहवाले ताड़के समान लम्बे
सूत्रके समान प्रकाशयुक्त पर्वतके तुल्य मेघके
समान गर्जते हुए, यक्षकी देखा ।

यक्ष बोला हे राजन् ! तुम्हारे भाइयोंको
एक बार मैंने जल पीनेसे रोका, जब वह बलसे
जल लेने लगे, तब मैंने मार डाला तुमकीभी

यदि प्राणकी रक्षा करनी हो तो जल मत पियो । हे कुन्ती पुत्र । हठ मत करो पहिले मेरे प्रश्नका उत्तर देके जल पियो और लेभी जाओ ।

युधिष्ठिर बोले, हे यक्ष । मैं तुम्हारी कथा सुनता हूँ क्योंकि साधुजन इसकी सदा प्रशंसा नहीं करते हैं । हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ ! तुम अपना आपही वर्णन करते हो इससे तम प्रश्न करो मैं अपनी बुद्धिके अनुसार उत्तर दूँगा ।

यक्ष बोला, सूर्यको कौन उदय करता है ? सूर्यके पास कौनसे सेवक रहते हैं ? कौन सूर्यको अस्त करता है, और सूर्य किस आरमें स्थित है ?

युधिष्ठिर बोले, ब्रह्म सूर्यके सङ्ग चलते हैं, धर्म सूर्यको उदय करता है, और सत्यमें सूर्य-स्थित है ।

यक्ष बोला, हे राजन् ! किससे मनुष्य श्रोत्रिय होता है । किससे महत्त्वको प्राप्त होता है ? किससे दूसरेसे युक्त होता है ? और किससे बुद्धिमान होता है ?

युधिष्ठिर बोले मनुष्य वेदसे श्रोत्रिय होता है, तपसे महत्त्वको पाता है, धारणासे दूसरेसे युक्त होता है, और वृद्धोसे बुद्धिमान होता है ।

यक्ष बोला, ब्राह्मणोंमें देवतापन क्या है ? सज्जनोंका सङ्ग क्या है ? मनुष्योंमें मनुष्य भाव क्या है ? और दुष्टोंका धर्म क्या है ?

युधिष्ठिर बोले, नित्यही वेदको पढ़ना ब्राह्मणमें देवतापन है, तपही सज्जनोंका सङ्ग है, मरना मनुष्योंमें मनुष्यता और दूसरोंकी निन्दा करनाही दुष्टोंका साकर्म्य है ।

यक्ष बोला, क्षत्रियोंमें देवतापन क्या है ? क्षत्रियोंमें सङ्ग क्या है ? क्षत्रियोंमें मनुष्य भाव क्या है ? और क्षत्रियोंमें दुष्टभाव क्या है ?

युधिष्ठिर बोले, बाण और अस्त्रोंकी धारण करना, यज्ञ करना क्षत्रियोंका सङ्ग और देवतापन है, भय करना क्षत्रियोंका

मनुष्यभाव है, शरणागतको वा युद्धको त्यागना क्षत्रियोंका दुष्ट कर्म है ।

यक्ष बोला, सामवेदका एक यज्ञ कौन है ? यजुर्वेदका एक वह मन्त्र कौनसा ? जिससे यज्ञ हो सकता हो ? यज्ञकी आच्छादन करनेवाली कौन है ? किसकी य नहीं नांघ सकता है ?

युधिष्ठिर बोले, प्राणही सामवेदकी यज्ञ मन्त्र है, मन यजुर्वेदकी यज्ञका मन्त्र । ऋचा यज्ञकी आच्छादन करती हैं, ऋचा यज्ञ नहीं नांघ सकता है ।

यक्ष बोला, रक्षा करनेवालोंमें कौन श्रेष्ठ है ? पितरोंकी कौनसी वस्तु देना चाहिये ? प्रतिष्ठा चाहनेवालोंकी क्या उन्नति है ? और कुलकी वृद्धि चाहनेवालोंकी कौन उन्नति है ?

युधिष्ठिर बोले, रक्षा करनेवालोंमें जल वधो उत्तम है ? बोवनेवालोंकी वा पितरोंकी बीजही श्रेष्ठ है, प्रतिष्ठा चाहनेवालोंकी उन्नति उत्तम है, कुलकी वृद्धि चाहनेवालोंकी पुत्र उत्तम है ।

यक्ष बोला, इन्द्रियोंके विषयोंकी भीमता हुआ, बुद्धियुक्त संसारमें आदरयुक्त व प्राणियोंका भाग्यसास लेते हुएभी कौन नहीं जीना है ?

महाराज युधिष्ठिर बोले, देवता, शक्ति पितर और सेवकोंको और अपनी आत्माको जो नहीं देता है, वह सास लेता हुआ भी मरा है ।

यक्ष बोला, पृथ्वीसे भारी कौन है ? आकाशसे जंचा कौन है ? वायुसे जलदी चलनेवाला कौन है ? फूससे अधिक क्या है ?

राजा युधिष्ठिर बोले, माता भूमिसे भारी है, पिता आकाशसे जंचा है, मन वायुसे जलदी चलनेवाला है, चिन्ता तण्डुलसे अधिक है ।

यक्ष बोला, कौन सीता हुआ, पक्ष

नहीं मारता है ? उत्पन्न होकर कौन नहीं चलता है ? हृदय किसकी नहीं है ? शीघ्रतासे कौन बढ़ता है ।

युधिष्ठिर बोले, मकुरी सोते हुए, पलक नहीं मारतो, अण्डा उत्पन्न होकर नहीं चलता है, पत्थर के हृदय नहीं होता है, नदी शीघ्रतासे बढ़ती है ।

यक्ष बोला, परदेशमें कौन मित्र है ? घरमें कौन मित्र होता है ? रोगीका कौन मित्र है ? मरनेके समय कौन मित्र होता है ?

महाराज युधिष्ठिर बोले, विदेशमें सद्गी मित्र है, घरमें स्त्री मित्र है, वैद्य रोगीका मित्र है । और दान मरनेके समयका मित्र होता है ।

यक्ष बोला, सब प्राणियोंका अतिथि कौन है ? सनातन धर्म क्या है ? हे राजेन्द्र ! अमृत क्या वस्तु है ? और यह जगत क्या है ?

राजा युधिष्ठिर बोले, सब प्राणियोंका अतिथि अन्न है, गौआका दूध अमृत है उसहीको सोम कहते हैं उसकी आहुति देना सनातना धर्म है, मोक्ष अमृत है, वायुही सब जगत है ।

यक्ष बोला, एकला कौन फिरता है ? उत्पन्न होकर फिर कौन उत्पन्न होता है ? शीतकी औषध क्या है ? बौवर्णका बड़ा स्थान क्या है ?

युधिष्ठिर बोले, सूर्य एकला घूमता है, चन्द्रमा फिर उत्पन्न होता है, अन्न शीतकी औषध है, बौवर्णका बड़ा स्थान भूमि है ।

यक्ष बोला, धर्मका एक स्थान क्या है ? यशका एक स्थान क्या है ? और सुख पानका एक उपाय क्या है ?

युधिष्ठिर बोले, उद्योगही धर्मका स्थान है, दानही यशका और शीलही सुखका एक उपाय है ।

यक्ष बोला, मनुष्यकी आत्मा क्या है ?

देवका दिया हुआ मित्र कौन है ? मनुष्यका जीवन क्या है ? मनुष्यका उद्योग क्या है ?

महाराज युधिष्ठिर बोले, पुत्र मनुष्यकी आत्मा है, स्त्री देवकी दो हुई मित्र है, मेघ जीवन है, और दान मनुष्यका उद्योग है ।

यक्ष बोला, धन्य लोगोंमें उत्तम क्या है ? धनमें उत्तम धन क्या है ? लाभोंमें उत्तम लाभ क्या है ? और सुखोंमें उत्तम सुख क्या है ?

राजा युधिष्ठिर बोले, धन्य लोगोंमें चतुरता उत्तम है, धनीमें विद्या उत्तम है, लाभोंमें नीरोगता उत्तम है, और सुखोंमें सन्तोष उत्तम है ।

यक्ष बोला, कौन धर्म सबसे उत्तम है ? कौनसा धर्म सदा फल देनेवाला है ? किसकी संयत करनेसे सोच नहीं करना होता ? और किनकी सन्धि नहीं टूटती ?

युधिष्ठिर बोले, सत्य बोलना सबसे उत्तम धर्म है, वेदीका धर्म सदा फल देनेवाला है, मनको रोक कर सोचना नहीं होता है, सज्जनोंकी सन्धि कभी नहीं टूटती है ।

यक्ष बोला किसको त्यागनेसे मनुष्य प्यारा होता है ? किसको त्यागनेसे सोच नहीं करना पड़ता ? किसको त्यागनेसे धर्ता होता है ? किसको त्यागनेसे सुखी होता है ?

महाराज युधिष्ठिर बोले, अभिमानके त्यागनेसे सबका प्यारा होता है, क्रोधको त्यागनेसे सोच नहीं करता, कामको त्यागनेसे धनो होता है और लोभको त्यागनेसे सुखी होता है ।

यक्ष बोला, ब्राह्मणको क्यों दान दिया जाता है ? नट और नाचनेवालाको क्यों धन दिया जाता है ? सेवकको क्यों द्रव्य दिया जाता है और राजाको कर क्यों दिया जाता है ?

राजा युधिष्ठिर बोले, धर्मके लिये ब्राह्मणको दान दिया जाता है, यशके लिये नट और

नाचनेवालोंको धन देते हैं, पालनके वास्ते सेवकोंको द्रव्य दिया जाता है, और डरसे राजाको कर देते हैं ।

यक्ष बोला, जगतको क्या अच्छादित करता है ? प्रकाशको कौन रोकता है ? मित्र किससे त्याग किये जाते हैं ? मूर्ख स्वर्गमें किस कारणसे नहीं जाता ?

महाराज युधिष्ठिर बोले, अज्ञानसे संसार अच्छादित होता है, अन्धकारसे प्रकाश रुकता है, लोभसे मित्र छूटते हैं, और सद्गुणोंसे मूर्खको स्वर्ग नहीं मिलता ।

यक्ष बोला, पुरुष काहेसे मरता है ? देश काहेसे मरता है ? यादव काहेसे मरते हैं ? और यक्ष काहेसे मरता है ?

राजा युधिष्ठिर बोले, दरिद्रसे पुरुष मरता है, राजाके बिना देश मरता है, विद्याहीन पुरोहितसे यादव मरता है और दक्षिणाके बिना यक्ष मरता है ।

यक्ष बोला, दिशा कौनसी है ? जल क्या है ? अन्न क्या है ? विष क्या है ? हे राजन यादवका काल कहो, तब जल पियो वा लेजावो,

महाराज युधिष्ठिर बोले, सज्जन दिशा है, आकाश जल है वायु अन्न है, मांगना विष है, और यादवका समय ब्राह्मण है ।

यक्ष बोला, तपका क्या लक्षण है ? दम किसे कहते हैं ? कड़ी चमा क्या है ? और लज्जा किसका नाम है ?

महाराज युधिष्ठिर बोले, अपने धर्मका करना तप, मनको विषयोसे रोकना दम, सुख दुःखको सहन करना चमा, और बुरे कार्योंसे बचना लज्जा कहाती है ।

यक्ष बोला, हे राजन् ! ज्ञान किसे कहते हैं ? शम किसका नाम है ? परम दया क्या है ? और आर्जव किसका नाम है ?

महाराज युधिष्ठिर बोले, तत्त्वार्थके बोधको ज्ञान, चित्तकी शान्तिकी शम, सब प्राणियोंके

सुखकी इच्छा करनेको दया, और चित्त सावधान रखनेको आर्जव कहते हैं ।

यक्ष बोला, मनुष्योंका दुःखसे जोत योग्य शत्रु कौन है ? जिसका अन्त नहीं रोम रोग कौन है ? साधु किसे कहते हैं ? और दुष्ट किसे कहते हैं ?

महाराज युधिष्ठिर बोले, क्रोध दुःख जोतने योग्य शत्रु है, जिसका अन्त नहीं होता ऐसा रोग लोभ है, सब प्राणियोंके हित करनेवाला साधु और दया रहित दुष्ट कहाता है ।

यक्ष बोला, हे राजन् ! मोह किसे कहते हैं ? अभिमान क्या वस्तु है ? आलस्य किसे कहते हैं ? और शोक किसका नाम है ?

महाराज युधिष्ठिर बोले, धर्मकी न जानना मोह, अपनेको सबसे बड़ा समझना अभिमान, धर्मको न करना आलस्य, और अज्ञानही शोक कहाता है ।

यक्ष बोला, ऋषिलीग स्थिरता किसे कहते हैं ? धैर्य क्या है ? स्नान क्या है ? और दान क्या वस्तु है ?

महाराज युधिष्ठिर बोले, अपने धर्ममें स्थिर रहना स्थिरता, इन्द्रियोंको रोकना धैर्य, मनके मलको त्यागना स्नान और प्राणियोंकी रक्षा करना दान कहाता है ।

यक्ष बोला, हे राजन् ! कान पुरुष पतित कौन नास्तिक ? कौन मूर्ख ? और कौन मत्सरी कहाता है ?

महाराज युधिष्ठिर बोले, धर्मज्ञको पतित, मूर्खको नास्तिक, ससारके हेतुको काम और हृदयके सन्तापवालेको मत्सरी कहते हैं ।

यक्ष बोला, हे राजन् ! अहंकार किसे कहते हैं ? प्रारब्ध क्या है ? पिशुनता (चुगल खोरी) और पाखण्ड किसका कहते हैं,

महाराज युधिष्ठिर बोले, बड़े अज्ञानकी अहंकार, दानके फलको प्रारब्ध, दूसरोंके

दोष दिखानेकी पिशुनता, और धर्मध्वजोपन अर्थात् यज्ञके वाधस्ते धर्म करनेकी पाखण्ड कहते हैं ?

यज्ञ बोला, हे राजन् ! धर्म, अर्थ, और काम परस्पर विरोधी हैं, इनका एक स्थानमें रहना कैसे हो सकता है ?

महाराज युधिष्ठिर बोले, जब धर्म और पत्नी, परस्पर दृशमें हों तब धर्म, अर्थ, और काम एकमें रह सकते हैं ।

यज्ञ बोला, हे पुरुषोंमें स्नेह । आप यह कहियेकी अक्षय नरक किमकी मिलता है ?

महाराज युधिष्ठिर बोले, जो मनुष्य मांग-नेवाले दरिद्र ब्राह्मणकी आपही बुलाकर पीछे आपही कहे कि मेरे पास कुछ नहीं है, उसे अक्षय नरक मिलता है, वेदमें, धर्मशास्त्रमें, ब्राह्मणमें, देवताओंमें, पितरोंमें, धर्ममें और मोक्षमें जो मित्या दृष्टि करता है, उसे अक्षय नरक मिलता है । जो धन होते भी निशान और भोग नहीं करता है, तथा जो कहता है कि मरनेकी पीछे कुछ नहीं होता, उसे अक्षय नरक होता है ।

यज्ञ बोला, हे राजन् ! कुलसे चरित्रसे, वेदपाठसे या विद्यासे ब्राह्मण होता है, यज्ञ आप सुभसे निश्चय पूर्वक कहिये ।

युधिष्ठिर बोले, हे यज्ञ । सुनो, न कुलसे और न वेदपाठसे ब्राह्मण होता है, किन्तु आचरणहीं ब्राह्मणतामें कारण है, इस लिये मनुष्यकी विशेषत ब्राह्मणकी चाहिये कि यज्ञसे अपने आचरणकी रक्षा करे जिसके आचरण हीन है, वही हीन है, पढ़ने और पढ़ानेवाले तथा जो और शास्त्रके विचारनेवाले हैं, वे सब मूर्ख और व्यसनी हैं, किन्तु जो क्रियावान् हैं वही पण्डित हैं, चारों वेदोंके जाननेवाला यदि दुरचारी हो तो वह ब्राह्मण शूद्रसे भी नीच है, जो अग्निहोत्रका करनेवाला भान्त है वही ब्राह्मण है ।

यज्ञ बोला, प्रिय वचन कहनेवालीकी क्या मिलता है ? विचारकर कार्य करनेवालीकी क्या मिलता है ? बद्धत मित्र करनेवालोंकी क्या मिलता है ? और धर्म करनेवालोंकी क्या मिलता है !

महाराज युधिष्ठिर बोले, प्रिय वचनवाला सबका प्यारा होता है, विचारकर कार्य करने वालोंकी जय मिलती है, बद्धत मित्रवालीकी सुखसे वास मिलता है और धर्म करनेवालीकी मोक्ष मिलता है ।

यज्ञ बोला, हे राजन् ! जगतमें सुखी कौन है ? आश्चर्य क्या है ? मार्ग कौनसा है ? और वात क्या है ? इन मेरे चारों प्रश्नोंका उत्तर दो तो तुम्हारे भाई जीवें ।

महाराज युधिष्ठिर बोले, दिनके आठवें भागमें जो अपने घरमें शाक खाकर रहता है, और किसीका ऋणी तथा विदेशी नहीं है, वही सुखी है । प्रति दिन प्राणी यमपुरीको चले जाते हैं, और शेष जीना चाहते हैं, इससे अधिक और आश्चर्य क्या होगा ? तर्क वे जड़ हैं, शक्ति भिन्न है, और एक ऋषि नहीं जिसके मतका प्रमाण हो, इससे धर्मका तत्व कन्दरामें छिपा है, इस लिये महाजन जिसमें चलते हों, वही मार्ग है । इस महा मोहमय कड़ाहमें सूर्यरूपी अग्नि ईंधन, मांस और ऋतु करकी, इन सबसे काल प्राणियोंका हल्ला पका रहा है, यही बात है ।

यज्ञ बोला, हे शत्रुनाशन ! तुमने मेरे प्रश्नोंका ठीक ठीक उत्तर दिया अब पुरुषकी व्याख्या करो और यह कहो कि सब धनवाला पुरुष कौन है ?

महाराज युधिष्ठिर बोले, पण्डकर्मसे शब्द आकाश और भूमिमें फैलता है, जबतक वह शब्द रहता है, तबतक वह पुरुष कहाता है, जिसको प्यारा और अप्यारा सुख और

दुःख भूत और भविष्यत समान हों वही सब धनवाला है ।

यक्ष बोला, हे राजन् । तुमने सबसे धनी पुरुषको कहा इस कारणसे चारों भाइयों-मेंसे जिस एकको कहो वही जो जाय ।

महाराज युधिष्ठिर बोले, यह जो श्याम वर्ण लाला नेत्रवाला शालके समान ऊंचा महाबली नकुल है, यही जो जाय ।

यक्ष बोला, यह तुम्हारा प्यारा भीम तथा तुम्हारी रक्षा करनेवाला अर्जुन है, इनको त्यागकर अपनी सौतेली माके पुत्र नकुलको जिलानेकी क्यों इच्छा करते हो ? जिस भीम सेनमें दश सहस्र हाथीका बल है, उसे छोड़कर नकुलको जिलानेकी इच्छा क्यों करते हो ? सब लोग कहते हैं कि भीमसेन युधिष्ठिरका प्यारा है, उसे त्यागकर सौतेली माके पुत्र नकुलको क्यों जिलाना चाहते हो ? जिस अर्जुनके बाहु बलके आश्रयसे पाण्डव जगतमें रहते हैं, उस अर्जुनको त्याग कर नकुलको जिलानेकी क्यों इच्छा करते हो ?

महाराज युधिष्ठिर बोले, धर्मका नाश करनेसे धर्मभी पुरुषका नाश कर देता है, और धर्मको रक्षा करनेसे धर्मभी पुरुषको रक्षा करता है, इससे मैं धर्मको नहीं छोड़ता हूँ, कि धर्म नष्ट होके हमारा नाश न करे, सत्य परम धर्म है, मैं यथार्थ रीतिसे जानता हूँ, इस कारणसे हे यक्ष ! नकुलही जीवे । हे यक्ष जगतमें मनुष्य कहते हैं कि राजा युधिष्ठिर धर्मशील है, इस कारणसे मैं धर्मको त्यागना नहीं चाहता, नकुलही जीवे ।

यक्ष बोला, तुम्हारी बुद्धि अर्थ और कामसे भी धर्मको नहीं त्यागती इससे तुम्हारे सब भाई जो जाय ।

३१२ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तब यक्षके वचनसे सब पाण्डव लोग खड़े होगये, चप भरगें भूख और प्यास उनमें व्याप्त होगई ।

महाराज युधिष्ठिर बोले, तलाबमें एक पैरसे खड़े हुए, पराजय रहित तुम को हो ? तुम यथार्थमें यक्षही हो ? या तुम वसुओंमेंसे कोई एक हो ? अथवा रुद्र हो या मरुद्गणमेंसे कोई हो ? गदा तुम वज्रवाँ इन्द्र हो ? मेरे यह भाई जो सैकड़ों और सहस्रोंसे लड़नेवाले हैं, मैं ऐसा कोई नहीं देखता हूँ जो इन सबकी मार हा अब मैं इन सबको सुखसे जिया हुआ विकार रहित इन्द्रिय युक्त देखता हूँ, आप हमारे बान्धव वा पिता हैं ?

यक्ष बोला, हे प्यारे । मैं तुम्हारा धर्म हूँ, हे पुरुषोंमें उत्तम । तुम्हारे नेकी यहाँ आया था । यश, सत्य, दम, कोसलता, लज्जा, धीरता दान, तप, ब्रह्मचर्य यह सब मेरे पुत्र हैं । अहिं समता, शान्ति, तप शौच, प्रमाद रहित ही यह मेरी प्राप्ति के द्वार हैं । तुम मेरे हो इसही कारणसे मैंने तुमसे प्रकाशित दिया है । प्रारब्धसे तुम नित्यकी पाँच यज्ञ तत्पर ही, प्रारब्धसेही तुमने काम आदि शत्रुओंको जीता है, इन शत्रुओंसे दो प्र अवस्थामें दो मध्य अवस्थामें और दो अन्त अवस्थामें दुःख देते हैं । हे राजन् । मैं हूँ, तुम्हारा कल्याण हो मैं तुमको जाननेके वा यहाँ आया था, हे पाप रहित ! मैं तुम्हारे सत्यसे बहृत प्रसन्न हुआ अब वर मांगो ।

हे राजेन्द्र ? मैं तुमको वर देता हूँ क्योंकि मेरे भक्त हैं, उनकी दुर्गति कभी नहीं होती ।

महाराज युधिष्ठिर बोले, जिस दानकी अरणीको लेके हरिन भाग गया है उसका अग्निहोत्र नष्ट नहीं, यह सुभक्तकी पहिला दीजिये ।

यह बोला; कि ब्राह्मणकी अरणीको तुम्हारी परीक्षाके वास्ते मैं हरिन बनकर उठा लाया हूँ ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमे-
य । धर्मने कहा कि हे देवतुल्य राजपुत्र युधि-
ष्ठिर । तुम्हारा कलप्राण ही, यह वर मैंने
तुमको दिया अब दूसरा वर मांगो ।

महाराज युधिष्ठिर बोले, हम लोगोंने
बारह वर्ष वनमें बिताये; अब तेरहवां वर्ष
आगया है, इसमें हमको कोई मनुष्य न जानै
यह दूसरा वर दीजिये ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, भगवान धर्मने
उत्तर दिया कि वह वर भी मैंने तुम्हें दिया;
धर्मने फिर सत्य पराक्रमी कुन्तीपुत्र युधि-
ष्ठिरको समझाया, हे भारत । यद्यपि तुम लोग
इस पृथ्वीमें अपने रूपसेही फिरोगे, तोभी
तुम्हें तीनों लोकमें कोई नहीं जानैगा, हे
शकुल श्रेष्ठ पाण्डव । यह तेरहवां वर्ष है,
तुम विराट नगरमें छिपकर रहो, तुम
लोगोंके मनमें जैसा रूप धारण करनेकी
इच्छा हो वैसाही रूप धारण करके विचरो,
यह अरण्य सहित मथानी जिसे तुम्हारे जान-
की इच्छासे मैं हरिन बनके उठा लाया था
वही ब्राह्मणकी दे देना । हे सौम्य मैं तुमको वर
देते देते व्यस नहीं होता हूँ, तुम तीसरा वर
मांगो, हे राजन् । तीसरा वर ऐसा मागो कि
इसकी उपमा नही, तुम मेरे पुत्र हो और
बेदुर भी मेरेही अंशसे उत्पन्न हैं ।

महाराज युधिष्ठिर बोले, हे देवदेव ! हे
जनातन । आप जो प्रसन्न होके वर देंगे, सो मैं
ग्रहण करूंगा, हे पितृ । मैं लोभ, मोह, और
मोक्षकी जीतूँ दान, तप और सत्यमें मेरा
मन सदा लगा रहै ।

धर्म बोले, हे पाण्डव ! इन गुणोंसे तुम आपही
बने हो, तोभी जो तुमने कहा वैसाही होगा ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, ऐसा कहके लोक

पूजित भगवान धर्म वहीं अन्तर्धान होगये,
बुद्धिमान वीर पाण्डव भी अमर रहित होके
आश्रमको आये और तपस्वी ब्राह्मणकी
अरणी दे दी यह पाण्डवोंका मरके जीना
पिता पुत्रकी कीर्तिका बढ़ानेवाला है जो
मनुष्य जितेन्द्री होके इसे पढ़े वह पुत्र पौत्रके
सहित सो बंध जीवे; अधर्ममें मित्रोंके प्रेम
कुड़ानेमें, पराया धन लेनेमें, व्यभिचार और
कादरतामें उस मनुष्यका चित नहीं लगता है,
जो इस कथाको जानता है ।

३१३ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महाराज । धर्मसे
आज्ञा पाकर सत्य पराक्रमी पाण्डव तेरहवें
वर्षमें गुप्त होकर अज्ञात वासमें रहे थे, जो
पाण्डवोंके भक्त विद्वान व्रतधारी तपस्वी वनमें
संग थे उनसे महात्मा पाण्डव हाथ जोड़के
अपना निवास बतलानेके लिये बोले, आप लोग
सब जानते हैं कि जिस प्रकारसे घृतराष्ट्रके
पुत्रोंने कुलसे हमारा राज्य छीना और हमको
दुःख दिया है । हम लोगोंने बड़े कष्टके साथ
बारह वर्ष वनमें निवास किया, अब यह तेरहवा
वर्ष अज्ञातवासका आया है, इस कारणसे
हम लोग गुप्त होकर रहेंगे, आप लोग आज्ञा
दीजिये दुर्योधन और दुरात्मा शकुनी हम
लोगोंके अत्यन्त बैरी हैं, वे हमारे सेवक पुर-
वासो और साधियोंका बहृत अपकार कर
सकते हैं, इस कारणसे हम लोग अपने राज्यमें
बैठकर आप लोग तथा ब्राह्मणोंसे मिलेंगे ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, ऐसा कहके धर्म-
पुत्र युधिष्ठिर दुःख और शोकसे व्याकुल होके
मूर्च्छित होगये और उनके नेत्रोंसे आसू बहने
लगे, तब ब्राह्मण और भाई उनकी समझाने
लगे, धौम्य राजा युधिष्ठिरसे बोले, हे राजन् !
तुम विद्वान, दानी, सत्यवादी और जितेन्द्री हो,
आपके समान मनुष्य किसी विपत्तमें भी सीध

नहीं करते देवतोंकी भी शत्रुओंके लिये छिपना और विपद भोगनी पड़ी थी, इन्द्रने पहाड़के ऊपर और निपध देशमें गुप्त रह कर शत्रुओंके पकड़नेका उपाय किया था, विष्णुने घोड़ेका सिर पाके सूर्य लोकमें दैत्योंके मारनेके किये बद्धत दिन तक निवास किया था, फिर वामन रूप धारण करके अपने आत्माको छिपाके जैसे बलिके राज्यकी छीना वह सब आपने सुनाही है, जैसे अग्निने जलमें छिपकर देवतोंका कार्य किया, वह आपने सुनाही है । हे धर्मको जाननेवाले ! इन्द्रके वज्रमें घुसकर जैसे विष्णुने शत्रुओंका नाश किया वह आपने सुनाही है, ब्रह्मऋषि औरवने जो छिपकर देवतोंका कार्य किया था, वहभी आपने सुनाही है, उत्तम तेजवाले सूर्यने पृथ्वीमें रहकर जैसे छिपकर शत्रुओंका नाश किया, उसेभी आप जानते है, ऐसेही विष्णुने दशरथके घरमें छिपके युद्धमें रावणको मारा था । जैसे महात्माओंने जिधर तिधर छिपकर शत्रुओंकी जीता था; वैसेही तुमभी जीतोगे । धौम्यने ऐसे वाक्योंसे राजाको समझाया, तब राजा शास्त्रकी बुद्धिसे और अपनी बुद्धिसे सावधान हुए, पश्चात् बलवानोंमें श्रेष्ठ महाभुज भीमसेन अपनी वानीसे राजाको प्रसन्न करते हुए, ऐसे बोले, हे राजन् । तुम्हारी धर्मबुद्धिकी देखकरही गाण्डीवधारी अर्जुनने कुछ साहस नहीं किया था, हे महाराज ! सहदेव और नकुल महा बलवान और शत्रुओंको नाश करनेमें समर्थ है, मैंही उनको सदा रोके रहता हूं, जिस शत्रुके मारनेको आप हमें छोड़े गे, हम लोग वहापर हसी नहीं करावेंगे । आप आज्ञा दीजिये हम बद्धत शीघ्र शत्रुओंकी जीतेंगे । भीमसेनके ऐसे वचन

सुनकर ब्राह्मणोंने परम आशीर्वाद दिया और पाण्डवोंसे आज्ञा लेकर अपने अपने घरको चले गये, वेदोंके जाननेवालोंमें सुख यति और मुनि लोग यथा योग्य आदर पाके फिर दर्शन की इच्छासे अपने घरको चले गये । धौम्यने सहित विज्ञान पांचो पाण्डव द्रौपदीके साथ उठके चले, उस स्थानसे एक कोस चलके प्रातः काल होते हुए, गुप्त वस्त्र पहिरनेकी उपाय हुए, शास्त्र और मन्त्रकी जाननेवाले सन्धि और विग्रहके समयकी जाननेवाले पाण्डव ऐसे विचार करनेके लिये, सबसे अलग बैठ गये ।

३१४ अध्याय समाप्त ।

हिन्दीभाषा महाभारतमें वनपर्व समाप्त ।

इस वनपर्वकी सुनकर मनुष्य महा पापोंमें कूटता है, निर्धन धन पाता है, पुत्र पौत्रसे युक्त होता है, जो जो इच्छा करता सोसो प्राप्त होता है, स्त्री वा पुरुष शुद्ध होके जो पाठ करता है उसकी सब कामना पूर्ण होती है, वन पर्वकी सुनके वा पढ़के ब्राह्मणोंको वस्त्र सुवर्ण और रत्न दान दे, ब्राह्मणके प्रसन्न होके पाण्डव ब्रह्मा विष्णु रुद्र इन्द्र तथा और देवा लोग भूत मुनि देवी तथा और लोग प्रसन्न होते है, वाचनेवालीको अन्न वस्त्र सोनेके आभरण विशेषतः कपिला गज देना चाहिये, दूहनेका कांसिका पात्र, गजके खुर च और सींग सोनेसे मढ़कर ब्राह्मणको सहित दान दे, इससे पाण्डव लोग प्रसन्न है, इस वनपर्वकी कथाकी जो सुनता है उस सब इच्छा पूर्ण होती है, और अन्तकी जाता है, इति महात्म्य समाप्त ।

वनपर्व सम्पूर्ण ।

महाभारत ।



विराटपर्व ।

पाण्डव प्रवेश प्रकरण ।

नारायण नरौत्तम नर और सरस्वती देवीको प्रणाम करके जयकीर्तन करना उचित है ।

महाराज जनमेजय बोले, हे ब्राह्मणश्रेष्ठ वैशम्पायन महासुने । हमारे पितासहके पिता पाण्डव लोग दुर्धनके भयसे पीड़ित होकर विराट नगरमें पिछकर कैसे रहे थे, और सदा ब्रह्मवादिनी महा भाग्यवती पतिव्रता द्रौपदीने कौन दुःख सहकर अज्ञातवास किया ?

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे पृथ्वीनाथ ! तुम्हारे पुत्रपा पाण्डव लोग, जिस प्रकार छिपकर विराट नगरमें रहे थे, सो कथा हम तुमसे कहते हैं । धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ धर्मराज युधिष्ठिर बरदानोंको पाकर आश्रममें आये, और ब्राह्मणोंसे सब कथा सुनाई । कथा कहकर महाराजने वह अरणी ब्राह्मणको दे दी । फिर महा मनस्वी धर्मराजने सब भाइयोंको बुलाकर कहा हम लोगोंको राज्यसे निकले हुए, बारह वर्ष बीत गये, अब यह तेरहवा वर्ष आया है, इस बारह वर्षके समयमें हम लोगोंने अनेक दुःख भोगे, इस तेरहवें वर्षमें जिस स्थानमें हमको कोई शत्रु न जान सके, तहा निवास करना चाहिये । हे कुन्तीपुत्र अर्जुन ! तुम उस स्थानको हमको बतलाओ ।

अर्जुन बोले, हे पृथ्वीनाथ । धर्मके बरदानसे जब हम लोग जिस किसी स्थानमें रहेगे, तबभी हमको कोई पुरुष नहीं जान सकेगा, तथापि हम आपके रहने योग्य राज्योंका वर्णन करते

हैं । ये सब स्थान रमणीय और गुप्त हैं, इनमेंसे जहां आपको इच्छा हो तहां रहिये । कुछ राज्योंको छोड़कर और भी ऐसे राज्य हैं, जिनमें अन्न और जल मिल सकते हैं । पाञ्चाल, चेदी, मत्स्य, सूरसेन, पटञ्जर, दशार्ण, अनवर, मल्ल, शाल्व, युगम्बर, कुन्ती और सुराष्ट्र इन राज्योंमेंसे जिसमें आपको इच्छा हो आप रहिये । वहीँ हम लोगभी एक वर्ष रहेंगे ।

महाराज युधिष्ठिर बोले, हे महाबाही ! तुमने जो कहा हमने सुना, जो कुछ भगवान् धर्मने हमको बरदान दिये है, वे सब कभी मिथ्या नहीं हो सकते, हम सब लोगोंको उचित है, कि परस्पर सम्मति करके और निर्भय होकर किसी एक स्थानमें निवास करें । मत्स्य देशका राजा विराट धार्मिक, पण्डित, धारा, बूढ़ा और सदासे पाण्डवोंका भक्त है, इस लिये हम लोग सुखसे एक वर्ष उसीके घर निवास करेंगे, और उसको सेवाके कर्मभी करते रहेंगे, हे पाण्डवो ! तुम लोग राजसेवाका जो जो कर्म कर सकते हो सो हमसे कहो, क्योंकि वही सब कर्म विराटसे कहने होंगे ।

अर्जुन बोले, हे देव । हे महाराज । हे साधो ! आप पण्डित कोमल लज्जावान और सत्य पराक्रमी हैं, इस लिये आप कहिये कौन कर्म करके विराट नगरमें निवास जोजियेगा । यह नियम है कि जिस प्रकार साधारण मनुष्य आपत्तियोंको सह सकता है, वैसे आप लोग

महाराज युधिष्ठिर बोले, यह हमारी प्राणोंसेभी प्यारी स्त्री जो माताके समान पालनेके योग्य और बड़ी वहनके तुल्य मानने योग्य है, सो किस कामको करती हुई वहां रहेंगी ? वह स्त्रियोंके कर्मको कुछ भी नहीं जानती है । यह वाला बहुत सुकुमारी, पतिव्रता, यशोवती और राजपत्नी है, इसने जबसे जन्म लिया है, तबसे पण्यहार, गन्ध, चन्दन और उत्तम वस्त्रोंका पहननाही सीखा है ।

द्रौपदी बोली, हे भारत । लोकमें सैरन्धी अर्थात् दासी राणियोंके पास जाती हैं, और कोई स्त्री नहीं जाने पाती है, यही जगतका नियम है, हे महाराज । मैं सिर गूँघनमें बहुत निपुण हूँ, यदि राजा मुझसे पूछेंगे तो मैं यही कहूँगी कि मैं महाराज युधिष्ठिरके घरमें द्रौपदीकी दासी थी, हे महाराज । मैं इस प्रकारसे अपने आपको छिपाऊँगी और सुखसे रहूँगी । राजा विराटकी स्त्री यशस्विनी सुदेष्णाके पास मैं जाऊँगी, वह मुझे अपने पास रक्खेगी, आप दुःख न कीजिये ।

महाराज युधिष्ठिर बोले, हे द्रौपदी । तुम अच्छा कहती हो, हे भामिनी । तुम उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई हो, मैं तुमको पापकर्म करनेवाली नहीं जानता हूँ, क्योंकि साधु और उत्तम व्रत करनेवाली हो । जिससे हमारे पापी शत्रु लोग सुखी न हों, तुमको शत्रु लाग जान न सकें, ऐसाही कर्म तुम करना ।

३ अध्याय समाप्त ।

महाराज युधिष्ठिर बोले, हे पाण्डवो ! तुम लोगोंने अपने जा अपने कर्म कहे, उन्हींको करोगे, मुझकोभी अपनी बुद्धिके अनुसार नियम हो गया है कि तुम लाग इन सब कर्मोंको कर सकोगे । हमारे पुरोहित धौम्य मुनि, सारथी और नगर निवासियोंके सहित राजा द्रुपदके यहां जाकर हमारे अग्निहोत्रकी रक्षा करें-

हमारे इन्द्रसेन आदि सारथी लोग खाली रथोंको लेकर शीघ्र द्वारिकाकी चले जाएं हमारी बुद्धिमें यही निश्चय हुआ है कि ये वे द्रौपदीकी दासी हैं, सो सब नगरनिवासी और रसीदियोंके सङ्ग पञ्चाल देशकी चले जायेंगे । ये सब लोग जाकर कहें कि हम लोग पाण्डवोंकी नहीं जानते कि कहां चले गये, वे ले हमकी द्वैत वनमें छोड़कर न जाने कहां चले गये ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, पाण्डव लोग तब प्रकार परस्पर सम्मति करके और अपने अपने कर्मोंका नियम करके धौम्यकी बुलाह पूछने लगे, तब धौम्य उनसे ऐसा बोले, महाराज युधिष्ठिर । तुम्हारे सब भाई ब्राह्मण और मित्रोंमें उचित व्यवहार करना जानें है, और ये लोग शस्त्र विद्या, अग्निविद्या और वाहनविद्याकी धली भांति जानते हैं पर तीसरी आप और अर्जुन द्रौपदीकी रक्षा करना, आप इस जगतके सब व्यवहारकी जानते हैं, आप अपने मित्रोंसे प्रेम पूर्वक व्यवहार करना, यही सनातन धर्म है, यही सनातन अर्थ है, और यही सनातन व्यवहार है । इस लिये हम आपसे कुछ नीति कहते हैं, आप सुनें, हे राजपुत्र । सब लोग हमारी कहो हुई, रीतिसे चलें सब दीपोंकी तर जावेंगे । हे कुलीन राजाके घरमें रहना बहुत कठिन है, सब लोग आदर और निरादरकी सङ्कर कि प्रकारसे एक वर्ष बिताना, फिर चौदह वर्ष प्राप्त होनेसे सुख प्राप्त करेंगे, पहले राजा पालसे समाचार भेजकर तब राजाका दर्शन करना चाहिये, और कभी राजाका विचार नहीं करना चाहिये, राजाकी सभामें बैठना चाहिये जहां दूसरा न बैठ सके । जो वाहन, पलङ्ग, आसन ज्ञाही की घोंदिकी इच्छा नहीं करता और राजा

आज्ञामें सम्मत रहता है, वही राजसभामें रहने योग्य है। जहां जहां बैठनेसे दुष्ट लोग शङ्का करें, जो पुरुष उन स्थानों पर बैठना छोड़ दें, वही राजाके यहां रह सकता है। राजाको किसी प्रकारको शिक्षा नहीं देनी चाहिये, और बिना पूछे कुछ बोलनाभी नहीं चाहिये, तथा सब समयोंपर राजाकी शंसाही करनी योग्य है। राजा लोग भूँठेकी शंसा नहीं करते, वे भूँठे मन्त्रोकाभी निरादर करदेते हैं। बुद्धिमानको उचित है कि राजाकी स्त्रियोंसे कभी प्रेम न करे और निवासमें रहनेवालोंसे द्वेषभी न करे। छोटी कामकाभी राजाको आज्ञासे करना उचित है, ऐसा करनेसे कोई दोष नहीं होता है। राजाके यहां उत्तम आसनको पाकर भी राजाको आज्ञाके बिना अन्यके समान खड़ा रहै, अर्थात् बिना आज्ञा आसनपर न बैठे, राजासे बिना अधिकार पाये कोई कामभी न करे, यह सनातन मर्यादा है। नान्व भाई और अपने परम बन्धुकीभी मर्यादाहीन—देखकर शत्रुनाशक राजा लोग निरादर नहीं देते। सेवा करनेवालोंको उचित है कि राजाकी अग्नि और देवताके समान सेवा करे, यदि किसी विषयमें राजाको यह बात हो जाय कि अमुक पुरुष हमसे भूँठ होता है, तब निःसन्देह राजा उसको मार डालता है। राजा जिस कर्मकी करे सेवकको वैसाही करना चाहिये। राजाकी सेवा करनेमें भूल, अभिमान और क्रोध करना उचित नहीं है। करने और न करने, प्रिय और अप्रियमें सेवकको वही कर्म करना चाहिये जो राजाकी प्रिय हो। सब कथा व्यवहारोंमें राजाका प्यारा बना रहै, जो राजाको प्रिय न हो वह उससे न कहै। राजाका प्यारा हूँ, यह विचारकर बुद्धिमान की सेवा न करे, वरन सदा भ्रम रहित

होकर राजाके प्रिय कामोंकी करता रहै। जो राजाके अप्रिय कामोंकी नहीं करता, राजाके शत्रुओंसे बात नहीं करता और अपने स्थानको नहीं छोड़ता वही राजाके यहां रह सकता है। बुद्धिमानको उचित है कि राजाके दहनी या बाईं ओर बैठे, और शस्त्रधारी पीछे बैठते हैं; वे लोग राजाकी रक्षा करते हैं, राजाके आगे आसन लगाकर बैठना सदा अनुचित है। राजाके आगे जो कुछ मिले उसकी अस्वीकार करना उचित नहीं है। आगे बैठना दरिद्रोंकोभी अप्रिय होता है और राजाकी तो कथाही ग्या है? यदि राजा कोई मिथ्या बात कहै तो उसे सर्व साधारणके आगे कहना उचित नहीं है, भूँठे और मिथ्या पण्डित मानोका राजा लोग निरादर कर देते हैं। सेवकको उचित है कि कभी अपनी बुद्धि और बलका अभिमान न करे, सदा राजाका प्रिय काम करनेसे अनुष्ठ राजाका प्यारा होता है, और राजाका प्यारा होनेसे अनेक सुख मिलते हैं। कठिनतासे प्राप्त होने योग्य सुख पाकर भी सावधान होकर राजाहीके प्यारे काम करने चाहिये तथा सदा राजाके कल्याणकी इच्छा रखनी उचित है। जिसके क्रोधसे महा आपत्ति और प्रसन्नतासे महा सुख प्राप्त होते हैं, ऐसा कौन बुद्धिमान है, जो उसका अहित चाहै? राजसभामें बैठकर होठ, हाथ, जङ्घा और जीभको नहीं चलाना चाहिये, राजाके आगे घीरेसे बोलना उचित है, वायु और मूत्रकोभी घीरेसे निकालना चाहिये। यदि राजाके हंसाने योग्य कोई वस्तु सभामें आजाय तो हंसीकी रोकना उचित नहीं है, और न पागलके समान वेगसे हंसनाही उचित है, अत्यन्त धैर्य करनाभी उचित नहीं है, क्योंकि सदा चुप रहनेसे सभावाले लोग उसे मूर्ख जान लेते हैं। राजाको ऋषीकी थोड़ा हंसकर प्रकाश करना उचित है। जो लाभमें प्रसन्न

नहीं होता और अनादरसे दुःख नहीं मानता और जो सदा सावधान रहता है, वही राजाके यहाँ रहने योग्य होता है। जो पण्डित पुरुष मन्त्री होकर राजा और राजपुत्रकी सेवा करता है, वह वहुत दिनतक सुख भोगता है। जो मन्त्री कृपा और बिना कारण राजाके क्रोधकी निन्दा नहीं करता वही वहुत दिन-सुख भोगता है, और नष्ट सम्पत्तिको लाभ करता है, जो राज्यमें रहनेवाला अथवा नौकर राजाके आगे अथवा पीछे प्रशंसा करता है, वही वहुत दिनतक सुखी होता है। जो मन्त्री अपने बलसे राज्यका भोग करना चाहता है वह वहुत दिन सुख नहीं भोगता और अन्तमें अपने प्राणोंको भी नाश कर देता है। मन्त्रीको उचित है कि सदा अपने और राजाके कल्याणको देखता रहे, तथा शत्रुओंसे अपने राजाकी उन्नति चाहता रहे। मन्त्री तेजस्वी, बलवान, सूरवीर, सत्यवादी, कोमल कठोर और छायाके समान राजाके सङ्ग चलनेवाला हो। जो दूत दूसरे दूतको भेजने समय राजासे कहै कि महाराज मैंही काम करूँ वही दूत राजाका पारा और राज्यमें रहनेवाला होता है। जो भीतर और बाहरसे राजाकी आज्ञाको सुनके कभी न डरै, वही राज्यमें रहने योग्य है। जो घरसे निकलकर अपने पाररे कुटुम्बियोंका खरण करे और दुःख सहनेको पीछे सुख चाहे, वही दूत राजाके राज्यमें रहने योग्य है। जो कभी राजाके समान वस्त्र और आभूषण नहीं पहनता अपनेसे जंघोंके सङ्ग नहीं बैठता और राजाकी सम्पत्तिको प्रकाशित नहीं करता, वही राजाका पारा दूत होता है। जो कर्म करनेमें धनको इच्छा नहीं करता, जो धन लेनेके समय प्राण नाश अथवा बन्धनको प्राप्त होता है, वही राजाका पारा दूत होता है। जो राजाके दिये हुए वाहन, वस्त्र और आभूषणको धारण करता है, वह पुरुष राजाका

अत्यन्त पारा होता है। हे पारि पाण्डवो! आप लोग अपने मनको स्थिर करके एक वर्ष जैसे ही तैसे विता दी, पश्चात् अपने राज्यक प्राप्त करके इच्छानुसार सुख भोगना।

महाराज युधिष्ठिर बोले, आप सदा हमको उपदेश करते हैं, आपके समान कुर्त और महा बुद्धिमान विदुरके सिवा हमें और कौन उपदेश करेगा? आपका कल्याण है इसके पश्चात् हमारे करने योग्य जो कर्म हो सके कहिये, क्योंकि आपके उपदेशसे हम इस दुःख पार जायेंगे, और सुख तथा जयको प्राप्त करेंगे।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महाराज युधिष्ठिरके ऐसे वचन सुन ब्राह्मणश्रेष्ठ धौम्य मुनि उन कर्मोंको करने लगे जो चलते समय कर्त उचित थे, धौम्यने हृद्धि, लाभ और विजय लिये पाण्डवोंके अग्निहात्रमें मन्त्रोंसे हो किया और अग्निको प्रदक्षिणा करो; फिर सब तपस्वियोंसे अग्निको प्रदक्षिणा करा अनन्तर पाँचो पाण्डव द्रौपदीको अगाड़ी करके एक ओरको चले गये।

जब वीर पाण्डव लोग इस प्रकार चले गये, तब जप करनेवालोंमें श्रेष्ठ धौम्य मुनि अग्निहात्रका लेकर पाञ्चाल देशको गये, और इन्द्रसेन आदि सारथी लोग राजाको आज्ञानुसार रथोंको लेकर द्वारिकामें जाकर धौम्य और रथोंको रक्षा करने लगे और पाण्डवोंकी विजयको इच्छा करके वहाँ रहने लगे।

४ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज! जनमेजय वीर पाण्डव लोग कवच, खड्ग तूणीर और अंगुलित्वाण धारण करके यमुनाके दक्षिण तटपर पैरों चलने लगे और उन्होंने जाना कि हम वनवाससे छूट गये, अब राज्यको प्राप्त करेंगे। अनन्तर पर्वत गुफा और वनोंमें निवास करते हुए चलने लगे। महा बलवान

महा धनुषधारी पाण्डवलोग हरिनोकी मारकर खाते हुए दशार्ण देशकी उत्तर और पञ्चाव देशकी दक्षिण सीमासे होकर निकले । अनन्तर शूरसेन और यकुन्तोम देशकी सीमाको नाशकर राजा विराटके राज्यमें पहुँचे । पाण्डवलोग निरन्तर वनहीमें चलते थे, धनुष कवच और मूषधारी पाण्डवलोग जब राजा विराटके नगरमें पहुँचे, तब द्रौपदीने महाराजसे कहा, हे महाराज ! देखो यह सब बोये हुए खेत दिखाई देते हैं, इससे जान पड़ता है, कि राजा विराटका नगर पास आगया, और मैं थकभी वृद्धतः गई हूँ, इस लिये आजकी रात यहीं रह जाइये ।

महाराज युधिष्ठिर बोले, हे अर्जुन ! तुम द्रौपदीको अपने कन्धपर विठलाकर ले चलो, हम लोग इस वनसे निकलकर राजा विराटके नगरमें रहेंगे ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, राजाकी आज्ञा सुन अर्जुनने द्रौपदीको अपने कन्धपर विठला लिया, और मतवारे हाथीके समान चलने लग । नगरके पास जाकर अर्जुनने द्रौपदीको उतार दिया । विराटकी राजधानीमें पहुँचकर महाराजने अर्जुनसे कहा कि हम लोग शस्त्रोंको कहा रखकर नगरमें प्रवेश करें ? यदि हम लोग शस्त्रोंका लिये हुए नगरमें जायेंगे तो निःसन्देह सब नगर निवासो हमका देखकर घबड़ा जायेंगे, हमारे शस्त्रोंमें यह गाण्डीव धनुष लाकप्रसिद्ध है, उसका यदि लेकर हम लोग नगरमें जायेंगे तो निःसन्देह हमको सब नगरनिवासो पहचान जायेंगे, तब हम लोगको फिर वारह वर्षतक वनमें रहना होगा यदि हम लोगमेंसे किसी एककोभी कोई जान भागया, तभी सबको यह आपत्ति भागनी पड़ेगी ।

अर्जुन बोले, हे पृथ्वीनाथ ! यह इस शिखर-पर बड़ा भारी शमीका वृक्ष है, और इस पर

कोई नहीं चढ़ सकता, क्योंकि यह साशानकी समीप है, और इस समय हम लोगको देखने वाला यहा कोई मनुष्यभी नहीं है, जो नगरमें जाकर कहे कि हमने पाण्डवोंको देखा है । हमारी बुद्धिमें आता है कि इस मार्गसे दूर साशान और वनके पासवाले शमी वृक्षपर शस्त्रोंको रखकर नगरमें चलें । हे भारत ! हम लोग इस प्रकार विचार करके विराटके यहा रहेंगे ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे भरतर्षभ ! धर्मराज युधिष्ठिरसे ऐसा कहकर अर्जुन शस्त्र रखनेको उस शमी वृक्षपर चढ़े । जिस महा शब्दवाले घोर धनुषसे अर्जुनने एक रथपर बैठकर समस्त देवता और मनुष्य तथा नगरोंको जीता था, उसही भयङ्कर शत्रुसेना नाशक गाण्डीव धनुषसे अर्जुनने रोदेको उतारा । महा प्रतापी शत्रुनाशक युधिष्ठिरने जिस धनुषसे कुरुक्षेत्रकी रक्षाकी थी उससे रोदेको उतारा । जिस धनुषसे द्रौपदीके स्वयंस्वरसे अनेक शत्रुओंको नाश किया था, जिससे द्विग्विजयमें अनेक शत्रु-वोंको रोका था, जिसका शब्द सुनकर शत्रु-लोगोंके इस प्रकार हृदय फटते थे जैसे वज्रका शब्द सुननेसे पर्वत फटते हैं, जिससे सिन्धु देशके राजाको जीता था, उस धनुषसे भीमसेनने रोदा उतारा । जिसकी समान जगतमें कोई सुन्दर नहीं था, उस नकुलने अपनी उस धनुषसे रोदेका उतारा जिससे पाञ्चम दिशाको जीता था और जिससे महाबाहु महाशूर सहदेवने अनेक शत्रुओंका मारा था, जिस धनुषके आश्रयसे दाक्षिण और दक्षिणके सब राजाको जीता था, सहदेवनेभी उस धनुषसे रोदेका उतारा । पाण्डवान धनुषोंको सज्ज हो बड़े बड़े प्रकाशमान खड्ग और अन्य शस्त्रोंकोभी धनुषके सज्ज हो रख दिया ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, पश्चात् कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने नकुलकी आज्ञा दी कि हे वीर !

तुम इस शमी वृक्षपर चढ़कर इन सब धनुषोंको रख आओ, उसी समय नकुल उस वृक्षपर चढ़ गये और उन दिव्यरूपी प्रकाशमान धनुषोंको रख दिया। नकुलने ऐसे स्थानपर धनुषोंको रक्खा, जहाँ वरसते हुए पानीसे न भीग सकें और उनकी दृढ़ बन्धनोंसे बांध दिया। फिर पाण्डवोंने उस शमी वृक्षपर एक मरे हुए पुरुषका शरीर बांध दिया, इसका प्रयोजन यह था कि कोई पुरुष उस वृक्षके पास न आसके। पाण्डवोंने विचारा कि जो पुरुष इस शवको बन्धा देखेगा और इसको दुर्गन्धि सूँघेगा वह कहेगा कि यह वृक्ष पास जानेके योग्य नहीं है, और यह शमी हमारे शस्त्रोंकी रक्षा करेगी, इस लिये हमारी माताके समान है, यह हमारा कुल धर्म है, हमारे पुरुषावोंने इसको ग्रहण किया है, इस लिये इस वृक्षमें शस्त्रोंकी रखकर हम लोग, विराट नगरकी चलेंगे। ऐसा कहकर शत्रुनाशन वीर पाण्डव लोग गोपालोंसे तथा गड़रियोंसे बोले, कि इस वृक्षमें हमारी बूढ़ी माताको मृतदेह रक्खी गई है। ऐसा कहते हुए विराट नगरके समीप पहुँचे। जय, जयन्त, विजय जयत्सेन और जयदत्त येही पाण्डवोंने अपने गुप्त नाम रक्खे, अनन्तर पाँची पाण्डवोंने यह निश्चय करके कि हम लोग छिपकर एक वर्ष रहेगी, विराट नगरमें प्रवेश किया।

५ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन सुनि बोले, हे राजन् ! जनमेजय ! महाराज युधिष्ठिरने जिस समय विराट नगरमें प्रवेश किया, उसी समय मनसे तीनों लोकोंकी स्वामिनी दुर्गा देवीकी इस प्रकारसे स्तुति की। हे देवि ! तुम यशोदाके गर्भसे नन्द गोपके घरमें उत्पन्न हुई हो, तुम नारायणकी धारो, मङ्गलकारिणी, कुलवर्द्धिनी,

सङ्गटनाशिनी, और दैत्य विनाशिनी हो। तुमकी जिस समय कंसने शिलापर फेंका था, तब तुम आकाशको चली गई थीं। तुम श्रीकृष्णकी वह्निन, दिव्य माला, आभूषण, खड्ग और खेटकधारिणी हो। तुमकी महाघोर दुःख उतारनेके समयमें जो मनुष्य करार करता है, तुम उसकी इस प्रकार रक्षा करती हो जैसे कोई दुर्बलकी रक्षा करता है।

ऐसा कहकर राजा युधिष्ठिर देवीका आवाहन करके और उनके दर्शनकी इच्छा करके नीचे लिखा स्तोत्र पाठ करने लगे,—

हे देवि ! तुम वरदान देनेवाली, कृष्ण, कुमारी और ब्रह्मचारिणी हो, हम तुम्हें प्रणाम करते हैं, तुम्हारा तेज प्रातःकालमें सूर्यके समान और सुख चन्द्रमाके तुल्य है। तुम्हारे स्तन और नितम्ब कठोर हैं, तुम मोरके पंखोंके समान धाजू, केयूर और भूषण धारण करके साक्षात् लक्ष्मीके समान शोभा होती हो, नारायण तुम्हाराही रूप हैं, आकाशगामिनि ! तुम्हारा रूप और ब्रह्म चर्य वज्रत प्रकाशित है, तुम्हारी सुन्दरता कृष्णके समान और सुख बलदेवके तुल्य है। तुम्हारी भुजा साक्षात् इन्द्रधनुषके समान विशाल हैं, तुम्हारे हाथमें कमल और वृष्टा है। तुम सब जगतकी स्त्रियोंसे पवित्र और शुद्ध हो, तुम्हारे हाथमें फासी धनुष और महा चक्रादि अनेक प्रकारके शस्त्र हैं, तुम्हारे कानमें पूर्ण कुण्डल शोभाते हैं। हे देवि ! तुम्हारे विचित्र मुकुट और उत्तम बन्धे हुए वस्त्रोंसे युक्त मुखका देखकर चन्द्रमाभी लज्जित हो जाता है, तुम्हारे सर्पके समान काटसूत्रोंका देखकर संपेयुक्त मन्दराचलभी यकित हो जाता है। तुम मोरोंके पंखको बनी हुई ज्योति ध्वजासे विराजित हो, तुम्हारे ब्रह्मचर्य व्रतसे स्वर्गभी पवित्र होगया है, इस लिये देवता लोगभी तुम्हारी स्तुति और दूषण

रते हैं, तुमने तीनों लोकोंकी रक्षाके लिये
हिंसासुरको मारा है। हे देवि ! तुम हमसे
सन्त हो, तुम जया, विजया और युद्धमें
विजय देनेवाली हो, इस लिये हमकोभी
रदान दो, जिसमें हमारी विजय हो। हे
वि। विंध्य नामक पर्वत तुम्हारा सनातन
ग्राम है, तुम काली, महाकाली हो ; मय,
पांस और पुश्वोंकी भक्षण करनेवाली हो,
व पुरुष सदा तुम्हारी सेवा करते हैं, तुम
अपनी इच्छासे सदा चलनेवाली हो। जो
पुरुष भार उतारनेके समय तुम्हारा स्मरण
करते हैं, और प्रातःकाल तुम्हें प्रणाम करते
हैं, उनको जगतमें कोई वस्तु दुर्लभ नहीं
है, पुत्र और धनकी तो क्याही क्या है ?
तुम जगतके मनुष्योंकी दुःखसे उबारती हो,
इस लिये तुम्हारा नाम दुर्गा है। वनमें भूले
हुए, समुद्रमें डूबते हुए और चोरोंके वशमें
पड़े हुएको तुमही बचाती हो, तुमही उनकी
रक्षा करती हो, हे देवि ! वनमें घूमते हुए
जो तुम्हारा स्मरण करते हैं, वे कभी दुःखमें
नहीं पड़ते। तुम कीर्ति, लक्ष्मी, धारणा,
सिद्धि, लज्जा विद्या, सन्तान, बुद्धि, संध्या,
रात्रि, शोभा, निद्रा, चादनी, तेज, चमा और
दया हो ! जो तुम्हारी पूजा करते हैं उनको
बन्धन नाश, पुत्रनाश, धननाश, रोग, भय
और मृत्यु नहीं होती। सो मैं राज्यसे नष्ट
होकर तुम्हारी शरणमें आया हूँ, हे देवि !
शरणागतरक्षिणि ! हे भक्तपालिनि ! हे
सुरेश्वरि ! हे कमल नयनि ! हे दुर्गा ! मैं
तुम्हें शिरसे प्रणाम करता हूँ, तुम हमारी
रक्षा करो।

महाराज युधिष्ठिरकी ऐसी स्तुति सुन
दुर्गादेवी प्रत्यक्ष हुई और राजासे कहने
लगी,—

और्देवीजो बोलौ, हे राजन् ! हे महाबाहो !
हे पृथ्वीनाथ ! तुम हमारे वचनोंकी सुनी,

मेरी कृपासे थोड़े दिन पश्चात् युद्धमें तुम्हारी
विजय होगी, तुम कौरवोंकी सेनाको जीतकर
समस्त पृथ्वीका निष्केष्टक राज्य पावोगे और
अपने भाइयोंके सहित अत्यन्त प्रसन्नताकी प्राप्त
होगी, मेरी कृपासे तुम्हें कोई रोग और दुःख
नहीं होगा। इस स्तोत्रकी जो धर्मात्मा
पढ़ेगा, मैं प्रसन्न होकर उसको शरीर सुख,
पुत्र, राज्य और आयु दूँगी। परदेशमें, नगरमें,
युद्धमें, शत्रुशङ्कटमें, वनमें, घोरस्थानमें, समुद्रमें
और पर्वतमें जो मेरा स्मरण करेंगे, उनको इस
लोकमें कोई वस्तु दुर्लभ नहीं होगी, हे
पाण्डवो ! इस स्तोत्रकी जो भक्तिसे पढ़ें या
सुनेंगे उनके सब कार्य सिद्ध होजायंगे। मेरी
कृपासे तुमको विराट नगरमें रहते हुए कोई
कौरव या नगर निवासी नहीं जान सकेगा, शत्रु-
नाशन युधिष्ठिरसे ऐसा कह-कर और पाण्ड-
वोंकी रक्षा करके देवी वही अन्तर्धान होगई।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर, महाराज
युधिष्ठिर सोनेके मणि जटित पासोंकी कपड़ोंमें
लपेटकर अपनी वगलमें दबाय राजा विराटकी
सभामें गये।

महायशस्वी कौरववंश वर्द्धन महानुभाव
महाराज युधिष्ठिर यशस्वी राजा विराटकी
सभामें इस प्रकार गये, जैसे घोर विषोला सर्प
कहीं जाता है। महाराज युधिष्ठिर बलसे
रूपसे और तेजसे साक्षात् देवताके समान
दीखते थे, उनका तेज ऐसा जान पड़ता था जैसे
मेघोंमें छिपे हुए सूर्य और भस्मसे छिपी हुई
महा अग्निका। उन महा तेजस्वी पाण्डुपुत्र
युधिष्ठिरको आते देख विराट विचार करने
कि यह क्या वादरसे निकलकर चन्द्रमा आया
है ? अथवा यह पूर्ण चन्द्रमाके समान महा
तेजस्वी महानुभाव पुरुष है ? राजाने मन्त्री,
सूत, ब्राह्मण, वैश्य और सब सभासदोंसे पंक्ता
कि, यह कौन पुरुष चला आता है ? मैं आज
इसे पहचानेही देखता हूँ, यह राजाकी दृष्टिसे

मेरी सभाको देख रहा है। मुझे पूर्ण निश्चय होता है कि यह ब्राह्मण नहीं है, वरन समस्त पृथ्वीका स्वामी क्षत्रिय है। देखो इसके पास हाथी, घोड़ा और रथ कुछभी नहीं है, तौभी यह इन्द्रके समान प्रकाशित हो रहा है। इसके शरीरके चिन्होंसे हमको पूर्ण निश्चय होता है कि यह साक्षात् चक्रवर्ती राजा है, यह मेरे पास निर्भय रूपसे इस प्रकार चला आता है, जैसे मतवारा हाथी तालावकी ओर जाता है। पुरुष-सिंह विराट इस प्रकार विचार करही रहे थे कि इतनेमें महाराज युधिष्ठिर उनके पास आकर कहने लगे, महाराजकी विदित हो कि मैं ब्राह्मण हूं, मेरा सर्वस्व नाश होगया है, सो जीविकाके लिये मैं यहां आया हूं। मैं आपके यहां आपकी आज्ञानुसार रहना चाहता हूं।

महाराज विराटने कृपा करके कहा कि हम आपका स्वागत करते हैं, महाराज युधिष्ठिरका इस प्रकार सत्कार करके राजा विराट प्रसन्नता पूर्वक बोले, हे मित्र ! हम केवल जाननेके लिये आपसे पछते हैं कि आप कौनसे राजाके राज्यसे यहां आये हैं ? आप अपना गोत्र और नाम हमसे कहिये और यहभी कहिये कि आप कौन कौन विद्या जानते हैं ?

महाराज युधिष्ठिर बोले, हे महाराज ! पहले समयमें मैं राजा युधिष्ठिरका प्यारा मित्र था, मेरा नाम कङ्क, वैयाघ्रपद गोत्र और और जाति ब्राह्मण है। मैं जुआ खेलन और खिलानमें परम प्रवीण हूं, इसी विद्यासे मेरा नाम प्रसिद्ध है।

महाराज विराट बोले, हम आपको इच्छा-नुसार वर देते हैं, आप आजसे विराट देशका राज्य कोजिये, मैं आपके वशमें होकर रहूंगा जुआ खिलानेवाली धूर्त भी हमारे प्रिय हैं और आप देवतुल्य तथा राज्य करने योग्य है। महाराज युधिष्ठिर बोले, हे महाराज ! आप प्रसन्न होकर हमको एक वरदान और दीजिये,

जिसको हम जीतेंगे वह हमारे धनको नहीं कीन सकेगा। हे पृथ्वीनाथ ! इसका विवाद पहले भी हो चुका है, इसलिये आप हमको यह वर दीजिये।

महाराज विराट बोले, मैं तुमको यह वरदान देता हूं कि जा तुम्हारा दोष करगा वह मेरे राज्यमें जीवित नहीं बचेगा। तुम्हारे दोष करनेवाले ब्राह्मणको भी मैं राज्यसे निकाल दूंगा। हे सभासदा ! आजसे तुम लोग कङ्कको भी हमारे ही समान जाना। इस राज्यके जैसे हम स्वामी हैं वैसेही कङ्क भी है। हे कङ्क ! आजसे तुमको हमारे समान भाजन, वस्त्र, पीनेको वस्तु आर वाहन मिलेंगे। तुम सदा भीतर और बाहर जाया आया करा, तुम्हें कोई द्वारपाल राक नहीं सकेगा, ना द्वारद्व लोग तुम्हारे पास आवेंगे उनका वचन तुम हमसे सदा आकर कहा करना, हम अनन्द रहें उनका सब वस्तु देंगे। हमारे यहां रहनेसे तुम्हें कुछ भय नहीं होगा।

आवेश्मपान मुनि बालि, राजा विराटसे सत्कार पाकर पुरुषासह वार युधाष्ठर सुख पूर्वक उस स्थानमें रहने लगे और कक्षीन भी उनके चारित्रका न जाना।

६ अध्याय समाप्त।

आवेश्मपानमुनि बालि, हे राजा जनमेजय ! इसके पश्चात् भोमसेन रसादयाका विषवनाकर राजा विराटको सभामें पङ्कचे। वह मतशरी सिंहसमान पराक्रमी एक हातमें खोचा और दूसरेमें चमचा लेकर पङ्कचे। भोम सुश्रूषे समान तेजस्वी रसादयाके वेशमें काले कपड़े पहन कसे ऐसे शोभित हुए जैसे अनेक धातु पर्वत शभायमान होता है। उस महापराक्रमीका आते देख राजान मन्त्रिवास विस्मित हो पूछा, यह सिंह समान पराक्रमी युवा पुरुष कौन आता है ? मन इस

पुरुषकी पहली कभी नहीं देखा । मुझे जान पड़ता है कि यह साक्षात् सूर्य है ? मैं अनेक वर्षों वितर्क करने पर भी इसका निश्चय नहीं कर सकता । इसकी चेष्टा देख कर मुझे जान पड़ता है कि यह कोई विचित्र चित्तवाला पुरुषसिंह है । इसकी देखते ही मुझे निश्चय होता है कि यह साक्षात् गन्धर्वराज या साक्षात् इन्द्र है । तुम लोग शीघ्र निश्चय करो कि यह कौन है और यहां क्यों आया है ? जो इसकी इच्छा हो वह पूर्ण करनेमें देर मत करो । राजाकी आज्ञा सुन अनेक पुरुष कुन्तीपुत्र भीमके पास गये और राजाके वचन कह सुनाये, भीमने उन लोगोंके वचनोंका कुछ उत्तर न दिया और राजाके पास आकर गम्भीर स्वर अभिमान और अदीनतासे कहने लगे, हे पृथ्वीनाथ ! मेरा नाम बल्लव है, मैं बल्लव उत्तम रसोई बनाना जानता हूं । आप हमको नौकर रखिये ।

विराट बोले, हे बल्लव । तुम रसोइया हो, मुझे इस बातका निश्चय नहीं होता क्योंकि तुम्हारा तेज, बल और रूप साक्षात् इन्द्रके समान दीखता है । हमें पूर्ण निश्चय है कि तुम कोई राजा हो ?

भीम बोले, हे पृथ्वीनाथ ! हम कोई हों परन्तु आपके रसोइया और नौकर हैं, हम उन उत्तम भोजनोंको बनाता जानते हैं, जिनको पहले समयमें साक्षात् युधिष्ठिर खाते थे । हमारे समान पृथ्वीमें कोई बलवान नहीं है, हम अपने समान युद्धविद्यामें किसीको नहीं समझते । हे पृथ्वीनाथ ! हम मतवारे सिंह और हाथियोंकी केवल हाथसे पकड़ सकते हैं, औरभी आपके प्रसन्न करनेको अनेक कर्म हम कर सकते हैं ।

महाराज विराट बोले, यद्यपि तुम उस कर्मके योग्य नहीं हो, जिसकी तुम इच्छा करते हो, तुम समुद्र पर्यन्त पृथ्वीके महाराज

होनेके योग्य हो, तथापि तुम्हारी इच्छानुसार तुम्हें वही वरदान दिया जाता है जिसमें तुम निपुण हो, आजसे तुम हमारे चौकेके पूर्ण अधिकारी हुए । जितने पुराने रसोइया थे तुम उन सबके स्वामी हुए । जैसा तुम्हारी इच्छा हो वैसाही भोजन हमको करना होगा ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, राजा विराटने भीमको केवल रसोईहीका काम नहीं दिया किन्तु अपना प्यारा मित्रभी समझ लिया । विराटने भीमको अपने राजभवनमें रहनेकी आज्ञा दे दी, परन्तु उसके चरित्रको न जाना ।

७ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजा जनमेजय ! इसके पश्चात् अपने बल्लव लम्बे सुन्दर और कालेवालोंकी यत्नसे बाधकर निन्दारहित उत्तम हंसनेवाली द्रौपदीने अपने दहनी कोखके तिलकी छिपाया, फिर एक भट्टा मैली धोतीकी पहन ली और दासीका वेष बनाकर गलियोंमें रुदन करती हुई फिरने लगी । उसकी देखकर अनेक स्त्री और पुरुष उसके पोछे फिरने लगे और कहने लगे कि तू कौन है ? और क्या चाहती है ? द्रौपदी उन सबसे कह देती थी कि मैं दासी हूं, और नौकरी चाहती हूं । मुझे जो खानेकी देगा उसीके यहां नौकरीभी कलंगी, परन्तु द्रौपदीका रूप, तेज और मोठी बाणीकी देखकर किसीको निश्चय नहीं होता था कि यह दासी है, और केवल अन्नके लिये घूम रही है ? राजा विराटकी बड़ी स्त्रीका नाम कौक्यी था, उसने अपने झरोखेसे द्रौपदीको देखा, उसने ऐसी रूपवती स्त्रीकी एक वस्त्र धारण किये देखकर बल्लव आश्चर्य किया, और दासियोंसे बुझा लिया ।

रानी द्रौपदीसे बोली, हे कल्याणि ! तुम कौन हो ? और क्या चाहती हो ? द्रौपदीने कहा मैं दासी हूं, और जो नौकर रखे उसीके

यहां रहना चाहती हूं। रानी बोली, हे भामिनि । तुम्हारे समान सुन्दरी स्त्री दासी कौन होगी ? दासी तो चलने घूमनेके योग्य और काम करनेके योग्य स्त्रिया होती हैं। दासी ऊंची एड़ीवाली, गम्भीर बुद्धि वचन, और नाभीवाली, ऊंचे आंख, नाक, हृदय, कान, स्तन और हृदयवाली, लाल तलवे, हथेली, नखून नेत्र और जिह्वावाली, हंसके समान शब्दवाली, उत्तमकेश, उत्तम स्तन, थोड़ी अवस्था, कठोर-स्तन और नितम्बयुक्त दासी नहीं होती हैं। तुम उन उत्तम लक्ष्णोंसे भरी हो जो कश्मीर देशकी स्त्रियोंमें होते हैं ! तुम्हारे नेत्र टेढ़े हैं और काटाक्ष विचित्र हैं, तुम्हारे ओठ कन्दरीके समान लाल और कमर अत्यन्त पतली है, तुम्हारा गला शङ्खके समान स्वर ऊंचा, मुख चन्द्रमाके तुल्य और नेत्र शरत् ऋतुके कमलके समान हैं। तुम्हारे शरीरसे पद्मकी सुगन्धि आती है, हमें निश्चय होता है कि तुम साक्षात् लक्ष्मी हो। अब तुम हमसे सत्य कहो कि तुम कौन हो ? क्योंकि तुम्हारा दासी होना हमको निश्चय नहीं होता। क्या तुम यक्षी, गन्धर्व्वी, देवी, अप्सरा, देवकन्या, नागकन्या, नगरकी देवता, विद्याधरी, किन्नरी, या साक्षात् रोहिणीही हो ? क्या तुम अलम्बुषा, मिश्रकेशी, पुण्डरीकी, मालिनी, या साक्षात् इन्द्राणीही हो ? क्या ब्रह्माने अपना चतुरता तुम्हारे बनानेमें समाप्त कर दी है ? हे सुन्दरी ! क्या तुम साक्षात् देवियोंमेंसे कोई हो ? क्योंकि रूपमें देवीही प्रशंसाके योग्य हैं।

द्रौपदी बोली, मैं तुमसे सत्य कहती हूं कि मैं कोई देवी राक्षसी या असुरी नहीं हूं, मैं दासी हूं और बाल बाधनेकी बद्धत अच्छी रीति जानती हूं। हे सुन्दरी ! मैं उबटन लगाना भी अच्छा जानती हूं, मैं कमल और चमेली आदिकी विचित्र माला

भी बनाना जानती हूं, मैंने वद्धत दिन तक कृष्णकी प्यारी पटरानी सत्यभामाकी सेवा करी है। पाण्डवोंकी प्यारी स्त्री जगतमें एक सुन्दरी द्रौपदीके सङ्ग मैं वद्धत दिनतक रही हूं। वह मुझको भोजन और वस्त्र देती थीं, वैसेही मैं उनके सङ्ग विहार भी करती थी, साक्षात् सुन्दरी द्रौपदीने मेरा नाम मालिनी रक्खा था। हे देवि ! सोई अब मैं तुम्हारे घरमें आई हूं।

रानी बोली, मैं तुमको अपने शिरपर रखूंगी, यदि साक्षात् राजा भी अनेक कारणोंसे तुमको न रखना चाहेंगे तो तुमको मैं रखूंगी। यह जितनी राजकुलकी स्त्रियां हैं, सब तुम्हारे रूपकी देखकर मोहित हो रही हैं। तब ऐसा पुरुष कौन होगा जो तुमको देखकर मोहित न होगा ? हे सुन्दरी देखो हमारे घरके जितने वृक्ष हैं, ये सबभी तुमको देखकर नीचे झूट जाते हैं, तब तुम कौनसे पुरुषको मोहित नहीं कर सकती हो ? हे सुन्दर हंसनेवाली ! हे सुन्दर कमर वाली ! हे सुन्दर मुखवाली ! राजा विराट जब तुम्हारे विचित्र शरीरको देखेंगे तब मुझको छोड़कर तुम्हारे वशमें होजायेंगे। हे चञ्चलनैनी ! तुम्हारे सुन्दर अङ्गकी देख कर राजा विराट कामके अत्यन्त वशमें होजायेंगे, यह हो नहीं सकता कि जो पुरुष प्रति दिन देखे और तुम्हारे वशमें न हो। मुझे पूर्ण निश्चय है कि राजा तुमको देखतेही तुम्हारे वशमें होजायेंगे। जैसे कोई वृक्षपर चढ़कर वृक्षको काटता है, और वह गिरकर मर जाता है, वैसेही मैं तुमको राजभवनमें रहनेकी आज्ञा देती हूं। जैसे कंकड़की स्त्री अपना सर्वनाश करनेके लिये गर्भ धारण करती है, तैसेही मैं तुमको राजभवनमें रहनेकी आज्ञा देती हूं।

द्रौपदी बोली, हे सुन्दरि ! मुझे विराटराज अथवा और कोई पुरुष प्राप्त नहीं कर

सकता है, क्योंकि किसी महा बलवान गन्धर्वराजके पाच पुत्र मेरे पति है, वे सदा दुःख और दुराचारोंसे मेरो रक्षा करते है, जो मुझसे पैर नहीं धुलावे और जूठा भोजन नहीं दे उसीसे मेरे पति प्रसन्न रहते है। जो पुरुष मुझे साधारण स्त्रीके समान प्राप्त करना चाहता है, वह उसी रात्रिको इस जगतसे विदा होजाता है। हे सुन्दरि। मेरे चित्तको कोई नहीं चला सकता है, क्योंकि वे बलवान गन्धर्व मेरे अत्यन्त प्यारे पति है, वे लोग गुप्त रूपसे मेरी सदा रक्षा करते है।

रानी बोलो, हे सुन्दरि। तुम जैसे चाहती हो वैसेही मेरे घरमे रहो, मैं तुमसे कभी पैर और जूठे वर्तन नहीं धुलाऊंगी।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन्। जनमेजय। इस प्रकार धर्मचारिणी द्रौपदी राजा विराटकी स्त्रीके यहा रहने लगी, परन्तु किसीने उसको जाना नहीं।

८ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन्। जनमेजय। सहदेवभी ग्वालेका वेष बनाके और ग्वालोको ऐसी भाषा बोलते हुए राजा विराटके पास पहुँचे। राजाने उस विचित्र पुरुषको गडवोंके पास खड़ा देखकर विस्मित होकर अपने मन्त्रियोंके द्वारा उसे बुलाया, इतनेमें सहदेव समामें पहुँच गये। राजा उस विचित्र पुरुषको देखतेही उठ खड़े हुए और कहने लगे, हे पुरुषसिंह। तुम कौन हो? किसके पुत्र हो? और क्रा करना चाहते हो? हमने तुमको पहले कभी नहीं देखा था, तुम सत्य कहो कि कौन हो? राजाके वचन सुन शत्रुनाशन सहदेव मेघके समान गभीर वाणीसे बोले, मैं जातिक्रा वैश्यहूँ, मेरा नाम अरिष्टनेमी है, मैं पहले समयमें अरुन्धेष्ठ महाराज युधिष्ठिरके यहा गडवोंकी

संख्या करता था। अब मैं नहीं जानता कि राजसिंह पाण्डव लोग कहां और कैसे है? हे राजन्। आप जानते है कि, बिना जीविकाके कोई नहीं जी सकता और मुझे आपके सिवा दूसरे राजामें भक्तिभी नहीं है।

महाराज विराट बोले, हे शत्रुनाशन। तुम ब्राह्मण या कोई क्षत्रिय हो, क्योंकि बैश्योंका कर्म तुममें अनुचित जान पड़ता है। जो हो, तुम समुद्र पर्यन्त पृथ्वीके राजा हो, अब तुम हमसे सत्य कहो कि तुम कौन हो? तुम कौन से राजाके राज्यसे हमारे यहा आये हो? और कौन कौनसी विद्या जानते हो? हमारे यहा किस प्रकारसे रहोगे और क्रा वेतन लोगे?

सहदेव बोले, पाचो पाण्डवोंमें बड़े महाराज युधिष्ठिर थे, उनके यहा आठलाख गडवोंके वर्ग थे, और सौ हजार एव दो सौ हजार गडवोंके वर्ग थे। मैं उन सबका स्वामी और संख्या करनेवाला था, इसी लिये राजाने मुझको तन्त्रिपालका पद दिया था। भूत भविष्यत और वर्तमान सब संख्याको मैं जानता हूँ, चारो ओर दस दस योजन तक जितनी गज रहती है उन सबको मैं जान सकता हूँ। महात्मा युधिष्ठिरही मेरे गुणको जानते थे और मैंभी कुरुराज युधिष्ठिरके सब गुणोंको जानता हूँ। मैं उन सब उपायोंको भी जानता हूँ जिनसे गडवोंकी वृद्धि शीघ्र हो और गडवोंके सब रोगोंकी चिकित्सा भी मैं जानता हूँ हममें यहा सब गुण है, हम उन बछड़ोंकोभी पहचान सकते है जिनके मूत्रको संघने मातसे बन्ध्याके पुत्र होते है, और भी बछड़ोंके सब उत्तम लक्षणोंको मैं जानता हूँ।

राजा विराट बोले, हमारे यहा एक वर्षावाले एक लक्ष पशु हैं, हम उन सबको तुम्हें दिते हैं, आजसे हमारे सब पशु तुम्हारे आधीन रहें।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, पुत्रपुत्रेष्ठ सहदेव राजा विराटसे ऐसा वार्तालाप करके सुखपूर्वक उनके यहां रहने लगे । राजाने उनकी इच्छानुसार जीविका कर दी, परन्तु किसीने उनकी पहचाना नहीं ।

६ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजा जनमेजय ! उसी समय एक दूसरा मनुष्य दिखाई दिया जो स्त्रियोंके ऐसे बस्त्र और आभूषण धारण किये हुए था, जो सुन्दर कुन्दन और कर्णफूल पहने था । पुरुषोंने उसे एक स्थानके नीचे खड़े हुए देखा, वह बड़े हाथीवाला पुरुष अपने बालोंको ठीक करके अपने पराक्रमसे मतवार हाथीके समान पृथ्वीको कंपाता हुआ राजा विराटकी सभाके पास आया । उस शत्रुनाशक इन्द्रपुत्र मतवारे हाथीके समान पराक्रमी महातेजस्वीको छिपे हुए वेशमें देखकर सब लोग आश्चर्य करने लगे । तब राजाने अपने सब सभासदोंसे पंथा, यह कौन है ? मैंने इसको कभी नहीं देखा और न सुना है ? राजाके प्रश्नका किसीने कुछ उत्तर नहीं दिया । तब राजाने आश्चर्य करके उससे पूछा, तुम महा पराक्रमी देवतोके समान रूपवाले, हस्तिराजके समान बली कौन हो ? तुम शङ्खके और सोनेके आभूषण क्यों पहने हो ? और यह चोटो इस प्रकार क्यों गुही है ? ऐसे कुण्डल पहननेका क्या प्रयोजन है ? तुम इस मालासे ऐसे दीख पड़ते हो जैसे कोई वीर धनुषबाण और कवच धारण करके शोभित होता है । आजसे तुम वाहनों पर चढ़के घूमो, तुम मेरे पुत्र वा मेरे तुल्य होकर यहां निवास करो । मैं वहुत बूढ़ा हो गया हूँ, इस लिये अपने राज्यका सार सब मन्त्रियोंको देना चाहता हूँ आजसे तम्हीं इस देशका

राज्य करो । मेरे मनमें आता है कि तुम्हारे ऐसे पुरुष नपुंसक नहीं होते ।

अर्जुन बोले, हे नरदेव । मैं नाचना गाना और वजाना जानाता हूँ, इस लिये आप मुझे उत्तराके घरमें रहनेकी आज्ञा दीजिये । मैं राजपुत्रीकी नाचना गाना सिखलाऊंगा । जो आपने हमसे हमारे रूपका वर्णन किया सो केवल शोक बढ़ाने वाला है । मेरा नाम बृहन्नला है । मेरा कोई पुत्र, पुत्री, साता पिता नहीं है ।

विराट बोले, हे बृहन्नल ! जो तुमने वरदान मांगा तुम्हें हम सोई देते हैं, तुम हमारी पुत्री और उनकी सखियोंको नचाओ, परन्तु मेरी बुद्धिमें आता है कि तुम समस्त पृथ्वीके राजा होनेके योग्य हो ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, इस प्रकारसे राजा विराटने बृहन्नलासे वार्तालाप करके नाचने और गानेके काममें नियुक्त कर दिया । इसके पहले राजाने अपने मन्त्रियोंसे सम्मति करके उसकी परीक्षा कराई और स्त्रियोंसे भी उसकी परीक्षा कराली । राजाने सुना कि बृहन्नला निश्चय नपुंसक है, तब उसकी राजपुत्रीके घरमें जानेकी आज्ञा दी । अर्जुन भी उसी दिनसे राजा विराटकी पुत्रीकी नाचना गाना और वजाना सिखलाने लगे । राजपुत्री, सखी और उसकी दासो लोग अर्जुनसे वहुत प्रेम करने लगीं । इस प्रकार इन्द्रीजीत अर्जुन छल विष बनाकर राजपुत्रीकी सेवा करने लगे, परन्तु किसी बाहर वा भीतरके पुरुषने उन्हें पहचाना नहीं ।

१० अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय ! उसी समय नकुल राजा विराटकी सभामें पहुँचे, इनकी आते हुए देखकर लोग शङ्का करने लगे कि यह क्या भेदोंमेंसे निकल कर मर्यादा

उदय हुआ है ? राजा विराटने उसे देखा कि यह घोड़ोंको देखता हुआ चला आता है । तब उन्होंने अपने मन्त्रियोंसे पूछा कि यह देवतुल्य पुरुष कहां चला आता है ? यह हमारे घोड़ोंको देख रहा है, इससे जान पड़ता है कि यह बुद्धिमान् पुरुष निश्चय घोड़ोंकी विद्या जाननेवाला है, इसको शीघ्र हमारे पास ले आवो, हमको जान पड़ता है कि यह देव तुल्य पुरुष महावीर है, इतनेहीमें शत्रु नाशक नकुल राजाके पास पहुंच गये और कहने लगे, हे महाराज ! आपकी जय हो और आपके समाजका कल्याण हो । मैं घोड़ोंकी सब विद्याका जानता हूं और रथ हाकनेमें परम निपुण हूं । आपके यहां सारथीकी नौकरी करना चाहता हूं ।

विराट बोले, मैं तुम्हें वाहन, भोजन और स्थान देता हूं ; तुम मेरे सारथी होनेके योग्य हो । तुम कौन हो ? कहासे आये और किससे पुत्र हो ? तुममें क्या विद्या है ?

नकुल बोले, पाचों पाण्डवोंसे बड़े भाईका नाम महाराज युधिष्ठिर था, उन्होंने मुझे घोड़ोंका स्वामी बनाया था । हे शत्रुनाशन ! मैं घोड़ोंके स्वभाव, प्रसन्न करनेकी रीति, दुष्ट घोड़ोंके ठीक करनेका यत्न और उनके सब रोगोंकी चिकित्साको जानता हूं, मेरा घोड़ा कभी कायर नहीं हो सकता, मुझसे शिष्टित घोड़ी कभी दुष्ट नहीं होगी, मुझको राजा युधिष्ठिर और सब लोग ग्रन्थिक नामसे पुकारते थे ।

विराट बोले, यह कर्म तुम्हारे योग्य नहीं है, तुम जगतके राजा होनेके योग्य हो, परन्तु यदि तुम्हारी ऐसीही इच्छा है तो हमारे घोड़े आदि सब वाहनोंके स्वामी होकर रहो । मेरे सब सारथी और अश्वयोजक तुम्हारे आधीन होकर रहेगी । अब तुम कहो तुम्हें कितना धन चाहिये ? तुम्हारी चेष्टा महाराज युधि-

ष्ठिरसे मिलती है । कहो महाराज युधिष्ठिर किस प्रकारसे सेवकोंके बिना बनमें रहते हैं ?

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, इस प्रकार गन्धर्व-राज तुल्य नकुलकी राजा विराटने प्रसन्न होकर अपने घरमें रक्खा, परन्तु किसीने उनको पहचाना नहीं । इस प्रकार समस्त पृथ्वीके स्वामी महा पराक्रमी पाण्डव लोग अपने अपने रूपोंको छिपाकर दुःखित होकर राजा विराटके यहां रहने लगे ।

११ अध्याय समाप्त ।

प्रवेश पर्व समाप्त ।

अथ समय पालन पर्व ।

महाराज जनमेजय बोले, इस प्रकार महा पराक्रमी पाण्डव लोग छिपकर विराट नगरमें क्या करते थे सो हमसे कहिये ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, पाण्डव लोग छिपकर विराट नगरमें राजाको प्रसन्न करते हुए जो जो कर्म करते थे सो तुम अवगण करो ।

महात्मा दण्डिन्द और धर्मके वरदानसे पाण्डव लोग छिपकर विराट नगरमें रहने लगे । राजा युधिष्ठिर राजा विराट और उनके पुत्रोंके पगारे सभासद हुए, जुबके जाननेवाले राजा युधिष्ठिर विराट और उनके पुत्रोंको इस प्रकार खेलाने लगे कि जैसे कोई सूतमें बस्त्रे हुए पक्षियोंको खिलाता है । महाराज युधिष्ठिर राजासे जीतकर राजासे छिपाकर अपने भाइयोंको उचित धन देने लगे । भीमसेन उत्तम उत्तम भोजन चौकीमें जो राजासे वचते थे वह युधिष्ठिरको दे जाते थे । अर्जुनको रनिवासमें जो पुराने वस्त्र मिलते थे, वे सब अपने भाइयोंकी बांट देते थे । सहदेव अहि-रका वेष बनाकर पाण्डवोंको दूध दही और घृत देजाते थे । नकुल भी राजा विराटको प्रसन्न करके जो धन पाने थे सो सब अपने भाइयोंकी दे जाते थे । तपस्विनी द्रौपदी

पतियोंकी देखकर प्रसन्न होती थी और जिसमें कोई न पहचाने ऐसे यत्न करती थी। इस प्रकार महारथ पाण्डव लोग छिपकर विराट नगरमें रहने लगे, जैसे गर्भमें रहते थे। उनको वहाभी धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी शङ्का और भय बना रहता था। इस प्रकार उनकी वहां रहते रहते तीन महीने बीत गये, चौथे महीने उस देशमें ब्राह्मणोंका एक भारी मेला हुआ, उस मेलेमें सब देशोंके अनेक लोग उपस्थित हुए और सब देशोंसे सहस्रों मल्ल लोगभी आये। वह समाज शिवके समाज तत्त्व होगया। उसमें कालखण्ड दैत्योंके समान महाशरीरवाले, बल और बौद्धिक भरे, सिंहके समान कर्ण और विशाल कमरवाले अनेक मल्ल आये। वे सब लोग राजासे पूजित होकर राजाके पास अखाड़ेमें बैठे। उनमें एक बड़ा बलवान मल्ल था, वह सबसे लड़नेको कहने लगा, उस गर्जते हुए मल्लसे लड़नेकी कोई खड़ा न हुआ। जब अखाड़िका कोई मल्ल उससे न लड़ सका, तब राजाने भीमसेनको बुलाया, परन्तु भीम दुःखसे लड़नेको उद्यत न हुए। फिर भीमने विचारा कि हम राजाकी आज्ञाकी टालमो नहीं सकते हैं। तब पुरुषसिंह भीम मतवारे शार्ङ्गलके समान अखाड़ेमें पहुँचे और राजाकी प्रशंसा करके काका बाधके खड़े होगये। भीमकी देख सब लोग प्रसन्न हुए। अनन्तर भीमने महा बलवान बृत्वासुरके समान शरीरवाले मल्लकी पुकारा। भीम और जीमूत नामक महा उत्साही, महा पराक्रमी, महाबली साठ वर्षके मतवारे हाथियोंके समान युद्ध करने लगे। अनन्तर उन दोनों पुरुषसिंहोंने बाहु युद्ध करना आरम्भ किया। उन दोनों प्रसन्न महावीरोंका अपनी अपनी जयकी इच्छासे ऐसा युद्ध हुआ जैसे बज्र और पर्वतका होता है। वे दोनों महाबलवान वीर प्रसन्न होकर जयकी इच्छासे एक दूसरेके छिद्रकी देखने लगे। दोनों

प्रसन्न होकर महा मतवारे हाथियोंके समान युद्ध करने लगे। वे लोग एक दूसरेके कर्णके निवारण करने लगे। फिर विचित्र बाहुयुद्ध करने लगे, वह एक दूसरेकी मारने लगा, कोई एकको उठाकर फेंकने लगा, एक दूसरेकी मुँह मारने लगा। एक दूसरेकी घुमाकर फेंकने लगा। कोई दूसरेकी बज्रके समान तमाच मारने लगा, कोई शलाका और नखूनों मारने लगा, कोई पत्थरके समान शब्दबाल जाँघ और शिरसे युद्ध करने लगे। उस समान यह घोर युद्ध बिना शस्त्रके हुआ। दोनों वीरों अपने प्राणतक छोड़नेकी इच्छा करी। तब सब लोग उस समाजमें हीही शब्द करने लगे तब वे इन्द्र और बलिके समान वीर फिर युद्ध करने लगे। कभी वे सन्मुख हो जाते थे, कभी एक दूसरेकी फेंक देता था, कभी एक दूसरेकी खींचता था, कभी एक दूसरेको पैरसे मलता था, इस प्रकार उन्होंने बहुत देर तक युद्ध किया। विशालबाहु, युद्धनिपुण जेठ हृदयवाले दोनों वीर गर्जन लगे और सुदूर तुल्य हाथोंसे एक दूसरेकी मारने लगे। अनन्तर शत्रुनाशन भीमने गर्जकर उस गर्जते हुए मल्लकी अपने हाथोंमें इस प्रकार उठा लिया, जैसे कोई शार्ङ्गल हाथीकी उठा लेता है। महाबाहु महाबलवान भीमने जब उस मल्लकी हाथोंमें उठा लिया, तब सब योद्धा और राजा विराट आश्चर्य करने लगे। तब भीमने उस मल्लकी सीवार घुमाया और चेतनारहित देखकर पृथ्वीमें पटककर पीस दिया। उस प्रसिद्ध जीमूत नामक मल्लके सरनेसे राजा विराट अपने बान्धवोंके सहित भीमसेनसे बहुत प्रसन्न हुए। अनन्तर कुवैर तुल्य महामनसी राजा विराटने प्रसन्न होकर भीमसेनकी बहुत धन दिया। इस प्रकार भीमने अनेक महा व्रतवान मल्लोंकी मारकर राजा विराटकी बहुत प्रशंसा कर लिया। जब उनके समान वहां कोई

रूप न रहा तो राजा विराटने भीमको सिंह पात्र और मतवारे हाथियोंसे लड़ाना आरम्भ किया । इसके पश्चात् राजा विराटने भीमसेनको अपने सङ्ग रनिवासमें ले जाकर महा मतवाले ली सिंहीसे लड़ाया । अर्जुननेभी अपने पाचने और गानेसे राजा विराट और रनिवासकी सब स्त्रियोंकी अपने वशमें कर लिया । कुलनेभी शीघ्र चलनेवाले घोड़ोंको उत्तम श्रेष्ठा देकर राजा विराटकी प्रसन्न किया । राजाने प्रसन्न होकर नकुलको बृहत् धन देया । पुरुषसिंह विराटने अपने बैलोंको प्रच्छा देखकर सहदेवकी बृहत् धन दिया । द्रौपदी अपने महारथ पतियोंको इस क्लेशमें डूबे हुए देख प्रसन्न नहीं होती और सदा लम्बे श्वास लिया करती थी । पुरुषसिंह पाण्डव लोग राजा विराटके कर्म करते हुए इस प्रकार छिपकर विराट नगरमें रहने लगे ।

१२ अध्याय समाप्त ।

विराट पर्वमें समय पालन पर्व समाप्त ।

(अथ कीचकवधपर्व ।)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय । इस प्रकार महारथ पाण्डवोंने छिपकर राजा विराटके घरमें दस महीने बिता दिये । द्रौपदी सुदेष्णा राणीकी सेवा करती हुई दुःखसे दिन काटने लगी । द्रौपदीने अपनी सेवासे रनिवासकी सब स्त्रियोंकी प्रसन्न कर लिया, वर्ष समाप्त होनेसे थोड़े दिन पहले राजा विराटके सेनापति महाबलवान कीचकने द्रुपदराजपुत्रीको देखा । देवताकी स्त्रियोंकी समान उसे रूपवती देख कीचक कामसे व्याकुल होगया और उसके प्रसन्न करनेकी यत्न करने लगा । कीचक कामरूपी अग्निसे जलता हुआ सुदेष्णाके पास जा हसकर कहने लगा, मैंने इस सुन्दरीकी पहले कभी राजा विराटकी रनिवासमें नहीं देखा था । इसने अपने रूपसे मुझे

उन्नत कर दिया है, इस सुन्दरीके शरीरसे पद्मकी सुगन्धि आती है । हे सुन्दरी ! तुम कहो कि यह मेरे हृदयमें निवास करनेवाली सुन्दरी कौन है ? यह मेरे चित्तको मथकर अपने वशमें कर रही है, मुझे इस रोगकी कोई औषधी नहीं मिलती है, तुमकी धन्य है कि जिसकी ऐसी सुन्दरी महारूपवती दासी है । मेरी बुद्धिमें यह तुम्हारी दासी होनेके योग्य नहीं है, इससे यह मेरी और मेरे सर्वस्वकी स्वामिनी बने । मैं चाहता हूँ कि, यह अनेक हाथी, घोड़े, धन, दास दासी, अन्न, पान और सोनेके मनोहर भूषणोंसे भरे हुए मेरे घरकी शोभित करे ? तब सुदेष्णाने कीचककी प्रार्थनाको स्वीकार कर लिया, अनन्तर कीचक द्रुपदराज पुत्रीके पास जाकर शान्ति पूर्वक इस प्रकारसे कहने लगा, जैसे कोई महासिंहकी पुत्रीसे वनमें सियार कुछ कहै । हे सुन्दरी ! हे कल्याणि ! हे सुसुखि ! तुम कौन और किसकी स्त्री हो ? तथा विराट नगरमें कहांसे आई हो सो सब हमसे कहो ? हे सुन्दरि । हे उत्तम भौहवाली । तुम्हारा रूप कीमलता और तेज सब स्त्रियोंसे अधिक है । तुम्हारा शोभा-भरा मुख निर्मल चन्द्रमासे भी अधिक है, तुम्हारे विशाल नेत्रकमलकी भी लज्जित करते हैं । हे सर्वज्ञ-सुन्दरी ! तुम्हारी बोली कीकिलिकी बोली समान है । मैंने तुम्हारे समान रूपवती स्त्री पृथ्वीमें कभी न देखी और न सुनी है । हे सुश्रीणि ! हे अनिन्दिते । हे उत्तम नयनवाली हे सुसुखि । तुम क्या साक्षात् कमल-निवाशिनी लक्ष्मी हो ? अथवा भूति, लज्जा, कीर्ति, या शोभा हो ? क्या तुम महारूपवती मन्त्रा रति हो ? हे उत्तम भौहवाली । तुम्हारी शोभा साक्षात् चन्द्रमाके समान विराजमान है । तुम्हारे नेत्र बृहत् उत्तम हैं । तुम्हारे हसते समय चादनी भी लज्जित हो जाती है । दिव्य वस्त्रसे छिपे हुए, तेजसे भरे हुए,

तुम्हारे महासुन्दर चन्द्र-मुखको देखकर कौन काम-पीड़ित नहीं हो सकता ? तुम्हारे चार आदि आभूषणोंके योग्य सुन्दर, जंचे अन्तर-रहित, कठोर, कमलकी कालीके समान सुन्दर स्तन सुभे कामके फाड़के समान पोड़ा देते हैं। हे उत्तम हंसनेवालो ! हे उत्तम भौंहवालो ! तुम्हारी त्रिवलीसे शोभित स्तनके बोझसे नीचा झुआ सुझेमें आने योग्य मरका शरीर सुभे वेश किये देता है। तुम्हारी नदीके तटके समान सुन्दर जङ्घाओंको देखकर मेरे शरीरमें असाधारण काम रोग उत्पन्न हुआ है। हे भामिनि ! यह निर्दय कामदेव मेरे शरीरको अग्निके समान जला रहा है। इस कामदेवने सङ्कल्प किया है कि जबतक तुम्हारा सङ्ग न होगा, जबतक जलायेही जाऊंगा। हे सुन्दर रूपवाली ! अपने मिलापरूपी वर्षाकाल और सन्ध्यागुरुपी मेघसे इस जलती हुई काम अग्निको बुझाओ। हे चन्द्रमुखी ! तुम्हारे सङ्गमको इच्छासे मेरे चित्तको उत्कट करनेवाले कामके प्रचण्ड वाण दयारहित होकर मेरे हृदयको वेध रहे है। ये घोर कामदेवके वाण मेरे चित्तको पागलके समान बना रहे है, इनसे तुम मेरी रक्षा करो। हे सुनयनी ! हे विलाशिनी ! तुम उत्तम माला और विचित्र भूषणोंको धारण करके हमारे सङ्ग अपनी इच्छाके अनुसार विचार करो। हे मन्दगामिनि ! तुम सुख करनेके योग्य हो, और यहा सुख नहीं मिलता है। इस लिये यहा दुःख सहकर मत रहो और मेरे घरमें रहकर अनेक सुख भोगो। मेरे घरमें रहनेसे तुम्हें अमृतके समान मीठी अनेक प्रकारकी पीनेकी वस्तु मिलेंगी उन उत्तम वस्तुओंको पीकर तुम सुखपूर्वक विचार करना। हे महाभागे ! हमारे सङ्गसे तुम्हें उत्तम सौभाग्य प्राप्त होगा, और अनेक प्रकारके भोग तथा

पीनेकी वस्तु मिलेंगी। हे भामिनि ! इस समय तुम्हारा यह सब रूप निरर्थक जा पड़ता है, क्योंकि बिना उत्तम मालाके तु अच्छो नहीं लगतो हो। हे सुन्दर ! हे दुष्ट स्त्री शोभित नहीं होती, तैसेही तुम दीखतो हो। मैं तुम्हारे लिये अपनी पुरा सब स्त्रियोंको छोड़ दूंगा अथवा वे सब तुम्हा दासो होकर रहेंगी। हे सुन्दर हंसनेवाले हे पाप-रहित ! मैं आजसे तुम्हारे दास समान होकर रहूंगा, और सदा तुम्ह वशमें रहूंगा।

द्रौपदी बोली, हे सूतपुत्र ! तुम्हा कल्याण हो। मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूं क्योंकि मैं नीचवर्णमें उत्पन्न हुई हूं, तुम मेरी इच्छा क्यों करते हो ? तुम जानो हो कि स्त्री अपने पतिओंको वदत या हाती है। और मैं दूसरेकी स्त्री हूं, इस लिये तुम्हारे योग्य नहीं हूं। तुम स्त्रीधर्म विचार करो ! तुमको उचित है कि दूसर स्त्रियोंके ऊपर कभी मन न चलाओ, क्योंकि बुरे कर्मको छोड़नाहो पुरुषोंका धर्म है जो पापी भूलसे कर्म करता है, वह मा अयश और भयको प्राप्त होता है।

श्रीवैशम्पायन सुनि बोली, द्रौपदीके ये वचन सुन, दुष्ट कामहीहित कीचक परस्त्रियोंके पास जानेके अनेक प्राणनाशक नो निन्दित दोषोंको जानकर भो इन्द्रियों जीत न सका, और द्रौपदीसे कहने लगा हे सुमुख ! हे उत्तम हंसनेवालो ! मैं तुम्हा लिये कामसे अत्यन्त पीड़ित होगया हूं, इस लिये तुम सुभसे ऐसे वचन मत कहा, हे सुन्दर ! हे भोर ! सुभे यह निश्चय है कि तु सुभ प्यारे वचन कहनेवाली पुरुषको छोड़ कर अवश्य पकताओगी, हे उत्तम कमरवानी मैं इस सब राज्यका स्वामी, वसानेवाला और पृथ्वी भरमें एकही बलवान हूं। स्मर

धूमिं रूप, यौवन, सुन्दरता और उत्तम
गोमैं मेरे समान दूसरा कोई पुरुष नहीं
। हे कल्याणि । उपमा रचित, भोगने
य उत्तम भोगोंको तुम क्यों नहीं भोगना
हती हो ? हे सुमुखि । तुम इस समस्त
ज्यकी स्वामिनी हो, अब सुभसे दिये
ए राज और भोगोंको भोगी, मेरी सेवा
रो ।

पतिव्रता द्रौपदी कीचकके ऐसे बुरे वचन
नकर उसकी निन्दा करती हुई कहने लगी ।

द्रौपदी बोली, हे रूतपुत्र । तू भूलमें
तपड़ै, अपने प्राणको नाश मत कर ।
रे पति बड़े बलवान पांच गन्धर्व हैं, वे सदा
री रक्षा करते हैं, इस लिये मैं तुमको प्राप्त
हीं हो सकती हूँ, वे क्रोध करके तुम्हें मार
गलेंगे । इससे साधु बन कर रह, अधर्म मत
कर । तू उस मार्गको चलना चाहता है,
जसपर मनुष्य नहीं चल सकते । तेरो वैसी
शा है, जैसे नदीके एक तटपर बैठा हुआ
मूर्ख बालक तेरकर दूसरे तटपर जानेकी
इच्छा करता है । तू चाहे पृथ्वीके भीतर या
आकाशमें, या समुद्रके पारही भाग जायगा
तोभी आकाशगामी महाबली मेरे पति देवपुत्र
तुम्हें जीता नहीं छोड़ेंगे । रे कीचक ! तू मुझे
कालरात्रिके समान मत चाह । क्या तैंन
सुभको वैसाही सुलभ समझा है, जैसे माकी
गोदमें सोया हुआ लड़का आकाशके चन्द्रमाको
सुलभ समझता है ? मैं गन्धर्वोंको प्यारी स्त्री
हूँ, वे तुम्हको आकाश और पातालमें भी जीता
नहीं छोड़ेंगे । मुझे जान पड़ता है कि यह
तेरी वरीदाष्टि तेरा नाश कर देगी ।

१३ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजा जनमे-
य । द्रौपदीके ऐसे वचन सुन मर्यादा-रहित
त काम पीड़ित कीचक सुदेष्णाके पास

जाकर कहने लगा, हे कैकेयी । जिस प्रकारसे
सैरिन्धी मेरे वशमें हो तुम वैसाही यत्न करो ।
हे सुदेष्णा । यदि वह गजगामिनी सैरिन्धी मेरे
वशमें न होगी तो मैं अपने प्राणोंको छोड़ दूंगा ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महामनस्विनी
विराटकी रानीने बहुत रोते हुए कीचकके
वचन सुनकर उसके ऊपर कृपा करी । रानी
अपने मनमें निश्चय करके द्रौपदी और रूत-
पुत्रके मिलानेका यत्न विचारने लगी । सुदेष्णा
कीचकसे बोली, तुम किसी पर्व्वमें मद्य और
अन्न बनाकर अपने घरमें रखना मैं सैरिन्धीको
मद्य लेने तुम्हारे घरमें भेजुंगी, तब तुम बाधा-
रहित एकान्त स्थानमें इसकी ले जाना, वहा
इसे शान्त करके अपनी इच्छानुसार विचार
करना ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अपनी बहिनके
वचन सुन कीचक वहांसे चला गया, और अपने
घरमें राजोंके योग्य उत्तम मद्य तथा अनेक
प्रकारके उत्तम भोजन बनवाये । उन सब
भोजनोंको उसने उत्तम रसोद्योंसे बनवाया ।
भोजन बनानेके पश्चात् सुदेष्णाकी बुला भेजा ।
तब सुदेष्णाने द्रौपदीसे कहा, हे सैरिन्धी ! तुम
उठकर कीचकके घरमें जाओ मुझे बहुत प्रसन्न
लगौ है, उसके घरसे पानी ले आओ ।

द्रौपदी वाली, हे रानी । तुम स्वयं जानती
हो कि वह कैसा नितर्क पुरुष है ? इस लिये
मैं उसके घरमें नहीं जाऊंगी । हे सुन्दरि !
मैं तुम्हारे यहा रहकर अपने पतियोंके विरुद्ध
व्यभिचार नहीं करूंगी । मैं कभी कामक्रीड़ा
नहीं करूंगी । हे देवि । तुमको स्मरण होगा
कि मैंने तुम्हारे यहां आनेके समय क्या प्रतिज्ञा
कर ली थी ? हे सुन्दरि । मूर्ख कीचक कामके
वशमें होगया है, वह मुझे देखकर अधर्म
करेगा । हे देवि ! औरभी अनेक दासी तुम्हारे
यहा हैं, तुम दूसरी किसीको भेज दो ।

सुदेष्णा बोली, हे सैरिन्धि ! मैं तुम्हको

वह भेजती हूँ, वह तुमको मार नहीं डालेगा, सुदेष्णाने यह कहकर ठक-नेके सहित सोनिका पात्र द्रौपदीके हाथमें दिया। तब द्रौपदी शङ्का करती और रोती हुई प्रार्थनाको श्रवण करने लगी, और मद्यका पात्र लेकर कीचकके घरको चली। मार्गमें द्रौपदी बोली, मैंने अपने पतियोंके सिवा आज तक दूसरे पुरुषके दर्शन नहीं किये; वही सत्य मेरी रक्षा करे, जिससे कीचक मेरे संग कुछ सत्याचार न करने पावे।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, उस समय द्रौपदीने थोड़े समय तक सूर्यका ध्यान किया। तब सूर्यने सुन्दरी द्रौपदीकी सब अभिलाषाकी जान लिया, और एक युष्म राक्षसको उसकी रक्षाके लिये भेज दिया। उस राक्षसने निन्दारहित द्रौपदीकी रक्षा करी। डरी हुई हरिनके समान द्रौपदीको अपने पास आते हुए देख कीचक प्रसन्न होकर इस प्रकार उठा, जैसे कोई बटोही नावको देखकर उठता है।

१४ अध्याय समाप्त ।

कीचक बोला, हे सुन्दरि! मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ, यह रात्रि मुझे सुख से बीती। अब तुम मेरे स्थानकी स्वामिनी होकर आई हो। हमारे प्रिय कामोंको सिद्ध करो। तुम्हारे लिये मैंने अनेक सोनिकी माला, शङ्ख, कुण्डल, अनेक नगरोंके बने हुए सुवर्णके आभूषण, और उत्तम उत्तम रेशमके वस्त्र और उत्तम शय्या ठीक करी है। तुम यहां आओ और मेरे सहित मङ्गलका मद्य पीओ।

द्रौपदी बोली, मुझसे सुदेष्णा रानीने कहा था कि मुझे बहुत प्यास लगी है, तुम कीचकके घरमें जल ले आओ, सो तुम मुझे जल दो।

कीचक बोला, हे भद्रे! रानीके काम करनेके लिये औरभी अनेक दासी हैं, ऐसा

कहके कीचकने द्रौपदीका दहिना हाथ पकड़ लिया।

द्रौपदी बोली, हे दुष्ट! मैंने महा दुःखमेंभी अपने पतियोंके विरुद्ध आचरण नहीं किया और कभी व्यभिचारभी नहीं किया उसी सत्यसे मैं तुम्हें पृथ्वीमें खिचता दृश्य देखूंगी।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, उसीसमय राजपुत्र विशाल नयनो द्रौपदीके वस्त्रको पापी कीचक पकड़ लिया। द्रौपदी उसकी निन्दा कर लगी और वस्त्रको कुड़ाने लगी। जब राजपुत्र द्रौपदीको कीचकने बलसे पकड़ा तब द्रौपदी लम्बा सांस लेकर वस्त्र कुड़ा लिया। तब झटकेसे पापी कीचक इस प्रकार पृथ्वीमें गिरा जैसे जड़ कट जानसे वृक्ष गिर जाता। कीचकको गिराकर द्रौपदी कापती सभाकी शरण गई। उस समय राजपुत्र युधिष्ठिरभी वहीँ बैठे थे। कीचकने भागते हुए द्रौपदीके बाल पकड़ लिये, पृथ्वीमें गिराकर राजाके आगे लातसे मारा हे भारत! सूर्यने जो द्रौपदीकी रक्षा की राक्षस भेजा था, उसने बड़े वेगसे कीचक उठाकर दूर फेंक दिया। राक्षसके पीड़ित होकर कीचक इस प्रकार पृथ्वीमें गिरा जैसे जड़ कटनेसे वृक्ष। महाराज युधिष्ठिर भीमसेनने कीचकको और द्रौपदीकी रक्षा देखा। भीमने दुष्ट कीचकके माथे पर दण्ड मार दिया। बलवान भीमसेन क्रोधसे दात पीसने लगे। भीमके नेत्र अग्निके लाल होगये। पलकों बाव वार वार और वन्द होने लगीं। भीम और युधिष्ठिर साथपर पसीना आगया। शत्रुनाशन क्रोधसे माथेकी मलने लगे, फिर क्रोधसे कीचकके मारनेकी उद्यत हुए। उसी महाराज युधिष्ठिरने प्रत्यक्ष हीनके भय अपने पैरके अंगूठेकी हाथके अंगूठेसे मारा

महाराजके इस चिह्नको देख मतवारे हाथीके समान बलवान वृद्ध उखाड़नेकी इच्छावाले भीमसेन शान्त हुए । महाराज युधिष्ठिर बोले, हे रसोदया बल्लव । सुखे काटकी इच्छासे इस वृद्धको क्यों देखते हो ? यदि तुम्हें लकड़ियोंकी आवश्यकता होय तो बाहरसे वृद्ध कटवालो । द्रौपदी सभाके चारपर आकर रोने और अपने दुःखी पतियोंको देखने लगी । अपने धर्मकी रक्षा करती हुई द्रौपदीने घोर नेत्रसे भीमाको इस प्रकार देखा मानो सबको भस्म कर देगो ।

द्रौपदी बोली, जिनका बैरो कभी पाच शेंको छोड़कर भागनेपर भी सुखसे नहीं सो सकता है, मैं उन्हींकी प्यारी स्त्री हूँ, उस सुभको सूत-पुत्रने लातसे मारा । जो सदा दान करते हैं, और कभी मागते नहीं, मैं उन्हींकी स्त्री हूँ, उसी सुभको सूतपुत्रने लातसे मारा । जिनके नगारे और धनुषके शब्द सदा सुनाई देते हैं, मैं उन्हींकी स्त्री हूँ, उसी सुभको सूतपुत्रने लातसे मारा । जो महातेजस्वी, बलवान, अभिमानी और महात्मा है, मैं उन्हींकी प्यारी स्त्री हूँ, उसी सुभको सूतपुत्रने लातसे मारा । जो मर्त्यलोकका नाश कर सकते हैं, वे मेरे पति इस समय धर्मपाशमें बन्धे हैं, इसी लिये सूतपुत्रने सुभी लातसे मारा, जो सब दीनोंकी शरण देनेमें समर्थ है, वे महारथ आज कच्चा चुप-चोकर बैठे हैं ? किस प्रकार वेलोग अपनी प्यारी पतिव्रता स्त्रीको सूतपुत्रके हाथसे पिटती देख रहे हैं ? वे महा बलवान महा-तेजस्वी नपूसकोंके समान क्यों दमा कर रहे हैं ? उनका तेज, बल और पराक्रम कहा गया ? वे लोग अपनी स्त्रीकी दुष्टकी हाथसे पिटती क्यों देख रहे हैं ? जहा विराट ऐसा धर्मशील राजा वर्तमान है, तहा मैं कहा कर सकती हूँ । यह राजा स्वयं देखता है, तौभी कह नहीं कह सकता । राजा कीचकके भद्र

राजाके समान कुछ व्यवहार नहीं करता, यह चोरोंके ऐसा अधर्म करनेवाला राजा सभामें शोभित नहीं होता । हे मतवाराज । मैं तुम्हारे घरमें रहकर इस दुष्टसे मारखानेके योग्य नहीं हूँ । सब सभासद लोग कीचककी दुष्टताकी देख रहे हैं, राजा विराट और कीचक कुछ धर्मको नहीं जानते । तथा जो सभासद राजाकी सेवा करते हैं, वे भी धर्मात्मा नहीं हैं ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, रीतो हुई द्रौपदी इस प्रकारके अनेक वचन कहकर राजा विराटकी निन्दा करने लगी,—

राजा विराट बोले, कीचककी और तेरी लड़ाई, हमारे आग नहीं हुई । हम बिना सब जाने कोई न्याय नहीं कर सकते ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, सभासद लोग सब अभिप्रायका जानकर द्रौपदीकी प्रशंसा और कीचककी बल्लत निन्दा करने लगे ।

सभासद बालि, कि यह विशालनयनी सर्वज्ञ सुन्दरी जिसकी स्त्री है, उसको सब सुख है, उसे कभी शोक नहीं हो सकता, क्योंकि ऐसी उत्तम स्त्री मनुष्योंकी दुर्लभ है । हम इसको परम देवी मानते हैं ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, इस प्रकार द्रौपदी की ओर देखकर सभासद लोग उसकी प्रशंसा करने लगे । उसी समय क्रोधसे महाराज युधिष्ठिरके मुखपर पसौना आगया । महाराज अपनी प्यारी पटरानी द्रुपदराजपुत्रीसे बोले, हे सैरिन्ध्री । तुम श्री । सुदिशा रानीके घरमें चली जाओ, यहा खडी होनेका कुछ प्रयोजन नहीं है । वीरोंकी स्त्री अपने पतियोंके सुखके लिये अनेक दुःख सहती है । पतियोंके सेवा करनेसे स्त्रियोंकी पति लोक मिलता है । सुभी जान पड़ता है कि तुम्हारे पात इस समयका क्रोध करनेका नहीं समझते, इसी लिये स्त्रियोंके समान गन्धर्व लोग तुम्हारी रक्षा नहीं करते । मैं जान पड़ता है कि

तुम्हें अपने समयका कुछ ध्यान नहीं है इसी लिये नटनोंके समान लज्जारहित होकर समझमें रोरही हो। तुम्हारे यहां रहनेसे राजा निराटके जूबमें बिग्न होता है। हे वैरिणी ! स यहासे चली जाओ, तुम्हारे पति तुम्हारा हित साधन करेंगे। जिसने तुमको दुःख दिया है उसको सारेंगे।

द्रौपदी बोली, मेरे अपने दयावान पतियोंके लिये धर्मके अनुसार अनेक दुःख सह रही हूं। मेरे पतियोंके जो बड़े हैं, वे उनके जान-बूझते हैं, सुभी नाशा है कि - वही सब शत्रुओंका वांछ करेगा। विशालनयनी उत्तम कम्बरवाली द्रौपदी ऐसा कहके और अपने वालोंको खालकर रोती हुई सुदेष्णा रानीके घरको चली गई। रोती हुई द्रौपदीका सुख ऐसा शोभित हुआ, जैसे आकाशमें मेघसे निकला हुआ चन्द्रमा।

सुदेष्णा बोली, हे सुन्दरी हे सुसुख। हे कल्याणि। तुमको किसने मारा ? तुम क्यों रो रही हो ? आज किसका, सुख नाश होनेका समय आगया ?

द्रौपदी बोली, तुमने सुभी जल लेनेको कीचकके घर भेजा था, वहां उसने सुभीको मारा और राजाके आगेभी सुभीको इस प्रकार मारा, जैसे कोई निर्जन वनमें किसीको मारता है।

सुदेष्णा बोली, जिस दुष्ट कीचकने कामके वशमें होकर तुम्हारा निरादर किया है, तुम कहो तो मैं उसे अभी मरवा दूं ?

द्रौपदी बोली, कीचक जिनका दोष करता है, वे उसे आपही मार डालेंगे। सुभी निश्चय है कि वह शीघ्रही यमलोकको जायगा।

१५ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय ! अब यशस्विनी राजपत्नी द्रौपदीको मेना-

पति सूतपुत्रने मारा, उसी समयसे वह उमने नाश होनेकी इच्छा करने लगी। अनन्तर द्रुपदराजपुत्रीने वस्त्रसे अपने सब शरीरोंको पोछा और शुद्ध जलसे स्नान किया। फिर उत्तम कम्बरवाली द्रौपदी उचित रीतिसे पवित्र होकर अपने घरमें जाकर एक स्थानमें बैठी, और रोती हुई अपने दुःखका विचार करने लगी। द्रौपदी श्रवण लगी कि मैं इस समय कहां जाऊं ? कौनसा कार्य करूँ जिससे मेरा दुःख दूर हो ? ऐसा विचार द्रौपदीने अपने मनमें निश्चय किया कि इस समय भीमसेनकी छोड़ कर और मेरा दुःख कोई दूर नहीं कर सकता। ऐसा विचार आधी रातके समय विशालनयनी सुन्दरी पतिव्रता, नाथवती द्रौपदी अपने-पलङ्गसे उठी और नाथकी इच्छा करके भीमसेनके घरमें गई। उस समय मनस्विनी द्रौपदीके मनमें बहुत दुःख था। द्रौपदी विचारने लगी कि मेरे शत्रु पापी कीचकने जीते हुए और उसका दुराचार देखकरभी देखें भीमसेन कैसे सो रहे हैं ?

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, द्रौपदी ऐसा विचारती हुई भीमसेनके सोनेके घरमें गई। जहां सिंहके समान श्वास लेते हुए भीमसेन सो रहे थे, वह स्थान भीमके और द्रौपदीके तेजसे अधिक प्रकाशमान होगया। जैसे वनमें उत्पन्न हुई वगुली कामसे व्याकुल होकर वगुलके पास जाती है, अथवा जैसे तीन वर्षकी गौ कामसे उत्पन्न होकर भाड़के पास जाती है, तैसेही द्रौपदीभी अपने प्यारे पति भीमसेनके पास गई। जैसे गोमतीके तटपर उत्पन्न हुए फूलयुक्त महाशाल वृक्षसे लता लपट जाती है, तैसेही द्रौपदीभी भीमसेनसे लपट गई। सुन्दरी द्रौपदीने भीमको अपने दोनों हाथोंमें भरकर हृदयसे लगा लिया, फिर इस प्रकार जगाने लगी, जैसे रात्रा वनमें सोते हुए मिश्री सिंहिनी जगाती है। द्रौपदी भीमसेनके हृदयमें

ऐसी लपट गई जैसे हथिनी हाथियोंके राजसे। लपटती है। अनन्तर मीठे स्वरवाली निन्दा-रहित द्रौपदी अपने स्वरसे गान्धारराजकी लज्जित करती हुई भीमसेनकी जगाने लगी।

द्रौपदी बोली, है भीम ! उठो उठो ! मेरे हुएके समास क्यों हो रहे हो ? क्योंकि जीते हुए पतियोंकी स्त्रियोंका निरादर करके कोई जीवित नहीं रहता। जब राजपुत्रोंने जगाया। तब महामेघके तुल्य भीम अपने गद्दीयुक्त पलङ्ग पर उठकर बैठे। कुन्तिनन्दन भीमने अपनी प्यारी स्त्री राजपुत्री द्रौपदीकी देखकर कहा, तुम इस समय घबड़ाई हुई मेरे घरमें क्यों आई हो ? तुम्हारा रङ्ग पहलेके ऐसा नहीं है। तुम बहुत दुर्बल और पीली क्यों हो गई हो ? तुम सब समाचार हमसे कह सुनाओ। सुख, दुःख, अच्छा या बुरा जो कुछ होगा मैं सुनकर वैसाही उपाय करूंगा। है द्रौपदी ! तुम्हें मेरा सब कामोंमें विश्वास है, मैं तुम्हें बार बार आपत्तियोंसे कुड़ाता हूँ। सुभीसे सब कहकर यहासे शीघ्र अपने सोनेके घरमें चली जाओ, जिसमें कोई पहचान न सके।

१६ अध्याय समाप्त ।

द्रौपदी बोली, जिस स्त्रीके पति युधिष्ठिर है ? वह सोचरहित होकर कैसे रह सकती है, तुम सब दुःखोंको जानकर भी सुभीसे क्यों अजानेके समान पूछते हो ? है भारत ! प्रातःकामी सुत जो सुभी दासी कहकर सभामें ले आया था, वही दुःख मेरे हृदयको जला रहा है। ऐसी कौनसी राजपुत्री होगी जो मेरे समान दुःख सहकर भी जीती रहेगी ? है नाथ ! द्रौपदीके सिवा ऐसा दुःख कौन राजपुत्री सह सकती है ? वनमें दुष्ट जयद्रथने मेरा निरादर किया, मेरे सिवा इस दूसरे दुःखकी कौन राजपुत्री सह सकती है ? धूर्त राजा विराटके देखते हुए नीचे कीचकने सुभी कैसा

दुःख दिया, इस तीसरे दुःखकी मेरे सिवा और कौनसी राजपुत्री सह सकती है ? है भरत-कुलश्रेष्ठ कुन्तिनन्दन ! इनको आदि लेकर और भी मैंने अनेक दुःख सहें, अब मेरे जीनेसे क्या फल होगा ? है भारत ! है पुरुषव्याघ्र ! यह जो दुर्बुद्धि कीचक नासक राजा विराटका साला और सेनापति है, सो सुभी राजाके घरमें सैरन्धिके वेषमें रहते हुए देख सदा कहा करता है कि तू मेरी स्त्री बन जा। यह दुष्ट मारनेके योग्य है, अब मेरा हृदय उसकी बात सुनते सुनते इस प्रकार फटने लगा है, जैसे समय आनेपर पका हुआ फल फटने लगता है। है शत्रुनाशन ! तुम अपने बड़े भाईकी निन्दा करो, जो सदा जुवेहीकी अपना कर्म समझते हैं, उन्हींके कर्मसे मैं इस अपार दुःखमें पड़ी हूँ। जगतमें ऐसा कौन पुरुष होगा, जो अपने सुख और राज्यको छोड़कर जुवेमें वनवासको प्रतिज्ञा करे ? यदि महाराज प्रति दिन अपने उस दिव्य धनसे दोनों समय हजार हजार निष्कसे जूवा खेलते तो भी सहस्रोंवर्ष तक कोष खाली न होता। और सोना, वस्त्र, वाहन, बकरी भेड़ घोड़े और खच्चर भी बने रहते। महाराजने उस सब लक्ष्मीको जुवेमें हार दिया। अब वही महाराज अपने कर्मकी विचारते हुए मूर्खके समान चुप बैठे हैं। जिन महाराजके पीछे दस सहस्र हाथी और सोनेके भूषण पहने हुए घोड़े चलते थे, सो आज जुवा खिलाकर जीते हैं। जिन महाराजके सङ्ग एक लाख रथ चलते थे, जिनकी महा-पराक्रमी सहस्रों राजा सेवा करते थे, जिन युधिष्ठिरके चौकमे एक लाख दासों रात दिन सोनेके पात्र लिये अतिथियोंको भोजन कराया करती थी, जो दानियोंमें छेष्ट युधिष्ठिर सहस्रों निष्क दान करते थे, सो जुवेमें महा अनर्थमें पड़ कर दुःख सह रहे हैं।

जिनकी प्रातःकाल और सन्ध्याके समय स्वर जाननेवाली, मणिजटित सोनेके कुण्डल धारण करनेवाली, सूत, मागध और बन्दी लोग स्तुति करते थे, जिनकी सभामें सहस्रों तपस्वी और वेद जाननेवाली ब्राह्मण बैठते थे, जो उन सबको इच्छानुसार दान देते थे, जिनके घरमें नित्यही अष्टासी सहस्र वेदपाठी ब्राह्मण भोजन करते थे, जिन महाराजके घरमें दस सहस्र ऊर्ध्वरेता (ब्रह्मचारी) नित्य भोजन पाते थे, सो महाराज युधिष्ठिर आज इस आपत्तिमें पड़े है। इनके यहां जो यति भोजन पाते थे, सो दूसरे राजासे कुछ मागनेकी इच्छा नहीं करते थे। जिनमें कीमलता, दया और न्याय पूर्ण रूपसे निवास करते हैं, वेही महाराज युधिष्ठिर आज इस दुर्दशामें पड़े है। जा अन्धे, बूढ़े, और अनाथ बालकोंको सदा पालते थे, जो बुद्धिमान सत्य-पराक्रमी महाराज युधिष्ठिर अपने चित्तको कभी अन्यायमें नहीं जाने देते हैं, वेही आज इस दुर्दशामें पड़े है। जिनके इन्द्रप्रस्थमें रहनेके समय अनेक राजा सभासद थे, वेही महाराज आज राजा विराटके सभासद बने हैं। उन्हींको राजा विराट कङ्क कहकर पुकारता है। जिनके द्वारपर आकर अनेक राजा लोग जीविका मागनेको खड़े रहते थे, वेही महाराज आज राजा विराटसे जीविका मांगते हैं। जिन महाराजके वशमें सब राजा लोग रहते थे, वेही आज विवश होकर राजा विराटके वशमें हुए हैं। जिनने अपने सूर्यके समान तेजसे समस्त पृथ्वीको तपा दिया था, वेही आज विराटके सभासद बने हैं। हे पाण्डव ! जिसको सभामें बैठकर राजा और ऋषि लोग सेवा करते थे, वेही युधिष्ठिर आज विराटकी सेवा करते हैं। महाराज युधिष्ठिरको राजा विराटकी प्यारी बात कहते हुए देखकर सुभे महा क्रोध

होता है। धर्मात्मा युधिष्ठिरको अन्य राजाके वशमें देखकर जिसको दुःख नहीं होगा ? हे भारत। जिसके सभामें बैठतेही पृथ्वीके समस्त राजा आते थे, वेही आज विराटकी सेवा कर रहे हैं। हे भारत। इन सब दुःखोंसे पीड़ित होकर मैं शोक सागरमें हूँ जाती हूँ। क्या तुम मेरी इस दशाको नहीं देखते हो ?

१७ अध्याय समाप्त ।

द्रौपदी बोली, हे भारत। मैं जो तुमसे अपने दुःख कहती हूँ, सो कुछ साधारण नहीं है। तुम मेरा निरादर मत करना, मैं दुःखसे पीड़ित होकर यह सब वृत्तान्त तुमसे कह रही हूँ। हे भरतकुलसिंह ! तुम जो रसोदयाका का करते हो, यह क्या तुम्हारे योग्य है ? तुमके इस दीनदशामें पड़े हुए देख किसको दुःख नहीं होगा ? जब तुम अपनी बलव जाति वर्ताने हो, तब मुझको महा शोक होता है। जब तुम सरीख राजाकी यहा रसोदया होकर रहे, तब इससे अधिक मुझे क्या दुःख होगा ? जो साधारण लोग तुम्हें राजा विराटका दास और रसोदया कहते हैं, तब इससे ज्यादा मुझे और क्या दुःख होगा ? भोजन सिद्ध होनेपर जो तुम विराटके समीप बैठते हैं, तब मेरा मन बड़ा छोटा होजाता है। जब राजा प्रकृत होकर तुम्हारे सङ्ग हाथियोंको लड़ाते हैं, तब रनिवासकी स्त्री तुम्हें देखकर हसती हैं, उस समय मेरा मन बड़ा छोटा होजाता है। जिस समय तुम भैसे शार्दूल और सिंहोंसे लड़ते हो तब सुदेष्णा रानीकी हंसते देख मेरा मन बड़ा उठता है, सुभे दुःखित देखकर रानी अपनी दासियोंसे कहती हैं और दासी रानीसे कहती हैं कि, जब यह रसोदया किसीसे युद्ध करता है, तब न जाने सुन्दरी मेरी स्त्रीको दुःख क्यों होने लगता है ? जान पड़ता है कि पण्ड

स्थानमें रहनेसे सैरिन्धी और बल्लवसे कुछ प्रेम होगया है, इसीसे सुन्दरी सैरिन्धी महा बलवान बल्लवको लड़ते देख दुःख पाती है। सैरिन्धी महा बलवान बल्लवकी लड़ते देख दुःख पाती है सैरिन्धी बल्लत सुन्दरी है, और यह रसोदसाभी बैसाही सुन्दर है, स्त्रियोंके चित्तकी बातको कोई नहीं जान सकता। ये दोनों समान रूपवाली है, इससे इनमें अवश्य कुछ प्रेम है। इस राजभवनमें ये दोनों एकही दिन आये हैं, इससेभी इनमें कुछ प्रेम जान पड़ता है। ऐसीही रानी सदा मुझे डाटा करती है; मुझे क्रोध आनेसे उसे औरभी अधिक शङ्का होती है। उसके ऐसे बचन सुनकर मुझे महा दुःख होता है। महापराक्रमी तम्हें और महाराज युधिष्ठिरकी इस दुःखमें पड़ा देख मैं शोकसे अत्यन्त व्याकुल होगई हूं। इस लिये मुझे अब जीनेकी इच्छा नहीं है।

अकेले रथपर बैठकर समस्त मनुष्य और देवतोंको जिसने जीता था, वही अर्जुन आज राजा विराटकी कन्याको नचाते है। जिस महा पराक्रमीने खाण्डव वनमें अग्निको सन्तुष्ट किया था, वही आज रनिवासमें रहकर कन्याको नचाते है। अर्जुन इस प्रकार छिपकर रहते है, जैसे कूपमें अग्नि। जिस पुरुषसिंहसे सदा शत्रु कांक्षते रहते थे, वही अर्जुन आज महानिन्दित वेष धारण करके रनिवासमें रहते है। जिसके सुहृदकी समान हाथ धनुषके खींचनेसे महा कठोर होगये थे, आज वही उनही हाथोंमें शङ्खकी चूड़ी पहनकर दिन काटते है। जिसकी धनुषकी घोर टङ्गारकी सुनकर शत्रुओंका हृदय काप उठता था, आज उन्हींकी सीठे गीत सुनकर स्त्रियां प्रसन्न होती हैं। जिसके शिरपर सूर्यके समान प्रकाशमान मुकुट विराजता था, आज वही अर्जुन स्त्रियोंके समान वालीकी गंधकर रनिवासमें रहते है। हे भीम ! उस

महा पराक्रमी अर्जुनको वेनी धारण किये हुए देख मेरा मन काप उठना है। जो महात्मा समस्त दिव्य शस्त्रोंकी जानते है, जो सब विद्याओंके आधार है, उन्ही अर्जुनने आज स्त्रियोंके कुण्डल पहने है। जो अपने तेज, बल और विद्यासे समुद्रके समान अगाध है, युद्धमें जिनके समीप सहस्रों राजाभी नहीं आसकते वही अर्जुन आज अपने रूपकी छिपाकर राजा विराटकी कन्याको नचाते है। हे भीम ! जिस महा धनुषधारीके रथका शब्द सुनकर पर्वत, वन, स्थावर और जड़मोंके सहित समस्त पृथ्वी काप उठती थी, जिसके उत्पन्न होनेसे कुन्तीका शोक नष्ट होगया था, उन्ही अर्जुनकी दुर्दशा देखकर मुझे शोक बढ़ता है। मैं अर्जुनको स्त्रियोंके कुण्डलादि भूषण और शङ्खकी चूड़ी पहने हुए देख बल्लत दुःखी होती हूं। जिसके समान इस पृथ्वीमें कोई बलवान और धनुषधारी नहीं है, वही अर्जुन आज राजा विराटकी कन्याको नचाते है। धर्म, पवित्रता और सत्यसे भरे हुए अर्जुनको इस लोकमें स्त्री वेषमें छिपे हुए देखकर मेरा मन बल्लत दुःखी होता है। जब मैं देवस्वामी अर्जुनकी कन्याओंके बीचमें सतवारे हाथीके समान घूमते हुए देखती हूं, तब मेरा मन अत्यन्त व्याकुल होजाता है।

हे भारत ! छोटे पाण्डव सहदेवकी ग्वालका वेष बनाये हुए आते देखकर मेरा शरीर पीला होजाता है। हे भीमसेन ! सहदेवके चार-लोकी स्मरणकरके मुझे निद्रा नहीं आती है, और सुखकीतो क्याही क्या है ? हे महावाची ! सत्य पराक्रमी सहदेवके इस घोर दुःखकी देखकर मुझे सुख प्राप्त नहीं होता। हे भरतकुल योष्ठ ! तुम्हारे भाई सहदेवकी सतवारे वेलके समान गौवोंसे घूमते हुए देख और राजा विराटकी आज्ञानुसार चलते देखकर मेरा हृदय व्यापते जगता है। जब वे सब ग्वालोंके अगाड़ी आकर राजा

विराटकी प्रशंसा करते हैं, तब मुझे ज्वर चढ़ आता है । हमारी सीढ़ी कुन्ती सदाही सह-देवकी प्रशंसा किया करती हैं और इस प्रकार कहती हैं कि मेरे सब पुत्रोंमें सह-देव बड़ा वीर, शीलवान, पराक्रमी, उत्तम चरित्रयुक्त, लज्जावान, प्रियवादी और मेरा प्यारा है । उन्होंने हमसे चलते समय कहा था कि मेरा पुत्र सहदेव सुकुमार, वीर, धर्म-राजका भक्त और धर्मात्मा है ; तुम सदा वनमें इसकी रक्षा करना, हे द्रौपदी ! तुम सहदेवकी अपने हाथसे परसकर भोजन करना, ऐसा कहकर कुन्ती वनकी चलते समय सहदेवकी अपने हृदयसे लगाकर बहुत रोई थीं । हे पाण्डव ! उन महा योद्धा सहदेवकी गौवोंके बीचमें रहते और रातकी बैलोंके चमड़ेपर सोते हुए देख अब मुझे जीनेकी इच्छा नहीं रही ।

जो नकुल शस्त्रविद्या, रूप और बुद्धिसे भरे हैं, वेही आज राजा विराटके अश्वरक्षक बने हैं । देखो समयकी गति कैसी कठोर है कि वेही नकुल आज विराटके आगे खड़े होकर लगाम हाथमें लिये घोड़ोंकी शिक्षा देते हैं । जिसके भयसे शत्रुओंके सम्बूह कांपते थे, वेही महातेजस्वी श्रीमान् नकुल आज राजा विराटकी धीढ़ दिखला रहे हैं । हे शत्रुनाशन कुन्ती-नन्दन ! इन सबदुःखोंकी मैं सह रही हूँ, क्या तुम मुझकी अभी जीतो समझते हो ? ये सहस्रों दुःख केवल युधिष्ठिरके कारण हमारे ऊपर पड़े हैं । इन दुःखोंकी छोड़ कर और भी अनेक दुःख मैं सह रही हूँ सुनो,—मुझे इससे अधिक और दुःख क्या होगा कि, जो तुम लोगोंके जीवित रहते मेरे शरीर अनेक दुःखोंसे सखे जाते हैं ।

१८ अध्याय समाप्त ।

द्रौपदी बोली, महाराज युधिष्ठिरके कारणसे मुझे भी दासीका वेष बनाकर और राजाके घरमें रहकर सुदेष्णा रानीकी सेवा करनी पड़ी । हे वीर ! मैं राजपुत्री होकर ऐसे ऐसे कर्म करती हूँ, इससे अधिक और आपत्ति क्या होगी ? मैंने विचारा है कि सब दुःख नाश हो जाते हैं, पुरुषोंकी हार जीत, सिद्धि और असिद्धि सब अनित्य हैं, यही विचारकर मैं अपने पतियोंकी उन्नतिका समय देख रही हूँ । मुझे यह निश्चय है कि सुख और दुःख चाकके रमान घूमते हैं, इसीसे मैं अपने पति योंकी उन्नतिका समय देख रही हूँ । मुझे यह निश्चय है कि जिन कारणोंसे मनुष्यकी विजय होता है वेही कारण किसी समय मनुष्यके हानिकारक भी हो जाते हैं । हे भीमसेन ! मैं मरे हुएके तुल्य हो गई हूँ, क्या तुम मेरी दशाको नहीं देखते हो । मैं बुद्धिमानोंसे सुना है कि जो पुरुष पहले समयमें महादानी होता है, वही दूसरे समयमें भिक्षा माग्न लगता है । जो एक समय अपने बलसे शत्रुओंको मारता है, वही दूसरे समयमें निर्बल होकर शत्रुओंके हाथसे मारा जाता है । ऐसी ही जो एक समयमें शत्रुओंको गिराता है, वही दूसरे समयमें दुर्बल होकर शत्रुओंसे गिरता है । कोई कर्म ऐसा नहीं है जिसको प्रारब्ध न कर सके, और प्रारब्धका कोई चलाभी नहीं सकता । यही विचारकर मैं अच्छे समय आनेका मार्ग देख रही हूँ । मैं यह जानती हूँ कि जो तब पहले जहा होता है, फिर वह उसी स्थानमें वापस कर आ जाता है । यही विचारकर मैं अपने पतियोंकी उन्नतिका समय देख रही हूँ । जिस प्रारब्धसे मनुष्यका धन नष्ट होता है, वही मानकी उचित है कि उसीका यत्न करे, तुमने जो मेरे वचनका प्रयाजन समझा है, सी मुझे दुःखिनोसे पूछो, मैं तुम्हारे पृथ्वीपर उत्तर दूंगी । पाण्डवोंकी पटरानी और राजा द्रुपदकी पत्नी ।

पद्मी द्रौपदीके सिवा इन सब दुःखोंकी सहकर और कौन राजपुत्री जी सकती है ? हे शत्रुनाशन ! इस मेरे दुःखसे समस्त कुरुकुल, समस्त पाण्डव-कुल और समस्त पाञ्चाल कुलका निरादर हुआ है । मेरे समान दूसरी कौनसी स्त्री होगी जो भाई, भ्राता और बहूत पुत्रोंके जीते भी बन-वासके दुःखोंको सहै ? हे भरतकुलसिंह ! मैंने निश्चय बालकपनमें ब्रह्माका कोई दोष किया था, जिसके कारणसे अब यह सब दुःख सह रही हूँ । हे भीमसेन ! तुम हमारे रूपकी विपरीतताभी देख लो । उस 'महाघोर वनमें अनेक दुःख सहनेपर भी मेरी यह दुर्दशा नहीं हुई थी । हे भीम ! हे कुन्तिनन्दन ! तुम भली भाँति जानते हो कि पहले मैं कैसे सुख करती थी, सोई मैं आज दासी भावकी प्राप्त हुई हूँ, अब मुझे सुख कैसे हो । जहाँ साक्षात् महा-धनुषधारो महाबाहु कुन्तीपुत्र अर्जुन क्षिपी हुई अग्निके समान स्त्री वेष बनाकर रहते हैं, वहाँ प्रारब्धके सिवा और किसका दोष है ? हे कुन्तिनन्दन ! प्रारब्धकी गतिकी कोई मनुष्य नहीं जान सकता है । तुम लोगोंकी जो यह दुर्दशा हो गई, क्या किसीकी इसकी सम्भावना थी ? जिस मेरे सुखकी इन्द्रके समान पाण्डव लोग देखने रहते थे, सोई पतिव्रता मैं अष्ट स्त्रियोंमें से होनेपर भी दूसरोंका सुख देखती हूँ । हे पाण्डव ! आज मेरी अयोग्य दशाकी तुम देखो । तुम लोगोंके जीते क्या मैं इस दुर्दशामें पड़ने योग्य थी ? यह केवल समयहीका दोष है । जिसके भयसे समुद्र पर्यन्त पृथ्वी कांपती थी, वही मैं आज सुदेष्णाके भयसे कांपती हूँ, और उसके वशमें रहती हूँ । जिसके आगे और पीछे सहस्रो दासिया फिरती थी, सोई मैं आज सुदेष्णाके आगे पीछे फिरती हूँ । हे कौन्तेय ! मैं जो तुमसे आपने दुःखोंका वर्णन करती हूँ, सो तुम सुनो । जो मेरे हाथ किसीके शरीरमें चन्दन लगानेके सिवा और

किसीके शरीरमें कभी उबटन नहीं लगाते थे, उन्हीं मेरे हाथोंको तुम देखो, क्या इनमें ऐसी ठेठ कभी पहिलेभी पड़ी थी ? ऐसा कहकर द्रौपदीने अपने हाथ भीमकी दिखाये, और कहने लगी कि जो मैं कभी कुन्तो और तुम लोगोंसे भी नहीं उरती थी, सो आज विराटसे उर रही हूँ, और उसकी दासी बनकर सेवा करती हूँ । मैं सदा यही विचारती रहती हूँ कि न जाने आज महाराज मुझे क्या कहेंगे ? यह चन्दन उनके योग्य घिसा गया है या नहीं ? क्योंकि राजा विराटकी मेरे सिवा और किसीका घिसा हुआ चन्दन अच्छा नहीं लगता ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, कि, भीमसेनसे अपने सब दुःख सुनाकर सुन्दरी द्रौपदी भीमसेनकी ओर देखकर धीरे धीरे राने लगी । फिर आसू पोंछ और भीमसेनके हृदयसे लपटकर धीरे धीरे बोली, हे भीमसेन ! मैंने अपनी जानमें कभी देवतोंका थोड़ा अपराध भी नहीं किया, न जाने कौनसे अपराधसे मैं अब तक जीती हूँ ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, भीमसेनने अपनी प्यारी द्रौपदीके ठेठयुक्त कोमल हाथोंको चूमे और राने लगे । महा बलवान शत्रुनाशन कुन्तिनन्दन भीम उस समय दुःखसे व्याकुल होगये, और आसू पोंछकर द्रौपदीसे कहने लगे ।

१६ अध्याय समाप्त ।

भीमसेन बोले, मेरे बाहुबल और अर्जुनके गाण्डीव धनुषका धिक्कार है । जिनके हाँतिभी तुम्हारे लाल हाथोंमें टेट पड़ गई । मैं राजा विराटकी सब सभाकी नाश कर दूँगा, परन्तु सन्देह इतनाही है कि महाराजकी आज्ञा नहीं है । अथवा धनके अभिमानसे पागल हुए कीचकके शिरकी अपने

रसे इस प्रकार पीसंगा, जैसे मतवारा हाथी
मसी फलकी चूर कर देता है। हे द्रौपदी।
जस समय कीचकने तुम्हारे हात मारी थी,
उसी समय मैंने विचारा था कि विराटकी
व सबका नाश कर दूंगा। परन्तु उसी समय
धर्मराजने मुझे आंखोंसे रोक दिया। हे
सुन्दरि। उनका अभिप्राय जान मैं भी चुप
होकर बैठ गया। जो हम लोगोंका राज्य
नाश हो गया है, कौरवोंने जो हमारे सङ्ग
अन्याय किया है, उससे दुःखोंधन, कर्ण, सुवल-
पुत्र शकुनि और पापी दुःशासनका मैंने शिर
नहीं काटा इसी दुःखसे मेरे शरीर जले
जाते हैं। यह दुःख मेरे हृदयमें शल्यके
समान लगा है। हे सुन्दर कमरवाली। हे
महाबुद्धिमती। तुम धर्मका नाश मत करो
और क्रोधका नाश करो, यदि महाराज
युधिष्ठिर सुनेंगे कि भीमसेनके कारणसे हम
प्रत्यक्ष होगये, तब वे निस्सन्देह आत्महत्या
करेंगे। हे पतलीकमरवाली। महाराजके
मरनेसे अर्जुन, नकुल और सहदेवभी जीते
न रहेंगे, इन सबके मरनेसे मैं कैसे जाऊंगा ?
तुमने सुना होगा कि पहले समयमें राजपुत्री
सुकन्याके पति च्यवन मुनि बनमें सिट्टीके
तुल्य होगये थे, तौभी वह उनकी सेवा कर-
नेसे निवृत्त नहीं हुई थी। तुमने महारूप-
वती, नारायणी इन्द्रसेनाकी कथा सुनी
होगी, वह सहस्र वर्षके बूढ़े अपने पतिकी
सेवा करती थी। तुमने जनकराज दुलारी
सीताका इतिहास सुना होगा, वह अपने
वनवासी पतिके सङ्गही वनकी चली गई
थी। वनसे उसे रावण चुराकर ले गया,
रामकी प्यारी सीताने अनेक क्लेश सहकर
भी रामहीकी सेवा करी। तुमने थोड़ी
अवस्थावाली महा रूपवती लोपामुद्राका
वृत्तान्त सुना होगा, वह अपने वन भोगने
योग्य सुखोंकी छोड़कर अगस्त्य मुनिके

सङ्ग जङ्गलकी चली गई थी। तुमने यश-
स्विनी सावित्रीका इतिहास सुना है, वह
दुमत्स्यनके पुत्र अपने पति सत्यवानके सङ्ग
अकेली यमलोक्ततक चली गई थी। जैसी वे
गव स्त्रियां रूपवती और पतिव्रता थीं,
तमभी वैसीही हो। हे कल्याणि। तुममेंभी
उन्हीं सबके पूरे लक्षण पाये जाते हैं। तुम
अब वृद्धत दिन तक इन दुःखोंकी नहीं
सहोगी, अब समय पूरा होनेमें केवल पन्द्रह
दिन शेष हैं, यह तेरेहवां वर्ष पूरा
होनेसे तुम महारानी बन जाओगी।

द्रौपदी बोली, मैंने तुमसे रोकर जो कुछ
कहा है, उसका कारण दुःखही है। मैं महा
दुःख सहने पर भी महाराजकी निन्दा नहीं
करूंगी। हे महाबल भीमसेन। समय बीतने
पर कात होगा, जो कार्य इस समय उपस्थित
है, उसके करनेकी उद्यत हो। हे भीम।
सुदेष्णा रानी मेरे रूपकी देखकर सदा यही
शङ्का किया करती है कि राजा इसके वस्त्रमें
होजायंगे। उसके इस भावको देखकर मिथ्या
बांदी पापी कीचक सदा मेरी इच्छा किया
करता है। मैं पहले क्रोध करके फिर अपने
क्रोधको शान्त करती हूं, और कामसौचित
कीचकसे कहती हूं कि तू अपनो रक्षा कर, मैं
महा पराक्रमी पांच गन्धर्वोंकी प्यारी स्त्री हूं,
वे साहसी और महाशूर हैं, तुझे क्रोध करके
अवश्य मार डालेंगे। मेरे ऐसे वचन सुन कर
पापी कीचक कहता है कि, हे सुन्दर हंसने-
वाली सैरिन्ध्री। मैं गन्धर्वोंसे कुछ नहीं डरता,
मैं युद्धमें सहस्रों और लक्षों गन्धर्वोंकी नाशकर
सकता हूं, मैं कीचक हूं, मुझे कोई नहीं
मार सकता है। उसके ऐसे वचन सुनके मैंने
पुनः काम पीड़ित कीचकसे कहा, तू महा-
बलवान गन्धर्वोंके समान पराक्रमी नहीं है, मैं
कुल और शीलके अनुसार अपने धर्ममें स्थित
हूँ, और पाप करनेकी कभी इच्छा नहीं

करती । मेरे ऐसे वचन सुनकर वह दुष्टात्मा फिर कहने लगा कि तुम मेरी स्त्री हो । एक दिन सुदेष्णा रानीने मुझे उसके घरमें भेजा, उसने पहली ही अपने भाई कीचकसे यह सब सम्प्रति कर ली थी । उसने मुझे मद्यका पात्र देकर कहा कि हे कल्याणि ! तू कीचकके घरसे मेरे लिये मद्य लेआ । जब मैं उसके घर गई, तब स्तपुत्र कीचकने मुझसे शान्ति पूर्वक कहा कि तू मेरी सेवाकर । जब मैंने उसके वचनको न माना, तब उसने महाक्रोध किया । मैं दुष्ट कीचककी इच्छा जानकर उसी समय वेगसे राजाकी शरण गई ; हे पाण्डव ! स्तपुत्र कीचकने राजाके आगेही मुझको मारा, उस दुष्टात्माने मुझको पृथ्वीमें गिराकर लातसे मारा । राजा विराट और कङ्क आदि सब पुरुष देखते रहे, उस समय सभामें राजाके प्यारे मित्र शूरवीर और अनेक वनिये भी बैठे थे, मैंने उस समय महाराज विराटसे और कङ्कसे अनेक प्रार्थना करी, परन्तु किसीने कुछ न सुना और कीचककी किसीने-निवारण भी न किया, यह जो राजा विराटका कीचक नामक सारथी है, सो अधर्मी और महा निर्लज्ज है, तथापि इस नगरके सब स्त्री पुरुष उससे प्रेम करते हैं, वह शूर, अभिमानी, पापी, सब वस्तुओं और स्त्रियों पर अत्याचार करनेवाला है, राजा उसको सब देते हैं, वह दुष्ट रोते हुए पुरुषोंका भी धन छीन लेता है, कभी साधुओंके मार्गसे नहीं चलता, और धर्मको धारण नहीं करता, वह दुष्ट, पापी, पाप करनेवाला काम-पीड़ित, घृष्ट और दुष्ट है । यदि तुम उसको न मारोगे तो वह बार-बार निरादर पाकरभी मेरा निरादर करेगा । तब मैं अवश्यही अपने शरीरको छोड़ दूंगी, ऐसा करनेसे सब धर्म करनेवालोंका धर्म नष्ट जायगा, आप लोग जो अपनी प्रतिज्ञाके पार समयको रक्षा करते हैं, उसका भी

नाश हो जायगा, क्योंकि स्त्रीका नाश होनेसे सन्तानकी रक्षा नहीं हो सकती, और यह नियम है कि सन्तानकी रक्षा होनेसे अपनी रक्षा होती है । आत्माही स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न होता है, इसी लिये पण्डितोंने स्त्रीका नाम जाया कहा है । स्त्री पतिकी रक्षा करती है, फिर वही स्त्रीके गर्भमेंसे उत्पन्न होता है, हमने वर्णोंके धर्म करनेवाले ब्राह्मणोंके मुहसे ऐसाही सुना है शत्रुओंके मारनेके समान क्षत्रियोंका दूसरा धर्म नहीं है । धर्मराजके देखते कीचकने मुझे लातसे मारा । हे महा-बल भीमसेन ! तुम भी उस समय वहीं देख रहे थे, तुमने महाघोर जटासुरके हाथसे मुझे कुड़ाया था, तुम्हीं अपने भाइयोंके सहित जयद्रथको जीता था, तुम्हीं मेरा निरादर करनेवाले दुष्ट कीचककी भी जोतो । हे भारत ! कीचक राजाका वज्रत प्यारा है, इस लिये उसे देखकर मुझे वज्रत शोक होता है, तुम उसके शिरको इस प्रकार तोड़ दो, जैसे कोई पत्थर मारके घड़ा तोड़ता है । जो दुष्ट कीचक मेरे अनेक दुःखोंका मूल है, यदि वह कल सूर्य निकलनेके समयतक जीता रहा तो मैं विष घोलकर पीलंगो । हे भीमसेन ! कीचकका सङ्ग करनेसे तुम्हारे आगे मेरा मरना अष्ट है ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, ऐसा कहकर द्रौपदी भीमसेनके हृदयसे लिपट गई, और वज्रत रोने लगी । भीमसेनने उसे अपने हृदयसे लगाकर शान्त किया । सुन्दरी पतली कमर-वाली, दुःखसे व्याकुल दुपदराज दुलारीसे भीमसेनने हेतु सहित अनेक वचन कहे । भीमसेनने अपने हाथसे द्रौपदीकी आंसू पोंछकर कीचकके मारनेकी इच्छासे क्रोधसे भरकर दात चबाये, और दुःखपीड़ित द्रौपदीसे बोले ।

२० अध्याय समाप्त ।

भीमसेन बोली, हे कल्याणि । हे भीरु । तुम जैसे कहती हो हम वैसेही करेंगे । हम आज उस कीचकको भाइयोंके सहित नाश कर देंगे । तम आज सन्धा समय अपने भव शोक और दुःखको दूर करके कीचकसे बात करना । हे सुन्दर हंसनेवाली याज्ञसेनी । राजा विराटने जो यह नाचनेका स्थान बनाया है, उसमें दिन भर कन्या नाचती हैं, और रात्रिको अपने अपने घरको चली जाती हैं । वहां एक सुन्दर दृढ लोहका स्थान बना है, उसी स्थानपर मैं उस दृष्टको मार उसके वाप दाढ़के पास भेज दंगा । जिस प्रकार तुम्हें कोई बात करते न देखे, तुम उसी यत्नसे उसे उस स्थानमें भेज दो ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोली, इस प्रकार द्रौपदी और भीमने दुःखित होकर उस रात्रिको बिताया । राति बीततेही द्रौपदी रानोके घरको चली गई । उधर प्रातःकाल होतेही कीचक भी राजाके भवनमें पहुँचा और द्रौपदीमे बोला, राजा विराटके आगे मैंने तुम्हें पृथ्वीमें गिराके लातसे मारा, सुभ बलवानका विरोध करनेसे कोई तेरी रक्षा कर सकता है ? कोई मुझे दोष न दे, इस लिये मैंने राजा विराटको नाम मातका राजा बना रक्खा है । वास्तवमें सैन्ही मल्लदेशका राजा और सेनापति हूँ । हे सुश्रीणि । हे भीरु । तू सुखसे मेरी सेवाकर, मैं प्रति दिन तुम्हें सौ निष्क दंगा । तेरी सेवाके लिये सौ दासी और सौ दास हर समय उपस्थित रहेंगे । तथा सैन्ही तेरा दास होकर रहूँगा । हे भीरु । तेरे लिये खच्चरयुक्त रथ उपस्थित रहेंगे, इस लिये तू मुझसे सद्गम कर ।

द्रौपदी बोली हे कीचक । मैं यशस्वी गन्धर्व्वोंसे वहुत डरती हूँ । यदि तुम मुझसे यह प्रतिज्ञा करो कि तुम्हारे और मेरे सद्गमको भाई और मित्रभी न जान नकेगी । तब मैं तुमसे सद्गम करूँगी ।

कीचक बोला, हे कदलीके समान जड़ा-वाली । हे सुश्रीणि ! हे कल्याणि । तुम जैसे कहती हो, मैं वैसेही करूँगा, मैं तुमसे सद्गम करनेके लिये शून्य घरमें अकेलाही जाऊँगा ऐसा करनेसे मन्हा तेजस्वी गन्धर्व्व तुम्हें नहीं देख सकेंगे ।

द्रौपदी बोली, यह जो राजा विराटने नाचनेके लिये स्थान बनाया है, जहां दिनभर कन्या नाचती है, और रातको अपने अपने घरको चली जाती हैं, उसे गन्धर्व्व लोग नहीं जानते हैं । तुम अन्धरेमें आधी रातको वहाँ जाना । मैं निःसन्देह तुमसे वहाँ मिलूँगी ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोली, इस प्रकार द्रौपदी और कीचकसे बात होते होते दो पहर दिन बीत गया । द्रौपदीको यह आधा दिन मही-नके समान बीता । हे राजन् जनमेजय । तब कीचक वहुत प्रसन्न होकर अपने घरको गया, परन्तु उस मूर्खन यह न जाना कि सैरिन्धी मेरे लिये मृत्युरूप होगई है । काम मोहित कीचक उसी समयसे अपने शरीरको संवारने लगा । कीचक विशालनयनी द्रौपदीका स्मरण करते हुए, अपने शरीरमें चन्दन और माला धारण करने लगा, उसको वह समय अनेक वर्षोंके समान जान पड़ा, कीचकके आभूषण धारण करनेसे उसके मरनेके समय ऐसी शोभा बढ़ी, जैसे बुतनेके समय दियेकी बत्तीका प्रकाश बढ़ता है । काम मोहित कीचकने द्रौपदीके ववनमें विश्राम कर लिया, परन्तु यह न जाना कि मेरी मृत्युभी आजहीकी रात्रिमें है । उसी समय द्रौपदी भीमसेनके पास चौकीमें गई और कहने लगी कि मैंने तुम्हारी आज्ञानुसार आधीरातके समय कीचकको उसही नाच घरमें बुलाया है, वह आधीरातको अकेला उस शून्य नाचघरमें आवेगा, तब वहाँ उसको मार डालना । हे कुन्तीनन्दन । तुम वहाँ

जाकर उस काममोहित सूतपुत्र कीचकका नाश करो। वह मूर्ख अभिमानके बशमें होकर गन्धर्वोंका निरादर करता है। हे मारनवालोंमें श्रेष्ठ। तुम उसको मारो और कीचकमें फँसो हुई हथिनीके समान भरा उद्धार करो। हे भारत। मुझ दुःखिनीको आसू पोछो तथा अपना और अपने कुलका कल्याण करो।

भीमसेन बोले, हे सुन्दर मुखवाली। तुमने हमको बहुत प्यारी बात सुनाई। हम तुम्हारा आदर करते हैं, और युद्धके लिये कुछ सहायको इच्छा नहीं करते। हे उत्तम रङ्गवाली। कीचकसे युद्ध होनेकी वार्ता सुन मुझे वैसाही आनन्द हुआ, जैसा हिडम्बा-सुरके मारनेसे हुआ था। मैं अपने धर्म और भाइयोंको शपथ करके तुमसे सत्य कहता कि कीचकको इस प्रकार मारूंगा, जैसे इन्द्रने वृत्रासुरको मारा था। मैं निश्चय कीचकको अपने अथवा चांदनेमें पीत दूंगा, यदि उसकी ओर होकर राजा विराट लड़ेगा तो उसका भी नाश कर दूंगा। फिर दुर्योधनको मारकर राज्य छीन लूंगा, राजा युधिष्ठिर इच्छानुसार विराटकी सेवा करें।

द्रौपदी बोली, हे प्राणनाथ। आप मेरे लिये अपन सत्यको मत छोड़िये, जैसे उसे छिपकर मार सकें ऐसाही, यत्न कीजिये।

भीमसेन बोले, हे भीरु। जैसे तुम कहती हो मैं वैसेही करूंगा, आज अवश्य कीचकको गन्धर्वोंके सहित मारूंगा। हे अनिन्दिते। मैं उस स्थानमें छिपकर कीचकके शिरको इस प्रकार तोड़ूंगा जैसे मतवारा हाथी बेलकी तोड़ता है, वही दुष्ट न प्राप्त हो। अन्य द्रौपदीकी इच्छा करता है ?

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तब भीमसेन रातकी छिपकर उस नाचघरमें जा बैठे और इस प्रकार कीचकका मार्ग देखने

लगे, जैसे छिपकर सिंह हरिनका मार्ग देखता है। उसी समय कीचक भी द्रौपदीसे सङ्गम करनेको इच्छासे अपने शरीरको सुधारकर उस नाचघरमें पहुँचा। कीचक द्रौपदीके बतलाये हुए स्थानमें गया, उस समय वह स्थान अन्धरेसे भरा था, इससे कीचक द्रौपदीको ढूँढ़ने लगा। अनन्तर दुरात्मा कीचकने पहलीसे आये हुए, महा बलवान भीमसेनकी एकान्त पलगपर सीते हुए पाया। द्रौपदीके निरादरसे क्रोधमें भरे हुए भीमसेनका हाथ सूतपुत्रने पकड़ लिया। पश्चात् कामसे व्याकुल कीचक आनन्दके बशमें होकर भीमसेनके पास सी गया, और प्रसन्न होकर कहने लगा, हे सुन्दरि। मैं तेरे लिये बहुत धन लाया हूँ, और सुन्दर सुन्दर आभूषण लाया हूँ। हे सुन्दर भौंहवाली। मैंने तुम्हारे लिये रत्न भूषण धारिणी, उत्तम वस्त्रवाली, रूप और लावण्यसे भरी, क्रीड़ा करनेवाली अपनी युवती स्त्रियोंको छोड़ दिया, आज मेरे घरकी सब स्त्रिया अकस्मात् कहने लगें कि तुम्हारे समान सुन्दर और उत्तम वस्त्रधारी जगत्में कोई पुरुष नहीं है।

भीमसेन बोले, ईश्वरने तुमको मेरीही प्रारब्धसे सुन्दर बनाया है। तुम प्रारब्धहीसे अपनी प्रशंसा करते हो, जैसा मुझे तुम्हारे शरीरका स्पर्श जान पड़ता है, ऐसा और दूसर पुरुषका नहीं, तुम्हारे कूनसे मुझे जान पड़ता है कि तुम स्त्रियासे प्रसंग करनेमें बहुत चतुर हो, और यह भी निश्चय होता है कि जगत्में तुम्हारे समान कोई पुरुष ऐसा नहीं है जो स्त्रियोंको प्रसन्न कर सके।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महा बलवान महाबाहु कुन्तीपुत्र भीमसेन ऐसा कहकर वेगसे उठे और हमकार कहने लगे। रणपी ! अब तेरी बहन थोड़े समयमें तुम्ही भूमिमें पड़ा हुआ वैसेही देखेगी जैसे सिंहसे मारें हुए बड़े

शरीरवाले हाथीको जलु देखते हैं। तेरे मरनेसे सैरिन्धी सुख पूर्वक बिहार करेगी और उसके पतिभी आनन्दसे रहेंगे। ऐसा कहकर महाबलवान भीमसेनने बलवान कीचकके बाल पकड़ लिये कीचकने भी वेगसे कुड़ाकर भीमसेनके हाथ पकड़ लिये। तब बलवान कीचक और भीमसेनका घोर बाहुयुद्ध होने लगा, कीचकोंमें श्रेष्ठ कीचक और पुरुषोंमें श्रेष्ठ भीमका द्रौपदीके लिये इस प्रकार घोर युद्ध हुआ, जैसे बसन्त ऋतुमें एक हथिनोके लिये दो हाथी लड़ते हों। वे दोनों अपनी अपनी जयकी इच्छासे इस प्रकार लड़ने लगे जैसे पहले वानरकुल सिंह सुग्रीव और बालिसे युद्ध हुआ था, वे दोनों पाँच शिरके सर्पके समान अपने हाथोंको उठाकर युद्ध करने लगे। तब बलवान कीचकने भीमको वेगसे मारा, परन्तु स्थिर प्रतिज्ञावाले भीम युद्धमें एक चरण भी पीछेको न हटे। वे दोनों परस्पर लपटकर एक दूसरेको बड़े बैलके समान खींचने लगे। उन दोनोंका यह घोर युद्ध इस प्रकार हुआ, जैसे नाखून और दांत रूपी शस्त्रधारी मतवारे सिंहोंका युद्ध होता है। अनन्तर कीचकने क्रोध करके भीमसेनको इस प्रकार पकड़ा जैसे मतवारा हाथी मतवारे हाथीको पकड़ता है। बलवान भीमसेननेभी उसको वैसेही पकड़ा, तब कीचकने बलसे उठाकर भीमको फेंक दिया। उन दोनों बलवानोंके हाथ घिसनेसे युद्धमें ऐसा शब्द हाने लगा, जैसा वास फटनेसे वनमें होता है। अनन्तर भीमने उसका पैर पकड़कर इस प्रकार घुमाया जैसे महावायु वृक्षको घुमाता है। बलवान भीमके घुमानेसे कीचकका बल नष्ट होगया। और प्रवास लेता लेता भीमको खींचने लगा। यद्यपि उस समय कीचकको बल्लत थोड़ा बल रह गया था, तौभी उसने क्रोधकर अपनी शङ्खाके बलसे भीमसेनकी पृथ्वीमें गिरा दिया, बलवान कीचककी

हाथसे पृथ्वीमें गिरकर भीमसेन पुनः दण्डधारी यमराजके समान उठे और फिर वे दोनों परस्पर श्लाघा करके युद्ध करने लगे। उस आरातके समय यह युद्ध निर्जन स्थानमें हुआ तब वह उत्तम स्थान उन दोनों क्रोधो वीरो गर्जनेसे कापने लगा। तब भीमने बलवान कीचकके हृदयमें एक धप्पड़ मारा, पर कीचक क्रोधमें भरकर एक चरणभी पीछे न हटा, उस धप्पड़के लगनेसे सूतपुत्र कीचक पृथ्वीमें बैठ गया और उसका बल नष्ट हो गया, भीमने उसको बलहीन देखकर पृथ्वी गिरा दिया। फिर बलवान भीमने क्रोध भरकर और लम्बा प्रवास लेकर कीचकके बाल पकड़ लिये। विजय करनेवालोंमें श्रेष्ठ महाबलवान भीमसेनने कीचकको इस प्रकार पकड़ा जैसे मांस खानेकी इच्छावाला शार्दूल हरिनको पकड़ता है। जब भीमसेनने देखा कि कीचकका बल नष्ट होगया तब उसे अपनी हाथोंसे ऐसे दबाया जैसे रस्तेसे पशुको बांधा है। उस समय कीचकके कण्ठसे फटो हुआ भेरके समान शब्द निकलने लगा। तब भीमने मूर्च्छित कीचकको बल्लत समयतक घुमाया फिर पृथ्वीमें गिराकर द्रौपदीका क्रोध शान्त करनेके लिये उसका कण्ठ तोड़ने लगे, तब उसके शरीर टूट गये और आख बाहर निकल आई, तब भीमने उसको कमरको पैरसे तोड़ दिया, भीमने कीचकको इस प्रकार मारा कि कोई पशुको मारता है। जब पाण्डुनन्द भीमने देखा कि कीचक मर गया, तब उस पृथ्वीमें रगड़कर ऐसा कहने लगे, मैं इस द्रौपदीके शत्रुको मारकर आज भाईके ऋण कुटा, और परम शान्तिको प्राप्त हुआ पुरुषसिंह महा क्रोधी भीमसेनने इस प्रकार कीचकको मारकर उसके शरीरकी केश दिया। मरते समय कीचकके वस्त्र और आभूषण सब गिर गये थे। बलवानोंमें श्रेष्ठ भीम

क्रोधसे दात चवाने लगे और हाथसे हाथको मलने लगे । फिर उसके हाथ पैर और शिरको तोड़कर उसके पेटमें प्रवेश कर दिये । भीमने कीचकको इस प्रकार मारा, जैसे शिव शूको मारते हैं । महापराक्रमी भीमने कीचकको मांसपिण्डकी भांति बनाकर द्रौपदीको दिखाया । भीम महा सुन्दरी द्रौपदीसे बोले, हे पाञ्चालि ! तुम यहाँ आकर इस कामी कीचककी दशा देखो । हे महाराज ! ऐसा कहकर भीमने अग्नि जलाई और अपने पैरसे दवाकर दुरात्मा कीचकका शरीर द्रौपदीको दिखाया और कहने लगे, हे भीम ! हे सुन्दरी ! जो रूप गुण और शीलसे भरी हुई द्रौपदीकी इच्छा करते हैं, उनको हम ऐसेही मारते हैं, जैसे कीचक विराजमान है । इस प्रकार द्रौपदीके प्यारे घोर कर्मको करके भीमने क्रोधको शान्त किया, और द्रौपदीसे पूछकर शीघ्रही चौकेमें आकर सो गये । स्त्रियोंमें अष्ट द्रौपदीभी कीचकका नाश करके अत्यन्त प्रसन्न हुई, फिर पहरवालोंसे बोली कि मेरे गन्धर्व पतियोंने उस कीचकको मार डाला, पराई स्त्रियोंके चाहनेवाले ऐसेही मारे जाते हैं, तुमलोग इसको आकर देखो । उसके ऐसे वचन सुन सहस्रो पहरवाली मशाल जलाकर उस स्थानमें आये । उन सर्वान् रुधिरसे भौंगे हुए प्राण रहित कीचकको पृथ्वीमें पड़ा हुआ देखा । वे हाथ पैरसे रहित कीचकका देखकर वज्रत डरे और आश्चर्य करने लगे । इस अद्भुत कर्मका देखकर वे लोग कहने लगे कि इसको हाथ पैर और शिर कहा गये ? इसको अवश्य गन्धर्वोंने मारा है ।

२१ अध्याय समाप्त ।

त्रैविशम्पायन मुनि बोले, हे राजा जनमेजय ! इस समाचारको सुनकर कीचकके सब शत्रु लोग वहाँ आये और कीचककी हव

पैर रहित ककुबेकी खोपरीके समान पड़ा हुआ देखकर रोने लगे, और अत्यन्त आश्चर्य करने लगे । उन्होंने भीमसेनसे मारे हुए कीचकको इस प्रकार देखा, जैसे इन्द्रसे मरे हुए राक्षसको उसके बन्धु लोग देखते हैं । अनन्तर उन्होंने संस्कार करनेके लिये कीचकको बाहर निकाला । फिर थोड़ी दूरपर खर्गसे लगी हुई सुन्दरी द्रौपदीको खड़ी देखा । फिर वे सब लोग सम्मति करके बोले, इसी दुष्टाके लिये कीचक मारा गया है, इस लिये इसे भी शीघ्रही मार डालना चाहिये अथवा इसको मारो मत कीचकके सङ्ग जीतीहो जला दो । क्योंकि मरे हुए कामी कीचकका भी हम लोगोंको हित करना चाहिये । अनन्तर वे सब लोग राजा विराटके पास जाकर बोले कि इसीके लिये कीचक मारा गया है, यदि आप आज्ञा दीजिये तो कीचकके सङ्ग इसकोभी जला दें ? राजाने सूतपुत्रोंके बलसे डरकर द्रौपदीके जलानेकी आज्ञा दे दी । अनन्तर वे सब लोग कमल नयनो भयसे व्याकुल सूर्च्छित द्रौपदीके पास आये, और द्रौपदीको पकड़ने लगे । वे सुन्दरी द्रौपदीको अरधीमें कीचकके सङ्ग बाधकर श्मशानमें ले चले । निन्दा रहित पतिव्रता द्रौपदी सूतपुत्रोंके वश होकर अपने पतियोंकी पुकार-कार रोने लगी ।

द्रौपदी वाली, जय, जयन्त, विजय, जयर्त्तन और जयदल मेरे इस वचनको सुनें । ये कीचक मुझे पकड़े लिये जाते हैं, युद्धमें जिनके धनुषोका शब्द वज्रके समान होता है, जिन वेगवान् गन्धर्वोंके रथोका शब्द महाघोर होता है, वे मेरे पति मेरे वचनको सुनें । ये सूतपुत्र मुझे पकड़कर लिये जाते हैं ।

त्रैविशम्पायन मुनि बोले, रोती हुई द्रौपदीकी दोनवाणी सुनकर भीमसेन उठे और दौड़कर कहने लगे ।

भीमसेन बोले, हे सुन्दरि सैरिन्धि ! हम तेरे वचनको सुनते हैं, इस लिये तुम्हें सूतपुत्रोंसे कुछ भय नहीं है ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, ऐसा कहकर महाबाहु भीमसेनने जमुहाई ली और सूत-पुत्रोंके मारनेके लिये अपने वेपकी बदलकर दूसरे मार्गसे बाहर निकले । फिर नगरकी छाड़दिवालीके वृक्षपर चढ़कर देखने लगे, फिर वहांसे उतरकर छाड़दिवालीकी नांघ कर वेगसे श्मशानकी ओर दौड़े कोचकोंके पहलेही श्मशानमें पड़च गये और चिताके पास जाकर वृक्षोंको देखने लगे, फिर एक ताड़के समान उंचे जपरसे सूखे हुए भारी वृक्षको देखा, यह वृक्ष दस पुरुषों लम्बा था । भीमने उसकी हाथोंके समान उखाड़ लिया और कंधेपर रखकर महाबलवान दण्डधारी यमराजके समान रूप धारण करके सूतोंकी ओर दौड़े उनके दौड़नेसे अनक बड़गद पीपल और कचनारके वृक्ष टूटकर पृथ्वीमें गिर गये । उस सिंहके समान गन्धर्वको आते हुए देख सब सूतपुत्र डरसे कांपने लगे । तब वे लाग कहने लग कि यह क्राधम भरा वृक्ष लिये गन्धर्व चला आता है इस लिये सैरिन्धीका छाड़ दो । यही हमारे डरका कारण है । जब उन्होंने देखा कि यह गन्धर्व हम लोगोंका इस वृक्षसे मार डालेगा, तब वे लोग शत्रुओंको छाड़ कर कर, नगरको ओर भागे । भीमने भागते हुए एक सौ पांच सूतोंका इस प्रकार मारा, जैसे वज्रधारी इन्द्र दानवोंका मारते हैं । बलवान भीमने उसी वृक्षसे शत्रुओंका नाश करके द्रौपदीको खोल दिया और दुःखसे भरी रोती हुई द्रौपदीसे बोले, हे सुन्दरो ! तुम्हें जो हेश देते हैं, हम उनका इसी प्रकार नाश करते हैं, अब तुम नगरकी जाओ तुम्हें कुछ भय नहीं है । मैं दूसरे मार्गसे विराटकी रसोईकी जाता हूं ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महाबलवान भीमसेनसे कोचकोंका कुल ऐसे नाश हुआ, जैसे अग्नि लगनेसे वन । एक सेनापति कोचकोंको भीमने मारा था और एकसौ पांचको फिर मारा इस प्रकार एक सौ छः कोचक मारे गये, इस महा आश्चर्यको देखकर सब नगरके स्त्री पुरुष चुप हो रहे ।

२३ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बाल, हे राजन् जनमेजय ! नगरके लोगोंने महाबलवान कोचकोंको गन्धर्वोंके हाथसे मारा हुआ देख राजासे जाकर कहा, हे महाराज ! जिस प्रकार वज्रसे इन्द्रने पर्वतोंको नाश किया था, ऐसेही गन्धर्वोंने कोचकोंको मार डाला, सब कोचक पृथ्वीमें पड़े हैं । सैरिन्धी छूटकर पुनः आपके नगरकी आता है । हे राजेन्द्र ! पुरुषोंका मंथन सदाही प्यारा है और सैरिन्धी बहूत रूपवती है, एवम् गन्धर्व भी बहूत बलवान हैं, जिस प्रकार उसकी दापसे आपके नगरका नाश न हो, ऐसा उपाय कोजिये । उनका वचन सुन कर महाराज विराट बोले, कि इन सब सूतपुत्रोंका एकही चितामें रत्न और सुगन्धोंके सहित जला दो । फिर राजाने अपना पटरानी सुदेष्णासे दुःखित होकर कहा कि जब सारन्धी यहा आवे तब तुम हमारे वचनसे उसका ऐसा कहना कि हे सैरिन्धी ! तुम्हारा कल्याण हो, हे सुश्रावण ! राजा विराट, गन्धर्वोंके भयसे बहूत डरते हैं, इस लिये जहा तुम्हारी इच्छा हो वहाको चला जाओ ; यद्यपि हमारी शक्ति तुम्हें छाड़नेकी नहीं है, क्योंकि साक्षात् गन्धर्व तुम्हारी रक्षा करते हैं, परन्तु क्या करें । यद्यपि मेहा सैरिन्धीसे कहता परन्तु दापसे डरकर नहीं कहता हूं, तुम्हारे कहनेसे कुछ दाप नहीं होगा, इस लिये तुमही कह देना ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, द्रौपदी भयसे दृष्ट कर और सूतपुत्रोंको मारकर नगरका ओर

चली। उस समय द्रौपदीकी ऐसी दशा हुई
जैसी सिंहसे डरी हुई हरिनीकी। नगरमें
आकर द्रौपदीने अपने शरीरकी जलसे धोया
और वस्त्रोंसे पोछा। उसको नगरमें आते हुई
देख नगरके लोग गन्धर्वोंके डरसे इधर उधर
भागने लगे, और कोई डरसे आंख बन्द करके
बैठने लगा। अनन्तर द्रौपदी भीमको रसोईके
द्वारपर मतवारे हाथीके समान बैठे हुए देख-
कर धीरे धीरे कहने लगी, जिन गन्धर्वराजने
मुझे सहा भयसे छोड़ाया मैं उसे प्रणाम करती
हूं। भीमसेन बोले, जो पहले इस विराट
नगरमें इसरीके वशमें होकर रहते थे, वे आज
ऋणाहीन होकर सुखसे विहार करें।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर द्रौपदीने
विराटके नर्तनागारमें कन्याओंकी नचाते हुए
बहावाह अर्जुनकी देखा, तब वे सब कन्या
नृत्यशालासे अर्जुनके सहित बाहर निकल
कर दुःखिनी द्रौपदीकी देखने लगीं।

कन्या बोलतीं, हे सैरिन्धी। तू आज प्रारब्ध-
घोसे कूटकर आई है, और प्रारब्धहीसे तुम्हें
दुःख देनेवाले कीचकोंका नाश हुआ।

वृहन्नला बोली, हे सैरिन्धी। तुम कैसे
कृटी ? और किस प्रकार पापी कीचकोंका
नाश हुआ ? मैं सबकी सुनना चाहती हूं, तुम
कहो।

सैरिन्धी बोली, हे वृहन्नली ! हे कल्याणि।
तुम तो सुखसे कन्याओंके सहित रहती हो,
अब तुम्हें सैरिन्धीसे क्या प्रयोजन है ? तुम्हें
कुछ दुःख नहीं होता और सैरिन्धी सहा
दुःखमें पड़ी है, इसी लिये तुम हंसकर मुझसे
पूछती हो।

वृहन्नला बोली, हे कल्याणि ! वृहन्नला
भी घोर आपत्तिमें पड़ी है, हे बाले।
क्या तुम नहीं जानती हो कि वह नीच-
वैनिकी प्राप्त होगई है। मैं तुम्हारे सङ्गही
रहती हूं और तुम सबकी सङ्ग रहती हो, हे

सुन्दरी। तुम्हें दुःख होनेसे किसकी दुःख
नहीं होता ? कोई मनुष्य किसीके हृदयको
नहीं देखता इससे तू, हमारे अन्तःकरणको
नहीं जानती हो।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर सब
कन्याओंके सहित द्रौपदी सुदेष्णा राणीके
घरमें गई। तब राजगत्नी सुदेष्णाने राजाकी
आज्ञाके अनुसार द्रौपदीसे कहा, हे सैरिन्धी।
हे भर्ते। राजा गन्धर्वोंसे बहुत डरते हैं इस
लिये तुम्हारी जहां इच्छा हो तहां शीघ्र
चली जाओ। तू यह भी जानती हो कि
कि पुरुषोंको मैथुन अत्यन्त प्रिय है, और तू
अत्यन्त सुन्दरी युवती और अनाधारण स्त्री हो,
तथा तुम्हारे पति गन्धर्वोंके गणन कोधी हैं,
इस लिये तुम्हारा यहां रहना उचित नहीं।

सैरिन्धी बोली, महाराज केवल तेरा दिन
हमारे ऊपर और ब्रूपा करें, इसके प्रदान मेरे
पति कृतकृत्य होजायंगे, तब वे मुझको वहासे
ले जायंगे ; तुम्हारा और गन्धर्वोंके सहित
राजाका भी कल्याण होगा।

विराटपर्वमें कीचक वध पर्व समाप्त।

२३ अध्याय समाप्त।

अथ गोहरण पर्व।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजा जनमेजय।
जब श्याम्योंके सहित कीचक मारा गया, तब
तब लोग आश्चर्य सहित इस कथाको कहने
लगे। उस समय तब नगरोंमें कीचक मारा
गया, यही कोलाहल होने लगा। सब लोग
कहने लगे कि यह कीचक महादुर्बुद्धि, कामी,
बलवान, नाकसो, राजाका परारा और शत्रु-
ओंसे युद्ध करनेवाला था, उस दृष्ट पापीको
गन्धर्वोंने मारा। हे महाराज। तब देशोंमें
यह समाचार फैल गया कि पापी कीचक
मारा गया।

दुर्योधनने जो पाण्डवोंके दूढ़नेके लिये दूत भेज थे, वे सब अनेक नगर, गांव और देशोंमें अच्छो प्रकार पाण्डवोंको दूढ़कर हस्तिनापुरमें लौट आये। उन्होंने राजसभामें जाकर महारथ त्रिगर्त, महात्मा भीष्म, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य और अपने भाइयोंके सङ्ग धृतराष्ट्रपुत्र राजा दुर्योधनको बैठे दिखा। फिर दूत लोग प्रणाम करके कहने लगे, हे पृथ्वीनाथ ! हम लोगोंने उस मनुष्य रहित हरिनोसे भरे अनेक वृक्ष लता और वृक्षोंके गुल्मोंसे भरे झण घोर बनमें पाण्डवोंको बद्धत दूढ़ा परन्तु हमारा परिश्रम सफल न हुआ। हम लोग नहीं जानते हैं कि महा पराक्रमी पाण्डव लोग कहाँ चले गये। हम लोगोंको बनमें उनके चरणोंके चिह्न भी नहीं मिले, हमने पर्वत पर्वतोंके ऊंचे शिखर, नगर, मनुष्योंसे भरे देश, और शून्य स्थानोंमें पाण्डवोंको बद्धत दूढ़ा परन्तु उन लोगोंका कहीं भी पता नहीं लगा। हे पृथ्वीनाथ ! हे पुष्पसिंह ! हम लोगोंको निश्चय होता है कि पाण्डव लोग मर गये। हे महावीर ! हम लोगोंने पाण्डवोंको रथोंके मार्गमें भी दूढ़ा परन्तु वहाँ भी उनका पता नहीं लगा। हे शत्रुनाशन ! हम लोग थोड़े दिन पाण्डवोंके सारथियोंके पास रहे, वे सब लोग पाण्डवोंके बिनाही हारिकामें आवसे है। हे राजेन्द्र ! हारिकामें न द्रौपदी हैं और न महाव्रतधारी पाण्डव है। हे भरतकुलसिंह ! हम आपको प्रणाम करते हैं। पाण्डव लोग निश्चय मर गये। हम लोगोंको कुछ निश्चय नहीं होता है कि वे लोग कहाँ हैं ? क्या काम करते हैं ? और किस वेष्टमें हैं ? हे पृथ्वीनाथ ! अब आप हम लोगोंको कोई दूसरी आज्ञा दीजिये। हे नरनाथ ! अब आप जहाँ कहें तहाँ हम पाण्डवोंको दूढ़नेको जायें। हे वीर ! अब हम एक प्यारी बात आपको सुनाते हैं, जिस महाबलवान मत्स्यदेश निवासी कीचक नामक सूतने

त्रिगर्तोंका नाश किया था, उसकी रातमें गन्धर्वोंने मार डाला, परन्तु उन गन्धर्वोंके दर्शन किसीने नहीं किये। कीचकके सङ्ग उसके सब भाई भी मारे गये। हे कौरव इस शत्रुओंकी पराजयकी सुनकर उचित कार्य कीजिये।

२४ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय ! राजा-दुर्योधनने उनके वचन सुनकर बद्धत समयतक विचार किया, फिर सभासदों बोले, काव्योंको पूर्णगति जानना बहुतही कठि है, इस लिये तुम सब विचार करो कि पाण्डव लोग कहाँ चले गये ? देखो इस तेरहवें वर्षका बद्धत थोड़ा समय शेष है, महापराक्रम सत्यव्रतधारी पाण्डव लोग इस तेरहवें वर्ष पूरा होते ही प्रत्यक्ष हो जायेंगे। वे लोग मत वारे हाथीके समान बलवान और विपैले सापर्व तुल्य क्रोधी हैं, अब उन्होंने तेरह वर्षतक महादुःख भोगा है, इस लिये अवश्यही हम लोगोंसे युद्ध करेंगे, वे सब समयके जाननेवाले घोररूपधारी पाण्डव लोग यदि इस समय प्रत्यक्ष हो जायें तो फिर भी क्रोधकी जीतकर बनकी चले जायेंगे। इस लिये तुम लोग शीघ्रही उन लोगोंको दूढ़ लो। उनके मिलनेसे हम बद्धत दिन पर्थ्यन्त निष्कण्टक राज्य करेंगे। उसी समय कर्ण बोले,—

हे भारत ! इसी समय दूसरे धूर्त, बुद्धिमान उत्तम कार्य करनेवाले दूत पाण्डवोंको दूढ़ने जायें, वे सब उत्तम देश, मनुष्योंसे भरे नगर, रमणीय सभा, सिद्धोंके स्थान, राजधानी, तीर्थ और अनेक प्रकारके स्थानमें पाण्डवोंको दूढ़ें, और बुद्धिसे विचारें कि पाण्डव कहाँ हैं और जाननेवाले बुद्धिमान निपुण तथा पाण्डवोंके भक्त लोग भी छिपे हुए पाण्डवोंको दूढ़ें। नदी, कुञ्ज, तीर्थ, गांव, नगर, रमणीय आश्रम,

पर्वत और गुफाओंमें भी पाण्डवोंकी ढूँढ़ना चाहिये ।

अनन्तर महापापी दुर्योधनका छोटा भाई द्रुपदासन राजा दुर्योधनसे बोला, हे महाराज ! हे पृथ्वीनाथ ! जिन दूतोंपर हमारा विश्वास है, वेही लोग पुनः पारितोषिक पाकर पाण्डवोंकी ढूँढ़ने जायें । कर्णने जिस प्रकार कहा है सोही दूत पाण्डवोंको ढूँढ़ें । ये सब लोग क्रमके अनुसार एक देशसे दूसरे देशको जायें और पाण्डवोंको ढूँढ़ें । यदि उनका पता न लगे तो जान लीजिये कि वीर पाण्डवोंको महा वनमें सर्पोंने खा लिया, या वे लोग समुद्रके पार चले गये । अथवा बहुत दिनतक दुःख भोगते भोगते कहीं मर गये होंगे । हे कुरुनन्दन ! हे पृथ्वीनाथ ! इसलिये आप अपने मनको स्थिर करके उत्साह सहित अपने कार्योंको कीजिये ।

२५ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् ! जनमेजय ! इसके पश्चात् महा बलवान सब शास्त्रोंकी जाननेवाले द्रोणाचार्य बोले,—

पाण्डवोंके समान पुरुष नष्ट नहीं होति और न कोई उनका निरादर कर सकता है ! वे चारो शूर, विद्वान, बुद्धिमान, जितेन्द्रिय, धर्मज्ञ और धर्मराज युधिष्ठिरके भक्त हैं । चारो पाण्डव नीति और धर्मके जाननेवाले हैं, सब धर्मोंकी करनेवाले, बुद्धिमान, युधिष्ठिरको समानही मानते हैं । हे महाराज ! महात्मा श्रीमान भाद्र्योंको माननेवाले अजातशत्रु युधिष्ठिरके चारों भाई उनके भक्त हैं ! अपने भक्त महात्मा, बलवान, भाद्र्योंके लिये महाराज युधिष्ठिर क्यों नहीं यत्न करेंगे ? इस लिये मुझे अपनी बुद्धिसे निश्चय होता है कि उनका नाश नहीं हुआ, वे लोग कहीं छिपकर अपना समय बिता रहे हैं, इस लिये इस समय

जो कुछ करनेके योग्य कार्य हैं, सो तुमको अत्यन्त विचारके सहित करना चाहिये । क्योंकि अब बिलम्ब करनेका समय नहीं है । पाण्डव लोग शूरवीर और तपस्वी हैं; इस लिये उनका जानना बहुत कठिन है । तुम महात्मा सब शास्त्रोंके जाननेवाले पाण्डवोंकी शीघ्र ढूँढ़ो । महाराज युधिष्ठिर पवित्रात्मा, गुणवान, पवित्र, सत्यवादी, नीति जाननेवाले, अनन्त पराक्रमी और धर्मात्मा हैं, इस लिये प्रत्यक्ष रहनेपर भी उनको कोई नहीं देख सकता । इस लिये तुम उनको यत्नसे ढूँढ़ो, फिर हम ब्राह्मण, सिद्ध, और उनके जाननेवाले मनुष्योंसे ढूढ़ावेंगे ।

२६ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् ! जनमेजय ! द्रोणाचार्यके वचनके पश्चात् उनके वचनकी प्रशंसा करके सब धर्मोंके तत्व तथा देश और कालकी जाननेवाले सब कौरवोंके पितामह शान्तनुपुत्र भीष्म सबके कल्याणके लिये ऐसा वचन बोले । भीष्मके वचन पक्षपात रहित, साधुओंके मानने योग्य दुष्टोंकी दुर्लभ और धर्म जाननेवाले युधिष्ठिरके अनुकूल थे ।

भीष्म बोले, सब अर्थके जाननेवाले ब्राह्मण द्रोणाचार्यने जो कुछ कहा सो सब सत्य है, पाण्डव लोग सब लक्षणोंसे भरे, उत्तम कार्य करनेवाले, वेदपाठी, व्रतधारी, अनेक श्रुतियोंके जाननेवाले सत्यवादी, वृद्धोंकी आज्ञा माननेवाले, समयवेत्ता और पवित्र हैं । वे लोग कहीं अपना समय बिता रहे हैं । पाण्डव क्षत्रियोंका धर्म करनेवाले कृष्णके भक्त, महावीर, महाबली, महात्मा और साधुओंके मार्गपर चलनेवाले हैं । इस लिये उनको कदापि दुःख नहीं होगा । उनका बल और धर्मही उनकी रक्षा करता है, मुझे निश्चय है कि उनका नाश नहीं होगा ।

हे भारत । मैं उनके टंढनेकी एक नीति बत-
लाता हूँ, महात्मा पाण्डवोंकी दुष्टलोग नहीं
ढढ़ सकते हैं, इस लिये हमलोगोंको जो
करना चाहिये सो तुमसे कहते हैं, हम यह
सम्मति तुम्हारे द्रोहसे नहीं देते हैं । ऐसा
नियम है कि कदापि दुष्ट या साधुसे अधर्मके
वचन नहीं कहने चाहिये और तुमसे कदापि
अधर्मके वचन नहीं कह सकते । हे तात ।
वृद्धोंकी आज्ञा माननेवाले, धीर मन्त्रोंकी
धर्मकी सत्य मानके सत्यही कहना उचित
है । तुम्हारे मन्त्रों लोग इस तेरहवें वर्षमें
धर्मराजके जो जो स्थान बतलाते हैं, हम
उन सबको नहीं मान सकते । जिस नगरमें
महाराज युधिष्ठिर होंगे, वहां राजा और
प्रजा सब सुखी होंगे । जहां राजा युधिष्ठिर
होंगे, तहांके मनुष्य दान, सत्य और लज्जासे
भरे होंगे । जहां राजा युधिष्ठिर होंगे, तहांके
पुरुष मीठीवाणी बोलनेवाले, सत्यवादी,
कल्याणयुक्त, दानी, प्रसन्न, पुष्ट, पवित्र और
सब कर्मोंमें निपुण होंगे । जहां राजा युधि-
ष्ठिर होंगे, तहां कोई भी निन्दक, दुष्ट
अभिमानि, और परद्रोही नहीं होगा । जहां
राजा युधिष्ठिर होंगे उस देशमें चारों वेदके
शब्द पूर्णाहुति और महादक्षिणावाली अनेक
यज्ञ होती होंगी । वहां सदाही मेघ उचित
समयपर वर्षा करता होगा, पृथ्वी अन्नसे
भरी होगी, और देश दुःखसे रहित होगा ।
उस देशके अन्न गुणसे, फल रसोंसे, फूल सुगन्धि-
योंसे वाणी कोमलतासे, वायु शीतलतासे
और दर्शन साधुतासे भरे होंगे । जहां राजा
युधिष्ठिर होंगे, वहां कोई भय नहीं
होगा, उस देशमें अनेक बल और पुष्टिसे भरी
गऊ होंगी, दूध दही और घी रसोंसे भरा
होगा, वहांको खाने और पीनेकी वस्तु गुणयुक्त
होंगी ; वहांके रस, स्पर्श, गन्ध, शब्द और रूप
गुणोंसे भरे होंगे । जहां राजा युधिष्ठिर होंगे

वहां सब लोग अपने अपने कर्मको करते होंगे ।
हे तात । इस तेरहवें वर्षमें पाण्डवोंके सहित
जहां राजा युधिष्ठिर होंगे, उस देशके सब लोग
पवित्र और प्रसन्न होकर परस्पर प्रीति करें
होंगे । जहां राजा युधिष्ठिर होंगे, तहांके
सब लोग उत्साह सहित अपने अपने धर्मोंके
अनुसार द्रष्ट देवता और अतिथियोंकी पूजा
करते होंगे, और अनेक उत्तम उत्तम कार्यमें
तत्पर होंगे । जहां राजा युधिष्ठिर होंगे,
तहांके लोग पापको छोड़कर धर्मही करते
होंगे और यज्ञ तथा व्रत करते होंगे । उस
देशके सब लोग धार्मिक हो गये होंगे ।
हे तात । कृत्तीनन्दन युधिष्ठिरके जाननेमें धर्माला
ब्राह्मण भी ससर्थ नहीं हैं, और सामान्य
पुरुषोंकी तो बात ही क्या है ? युधिष्ठिरमें
सत्य, धारणा, दान, दम, शान्ति, क्षमा, बजा,
तेज, कीर्ति, शील, और साधुता निवास करते
हैं । मैं इससे अधिक और कुछ नहीं कह
सकता, मैं जानता हूँ कि बुद्धिमान युधिष्ठिर ऐसी
ही स्थानमें होंगे । यदि तुमको मेरे वचनपर
विश्वास हो तो विचार पूर्वक अपने कल्याणके
कार्य करो ।

२७ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जन्मे
जय । इसके पश्चात् शारद्वतके पुत्र कृपावाच्य
बोले ।

वृद्ध भीष्मने पाण्डवोंके विषयमें जो द्रष्ट
कहा सो सब सत्य है । भीष्मकी वाणी श्रेष्ठ
और धर्मसे भरी अनुकूल मीठी और अत्यन्त
कोमल थी, मैं भी इस विषयमें कुछ कहना
चाहता हूँ ; सुनिये । पाण्डवोंके रहनेका स्थान
द्रुतोंके द्वारा जानना चाहिये, और जो कल्याण-
दायक नीति हो सो भी इस समय करनी
चाहिये । हे तात ! साधारण वैरीकी भी
छोड़ना उचित नहीं है, फिर सब शत्रुओंके

जाननेवाले पाण्डवोंकी तो कथाही क्या है ? इस लिये हमें निश्चय होता है कि महात्मा पाण्डव लोग कहीं छिपकर यज्ञ करते होंगे और अपने समयको वितरते होंगे। इसमें सन्देह नहीं है कि अब पाण्डवोंके उदय होनेका समय आगया, इस लिये तुम अपने और मित्रोंके राज्यमें सेनाका प्रवन्ध करो, क्योंकि इस वर्षके बीततेही अपार तेजस्वी महा बलवान पाण्डवोंका उत्साह बृद्धत बढ़ जायगा, इस लिये तुम सेना, कोश और राजनीतिका विचार करो, फिर समय आनेपर हम लोग उचित कार्य करेंगे। हे तात ! तुम अपनी बुद्धिसे भी अपने बलका विचार करो, तथा निर्बल और बलवान मित्रोंका भी विचार कर दो ; इसके पश्चात् हम लोग अपने उचित और प्रनुचित बलको देखकर शत्रुओंके सङ्ग कोई व्यवहार करेंगे। चाहे शान्तिसे हो, चाहे हिंसे हो, चाहे दानसे हो, चाहे दण्डसे हो, चाहे कुछ देनेसे हो, तुम सब राजासे मेलकर जाओ। बलवानोंको न्यायसे, दुर्बलोंको डरसे, और मित्रोंको शान्तिसे अपने वशमें कर लो ; इसके पश्चात् सेना और कोषको बढ़ावो, क्योंकि तुम्हारा युद्ध बलवान पाण्डवोंसे होनेवाला है। पाण्डवोंके पास सेना और वाहन कुछ भी नहीं हैं, इस लिये तुम धर्मानुसार विचार कर सब कार्योंको करो, तब बृद्धत कालतक सुख भागोगे।

२८ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजा जनमेजय ! उसी समय त्रिगर्त देशका राजा दुर्योधनका रथ-सेनापति महा बलवान सुशर्मा बोला, हे प्रभो ! मत्स्यदेशके राजा विराटके सेनापति सूतन कई बार शाल्व देशके मित्रियोंका जोता था, उसको बन्धुओं सहित मेरी सेना ने मार डाला। राजा सुशर्माके ऐसे

वचन सुन राजा दुर्योधनने कर्णकी ओर देखकर ऐसे वचन कहे, पहले समयमें मत्स्यराज विराटने हमारे राज्यमें वृद्धत उपद्रव किया था, उसका कीचक नामक सेनापति बड़ा बलवान था, उस महाक्रोधी, क्रूर, दुष्ट, महा बलवान, पापी, निर्लज्ज कीचकको गन्धर्वोंने मार डाला। मेरी बुद्धिमें आता है कि उसके मरनेसे राजा विराट निरुत्साह और निराश्रय होगया होगा। हे पापरहित ! यदि तुम्हारी सम्मति हो तो सब कौरव और तुम्हारे सहित हम वहाँकी यात्रा करें, मेरी बुद्धिमें यह काम इस समय करनेके योग्य है। उस राज्यमें वृद्धत अन्न उत्पन्न होता है, इस लिये लेनेके योग्य है, उसके मिलनेसे अनेक प्रकारके रत्न और धन मिलेंगे। फिर हम सब लोग उसके गांव और राज्य बांट लेंगे, अथवा अनेक प्रकारको उत्तम गज छीन लावेंगे, और अपने बलसे उसके राज्यको पोड़ा भी देंगे। हे कर्ण ! हम लोग त्रिगर्त और कौरवोंके सङ्ग जाकर उनकी गीओंको छीन लावेंगे। फिर सेनाका विभाग करके उसका बांध लावेंगे ; अथवा उसको सब सेनाकी मारकर राजाको वशमें कर लेंगे, फिर हम लोग उसके सङ्ग न्याय करके सुखसे रहेंगे। ऐसा करनेसे निःसन्देह तुम लागोंकी वृद्धि होगी।

राजाके ऐसे वचन सुन कर्ण बोले, हे राजा ! सुशर्माने वृद्धत उत्तम बात कही, यह कार्य हम लागोंको इसी समय करते योग्य है, इससे अवश्यही हमारा कल्याण होगा, इस लिये हम लोग सेनाका विभाग करके शीघ्रही विराट नगरकी चलें, अथवा हमारे सबके पितामह महा पण्डित कुरुकुल वृद्ध भोष्म, गुरु द्राणाचार्य और कृपाचार्यका जेठो सम्मात हो, तैसाही कार्य करना चाहिये ; हम सब लोगोंकी सम्मतिके अनुसार राजा विराटका जीतनेके लिये जायेंगे। अब हम

लोगोंको हीनबल पाण्डवोंसे क्या प्रयोजन है ? वे लोग कहीं पड़े होंगे या मर गये होंगे । हे राजन् ! अब हम लोग विराट नगरको सुखपूर्वक जायेंगे, और वहां जाकर उसकी सब गऊ और सब धनोंको छीन लावेंगे ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, राजा दुर्योधनने बिकर्तनपुत्र कर्णके वचनको ग्रहण किया और सब वृद्धोंसे सम्मति करके अपने आज्ञापालक दुःशासन भाईको शीघ्र सेना ठोक करनेकी आज्ञा दी । दुर्योधन बोले, राजा सुशर्मा सेना और वाहनोंके सहित पहलेही विराट नगरको जायं, पीछेसे हम लोग भी युद्धके समय दूसरे दिन विराट नगरमें पहुँचेंगे । सब ऋद्धियोंसे भरे हुए मत्स्य देशमें शीघ्रही हमारी सेना पहुँचे, और सङ्गही अहीर लोग भी जायं ! सेनाके लोग अनेक प्रकारके धनको लूटें, अहीर लोग उत्तम लक्षणयुक्त लाख गौओंकी प्राप्त करें । हमारी सेनाके दो विभाग किये जायं, एकके सङ्ग त्रिगर्त राज सुशर्मा जायं और दूसरेके सङ्ग हम स्वयम् जायेंगे ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, राजाकी आज्ञाके अनुसार वह महासेना हस्तिनापुरसे निकलकर अग्निकोणकी चलो, उस दिन कृष्णपक्षकी सप्तमी थी । अनेक बलवान वीर सन्नद्ध होकर रथोंपर चढ़े; अनेक पदाति लोग पैरों चलने लगे । यह महा बलवती सेना पहले बैरको क्षरण करके गौओंके लोभसे शीघ्र चलने लगी । इस सेनाके सेनापति राजा सुशर्मा हुए ।

दूसरे दिन अथात् कृष्णपक्षकी अष्टमीकी सेनाका दूसरा भाग गौओंको लेनेके लिये सब कौरवोंके सहित हस्तिनापुरसे चला ।

२६ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् ! जनमेजय ! उसी दिन कपट वेपधारी महातेजस्व महात्मा पाण्डवोंका तेरहवा वर्ष पूर्ण हुआ पाण्डवोंने विराटकी सेवा करते करते इ एक वर्षको उसी नगरमें बिताया । कीचक मरनेके पश्चात् शत्रुनाशन विराटने कुन्तीनन्द युधिष्ठिरमें वहुत अद्वा बढ़ाई । इस तेरह वर्षके अन्तके दिन कौरवोंकी सेनाका प्रथम भाग विराटनगरमें पहुँचा । राजा सुशर्मा विराटके अहीरोंसे सब गऊ छीन लीं । उस समय गोपरूपधारी सहदेव वहुत वेग दौड़कर नगरमें आये और रथसे उतरकर राजसभामें पहुँचे । उस समय राजा कृष्ण और बाजुबन्धारी महा पराक्रमी यो महात्मा पाण्डव और मन्त्रियोंके सहित थे । राजाको देख गोपने प्रणाम करके कहा हे राजन् ! त्रिगर्त देशके राजा सुशर्मा बान्धवों सहित हम लोगोंकी युद्धमें जीत व आपकी एकलाख गऊ छीन लो । हे राजेन्द्र आप शीघ्र प्रबन्ध कीजिये, वह आपके पौत्रोंको लेकर चला जाता है । गोपके वचन सुन राजाने शीघ्र सेनाके सन्नद्ध होकर आज्ञा दी । राजाको आज्ञा सुनतेही र हाथी घाड़े और पदातियोंसे भरी हुई ये युद्धको उपस्थित होगई, रथोंपर ध्वजा उत्तरी लगीं, राजा और राजपुत्र कवच पहन लगे, शूरवीर लोग वीर सौवत तेजस्वी शस्त्रों धारण करने लगे । उसी समय राजा विराट प्यारे भाई शतानीकने लोहेका बना सने तारोंसे खिचा वज्रके समान दृढ़, शत्रुओंको भय देनेवाला कवच पहना । उसके पत्र शतानीकसे छोटे भाई मदिराचन भी । सूर्यके समान प्रकाशमान सैकड़ों विद्ध शोभित अभेद्य कवच धारण किया । उस पश्चात् राजा विराटने अनेक सुगन्धित कलोसे शोभित सोनेके कवचकी पहना, पि

पीठमें सोनका और सर्वत्र लोहिका बना सफेद सोनवधाला कवच राजाके छाँटे भाई सूर्यदत्तने धारण किया। इनके पश्चात् राजाके बड़े पुत्र वीर शंखने कवच पहिना, उसके पश्चात् अनेक महारथोंने कवच धारण किया। वे सब वीर लोग कवचोंकी धारण करके ऐसे शोभित हुए, मानो साक्षात् देवता रूप धारण करके आये हैं। उसी समय सारथियोंने सुन्दर प्रकाशमान महारथ वीरोंके रथोंमें चादीके जालसे शोभित घोड़ोंकी जोड़ी, उसी समय महानुभाव विराटके सोनके बने हुए सूर्य और चन्द्रमाके समान प्रकाशित रथमें ध्वजा चढ़ाई गई। उसके पश्चात् और सब वीरोंके रथोंमें सोनके दण्डवालो ध्वजा लगाई गई। फिर राजाको आज्ञासे शूरवीर चत्री लोग क्रमके अनुसार रथोंमें बैठने लगे, उसी समय राजा विराटने अपने छाँटे भाई शतानीकको आज्ञा दी। विराट बोले मेरी बुद्धिमें आता है कि कङ्क, वल्लव, गोपाल, और दामग्रान्थ अवश्य युद्ध करेंगे। ये चारों वज्रत बलवान दीखते हैं, इस लिये तुम इन चारोंकीभी ध्वजायुक्त रथ, और विचित्र तथा दृढ़, कोमल कवच द्या। ये लोग कवचोंकी पहनें और शस्त्रोंका धारण करें। इनके रूपसे मुझे निश्चय होता है कि, ये सब महावीर हैं, इनके हाथ हाथीके सूँड़के समान हैं, मुझे निश्चय है कि ये लोग कदापि युद्धसे नहीं हटेंगे। राजाकी आज्ञा सुनतेही शतानीकने युधिष्ठिर, भीम, नकुल और सहदेवको रथ, कवच और शस्त्र दिये। उसी समय राजभक्त सारथियोंने पाण्डवोंके निमित्त उत्तम रथोंमें घोड़े जोड़े। राजाकी आज्ञानुसार शतानीक पुरुषसिंह पाण्डवोंने प्रसन्न होकर कोमल और दृढ़ कवचोंकी धारण किया। युधिष्ठिर, भीम, नकुल और सहदेव कवच और शस्त्रोंकी धारण

करतेही ऐसे शोभित हुए जैसे मतवारे हाथी। महाबलवान कुन्तिपुत्र श्रीष्ठ सत्यपराक्रमी चारों पाण्डव प्रसन्न होकर सोनके रथोंमें बैठकर राजाके सङ्ग चले। उस सेनामें साठ वर्षके बड़े दातवाले मतवारे हाथी शिष्टित वीरोंके सहित इस प्रकार चले जैसे रूपधारी पर्वत। उत्तम जोविका पानवाले युद्धावद्याक जातनवाले मुख याज्ञाओंके आठ हजार रथ, एक हजार हाथी और साठ हजार घोड़े विराटके सङ्ग नगरसे निकले। हे भरतकुलासंह! यह विराटकी महासेना नगरके बाहर आकर खड़ी हुई। सेनाके अगाड़ीके रथ और घाड़ापर चढ़े हुए शस्त्रधारी वीरोंने देखा कि राजा सुशमा गाओंका लिये चले जाते हैं।

३० अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बालि, कि हे राजा जनमेजय! जब वह सेना नगरके बाहर पड़चो, उस समय सूर्यका तेज कम होगया अर्थात् दापहर दिन बीत गया। उसी समय राजा विराटने अपनी सेनाका व्यूह बनाया। तब वह सेना सुशमाको सेनासे युद्ध करनका उपस्थित हुई। तदन्तर्गत देश और मत्स्य देशकी सेना युद्धमें उन्मत्त होकर लड़ने लगी। दोनों सेनाके महाबलवान वीर इस प्रकारसे गज गर्ज युद्ध करन लगे, जैसे एक गजके लिये दो बैल लड़ते हों। बड़े शरीरवाले मतवारे हाथी निपुण वीरोंके सहित युद्ध करन लगे। यह युद्ध ऐसा घोर हुआ कि वीरोंके रावे खड़े होन लगे, एक दूसरेकी मारने लगा, इस लिये यह युद्ध देवासुर सग्रामके तुल्य होगया। उस समय दिन वज्रत याड़ा शेष रह गया था, तब हाथी घोड़े और पदातयोंने परस्पर युद्ध होनेसे आकाशमें धूल छा गई, मांस खानेवाले पक्षी सेनामें गिरने लगे। बाणोंसे सूर्य छिप गया, आकाशमें शस्त्र जुगनुके समान घमकने लगे।

उसी समय धनुषधारी वीर लोग सीनेसे चित्रित लोहेके बाणोंको छोड़ने लगे; अनेक वीर लोग इधर उधर गिरने लगे, रथी रथीसे, पदाति पदातिसे, घोड़ेवाले घोड़ेवालोंसे और हाथी-वाले हाथीवालोंसे युद्ध करने लगे। युद्धमें खड्ग, पट्टिस, प्राश, शक्ति और तोमर चलने लगे। परिषके समान हाथवाले वीर लोग एक दूसरेकी मारने लगे, परन्तु यह किसीकी शक्ति न हुई कि दूसरेकी सेनाको हटा दे। किसीका होठ, किसीको नाक, और किसीके गाल कट गये। वह पृथ्वी कटे हुए कुण्डलधारी शिरोंसे भर गई। पृथ्वीमें बाणोंसे कटे हुए शरीर दोखने लगे। वह महायुद्धभूमि शालके समान ऊँचे चित्रियोंके शरीर, हाथीके कण्डके समान चन्दन लगे हाथ और कुण्डलधारी शिरोंसे भर गई। उस समय रथीसे रथी, और पदातसे पदाति युद्ध करने लगे। रुधिर वह-नेसे सब धूल शान्त हो गई, तब वीरोंकी मूर्च्छा होने लगी, तब मर्यादा रहित युद्ध होने लगा, आकाशके उड़नेवाने पक्षी भी बाणसे व्याकुल हो गये। परिषके समान हाथवाने वीरोंने महायुद्ध किया, तभी दूसरी सेनाको न हटा सके। उस समय शतानोकने एक सौ और विशालाक्षने चार सौ वीरोंको मारकर सुशर्मा की महा सेनामें प्रवेश किया। उन दानों महारथ महा बलवान तेजस्वी वीरोंने सुशर्माकी सेनामें घुसके अपने बाहुबलसे घार युद्ध किया, अनन्तर आगे सूर्यदत्त और पीकृषे मादंराक्षन भी सुशर्माको सेनामें प्रवेश किया। राजा विराटने पाच सौ रथोंको आठ सौ घोड़ोंकी और पाच महारथोंको मारकर घार युद्ध किया, फिर राजा सुशर्माके सीनेके रथका अपने बाणोंसे छा लिया। ये दानो महात्मा महा बलवान दानों राजा इस प्रकार गर्जकर युद्ध करने लगे, जैसे दंविंल लड़ते हैं। उस समय विगते देशके राजा युद्ध-मत्त सुशर्मा

मत्स्यराज विराटके आगे युद्ध करनेको आये। तब उन दोनोंका दो रथसे युद्ध होने लगा। ये दोनों क्रोधी राजा इस प्रकार बाण वरसाने लगे, जैसे मेघ जल वरसाते हैं। वे दोनों क्रोधी शस्त्रोंके जाननेवाले तीक्ष्णबाण, खड्ग, शक्ति और गदाओंसे युद्ध करने लगे। अनन्तर राजा विराटने सुशर्माके शरीरमें दस बाण मारे और पाच पाँच बाणोंसे चारों घोड़ोंको मार डाला, इसी प्रकार शस्त्रोंके जाननेवाले महा योद्धा सुशर्माने भी राजा विराटके शरीरमें पचाश तीक्ष्ण बाण मारे। उस समय कोई सैनिक अपने पक्षके पुरुषको नहीं जान सकता था, क्योंकि आकाश धूल और अन्धकारसे भर गया था।

३१ अध्याय समाप्त ।

श्रीतैश्मियायन मुनि बोले, हे राजन्! जनमे जय ! जब सब लोग अन्धकार और धूलसे भर गये, तब दोनों सेना व्यूह बनाकर एक-दूसरे युद्धसे विमुख हो गईं। तब निर्मल रात्रिको प्राकश करता हुआ और युद्धमें चित्रियोंका आनन्द बढ़ाता हुआ चन्द्रमा उदय हुआ। तब चादनी हानसे फिर घार युद्ध होने लगा। उस समयके युद्धमें एक दूसरेका नहीं देखता था। उस समय राजा सुशर्मा अपने छोटे भाई और रथ समूहके सहित राजा विराटको आर दौड़ा और उन्हें चारों ओर घेर लिया, अनन्तर वे दोनों भाई रथसे उतर कर और गदा धारण करके विराटकी ओर दौड़े। राजा सुशर्माकी सेनाभी तोक्ष्ण धारवाहे खड्ग, गदा परिष और प्राश धारण करके विराटकी ओर दौड़ी। उस समय विराटकी सेना सुशर्माकी सेनासे हार गई। तब वे दोनों भाई विराटकी ओर इस प्रकार दौड़े जैसे कामी स्त्रीकी ओर दौड़े। उन दानों राजा विराटके रथकी धुरीको ताड़ दिया और उनके रथकोकी मार डाला। फिर

उनके रथपर चढ़कर विराटकी जीते ही बांध लिया, और अपने रथमें डालकर शीघ्र चल दिया। जब बलवान विराट रथहीन होकर पकड़े गये, तब उनकी सब सेना भयसे व्याकुल होकर भागने लगी। तब कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने शत्रुनाशक महाबाहु भीमसेनसे कहा, हे महाबाहु ! इस त्रिगर्तराज सुशर्माने विराटकी पकड़ लिया ! इस लिये तुम ऐसा उपाय करो जिससे राजा शत्रुओंके वशमें न हों, हे भीम ! हम इसके घरमें सुखसे एक वर्ष रहे हैं, तुम उसके कर्मका प्रतिफल दो।

भीमसेन बोले, हे महाराज ! मैं आपकी आज्ञासे अभी विराटकी कुड़ा खेता हूं, आप इस युद्धमें मेरे महा पराक्रमको देखिये। मैं अभी सब शत्रुओंका नाश कर दूंगा। हे राजन् ! आप भाइयोंके सहित एकान्तमें खड़े होकर मेरे बाहुबलको देखिये। यह बड़ी गखावाला जो वृक्ष खड़ा है, मैं अभी उसको उखाड़कर सब शत्रुओंको नाश कर दूंगा।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, जब भीमसेन मतवारे हाथीके समान उस वृक्षको देखने लगे, तब धर्मराज युधिष्ठिरने वीर भीमसे कहा, हे भीम ! तुम साहस मत करो क्योंकि इस वृक्षके उखाड़नेसे सब लोग जान जायंगे कि यही भीम है। तुम कोई दूसरा शस्त्र धारण करो, चाहे धनुष, चाहे खड्ग या शक्तिही धारण करके राजाको कुड़ा लो। तुम युद्धमें कोई अमानुष कर्म मत करना, महा बलवान नकुल और सहदेव तुम्हारे रथको रक्षा करेंगे, तुम दोनों मिलकर विराटकी कुड़ा लो।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, राजाकी आज्ञा पर भीमसेनने घोर धनुष धारण करी और राजा सुशर्माकी ओर दौड़े। भीमसेनने ऐसे बारसावे जैसे मेघ जल वरसाता है। अनन्तर घोर कर्म करनेवाले सुशर्मासे भीमने पुकार

कर कहा कि खड़ारह ! खड़ारह ! उसी समय भीमने राजा विराटकी ओर देखा, तब राजा सुशर्माने विचारा कि यह साक्षात् मृत्यु और यमराजके समान रूपधारी कौन वीर चला आता है ? मुझे निश्चय है कि अब घोर युद्ध हीगा। तब सुशर्मा भी अपने भाइयोंके सहित धनुष धारण करके युद्ध करनेकी लौटा। भीमसेनने क्षण भरमें सहस्रों रथ, हाथी, घोड़े और पदातियोंको मारके पृथ्वीमें गिरा दिया। भीमसेनके बाणोंसे सहस्रों धनुषधारी शूरवीर पृथ्वीमें ली गये। राजा विराटके समीपही भीमने सहस्रों वीरोंकी गदासे मारके गिरा दिया। भीमसेनके इस घोर कर्मको देखकर राजा सुशर्मा विचारने लगे कि अब मेरी सेनामें क्या शेष है ? मेरा दूसरा भाई महायुद्ध कर रहा है, अब मुझे क्या करना चाहिये ? उस समय राजा सुशर्मा अपने कानतक धनुष खींचकर बाण छोड़ने लगे। तब सब वीरोंने अपने अपने रथोंकी युद्धकी ओर चलाया। तब पाण्डव लोग दिव्यास्त्र चलाने लगे। पाण्डवोंकी युद्ध करते देख विराटकी सब सेना लौटी। तब उस समय विराटका बड़ा एत क्रोध करके महा युद्ध करने लगा। उस युद्धमें राजा युधिष्ठिरने हजार वीरोंकी मारा। भीमने सात सहस्र वीरोंकी मारा। नकुलने सात सौकी मारा, और प्रतापवान सहदेवने भी तीन सौ वीरोंकी मारा। उस समय युधिष्ठिरकी आज्ञासे भीमसेन गदा लेकर सुशर्माकी ओर दौड़े। महाराज युधिष्ठिर उस महासेनाका नाश करके आपही राजा सुशर्माकी ओर चले। उसके रथके समीप जाकर महाराजने बाण वर्षा करनी आरम्भ करी। सुशर्माने भी क्रोध करके राजा युधिष्ठिरके शरीरमें नवबाण मारे और चारबाण चारों घोड़ोंकी मारे, उसी समय महानिजस्त्री भीमने राजा सुशर्माके चारों घोड़ोंकी मार

डाला और उसके रक्षकोंकी मारकर उसके सारथीको भी पृथ्वीमें गिरा दिया ; उसी समय जगत् विख्यात मदिराक्ष नामक रथरक्षक रथ सहित राजा सुशर्माके पास आकर युद्ध करने लगा, उसी समय राजा विराट सुशर्माके रथसे उतरे और सुशर्माकी गदा छीनकर घोर युद्ध करने लगे । बूढ़े विराट तरुण पुरुषके समान युद्ध करने लगे । उस समय सुशर्मा युद्धको छोड़कर भागा । तब भीमसेन बोले, हे राज-एव तुमका भागना उचित नहीं है । क्या इसी बलपर शत्रुओंकी छीनने आये थे ? क्या इसी बलसे युद्ध करना चाहते थे ? अपने रांगियोंकी शत्रुओंके बीचमें छोड़ कर क्यों भागे जाते हो ? भीमसेनके ऐसे वचन सुन सुशर्माने भीमसेनसे कहा कि खड़ा रह । खड़ा रह । फिर सुशर्मा भीमसेनकी ओर वेगसे दौड़ा । महापराक्रमी भीमभी अपने रथसे उतरकर सुशर्माको जीतेही पकड़नेके लिये उसकी ओर दौड़े । भीमसेन दौड़ते हुए सुशर्माकी ओर ऐसे दौड़े जैसे सिंह छोटे हरिनकी ओर दौड़ता है । भीमसेनने दौड़कर सुशर्माके बाल पकड़ लिये और क्रोधसे उठाकर पृथ्वीमें पटक दिया, फिर रोते हुए सुशर्माके शिरमें लात मारी और जद्वासे दबाकर उसको घसे मारने लगे । वज्रत चोट लगनेसे राजा सुशर्माकी मूर्च्छा हो गई । महारथ सुशर्माके पकड़े जानेसे उसकी सब सेना भाग गई । महाराज पाण्डवोंने अपनी सब गौओंकी छीन लिया और उनका सब धन लूट लिया तथा सुशर्माको पकड़ लिया । तब महाव्रतधारी महात्मा लज्जावान महाबली पाण्डव लोग राजा विराट के चारों ओर खड़े हो गये । तब भीमसेन बोले यह पापी सुभक्त जीता नहीं बच सकता परन्तु महाराज अत्यन्त दयावान है, इस लिये मैं कुछ नहीं कर सकता । अनन्तर भीमसेनने विषय सुशर्माका गला पकड़ बाध लिया और

धूलमें लिपटे हुए मूर्च्छित सुशर्माको रथमें डालकर युद्धसे बाहर निकाला । फिर महाराज युधिष्ठिरसे बोले कि यहो पापी सुशर्मा नामक राजा है । महाराज युधिष्ठिर राज सुशर्माको देखकर वज्रत हंसे और भीमसेन बोले, हे भीम ! इस पापी सुशर्माको छोड़ दो

भीम बोले, हे मूर्ख ! यदि तू अपना जीव चाहता है तो हमारे वचनको सुन, यदि तू जीना चाहता है तो सब पण्डितोंकी सभा जाकर कह कि मैं राजा विराटका दास हूँ ऐसा करनेसे मैं, तुम्हें जीवदान दगा, युद्ध जीते हुएके सङ्ग ऐसाही किया जाता है ।

भीमसेनके ऐसे वचन सुन राजा युधिष्ठिर बोले, हे भीम । यदि तुम हमारे वचनको मानते हो तो इस पापीको शीघ्र छोड़ दो । हे सुशर्मान् ! हम तुम्हें अदास पदवी देते हैं, जा हमने, तुम्हें छोड़ दिया, फिर ऐसा कभी मत करना ।

३२ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय । ऐसा सुनकर सुशर्माने लज्जासे अपना मुख नीचा कर लिया, फिर राजा विराटकी प्रणाम किया । पाण्डवोंने सुशर्माको इस प्रकारसे जीता । शत्रुओंके नाश करनेवाले बाहुबल, लज्जा और व्रतसे भरे पाण्डवोंकी राजा विराटने वज्रत धन दिया और उन महा रथोंका असाधारण पराक्रम देखकर उनका वज्रत सम्मान किया ।

विराट बोले, जो कुछ हमारे रत्न है सो सब आपही लोगोंके हैं । इस लिये आप लोग अपनी अपनी इच्छानुसार राज्यके काम कोजिये, और सुख भोगिये । हम आप लोगोंकी भूषणोंके सहित अनेक कन्या देगे और अनेक प्रकारके धन भी देंगे । आप लोग सब शत्रुओंकी नाश करनेवाले और महा बलवान

हैं; हम आप लोगोंके पराक्रमसे शत्रुके हाथसे कुटे और सुखी हुए। इस लिये आपही लोग इस देशके राजा हुए।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, राजा विराटके ऐसे वचन सुन युधिष्ठिरादि पाण्डव हाथ जोड़कर बोले, हे महाराज। आप जो कुछ कहते हो, सो सब सत्य है, हम लोग आपके वचनकी प्रशंसा करते हैं। हे पृथ्वीनाथ! आप शत्रुओंके हाथसे कूट गये, इसीसे हमको सब कुछ प्राप्त होगया। पाण्डवोंके ऐसे वचन सुनकर मत्स्यराज विराट सन्न होकर युधिष्ठिरसे बोले, आप हमारे पास आइये, हम आपको इस देशका राजा बनाते हैं, यह पद जगतमें दुर्लभ है, सब लोग मनसे भी इस पदकी इच्छा करते हैं, आप हमारे सर्वस्वके अधिकारी होनेके योग्य हैं। रत्न, गौ, सुवर्ण, मणि, मुक्ता और भी अनेक वस्तु हमारे जो हैं सो आपहीको हैं। हे व्यैयाघ्र पद गोत्रीत्पन्न! हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! हम आपको प्रणाम करते हैं। आपहीके बलसे मेरे राज्य और पुत्रादि बचे हैं। मैं आज युद्धमें शत्रुओंके वशमें होगया था, आपहीके बलसे छूटा हूं। ऐसे वचन सुन महाराज युधिष्ठिरने राजा विराटसे पुनः कहा, हे राजन्! हम आपके उत्तम वचनोंकी ग्रहण करते हैं, आप निर्भय होकर सुख भोगिये। अब दूत लोग शीघ्रही नगरमें जाय, आपके मित्र और सब पुरुषोंसे भी आपके विजयका वर्णन करें। तब राजा विराटने युधिष्ठिरके वचनानुसार दूतोंकी आज्ञा दी कि तुम लोग नगरमें जाकर हमारे विजयका समाचार कह दो, कुमारी आभूषण पहन कर नगरसे हमारे पास आवें, सब प्रकारके वाजे बजे और वेष्टा आभूषण धारण करके नाचें। राजा विराटकी ऐसी आज्ञा सुन दूत प्रसन्न होकर नगरकी गये और प्रातः काल

हीतेही नगरमें उस समाचारकी प्रकाशित कर दिया।

३३ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय। जब राजा सुशर्मा हारकर मत्स्यदेशसे चला गया और राजा विराटने अपने पशुओंकी पालिया, उसी दिन कौरवोंकी सेनाके दूसरे भाग मन्तो भीष्म, द्रोणाचार्य, कर्ण, शस्त्रविद्याके जाननेवाले कृपाचार्य, अश्वत्थामा, शकुनि, दुःसाशन, विबिंशति, विकर्ण, बलवान चित्रसेन, दुर्मख और दःशह आदि महारथोंको सङ्गमें ले राजा दुर्योधन विराट नगरमें पहुँचे। उन्होंने दूसरे द्वारपर जाकर साठ हजार गौओंको छीन लिया। उस समय उस गोशालामें चारो ओर यही शब्द होने लगा कि कौरव लोग वृद्धत सेनाके सहित राजा विराटकी गज लिये जाते हैं। ग्वालोंने थोड़ा युद्ध भी किया, परन्तु अन्तकी ग्वालोंका स्वामी भयसे व्याकुल हो, और रथपर चढ़ रोता हुआ नगरकी ओर भाग गया। नगरमें आकर राजभवनमें गया और रथसे उतरकर राजा विराटके पुत्र महा अभिमानी उत्तरसे मिलकर कहने लगा, हे वीर! कौरव लोग आपकी साठ हजार गज लिये जाते हैं, इस लिये आप शीघ्रही उठिये और शीघ्रही उनसे गजोंकी छीन लीजिये। राजा विराटने आपको इस ओरकी रक्षाका भार दे रक्खा है, और वे प्रायः सभामें कहा करते हैं कि हमारा पुत्र हमारे समान बलवान, शूर और कुलदीपक है। राजा विराट यह भी कहा करते हैं कि हमारा पुत्र सब शस्त्रविद्याका जाननेवाला योद्धाओंमें श्रेष्ठ और महावीर है। सो आप राजा विराटके वचनको सत्य कोजिये, और कौरवोंकी जीतकर अपनी गौओंको छुड़ा लीजिये। भीष्म आदि सब वीरोंकी अपने

धनुषसे कूटे सीनेके पङ्खवाले वाणोंसे भस्म कर दीजिये । उनकी सेनाको छिन्नभिन्न कर दीजिये, जैसे हाथियोंका राजा घोर युद्ध करता है, तैसेही आप भी युद्ध कीजिये । आप युद्धमें जाकर अपनी धनुषके रोदे, दण्ड और उसके शब्दसे शत्रुओंको कंपा दीजिये । आपके रथमें इसी समय चांदीके समान स्वच्छ वर्णवाले घोड़े जोड़े जायं, रथपर ऊंची सीनेके दण्डवाली ध्वजा लगाई जाय, आपके हाथसे कूटे हुए बाण राजोंका नाश करनेवाले और सीनेके पङ्खवाले तीक्ष्ण बाण स्त्रियोंको का लें । आप कौरवोंको इस प्रकार युद्धमें जीतिये जैसे वज्रधारी इन्द्र दानवोंको जीतते हैं । जब आप उनको जीतकर नगरमें आइयेगा, तब वज्रत यश प्राप्त होगा । जैसे पाण्डवोंमें विजयो अर्जुन श्रेष्ठ है, तैसेही आप भी विराटके पुत्रोंमें श्रेष्ठ हैं । आपको स्वामी पाकर हम सब लोग सनाथ हुए हैं, आपही हम सबकी गति हैं ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, इस उत्साहसे भरे हुए वचनको सुनकर स्त्रियोंके बीचमें बैठे हुए विराटपुत्र ऐसा बोले,—

३४ अध्याय समाप्त ।

उत्तर बोले, मैं इसी समय दृढ़ धनुषको लेकर कौरवोंसे युद्ध करनेको जाता परन्तु कोई घोड़ोंकी विद्या जाननेवाला सारथी नहीं है, यदि सारथी मिले तो मैं अभी चला जाऊँ; तुम लोग शीघ्र योग्य सारथीको ढूँढो, जो युद्धमें मेरे घोड़ोंकी हांक सके । जिस युद्धको एक महीना या अष्टाइन दिन बीते है, उसमें मेरा सारथी मारा गया । यदि मैं घोड़ोंकी विद्या जाननेवाले अन्य सारथीको पाऊँ तो इसी समय जाकर ऊंची पताका; हाथी और घोड़ोंसे भरी हुई कौरवोंकी सेनाकोकी अपने बाणोंके प्रतापसे जीतकर पशुओंको छीन

लाऊँ । मैं अपने बलसे दुर्योधन, भीष्म, कर्ण, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और अश्वत्थामा आदि महावीरोंको इस प्रकार कंपा दूँ जैसे इन दानवोंको कंपाते हैं । क्या करें कौरवों दारकी शून्य देखकर हमारे पशुओंको छी लिया । हम क्या करें उस समय वहाँ नहीं थे ? इसीसे वे लोग पशुओंको लीगये हैं । अ तुम सब हमारे पराक्रमको देखो । क साक्षात् अर्जुन युद्ध करनेको आया है, हमको जीत लेगा ?

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, राजपुत्र उत्तर ऐसे वचन सुन और अपने समयको बीत हुआ जान, अपनी प्यारी निन्दारहित द्रुपद पुत्री, अग्निकुण्डसे उत्पन्न हुई सत्य, शील और गुणोंसे भरी पतिका प्रिय कर्म करनेवाले द्रौपदीसे अर्जुन एकान्तमें बोले, हे कल्याणि तुम शीघ्र जाकर उत्तरसे कहो कि यह बृहन्नला पाण्डवोंका सारथी था, यह वज्रत युद्ध पाण्डवोंके सङ्ग रहता है, सो यही तुम्हारा सारथी होगा ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, जब अर्जुनने शारदार द्रौपदीसे यह कहा तब तपस्विनी द्रौपदी स्त्रियोंके बीचसे उठी और उत्तर के पास जाकर लज्जा सहित धीरे धीरे कह लगी, यह जो हाथीके समान शरीरवाले सुन्दर युवा बृहन्नला नपुंसक है, सो अर्जुनका सारथी था, और धनुर्वेदमें महात्मा अर्जुनका शिष्यभी है, मैं जब पाण्डवोंके घरमें रहती थी, तबही इसको देखा था । जब अर्जुन खण्डव वनको जलाया था, तब इसीने उसको घोड़े हाँके थे, इसीकी सहायतासे अर्जुन खण्डव इनमें सब प्राणियोंको जीता था, जगत् इसके सन्तान दूसरा सारथी कोई नहीं है ।

उत्तर बोले, हे सैरिन्ध्री । तुम इस नपुंसक युवा पुरुष को जानती हो, इस लिये मैं बृहन्नलाके पास जाकर नहीं कह सकता कि तु

मेरे घोड़े हांको, सो तुम्हीं जाकर उससे कहो ।

द्रौपदी बोली, हे बीर ! तुम्हारी जो यह सुन्दरी छोटी बहिन है, इसीको उसके पास भेजो, वह इसके वचनको अवश्य मानेगा । यदि वह न माने तो तुम्हारा सारथी वनें तो निखन्दे होंगे और कौरवोंकी जीतकर गऊ छोड़ लोगे । द्रौपदीके ऐसे वचन सुन उत्तर अपनी बहिनसे बोली, तुम शीघ्र वृहन्नलाके पास जाकर उसे बुला लाओ । अपने भाईके वचन सुन उत्तरा शीघ्र उस नर्तनागारमें गई जहां महाबाहु अर्जुन छिपकर रहते थे ।

३५ अध्याय समाप्त ।

श्रीकृष्णायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय ! अपने भाईकी आज्ञा सुनते हो सुवर्णमालाधारिणी, यशस्विनी पतली कमरवाली, कमल नयनी, मार पंखके आभूषणवाली कीमती, विचित्र-मणि-जटित आभूषणवाली, शाभासे भरो, उत्तम बालवाली विराटराजपुत्री उस नर्तनागरकी इस प्रकार चली जैसे विजली तलावकी ओर जाती है । हाथीके सुण्डके समान जड़ावाली पतली कमर और उत्तम दातवाली, और उत्तम रूपधारिणी राजपुत्री अर्जुनके पास इस प्रकार चली जैसे हाथीनी हाथीके पास जातो है । विशाल नयनी सुन्दरी यशस्विनी इन्द्रकी लक्ष्मीके समान तेजस्विनी रत्नभूषणधारिणी विराट राजपुत्री अर्जुनके पास गई ।

उस उत्तम जड़ावाली, सोनेके समान वर्णवाली राजपुत्रीको देख अर्जुन बोली, हे सुवर्णमालाधारिणी ! हे नृगन्त्री । तुम इस समय हमारे पास क्यों आई हो ? हे सुन्दरी ! तुम बड़ा क्यों रहो हो ? तुम्हारा मुख प्रसन्न क्यों नहीं है ?

श्रीकृष्णायन मुनि बोले, विशालनयनी राजपुत्रीको देख अर्जुन हसकर बोली, हे सखी !

तुम इस समय यहां क्यों आई हो ? पुरुषसिंह अर्जुनके ऐसे वचन सुनकर राजपुत्री सखियोंके मध्यमें विनयपूर्वक बोली, हे बृहन्नले ! कौरव लोग हमारे पशुओंको लिये जाते हैं, और सैरिन्ध्रीने तुम्हारे रथ हाकनेको वृद्धत प्रशंसा की है, तुम पहले अर्जुनके प्यारे सारथी थे, उन्होंने तुम्हारी सहायतासे पृथ्वीको जीता था, सो तुम अब हमारे भाईका रथ हांको ; क्योंकि कौरव लोग हमारे गौओंको लेकर वृद्धत दूर चले गये । यदि तुम हमारी विनयको नहीं मानोगे, तो मैं अपने जीवनको त्याग दूंगी ।

सुन्दरी राजपुत्रीके ऐसे वचन सुन महा तेजस्वी शत्रुनाशन अर्जुन राजपुत्रीके पास आये, उनके पीछे विशालनयनी राजपुत्री भी इस प्रकार चलने लगी, जैसे मतवारे हाथीके पीछे हाथीनी । उनको देखकर राजपुत्र उत्तर बोली, हे बृहन्नले ! तुमहीको सारथी बनाकर अर्जुनने खाण्डव वनका जलाया था ? तुम्हारी सहायतासे अर्जुनने सब पृथ्वीको जीता था ? हमसे वह सब गमाचार सैरिन्ध्रीने कहा है, क्योंकि वह पाण्डवोंकी जानती है, सो तुम हमारे घोड़ोंको हाका, हम गौओंकी लिये कौरवोंसे युद्ध करेंगे । तुम पहले समयमें अर्जुनके प्यारे सारथी थे, तुम्हारीही सहायतासे उन्होंने सब पृथ्वीको जीता था । उनके ऐसे वचन सुन अर्जुन बोली, हे राजपुत्र ! मैं नाचने गानेवाला नपुंसक युद्धमें घाड़े हाकने क्या जानू ? तुमको नाचना, गाना या बजाना सीखना हो ता हमसे सीखो, और सारथीका काम हम कैसे कर सकते हैं ?

उत्तर बोली, हे बृहन्नले ! चाहें तुम नाचने वाले हो, चाहें गानवाले हो, परन्तु मेरे घाड़ोंकी तुम्हें शीघ्र हाकनाही होगा ।

श्रीकृष्णायन मुनि बोले, यद्यपि अर्जुन नव विद्याओंकी जानते थे, तोभी उत्तरके आगे वृद्धत प्रकारकी बातें करने लगे, और उत्तरके दिव्य कवचकी उलटा पहनने लगे । तब विशाल

नयनी कम्पा उन्हें देखकर हंसने लगीं । उस समय उत्तरने अपने हाथसे अर्जुनको बड़मूल्य कवच पहनाया और आपनेभी उत्तम प्रकाशमान कवच पहना और सिंहचिन्हित ध्वजाको रथपर चढ़ाकर अर्जुनको सारथी बनाया । अनन्तर रथमें उत्तम धनुष और सुन्दर बाणोंको रखकर बृहन्नलाको सारथी बनाकर चलनेकी इच्छा करी । चलते समय उत्तरा आदि राजकन्या कहने लगीं, हे बृहन्नले ! तुम हमारी गुड़ियोंके लिये सुन्दर सुन्दर और कीमल कीमल वस्त्र लेती आइयो, युद्धमें भीष्म और द्रोण आदि महारथोंको जीतकर शीघ्र लौटना । कन्याओंके ऐसे वचन सुन अर्जुन मेघ और नगारेके समान गम्भीर बाणोंसे बोले, यदि राजपुत्र उत्तर युद्धमें महारथ कौरवोंको जीतेंगे, तो मैं उनके दिव्य वस्त्रोंको अवश्य लेता आऊंगा ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महावीर अर्जुनने ऐसा कहकर रथको उस ओर हांका जिधर पताकाओंसे भरी हुई कौरवोंकी सेना खड़ी थी; जिस समय बृहन्नला रथपर बैठी और महाबाहु उत्तर रथमें बैठे, तब स्त्री कन्या और व्रतधारी ब्राह्मण उनको प्रदक्षिणा करके कहने लगे, खाण्डव वन जलाने समय अर्जुनको जो मङ्गल हुआ था, सोई आज तुमको और उत्तरको भी हो ।

३६ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजा जनमेजय ! निर्भय राजपुत्र उत्तर राजधानीसे निकलकर अर्जुनसे बोले, हे सूत ! जिधर कौरवोंकी सेना है उधरहीको हमारा रथ ले चलो । इन सब कौरवोंको जीतकर और गौत्रोंको छीनकर मैं शीघ्रही नगरको लौटूंगा । तब अर्जुनने घोड़ोंको वेगसे हाका । पुरुषसिंह अर्जुनके हांकनेसे वायुके समान वेग-

धारी और सोनेकी मालधारी घोड़े इस प्रकार वेगसे चले मानो आकाशकी उड़ जायेंगे । घोड़े समयमें शत्रुनाशन अर्जुन और उत्तर वलवान कौरवोंकी सेनाके समीप पहुंच गये । शत्रुनाशके समीप होकर अर्जुन निकले । उन्होंने उस शत्रु वृक्षको देखा, जहां उनके शस्त्र रक्क थे । उस समय समुद्र समान कौरवोंकी सेनाक ऐसी शोभा बढ़ी जैसे अनेक वृक्षवाले वनकी अर्जुनने उस सेनासे उठी हुई आकाशमें उड़ते धूलकी देखा । वह धूल आकाशतक छा गयी, इससे किसीको कुछ नहीं दीखता था । व समुद्रसमान सेना कर्ण, दुर्योधन, कृपाचार्य और भीष्मसे रक्षित थी, उसमें पुत्रके सहित महाशस्त्रधारी, महाबुद्धिमान, द्रोणाचार्य भी थे । इस सेनाको देखतेही भयके मारे उत्तरवोंसे रोवें खड़े हो गये, और कहने लगा कि सारथे ! मेरी शक्ति कौरवोंसे युद्ध करनेकी नहीं है । देखो मेरे शरीरके सब रोवें खड़े हो गये । इस सेनामें बड़े बड़े वीर हैं, जिनको देवता भी नहीं जीत सकते । मैं कौरवोंकी इस महा सेनासे युद्ध नहीं कर सकता हूं । मैं इस शत्रु धनुषधारियोंकी सेनामें प्रवेश भी नहीं कर सकता हूं, यह सेना रथ, हाथी, घोड़े पदाति और ध्वजाओंसे पूरित है, इस बिना इसे देखतेही हमारा मन कापा जाता है । जहां साक्षात् द्रोणाचार्य, कुरुवृद्ध भीष्म, कृपाचार्य, कर्ण, विवशति, अश्वत्थामा, विक्रान्त, सोमदत्त, वालिहक, और महारथ राजा दुर्योधन आदि महातेजस्वी बुद्धिमान् और शस्त्रविद्वान् जाननेवाले उपस्थित हैं, तहां युद्ध करनेकी मेरी क्या शक्ति है ? इन सब योद्धा कौरवोंको देखतेही मेरा मन कापा जाता है, रावें खड़े हुए जाते हैं और मुझे मूर्च्छा आई जाती है ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, जिस समय महाबुद्धिमान् अर्जुनके आगे घूट विराटपुत्र इस प्रकार कह चका, तब फिर रोकर ऐसा बोला

भुक्त नगरमें अकेला छोड़ मेरे पिता राजा सुशर्मासे युद्ध करनेकी चले गये, मेरे सङ्ग कोई सैनिक भी नहीं है, सो मैं अकेला बालक इन सब शस्त्रधारियोंसे कैसे युद्ध करूँगा ? इसके अतिरिक्त मैं शस्त्रावद्या भी नहीं जानता हूँ ।

वृहन्नला बोले, हे राजपुत्र ! तुम भयसे इतने काँप घबड़ाते जाते हो ? तुम्हारे घबड़ानेसे शत्रु लोग प्रसन्न होते हैं, शत्रुओंने अभी तक कोई ऐसा भारी कर्म्म भी नहीं किया है कि जिससे तुम घबड़ा गये । तुम कुछ सन्देश मत करो । मैं इस सब सेनाके बीचमें तुमकी ले चलूँगा । हे महाबाहो ! यदि समस्त पृथ्वीके वोर एक ओर होंगे, तो भी मैं तुमको युद्धके बीचमें ले चलूँगा । जहाँ मांसके खानेवाले अनेक गिद्ध उड़ रहे हैं, उसी युद्ध-भूमिमें तुमका चलना होगा । क्या तुम स्त्री और पुरुषाके बीचमें वृथा बकनेहोको थे ? अब यहाँ आकर युद्ध क्यों नहीं करते हो ? यदि तुम पशुओंको बिना जोति नगरकी चले जावाग तो सब स्त्री और पुरुष तुमका हसैंग, मैं भी सौरन्ध्राके कहनसे तुम्हारा सारथी बनकर आया हूँ, अब बिना पशुओंके जाते नगरकी लौट नहीं सकता, सौरन्ध्राके कहन और तुम्हारे वचनसे क्या मैं भी सब कौरवास युद्ध नहीं कर सकता ?

उत्तर बोले, हे वृहन्नले ! कौरव अपनी इच्छानुसार भले ही हमारा सब धन ले जाय, चाहे हमका स्त्री और पुरुष हों, हमारी सब गाय चली जाय, परन्तु हम युद्ध नहीं करेंगे ।

वृहन्नला बोले, हे राजपुत्र ! युद्धसे भागना चातुर्यका धर्म नहीं है, युद्धमें मरना शूतम् है, परन्तु भागना अच्छा नहीं !

श्रीवैशम्पायन सुनि बालि, हे राजन् जनमेजय ! अर्जुनके ऐसे वचन सुन राजपुत्र उत्तर

रथसे उतरकर भागा, तब अर्जुन भी रथसे उतरकर उसके पीछे वेगसे दौड़े । दौड़नेसे अर्जुनकी वेणी हिलने लगी और लालवस्त्र उड़ने लगे, अर्जुनको भागते देख और उसकी वेणीको हिलते देख सब सेनाके लोग हँसने लगे, अर्जुनको देखतेही सब कौरव लोग कहने लगे, कि यह छिपे हुए रूपमें कौन है ? इसका रूप ऐसा जान पड़ता है जैसे भस्ममें छिपी हुई अग्नि हो, इसके थोड़े शरीर स्त्री और थोड़े पुरुषके समान हैं । इस नपुंसकका रूप अर्जुनके ऐसा दीखता है ; वैसाही शिर वैसाही गला, वैसाही परिषके समान हाथ और वैसाही इसका तेज है । यह निश्चय अर्जुनही है । देवतामें इन्द्र और पुरुषोंमें अर्जुनकी छोड़कर और जगतमें ऐसा कौन है जो अकेला कौरवोंसे युद्ध करनेको आवै ? विराटने अकेले अपने पुत्रकी सूने नगरमें छोड़ दिया था, सो यह खाली बालपनसे अकेला युद्ध करनेकी आया था, न कि बल से । हमें निश्चय है कि यह कुन्तीपुत्र अर्जुनही छिपा हुआ है । इसी अर्जुनका सारथी बनाकर उत्तर युद्ध करनेका आया है । सो देखो हम लागोका, देखतेही भयके मारे भागा जाता है, सो उसीके लौटानेके वास्ते अर्जुन भी उसके पीछे जाता है ।

श्रीवैशम्पायन सुनि बालि, जब कौरव लोग इस प्रकार परस्पर वार्तालाप करने लगे, तब निश्चय उत्तर देनेका किसीका शक्त न हुई । यह लोग ऐसेही वार्तालाप करते रहे । उधर अर्जुन उत्तरके पीछे दौड़े, सो चरण दौड़कर अर्जुनने उत्तरके बाल पकड़ लिये । अर्जुनके पकड़नेसे उत्तर दीनके समान रान लगा, और वज्रत दोन बनकर कहन लगा ।

उत्तर बोला, हे कल्याण ! हे वृहन्नले ! हे पतली कमरवाला ! तुम हमारे वचनाका सुना, हमारे रथका शत्रु लौटाओ, क्योंकि जानसे अनेक सुख प्राप्त होते हैं । नगरमें जातेही मैं

तुमको सोनेके बने सौ निष्क दूंगा और सोनेमें जड़े हुए बद्धत सुन्दर आठ हीरे दूंगा । सोनेके जड़े हुए दांतवाले दस हाथी और एक उत्तम घोड़ेयुक्त रथ दूंगा ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, इत्यादि वचन कहते हुए उत्तरकी पुरुषसिंह अर्जुनने उठाकर रथमें डाल दिया । अनन्तर भयसे व्याकुल मूर्च्छित उत्तरसे अर्जुन बोले, हे शत्रुनाशन ! यदि तुम शत्रुओंसे युद्ध नहीं कर सकते हो, तो घोड़ोंको हांकी मैं युद्ध करूंगा, तुम हमारे बलसे रक्षित होकर इस सेनामें प्रवेश करो, यह न जीतने योग्य महावीरोंसे रक्षित सेना युद्ध करनेकी उपस्थित है । हे राजपुत्र ! हे शत्रुनाशन ! तुम क्षत्रिय हो, इस लिये युद्धसे मत डरो । हे पुरुषसिंह ! तुम शत्रुओंके बीचमें इस प्रकार क्यों रोते हो ? हम कोरवासे युद्ध करके तुम्हारे पशुओंका जोत लेंगे । हम इस घार सेनामें प्रवेश करके सबकी जोत लेंगे । हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुम हमारे सारथी बना, हम कोरवासे युद्ध करैंगे । हे जनमजय ! इस प्रकार अर्जुनन याड़े समयतक विराटपुत्र उत्तरकी धैर्य दिया । अनन्तर याज्ञाओंमें श्रेष्ठ अर्जुनने विराटपुत्रको रथमें बिठला दिया ।

३७ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बाले, हे राजन् जनमेजय ! उनका नपुसकक वेध देख और उत्तर का रथमें बिठलाकर शमो वृद्धकी और जात देख भोक्क और द्राण आदि महारथ अर्जुनके भयसे डरने लगे । उन सबकी उत्साहराहत और उत्पातोकी देखकर कोरवाके पुत्र भरहाज पुत्र द्रोणाचार्य बाले, यह घार सूखे और धूलसे भरे वायु चल रहा है, आकाश धूलरूपी अन्धकारसे भर गया है; अद्भुतक्षपवाले रूखे मेघ आकाशमें छा गये हैं, शस्त्र हाथोंसे गिरे

जाते हैं । रोती हुई सियारीं जलती हुई दिशाकी ओर भागतो है, घाड़ोंकी आखोंसे आंसू बह रही है, ध्वजा कांपो जातो हैं । इन अशगुनोंको देखकर हमको बद्धत हानिकी सम्भवना होती है, आप लोग सावधान होकर सेनाकी रक्षा कीजिये अपना अपनी रक्षा कीजिये और सेनाका व्यूह बनाइये । अब घोर युद्ध होनेवाला है । इस लिये गौओंकी रक्षा कीजिये, इसमें कुछ सन्देह नहीं है कि यह सब धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ सब शस्त्रोंके जाननेवाले सच्चात अर्जुन युद्ध करनेको आये हैं । हे गङ्गासुत भीष्म ! ये वही अर्जुन हैं, जिनकी ध्वजापर लङ्कानाथ रावणकी वाटिकाके नाश करनेवाले हनुमान विराजते हैं । येही स्त्रीका वेध धारण करके हम सब लोगोंको जीत लेंगे और गौओंकी छीन लेंगे । इस लिये आप दुर्योधनकी रक्षा कीजिये, ये सब शत्रुओंके नाश करनेवाले कुन्तीपुत्र अर्जुन देवता और राक्षसोंसे भी विना युद्ध किये नहीं लाट सकते, इन्होंने बद्धत दिन पर्यन्त वनमें लेश भोगे है, और इन्हीं शिश्ताभों पाई है, ये क्रोध होनसे इन्हीं समान युद्ध करते हैं, मुझे इस सेनामें इनसे युद्ध करनेवाला कोई नहीं दोखता । हमने सुना है कि हिमाचल पर्वतपर किरातक्षपधारा भगवान् शिवका भी अर्जुनन युद्धमें प्रसन्न करालया है ।

कर्ण बाले, आप सदा अर्जुनके गुणोंकी प्रशंसा किया करते हैं, अर्जुन हमारी और दुर्योधनको सालवाँ कलाके भी समान नहीं है ।

दुर्योधन बाले, हे कर्ण ! यदि यह अर्जुनही है, तो हमारे सब काम सिद्ध होगा, क्योंकि पक्षवाननसे पाण्डवोंकी फिर बारह वनमें रहना होगा और यदि यह कोई दूसरा पुरुष नपुसकका वेध धारण करके आया है तो भी

तीक्ष्ण बाणोंसे मारकर हम उसे पृथ्वीमें गिरा देंगे।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे शत्रुनाशन जनमेजय। धृतराष्ट्रपुत्रके ऐसे वचनको सुन भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और अश्वत्थामा उनको प्रशंसा करने लगे।

३८ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय। शमी वृक्षके पास जाकर विराटपुत्रको युद्धमें अनिपुण और सुकुमार जानकर प्रल्लन बोले, हे उत्तर। तुम इस वृक्षपर चढ़कर धनुष उतार ले आओ। ये तुम्हारे धनुष हमारे बलको नहीं सह सकते हैं, न भारी बोझ उठा सकते हैं, न हाथियोंकी मार सकते हैं, और न मेरे बाहुबलको सहनेमें समर्थ हैं। इस लिये तुम इस वृक्षत पत्तेवाले शमी वृक्षपर चढ़ो। हे भूमिञ्जय। इस वृक्षपर महा पराक्रमी पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेवके धनुष सूर्यके समान प्रकाशमान कवच और ध्वजा रक्खी हैं। उन्हींमें वृक्षत दृढ़ अर्जुनका गाण्डीव धनुष भी है। वह धनुष अकेलाही सेकड़ों और सहस्रों धनुषोंके तुल्य और एक ताड़ लम्बा है, वह अकेलाही सब शस्त्रोंके तुल्य शत्रुओंका नाश करनेवाला, सोनेसे विचित्र सुन्दर और घावरहित है। वह अकेलाही सब शत्रुओंको नाश कर सकता है, वैसेही और भी युधिष्ठिर भीम नकुल और सहदेवके धनुष रक्खे हैं।

३९ अध्याय समाप्त।

उत्तर बोले, मैंने सुना है कि इस वृक्षमें एक पुरुषका शरीर रक्खा है, सो मैं राजपुत्र होकर उसे किस प्रकार वृजंगा, तक्षि-
कमें उत्पन्न हुआ, मन्त्र और यज्ञोंको

जाननेवाला पण्डित मेरे समान राजपुत्र ऐसा कर्म कैसे कर सकता है? हे वृक्षन्तले। मैं इसको कूकर अपवित्र हो जाऊंगा, तब तुम हमारे सङ्ग कैसे व्यवहार करोगे?

वृक्षन्तला बोला, हे राजपुत्र। तुम पवित्रही रहोगे, इस वृक्षपर केवल धनुष रक्खे हुए हैं, मेरे हुए पुरुषका शरीर नहीं है। हे राजपुत्र। उत्तम मत्स्यराजके कुलमें उत्पन्न हुए तुमसे मैं नीच कर्म कैसे करा सकता हूं?

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अर्जुनके ऐसे वचन सुन उत्तर वैवश होकर रथसे उतरा और शमीवृक्षपर चढ़ गया। उसी समय शत्रुनाशन अर्जुनने उससे कहा कि तुम धनुषोंकी शीघ्र उतारो, देर मत करो। इनके वन्धन शीघ्र तोड़ दो।

अर्जुनके वचन सुन उत्तरने बलवान पाण्डवोंके धनुष उतारे और उनके वन्धन तोड़ डाले। फिर चार धनुषोंके सहित गाण्डीव धनुषकी देखा। जब सूर्यके समान प्रकाशित उन धनुषोंके वन्धन टूटे तब वे सब ऐसे चमकने लगे जैसे उदय होनेके समय तारे। उनके फुफुकारते हुए सर्पके समान रूपकी देखकर विराटपुत्र भयसे कांपने लगा, और उसके सब रोवें खड़े होगये। उन प्रकाशमान बड़े बड़े धनुषोंकी कूकर उत्तर अर्जुनसे बोले।

४० अध्याय समाप्त।

उत्तर बोले, जिसपर सोनेके सहस्रों विन्दु लगे हैं, जिसके दोनों प्रान्त वृक्षत उत्तम बने हैं, यह किमका धनुष है? जिसकी पीठपर प्रकाशमान हाथी बने हैं, जिसके मध्य और प्रान्त वृक्षत दृढ़ हैं, यह किमका धनुष है? जो गङ्गा मोनिका बना है, जिसकी पीठमें वीर-वह्नी बनी हैं, सो उत्तम धनुष किमका है? जिसपर तेजसे भरे हुए तीन मर्त्य बने हैं, यह उत्तम धनुष किमका है? जिसपर सुवर्णके

उत्तम कीट बने हैं, सो मणिजटित उत्तम धनुष किसका है ? ये रोवां काटनेवाले, सोनेके पंखयुक्त मोटे दण्डवाले गड़के पंखोंसे शोभित शिल्लीपर लगे तेज करनेवाले जलमें बुझे हलदोके समान पीले तेज मुखवाले सहस्रों वाण किसके हैं ? बराहके कानके समान इस वाण और पांच शार्दूलोंसे चिह्नित धनुष किसका है ? ये रुधिर पीनेवाले मोटे और लम्बे साक्षात् चन्द्रमाके समान प्रकाशित सात सौ वाण किसके हैं ? ये ऊपरसे तोतेके पंखके समान सुन्दर तीक्ष्ण लोहेसे बने हुए, तेज पानोमें बुझे सोनेके पंखयुक्त शिल्लीपर घिसे वाण किसके हैं ? यह शत्रुओंको नाश करनेवाला शिल्लीपर घिसा मेड़कीके मुखके समान सुन्दर विशाल खड़ग किसका है ? यह सिंहके चमड़ेके कोशमें रक्खा हुआ बहुत प्रकाशित मूठवाला अत्यन्त तेज घृषुरु बन्धा खड़ग किसका है ? यह गजके चमड़ेके कोषमें रक्खा निर्मल सोनेकी सूठवाला खड़ग किसका है ? यह निषध देशमें बना हुआ सोनेकी मूठवाला - अत्यन्त दृढ़ शत्रुओंका नाशक बकरेके चमड़ेमें रक्खा हुआ खड़ग किसका है ? यह बड़ा रूपसे भरा हुआ तेज जलमें बुझा तपे हुए प्रकाशित सोनेके कोषमें रक्खा आकाशके समान प्रकाशित और काला तीस अंगुलसे भी अधिक लम्बा ब्रणरहित तीक्ष्ण खड़ग किसका है ? हे वृहन्नली ! ये सब शस्त्र सर्पके समान तेज, शत्रुओंके शरीरमें प्रवेश करनेवाले महा भयङ्कर और दिव्य हैं, इन सबका वर्णन तुम हमसे करो, क्योंकि इन सबको देखकर सुझे बहुत आश्चर्य्य हुआ है ।

४१ अध्याय समाप्त ?

वृहन्नला बोला, तुम जो हमसे पूछते हो, सो हम कहते हैं, तुमने जिसकी पहली पूछा था, सो सुवर्ण खचित दिव्य धनुष साक्षात्

अर्जुनका है । यह गाण्डीव नामसे जगतमें प्रसिद्ध है, इसीको धारण करके अर्जुन देवता और दैत्योंको जीतते हैं, यह धनुष नीचे कपः चित्रित घावरहित सब शस्त्रोंको काटनेवाला तथा बहुते वर्षोंसे देव दानव और गन्धर्वे पूजित है । इसको एक सहस्र वर्षतक ब्रह्म धारण किया, फिर प्रजापतिने पांच सौ वर्षतक धारण किया, इन्द्रने तीन सौ वर्ष, चन्द्रमाने वर्ष, राजा बरुनने - सौ वर्ष और श्वेतवाह पैंसठ वर्ष धारण किया है । यह धनुष पञ्च अश्रु, दिव्य और दृढ़ है ; इसे अर्जुनने वरुण प्राप्ति किया था । इसरा सुन्दर और विशाल धनुष भीमसेनका है, देवता और मनुष्य इसका पूजा करते हैं, इसही सुवर्ण चित्रित धनुष कुन्तीपुत्र शत्रुनाशन भीमने समस्त पूर्ण दिशा जीता था । जिस सुन्दर धनुषपर वीरवद्ध बनी है, वह साक्षात् महाराज युधिष्ठिर का धनुष है । जिसमें सोनेके बने महा प्रकाशमान सूर्य्य विराजमान हैं, सो नकुलका धनुष है जिसमें सोनेके कीट बने हैं, सो माद्रीपुत्र सात देवका धनुष है । ये रोवां काटनेवाले सात सौ समान विष भरे सहस्रों वाण अर्जुनके हैं । युद्धमें जाकर अपने तेजसे प्रकाश कर देते हैं और शीघ्र चलकर शत्रुओंके व्यूहको काट देते हैं । ये जो लम्बे, चन्द्रमाके समान प्रकाशमान शत्रुनाशन वाण हैं, सो भीमसेनके हैं । ये हलदोके समान वर्ण और सोनेके पंखवाले शिल्लीपर घिसे तीक्ष्णवाण हैं, सो महा बुद्धिमान माद्रीपुत्र नकुलके हैं । यह जो पांच शार्दूलोंसे चिह्नित तूरीण है सो भी नकुलहीका है । इसीकी सहायतासे उन्होंने युद्धमें समस्त पक्ष दिशाको जीता था । ये जो सूर्य्यके समान प्रकाशित सब शत्रुओंको नाश करनेवाले वाण हैं, सो विचित्र योद्धा सहदेवके हैं । ये जो तीक्ष्ण, तेज पानीमें बुझाये, सोनेके पंखवाले तीन धारवाले वाण हैं । सो साक्षात् धर्मराज

हाराजके है। यह जो सोनेकी मूठवाला हलापर घिसा हुआ विशाल खड्ग है, सो हमें शत्रुओंको नाश करनेवाले अर्जुनका है। यह जो बाघके चमड़ेमें रक्खा है, सो दिव्य, शत्रुओंको नाश करनेवाला भीमसेनका खड्ग है। जिसकी सोनेकी मूठ है, और जो बद्धत ज है, सो खड्ग बुद्धिमान धर्मराजका है। जो करके चमड़ेमें रक्खा है, जो सदा विचित्र लड़ामें चञ्चलता है, सो सब शत्रुओंके नाश करनेवाला दृढ़ खड्ग नकुलका है। यह जो वेचित्र, दृढ़ शत्रुओंका भार सहनेवाला खड्ग गायके चमड़ेमें रक्खा है सो साक्षात् सचदेवका है।

४२ अध्याय समाप्त ।

उत्तर बोले, ये सुवर्णखचित तेजसे भरे जिन शत्रुनाशन महात्मा पाण्डवोंके शस्त्र हैं, वे महात्मा युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, और सहदेव कहां हैं ? वे सब लोग शत्रुओंके नाश करनेवाले राज्यको जुबमें चारकर न जाने किधर चले गये ? जगत विख्यात रत्नके समान सो, द्रुपदराजपुत्री द्रौपदी भी न जाने किधर चली गई ? हमने सुना है कि युधिष्ठिर उसे भी जुबमें चार गये थे।

अर्जुन बोले, मैंही अर्जुन हूँ, राजा विराटके कड नामक सभासद कान्तीपुत्र युधिष्ठिर हैं। तुम्हारे पिताके बल्लव नामक रसायना भीमसेन हैं। नकुल अश्वरत्नक हैं, और सहदेव गौत्रोंको रक्षा करते हैं। जिसके निमित्त कीचकोंका नाश हुआ, वही सैरिन्ध्री द्रौपदी है।

उत्तर बोले, हमने जो अर्जुनके दश नाम सुने हैं, यदि तुम हमसे उनको कहो तो हम तुमका अर्जुन जानें।

अर्जुन बोले हैं विराटपुत्र । हम अपने पिताके नाम तुमसे कहते हैं। तुम सावधान होकर

सुनो। अर्जुन, फाल्गुन, जिष्णु, किरीटी, श्वेत-वाहन, विभत्सु, विजय, कृष्ण, शत्रुशाची और धनञ्जय येही मेरे दश नाम हैं।

उत्तर बोले, तुम्हारे नाम विजय, श्वेत-वाहन, किरीटी, शत्रुशाची, अर्जुन, फाल्गुन जिष्णु, कृष्ण, विभत्सु और धनञ्जय क्यों हुए ? इसका कारण कहिये, मैंने आजतक वीर अर्जुनके नामही सुने हैं, यदि तुम इनका कारण कहो तो हम तुम्हींको अर्जुन जानें।

अर्जुन बोले, मैंने सब नगर नगरकी शत्रुओंको जीतकर धन लीना है, और सदा धनके मध्यमें रहता हूँ, इसीसे मेरा नाम धनञ्जय है। मैं बड़े बड़े बलवान योद्धाओंसे युद्ध करनेको चला जाता हूँ, और उनको बिना जीते नहीं लौटता, इसीसे मेरा नाम विजय है। मेरे रथमें युद्धके समय सोनेके जालयुक्त सफेद घोंडे जोड़े जाते हैं, इसीसे मुझे सब लोग श्वेतवाहन कहते हैं। मैं उत्तरा फाल्गुनी और पूर्व-फाल्गुनी नक्षत्रके सन्धिमें हिमाचलमें जन्मा था। इसीसे मेरा नाम फाल्गुन हुआ। पहले जब मैं घोर दानवोंसे युद्ध करनेको गया था, इन्द्रने अपने हाथसे मेरे शिरपर किरीट बाधा था, इसीसे मैं किरीटी नामसे प्रसिद्ध हुआ हूँ। मैं कभी युद्धमें डरकर काम नहीं करता, इस लिये मेरा नाम विभत्सु है। मेरे दोनों हाथ धनुष खींचनेमें समान हैं, अर्थात् जैसे दहने हाथसे धनुष खींचता हूँ, ऐसीही बायेंसे भी खींच सकता हूँ, इससे सब देवता और मनुष्य मुझे शत्रुशाची कहते हैं। मेरे समान वर्णवाला जगतमें कोई पुरुष नहीं है, और मैं निर्मल कार्य करता हूँ, इस लिये मेरा नाम अर्जुन है। मैं अत्यन्त दुर्लभ, दुर्घट शत्रुओंको जीतनेवाला और इन्द्रका पुत्र हूँ। इसीसे लोग मुझे जिष्णु जरते हैं। मेरे पिताने मेरा नामावर्त देवकर कृष्ण नाम रक्खा था।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अर्जुनको ऐसे बचन सुन, विराटपुत्र उत्तर बोला, हे महाबाहो हे लालनेत्रवाले । हे कुन्तीपुत्र । मैं भूमिञ्जय नामक विराटपुत्र आपकी प्रणाम करता हूँ । हे धनञ्जय । मैंने प्रार्थनाहीसे आज आपके दर्शन किये हैं और मैं आपका स्वागत करता हूँ । हे हाथीके सूंडके समान हाथवाले । मैंने ज्ञा आज्ञासे आपकी कक्षा ही, सो आप क्षमा कीजिये । आपने जो पहले बड़े बड़े घोर और विचित्र कर्म किये हैं, उनको स्मरण करनेसे मेरा सब भय दूर हो गया और आपमें बहुत यत्ना बढ़ गई ।

४३ अध्याय समाप्त ।

उत्तर बोले, हे वीर । आप सुभक्त सारथीके सहित इस उत्तम रथमें बैठकर कौनसी सेनासे युद्ध करना चाहते हैं ? सो कहिये मैं उसी सेनाको और चलूंगा ।

अर्जुन बोले, हे पुरुषसिंह । हे युद्धविद्या जाननेवाले । हम तमसे बहुत प्रसन्न हैं, इस लिये तुम कुछ भय मत करो । हम तुम्हारे सब शत्रुओंको जीत लेंगे । हे महाबाहो ! तुम स्वस्थ हो, हमको इस युद्धमें शत्रुओंसे युद्ध करते देखो । तुम शीघ्र हमारे रथमें इन तूणीरोंको बाधो, और एक सीनेकी मूठवाला खण्ड ले आओ ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अर्जुनको ऐसे बचन सुन उत्तर अर्जुनको शस्त्रोंको लेके वृक्षसे शीघ्र उतारा । तब अर्जुन बोले, हे वीर ! हम कौरवोंसे युद्ध करके तुम्हारे पशुओंको छीन लेंगे, तब हमारे रथके ज्वे पर बैठके इस प्रकार गजिन रडोगे जैसे कोई नगरके बीचमें । इस रथक्षत्री नगरमें दोनों पहिये मार्गके दोनों ओरके स्थान हैं, दो नुरीग और एक धनुष तोनों दण्ड हैं, हाथही नगरके स्थान और तोरण हैं । इसकी ध्वजाही नगरकी पताका

है । शत्रुओंको मारनेकी इच्छासे जो धनुष और पहियोंका शब्द है, सोही नगरा है । तुम इसमें रहकर हमसे रक्षा पावोगे । हे विराटपुत्र ! तुम अपने भयको परित्याग कर । क्योंकि हम तुम्हारे शत्रुओंसे गाण्डीव ध लेकर युद्ध करेंगे, और पशुओंकी जीत ले तुमको भी कोई शत्रु, जगत्में नहीं सकता है ।

उत्तर बोले, हम कौरवोंसे भी नहीं डरें, क्योंकि आपको युद्धमें साक्षात् इन्द्र वं विशुके समान जानते हैं । परन्तु दुर्बुद्धिकी एक ऐसा सन्देह है कि उस निश्चय नहीं होता है, आप अनेक लक्षण युक्त और महावीर होकर भी इस नपुंसक धारण करके शिव, गन्धर्वराज और इन समान छिप करके कैसे रहें ?

अर्जुन बोले, हे महाबाहो । हे राजपुत्र हम अपने बड़े भाईकी आज्ञाहीसे एक इस व्रतको करते रहे, परन्तु वास्तवमें नपुंसक नहीं हैं, अब हमारा व्रत समाप्त होगया, हमें कुछ आपत्ति शेष नहीं है ।

उत्तर बोले, हे पुरुषोत्तम । हम बातसे बहुत प्रसन्न हुए कि हमारा सर्व वृथा नहीं था क्योंकि ऐसे महापुरुष नपुंसक नहीं होते हैं । अब मेरा सब भय दूर हो गया अब मैं आपको सहायतासे सब शत्रुओंके युद्ध कर सकता हूँ, कहिये अब मैं कौन काम करूँ ? हे पुरुषसिंह । मैं शत्रुओं रथ तोड़नेवाले आपके घोड़ोंको हाकूंगा, यह विद्या गुरुसे सीखी है । हे पुरुषोत्तम जैसे इन्द्रके मातलि और कृष्णके दारक सारथी हैं, तैसेही हमें भी जानिये । जिसके चलने चरण नहीं दीखते हैं, जो पीछे दहिनी ओर लगा है, वह घोड़ा साक्षात् सुग्रीवके समान बलवान है, जो सुन्दर घोड़ा बाँध औरकी धुरी जुड़ा है, वह पुष्पके समान बलवान है ।

सीनेका जालओढ़े वार्दे और जुड़ा है, सो वेग और बलमें शैथ्यके तुल्य है, और जो दहिनी ओर जुड़ा है सो वेग और बलमें कृष्णके घोड़े बलाहकके तुल्य है । मेरो बुद्धिमें यह रथ आपके बैठने योग्य है, और आप इसमें बैठकर युद्ध करने योग्य हैं ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर महा बलवान अर्जुनने अपने बाजूबन्द और सीनेके छत्ते उतारे, फिर धूमुरवारकाली वालोंको सफेद कपड़ेसे बांधकर पाँवत सावधान और पूर्वमुख होकर सब शस्त्रोंका ध्यान किया और पस्त्राका रथमें रक्खा, फिर सब शस्त्र हाथ जोड़कर अर्जुनसे बोले, हे पाण्डुपुत्र ! हम सब तुम्हारे दास हैं । अनन्तर अर्जुनने उन सब शस्त्रोंको प्रणाम करके कहा कि तुम सब हमारे मनमें स्थित रहो । फिर अर्जुन सब शस्त्रोंको अपने हाथमें लेकर वज्रत सन्न हुए और गाण्डीव धनुषपर रोदा चढ़ाया और टङ्गार दिया । वह शब्द ऐसा घोर हुआ कि पर्वत गिरनेसे पर्वतके फटजानसे होता ; पृथ्वी कापने लगी घोर वायु चलने लगी, रोई दिशा न दीखने लगी, आकाश भ्रमित होगया, और वृक्ष कापने लगे । अर्जुनके वज्रके मान धनुष शब्दको कौरवोंने भी सुन लिया ।

उत्तर बोले, हे पाण्डव । आप अकेले निक शस्त्र अस्त्र जाननेवाले महारथोंकी कैसे तितियेगा ? हे कुन्तोपुत्र । आपसहायरहित और भय लोभ सहाय सहित हैं, इससे हमको हत भय होता है ।

उत्तरके ऐसे वचन सुन अर्जुन हंसके ऐसे धन दाले, हे वीर ! तुम कुछ भय मत करा । मैं आपका नाम गन्धर्वोंसे युद्ध किया था, मेरा सहायक कौन था ? जब देवता और निवास भरे हुए महा भयङ्कर खाण्डव वनमें नष्ट किया था, तब मेरा सहायक कौन था, मैं इन इन्द्रके लिये निवातकवच और महा

बलवान पौलोम दैत्योंसे युद्ध किया था, तब मेरा सहायक कौन था ? हे तात ! जब द्रौपदीके स्वयम्बरमें सब राजोंसे मैंने युद्ध किया था, तब मेरा सहायक कौन था ? मैं गुरु द्रोणाचार्य इन्द्र, कुवेर, यम वरुण, अग्नि, कृपाचार्य, लक्ष्मीपति कृष्ण और साक्षात् शिवकी सहायतासे इन सबके सङ्ग क्यों नहीं युद्ध कर सकंगा ? तुम अपने भयको दूर करके घोड़ोंकी शीर्षा हाँकी ।

४४ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जन्मेजय । पश्चात् अर्जुनने उत्तरको सारथी बनाया, शमीवृक्षकी प्रदक्षिण करी और शस्त्रोंको रथमें रखकर वेगसे चले, उत्तरकी सिंहयुक्त ध्वजाको उतारकर शमीवृक्षके नीचे रख दिया, और उत्तरको सारथी बनाकर चल दिये । अर्जुनने विश्वकर्माकी देवी मायाको रथमें स्थापन किया और हनुमानयुक्त सानको ध्वजाको रथमें लगाया । फिर अग्निके वरदानका ध्यान किया । अर्जुनके ध्यान करते ही अनेक प्राणियोंकी अग्नि उनके रथके रक्षाके लिये भेजा । पश्चात् सानके देखवाली सुन्दर वाचक ध्वजा अर्जुनके रथपर आकाशसे आकर लग गई, और दिव्य रथ आकाशसे आया । अर्जुनन उस रथका देखकर प्रणाम किया, फिर धनुष हाथमें लेकर अगुशित्राण पहर और उस रथमें बैठकर उत्तरकी ओर चल दिये । कुछ दूर जाकर अर्जुनने शत्रुओंका कंपानवाले देवदत्त शङ्खको बलसे बजाया । उस शङ्खको सुनतेही अर्जुनके बलवान घोड़े पृथ्वीमें बैठ गये और उत्तरकी भी भयसे मूर्च्छा आगई । अर्जुनने रथसे उतरकर पाड़ाका टोक किया और उत्तरका भी शान्त करन लगे ।

अर्जुन बोले, हे शत्रुनाशन राजन् ! तुम शत्रुओंको दूर कर के दूर रहो । मैं युद्धात्तर !

तुम शत्रुओंके बीचमें क्यों रीते हो ? तुमने अनेक युद्धोंमें शंख, भेर और व्यूहोंमें खड़े हुए हाथियोंके शब्द सुना है, सो तुम केवल शङ्खके शब्दसे क्यों डर गये ? तुम्हारे मुखका रङ्ग सामान्य पुरुषके ऐसा क्यों हो गया ?

उत्तर बोले, मैंने अनेकवार शंख भेर और युद्धमें उपस्थित हाथियोंके शब्द सुने हैं, परन्तु ऐसा शब्द कभी भी नहीं सुना। यह ध्वजा भी मैंने पहले कभी नहीं देखी थी, और ऐसा धनुषका शब्द भी मैंने पहले कभी नहीं सुना था। धनुष शङ्ख और ध्वजामें बैठे हुए राजाओंके घोर शब्दसे मेरा मन कापा जाता है, सब दशओंका व्याकुल देखकर मेरा मन कापा जाता है। ध्वजासे सब दश भर गई है इससे मुझे कुछ नहीं दीखता है। ऐसा कहकर उत्तर चप रह्यो, एक मुहूर्तके पश्चात् अर्जुन बोले, हे उत्तर ! तुम हमारे रथको एकान्तमें ले चला, पैरासे रथको पकड़ लो और सावधान होकर घोड़ोंकी लगाम पकड़ो, हम पुनः शंख बजाते हैं।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अर्जुनने पुनः शंख बजाया। उससे पर्वत फटने लगे, तथा गुफा और दश दिशा पूरित होगईं। उत्तर भी रथसे लपट गया। उस शङ्खके, रथके और गाण्डोव धनुषके शब्दसे पृथ्वी कापने लगी। अर्जुनने उत्तरको फिर सावधान किया।

द्रोणाचार्य बोले, इस मेघ समान रथके शब्दसे हमें निश्चय होता है, कि यह क्षत्री अर्जुनके सिवाय दूसरा कोई नहीं है। हमारे शस्त्र प्रकाशित नहीं होते, घोड़े नहीं ह्रीचते, आहुति दिनसे अग्नि नहीं जलती, हरिन घोर शब्द करते हुए सूर्यकी ओर जाते हैं, ध्वजाओंपर काँवे गिरते हैं, ये सब शत्रुन अच्छे नहीं हैं। मांस खानवाले पक्षी दहनी ओरका उड़ते हैं, यह रीता हुआ सियार हमारी सेनाकी ओर चला आता है, इसका रूप वज्रत

कराल है, इससे हमें वज्रत भयकी सम्भावना है। तुम सब लोगोंके रोवें खड़े होगये हैं, इससे हमकी जान पड़ता है कि इस युद्धत क्षत्रियोंका नाश होगा। किसी तेज प्रकाश नहीं रहा, हरिन और पक्षी घोररूप धारण किया है और भी क्षत्रिय नाशके अनेक लक्षण दीखते हैं; विशेष कर हमारीही सेनाका नाश दीखता है। आशसे हमारी सेनामें उल्का गिरती है, हथौड़े रो रहे हैं, सेनाके चारों ओर गिरते हैं, तुम भी अर्जुनके वाणसे पीछे सेनाको देखकर दुःख पाते हो, किसी याद युद्ध करनकी इच्छा नहीं देखते, सब यात्री सुख पाले होगये हैं, कोई वीर नहीं है इससे हम लोग व्यूह बनाकर गोशर रक्षा करें।

४५ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय द्रोणाचार्यके ऐसे वचन सुन राजा दुर्योधन भीष्म, महावीर द्रोणाचार्य और महाकृपाचार्यसे कहा कि, हे मान्यपुरुष ! हे और कर्णन आप लोगोंसे पहले भी कहा और फिर भी कहते हैं क्योंकि इसके नेसे मेरी हृत्ति नहीं हीतो है। हमारी पाण्डवोंको यही प्रतिज्ञा थी कि याद आवासमें तुम लोग प्रत्यक्ष हो जावोगे तो वारह वर्ष वनमें रहना होगा, अभी तो वर्ष पूरा नहीं हुआ और हमन अर्जुन जान लिया, इसलिये पुनः पाण्डवोंका वर्ष वनमें रहना होगा, परन्तु हम लोभ और माहके वशमें हाकर समय न जान सकत हैं, इसका टोका निश्चय मान कर सकत हैं। विषयोंके निश्चय करनमें प्रसन्द्य हो जाता है, कोई विषय दूसरे प्रकार विचारा जाता है और वह दूसरी प्रकार

हो जाता है, हम लोग इस युद्धमें युद्ध करनेके लिये उत्तरका मार्ग देख रहे थे, परन्तु अर्जुन अनायास आमिला, इसमें हमारा क्या दोष है? हम लोग राजा सुशर्माकी सहायता करनेके लिये राजा विराटसे लड़नेको आवे थे, और आपके आगे विराटहीके अनक दोष भी हमने कहे थे; ऐसी सम्मति हुई थी कि जब राजा विराट त्रिगर्त देशीय क्षत्रियोंके भयसे डरकर सप्तमीके दिन राजा त्रिगर्तसे युद्ध करनेको चला जायगा तब अष्टमी तिथिको सूर्यके उदय होते इस सब गौश्रोंको छोन लेंगे। और ऐसा भी निश्चय था त्रिगर्त देशके क्षत्रो उनकी गौश्रोंका छोन ले आवेंगे अथवा उनसे हारकर सन्धि करेंगे, या हम लोगोंसे मिलकर युद्ध करेंगे। हमें जान पड़ता है कि राजा विराट त्रिगर्त देशके क्षत्रियोंका युद्ध छाड़के और अपने नगरको छाड़के हम लोगोंसे युद्ध करनेको आया है, इसका कारण भी यह जान पड़ता है कि राजा विराट न उधर अधिक पारश्वम जानकर उधर यात्रा करो है, अथवा उन्हींमेंसे अर्थात् राजा विराटके पुरुषोंमेंसे यह कोई महा बलवान वीर है जो हम लोगोंसे युद्ध करनेको चला आता है। हमारी बुद्धि यह निश्चय होता है कि चाहे यह विराट हो, चाहे अर्जुन हो, हम लोगोंका मिलकर युद्ध करना चाहिये। न जान भाष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, विष्णु और अश्वत्थामा आदि महारथ क्या ध्वजराज बैठे हैं? हे वीरो! इस समय इस युद्धके आरंभ किसी बातमें कल्याण नहीं है। यदि हमसे इन्द्र, यम, या और कोई सहायता भी माग्यो तो शीन लेगा, तब हास्तना-पुरमें कौन जा सकेगा? इस घोर वनमें हमारे शत्रुसे उधर कोई षोड़ पर चढ़ा वार भी नहीं भाग सकता है, नार पदातिवोंकी कत्तली कदाही क्या है।

महाराज दुर्योधनके वचन सुन कर्य वीले कि,—द्रोणाचार्यके वचनोंका निरा-दर धरके आप युद्धका विधान कीजिये। ये पाण्डवोंकी सम्मति जानते हैं और अर्जुनसे प्रेम अधिक करते हैं, इस लिये हम लोगोंको डरा रहे हैं। अर्जुनको आता देख उनकी प्रशंसा कर रहे हैं। जिसमें हमारी सेना भाग न जाय ऐसा विधान कीजिये, पाण्डव लोग अत्यन्त स्वार्थी हैं, उन्होंने द्रोणाचार्यको आपके पास बसा दिया है, अर्थात् ये आपके पक्षपाती नहीं बरन पाण्डवोंके पक्षमें हैं, इसमें प्रमाण यह है कि द्रोणाचार्य सदा पाण्डवोंकी प्रशंसा किया करते हैं। भला षोड़ोंका शब्द सुनकर वीरोंको कौन प्रशंसा कर सकता है? षोड़ोंका स्वभावही है कि नये स्थानपर जाकर बोलन लगते हैं। वायु सदा चलता करता है, जल सदा बरसा करता है, विजली सदाही तड़का धरती है, इस सबमें अर्जुनकी प्रशंसा धर-नकी कानसो बात है? हा ऐसा जान पड़ता है, कि आचार्यके चित्तमें हम लोगोंसे कुछ द्वेष, काम, या क्रोध भरा हुआ है। इसके आतिरिक्त एक यह भी बात है कि आचार्य लोग दयावान पण्डित और धर्मदर्शी होते हैं, इस लिये इनके युद्धमें कुछ सन्ध्यात नहीं पूछनी चाहिये। उत्तम अटारी, सभा और वनामें बैठकर उत्तम कदा कहनके रुसत पण्डितका बुलाना चाहिये। जब अनक आश्चर्य देखलान हो, या यज्ञसे कोई विचित्र वस्तु उत्पन्न करनी हो तब पण्डितोंसे सन्धात पूछनी चाहिये। जहां शत्रु का किट्ट देखना हो, किती मनुष्यका चरित्र पढ़ना हो, जहाँ, षोड़, रथ, गधे, ऊट, धकरा और भेड़ोंके लक्षण पढ़ना हो, गौश्रोंका रक्षा करने का नगर बाहर और बाहर पर देवताकी प्रति देनेमें नार अर्जुन संसार तब दीपोंमें पण्डितोंकी सम्मति लेना

चाहिये । इस समय शत्रुओंके गुण जाननेवाले पण्डितोंकी पीछे करके ऐसी नीति करनी चाहिये जिसमें शत्रुओंका नाश हो । गौओंकी बीचमें करके रक्षा सहित सेनाका ऐसा व्यूह बनना चाहिये जहाँ खड़े होकर हम लाग शत्रुओंसे युद्ध करें ।

४६ अध्याय समाप्त ।

कर्ण बालि, हम सब क्षत्रियोंकी भयसे व्याकुल, चञ्चल और युद्धसे विरक्त देखते हैं । याद राजा विराट या स्वयं अर्जुनही युद्ध करने का आया हागा, तभी मैं इस प्रकार निवारण करूँगा जैसे तट समुद्रका रक्षक होता है । मेरे नवाय हुए धनुषसे छूट रूपाके समान महाबाण बिना शत्रुओंका नाश । किये कभी नहीं लाटेंगे । आज सुभा वीरक हाथसे कूटे हुए सानक पक्ष और तेज धारवाले बाण अर्जुनका इस प्रकार छा लेवगी, जैसे छाटे कीट वृक्षका छा लेते हैं । अब लाग बाण छूटता हुई मेरी दृढ़ धनुषके शब्दका इस प्रकार सुनें जैसे पुरुष बजती हुई मेरेके शब्दकी सुनते हैं । अर्जुन तरह वयसे बनमें रहता है, इस लिये आज प्रेम साहित मेरे ऊपर बाण छाड़ेंगे । आज अर्जुन गुण-बाण ब्राह्मणके समान दानपात्र बनकर मेरे दिये हुए सहस्रों बाणोंका ग्रहण करे । यहाँ अर्जुन वीर ताना लोकके धनुष धारियोंम प्राप्त हैं, तो मैभी इस पुरुषसे कम नहीं हूँ । अब सानसे खड़े गिद्धके पंखयुक्त मेरे धनुषसे कूटे हुए बाणोंसे आकाश इस प्रकार व्याप्त होजाय, जैसे बरसातमें जुगनुओंसे व्याप्त होता है । आज मैं और किसीसे न मारने योग्य अर्जुनका मारकर धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनके भारी और विख्यात ऋणसे कूटूंगा, मेरे हाथसे कूटे हुए, पखवाले बाण आकाशमें इस प्रकार घूमें जैसे आकाशमें पतङ्ग घूमते हैं, आज मैं इन्द्रके वज्रके समान धनुषवाले और इन्द्रके समान

तेजस्वी अर्जुनकी युद्धसे इस प्रकार भगाऊँगा जैसे पुरुष मसालसे हाथीको भगाता है । आज मैं सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महारथ वीर अर्जुनको इस प्रकार अपने वशमें कर लूँगा जैसे गरुड़ सर्पको अपने वशमें कर लेता है । मैं खड्ग और बाणरूपी इन्धनसे जलते हुए मरु धार अर्जुन रूपी आगकी घोटिल्लपी वायु प्रेरित होकर रथ शब्दसे गर्जता हुआ मेरे समान बाणरूपी जलकी धारासे बुझा दूँगा मेरे धनुषसे कूटे हुए बाण अर्जुनकी ओर इस प्रकार जाय जैसे साप बिलकी ओर जाता है । हे राजन् ! आज आप तेजपानीम बुझे तीक्ष्ण धारावाले सानके पंखयुक्त महा तेजस्वी मे बाणोंसे अर्जुनका इस प्रकार व्याप्त दौखण्य जैसे वृक्षासे पर्वत । मैंने जो ऋषि श्रेष्ठ परशुरामसे शस्त्र सीखा है, उसके बलसे सारा इन्द्रके सङ्ग भी युद्ध कर सकता हूँ । अर्जुनके ध्वजा पर बैठा हुआ बन्दर मेरे बाणसे गिरकर पृथ्वीमें धार शब्द करे, अर्जुनको ध्वजापर बैठे हुए अनक राक्षस मेरे बाणसे पीछित होकर आकाशमें धार शब्द करे । आज मैं दुर्योधनके हृदयमें स्थित काटिका मूल रहित निकाल दूँगा, अर्थात् युद्धभूमिमें अर्जुनकी रथसे नीचे गिरा दूँगा । आज कौरव लोग रथ और बाणोंसे रहित वीर अर्जुनकी इस प्रकार शत्रु लेते देखें जैसे मरते हुए हाथोंका मनुष्य देखते हैं । सब कौरवोंकी जहाँ इच्छा हो तहाँ धन लेकर चले जाय, अथवा रथोंमें बैठकर हमारा युद्धकी देखें ।

४७ अध्याय समाप्त ।

कृपाचार्य बालि, हे 'राधापुत्र' तू बहुत दुर्बुद्धि है, जो सदा युद्धकी इच्छा करता है । तूकी राज्यकी प्रजातिका ज्ञान है, और न युद्धके फलका ज्ञान है । ये जा शत्रुनि आदि कृपों इन्को केवल कलही करना आता है, परन्तु

लोग इनके युद्धकी सदा निन्दा करते हैं, और
 दा उनके युद्धकी नाशकारक बताते हैं। जो
 देश और कालके अनुसार होता है, उसीसे
 वज्र हाती है और इससे उलटे युद्धमें हानि
 होती है। देश और कालके अनुसार हो
 त्याग होता है, अनुकूल कार्य करनेसे सुख
 प्राप्त होता है। पण्डित लोग रथ बनानेवालेके
 चक्र पर विश्वास करके रथमें बैठकर युद्धको
 नहीं चले जाते हैं। अर्जुनके बलको देखकर
 मैं निश्चय होता है कि हम लोगोंमें अर्जुनसे
 युद्ध करने योग्य कोई नहीं है, अकेला कौरवोंसे
 युद्ध करने योग्य कोई नहीं है, यह अकेला
 कौरवोंसे युद्ध करनेका चला आया, अकेलेने
 ढाण्डव वनमें अग्निकी तृप्त किया, अकेलेने पांच
 अपतक ब्रह्मचर्य धारण किया, अकेले सुभद्राको
 अपने रथपर बैठाकर दण्डाकी युद्ध करनेके
 लिये बुलाया। अकेलेने किरातरूपी शिवसे
 युद्ध किया, अकेलेने इसी वनमें जतद्वयसे द्रौप-
 दीको छुड़ाया, अकेलेने पांचवर्षतक इन्द्रसे
 विद्या सीखा, एकलेन चित्रसेन गन्धर्वराजकी
 दुर्जय सेनाके सहित जीता और एकलेही
 अर्जुनने देवतासे भी अवय निवातकवच और
 कालखड्ग राजसीका नाश किया। वही
 अकेला शत्रुनाशन अर्जुन सब कौरवोंको
 जीतकर यश प्राप्त करेगा। हे कर्ण ! अकेले
 अर्जुनने इतने काम किये हैं। और तैने
 अकेले कौनसा युद्ध जीता है ? एक पाण्डवने
 एक एक दिशाके राजाको अपने वशमें कर
 लिया था। उन लोगोंसे युद्ध करनेकी कौन
 शक्ती कर सकता है ? जो पाण्डव अर्जुनसे
 युद्ध करनेकी करे, उसकी आपधी करनी
 पड़ेगी। क्या तु कौरवमें सरि विपैले गर्पको
 करने चाहते पकड़कर अङ्गलीसे उसके दात
 निगुना चाहता है ? क्या तु वनमें अकेले
 समी तप पञ्चवर्षसहित मतवारे हाथीपर चढ़-
 कर नगरकी जाना चाहता है ? क्या जो और

मज्जा सहित जलती हुई अग्निमें घीने भोगे
 हुए वस्त्रोंको पहनकर घुसना चाहता है ?
 ऐसा कौन मूर्ख होगा जो गलेमें शिला बांध-
 कर समुद्रमें कूदे और हाथोंसे पैरकार समुद्रमें
 पार होनेकी इच्छा करे ? हे कर्ण ! जो
 अर्जुनसे युद्ध करनेकी इच्छा करता है, वह
 वैसाही मूर्ख है, जैसे कोई शस्त्र विद्या न
 जाननेवाला दुर्बल, शस्त्र विद्या जाननेवाले
 बलवानसे युद्ध करनेकी इच्छा करे। हम
 लोगोंने अर्जुनकी तिरहवर्ष पर्यन्त सहा दुःख
 दिया है, सो अब यह पिछरेसे कूटे हुए
 सिंघके समान हमारा नाश कर देगा। हम
 लोग एकान्त बैठे अर्जुनके वशमें इस प्रकार
 हो गये, जैसे कोई अग्नि दरे कुएंमें गिर पड़ता
 है। अब हम लोगोंको उचित है कि सेनाका
 बृह वना लें और महावीर अर्जुनसे द्रोणा-
 चार्य, द्रुपथीधन, भीष्म, तुम और हम मिलकर
 युद्ध करें। यदि हम कृपे सहाय्यी इकट्ठे
 होकर युद्ध करेंगे तब अर्जुनके सङ्ग लड़
 सकेंगे अन्यथा तुम्हारा साहस ब्रया है। हम
 लोग सेनाका बृह वनाकर और धनुष धारण
 करके अर्जुनसे इस प्रकार युद्ध करेंगे जैसे
 इन्द्रसे राजस लोग।

४८ अध्याय समाप्त ।

अश्वत्थामा बोले, हे कर्ण अभी न
 गौश्योंकी जीता, न राज्यकी सीमापर पड़ंचे
 हैं, तुम पहिलेही अपनी प्रशंसा करने लगे ?
 अनेक युद्धोंकी जीतकर और अनेक नक्षीकी
 प्राप्त करके भी सदासा लोग अपनी प्रशंसा
 नहीं करते। देखो अग्नि सीन होकर मयकी
 भस्म करता है, सूर्य सीन होकर प्रकाश करने
 के और पृथ्वी सीन होकर सब जगत्की धारण
 करती है अतः ज्ञानी ज्ञानीके पदक प्रयक
 उर्ध्व बना दिखे हैं, उनकी करनेमें सदाशकी
 धन मिल सकता है, और उनकी करनेमें

मनुष्यकी दोष भी नहीं होता । ब्राह्मण चारों वेदोंको पढ़कर यज्ञ करे और करावे । क्षत्री धनुषको आश्रयसे यज्ञ करे, परन्तु करावे नहीं । वैश्य द्रव्य उपाज्जन करके वेदोक्त कर्म करे और शूद्रको गन्ध हीकर सामान्य वृत्तिसे चारों वर्णोंकी सेवा करने चाहिये । महात्मा लोग शास्त्रके अनुसार कर्म करके और समस्त पृथ्वीके स्वामी होकर भी गुरुओंकी सेवा करते हैं, भला ऐसा कौन क्षत्रिय होगा जो जुवेमें राज्यकी जीतकर अपनी प्रशंसा करेगा ? यह मूर्ख धृतराष्ट्र एतही ऐसा निर्लज्ज है, जो ऐसे अधर्म करता है । दुर्योधनके समान दुष्ट जगतमें व्याधके सिवा और कोई न होगा, जो कलसे धन जीतकर अपनी प्रशंसा करता है । और साधुओंके सङ्ग कलकर अपनेको बुद्धिमान कहता है, रे दुष्ट ! तैने कौनसे रथ-युद्धमें अर्जुनको जीता है ? तैने कौनसे युद्धमें सह-देवको पकड़ा था ? तैने कब रथयुद्धमें नकुल-को मारा था ? तुमसे कौन से युद्धमें युधिष्ठिर हार गये ? तैने कौनसे घोर युद्धमें महा बलवान भीमसेनको जीता था ? तैने कब इन्द्र-प्रस्थके ऊपर चढ़ाई करी थी ? और वह कौनसा युद्ध हुआ था जिसमें तने द्रौपदीको जीता था ? कौनसे न्यायसे रजस्वला द्रौपदीको एक वस्त्र पहनाके समामें बुलाया था ? हे सूत ! तुम लोगोंने पाण्डवोंका मूल इस प्रकार नाश किया है, जैसे कोई लोभी चन्दनके वृक्षको का ता है । तुमको स्मरण होगा कि जुवेके समय विदुरने क्या कहा था ? तुम सूत हो अपना कर्म करो युद्धको क्या जानो । हमलोग देखते हैं कि मनुष्यसे चौंटी पर्यन्त अपने वैरका शक्तिके अनुसार बदला लेतेही हैं । पाण्डव लाग द्रौपदीके दुःखको क्षमा नहीं करेंगे । अर्जुनने धृतराष्ट्रका वंश नाश करनेको अवतार लिया है । तहां तुम पण्डित होकर वचन कहना चाहते हो ? अर्जुन पूर्व वैरको स्मरण करके

अवश्य अवश्य हमारा नाश करेगा । कुन्तीपुत्र अर्जुन गन्धर्व, देवता, राक्षस और सपोंसे भी युद्ध करनेकी समर्थ है ; अर्जुन युद्धमें क्रोध करके जिसकी और जायगा, उसका इस प्रकार नाश कर देगा, जैसे गरुड़ वृक्षका, और अर्जुन तुमसे अधिक बलवान इन्द्रके समान धनुषधारी वृष्णाके समान योद्धा है । उसकी पूजा कौन नहीं करेगा ? जो अर्जुन देवतोंके सङ्ग देव विधिसे, मनुष्यके सङ्ग मनुष्य विधिसे लड़ता है, जो अस्त्रोंको अस्त्रसे काटता है, उससे समान कौन मनुष्य होगा ? एतसे भी शिष्य अधिक होता है, इसी कारण अर्जुन दोषाचार्यको अधिकतर प्रिय हैं, तुमने जैसे जुवा खेला था, जैसे इन्द्रप्रस्थकी जीता था, जिस बलके भरोसे द्रौपदीको समामें बुलाया था, उसी बलसे अब अर्जुनके सङ्ग युद्ध करो । हे दुर्योधन ! यह तुम्हारा पति मामा क्षत्रिय धर्मको जाननेवाला जुवारी शकुनि युद्ध करें, अर्जुन शययुग, देता, हार और कलियुगके समान फांसे नहीं फँकता, यह जलते हुए तीक्ष्ण वाणोंको छोड़ता है । गाण्डीवसे कूटे हुए गिद्ध पंखयुक्त तेज वाण पहाड़ोंको काटकर भी पार चली जाते हैं । मृत्यु, यम, पवन, और अग्नि ये सब क्रोध करके शत्रुओंका कुछ शेष छोड़ सकते हैं, परन्तु अर्जुन नहीं । तुमने जैसे अपने मामाको सहायतासे जुवा खेला था, वैसेही अपने मामासे रक्षित होकर युद्ध करो । जिसकी इच्छा हो, सो युद्ध करे, हम अर्जुनसे नहीं लड़ेंगे, क्योंकि हम विराटसे युद्ध करनेकी आये हैं । यदि वह गौओंको कौनने आये हो ता हम लड़ेंगे ।

४६ अध्याय समाप्त ।

भीष्म बोले, हे राजन् दुर्योधन ! द्रौपदी अस्त्रव्यासा उचित कहते हैं, और व्यासजीने

उचित कहा, परन्तु कर्ण केवल हठसे युद्ध कर
नेकी इच्छा करता है । ज्ञानी पुरुषको उचित
है कि गुरुको कुछ न कहै, और युद्ध भी देश
और कालके अनुसार करे । जिसके सूर्यके
समान तेजस्वी पांच शत्रु हैं, उस पण्डितको भी
भ्रम क्यों न होगा ? धर्मज्ञ पण्डित लोग भी
अपने प्रयोजनके लिये झूल जाते हैं, इस लिये
हम कुछ वचन कहते हैं । कर्णने जो कुछ
तुमसे कहा था, सो सब तेज बढ़ानेके लिये इसहेतु
अश्वत्थामाको क्षमा करनी चाहिये, क्योंकि
महायुद्ध होनेवाला है । जिस समय अर्जुन
युद्ध करनेकी उपस्थित हो, वह समय विरोधका
नहीं है, तुम द्रोणाचार्य और अश्वत्थामा सब
क्षमा करो । आप लोगोंकी शस्त्र-विद्या ऐसी
उत्तम और अक्षय है, जैसा सूर्य और चन्द्र-
माका तेज । आप लोगोंकी वेद विद्या और
ब्रह्मास्त्र भी वैसेही उत्तम है । हमें द्रोणाचार्य
और अश्वत्थामामें शस्त्र-विद्या और वेद विद्या
भरी दीखती हैं । हमारी बुद्धिमें द्रोणाचार्य
और अश्वत्थामाके सिवा दोनों विद्या एक पुरु-
षमें नहीं हैं । हे राजन् । वेदान्त पुराण और
इतिहासोंकी परशुरामके सिवा द्रोणाचार्यसे
अधिक कौन जानता है ? ब्रह्मास्त्र और वेद
विद्या द्रोणाचार्यके सिवा किस पुरुषमें है ?
इस लिये आचार्यपुत्र अश्वत्थामा हमारे ऊपर
क्षमा करें, यह समय विरोधका नहीं है ।
महात्मा पण्डितोंने जो दोष कहे हैं,
उनमें भेदही मुख्य है, इससे सर्वनाश हो
सकता है ।

अश्वत्थामा बोले, हे पुरुषसिंह भीष्म !
आप हमारे न्याययुक्त वचनोंकी निन्दा करने
शेन नहीं हैं, क्योंकि आचार्यने क्रोधसे अर्जुनके
गण कहे थे, इनमें यही हेतु है कि शत्रुके गुण
और गल्ले भी दोष कहने चाहिये । विरोध
करना और शिष्टकी तो कल्याणहीका उप-
कार करना चाहिये ।

दुर्योधन बोले, आचार्यकी क्षमा करना
उचित है, क्योंकि यह समय शान्तिका है ।
उन्होंने जो कुछ कहा था, क्रोधसे कहा था,
परन्तु भेदकी इच्छासे नहीं ।

श्रीवैशम्पायन सुनि बोले, हे जनमेजय !
अनन्तर दुर्योधनने द्रोण, भीष्म महात्मा
कृपाचार्यके सहित द्रोणाचार्यसे कहकर
कर्णका अपराध क्षमा कराया ।

द्रोणाचार्य बोले, शान्तपुत्र भीष्मने जो
पहले वचन कहा था, हम उसीसे प्रसन्न
होगये थे, अब जो कर्तव्य है सो कीजिये,
ऐसा यत्न करना चाहिये जिसमें सहस्र और
भूलसे भी दुर्योधन युद्धमें अर्जुनके आगे न
जाय । अर्जुन समय पूरा होनेके पहले
कदापि प्रत्यक्ष नहीं हो सकता, इससे जान
पड़ता है कि वर्ष पूरा होगया । अब अर्जुन
बिना गौश्रोंको लिये नहीं लौटिगा । ऐसा
उपाय करना चाहिये, जिसमें अर्जुन हमारी
सेना और धृतराष्ट्रके पुत्रोंका नाश न करे ।
हे गङ्गापुत्र । राजा दुर्योधनने जो पहले
वचन कहे थे, उसकी विचारकर जो उचित
हो, सो आप कहिये ।

५० अध्याय समाप्त ।

भीष्म बोले, समयकी गिनतीमें कला,
काष्ठा, सुहर्त, दिन, पक्ष, महीने, नक्षत्र,
ग्रह, ऋतु और वर्ष गिने जाते हैं, इन सबको
मिलाकर जगतमें कालचक्र घूमता है । नक्ष-
त्रके अतिचारसे और समयकी ठीक गिनतीसे
प्रति पांच वर्षमें दो महीने बढ़ जाते हैं, ऐसी
गणना करनेसे पाण्डवोंके तेरह वर्षसे पांच
महीने और तेरह दिन अधिक हो गये ।
तथा इसी गिनतीसे पांच महीने दो दिन मन्त्रा-
इस नाड़ी पेंतालिका पल और पन्द्रह निम-
षसे भी अधिक समय हो गया । पाण्डवोंने
जो वृद्ध प्रतिज्ञा की थी, उसको उचित गिनति

निर्वाह किया ! यह सब निश्चय विचारकर अर्जुन युद्ध करनेको आया है, जहां साक्षात् युधिष्ठिर हों तहा अधर्म क्यों होगा ! पांचो पाण्डव महात्मा, धर्म जाननेवाले और लोभ रहित हैं। इसीसे उन्होंने इस घोर व्रतको पालन किया, वे लोग कदापि अधर्मसे राज्यकी इच्छा नहीं करेंगे क्योंकि कुसकुल अष्ट पाण्डव लोग महापराक्रमी हैं, उन्होंने धर्मपाशमें बंधकर इस क्षत्रिय व्रतको समाप्त किया। यदि यह अर्जुन न होगा और मिथ्या बोलिगा, तो हमसे अवश्य हार जायगा। पाण्डव लोग मर जायेंगे परन्तु झूठ नहीं बोलेंगे। पुरुषसिंह पाण्डवोंकी जो वस्तु प्राप्त होने योग्य है, उसे वे छोड़ेंगे नहीं क्योंकि वे साक्षात् वज्रधारी इन्द्रके समान बलवान हैं। इस लिये हम सब लोग मिलकर अर्जुनसे युद्ध करेंगे। इस लिये पण्डितोंने जो कल्याणकारी बातें कही हैं, सो तुमको शीघ्रही करनी चाहियें। हे कौरव ! हे राजेन्द्र ! अब अर्जुन युद्ध करनेको आया है, इस लिये हमें परम सिद्धिका निश्चय नहीं होता। युद्धमें लाभ, हानि, जय और पराजय इनमेंसे एक वस्तु अवश्य ही प्राप्त होती है, इस लिये धर्म सहित युद्धका कार्य शीघ्र करना चाहिये।

दुर्योधन बोले, हे पितामह ! मैं पाण्डवोंकी राज्य नहीं दूंगा, इस लिये शीघ्र युद्धका विधान कीजिये।

भीष्म बोले, हे कुसुनन्दन ! हमको सदा तुम्हारे कल्याणका उपदेश करना चाहिये, इस लिये इस विषयमें हमारी जो सम्मति है, सो तुमसे कहते हैं, यदि तुमको प्रिय लगे तो सुनो। इसी समय सेनाके चार भाग कर देने चाहिये। एक भागकी लेकर इसी समय तुम हस्तिनापुरकी चले जाओ, दूसरा भाग गौओंकी लेकर हस्तिनापुरकी जाय, और आधी सेनासे हम लोग अर्जुनके सङ्ग युद्ध

करेंगे। हम, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण और अश्वत्थामा मिलकर अर्जुनसे युद्ध करेंगे। यदि उनकी सहायताकी राजा विराट भी आजायगा, और साक्षात् इन्द्र भी अर्जुनकी रक्षा करनेको आवेगा तोभी मैं इस प्रकार से निवारण करूंगा, जैसे तट समुद्रको निवारण कर देता है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, भीष्मके यह वचन सबको प्रिय लगे, और राजा दुर्योधनने उसी प्रकार सेनाके चार भाग किये। एकके सह राजा दुर्योधनको भेज दिया, और दूसरेको गौओंके सङ्ग भेजकर मुख्य सेनापतियोंकी सम्मतिसे व्यूह बनाना आरम्भ किया।

भीष्म बोले, हे आचार्य ! आप सेनाके बीचमें रहिये, अश्वत्थामा वार्द और बुद्धिमान शारदत पुत्र कृपाचार्य दहनी ओरसे सेनाकी रक्षा करें। सूतपुत्र कर्ण सब युद्ध सामग्री सहित सन्नद्ध होकर सेनाके सुखमें खड़े हों और मैं पीछे रहकर सबकी रक्षा करूंगा।

५१ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजा जनमेजय ! जिस समय कौरवोंकी सेनाका इस प्रकार व्यूह बन चुका तब अपने रथके शब्दसे दिशाओंकी पूर्ण करते हुए, अर्जुन सेनाकी ओर आये। कौरवोंने अर्जुनकी ध्वजा देखी और गाण्डीव धनुषका सहा शब्द सुना। गाण्डीव धनुषधारी महारथ अर्जुनको देख द्रोणाचार्य बोले, यह अर्जुनकी ध्वजा दूरहीसे दीखने लगी, यह रथ और वाणके शब्द आने लगे। यह देखी महारथ अर्जुन रथमें बैठे हुए वज्रके समान धनुषको खींच रहे हैं। यह देखी अर्जुनके दो वाण मेरे पैरोंमें गिरे, और दूसरे दो कानोंकी छूकर चले गये। इनका प्रयोजन यह है कि अर्जुन वनवासमें निवृत्त होकर और अमात्य कर्म करके हमको प्रणाम करता है, और

युद्ध करनेकी आज्ञा मांगता है । आज हमने अपने प्यारे बुद्धिमान शिष्यकी वृद्धत दिनमें देखा । इस समय पाण्डुपुत्र अर्जुन तेजसे प्रकाशित हो रहा है । रथ, बाण, तूणीर, तलहत्यो, एड्ड, पताका, कवच, किरोट, खड्ग और धनुषके सहित अर्जुनकी ऐसी शोभा बढ़ रही है, जैसे ज्वालाओंके सहित जलती हुई अग्निकी ।

अर्जुन बोले, हे सारथी ! तुम हमारे पथको एकवार रणभूमितक हाकी, वहा जाकर हम देखेंगे कि कुसकुलकलङ्क दुर्योधन कहां है ? इन सब कीरवोंको छोड़कर करके मैं महा अभिमानी दुर्योधनहीसे युद्ध करूंगा । क्योंकि उसके हारनेसे सब हार जायेंगे । यह देखो ! गुरु द्रोणाचार्य खड़े हैं, इधर उनके पुत्र अश्वत्थामा हैं । एक ओर भीष्म खड़े हैं । दहनी ओर कृपाचार्य हैं और आगे कर्ण खड़े हैं । क्या सबही वीर हस्तिनापुरसे युद्ध करनेको चले आये ? परन्तु आश्चर्य यही है कि हम राजा दुर्योधनको नहीं देखते हैं । आह ! वह देखो जोनेके भयसे राजा दुर्योधन दक्षिण मार्गसे गौओंके सहित भागा जाता है । हे विराटपुत्र ! तुम इस सब सेनाको छोड़कर हमारे रथको शीघ्र दुर्योधनके आगे ले चलो हम वहीं चलकर युद्ध करेंगे । क्योंकि निस्पृहोंके महारथियोंसे युद्ध करनेसे क्या लाभ है ? दुर्योधनकी जीतकर गौ छीन कर अपने नगरको लौट जायेंगे, और युद्ध करना बुरा है ।

श्रीवैशम्पायन सुनि बोले, अर्जुनकी ऐसे वचन सुन विराटपुत्र उत्तरने अत्यन्त यत्न करके कारवांजी सेनासे दवाकर वेगसे घोड़ीकी भासा, जिधरसे दुर्योधनकी सेना जा रही थी वही तर जाकर उत्तरने घोड़ीकी ओर भी वेगसे चलाया । अर्जुनकी सेना छोड़कर जाते हुए देख कर सब लोग उनके अभिप्रायको जान गये । तब कृपाचार्य

बोले, हमें निश्चय होता है, कि अर्जुन राजासे युद्ध करनेकी जा रहें हैं, इस लिये आप सब लोग रथोंकी शीघ्र हांककर इसके आगे होजाइये । क्योंकि युद्धमें क्रोधी अर्जुनके आगे इन्द्र और देवकीपुत्र कृष्णके सिवा कोई नहीं ठहर सकता । पृथ्वीमें भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्य और महारथ अश्वत्थामा भी अर्जुनसे युद्ध कर सकते हैं, हम गौओंकी ओर धनको लेकर क्या करेंगे ? अर्जुन समुद्रमें दुर्योधन रूपो नाव डूबजायगी; ये लोग इधर सम्मति करतेही रहें उतनेमें अर्जुन दुर्योधनके आगे जा पड़ेंगे । वहां जाकर अर्जुनने अपनी धनुषपर टङ्गार दी और अपना नाम सुनाकर शङ्ख बजाया । शङ्खके शब्द सुनतेही सब शत्रुओंके रोवे खड़े हो गये और सब लोग आश्चर्य करने लगे । उतनेही समयमें अर्जुनने अपने तीक्ष्ण बाणोंसे दुर्योधनकी सेनाको इस प्रकार छा लिया, जैसे वृक्षोंको छोटे कीड़े छा लेते हैं । उस समय दुर्योधनकी सेनामें जरासी भी भूमि ऐसी न बची जहा अर्जुनके बाण न पड़ेंगे हों, परन्तु किसी योद्धाने युद्धमें भागनेकी इच्छा न करी और सब अर्जुनकी प्रशंसा करने लगे । तब अर्जुनने धनुषपर टङ्गार देकर शङ्ख बजाया और रथपर बैठे हुए राक्षसोंको गर्जनेकी आज्ञा दी । उन सबके शब्दसे वीर लोग घबड़ा गये, गौए अपनी पंख जंची करके और हम्मा बोलती हुई दक्षिणको ओरसे नगरकी ओर आपसे आप भाग गईं ।

५२ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन सुनि बोले, हे राजन् जनमेजय ! धनेदारियोंमें से अर्जुन जब गौओंको जेत चके तब युद्धकी इच्छासे शत्रुओंकी सेनापर बाण बरसते हुए दुर्योधनके आगे पड़ेंगे । तब जीरवाने जाना कि अर्जुनने गौओंकी

कुड़ाकर कार्य सिद्ध कर लिया और दुर्योधनसे युद्ध करनेकी चली जाते हैं, तब सब लोग वेगसे उनकी ओर दौड़े। ध्वजायुक्त कौरवोंकी अनेक सेनाके व्यूहको देखकर शत्रुनाशन अर्जुनने विराटपुत्र उत्तरसे कहा, हे सारथे। तुम हमारे सेनिके लगामवाले घोड़ोंको, शीघ्र हांको, क्योंकि हम इन कौरवोंसे शीघ्र युद्ध करना चाहते हैं। हे राजपुत्र। यह दुरात्मा सूतपुत्र कर्ण दुर्योधनके आश्रयसे अभिमानमें भर गया है, और हमसे इस प्रकार युद्ध करना चाहत है, जैसे हाथी हाथीसे; इस लिये तुम हमारे रथको इसीके आगे ले चलो। उसी समय राजा विराटके पुत्रने अपना चतुरतासे सेनिके साजवाले बड़े घोड़ोंको इस प्रकार हांका कि वे कौरवोंकी सेनाके बीचसे निकलकर कर्णके रथके आगे पड़ंचे। उसी समय अर्जुनको क्रोधसे आते हुए देख कर्णकी रक्षाके निमित्त महारथ चित्रसेन, संग्रामजित, शत्रुसह और जय आदि वीरोंने अर्जुनके ऊपर तोछा वाण चलाये। उसी समय पुरुषवीर अर्जुनने क्रोधमें भरकर अपने वाणोंसे उस रथ समूहको इस प्रकार नाश किया जैसे अग्नि ज्वालासे बनको भस्म करती है। उसी समय उस घोर युद्धमें महारथ अर्जुनसे युद्ध करनेके लिये विकर्ण आया। विकर्ण महारथ भीमसेनके छोटे भाई अर्जुन पर तोछा वाण वर्षाने लगा। उसी समय अर्जुनने अपने वाणोंसे विकर्णकी सेनेसे चित्रित विचित्र दृढ़ रोद्धिवाली धनुषको काटकर उसकी ध्वजाको गिरा दिया। ध्वजा और धनुषके कटनेसे विकर्ण वज्रत घबड़ाये और युद्धको छोड़कर भागे। विकर्णकी भागते तथा अपनी सेनाकी नाश होते देख राजा शत्रुन्तपको महाक्रोध हुआ और उनके ऊपर तोछावाण बरसाने लगा। जब अर्जुनने देखा कि राजा शत्रुन्तप हमसे युद्ध करनेकी आये, तब उनके

शरीरमें पांच वाण और सारथीको दश वाण मारे। राजा शत्रुन्तप उन शरीरवेधी वाणोंके लगनेसे मरकर इस प्रकार पृथ्वीमें गिरा, जैसे पर्वत लगनेसे बृक्ष टूटकर गिरता है। जब महावीर कुसकुल सिंह अर्जुनने राजा शत्रुन्तपको मारा, तब कौरव सेनाके योद्धा इस प्रकार कापने लगे जैसे अधिक वायु चलनें बनके बृक्ष कांपने लगते हैं। उसी समय अर्जुनने सुन्दर वेषवाले इन्द्र तुल्य पराक्रम अनेक वीरोंको मार कर पृथ्वीमें गिरा दिया उस समय मरे हुए वीर ऐसे दीखने लगे जैसे हिमाचलमें उत्पन्न हुए बड़े बड़े हाथी गाण्डीवधनुषधारी महावीर अर्जुन योद्धाओंको मारते हुए उस युद्धमें सब और इस प्रकार घूमने लगे जैसे जेठ मासकी अग्नि उस समय युद्धमें घूमते महारथ अर्जुनके ऐसी शोभा बढी जैसे वसन्त ऋतुमें पत्ते उड़ते हुए वायुकी। उसी समय अर्जुनने वेगसे जाकर कर्णके छोटे भाईके घोड़ेको मार डाला और एक वाणसे संग्रामजितका शिर काट कर पृथ्वीमें गिरा दिया। भाईके मरनें विकर्तन पत्र कर्णको महा क्रोध हुआ और विपैले पर्पके समान दात पीस कर अर्जुनके और ऐसे दौड़ा, जैसे सिंह सिंहकी ओर दौड़ता है। कर्णने क्रोध करके अर्जुन शरीरमें बारह वाण मारे और विराटपुत्रके हाथमें एक तथा अपने वाणों अर्जुनके घोड़ोंको व्योक्त कर दिया अर्जुन कर्णको क्रोध किये आते हुए देख उसकी ओर इस प्रकार वेगसे दौड़े जैसे विदि पंखवाले गरुड़ सर्पकी ओर दौड़ते हैं। सब धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ महाबलवान और सब शस्त्रोंकी सहनेवाले अर्जुन और का परस्पर घोर युद्ध करने लगे और सब लोग उनका युद्ध देखने लगे। क्रोध में अर्जुनने कर्णको यद्धमें खड़े देख कर मर

हंसते हंसते घोड़े रथ और सारथीके सहित
वाणोंसे छा लिया, तब अर्जुनके वाणोंसे रथ
और हाथियोंपर चढ़े हुए वीर गिरने लगे
और भीष्म आदि सब कौरव वाणोंसे छिप
गये । महावीर कर्ण भी अपने वाणोंसे अर्जु-
नके सब वाणोंकी काटकर धनुष और वाण
लेकर जलती हुई अग्निके समान प्रकाशित
होने लगे । तब सब कौरव लोग कर्णकी
धन्यवाद देकर, तथा ताली और शङ्ख, भेर
वजाकर जूड़े लगे और धनुषोंपर टङ्कार
देने लगे । विशाल पट्टवाले वानरयुक्त घोर
ध्वजाकी देखकर और गाण्डीव धनुषके
शब्दको सुनकर तथा अर्जुनकी प्रसन्नता पूर्वक
युद्धमें खड़े देख कर्ण गर्जने लगे । अर्जुनने
उतनेही समयमें अपने वाणोंसे रथ, घोड़े
और सारथीके सहित कर्णकी व्याकुल कर
दिया । फिर भीष्म, द्रोणाचार्य और कृपा-
चार्यकी देखकर सिंहके समान गर्जने लगे ।
वीर कर्णने भी अर्जुनके ऊपर इस प्रकार
वाणोंकी वर्षा करी जैसे मेघ जल वर्षाता है ।
उन दोनों वीरोंका घोर युद्धमें तीक्ष्ण वाण
चलाते और रथोंमें बैठे लोगोंने इस प्रकार
देखा जैसे मेघसे छिपे चन्द्रमा और सूर्यकी ।
उसी समय शीघ्र वाण चलानेवाले कर्णने
भीष्मके चारों ओर चार चार वाण,
भीम वाण । वराटपुत्र उत्तरकी और तीन वाण
अर्जुनकी ध्वजामें मारे । इन वाणोंकी लग-
भे कुसकुल सिंह शत्रुनाशन अर्जुनको इस
प्रकार क्षात्र हुआ, जैसे निद्रासे जगि सिंहकी ।
महाका अर्जुनने शस्त्रोंसे व्याकुल होकर
सब वाणोंका प्रयोग किया और अपने वाणोंसे
कर्णके रथकी ऐसे छा लिया, जैसे सूर्य अपनी
रथोंसे लोकको छा लेता है । अर्जुनने अपने
रथ वाणोंको तूणारसे निवाल और कान
से खाँचकर स्वर्ण कर्णकी ओर चलाना
शुरू किया । उन दोनोंका इस प्रकार युद्ध

हुआ जैसे दो मतवारे हाथी लड़ते हैं । उस
समय अर्जुनके धनुषसे कूटे हुए तीक्ष्ण और
वज्रके समान वाणोंसे कर्णके हाथ, जङ्घा,
शिर, माथा, गला, मुख, और सब अङ्ग पूर्ण
होगये । विकर्तनपुत्र कर्ण अर्जुनके तीक्ष्ण
वाणोंसे व्याकुल होकर युद्धको छोड़ इस
प्रकार भागे जैसे मतवारे हाथीसे डरकर
हाथी भागता है ।

५३ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि लोले, है राजन् जनमे-
जय ! जब राधापुत्र कर्ण युद्धको छोड़के
भाग, तब दुर्योधनादि वीर अपनी अपनी
सेनामें खड़े होकर धीरे धीरे अर्जुनके ऊपर
वाण चलाने लगे, तब अर्जुन उन सब वीरोंके
वाणोंकी इस प्रकार सजने लगे, जैसे समुद्रके
वेगकी तटका पर्वत । तब सफेद घोड़ेवाले
महारथ अर्जुन हंसकर दिव्य वाण चलाने
लगे । उस समय अर्जुनके वाणोंसे दशोदिशा
दश प्रकार पूरित हो गईं जैसे जगत सूर्यकी
किरणोंसे । उस सेनामें कोई रथ, घोड़ा,
हाथी और पदाति ऐसा न बचा जिसकी शरी-
रमें अर्जुनके वाण न लगे हों । सब सेनावाले
उत्तरकी ओर हाकने तथा अर्जुनके दिव्य
वाण, पराक्रम और शीघ्रताकी प्रशंसा करने
लगे । उस युद्धमें शत्रुओंकी नाश करत हुए
अर्जुनका ऐसा तेज बढ़ा जैसा प्रलय कालमें
यमराजका । जलती हुई अग्निके समान
तेजस्वी अर्जुनकी शत्रु युद्धमें देख भी न
सके । उस सेनाकी उस समय ऐसी शोभा
बढ़ी जैसे पर्वतके समीपवाले नद्योंकी सूर्यकी
किरण लगनेसे । है जनमेजय ! उस सेनाके
वीर अर्जुनसे वाण लगनेसे ऐसे शोभित हुए
जैसे एरण्यसे कनकवृक्ष । अर्जुनके वाणोंमें
अनेक फलोंकी माला, सेनेवी माला, चक्र
और ध्वजा बटकर आकाशमें उड़ने लगी ।

कुड़ाकर कार्य्य सिद्ध कर लिया और दुर्योधनसे युद्ध करनेकी चली जाते हैं, तब सब लोग वेगसे उनकी ओर दौड़े। ध्वजायुक्त कौरवोंकी अनेक सेनाके व्यूहकी देखकर शत्रुनाशन अर्जुनने विराटपुत्र उत्तरसे कहा, हे सारथे! तुम हमारे सेनिके लगामवाले घोड़ोंकी शीघ्र हांको, क्योंकि हम इन कौरवोंसे शीघ्र युद्ध करना चाहते हैं। हे राजपुत्र! यह दुरात्मा सूतपुत्र कर्ण दुर्योधनके आश्रयसे अभिमानमें भर गया है, और हमसे इस प्रकार युद्ध करना चाहत है, जैसे हाथी हाथीसे; इस लिये तुम हमारे रथकी इसीके आगे ले चलो। उसी समय राजा विराटके पुत्रने अपनी चतुरतासे सेनिके साजवाले बड़े घोड़ोंकी इस प्रकार हांका कि वे कौरवोंकी सेनाके बीचसे निकलकर कर्णके रथके आगे पड़ंचे। उसी समय अर्जुनकी क्रोधसे आते हुए देख कर्णकी रक्षाके निमित्त महारथ चित्रसेन, सग्राम जित, शत्रुसह और जय आदि वीरोंने अर्जुनके ऊपर तीक्ष्ण वाण चलाये। उसी समय पुष्पवीर अर्जुनने क्रोधमें भरकर अपने वाणोंसे उस रथ समूहकी इस प्रकार नाश किया जैसे अग्नि ज्वालासे बनकी भस्म करती है। उसी समय उस घोर युद्धमें महारथ अर्जुनसे युद्ध करनेके लिये विकर्ण आया। विकर्ण महारथ भीमसेनके छोटी भाई अर्जुन पर तीक्ष्ण वाण वर्षाने लगा। उसी समय अर्जुनने अपने वाणोंसे विकर्णकी सेनासे चित्रित विचित्र दृढ़ रोड़ेवाली धनुषकी काटकर उसकी ध्वजाकी गिरा दिया। ध्वजा और धनुषके कटनेसे विकर्ण बहृत घबड़ाये और युद्धकी छोड़कर भागे। विकर्णकी भागते तथा अपनी सेनाकी नाश होते देख राजा शत्रुन्तपको महाक्रोध हुआ और उनके ऊपर तीक्ष्णवाण बरसाने लगा। जब अर्जुनने देखा कि राजा शत्रुन्तप हमसे युद्ध करनेकी आये, तब उनके

शरीरमें पांच वाण और सारथीकी दश वाण मारे। राजा शत्रुन्तप उन शरीरवेधी वाणोंसे लगनेसे मरकर इस प्रकार पृथ्वीमें गिरा, जैसे पर्वत लगनेसे बृक्ष टूटकर गिरता है। वह महावीर कुसकुल सिंह अर्जुनने राजा शत्रुन्तपकी मारा, तब कौरव सेनाके योद्धा इस प्रकार कांपने लगे जैसे अधिक वायु चलने वनके बृक्ष कांपने लगते हैं। उसी समय अर्जुनने सुन्दर विषवाले इन्द्र तुल्य पराक्रम अनेक वीरोंकी मार कर पृथ्वीमें गिरा दिया। उस समय मरे हुए वीर ऐसे दोखने लगे जैसे हिमाचलमें उत्पन्न हुए बड़े बड़े हाथी। गाण्डीवधनुषधारी महावीर अर्जुन योद्धाओंकी मारते हुए उस युद्धमें सब ओर इस प्रकार घूमने लगे जैसे जेठ मासकी अग्नि। उस समय युद्धमें घूमते महारथ अर्जुनकी ऐसी शोभा बढी जैसे वसन्त ऋतुमें पते उड़ते हुए वायुकी। उसी समय अर्जुनने कर्ण जाकर कर्णके छोटी भाईके घोड़ोंकी नाला और एक वाणसे संग्रामजितकाट काट कर पृथ्वीमें गिरा दिया। भाईके मरने विकर्ण पत्र कर्णकी महा क्रोध हुआ और विषैले पर्पके समान दात पीस कर अर्जुनकी ओर ऐसे दौड़ा, जैसे सिंह सिंहकी ओर दौड़ता है। कर्णने क्रोध करके अर्जुन शरीरमें बारह वाण मारे और विराटपुत्रके हाथसे एक तथा अपने वाणोंसे अर्जुनके घोड़ोंकी व्याकुल कर दिया। अर्जुन कर्णकी क्रोध किये आते हुए उसकी ओर इस प्रकार वेगसे दौड़े जैसे विषैले पंखवाले गरुड़ सर्पकी ओर दौड़ते हो। सब धनुषधारियोंमें अष्ट महाबलवान और सब शस्त्रोंकी सहनेवाले अर्जुन और परस्पर घोर युद्ध करने लगे और सब लोग उनका युद्ध देखने लगे। क्रोध में अर्जुनने कर्णकी यद्धमें खड़े देख कर मारे

हंसते हंसते घोड़े रथ और सारथीके सहित वाणोंसे छा लिया, तब अर्जुनके वाणोंसे रथ और हाथियोंपर चढ़े हुए वीर गिरने लगे और भीष्म आदि सब कौरव वाणोंसे छिप गये। महावीर कर्ण भी अपने वाणोंसे अर्जुनके सब वाणोंको काटकर धनुष और वाण लेकर जलती हुई अग्निके समान प्रकाशित होने लगे। तब सब कौरव लोग कर्णकी धन्यवाद देकर, तथा ताली और शङ्ख, भेर वजाकर कूदने लगे और धनुषोंपर टङ्कार देने लगे। विशाल पंखवाले बानरयुक्त घोर ध्वजाकी देखकर और गाण्डीव धनुषके शब्दकी सुनकर तथा अर्जुनकी प्रसन्नता पूर्वक युद्धमें खड़े देख कर्ण गर्जने लगे। अर्जुनने उतनेही समयमें अपने वाणोंसे रथ, घोड़े और सारथीके सहित कर्णकी व्याकुल कर दिया। फिर भीष्म, द्रोणाचार्य और कृपाचार्यको देखकर सिद्धके समान गर्जने लगे। वीर कर्णने भी अर्जुनके ऊपर इस प्रकार वाणोंकी वर्षा करी जैसे मेघ जल वर्षाता है। उन दोनों वीरोंको घोर युद्धमें तीक्ष्ण वाण चलाते और रथोंमें बैठे लोगोंने इस प्रकार देखा जैसे मेघसे छिपे चन्द्रमा और सूर्यकी। उसी समय शीघ्र वाण चलानेवाली कर्णने अर्जुनके चारों ओरोंपर चार चार वाण, तीन वाण विराटपुत्र उत्तरकी और तीन वाण अर्जुनकी ध्वजामें मारे। इन वाणोंकी लगनसे कुचकुल सिंह शत्रुनाशन अर्जुनको इस प्रकार क्रोध हुआ, जैसे निद्रासे जगने सिंहकी। तब महात्मा अर्जुनने शस्त्रोंसे व्याकुल होकर दिव्य वाणोंका प्रयोग किया और अपने वाणोंसे कर्णके रथकी ऐसे छा लिया, जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे लोकको छा लेता है। अर्जुनने अपने तीक्ष्ण वाणोंकी तूणारसे निक्काल और कान पर्यन्त खींचकर स्तम्भ कर्णकी और चलाना प्रारम्भ किया। उन दोनोंका इस प्रकार युद्ध

हुआ जैसे दो मतवारे हाथी लड़ते हैं। उस समय अर्जुनके धनुषसे कूटे हुए तीक्ष्ण और वज्रके समान वाणोंसे कर्णके हाथ, जङ्घा, शिर, माथा, गला, मुख, और सब अङ्ग पूर्ण होगये विकर्तनपुत्र कर्ण अर्जुनके तीक्ष्ण वाणोंसे व्याकुल होकर युद्धकी छोड़ इस प्रकार भागे जैसे मतवारे हाथीसे डरकर हाथी भागता है।

५३ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि लीले, हे राजन् जनमेजय ! जब राधापुत्र कर्ण युद्धकी छोड़के भागे, तब दुर्योधनादि वीर अपनी अपनी सेनामें खड़े होकर धीरे धीरे अर्जुनके ऊपर वाण चलाने लगे, तब अर्जुन उन सब वीरोंके वाणोंकी इस प्रकार सहने लगे, जैसे समुद्रके वेगकी तटका पर्वत। तब सफेद घोड़ेवाले महारथ अर्जुन हंसकर दिव्य वाण चलाने लगे। उस समय अर्जुनके वाणोंसे दशोंदिशा इस प्रकार पूरित हो गईं जैसे जगत सूर्यकी किरणोंसे। उस सेनामें कोई रथ, घोड़ा, हाथी और पदाति ऐसा न बचा जिसके शरीरमें अर्जुनके वाण न लगें हों। सब सेनावाले उत्तरके घोड़ा हांकने तथा अर्जुनके दिव्य वाण, पराक्रम और शीघ्रताकी प्रशंसा करने लगे। उस युद्धमें शत्रुओंकी नाश करते हुए अर्जुनका ऐसा तेज बढ़ा जैसा प्रलय कालमें यमराजका। जलती हुई अग्निके समान तेजस्वी अर्जुनकी शत्रु युद्धमें देख भी न सके। उस सेनाकी उस समय ऐसी शोभा बढ़ी जैसे पर्वतके समोपवासी मेघोंकी सूर्यकी किरण लगनेसे। हे जनमेजय ! उस सेनाके वीर अर्जुनसे वाण लगनेसे ऐसे शोभित हुए जैसे पुष्पोंसे अशोकवृक्ष। अर्जुनके वाणोंसे अनेक फूलोंकी माला, खेनीकी माला, ह्व और ध्वजा कटकर आकाशमें उड़ने लगीं।

कुड़ाकर कार्य सिद्ध कर लिया और दुर्योधनसे युद्ध करनेकी चले जाते हैं, तब सब लोग वेगसे उनकी ओर दौड़े। ध्वजायुक्त कौरवोंकी अनेक सेनाके व्यूहको देखकर शत्रुनाशन अर्जुनने विराटपुत्र उत्तरसे कहा, हे सारथे! तुम हमारे सोनिके लगामवाले घोड़ोंकी, शीघ्र हांको, क्योंकि हम इन कौरवोंसे शीघ्र युद्ध करना चाहते हैं। हे राजपुत्र! यह दुरात्मा सूतपुत्र कर्ण दुर्योधनके आश्रयसे अभिमानमें भर गया है, और हमसे इस प्रकार युद्ध करना चाहत है, जैसे हाथी हाथीसे; इस लिये तुम हमारे रथको इसीके आगे ले चलो। उसी समय राजा विराटके पुत्रने अपना चतुरतासे सोनिके साजवाले बड़े घोड़ोंको इस प्रकार हांका कि वे कौरवोंकी सेनाके बीचसे निकलकर कर्णके रथके आगे पड़ंचे। उसी समय अर्जुनको क्रोधसे आते हुए देख कर्णकी रक्षाके निमित्त महारथ चित्रसेन, संग्रामजित, शत्रुसह और जय आदि वीरोंने अर्जुनके ऊपर तोच्छ वाण चलाये। उसी समय पुरुषवीर अर्जुनने क्रोधमें भरकर अपने वाणोंसे उस रथ समूहको इस प्रकार नाश किया जैसे अग्नि ज्वालासे बनको भस्म करती है। उसी समय उस घोर युद्धमें महारथ अर्जुनसे युद्ध करनेके लिये विकर्ण आया। विकर्ण महारथ भीमसेनके छोटे भाई अर्जुन पर तोच्छ वाण वर्षाने लगा। उसी समय अर्जुनने अपने वाणोंसे विकर्णकी सोनेसे चित्रित विचित्र दृढ़ रोद्धिवाली धनुषको काटकर उसकी ध्वजाको गिरा दिया। ध्वजा और धनुषके कटनेसे विकर्ण वज्रत घबड़ाये और युद्धको छोड़कर भागे। विकर्णको भागते तथा अपनी सेनाको नाश होते देख राजा शत्रुन्तपको महाक्रोध हुआ और उनके ऊपर तोच्छवाण बरसाने लगा। जब अर्जुनने देखा कि राजा शत्रुन्तप हमसे युद्ध करनेकी आये, तब उनके

शरीरमें पांच वाण और सारथीको दश वाण मारे। राजा शत्रुन्तप उन शरीरवेधी वाणोंसे लगनेसे मरकर इस प्रकार पृथ्वीमें गिरे, जैसे पर्वत लगनेसे वृक्ष टूटकर गिरता है। जमहावीर कुरुकुल सिंह अर्जुनने राजा शत्रुन्तपको मारा, तब कौरव सेनाके योद्धा इस प्रकार कापने लगे जैसे अधिक वायु चलने वनके वृक्ष कापने लगते हैं। उसी समय अर्जुनने सुन्दर वेषवाले इन्द्र तुल्य पराक्रम अनेक वीरोंको मार कर पृथ्वीमें गिरा दिया। उस समय मरे हुए वीर ऐसे दीखने लगे जैसे हिमाचलमें उत्पन्न हुए बड़े बड़े हाथी। गाण्डीवधनुषधारी महावीर अर्जुन योद्धाओंको मारते हुए उस युद्धमें सब ओर इस प्रकार धूमने लगे जैसे जेठ मासकी अग्नि। उस समय युद्धमें धूमते महारथ अर्जुनके ऐसी शोभा बढ़ी जैसे वसन्त ऋतुमें पत्ते उड़ते हुए वायुकी। उसी समय अर्जुनने कर्ण को जाकर कर्णके छोटे भाईके घोड़ेको मार डाला और एक वाणसे संग्रामजितका कर्ण काट कर पृथ्वीमें गिरा दिया। भाईके मरने पर विकर्ण पत्र कर्णको महाक्रोध हुआ और विपैले पर्पके समान दात पीस कर अर्जुन की ओर ऐसे दौड़ा, जैसे सिंह सिंहकी ओर दौड़ता है। कर्णने क्रोध करके अर्जुन के शरीरमें बारह वाण मारे और विराटपुत्रके हाथमें एक तथा अपने वाणोंसे अर्जुनके घोड़ोंको व्याकुल कर दिया। अर्जुन कर्णको क्रोध किये आते हुए उसकी ओर इस प्रकार वेगसे दौड़े जैसे विष पंखवाले गरुड़ सर्पकी ओर दौड़ते हैं। सब धनुषधारियोंमें अष्ट महाबलवान और सब शस्त्रोंकी सहनेवाले अर्जुन और कर्ण परस्पर घोर युद्ध करने लगे और सब लोग उनका युद्ध देखने लगे। क्रोध में अर्जुनने कर्णको युद्धमें खड़े देख कर मर

हंसते हंसते घोड़े रथ और सारथीके सहित
 बाणोंसे छा लिया, तब अर्जुनके बाणोंसे रथ
 और हाथियोंपर चढ़े हुए वीर गिरने लगे
 और भीष्म आदि सब कौरव बाणोंसे छिप
 गये। महावीर कर्ण भी अपने बाणोंसे अर्जु-
 नके सब बाणोंकी काटकर धनुष और वाण
 लेकर जलती हुई अग्निके समान प्रकाशित
 होने लगे। तब सब कौरव लोग कर्णकी
 धन्यवाद देकर, तथा ताली और शङ्ख, भेर
 बजाकर क्रुद्ध लगे और धनुषोंपर टङ्कार
 देने लगे। विशाल पंछवाले वानरयुक्त घोर
 ध्वजाकी देखकर और गाण्डीव धनुषके
 शब्दकी सुनकर तथा अर्जुनकी प्रसन्नता पूर्वक
 युद्धमें खड़े देख कर्ण गर्जने लगे। अर्जुनने
 उतनेही समयमें अपने बाणोंसे रथ, घोड़े
 और सारथीके सहित कर्णकी व्याकुल कर
 दिया। फिर भीष्म, द्रोणाचार्य और कृपा-
 चार्यको देखकर सिंघके समान गर्जने लगे।
 वीर कर्णने भी अर्जुनके ऊपर इस प्रकार
 बाणोंकी वर्षा करी जैसे मेघ जल वर्षाता है।
 उन दोनों वीरोंको घोर युद्धमें तीक्ष्ण वाण
 चलाते और रथोंमें बैठे लोगोंने इस प्रकार
 देखा जैसे मेघसे छिपे चन्द्रमा और सूर्यकी।
 उसी समय शीघ्र वाण चलानेवाले कर्णने
 अर्जुनके चारों ओरोंपर चार चार वाण,
 तीन वाण विराटपुत्र उत्तरकी और तीन वाण
 अर्जुनकी ध्वजामें मारे। इन बाणोंके लग-
 नेसे कुरुकुल सिंघ शत्रुनाशन अर्जुनकी इस
 प्रकार क्रोध हुआ, जैसे निद्रासे जगे सिंघकी।
 तब महात्मा अर्जुनने शस्त्रोंसे व्याकुल होकर
 दिव्य बाणोंका प्रयोग किया और अपने बाणोंसे
 कर्णके रथको ऐसे छा लिया, जैसे सूर्य अपनी
 किरणोंसे लोकको छा लेता है। अर्जुनने अपने
 तीक्ष्ण बाणोंको तूणारसे निकाल और कान
 पर्यन्त खींचकर सूतपुत्र कर्णकी ओर चलाना
 प्रारम्भ किया। उन दोनोंका इस प्रकार युद्ध

हुआ जैसे दो मतवारे हाथी लड़ते हैं। उस
 समय अर्जुनके धनुषसे कूट्टे हुए तीक्ष्ण और
 वज्रके समान बाणोंसे कर्णके हाथ, जङ्घा,
 शिर, माथा, गला, मुख, और सब अङ्ग पूर्ण
 होगये विकर्तनपुत्र कर्ण अर्जुनके तीक्ष्ण
 बाणोंसे व्याकुल होकर युद्धको छोड़ इस
 प्रकार भागे जैसे मतवारे हाथीसे डरकर
 हाथी भागता है।

५३ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि लीले, हे राजन् जनमे-
 जय । जब राधापुत्र कर्ण युद्धको छोड़के
 भागे, तब दुर्योधनादि वीर अपनी अपनी
 सेनामें खड़े होकर धीरे धीरे अर्जुनके ऊपर
 वाण चलाने लगे, तब अर्जुन उन सब वीरोंके
 बाणोंकी इस प्रकार सहने लगी, जैसे समुद्रके
 वेगको तटका पर्वत। तब सफेद घोड़ेवाले
 सहारथ अर्जुन हंसकर दिव्य वाण चलाने
 लगे। उस समय अर्जुनके बाणोंसे दशोंदिशा
 इस प्रकार पूरित हो गईं जैसे जगत सूर्यकी
 किरणोंसे। उस सेनामें कोई रथ, घोड़ा,
 हाथी और पदाति ऐसा न बचा जिसकी शरी-
 रमें अर्जुनके वाण न लगे हों। सब सेनावाले
 उत्तरके घोड़ा हांकने तथा अर्जुनके दिव्य
 वाण, पराक्रम और शीघ्रताकी प्रशंसा करने
 लगे। उस युद्धमें शत्रुओंको नाश करते हुए
 अर्जुनका ऐसा तेज बढ़ा जैसा प्रलय कालमें
 यमराजका। जलती हुई अग्निके समान
 तेजस्वी अर्जुनकी शत्रु युद्धमें देख भी न
 सके। उस सेनाकी उस समय ऐसी शोभा
 बढ़ी जैसे पर्वतके समोपवाले मेघोंकी सूर्यकी
 किरण लगनेसे। हे जनमेजय । उस सेनाके
 वीर अर्जुनसे वाण लगनेसे ऐसे शोभित हुए
 जैसे एगुप्पोसे अशोकवृक्ष। अर्जुनके बाणोंसे
 अनेक फूलोंकी माला, सोनेकी माला, ह्व
 और ध्वजा कटकर आकाशमें उड़ने लगीं।

अनेक वीर अपना पक्ष निर्व्वल देखकर इधर उधर भागने लगे, अनेक घोड़े रथ रहित पहियोंको लेकर भागने लगे। अर्जुनने कान, कोख, सुख, मर्म और सब शरीरोंमें वाण मारकर अनेक हाथियोंको पृथ्वीमें गिरा दिया। सेनाको अगाड़ी चलनेवाले मरे हुए हाथियोंसे वह भूमि इस प्रकार भर गई जैसे मेघोंसे आकाश। हे महाराज ! जिस प्रकार प्रलयकालमें अग्नि सब स्थावर और जड़म जगतको भस्म करता है, तैसेही अर्जुनभी सब कौरवोंकी सेनाको नाश करने लगे, उस समय अर्जुनके तेज, धनुषके टङ्कार, ध्वजावासी राक्षसोंके शब्द और हनुमानके गर्जनेसे दशोंदिशा पूर्ण हो गईं। अनन्तर वह दुर्य्यो धनकी सेना अर्जुनके शख शब्दको सुनकर भयसे व्याकुल हो गई। जिस समय अर्जुन युद्ध करनेका आवे थे, उसी समय शत्रुओंकी शरीर शक्ति नाश हो चुकी थी, परन्तु वे लाग साहस भावसे युद्धकर रहे थे। अर्जुनने अपने तीक्ष्ण वाणोंसे अकाशको इस प्रकार पूर्ण कर दिया, जैसे भास खानेवाले पहियोंसे। उस समय अर्जुनके महातेजस्वी वाणोंसे सब दिशा इस प्रकार पूर्ण हो गईं, जैसे सूर्यके तेजसे। किसी शत्रुकी यह शक्ति न पड़ी कि अर्जुनसे युद्ध करे, क्योंकि सब लोग शङ्का करते थे कि इनके पास जातेही हम मारे जायेंगे। जैसे अर्जुनके वाण युद्धमें क्षणित नहीं होते थे, तैसेही रथकी गति भी चलनेसे नहीं थकती थी। अर्जुनने उस सेनाको इस प्रकार घबड़ा दिया, जैसे शिपनाग खेलते खेलते समुद्रके जीवोंको व्याकुल कर देते हैं। उस समय शत्रुओंको नाश करनेवाली महा पराक्रमी अर्जुनके धनुषका शब्द सब ओर व्याप्त हो गया; थोड़ी दूरपर अर्जुनके वाणोंसे मरे हुए हाथी इस प्रकार दीखने लगे जैसे सूर्यकी किरणोंसे भरे मेघ। सब दिशाओंमें घूमते हुए अर्जुनके वाणोंके

मण्डल दीखने लगे, जैसे शरीर रहित वस्तु पर किसीको दृष्टि नहीं पड़ती है, तैसेही अर्जुनके वाण बिना दीखे वीरोंपर नहीं चले। जैसे सहस्री हाथियोंके चलनेसे वनके वृक्ष टूट जाते हैं और मार्ग बन जाता है, तैसेही अर्जुनका रथ चलनेसे सेनामें मार्ग बन गया, अर्जुनको देखकर सब शत्रु कहने लगे कि अर्जुनका रूप धारण करके हम लोगोंको मारतेके लिये, इन्द्रही आवे है। अपना नाश होते हुए देख शत्रुलोग कहने लगे कि इस युद्धमें अवश्य अर्जुनकी विजय होगी, क्योंकि ये इस प्रकार शत्रुओंका नाश करते हैं, जैसे काल प्रजाका नाश करता है। अर्जुनके वाणोंसे अर्जुनके मारे हुए वीर अर्जुनके मारे हुए वीरोंके समान, पृथ्वीमें गिर गये, शत्रुओंके शिर अर्जुनके वाणोंसे कटकर इस प्रकार पृथ्वीमें गिरने लगे, जैसे वृक्षोंके फल। अर्जुनके भयसे सब शत्रुओंका वीर्य्यबल नष्ट हो गया। अर्जुन रूपी वायुसे प्रचालित होकर सेना रूपी मेघने रुधिरकी जलधारासे पृथ्वीको भी दिया। रुधिर भरी धूलको लेकर वायुने सूर्यकी किरणोंको लालकर दिया। सूर्य आकाशके सहित ऐसा लाल हो गया, जैसा सन्ध्याके समय हो जाता है, सूर्य अन्त होनेको प्राप्त हुए, परन्तु अर्जुनने लौटनेकी इच्छा न करी। महा पराक्रमी अर्जुनने युद्ध करनेको खड़े सब धनुषधारी वीरोंके शरीरमें वाण मारे। द्रोणाचार्यके सत्तर, दुःसहके दश, अश्वत्थामाके आठ, दुःशासनके बारह, कृपाचार्यके तीन शान्तनुपुत्र भोष्मके साठ, राजा दुर्य्योधनको भी और शत्रुनाशन कर्णके कानमें एक वाण मारा। सब धनुषधारियोंमें ओष्ठ सब शस्त्रविद्याने जाननेवाले कर्णके शरीरमें वाण लगते ही और उनके रथ छोड़े तथा सारथी नाश होनेसे सब सेना भागने लगी। सेनाकी भागने और

युद्ध में खड़े अर्जुनका अभिप्राय जानकर उत्तर बोले, हे अर्जुन ! सुभा सारथीके सहित कौनसी सेनासे युद्ध करना चाहते हो, सो कहो, मैं उधर-ही रथको ले चलूँ ।

अर्जुन बोले, हे उत्तर । यह उत्तम व्याघ्रके चमड़ेकी लाल ध्वजा जहां बन्धी है और जहां एक नीली पताका लगी है, सो कृपाचार्यकी सेना है, तुम मुझे वहीं ले चलो आज मैं महा धनुषधारी कृपाचार्यकी अपनी धनुष विद्या दिखाऊंगा । जिनकी ध्वजापर सोनेका बना सुन्दर कमण्डल लगा है, येही सब धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ हमारे गुरु द्रोणाचार्य हैं, हमहोका नहीं, वरन ये सब शस्त्रधारियोंके मान्य हैं, इसलिये तुम महावीर प्रसन्न द्रोणाचार्यकी प्रदक्षिणा करो । हम उनसे युद्ध करनेकी भी उपस्थित हैं परन्तु जब पहिले ये बाण मारेंगे तब हम भी मारेंगे, क्योंकि यही सनातन धर्म है, ऐसा करनेसे गुरुकी क्रोध नहीं होगा । इनके समीपही जिनकी ध्वजापर धनुष बना है यही हमारे गुरुपुत्र, महारथ अश्वत्थामा हैं, ये हमारेही नहीं वरन सब शस्त्रधारियोंके पूज्य हैं, तुम, इनके रथके पास जाकर प्रदक्षिणा करो । ये जो सजी हुई तीनरी रथ सेनाके सुखमें खड़े हैं, जो उत्तम कवच पहने हैं जिनकी ध्वजापर सर्प बना है, यही राजा धृतराष्ट्रके पुत्र श्रीमान् महाराज दुर्योधन हैं । हे वीर तुम हमारे रथकी शीघ्र इनके रथके आगे ले चलो, क्योंकि ये महाराजकी और महा योद्धा हैं । द्रोणाचार्यके सब शिष्योंमें इनके समान शीघ्र शस्त्र चलाने वाला कोई नहीं है । मैं भी आज युद्धमें इनका शस्त्रविद्या दिखाऊंगा । जिनकी ध्वजापर हाथीका चिन्ह बना है, यही विकर्तनपुत्र कर्ण हैं, इनको तुम पहिलेसे भी जानते हो, इस दुरात्मा राधापुत्रसे जब यह हो, तब तुम अत्यन्त सावधान रहना,

क्योंकि यह सदा अपनेकी मेरे समान समझता है । जिनकी नीली ध्वजा पर पांचतारे बने हैं, जो कवच पहन कर महाबल सहित रथमें बैठे हैं, जिनके रथमें सूर्य और चन्द्रमाके सहित ध्वजा लगी है, जिनके शिर पर यह निर्मल सुफेद चक्र लगा है, जो महारथ हाथी और पताकारे पूरित सेनाके सुखमें मेघोंके बीचमें सूर्यके समान खड़े हैं, जिनका सोनेका कवच चन्द्रमा और सूर्यके समान जगमगा रहा है, जिनके सोनेका शिरद्वारा देखकर मेरा हृदय कांपा जाता है, यही लक्ष्मीसे भरे हुए दुर्योधनके वशवर्ती हम सबके पितामह शान्तनुपुत्र भीष्म हैं, तुम पीछे इनके पास चलना, क्योंकि ये हमारे युद्धमें विघ्न नहीं करेंगे, परन्तु इनसे युद्ध करते समय तुम सावधान होकर घोड़े हाकना ।

५४ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय । उस समय महा धनुषधारी कौरवोंकी सेनाकी ऐसी शोभा बढी, जैसे वर्षाकालमें मन्द-वायुसे चले हुए मेघोंकी । सेनाकी दोनों ओर घोड़ोंपर चढ़े महावीर, मतवाले हाथी अंकुशयुक्त महावर्तोंके सहित और विचित्र कवचधारी वीरोंके सहित खड़े थे । उसी समय विमानपर चढ़कर इन्द्र युद्ध देखनेकी गये । उनके सङ्ग अश्विनोकुमार, मरुत, देवता, यक्ष, गन्धर्व और नाग अपने अपने विमानोंपर बैठके आये । उन सबके विमानोंसे आकाशकी ऐसी शोभा बढी, जैसे नक्षत्रोंके उदय होनेसे आकाशकी शोभा बढती है । उस समय कृपाचार्य और अर्जुनका घोर युद्ध होने लगा । वे लोग दिव्य अस्त्रोका प्रयोग करने लगे और देवता देखने लगे । इन्द्रके विमानमें एक करीड़ सोनेके खम्भे लगे थे, और बीचमें एक मणिका खम्भा लगा था । उन्होपर उस विमानका वस्त्र तना था । वह

इच्छानुसार चलनेवाला दिव्य मणियोंसे भूषित विमान आकाशमें तैंतीस देवता, इन्द्र, गन्धर्व, राक्षस, सर्प, पितर, महाऋषि, राजा वसुमना, बलाक्ष, प्रतर्दन, अष्टक, शिवि, ययाति, नहुष, गय, मनु, पुरु, रघु, भानु, कृपाश्रु, सगर और राजा नल भी थे। इसी प्रकार अग्नि, शिव, चन्द्रमा, वरुण, प्रजापति, धाता, विधाता कुवेर, यम, अलम्बुश, उग्रसेन और तुम्बुरु आदिके विमान भी आये थे। ये सब विमान अपने अपने क्रमके अनुसार आकाशमें खड़े हो गये। समस्त देवता, सिद्ध और महाऋषि इस युद्धको देखनेको आये। उस समय देवताकी दिव्य मालाकी सुगन्धि सब दिशाओंमें पूरित हो गई। हे जनमेजय ! वह युद्ध-भूमि उस समय ऐसी शोभित हुई जैसा वसन्तमें बन। उस समय देवताओंके दिव्य चक्र, वस्त्र, माला, और पंखे अत्यन्त शोभित होने लगे। सब दिशाओंसे धूल शान्त हो गई और दिव्य गन्धभरी वायु वीरोंको सेवा करने लगी। उस समय देवताओंकी मणियोंके प्रकाशसे आकाश निर्मल हो गया और देवताओंके विमानोंके सहित इन्द्रका विमान शोभित होने लगा। पद्ममालाधारी महा-तेजस्वी इन्द्र युद्धको देखकर तप्त नहीं होते थे।

५५ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजा जनमेजय ! कौरवोंकी सेनाके व्यूहको देखकर कुरुकुल श्रेष्ठ अर्जुनने उत्तरसे कहा, हे उत्तर ! जिसकी ध्वजापर सोनेकी वेदी बनी है, उससे दक्षिणको ओर होकर चलो, वहीं कृपाचार्य है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अर्जुनके ऐसे बचन सुन विराटपुत्र उत्तरने चादीके संमान रङ्गवाले घोड़ोंको हाका और अत्यन्त वेगसे चलकर शीघ्रही कौरवोंकी सेनाके समीप पङ्कच गये, वे चन्द्रमाके समान निर्मल घोड़े अत्यन्त वेगसे चलकर शीघ्रही कौरवोंकी सेनाके

समीप पङ्कच गये, वे चन्द्रमाके समान निर्मल घोड़े अत्यन्त वेगसे चलते हुए ऐसे दोखने लगे मानो क्रोध करके कहींको जाते हों। उत्तरने कुरुसेनाके आगे पङ्कचकर फिर वायुके समान अपने घोड़ोंको लौटाया घोड़ोंकी विद्याके तलकी जाननेवाले उत्तरने इस प्रकार रथ हांका कि उसकी देखकर कौरवोंके सब सारथी मोहित होगये। उत्तरने रथको कभी सेनासे बायें, कभी दहिने इतनी शीघ्रतासे घुमाया कि जिससे सबको आश्चर्य होने लगा। निर्भय बलवान विराटपुत्रने थोड़ीही समयमें अपने रथको कृपाचार्यके दहिनी ओर पङ्कच दिया और वहां जाकर रथको रोक दिया। तब अर्जुनने अपना नाम सुनाकर महा शब्द करनेवाला देवदत्त शंख बजाया उस शब्दका ऐसा घोर शब्द हुआ जैसा पर्वत फटनेसे होता है। तब सब कौरवोंने सेनाके सहित उस शब्दको वहुत प्रशंसा करी। वह शब्द इस प्रकार आकाशमें व्याप्त हो गया जैसे वज्रका शब्द। उसी समय महा पराक्रमी महावीर कृपाचार्यने क्रोध करके अर्जुनसे युद्ध करनेकी इच्छा करी। महारथ कृपाचार्यने भी अपने शब्दको बजाया, उस शब्दमें तीनों लोक पूरित हो गये। तब द्रोणाचार्यने अपने धनुषपर टङ्कार दिया। वे दोनों रथ युद्धमें शरजालके मेषके समान शोभित होने लगे। उसी समय कृपाचार्यने शत्रु नाशन अर्जुनके शरीरमें अत्यन्त तीक्ष्ण मर्मभेदी दस बाण मारे। अर्जुनने भी जगत विख्यात गाण्डोव धनुषपर चढ़ाकर अनेक मर्मभेदी बाण चलाये। कृपाचार्यने - उन मांस खानेवाले बाणोंको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे मार्गहीमें काट दिया। तब महारथ अर्जुनने महाक्रोध करके अपने बाणोंसे सब दिशाओंको छेदा लिया, उनके बाणोंसे ऐसा दोखने लगा, जैसे नवीन आकाश बन जाता है। अर्जुनने जब अपनी इस विविध

बाणविद्याको प्रकाशित किया और कृपाचार्य उन बाणोंसे ढक गयेतब कृपाचार्य की महाक्रोध हुआ और अग्निकी ज्वालाके समान सहस्रोंबाणोंसे अर्जुनके बाणोंकी काटकर महा तेजस्वी अर्जुनकी ओर दस सहस्र बाण चलाये और गर्जनने लगे । महापराक्रमी अर्जुनने भी गाण्डीवपर बाणोंकी चटाकर इतनी शीघ्रतासे बाण चलाये कि कृपाचार्यके सब बाण कट गये । फिर अर्जुनने कृपाचार्यके घोड़ोंके चार बाण मारे उन सर्पोंके समान बाणोंके लगनेसे घोड़े कृपाचार्यको लेकर युद्धसे भाग गये । कृपाचार्यकी युद्धसे भागते देख और अपना गुरु जान अर्जुनने उन्हें छोड़ दिया । घोड़ी दूर जाकर कृपाचार्य फिर अपने रथको लौटाकर अर्जुनके शरीरमें दस मर्स्मभेदी बाण मारे । तब अर्जुनने एक तीक्ष्ण बाणसे कृपाचार्यका धनुष काट दिया और दश बाणोंसे उनका कवच काट दिया । फिर उनके शरीरमें बाण मारना आरम्भ किया ; कवच कटकर गिरते समय कृपाचार्य की ऐसी शोभा बढी जैसे केंचुलीसे निकलते हुए सर्पकी । उसी समय कृपाचार्यने दूसरे धनुषको लेकर इतनी जल्ददी रोदा चढाया कि सबको आश्चर्य होने लगा, अर्जुनने अपने तीक्ष्ण बाणसे उस धनुषकोभी काट दिया । इस प्रकार कृपाचार्यने अनेक धनुष लिये और शत्रुनाशन अर्जुनने सब काट दिये । जब प्रतापी कृपाचार्यके पास धनुष न रहे, तब वज्रके समान वरछो लेकर अर्जुनकी ओर चलाई । अर्जुनने उस विजलीके समान सुवर्ण स्फुटित शक्तिकी आते देख दस बाणोंसे उसे काटकर पृथ्वीमें गिरा दिया । वह शक्ति दस टुकड़े होकर पृथ्वीमें गिर पड़ी । इतनेही समयमें कृपाचार्यने अपने दसरे धनुषपर रोदा चढा लिया था । तब कृपाचार्यने अर्जुनके शरीरमें तीक्ष्ण दश बाण मारे । तब अर्जुनने भी क्रोध करके अग्निकी ज्वालाके समान प्रकाशित तेरह

बाण कृपाचार्यके शरीरमें मारे । अर्जुन एक बाणसे कृपाचार्यके रथके पहिये, चारसे चारों घोड़े और एकसे कृपाचार्यके सारथीको काट डाला । फिर कई बाणोंसे रथको काट दिया, एकसे उनकी धनुष काटके गिरा दो । फिर इन्द्रतुल्य अर्जुनने हंसकर एक वज्रतुल्य बाण कृपाचार्यके हृदयमें मारा । जब कृपाचार्यके रथ, सारथी, घोड़े और धनुष काटे गये, तब उन्होंने एक भारी गदा अर्जुनकी ओर फेंकी, अर्जुनने उस सुवर्णखचित गदाको मार्गहीमें बाणोंसे काट दिया । जब इस प्रकार कृपाचार्य और अर्जुनका युद्ध होने लगा । तब अनेक योद्धा कृपाचार्यकी रक्षाके लिये आये और अर्जुनके ऊपर बाण चलाने लगे । उसी समय विराटपुत्र उत्तरने अपने रथकी बांयों और घुमाकर सब योद्धाओंका मार्ग रोक दिया तब उन सब योद्धाओंने रथरहित कृपाचार्यकी एक रथपर बिठलाकर, कुन्तीपुत्र अर्जुनके आगेसे हटा दिया ।

५५ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय । जब कृपाचार्य युद्धसे चले गये, तब अपराजित महापराक्रमी द्रोणाचार्य धनुषबाण लेकर अर्जुनसे युद्ध करनेको आये । जब अर्जुनने सोनेके रथमें बैठे हुए गुरु द्रोणाचार्यको युद्ध करनेके लिये आते देखा तब उत्तरसे ये कहने लगे ।

अर्जुन बोले, जिनको धजापर पताकाओंके सहित जंचे दण्डपर सोनेको वेदी बनी है, उन्होके आगे तुम हमको ले चलो, वही द्रोणाचार्यकी सेना है, हम उन्होसे युद्ध करेंगे । जिनके रथमें परम शिक्षित, सुन्दर, चिकने लकवे और मृगेके समान रंगवाले बड़े बड़े घोड़े लगे हैं, वेही महावाह, महातेजस्वी, रूप और बलसे भरे सर्वलोक विख्यात प्रतापी

द्रोणाचार्य हैं। यह बुद्धिमें शत्रुको तुल्य, तथा नीति, बुद्धि, वेद-विद्या और ब्रह्मचर्यमें बृहस्पतिके तुल्य हैं। हे शत्रुनाशन ! यह समस्त धनुर्वेद और वाणविद्याको विधिपूर्वक जानते हैं। इनमें क्षमा, दम (इन्द्रियोंको वशमें करना) सत्य, अनृशंस (सबसे यथा योग्य विद्यापूर्वक व्यवहार करना) और कोमलता आदि धर्मके दसो लक्षण बसते हैं। इन्हीं महाभाग द्रोणाचार्यके सङ्ग हम युद्ध करना चाहते हैं, इस हिये हमारे रथको शीघ्र उनके आगे ले चलो।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अर्जुनके ऐसे वचन सुन उत्तरने सुवर्ण भूषित घोड़ोंको द्रोणाचार्यके रथकी ओर हांका। जब द्रोणाचार्यने महारथ अर्जुनकी अपनी ओर आते देखा, तब वे भी उनकी ओर इस प्रकार दौड़े जैसे मतवाला हाथी मतवाले हाथीकी ओर जाता है। तब द्रोणाचार्य ने अपने अनेक भेरीके समान शब्दको बजाया उस समुद्रके समान शब्दको सुनकर सब लोग कांपने लगे। जब सब सेनावालोंने अर्जुन और द्रोणाचार्यको भिड़ते देखा, तब आश्चर्य करने लगे। दोनों महापराक्रमी, शस्त्रविद्याके जाननेवाले, मनस्वी अजेय गुरु चेलोंकी युद्धमें भिड़ते देख कौरवोंकी सेना कांपने लगी। जब महारथ अर्जुनका रथ द्रोणाचार्यके रथके समीप पहुँचा, तब महाबलवान और महाबाहु अर्जुनने शान्ति पूर्वक गुरुकी प्रणाम किया और सीठे वचनसे कहने लगे, हे आचार्य ! हम लोगोंने वहुत दिनतक शत्रुओंका नाश करनेके लिये वनमें वास किया है, इस लिये आपको हमारे ऊपर क्रोध करना उचित नहीं है। हे पाप-रहित ! आपको युद्धमें कोई नहीं जीत सकता और हमारा यह भी निश्चय है कि हम पहले आपपर शस्त्र नहीं चलावेंगे। इस लिये आपही हमारे ऊपर पहले वाण छोड़िये।

अर्जुनके ऐसे वचन सुन, द्रोणाचार्यने अर्जुनके वीसवाण मारे। अर्जुनने उनको मार्गट्रीमें काट दिया। तब द्रोणाचार्यने शीघ्रतासे अर्जुनके रथकी सहस्रों वाणोंसे छद्म लिया और उनके सफेद घोड़ोंकी भी शिला पर धिसे झप तीक्ष्णवाणोंसे व्याकुल कर दिया। द्रोणाचार्य इस प्रकार वाण छोड़ते थे, मानो अर्जुनको क्रोध करानेके लिये छोड़ते हैं। तब द्रोणाचार्य और अर्जुनका युद्ध होने लगा। तब दोनों समान वाण छोड़ते लगे; वे दोनों दिव्य वाणोंके जाननेवाले वायुके समान वेगवान महातेजस्वी जगत् विख्यात वीर अपने वाणोंके जालसे राजोंकी मोहित करने लगे। वहां जो योद्धा खड़े थे, वे सब विस्मित होकर साधु साधु कहने लगे, और कहने लगे कि अर्जुनको छोड़कर द्रोणाचार्यसे और कौन युद्ध कर सकता है ? क्षत्रिय धर्म बड़ा कठिन है, वडा गुरु और शिष्यका भी युद्ध होने लगा। वे दोनों वीर महाबाहु अपराजित द्रोणाचार्य और अर्जुन परस्पर वाण छोड़ने लगे, तब महा पराक्रमी द्रोणाचार्यने क्रोध करके सीधे चित्रित घोर धनुषको खींचकर अर्जुनके शरीरमें वाण मारे। द्रोणाचार्यने शिलापर धिसे झप महा तेजस्वी शीघ्र चलनेवाले वाण अर्जुनके शरीरमें मारे। इसी प्रकार अर्जुनने भी दिव्य गाण्डीव धनुषपर चढाकर शत्रुनाशन युद्ध करनेके योग्य विचित्र वाण छोड़कर द्रोणाचार्यके सब वाणोंकी काट दिया। अर्जुनको इतने शीघ्र वाणोंकी चलाते देख सबकी आश्चर्य होने लगा। उस समय अर्जुन सब दिशाओंमें वाणोंको वर्षा करते झप घूमने लगे। उनके वाण सब आकाशमें छा गये और द्रोणाचार्य इस प्रकार छिप गये, जैसे वृक्षमें सूर्य छिप जाते हैं। उस समय द्रोणाचार्यकी ऐसी शोभा बढी, जैसे सब ओरसे चलते हुए पर्यंतकी। महा पराक्रमी द्रोणाचार्यने अपने

वज्रके समान धनुषपर टङ्कार देकर अग्निके समान वाणोंसे अर्जुनके सब वाण काट दिये । तब उस युद्धमें ऐसा घोर शब्द हुआ, जैसा वांसीके जलनेसे होता है । द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटे हुए वाणोंसे सब दिशा और सूर्यका तेज छिप गया । उस समय सोनेके पंखवाले विचित्र वाणोंके अनेक समूह आकाशमें दीखने लगे, द्रोणाचार्यने एक वाणमें दूसरा वाण बेध दिया, इससे आकाशमें एक बड़े दण्डके समान वाण दीखने लगा, इस प्रकार वे दोनों शूर वीर सुवर्ण चित्रित वाणोंकी छोड़ने लगे, उनके वाणोंसे आकाश इस प्रकार छा गया । जैसे आकाश विजलियोंसे छा जाता है । उन दोनोंके विचित्र वाण आकाशमें इस प्रकार घूमने लगे, जैसे शीत कालमें हंस घूमते हैं । इन दोनों महात्माओंका ऐसा घोर युद्ध हुआ, जैसे पहली समयमें हवासुर और इन्द्रका हुआ था । ये दोनों मतवाले हाथियोंके समान वाणरूपी युद्ध करने लगे । तब दोनों वीरोंने युद्धमें दिव्य अस्त्रोंका प्रयोग करना आरम्भ किया । जब द्रोणाचार्यने दिव्य अस्त्र चलाने आरम्भ किये तब विजय करनेवालोंमें श्रेष्ठ अर्जुनने उन सबको काट दिया । महा पराक्रमी अर्जुनने अपने पराक्रमको दिखलाकर आकाशकी वाणोंसे छा लिया, जब द्रोणाचार्यने देखा कि पुरुषसिंह महा तेजस्वी अर्जुन हमारे ऊपर वाण छोड़ रहा है, तब वे भी विचित्र शस्त्रोंसे अर्जुनके सङ्ग खेलने लगे । तब अर्जुनने दिव्य अस्त्र चलाये, तब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यने भी उनको दिव्य अस्त्रोंसे काट दिया । उन दोनोंका ऐसा घोर युद्ध हुआ जैसा देवता और दानवोंका होता है । इन्द्र वायु और अग्निके अस्त्रभी अर्जुनने चलाये, द्रोणाचार्यने उनको भी काट दिया । इन दोनोंके वीरोंके तीक्ष्ण वाणोंसे आकाश पूरित हो गया, अर्जुनके धनुषसे छूटे हुए वाणोंका वज्रके समान

शब्द होने लगा, उस समय हाथी, घोड़े और मनुष्य रुधिरसे भौंगकर ऐसे दीखने लगे, जैसे फूलों टेसू । अनेक विचित्र बाजुबन्दयुक्त महा-रथोंके हाथ कटकर पृथ्वीमें गिर गये । अनेक सीनेकी कवच और धुजा पृथ्वीमें गिर गई । अर्जुनके वाणोंसे अनेक योद्धा पीड़ित होकर पृथ्वीमें गिर गये । द्रोणाचार्य और अर्जुन दृढ़ धनुषोंपर टङ्कार देते हुए परस्पर वाण चलाने लगे, और एक दूसरेके वाणोंकी काटनेकी इच्छासे क्रोध करने लगे । उन दोनोंका घोर युद्ध बलि और इन्द्रके युद्धके समान हुआ । उन दोनोंने इस घोर युद्धमें अपने प्राणोंकी छोड़नेकी इच्छासे तीक्ष्ण वाण चलाना आरम्भ किया । उसी समय आकाशवाणी हुई कि द्रोणाचार्य को धन्य है, जो अर्जुनसे युद्ध कर रहे हैं । शत्रुनाशन महा पराक्रमी, दृढ़हस्त, दंत्यादिक शत्रुओंकी जीतनेवाले महारथ अर्जुनके घोर, तीक्ष्ण शीघ्र और दूर वाण चलानेकी देखकर द्रोणाचार्य आश्चर्यित हो गये । अनन्तर अर्जुनने दिव्य गाण्डोव धनुषको खींचकर पुनः वाण चलाना आरम्भ किया । अर्जुनने इस प्रकार वाण वर्षाये जैसे हथीपर छोटे कोड़े गिरते हैं । उनका शीघ्रताको देख सब लोग साधु साधु कहने लगे । अर्जुनके वाणोंके बीचमें जानेकी वायुकी भी शक्ति न हुई । अर्जुन कब वाण निकालते हैं, कब चढ़ाते हैं, और कब छोड़ते हैं, इसकी कोई न जान सका । उस घोर युद्धमें अर्जुनने अत्यन्त शीघ्रवाण चलाये । उसी समय अर्जुनके एक सहस्र वाण एक बार द्रोणाचार्यके रथपर गिरे । जिस समय अर्जुनके वाणोंसे द्रोणाचार्य व्याकुल हुए, तब कौरवोंकी सेनामें हाहाकार होने लगा । अर्जुनकी इस शीघ्रताको देख अस्सरा, राक्षस और इन्द्र भी उनकी प्रशंसा करने लगे । उसी समय द्रोणाचार्यके एत अस्त्रत्यागा

रथ और सेनाके सहित द्रोणाचार्यकी रक्षा करनेकी और अर्जुनको निवारण करनेकी आये। अश्वत्थामा भी अपने हृदयसे महात्मा अर्जुनके वाणोंकी प्रशंसा करने लगे, पर महाक्रोध करके अर्जुनके ऊपर इस प्रकार वाण वर्षाने लगे जैसे भेष जल वर्षाता है। उसी समय अर्जुनने द्रोणाचार्यको जानेका समय देकर अपने रथको अश्वत्थामाकी ओर चलाया। तब द्रोणाचार्य इस समयको पाकर युद्धसे हट गये परन्तु उनको धुजा और कवच कट गये थे, तथा शरीरमें भी बहुत घाव लगे थे।

५६ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोलै, हे राजन् जनमेजय । जब अश्वत्थामा अर्जुनसे युद्ध करनेकी उपस्थित हुए तब अर्जुनने सो उनसे युद्ध करनेकी इच्छा करो। अर्जुनने इस प्रकार अश्वत्थामाको रोका, जैसे वर्षते हुए भेषको वायु। इन दोनोंका युद्ध देवता और राक्षसोंके समान हुआ। इस युद्धमें ऐसे वाण चले, जैसे इन्द्र और वृषासुरके युद्धमें चले थे। उस समय सूर्य छिप गये और वायु चलनेने रुक गया, सब आकाश वाणोंसे पूरित हो गया। वाणोंके परस्पर भिड़नेसे ऐसा चट चट शब्द होने लगा जैसे जलते हुए बांसोंका होता है। अर्जुनने अपने वाणोंसे अश्वत्थामाके घीड़ोंकी नाशकर दिया, उनको कोई दिशा न दीखने लगी। तब महाक्रुसी अश्वत्थामाने अर्जुनके सूक्ष्म किट्ठकी पाकर अपने वाणोंसे उनकी धनुषका रोदा काट दिया। अश्वत्थामाका यह अमानुष कर्म देखकर सब देवता उनकी प्रशंसा करने लगे। द्रोणाचार्य, सहारथ कृपाचार्य, भीष्म और कर्णादि सब वीर उनको साधु साधु कहने लगे। तब अश्वत्थामाने अपने श्रेष्ठ धनुषको

खींचकर अर्जुनके हृदयमें अनेक वाण मारे। तब अर्जुनने हंसकर अपने धनुषपर शीघ्र दूसरा रोदा चढ़ाया, तब अर्जुनने अपने माथेके पसीनेसे उस रोदेकी भिगीकर इस प्रकार युद्ध करना आरम्भ किया, जैसे मतवाला हाथी मतवाली हाथीसे लड़ता है। इन दोनों जगत विख्यात महावीरोंका ऐसा घोर युद्ध हुआ, कि उसकी देखनेसे वीरोंके रोंवे खड़े होने लगे। इन दोनों वीरोंका युद्ध देखकर कौरव लोग आश्चर्य करने लगे। ये दोनों परस्पर जलती हुई अग्नि और बिटौले सर्पके समान वाण चलाने लगे। अर्जुनके दोनों तूणीर अक्षय थे, अर्थात् उनके वाण कभी नहीं घटते थे, इसीसे अर्जुन पर्वतके समान अचल होकर युद्ध करने लगे। शीघ्र चलानेके कारण अश्वत्थामाके सब वाण समाप्त होगये, इसीसे अर्जुन युद्धमें अधिक रहे। उसी समय कर्ण धनुष खींचकर अर्जुनके आगे युद्ध करनेकी आये। अश्वत्थामाकी हटते देख कौरवोंकी सेनामें हाहाकार शब्द होने लगा। जब अर्जुनने उस धनुषकी ठंडारकी ओर देखा, तो कर्णकी देख महाक्रोधसे पूरित हो गये। अर्जुनने अपने नेत्रोंको फैलाकर कर्णकी ओर इस प्रकार देखा मानी ये उसकी भक्त कर देंगे। जब अर्जुन युद्धसे विमुख हुए अर्थात् अश्वत्थामाको छोड़ कर्णसे युद्ध करनेकी चले, तब सब लोग प्रसन्न हुए। शत्रुनाशन महाबाहू अर्जुन द्रोणपुत्र अश्वत्थामाकी छोड़ कर्णकी ओर वेगसे दौड़े, उस समय ब्रौधके सारे अर्जुनके नेत्र लाल हो गये थे। तब अर्जुनने कर्णसे युद्ध करनेकी इच्छासे ऐसा कहा।

५७ अध्याय समाप्त ।

अर्जुन बोलै, हे कर्ण ! तुमने जो समान अपनी बहुत प्रशंसा करी थी कि युद्धमें

हमारे समान कोई नहीं है, सो दिन आज आगया। आज तुम हमसे युद्ध करके जानोगे, कि हम बद्धत निर्व्वल है, और फिर किसीका निरादर नहीं करोगे। तुमने जो केवल वचनसे अपनी प्रशंसा करो थी, और धर्मको छोड़ दिया था, सो कर्म करना आज बद्धत कठिन होगा। हे राधापुत्र! तुमने जो मेरे पीछे कहा था, सो कर्म आज कौरवोंके बीचमें करके दिखाओ। समामें दुष्ट लोगोंने द्रौपदीको जो दुःख दिया था, आज उसका फल तुमको प्राप्त होगा। मैंने जो धर्मके वशमें होकर पहिले तुम्हारे ऊपर क्षमा करी थी, उस क्रोधका फल आज प्रगट करूंगा। हमने जो वारहवर्ष बनमें बिताये हैं, उन सबका फल आज तुम पाओगे। हे दुर्बुद्ध! हे कर्ण! आओ, आज तुम हमारे सङ्ग युद्ध करो और ये सब कौरव लोग देखें।

कर्ण बोले, हे कुन्तीपुत्र! तुम जो कुछ वचनसे कहते हो, सो कर्मसे करके दिखाओ। हमें जान पड़ता है, कि तुम खाली वचनहीसे कहते हो, कर्मसे नहीं कर सकते। तुमने जो पहिले क्षमा करी थी, सो असमर्थोंको ऐसाही करना चाहिये; आज हम तुम्हारे पराक्रमको युद्धमें देखेंगे। तुम जैसे क्षमा करनेके समय धर्ममें बन्धे थे, वैसेही अबभी बन्धे हो। परन्तु तुम अपनेको कूटा हुआ मानते हो। यदि तुमने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार वनवास किया, तो तुम निश्चय धर्म और अर्थको जाननेवाली हो, तथा उसी लेशको स्मरण करके हमसे युद्ध करना चाहते हो। हे अर्जुन! यदि साक्षात् इन्द्र भी तुम्हारी ओर होकर हमसे युद्ध करे तोभी हम कुछ भय नहीं करते। हे कुन्तीपुत्र! तुम्हारी बद्धत दिनसे इच्छा थी कि हम कर्णसे युद्ध करें, सो आज हमारा पराक्रम देखो।

अर्जुन बोले, हे राधापुत्र! तुम अभी हमारे

आगेसे युद्ध छोड़कर भाग गये थे, इसीसे अभी तक जीति बचे हो। तुम्हारे भाईको हमने युद्धमें मार डाला, जगतमें अपने निमित्त भाईको नाश कराकर तुम्हारे सिवा और कौन गर्ज्ज सकता है?

श्रीवैशम्पायन सुनि बोले, हे राजर्जनमे-जय! अपराजित अर्जुनने कर्णसे ऐसा कहकर अपने धनुषपर वाण चढ़ाकर कर्णके शरीरमें मारने आरम्भ किये। महारथ कर्ण भी प्रसन्न होकर उनको ग्रहण करने लगे, और अर्जुनके ऊपर इस प्रकार वाण वर्षाने लगे जैसे महा-मेष जल वर्षाता है। कर्णके वाणोंके जाल सब ओर छा गये और अर्जुनके घोड़े वाणोंसे व्याकुल हो गये। तब अर्जुनने क्रोध करके कर्णके तूणीरके सूतको तीक्ष्ण वाणसे काट दिया। तब कर्णने दूसरा वाण निकालकर अर्जुनके हाथमें मारा, उस वाणके लगनेसे अर्जुनकी सुड़ी शिथिल हो गई। अनन्तर अर्जुनने कर्णके धनुषको काट दिया। तब कर्णने अर्जुनके मारनेकी शक्ति चलाई। अर्जुनने उसको भी वाणोंसे काट डाला। अनन्तर अर्जुनने अपने तीक्ष्ण और दृढ़ वाणोंसे कर्णके घोड़ोंको मारकर पृथ्वीमें गिरा दिया और एक महातेजस्वी तीक्ष्ण वाण कर्णके हृदयमें मारा, वह वाण कर्णके कवचको काटकर उनके हृदयमें लगा। उसके लगनेसे कर्णको ऐसी मूर्च्छा हुई कि उन्हें कुछ ज्ञान न रहा। वह वाण फिर कर्णके हृदयमेंसे निकल कर अर्जुनके पास आ गया। कर्णकी मूर्च्छित देख अर्जुन और महारथ उत्तर गर्ज्जने लगे।

५८ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन सुनि बोले, हे राजर्जनमे-जय! जब अर्जुनने विवर्तनपुत्र कर्णको जीत लिया, तब उत्तरसे बोले, हे उत्तर! तुम हमारे

रथको उस सेनाको प्रागे ले चलो जिसमें सोनिका ताड़ दीखता है उसी सेनामें हमारे पितामह शान्तनुपुत्र भीष्म है ; वे हमसे युद्ध करनेकी इच्छा करते हैं । उस रथ हाथी, घोड़े और रथोंसे भरी हुई, भीष्मकी सेनाको देख उत्तरने हंसकर अर्जुनसे कहा, हे वीर ! मैं वाणोंके घावसे व्याकुल हो रहा हूँ, मेरा शरीर कांपता है, मन डरता है, इस लिये अब घोड़ोंको नहीं हांक सकता हूँ ; तुम्हारे और कौरवोंके दिव्य अस्त्रोंके प्रभावसे मुझे सब दिशा चलायमानही दीखती है, मैं मांस, रुधिर और चर्वीकी गंधसे मूर्च्छित हुआ जाता हूँ, युद्ध देखते देखते मेरा मन घबड़ा गया है, मैंने कभी पहले ऐसा घोर युद्ध नहीं देखा था, गदा, शङ्ख, वीर, हाथी और वज्रके समान तुम्हारे धनुषका शब्द सुनकर मेरे मन और कायाकी शक्ति नष्ट हो गयी है, मेरा मन सूखीके समान हुआ जाजा है, हे वीर ! चक्रोंके समान खिंचते हुए, तुम्हारे धनुषको देखकर दृष्टि नष्ट हुई जाती है, और हृदय फटा जाता है, युद्धमें क्रोधी सिंहके समान शरीर देखकर मुझे भय लगता है, हमको यह नहीं जान पड़ता है कि तुम कब धनुषपर बाण चढ़ाते हो, कब छोड़ते हो, मेरे प्राण कांप जाते हैं, पृथ्वी घूमतीसी दीखती है, मैं कोड़ा और लगाम कोभी नहीं रक्खवा सकता हूँ ।

अर्जुन बोले, हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुम कुछ मत डरो और मनकी वशमें रक्खो, क्षत्रीलोग अनेक आश्चर्य-युक्त कर्म करते हैं, हे राजपुत्र ! तुम जगतविख्यात शत्रुनाशक विराट-वंशमें उत्पन्न हुए हो, इस लिये डरो मत । हे राजपुत्र ! तुम अपनी बुद्धिको धिर करके युद्धमें हमारे घोड़ोंको हाकी तो हम युद्ध करेंगे ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, पुरुषश्रेष्ठ महारथ अर्जुन विराटपुत्रसे ऐसा कह, फिर बोले, तुम शीघ्र हमारे रथको भीष्मके आगे ले चलो,

हम उनके धनुष और रौंदीको काटेंगे, मैं वर दिव्य वाणोंसे इनके वाणोंको काटूंगा तब मेरे वाणोंकी ऐसी शोभा होगी, जैसे आकाशमें विजलीकी होती है, सबणसे खिंचे हुए में गाण्डोव धनुषको कौरव लोग कभी दहने कर्म बाये हाथोंमें देख और मुझे अकेला देखके अनन्व प्रकारसे विचार कर रहे हैं, मैं अभी मरे हुए हाथी रूपो जलजन्तुओंसे भरी परलोकको आ रहेवाली रुधिरको नदी कहा दूंगा, मैं अपने तोच्छवाणसे हाथ पर शिर और कण्ठरूप शाखा युक्त कौरव रूपी वशको काटूंगा, जिस सम मैं धनुष धारण करके कौरवोंकी सेना ना कलंगा उस समय मुझे सैकड़ों मार्ग इस प्रकार मिलने लगेंगे, जैसे वनमें अग्निके मिलता है । सब सेनाको तुम मेरे वाणोंसे पीड़ित हुई देखोगे, मैं अपनी शस्त्रविद्याको तुम्हें दिखाना चाहता हूँ । तुम कठिन और साधारण स्थानोंमें सावधान होकर रथको हाकी, मैं आकाशमें उड़ते हुए, पर्वतोंको भी अपने वाणोंसे काट सकता हूँ, मैंने इन्द्रकी आज्ञासे एक लाख पौलोम और कालखञ्ज नामा रावणोंको मारा था, मैंने इन्द्रसे दृढमुष्टी और ब्रह्मासे शीघ्र बाण चलायेकी विद्या शीघ्र प्राप्त करी है ; मैं घोर सङ्घटने भी युद्ध कर सकता हूँ, मैंने समुद्रके पार जाकर हिरण्यपुरवासी महा धनुषधारी साठ हजार दैत्योंको जीता था, तुम मेरे वाणोंसे व्याकुल होकर गिरते हुए, कौरवोंके समूह देखो, जैसे घोर बाण लगनेसे नदीके किनारे कटते हैं, वैसे ध्वजाद्वी वृक्ष पदाति रूपी तिनके और रथरूपी सिंघमें भरे हुए, कौरवरूपी वनको अपनी अस्त्र प्रगल्भ जलाजंगा, मैं अकेलाही रथमें बैठे हुए सत्रावलवान कौरवोंके वीरोंकी इस प्रकार गिराजंगा जैसे वज्रधारी इन्द्र राक्षसोंकी गिराते हैं ; मैंने शिवसे रुद्रास्त्र, वसुधति वासुगान्ध, अग्निसि आग्नेवास्त्र और वज्र आदि सब शस्त्र

इन्द्रसे सीखे हैं, नै मनुष्यरूपी सिंहोंसे रक्षित धृतराष्ट्रपुत्ररूपी नावकी काट दूंगा, तुम अपने भयको दूर करो ।

श्रीवैशम्पायन सुनि बोले, जब अर्जुनने विराट-पुत्र उत्तरको इस प्रकार धैर्य दिया तब उसने भीमकी सेनाकी ओर रथ चलाया । जब गङ्गापुत्र भीष्मने देखा कि कौरवाकी जीतता हुआ, अर्जुन मेरी ओर चला आता है, तब उन्होंने अपने वाणोंसे अर्जुनको रोका । उसी समयमें अर्जुनने अपने वाणोंसे उनके वाण काटकर भीष्मकी ध्वजाकी पृथ्वीमें गिरा दिया । उसी समय महाबाहु अर्जुनसे युद्ध करनेको महारथ महाधनुषधारी दुःशासन, विकर्ण, दुःशङ्ख और विविंशति आये । उन्होंने महा धनुषधारी अर्जुनको अपने वाणोंसे रोका । अर्जुनने भी अपने वाणोंसे चारोंको निवारण कर दिया । उसी समय दुःशासनने विराट-पुत्र उत्तरके शरीरमें एक वाण मारा और दूसरा वाण अर्जुनके हृदयमें मारा ; तब अर्जुनने भी शीघ्रतासे दुःशासनका सीनेसे खिंचा हुआ धनुष काट दिया ; फिर पांच वाण दुःशासनके हृदयमें मारे । तब दुःशासन अर्जुनके वाणसे पीड़ित होकर युद्धको छोड़कर भाग गया । तब धृतराष्ट्र-पुत्र विकर्ण शत्रुनाशन अर्जुनके ऊपर तीक्ष्ण वाण चलाने लगे, तब कुन्तीपुत्र अर्जुनने भी अपना एक वाण विकर्णके शरीरमें मारा । विकर्ण उस वाणके लगतेही पृथ्वीमें गिर पड़ा, उसी समय दुःसह और विविंशति अर्जुनकी ओर दौड़े । उसी समय वे दोनों अर्जुनके ऊपर तीक्ष्ण वाण वर्षाने लगे । उसी समय अर्जुनने एकही बार दोनोंकी व्याकुल कर दिया । जब दोनों राजपत्नीके घेड़े मर गये, तब वे दोनों दूसरे रथोंपर चढ़कर युद्धसे भाग गये । उसी समय अपराजित अर्जुन घूमकर सब ओर युद्ध करने लगे ।

५६ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन सुनि बोले, हे राजन् । जनमेजय ! अनन्तर कुरुसेनाके सब महारथ इकट्ठा होकर अर्जुनसे युद्ध करनेको आये । उस समय अर्जुनने अपने वाणोंसे सब वीरोंको इस प्रकार का लिया जैसे वृक्षासि पर्वत का जाति हैं । हाथी, घोड़े, भेरे, और रथोंका शब्द युद्धमें हीने लगा । अर्जुनके वाणोंके सङ्ग वीरोंके शरीरसे लोहेके कवच गिरने लगे । उसी समय तीक्ष्ण वाण चलाते हुवे अर्जुनकी ऐसी शोभा बढी जैसे शरदऋतुमें दोपहरके सूर्यकी बढती है । तब अनेक वीर रथ और घोड़ोंपर चढ़े और वीर तथा पदाती इधर उधर घूमने लगे । उस युद्धमें अर्जुनके वाणोंसे कटते हुवे वीरोंके चादी रोने लोहेके, कवचोंके घेर शब्द हीने लगे । समस्त युद्धभूमि, घोड़े हाथी और मरे हुए पुरुषोंसे भर गई ; अनेक वीर रथोंसे पृथ्वीपर गिरने लगे । उस समय धनुषधारी अर्जुनकी ऐसी शोभा दीखती थी, जैसे नाचते हुए नटकी दीखती है ; वज्रके समान अर्जुनके धनुषका शब्द सुनकर सब सेना इधर उधर भागने लगी, युद्धभूमि कुण्डल पगड़ी और सुवर्णमाला धारी शिरोंसे भर गई । वाणोंसे कटे शरीर, धनुष और आभूषण रुहित हाथ चारों ओर दीखने लगे । वीरोंके शिर इस प्रकार पृथ्वीपर गिरने लगे जैसे आकाशसे ओली बरसते हैं । महापराक्रमी अर्जुनने जो बारह बरसतक वनमें रहकर क्रोधको रोका था सो उसी क्रोधको इस युद्धमें प्रकाशित किया । इस प्रकार अपनी सेनाको जलते हुए, और अर्जुनके पराक्रमको देख सब योद्धा दुःखी-धनके आगेही शान्त हो गये । उस सेनाको घबड़ाकर और महारथोंको जीतकर महापराक्रमी अर्जुन युद्धभूमिसे घूमने लगे । उस समय रुधिरकी सहा नदी बहने लगी । उसमें हड्डी तिवार हो गई । यह नदी इस प्रकारने बही, जैसे प्रलयकालमें बहती है ।

उसमें वाण धनुष जलजत्तु हो गये ; कबच और पगड़ी जल-हाथीके समान घूमने लगे, चर्वोमेदा फेन उठने लगे । उसको देखकर बड़े बड़े वीरोंको डर लगने लगा । वह नदी सच्चा भयानक घोर वेगसे बहने लगी ; उसके तटोंपर अनेक सांस खानेवाले सियार और पक्षी चोलने लगे, खड़्ग आदि अनेक शस्त्र मछरीके समान दोखने लगे, भोतियोंके द्वार तरङ्गके समान बहने लगे, विचित्र आभूषण वृक्षोंके समान उठने लगे, वाण मोरके समान घूमने लगे, हाथी नाकेके समान घूमने लगे ; रथ दोपके समान दोखने लगे, अनेक नगारे बड़े घोर शब्दसे बजने लगे । उस नदीको अर्जुनने बहा दिया । उस समय कोई नहीं जान सका कि अर्जुन कब वाण चढ़ाते हैं, कब निकालते हैं, और छोड़ देते हैं ।

६० अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय ! जब अर्जुनने अपने पराक्रमसे सब सेनाको जीत लिया तब राजा दुर्योधनको आगेकर दुःशासन, विविशति महारथ कृपाचार्य, द्रोणाचार्य और अश्वत्थामा मिलकर अर्जुनको मारने आये । ये सब लोग अपने अपने धनुषोंपर टङ्कार देने लगे । तब अर्जुन जंचोपताका वाली, सूर्यके समान रथपर बैठकर उन सबसे युद्ध करनेको चले । उस समय महाबल अर्जुनको चारों ओरसे घेरकर कृपाचार्य, कर्ण और महारथ द्रोणाचार्य इस प्रकार वाण-वर्षाने लगे जैसे वर्षाकालमें मेघ जल वर्षाते हैं । वे सब अर्जुनके पास आकर तीक्ष्णवाण मारने लगे उस समय उनके दिव्य अस्त्रोंमें अर्जुनका रथ एक अंगुल भी खाली न रहा । तब महारथ अर्जुनने हंसकर सूर्यके समान प्रकाशित इन्द्रवाणको

धनुषपर चढ़ाया । उस समय कृतोपुत्र किराटधारी अर्जुनका तेज ऐसा बढ़ा जैसे महातेज सूर्यका होता है । अर्जुनने अपने वाणोंसे सब कौरवोंको छा लिया और अपने धनुषपर इन्द्र वाण चढ़ाया । उस वाणके चढ़तेही धनुषकी ऐसी शोभा भई जैसे विजलयुक्त आकाशकी और अग्नियुक्त शिलाकी, होती है । जैसे परसता हुआ मेघ आकाशमें शोभा देता है, ऐसेही अर्जुन युद्धमें शोभित होने लगे । उनके तेजसे सब दिशा प्रकाशित होने लगी, उस वाणके छूटतेही हाथी और रथोंपर चढ़े वीर मोहित होगये और सब सेना निराश होकर भागने लगी, कोई वीर सावधान न रहा, सबको चित्त युद्धसे हट गये । जब इस प्रकार सब सेना युद्धसे भाग गई तब अर्जुन सावधान हुए ।

६१ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय ! उनके पश्चात् सब कौरवोंके पितामह शान्तनुपुत्र भीष्म अपनी विचित्र धनुषपर टङ्कार देते हुए और तीक्ष्ण वाणोंको चलते हुए अर्जुनसे युद्ध करनेको आये । सफेद कृतकी धारण करके भीष्म ऐसे शोभित हुए जैसे सूर्यके हृदय होनेसे पर्वत शोभित होते हैं । गङ्गापुत्र भीष्मने धृतराष्ट्रपुत्रोंकी प्रशंसा करनेके लिये अपना शङ्ख बजाया और अर्जुनके दाहनी ओर होकर युद्ध करने लगे । शत्रुनाशन अर्जुनने देखा कि भीष्म इस युद्ध करनेको आये तब उनके वाणोंकी शृङ्गा करने लगे जैसे मेघकी वर्षाकी शृङ्गा करता है । भीष्मने आठ वाण अर्जुनकी धुजामें मारे ; वे सहावेग बलवान वाणोंके समान लगे, जैसे रासलेते हुए रथ चलते हैं । वे वाण धुजामें लगकर धुजामें फिँस गये । तब अर्जुनने धनुषपर चढ़ाया और सब धजावासी भूतोंको दू

ने लगे । तब अर्जुनने अपने एक तीक्ष्ण वाणसे भीष्मके हृत्तको काटकर पृथ्वीपर गिरा दिया और धृजाको भी काटके गिरा दिया और शीघ्रतासे भीष्मके घोड़े सारथी तथा दोनों रक्षा करनेवालोंको मार डाला । यद्यपि भीष्म अर्जुनके पराक्रमकी जानते थे ; तौभी अर्जुनके ऊपर दिव्य अस्त्र चलाने लगे । अर्जुन ने दिव्य वाण चलाने लगे । भीष्म अर्जुनके से वाणोंको ग्रहण करने लगे जैसे मेघकी वर्षाकी पर्वत ग्रहण करता है । उन दोनोंका ऐसा तोर युद्ध हुआ जैसे इन्द्र और वलीका हुआ । उस युद्धको देखनेसे बड़े बड़े वीरोंकी रीं खड़े होते थे ? उस युद्धको और अर्जुन तथा भीष्मकी वाण वर्षाकी सब कौरव और द्रोणाके लोग दूरसे देखने लगे । उनके वाण इस प्रकार आकाशमें चमकने लगे जैसे वर्षा हंतुमें जूगनू चमकते हैं । उस समय दाहनी और बाई ओरकी वाण छोड़नेसे अर्जुनका धनुष अग्निचक्रके समान दोखने लगा । फिर अर्जुनने अपने सहस्रों वाणोंसे भीष्मकी इस प्रकार छा लिया जैसे बड़ा मेघ अपनी धाराओंसे पर्वतकी छा लेता है । उस महावाण वर्षाकी देख भीष्मने अपने वाणोंसे काट दिया और अर्जुनके ऊपर वाण चलाने लगे । फिर अर्जुनने सोनेकी पंखवाले वाणोंको भीष्मके ऊपर चलाना आरम्भ किया । तब भीष्मने अर्जुनके वाणोंकीभी काट दिया । तब सब कौरव लोग भीष्मकी प्रशंसा करके कहने लगे कि भीष्मने अर्जुनसे घोर युद्ध किया, इससे भीष्मकी धन्य है, अर्जुन बलवान तरुण और वाण-विद्या जाननेवाला है, युद्धमें उसके आगे भीष्मकी छोड़कर और कौन ठहर सकता है ? अर्जुनसे शान्तनुपुत्र भीष्म, देवकी पुत्र कृष्ण, और भरद्वाज पुत्र महा बलवान द्रोणाचार्य ही युद्ध सकते हैं । वे दोनों महाबलवान कुरुकुल सिंह भीष्म और अर्जुन

शस्त्र और अस्त्रोंसे युद्ध करते हुए, सब वीरोंको मोहित करने लगे, वे कभी प्रजापति, कभी इन्द्र, कभी अग्नि, कभी शिव, कभी वरुण, कभी कुवेर, कभी वायु और कभी यमके वाण चलाने लगे, ऐसा देख सब वीर कहने लगे कि जैसा भीष्म और अर्जुनका युद्ध हो रहा है ऐसा मनुष्योंका नहीं होता है । देवता लोग प्रसन्न होकर कभी भीष्म और कभी अर्जुनकी धन्यवाद देने लगे ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय । जब शस्त्र विद्याके जाननेवाले भीष्म और अर्जुन शस्त्रयुद्ध कर चुके, तब उन दोनोंका वाणयुद्ध होने लगा, उसी समय अर्जुनने अपने धनुषको खींचकर तीक्ष्ण वाणसे भीष्मका सुवर्ण-चित्रित धनुष काट दिया, उसी समय महाबाहु महारथ भीष्मने शीघ्रतासे दूसरे धनुषपर रोदा चढ़ा लिया और क्रोध करके अर्जुनके ऊपर वाण चलाने लगे, उसी प्रकार महा तेजस्वी अर्जुन भी भीष्मकी ओर अनेक वाण छोड़ने लगे और भीष्म भी अर्जुनके ऊपर तीक्ष्ण वाण चलाने लगे ; इस प्रकार दोनों शस्त्रविद्याके पण्डित परस्पर युद्ध करने लगे । उस समय इन दोनोंमेंसे कोई बढ़ न सका अर्थात् दोनों समानही रहे ; तब महारथ अर्जुनने और महा बलवान शान्तनुपुत्र भीष्मने अपने वाणसे दसों दिशाओंकी पूरित कर दिया, भीष्म अर्जुन पर और अर्जुन भीष्मपर घोर वाण वर्षाने लगे, इससे सब वीर आश्चर्य करने लगे । उसी समय अर्जुनने अपने वाणोंसे भीष्मके रथकी रक्षा करनेवाले वीरोंको मार डाला । वे मरकर अर्जुनके रथके चारों ओर गिर गये । उसी समय अर्जुनके धनुषसे कूटकर अनेक वाण शत्रुओंकी नाश करने लगे और युद्धमें घूमने लगे, वे सोनेकी पट्टवाले वाण अर्जुनके रथसे निकलकर आकाशमें हसके समान घूमने लगे । अर्जुनके तेज वाणकी

आकाशमें खड़े हुए इन्द्रादिक देवता देखने लगे; उनको देखकर गन्धर्वराज चित्रसेन बहृत प्रसन्न होकर इन्द्रसे कहने लगे; हे इन्द्र । आप अर्जुनके अद्भुत कर्मको देखिये; ये कैसी शीघ्रतासे दिव्य अस्त्र चलाते हैं; जैसे अर्जुन वाण चलाते हैं, ऐसे कोई मनुष्य नहीं चला सकता है और इस वाण विद्याको भी कोई मनुष्य नहीं जानता, अर्जुन दिव्य वाणोंको चलाते हैं; अर्जुन किस समय वाण चढाते हैं, किस समय खींचते हैं, और किस समय छोड़ते हैं, सो नहीं जान पड़ता है । अर्जुनकी ओर कोई वीर दोपहरके सूर्यको तरह नहीं देख सकता और इसी प्रकार गङ्गापुत्र भीष्मके भी ओर नहीं देख सकता, दोनों जगत-विख्यात, महापराक्रमी, दोनों समान योद्धा और दोनोंही महा बलवान हैं । चित्रसेनके ऐसे बचन सुन देवराज इन्द्र बहृत प्रसन्न होकर भीष्म और अर्जुनके ऊपर फूल वर्षाने लगे । उसी समय शान्तनुपुत्र भीष्मने सब वीरोंके बीचमें वाण चलाते अर्जुनकी वाई और वाण चलाने आरम्भ किये । तब अर्जुनने हंसकर एक तेज वाणसे सूर्यके समान तेजस्वी भीष्मका धनुष काट दिया और बहृत शीघ्रतासे भीष्मकी छातीमें दस वाण मारे, तब महा बलवान महा तेजस्वी भीष्मने घबड़ाकर रथका डण्डा पकड़ लिया और मूर्च्छित होकर बैठ गये । भीष्मको मूर्च्छित देख भीष्मके सारथीने अपना धर्म स्मरण करके भीष्मकी रक्षाके निमित्त रथको युद्धसे हटा दिया ।

६२ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय । जिस समय महा बलवान शान्तनुपुत्र भीष्म युद्ध छोड़ कर चले गये, तब महा बलवान युद्ध जीतनेवाले महा पराक्रमी धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन अपने रथकी धृजा उड़ा कर

गर्जते हुए धनुष धारण करके अर्जुनसे युद्ध करनेकी आये । दुर्योधन महापराक्रमी शत्रुनाशन अर्जुनको अपनी सेनामें घूमते हुए देख कानतक खींचके वाण मारने लगे; उन वाणोंमेंसे अर्जुनके माथेमें आकर एक लगा उस वाणसे अर्जुन ऐसे शोभित हुए जैसे एव वृक्षवाले शिखरसे पर्वत, महा पराक्रमी उत्तम कर्म करनेवाले अर्जुनको उस समयमें बहुत शोभा बढ़ी । उस वाणके लगनेसे अर्जुनके माथेसे गरम रुधिर निकलने लगा सीनेके पट्टवाला वाण अर्जुनके माथेमें शोभित होने लगा; महा धनुषधारी दुर्योधन और महा पराक्रमी अर्जुन परस्पर घोर युद्ध करने लगे । ये दोनों महावीर परस्पर समान युद्ध करने लगे, उसी समय पर्वतके समान मतवाले हाथी पर चढ़कर चार वीरोंके सहित विकर्ण पुन कुन्तीपुत्र अर्जुनसे युद्ध करनेकी आया, उसी समय अर्जुनने उस मतवाले हाथीके कुन्ती वीचमें महातेज वाण मारा, वह तेज वाण हाथीके शिरमें घुस गया । उस समय वाणसे वह हाथी ऐसे गिरा जैसे बज्र लगनेसे पर्वत गिरता है । उस वाणके लगनेसे हाथीका शरीर कापने लगा और जीव डरने लगा वह हाथी इस प्रकार चिल्लाकर पृथ्वीपर गिरा जैसे बज्रके लगनेसे पर्वत गिरता है । जब विकर्णका हाथी पृथ्वीपर गिरा तब वह विविशतिके रथपर चढ़कर अर्जुनसे युद्ध करने आये । जब विकर्ण विविशतिके रथपर चढ़कर अर्जुनसे युद्ध करनेकी आये, तब अर्जुन अपने तीक्ष्ण वाणोंसे दुर्योधनसे युद्ध करने लगे । जिस समय विकर्ण युद्धको छोड़के भागे और हाथी मारा गया तथा राजा दुर्योधन डार गये, तब अर्जुनने वाणोंसे पीड़ित होकर सब वीर भाग गये । जब राजा दुर्योधनने सुना कि हाथी मारा गया और विकर्ण युद्धको छोड़कर भाग गये, तब राजा दुर्योधन ऐसे स्थानमें भाग गये जहाँ

अर्जुन न देखसके । जब राजा दुर्योधन युद्धसे भाग गये और अर्जुन ने पराक्रमी दुर्योधनको युद्धसे भागते हुए तथा उनके मुखसे रुधिर निकलते हुए देखा । तब युद्धकी इच्छा करनेवाले अर्जुन ताली बजाकर दुर्योधनकी ओर आये । अर्जुन बोले, हे दुर्योधन ! तुम कातरसे युद्ध छोड़कर क्यों भागे जाते हो, तुम अपने युद्धकी बाजोंकी क्यों नहीं बजाते हो ? अभी तुम्हें राज्यपर बैठे बहुत दिन भी नहीं हुए, अभी से युद्ध छोड़ने लगे ? मैं राजा युधिष्ठिरका आज्ञाकारी तोसरा पाण्डव युद्ध करनेको खड़ा हूँ । हे धृतराष्ट्रपुत्र ! तुम क्षत्रियोंके धर्मको मानकरके हमारे आगे युद्ध करनेको आओ ; इस जगतमें तुम्हारा दुर्योधन नाम प्रसिद्ध है, दुर्योधनका अर्थ महायाज्ञा है, जब तुम युद्ध छोड़कर भागे, तो दुर्योधन कैसे बने ? हे दुर्योधन ! मैं तेरे आगे पोछे कोई रक्षा करनेवाला नहीं देखता हूँ, आज क्या तू पाण्डवोंसे अपना प्राण बचाकर भागना चाहता है ?

६३ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेय । जब राजा दुर्योधनने अर्जुनकी कठारणा सुनी, तब इस प्रकार युद्ध करनेको लौटते मतवाला हाथो अंकुश लगनेसे लौटता है । हावेगवान महारथ दुर्योधन अर्जुनसे इस प्रकार युद्ध करनेका आया, जैसे लात लगनेवाले साप दौड़ता है । दुर्योधनको टट्टा हुआ देख महावीर कर्ण अर्जुनसे युद्ध करनेका आये, उस समय दुर्योधनके शरीरमें तने घाव लग थे कि वे युद्ध नहीं कर सकते, उनको लौटते देख शान्तनुपुत्र भीष्म भी तुष लेकर दुर्योधनको दहनी ओर आगवे । अर्जुनके वाणोंसे उनको रक्षा करने लगे । उसी समय कृपाचार्य, द्रोणा-

चार्य, विविंशति और दुःशासनादि वीरोंने राजा दुर्योधनकी चारों ओरसे घेर लिया । जब अर्जुनने उस भरे हुए, समुद्रके समान सेनाको लौटते देखा तब उसकी ओर इस प्रकार दौड़े जैसे मेघकी ओर हंस दौड़ता है । उन सबने चारों ओरसे अर्जुनको घेरकर वाण चलाने आरम्भ किये । वे लोग इस प्रकार अर्जुनके ऊपर वाण छोड़ने लगे जैसे मेघ पर्वतके ऊपर जल बघाता है । अर्जुनने उन सब कौरवोंके वाणोंको काटकर सम्मोहन नामक वाण चलाया । अर्जुनने अपने वाणोंसे दिशा और कोनीको पूराकर दिया तथा अपने धनुषके टङ्गारसे वीरोंका बहरो कर दिया । उस समय सब कौरव कापने लगे । तब अर्जुनने अपने हाथमें लेकर घोर शब्दवाला शख बजाया । उसके शब्दसे सब दिशा आकाश और पृथ्वी पूरित हो गई । उस शब्दको सुनकर सब कौरव लोग वाणके बलसे मोहित हो गये, सब अपने अपने धनुषोंको रखकर बैठ गये । जब सब कौरव शान्त हो गये, तब वन आनके समय उत्तराकी कही हुई बातको अर्जुनने स्मरण करके उत्तरसे कहा, हे उत्तर ! जबतक कौरव लोग मूर्च्छित हैं, तबतक तुम द्रोणाचार्य और कृपाचार्यके सफेद, कर्णके सुन्दर, अश्वत्थामा और दुर्योधनके नीलवस्त्र उतारकर शीघ्र ले आओ, मैं जानना हूँ कि भीष्म मूर्च्छित नहीं भये क्योंकि ये इस वाणको काटना जानते हैं, तुम उनके रथके आगे मत जाना । महात्मा । उत्तर घोड़ोंको लगास छोड़कर रथसे नीचे उतरे और सब वीरोंके वस्त्र उतारकर फिर अपने रथपर आय बैठे । चतुर विराटपुत्र उत्तर अपने रथपर आकर अपने घोड़ोंको हांकने लगे । उसी समय वे घोड़े क्षणमात्रमें सेनासे बाहर आगये ; जब पुरुषसिंह अर्जुन युद्धको जीतकर चलने लगे, तब तेजस्वी वीर भीष्मके घोड़ोंकी दस वाणसे

मारडाला। उसी समय अर्जुनने भीष्मको छोड़कर सारथीके शरीरमें बाण मारा और सेनासे निकल कर ऐसे खड़े हो गये जैसे मेघोंसे निकलकर सूर्य देखते हैं। उसी समय सब कौरवोंकी मूर्च्छा खुली और सबने इन्द्रके समान अर्जुनको खड़े हुए देखा। उसी समय राजा दुर्योधनने क्रोध करके कहा तुम लोगोंने अर्जुनको क्यों छोड़ दिया? शीघ्र इसको पकड़नेका उपाय करो। उसी समय शान्तनुपुत्र भीष्म हंसकर बोले, अभी तेरी बुद्धि और बल कहां चले गये थे? अभी तुम धनुष-बाण रखकर क्यों शान्त हो गये थे? अर्जुन पापी नहीं है, इस लिये उसे कोई नहीं जीत सकता है। वह तीनों लोकके राज्यके लोभसे भी धर्मको नहीं छोड़ेगा; इस लिये तुम शीघ्र हस्तिनापुरका लौट जाओ और अर्जुन भी गौवोंको जीतकर विराट नगरको लौट जाय, तुम अपनी भूलसे धर्मको मत छोड़ो ईश्वर तुम्हारा कल्याण करे।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, भीष्म पिता-महर्षि के ऐसे वचन सुन राजा दुर्योधन अपना कल्याण जानकर चुप हो रहे, सब वीरोंने भीष्मके वचनको अपना हित समझा और अर्जुन रूपी अग्निसे दुर्योधनको रक्षा करनेके निमित्त लौटनेकी इच्छा करो, जब अर्जुनने देखा कि ये सब लौटते जाते हैं, तब नम्र हाकर सबको प्रणाम करने लगे। शान्तनुपुत्र पिता-महर्षि भीष्म, बूढ़े द्रोणाचार्य, द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, कृपाचार्य और सब बूढ़ोंका शिरसे प्रणाम किया, फिर सबके एक एक बाण मारा और दुर्योधनका रत्नजटित मुकुट काटकर पृथ्वीमें गिरा दिया, और सब वीरोंको निमन्त्रण देकर सब बूढ़ोंको प्रणाम किया; फिर धनुषपर टङ्गार दिया। फिर देवदत्त शंखको बजाकर सब शत्रुओंको कपा दिया, सब शत्रुओंको जीतकर तथा, कौरवोंकी

प्रसन्न करके उत्तरसे बोले, हे उत्तर। तुम अब रथको लौटाओ, तुमने गौवोंको जीत लिया, अब प्रसन्न होकर अपने नगरको लौटो। अर्जुन और कौरवोंका अद्भुत युद्ध देखकर देवता बहृत प्रसन्न हुए, और अर्जुनके कर्म वर्णन करते हुए, अपने अपने लोकोंको गये।

६४ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जन्मे जय! जब विशालनेत्र अर्जुन इस प्रकारसे सब कौरवोंको जीत चुके और विराटका धन छीन चुके, तब अपने नगरको लौटे। जब धृतराष्ट्रपुत्र हारकर लौट गए, तब छिपे हुए कौरवोंकी सेनाके लोग अनेक वनसे निकले। ये सब डरसे कांपते हुए, इधर उधरकी भागी लगे। कोई बाल खोलकर हाथ जोड़कर अर्जुनके पास आये, वे सब परदेशी भूख याससे व्याकुल, चेतना रहित हाथ जोड़कर अर्जुनसे बोले, हे अर्जुन। हम तुम्हारे दास हैं, कौन क्या करें?

अर्जुन बोले, तुम लोगोंका कल्याण ही, सुख अपने अपने घरको चले जाओ, हम निश्चय कहते हैं, कि हम डरे हुए, मनुष्योंका नहीं मारते। अर्जुनके ऐसे वचन सुन सब योद्धा उन्हें आशीर्वाद देने लगे। तब मतवाले हाथोंके समान बलवान अर्जुनको विराट नगरको ओर लौटते देख कोई कौरव उनके सुखको न देख सके। जब शत्रुनाशन अर्जुन सब कौरवोंकी सेनाको जीतकर लौटे, तब उन्होंने विराटपुत्र उत्तरसे कहा, हे तात! तुम्हारे पिताके यह पाचो पाण्डव रहते हैं, इस बातको तुम्हींने जाना है, तुम नगरमें जाकर यह समाचार किसीसे मत कहना, क्योंकि इसको सुनतेही राजा विराट डरकर छिप जायेंगे, तुम जाकर कहना कि हमने सब कौरवोंको जीतकर गो छीन ली।

उत्तर बोले, हे अर्जुन! तुमने जो महाकर्म

किया है उसके करनेकी मेरी शक्ति नहीं है। परन्तु जबतक तुम कहोगे, तब तक मैं अपने पितासे इस समाचारकी नहीं कहूंगा।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, उस प्रकार सब कौरवोंकी जीतकर और उनका धन छीनकर अर्जुन पुनः उसी शमी वृक्षके नीचे आकर खड़े हुए। उस समय अर्जुनके शरीरमें अनेक घाव लगे थे। उसी समय अग्निके समान तेजस्वी हनुमान आकाशकी चले गये। ध्वजा भी उड़ गई। और रथपर उत्तरकी ध्वजा आलगी; उत्तरने महात्मा पाण्डवोंके शस्त्र फिर वैसेही शमी वृक्षपर रख दिये, फिर महात्मा अर्जुनको सारथी बनाकर नगरको चले। शत्रुनाशन अर्जुनने इस महा कर्मको करके और शत्रुओंको मार कर फिर अपने बालोंकी वैसेही बाधा और उत्तरके घोड़े हाकने लगे, और प्रसन्न हो नपुंसकका वेष बना नगरको चले।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, कौरव लोग भी अर्जुनसे हारकर दीन मन हो हस्तिनापुरकी चले गये। अर्जुनने मार्गमें उत्तरसे कहा, हे राजपुत्र। हे महाबाही। देखो ये सब गौ और बालियोंकी हमने जीत लिया, अब हम दूसरे नगरमें विराट नगरको चलेंगे। अभी घोड़ाको हलाकर पानी पिलाना चाहिये। इतनेमें हम अहीरोंको नगरमें भेजो, ये जाकर नगरमें हमारी विजयका समाचार कहेंगे।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, उत्तरने अर्जुनके सुन, अहीरोंसे कहा तुम लोग शीघ्र नगरमें जाकर महाराजके विजयका समाचार हो और यह भी कहो कि हमने सब गौओंकी जीत लिया। इस प्रकार उत्तर और अर्जुन सम्मति करके शमी वृक्षके पास गये, रथ विजयसे प्रसन्न होकर दोनोंने अपने अपने धारण किये। महावीर विराटपुत्र सब

शत्रुओंकी जीत उनका धन छीन और अर्जुनकी सारथी बना अपने नगरमें आया।

६५ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय। इस प्रकार राजा विराट राजा सुशर्माकी जीत युधिष्ठिर, भीम, नकुल और सहदेवके सहित अपने नगरमें आये। सुशर्माकी जीत गौओंकी जीत राजा विराट पाण्डवोंके सहित अपनी सभामें बैठे। सुख देनेवाले महातेजस्वी राजा विराट जब अपनी सभामें बैठे तब पाण्डव आदि सब सभासद उनकी प्रशंसा करने लगे। उसी समय उनका पुरोहित ब्राह्मणोंके सहित आकर आशीर्वाद देने लगा, सेनाके वीर गर्जने लगे। राजा विराटने अपनी सभाकी विसर्जन किया, और पूछा कि उत्तर कहा गया? उसी समय कन्या, स्त्री और अन्तःपुरके रहनेवालोंने कहा कि कौरवोंने गौ छीन लीथी उनसे लड़नेकी उत्तर अकेला गया है, केवल बृहन्नलाही उसका सहायक है; कौरवोंके सङ्ग महारथ भीष्म, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, दुर्योधन, कर्ण और अश्वत्थामा ये हैं महारथ हैं।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, जब राजा विराटने सुना कि हमारा पुत्र बृहन्नलाको सङ्ग लेकर अकेलाही युद्ध करनेको चला गया है, तब घबड़ाकर मन्त्रियोंसे कहने लगे कि हमको निश्चय होता है कि राजा सुशर्माकी भागा हुआ सुनकर सब राजा और कौरव लोग शान्त नहीं बैठेंगे। इस लिये जो हमारी सेना सुशर्माके सङ्ग युद्ध करनेसे मारी नहीं गई, सो उत्तरको रक्षाके लिये जाय! राजाकी आज्ञा सुनतेही हाथी, घोड़े, रथ और पदातियोंके झुण्ड अनेक शस्त्र धारण करके उत्तरकी रक्षाको चले; इस प्रकार राजा विराटने अपनी सेनाको आज्ञा देकर

कि देखो हमारा पुत्र जीता है कि मर गया,
नपुंसक जिसका सारथी बनकर गया है,
वह उत्तर अवश्य मर गया होगा ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, राजा विराटके
ऐसे वचन सुन, धर्मराज युधिष्ठिर बोले, हे
नरनाथ ! जिसका बृहन्नला सारथी है वह
राजपुत्र अवश्य सब कौरवोंको जीतेगा । आपके
पुत्र बृहन्नला सारथीकी सहायतासे सब राजा
कौरव, देवता, यक्ष, और राक्षसोंको जीत
सकते हैं ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, उसी समय उत्त-
रके भेजे हुए, दूत राजा विराटको सभामें पहुँचे
और कहने लगे कि उत्तरको विजय है । उसी
समय मन्त्रोंने आकर राजासे निवेदन किया
कि सब कौरव लाग उत्तरसे हारकर भाग
गये, शत्रुनाशन उत्तर कौरवाको जीतकर
और गौत्रोका कीर्तनकर अपने सारथीके सहित
कुशलसे हैं ।

महाराज युधिष्ठिर बोले, हे राजन् विराट !
प्रारब्धसे आपके पुत्रने कौरवोंको जीतकर
गौत्रो लो, जिसका बृहन्नला सारथी हो
उसकी विजय निश्चय है ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, जब राजा विरा-
टने प्रसन्न होकर महा पराक्रमी उत्तरको
विजय सुनी, तब दूताका वस्त्र और आभूषण
देकर वदना किया और आज्ञा दी कि हमारा
राजमागसे पताका लगाइ जाय, पुष्पा-
दितासे सब देवताको पूजा होय, राजकुमार,
सेनापति और वैश्या अपने अपने आभूषण
पाहरकर उत्तरके पास जाय, नगरमें चारा
और बाजे बजाये जाय, एक दूत मतवाले
हाथपर बैठकर सब चौराहामें घण्टा बजा-
कर हमारी विजयका समाचार कह आवे;
उत्तरा कन्याओंके सहित नाचनवाल्याका
रूप बनाकर उत्तरके पास जाय ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, राजाका आज्ञा

सुनतेही सब नगरमें शांति कर्म होने लगे ।
भेर, शंख और नगारे बजने लगे, वैश्या गृहार
करके नाचने लगीं और महाबलवान उत्त-
रके पास अनेक स्तुति मागध और वंदो -
स्तुति गाने लगे ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, सेना और व
ओंको अपने पुत्रके पास भेजकर राजा वि-
प्रसन्न होकर बाले, हे सैरिन्ध्री । पासे लगे
हैं कङ्क । जुवा खेलो । राजाके ऐसे वच
सुन महाराज युधिष्ठिर बोले, हे पृथ्वीनाथ ।
हमने सुना है कि प्रसन्न पुरुषको जुवा नहीं
खेलना चाहिये, इस लिये हम आज आपसे
जुवा नहीं खेल सकते हैं, परन्तु आपको
आज्ञा भी नहीं टाल सकते, आपको आज्ञा
होय तो जुवा खेलें । राजा विराट बोले, हम
जुवाके आगं गो, स्त्री, धन और सुखको
नहीं समझते हैं । कङ्क बाले, हे पृथ्वीनाथ
जुवसे अनेक दोष हैं इस लिये आपको जुव
नहीं खेलना चाहिये, आपने कभी राजा
युधिष्ठिरका देखा होगा या सुना होगा, व
अपने सब राजका हार कर भाइयाका भी
हार गये, इस लिये हमका जुवा अच्छा नहीं
लगता, परन्तु आपको आज्ञा होय तो खेलें ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, जब जुवा हा-
लगा, तब राजा विराटने महाराज युधिष्ठिरसे
कहा है कङ्क ! देखा मेरे पुत्रने कंस वार
कौरवोंका जीत लिया ? राजाके वचन सुनकर
राजा युधिष्ठिर बोले, हे महाराज । जिसका
सारथी साक्षात् बृहन्नला है वह युद्धमें क्यों
न जीत ? युधिष्ठिरके वचन सुनकर राजा वि-
क्रोध करके बोले, हे ब्राह्मणाधम ! मेरे पुत्र
समान नपुंसक बृहन्नलाका बताता है ?
कहने न कहने याग्य बातका नहीं जानता
है, बार बार हमारा अन्याय करने जाता
है, क्या हमारा पुत्र भीम और द्रुपदवाचक
नहीं जीत सकता ? मैं ब्राह्मण जानकर दंष्ट्रा

प्रपराध क्षमा करता हूँ; यदि जीनेकी इच्छा रखता है तो फिर कभी ऐसा वचन मत कहना। महाराज युधिष्ठिर बोले, प्रारब्धसे कोरवलाग भाग गये, प्रारब्धसे तुम्हें गौ मिल गई, जिसका सारथी वृहन्नला हो उसकी विजय क्यों नहीं होय? जहाँ महापराक्रमी द्रोणाचार्य, भीष्म, श्वेत्यामा सूतपुत्र कर्ण, कृपाचार्य और साक्षात् दुर्योधनही महारथ होय, जहाँ साक्षात् इन्द्र देवतोंके-सहित युद्ध करतेहों तहाँ वृहन्नलाकी छोड़ और कौन युद्ध कर सकता है? जिसके सम्मान न कोई बलवान हुआ न होगा, जो युद्धको देख कर बहृत प्रसन्न होता है, जिसने अकेले देवता राक्षस और मनुष्योंको जीत लिया ऐसे सारथीकी सहायतासे उत्तरकी विजय क्यों नहीं हो?

विराट बोले, हमने तुम्हें कई बार मना किया, परन्तु तू अपने वचनोंकी वशमें नहीं रखता, यदि आज्ञा करनेवाला नहीं तो जगतमें कोई मनुष्य धर्म करे?

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर राजाने क्रोध करके युधिष्ठिरके मुखमें पामा मारा और उपरके कहा कि अबसे ऐसा न कहना। पार्श्वमेसे राजा युधिष्ठिरकी नाकसे रुधिर बहने लगा। पर महाराजने पृथ्वीपर न गिरने दिया, रुधिरकी अपने हाथमें ले लिया। फिर धर्मात्मा युधिष्ठिरने-पासखड़ी द्रौपदीकी ओर देखा। पतिव्रता द्रौपदी उनका अभिप्राय जानकर सोनेके बरतनमें पानी ले आई और उसीमें रुधिरकी लेलिया। उसी समय उत्तर अनेक माला और फूलोंकी ग्रहण करते हुए प्रसन्नता पूर्वक सभाके द्वारपर पहुँचे उहाँ आकर उत्तरने अपने आनेका समाचार अपने पितासे कहला भेजा। द्वारपालने जाकर राजासे कहा कि वृहन्नलाके सहित उत्तर द्वारपर खड़े हैं, राजान प्रसन्न होकर आज्ञा दी कि उन दोनोंकी

शीघ्र लेआओ; हम देखना चाहते हैं। उसी समय महाराज युधिष्ठिरने धीरेसे जानेवाले पुरुषसे कह दिया कि केवल उत्तरकी भेज दो, वृहन्नला आने न पावे। महाराजने सोचा कि अर्जुनकी यह प्रतिज्ञा है कि जो महाराजके शरीरमें घाव करेगा या रुधिर निकालेगा उसको हम उसी समय मार डालेंगे, परन्तु यह प्रतिज्ञा युद्धसे भिन्न है अर्थात् युद्धमें जो ऐसा करेगा उसके लिये प्रतिज्ञा नहीं है; जब वे मेरे शरीरसे रुधिर निकलता देखेंगे तब क्षमा नहीं करेंगे, उसी समय बल और बाहनोंके सहित राजा विराटका नाश हो जायगा।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, उसी समय राजा विराटका बड़ा पुत्र उत्तर सभामें आया और अपने पिताको प्रणाम करके कंकके पास गया, महाराज युधिष्ठिरको रुधिरमें भींगे घबराये हुए और द्रौपदीके सहित एकान्तमें बैठे देख कहने कि लगे इन महर्षि पण्डित ब्राह्मणकी किसने मारा है? यह महापाप किसने किया है? विराट बोले, इस पापीको हमने मारा है, ये ब्राह्मण पूजा करने योग्य नहीं हैं, मैं तुम्हारी प्रशंसा करता था तब ये तुम्हारी निन्दा करने लगा और नपुंसक वृहन्नलाकी प्रशंसा करने लगा, तब मैंने इसकी मारा है। उत्तर बोला हे राजन्! आपने बहृत बुरा काम किया, आप शीघ्र इनकी प्रसन्न करें, आपको पुत्र और बाहनोंके सहित घोर ब्राह्मण विनाश न कर दे—ऐसाही उपाय करें।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय! राजा अपने पुत्रके ऐसे वचन सुन राखमें क्षिपी हुई अग्निके समान युधिष्ठिरसे क्षमा मागने लग। तब राजा युधिष्ठिरने राजा विराटसे कहा हे राजन्! मैं पहिलेही क्षमा कर चुका हूँ, मुझे अब कुछ क्रोध शेष नहीं है, यदि मेरा रुधिर पृथ्वीमें गिर जाता तो आपका

राज्यके सहित नाश होजाता, इसमें कुछ सन्देह नहीं है। हम आपके बचनकी निन्दा नहीं करते हैं, क्योंकि आपने हमारा कोई अपराध नहीं किया। बलवान राजाकी निन्दा करनेसे अवश्य दण्ड मिलता है।

श्रीवैशम्पायन सुनि बोले, जब महाराज युधिष्ठिरका रुधिर सूख गया तब बृहन्नला राज सभामें आया। उसने राजा विराटको प्रणाम करके पीछे राजा युधिष्ठिरको प्रणाम किया। उसी समय राजा विराटने बृहन्नलाकी बद्धत प्रशंसा करी और उत्तरकी प्रशंसा करने लगे। राजा बोले, हे कैकेयीपुत्र। तुम्हारे जन्म लेनेसे मैं पुत्रवान हुआ तुम्हारे समान मेरा पुत्र कोई नहीं है, और न कोई होगा। जो एक चरणभी पिताका अपराध नहीं करता उसके समान अच्छा पुत्र कौन होगा? जो कभी अपने पिताका अपराध नहीं करता उस कर्णसे तुमने कैसे युद्ध किया? जो समस्त मनुष्य लोकमें अपने तुल्य वीर नहीं रखते उन भीष्मसे तुमने कैसे युद्ध किया? जो द्रोणाचार्य सब कौरव और सब क्षत्रियोंके गुरु हैं, उनसे तुमने किस प्रकार युद्ध किया? जो सब शस्त्रधारियोंमें अष्ठ महा पराक्रमी अश्वत्थामा हैं, उनसे तुम्हारा युद्ध कैसे हुआ? हे तात। जिनको देखकर क्षत्रीलोग धनलुटे बनियोंके समान युद्ध छोड़ भागते हैं, उन कृपाचार्यसे तुम्हारा युद्ध कैसे हुआ? जो राजपुत्र क्रोध करके अपने वाणोंसे पर्वतोंको तोड़ सकते हैं, उन दुर्योधनके सङ्ग तुम्हारा युद्ध कैसे हुआ? तुमने सब शत्रुओंको जीत लिया और गौ कौरवोंसे छीन लिया, इसीसे हमको वायु अच्छा लगता है, महापराक्रमी कौरवोंको तुमने डराकर भगा दिया, और उनसे इस प्रकार गौ छीन लिया जैसे पक्षी पक्षीसे मांस छीन लेता है।

६६ अध्याय समाप्त ।

उत्तर बोले, मैंने गौओंको नहीं जीता, मैंने कौरवोंसे युद्ध नहीं किया; ये सब कर्ण किसी देवपुत्रने किया है। जब मैं युद्धसे डरकर भागने लगा, तब उस तरुण देवपुत्रने रथपर बैठ कर मुझे लौटाया, उसीने कौरवोंको जीतकर गौ छीन ली, उसीने युद्ध किया, उसी वीरने अपने वाणोंसे कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण और भीष्मको हरा दिया। जिस समय उसके आगेसे मतवाले हाथीके समान दुर्योधन और महाबलवान विकर्ण डरकर भागे, तब उसने कहा कि तुम हस्तिनापुरमें रहकर भी हमने जीते नहीं वचोगे, इस लिये सब देशोंमें घूमकर अपने प्राणोंकी रक्षा करो, हे राजन्। तुम भागकर जीते नहीं वचोगे, इस लिये युद्ध करो; यदि हमको जीत लोगे तो पृथ्वीका राज्य करोगे और जो मर जाओगे तो स्वर्ग पाओगे। परन्तु राजा दुर्योधन उनके वचन सुनकर विषैले साँपके समान साँस लेते हुए और बज्रके समान वाण छोड़ते हुए मन्त्रियोंके सहित युद्धसे भाग गये। हे शत्रुनाशन। उस देवपुत्रके देखनेसे मेरे रोवें खड़े हो गये। फिर उस देवपुत्रने अपने वाणोंसे उस महा सेनाको व्याकुल कर दिया। सिंहके समान बलवान देवपुत्रने सेनाको जीतकर हंसते हंसते कौरवोंके वस्त्र उतार लिये। उस एक वीरने कः महारथोंको इस प्रकार जोत लिया, जैसे मतवाला शार्दूल वनवासी हरिणोंको जीत लेता है।

महाराज विराट बोले, हे पुत्र। जिस महाने कौरवोंसे हमारा धन कुड़ाया है वह महा यशस्वी महाबाहु देवपुत्र कहा है। मैं उस महापराक्रमी देवपुत्रकी देखना चाहता हूँ, क्योंकि उसीने तुम्हारी और गौओंकी रक्षा करी है।

उत्तर बोले, युद्धके पश्चात् वह महाबली देवपुत्र अन्तर्धान हो गया, हम

निश्चय है कि कलू या परसों वह प्रत्यक्ष होगा।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, उत्तरके ऐसे वचन सुनकर भी राजा विराटने छिपे हुए पाण्डवोंको न जाना। तब अर्जुनने राजाकी आज्ञा पाकर वे सब वस्त्र उत्तराको दे दिये। उत्तरा नवीन और महामूल्य वस्त्रोंकी पाकर बहुत प्रसन्न हुई। अनन्तर अर्जुनने उत्तरसे सम्मति करके राजा युधिष्ठिरके निमित्त सब प्रबन्ध कर लिया।

६७ अध्याय गौ हरण पर्व समाप्त।

अथ वैवाहिक पर्व।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तीसरे दिन पाचो पाण्डवोंने अपने समयकी समाप्त जानकर स्नान किया और सफेद वस्त्र पहनकर मतवारे हाथीके समान तेजस्वी प्रकाशित होते हुए, राजा विराटकी सभाकी चले। सभामें आकर महाराज युधिष्ठिर राजाके सिंहासनपर बैठ गये; और चारों पाण्डव यथा योग्य आसनोंपर बैठे। उस समय पाण्डवोंकी ऐसी शोभा बढी, जैसी जलती हुई अग्निकी होती है। उसी समय राजा विराट भी अपने कार्य करनेकी सभामें आये। वहां जलती हुई अग्निके समान पाण्डवोंकी बैठे देख कुछ समयतक चुप हो रहे। उस समय अपने भाइयोंके सहित बैठे हुए महाराज युधिष्ठिरकी ऐसी शोभा हो रही थी, जैसे देवतोके सहित इन्द्र की। फिर क्रोध करके राजा विराट युधिष्ठिरसे बोले।

विराट बोले, हे कङ्क! हमने तुमको जुवा खिलानेके लिये अपना सभासद बनाया था, आज तुम राजाके वस्त्र पहनकर हमारे सिंहासनपर क्यों बैठे हो?

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, राजा विराटके ऐसे वचन सुन अर्जुन हंसके बोले, हे राजन्। ये इन्द्रके भी आधे आसनपर बैठ सकते हैं, ये ब्राह्मणोंके भक्त, पण्डित, आगी, योग्य तप

करनेवाले, महाव्रतधारी, साक्षात् धर्मके स्वरूप, सब वीरोंमें श्रेष्ठ, बुद्धिसे भरे और महा तपस्वी हैं। ये तोनो लोकमें सबसे अधिक वाण विद्याके जाननेवाले हैं, जैसी वाणविद्या ये जानते हैं; ऐसी कोई नहीं जानता और न जानेगा, कोई इनके समान बलवान् देवता, राक्षस, किन्नर, मनुष्य, गन्धर्व, यक्ष, और सर्प भी नहीं है। ये दूरदर्शी, महा तेजस्वी, इन्द्रीजित, पाण्डवोंमें श्रेष्ठ और यक्ष धर्मके करनेवाले हैं। ये राजोंमें महाऋषियोंके तुल्य हैं, इनका बल सब लोकोंमें विख्यात है। इनके समान कोई बलवान्, बुद्धिमान और जितेन्द्रिय नहीं है। ये धन और पराक्रममें इन्द्र और कुबेरके तुल्य हैं, जैसे महा तेजस्वी इन्द्र लोकोंकी रक्षा करते हैं, ऐसी ये भी प्रजाकी रक्षा करते हैं। येही कुरुकुल-सिंह साक्षात् राजा युधिष्ठिर हैं। इनका यश लोकमें सूर्यके तेजके समान फैला है, इनके यशकी किरण जगतमें इस प्रकार फैल रही है, जैसे उदय होते हुए सूर्यकी किरण फैलती है। इनके पीछे इन्द्रप्रस्थमें दश सहस्र मतवाले हाथी, दश सहस्र सुवर्ण मालाधारी घोड़ोंसे युक्त रथ चलते थे, इनको स्तुति मणि कुण्डलधारी आठ सौ सूत और मागध इस प्रकार करते थे, जैसे ऋषि इन्द्रको स्तुति करते हैं, सब कौरव इनके दासके समान रहते थे, सब राजा इनकी इस प्रकार सेवा करते थे, जैसे देवता इन्द्रकी सेवा करते हैं। इन्होंने स्वतन्त्र राजोंसे कर लेकर उनको वनियोंके समान बना दिया है। इन महा व्रतधारोके घरमें प्रति दिन अठासो सहस्र महात्मा वेदपाठी ब्राह्मण भोजन करते थे, ये महाराज बूढ़े, अनाथ और अन्धे मनुष्योंकी पुत्रके समान पालते थे, ये धर्मात्मा, इन्द्रीजित हैं, क्रोधसे भी अपने धर्मको नहीं छोड़ते, ये शीघ्र प्रसन्न होते हैं; ये ब्राह्मणोंके भक्त और

सत्यवादी हैं, इन्हींके भयसे राजा दुर्योधन, कर्ण शकुनी और मन्त्रियोंके सहित कांपता रहता है, इनके गुण वर्णन करनेकी हमारी शक्ति नहीं है। येही साक्षात् पाण्डुपुत्र महाराज युधिष्ठिर हैं; ये राजसिंह युधिष्ठिर राजाके आसनपर क्यों नहीं बैठ सकते हैं ?

६८ अध्याय समाप्त ।

राजा विराट बोले, यदि येही कुरुकुल श्रेष्ठ कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर है, तो इनके भाई अर्जुन, बलवान भीम, नकुल, सहदेव और यशस्विनी द्रौपदी कहाँ हैं ? जब से पाण्डव जुवेमें हार गये हैं, तबसे न जाने किधर गये। अर्जुन बोले, हे राजन् ! तुम्हारे यहाँ ये जो बलवान नामक रत्नोद्भूत हैं, वही महापराक्रमी भीम-सेन हैं, इन्होंने क्रीधके वशमें होकर अनेक राजाओंको मारकर द्रौपदीके लिये गन्धमादन पर्वतपर कमलके फूल छोन लिये थे। इन्होंने गन्धर्व रूप धारण करके दुरात्मा कीचकोंका नाश किया है। इन्होंने तुम्हारी स्त्रीके आगे अनेक सिंह, असुर और राजाओंको मारा था। ये जो तुम्हारे यहाँ घोड़ोंको रक्षा करते हैं, येही शत्रुनाशन नकुल हैं। जो तुम्हारी गौओंको गिनते हैं येही माद्रीपुत्र सहदेव हैं। ये दोनों महा यशस्वी, महा सुन्दर, शृङ्गार-धारी, वीर एक सहस्र महारथोंसे युद्ध कर सकते हैं। हे राजन् ! ये कमलनयनी पतली कमलवाली सुन्दरी सैरिन्द्रीही द्रौपदी है। हे महाराज ! आप जिसका नाम सुनते थे, सो अर्जुन मैंही हूँ, मैं भीमसेनसे छोटा तथा नकुल और सहदेवसे बड़ा पाण्डुपुत्र हूँ। हे महाराज ! हम लोग आपके घरमें इस प्रकार छिपकर रहे हैं, जैसे पुत्र गर्भमें रहता है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, जब अर्जुन कह-
कर चुप हो गये, तब उत्तर कहने लगे।

उत्तर बोले, ये जो शृङ्ग सोनेके समान गोरे

शरीरवाले, सुन्दर बड़े और लाल नेत्रवाले हैं, सोही कुरुराज महाराज युधिष्ठिर हैं। उनके पास जो शृङ्ग सोनेके समान गोरे, मतवाले, हाथीके समान चलनेवाले, जंघी छातीवाले और लम्बे हाथवाले श्रेष्ठ पुरुष हैं, सोही भीम-सेन हैं। इनके पासमें जो श्याम रङ्गवाले, महा धनुषधारी, जंघे कम्बे और कमलके समान नेत्रवाले पुरुष खड़े हैं, वही वीर अर्जुन हैं। राजाके दूसरी ओर जो इन्द्र और विष्णुके समान दो मनुष्य खड़े हैं सो नकुल और सह-देव हैं, इनके समान इस लोकमें कोई बलवान, रूपवान और शीलवान नहीं है। इन दोनोंके पास जो सोनेके समान अङ्गवाली, साक्षात् मूर्तिधारिणी पार्वतीके समान सुन्दरी, नील कमलके समान रूपवाली लक्ष्मीके समान रंग खड़ी है, वही द्रौपदी है। इस प्रकार पाँच पाण्डवोंका वर्णन करके उत्तरने राजा अर्जुनका पराक्रम कहना आरम्भ किया।

उत्तर बोले, इन्होंने उस कौरवोंकी सेना को इस प्रकार नाश किया था, जैसे सिंह हरिणोंका नाश करता है। येही शत्रुनाशन अर्जुन उस सेनामें रथपर चढ़कर घूमते थे। इनके एकही वाण लगनेसे मतवाला हाथ मरकर पृथ्वीमें गिर गया था, इन्होंने कौरवोंको जोतकर गौओंको छीना है। इनके शंखके शब्दकी सुनकर कान बहरे हो गये थे।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, उत्तरके ऐसे वचन सुन प्रतापवान राजा विराट उत्तरसे बोले, हमने राजा युधिष्ठिरका बहुत अपराध किया है, इस लिये पाण्डवोंको प्रसन्न करना चाहिये। यदि तुम्हारी इच्छा हो तो मैं अर्जुनके सत्र उत्तराका विवाह कर दूँ। उत्तर बोले, मेरी बुद्धिमें पाण्डव लोग महात्मा, पूजा करनेके योग्य और माननीय हैं। आप इनकी जैसे चाहें तैसेही प्रसन्न कर लीजिये।

राजा विराट बोले, मुझे भी युद्धमें शत्रुघ्न

पकड़ लिया था, परन्तु भीमसेनने कुड़ा लिया और उनसे गौओंकी भी क्षीन लिया। इन्हींके बाहुबलसे युद्धमें हमारी विजय भई है। इस प्रकार सब मन्त्रियोंके सहित राजा विराट युधिष्ठिरकी भाइयोंके सहित प्रसन्न करके उनसे कहने लगे, हमने जो कुछ बिना जाने आपका अपराध किया ही सो आप क्षमा कीजिये, क्योंकि आप धर्मात्मा हैं।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महात्मा विराटने ऐसा कह कर धन और नीतिके सहित अपना सब राज्य महाराज युधिष्ठिरको दे दिया। अनन्तर महात्मा विराटने अर्जुनके सहित सब पाण्डवोंको धन्यवाद दिया, फिर राजा विराटने युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेवसे मिलकर उनका माथा सूँघा और उनके दर्शनसे तृप्त न हुए। अनन्तर राजा विराट प्रसन्न होकर महाराज युधिष्ठिरसे बोले, आप सब लोग प्रारब्धसे बनवाससे कुटे, प्रारब्धसे उन दुष्टोंसे छिपकर आपने यहाँ निवास किया, मेरा राज्य और धन सब आपहोका है। आप निःसन्देह होकर निवास कीजिये और अर्जुनके सङ्ग उत्तराका विवाह कीजिये, क्योंकि ये उत्तराकी समान पति होगी। विराटके ऐसे वचन सुन महाराजने अर्जुनकी ओर देखा। महाराजके देखते ही, अर्जुन विराटसे बोले, हे राजन्। आपका और महाराजका सम्बन्ध होनाही उचित है, क्योंकि आप मत्स्य और महाराज भरतवंशी है, हम आपकी पुत्रीका विवाह अपने पुत्र अभिमन्युके सङ्ग करेंगे।

६६ अध्याय समाप्त ।

विराट बोले, हे अर्जुन ! हम अपनी कन्या देते हैं, तुम उसे क्यों नहीं ग्रहण करते ? अर्जुन बोले, हे राजन्। हम तुम्हारी रनवासमें एक वर्षतक रहे हैं, तुम्हारी पुत्रीके सब प्रगट और गुप्त भावोंको जानते हैं, और वहभी

हमारा पिताके समान विश्वास करती है; हमने गुरु हीकर उसको नाचना और गाता सिखाया है, वह हमको बद्धत मानती है, हम उसके सग एक वर्षतक रहे, है, इस लिये उससे दूसरा व्यवहार करनेमें हमको बद्धत शंका होती है। आपकोभी इस स्थानमें शङ्का करनी चाहिये। ऐसा करनेसे हमारा ब्रह्मचर्य पूरा होगा, आप अपनी पुत्रीका विवाह हमारे पुत्रके सङ्ग कर दीजिये ऐसा करनेसे हम और आप पवित्र होंगे, इसमें आप कुछ शंका मत कीजिये, पुत्र और पितामें कुछ भेद नहीं होता। हे शत्रुनाशन ! दुर्नामसे बद्धत डरता हूँ, इस लिये आप अपनी पुत्रीका विवाह हमारे पुत्रके सङ्ग कर दीजिये, मेरा पुत्र साक्षात् कृष्णका भानजा है, और कृष्णका बद्धत प्यारा तथा सब शस्त्रोंकी जाननेवाला है, हमारा अभिमन्यु नामक पुत्र तुम्हारा दामाद और उत्तराका पति होने योग्य है। विराट बोले, आप सब धर्म जानने वाली, ज्ञानी, कुसुमिष्ठ, आपकी आज्ञाको सब मानते हैं, जैसे आपकी इच्छाही वैसेही कीजिये, अर्जुनके समधी होनेसे मेरे सब कार्य ठीक होंगे।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अर्जुन और राजा विराटके ऐसे वचन सुन महाराज युधिष्ठिरनेभी इस विवाहकी स्वीकार कर लिया। उसी समय विराट और धर्मराज युधिष्ठिरने श्रीकृष्ण और अपन सन्वधियोंके पास दूत भेजे, और पाण्डवनाग द्रौपदीके सहित विराट नगरके समीप ही उपप्लव नाम नगरमें रहने लगे। अनन्तर पाण्डवोंने अभिमन्यु और श्रीकृष्णके सहित सब यादवोंको हारिकासे बुला भेजा। वे लोग सुनतेही विराट नगरमें पहुँच गये। इस समाचारके सुनतेही काशिके राजा और राजा शौच्य एक एक अच्छीहिणी सेना लेकर महाराज युधिष्ठिरकी प्रसन्न करनेको आये। उसी समय महावीर द्रौपदीके पाँचों पुत्र और म

पराक्रमी शिखण्डीको लेकर एक अक्षोहिणी सेनाके सङ्ग महा पराक्रमी धृष्टद्युम्न, विराट नगरमें पहुँचे। सब शस्त्र जानने वालोंमें श्रेष्ठ महावीर धृष्टद्युम्नके सङ्ग अनेक बेदपाठी महा स्त्रवीर युद्धमें मरनेकी इच्छा वाले दानी अनेक सेनापति क्षत्रीयभी आये, उनको देखकर धनुष-धारियोंमें श्रेष्ठ राजा विराटने वाहन और सेनाके सहित सबकी पूजा करी। विवाहसे राजा विराट बहृत प्रसन्न हुए। जब सब राजा लोग अपने अपने डेरामें चले गये। तब महाराज युधिष्ठिरसे मिलनेकी अभिमन्यु और सुभद्राके सहित वसुदेवपुत्र बलदेव, श्रीकृष्ण, कृतवर्मा, हार्दिव्य युयुधान, सात्यकी अनाष्टि अक्रूर, साम्ब और निष्ठ आदि यादव आये। उसी समय इन्द्रसेन आदि पाण्डवोंके पाचों सारथी रथ लेकर विराट नगरमें पहुँचे। श्रीकृष्णके सङ्ग दश सहस्र हाथी एकलाख घोड़े दस सहस्र रथ और एकखर्व पैदल थे। महा-तेजस्वी श्रीकृष्णके सङ्ग अनेक वृष्णि, अन्धक और भाजवशी क्षत्रीय भी आये थे श्रीकृष्णने पाण्डवाको हस्ती रत्न और उत्तम उत्तम वस्त्र दिये। तब राजा विराटने अपनी पुत्रीके विवाहका आरम्भ किया। उसी समय महाराज युधिष्ठिर और राजा विराटके घरमें शंख, भेर, नगारे बजने लगे। भोजन बनानेवाले अनेक प्रकारके हरिन आदि खाने योग्य पशुओंका मांस पकाने लगे। राजा विराटने सब राजाओंके डेरोंमें, अनेक प्रकारकी मदिरा भेज दी। इस विवाहका समाचार सुनकर अनेक देशोंसे नाचने और गानेवाले आये। राजा विराटकी सब स्त्रिया कुण्डल आदि आभूषण पहरेके सुदेष्णाके सहित उस स्थानोंमें बैठीं, जहाँ विवाह हो रहा था। उन सब रूप और यौवनमती स्त्रियोंको द्रौपदीने, रूप, यश और तेजसे जोत लिया। वे सब स्त्रिया

इन्द्रकी पुत्रीके समान उत्तराकी आभूषण पहनाके ले आईं। कुन्तीपुत्र अर्जुनने अपने पुत्रसे विराटपुत्रीका विवाह किया। उन सब राजाओंके बीचमें महाराज युधिष्ठिरने इन्द्रके समान बैठकर उत्तरा और अभिमन्युके विवाह किया। महाराज युधिष्ठिरने कृष्णकी सम्मतिसे सुभद्रापुत्र महात्मा अभिमन्युका विवाह किया। इस विवाहमें राजा विराटने महाराज युधिष्ठिरकी वायुके समान शीघ्र चलनेवाले सात सहस्र घोड़े, दो सौ सतवारे हाथी और बहृत धन दिया। शि-अग्निमें होम करके ब्राह्मणोंकी पूजा करी। अनन्तर महाराज युधिष्ठिरकी अपना सब रत्न, सेना, धन और शरीर भी दे दिया। वे धन श्रीकृष्ण लाये थे, विवाह होनेके पश्चात् महाराज युधिष्ठिरने वह सब ब्राह्मणोंके दे दिया; महाराजने सहस्र गौ, अनेक प्रकारके वस्त्र, रत्न, भूषण, खादु भोजन और अन्य प्रकारकी पीनेकी वस्तु दान करी। इस विवाह होनेसे उन सबसे बड़ा नगरनिवासी प्रसन्न हुए और नगरकी भी शोभा बहृत बढ़ी।

७० अध्याय विराटपर्व समाप्त ।

जो मनुष्य इस विराट पर्वको सुनकर अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणकी वस्त्र, धन और सुवर्ण देता है, उससे सब देवता प्रसन्न होते हैं, महाभारत वाचनेवाला ब्राह्मण जिसके प्रसन्न होता है, उस मनुष्यपर सब देवता कृपा करते हैं, विराटपर्व सुननेके पश्चात् अपनी शक्तिके अनुसार दूध, घी, और चीनीसे ब्राह्मण भोजन कराना चाहिये, ऐसा करनेसे प्रफल होता है।

इति श्रीभाषा महाभारत में विराटपर्व समाप्त ।

विराटपर्व सम्पूर्ण ।

महाभारत ।



उद्योगपर्व ।

श्रीगणेशाय नमः ।

“दोहा”

नर, नारायण, व्यास अरु
बन्दि सरस्वति पाय ।
भारतको भाषा करों,
सुजननको सुखदाय ॥

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन जनमे-
जय । इस प्रकार कुरुकुल अष्ट पाण्डवोंने
अपने सङ्ग्रियोंके संहित प्रसन्न होकर अभि-
मन्युका विवाह किया, फिर रात्रिभर सुखसे
अपने घरमें रहे और प्रातःकाल होतेही राजा
विराटकी सभामें आये । वह राजा विराटकी
सभा मणियोंसे खिची हुई, फूलोंकी माला-
ओंसे सुशोभित और सुगन्धित जलसे छिड़की
थी । उसीमें सब राजोंमें अष्ट पाण्डव लोग
आकर बैठे । उनके बैठतेही सब राजोंसे
पूजित बूढ़े महाराज विराट और द्रुपद आसनों-
पर बैठे । उनके पश्चात् श्रीकृष्ण बैठे । महाराज
द्रुपदके पास कृतवर्मा और बलदेव बैठे, राजा
विराटके पास महाराज युधिष्ठिर और श्रीकृष्ण
बैठे । राजा द्रुपदके सब पुत्र, भीमसेन, अर्जुन,
नकुल, सहदेव, प्रद्युम्न, सात्व, अभिमन्यु और
राजा विराटके महावीर पुत्र ये सब एकस्थान
पर बैठे । पाण्डवोंके तुल्य रूपवान और परा-
क्रमी द्रौपदीके पाच महावीर पुत्र मणिजटित
सोनेके सिंहासनों पर बैठे । जब उत्तम वस्त्र
और आभूषणधारी राजा लोग अपने अपने

योग्य आसनों पर बैठे चुके, तब वह राजोंसे
भरी सभा ऐसे शोभित हुई जैसे निर्मल तारोंसे
भरा आकाश शोभित होता है । सब पुरुषसिंह
राजोंने परस्पर कुशल प्रश्न किया, फिर आनन्द
की बात करके सब चुप होगये, और श्रीकृष्णको
ओर देखने लगे । सबकी यह इच्छा हुई, कि
हम सबको श्रीकृष्णने पाण्डवोंके निमित्त यहा
बुलाया है, इस लिये सबसे पहली यही कुछ
कहें । पुरुषसिंह राजोंकी इच्छाकी जानकर
कृष्ण कहने लगे ।

श्रीकृष्ण बोले, हे राजसिंह । आप सब
लोगोंकी विदित है, कि सुबलपुत्र क्ली शकु-
नीने महाराज युधिष्ठिरको किस प्रकार जुबैमें
जीता था ? किस प्रकार राज्य इनका छोना है ?
और किस प्रकार वनमें रहनेकी प्रतिज्ञा
करायी थी ? यद्यपि पाण्डवलोग अपने बलसे
संमस्त पृथ्वीको जीत सकते हैं, तथापि उन्होंने
सत्यकी ग्रहण करके मुनियोंका वेष धारण
किया और तेरह वर्ष वनमें बिताये । आप
लोग जानते हैं, कि इस तेरहवें वर्षमें राजा
विराटके यहा छिप कर रहनेसे महात्मा
पाण्डवोंने कैसे कैसे न सहने योग्य दुःखीको
सहा है ? परन्तु किसी प्रकार इस दुस्तर व्रत-
सेभी ये लोग पार हुए हैं । यहभी निश्चय है
कि, महाराज युधिष्ठिर अपने कुलके राज्यकी
इच्छा करते हैं । परन्तु इसके लिये किसी
दूसरेकी दूत बनाना चाहते हैं, सो हमारी
इच्छा यह है कि इस राज्य-प्राप्तिमें राजा

दुर्योधनकी भी हानि न हो, संगही पुरुषसिंह पाण्डवोंका धर्म और यशभी बढ़े, क्योंकि धर्म-राज अधर्मसे दुष्टके राज्य कीभी इच्छा नहीं करते, और धर्मसे एक गांवका स्वामी होनाभी अच्छा समझते हैं। और यहभी आप लोगों पर विदित है, कि यह राज्य पाण्डवोंके पुरुषोंका है, उसको छलसे कौरवोंने छीन लिया है। आप लोग जानते हैं, कि धृतराष्ट्रके पुत्रने कभी किसी युद्धमें महाराज युधिष्ठिरकी नहीं जोता, और यहभी प्रत्यक्षही है कि इन्होंने छलके वशमें होकर कैसे न सहने योग्य दुःख सहे हैं, तथापि महाराज युधिष्ठिर अपने मित्रोंके सहित धृतराष्ट्र पुत्रोंका कल्याणही चाहते हैं। महावीर पाण्डव लोग अपने उस धन और राज्यकी इच्छा करते हैं, जो उन्होंने स्वयम राजोंका जीतकर उत्पन्न किया है। यह भी आप लोगोंको विदित है कि धृतराष्ट्रके पुत्रोंने इनके मारनेके लिये बालकपनमें कितने यत्न किये थे ? वे लोग राज्य लेनेके लिये कितनी मूर्खता और दुष्टता करते हैं सो भी आप लोगोंसे छिपा नहीं है। महाराज युधिष्ठिरका धर्म और दुर्योधनके लोभके कहनेकी भी कुछ आवश्यकता नहीं है। महाराज युधिष्ठिर और दुर्योधनके सम्बन्धकी भी आप लोग जानते हो हैं। इन सब बातोंको विचार कर जो कुछ करन योग्य काम हो, उसकी सम्मति कीजिये। ये पांचो अपनी प्रतिज्ञा पालन करके सत्यका पालन कर रहे हैं। नहीं तो आज तक धृतराष्ट्र पुत्रोंका नाश कर देते। यही विचारकर इनके सब मित्र इनको सहायताको आये हैं। यद्यपि ये पांचोही अपने शत्रुओंके मारनेमें समर्थ हैं, क्योंकि राज्यप्राप्तिमें सब यत्न करते हैं, तथापि आप लोग इनको निर्बल जानकर इनके पास आये हैं। इस लिये हमारी सम्मतिमें एक पवित्र धर्मात्मा, कुलीन, पण्डित पुरुष दूत

होकर दुर्योधनके पास जाय। वहां वह शान्ति पूर्वक युधिष्ठिरका राज्य श्रीवैशम्पायन सुनि बोले, हे राजन्। प्राणके धर्म और अर्थसे भरे मोठे वचन कृष्णके वचनोंकी प्रशंसा करके श्रीवल बोले।

१ अध्याय समाप्त ।

श्रीवलदेवजी बोले, आप लोगोंने वचन सुने, ये वचन धर्म और अर्थ तथा महाराज युधिष्ठिर और राजा दुर्योधनोंहीकी सुख देनेवाली है। महाराज धृष्टिरने पहले ही दुर्योधनको आधा बाट दिया था, उसीको अब फिर चार्हा आधा राज्य देकर राजा दुर्योधन इन लो सङ्ग सुखसे रहें, और पुरुषवीर पाण्डव भी आधा राज्य पाकर शान्ति पूर्वक प्र सुख दें। राजा दुर्योधनकी सम्मतिको नेके लिये और महाराज युधिष्ठिरके कहनेके लिये एक दूत शान्ति कर हस्तिनापुर जाय ! वह दूत कुरुकुल महानुभाव भीष्म, धृतराष्ट्र, द्रोणाचार्य, व्यास, विदुर, कृपाचार्य, शकुनि और आदि प्रधान, सेनापति, और धृतराष्ट्रके आदि वीर धर्मात्मा, बुद्धिमान, बूढ़े, निवासियोंके बीचमें महाराज युधिष्ठिरके वचन सुनावे, परन्तु वे वचन ऐसे हो चाहिये जिसमें युधिष्ठिरका कल्याण हो। दूत कहै कि, “आप लोग किसी अवस्थामें भी पाण्डवोंको क्रोधित मत कीजिये, क्योंकि वे बनवास रूपी प्रतिज्ञासे पार हो गये और अब बद्धत बलवान भी हो गये हैं, आप लोगोंने राजा युधिष्ठिरका राज्य जुबमें छीना है, सो भी छलसे, क्योंकि कुरुकुल वीर युधिष्ठिरको सब मित्रोंने जुवा खेलनेसे हराया, तथापि उन्होंने जुवा खेला, वे जुवा

विद्याको भी नहीं जानते थे और शकुनि जुवेका पण्डित था, उसने छलसे इनको जीत लिया। राजा धृतराष्ट्रने कर्ण और दुर्योधनको नहीं छोड़कर युधिष्ठिरको जुवा खेलनेको बुलाया था, परन्तु सभामें सहस्रों अधर्मी इकट्ठे कर लिये थे। उन सबको महाराज युधिष्ठिर अपने बलसे जीत सकते थे, परन्तु उन सबको छोड़कर इन्होंने शकुनिहीसे जुवा खेला। उसने इनको जीत लिया। वह सदा जुवा खेलता रहरो है, और ये सदा जुवेसे विमुख रहते हैं। यह जुवा हठसे हुआ था, इस लिये शकुनिका कुछ अपराध नहीं है।

दूत राजा धृतराष्ट्रको प्रणाम करके ऐसेही ऐसे शान्ति भरे वचन कहे। ऐसा करनेहीसे दुर्योधन दूतके वचनोंको मानेगा। आप लोग पाण्डव और कौरवोंमें युद्ध करानेका यत्न मत कीजिये, शान्तिहीसे दुर्योधनको प्रसन्न कर लोजिये। शान्तिसे जो काम होता है, सो उत्तम है, युद्धमें अन्याय हो जाता है, इस लिये युद्ध अच्छा नहीं।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, यदुकुलवीर श्रीवलदेवजीके ऐसे वचन सुन सात्यकी क्रोधमें भरके खड़े हुए, और श्रीवलदेवजीके वचनोंका खण्डन करके इस प्रकार कहने लगे।

२ अध्याय समाप्त ।

सात्यकी बोले, हे बलदेव। पुरुष अपने आत्माके अनुसारही वचन कहता है, अर्थात् पुरुषकी जैसी आत्मा है, वैसीही वचन उसके मुखसे निकलते हैं। आपको जैसी आत्मा है, वैसीही आपने वचनभो कहे। जगतमें वीर और कादर दोनों ही होते हैं, और पक्षभी दानोहीका प्रबल दीखता है। एकही कुलमें वीर और कादर दोनों उत्पन्न होते हैं, जैसे एकही वृक्षकी दाँडालियां होती हैं, एक पर फल लगता है, दूसरी पर नहीं लगता। हे

बलभद्र। “इस कर्ममें शकुनिका कुछ अपराध नहीं” आपके इस वचनकी मैं निन्दा नहीं करता, परन्तु जिन्होंने इन वचनोंको सुनकर चमा करी उन्हींकी निन्दा करता हूँ। धर्मराजको थोड़ा दोष लगा करभी आप किस प्रकार निर्भय होकर सभामें प्रतिष्ठा चाहते हैं? जुवेकी विद्या न जानने वाले महात्मा धर्मराजको बुलाकर जुवेके जानने वाले शकुनिने अधर्मसे जीत लिया, क्या आप इसीको धर्म समझते हैं? यदि भाइयोंके सहित घरमें बैठे महाराज युधिष्ठिरको कोई जीत लेता तबतो धर्म होता। क्षत्रियोंके धर्मको माननेवाले युधिष्ठिरको घरमें बुलाकर अधर्मसे जीत लिया, इसे धर्म कौन कह सकता है? इतने परभी धर्मराज युधिष्ठिर क्यों विनयसे राज्य मांगेगे। वनवाससे छूटकर युधिष्ठिर अपने पिताके राज्यके अधिकारी होचके, तथापि ये पापके धनको लेनेकी इच्छा नहीं करते, ये कदापि दुर्योधनसे राज्य नहीं मांग सकेंगे। वे लोग कैसे धर्मात्मा हैं? उनका धर्मतो इसीसे प्रकट है, कि वनवासका समय बीतने परभी युधिष्ठिरको राज्य नहीं देते और कहते हैं, कि हम द्रोणाचार्य, भीष्म और विदुरकी आज्ञामें चलते हैं। भला वे अबभी पाण्डवोंका धन क्यों नहीं देते? हम प्रतिज्ञा करते हैं, कि उनको अपने तेज वाणोंसे जीतकर महात्मा युधिष्ठिरके पैरो पर गिरा देंगे। यदि वे लोग महात्मा युधिष्ठिरको प्रणाम न करेंगे तो अवश्यही मन्त्रियोंके सहित यमराजका दर्शन करेंगे। क्या उनकी यह शक्ति है, कि युद्ध करते हुए सात्यकीके वाणोंको सह सकें? हमें निश्चय है कि हमारे वाणोंसे वे लोग नष्ट हो जायगे जैसे वर्षासे पर्वत नष्ट होता है। कौन ऐसा वीर है, जो अर्जुन, कृष्ण, सात्यकी, बलवान भीम, महा धनुषधारी यमराज और

कालके समान क्रोधो नकुल सहदेव, विराट और महाराज द्रुपदको युद्धमें हरेख सकें ? कौन ऐसा बलवान है, जो युद्धमें पराक्रमी धृष्टद्युम्नसे जीता बच जाय ? कौन वीर पाण्डवोंके तुल्य पराक्रमी द्रोणपुत्र, देवतोंको भी जीतनेवाले समद्रोण अभिमन्यु, काल सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी साम्ब, गद और प्रद्युम्नसे युद्ध कर सकता है ? सो हम सब लोग धृतराष्ट्रपुत्रोंके सहित शकुनि और कर्णको मारकर युधिष्ठिरको राज्य देंगे । दुष्ट शत्रुओंके मारनेमें कुछ अधर्म्म नहीं है, परन्तु शत्रुसे भीख मागना अधर्म्म और अयशको बढ़ाता है । अब आप लोग आतश्यको छोड़कर युधिष्ठिरके कल्याणका यत्न कीजिये । हम प्रतिज्ञा करते हैं कि धृतराष्ट्रको युधिष्ठिरको राजा बनानाही होगा । यातो युधिष्ठिर राजा होंगे, या सब दुर्योधनदिक मरके पृथ्वीमें गिरेंगे ।

३ अध्याय समाप्त ।

महाराज द्रुपद बोले, हे महाबाहो । तुमने जो कुछ कहा सो सब ऐसेही होगा; क्योंकि दुर्योधन शान्तिसे राज्य नहीं देगा । राजा धृतराष्ट्र पुत्रके प्रेमसे, भोष और द्रोणाचार्य उनका अन्न खानेसे, तथा शकुनि और कर्ण मूर्खतासे दुर्योधनके सङ्गो होंगे । यद्यपि पहले शान्ति चाहनेवाले; पुरुषको श्रीबलदेवजीके कहनेके अनुसार ही चलना चाहिये, तथापि उनके वचन सुझे अच्छे नहीं लगते, क्योंकि दुर्योधन मोठे वचन कहनेके योग्य नहीं है वह महापापी और दुष्टवृद्धि है । जो पापी दुर्योधनसे मोठे वचन कहै, उसका वैसीही भूल है, जैसे गधेकी रक्षा और गजकी हत्या करनेवालेकी । वह दुष्ट मोठे वचन सुनकर हमारे पक्षको दुर्बल समझेगा । मूर्ख लोग कोमलतासे शत्रुको अपने वशमें समझ लेते हैं । हम तुम्हारे कहनेके अनुसारही करेंगे; अब

हम अपने मित्रोंको बुलानेके लिये दूत भेजते हैं, और, सेनाका उद्योग करते हैं । शीघ्र चलनेवाले दूत इसी समय हमारी आज्ञासे शल्य, धृष्टकेतु, जयत्सेन और केकय देशके राजोंके पास जायं, क्योंकि निःसन्देह दुर्योधनभी सब राजोंके पास अपने दूत भेजेगा, और लोग पहली बातको मानेंगे, इस लिये शीघ्रही राजोंके पास दूत भेजने चाहिये, क्योंकि बड़ा भारी काम करना है । राजा शल्यके पास पहली दूत जायं । वे अपने सङ्गी राजोंके सहित युद्ध करनेको आवें । पूर्वे समुद्र निवासी भगदत्त, अमितीजा, हार्दिक, उग्र, अम्बक, दीर्घ प्रज्ञ, सूर, रोचमान, बृहन्त, सेनाविन्द, सेनजित, प्रतिविम्ब, चित्रवर्मा, सुवास्तुक, वाल्हीक, सुज्जकेश, चैद्याधिपति, सुपार्श्व, सुबाहु, महारथ कौरव, शाक, पल्लव, दरद, सुरारि, नदीज, कर्णवेष्ट, नील, वीरधर्म्म, महाबलवान महायोद्धा दन्तवक्र, रुक्मो, जनमेजय, आपाद, वायुवेग, पर्वपाली, भूरितेजा, देवक, पुत्रोंके सहित एकलव्य, कार्ष्णक देशके राजा, बलवान क्षेमधूर्ति, काम्बोज, ऋषोक्, और हीपोंके राजा, जयत्सेन, काशिराज, पञ्जावके सब राजा, क्राथपुत्र, दुर्धर्ष, सब पर्वतो राजा, जानकी, सुशर्मा, मणिमान्य, अतिमत्स्यक, पाण्ड्यदेशके राजा, बलवान धृष्टकेतु, तुण्ड, दण्डधार, बलवान बृहत्सेन, अपराजित, निषाद, अणिमान, वसुमान बृहदल, वाहु, महोजा, परमरञ्जय, बलवान पुत्रोंके सहित राजा समुद्रसेन, उडव, क्षेमक, राजा वाटधान, अुतायु, दृढायु, बलवान शल्य पुत्र और महायोद्धा कलिङ्ग देशके राजाके पास हमारे दूत जायं और हमारा बुद्धिमान पुरोहित दुर्योधनके पास जाय । जो कुछ दुर्योधन, भोष, धृतराष्ट्रपुत्र और महारथ द्रोणाचार्यसे कहना हो, सो उनसे कह दिया जाय । ये वहुत बुद्धिमान और पण्डित हैं ।

४ अध्याय समाप्त ।

श्रीकृष्ण बोले, महाराज द्रुपदने जो कुछ कहा वह सब बद्धत उचित है, ऐसाही करनेसे महातेजस्वी युधिष्ठिरके कार्य सिद्ध होंगे। शान्तिकी इच्छा करनेवाले हम लोगोंको पहले ऐसाही करना चाहिये, नहीं तो हम लोग मूर्खके समान बैठेही रह जायेंगे। परन्तु हम लोगोंका दुर्ध्याधन और पाण्डवोंसे समानही सम्बन्ध है, इस लिये हम लोग किसीकी ओर होकर कोई काम नहीं कर सकते। इसके अतिरिक्त एक बात और भी है कि हम सब लोग अभिमन्युके विवाहके नेवतेमें यहां आये हैं, तब विवाह होत गया अब यहां रहनेका क्या काम है ? अब प्रसन्न होकर हम लोग विदा होते हैं, परन्तु आप हम सब लोगोंमें बूढ़े हैं, और पण्डितभी हैं, इस लिये हम सब लोग आपके शिष्योंके समान हैं ; और महाराज धृतराष्ट्र आपको बद्धत मानते हैं। इसके अतिरिक्त आप कृपाचार्य और द्रोणाचार्यके मित्रभी हैं। इस लिये आपही अपनी ओरसे पाण्डवोंकी सिद्धिके लिये एक दूत भेजिये। आप जो कुछ कह देंगे, सोई हम लोग सब मान लेंगे। यदि महाराज धृतराष्ट्र न्यायसे शान्त हो जायें तो कौरव और पाण्डवोंका युद्ध नहीं होगा, इससे सब भाइयोंमें प्रेम बना रहेगा। यदि महामानी धृतराष्ट्रपुत्र लोभ और भूलके वशमें होकर सन्धि न कर तो सब राजोंकी बुलानेके पीछे हम लोगोंकी बुलाइयेगा। उस समय मूर्ख दुर्ध्याधन भाई, वन्धु और मन्त्रियोंके सहित क्रोधी अर्जुनके वाणोंसे भरकर पृथ्वीमें गिर जायगा।

श्रीवैशम्पायन सुनि बोले, उसी समय महाराज विराटने श्रीकृष्णको भाई और बान्धवोंके सहित प्रसन्न करके विदा किया। जब श्रीकृष्ण शरिकाको चले गये, तब महाराज युधिष्ठिरने राजा विराटको सहायतासे युद्धकी काम्यो इकट्ठी करनी आरम्भ करी। फिर

महाराज द्रुपदने और राजा विराटने सब राजोंके यहां बान्धवोंके सहित बुलानेकी निमन्त्रण भेजे। कुरु कुलश्रेष्ठ पाण्डव, विराट और महाराज द्रुपदकी आज्ञासे अनेक महा बलवान राजालोग प्रसन्न होकर विराट नगरमें आये। राजा युधिष्ठिरको महासेना इकट्ठी करते सुन धृतराष्ट्रपुत्रनेभी माननीय राजोंकी बुलाना आरम्भ किया। हे राजन् ! उस समय राजोंसे सब पृथ्वी भर गई। समस्त पृथ्वीमें राजोंकी सेनाही दोखने लगी। हाथी घोड़े, रथ और, पैदलही चारो ओर दीखते थे। उस समय, समस्त पृथ्वी, पर्वत और नदियोंके समेत हिलने लगी। उस समय महाराज द्रुपदने बुद्धि और अवस्थामें बूढ़े अपने पुरोहितको कौरवोंके पास भेजा।

५ अध्याय समाप्त ।

महाराज द्रुपद बोले, सब जगतकी वस्तुओंमें प्राणी श्रेष्ठ है, और प्रणियोंमें बुद्धिसे जीनेवाले श्रेष्ठ है, बुद्धिसे जीने वालोमें मनुष्य श्रेष्ठ है, मनुष्योंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ है, ब्राह्मणोंमें वैद्य श्रेष्ठ है, वैद्योंमें युद्धिमान श्रेष्ठ हैं, बुद्धिमानोंमें चिकित्सा करनेवाले और चिकित्सकामें वेद जानने वाले श्रेष्ठ हैं। हमारो बुद्धिमें आता है कि आप सब बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ हैं, हमारो सम्मतिमें आप कुल, अवस्था और विद्यामें सबसे श्रेष्ठ हैं, आप बुद्धिमें आङ्गराष्ट्र युद्धके समान हैं, ऐसी कोई विद्या नहीं जिसका आप नहीं जानते ; आप महाराज धृतराष्ट्रके स्वभावकोभी अच्छी तरह जानते हैं, और कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरके स्वभावकोभी आप जानते हैं। धृतराष्ट्रके पुत्रोंने कुलसे युधिष्ठिरको जीता है, यहभी आप जानतेही हैं ; यद्यपि विदुर उनकी बद्धत समझते हैं, तभी वे अपनी पुत्रहीकी सम्मति मानते हैं ; शकुनिने युधिष्ठिरको बुलाकर जुवेमें जीता था ; महाराज युधिष्ठिर जुवा नहीं

जानते और शकुनि जुवाबें निपुण है, सहाराज युधिष्ठिर बल्लत पवित और सच्चे हैं, इसीसे शकुनिसे हार गये। उन्होंने कलसे युधिष्ठिरको जीता है, इससे हमें निश्चय होता है कि इनको वे लोग कदापि अपनी इच्छासे राज्य नहीं देंगे। आप धृतराष्ट्रके पास जाकर धर्मके सहित वचन सुनाइये जिससे उनके योद्धाओंके चित्त फिर जाय, आपके वचनमें विदुरभी सहायता देंगे। वे भीष्म, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य आदि वीरोंमें भेद करा देंगे। जब मन्त्रियोंमें भेद और योद्धाओंमें द्वेष हो जायगा, तब वे लोग उनको एकमें मिलानेकी चेष्टा करेंगे। इतनेही समयमें पाण्डव लोग सुख पूर्णका धन और सेनाका प्रवन्ध कर सकेंगे। जिस समय उनके सब वीरोंमें मेल रहेगा, और आपके जानेमें विलम्ब होगा तब वे लोग अपना सब प्रवन्ध ठोक कर लेंगे और सेना भी बल्लतसी इकट्ठी कर लेंगे। इसी लिये विशेषकर आप भेजे जाते हैं; आपके जानेसे राजा धृतराष्ट्र आपके धर्मयुक्त वचनोंको मानेंगे। आप बल्लत धर्मात्मा है, जब उनसे धर्म सहित वचन कहियेगा, तब सब कार्य सिद्ध हो जायंगे। सहाराज धृतराष्ट्रसे आप कहियेगा कि, पाण्डव लोग बल्लत दुःख सह चुके हैं, और वे लोग आपकी कृपा चाहते हैं, आप वंशमें बूढ़े हैं, इस लिये आप धर्म सहित रहिये। ऐसे ऐसे वचन कहकर आप उनके मनको निःसन्देह अपने वशमें कर लेंगे। आपको उन लोगोंसे कुछ भय भी नहीं है, क्योंकि आप वेद जानने वाली ब्राह्मण है और दूत धर्मको जानते हैं, विशेषकर बूढ़े हैं। इस लिये आप पुण्य नक्षत्र और जय मूर्हर्तमें हस्तिनापुरको यात्रा कीजिये। आपके जानेसे युधिष्ठिरकी कार्य सिद्ध होगी।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महात्मा द्रुपदकी आज्ञा सुन बूढ़े पुरोहित हस्तिनापुरको चले।

ये नीतिशास्त्रके जाननेवाली महात्मा अपने शिष्योंके सहित हस्तिनापुरकी चले।

६ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय ! पाण्डवोंने पुरोहितकी दूत भेजकर और राजोंके पास दूत भेजा। पश्चात् स्वयम पुरुष सिंह अर्जुन श्रीकृष्णको बुलानेकी दारिका गये

जिन दिन बलदेव और श्रीकृष्ण विधि और अश्वक तथा भोज वंशियोंके सहित दारिकाकी चले गये थे, उसी दिन धृतराष्ट्र दुर्गोधनने इन सब समाचारोंकी गुप्त दूतों द्वारा जान लिया था। जब उन्होंने सुना कि श्रीकृष्ण तेज घोड़ोंके रथपर बैठकर दारिकाकी चले गये, तभी राजा दुर्गोधन तेज घोड़ोंके रथपर बैठकर बल्लत सेनाके सहित दारिकाकी चले। जिस दिन दुर्गोधन दारिकाकी चले, उसी दिन अर्जुन भी दारिकाकी चले। ये दोनों पुरुषसिंह कुस्कुल अष्ट वीर एक ही दिन रमणीय दारिकापुरीमें पड़ेंगे, परन्तु पहले दुर्गोधन पड़ेंगे, और एक अच्छे आश्रम पर कृष्णके शिरकी ओर बैठ गये। उनके पीछे अर्जुन पड़ेंगे, वे हाथ जोड़कर कृष्णके पैताने खड़े हो गये। उसी समय कृष्णकी निद्रा खुली; उन्होंने मुह खोलतेही आँखें खड़े अर्जुनकी पहली देखा और पीछे शिर हाने बैठे, दुर्गोधनकी देखा। कृष्णने दोनोंकी उचित पूजा करी और दोनोंका सत्कार किया, फिर दोनोंसे आनिका कारण पूछा। उसी समय दुर्गोधनने हंसकर कृष्णसे कहा, आप इस युद्धमें हमारी सहायता कीजिये, आप हमसे और अर्जुनसे समानही प्रीति रखते हैं, और हमसे और अर्जुनसे आपका सम्मान भी समानही है, इसके अतिरिक्त हम आपके यहाँ पहले आये हैं, और यह नियम है कि महात्मा लोग पहले आये मनुष्योंका मानते

हैं। हे कृष्ण! आप इस समय सब जगतके विद्वानोंमें श्रेष्ठ हैं, आपका सब कोई सम्मान करते हैं, इस लिये आप सहायताओंके अनुसार हमारी सहायता कीजिये।

श्रीकृष्ण बोले, हे राजन्। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि आपही हमारे यहा पहले आये हैं, परन्तु हमने पहले कुन्तोपुत्र अर्जुनहीको देखा है। हे दुर्योधन! आप पहले आये और अर्जुनको पहले देखा इस लिये हम दोनोंकी सहायता करेंगे। हमने ऐसा सुना है कि लड़कोंका कार्य सिद्ध करना चाहिये, इस लिये अर्जुनहीको सहायता देना उचित है। हमारे समान युद्ध करनेवाले एक अर्बुद ग्वालिये हमारे यहां रहते हैं, वे नारायणके नामसे प्रसिद्ध हैं और महावीर हैं, हम एक ओर उनको रखते हैं, और एक ओर आप होते हैं वे लोग युद्ध करेंगे और हम युद्धमें शस्त्रभी नहीं छुवेंगे। हम दोनोंमेंसे जिसकी जिसे लेनेकी इच्छा हो उसे ले; परन्तु पहले अर्जुनको भागना चाहिये क्योंकि धर्मसे यही प्रथम भागनेके अधिकारी है।

श्रीवैशम्पायन सुनि बोले, तब अर्जुनने कृष्णहीको मागा; क्योंकि कृष्ण शत्रुओंके नाश करनेवाले, मायाविशधारी तथा देव, दानव और मनुष्योंके जीतनेवाले थे। हे जनमेजय! राजा दुर्योधनने पहले कही एक अर्बुद नारायणी सेनाको मागा। क्योंकि उसने जान लिया कि कृष्ण हमारो ओर नहीं जायंगे। उस सब सेनाको लेकर राजा दुर्योधन महापराक्रमो बलदेवके पास गए और उनसे अपने पानेका प्रयाजन कह सुनाया। तब श्रीबलदेवजीने दुर्योधनसे कहा।

श्रीबलदेवजी बोले, हे पुरुषसिंह। हे कुरु-
नन्दन। हम इन सब विषयोंकी पहलीहीसे जानते थे, और अभिमन्युके विवाहके समय

राजा विराटकी सभामें हमने तुम्हारे लिये कृष्णसे वृद्धत कहा भी था। हे राजा! हमने यह भी दिखलाया था कि दुर्योधन और युधिष्ठिरसे सम्बन्ध भी तुल्यही है, परन्तु कृष्णने हमारे वचनोंकी नहीं माना और हम कृष्णकी बिना क्षणमात्र भी कहीं नहीं रह सकते, इस लिये हम दोनोंमेंसे किसीकी भी सहायता नहीं करेंगे। तुम सब राजोंमें श्रेष्ठ भरत वंशमें उत्पन्न हुए हो, सो जाकर क्षत्रियोंके धर्मके अनुसार युद्ध करो, हम किसी ओर भी नहीं जायंगे।

श्रीवैशम्पायन सुनि बोले, बलदेवजीकी निश्चयबुद्धि जान उनको प्रणामकर और कृष्णकी दूसरीओर समुक्त राजा दुर्योधनने अपनी विजयका निश्चय किया, और कृतवर्म्माके पास गए। कृतवर्म्माने एक अक्षौहिणी सेना महाराज दुर्योधनको दी। इन सब सेनाओंको लेकर महाराज दुर्योधन वृद्धत प्रसन्नता पूर्वक हस्तिनापुरको लौटे।

दुर्योधनके जानेके पश्चात् पीताम्बरधारी जगतकर्त्ता श्रीकृष्णजीने अर्जुनसे कहा, तुमने सब सेनाको छोड़ कर अकेले हमको क्यों मागा?

अर्जुन बोले, हे कृष्ण। आप अकेलेही उन सबको मार सकते हैं और मैं भी अकेलाही उन सबको मार सकता हूँ; जगतमें आपको कीर्ति वृद्धत है, आपको हमारी ओर चलनेसे हमारा यश हागा और हम यशहीको इच्छा करते हैं। इसके अतिरिक्त वृद्धत दिनसे हमारी यह इच्छा है कि आप हमारा रथ हांके, सो अब आपको रथ हांकना होगा।

श्रीकृष्णजी बोले, हे अर्जुन! तुमने जो कहा सो सब सत्यही है, हम अवश्य तुम्हारा सारथी वनेंगे।

श्रीवैशम्पायन सुनि बोले, इस प्रकार कृष्णकी सहित प्रसन्न हो अनेक उत्तम यदुवंशियोंकी

सड़ लेकर अजून फिर महाराज युधिष्ठिरके पास आते ।

०

७ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, राजा शल्य दूतोंके आतेही वृद्धत सेना और महारथ पुत्रोंके सहित पाण्डवोंको सहायताकी चले । यह सेना मार्गमें दो कोसतक ठहरती थी । महा पराक्रमी शल्यके सड़ एक अर्द्धहिणी सेना थी । उसमें विचित्र आभूषण, विचित्र रथ, घोड़े, माला, वस्त्र, कवच, ध्वजा और धनुषधारी अनेक वीर थे, वे सब लोग अपने देशके अनुसार आभूषण धारण किये थे । उसके सेनापति भी महा पराक्रमी और महासूर वीर थे । वे लोग अपनी सेनाको धीरे धीरे चलाते पृथ्वीको कपाते और सब प्राणियोंको डराते महाराज युधिष्ठिरके पास चले । जब राजा दुर्योधनने सुना कि महारथ शल्य वृद्धत सेनाके सहित महाराज युधिष्ठिरकी सहायताको जाते हैं, तब उन्होंने आपही मार्गमें आकर राजा शल्यसे भेंट करी । राजा दुर्योधनने उनके मार्गमें अनेक रत्नोंसे चित्रित विचित्र सभा बनवाई, रमणोय देशोंमें अनेक शिल्पकारोंको मजदूर अनेक उत्तम स्थान बनवाये, उनमें माला, खानेके योग्य मांस और अनेक पौनेकी वस्तु रखवा दीं । मार्गमें अनेक सुन्दर कुएँ, अनेक प्रकारकी बावड़ियाँ और जलके स्थान भी बनवाये । उन सब सभाओंमें ठहरते हुए और दुर्योधनके मन्त्रियोंसे देवताके समान पूजा पाते हुए राजा शल्य चलने लगे । एक दिन राजा शल्य देवताओंके स्थानके समान बनी हुई उत्तम सभामें पड़ंचे । उसको देखकर उन्होंने जाना कि यह मनुष्योका बनाया हुआ स्थान नहीं है, और उन्होंने अपनेको इन्द्रके समान माना, परन्तु वे अभीतक यही जानते थे कि हमारा यह सब सत्कार युधिष्ठिरकी ओरसे हो रहा है । उस

दिन उन्होंने प्रसन्न होकर सेवकोंसे पूछा, युधिष्ठिरके कौनसे सेवकोंने इस सभाको बनाया है ? उनको शीघ्र हमारे पास बुला लावो, हम प्रसन्न होकर उन्हें पारितोषिक देना चाहते हैं, राजा युधिष्ठिर हमारे इस पारितोषिक देनेसे प्रसन्न होंगे । राजा दुर्योधनके दूतोंने उसी समय जाकर दुर्योधनसे कह दिया । जब राजा दुर्योधनने जाना कि अब राजा शल्य अपना प्राणतकभो देनेको उपस्थित हैं, तब छिपकर उनके पास गये, राजा शल्यने उनको देखतेही जान लिया कि इसीका यह सब यत्न है । तब प्रसन्न होकर कहा कि जो तुम्हारी इच्छा हो सो मागो ।

दुर्योधन, बोले, आप अपने वचनको सत्य कोजिये, और हमारे सेनापति हर्जिये । श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, दुर्योधनके वचन सुन शल्य बोले, जाँ तुमने कहा सो वैसेही होगा और जो कहनाही सो कहो ?

दुर्योधनने कहा आपने सब कुछ किया ! शल्य बोले, हे पुरुषसिंह दुर्योधन ! तुम हस्तिनापुरको चले, जावो, मैं शत्रुनाशन युधिष्ठिरको देखने जाता हूँ, क्योंकि पुरुषसिंह युधिष्ठिरको देखनेकी मेरी बृद्धत इच्छा है । दुर्योधन बोले कि आप वहाँसे शीघ्र लौटें, क्योंकि हम आपहीके आधीन हैं, और अपने वरदानकाभो ध्यान रखना ।

शल्य बोले, हे राजन् ! हम वृद्धत शीघ्र लौटेंगे । परस्पर ऐसे बातकर दोनों चल दिये । राजा दुर्योधन हस्तिनापुरकी गये और महा राज शल्य यह सब समाचार कहनेकी पाण्डवोंके यहाँ गये । उनके नगरमें जाकर राजा युधिष्ठिरको छावनीमें गये । वहाँ जाकर राजा शल्यने सब पाण्डवोंको बैठे देखा । राजा शल्यको देखतेही पाण्डव लोग खड़े हो गये और पाद, अर्घ तथा गजसे पूजा करी । फिर शत्रुनाशन महाराज शल्यने प्रेममें भरके राजा

युधिष्ठिरकी अपनी छातीसे लगाया । इसी प्रकार भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव और कृष्णसभी मिले । फिर आसनपर बैठकर युधिष्ठिरसे बोले, हे राजशार्दूल ! हे जोतने वालोंमें श्रेष्ठ ! हे कुरुनन्दन ! कहो, तुम कुशलसे तो हो ! हे राजेन्द्र ! हे कुरुनन्दन ! तुम अपने भाई और द्रौपदीके सहित प्रारब्धहीसे कूटे । हे राजन् ! तुमने बहुत भारी काम किया, जा शरह वर्ष निर्जन वनमें रहे और एक वर्ष क्षिप कर रहे । राज्यभ्रष्टकी सुख कहा है । इसी लिये तुमने ये सब दुःख भोगे । इस दुःखार्थनके दिये हुए दुःखसे तुम शीघ्रही पार होगे और सब शत्रुओंको मारकर शोधही राज पाओगे । हे महाराज ! तुम जगतकी सब बातोंको जानते हो ! हे प्यारे युधिष्ठिर ! तुम पुराने राजोंके समान धर्म करते हो । तुम दान, तप, क्षमा, इन्द्रियजीतना, सत्य और अहिंसामें तत्पर हो । यह सब जगत तुम्हारीही शक्तिसे स्थिर है । हे राजेन्द्र ! तुम कोमल वाणीवाले ब्राह्मणोंके भक्त दाता और धार्मिक हो । तुम्हारे गुण जगतमें विदित हैं । हे प्यारे युधिष्ठिर ! तुम इस सब जगतको जानते हो, तुम प्रारब्धसे इस व्रतके पार होगये । हे पृथ्वीनाथ ! हम प्रारब्धहीसे आपको भाइयोंके सहित सब दुःखसे पार हुए देखते हैं ।

और्विशम्पायन मुनि बोले, तब राजा शल्यने दुःखार्थनके मिलनेका सब समाचार युधिष्ठिरसे कह दिया ।

महाराज युधिष्ठिर बोले, हे राजन् ! हम प्रसन्न होकर कहते हैं कि आपने जो दुःखार्थनको वरदान दिया सो बहुत अच्छा किया, हे वीर ! हमभी एक वरदान आपसे मागना चाहते हैं, सो न करनेके योग्य काम भी आपको हमारे लिये करना होगा । आप कृष्णके समान योद्धा हैं, इस लिये यह वरदान आपसे मागता हूँ । हे राजसिंह ! जिस समय कार्य

और अर्जुनमें युद्ध होगा, उस समय आप अवश्य कर्णके सारथी बनेंगे ; तब आपको अर्जुनकी रक्षा करनी होगी, यदि आप हमारे प्यारे मामा हैं, तो यह वरदान देनाही होगा । इसके अतिरिक्त उस युद्धमें आप कर्णके बलको घटाइयेगा, इससे हमारी विजय होगी । हे मामा ! यद्यपि यह कर्म आपको याग्य नहीं है, तथापि आपको हमारे प्रेमसे करना होगा ।

शल्य बोले, हे पाण्डव ! तुम्हारा कल्याण हो, तुम जो हमसे कर्ण और अर्जुनके युद्धका वरदान मागते हो, सो हम निश्चय कर्णके सारथी बनेंगे । तुम जो हमको कृष्णके समान योद्धा कहते हो, इसका उत्तर हम युद्धमें देंगे ; क्योंकि ऐसा कहनेको यहा कोई आवश्यकता नहीं थी । हम प्रतीक्षा करते हैं कि, हम ऐसा यत्न करेंगे कि जिसमें कर्णका बल घटे । हे प्यारे ! तुमने जा कुछ कहा हम सब वैसेही करेंगे, और भी जहा तक हमारी शक्ति जागी तुम्हारा कल्याण हम करेंगे । तुमने जा द्रौपदीके सहित जवमें दुःख पाया है, कर्णने जा कठोर वचन तुमसे कहे हैं, जटासुर आर काचकन जा कुछ द्रौपदीका दुःख दिये हैं, उन सबका नाश हाकर तुम्हें सुख मिलेगा । हे वीर ! हे महातेजस्वी ! इन सबमें तुम्हें कुछ शक नहीं करना चाहिये ! प्रारब्ध बड़ा बलवान है, महात्मा आका दुःख हातही है, देवता लागोंका भी दुःख सहन हात है । हमने सुना है कि अपना स्वाकी सहित देवराज इन्द्र भी बहुत दुःख सहें थे ।

८ अध्याय समाप्त !

युधिष्ठिर बोले, हे राजेन्द्र ! महात्मा इन्द्रने इन्द्राणोंके सहित कब धार दुःख सहें थे ?

इसको हम सुननेको इच्छा करते हैं, आप कहिये ।

शल्य बोले, हे राजेन्द्र ! जिस प्रकार इन्द्रने इन्द्राणीके सहित घोर दुःख सहा था, सो पुराना इतिहास हम तुमसे कहते हैं, सुनो ।

पहले समयमें महातपस्वी देवर्षिष्ठ तपस्वी प्रजापति थे । उन्होंने इन्द्रको शत्रुतासे त्रिशिरा नामक पुत्रको उत्पन्न किया । उस महातेजस्वी तीन शिरवाले विश्वरूपने इन्द्रासन छीननेकी इच्छा करी । उसके तीनों शिर चन्द्रमा, सूर्य और अग्निके समान थे, वह एक मुखसे वेद पढ़ता था, एकसे मद्य पीता था, और एकसे सब और इस प्रकार देखता था, मानो सबकी खा जायगा । हे शत्रुनाशन ! वह तपस्वी शान्त द्वान्द्वयजित तथा धर्म और तपको करनेवाले थे, उन्होंने घोर तप किया । उन महातेजस्वीके तप और सत्यको देखकर इन्द्रका शङ्का हुई कि यह इन्द्र न ही जाय । इन्द्रने विचारा कि इसका तप किस प्रकार नष्ट होय, और यह किस प्रकार भोगोंकी इच्छा करे, क्योंकि इसकी हृदि होनेसे सब लोकका नाश हो जायगा । बुद्धिमान इन्द्रने बहूत विचारकर उसके तप नाश करनेके लिये अप्सराओंको आज्ञा दी । इन्द्रने अप्सरा-आसे कहा तुम लोग शीघ्र त्रिशिराके पास जाकर ऐसा उपाय करो जिसमें वह काम-देवके वशमें होय, तुम लोग शृङ्गार करके बाल गूथकर मनोहर चार पहनकर अपना रूप सुन्दर बनाकर हाव भावसे विश्वरूपका अपने वशमें करी, क्योंकि उसका तप देखकर मैं बहूत असावधान हो रहा हूँ, सुभकी उससे बहूत भय है, तुम लोग इस भयको दूर करो ।

अप्सरा बोलीं, हे इन्द्र ! आपने जो कुछ कहा सो हम वैसाही यत्न करेंगी, आप विश्वरूपसे कुछ भय मत कीजिये ; यह जो अपने

तेज भरे नेत्रों से जगतकी जलाये देता है, उस विश्वरूपको हमलोग अपने वशमें करनेकी जाती है । राजा शल्य बोले, इन्द्रकी आज्ञा सुन वे सब अप्सरा स्वर्गसे चलीं और जाकर विश्वरूपको अनेक भावोंसे मोहित करने लगीं । वे सब अपने सुन्दर शरीरोंकी दिखाने लगीं ; परन्तु उनके देखनेसे महा तपस्वी विश्वरूपको कुछभी विकार न हुआ । वे अपने द्वान्द्वियोंको वशमें करके पूर्ण समुद्रके समान खड़े रहें । अप्सरा अनेक यत्न करके इन्द्रके पास लौट गईं । और जाकर हाव जाड़ इन्द्रसे बोलीं, हे देवराज ! वह महा-तपस्वी हमारे वशमें होने योग्य नहीं हैं, अब जो आपकी आज्ञाहो सो हम करें । बुद्धिमान इन्द्रने उनकी प्रशंसा करके सबकी विदा किया । फिर उसके मारनेका विचार करने लगे । महा प्रतापो देवराज एकान्तमें बैठकर विश्वरूपके मारनेका उपाय साधने लगे । बुद्धिमान इन्द्रने विश्वरूपके मारने का उपाय निश्चय कर लिया, और विचारा कि उसको शिरमें वज्र मारूंगा, उससे यह भा जायगा । इन्द्रने शास्त्रके निश्चयसे विचारा कि बलवानकीभी यह उचित नहीं कि अपने दुर्बल शत्रुको जीता छोड़े । अनन्तर इन्द्रने क्रोध करके अग्निके समान घोररूपको वज्रको त्रिशिराके शिरमें मारा । उसके लगनेसे त्रिशिरा ऐसे झरकर पृथ्वीमें गिरा जैसे पर्वतका शिखर टूटकर गिरता है । उसे मरा हुआ और पर्वतके समान पृथ्वीमें गिरा हुआ देख करभी इन्द्र उसके तेजसे शान्त न हुए, अर्थात् तब भी डरतेहो रहे । वह मरा हुआ भी अपने तेजमें जीतेके समान प्रकाशित हो रहा था । उस मरे हुएके शिरभी जीते हुएके समान दीखत थे । तब इन्द्र भयसे व्याकुल और खड़े होकर सोचने लगे । इतनेहीमें फरसा लिये तब आगये । जहां डरे हुए इन्द्र खड़े थे वहीं

तत्त पङ्कचे। तव इन्द्रने तत्तसे कक्षा, कि
तुम हमारी आज्ञासे शीघ्र इसके शिर काट
दो। तत्त बोले, इसके शिर बद्धत भारी है,
मेरे काटनेसे नहीं काट सकते और मैं इस
नीच कर्म्मकी करना भी नहीं चाहता।

इन्द्र बोले, तुम कुछ भय मत करो और
हमारी आज्ञाकी पालन करो, हमारी कृपासे
तुम्हारा फरसा बंजुके तुल्य ही जायगा।

तत्त बोले, हम नहीं जानते कि घोर कर्म्म
करनेवाले तुम कौन हो? तुम हमसे अपना
समाचार कहो।

इन्द्र बोले, तुम हमकी देवराज इन्द्र जानी,
और बिना विचारे हमारी आज्ञाकी पालन
करो।

तत्त बोले, हे इन्द्र। इस नीच कर्म्मकी
करके तुम्हें लज्जा क्यों नहीं होती? क्या
इस ऋषि-पुत्रके मारनेसे तुम्हें ब्रह्महत्याका
भय नहीं है? इन्द्र बोले, हमने इस महा
पराक्रमी शत्रुकी वज्रसे मारा है, इसके पीछे
मायशक्ति कर लेंगे। हे तत्त। मैं अब भी इसके
भयसे घबड़ा रहा हूं, तुम शीघ्र इसके शिर
काटो, मैं तुम्हारे ऊपर बद्धत कृपा करूंगा।
आजसे मनुष्य जो यज्ञ किया करेगा उसमें
शुभ्रोंका शिर तुम्हें मिला करेगा, यही
पा हम तुम्हारे ऊपर करते हैं, तुम शीघ्र
इसके शिर काटो।

शल्य बोले, हे राजन्। इन्द्रकी ऐसे वचन
न तत्तने उनी समय फरसेसे त्रिशिराके
ऊपर काट लिये। जब उसके शिर काट चुके
थे, उसके शरीरसे अनेक पक्षी निकलने
लगे, तीतर, सफेद तीतर और कलविड़
दि अनेक पक्षी निकले। विश्वरूप जिस
उसे सोम पीते थे, उससे सफेद तीतर
निकले। जिससे सब और देखते थे, उन सुखसे
निकले। हे पाण्डव। हे पुष्कोनाथ।
इन्द्र जिस सुखसे मद्य पीते थे, उस सुखसे

सफेद तीतर निकले, और उसी सुखसे बाज
भी निकले। हे पुरुषसिंह। विश्वरूपका शिर
काटनेसे इन्द्र बद्धत प्रसन्न हुए और प्रसन्न
होकर स्वर्गकी चले गए। उसी समय तत्त
भी अपने घरकी चले गये। दैत्यनाशक इन्द्र
विश्वरूपकी मारकर अपनेकी कृत्यकृत्य जानते
लगे। जब विश्वरूपकी पिता त्वष्टा प्रजापतिने
सुना कि मेरे पुत्र विश्वरूपकी इन्द्रने मार
हाला, तब क्रोधमें भरकर ऐसा कहने लगे।

त्वष्टा बोले, इन्द्रने क्षमावान, दयावान
जितेन्द्रिय मेरे पुत्रकी तप करते हुए बिना
अपराध मार हाला, इस लिये मैं वृत्रासुरकी
उत्पन्न करता हूं। आज हमारे तपोबलकी
सब लोक देखें; दुरात्मा पापी इन्द्र भी आज
हमारी तपस्याकी बलकी देखे। ऐसा कहकर
महायशस्वी और महातपस्वी त्वष्टाने शु
जलकी स्पर्श किया। उसके पश्चात अग्नि
हवन करके घोररूपी वृत्रासुरकी उत्पन्न
किया। फिर उससे बोले, हे इन्द्रकी शत्रु। तुम
हमारे तपके बलसे बढो त्वष्टाके वचन निका
लतेही वृत्रासुर चन्द्रमा अग्नि और सूर्यके
समान तेजस्वी होकर आकाशतक बढ गया।
फिर त्वष्टामे बोला कि हम आपके दास हैं,
कन्हिये क्या करें?

त्वष्टा बोले, तुम इन्द्रकी जीतो। उनके
वचन सुनतेही वृत्रासुर स्वर्गकी चला गया।
तब वृत्रासुर और इन्द्रका घोर युद्ध हुआ।
हे कौरव। उस घोर युद्धने वीर वृत्रासुरने
यज्ञकर्त्ता इन्द्रकी पकाड़ लिया। फिर वृत्रा-
सुरने इन्द्रकी अपने सुखमें डाल लिया। फिर
अपने सुखकी वन्द कर लिये। जब इन्द्रकी
वृत्रासुर खा गया! तब सब देवता ध्वड़किये।
उसी समय उन्होंने उमुहाईक उत्पन्न किया
उस जमुहाईसेही वृत्रासुरका नाश हुआ,
क्योंकि जमुहाई लेनेसे वृत्रासुरका मुह फैल
गया। उसी समय अपने शरीरकी कीटा उना

कर बल नाशक इन्द्र निकल गये । उसी दिनसे जमुहार्दे सब जगतमें फैल गई । इन्द्रकी निकलते हुए देख सब देवता प्रसन्न हुए । फिर वृत्रासुर और इन्द्रका घोर युद्ध होने लगा । हे भरतकुल सिंह ! यह युद्ध बहुत दिन तक होता रहा, जब लष्ठाके तपोबलसे वृत्रासुरकी बहुत बुद्धि हुई । तब इन्द्र युद्ध छोड़कर भाग गये । तब देवता बहुत घबड़ाये । लष्ठाके तपोबलसे सब देवताओंकी बुद्धि नाश हो गई । तब देवतीने सुनियोंके सङ्ग सम्मति - करी । हे राजन् ! देवता लोग कहने लगे कि अब क्या करना चाहिये ? अनन्तर सब देवता भयसे व्याकुल होकर मन्दराचलके शिखरपर बैठे और अविनाशी विष्णुका ध्यान करके वृत्रासुरके नाशको इच्छासे लोग महात्मा विष्णु के पास चले, कि उन महात्माके पास चलनेसे वृत्रासुरके मारनेका उपाय जाना जायगा ।

६ अध्याय समाप्त ।

शल्य बोले, इन्द्रके, ऐसे वचन सुन सब देवता और ऋषि शरणागतपर कृपा करनेवाले विष्णुके पास गये । महा बलवान महात्मा विष्णुके पास जाकर देवता बोले, हे विष्णु ! हम लोग वृत्रासुरके भयसे व्याकुल हो गये हैं, आपकी तीनों गुणोंसे पहले तीनों लोक आप थे; आपने अपने बलसे दैत्योंसे अमृत छीना था और उनकी युद्धमें माराभी था, आपने महा पराक्रमी बलिकी बाधकर इन्द्रको देवराज बनाया था, आप सब देवताओंके स्वामी हैं, आपसे तीनों लोक व्याप्त हैं; आप देवताओंके महादेव हैं, आपको सब लोक नमस्कार करते हैं, हे देव-श्रेष्ठ ! आप इन्द्रके सहित देवताओंकी शरण दें, आप जगतके स्वामी हैं, हे दैत्यनाशक ! इस समय तीनों लोकमें वृत्रासुर व्याप्त हो रहा है ।

विष्णु बोले, हमकी अवश्य आप लोगोंका कल्याण करना चाहिये, इस लिये हम वृत्रासुरके नाशका उपाय बताते हैं, आप सब देवता और ऋषि लोग उस विश्वरूपधारी राक्षसके पास जायें और सन्धि करलें, इसके पश्चात् हमारे तेजसे इन्द्रकी विजय होगी, हम इन्द्रके उत्तम शस्त्र वज्रमें प्रवेश कर जायेंगे, परन्तु हमें कोई नहीं देखेगा, हे देवता ! आप लोग ऋषि और गन्धर्वोंके सहित वृत्रासुरके पास जाकर इन्द्रकी सन्धि करा दें । इसमें विलम्ब मत करें ।

शल्य बोले, विष्णुकी ऐसी आज्ञा सुन देवता और ऋषि इन्द्रकी आगि कर बचासे चल दिये । फिर वृत्रासुरके पास जाकर महा तेजसी देवताोंने अपने तेजसे दशोंदिशाओंकी प्रकाशित करते हुए वृत्रासुरको देखा । उस समय वृत्रासुरका ऐसा तेज बढ़ा था, मानो वह तीनों लोकोंको खा जायगा । उसके दोनों नेत्र चन्द्रमा और सूर्यके समान प्रकाशित हो रहे थे । पहले वृत्रासुरके पास जाकर ऋषि लोग मोठे वचन बोले, हे दुःखसे जीतनेयोग्य । इस समय तीनों लोक तुम्हारे तेजसे भर गये हैं, हे बलियोंमें श्रेष्ठ ! तुम बहुत दिनसे इन्द्रके सङ्ग युद्ध कर रहे हो, परन्तु उनकी जीत नहीं सकते हो, तुम दोनोंके युद्धसे देवता, मनुष्य और राक्षसोंके सहित सब प्रजाको दुःख होता है, इस लिये तुम इन्द्रके सङ्ग मित्रता कर लो । महा पराक्रमी वृत्रासुर ऋषियोंके वचन सुन उनकी प्रणाम कर कहने लगा, तुम सब लोग ऋषि और गन्धर्व हमसे जो कहते हो, सो हमने सुना । हे पाप-रहितो ! हमकीभी जो कुछ कहना है, सो आप सुनें, हमारे और इन्द्रके सङ्ग मित्रता कैसे हो सकती है ? क्योंकि हम दोनोंही महा पराक्रमी हैं ?

ऋषि लोग बोले, मनुष्यकी उचित है कि सदा महात्माओंकी सङ्गति करे, फिर कल्याण ही प्राप्त होता है । इस लिये महात्माओंकी

वृद्धतिको नहीं छोड़ना चाहिये । महात्माओंकी भवता अचल होती है और आपत्तिके समयमें महात्मा लोग धर्मका उपदेश करते हैं, इस लिये सत्यरूप पण्डितोंकी सङ्गकी न छोड़े । इन्द्र सब महात्माओंमें श्रेष्ठ है, और महात्माओंके सङ्गही रहना अच्छा है, और इन्द्र सत्य-शरीर, महात्मा, धर्मको जानने वाले और धर्मात्मा है, इस लिये इन्द्रके सङ्ग तुम्हारी सन्धि होनी चाहिये, यह सन्धि सदाके लिये रहेगी । इस प्रकार उसका विश्वास बढ़ाकर देवतोने उसकी बुद्धिको अपने वशमें कर लिया ।

शत्रु बोले, हे राजन् युधिष्ठिर ! महातजस्वी वृत्रासुरने ऋषियोंके वचन सुन कहा कि हमको आप लोगोंके वचन अवश्य मानने चाहिये, परन्तु यदि आप लोग हमारे वचनको करें तो मैं आप लोगोंके सब वचनको मानूंगा । हे ब्राह्मण-ऋषियो ! मैं सब देवतोके सहित इन्द्रके हाथसे सुखे, गोले पत्थर, काठ, शस्त्र और अस्त्र सभी न दिनमें और रातमें मारा जाऊंगा । ऐसा करनेसे मैं इन्द्रके सङ्ग सन्धि करूंगा । हे भरत-कुल-श्रेष्ठ युधिष्ठिर ! वृत्रासुरके ऐसे वचन सुन ऋषियोंने कहा कि बृद्धत अच्छा ऐसेही होगा । फिर इन्द्र और वृत्रासुरकी सन्धि हो गई । इस सन्धिसे वृत्रासुर और इन्द्र दोनों प्रसन्न हुए, और सुखसे सङ्ग रहने लगे, परन्तु इन्द्र वृत्रासुरके मारनेका छिद्र देखने लगे और घबड़ाते हुए दिन काटने लगे । एक दिन मन्थरा समय दारुण सुहर्तमें इन्द्रने वृत्रासुरको ससुद्रके पटपर धूमते देखा, उसी समय इन्द्रने महात्मा ऋषियोंके दरदानको स्मरण करके सोचा कि यह घोर सन्ध्याका समय है, अब न रात्रि है, अब दिन है और यह वृत्रासुर हमारा सङ्घनाश करनेवाला शत्रु है । इस लिये इसकी अवश्य मारना चाहिये, यदि मैं इस समय दलकर वृत्रासुरको न मारूंगा तो मेरा कल्याण नहीं होगा, क्योंकि यह बड़ा चलवान और बड़े

शरीरवाला है । ऐसा विचारकर इन्द्रने विष्णुका ध्यान किया । उसी समय ससुद्रमें एक पर्वतके समान फेन दिखाई दिया ! उसकी देखकर इन्द्रने विचारा कि यह न सुखा, न गीला, न शस्त्र और न अस्त्र है । इस लिये इसीसे वृत्रासुरको मारना चाहिये, इसके लगतेही यह मर जायगा । उसी समय इन्द्रने बज्रमें फेन लगाकर वृत्रासुरके शिरमें मारा । उस बज्रमें विष्णुने भी प्रवेश किया था, उसके लगतेही वृत्रासुर सरकर पृथ्वीमें गिर गया । वृत्रासुरके मरतेही दिशा निर्मल हो गई । शीतल वायु चलने लगा और प्रजा भी सुखी हो गई । उसी समय देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प और ऋषि लोग अनेक प्रकारसे इन्द्रकी स्तुति करने लगे । अपने शत्रुको मारकर इन्द्र देवतोंके सहित प्रसन्न हुए और सबकी स्तुति सुनकर सबकी शान्त करने लगे । फिर धर्म जाननेवाले इन्द्रने सब जगत श्रेष्ठ विष्णुकी पूजा करी । जब देवतोंको भय देनेवाला महा पराक्रमी वृत्रासुर मारा गया, तब इन्द्र इस विश्वासघात और पहली करी विश्वरूपको ब्रह्महत्यासे बृद्धत घबड़ाये । अनन्तर एकान्तमें जाकर संज्ञाशून्य होकर बैठ रहे । उस समय पापोंके वशमें होनेसे इन्द्रकी कुछ ज्ञान नहीं रहा ; वे जलमें छिपकर सापके समान रहने लगे । जिस समय ब्रह्महत्यासे डरकर इन्द्र भाग गये उस समय वनोंके वृक्ष सुख गये, भूमि नष्ट हो गई, नदियोंके जल सुख गये, तलाव जल रहित हो गये, जल नहीं बरसा इससे सब प्रजा घबड़ा गई । देवता और ऋषि भी कापने लगे, सब जगत उपद्रवोंसे भर गया । तब देवतोने घबड़ाकर विचारा कि हम किसी राजा बनावें । देव ऋषि भी घबड़ाये और नवीन इन्द्र बनानेकी सम्मति करने लगे ।

१० अध्याय समाप्त ।

शल्य बोले, हे राजन् युधिष्ठिर ! जिस समय इन्द्र चले गये, तब सब देवता और ऋषि लोग सम्मति करके कहने लगे कि श्रीमान् महाराज नहुषको इन्द्र बनाना चाहिये, क्योंकि ये तेजस्वी, यशस्वी और धार्मिक है। ऐसा विचार कर सब देवता और ऋषि नहुषके पास जाकर कहने लगे, हे पृथ्वीनाथ ! आप हम लोगोंके राजा हूजिये। ऐसा सुन राजा नहुष पित ऋषि और देवतोंसे बोले, हम बृहत् दुर्बल हैं, इस लिये आप लोगोंके राजा नहीं हो सकते; बलवानही राजा हो सकता है, और बल सदासे इन्द्रहीमें है। उनके बचन सुन ऋषि और देवता बोले, आप हम लोगोंके तपसे रक्षित होकर स्वर्गका राज्य कीजिये, क्योंकि बिना राजाके परस्पर द्वेष होनेका बृहत् भय है, इस लिये आप स्वर्गके राजा हूजिये। इन्द्र होतेही आपमें देवता, दानव यक्ष, राक्षस, ऋषि, पितर और गन्धर्व आदि सब प्राणियोंका तेज आ जायगा, इस लिये आप धर्म रक्षित स्वर्गका राज्य कीजिये। आप इन्द्र होकर देवता ऋषि और ब्राह्मणोंकी रक्षा कीजिये। हे युधिष्ठिर ! ऐसा कहकर सबने राजा नहुषको इन्द्र बनाया। वे भी धर्मसे तीनों लोकोंका राज्य करने लगे। इस दुर्लभ पदको पाकर धर्मात्मा नहुष इन्द्रका राज्य करने लगे। फिर अनेक देव कन्याओंको प्राप्त करके उनके सङ्ग अनेक प्रकारकी काम क्रीडा करने लगे। उत्तम कथा, मनोहर बाजे और मीठे स्वरवाली गीतोंको सनते हुए आनन्द करने लगे। विश्वावसु, नारद, गन्धर्व अप्सरा और ऊँहो ऋतु रूप धारण करके राजा नहुषके पास आने लगे। उनके सम्मुख उत्तम स्पर्शवाली सुगन्धयुक्त वायु चलने लगा। इस प्रकार राजा नहुष बृहत् दिन तक आनन्द करते रहे। एक दिन उनने

इन्द्रकी प्यारी स्त्री शचीको देखा; उसको देख नहुष सभासदोंसे बोले, इन्द्राणी हम पास क्यों नहीं आती ? यह इन्द्रकी प्यारी स्त्री हमसे क्यों प्रेम नहीं करती ? हम इन्द्र हैं, और तीनों लोकोंके स्वामी हैं, इस लिये शीघ्रही शची हमारे घरमें आवे। ऐसा सुनकर शची बृहत् घबड़ाई, और वृहस्पति शरण जाकर कहने लगी, हे ब्रह्मण ! आपकी शरणागत हूँ, आप हमकी नृप वचाइये; मैं सब लक्ष्णोंसे भरी और इन्द्र स्त्री हूँ, सदासे सुख किया है; आपने पहले मुझको आशीर्वाद दिया था, कि तू विधवा नहीं होगी; एककी स्त्री और पतिव्रता रहेगी, सो हे ब्रह्मन् ! हे ईश्वर ! आप अपने वचनोंको ! सत्य कीजिये। आप कभी भूल नहीं बोलते हैं, इस लिये आपके ये वचन सत्य होने चाहिये। भयसे व्याकुल इन्द्राणी वृहस्पति बोले, हे देवि ! तुमने हमसे कुछ कहा सो सब सत्यही होगा, तुम शीघ्रही स्वर्गमें आयी इन्द्रको देखोगी, इस लिये नहुषसे कुछ मत डरो। मैं तुमसे सत्य कहता हूँ कि मैं शीघ्रही इन्द्रको बुलाऊंगा। इस समाचारको राजा नहुषने भी सुन लिया सुनकर वृहस्पतिके ऊपर बृहत् क्रोध किया

११ अध्याय समाप्त ।

शल्य बोले, जब देवता और ऋषियों नहुषको क्रोध किये देखा तब उनसे सब बोले, हे देवराज ! हे जगतके स्वामी ! आप क्रोध मत कीजिये, आपको क्रोध होनेसे देवता राक्षस, गन्धर्व, किन्नर और साप आदि सब प्रजा डर रही है, हे महात्मन् ! आप इस क्रोधको छोड़ दीजिये क्योंकि आपके तुल्य मनुष्य क्रोध नहीं करते, हे देवराज ! आप प्रसन्न हूजिये, शची दूसरेकी स्त्री है; आप इस पापसे अपने चित्तको फेरिये; दूसरेकी स्त्री

अपर दृष्टि करना महात्माओंका काम नहीं है, आप देवराज हैं, धर्मसे प्रजाका पालन कीजिये। ऋषियोंने अनेक वचन कहे, परन्तु ताम मोहित नहुषने कुछ न सुना और कहने लगा कि इन्द्रने गौतमके जीतेही उसकी स्त्री प्रहिलयाकी अष्ट किया था, तुम लोगोंने उनको क्यों नहीं मना किया? शची हमारे पास आवे इसीमें उसका कलगाण होगा। देवता बोले, हे स्वगनाथ! आप क्रोधको दूर कीजिये, हम लोग यह सब समाचार, कहनेको इन्द्राणीके पास जाते हैं।

शलग बोले, इसके पश्चात् यह सब समाचार कहनेको देवता और ऋषि बृहस्पति और इन्द्राणीके पास गये और बृहस्पतिसे कहने लगे। हे देवऋषियोंमें अष्ट! हे ब्राह्मणात्तम! हम लोग जानते हैं कि उस इन्द्राणीका अभय देकर आपने अपने स्थानमें रक्खा है। हे महातेजस्विन्! आपसे देवता और ऋषि इन्द्राणीका नहुषके लिये मागत हैं, आप दीजिये। नहुष महातेजस्वी और देवराज है, इस लिये सुन्दरो शची उनको अपना पाति बनावे।

देवताओंके वचन सुन शची रोकर बृहस्पतिसे कहन लगे, हे देव ऋषियोंने अष्ट! मैं नहुषका अपना पाति बनाना नहीं चाहती, आप इस भयसे मेरो रक्षा कीजिये।

बृहस्पति बोले, हे इन्द्राणी! मेरो यह प्रतिज्ञा है कि, हम शरणागतका नहीं छोड़ते, हे इन्द्रा राहत शची। तुम धर्म और सत्यसे भरो हो, इस लिये हम तुमका नहीं छोड़ेंगे, मैं ब्राह्मण हूँ, इस लिये अधर्म नहीं करूँगा। मैं धर्म जानता हूँ, शीलसे भरा हूँ, इस लिये अधर्म नहीं करूँगा। हे देवतो! तुम लोग चले जाओ मैं इन्द्राणीको नहीं दूँगा; इस विषयमें ब्रह्माने जा कहा है सो सुना,—“जो शरणागतको शत्रुको दे देता है, उसके बोधे हुए स्वर्गमें भक्त नहीं उत्पन्न होते, वृक्ष होनपर भी

समयपर जल नहीं बरसता और उसकी रक्षा करनेका फल भी नहीं मिलता; उसकी अन्न वृद्धत नहीं मिलता, और वह मूर्ख स्वर्गलोकसे भी गिरा दिया जाता है। जो डरे हुए शरणागतको छोड़ देता है, उसकी आज्ञातिकी देवता नहीं ग्रहण करते; उस राजाकी प्रजा नष्ट हो जाती है, उसके पितर नरकमें चले जाते हैं और इन्द्र सहित देवता उसके ऊपर बज्र गिराते हैं। हम इन सबको जानकर शचीको नहीं देंगे, क्योंकि यह जगतमें इन्द्रकी प्यारी स्त्री विख्यात है, जिसमें हमारा और इसका कलगाण हो, सोई काम आप लोगोंकी करना चाहिये। हम शचीको नहीं देंगे।

शलग बोले, बृहस्पतिके ऐसे वचन सुन सब देवता ऋषि और गन्धर्व्य कहने लगे, हे बृहस्पति! अब किस प्रकारसे कलगाण होगा सो कहो।

बृहस्पति बोले, कुछ समयके लिये नहुषसे इन्द्राणीको मागना चाहिये, इसमें हमारा तुम्हारा और इन्द्राणीका कलगाण है। हे देवता! फिर कुछ और विघ्न पड़ जायगा, इस समय बलसे नहुष वृद्धत अभिमानी और बलवान हो गया है।

शलग बोले, बृहस्पतिके वचन सुन सब देवता प्रसन्न हुए और कहने लगे कि, हे ब्रह्मान्! आपने वृद्धत ठीक कहा, ऐसा करनेसे सब देवताका कलगाण होगा, हे ब्राह्मण अष्ट! ऐसाहो करनेसे इन्द्राणीका प्रसन्न करना चाहिये। अनन्तर अग्नि आदिक देवता लाकके कलगाणके लिये इन्द्राणीसे कहने लगे। देवता बोले, हे देवि! तुम्हारे सत्यसे यह सब जगत स्थिर है, तुम पतिव्रता धर्मसे भरो हो, तुम नहुषके पास जाओ, वह इस समय देवराज इन्द्र है, तुमको प्राप्त करतेही उसका नाश हो जायगा। ऐसा निश्चय करके इन्द्राणी पापी नहुषके पास गई। नहुष भी उस सुन्दरो रूप-

वतीको देख कामसे मोहित होकर प्रसन्न हुए ।

१२ अध्याय समाप्त ।

शल्य बोले, हे राजन् युधिष्ठिर ! शचीको देख देवराज नहुषने कहा, मैं तोनी लोकोका इन्द्र हूँ, हे सुन्दर हंसनेवाली ! हे सुन्दरसुखी ! हे उत्तम वर्णवाली ! तुम हमारी स्त्री होवो ।

पतिव्रता शची नहुषके ऐसे वचन सुन इस प्रकार कांपने लगी, जैसे केलीका वृक्ष कांपता है । फिर हाथ जाड़कर देवराज नहुषसे बोली, हे देवराज ! आप थोड़ा समय हमको दीजिये, क्योंकि मैं यह नहीं जानती कि इन्द्र कहा गये और किस दशमें है ? इस लिये मैं इस सबका जानकर आपको स्त्री हूंगी ।

इन्द्राणोके ऐसे वचन सुन नहुष प्रसन्न होकर कहने लगे । नहुष बोले, हे सुश्रोणि ! तुम जो कहती हो सो ऐसाही होगा, तुम इन्द्रको सब बात जानकर हमारे पास आना, हमकोभो ऐसाही सत्य जान पड़ता है । ऐसा कह नहुषने इन्द्राणोको विदा किया ! सुन्दरी यशस्विनी इन्द्राणो वहासे चलकर बृहस्पतिके घर गई और सब देवतोंको नहुषके वचन कह सुनाये । अग्नि आदिक देवतोंने शचीके वचन सुन एकान्तमें बैठकर इन्द्रकी बुलानेका विचार किया । फिर सब पाण्डित देवता घबड़ाकर जगतके स्वामी देव देव विष्णुके पास गये और कहने लग कि इन्द्र ब्रह्महत्यासे घबड़ाकर न जाने कहा भाग गये, अब आपहो हम सबके स्वामी हैं, और हम लोग आपकी शरण हैं, आप जगतको रक्षाके लिये विष्णु हुए हैं, आपके बलसे वृत्रासुरको मारकर ब्रह्महत्यासे घबड़ाकर इन्द्र भाग गये । अब आप उनके पवित्र होनेकी कथा बताइये ।

देवतोंके वचन सुन विष्णु बोले, तुम लोग हमारी पूजा करो तो हम बज्रधारी इन्द्रको

पवित्र कर देंगे । निर्भय इन्द्र फिर देवतोंके राजा होंगे और पापी नहुषका अपने कर्मसे नाश हो जायगा । हे देवतो ! तुम लोग थोड़े दिन आलस रहित होकर समय विताओ । विष्णुके ऐसे उत्तम वचन सुन देवतोंने इन्द्रवाणीको सत्य और अमृतके समान जाना । इसके पश्चात् सब देवता और ऋषि उस स्थान पर गये, जहा भयसे छिपे हुए इन्द्र बैठे थे । हे युधिष्ठिर ! महात्मा इन्द्रने अपने पवित्र होनेके लिये उसी स्थानपर अश्वमेध यज्ञ किया । अनन्तर इन्द्रने उस ब्रह्महत्याको वृक्ष, नदी और स्त्रियोंको बाट दिया । देवराज इन्द्र इस प्रकार ब्रह्महत्या करनेसे पवित्र हुए और सुखी होकर सावधान होगये । अन्तः बलनाशक इन्द्रने देखा कि नहुष वरदानके बलसे इन्द्रासनको नहीं छोड़ता और सब प्राणियोंके तेजका नाश करता है । तब इन्द्र फिर गुप्त होकर अपना अच्छा समय आनेकी आशासे जगतमें घूमने लगे । जब इन्द्र फिर गुप्त होगये तब पतिव्रता शची हाय इन्द्र ! हाय इन्द्र ! कहके राने लगी ।

शची बोली, यदि मैंने कुछ तप किया हो, यदि मैंने कुछ दान किया हो, यदि मैंने गुप्तोंको प्रसन्न किया हो और यदि सुभाग कुछ भी सत्य हो, तो इन्द्रही मेरे पात हो । मैं उत्तरायण सूर्यकी पावन रात्रिको नमस्कार करती हूँ । ये हमारे मनोरथको सिद्ध करें । ऐसा कहकर पतिव्रता शची अपना सन्देह नाश होनेके लिये तप करने लगी और सन्देह नाशिनी देवीसे बोली कि जहा इन्द्र है, उस स्थानको मुझे दिखाओ ।

१३ अध्याय समाप्त ।

शल्य बोले, इन्द्राणोके ध्यान करती ही सन्देहोंकी निर्णय करनेवाली उपयुती नामक देवी उनके पास आई । सुन्दरी शची उद

श्रुती देवीकी देख इन्द्राणीने प्रसन्न होकर पूजा करी, और कहा कि हे सुन्दरमुखवाली ! तुम कौन हो । हम तुम्हें जानना चाहते हैं । उपश्रुति बोली, हे देवि । हे भासिनो मैं उपश्रुति नामक देवी हूँ, मैं तुम्हें पतिव्रता और नियम युक्त जानकर तुम्हारे पास आई हूँ, मैं वृत्रासुरनाशक इन्द्रको तुम्हें दिखाऊंगी, तुम हमारे सङ्ग चलो, देवश्रेष्ठ इन्द्रको दर्शन करोगे ।

ऐसा सुनकर इन्द्राणी उनके सङ्ग चली । अनेक पर्वत, वन और हिमाचलके पार होकर उत्तरकोनपर पङ्गची । वहा जाकर अनेक याजन चौड़े समुद्रको देखा । उनके बीचमें अनेक वृक्ष और लतासे भरे हुए द्वीपमें पङ्गची । उस द्वीपके बीचमें सौ योजन लम्बा अनेक देवस्थान युक्त, पक्षियोंसे भरे एक सुन्दर तालावका देखा । उसमें पाच वर्ण वाली सुन्दर कमलोंको देखा । उनपर अनेक भौरे गूजर रहे थे । उस तालावके बीचमें सफेद और जलो डण्डोसे युक्त अनेक कर्माँलनी और कमल खिल रहे थे । अनन्तर उपश्रुति देवी पक्षोके सहित छोटा रूप बनाकर कमलकी डण्डामें घुस गई वहा जाकर सूतके समान सूक्ष्मरूप धारी इन्द्रको देख उपश्रुतिभी सूक्ष्म हो गई । तब इन्द्राणीने इन्द्रको अपना कर्म नाकर प्रसन्न किया ।

इन्द्र बोली, तुम हमारे पास क्यों आई हो । और तुमने हमको कैसे जाना ।

तब इन्द्रसे शचीने नङ्गपका सब समाचार प्रकार कहा । हे इन्द्र ! नङ्गप सुभसे कहता है कि मैं तोनी लोकोका इन्द्र हूँ, हमारी स्त्री बनो । वह दुष्ट अभिमान पर बलसे भरा है, मैंने उससे थोड़ा सभ्य ग लिया है, यदि तुम इस समयके बीचमें को नही जावोगे तो वह अवश्य सुभसे वधमें कर लेगा ; इसी लिये मैं तुम्हारे

पास शीघ्रता सहित आई हूँ । हे महाबाहो ! पापो दुष्ट नङ्गपको जीतो । तुम अपने तेजको प्रकाश करो, हे दैत्य और दानवीके मारने वाली । अब तुम इन्द्र बनकर प्रजाकी रक्षा करो ।

१४ अध्याय समाप्त ।

शला बोली, हे राजन् युधिष्ठिर । भगवान् इन्द्र शचीके ऐसे वचन सुन बोली, हे भासनि । यह समय युद्ध करनका नही है, क्योंकि नङ्गप वज्रत बलवान है, उसे ऋषियोने आज्ञाति देकर वज्रत बढ़ा दिया है, हे देवि ! मैं एक नीति कहता हूँ, तुम उसको करा, तुम इस गुप्त नीतिका किसीसे वर्णन मत करना, हे पतली-कमर वाली ! तुम नङ्गपके पास जाकर एकान्तमें कहा कि तुम देवऋषयोकी पालका पर चढ़कर हमारे पास आवा, तब मैं तुमसे प्रसन्न हूँगी । इन्द्रको ऐसे वचन सुन कमल नयनी सुन्दर हंसन वाली शचा वज्रत अच्छा कहकर नङ्गपके पास गई । नङ्गप उसका देखकर वज्रत प्रसन्न हुए और हंसकर कहन लग, हे सुन्दर हंसन वाली ! हे सुमुख ! हम तुम्हारा स्वागत करते हैं, कहाँ हम तुम्हारा कौनसा काम करें, हे कलयाणी ! हे मर्नास्त्रांग ! हम तुम्हारे दास हैं, तुम हमारा स्त्री बना । हे कलयाणी ! हे पतलीकमरवाली ! तुम्हारा जो कुछ सेवा हागी सा हम करेंगे, तुम हमसे लज्जा मत करा और हमारा विश्वास करा, हम सत्य प्रातज्ञा करते हैं, एक तुम्हारी आज्ञा पालन करेंगे, इन्द्राणा बोला, हे देवराज ! मैंने जा तुम्हारे सङ्ग समयकी प्रातिज्ञा करा, यो, सो अब पूरा हागया, याद तुम मेरे पति जाना चाहते हो तो हमारे मनमें जा कार्य्य है, सो सिद्ध करा । हे राजन् ! हे देवराज ! याद तुम इन्द्रके करनका प्रातज्ञा करा तो मैं तुमसे कहूँ, हे देवराज ! मैं तुमसे वनय पूजक प्रार्थना करती हूँ, यदि तुम उसको पूरण करा

तो मैं तुम्हारी स्त्री हो जाऊंगी । इन्द्रके यहाँ हाथी और घोड़े आदि सब वाहन हैं, परन्तु आप मेरे यहाँ अपूर्व वाहनपर चढ़कर आइये, हे देवराज । आपका ऐसा वाहन हीना चाहिये जो न इन्द्र न विष्णु और न शिवके यहाँ हो । हे पृथ्वीनाथ ! आपकी पालकीमें महाभाग सप्त ऋषि लगें, यही हमारे मनकी इच्छा है, आप इसको पूर्ण कीजिये । क्योंकि आप देवता, असुर और राक्षसोंके समान हाने योग्य नहीं हैं । तुम अपने दर्शनसे सबके तेजकी छोन लेते हो, तुम्हारे आगे इन्द्र भी नहीं ठहर सकते हैं; और सबको तो क्याही क्या है ।

शलग्र बोली, हे राजन् युधिष्ठिर ! इन्द्राणीके ऐसे वचन सुन नहुष वज्रत प्रसन्न हुए और इन्द्राणीसे बोली, हे अनिन्दिते ! तुमने यह बड़ा अपूर्व वाहन बताया, मैं इस वाहनको वज्रत अच्छा सलभता हूँ । हे वरानन ! मैं जैसे तुमन कहा बैसेही कहूंगा, क्या मैंनिर्बल सुनियोंका वाहन नहीं बना सकता ? मैं इस समय तीनों लोकका स्वामी हूँ, इसीसे सुनियोंका वाहन बनाऊंगा, सुभी क्राध आनसे सब जगतका नाश कर सकता हूँ । सब जगत मेरो शाक्तसे स्थिर है, हे सुन्दर हसनवाली ! सुभी क्राध आनसे देवता, दानव, गन्धर्व, कनर सर्प और राक्षस भी नहीं बच सकते और न मर क्राधका वे लाग सह सकते हैं । मैं जिसका अपने नेत्रसे देखता हूँ उसका तेज नाश हो जाता है, इस लिये मैं तुम्हारे वचनकी अवश्य कल्हगा । साता ऋषि और ब्रह्मऋषि हमसे कहते हैं कि तुम इन्द्र और हमारे राजा हो, हे सुन्दरवर्णवाला ! तुम मेरो शाक्तको देखो ।

शलग्र बोली, सुन्दरी शचीसे ऐसा कह नहुष-पुत्र उस विदा किया, फिर साता ऋषियोंको अपना पालकीमें जोड़कर चले, उस समय राजा नहुषने ब्राह्मणाको भक्ति छोड़ दो और बल तथा अस्मिमानने भरकर

नियममें रहनेवाली उन सप्त ऋषियोंकी पालकीमें लगा कर इन्द्राणीके यहाँ गये, उस समय दुष्टात्मा पापो नहुष कामके बशमें होकर सब भूल गये और ऋषियोंकी पालकीमें लगा लिया, जिस समय शचीको विदा किया था, उसी समय इन्द्राणी वृहस्पतिके पास गई और कहने लगी, मैंने जो नहुषके सङ्ग समयकी प्रतिज्ञा करी थी, सा उसमें अब वज्रत धोड़ा समय शेष रह गया है, इस लिये अब आप कुछ उपाय कीजिये । और शत्रु इन्द्रका दूढ़ये, क्योंकि मैं आपकी शरणागत और भक्त हूँ, आप हमारी रक्षा कीजिये । वृहस्पतिने कहा कि वज्रत अच्छा, तुम कुछ भय मत करो, नहुष महापापो और दुष्टात्मा है, वह इस स्थानपर नहीं रह सकता, वह महा अधर्मी है । इस लिये अवश्य सप्तऋषियोंके विमानपर चढ़कर आविगा, तब ही उसके मारनेका मैं उपाय कल्हगा और इन्द्रके दूढ़नेका भी उपाय कल्हगा । तुम कुछ भय मत करो, मैं अवश्य इन्द्रका लाजगा तुम घबड़ाओ मत, तुम्हारा कलाप ही, ऐसा कहकर महातेजस्वी वृहस्पतिने अग्नि जलाकर आहुति दी, फिर महातेजस्वी वृहस्पतिने राजा इन्द्रको प्राप्तके लिये कहा कि इन्द्रको दूढ़ा क्योंकि बिना राजाके यह देश अच्छा नहीं लगता । वृहस्पतिके सामने अग्नि स्त्रोका वेष बनाके प्रत्यक्ष हुए और फिर उसी अग्नि कुण्डमें अन्तर्धान हो गये, महा बुद्धिमान आग्नि कुछ कालक पश्चात् समस्त पृथ्वी वन, उपवन, नदी आरसब दिशाओंमें इन्द्रका दूढ़ा परन्तु कहीं पता नहीं लगा, फिर वह स्त्री यादेंही समयमें वृहस्पतिके पास आगइ आर कहन लगी कि, हे देवदेव ! हम सब दिशाओंमें घूम आइ परन्तु इन्द्रका कहीं नहीं पाया, जलान्त्य हूँ और हम जलमें प्रवेश नहीं कर सकते, इसीसे जलमें मेरो गात नहीं है । सा आप जो चाहें सो विचार कीजिये । वृहस्पतिने

कहा कि हे महतिजस्वी ! तुम जलमें प्रवेश करो उसीमें इन्द्र मिलेंगे, जलसे अग्नि, ब्राह्मणसे स्त्री और पत्थरसे लोहा उत्पन्न हुआ है, इन सबका तेज सर्वव्यापक है, परन्तु अपने स्थानमें जाकर शान्त हो जाते हैं ।

१५ अध्याय समाप्त ।

वृहस्पति बोले, हे अग्ने ! तुम सब देवतोंके मुख हो हव्यको भक्षण करते हो, तुम सब प्राणियोंके अन्तःकरणमें साक्षी होकर घूमते हो, हे अग्ने महात्मा लोग तुम एकको तीन भेद कहते हैं, तुम्हारे छोड़नेसे सब जगत् नष्ट हो सकता है, तुमको नमस्कार करके ब्राह्मण लोग अपना कर्म करते हैं । उस कर्मके प्रभावसे स्त्री और पुरुषोंके सहित मोक्षको प्राप्त करते हैं, तुम अग्नि यज्ञमें आहुति भोजन करनेवाले और आहुति रूप हो, महात्मा लोग यज्ञमें तुम्हारीही पूजा करते हैं । हे अग्ने ! तुम इस जगतको उत्पन्न करके प्रलयकालमें नाश कर देते हो, तुम इस जगतके उत्पन्न करनेवाले और पालन करनेवाले हो, तुमहीसे जगतकी प्रतिष्ठा होती है, तुम भेष और विजलीरूप हो, तुम्हींसे शस्त्र बनाकर मनुष्य चलाते हैं । तुम्हारी शक्तिसे जल और जगत स्थिर हैं, तीन लोकमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है ; जिसको तुम नहीं जानते, अपने उत्पत्ति स्थानमें सब जाते हैं । इस लिये तुम शब्दा रहित होकर जलमें प्रवेश करो, मैं सनातन वेदमन्त्रोंसे तुम्हारी वृद्धि करूँगा ।

भगवान् अग्नि वृहस्पतिके वचन सुन प्रसन्न हुए और कहने लगे कि हम तुमसे सत्य कहते हैं कि, हम इन्द्रको तुम्हें दिखावेंगे ।

शत्रु बोले, इसके पश्चात् अग्निने समुद्र और तलावोंके जलमें प्रवेश किया ; पश्चात् उस जलमें भी पड़ने लगे । जहाँ बिपकर इन्द्र रहते हैं, वे सुविधिर । उस तालावमें लाकर अग्निने

कमलोंके भीतर इन्द्रको डूबा फिर एक कमल की डण्डीमें उनकी पाया फिर अग्निने उसी समय वृहस्पतिसे आकर सब समाचार कह दिया, कि देवराज इन्द्र सूक्ष्म रूप बनाकर असुक तलावके कमलकी डण्डीमें रहते हैं । उसी समय वृहस्पति देवता, ऋषि और गन्धर्वोंके सहित इन्द्रके पास जाकर उनकी स्तुति करने लगे ।

वृहस्पति बोले, तुमने महावीर नमुची नासक दैत्यको मारा था, तुमने महाबलवान सन्धर और बलकी भी मारा था, हे सौ यज्ञ करनेवाले इन्द्र । तुम उठो और शत्रुओंका नाश करो । हे इन्द्र ! तुम उठकर देखो ये देवता और ऋषि तुम्हारे दर्शनोंको खड़े हैं । हे जगतके स्वामी देवराज । तुमने अनेक दैत्योंको मारकर तीनों लोकोंकी रक्षा करी है, तुमने पहली समयमें विष्णुके तेजकी सहायना और जज्ञके फेनसे वृत्रासुरको मारा था, तुम सब जगतके पालनेवाले हो तुमको जगत प्रणाम करता है तुम्हारे समान कोई प्राणी नहीं हुआ और न है, तुम्हारी शक्तिसे सब जगत स्थिर है, और तुम्हो देवतोंकी महिमाको बढ़ाते हो । वृहस्पतिके ऐसे वचन सुन इन्द्रका धीरे धीरे बल बढ़ा और अपने रूपकी धारण करके गुरु वृहस्पतिसे बोले, आप लोगोंका कौनसा कार्य श्रेष्ठ है, जिसको मैं करूं ? मैंने महा शरीरवाले तीनों लोकोंके दुःख देनेवाले वृत्रासुरको भी मारा ।

वृहस्पति बोले, मनुष्य नृपको देवऋषियोंने अपने तेजसे बढ़ाकर इन्द्र बनाया है, वह अब हम लोगोंको वृद्धत दुःख देता है ।

इन्द्र बोले, हे वृहस्पति । नृपने ऐसा कौन तप किया था, जिसके प्रभावसे वह दुर्लभ इन्द्र पदकी प्राप्त हुआ ? उसमें किनकी शक्ति है, सो आप हमसे कहिये ।

वृहस्पति बोले, जिस समय तुमने इन्द्रासनको

छोड़ दिया, उस समय देवता लोग बहृत घबड़ाये, फिर देवता ; पितर ; ऋषि और मुख्यगन्धर्व मिलकर नहुषके पास गये और कहने लगे तुम हमारे राजा और जगत्को रक्षा करने वाली बनी ।

नहुषने उनसे कहा कि हमारी शक्ति इन्द्र होनेकी नहीं है, तुम हमको तेज और तपसे बढ़ाओ । ऋषियोंने नहुषके वचन सुन सबने अपना तेज उसे दिया उससे वह बहृत बलवान होगया, तब सबने उसे इन्द्र बनाया, अब वह दुष्टात्मा ऋषियोंकी पालकीमें लगा कर लोकीमें घूमता है, उसके आगे जो जाता है, उसीका तेज नष्ट होजाता है, इस लिये तुमभी नहुषको मत देखना, कोई देवता कभी नहुषकी नहीं देखता और छिपकर रहते हैं ।

शल्य बोले, जहां अंगिरा वंशश्रेष्ठ बृहस्पति इन्द्रसे ऐसा कह रहे थे, तहां कुवेर सूर्यपुत्र यमराज, सनातन देवता चन्द्रमा और वरुण आये, वे आकर इन्द्रसे कहने लगे तुमने प्रारब्धहीसे त्वष्टापुत्र वृत्रासुरकी मारा । हे इन्द्र ! हम लोग प्रारब्धहीसे तुमको कुशलयुक्त और धाव रहित देखते हैं, इन्द्रभी लोकपालोंकी यथायोग्य पूजा करके प्रसन्न हुए और कहने लगे कि इस समय घोर रूपी नहुष देवतोंका राजा बना है, आप लोग उसके मारनेके लिये हमारी सहायता कीजिये ।

लोकपाल बोले. हे देवराज ! घोररूपी नहुषको दृष्टिमें विष है, इस लिये हमलोग उसके आगे जाते डरते हैं, तुम इन्द्रही और राव वात जानतेही इस लिये उसको जोतो, तब हम लोग यज्ञोंमें भाग पावेंगे ।

इन्द्र बोले, हम कुवेर, यमराज और वरुणाका अभिषेक करते हैं, आप लोग अपने अपने स्थानोंपर देवतोंके सहित जाइये, हम इस घोर दृष्टि वाले नहुष शत्रुको जीतेंगे । तब अग्निने इन्द्रसे कहा कि यदि तुम हमको

यज्ञमें भाग दो, तो हमभी तुम्हारी सहायता करेंगे ।

इन्द्रने कहा, आजसे बड़े बड़े यज्ञ अग्निका एक एक भाग निकला करेग

शल्य बोले, वरदान देने वाले पाक नाम राक्षसके नाशक भगवान इन्द्रने यह विचार कर कुवेरकी सब यज्ञ और धन स्वामी यमराजकी पितरोंका स्वामी वरुणको जलका राजा बनाया ।

१६ अध्याय समाप्त ।

शल्य बोले, हे राजन् युधिष्ठिर ! जब बुद्धिमान भगवान इन्द्र देवता और लोकपालोंके सहित नहुषके मारनेका उपय सो रहे थे, वहा तपस्वी भगवान अगस्त आ उन्होंने इन्द्रकी प्रशंसा करके ऐसा कहा, देवराज । प्रारब्धहीसे आपको उन्नति है, प्रारब्धहीसे आपने वृत्रासुर और विश्वरूपका मारा और प्रारब्धसे नहुष भी इन्द्रसे गिराये गये । हे बलनाशक ! हा आपका प्रारब्धहीसे शत्रु रहित देखते हैं

इन्द्रबोले, हे महाऋषि अगस्त्य ! हम आपको स्वागत करते हैं, हम आपके दर्शनसे बड़ा प्रसन्न हुए, आप पाद, अर्घ, आचमनीय और गो ग्रहण कीजिये । जिस समय सुनिश्री अगस्त्य सावधान होकर आसनपर बैठे, तब इन्द्रने प्रसन्न होकर उनसे पूछा, हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! हे भगवन् ! पापी नहुष किस प्रकार स्वर्गसे गिराया गया, सो कथा सुननेको हमारे इच्छा है, आप हमसे कहिये । अगस्त्य सुनिवाले, हे इन्द्र । जिस प्रकार दुरात्मा नहुष स्वर्गसे गिराया गया सो उत्तम कथा हम आपसे कहते हैं, सुनिये ।

पापी अभिमानी नहुष इस प्रकार स्वर्गमें नष्ट हुआ कि वह दुष्ट यके हुए महाभाग देवऋषि और ब्रह्मऋषियोंकी पालकीमें

चला जाता था, उसी समय ऋषियोंने उससे पूछा, हे जीतनेवालोंमें अष्ट । ब्रह्माने जो वेदमें गौकी स्तान करानेके मन्त्र लिखे हैं, उनका प्रमाण है वा नहीं ?

ऋषियोंके वचन सुन मूर्ख नहुष बोला के नहीं ।

ऋषियोंने कहा कि तुम महा अधर्मी हो, धर्मकी नहीं जानते हमारे पहले ऋषियोंने उनको प्रमाण माना है ।

अगस्त्य बोले, हे इन्द्र । अनन्तर वह अधर्मी ऋषियोंसे फिर विवाद करने लगा । मेरे शिरमें लात मारी, इससे उसका सब तेज नष्ट हो गया, फिर मैंने दुःखित होकर उसको ऐसा शाप दिया, हे राजन् ! तुम पहले ऋषियोंके कहे मन्त्रोंको नहीं मानते हो, बिना देखी वस्तुकी निन्दा करते हो, तुमने मेरे शिरमें लात मारी और ब्रह्माके तुल्य तेजस्वी ऋषियोंको पालकीमें लगाया, इससे तुम्हारा तेज नाश हो गया, इस लिये अब तुम स्वर्गसे पृथ्वीको चले जाओ, तुम दस सहस्र वर्षतक सापका रूप धारण करके पृथ्वीमें रहोगे । हे शत्रुनाशन इन्द्र । इस प्रकार वह दुरात्मा नहुष स्वर्गसे भ्रष्ट हुआ और प्रारब्धसे तुम्हारी उन्नति हुई । अब आप स्वर्गमें चलके दोनों लोकोकी रक्षा कीजिये, आप जितेन्द्रिय शत्रुओंको मारनेवाले हैं ? महाऋषि भी आपकी स्तुति करते हैं ।

शला बोले, अनन्तर महाऋषि, देवता, पितर, यक्ष, राक्षस सर्प, गन्धर्व, देवकन्या, सब अप्सरा, तलाव, नदी, पर्वत और समुद्र प्रसन्न होकर कहने लगे । हे शत्रुनाशन इन्द्र । प्रारब्धसे तुम्हारी उन्नति हुई है । प्रारब्धसे बुद्धिमान अगस्त्यने पापी नहुषका नाश किया, प्रारब्धसे पापी नहुष सांप बनकर पृथ्वीमें मिरा ।

१७ अध्याय समाप्त ।

शला बोले, अनन्तर गन्धर्व और अप्सरा-ओंसे स्तुति सुनते हुए, इन्द्र सब लक्षणोंसे भरे उत्तम ऐरावत हाथीपर चढ़कर स्वर्गकी चले, वृत्र नाशक इन्द्रके सङ्ग महा तेजस्वी अग्नि महाऋषि बृहस्पति, यमराज, वरुण, धनके स्वामी कुबेर, सब देवता और सब अप्सरा भी चलीं । सौ यज्ञ करनेवाले देव-राज इन्द्र, स्वर्गमें जाकर प्रसन्नता सहित इन्द्राणीसे मिले फिर अपने राज्यका पालन करने लगे । उसी समय भगवान् अङ्गिरा इन्द्रके पास आकर अथर्व वेदके मन्त्रोंसे स्तुति करने लगे । उसी समय भगवान् इन्द्रने प्रसन्न होकर अङ्गिराको वरदान दिया । इन्द्र बोले, तुमने जिन मन्त्रोंसे हमारी स्तुति की है, उनका नाम अथर्वाङ्गिरस वेद होगा, तुमको आजसे यज्ञमें भाग मिलेगा ।

हे महाराज ! इस प्रकार अथर्वाङ्गिरा मुनिकी पूजा करके सौ यज्ञ करनेवाले इन्द्रने उनको विदा किया, फिर सब ऋषियोंकी पूजा करके इन्द्र प्रसन्नता सहित प्रजाकी पालने लगे । इन्द्रने अपनी स्त्रीके सहित इस प्रकार दुःख भोगा था, और इस प्रकार शत्रुओंको मारनेके लिये छिपकर रहे थे, तुमने जो द्रौपदी और अपने भाइयोंके सहित वनमें दुःख भोगे । उसका कुछ दुःख मत कीजिये ; हे राजन् ! हे भारत ! हे कौरवनन्दन ! जिस प्रकार इन्द्र वृत्रासुरको मारकर पुनः राजा हुए थे, ऐसेही तुम भी राजा होगे, जैसे पापी ब्राह्मण-द्वीही नहुष अगस्त्यके शापसे नष्ट हुआ था, ऐसेही तुम्हारे पापी शत्रु कर्ण और दुष्योधनादिका नाश होगा । हे शत्रुनाशन । हे वीर ! उसके पश्चात् तुम अपने भाई और द्रौपदीके सहित समुद्र पर्यन्त पृथ्वीका राज्य करोगे । हे जीतनेवालोंमें अष्ट ! यह इन्द्रके विजयकी क्या वेदमें लिखी है, युद्धके समय विजय करनेका इच्छावाले

राजाको अवश्य सुननी चाहिये, इसीसे मैंने तुमको सुनाई ; इसके सुननेसे महात्माओंकी उन्नति होती है । हे युधिष्ठिर । यह घोर समय आगया है, अब दुर्योधनके अपराधसे तथा भीमसेन और अर्जुनके बलसे महात्मा क्षत्रियोंका नाश होगा, हमारी कही इस इन्द्र, विजयकी कथाको जो नियम करके प्रतिदिन पढ़े वह सब पापोंसे छूटकर इस लोक और परलोकमें सुख पाता है । इसके पढ़नेवाला अपत्य और निर्द्वन्द्व नहीं रहता, इसके पढ़नेवालेकी कृष्ण आपत्ति नहीं होती, और उसकी आयु भी बृद्धत होजाती है, इसको सुननेवाला सदा जीतता है कभी हारता नहीं ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे भरतकुल सिंह जनमेजय । शत्रुके ऐसे वचन सुन धर्मधारियोंमें अष्ट राजा युधिष्ठिर बृद्धत प्रसन्न हुए, और उन्होंने राजा शत्रुकी पूजा करी, अनन्तर महा बलवान् कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने सद्राज शत्रुसे कहा, आप अवश्य कर्णके सारथी बनियेगा । उस समय कर्णका बल नाश कीजियेगा, और अर्जुनके बलको बढ़ादियेगा । शत्रु बोले, तुम जैसा कहते हो, मैं अवश्य ऐसाही करूंगा, इसके अतिरिक्त और भी शक्तिके अनुसार तुम्हारा कलराण करूंगा ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे शत्रुनाशन जनमेजय । अनन्तर श्रीमान् शत्रु पाण्डवोंसे आज्ञा लेकर अपनी सेनाके सहित हस्तिनापुरकी चले गये ।

१८ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय । उसके पश्चात् यदुवंशियोंमें अष्ट महारथ महावीर सात्यकी हाथी घोड़े रथ और पदातियोंसे भरी महासेनाके सहित महाराज युधिष्ठिरके पास आये । महावीर सात्यकीके सङ्ग अनेक देशके आये हुए महावीर महा योद्धा

थे, वे सब अनेक शस्त्रोंकी चलानेवाले परस्पर भिन्दिपाल, शूल, तोमर, मुहर, परिष, लाठी, फांसी, निर्मल खड्ग, विषमें बुझे प्रकाशमान बाण और धनुषकी धारण करके शोभित होने लगे, उस महासेनामें सुवर्ण खचित धनुष इस प्रकार चमक रहे थे, जैसे मेघमें विजली, वह अक्षौहिणी सेना युधिष्ठिरकी सेनामें आकर इस प्रकार मिल गई जैसे समुद्रमें नदी मिल जाती है । अनन्तर एक अक्षौहिणी सेना लेकर चेदि देशके राजा महा पराक्रमी घृष्टकेतु महा राज युधिष्ठिरके पास आये । महापराक्रमी जरासन्धपुत्र मगध देशके राजा जयत्सेन भी एक अक्षौहिणी सेना लेकर धर्मराजके पास पहुँचे । इसी प्रकार पाण्ड्य देशका राजा अनेक द्वीपोंके राजाओंके सहित युधिष्ठिरके पास आया, उस समय, वह युधिष्ठिरकी सेना देखने योग्य हुई थी, एक ओर राजा द्रुपदकी महा सेना अनेक देशके वीरोंके सहित महारथ और महावीर द्रुपद पुत्रोंसे रचित पड़ी थी । एक ओर पर्वतीय राजाओंसे भरी महाराज विराटकी महा सेना ठहरी थी । इस प्रकार महात्मा युधिष्ठिरकी सात अक्षौहिणी सेना इकट्ठी होगई । इस सेनामें अनेक प्रकारकी ध्वजा लग गई । इसी प्रकार राजा दुर्योधनकी प्रसन्न करनेके लिये एक अक्षौहिणी सेना लेकर राजा भगदत्त आये, उनके सङ्गही चीत और किरात देशकी सेना भी आई एक एक अक्षौहिणी सेना लेकर हारदित्य और कृत्तवर्मा आये, उनके सङ्गही भोज, अन्धक और कुकुरवंशी क्षत्री आये; इन तीनों क्षत्रियोंकी एक अक्षौहिणी सेना थी । उस सेनाके आनंद दुर्योधनकी सेना ऐसी शोभित हुई जैसा अगाध समुद्र । क्रोड़ा करते मतवार हाथियोंके सहित पृथ्वीकी कपाते हुए जयद्रथ आदि सिन्ध और सौवीर देशके राजा आये, उनके सङ्ग एक अक्षौहिणी सेना थी, फिर वायुसे

धूमते हुए, मेघके समान एक अक्षौहिणी सेना शक और यवनोंके सहित काम्बोज देशका सुदक्षिण राजा लाया, उसको सेना टीडीदलके समान शोभित होने लगी, वह सेना भी दुर्योधनकी सेनामें मिल गयी । इसके पश्चात् माहिषतीका नील नामक राजा दुर्योधनके पास आया । अनन्तर अनेक दक्षिणी राजोंके सहित उज्जैनके बिन्द और अनुविन्द राजा आये इनके सङ्ग दो अक्षौहिणी सेना थी । फिर पांचो कैंकय देशके राजा एक अक्षौहिणी सेना लेकर हस्तिनापुरकी चले । इस प्रकार सब महात्मा राजा दुर्योधनके पास आये और दुर्योधनकी अपनी सेना भी तीन अक्षौहिणी थी, इस प्रकार ग्यारह अक्षौहिणी सेना दुर्योधनकी हुई । वह सेना युधिष्ठिरसे युद्ध करनेकी इच्छा करने लगी । हे राजन् ! उस समय हस्तिनापुरमें कोई स्थान सेनासे खाली न रह गया । दुर्योधनके मुख्य सेनापतियोंने अपनी अपनी सेनाकी समस्त पञ्चाव, कुरुदेश, रोहितकारण्य, मारवाड़, अहिच्छेत्र, कालकूट, गङ्गातट, वारणावत, वाटधान और यामुन पर्वपर ठहराई उस सेनामें धन और अन्न पूर्ण था, उन सब देशोंमें ठहरी हुई सेनाको द्रुपदके उस पुरोहितने देखा जो कौरवोंके यज्ञ जा रहा था ।

उद्योग पर्वमें सेनाउद्योगपर्व और

१६ अध्याय समाप्त ।

अथ सञ्जययान पर्व ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय । इस प्रकार द्रुपदका पुरोहित सेनाकी देखता हुआ हस्तिनापुर पङ्गचा, वहा राजा धृतराष्ट्र, विदुर और भीष्मने उनका वहुत सम्मान किया । अनन्तर वह पुरोहित सबसे कुशल प्रश्न करके और अपना कुल कहकर सब सेनापतियोंन बोचने कहने लगे, यद्यपि

आप सब लोग सनातन राजधर्मकी जानते हैं, तथापि वचनकी भूमिकाके लिये मैं कुछ कहना चाहता हूं ।

आप सब लोग जानते हैं, कि धृतराष्ट्र, और पाण्डु एकही पिताके पुत्र हैं, इस लिये पिताका धन दोनोंकी समान बंटना चाहिये ; परन्तु धृतराष्ट्रके पुत्रोंने पुरुषोंके धनको पाया तब पाण्डव क्यों नहीं पावेंगे ? आप लोग जानते हैं, कि पाण्डव लोग किस प्रकार वनकी गये थे ? अब समय बीतने पर धृतराष्ट्र क्यों नहीं उनका धन देते ? धृतराष्ट्रके पुत्रोंने पाण्डवोंके सारनेके अनेक यत्न किये, परन्तु मार नहीं सके, उन महात्माओंने फिर भी अपने बलसे अपने राज्यकी बढ़ा लिया । परन्तु फिर भी धृतराष्ट्रके नीच पुत्रोंने शकुनिके सङ्ग उनको हल लिया, महात्मा युधिष्ठिरने उसको भी मान लिया उन्हाने तीरहवर्ष वनमें रहकर घोर दुःख उठाये । आप लोग यह भी जानते हैं कि धृतराष्ट्रके पुत्रोंने द्रौपदीके सहित पाण्डवोंकी सभामें कैसे दुःख दिया था ? फिर उन्होंने वारहवर्ष वनमें कैसे दुःख उठाये ? फिर विराट नगरमें ऐसा वेष धारण किया मानो इनका जन्मही दूसरा हो गया, उन महात्माओंन साधारण पापियोंकी समान दुःख उठाये । परन्तु महात्मा युधिष्ठिर उन सब दुःखोंकी पोछी करके अपनाही राज्य मागते हैं, उनकी इच्छा यह नहीं है कि क्षत्रियोंका नाश हो । महात्मा पाण्डव लोग युद्ध करना नहीं चाहते, आप सब लोग दुर्योधन और पाण्डवोंके दोष और गुणोंकी देखकर दुर्योधनकी समझाइये, क्योंकि आप लोग उनके मित्र कहाने हैं ; महात्मा पाण्डव लोग कदापि युद्ध करनेकी इच्छा नहीं करते, वे लोग केवल अपने राज्यकी मागते हैं । राजा दुर्योधन जो युद्धमें हेतु बतलाते हैं, सो माननेके योग्य नहीं है, क्योंकि राजा युधिष्ठिर

उनसे निर्व्वल नहीं है, क्योंकि उनके पास सात अर्क्षौहिणी सेना है, वह सब सेना उनकी आज्ञाका मार्ग देख रही है, इसके अतिरिक्त उनकी ओर एक एक बलवान अकेला सहस्र सहस्र अर्क्षौहिणीको जीत सकता है। वे वीर ये हैं, सात्यकी, भीमसेन, महा बलवान नकुल और सहदेव। तुम्हारी ग्यारह अर्क्षौहिणी सेना एक ओर और अकेला महा पराक्रमी अर्जुन एक ओर लड़ सकते हैं, जैसे बलवान अर्जुन है, वैसेही कृष्ण भी पराक्रमी हैं। जिसके लिये युद्ध करने वाले अर्जुन, सम्मति देनेवाले कृष्ण हैं, उस युधिष्ठिरकी सेनासे कौन युद्ध कर सकता है? सो आप सब लोग धर्मके अनुसार पाण्डवोंका राज्य लौटा दीजिये, और इस समयकी अपने हाथसे न जाने दीजिये।

२० अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय ! पुरोहितके ऐसे वचन सुन उनके वचनोकी प्रशंसा कर, महा तेजस्वी और महा बुद्धिमान भीष्मजी बोले,—

हमारी प्रारब्धहीसे पाण्डव लोग कृष्णकी सहित कुशलसे हैं, प्रारब्धहीसे उन लोगोंकी सहायता मिली है, प्रारब्धहीसे पाँची पाण्डव धर्म करते हैं, प्रारब्धहीसे पाण्डव लोग सन्धि चाहते हैं, प्रारब्धहीसे उनकी भाइयोंके सहित युद्ध करनेकी इच्छा नहीं है, आपने भी जो कुछ कहा सो सत्यही है, परन्तु इतना कठोर कहना उचित नहीं था। हमारी बुद्धिमें ब्राह्मणत्वके अभिमानसे आप इतना कह गये। इसमें कुछ सन्देह नहीं, कि धृतराष्ट्रके पुत्रोंने पाण्डवोंको वनमें और यहाँ वहुत दुःख दिया; इसमें भी सन्देह नहीं, कि पाण्डवोंकी पिताका धन मिलना चाहिये, और इसमें भी सन्देह नहीं, कि अर्जुन महा बलवान शस्त्र जाननेवाला और महारथ है,

पाण्डुपुत्र अर्जुनसे साक्षात् वज्रधारी इन्द्र भी युद्ध नहीं कर सकते, और धनुषधारियोंको तो कथाही कहा है; अकेला अर्जुन तोने लोकसे युद्ध कर सकता है।

भीष्मके ऐसे वचन कहते समय कर्ण क्रोध करके दुर्योधनकी ओर देखा और भीष्मके कमरसे कमर छुवाकर बोले, हे ब्राह्मण ! तुमने जो कहा, सो सब कोई जानता है, एकही बातकी कई बार कहनेसे क्या होता है ? दुर्योधनके लिये युधिष्ठिरकी शत्रु निने जुवेमें जीता था, और वे अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार वनकी चले गये। अब समय पूरा होने पर वह अपने आधे राज्यकी इच्छा करते हुए मूर्खके समान द्रुपद और विराटकी सहायतासे दुर्योधनके सङ्ग युद्ध करना चाहते हैं ? आप निश्चय रखिये, कि दुर्योधन भयसे घबड़ाकर एक चरणभर भी पीठ नहीं देंगे; परन्तु धर्मसे सब राज्यभी शत्रुको दे सकते हैं। यदि राजा युधिष्ठिर अपने पिताका राज्य लेना चाहते हैं, तो फिर तेरह वषे वनसे रहें और फिर दुर्योधनके वशमें होकर राज्य करें। पाण्डव लोग मूर्खतासे अधर्म न करें, यदि पाण्डव लोग अधर्महीसे युद्ध करना चाहते हैं, तो कौरवोंसे युद्ध करत समय हमारे वचनकी याद करेंगे।

भीष्म बोले, हे राधापुत्र ! तुम्हारे वचनसे क्या होगा ? उस समयकी याद करा, वन अकेले अर्जुनने कः महारथोंको जीता था। हमने तुम्हारा बल उसी समय देख लिया था, यदि हम लोग इस ब्राह्मणके वचनोंको न मानेंगे, तो सरकार पृथ्वीमें सो जायेंगे।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर राजा धृतराष्ट्रने भीष्मको प्रसन्न करके कर्णकी फटकार दिया, और कहने लगे कि शान्तनुपुत्र भीष्मने हमारे कल्याणकी बात कही है, ऐसा करनेसे हमारा पाण्डवोंका और सब

जगतका कलराण होगी । हम शीघ्रही पाण्ड-
वोंके पास सञ्जयको भेजेंगे, आप विलम्ब मत
कीजिये, पाण्डवोंके पास चले जाइये । ऐसा
कहकर धृतराष्ट्रने ब्राह्मणकी पूजा करी, और
विदा कर दिया ।

अनन्तर सञ्जयको सभामें बुलाकर ऐसा
बन बोले ।

२१ अध्याय समाप्त ।

धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! हमने सुना है
कि पाण्डव विराट नगरके समीप रहते हैं,
मैं उनके पास जाकर उनके सब समाचारको
जान ली । तुम जाकर युधिष्ठिरसे कहना,
आप प्रारब्धहीसे इस स्थानपर पहुँचे हैं । हे
सञ्जय ! तुम जाकर युधिष्ठिरसे कहना कि
व कौरव कुशलसे हैं, और यह भी कहना
कि आप प्रारब्धहीसे बनवासके दुःखसे कूटे
हैं । हे सञ्जय ! मैं यह जानता हूँ कि पाण्डव
योग हमारा सङ्ग सान्त्व करना चाहते हैं, वे
योग महात्मा हैं, और सबका कल्याण चाहते
हैं । हे सञ्जय ! मैं आज तक पाण्डवोंका
कोई भी अन्याय नहीं देखा । पाण्डवोंने अपने
जलसे वृद्धत धन प्राप्त करके मेरे आगे रख
दिया था । मैं सदा उनके दोष देखनेकी इच्छा
करता रहा, तौभी कोई दोष नहीं देख सका
जससे मैं उनको बुरा कहूँ । वे सदा धर्म
और अर्थसे काम करते हैं, परन्तु अपना
सिद्धताके लिये कोई काम नहीं करते । वे
राम, शीत, भूख, प्यास, निद्रा, जसुहाड़, क्रोध
सिद्धता और भूलका धर्मके वशमें होकर
गम, दैते हैं । वे लाग धर्म, अर्थ, बुद्धि और
व्यासि भरे हैं, समयपर अपने मित्रोंको धन
देंते हैं । उनको मित्रता दूर रहनेसे भी नहीं
हटती, पाण्डव सबके सङ्ग उचित व्यवहार
करते हैं । उनसे द्वेष करनेसे हमारा कल्याण
नहीं होगा । पापी मूर्ख दुर्योधन और महा

नीच कर्णको छोड़के पाण्डवोंसे कौन द्वेष कर
सकता है ? यही दोनों महात्मा और दुःख
सहनेवाले पाण्डवोंके क्रोधको बढ़ाते हैं । दुर्यो-
धन नवीन बलवान और सुखी है, इस लिये
यह युद्ध होनाही अच्छा समझता है । यह
मूर्ख जोते हुए पाण्डवोंके भागको छीनना
चाहता है । उस युधिष्ठिरको अर्जुन, श्रीकृष्ण,
भीमसेन, सात्यकी, नकुल, सहदेव और सञ्जय
वंशी क्षत्री सहायक हैं, इस लिये युद्धके पह-
लेही उनका राज्य लौटा देना चाहिये ।
केवल अर्जुनही रथमें बैठकर और गाण्डीव
धनुष धारण करके तोनों लोकोका जीत
सकता है । इसी प्रकार विजय करनेवाले
श्रीकृष्णको भी तोनों लोकोंमें जीतनेवाला कोई
नहीं है । जिसके धनुषसे मेघके समान शब्द
होता है, जिसके वाण पतङ्गके समान शीघ्र
चलते हैं, जिस अर्जुनने अकेलेही समस्त उत्तर
दिशाको जीत लिया था, उसके आगे कौन
युद्धमें ठहर सकता है ? जिसने अपने बलसे
समस्त राजासे धन छीना था, उस
अर्जुनके सङ्ग कौन युद्ध कर सकता है ।
जिस अर्जुनने खाण्डव वनमें अपने वाणोंसे
देवताको तप्त किया था, उससे कौन
युद्ध कर सकता है ? जिस अर्जुनने खाण्डव
वनमें इन्द्रादिक देवताका हराकर पाण्डवोंका
यश बढ़ाया था, उससे कौन युद्ध कर सकता
है ? भीमके समान कोई गदा-युद्ध नहीं जानता
उसके समान हाथोंपर चढ़के लड़नेवाला भा-
काइ दूसरा नहीं है ; रथमें बैठकर लड़नेमें
भी यह अर्जुनसे कम नहीं है ; इससे दस
हजार हार्दिकोंका बल है ; इसी बलवानसे
मेरे नीचे पुत्रों वर किया है । वह अवश्य
मेरे सब पुत्रोंकी भक्ष कर देगा । भीमसेन
सदासे महाक्राधी है ; उसका युद्धमें इन्द्र भी
नहीं जीत सकत । महा बलवान शीघ्र शस्त्र
चलानेवाले नकुल और सहदेव भी अर्जुनके

समान योद्धा हैं। ये दोनों वाजपत्नीके समान बिपक्षियोंका नाश करेंगे; ये सब महा पराक्रमी भी वीर हैं। हमें निश्चय होता है कि वे हमारी सब सेनाका नाश कर देंगे। उन सबके बीचमें धृष्टद्युम्न एकही बलवान है। हमने सुना है कि राजा द्रुपद अपने मन्त्रियोंके सहित युधिष्ठिरकी ओर हो गये हैं। जिनके साक्षात् कृष्ण सहाय है, उन युधिष्ठिरसे कौन युद्ध कर सकता है? मत्स्य देशके राजा विराटने एकवर्ष तक पाण्डवोंको अपने घरमें रक्खा है, हमने सुना है कि अब वेही राजा विराट अपने पुत्रोंके सहित सहाराज युधिष्ठिरके भक्त होगये हैं, जो पाच वीर केकय देशके राजोंसे राज्य मांगनेके कारण देशसे निकाल दिये गये थे, वे भी अब युधिष्ठिरके सङ्गी हो गये हैं, वे पाचो भाई महा धनुर्धारी हैं। हमने सुना है, कि पृथ्वीके सब राजा भक्ति और प्रेमके सहित धर्मराज युधिष्ठिरसे मिल गये हैं। पर्वत और कठिन स्थानोंके राजा तथा अनेक कुलोंन शुद्ध वीर युधिष्ठिरके लिये प्राण देनेको उपस्थित हैं। अनेक शस्त्रधारो स्नेहभी युधिष्ठिरको ओर होगये हैं। इन्द्रके समान पाण्ड्य देशके राजा अनेक वीरोंके सहित युधिष्ठिरसे मिल गये हैं, यह महात्मा, लाकप्रसिद्ध वीर और महा तेजस्वी है। जिसने अर्जुन, कृष्ण, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और भीष्मसे शस्त्र विद्या सीखी है, जो प्रद्युम्नके समान महा योद्धा है, हमने सुना है कि वही सात्यकी पाण्डवोंकी ओरसे युद्ध करेगा। जिसके आश्रयसे चेदो और कारूपक देशके सब राजा निवास करते थे, जो इन सबके बीचमें अपने तेजसे सूर्यके समान तपता था, जिसको कोई धनुषधारी युद्धमें नहीं रोक सकता था, जिसने उस चेदिपति शिशुपालका मारा था, जिसने शिशुपालका मार पाण्डवोंके यश और मानको बढ़ाया था, जिसके मानको

कारूपक देशके राजा आदि सब राजा मानते हैं, उस अजेय कृष्णसे कौन युद्ध कर सकता है जब कृष्ण शैव्य और सुग्रीवयुक्त रथपर चढ़कर युद्ध करनेको आये थे, उस समय शिशुपालके छोड़ ओर कौनसा वीर उनसे युद्ध करनेके उपस्थित हुआ था? उस समय सब राजा दबकर ऐसे रह गये थे, जैसे सिंहसे छोटे हरिण दब जाते हैं, उस समय शिशुपाल कृष्णके सङ्ग दो रथसे युद्ध करनेको गये थे जिस कृष्णने उस शिशुपालका इस प्रकार मारकर गिरा दिया, जैसे कोई कचनार वृक्षको काटकर गिरा देता है, हमने सुना है कि वही कृष्ण युधिष्ठिरकी ओर हाका आये हैं। जिस कृष्णके चरित्रोंको स्मरण करके चित्त शान्त नहीं होता, वेही कृष्ण युधिष्ठिरके ओर हो गये हैं। जिसको आर साक्षात् मारा है, उस युधिष्ठिरसे कौन युद्ध कर सकता है जब हम इस बातको सुनते हैं कि अर्जुन और कृष्ण एक रथपर चढ़के लड़नेको आवेंगे, तो हमारा हृदय भयसे कांपन लगता है। यदि मेरा मूर्ख पुत्र युद्ध करनेको न जाय, तो कृष्ण और अर्जुनसे जीता बच जायगा। नहीं तो अर्जुन और कृष्ण हमारे वंशको इस प्रकार मार कर देंगे जैसे इन्द्र देवोंका नाश करते हैं हम अर्जुनकी इन्द्रके समान वीर जानते हैं और कृष्ण तो सनातन विष्णुही हैं। इस मूर्ख दुष्टाधीन महात्मा लज्जावान, महा पराक्रमी शत्रुहिन युधिष्ठिरको बहुत दुःख दिया है अब वे क्रोध करके अवश्य इसका नाश कर देंगे मैं इतना अर्जुन, कृष्ण, भीष्म, नकुल और सहदेवसे नहीं डरता, जितना धर्मराज युधिष्ठिरसे क्रोधसे डरता हूँ, क्योंकि उनका क्रोध महा कठार है, वे ब्रह्मचारी और सत्यवादी हैं उनकी प्रतिज्ञा अवश्य सत्य होती है। मैं सज्जन! उनके क्रोधको याद करके मैं रात दिन भयसे व्याकुल रहता हूँ। तुम इसी समय

शीघ्र चलानेवाली रथपर चढकर द्रुपदकी सेनामें जाओ, वहां जाकर महाराज युधिष्ठिरसे प्रीतिके सहित हमारी ओरसे बार बार कुशल पूछना। महापराक्रमी पाण्डवोंके मुख्य मन्त्री कृष्णसे भी कुशल पूछना और कहना कि महाराज धृतराष्ट्र कुशलसे हैं, वे आपके सङ्ग सन्धि करना चाहते हैं। हे सूत। तुम यह सब। चन कृष्णजीसे कहना, कृष्णके वचनकी युधिष्ठिर अवश्य मानते हैं। कृष्ण उनके प्यारे मन्त्री वेदान् और पाण्डवोंके सब कर्त्तोंके करनेवाले हैं। इसके पश्चात् पाण्डवोंने जिन राजोंको बुलाया है, उन सबसे, सृज्योंसे, कृष्णसे और राजा विराटसे हमारी ओरसे कुशल पूछना, इसके पश्चात् द्रौपदीके पुत्रोंसे कुशल पूछना, इसके पश्चात् जिनसे योग्य सम्झो उनसे भी हमारी ओरसे कुशल पूछना। इसके पश्चात् सब राजोंके बीचमें हमारे कलप्राणके वचन कहना, परन्तु हमारे वचन ऐसे न हों, जिनसे युद्धकी सिद्धि होती हो।

२२ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय। राजा धृतराष्ट्रके ऐसे वचन सुन सञ्जय रथमें बैठकर महा तेजस्वी पाण्डवोंको देखनेके वास्ते विराट नगरकी चले, वहां जाकर सूत-पुत्र सञ्जयने राजोंके बीचमें सिंहासनपर बैठे महाराज युधिष्ठिरको देखा, अनन्तर महाराजको प्रणाम कर और हाथ जोड़कर कहा, हे महाराज। हम आज प्रारब्धहीसे आपकी रोगरहित, सहायोंके सहित इन्द्रके समान बैठे देखते हैं। हे महाराज। अश्विकापुत्र बृद्धे धृतराष्ट्र आपसे कुशल पूछते हैं; वह कहते हैं कि पाण्डवोंके भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव नकुलसे तो हैं? हे भारत! उन्होंने पूछा है कि जिससे तुम सब कलप्राणकी इच्छा करते हो, वह वीरोकी स्त्री पुत्री यशस्विनी

सचीके समान पतिव्रता द्रौपदी पुत्रोंके सहित कुशलसे तो है?

महाराज युधिष्ठिर बोले, हे गालवगणपुत्र सूत सञ्जय। हम तुम्हारा स्वागत करते हैं। तुम्हें देखकर आज हम बहृत प्रसन्न हुए। हम अपने भाद्र्योंके सहित कुशलसे हैं; तुम अपनी कुशल कहो। आज हमने बहृत दिन-पर अपने बृद्धे महाराज धृतराष्ट्रकी कुशल सुनी। कुशल सुननेहीसे हमको ऐसा आनन्द हुआ जैसा उनके दर्शनसे होता है। उनका दर्शनही हमको कलप्राणदायक है। हे प्यारे सञ्जय। कहो हमारे दादा महाबुद्धिमान सब धर्मके जाननेवाले बृद्धे भीष्म कुशलसे तो हैं? पहलेके समान धर्म करते हैं न? कहो विचित्रवीर्यपुत्र महाराज धृतराष्ट्र अपने पुत्रोंके सहित अच्छे तो हैं? हे सूतपुत्र। महाविद्वान् प्रतिपेयपुत्र महाराज वाल्मिक तो अच्छे हैं न? महा धर्मात्मा सीमदत्त, भूरिश्रवा, शल, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य आदि महा धनुषधारी वीर लोग कुशलसे हैं न? जो सब कौरवोंके समान धनुषधारी महा बुद्धिमान सब शास्त्रोंके जाननेवाले राज और सेनाके जो प्रधान वीर हैं, वे सब कुशलसे हैं न? कहो ये सब राजासे उत्तम सम्मान पाते हैं न? जिनके राज्यमें महा धनुषधारी शीलवान सुन्दर अश्व-त्यामा रहते हैं, उन कौरवोंकी सभामें सब प्रधान आदरसे रहते हैं न? कहो महा बुद्धिमान वैश्यापुत्र युयुत्सु अच्छे हैं न? कहो जिसने राजा दुर्योधनको मृत्यु बनाया है, वह मन्त्री कर्ण तो अच्छे हैं? हम लोगोंकी माता कौरवकुलकी बूढ़ी स्त्री रमई बनानेवाली, दास, दासी, वह, वेदे, भान्जे, बहिन, पुत्री और पुत्रोंके पुत्र ये सब अच्छे हैं न? कहो राजा दुर्योधन ब्राह्मणोंकी पुष्पायोंके समान मानते हैं न? कहो दुर्योधनने हमारे दिये हुए गाव आदि ब्राह्मण और वीरोंके दीन तो नहीं

लिये ? कही राजा धृतराष्ट्र पुत्रोंके सहित ब्राह्मणोंकी सेवा तो करते हैं ? वे अपने परलोक सुधारनेके उपाय करते तो हैं ? ब्रह्मानि कहा है, कि ब्राह्मणोंकी वृत्ति देनाही स्वर्गसाधनका उपाय है, क्योंकि ब्राह्मण लोग क्रोध करके सब कौरवोंका नाश कर सकते हैं । कही राजा धृतराष्ट्र पुत्रोंके सहित अपने सेवकोंको भोजन देते हैं न ? कही उनके यहां कोई शत्रु मित होकर तो नहीं है ? कही, वे लोग पाण्डवोंके दोष तो नहीं वर्णन करते ? द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और भीरु अश्वत्थामा हम लोगोंको पापी तो नहीं बनाते ? कही सब कौरव, राजा धृतराष्ट्रको पुत्रोंके सहित मानते हैं न ? कही डाकुओंकी देखकर वे लोग कभी पाण्डवोंका स्मरण करते हैं ? कभी वे लोग गाण्डीव धनुषसे कूटे हुए विजलीके समान शब्दवाली अर्जुनके वाणोंकी स्मरण करते हैं ? मैंने आज पर्यन्त अर्जुनके समान योद्धा किसीको नहीं देखा, इनके तीक्ष्णबाण इकसठ हाथ तक जासकते हैं । ऐसेही हमारे भाई भीमसेन इस प्रकार गदा लेकर युद्ध करते हैं, जैसे मतवाला हाथी युद्ध करता है, इनसे कोई शत्रु जीता हुआ नहीं बच सकता । कही कभी कौरव लोग भीमसेनका भी स्मरण करते हैं ? जिस हमारे छोटे भाई माद्रीपुत्र सहदेवने क्रोधसे भरकर बांये और दहने हाथसे खड्ग धारण करके कलिङ्ग देशके वीरोंका नाश किया था, कही कौरव लोग कभी उस वीर सहदेवका भी स्मरण करते हैं ? हे सञ्जय ! जिसकी हमने शिवि और त्रिगर्त देशकी जीतनेकी भेजा था, जिसने तुम्हारे देखते देखते सब पश्चिम दिशाकी जीत कर हमारे वशमें कर दिया था, उस वीर नकुलका भी कभी कौरवोंको स्मरण होता है ? जब घोरयात्रामें मूर्ख दुर्योधन शत्रुओंके वशमें हो गया था, जहां उसका महानिरादर हुआ था, जहां मैंने

पीछेसे अर्जुनकी रक्षा की थी, और जहां भीमने नकुल सहदेवकी रक्षा की थी, जिस युद्धमें अर्जुनने दुर्योधनके शत्रुओंको नाश करके उसे कुड़ाया था, कही उस युद्धका भी कभी दुर्योधनकी स्मरण आता है ? हे सत्ता ! हमने दण्डके सिवा और किसी उपायसे दुर्योधनको अपने वशमें हीते नहीं देखा, तब युद्धको उद्यत हुए हैं ।

२२ अध्याय समाप्त ।

सञ्जय बोले, हे राजन् युधिष्ठिर ! आपने जो कुछ कौरवोंके प्रति पूछा वे सब यशस्वी कौरव कुशलसे हैं । हे पाण्डव ! सब बड़े धृतराष्ट्र पुत्रसे अच्छा बर्ताव करते हैं, परन्तु धृतराष्ट्र पुत्रका चित्त बद्धत पापी है, हा यह बात है कि उसने शत्रुओंको भी जीविका देदी है फिर ब्राह्मणोंकी जीविका कैसे छीन सकता है ? तुम धृतराष्ट्रपुत्रसे मीन होकर द्वेष करते हो, सो अच्छा नहीं । पापी धृतराष्ट्र पुत्रोंके सहित तुम साधुओंके सङ्ग द्वेष करते हैं । हे युधिष्ठिर ! बद्धत बूढ़ा कुछ धर्म नहीं जानता और सदा तुम लोगोंसे जलना रहता है । सदा ब्राह्मणोंसे विश्वासघातकी कथा सुना करता है । यह विश्वासघात महापातक है, हे युधिष्ठिर ! सब कौरव युद्धोंमें तुम्हारा स्मरण किया करते हैं, वाण चलानेके समय अर्जुनका स्मरण किया करते हैं, भीमसेनकी शंख, भेरी और नगरोंके शब्दोंके सङ्ग स्मरण करते हैं । और महायुद्धोंमें चारों ओर युद्ध करते हुए नकुल और सहदेवका स्मरण किया करते हैं, कौरव लोग कहा करते हैं कि माद्रीपुत्र नकुल और सहदेव महायोद्धा हैं और युद्धसे कभी नहीं हटते । हे राजन् ! हे पाण्डव ! जगत्में ऐसा कोई मनुष्य नहीं जो प्रारब्धको जान सके । क्योंकि सब धर्म जाननेवाले आप भी इस भोगते हैं, इससे जानते हैं कि प्रारब्ध बड़ी

बलवान है। हे पाण्डव ! आप इतने दुःख सह कर भी शान्ति चाहते हैं, इससे हम जानते हैं कि पाण्डुपुत्र किसी काम और धनके लिये भी धर्मको नहीं छोड़ेंगे, क्योंकि आप पांचो भाई इन्द्रके तुल्य हैं। हे अजातशत्रु ! आप अपनी बुद्धिसे सन्धि कीजिये, जिसमें सब कुरुकुलका कल्याण हो। धृतराष्ट्रके पुत्र पाण्डव और उज्जय आदि राजा सुनै, हमसे जो कुछ तुम्हारे पिता धृतराष्ट्रने कहा है सो सुनो। हे राजन् ! महाराज धृतराष्ट्रने पुत्र, सन्धी और बान्धवोंके सहित जो कहा है सो सुनो।

२४ अध्याय समाप्त ।

युधिष्ठिर बोले, हे गालवगणपुत्र सञ्जय। पांचो पाण्डव, सञ्जय, श्रीकृष्ण, सात्यकी और विराट आदि सब महात्मा सभामें आगये है, प्रत्येक जो कुछ राजा धृतराष्ट्रने तुमसे कहा है, सो तुम कहो।

सञ्जय बोले, महाराज युधिष्ठिर, भीमसेन, कुरुकुल, सहदेव, श्रीकृष्ण, सात्यकी, चैकितान, पञ्जाव देशके स्वामी बूढ़े महाराज द्रुपद और महावीर धृष्टद्युम्न आदि महात्मा मेरे उन चनोंको सुनै जो मैं कौरवोंके कल्याणके लिये कहता हूँ। महाराज धृतराष्ट्रने सुभसे लते समय जो कुछ अपने भतीजोंको कहा है, मैं कहता हूँ। उन्होंने कहा है कि पाण्डव लोग सब प्रकारसे सब धर्मोंसे भरे हैं, मैं बुद्धि, लज्जा और कोसलता निवास मानता हूँ, वे लोग उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए हैं और जगतके नियन्त्रकों जाननेवाले हैं। महाराजने कहा है कि तुम लोगोंमें दीनता नहीं है, तम लोग महा पराक्रमी हो, और अपने पास सेना भी बलवान है, यदि कोई पाप अपनी छोरसे हो जाय तो वह ऐनाही हो जायेगा जैसे सपेद वस्त्रपर लाली। इससे हमने सब जगतके चरित्रोंका नाश

होगा और इस पापसे सबकी नर्क होगी। इस युद्धके करनेकी किस बुद्धिमानकी इच्छा होगी, जिसमें हार और जीत समानही है, उनको घन्य है, जो जातिके लिये कलप्राण करते हैं। वेहो हमारे पुत्र, मित्र और बन्धु हैं, जो इस समय युद्धको रोकें, क्योंकि युद्ध न होनेहीसे कुरुकुलका कलप्राण है। यदि वे लोग शत्रुओंको अपने वशमें करके पाण्डवोंकी शिक्षा देकर राज्यका निर्णय कर दें तो बलवान अच्छा होगा, नहीं तो वंश नाश करके मरना और जीना समानही है। महाराजने कहा है, कि हमको निश्चय है कि धृष्टद्युम्नसे रक्षित, कृष्ण, सात्यकी और चैकितानके सहित पांचो पाण्डवोंसे कोई युद्ध नहीं कर सकता, वे सब देवतोंके सहित साक्षात् इन्द्रको भी जीत सकते हैं, और यह भी निश्चय है कि द्रोणाचार्य, भीष्म, कृपाचार्य, शल्य और अश्वत्थामासे रक्षित राधापुत्र कर्ण आदि राजोंके सहित दुर्योधनको महा सेनाको भी कोई नहीं जीत सकता। परन्तु हमको हार और जीत किसीसे कलप्राण नहीं दीखता। हम जानते हैं कि पाण्डव नीच कुलमें उत्पन्न हुए अधर्मियोंके समान इस कुकर्षको नहीं करेंगे, इस लिये हम हाथ जोड़कर सोमकवश अष्ट बूढ़े महाराज द्रुपद और कृष्णके शरण हैं; उन दोनोंकी ऐसा काम करना चाहिये, जिसमें उज्जय और कुरुकुलका कलप्राण हो। यदि कृष्ण और अर्जुन मेरे इस वचनको नहीं मानेंगे तब वे लोग यह भी निश्चय रखें कि युद्धमें किसीका भी प्राण नहीं बचेगा। हमने जो कुछ कहा है, सो सब शान्तिके लिये कहा है, डरसे नहीं।

यह सब वचन महाराजने भीष्मकी सम्मतिसे कहे हैं। अन्तमें फिर महाराजने कहा कि शान्ति होनी अच्छी है

२५ अध्याय समाप्त ।

महाराज युधिष्ठिर बोले, हे सूत । हे सञ्जय । तुमने हमारी कौनसी ऐसी वाणी सुनी जिससे तुमको यह निश्चय होगया कि युधिष्ठिर युद्ध करना चाहते हैं ? तुम मेरे कौनसे वचन सुनकर युद्धसे डरे ? मेरा सदासिद्धान्त है कि युद्धसे शान्ति अच्छी है । ऐसा कौन मूर्ख है जो राक्षि छोड़कर युद्ध करेगा ? हे सूत ! यदि बिना सङ्गल्होके कोई कार्य सिद्ध हो, तो सङ्गल्ह न करना चाहिये । यदि सङ्गल्होसे कार्य सिद्ध हो, तो कर्मही नहीं करना चाहिये । यदि थोड़े कर्मसे कार्य सिद्ध होता हो तो बड़ा कर्म करना उचित नहीं, इस लिये मेरी बुद्धिमें युद्ध होना अच्छा नहीं है । ऐसा कौन प्रारब्धका सारा है, जो शान्ति छोड़कर युद्धकी इच्छा करे ? जगत्में ऐसा कौन है जो वृथा युद्ध करना चाहे ? हां पाण्डव लोग सुखकी इच्छा करते हैं, परन्तु उस सुखको ऐसे कर्मसे प्राप्त करना चाहते हैं, जिसमें सब लोकका कल्याण हो । पाण्डव धर्मसे सब काम करते हैं, और धर्महीसे अपना राज्य तथा सुख प्राप्त करना चाहते हैं । वे लोग बड़े मूर्ख हैं जो इन्द्रियोंके सुखके लिये दुःखोंको दूर करके सुख प्राप्त करना चाहते हैं, जिन कर्मोंका उपाय कठिन है वे सब दुःखदायकही हैं । जिस प्रकार दबी हुई थोड़ी अग्नि बढकर सबको जला देती है, ऐसेही विषयोंकी चिन्ता शरीरको भस्म कर देती है, उससे पुरुषकी सब शक्ति घट जाती है, और अनेक दुःख प्राप्त होते हैं । जैसे अग्निमें जितना घी डालो उतनाही अग्नि बढती जाती है, ऐसेही मनुष्यको जितना सुख मिले उतनीही इच्छा बढती जाती है । देखो राजा धृतराष्ट्रने अपने धनसे तप न होकर हमारे धनको भी डोब लिया तब भी उनकी तपि नहीं होती । हा हमें यह निश्चय है कि महाराज धृतराष्ट्र बड़े धर्मालस हैं, क्योंकि

पापीको ऐसे सुख कहाँ होते हैं ? पापी युद्ध और सन्धि करानेका स्वामी नहीं होता । पापी अच्छे गीत नहीं सुनता, पापीको उत्तम सुगन्धि माला और चन्दनादिक नहीं मिलते, पापीको उत्तम वस्त्र नहीं मिलते । इसमें एक प्रमाण यही है कि यदि महाराज पापी होते तो हम लोगोंका राज्य क्यों हीन लेते, क्योंकि धर्मालसाही शत्रुओंको राज्यसे निकालते हैं । परन्तु यह सब धर्म उनको मूर्ख दुःखोपनादिकोंके करने योग्य है, हम लोगोंके नहीं । यही विचार कर हमारा हृदय दुःखसे जला करता है । बड़े शोककी बात है कि राजा आपही सङ्कटमें पड़कर कर्णदिकोंकी शक्ति बढा रहे हैं, सो अच्छा नहीं है, वे जैसे अपनेको समझते हैं, क्या ऐसेही कर्णदिकोंको समझते हैं ? महाराजका ऐसाही विचार है जैसे कोई मनुष्य बहूत लकड़ीके ढेरमें गरमीके समय आग लगाये और कहे कि जाड़ोंमें बरफ दंगा । हे सञ्जय ! राजा धृतराष्ट्र सब प्रकार सुखोंकी पाकर अब किस लिये रोते हैं ? अपने मूर्ख पुत्र दुष्ट कर्म करनेवाले दुःखोपनाकी लिये बैठे रहें, मूर्ख दुःखोपनने महाबुद्धिमान, विदुरके वचनको मूर्खके वचनसे समान भी नहीं सुना । राजा धृतराष्ट्र अपने पुत्रको सुख देना चाहते हैं, इस लिये यह सब अधर्म उन्हींको होगा । महाबुद्धिमान, महापण्डित, महाशीलवान, महावक्ता कौरवोंका सुख चाहनेवाले विदुरके वचनोंको भी महाराजने अपने पत्रोंके लिये छोड़ दिया । हे सञ्जय । राजा धृतराष्ट्रने अपने पत्रके सुखके लिये अर्थ और धर्मको छोड़ दिया है, उनका पुत्र दुःखोपन सबके सम्मानका नाशक मर्म, दूसरेकी उन्नतिको न सहनेवाला क्रोधी, अधर्मी, कठोरवादो, कासी, क्रोधके वशमें रहनेवाला, दुष्ट किसीकी बातको न माननेवाला और दृष्टबुद्धि है । हे सञ्जय । जवा खेलनेके समय

जब राजा धृतराष्ट्र ने विदुरकी वचन नहीं मानी, तबही हमको निश्चय हो गया था कि कुरु-वंशके नाशका समय आ गया है। है स्त ! जिस समय राजा धृतराष्ट्र विदुरकी बुद्धिसे नहीं चले, तभी हमने जान लिया था कि कौरवोंके नाशका समय आ गया। जबतक राजा धृतराष्ट्र विदुरकी बुद्धिसे चले तबतक उनका राज्य बड़ा। है गालवगण-पुत्र ! अब मूर्ख दुर्योधनकी बुद्धि देखो, उसने शकुनि दुःशासन और सूतपुत्र कर्णको अपना मन्त्री बनाया है, हमें कोई उपाय अब ऐसा नहीं देखता जिसमें लक्ष्मण और कौरवोंका कल्याण हो। जिस समय हम लोग बनको चले गये थे और राजा धृतराष्ट्र ने सहा बुद्धिमान विदुरको निकाल दिया था। उसी समय राजा धृतराष्ट्र ने पुत्रोंके सहित समस्त पृथ्वीमें अपना निष्काण्टक राज्य समझ लिया था, ऐसे लोभी राजासे सन्धि किस प्रकार हो सकती है, जा संवधनकी अपनाही समझता है। कर्ण जानता है कि मैं न जीतने योग्य अर्जुनको युद्धमें जीत लूंगा, सो केवल उसको मूर्खताही है। था पहले कोई धीर युद्ध नहीं हुआ ? उन युद्धोंमें कर्णने कौरवोंकी रक्षा क्यों न करो ? कर्ण, दुर्योधन, द्रोणाचार्य और भीम आदि सब कौरव जानते हैं कि अर्जुनके समान कोई धनुषधारी नहीं है। सब कौरव और राजा लोग यह भी जानते हैं कि शत्रु-नाशन अर्जुनके न रहते दुर्योधन राजा होगया है। इसी लिये धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनने यह जान लिया है कि हम पाण्डवोंका जीत लेंगे, इसका कारण उस समय जानेंगा जब ताड़के समान धनुष धारण कर लक्ष्मण युद्ध करेंगे। जबतक गाण्डीव धनुषके शब्दकी नहीं सुनते, तबहीतक धृतराष्ट्रके पुत्र अभिमान करते हैं। जबतक भीमसेन क्रोध करके युद्धमें नहीं जाते तबहीतक दुर्योधन अपनी सिद्धि देखता है। है तात !

भीमसेनके जीते इन्द्र भी हमसे राज्य नहीं छीन सकता ? महावीर अर्जुन और सहदेवके जीते क्या कोई हमसे राज्य छीन सकता है ? है स्त ! यदि राजा धृतराष्ट्र हमसे युद्ध करनेकी इच्छा करेंगे तो उनके सब पुत्र पाण्डवोंके क्रोधकी अग्निमें भस्म हो जायेंगे। है सञ्जय ! तुम जानते हो कि उन्होंने हमको कैसे कैसे दुःख दिये हैं। हम तुम्हारे ऊपर कृपा करके क्षमा करते हैं, तुम्हें यह भी विदित है, कि हम दुर्योधनको सङ्ग कैसा वर्त्ताव करते थे ? यदि तुम्हारे कहनेके अनुसार राजा धृतराष्ट्र वास्तवमें सन्धि करना चाहते हैं, तो जाओ हमारे भी राशि करनेहीकी इच्छा है, और हम सब व्यवहार पहलेके समान करेंगे। इन्द्र प्रस्थमें हमारा राज्य और कुरुक्षेत्र दुर्योधन हास्तनापुरमें रहें।

२६ अध्याय समाप्त ।

सञ्जय बोले, है पाण्डव ! है कृन्तीनन्दन युधिष्ठिर ! आप धर्मका नित्य जानते हैं, आपको कीर्ति जगतमें प्रसिद्ध है। आप जोनेको अनित्य जानते हैं, इस लिये धृतराष्ट्रके पुत्रोंका नाश मत कीजिये। है युधिष्ठिर ! यदि कौरव-लोग विना युद्धके आपका राज्य न दें तो आप भिक्षा मागकर अत्यन्त आर वृत्ति देखते रहिये, अथवा कोई और जीविकाका उपाय कर लीजिये, क्योंकि जोना अनित्य है, कीर्ति और सुख दुःख भी रहा नहीं रहते, और युद्ध करना आप ऐसे धर्मात्माओंका काम भी नहीं है, इस लिये आप इस पाप कर्मका न कीजिये। है राजेन्द्र ! सब मनुष्य अपनी इच्छानुसार जो चाहे सो कहें, क्योंकि ये पापके सूत हैं, परन्तु बुद्धिमान मनुष्य इन मूर्खोंको सङ्गितको छोड़कर महा कीर्तिको प्राप्त होने हैं। है कृन्ती-पुत्र ! धनको वृत्ता धर्मका नाश करती है, और महात्माओंका धर्मही करना चाहिये ;

धनकी इच्छा करनेवालीका धर्म नाश होता है इस लिये आप इस पाप कर्मको मत कीजिये । हे प्यारे युधिष्ठिर ! उत्तम कर्म और धर्म करनेसे आपका प्रताप सूर्यके समान दीखता है, और पापी दुर्धर्मधन सब पृथ्वीका राजा होनेपर भी अधर्मके कारण दुःख पा रहा है । आपने वेद पढ़ा, ब्रह्मचर्य किया, अनेक यज्ञ किये, ब्राह्मणोंका दान दिये और केवल धर्मके लियेही तेरह वर्ष वनमें रहकर अनेक दुःख भोगे । आपने परलोकको सत्य जानकर अपना शरीरतक भी दे दिया । जो मूर्ख बृद्धत दिनतक सुख करके योगाभ्यास नहीं करता, वह धन नाश होनेके पश्चात् अनेक चिन्ताओंसे व्याकुल होकर दुःख भोगता है । जो मूर्ख ब्रह्मचर्यको छोड़ धर्मका नाश कर अधर्म करता है, और परलोकको सत्य नहीं मानता, वह मरकर महा दुःख भोगता है । पाप या पुण्यका कांड कर्म परलोकमें भी नष्ट नहीं होता, परलोकमें पहले कर्म और पोंके करनेवाला जाता है, आपने जो ब्राह्मणोंको न्याय और अज्ञाके समेत पवित्र रस आर सुगन्धसे भरे उत्तम अन्न दिये है, उससे और उत्तम दक्षिणा देनसे आपको कर्त्तव्य जगतमें फैल रहा है । हे युधिष्ठिर ! इसी लोकमें सब कार्य किये जाते हैं, मरनेके पोंके कांड काम नहीं होता । आपने परलोकके लिये महात्माओंके करने योग्य अनेक धर्म किये हैं । जो धर्म करता है, वह मृत्यु, भूख, प्यास, मनके विरुद्ध कर्म सबको जीत लेता है । आपको जगतमें अब कुछ करना शेष नहीं है, अब आपको अपनी इन्द्रियोंको प्रसन्न करनेहोसे शेष है । हे पाण्डव ! ऐसे उत्तम कर्म करके अब आप केवल लाभके वशमें होकर क्रोध या प्रसन्नतासे बृद्धत दिनके लिये दोनों लोकोंका नाश मत कीजिये । आप सब धर्मके पार होकर अब सत्य, धर्म कीमलता और लज्जाको मत

छोड़िये । राजसूय और अश्वमेध आदि व करके अब पापके मार्गमें मत चलिये । कुन्तीनन्दन ! यदि आप इस वैर रूपी पाप करना चाहते हैं तो इससे सदा वनमें रह दुःख सहनाही अच्छा है, आपको वशमें जित सेना है, सबका बिना नाश करायेही व वनको चले जाइये, क्योंकि वन जानेके प भी आपके मन्त्री, कृष्ण, महावीर सा राजा विराट पुत्रोंके सहित राजा रुक् और ये सब राजा तथा सब सहायक व वशहीमें थे, परन्तु इन सबको छोड़ आप वनको चले गये थे, वैसेही भी चले जाइये । आप बृद्धत सहाय सहित कृष्ण और अर्जुनको मन्त्री करके बलवान शत्रुओंको मारकर दुर्धर्मधनके मानका नाश करेंगे, भला यह क्या बुद्धिमान काम है ? किन्तु दूसराके बलको बढ़ा अपने बलकी घटाकर अनेक वर्ष वनवास व अब युद्ध करनेकी इच्छा करते हैं ? अब उसी समय युद्ध क्या नहीं किया ? हे पा उस समय क्या आप बुद्धिमान नहीं थे जा नाक्या ? मूर्ख युद्ध करके, और मान बिना युद्ध कियेही धैर्यसे धन धर्म कल्याणका प्राप्त करता है । हे कुन्तीपुत्र ! अब बुद्धि कभी अधर्ममें नहीं जाती, इस लिय पाप कर्म युद्धको मत कीजिये । युद्धमें कि कल्याण नहीं होता, आपन पहले कारणसे युद्ध नहीं किया था, फिर अब बुद्धिबरोधो कर्मका क्या करते हैं ? हे राज ! बिना रागके राग शिरमें पीड़ा वाली, क्रोधको जोतिये और शान्त हो महात्मा लोग इस क्रोधरूपी विषका पीते हैं । ऐसा कौन बुद्धिमान हागा जो कर्म युद्धको करेगा ? आपको भोगोंसे च अच्छी लगती है, हे युधिष्ठिर ! वह के उत्तम भोग है जिसे आप शान्तपुत्र

द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, शल्य, भूरिश्यावा, विकर्ण, विविंशति, कर्ण और दुर्योधनको मारकर भोगियेगा ? आप इस समुद्र पथ्यन्त पृथ्वीको पाकरभी क्या बुढ़ापे और मृत्युका जीत सकियेगा ? आप अप्रिय दुःख और दुःखको जानते हैं, इस लिये आप सरीखे विद्वानको युद्ध करना योग्य नहीं । यदि आप कहें कि हम अपने मन्त्रियोंका राज्य देनेके लिये युद्ध करना चाहते हैं, तो यह भी आपके समान महात्माओंको करने योग्य नहीं है ।

२३ अध्याय समाप्त ।

महाराज युधिष्ठिर बोले, हे सञ्जय । तुमने जो कहा कि युद्धसे धर्म करना अच्छा है सो इसमें कुछ सन्देह नहीं है, हम भी ऐसाही मानते हैं । परन्तु, तुमको हमारा धर्म और अधर्म विचार कर तब हमारी निन्दाकरनी उचित थी । जहा धर्म अधर्म-रूप और अधर्म धर्मरूपसे माना जाता है, वहां बुद्धिमान पण्डितलोग धर्मके रूपको बुद्धिसे पहचान लेते हैं । हे सञ्जय । हमने जो धर्म और अधर्म कहे, यह धर्मके लक्षण जानो, धर्म और अधर्म सदाही जगत्में धूसा करते हैं । परन्तु जो जिसका पहला धर्म है, वही उसके लिये प्रमाण है, अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्री वैश्य और शूद्रोंके जो धर्म कहे हैं वेही उनके लिये कलत्राणदायक हैं, दूसरेकी वृत्ति करना अधर्म कहाता है । जिस समय मनुष्यकी अपनी वृत्ति नष्ट हो जाय, उस समय अत्यन्त दोन होकर दूसरे वर्णकी वृत्ति करनी चाहिये । हे सञ्जय ! जो निज वृत्तिसे रहते दूसरे वर्णका काम करता है, और जो आपत्तिसे पड़कर हठसे अपना कर्म करना चाहता है, यह दोनोंही नीच कहाते हैं । ब्राह्मणोंके कल्याणके लिये प्रायश्चित्त कहे हैं, उस शास्त्रकी देखकर तुम अपने कर्म करनेवालीकी प्रशंसा और दुरे कर्म

करनेवालीकी निन्दा करो । महात्माओंकी बुद्धिकी अलग करनेके लिये भिक्षावृत्ति बनाई है, वह भिक्षा वृत्ति ब्राह्मणोंकी और अन्य वर्णवाले मनुष्योंकी है, इस लिये सबको अच्छी अवस्थारो अपन अपना धर्म करनाही उचित है । जो कर्म हमारे पिता पिता-सह और उनसे पहले पुर्षोंने किया है, वही यज्ञादिक कर्म हमको भी करने चाहिये, क्योंकि उनके न करनेसे हम नास्तिक कहावेंगे । हे सञ्जय ! हम अधर्मसे पृथ्वीका और सब देवतोंका भी धन प्रजापातका स्थान और ब्रह्माका लोक लेना नहीं चाहते । ऋक्षणा, धर्मके स्वामी, नीतके जाननेवाले, महा पाण्डित और अनेक प्रकार राजके भोगाकी भोगते हैं, याद मैं सांख्य ताड़कर युद्ध करनेकी इच्छा करता हूँ, या युद्धसे भी अपन धर्मका कीड़ता हूँ तो महा यशस्वी वसुदेवपुत्र कृष्णको कहें, क्योंकि वे हम दानोंका कलत्राण चाहते हैं । यह सात्यकी, चौद देशके राजा, अन्धक, वृष्णिवशी, भाजवशी, कुक्षरवंशी और सञ्जयवंशी क्षत्री रुभासे बैठे हैं, ये सब कृष्णकी बुद्धिसे शत्रुओंका नाश करते हैं और मित्रोंका सुख देते हैं । यदुवंशी और अन्धकावंशी उग्र-सेनादिक राजा कृष्णके आययसे इन्द्रके तुल्य हागये हैं, यह सब महात्मा, सत्यवादी और अनन्त भाग भोगते हैं, काशिके वसु नामक राजा कृष्णको भाई और स्वामी बनाकर परम लक्ष्मीका प्राप्त हुए हैं, हे सञ्जय ! ऋक्ष- इस प्रकार धन देते हैं, जैसे वपु कातरने भेष प्रजाका जल देते हैं । हे सञ्जय ! ऋक्षणा महाविद्वान और कर्मोंके निन्दयको जाननेवाले हैं, कृष्ण हमारे दहत प्यारे और महात्मा हैं । इस लिये जो ये कहेंगे सोई हम करनी ।

२४ अध्याय समाप्त ।

श्रीकृष्ण बोले, हे सञ्जय ! हम पाण्डवोंका कल्याण और वृद्धिही चाहते हैं, उनके नाशकी कदापि इच्छा नहीं करते। ऐसेही महाराज धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी भी उन्नतिही चाहते हैं। हे सञ्जय ! मेरे अन्तःकरणका यहाँ अभिप्राय है कि कौरव और पाण्डवोंमें शान्ति हो। मैं रुद्र पाण्डवोंसे यही कहता रहता हूँ कि तुम लोग सन्धि कर लो, मेरी बुद्धिमें पाण्डव और राजा धृतराष्ट्रकी सन्धिसे कल्याण होगा। परन्तु यहभी निश्चय है, कि महाराज युधिष्ठिरके सङ्ग दुर्धनको सन्धि होनी बहूत कठिन है, क्योंकि जहाँ राजा धृतराष्ट्र ऐसे लोभो पुत्रोंके रहित जीते हैं, तहाँ युद्ध क्यों न होगा ? हे सञ्जय ! तुम हमारे और युधिष्ठिरके चित्तसे धर्मको नहीं उठा सकोगे, इस लिये हम लोगोंको अधर्मी भी नहीं सिद्ध कर सकते हो ? तब धर्मपालक उत्साह भरे युधिष्ठिरको उनके कर्मसे क्यों रोकते हो ? तुमने कुटुम्बमें शान्ति चाहनेवाले युधिष्ठिरको पापी कैसे कहा ? जब महाराज युधिष्ठिर अपना धर्म करते हैं, तब ब्राह्मण लोग उनकी अनेक प्रकारकी वाणी सुनाते हैं; कोई महात्मा कहते हैं कि इस लोकके कर्मसे परलोकमें सिद्धि होती है, कोई कर्मके विनाही विद्यासे सिद्धि बतलाते हैं, परन्तु चाहे कोई कैसाही विद्वान हो, वह भी विना भोजन किये तृप्त नहीं होता, इस लिये कर्म करनाही प्रधान है। जो विद्या कर्मका सिद्ध करतो है उसीका फल भी दोखता है, और जिससे कुछ कर्म सिद्ध नहीं होता उस विद्याका फल भी नहीं दोखता। कर्मही करनेसे सिद्धि होती है। प्यासा पानी पीनेहीसे शान्त होता है, हे सञ्जय ! यह सब कर्महीका फल है, इससे जो कोई विलुप्त कहेगा उसका कहना कथा है, और कहनेवाला भी दुर्बल समझा जायगा। कर्महीसे देवता स्वर्गमें रहते हैं, कर्महीसे वायु बहता है;

कर्महीसे सूर्य आलस्य रहित होकर दिन और रातका विभाग करता है, कर्महीसे चन्द्रमा महीने पक्ष नक्षत्र और योगोंको अलग अलग करते हैं; कर्महीसे भगवान् अग्नि सब वस्तुओंको जलाते हैं, कर्महीसे आलस्यरहित होकर पृथ्वी सब जगतको धारण करती है आलस्यरहित जल शीघ्र बहता है; नदी सबको तृप्त करतो है, आलस्यरहित होकर महा तेजस्वी मेघ सब दिशा और आकाशका अपने शब्दसे पूरित करके जल वर्षाते हैं, आलस्यरहित इन्द्रने देवतामें उत्तम होनेके लिये ब्रह्मचर्य किया था, इन्द्र अपने मनके प्यारे कर्म और सुखको छोड़कर तथा सावधान होकर सत्य, धर्म, त्याग और सबकी तुल्यताकी धारण करके देवतामें अष्ट हुए हैं। इन सब कर्मोंके करनेसे देवराज इन्द्र सब देवतामें मुख्य और देवताके राजा बने हैं। बृहस्पतिने अपने प्यारे कर्मोंको छोड़ इन्द्रियोंकी अपने वशमें कर ब्रह्मचर्य व्रत किया था, इसहीसे महात्मा सब देवताके गुरु हुए। आकाशमें ताँ, विश्वे देवता, सूर्य, रुद्र, यमराज, कुबेर, गन्धर्व और अप्सरा, ये सब कर्महीसे सिद्धि की प्राप्ति करते हैं। ऋषि लोग वेदविद्या पढ़कर तथा ब्रह्मचर्य और उत्तम कर्म करके तेजस्वी बनते हैं। हे सञ्जय ! तुम विद्वान् होकर तीनों लोकोंके ब्राह्मण, क्षत्रो और वैश्योंके धर्मको जानकर भी कौरवोंका पक्ष लेकर क्यों हठ करते हो ? महाराज युधिष्ठिरने समस्त वेदका पढ़ा है उन्होंने अश्वमेध और राजसूय आदि अनेक यज्ञ किये हैं, ऐसे मनुष्यको शिष्टा देनी नूल नहीं तो क्या है ? यह मनुष्य, कवच हाथी, घोड़े, रथ और शस्त्रों अपनी वृद्धि करना चाहते हैं, और यदि महा राज युधिष्ठिर भीष्मसेनके क्राधका रोककर विना कौरवोंके नाश किये कोई राज्य-प्राप्तिका उपाय निकाले, तो वड़ेही धर्मात्मा गिने जायें

परन्तु हमारी बुद्धिमें यदि ये लोग अपने कुल-
धर्ममें अर्थात् युद्धमें प्रारब्ध वशसे मारे सी जायं
तो वह मृत्यु भी प्रशंसा करनेके योग्य होगी ।
और यदि तुमने कोई सन्धिका उपाय सोचा
हो तो हमकी सुनाओ, क्योंकि तुम जानते हो
कि युद्ध करनेसे धर्म होता है या सन्धि करनेसे
धर्म होता है ? जैसा तुम कहोगे तैसाही हम
करेंगे । परन्तु इस कहनेके पहले चारों
वर्णोंके विभाग और अपने धर्मको विचार
लो; इसके पश्चात् पाण्डवोंके वचन भी सुन लो;
तब अपनी बुद्धिके अनुसार चाहे इनको निन्दा
करो, चाहे प्रशंसा करो । वेदमें लिखा है कि
ब्राह्मण पढ़े, पढ़ावे, मज्जात्याग्योंकी दान दे,
यजमानोंकी यज्ञ करावे और उचित दानकी
ग्रहणा करे, यही ब्राह्मणकी कः कर्ष्य हैं । क्षत्री
अपने धर्मके अनुसार सावधान होके प्रजाका
पालन करे, दान दे, वेद पढ़े, यज्ञ करे और
घरमें रक्षक दान करे, यही क्षत्रीके धर्म हैं ।
जो इन धर्मोंको करता है, वही युद्ध करने-
वाला धर्मात्मा क्षत्री स्वर्गको जाता है । वैश्य
वेद पढ़कर खेती करे, गौओंकी रक्षा करे और
सावधान होकर धनसे व्यापार करे । पण्डित
नैश्यकी उचित है कि ब्राह्मण और क्षत्रियोंका
पारा कर्ष्य करके घरमें बसे । शूद्र तीनों
वर्णोंकी सेवा करे, और सदा गालसरहित
होकर तीनों वर्णोंका कल्याण चाहे । शूद्रकी
वेद पढ़ने और यज्ञ करनेका अधिकार नहीं
है । महापाल शुषिष्ठिर सावधान होकर अपने
धर्मका पालन करते हैं और सब वर्णोंको
उचित धर्मोंमें चलाते हैं, ये कामी नहीं हैं,
प्रजाकी रक्षान मानते हैं और कभी अधर्ममें नहीं
गते । जो मनुष्य इनसे अधिक ज्ञानी और
धर्मात्मा हो, वही इनकी शिक्षा दे, वह शिक्षा
मने लोनी चाहिये जिन्हे महाराजकी राज्य
भी मिले, और युद्ध भी न हो, ऐसे उपायकी
महानता समझनी चाहिये । हे सञ्जय ! तुम

जानते हो, जब कोई अपने बलके अभिमानमें
आकर दूसरे राजाके धनकी लूटना चाहता है,
तबही युद्ध होता है, उसी युद्धके लिये ब्रह्मणे
शस्त्र और धनुष बनाये हैं । इन्द्रने डाकुओंके
मारनेके लिये युद्ध बनाया है और इसी लिये
शस्त्र, कवच और धनुष उत्पन्न हुए हैं । दुष्टोंके
मारनेकीसे धर्म होता है, और यह दुष्टता
दोष कौरवोंमें निवासही करता है । हे सञ्जय !
यह कलकपो दोष अधर्मी कौरवोंकीसे उत्पन्न
हवा है, सो अच्छा नहीं है । हमें निश्चय है
कि राजा धृतराष्ट्र पत्नोंके सहित पाण्डवोंका
धर्म नाश करना चाहते हैं, उनके पास बैठने-
वाले और उनके वंशके क्षत्री भी सनातन
धर्मको नहीं जानते । हे सञ्जय ! जहा चोर
बिना देखे धन चुराले वा कोई दुष्ट देखते हुए
कुलसे धन लीन ले यह दोनोंही चोर कहाते
हैं और दोनोंहीकी निन्दा होती है । तब
कहो क्या राजा दुर्योधन इन दोषोंसे बचे हैं ?
वह लोभके वशमें होकर पाण्डवोंके धन लेने-
कीसे धर्म समझते हैं, परन्तु पाण्डव उस
क्रोधकी अपना भाग क्यों देंगे ? हे सञ्जय !
इस विषयकी तुम सब राजाओंके आगे राजा
धृतराष्ट्रसे कहना कि चाहे युद्ध करो वा मत
करो, पाण्डवोंकी राज्य देनाही उत्तम है,
क्योंकि हमारेका राज्य लेनेसे मरना अच्छा है ।
हे सञ्जय ! जो सूर्व राजा लोग मृत्युके वशमें
होकर दुर्योधनकी सहायताको आवे हैं, उनसे
पृच्छना कि वह धर्म है वा अधर्म ? भोत्मादिक
धर्मात्मा कौरवोंसे पूछना कि कौरवोंकी
सभाके बीचमें रजस्तला, धर्म करनेवाली यज्ञ-
ग्निनी पतिव्रता द्रौपदीकी जानाही धर्म है ?
यदि राजा धृतराष्ट्र कन सभाके बीचमें दृष्ट
दृष्टान्तकी इस बुरे कर्मसे रोवने तीक्ष्णवृत्ति में
उनसे प्रसन्न होना और उनकी धर्मात्मा
कहना और उनके गठोंका भी बर्णना करना;
दृष्टान्तके अधर्मसे द्रौपदीकी सन्तानोंके मामले

सभामें खींचा, कहा यही धर्मका काम है ? द्रौपदीको सभामें रोनेकी हस चमा नहीं कर सकते हैं और मन चमा होसकता है, उस सभामें अनेक राजाभी बैठे थे, परन्तु भयसे कोई धर्मका वचन न कह सका, केवल विदुरही धर्मके अनुसार दुर्योधनसे विवाद करते रहे । हे सञ्जय ! तुम विना धर्म जानहो इस सभामें युधिष्ठिरकी उपदेश करना चाहते हो ? द्रौपदीने जो सभामें आकर कहा था, सो बहुत उचित और पवित्र था, द्रौपदीने उस समय पाण्डवोंका और अपना इस प्रकार उद्गार किया था, जैसे समुद्रमें डूबते हुए मनुष्यको नाव बचातो है । उसी समय वृद्धोंके आगे सूतपुत्र कर्णने कहा था, हे द्रौपदी । हे भामिनी । अब तुम्हें कहनीं गति नहीं है, तू दुर्योधनकी दासी बनके रह, तेरे पति हार गये । अब तू किसी दूसरेकी पति बना । तुम जानते हो, कि कर्णने ये वचन अर्जुनके हृदयमें तेज वाणकी समान लगे हैं, उस घोर वाणसे अर्जुनके धर्मस्थान कटे जाते हैं, जिस समय पाण्डवोंने वनकी चलनेके लिये काली हरिणके चमड़े ओढ़े थे, उसी समय दुःशासनने यह कठोर वचन कहे थे कि नपुंसक पापी पाण्डव बहुत कालके लिये घोर नरकमें पड़े । गान्धार देशके राजा शकुनिने कलसे जुआ खेलनेके समय युधिष्ठिरसे यह कठोर वचन कहे थे, कि तेरे छोटे भाइयोंकी हसने जीत लिया अब द्रौपदीको दाव पर लगाओ । हे सञ्जय ! तुम तो इन सब बातोंकी जानतेही हो, कि जुएके समय पाण्डवोंकी कौरवोंने कैसे कैसे कठोर वचन कहे थे, इन सब प्रश्नोंकी समाधान करनेकी स्वयम् हमारीही इच्छा हस्तिनापुर जानेका है । यदि तुम किसी उपायसे कौरव और पाण्डवोंमें सन्धि करा दो तो हमारे मनकी इच्छा पूरी हो, और हमारे पुण्यका फल मिले, तथा कौरव भी मरनेसे बच जायं । यदि मेरी धर्म

भरी और नीति-भरी वाणीकी कौरव को मानेंगे और वहां आनेसे मेरा आदर करें तो उनका कल्याण होगा और जो मेरी इच्छित वाणीको नहीं मानेंगे तो तुम पाण्डवोंके पक्षोंकी युद्ध करते हुए अर्जुन की भीमके वाणोंसे मरा हुआ जानो । धृतराष्ट्र दुर्योधनने जो जूमें हारे हुए पाण्डवों कठोर वचन कहे थे, उनको सावधान भोः हाथमें गदा लेकर खरणा करावेंगे । बुद्धिमान राजा धृतराष्ट्र जड़, क्रोधी दुर्योधन कर्ण वड़ी शाखा, शकुनि छोटी शाखा, तथा दुःशासन फल और फूल हैं । मैं ब्राह्मण और वेद जड़, धर्मात्मा युधिष्ठिर वृक्ष, अर्जुन गुहा, भीमसेन डाली, तथा नकुल सहदेव फल और फूल हैं । राजा धृतराष्ट्र पुत्रोंके सहित वन और पाण्डव सिंह हैं । हे सञ्जय ! तुम वनकी सत काटी और न सिंहकी वनसे निकालो ! बिना सिंहके वन काटा जाता है, और बिना वनका सिंह मारा जाता है, इस लिये सिंह वनकी और वन सिंहकी रक्षा करो धर्म लता, धृतराष्ट्रके पुत्र और पाण्डव शाखा हैं । बिना वृक्षके शाखा नहीं बढ़ती इस लिये सन्धि करनी चाहिये । पाण्डव लो युद्ध करनेकी भी उपस्थित हैं, और सन्धि करनेकी भी तयार हैं, राजा दुर्योधनकी जो इच्छा हो सो करें, विशेष इतनाही है कि महा धार्मिक पाण्डव सन्धिही करना चाहते और युद्ध करनेकी भी समर्थ हुए हैं । यह सब जाकर राजा धृतराष्ट्रसे यथावत् कहना, उनकी जो इच्छा हो सो करें ।

२६ अध्याय समाप्त ।

सञ्जय बोले, हे महाराज युधिष्ठिर राजराजा युधिष्ठिर । आपका कल्याण है हस्तिनापुर जानेकी आज्ञा मागता हूँ हमने जो कुछ अनुचित कहा हो, सो

हमा कोजियेगा, मैंने जो कुछ कहा है, सो अपने मनकी इच्छा कह रहा है। हे कुष्ण ! हे भीमसेन । हे अर्जुन । हे नकुल । हे सहदेव । हे सात्यकि । हे चेकितान । आप सब लोगोंका कलप्राण हो, मैं आप सब लोगोंसे विदा मांगता हूँ, आप सब प्रेमकी दृष्टिसे मुझे देखिये । महाराज युधिष्ठिर बोले, हे पण्डित सञ्जय । हम तुम्हें जानेकी आज्ञा देते हैं, तुम कलप्राण सहित हस्तिनापुरकी जाओ, वहाँ जाकर हमारे कलप्राणका विचार करना, हम तुम्हें पवित्रात्मा और अपना मित्र समझते हैं, तुम आर्य उत्तम दूत, भीठो वाणोवाले, शीलवान, मनुष्योंके प्यारे और लज्जुष्ट हों, तुम बात कहनेमें रुकते नहीं हो और कठार बात सुन कर क्रोध नहीं करते, तुम कठार कृपी और कड़वी बात नहीं कहते ; तुम्हारी वाणी धर्म और अर्थसे भरी हिसारहित और भीठी है । हे सूत ! तुमही हमारे प्यारे दूत हो, तुम्हारे और विदुरके सिवा हमारे कलप्राणकी वाणी और कौन कहेगा ? हमने तुम्हें अज्ञत दिनपर देखा है, तुम अर्जुनके प्यारे मित्र हो । हे सञ्जय ! तुम हस्तिनापुरमें जाकर प्रणाम करने योग्य ब्राह्मण, महा पराक्रमी धर्मात्मा युद्ध करनेवाले सुवीर और वनमें रहनेवाले वेद जाननेवाले महात्मा ब्राह्मणोंकी हमारी ओरसे प्रणाम कहना, तथा और दोक्तों भी हमारी ओरसे प्रणाम कहना । हे सूत ! राजा धृतराष्ट्रके पुरोहित, आचार्य, शिष्य करानवाले तथा और भी सब महात्माओंकी हमारा प्रणाम कहके कुशल पूछना । राजा महा जलवान बूढ़ यशस्वी स्वामी हस्तिनापुरमें हमारा करण करते हैं, और जो शक्तिके अनुसार धर्म करते हैं, उनसे हमारा प्रणाम करना । तुम कहना कि महाराज युधिष्ठिर और आप सब लोगोंने कुशल पूछते हैं, जो इन राज्यमें व्यवहार करके जाते हैं,

सबसे कुशल पूछना और जो राजा राज्यमें राज्यकी रक्षा करते हैं, उनकी भी कुशल पूछना । सब वेदोंके जाननेवाले हमारे गुरु द्रोणाचार्यसे हमारा बार बार प्रणाम कहना । जिन द्रोणाचार्यने ब्रह्मचर्य करके चारों चरणोंके सहित अस्त्र विद्या सीखी है, जिन्होंने प्रसन्न होकर हमको भी शस्त्रविद्या सिखाई है, उन द्रोणाचार्यको हमारी ओरसे प्रणाम कहना । जिसने समस्त विद्याओंको पढ़कर चार चरणोंके सहित शस्त्र विद्याका पढ़ा है, उन गन्धर्वपुत्रके समान पराक्रमी अश्वत्थामासे हमारी ओरसे कुशल पूछना । वेद विद्याओंके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ महारथ शरद्वदपुत्र कृपाचार्यके स्थानमें जाकर हमारी ओरसे उनके चरण पकड़ लेना और कहना कि महाराज युधिष्ठिर अपने भाइयोंके सहित बृहत् कुशलसे हैं । इसके पश्चात् तेज, लज्जा, तप, बुद्धि, शील, विद्या, पराक्रम और बुद्धिसे भरे हुए भीष्मके पास जाना और हमारी ओरसे उनके चरणोंमें प्रणाम करके हमारा कुशल निवेदन करना । हे सञ्जय । इसके पश्चात् हमारे पिता सब बारवरोकी आज्ञामें रखनेवाले, महाबुद्धिमान अनक बूढ़ोंके सेवक महात्मा धृतराष्ट्रके पास जाकर हमारी ओरसे प्रणाम कहना और कहना कि महाराज युधिष्ठिर अपने भाइयोंके सहित रोगरहित हैं । इसके पश्चात् राजा धृतराष्ट्रके बड़े बेटे मूख भान्द्रवद्विदुष्ट, पापी दुष्टोदधनसे हमारा ओरसे कुशल पूछना, उसने सब पृथ्वीका अपने वशमें कर रक्खा है । इसके पश्चात् कौरवोंमें महावीर दुष्ट पापी दुष्टासनसे कहना कि पाण्डव लोग बृहत् आनन्दसे हैं, इसके पश्चात् कौरवोंकी शान्तिके सिवा जिसका और कुछ इच्छा नहीं है उस साधु शीलवान, धार्मिकके पास जाकर हमारा ओरसे प्रणाम कहना । इसके पश्चात् यमके पुत्रोंमें भरे, न बृहत् कठार न बृहत् कामल,

सभामें खींचा, क्या यही धर्मका काम है ? द्रौपदीको सभामें रोनेकी हस हसा नहीं कर सकते हैं और मन हसा होसकता है, उस सभामें अनेक राजाभी बैठे थे, परन्तु भयसे कोई धर्मका वचन न कह सका, केवल विदुरही धर्मके अनुसार दुर्योधनसे विवाद करते रहे । हे सञ्जय ! तुम बिना धर्म जानेंहो इस सभामें युधिष्ठिरको उपदेश करना चाहते हो ? द्रौपदीने जो सभामें आकर कहा था, सो बहुत उचित और पवित्र था, द्रौपदीने उस समय पाण्डवोंका और अपना इस प्रकार उद्गार किया था, जैसे समुद्रमें डूबते हुए मनुष्यको नाव बचातो है । उसी समय वृद्धोंके आगे स्तपुत्र कर्णने कहा था, हे द्रौपदी ! हे भास्विनी ! अब तुझे कहीं गति नहीं है, तू दुर्योधनकी दासी बनके रह, तेरे पति हार गये । अब तू किसी दूसरेको पति बना । तुम जानते हो, कि कर्णके ये वचन अर्जुनके हृदयमें तेज वाणके समान लगे है, उस घोर वाणसे अर्जुनके सर्वस्थान कटे जाते हैं, जिस समय पाण्डवाने वनकी चलनेके लिये काले हरिणके चमड़े ओढ़े थे, उसी समय दुःशासनने यह कठोर वचन कहे थे कि नपुंसक पापी पाण्डव बहुत कालके लिये घोर नरकमें पड़े । गान्धार देशके राजा शकुनिने छलसे जुआ खेलनेके समय युधिष्ठिरसे यह कठोर वचन कहे थे, कि तेरे छोटे भाइयोंको हमने जीत लिया अब द्रौपदीको दाव पर लगाओ । हे सञ्जय ! तुम तो इन सब बातोंको जानतेही हो, कि जुएके समय पाण्डवोंको कौरवोंने कैसे कैसे कठोर वचन कहे थे, इन सब प्रश्नोंके समाधान करनेकी स्वयम् हमारीही इच्छा हस्तिनापुर जानिका है । यदि तुम किसी उपायसे कौरव और पाण्डवोंमें सन्धि करा दो तो हमारे मनकी इच्छा पूरी हो, और हमारे पुण्यका फल मिले, तथा कौरव भी मरनेसे बच जायं । यदि मेरी धर्म

भरी और नीति-भरी वाणीकी कौरव लोग मानेंगे और वहां आनेसे मेरा आदर करेंगे तो उनका कल्याण होगा और जो मेरी हेर रहित वाणीको नहीं मानेंगे तो तुम पापो धृतराष्ट्रके पुत्रोंको दुःख करते हुए अर्जुन भीमके वाणोंसे मरा हुआ जानो । धृतराष्ट्र दुर्योधनने जो जूमें हारे हुए पाण्डु कठोर वचन कहे थे, उनको सावधान भो हाथसे गदा लेकर स्मरण करावेंगे । बुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्र जड़, क्रोधी दुर्योधन कर्ण बड़ी शाखा, शकुनि छोटी शाखा, दुःशासन फल और फूल हैं । मैं ब्राह्मण वेद जड़, धर्मात्मा युधिष्ठिर वृक्ष, अर्जुन भीमसेन डाली, तथा नकुल सहदेव फल फूल हैं । राजा धृतराष्ट्र पुत्रोंके सहित और पाण्डव सिंह हैं । हे सञ्जय ! वनकी सत काटी और न सिंहको निकालो । बिना सिंहके वन काटा जाता और बिना वनका सिंह मारा जाता है, लिये सिंह वनकी और वन सिंहकी रक्षा । धर्म लता, धृतराष्ट्रके पुत्र और पाण्डव शाखा हैं । बिना वृक्षके शाखा नहीं बरस इस लिये सन्धि करनी चाहिये । पाण्डव युद्ध करनेकी भी उपस्थित हैं, और सन्धि करनेकी भी तयार है, राजा दुर्योधनको जो इच्छा हो सो करें, विशेष इतनाही है कि महा धार्मिक पाण्डव सन्धिही करना चाहते और युद्ध करनेकी भी समर्थ हुए हैं । यह सब जाकर राजा धृतराष्ट्रसे यथार्थ कहना, उनकी जो इच्छा हो सो करें ।

२६ अध्याय समाप्त ।

सञ्जय बोले, हे सहाराज युधिष्ठिर ! राजराजा युधिष्ठिर ! आपका कल्याण मैं हस्तिनापुर जानिकी आज्ञा मागता हूँ हमने जो कुछ अनुचित कहा हो, सो आप

१. कोजिवेगा, मैंने जो कुछ कहा है, सो ने मनकी इच्छासे कहा है। हे कुष्ण ! हे असेन ! हे अर्जुन ! हे नकुल ! हे सहदेव ! शत्रुके । हे चेकितान ! आप सब लोगोंका प्राण हो, मैं आप सब लोगोंसे विदा गता हूँ, आप सब प्रेमकी दृष्टिसे मुझे देखे। महाराज युधिष्ठिर वाले, हे पण्डित भव्य ! हम तुम्हें जानेकी आज्ञा देते हैं, तुम प्राण सहित हस्तिनापुरकी जाओ, वहाँ कर हमारे कलप्राणका विचार करना, हम ईष्यवित्रात्मा और अपना मित्र समझते हैं, । आर्य उत्तम दूत, सोढो वाणीवाले, शोल-न, मनुष्योंके प्यारे और सन्तुष्ट हों, तुम न कहनेमें रुकते नहीं हो और कठार न सुन कर क्रोध नहीं करते, तुम कठारों और कड़वी बात नहीं कहते, तुम्हारी शीर्षधर्म और अर्थसे भरो हिसारहित और ठीक है। हे सूत ! तुमही हमारे प्यारे दूत, तुम्हारे और विदुरके सिवा हमारे कलप्राणी वाणी और कौन कहेगा ? हमने तुम्हें अतः दिनपर देखा है, तुम अर्जुनके प्यारे वर हो। हे सञ्जय ! तुम हस्तिनापुरमें जाकर प्रणाम करने योग्य ब्राह्मण, महा पराक्रमी धर्मात्मा युद्ध करनेवाले क्षत्री और वनसे आनेवाले वेद जाननेवाले महात्मा ब्राह्मणोंकी हमारी ओरसे प्रणाम कहना, तथा औरोंकी भी हमारी ओरसे प्रणाम कहना। सूत ! राजा धृतराष्ट्रके पुरोहित, आचार्य, ईश्वरकरानवाले तथा और भी सब महात्माओंकी हमारा प्रणाम कहके कुशल पूछना। । महा बलवान् बूढ़ यशस्वी क्षत्री हस्तिनापुरमें हमारा स्मरण करते हैं, और जो शाक्तोंके अनुसार धर्म करते हैं, उनसे हमारा प्रणाम कहना। तुम कहना कि महाराज युधिष्ठिर कुशलसे हैं, और आप लोगोंसे कुशल पूछते हैं, जो उस राज्यमें व्यवहार करके जीते हैं,

सबसे कुशल पूछना और जो राजा राज्यमें राज्यकी रक्षा करते हैं, उनकी भी कुशल पूछना। सब वेदोंके जाननेवाले हमारे गुरु द्रोणाचार्यसे हमारा बार बार प्रणाम कहना। जिन द्रोणाचार्यने ब्रह्मचर्य करके चारों चरणोंके सहित अस्त्र विद्या सीखी है, जिन्होंने प्रसन्न होकर हमको भी शस्त्रविद्या सिखाई है, उन द्रोणाचार्यको हमारी ओरसे प्रणाम कहना। जिसने समस्त विद्याओंकी पढ़कर चार चरणोंके सहित शस्त्र विद्याका पढ़ा है, उन गन्धर्वपुत्रके समान पराक्रमी अश्वत्थामासे हमारी ओरसे कुशल पूछना। वेद विद्याओंके जाननेवालोंमें यथेष्ट महारथ शरद्वपुत्र कृपाचार्यके स्थानमें जाकर हमारी ओरसे उनके चरण पकड़ लेना और कहना कि महाराज युधिष्ठिर अपने भाइयोंके सहित बृहत् कुशलसे हैं। इसके पश्चात् तेज, लज्जा, तप, बुद्धि, शील, विद्या, पराक्रम और बुद्धिसे भरे हुए भोष्मके पास जाना और हमारी ओरसे उनके चरणोंमें प्रणाम करके हमारा कुशल निवेदन करना। हे सञ्जय ! इसके पश्चात् हमारे पिता सब वीरवरोको आज्ञामें रखनेवाले, महाबुद्धिमान् अनक बूढ़ोंके सेवक महात्मा धृतराष्ट्रके पास जाकर हमारी ओरसे प्रणाम कहना और कहना कि महाराज युधिष्ठिर अपने भाइयोंके सहित रोगरहित हैं। इसके पश्चात् राजा धृतराष्ट्रके बड़े बेटे मूख भान्दुर्बाहु दुष्ट, पापी दुर्योधनसे हमारी ओरसे कुशल पूछना, उसने सब पृथ्वीको अपने वशमें कर रक्खा है। इसके पश्चात् कौरवोंमें महावीर दुष्ट पापी दुःशासनसे कहना कि पाण्डव लोग बृहत् आनन्दसे हैं, इसके पश्चात् कौरवोंकी शान्तिके सिवा जिसका और कुछ इच्छा नहीं है, उस साधु, शीलवान्, वाल्मिकके पास जाकर हमारी ओरसे प्रणाम कहना। इसके पश्चात् अनेक युगोंसे भरे, न बृहत् कठार न बृहत् कौमल,

प्रेमसे क्रोध सहनेवाले सेमदत्तकी हमारी ओरसे प्रणाम करना । इसके पश्चात् पूजा पानेके योग्य महा धनुषधारी, महारथ भूरिश्रवासे हमारी ओरसे कुशल पूछना, क्योंकि वे हमारे भाई और मित्र हैं । इसके पश्चात् कौरवोंने मुख्य हमारे भाई, वेष्टे पीते और जो आदर पानेके योग्य हों, उन सबसे यथा-योग्य कुशल पूछना । हे सूत । इसके पश्चात् जो राजा दक्षिण पश्चिम और उत्तरसे पाण्डवोंके सङ्ग युद्ध करनेको आये हैं, उनसे हमारी ओरसे कुशल पूछना । इसके पश्चात् शोलवान लज्जावान उत्तम कुशमें उत्पन्न हुए वसाती, शाल्वक, केकय, अश्वत्थ, पर्वत और त्रिगर्त देशके मुख्य राजोंसे हमारी ओरसे कुशल पूछना । इसके पश्चात् हाथी घोड़े और रथोंमें चढ़नेवाले तथा पैदल सेनाके सामान्य लोगोंसे हमारी ओरसे कुशल पूछना, और सबसे कहना कि पाण्डव लोग वज्रत सुखी हैं । इसके पश्चात् राजाके धन विभागके मन्त्री, द्वारपाल, सेनाके प्रधान; लाभ और खर्चकी गिननेवाले, सदा धनकी चिन्ता करनेवाले, सबसे कुशल पूछना । इसके पश्चात् जो कभी युद्ध नहीं चाहते, जा सब कौरवोंमें श्रेष्ठ और महा बुद्धिमान है, उन वैश्यापुत्र युयुत्सुसे हमारी ओरसे कुशल पूछना । इसके पश्चात् जो सदा युद्धको इच्छा करते हैं जो देवताओंसे भी दुःखसे जीतने योग्य है, जो सदा जुवेको अच्छा समझता है, जो छिपकर छल करता है, उस कर्णसे हमारी ओरसे कुशल पूछना ।

इसके पश्चात् पर्वत देशके गान्धार देशके युवा, छली, दूसरेका धन छीननेवाला, धूर्त, पाखण्डी शकुनीसे आदरके सहित कुशल पूछना । जा महावीर एक रथपर चढ़ करके जीतने योग्य पाण्डवोंकी जीतनेका साहस है, जो भूलमें पड़े धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी

अधिक भुलाना चाहता है, उस कर्णसे भी हमारी ओरसे कुशल पूछना । जो हमारे मन्त्री, भक्त, गुरु, स्वामी, माता, पिता और मित्र हैं, उन महाबुद्धिमान विदुरसे भी हमारी ओरसे कुशल पूछना । हे सञ्जय । जो गुरु भरी हमारी माताके समान बूढ़ी स्त्री । उनकी हमारे ओरसे प्रणाम करना और पूछना कि तुम लोग अपने पत्र पाण्डवोंसे प्रेष करती हो ? इसके पश्चात् उनसे कहना कि युधिष्ठिर अपने भाई और पुत्रोंके सहित कुशल हैं, जो धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी स्त्री हैं, उनसे भी हमारी ओरसे कुशल पूछना, वे सब गुरु होकर अपने धर्मसे घरांमें रहती हैं; फिर उनसे हमारी ओरसे कहना कि तुम सब अपने ससुरोंकी सुखमें सेवा करो, और जिसमें तुम्हारे पति तुम्हारे वशमें रहें ऐसे उपाय करो । हे सञ्जय । वहाँ जो हमारे बेटोंकी वद्ध उत्तम गुणोंमें भरी और उत्तम कर्तव्योंमें उत्पन्न हुई हैं, उन सबसे कहना कि महाराज युधिष्ठिरने तुम्हारी कुशल पूछी है । उसके पश्चात् जो हमारी कन्या मिलें उन सबसे कुशल पूछकर कहना कि तुम्हारे पति तुम्हारे वशमें रहें, और तुम अपने पतियोंके वशमें रहो । इसके पश्चात् उत्तम आभूषण वस्त्र और सुगन्ध धारण किये, सुन्दरी, सुख और भोगकी भोगनेवाली शरीरकी छोटी और वननोंमें बड़ी, वैश्याओंसे हमारी ओरसे कुशल पूछना । इसके पश्चात् कौरवोंके दास और दासियोंसे हमारी ओरसे कुशल पूछना । इसके पश्चात् अश्वे लंगड़े लूले और उन अनाथोंसे कुशल पूछना जिनका पालन दयावान धृतराष्ट्र करते हैं । इसके पश्चात् जो हाथियोंकी अपनी अपनी आजिविका करते हैं, उनसे भी कुशल पूछना । इसके पश्चात् उनसे कहना कि महाराज युधिष्ठिर पूछते हैं कि महाराज धृतराष्ट्र तुम लोगोंकी अच्छी प्रकार भीतर

है वा नहीं ? इसके पश्चात् अद्रहोण, हरिद्री और बौने आदि मनुष्योंसे कुशल पूछना और उनसे यह भी कहना कि महाराज युधिष्ठिर अपने भाइयोंके सहित कुशलसे है, और उनसे यह भी कहना कि तुम लोग थोड़ी जोविका पानेके कारण भय भ्रम मत करो, यह पूर्व जन्मके पापोंका फल है, हम अपने शत्रुओंको मार कर और मित्रोंका प्रसन्नकरके शीघ्रही तुम लोगोंका पालन करेंगे। राजा दुर्योधनसे यह कहना कि जैसे तुम्हारे अधिकारियोंने हमारी दो ङ्गई ब्राह्मणोंकी वृत्ति नहीं कीनी ऐसेही तुम्हारे भरनेके पश्चात् तुम्हारी दो ङ्गई वृत्ति हम भी नहीं कीनेंगे। हे तात ! हे सज्जय ! इसके पश्चात् तुम अनाथ, दुर्बल असमर्थ मूर्ख और दरिद्रियोंसे हमारी ओरसे कुशल पूछना। इसके पश्चात् राजा दुर्योधनके यहां उन सबसे भी हमारी ओरसे कुशल पूछना जो अनन्त देशोंसे आयें हैं। इस प्रकार जो आता, जाता, पाहुना, वा दूत तुम्हें मिलते जायें, उन सबसे हमारी ओरसे कुशल पूछना, पोछे सबसे हमारा कुशल भी कह देना। हे सूतपुत्र ! हमें यह खूब निश्चय है कि जैसे वीर दुर्योधनसे मिले हैं, वैसे वीर और पृथ्वीसे नहीं हैं, परन्तु सङ्गहो यह भी निश्चय रक्खा कि धर्म नित्य है और मैं शत्रुओंका मारनेके लिये धर्महीको अपना बल समझता हूँ। हे सज्जय ! इसके पश्चात् तुम राजा दुर्योधनसे हमारी ओरसे कहना कि हम तुम्हारे शत्रु नहीं हैं, और मित्र होकर तुमका शिवा देते हैं, परन्तु तुम अपने हृदयमें हमको शत्रु जानते हो। हम लाग कभी वह काम नहीं करेंगे जिसमें तुम्हारी हानि हो, इसलिये इन्द्रप्रस्थका राज्य हमें देना, अथवा और युद्ध करा।

३० अध्याय समाप्त ।

महाराज युधिष्ठिर बोले, हे सज्जय ! बालक बूढ़े, साधु, दुष्ट, बलवान सबको ईश्वर अपने वशमें रखता है, ईश्वर प्रारब्धके अनुसार पण्डितको मूर्ख और मूर्खको पण्डित बना देता है, यहो सब वचन तुम महाराज धृतराष्ट्रके कहना। हे गालवगणपुत्र ! सेना इकट्ठी करते हुए और सम्मति करते हुए प्रसन्न राजा धृतराष्ट्रसे कहना कि ईश्वर जा चाहैगा, सो करैगा। तुम जिस समय कौरवोंको सभामें पढ़चा, उस समय कौरवोंके बीचमें बैठे महाबलवान धृतराष्ट्रके चरण पकड़कर हमारी ओरसे प्रणाम करना और कहना कि हे महाराज ! आपहीके पराक्रमसे पाण्डव लोग सुखसे आज तक जीते हैं, हे शत्रुनाशन ! आपहीकी कृपासे बालक पाण्डवोंका राज्य मिला था, आप उनको राज्यपर बिठला कर अब उनकी नाशका समय न देखिये। इसके पश्चात् हमारे पितामहसे प्रणाम करके कहना कि हे पितामह ! आपन नाश होते कुस्वशका उद्धार किया था, अब प्रायः ऐसा उपाय फिर कीजिये, जिससे आपके पोते प्रेमके सहित जीते रहें। इसके पश्चात् कौरवोंके मन्त्री विदुरसे कहना, कि हे साधो ! आप युधिष्ठिरका कल्याण चाहते हैं, ऐसा उपाय कीजिये जिससे युद्ध न हो। इसके पश्चात् महाक्रोधो राजपुत्र दुर्योधनसे कहना कि तुमने जो कौरवोंके बीचमें बैठकर पापराहित द्रोपदीको बार बार बार बुरीदृष्टिसे देखा था, सो सब तुम्हारा अपराध मैं क्षमा कर देता हूँ, तुम कौरवोंका नाश मत करो, तुमने जो काली हरिनका चमड़ा पहनाकर पाण्डवोंका वनका भेजा था, और जो तुमने पहले पाण्डवोंका अनन्त दुःख दिये थे, जिनका सब कुस्वशी जानते हैं, पाण्डव लोग बलवान और समर्थ होकर भी उन सब अपराधोंको क्षमाकर देते हैं, तुम कुस्वशका नाश मत

करा। तुम्हारी आज्ञासे जो दुःशासनन द्रौपदीके बाल खींच थे सो पाण्डवोंने चना किया। हे शत्रुनाशन पुष्पसिंह ! तुम अबभी हमारा राज्य हमको दे दो, तुम अपना वृद्धको दूसरेके धनसे हटा लो और लोभ मत करा। हे राजेन्द्र ! ऐसा करनेसे शान्ति होगी और हमारा तुम्हारा प्रेम बना रहैगा। अथवा शान्ति चाहनेवाले हमको राज्यका एकहो भाग दे दो, अथवा पाचहो गांव दे दो, परन्तु ये पांच गांव अविस्थल, वृकस्थल, माकन्दो, और बारणावत और पाचवा जा तुम्हारी इच्छा हो सोहो दे दो। हे दुर्योधन ! हम पाच भाइयोंको पाच गांव दो, ऐसा करनेसे शान्ति होगी और कुरुकुलका कल्याण होगा। भाई भाईसे मिल जाय, पिता पुत्रसे मिल जाय, सञ्जय और पाण्डाल प्रसन्न होकर अपने अपने देशोंका चले जाय। हमारा यही इच्छा है, एक कोरव और पाण्डालाका नाश न हो। हे सञ्जय ! हमारी इच्छा यह है एक सञ्जय और पाण्डवाका नाश न हो। हे तात ! य सब प्रसन्नता पूर्वक अपना अपना राज्य करे, हम कदापि युद्ध करना नहीं चाहते, इस लिय यह धार आपात शान्त हो कप्राक इससे धर्म और अथका नाश होता है।

३१ अध्याय समाप्त ।

आवेशम्पायन सुनि बोले, हे राजन् जनमजय ! महाराज युधिष्ठिरका आज्ञा ल आर महाराज धृतराष्ट्रके वचन पूरकार सञ्जय हास्तिनापुरका चले। नगरमें जाकर सञ्जय रानवासको द्वारपर पङ्कचे और द्वारपालसे बोले, हे द्वारपाल ! तुम जाकर महाराजसे कहना कि विराटनगरसे सञ्जय लौट आये। हे द्वारपाल ! यदि महाराज जागत हो तो तुम हमारे आनका समचार कहना, हमका उनसे वज्रत आवश्यक बात कहनी है, इस लिये

तुम जलदो कहकर लौटा। सञ्जयके वचन सुन द्वारपाल महाराजके पास जाकर कहन लगा, हे महाराज ! हे पृथ्वीनाथ ! द्वारपर खड़े सञ्जय आपको प्रणाम करते हैं, वे अभी पाण्डवांके पाससे लौटे हैं और महाराजका दर्शन करना चाहते हैं, सुको जो आज्ञा हो सो कर। महाराज धृतराष्ट्र बोले, हे द्वारपाल ! तुम सञ्जयसे हमारी कुशल कछो आ सत्कार सहित उनको भीतर लाओ, मैं उनका कभी भी भीतर आनेसे रोकता नहीं, तब द्वारपर क्यों खड़े हैं ?

आवेशम्पायन सुनि बोले, हे राजन् जनमजय ! इसके पश्चात् सञ्जय महावीर चरित्रारहित महाराजके स्थानमें गये। उन्होंने सिंहासनपर बैठे विचित्रवीर्यपुत्र महाराज धृतराष्ट्रको देखा पश्चात् उन्होंने हाथ जाड़कर प्रणाम किया और कहने लगे, सञ्जय बोले, हे महाराज ! हे पृथ्वीनाथ ! मैं सञ्जय हूँ, आपके चरणोंमें प्रणाम करता हूँ। मैं पाण्डवांके पाससे लौट आया, हे पृथ्वीनाथ ! पाण्डवपुत्र युधिष्ठिरने आपको प्रणाम करते कुशल पूछी है। महाराज युधिष्ठिरने आपको पुत्र, पात, मिल, मन्त्रो और नौकराका कुशल पूछा है। महाराज धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! हम तुमका प्रसन्न करके पूछते हैं, कहा कुलोपुत्र महाराज युधिष्ठिर पुत्र, मन्त्रो आर भायाक सहित कुशलसे हैं ? सञ्जय बोले, महाराज युधिष्ठिर अनशय जाननेवाले, महात्मा, शांतवान, महा पाण्डित आर बुद्धिमान हैं। हे भारत ! युधिष्ठिर धर्मसे दयाका और धर्म इकट्ठा करनेसे धर्मका अधिक समझते हैं। वे अपने प्यार सुख अधर्म आर प्रयाजन राजका कामका नहीं करते। वह जानते हैं कि इस सूरमें वधो कठपुतली नचानवालेके वशमें रहते हैं, ऐसे मनुष्य भी कसा दूसरेके वशमें रहते हैं। हमने युधिष्ठिरका ऐसा निश्चय देख जाना

लिया कि प्रारब्ध बड़ा बलवान है। आपके कर्मोंके दोष और न सहने योग्य पापके उदय-को देखकर हमें यह भी निश्चय हो गया है, कि जब तक तैर करनेवाले मनुष्यको शत्रु छोड़ता है, तभीतक उसकी प्रशंसा हातो है। वीर युधिष्ठिर अधर्मको आपकी असमर्थ कीचुलीके समान छाड़कर, आपसे सन्धि करना चाहते हैं, उनका आपसे कुछ वैरभी नहीं है। हे महाराज। आप अपने कर्मोंको चुनिये। आपका कर्म धर्म और प्रयत्नसे बाहर है, इसको कोई साधु नहीं कह सकता है, आपने जो कर्म किया है, वह इस लोक और परलोकमें दुःख देनेवाला है, आप अपने पुत्रोंके वशमें होकर पाण्डवोंके सङ्ग जो अन्याय करते हैं, सो सच्चा अधर्म है; आप भरतकुलमें अछ हैं, इस लिये आपको यह कर्म नहीं करना चाहिये। यह कर्म, मूर्ख, नीच कुलमें उत्पन्न हुए, दयारहित, वैरो, चतुरोंके धर्मको न जाननेवाले, मूर्ख और दुर्बलको करना चाहिये। क्योंकि ऐसेही मनुष्य आपत्तिमें पड़ने योग्य होते हैं। उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए, बलवान, यशस्वी पण्डित, सुखसे जीनेवाले, जितेन्द्रिय धर्म और अधर्म-को जाननेवाले महात्मा ऐसे कर्मको नहीं करते, प्रारब्धहीसे ईश्वरने यह सब गुण आपका दिये हैं, परन्तु न जाने आप ऐसा अधर्म क्यों करते हैं? आपके समान सब धर्माको जाननेवाले बुद्धिमान भीष्मादिक मन्त्रियोंसे युक्त आप अपने मन्त्रियोंको सम्म-तिके विरुद्ध अधर्म कैसे करते हैं? आपके सब मन्त्री सब विषयोंके जाननेवाले हैं, वे आपको सदा सब कामोंमें उत्तम सम्मति देते हैं, उन्होंने यह निश्चयकर लिया है, कि पाण्डवोंको राज्य न देनेसे अवश्य कुरुकुलका नाश हो जायगा। यदि बिना समयमें युधिष्ठिर कौरवोंके नाशकी इच्छा करते तो यह पाप

उन्हींके शिर रहता, परन्तु उन्होंने यह सब दोष आपहीके शिर रख दिया है, इससे जगतमें आपकी बड़त निन्दा होगी। हे महाराज। अर्जुन इसी शरीरसे स्वर्गमें गया और फिर जगतमें लौट आया, इसमें प्रारब्धको छाड़कर और किसी बलवान कहेगे। स्वर्गमें जानेहोसे सब लोग अर्जुनका मानते हैं, इससे जान पड़ता है कि प्रारब्ध बड़ा बलवान है; यहो पाण्डवोंके तेज और प्रारब्धके कर्मको देखके निश्चय होता है कि हानि और लाभ अनित्य है, राजा बलि अपनी प्रारब्धको किसी प्रकार नाश नहीं सके, अर्थात् सौ यज्ञ करने-पर भी उन्हें पातालमें जाना पड़ा, इससे हमको निश्चय होता है कि समय बड़ा बलवान है। जन्तुओंके आँख, कान, जीभ, नाक और खान्ही ज्ञानके स्थान है, इस लिये सुखी बुद्धिमानको उचित है कि इन पाँचो इन्द्रियोंका इनके विषयोंसे राके, अर्थात् इनको किसी बुरे विषयोंमें न जाने दे। ऐसा जान पड़ता है कि केवल अपनाही कर्म अपनेको फलदायक नहीं होता, क्योंकि लड़कईमें माता और पिताके दिये हुए अन्नसे लड़का बढ़ता है, वही अपना कर्म जन्मका हेतु है। हे राजन्। प्रिय, आप्रय, सुख, दुःख, निन्दा और प्रशंसा मनुष्यको अपने कर्मसे प्राप्त होते हैं, जो इन्हें मानता है, उस उत्तम वर्तित्तवालेको प्रशंसा महात्मा करते हैं। यदि उससे कोई अपराध हा जाय तो उसीको निन्दा हान लगती है, इस लिये हम आपकी निन्दा करते हैं, क्योंकि आपका किया हुआ विरोध कुरु वंशका नाश करेगा। यह विरोध आपहीके कर्मसे हुआ है, इस लिये कौरवोंको इस प्रकार भक्ष करेगा। हे राजन्! आप अकेले हीने अपने लोभी पुत्रोंके वशमें होकर जुएके समयमें शान्ति न करो। अब उसके फलका भोगिये। हे कुरुनन्दन! हे कौरवेन्द्र।

आपने महात्माओं से बैर और मूर्खों से प्रीति करी है, इस लिये और दुर्बल हानों के कारण इस समस्त पृथ्वी का राज्य आप नहीं कर सकते हैं। हे पुरुषसिंह ! मैं रथमें बैठके चलने में बहुत थक गया हूँ, इस लिये मुझे घरमें जाकर सोने की आज्ञा दीजिये, प्रातःकाल जब सब कौरव सभामें बैठेंगे, तब महाराज युधिष्ठिर के वचन सुनाऊंगा।

महाराज धृतराष्ट्र बोले, हे पुत्र ! हम तुम्हें घर जानकी आज्ञा देते हैं, तुम घरमें जाकर सोओ; प्रातःकाल हम सब कौरवों के सहित सभामें बैठकर युधिष्ठिर के वचन सुनेंगे।

३२ अध्याय और सञ्जययान पर्व समाप्त ।

अथ प्रजागर पर्व ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमंजय ! सञ्जय के जानके पश्चात् महाबुद्धिमान महाराज, धृतराष्ट्रन द्वारपाल से कहा, हम विदुर को देखना चाहते हैं, तुम शीघ्र उनका बुला लाओ, देर मत करो। राजा के वचन सुनते ही द्वारपाल विदुर के पास गया और कहने लगा, हे महा पाण्डव ! महाराजाधिराज आपका देखना चाहते हैं। द्वारपाल के वचन सुन विदुर शीघ्रता से राजा के द्वार पर पहुँचे और द्वारपाल से कहा कि महाराज से हमारे आन का निवेदन करें। द्वारपाल उनकी आज्ञा सुन महाराज के पास गया और कहने लगा, हे राजन् ! आपकी आज्ञानुसार विदुर आये हैं, वह आपके चरणा का दर्शन करना चाहते हैं, जैसी आज्ञा हो तैसा किया जाय।

महाराज बोले, तुम महा बुद्धिमान दूरदर्शी विदुर का शीघ्र हमारे पास ले आओ, क्योंकि हम उनके देखने में कुछ विलम्ब करना नहीं चाहते।

द्वारपाल विदुर के पास आकर बोला, आप बुद्धिमान महाराज की रनिवासमें जाइय।

महाराज ने कहा है कि हम आपके दर्शन के लिये कुछ विलम्ब नहीं चाहते।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, द्वारपाल के वचन सुन विदुर भीतर चले गये और चित्ता सहित राजा का बैठे देख हाथ जोड़कर बोले, हे महाराज ! मैं विदुर आपकी आज्ञा से आपके पास आया हूँ, जो मेरे योग्य काम हो, उसकी मुझे आज्ञा कीजिये।

धृतराष्ट्र बोले, हे विदुर ! सञ्जय पाण्डवों के पास से लौट आया, वह मेरा निन्दा करके अभी अपने घर का गया है, प्रातःकाल सभामें युधिष्ठिर के वचन सुनावेगा। मैं अभी तक कुरुकुल अष्ट युधिष्ठिर के वचन नहीं सुन रहा हूँ; यहो चित्ता मेरे शरीर की जलाये दे रहा है, इसी से मुझे निद्रा भी नहीं आई, जानने से भी हृदय जला जाता है, तुम धर्म और अर्थ के जानने वाले हो, इससे जो हम कल्याण का वात हो सा कहा। जिस समय सञ्जय पाण्डवों के पास से आया, उसी समय मेरा मन शान्त नहीं होता। मेरी सब इच्छा नष्ट हो गई है, और मुझे यह चित्ता हो रहा है कि न जान प्रातःकाल सञ्जय क्या कहेगा।

विदुर बोले, बलवान शत्रु से अभिभूत दुर्बल, सामग्री रहित, लुटे हुए, काम और चारका निद्रा नहीं आती। महाराज ! कहिये आपन इन मह दोषों में से कोई दोष तो नहीं किया। कहिये आप किसी दूसरे का धन छीनने का लालच कर दुःख तो नहीं करते ?

महाराज धृतराष्ट्र बोले, हे विदुर ! तुम राजनृषिकुल में बड़े बुद्धिमान और महाप्राण उत्पन्न हुए हो, इस लिये हम तुम्हारे आचार कल्याण से भरे वचन सुनना चाहते हैं।

विदुर बोले, हे धृतराष्ट्र ! जो प्रशस्ती कर्म करते हैं, निन्दित कर्म नहीं करते तब अनास्तिक, और यक्षालु हैं ऐसे महाराज युधि

छिर सब राजलक्ष्णोंसे भरे और तीन लोकके स्वामी होनेके योग्य है; आपको उचित था कि सदा उनकी प्रार्थना करते रहें, परन्तु आपने उन्हें ही बनको निकाल दिया। आपने परम धर्मात्मा और सब शास्त्रोंके पण्डित होकर भी अर्थ होनेके कारण राज्य नहीं पाया, तथापि पाण्डवोंका राज्य छीन लिया, इस लिये आप सत्यही अर्थ हैं। हे राजेन्द्र । महाराज युधिष्ठिर दयावान, साधु, धर्मात्मा, सत्यवादी और महाबली होनेके कारण तथा आपको अपना पिता समझकर आपके सब अपराधोंकी क्षमा कर रहे हैं। आप दुर्थाधन, शकुनि, कर्ण और दुःशासनकी समर्थ बनाकर किस लिये अपने कल्याणकी इच्छा करते हैं ? जिसको शास्त्र शक्ति, वैराग्य और धर्म यथार्थ भावसे न चलने दे, उसे पण्डित मूर्ख कहते हैं, अर्थात् जो पण्डित, वैराग्यवान, धर्मात्मा और शक्तिमान होकर धर्मको छोड़ दे वही मूर्ख है। जो उत्तम कर्मोंकी करे, नीच कर्मोंकी त्यागे, ईश्वरको सत्य माने और सबमें अज्ञा करे वही पण्डित कहाता है। जो क्रोध, आनन्द, अभिमान और लज्जासे धर्मको न छोड़े तथा आदरयोग्य मनुष्यका आदर करे, वही पण्डित कहाता है। जिसके उपाय और सम्मतिको कोई न जान सके, सब कोई किये हुए कार्यहीको देखें वही पण्डित कहाता है। जिसके कार्यको जाडा, गर्मी, डर, काम, धन और निर्धनता नाश न कर सके वही पण्डित कहाता है। जिसकी सारी बुद्धि धर्म और अर्थसे भरी हो, जो कामको छोड़कर अर्थको उत्पन्न करे वही पण्डित कहाता है। पण्डित लोग शक्तिके अनुसार करनेको इच्छा करते हैं, और करनेकी इच्छाके समान कार्य करके दिखा देते हैं, और किसीका निरादर नहीं करते। पण्डित-

तोंकी यही पहचान है कि अर्थकी शीघ्र समझ लें, विषयोंकी बड़ी दूरतक सुनते रहें, खूब समझकर कार्य करते रहें; वे कदापि काम और क्रोधसे कोई कार्य नहीं करते और बिना पूछे बोलते नहीं। पण्डित लोग प्राप्त न होने योग्य वस्तुकी इच्छा नहीं करते, नष्ट हुएका सोच नहीं करते और आपत्तिमें भी नहीं घबड़ाते। जो निश्चय करके कार्यकी करता है, बिना समाप्त किये कामकी नहीं छोड़ता, जो किसी समय अपने कार्यसे नहीं रुकता; जो अपनी इन्द्रियोंको अपने वशमें रखता है, वही पण्डित कहाता है। हे भरत-कुलसिंह । पण्डित लोग अच्छे कर्म करते हैं, सदा धन प्राप्तिका उपाय करते हैं, और अपने हितकी नहीं छोड़ते। जो आदरसे प्रसन्न हो और निरादरसे क्रोध न करे, जो गद्गाकी समान गम्भीर हो वही पण्डित कहाता है। जिसकी बुद्धि विद्याके अनुसार और विद्या बुद्धिके अनुसार हो और जो किसी मर्यादाकी न तोड़े, वही पण्डित पदवीकी प्राप्त कर सकता है। जो कहनेमें न सके, उत्तम कथा जानता हो, तर्क वितर्क कर सकता हो, जिसकी बुद्धि उसी समय अर्थोंकी समझ ले, जो पथ देखतेही कह सके उसे पण्डित कहते हैं। जो निना पढ़ा, अभिमानी, और दरिद्र होकर जंची इच्छावाला हो, जो नीच कर्मोंसे धन उत्पन्न करे, वही मूर्ख कहाता है। जो अपने प्रयोजनको छोड़ दूसरेके प्रयोजनको सिद्ध करता है, जो समर्थ होकर भी मित्रकी सहायता नहीं करता, और असमर्थ होकर सहायता करना चाहता है, वही मूर्ख कहाता है। जो अयोग्य वस्तुओंकी इच्छा करे, योग्य वस्तुओंकी छोड़े, और जो बलवानसे शत्रुता करे, वही मूर्ख कहाता है। जो शत्रुकी मित्र बनावे, मित्रकी शत्रु बनावे, मित्रकी हानि करे, और बुरे कर्म करे वही मूर्ख

कहाता है । हे भरतकुलसिंह ! जो सेवकोंके द्वारा कार्य करे, आप काम करनेमें सन्देह करे और शोध करने योग्य काममें देर करे, वही मूर्ख कहाता है । जो पितरोंका आह्वन न करे, देवतोंकी पूजा न करे, और अच्छे मित्रसे प्रेम न करे, वही मूर्ख कहाता है । जो बिना बुलाये जाय, बिना वृक्षों वृक्षों और विश्वास न करने योग्य मनुष्यका विश्वास करे, वही मूर्ख कहाता है । जो दूसरेकी दोष दे और आप वैसेही बुरे कर्म करे, और जो बिना प्रयोजन ब्राध करे, वह महामूर्ख कहाता है । जो धर्म और अर्थके बिना अपनेकी बलवान समझके बुरे कर्मोंसे न प्राप्त होने योग्य वस्तुकी इच्छा करे वह महामूर्ख कहाता है । जो न आज्ञा करने योग्य मनुष्यपर आज्ञा करे, जो राजाके बिना रनिवासमें जाय और जो स्वामीकी सेवा करे, वह महामूर्ख कहाता है । जो धन था बद्धत विद्याकी प्राप्त करके अभिमानरहित होकर घूमता है, वही पण्डित कहाता है ।

हे राजन् ! एकेलाही धनकी भोगनेवाला, अकेलाही सुन्दर घरमें रहनेवाला जो सेवकोंकी बिना दिये भोजन कर ले, उसके समान दयारहित और कौन होगा ? अकेलाही पाप करता है, अकेलाही फल भोगता है, उसके सङ्गो सब कूट जाते हैं और कर्त्ताही दोषसे फंसता है । धनुषधारीका वाण एकहीको मारता है, कभी नहीं भी मारता है, परन्तु बुद्धिमानकी बुद्धि राजाके सहित राज्यका नाश कर देती है । हे राजन् ! आप अपनी एक बुद्धिसे मित्र और शत्रुओंका निश्चय कीजिये, साम, दान, दण्ड और भेद इन चार यत्नोंसे मित्र उदाशीन और शत्रुओंकी जीतकर सन्धि और विग्रह आदि राज्यके छः अङ्गको जानकर स्त्री, जुआ, आखेट, मद्यपान, कठोर वचन, महादण्ड, और प्रयाजन दूषण इन सात बुरे कामोंको छोड़कर सुखी होइये । घोर विप

एकहीका नाश करता है, शस्त्रसे एकही मनुष्य मरता है, परन्तु राजाकी बुरी बुद्धि राज्यके समेत राजाका नाश करती है । एकला खादिष्ट भोजन न करे, एकला विषयोंकी न विचार, एकला मार्गमें न चले, और सबके सीने पर एकला न जागता रहै । हे राजेन्द्र ! ईश्वर एक है, उसको तुम नहीं जानते हो, वह दुःखों से इस प्रकार उद्धार करता है, जैसे समुद्रसे नाव । क्षमावान मनुष्यकी सब कोई असमर्थ जान लेते हैं, यहो क्षमावानमें एक दोष है, दूसरा नहीं । इस दृष्टिसे क्षमावानका निरादर नहीं करना चाहिये क्योंकि क्षमाही परम बल है, क्षमा समयोंका गुण और असमर्थ मनुष्योंका भूषण है । क्षमासे सबकी वृद्धि कर सकता है, ऐसा कर्म कोई नहीं जो क्षम न सिद्ध हो सके, जिसके हाथमें शान्ति रह खड़ा है, उसका दुष्ट मनुष्य क्या कर सकता है ? जहाँ तिनका नहीं है, वहाँ गिरी और आपही शान्त हो जाती है । क्रोधी मनुष्य अपने दोषोंसे आपही दुःखोंमें पड़ता है । अक्रोधी धर्मही कल्याणदायक है, अकेली क्षमाही परम शान्ति है, अकेली विद्याही परम सन्तोष और किसीकी हिंसा न करनाही परम सुख । विरोध न करनेवाले राजाको और परदेश जानेवाले ब्राह्मणको पृथ्वी इस प्रकार खा जाती है, जैसे विलमें आये पदाधीन सर्प ! मनुष्य मीठी वाणी और महात्म्य से प्रेम इनही दो कर्मोंके करनेसे इस लोकमें प्रतिष्ठाको प्राप्त करता है । हे पुरुष व्याघ्र ! चाहे हुए मनुष्यको चाहनेवाली स्त्री और पूजा किये हुएकी पूजा करनेवाला मनुष्य यह दोनों बिना विचार करनेवाले मूर्ख हैं । जो दरिद्र होकर प्राप्त न होने योग्य वस्तुकी इच्छा करे, और जो असमय हाँकर क्रोध करे, ये दोनों शरीरनाशक तेज काटे हैं । जो रहस्य होकर कुछ कर्म न करे और जो

संन्यासी होकर काम करे, इन दोनों विस्व कर्मों की करनेवालों की प्रतिष्ठा नहीं होती । हे राजेन्द्र ! जो समर्थ होकर क्षमा करे और दरिद्र होकर दान करे, ये दोनों स्वर्ग के ऊपर रहते हैं । न्याय से आये हुए धन का दोही प्रकार से नाश होता है, अर्थात् अयान्य को देने और योग्यता न देने से । जो धन होकर दान न करे और दरिद्र होकर तप न करे, इन दोनों के गले में भारी शिला बधवाकर पानी में डुबा देना चाहिये । हे पुरुषव्याघ्र ! जा संन्यासी योग करे, और जा क्षत्री युद्ध में मरे, ये दोनों सूर्यमण्डल को भेदकर स्वर्ग को जाते हैं ।

हे राजन् ! उत्तम मध्यम और हीन ये तीनों वेद जाननेवाले पण्डितों ने तीन प्रकार न्याय कहे हैं । उत्तम मध्यम और अधम यही तीन प्रकार के मनुष्य होते हैं, इनका इनके अनुसार उत्तम मध्यम और अधम काम देने चाहिये । हे राजन् ! स्त्री, दास और पुत्र ये तीनों निर्धन कहते हैं, ये जो वस्तु प्राप्त करें वह सब उनके स्वामी की है । दूसरे का धन छीन लेना, दूसरे की स्त्रियों से अधर्म करना, अपने मित्रों को छोड़ देना, इनही तीन दोषों से मनुष्यों का नाश होता है । काम क्राध और लोभ येही तीनों नरक के द्वार हैं और इन्हीं तीनों से मनुष्य का सर्वनाश होता है, इस लिये इन तीनों को छोड़ देना चाहिये । हे भारत ! वरदान पाना, राज्य पाना, पुत्र का जन्म होना और शत्रु को दुःख से छुड़ाना, यह चारों सुख बराबर ही हैं । भक्त, सेवक और मैं आप ही का हूँ ऐसा कहते हुए मनुष्य को महा दुःख के समय में भी नहीं छोड़ना चाहिये । पण्डित और बलवान राजा मूर्ख, आलसी, शीघ्र प्रसन्न होनेवाले और स्तुति करनेवालों से कभी सम्मति न करे । हे राजन् ! ये चारों आपके घर में सदा बसें । ज्ञानवृद्ध और बूढ़े जातिवाले,

अभिमान-रहित अवसन्न कुलोन, निःसन्तान बहिन और दरिद्र मित्र, इन चारों के रहने से धर्म होता है । हे राजेन्द्र ! देवतों के यहां जाने को इच्छा, बहिमानों की शक्ति, पण्डितों की विनय करने और पापियों का नाश करना इन चार कर्मों की वृद्ध सतिने इन्द्र से कहा था, इनके करने से उसी समय फल मिलता है । अग्निहोत्र, मौन, पठना और यज्ञ करना ये चारों कर्म सुखदायक हैं, परन्तु अच्छी प्रकार न करने से इन चारों ही से दुःख होता है । हे भरतकुलसिंह ! पिता, माता, अग्नि, अपना शरीर और गुरु ये पांच अग्नि प्रसिद्ध हैं, इन पांचों अग्नियों की सदा ही मनुष्य की सेवा करनी उचित है । देवता, पितर, मनुष्य, भिखारो और अतिथि इन पांचों की पूजा करने से मनुष्य का लोक में यश मिलता है । मित्र, शत्रु मधुसूय, गुरु और सेवक, ये पांचों जहां तुम जाओगे तहां तुम्हारे सङ्ग ही जायेंगे । मनुष्य को पांचा इन्द्रियों में एक ही क्रोध है, उस क्रोध से मनुष्य को बुद्धि इस प्रकार नष्ट होता है, जैसे फटो हुई मसक से जल । नौद, जमुहाई, डर, क्रोध, आलस्य, और दीर्घस्वप्नता अर्थात् ढीलापन ये छः दीप हैं, इन्हें सदा ही मनुष्य को छाड़ना चाहिये । न कहनेवाले गुरु, मूर्ख पुरोहित, न रहना करनेवाले राजा, कड़वी बात कहनेवाले स्त्री, गाव का इच्छावाले ओह्वर और वन की इच्छा करनेवाले नाई का मनुष्य इस प्रकार छाड़ दे, जैसे समुद्र में चलनवाला टूटोनाव का छोड़ देते हैं । सत्य, दान, निरालस्य, किसी का द्वेष न करना, क्षमा आर धारणा इन छः गुणों का मनुष्य कभी न छोड़े । धन प्राप्ति, सदा रागरहित रहना, प्यारी स्त्री, वश रहनेवाला पुत्र और धन देनेवाला विश्वास्य येही इस लोक के छः सुख हैं, जा इन छः का सदा करता है, उस त्रितेन्द्रिय का

सदा सुख होते हैं और वृद्ध कभी पापोंको नहीं करता । हे राजे द्रु । चोर असावधानोंसे वैद्य रोगियोंसे, स्त्री कामियोंसे, पुरोहित यजमानोंसे और पण्डित मूर्खसे जीविका पाते हैं । गौ, सेवा, खेती, स्त्री, विद्या, और मूर्खोंको सद्गति ये कहीं थोड़ी देर भी ध्यान नहीं देनेसे नष्ट हो जाते हैं । पढ़े हुए शिष्य गुरुको, विवाह किये हुए पुत्र माताको, कामसे रहित मनुष्य स्त्रीको, काम सिद्ध हुए मनुष्य नावको और निरोगी वैद्यको, ये कछो मनुष्य उपकारियोंको छोड़ देते हैं । हे राजन् ! रोगरहित रहना किसोका कष्टनी न होना, परदेशमें जाना पण्डितोंका सद्ग करना, अपनी धनसे जीविका करनी और निर्भय होकर रहना, इस लोकोके येही कः सुख हैं । दूसरेके सुखके डाह करनेवाला, सदा दयावान, असन्तोषी, क्रोधो, सदा शङ्का करनेवाला और जो पराये भाग्यसे जीते हैं, ये कछों सदा दुःखी रहते हैं । स्त्री, जूआ, आखेट, मद्यपान, कठोर वचन, बहृत दण्ड देना और प्रयोजनोंका नाश करना इन आठ दोषोंको राजाको सदा छोड़ना चाहिये, इनसे बहृत दुःख होते हैं, और बश सहित राजाका नाशभी हो जाता है । ब्राह्मणोंका वैर, ब्राह्मणोंका धन लेना, ब्राह्मणोंकी निन्दा करनी, ब्राह्मणोंकी प्रशंसा न करनी, यज्ञादिकोंमें ब्राह्मणोंको न बुलाना और भिक्षाभाजन ब्राह्मणोंका निरादर करना, नाश होनेवाले मनुष्यको पहिले येही दोष होते हैं, बुद्धिमानको उचित है, कि इन आठोंको छोड़ दे । समयपर मीठे वचन कहना, जिस वस्तुको इच्छा हो उसको प्राप्त करना और समानें पूजा पाना, ये आठ गुण मनुष्यको प्रकाशित करते हैं । बुद्धि, उत्तम कुलमें जन्म, इन्द्री जीतना, पराक्रम, विद्या, थोड़ा वचन कहना, शक्तिके अनुसार दान और उपकार करनेवालेको मानना, येही आठ गुण हैं । इस

शरीर-घरमें नाक, कान, आंख, जोभ, चक्ष, अहङ्कार, बुद्धि, मन और स्थूल शरीर येही नवद्वार हैं । अविद्या, काम, और कर्म करना येही तीन खम्भे हैं । शब्द, स्पर्श, रस, ग और रूप येही पाचो साक्षी हैं, जीव इस रहनेवाला है, जो विद्वान इसको जानता वही पण्डित है । हे धृतराष्ट्र ! म मद्य आदि पीनेवाला, उन्मत्त, अनेक काम करनेसे असावधान, पागल, धका हुआ क्रोधो, शीघ्रता करनेवाला, जोभी, डरपी और कामी, ये दस मनुष्य धर्मको न जानते, इस लिये बुद्धिमान पण्डित इन सद्गति नहीं करते हैं । इसी स्थानपर राजा राज सुधन्वान जा कुछ पुत्रके निमित्त काम सो कहने योग्य है । जो राजा काम और क्रोधको छोड़कर योग्य मनुष्यको धन देता है, जो सब विषयोंके विशेष अर्थको जानता है, और जो अपने कामको शीघ्र करता है, उसको सब जगत प्रमाण मानता है । जो विश्वास योग्य मनुष्यको जानता है, दोषीको दण्ड देता है, जो कामके प्रमाण और चमत्कार जानता है, उसो राजाको समस्त लक्ष्मी मिलती है । जो किसीको दुर्बल नहीं जानता, बुद्धि और युक्तिके सहित शत्रुकीभी सेवा करता है; जो बलवानसे वैर नहीं करता और जो समय पर अपना बल दिखाता है, वही पुरुष वीर कहलाता है, जो बुर स्थान पर जाकर नहीं डरता, जो सावधान होकर उद्योग करता है, जो महात्मा समयपर दुःख सहता है, वही महात्मा कठिन कार्योंको भी सिद्ध कर सकता है और वही शत्रुओंको जीत सकता है । जो निरर्थक काम नहीं करता है, मनुष्योंको घरसे नहीं निकालता, न पापियोंसे सम्बन्ध करता, दूसरेकी स्त्रियोंसे अश्लील नहीं करता, कल, चोरो, चुगली आर मद्य आदिको सेवा नहीं करता, वह सदा सुख

हता है। जो क्रोधसे धर्म, अर्थ और कामकी नहीं करता और केवल सराशकी और देखता है, जो मतोंके सङ्ग विवाद नहीं करता और तो निरादर पाकर दुःखित नहीं होता, वही पण्डित कहाता है। जो किसीकी उन्नतिसे डाह नहीं करता, जो किसीकी ऊपर कृपा नहीं करता, जो दुर्वल होकर अपने विरुद्ध विषयको सोचता है, जो वृद्ध नहीं बोलता और जो विवाद समा करता है, जगत्में उसी मनुष्यकी प्रशंसा होती है। जो कभी दुष्ट मनुष्यके विषयो न धारण करे जो अपने पराक्रमके भरोसे शत्रुओंसे युद्ध न करे, किञ्चित् क्रोधसे कड़वे वचन न करे, ऐसा मनुष्य सदा सबका प्यारा बना रहता है। जो कभी शान्त मनुष्यसे वैर न बढ़ावे, कभी अभिमान न करे, कभी नीचा न हो, हम कुछ नहीं है, ऐसा समझकर बुरा काम न करे, ऐसे मनुष्यको आर्य लोगभी आर्य कहते हैं। जो अपने सुखसे प्रसन्न नहीं होता, दूसरेके दुःखसे भी प्रसन्न नहीं होता, जो देकर पकृताय नहीं उसी महात्माको आर्य लोग आर्य कहते हैं। जो देश, समय और जातिके धर्मोंको जानता है, वही पण्डित सभाकी शोभाकी बढ़ाता है, वह जहा जाकर बैठता है, वहीं महा-जनोका स्वामी बनता है। बल, भ्रम, मत्सर (चुगलो) पापका कर्म, राजाका द्वेष, वैर, मतवाले और पागलसे विवाद, इन सब कर्मोंकी पण्डितकी छोड़ देना चाहिये। दान, होम, देवताओंकी पूजा, मङ्गलके कार्य, प्रायश्चित्त, अनेक प्रकार लोक विवाद, इन सब कर्मोंको जो मनुष्य करता है, उसको देवता भी प्रशंसा करते हैं। जो अपने तुल्य मनुष्यसे विवाह प्रीति और बर्त्तालाप करता है, वही बुद्धिमान कहाता है, जो अपनेसे अधिक गुणवाले पण्डितको सब कामोंमें अगाड़ी रखता है, उसको बुद्धि प्रशंसा करने योग्य है। जो

अपने आश्रयमें रहने वालोंकी बाटकर प्रमाणसे भोजन करता है वृद्धत काम करने परभी थोड़ा सोता है, और मागनेपर शत्रुओंकीभी देता है, उसका सदा कल्याण होता है। जिसके इच्छावाले कर्मोंकी मनुष्य जानते हैं, और जिसके गुप्त मन्त्रको भी कोई नहीं जानता वह मनुष्य कभी अनर्थमें नहीं पड़ता। जो सदा सबका कल्याण चाहता है, सब बोलता है, कीमलतासे रहता है, जिसके सब भाव शुद्ध हैं, वह अपनी जातिमें बैठकर ऐसा प्रकाशित होता है, जैसे रत्नोंमें महामणि। जो अपने कर्मोंकी देखकर आपही लज्जित होता है, वही मनुष्य सब लोकोंका गुरु होने योग्य है। वही मनुष्य महा तेजस्वी, सावधान होकर सूर्यके समान प्रकाशित होता है। हे राजन् ! आपसे जले हुए राजा पाण्डुने इन्द्रके समान पांच पुत्रोंकी उत्पत्ति किया, उनको आपहीन पाला और पढ़ाया है, इस लिये वे भी आपको अपने पिताके समान मानते हैं। हे नरेश ! आप पाण्डवोंका राज्य उनको देकर पुत्रोंके सहित आनन्दसे सुख भोगिये। पाण्डवोंका राज्य देनेसे देवता और मनुष्यभी आपको अधर्मी नहीं कह सकेंगे।

३३ अध्याय समाप्त ।

धृतराष्ट्र बोले, हे प्यारे विदुर ! तुम धर्म और अर्थको जाननेवाले हो, इस लिये समय याग जो काम हो सो सुझसे कहो, मेरा शरीर इस चिन्तासे भरा हुआ जाता है। हे महा पराक्रमी विदुर ! तुम युधिष्ठिरको बुद्धिकी जानते हो, इस लिये तुम जा कौरवोंके कल्याणका कार्य समझो, सो हमसे कहो। हे विदुर ! मैं महापापी और सदा पापकी शङ्का रखता हूँ, इस समय व्याकुल होकर तुमसे पूछता हूँ, तुम युधिष्ठिरकी बुद्धिकी विचार कर जो उचित हो सो कहो।

विदुर बोले, मनुष्य तो उचित है कि जिनका कल्याण चाहे, उससे शुभ, अशुभ, प्रिय और अप्रिय सब प्रकारके वचन कहे, इस जिवे में धर्म और यशसे भरे कौरवोंके कल्याण करनेवाले वचन आपसे कहता हूँ, आप सुनिये। हे भारत। जो उलटा उपाय करनेसे अथवा बिनाही उपायके सिद्ध हो जाय उसके करनेकी इच्छा मनुष्यको कभी न करनी चाहिये। इसी प्रकार जो कर्म अनेक उपाय और यत्न करनेपर भी सिद्ध न हो उनमें भी मनको नहीं लगाना चाहिये। जिन कामोंको करनेसे प्रयोजन सिद्ध होते हैं, उनको पहले निश्चय करके सोच ले, काम करनेमें शीघ्रता नहीं करनी चाहिये। कामका प्रयोजन, फल और अपनी शक्तिको देखकर काम करना चाहिये। जो मूर्ख हर्ष और नाशके प्रमाणको नहीं जानता, जो धन, देश और दण्डको नहीं साधता वह राजा हान योग्य नहीं है। जो कहे हुए विषयोंको भली भाँति समझता है, वही बुद्धिमान राजा होने योग्य है। इस समय आपको राज्य पाकर अनुचित व्यवहार नहीं करना चाहिये, क्योंकि अनोति राज्यको इस प्रकार नाश कर देती है, जैसे सुन्दर रूपको बुढ़ापा। निश्चय न करके उत्तम खाने योग्य वस्तुमें लिपटे हुए काँटेको खाकर मछली अपना प्राण दे देती है, इसी प्रकार जो बिना विचारे कार्य करता है, उसका नाश हो जाता है। जो खान योग्य वस्तु है, बुद्धिमान उसको खाए, वह खाने योग्य वस्तु अन्तम सुखदायक होतभी खानी चाहिये। जो मूर्ख वृक्षसे बिना पके फल तोड़ लेता है, उसे रस नहीं मिलता, और बीजभी नाश होजाता है। जो समयपर पके हुए फलका तोड़ता है, उसे फलका रस प्राप्त होता है और बीज भी मिलता है। उस बीजसे पुनः वृक्ष होता है और वृक्षसे पुनः फल होता है। जैसे भीरा

फूलकी रक्षा करता है, पौष्टी उसका रस पीता है, उसी प्रकार मनुष्यकोभी काम करना चाहिये। जैसे भीरा फूलफलका रस लेता है, और किसी वृक्षको जड़ नहीं काटता, ऐसाही मनुष्यको भी करना चाहिये। जैसे मालो वृक्षसे फूल ले लेता है और वृक्षको काटता नहीं, ऐसेही मनुष्यको काम करना चाहिये। इस कामके करनेसे हमें क्या होगा, और न करनेसे क्या होगा, यह सब विचारकर मनुष्यको काम करना चाहिये, अथवा न करना चाहिये। बहुतसे काम न करनेसे भी सिद्ध होजाते हैं। अनेक कार्य करनेपर भी सिद्ध नहीं होते, जिस मनुष्यको प्रसन्नतासे कुछ लाभ नहीं और जिसके क्राधसे कुछ हानि नहीं ऐसे मनुष्यको सेवा ऐसीही है जैसे नपुंसकको स्त्रीका सिद्धार। बुद्धिमान मनुष्य ऐसे कामका शीघ्र आरम्भ करता है, जिसमें परिश्रम कम और फल अधिक होते हैं, क्योंकि ऐसे कामोंमें विघ्न नहीं होता है। जो काम नेत्रसे सब किसीको देखता है, जो बैठकर भी चुप रहता है, उससे सब प्रजा प्रसन्न होती है। राजाको उचित है कि नेत्र और वचनसे काम न होनेपर भी शीघ्र फल न दे। फल देनेवाला होनेपर भी आप सबसे कठोर बना रहें, मित्र सिद्ध हुई बातको भी सिद्ध हुईके समान प्रकाशित करे, अर्थात् दुर्बल होने परभी बलवान् समान बना रहें। जो नेत्र, मन वचन और कर्मसे जगतका प्रसन्न करता है, उसको भी सब जगत प्रसन्न करता है। जिससे प्रजा इस प्रकार डरती है, जैसे व्याधसे हरिण, वह समस्त पृथ्वीका राजा होकर भी दारिद्र्य हो जाता है। अधर्मी राजा बाप दादाका राज्य पाकर भी इस प्रकार नष्ट होजाता है, जैसे वायु चलनेसे मेघ। जो राजा महात्माओंके करने योग्य धर्मको करता है, वह धन संचित समस्त पृथ्वीका राज्य करता है। जो राजा

धर्मको छोड़ अधर्म करता है, वह समस्त राज्यका इस प्रकार नाश करता है, जैसे अग्निमें डालनेसे चमड़ा जलता है। जैसा शत्रुकी जीतनेको यत्न किया जाता है, वैसाही यत्न अपने राज्यके पालन करनेके लिये भी करना चाहिये। धर्मसे राजा प्राप्त करना चाहिये, और धर्मसे प्रतापकी रक्षा करनी, क्योंकि धर्मसे प्राप्त किया धन नष्ट नहीं होता। जैसे पत्थरसे साना निकाल दिया जाता है, ऐसेही मूर्ख और बालकके वचनसे भी साराश ले लेना चाहिये। बुद्धिमानको उचित है कि, जैसे कोई मनुष्य पत्थरको बीचसेसे अग्नि निकाल लेता है, ऐसेही मूर्खोंसे भी उत्तम वचन, उत्तम कर्म और उत्तम वृत्तिकी सोख ले। गौ गृध्रसे, ब्राह्मण वेदासे और राजा दूतोंके द्वारा देखता है, और सब आंखोंसे देखते हैं। गौ बद्धत कष्टसे दूध देती है, वह बद्धत दुःख उठाती है, और जो सहजसे दूध देती है, उसे कोई मारता नहीं। जा धातु वा काष्ठ पानीसे भुड़ जाय उसे तपानिका क्या काम ? इन्हीं दोनोंके समान बुद्धिमानको भी चिंत है कि अपनेसे अधिक बलवानसे नोचा जाय। जो बलवानकी प्रणाम करता है, प्रणाम इन्द्रको पड़चता है। पशु मेंघोंसे जीते हैं, राजा मन्त्रियोंका मित्र है, पति स्त्रीका मित्र है, और ब्राह्मणोंका वेद मित्र है। सत्यसे धर्मको, यागसे विद्याकी, उपटनसे रूपकी और चरित्रोंसे कुलकी रक्षा होती है। आदरसे धनकी, धुमानसे घाड़ोंकी, उपटनसे गौओंकी और अच्छे चरित्रसे स्त्रियोंकी रक्षा होती है। हमारा यह सिद्धान्त है, कि बुरे चरित्रवालेके वंशका कुछ प्रमाण नहीं, जो नीच होकर भी अच्छा कर्म करे, वह प्रशंसाके योग्य है। जो दूसरेके धन, रूप, बल, सुख, सुन्दरता और आदरको देखकर जलता है, उसके रोगकी कुछ औषध नहीं। जो कार्यकी

पहलेही डरकर अपने कामकी छोड़ दे, वह महामूर्ख है। जिससे कुछ हानि हो मनुष्यको वह काम नहीं करना चाहिये, और कभी अपनी सम्मतिकी प्रकाश नहीं करनी चाहिये। मूर्खोंके लिये विद्या, धन और सहाय यही तीन बड़े मद हैं। यही तीनों महात्माओंके लिये सुखदायक हैं। जिस समय कोई महात्मा किसी दुष्टके पास अपना कार्य करनेकी जाय, और वह दुष्ट उसके कार्यका कर दे यही उसकी साधुता है। महात्मा लोग इतनाही काम होनेसे दुष्टको साधु मानने लगते हैं। महात्मा ज्ञानियोंके लिये गति देनेवाले हैं, और महात्मा पण्डितोंको गति देनेवाले हैं, और महात्माही दुष्टोंकी गति देते हैं, परन्तु दुष्ट साधुओंकी गति नहीं देते। वस्त्रधारी सभाकी जीतता है, बाहनवाला मार्गकी जीतता है और शीलवान सबकी जीत लेता है। पुण्यमें शीलही प्रधान गुण है, इसके नाश होनेसे जीवन, धन और बन्धु बान्धव सबका नाश हो जाता है। हे राजन् ! धनवालेकी मांस, दरिद्रीकी तेल और मध्यमकी घोके सहित भोजन कराना चाहिये। दरिद्री सदा मीठा भोजन करता है, क्योंकि भूखमें सबही मीठा लगता है, और धनवानकी भूख दुर्लभ है, हे पृथ्वीनाथ ! जगतमें देखता है कि धनवान भोजन पचानेमें प्रायः समर्थ नहीं होते और दरिद्र काठको भी पचा जाता है। नीचकी वृत्ति न मिलना मध्यमको सरना और उत्तम को निरासही महा भय है। ऐश्वर्यका मद मद्यसे भी अधिक है, क्योंकि धनका मतवाला श्रामो और सेवकको कुछ नहीं समझता। जैसे सूर्य और चन्द्रमा ग्रहणसे व्याकुल होते हैं, ऐसेही अपने अपने कामोंको करती हुई बिना जीती हुई इन्द्रियोंसे लोक दुःख पाते हैं। जैसे शुक्र पक्षमे चन्द्रमा बढ़ता है, तैसेही मनको वशमें करनेवाली, सङ्ग उत्पन्न हुई पक्षी इन्द्रिय

न जीतनेवाले मनुष्योंके दुःख बढ़ते हैं । जो मूर्ख अपने मनको बिना वशमें किये अपने कुटम्बको वशमें करना चाहे, और जो बिना कुटम्बका वशमें किये शत्रुओंको जीतना चाहे, वह सब प्रयोजनोंसे नष्ट हो जाता है । जो पहले अपने मनको शत्रुके समान जीतता है, फिर कुटम्बको वशमें करता है, वही शत्रुओंको जीत सकता है । इन्द्रियजित, मनको वशमें रखनेवाले, दुष्टोंको दण्ड देनेवाले, परीक्षा करके कामका करनेवाले और परम धीर मनुष्यकी लक्ष्मी प्राप्त होती है । हे राजन् ! शरीर रथ, इन्द्रिय पराक्रमी घोड़े और मन सारथी है, इस रथमें सावधान बैठकर सावधान मनुष्य सुखसे चलता है । जैसे दुष्ट घोड़े कार्यमें सारथीको मार डालते हैं, तैसेही बिना जीती हुई इन्द्री मनरूपी सारथीका नाश कर देती है । बिना इन्द्रियोंको वशमें किये मूर्ख दुःखका सुख, अर्थको अनर्थ और अनर्थको अर्थ समझता है । जो धर्म और अर्थको छोड़कर इन्द्रियोंके वशमें होजाता है, उसके धन, प्राण और स्त्री सब नष्ट हो जाते हैं । जो इन्द्रियोंको बिना जीते धनका स्वामी बनता है, उसके सब ऐश्वर्य नष्ट हो जाते हैं । बुद्धिमान इन्द्रियोंको जीतकर बुद्धिसे मनको अपने वशमें करे, बुद्धिहीन मनका मित्र और बुद्धिहीन मनको शत्रु है । जिसने अपनी बुद्धिसे मनको नहीं जीता, उसके मनको बुद्धि शत्रु है । जैसे छेदवाले छोटे जालमें बड़ी मछली नहीं पकड़ी जाती, ऐसेही काम और क्रोध मनुष्यका बुद्धिसे नहीं पकड़े जाते, ये दोनों बुद्धिका नाश कर देते हैं । जो धर्म और अर्थको देखकर सामग्री इकट्ठी करता है, सा सामग्रीको सहायतासे अनाके लिये सुख भोगता है । जो मनसे उत्पन्न हुए पाच शत्रुओंको जीतता है, वही अन्य शत्रुओंको भी जीत सकता है, जैसे राजा राज्यके कार्योंमें फंसा रहता है, वैसेही अनेक महात्मा भी

कर्मोंमें बंधे हुए रहते हैं । दुष्टोंको न त्यागनेसे महात्माओंकी भी दण्ड मिलता है । देखी जगतमें सुखके सङ्ग गीलाभी चला जाता है, इस लिये दुष्टोंकी सङ्गतिही नहीं करने चाहिये । जो मनुष्य पाच दुःख देने वाले पाच शत्रुओंको वशमें नहीं करता, वह पोछे महा आपत्तिमें पड़ता है । दुष्टकी शान्ति, सीधापन, पवित्रता, सन्तोष, मीठे वचन, इन्द्रियोंको जीतना, सत्य वाणी और स्थिरता नहीं होती । हे भारत । दुष्टको आत्मज्ञान, स्थिरता, त्याग, धर्म वचन को रक्षा आर दान नहीं हाते । मूर्ख अपने बुरे वचनोंसे महात्माओंको दुःख देते हैं, कहनेवाला पापी होता है, और क्षमावान पापसे छुट जाता है । दुष्ट लोग हिंसाहीकी अपना वज्र समझते हैं, उस हिंसासे राजाको दण्ड बढ़ता है । पतिकी सेवा स्त्रियोंका बल है, और क्षमा पण्डितोंका बल है । हे पृथ्वीनाथ । वचनका वशमें रखना बृहत् कठिन है मनुष्य अर्थभरे विचित्र वचन बृहत् समय तक नहीं कहसकते । हे राजन् ! मोठो वाणी कलापमें बढातो है, वही वाणी काड़वी हानि पर अर्थकी बढ़ातो है । कुल्हाड़ीसे कटा वृक्ष फिर बढ़ जाता है, वाणका घाव फिर घट जाता है, परन्तु वचनसे हुआ घाव कभी नहीं भरता । वाणकी फासकी बैद्य निकाल सकता है, परन्तु वचनकी फासकी काँइ नहीं निकाल सकता, क्योंकि वह हृदयमें लगी रहती है । सुखमें निकले हुए वचन रूपी वाण मर्म स्थानोंमें लगते हैं, उनके लगनेसे मनुष्य रात्रि दिन सता करता है, इस लिये मनुष्य उन वाणोंका न चलावे । प्रारब्ध जिसको दुःख देना चाहता है, पहले उसकी बुद्धि नाशकर देतो है । बुद्धि नाश होनेसे वह मनुष्य नीच कर्म करने लगता है, जब नाशका समय आता है, और बुद्धि नाश हो जाती है, तब हृदयसे अन्याय नहीं हटता । हे भरतकुलसिंह ! पाण्डवोंका विराध करने

और पुत्रोंके वशमें होनेसे आपकी वृद्धि नाश होगई है । क्या आप उसकी नहीं देखते ? हे धृतराष्ट्र ! राजलक्ष्णोंसे भरे तीन लोकके स्वामी होने योग्य आपके आज्ञापालक महाराज युधिष्ठिर पृथ्वीके राजा हों । वे धर्म और अर्थके तत्वको जाननेवाले आपके सब पुत्रोंसे तेज और बुद्धिमें अधिक है, इस लिये वेही राजा होनेके योग्य हैं । हे राजन् ! धर्म जाननेवालोंमें अष्ट महाराज युधिष्ठिर कृपा और साधुताके कारण तथा आपकी बड़ा मान करही अनेक लेश सह रहे हैं ।

३४ अध्याय समाप्त ।

महाराज धृतराष्ट्र बोले, हे विदुर ! तुम धर्म और अर्थके जाननेवालोंमें अष्ट हो, इस लिये ये तुम्हारे वचन सुननेसे मुझे सन्तोष होता है । हे महाबुद्धिमान ! तुम विचित्र वचन कहते हो, इस लिये धर्म और अर्थसे भरे वचन फिर कहो ।

विदुर बोले, हे पृथ्वीनाथ ! सब तीर्थोंमें स्नान करना एक और और सबकी समान देखना एक और, इन दोनोंमें समान देखना अधिक है, इस लिये आप सब पुत्रोंको समान दृष्टिसे देखिये, ऐसा करनेसे इस लोक और परलोकमें आपकी कीर्ति बढ़ेगी, हे पुरुषसिंह । जबतक मनुष्यकी कीर्ति जगतमें रहती है, तब तक वह मनुष्य स्वर्गमें रहता है । इस स्थान पर केशिनीके लिये जो सुधन्वा और विरोचनका सम्वाद हुआ था, सो हम आपसे कहते हैं । यह इतिहास वज्रत पुराना है । हे राजन् ! अत्यन्त रूपवती केशिनी नामकी कन्या जब उत्तम पतिसे विवाह करनेके लिये स्वयम्बरमें आई, तब उससे विवाह करनेके लिये विरोचन नामक दैत्य स्वयम्बरमें आया । उससे केशिनी कहने लगी, हे विरोचन ! तुम कहो कि

ब्राह्मण अष्ट हैं, या दैत्य अष्ट हैं ? यदि ब्राह्मण अष्ट हैं, तो मैं सुधन्वासे विवाह क्यों न करूं ।

विरोचन बोले, हे केशिनी ! हम प्रजापतिसे उत्पन्न हुए हैं, इस लिये हमही अष्ट तथा तीनों लोकोंके स्वामी हैं, ब्राह्मण और देवता हमारे आगे क्या वस्तु हैं ?

केशिनी बोली, हे विरोचन ! इसकी परीचाही होजायगी । प्रातःकाल सुधन्वा मुझे लेने आवेगा, तब मैं ब्राह्मण और दैत्यकी पीरचा करूंगी ।

विरोचन बोले, हे कलगाणि ! हे भीरु ! तुम जो कहती हो, सो मैं करूंगा । प्रातःकाल जब सुधन्वा आवेगा, तब तुम हम दोनोंकी देखना ।

विदुर बोले, जब रात्रि बीत गई और आकाशमें सूर्य उदय हुए, तब सुधन्वा स्वयम्बरमें आये । अनन्तर सुधन्वा वहा गये, जहां केशिनी और विरोचन बैठे थे । सुधन्वाने प्रह्लादपुत्र विरोचन और केशिनीकी देखा । हे भरतकुलसिंह ! जिस समय केशिनीने सुधन्वा ब्राह्मणको आते देखा, उसी समय उठकर आसन, अर्घ और पैर धोनेकी जल दिया । तब विरोचनने कहा, हे सुधन्वा ! तुम हमारे सङ्ग बैठो ।

सुधन्वा बोले, हे प्रह्लादपुत्र ! मैं तुम्हारे सोनेके एक आसनपर नहीं बैठ सकता क्योंकि तुम मेरे समान नहीं हो ।

विरोचन बोले, हे सुधन्वा ! तुमने जो कहा सो ठीक है, तुम हमारे सङ्ग सोनेके आसनपर नहीं बैठ सकते, क्योंकि तुम काठके पीढ़े वा कुशाको चटाईपर बैठने योग्य हो ।

सुधन्वा बोले, यह कारण नहीं है ; यह नियम है कि पिता पुत्र, दो ब्राह्मण, दो क्षत्री, दो बूढ़े और दो शूद्र एक आसनपर सङ्ग बैठ सकते हैं । मैं जब तुम्हारे पिताको समामें जाता था, तब वह नीचे बैठकर मेरी सेवा करते थे, तुम उस समय वज्रत वालक थे, और सुखसे

घरमें रहते थे, इस लिये इन बातोंको नहीं जानते हो ।

बिरोचन बोले, हे सुधन्वा ! हम गाय, घोड़े और जो कुछ हमारा धन है, उस सबको लगाकर तुमसे वाद करते हैं, इस प्रश्नको किसी पण्डितसे पूछना चाहिये ।

सुधन्वा बोले, हे बिरोचन । तुम्हारे गाय और घोड़े तुम्हारे ही रहें, हम और तुम अपने अपने प्राणोंको पण (वाजो) लगाकर यह प्रश्न किसी पण्डितसे बूझेंगे ।

बिरोचन बोले, हम तुम्हारे वचनको स्वीकार करते हैं, परन्तु यह प्रश्न पूछनेको किसके पास चलोगे, क्योंकि मैं देवता और मनुष्यके पास कदापि नहीं जाऊंगा ।

सुधन्वा बोले, इस प्रश्नके पूछनेको हम तुम्हारे बापहीके पास चलेंगे, क्योंकि प्रह्लाद पुत्रके प्रेमसे कभी झूठ नहीं बोलेंगे ।

विदुर बोले, हे राजन् ! ऐसी प्रतिज्ञा करके क्रोध में भरे बिरोचन और सुधन्वा राजा प्रह्लादके पास गये । इनको देखकर प्रह्लाद बोले, ये दोनों विषेली सांपके समान क्रोधमें भरे एक मार्गसे चले आते हैं, ये कभी पहले सझ नहीं रहे, अब क्यों सझ रहेंगे ?

इतनमें बिरोचन और सुधन्वा सभामें पहुंच गये । तब प्रह्लाद अपने पुत्रसे बोले, हे बिरोचन । क्या सुधन्वा तुम्हारे मित्र है ?

बिरोचन बोले, हे राजन् । सुधन्वा मेरे मित्र नहीं है, हम दोनोंने प्राण देनेकी प्रतिज्ञा करके विवाद किया है, आप हमारे प्रश्नका उत्तर दोजिये, कदापि झूठ मत कहिये ।

प्रह्लाद बोले, हे सुधन्वन् । आप पूजा करने योग्य ब्राह्मण है, इस लिये मधुपर्क, पैर धोने योग्य जल और सफेद गौकी ग्रहण कीजिये ।

सुधन्वा बोले, जैने मार्गहीसे आपका मधुपर्क, और जल ग्रहण कर लिया था, अब

हम आपसे प्रश्न करते हैं, सत्य सत्य उत्तर दोजिये । हमारा प्रश्न यही है कि ब्राह्मण श्रेष्ठ है या बिरोचन ?

प्रह्लाद बोले, हमको एकही पुत्र है और आप साक्षात् हमारे साथ प्रश्न करनेको आये हैं, ऐसी अवस्थामें हमारे समान मनुष्य कह सकता है ?

सुधन्वा बोले, हे बुद्धिमान । आप इस सफेद गौको अथवा और सब धनको लीजिये, परन्तु हमारे प्रश्नका ठीक उत्तर दोजिये ।

प्रह्लाद बोले, हे सुधन्वन् । जो सत्य वा झूठ कुछ न कहै, वह निश्चय करनं वाला कहां वसता है ?

सुधन्वा बोले, जहां क्षत्रसे हारा जुमें हारा और दिन भर भार लेकर चलनेवाला मनुष्य वसता है, वहीं वह मनुष्य भी है, जो सत्य और झूठको जानकर भी झूठ कहै । जा साक्षी जाकर झूठ कहता है, नगरके द्वारपर रुककर झूठा पड़ा रहता और अनेक शत्रुओंको देखता है । पशु लिये झूठ बोलनेसे पाच, गौओंके लिये बोलनेसे दश घोड़ोंके लिये सौ और मनुष्योंके लिये झूठ बोलनेसे सत्सहस्र हत्याओंका होता है । सोनेके लिये झूठ बोलनेसे उल्लूक और न उत्पन्नल्लूक लोगोंके मार पाप जाता है । भूमि और स्त्रीके लिये बोलनेसे समस्त पृथ्वीके मनुष्योंके मार पाप जाता है इस लिये तुम इस स्थान झूठ मत कहो ।

प्रह्लाद बोले, हे बिरोचन । अद्विरा मुझ श्रेष्ठ है, सुधन्वाकी माता तेरी मातासे बड़ी और तुमसे सुधन्वा अच्छे हैं, इस लिये सुधन्वाने जीत लिया । हे बिरोचन । तब तुम्हारे प्राणोंका स्वामी है, चाहे मार डाले, हे सुधन्वन् । मैं तुमसे बिरोचन मागता हूँ ।

सुधन्वा बोली, है प्रह्लाद । तुमने पुत्रके लिये भी झूठ न कहा, इस लिये इस दुर्लभ बेरीचनकी तुम्हें देते हैं, परन्तु यह उसी स्त्रीके आगे हमारे पैर धोवे ।

विदुर बोली, हे राजन् धृतराष्ट्र । देखो राजा प्रह्लादने अपने पुत्रके प्राणोंको बचानेकी भी झूठ नहीं बोली, वैसेही आपभी राज्यके लिये झूठ मत बोलिये । मैं यह चाहता हूँ कि झूठ बोलनेसे पुत्र और मन्त्रियोंके सहित आपका नाश न हो, देवता लाठी लेकर पशु-ओंके समान मनुष्योंकी रक्षा नहीं करते । वे जिसकी रक्षा करना चाहते हैं, उसको उत्तम बुद्धि देते हैं, जैसे मनुष्यकी बुद्धि अच्छे कामोंमें जाती है, तैसे तैसे मनुष्यके कार्य सिद्ध होते हैं । कुलो मनुष्यको कुलसे गहीं वचाते, वरन वे इस प्रकार मनुष्यसे मरनेके समय छूट जाते हैं जैसे पंखवाले पक्षीसे घोसला अर्थात् कर्मही मनुष्योंको दुःखसे वचाता है । महात्मा लोग मद्य पीना, लड़ाई, वैर, स्त्री, पुत्र, और जातिसे द्वेष, राजाको शत्रुता, स्त्री और पुरुषोंसे विवाद तथा और भी बुरेकाम करनेकी मना करते हैं । बुद्धिमानकी उचित है कि हायकी रेखा देखनेवाले, घोर वनिये, धूर्तज्यातिघो, धूर्तवैद्य, शत्रु, मित्र और रण्डोके भड़वेकी साक्षी न बनावे । हे राजन् ! जो आदरके लिये अग्निहोत्र करता है, आदरके लिये विद्या पढ़ता है, आदरके लिये यज्ञ करता है, उसका कल्याण नहीं होता । परन्तु जो बिना इच्छाके इन सब कामोंको करता है उसको सुख होता है । और जलानवाला, जहर देनेवाला, कुण्डाशी पतिकाे जीति हुए जा दूसरे मनुष्यके वीर्यसे पुत्र उत्पन्न होता है, उसे कुण्ड कहते हैं, जो उस कुण्डके यहा भाजन कर उसे कुण्डाशी कहते हैं), सामवेचनवाला, शस्त्र बनानेवाला, नक्षत्रस्वो अथवा धाड़ा पड़ा

ज्योतिषी, मित्रदोही, दूसरेकी स्त्रियोंसे अधर्म करनेवाला, गर्भ गिरानेवाला, गुरुको शय्या-पर पैर रखनेवाला, मद्य पीने वाला ब्राह्मण, बहृत, क्राधी कोविके समान वृत्ति करनेवाला, नास्तिक, वेदनिन्दक, डाकू, ब्राह्म अर्थात् जिसका जनेऊ समय बीतनेपर हुआ हो, दूसरेकी वस्तुको छीननेवाला, और जो शरणागतकी रक्षा नहीं करे, ये सब ब्राह्मणकी भारनेवाले पापीके तुल्य हैं । चादनेसे रूप, चारित्रसे धर्म, व्यवहारसे साधुता, युद्धसे शूरवीरता, कठिन कार्योंमें बुद्धिमानी और आपत्तिके समय मित्र जाने जाते हैं । वृद्धापा रूपकी, आशा धैर्यकी, मृत्यु प्राणोंको दुष्टता धर्मकी, क्रोध लक्ष्मीकी, दुष्टोंकी सेवा शीलकी, काम लज्जाकी और अभिमान सबको नाश कर देता है । लक्ष्मी अच्छे कामोंसे प्राप्त होती है, गम्भीरतासे बढ़ती है, अच्छे कामोंमें निपुण होनेसे उसकी जड़ जमती है, और इन्द्रियोंकी जीतनेसे स्थिर हो जाती है । हे राजन् । बुद्धि, उत्तम कुलमें जन्म, इन्द्रियोंकी जीतना, विद्या, पराक्रम बोलनेकी शक्तिके अनुसार दान और उपकार करनेवाली-की मानना, ये आठों गुण मनुष्यकी प्रसिद्ध करते हैं । हे राजन् । इन सब गुणोंमें एकही गुण श्रेष्ठ है कि राजा मनुष्योंका सत्कार करे, यह गुण सब गुणोंसे श्रेष्ठ है । हे राजन् । इन आठ गुणोंमेंसे चार गुण मनुष्यको स्वर्गमें पहुँचाते हैं, और चार महात्माओंके सङ्ग रहते हैं, इन आठों गुणोंका आगे वर्णन करते हैं । यज्ञ, दान, विद्या और तप ये चारो गुण मनुष्यसे नित्य सम्बन्ध रखते हैं । इन्द्रियोंकी जीतना सत्य, कोमलता और दयालुता, ये चारो गुण महात्माओंके सङ्ग रहते हैं । यज्ञ करना, विद्या पढ़ना, दान, तप, सत्य, क्षमा, दया और लोभ न करना, येही आठ धर्मोंके मार्ग हैं । उनमेंसे पहले चार जो हैं, उनका पाखण्डी पाखण्डके लिये भी कर सकते हैं, परन्तु अन्तके

चार जो धर्म हैं, उनको महात्माओंके सिवा कोई नहीं कर सकता । वह सभा नहीं है, जहां बूढ़े नहीं ; जो धर्मका वर्णन नहीं करते वह बूढ़े नहीं है, जिसमें सत्य नहीं वह धर्म नहीं है ; और जिसमें कुछ छल है वह सत्य नहीं है । सत्य, क्षप, गुण, विद्या, उत्तम कुलमें जन्म, शील, बल, धन, तेज, विचित्र कहना, येही स्वर्ग ले जानेके कारण है । जो पापी पाप करता है, उसको फल भी वैसाही मिलता है, धर्मात्माको धर्म करनेसे अच्छा फल मिलता है । इस वास्ते धर्मात्मा मनुष्यको उचित है कि पाप न करे, क्योंकि बार बार पाप करनेसे बुद्धिका नाश होजाता है । बुद्धि नाश होनेसे मनुष्य पापही करता है । पुण्य करनेसे बुद्धि बढती है, बुद्धि बढनेसे मनुष्य सदा पुण्यही करता है ; पुण्य करनेसे कीर्ति बढती है, कीर्तिमानकी स्वर्ग मिलता है ; इस लिये उत्तम मनुष्यको उचित है कि सदा धर्मही करे । डाही, दन्दस्तक अर्थात् दूसरेके कार्यको नाश करनेवाला, कठोर वचन कहनेवाला, सबसे वैर करनेवाला और दुष्ट मनुष्य पाप करनेके कारण शीघ्रही नष्ट होजाता है । जो किसीकी वृद्धि देखकर दुःख नहीं मानता और अपनी बुद्धिको ठीक रखता है, वह उत्तम काम करनेके कारण कदापि दुःखमें नहीं पड़ता और सदा सुख पाता है । जो अपनी बुद्धिसे बुद्धिको बढाता है, वही पण्डित कहाता है बुद्धिमान धर्म और अर्थको बिना प्राप्त किये भी सुख भोगता है । दिनमें ऐसा काम करना चाहिये, जिससे रात्रिको सुखसे सोवे, आठ महीनेमें ऐसा काम करना चाहिये जिससे एक वर्ष सुखसे रहे । पहलो अवस्थामें ऐसा काम करें, जिससे वढ़ापेमें सुख मिले । जीवन भरमें ऐसा काम करे जिससे मरनेके पश्चात् सुख ही, जब अन्न पच जाय, तब उसकी प्रशंसा करनी चाहिये, शीलसे जीवन बितानेके पश्चात् स्त्रीकी

प्रशंसा करनी चाहिये, युद्ध जीतनेके पश्चात् बीरकी प्रशंसा करनी चाहिये और तपस्या पूरा होनेपर तपस्वीकी प्रशंसा करनी चाहिये । जो धन अधर्मसे प्राप्त होता है, वह पहले कुछ हानि करता है, वह हानि सह नहीं सकती, तब और भी हानि बढतीही जातो है । गुरु महात्माओंको शासन करते हैं, राजा दुष्टोंको दण्ड देता है, और छिपकर पाप करनेवालेको या राज दण्ड देते हैं । ऋषि, नदी, महात्माओं वंश और स्त्रियोंके चरित्रोंके कोई पार नई जा सकता । हे राजर् ! जो क्षत्री ब्राह्मणोंके पूजा करता है, दान करता है और जातिमें शीलसे रहता है, वह बृद्धत दिनतक सुखसे राज्य करता है । शूरवीर, विद्वान् और सेवा जाननेवाला सेवक, ये तीनों मनुष्य सुवर्णसे फूली हुई पृथ्वीका आनन्द भोगते हैं । हे भारत । जो कर्म प्रत्यक्ष करके बुद्धिसे किये जाते हैं, वे श्रेष्ठ हैं, जो हाथसे किये जाते हैं, वे मध्यम हैं और जो छिपकर जङ्घासे किये जाते हैं, वे नीच हैं । तुम क्या दुष्टोर्धन, शत्रुनिमूर्ख दुःशासन और कर्णको राजा बनाकर कल्याणको इच्छा करते हो ? हे भरतकुलसिंह सब गुणोंसे भरे पाण्डव आपकी पितागुरु मानते हैं, आप भी उन्हें पुत्र समान मानिये ।

३५ अध्याय समाप्त ।

विदुर बोले, हे राजन् धृतराष्ट्र । इसी स्थानपर यह पुराना इतिहास कहने योग्य है इसमें आर्षेय और साध्विका इतिहास है, एक समय परमहंसका रूप बनाकर महा तपस्वी महा बुद्धिमान आर्षेय जगतमें पृथ्वी पर रहे थे, उसी समय साध्वीन आकर कहा कि साध्वी बाली है महासुनि । हम साध्वी नामक देवता है, आपका देख कर आपके तपका अनुमान नहीं कर सकते, हमें जान पड़ता है कि आप विद्या, धीरता और बुद्धिसे भरे हैं, इस

लिये आप हमसे कुछ कल्याणकी बात कहिये । परमहंस बोले, हे देवता ! हम केवल इतनाही जानते हैं, कि हृदयकी गांठका दूर धारण करके इन्द्रियोंका जोतना, सत्य बोलना और अपने समान सबके सुख और दुःखकी जानना यही धर्म है । जो अपनेको बुरी बात कहै, उसका उत्तर नहीं देना, ऐसा करनेसे रुका हुआ क्रोध बुरी बात कहनवालेका नाश कर देता है और क्षमा करनेवालेका कल्याण होता है । मनुष्य बुरी बात न कहै, किसीका निरादर न कर, अभिमान न करे नीचको सेवा न कर, मित्रोंसे वैर न करे, छोटा काम न करे और रूखी वाणी न बोलै । क्योंकि बुरी बात मनुष्यके मर्म, हृदय, हड्डी और प्राणाका भङ्ग कर देती है । मनुष्यको उचित है, कि रूखी वाणी कभी न कहै, क्योंकि उससे धर्मका नाश होता है । दुःख देनेवाली रूखी वाणी मनुष्यके हृदयमें काटके समान लगती है, रूखी वाणी मनुष्यके मुखमें दारद्र और अत्युत्पन्न होकर बसती है । आग और सूर्यके समान जिसी और विषम दुष्कृत तात्त्विक वाणीका समान चमक ही दुष्ट महात्माका कहते हैं, उनसे मिलन कहत है और अत्यन्त पोड़त हान परमात्मा दुःख नहीं मानते । चाहे साधूको सेवा करा, चाहे दुष्टको सेवा करा, चाहे तपस्वीको सेवा करा और चाहे चोरको सेवा करा, परन्तु मनुष्य स्वामीके वशमें इस प्रकार हो जाता है, जैसे वस्त्र रङ्गके वशमें । बद्धत विवाद ही करना चाहिये, न बाद करना चाहिये । दूसरेसे मार खाकर उसे नहीं मारता, जाणोका मारनेको इच्छा नहीं करता, उससे प्रताप बद्धत प्रसन्न रहते हैं, बद्धत बालनेसे बालना अच्छा है, बालनेसे सत्य बालना अच्छा है, सत्यमें प्यारा बोलना अच्छा है, और प्यारेमें भी धर्मके सहित बालना बद्धत अच्छा है, ये चार वचनके भेद है । जो मनुष्य

जैसे मनुष्यके सङ्गमें रहता है, जैसे मनुष्योंके सङ्ग बैठता है और जैसा बनता चाहता है, वैसाही होता है । जहासे मनुष्य अपने चित्तको लौटाना चाहता है, वहासे लौट जाता है, सब स्थानोंसे लौटनेसे मनुष्यको कुछ भी दुःख नहीं शेष रहेगा । जो सब दुःखोंसे रहित हो जाता है, वह किसीको जोतनकी इच्छा नहीं करता न किसीसे वैर करता है, न किसीको मारनेको इच्छा करता है, वह दुःखरहित मनुष्य निन्दा और प्रशंसासे, प्रसन्न और अप्रसन्न नहीं होता, उसका स्वभाव समान हो जाता है, वह मनुष्य सबका कल्याण चाहता है, कभी भी किसीकी हानिमें उसका चित्त नहीं जाता, वह सत्यवादी, कोमल, दानी और सबसे अष्ट है, उसीको उत्तम पुरुष कहते हैं । जा विना प्रयोजन वचन न कहै, जिस वस्तुको देनेको प्रतिज्ञा करे, उसे दे दे, शत्रुके समयको देखता रहै, वह मध्यम पुरुष कहाता है, जो बुरे वचन कहै, सदा क्रोधके वशमें रहै जिसको लड़ाईहो प्यारी लगै, किये हुए उपकारको न मानै, किसीका मित्र न हो और सदा दुष्टता करता रहै, वह नीच पुरुष है । जो किसीमें अज्ञान न करे, अपने किये हुए काममें भी शङ्का करे और मित्रोंका निरादर करे, वह अधम पुरुष कहाता है ।

मनुष्यको उचित है कि सदा उत्तमहो मनुष्योंका सङ्गति कर और काम निकालनके वास्तव मध्यम पुरुषके पास भी चला जाय, परन्तु कल्याण चाहनवला मनुष्य नीचके पास कदापि न जाय । मनुष्य दुष्टाकी सङ्गतिसे दुष्ट हो जाता है, फिर उसको बुद्धि और मन सब नष्ट हो जाते हैं, इससे उसकी उत्पत्ति भी नहीं होती, तब उसको प्रशंसा भी नहीं नहीं होती, प्रशंसा नष्ट होनेसे कुलका गौरव भी नाश हो जाता है ।

महाराज धृतराष्ट्र वाली, हे विदुर ! हमने सुना है कि सदा धर्म और अर्थको करनेवाले

महा पण्डित और देवता बड़े बड़े कुलोंको प्रशंसा करते हैं, सो हम आपसे पूछते हैं, कि बड़े कुल कौनसे हैं ?

विदुर बोले, हे महाराज ! जिन कुलमें तप, इन्द्रिय जीतना, वेद विद्या, यज्ञ, उत्तम विवाह, और सदाहम दान होता है, वेहो बड़े कुल कहते हैं, यही सात गुण बड़े कुलके लक्षण हैं । जिन कुलोंमें बुरे नहीं होते, जिनके पितर दुःख नहीं पाते, जहां प्रसन्न होकर धर्म किया जाता है, जिस कुलमें उत्पन्न हुए मनुष्य झूठ नहीं बोलते और अपने कुलकी कीर्ति बढ़ना चाहते हैं, वेही बड़े कुल कहते हैं, जिन बड़े कुलमें भी यज्ञ नहीं होता, उत्तम रीतिसे विवाह नहीं होता और वेद नहीं पढ़ाये जाते, वे नोच जा जाते हैं, जिन कुलमें उत्पन्न हुए मनुष्य देवता और ब्राह्मणोंका धन छानते हैं, तथा ब्राह्मणोंका निरादर करते हैं, वे उत्तम कुलभी नोच जाते हैं । हे भरतकुल श्रेष्ठ ! ब्राह्मणोंका निरादर, ब्राह्मणोंका निन्दा और अधर्म करके धन छाननेसे उत्तम कुल नोचताका प्राप्त हो जाता है । जिन कुलमें गज, धन, और मनुष्य भरे हैं, परन्तु वंशमें उत्पन्न हुए लोगोंके चरित्र अच्छे नहीं हैं, उनकी गिनती कुलोंमें नहीं । जिन कुलमें धन थोड़ा है, परन्तु मनुष्योंके चरित्र अच्छे हैं, वेही महा यशस्वी उत्तम कुल हैं । धन आता है और जाता है इस लिये यज्ञ करके चारित्र्यको रक्षा करना चाहिये । बद्ध धन हानिपर भी बुरे चरित्रवाला मनुष्य होन, और कम धन हानिपर भी उत्तम चरित्रवाला मनुष्य उत्तम कहाता है । हे धृतराष्ट्र ! गा, पशु, घाड़े, बड़े ऊँई खेतों इन सबसे कुल उत्तम नहीं होते, परन्तु चाल चलन अच्छे होनेसे उत्तम होते हैं । हमारे कुलमें कोई बैर करनेवाला न हो, राजा वा मन्त्री कोई भी धन लेनेको इच्छा न करे । हमारे

कुलमें कोई ऐसा न हो जो पितर और देवतासे पहले भोजन करे । जो हमारे ब्राह्मणोंसे द्वेष करे, हमारे ब्राह्मणोंको मारे, ऐसा मनुष्य हमारे वंश और सभामें न हो, और जो खेतोंका न बुझावे ऐसा भी मनुष्य हमारे कुटुम्बमें कोई न हो । पण्डितोंके घरमें घास, भूमि, जल और सच्चे वचन कभी नष्ट नहीं होते, अर्थात् सज्जन लोग अतिथियों विद्यानेके वास्तु लक्षण पीनेको जल और प्रेमसे भोठा वचन देते हैं । यदि सज्जनोके पास और कुछभी नहीं तो वह अतिथिका इससे ही सत्कार करते हैं । यही चार लक्षण अच्छे कुटुम्बके हैं । हे राजन् ! हे महाबुद्धिमान ! धर्म करनेवाले महात्मा परम अज्ञासे इन चारों वस्तुओंको आदर सहित अपने घरमें रखते हैं । हे राजेन्द्र ! जैसे भारी रथको घोड़ोंके सिवाय और कोई नहीं ले चलता अर्थात् घोड़ेही ले चल सके हैं,—ऐसेही उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए मनुष्य चरित्ररूपोंभारको जितना उठा सके हैं, उतना सामान्य पुरुष नहीं । जिसके भयसे मनुष्य डरे, अथवा जिसके कर्मोंसे मित्रका शङ्का हो, वह मित्र नहीं है । जिस मित्रका मित्र पिताके समान विश्वास करे, वही मित्र है, शेष सम्बन्ध मात्र है । जो कोई बिना सम्बन्धके मित्रता करे वही मित्र है, वही वस्तु है, और वही सेवा करने योग्य है । जिस मनुष्यका चित्त चञ्चल है, जो बूढ़ोंको सेवा नहीं करता, जिसकी बुद्धि स्थिर नहीं है, उसका मित्रता भी स्थिर नहीं है । जिसके रान, चित्त और शरीर चञ्चल है, जो इन्द्रियोंके वशमें रहपा है, उस मनुष्यको धर्म और अर्थ इस प्रकार छोड़ दें हैं, जैसे सूखे तलावको हस । जिसका विवेक मेघ और जलमें स्थित नावके समान चञ्चल है, जो बिना कारणही क्रोध करे और बिना कारण प्रसन्न हो जाय, वह मूर्ख है । जो अपने सत्कार पाकर भी मित्रका काम न करे, मरने

पश्चात् मांस खानेवाले पक्षी भी उसका मांस नहीं खाते । बुद्धिमानजी उचित है कि चाहे दरिद्री हो चाहे धनवान हो अपने मित्रोंकी सेवा करता रहै, क्योंकि निर्धन मित्रोंके सारा-शकी नहीं जातता है । मित्र छूटनेसे रूप नष्ट होजाता है, मित्रके वियोगसे बल नष्ट होता है, मित्रके वियोगसे ज्ञान नष्ट होता है, और मित्रके वियोगसे अनेक राग हो जाते हैं । हे राजन् ! मित्रके शोकसे शरीर जलता है और शत्रु प्रसन्न होते हैं, इस लिये आप अपने मनको शाककी और मत जाने दोजिये । मनुष्य बार बार उत्पन्न होता है, बार बार मरता है, बार बार मनुष्यकी उत्पत्ति होती है, बार बार धन नाश होता है, बार बार भिक्षा मागता है, बार बार दान करता है, कभी सोचता है, और कभी शत्रुओंका शोक बढ़ाता है । सुख, दुःख, लाभ, हानि, मरना और जीना ये सब प्रायः हुआही करते हैं, इस लिये मनुष्यको उचित है कि उन सबसे सुख और दुःख न माने । पाचों इंद्रो और छठा मन ये चञ्चल हैं, जहा जहा इनकी अथवा वृद्धि होती है, तहा तहा मनुष्यको बुद्धि इस प्रकार नष्ट हातो है जैसे हिंद युक्त घड़ेसे जल गिरता है ।

महाराज धृतराष्ट्र बोले, राजा युधिष्ठिर मेरे अन्यायसे इस प्रकार गये हैं, जैसे किसी कारणसे शरीरमें अग्नि रुक जाती है । अब वे युद्धमें हमारे नूर्ख पुत्रोंका अवश्य नाश करेंगे । हे महाबुद्धिमान ! मेरा मन सदा घबड़ाता रहता है, इस लिये आप ऐसा उपाय बतलाइये जिससे मेरा मन स्थिर हो ।

वदुर बोले, हे पापरहित महाराज ! विद्या, तप, इन्द्रिय जीतना, और लोभ न करना, इनके सिवा आपकी शान्तिका उपाय सुभी और कुछ नहीं दीखता । बुद्धिसे भय नाश होता है, तपसे परम पद मिलता है, गुरुओंकी सेवासे ज्ञान होता है, और योगसे

शान्ति प्राप्त होती है । जगतमें दान और पुण्यके फलको छोड़कर और वेद पढ़नेके फलको छोड़कर, राग और द्वेषसे कूटे महात्मा जगतमें घूमते हैं । उत्तम पढ़ने, उत्तम युद्ध, उत्तम कर्म और उत्तम तप इन चारोंका फल करनेके अन्तमें मिलता है । हे राजन् ! अनेक बन्दी और भाटोंकी स्तुति सुननेपर भी और उत्तम शय्यापर सोनेसे भी दुःखी मनुष्यको सुख नहीं होता, और न दुःखी मनुष्य स्त्रियोंसे भी प्रसन्न होता है । जातिमें भेद करनेवाले मनुष्य धर्म नहीं करते, सुख नहीं भोगते, जातिमें भेद करनेवालोंका आदर नहीं होता और न उनको शान्ति अच्छी लगती है । गौओंमें दूधही धन है, ब्राह्मणोंमें तपही धन है, स्त्रियोंकी चञ्चलताही धन है और मनुष्योंका जातिसे भय करनाही धन है । आपन बालक पनमें पाण्डवोंको पाला था, अब वे अनेक कष्ट सहकर महात्माओंके दृष्टान्तरूप हो गये हैं, अर्थात् जगतमें सब मनुष्य कहते हैं कि अमुक महात्मा पाण्डवोंके तुल्य है । ऐसे महात्मा पाण्डवोंके सङ्ग आप छल न कीजिये । हे भरत-कुल सिंह धृतराष्ट्र ! अलग अलग रखे हुए काष्ठोंमें आग लगानसे केवल धुआ निकलता है और सङ्ग रखनेसे सब जल उठते हैं, ऐसेही जातिका भी प्रभाव है । जा दुरात्मा ब्राह्मण, स्त्री और गौओंसे अपना पराक्रम दिखलाता है वह इस प्रकार गिरता है, जैसे पका हुआ बैंगनका फल । जैसे अनेक शाखाओंसे युक्त फल और फूलोंसे भरा अकेला वृक्ष वायु लगनसे गिर जाता है, ऐसेही अकेला मनुष्यभी शत्रुके हाथसे मारा जाता है । जिस वनमें पास पास अनेक वृक्ष लगे हों तहां अत्यन्त वायु चलनेसे भी वृक्ष नहीं टूटते, क्योंकि वहा एक वृक्षका दूसरेका आश्रय होता है, ऐसेही अनेक गुण होनेपर भी अकेलेको शत्रु मार डालते हैं । जैसे पास पास होनेके कारण तलावमें कमल बढ़ते हैं,

ऐसेही परस्पर प्रेम करनेसे एक दूसरेके आश्रयसे जात बढ़ती है । ब्राह्मण, जाति, बालक, स्त्री जिसका अन्न खाया जा सके, और शरणमें आवे मनुष्यको मारना नहीं चाहिये । हे राजन् ! आपका कल्याण ही, मनुष्यके समर्थ होनेके सिवा और कोई गुण नहीं है ; यह गुणभी रोगरहित मनुष्यमें रहता है, क्योंकि रोगी मनुष्य मरे हुएके तुल्य है । हे महाराज ! आप रोगरहित और समर्थ हैं, इस लिये पाप बढ़ानेवाले तेज, गर्भ, कड़वे, रोगरहित और पण्डितोंके पीने योग्य क्रोधका पीकर शान्त होइये । रोगी फलका नहीं प्राप्त होता उसका कहीं आदर नहीं होता । रोगी सदा दुःखसे मरा रहता है, इस लिये वह कुछ नहीं समझता और न सुखोंको भोग सकता है । हे महाराज ! मैंने जिस समय द्रौपदीको जुवेमें धारा हुई देखा था, उसी समय आपसे कहा था, कि पाण्डव लोग जुवेको प्रशंसा नहीं करते, इस लिये दुर्योधनका जुवेसे रोकिये । परन्तु आपन मेरा वचन नहीं सुना था, इससे यह दुःख प्राप्त हुआ है । हे राजेन्द्र ! जा क्षमावान मनुष्यसे वैर करावे, वह बली नहीं है । मनुष्यको उचित है कि सदा सत्त्व धर्म करे । अन्यायसे उत्पन्न हुई लक्ष्मी वंशका नाश कर देती है, और न्यायसे उत्पन्न हुई लक्ष्मी पुत्र तथा पीतोक्त रहती है । हे राजन् ! हमारी सम्प्रतिमे यह आता है कि आपके पुत्र पाण्डवाकी रक्षा करें, और पाण्डुके पुत्र आपके पुत्रोंका पालन करें, जा कौरवोंके शत्रु हों, सो पाण्डवोंके भी शत्रु हों ; और जो पाण्डवोंके शत्रु हों सो कौरवोंकेभी शत्रु हों, ऐसेही कौरव और पाण्डवोंके मित्रभी एकही हों । ऐसा करनेसे दानोंकी उन्नात जागो और बृद्ध दिन तक जीवेंगे । हे अजसीद्वैतशक्त्यन्त प्यार धृतराष्ट्र ! आप इस समय सब कुलकुलके स्वामी हैं, यह समस्त वंश आपके अधीन है ; आपने

बालकपनमें पाण्डवोंको पाला था, अब वे कन्यासे दुःखी होगये हैं, इस लिये उनको रक्षा करके अपने यशको बढ़ाइये । हे नरराज ! पाण्डव धर्म करते हैं, इस लिये आप उनसे सन्धि कीजिये ; इससे आपके शत्रुभी आपकी सेवा करेंगे । आप दुर्योधनका युद्ध मत करना दीजिये ।

३६ अध्याय समाप्त ।

विदुर बोले, हे राजन् धृतराष्ट्र ! स्वयम्भू-पुत्र मनुज इन सत्रह मनुष्योंको ऐसा कहा है जा कोई सुट्टीसे आकासको पीटे, जो आकाशमें उगी इन्द्र धनुषकी नवाना चाहे, जो न पकड़ने योग्य सूर्य और चन्द्रमाकी किरणकी पकड़ना चाहे, जो दुष्टका शिखा दे, जो योहि लार्स प्रसन्न हों, जो बृद्ध दिनतक शत्रुकी सेवा करें, जो स्त्रीकी रक्षा करके कल्याण चाहे, जो न चाहने योग्य वचनकी कहे, जो कुछ काम करके अपनी प्रशंसा करें, जो कुलोन होंकर वरा काम करें, जो निर्व्वल होकर बलवानसे वैर करें, जो अज्ञाहोनसे बात कहे, जो न करने योग्य कामका करें, जो अपने बैठेको बहसे हँसी करें, जो अपने बैठेकी बहसे न डरे, जो दूसरेके खेतमें अपना बोज बाँवे, जो बृद्धत समयतक स्त्रियोंसे विवाद करें, जो बृद्धत धन लेकरभी दिनवाले मनुष्यसे कहे कि हमें खरण नहीं है ; जो घरमें आय हुए भोख भागनेवालेसे अपनी प्रशंसा कर और जो दुष्टका साधु बनानेका हठ कर,—इन सत्तरह मनुष्यका मरनेका समय फासी लेकर यमदूत आते हैं । जो जैसा मनुष्य है, उसके सङ्ग वैसाही बर्ताव करना चाहिये, दुष्टके सङ्ग दुष्टता और साधुके सङ्ग साधुता करनी चाहिये । बुढ़ापा रूपकी, आश धैर्यकी, नृत्य प्राणोंकी, डाह धर्मका, काम लज्जाकी, दुष्टकी सेवा अच्छे चरित्रकी, क्रोध लक्ष्मीकी और अभिमान सबको नाश कर देता है ।

धृतराष्ट्र बोले, हे विदुर ! सब वेदोंमें मनुष्यकी पवस्था सौ वर्षकी लिखी है । परन्तु सब सौ वर्ष नहीं जीते, वह कौन सा कारण है जिससे प्रायु घट जाती है ?

विदुर बोले, हे राजेन्द्र ! अत्यन्त अभिमान, अद्भुत विवाद करना, किसीकी वस्तुकी न देना, क्रोध, अपनाही पालन करना और मित्रोंसे दूर करना, येही कः तेज खड्ग मनुष्योंकी प्रायुको काटते हैं । मनुष्यको मृत्यु नहीं मारतो, येही कः वस्तु मारते हैं । हे भारत ! जो विश्वास किये हुए मनुष्यको स्त्रीसे कुकर्म्म करे, जो ब्राह्मण हीकर वैश्यासे सङ्गम करे वा मय पीवे, जो दुष्टोंकी आज्ञा पाले, जो ब्राह्मणोंकी वृत्ति नाश करे, जो ब्राह्मणोंको नौकर रखे, ये सब ब्राह्मणकी मारनेवाली मनुष्यके समान पापी हैं ; वेदमें यह भी लिखा है कि इनको मृत्युकर प्रायश्चित्त करना चाहिये । जो विद्वानोंके वचनोंकी ग्रहण करे, नीतिको जानता हो, विषयोंकी कह सकता हो, कुटुम्बसे बचे हुए अन्नको खाता हो ; किसीका ईष न करता हो, बिना अनर्थ किये न बब-ड़ाये ; उपकारको माने ; सत्य बोले और सबके सङ्ग कीमलता करे, ऐसा विद्वान स्वर्गको जाता है । हे राजन् ! सदा प्यारी बात कहनेवाले मनुष्य बद्धत मिलते हैं, परन्तु अप्रिय और हितकारी वचन कहने और सुननेवाले बद्धत कम हैं । जो राजाके प्रेम और क्रोधकी छोड़कर हितकारी कड़वा वचन कहता है, वही राजाका सहायक है । कुटुम्बके लिये मनुष्यको छोड़ दे, गांवके लिये कुटुम्बकी छोड़ दे, नगरके वास्ते गांवकी छोड़ दे और अपने हितके लिये सब जगतको छोड़ दे । हे राजन् ! हे विचीतवीर्यपथ । मैंने जुबके समय आपसे कहा था कि हे राजन् ! यह जुवा खेलना अच्छा नहीं है, परन्तु आपकी मेरे वे वचन ऐसे कड़वे लगे जैसे रोगीकी पथ्र । आप क्या

कौवेखूपी अपने पत्नोंसे हंसखपो पाण्डवोंकी चराना चाहते हैं ? हे पृथ्वीनाथ ! आप सिंहकी छोड़कर सियारोंकी रक्षा करके समय आनेपर सोचेंगे । हे प्यारे धृतराष्ट्र ! जो अपने भक्त दासपर कभी क्रोध नहीं करता, सेवक उसी स्वामीसे प्रसन्न रहता है । आपदाके लिये धनकी रक्षा करे, धनसे कुटुम्बकी रक्षा करे, अपनी रक्षा स्त्री और धनसे करे । हमने पहले समयमें भी यह देखा है कि, जुवा बैरका मूल है । इस लिये बुद्धिमानकी उचित है कि हंसीके लिये भी जुवा न खेले । बुद्धिमानकी उचित है कि नौकरोंकी वृत्ति न देकर राज्यकी आज्ञा न करे ; क्योंकि अच्छे भोग न पानेसे राजाको बिना भोग पाये सन्ती राज्यका नाश कर देते हैं । राजाकी उचित है कि सब कामोंकी देखकर नौकरोंकी वृत्तिका निश्चय करे, पश्चात सहाय करने योग्य मनुष्योंकी सहायता ले ; क्योंकि कठिन काम बिना सहायकोंके सिद्ध नहीं होती । जो आलस रहित सेवक स्वामीके अभिप्रायकी जानकारी काम करता है, स्वामीके कलत्राणकी बात कहता है, अच्छे काम करता है, राजाकी शक्तिको जानता है, उस सेवकके ऊपर राजाकी अपने कुटुम्बके समान कृपा करनी चाहिये । जो अपने स्वामीके वचनोंका निरादर करे, कड़वी बात कहे बताये हुए कामको न करे, और जो अपनी बुद्धिका अभिमान करे, वह मूर्ख सेवक उसी समय निकाल देनेके योग्य है । जो कठोर न हो, नपक्व न हो, जिसको अभिमान न हो, जो शीघ्र काम करता हो, जिसको शत्रु न जीत सकता हो, जिसको क्रूर रोग न हो, जिसका वचन कठोर न हो, ऐसे मनुष्यको दूत बनाना चाहिये । शास्त्रोंमें दूतके येही आठ लक्षणा लिखे हैं । बुद्धिमान दूतकी उचित है कि सन्ध्या समय शत्रुके घरमें न जाय, रात्रिकी

चोराहेमें छिप कर न खड़ा हो, और जिस स्त्रीपर राजाका चित्त हो, उसपर अपना चित्त न चलावे। कभी राजाकी सम्मतिके विरुद्ध न कहे, दृष्ट सङ्गति करनेवाले वा बुरे सम्मतिवाले राजाके पास न जाय; राजासे यह न कहे कि हम आपका विश्वास नहीं करते हैं और कुछ बहाना करके उसके कामको न टाल दें। लज्जावान राजा, कुलटा स्त्री, राजाका भौंकार, भाई, बेटा, पुत्र, बालक, बेटेवाली विधवा, मिनाका नौकर और जिसका अधिकार छीना गया हो, इतने मनुष्योंसे कुछ व्यवहार नहीं करना चाहिये। बद्धि, उत्तम कुलमें जन्म, विद्या, इन्द्रिय जीतना, पराक्रम, थोड़ा बोलना और शक्तिके अनुसार दान देना, इन्होंने आठ गुणोंसे मनुष्यका प्रकाश होता है। हे प्यारे धृतराष्ट्र ! जो राजा मनुष्यका आदर करे, वह इन सब गुणोंसे बढ़ जाता है, इन गुणसे आठो गुण छिप जाते हैं। हे राजेन्द्र ! बल, रूप, स्वर और वर्णकी शुद्धता, पवित्र वस्तुकी कूना, पवित्र सुगन्धिकी संघना, धन, कीमलता और अच्छी स्त्री, ये आठों गुण महात्माको मिलते हैं। थोड़ा खानेवाले मनुष्यको रोग नहीं होता, उसके आयु, बल और सुख बढ़ते हैं, उसका पुत्र बद्धत बलवान होता है; इसी लिये महात्मा लोग बद्धत खानेवालीकी निन्दा करते हैं। जो बुरा कर्म करे, बद्धत खाय, लोकका बैर करे, बद्धत छल करे, जो देश और कालको न समझे तथा बुरा वेष धारण करे, इन मनुष्योंका राज्यसे निकाल देना चाहिये। जो दान न करे, गाली दे, विद्या न पढ़े, सदा वनमें रहें, धूर्त हो, जो मानने योग्य मनुष्यका आदर न करे, जिसकी दया न हो, जो सबसे बैर करे और जो उपकारको न माने, इन मनुष्योंसे अत्यन्त दुःख पड़नेपर भी भिन्ना न मागनी चाहिये। जो सदा बुरे काम करे, जो

सदा भूल करे, जो सदा झूठ बोलें, जिसका प्रेम स्थिर न हो, जिसकी कुछ प्रेम ही न हो, और जो अपने आपको बद्धत चतुर माने, इन छः मनुष्योंसे प्रेम नहीं करना चाहिये। धनसे सहायक मिलते हैं, और सहायकोंसे धन मिलता है; ये दोनों परस्पर ऐसा सम्बन्ध रखते हैं कि एकको बिना दूसरेकी सिद्धि नहीं होती। मनुष्यको उचित है कि पुत्रोंकी उत्पन्न करके विद्या पढ़ावे, फिर उनको सब ऋणोंसे कुछा दे, पश्चात् किसी वृत्तिमें लगा दे और लड़कियोंका अच्छे स्थानपर विवाह कर दे। इसके पश्चात् वनमें जाकर तपस्या करे। मनुष्यको उचित है कि जिसमें अपना और स्रजगतका कलपण हो, ऐसा काम करे। इससे सब प्रयोजन सिद्ध हो जाते हैं। जिस मनुष्यमें अपनी उन्नति करनेकी इच्छा, तेज शक्ति, साहस, धर्म, उद्योग और काम करनेका निश्चय, ये गुण हों उसे दरिद्रसे क्या भय है? हे राजेन्द्र ! जिन पाण्डवोंसे देवतोंके सहित इन्द्र कांपते हैं, उनके सङ्ग बैर करनेसे क्या क्या हानियां हैं, सो हम आपको दिखाते हैं, जबसे पाण्डव और आपके एतोंसे बैर हुआ है, तभीसे आपका चित्त घबड़ा रहा है, यशका नाश रह रहा है और शत्रु प्रसन्न हो रहे हैं, जैसे धूमकेतु तारा आकाशमें उदय होकर जगत्नाश करता है, तैसेही भीष्म, द्रोणाचार्य सहाराज युधिष्ठिर और आपका क्रोध जगतक नाश कर सकता है। हे इन्द्रतुला ! आपका सौ पुत्र, कर्ण, और पाचों पाण्डव मिलकर समस्त पृथ्वीका राज्य करें, यहो हमारी सम्मति है। हे राजेन्द्र ! आपके पुत्र वन हैं, और पाचों पाण्डव सिंह हैं; आप वनकी मां काटिये और सिंहोंकी भी मत मारिये। हे राजेन्द्र ! वन सिंहकी और सिंह वनकी रक्ष करता है, बिना सिंहके वनका नाश होता है और बिना वनके सिंहका नाश

जाता है। इस लिये आप वन और सिंह दोनोंहीकी रक्षा कीजिये। आपके पापों पुत्र पाण्डवोंका कल्याण नहीं चाहते और न उनके गुणोंकी ओर ध्यान देते हैं, ये केवल पाण्डवोंकी दोषोंहीकी ढूँढते हैं। मनुष्यकी उचित है कि जब अपने कल्याणकी इच्छा करे, तब पहले धर्म करे, जैसे स्वर्गसे अमृतका नाश नहीं होता, ऐसेही धर्मात्माका प्रयाजन नाश नहीं होता। जो सदा पाप भोगता है, और अपने मनकी धर्ममें लगाता है, वही जगत और आत्मज्ञानकी जानता है। जो मनुष्य समयके अनुसार धर्म, अर्थ और काम करता है, वह इन तीनोंके प्रभावसे मोक्षकी प्राप्ति होता है। हे राजन्। जो आपत्ति पड़नेपरभी नहीं डरता, और जो क्रोध और आनन्दकी रोकता है, वही सुखका पात्र है। हे राजन्। मनुष्योंके जो पांच प्रकारके बल हैं, उनका वर्णन हम आपसे करते हैं, उन पांचोंमें जो वाह्यबल है, सो सबसे छोटा है। अच्छा मन्त्री मिलना, धन मिलना, अपने पुरुषोंका अधिकार मिलना, जातिका बल, तथा वाह्यबल येही पांच बल हैं। हे भारत। जो इन पांचों बलोंका संग्रह करता है, उसको सब बलोंमें श्रेष्ठ बुद्धिबल प्राप्त होता है। जो सदा बड़े आदमोंसे बैर करे, उससे बैर करनेसे मनुष्य यह न समझे कि मैं अपने बैरोंसे बहुत दूर हूँ, ऐसा कौन पाण्डित है जो स्त्री, राजा, सांप, पढ़ानेवाले, खासो, शत्रु, भाग्य और आयुका विश्वास करे। हे राजन्। जो अपनी बुद्धिस्वपी वाणसे शत्रुका नाश करता है, उसका कोई वैद्य चिकित्सा नहीं कर सकता, उसके लिये कोई औषधी, होम, मन्त्र, मङ्गल, अथर्ववेदके मन्त्र और विष नाशक अच्छी बनाई हुई औषधि लाभदायक नहीं है। हे राजेन्द्र। साप, अग्नि, सिंह और उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए मनुष्यका निरादर नहीं करना चाहिये,

क्योंकि ये सब महा तेजस्वी हैं। जगतमें अग्निका तेज बहुत माना जाता है, वह सब लकड़ोंमें गुप्त रूपसे रहता है, परन्तु जबतक कोई मनुष्य उसे न जलावे, तबतक काष्ठकी भी नहीं जला सकता है, परन्तु जब वही अग्नि लकड़ी घिसनेसे प्रकट हो जाती है, तब उस काठ और सब वनकी भस्म करदेती है। इसी प्रकार महातेजस्वी पाण्डव लोग इस वंशमें अग्निके समान उत्पन्न हुए हैं, वे काठमें छिपी हुई अग्निके समान चमका कर रहे हैं, हे राजन्। आप और आपके पुत्र वेलिके समान और पाण्डव बड़े शालवृक्षके समान हैं, बिना वृक्षके आश्रय वेलि नहीं बढ़ती, इस लिये आप पाण्डवोंका आश्रय लीजिये। हे अश्विका-पुत्र धृतराष्ट्र। आप वन और पाण्डव सिंह हैं, बिना वनके सिंह और बिना सिंहके वन नहीं रहता। इस लिये आप दोनोंहीकी रक्षा कीजिये।

३७ अध्याय समाप्त ।

विदुर बोले, हे महाराज धृतराष्ट्र ! मनुष्यका प्राणवायु ऊपरकी जाता है, फिर घूमकर भीतर चला जाता है। जब कोई ग्रहस्थके घरमें आवे, तब उसे आसन दे, जल लाकर उसके पैर धोवे पश्चात् उसका कुशल पूछ कर अपना कुशल कहें, फिर उत्तम अन्न खानेको दे। वेद जाननेवाला ब्राह्मण जिससे मधुपर्क, गौ और भोजन न पावे, महात्माओंने उसका जीवन वृथाहो कहा है। लोभसे, भयसे या दुष्टतासे जिसके घरसे बिना खाये अतिथि लौट जाय, उसका जीवन वृथा है। वैद्य, धाव करनेवाला, भ्रष्ट ब्रह्मचारी, दुष्ट, मद्यपीनेवाला, गर्भ गिरानेवाला, सेनाका नौकर, वेद वेचनेवाला, अर्थात् जो धन लेकर वेद पढ़ावे, और जिसकी पाप धारा हो, इन मनुष्योंके पैर नहीं धोने चाहिये। जो नमक, कच्चे अन्न,

दही, दूध, सहद, तेल, घी, तिल; मांस, फल, मूल, साग, लाल कपडा, फूल और गुड़ वैसे उस ब्राह्मणके पैर नहीं धोने चाहिये। हे राजन्। जिसको क्रोध न हो, जो अन्य द्रव्य और लोहेकी समान समझे, जिसको कुछ शोक न हो, जो लड़ाई और मेलकी कुछ न समझे, जिसको निन्दा और प्रशंसा समान हो, जो प्रिय और अप्रियकी कुछ न जाने; जो साधारण रूपसे घूमे उसीको भिक्षुक कहते हैं। जो मूल और साक खाता है, जो अपने मनको बशमें रखता है, और अपने कामोंमें सावधान हो, और जो नये घरमें आकर भी सन्देह नहीं करता वही महात्मा तपस्वी कहाता है। बुद्धिमानसे बैर करके मैं दूर हूं, ऐसा विश्वास नहीं रखना चाहिये, क्योंकि बुद्धिमानके बड़े लक्ष्ये हाथ होते हैं, वह दूरहीसे अपने शत्रुओंका नाशकर देता है। विश्वास करने योग्य मनुष्यका विश्वास करना चाहिये और न विश्वास करने योग्य मनुष्यका विश्वास नहीं करना चाहिये, क्योंकि इसका विश्वास करनेसे सर्वनाश होजाता है। मनुष्य उचित है कि किसीका प्रहसन न करे। खाने-स्त्रियोंको बशमें रखे, किसीका रता, अपनी सीठा वचन कहे, कोमलता; रक्खे और स्त्रियोंसे प्यारी वाणी कहे, परन्तु स्त्रियों बशमें न होजाय, महा भाग्यवती पुण्य करने वाली, स्त्री पूजा करनेके योग्य है। स्त्री घरका धन और घरकी शोभा है, इस लिये उसकी रक्षा सदा करनी चाहिये। मनुष्यको उचित है कि पिताको घरका स्वामी, माताका ईकी स्वामिनी, और अपने तुल्य मित्रकी गौओंका अधिकार देकर आप खेतीका काम करे, नौकरोंके द्वारा व्यापार, पुत्रोंके द्वारा ब्राह्मणोंकी सेवा, जलसे अग्निकी सेवा, और सत्यसे राजाकी सेवा करे, तथा पत्यरसे लोहेके करे। जो ऐसा करता है, उसका तेज

मर्जित जा सकता है। पाण्डव लोग महा तेजस्वी, क्षमावान और कुलीन हैं, वे इस समय इस प्रकार छिप रहे हैं जैसे काठके भीतर अग्नि। जिस राजाकी सम्मतिको भीतर और बाहरका कोई मनुष्य न जान सके, वही राजा सब वस्तुओंकी देख सकता है, और वृद्धत दिनतक राज्य करता है। राजाको उचित है कि कार्यसिद्धि होनेके पहिले किसीसे न कहे, जब सिद्ध हो जाय, तब सर्वमें प्रगट कर दे। राजाको उचित है कि धर्म और राज्यके कार्योंको ऐसे स्थानपर बैठ कर विचारै, जहां कोई न जा सके। सम्मति करनेके ये स्थान हैं, पर्वतका शिखर, एकान अटारी और विना तिनकेका जड़ल। भारत। अपनी सम्मति शत्रु, मूर्ख मित्र और रोगीसे नहीं कहनी चाहिये और न विना परीक्षा किये किसीकी मन्त्री बनाना चाहिये। जिस राजाके धन, प्रजाके लक्षण और सम्बन्धी कार्योंको केवल मन्त्रीही जानते हैं वही राजा राजोंमें श्रेष्ठ कहाता है। निराजाके सिद्ध हुए कामको समासद जान, जिसका मन्त्र गुप्त हो, उस राजाका प्रयोजन निःसन्देह सिद्ध होता है। जो मूर्ख मन्त्र भी बुरा काम करता है, वह उन कार्योंके नष्ट होतेही नष्ट होजाता है। अच्छे कामोंके करनेसे सुख होता है और उन्हींके न करनेसे पशुताना पड़ता है। जैसे विना वेद पठ ब्राह्मण आज नहीं कर सकता; ऐसेही राज्यके छः गुण विना जाने राजा मन्त्रियोंके वचन सुनने योग्य नहीं होता। हे पृथ्वीनाथ जो हानि लाभको समझता है। राज्यके छः गुणोंकी जानता है और उत्तम मनुष्योंका आदर करता है, सब पृथ्वी उसीके बशमें रहती है। जो वृथा क्रोध नहीं करता और न वृथा प्रसन्न होता है; जो कामोंकी कष्ट आप देखता है; जो अपने धनको आप

देखता रहता है; वही राजा पृथ्वीका राज्य करता रहता है। जो नाम और चल मात्रसे सन्ताप करता है अर्थात् भोगादिकोंसे सम्बन्ध नहीं रखता, जो सब सेवकोंको सुख देता है, और किसीका कुछ नहीं छीनता, वही राजा हानि योग्य है। ब्राह्मण ब्राह्मणको, पति स्त्रीको, राजा मन्त्रीको तथा दूसरे राजाको जान सकता है। शत्रुको पकड़कर कभी नहीं छोड़ना चाहिये, बल रहनेपर अवश्य उसको मारहो डालना चाहिये और जोते हुएसे दूर बैठना चाहिये। जोते हुए शत्रुको छोड़नेसे पुनः हानि हानिका भय रहता है। देवता, राजा, ब्राह्मण, बूढ़, रोगी और बालकोंपर कभी क्रोध नहीं करना चाहिये। दुर्दिमानका उचित है कि मूर्खोंके करन योग्य विना प्रयोजनको लड़ाईको न कर, क्योंकि वर न करनसे अपक्रान्ति नहीं होता और न कुछ आपत्ति आती है। जिसको प्रसन्नतासे कुछ लाभ न हो और क्रोधसे कुछ हानि न हो, सेवक ऐसे स्वामीका इस प्रकार छोड़ देते हैं, जैसे नपुंसक पतिका स्त्री छोड़ती है। बुद्धका फल धन लाभ नहीं है, और न मूर्खताका फल दरिद्रता है। इस लाक और परलाकके व्यवहारोंको पण्डितहो जान सकता है, मूर्ख नहीं। विद्यावृद्ध, शालवृद्ध, बुद्धिवृद्ध, जातवृद्ध और धनवृद्धोंका मूर्ख लाग निरादर करते हैं। बुरे चारेवाले, मूर्ख, निन्दक, क्रोधी और अधमनों पर आपत्ति पड़ती है। किसीसे छल न करना, दान करना, समायकी मध्यादाका न तोड़ना और सबके कल्याणको बात कहना ये गुण शत्रुका भी मित्र बना लेते हैं। किसीसे छल नहीं करनवाला सब कर्म करनेमें समर्थ, उपकारको जाननेवाला और सोधा मनुष्य धन राहत हानिपर भी सबका मित्र बना रहता है। धारणा, मनको चार इन्द्रियोंका वशन रखना, पावतता,

दया करना, कीमल वाणी और मिलोसि प्रेम करना, ये सात गुण लक्ष्मीको बढ़ानेवाले हैं। जो पालन करने योग्य मनुष्योंको अन्न न दे, दुष्ट हो, उपकारको न मान और निर्लज्ज हो, ऐसे राजाको दूरहीसे छोड़ देना चाहिये। जो दोषरहित मनुष्यको क्रोध दिलाता है, और आपही दीपी होता है, वह सापके समान रातको सुखसे नहीं सोता। हे भारत। जिनके बिगड़नेसे कुछ दोष हो, अर्थात् राज्य या धनमें हानि हो, ऐसे मनुष्यकी रुदा देवताके समान पूजा करना चाहिये। जो श्रियोम लोन हो, जो पागल और नीचासे ससर्ग रखता हो, और जो दुष्टोंके सङ्गमें बैठता हो, उन सबसे सदा सन्देह रखना चाहिये। जिस घरमें स्त्री, छली अथवा बालक खासा हो, वह घर इस प्रकार डूब जाता है, जैसे नदीमें पत्थर। हे भारत। जो केवल अपने प्रयोजनहोको देखता है, और अधिकताको इच्छा नहीं करता हम उसीको पण्डित मानते हैं, क्योंकि अधिकताही उपद्रवका मूल है। जिस मनुष्यकी छली, भाट, और बख्शा प्रशंसा करे, उसका जोनाहो क्या? हे राजेन्द्र! आपन परम धनुषधारी, महा तेजस्वी पाण्डवासे धन छीनकर दुर्धनको दिया है, सा आप बोड़ेहो दिनमें मूर्ख दुर्धनका इस प्रकार राज्यसे नष्ट देखगे, जैसे धनका अभिमानी बलि राज्यसे नष्ट हागया था।

३८ अध्याय समाप्त ।

दृतराष्ट्र बोले, हे विदुर! जैसे सूतमें बधी कठपुतली नचानेवालेके वशमें रहती है, तैसीहो मनुष्यभी प्रारब्धके वशमें रहता है, उसीसे मनुष्य अच्छा और बुरा काम करता है, इससे हमको निश्चय होता है कि मनुष्य

पराधीन है ! तुम और कुछ कही हम सुनना चाहते हैं ।

विदुर बोले, हे राजेन्द्र ! बिना समयकी बात कहनेसे ब्रह्मस्पतिकी भी निन्दा होती है ।

हे भारत ! कोई मनुष्य दान देनेसे, कोई मीठी बात कहनेसे और कोई अच्छी सम्मति देनेसे जगतका प्यारा होता है । साधु, बुद्धिमान और पण्डितका बैर नहीं करना चाहिये, अपने मित्रके लिये अच्छा काम करना चाहिये और शत्रुके लिये शत्रुताका काम करना चाहिये । हे राजेन्द्र ! जिस समय दुर्धन उत्पन्न हुआ था, उसी समय मैंने आपसे कहा था, कि आप इस एक पुत्रको फेंक दीजिये, क्योंकि इस एकके फेंकनेसे सौ पुत्र जीवेंगे, और इसके रखनेसे सौ पुत्रका नाश होजायगा । जिस बढ़तीसे नाश होनेका भय हो, उस उन्नतिकी छोड़ देना चाहिये और जिस हानिसे बढ़तीको आशा हो, उस हानिकी भी स्वीकार करनी उचित है । हे राजेन्द्र ! जिस हानिसे पीछे बढ़ती हो, वह हानि नहीं कहाती, हानि वही कहाती है जिससे कुछ उन्नति न हो । हे धृतराष्ट्र ! कोई मनुष्य गुणका धनी होता है ! आप गुणरहित धनवान लोगोंकी छोड़ दीजिये ।

धृतराष्ट्र बोले, हे विदुर ! तुम जो कहते हो सो सब ठीक है, पण्डितोंकी ऐसाही कहना चाहिये, इसीसे उन्नति हातो है, परन्तु हम क्या करें अपने पुत्रोंको नहीं छोड़ सकते, किन्तु यह जानते हैं कि जहां धर्म है, तहां विजय होगी ।

विदुर बोले, हे राजेन्द्र ! अत्यन्त गुणवान होनेपर भी जिसको शील नहीं है, वही मनुष्योंके नाशकी इच्छा करता है, अर्थात् आपको कुलका नाश नहीं करना चाहिये । दुष्ट लोग दूसरेको निन्दा करते हैं, दूसरेके दुःखको अपना कल्याण समझते हैं, और

रोज प्रातःकाल उठकर विरोधका उपा सोचते हैं । जिनके दर्शनसे दोष लगता है उनके सङ्ग रहनेसे बहुत भय होता है, उन धन लेने और देने दोनोंहोमें भय है । परस्पर विरोध कराते हैं, उन पापी, अग्रप्रयोजन सिद्ध करनेवाले, दुष्ट और निर्लज्ज सङ्ग नहीं रहना चाहिये, तथा और अनेक दोषयुक्त मनुष्योंको छोड़ना उचित है क्योंकि जब प्रेम नष्ट हो जाता है, तब सुखोंका नाश हो जाता है, इस लिये नीच सङ्ग पहलीहीसे प्रेम नहीं करना चाहिये जो मित्रताका सुख है, सो दुष्टके प्रेमसे नहीं होता है । दुष्ट मित्रको अपकीर्तिका प्र करता है, और उसकी हानिका उपाय करता है, थोड़ा दोष होनेपर भी दुष्ट मित्र शान नहीं होता । ऐसे मूर्ख, छली, निर्लज्ज, दुष्ट मित्रको विद्वान बुद्धिसे विचार कर दूरसे छोड़ दें । जो जाति, दरिद्र, दोन और रागियाके उपर कृपा करता है, वह पशु और पुत्रके सांकेतिक कल्याणको प्राप्त होता है, जो अपने कल्याणकी इच्छा करे, उसको उचित है कि पहले अपने जातिवालोंकी वृद्धि करे । हे राजेन्द्र ! इस लिये आप भी अपने कुलकी वृद्धि कीजिये, ऐसा करनेसे आपका वृद्ध कल्याण होगा । हे भरतकुलसिंह ! इन वशमें उत्पन्न हुए मूर्खकी भी रक्षा करनी चाहिये, फिर पाण्डव तो सब गुणोंसे भर भार आपकी कृपा चाहनेवाले हैं । हे पृथ्वीनाथ ! आप वीर पाण्डवोंके उपर कृपा कीजिये और उनके निर्बन्धाहके लिये कुछ ग्राम दे दीजिये । हे नरनाथ ! ऐसा करनेसे लोकमें आपकी कीर्ति बढ़ेगी । आप कुलमें बूढ़े हैं, इस लिये आपहीकी सब पुत्रोंका स्वामी होना चाहिये । हे राजेन्द्र ! मुझकोभी आपके कल्याणके उपाय कहने चाहिये, क्योंकि मैं आपका कल्याण चाहता हूँ, हे तात ! यदि आप अपना कल्याण

चाहते हैं, तो पाण्डवोंसे लड़ाई मत कीजिये । हे भरतकुलसिंह ! जातिके सङ्गमें बैठ कर खाना चाहिये और उनसे विरोध न रखना चाहिये, जातिके सङ्ग भोजन करना चाहिये, प्रीति करने चाहिये और अच्छी बात करनी चाहिये, उनसे विरोध कदापि नहीं करना चाहिये, क्योंकि जाति डुवा देती है और जातिही पार करती है । दुष्ट डुवा देते हैं और अच्छे उद्धार करते हैं । हे राजेन्द्र ! आप पाण्डवोंके सङ्ग मित्रता कीजिये, ऐसा करनेसे आपको कोई शत्रु नहीं जीत सकेगा । जैसे विषमें बुझे बाणवाले व्याधेको देखकर हरिण घबड़ाते हैं, वैसेही जिस लक्ष्मीवान मनुष्यको देखकर जातिवाले घबड़ाय, उसके समान पापी और कौन होगा ? हे पुत्रप्रसन्न ! युद्धमें अपने पुत्र अथवा पाण्डवोंकी मर्रा हुआ सुन पोछेभी आपका दुःख होगा, इस लिये इसी समय उसका विचार कर लीजिये । आप जानते हैं कि जीवन आनन्द है, इस लिये पाहलेहीसे ऐसा कर्म नहीं करना चाहिये जिससे बुढ़ापेमें चारपाईपर पड़कर साचना हो । शत्रुका छाड़कर और कोई मनुष्य ऐसा नहीं है जो अनीति न करे, परन्तु बुद्धिमानका यह विचारना चाहिये कि जा बोत गया सा बोत गया अब आगेको अच्छाही कर्म करेंगे । हे राजन् ! दुर्योधनने जो कुछ दोष किया है, उस सबको आप पाण्डवोंसे क्षमा कराइये, क्योंकि आप कुलमें बूढ़े हैं । हे पुत्रप्रसन्न ! जब आप पाण्डवोंको राज्य दे दीजियेगा, तब जगतके सब महात्मा आपकी प्रशंसा करने लगेंगे और आपके सब दुःख नाश होजायेंगे । जा पण्डितोंके उत्तम वचनोंकी खरपा करके काम करता है, वह वहुत दिनतक सुख और यशकी भोगता है । जो ज्ञानी होकरभी मनुष्यके बुरे वचनोंको ग्रहण करता है, और फिर बिना विचारेही उसके अनुसार काम भी करता है,

उसकी वृद्धि नहीं होती । जो पहले पापकों बिना विचारेही काम करने लगता है, उस मूर्खकी हानि अवश्य होती है । हे राजेन्द्र ! धनकी इच्छा, थोड़ा सोना, अज्ञानता, अपना कर्म, दुष्ट मन्त्रीका विश्वास और मूर्ख दूतका विश्वास यही छः राज्यसुखके द्वार हैं, जो राजा इन छ द्वारोंको बन्द करके राज्य करता है, वही बुद्धिमान कहाता है । जो राजा अर्थ धर्म और कामका विचार करके शत्रुओंसे युद्ध करता है, उसकी विजय होता है । मनुष्योंका बिना विद्या पढ़े और बिना बूढ़ोंकी सेवा किये कोई काम नहीं करना चाहिये । धर्म और अर्थको ब्रह्मर्षीके समान बुद्धिवाले मन्त्रीही समझ सकते हैं । हे राजन् ! जो वस्तु समुद्रमें गिर गई, वह नष्ट हो गई और जिस मन्त्रीका वचन राजाने न सुना वह भी नष्ट होगया, मूर्खको कही बात नष्ट होगई और राखमेंको जूई हाम नष्ट हागई । बुद्धिमानको उचित है कि बुद्धिसे निश्चय करके, देखकर बुद्धिसानोंसे सुनकर अच्छे समुपकारों अपना मन्त्री बनावे । हे राजेन्द्र ! विनय अपकीर्तिका, पराक्रम अनर्थका, क्षमाक्रोधका और उत्तम आचरण बुरे लक्ष्योंका नाश करते हैं । हे राजन् ! भोजन, निवास, घर, कर्म और वस्त्रादिकोंसे मनुष्यके कुलको परोक्षा होती है । जैसे मरं हुए मनुष्यको प्रसन्न करनेसे कुछ लाभ नहीं होता ऐसीही काम हानिके पश्चात् उपाय करनेसे कुछ सिद्धि नहीं होती । पण्डितका सेवा करनेवाले वैद्य, धार्मिक, सुन्दर मित्र, उत्तम वचन कहनेवाले और अपने प्रेमीकी रक्षा सदा करनी चाहिये । चाहे उत्तम कुलमें उत्पन्न हुआ हो चाहे बुरे कुलमें उत्पन्न हुआ हो, जो धर्मकी मर्यादाको नहीं छाड़ें तथा जितेन्द्रिय और बुद्धिमान हो सो कुलीनोसे अच्छा है । जिनके चित्तमें चित्त मिले हों, जो दोनोंके सुखसे सुख

मानते हैं, जिन दोनोंकी बुद्धि समान है, उनका प्रेम कभी नष्ट नहीं होता। जो मूर्ख तिनकोसे छिपे हुए कुएं के समान कुलसे प्रेम करते हैं, वह मित दूरसे छाड़ने योग्य है, क्योंकि उनकी प्रीति बुद्धिमानसे नहीं निबहती। मूर्ख, अभिमानी, क्रोधी, साहसी और अधर्मीसे प्रेम नहीं करना चाहिये। बुद्धिमान, धर्मात्मा, सत्यवादी, गम्भीर, प्रेमी, जितेन्द्रिय, मर्यादाकी न छोड़नेवाले और महात्मा मनुष्यसे प्रेम करना चाहिये। अपना इन्द्रियोंकी विषयोंसे रोकना सब धर्मोंमें श्रेष्ठ है, क्योंकि इन्द्रियोंकी वृद्धत विषयोंमें जाने देनेसे अत्यन्त बुद्धिमानकाभी नाश हो जाता है। पण्डितोंने मत्तको मानना, कामलता, किसी प्राणीको हानि न चाहना, क्षमा और धारणा को आयु बढ़ानेवाले कर्म कहे हैं। जो उत्तम बुद्धिमानसे छीने हुए धनको पुनः देनेकी इच्छा करता है, वह अत्यन्त बुद्धिमान होनपर भी नपुंसक कहाता है। जो यह विचार कि मैं काम हानेकी पश्चात् उपाय कर लगा, वह भी मूर्खही है। जो अपने कार्यके आरम्भ और समाप्तिको जानता है, उसको हानि कभी नहीं हाती। जो मनुष्य, मन, वचन और कर्मसे बुरा काम करता है, उसका अवश्य नाश होता है इस लिये अच्छे काम करने चाहिये। अच्छे काम करने, विद्या लाभ, आर कामलता तथा पण्डितके दर्शन, यही कर्म लाभदायक है। सदा उद्याग करनाही लाभ, धन और सुखका मूल है, उद्याग सुख रहता है, और वृद्धत धन प्राप्त करता है। हे राजन् ! उद्यागके समान उत्तम कर्म कोई नहीं है, उन्नात चाहनेवाला मनुष्य सदा क्षमा कर, असमर्थ लोकोके ऊपर क्षमा करता है, परन्तु जो समर्थ होकर क्षमा कर, वही धर्मात्मा कहाता है। जो लाभ और हानिको समान समझता है, वही सदा क्षमा कर सकता है। जिस सुखके

भोगनेमें धर्म और यशका नाश न हो, व काम मनुष्यका करना चाहिये। कभी भूलभी अधर्मका काम करना उचित नहीं। राजेन्द्र ! मूर्ख, रोगी, मद्य पीनेवाले और आलसियोंको धन नहीं मिलता। तथा मनुष्य इन्द्रियोंकी अपने वशमें न हो रखते हैं जिनकी उत्साह नहीं है, वे भी कभी धन नहीं हाते। जो कामलतासे रहता है, ल करता है और सत्य बोलता है, मूर्ख उसको असमर्थ कहा करते हैं, परन्तु उसे उन्नति होती है। जो वृद्धत उद्याग करता दान करता है, युद्धसे हटता नहीं, आपत्तिज्ञाको नहीं छोड़ता और सब कामों बुद्धिसे विचारकर करता है, उस मनुष्यका कभी नष्ट नहीं होता। अत्यन्त गुणवान् अत्यन्त निर्गुण इन दोनोंमें किसीके प लक्ष्मी नहीं रहता है, क्योंकि ल अत्यन्त गुणोंकोभी इच्छा नहीं कर और निर्गुणसे तो, प्रसन्न हो नहीं होते जैसे पागल गौ नियमसे नहीं चलती, ऐसे मूर्खोंका धनभी अच्छे मागीमें न जाता। वेदोंका फल यज्ञ है, विद्याका शास्त्रीका पुत्र और धनका फल धर्म है। अधर्मसे पैदा किये हुए धनसे पितरा आन्न करता है, उस आन्नका फल पितरा नहीं पड़चता, क्योंकि सुख धर्मसे ही है। वन, जल, दुःखके स्थान, आपात, भू और युद्धमें धर्मात्माको भय नहीं होता अपनी उन्नति करना, इन्द्रियोंका जीत सब कर्मोंका करना, भूल न करना, धार स्मरण रखना आर कामाको विचार करना, येही उन्नातके मूल हैं। तपासया तप, वेद जाननेवालोंका वेद, दुष्टोंका वि आर महात्माओंका क्षमाही बल है। ज मूल, फल, दूध, घी आर दयाका वचन सब वस्तुओंसे व्रतका नाश न हो जाता।

प्रपने विरुद्ध कर्मही उसे कभी नहीं करना चाहिये । धर्म धनसे होता है, धन कामको छोड़नेसे बढ़ता है । क्रमासे क्रोधको, साधनासे दुष्टको, दानसे सूर्यताको, भूठसे सत्यको जीतना चाहिये । स्त्री, धूर्त, आलसी उरपोक, दुष्ट, अभिमानी, चोर, कृतघ्न और नास्तिकका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये । जो सदा देवता और बूढ़ोंकी सेवा करता है, उसकी कीर्ति, आयु, यश और बल बढ़ते हैं । जो धन बढ़ानेकी शक्ति और शत्रुकी प्रार्थना करनेसे मिले, उसकी कदापि इच्छा नहीं करना चाहिये । सूर्य मनुष्य, विना सन्तानका मैथुन, निर्धन प्रजा और राजाके रक्षित राज्यका सोच करना चाहिये । मार्ग मनुष्योंके लिये, जल पर्वतोंके लिये, भोजन करना स्त्रियोंके लिये और बुरा बचन मनुष्योंके लिये बुढापा है । विना पढ़े वेद, विना व्रतका ब्राह्मण, भूठ बोलनेवाला मनुष्य, आश्चर्य कर्म करनेवाली पतिव्रता और वियोगिनी स्त्री, ये सब दुःखी कहते हैं । सुवर्णका चांदी, चांदीका तांबा, तांबेका सीसा, और सीसेका लोहा मल है । सीनेसे निद्राकी, कामसे स्त्रीकी, इत्थनसे अग्निकी और जलानेसे मद्यकी नहीं जीतना चाहिये । जो दानसे शत्रुओंकी शत्रुतासे शत्रुओंकी और भोजन वस्त्रसे कटुस्वकी जीतते हैं, उनका जीना सफल है । जिनके पास सहस्र रुपये हैं वे भी जीते हैं और जिनके पास सो हैं वे भी जीते हैं, इसलिये आप अपने राज्य बढ़ानेकी इच्छाको छोड़ दें, तब सुखमें जीवेंगे । जगतमें जितना धन पशु और स्त्री है, उन सबकी एक मनुष्य नहीं भोग सकता; यही विचारकर आप अपनी इच्छाकी रोक दें । हे राजन् । हम फिर भी आपसे यही कहते हैं कि यदि आप अपने और पाण्डुके पुत्रोंकी समान सम्पत्ति हों, तो सबकी समान दृष्टिसे देखें ।

विदुर बोले, जो आदर पाकर और अभिमानको छोड़कर अपनी शक्तिके अनुसार अच्छा काम करता है, वह शीघ्र सुखी होता है । एक महात्मा प्रसन्न होकर सब जगतका उपकार कर सकते हैं । जो धर्मको छोड़कर पापका आश्रय लेकर बड़े कामोंकी भी नहीं करता, वह दुखोंसे निकलकर इस प्रकार सुख भोगता है, जैसे सांप पुरानो केचलीको छोड़कर सुखी होता है । भूठसे लाभ करना, राजासे किसीकी चंगली करनी और गुरूकी निन्दा करनी, ये ब्रह्महत्याके समान पाप हैं । निन्दा मृत्युका, बहृत बोलना लक्ष्मीका, किसीका आदर करना अभिमानका, और कामोंमें शीघ्रता करनी विद्याका शत्रु है । आलस्य, मद्यादिक पीना, झूल, चञ्चलता, बुरी सम्मति, कठोरता अभिमान और न देना, ये सात विद्यार्थियोंमें दोष कहे जाते हैं । विद्यार्थीको सुख कहां और सुख चाहनेवाला की विद्या कहां ? इस लिये सुख चाहनेवाला विद्याकी और विद्या चाहनेवाला सुखकी छोड़ दे । अग्नि काठसे, स्त्री पुरुषोंसे, समुद्र नदियोंसे, और काल प्राणियोंसे छप नहीं होता । हे राजन् । आशा धारणाको, काल उत्पत्तिकी, क्रोध लक्ष्मीकी, यश दुष्टताकी, न पालना पशुओंकी, और क्रोधी ब्राह्मण राज्यको नाश कर देते हैं । बकरी, कामा, चांदी, शहत, ज्योतिषी, वेद जाननेवाले, बूढ़े जातिके मनुष्य और कुलीन मनुष्य आपके घरमें सदा बने रहें । स्वयम्भू मनुने कहा है बरे, नैल, चन्दन, बोन, शोशा, शहत, घी, लोहा; तांबेका पात्र, शंख, शालिग्राम और गोरोचन ये सब घरमें रखने चाहिये, हे भारत । इन सबको रखनेका प्रयोजन ब्राह्मण और अतिथियोंकी पूजाही है । हे तात । अब हम सबसे उत्तम बात तुमसे कहते हैं, यह बात बहृत श्रेष्ठ और सबसे उत्तम है । मनुष्यकी उचित है कि काम भय, लोभ और जीनेके लोभसे भी

धर्मको न छोड़े, क्योंकि धर्म नित्य और सुख दुःख अनित्य है, जीव नित्य है, परन्तु जगतका कारण अर्थात् अविद्या अनित्य है; आप अनित्यको छोड़कर नित्यको ग्रहण कीजिये क्योंकि सन्तोषही परम लाभ है। हे राजेन्द्र ! आप बिचारिये कि कैसे कैसे बलवान सहात्मा गुणवान धन और धान्यसे भरे हुए महाराज समस्त पृथ्वीका राज्य धरके और फिर सब सुखोंको छोड़कर मर गये। हे राजेन्द्र ! मनुष्य अपने प्यारे मरे हुए पाँचों जड़लमें छोड़कर चला आता है, फिर मनुष्य उसे चितामें जला कर बाल खोलकर रोता है, परन्तु उसके सड़ कोई नहीं जाता। मरे हुए मनुष्यके धनकी कोई दूसरा भोगता है, मनुष्यकी हड्डी रुधिर और मांसकी अग्नि भस्म कर देती है, मनुष्यके सड़ केवल पुण्य और पाप दोही वस्तु जाती है। मरे हुए मनुष्यकी जातिवाले मित्र और पुत्र ऐसे छोड़कर चले आते हैं, जैसे फूल फलरहित वृक्षको पक्षी छोड़ते हैं। अग्निमें जलते हुए मनुष्यके सड़ केवल अपना किया हुआ कर्म ही जाता है, इस लिये सबको उचित है कि यत्न करके धर्म करे। इस लोकके नीचे और ऊपर महा अन्धकार भरा है, परन्तु उस अन्धकारमें अधर्मी लोग जाते हैं, इस लिये आप अभीसे उसका विचार कीजिये तो वहा नहीं जाइयेगा, नहीं तो उसी अन्धकारमें पड़ियेगा। हे राजेन्द्र ! हमने जो बचन आपसे कहे, यदि उनके अनुसारही आप काम कीजियेगा, तो सुख, यश और आनन्द पाइयेगा। हे भारत ! आत्मा नदी है, उसमें सत्य रूपी जल भरा है, सत्य और धारणाही उसके दोनों तट हैं, दया तरङ्ग हैं, पाचों इन्द्रो जल भरा है, काम और क्रोध बड़े बड़े ग्राह घूम रहे हैं, इस नदीमें ज्ञान करनेवाले सहात्माही सुख पाते हैं। हे राजेन्द्र ! आप धारणाकी नावपर बैठकर इस पर छोड़िये। जो बुद्धि, विद्या, धर्म,

और अवस्थामें बड़े मनुष्य तथा अपने मित्रोंसे वृष्णकर करने और न करने योग्य कामोंको विचारता है, वह कभी भ्रममें नहीं पड़ता, जो धारणासे लिङ्ग और पेटकी, नेत्रसे हाथ और पैरकी, सनसे नेत्र और कानकी तथा कर्मेसे मन और वचनकी रक्षा करता है, वह कभी दुःख नहीं पाता। जो ब्राह्मण रोज स्नान करे, रोज अनेक वदले, रोज वेद पढ़े, पतितका भोजन न करे, सत्य बोले और गुरुकी सेवा करे, सो ब्राह्मण कभी अपने धर्मसे नष्ट नहीं होता। जो क्षत्री वेदोंको पढ़े, यज्ञ करे, प्रजाका पालन करे; गौ और ब्राह्मणके लिये सम्मुख युद्धमें शस्त्रसे मरे, वह स्वर्गमें जाता है। जो वैश्य वेदोंको पढ़े, समय पर ब्राह्मण, क्षत्री और अपने सेवकोंको धन दे और यज्ञके धूर्वको सूँघके पवित्र हो, सो सुख भोगता है। जो शूद्र ब्राह्मण क्षत्री और वैश्य इन तीनों वर्णोंकी सेवा करे और उनको प्रसन्न करे वह मरकर स्वर्गमें जाता है। मैंने यह चारों वर्णोंका धर्म आपसे कहा। हे राजन् ! इस समय पाण्डुके पुत्र क्षत्रधर्मसे नष्ट होते हैं, आप उनकी रक्षा कीजिये।

धृतराष्ट्र बोले, हे विदुर ! जो तुम हमसे कहते हो, हमारी बुद्धिमें वैसीही है, मैं सदा पाण्डवोंके सड़ ऐसाही करना चाहता हूँ, परन्तु दुर्योधनके देखतेही मेरी बुद्धि नष्ट हो जाती है इससे हमें निश्चय होता है कि प्रारब्ध की कोई नहीं नाश सकता। प्रारब्धही बड़ा बलवान है पुरुषार्थका धिक्कार है।

४० अध्याय समाप्त ।

उद्योग पर्वमें प्रजागर पर्व समाप्त ।

अथ सनत्सजातपर्व ।

धृतराष्ट्र बोले, हे विदुर ! तुम्हारे वचन बहुत विचित्र हैं, इस लिये यदि तुम्हें और

कुछ कहना ही तो कह दो, हम बहुत अज्ञासे सुनते हैं ।

विदुर बोले, हे धृतराष्ट्र ! सनत्सुजान नामक कुमारने कहा है कि जगतमें मृत्यु कुछ वस्तु नहीं है, हे सहाराज ! वेहो सनत्सुजात आपसे गुप्त और प्रगट विषयोंका वर्णन करेंगे । क्योंकि वे सब बुद्धिमानोंमें अष्ट है ।

धृतराष्ट्र बोले, हे विदुर ! तुम उन विषयोंको नहीं जानते हो, जो हमसे सनत्सुजात कहेंगे ? यदि तुम जानते हो तो तुमही कहो ।

विदुर, बोले, मैं शूद्रा स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न हुआ हूँ, इस लिये उन विषयोंको नहीं कह सकता, परन्तु महा बुद्धिमान सनत्सुजात मुनिको मैं जानता हूँ । जो ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न हुआ है, वेहो सब गुप्त बातोंको कह सकता है । आप उनका निरादर मत कीजियेगा, क्योंकि देवता भी उनका सत्कार करते हैं ।

धृतराष्ट्र बोले, हे विदुर ! तुम हमसे उस उपायका वर्णन करो जिसके करनेसे हम इसी शरीरसे सनत्सुजात मुनिको देखें ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय । उसी समय विदुरने व्रतधारी सनत्सुजात मुनिका ध्यान किया । उनके ध्यान करतेहो सनत्सुजात मुनि पङ्च गये, विदुरने उनको देखतेहो शास्त्रविधिके अनुसार उनकी पूजा करो । जब मुनि शान्त होकर आसनपर बैठे तब विदुरने हाथ जोड़कर कहा, हे भगवन् । राजा धृतराष्ट्रके मनने कुछ सन्देह हुआ है, मैं उत्तर नहीं दे सकता, आप कहिये, उसके सुननेसे राजा धृतराष्ट्रके सब दुःख नष्ट हो जायेंगे, तब इनके लाभ, हानि, प्रिय, अप्रिय, राग, द्वेष, मृत्यु और वृद्धापा सब नष्ट हो जायेंगे ; क्योंकि इस समय इनको भय, क्रोध, भूख, प्यास अभिमान, अनिच्छा, आलस, काम, क्रोध, हानि और लाभ बहुत दुःख दे रहे हैं ।

४१ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय । तब बुद्धिमान राजा धृतराष्ट्रने विदुरके वचनोंकी प्रशंसा करके और अपना बुद्धिकी स्थिर करके एकान्तमें सनत्सुजात मुनिसे पूछा ।

धृतराष्ट्र बोले, हे सनत्सुजात ! हमने सुना है कि आप कहते हैं कि मृत्यु कुछ वस्तु नहीं है, और यहभी सुना है कि इंद्रादिका देवताोंने बहुत तपस्या करी तभी वे अमर न हुए, इन दोनोंमें कौनसी बात सत्य है ?

श्रीसनत्सुजात मुनि बोले, हे राजन् ! आपने जो दो प्रश्न हमसे किये हम उन दोनों-होका उत्तर आपको देते हैं, शङ्का मत कीजिये । हे क्षत्रिय ! ये दोनोंही पंच सत्य हैं । पण्डित लोगोंने कहा है कि भूल है, क्योंकि हम भूलको मृत्यु, और न भूलनेको अमृत कहते हैं ; भूलहोसे राजाओंका निरादर होता है, भूल न करनेसे महात्माओंका नाश नहीं होता । मृत्यु, सिंहके समान आकर किसीको नहीं खा जाती, क्योंकि मृत्युका रूप आजतक किसीने नहीं देखा, अनेक मूर्ख यमको मृत्यु कहते हैं, परन्तु यह सबही ठीक नहीं है, क्योंकि अपने मनमें यमराजकी कल्पना इस प्रकार कर ली जाती है, जैसे रसरीमें सांपकी । ब्रह्मचर्यही अमृत है । यमराज पितर लोकमें रहकर पाप और पुण्यका फल देते हैं ; यम-हीकी आज्ञासे क्रोध, लोभ और भूलक्षपी मृत्यु मनुष्यका नाश करती है ; जो अहङ्कारके वशमें होकर बुरा काम करता है, उसकी आत्मासे योग कभी नहीं होता ; मोहमें पड़ा हुआ मनुष्य उस लोभ और भूलक्षपी मृत्युके वशमें होकर इस लोकसे मरकर नरकोंमें पड़ता है, फिर वहासेभी इन्द्रियोंके वशमें होकर दूसरे जन्ममें जाता है ; इसी कारणसे मृत्यु मरनेके नामसे प्रसिद्ध हुआ है । कुछ कर्म शेष रहनेसे मनुष्यको फल भोगनेकी इच्छा होती है, उस फल भोगनेकी इच्छाके

वशमें होकर मनुष्य पुनः जन्म लेता है ; इसी प्रकारसे जन्म लेता है और मरता है, जन्म लेता है और मरता है । परन्तु अष्टाङ्ग योग करने और अच्छे काम करनेसे जीवका फिर जन्म नहीं होता । यही पहले कहा कर्म सब इन्द्रियोंसे अपने वशमें कर लेता है, इससे जीव मिथ्या कर्मोंको करने लगता है ; ऐसा होनेसे यह कर्मगति नित्य जुड़ै । उल्टे कर्म करनेसे आत्मशक्तिका नाश होता है, तब जीव विषयोंका ध्यान करता है, वह ध्यान बुद्धिका नाश करता है, नष्ट हुई बुद्धि काम और क्रोधमें जाती है, काम और क्रोधही मूर्खोंके लिये मृत्युरूप होजाते हैं । जो बुद्धिसालु मनुष्य है, वह इस मृत्युको जीत लेता है, क्योंकि वह उस ध्यानहीके समय होनेवाले काम और क्रोधका बुद्धिसे गिरादर करते हैं, इसीसे विहानकी काम, क्रोधरूपी मृत्यु दुःख नहीं देते । विषयोंका ध्यान करनेवाला कनुष्य विषयोंमें पड़कर नष्ट हो जाता है । मनुष्य विषयोंकी छोड़कर दुःखोंका नाश करे, क्योंकि विषयही अन्धकार रूप है, और अन्धकारही नरक है । मनुष्य इस नरकमें इस प्रकार गिरता है, जैसे कोई मतवाला गढ़में गिर पड़ता है । जो बुद्धिमान मनुष्य विषयोंकी छोड़कर विषयोंकी जड़को काटता है, उसका मृत्यु क्या कर सकती है ? हे क्षत्रिय ! जैसे काठका बना सिंहा मनुष्यका नहीं मार सकता, तैसेही बुद्धिमानको मृत्यु नाश नहीं कर सकती । हे धृतराष्ट्र ! वही क्रोध, लोभ और मोहरूपी मृत्यु तुम्हारे शरीरमें घुस रही है ; तुम जानी होकर भी इस मृत्युका नाश नहीं करते हो ? मनुष्य ज्ञानहोसे इस मृत्युका नाश कर सकता है, कर्मसे नहीं । इस लिये तुम ज्ञानहोका आश्रय लो ।

— धृतराष्ट्र बोले, हे सनत्सुजात ! हमने

विहानोंके सुखसे सुना है, कि वेदोंमें लिखा है यज्ञ करनेसे मनुष्यकी सनातन पवित्र और ब्राह्मणोंके लोक मिलते हैं, तब आप कैसे कहते हैं कि कर्मसे मृत्युका नाश नहीं होता ?

सनत्सुजात बोले, हे धृतराष्ट्र ! जो तुम कहते हो, इसमें तुम्हारा दोष नहीं है, क्योंकि सबही मूर्खतामें ऐसा कहा करते हैं, और मूर्खही लोग इस मार्गसे स्वर्गादिकोंको जाते हैं, और उसी स्वर्गादिके लिये कर्मका करना लिखा है, मोक्षके लिये नहीं । कामना रहित ब्रह्म अविद्याके वशमें होकर शरीरकी धारण करता है और उसे अपना समझता है, फिर सब मार्गोंकी छोड़कर एक ज्ञानरूपी मार्गसे जीव मोक्षको प्राप्त करता है ।

धृतराष्ट्र बोले, हे महापण्डित ! तुमने जो कहा कि परमात्माही शरीरकी धारण करते हैं, सो हमारी बुद्धिमें नहीं आता, सो तुम कहो कि परमात्मापर आज्ञा करतेवाला कौन है, जिसके आज्ञाके वशमें होकर ब्रह्मभी सुख और दुःखकी भोगता है ? उसका क्या काम है, और क्या सुख है ?

सनत्सुजात बोले, हे राजन् धृतराष्ट्र ! जीव और ब्रह्मकी अलग माननेसे बड़ा भारी दोष होता है, जीव और ईश्वरका सम्बन्ध अनादि है, इस लिये जीवभी नित्य है ; जीवको दुःख और सुख होनेसे ब्रह्मको कुछ विचार नहीं होता क्योंकि अज्ञानके वशमें होकर जीव बनते हैं । वेदोंमें लिखा है कि जो दस सब जगत देखता है, उस सबकी मायाके वशमें होकर परमेश्वरही अपनी शक्ति बकाते हैं, इस लिये जगत भी परमेश्वरके भिन्न नहीं है, क्योंकि शक्ति और शक्तिमान कुछ भेद नहीं होता, परन्तु जगत अनित्य है ।

महाराज धृतराष्ट्र बोले, हे सनत्सुजात ! इस जगतमें जो पाप और पुण्य करता है, सो

हमने सुना है कि पापसे पुण्य और पुण्यसे पाप नष्ट हो जाता है, इसमें कदा सत्य है।

सनत्सुजात बोले, हे राजन् धृतराष्ट्र ! मनुष्यकी पाप और पुण्य दोनोंहीका फल मिलता है, परन्तु मोक्ष होनेसे विद्वानको नित्य ज्ञान प्राप्त होनेके कारण दोनोंसे एकका भी फल प्राप्त नहीं होता, परन्तु बिना मोक्षके पापके समय पापका और पुण्यके समय पुण्यका फल होता है। विद्वान धर्मसे पापका नाश करता है, क्योंकि पापसे धर्म बलवान है। साधारण मनुष्य इस शरीरको छोड़कर पाप और पुण्य दोनोंका फल भोगता है।

महाराज धृतराष्ट्र बोले, हे पण्डित ! अष्ट धर्म करनेवाले ब्राह्मण मनुष्य इस शरीरको छोड़कर पाप और पुण्य दोनोंका फल भोगते हैं।

हे पण्डितश्रेष्ठ ! जो धर्म करनेवाले ब्राह्मणके सनातन लाक है, उनका वर्णन आप हमसे कीजिये, हम उनको सुनना चाहते हैं और दूसरे कर्मके सुननेकी इच्छा नहीं करते।

औसन्त्सुजात बोले, हे राजन् धृतराष्ट्र ! जैसे बलवान बलवानका देखकर युद्ध करनेकी इच्छा करता है, ऐसेही जो ब्राह्मण व्रतका देखकर उसका पूरा करनेकी इच्छा करते हैं, वे ब्रह्म लोककी जाते हैं, जो ब्राह्मण सदा धर्मही करते हैं, सो ज्ञान प्राप्त करके स्वर्गकी जाते हैं। वेद जाननेवाले पण्डितोंने धर्मका प्रयोजन इस प्रकार लिखा है कि धर्मसे स्वर्ग वा इस लोकमें सुखकी इच्छा न करना चाहिये। धर्म वाच्य और आश्वन्तरके भेदसे दो प्रकारका है, जो मनुष्यको यह दानोही करना उचित है, वह धर्म करनेवाला ब्राह्मण वा सन्यासी उन घरमें भोजन करे, जहाँ, वर्षा-कालके तिनकी समान अन्न और जल भरे

हों, अर्थात् दरिद्रीके घरमें भोजन करने न जाय। जहाँ अपने गुण प्रकाश किये बिना अत्यन्त भय हो अर्थात् जहाँ हम विद्वान हैं, हम महात्मा हैं, ऐसा बिना कहे सुख न मिलता हो, जो महात्मा उन्हीं स्थानोंपर बिना अपने गुण प्रकाश किये रहता है, वही महात्मा मुक्त कहलाता है, वही महात्मा है, अन्य पुरुष नहीं। जो दूसरेकी प्रशंसा और अपनी निन्दा सुनकर अपने चित्तकी दुःख नहीं देता और महात्माओंके खाने योग्य अन्न-वान ब्राह्मणके यहाँ भोजन करता है, वही महात्मा कहाता है, दूसरा नहीं। जो सन्यासी अपनी विद्या प्रकाश करके भिक्षा मागकर खाता है, वह कुत्ते के समान बमन भोजन करता है। जो महात्मा ब्राह्मण अपनी जातिके बीचमें रहकर भी अपनी जातिवालोंको ऐसा समझता है कि हम इन सबसे अलग हैं, और ये हमसे अलग हैं, उसी ब्राह्मणको पण्डितोंने ब्राह्मण कहा है। ऐसा कौन ब्राह्मण है, जो बिना ज्ञानके उपाधिरहित, निराकार, निर्विकार एक ब्रह्मको जान सके ? इसी प्रकार क्षत्रियादिक भी ज्ञानका प्राप्त करके आत्माकी जान सकते हैं। जो अपने आत्माकी उलटी आकारसे प्रकाशित करता है अर्थात् सूख वा पापी होकर अपनेको पण्डित वा धर्मात्मा प्रकाशित करता है उस आत्माको चुरानेवालेने क्या पाप नहीं किया अर्थात् उसने सब पाप किया। जो कभी नहीं थकता, दान नहीं लेता, सबको मानता है, जिसको कुछ उपद्रव नहीं रहते; जो अच्छा होनेपर भी अच्छे मनुष्योंके समान आचरण नहीं करता, वही ब्रह्मको जाननेवाला पण्डित ब्राह्मण है। जो मनुष्योंके धनको कुछ नहीं समझता, देवताकी पूजा और यज्ञको अच्छा समझता है, जो कभी नहीं डरता और कभी नहीं कापता, वही ब्रह्मको जाननेवाला

ब्राह्मण है। जो सब यज्ञोंको करता है; वह सब वेद जाननेवाला ब्राह्मणभी ब्रह्म जाननेवाले ब्राह्मणके समान नहीं होता, क्योंकि वह ब्रह्मको प्राप्ति का यत्न करता है; जिस कुछ कर्म करनेवाले मनुष्यको पण्डित लोग मानें, वही ब्रह्म जाननेवाला ब्राह्मण है। जो मानने-वालोंका आदर नहीं करता और न मानने-वालोंसे दुःख नहीं मानता, वही ब्राह्मण पण्डित और ब्रह्मको जानने वाला है। जो विद्वान ऐसा जानता है कि आखको पलकके समान मानना और न मानना भी जगतका स्वभाव है, वही ब्रह्म जाननेवाला ब्राह्मण कहाता है। जो यह जाने कि अधर्मी, मूर्ख, छली लोग अपने स्वभावहीसे मानने योग्य मनुष्योंको नहीं मानते, वही महात्मा है, क्योंकि अभिमान और योग दोनों एक स्थान पर नहीं रहते; इस लिये विद्वानको उचित है कि मौन और आदरके स्थानको विचारे। हे क्षत्रिय ! धन सुखका स्थान है, और सुखही ब्रह्मज्ञानका शत्रु है, इसीसे मूर्खों को ब्रह्मज्ञान दुर्लभ है। सत्य बोलना, सबसे सीधे रहना, लज्जा करनी, बिद्या और कभी भूल न करनी, यही ब्रह्मज्ञानके द्वार हैं, परन्तु ये सब द्वार बज्रत कठिन हैं।

४२ अध्याय समाप्त ।

महाराज धृतराष्ट्र बोले, हे पण्डित अश्वत्थाम ! मौन क्या है ? क्यों किया जाता है ? क्या विद्वान मौनहीसे मौनको प्राप्त करता है ? महात्मा किस प्रकार मौनको प्राप्त करते हैं, सो हमसे आप कहिये ।

श्रीसनत्सुजात मुनि बोले, हे राजन् धृतराष्ट्र ! जहाँसे मनके सहित वाणी लौट आती है, अर्थात् जहाँ मन और वचन नहीं जा सकता, उसकी प्राप्ति के लिये जो कर्म किया जाय, वही मौन कहाता है। हे राजन् !

जहाँसे वेद, शब्द और यह जगत उत्पन्न हुआ है और जो इस सब जगतमें व्याप्त हो रहा है, उसको प्राप्ति के यत्नको मौन कहते हैं, अर्थात् ओंकारके जपहीको मौन कहते हैं।

महाराज धृतराष्ट्र बोले, हे पण्डित अश्वत्थाम ! जो ब्राह्मण ऋक्, यजु, और साम वेदको पढ़कर पाप करते हैं, कहिये उनको पापका फल होता है, वा नहीं।

श्रीसनत्सुजात मुनि बोले, हम तुमसे सत्य कहते हैं कि ऋक्, यजु और सामवेद कदापि पापीसे मनुष्यको नहीं बचा सकते, यह सब पापी और छली मनुष्यको इस प्रकार छोड़ कर चले जाते हैं, जैसे पंखवाले पक्षी घोंसलेको छोड़कर उड़ जाते हैं।

महाराज धृतराष्ट्र बोले, हे पण्डित अश्वत्थाम ! यदि तुम्हारा यह कहना सत्य है कि वेद बिना धर्मके मनुष्योंको पापसे नहीं बचा सकते, तो क्या सनातन ब्राह्मणोंकी वाणी पागलाने वचनके समान झूठी है।

श्रीसनत्सुजात मुनि बोले, हे महानुभाव ! ब्राह्मणोंकी वाणी झूठी नहीं है, उसका प्रयोग जन यह है कि ईश्वरहीके नाम और रूपसे सब जगत प्रकाशित होता है, इसीसे ईश्वरका नाम विश्वरूप अर्थात् जगतरूप है। वेद उसी ईश्वरका उद्देश करत हैं, उसीकी प्राप्ति के लिये तप और यज्ञ रूपी कर्म बताते हैं। विद्वान मनुष्य तप और यज्ञसे पवित्र होकर पापका नाश करता है; पाप नाश होनेसे ज्ञान होता है, ज्ञान होनेसे ब्रह्म प्राप्ति होती है; ऐसा न करनेसे अर्थात् ज्ञान न होनेसे जब मनुष्यको यज्ञादि कर्म करनेपर अर्थ धर्म और कामकी इच्छा बनी रहती है, तब इस लोकसे मरकर स्वर्गमें जाता है और वहाँ अनेक सुख भोग कर फिर इस लोकमें आता है, तपस्वी ब्राह्मणोंके लोक हमने आपसे कहे हैं।

महाराज धृतराष्ट्र बोले, हे सनत्सुजात मुने। एकही तप विज्ञान और अविद्वानोंके करनेसे दो प्रकारका कैसे होजाता है ? सो आप हमसे कहिये ।

श्रीसनत्सुजात मुनि बोले, हे क्षत्रिय ! जो सब कामनाओंको छोड़ कर दिया जाय वह तपके बल और संमृद्धके नामसे प्रसिद्ध होता है, और जो केवल पाखण्डके लिये किया जाता है, वह असंमृद्ध और पापमय कहाता है। हे क्षत्रिय ! तुमने जो हमसे पूछा उस सबका तपही मूल है, तप करनेसे अनेक वेद जाननेवाले ब्राह्मणोंकी मोक्ष हुई है ।

महाराज धृतराष्ट्र बोले, हे सनत्सुजात । आपने जो हमसे कहा कि “कामना-रहित तप उत्तम है” सो कामना क्या वस्तु है ? सो आप हमसे कहिये जिससे हम इस गुप्त विषयको जानें ।

श्रीसनत्सुजात मुनि बोले, क्रोध आदिक बारह, निर्दयता आदिक तेरह और धर्मादिक बारह गुण पण्डित ब्राह्मणोंने शास्त्रोंमें लिखे हैं ; सो हम तुमसे कहते हैं, क्रोध, काम, लोभ, मोह, असन्तोष, किसीपर कृपा न करनी, डाह, अभिमान, अधिक सुखको इच्छा करनी, किसीकी उन्नतिकी न सहना और दूसरेकी निन्दा करनी, ये मनुष्यके बारह दोष हैं, इनको सदा छोड़ना चाहिये । हे पुरुष-श्रेष्ठ । जो मनुष्य इन बारहमेंसे एककी भी सेवा करता है, वह दूसरे दूसरेमें इस प्रकार फँस जाता है, जैसे एक हिरनके मारनेसे व्याध दूसरे हरिणके लोभमें पड़ता है । जो पाप करनेवाले पापी मनुष्य सङ्कटमें पड़ते हैं, वे इन छः पापोंको करते हैं । अपना प्रशंसा, बहृत यत्न करके दूसरेकी हानि करना, अत्यन्त अभिमान, क्रोध, चञ्चलता और किसीको रक्षा न करना, यही छः दोष हैं । सुखोंको न

जानना, अत्यन्त मान, देकर पछताना, न देना, पापकी प्रशंसा करनी, और स्त्रियोंका वैर करना, ये सात और दोष हैं, सात ये और छः पहले कहे तेरह निर्दयतादि दोष हुए । धर्म अर्थात् अपनी वाणी और आश्रयके अनुसार कर्म करना, जिसमें किसीकी हानि न हो ऐसे सत्य वचन बोलना, इन्द्रियोंकी वशमें रखना, तप करना, दूसरेको उन्नतिकी देख कर दुःख न मानना, क्रोध हानेपर भी उसकी रोकना, दूसरेकी निन्दा नहीं करनी, यज्ञ, दान, अत्यन्त आपत्ति पड़नेपर भी सत्यको नहीं छोड़ना, और अर्थ सहित वेद पढ़ना, यही ब्राह्मणोंके बारह व्रत हैं । जो इन बारह व्रतोंको धारण करता है, वह समस्त पृथ्वीकी अपने वशमें रख सकता है, जो इनमेंसे एक, तीन वा दोको धारण करता है, वह भी सब जगतके सुखोंकी भोगता है । इन्द्रियोंकी जीतना, त्याग और भ्रम न करना, यही तीन धर्मके लक्षण हैं, बुद्धिमान ब्राह्मणोंने इन्हीं तीनोंको धर्मका मूल कहा है । इन्द्री जीतनेके ये अठारह लक्षण हैं,—सत्य बालना, किसीसे डाह न करनी, काम और धनमें चित्तका न जाना, क्रोध, शोक, अलोभ, निन्दा न करनी, चद्रता न करनी, बहृत दुःख न करना, बुरे कामोंमें चित्तको न जान देना, धन प्राप्तसे प्रसन्न होना, दूसरेसे प्रसन्न रहना, बहृत बुद्धि होना, यह अठारह गुण जिसमें हो, उसीको पण्डित लोग इन्द्रोन्मत्त कहते हैं । इसी प्रकार आभिमानीमें कहे हुए गुणोंसे उलट अठारह दोष रहते हैं तथा औरभी आगे कहेंगे । छः गुणोंसे युक्त त्याग, बहृत श्रेष्ठ वस्तु है, परन्तु उसका करना बहृत कठिन है । त्याग करनेसे मनुष्य दुःखोंके पार हो जाता है । हे राजेन्द्र ! वे छः प्रकारके त्याग ये हैं,—धन पाकर प्रसन्न न होना, यह पहला लक्षण है, यज्ञ करना परन्तु वैराग्यके सहित त्यागका दूसरा लक्षण

है। हे राजेन्द्र ! कामको छोड़ना यह त्यागका तीसरा लक्षण है, इस तीसरे लक्षणसे जगतमें त्यागीको वृद्धत निन्दा होने लगती है, यह त्याग जैसे बिना भोगे कूटता है; वैसे भांगनेके पश्चात् नहीं कूटता, क्योंकि कर्म उत्पत्तिके पहलेही उसको छोड़नेसे कुछ दुःख नहीं होता, अन्यथा छोड़नेमें अनेक दुःख हाते हैं। दुःख होने पर दुःख न मानना यह त्यागका चौथा लक्षण है, अपनी प्यारी वस्तुकी अर्थात् स्त्री पुत्रादिकोको ईश्वरसे न मांगना यह त्यागका पांचवा लक्षण है, उचित मनुष्यके मांगनेपर दान देना यह त्यागका छठा लक्षण है, इस छहोंको करनेसे मनुष्य कभी भ्रममें नहीं पड़ता। दानके आठ लक्षण और हैं,— सत्य बोलना, सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात नामक दो प्रकारकी समाधि करना, तर्क करना, सबका छोड़नेको इच्छा करना। चोरी न करना, ब्रह्मचारी होकर रहना और कुछ वस्तु इकट्ठी न करना, इन सबसे उलटे जो सब दोष हैं, वे अभिमानिके शरीरमें वास करते हैं, इस लिये उनको छोड़ना चाहिये। इसी प्रकार त्याग और अभिमान न करना, इनमें ये सब गुण उपजते हैं। प्रसादमें ये आठों दोष रहते हैं, इस लिये उसको छोड़ देना चाहिये। पाचो इन्द्री और छठे मनसे सब दोषोंको छोड़कर बीते हुए और आनिवाले दुःखोंसे छुटकर मोक्षको प्राप्त करे और सुखी हो। हे राजेन्द्र ! तुम अपने मनको सत्यमें लगाओ, क्योंकि सत्यहीसे लोक स्थिर है, ऊपर कहे सब गुणोंमें सत्य प्रधान है, और सत्यहीमें अमृत बसता है, ब्रह्मान यह सत्य प्रतिज्ञा को है, कि बिना दाप छोड़े तप और व्रत नहीं हो सकते और व्रतोंमें सत्यही श्रेष्ठ है। इन सब दोषोंसे अलग जो तप है, उसीका नाम केवल समृद्ध तप है। हे राजेन्द्र ! तुमने जो पूछा सो हमने सन्धिपसे कहा, यह हमारा

वचन परम-पवित्र तथा जन्म, मरण और रोगोंका नाश करनेवाला है।

महाराज धृतराष्ट्र बोले, हे परित्यक्तेष्ट ! सनत्सुजात ! कोई कहता है कि ईश्वर इस समस्त जगतमें स्थावर और जड़मत्तप होकर व्याप्त है; कोई कहता है कि वायुशरीर पुरुष, छन्द पुरुष, वेद पुरुष और महापुरुष ये ईश्वरके चार भेद हैं। कोई कहता है,—क्षर, अक्षर, और उत्तम पुरुष इन भेदोंसे ईश्वर तीन प्रकारके हैं। कोई कहता है, कि शब्द-ब्रह्म और परब्रह्मके भेदसे ईश्वर दो प्रकारके हैं। कोई कहता है, ईश्वर एकही है, और कोई कहता है, कि ईश्वर और जगत अलग नहीं है। इन सबमें कौन सच्चा है सो आप हमसे कहिये।

औसन्त्सुजात सुनि बोले, हे राजेन्द्र ! तीनों कालमें रहनेवाले एक ईश्वरको न जाननेसे अज्ञानियानि ये सब अनेक भेद बना लिये हैं। हे राजेन्द्र ! ईश्वर एकही है, और उसीको महात्मा लोग मानते हैं। इस प्रकार ब्रूख लोग वेदोंको बिना जाने यज्ञादिक अनेक कर्मोंको करने लगते हैं, परन्तु ये सब कर्म लाभके मूल हैं। जब सत्य नाश होता है तब उस मनुष्यका सङ्कल्प भी छोटे सुखाकी और जाने लगता है, तब वेदोंके प्रमाणसे मनुष्य यज्ञादिक करन लगता है। मनुष्य मनसे दूसरे वचनसे दूसरे और कर्मसे दूसरे यज्ञाको करता है। तब सङ्कल्पोंहीमें पड़ रहता है। सङ्कल्प दृढ़ नहीं है, इस लिये वचन आदिकोंको अपने वशमें करके व्रत कर इस व्रतको छोड़ना नहीं चाहिये; क्योंकि सत्यव्रतही पण्डितोंका परम धर्म है। शान प्रत्यक्ष है, क्योंकि उससे शाक और मोक्ष आदिक नाश हो जाते हैं, जैसे पण्डितका कर्म उसी समय फल देता है, वैसे ज्ञानभी उसी समय फल देता है। जैसे विद्यार्थीको

विद्याको बृहत्त दिनमें फल देती है, वैसेही तपभी बृहत्त दिनमें फल देता है, अर्थात् ज्ञानका फल प्रत्यक्ष और तपका फल अप्रत्यक्ष है। हे क्षत्रिय ! इस लिये तुम बृहत्त बकनेवालेको ब्राह्मण मत समझो। जो कभी सत्यको न छोड़े उसीको ब्राह्मण जानो। हे क्षत्रिय ! पहले समयमें सुनिने अथवा अनेक सुनियोंने जो कहा था, उन्हींका नाम अब उपनिषत् होगया है, परन्तु वे पापसे मनुष्यकी रक्षा नहीं कर सकते। जो अर्थके समेत सब वेदोंको पढ़ते हैं, हम उनको भी वेदविद्याका जाननेवाला नहीं कह सकते। हे मनुष्यश्रेष्ठ ! वेद स्वतन्त्र है, इसी लिये उनका नाम छन्द है, छन्दोंके पढ़नेवाले भी यदि ईश्वरको न जानें तो उनको आर्य और पण्डित नहीं कहना चाहिये। हे राजन् ! वेदोंका जाननेवाला कोई पण्डित नहीं है और जा कोई है भी, तो वह ईश्वरको नहीं जानता; और जो ईश्वरको जानता है, वही वेदका जाननेवाला है। अहङ्कारादिक जड़ वस्तुओंमें कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो वेदोंको जान सकता है। जो वेदको जानता है, वही ईश्वरको जानता है और जो ईश्वरको जानता है, वही सत्यको जान सकता है। जो वेदोंको जानता है, वही जानने योग्य ईश्वरको जान सकता है, अन्यथा वेद और वेदके जाननेवालेभी ईश्वरको नहीं जानते, तथापि वेद जाननेवाले ब्राह्मण वेदोंके प्रमाणसे ईश्वरको जानते हैं। जैसे वृक्षकी शाखा आदिक होती है, ऐसेही वेदभी ईश्वरका शरीर है, जैसे शाखाओंके देखनेसे वृक्षका बाध होता है वैसे वेदके जाननेसे परमेश्वरका बोध होता है। हम उसीको ब्राह्मण कहते हैं, जो वेदोंके अर्थोंका कहे; और सन्देहोंको नाश करे। ईश्वरके दूढ़नेके लिये पूर्व, पश्चिम, उत्तर दक्षिण किसी दिशाकी आवश्यकता नहीं है;

ईश्वरके दूढ़नेके लिये केवल अपने आत्माहीको पृथक् करना चाहिये। वेद पढ़ने और तप करनेसे स्वयं ईश्वर मिल जाता है। मनुष्यको उचित है कि चप होकर एकान्तमें बैठे और मनसेभी कुछ कर्म करनेकी इच्छा न करे; ऐसा करनेसे आत्माहीमें ईश्वर मिलता है। वनमें रहने और शूनी होनेसे कोई सुनि नहीं होता, और जो घरमेंही रहकर उत्तम कर्म करता है वह सुनियोंसे श्रेष्ठ है। सब विषयोंको प्रकट करनेके कारण ज्ञानी ब्रह्माकर्षण कहता है, आत्म ज्ञानहीसे सब ज्ञान प्रगट होते हैं, इससे आत्म ज्ञानही जगतका व्याकरण है। जो सत्यमें रहकर प्रत्यक्ष भावोंको देखता है, सब विषयोंको जानता है, उसी विद्वानको ब्राह्मण कहना चाहिये। हे क्षत्रिय ! हमने जो तुमसे कहा इनी प्रकार जो वेदोंको पढ़कर धर्म करे, वही ईश्वरको जान सकता है, और कोई नहीं।

४३ अध्याय समाप्त ।

महाराज धृतराष्ट्र बोले, हे सनत्सुजात ! आप जो हमसे यह सनातन ब्रह्मज्ञानका वर्णन करते हैं, सो ज्ञान अत्यन्त दुर्लभ और सबसे श्रेष्ठ है आप हमसे ऐसा उपाय बतलाइये, जिससे हम उस ब्रह्मज्ञानको प्राप्त कर सकें !

श्रीसनत्सुजात सुनि बोले, हे क्षत्रिय ! यह ब्रह्म ऐसी छोटी वस्तु नहीं है, जिसकी शीघ्र प्राप्त कर लो। जब बुद्धि मनमें लीन होजाती है, तब विद्या प्राप्त होती है, परन्तु यह ब्रह्म-विद्या बिना ब्रह्मचर्यके नहीं प्राप्त होती।

महाराज धृतराष्ट्र बोले, हे महामुने ! आप जिस सदा सिद्ध सनातन ब्रह्मविद्याका वर्णन करते हैं और यह भी कहते हैं कि यह ब्रह्मविद्या अन्य कर्मोंके समान सुलभ नहीं है, और यहभी कहते हैं, कि यह ब्रह्म-विद्या आत्माहीमें रहती है, तब उस ब्राह्मणोंके

पाने योग्य ज्ञानरूपी अमृतकी प्राप्त करनेकी क्या आवश्यकता है। क्योंकि जो वस्तु अपने आत्माहीमें है, उसकी प्राप्त करना और न प्राप्त करना क्या ?

श्रीसनत्सुजात मुनि बोले, हम तुमसे उस ब्रह्मविद्याका वर्णन करते हैं ; इसको बूढ़े और गुरु लोगही जानते हैं, इसकी प्राप्त करके मनुष्य इस लोकमें नहीं आता ।

महाराज धृतराष्ट्र बोले, हे ब्रह्मन् । जिस ब्रह्मचर्यके करनेसे ब्रह्मविद्या शीघ्र जानी जाती है, आप पहले उस ब्रह्मचर्यहीका हमसे वर्णन कीजिये ।

श्रीसनत्सुजात मुनि बोले, जब मनुष्य गुरुके घरमें जाकर निष्कपट होकर उनकी सेवा करता है, उसी समयके कर्मको ब्रह्मचर्य कहते हैं । जो उस व्रतकी पूरा पालन करता है, वह इस लोकमें शास्त्रकार होता है और अन्तको मोक्ष प्राप्त करता है । जो ब्रह्मज्ञानको छोड़कर इस लोकमें कामनाओंकी इच्छा करता है, वह अपने शरीरसे आत्माकी दूर भगाता है । और जो सत्-गुणको प्रधान मानकर आत्मज्ञानकी प्राप्त करता है, वही ईश्वरको जान सकता है । हे भारत । माता और पिता सबके शरीरको बनाते हैं ; परन्तु जिस जातिको अच्छे गुरु उपदेश करते हैं, वही पवित्र, अजर और अमर है ; जो क्रमके अनुसार अपने पुत्रोंको ब्रह्मविद्या पढ़ाते हैं, वेही माता और पिता हैं, वेही उत्पन्न हुए पुत्रके कर्मोंको जानते हैं । गुरु सदा शिष्यकी पढावे और शिष्य पवित्र तथा सावधान होकर सदा गुरुकी सेवा करे ; गुरुसे अभिमान न करे, किसीपर क्रोध न करे, यह ब्रह्मचर्यका पहला लक्षण है । जो पवित्र विद्यार्थी गुरुकी सेवा करके विद्या पढ़ता है, वही विद्वान् होता है । विद्या प्राप्त करनाही ब्रह्मचर्यका प्रथम चरण है । उसके पश्चात्

मन, वचन, बुद्धि और प्राणोंसे गुरुकी सेवा करना ब्रह्मचर्यका द्वितीय चरण कहाता है । गुरुके समान गुरुकी स्त्री और गुरुपुत्रकी सेवा करना ब्रह्मचर्यका यह भी दूसरा चरण है । विद्या पढ़नेके पश्चात् जो कुछ आनन्द वा सुख प्राप्त हो, उस सबकी यही जाने कि यह सब सुख गुरुकी कृपासे हुआ है, यह ब्रह्मचर्यका तृतीय चरण है ; इस तृतीय चरणकी प्रसन्न होकर करना चाहिये । गुरुकी विना गुरुदक्षिणा दिये कहीं न जाना और गुरुकी दिये हुए धनको अपना दिया हुआ न जानना, यह ब्रह्मचर्यका चतुर्थ चरण है । पहिला चरण गुरुके घरमें रहनेसे मिलता है, दूसरा गुरुकी सेवासे, तीसरा उत्साहसे और चौथा शास्त्रसे प्राप्त होता है । पहले कहे धर्मादिक बारह गुण ब्रह्मचर्यके रूप हैं, और भी अच्छे कर्म तथा बल उसके अङ्ग हैं । यह ब्रह्मचर्य रूपी वृक्ष गुरुके यहां रहने और वेद पढ़नेसे फलता है । जो ऐसे अच्छे कर्म करनेसे धन मिले वह सब गुरुकी दे देना पण्डितोंकी वृत्ति है । जो व्यवहार गुरुके सङ्ग करे, सोई गुरुके पुत्रके सङ्गभी करना चाहिये । इस प्रकार ब्रह्मचर्य धारण करके जो गुरुके घरमें रहता है, उसकी प्रतिष्ठा और अनेक पुत्र प्राप्त होते हैं ; वह जिधर जाता है उधरही सुख पाता है और सब मनुष्य उसके व्रतकी प्रशंसा करते हैं । इस ब्रह्मचर्यके प्रतापसे मनुष्य देवता होता है, और बुद्धिमान मुनि ब्रह्मलोकमें जाता है । इसी ब्रह्मचर्यके प्रतापसे अप्सरा और गन्धर्वाँने सुन्दररूप पाया है, इसीके प्रतापसे सूर्य उदय होते हैं । जैसे पारस लोहेको सुवर्ण बना देता है, ऐसेही इस ब्रह्मचर्यके प्रतापसे अनेक महात्मा परम पदकी प्राप्त होगये । हे राजन् । जो इस ब्रह्मचर्यकी करता है और शरीरसे तप करता है, सो पवित्र होता है, और अकालमृत्युको जीतता है । ३

क्षत्रिय ! जो ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति करते हैं ; वे अत्यन्त उत्तम कर्म करनेसे मिलने योग्य लोकोंको जीत लेते हैं । इस ज्ञानसे ब्रह्मकी प्राप्ति होती है, मोक्षके लिये और दूसरा कोई मार्ग नहीं है ।

महाराज धृतराष्ट्र बोले, हे पण्डितश्रेष्ठ । इस जगत्में सफेद, लाल और काले रङ्ग दिखाई देते हैं, सो आप कहिये कि ब्रह्म लाल है, काला है वा सफेद है ?

श्रीसनत्सुजात सुनि बोले, हे क्षत्रिय । ब्रह्म लाल, सफेद, काला और सूर्यके समान वर्णवाला है, अर्थात् सब वर्ण उसीके है । वह पृथ्वी, आकाश, समुद्र, जल, तारे, विजली, मेघ, वायु, देवता, चन्द्रमा, सूर्य, ऋक्, यजु, साम और अथर्व वेदमें नहीं रहता । हे राजन् । वह परमेश्वर और बड़ी बड़ी यज्ञोंमें भी निवास नहीं करता ; वह अपार अन्धकारसे दूर है, कालभी उसीमें मिल जाता है अर्थात् वह कालके आधीन नहीं वरन कालही उसके आधीन है । वह परम-छोटा रूपवाला और पर्वतोंसे भी बड़ा है । वही प्रतिष्ठा, अमृत, लोक, ब्रह्म यशस्वरूप है, वही सब पाणियोंको उत्पन्न करता है और वही नाश करता है, पण्डित 'उसे रोगरहित, प्रकाशमान और अविकारी कहते हैं : उसीमें यह सब जगत् स्थित है, उसीके जाननेसे मोक्ष प्राप्त होती है ।

४४ अध्याय समाप्त ।

श्रीसनत्सुजात सुनि बोले, शोक, क्रोध, लोभ, काम, मान, मोह, डाह, बल्लत सोना, करनेकी इच्छा, प्रेम, किसीकी उन्नतिको न सहना और नीच कर्म करना, ये बारह बड़ा दोष कहाते हैं, इनके करनेसे मनुष्यका नाश होजाता है, इन एक एकके करनेसे भी मनुष्य मूर्ख होकर अनेक पाप करने लगता है । लोभी, तेज स्वभाववाला, कठोर, अधिक बोलने-

वाला, क्रोधी, तर्क बितर्क करनेवाला और निर्लज्ज, ये छः मनुष्य उत्तम धनकी प्राप्ति करके भी उसका भोग नहीं कर सकते । भोग चाहनेवाला, चञ्चलबुद्धि, महा अभिमानी, देकर पकृतानेवाला, कृपण, दुर्बल, अपनी प्रशंसा करनेवाला और स्त्रियोंका शत्रु ; ये सात मनुष्य पापी और निर्लज्ज कहाते हैं । धर्म, सत्य, तप, इन्द्रियोंकी जीतना, किसीका बुरा न चाहना, लज्जा, त्याग, डाह न करना, दान, अच्छी बात सुनना, और क्षमा येही बारह ब्राह्मणके लिये महा व्रत हैं । जो इन बारह धर्मोंको करता है, वह इस समस्त पृथ्वीकी अपने वशमें रख सकता है, जिसकी इन बारहोंमेंसे एक वा दो वस्तु भी प्राप्त हुई हों, वह भी जगत्के सुख भोगता है । इन्द्रिय जीतना, त्याग और भ्रम न करना, इन तीनोंमें सत्य बसता है ; वेद पढ़े ब्राह्मणश्रेष्ठ इनही कर्मोंको करते हैं । चाहे अच्छा हो चाहे बुरा हो ब्राह्मणकी दूसरेका दोष वर्णन करना अच्छा नहीं है, जो किसी दूसरेका दोष वर्णन करता है ; वह मनुष्य अवश्य नरकमें जाता है । मदमें ये आठ दोष हैं, सो पहिले कह चुके हैं, अब जो दोष नहीं कहे उनका वर्णन करते हैं,—वैर, विरोध, डाह, झूट, काम, क्रोध, दूसरेके वशमें रहना, दूसरेका दोष कहना, राजाके यहा दूसरेकी निन्दा करनी, प्रयोजन नाश इत्यादि यह अठारह दोष हैं ; इससे बुद्धिमान पुरुष कदापि उसमें उन्नत न होवे, क्योंकि मतवाला होना बल्लतही निन्दनीय है । मित्रतामें छः गुण जानना चाहिये । मित्रोंके प्यारे कार्योंसे सहृदय लोगोंमें प्रसन्नता होती है, और अप्रिय घटना अथवा मित्रोंके दुःखसे वह दुःखी होते हैं, तीसरे वे अपनी अत्यन्त हितकारी वस्तुकी भी याचकोंकी दान करते हैं, और मागनेके अयोग्य चीजोंको भी मित्रोंके निम्न निःसन्देह देते हैं ।

हृदयके भाव अत्यन्त शुद्ध हैं, वह प्रार्थना करने और सांगनेपर अतन्त्र प्रिय ऐश्वर्य और प्रेमपात्र पुत्र कलत्रोंकी भी दान कर सकते हैं। चौथे सुहृद पुरुष किसीकी अपना सर्वस्व दान करके भी, मैंने इसका उपकार किया है यह विचारके उसके घरमें निवास नहीं करते। पांचवें वे मित्र आदिके ऊपर भार न देकर अपने उपार्जित धनकाही भोग करते हैं। छठवें मित्रके हितके निमित्त वे अपनी हानि सहनेमें भी विमुख नहीं होते। जो धनशाली गृहस्थ उक्त रीतिके अनुरार गुणवान, दानशील और सतोगुणी होते हैं, वे शब्द आदि पांच विषयोंसे पाचों इन्द्रियोंकी रोक लेते हैं। अपने अपने विषयोंसे इन्द्रियोंकी रोकते हैं, इस तपस्याके बढ़नेसे, ज्ञान योगके बिनाही केवल उर्ध्वगति होती है, परन्तु ज्ञानकी भांति इसी लोकमें कृतकार्य नहीं हो सकते। जो लोग तीव्र रूपका वैराग्यके न होनेपर धैर्यसे भ्रष्ट होते हैं, उन लोगोंका “ब्रह्मलोकमें सब दिव्य सुखोंकी भागंगा” इस प्रकारके सङ्कल्पहीसे वह तपस्या सञ्चित होती है। जिससे सब यज्ञोंकी बढ़ती होती है, उसी सत्य सङ्कल्पके अनुरोधहीसे किसीकी मनसे, किसीकी वचनसे, और किसीकी कर्मसे यज्ञ सिद्ध होता है, अर्थात् कोई ध्यान आदि यज्ञोंको करते हैं, कोई स्वाध्याय और जप आदि यज्ञ करते हैं, और कोई कोई ज्योतिष्तोमादि यज्ञोंका अनुष्ठान करते हैं। राजा जिस प्रकारसे नौकरोंपर प्रभुता करता है, उसी भांतिसे सङ्कल्प-रहित चिदात्मा सगुण ब्रह्मकी जाननेवाला सत्य सङ्कल्पे करनेवाला पुरुषका स्वामी होता है। तुम और भी थोड़ा सा हमारे मतको सुनो। सङ्कल्प रहित ईश्वर निर्गुण ब्रह्मकी जाननेवाले ब्राह्मणके सङ्कल्पमें विशेष रूपसे अधिष्ठान (निवास) करता है। अर्थात् सगुण उपासकोंसे निर्गुण-उपासक

ब्राह्मणोंमें सत्य सङ्कल्प आदि अधिक उत्पन्न होते हैं। ब्रह्मप्राप्तिका निदान स्वरूप इस योगशास्त्रकी शिष्यवर्गकी अवश्य पढ़ाना उचित है। पण्डित लोग कहते हैं, इसके अतिरिक्त, और सब शास्त्र केवल वचनके विकास मात्र है। इस योग-शास्त्रमें सम्पूर्ण जगतके प्रपञ्च कहे गये हैं, अर्थात् सब योगीके नाश है ; जो दमकी जानते हैं, वे अमृत अर्थात् सु होते हैं। हे राजन्। कर्मकी पूर्ण रीति अनुष्ठान करने पर भी उससे सत्प्रकी ज अर्थात् ब्रह्म-प्राप्ति नहीं हो सकेगी। चतुर्थ। अज्ञानी मनुष्य होम करे, चा यज्ञ करे, उससे कभी मुक्ति न पावेगा, ओ न अन्त समयहीमें उनकी मोक्ष हो सकता है। राग आदि वाच्य इन्द्रियोंके विषय रहित होकर अकेलाही उपासना करे, और मनमें भी किसी विषयके ध्यान न करे, तथा प्रशंसा और निन्दामें भी प्रीति और क्रोध न करे। हे चतुर्थ ! योगी पुरुष नौका पर चढ़े हुएकी भांति आरोपित, और मिश्रित अपवादके क्रमसे पहिले कहे हुए सब बातोंकी जानकारी दृष्टि भेदसे सब स्थानमें निवास करते हुए इसी लोकमें ब्रह्मका दर्शन करते हैं और उसीमें लीन होजाते हैं। हे विद्वन्। कर्मसे जो ब्रह्म-विद्या अष्ट है, उसे मैंने तुम्हारे समीप वर्णन किया।

४५ अध्याय समाप्त ।

सनत्सुजात मुनि बोले, संसारकी उत्पत्ति स्थिति और संहारका वोजस्वरूप, सब चेश-ओंकी करानेवाला, आनन्दरूप, वृत्तिरूप उपाधिरहित, विज्ञानमय, सूर्य्यादि रूपमें प्रकाशमान, महद्यश नाम ब्रह्म है। उसीकी इन्द्रिया उपासना करती है, और उसी मृत् कारणसे सूर्य्य विराजमान है। योगी नौका उभी बनातन भगवान परमात्माका दर्शन

करते हैं, अर्थात् चित्तकी वृत्तिके निरोधरूपो योगसिद्धी सर्व ऐश्वर्ययुक्त अखण्ड एकरस परमेश्वरका दर्शन मिलता है। ब्रह्म अव्याकृत नित्य वस्तु होकर भी शुद्ध अर्थात् आनन्द रूप चैतन्य प्रतविम्बको पाकर जगतके जन्म आदि कार्यों को करनेमें समर्थ होते हैं, और उसीसे वृद्धिको पाते हैं। भयङ्कर वस्तुओंको भी भय देनेवाले, वह स्वयं ज्योति स्वरूप है। सूर्यआदि तेजसे पदार्थोंमें रहकर सबको प्रकाशित करते हैं, योगी लोग उसी सनातन भगवान परमात्माका दर्शन करते हैं।

पृथ्वी आदि पाच तत्त्व जलकी भांति एक रस ब्रह्ममें स्थित है। चैतन्य रूपसे प्रकाशमान जीव और ईश्वर पञ्चतत्त्वसे उत्पन्न हुआ पञ्चभौतिक शरीरके हृदयाकाशमें विराजमान है। सुषुप्ति कालमें जीव और प्रलयकालमें ईश्वरभी तन्द्रायुक्त हो जाते हैं, परन्तु परमात्मा तन्द्रारहित है। वह सायाके आवरणसे रहित सूर्यकाभी सूर्य अर्थात् अपरिच्छिन्न, निर्मल, निर्विकार स्वरूप है, नित्य, प्रकाशमान और सबके ठहरनेका स्थान, उस परमात्माने इस जीव, ईश्वर, पृथ्वी और स्वर्गको धारण किया है। योगी लोग उसी सनातन भगवान परमात्माका दर्शन करते हैं। परमात्माने जीव, ईश्वर, स्वर्ग आदि समस्त लोक तथा सारे ब्रह्माण्डको धारण कर रक्खा है। उसीसे सब दिशा और नदी प्रवाहित हो रही है, और उसीसे यह महा समुद्र बना है, योगी लोग उसी सनातन भगवान परमात्माका दर्शन करते हैं। स्वयं अनिश्चित अर्थात् विनाशशील होनेपर भी जिसके कर्मका कभी विनाश नहीं होता है, उसी शरीर रूपी रथमें इन्द्रिय रूपी घोड़ोंके सहित पूर्व कर्मोंके चक्रमें निवास करता हुआ, बुद्धिमान जीव हृदयाकाशमें उस दिव्य और अजर, अमर परमात्माके समोप जाता है।

अर्थात् इन्द्रियोंके वशीभूत होनेसे जीव उन्हींके द्वारा परमात्माको पाता है, नहीं तो शरीरके नष्ट हो जानेपर उसके किये कर्मोंका नाश न होनेसे दूसरे शरीरको ग्रहण करना पड़ता है, योगी लोग उसी सनातन भगवान परमात्माका दर्शन करते हैं। इस (परमात्मा) के रूपकी समता नहीं रहती, अर्थात् वह अनुपम स्वरूप है, कोई पुरुषभी उसे नेत्रोंसे नहीं देख सकता। जो लोग मनीषी (मनके-निग्रहसे) सूक्ष्म मन और हृदयमें उसको जानते हैं, वे अमृत अर्थात् मुक्त होजाते हैं, योगी लोग उसी भगवान परमात्माका दर्शन करते हैं, शुद्ध नामक स्थानमें बहती हुई अविद्या नामकी नदी महाभय उत्पन्न करनेवाली है, वह चित्त, स्मरण, अस्मरण, दर्शन, वचन, शब्द, त्रिपय, प्राण, अपान, संस्कार और सुज्ञत आदि बारह मार्गोंसे नित्यही बहती रहती है; मनुष्य लोग उसी अविद्या नदीके जल पान अर्थात् उसीसे उत्पन्न हुए पुत्र और पशु आदिकोंसे तप्त होते हैं, अर्थात् उक्त पुत्र, पशु रूपी आदि सधुर फलोंकी इच्छासे इसमें बारम्बार घूमा करते हैं। जीव लोग जिस निवासके स्थानोंपर बार बार अस्मरण करते हैं, योगी लोग उसी सनातन भगवान परमेश्वरका दर्शन करते हैं। इधर उधर घूमनेवाला जीवरूप अमर पूरी तरहसे चिन्ता करता हुआ, अर्द्धमास अर्थात् चन्द्रमा जिसमें भोग करते हैं, उसी प्रकार कर्मफलरूपी सधुपान करता है, अर्थात् पारलौकिक फलोंकी भोग करके फिर इस लोकके फलोंकी भोगनेकी इच्छासे परलोकमें चन्द्रमाकी भांति आधे फलकी भोगकर फिर आधे कर्म फलोंके सहित पुनर्वार इस लोकमें जन्म लेता है। जीवही अन्तर्धामी रूपसे सब प्राणियोंमें विराजमान है, और उसीने यज्ञोंकी कल्पना की है, अर्थात् परमात्मासे जीवात्माही वैदिक मार्गका प्रव-

र्त्तक है, जिसने यज्ञोंकी कल्पना की है, योगी लोग उसी सनातन भगवान परमात्माका दर्शन करते हैं। पक्ष्मिण चिदात्मा रूप, पक्षियोंकी भांति एक स्थानसे दूसरे स्थानमें वास करनेवाला, ससार अविद्यारूपी विनश्वर वृक्ष और स्त्री पुत्र-रूपी पत्नीसे युक्त होकर उन्हींके आश्रयमें पक्ष-युक्त होकर तथा वासनाके अनुरूप नाना दिशाओंमें अर्थात् अनेक योनियोंमें घूमता रहता है। जो प्राण आदि उपाधिके सख्मसे जीवत्वकी प्राप्त होते हैं, योगी लोग उसी सनातन भगवान परमेश्वरका दर्शन करते हैं। प्राण आदि उपाधि रूप दर्पणोंको, चित्त प्रति-विम्ब भूत जीवकी चिदाकाशसे पृथक् कर देता है, उक्त प्राण आदि ब्रह्मसेही उत्पन्न हुए हैं। ब्रह्ममें उन सबके लीन होनेसे जब विचार पूर्वक ब्रह्मसे वे पृथक् किये जाते हैं, तब जीवईश्वर भेदके हेतु उपाधिसे जो असंज्ञा है, वह दूर होकर एक मात्र ब्रह्मही शेष रह जाता है; योगी लोग उसी सनातन भगवान परमेश्वरका दर्शन करते हैं। उसीसे वायु आदि पञ्चभूत उत्पन्न हुए हैं, और उसीमें लीन हो जायंगे। उसीसे अग्नि, प्राण, और सोम अर्थात् भोक्ता भोग्य और इन्द्रिय आदि शरीर उत्पन्न होकर उसीमें ठहरे हुए हैं। यह दृश्यमान सब भूत-प्रपञ्च उसीसे उत्पन्न हुआ है, मैं उसके स्वरूपकी वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हूँ, योगी लोग उसी भगवान परमेश्वर परमात्माका दर्शन करते हैं। प्राण-वायुमें अपान वायु, मनमें अपान वायु, बुद्धिमें मन, और परमात्मामें बुद्धिका भी शेष हो जाता है, जिसमें बुद्धि लीन होजाती है, योगी लोग उसी सनातन भगवान परमात्माका दर्शन करते हैं। जिस प्रकारसे हम किसी किसी समयमें एक चरणकी नहीं प्रदर्शित करता, उसी भांतिसे जाग्रत सुषुप्ति और स्वप्न और अनुपस्थित चारों पादसे युक्त

हंसी (परमात्मा) अगाध संसार सागरपर तीन चरणसे घूमते हैं, और शेष एक चैतन्य भूतोंके आधार चरणकी प्रकाशित नहीं करते। संसारमें तैजस और प्राज्ञ नाम ऊपरके लोकोंमें, तीसरा चरण अग्नि जलमें व्याप्त है, उस शेषके अनुपस्थित सब भूतोंके आधार चौथे चरणकी जो देखते हैं, उनका फिर मृत्यु वा जन्म नहीं होता, अर्थात् ज्ञान होनेसे, अज्ञानसे उत्पन्न हुए जन्म, मरणका नाश होजाता है, योगी लोग उसी सनातन भगवान परमात्माका दर्शन करते हैं।

अद्भुतमात्र पूर्ण अन्तरात्मा प्राण, मन, बुद्धि, और दश इन्द्रियात्मक लिङ्ग शरीरके संयोगसे नित्यही इस लोक, परलोक, जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाओंकी प्राप्त होती है। उस सर्वानियन्ता, स्तुति करने योग्य उपाधिसे युक्त, सर्वकायीके करनेमें समर्थ, मूल कारण परमात्माकी प्रत्येक स्थानोंमें चैतन्य रूपसे प्रकाशित रहनेपर भी मूढ़ पुरुष उसको देख नहीं सकते। मनुष्योंकी मण्डलीमें कोई शम, दम आदि साधनाओंसे युक्त है; परन्तु ब्रह्मती सबके पक्षमें समान अर्थात् निर्बिम्बकार देखे जाते हैं। सुक्त और वधे हुए सबके लिये ब्रह्म एकही भाति है, परन्तु जो सुक्त हो गये हैं, वह ब्रह्मकी पराकाष्ठाकी पङ्क्ति है, अर्थात् एक अवस्थामें जो दुःख रहता है, उस अवस्थाके पलट जानेपर वह देखा नहीं जाता। यह अवश्यही स्वीकार करना पड़ेगा, कि दुःखकी उपाधिही धर्म है, इससे जैसे लाल रङ्गके फूलकी स्फटिकके पास ले जाते हैं, तो उस पुष्पकी छायासे स्फटिक भी लाल रङ्गसे युक्त दीख पड़ता है, उसी प्रकार अज्ञान तथा उपाधिकी विशेषतासे दुःखका अनुमान होता है; परन्तु सब प्रकारसे वासनाका त्याग होनेसे जिसकी मुक्ति हुई है, उसकी फिर दुःखका सम्बन्ध

नहीं रहता, इस निमित्त वह अतन्त्रही आनन्दका पात्र है। जो सब प्राणियोंमें इसी प्रकारसे एक रस और समान है, योगी लोग उसी सनातन भगवान परमात्माका दर्शन करते हैं। विद्वान् पुरुष विद्यासे दोनों लोकोंको प्रकाशित करते घूमते हैं, उस समय उनका बिना किया हुआ अग्निहोत्रभी पूरा होजाता है, अर्थात् ज्ञानसे सब कर्मोंके फल अलग होजाते हैं। इससे ब्रह्म-विषयक वचन जिसमें तुम्हारी नीचताको न सिद्ध करे, अर्थात् तुम ज्ञानी होकर “मैं बड़ा हूँ,” इसी वचनके कहनेके योग्य बने रहो, “मैं दास हूँ” यह वचन जिसमें सब दिन न कहना पड़े। ब्रह्मका नामही “बुद्धि ज्ञान” है, जो लोग धीरे अर्थात् ध्यानमें युक्त हैं, वेही इसकी प्राप्ति हैं। जिसका नाम प्रज्ञान है, योगी लोग उसी सनातन भगवान परमात्माका दर्शन करते हैं।

वह वचन और मनसे जानने योग्य, जगतकी उत्पत्ति आदिका मूल-कारण, निर्विकार योगसे जाननेके योग्य परमात्मा इसी प्रकारका है। वह भोक्ता जीवको अपनेहीमें लीन करता है। जो पुरुष उस परम पूज्य पूर्ण परमात्माको जानते हैं, इसी लोकमें उनकी सोच मिलती है। जिसके जाननेसे पुरुषार्थकी हानि नहीं होती, योगी लोग उसी सनातन भगवान परमात्माका दर्शन करते हैं। जो सहस्रो पक्षके विस्तार पूर्वक दूर जाता है, वह मनके समान भगवान होने पर भी शरीरमें स्थित परमात्माके निकट है, अर्थात् योगियोंके हृदयाकाशमें वज्रत दूरकी वस्तु भी निकटही देख पड़ती है। जिसमें दूरकी वस्तुभी समीपही रहती है, योगी लोग उसी सनातन भगवान परमात्माका दर्शन करते हैं। इसका स्वरूप नेत्र आदि इन्द्रियोंसे नहीं देख पड़ता, शुद्धचित्तवाले पुरुषही चित्तशुद्धिसे इसका दर्शन कर

सकते हैं। जब मनुष्य जगतकी मितता और मनके रोकनेमें समर्थ होता है और पुत्र आदिके नाश होने पर शोक नहीं करता, तबही उसकी चित्त शुद्धि हुई समझना चाहिये, जो लोग इस प्रकारसे चित्तकी शुद्धिकी जान कर संन्यास अवलम्बन करते हैं, वेही असृत अर्थात् मुक्त होते हैं; योगी लोग उसी सनातन भगवान परमात्माका दर्शन करते हैं। सर्प जिस प्रकारसे बिलमें घुसकर अपने शरीरको छिपाता है, वैसेही कुलाचारी मनुष्य लोग गुरु परम्पराके उपदेशसे मद्य, मांस परस्त्री-गमन आदि पापोंसे भागते तथा छिपते फिरते हैं। उन सत्पुरुषोंके प्रति नीच बुद्धिसे युक्त विमूढ़ पुरुष उन्हें भ्रष्ट करनेकी चेष्टा करते हैं अर्थात् वे बलुक लोग मद्य, मांस आदिके सेवनका उपदेश देकर उन सत्पुरुषोंकी निन्दित करते हैं, इससे अच्छी प्रकारसे परीक्षा किये हुए मनुष्यके सङ्ग सहवास करना चाहिये, जिसको पानेके निमित्त साधुओंके सङ्ग रहनेका विधान किया गया है, योगी लोग उसी सनातन भगवान परमात्माका दर्शन करते हैं।

जीवनसुक्त पुरुषोंको इस प्रकार अनुभव होता रहता है कि देह आदि इन्द्रिया सब असत् हैं, इससे वे सुप्ते कभीभी असत्-कृत अर्थात् सुख, दुःख, बुढ़ापा, मृत्यु आदि धर्मोंसे युक्त नहीं कर सकतीं, जब हमारा जन्म, मरण, प्रवाहरूप मृत्युही नहीं है, तब देह वियोग भी नहीं है, और न जन्मही होता है। इससे जो सत्य और सब स्थानमें समान भावसे स्थित है, जिसे किसी स्थानमें भी कोई बाधा नहीं है, जो हर समय सब स्थानोंमें एक रूपसे निवास करता है, जिसके आधीन सब जगत है, जो अकेलाही काथ्य कारण दोनोंकी उत्पत्ति और प्रलयका स्थान

है ; योगी लोग उसी सनातन भगवान परमेश्वरका दर्शन करते हैं ।

वह ब्रह्मरूप पुरुष उत्तम कर्मोंसे सुखी और अधम कर्मोंसे दुःखीभो नहीं होते, अभिमानी पुरुषोंमेंही कर्मका फल दोख पड़ता है ; ब्रह्मज्ञानी पुरुषको कर्मके फलोंमें नहीं बधना पड़ता । क्योंकि ब्रह्मज्ञानी पुरुषको कैवल्य-अवस्थामें जिस प्रकारसे पाप पुण्यका अभाव होजाता है, वैसेही ब्रह्मज्ञ पुरुषमें भी मानना चाहिये । इसी प्रकारके योगसे युक्त होकर सब भातिसे उसी ब्रह्मको प्राप्तिकी इच्छा करनी उचित है, योगी लोग उसी सनातन भगवान परमेश्वरका दर्शन करते हैं । निन्दायुक्त बचन भो उस ब्रह्मज्ञानीके हृदयका नहीं तपा सकती और “मैंने अध्ययन नहीं किया” “मैंने अग्निहोत्र नहीं किया है” ऐसी चिन्तासे भो उनके मनमें दुःख नहीं होता । ब्रह्म-विद्या उसको वही बुद्धि देती है, जिसका ध्यान-धारणा आदि कर्मोंके करनेवालेही पाते हैं । ब्रह्मविद्याके प्रभावसे शोक माह और सर्वज्ञता मिलनेपर जिसकी प्राप्ति होती है, योगी लोग उसी सनातन भगवान परमेश्वरका दर्शन करते हैं ।

इसी प्रकारसे जो गुरुके उपदेशके अनन्तर ध्यानयोगसे आत्माका सब भूतोंमें देखते हैं ; अलग अलग विषयोंमें फँसे हुए दूसरे मनुष्योंको देखकर उन्हें शीक नहीं करना पड़ता । सब और बड़े और गहरे जलके स्थानमें थोड़े जलसेही प्यासे मनुष्यकी जिस प्रकारसे प्यास बुझ जाती है, उसी प्रकारसे सब वेदोंमेंसे आत्मज्ञानके उपयोगी सारभाग मात्रहीकी, गुरुके उपदेशोंके द्वारा ग्रहण करनेसे, ध्यानसे युक्त आत्मजिज्ञासु पुरुषको इष्टसिद्धि मिलती है, हृदयमें विराजमान अङ्गुष्ठमात्र महात्मा पुरुष नेत्र आदिसे नहीं देखा जा सकेता है । वह जन्म मरणसे रहित

होनेपर भी रात दिन सब स्थानोंमें विराजमान है । आत्मजिज्ञासु पुरुष उसीको आत्मा जानकर कृतकृत्य और सब कर्मोंसे कूट जाता है, इससे उपाधिसे उत्पन्न हुए अज्ञानकी त्यागकर निर्मल, शुद्ध पवित्र होजाता है । मैंही माता, और पिता, पुत्र और भूत भविष्य तथा वर्तमानमें जो सब प्राणी दीख रहे हैं, सबकी आत्मा हूँ, मैं ही भारत । मैं बड़ पितामह हूँ, पिता और पुत्र तुम मेरोही आत्मा निवान करते हो, पर तुम मेरे नहीं और मैं तुम्हारा नहीं हूँ । आत्माही हमारा निवासका स्थान और आत्माही मेरे जन्म आदिका कारण है । मैं इस कार्यरूपी जगत्में कपड़ोंमें सूतकी भाति विद्यमान हूँ ; अजर हूँ अर्थात् मेरा विनाश नहीं है । मैं जन्म आदिसे रहित होनेपर भी रात दिन सब स्थानोंमें आलससे रहित होकर घूमता रहता हूँ । सुझको अच्छी प्रकारसे जानके अर्थात् सब प्राणियोंका अन्तरात्मा, सबका ईश्वर और सबका कर्त्ता समझकर परिणाम दर्शी आत्म-जिज्ञासु पुरुष प्रसन्न होते हैं । सूक्ष्मसेभो सूक्ष्म परमात्मा सब प्राणियोंमें अन्तर्यामी रूपसे स्थित है । ब्रह्मज्ञानी पुरुष स्यावर, जड़म और सब भूतोंमें उस परम पिताको सब शरीर तथा हृदय-पुण्डरीकमें स्थित जानते हैं ।

४६ अध्याय और सनत्सुजात-पर्व समाप्त ।

अथ रुज्जययान-सन्धि-पर्व ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय । विदुर और सनत्सुजातके सञ्चित इसी प्रकारसे बात चीत करते हुए, राजा धृतराष्ट्रको वच्च रात्रि व्यतीत हुई । रातकी वीतनेपर सबेरे उठके सब राजा लोग रुज्जयकी देखनेकी इच्छासे हर्षित होकर सभामें गये । पाण्डवोंके धर्म और अर्थसे भरी हुई चरको

सुननेके निमित्त उत्सुक होकर धृतराष्ट्र आदि सम्पूर्ण राजा सभाकी ओर चले । अत्यन्त उत्तम, सोनेसे खचित, चन्दन आदि सुगन्धित जलोंसे छिड़की हुई, बड़ी भारी, विशाल और रमणीय-सभा रत्न, सुवर्ण, हाथी-दांत और लकड़ीके आसनोंसे पूरित, चन्द्रमाके समान निर्मल, प्रकाशमान, रुचिको आकर्षित करने वाली अत्यन्त-विशाल राजसभामें सब राजा लोगोंने गमन किया । हे भरतर्षभ । वहापर भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, शल्य, कृतवर्त्सा, जयद्रथ, अश्वत्थामा, विकर्ण, सोमदत्त, वाल्मिक, महा-बुद्धिमान विदुर, महारथ-युधुक्ता, और अन्य सब शूरवीर महाराज धृतराष्ट्रकी सबके आगे सिंहासन पर बैठकर उनके पीछे बैठ गये; और दुःशासन, चित्रसेन, सुबल-पुत्र-शकुनि, दुर्मुख, दुःसह, कर्ण, उलूक, और विविंशति ये सब दुर्योधनकी आगे करके इन्द्रके पारिषदों तथा देवतोंकी भांति उस सभामें जाकर बैठ गये । हे महाराज । परिवर्षके समान भुजावाले उन सब शूरवीरोंके इकट्ठे होनेसे वह मनकी हरतेवाली राजसभा सिंहींसे भरी हुई पर्वतकी विशाल-कन्दराके सभान शोभायमान होने लगी । ये सब स्तूयके समान तेजस्वी राजा लोग उस सभामें जाकर यथा योग्य आसनों पर बैठ गये ।

हे भारत । उन सब राजाओंके आसनों पर बैठनेके अनन्तर हारपालने “सूत-पुत्र सञ्जय आये हैं” कहके निवेदन किया । अनन्तर सञ्जय श्रीप्रहो रथसे उतरकर, महावली राजाओंसे भरी हुई उस राजसभाके बीचमें गये ।

सञ्जय बोले, हे कौरव लोगो । तुम सुनो, मैं पाण्डवोंके समीप गया था, और वहासे भी आया हूँ । पाण्डवोंने यायायोग्य वृद्धोकी प्रणाम, समान-अवस्थावालोंकी कुशल-क्षेम, प्रीति प्रेम और आदरके सहित पूजा कही

है । हे राजो लोगो । पहिले मैं महाराज धृतराष्ट्रकी आज्ञासे पाण्डवोंके समीप जाकर उनसे जो कुछ बचन कहा था, उसे आप लोग सुनें ।

४७ अध्याय समाप्त ।

धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय । मैं तुमसे राजाओंके बीचमें यह पूछता हूँ, कि दुर्योधनके जीवनकी नाश करनेवाली अत्यन्त-बल और विक्रमसे भरे हुए वीर-प्रधान सहात्मा-अर्जुनने क्या कहा है ?

सञ्जय बोले, भावी-युद्धकी इच्छा करने वाली सहात्मा धनञ्जय अर्जुनने कृष्णके सामने युधिष्ठिरकी आज्ञा तथा अनुमतिसे जो कुछ कहा है, उसे दुर्योधन सुनें । भुज-बल और पराक्रमसे युक्त, भयरहित वीरोंके अग्रगामी अर्जुनने श्रीकृष्णके निकट सुभसे यह बचन कहा है, कि “हे सूत । तुम सब कौरवोंके बीचमें, और हमारे सङ्ग जो सदाही युद्ध करनेकी इच्छा करता है, उस मूढबुद्धि, कालसे घिरे हुए दुर्योधनकी कठोरबचन कहने-वाले सूत-पुत्र कर्णके सामने, और पाण्डव लोगोंसे युद्ध करनेके निमित्त जो सब राजा बलाघे गये हैं, उनके सङ्ग खड़ी धृतराष्ट्रपुत्रोंसे हमारे इस बचनकी कहना, जिसमें वे सितोंके सहित मेरे कहे हुए सब बचनोंकी सुन सकें, वही करना ।” हे महाराज । जिस प्रकारसे दैवता लोग वज्रधारी इन्द्रकी वचनोंके सुननेकी इच्छा करते हैं, सुभी भालूम होता है, कि पाण्डव और सञ्जयोंनेही उसी भांतिसे अर्जुनके बचनोंको अवगण किया । गाण्डीवधारी अर्जुन भावी-युद्धके निमित्त उत्सुक होकर क्रोध पूरित लाल नेत्र करके यह बचन बोले, “दुर्योधन यदि अजसीढवंशमें उत्पन्न हुए राजा युधिष्ठिरके राज्यकी नहीं लौटावेगे; तो निश्चयही धृतराष्ट्र पुत्रोंका विना शीघ्र

किया हुआ, पूर्व जन्मका कोई पापकर्म उदय हुआ है। शस्त्रधारी भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, बासुदेव, सात्यकी, धृष्टद्युम्न और शिखण्डी जिसके वीर तथा जो दूसरी प्रकारसे भी योद्धा हैं, पृथ्वी और स्वर्गको जलानेमें समर्थ हैं, उस इन्द्रको समान युधिष्ठिरके सङ्ग अग्निकी युद्ध करनेकी इच्छा है, उनका पाप-कर्मको अतिरिक्त और क्या दोष कहा जा सकता है ? दुर्योधन यदि इन्हीं सब कर्मोंके सहित युद्धकी इच्छा करते हैं, तो पाण्डवोंका सब प्रयोजनही सिद्ध हुआ है। युधिष्ठिरके अर्थसिद्धिके निमित्त तुम अब सन्धिका प्रस्ताव मत करो, यदि इच्छा हो, तो युद्धही करो। धर्म-आत्मा-युधिष्ठिर जो इतने दिनतक बनबासी होकर निरन्तर दुःखकी शय्यापर सोते थे, इस समय दुर्योधन मरकर अत्यन्त-दुःखदायिनी, अनर्थकारी अन्तिम शय्याको पावेगा, अन्याय-व्यवहारोंसे दुष्टात्मा धृतराष्ट्रपुत्रने जो सबके ऊपर प्रभुता की थी, उसकी मृत्यु इस समय समीप है। तुम लज्जा, ज्ञान, तपस्या दम, वीरता, धर्मको रक्षा और बलसे भरे हुए युधिष्ठिरमें उन सबकी अनुरक्त करो। हमारे विनययुक्त, सरल स्वभाव, बल, और तपस्या, दम, धर्म और सतस्रसे भरे हुए महाराज युधिष्ठिर अनेक भांतिके कपटवाद और वहुत दुःखोंको पाकरभी सब क्लेशोंकी सह रही है। शूद्रात्मा जेष्ठ-भ्राता धर्मराज-युधिष्ठिर जिस समय अनमने होकर, अनेक वर्षोंसे रोके हुए अपने महावीर रोषको छोड़ेंगे, उसी समय दुर्योधनकी युद्धके निमित्त पकृताना पड़ेगा। सन्ध्याके समय जिस भांति जलती हुई यज्ञकी अग्नि सूखे काठोंको जला देती है, उसी भांतिसे धर्मराज युधिष्ठिर क्रोधसे प्रज्वलित होकर, दुर्योधनकी सेनाको भस्म कर देंगे, जिसकी देखकर अवश्यही उसको

पकृताना पड़ेगा। जब रथमें गदा लिये हुए क्रोधी और अत्यन्त वेगशाली भीमसेनकी क्रोधसे विष उगलते हुए देखेगा, तभी दुर्योधन युद्धके निमित्त पश्चात्ताप करेगा। जिस समय सेनाके अग्रगामी, शस्त्रधारी गदा लिये हुए भीमसेनकी दुर्योधन साक्षात् कालके समान, सब वीरोंका सहार करता हुआ देखेगा, तभी हमारी बातोंको स्मरण करेगा। जब भीमसेनसे सारे गये हाथियोंको पहाड़ोंके शिखरके समान लहलहा उगलते दुर्योधन देखेगा, तभी युद्धके निमित्त पश्चात्ताप करेगा। जैसे सिंह गीलोंके बीचमें जाता है, वैसेही कुर सेनामें गदा लेकर भीमसेन प्रवेश करके, जब धृतराष्ट्र-पुत्रोंका वध करेंगे, तभी दुर्योधनकी युद्धके निमित्त पकृताना पड़ेगा। जब भीमसेन युद्धमें शत्रुओंके दलको सर्दन करते हुए, अकेलेही रथों और पदातियोंकी गदासे मारेंगे और हाथियोंको प्राप्त तथा फरसे वन काटनेकी भांति काटकर, दुर्योधनकी सब सेनाकी विच्छिन्न करेंगे; उसी समय वह युद्धके निमित्त पश्चात्ताप करेगा, जब अन्तिके समान दण्डके घरोंसे युक्त गांवकी भांति धृतराष्ट्र-पुत्रोंकी दुर्योधन भीमके बलसे भस्म होता देखेगा तभी उसकी युद्धके निमित्त पकृताना पड़ेगा। रथियोंमें अष्ट विचित्र शस्त्रोंकी करनेवाले नकुल, दहिनी और वै तूणीरसे सैकड़ों वाणोंकी वर्षा करते हुए, गथियोंकी एकवारगी सारके गिरावेंगे, तभी दुर्योधनकी युद्धके निमित्त पकृताना पड़ेगा। सब दिन सुखोंकी भोगनेवाले नकुलने इनमें बहुत दिनोंतक जिस दुःख-शय्यामें शयन किया था, उसकी स्मरण करके जब सपने समान अपने क्रोधरूपी विषको उगलेंगे, तभी दुर्योधनकी युद्धसे निमित्त पश्चात्ताप करना पड़ेगा। हे सज्जन ! जिस समय प्राणियोंकी त्यागनेवाले राजा लोग, युधिष्ठिरकी आज्ञासे शत्रुओंकी

सेनाकी ओर रथोंपर चढ़के दौड़ेंगे; तब उन्हें देखकर दुर्योधन अवश्यही पश्चात्ताप करेगा। बालक होकरभी जिस समय तरुणोंकी भांति सब शस्त्रोंके जाननेवाले, वीरतासे भरे हुए, प्रतिबिम्ब आदि द्रौपदीके पांचो-पुत्र अपने प्राणोंकी आशाको छोड़कर दुर्योधनकी सेनापर चढ़ धावेंगे, तभी उसको युद्धके निमित्त पकृताना पड़ेगा। जब बधके निमित्त उद्यत सहदेव धीर-गति और निःसन्देह-चक्र, सुवर्णके तारोंके पुञ्जसे खचित, वायुके समान शीघ्र चलनेवाले घोड़ोंके रथपर चढ़कर, अपने वाणसे राजाओंके, शिरको काटके पृथ्वीमें गिरावेंगे, महा भयङ्कर युद्ध-कौतुकके आरम्भ होनेपर, सब शस्त्रोंके जाननेवाले उस नकुलकी दाहिने, बायें तथा चारों ओर उपस्थित होते जब दुर्योधन देखेगा, तभी युद्धके निमित्त पश्चात्ताप करेगा। लज्जा-शील, दक्ष, सत्यवादी, महा-बलशाली, सब धर्मोंकी जाननेवाले, क्षिप्रकारी, वेगवान सहदेव जिस समय युद्धमें गान्धारराज शकुनिपर आक्रमण करके शत्रु-सेनाको विक्षिप्त करेंगे, तभी दुर्योधनको युद्धके निमित्त पकृताना पड़ेगा। सब शस्त्रोंसे पूरित रथके युद्धकी जाननेवाले द्रौपदी-पुत्रोंकी महा-विषधर विप्रेले सर्पकी भांति युद्धके निमित्त आते हुए देखकर, दुर्योधनको अवश्य युद्धके लिये पश्चात्ताप करना पड़ेगा। कृष्णके समान सब शस्त्रोंकी जाननेवाला अभिमन्यु जिस समय अपने वाणोंकी भेषकी भांति वरसावेगा, और सब शत्रुको सेनाका बल मर्दन करेगा, तभी दुर्योधनको युद्धके निमित्त पकृताना पड़ेगा। बालक होकरभी जुवाकी भांति जिस समय सुभद्रा-पुत्र अभिमन्युकी, कालरूपके समान शत्रुसेनाके ऊपर गिरता हुआ दुर्योधन देखेगा, तभी युद्धके निमित्त पश्चात्ताप करेगा। सिंहके समान बलवान शीघ्रहस्त, युद्धके सब

कर्मोंकी जाननेवाले, प्रभद्रक, नामक वीर लोग जिस समय सेनाके सहित धृतराष्ट्र पुत्रोंको विक्षिप्त करेंगे, तभी दुर्योधनको युद्धके निमित्त पकृताना पड़ेगा। जिस समय सेनाके सहित धृतराष्ट्र-पुत्र, महारथ बड़े विराट और द्रुपदको पृथक् पृथक् सेनाकी लिये हुए युद्धकी ओर आते देखेंगे, तभी दुर्योधनको युद्धके निमित्त पकृताना होगा। शस्त्रधारी द्रुपदराज जब रथपर चढ़कर क्रोधपूर्वक सहजझीमें वीरोंके मस्तकको फूलके समान पृथ्वीमें गिराने लगेंगे, तभी दुर्योधन युद्धके निमित्त पश्चात्ताप करेगा। शत्रुपक्षकी वीरोंकी मारनेवाले विराटराज जब मेरे आनेके समय मत्स्य-देशीय सेनाको लेकर शत्रु-सेनामें प्रवेश करेंगे; तभी दुर्योधनको युद्धके निमित्त पश्चात्ताप करना होगा। मत्स्यराज विराटके जेठे पुत्र उत्तरकी जिस समय पाण्डवोंके निमित्त संग्राम-भूमिमें शस्त्र धारण किये हुए दुर्योधन देखेगा, तभी युद्धके निमित्त पश्चात्ताप करेगा। मैं यही संशय-रहित सत्य वचन कहता हूँ, कि कौरवोंमें मुख्य शान्तनुपुत्र भीष्मके शिखण्डीके हाथसे मारे जानेपर, फिर हमारे शत्रु लोग कदापि जोते न बचेंगे। सेनापति शिखण्डी जिस समय अच्छी प्रकारसे रक्षित-रथपर चढ़के रथी लोगोंकी मारेंगे, और दिव्य रथपर आतङ्क सब सेनाको मर्दन करते हुए जब भीष्मको और दौड़ेंगे, तभी दुर्योधनको युद्धके निमित्त पश्चात्ताप करना होगा। बुद्धिमान द्रोणाचार्यने जिसे सब गुप्त-अस्त्रोंका भेद बतलाया है, उस धृष्टद्युम्नको जब दुर्योधन सृज्जियोंकी सेनाके सम्मुख खड़ा देखेगा, तभी युद्धके निमित्त पश्चात्ताप करेगा। शत्रु-ओंके वाणोंकी सहनेसे समर्थ जिस समय पराक्रमी सेनापति-धृष्टद्युम्न, अपने वाणोंसे धार्तराष्ट्रोंकी मर्दन करके द्रोणाचार्यके समीप

पङ्गुचेंगे ; तभी दुर्योधन युद्धके निमित्त पञ्चात्ताप करेगा । तेजस्वी, बुद्धिमान, बलवान और लक्ष्मीवान युद्धवंशियोंमें अष्ट वृष्णि सिंघ सात्यकी जिस सेनाके अग्रणी है, उसको कौन शत्रु रोक सकेगा ? यदि तुम लोग यह कहो, कि लोकमेंसे दूसरे किसी रथान्ध परुषको सहायत्तपसे मत वरणा करी, तो हम शिनि-पौत्र सब शस्त्रोंके जाननेवाले सहावलसे युक्त अकेले सात्यकीजीको वरणा करेंगे । यह सब शस्त्रोंके जाननेवाला सहारथ सात्यकी युद्धमें अन्तिम, कालके समान और भयसे रहित है । इसकी छाती बड़ी, भुजा लम्बी और धनुषका परिमाण चार हाथ है । शिनि-वंशाधिपति सात्यकी जिस समय हमारी आत्मासे शत्रु-सेनामें प्रवृष्ट होकर मुख्य मुख्य वीरोंको अपने वाणोंमें व्याकुल करेंगे, तभी दुर्योधनको युद्धके निमित्त पञ्चात्ताप करना पड़ेगा । वह दृढ़ सरासनको धारणा करने-वाला दीर्घबाहु महा-वीर सात्यकी, जब युद्धके निमित्त यत्न अवलम्बन करते हैं, तो शत्रु लोग इस प्रकारसे उनके आगेके भाग जाते हैं, जैसे सिंहको देखके गज भागती हैं । दीर्घ-बाहु, दृढ़धन्वा सब शस्त्रोंके जाननेवाले, शीघ्रहस्त वह महात्मा सात्यकी पर्वतोंको भी तोड़ सकते हैं, और सब लोकोंके संहार करनेमें भी समर्थ हैं, रणभूमिमें वह आकाशमें स्थित सूर्यकी भांति विराजमान होते हैं । अस्त्रोंके चलानेके विषयमें सात्यकीको विहित और दूसरी बृहन्त प्रकारकी आयुध-प्रद शिक्षा मिली हुई है । अस्त्रोंके चलानेकी क्रियाको पण्डितोंने जिस भांतिसे कहा है, सात्यकी उन सब गुणोंसे पूर्ण है । युद्ध-भूमिमें जब युद्धवंशियोंमें अष्ट सात्यकीके सफेद-घोड़ोंसे युक्त सुवर्ण खचित रथको दुर्योधन देखेगा, तभी उसको युद्धके निमित्त पञ्चात्ताप पड़ेगा । जिस समय सुवर्ण और मणियोंसे

प्रकाशित सफेद घोड़ोंके सहित भयङ्कर कपि-ध्वजासंयुक्त हमारे रथकी रणभूमिमें चलता हुआ दुर्योधन देखेगा, तभी वह युद्धके निमित्त सन्तापित होगा । उस महा-युद्धमें जब मैं गाण्डीव धनुषकी चढ़ाऊंगा, उस समय मेरे धनुषका वज्र-समान महा-शब्दकी सुनकर और अपनी सेनाको मेरे वाणोंकी वर्षाके आगे गौओंके समान भागती हुई देखकर, वह दृढ़ सहायक रहित नीच-बुद्धि मूढ़ दुर्योधन युद्धके निमित्त पछतावेगा । शत्रुओंके छोड़े हुए वाणोंको, जब मेरे वाणोंसे कटकर पृथ्वीमें गिरता देखेगा तभी दुर्योधन युद्धके निमित्त पञ्चात्ताप करेगा । पक्षी लोग जैसे वृक्षकी चोटीसे फलको तोड़के खाते हैं, उसी प्रकारसे हमारे वाण वीरोंके मस्तकोंको काटके ढेर लगा देंगे ; उसको देखकर दुर्योधनको युद्धके निमित्त पछताना होगा । युद्धमें जब मुख्य मुख्य रथी, गजपति, और घुड़सवारोंको हमारे वाणोंसे मरकर पृथ्वीमें गिरते देखेगा, तभी दुर्योधनको युद्धके निमित्त पछताना पड़ेगा । जब अपने भाइयोंकी शत्रुओंके अस्त्रोंके मार्गमें न पड़तेही भागता हुआ देखेगा, तभी दुर्योधन युद्धके निमित्त पञ्चात्ताप करेगा । सुख बाये हुए कालके समान जिस समय मैं अपने गाण्डीव धनुषकी लीक मूसल-धार सेवकी वर्षाकी भांति सब अस्त्रोंके समान जलते हुए वाणोंकी वरसाके पैदल तथा रथी आदि सेनाका संहार करूंगा, तब वह मन्दबुद्धि दुर्योधन युद्धके निमित्त पञ्चात्ताप करेगा । दुर्योधन जब अपनी सब सेनाको मेरे वाणोंसे चारों ओर भागती, घायल वंश रहित, व्यासी, यके हुए वाहन और भय व्याकुल देखेगा ; तभी वह युद्धके निमित्त पछतावेगा । जब देखेगा कि पराक्रमशील मुख्य मुख्य राजा, वीर, हाथी, घोड़े, सब मारे गये हैं, बाकी सब आर्तनाद कर रहे हैं,

कितनेही मर गये, और कितनेही मर रहे हैं, उनके केश, हड्डो और शिर इधर उधर पड़े हैं, उसी समय वह मन्दबुद्धि दुर्योधन सन्तापित होगा। जब शैव्य-सुग्रीव आदि घोड़ोंके रथपर बैठे हुए कृष्णको, मुक्तको, गाण्डीव-धनुष, दिव्य-शंख पाञ्चजन्य, दोनों अश्वय तूणोर और देवदत्त शंखको देखेगा, तभी धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन युद्धके विषयमें पश्चात्ताप करेगा। जैसे युगोंके अनन्तर अन्य युग उत्पन्न होता है, उसी भाँतिसे मैं कालरूपके समान उपस्थित होकर, दुष्टोंके समूहको भगाते हुए जब अपने अग्निके समान वाणोंसे कौरवोंको जलाने लगूंगा, तभी दुर्योधन पुत्र सहित सन्तापित होगा। क्रोधकी वशवर्ती मन्दबुद्धि धृतराष्ट्रपुत्र बन्धु बान्धव और सेनाके सहित ऐश्वर्य-भ्रष्ट होनेसे अभिमान रहित, हतबुद्धि और शरीरसे कापता हुआ अवश्यही पश्चात्ताप करेगा।

किसी दिन सवेरेही हमारी सन्ध्या, वन्दना, स्नान आदि क्रियाओंके समाप्त होन-पर एक बूढ़े ब्राह्मण आकर हमको यह प्यारा वचन कहा, “सव्यसाचिन् । तुमका अत्यन्तही काठिन कर्म करना होगा। उस समय या ता कारवाहन इन्द्र वज्र लेकर तुम्हारे आगे आगे चलेंगे, अथवा वसुदेवनन्दन कृष्ण शव सुग्रीवयुक्त रथपर चढ़के तुम्हारे पृष्ठ-रक्षा करेंगे। ब्राह्मणके उस वचनको सुनकर मैं वज्रधारी इन्द्रका आरक्षण करके इस युद्धमें कृष्णको सहायक रूपसे वरन किया हूँ। उन्होंने कृष्णको मैं दस्युओंके (डाकुओंके) वधके नाशित प्राप्त किया है। मालूम होता है, देवता लोगोंने हमारे ऊपर प्रसन्न और अनुकूल होकरही ऐसे विधान किये हैं। कृष्ण युद्धमें प्रवृत्त न होकरभी अन्तःकरणसे जिसके जयको अभिलाषा करेंगे, उन्हींके इन्द्र आदि भी शत्रु हों तो भी वह सबको जित

सकता है, मनुष्योंकी तो बातही क्या है ? जो पुरुष अत्यन्त वीरतासे युक्त महातजस्वी वासुदेव कृष्णको युद्धमें जीतनेकी इच्छा करता है, वह बाहुसे अगाध समुद्रकी तरनेकी अभिलाषीके समान है। जो मूर्ख अपने हाथकी हथेलीसे कैलास पर्वतकी तोड़नेकी इच्छा करता है, वह पर्वतका कुछभी नहीं कर सकता, बल्कि उसकी हथेलीही नखोंके सहित फट जाती है। जिसके गर्भसे प्रद्युम्नका जन्म हुआ है उस यशस्विनी कृष्णिनीको जिन्होंने एकही रथपर युद्धमें भीजवंशीय राजाओंको जीतकर बलपूर्वक भार्या रूपसे ग्रहण किया था, उन कृष्णको जो युद्धमें जीतनेकी इच्छा करे, वह जलता हुआ अग्निको भी हाथसे बुझा सकता है, चन्द्रमा और सूर्यके तेजको छीन सकेगा, और बलपूर्वक देवताका अमृतभी हर लानेमें समर्थ होगा। देवताओंके भूषण स्वरूप कृष्णने अपने बलसे गान्धार लोगोंके तेजका पूर्ण रीतिसे मथकर नमजोत नृपतिके सब पुत्रोंको पराजित करके सुदर्शन राजाको कुड़ाया था। इन्होंने वलस्थलकी चोटसे पाण्डुराजाकी सारा और दन्तकूट युद्धसे कलिङ्ग लोगोंका संहार किया था। इन्हींसे भस्म होकर वाराणसी (काशी) नगरों अनेक वर्षोंतक बिना राजाके सूनीही पड़ी रहो। एकलव्य नामक प्रसिद्ध निपादराज जिसकी ये युद्धमें दूसरेसे न जातने योग्य समझते थे, वह पर्वतके ऊपर जम्बासुरकी भाँति कृष्णके हाथहीसे मरकर मृत्युका पङ्कजा। और भी इन्होंने वलदेवके सङ्ग मिलकर वृष्णि और अन्धक लोगोंकी सभाके बीचमें जाकर महादुष्ट उग्रसेनपुत्र कंसको मारा था, और उसको मारकर उग्रसेनको राज्य दिया था, इन्होंने माणवी, भयरहित, आकाशमें स्थित शल्वराजसे सोनके सहित युद्ध किया था, और सोनसे शत्रु शक्ति ले ली थी, तब कोईभी

मरणा-धर्मशील पुरुष इनके पराक्रमकी सह सकता है ? असुरोंका प्रागज्योतिषपुर नामक एक नगर था, वहापर भूमिपुत्र नरकासुरने अदितिके अतन्त्र सुन्दर दानों मणिजटित कुण्डलोंकी, हरकर उसी स्थानमें रक्खा था। मृत्युके भयसे रहित इन्द्र समेत सब देवता लोगभी इकट्ठे होकर उसे युद्धमें नहीं हरा सके, अनन्तर कृष्णके प्रसिद्ध बल, विक्रम और अक्षय शस्त्रोंकी देख, और दस्यु (डाकुओं) के संहार करनेका उनका मुख्य धर्म समझ, इन्हींकी देवताोंने उसके वधके निमित्त नियुक्त किया था। देवताओंके समूहमें पूजित श्रीकृष्णने इस कठिन कर्मकी अङ्गीकार किया था। इन्हीं महावीर कृष्णने उन्नीचन नगरमें छः हजार वीरोंको मारके और मुरासुर तथा अन्यान्य दूसरे राजाओंके भुण्डकी संहार करके, सुरके बनाये हुए तीक्ष्णधार और भयङ्कर पाशको तोड़ते हुए वहासे आगे निकले। यहीं पर महाबल नरकासुरके साथ आत बलशील महात्मा कृष्णका युद्ध हुआ था। उससे वह बायुसे उड़ाये हुए तनकेकी भाँति मरकर पञ्चलको पड़चा था। आमत प्रभावयुक्त विद्यावान कृष्णने इस प्रकारसे सुर और नरकासुरको मारा था, और मणि जटित कुण्डलको लेकर लक्ष्मी और यशके पुञ्जसे पूरित होकर लौट आये थे। तब देवताओंने इनके इस कठिन कर्मकी देखकर कहा, कि युद्धने प्रवृत्त हानिसे तुम्हें कुछभी परित्यक्त न होगा, आकाश और जलआदि सब स्थानोंमें तुम्हारी गाँत होगी, और शस्त्र सब तुम्हारे शरीरमें नहीं प्रवेश कर सकेंगे, इस प्रकार देवताओंने वर दिया था, उससे कृष्णभी कृतार्थ हुए थे। इस प्रकारके अमित-गुणसे भरे हुए अनन्त पराक्रमी महाबली वासुदेव कृष्णको दुर्योधन जीतनेकी इच्छा करता है, क्योंकि वह दुष्टात्मा सदा उनका बाधने (कैद करने)

का यत्न करता है; परन्तु ये हम लोगों शील और प्रेमसे सब सह रहे हैं। दुर्योधन हमारे और कृष्णके बीचमें भगड़ा उत्पन्न करानेकी युक्ति और प्रार्थना करता है, परन्तु पाण्डवोंमें कृष्णकी आत्मीयता और मित्र तथा स्नेहकी घटना कैसा कठिन और असाध्य कार्य है, वह कुरुक्षेत्रके युद्धही जाकर समझ सकीगा। मैं राज्यके पाने उत्सुक होकर शान्तनुपुत्र भीष्म, पुरुजित द्रोणाचार्य और कृपाचार्यके नमस्कार करके युद्धमें प्रवृत्त होऊँगा जो पापबुद्धि पुरुष पाण्डवोंसे युद्ध करने निमित्त उत्साही होगा, हमारे विचारसे धर्म उसकी मृत्यु खड़ी है, अर्थात् यदि धर्म तो अवश्यही उसकी मृत्यु होगी। उन पाण्डवोंने केवल कपटजुएके खेलमें हम लोगोंके वारह वर्षके निमित्त जोता था। हम लोग राजपुत्र होकरभी इतने दिनोंतक सह दुःखकी सहंकर वनवास किया था, और एव वर्ष छिपकरभी निवास किया, इससे पाण्डवोंके जीते हुए उन लोगोंके राज्यपद पाने बैठकर धार्तराष्ट्र लोग अब कैसे आनन्दित रह सकते हैं ? हम लोगोंके युद्धमें प्रवृत्त होनेपर यदि वह इन्द्र आदि देवताओंकी सहायता सेभी हम लोगोंको जीतनेमें समर्थ होजाय तब यह बात अवश्य माननी होगी कि धर्म अधर्म-आचरणही श्रेष्ठ है, और संसार कोईभी सत्कर्म विद्यमान नहीं है। दुर्योधन यदि इस जीवात्माको कर्मवज और हम लोगोंको अपनेसे अधिक न समझेगा, तब कृष्णकी सहायतासे मैं निश्चयही उसकी इच्छा के सहित मारनेकी इच्छा करता हूँ हे नरेन्द्र ! यदि दुर्योधनका हम लोगोंके राज्यको हर लेनेका पाप निष्फल न होगा, और हम लोगोंका पुण्य-कर्म जो हमने उसकी गन्धर्वोंके हाथसे कुड़ानेमें किया था,

वह भी यदि वृथा न होगा, तब इन दोनों पक्षोंकी विचारकर देखनेसे दुर्योधनको पराजयही होनी उचित है। हे कौरवो! मैं जो वचन कह रहा हूँ, वह तुम लोग देखोगे, युद्धमें प्रवृत्त होकर धृतराष्ट्रपुत्र जीते न बचेंगे। युद्धके अतिरिक्त कुछ अन्य उपाय करनेसे कौरव लोग जीते बच सकते हैं, परन्तु युद्ध करनेसे वे लोग कभी भी न बचेंगे। मैं कणके सहित धार्तराष्ट्रको मारकर सब राज्यका ले लूंगा, इससे तुम लोगोंको जो कुछ करना हो, उसे इसी समय करा, अपनी अभिलषित वस्तुओंका भोग लो। वर्तमान और भविष्यको वृद्धतया देवी घटनाओंसे कौरवोंका नाश और पाण्डवोंके विजयसूचक वृत्तान्त विदित होंगे। इसी प्रकार उत्तमरूपसे ज्ञातप, जाननेवाले, शीलवन्त, कुलान, सखत्तरके फलोंके जाननेवाले, सूखे चन्द्रमाके ग्रहण आदि विज्ञानमें निपुण और नक्षत्रोंके सयोगोंको निश्चय करनेवाले, दिव्यप्रश्नोंके लगानेवाले (भविष्य घटनाओंके बतानेवाले,) शृगालोंके आगमनके फलोंको कहनेवाले, कौन नक्षत्र किस ग्रहसे वेधा गया है इत्यादि विषयोंके विचार करनेवाले, शुभ और अशुभ मुहूर्तोंका बतानेवाले वृद्ध-ब्राह्मणभी याद उपास्थित न हो, तभी प्रत्यक्ष देखनेवाले षष्ठाक्षिह कृष्णभा ऐसे वृद्धतसे लक्षणोंको निःसन्देह देख रहे हैं, जिससे हम लोगोंके अज्ञातशत्रु युधिष्ठिर शत्रु-ओंका पराजयके निमित्त अपनका कृतकार्य समझ सकते हैं। और मैं भी शान्त होकर उन सब ज्ञानेवाले वृत्तान्तोंको ज्योंका त्यों देख रहा हूँ। मेरे याग प्रभाववाली प्राचीन दृष्टिमें कुछभी व्याघात (रुद्ध बदल) नहीं हुआ है। मैं निश्चयही जानता हूँ, कि युद्धमें प्रवृत्त होनेसे धृतराष्ट्रके पुत्र जीते न बचेंगे। मेरे गाण्डीव धनुषके रोड़े बिना चढ़ायेही चढ़ जाते हैं, बिना चोटकेही धनुष चढ़ानेका स्थान

कम्पित हो रहा है, बाण सब तूणीरमेंसे निकलकर चलनेकी उद्यत होते हैं। अपनी पुरानी केचलीको छोड़कर जैसे साप बाहर होता है, वैसेही मेरी यह तरबाखभी प्रसन्न होकर मियानमेंसे निकल रही है, और ध्वजाके ऊपरसे भी “हे किरीटिन! कब तुम्हारा रथ रथ जुतेगा” इस प्रकारके भयङ्कर वृद्धतसे वचन सुन पड़ते हैं। रातकी सियार बड़ेजोरसे बोलते हैं, और आकाशमें राक्षसोंका समूह गिरता हुआ दोखता है। मेरे सफेद घोड़ोंसेयुक्त रथको देखकर हरिण, सियार, मोर, कौए, गिद्ध, बगुले और सोनेके पखके समान पंखवाले पक्षी सब पिछाड़ी गिरते हुए दोखते हैं, क्योंकि मैं अकेलाही बाणोंकी वर्षा करता हुआ योद्धाओंका यमपुरीमें पड़ंचा सकता हूँ। सम्यगके समय वृद्धत घने वनकी जलानेवाली अग्निके समान मैं योद्धाओंके मारनेका दृढ़ निश्चय करके अलग अलग अस्त्र शस्त्रोंको लेकर महा शस्त्र स्थूणाकर्ण, पाश-पताख और ब्रह्मास्त्र तथा इन्द्रने सुभको जो कुछ अस्त्र दिये हैं सबका चलाकर शत्रुकी ओरके राजपुत्रों और राजाओंमेंसे किसीको भी बाकी न छोड़ूंगा। हे सज्जय! तुम उन लोगोंसे कहना कि, ऐसाही करके मैं शान्त होऊंगा, क्योंकि यहो मेरा मुख्य और स्थिर अभिप्राय है। हे सूत! देखा। दुर्योधनको कहातक मोह उत्पन्न हुआ है, कि जिसका इन्द्र आदि देवताओंको सहातता पाकर भी कोई युद्धमें नहीं जीत सकता, उनके खड्गमें बलपूर्वक विरोध करना वह उत्तम समझता है। जो ही, सम्प्रति शान्तनुगन्धर्व वृद्ध भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा और विदुर जो वचन कहते हैं, वही हवा; सब कौरव लोग आयुष्मान होंगे।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमे-
 १५ । अनन्तर शान्तनुपुत्र भीष्म उन इकट्ठे हुए
 अब राजाओंके बीचमें दुर्योधनसे यह वचन
 कहने लगे । पाँहिले समयमें एक बार
 बृहस्पति और शुक्राचार्य ब्रह्माके समीप गये
 थे, और इन्द्रके सहित सहित बसु आदित्य
 साध्य, आकाशमें रहनेवाले सप्तऋषि, गन्धर्व
 और अप्सरा आदि सब स्वर्गवासी भी वहाँ
 जाकर लोकवृद्ध विश्वेश्वर पितामहकी नम-
 स्कार करके अपने अपने समूहके सहित यथा
 योग्य स्थानमें बैठ गये । उसी समय प्राचीन
 देव नर और नारायण ऋषि अपने असीम
 तेज प्रभावसे उन सबके मन और तेजकी ग्रहण
 करते हुए सबको नाँधकर वहाँसे चले ।
 इससे बृहस्पतिने ब्रह्मासे पूछा, कि हे पितामह ।
 आपको उपासना न करनेवाले ये दोनों कौन
 हैं ? इनका वृत्तान्त हम लोगोंसे कहिये । ब्रह्मा
 बोले, पृथ्वी और स्वर्गकी प्रकाशित करनेवाले,
 तेजसे प्रज्ज्वलित, महासत्त्व, महापराक्रमी
 और महाबलसे युक्त जो ये दोनों ऋषि सबकी
 व्यापकी तथा अतिक्रम करके चले गये हैं, येही
 नरनारायण हैं । अपनी तपस्यासे तेजस्वी होकर
 ये मनुष्यलोकसे ब्रह्मालोकमें पहुँचे हैं । हे ब्रह्मान् ।
 इन्होंने कर्मसे सब लोकोंके आनन्दकी बढ़ाया
 है ; महाबुद्धिमान इन दोनों परम तेजस्वी
 महात्माओंमें परस्पर अभेद होनेपरमो देवता
 और गन्धर्वोंसे पूरित होकर राक्षसोंके विनाश
 करनेके निमित्त दो शरीरकी धारण
 किये हैं । ब्रह्माके उस वचनको सुनकर इन्द्र
 बृहस्पति आदि देवतोंके सहित वहाँ गये, जहाँ
 नर-नारायण तपस्या करते थे । वहाँ जाकर
 उस समय जा देवता और असुरोंमें महायुद्ध
 हो रहा था, उस महाभयसे कूटनेके निमित्त वर
 मागनेकी प्रार्थना करी है भरतसत्तम ! तब
 उन्होंने कहा, कि 'क्या प्रार्थना है, कहो ।
 ऐसा वचन सुनकर इन्द्र बोले, आपलोग मेरी

सहायता कीजिये । अनन्तर उन्होंने इन्द्रसे
 कहा, कि "तुम जो इच्छा करते हो, वह पूरी
 होगी ।" इन्द्रने उनके प्रतापसे शत्रुओंको जीता
 था । महातेजस्वी नरदेवने युद्धमें पौलोम और
 कालखञ्ज आदिक इन्द्रके सौ सौ हजार शत्रु-
 ओंका संहार किया था । लड़ाईके समय
 जम्भासुर नरदेवकी ग्रास करनेके निमित्त
 उद्यत हुआ था, तब इन्होंने घूमते हुए रथपर
 बैठकर भालेके सहारेसे उसका शिर काटा था ।
 इन्होंने समुद्रके पारमें जाकर साठ हजार
 निवातकवच नामक राक्षसोंको जीतके हिरण्य-
 पुर नगरको पीड़ित किया था । पराये
 देशोंके जीतनेवाले महाबाहु अर्जुनने इन्द्रके
 सहित सब देवतोंकोभी पराजित करके
 अग्निको दत्त किया था । इसी प्रकारसे दैत्य
 दानवोंका वध किया था । ऐसे महाबली और
 बड़े पराक्रमी इन दोनोंपुरुषोंका एकत्र समा-
 गम देखा । सुनते हैं, कि वेही प्रथम देव नर
 और नारायणने वीरोंमें अष्ट वासुदेव और
 अर्जुन रूपसे अवतार लिया है मनुष्य लोकमें
 इन्द्रके सहित सब देवता लोगोंभी इनको नहीं
 जीत सकने । कृष्णही नारायण और अर्जुन
 नरदेव जान गये हैं । एकही आत्मान दो
 होकर नर नारायण रूपका धारण किया है ।
 ये वीरताके कर्मोंसे अक्षय ध्रुव लोकोंमें व्याप्त
 हो रहे हैं, और जहाँपर युद्ध करनेका समय
 पहुँचता है, वहाँही बार बार अवतार लेते हैं ।
 इसी निमित्त वेदके जाननेवाले नारदन यदुर्वास
 योंसे यह सब वृत्तान्त वर्णन करते हुए कहा
 था, कि युद्धही इनका कर्तव्य कर्म है । हे
 तात दुर्योधन ! जब सनातन महात्मा कृष्ण
 अर्जुनको तुम एकही रथ पर बैठे देखोगे ;
 जब शङ्ख, चक्र, गदा हाथमें लिये हुए कृष्णको
 और गाण्डीव धनुषके सहित अर्जुनको अस
 शस्त्रोंसे युक्त देखोगे, तभी हमारी इन बातोंकी
 स्मरण करोगे । यदि यदि हमारी बातोंकी

न मानोगे, तो समझेंगे कि निश्चयही कौरवोंके नाशका समय उपस्थित हुआ है। हे तात ! धर्म और अर्थसे तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट होगई है ; तुम यदि मेरी बातोंको ग्रहण न करोगे, तो अनेक जाति-वन्धुओंको मरे हुए सुनीगे, सब कौरव लोग तुम्हारे ही मतके अनुवर्त्ती हैं, परन्तु तुम परशुरामजीके शापसे ग्रस्त होन सूत पुत्र कर्ण, सुबल-पुत्र शकुनि और अपने सहोदर भाई दुर्योधनके मत और बचनोंको कल्याणकारी समझते हो।

कर्ण बोले, हे पितामह ! तुमने मुझे जो कुछ बचन कहे, यह तुम्हारे कहने योग्य न थे, क्योंकि मैं निज धर्मसे पतित न होकर चातुर्धर्ममें स्थित हूँ। विशेषतः मुझमें ऐसा कोई दुश्चरित्र भी नहीं है, कि जिससे तुम मेरी निन्दा करोगे। धृतराष्ट्रके पुत्र लोग किसी समयमें भी मेरे किञ्चित् मात्र पापको नहीं जानते, मैंने दुर्योधनके सङ्गमें भी कभी बुरा आचरण नहीं किया, बल्कि यही कल्याण साधनका कार्य करूंगा, कि युद्धमें सब पाण्डवोंको मार डालूंगा। पहिले जिनके साथ विरोध हो चुका है, सज्जन लोग उनके सङ्ग फिर किस प्रकारसे रुझ कर सकते हैं ? राजा धृतराष्ट्रके प्रिय-कार्योंको करना मेरा अत्यन्त कर्त्तव्य कर्म है और दुर्योधनकेभी प्यारे कामोंको करना उचित है, क्योंकि वेही राज्यपद पर प्रतिष्ठित हुए हैं।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, कर्णको ऐसी बातोंको सुनकर शान्तनुपुत्र भीष्म महाराज धृतराष्ट्रसे बात करते हुए फिर यह बचन बोले, कि कर्ण “पाण्डवोंको मारूंगा” यह कहकर सदा अपनी बड़ाई किया करता है ; परन्तु यह महात्मा पाण्डवोंके सौरहवें अंशका एक अंशभी नहीं है। तुम्हारे दुराचारी पुत्रोंको जो भारी अनर्थसे पड़ना होगा, वह इसी सूतपुत्रका कर्म जानता चाहिये। तुम्हारा पुत्र मन्दबुद्धि दुर्योधन

इसीका सहारा लेकर महाबली, शत्रुओंके जीतनेवाले देवपुत्र पाण्डवोंको अपमानित किया करता है। पाण्डवोंने अकेलेही जिन कठिन कर्मोंको किया है, क्या कर्ण कभी भी वैसे कर्मोंको करनेमें समर्थ हुआ है ? विराट नगरमें जब अर्जुनने अपने बल बिक्रमको प्रकाश करके इसके प्यारे भाईको मारा था, उसे देखकर उस समय इसने क्या किया था ? अर्जुनने सब कौरवोंको जिस समय अकेलेही जीतकर अच्छी प्रकारसे सबको मोहित और मूर्च्छित करके सबके वस्त्रोंको बलपूर्वक हरण किया था, तब क्या यह विदेशमें गया था ? वहां पर क्या यह उपस्थित नहीं था, घोषयात्रामें जब गन्धर्वोंने तुम्हारे पुत्रोंको हरण किया था, तब यह सूतपुत्र कहां था, जो इस समय बैलकी भांति आस्फालन कर रहा है। वहापर भी महात्मा भीष्म अर्जुन, नकुल और सहदेवनेही आकर उन गन्धर्वोंको जीतकर दुर्योधनको हड़ाया था। हे भरतर्षभ ! इस व्यर्थ बड़ाई करनेवाले धर्म और अर्थके लोपक कर्णकी ऐसीही वहुत भिन्न बातें सुनी जाती हैं ; इससे तुम इन सब बातोंका विचार करके अपने मङ्गल कामनाके निम्न कार्य करो।

भीष्मकी बात सुन महात्मा भरद्वाजपुत्र सब राजाओंके बीचमें उनके वचनोंकी प्रशंसा करते हुए महाराज धृतराष्ट्रसे यह बचन बोले, कि अर्थ-लिप्सुओंके वचन अनुसार कार्य करना जापकी उचित नहीं है। युद्धके पहिले पाण्डवोंसे मेल करनाही मैं कल्याणकारी समझता हूँ। सज्जनने अर्जुनको कही हुई जिन सब वचनोंकी सभामें सुनाया है, उन सबकीही मैं स्वीकार करता हूँ, अर्जुन अवश्य उन वचनोंके अनुसार कार्यको पूराकरेगा, क्योंकि त्रिलोकमें उसके समान धनुर्धारी दूसरा कोईभी विद्यमान नहीं है।

महाराज धृतराष्ट्र द्रोण और भीष्मके अर्थसे भरे हुए वचनोंका अनादर करके सञ्जयसे पाण्डुओंकी बातोंकी पूछने लगे । उन्होंने जब भीष्म और द्रोणाचार्यकी बातोंका पूरा उत्तर न दिया उसी समय कौरव लोग अपने जीवनसे निराश होगये ।

४६ अध्याय समाप्त ।

धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! हमारी प्रीतिके निमित्त जो सब सेना आकर इकट्ठी हुई है, उसको सुनकर धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने क्या कहा ? भावी युद्धके लिये वे कैसा बन्दीबस्त कर रहे हैं ? भाई और पुत्रोंमें कौन कौन उनकी आज्ञा पानेके निमित्त मुह जोह रहे हैं । मेरे चक्षुबुद्धिवाले पुत्रोंके ठगने और अपमान करने पर कुपित हुए धर्मपुत्र धर्मचारी राजा युधिष्ठिरको “शान्ति अबलम्बन कीजिये” ऐसा वचन कहके युद्धसे कौन निवारण कर रहा हैं ?

सञ्जय बोले, हे महाराज ! पाण्डुओंके सहित पाञ्चाल लोग राजा युधिष्ठिरका मुह जोहते हुए ठहरे हैं और वे भी सब पर अनुशासन कर रहे हैं । पाण्डव और पाञ्चालोंका रथसमूह अलग अलग आकर राजा युधिष्ठिरकी प्रसन्न कर रहा है । उदय होते हुए प्रभात कालके सूर्यके समान पाण्डव और पाञ्चाल योद्धा कुन्तीनन्दन महाराज युधिष्ठिरकी स्तुति और प्रशंसा करते हैं, ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्योंकी कुमारो कन्याये युद्धके निमित्त उद्यत हुए युधिष्ठिरके देखनेके निमित्त आके इकट्ठी होती है ।

धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! पाण्डव लोग पाञ्चाल तथा दूसरे सोमक वशियोंकी, जिन जिन सेनाओंके सहारे हम लोगोंसे युद्ध करनेका निश्चय करते हैं, उसको तुम मुझसे वर्णन करो ।

वैशम्पायन मुनि बोले, कि सञ्जय कौरवोंकी सभामें धृतराष्ट्रके प्रश्नोंको सुनकर, कुछ सोचकर बारम्बार कठिनतासे लम्बी सांस लेते हुए दैवात् सूक्ष्मित हो गये ! तब सभाके बीच कौरवोंके समीप बैठे हुए महाराज धृतराष्ट्र विदुरने कहा, कि हे महाराज ! सञ्जय सूक्ष्मित होकर पृथ्वीमें गिरके बुद्धिहीन और चेतारहित होनेसे कुछ बात नहीं कह सकते हैं ।

धृतराष्ट्र बोले, सञ्जयने महारथ कुन्तीपुत्रोंसे भेट की थी । मालूम होता है, कि उन पुरुषव्याघ्रोंने इनके चित्तको बद्धत उत्तेजित कर दिया है ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, सञ्जय कौरवोंसे आश्वासित होकर सावधान हुए और उठकर सभामें कौरवोंके समीप महाराज धृतराष्ट्रसे कहने लगे, हे राजेन्द्र ! मैंने महारथ पाण्डुओंकी मत्स्यराजके मन्दिरमें ठहरे हुए प्रवासके कारण शरीरसे कुछ अवलोकन किया है । हे महाराज ! पाण्डुओंने जिन लोगोंके सहित आपसे युद्ध करनेका निश्चय किया है, उनका नाम सुनिये । वह बुद्धिमान धृष्टद्युम्नके सहित आपसे युद्ध करनेकानिश्चय करते हैं । जो धर्मात्मा काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय और अर्थसे भी कभी सत्यको नहीं छोड़ते, धर्मात्माओंमें अष्ट महात्मा जो धर्म विषयमें प्रमाण स्वरूप हैं, उन अजातशत्रु युधिष्ठिरके वशमें पाण्डव लोगोंने आपसे युद्ध करनेका किया है । जिसके बाहुबलके समान पृथ्वीमें कोई भी वीर विद्यमान नहीं है, जिस धनुर्धारीने सब राजाओंकी अपने वशमें किया था, जिन्होंने काशी मगध, अङ्ग और कलिङ्ग देशवासियोंकी युद्धमें जीता था, उसी भीमसेनके सहित पाण्डव लोग तुमसे युद्ध करनेका निश्चय करते हैं । जिसके बलवीर्यके प्रभावसे युधिष्ठिरादि चार मुख मनुष्य-यष्ट वीर जतुगृहसे सहस्राभूमिके गम्भी

निकाले गये थे, जिन्होंने मनुष्य-भक्षी हिड़म्बर-राक्षससे उन लोगोंको बचाया था, उसी भीम-सेनके सहित पाण्डव तुमसे युद्ध करनेका निश्चय करते हैं। सिन्धुराज जयद्रथने जब द्रौपदीको हरण किया था, उस समय जिस कुन्तीपुत्र वक्रोदरने उसे कुड़ाया था, और जिन्होंने वारणावत नगरमेंसे प्रायः जलते हुए सब पाण्डवोंको मुक्त किया था, पाण्डव लोग उसी भीमसेनके सहारे तुमसे युद्ध करनेका निश्चय करते हैं। द्रौपदीकी प्रीतिको पूरा करनेके निमित्त जिन्होंने महा भयङ्कर गन्धमादन पर्वतके शिखर पर जाकर क्रोधवश नामक राक्षसोंको मारा था, जिसकी दोनों भुजाओंमें दश-हजार हाथियोंका बल है, उसी भीमसेनके सङ्ग पाण्डवोंने तुमसे युद्ध करनेका निश्चय किया है। जिस वीरने पहिले अग्निको तप्त करनेके निमित्त कृष्णकी सहायतासे इन्द्रकी जोत लिया था; जिसने साक्षात् शूलधारी उमापति महादेवको युद्धसे प्रसन्न किया था, जिस धनुषधारीने सब राजाओंकी बशीभूत किया था, उसी अर्जुनकी सङ्ग लेकर पाण्डव लोग तुमसे युद्ध करनेका निश्चय करते हैं। जिन्होंने स्त्रीच्छोंसे भरे हुए पश्चिम दिशाकी जोत कर उन्हें अपने वशवर्त्ती किया था, वेही विचित्र-वीर नकुल वहांपर योद्धारूपसे निश्चित किये गये हैं। हे कुरु-अष्ट ! पाण्डवोंने उसी धनुर्दारी वीरवर सुकुमार और सुन्दर माद्रीपुत्र नकुलके सहित तुमसे युद्ध करनेका निश्चय किया है। जिन्होंने काशी, मगध, अङ्ग और कलिङ्ग देशोंको पहिले युद्धमें जीता था, उसी सहदेवके सहित पाण्डव लोग तुमसे युद्ध करनेका निश्चय करते हैं। हे राजन् ! पृथ्वीमें अश्वत्थामा, धृष्टकेतु, रुक्म और प्रद्युम्न जिसके बलके समान हैं, माद्रीके पानन्दवर्द्धन उसी पाण्डवोंके छोटे-भाता सहदेवके सङ्ग तुम्हें महा भयङ्कर युद्ध करना

होगा। हे भरतर्षभ ! जिनने पहिले काशी-राजकी कन्या होकर मरण पर्थन्त भीष्मके बधकी इच्छा करके कठिन तपस्या की थी, अनन्तर पाञ्चाल राजाकी मन्दिरमें कन्या रूपसे जन्म लेकर देवात् पुत्रपत्नको पाया है, जो स्त्री और पुरुषोंके सब गुण और अवगुणोंको भली भांति जानते हैं, युद्धदुर्मद जो पाञ्चालपुत्र कलिङ्गराजकी युद्धके निमित्त मिले थे, उसी महाधनुषधारी उग्रमूर्ति शिखण्डीके सहित पाण्डव लोग तुमसे युद्ध करनेका निश्चय करते हैं। भीष्मके मारनेके निमित्त बनके यक्षने जिसकी स्त्रीसे पुत्र बनाया है, उसी कालके समान शिखण्डीके सङ्ग पाण्डव लोग तुमसे युद्ध करनेका निश्चय करते हैं। वेकाय-देशीय महा-धनुर्दारी और वर्मसे युक्त शूरवीर जो पांच भाई हैं, उनके सङ्ग भी पाण्डवलोग तुमसे युद्ध करनेका निश्चय करते हैं। जो लम्बी भुजावाले, शीघ्र अस्त्र चलानेमें निपुण, धैर्यवान्त और सत्य विक्रमी हैं, उस वृष्णिवीर युयुधानके सहित पाण्डव लोग तुमसे युद्ध करनेका निश्चय करते हैं। जो बल, बौर्यमें कृष्णके समान और इन्द्रिय निग्रहमें युधिष्ठिरके तुल्य है, उसी अभिमन्युके सहित पाण्डवोंने तुमसे युद्ध करनेका निश्चय किया है। अज्ञात-वासमें जिन्होंने पाण्डवोंकी रक्षा की थी, उसी महात्मा विराटके सङ्ग तुमको युद्ध करना होगा। काशीपति महारथ राजा वाराणसी धाममें प्रतिष्ठित है, वे भी पाण्डवोंके योद्धा हुए हैं, पाण्डवोंने उन्हीं काशीराजके सङ्ग आपसे युद्ध करनेका निश्चय किया है। महायशस्वी, महावीर्यवान्, महारथ शिशुपालपुत्र धृष्टकेतु क्रुद्ध होनेसे संग्राममें कालस्वरूप होजाते हैं, जिन्होंने एक अक्षौहिणी सेनाके सहित युधिष्ठिरको सहारा दिया है, उन्हीं चेंदीराजके सङ्ग पाण्डव लोग तुमसे युद्धमें मिलनेका निश्चय करते हैं। बालक होकर भी युद्धमें दुर्जय, विपत्ति सर्पकी तरह भयङ्कर

भूर्तिको धारण करनेवाले, द्रौपदी-पुत्रोंके सहित पाण्डव लोग तुमसे युद्ध करनेका निश्चय करते हैं । देवताओंमें इन्द्रके समान जिन्होंने पाण्डवोंकी संहारा दिया है, पाण्डवलोग उन्हीं कृष्णके सङ्ग आपसे युद्धमें मिलना निश्चय करते हैं । हे भरतर्षभ ! उन्हींने चेंदिपतिके भ्राता शरभ और करवर्षके सहित भी आपसे युद्ध करनेका निश्चय किया है । जरासन्धके पुत्र सहदेव और जयत्सेन पाण्डवोंके युद्धकार्यके निमित्त निश्चित हुए हैं । अत्यन्त बलसम्पन्न घिरे हुए महा तेजस्वी द्रुपदराज भी पाण्डवोंके निमित्त अपने प्राणको समर्पण करके युद्धके निमित्त तैयार हैं । इनको छोड़कर और भी पूरव तथा उत्तर देशके दूसरे बल्लतसे राजाओंका संहारा लेकर धर्मराज युधिष्ठिर संग्रामके निमित्त तैयार हैं ।

५० अध्याय समाप्त ।

धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय । तुमने जिन लोगोंका नाम बतलाया है, वे सबही सहा-उत्साहसे भरे हैं, परन्तु वे सब लोग मिलके एक तरफ रहें, और भीस उन सब लोगोंके समान अकेलाही एक ओर रह सकता है । हे तात । जैसे व्याघ्रसे, महा-रुखको भय लगता है, वैसेही भीमसेनसे मुझे अत्यन्त भय लगता है । सिंहसे जैसे पशुओंको डर लगता है, उसी भांति वृकोंदरसे भयभीत होकर लखी और गर्भ सांस लेते हुए सुभी सारी रात नींद नहीं आती । उस इन्द्रके समान तेजस्वी महाबाहु भीमके सङ्ग युद्धमें उसके बलकी सह सके, ऐसा वीर मैं इस सेनाके बीचमें किसीको नहीं देखता । वह अमर्षण, दृढ बैर, टेढ़ा स्वभाव, बल्लदर्शी, संहारक, सहावेग, महा-उत्साह, महाबाहु और महाबलसे युक्त कुन्तीपुत्र कुरु-श्रेष्ठ भीमसेन, युद्धमें दण्डधारी यमराजके समान गदा धारण करके अत्यन्त मोहग्रस्त मेरे पुत्रोंकी

नाश कर देगा । मैं अपने अन्तःकरणसे ब्रह्म-दण्डके समान उसकी लोहभयी अष्ठकोनसे युक्त सीनेके तारोंसे खिंची हुई भयङ्कर गदाको देख रहा हूँ । युवा अवस्थाका बल पाकर जैसे शिंघ मृगोंके झुण्डमें घूमता है, वैसेही भीम सेनभी मेरी सेनामें घूमेगा । वह बल्लत भोजन करनेवाला भीमसेन, अकेलाही बाल्य-अवस्थामें भी मेरे पुत्रोंके ऊपर कठिन पराक्रम प्रकाश करता था । बाल्य-अवस्थामें भी वह युद्धमें प्रवृत्त होकर मतवाले हाथीके समान दुर्धन आदि मेरे पुत्रोंको मर्दन करता था, उसकी स्मरण करनेसे अबभी मेरा हृदय कांपता है । हमारे पुत्र सदाही उसके बलकी देखकर दुःखी रहते थे, इससे वही महापराक्रमी भीमसेन गृहविच्छेदका कारण हुआ है । मुझे ऐसा दीखता है कि भीम क्रोधसे मूर्च्छित होकर युद्धमें मनुष्य, हाथी, घोड़े और सम्पूर्ण सेनाव-ग्रास कर रहा है । हे सञ्जय ! अस्त्रोंके बल नेमें द्रौणाचार्य और अर्जुनके समान, शी चलनेमें वायुके समान, और क्रोधमें रुद्र-समान युद्ध दुर्मद शूरवीर भीमसेनको कौ मनुष्य संग्राममें मार सकता है ? उस शत्रु-संहारकारी भीमने उसी समयमें मेरे पुत्रोंको नहीं मार डाला, इसीको मैं अपना परम लाभ समझता हूँ । जिस भीमने पहिले महा पराक्रमी यक्ष और राक्षसोंका बध किया है, उसके बल और वेगको मनुष्य कैसे सह सकेंगे ? हे सञ्जय । वह आलस्य अवस्थामेंभी कभी मेरे वशमें नहीं हुआ था, तब इस समय मेरे कुमार्गी पुत्रोंसे क्लेश पाकर अब कैसे मेरे वशमें होगा । वह अत्यन्त जिटुर और महाक्रोधी है । यदि हारभी जायगा, तभी कभी न नयेगा, जो भीम क्रोधसे भरा हुआ सर्वदा टेढ़ी चाली देखता रहता है, और जिसकी दोनों भौहोंका मध्यभाग सिकुड़ा रहता है, वह किस प्रकार से शान्ति अवलम्बन कर सकता है ? भीमका जैसा

बल, बोधे और रूप हैं, उसे मैंने पहिलेही उसकी बालक अवस्थामें व्यासजीके मुखसे यथार्थ और इदृनिश्चय पूर्वक सुना था, कि “भीम अत्यन्त पराक्रमी, महाबली, गौरवर्ण, शाल-वृक्षके समान जंचा, कदमें घोड़े और हाथियोंसेभी अधिक है। बल्लत धोमे स्वरसे बोलन-वाला और मधुवर्णके समान उसके नेत्र हैं। वह प्रचण्ड-मूर्ति, महा पराक्रमी-भीमसेन युद्धमें क्रोधित होकर लोहमयी गदा लेकर रथ, हाथी, घोड़े और मनुष्योंको मारेगा, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है। हे तात ! पहिले मैंने उसके प्रतिकूल आचरण करके उस महाक्राधी प्रहार करनेवालोंमें अष्ट भीमका अपमान किया है, इस समय मेरे पुत्र लोग उसको सीनेसे खिचो हुई लाहमयी अठकानो महाभयङ्करो गदाके प्रहारका कैसे सह सकेंगे ? हे तात ! मेरे पुत्र लोग महाभयङ्कर असंख्य बाणोंसे विगवान भीमसेन रूपी महासमुद्रसे कैसे पार होंगे ? मैं बार बार अपने पुत्रोंको निवारण करता हूँ, परन्तु वे अभिमानी महामूढ़ निर्बुद्धि लोग कुछभी नहीं मानते। वे लोग केवल मधुहोको देखते हैं, किन्तु उसके निकटहीसे जा, महाभयकी सन्भावना है उसको कुछभी नहीं विचारते हैं। जो लोग उस नर-रूपी यमराजसे युद्ध करनेको जायगे, वे लोग भीमसे ऐसे मारे जायगे जैसे सिंहसे हरिणोंका समूह मारा जाता है। हे तात ! सोनेके तारोंसे खिचो हुई, चार हाथ लम्बी, छद्मानेसे युक्त, बल्लत तेजसे भरी हुई, दुःखका उत्पन्न करने-वाला गदाके चलनपर मर पुत्र उसके वेगका कैसे सह सकेंगे ? जिस समय भीम गदा लेकर हाथियोंके मस्तकको तोड़िगा, और भयङ्कर शब्द करता हुआ हाथियोंको और दाड़िगा, तथा रथके मार्गको रोकके मुख्य मुख्य धोरोको मारेगा, उस समय जलती हुई अग्निके समान उसके समीपसे क्या कोई मनुष्य कुटकारा

पावेगा ? महाबाहु भीम मेरी सेनाको भगाकर मार्ग बनावेगा और गदा हाथमें लेकर नाचता हुआ प्रलयकालका सामान दिखलावेगा। हे सञ्जय ! फूले हुए वृक्षोंके तोड़नेवाले मतवारे हाथीकी भांति भीमसेन संग्राममें मेरे पुत्रोंकी सेनामें प्रवेश करेगा, रथोंको रथी और सारथीसे सूना कर देगा ; घोड़े, हाथी और रथको ध्वजाओंको काटेगा, तथा रथी और गजारोहियोंको पूरी तरहसे पीड़ित करेगा ; वह हमारी सेनाका इस प्रकारसे भगा देगा, जैसे गङ्गाके बड़े हुए प्रवाहमें किनारेके सब वृक्ष टूट टूटके बह जाते हैं। जिस वीर भीमसेनने कृष्णकी सहायतासे जरासन्धके अन्तःपुरमें जाकर उसको मारा था ; उस भीमके डरसे भयभीत होकर हमारे पुत्र, नौकर और दूसरे राजा लोग अवश्यही इधर उधर भाग जायगे। हे सञ्जय ! मगधराज बलवानोंमें अष्ट बुद्धिमान् जरासन्धने सब पृथ्वीके राजाओंकी अपने वशमें करके उन्हें पीड़ित किया था। भीष्मके प्रतापसे कौरव, नीतिज्ञ अय्यक और वृष्णी लोग जो उसके वशवर्त्ती नहीं हुए, यह केवल दैवकी कृपाही समझनी चाहिये। महाबाहु भीमसेनने इस प्रकारके महावीरके स्थानमें जाकर, बिना कुछ शस्त्र ग्रहण कियेही केवल बाहुबलके सहारसे उसे मारा था, इससे बढ़के दूसरी और कौनसी बात होगी ? भीमसे कौन अधिक बलवान हो सकता है ? हे सञ्जय ! युद्धके समयमें वह महाविपैले सर्पकी भांति विष उगलता हुआ, बल्लत दिनसे रुके हुए अपने बल और तेजपुञ्जको मेरे पुत्रोंके ऊपर अवश्य त्याग करेगा। जैसे देवताके राजा इन्द्र वज्र लेकर दानवोंकी सेनाका नाश करते हैं, वैसेही भीमसेनभी गदा लेकर मेरे पुत्रोंको नाश कर देगा ; न सहने योग्य, रोकनेमें न रुकने-वाला, टेढ़ा-झुभाव, विगवान, महापराक्रमी, लालनठवाने भीमसेनको, जैसे मैं अपने समुख

आया हुआ देखता हूँ। वह वृकोदर गदा, धनुष, रथ, कवचसे रहित हीनपरभी, यदि अपनी दोनों भुजाओंके बलसेही युद्धमें प्रवृत्त हो, तौभी कोई बलवान पुरुष उसको अगाड़ी नहीं ठहर सकेगा। भीष्म, द्रोण और ब्राह्मण-श्रेष्ठ कृपाचार्यभी मेरी भाति बुद्धिसेयुक्त भीमके बलको जानते हैं। ये मनुष्योंमें श्रेष्ठ महावीर पुरुष युद्धमें मरनेसे श्रेष्ठ व्रत समझते हैं, इस निमित्त युद्धकी तैयारी करके मेरी सेनाके अगाड़ी खड़े होंगे। हे सञ्जय ! प्रारब्ध सब ठीक सबकोही कम, समान-अथवा अधिक बलवान है, विशेष करके पुरुषोंके लिये तो सुखही है। क्योंकि मैं पाण्डवोंकी युद्धमें निश्चय जय होगी, इस बातको जानता हूँ, तौभी अपने पुत्रोंको नहीं रोक सकता हूँ। भीष्म आदि ये सब महाधनुषधारी वीर लोग इन्द्रसे प्रगट हुए पुराने मार्ग अर्थात् युद्धकर्मकी करके राजाओंके योग्य यश और कीर्तिकी रक्षा करते हुए, महासंग्राममें अपने प्राणोंको छोड़ेंगे। हे तात ! इन लोगोंके समीप जैसे मेरे पुत्र हैं, वैसेही पाण्डव लोगभी हैं, ये सब लोग भीष्मके पौत्र (नाती) और द्रोणाचार्य तथा कृपाचार्यके शिष्य हैं, तब ये तीनों बूढ़े महात्मा पुरुष मेरे यद्वासे जो कुछ अपनी अभिलाषित वस्तु पाते वा पाचुके हैं, उसको निमित्त अपनी स्वाभाविक उदारतासे युद्धमें अवश्यही प्रत्युपकार करनेके निमित्त पुरुषार्थ करेंगे। क्योंकि पण्डित लोग कहते हैं, कि क्षत्रियधर्मकी ग्रहण करनेवाले शस्त्रधारी क्षत्रियोंको युद्धमें मरनाही सबसे उत्तम है। इससे हे सञ्जय ! जो सब लोग पाण्डवोंसे युद्ध करनेकी इच्छा करते हैं, उनकेही निमित्त मैं शोक करता हूँ। अहो ! विदुरन मुक्तकण्ठसे कहकर जिस भयको सूचना दी थी, वही भय अब आकर उपस्थित हुआ है। हे तात ! ज्ञान दुःखको नाश करनेवाला है, यह मेरे विचारसे सिद्ध नहीं

होता है, क्योंकि यह आनेवाला भावी दुःख ज्ञानकीभी मात करता है। लौकिक वृत्तान्तोंकी जाननेवाले जीवन्मुक्त ऋषि लोग भी जब सुखमें सुखी और दुःखमें दुःखी होते हैं, तब पुत्र, कलत्र, पौत्र, राज्य और वन्धुबान्धवोंसे युक्त और नाना विषयोंमें सहस्रों भांतिसे आसक्त रहकर मैं जो दुःखोंमें दुःखी होऊँगा इसमें कौनसी विचित्रता है ? यह जो बड़ा भारी सन्देह उत्पन्न हो रहा है, उसमें क्या मेरा कल्याण होगा ? मैं पूरी रीतिसे अनुसन्धान करकेभी केवल अन्तमें कौरवोंका विनाशही देखता हूँ। जुवेका खेलनाही कौरवोंके लिये महाविपदमें पड़नेका कारण मालूम होता है। ऐश्वर्य चाहनेवाला, मन्दबुद्धि दुर्योधनने केवल लोभहीके वशमें होकर इस पाप कर्मकी कराया था। सुभी मालूम होता है, यह शीघ्र अदल बदल होनेवाली कालचक्रका घूमनाही धर्म है। इस कालचक्रमें मैं ऐसा फँस रहा हूँ कि उससे छुटकारा नहीं पा सकता। हे सञ्जय ! इस समय मैं कहाँ जाऊँ ? कहाँ ? किस प्रकारके कार्योंकी कर्त्तव्य ? ये मन्दबुद्धि कौरव लोग शीघ्रही कालके वशमें होकर नष्ट होजायेंगे। हे तात ! जब मेरे सौ पुत्र मारे जायेंगे, तब मैं परवश होकर कैसे स्त्रियोंके रोदनको सुनूँगा। हा ! किस प्रकारसे मेरी मृत्यु होगी ? सन्ध्या कालमें वायुकी सहायतासे बड़ो जड़ अग्नि जिस प्रकारसे सूखी जड़ तण और लकड़ियोंको भस्म कर देती है, वैसेही भीमसेन अर्जुनके साथ मिलकर मेरे पुत्रोंकी मार डालेगा।

५१ अध्याय समाप्त ।

धृतराष्ट्र बोले, जिसकी झूठी बात कभीभी सुननेमें नहीं आती, और अर्जुन ऐसे जिसके वीर योद्धा हैं, उस युधिष्ठिरकी तीनों भुवनके राज्यकी भी प्राप्ति हो सकती है।

मैं ऐसे किसी मनुष्यकोभी नहीं देखता जो गाण्डीवधारी अर्जुनके विरुद्ध अस्त्र धारण करके उसका सामना करनेमें समर्थ हो। जिस समय अर्जुन गाण्डीव धनुषको लेकर प्रकाशमान हृदयको छेदनेवाले सब वाणोंको छोड़ने लगेगा, उस समय कोईभी उसके समान बलवान् होकर उसे नहीं रोक सकेगा। सब शस्त्रोंके जाननेवाले बलवानोंमें अष्ट, युद्धमें कभी पीछे न हटनेवाले, बल और वीर्यसे भरे हुए, पुरुषोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य और कर्ण याद उसके सन्मुख संग्राममें गमन करें, तो जगतमें हमारी सेनाके जोतनको सबकी आशा होगी, पर यथार्थमें हमारी विजय न होगी, क्योंकि कर्ण बल्लतही दयालु शापग्रस्त और असावधान है, और द्रोणाचार्य बूढ़े तथा दोनों ओरके गुरु हैं। इधर अर्जुन महाबलवान्, दृढ़ धनुषधारी और सावधान चित्त हैं। ये सब लाग शूरवीर और सब, शस्त्रोंके जाननेवाले, तथा बल्लतही यश और बढ़ाईको पाये हुए हैं। इससे इन लोगोंका बल्लतही काठन युद्ध यागा, और ये कभी भी पीछे न हट सकेंगे। ये लाग देवताओंके ऐश्वर्यकोभी त्याग सकते हैं, पर विजयका नहीं छोड़ सकते। इससे द्रोण, कर्ण, अथवा अर्जुनके मार जानेसे युद्धमें शान्ति हानी सम्भव है, पर अर्जुनको मारनेवाला तथा जोतनेवाला कोईभी विद्यमान नहीं है। जा मनुष्य मेरे मन्दबुद्धि पुत्रोंके निमित्त अपने सब उद्याग और सेनाको सहायतासे युद्ध करनेके निमित्त तैयार है, उसके क्रोधको शान्ति इस समय कैसे हो सकती है ? और दूसरे बल्लतसे मनुष्य अस्त्र विद्याको जानते हैं, सबको जीतते हैं, और विजयी कहलाते हैं ; पर अर्जुनहीकी अकेली (इकसर) विजय सुननेमें आती है। हे सूत ! तैंतीस वर्ष बीता होगा, कि अर्जुनने खाण्डव वनमें अग्निको तप्त किया था, और उसी समयमें सब देवतोंकोभी जीता था, अधिक क्या कहें,

मैंने कहीं भी उसकी हार नहीं सुनी। हे तात ! समान शील और उत्तम चरित्रसे भरे हुए कृष्ण जिसके युद्धमें सारथी बनेंगे, इन्द्रके विजयकी तरह उसकी अवश्यही जय होगी। सुनता हूं कि अर्जुन रथी, कृष्ण उसके रथपर सारथी और रोदेसे चढ़ा हुआ गाण्डीव धनुष यह तीनों तेजसे भरे हुए पदार्थ एकही स्थानपर मिले हैं। हम लोगमें वैसा धनुषभी नहीं है ; और योद्धाभी नहीं है। परन्तु दुर्योधनके वशवर्ती मन्दबुद्धि, भाग्यहीन लोग इन बातोंको नहीं जानते हैं। हे सञ्जय ! शिरपर गिरनेसे जलती हुई बिजलीभी बाकी छोड़ती है, पर अर्जुनके धनुषसे कूटे हुए बाण कुछभी शेष नहीं रहने देते। सुभकी प्रत्यक्षही ऐसा देखता है, कि अर्जुन अपने बाणोंको छोड़ता हुआ हमारी सेनाका वध कर रहा है, और बाणोंकी अत्यन्त वर्षा करके देहसे शिरको काट काट गिरा रहा है, गाण्डीव धनुषसे कूटे हुए अग्निके समान सब वाण तेजसे भरे हुए मेरी सेनाको जला रहे हैं, और अर्जुनके रथके शब्दको सुनकर हमारी सेना मारे डरके व्याकुल होकर सब दिशाओंमें इधर उधर भाग रही है। जिस प्रकारसे प्रचण्ड अग्नि जलती हुई बड़े वेगसे तण आदिकी जला देती है, वैसीही अर्जुनके अस्त्रोंको अग्निभी मेरे पुत्रोंको जला देगी। हे तात ! आतताई अर्जुन जब अनेक चोखे और उत्तम पानीसे बुझे हुए वाणोंको छोड़ता हुआ विधाताके भेजे हुए सबके नाश करनेवाले कालके समान न सहने योग्य होजायगा, जब सुननेमें आवेगा कि कौरवोंके घर, युद्धके आगे और उनके चारों ओर अशुभ फल देनेवाली घटनाये हो रही हैं, तभी कौरवोंके विध्वंसका समय आवेगा।

धृतराष्ट्र बोले, बलवान पाण्डव लोग जैसे सब कार्योंमें निपुण हैं, वैसेही उनके सहायक लोगभी अपने प्राणोंको अर्पण करके युद्ध करनेको तैयार हैं। हे तात ! शत्रुआको औरके पाञ्चाल केकय, मस्त्य, मगध आदि देशोंके बलवान राजाओंका वृत्तान्त जो तुमने अभी वर्णन किया है, वे इच्छा करनेसे इन्द्र समेत इस पृथ्वीको अपने वशमें कर सकते हैं ; जितेन्द्रिय पुरुषोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण उनके विजयके निमित्त निश्चय करते हुए वहाँपर विराजमान है। जिन्होंने थोड़ेही समयमें अर्जुनके समीपमें सब शस्त्र विद्याओंको पढ़ा था, वही शनिवशो सात्यकी बाणोंकी बीजको भांति युद्धमें बाँवेंगे। पाञ्चालराज-पुत्र, कठिन कर्म्मोंकी करनेवाला धृष्टद्युम्नभी मेरी सेनासे युद्ध करेगा। युधिष्ठिरके क्रोध और अर्जुनके पराक्रम तथा नकुल और सहदेवसेभी मुझे बड़तही डर लगता है। हे सञ्जय ! वे मनुष्येन्द्र जिस समय अमानुषी कर्म्मोंकी करते हुए सरजालका विस्तार करेंगे, उस समय मेरी सेना किसी प्रकारसे भी उससे नहीं निस्तार पा सकेगी। इसी निमित्त मैं इतना आक्षेप कर रहा हूँ। पुरुश्रेष्ठ पाण्डु-नन्दन युधिष्ठिर देखनेके योग्य, मनस्वी लक्ष्मीवान, ब्रह्मतेजसे युक्त, मेधावी, सुकृतबुद्धि, धर्मात्मा मित्र, नौकर, युद्ध करने योग्य वीरोसे युक्त, महारथ, महावीर सहोदर भाइयों ससुर वर्गसे उत्पन्न धृष्टद्युम्न आदिक समेत धैर्यशाली, सरल स्वभाव, विनय सम्पन्न, लज्जावान, सत्यपराक्रमी बड़त शस्त्रोंको जाननेवाले, कृतात्मा, हृदयसेवी और जितेन्द्रिय हैं। उस सब गुणमें पूर्ण जलते हुए प्रचण्ड अग्निके समान पाण्डवस्वामी अग्निमें कौन बुद्धिहीन और चेतारहित पुरुष पतझड़को भांति गिर सकता है ? जलनेवाली वस्तुओंके मिलनेसे जैसे थोड़ी प्रग्निभी प्रबल होजाती है, वैसेही तपस्यासे कृश होनेपर भी ऊँचे स्वभाववाले

राजा युधिष्ठिरको मैंने कपट व्यवहारोंसे रगा है ; इस लिये वे युद्धसे मेरे बुद्धिहीन पुत्रोंका नाश कर देंगे। हे क्रौरवगण ! उन लोगोंके सङ्ग युद्ध न करनाही मैं कल्याणदायक समझता हूँ, इस समय तुम लोगभी अच्छी प्रकारसे मालूम कर लो। युद्धमें सम्पूर्ण लुलका नाश हो जायगा, इससे यदि युद्ध न करना तुम लोगोंको उत्तम जँचता हो, तो मैं शान्तिके निमित्त यत्न करूँ। यही मेरी बुद्धिकी सोचा और अन्त है, और इसीसे मेरे मनमें शान्ति हो सकती है। मुझको दुःख पाता हुआ देखकर युधिष्ठिर कभी भी उपेक्षा न करेगा क्योंकि वह जब अधर्म्मसे कलह उत्पन्न होनेके विषयमें मुझे ही कारण कहके निन्दा करते हैं, तब प्रार्थना करनेसे कभी भगड़में प्रवृत्त न होंगे।

५३ अध्याय समाप्त ।

सञ्जय बोले, हे महाराज ! आपने जो कुछ कहा वह सबही सत्य है। युद्ध होनेसे गाण्डीव धनुषसे जो क्षत्रियोंका नाश होगा, वह प्रत्यक्ष ही देख पड़ता है, परन्तु सब दिन धीरे स्वभावसे रहकर और अर्जुनके सब तलोंको जानकरभी जो आप पुत्रोंके वशमें होकर चलते हैं, इससे मैं नहीं समझ सकता हूँ। हे भरतर्षभ ! आप पहिलेहीसे पाण्डवोंका ठगते चले आते हैं, इससे सब दिन अपराध करके अब यह समय आपको विलाप करनेका नहीं है। हे महाराज ! जाज्येष्ठतात, श्रेष्ठ सहृद और पृथ्वीरोतिसे सावधान चित्त है, उनका हित-साधन करनाही सब भातिसे कर्त्तव्य कर्म्म है। बुरा करनेवाला मनुष्य कभीभी गुरु नहीं कहा जाता। जुएके समयमें आपके पाण्डवोंकी हानि हुआ सुनकर “यह जोता गया, यह मिला”, कहकर बालककी भांति हंसो की थी, और उन लोगोंका बड़तसी कड़वी बातोंसे तिरस्कार

होते सुनकरभी आपने उपेक्षा की थी, आपने समझा था, कि मेरे पुत्रोंने सम्पूर्ण राज्यको जीत लिया, परन्तु थोड़ेही दिनोंमें कुलका नाश होगा, इसे आपने न विचारा। हे महाराज। जङ्गलोंसे युक्त कुरुराज्य आपका पैतृक राज्य है, उसके अतिरिक्त आपने वीरोंसे उपाजित समस्त पृथ्वीका राज्य पाया है। पाण्डवाने अपने बाहुबलसे पृथ्वी उपाजित करके आपको समर्पण किया था, परन्तु आप अपने मनसे समझते हैं कि मैंने स्वयं यह सब राज्य प्राप्त किया है। हे राजेन्द्र। पाण्डव लोग जब युद्धसे हारकर वनको जानके निमित्त तैयार हुए, तब आपने बालककी भाति बारबार हंसी ही थी, इसीसे अर्जुनने आपके पुत्रकी अन्धवीराजकी हाथमें पड़ा हुआ महा विपतसमुत्थान देखकर गन्धर्वोंसे युद्ध करके दुर्योधनकी कुड़ाया था। हे राजन्। अर्जुनके शत्रुओंकी वर्षासे समुद्रभी सूख सकता है, और शत्रुओंकी तो बातही क्या है? हे महाराज। पाण्डवोंकी चलायनियोंमें अर्जुन, धनुषोंमें गाण्डीव, शरोंमें कृष्ण, चक्रोंमें सुदर्शन और वज्राओंमें अर्जुनके रथमें बन्दरवाली ध्वजा अष्टशुक्ल। वह ध्वजाधारियोंमें मुख्य, सफेद घोड़ोंसे युक्त, कपिध्वजासे युक्त, रथके सहित, कई एक राजाओंके सङ्ग उद्यत होके कालचक्रके समान हम लोगोंको निःसन्देह मारेगा। हे भरतर्षभ। गोम अर्जुन जिसके मुख्य वीर घोड़ा हैं, वही सब सम्पूर्ण पृथ्वीका सबसे मुख्य राजा है, और उसकी यह समस्त पृथ्वी है। हे राजन्। महारथी सेनाकी भीमसेनके हाथसे घायन होकर भागती हुई देखके दुर्योधन आदि शत्रु अवश्यही नाशकी प्राप्त होंगे। हे राजेन्द्र! तुम्हारे पुत्र और उनके अनुयायी सब राजा लोग भीम अर्जुनके भयसे डरकर कभी इनके विजय न कर सकेंगे। मत्स्य, पाण्डाल, केकय, शाल्व सरसेन आदि आपके अनुयायी

इस समय नहीं हैं। अब वे आपके विरुद्ध हैं, क्योंकि वे लोग युधिष्ठिरकी ओर हैं, और उनकी उपासना करते हैं। उनके ऊपर उन लोगोंकी भक्ति है, इसी कारणसे वे लोग सदाही आपके पुत्रोंके विरुद्ध आचरण करते हैं। हे महाराज। सब प्रकारसे धर्मात्मा, मारनेके अयोग्य पाण्डवोंको जिस पुरुषने वर कस्मोंसे दुःख और क्लेश दिया है, और इस समय भी उनके सङ्ग शत्रुता कर रहा है, उसी आपके पुत्र पाण्डुद्विदुर्योधनकी अनुचरोंके सहित सब भांतिसे वशीकृत करनाही मुख्य कर्तव्य कार्य है; और उनके निमित्त शोक करना आपको उचित नहीं है। पासा खेलनेके समय भी बुद्धिमान् विदुर और मैंने आपसे यही वचन कहा था। हे राजेन्द्र। आप जो असमर्थकी भाति पाण्डवोंके प्रति इस प्रकारका विलाप करते हैं, यह सबही व्यर्थ है।

५४ अध्याय समाप्त ।

दुर्योधन बोले, हे महाराज! आप कुछभी भय न कोजिये, और हम लोगोंके निमित्त शोकभी मत कोजिये। हे प्रजानाथ! हम लोग शत्रुओंके जीतनेमें खूबही समर्थ हैं। हे भरतर्षभ। जिस समय पराये राज्यको जीतनेवाले मधुसूदन कृष्ण महाबल चक्रसे युक्त होकर वनवासी पाण्डवोंके निकट गये थे; और उनके पीछे केकय, धृष्टकेतु, द्रुपद, धृष्टद्युम्न तथा अन्य राजा लोग भी जाकर इकट्ठे हुए थे;—जब कृष्णके सङ्ग सब राजालोगोंने इन्द्रप्रस्थके समीप इकट्ठे होकर मध्य कौरवोंके सहित आपकी निन्दा करी थी, और काले हरिणके चमड़ेकी पहिरनेवाली युधिष्ठिरकी उपासना करते हुए इष्ट मित्रोंके सहित आपके मूलच्छेदके अभिलाषी हुए थे; और उनको “फिरभी राज्यकी लीला उचित है” ऐसी राय दी थी,—तब उस दृष्टान्तकी सुनकर मैंने

कौरवोंके नाशसे भय-भीत होकर भीष्म, द्रोण और कृपाचार्यसे यह सब वृत्तान्त कहा था, कि हे महात्मन् । मुझे मालूम होता है, कि पाण्डव लोग हम लोगोंके किये नियममें नहीं स्थित रहेंगे, क्योंकि श्रीकृष्ण हम लोगोंको जड़ सहित नाश करनेकी इच्छा करते हैं; मेरे विचारमें विदुरको छोड़कर और आप लोगोंके सहित सब कौरव मारे जायेंगे; कुरुसत्तम धर्मात्मा धृतराष्ट्र भी बोध होता है, कि न मारे जायेंगे । श्रीकृष्ण हमलोगोंका मूल सहित नाश करके यह सम्पूर्ण कुरुराज्य युधिष्ठिरको देनेकी अभिलाषा करते हैं । इस विषयमें हम लोगोंको क्या करना उचित है ? क्या हम अधोन्ताई स्वीकार करें, अथवा पलायन करें, या प्राणकी आशाको छोड़के शत्रुके सङ्ग युद्ध करेंगे ? शत्रुओंसे युद्ध करनेसे निश्चयही मेरी हार होगी, क्योंकि सब राजा लोग युधिष्ठिरके वशमें हैं, विशेष करके राष्ट्रके सब पुरुष हम-लोगोंपर विरक्त हुए हैं; मित्रलोग भी कुपित होगये हैं, राजालोग तथा अपने मनुष्य भी सब तरहसे मुझे धिक्कार दे रहे हैं । ऐसी अवस्थामें अवनति स्वीकार कर लेनेमें भी कुछ दोष नहीं है, क्योंकि सन्धि करना, सब दिनसे हमलोगोंमें प्रचलित है; परन्तु युद्धही करनेकी मेरी इच्छा है; तब जो प्रज्ञाचक्षु महाराज धृतराष्ट्र मेरे निमित्त महाकलेश पावेंगे । उसी निमित्त मैं शोक कर रहा हूँ; हे प्रजानाथ ! आपके और सब पुत्र भी मेरे सङ्ग शत्रुओंके अवरोध करनेमें तत्पर हुए थे, सो बातभी आपको पहिलेहीसे मालूम है, - इसीसे वे महारथ पाण्डवलोग द्रष्टृ मित्र और बन्धुवाम्श-वोंके सहित धृतराष्ट्रके कुलका नाश करके अपने वैरकी समाप्त करेंगे ।

हे तात ! अनन्तर भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य और अश्वत्थामा मुझे बड़ी भारी चिन्तामें मग्न हुए देखकर बोले, हे परन्तप । यदि शत्रु लोग

हम लोगोंसे विशेह करें, तो उसके निमित्त तुम कुछभी भय और शङ्का मत करो । युद्धमें खड़े होनेसे शत्रु लोग कभी भी हम लोगोंको पराजित नहीं कर सकेंगे । हम लोग अकेलेही सब राजाओंको जीतनेमें समर्थ हैं । सब लोग आवें, हम अपने तीक्ष्ण वाणोंसे उसके घमण्ड तोड़ देंगे । हे भारत ! पहिले कुलश्रेष्ठ भीष्मने पिताके मरनेपर अत्यन्त क्रोध करके एकरथसे अकेलेही समस्त पृथ्वीके राजाओंको जीत लिया था, और महा क्रोधसे भरकर कितनेही भूपालोंका संहार किया था; इससे सब लोग डरकर भीष्मकी शरणमें आये थे । वर यही भीष्म हैं, यह हम लोगोंके सङ्ग मिलकर शत्रुओंको अवश्यही जीतनेमें समर्थ होंगे; इससे तुम अपने भयको दूर करो । इन महा-तेजस्वी महारथ पुरुषोंके बलका उस समय मुझकी निश्चय हुआ था । हे राजेन्द्र ! समस्त पृथ्वी उस समय शत्रुओंके वशमें थी, यह ठीक है; परन्तु अब वे लोग हमको जीत न सकेंगे । हे भरतर्षभ ! शत्रुरूप पाण्डव इस समय सहायता रहित और बलहीन हुए हैं, और पृथ्वी इस समय मुझसे प्रतिष्ठित है । हे परन्तप ! मैंने सब राजाओंको सम्मान और आदरसे अपनी ओर कर लिया है, वे लोग सुख, दुःख तथा सब कायोंमें मेरे अनुगामी हैं । यह आप निश्चय जानिये कि मेरे निमित्त ये सब राजा लोग अग्निमें भी प्रवेश कर सकते हैं; और समुद्रमेंभी डूब सकते हैं, आपकी भयसे दुःखी और दूसरेकी बड़ाई करते देखकर ये सब आपको पागल समझके हंसी करते हैं । हे कुरुसत्तम ! इन भूपालोंमें हर एक और पाण्डवोंकी गतिकी रोकनेमें समर्थ हैं । विचार पूर्वक देखिये; आपकी सब कीर्ति बड़ा समझते हैं, इससे आप अपने भावी भयको दूर कीजिये । मेरी समस्त सेनाकी इन्द्रभी नहीं जीत सकते, वरन ब्रह्माभी यदि मेरी

सेनाका नाश किया चाहें, तौमो हमारी
सेनाको नाश न सकेंगे। हे प्रजानाथ ! युधि-
ष्ठिरने हमारी सेना और हमारे प्रतापसे भय-
भीत होकरही नगरको आशा छोड़कर केवल
पाच गांव भागे हैं। हे भारत ! आप जो भीम
को बड़ा सामर्थी समझा रहे हैं, वह भी बृथा
है, मेरे सम्पूर्ण प्रभावको आप नहीं जानते
हैं, इसीसे ऐसा संभव है। गदायुद्धमें इस सारी
पृथ्वी पर कोई भी मनुष्य मेरी समान नहीं है।
गदायुद्धमें मुझे कोईभी आजतक नहीं हरा सका,
और भविष्यमें भी नहीं जीत सकेगा। मैंने
स्थिरचित्तसे गुरुके घरमें रहकर, अत्यन्त
केशोको सच्चके सब युद्धविद्या सीखी है, इससे
व्या भीम, क्या दूसरे मनुष्य, मुझे किसीसे भी
भय नहीं है। मैं जब शिष्य होकर बलदेव-
तोकी उपासना करता था, उस समय उनको
यह निश्चय हुआ था, कि “गदायुद्धमें दुर्योधनके
समान दूसरा कोईभी नहीं है।” सम्प्रति मैं
युद्ध करनेमें हलधारी बलदेवके समान हूं, और
बलमें मुझसे अधिक कोईभी नहीं है। भीम
युद्धमें मेरी गदाकी चोटकी कभीभी नहीं सह
सकता। हे पृथ्वीनाथ ! यदि मैं क्रोधित होकर
एकवारभी भीमके ऊपर अपनी गदाका प्रहार
करूं, तो उसी प्रहारसे उसे यमपुरीमें पड़ जा-
सकता हूं। हे राजेन्द्र ! भीमसे भयकी बात
तो दूर है, मैं सदाहीसे उसको गदा लिये हुए,
देखनेकी इच्छा करता रहता हूं। क्योंकि
वही मेरी सब दिनकी मनोकामना और मनो-
रथ है। युद्धमें मेरी गदाकी चोटसे भीम
अवश्यही मरकर पृथ्वीमें गिर पड़ेगा। मेरी
गदाकी चोट एकवार पूरी रीतिसे बैठनेपर,
पर्वतोंके सहित हिमाचलभी सहस्र टुकड़े हो
सकता है। “गदा युद्धमें दुर्योधनके समान
कोई नहीं है” इस बातकी भीमभी अच्छी
कारणसे जानता है, और कृष्ण अर्जुनभी सब
समझते हैं। इससे हे राजन् ! आप भीमसे

उत्पन्न हुए भयकी दूर कीजिये, महायुद्ध जब
उपस्थित होगा, तब उसे मैं अवश्य माहंगा ;
आप कुछभी दुःखी न होइये। हे भरतर्षभ !
भीमके मेरे हाथसे मरनेपर, समान-धनुर्वारी
अथवा कुछ उससेभी जाण और शस्त्रविद्यामें
अष्ट पुरुष, अपने बाणोंकी वर्षासे अर्जुनकी
विचित्र कर देंगे। हे महाराज ! भीष्म, द्रोण,
कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण, भूरिश्रवा, प्राग-
ज्योतिषपुरके महाराज, शल्य और सिन्धुराज
जयद्रथ, इनमेंसे एक एक पुरुषभी सब पाण्ड-
वोंको मारनेमें समर्थ है, और ये सब मिलके
उन लोगोंको क्षणभरमें यमपुरीको पड़ जावेंगे।
सब राजाओंकी सेना अकेले अर्जुनकी क्यों न
जीत सकेगी, इसमें कोईभी कारण नहीं देख
पड़ता। भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य और अश्व-
त्थामाके बाणोंसे सैकड़ों बार विकल होकर
अर्जुन क्षिप्त जायगा और परवश होकर
अवश्यही यमपुरीमें गमन करेगा। हे भारत !
गद्गानन्दन पितामह भीष्म शान्तनुसेभी अधिक,
ब्रह्मर्षिके समान और देवताओंसेभी अजय
होकर उत्पन्न हुए हैं। कोई मनुष्यभी भीष्मको
मारनेवाला नहीं है, क्योंकि इनके पिताने
प्रसन्न होकर इन्हें वरदान दिया है, कि “जब-
तक तुम मरनेकी इच्छा न करोगे, तबतक
तुम्हारी मृत्यु न होगी।” हे महाराज !
द्रोणाचार्यभी महर्षिभरद्वाजके वीर्यसे द्रोणी
(दोनी) से पैदा हुए हैं, परम अस्त्रको जानने-
वाले अश्वत्थामा उन्हें द्रोणाचार्यके वीर्यसे
उत्पन्न हुए हैं, और आचार्यश्रेष्ठ श्रीमान
कृपाचार्य महर्षि गौतमके वीर्यसे सरस्तम्वसे
उत्पन्न हुए हैं। मुझे यह ठीक निश्चय है,
कि कोईभी इनको नहीं मार सकता। हे महा-
राज ! अश्वत्थामाके पिता माता और मामा
तीनों अयोनिसे उत्पन्न हुए हैं : वह महा-
पराक्रमी अश्वत्थामाभी हमारे पक्षमें है।
ये सब महारथ और देवताओंके समान

है ; युद्धमें ये इन्द्रकीभी भयसे पीड़ितकर सकते हैं। हे भरतर्षभ ! अर्जुन इन महा-रथोंमेंसे एक एककी ओरभी नहीं देख सकता ; ये सब मिलकर तो अवश्य अर्जुनका वध करेंगे, इसमें कदाभी सन्देह नहीं है। हे राजेन्द्र ! मेरी समझमें कर्णभी भीष्म, द्रोण और कृपाचार्यके समान है ! परशुराम जोने स्वयं इनकी कहा था, कि तुम मेरी समान हुए ! औरभी इनका स्वाभाविक गर्भसे उत्पन्न हुआ कबच और कण्डल था, उसकी इन्द्रने अपनी प्यारी स्त्री शचीके निमित्त इनसे ब्राह्मणका वेष बनाकर मागा और उसे पाकर कर्णको अपनी महा भयङ्कर अमोघ-शक्ति दी है। तब इस प्रकारकी शक्तिसे रक्षित होकर इस शत्रुओंके जलानेवाले महावीर कर्णसे अर्जुन कैसे जीता बचेगा ? हे राजन् ! हाथमें पड़े हुए फलकी भांति, अवश्यही हम लोगोंकी विजय होगी, और शत्रुओंकी इस भूमण्डल पृथ्वी भरमें निःसन्देह पराजय होगी। हे भारत ! यह पराक्रमी भीष्म एक दिनमें दश हजार शत्रुओंकी सेनाके योद्धाओंको मार सकते हैं, और द्रोण, कृपाचार्य तथा अश्वत्थामाभी उन्हीके समान नाश कर सकते हैं। संशप्तक क्षत्रिय लोग कहते हैं, कि यातो हमही अर्जुनको मारेंगे, अथवा अर्जुनही हम लोगोंको मारेगा।" इस प्रकारसे उन्होंने स्थिर और दृढ़ प्रतिज्ञा की है। दूसरेभी अर्जुनकी मारनेके निमित्त बङ्गतसे, राजालोग निश्चय करके बैठे हैं, और उसको असमर्थ समझते हैं। इतने परभी आप पाण्डवोंसे ऐसे भयभीत क्यों हो रहे हैं ? हे परन्तप ! भोमके मारे जाने पर शत्रुओंमेंसे कौन हम लोगोंके सङ्ग युद्ध कर सकेगा ? यदि आप जानते हैं, ता मुझसे कहिये। हे राज ! वे लोग पाचो भाई, धृष्ट-द्युम्न और सात्यकी ; यही जो सात योद्धा हैं, वेही शत्रुओंके अष्ट-वल हैं, परन्तु हम

लोगोंकी ओरका उत्तम बल भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण, सोमदत्त, वाह्वि-प्रागज्योतिषाधिपति, शल्य, अवन्तीपति विन्द और अनुविन्द, जयद्रथ और आपके पुत्र दुःशासन, दुःसह, दुर्भुख, अतायु, चित्रसेन, परुषित-विविंशति, शल्य, भूरिश्रवा और विकर्ण, ये सब मुख्य सेनापति हैं। हे महाराज ! मैंने ग्यारह अश्विहिणी सेना संग्रह करी है, और शत्रुओंके यहाँ केवल सात अश्विहिणी सेना इकट्ठी हुई है ; इससे हमारी सेनासे भी शत्रुओंकी कम सेना है, तब आप किस प्रकारसे निश्चय करते हैं, कि मेरी पराजय होगी ? हे राजेन्द्र ! वृहस्पति कहते हैं, कि शत्रुओंकी सेना, अपनी सेनासे तृतीयांश कम होने पर उसके सङ्ग युद्ध करना उचित है। हमारी यह सेनाभी शत्रुओंसे तृतीयांश अधिक है। फिर मैं शत्रुओंकी सेनाको अनेक गुणोंसे हीन देखता हूँ, और अपनी सेनाको अनेक गुणोंसे गुणी देखता हूँ, हे भारत ! इससे हमारे बलकी अधिकता और पाण्डवोंकी अल्पता आदि सब वृत्तान्तोंकी जानकर भी आपको मोहमें पड़ कर शोक करना उचित नहीं है। पराये देशकी जीतनेवाली दुर्योधनने धृतराष्ट्रसे यह सब वचन कहकर, शत्रुओंके ओरकी सब बातों जाननेके अनन्तर इन काव्योंको कारण उचित है, ऐसी इच्छा करते हुए सञ्जयसे प्रीति पूछने लगी।

५५ अध्याय समाप्त ।

दुर्योधन बोले, हे सञ्जय ! कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर सात-अश्विहिणी सेनाको पाकर युद्धकी कामनासे राजाओंके सङ्ग कैसी इच्छा करते हैं ? सञ्जय बोले, हे राजन् ! युधिष्ठिर हीनेके निमित्त अत्यन्तही प्रसन्न हैं, भीष्म और अर्जुन ये दोनों भी आनन्दित हो रहे हैं और सकल सहदेव भी किञ्चित मात्र भय नहीं

करते हैं। कुन्तोपुत्र अर्जुनने अस्त्रप्रयोजन, मन्त्र परीक्षा करनेके निमित्त अभिलाषी होकर सब दिशाओंकी प्रकाशित करते हुए, अपने दिव्य रथको जुतवाया था। हे महाराज। मैंने अर्जुनकी बिजलीसे युक्त बादलकी भांति देखा था। उन्होंने सब तरहसे सोच विचारकर मुझसे यह वचन कहा है, कि “हे सञ्जय ! मैं जो कौरवोंका जीतंगा, उसका यह पहिला लक्षण देखो।” यथार्थमें अर्जुनने मुझसे जो कुछ कहा, मैंभी वही समझता हूँ।

दुर्योधन बोले, कि तुम जुएमें हारे हुए पाण्डवोंका पक्ष करके उनकी प्रशंसा करते हो, जो हाँ, सम्प्रति अर्जुनके रथके घोड़े और ध्वजा किस प्रकारके हैं ; उसका वर्णन करो।

सञ्जय बोले, हे पृथ्वीनाथ। लष्ठा-विश्व-कर्मामे इन्द्र और ब्रह्माके सङ्ग मिलकर अर्जुन के रथमें अति विचित्र रूपके चित्रोंकी बनाया है। देव-मायाकी सहायतासे विश्वकर्मामे उसको ध्वजापर छोटी और बड़ी बड़ी वज्रत मूल्यवान् मूर्तियोंकी बनाया है। और भी भीमसेनको प्रार्थनासे पवनपुत्र हनुमान् अपनी निज मूर्तिकी उस ध्वजापर रक्खेगी। विश्व-कर्मामे उस रथमें ऐसी माया रची है, कि वह सब आरसे तिरछा और एक योजन ऊपर तक व्याप्त रहता है, तौभी वृक्ष आदिसे उसकी गति नहीं रुक सकती।

आकाश-मण्डलमें जैसे इन्द्र-धनुष नाना-वर्णोंसे युक्त होकर शोभायमान तथा प्रकाशित होता है, आर यह नहीं मालूम पड़ता, कि यह क्या वस्तु है, तैसेही विश्वकर्मामे भी उस ध्वजाका बनाया है, उसमें अनक प्रकारके रूप दोख पड़ते हैं। अग्निसे उत्पन्न हुआ हुआ जैसे अनेक प्रकारका रूप धारण करता हुआ आकाशकी ओर जाता है वैसेही विश्वकर्मामे भी बनाई वह ध्वजा भी ऊपरकी उठा है, उसका आकाश और रुखाई कुछभी नहीं छाता। हे

राजेन्द्र ! उस कपिध्वजासे युक्त रथमें, गन्धर्व-राज चित्ररथके दिये हुए वायुके समान चलने-वाले सौ घोड़े जुते हैं। पहिले उनकी ऐसा बर मिला हुआ है, कि बार बार मारे जानेपर भी उन घोड़ोंकी संख्या कभी कम न होगी। राजा युधिष्ठिरके रथमें भी अर्जुनके घोड़ोंके समान बलवान् और हाथोदातके समान सफेद और बड़े बड़े घोड़े जुते हैं। भीमसेनके रथमें वायुके समान शीघ्र चलनेवाले और सप्त ऋषिके समान तेजस्वी घोड़े जुते हुए हैं। काली शरीर वाले तोतरपक्षीके समान चित्रित हृष्टपृष्ट घोड़े सहदेवके रथमें जुते हैं, उनके भ्राता अर्जुनने प्रसन्न होकर उन्हें प्रदान किया था, वीरवर अर्जुनके घोड़ोंसे भी ये घोड़े उत्तम हैं। वायुके समान बली और वेगवान् इन्द्रके दिये हुए पीले रङ्गके घोड़े, नकुलके रथमें लगे हैं, और उन्हींके समान अवस्था, बल, पराक्रम तथा वायुके तुल्य वेगवान् घाड़ि अभिमन्यु आदि कुमारोंके रथमें लगे हैं।

५६ अध्याय समाप्त ।

धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय। पाण्डवोंकी प्रीतिके निमित्त, दुर्योधनकी सेनासे युद्ध करनेके वास्ते, किन लोगोंकी तुमने आया हुआ देखा है ?

सञ्जय बोले, हे महाराज। अन्धक और वृष्णिवशमे श्रेष्ठ कृष्णाकी, और चेकितान, युयुधान सायकोकी मैंने वहापर उपस्थित देखा। ये लोग एक एक अचोहिनी सेना लेकर पाण्डवोंकी सहायताके निमित्त वहापर आये हैं। पाञ्चाल-राज द्रुपद बोधेयवान् धृष्टद्युम्न आदि पुत्रोंसे युक्त और शिखण्डीसे रचित होकर एक अचोहिनी सेनाके सहित आये हैं। राजा विराट बलावन सूय्यदत्त और मदिराक्ष आदि भाइयों तथा पुत्रोंके सहित पञ्चोहिनी सेनाकी लेकर, शङ्ख आर उत्तर नामक पुत्रोंसे राक्षत

होकर पाण्डवोंकी सहायनाकी आये हैं। जरा-सन्धके पुत्र मगधराज सहदेव और चेदिराज धृष्टकेतु, ये दोनों भी एक अर्जुनकी सेना लेकर वहाँपर आये हैं। लाल-ध्वजाओंसे युक्त केकय राजपुत्र पांचों भाई एक अर्जुनकी सेनाके सहित दुर्योधनसे युद्ध करनेके निमित्त वहाँपर उपस्थित हुए हैं। जो लोग पाण्डवोंके निमित्त दुर्योधनकी सेनासे युद्ध करनेके लिये वहाँपर आये हैं,—उन सबकी मैंने यहाही तक देखा है। जो मनुष्य, देवता, गन्धर्व और आसुरी व्यूहकी रचनाकी जानते हैं, वही महावीर धृष्टद्युम्न वहाँपर सेनापति बनाये जायेंगे। हे राजन्! शान्तनु-पुत्र भीष्म शिखण्डीके हिस्सेमें कल्पित हुए हैं, विराट-राज मत्स्य-देशीय वीरोंके सहित शिखण्डीके पृष्ठ-रक्षक बनेंगे। मद्राज बलवान शत्रु युधिष्ठिरके हिस्सेमें चुन गये हैं; उससे कोई कोई कहते हैं, कि हम लोगोंके मतमें ये दानो वीर समान नहीं हैं। सौ भाई और पुत्रोंके सहित दुर्योधन तथा पूर्व, पश्चिमके औरभी बहुतसे राजा लोग भीमसेनके हिस्सेमें चुने गये हैं। और अर्जुनके हिस्सेमें सूर्यपुत्र कण, अश्वत्थामा, विकर्ण और सिन्धुराज जयद्रथ आदि कई वीर चुने गये हैं। इनके अतिरिक्त जो लोग पृथ्वी भरमें असाधारण और महावीर हैं उन्हें भी अर्जुनने अपनेही हिस्सेमें रक्खा है। महा धनुर्धरो केकेय-राजपुत्र पांचा भाइयोंके केकय देशीय वीरोंकीही अपनेभागमें निश्चित किया है, और केवल केकय देशियोंकीही नहीं, बरन मालव, शाल्व, तथा त्रिगर्तोंके मुख्य और प्रसिद्ध दोनों संश्लोक वीरभी इन्हींके हिस्सेमें निश्चित किये गये हैं। सुभद्रानन्दन अभिमन्युने दुर्योधन और दुःशासनके पुत्रोंकी तथा बृहदल राजाकी अपने हिस्सेमें निश्चित किया है। हे भारत! सेनाकी ध्वजाओंसे युक्त राजा द्रुपदकेपुत्र धृष्टद्युम्न आदि द्रोणाचार्यसे युद्ध करेंगे। चेकि-

तान भीमदत्तके सङ्ग इन्द्रयुद्ध करनेकी इच्छा करते हैं, और सात्यकी भीमराज कृतवर्माके सङ्ग इन्द्रयुद्ध करनेकी अभिलाषा करते हैं। युद्धमें महावीर शत्रुकी करनेवाले माद्रीपुत्र सहदेवने तुम्हारे सारे सुबलपुत्र शकुनिकी अपने हिस्सेमें निश्चित किया है, और इस धूर्तके पुत्र उलूक और सारस्वतीकी नकुलने अपने हिस्सेमें चुना है। हे राजन्! इससे अतिरिक्त और दूसरे राजा लोग जो युद्ध करनेकी आये हैं, पाण्डवोंने उन सबकीभी अपने अपने नामके अनुसार सबका विभाग करके अलग अलग हिस्सेमें चुन लिया है। इसी प्रकारसे उनकी सब सेना यथायोग्य अलग अलग हिस्सोंमें बांटी गई है। इस समय पुत्रोंके सहित आपकी जो कुछ करना हो, उसकी शीघ्रही कीजिये।

धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय! काल प्रेरित मैं पुत्र लोग जीवित रहना नहीं चाहते हैं, युद्धमें महा बलवान भीमसेनके साथ जिसका युद्ध होगा, उसके जीनेकी आशा कैसे की जा सकती है? पृथ्वीके सब राजा मृत्युके वशमें होकर यज्ञके पशु तथा अग्निको ज्योतिमें फतिझोकी भाँति गाण्डीव धनुषकी अग्निसमें प्रवेश करेंगे। शत्रुता करनेवाली महात्मा पाण्डव लोग, युद्धमें मेरी सेनाकी अवश्य तितर बितर करके भगा देगे, इसमें मैं अपने मनसे खूबही जानता हूँ। कौन मनुष्य पाण्डवोंके युद्धसे भागती हुई मेरी सेनाकी आसरा देनेवाला होगा? पाण्डव लोग सबही अत्यन्त शूरवीर कीर्तिमान, प्रतापी सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी तथा युद्धकी जीतनेवाले हैं। हे सञ्जय! जिस सेनाके युधिष्ठिर नायक, कृष्ण रक्षक, और अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव, सात्यकी, द्रुपद, धृष्टद्युम्न, उत्तमौजा, युधामन्यु, शिखण्डी, चक्रदेव, उत्तर, वक्र, काशी, चेदी, मत्स्य और पाञ्चालदेशीय समूह सञ्जय और प्रमदक आदि वीर योद्धा हैं, जिनको द्रुपदके विना इन्द्रभी बलसे यह पृथ्वी

नहीं ले सकते हैं ; जो लोग पर्वतोंकीभी ताड़नेमें समर्थ है , उन्हीं अलौकिक प्रतापशाली सब गुणोंसे भरे हुए रणधीर वीरोंके सङ्ग हमारा यह दुष्टपुत्र युद्ध करनेकी इच्छा करता है । मेरे वृद्धत विलाप करनेपरभी वह कुछ नहीं सुनता है ।

दुर्योधन बोले, हे राजेन्द्र ! हम दोनों एकही जाति और सब पृथ्वीके राजा है ; तब आप किस निमित्त केवल पाण्डवोंके जयकी सम्भावना करते हैं । हे नरनाथ ! पाण्डवोंकी तो बातही क्या है, साक्षात् शचीपति इन्द्र देवताओंके सहित भी इन अत्यन्त तेजस्वी महा धनुजारी भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, जयद्रथ और अश्वत्थामाको युद्धमें नहीं जीत सकते हैं । शस्त्रधारी वीर योद्धा और अत्यन्त पराक्रमी राजा मेरी सहायताको आये हैं, वे सबही मेरे निमित्त प्राणोंकी त्याग करके भी पाण्डवोंसे युद्ध करेंगे , ये सब लोग पाण्डवोंकी सेनाकी जीतनेमें समर्थ है । पाण्डव लाग मेरो सेनाको आर देखभी न सकेंगे । एतोंके सहित पाण्डवोंसे युद्ध करनेमें मैं सब प्रकारसे समर्थ हूँ, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है । हे पिता ! जा सब राजा हमारी प्रीतिके निमित्त यहाँ आये हैं, वे पाण्डवोंका अपने बाणोंके जालसे ऐसे बाध लेंगे, जैसे व्याधा तातके फाससे हारनका पकड़ता है । पाण्डव और पाञ्चाल लोग हमारे वृद्धतसे महावीर रथियोंके बाणोंसे पीड़ित होकर अवश्यही भागनेमें तत्पर होंगे ।

धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! मेरा यह पुत्र उन्मत्तकी भाँति व्यर्थ प्रलाप कर रहा है , धर्मराज युधिष्ठिरकी यह कभीभी पराजय करनेमें समर्थ न होगा । उन यशस्वी धर्मके जाननेवाले महात्मा पाण्डव और मेरे पुत्रों जितना बल है, उसका भोषणही जानते हैं : क्योंकि वे उन महात्माओंसे युद्ध करनेके निमित्त इच्छा नहीं करते हैं । परन्तु तुम

फिरभी मेरे निकट पाण्डवोंकी चेष्टाका वर्णन करो । कौन मनुष्य उन तेजसे जलते हुए, महा तेजस्वी महाधनुजारी पाण्डवोंकी घृतसे अग्निकी भाँति अधिक उत्तेजित कर रहा है ?

सञ्जय बोले, हे भारत ! दृष्टद्युम्न सदाही उन लोगोंकी यह कहके उत्तेजित कर रहे हैं, कि "हे भरत सत्तमगण ! युद्धमें प्रवृत्त होइये, युद्धसे कभीभी न डरिये । युद्धमें दुर्योधनकी ओरसे जो कोई राजा क्रोधके वश होकर युद्ध करनेकी आवेंगे उनकी अकेलाही मैं इस प्रकारसे पकड़ लूँगा, जैसे व्याधा जलसे मछलियोंकी पकड़ता है । और जैसे तट समुद्रके वेगको रोकता है, वैसेही मैं भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, शल्य और दुर्योधनका रोकूँगा ।" दृष्टद्युम्नके ऐसा कहनेपर धर्ममाता राजा युधिष्ठिर उनसे बाले, हे महाबाह ! पाण्डवोंके सहित पाञ्चाल लाग तुम्हारेही धैर्य और बलके आसरे ठहरे हैं , इनसे तुम हम लोगोंका युद्धसे उद्धार करो । मैं तुम्हें क्षात्रधर्मसे विशेष रूपसे स्थित और अकेलेही कारवासे युद्ध करनेमें बिलक्षण समर्थ समझता हूँ । हे परन्तप ! जब कारव लाग युद्धको कामनासे रणभूमिमें सन्मुख आवग, तब आप जिस रातसे युद्धका तैयारी करन, वह सबही हम लोगोंका कल्याणकारा होगा । युद्धमानका यह मत है, एक शूरवीर तथा बलवान पुरुष अपने पुरुषाणुको दिखलाता हुआ युद्धका काव्याका भला भात न जाननवाल, भागनवाले और शरणागताका अगाड़ी खड़ा हाकर उन्हें बिना दामही माल खर्च । हे परन्तप ! आप शूर, वीर और महा पराक्रमा हैं, इससे युद्धमें भयसे दुःखा लागका अवश्यही उच्चारवगा, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है ।

कुन्तिनन्दन धर्ममाता युधिष्ठिरके ऐसा कहनेपर, दृष्टद्युम्न सुनते भयसे राहत हाकर यह बचन बोले, कि 'हे स्वत ! तुम शीघ्रही

जाकर दुर्योधनकी आरके वालुक और उत्तम वंशधर तथा अल्पायु कौरव और भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, जयद्रथ, दुःशासन विकर्ण और दुर्योधनसे यह वचन कहा, कि जिसमें देवतासे रक्षित अर्जुन तुम लोगोंका बध न करें, इस निमित्त इस समय उपायसेही युधिष्ठिरको बशमें कर लेना तुम लोगोंका कर्तव्य कर्म है। इससे तुम लोग धर्मराजके राज्यका शीघ्र देकर, लोकमें विख्यात, वीर पाण्डवोंसे प्रार्थना करो। सत्य-पराक्रमी अर्जुन और भीम जैसे वीर योद्धा हैं, पृथ्वी भरमें वैसा कोईभी वीर नहीं है। क्योंकि देवता लोग उस अर्जुनके गाण्डीव धनुष और दिव्य रथकी रक्षा करते हैं, इस लिये मनुष्योंसे वह कभी भी पराजित नहीं हो सकते। इससे तुम युद्धमें कभीभी उन लोगोंकी चित्तको आकर्षित मत करना।”

५७ अध्याय समाप्त ।

धृतराष्ट्र वाली, मैं विलाप कर रहा हूँ, तौभी मेरी बातोंका न मानकर यह मन्दबुद्धि मेरा पुत्र, कुमार अवस्थाहीसे ब्रह्मचारि, क्षात्रिय तेजसियुक्त, युधिष्ठिरके सङ्ग युद्ध करेगा? हे भरतसत्तम दुर्योधन! तुम युद्धसे निवृत्त हो-जाओ। हे शत्रुनाशन। पण्डित लोग किसी अवस्थामेंभी युद्धकी प्रशंसा नहीं करते। दुष्ट मित्रोंके सहित आधी पृथ्वीका राज्यही तुम्हारी जिविकाके निमित्त बहृत है। हे परन्तप! इससे पाण्डवोंका यथा उचित आधा हिस्सा दे दो। तुम महात्मा पाण्डवोंके संग सन्धि कर ला, इसको सब कौरव लाग धर्म और उत्तम समझते हैं। हे पुत्र! तुम अपनी सेनाकी आर पुरो रीतिसे ध्यान देकर देखा, यह तुम्हारे विनाशको कारण हुई है, पर तुम माहमें पड़कर इस बातका नहीं समझ सकते हो। ध्यान देखा—कि भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य,

अश्वत्थामा, वालुक, सञ्जय, सीमदत्त, शल्य, पुर्णामित्र, जय भरिश्चवा और हम कोई भी युद्धकी इच्छा नहीं करते हैं। हे तात! शत्रुओंसे पीड़ित होकर कौरव लोग जिसके बलसे ठहरेंगे वे लोग युद्ध करनेके निमित्त उत्साही नहीं हैं, परन्तु तुमही केवल हठ करते हो। और तुम जो केवल अपनीही इच्छासे ऐसा करते हो, वह बात भी नहीं है, कर्ण, पापो-दुःशासन और सुवल पुत्र शकुनि येही सब मिलके तुमका युद्धमें प्रवृत्त कर रहे हैं।

दुर्योधन बोले, आप, भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, सञ्जय, कान्तीज, वालुक सत्यव्रत, पुर्णामित्र, भरिश्चवा और किसी सम्बन्धीय लोगोंके आसरेपर मैं युद्ध करनेकी इच्छा नहीं करता हूँ। हे तात! केवल मैं और कर्ण येही दो पुरुष युधिष्ठिरकी पशुकी भाँति मारकर युद्धरूपी यज्ञको पूर्ण करेंगे। उसमें मेरा रथही वेदी होगा, कावच सभा होगी, तरवार और गदाही श्रुवा और श्रुक होगी चारों घाड़ों का तुर्हीत होगा, बाण सब कुशका कार्य करेंगे और यशही घृतसङ्ग होगा। हे महाराज। इस प्रकारसे आत्मरक्षण यज्ञ करके, युद्धमें यमराजकी उपासना करते हुए, शत्रुओंकी मारके, लक्ष्मीसे युक्त होकर लौटंगा। हे तात! मैं, कर्ण और मेरा भाई दुःशासन, येही तीन पुरुष युद्धमें सब पाण्डवोंका बध करेंगे। या तो पाण्डवोंका मारकर हमही पृथ्वीका राज्य करेंगे, अथवा हमका मारके पाण्डवही सम्पूर्ण पृथ्वीका राज्य लेंगे। हे महापराक्रमी तेजस्वी पृथ्वीनाथ! हमारा राज्य, धन और जीव सब चला जाय, पर मैं पाण्डवोंके सङ्ग एकत्र वास नहीं कर सकूँगा। हे महाराज! तात्क्षण्य सुईकी नाकसे जितना भूमि बघा सकता है, उतना भूमि पाण्डवोंका मैं नहीं दूँगा।

दुर्योधनकी-ऐसी बातोंकी सुनकर महा-
 राज धृतराष्ट्र बोले, हे भूपालवृन्द ! मैंने दुर्यो-
 धनकी तो परित्याग किया, पर अब तुम
 लोगोंके निमित्त शोक करता हूँ, क्योंकि
 तुम लोग यमपुरीमें जानेकी इच्छासे मन्दबुद्धि
 दुर्योधनके अनुगामी बनोगे। जैसे हरिणोंके
 झुण्डसे सिंह प्रवेश करता है, वैसेही शस्त्र-
 धारियोंमें श्रेष्ठ पाण्डवलोग सिंहकी भांति
 तुम्हारी सेनामें आकर सुख सुख वीरोंकी
 मारगे मुझे बोध होता है, कि लम्बी भुजा-
 वाला सात्यकी हाथमें आई हुई कामिनीकी
 भाति कौरवी सेनाकी अपने वशमें करके उसे
 विजय कर रहा है। यथार्थमें सन्तुष्टधर
 सात्यकी, युधिष्ठिरके सम्पूर्ण बलकी और भी
 परिपूर्ण करता हुआ, जैसे किसान खेतोंमें बीज
 रोते हैं, वैसेही अपने बाणोंको चलाकर कौरवी
 सेनाको निकल कर देगा। भीमसेन युद्धमें
 प्रवृत्त हुई सेनाके आगे खड़ा रहेगा, और
 सैनिक पुरुष उसकी दुर्गकी भाति सहारा
 समझके निर्भय होके युद्ध करेंगे। जब तुम लोग
 भीमकी हाथियोंके मस्तक, स्रंख, हृदय, और
 योद्धाकी पञ्चतके समूहकी भाति गदासे तोड़ते
 हुए देखोगे, तभी मेरे वचनोंको स्मरण करोगे।
 जब रथ, हाथी घोड़े और सेनाके वीरोंकी
 गमकी भाति भीमसेनसे जलते हुए देखोगे,
 तबही तुम लोग मेरी इन बातोंकी स्मरण
 करोगे। तुम लोग यदि पाण्डवोंसे सम्मि-
 ल न करोगे, तो तुम लोगोंके निमित्त महा-
 भय उपस्थित होगा। भीमसेनकी गदाकी
 चोटसे मरकरही तुम लोग शान्ति लाभ
 करोगे। जब कौरवोंके इस महाबलसे युक्त
 सेनाकी भीमसेनके बलसे मरती हुई देखोगे,
 तब तुम लोग मेरे वचनोंकी स्मरण करोगे।
 त्रैलोक्यायन सुनि बोले, हे राजन् जनमेजय !
 राजा धृतराष्ट्र ऐसा वह फिर लज्जयसे पूछने लगे।

५८ अध्याय समाप्त ।

धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! महात्मा कृष्ण और
 अर्जुनने जो कुछ वचन कहे हैं, वह मुझसे
 कहीं तुम्हारे वचनोंकी सुननेकी मुझे बल्लतही
 इच्छा है।

सञ्जय बोले, हे राजन् ! मैंने कृष्ण अर्जुनको
 जिस प्रकारसे देखा, उसे आप सुनिये। उन
 दोनोंने जो कुछ कहा है, वह भी आपसे
 कहूँगा। उन दोनों पुरुषोंसे बातचीत करनेके
 निमित्त मैंने सावधान होकर और हाथ जोड़
 कर विनीत भावसे अपने चरणोंकी ओर देखता
 हुआ अन्तःपरमें प्रवेश किया। हे राजेन्द्र !
 जहाँपर कृष्ण अर्जुन और भामिनी द्रौपदी
 तथा सत्यभामा रहती हैं, उस स्थानपर अमि-
 मन्य और नकुल सहदेवभी नहीं जाने पाते।
 उसी स्थानपर वे दोनों शत्रुनाशन माध्वी सुरा-
 पान करके चन्दनचर्चित और उत्तम वस्त्र तथा
 आभूषणोंसे भूषित होकर रत्नजटित सीनेके
 महामूख आसनोपर बैठे थे। मैंने देखा कि
 अर्जुनकी गोदमें कृष्ण और द्रौपदी तथा
 सत्यभामाकी गोदमें अर्जुनके दोनों दोनों
 पाव हैं। अनन्तर अर्जुनने अपने पांवके
 नीचेका पीढ़ा मेरे बैठनेके निमित्त प्रदान किया,
 परन्तु मैं उसे हाथसे छूकर पृथ्वीहीपर बैठ
 गया। अर्जुनने जब पैरके नीचे रहनेवाली
 सीनेसे भूषित पीढ़ेसे अपने दोनों पैरोंकी ऊपर
 उठाया, तब मैंने देखा, कि उनका पाव बल्लतही
 शुभ लक्षणोंमें युक्त है और उनके पांवके तल-
 वेमें उदरेखा है। हे महाराज ! श्यामवर्ण,
 विशालमूर्ति, युवा अवस्था, शालके वृक्षकी
 भाति जंचे कृष्ण अर्जुनकी एकही आसनपर
 बैठे हुए देखकर मैं महाभयसे प्रेरित होगया।
 वे दोनों इन्द्र और नादात विष्णुके समान हैं ;
 इस बातको मन्दबुद्धि दुर्योधन भीम, द्रोणके
 बल और कर्णकी बड़ाईसे हृत्समी नहीं समझ
 सकता है। ऐसे नरदेव पुरुषिंह—जिस
 दधिष्ठिरके आज्ञाकारी हैं, उस धर्मराज

सहात्मा युधिष्ठिरका मानसिक सङ्कल्प जो पूरा होगा, इसकी मैंने उसी समय निश्चय कर लिया । मैं अन्न, जल, वस्त्र और आभूषणोंसे सत्कार पाके सीठी बात चीतसे सम्मानित होकर अपने दोनों छात्रोंकी जोड़के आपका कहा हुआ वचन और सन्देशकी निवेदन किया । तब अर्जुनने अपने धनुष शोभित हाथसे कृष्णके शुभ लक्षणयुक्त चरणकी पलोटते हुए मेरे वचनोंके उत्तर देनेके निमित्त उन्हें उपस्थित किया । सब भूषणोंसे भूषित, इन्द्रके समान तेजस्वी, जोलनेवालोंमें अष्ट ; श्रीकृष्ण इन्द्रकेतुकी भांति उठके आसनपर बैठे और मुझसे कहने योग्य, आनन्द देनेवाली, धार्तराष्ट्रोंकी भय उत्पन्न करनेवाली, पहिले मोठो अन्तसे कठोर बाणीसे बातचीत करना लग । पीछे मैंने बोलनेवाले कृष्णके उपदेशके अक्षरोंसे भरे हुए, अर्थयुक्त हृदयकी सुखानेवाले वचनको सुना ।

श्रीकृष्ण बोले, “हे सञ्जय ! तुम मेरे वचनके अनुसार अष्ट पुरुषोंकी प्रणाम और छोटोंकी कृशलाक्ष्म पूछनेके अनन्तर कुरु-अष्ट भीष्म और द्रोणाचार्यके समीप मनीषी धृतराष्ट्रसे यह वचन कहना, कि तुम लोगोंके निमित्त महाभय आकर उपस्थित हुआ है । तुम लोग इसी समय ब्राह्मणोंकी दान दक्षिणा देकर और विविध यज्ञोंकी करके अपने कर्तव्य कर्मोंकी पूरा कर लो । पुत्र कलत्रोंके सङ्ग भोग विलास कर लो । सत्पात्रोंकी दान दे लो ; उत्तम पुत्रोंकी उत्पन्न कर लो और अपने प्रिय लोगोंको प्रीतिके निमित्त प्रिय आचरण कर लो, क्योंकि राजा युधिष्ठिर विजयके निमित्त शीघ्रता कर रहे हैं । मेरे दूर रहनेपर द्रौपदीने “गोविन्द ! गोविन्द !” कहके मुझे पुकारा था, वह वहुत दिनका ऋण अभीतक मेरे हृदयसे बाहर नहीं हुआ है । तेजसे भरो प्रचण्ड गाण्डीव जिसका धनुष है, मेरे सहित उस अर्जुनसे तुम्हारी शत्रुता हुई है । बिना कालके

बशमें हुए कोन पुरुष मेरे समान अद्वितीय अर्जुनसे युद्ध करनेकी इच्छा करेगा ? और पुरुषोंकी बात तो दूर रहे साक्षात् इन्द्रभी अर्जुनको नहीं जीत सकते । जो मनुष्य अर्जुनको युद्धमें जीतनेमें समर्थ होगा, वह अपनी दोनों भुजाओंसे पृथ्वीकोभी उठा सकेगा, क्रोधित होनेसे समस्त प्राणियोंको भस्म कर सकेगा, और स्वर्गसे देवताओंकीभी भगा देनेमें समर्थ होगा । मैं देवता, गन्धर्व, असुर, यक्ष और मनुष्य तथा नागोंमेंभी ऐसा कोई पुरुष नहीं देखता हूँ, जो युद्धमें अर्जुनके समुख हो सके । विराट नगरमें इकट्ठे हुए असंख्य योद्धाओंके बीचमें जो अर्जुनकी वीरताकी अद्भुत बात सुनी जाती है, वही इसमें पूरा प्रमाण है । विराट नगरमें तुम लोग अकेले धनञ्जयसे चारके भागे थे, यही इसमें यथेष्ट प्रमाण है । बल, वीर्य, शीघ्रता, लघुहस्तता, निर्भयता और धैर्य ये सब गुण अर्जुनके अतिरिक्त और किसी दूसरे पुरुषमें एकत्र विद्यमान नहीं हैं ।” हे महाराज । श्रीकृष्णचन्द्रने अपने वचनोंसे अर्जुनको आनन्दित करते हुए, यथा समयमें वर्णन वाले आघाटके बादलकी भांति गर्जते हुए इन सब वचनोंकी कहा । स्वेतवाहन अर्जुनने भी उन्हें रोंवा-खड़ा-करनेवाले वचनोंका उत्तर दिया था ।

५६ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर प्रशमन धृतराष्ट्र सञ्जयकी बातोंको सुनकर उसके गु दोषके विचारमें प्रवृत्त हुए । पुत्रोंके विजय आकांक्षा करनेवाले । विचक्षण, बुद्धिमान महाराज धृतराष्ट्रने अपनी बुद्धिके अनुसार अत्यन्त सूक्ष्मतासे गुण और दोषोंकी विचार कर तथा दोनों ओरके बलकी निश्चय करने प्रभाव, उत्साह और मन्त्रशक्तिकी यथा

क्षपसे विचारना आरम्भ किया। अनन्तर पाण्डवोंकी देव और मनुष्य सम्बन्धी तेजोंसे युक्त और शक्तिसम्पन्न तथा कौरवोंकी थोड़ी शक्तिसे युक्त निश्चय करके दुर्योधनसे कहने लगे, हे दुर्योधन ! सुभा हर घड़ी यही चिन्ता लगी रहती है, किसी बातसेभी इसकी निवृत्ति नहीं होती है। केवल अनुमानसेही नहीं, मैं इसे प्रत्यक्षही मालूम करता हूँ। पुत्रोंके ऊपर सबही प्रेम करते हैं, और अपनी शक्तिके अनुसार उनके प्रिय कार्य और हितका अनुष्ठान करते हैं। जो लोग उपकार करते हैं, उनके विषयमेंभी इसी प्रकारकी बात जानी जाती है। उत्तम पुरुष उपकारी लोगोंके निमित्त बड़तसे उत्तम और प्रिय कार्यको करके उनका प्रत्युपकार करनेकी इच्छा करते हैं, इसलिये अग्निभी खाण्डव वनमें अर्जुनके किये हुए उपकारको स्मरण करके, इस भयङ्कर कुरुपाण्डवोंके सन्नाहमें अर्जुनकी सहायता करेंगे, और पूरी रीतिपर बुलानेसे धर्म आदि देवताभी पुत्र प्रेमसे पाण्डवोंपर अनुकूल होकर उनकी सहायताकी आवाँ में। सुभा निश्चय बोध होता है, कि भीष्म, द्रोण और कृपाचार्यके क्रोधसे उनकी रक्षा करनेके निमित्त वे अवश्यही अभिलाषी होंगे। इससे देवताओंकी सहायतासे युक्त पाण्डवोंकी ओरकी कोई पुरुष युद्धमें देखभी न नकेगा। जिसके देव-लोकके बने प्रसिद्ध गाण्डोव धनुष और वरुण तथा अग्निके दिये हुए अक्षय तूणीर हैं, जिनके रथके ध्वजाकी गति अग्निके धूप की भाँति कहींभी नहीं रुक सकती, जिसकी दिव्य कपिध्वजा और चतुरता पृथ्वीमें अतुल्यरथ है, जिसका शत्रुओंको महाभय देनेवाला वज्रके समान महाघोर नाद सब लोगोंको सुन पड़ता है : सब कोई जिसकी महानीय और महापराक्रमी जानते हैं, तथा भूपालवन्द जिसकी देवताओंसेभी युद्धमें शत्रु

समझते हैं, जो एकही बार पाँच सौ बाणोंकी लेकर क्षण मात्रमें बहुत दूरतक चला सकता है, और कोईभी उस शीघ्रताकी नहीं देख सकता है, जो वाहुबलमें स्वामकार्तिकके समान होकर युद्धमें स्थिर रहता है, रथिश्चेष्ट जिस अर्जुनकी भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा और मद्रराज शल्य तथा औरभी महावीर पुरुष लोग अलौकिकबोध्य और बलसे युक्त, तथा भूपालोंसेभी न जीतने योग्य कहके प्रशंसा किया करते हैं। जो एक सङ्ग पाँच सौ बाणोंकी चलाते हैं, उसी महापराक्रमी, इन्द्रके समान बलवान अर्जुनको मैं अपने अन्तःकरणसे ऐसा देखता हूँ, कि जैसे वह महा भयङ्कर युद्धमें कौरवी सेनाका संहार कर रहा है। हे भारत ! मैं रात दिन इसी प्रकारकी चिन्ता करता रहता हूँ, कि किस प्रकारसे कौरवोंमें शान्ति होगी ! इसी सोच चिन्तामें डूबकर मैं निद्रा और सुखसे रहित होगया हूँ। हे तात ! कौरवोंकी क्षय होनेका यह महा-भयङ्कर समय उपस्थित हुआ है। शान्तिके निमित्त यदि इस झगड़ेकी शेष करनेका कोई उपाय न हो, तो पाण्डवोंके सङ्ग सन्धि करनेकी मेरी इच्छा है, किन्तु विग्रह नहो क्योंकि मैं पाण्डवोंकी कौरवोंसे अधिक शक्तिसम्पन्न और बलवान समझता हूँ।

६० अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अत्यन्त छठी, (अर्थात् किसोके वचनकी न सुननेवाली) धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन पिताकी बातको सुनके बड़तही क्रोधसे पूरित होकर यह वचन बोले, हे राजसत्तम ! आप जो देवतासे रक्षित पाण्डवोंकी अपराजित समझते हैं, सो भय त्याग दीजिये। हे भारत ! पहिले, देवायन व्यास-देव और महा तपस्वी नारद तथा ऋषिदग्नि

पुत्र परशुराम जीने सुभसे यह वचन कहा था, कि काम, द्वेषको संयोगसे रहित, लोभ, द्वेष-शून्य और विषयोंको वृथा समझ करही देवता लोग देवत्व पदको प्राप्त हुए हैं। हे भरतर्षभ ! देवता लोग मनुष्यकी भांति काम, क्रोध, लोभ, दया और द्वेषसे कदापि किसी कार्यमें प्रवृत्त नहीं होते। हे भारत। आप कभी ऐसी चिन्ता न किया कीजिये; क्योंकि ये देवता लोग शम दम आदि देव-भावोंपर सब समय आरुढ़ रहते हैं। तब यदि कामके संयोगसे इन लोगोंमें द्वेष और लोभ मालूम हो, तो देवताओंके प्रमाणके अनुसार वे कभी पराक्रमको नहीं प्रकाशित कर सकेंगे। अग्नि यदि सब ओर व्याप्त होके सब लोगोंकी जलानेकी इच्छा करेगी, तो मेरे मन्त्रके प्रभावसे उसी समय बुझ सकती है। हे भारत। देवता लोग परम तेजस्वी हैं, यह बात ठीक है, पर उन देवताओंसेभी मेरे तेजको आप अधिक समझिये। हे राजेन्द्र ! पृथ्वी तथा पर्वतभी टुकड़े टुकड़े हो जायें, तौभी मैं सब लोगोंके सम्मुख मन्त्रसे उन्हें फिर ज्यों का त्यों करके जिस स्थानमें थे, उसी स्थानमें स्थापित कर सकता हूँ। इस जड़ और चेतन जगतके नाशके निमित्त, यदि शिला बरसे और प्रचण्ड वायु चले, तौभी मैं सबके सम्मुख हो उसे वारम्बार निवारण कर सकता हूँ। मैं जलको स्थानित कर दूँ, तो उस परसे रथ, हाथी, घोड़े और पदाति सेनाभी जा सकती है, इससे मैं अकेलाही सब सुर और असुरोंके प्रभावको उत्पन्न करके जगतका चलानेवाला हूँ। किसी किसी कार्यके निमित्त मैं अक्षौहिणी सेनासे युक्त होकर जब यात्रा करता हूँ, तब जिस जिस स्थानमें इच्छा करता हूँ, वहाही मेरे रथ और घोड़ोंकी गति होती है। हे राजेन्द्र ! मेरे अधिकारमें सर्पआदि भयानक हिंसक जन्तुभी प्राणियोंके मन्त्रबलसे रहित होनेपर हिंसक लोग

उनको नहीं मार सकते। हे राजेन्द्र ! जलकी वर्षानेवाली बादल भी मेरी इच्छाके अनुसार यथेष्ट वर्षा कर सकते हैं। मेरी सब प्रजा धर्मिष्ठ हैं, इससे मेरे राज्यमें अति वृद्धि और अनावृष्टि होनेकीभी सम्भावना नहीं है। इससे मेरे द्वेषी शत्रुकी रक्षा करनेके निमित्त अश्विनीकुमार, अग्नि, देवताओंके सहित इन्द्र और धर्म कोईभी उत्साहित न होंगे। ये लोग धैर्यमें यदि पाण्डवोंको रक्षा कर सकते, तो वह लोग कभी तेरह वर्षतक वनमें इतना दुःख न पाते। मैं आपसे सत्य कहता हूँ, कि मेरे द्वेषी शत्रुकी रक्षा करनेके निमित्त देवता, गन्धर्व, असुर राक्षस कोईभी समर्थ नहीं हैं। हे परन्तप ! मित्र वा शत्रु दोनोंके विषयमें मैंने पहिले जो कुछ शम अथवा अशुभ विचार किया था, वह कभीभी निष्फल नहीं हुआ। अथवा किसी विषयमें “यहहीगा” यदि मैंने पहिले कभी ऐसी बात कही थी, तो वह अन्यथा नहीं हुई। इसीसे सब लोग मेरे वचनोंको सत्य समझते हैं। हे राजेन्द्र ! सब संसार मात्र मेरे इस जगत-विख्यात महात्माके साक्षी हैं। आपको धैर्य देनेहीके निमित्त मैंने इन वचनोंको कहा है, अपनी बड़ाई नहीं करी है। हे राजेन्द्र ! मैंने पहिले कभी अपना बड़ाई नहीं करी थी, क्योंकि आपके निकट अपनी प्रशंसा करना अशक्त आचरण कहलाता है। आप पाण्डव, मत्स्य, पाञ्चाल और केकय, सात्यकी तथा कृष्णकीभी सुभसे हारे हुए सुनेंगे। जैसे नदी समुद्रमें जाकर लुप्त हो जाती है, वैसेही मेरे समीप आनेसे वे सब लोग अपने अनुचरों समेत मर्ग जायेंगे। उन लोगोंमेंसे मेरी बुद्धि तेज, वीर्य, विद्या और उपाय सबही अधिक अथवा उत्तम हैं। शस्त्रके विषयमें भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, शल्य और शल जो कुछ जानते हैं, वह सब सुभमेंभी विद्यमान है।

हे भारत ! शत्रुनाशन दुर्योधन ऐसे वचन कहके, शत्रुपक्षके सब कार्योंके वृत्तान्तको जानकर, युद्ध करनेको इच्छा करते हुए, समयके अनुसार जाननेके, योग्य विषयोंको सञ्जयसे फिर पूछने लगे ।

६१ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, दुर्योधन सञ्जयसे इसी प्रकार सब विषयोंको पूछ रहे थे, उसी समयमें कर्ण अत्यन्त पराक्रमी और महाबली अर्जुनकी कुछभी चिन्ता न करके, कौरवोंको भागमें धृतराष्ट्र-पुत्रोंकी हर्षित और आनन्दित करते हुए बोले, कि पहिले मैंने भूठ कहके अर्थात् “मैं ब्राह्मणका पुत्र हूँ” यह कहकर जब परशुराम जीसे ब्रह्मास्त्र ग्रहण किया था, उस समय गुरुदेव परशुरामजीने मेरे इस महा अपराधको जान कर मुझे यह शाप दिया था, कि तुम्हारी मृत्युके समय इस ब्रह्मास्त्रकी प्रतिभा न रहेगी, इसे तुम भूल जाओगे । वह महातेजस्वी महर्षि क्रोधित होनेसे इस समस्त पृथ्वीका भस्म कर सकते थे, परन्तु मैंने अपनी सेवा और पुरुषार्थसे उनकी चित्तको प्रसन्न कर लिया था । वह अस्त्रभी अभी तक विद्यमान है और मेरी आयुभी शेष नहीं हुई है, इससे अर्जुनको जोतनेका मैंहो भार लेता हूँ, मैं इस विषयमें पूर्ण समर्थ हूँ । ऋषिके उस परम अस्त्रको पाकर अब मैं पाञ्चाल, कुरु, मत्स्य और पुत्र पौत्रके सहित पाण्डवोंको क्षण मात्रमें जोत सकता हूँ, और उनकी मारकर अपने शस्त्रके प्रतापसे सब राज्यको ले लूंगा । भीष्म, द्रोण तथा औरभी मुख्यमुख्य राजा लोग आपके समीप बैठे रहे, मैं अकेलेही अपने बलके प्रभावसे युद्धमें जाकर पाण्डवोंको मारूंगा, यह भार मेरेही ऊपर है ।

कर्ण ऐसेही वचनोंको कह रहे थे, उसी समयमें भीष्म-उन्हीं बोले, हे कर्ण ! कालके

वशमें होकर तुम्हारी कुछ नाश होगई है । तुम व्यर्थ अपनी बड़ाई क्यों करते हो ? यह क्या तुम नहीं जानते हो, कि प्रधान लोगोंके मरनेहीसे धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी मृत्युहोगी ? अर्जुनने कृष्णके सङ्ग मिलकर खाण्डव वनको भस्म किया था, उस बातको समझ कर तुमको वन्धु-बान्धवोंके सहित चुप रहनाही उचित था । देवलोकके स्वामी महात्मा इन्द्रने तुमका जो शक्ति दो है, उसे तुम कृष्णके चक्रके प्रहारसे टुकड़े टुकड़े होकर जलती हुई देखोगे । हे कर्ण ! सर्पमुखी बाण जो तुम्हारे पास शोभित है, और जिसकी तुम फूलोंकी मालासे सदा पूजा किया करते हो; वहभी अर्जुनके बाणोंसे खण्डित होकर तुम्हारे सहित मृत्युको प्राप्त होगा । हे कर्ण ! जिन्होंने महायुद्धमें तुम्हारे समान बरन तुमसेभी अष्ट शत्रुओंको मारा है, वही बाणासुर तथा नरकासुरको पराजित करनेवाले कृष्ण अर्जुनकी रक्षा करते हैं ।

कर्ण बोले, महात्मा कृष्ण जिस प्रकारसे वर्णन किये गये, वैसेही है, वरन उससेभी कुछ अष्ट है, इसमें कोई सन्देह नहीं है, परन्तु पितामहने जो सुभक्तकी श्रोत्रसे कठोर वचन कहे, उसका फल सुनिये । मैंने इन सम्पूर्ण शस्त्रोंको त्याग दिया : पितामह अब मुझे कभी युद्धमें न देखेंगे ; केवल सभाहीमें देखेंगे । हे पितामह ! तुम्हारे मरनेके अनन्तर सब राजा लोग मेरे प्रभाव और पराक्रमको देखेंगे ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय ! वह महा धनुर्दारी कर्ण ऐसा कहके सभासे उठकर अपने घरको चले गये । तब भीष्म हसते हसते दुर्योधनसे बोले, कि स्वतः-पुत्र कर्ण सत्यप्रतिज्ञ कहके प्रसिद्ध है । परन्तु उसने जो यह कहा, “कि कलिङ्गराज, चंदो-पति, गडोका, जयद्रथ आदिके बैठे रहनेपर भी मैं अकेलाही सौ सौ हजार वीरोंकी नित्य

मास्त्रंगा" सो वह इस भारको कैसे पूरा कर सकेगा ? यह देखो, भीमसेन व्यूहके विरुद्ध व्यूह बनाकर सबके शिरको तोड़कर प्राणियोंके संहार करनेमें प्रवृत्त होता है। पुरुषोत्तम अधम बैकतनने जब निन्दारहित परशुरामजीके यहा "मैं ब्राह्मणका पुत्र हूँ" कहके अस्त्र ग्रहण किया, तभी उसका धर्म और तप नष्ट हो गया।

हे राजेन्द्र ! भीष्मके ऐसे कहने और कर्णके शस्त्रोंको परित्याग करके चले जानपर धृतराष्ट्रपुत्र नीचबुद्धि दुर्योधन शान्तनुनन्दन भीष्मसे कहने लगे।

६२ अध्याय समाप्त ।

दुर्योधन बोले, हे पितामह पाण्डवोंका मनुष्योंकी भांति रूप है और मनुष्योंहीकी भांति उत्पन्न भये हैं, तब उन लागोहीकी विजय होगी, इस बातको आप कैसे स्थिर करते हैं ? देखिये वीर्य पराक्रम, बुद्धि अवस्था, शास्त्रज्ञान, अस्त्रोंकी शिद्धा, युद्धका अभ्यास, शौर्यता और कौशलमें वह और हम लोग सबही समान हैं, सब कोई एक जात हैं और सबही मनुष्योंनसे उत्पन्न हुए हैं, तब उन्हीं लोगोंकी जोत हागी, इस बातको आप किस प्रकारसे जानते हैं ? हे राजन् ! मैं आपके ऊपर वा द्राणाचाय्ये, कृपाचाय्ये, वाह्यीक तथा अन्य भूपालोंके ऊपरभी युद्धक काय्यका निर्भर नहीं करता हूँ ने अपन पराक्रमहासे युद्धका तैयारी करता हूँ। मैं क्रण आर मरा भाइ दुःशासन, येही तीन मनुष्य अपन चाखे बाणासे पांच पाण्डवाका मारेंगे, फिर उसके अनन्तर वज्रत दाक्षणासे युक्त वज्रतसे महायज्ञ करके और गौ, घाड़ तथा धन दानसे मैं ब्राह्मणोंको दत्त करूँगा। मेरे सेनापति लोग जब फाँसे से पकड़े हुए हरिणोंकी भांति शत्रुओंको रथ, हाथी और घोड़ोंके सहित व्याकुल देखकर

उन्हीं धर लेंगे, उसी समय पाण्डव और कृष्णका गर्व कूट जायगा।

विदुर बोले, यद्यार्थ बातोंके जाननेवाले पण्डित लोग इस संसारमें दमहीको उत्तम साधन कहते हैं, विशेष करके ब्राह्मणोंके निमित्त दम सनातन धर्म है। दमशाली मनुष्यकी दान, क्षमा और सिद्धि स्वाभाविकही उत्पन्न होती है। दम, दान, तप, ज्ञान, विद्या और तेजकी बढ़ाता है; दमही उत्तम और पवित्र वस्तु है। दमके प्रभावसे मनुष्य स्व पापोंसे कूटकार तथा सब तेजसेयुक्त होके परम पदका पात है। राजासोई जैसे सबको भय उत्पन्न होता है, वैसेही दुष्ट पुरुषोंसेभी लोग का सदा भय हुआ करता है। दुष्ट अर्थात् क्रोधकी मारनेहीके निमित्त ब्रह्माने चतुरियोंको उत्पन्न किया है। पण्डितोंने चारों आश्रमोंमें दमको उत्तम कहा है। दम सब गुणोंको उत्पात्तिका स्थान है, उन सब गुणोंको दमका लक्षण कहना चाहिये। हे राजेन्द्र ! क्रोध, क्रमा, घात, अहिंसा समता, सत्य, सरलता, दान्द्र्यनिग्रह, धीरज, प्यारा वचन, बुर कसौ म चित्तका रोकना- स्थिरता, कृपणता न करनी, क्रोधका न होना, सन्तोष और अज्ञा आदिक गुण रहते हैं, उन्हें सत्पुरुष कहते हैं। सत्पुरुषी काम, क्रोध, लोभ, मांह, ईर्ष्या, आभमा, क्रोध, निद्रा, अपनी बड़ाई और शोक आदि विशेषता नहीं रहती। दया सत्य और पात्रता यही सत्पुरुषोंके लक्षण हैं। जो पुरुष लोभसे रहित, थोड़ी प्राप्तिसे सन्तोषी, का चिन्तामें न पड़नेवाले और समुद्रकी भाँति गम्भीर होते हैं, वेही सत्पुरुष कहाँ हैं। उत्तम चरित्रवाले, शीलसे युक्त, सद प्रसन्न रहनेवाले आत्मतत्वको जाननेवाले, ज्ञान पुरुष इस लोकमें मान और प्राप्तिका पात्र अन्तमें उत्तम गतिको पाते हैं। प्राणा मात्र ही जिसे कुछ भय उत्पन्न नहीं होता, और जिसे

सब जीवोंकीभी किञ्चित् डर नहीं रहता, तथा जो सब जीवोंके हितकारी वस्तु है, ऐसेही पुरुष पुरुषोत्तम कहाने है, जिनसे किसी मनुष्यको कुछभी दुःख नहीं होता; बुद्धि और ज्ञानसे तप्त होकर वह समुद्रकी भाँति एकही रूपसे निरन्तर शान्त रहते है। पहिले थोछ पुरुषोंने यज्ञ आदि जिन कार्यों के अनुष्ठान किये है, तथा वर्तमानमें साधु पुरुष जिन कार्योंका आचरण करते है, उन्हीं कर्मोंको करके सत्पुरुष लाग आनन्दत होते है। अथवा ज्ञानसे तप्त होकर जो मनुष्य वासना-रहित कर्मोंको करते हुए संसारमें निवास करते है, वह परम पद पानेके योग्य है। आकाशमें उड़ने हुए पक्षियोंके मार्गको जैसे कोई नहीं प्राप्त कर सकता, उसी भाँतिसे सुनियोंका निवास स्थानभी साधारण पुरुषोंकी दृष्टिमें नहीं आता। अथवा जो रुद्धको त्यागके सन्यास आश्रमहीमें निवास करते है, उनके रहनेके निमित्त स्वर्गमें प्रकाशमान लोक तैयार रहता है।

६३ अध्याय समाप्त ।

विदुर बाले, है तात । पुराने लोगोंने यह कथा प्रसिद्ध है कि किसी व्याधने पक्षी पकड़नेके निमित्त पृथ्वीमें अपनी जालकी बिछाया था, उसमें एक सड़ रहनेवाली दो बूढ़े पक्षी गिर, और दोनों मिलकर जाल समेत आकाश मार्गमें उड़ गये। तब व्याधा उन दोनोंकी जाल सहित आकाशमें उड़ता हुआ देखकरभी दुःखी नहीं हुआ, और उनके पीछे पीछे वहभी दौड़ने लगा। पक्षियोंके पीछा करनेवाला व्याधा इसी भाँतिसे दौड़ा हुआ जाता जा। उसी अन्तरमें सन्या आदि कर्मोंको पूरा करके आश्रममें रहनेवाले किसी सुनिने उसे देखा। है भारत ! तब डर सुनिने इस पृथ्वीपर चलनेवाली व्याधा आकाशमें उड़नेवाले पक्षियोंके पीछे

शीघ्रतासे दौड़ते हुए देखकर उसको एक श्लोकसे यह पूछा, कि “है व्याध ! तूम पैरोसे चलनेवाले होकर जा पक्षियोंका पीछा करते हो, यह देखकर मुझे बहूतही आश्चर्य होता है।” व्याध बोला, “ये दोनों पक्षी मिलकर मेरे जालकी लिये हुए उड़ जाते है, परन्तु जब ये आपसमें झगड़ा करेंगे, तबही मेरे वशमें जा जायेंगे।”

विदुर बाले, अनन्तर वे कालग्रस्त बुद्धिहीन दोनों पक्षी आपसमें झगड़ने लगे, और दोनों लड़कर पृथ्वीमें गिर। तब व्याधने उन दोनों पक्षियोंका जालमें फँसे हुए, क्रोधसे भरे और लड़ते हुए देख, धीरे धीरे उनके निकट जाकर दोनोंका पकड़ लिया। इसी प्रकारसे जो मनुष्य अपनी जातिसे सड़ झगड़ा तथा लड़ाई करते है, वे ऊपर कहे हुए दाना पक्षियोंको भाँत शत्रुके वशमें जा जाते है। एकत्र होकर खाना, पीना, बात चीत, काम काजका पूछना और आपसमें मल रखना, यही सब जातिके कार्य है। अपनी जातिसे विरोध करना कभी उचित नहीं है। जो सब जाति एक मत और अच्छा बुद्धिसे युक्त होकर बूढ़ोंकी उपासना करतो है, वे सिद्धसे राक्षत वनका भाँत विद्यमान रहतो है। है भरतवर्मा ! जो मनुष्य बहूतसाधन उपासने करकेभी महा दरिद्रका भाँत निवास करते है, वे शत्रुआ ! हाथमें लक्ष्मीका देते है। है हृतराष्ट्र ! जातिके मनुष्य अलग अलग रहनेसे जलता हुआ लकड़ाका तरह बुझ जाते है, इन्हें रहनेसेही प्रज्वालित तथा प्रकाशित होता रहते है। है कुरुनन्दन ! जैने पर्वतके ऊपर एक विषयका अवलोकन किया था, उसकाभी सुन लीजिये, तब जैसा उचित है, वैसा कीजिये। किसी समयमें नैन किरात और मन्त्र पण्डित, धनुर्वेद्या तथा और भी बहूतसा विद्यावाकी जन्मनेवाले देवकन्य काश्यपकी सन्तति निवे तथा गन्धर्वासे प्रकाशित

लताओंसे युक्त, कुण्डकी भांति शोभायमान गन्धमादन पर्वत पर गमन किया था। वहाँपर जाकर देखा कि पर्वतके ऊपर बालुकामय स्थानमें घड़िके बराबर गहरा पोतवर्ण मधु-मक्षियोंसे रहित उस स्थान पर मधु अर्थात् अमृत रहता है। यह मधु कुवेरको अत्यन्तही प्रिय है, इस निमित्त महा विषधर सर्प उसकी रक्षा करते हैं। हमारे सङ्गमें रहनेवाले पदार्थ-विद्याके जाननेवाले ब्राह्मणोंने कहा, कि इस मधुको जानेसे मनुष्य अमर होते हैं, अन्ध लोचन पाते हैं और बूढ़े युवा हो जाते हैं। अन्तर किरातोंने उस मधुको देखके उसको ग्रहण करनेकी इच्छा करी। इससे वे लोग वहाँ पर सर्पोंसे भरी हई उस भयानक पर्वत-को कन्दरामें सापोंके विषसे मरकर मृत्युको पङ्चें। हे महाराज तुम्हारे पुत्रभी उसी भांतिसे अकेलेही सब पृथ्वीका लेनेको इच्छा करते हैं। ये लोग मोहमे पड़कर केवल मधुही देखते हैं, परन्तु पीछे जो मृत्युकी शंका है, उसे नहीं देखते हैं। दुर्योधन अर्जुन सङ्ग युद्ध करनेको इच्छा करता है, पर मैं इसका अर्जुनकी समान तेज वा पराक्रम कुछभी नहीं देखता हूँ। अर्जुनने अकेलेही एक रथसे पृथ्वीको जीता था, और विराट नगरमें बद्धतसी सेना आदिके सहित युद्धके निमित्त यात्रा करनेवाले भोष्म, द्रोण, आदि महावीरोंको अकेलेही भय-भीत और पराजित किया था। उस स्थानपर दुर्योधनकी बोरता कहा गयी थी? देखिये, वह महावीर पुरुष केवल आपहोका मुँह देखकर चमा कर रहे हैं, परन्तु पूर्णरौतिसे क्राधित होतें पर, जब महाबलवान अर्जुन, पाञ्चाल दुपद, मत्स्यराज विराट, युद्धमें वायुकी सहायतासे अग्निकी भांति प्रज्वलित होगे, तब आपका कुछभी बाकी न छोड़ेंगे। इससे हे धृतराष्ट्र! युधिष्ठिरको अपनी गोदके भीतर कर लो, क्योंकि युद्धमें प्रवृत्त होनेसे

दोनं। और वालोंको सम्पूर्णरूपसे जीत नहीं होती।

६४ अध्याय समाप्त ।

धृतराष्ट्र बोले, हे पुत्र दुर्योधन! मैं तुमसे जो वचन कहता हूँ, उसे उत्तम प्रकारसे अपने हृदयमें धारण करो। अजान बटोहीकी भांति तुम कुपथहीको उत्तम मार्ग समझते हो, क्योंकि सब लोकोंके धारण करनेवाले पद्म महाभूतोंकी तरह पाचों पाण्डवोंके तेजको हरनेकी अभिलाष करते हैं। तुम परम गति और मृत्युकी बिना प्रताप्ता किये, इस लोकमें परम धर्मात्मा कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरकी कभी भी नहीं जीत सकते। जैसे वृक्ष प्रचण्ड वायुको परास्त करनेकी इच्छा करता है, वैसेही तुम भी महाबलवान युद्धमें सब शत्रुओंके नाश करनेवाले भोमसेनको जीतनेको इच्छा करते हैं। पर्वतमें सुमेर पर्वतकी भांति सब शस्त्र धारियोंमें अष्ट अर्जुनके सङ्ग कौन बुद्धिमान मनुष्य युद्ध करनेके निमित्त प्रवृत्त होगा? पाञ्चालराज-पुत्र धृष्टद्युम्नही आज वज्र चलानेवाले इन्द्रके समान अपने चौखे बाणोंको वर्षा करके किस पुरुषका न मार सकेंगे? अश्व और वृषावर्षमें सन्मानित महाधनुर्धर साय कोभी तुम्हारी सेनाका नाश करेंगे। गौरव और तेज तथा पराक्रममें जो ताँगे लाकरी जीतनेमें समर्थ हैं, उन पुण्डरीकाक्ष कृष्णके सङ्ग कौन बुद्धिमान मनुष्य युद्ध करनेका उत्साह करेगा? उसके स्त्री, पुत्र, वन्धुवन्धव, तथा उसको आत्मा और पृथ्वीका राज्य एक आर रहे तौभी अकेला अर्जुन एक आर रह सकता है। अर्जुनने जिसके साथ मित्रता करी है, वह कृष्णभी अजेय है, और जिस सेनामें वृक्ष निवास करते हैं, वह सेनाभी पृथ्वी भरमें महाबलवान है। इससे हे तात! हित करनेवाले सुहृद् तथा साधु पुरुषोंके वचनमें

विश्वास करो। शान्तनुपुत्र बूढ़े पितामह भीष्मके वचनोंकी ग्रहण करो। मैं जो कहता हूँ, तथा कौरवोंके हितकी चाहनेवाले द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, विकर्ण और महाराज वाहिक जो वचन कहते हैं, उसेभी ध्यान देकर सुनो। हे भारत। ये भी मेरेही समान हैं। तुम जैसे सुभी मानते हो, वैसेही इन्हेंभी समझो, क्योंकि ये सबही धर्म्यात्मा और मेरे समान तुमसे स्नेह करते हैं। विराट नगरमें जब तुम्हारे भाइयोंके सहित सब सेना अर्जुनके डरसे व्याकुल होकर गौओंको कोड़के तुम्हारे सम्मुखही भाग गई थी : और वहापर जो अनक वीरोंके सङ्ग अकेले अर्जुनका आश्चर्य युद्ध सुना जाता है, वही इसमें यथेष्ट प्रमाण है। अर्जुनने जब अकेलेही तुम्हारी सब सेनाकी पराजित किया था, तब इस समय सब पाण्डव और अन्य वीरोंके सङ्ग मिलकर जो कौरवोंका नाश करेगा, इसमें क्या सन्देह है ? इससे तुम पाण्डवोंके सङ्ग यथार्थ भावभावकी ग्रहण करो और प्रेमपूर्वक उनकी आज्ञाका पालन करो।

६५ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महाबुद्धिमान् महात्मा धृतराष्ट्र दुर्योधनसे ऐसा वचन कहकर फिर सञ्जयसे पूछने लगे, हे सञ्जय। कृष्णके अनन्तर अर्जुनने जो कुछ वचन कहे हैं, वह तुम सुझसे कहो, क्योंकि उन वचनोंकी सुननेकी सुभी बहुतही द्रच्छा है।

सञ्जय बोले, कुन्तिपुत्र महात्मा अर्जुन श्रीकृष्णकी बातोंको सुनकर उनके सम्मुखही सुझसे कहने लगे, हे सञ्जय ! तुम पितामह शान्तनुपुत्र भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, धृतराष्ट्र, कण महाराज वाहिक, अश्वत्थामा, सोमदत्त, सुवल्किपुत्र शकुनि, दुःशासन, शल्य,

पुष्पिमत, विविशति, विकर्ण, चित्रसेन, जयत्सेन, अवन्तिपति विन्द् और अनुविन्द, कौरववंशीय जयद्रथ, दुर्मख, भूरिचक्रा, दुःसह, भगदत्त, जलसन्ध और पाण्डवस्तुपी अग्निमें होमके निमित्त जो सब महात्मा राजा लोग दुर्योधनके आमन्त्रणसे कौरवोंके प्रियकार्यकी करनेके निमित्त युद्धके वास्ते आकर इकट्ठे हुए हैं, उन सबसे मेरे वचनके अनुसार कुशल होम पूछना ; इसके अनन्तर पापियोंके अग्रगामी दुर्योधनसे राजाओंके बीचमें यह वचन कहना। हे सञ्जय। वह क्रीधी, नीचबुद्धि, पापी, महालोभी राजपुत्र दुर्योधन जिस प्रकारसे दुष्ट मित्रों तथा अनुयायियोंके सहित मेरे वचनोंको सुन सके, तुम वैसेही उपाय करना। रक्तवर्ण बड़ी आंख और विशाल-भुज अर्जुनने सुभी इस प्रकारसे वचन-वद्ध करके, अन्तमें कृष्णके मुखकी ओर देखके धर्म और अर्थसे भरे वचनोंको कहना आरम्भ किया कि "तुमने यदुकुलश्रेष्ठ, बोलनेशालोंमें उत्तम महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रके समाधानयुक्त वचनोंकी जैसे सुना है, कौरवोंकी सभामें सब राजाओंके बीच मेरे वचनकीभी उसी भांतिसे कहना। उससेही यही एक बात विधिपस्तपसे कहना कि हे राजा लोग। जिससे संग्राम-भूमिमें शस्त्ररूपी घृत, धनुष-रूपी युवा, रथरूपी वायुसे युक्त महा-वाणरूपी अग्निरों होमका कार्य समाप्त न करना पड़े, तुम सब लोग इकट्ठे होकर उस विषयमें विशेष यत्नवान हाना। यदि तुम लोग शत्रुनाशन युधिष्ठिरकी उनके मागनेके अनुसार राज्यका अंश न प्रदान करोगे, तो मैं अपन तेज बाणोंकी सहायतासे रथ, जोड़े, हाथी और पैदल समेत तुम लोगोंकी यमगरीमें पड़ंचा दूंगा। हे महाराज। अनन्तर मैं यथा उचित बातचीत तथा कृष्ण और अर्जुनकी नमस्कार करके आपकी निकट उन उदार

वचनोंकी कहनेके निमित्त शीघ्रता सहित
यहाँ पर आके उपस्थित हुआ हूँ ।

६६ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, धृतराष्ट्रपुत्र दुःश्री-
पनने सञ्जयके वचनोंका अनादर किया, और
सबने भीनद्वत धारण किया । अनन्तर नभासे
सब राजालोग उठके अपने अपने स्थानपर
गये । हे महाराज ! पृथ्वीके सब राजाओंके
सभासे चले जानेपर पृथ्वीके वशवर्ती राजा
धृतराष्ट्र पत्नीके विजयकी इच्छा करते हुए अपना
पाण्डवोंका और दूसरे लोगोंका इस विषयमें
किस प्रकारका निश्चय है ; इस विषयको
सञ्जयसे एकान्तमें पूछने लगे ।

धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! मेरी अपनी
सेनामें जो कुछ सार विषय है, उसे तम वर्णन
करो । और तुम पाण्डवोंके समस्त वृत्तान्तोंको
भी जानते हो, इससे उन लोगोंमें जो कुछ
उत्तम वा निकृष्ट विषय हो, उसे भी ज्योंका
त्यों वर्णन करो । तुम दोनों पक्षके सार विष-
यका जाननेवाली, सर्वदर्शी, धर्म और अर्थके
विषयमें भी निपुण तथा सब कार्योंके निश्चय
करनेवाली हो, मैं इसी निमित्त तुमसे पूछता
हूँ, तुम सब बातोंका प्रकाशित करके सुझसे
कहो, युद्धमें प्रवृत्त होनेसे कौन पक्ष नष्ट होगा ?

सञ्जय बोले, हे राजन् ! मैं निज्जैन स्थानमें
आपसे कभी कुछ वचन न कहूँगा, क्योंकि
इससे आप पापग्रस्त होगी, इस निमित्त महाव्रत
करनेवाले पिता व्यासदेव और माता गाम्भारीकी
बुलाइये वे लग्न धर्मको जाननेवाले, सब
कार्योंमें निपुण और निश्चय करनेवाले हैं,
वे आपका इस वचनरूपी चारीके पापसे मुक्त
कर सकेंगी । हे राजेन्द्र ! उन्हींके सम्मुखसे
मैं कृष्ण और अर्जुनके सम्पूर्ण अभिप्रायको
प्रकाशित करके कहूँगा ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, ऐसे वचनकी

सुनकर राजा धृतराष्ट्रने विदुरके द्वारा गाम्भारी
और व्यासदेवकी वहापर बुलवाया और उन
लोगोंने भी शीघ्रही आकर सभामें प्रवेश किया ।
अनन्तर महाबुद्धिमान युष्मादे पायन सञ्जय और
अपने पत्न धृतराष्ट्रके मनके अभिप्रायको जान-
कर, उसे अनुमोदन करके सञ्जयसे कहा, वे
तुमसे जो वचन पूछते हैं,—तुम कृष्ण और
अर्जुनके विषयमें जो कुछ बात जानते हो, उसे
इन जिज्ञासु धृतराष्ट्रके निकट ज्योंका त्यों
वर्णन करो ।

६७ अध्याय समाप्त ।

सञ्जय बोले, परम-पूजित धन्वारी कृष्ण
और अर्जुन सबके संहार करनेके निमित्त
सम्मत होकर बदरिकाश्रमसे भारतवर्षमें उत्पन्न
हुए हैं । हे महाराज ! महात्मा श्रीकृष्णका
बाल रूपी चक्र पांच हाथके परिमाण स्थानमें
व्याप्त हो रहा है । तेज पञ्जसे प्रकाशित वह
चक्र अज्ञातरूपसे कौरवोंके निमित्त विराजमान
है ; पाण्डवोंके सार और असार बलकी जान-
नेके निमित्त वही एक उत्तम प्रमाण है ।
महाबलवान् श्रीकृष्णचन्द्रने क्रीड़ा करते करते
नरकासुर, कंस और चेंदीपति शिशुपालका
नाश किया था । ऐश्वर्यवान् महात्मा कृष्ण
इच्छा मात्रसे पृथ्वी, आकाश तथा स्वर्गको
अपने वशमें कर सकते हैं । हे राजन् ! आप
जो सार और असार विषयोंकी जाननेके
निमित्त बार बार पाण्डवोंकी बातको पूछते हैं,
उसे संक्षेपमें सुनिये । यदि सब संसार एक
और और जनार्दन कृष्ण एक तरफ रहें, तोभी
कृष्णही सम्पूर्ण जगत्में अधिक हो सकते हैं ।
वे अपनी इच्छा मात्रसे सब संसारकी भस्म कर
सकते हैं, परन्तु उन्हें भस्म करनेके निमित्त यह
कारण स नार भी समर्थ नहीं है । जहापर सब
धर्म, लज्जा और कीमलता रहती है, उसी
स्थानपर गोविन्द कृष्ण निवास करते हैं ।

जिसकी ओर कृष्ण रहते हैं, उसकीही जय होती है। प्राणियोंकी आत्मामें जनार्दन श्रीकृष्ण लीला करते विराजते हैं और पृथ्वी, अन्तरिक्ष और स्वर्गकी नियत सीमापर चलाते हैं। सुभी सालूस होता है, कि वे सब लोगोंकी मोह उत्पन्न करनेकी असिलाषासे पाण्डवोंकी नास सावका अगुवा बनाके आपके अधर्ममें रत पुत्रोंकी नाश करनेकी इच्छा करते हैं। भगवान् कृष्ण चैतन्यता तथा अपनी योग-मायासे कालचक्र, जगतचक्र और कर्मचक्रोंकी सदाही परिवर्तित (उलट पलट) किया करते हैं। मैं आपसे यह सत्य कहता हूँ, कि वही एक मात्र भगवान् कृष्ण काल, मृत्यु, स्थावर और जड़स सम्पूर्ण जगतके ऊपर अपनी प्रभुता कर रहे हैं। सहायोगी हरि जगतके स्वामी होकरभी दुर्बल दरिद्रकी भांति कर्म करना आरम्भ करते हैं, और उस माया भोगसे सब लोकोकी वञ्चित करते हैं। जो मनुष्य उनके यथार्थ रूपको ग्रहण करते हैं, वे कभी मोहमें नहीं पड़ते।

६८ अध्याय समाप्त ।

धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! तुमने कृष्णकी किस प्रकारसे सब लोकोका ईश्वर जाना ? और मैं क्यों नहीं उनको जान सकता हूँ, यह तुम मुझसे कहो।

सञ्जय बोले, हे राजन् ! इसका कारण सुनिये। आपको विद्या नहीं है, परन्तु मेरी विद्या दृष्ट नहीं हुई है। जो मनुष्य विद्याहीन और तमागुणसे युक्त रहता है, वह ब्रह्म-प्रतिपादक वाक्योंकी तात्पर्यकी ग्रहण नहीं कर सकता; निर्विषयानन्द मात्र अपनं भावस्वरूपसे भट्ट हा जाता है, इसी कारणसे वह श्रीकृष्ण भगवान्को नहीं जान सकता है। हे तात ! मैं विद्याके प्रभावसे उन सहाला वशकी त्रियुग (स्थूल, सूक्ष्म और कारण

शरीरसे युक्त) कर्त्ता और क्लृप्तो न करनेवाला लीला करनेवाला, सब प्राणिकोंकी उत्पत्ति और नाशका हेतु समझता हूँ।

धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! जनार्दन कृष्णमें जो तुम्हारी सब दिनसे इस प्रकारकी भक्ति है, वह कैसे हुई, जिससे तुम उनको त्रियुग (स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरसे युक्त) जानते हो ?

सञ्जय बोले, हे राजन् ! आपका कल्याण ही, मैं स्वी पुत्र आदिके मोहसे पड़कर अविद्याका सेवन नहीं करता हूँ, और ईश्वरकी विना समर्पण किये वृथा धर्मके आचरणमें भी मेरी प्रवृत्ति नहीं होती। केवल भक्ति-योग और शुद्धभावसे जनार्दन कृष्णकी जानता हूँ।

धृतराष्ट्र बोले, हे दुर्योधन ! तुम हृषीकेश कृष्णकी उपासना करो। हे तात ! सञ्जय हम लोगोंके अत्यन्तही विश्वासपात्र हैं, इससे इनके वचनोंकी मानकर तुम श्रीकृष्णकी शरणमें चले जाओ।

दुर्योधन बोले, हे राजन् ! देवकीपुत्र कृष्ण यदि अर्जुनके सङ्ग मिलकर सब लोकोके संहार करनेपर उद्यत होगे, तभी मैं इस समय उनकी शरणमें न जाऊंगा।

धृतराष्ट्र बोले, हे माम्भारी ! यह ईर्ष्यक, दुरात्मा, असिमानी, हित चाहनेवालोंकी बातोंकी न माननेवाला, नीचवृत्ति, तुम्हारा पुत्र केवल कालके वशमें होकर पतित हुआ चाहता है।

गान्धारी बोली, रे ऐश्वर्यकासी ! दुरात्मा ! अरे मूर्ख ! तू वटोके वृक्षोंकी न मानकर, पिताकी तथा मुझेभी त्यागके और ऐश्वर्य जीवन और सुखकी आशाको छोड़कर, शत्रु-ओंके आनन्द और हम लोगोंके शोककी पटाना हुआ, जब भीमसेनके हाथसे मारा जायगा, तभी पिताके वचनोंकी स्मरण करेगा।

त्रैव्यासदेवजी बोले, हे राजन् धृतराष्ट्र ! मैं तुमसे जो वचन कहता हूँ, उसे तुम ननो। तुम

कृष्णको प्रियपात्र हो; सञ्जय जब तुम्हारे दूत हुए हैं, तब ये तुम्हारे कल्याणके निमित्त अवश्य यत्न करेंगे। ये सनातन भगवान् कृष्णकी पूर्ण स्वरूपसे जानते हैं, इससे यदि तुम एकाग्र चित्तसे सुननेकी इच्छा करोगे, तो ये तुमको सहाय्यरी सुक्त कर देंगे। हे धृतराष्ट्र। मनुष्य लोग क्रोध और हर्षसे युक्त होकर अनेक बन्धनोंसे बंधे हुए हैं, जो अपने उपाजित धन प्रादिसी सन्तुष्ट नहीं होता, वह अन्धके पीछे चलनेवाली गध्याकी भांति अपने कर्म्मोंसे बार बार मृत्युके वशमें पड़ता है। जिस मार्गसे बुद्धिमान सच्चात्मा साधु पुरुष चलते हैं, वही ब्रह्मके प्राप्त करनेका एक मात्र सुगम मार्ग है। बुद्धिमान पुरुष उसी मार्गकी जानकारी जन्ममरणके लोभोंसे कूट जाते हैं।

धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय। जिस मार्गमें दुष्टभी भयको सहाय्य नहीँ है, जिसके द्वारा मैं जनार्दन कृष्णकी जानकारी उत्तम सिद्धिसे प्राप्त करूँ, उसी मार्गका तुम मुझसे वर्णन करो।

सञ्जय बोले, हे महाराज। आत्मतत्त्वकी न जाननेवाला पुरुष जैसे कृतात्मा जनार्दनको नहीं जान सकता है, वैसेही आत्मक्रियाका उपायभी बिना इन्द्रिय निग्रहके नहीं हो सकता। विषयोंमें लगी हुई इन्द्रियोंकी विषय-कार्थियोंसे निवृत्ति केवल अप्रमादहीसे होती है। अप्रमाद और चिंसाका त्याग येही दोनों ज्ञानकी उत्पत्तिके स्थान हैं, इसमें कलभी सन्देह नहीं है। हे राजन्। इससे आप आलसको छोड़कर इन्द्रिय-निग्रहके निमित्त यत्नवान् होइये। आपकी बुद्धि जिसमें तत्त्व-मार्गसे भ्रष्ट न हो जाय, इस निमित्त आप उसे सब विषयोंसे खींचके निवृत्त करें। ब्राह्मण लोग इन्द्रिय-संयमकीही निश्चल ज्ञान कहते हैं। यही ज्ञान है : और बुद्धिमान् सच्चात्मा उत्तम पुरुष जिस प्रयत्नसे मग्न रहते हैं, वही

मार्ग है, हे राजन् ! इन्द्रियोंकी न जीतने-वाले पुरुष, भगवन् केशवकी नहीं जान सकते; इन्द्रियोंके जीतनेवाले पुरुषही प्राप्त हुए योग-प्रभावसे उनके तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति है।

६६ अध्याय समाप्त।

धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय। मैं तुमसे पूछता हूँ, इससे तुम मुझसे पुनर्बार एक कात्त्वका वर्णन करो। हे ताता मैं उनके और कर्म्मोंके अर्थोंकी जाननेसेही उन्हें कर सकूँगा।

सञ्जय बोले, मैं जितना स्मरण कर सकूँ, उतनेही परिमाणसे श्रीकृष्णचन्द्रके नामोंकी सुना है, क्योंकि केशवके नाम इन्हीं कर्म्मोंकी गिनती नहीं हो सकती। सब प्रायोंके वसन अर्थात् मायासे आवरण करने कारण वसुत्व अर्थात् तेजस्य तथा देवताके कारण हीनेसे उनका नाम वासुदेव है; श्री व्यापक हीनेसे विष्णु शब्दसे पुकारे जाते हैं हे भारत ! वह मुनियोंके कर्म्मतत्वकी आली चना, निश्चित तत्त्वोंमें चित्तकी लगाने श्री निरोध करनेसे साधव कहते हैं। सध नाम दैत्य और मधु शब्दसे कहे पृथ्वी आदि चौबीस तत्वोंके संहार करनेसे उनका मधु-रदन नाम है। कृषि शब्द सत्वका बोधक है और रा शब्द सुखवाचक है इन दोनों शब्दोंके अर्थोंके अनुसार यदुकुलमें उत्पन्न हीनेसे कृष्ण नाम हुआ है। पुण्डरीक शब्दसे उनका परम धाम तथा स्वरूपका बोध होता है; यह धाम नित्य, अक्षय और अव्यय है, मधु पुण्डरीकके कारणसे वह पुण्डरीकाक्ष भी जाते हैं। दुष्टोंकी भय देने तथा भंजार करनेसे उनका नाम जनार्दन हुआ है। उनमें कभी सतीगुण पृथक् नहीं होता, और वहभी सतीगुणसे भ्रष्ट नहीं होते, इसी निमित्त उनका नाम सात्वत है। वृष शब्दमें जीर्ण

अर्थ होता है, धर्मकी ज्योति अर्थात् वेद जिससे उत्पन्न होती है, वही वेद जिसके ज्ञान-नेके निमित्त इच्छा अर्थात् चक्षुस्वरूप हैं; कृष्ण वेदके जाननेवाले पुरुष हैं, इसीसे उनका नाम वृषभक्ष्ण है। गुह्यकी जीतनेवाली केशवका कोई उत्पन्न करनेवाला तथा जन्मदाता नहीं है, इसीसे उनका अज नाम हुआ है। दाम शब्दसे दमशाली और उदर उत्तम रूपसे प्रकाशितका बोध होता है। सर्वव्यापक मधुसूदन दमशाली और इन्द्रियोंके बीच स्वयं प्रकाशित होकर दामोदर नामको धारण किये हैं, जिससे हर्ष प्राप्त होता है, उसी अर्थसे हृषीकेश शब्द बना है, इसका अर्थ स्वस्वपानन्द और ईष शब्दका ऐश्वर्यवान् अर्थ है, कृष्णको हर्ष, सुख और ऐश्वर्य है, इसीसे उनका नाम हृषी-केश हुआ है। उन्नेन अपने भुजाओंसे पृथ्वी और स्वर्गका धारण किया है, इसीसे उनका नाम महाबाहु विख्यात हुआ है। अधः प्रदेश उनका कभी क्षय नहीं होता अर्थात् वे ससार धर्ममें कभी लिप्त नहीं होते, इससे उनका नाम अधोक्षज है। और अनुथाक अयन अर्थात् आश्रयक स्थानके कारणसे उनका नाम नारायण विख्यात हुआ है। जा पूरण करत है, उन्ने पुर" आर जिसमें समाप्त होता है उस "प" कहते हैं, इन दोनों शब्दोंके योगसे पुरुष शब्द बनता है, कृष्ण ससारको छाड़ करके संहार करते हैं, इसीसे वे पुरुषार्थ उत्तम पुरुष भवे हैं, इसी कारणसे उनका नाम पुरुषोत्तम हुआ है। वह समस्त कार्य और कारणको उत्पत्ति और विना-शके मूल है, और सदा ही सब वस्तुओंका जानते रहते हैं; इसीसे प्रसिद्ध लोग उन्हे सर्वज्ञ कहते हैं। इण्ण सत्यसे प्रतिष्ठित है, और सत्य वृत्तिमें प्रतिष्ठित है; गोविन्द सत्यसे भा-रत नाम है, इससे सत्यभा उनका नाम है। वह धर्मके कारणसे विष्णु आर जयसे जगन्नाथ

नित्यतासे अनन्त और ही अर्थात् गद्य-पद्य वाक्योंके जाननेसे गोविन्द कहे जाते हैं। वह मिथ्याभूत जगतके प्रपञ्चकी अपने तेजसे प्रकाशित करके सत्यकी भांति प्रतीयमान (गोपित) करके उसके सब प्राणियोंको मोहित करते रहते रहते हैं। इसी प्रकारसे धर्मनित्य महाबाहु भगवान् मधुसूदन अव्युत कौरवोंके कल्याणके निमित्त यहाँ आगमन करेंगे।

७० अध्याय समाप्त ।

धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! परम देहसे प्रकाशमान और सब दिशाओंमें प्रकाशित वासु-देवको जो अपने समीपहीमें देखेंगे, उन नेत्रसे युक्त सब जन्तुओंके भाग्यकी मैं धन्य सम-झता हूँ। सब वीरवलाग भरतवंशियोंमें पूजनीय, उज्जयिंकी कल्याणकी चाहनेवाली, ऐश्वर्यकासी मनुष्योंकी ग्रहण करनेवाली, निन्दा रहित, वचनान्तकी प्रभावसे सबको मोहित करनेवाली, उद्यमशाली, यदुर्वशियोंमें अष्ट, आहितीय हर्षिावीर श्रीकृष्णभी अपने उदार वचनोंसे मेरी सभाके सब लोगोंको मोहित करेंगे, उन सनातन आत्मतत्त्वज्ञ द्रष्टा, ज्ञानके समुद्र, योगियों के कलस अर्थात् अनायासहा प्राप्त होनेवाली, शांतायमान पञ्चयुक्त अरिष्टनाम नामक गुरु, प्राणियों के संहार करवाले, जगतके दीपक, विश्वार्थ, अज, नित्य अष्ट, आदि सत्य, आदि सीसार रहित, अनन्त-कीर्तिमान और लहलह-शोपक पुरुषका मैं अपना रक्षक रूपसे जानूँगा तथा उनको आशा करूँगा। वह तीनों लोकोंके बनाने-वाली देवता, अक्षर नाग, राजस आदि प्राणि-योंको उत्पन्न करनेवाले, विद्यासे युक्त, राजा-अष्ट, परात्पर हैं, वे उनका गणनाम हो जाय।

७१ अध्याय और नञ्जयान पर्व समाप्त ।

अथ भगवन्त्यान पर्व ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले हैं राजन् जनमे-
जय ! सञ्जयके हस्तिनापुर जानेके अनन्तर
धर्मराज युधिष्ठिरन यदुकुलश्रेष्ठ कृष्णसे कहा,
हे मित्रवत्सल ! मित्रगणकी मित्रता दिखानेके
निमित्त यही एक यथार्थ समय उपस्थित हुआ
है ; तुम्हारे अतिरिक्त मैं और किसी पुरुष-
कोभी ऐसा नहीं देखता हूँ कि जो हम
लोगोंको इस उपास्थित विपदसे मुक्त कर सके ।
तुम्हारेही भरोसे हम निर्भयता पूर्वक वृथा
अभिमानो दुर्व्योधनके समीप अपने राज्य-
प्राप्तिके अंशके निमित्त अभियोग कर सकेंगे ।
हे शत्रुनाशन ! सब प्रकारकी आपदांसे जैसे
तुम यदुवंशियोंका उद्धार करते रहते हो, इस
समय पाण्डव लोगभी उसी प्रकारसे तुम्हारी
रक्षा करनेके योग्य हैं, तुम इस महा भयसे
हम लोगोंकी रक्षा करो ।

श्रीभगवान् बोले, हे महाबाही ! यही मैं
उपस्थित हूँ, जो कुछ कहना हो, उसे कहिये ।
हे भारत ! आप मुझे जो कुछ आज्ञा करेंगे,
मैं निःसन्देह उसका पूर्ण करूँगा ।

युधिष्ठिर बोले, धृतराष्ट्र और उनके पुत्रको
जो कुछ अभिलाषा है, वह सब तुमने
सुना है । सञ्जयन आकार जो कुछ बचन कहे,
वे धृतराष्ट्रकी सम्मतिसे अतिरिक्त कुछभी नहीं
हैं । सञ्जयका धृतराष्ट्रकी आज्ञाही कहना
चाहिये, उसमें केवल मूर्त्तिभेद मात्र है । विशेष-
तः दूत लोग अपने स्वामीके कहे हुए बच-
न कोका ज्यांका त्यां कहा करत है । ऐसा
न करनेसे वे अन्यथा बचनके कहनेवाले होकर
बध किये जानेके योग्य होते हैं । राजा धृतराष्ट्र
मेरी समझमें पाप और लोभसे युक्त होकर
हम लोगोंको राज्य बिना दियेही शान्ति स्थापन
करनेको इच्छा करते हैं । हे प्रभाव सम्पन्न
कृष्ण ! “धृतराष्ट्र हम लोगोंकी उसी प्रतिज्ञामें
छड़ रहे ऐसाही समझकर मैंने उनको आज्ञाके

अनुसार बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष क्षिप
करभी निवास किया, हम लोगोंने किसी प्रकारसे
उस प्रतिज्ञाको न तोड़ा उसको हमारे सङ्ग्रहने
वाले ब्राह्मण लोगही जानते हैं । इस समय वृद्ध
राजा दुष्टोंके शासनके वशवर्ती होकर पुत्रके
रुहे हमें पड़कर, अपने धर्मकी ओर दृष्टि नहीं
करते हैं । हे जनार्दन ! वह दुर्व्योधनके वशमें
होकर, लोभमें पड़के, हम लोगोंके सङ्ग वह
तही मिथ्या आचरण कर रहे है । मैं जो
अपनी जननी और मित्रोंके निमित्त कोई
मङ्गल कार्य करनेमें असमर्थ होता हूँ, इससे
वृद्धके और दूसरा दुःख मुझे क्या होगा ? हे
मधुसूदन ! काशिराज, चंदोपति, पाण्डुराज
और मत्स्यराज तथा तुम मेरी सहायता कर-
नेके निमित्त उपास्थित हो, तोभी मैं केवल
पाच गावहीके निमित्त अन्य राजा धृतराष्ट्रके
समीप इस प्रकारसे निवेदन किया था, कि ‘ह
तात ! आवश्यक, वृक्षस्थल, माकन्दो, वारणा-
वत और दूसरा कोई एक गाव, येही पाच गांव
वा नगर मुझे दे दोजिये, हम पाचों भाई
मिलकर उन्हीं स्थानोंमें निवास करेंगे, भरत
वशका नाश हो, यह किसी प्रकारसे मेरे मतमें
युक्त नहीं है ।’ परन्तु दुष्टाला धृतराष्ट्रने
दुर्व्योधन स्वयं प्रभु बनकर पाच गांवभी देनेमें
सममत नहीं होता है ; इससे अधिक दुःखका
विषय और क्या हो सकता है ? हे कृष्ण ! मैं
मनुष्य उत्तम कुलमें उत्पन्न और विद्या, ज्ञान
तथा उत्तम शस्त्रोंसे वृद्धकर, पराये धनकी
लैनकवास्ती लाभ कसत हूँ, उनका वह
लाभही उनको बुद्धका नाश करनेका कारण
होता है, बुद्धके नाश हानसे लज्जा कूट जाता
है, लज्जा कूटनसे धर्मका नाश होजाता है,
धर्म नाश हानसे ओकी तेजहान करता है ;
ओसे भ्रष्ट हानसेही पुरुषका नाश होजाता
है, क्योंकि दरिद्रताही पुरुषको मृत्यु है ।
जैसे पक्षी लोग सब ओर पुरुषसे हीन हूँका

छोड़ कर चले जाते हैं, वैसे ही निर्धन मनुष्यको द्रष्ट-मित्र, जातिके लोग तथा ब्राह्मण लोगभी त्याग देते हैं। हे तात ? प्राणवायु जैसे मृतक पुरुषको छोड़कर चल देती है, वैसे ही जातिके लोग निर्धन समझके पतितकी भाँति मुझे परित्याग करेंगे वही मेरी मृत्यु होगी। सत्वरने कहा था कि “जिस अवस्थामें आज घरमें अन्न नहीं है, कल क्या होगा, सदा ऐसीही चिन्ता लगी रहती है, उससे बढ़के पापीकी और क्या दशा हो सकती है ? संसारके तलकी जाननेवाली पण्डितोंने धनकी परम धर्म कहा है, क्योंकि धनही सबका मूलाधार है। इस संसारमें धनवान मनुष्यही यथार्थमें जीवित रहते हैं, जो लोग निर्धन हैं, वे जीते रहनेपर भी मरे हुएके समान हैं। जो लोग अपने बलसे दूसरेकी धनकी हर लेते हैं, वे लोग केवल उसकाही नाश करते हैं, सो नहीं, वरन वे लोग धर्म, अथ, काम सबहीका नाश कर देते हैं। दरिद्रताका पानेसे कितनेही मनुष्य मरनेको इच्छा करते हैं; कितनेही नगरकी छोड़के गाँवमें जाकर वास करते हैं, कितनेही परिव्राजक धर्म तथा संन्यासकी अवलम्बन करके बनवासी होजाते हैं, कितनेही मनुष्यकी लोलाकी शेष करके मृत्युको शरणमें चले जाते हैं। धनकी नामत कितनही पागल हाजात हैं, बड़तसे लाग शत्रुआके वशमें होजाते हैं; और कितनही मनुष्य दूसरको दासवृत्ति तथा सेवाकाही स्वीकार कर लेते हैं। पुरुषका धन नाशरूपा जो विपद हातो है, वह मृत्युसे भी बढ़के है, क्योंकि धनही उसके धर्म और कामका एकमात्र साधन है। उसको धर्मके अनुसार जा मृत्यु है, वह तो सब कालही लाकन उपास्यत रहती है, उसका कोई भी नातक्रम नहीं कर सकता। और जो मनुष्य बड़त धन तथा सम्पत्तिको पाकर सदा सुख आदिको भोगता

रहता है, अन्तमें धनहीन होजाता है, उसको जैसा दुःख और क्लेश होता है, वैसा स्वाभाविक दरिद्र पुरुषको नहीं होता। धनसे हीन होनपर उस समय मनुष्य इन्द्र आदि देवताओंके ऊपर दासाराप करने लगता है, अपनी निन्दा किसी प्रकारसे नहीं करता। उस समय सम्पूर्ण शास्त्रकी शिक्षा भी उसके दुःखको नाश करनेमें समय नहीं होती। वह कभी मृत्यु-वर्गों (नौकरो) पर अपने क्रोधकी प्रकाशत करता है, कभी ईषाके वशमें होकर सुहृद लोगोंको दोषो कहा करता है। इसी प्रकारसे क्रोधके वशमें होके माँहसे काँठेर और क्रूरकम्प्रीका अनुष्ठान करता है; और पापमें आराक्त होकर जातिको नाश करनेका कारण हाता है। जातिको नाश करनेवाले, जो पापियाके अग्रगामी और नरक प्राप्तिके कारण होते हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। पाप करनेवाला मनुष्य यदि किसी प्रकारसे शान्त न हो सके, तो उसे अवश्य नरकमें जाना पड़ता है। एकमात्र लज्जाके अतिरिक्त उसकी शान्तका और दूसरा कुछ भी उपाय नहीं है। ज्ञानके नवको प्राप्त करनेसे, वह पाप-कर्मसे काय्यत पार हो सकता है। ज्ञानके पानेसेही मनुष्य सब शास्त्रका वाताका जान सकता है, और शास्त्रमें निष्ठावान् होनेके धर्मका अनुष्ठान करनेमें प्रवृत्त हाता है। उस समय लज्जा उसकी मुख्य अङ्ग हाजाता है; जिसका लज्जा रहती है, उसका आ और सहाय बढ़ता है। जबतक पुरुष लज्जावान् रहता है, तभीतक उसका यथाय पुरुष मानत हैं। जो सदाही धर्मकाव्याको करनेवाले और शान्त-स्वभावके पुरुष हाते हैं, वे सदा विचार-पूर्वक काव्य करते हैं। उनका गुण कभी अधर्म कर्मोंके करनेमें नहीं जाता और और न वह पापमें प्रवृत्त होते हैं। लज्जा रहित व्यक्ति

चाहे लो ही चाहे पुरुष उसका धर्ममें यदि कार नहीं रहता, वह भूटकी भाँति निकृष्ट मनुष्योंमें गिना जाता है। तेजस्वी पुरुष, देवता, पितर और आत्माकी प्रीतिके निमित्त उत्तम कार्योंको करते हैं, और उससे सुखीकी पाते हैं। सुखीही पुरुषधर्म करनेवाले मनुष्योंकी अन्तिम सीमा है। हे मधुसूदन ! मैंने जा वचन कहे उन्हें सुखीमें तुम प्रत्यक्ष देख रहे हो; हम लोग राज्यसे भ्रष्ट होकर जिस प्रकारसे कई वर्षोंको बिताते हुए निवास कर रहे हैं, वह भी तुमसे छिपा नहीं है। इससे अब वर्तमान समयमें हम किसी न्यायके अनुसार भी लक्ष्मीकी परित्याग नहीं कर सकते। अपना राज्यकी लेनेके निमित्त यत्न करनेमें यदि हम लोगोंकी मृत्यु होजाय तो वह भी उत्तम है। हे साधव ! उस विषयसे हम लोगोंका पाहला विचार यही है, कि हम सब आपसमें सान्ध करके सम्पूर्ण राज्यका बराबर हिस्सा वाटके शान्तपूर्वक राज्यका भाग करें। यदि किसी प्रकारसे भी यह कार्य पूरा न हो, तो मरने इच्छा न रहनेपर भी कीरवाका बध करके अपना राज्या जिसको कि उन लोगों पर कर लिया है, उसको फिर भी लेना पड़गा। परन्तु युद्धमें प्रवृत्त होकर सहा-भयङ्कर संहार कर्मको करना बहुतही निकृष्ट और अनन्दनीय है। हे कृष्ण ! जो सब शत्रु अत्यन्तही नाच-बृत्त और अपना प्रातःकृतताका करते रहते हैं, जिनके सङ्ग कुत्तभी सम्बन्ध नहीं रहता, उनका भी बध करना अनुचित कार्य है। परन्तु जिनके साथ इस प्रकारका अत्यन्त निकट सम्बन्ध है, उन कीरवोको बातकी मैं क्या कहूँगा ? अनगिनत जातके लोग तथा गुरुजनोंके बध करनेसे जो महापापका कर्म होगा, उससे और क्या सन्देह है ? इससे युद्ध करनेसे किसी भाँतिसे मङ्गल तथा कल्याणकी सम्भावना नहीं दीख पड़ती है। परन्तु यह पापमय कर्मही क्षत्रि-

योका धर्म होरहा है। और हम लोगोंमें इसी अधम क्षत्रियकुलमें जन्म ग्रहण किया है, इससे धर्म ही अथवा अधर्म ही, युद्धके अति रिक्त अन्य कर्म हम लोगोंके पक्षसे निन्दनीय है। शत्रु लोग सेवा करते हैं, वैश्य लोग वाणिज्य करते हैं; हम लोग हिंसा कर्मको करते हैं, और ब्राह्मण लोग भिक्षावृत्तिसे अपना निर्वाह करते हैं, यही सनातन धर्म है। हे कृष्ण ! जिसका जैसा धर्म है, उसीके अनुकूल कार्य करनेसे वह प्रवृत्त होता है। देखिये जैसे मछरी मछरियोंसे अपने जीवनकी धारण करती है, और कुत्ते कुत्तोंकी हिंसा करते हैं, उसी भाँतिसे क्षत्रिय लोग भी क्षत्रियोंका वध किया करते हैं। हे कृष्ण ! युद्ध स्थानमें क्षत्रिय सदाही समोप रहता है, क्योंकि युद्धमें बड़े बड़े महात्मा अनायासही मारे जाते हैं। बल नीतिके ऊपर निर्भर करता है, यह ठीक है, परन्तु जीतना और हारना यह देवहीके आधीन है। हे यदुक्तुलयेष्ट ! प्राणियोंका जीना मरना इच्छानुसार नहीं होता, और बिना समय पड़ने कोई सुख तथा दुःखका अधिकारीभी नहीं होता। एक पुरुष भी अनगिनत मनुष्योंके प्राणका संहार कर सकता है, और बहुतसे मनुष्य मिलकर भी एक पुरुषको नहीं मार सकते हैं, पुरुषार्थसे राजा निर्वल मनुष्यभी शूरवीर पुरुषका वध कर सकता है, और यशहीनभी यशस्वी पुरुषके नाशको करनेमें समर्थ हो जाता है। यह ठीक है, कि दीनो पक्षको पराजय नहीं दीख पड़ती, परन्तु प्रायः समानही क्षाति दीनों पक्षोंकी देखी जाती है; जो हार जाते हैं, उनकी सेनाका नाश और धनका व्यय दानाश होता है, इस निमित्त युद्ध कर्म सदाही पाप-कर्म है। एक मनुष्यका घायल करके कौन पुरुष आप घायल नहीं होता ? घायल पुरुषोंकी हार और जीत दीनोंही समान है। मर

विचारमें सरने और हार जानेमें कुछ विशेष
अन्तर नहीं है ? जिसकी जीत होती है,
उसीकी वज्रतरी क्षति उठानी पड़ती है । चाहे
शत्रु, लोग उसे न सार सकें, परन्तु उसके धारे
तथा प्रसफाद किसी न किसी पुरुषको तो
मारतेही हैं ; इससे एक तो वह पहिलेसेही
बलसे हीन हो रहता है, दूसरे पक्ष, सहोदर
तथा अन्य मित्रजनोंको न देखनेसे अवश्यही
उसकी जीवनके निमित्त वैराग्य उत्पन्न होजाता
है । जो लोग धीन, लज्जाशील और कारुणिक
तथा दयावान् होते हैं, वेही संग्राममें सरते हैं,
और निरुष्ट मनुष्य प्रायः वध जाते हैं । हे
केशव ! उत्तम शत्रुओंको सारकरभी उसे सब
दिनके लिये पश्चात्ताप करना पड़ता है, विशेष-
तः यदि मारनेवालोंमेंसे बचा हुआ कोई
शत्रु भी बाकी रहता है, तो शत्रुताके विषयमें
उसकी पापसयी आत्माभी उनी रहती है,
यही पुरुष वससे बलवान् होकर विजयी पुरु-
षोंके सरनेसे बचे हुए मनुष्योंका सर्वनाश कर
देता है, अर्थात् उनका क्लृप्ति भी दाकी नहीं
होसता, शत्रुताकी शेष करनेकी अभिलाषासे
वह सबका संहार करनेमें यत्नवान् होता है ।
इस प्रकारसे जीत शत्रुताकी छवि करती
है, और जिस मनुष्यकी हार होती है,
वह देखसे अपने दिनोंको बिताता है ।
जिण्णो किसीके सङ्ग शत्रुता नहीं है, उसे हार
जोतना भय नहीं होता । इससे वह शक्तिविन
होकर सुखही नीद लेता है ; परन्तु शत्रुता
करनेवाले पुरुषोंको उद्वेग ही दख है । स्वर्गसे
शुक्त स्थानमें वास करनेसे मनमें जैने चिन्ता
तथा ध्वराष्ट लगी रहती है, उनकीभी
मैत्री चिन्तामें दखी रहना होता है । जो
मनुष्य सबका नाश करनेवाला होता है, वह
भी यशदा पात नहीं हो रहता ; सहस्रो
प्राणोंको मारने पराने वह उसने पतित हो
जाता है, और उस लोभके जीवनमें बड़ा रहने-

वाली अक्षीर्तिकी सञ्ज्ञा करता है । उद्धत
कालतक प्रज्ज्वलित रहनेपरही शत्रुहृषी अग्नि
नहीं बुझती । शत्रुके क्लृप्तिमें यदि कोई पुरुष
विद्यमान रहता है, तो उससे पहिले पुरुषोंके
दिये हुए वैर वृत्तान्तको कहनेके निमित्त
वज्रतसे मनुष्यभी उपस्थित रहते हैं । हे केशव !
वैरसे कभी शत्रुताका शेष नहीं होता, बल्कि
अग्निमें घी पड़नेकी भांतिसे औरभी बढ़ता
रहता है । इससे जब हिट सदाही बना रहता
है किसी भांतिसे उसका शेष नहीं होता, तब
एक पक्षको पूर्ण रूपसे गष्ट किये कभी शान्ति
नहीं हो सकती । जो लोग हिटकी खोजनेकी
इच्छा करते हैं, उनमें यही एक दीप सदा लगा
रहता है । पुरुषार्थका कार्य जो सदाही एक
प्रबल भावजिक ताप उत्पन्न करके अन्तर्दाह किया
करता है, या तो उसका शेष होजाय अथवा
अपनी सत्यही होवे—दोनोंमेंसे एकके
हीनेसे शान्ति हो सकती है । हेमधस्तदन ।
शत्रुओंको मूल सहित नाश करनेसेभी वज्रत
कुछ फल मिल सकता है, परन्तु शत्रुओंको
मूल समेत नाश कर देना अत्यन्तही निटुर
मनुष्यका कार्य है । राज्यके त्यागनेसे जो
शान्ति हो सकती है, राज्यके निमित्त पाणि-
योंका वध करनेके लक्षित इसमें क्लृप्ति विधि-
पता नहीं रहती । क्योंकि उसमें शत्रुके पक्षकी
शृङ्गा और अपने पक्षके नाशकी मत्तावना बनी
रहती है । इससे राज्यको तोड़नेकीभी मेरी
रक्षा नहीं है और जलके नाश करनेकेभी
मेरी अभिलाषा नहीं है । इस विषयमें जिससे
किसी यातिसे युद्ध न करना पड़े वैरागी प्रयत्न
सब प्रधानसे करना चाहिये । यदि अवधति
हीनान् करनेसे शान्तिकी रक्षा ही रहे, तो
सबसे उत्तम है ; क्योंकि इसी पक्षकी शान्ति
ही शान्ति ही है । यदि नाश-वादी जोभी
मनुष्य दीख पड़े तब वह तो प्रसिद्धी है, उस
मनुष्य पराक्रमसेभी विजय करना उचित

नहीं है। परन्तु सामवादके निष्फल होनेपर अवस्थाही सहा घोर कर्मा अर्थात् युद्ध करना पड़ता है। कुत्तोंकी लड़ाईके समयमें पण्डित लोग उनकी पूरी उपमाको दृष्टिगोचर करते हैं। कुत्ते पछिले पंक्तु हिलाते और चिल्लाते, और प्रत्युत्तर देते तथा चक्रकी भांति चारोंओर घूमते, और दांत दिखाते हैं; फिर बड़े जोरसे चिल्लाकर रहते हुए युद्धमें प्रवृत्त होते हैं। हे कृष्ण ! उनमें जो बलवान होता है, वह दूसरेको हराके उसका मांस खाता है। विचार करके देखनेसे मनुष्योंमें भी यही दशा है, विशेषता कुछ भी नहीं है। परन्तु निर्बल मनुष्योंपर अपने बलको दिखलाना, और उनसे विरोध करना बलवानकी कभीभी उचित नहीं है; क्योंकि निर्बल मनुष्य सहजहीमें अवनति तथा अधीनताको स्वीकार कर लेता है। हे जनार्दन ! धृतराष्ट्र हम लोगोंके जेठे पिता, राजा वृद्ध और माननीय है, इससे उनके सम्मुख अज्ञान, पूजा और अवनति दिखलाना हम लोगोंका जो कर्तव्य कर्म्म है, उसमें कौन सन्देह कर सकता है ? परन्तु हे कृष्ण ! धृतराष्ट्रकी पुत्रस्त्री वृद्धत-प्रबल है, पुत्रोंके वशमें होकर वह हम लोगोंकी बिनतोकी अस्वीकार करेंगी। उसके अनन्तर तुम किस कर्तव्य-कर्म्मको उत्तम समझते हो ? किस प्रकारसे मैं धर्म और अर्थसे विमुख न होऊंगा ? हे मधुसूदन ! हे पुरुषोत्तम कृष्ण ! ऐसे सहाघोर अर्थ-सङ्कटमें मैं तुम्हारे अतिरिक्त और किस मनुष्यके निकट परामर्श करूंगा ? तुम्हारे समान हितैषी, प्यारा, सब विषयोंके यथार्थ सिद्धान्तको निश्चय करनेवाला और सुहृद मेरा दूसरा कौन है ?

श्रीवैशम्पायन सुनि बोले, धर्मराजकी इन सब बातोंको सुनकर जनार्दन कृष्णने कहा, महाराज ! मैं आपके दोनों प्रयोजनोंको सिद्ध करनेके निमित्त कौरवोंकी सभामें जाऊंगा, वहापर आपके अभिलषित विषयको स्थिर

रखके यदि शान्ति स्थापित कर सकूंगा, तो मेरा महा फलसे युक्त, वृद्धतवृद्धा पुण्य-कर्म्मव्यनुष्ठान सिद्ध होगा। सन्धि करनेसे कौरव सञ्जय, पाण्डवों तथा धृतराष्ट्रके पुत्र और समस्त पृथ्वीके राजा तथा मनुष्योंको मृत्युके मुक्त करूंगा।

युधिष्ठिर बोले, हे कृष्ण कौरवोंकी सभामें जाओगे, यह मुझे किसी अवस्थामेंभी ठीक नहीं जंचता है। तुम उत्तम युक्ति तथा परामर्श दोगे, तभी तुम्हारी बातोंको दुर्योधन मानेगा। हे कृष्ण ! दुर्योधनके वशवर्ती अनेक वीचमें तुम्हारा प्रवेश करना किसी प्रकारसे भी मेरे सतमें उत्तम तथा कल्याणकारी नहीं मालूम होता है। हे माधव ! यदि तुम्हारे ऊपर कोई बुरा आचरण करेगा, तो हमारे राज्य धन, और सुखकी बात तो दूर रही, स्वर्गकाभी सम्पूर्ण ऐश्वर्य और साक्षात् देवपदार्थभी मुझे प्यारा न होगा।

श्रीभगवान बोले, हे महाराज ! दुर्योधन जैसा पाप बुद्धिवाला पुरुष है, वह मुझसे शिष्ट नहीं है; तभी उसके निकट जानेसे हम लोग पृथ्वीके सब राजाओंके समीप सब भांति निन्दा-रहित रहेंगे। मेरे क्रुद्ध होनेपर कौरवोंकी सभामें सब राजा लोग वैसीही न टहर सकेंगे जैसे सिंहके समक्ष ख साधारण पशु लोग नहीं खड़े रह सकते। यदि वे लोग मेरे सामने किसी अयुक्त व्यवहारके करनेमें प्रवृत्त होंगे तो मैं सम्पूर्ण कुरुकुलको भस्म कर दूंगा, मुझे ऐसाही निश्चय है। हे पार्थ ! उस स्थानपर मेरा जाना कभी व्यर्थ न होगा, यदि प्रयोजन सिद्ध न होगा तो अन्तमें हम लोगोंका अपवादसे ग्रस्त नहीं होना पड़ेगा।

युधिष्ठिर बोले, हे कृष्ण ! जैसी तुम्हारी इच्छा हो, वैसाही करो। सब प्रकारसे शत्रु पूर्वक कौरवोंके समीप जाकर, उन लोगोंकी इस प्रकारसे शान्त करो जिससे हम लोग

सन्धिके सूत्रमें बड़ होकर प्रीति पूर्वक अपने समयकी बिता सकें। इस समय यही प्रार्थना है, कि लौटनेके समय जिसमें तुम्हें कृतकार्य और ब्रह्माण्डयुक्त देख सकू। हे जनार्दन। तुम हम लोगोंके भाई और मित्र हो, तुम मेरे और अर्जुनके समान रूपसे ध्यारे हो तुम्हारे सङ्ग हम लोगोंकी ऐसी सहृदयता उत्पन्न हुई है, कि किसी विषयमें भी तुमसे शङ्काकी सम्भावना नहीं है, इससे हम लोगोंके सङ्गल-कार्यकी साधन करनेके निमित्त तुम अपनी शुभयात्राकी करो। हे कृष्ण। तुम हम लोगोंकी भी जानते हो और शत्रुओंकी भी खूब जानते हो, जो कुछ प्रयोजन है, वह भी तुमसे छिपा नहीं है, जिस प्रकारका प्रस्ताव करना उचित है, वहभी तुमको अविदित नहीं है। हे केशव। इससे सन्धि हो, अथवा युद्धहीका प्रसङ्ग हो, जो हम लोगोंके हितकारी और धर्मके अनुयायी विषय हों, तुम वह दुर्योधनके निकट कहना।

७२ अध्याय समाप्त ।

युधिष्ठिरकी बात समाप्त होनेपर कृष्ण बीले, मैंने सञ्जयकी बात सुनी है और आप-काभी वचन सुना है। शत्रु लोगोंके और आपकी जो कुछ अभिप्राय है, वह भी सुझसे छिपे नहीं है। आपकी बुद्धि धर्मके अनुसार कार्य करना चाहती है, और उन लोगोंकी बुद्धि केवल शत्रुताके आचरणहीने रत है। युद्धके बिना कियेही जो कुछ मिले वही आपकी भतमें उत्तम वीध होता है। परन्तु हे महा-राज ! सब आद्यमवाले कहते हैं, कि क्षत्रिय जो भिक्षाजीवी होते हैं, ऐसा ब्रह्मचर्य सब दिनके लिये क्षत्रियोंके पक्षने ब्रह्माण्डकारी नहीं हैं। विधाताने युद्धमे जीत और हारका जो हार विधान किया है, वही क्षत्रियोंका स्ना-तन धर्म है; उपणताकी प्रकाशित करना क्षत्रियोंके पक्षमें कभी भी प्रशंसाका विषय

नहीं हो सकता। हे महाबाही युधिष्ठिर। दोनभावकी ग्रहण करनेसे क्षत्रियोंकी जीविका निर्व्याह करना बद्धतही कठिन हो जाता है। हेपरन्तप। इससे पूर्ण बलकी प्रकाश करके शत्रु-ओंका नाश कीजिये। धृतराष्ट्रके पुत्र लोग अत्यन्त लोभके वशमें होगये हैं, उन लोगोंने बद्धत दिनोंतक अनेक वीरोंके सङ्ग स्नेह और मित्रता करके पूर्ण बल सञ्चय किया है, इससे वे लोग किसी प्रकारसेभी आपके सङ्ग सन्धि न करेंगे। हे नरनाथ। भीष्म द्रोण, कृपाचार्य आदिकी सहायता पाकर वे लोग अपनेकी अत्यन्त बलवान् दमभा रहे हैं, इससे जनतक आप कीमलभावकी ग्रहण करके उन लोगोंके समीप नम्रता प्रकाश किया करेंगे, तबतक वे आपको अवस्थाही राजयोगसे वञ्चित रखेंगे, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है। हे शत्रुनाशन। धृतराष्ट्रके पुत्र लोग न कसगा, न दीनता और न अर्थ तथा धर्मके ज्ञान आदि किसी विषय-सेभी आपके मनोरथकी पूरा करनेमें समर्थ होगे। हे पाण्डव। जब वे लोग उस भांतिके रुवा खड़े करनेवाले कौपीनकी आपको पहरा करके तनिकभी दुःखी और सन्तापित नहीं हुए थे, तबहीसे सन्धि न करनेका निमित्त अर्थात् कारण समझ लीजिये। हे राजन्। आप ऐसे धर्म परायण, भदुखभाव युक्त दान-शील और कृतके करनेवाले होनेपर भी, जिस एरूपमें भीष्म, द्रोण, वृत्तिमान् विदुर, महात्मा ब्राह्मणों, तथा राजा धृतराष्ट्र और सुज्य सुश्रव कौरव और नगर निवासियोंके सख्खड़ी आपकी कपटके जूबका खेलेने जातवार, अपने किये हुए बुरे कर्मके निमित्त तनिकभी नज्जा नहीं करी, उस शील रहित, दुराचारी और क्रूरबुद्धि दुर्योधनके ऊपर आप क्रदापि न कीजिये। हे भारत। आपकी जान तो है, वह सब लोगोंसे माने जानये योग्य है, पर-वार ध्यान देकर देखिये तो नहीं, दुर्योधन

भाइयोंको सज मिलकर, अत्यन्त आनन्दित होके, अपनी बड़ाई करता हुआ, बहुतसे न कहने योग्य बचनोंसे आपको तथा आपके भाइयोंको किस भांतिसे मर्मा-पीड़ा पहुँचायी थी ? उसने मुक्त-कण्ठसे कहा था, कि इस पृथ्वीके बीचमें पाण्ड-दोंकी कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है, जिसे वह अपनी कहे, ऐसा क्या इन लोगोंका नाम और गोल पर्यन्तभी लुप्त हुआ, महाकालके सङ्ग इन लोगोंकी अवश्यही पराभव होगी। इनका राज्य इस समय मेरे अधिकारमें हुआ है; इससे ये लोग अपनी जीविकाके निमित्त पजाकी सहायताकी अवलम्बन करेंगे।” और भी देखिये जूएका खेल समाप्त होनेपर पाप-बुद्धि दुरात्मा दःशासनने रोती हुई द्रौपदी देवीको नालपथमें लाकर भीष्म, द्रोण, आदिके समक्ष खवागवान दासी दासी कहके हंसी करी थी। उस समय आपने महा बलवान अपने भाइयोंको निवारण कर दिया, वे लोग धर्मपाशमें बंध कर कुछभी प्रतिकार न कर सके। आपके बनमें चले जाने परभी दुर्योधनने जातियोंके बीच पहिलीकी भांति तथा दूसरी भांतिसेभी अनेक कठोर वाक्योंको कहकर अपनी कड़ाई जारी थी। जो सब उस स्थानपर उत्तम स्वभावसे युक्त पुरुष उपस्थित थे, वे सब आपको निरपराधी समझकर आंख बूझते हुए सभामें बैठे थे। राजा तथा लोग कोई भी उसकी बातोंसे आनन्दित नहीं हुए थे, वल्कि सब सभासदोंने उसकी निन्दा करी थी। हे शत्रुतापन महाराज ! कुलीन एसोंके निमित्त निन्दाही वध है; वल्कि निन्दायुक्त जीनेसे एक बार मर जानाही सौ-गुणा उत्तम है। पृथ्वी मात्रके राजाओंमें निन्दित होकरभी जब उसने कुछभी लज्जा नहीं करी, तब उसके मरनेसे अब वाकीही क्या है ? जिसके कर्म ऐसे बुरे और निन्दनीय हैं, उसको मारना एक साधारण कार्य है। जैसे वृद्धकी सब जड़

कट जाती है, केवल बीचकी जड़ही रहती है, इसी प्रकारके वृद्धकी भांति तब भय देनेवाले, सर्पकी भांति; वह क्षुद्र गोचरुद्धि दुर्योधन सब लोगोंसे मारे जाने योग्य है। हे शत्रुनाशन ! इससे आप उस वध कीजिये, इसमें किञ्चित् मात्रभी सन्देह और शङ्का न कीजिये। हे पाप रहित ! धृतराष्ट्र तथा भीष्मके निकट आप जो सदा विनीतभाव स्वीकार करते हैं, यह सब प्रकार आपके योग्य है और मुझे भी स्वीकार है हे राजन् ! इससे मैं वहांपर जाकर दुर्योधन के ऊपर जिन लोगोंका द्विधाभाव है, उस सबके संशयको दूर करूंगा। इकट्ठी हुई राजाओंको मण्डलीके बीच सब लोग आपके गुण और दुर्योधनके दोषोंको गावेंगे। नाना देशोंसे आये हुए राजा लोग, मेरे धर्म और अर्थ भरे हुए बचनोंको सुनकर, अवश्यही आपके धर्मशास्त्र और सत्यवादी कहके विश्वास करेंगे और दुर्योधन लोभके वशमें होकर जिस प्रकारके नीच कर्मोंको कर रहा है, उसमें सब लोग खूब समझ लेंगे। केवल राजमालीही क्यों सुनेगी, वहांपर आये हुए ब्राह्मण आदि चारों वर्ण, वनवासी, नगरके रहनेवाले बालक, बूढ़े सबके सम्मुखही मैं दुर्योधनकी निन्दा करना आरम्भ करूंगा। आप जब शांति के निमित्त प्रार्थना करते हैं, तब आपको कौन अधार्मिक कहेगा ? परन्तु मनुष्य मात्रही कौरवोंकी, विशेष करके धृतराष्ट्रकी अनेक प्रकारसे निन्दा करेंगे; इससे कुछभी सन्देह नहीं है। हे राजन् ! वह जब सब लोगोंसे रहित पापी दुर्योधन निन्दासे मृतपुत्र होकर यगा तब आपके कर्तव्य कर्ममें वाकीही का रहेगा ! इससे मैं कौरवोंकी सभामें जाकर आपको अर्थकी हानि न करके, सब प्रकारसे समझी करनेके निमित्त यत्नवान होऊंगा, और उन लोगोंकी युद्ध-निश्चयकी प्रवृत्ति और

चेष्टाओंको देखकर शीघ्रही आपके जयकी निमित्त लौट आऊंगा । हे भारत । बुरे सगुनोको जिस प्रकारसे मैं देखा गया है, उससे शत्रुओंके सङ्ग युद्ध करना होगा, यह सब प्रकारसे मालूम हो रहा है । देखिये सम्प्रासमय हरिण और पक्षी भयङ्कर शब्द करते हैं, और छाथियोंका भयङ्कर रूप दीख पड़ता है, और अग्नि वज्रत प्रकारके विकट वर्णोंको धारण कर रही है । हे नरेन्द्र ! मनुष्योंको नाश करनेवाली महा विकराल समयके बिना आये कभीभी ऐसी घटना नहीं होती । इससे इसी समयसे आपके योद्धा लोग अस्त्र, कवच यन्त्र, रथ, घोड़े और हाथी आदि सब युद्धको सामग्रियोंका सज्जित करके रथ, घोड़े और हाथियोंका फेरमें नियुक्त होजावे । हे राजेन्द्र ! युद्धके निमित्त जिन वस्तुओंका संग्रह करना होता है, आप सब चीजाँका इकट्ठा कर रखिये । हे पाण्डवराज । दुर्योधनन पहिले जैसे आपको समस्त राजलक्ष्मी तथा राज्यको हर लिया था, इस समयमें जीते जो वह कभी आपका उस धन और राज्यका लौटानेमें समर्थ न होगा ।

७३ अध्याय समाप्त ।

भाम वाले, हे मधुसूदन ! जिस प्रकारसे कारवाके बीच शान्ति स्थापित होवे, तुम उसी प्रकारसे प्रस्ताव करना । युद्धके प्रसङ्गसे तुम कभी उन लोगोंको भय न दिखाना । महाक्रोधो, उत्साहयुक्त, कल्याणका विरोधो, और महा आभमानो दुर्योधनको किसी प्रकारका कठार वचन कहना उत्तम न होगा, इस निमित्त ताम्र वादसेही उसका शान्त काजितेगा । हे कृष्ण ! जा मनुष्य स्वाभाविक पापी, दस्युके समान चित्तवाला, ऐश्वर्यसे भतवाला, पाण्डवोंके रुद्धा पैर करनेवाला, शूद्रदमी, मिटुर, साधु-

ओंका अपमान करनेवाला,* क्रूर पराक्रम, सदा क्रोधमें रहनेवाला, विनय-रहित, पाण्डुडि और वज्रना-प्रिय है, जा मूढ़दुष्टि वरन प्राण देना स्वीकार करता है, परन्तु अपने मतको त्यागकर अपनी दृष्टिओंको मङ्गल करनेमें कभी समर्थ नहीं होता, ऐसे पाण्डवोंके रुद्ध सन्धि करनी वज्रतही काठन कार्य है । वह स्वयं भी धर्मको धर्मको नहीं समझ सकता और सुहृद लोगोंकी बातोंके भी वशमें नहीं होता, इसीसे धर्मत्यागी और मिथ्याप्रिय होकर सुहृद लोगोंकी बात और अपने मनकी बातों पर केवल आघात माल करता है । तण आदिसे छिपा हुआ सर्प जिस प्रकारसे अपनी स्वाभाविक खलता-प्रकाशित करता है; वहभी उसी प्रकारसे अपने स्वाभाविक दुष्टता अनुसार क्रोधके वशमें होकर पाप कर्मोंका किया करता है ।

हे केशव । दुर्योधनकी जितनी सेना, जैसा शील, बल, और पराक्रम है, वह सबही आपको विदित है । देखिये पाँचले कीरव लोग पुत्रोंके सहित सदा प्रसन्न चित्तसे रहते थे, और हम लोगभी इन्द्रके समान भाइया समेत आनन्द और सुखसे काल यापन करते थे, परन्तु हे मधुसूदन । वाससे वाद रगड़ खानसे जैसे अग्नि प्रगट होकर समस्त जनोंकी भस्म कर देती है, वैसेही दुर्योधनके क्रोध क्षपी अग्निसे इस समय भरतवंश या मसीमृत होजायगा । हे कृष्ण । जिन्होंने ज्ञान, कुटुम्ब और वन्धु बन्धनोंका नाश किया था, नाच कहे हुए वह अठारह राजा लोग जित्वात है । धर्मके परिवर्तन कालके प्रायः पर जैसे तज-पुष्टसे प्रज्जलित प्रसुरोंके तृणमें जलितुनकी उत्पत्ति हुई थी, वैसेही क्षत्रवर्गमें दुष्टत्वभावसे दुक्त उदात्त, नीलवर्णमें उत्तमवर्ण, ताप-वशमें वज्रत, हास्यवशमें वसु, सुवारण्य, अ-ग्नि, सुराद्र वशमें रघुपति, वहीर वशमें

अ जीज, चोनवंशमें घातमूलक, विदेहवंशमें हय-
ग्रीव, सहीधश वंशमें वरयू, सुन्दरवेग वंशमें
बाह दामास वंशमें पुरुरवा, चेदि-मत्स्य वंशमें
सहज, प्रवीर वंशमें वृषध्वज, चन्द्रवत्सवशमें
धारण, सुकुट वंशमें विगाहन और वन्दिवेग
वंशमें सप्त राजा उत्पन्न हुए थे । युगके अन्तमें
जैसे ये सब कुलके नाश करनेवाले पुरुषोंमें
अधम राजालोग उक्त कुलोंमें जन्मे थे, वैसेही
इस वर्तमान युगके अन्तमें काल-प्रेरित कुलको
नाश करनेवाला दुर्योधनने भी साक्षात् पापको
मूर्ति होकर कुरुकुलमें जन्म लिया है, है
उग्र पराक्रम ! इससे आप उग्रताको त्यागहीके
उसके समीप मोठे वचनोंसे, जिसमें उसका
चित्त आकर्षित हो, उसी भातिसे उसके अभि-
लषित विषयोंसे युक्त, धर्म और अर्थसे भरे
हुए हितकारो वचनोंको कहियेगा । है कृष्ण !
हम लोग नम्रभावको ग्रहण करके वरन दुर्यो-
धनके अनुगामी होकर चलेंगे, तौभी ऐसा नहीं
चाहते जिससे हम लोगोंका भरतवश नष्ट
होने पाव । है कृष्ण ! जिसमें कौरवोंके सङ्ग
किसो विषयका संसर्ग न रहनेसे हम लोगोंका
आपसमें उदासीन (विरक्त) की भाति व्यवहार
न हो, आपकी उसहीको चेष्टा करना होगी ।
उसको नीच बुद्धके कारण जिसमें किसी भाति
कुरुकुलके नाश होनेमें, हम लोगोंको किसी
प्रकारके दोषोंका स्पर्श न होने पावे । है कृष्ण !
बुद्धिमान पितामह और दूसर सब सभासदासे
कहना, कि वे लोग यत्नवान होकर दुर्योधनको
शान्त करें, भाइयोंके बीच सहृदता स्थापित
होवे । शान्तिके विषयमें मैं ऐसाही कहता
हूँ, और राजा युधिष्ठिरभी इसी वचनको
प्रशंसा करते हैं, अर्जुनभी युद्धको इच्छा नहीं
करते हैं, क्योंकि उनके शरीरमें बल्लतही
दया है ।

श्रीवैशम्पायन सुनि बोले, पर्वतकी निच
और अग्निको शीतलताई जिस प्रकार अस्म
है, वैसेही यह कृपासे युक्त, पहिले कभी
धुनी गई, क्षमा-सहित वचनोंको सुनकर, इ
नन्दन, शारङ्ग धनुषकी ग्रहण करनेवाले, व
देवके भाई, महाबाहु कृष्ण उनकी हंसी क
नेके उद्देश्य और वायुकी सहायतासे अग्नि
भाति, अपने वचनोंसे भीमको उत्तेजित कर
की इच्छासे कहने लगे, है वृकोदर ! दूसरे स
योंमें तो तुम हिंसा-प्रिय, क्रूर-स्वभावसे यु
धृतराष्ट्रपुत्रोंको मारनेकी अभिलाषासे युद्ध
की प्रशंसा करते हो । है परन्तप ! इसीचिन्ता
तुम्हें रात्रिको नींदभी नहीं आती, तुम नी
सुह करके शयन करते हुए सारी रात जाग
तेही विताते हो, सब समय शान्तिका विरोध
रख्वा वचनहीका प्रयोग किया करते हो, और
अपने क्रोधरूपी अग्निसे रात दिन सताए
होकर धूम सहित अग्निकी भाति आहुत
चित्तसे लस्वी-सास लेते हुए, दुर्बल पुत्रकी
भाति निर्जन स्थानमें अकेले शयन करते हो।
जो तुम्हारे यथार्थ भावोंको नहीं जानते
वह, इन सब अज्ञुत आचरणको देख
तुमको उन्नत कहके स्थिर करेंगे । तब
कोई कोई हाथी वृद्धोका तोड़कर अपने
पावोंको पटकते मतवाला हुए सब वृद्धों
नाश करनेमें प्रवृत्त होकर शब्द करता है,
तुमभी उसी भातिसे कभी कभी घोर शब्द
करते हुए वैसेही दौड़ते हो । है पाण्डव !
मनुष्योंके सङ्ग संसर्ग और बातचीत करनेमें
तुम्हारी इच्छा नहीं होती ; केवल निर्जन
स्थानमें निवास करनाही तुम्हें उत्तम मान
होता है । म्या रात्रिक्या दिन, सब समय निर्जन
वास करनेके अतिरिक्त और कुछभी तुम
प्यारा नहीं लगता । है भीम ! तुम एकान्त
स्थानमें बैठकर अकस्मात् कभी कभी रों
तथा हंसते हुए दोनों केजनीके ऊपर मि

टककर तथा आख सूँदके वहुत समयतक चुप चाप बैठे रहते हो, फिर सहसा भुक्तोको टेंढी करके होठोंको कोठते हुए टेढ़े भावसे बारम्बार इधर उधर दृष्टि करते हो। यह सब कर्म केवल क्रोधको सूचित करनेवाले है।

हे परन्तप ! पहिले भाइयोंके बीचमें तुमने गदाको ग्रहण करके यह प्रतिज्ञा करो थी, कि “सूर्य जैसे अपने तेजपुञ्जसे पूर्व दिशामें उदय होते हैं, और सुमेरु पर्वतको प्रदक्षिणा करते हुए पश्चिम दिशामें अस्त होते हैं, किसी कालमेंभी उनके नियमसे रद बदल नहीं होता, मैं उसी प्रकारसे सत्यप्रतिज्ञा करके कहता हूँ, कि क्रोधी दुर्योधनके समीप जाकर युद्धमें अपनी गदासे उसे अवश्य मारूंगा, कभी मेरी यह प्रतिज्ञा व्यर्थ न होगी।” परन्तु क्याही आश्चर्यका विषय है, कि तुम्हारी वृद्धि आज शान्तिके निमित्त दीड़ रही है, तो यह सुनते निश्चय बोध जाता है, कि युद्धका समय आ पड़नेसे युद्धको अभिलाषा करनेवाले पुरुषोंके मनका भाव सम्पूर्ण बदल जाता है। हे प्राथे ! तुम सोते जागते सब अवस्थाओंमें विपरीत निमित्त सब देखते रहते हो; इसीसे बांध होता है, कि तुमको शान्तिको इच्छा हुई है। अहो ! तुम होवको भाति अपने शरीरसे कुल्फी पुरुषार्थको आशा नहीं करते हो ? तुम माहमें पड़ गये हो, इसीसे तुम्हारा मन ऐसे विपरीत भावको ग्रहण कर रहा है इसमें किञ्चित् मावभी सन्देह नहीं है, तुम्हारा चित्त विषाद-युक्त हो रहा है, तुम हृदयसे दुःखी हो रहे हो, इसीसे शान्तिको इच्छा करते हो। हे प्राथे ! मनुष्यके चित्तकी तुमभी स्थिरता नहीं रहती हवाके झकोरसे शाखली वृक्षकी भाति कभी वह चलचित्त हो जाता है और कभी स्थिर होता है। नीचोंके मनुष्योंके वचन बोलनेकी भाति तुम्हारी यह असम्भव निन्दा-योग्य बुद्धिकी

देखकर पाण्डुपुत्र सब व्याकुल हो रहे हैं, उनका चित्त विषादरूपी समुद्रमें डूब रहा है। हे भीमसेन ! तुम्हारे इस न कहने योग्य वचनोकी सुनकर सुभको अत्यन्तही आश्चर्य होता है। जैसे पर्वतोंका चलना असम्भव है, वैसेही तुम्हारे मुंहसे ऐसे वचनका निकलना भी आश्चर्यजनक है। हे भारत ! इससे तुम जिस कुलमें उत्पन्न हुए हो और जिन सब अलौकिक कर्म्मोंका अनुष्ठान तुमने किया है, उन सबको विचारके उत्साहसे युक्त होओ। हे वीर ! विषादको त्यागके चित्तको स्थिर करो ! हे शत्रुनाशन ! तुम्हारे समान महावीर पुरुषको ग्लानियुक्त होना कभी उचित नहीं है। क्षत्रिय लोग अपने बाहुबलसे जिस विषयको नहीं उपार्जन कर सकते, वह उनके भोग करनेका विषय नहीं होता।

७५ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोलि, सदा क्रोधी, किसीकी बातकाभी न सहनेवाले भीमसेन, श्रीकृष्णकी बातोंको सुनकर उत्तम षोड़की भाति उसी समय उत्तेजित हुए और उत्तर देनेके निमित्त शीघ्रता करके बोलि, हे अच्युत ! मैं और प्रकारसे काव्योंका अनुष्ठान कर रहा हूँ, और तुम उसे दूनबो प्रकारसे समझते हो। युद्धमें जो मेरी सदाहीसे प्रीति है, और मेरा पराक्रमभी किसी समय निष्फल नहीं होता वहुत दिनोंसे सद्रूपे रहनेसे तुम हमारे उस पराक्रमको जानते भी होगी; परन्तु क्याही आश्चर्यका विषय है, कि सब कुछ जान वञ्चकर भी तुम प्रजानकी भाति बातें कर रहे हो—जैसे तेरना न जानकर कोई जल भर तालाबमें डूब रहा हो। इनी निमित्त ऐसी अनुचित और योग्य बातें कहकर मेरी निन्दा करते हो। हे माधव ! भीमसेनके यथायं दण्ड और पराक्रमकी जानकारी दीज मनुष्य तुम्हारी

भाति इस प्रकारके अयोग्य वचनोंका प्रयोग कर सकता है ? तुम जो हमारे यथाथ^१ रूपको नहीं जानते हो, इसी निमित्त मुझको अपने पौरुष और पराक्रमकी बात सुनानी पड़ी। अपने मुंहसे अपनी प्रशंसा करने अत्यन्तही निन्दनीय है, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है। परन्तु क्या करें तुम्हारी निन्दायुक्त वचनोंका सुनके हमसे रक्षा नहीं जाता, इसीसे मैंने अपने आत्म-बलको तुमसे वर्णन किया। हे कृष्ण ! अखिल प्रजापुञ्जका आधार और उत्पत्तिका स्थान वह जो अचल और असीम भूलोक और उर्ध्व-लोक दोख पड़ते हैं ; यदि दोनों क्रुद्ध होकर दो शिलाको भांति आपसमें सहसा मिल जावें, तौभी मैं अपनी दोनों भुजाओंसे सब प्राणियोंके सहित, दोनों लाकोंको रोक सकता हूँ। प्रचण्ड परिघके समान मेरी इन दोनों भुजाओंके बीचके स्थानको एक बार अच्छी प्रकारसे दृष्टिपूर्वक देखो, इसमें गिरके फिर निकल जावे, ऐसा मनुष्य मैं इस सम्पूर्ण भूमण्डलमें नहीं देखता हूँ। यदि मैं किसी पुरुषको बलपूर्वक आक्रमण कर्त्तुं, तो साक्षात् गिरिराज हिमालय, अपार जलनिधि तथा वज्र-धारो इन्द्रभी अपने बलकी प्रकाश करके, मेरे हाथसे उसे नहीं छुड़ा सकते। हे अच्युत ! पाण्डवोंके प्रति जो आतताई और युद्ध करनेकी योग्य क्षत्रिय है, उन्हें मैं पृथ्वीमें गिराके सहज-हीमे अपने पावसे पीसता रहूँगा। हे जना-र्दन ! पहिले मैंने सब राजाओंको पराजित करके जिस प्रकारसे उन्हें वशीभूत किया था, वह कुछभी तुमसे छिपा नहीं है। उसीसे तुम मेरे पराक्रमका बल्लत कुछ परिचय पा चुके हो। अथवा यदि प्रातःकालके समान प्रकाशित ज्ञानवाले सूर्यकी भांति, मेरे प्रचण्ड प्रभावकी तुम नहीं जानते हो, तो उस महाघोर भयङ्कर युद्धमें अच्छी प्रकारसे समझ लोगी। दुर्गन्धसे भरे हुए घावके स्थानकी खोलनेकी

भांति तुम मुझे ऐसा कर्कश वचन कहते हो। परन्तु मैंने जो कुछ अपना वर्णन किया है, तुम उससेभी मुझे अष्ट समझना। जिस दिन वह सब लोकोंके नाश करनेवाला सङ्घ-युक्त सग्राम उपस्थित होगा, उसी दिन तुम मेरे पुरुषार्थकी पूर्ण रीतिसे देख सकागे। केवल तुमही नहीं, सब लोग देखेंगे। मैं कभी रथी, घुड़सवार और गजपतियोंकी दूर फेंकता रहूँगा, कभी क्रोधमें भरकर बड़े बड़े वीर क्षत्रिय योद्धाओंके संहार करनेमें उद्यत हाज-गा, और कभी कभी मुख्य मुख्य सेनापतियोंको व्याकुल करता रहूँगा। हे मधुसूदन ! मेरे शरीरसे मज्जा आदि सार पदार्थकाभी कभी नाश नहीं हुआ है, और न मेरा चित्तही कभी युद्धसे विचलित हुआ है, यदि सम्पूर्ण लाक क्रुद्ध होकर मेरे विरुद्ध आगमन करें, तौभी मुझका कुछभी भय न होगा। तब कृपासे युक्त होनेका तात्पर्य और कुछ नहीं है। केवल सहृदयताकी प्रकाश करना मात्र है। जिससे हम लोगोंके भरतवशका नाश न होवे, इसी निमित्त कृपा करके मैं इन सब वशीकों सह रहा हूँ।

७६ अध्याय समाप्त ।

श्रीभगवान् बाली, तुम्हारे अभिप्रायकी जाननेके निमित्तही मैंने प्रीतिपूर्वक इन वचनोंका कहा था, नहीं तो निन्दा, पाण्डित्य, क्रोध तथा दूसरे कारणसे कुछ नहीं कहा हूँ। तुम्हारा जैसा महात्मा, पराक्रम और कर्म्म है, वह सबही मुझे मालूम है, इससे उसके लिए तुम्हारा तिरस्कार नहीं करता हूँ। हे पाण्डव ! तुम अपने शरीरसे जिस प्रकारके कल्याणकी सन्धावना करते हो, मैं उससेभी सहस्र-गुण अधिक मङ्गलकी आशा करता हूँ। हे भीम ! सब राजाओंसे पूजित जिस जन्मे

वंशमें तुम्हारा जन्म हुआ है ; तम वस्तुवाच्य और सुहृदवर्गके सहित सब प्रकारसे उस वंशके योग्य हो : इसमें ककुभी सन्देह नहीं है । परन्तु हे वृकोदर ! देव और मनुष्य सम्बन्धी धर्मोंकी निरूपण करनेकी अभिलाषा करके पुरुष एकही भातिके निश्चय करनेमें समर्थ नहीं होता , क्योंकि जो विषय पुरुषकी अर्थसिद्धि-का कारण रहता है, वही दूसरे समयमें उसके विनाशका हेतु ही जाता है । इससे पुरुषके कार्य सब प्रकारके सन्देहसे भरे हुए हैं । दोषोंकी जाननेवाले वडिमान पण्डित कर्मकी गतिकी एक तरङ्गसे स्थिर करते हैं , परन्तु वायुकी गतिके अनुसार वह दूसरे प्रकारकी होजाती है । मनुष्योंका किया हुआ कर्म सब भातिसे न्याययुक्त, अच्छी प्रकारसे विचारा हुआ और सुन्दर नीतिसे प्रेरित रहने परभी दैवके द्वारा नष्ट हो जाता है . तथा सदीर्घ गर्भों, वर्षों, अख, घास आदि अनुष्ठित दैवकर्म भी परुषार्थके सहित निष्फल हो जाते हैं । जो कर्मफल भोग करनेके निमित्त निश्चित हुआ है, उस प्रारब्ध कर्मसे भिन्न पुरुष स्वयं जिन कर्मोंका अनुष्ठान करता है, उसमें भी उसकी बंधना नहीं पड़ता क्योंकि उससे ज्ञान वा प्रायश्चित्त होनेसे संचित-पापोंका नाश होता है. ऐसा अति और सतिसे सिद्ध है । इससे हे पाण्डव ! विना कर्म किये इस संसारमें निर्वाह करनेकी और दूसरी गति नहीं है । परन्तु देव-कर्म और परुषार्थ दोनोंके मिलनेमेंही फल सिद्ध होता है. ऐसाही विचार कर कर्मके अनुष्ठानसे प्रवृत्त होते हैं उनके कार्यके न सिद्ध होनेसे भी कोई बाधा नहीं और सिद्ध होनेमें भी कोई चर्षकी बात नहीं है । हे भीम-सेन ! उस विषयमें मेरा ऐसाही निश्चय था, तभीके सङ्ग युद्ध करनेसेही अर्थसिद्धि होगी परन्तु मेरे रुढ़नेका प्रयोजन नहीं था । और भी अर्थसिद्धि भावसे रुढ़-बदल होनेसे एवमारगी

दुःखी और ग्लानियुक्त होना उचित नहीं है ; इसी निमित्त मैंने तुम्हें यह सब वचन कहे हैं । हे पाण्डव ! कल मैं राजा धृतराष्ट्रके समीप जाकर आप लोगोंकी अर्थ हानि न करके सन्धिस्थापनके निमित्त ही सब प्रकारसे यत्नवान होऊंगा । यदि वे लोग सन्धि करेंगे, तो मेरी भी अनन्तकोर्ति और आपलोगोंका भी अभीष्ट सिद्ध होगा ; तथा उन लोगोंका भी बहुतही मङ्गल और कल्याण होगा । परन्तु यदि कौरव लोग मेरी बातोंकी न मानकर अपने मतके अनुसारही कार्य करनेमें प्रवृत्त होंगे, तब अवश्यही महाघोर युद्धके कार्यका अनुष्ठान होगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है । हे भीमसेन ! इस युद्धका सम्पूर्ण भार तुम्हारेही ऊपर है । तम और अर्जुन दोनोंही इस भार-को ग्रहण करके दूसरे वीर योद्धाओंकी युद्ध-कार्यमें नियुक्त करोगे . और सबके अवलम्ब होंगे ; क्योंकि युद्धके होनेपर सुभक्तो अर्जुनका सारथी बनना होगा, यही अर्जुनकी अभिलाषा है । नहीं तो मेरी युद्ध करनेकी इच्छा नहीं है, यह वचन कौन कह सकेगा ? हे वृकोदर ! इससे तमकी क्रीवके समान वचन कहते हुए देख तुम्हारी बुद्धिके ऊपर शङ्का करके, मैंने प्रभाहीन तुम्हारे तेजकी फिर प्रकाशित कर दिया ।

७७ अध्याय समाप्त ।

अर्जुन बोले, हे जनार्दन ! मेरा जो कुछ वक्तव्य था, उसे धर्मराजजीने कह दिया है , परन्तु तुम्हारी बातोंमें बोध होना है कि तुम धृतराष्ट्रके लाभवशसे कारण व्यवहारम लोगोंके उपस्थित दोषताओंके कारणसे शान्तिका होना कदापि सुन्दर रूपसे होने वाला नहीं समझते हो । तब यह भी मानते हो, कि दिया परा-त्मके प्रकाशित मिष्ट प्रकाशमें मर जाते

निष्फल होते हैं ; पुरुषार्थको बिना कोई कर्म नहीं हो सकता ; और बिना कर्म किये कोई फल भी नहीं प्राप्त हो सकता । यही समझके तुमने जो इन सब वचनोंको कहा है, वह यथार्थही होंगे उसमें कौनसी शङ्का है ? परन्तु सब निश्चय ज्योंके त्योंही जूझा करते हैं, यह किसी प्रकारसे भी खोकार नहीं किया जा सकता । किसी वस्तुको भी सब समयमें असाध्य न समझना चाहिये । हे केशव ! तुम हम लोगोंके इस घोर क्लेशको देखके सन्धि-बन्धन होना कठिन कार्य समझते हो, यह तुम्हारा समझना ठीक है ; परन्तु हमलोगोंके कष्टसे जिन लोगोंको कोई भी फल नहीं हो सकता, उन्हीं शकुनि, दुःशासन और कर्ण आदि नीच-बुद्धि पुरुषोंहीके कर्मसे हम लोगोंको यह कष्ट सहना पड़ता है ; इससे उत्तम प्रकारसे सन्धिका प्रस्ताव होनेसे कार्य सफल हो सकता है । हे कृष्ण ! इससे जैसे शत्रुओंके सङ्ग सन्धि बन्धन हो सके, सब भांतिसे उसीका यत्न करना । हे जनार्दन ! प्रजापति ब्रह्मा जैसे सुर और असुरोंके शुभचिन्तक है, वैसेही तुमभी पाण्डव और कौरवोंके बीचमें हम लोगोंके सुख सुहृद हो । हे मधुसूदन ! इससे कुरु, पाण्डवोंके मनके सैलको दूर करके उनमें शान्ति और सुखको स्थापन करो । मुझे मालूम होता है, कि हम लोगोंके हितका अनुष्ठान करनेमें तुम्हें कुछभी कठिनता न जान पड़ेगी ; यदि तुम चेष्टा करोगे, तो अवश्यही कार्य सिद्ध होगा उसमें कांशिशही क्या करनी है ? एक बार जाकरही तुम अपने कर्त्तव्य कार्यको पूरा कर सकोगे । हे वीर ! दुर्योधनके विषयमें यदि अन्य प्रकारके आचरणको करनाही तुम्हारा अभिप्राय होगा, तो तुम्हारी इच्छाके अनुसारही वह सिद्ध होगा । उससे उसके सङ्गमें हम लोगोंकी सन्धिही होवे अथवा अभिप्रायके अनुसार युद्धही करना पड़े,

अच्छी प्रकारसे विचारकर तुम जैसा अभिप्राय प्रकाश करोगे, वही हम लोगोंके लिये उत्तम और माननीय होगा । हे मधुसूदन ! जब यह दुष्टान्ना धर्मपुत्र युधिष्ठितका सुख और ऐश्वर्य न सह सका, तब किसी धर्मके अनुयायी उपायके मिथ्या-भाव अर्थात् कपट-पाशके खेलमें निरुप उपायोंको अवलम्बन करके उनके सम्पूर्ण राज्य, धन आदि सब वस्तुओंकी हर लिया है, तब उसे पुत्र और बन्धु बान्धवोंके सहित भी सारनेमें दोष नहीं हो सकता । चन्द्रिय कुलमें क्या कोई धनुर्जारी पुरुषभी ऐसा उत्पन्न हुआ है, जो शत्रुओंसे युद्धके निमित्त उपस्थित होके अपने प्राणोंके भयसे भी पीठ दिखावेगा ? हे कृष्ण ! दुर्योधनने जब हम लोगोंको धर्मसे पराजित किया और वनमें भेजा तबही वह हम लोगोंके हाथसे सारे जानिके योग्य हो चुका । हे कृष्ण ! इससे तुम सित्रोंके निमित्त जो कुछ विधान करते हो, वह अनुचित है । वज्रतही विनीतभाव तथा अत्यन्त वरता प्रकाश करनेसेभी उत्तम कार्य नहीं सकता । अथवा यदि तुम्हारे मतसे लोगोंका इसी समयमेंही बध करना कलाकारी होवे, तो तुम शीघ्रही उसको पूरा कर उसमें कुछभी विचार करनेकी आवश्यक नहीं है । हे माधव ! पापी दुर्योधनने ईश्वरकी राजसभामें बुलवाके जिस प्रकारसे दिया था, वहभी तुम्हें पूरी रीतिसे देना है, और उसका वह अत्याचारभी प्रकाश करनेका सहा गया था, वहभी तुम्हें मानना है । हे माधव ! वह जो पूर्ण रीतिसे समय पाण्डवोंके सङ्ग न्यायके अनुवर्त्ताव करेगा ; यह मेरी बुद्धिमें कि प्रकारसेभी ठीक नहीं जंचता है ; वा यही बोध होता है, कि ऊसर भूमिमें बीज बोनेकी भांति, यह शान्तिके निमित्त सन्धि का कार्य समस्त निष्फल होगा ।

हे वृष्णिनन्दन । सम्प्रति पाण्डवोंके हित साधन और इसके अनन्तर कर्त्तव्यके विषयमें जो कुछ तुम्हें युक्तियुक्त कार्य जान पड़े, शीघ्रही उसका प्रनुष्ठान करना उचित है ।

७८ अध्याय समाप्त ।

श्रीकृष्ण बोले, हे महाबाही । हे पाण्डव । तुम जो कहते हो, वही होगी, मैं कौरव और पाण्डव दानोहीके कल्याण करनेके निमित्त यत्नवान होऊंगा । परन्तु हे अर्जुन । दैवी और मनुष्योंके कर्ममें सब काल प्रभाव नहीं रहता, यह सुभी निश्चय है । देखिये, अपने कर्मको सहायतासे खेतकी शोधते और बोते हैं, परन्तु बिना दैवके पानी बरसाये उन सबमें कभी कोई फल नहीं उत्पन्न होता । इस विषयमें कोई कोई यत्नवान पुरुष यत्न और पुस्-पार्थसे जल सौंचनेकी बातभी कह सकते हैं, परन्तु जलके सौंचने परभी वज्रतसे स्थानोसे दैवकी इच्छासे खेती सुखती ऊँ दीख पड़ती है । इससे इन्हींको विचारकर महात्मा पण्डित लोग 'दैवकर्म्म और मनुष्यकर्म्म दोनोंसे ही लोकोके हितका कार्य संयुक्त है' ऐसा वर्णन करते हैं । मैं भी पुस्पाथसे जहा तक हो सकूंगा बहातक उद्योग कलूंगा परन्तु दैवकृत कर्मका खण्डन किसी प्रकारसे भी न कर सकूंगा । हे प्रार्थ । वह पापी दुष्टोन्धन पाहिले तो धर्म और लोकके भयको त्यागके इच्छाके अनुसार उस प्रकारके पाप कर्मोंमें प्रवृत्त होकर भी किञ्चित् मात दुःखी और लाजित नहीं होता, उस पर भी प्रजुनि, कर्ण और दुःशासन आदि दुष्टमन्त्रों लाग नित्यही उसकी पापमयी बुद्धि-को औरभी बढ़ाते रहते हैं, इससे बिना बन्ध-वास्य और दृष्ट-मित्रोंके सहित मरनसे वह राज्यको छोड़के शान्तिके निमित्त सन्नि कर-नके निधानन सहमत न होगा : सुम्ने इसका किसी प्रकार बाध नहीं होता है । धर्मराज

युधिष्ठिरभी अवनति स्वीकार करके राज्य त्याग करनेको इच्छा नहीं करते हैं, और नीचबुद्धि दुष्टोन्धनभी याचना करनेसे उस राज्यकी कभी नहीं लौटावेगा । इससे उसके निकट धर्मराजके कहे हुए वचनोका कहना सुभी अनुचित मालूम होता है । हे भारत । धर्मराजन जिन प्रयोजन-सिद्ध वचनोको कहा है पापी दुष्टोन्धन उन वचनोको कभी पूर्ण न करेगा । परन्तु उसे पूर्ण न करनेहीसे वह सब लोगोंके हाथसे मार जानेकी योग्य होगा, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है । हे भारत । उस दुष्टात्माने जब बालक अवस्थाहीमें सब दिनसे अनिष्ट चेष्टा करी है, और उसके अनन्तरभी युधिष्ठिरके ऐश्वर्यको देखके उससे सहान न गया, इससे उसने निठुरता और कपट उपायसे उनके राज्यकी हर लिया ; तब हम लोगोके हाथसे तो नियय मारनेके योग्य हो रहा है, परन्तु वर्त्तमानमें औरभी पापीके आचरण करनेसे वह पृथ्वीके सब मनुष्योंके हाथसे मार जानेके योग्य हो जायगा ।

हे कुन्तीनन्दन । जिसमें तुम लोगोसे मेरी जुदाई हो जावे, इस निमित्त दुष्टोन्धनने वज्रत कुछ यत्न किये थे, किन्तु उनके उस दुष्ट अभि-प्रायको मैंने कभी ग्रहण नहीं किया । हे महा-बाही । उसका जैसा मन है, उसीसी तुम जानते हो, और मैं जो धर्मराजके प्रिय काम्यों-के साधन बहनेहीके निमित्त यत्नवान हो रहा हूँ, वह भी तुमको पदित ही है । इससे उसको नीचबुद्धि, आर अपन, अभिप्रायका भली भाँतिसे जान लन कर भी, तुम क्यों इस समय अज्ञानकी तरह हमारे ऊपर गला करते हो ? विधि करके पृथ्वीके भारजी उतारनेके निमित्त स्वर्गसे देवताओंके अवतार लानेका जो विधान है, वह भी तुमने शिषा नहीं ल । प्रार्थ ! इससे मनुष्योंके मरणे प्राधिपत्यक नित्य दिग्ग प्रचारने का नानासे न न मनुष्य-वन

और कर्मारी जो तुम्हें ही शकीगा, उसकी मैं नबन्धही पूर्ण करूँगा। परन्तु उसकी साथ जो सन्धि करनेमें समर्थ होलागा, ऐसी आशा नहीं कर सकता हूँ। गयी वर्षागं जब वह अत्यन्त पीड़ित हुआ था, तब मार्गमें भीष्मने कहा उसे इस शान्तिजो गिरासत पचन नहीं कहें थे ? अन्तर्गत ठावा भी था, तभी वह नीचवृद्धि उपरक वचनमें सन्धत न हुआ। जो हो, तुमने उसकी जन शान्तिके योग्य विषय कर लिया है तभीसे वह पराजित हो चुका है। चाहे दुर्धन धन एक रत्न भरके निमित्तभी सन्तुष्ट न होने, तौभी धर्मराजकी आज्ञा सुनी सब प्रकार से ही शान्त हो पड़ेगी। उस दुष्टाज्ञाके पाप-अर्थकीभी फिरसे आलोचना करो जावेगी !

७६ अध्याय समाप्त ।

नकुल बोले, हे माधव । धर्मात्मा धर्मराज युधिष्ठिरने अपने स्वाभाविक दया आदि गुणोंके अनुसार जो राज अनेक प्रकारके वचनोंको कहा है, उसकी आपने सुना है, और भीमसेन तथा अर्जुनकी भी महाराजके मतके अनुकूल जिस प्रकारसे शान्ति और बाहुबल दोनों प्रसङ्गोंका उल्लेख किया, वहभी आपने सुना, अनन्तर अपने बातकीभी आपने बार बार प्रकाशित किया है। हे मधुसूदन । मेरे मतके अनुसार पहिले तुम शत्रुओंकी बातोंको सुनकर पीछे इन सब बातोंकी छोड़के, समयके अनुसार जो कहना उचित बोध होगा, वही कहियेगा। हे शत्रुनाशन केशव ! विशेष विशेष कार्योंके निमित्त मत स्थिर करना पड़ता है ; और उसके करनेहीसे मनुष्य उचित कार्योंका निर्वहण कर सकता है, परन्तु एक समयमें कोई विषयको एक प्रकारसे निश्चित करते हैं, और दूसरी अवस्थामें वह औरका और ही है। इससे पृथ्वीके सम्पूर्ण मनुष्योंकी

बुद्धि अनित्य है, सब दिन निश्चित बुद्धिके अनुसार कार्यको कर सकें ऐसे मनुष्य इस पृथ्वीपर प्रसिद्ध नहीं हैं। हे कृष्ण । देखिये जबतक हम लोग वनवासमें कृपकर रहते थे, तबतक एक प्रकारकी बुद्धि थी, परन्तु इस समय प्रगट होनेपर उस बुद्धिके विपरीत भाव उदय हुआ है। राज्यके निमित्त अब हमलोगोंका जैसा आदर हो रहा है, वनवासके समय कभी वैसा नहीं हुआ था। हे जनार्दन । हमलोग वनसे लौट आये हैं, यह सुनकर सात अचौहिणी सेना आपके प्रसादसे आकर इकट्ठी होगई है। अत्यन्त बल और पराक्रमसे भरे इन पुरुष सिंघोंकी संग्रामभूमिमें देखकर कौन मनुष्य भयसे पीड़ित न होगा ? हे पुरुषसत्तम । इससे आप पहले कौरवोंकी सभामें जाकर शान्तिपूर्वक प्रस्ताव कीजियेगा ; पीछे भय दिखाते हुए इस प्रकारके वचनोंका प्रयोग कीजियेगा, जिसमें वह नीच वृद्धि दुर्धन भयसे विचलित होजावे। हे कृष्ण । देखिये युधिष्ठिर, भीमसेन, अपराजित अर्जुन, नकुल, सहदेव, मैं, आप, बलदेव, सात्यकी, मत्स्यराज विराट, सम्पूर्ण सेनाके सहित पाञ्चालराज द्रुपद, धृष्टद्युम्न, काशिराज, चेदीपति धृष्टकेतु आदि महा पराक्रमशाली वीरोंके युद्धमें प्रवृत्त होनेपर कौन भास और रक्तके शरीरको धारण करनेवाला पुरुष हम लोगोंके विरुद्ध युद्ध कर सकेगा ? हे महाबाहो । इससे आप वहां जाकर धर्मराजके अभिलषित विषयोंको पूरी रीतिसे सिद्ध कीजियेगा, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है। हे पापरहित । आपको उन हितसे भरे हुए वचनोंको सुनकर और मनुष्य चाहे समर्थ वा न समर्थ, परन्तु विदुर, भीष्म, द्रोण और वाह्य ये लोग हृदयद्रव्य करनेमें समर्थ होंगे, और आपके वचनोंके अनुसारही अत्यन्त प्रार्थना और विनयसे राजा धृतराष्ट्रकी तथा द्रष्टृ मित्रोंके सहित दुराचारी दुर्धनकीभी समझा सकेंगे।

है जनाईन । आप वक्ता और विदुर जीता
होनेपर किस कठिन विषयको आप लोग सरल
नहीं कर सकेंगे ?

८० अध्याय समाप्त ।

सहदेव बोली, हे शत्रुनाशन कृष्ण ! धर्म-
राजने जो कुछ वचन कहे हैं, यद्यपि यह धर्मको
नुकूलही है, तोभी जिसमें युद्ध हो, वही
द्योग आपका करना होगा। हे दाशार्ढ्य !
दि कौरव लाग स्वयंही पाण्डवोंके सङ्ग शान्ति
प्राप्तिके निमित्त सन्धि करनेको इच्छा करेगे,
तोभी उन लोगोंको आपको हमारे सङ्ग युद्धके
निमित्त खड़ा करना होगा। हे कृष्ण ! द्रुपद-
की द्रौपदीको उस प्रकारसे राज सभामें
आजित जई देखकर अब बिना दुर्ध्याधनके
ह्वार किये किस प्रकारसे उसके विषयमें हम
लोगोंको शान्ति मिल सकती है ? भीम, अर्जुन
और धर्मराज धर्मके अनुसार चलना चाहते
हैं; परन्तु मैं उस धर्मको परित्याग करके
अंगामभूमिमें उसके सङ्ग केवल युद्धही करनेका
प्राग्रह करता हूँ।

सात्यकी बोले, 'हे महाबाहू ! बुद्धिमान्
उद्धदेवन यघार्यहो कहा है, दुष्टांधनके ऊपर
मेरा भी जो पहिलेसे क्रोध बना हुआ है, वह
बिना उसके बंध किये कदापि शान्त नहीं हो
सकता। वनमें पाण्डवोंको मृगचर्मों धारण
किये हुए देखके आपके शरीरमें भी जिस प्रका-
रसे महाक्रोधका उदय हुआ था, वह क्या
आपको करण नहीं है ? हे पुण्यात्तम ! इससे
युद्धमें पराक्रमकी दिखानेवाले माद्रीपुत्र वीर
सहदेवने जो बातें कही, उनमें सब वीर योद्धा-
ओंको भी सम्मति है।

त्रैविशम्भायन मुनि बोले, सहा बुद्धिमान
सायकी ऐसे वचन कहकर रूप हागये . उसके
पनतर सद गोरसे से निदा वोर यादागेज
महाधोर सि छनाद छान लग . सन्न उनकी

“धन्य धन्य” कहकर हर तरहसे साहजिकी की प्रशंसा करी और सबहीने युद्धके निमित्त अपन-उत्साह और इच्छाको प्रकाशित करकी उनकी आनन्दित किया ।

८१ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैश्णवायन मुनि बोले, अत्यन्त दुःखाधरता,
बड़े बड़े लम्बे और घने तथा सुन्दर केशोंको
धारता करनेवाली दृढ़दण्डो यशस्विनी द्रोण-
दीने महाराज रुहदेव और सात्वतीजी वच-
नोंकी अत्यन्तही प्रशंसा करी, परन्तु धर्म-
राजका प्रस्ताव किया हुआ धर्म्मयुक्त और हित-
कर वचनों सुनकर, विशेष करके गोम-
सेनकी शान्तिके निमित्त उत्सुक देखते अत्य-
न्तही दुःखित और शोकित होकर पास भरे
हुए नेत्रोंसे रोती हुई कहने लगी, हे महा-
बाहो ! हे धर्मकी जाननेवाली सधसद्गन जना-
ईन ! धृतराष्ट्रके पुत्रोंने ठगपना करके
पाण्डवोंके सुखको जिस प्रकारसे लोप
किया है, वहभी तुम्हें मालूम है, और
मञ्जयके यहापर जानेके अनन्तर सहाराज
युधिष्ठिरने उन्हें एकान्त स्थानमें ले जाकर
पछिले जिस भाँतिसे अपर्ण विचारकों प्रकाशित
किया था, तदा उनकी विद्या लाभके समयमें जा-
कुल वचन कहे थे, वक्ष्या तुम्हें सभी शांति
तालूम है। हे महातिरस्वी कैशव उन्मान
दुष्योधन और उसके दुष्ट-निवासि गठनेसे
निमित्त इन्हीं वचनोंको बाधा था, कि उस
लोगोंकी अवस्थित, दुःकरण, मानसी
वारणावत और एका दूसरा कोई गांव पर
पाचही गांव है हीनिये । परन्तु ये वचन !
दुष्योधनने प्रायः ना करनेजाने केवली धारणा
युधिष्ठिरके उस वचनवाली गया छूटने दिया,
हे जनार्दन ! मैं अपने प्रति मित्रों को जो बात
दिखा दूँगेउन सबने भर दो । तब तो मैं,
तो यहापर जाकर अपना प्रभावकेवल तुम्हें

बचनोंकी स्वीकार करना उचित नहीं है । हे महाबाहो ! पाण्डव लोग सृजनोंके सङ्ग मिलकर उस क्रीधसे भरी हुई कौरवी सेनाके विरुद्ध अवश्य खड़े होंगे । जब सास अथवा दानसे उसके निपाटमें कोईभी नर्थ सिद्ध होनेको सम्भावना नहीं है, तब फिर उसके ऊपर कृपा करनी तुम्हें उचित नहीं है । जो लोग सास और दानसेभी शान्त नहीं होते, उन सब शत्रुओंके निमित्त जोविका चाहनेवाले पुरुषोंको दण्डहीका प्रयोग करना चाहिये । हे महाबाहो अच्युत ! इससे सेनाके सहित पाण्डवोंके सङ्ग मिलकर शीघ्रही कौरवोंके ऊपर महादण्डका प्रयोग करना तुम्हारा भी कर्तव्य कार्य है । हे कृष्ण ! यह कर्म पाण्डुपुत्रोंके योग्य है, और तुम्हेंभी यशदायक होगा, विशेष करके इसे पूरा करनेपर क्षत्रियोंके पक्षमें यह कर्म बल्लतही सुखका देनेवाला होगा । क्योंकि क्षत्रिय होवे, अथवा ब्राह्मणको छाड़कर दूसरोही जाति होवे, लोभो हानेसे उसका वध करना निज धर्मके अनुष्ठानको करनेवाले क्षत्रियोंका कर्तव्य कर्मही है । परन्तु ब्राह्मण सब पापोंके करने परभी किसी प्रकार मारने योग्य नहीं है, क्योंकि वह सब वशोंके गुस्से आर दान दी हुई वस्तुओंका सबसे पहिले ग्रहण करनेवाले है । हे जनार्दन कृष्ण ! अबध्यके वध करनेसे जिस प्रकारसे पापोंको सम्भावना होती है, वैसेही बध्यको भी न मारनेसे दापका भागो जाना पड़ता है, इस बातका धर्मके जाननेवाले पण्डितान स्पष्ट रूपसे वणन किया है । इस नाशित्त जिसमें वह दोष तुम्हें स्पर्श न कर सके, पाण्डव और सृजनोंकी सेनाके सङ्गमें मिलकर तुम उसके वधहीका विधान करो । हे कृष्ण ! तुम्हारे समीपसे कोई विषयभी छिपाने योग्य नहीं है, जब जो कुछ कहनेकी इच्छा हुई है, उसे मैंने उसी समय कहा है । इस समय पुनर्जित्ति दोष

हीनेपर भी मैं कई एक बातों कहतो हूँ, उसे तुम सुनो । विचारकर देखो तो सही, इस पृथ्वीमें मेरे समान भाग्यहीन राजपुत्री श्री कौन है ? हे कृष्ण ! मैं दुपदराजाकी पुत्री वेदीसे उत्पन्न हुई हूँ, मैं घृष्टयुक्तकी प्यास वहिन और तुम्हारी प्रिय सखी हूँ । आजभी वंशमें व्याह होनेसे मैं पाण्डुराजकी पुत्र और इन्द्रके समान तेजस्वी पाचों पाण्डुपुत्रों भार्या हुई हूँ । इन पाचों वीरोंके वीर्यसे पाच महारथ पुत्र उत्पन्न हुए हैं । हे कृष्ण अभिमन्यु जिस प्रकारसे तुम्हें प्यारे हैं, मेरे पुत्रभी धर्मके अनुसार वैसेही तुम्हारे प्रीतिके पात्र हैं । हे केशव ! इस भातिके सौभाग्ययुक्त लक्षण रहते हुए तुम्हारे जीतेही और पाण्डुपुत्रोंके सम्मुखही मैं राजसभामें बुलाई गई थी, और न सहने योग्य क्लेश सुमे मिले थे । पाण्डव, पाण्डाल और वृष्णिबर्षियोंके जीवित रहतेही, मैं सभाके बीचमें रहकर दुष्टबुद्धि पापियोंकी दासो बनी गई थी । उसे देखेकर भी जब पाण्डुपुत्र लाग क्राध शून्य और चेष्टा-रहित होगये, तब मैंने 'ह गोविन्द । मेरी रक्षा करा' यही कहके मनमें केवल तुम्हारा ध्यान किया । हे केशव ! अनन्तर उसी समय मेरे ससुर अम्बराज धृतराष्ट्र सुभसे बाले, 'ह द्रोपदी ! तू मेरी पुत्रवधू आर वरदान प्राप्त योग्य है, इससे तू वर माग' तब मैंने 'पाण्डवोंका दासपना कूट जावे, और वे लाग अपमानायमान रथ तथा शस्त्रोंकी फिर पावे यही मेरी प्रार्थना है' इस वचनके कहनेसे, वे सभ लाग दासपनेसे कूटकर वनवासकी चले आये थे । हे पुण्डरीकाक्ष जनार्दन ! इससे तुम इस प्रकारके मेरे अनैक दुःख और लेशोंकी प्रकृति प्रकारसे जानते हो, इस समय पति, जर्जित और बन्धु वात्सल्यके सहित मेरा परित्रा करो । हे कृष्ण ! मैं धर्मपूर्वक भीष्म और धृतराष्ट्र दोनों पुरुषोंकी पुत्रवधू हूँ, उन लोगों

सम्मुखहीमें दुष्टात्मा दुर्धर्मधनने सुकी बलपूर्वक दासी किया था । इससे जब वह पुनःप्राधम्य, इस कठिन तथा स्वीको खड़े करनेवाली निन्दित कार्य करके, क्षण मात्र भी जीवित है, तब अर्जुनको धनुषबाण और भीमसेनको पराक्रमको भी धिक्कार है । हे कृष्ण ! यदि मैं तुम्हारे अनुग्रहको पावी होऊँ और मेरे ऊपर तुम्हारी कृपा हो, तो तुम धृतराष्ट्रपुत्रोंके विषयमें सम्पूर्णरूपसे युद्धका विधान करना ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोली, उत्तम शरीर-वाला कामलनयनी, गजगामिनी यशस्विनी द्रौपदी दुःख पूर्वक ऐसे वचनोंकी कहकर बहूत सुन्दर अंगभागमें टिढ़ी, काली, नेत्रोंकी आनन्द देनेवाली, सब सुगन्धियोंसे वासित, सब खंजरीयोंसे युक्त, महा काली सर्पकी समान अपने केशोंकी वाये, हायोंके प्रकाशके, कमलनयनी श्रीकृष्णके समीपमें आकर आँखोंमें आसु भरके फिर यह वचन कहने लगी । हे पुण्डरीकाक्ष ! तुम शत्रुओंके सङ्ग सन्धि करनेकी इच्छा करते हो, वह ठीक है, परन्तु सब कार्योंके समय दुःशासनके हाथसे खौचे हुए मेरे इन खुले केशोंकी बात जिसमें तुम्हें आकर्षण रहे । हे कृष्ण ! भीमसेन और अर्जुन इकभारगाहा सन्धिके निमित्त अभितापा करेंगे, तोभी मेरे दृढ़पिता महाराज द्रुपद अपने महारथपुत्रोंके सहित शत्रुओंके सङ्ग युद्ध करेंगे । मेरे महा बलवान पांचा पुत्र भी अभिमन्युभी प्रगाढ़ा धरके शत्रुओंसे व्यव युद्ध करेंगे । हे कृष्ण ! बाद न दुःशासकें उर काले हाथोंका दूध और धूतस लिपटा हुआ न देखूँगा, तो सुनो इस शोकसे शान्त न होगा । मन जलती हुई आगके समान इस प्रवृत्ति शत्रुपक्षों जागकी हृदयमें रखके इसका सातिसे अपने स्वयंका वाट चाहता है । तरल द्रव पिताका है, परन्तु इस समय भीमसेनकी वचनसे पीड़ित शत्रु मेरा वर हृदय दुःख

दुकाड़े हुआ चाहता है । हा ! इतने दिनोंके अनन्तर आज इन अहावाहु भीमसेनकी धर्मको और दृष्टि मई है ।

सुन्दर नितम्ब और विशाल लोचनवाली द्रौपदी इस प्रकारसे अनेक वचन कहती हुई, लखी साँस लेती हुई, गर्हद होकर कापती हुई सुक्तकेणसे रोने लगी । उस समय ऐसा बोध होने लगा जैसे दुःखरूपी अग्निके तेजसे शरीरके सब धातु जलकर, जलरूपसे दाने। कुचोंकी ऊपर बरसती हुई, उसकी वदस्थल (हाती) की बहाया चाहते हैं ।

अनन्तर श्रीकृष्ण उसकी शान्त करनेकी इच्छासे कहने लगे, हे द्रौपदी ! तू जिस प्रकारसे इस समय रो रही हो, शीघ्रही भरत-वंशकी सब स्त्रियोंकीभी इसी भाँति रोतो-हुँई देखोगी । हे भोस ! जाति और वात्सल्यकी नाश होनेपर उन लोगोंकीभी तुम्हारीही भाँति रोना-होगा । हे भाँसिनी ! तुम जिसकी ऊपर क्षुब्ध हो रही हो, वह शत्रुओंके सहित अवश्यही सारा जायगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है । मैं ; भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव आदिसे सङ्ग मिलकर युधिष्ठिरको आजा और विधाताकी वनाथ हुए प्रारथने संयोगसे अवश्यही उस गन्धर्वको पूर्ण करूँगा । गान्धर्व वंशमें हुए धृतराष्ट्र-एव यदि मेरा वचन न मानेगा, तो निमन्त्रित नरक पृथ्वी सावश आर हुने तथा सियाराकी भेंट होगी । हे द्रौपदी ! बाद-हिमालय पहाड़ोंमें अपने खदानसे रट जाई, पृथ्वी की दुकाई जा जाय और गन्धर्वोंके सहित शत्रुके लोचनी गिर पड़े ; तोभी मेरा यह वचन दृढ़ न रहेगा । तब वह तुम्हारे समीप सक्त प्रतिज्ञा करके कहता है, जि तुम गाई-पशुओंके पालनकी : वृत्ति कर लक्ष्मणसे दुःख देखोगा, इससे रोना : न कर पाएगा पर ।

अर्जुन बोले, हे केशव ! तुमही इस समय कुरुवंशियोंके अत्यन्त हितकारी सुहृद मित्र हो । तुम दोनों ओरके समान सम्बन्धि और प्रीति पात्र हो ; और दोनों पक्षके निमित्त सन्धि करनेमें समर्थ हो । इससे जब कौरव और पाण्डवोंके कुशलके निमित्त यत्न करनाही तुम्हारा कार्य है, तब दूसरी वृद्धि न करके पहिले उसीके अनुष्ठानका यत्न करो । हे शत्रु-नाशन पुण्डरीकाक्ष ! तुम किसीकी बात न सहनेवाले भाई दुर्योधनके निकट जाकर, शान्तिके निमित्त जो कुछ कहना उचित हो उसे कहना, उससे भी यदि वह मूर्ख तुम्हारे धर्म और अर्थसे भरे हुए हितकारी वचनोंको न मानेगा, तो वह अत्यन्तही कालक वशमें होजायगा ।

श्री कृष्ण बोले, हां जो धर्मके अनुसार हम लोगोंका हितकर और कौरवोंका भो कल्याण करनेवाला कार्य होगा, उसीको पूरा करनेकी इच्छासे मैं महाराज धृतराष्ट्रके समोप जाऊंगा ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, शरद ऋतुके बीत-तेही और हेमन्त ऋतुके आरम्भ होतेही सब शस्यसम्पत्ति उत्पन्न होती है ; उसी कार्तिकके महीनेमें रेवती नक्षत्रसे युक्त एक दिन रात्रिके बौतनेपर, निर्मल और कीमल किरणोंके सञ्चित सूर्यके उदय होतेही, मित्रदेवत मुहूर्तके आनेपर, स्वास्थ्य और सुखके युक्त वोरोंमें अष्ट श्रीकृष्णचन्द्र जी, ऋषियोंकी स्तुतिपाठ सुनकर जैसे इन्द्र निद्रासे उठते है वैसेही अनेक मङ्गलपाठासे ब्राह्मणोंके युक्त वचनोंको सुनते हुए निद्रासे उठकर शीघ्र आदिसे पवित्र हुए । प्रातःकालके कार्योंको समाप्त करके सब अलङ्कारोंसे भूषित होकर सूर्य और अग्निको उपासना करी, पीछे वृषभकी पीठको स्पर्श और ब्राह्मणोंको नमस्कार किया, फिर अग्निकी प्रदक्षिणा करी और सम्मुखमें माङ्गलिक वस्तुओंका दर्शन

किया । अनन्तर युधिष्ठिरके कहे हुए वचनोंके स्मरण करके शिनिपुत्र सात्यकीसे बोले, कि शंख, चक्र, गदा, तूणीर, शक्ति और दूसरे सब उत्तम शस्त्रोंका रथमें स्थापित करो, क्योंकि दुर्योधन शकुनि और कर्ण आदिसबसे दुष्टात्मा हैं ; शत्रुको निर्व्वल देखकर बलवान् मनुष्यको कभी असावधानीसे रहना उचित नहीं है । अनन्तर गदा, चक्रके धारण करने वाले, श्रीकृष्णके वचनोंको सुनकर सेवक लोग उनके रथका सञ्चित करानेके निमित्त आगे बढ़े, और वह जलतो हुई प्रज्वलित अग्निके समान पृथ्वी पर चलने वाला होकर भी आकाशमें चलनेवालोंको भाति शीघ्र चलनेवाला, सूर्य और चन्द्रमाके समान दोनों चक्रोंसे विचित्ररूपसे भूषित, अर्द्धचन्द्र पूर्णचन्द्र मङ्गल, मृग और विविध भांतिके पक्षियोंको आकृतियोंसे शोभित नानाप्रकारके पुष्प, मणि, और रत्नोंसे शोभायमान, निर्मल सूर्यके समान प्रकाशमान, बहुत बड़ा और देखनमें मनोहर, सब स्थानोंमें मणि और सुवर्ण खाचत शोभायमान ध्वजापताकासे युक्त, सब सामग्रीओंसे सजा हुआ, बाघके चमड़ेसे चारों ओर घिरा हुआ, शत्रुओंको भय देनेवाला तथा उनके यशका लोप करनेवाला, यदुवशियाके आनन्दको बढ़ाने वाला, उत्तम रथका सबप्रकारसे भूषित करके उसके अनन्तर सैव्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नामके सब गुणोंसे पूरे सुन्दर और प्रसिद्ध घाड़ोंका स्नान और सब भूषणोंसे भूषित करके उस रथमें जुतवाया । अनन्तर पक्षियोंके राजा गरुड़ आकर कृष्णको असीम महिमाका बढ़ाते हुए उस रथको ध्वजापर बैठ गये ।

तब पुरुषोत्तम कृष्ण सात्यकीके सहित आकाशगामो विमानको भांति, उस मनाहर और परम रमणीय रथपर चढके, उसके शुभ शब्दसे पृथ्वी और आकाशकी पूरित करते हुए अपनी शुभयात्रा करी । उस समय

आकाश बादलोंसे रहित होगया । शुभ सूचना देनेवाली सुन्दर वायु चलने लगी । धूलि उड़नेसे शान्त हो गई, मझल सगुन होने लगे, हरिण और शुभ सगुनेके जनानेवाले सुन्दर पक्षी श्रीकृष्णके दहिनी ओर चलने लगे । हंस सारस आदि पक्षी चारों ओर दीखने लगे ! मन्त्रपूर्वक होममें आहुति देनेके समय अग्निकी दहिनी शिखा प्रचलित होने लगी और धुएँसे रहित होगई । वशिष्ठ, वामदेव, भूरियुम्न, जय, शक्र, नारद वाल्मीकि, कौशिक और भृगु आदि ब्रह्मर्षि लोग देवर्षियोंके सहित श्रीकृष्णको आनन्दित करते हुए उनकी दहिनी ओर खड़े होगये । इन सम्पूर्ण महात्मा साधु महर्षियोंसे पूजित होकर श्रीकृष्णचन्द्रने कौरवोंकी सभा हस्तिनापुरके निमित्त प्रस्थान किया । कुन्ती-पुत्र राजा युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, माद्रीपुत्र नकुल, सहदेव और पराक्रमी चेकितान, चेदीपति धृष्टद्युम्न, केकय और पुत्रोंके सहित राजा विराट आदि क्षत्रिय राजाओंने कुछ दूर तक श्रीकृष्णचन्द्रके पीछे गमन किया । अनन्तर तेजस्वी धर्मराज थोड़ी देरतक श्रीकृष्णके सङ्ग चलके, राजाओंके अनुसार यह वचन वाले जो काम, क्रोध, भय, लोभ अथवा किसी प्रकारके प्रयोजनकी सिद्धिके निमित्त भी कभी अन्याय कार्य नहीं करते; जो स्थिर बुद्धि, लोभ रहित, धर्मके जाननेवाले, बुद्धिमान, सब जीवोंके अन्तर्धामी और सब प्राणियोंके ईश्वर हैं; उन्हीं सब गुणोंसे पूरे श्रीभक्त-हितकारी प्रतापवान् देवोंके देव श्रीकृष्णचन्द्रको आलिङ्गन करके कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर इस प्रकारके कहने लगे;—

युधिष्ठिर बोले, हे जनार्दन ! जिस यश-हिनी कुन्ती माताने हम लोगोंको बालक अवस्थासे पालन पोषण करके बड़ा किया है; जो उपवास, तपस्या, स्वस्त्ययन, देवताकी पूजा प्रतिदिनोका सत्कार और गुरुजनोकी सेवाने

नित्यही यत्नवान रहती हैं; जिसकी पुत्रोंके ऊपर प्रीति और वत्सलताकी सीमा नहीं है; जिसके सङ्ग विना प्रीति और प्रेमके किये हम लोगोंको कोईभी गति नहीं है; नौका जैसे मगर, मच्छ, घड़ियाल आदि भयङ्कर जल-जन्तुओंसे पूरित साक्षात् कालस्वरूप महा-समुद्रसे उद्धार करती है, वैसेही जिसने दुर्योधनके दिये हुए महाभयोंसे हम लोगोंकी बार बार रक्षा करी है, और हम लोगोंके निमित्त अत्यन्तही दुःख और क्लेश उठाया है; दुखोंके न सहने योग्य उन कुन्तीदेवीकी कुशल वार्त्ता पूछना । हे शत्रुनाशन माधव ! पुत्रोंके कष्टकी देखके वह महा दुःखी हीरही है, इससे बार बार धीरज देकर हम लोगोंके नामकी सुनाकर उनको प्रणाम और आलिङ्गन करना । हे शत्रुनाशन ! किसी प्रकारसे भी क्लेश और दुःख पानेके योग्य न होकर भी विवाहके समय-सेही वह दुःख और क्लेशोका अनुभव करती हुई केवल दुःखही भोग रही हैं । हे कृष्ण ! हमारे सुखका समय क्या कभी ऐसा भी आवेगा, कि जिस समय हम लोग अपनी जननीको तृप्त कर सकेंगे ? अच्छी ! वनमें गमन करनेके समय वह पुत्रोंकी सङ्गति कूटनेपर हम लोगोंके सङ्ग चलनेकी इच्छासे कातर होके रोती हुई पीछे दौड़ो थीं, परन्तु हम लोग उन्हें वहांही छोड़कर वनकी चले गये थे । हे केशव ! दुःखमें पड़नेहीसे जो मनुष्योंकी मृत्यु होती है, इसका भी ठीक निश्चय नहीं है । हम लोगोंकी माता कुन्तीदेवी पुत्रोंके क्लेशको देख कर अत्यन्त पीड़ित हैं, विषय करके यदुवंशीय उनका यथा योग्य आदर और सत्कार करते हैं; इससे इतने दिनों तक जीवित भी रह सकती हैं; यदि जीती हों, तो मेरे वचनसे तुम उन्हें प्रणाम कहना । अनन्तर कौरवोंमें धृष्ट-वृतराष्ट्र, अवस्थामें बड़े राजा लोग, और भीष्म द्रोण, इपाचार्य, अश्वत्थामा, दार्ष्टिक, सीमदन

और भरतवंशीय रामानुजानेवाले पुरुषोंको तथा कुरुवंशीयोंको मन्ती, अपार बुद्धि, और शक्तिसे पूरित सब धर्मोंको जाननेवाले महाबुद्धिमान बिदुरसे चरारा प्रणाम और सेंट कहना ।

राजा युधिष्ठिर सब राजाओंको सम्मुख मधुसूदन कृष्णसे ऐसे वचन कहकर उनकी आज्ञाको ग्रहण करने उनकी रथको प्रदक्षिणा करके वहाँसे लौट आये, परन्तु अर्जुन उस समय नहीं लौटे और उनकी सङ्ग चलते हुए निज सखा, शत्रु नाशन प्रहराजित कृष्णसे बोले, कि हे विभी गोविन्द ! पहिले जब मन्त्रणा स्थिर हुई थी, तब हम लोगोंको आधा राज्य देनाही निश्चय हुआ था ; वह सब राजाओंको विदित है । हे महाबाही जनार्दन ! यदि दुर्योधन किसी प्रकारसे अवमानना करने की कपटकी त्यागकी प्रीतिपूर्वक उसे देगा, तो हम लोगोंकी भी उसकी ऊपर प्रीति होगी और वह महाभयसे कूट जायगा । यदि वह इस प्रकारसे संश्लिष्ट करनेसे संसृत होगी, तो उत्तम ही है, और इसे न करनेकी कोई दूसरी दुष्ट उपायसे प्रवृत्त होगा, तो निश्चयही इष्ट मित्रोंके सहित मैं उस पुत्रबाधनके नाश करनेका विधान करूँगा । अर्जुनको ऐसे वचनकी कहने पर भीमसेनको आनन्दकी सीमा न रही, वह हर्ष और क्राधसे युक्त होकर बाह्य वारु, ऐसे अयङ्गरे शब्दको कहने लगे, कि वहाँपर उपस्थित सब धनुर्धारी उनके उस झिंकट शब्दको सुनकर बहुतही कोपने लगे, और हाथी, घोड़े आदि सब ब्राह्मण मर्त्य मूल त्याग करने लगे । अनन्तर धनञ्जय अर्जुनने श्रीकृष्णचन्द्रसे यह वचन कहकर उनकी आज्ञा ली और उन्हें आलिङ्गन करके वहाँसे लौट गये ।

सब राजाओंको लौट जाने पर श्रीकृष्णचन्द्रजी शैव्य, सुग्रीव आदि चारों घोड़ोंसे युक्त रथपर चढ़के शीघ्रतासे हस्तिनापुरको और चलने लगे । दारुका, सारथीन, उन घोड़ोंको

इतनी शीघ्रतासे उलाया, कि वे घोड़े वायु भांति आकाशसे बातें करने लगे । घोड़ी जागेके अनन्तर महाबाहु कृष्णने मार्गमें एक महा ऋषियोंका दर्शन किया । वे ब्रह्मतेजसे प्रकाशित होकर मार्गके उ किनारेपर खड़े थे । जनार्दन श्रीकृष्णने शीघ्र ही उतरकर उन महा तेजस्वी देवर्षियों प्रणाम किया ; और विधिके अनुसार उन पूजा करके बोले, कि हे देवर्षि लोग ! सम लोकोंमें सब प्राणी कुशलसे तो है ? धर्म अनुष्ठान उत्तम प्रकारसे होता तो है ? धर्म आदि तीनों वर्ण ब्राह्मणोंके शासनके अनुसंधान करते तो है ? देवर्षियोंकी इस प्रकार पूजा करके श्रीकृष्णचन्द्रने उनसे फिर पूछा आप लोग कहाँसे आते हैं ? किस मार्ग कहाँकी जायंगे ? आप लोगोंके मर्त्य लोक ज्ञानका क्या प्रयोजन है ? क्या कार्य उपस्थित हुआ है ? आप लोगोंका कौन सा कार्य पूरा करना होगा, सो सब कहिये ।

देवता और असुरोंके स्वामी पितामह ब्रह्माके सखा परशुराम ऋषि, मधुसूदन कृष्णके इन बातोंको सुन कर उनकी समीप जा उत्तम आलिङ्गन करके बोले, कि हे महातेजस्वी दाशार्ह केशव ! प्राचीन देव और असुरोंके सब वृत्तान्तों जाननेवाले, सम्पूर्ण पुण्यकर्मोंकी करनेवाले, देवर्षि लोग, वहुत बातोंको जानने वाले ब्राह्मण लोग, महा तपस्वी आदरके पात्र राजर्षि और सब दिशाओंसे आये इकट्ठे हुए ब्राह्मण लोग, क्षत्रियोंके दर्शन करनेके निमित्त हस्तिनापुरकी जा रहे हैं । हे कृष्ण ! जिस सभामें अनेक बुद्धिमान सभासद बृहत् राजा लोग और सत्य स्वरूप तुम विद्वान्मान रहोगे, वह जो उस समयमें अवलम्बी बनोहर, तथा देखनेके योग्य होगी, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है । इससे हम सब लोग उसी दिखने योग्य सभाके निमित्त आये

जाते हैं। हे परन्तप ! हे माधव ! इकट्ठी हुई
कीरवोंको सभामें तुम धर्म और अर्थसे भरे
हुए जिन वचनोंको कहोगे, उसीको सुननेको
इच्छासे हम लोग वहां जाते हैं। भीष्म, द्रोण आदि
साधु पुरुष, महाब्रह्मिष्ठान् विदुर और यदुवशि-
योंकी शिरीमणि तुम, तथा सब लोक तुम्हारे
सहित उस सभामें उपस्थित रहेंगे। हे
गोविन्द ! इससे तुम्हारी और उन लोगोंकी
कही हुई सत्य, हितकारी और सुन्दर
वचनोंको सुननेकी हम लोगोंका इच्छा
है। हे महाबाहो ! जब तुम इस कार्यके
निमित्त सभामें बुलाये जाओगे, तब हम लोग
तुमसे फिर मिलेंगे। हे कृष्ण ! इस समय तुम
विघ्नसे रहित होकर प्रस्थान करा। पीछे हम
लोग भी जाकर तुम्हीं सभामें असोम वल और
प्रतापकी सहित सुन्दर और दिव्य आसनके
ऊपर बैठे हुए देखेंगे।

८३ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज जनमेजय !
महाबाहु देवको प्रथम श्रीकृष्णचन्द्रके जानेकी समयमें
दश महारथ, एक हजार सवार और उद्धतसे
पदल तथा बज्रतेरी खाने पीनेकी वस्तुओंकी
लेकर सैकड़ों सेवक उनके पीछे चले थे।

महाराज जनमेजय बोले, यदुकुल शिरी-
मणि महाराजा श्रीकृष्ण किस प्रकारसे गये ? किस
प्रकारसे और कैसे सगुन तथा असगुनोंकी उस
समयमें उत्पत्ति हुई थी ?

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् ! मैं इन
सब वृत्तान्तोंकी वर्णन करता हूँ, आप सुनें।
हे राजन् ! श्रीकृष्णचन्द्र जिस मार्गसे गये थे,
उसी ही प्रकार और सब स्थानोंमें आकाश बाद-
लोंसे रहित होने पर भी विजलीका चमकना
और गड़गड़ाहट गहरा सुनाई पड़ा था। मैत्रसे
रहे राजासभामें बिना बादलके ही अत्यन्त वर्षा
होने लगी। सिन्धु आदि पाँचों महा नदियां

पूर्वसे पश्चिमकी ओर बहने लगीं। सब दिशा-
ओंमें उल्टे विषय दोखने लगे। उस समय कुछ
भी मालूम न होता था। सब दिशाएँ अग्नि-
के तेजसे भस्म होने लगीं और सब स्थानोंमें
भूकम्प होने लगा। कुआ और बावली अक-
खात् मुहा मुह भरकर कितने स्थानोंकी
डुबाने लगे। हे राजन् ! यह सब पृथ्वी उस
समय धूलिसे पूरित होकर अन्धकारमें छिप
गई थी। इससे किसी ओरके मार्गका भी बोध
नहीं होता था। सबही देशोंमें एक न एक
आश्चर्यका विषय दोख पड़ा था, कुछ न दोख
पड़ने पर भी आकाशसे एक न एक भयङ्कर शब्द
सुनाई देने लगा था। हस्तिनापुरके दक्षिण और
पश्चिम ओर वायुने बड़े प्रचण्ड रूपसे चलकर
सैकड़ों वृक्षोंको जड़से उखाड़ उखाड़ फेंक
दिया और कितने स्थानोंको कपा दिया। हे
भारत ! श्रीकृष्णचन्द्रने जिन जिन स्थानोंमें मार्गमें
निवास किया था, उन उन स्थानोंपर सब वस्तु
उनके अनुकूल जागई थीं। शीतल, अन्ध और
सुगन्धसे भरी वायु चलने लगी, और आकाशसे
कमल आदि फूलोंकी वर्षा हुई थी। जिन मार्गोंसे
श्रीकृष्णचन्द्रने प्रस्थान किया था, वे सुन्दर पवित्र
और सुखसे भरे थे। उस मार्गमें कुश, काटे और
कोई विघ्नकारी पदार्थ नहीं था। सब स्थानोंमें
हजारों ब्राह्मण इकट्ठे होकर धन देनेवाले
कृष्णको अनन्क प्रकारके आशीर्वाद देकर
उन्हे आनन्दित करने लगे। और कृत्रिय तथा
वैश्य लोग धन आदिकी भेंट देकर उनकी यथा
उचित पूजा और सम्मान करने लगे। किसी
किसी स्थानपर स्त्रियां भी आती रहीं। इकट्ठे
होकर उन प्राणिमत्तोंके दिन करनवाले भगवान्
कृष्णके ऊपर फूलोंकी वर्षा करती थीं। हे
भरतर्षभ ! श्रीकृष्णचन्द्र मार्गमें हृदयका आनन्द
देनेवाले कर्मेज हृदयपुत्र पद्मपती और गार्ग्यकी
देखने हुए अनेक नगर और राज्योंका लक्षण-
धर, सब नखतें भी और समस्त प्राणिभयन

नाम स्थानमें आकर उपस्थित हुए। उनकी देखनेकी इच्छासे उपपन्न नगरसे अनेक पुरवासी आकर इकट्ठे हुए थे। इस अवसरपर महा तेजस्वी कृष्णकी जलती हुई अग्निके समान आया हुआ देखकर, उन लोगोंने विधिपूर्वक श्रीकृष्णचन्द्रका अतिथि सत्कार तथा पूजा की। अनन्तर सूर्यके अस्त होनेके समय आकाशमें अरुणाई छानपर श्रीकृष्णचन्द्र लक्ष्मणमें पञ्च-कार रथसे उतरे, और सारथीकी रथसे घोड़ों की खोलनेकी पात्रा देकर शौच प्रादि कार्योंका समाप्त करके सन्ध्या वन्दन किया। दासक सारथीने भी रथसे घोड़ोंको खालकर शास्त्र-विधिके अनुसार उनकी परिचर्या की, और उसके अनन्तर घोड़ोंको पीठ परसे सब साजाको उतार दिया। सब कर्तव्य कर्मोंके समाप्त होनेपर मधुसूदन कृष्ण बोले, कि युधिष्ठिरके कार्योंके निमित्त आज इसी स्थानपर हम लोगोंका रात्रि बितानी होगी। सेवकोंने उनकी आज्ञाके अनुसार वहीँपर उनके बैठने योग्य सब वस्तुओंको बिछाकर क्षण भरमें सब गुणोंसे युक्त अन्न और पान सम्पूर्ण रूपसे बनाकर तैयार कर दिया। हे राजन्, इस गावमें जा सब ब्राह्मण श्रेष्ठ, कुलीन, शोखसे युक्त और यथार्थ ब्राह्मण वर्णके धर्मोंकी धारण-वाले थे, उन सबोंने, आकर श्रीकृष्णचन्द्रको आशीर्वाद दिये, तथा मङ्गल सूचक वचन कहते हुए उनकी पूजा की। वे लाग सम्पूर्ण लोकोंमें पूजित यदुकुलभूषण श्रीकृष्णचन्द्रकी पूजा ही करके शान्त नहीं हुए, किन्तु अनेक रत्न और सुखोंसे भरे हुए अपने स्थानोंपर पधारनेके निमित्त श्रीकृष्णचन्द्रसे अत्यन्त प्रार्थना की। भक्तवत्सल श्रीकृष्णचन्द्रजी उनकी रुचि देख उन लोगोंके वचनमें प्रीतिपूर्वक सहमत हो उनके स्थानोंकी गये, और उन लोगोंका सम्मान रखके, उनके सहित फिर अपने निवासके स्थानपर लौट आये। अनन्तर श्रीकृष्णचन्द्रने सुन्दर

और उत्तम स्वादमें पूरित भोजन उन ब्राह्मणों को अच्छी प्रकारसे जिमाया और उनके सह आ भी भोजन किया; और सबकी सहित परम राखसे सारी रात्रि बितायी।

८४ अध्याय समाप्त ।

त्रैवैशम्पायन मुनि बोलि, द्रुपद राजा धृतराष्ट्र दूतोंके सुन्नेसे श्रीकृष्णचन्द्रके आगमनकी बात सुन गहद होकर महाभुज भीष, द्रोण सञ्जय और महा बडिमान् विदुरसे आदरसे सहित बात चीत करते हुए इष्ट मित्रोंके सहित दुःशोषनसे बोलि, हे वारुणन्दन, सब ओर एक महा आश्चर्यका विषय सुनाई पड़ता है। हर एक घरमें स्त्री, बूढ़े और बालक यह कहते हैं "महा पराक्रमी यदुपति श्रीकृष्ण पाण्डवोंके कार्य-साधनके निमित्त इस स्थानपर आविर्गो निज नगरवासी और आये हुए विदेशी पुरुष सबही अत्यन्त आदरके सहित इस वचनका अनुमोदन करते हैं, हाट, बाट, चौराहे और सभाओंमें उनके विषयमें वादानुवाद हो रहा है। मधुसूदन कृष्ण जो हम लोगोंके सब प्रकारसे माननीय और पूजा करनेके योग्य हैं, इसमें किञ्चित् माल भी सन्देह नहीं है। वह सब जीवोंके ईश्वर धृति, चमा, वीर्य और बलके आधार स्थान है। उनसे यह सा संसार और लोक यात्रा प्रतिष्ठित है। इन्हें पुरुषोत्तम श्रीकृष्णके निमित्त समान दिखायो क्यों कि उन्हींमें सनातन धर्म विराजमान है। वह पूजित होनेपर जेसे सुख देनेवाली होते हैं, वैसे ही पूजा न पानेपर भी दुःखके कारण हो जाते हैं। हे शत्रुनाशन पादवेन्द्र कृष्ण यदि विधिपूर्वक सेवासे हम लोगोंके ऊपर प्रसन्न होंगे, तो सब राजाओंके बीचमें सम्पूर्ण रूपसे मेरे सब कार्योंकी सिद्धि होगी। हे परन्तप, इससे तुम आजको उनकी पूजाके योग्य सब वस्तु इकट्ठी करो। मागोंके

बोद्धम सब प्रकारसे उत्तम साम्राज्योंसे युक्त
 नभाएँ बना दी। हे महाबाहो दुष्योधन !
 जिसमें तुम्हारे ऊपर उनकी प्रीति उत्पन्न
 हो। तुम वैसेही काव्योंका अनुष्ठान करो। हे
 भीष्म ! इसमें आप लोगोंकी क्या सम्झति है ?
 अनन्तर भीष्म आदि सब राजाओंके धृत-
 राष्ट्रके इस वचनकी प्रशंसा करके कहा, “यह
 अत्यन्त कर्तव्य कर्म है”। तब दुष्योधनने उन
 सब लोगोंका अभिप्राय अच्छी प्रकारसे
 जानकर यथा उचित मार्गके स्थानोंमें रमणोंका
 और सुन्दर सभा बनानेकी आज्ञा दे दी।
 आज्ञा पातेही नौकरीने सब मार्गके मनीहर
 स्थानोंमें विभागके क्रमसे सब रत्नोंसे युक्त
 अनेक सभाएँ बना कर तैयार कर दी।
 राजा दुष्योधनने उन सबकी शोभा बढानेके
 निमित्त हर एक प्रकारके उत्तम और मनीहर
 आसन, नेत्रोंकी आनन्द देनेवाली बहृतसी
 प्रमदा स्त्रिया, अच्छी अच्छी सुगन्धित वस्तु,
 उत्तम प्रकारके गहने, महान और सुन्दर
 वस्तुएँ, सुगन्धसे युक्त उत्तम फूलोंको साला, रससे
 युक्त अन्न पान और दूसरी अनेक प्रकारके
 भोजनका उत्तम वस्तुएँ प्रदान की। यद्यपि
 धारवराज दुष्योधनन जगह जगह इसी प्रकार-
 की अनेक सभाएँ तैयार करवाई थीं। तभी
 कृष्णके निवासके निमित्त अच्छी प्रकारसे विशेष
 यत्नपूर्वक वृक्षस्थल गावमें अनेक रत्नसे युक्त
 एवं बहृत ही सुन्दर और रमणीय सभा
 तैयार करवाई थी। राजा दुष्योधनन यह
 सब वस्तुएँ प्राप्त करके शिव-भाय्य सभा और रसस्त
 गाथाका पूरा करके महाराज धृतराष्ट्रको
 समाद दिया। दाशह औषणावद्ध को उन
 सभा और अनेक रत्नगणित वस्तुओंका
 और आखिरी भी न देखकर कारवोंके स्थान
 धृतिगापुरमें रमाण सा पहुँचे।

— नारायण समाप्त ।

इधर राजा धृतराष्ट्र विदुरका सन्बोधन
 करके कहने लगे इस समय वासुदेव कृष्ण विराट
 नगरसे इस स्थानको आ रहे हैं, आज वृक्ष-
 स्थलमें निवास कर रहे हैं। और कल यहापर
 आकर उपस्थित होंगे। वह आज्ञाकवशीय
 सम्पूर्ण यदुवंशियोंके स्वामी, महा बृद्धिमान्
 महावीर्य, और तेज तथा पराक्रमसे पूरित है।
 इतने बड़े यदुवंशियोंके राज्यके वही एक मातृ
 स्वामी और उन लोगोंकी रक्षा करनेवाले है।
 केवल यदुनाश्योंके राज्यका ही उद्योग वह
 भगवान् कृष्ण इस समस्त पृथ्वी तथा तीनों
 लोकके ही प्रतिपालक है। आदित्य, वसु और
 रुद्र लोग जिस प्रकारसे वृहस्पतिकी बुद्धि प्रव-
 लम्बन करते हैं, वैसेही यदुवंश और अन्धक-
 वंशों सब लोग कृष्णकी बुद्धिकी उपासना करते
 हुए सब कार्य करते हैं। हे धर्मके जानने-
 वाले ! इसलिए जिस भाँति उनको पूजा करनी
 चाह्यो, वह मैं तुमसे कहता हूँ, उसे सुनो। मैं
 उनकी वाहिक देशके उत्पन्न हुए अच्छी प्रका-
 रके साजोंसे सजाये हुए एकाही वर्णके चार
 चार घाड़ोंसे युक्त सुवर्णमय सालङ्ग रथ, सुन्दर
 सफेद दातोंसे युक्त मतवाले और प्रहार करनेमें
 नलवान आठ हाथी, उन एक एक हार्थियोंका
 सड़ आठ आठ नेवन्त, सुवर्णके समान वर्ण,
 सुन्दर नेत्र और गर्भसे न उत्पन्न हुए एक सी
 दासी और अनेक दाम दगा, इनके आतिरिक्त
 पचाहरी लोगोंके बनाये हुए प्रहार करनेवाले
 अच्छे कामले और चिह्नित कन्धोंके दूगा,
 आर चीन देशके उत्पन्न हुए एकत्रार रत्नमाला
 तथा दूसरी वस्तुएँ जो उत्तम प्रिय लोगों, प्रधान
 पत्न्या । मंत्र भक्तारमें जो उत्तम प्रभासे प्राप्त
 एवं अद्भुत सुन्दर और अच्छे भाग्य, यह भी
 उन्होंने उपहारस्वरूप प्रदान कर दिया। अनेक
 वंशों के उत्तम लोभने निमित्त यहाच नया यन्त्र
 पाव । धार भी यन्त्रमालाएँ जो हैं वह
 एक दिने ही उन्हें दान देने में सक्षम हो सकेगा ।

मैं उसे भी उत्तरीके समर्पण करूंगा, उनके सङ्गमें जितने बाहुन और सेवक हैं, उनके अठगुणी परिमाणसे खाने पीनेको वस्तु तैयार करा दूंगा। केवल दुय्योधनको क्वाड़कर मैं सब पुत्र पौत्र लोग उत्तम वस्त्र तथा भूषणोंसे भूषित हाकर सुन्दर और मनोहर रथापर बैठके यदुपात कृष्णको अगवानोंके निमित्त जायंगे। सब प्रकारके अलङ्कारोंसे शोभित हजारों वाराङ्गनाएँ पैदल ही जाकर श्रीकृष्णकी अगवानी करेंगी। नगरसे भी जो सब कल्याणकी देनेवाली कन्याएँ कृष्णको देखनेके निमित्त जायंगी, वे सब बिना आवरणके ही गमन करेंगी। अधिक और क्या कहूँ, प्रजा लोग जैसे प्रातःकाल के उगे हुए सूर्यको आनन्दित होके देखते हैं; वैसेही यदुपात कृष्णकी भी स्त्री, पुरुष, बालक, बालिका और सम्पूर्ण लोग आनन्दित तथा हर्षसे युक्त होकर अच्छे प्रकारसे देखें। सैनिक पुरुष हमारी आज्ञाके अनुसार मार्गों की ध्वजा और पताकाओंसे पूरित करें, और जिस मार्गसे श्रीकृष्णचन्द्र आवेंगे, उसे जल कुड़कके धूलिसे रक्षित करें। दुय्योधनके घरसे दुःशासनका भवन वज्रतही प्रशंसाके योग्य है, इससे शीघ्रही वह साफ करके उत्तम भूषणोंसे भूषित कराया जावे। यह वज्रत बड़ा स्थान अत्यन्त रुचिकर और सुन्दर, शोभायमान सब समयमें ही शुभ लक्षणोंसे युक्त और रमणीय है? इसी घरमें मेरे और दुय्योधनके सब रत हैं; उनमेंसे जा जा श्रीकृष्णचन्द्रको देने योग्य होगी, उन सबको निःसन्देह उन्हें प्रदान करना होगा।

८६ अध्याय समाप्त ।

विदुर बोले हे राजन् ! हमारी बात दूर रहै, आप तीनों लोकमें भी बुद्धिमान् प्रसिद्ध हैं। वज्रत ही सत्कायों के करनेसे आप सब लोकों के सम्मान करनेवाले तथा प्रीतिके पात्र हैं।

ऐसी अवस्थामें आप बड़ी हुई दशमें स्थित रहकर जो कुछ अच्छे कहते हैं, वह शस्त्र और राव विचारने युक्त होगा, यही सत्य होता है। क्योंकि आप स्थिरबुद्धि और वृद्ध हैं। हे राजन्। प्रजाओंके बीचमें सब लोगोंमें इस बातको निश्चय कर रक्खा है, कि पत्थरकी लोक, सूर्यकी रोशनी, समुद्रकी तरङ्ग जैसे सदाही विद्यमान रहती है, धर्म भी वैसेही सदा विद्यमान रहता है। हे राजेन्द्र। आपके गुणोंसे मनुष्य लोग बढ़ते चले आते हैं, इससे वस्तुवाच्यसे सहित आप इन गुणोंकी रक्षा करनेमें यत्नवान रहिये। हे महाराज। आप सरलताकी अवलम्बन कीजिये। और अज्ञानमें फँसकर पुत्र तथा पौत्रोंको नष्ट न कराइये। हे राजेन्द्र। आप अभ्यागत कृष्णको जो यह सब वज्रतसे धनको प्रदान करनेकी अभिलाषा करते हैं, वह बात तो दूर रहै, उसके अतिरिक्त इस सम्पूर्ण धन को भी देनेके वह पात्र है। मैं शरीरको समझ करके यह सत्य वचन कहता हूँ, कि केवल धर्मके उद्देश्य अथवा श्रीकृष्णकी प्रीतिकी साधन करनेके निमित्त आपको ऐसी इच्छा नहीं हुई है। हे वज्रतसी वस्तुओंके देनेवाले। इस प्रकारके वज्रतसी वस्तुओंके दान करनेके सहज केवल कुल, असत्य और कपटका ही प्रकार होता है। इन बाहरी कस्मोंको देखकर ही मैं आपके भीतरके गूढ़ अभिप्रायको मालूम कर रहा हूँ। हे राजन्। पाण्डव लोग पाँच भाई केवल पाँच गाव पानेहीकी अभिलाषा करते हैं, परन्तु उन लोगोंकी आप वह पाँच गाव भी देनेकी इच्छा नहीं करते हैं। फिर कौन शान्तिकी स्थापित कर सकता है? आप धनसे श्रीकृष्णको अपनी ओर किया चाहते हैं; और इसी उपायसे उनकी आप पाँचोंसे पृथक् किया चाहते हैं। यही आपकी इच्छा है, परन्तु मैं आपसे यही एक सार वचन कह

हैं, कि वह धन, रत्न और पूजा आदि किसी उपायसे भी अर्जुनसे पृथक् नहीं हो सकते हैं। कृष्णकी कृपा-परायणता और अर्जुनको उन पर दृढ-भक्ति मुझे अच्छी प्रकारसे मालूम है, इस निमित्त प्राणकी समान प्रिय अर्जुनकी जो कृपा कभी भी परित्याग नहीं कर सकती, यह मुझे विशेष रूपसे मालूम है। हे राजेन्द्र ! आपके सहस्र प्रकारसे उद्योग करने पर भी जनाह 'न कृष्ण' केवल जलसे भरे हुए पात्र, पैर धोने और कुशल क्षेम पूछनेके अतिरिक्त किसी वस्तुके लिये न प्रार्थना करेंगे और न स्वीकार हो करेंगे। हे राजन् ! इससे उस मानके पात्र महात्मा श्रीकृष्णकी जिस प्रकारका अतिथि-सत्कार प्यारा है, वही तुम पूरा करो। वह सम्मान करनेके योग्य पात्र है। हे राज-सत्तम ! श्रीकृष्णचन्द्र कौरवोंके कात्याणकी इच्छासे जिस कार्यके निमित्त कौरवोंके समीप आवेंगे, वही उनकी प्रदान कीजिये। कृष्णकी यहो इच्छा है, कि आपके दुर्योधन और पाण्डवोंके बीचमें सन्धि स्थापित हो। हे राजन् ! इससे आप उनको उसी प्रार्थनाका पूर्ण कीजिये। हे महाराज ! आप पाण्डवोंके पता है, वे लोग तुम्हारे एत हैं, आप बूढ़े और वे लोग बालक हैं, इससे जब वे लोग आपकी सङ्ग पुत्रोंके समान सम्पूर्ण आचरणोंकी करनमें प्रवृत्त हैं, तब आपकी उन लोगोंके सङ्ग पताक समान ही व्यवहार कीजिये।

८६ श्री गुरु उपास ।

दुखोपशम पीछे, विदुरन कृष्णकी विषयमं शा
म वचन कर, वे खम ही नल्ह रहे । जनाइन
एसा पाठवा पर जंसी अनुसूत नं, उमने
आपका न लह उनका सिद्ध कराना नल्लतही
पलिन ज्ञान, २ । हे रात्रि, १ । इहसे आप ज्ञा
न रहे । ज्ञान मार सहाय्ये निगम, नाद ।

प्रकारके धनको देनेका सङ्कल्प कर रहे हैं, वह कभी देनेकी योग्य नहीं है। श्रीकृष्ण अवश्य ही इन सब वस्तुओंको देनेके पात्र हैं, यह ठीक है। परन्तु वह कार्य इस समय देश और कालके अनुसार अयोग्य है। वे राजन्। कृष्ण समझेंगे, कि 'वे लोग भयभीत होकर यह सब वस्तु मुझे प्रदान कर रहे हैं'। वे पृथ्वी-नाथ। मेरा इस प्रकार निश्चय है, कि जिस कार्यमें अवमानको सम्भावना हो, वह बुद्धिसम्पन्न चित्रियोंको कभी करना उचित नहीं है। सब लोकोंमें अष्ट वह विशालनयन श्रीकृष्ण तीनों लोकमें पूजा पानेकी योग्य हैं, यह मुझे सदासे ही मालूम है। परन्तु हे नरनाथ। कार्यकी गतके अनुसार उनका इस समय कोई भी उपहार नहीं दिया जा सकता। जब युद्धका सामान किया जा रहा है, तब बिना युद्धके वह कैसे निवारण हो सकता है ?

[illegible]

कोई मिलकर उनके निकट उनके प्रिय वचन ही कहना ।

दुष्योधन बोले, हे पितामह ! मैं यह सम्पूर्ण राजलक्ष्मी पाण्डवोंके सङ्ग वाटकर जन्म भर सन्तोष करूँ, यह किसी प्रकारसे भी युक्त नहीं हो सकता । इस निमित्त युक्तिसे अपने मनमें एक बृद्धत शारी कायेका मैंने निश्चय किया है, उसे सुनिये । मैंने अपने मनमें यह निश्चय किया है, कि पाण्डवोंकी परम गति कृष्णको यहाँपर कैद कर रखूंगा । कृष्णके कैद होनेपर सम्पूर्ण यदुवंशी, पाण्डव लोग तथा समस्त पृथ्वीके अनुश्रु और राजा लोग भी मेरे वशमें हो जायेंगे । इससे आप सुभी कोई ऐसी युक्ति बतलाईये जिससे जनार्दन कृष्ण सबरे यहाँ पर आकर निश्चित किये हुए इस मेरे कैद करनेके उपायको किसी प्रकारसे जान न सके ; और उस कार्यके करनेमें हम लोगोंका कोई नुकसान भी न होने पावे ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, कृष्णका बाधनेके विषयमें दुष्योधनके ऐसे सहा घोर और कठोर वचनको सुनकर राजा धृतराष्ट्र दृष्ट-मित्तोके सहित अत्यन्त ही पोड़ित और दुःखित हुए । अनन्तर उन्होंने उससे यह वचन कहा, हे प्रजा-पालक ! तুম कभी ऐसे वचनोंका मत कहना, यह सनातन धर्मके अनुकूल नहीं है । श्रीकृष्णचन्द्र एक तो दूत हाकर आरहे है, दूसरे हम लोगोंके सम्बन्ध और सदासे प्रीतिके पात्र है, विशेष करके उन्होंने कभी कौरवोंके सङ्ग कोई बुरा आचरण नहीं किया है । इसलिए किस प्रकार वह बन्धनके ग्रन्थ हो सकते हैं ;

भीष्म वाले, हे धृतराष्ट्र ! तुम्हारा यह मन्दबुद्धि पुत्र अत्यन्त ही कालके वशमें हुआ है । सुहृदलोग इसकी हितकी इच्छा करते हैं, परन्तु यह केवल अहितको ही इच्छा करता रहता है । आश्चर्यका विषय तो यह है, कि तुम भी उसके सुहृद लोगोंकी टालकर केवल कुमांगी, पापाका

करनेवाले इस दुष्टात्माका अनुसरण करते हो । तुम्हें और अधिक क्या कहूँ परन्तु यह नीच बुद्धि दुष्योधन, यदि सब कठिन कर्म सहजहीमें करनेवाले, महात्मा कृष्णके प्रति इस प्रकार बुरा आचरण करनेमें प्रवृत्त होगा, तो हम भरणे बन्धु, बान्धव सेना और दृष्ट मित्तोके सहित सरकार पृथ्वीमें सोवेगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है । इस धर्मके छोड़नेवाले, सूढ, पापीके अनर्थ युक्त और अयोग्य वचनोंके सुननेमें सुभी किसी प्रकारसे भी उत्साह नहीं होता । ऐसा कह कर सत्य पराक्रमी भरतश्रेष्ठ भीम अत्यन्त ही क्रोधसे भरकर, तभीसे उठकर शीघ्र ही घर चले गये ।

८८ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, इधर श्रीकृष्णचन्द्र प्रातःकाल उठकर शौच आदिसि निवृत्त होकर सन्ध्या आदि करनेके अनन्तर ब्राह्मणोंसे विदा होके हास्तिनापुरका चले । उस समय वृवास्थलवाली मुख्य मुख्य पुरुष महावर्ष युक्त महाबाहु हृषीकेश कृष्णको आज्ञासे विदा हाकार अपने अपने घरको गये । उधर दुष्योधनको छोड़कर धृतराष्ट्रके और तब पुत्र तथा भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य आदि सब सज्जन पुरुष आये हुए श्रीकृष्णचन्द्रको गगनागारके आगसे लिवा लानेको निमित्त गये । इस अतिरिक्त और भी अगणित पुरवांसी लाल श्रीकृष्णको देखनेकी अभिलाषासे कोई सवारों पर और कोई पैदलही उठ धाये । श्रीकृष्णचन्द्र जागेसे सहा पराक्रमी भीष्म, द्रोण तथा धृतराष्ट्रके पुत्रोंसे मिलकर उन लोगोंके सहित नगरमें आपहुँचे । हे राजर् ! श्रीकृष्णके सम्मानके निमित्त नगर और राजमार्ग उत्तम प्रकारसे अलंकृत और पुष्पांसे सजाया था । हे भरतधर्म श्रीकृष्णचन्द्रन जिस समय नगरमें प्रवेश किया, उस समय स्त्री, पुरुष, बूढ़े और बालक कौटुम्भी

परमेश्वर ने, सबही उनके दर्शनकी लालसा से राजमार्गपर आकी खड़े हुए थे, उन्हें देखते ही शिर झुकाकर स्तुति और प्रशंसा करने लगे । हे महाराज । उत्तम अट्टालिकाओं (अटारी) के ऊपर वरवर्णिनी इतनी कामिनीएँ सृष्टकी सृष्ट आकर इकट्ठी हुई थीं, कि उससे यह बोध होता था, कि उनके-भारसे उन सब प्रभुकी अटारिया पृथ्वीमें मिला चाहती हैं ।

श्रीकृष्णके चार घोड़े स्वभावहीसे अत्यन्त जल्दी चल वाले थे, परन्तु अत्यन्त भीड़ने राज-मार्गके भर जानेके कारण वे बहुत धीरे धीरे चलने लगे। शत्रुनाशन श्रीकृष्णचन्द्र इसी प्रकारसे घोड़ी पर तक राजपथकी लांघकर प्रान्तमें धृतराष्ट्रके राजमन्दिरमें शोभित हुए। उन्होंने राजमन्दिरके तीन खण्डको लांघकर चौथे खण्डमें विचित्रवीर्यके पुत्र महाराज धृतराष्ट्रकी देखा। श्रीकृष्णचन्द्रके समीप आतेही प्रज्ञाचक्षु महाराज यशस्वी राजा धृतराष्ट्र भीष्म और द्रोणाचार्यके सहित उठ खड़े हुए। उनके उठतेही कृपाचार्य, भीमदत्त, महाराज बाहिक पादि सब राजा लोग श्रीकृष्णकी सम्मानरक्षाके निमित्त उटके खड़े होगये। अनन्तर वृष्णि-नन्दन भद्रसदन राजा धृतराष्ट्रके समीप आकर यथा उचित वचनोंसे उनकी और भीष्मकी पूजा की। उनके सब इस प्रकारकी पूजा और सम्मान दिखाके श्रीकृष्णचन्द्र यथा योग्य अवस्थाके अनुसार सबहीसे मिले। इसके अनन्तर द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, यशस्वी भीष्म और भीमदत्तकी भी विविध रूपसे

राजी। दहापर मघन्त खच्छ महासूख
 खेपगेका दासन विरा ह्या वा जनाईन
 राजीपर राजा इतरादकी आशने ला
 पराजे। पतनर परीहितोने गड महुके
 पर लावर उरी पदान दिया। अनिष्टि-
 पर राजा पर नैरुद्ध. रीरने
 पर. रीरने महु महुने पतनर जान

चीत और हंसी टट्टे करते हुए वहापर वहुत समयतक बैठे रहे। शत्रुनाशन महा यशस्वी श्रीकृष्णचन्द्र कौरवोंकी सभामें राजा धृतराष्ट्र आदि सब कौरवोंसे यथायोग्य मिलकर, और राजा धृतराष्ट्रने सत्कार और पूजा पाकर, अन्तमें उनकी आज्ञाकी लेकर वहांसे उठकर विदुरके रमणीय निवास-भट्टानमें आकर उपस्थित हुए।

विदुरने सुन्दर और पवित्र वस्तुओंसे त्रीशूणा
की भक्तिपूर्वक पूजा करके कहा, हे पाण्डवो-
कात्त आपकी दर्शनसे मेरे हृदयमें जैसी प्रीति,
उत्पन्न हुई है, उसे मैं किस प्रकारसे वर्णन
करूँ ? आप सब प्राणियोंकी आत्मा, सबके
अन्तर्यामी हैं। सब धर्मों के जाननेवाले महान् विद्वान्-
मान् विदुरने इस प्रकारसे बातचीत करके उनका
अतिथि-सत्कार किया। इसके अनन्तर पाण्ड-
वोंका कक्षलक्ष्म पूछने लगे, सब बातोंको
जाननेवाले भगवान् कृष्णने पाण्डवोंके सम्पूर्ण
हृत्तान्तको उनसे विस्तार पूर्वक कह सुनाया।
वह प्रच्छी प्रकारसे जानते थे, कि विदुर
पाण्डवोंके अत्यन्त मित्र हैं, उन लोगोंके ऊपर
लगने जोधकी बात तो कर रहे, वरन् प्रीतिहीन
उत्तम भाति और बहूत प्रकारसे है। विशेष
करके वह उत्तम बुद्धिसे युक्त ज्ञानवान्, और
धर्म प्रवर्धक जाननेवाले हैं, इससे उनके निकट
पाण्डवोंकी सब चेष्टाओंकी वर्णन करनेसे
करभी लड़ोव नहीं है।

२६ प्रजाय नसात् ।

नैऋत्यपायन मुनि जी, शत्रुनाशक यन्त्र-
हेन विद्याकी सहायिनी दिनचर्या योग भाष्य
पितामही मरिचक यन्त्रोद्धार प्रणाली
विजय विजय यन्त्रोद्धार प्रणाली
समस्त यन्त्रोद्धार प्रणाली
यन्त्रोद्धार प्रणाली
यन्त्रोद्धार प्रणाली

वीर पुरुषों के सदा के सित श्रीकृष्णचन्द्रको वहुत दिनों के अनन्तर देखकर उनके प्रांभूता ब्रह्मा पन्द्र नहीं हुआ। वीरों में मुख्य श्रीकृष्णचन्द्रके प्रतिधि-सत्कार करनेके अनन्तर, जब वह प्रासन पर प्रोभित हुए, तब कृन्ती देवी दुःख तथा प्रेससे गद्गद होकर रुहने लगीं। हे तात ! हे कृष्ण ! जो लोग बालक अवस्थाहीरे गुरुकी सेवामें लगे रहते थे, जिनमें आपसमें अत्यन्त सहृदयता है, जो प्रीतिके पाव, शान्त-अन्तःकरण, क्रोधके जाननेवाले और ब्राह्मणोंमें निष्ठावान्, सत्यवादी और धर्मात्मा हैं, जो सदा ही वहुत लोगोंसे युक्त राज्य करनेके योग्य हैं; वही लोग अधर्मी तथा ठगोंके फन्देमें पड़कर राज्यसे भट्ट होके इनमें निवास करते थे; मैं अत्यन्त दुःख और कातरतासे रो रही थी, उस समय सुभक्तों और सम्पूर्ण सुखकी वस्तुओंको परित्याग करके भी इनको चले गये थे; वे मेरे अत्यन्त प्यारे पाँचों पुत्र वनवासके अयोग्य होकर भी किस प्रकारसे सिंह, व्याघ्र और मतवाले हाथियोंसे भरे वनमें निवास करते थे ? बालक अवस्थामें जब उन लोगोंके पिताकी मृत्यु हो गई थी, तब मैंने ही उनका पालन पोषण किया था : जब इस वनवासके समयमें उन लोगोंने पिता और माता दोनोंकी विना देखे कैसे निवास किया ? हे देशव । पाण्डव लोग शंख, भेरी, मृदङ्ग और वासुरीके शब्दोंसे प्रति दिन पूजित होते थे । राजमन्दिरमें सुन्दर तथा कोमल नृगचर्मसे युक्त शय्यापर सोते थे, भोरके समयसे घोड़े हाथी रथ, शंख, भेरी, मृदङ्ग और वासुरीके शब्दको सुनके निद्रासे जागते थे : तथा ब्राह्मणोंके पुण्याह-वचन और स्वस्तिवाचनसे जागकर अनेक प्रकारके वस्त्र, रत्न, और भूषण ब्राह्मणोंकी पूजा करके उन्हें दान देते थे, और ब्राह्मण लोग भी पूजित होकर स्वस्तिवाचनसे उन्हें आनन्दित और प्रसन्न करते थे । वे महाविपदके स्थान

निर्जन वनमें सिंह व्याघ्र, हाथी आदि वनके पशुओंके शब्दको सुनकर किस प्रकारसे सेते रहे होंगे, यह किसी प्रकारसे भी मेरी समझमें नहीं आता है । हे मधुसूदन ! जिन लोगोंकी शंख, भेरी, मृदङ्ग, वासुरी तथा कार्मनीयोंके कोमल वाणसे गाए गीतों और मूत मागध वन्दियोंकी स्तुतिको सुनकर नौदरी उठनेका अभ्यास था : वे लोग वनके बीचों हिंसक जलुओंके चीत्कार शब्दको सुनकर कैसे सोते रहे होंगे, हे कृष्ण ! जो बालकपनमें निष्ठावान्, तेजस्वी, धर्मात्मा, सब प्राणियोंके ऊपर दया करनेवाले थे, जिन्होंने काम, क्रोध आदिको वशमें किया था : जो सदाही उत्तम मार्गसे चलते हुए अश्वरीष, मान्यता, ययाति, नङ्गप, भरत, दिलीप, शिवि, उशीनर आदि पुराने राजकृषियोंके उत्तम गुणोंकी धारण करते थे, जो सब गुणोंसे विभूषित होनेसे तीनों लोकके राज्यके स्वामी होनेके योग्य थे, धर्म शास्त्र तथा व्यवहार सब विषयोंमें जो कौरवोंमें श्रेष्ठ थे, वही सुन्दर खच्छ सुवर्णके समान तेजस्वी, देखनेमें सुन्दर, शीलवान् सदा चारी-धर्मके जाननेवाले, सत्य प्रतिज्ञा करनेवाले, अज्ञात-शत्रु, धर्मात्मा महाबाहु युधिष्ठिर कैसे है ?

हे मधुसूदन ! जो भीमसेन सदा क्रोधी वायुके समान वेगवान् महा बलसे युक्त, हजार हाथियोंके बलकी धारण करनेवाला है, जो सदाही प्रिय कार्य करके भाइयोंकी प्रीति तथा प्रेमका पात्र हुए हैं, जिसके प्रचण्ड और तालपी अग्निमें कौचक, क्रोधवश, हिडम्ब और और वकासुर भस्म होगये थे, जो शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ, शत्रुनाशन महावीर पराक्रमसे युक्त बलमें वायु और क्रोधसे महाकालके समान होकर भी क्रोध, वल और असहन शीलताके रोकदार अपने सहोदर भाईकी आज्ञा में रहते हैं, उस तेजस्वी महा पराक्रमी, महात्मा भीम

सैन्यकी कुशलवार्ता सुनकर कहो । हे कृष्ण ! वह परिषदके समान भुजावाले महात्मा भीमसेन इस समय कैसे है ?

हे कृष्ण ! जो अर्जुन दोही भुजाओंके सहारे सहस्र भुजावाले मृत अर्जुनके सङ्ग युद्ध करनेकी इच्छा करते हैं ; जो महावीर पुरुष इकवारगी पाच सौ बाणोंकी चला सकते हैं ; जिसकी शस्त्रविद्याकी शिक्षासे कार्तवीर्य, प्रतापसे सूर्य, इन्द्रिय नियन्त्रणसे महा ऋषि, क्षमासे पृथ्वी और वीरतामें इन्द्रके सङ्ग उपमा दी जा सकती है , जिसके महाबल और पराक्रमसे इस समस्त पृथ्वीके राजाओंके बीच कौरवोंका तेज प्रताप, और प्रभुता प्रकाशित हुई है और पाण्डव लोग आज तक जिसके बाहु-बलकी सदा उपासना करते हैं, युद्धमें जिनके मनमुख होकर कोई पुरुष भी निस्तार नहीं पाता , जो वीर पुरुष सब प्राणियोंको जीतने-धाला, किसी समयमें किसीके सम्मुखसे पराजित नहीं होता है , देवताओंके राजा इन्द्र जैसे देवताओंकी आशा देनेवाले हैं, वैसे ही रथि-प्रभे में श्रेष्ठ सत्य-पराक्रमी अर्जुन भी एक मात्र पाण्डवोंकी अवलम्ब है , वह अर्जुन तुम्हारा भाई और मित्र इस समय किस प्रकारसे है ?

हे मधुसूदन ! सब प्राणियोंके ऊपर दया करनेवाला लज्जावान, सुकुमार, धर्मात्मा नव-एलोकी जाननेवाला, महा धनुर्वारी, महा बलवान, युद्धके कार्योंकी जाननेवाला सहदेव मुझे बहुत ही प्यारा है । हे कृष्ण ! धर्म और धर्मकी जाननेवाला महात्मा सहदेव सदा ही भाइयोंकी सेवा ठहलने लगा रहता है और भाई लोग भी उसके उत्तम चरित्रकी सदा प्रशंसा किया करते हैं । हे यदुनन्दन ! वह भाइयोंकी प्रीतिको बढ़ानेवाला और मेरी सेवामें सदा लगा रहनेवाला वीरोत्तम श्रेष्ठ नाट्य-रसज्ञ कैसे है ?

हे कृष्ण ! जो वीरतासे युक्त, दिव्य सुन्दर

सुकुमार तथा भाइयोंका अत्यन्त प्यारा है ; जो युधिष्ठिर आदिका प्राण स्वरूप कहा जा सकता है , दुःखको न सहने योग्य सुकुमार पुत्रकी मैंने सदा सुखमें रक्खा था, वह महा परा-क्रमी बलवान नकुल कुशलसे तो है ? हे महा-वाही ! सदा सुखोंकी भोगने योग्य महारथ नकुलको क्या मैं फिर देख सकूँगी ? देखो, जिसको न देखनेसे मैं क्षण भर भी नहीं रह सकती थी, उस नकुलके ऐसे कटिन वियोग होने पर भी अब तक जीती हूँ ।

हे जनार्दन ! सब गुणोंसे युक्त, उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई महास्वरूपवती द्रौपदी मुझे पुत्रोंसे भी अधिक प्यारी है । जिस पतिव्रता सत्यवादिनी द्रौपदीने पतियोंके सङ्ग जानेकी इच्छासे सङ्गमें रहनेवाले पुत्रोंकी भी अनादर-पूर्वक त्याग दिया , और पतियोंके सङ्ग बनकी चली गयी , सब गुण, लक्षण, मङ्गल और रूपसे भरी हुई वह द्रौपदी किस प्रकारसे है ? हाय ! साक्षात् अग्निके समान तेजस्वी महा धनुर्वर शूर वीर पाच पतियोंकी अनुगामिनी होकर भी द्रौपदी इस प्रकारके दुःख और क्लेश पा रही है । हे शत्रुनाशन ! आज चौदह वर्षका समय हुआ, कि मैंने अभीतक उसका चन्द्रमुख नहीं देखा । हा ! बालकोंके बिना देखे वह अपने मनमें कितना दुःख पाती होगी, उसे मैं नहीं कह सकता हूँ । दुपटनान्दनी द्रौपदी जब ऐसे युद्ध-प्रारंभ पवित्र चारखसे युक्त होनेपर भी सुखका भोगनदा अधिकारिणी नहीं हुई, तब मुझे क्या गंध छाना ? कि इस लोकमें केवल पुण्य-कर्महीन सुख नहीं मिल सकता । सभामें बुलाई गई द्रौपदीजी मैंने जाकर दुःख देखी था, उसका कारण करनेसे अर्जुन, युधिष्ठिर भास, नकुल और भीम स्वर्ग-पद भी मेरी प्राप्ति नहीं हो पाये । इसके पहिले मैंने अपने दुःख काहे देखा था ? परन्तु अब मैंने अपने दुःख काहे देखा है ?

धनने उस द्रौपदीको स्वीधर्मसे युक्त, और एक वस्त्रको पहने हुए रहनेपर भी राजसभामें बुलवाकर ससुर आदि सब कौरवोंके सम्मुख सभामें जो खड़ी कर दो थी और उन लोगोंने उसे ऐसी अवस्थामें देखा था, उससे बटकर और दूसरा दुःख मैंने कभी नहीं सहा था। उस समय राजा धृतराष्ट्र, सचाराज वाल्मिक, कृपाचार्य और भी कई एक सज्जन पुरुष दुःखित और शोकित हुए थे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है, परन्तु सब सभासदोंमेंसे मैं विदुरहीकी अधिक प्रशंसा करती हूँ। उनमें चरित्र होनेहीसे समुद्य लोकोमें पूजनीय और मान पानेका पात्र हो सकता है; केवल विद्या तथा धनसे कोई भी बड़ाई पानेका अधिकारी नहीं होता। हे कृष्ण! उन महा बुद्धिमान्, गम्भीर प्रकृति, महात्मा विदुरका उनमें शील रूपी प्रकाशमान भूषण सब लोकोंमें अपने तेजसे प्रकाशित हो रहा है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, श्रीकृष्णचन्द्रको देखकर कुन्ती हर्ष और शोकसे कातर होकर नाना भांतिके दुःखोंको सुनाकर फिर कहने लगी, हे शत्रुनाशन! पहिले समयके बुरे राजाओंके चलाये हुए जुए, शिकार आदि व्यसन क्या कभी पाण्डवोंको सुखदायक हो सकते हैं? इस पापरूपी अशुभ जुएको खेलनेहीसे नीचबुद्धि धृतराष्ट्रके पुत्रोंने द्रौपदीको बहृत हो कठिन शत्रुके समान दुःख देकर मेरे हृदयको निल ही जलाया है। हे परन्तप जनार्दन! मैंने नगरसे वनको गये हुए पुत्रोंके अनेक प्रकारके दुःखकी बात सुनी है। हे माधव! दूसरेके घरमें छिपकर जो मेरे पुत्रोंकी अज्ञातवास करना पड़ा था, इससे बटकर दुःख तथा क्लेश सुभी और मेरे पुत्रोंको कभी नहीं मिला। आज चौदह वर्ष हो गये, अभी तक द्यूधौधन मेरे पुत्रोंको प्रवासी ही बनाये हुए है, यदि पुण्यके फलका नाश न हुआ होगा तो इतने दिनके

बीतनेपर अब सुभीकी सुख भी मिलेगा। हे कृष्ण! मैंने धृतराष्ट्रके पुत्रोंको कभी पाण्डवोंसे कम नहीं समझा—पुत्रहीके समान उन्हें भी देखा है, इस सत्यके ऊपर मैं यह निश्चय करके कह सकती हूँ, कि अवश्यही पाण्डवोंसे संहत तुमको इस उपस्थित संग्रामसे विजयी और मुक्त, शत्रुओंको मरे हुए और पाण्डवोंको फिर राज्य पाये हुए देखूंगी। पाण्डवोंके धर्मके धनसे जिस प्रकारसे सत्यव्रतका पालन किया है, उससे उनके शत्रुलोग कभी उन्हें युद्धों नहीं जीत सकेंगे। जो हो, इस उपस्थित दुःखको भोग करनेसे अपना तिरस्कार भी नहीं कर सकती हूँ, और न द्यूधौधनहीके दोष दे सकती हूँ, केवल पिताको ही इस विषयमें दोषी कहना होगा। जुवेके खेलने वाले धूर्त लोग जैसे विजयी धूर्तकी बाजीमें लगें हुए धनको देते हैं, वैसेही सुभीकी उन्होंने कुन्तिभोज राजाके हाथमें समर्पण किया था। मैं जल हाथमें लेकर बालक अवस्थासे खेल रही थी, उसी समय तुम्हारे पिता मह (दादा) ने सुभी अपने पुत्रहोन कुन्ती भोज राजाके हाथमें समर्पित किया था। इससे मैं पिता और ससुर लोग सबकेही बड़वा की पाती हूँ।

अर्जुनके जन्मके समयमें यह आकाशवाणी हुई थी, कि तुम्हारा यह पुत्र जगत विजयी होगा, इसका यश स्वर्ग तक फैलेगा, यह महा संग्राममें कौरवोंको मारकर तीन महायज्ञ भाइयोंके संहत पूर्ण करेगा। मैं इस देव वाणीके ऊपर भी किसी प्रकारका दोषारोप नहीं कर सकती हूँ। सर्वव्यापक धर्मरूपी नारायण विधाताको सब प्रकारसे नमस्कार है। धर्मही सब प्रजाओंको सदासे धार करता चला आता है। हे यदुनन्दन कृष्ण! यदि धर्म पृथ्वीपर रहेगा, तो जैनी देववाणी हुई है, उसे तुम अवश्यही पूरी

करोगे। हे माधव। पुत्रोंके विरहसे जीतो
झड़ में जिस प्रकारके शोकरूपी अग्निसे जली
जातो हू; वैसा दुःख मुझे न विधवा होनेसे
न अर्थनाशसे, न शत्रुतासे न और किसी
प्रकारसे कभी अनुभव हुआ है। मैं जब तक उस
सब शस्त्रधारियोंमें अष्ट गाण्डीव धनैर्दारी
अर्जुनकी नहीं देख सकती हू, तबतक मेरे
हृदयमें शान्ति कहा है? हे कृष्ण। आज
चौदह वर्षतक मैं युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल
और सहदेवको न देखकर जीवन्मृत होगई
हूँ। हे जनार्दन! जो लोग सब दिनके निमित्त
विदा हो जाते हैं; उनके निमित्त उनके पुत्र
और जातिके लोग मरना निश्चय करके आइ आदि
कर्म करके शान्ति प्राप्त करते हैं, परन्तु मेरे
पक्षमें पुत्रलाभ जीवत दशम रहकर भी मर
हुएके समान गिन जाते हैं, और मैं भी उन
लोगोंके निकट सरी झड़ बाध जाती हूँ! हे
कृष्ण। तुम मेरे वचनके अनुसार धर्मात्मा राजा
युधिष्ठिरसे यह कहना, कि "हे पुत्र। तुम्हारे
धर्मकी अत्यन्त हानि हुई है, इससे जिसम धर्म
नष्ट न होवे वही काय्य तुम करा"

हे जनार्दन। जो स्त्री दूसरेके भरोसे अपने
जीवनका विताती है, उसके जीवनका धिक्कार
है, भागकर जीवका प्राप्त करनेको अपेक्षा
मर जाना सीधुना उत्तम है। हे वासुदेव। तुम
अर्जुन और उद्यमशाली भीमसेनसे भी हमारे
इस वचनका कहना, कि "क्षत्रियोंको माता
जिस निमित्त पुत्रको उत्पन्न करता है, उसके
गंगा वहा समय आकर उपास्थित हुआ है,
इससे इस उपास्थित समयमें याद काल तुम
लोगोंका पातक्य करे, ता भी तुम सदा धार
धारत कर्म भी करके सब लोगोंके मानके पाल
रहा। तुम लोगका निर्द्वन्द्व आर इगित
कर्मोंका करत हर इच्छाकर न भी तुम न
उत्तम भवतन पारपान करोगा, जानकान
कर्मोंका गणपर प्रत्यक्ष करे जीवनका भी

परित्याग किया जा सकता है। हे पुत्रपोत्तम।
तुम सदा क्षत्रियोंके धर्मसे स्थित दोनों सात्री-
पुत्रोंसे कहना, कि "हे पुत्रो! तुम लोग प्राण-
पण करके भी अपने पराक्रमसे उपाजित
भोगोंकी प्रार्थना करो। क्योंकि अपने पराक्रम-
से प्राप्त हुआ धन ही क्षत्रियोंके लिये प्रिय होता
है।" हे महाबाहो! वहापर जाकर हर
एकसे इसी प्रकारके वचन कहकर मेरे पुत्र
अर्जुनसे विशेष करके यह वचन कहना, कि
जिसमें वह द्रौपदीके बताये हुए मार्गहोसे सब
प्रकारसे चलें, उसकी प्रीतिकी पूरी करनेसे
किसी प्रकारसे शिथिलता न करै। हे कृष्ण।
इन बातोंकी तुम खूब जानते हो, कि भीम
और अर्जुन क्रुद्ध होनेपर साक्षात् काल भूतिका
धारण करके देवताओंकी भी विनष्ट कर
सकते हैं, परन्तु ऐसे बलवान होनेपर भी जो
उनको घायी स्त्री समामें बुलाई गई थी, और
दुःशासन तथा कर्णने उसके ऊपर जिन रूखे
और कठोर वचनोंका प्रयोग किया था, इससे
बढ़कर और अपमानका विषय दूसरा क्या हो
सकता है? नोचबुद्धि दुर्व्याचनने सुख मुख्य
कोरवोंके सन्मुख महात्मा भीमसेनका जो अप-
मान किया था, प्रबन्धको उसका पूरा फल बढ़
पावेगा, क्योंकि शत्रुताका सत्य पानहोने
भामनेन जिना उसका समाप्त किये शान्त जान-
वाले नहीं है। विशेष करके दोहूँ का समयमें
उनकी शत्रुताकी शान्ति नहीं जाती। वह जय-
तक शत्रुताका संहार नहीं करते हैं, तबतक
सुखी भी नहीं होत। हे कृष्ण। मैं पुत्रोंकी
शुष्म फैरने, राज्यके हरे जान तदा उन
लोगोंके जनमानस भी उनकी शत्रुता नही
जितनी उन एकदन्तशायनी पातक्यता द्रौपदी
जानसकी नाचनुर्गुणन प्रदर बदनाम रूता
नहीं तुमने इसे ही, यथा मन करके जान
तुमने इसे प्रदर करके तुमने प्रदर, ता
प्रदर नही करे, प्रदर नही करे प्रदर नही

स्त्रीधर्मसे युक्त, यशस्विनी द्रौपदी ऐसे ऐसे असा-
मान्य वीर पुरुषोंकी भार्या होकर भी, उस
समय अनाधिनी हुई थी । हे पुरुषोत्तम मधु-
सूदन ! बलवानोंसे श्रेष्ठ बलराम, तुम और
प्रद्युम्न मेरे तथा मेरे पुत्रोंके सहायक
रहनेपर भी तथा पराक्रमी भीमसेन और
अजेय अर्जुनके जोते ही सुभी इस प्रकारका
कठिन दुःख सहना पड़ा, यही एक बड़ा भारी
आश्चर्य्य है ।

अबैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर अर्जु-
नके मित्र श्रीकृष्णचन्द्र पुत्रोंके दुःखसे अत्यन्त
दुःखित और कातर तथा शोकित कुन्ती-
देवीकी धीरज देने लगे ।

श्रीकृष्ण बोले, हे महाबुद्धिमतो ! इस
पृथ्वीके बीचमें तुम्हारे समान सौभाग्यवतो
यशस्विनी रानी दूसरी कौन है ? तुम शूरसेन
भूपतिकी दुहिता और आजभाढ़ वंशमें व्याहो
गयी हो । तुम्हारा उत्तम कुलमें जन्म हुआ
और उत्तम कुलमें विवाह होनेसे एक तालावसे
दूसरे तालावमें आई हुईकी समान हो । तुम
अत्यन्त ऐश्वर्य्यशालिनी सबका कल्याण
करनेवाली, और स्वामीकी अत्यन्तही सेवा
करनेवाली पतिके आदरकी पात्रा थी । वीर-
पत्नी होकर तुम महावीरपुरुषोंको जननी
हुई हो, इससे स्त्रियार्थ जा सब गुण जानें
उचित है, उनमें एक भी तुममें बाकी नहीं है,
तुम सबहो गुणासि भूषित हुई हो । इससे
तुम्हारे समान महाभाग्यवती स्त्रीकी सुख और
दुःख दोनोंही अनुभव करना याग्य है । हे
देवी ! तुम्हारे पुत्र लोग निद्रा, आलस्य, क्रोध,
हर्ष, भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी, आदि सब दुःख-
दायी विषयाकी जोतकर, उन्हें अपने वशमें
करके, वीरोंकी योग्य सुखहीमें सदा लगे रहते
हैं । अत्यन्त उत्साही और महाबलमें युक्त
पाण्डवोंकी साधारण मनुष्योंके प्रार्थनीय
ग्रामविहार आदि किसी विषयमें भी रुचि

नहीं है ; वीरसुख ही उन लोगोंकी धारा है,
थोड़ीसे अर्थात् स्वल्प विषयसे वे कभी सन्तुष्ट
होने वाले नहीं हैं । धीरज धारण
करने वाले पण्डित लोग किसी वस्तुकी
अन्तिम सीमाको ही भोग करते हैं । वे लोग
या तो मनुष्योंके योग्य महा लेशोंकी
सहते हैं, और नहीं तो उत्तम भोग और
सुखोंके एक शेष फलकी अनुभव करते हैं,
परन्तु ग्रामप्रिय मनुष्य लोग केवल मध्यम
अवस्थाकी प्रार्थना करते हैं, वृद्ध दुःख
अथवा अत्यन्त सुखके निमित्त वह इच्छा
नहीं करते । इसीसे धीर पाण्डव लोग एक
शेषकी अवस्थाहीमें रत हैं, मध्यम अवस्थामें
जानेके निमित्त कभी उन लोगोंकी प्रवृत्ति नहीं
है । विषयोंकी दोनों सीमाकी प्राप्ति ही
सुखको देनेवाली है और इन दोनोंका
मध्यभाग दुःखका हेतु है, इसे बुद्धिमान
पण्डितोंने भी स्पष्ट रूपसे कहा है ।

हे माता ! पाण्डव लोगोंने तथा द्रौपदीने
तुम्हें प्रणाम करके अपने आत्म कुशलकी
निवेदन करनेके अनन्तर तुम्हारा कुशल
वृत्तान्त पूछा है । तुम पुत्रोंको शीघ्र ही
कृतकार्य्य, नीरोग, सब लोकोंके स्वामी, शत्रु
रहित और लक्ष्मीसे युक्त देखोगी, इसमें कुछ भी
सन्देह नहीं है ।

पुत्रोंके दुःखसे दुःखित कुन्तीदेवी इस प्रकारसे
धीरज पाकर, अज्ञानसे उत्पन्न हुए मोहकी
रोककर जनाईन कृष्णसे बोलौं, हे महाबाहो
मधुसूदन कृष्ण ! तुम्हारे विचारमें जो कुछ
कार्य्य पाण्डवोंके निमित्त सत्र और हितकारी
हो, धर्मके अनुसार निष्कपट रूपसे तुम
उसीका अनुष्ठान करो । हे परन्तप ! तुम्हारी
सत्यनिष्ठता और वंश मर्यादाका जैसा प्रभाव
है, उसे मैं विशेष रूपसे जानती हूँ । मित्र लोगोंके
कार्य्यके विषयमें तुम जैसी बुद्धि और पराक्रम
प्रकाशित करते हो, वह भी सुभी विदित है ।

अधिक और क्या कहूंगी मेरे कुलमें तुम ही धर्म, सत्य और बड़ी कठिन तपस्या हो, तुम पाण्डवोंके भ्राता और तुम ही परमेश्वर हो, यह सारा ब्रह्माण्ड तुमसे ही विराजमान है। तुमने जो कुछ दचन कहे, वे अवश्यही सत्य होंगे, कभी वे अन्यथा न होंगे।

श्रीवैशम्पायन सुनि बोले, महाबाहु श्रीकृष्णचन्द्र कुन्तीदेवीकी सङ्ग इस प्रकारसे बातचीत करके उनकी अनुमति ग्रहण करके तथा उनकी प्रदक्षिणा करके दुर्योधनके राजमन्दिरकी ओर चले।

६० अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन सुनि बोले, महा यशस्वी जनार्दन कृष्णने, कुन्ती देवीकी अनुमति पाने पर, उन्हें प्रदक्षिणा करके वहास चलकर, अनेक प्रकारके आसनोंसे युक्त, परम शोभासे पूरित साक्षात् इन्द्र भवनके समान दुर्योधनके राजमन्दिरमें आकर प्रविष्ट किया। राजमन्दिरके द्वाजेपर अनेक हारपाल खड़े थे, परन्तु कोई भी उन्हें भीतर जानसे रोक न सका। वह बिना बाधाके तीन खण्डका लाघ करके जलसे युक्त बादलके समान विशाल, पर्वतकी शिखरके समान उंचे, अत्यन्त शोभासे शोभित, प्रकाशमान मन्दिरके ऊपर जा पहुँचे वहाँ पहुँचके देखा, कि महाबाहु दुर्योधन अपने राजा और कौरवोंके सहित राजावहासनपर बैठे हैं। उसके समीपही दुःशासन, कर्ण और सुबलपुत्र शकुनि अपने अपने आसनोंपर बैठे हैं। यदुनन्दन कृष्णका अभ्यागत रूपसे आया हुआ देखकर महायशस्वी धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन उनके सम्मानके निमित्त सन ताम्रोज्ज्वलत आसनपरसे उठ खड़े हुए। उन्होंने परिचित उनके अनन्तर उनके दृष्ट मिलने, और उनके पास आकर बैठे हुए तब तक रुकने का फैसला न किया कि दूसरे स्थान पर नहीं बैठें।

अनेक प्रकारके वस्त्रोंसे युक्त, सुन्दर और स्वच्छ सुवर्णसय पलङ्ग पर बैठ गये। तब कुरुराजने उनके सत्कारके निमित्त गज, मधुपर्क जल, धर, राज्य सबही निवेदन किया। कौरव लोग तथा दूसरे सब राजा लोग प्रसन्न, सूर्यके समान तेजस्वी और उत्तम पशुके ऊपर बैठे हुए श्रीकृष्णचन्द्रकी उपासना करने लगे।

अनन्तर राजा दुर्योधनने विजयी श्रेष्ठ श्रीकृष्णचन्द्रकी भोजनके निमित्त निमन्त्रण दिया, परन्तु उन्होंने उसे स्वीकार नही किया। इससे कुरुराज दुर्योधनने कर्णकी सन्वीधन करके उनके द्वारा यदुपति कृष्णको विनीत भावसे कहा, हे जनार्दन। आपके निमित्त अन्न, पान, वस्त्र, शयन आदिके योग्य सब वस्तुएँ तैयार हुई हैं, परन्तु आपने उनमेंसे कुछ भी ग्रहण नहीं किया, इसका कारण क्या है? हे माधव। आपने कुछ पाण्डव दानों पक्षकों सहायता दी है, तथा दोनोंहीके हितके प्रवृत्तानमें लगे हुए हैं, आप धृतराष्ट्रके मुख्य सन्वन्धी और प्रीतिके पात्र हैं; धर्म और अधर्मके सम्पूर्ण तत्त्व आपको वादत हैं; इससे है चक्र और गदाके धारण करने वाले गोविन्द। सब प्रकारसे योग्य पात्र होकर भी आपने जो मेरा समर्पण को हुई वस्तुओंको नहीं ग्रहण किया, इसका कारण क्या है? हम लोग इसकी सुननका इच्छा करते हैं।

श्रीवैशम्पायन सुनि बोले, दुर्योधनका यह पचन सुननेमें माटा बाध हुआ यह टाक रहा, परन्तु उत्तर कालका दिवाकरनेसे यह प्रह्वनी भटगासि पूर्ण मालम जाता है। जो जो, राजाजनोंके नया उनके इस पचनकी सन पर प्रकाशमान दक्षिणी भुजा उठाकर नमस्कारकी कर्तव्यमत्त रतीर खरों दुःखर से निरुपन्न प्रकाश दानों पक्षकों प्रवृत्तानमें लगे हुए हैं, इससे है चक्र और गदाके धारण करने वाले गोविन्द।

निकट जाते हैं उनको पूजा ग्रहण करते तथा उनके अन्न आदि वस्तुओंको भी भोजन करते हैं। इनसे जब मैं कृतकार्य होजंगा, तब आप मेरे तथा मेरे साधियोंका इच्छानुसार सत्कार कीजियेगा।

श्रीकृष्णके इस वचनको सुनकर, दुर्योधन फिर उनसे बोले, कि हम लोगोंके सङ्ग आपकी इस प्रकारका व्यवहार करना युक्तिसे पूरित नहीं है, आप चाहे कृतकार्य हो, अथवा न हों; उसको हम लोग नहीं मानते हैं, केवल यदुक्तके सम्बन्धसे ही मैं पूजा करनेका यत्न कर रहा हूँ, परन्तु यत्न करनेपर भी कुछ नहीं कर सकता हूँ। हे मधुसूदन! हम लोग प्रीतिके सहित आपको पूजा करनेके निमित्त उत्सुक हैं, परन्तु आप न जान कि इस कारणसे उसे स्वीकार नहीं करते हैं, इससे हम लोग कुछ भी नहीं सम्भल सकते हैं। हे गोविन्द! आपके सङ्ग हम लोगोंको कुछ शत्रुता भी नहीं है, और कभी युद्धका विवाद भी नहीं हुआ है, इससे विचार कर देखनसे आपका यह वचन किसी प्रकारसे युक्ति-सङ्गत नहीं मालूम होता है।

यह सुनकर श्रीकृष्णचन्द्रजो दुर्योधनके प्रातः वृद्धत हंसकर बोले,—मैं काम, क्रोध, अथ, लोभ, द्वेष और हेतुवाद आदि किसी प्रकारसे भी धर्मका नहीं छाड़ सकता हूँ। हे राजन्! जिसके ऊपर किसीकी प्रीति रहती है, वह उसीका अन्न भाजन करता है, अथवा जा विपदग्रस्त होता है, वह भी दूसरेका दिया हुआ अन्न भोजन करता है, परन्तु आपने भी मेरी प्रीतिका कोई कार्य नहीं किया है, और मैं भी आपद-ग्रस्त नहीं हुआ हूँ, तब मैं कैसे आपका अन्न ग्रहण कर सकता हूँ? हे राजन्! आप बिना कारणही अपने प्रिय कार्योंको करनेवाले, सब गुणोंसे निज आता पाण्डवोंके सङ्ग जन्मसे वैर

करते चले आते हैं। बिना कारण उनके सङ्ग शत्रुता करना किसी प्रकारसे उचित नहीं है। पाण्डव लोग सब दिनोंसे आपके अनुकूल हैं, उन्हें कोई क्या कुछ कह सकता है? जो पुरुष उन लोगोंसे बैर करता है, वह हमारा भी शत्रु है, जो उन लोगोंके अनुकूल है, वह मेरा भी अनुकूलही है, धर्म करनेवाले पाण्डवोंसे मैं पृथक् नहीं हूँ। काम, क्रोध, आदि विषयोंके वशमें होकर जो मूढ़-बुद्धि पुरुष अत्यन्त मोहमें फसकर गुणवान मनुष्योंके सङ्ग विरोध करता है, उसको पण्डितों ने पुरुषोंमें अधम पुरुष कहा है। इन्द्रियोंके वशमें रहनेवाला जो अधम पुरुष क्रोध और लोभमें फसकर उत्तम गुणोंसे युक्त जाति-वालोंका सदा ही लोभकी दृष्टिसे देखता है, वह कभी वृद्धत दिन तक सुख सम्पत्तिके पद पर प्रतिष्ठित नहीं रह सकता। परन्तु जा बुद्धिमान मनुष्य अपने हृदयके आप्रय हानिपर भी गुणवान मनुष्योंका प्रय काश्चिद अपन वशमें कर सकता है, वह सब दिन यशके उत्तम मार्गसे गमन करता है। इससे इन सब बातोंका विचार करके देखनसे आपका यह दुष्ट-भावोंसे पूरित अशुभ-अन्न कभी ग्रहण तथा भाजन करनेके योग्य नहीं है, मैं एक मात्र विदुरके घर भाजन करूँगा, यही मेरा निश्चय है।

महा बुद्धिमान महाबाहु श्रीकृष्णचन्द्र, किसीके वचनका न सहनेवाले दुर्योधनसे ऐसा कह कर, सण्णित्तोसे प्रकाशित उनके राजभवनसे निकलकर विदुरके घर चले गये। कृष्णके वहापर पङ्कज जानेपर भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, वाल्मिक आदि कोरवोंने उनके निकट गमन किया। जन कौरवोंने बल और पराक्रमसे युक्त कृष्णसे कहा,—हे मधुसूदन! हम लोग अनेक सण्णित्तोसे पूरित घर सब आपके समर्पण करते हैं। परन्तु महा

तेजस्वी कृष्ण उन लोगोंसे यही वचन बोले कि आप लोगोंके यहांपर आगमन करनेहीसे मेरी पूरी पूजा हो चकी; अब आप लोग अपने अपने स्थानको जाइये। कौरवोंकेलौट आनेपर विदुरने परम यत्नवान होकर भक्ति-पूर्वक मधुसूदन कृष्ण भगवानको पूजा की। अनन्तर उन्होंने महात्मा कृष्णको अनेक गुणोंसे युक्त भोजन याग्य दङ्गतमा पवित्र अन्न जल निवेदन किया। मधुसूदन कृष्ण पहिले उन सब भोजनोंके सङ्ग वङ्गत सा धन दान देकर वेदके जानने वाले ब्राह्मणोंको उत्तम प्रकारसे तृप्त किया, अनन्तर देवताओंमें बैठे हुए इन्द्रकी भाँति अपने साथियोंके सङ्ग मिलकर बचे हुए अन्न आदिको भोजन किया।

६१ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पयन मुनि बोले, श्रीकृष्णके भोजन-कर चुकनेपर, विहामके अनन्तर रातके समय विदुर उससे कहने लगे, हे जनार्दन कृष्ण। आपका यहांपर आना पूरी वृद्धिमानकी कार्य नही हुआ है, क्योंकि दुर्योधन बड़ा नीचबुद्धि, धर्म-अर्थका विरोधी और महा क्रोधो है। अपने मानकी इच्छासे वह प्रनायास ही माननीय लोगोंके मानका नष्ट करता है। बुद्धिमानोंके शासनमें नही चलता, धर्मशास्त्रकी आज्ञाको लाञ्छन करने का कार्य करता है। हे कृष्ण। उसकी मृदता और नीचताकी बात क्या कह्य। वह ऐसा मूर्ख और लटी है, कि छित चाहनेवाले लोगोंकी भी बातको नही मानता है। कोई दूत उपकार के उसका पल्ला देता तो नर रत्न। वह उत्तरे अपकारकी ही चेष्टा करता करता है। न मानता, न मानप्रिय सिखावती, परितो माननेवाला पालनेकी चिन्ताही, शिष्टकी भाँति निगूँठ सदा शासनरहनेवाला, मृत, मृत्यु की चिन्ता ही नहीं रखनेवाला, सीधे-सीधे

और सब जाय्योंमें चञ्चल चित्तका पुरुष है। मैने जी इनसब दोषोंका वर्णन किया है, इसकी अतिरिक्त और भी वङ्गतसे दोष दुर्योधनमें विद्यमान है। इसने यदि आप सङ्गलदायक तथा हितकारी वचन कहेंगे तो भी वह क्रोधको वशमें होकर कदापि उसकी स्वीकार न करेगा। भीम, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, आश्वत्थामा, जयद्रथ आदि वीरोंसे उसे विजयकी वङ्गत ही आशा है, इससे वह शान्ति स्थापनको निमित्त इच्छा नही करता। होजनाईन! धृतराष्ट्रके पुत्रों तथा कर्ण आदिक दृष्ट पक्षोंका इस प्रकार निश्चय है, कि भीम द्रोण और कृपाचार्य आदि वीरों के विरुद्ध युद्ध करना तो दूर रहे पाण्डव लोग उनकी ओर भी न देख सकेंगे। हे मधुसूदन। अविचारी मूर्ख दुर्योधन राजाओंकी सेनाओंकी बटीरकर अपनेकी कतार्थ समझ रहा है। उसकी नीचबुद्धि और दुराशाकी बात मैं कक्षा तक कहूँ, उसे यह निश्चय है, कि अकेला कर्ण ही पाण्डवोंको जीत लेगा; इसमें शान्ति स्थापनके निमित्त उसकी कभी प्रवृत्ति न होगी।

हे कृष्ण। आप कौरव और पाण्डवोंके बीच सन्धि स्थापन करनेकी इच्छा करते हैं, सो उचित है, परन्तु धृतराष्ट्रके सब पक्षोंकी यह प्रतिज्ञा है, कि पाण्डवोंकी इस लोग कीर्ति वस्तु सो उचित रीतिसे प्रदान न करेंगे। इसमें जो लोग ऐसा निश्चय करि हुए हैं, उनमें निमित्त कीर्ति जितवारी उपन्यास प्रयोग करने भी समर्थ दिखाने योग्य इसमें मर्त्य न ही करे। हे मधुसूदन। आपपर सारी वरी सब बात अवती नमान है, इन सब बात नि-मान पक्षकी उचितसे समझ गीत मानकी सन्धि, तथा न मानने पर प्रयोग उचित नहीं है। हे कृष्ण। आपने निश्चय दुर्योधन की सन्धि न स्थापन करि। यदि आप ही प्रवृत्ति

घमण्डमें चूर है, इससे वह आपका वचन कभी स्वीकार न करेगा, आप उसके समीप जो कुछ वचन कहेंगे, वे सब ही निरर्थक होंगे। हे कृष्ण! वे सब नीचबुद्धि, दुष्ट और पापी लोग जब एक स्थानपर बैठे रहेंगे, उस समय उनके बीचमें आपका जाना तथा उन लोगोंके विरुद्ध बातोंका कहना मेरे मतमें उत्तम नहीं है। कभी बुद्धिमान् पुरुषोंकी उपासना न करनी, अत्यन्त बड़े ऐश्वर्यकी प्रभुता पाना, अहंकारसे भरे रहना, युवा अवस्था और क्रूर-स्वभाव तथा किसीकी बातोंको न सहना इत्यादि कारणोंसे दुर्योधन आपकी हितकारी बातोंको न मानेगा। हे कृष्ण! उसकी सेना भी अत्यन्त बलवान् है, और तुम्हारे ऊपर वह बल्लत शङ्कित रहता है; इसीसे आपकी बातोंको कभी न ग्रहण करेगा। हे जनार्दन! धृतराष्ट्रके पुत्रोंका ऐसा निश्चय है, कि सब देवताओंके सहित साक्षात् इन्द्र भी आवें तो भी मेरी सेनाके बलको नाश नहीं कर सकेंगे। इस लिये ऐसी आशा करनेवाले, काम क्रोधके वशवर्ती दुर्योधनके निकट तुम जिन बातोंका प्रसङ्ग करोगे, वे यथार्थमें अर्थयुक्त होने पर भी निरर्थक ही जावेंगी। नीच बुद्धि, मूढ़, दुर्योधन हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंसे युक्त महासेनामें निवास करनेपर भयसे रहित होकर अब यह समझता है, कि सम्पूर्ण पृथ्वी मेरी सुट्टीके भीतर है; और यही समझकर वह इस अखिल भूमण्डलपर निष्कारणक राज्य करनेकी आकांक्षा करता है, इससे बिना युद्धके उसके समीप शान्ति स्थापित करना किसी प्रकारसे सम्भव नहीं होता। जो धन उसे एकवार मिल गया है, वह सदा ही उसके निकट उपस्थित रहेगा, कभी उसके हाथसे बाहर न होगा, ऐसा ही उसे ध्रुव-निश्चय है। हा! इस मूर्ख दुर्योधनके निमित्त बाध होता है, कि ससस्त पृथ्वीके वीरोका नाश होगा, क्योंकि उसकी

सहायताके वास्ते सम्पूर्ण दुष्ट-क्षत्रिय और राजा लोग कालसे प्रेरित होकर पाण्डवोंसे युद्ध करनेकी इच्छासे सब ओरसे आकर इकट्ठे हुए हैं। ये राजा लोग पहिले आपके सङ्ग शत्रुता करके ग्रीभष्ट हुए थे, वे ही सब आपके भयसे दःखी होकर अब इस समय कर्णके सङ्ग मिल कर दुर्योधनके भरोसे हैं और उसका कार्य सिद्ध करनेके निमित्त अपना प्राण पर्यन्त देकर पाण्डवोंसे युद्ध करनेके निमित्त वल्लत ही आनन्दित हैं। हे यदुकुलभूषण कृष्ण! इससे उन लोगोंके बीचमें आपका प्रवेश करना मेरे मतसे किसी प्रकार भी सिद्ध नहीं होता है। हे शत्रुओंके जीतनेवाले! उन दुष्ट बुद्धि अनगिनत शत्रुओंके बीच आप कैसे गमन करेंगे? हे शत्रुनाशन महाबाहो! आप देवतांसे भी अजेय हैं, इससे आपकी सब कृद्ध सम्भव हो सकता है, आपका प्रभाव बल, कुछ भी सुभसे छिपा नहीं है। हे कृष्ण! पाण्डवोंके ऊपर मेरी जैसी प्रीति है मैं तुमसे प्रेम, और सुहृदताके कारणसे ही ये सब वचन कहता हूँ। हे पुण्डरीकाक्ष! तुम्हें देखनेसे मेरे अन्तःकरणमें जैसी प्रीति उत्पन्न हुई है, उसे मैं क्या वर्णन करूँ, तुम सब प्राणियोंके अन्तर्स्थासी हो, इससे सबके मनकी बात जानते हो।

श्रीकृष्ण भगवान् बोले, हे विदुर! महा बुद्धिमान् पण्डित लोग जैसा कहते हैं, और मेरे समान सुहृद सित्तके लिये तुम्हारे समान सुहृद पुरुषकी जैसा कहना योग्य है, और तुमको जैसे धर्म तथा अर्थसे युक्त वचनोंके कहनेका अभ्यास है, तुमने पिता माताकी भांति सुभसे वैसे ही वचन कहे। तुम्हारे ये सब वचन सब प्रकारसे युक्ति-सङ्गत, सत्य और उत्तम पुरुषोंके अनुकूल हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है, तभी एकवार चित्त लगाकर मेरे यहाँपर

मनिवा कारण सुनो । हे विदुर ! मैं दृष्टों-
 मकी नीचता और सब चतियोंकी शत्रुताकी
 ब्रह्म ही जानता हूँ, इन सब बातोंकी जानकारी
 तो आज मैं कौरवोंकी मण्डलीके बीच उपस्थित
 हुआ हूँ । जो पुरुष हाथी, घोड़े, रथ आदिसे
 युक्त इस सम्पूर्ण पृथ्वीकी मृत्युके सहसे कूड़ाने
 में समर्थ है, अवश्य ही सङ्गसे उत्तम धर्मका
 लाभ कर सकता है । मैं इस बातकी निःसन्देह
 कह सकता हूँ, कि मनुष्य अपनी शक्तिके
 अनुसार कोई धर्मके कार्यका अनुष्ठान करके
 यदि उसे पूरा न कर सके, तो भी उसकी
 पुण्यका फल पाता है । और मनके भीतर
 कोई पाप धर्मका विचार करके यदि उसका
 अनुष्ठान न करे, तो उसकी फलके भोगनका
 अधिकारी भी नहीं होता । मैंने तुमसे जो
 कुछ वचन कहे, धर्मकी जाननेवाले पण्डितोंने
 भी उसीकी माना है । हे आपराहित विदुर ।
 संग्रामके निमित्त उपस्थित हुए कौरव और
 पण्डितोंने शान्ति स्थापनके वास्ते छल और
 कपटसे रहितही होकर मैं यत्न करूँगा यह
 उपस्थित महा घोर आपद कौरवोंसे उत्पन्न
 हुई है, क्योंकि कर्ण और दुर्योधन इसकी
 चलावेवाले और ये सब इकट्ठे हुए चतिय
 तथा राजा लोग इनके अनुयायी हैं । विपदमें
 फँसे हुए और दंशित मित्रकी जो पुरुष अपनी
 शक्तिके अनुसार दिनपूरुषक उस विपदसे
 मुक्तनीची चेष्टा नहीं करता, पण्डितलोग उसे
 नीच पुरुष धरते हैं । मित्र अपनी शक्तिके
 अनुसार यत्न करके चाहे जिस उपायसे
 भी मदों, जिस मित्रकी दुरे कार्यसे राकी
 उसमें नरानन्दनीय नहीं ही मजता । हे
 विदुर ! इससे दुर्योधन तथा उसके अनुयायी
 लोगकी नर धरते हुए जाते साधन करने-
 की धर्म और धर्मसे भरे, गुह्य दावज तथा
 विपदमें लोगोंकी दृष्टि करना उचित है ।
 जो दुर्योधन धर्मके वास्ते ही मरने

किन्तु मैं पाण्डव, राजपुत्र और सम्पूर्ण पृथ्वीकी
 चतियवीरोंके हित साधनके निमित्त निष्कपट
 चित्तसे यत्न करूँगा । मेरे हितके अनुष्ठानमें तत्पर
 होनेपर, यदि दुर्योधन मेरे उपर कोई शत्रुता
 करेगा, तो भी मैं मित्रके कर्तव्य कार्योंको पूरा
 कर लूँगा । इससे मेरा चित्त अत्यन्त प्रसन्न होगा ।
 जातिके बीचों जब आपसमें फूट होता है,
 उस समय जो मित्र सब प्रकारसे यत्न करके
 उनकी मध्यस्थता स्वीकार नहीं करता,
 पण्डित लोग उसे मित्र ही नहीं कहते ।
 सन्धिके निमित्त यत्न करनेका और भी एक
 कारण यह है कि जिसमें कसिद और सट
 लोग यत्न न कर सकें, कि जहाँ समर्थ होनेपर
 भी क्रोधके वशवर्ती कौरव और पाण्डवोंकी
 युद्धसे न रोक सके । मैं कौरव और पाण्डव
 दोनोंका कार्य मित्र करनेके निमित्त यत्नापर
 आया हूँ, इससे उस विषयमें यत्न करनेके किसी-
 की निन्दाका पात न होऊँगा । मर्ख
 दुर्योधन यदि मेरे धर्म और धर्मसे भरे
 वचनोंकी सुनकर उन्हें न ग्रहण करेगा तो
 वह सम्पूर्ण रूपमें कालके वशमें समझा जायगा
 और जो पाण्डवोंकी अर्थहानि न करके मैं
 कौरवोंके बीच शान्ति स्थापन करनेमें समर्थ
 होऊँगा, तो भी मेरा मन्त्राफल देवदत्ता
 एक पुण्य कर्म सिद्ध होगा, और कौरव लोग
 भी मृत्युके फाँसे से मुक्त जायँगे । इससे मैं
 दुःखिनीय होगा, धर्म और धर्मसे युक्त
 चिन्ता रहित, जिस शम दुर्योधन प्रस-
 वरगा, यदि उन वचनोंकी धनदायक यह
 लोग अच्छी प्रकारसे विचारपूर्वक देखें, तो
 आपस में सौम्य सम्मान करने तथा शान्ति
 निमित्त ही मेरा कामसम हुआ न, यन्मैं भी
 नरकमें ही पहुँचूँ । मेरे उपर कोई दुरा-
 वायना करनेवाला प्रसन्न नहीं, मैं अपने धर्मके
 लिये मरने को मान्य हूँ, दुर्योधन से मैं
 नरक में जाऊँगा । मैं नरक में जाऊँगा, मैं नरक में जाऊँगा ।

ठहर सकते हैं, वैसे ही सब कौरवोंको सहित ये सम्पूर्ण पृथ्वीके राजा लाग मेरे सम्मुख न खड़े हो सकेंगे ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, यदुकुलकी सुख देनेवाले वृष्णिवंशियोंके स्वामी श्रीकृष्णचन्द्रने विदुरके सङ्ग इस प्रकारसे बातचीत करके अन्तमें परम सुख देनेवालो उत्तम और अत्यन्त कोमल शय्याके ऊपर शयन किया ।

६३ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, बुद्धिमान् विदुर और श्रीकृष्णचन्द्रकी ऊपर कही हुई रीतिके अनुसार बातचीत करते हुए वह उत्तम नक्षत्रोंसे युक्त शुभ रात्रि अत्यन्त सुखसे बीती । महाप्रतापी कृष्णके धर्म और अर्थसे युक्त, पद और पदार्थके सहित मनोहर वचनोंकी सुनकर विदुर तथा कृष्ण भी उचित वचनोंका प्रसङ्ग करनेवाले विदुरके वचनोंसे तृप्त नहीं होते थे, उन दोनों महात्माओंकी अनिच्छाहीसे रात्रि बीत गयी । दूसरे दिन भोरके समय बह्मत्से स्मृत, मागध और बन्धियोने उत्तम और मोठेस्वर और शख तथा नगाड़ोंके शब्दसे - श्रीकृष्णको जगाना आरम्भ किया । यदुवंशियोंमें अष्ट श्रीकृष्णचन्द्रने उठकर प्रातःकालके सब आवश्यक कार्योंका समाप्त किया, अनन्तर स्नान करके जप और हारमकी पूरी रीतिसे समाप्त करके सब प्रकारके आभूषणोंसे अलङ्कृत होकर सूर्यकी उपासना करने लगे । श्रीकृष्णचन्द्र इसी प्रकारसे सन्ध्या बन्दन कर रहे थे, उसी अवसरमें दुर्योधन और सुबलपुत्र शकुनि उनके समीप आकर कहने लगे, हे गाँविन्द ! महाराज धृतराष्ट्र और भीष्म आदि कौरव तथा पृथ्वीके सम्पूर्ण राजा लोग सभा मण्डपमें आकर, तुम्हारे आगमनकी बाट देख रहे हैं जैसे देवता लोग इन्द्रकी प्रार्थना करते हैं । इस वचनका सुनकर

शत्रुनाशन जनार्दन कृष्णने उन लोगोंका यथ रीतिसे सम्मान किया, अनन्तर यह शुभ समय जानकर ब्राह्मणोंकी सुवर्ण, वस्त्र, गज और घोड़े आदि वस्तुओंका दान देने लगे । इस प्रकारसे जब वह बह्मत सा धन दान करके आसनपर बैठे, तब उनके दानक सारथीने उन्हें प्रणाम किया, और अत्यन्त शीघ्रतासे उत्तम घोड़ोंसे युक्त, सब प्रकारके रत्नोंसे भूषित, किङ्किणियुक्त महामेषके समान गम्भीर शब्द करनेवाले, शुभवर्ण, बह्मत बड़े दिव्य रथकी लेकर वहापर उपस्थित हुआ । तब यदुवंशियोंके नेत्रका आनन्द देनेवाली महायशसी श्रीकृष्णचन्द्र अपने गलेमें कौस्तुभ मणि पहन, परम शोभासे प्रकाशमान हाकर, अग्नि और ब्राह्मणोंकी प्रदक्षिणा करके उस रथपर चढ़े । यद्यपि उस समय वह बह्मतसे कौरव पक्षीय अनुचरोंसे युक्त थे, तौ भी वृष्णिवंशके बह्मतसे लोग उनकी शरीर रक्षाके निमित्त वहापर उपस्थित थे । सब लोगोंमें अष्ट, बुद्धिमान कृष्णके रथपर चढ़नेके अनन्तर सब धर्मके तत्वकी जाननेवाले बुद्धिमान विदुर उनके पीछे रथपर चढ़े । दुर्योधन और शकुनि उनके पश्चात् दूसरे रथपर चढ़के शत्रुनाशन श्रीकृष्णके अनुगामो हुए । सात्यकी, कृतवर्मा आदि वृष्णिवंशीय महारथ लाग भी कोई रथ और कोई घोड़ेपर चढ़के उनके पीछे पीछे चले लगे । हे महाराज ! वहासे प्रस्थान करनेपर उन सब वीरोंके सुवर्णसे भूषित रथ और घोड़ोंका शब्द अत्यन्त मनाहर होता था, और वे सब रथ परम शोभासे शाश्वत हो रहे थे । महा तेजस्वी बुद्धिमान कृष्ण यथा समयमे राजपिंथोंके गमन करने योग्य मार्गपर पड़ते । दुर्योधनने पाँहले ही उस मार्गकी साफ सुधरा और जल छिड़कवाकर ठीक कर रक्खा था । अनन्तर श्रीकृष्णचन्द्रके प्रस्थान करनेपर शङ्ख भरो आदि अनेक भार्तिके बाजे बजने लगे । सब

लीनोमें विख्यात शत्रुओंको जीतनेवाले, सिंहके समान विक्रमी अलगणित वीर योद्धा श्रीकृष्णके रथको आगे-पीछे तथा चारों ओरसे घेरके बले। उत्तम विपोंसे भूषित कई सहस्र सैनिक गुरुप तलवार, प्रास तथा सब शस्त्रोंकी छायेमें लेकर उनके आगे आगे दौड़े। इसके अतिरिक्त पाँच सौ गजपति और सहस्र सहस्र रथों श्रीकृष्णचन्द्रके पीछे पीछे चलने लगे। हस्तिनापुरके रहनेवाले स्त्री बालक, वृद्ध और युवा लोग शत्रुनाशन श्रीकृष्णके दर्शनकी इच्छासे मार्गके किनारेपर आकर खड़े हो गये। अटारियोंके ऊपर खिंचा इतनी आकर इकट्ठी हुई थी, कि जोध होता था, उनके बोझसे सन्दिग्ध नहित वह अटारी पृथ्वीसे मिला चाहती है।

सधुसूदन कृष्ण कारवाकी पूजा ग्रहण और उनके सङ्ग सधुर शब्दोंसे बातचात करते और सबकी प्रार देखते तथा परस्पर सत्कार करते हुए धीरे धीरे चलने लगे। अनन्तर कोरवोकी सभाके समीप जानपर उनके अनुयायियोंने शङ्ख, भेरा और मृदङ्ग आदिके शब्दोंसे सब दिशायाका प्रारत कर दिया। तब सभाके सब उत्तम स्वभावसे युक्त राजा लोग त्रौकष्याका प्रागमन जानकर हृष्य चार आनन्दसे भर गये, विविध तरके जल सहित बादलके समान उनके रथके शब्दको सुनकर उन सब लोगोंके राय खड़े हो गये। यदुवागवांसने च छ त्रौकष्याचन्द्र सभाके चारपर पहुँचकर, जेलासपञ्चतके शिखरके समान सुन्दर रथसे उतरे प्रार सातका तथा निरुरजा शाय धरके सब प्रार अपनी धारुण सारिकों सभाके प्रकाशसे खरि सूर्यके भाग प्रकाशित करते हुए, इन्द्रको सभाके भाग कोरवो सभाके वाचन गये। राजा सुन गये अपनी प्रारका तथा तबसे अपने भाग प्रकाशके विद्वत्ता से जल देना, ५. राजा सुन गये, अपने तबसे सुन गये और ६. राजा सुन गये और दिव्य जल को राजा सुन गये

धन कृष्णकी सखुख और हृतवर्मा मालकी
तथा वृष्टिप्रशोय लोग उनके पीछे खड़े हुए।
सीधे, द्रोणा आदि सज्जन एतेक महाराज
धृतराष्ट्रको आगे करके, श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मान-
के निमित्त अपने अपने प्रासनोसे उठ खड़े
हुए। उनकी समाने आतिथी प्रज्ञावान् महा-
यशस्वी राजा धृतराष्ट्र, भीम, द्रोणा आदि सब
कौरवोंकी सहित उसी समय अपने प्रासनोसे
उठ खड़े हुए। नरनाथ महाराज धृतराष्ट्रके
खड़े होकर बहापर बैठे हुए सहस्री राजा
उसी समय उठके खड़े हुए। अनन्तर राजा धृत्-
राष्ट्रकी आज्ञाके अनुसार श्रीकृष्णके वास्ते
सुवर्णयुक्त रत्नोसे जटित सर्वभद्र नामका चादर
रखा गया। इसी प्रधानमें श्रीकृष्णचन्द्र हस्तें
हंसते धृतराष्ट्र भीम, द्रोणा और दूसरे राजाओंसे
नन्द्य और अवस्थादी अनुसार यथा योग्य
बन्दना और बात चीत करने लगे, पृथ्वीके
सब राजा तथा कौरव लोगों उनको यथा-
विधिसे पूजा आर सम्मान करने लगे। पराने
देशको जीतनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रने समाने राजा-
ओंकी नीचेने बैठकर देखा कि परिशि मार्गदे,
जिन सब महापुरुषोंके रुद्ध भेंट हुई थी, वे
सब प्रयागत रूपसे आगङ्गाके । नारद आदि
उन सब देवपुरुषोंकी देखतीं। उन्होंने गान्धर्व,
नन्दन सीधिसकी सीटें चढ़ोसे यह कहा है
राजेन्द्र। वह देखिये पवित्र पाप सुनिवारक
मध्य पीक की सन्तान देखनेकी अज्ञान यह पर-
माण है, इन लोगोंके निमित्त मानव
पाप। हम आदि सब मानवों ही। समस्त यक्ष
और असुर महाराज वराने इन सब सुनिवारक
आपने देखा है, जब यह यक्ष, असुर, महाराज
नन्दन, नन्दन, सीधिस, नारद, राक्षस, वरुण,
इत्यादि सब देव, असुर, महाराज, वरुण,
इत्यादि सब देव, असुर, महाराज, वरुण,
इत्यादि सब देव, असुर, महाराज, वरुण,

श्रीव्र आसन ले आओ। सबकोंने उसी समय मणि और सुवर्णसे युक्त सुन्दर खच्छ और पवित्र बड़े बड़े महामूल्य आसनोंको लाकर उपास्थित किया। हे महाराज! सुनियोंके अर्घ पाय ग्रहण करने तथा आसनपर बैठनेपर श्रीकृष्ण और सब राजा लोग अपने अपने आसनोंपर बैठ गये। दुःशासनने सात्यकीको एक उत्तम आसन और विविंशतिः कृतवर्माको एक उत्तम सीनेका पीड़ा प्रदान किया। सदा ही किसीकी बातोंको न सहनेवाले जंची वासनासे युक्त कर्ण और दुर्योधन श्रीकृष्णसे थोड़ीही दूरपर एक ही आसनपर बैठ गये। गान्धारराज शकुनि गान्धार बोरोसे युक्त होकर पुत्र सहित आसनपर बैठे। महाबुद्धिमान विदुर कृष्णके निकट ही सफेद हरिणके मृगछालसे युक्त मणि गठित पोढ़ेपर बैठ गये। हे महाराज! जैसे अमृतकी चखनेसे चित्तको तृप्त नहीं होतो, वैसे ही उस सभामें बैठे सम्पूर्ण राजा लोग वहुत दिनोंके अनन्तर कृष्णको देख तृप्त नहीं होते थे। पोलि पुष्पके समान शोभायमान पीताम्बर पहरे हुए श्रीकृष्णचन्द्र ऐसे दीख पड़ते थे, जैसे सुवर्णके बीचमें नीलमणि (नीलम) को शोभा होतो है। कृष्णके सभामें बैठनेके अनन्तर सब लोगोंमें सन्नाटा छा गया। किसीने कहाँ पर कोई विषयका प्रसङ्ग तथा उल्लेख न किया।

६४ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, उस सभामण्डपमें सब राजाओंके आसनपर बैठनेके अनन्तर जब सन्नाटा छा गया, उस समय मतवाले हाथीके और दुन्दभीको भाँति गम्भीर शब्दसे श्रीकृष्णचन्द्रन कथाका प्रसङ्ग चलाया। धृतराष्ट्रकी ओर दृष्टि करके जिसमें सब कोई सुन सके, ऐसे ही वृद्ध वर्षाकालके गवौन सैषकी भाँति

गम्भीर स्वरसे धर्म अर्थसे भरे हुए वचन कह लगे,—

श्रीभगवान बोले, हे भारत! वीर योद्धाओंके बिना प्राणनाश हुए जिसमें कौरव और पाण्डवोंके बीच शान्ति स्थापित होवे, उन निमित्त यहांपर मेरा आगमन हुआ है, इस अतिरिक्त और कोई भी हितका वचन वाहने मेरी इच्छा नहीं है। हे शत्रुनाशन महाराज! इस लोकमें जो कुछ जानना उचित है, सब विषय आप लोगोंने जान लिया है, इससे आप लोगोंके निमित्त और कुछ मङ्गल वचन क्या सुनाऊँ? हे राजन्! आप लोगोंका यह कुल शास्त्रके ज्ञान और सदाचारसे युक्त है, और सब गुणोंसे भूषित होनेसे इस समय सब राजाओंके बीच श्रेष्ठ कहके गिना जाता है। हे भारत! सब लोगोंमें अनक गुण है, यह वचन ठीक है, परन्तु कौरवोंमें कृपा, विनय, चमत्कार, करुणा, उत्तम स्वभाव और सरलता आदि कई गुण सबसे बड़े हैं, इन्हीं गुणोंने आपको सबसे श्रेष्ठ बनाया है। हे राजेन्द्र! इस प्रकारके उत्तम प्रतिष्ठाके पात्र महाकुलमें कोई निन्दनीय तथा अयुक्त आचरणका होना बहुत ही अनुचित है, विशेष करके यदि वह आपहीके कारणसे सङ्गठित होवे तो और भी महा अनुचित कहा जावेगा। क्योंकि बाहरी और भीतरी कपट आचार और नीच मार्गसे गमन करनेवाले कौरवोंके आपही एक मात्र अवलम्ब स्वरूप हैं। हे कुरुसत्तम! दुर्योधन आदि आपके मूर्ख पुत्र लोग धर्म और अर्थसे अलग होकर लोभसे खींचे हुए वित्तसे मर्यादा रहित होकर सबसे श्रेष्ठ आत्मीय और भाई बन्धुओंके सङ्ग अत्यन्त ही अनुचित और दुष्ट व्यवहार कर रहे हैं, तो भी आप इन सब बातोंको जानकर अज्ञान हुए जाते हैं, हे पुंस्रवर्षभ! यह महा घोर आपद कौरवोंके बीचसे प्रकट हुई है; परन्तु आपके ध्यान

देनेसे समस्त संसारको विनाशका मूल अर्थान् कारण हो जावेगी। हे भारत! तुम्हारी दृष्ट्वा हीनेसे इस समय भी शान्ति हो सकती है। मेरी समझमें शान्तिका स्थापित होना कुछ भी कठिन नहीं है, यह आपके और मेरे दोनोंहीके अधिकारमें है। हे राजन्! आप अपने पुत्रको शान्त कीजिये और मैं पाण्डवोंको शान्त करूंगा। हे भरतर्षभ! सेनाके अहित आपके पुत्र लोग अवश्य हो आपकी प्राज्ञा पालन करेंगे, आपकी शासनमें निवास करनेकी अपेक्षा उन लोगोंके निमित्त और अधिक हितकारी विषय क्या होगा। हे कौरवराज! आप यदि शासन प्रचारके अभिलाषी होकर शान्ति स्थापनके निमित्त प्रयत्न करेंगे, तो ऐसा होनेसे आपके और पाण्डवोंके दोनोंके पक्षमें मङ्गल होगा। हे राजेन्द्र! इससे आप कष्ट रहित होकर विचारपूर्वक इस कार्यका पूर्ण विधान कीजिये पाण्डव लोग आपके सहायक बनें, और उन लोगोंको सहायतासे रहित हो आप स्थिर और शान्त होकर धर्म और धर्मका अनुष्ठान कीजिये। हे प्रजानाथ! जनक प्रकारी यत्न करनेपर भी वैसी असाधारण सहायता पाना बहुतही कठिन कार्य है। यदि महाका पाण्डव लोग आपकी रक्षा करें, तो और राजाओंकी बात तो दूर रहे, साक्षात् इन्द्र स्व देवताओंका सङ्ग लेकर भी आपकी पराजित करनेमें समर्थ न होंगे। हे भरतर्षभ! जनमानसपर भीष्म, द्रुपद, द्रुपदाचार्य, कर्ण, आनन्तर्षात, अश्वत्थामा, विकर्ण, भीमसेन, पाण्डव, अर्जुन, जलहरीपति कालीयराज रुद्राक्ष, धर्मिष्ठ, भीमसेन, अर्जुन, नहुल, सहदेव, भीमकी और युधिष्ठिर आदि सत्ताधारियों की सहायतासे आपकी रक्षा होनी निश्चित है।

वढ़ेगा ? है शत्रु नाशन । औरव और पाण्डवों-
की मिलनेसे सम्पूर्ण लोकमें आप प्रत्यन्त प्रभुता
पावेंगे, कोई शत्रु आपका पराजित करनेमें
समर्थ न हीना । तो सब राजा आपके
समान हैं, और जो आपसे बड़े हैं, सब ही आप
को सज्ज लम्बि करेगा । इससे आप सब भातिसे
रहित होकर पुत्र, पाल, पिता, भ्राता तयो द्रष्ट
मित्रोकी सज्ज परस सुखसे जीवनका समय
व्यतीत कर सकेंगे । है नहाराज ! दूसरकी
निकट आपकी सहायता लेनेहीका क्या प्रयोजन
है ! केवल पाण्डवोंकी पहिलेकी भाति
सत्कार दिखाके, उन्हें आगे करके आप
इस सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डलकी चक्रवर्ती राज्यका
सुख भोगेंगे । है सारत ! किसी प्रकारसे स्वार्थ-
सिद्ध होना चाहिये वही आपकी इच्छा है,
पाण्डव और कारवाकी परस्पर मिलने-
पर आप सम्पूर्ण शत्रुओंकी जीतकर उनकी
भुजासे उपार्जित सम्पूर्ण पृथ्वीके राजका
सुख भोग करनी, इनसे बढ़के आपकी निर्मित
बड़ा स्वाय दूसरा और कान खा है, है सहा-
राज ! यदि आप ऐसे स्वायका भोग कर युद्ध-
कायमें प्रवृत्त होइयगा, तो कौन सारा जनव-
की सम्मानना हो लीगा । है राजन् ! समासमें
महाभारतके आतिरक्त और ज्ञाना नरा दाख
पड़ता, तब दोनों पक्षोंके नाश जानने ही
आपका कौन धर्म प्रकाशन होगा : है
राजन् ! भला ज्ञाते तो सारा पाण्डव भोग
अथवा आपजेंगे हा युद्धमें सब : तब इन दोनों
पक्षोंमें एक पक्षका नाश होवे तो आप ही जीत-
ना सुख भोग आयगा है सारत ! है दोनों :
आपके भोग प्रवृत्त होकरसे युद्ध, सब शत्रु ही
जाननेवाले हैं, सारा दाखला युद्धों दिखाने
जयनिम्न ही, सब ही इनसे आपका ज्ञान
समासमें इन दोनों पक्षोंका नाश
सबका नाश होकर ही भोग पाएगा ही है
आपका प्रवृत्त ही है दाखला ही है, आप

शोत्र आसन ले आओ। सबकीने उसी समय मणि और सुवर्णसे युक्त सुन्दर खच्छ और पवित्र बड़े बड़े महामूल्य आसनोंकी लाकर उपाख्यत किया। हे महाराज! सुनियोंके अर्घ पाय ग्रहण करने तथा आसनपर बैठनेपर श्रीकृष्ण और सब राजा लोग प्रपने अपने आसनोंपर बैठ गये। दुःशासुनने सात्यकीको एक उत्तम आसन और विविंशतिः कृतवर्माकी एक उत्तम सीनेका पीढ़ा प्रदान किया। सदा हो किसीकी बातोंको न सहनेवाले जंची धासनासे युक्त कर्ण और दुर्योधन श्रीकृष्णसे थोड़ीही दूरपर एक ही आसनपर बैठ गये। गान्धारराज शकुनि गान्धार बोरोंसे युक्त होकर पुत्र सहित आसनपर बैठे। महाबुद्धिमान विदुर कृष्णके निकट ही सफेद हरिणके मृगछालसे युक्त मणि गठित पीढ़ेपर बैठ गये। हे महाराज! जैसे अमृतके चखनेसे चित्तकी तृप्त नहीं होती, वैसे ही उस सभासे बैठे सम्पूर्ण राजा लोग वहुत दिनके अनन्तर कृष्णकी देख तृप्त नहीं होते थे। पीले पुष्पके समान शंभायसान पीताम्बर पहरे हुए श्रीकृष्णचन्द्र ऐसे दीख पड़ते थे, जैसे सुवर्णके बीचमें नीलमणि (नीलम) का शोभा होती है। कृष्णके सभामें बैठनेके अनन्तर सब लोगोंमें सन्नाटा छा गया। किसीने कहाँ पर कोई विषयका प्रसङ्ग तथा उल्लेख न किया।

६४ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, उस सभामण्डपमें सब राजाओंके आसनपर बैठनेके अनन्तर, जब सन्नाटा छागया, उस समय मतवाली हाथीके और दुन्दभीकी भाँति गन्धीर शब्दसे श्रीकृष्णचन्द्रने कथाका प्रसङ्ग चलाया। धृतराष्ट्रकी और दृष्टि करके जिसमें सब कोई सुन सके, वैसे ही वह वर्षाकालके नवीन मेघकी भाँति

गन्धीर खरसे धर्म अर्थसे भरे हुए वचन कहने लगे,—

श्रीभगवान् बोले, हे भारत! वीर धीजा आँके बिना प्राणनाश हुए जिसमें कौरव और पाण्डवोंके बीच शान्ति स्थापित होवे, उसी निमित्त यहंपर मेरा आगमन हुआ है, इससे अतिरिक्त और कोई भी हितका वचन कहनेको मेरी इच्छा नहीं है। हे शत्रुनाशन महाराज! इस लोकमें जो कुछ जानना उचित है, सब विषय आप लोगोंने जान लिया है, इससे आप लोगोंके निमित्त और कुछ मङ्गल वचन क्या सुनाऊँ? हे राजन्! आप लोगोंका यह कृत शास्त्रके ज्ञान और सदाचारसे युक्त है, श्री सब गुणोंसे भूषित होनेसे इस समय स राजाओंके बीच श्रेष्ठ कहके गिना जाता है। हे भारत! सब लोगोंमें अनक गुण है, यह वचन ठीक है; परन्तु कौरवोंमें कृपा, विनय, क्षमा, करुणा, उत्तम स्वभाव और सरलता आदि कई गुण सबसे बढ़के हैं; इन्हीं गुणों आपका सबसे श्रेष्ठ बनाया है। हे राजेन्द्र! इस प्रकारके उत्तम प्रतिष्ठाके पात्र महाकुलमें कोई निन्दनीय तथा अयुक्त आचरणका होना वहुत ही अनुचित है; विशेष करके यदि वह आपहीके कारणसे सङ्गठित होवे तो और भी महा अनुचित कहा जावेगा। क्योंकि वाहरी और भीतरी कपट आचार और नीच मार्गसे गमन करनेवाले कौरवोंके आपही एक मात्र अवलम्ब स्वरूप हैं। हे कुत्ससत्तम! दुर्योधन आदि आपके मूर्ख पुत्र लोग धर्म और अर्थसे अलग होकर लोभसे खींचे हुए वित्तसे मथ्यांदा रहित होकर सबसे श्रेष्ठ आत्मीय और भाई बन्धुओंके सङ्ग अव्यक्त ही अनुचित और दुष्ट व्यवहार कर रहे हैं, तो भी आप इन सब बातोंकी जानकर अज्ञान हुए जाते हैं; पुंसर्पधर्म! यह महा घोर आपद कौरवोंके बीचसे प्रकट हुई है; परन्तु आपकी धीम

देनेसे समस्त संसारके विनाशका मूल अर्थात् कारण हो जावेगी। हे भारत ! तुम्हारी इच्छा होनेसे इस समय भी शान्ति हो सकती है। मेरी समझमें शान्तिका स्थापित होना कुछ भी कठिन नहीं है; यह आपके और मेरे दोनोंहीके अधिकारमें है। हे राजन् ! आप अपने पुत्रको शान्त कीजिये और मैं पाण्डवोंको शान्त करूँगा। हे भरतर्षभ ! सेनाके सहित आपके पुत्र लोग अवश्य ही आपकी आज्ञा पालन करेंगे, आपके शासनमें निवास करनेकी अपेक्षा उन लोगोंके निमित्त और अधिक हितकारी विषय क्या होगा। हे कौरवराज ! आप यदि शासन प्रचारके अभिलाषी होकर शान्ति स्थापनके निमित्त यत्न करेंगे, तो ऐसा होनेसे आपके और पाण्डवोंके दोनोंके पक्षमें मङ्गल होगा। हे राजेन्द्र ! इससे आप कष्ट रहित होकर विचारपूर्वक इस कार्यका पूर्ण विधान कीजिये पाण्डव लोग आपके सहायक बनें, और उन लोगोंकी सहायतासे रक्षित हो आप स्थिर और शान्त होकर धर्म और अर्थका अनुष्ठान कीजिये। हे प्रजानाथ ! अनेक प्रकारसे यत्न करनेपर भी वैसी असाधारण सहायता पाना बड़तही कठिन कार्य है। यदि महात्मा पाण्डव लोग आपकी रक्षा करें, तो और राजाओंकी बात तो दूर रहे, साक्षात् इन्द्र सब देवताओंको सङ्ग लेकर भी आपको पराजित करनेमें समर्थ न होंगे। हे भरतर्षभ ! जिस स्थानपर भोष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, विबाशति, अश्वत्थामा, विकर्ण, सोमदत्त, बाह्लिक, जयद्रथ, कलिङ्गपति, कास्वोजराज सुदक्षिण, युधिष्ठिर, भोमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, सात्यकी और युयुत्सु आदि महावीर योद्धा लोग मिलकर होकर एक ही स्थानपर इकट्ठे होंगे, वहाँ पर कौन विपरीत बुद्धिवाला पुरुष उन लोगोंके विरुद्ध युद्ध करनेके निमित्त आगे

बढ़ेगा ? हे शत्रुनाशन ! कौरव और पाण्डवोंके मिलनेसे सम्पूर्ण लोकमें आप अत्यन्त प्रभुता पावेंगे, कोई शत्रु आपको पराजित करनेमें समर्थ न होगा। जो सङ्ग राजा आपके समान हैं, और जो आपसे श्रेष्ठ हैं, सब ही आपके सङ्ग सन्धि करेंगे। इससे आप सब भातिसे रक्षित होकर पुत्र, पौत्र, पिता, भ्राता तथा दृष्ट मित्रोंके सङ्ग परम सुखसे जीवनका समय व्यतीत कर सकेंगे। हे महाराज ! दूसरेके निकट आपको सहायता लेनेकी क्या प्रयोजन है ! केवल पाण्डवोंकी पहिलेकी भाति सत्कार दिखाके, उन्हें आगे करके आप इस सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डलके चक्रवर्ती राज्यका सुख भोगेंगे। हे भारत ! किसी प्रकारसे स्वार्थसिद्ध होना चाहिये यहो आपकी इच्छा है, पाण्डव और कौरवोंके परस्पर मिलनेपर आप सम्पूर्ण शत्रुओंको जोतकर उनकी भुजासे उपाज्जित सम्पूर्ण पृथ्वीके राज्यका सुख भोग करेंगे, इससे बढ़के आपके निमित्त बड़ा स्वार्थ दूसरा और कौन सा है ? हे महाराज ! यदि आप ऐसे स्वार्थको त्याग कर युद्धकार्यसे प्रवृत्त होइयेंगे, तो केवल महा अनर्थकी सम्भावना हो होगी। हे राजेन्द्र ! संग्राममें महासारीके अतिरिक्त और कुछभी नहीं देख पड़ता, तब दोनों पक्षोंके नाश होनेसे ही आपका कौन धर्म प्रकाशित होगा ? हे राजन् ! भला चाहिये तो सही पाण्डव लोग अथवा आपके पुत्र ही युद्धमें मरे, तब इन दोनों पक्षोंमेंसे एक पक्षके नाश होनेसे आपको कौनसा सुख मिल जायगा ? हे भरतर्षभ ! ये दोनों ओरके लोग अत्यन्त वीरतासे युक्त, सब शस्त्रोंको जाननेवाले हैं, और दोनोंही युद्धके निमित्त उपस्थित हो रहे हैं, इससे आप इस वर्तमान महाभयसे उन लोगोंकी रक्षा कीजिये ! जिससे महारथ शूर वीर कौरव और पाण्डवोंको युद्धमें परस्पर घायल होना और मरना न पड़े, आप

वैसे ही उपायका विधान कीजिये। हे नृपसत्तम। पृथ्वीके सब राजा लोग एक ही स्थानपर मिल गये हैं, ये लोग क्रोधके वशमें होकर इन सम्पूर्ण प्रजा समूहका भी संहार कर सकते हैं। हे राजेन्द्र ! इससे आप दया करके सम्पूर्ण लोकोकी रक्षा कीजिये। आपके विद्यमान रहते जिसमें सम्पूर्ण पृथ्वीके प्रजाओंका समूह नष्ट न होजाय। हे कुरुनन्दन ! जब आप सत्व-गुणकी धारण करेंगे, तभी प्रजाओंका शेष रह सकता है ; नहीं तो सब ही प्रजा नष्ट होजायगी। हे राजेन्द्र ! पवित्र वंशोंमें उत्पन्न भये, माननीय, पूजाके योग्य, महातेजस्वी, श्रीमान् और आपसमें एक दूसरेकी सहायता करनेवाले, इन सब राजाओंको आप महा भयसे कुड़ानेका यत्न कीजिये। हे शत्रुनाशन भरतर्षभ ! ये सब लोग क्रोध और वैरकी त्यागके कुशल पूर्वक आपसमें मिलें और एकत्र भोजन पान करनेके अनन्तर सब भूषणोंसे भूषित होकर, शोभायमान उत्तम माला और सुगन्धकी धारण करके तथा उत्तम प्रकारसे सत्कार पाकर अपने अपने स्थानोंपर चले जावें। हे भरतर्षभ ! पाण्डवोंके ऊपर आपका जैसे पहिले समयमें प्रीति थी, इस समयमें इस युद्धके समागममें आप वैसी ही प्रीतिकी प्रकाश करके उन लोगोंके सङ्ग सन्धि कर लीजिये। हे नरनाथ। बालकपनमें जब वे पिता रहित हुए थे, उस समयसे आपने ही उन लोगोंकी पुत्रकी भांति समझकर पालन पोषण करके बड़ा किया था, इससे इस समयमें भी पुत्रकी भांति न्यायपूर्वक उन लोगोंका पालन कीजिये। विचार करके देखनेसे सब समयमें विशेष करके इस व्यसनके समयमें आपको उन लोगोंकी रक्षा करना योग्य है ऐसा करनेसे आपको धर्म और प्रर्थ दोनोंहीकी रक्षा हो सकती है। हे भरतर्षभ ! इस लिये जिसमें धर्म और अर्थ दोनों बने रहें, आप वही उपाय कीजिये। हे

राजन् ! पाण्डवोंने आपको नमस्कार करके प्रेम पूर्वक यह वचन कहा है, कि “हे तात ! आपको आज्ञाके अनुसार हम लोगोंने वृद्ध दुःख और क्लेश सह्य हैं। निर्जन वनमें वारह वर्ष और मनुष्योंके बीच छिपकर एक वर्ष वास किया है। हे तात ! “हम लोगोंके बीच जिस प्रकारका नियम हुआ है, उसको अवश्य ही ज्येष्ठ पिता पालन करेंगे” ऐसा ही निश्चय करके हम लोगोंने किसी प्रकारसे उस नियमका उलङ्घन नहीं किया है, हम लोगोंके सङ्ग रहनेवाले ब्राह्मण लोग उत्सवातको खूब ही जानते हैं। हे भरतर्षभ ! हम लोगोंने नियमके अनुसार कार्य किया है ; इससे आप भी उसी नियमके अनुसार चलिये। हे राजेन्द्र ! हम लोगोंने वृद्ध दिनतक दुःख भाग कर जिसमें अब अपना आधा राज्य पाव, उसीका आप पूर्ण विधान कीजिये। आप धर्म और अर्थके मर्मको जानकर हम लोगोंका सब भातिसे परित्राण कीजिये। आप पिता हैं, आप जा कुछ आज्ञा करेंगे, वही हम लोगोंकी स्वीकार करना पड़ेगा। यही विचारकर हम लोगोंने अनेक प्रकारके दुःख तथा सह्य हैं ; इससे आप भी इस समय पिता माताकी भांति प्रेक्ष प्रकाशित कीजिये। हे भारत ! गुरुक समीप शिष्यका जसा व्यवहार करना उचित है, हम लोग भी आपके सङ्ग वैसा ही व्यवहार किया है। इससे आप भी हम लोगोंके ऊपर गुरुकी भांति वात्सल्य भाव दिखाइये। पुत्रके नीच माग अवलम्बन करनेपर पिताका कर्त्तव्य कार्य यही है, कि उसे फिर भी अच्छे मार्गपर चलवि ; इस समय हम लोग भी राज्यके नाश होनेके कारण मार्गसे भ्रष्ट हुए हैं, आप इस समयमें स्वयं धर्मके मार्गमें चलकर हम लोगोंकी उत्तम मार्गमें स्थित रखिये।” हे महाराज ! आपका उन तेजस्वी पुत्रोंने यहांपर रहनेवाले समस्त

लोगोंके निमित्त भी यह वचन कहा है, “सभाके बीच धर्मके जाननेवाले सभासदोंके विद्यमान रहनेपर भी न्यायके विरुद्ध कार्यका होना बह्मत ही अनुचित है। बुद्धिमान सभासद और दर्शकवृन्दके उपस्थित रहनेपर, जिस स्थानसे अधर्म और मिथ्यासे सत्य छिप जाता है, वहाँपरके सब सभासद ही मरे हुएके समान हैं। जिस समय धर्म अधर्मसे पीड़ित होकर सभाको शरणमें आता है, उस समय यदि उस धर्मकी पीड़ा न्यायपूर्वक सभासद लोग न दूर करें, तो वे लोग आप ही उस पापसे पीड़ित होजाते हैं। जैसे नदी अपने तटपर रहनेवाले वृक्षोंको उखाड़के गिरा देतो है, वैसे ही अधर्म भी उन लोगोंको पीड़ित करता है।” हे भरतर्षभ ! इस समय विचारकर देखिये कि पाण्डव लोग धर्महीका सुंह देख कर तथा धर्महीको आशा करके अभी तक चुप चाप बैठे हुए हैं, उन लोगोंने सत्य, धर्म और न्यायके अनुसार ही वचन कहे हैं। इससे आप उन लोगोंको राज्य प्रदान करनेके अतिरिक्त क्या और कोई विषयका प्रसङ्ग कर सकते हैं ? इस सभामें जो सब राजा लोग बैठे हुए हैं, ये लोग भी क्या कुछ दूसरी बात कह सकते हैं ! हे पुरुषर्षभ ! मैं धर्म और अर्थको निश्चय करके जो कुछ वचन कह रहा हूँ, यदि आप इसे सत्य समझेंगे, तो निःसन्देह इन सब क्षत्रिय और राजाओंको मृत्युके सुहसे बचा लेंगे। हे भरत-श्रेष्ठ ! आप शान्त होइये, क्राधके वशीभूत दुर्योधनके अनुशासी न बनिये। हे परन्तप ! पाण्डवोंका यथा उचित पैटक-राज्य देकर आप पुत्रोंके सहित आनन्दित होकर उत्तम प्रकारसे सब सुखोंको भाग कीजिये। हे प्रजानाथ ! आप सब दिनसे अजात-शत्रु, युधिष्ठिर-का साधु पुरुषोंके धर्ममें स्थित जानते हैं, और वह आपके तथा आपके पुत्रोंके सङ्ग जिस प्रकारसे धर्मपूर्वक व्यवहार करते हैं; वह भी

आपको विदित है। देखिये आपने उन्हें जतु-ग्रहमें जलाया और देशसे निकाल भी दिया, तौभी फिर उन लोगोंने आपका शरण ग्रहण किया था। उसके अनन्तर अपने पुत्रोंके सङ्ग विचार करके; जब उन लोगोंको इन्द्रप्रस्थमें बसाया था, उस समय भी उन लोगोंने वहाँपर निवास करते हुए अपने बाहुबल तथा पराक्रमसे सब राजाओंको जीतकर आपहीके निकट उपस्थित किया था, किसी प्रकारसे भी आपके शासनका उन्होंने उल्लङ्घन नहीं किया। हे महाराज ! इस भाँतिसे नम्रतापूर्वक वे निवास करते थे, तौ भी सुबलपुत्र शकुनिने उनके राज्य और धन आदिको हरनेकी इच्छा करके, पासेके खेलमें अत्यन्त कपटका प्रयोग किया था। धर्माला यधिष्ठिर वैसी बुरी अवस्थामें पड़के प्राणके समान प्यारी द्रौपदीको सभामें बुलाई हुई देख कर भी क्षत्रिय धर्मसे तनिक भी विचलित न हुए थे। हे भारत ! मैं आप और पाण्डव दोनोंहीकी मङ्गल कामना करता हूँ, इससे आप धर्म अर्थ और सुखके निमित्त शान्ति स्थापित कीजिये, प्रजाओंका व्यर्थ नाश न कीजिये। हे नरनाथ ! जिसको आप अनर्थ समझ रहे हैं, उसको अर्थ और जिसे अर्थ समझ रहे हैं, उसको अनर्थ जानकर लोभके मार्गमें गमन करनेवाले पुत्रोंको कृपयसे रोकिये। हे पृथ्वीनाथ ! शत्रुनाशन पाण्डव लोग आपकी सेवा तथा युद्ध दानों ही करनेके निमित्त तैयार हैं, उसमेंसे जो आपको उत्तम और हितकारी बोध हो आप उसका अनुष्ठान कीजिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले उस सभामें जितने राजा लाग उपस्थित थे, वे सब श्रीकृष्णके कहे हुए वचनोंकी अपने मनही मन अत्यन्त प्रशंसा करते थे, परन्तु दुर्योधनके सन्मुख किसीने कुछ कहनेका साहस न किया।

६५ अध्याय समाप्त ।

जी वैशम्पायन सुनि बोली, महात्मा कृष्णके ऊपर कहे हुए वचनोंकी सुनकर सब सभा-सदोंके रोंए खड़े हो गये, सब लोगोंने सौनव्रत धारणा कर लिया। सब राजा लोग, अपने मनमें यह सोचने लगे, कि कोई पुरुष इन वचनोंका उत्तर देनेका साहस नहीं कर सकता जब सब राजाओंने सन्नाटा खींच लिया, तब महातेजस्वी महर्षि परशुरामजीने कौरवोंकी सभामें कहना आरम्भ किया, कि हे राजन् ! मैं उपमाके सङ्ग एक कथाका प्रसङ्ग करता हूँ। इस यथार्थ विषयपर कोई शङ्का न करके इसकी सुनी और यदि यह उत्तम सार्वभौम हो, तो सुनकर अपने कल्याणके निमित्त यत्न करो। मैंने सुना है, पहिले समयमें दम्भीद्वव नाम सार्वभौम राजा हुए थे; उन्होंने इस सम्पूर्ण पृथ्वीपर चक्रवर्ती होकर राज्य किया था। वह सहारथ और पराक्रमी राजा नित्य ही रात्रिके बीतनेपर सवेरे उठकर ब्राह्मण और क्षत्रियोंसे यह कहा करते थे, कि “इस पृथ्वीमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्रोंके बीच क्या कोई ऐसा पुरुष भी विद्यमान है, जो युद्धमें मुझसे श्रेष्ठ अथवा मेरे समान हो सके? सारी पृथ्वीमें मेरे समान बोर कोई नहीं है” ऐसा विचार करते हुए वह राजा अभिमानसे उत्पन्न होकर सब स्थानोंमें ऐसा ही वचन कहते हुए घूमा करते थे। एकवार कई एक महातेजस्वी वेदके जाननेवाले ब्राह्मणोंने उन्हें बार बार अपनी बड़ाई करते हुए देखकर निषेध किया परन्तु धन और बलके सदसे भरे हुए अभिमानो मूढ़ राजा बार बार निषेध किये जानेपर भी उन वेदज्ञ ब्राह्मणोंसे नित्य ही इसी प्रकारका प्रश्न करते थे। तब वह वेदके जाननेवाले तपस्वी महात्मा ब्राह्मण लोग उस राजाके ऐसे दृष्ट भावको देखकर क्रोधित होके बोले, हे राजन् ! इस पृथ्वीपर अनेक युद्धोंको जीतनेवाले

दो श्रेष्ठ पुरुष विद्यमान हैं, तुम कभी उनके समान नहीं हो सकते। इस वचनको सुनते ही राजा दम्भीद्ववने फिर उन ब्राह्मणोंसे पूछा, कि आप लोग कौनसे वीरोंकी कथा कहते हैं? वे दोनों कहापर उत्पन्न हुए हैं, किस स्थानमें रहते हैं और कौन कार्य करते हैं? हे भारत। राजाके ऐसे पूछनेपर ब्राह्मणोंने कहा, हम लोगोंने सुना है, कि महात्मा नर और नारायण तपस्या करनेके निमित्त इस मनुष्य लोकमें आकर गन्धमादन पर्वतके किसी स्थानमें घोर तपस्या कर रहे हैं, तुम उन्हीं दोनों वीरोंके सङ्ग युद्ध करो।

राजा दम्भीद्वव इस वचनको सुनते ही आतुर होके अपनी चतुरङ्गिनी महासेना सजाकर, युद्धमें न पराजित होनेवाले महात्मा नर और नारायणसे युद्ध करनेके निमित्त चले, और महा भयङ्कर गन्धमादन पर्वतके शिखरपर जा पहुँचे वहाँ पहुँचके उन दनवारी दोनों तपस्वियोंकी खोजने लगे, अन्तमें उन दोनों महात्माओंका पता पाकर देखा, कि वे दोनों तपस्वी भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी सहकर अत्यन्त ही क्लेशित और तनुक्षीण हो रहे हैं, और उनके शरीरमें खाक लिपटी हुई है। इस प्रकारसे उन महात्माओंको देखकर राजाने उनके निकट जाकर प्रणाम करके कुशल चैसकी बात पूछी; उन्होंने भी आसन, जल और फल मूल आदिसे उनका अतिथि सत्कार करके कहा, “तुम्हारा कौनसा कार्य पूरा करना होगा।” इस वचनको सुनकर राजा दम्भीद्वव जैसा ब्राह्मणोंके समीप कहा करते थे, उसीकी विस्तारपूर्वक कहने लगे कि मैंने अपने शत्रु बलसे सम्पूर्ण पृथ्वीके राजाओंकी मारा है, इस समय आपसे युद्ध करनेकी इच्छासे इस पर्वतके ऊपर आया हूँ; इससे आप कृपा करके हमारी इस सब दिक्की अभिलाषाको पूर्ण कीजिये। नरनारायण बोले, हे राजसत्तम ! यह

तप करनेका आश्रम है, इस स्थानमें क्रोध, लोभ लेशमात्र भी नहीं है। युद्ध तथा अस्त्र शस्त्रकी बात तो दूर रहै, यहांपर कुटिल स्वभावके मनुष्य भी नहीं रह सकते इससे तुम इस स्थानको छोड़कर दूसरी जगहमें युद्ध करनेकी इच्छा करो; पृथ्वीके बीच वज्रतसे क्षत्रिय लोग विद्यमान हैं।

परशुराम बोले, हे भारत। उन दोनों तपस्वियोंके बराबर चमत्कार प्रार्थना और शान्त करनेपर भी, राजा दम्भोजवने अपना हठ न छोड़ा और युद्ध करनेकी अभिलाषासे बारम्बार उन दोनों तपस्वियोंको आवाहन करने लगे। तब नर ऋषिने एक सुष्टी काश दणको हाथमें लेकर क्रोधसे भरकर कहा, कि रे युद्धको अभिलाषा करनेवाले क्षत्रिय। आके युद्ध कर ले, सेनाको साजकर तेरा जो कुछ अस्त्र शस्त्र है सब ग्रहण करके चला आ, तब मैं तेरी युद्धकी अभिलाषा पूरी कर दूंगा।

राजा दम्भोजव बोले, हे तपस्वी। यदि इस अस्त्रको मेरे ऊपर चलाना हो तुमको ठीक मालूम होता है, तो मैं इसीके सङ्ग तुमसे युद्ध करूंगा, क्योंकि युद्ध करनेहीके निमित्त मेरा यहांपर आगमन हुआ है।

श्रीपरशुरामजी बोले, ऐसा कहकर राजा दम्भोजवने सेनाके सहित तपस्वीके सङ्ग युद्ध करनेके निमित्त खड़े होकर अपने वाणोंकी वर्षासे दशो दिशाओंको पूर्ण कर दिया। तब लक्ष्यका वेधनवाले नर ऋषिने काशके सौकोंके अस्त्रसे राजा दम्भोजवके सब अस्त्रोंका निष्फल कर दिया और उसके ऊपर इस प्रकारसे काशके सौकोंको चलाया, कि उससे राजा दम्भोजव मृतप्राय हो गये। उन्होंने मायाके बलसे केवल काशके सौकोंके अस्त्रसे सब सेनाके नाक, कान आदिको काटना आरम्भ किया। सब दिशाओंमें काश पुञ्जके पूर्ण होनेसे आकाश श्वेतवर्ण होगया; इस चञ्चल कर्मको

देखकर राजा दम्भोजव उनके दोनों चरणोंपर गिरे और अपने कल्याणके निमित्त “मेरा मङ्गल हो” ऐसी प्रार्थना करने लगे। जब राजा दम्भोजव बार बार ऐसा कहने लगे, तब शरणागतकी रक्षा करनेवाले दयालु नर ऋषिने उनसे कहा, हे राजन्। तुम आजसे धर्मात्मा और ब्राह्मणोंमें निष्ठावान् बनो, फिर कभी ऐसा अहंकार न करना। हे नरेन्द्र। पराये देशकी जीतनेवाले क्षत्रिय पुरुष अपने धर्ममें निवास करते हुए कभी ऐसी नीच अभिलाषा नहीं करते। हे राजन्। इससे चाहै कोई पुरुष तुमसे बुरा हो अथवा भला हो, तुम अभिमानके बशमें होकर कभी उसका अपमान न करना, किसी पुरुषको अवमानित तथा दुःखित न करना ही तुम्हारा कर्त्तव्य कार्य है। हे राजेन्द्र। तुम निश्चित बुद्धि, लोभ रहित, अहङ्कार-शून्य, जितेन्द्रिय, शान्त, कोमल और धीरताकी अवलम्बन करके प्रजाका पालन करो। बलाबलकी बिना जाने फिर कभी किसीका अपमान न करना; इस समय मैं तुम्हें आज्ञा देता हूं, कि कुशलपूर्वक अपने स्थानपर जाओ, परन्तु फिर कभी ऐसे बुरे आचरण न करना। हमारे वचनके अनुसार तुम सदा ब्राह्मणोंसे अपना आत्म-कुशल पूछते रहना।

श्रीपरशुरामजी बोले, इस प्रकारके उपदेश सुनकर राजा दम्भोजव उन दोनों महा तपस्वियोंके चरणोंपर गिरकर उन्हें प्रणाम किया। अनन्तर वहाँसे लौटके जब अपने नगरमें आये, तबसे अत्यन्त धर्मके आचरण करने लगे। इस समय विचार करके देखो, पहिले समयमें नर ऋषिने जो ऐसे कर्म किये थे, उसे वज्रत वज्रा तथा कठिन कार्य कहना चाहिये। नारायण उनसे भी कई एक गुणोंमें श्रेष्ठ थे। हे राजन्। इसीसे जबतक धनुषोंमें श्रेष्ठ गाण्डीव धनुषपर काकुदीक, (प्रस्वापन अस्त्र) शुक, (मोहन अस्त्र)

नाक, (उन्मादन अस्त्र) मन्त्रिमन्तर्जन (वासन अस्त्र) सन्तान (इन्द्रादि-दिव्य अस्त्र) नर्तक, (नाचनेवाला पैशाच अस्त्र) घोर, (सहासारीको उत्पन्न करनेवाला मर्धात् राजस अस्त्र) और आस्थमोदक (जिसको लगनेसे मनुष्य मृहपर पत्थर रखके मरनेका उद्यत होता है, अर्थात् याम्य अस्त्र) नहीं चढ़ाये जाते हैं, तब-तक तुम अभिमानको काड़कर अर्जुनको अनु-गायो बनी। इन ऊपर कहे हुए अस्त्रोंके लग-नेसे सब मनुष्य मृत्युको प्राप्त होते हैं, सब मनुष्य उत्सन्न और विचलचित्त होकर कार्य-कारण लगते हैं, कितने ही वसन, और मृत-त्याग करते, मूर्च्छा खाते, राते और हसते रहते हैं। हे भारत ! सब लोगोंके छष्टिकर्त्ता सकल कर्म और धर्मको जाननेवाले जगतके गुरु नारायण जिसको भित्र हैं, उस अर्जुनका प्रतापरूपी अग्नि जो युद्धमें महाभयङ्कर हीजा-वेगा इसमें क्या सन्देह है ? संग्राममें जिसके समान और कोई भी नहीं है, उस कपिध्वज महावीर अर्जुनको जोतनेके निमित्त इस तीनों भुवनमें कौन पुरुष साहस कर सकता है ? इसके अतिरिक्त अर्जुनमें कितने प्रकारके गुण हैं, उनकी संख्या करना बहुत ही कठिन है। जनाईन कृष्ण उनसे भी कई एक अश तथा गुणोंमें श्रेष्ठ है। हे महाराज ! तुम अर्जुनको केवल कुन्तीका पुत्र ही समझते हो, परन्तु महातेज तथा वीर्यसे युक्त वह जा पुरुषोंमें श्रेष्ठ नर और नारायण ऋषि है, उन्होंने ही अर्जुन और कृष्ण रूपसे इस पृथ्वीपर अवतार लिया है, तुम इस बातको अच्छी प्रकारसे अपने हृदयमें समझ ला। हे भारत ! यदि इसमें तुम्हें निश्चय हो, और मेरे वचनमें कोई शङ्का न हो, तो तुम शुद्ध-बुद्धि अवलम्बन करके पाण्डवोंके साथ सन्धि कर ला। और यदि आपसमें फूटका न होना तुम उत्तम समझते हो, तो भी तुम्हें शान्ति स्थापनके निमित्त यत्न

करना चाहिये ; युद्धके निमित्त इच्छा करनी कभी उचित नहीं है। हे भरतश्रेष्ठ ! तुम्हारा यह कुल पृथ्वी भरमें श्रेष्ठ और शास्त्रके ज्ञानसे प्रतिष्ठित है ; इस समय अपने कल्याणके निमित्त तुम इस कुलको इसी प्रकारसे स्थिर रहने दो, जो यथार्थ स्वार्थ है, उसीमें अपने चित्तको लगाओ।

६६ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, परशुरामके वचन सुनकर भगवान् कण्व ऋषि भी कौरवोंकी सभामें दुर्योधनको सम्बोधन करके यह वचन कहने लगे।

कण्व बोले, सब लोकोके पितामह ब्रह्मा जैसे अक्षय और नाश-रहित है नर-नारायण ऋषि भी वैसे ही है। सब देवताओंके बीच विशुद्ध ही एक मात्र सनातन, न जीतने योग्य, नाश रहित नित्य-स्वरूप और सबको ईश्वर है, इसके अतिरिक्त सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, ग्रह और ताराओंके एज सब प्रलय कालमें विनष्ट होजाते हैं। संसारके नाश होनेके साथ ही सब वस्तुएँ तीनों लोकसे गिरकर नष्ट हो जाती हैं ; और फिर भी उनकी सृष्टि होती है, मनुष्य, ऋग, पक्षी और तिर्यक योनिसे उत्पन्न हुए सब जीव क्षण मात्रमें जाते हैं। महा प्रतापी राजा लोग राजलक्ष्मी भोगकर आयुके शेष होनेपर अपने पाप पुण्य अनुसार नया शरीर पाते हैं। इससे इन बातोंको विचार करके, तुम धर्मपुत्र युधिष्ठिर के सङ्गमें सन्धि कर लो। कौरव और पाण्डव लोग आपसमें मिलकर पृथ्वी भरकी प्रजापालन करें। हे भरतश्रेष्ठ दुर्योधन ! मैं वरवान् हूँ, ऐसा अभिमान करना कभी उचित नहीं है, क्योंकि बलवानोंसे भी अधिक बलवाले पुरुष दीख पड़ते हैं। हे कुरुनन्दन देवताओंके समान पराक्रमी पाँचों पाण्डव अर्जुन

निकट बलसे युक्त है, प्रवृत्त बलशाली पुरुषोंके निकट सेनाका बल, बल नहीं गिना जाता। कन्या प्रदान करनेवाली मातलिके वर खोजनेका यह पुराना इतिहास पण्डित लोगोंने इसके उदाहरण देनेके योग्य वर्णन किया है।

तीनों लोक तथा देवताओंके स्वामी इन्द्रके जो मातलि नामक सारथी है, उनके एक गुणकेशो नामकी कन्या थी। सुन्दरता और शरीरकी सुघराईमें वह सब लोकोंकी स्त्रियोंसे बढ़ गई थी। उसके व्याह करनका समय आया हुआ जानकर मातलि अपनी भाय्याके सहित अत्यन्त शाक और चिन्तासे दुःखित होकर कहने लगे। अही। उदारचरित, यशस्वी, जंचे और नम्रतासे युक्त स्वभाववाली पुरुषोंके कुलमें कन्याका जन्म होना क्या ही दुःखका विषय है। सज्जन पुरुषोंके पक्षमें कन्या मातकुल, पिताका कुल और जिस कुलमें प्रदान की जाती है, इन तीनों कुलोंको संशयमें डालती है। मैं बुद्धिके अनुसार देव और मनुष्य लोकोंका भलो भात खोज लिया तो भी किसी स्थानपर मेरा याय उत्तम पात्र नहीं मिला।

कण्व सुनि बोले, देवता, गन्धर्व, दैत्य, शनव, मनुष्य और ऋषियोंके सन्तुहमें भी कोई मातलिके कन्याके समान योग्य पात्र नहीं मिला तब उन्होंने सुधर्मा नामको अपनी स्त्रीके सङ्ग रातकी समय परावर्ष करके नाग लोकमें जानका सङ्गल्प किया, और दूसरे दिन सुबह ही 'यद्यपि देव और मनुष्य लोकमें गुणकेशीके रूप और गुणके समान कोई पात्र नहीं मिल सका, तो भी नागलोकमें अवश्य कोई न कोई मिल जायगा' सुधर्मासे ऐसा कहके मातलिने उसकी प्रदक्षिणा की, और कन्याका मस्तक स्पर्शके पृथ्वीतलमें प्रवेश किया।

६७ अध्याय समाप्त ।

कण्वसुनि बोले, मातलि मार्गमें चली जाते थे, उसी समय सहर्षि नारदके सङ्ग उनकी भेंट होगई। नारद वरुणसे मिलनेको जाते थे, देव संयोगसे मातलिको देखकर बोले, हे इन्द्रके सारथि श्रेष्ठ मातलि ! कहा जानेके निमित्त उद्यत हुए हो ? अपने कार्यके निमित्त अथवा इन्द्रके कार्य साधनके लिये जा रहे हो ? नारद सुनिसे ऐसा पूछे जानेपर मातलिने वरुणके स्थानपर अपने कार्यका सम्पूर्ण वृत्तान्त विस्तार पूर्वक कह सुनाया। अनन्तर देवर्षि नारद बोले, तब चलो हम लोग दोनों एक ही सङ्ग चलेंगे, मैं भी जलके स्वामी वरुणके दर्शन करनेके निमित्त स्वर्गसे चला आता हूं। हे मातलि ! पृथ्वीतलको देखकर मैं उसका सम्पूर्ण विवरण तुमकी सुनाजंगा; और अच्छी प्रकारसे देख सुनकर वहाँपर तुम्हारी कन्याके योग्य कोई सुन्दर वर ठहरा दूंगा।

अनन्तर महात्मा मातलि और नारदने पातालपुरीमें पङ्चकार, जलके स्वामी लोकपाल वरुणका दर्शन किया। वहापर देवर्षि नारद सुनिने और मातलिने इन्द्रके समान पूजा तथा सत्कार पाया। इस प्रकारसे मान और आदर पाकर नारद और मातलिने अत्यन्त प्रीतियुक्त होकर अपने अपने आनेका कारण कह सुनाया, अनन्तर वरुणको आज्ञा लेकर वे दोनों नाग लाङ्घमें घूमने लगे। नारद रसातलके निवासी सब जीवोंका वृत्तान्त अच्छे प्रकारसे जानते थे, इससे वह मातलिसे सबके वृत्तान्त विशेष रूपसे कहने लगे।

श्रीनारद सुनि बोले, हे स्तुत ! तुमने पुत्र तथा पौत्रसे युक्त जलके स्वामी वरुणका दर्शन किया, अब तुम उनका सब प्रकार शुभदायक वृत्ततरी सन्ध्यासे युक्त अधिकार अच्छी प्रकारसे देखो। पुष्कर नामक उनकी अत्यन्त रूपवान् और देखने योग्य पुत्रकी जो तुमने

देखा है, वह सुशील, उत्तम चरित्रवालोंमें शुद्ध आचार, सबसे श्रेष्ठ, महा बुद्धिमान् और पिताके अत्यन्त ही प्रिय है। रूप और सुषराईमें दूसरी लक्ष्मी के समान ज्योत्स्ना-काली नामी सोमकन्याने उन्हें अपना पति बनाया है। अदितिके बड़े पुत्र सूर्य्य भी इस ज्योत्स्नाकालीके श्रेष्ठ पति रूपसे चुन गये थे; यह बात प्रसिद्ध है। हे इन्द्रके मित्र ! जिसकी पान करनेसे देवताओंने मृत्युकी जीता है, जो सब स्थानोंमें सुवर्णसे भूषित है वही वारुणी सुरा भवन है, उसको देखो। हे मातलि ! यह देखा राज्यसे दूर किये गये दैत्य लोगोंके प्रज्वलित अस्त्र शस्त्र सब दोख पड़ते हैं। कहा जाता है, कि किसी समयमें इन अस्त्रोंका नाश नहीं होता। बार बार विद्ध होनेपर भी ये अस्त्र अपने अधिकारियोंके हाथमें लौट आते हैं। इन अस्त्रोंकी चलानेके निमित्त भी महा अनुभव अर्थात् अत्यन्त ही मानसिक बलकी आवश्यकता होती है इन सम्पूर्ण अस्त्रों को इस समय देवताओंने दैत्योंकी जीतकर अपने अधिकारमें कर लिया है। इस स्थानमें देवताओं के अधिकारसे पृथक् पहले दिव्य शस्त्रोंके चलानेवाले राक्षस और दैत्योंका निवास था। इसी वारुणरुद्धमें बड़ी भारी शिखासे युक्त बाड़वानल है, धूँवसे रहित अग्निसे युक्त अर्थात् प्रचण्ड ज्वालाके सहित सुदर्शन चक्र और लोक संहारके निमित्त भली भाँति से रक्षित यह गाण्डीमय धनुषकी देवता लोग नित्य ही रक्षा करते हैं। इसीसे उस प्रसिद्ध गाण्डीवधनुषका नाम करण जुआ है। लाख धनुषके समान इसमें बल है, और अचल रूपसे रहनेपर भी यह कार्यके समयमें यह कितना बल और तेजको धारण करता है, उसका वर्णन करना बल्लत ही काठिन है। यह राक्षस आर राजाओंसे शासन न कियेजाने योग्य

पुरुषोंकी भी शासित करता है। वृश्चाने पहिले ही यह प्रचण्ड धनुष बनाया था। शुक्राचार्यने कहा था, कि राजाओंके निमित्त यह धनुष परम शस्त्र है। जलके खासी वस्त्रके पुत्र इस महाधनुषकी धारण किया करते हैं। और भी देखो, कृतवल्हके बोच जलराजका जो आतपत्र रहता है, वह बादलोंकी भाँति सदा और शीतल जलकी वर्षा किया करता है। कृतसे निकला जुआ वह विचित्र जल चन्द्रमाले समान निर्मल होनेपर भी महा घोर अस्त्रकार से इस भाँति छिपा रहता है, कि किसीको दीख नहीं पड़ता। हे मातलि ! इस स्थानमें इसी भाँतिके वल्लतसे प्रदार्थ दीख पड़ते हैं, परन्तु सबकी देखनेसे तुम्हारे कार्यकी हानि होगी; इससे अब बल्लत विलम्ब न करके चलो शीघ्रतासे हम लोग गमन करें।

६८ अध्याय समाप्त ।

श्रीनारदसुनि बोले, नाग लोकके बीचमें जो यह पुरी दीख पड़ती है, इसका नाम पाताल है। स्थावर तथा जड़म जीवोंमेंसे कीर्ति इस पातालपुरीमें जलके वेगके सङ्ग आजाता है, वह इस पुरीमें प्रवेश करनेके समय भयंकर पीड़ित होकर महा घोर शब्द किया करता है। जलको भस्म करनेवाला बाड़वानल इस स्थानमें नित्य ही प्रज्वलित रहता है। वह देवताओंकी दृष्ट्याके अनुसार अपना यह कर्तव्य कार्य जानता है, इसीसे मर्यादाको न लापसार यत्नके साथ स्थिर भावसे रहता है। देवता लोग शत्रुओंका संहार करनेके अनन्तर अमृत पीके इसी स्थानपर सञ्चित करके रख द्वाड़ते हैं, इसी कारण यहापर चन्द्रमाकी कलाका नाश नहीं होता। इसी स्थानपर अदितिके पुत्र हयग्रीवरूपी विष्णु, वेद पढ़नेवाले ब्राह्मणों की वेदध्वनिकी वल्लित करनेके निमित्त वेदवाक्यसे सुवर्ण नामका जगतकी परिपूर्ण तरंग

इए प्रति पर्वके दिवस उपस्थित करते हैं। चन्द्रमा आदि सम्पूर्ण जलकी मूर्तियाँ इसी स्थानपर पतित जाती हैं अर्थात् जलको पातन करती हैं। इसी कारण यह उत्तम लोक “पतञ्जल” के संचिपसे पाताल कहके विख्यात हुआ है। जगतके हित करनेवाले हाथियोंके राजा ऐरावत इसी स्थानसे सुन्दर तथा शीतल जल ग्रहण करके सब मेघोंके बीच चलाया करते हैं; जिसकी देवताओंके राजा इन्द्र पृथ्वीके उपर वर्षाया करते हैं। इस स्थानमें नाना प्रकारके जलजन्तु जलके बीच चन्द्रमाके प्रकाशका पान करके निवास करते हैं।

सूत ! इस पातालतलके आसरेमें ऐसे बृहत्तम जीव हैं, जो दिनमें सूर्यके तेजसे मृत प्राय हो जाते हैं, और रात्रिके समय फिर जीवित होते हैं। उसका कारण यह है, कि यहांपर चन्द्रमा प्रति रात्रिको उदित होकर अपने किरणरूपी हाथोंसे अमृत स्पर्श कराके उनकी फिर जिला देते हैं। इन्द्रके हाथसे सर्वस्व हरे जानेपर कालसे पीड़ित होकर अपने धर्ममें सदा स्थित रहनेवाले प्रसिद्ध दैत्य लोग यहाँपर इच्छाके अनुसार निवास करते हैं। सब प्राणियोंके महेश्वर उमापति महादेवने इसी स्थानपर सब लोकाँके कल्याणकी इच्छासे उत्तम तपका अनुष्ठान किया था। सदा वेदको पढ़ने और स्वर्गको जीतनेवाले गोब्रतधारी महा ऋषि लोग प्राणवायुका सयम करके इसी स्थानमें बसते हैं। जहाँ तहाँ कोई स्थानमें सो रहना, जो कुछ भोजन मिले उसीसे तृप्त होना, और जो कुछ वस्त्र मिले उसीको धारण करना, इसीकी गोब्रत कहते हैं। इसी पुरमें सुप्रतीक नाम नागकी वशमें नागराज ऐरावत वामन, कुसुद, अञ्जन आदि मुख्य मुख्य नागोंका जन्म हुआ है। हे मातलि ! इससे तुम यहाँपर अच्छी मातिसे खोजकर देखो यदि कोई

वर तुम्हारी इच्छाके अनुसार ठीक जचे, तो उसके समीप चलकर यत्नपूर्वक तुम्हारी कन्याके प्राणिग्रहणके निमित्त उससे प्रार्थना की जाय। जलके बीच यह जो अरुण अपने तेजसे प्रकाशित हो रहा है, यह सम्पूर्ण प्राणियोंकी सृष्टिके समयसे कभी न फटा, न यहाँसे हटा। मैं कभी किसी पुरुषको इसका जन्म तथा स्वभाव वर्णन करते- नहीं सुना है। इसके पिता माता कौन हैं ? इस बातकी कोई नहीं जानता। हे मातलि ! यह वचन प्रसिद्ध है, कि संसारके नाश होनेके समय इसमेंहीसे प्रलयकी अग्नि निकलकर सब प्राणियोंके सहित तीनों लोकको भस्म कर देती है।

चारदमुनिकी इन सब बातोंकी सुनकर मातलिन कुछ भी उत्तर न दिया, और कहा कि इस स्थानपर मेरी इच्छाके अनुसार कोई पात्र नहीं जचता, इससे अब आप दूसरे स्थानपर शीघ्र ही चलिए।

६६ अध्याय समाप्त ।

श्रीगारद मुनि बोलि, अत्यन्त मायावी दैत्य दानवोंका पातालके तलपर यह उत्तम महानगर हिरण्यपुर नामसे विख्यात है। इस नगरको मय-दानवने अपने मनसे कल्पना की थी और विश्वकर्माने इसको महा परिश्रम और यत्नके साथ बनाया है। सहस्रा मायाओंके रचनेवाले महा तेजस्वी शूर वीर दानव लोग पहिलेसे वरदान पाकर इसी स्थानमें निवास करते हैं। उन लागाकी इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर तथा दूसरा कोई भी पुरुष अपने वशमें नहीं कर सकता। हे मातलि ! विष्णुके चरणसे उत्पन्न हुए कालखञ्ज नामक असुर और ब्रह्माके चरणसे उत्पन्न भयैर्ऋत, आरयातुधान नामक राक्षस लोग भी इसी स्थानमें निवास करते हैं। वे सब बड़े बड़े दातोसे युक्त, भयङ्कर-वेगशाली और वायुकी समान पराक्रमी तथा साधावतसे

पूर्ण है। इसकी अपतिरिक्त इस स्थानमें और भी निवातकवच नासक कितने ही दानवोंका निवास है। इन्द्र भी उन लोगोंके बल और पराक्रमकी जाननेमें समर्थ नहीं होते, सो बात तुमसे छिपी नहीं है। एकवार ध्यान देकर देखो, तुम और तुम्हारा पुत्र गीमुख और पुत्रोंके सहित देवताओंके राजा इन्द्र कई बार उन लोगोंके समुखसे युद्धमें भाग गये हैं। हे मातलि ! दैत्य लोगोंके सोने, चादी, पद्मराग मणि तथा विविध शिल्पांसे युक्त यथायोग्य रूप और मनोहर धरोकी देखो, यह सब वैदूर्य और दूसरी मणियोंसे भरी गाति चित्रित, अग्निके समान हीरेसे जगमगा रहे हैं, तथा स्फटिकके समान श्वेत, सुन्दर और बज्रत ज चे हैं। ये सब सन्दिर सट्टी, शिला और काठसे बने हुए, सूर्यके तेजके समान प्रकाशित हो रहे हैं। इन मान्दरोकी बज्रत प्रकारके द्रव्य और शिल्पोंको सख्या करनेसे बज्रतहा कठिन है, गुणसे हो इन सब मान्दरोकी सिद्ध होता है। और भी इस मनोहर क्रीड़ाकानन, रत्नोंसे युक्त पाल, महामूल्यवान् आसन, सुन्दर शय्या, बादलके समान पर्वत, सुन्दर फुहार और अभिलाषाके अनुसार फूल फलसे युक्त सब वृक्षोंको देखो। हे मातलि ! यदि इस स्थानमें तुम्हारे मनके अनुसार कोई पाल ठोक हो, तो उसे तुम देखो, और नहीं तो चलो हम दोनों दूसरे स्थानपर चलें।

मातलि ऐसे अचन कहनेवाली नारदसे बोली हे देवर्षि ! देवताओंके अप्रिय कार्य करना मुझे किसी प्रकारसे भी उचित नहीं है, देवता और दानव दोनोंमें सदासे वैर चला आता है, इससे शत्रुपक्षके सङ्गमें कैसे अपना सम्बन्ध कर सकता हूँ ? सम्बन्ध करनेकी बात तो दूर रही, दानवोंके सङ्ग भेंट भी करना मेरे निमित्त बज्रत ही अनुचित है। इससे चलिये हम लोग शीघ्र ही दूसरे स्थानपर गमन करें

आपको आत्मा जो अत्यन्त ही हिसात्मक है, वह मुझे भली भाँतिसे विदित है।

१०० अध्याय समाप्त ।

श्रीनारदमुनि बाले, यह लोक सापोंका भक्षण करनेवाली गरुड़ वशोय पक्षियोंके अधिकार में है। पराक्रमका प्रकाश करने, शीघ्र चलने और बीभा उठानमें इन पक्षियोंका कुछ भी परिश्रम नहीं जान पड़ता। विनतापुत्र गरुड़, सुमुख, सुनाम, सुनेत्र, सुवक्त्रा सुक्ष्म और सुबल इन्हीं के पुत्रोंमें इस कुलका विस्तार हुआ है। काश्यपके वंशमें उत्पन्न हुए विनताके कुलको बढानवाली मुख्य मुख्य पक्षियोंने अपना सन्तान परम्पराके अनुसार सात हजार कुल परिवर्तित और अच्छी प्रकारसे वर्द्धित किया है। इस सब कुलोंमें उत्पन्न हुए पक्षी लक्ष्मोंसे युक्त बज्रतर्षा सम्पत्तिके स्वामी और महा बलवान् हैं। कर्मसे ये क्षत्रिय कहे जा सकते हैं, परन्तु सापोंका भक्षण करके ये सब बज्रत ही निठुर होगये हैं। जातिके नाश करनेसे ब्राह्मणत्व नहीं पा सकते। हे मातलि ! मैं उनमेंसे मुख्य मुख्य पक्षियोंके नाम कहता हूँ, तुम सुना। विष्णुका बाहन हानसे यह कुल अत्यन्त ही प्रशंसाका पात्र हुआ है, विष्णु ही इन सबके पूजनोद्य देवता है, य सब उनकी पूजा किया करते हैं। इनके हृदयमें विष्णु सदा विराजमान रहते हैं, और इन सबके सदा ही गाति स्वरूप है। उनके नाम ये हैं, सुवर्णचूड़, नागाशी, दास्य, चण्डमुख, अनिल, अनल, विशालाक्ष, कुण्डलो, पद्मजित, वज्रनिष्कन्त, वैनतेय, वासन, वातवेग, दशवक्त्र, निमिष, त्रिवार, सप्तवार, वात्माकि, दोषक, दैत्यहीन, सरिद्धीप, सारस, पद्मकोतन, सुमुख, चित्रकोतु, चित्रवर्ह, अनघ, मेघहृत, कुमुद, रज, सर्पान्त, सोमभाजन, गुह्यभार, कपोत, सूर्यनेत्र, चिरान्तक, विष्णुधर्मा, कुमार, परिवर्ह, हारि, सुखर, मधुपर्क, हैमवर्ण, सलय, मातरिखा,

निशाकर और दिवाकर । गण्डवंशी अन-
गिनत पक्षियोंके बीचसे बेंने केवल कई एक
मुख्य मुख्य पक्षियोंके नाम माठ कहे हैं । जो
सब यश, कीर्ति और प्रधानता पाये हुए हैं इस
स्थानमें उन्हींका नाम वर्णन किया गया है ।
हे मातलि ! यदि इस स्थान से तुम्हारी रुचि न
होवे, तो चलो दूसरी आर चले, जहापर तुम
अपने मनके अनुसार योग्य पात्र पाओगे, मैं उसी
स्थानपर तुमको ले चलूंगा ।

१०१ अध्याय समाप्त

श्रीनारद मुनि बोले, अब इस लोग जिस नगरमें
आकर उपास्थित हुए हैं, इसका नाम रसातल
है । यह पृथ्वीके सातवें तलेपर विराजमान है ।
इसी स्थानपर अमृतसे उत्पन्न भई गोमाता सुरभी
सदा विद्यमान रहती है, यह नित्यही पृथ्वीके
साराशसे उत्पन्न छ, रसोंके सारभाग उत्तम
और पवित्र अद्वितीय रसके आकर स्वरूप
दूधकी वर्षा किया करती है । यह अनिन्दिता
गोमाता पहिले समयमें अमृतके पीनेसे तृप्त हुए,
सारवस्तुकी वसन करनेवाले, सब लोकोंके
पितामह ब्रह्माके मुंहसे उत्पन्न हुई थीं । इनके
दूधकी धारा पृथ्वीपर गिरनेसे महाऊदस्वरूप
क्षीरके समुद्रकी उत्पत्ति हुई है । इस क्षीर
सागरके सम्पूर्ण स्थान फेनके पुञ्जसे युक्त
रहनेसे ऐसा बोध होता है, जैसे फूल फूला हुआ
है । उस सब फेनकी पान करनेकी निमित्त
फेनप नामक मृनि इस स्थानमें वास करते हैं ।
केवल फेनकी पान करनेहीसे उनका फेनप
नाम हुआ है । हे मातलि ! वह इस प्रकारको
कठोर तपस्यामें लगे हैं, कि देवता लोग भी
उनसे डरते रहते हैं । सुरभीके गर्भसे उत्पन्न
हुई और चार गज पूरव आदि चारों निवास
करती है । दिशाओंके धारण करनेसे उनका
नाम दिक्पाली प्रसिद्ध है जो पूर्व दिशाकी
रक्षा करती है उनका नाम सुखपा है, जो

दक्षिण दिशाकी धारण कर रही है, उनका
नाम हंसिका है, जो विश्वरूपिणी गज वक्त्रा
देवकी पश्चिम दिशाकी धारण करती है, उनका
नाम मुमूद्रा है, और जो उत्तर दिशाकी धारण
करती है, उनका नाम सर्वकामदुधा है । देव
और असुरोंने मन्दरगिरिकी मथानी बनाकर
इसीके दूधसे मिले हुए समुद्रकी सथकर वारुणी
सुरा लक्ष्मी, उच्चैश्रवा नामक घोड़ा और
रत्नोंमें ओष्ठ कौस्तुभ मणि आदि निकाला था । हे
मातलि ! सुरभीके अनन्त गुणोंकी कथा मैं क्या
कहूं, वह जो महा पवित्र उत्तम दूध देती है
वह नागोंको सुधा, पितरोंको स्वधा और देवों-
के पक्षमें अमृतस्वरूप होता है । “रसातलमें वास
करनेसे जैसा सुख मिलता है, वैसा सुख नाग-
लोक, देव लोक, स्वर्ग और विमानमें भी नहीं
मिल सकता है ।” रसातलके निवासी लोगोंने
पहिले समयमें यह पुरानी कथा कही थी,
वही आज पश्यन्त लोकोंके बीच पण्डितोंके
मुंहसे सुनी जाती हैं ।

१०२ अध्याय समाप्त ।

श्रीनारद मुनि बोले, इंद्रकी अमरावती
पुरीकी भांति वह जो उत्तम नगरी दोख पड़-
ती है, इसका नाम भोगवती है । यह नागोंके
राजा वासुकी नागके अधिकारमें है । अपने
प्रभावसे वह सम्पूर्ण पृथ्वीकी सदासे धारण
किये हुए है, तपकी बलसे वह सपके अग्रगामी
पर्वतके समान उज्ज्वल शरीर, दिव्य आभूषणों-
से भूषित प्रज्वलित जिह्वाओंसे युक्त महाबली
तेजस्वी शेषनाग इसी स्थानमें विराजमान हैं ।
इसी स्थानमें नागोंकी माता सुरसाके सहस्रों
पुत्र पीडा रहित होकर स्वच्छन्दतापूर्वक वास
करते हैं । वे सब नाना भातिके आकारसे युक्त
अनेक भूषणोंसे भूषित, मणि, स्वस्तिक, चक्र
और कमण्डलुके चिह्नोंसे युक्त महाबली और
स्वभावसे ही भयङ्कर हैं । उनमेंसे कोई कोई सहस्र,

कोई पांच सौ, कोई सौ, तथा कोई दश शिर-
वाले और कोई तीन तथा दो शिरके सर्प है;
इन सबोंका बड़ा विशाल शरीर है, और इनके
निवास स्थान भी बहुत बड़े हैं। हे मातलि ।
इस स्थानमें एक ही वंशमें कितने सहस्र, लाख
तथा कितने अर्बुद नागोंका वास है; उसको
कौन कह सकता है। उनमें मुख्य मुख्य कई
एक श्रेष्ठ नागोंका है तुमकों नाम बतलाता हूं
इसे तुम सुनो; वासुकि, तक्षक, कर्कोटक, धन-
ञ्जय, कालिय, नङ्ग, कम्बल, अश्वतर, वाच्य-
कुण्ड, मणि, आपूरण, खग, वासन, ऐलपत,
कुक्कुर, कुक्कण, आर्यक, नन्दक, कलशपोतक,
कैलाशक, पिण्डरक, ऐरावत, सुमनीमुख, दधि-
मुख, शङ्ख, नन्दक, उपनन्दक, आप्त, कीटरके
शिखी, निष्ठुरक, तित्तिरि, हस्तिभद्र, कुमुद,
मातृपिण्डक, पद्म हय, पुण्डरीक, पथ, मुहुर-
पर्णक, पिठरक, सस्त्रुत, वृत्त, पिण्डार, विश्वपत
भूषिकाद, शिरीषक लिप, शङ्खशोर्ष, ज्योतिष्क
अपराजित, कौरव्य, हृतराष्ट्र, कुहर, कुशल,
विरजा, धारण, सुवाह, सुखर, जय, बधिर,
अम्भ, विशुण्डि, विरस और सुरस कश्यपके ये
सब और कई सौ पुत्र जो सब पुरोमें विद्यमान
हैं, उनकी संख्या करनी बहुत ही कठिन है।
इससे यदि इस स्थानमें कोई तुम्हारे मनके
अनुसार पात्र मिले तो देखो।

श्रीकण्व मुनि बोले, मातली स्थिर चित्त
होके एक सुन्दरयुव की देखके हर्षित हुए और
नारदसे उसका वृत्तान्त पूछने लगे। मातलि
बोले, हे देवर्षि । कौरव्य आर्यकके सन्मुखमें
यह जो तेजस्वी देखने योग्य युवा पुरुष बैठा है;
यह किस कुलमें उत्पन्न हुआ है? इसके पिता
माता कौन हैं? किस भाग्यवान्के वंशकी यह
ध्वजा होकर जन्मा है? विद्या, विनय, रूप और
गुण तथा अवस्थाके क्रमके अनुसार यह गुण
केशरी पुरुष श्रेष्ठ वर मेरे मनमें जंचता है।

कण्व मुनि बोले, जब समुख नामक

नागराजको देखके मातलि प्रसन्न हुए,
तब नारद मुनि उसके जन्म, कर्म और
महात्म्यका वर्णन करने लगे। नारद बोले,
यह नागराज ऐरावत वंशमें उत्पन्न हुआ
है; इसका नाम समुख है; यह आर्यकका
प्यारा पौत्र और वामनका दौहित्र है। हे
मातलि । चिकुन नामक नागराज इसके पिता
थे, थोड़ा ही समय बीता हीगा, कि वह गर्-
भके हाथमें पञ्चत्वकी प्राप्त होगये। यह सब
वार्ते सुनकर मातलि अत्यन्त प्रसन्न होके नार-
दसे बोले, हे तात ! यह नागोंमें श्रेष्ठ सुमुख ही
मेरे मानसिक जामाता (दामाद) हुए, इनके
जपर मेरा बहुत ही प्रेम उत्पन्न हुआ है
हे मुनिश्रेष्ठ । इससे अब इसी नागराजके
हाथमें मेरी प्यारी पुत्रीको प्रदान करानेकी
निमित्त यत्न कीजिये।

१०३ अध्याय समाप्त ।

मातलिकी प्रार्थनासे नारद मुनि आर्यकके
समीप जाकर बोले, हे भुजगसत्तम । यह हमारे
साथी महात्मा पुरुष इन्द्रके सारथी और प्रिय
मित्र हैं, इनका नाम मातलि है। ये पवित्रता,
आचार, शील गुणोंसे भरे हुए, तेजस्वी परा-
क्रमी तथा महाबलवान् हैं। ये केवल इन्द्रके
सारथी ही नहीं हैं, यह उनके प्राणके समान
प्यारे मित्र और सन्धी भी हैं। हर एक इन्द्रके
स्थानमें इन्द्रके सहित इनका पराक्रम थोड़ा
कम वेशी दीख पड़ता है। देव और असुरोंके
युद्धके समयमें इन्होंने इन्द्रका सहस्र घोड़ोंसे
युक्त जयशील रथ लेकर ऐसी शीघ्रतासे रण-
भूमिमें उपस्थित किया, कि बोध होता था,
जैसे मन ही मनसे रथकी चला रहे हैं। इनके
प्रभावके वात में कहातक वर्णन कतं यह
घोड़ोंके, चलानेके कौशलहीसे शत्रुओंकी परा-
जित किया करते हैं, पीछे इन्द्र अपनी दोनों
भुजाओंकी सहायतासे विजय पाते हैं। इनके

बिना पहिले प्रहार किये, इन्द्र कभी अपना-
दिव्य अस्त्रोंको नहीं चलाते । इनके घरमें
गुणकेशी नामकी अनेक गुणोंसे भरी एक सत्य-
शीला सुन्दरी कन्या है । पृथ्वी भरमें वैसी
रूपवती स्त्री और कहीं नहीं है । उसके योग्य
वर दृढ़नेके निमित्त ये तीनों लोकमें घूम रहे
सम्पत्ति सुमुख नामक तुम्हारे पौत्रको इन्होंने
गय पात्र स्थिर किया है । इससे हे देवाके
आर्थिक । यह बात तुम्हें उत्तम जंचे तो
न्या-रत्नका पाणिग्रहण करानेके निमित्त यत्न
करो । जैसे विष्णुके सङ्ग लक्ष्मी और अग्निके
सङ्ग स्वाहा है, वैसे हो सुन्दरी गुणकेशी भी
तुम्हारे कुलकी लक्ष्मी होंगे । इन्द्रकी शचीकी
भाति गुणकेशी सुमुखके योग्य उत्तम पात्रो है
और सुमुख भी गुणकेशीके योग्य है । इससे
तुम पौत्रके सङ्ग उस महासुन्दरी कन्याका व्याह
करो । सुमुख पितासे हीन है, तौ भी हम लोग
उसके गुण भावको देख करके उसके सङ्ग गुण-
केशीका व्याह किया चाहते हैं । तुम्हारे ऐरा-
वत कुलका भाग, प्रतिष्ठा, सुमुखकी पवित्रता,
शौल, दम आदि अनेक गुणोंको देख करके
मातलि आप हो इस स्थानपर आकर सुमुखके
संग अपनी कन्याका व्याह करनेके निमित्त
तैयार हैं, अब इस समयमें तुमको भी इनका
पूर्ण रीतिसे सम्मान करना उचित है ।

कण्व मुनि बोले, आर्थिक पुत्रके मरने और
पौत्र (नाती) को किसी प्रकारसे जीवित देख-
नेके कारण नारद मुनिके वचनसे हर्ष और
विषादसे युक्त होकर बोले, हे देवर्षि । आपके
वचनका मुझे किसी भातिसे अस्वीकार नहीं
हो सकता, जो इन्द्रके मित्र है, उनके सङ्ग
सम्बन्ध करनेकी किसी इच्छा न होगी ? परन्तु हे
महामुनि । जिस प्रकारसे यह सम्बन्ध हो
सकेगा उसीके निमित्त मुझे चिन्ता हो रही
है । हे तात ! पहिले तो सुमुखका पिता जो
मेरा पुत्र था, वह विनतापुत्र गरुड़के कराल

हाथोंसे मारा गया, उसी शोकसे हम लोग
दुःखित हैं, उसपर भी वह निठुर पत्नी जानेके
समयमें यह कह गया है, कि “अगले महीनेमें
सुमुखको भी मच्छण कखंगा ।” तब किस प्रका-
रसे मुझे हर्ष हो सकता है ? मैं यह निश्चय
जानता हूँ, कि गरुड़ जो कुछ कह गया है, उसे
वह अवश्य पूरा करेगा । इससे इन सब बातोंकी
स्मरण करके हमारे सम्पूर्ण हर्षका नाश हो
गया है । आर्थिकको इन सब बातोंकी सुनकर
मातलि उनसे बोले, मैंने इस विषयमें एक युक्ति
स्थिर की है, आपके पौत्र सुमुखको मैंने
अपनी कन्याका मानसिक पति ठहरा लिया
है, इससे अब यह नागराज मेरे संग चलके
तीनों लोकके राजा इन्द्रके संग साक्षात्
(सुलाकात) करें । गरुड़से इन्हें बचानेके
निमित्त मैं सब भातिसे यत्न कखंगा, अनन्तर
शेष कार्यसे इनके परमायुका विषय जान
सकूंगा । हे भुजगसत्तम । आपका कल्याण
हो, आप आज्ञा दीजिये, सुमुख हम लोगोंके
संग इन्द्रके समीप गमन करें ।

कण्व मुनि बोले, अनन्तर उस महा तेजस्वी
मातलिने नारद और आर्थिकके सहित सुमुख-
की संग लेकर इन्द्रपुरीमें आकर देखा, कि
देवताओंके राजा महा तेजस्वी इन्द्र अपने सिंहा-
सनपर बैठे हुए हैं और सब देवता तथा चार
भुजको धारण करनेवाले भगवान् विष्णु भी
वहापर उपस्थित हैं । तब नारद मुनिन उन
सबके बीचमें मातलिके विषयका सम्पूर्ण
वृत्तान्त आदिसे अन्ततक वर्णन कर दिया ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर विष्णु
तीनों लोकके स्वामी इन्द्रसे बोले, हे
इन्द्र ! तुम इस नागराजका अमृत दान
करके देवताओंके समान कर दो, तुम्हारी
इच्छासे मातलि, नारद और सुमुख सब
कोई अपनी इच्छा पूर्ण करे । विष्णुके
इस वचनका सुनकर इन्द्र वृद्धत समयतक

अपने मन ही मन गरुड़के पराक्रमको विचार-
कर अन्तमें बोले कि आप सुभी जो आज्ञा देते
हैं, उसे आप ही सिद्ध कीजिये, सुमुखको आप
स्वयं अमृत पान करिये । विशु बोले, हे इन्द्र !
तुम इस सम्पूर्ण लोकके स्वामी हो, इससे तुम
जिसे जो कुछ प्रदान कराग, उसे कौन अन्यथा
कर सकेगा ? यह वचन सुनकर वृतासुरके
मारनेवाले इन्द्रने उस नागराजकी उत्तम आयु
प्रदान की, परन्तु अमृत पान नहीं कराया ।
सुमुख वर पाकर यद्यार्थमें सुमुख होगये;
अर्थात् उनके सुखमण्डलपर उस समयमें प्रसन्न-
ताका चिह्न स्पष्ट प्रकाशित होने लगा । यथा
समयमें अभिलाषाके अनुसार गुणकेशीके सङ्ग
ब्याह करके वह अपने स्थानको गये, और
नारद तथा आर्य्यक भी कृतकाये होकर इन्द्रकी
पूजा करके अपने अपने स्थानोंपर चले गये ।

१०४ अध्याय समाप्त ।

कण्व मुनि बोले, द्रधर महाबली गरुड़ने
जब इन्द्रपुरीका यह सब वृत्तान्त सुना, कि देव-
ताओंके राजा इन्द्रने सर्पकी आयु प्रदान किया है,
तब उनके क्रोधकी सोसा न रहो। वह
उसी समय अपने महाविकराल बड़े बड़े दोनों
पंखोंकी पसार कर, दोनों लोकको अपने पक्षोंसे
रुद्ध करते हुए, अत्यन्त वेगसे दौड़े, और इन्द्रके
समोप पङ्कचकार बोले, हे भगवन् । तुम अवज्ञा
करके मेरी वृत्ति लोप करनेमें क्यों प्रवृत्त हुए
हो ? पहिले तुमने अपनी इच्छासे सुभी वर
दिया था, अब उससे क्यों हटते हो ? सब
श्रष्टिकी रचनेवाली ब्रह्माने मेरा जो कुछ आहार
बना दिया है, तुम उसको क्यों रोकते हो ?
हे देवराज । सुमुखके भाससे हमारी वृद्धतसी
सन्तानोंका भाजन होगा, यहो मनमें स्थिर
करके मैंने इस महानागको मारनेका समय
ठोककर रक्खा था । इस समय वह वर पानसे
अव्यव होगया ; तो अब मैं दूसरे किसीकी

हिंसा करनेमें कैसे उत्साही हो सकूंगा ? तुमने
इसको जैसे वरदान दिया है, दूसरेपर भी वैसे ही
अनुग्रह करनेमें कौन कठिनाई है ? हे इन्द्र ।
तुम्हारे इस प्रकारके खेल करनेसे सुभीको
कुटुम्ब तथा सेवकोंके सहित अवश्य ही प्राण
त्याग करना पड़ेगा, ऐसा होनेसे तुम भलो
भाति सत्पुत्र होओगे । हे इन्द्र । तीनों लोकके
ईश्वर होकर भी मैंने जब दूसरेको सेवा
स्वोकार को है, तब हमारे पक्षमें एसी
घटना होने ही उचित है, केवल ऐसा ही क्यों,
मैं इससे भी अधिक क्लेश पानेका पात्र हूँ ।
हे तीनों लोकोंके राजा इन्द्र । तुममें सुभी
कोई अधिकता न होनेपर भी जब तुमको
तीनों लोकोंका राज्य मिला है, तब विशु ही
अकेले हमारी महिमाकी नष्ट करनेके कारण
नहीं है । देखा दंष्ट्रहोकी पुत्री मेरी मात
और कश्यप हो मेरे पिता है, मैं भी लीलान्
क्रमसे सब लोकोंके भारको उठा सकता हूँ ।
मेरा भी यह प्रचण्ड बल सब प्राणियोंसे
सहने योग्य है, दैत्योंकी लड़ाईमें मैंने भी बड़े
बड़े कर्म पूर्ण किये हैं, अतश्च, अतसेन
विवस्वान्, रोचनामुख, प्रस्तुत, और कालकाद
आदि दैत्योंको मैंने भी मारा है । तब जो मैं
तुम्हारे भाईका सेवक होकर यत्नपूर्वक रथकी
ध्वजाकी रक्षा करता हूँ ; और अनेक समयमें
उन्हें पीठपर चढ़ाके ले चलता हूँ ; इससे
तुम मेरो अवज्ञा करते हो । हे इन्द्र । सम्पूर्ण
जगतमें मेरे समान भार उठानेवाला तथा
सुभीसे अधिक बलवान् और दूसरा कौन है
मैं सब प्रकारसे श्रेष्ठ होकर भी वन्धुवाच्योंके
सहित इनका भार उठाता हूँ सम्प्रति तुमने मेरी
अवज्ञा की और सुभीको भोजनसे वञ्चित
किया, इसमें तुमसे और इनसे दानोंहोसे मेरा
गौरव नष्ट होगया । हे विशु । अदितिके गर्भमें
ये सब इन्द्र आदि जितने बल और पराक्रमसे
युक्त शूरवीरोंका जन्म हुआ है, उन सबमें

तुम ही सबसे अधिक बलवान् हो, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है । परन्तु मैं तुमको अपने पङ्कके थोड़ेसे स्थानपर उठाकर बिना हाथके फिरा करता हूँ, इससे ही भाता । तुम स्थिर चित्तसे विचार करके देखो, कि इस लागोंमें अधिक बलवान् कौन है ?

कण्व मुनि बोले, चक्रधारी भगवान् विष्णु गरुड़के अभिमानसे भरे दारुण वचनोंको सुनकर उन्हें भयभीत करते हुए गम्भीर भावसे बोले । हे गरुड़ ! तुम अत्यन्त निर्बल होकर भी अपनेको बलवान् समझते हो, मेरे सम्मुख तुम्हें इस प्रकारसे अपनी बड़ाई करना उचित नहीं है । हे अण्डज ! तुम्हारी तो बात ही क्या है, यह सम्पूर्ण तोनों लोक भी मेरे भारको उठानेमें असमर्थ है, मैं खुद अपने शरीरको आप ढाता रहता हूँ, और तुमका भी धारण किये हुए चलता हूँ । तुम इस बातको सचाईके निमित्त यही मेरो एक भुजा उठा करके देखो, यदि तुम मेरे इस एक हाथके भारको धारण कर सको, तो भी तुम्हारा यह सम्पूर्ण गर्व सार्थक हो सकता है ।

विष्णुन ऐसा कहके गरुड़के कर्भपर ज्योंही अपन उस हाथको रखा, त्योंही वह महाभारसे विकल चेतनारहित हो गये । स्वर्गके सहित सम्पूर्ण पृथ्वीका जिना भार होता है, उतना ही भार विष्णुके एक हाथ मात्रका बाध हुआ । महा बलवान् दयालु भगवान् विष्णुन बलसे पोडित करते हुए यद्यपि गरुड़का प्राण नाश नहीं किया, तो भी उस महा भारसे पोडित होकर गरुड़ वमन करने और अपने दोनों पङ्काका फटकारने लगे, और मस्तकसे उन्हें प्रणाम कर कातर हाके बोले हे भगवन् ! हे विश्वसूते ! तुम्हारे इस शरीरके बीच जब सब लोकोंमें उत्पन्न हुई सम्पूर्ण वस्तु उपस्थित है, तब इच्छाके अनुसार अपन भुजाको पसारकर सुभक्तोंको विकल करना

कौनसी विचित्र बात है, हे देवोंके देव । अब इस समय कृपा करके निज ध्वजापर वास करनेवाले बलके घमण्डमें मतवाले अल्पबुद्धि विह्वल पक्षीके ऊपर चम्पा करो । हे सर्व शक्तिमान् ! मैं पहिले कभी तुम्हारे बलके माहात्म्यको नहीं जान सका था, इसीसे मैंने अपने मनमें समझ लिया था, कि मेरे समान बलवान् और कोई नहीं है । हे राजेन्द्र ! गरुड़के इस प्रकारके कातर वचन सुनकर भगवान् विष्णु प्रसन्न होके प्रीतिपूर्वक बोले, कि “फिर कभी ऐसा अभिमान न करना ।” ऐसा कहके अपने पैरके अङ्गूठसे सुमुख सर्पको उनकी छातीके ऊपर फेंक दिया । तभीसे पक्षिराज गरुड़ उस नागराज सुमुखके सङ्ग प्रीतिपूर्वक एकत्र वास करने लगे । हे गान्धारीनन्दन ! विष्णुके बलसे विकल होनेसे अत्यन्त बलशाली महायशस्वी विनतानन्दन गरुड़का गर्व इसी प्रकारसे दूर हुआ था । हे तात ! उसी प्रकारसे तुम भी जबतक सग्रामभूमिमें पाण्डवोंके सम्मुख नहीं होते हो, तभी तक जोवित रह सकते हो । प्रहार करनेमें श्रेष्ठ पवननन्दन भीमसेन और लोकोंमें महा प्रतापसे युक्त इन्द्रतनय अर्जुन रणभूमिमें किस पुरुषका नहीं मार सकते हैं ? हे दुर्योधन ! स्वयं विष्णु, वायु, इन्द्र, धर्म और दाना अश्विनोत्तुमारोंके सङ्ग युद्ध करनेको बात तू दूर रहै तुम उनको और देखनेसे भी समर्थ न होओगे । हे नृपनन्दन ! इससे विराध करनेका कुछ भी प्रयोजन नहीं है, गुरु स्वरूप कृष्णके द्वारा शान्ति स्थापन करके कुलको रक्षा करा । इन्होंने महा तपस्वी नारद मुनिने विष्णुके ऊपर कहे हुए सब महात्म्यको अपनी आंखोंसे उस समय देखा था । वही चक्र और गदाको धारण करनेवाले भगवान् तुम्हारी सभामें उपस्थित हैं ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, कण्व मुनिने ऐसा उपदेश दिया, यह ठीक है, परन्तु नीचबुद्धि

दुर्घोषधन भौंहें टेढ़ी करके लखी सास लेता हुआ कर्णके मुखकी ओर देखकर, जंचे स्वरसे ठठाकर हंसने लगा, और कण्व ऋषिके ऐसे हितकारी वचनोंका अनादर करते हुए, हस्तीके समान अपने उस देश (जङ्घे) को ठोक कर, यह उत्तर दिया । हे महर्षि ! मेरी जैसी अवस्था है, तथा मेरी जैसी गति होगी, ईश्वरने मुझको उसी निमित्त उत्पन्न किया है, और मैं भी उसीके अनुसार चलता हूँ, इससे प्रलाप करनेसे अधिक आप लोगोंको क्या फल हो सकता है ?

१०५ अध्याय समाप्त ।

राजा जनसेजयने पूछा, अनर्थकी सृष्टि करनेवाली, पराये धनकी लोभमें मोहित, नीचोंकी सङ्गतिमें रत । मरनेके निमित्त उद्यत, ज्ञातिको दुःख देनेवाली, मित्रोंको लेश देनेवाली, शत्रुओंका हर्ष बढ़ानेवाली और बुरे मार्गसे चलनेवाली दुर्घोषधनको उसके बन्धुबान्धवोंने क्यों नहीं निवारण किया ? प्रीति करनेवाली परम मित्र भगवान् कृष्ण और पितामह भीष्म आदि अपने अच्छे उपदेशोंसे उसे उत्तम मार्गमें क्यों नहीं चला सके ?

श्रीवैशम्पायन सुनि बोली, भगवान् कृष्ण और पितामह भीष्मको जैसा हितके निमित्त उपदेश वचन कहना उचित था, उन लोगोंने वैसा ही कहा था, उसके अतिरिक्त महर्षि नारदने भी जो विस्तारपूर्वक अनेक प्रकारके वचन कहे थे, आप उन्हें सुनिये ।

नारद सुनि बाली. मित्रोंकी बातोंका सुने ऐसा पुरुष दुर्लभ है, और हितकी बातोंका उपदेश करे ऐसे मित्रका मिलना भी बड़त काठन है । क्योंकि हितका वचन कहनेवाला वक्ता जिस कार्यकी करना निश्चित करता है, ओता उस बातमें स्थित नहीं रहता । परन्तु हे कुरुनन्दन ! मेरे विचारमें हितकारी मित्रोंकी बातें सुनना अत्यन्त ही कर्तव्य कार्य

है । हठके वशमें होना किसी प्रकारसे उचित नहीं है, क्योंकि हठ लेशका मूल है, हठ वशमें पड़कर गालव मुनिका जिस प्रकार पराभव हुआ था, वही पुराना इतिहासमें उदाहरण है । हे भारत ! पहिले समयमें तपस्रामें लगे हुए विश्वामित्र धर्मको जाननेके निमित्त भगवान् धर्मस वशिष्ठकी मूर्ति धारण करके उनके समीप गये थे । हे राजन् धर्मने वशिष्ठ मुनि वेष धारणकर चुधासे पोड़ित और भोज करनेकी इच्छासे विश्वामित्र मुनिके आश्रम आकर उपस्थित हुए । विश्वामित्र उसी समय आतुर होके उत्तम अन्नका पाक कराने लगे, परन्तु कपटवेशी धर्मने उनकी प्रतीक्षा न करके दूसरे तपस्वियोंके दिये हुए अन्न भोजन करके अपने भूखकी शान्ति की । उनके भोजनके शेष होनेपर विश्वामित्रने भी वह गर्म अन्न ला करके उपस्थित किया । तब भगवान् धर्मने कहा “हमने भोजन कर लिया है, तुम यहापर निवास करा ।” ऐसा कहकर वहासे चले गये । प्रशसनोय व्रतके अनुष्ठान करनेवाली महातिनसी विश्वामित्र भी उनके वचनके अनुसार उसी स्थानपर खड़े रहे । अपने दोनो हाथोंसे उर पात्रको शिरपर रखके वह वायु भक्षण करते हुए अचल रूपसे आश्रमके समीप खड़े रहे । उनके प्यारे शिष्य गालव मुनि गौरव और मान पानेके निमित्त प्रीतिके वशमें होकर यत्न पूर्वक उनकी सेवा टहल करने लग । इसी प्रकारसे लौ वष बीत गये, धर्मराज फिर वशिष्ठका वेष धारण करके भोजन करनेकी इच्छासे विश्वामित्रके समीप आये । उन्होंने देखा, कि वह बुढ़िया महर्षि शिरपर अन्नके पात्रको धारण करते उसी प्रकारसे वायु भक्षण करते हुए खड़े हैं, और अन्न भी वैसा ही गर्म तथा ताजा है । यह देखकर उन्होंने वह अन्न लेकर भोजन किया और बोली, “हे विप्रर्षि ! मैं पूर्ण रीतिसे बूढ़

हुआ हूँ।' ऐसा कहकर चले गये। विश्वामित्र धर्मके प्रचनसे क्षत्रिय भावसे कूटकर ब्राह्मणत्वको पाकर अत्यन्त ही प्रसन्न हुए। अनन्तर उन्होंने उस तपस्वी गालव नामक शिष्यकी सेवा टहलसे प्रसन्न होकर उससे बोले, हे पुत्र गालव। मैं अब तुम्हें आज्ञा देता हूँ, कि जहाँ तुम्हारा इच्छा हो, वहाँ जाओ। मुनिसत्तम महातेजस्वी विश्वामित्रकी इस बातकी सुनकर गालव मुनि अत्यन्त प्रसन्न होके मोठे वचनसे उनसे बाले, हे गुरु। गुरुदक्षिणामें आपको क्या दान दूँ? दक्षिणा-युक्त होनेहीसे मनुष्यका कर्म सिद्ध होता है। बिना दक्षिणा दिये कोई कर्मका फल नहीं प्राप्त कर सकता। उत्तम यज्ञके करनेवाले पुरुष दक्षिणासे ही स्वर्ग लोकमें यज्ञका फल पाते हैं। इससे गुरु-दक्षिणाके योग्य कौन वस्तु आपका दान करना होगी, उसके निमित्त आप आज्ञा दीजिये। भगवान् विश्वामित्र गालवको सेवाहोसे यथेष्ट दक्षिणा पा चुके थे, यही समझकर उन्होंने और दक्षिणा ग्रहण करनेकी प्रभिलाषा नहीं की। इसीसे उसको "तुम गमन करो" बार बार ऐसे ही वचन कहने लगे, परन्तु गालव मुनि बारम्बार ऐसे वचन-सुनकर भी हठपूर्वक 'क्या दक्षिणा दूँ, क्या दूँ?' ऐसी बात बारबार कहने लगे। तब विश्वामित्र उसके इस प्रकार महाहठको देखकर कुछ रोषसे भरकर यह वचन बोले। हे गालव। चन्द्रमाके समान सफेद और एक ओर श्याम कर्णसे युक्त ऐसे आठ सौ घोड़े लाकर मुझी दान करो; जाओ अब देरी मत करो।

१०३ अध्याय समाप्त ।

नारद मुनि बोले, बुद्धिमान् विश्वामित्रके ऐसी आज्ञा देनेपर गालव मुनि इकबारगी चिन्तारूपी समुद्रमें डूब गये। उनका सीना,

बैठना, खाना, पीना सब कूट गया। अत्यन्त ही सोच और चिंतासे सदा जलते हुए वह पाण्डु-वर्ण और सुखकर हड्डो मात्र रह गये। अत्यन्त दुःखसे पीड़ित होकर सन ही सन ऐसा विलाप करने लगे, कि "हाय। मैं दीन होन तपस्वी होकर चन्द्रमाके समान सफेद श्यामकर्णके आठ सौ घोड़े कहाँ पाऊँगा? मेरा ऐसा धनवान् कौन मित्र है, जिससे मैं माँग लूँगा। मुझी धन कहाँ है, सञ्चय ही मैंने कब किया है? हा। अब मुझी खाने पीने आदि विषयोंमें किस प्रकारसे अज्ञा हो सकता है? दूसरी बात तो दूर है, मेरे जीनेकी भी अब आशा नहीं है। मेरे जीनेहीसे अब क्या प्रयोजन है? व्यर्थ जीवनके भारकी ढीनेकी अपेक्षा मैं समुद्रके पार अथवा पृथ्वीकी अन्तिम सीमापर जाकर अपने प्राणको त्याग दूँगा। निर्धन मनुष्य बृहत्तसे उत्तम फलके लाभ करनेसे वञ्चित रहते हैं, ऋणी पुरुषको यत्न और चेष्टाके अतिरिक्त सुख पानेका और कौन उपाय है? जो मनुष्य प्रीतिके बन्धनमें बंधके मित्रोंके धनकी भीग करते हैं और अन्तमें उनके अभीष्ट कर्मोंके सिद्ध तथा प्रत्युपकार करनेमें असमर्थ हो जाते हैं, उनके जीनेसे सरना ही उत्तम है। मैं इस कार्यकी कल्पना ऐसा कहकर जो अधम पुरुष उस कर्मकी नहीं करता, उसके समान मिथ्या-वादी और कौन हो सकता है? उनके जप, यज्ञ आदि सम्पूर्ण कर्म नष्ट हो जाते हैं। मिथ्याप्रिय अधम पुरुषोंकी सन्तति, शरीर-शीमा, प्रभुता कुछ भी नहीं रह सकती। उसको उत्तम गति मिलनेकी संभावना कैसे हो सकती है? कृतत्र पुरुषकी यश, स्थान और सुख कहाँ है? कृतत्र किसी समयमें अज्ञा करनेके योग्य नहीं हो सकता, और न किसी कालमें उनका निस्तार होता है। धनहीन पापी पुरुषका जीना सरना दोनों ही समान हैं। पापी मनुष्य अपनी प्रतिज्ञाका पालन करनेमें

कैसे समर्थ होसकता है ? वह कृतज्ञ होकर अवश्य ही मृत्युको प्राप्त होता है । इससे मैं भी वही पापी, कृतज्ञ, कृपण और मिथ्यावादि हुआ हूँ । गुरुके निकट कृतकार्य होकर, जब उनको आज्ञाका पालन करनेमें असमर्थ हुआ हूँ, तब सब बातही मुझमें संभव हो सकाती है । इससे अब मेरे जीनेसे क्या फल होगा ? मैं गुरुके वचनका पालन करनेमें अपना सामर्थ्य भर यत्न करके अन्तमें अपने प्राणको त्याग दूँगा । यज्ञके स्थानमें सब देवता लोग मेरा सम्मान किया करते हैं, परन्तु पहिले कभी मैंने उन लोगोंसे कुछ नहीं मागा है । इससे सब देवोंमें श्रेष्ठ, अगतिके गति स्वरूप, विश्वव्यापक विष्णुका शरणागत होजंगा । जिससे सुर, असुर, नर और किन्नर सम्पूर्ण प्राणियोंका भाग और सब प्रकारका सुख प्रतिष्ठित है, उन्हो योगियोंमें श्रेष्ठ अविनाशी विष्णुके दर्शन करनेका मैं इच्छा करता हूँ ।

गालवसुनिके यह वचन कहते ही अकस्मात् उनके भित्त विनतापुत्र गरुड़ने आकर उन्हें दर्शन दिया, और अत्यन्त प्रसन्नतासे उनको प्रिय कामना सिद्ध करनेके निमित्त यह वचन बोले । हे प्रिय सखा ! तुम्हारे सङ्ग मेरी पूर्ण भिन्नता है, भित्तोंका कर्तव्य कर्म यही है, कि धन तथा पराक्रमसे अपने प्यारे भित्तोंके कार्य सिद्ध करनेके निमित्त यत्न करें । हे ब्राह्मण ! इससे मेरे परम सम्पत्ति स्वरूप भगवान् विष्णुसे मैंने पहिले ही तुम्हारा प्रयोजन सिद्ध करनेका निमित्त आवेदन किया था, और उन्होंने भी मेरी यह इच्छा पूर्ण की है, इससे चलो तुम्हें सुख पूर्वक हम ले चले गे, समुद्रके पार अथवा पृथ्वीकी अन्तिम सीमापर जहा तुम्हारी इच्छा हो वहा चला, विलम्ब करनेका कुछ भी प्रयोजन नहीं है ।

१०७ आध्यय समाप्त ।

गरुड़ बोले, हे ब्राह्मण-श्रेष्ठ गालव ! अज और अविनाशी चक्रधारो भगवात् विष्णुको आज्ञाके अनुसार मैं तुमसे यह पूछता हूँ, कि पहिले कौन दिशाके दर्शनके निमित्त तुम्हें ले चलूँ, सो तुम कहो । पूर्व, पश्चिम उत्तर और दक्षिण इनमेंसे पहिले किस दिशामें जानेकी तुम्हें अभिलाषा है ? जिस स्थानसे सब लोकोंके प्रकाशक सूर्यका उदय होता है, और सन्ध्याके समयमें जहापर साध्य नामक गणदेवता लोग तपस्या करते हैं, जिस जगह जगत् व्यापकी बुद्धिकी लोग प्रथम प्राप्तकर सकते हैं, धर्मके दोनों नेत्र स्वरूप सूर्य और चन्द्रमा और सव धर्म जिस दिशामें प्रतिष्ठित है, जिस दिशामें यज्ञके सम्पूर्ण हव्य पदार्थ होम होकर सब दिशाओंको भुङ्ग करते हैं, जो दिशा दिवस और कालसे द्वार स्वरूप है, पहिले दक्ष-प्रजापतिकी कन्याओंने जहा पर सब प्रजाओंको उत्पन्न किया था, कश्यप ऋषिके पुत्र लोग जिस दिशा में बढ़े थे, वही पूर्वदिशा देवताओंके सम्पूर्ण ऐश्वर्यकी जड़ है, क्योंकि इसी दिशामें शचीपति देवताओंके स्वामी इन्द्रका अभिषेक हुआ था और सब देवताओंने इसी स्थानमें पहिले तपस्या कीथी । हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! इसी कारण उसका नाम पूर्व दिशा हुआ है । इन्द्रको स्वर्गके राज्यपर अभिषिक्त होनेके वज्रत दिन पहिलेसे भी देवता लोग इस स्थानमें निवास करते थे, इसी कारण पुराने लोगोंने उसका "पूर्व" नाम रक्खा है । सुखको अभिलाषा करनेवाले देवताओंका सम्पूर्ण कार्य इसी दिशामें सिद्ध हुआ था । लोक भावन भगवान् पिता-महने पहिले इसी स्थानपर वेद गान किया था । सूर्यदेवने भी इसी स्थानमें पहिले ब्राह्मणोंको गायत्रीका उपदेश और याज्ञवल्क्य ऋषिको यजुर्वेद अध्ययन कराया था । हिंसत्तम ! इसी स्थानपर वर पाकर मोम यज्ञके स्थानमें देवताओंसे इन्द्र प्रसन्न हुए थे ।

वस्तुओंकी भक्षण करनेवाली अग्नि सदा तप्त होकर दूध आदि भक्षण किया करते है। जल-के स्वामी वरुणने इसी ओरसे पातालके तल भागपर जा करके राज्य लक्ष्मीको प्राप्त किया है। पहिले मित्रवरुणके यज्ञके समयमें पुराने वशिष्ठ ऋषिकी इसी स्थानमें उत्पत्ति, निवास और विनाश प्रकाशित हुआ था। प्रणवका जो सहस्र प्रकारका मार्ग है, वह इसी दिशामें कहा जाता है। ध्रुवां पीनेवाली सुनि लोग इसी स्थानमें होमका धुवा पीते छे' और देवताओंके यज्ञभाग निमित्त शचीपति इन्द्र वराह, मृग आदि सब वस्तु उनको दान देते थे। तेज और किरण धारण करने वाले भगवान् सूर्य इसी दिशामें उदय होकर, क्रोधके वशमें अहित शस्त्र करनेवाली ब्रतव्रज मनुष्य और असुरोंके प्राणका नाश करते है। मैं अधिक कहातक वर्णन करूँ यह दिशा तीनों लोककी द्वार स्वरूप है, स्वर्ग और सुख लाभके निमित्त यही उत्तम मार्ग है। इससे यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो इसी पूर्व दिशाकी ओर प्रवेश करें। हे गालव ! मैं जिसका आज्ञाकारी हूँ, उसका प्रिय कार्य पूर्ण करना मेरा अत्यन्तही कर्तव्य-कर्म है। इससे अब किस दिशाकी ओर चलें सो तुम कहो, यदि पूर्व दिशा देखनेकी इच्छा न हो, तो और एक दिशाका वृत्तान्त कहता हूँ, सो सुनो।

१०८ अध्याय समाप्त ।

गरुड़ बोले, यह दक्षिणा दिशा है। पहिले सूर्यने देवयज्ञके अनुष्ठानमें यह दिशा द्युल-दक्षिणामें दान किया था, इसीसे यह दक्षिणा दिशाके नामसे प्रसिद्ध हुई है। हे विप्र ! इसी दिशामें तीनों लोकका पितृ-पक्ष प्रतिष्ठित है। सुना जाता है ध्रुवा पीनेवाली देवता लोगभी इसी दिशामें निवास करते है। विश्वेदेव नामक जो करह मणदेवता है वे

लोगके बीच पितरोंके समान पूज्य और समान भाग पाकर उन लोगोंके सङ्ग सदा एकत्र होकर इसी दिशामें वास करते है। हे हिज-सत्तम ! पण्डित लोग इस दिशाकी धर्मका दूसरा द्वार स्वरूप वाहके वर्णित करते है ; क्योंकि इसी स्थानमें सत्त्वसे भी सत्त्व सब लोकोंकी परम आयुका निर्णय होता है, विशेष करके इसी दिशामें देवर्षि पितर लोग ऋषि और राजर्षि लोग सदा परम सुखसे निवास करते है। हे ब्राह्मण ! सत्य, धर्म और कर्म सब इस दिशामें विद्यमान है, जो पुरुष कर्मसे आत्माको स्थिर करता है, इसी दिशामें उसकी गति होती है। एक बार सबको इस दिशामें आना पड़ता है, परन्तु यह अज्ञान-रूपी अन्धकारसे ढकी रहती है, इससे सहज-हीमें नहीं प्राप्त हो सकती। हे हिजश्रेष्ठ ! पुण्यकर्म न करनेवाली अधम मनुष्योंकी विस्मृता करनेके निमित्त इस दिशामें कई सहस्र महा विकट आकारके राक्षसोंकी सृष्टि हुई है। हे ब्राह्मण ! मोटे खरसे युक्त गन्धर्व लोग मन्दर पर्वत और विप्रर्षि लोकोंके आश्रमोपर अच्छे मधुर गीत गाकर सब लोगोंके चित्त और बुद्धि हर लेते है। रैवत नामक दैत्यराज इसी स्थानपर पुल, पोत स्त्री, राज्य और सेवक आदि सम्पूर्ण वस्तुओंकी त्याग कर वन-वासी होगये थे। हे ब्राह्मण ! मनु और यव-क्रीत-तनयने इस दिशाने जो नियम स्थापित किया है, सूर्यदेव किसी समयमें उसका उल्लङ्घन नहीं कर सकते। पुलस्त्यवशने उत्पन्न हुए राक्षसोंके राजा महात्मा रावणने इसी दिशामें तपस्या करके देवताओंके समीप अमर होनेका वरदान मागा था। वृत्तासुरने भी असत् कर्म से इसी स्थानने इन्द्रके साथ झगड़ता की जी। हे गालव ! इसी दक्षिणा दिशामें राक्षस प्राण मिलित हीके फिर प्राण और अपान भेदसे पृथक् पृथक् होजाता है। तुरे कर्म करनेवाले

प्रथम पुरुष इसी दिशामें जुरे कर्मके फलरूपी नरकमें पड़कर सड़ते रहते हैं। इसी दिशामें नरकसमुद्रमें मिलनेवाली पापी पुरुषोंसे भरी हुई महाभयङ्कर वैतरणी नदी बह रही है। यहापर आनेसे लोगोंकी स्वर्ग और नरक दोनोंके सुख मिलते हैं। किरणधारी सूर्य इस दिशामें घिरकर उत्तम प्रकारसे जल बरसाते रहते हैं, और फिर वशिष्ठ सप्तमिनी उदीची दिशामें जानेसे हिमसे मुक्त होते हैं। हे गाङ्ग ! पहिले मैं एक दिन क्ष्मासे पीड़ित होके आहारके निमित्त चिन्ता कर रहा था, तब युद्धमें प्रवृत्त हुए इस दिशामें बड़े शरीरवाले दो हाथी और कच्छपको पाया था। जो लोकके बीच कपिल देव कहके विख्यात है, जिनके प्रभावसे सगरके वंशका नाश हुआ था, वही चक्रधनु नामक महर्षि इस दिशामें सूर्य-देवसे उत्पन्न हुए थे। इसी दिशामें वेदकी जाननेवाली शिरा नामकी सिद्धा ब्राह्मणीने सब वेदोंकी पढ़कर अपना अविनाशी शरीर पाया था। इसी स्थानमें नागराज वासुकी, तक्षक और ऐरावत आदि नागकुलोंसे सहित भोग-वती नामक नगरी विराजमान है। मरनेके समय लोगोंको इसी दिशामें महाघोर अन्धकार मिलता है। सूर्य और अग्नि भी इस अन्धकार-को दूर नहीं कर सकते। हे गाङ्ग ! तुम चलनेकी इच्छा करो, तो इस दिशामें गमन करें, इससे यदि तुम्हें इस दिशामें चलना हो तो मुझको कहो, नहीं दूसरी—पश्चिम—दिशाकी कथा मुझसे सुनो।

१०६ अध्याय समाप्त ।

गरुड़ बोले, हे विजसत्तम ! यह दिशा जलके स्वामी वरुणदेवकी अत्यन्त ही प्यारी है, क्योंकि इसी स्थानमें उनकी उत्पत्ति और प्रतीक्षा हुई है। भगवान् सूर्य दिनके अन्त भागमें अपनी किरण और प्रकाशता विसर्जन

कारते हैं, इसी कारणसे वह पश्चिम दिशाके नामसे प्रसिद्ध हुई है। इस दिशामें जलजन्तु-गणोंके ऊपर प्रभुता और जलकी रक्षा करनेके निमित्त भगवान् कश्यपने वरुणदेवको सब अधिकार दे रक्खा है। अन्धकारका नाश करनेवाले चन्द्रमा इसी स्थानमें जलदेवके सम्पूर्ण रस पीके पूर्णभासीको फिर पूर्णरूपसे उदित होते हैं। हे ब्राह्मण ! पहिले समयमें दैत्य लोगोंने इसी स्थानमें वायुके वेगसे दुःखित और पराजित होकर लम्बी सास लेते हुए मृत्युकी शय्यापर शयन किया था। जिस पश्चिम राश्याकी उत्पत्ति होती है, वही अस्ता चल गिर इस स्थानमें प्रदक्षिण करनेवाले सूर्यको प्रतिदिन सम्मानित करते हैं। दिगं बीत जानेपर इनो स्थानसे निद्रा निकलकर जीवन कालका आधा भाग हरनेके निमित्त मानों सब जीव मातृको आक्रमण करती है। देवताओंके राजा इन्द्रने अपनी सौतेली माता तेजस्विनी दिति-देवीको इसी स्थानमें सोई हुई देखवार, इर्षायुक्त होकर उसका गर्भ काटके उनचारा टुकड़े कर दिये थे, और उसीसे मनुष्य-गणोंको उत्पत्ति हुई थी। पर्वतोंके राजा हिमालयकी बृहतसी जड़ मन्दर-पर्वतसे लगी हुई है, हजार वर्षतक भ्रमण करनेपर भी उसकी सीमा नहीं मिल सकती। गोमाता सुरभी इसी स्थानपर सुवर्णके शैल और सुवर्णके कमलसे युक्त सरोवरके तटपर खड़ी होके दूधकी धारा बहाती है। चन्द्रमा और सूर्यकी हिंसा करनेकी अभिलाषा करनेवाला शिरसे रहित राज्ञ नामक दैत्य का शरीर यहापर नमुद्रके बीच सदा दीख पड़ता है। अष्टम और महातेजसे युक्त हरितशोभा अर्थात् सदा यौवन अवस्थाको प्राप्त हुए सुवर्णशिर नाम मुनि जा इस स्थानमें वेदका पाठ करते हैं, उनका बृहतसा शब्द यहापर भी सुनाई पड़ता है। हरिमेधा मुनिकी कन्या अववती सूर्यदेव

“खड़ा रह । खड़ा रह ।” इस प्रकारसे शासन करती हुई आकाश मार्गमें खड़ी थी, हे गालव ! इस दिशामें क्या दिन क्या रात्रि सब समयमें वायु, अग्नि, जल और आकाश दुःख देनेवाले स्पर्शको त्याग देते हैं । सूर्यकी गति इसी स्थानमें टेढ़ी चालसे लौटती है, और इसी दिशामें सब ज्योतिके पदार्थ सूर्यमण्डलमें प्रवेश करते हैं । बारह राशि, सत्ताइस नक्षत्र और अभिजित् ये सब एक एक करके अठाइस रात्रि पर्यन्त सूर्यके सङ्ग भ्रमण करके चन्द्रमाके सङ्ग संयोग होनेपर, फिर क्रमसे निकल आते हैं । जिससे सब समुद्रोंकी उत्पत्ति हुई है, वही सब नदियोंका उत्पत्ति स्थान इस पश्चिम दिशामें सदासे विराजमान है । तीनों भुवनका जितना जल है सो यहापर वरुणदेवके स्थानपर उपस्थित है । यहींपर नागोंके राजा शेषनागका निवास है । अनादि और अविनाशी भगवान् विष्णुदेवका यही उत्तम शय्यारूपी निवास स्थान है । अग्निके मित्र वायु, और मरीचिपुत्र कश्यपकी भी यही निवास-भूमि है । हे गालव ! संक्षेपसे यह पश्चिम दिशाका वृत्तान्त तुमसे कहा गया । हे द्विजसत्तम ! इस समय तुम्हारी क्या इच्छा है ? कहीं किस दिशाकी ओर चले ?

११० अध्याय समाप्त ।

—

गरुड़ बोले, हे द्विजसत्तम गालव ! यह उत्तर दिशा है । इस दिशामें सब लोग उत्तीर्ण होके पापोंसे छूटकर मुक्तिपद पाते हैं । इसी उत्तारण शक्ति होनेहीके कारण इसका नाम उत्तर दिशा हुआ है । इस उत्तरदिशाके सेवनीय जल समुद्रके मार्ग पूर्व और पश्चिम दिशा पर्यन्त व्याप्त होनेसे वह सर्वत्र बोध होता है । इस ओष्ठ दिशामें विनय रहित, इन्द्रियोकी न जीतनेवाले, और अधर्मी लोग कभी नहीं निवास कर सकते । यहापर वद-

रिकाम्रममें नारायणकृष्ण, पुरुषोर्मि ओष्ठ विष्णु और पितामह ब्रह्मा विराजमान हैं । यहींपर प्रलयकालकी अग्निके समान, भगवान् महादेव हिमालय पर्वतके ऊपर प्रकृति पार्वतीके सङ्ग सदा विहार करते रहते हैं । वह मायासे युक्त होनेसे भी केवल नरनारायणके अतिरिक्त और किसीकी नहीं देख पड़ते हैं, मुनि, इन्द्रादि देवता, गन्धर्व, यक्ष और सिद्ध आदि कोई भी उनका दर्शन नहीं कर सकते । इसी स्थानपर सहस्र शिर, नेत्र, और चरणसे युक्त श्रीमान् विष्णुदेव मायासे युक्त महादेवके दर्शन करते हैं । हे ब्राह्मणओष्ठ ! द्विजोंके राजा चन्द्रमाका अभिषेक इसी स्थानपर हुआ था और महादेवने स्वर्गसे गिरे हुए चन्द्रमाकी मस्तकपर धारण करके मनुष्य लोकमें उपस्थित किया था । गिरिराजकुमारी पर्वतीने जो महादेवकी वर बनानेके निमित्त कठिन तपस्या की थी, वह अनुष्ठान भी इसी स्थानमें हुआ था । एक समय यहां पर गिरिराज, उमा, कामदेव और महादेवकी क्रोधरूपी अग्नि अत्यन्त शोभित हुई थी । हे द्विजसत्तम ! धनके स्वामी कुबेर यहीं कैलास पर्वतपर राक्षस, यक्ष और गन्धर्वोंके राजा बनाये गये थे । चैत्ररथ नामक उनका मनोहर वगीचा, वैखानस मुनियोंका आश्रम, मन्दाकिनी और मन्दर यहापर सदासे शोभित हैं । राक्षसोंसे भली भाँति रहित सौगन्धिक वन, श्यामल शाइल, नवतण-भूयिष्ठ-देश, कदली कानन कल्पतरु-वीथिका, और सदा संयमशाली इच्छानुसार विहार करने वाले सिद्ध लोगोंकी अभिलाषाके यात्र संपूर्ण विमान यहापर वज्रत हो शोभा और सुवराई प्रकाशित कर रहे हैं । अच्छी प्रकारसे प्रसिद्ध सप्त-ऋषियोंका मण्डल और देवी अरुन्धती इसी स्थानपर विराजमान हैं । स्वाती नक्षत्रका भी यहीपर उदय और निवास होता है । सब लोगोंके

शुक् पितामह ब्रह्मा यज्ञके निमित्त इस स्थान-
में सदा वास करते हैं। सूर्य चन्द्रमा और
नक्षत्र इसी दिशासे सदा भ्रमण किया करते
हैं। हे हिजसत्तम ! सत्यवादी महात्मा मुनि
लोग इसी स्थानमें उधर उधर भ्रमण करते
हुए गायन्तिका द्वार नाम लोककी अन्तिम
सीमाकी रक्षा करते हैं, उन लोगोंकी
उत्पत्ति, वृद्धि और तपस्या कुछ भी नहीं
मालूम होती है। वे लोग अपनी इच्छाके
अनुसार सहस्रो प्रकारका परिवर्तन भोग करते
हैं। जो भनुष्य उन लोगोंकी रहित इस गाय-
न्तिकाका द्वार लाघकर किसी मार्गसे प्रवेश
करता है, वह वहाँपर मर जाता है। अवि-
नाशी नारायणदेव और विष्णुके अतिरिक्त
और कोई किसी समयमें वहाँपर जानेमें समर्थ
नहीं होता। हे गालव ! इसी दिशामें धनके
स्वामी कुबेरके अधिकारमें जंचा कैलासपर्वत-
का शिखर विराजमान है। इसी स्थानमें
विविक्तप्रभा नाम दश अप्सराओंका जन्म हुआ
था। वामन अवतारमें जब भगवान् विष्णु ने
अपने तीन चरणसे तीनों लोकोंकी नाप लिया
था उस समय इस उत्तर दिशामें एक पद
रखनेसे वहाँपर विष्णुपदके नामसे एक महा
उत्तम तीर्थकी उत्पत्ति हुई है। मरुत् नाम
किसी राजाने इस उत्तर दिशामें, जिस स्थान-
पर जाखूनद सुवर्ण सरोवर है वहाँपर उशोर-
बोजाख्य नाम स्थानसे एक महायज्ञ किया था।
यहाँपर जैमूत नामक महात्मा विप्रर्षिके
सम्मुख हिमालय पर्वतका निर्मल और शुद्ध
सुवर्णका स्थान प्रकाशित हुआ था। उस
महर्षिने यह सम्पूर्ण धन ब्राह्मणोंकी दान
करके उनसे अपना नाम विख्यात करानेके
निमित्त प्रार्थना की थी, इससे वह धन
जैमूत धन कहके प्रसिद्ध हुआ है। हे गालव !
दिवपाल तीर्थ इसी स्थानपर दोनों सम्प्रदायके
नम्र 'किम्का क्या कार्य है - कहे' ऐसा

कहके जंचे स्वरसे पुकारा करते हैं। हे वि-
प्रोष्ठ ? यह उत्तर दिशा उत्त लप तथा दूसरे
वज्रतसे गुणोंमें सब दिशाओंसे ओष्ठ है। सब
विषयोंमें मुख्य होनेसे इसका नाम उत्तर प्रसिद्ध
हूँ है। हे भ्राता ! चारों दिशाओंके सम्पूर्ण
वृत्तान्तोंका मैंने तुम्हारे समीप क्रमसे वर्णन
किया, इस समय तुम कौन दिशामें गमन कर-
नेकी इच्छा करते हो ? तुमको सब दिशा और
समस्त पृथ्वीके दर्शन करानेके निमित्त मैं अत्य-
न्त ही आतुर हो रहा हूँ ; इससे तुम हमारी
पीठपर शीघ्र ही चढ़ो।

१११ अध्याय समाप्त ।

गालव मुनि बोले, हे गरुड़ ! हे विनता
के आनन्द दधानेवाले ! हे सपोंके शत्रु, पक्षी
राज ! जहाँपर धर्मके दोनों नेत्र खुले हैं, उसी
पूर्व दिशामें सुभे ले चलो। तुमने सबसे पहिले
जिसका वर्णन किया, और "देवता लोग इसी
स्थानपर विराजमान हैं" कहकर जिसका गुण
कहा है, उसी दिशामें चलो। "जहाँपर सब
और धर्मका पूर्ण निवास है," यह तुमने
स्पष्टरूपसे कहा है और सब देवताओंके सम्-
मिलनेकी भी मेरी इच्छा है। हे गरुड़ !
इससे देवताओंके दर्शन करनेकी मेरी अभिलाषा
तुम पूर्ण करो।

नारद मुनि बोले, विनतापुत्र गरुड़ !
ब्राह्मणसे बोले, "मेरी पीठपर चढ़ो" ऐसा कह-
नेपर गालव मुनि उसी समय उनके ऊपर चढ़े
और चलते चलते कहने लगे। हे सपोंके
शत्रु ! प्रातःकाल सहस्र किरणकी धारण करने
वाले सूर्यका जैसा रूप दोख पड़ता है, प्रत्यक्ष
करनेके समय तुम्हारा भी उसी प्रकार रूप
दीखता है। हे पक्षियोंके राजा ! तुम्हारी
चलनेका वेग ऐसा मालूम होता है, कि महा-
प्रबल पड़ोंके वायुसे प्रेरित होकर वे सब
वृक्ष हमारे अनुगामी होके साथ ही गिर जायें

जाते हैं। केवल वृक्ष ही क्यों, समुद्रके सम्पूर्ण जल, पर्वत, वन और बगीचोंसे युक्त जैसे समस्त पृथ्वीहीनो तुम अपने पङ्क्तोंके वायुसे आकर्षित किये चलते हो। तुम्हारे पङ्क्तोंकी वायुके झकोरेसे मगरसङ्केसे युक्त समुद्रका जल जैसे आकाशतक चला जाता हो। बहृतसे मच्छ, मगर और मनुष्यकी मुखके आकारके समान नाग आदि सब जलजन्तु मानो मथित हो रहे हैं। हे पक्षिराज ! समुद्रके तरङ्गोंका भयङ्कर शब्द सुनकर मेरे कान बधिर हुए जाते हैं, न मैं सुनता, न देखता और न अपने प्रयोजनको निश्चित कर सकता हूँ। मेरी इन्द्रिया शिथिल हुई जाती है। इससे हे भ्राता ! ब्रह्महत्या न होवे, ऐसा विचार कर धीरे धीरे गमन करो। [मैंसे अधिक क्या कहूँगा, सूर्य तथा आकाश-गण्डलको आर भी मुझसे नहीं देखा जाता है, मुझकी सब दिशाओंमें केवल अन्धकार ही दीख पड़ता है। ऐसा क्या ? तुम्हारा यह शरीर भी मुझी नहीं दोख पड़ता है, केवल उत्तम मणिको भाति यह दोनों नेत्र दोख पड़ते हैं। तुम्हारे शरीरको बात तो दूर है, मैं अपना शरीर भी नहीं देख सकता हूँ। मेरे शरीरसे अग्नि निकल रही है पदपद पर यही देख रहा हूँ। इससे हे विनतानन्दन ! शीघ्र ही अपनी दानों आखें मूढ़कर मेरे शरीरको अग्नि बुझाओ। तुम अपना यह वेग रोकके मेरा निस्तार करो। हे पद्मगनाशन ! मुझी चलनको अब कुछ भी इच्छा नहीं है, तुम शीघ्र ही निवृत्त होजाओ; तुम्हारा यह वेग अब किसी प्रकारसे नहीं सहा जाता है। मैंने चन्द्रमाके समान सफेद और एक और श्याम कर्णसे युक्त ऐसे आठ सौ घोड़ोंके प्रदान करनेकी प्रतिज्ञा की थी; उससे निस्तार पानेका अब कोई मार्ग नहीं देखता हूँ। केवल प्राणको त्याग करना ही एक मात्र उसका उपाय दोख पड़ता है; क्योंकि मेरे

कुछ धन भी नहीं और कोई धनवान् पुरुष मेरा मित्र भी नहीं है, बहृतसा धन होनेपर भी उस प्रतिज्ञासे निस्तार पाना बहुत कठिन है।

नारद मुनि बोले, विनतानन्दन गरुड़ गालवके ऐसे कातर वचनोंको सुनकर भी चलनेसे न रुके, और हंस कर उनसे कहने लगे, हे विप्रर्षि ! तुम जब अपने प्राणोंके त्यागनेको अभिलाषा करते हो, तब तुम अच्छे बुद्धिमान नहीं मालूम होते हो, क्योंकि मृत्यु, कामोद्देश्यके अनुसार नहीं होती; मृत्यु, साक्षात् परमेश्वरका रूप है। तुम यदि ऐसे ही कातर हानेवाली थे, तो पहिले भुक्तको क्यों न निषेध किया ? जो हों, तुम्हारे प्रयाजनके सिद्ध होनेका एक बहुत बड़ा उपाय यह है, कि समुद्रकी निकटहीमे ऋषभ नामक यह जो पर्वत है, यहापर विश्वास और भोजन करके निवृत्त होजाओ।

११२ अध्याय समाप्त।

नारद मुनि बोले, इसके अनन्तर गालव मुनि और पक्षिराज गरुड़ दोनोंने ऋषभ पर्वत-पर पङ्क्तकर देखा, कि वहापर शाण्डिली गान्धो ब्राह्मणी तपस्या कर रही है। देखते ही गरुड़ने उसे प्रणाम किया और गालवने यथा उचित पूजा की। उनने भी इन लोगोकी कुशल वात्ता पूछकर अतिथि-सत्कारके अनुसार आसन आदि प्रदान किया। इस प्रकारसे सत्कार पाकर दोनों आतथियोकी आसनपर बैठनके अनन्तर, शाण्डिलीने उन लोगोके निमित्त उत्तम भोजनको तैयार कर दिया उसे भोजन करते ही दोनोंन तृप्त हाके, जैसे पृथ्वीके ऊपर शयन किया, वैसे ही अत्यन्त ही निद्राके वशमें होगये। बहुत शीघ्रतासे गमन करनेवाली गरुड़ सुहृत्तरमें निद्रा-रहित होगये, परन्तु देखा कि मेरे दोनों पह गिर पड़े हैं; और

पाँव सुखके सड़ लग जानेसे वह मांसके पिण्ड-
की भांति दोड़ने लगे । गालव मुनि उन्हें
उस अवस्थामें देखकर अत्यन्त दुःखित हो
बोले, तुम्हें इस स्थानपर आनेसे क्या यही फल
मिला है ? इस तरहसे रहनेपर मुझको कितने
दिनोंतक यहाँ निवास करना होगा, उसे मैं
नहीं कह सकता, तुमने क्या अपने मनमें कुछ
अधर्म तथा अशुभ विषयकी चिन्ता की थी ?
तुम्हारा अवश्य ही कोई बड़ा पाप हुआ होगा,
इसमें कुछ सन्देह नहीं है ।

गालव मुनिके इस वचनकी सुनकर गरुड़
बोले, हे ब्राह्मण ! मेरा मानसिक पाप कर्म
यही है, कि जिस स्थानपर प्रजापति ब्रह्मा,
देवीके देव महादेव और सनातन विष्णु,
विराजमान हैं जहापर धर्म और यज्ञ सदा
उपस्थित रहते हैं ; उसी पवित्र धाममें ये वास
करे, यह विचार कर मैं इस सिद्धा ब्राह्मणोंकी
बहापर ले जानका सङ्कल्प किया था । जो हा,
प्रियकामनाके निमित्त विनोत भावसे भगवतोंके
समोप प्रायना करता हूँ । हे महाभाग ! मैंने
अज्ञानके कारणसे तुम्हारे यहापर निवास कर-
नेको अनुचित समझा था ; और शोकित होकर
तुम्हारे अत्यन्त मानके निमित्त हो जो मैंने इस
विषयका विचार किया था, वह पुण्य ही, वा
पाप, तुम उसे अपने माहात्म्यके गुणके
अनुसार क्षमा करो ।

इस प्रकारकी विनतीकी सुनकर ब्राह्मणों
पश्चिराज गरुड़ और द्विजवर गालवके ऊपर
बहुत प्रसन्न होकर उनसे यह वचन बोले, हे
गरुड़ ! तुम मत डरा, तुम शोभायमान पड़
युक्त हुए । इससे सब शाक और चिन्ताको त्याग
दा । हे पुत्र ! तुमने मेरी निन्दा की थी, इसीसे
मैं आश्चर्य तुम पर रुष्ट हुई थी, क्योंकि मैं
निन्दा सहनेको पात्री नहीं हूँ । जो पापी मेरी
निन्दा करता है, वह सब लोकसे भ्रष्ट हो
जाता है । मैंने सब लक्ष्णोंसे रहित और

निन्दिता होनेपर भी, केवल शुद्ध और पवित्र
आचारको करनेहीसे इस प्रकारकी उत्तम
सिद्धिकी प्राप्ति की है । सदाचाररूपी धर्म
धर्म और धन दोनों ही फल लगते हैं । शुद्ध
आचारके करनेसे मनुष्य अवश्य ही लक्ष्मीका
लाभ उठा सकते हैं । मैं अधिक बात क्या
कहूँगी, सदाचार सब बुरे लक्ष्मणोंको नष्ट कर
देता है । हे पश्चिराज गरुड़ ! अब तुम्हारी
जहा इच्छा होवे, वहाँ जाओ, परन्तु सावधान
रहना ; कभी निन्दा करने योग्य स्त्रियोंकी
भी निन्दा न करना । मेरी कृपासे तुम पहिले
अधिक बल और पराक्रमसे युक्त होओगे ।
शाण्डिलीके ऐसा कहनेपर गरुड़के पहिले
समयसे भी अधिक बलसे युक्त दोनों पक्ष
निकल आये । अनन्तर उसकी आज्ञासे गरुड़ने
वहाँसे प्रस्थान किया, परन्तु गालव मुनिके
प्रार्थनाके अनुसार घाड़ोंको न पाया । बोलने
वालोंमें श्रेष्ठ विश्वामित्र मुनिने मार्गमें गालवको
देखकर, गरुड़के सम्मुख ही उनसे यह पूछा,
हे ब्रह्मन् ! तुमने मुझका अर्थ प्रदान कर
नेको जा स्वयं प्रतिज्ञाकी थी, मेरे विचारसे उसकी
पूर्ण करनेका तो यही समय उपस्थित हुआ
है ; इस समय तुम्हारे विचारमें क्या है, मैं नहीं
कह सकता हूँ । मैं इतने दिनोंसे तुम्हारा आश्रय
देख रहा हूँ, और भी कुछ समयतक देखूँगा
इससे जिस प्रकारसे वह सिद्ध हो, तुम उस
का मार्ग ढूँढ़ो । इस वचनकी सुनकर गालव
मुनि अत्यन्त हो दुःखित और कातर हुए, उन्हें
इस प्रकारसे देखकर गरुड़ बोले, हे द्विजसत्तम
गालव ! विश्वामित्रने तुम्हें पहिले जो वचन कहा
था, वह इस समयमें मुझकी प्रत्यक्ष दृष्टि पर
इससे आओ इस विषयमें एक उत्तम विचार
करें, गुरुकी विना दक्षिणा दिये तुम्हारे
बैठनेको भी शक्ति नहीं है ।

नारद मुनि बीली, पश्चिराज गरुड़ दुःखित गालव मुनिसे कहने लगे । हे विजयश्रेष्ठ ! धन हिरण्यरेता अग्निसे पृथ्वीमें उत्पन्न होकर वायुसे बढ़ता रहता है, इसीसे सम्पूर्ण जगत् हिरण्य प्रधान धनको “हिरण्य” शब्दसे पुकारता है । धनसे सब जगत्का पालन, पोषण और जोवन-धारण होता है; इसी कारणसे उसे “धन” कहते हैं । इससे संसारके सब कार्योंको निवाहनेके वास्ते वह धन सदा तीनों लोकके बीच विद्यमान है । पूर्व भाद्रपद और उत्तर-भाद्रपद नक्षत्रोंसे युक्त शुक्रवारके दिन आग्नि देवता इच्छाके अनुसार अपन उपार्जित धन मनुष्योंकी दान करते हैं, परन्तु उस धनको कुवेर आदि देवता रक्षा करते हैं, इसलिये दुःखसे प्राप्त होनेवाले धनको पाना बहुत ही कठिन है । परन्तु अपना धनको चाड़ाका पाना भी किसी प्रकारसे सम्भव नहीं होता है । हे ब्रह्मन् ! जा तुम्हारे कार्योंको सिद्ध कर सकें, ऐसे किसी धर्मात्मा राजाका पास जाकर तुम गुरुका देनेका निमित्त धन मागो । चन्द्रवशमें उत्पन्न हुए एक धर्मात्मा राजा मेरे मित्र हैं, चला उन्होंने पास आधक धन है । वह राजाभि नहुषके पुत्र हैं, और उनका नाम ययाति है । साक्षात् धनके स्वासा कुवेरके समान उनकी ऐश्वर्यका सीमा नहीं है । मर अनुरोध और तुम्हारी प्रार्थनासे वह अवश्य ही तुम्हारा इच्छाके अनुसार धन देगा । हे ब्रह्मन् ! उसे देकर ही तुम गुरुके ऋणसे मुक्ति पा सकोगे । गरुड़ और गालव मुनि आपसमें ऐसा विचार करके प्रतिष्ठानपुरमें राजा ययातिके समीप आके उपस्थित हुए । राजा ययातिने उन लोगोंको देखकर पाद्य, अर्घ्य और आसन प्रदान करके उनकी आनका कारण पूछा । गरुड़ने उनसे उत्तर पाकर यह वचन कहा है । सत्य ययाति ! यह तपस्वी ब्राह्मण मेरे प्राण-के समान मित्र हैं, इनका नाम गालव मुनि

है । दस हजार वर्षतक यह विश्वामित्रके शिष्य थे । उस महा तपस्वी महर्षिने जब इन्हीं घर जानेके निमित्त आज्ञा दी, तब गुरुके उपकार करनेको इच्छासे इन्होंने उनसे यह वचन कहा, “हे भगवन् ! यदि आपको आज्ञा हो, तो कुछ गुरुदक्षिणा प्रदान कर्तुं ।” इसके बल्लत थोड़ा धन है, इस बातको विश्वामित्र जानते थे । इससे जब इन्होंने बार बार गुरु-दक्षिणा देनेको कहा, तब कुछ क्रोधमें भरकर बाले, कि “मुझको चन्द्रमाके समान सफेद और श्यामकर्ण आठ सौ षोड़ह दा । हे गालव ! यदि गुरु दक्षिणा देनेको इच्छा है, तो यही धन दान करो ।”

तपस्वी विश्वामित्रने जब क्रोधमें भरकर ऐसी आज्ञा की, तब गालव मुनि बहुत ही शक्ति और दुःखित होकर चिन्ता करने लग, उसका पूर्ण करनेमें सब प्रकारसे शक्तिहीन होकर इस समय तुम्हारा शरणमें आया हूँ । हे नरव्याघ्र ! इनको यही अभिलाषा है, कि तुम्हारे निकटमें भिक्षा मागकर, गुरुदक्षिणा देके, शाकसे रहित होकर स्थिर चित्तसे तप-का अनुष्ठान कर । हे प्रजानाथ ! तुम राज-र्षिही, निज तपस्यासे पूर्ण होनेपर भी गालव मुनि अपनी तपस्याका अंश देकर तुम्हें और भी अधिक पूर्ण करेंगे । सुना जाता है, कि षोड़हके शरीर पर जितने रंग रहते हैं, षोड़हकी दान करनेवाले मनुष्य उतनी ही संख्याके लोकोंको पाते हैं । हे पृथ्वीनाथ ! यह भी दान लेनेके योग्य पात्र है और तुम भी दान करने योग्य हो । इससे तुम्हारे इस दानकी संख्या क्षीरसागरकी उपमाके समान होगी ।

११४ अध्याय समाप्त ।

नारद मुनि बीली, हजार वर्षको करनेवाले, महादानी, सब प्रकारके तपसे युक्त, राजा ययाति, अग्रणी, महापराक्रमी राजा ययाति, गरुड़की

इस उत्तम वचनकी सुनकर बृजत ससयतक अपने मनमें विचार और निश्चय किया, विशेष करके अपने प्यारे मित्र गरुड़ और द्विजश्रेष्ठ गालव सुनिकी देख और उनके तपस्याके वृत्तान्त तथा सराहने योग्य भिक्षाका समाचार सुनकर यह निश्चय किया, “सूर्यवंशीय दूसरे राजाओंके त्याग कर ये लोग जो मेरे ही निकटमें आये हैं, यह कुछ मेरे कम भाग्यका विषय नहीं है।” ऐसा विचारकर राजा ययाति बोले, हे पक्षिराज ! आज मेरा जन्म सफल हुआ, हे पापरहित ! तुमने आज मेरे कुल और देशकी पवित्र किया है। हे मित्र ! इस समय मैं तुमसे अपना वृत्तान्त कहनेकी इच्छा करता हूँ, पहिले तुम मुझी जैसा धनवान् ससम्पत्ति थे, अब वह बात नहीं है। मेरा खजाना इस समय खाली होगया है ; तौ भी मैं तुम्हारे आगमनको व्यर्थ नहीं कर सकता हूँ, विशेष करके इस तपस्वी ब्राह्मणकी आशाको निष्फल करनेमें मुझे किसी प्रकारसे भी उत्साह नहीं होता है, इससे जिससे इनका कार्य सिद्ध होगा, उसे मैं अवश्य ही कहूँगा। विचार कर देखो, यदि अतिथि ब्राह्मण याचना करने पर आशावान् होकर लौट जाता है, तो निश्चय ही कुल भरको भक्ष कर देता है। हे गरुड़ ! कोई पुरुष “दीर्घायु” ऐसा कहकर जब मोख सागता है, तब उसकी आशाको नाश करनेके निमित्त “नहीं है” इस वचनकी कहनेकी अपेक्षा दूसरा बड़ा पाप कर्म और नहीं है। वह उपायसे राहत याचक अपनी प्रार्थनाकी नाश होनेपर आशा रहित होकर, प्रार्थना पूरी न करनेवाले पुरुषके पुत्र, पौत्र आदि सबकी नष्ट कर देता है। हे गालव सुनि ! इससे आप चार वंशको स्थापन करनेवाली, सब धर्मोंकी जाननेवाली, देवकन्याके समान मेरी इस कुमारी कन्याको ग्रहण कीजिए। इसकी असाधारण रूपको

देखकर देवता, मनुष्य और असुर आदि सदा ही इसके पानेकी इच्छा करते हैं। आठ सौ श्याम-कर्ण घोड़ोंकी क्या बात है, इसके सड़ विवाह करनेके निमित्त राजा लोग अपने राज्य पर्यन्तको दे सकते हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। हे द्विजसत्तम ! इससे तुम मेरी इस माधवी नाम्नी कन्याको ग्रहण करो। मैं भी दौहित्रवान् होऊँ, यही मेरी इच्छा है।

राजा ययातिके वचनकी सुनकर गालव सुनिने उनकी कन्याको ग्रहण करके कहा, कि “मैं फिर आपसे मिलूँगा” ऐसा कहकर पक्षिराज गरुड़ और गालव कन्याके सहित वहासे चले। गरुड़ भी “अब तो तुम्हारे घोड़ोंकी पानेका उपाय प्राप्त हुआ है।” ऐसा कहकर अपने स्थानपर चले गए। अनन्तर गालव सुनि कन्याके सहित दान देने योग्य राशियोंमें भक्षण करने लगे। पहिले उन्होंने द्रुपद-वंशमें उत्पन्न हुए राजसत्तम हृथ्यश्वके समीपमें जानेका निश्चय किया। महाबल, पराक्रम, चतुरङ्गिणी सेना, और धन धान्यसे युक्त प्रजा बत्सल महाराज हृथ्यश्व अयोध्याके राजा थे। ब्राह्मणोंकी इच्छाको पूरी करनेवाले राजा हृथ्यश्व शान्ति अवलम्बन करके पुत्रकी कामनासे सदा उत्तम तपस्यामें लगे हुए थे। ब्राह्मणश्रेष्ठ गालव सुनिने उनके समीपमें जाकर कहा, हे राजेन्द्र ! अनेक पुत्रोंकी प्रसव करी तथा कुलकी बढ़ाने-वाली हमारी इस उत्तम लक्ष्मणीसे युक्त कन्याको धनकी पलटिम लेकर अपनी माथा कीजिए हे हृथ्यश्व ! जिस प्रकार का धन देना होगा, वह मैं तुमसे कहता हूँ ; उसे सुनकर जैसा करना तुम्हें उचित है, उसका निश्चय करो।

११५ अध्याय समाप्त ।

नारद मुनि बोले, राजाओंमें दीर्घ हृथ्यश्व गालव मुनिके उपर कहे हुए वचनकी सुनकर

पुत्रके निमित्त लक्ष्मी और गर्भ सांस लेते हुए
अनेक प्रकार सोच विचारकर यह वचन बोले,
तुम्हारी यह कन्या सब लक्षणोंसे युक्त है ;
अङ्गुष्ठ, हथेली, पांवके तलवे, नितम्ब, स्तन
और पावके नख इन जो छः स्थानोंके जंचे
होनेका शास्त्रमें विधान है ; इराके यह सब स्थान
ठीक वैसे ही हैं , दोनों हाथ, पांव, नख, केश,
और लचा यह सात सूक्ष्म होनेके स्थान सूक्ष्म
भी हैं । नाभि, बुद्धि और वचन यह तीनों
गम्भीर होनेवाले पदार्थ गम्भीर भी हैं । दोनों
पावोंके तलवे, दोनों हथेलियां और शरीर इसके
ये पावों स्थान लालवर्णके भी हैं । अनेक लक्ष-
णोंसे युक्त होनेसे ऐसा बोध होता है, कि यह
अनेक देव तथा असुरोंके भी दर्शन करनेके
योग्य है , सङ्गीत आदि गन्धर्व विद्यामें निपुण
और अनेक पुत्रोंको प्रसव करनेवाली होगी ,
ऐसा क्या चक्रवर्ती पुत्र भी इच्छा करनेसे उत्पन्न
कर सकेगो , इससे है विजयर । मेरी शक्ति
तथा धनका विचार करके कहिये क्या धन
लोजियेगा ?

गालव मुनि बोले, प्रसिद्ध देश और उत्तम
जातिके उत्पन्न हुए, चन्द्रमाके समान सफेद
आठ सौ श्यामकर्ण घोड़ोंको देकर इस
कन्याको ग्रहण कोजिये । ऐसा होनेहीसे यह
उत्तम नेत्र और सुन्दर अङ्गवाली कन्या अग्नि-
को उत्पन्न करनेवाली आरणीकी भांति तुम्हारे
पुत्रोंको प्रसव करनेवाली होगी ।

नारद मुनि बोले, काम-मोहित राजर्षि
हर्ष्यश्व इस वचनको सुनकर दोन भावसे
गालव मुनिसे बोले, हमारे यहा दूसरी भातिके
एक घोड़ा घोड़े है, यह ठीक है , परन्तु जैसे घोड़े
तुम चाहते हो, वैसे घोड़े केवल दो सौ मात
मेरे बुड्ढालमें उपस्थित है । है गालव । इससे
तुम्हारी कन्यासे केवल एक ही पुत्र उत्पन्न
कल गा. तुम कृपा करके मेरी इस कामनाको
री करो । हर्ष्यश्वका यह वचन सुनकर वह

कन्या गालव मुनिसे बोली, किसी ब्रह्मवादी
ऋषिने मुझे यह वरदान दिया है, कि तुम
प्रसव करनेके अनन्तर कन्या ही बनी रहोगी ।
है विप्र । इससे तुम उत्तम घोड़ोंको लेकर
निःसन्देह मुझे राजाके हाथमें समर्पण करो ।
इसी प्रकारसे चार राजाओंके यहांसे तुमको
आठ सौ घोड़े मिल जायंगे और मेरे भी चार
पुत्र उत्पन्न होंगे । है विजयसत्तम । मेरे विचार-
में इसी प्रकारसे तुम गुरुदक्षिणासे उत्तीर्ण हो
सकोगी, इस लिए अब तुम्हारी जैसी इच्छा ही
वैसा ही करो ।

कन्याकी ऐसी बात सुनकर गालव मुनि
राजा हर्ष्यश्वसे बोले, है राजसत्तम हर्ष्यश्व ।
मेरे भागे हुए धनका चौथा भाग देकर तुम
इस कन्याको सङ्ग व्याह करके एक पुत्र उत्पन्न
कर लो । ऐसी आज्ञा पाकर राजा हर्ष्यश्वने
प्रीतियुक्त प्रसन्न चित्तसे गालव मुनिको आन-
न्दित करके कन्याको ग्रहण किया और देश,
काल तथा समयके अनुकूल इच्छाके अनुसार
पुत्र प्राप्त किया । सूर्यके समान तेजस्वी राज-
कुमार पीछे धनवान् राजाओंसे भी अधिक धन-
शाली और महादानी होकर वसुमना नामके
एक प्रसिद्ध राजा हुए थे । बुद्धिमान् गालव
प्रसन्न चित्तसे राजा हर्ष्यश्वके पास फिर उप-
स्थित होकर यह वचन बोले है राजेन्द्र !
तुम्हारे तो यह प्रातःकालके सूर्यके समान
मनोहर पुत्र उत्पन्न हुआ है । इससे अब कोई
दूसरे राजाके समीपमें भिक्षाके निमित्त मुझे
जाना पड़ेगा । राजा हर्ष्यश्व अपनी मत्त
प्रतिज्ञामें दृढ़ थे , इससे उन्होंने इस समयमें
भी शेष इ' सौ घोड़ोंके देनेसे अशक्य होकर
उस माधवी नाम्नी कन्याको फिर गालव मुनिके
हाथमें समर्पण किया । माधवी भी उस लक्ष्मी-
से प्रकाशित राजनवनकी त्याग कर अपनी
इच्छाके अनुसार फिर कन्या होकर गालव
मुनिके पीछे पीछे चली । तब गालव मुनिने

सुभी चन्द्रमाके समान श्वेतवर्णके हजार श्याम-
कर्ण घोड़े दीजिये । ऋचोर्कन कक्षा “वही
होगा” ऐसा कहकर वस्त्राके स्थानमें जाकर
अश्वतीर्थमें घोड़े पाकर राजाको दिया, गांधि-
राजने पुण्डरीक नामका एक यज्ञ करके ब्राह्म-
णोंकी दक्षिणामें इन्हीं घोड़ोंको दिया था ।
उन्हीं लोगोंने राजा हर्षश्च दिवोदास और
उशोनरन दो द। सौ घोड़े मोल लिये थे ।
बाकी चार सौ घाड़े भी बेचनेके वास्ते मार्गमें
चले जाते थे दैवी-मंयोगसे मार्गहीमें हरण किये
गये । इससे ही ब्रह्मन् । प्राप्त न होने योग्य
वस्तु। कसो कालस भो नहीं मिल सकतो ।
इससे तुम बाको दो सौ घोड़ोंके पलट्टेमें इस
कन्याको हो छः सौ घोड़ोंके सहित गुरुके स्थान-
पर जाकर उन्हें समर्पण करो । हे दिजसत्तम
गालव । ऐसा करनेहीसे तुम मोह रहित
होकर अपना कार्य पूर्ण कर सकोगे । गरुड़की
यह उमत्त युक्ति सुनकर गालव मुनि बोले,
“ऐसा ही होगा” । यह कहके कन्या और घोड़ों-
को लेकर विश्वामित्रके समीप आकर उनसे
बोले, हे गुरुदेव । आपने जिस प्रकारके घोड़े
मागे थे, वैसे छः सौ घोड़े उपस्थित है, शेष दो
सौ घोड़ोंके ‘पलट्टेमें’ इस कन्याका पाणिग्रहण
कोजिये । इसके गर्भसे तीन राजऋषियोंके
धर्मसे युक्त तीन पुत्र उत्पन्न हुए है, इससे आप
भो मनुष्योंमें श्रेष्ठ एक पुत्र उत्पन्न करे इसी
प्रकारसे आपको आठ सौ घोड़े पूर्ण होंगे और
मैं भी जाकर तपस्या करूँ ।

विश्वामित्र मुनि पक्षिराज गरुड़ और उस
सुन्दरी कन्याके सङ्ग गालव मुनिकी देखकर
बोले, हे गालव । तुमने पहिले ही इस कन्या
रूपी अमूल्य रत्नकी मुझे क्यों न प्रदान किया ?
ऐसा होनेसे मैं ही कुल पावत्र करनेवाली चार-
पुत्रोंको उत्पन्न करता । जो हो, इस समय
एक ही पुत्र उत्पन्न करनेके निमित्त तुम्हारी
कन्याके सङ्ग विवाह करता हूँ, घोड़े भी हमारे

आयसमें रहकर सब स्थानोंमें भ्रमण करेंगे ।
इसके अनन्तर विश्वामित्रने माधवीके सङ्ग
सुखपूर्वक विहार करके यथा समयमें उसके
गर्भसे अष्टक नाम एक पुत्र उत्पन्न किया, और
उत्पन्न होते ही उसको धर्म और अर्थसे युक्त
करके वे सम्पूर्ण घोड़े उसी पुत्रको समर्पण
किये । अष्टकन धर्म और अर्थसे युक्त होते
प्रसन्न चित्तसे चन्द्रलाकके समान प्रकाशमान
किसी नगरमें जाकर प्रवेश किया, और विश्व
मित्र भी शिष्यको कन्या लौटा कर तप करनेके
निमित्त वनको चले गये । गालव मुनि गरुड़के
सङ्ग मिलकर इस प्रकारसे गुरु-दक्षिणा देके
प्रीतिसे प्रफुल्लित होकर माधवीसे बोले, हे बरा-
रोहे । तुमने जो वसुमना आदि चार पुत्र प्रसव
किये है, उनमेंसे एक अद्वितीय दानी, दूसरा
अत्यन्त पराक्रमी महावीर है, तीसरा स
धर्ममें सदा ही रत रहता है, और चौथा एक
असाधारण यज्ञ कर्मोंका करनेवाला है । इस
प्रकारके गुणोंसे युक्त चार पुत्रोंको उत्पन्न का
तुमने केवल अपने पिताहीको नहीं बरन चार
राजर्षि और मन्त्रोंको भी तार दिया है । मैं
भद्रे । इससे तुम अब चलो, दिजश्रेष्ठ गालव
कन्यासे ऐसा कहकर उस कन्याको पिताके
समीप पहुँचाकर सापोंके भोजन करनेवाले
गरुड़की अनुमतिसे वनको चले गये ।

११८ अध्याय समाप्त ।

नारद मुनि बोले राजा ययातिके निज
कन्या माधवीके वास्ते फिरसे स्वयम्बर करनेके
निमित्त अभिलाषी होनेपर उनके दो पुत्र एक
और यदु अपनी वह्निनको रथपर बैठाकर
प्रयागमें जाकर आयसमें भ्रमण करने लगे ।
वहापर नाग, मनुष्य, देवता, गन्धर्व, द्रुपद
पर्वत और वृक्ष आदि तथा वनके रहनेवाले
सब जीव जन्तुओंका सहागम हुआ । उहापर
वह बहुत बड़ा वन नाना देशोंके राजा

ब्रह्म ऋषियोंसे पूर्ण होगया । इस प्रकारसे जब अनेक लोग इकट्ठे हुए तब वरको खोज होने लगी । उस समय यशस्विनी ययाति-नन्दिनीने दूसरे सब वरोंको त्यागकर अरण्यको ही अपना घर निश्चित करके उसे वरणा किया । अर्थात् यशसे उतरकर बन्धु, बान्धवोंको प्रणाम करके पुण्य-भूमि वनमें अपना आश्रम बनाके तपस्या करने लगे । इसी प्रकारसे वनको दरनेवालो माधवी विविध भातिसे उपवास, उपदेश, नियम, प्राणायाम आदिसे आत्माकी सूक्ष्मता प्राप्त करके क्रोध, मोह, लोभ आदिसे रहित हो हरिणकी भांति बनवृत्ति अवलम्बन कर स्वच्छन्दतासे वनमें निवास करने लगे । ब्रह्म-चर्यसे युक्त हाकर कोमल, तोते और मधुर शकोंका भोजन करके पवित्र करने और नदियोंका शीतल जल पीती हुई, व्याघ्र आदि हिंसक जीवोंसे रहित निज्जन वनमें हरिणोंके समूहके सङ्ग मृगीकी भांति घूमती हुई शूङ तथा पवित्र धर्म उपाज्जन किया । इधर राजा ययातिन कई हजार वर्षतक अपनी आयुका भागकर अन्तमें पूर्व राजाओंकी भांति वनमें जाकर शरीरका त्याग दिया । पुरु और यदु नामक उनके दोनों पुत्रोंका वंश बढ़न लगा । इन्हीं दोनों वंशोंसे नङ्गप-पुत्रन इस लोक और परलोकमें अत्यन्त मान और प्रतिष्ठा पाई या । सब सुखसे युक्त राजाधि ययाति कई सहस्र वर्षोंतक स्वर्गलोकमें स्थित आर पूजित हाकर उत्तम स्वर्गकी सुखका भाग किया, परन्तु अन्तका साहस पड़कर अभिमानसे सतवारे हीके अपने सङ्गमें रहनेवाले पुण्यात्मा राजर्षि, और महाऋषियोंके स्थानसे सब मनुष्य, ऋषि और देवताओंको मन ही मन अवमानना करने लगे । शत्रुनाशन इन्द्रन उनके हृदयके उस भावकी उसी समय जान लिया और सब राजर्षि लोग भी उन्हें धिक्कार देने लगे । अनन्तर उनकी ओर देख-

कर सब लोग यह तर्क करने लगे, कि यह पुरुष कौन है ? किस राजाका पुत्र है ? किस प्रकारसे इस स्थानपर स्वयं उपस्थित हुआ है ? किस कर्मसे सिद्ध हुआ है ? इसने कच्चापर तपस्या की है ? कैसे इसने स्वर्गलोक पाया है ? कौन पुरुष इसकी जानता है ? स्वर्गवासी राजर्षि लोग राजा ययातिके विषयमें इसी प्रकारसे तर्क वितर्क करके एक दूसरेसे पूछने लगे । इन्द्रकी मन्दिरके सैकड़ों द्वार-रक्षक, विमान-रक्षक, और आसनोंको रक्षा करनेवालोंसे भी यही बात पूछी गई, परन्तु पूछनेसे सबने यही उत्तर दिया, कि नहीं हम लोग कोई भी इसको नहीं जानते । इसी प्रकारसे सबका ज्ञान छिप जानेसे कोई भी उन्हें न जान सका, इससे वह क्षण मात्रमें तेज रहित हागये ।

१२० अध्याय समाप्त ।

नारद मुनि बोले, अनन्तर राजा ययातिका चित्त घूमने लगा, वह आसनसे भ्रष्ट होकर अपने स्थानसे च्युत हाकर स्वर्गसे गिरे । अत्यन्त शोक और दुःखसे पीड़ित होनेसे उनका ज्ञान नष्ट हुआ और उज्ज्वल माला मलिन होगई । शिरके मुकुट, भूषण और विचित्र वस्त्र सम्पूर्ण गिर गये, शरीरके समस्त अङ्ग शिथिल होके घूमने लगे । उनको उस समय कोई भी नहीं जानता था, परन्तु वह सबको हो बार बार देखने लगे, कभी कभी उन सबको भी नहीं देख सकते थे । इसी भांति सब विषयोंसे रहित होकर वह पृथ्वीमें गिरनेके पहिले ही अपने मनमें यह चिन्ता करने लगे, कि हाय ! तैय ऐसा कौनसा अधर्म तथा अशुभ कार्य किया है, जिससे निज स्थानसे भ्रष्ट हुआ हूँ ? इसी-प्रकारसे चिन्ता करते हुए आसन और अवलम्ब रहित राजा ययातिको वहापर रहनेवाले राजा, सिद्ध, और अप्सरा, गन्धर्व आदि सब कौतुककी भांति देखने लगे । हे

राजन् । अतएव पुण्यसे हीन मनुष्योंको स्वर्गसे गिरानेवाले एक पुरुषने इन्द्रकी आज्ञासे राजा ययातिके समीप आकर कहा, कि हे राज-पुत्र । तुमने अभिमानसे मतवारे होकर सबको अवमानना की है, तुम अभिमानके कारण-ही स्वर्गलोकसे गिराये गये हो, तुम्हें कोई नहीं जान सकता है, इससे जाओ जल्दी गिरो । यह वचन सुनकर उत्तम गतिको पाने वाले पुरुषोंके अग्रगामो नहुषपुत्र ययातिने कहा “साधुओंके बीच गिरुंगा” तीन बार ऐसा ही कहकर कहा गिरेंगे इस बातकी सोच-ने लगे । उसी समयमें प्रतर्दन, वसुमना, शिवि और अष्टक नामक चारो राजा नैमिषारण्यमें वाजपेय यज्ञसे इन्द्रकी तृप्त कर रहे थे, उन्हें देखकर वह उन्हीं लोगोंके बीचमें पतित हुए । उन लोगोंके यज्ञका धुआं स्वर्गद्वार पर्यन्त ऐसा दीख पड़ता था, जैसे स्वर्गतक कोई उत्तम नदी दीख रही हो । पृथ्वीपति ययाति उसी धूँसे युक्त नदीको अवलम्बन करके पृथ्वीपर आगये । पुण्यके नाश होनेपर वह अपने दोहित्र, सब शोभासे युक्त, यज्ञमें निष्ठा करनेवाली, लोकपाल और अग्निके समान तेजस्वी चार राजसिंहोंके बीचमें पतित हुए । उनको शोभासे प्रकाशित देखके उन राजपुत्रोंने पूछा, कि आप कौन ? कौनसे देश तथा किस नगरके वन्धु हैं ? आप देवता, गन्धर्व, यक्ष अथवा राक्षस हैं ? किस कारणसे आप यहापर आये हैं और क्या चाहते हैं ? आपका आकार देखनेसे मालूम होता है, कि आप मनुष्य नहीं हैं ।

राजा ययाति बोले, मैं राजर्षि ययाति हूँ, पुण्यके नाश होजानेसे स्वर्गलोकसे पृथ्वीमें पतित हुआ हूँ, साधु पुरुषोंके बीच गिरुंगा, ऐसी मैंने इच्छा की थी, इससे आप लोगोंके बीचमें गिरा हूँ ।

राजा लोग बोले, हे पुरुषर्षभ । आपकी यह अभिलाषा सायक होवे, आप हम लोगोंके

यज्ञ और धर्मका फल ग्रहण करें । राजा ययाति बोले, मैं क्षत्रिय हूँ, दान लेनेवाला ब्राह्मण नहीं हूँ ; विशेष करके दूसरेके पुण्य ग्रहण करनेके निमित्त मेरी प्रवृत्ति नहीं होती है ।

नारद मुनि बोले, राजा ययाति यह वचन कह रहे थे, उसी समयमें ब्रह्मचर्य परायण वनवासिनो माधवी उसी स्थानपर आ उपस्थित हुई । उसकी देखते ही उन चार पुत्रोंने प्रणाम करके यह विनती की, कि तपोधने ! तुम इस स्थानपर क्यों आई हो और तुम्हारा क्या प्रयोजन है ? हम लोग सब तुम्हारे पुत्र हैं, इससे कहो तुम्हारा कौनसी आशंका पालन करें ? उन लोगोंकी बात सुनकर तपोधनी माधवीने हर्षसे अत्यन्त ही गद्गद होकर पिताके समीप जाकर उनके चरणोंको बन्द करने की और पुत्रोंके सस्तकको स्पर्श करके बातें करने लगी । हे राजेन्द्र ! ये पुत्र तुमसे पृथक् नहीं हैं, सब तुम्हारे दोहित्र हैं, इससे ये ही लोग तुम्हारा उद्धार करेंगे । यह बात सुनकर राजा नहीं रहे, पहिले समयमें सैकड़ा घटनाएँ ऐसी देखी गई हैं । हे राजन् । मैं तुम्हारी पुत्री वनवासिनो माधवी हूँ, इससे मेरा भी जो कुछ धर्म सञ्चय हुआ है, उसका आधा भाग तुम्हें ग्रहण करो । विचारकर देखा, ससारमें सत्य पुत्र और पौत्रके किये हुए कर्मोंके फलका आधा भाग पाते हैं, इसी निमित्त दोहित्रको इच्छा करते हैं, सुम्हको मालव मुनिके हाथमें समर्पण करते समय तुमने जो दोहित्रकी इच्छा की थी, उसका भी यही प्रयोजन है । अतएव प्रतर्दन आदि चारो पुत्रोंने माताके चरणोंके सिरे भुकाके प्रणाम किया और स्वर्गसे पतित हुए मातामह (नाना)के परित्राण करनेके निमित्त जो वचन पहिले बोले थे, इस समय नमस्कार करके गम्भीर भावसे वही फिर कहने लगे । उन लोगोंकी बातके शेष होनेपर मालव मुनि

वनसे आकर राजा ययातिसे बोले, हे राजन् । मेरी तपस्याके आठवें भागसे तुम फिर स्वर्गको चले जाओ ।

१२१ अध्याय समाप्त ।

नारद मुनि बोले, राजाओंमें अष्ट महाराज ययाति प्रतर्द्धन आदि समस्त साधु पुरुषोंको जानकर उनकी बातोंको सुनते ही मोह, शोकसे रहित होके दिव्य शरीर, दिव्य भाला, और दिव्य भूषणोंको धारण करके पृथ्वीपर पाव न रखके फिर स्वर्गकी ओर चले । इसी अवसरमें संसारमें उदार और महादानी कहके प्रसिद्ध वसुमनाने सबसे पहिले जचे खरसे कहा, हे राजन् । मैंने पृथ्वीमें रहनेवाले किसी प्राणीके ईष, निन्दा और अपमान न करनेसे जो फल प्राप्त किया है, वह मैंने तुमको समर्पण किया आप उसके अधिकारी होइये । और भी मैंने दान, क्षमा और यज्ञसे जो फल प्राप्त किया है, वह भी आपको देता हूँ । अनन्तर क्षत्रियोंमें अष्ट प्रतर्द्धन मातामहसे बोले, हे महाराज । सदा धर्ममें रत और युद्ध-कर्ममें युक्त रहनेसे क्षत्रियवंशके योग्य वीर शब्दके अनुसार मैंने जो कुछ पुण्य उपाज्जन किया है, इस समय तुम उसकी ग्रहण करो ।

इसके अनन्तर उशीनरपुत्र शिवि मधुर वचनोमें बोले, हे राजन् । मैंने बालक और स्त्रियोंके समोपमे भी कभी मिथ्या वचन नहीं कहा है, हसो, युद्ध, जीत, हार, आपदकाल, जुएका खेल और व्यसनके समयसे भी कभी मैंने झूठ वचन नहीं कहा है, उसी सत्यके प्रतापसे तुम स्वर्गको जाओ । जिस सत्यके निमित्त मैं राज्य, कर्म, सुख और प्राण भी त्याग सकता हूँ, उसी सत्यके प्रभावसे तुम स्वर्ग लोकमें जाओ । जिस सत्यके प्रभावसे धर्म, अग्नि और इंद्र मेरे ऊपर पसन्न हुए हैं, उसी सत्यके सहित तुम स्वर्गको जाओ । अनन्तर कौशिकवंशमें उत्पन्न हुए

बहुत यज्ञ करनेवाले साधवीपुत्र अष्टक, राजा ययातिसे बोले,—हे राजेन्द्र । मैंने पुण्डरीक, गोमेध और वाजपेय आदि अनेक यज्ञोंका अनुष्ठान किया है, तुम उन सबके फल भागो वनो । यज्ञके कार्य पूर्ण करनेके निमित्त मैंने जो धन, रत्न तथा दूसरी वस्तुओंको भी शेष नहीं रहने दिया, उसी सत्य निष्ठाके प्रभावसे आप स्वर्गको जाइये । इसी प्रकारसे दौहित्ररूपो उन चारो राजाओंने अपने अपने पुण्य और धर्मको सहायतासे स्वर्गसे भ्रष्ट हुए राजा ययातिको उसी समय उदार कर दिया । वे लोग ऊपर कहीं ऊईं रीतिसे जैसे जैसे कहने लगे, राजा ययाति भी उसी प्रकारसे पृथ्वीकी सीमाको त्यागकर स्वर्गकी ओर जाने लगे, इससे यह अवश्य ही खीकार करना पड़ेगा, कि शुद्ध राजवंशमें उत्पन्न हुए कुलको पवित्र करनेवाले उन चारो राजसिंहोंने ही महा बुद्धिमान् मातामह को फिर भी स्वर्ग लोकमें भेज दिया । वे सब अपने अपने पुण्यके फलको प्रदान करके अन्तसे बोले, हे राजेन्द्र । हम सब लोग तुम्हारे दौहित्र और सब गुणोंसे युक्त हैं । इससे हम लोगोंके धर्मकी सहायतासे तुम सब विघ्नोसे रहित होकर स्वर्गको जाओ ।

१२२ अध्याय समाप्त ।

नारद मुनि बोले, राजा ययाति अनेक दक्षिणाओंके देनेवाले साधुचरित्रसे युक्त अपने दौहित्रोंके ऐसे कहनेपर उन लोगोंसे विदा होके फिर भी स्वर्गको गये और वहीपर निवास करने लगे । अपने सुकृत कर्मोंसे वञ्चित होनेपर भी वह दौहित्रोंके पुण्य फलसे निचल स्थानको पाकर अनेक गन्धित पुष्पोसे युक्त शीतल, मन्द, सुगन्धित वायु सेवन करते हुए परम शोभासे प्रकाशित होन लगे । अर्धरा और गन्धर्व लोग अत्यन्त ही प्रीतिके साथ उनके समुख नृत्य करने और गीत गाने लगे । देव-

ताओंके सेवक लोग नगाड़ेकी शब्दसे उन्हें आनन्दित करने लगे । अनेक देवर्षि, राजर्षि, सिद्ध चारण उनको स्तुति करने लगे और देवताओंने उत्तम अर्घ्य प्रदान करके उनकी पूजा की; तथा यथा उचित उनका सम्मान किया ।

महा बुद्धिमान् राजा ययातिके इस प्रकारसे स्वर्गलोक पानेसे पितामह ब्रह्माने अपने मोठे वचनोंसे उन्हें दत्त करते हुए यह कहा, कि हे राजर्षि । तुमने लोक हितकर सब पुण्यकी कर्मोंको कर चतुष्पाद धर्म सञ्चय करके अक्षय स्वर्ग लोक पाया था, और इस स्थानमें तुम्हारी कीर्त्तिका स्तम्भभी अक्षय था परंतु तुमने अपने अविचारकी दोषसे सम्पूर्ण स्वर्ग वासियोंके अन्तःकरणकी अज्ञानसे ऐसा डाप दिया था, कि उस समय कोई भी तुमको जान न सका, इससे सबने जब तुम्हें नहीं चीन्हा, तभी तुम स्वर्गसे गिराये गये । अनन्तर अपने दाँहवालेके प्रतापसे फिर परित्याग पाकर स्वर्गमें आये हो और तुमने निजकर्मसे उपाजित पुराने सब लोकोंको फिर प्राप्त करके अक्षयपदको पाया है ।

राजा ययाति बोले, हे पितामह ! मुझे एक बड़ी भारी शङ्का उपास्थित हुई है, आप कृपा करके उसका मिटा दोजए, आपके विद्यामान रहते दूसरेसे पूछना मुझे उचित नहीं है । वह शङ्का यही है, कि कई सहस्र वर्षतक मैंने प्रजापालन, दान और यज्ञ करके जो अनेक प्रकारसे पुण्य सञ्चय किया था, वह धोड़ि हो समयमें क्या क्षीण होगया ? किस अपराधसे मैं स्वर्गसे गिराया गया ? हे महातेजस्विन् ! मेरे निमित्त जा सब शाश्वत लोक तैयार हुए थे, वह कुछ भी आपसे नहीं छिपे हैं, तब किस कारणसे वह सब नष्ट होगये ?

ब्रह्मा बोले, हे राजेन्द्र ! तुमने दान, यज्ञ आदि कर्मोंको करके जो बहुतसे पुण्य सञ्चित

किये थे, उन सब पुण्योंकी फलोंका केवल एक मान अभिमानकी दोषसे ही क्षय हुआ था, और इसी निमित्त तुम स्वर्गवासी लोगोंसे धिक्कार पाकर स्वर्गसे गिराये गये थे । हे राजर्षि ! यह स्वर्ग लोक है, बल, अभिमान, हिंसा और शठतासे कभी कोई पुरुष यहां निवास नहीं कर सकता । इसलिए अबसे तुम उत्तम मर्म और अधम पुरुषोंमें किसीकी भी अवमानना मत करना । तुम्हें अधिक क्या कहूँ, जो लोग अभिमानकी अग्निसे जलते हैं, उनके समान पापी यहां कहीं भी नहीं देख पड़ते । हे राजन् ! जो मनुष्य तुम्हारे इस स्वर्गसे गिरने और फिर स्वर्गपर चढ़नेके विषयको कहेंगे और सुनेंगे, वह महा घार आपदसे भी अनायास ही पार हो सकेंगे । इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ।

नारद मुनि बोले, हे नरनाथ ! पहिले समयमें राजा ययाति अभिमानसे और गालब मुनिने हठसे इतने दुःख और होश पाये थे । हितको इच्छा करनेवाले पुरुषोंको सुहृद् लागोंको ते अवश्य ही सुनना उचित है, हठके वशमें होना किसी प्रकारसे भी उचित नहीं है, क्योंकि हठ करनेसे केवल नाश हीन, हीकी सम्भावना होती है । इससे हे गान्धारी नन्दन ! तुम भी अभिमान और और क्राध त्याग दो । हे वार ! युद्धका आड़म्बर छाड़कर पाण्डवोंके सङ्ग सन्धि करो । हे राजन् ! मनुष्य जो कुछ दान और तपस्या आदि कर्म करते हैं, कभी उसका अनायास ही नाश नहीं होता और कर्मोंकी करनेवालेके अतिरिक्त दूसरा कोई भी उस कर्मफलका भागी नहीं हो सकता । इस लोकमें जो मनुष्य राग, द्वेष छाड़कर अनेक शास्त्रके ज्ञान तथा युक्तिसे निश्चय किये हुए इस उपाख्यानको अपने हृदयमें धारण करता है, वह धर्म, अर्थ और कामका प्राप्त करन पृथ्वीके राज्यका भाग कर सकता है ।

नारद मुनिकी बात समाप्त होतेपर राजा धृतराष्ट्र बोले, हे भगवन् । आपने जो कुछ वचन कहे, वह सब ही यथार्थ है । मेरी भी ऐसी ही इच्छा है, परन्तु क्या करूं, इच्छा रहनेपर भी मेरी कुछ भी प्रभुता नहीं है ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, कुरुक्षेत्र राजा धृतराष्ट्र, नारदसे ऐसे वचन कहकर श्रीकृष्ण-चन्द्रको सम्बोधन करके बोले, हे कृष्ण । तुमने हम लोगोंके निमित्त हितकारी, स्वर्गको साधन करनेवाली, धर्म और न्यायसे युक्त वचन कहे हैं । परन्तु हे तात । मैं स्वयं उसके वशमें होरहा हूँ, नीचबुद्धि-दुर्योधन मेरे प्यारे कार्य करनेमें प्रवृत्त नहीं होता है । हे महाबाही पुरुषोत्तम । इससे मेरी आज्ञा न माननेवाले इस मूर्ख दुष्टात्माको तुम ही सन्मार्गपर लानेके निमित्त यत्न करो । यह पापी, बुद्धिमान् विदुर, गान्धारी, भीष्म आदि सुहृद् पुरुषोंकी बात नहीं सुनता । हे कृष्ण । इससे तुम ही इस पापी और मूर्ख दुर्योधनको शासित करो, ऐसा करनेकीसे तुम्हारा मित्रोंके निमित्त बृद्धत ही उचित और बड़ा भारी कार्य सिद्ध होगा ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर सब धर्म जाननेवाले श्रीकृष्ण क्रोधी दुर्योधनके समीप जाकर इस प्रकारसे सधुर वचन कहने लगे । हे कुरुसत्तम दुर्योधन । तुम युद्ध करनेके वास्ते पत्यन्त ही हठ करते हो, इससे तुम्हारी शान्तिके निमित्त मैं जो कहता हूँ, वह अच्छी भातिसे चित्त लगाकर सुनो । हे भारत । तुम उत्तम कृत्तमें उत्पन्न हुए हो, तुम शास्त्र-ज्ञान, सदाचार और ऐश्वर्य आदि सब गुणोंसे युक्त हो, इनसे मेरे वचनके अनुसार तुमको उत्तम व्यवहार अवश्य ही करना उचित है । तात । तुम्हारे विचारसे जो धर्म करनेके योग्य निश्चित हो रहा है, वह नीच कृत्तमें उत्पन्न हुए दुष्टात्मा, अधर्मी, और लज्जाहीन पुरुष लोग ही विचार करते हैं । हे भरतर्षभ । इस सम्पूर्ण

पृथ्वीके बीच साधु स्वभावसे युक्त पुरुषोंको ही प्रवृत्ति धर्म, अथसे युक्त देखी जाती है । नीच पुरुषोंके विषयमें यह सब बातें उलटी होती है; अर्थात् वह लोग जिस कार्यमें प्रवृत्त होते हैं, वह प्रायः अधर्म और अनर्थसे पूर्ण होता है । सम्प्रति तुम्हारे भी कार्यमें वही उलटी प्रवृत्ति बार बार होती देखते हैं । इस प्रकारकी प्रवृत्ति रखके जो तुम बृद्धत ही हठ करते हो, वह हठ अधर्मका मूल, भयका उत्पन्न करने वाला और महा अनर्थका कारण है, ऐसा क्या वह प्राण अर्थान्त नाश कर सकता है । इस प्रकारका निरर्थक हठ करनेका कोई कारण भी नहीं दीख पड़ता है, विशेष करके उसकी रक्षा भी तुम नहीं कर सकोगे । हे परन्तप । इससे यदि तुम्हें वह अनर्थ त्याग कर अपने कल्याणके साधन करनेकी इच्छा होवे, यदि भाई सेवक और मित्रोंको इस अधर्मसे युक्त यशरहित कर्मसे निस्तार करनेकी अभिलाषा होवे, तो अत्यन्त पराक्रमी, महा बुद्धिमान्, महा उत्साहसे युक्त, शास्त्रोंके जाननेवाले पाण्डवोंके सङ्ग सन्धि करो, ऐसा ही करनेसे उक्त अभिलाषा पूर्ण हो सकती है । सन्धिके करनेसे केवल तुम्हारा ही उपकार होगा, यह बात नहीं है, उससे राजा धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोण, विदुर, कृपाचार्य, भीमदत्त, बालिक, अश्वत्थामा, विकर्ण, सञ्जय, विविंशति आदि सब साधु पुरुष, मित्र और ज्ञातिके लोगोका भी बृद्धत ही हित साधन और प्रीतिकी वृद्धि होगी । हे तात । तुम्हारी शान्तिसे सम्पूर्ण जगतके ही मङ्गलकी सम्भावना है । हे भरतर्षभ । तुम उत्तम कृत्तमें उत्पन्न हुए हो, शास्त्र तेजस्वी और दयालु हो ; इससे माता पिताकी आज्ञा पालन करना तुम्हें बृद्धत ही उचित है । हे भरतर्षभ । पिता जिस प्रकारसे शासन करें, अच्छे पुत्र लोग उसीको उत्तम समझते हैं । भारी विषयमें पड़नेपर भी मनुष्य पिताके शासनमें स्थित रहते हैं । जब तुम्हारे

पिताकी यही इच्छा है, कि पाण्डवोंके सङ्ग मेल होवे, तब तुमको भी सेवकोंके सहित उसी कार्यकी इच्छा करनी योग्य है। जो पुरुष सुहृद लोगोंका वचन सुनकर उसको नहीं ग्रहण करता, उसके कर्मोंके फलके शेष होने-पर अवश्य वह महा कालके सुखसे पड़के जलता रहता है। मोहमें फंसेकर जो पुरुष हितका वचन नहीं कहता, वह अवश्य ही आलसी और असमर्थ होकर पश्चान्ताप करता रहता है। परन्तु जो बुद्धिमान् पुरुष अपना मत त्याग कर हित चाहनेवाले मित्रोंकी बात पहिले ही मान लेते हैं, वे इस लोकमें परम सुखसे आनन्दित रहते हैं। जो पुरुष हितैषी मित्रोंकी बात अपने प्रतिकूल जानकर उसे ग्रहण नहीं करता; और नीच पुरुषोंके यथार्थ प्रतिकूल वचन सुनता है; वह अवश्य ही शत्रुओंके वशमें होजाता है। जो नीचबुद्धि उत्तम चरित्रवाले साधु पुरुषोंकी बातको न मानकर दुष्ट पुरुषोंके मतके अनुसार चलता है, उसके मित्र लोग थोड़े ही समयमें उसे विपदमें पड़े हुए देखकर शोक करते हैं। जो मूर्ख राजा गुणवान् तथा सुख्य सेवकोंकी त्याग करके अधम तथा दुष्ट मन्त्रियोंका आदर करता है, वह महा घोर विपदरूपी समुद्रमें गिरकर कभी उसके पार नहीं जा सकता।

हे भारत । जो अनर्थ करनेवाला मूर्ख राजा उत्तम स्वभावसे युक्त मित्रोंके कल्याणकारी वचन न सुनके यथार्थ मित्रोंसे द्वेष और दूसरे पुरुषोंका गौरव करता है, उनको उत्तम पुरुषोंके वशमें रहनेवाली पृथ्वी अवश्य ही परित्याग करती है। हे भरतर्षभ ! तुम भी महावीर पाण्डवोंके सङ्ग विरोध करके दुष्ट, असमर्थ और मूर्ख लोगोंसे परिव्राण पानेकी आशा कर रहे हो। इस पृथ्वीमें तुम्हें छाड़कर और कौनसा मनुष्य इन्द्रके समान महारथ ज्ञातिके लोगोंको त्यागकर दूसरे पुरुषोंसे परिव्राण पाने-

की इच्छा करेगा ? तुम जन्मसे कुन्तीपुत्रोंके दुःख देते चले आते हो; परन्तु धर्मात्मा पाण्डव लोग तब भी तुम्हारे ऊपर क्रोध नहीं करते हैं। हे महाबाही ! तुम्हारे सदा कष्ट व्यवहार करनेपर भी वे महा यशस्व परम स्नेह रखनेवाली सुख्य वस्तु लोग जै तुम्हारे सङ्ग सदासे उत्तम आचार करते आते हैं, वैसा ही व्यवहार तुमको भी करना उचित है; कि क्रोधके वशमें न होकर इस समयसे भी उन लोगोंके सङ्ग तुम उत्तम व्यवहार करो।

हे भरतर्षभ-! बुद्धिमान् पुरुष जिस कार्यके आरम्भ करते हैं, वह धर्म, अर्थ और कामसे युक्त होता है। एक ही समयमें त्रिवर्ग कामोंका होना असम्भव मालूम होनेसे वे धर्म और अर्थसे युक्त कार्य करते हैं। यदि धर्म, अर्थ और काम एका एक करके प्राप्त करनेकी इच्छा होती है, तो उत्तम प्रकृतिके पण्डित लोग पहिले धर्महीके कार्यमें प्रवृत्त होते हैं मध्यम प्रकृतिके लोग अर्थ सिद्ध करके स लाभ कर सकते हैं। नीच प्रकृतिसे युक्त अधम पुरुष केवल कामहीमें प्रवृत्त होते हैं। इति योंके वशमें रहनेवाला जो मूर्ख पुरुष धर्म और अर्थका त्याग करके नीच उपायसे केवल काम सिद्ध करनेकी इच्छा करता है, उसका शीघ्र ही नाश होता है। जो पुरुष काम और अर्थके सिद्ध करनेकी अभिलाषा करेगा, वह पहिले अधर्म आचरण अवश्य करेगा, क्योंकि अर्थ और काम कभी धर्मसे पृथक् नहीं रहते, अर्थात् धर्मके अनुसार सिद्ध न होनेपर अर्थ और काम साथका नहीं होते। राजेन्द्र ! पण्डितोंने धर्महीकी त्रिवर्ग प्राप्त करनेका उपाय कहा है। क्योंकि जो बुद्धिमान् पुरुष धर्मको अवलम्बन करके त्रिवर्ग प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं, वे सुखी लकड़ीकी अग्निकी भाँति सदा ही जलते रहते हैं।

हे भरतर्षभ । तुम केवल दुष्ट उपायसे हो सब राजाओंके बीच विख्यात होने तथा सम्पूर्ण पृथ्वीके राज्यको लेनेकी अभिलाषा करते हो । हे राजन् ! जो पुरुष सम्पूर्ण प्रकारसे सत्यव्यवहारमें लगे हुए उत्तम स्वभावसे युक्त मनुष्योंके सङ्ग कपट व्यवहार करता है, वह कुठारसे वनको काटनेकी भांति अवश्य ही अपना नाश करता है । जो किसीके पराभव की इच्छा नहीं करता, उसको बुद्धि कभी नष्ट न होनेसे उस पुरुषका चित्त कल्याणकारी विषयोंमें प्रवृत्त रहता है, हे भारत । अपनी आत्माके कल्याणकी इच्छा करनेवाले जितेन्द्रिय पुरुष-पाण्डवोंकी बात तो हर रहे । इस पृथ्वीके बीच साधारण मनुष्योंका भी अपमान नहीं करते । जो पुरुष क्रोधके वशमें होता है, उसको भले बुरेका कुछ भी ज्ञान नहीं रहता, देखो लोक और वेदमें प्रसिद्ध बड़े बड़े प्रमाण उसके सम्मुख तुच्छ होते हैं ।

हे भारत । दुष्ट पुरुषोंके सङ्गका त्यागकर पाण्डवोंके सङ्ग सान्ध करनी तुम्हारे निमित्त बद्धत हो उत्तम है, क्योंकि यदि वे लोग तुम्हारी प्रीति पूर्ण करनेके निमित्त इच्छा करेंगे, तो तुम्हारी सब अभिलाषा पूर्ण हो सकती है । एक बार विचार करके देखो तो सही, तुम पाण्डवोंके पराक्रमसे जीती हुई इस समस्त पृथ्वीके राज्यका भोग कर रहे हो, पाण्डवोंकी छोड़कर अब दूसरोंसे परित्याग पानेकी इच्छा करते हो; दुर्लिसह दुःशासन, कर्ण और शकुनि प्रादि कुमन्त्रियोंसे ऐश्वर्य लाभ करनेके निमित्त उन्मादी हो रहे हो । परन्तु पाण्डवोंके सङ्ग ये लोग ज्ञान, धर्म और पराक्रम किसीमें भी समान नहीं हैं । केवल येही लोग क्यों, उपस्थित सब राजा लाग ही युद्धके समयमें क्रोधसे पूर्ण तेजस्वी भीमसेनके मुखकी ओर न देख सकेंगे । हे महाबाहो । भीष्म, द्रोण, कर्ण, कृपापाथ्य, भूरिश्वा, सोमदत्त, अश्वत्थामा

और जयद्रथ प्रादि महावीर पुरुष तुम्हारे सहाय हैं, परन्तु अर्जुनके सङ्ग युद्ध करनेमें ये सब ही असमर्थ हैं । इन लोगोंकी तो बात ही क्या है ? देवता, असुर, गन्धर्व और मनुष्योंके सहित सब लोकके पुरुष भी इकट्ठे होकर युद्धमें अर्जुनको नहीं जीत सकते ।

हे तात । इससे तुम युद्ध करनेमें कभी चित्त मत लगाओ; और तुम अपनी सेनाके बीचसे ऐसा कोई पुरुष बाहर तो करो, जो युद्धभूमिमें अर्जुनके हाथमें पड़कर शरीरसे कुशलपूर्वक बचके घर लौट सके ? जिसके जीतनेसे तुम्हारा विजय होवे, पहिले ऐसे किसी पुरुषकी खोज करो, नहीं तो व्यर्थ मनुष्योंके नाश करनेसे क्या प्रयोजन है ? जिन्होंने खाण्डव वनमें अग्नि-को दप्त करते समय यक्ष, गन्धर्व, असुर और नागोंके सहित सम्पूर्ण देवताओंको जीता था, उस अलौकिक वीरतासे युक्त अर्जुनके सङ्ग कौन पुरुष युद्ध कर सकता है ? विराट देशकी जो बड़ी अद्भुत बात सुनी जाती है, अकेले अर्जुनके साथ बद्धतसी संख्यासे युक्त मनुष्योंके संग्राममें यही एक अन्तिम प्रमाण है । दूसरेकी तो बात ही क्या है, त्रिपुरासुरकी विजय करने-वाले साक्षात् महादेव उसके युद्धसे प्रसन्न हुए हैं । उस प्रसाधारण बल और पराक्रमसे युक्त देवताओंमें अग्रगाम्य प्रतापशाली जिष्णुकी तुम जीतनेकी अभिलाषा करते हो, इससे तुम्हारी कितनी मूर्खता और दुराशा प्रकाशित हो रही है, उनको मैं क्या कहूंगा ? संग्रामभूमिमें विरुद्ध खड़े होनेवाले मेरे सहित अर्जुनको युद्धके निमित्त आवाहन करनेमें कौन पुरुष माहस कर सकता है ? मनुष्योंकी तो बात ही क्या है, साक्षात् इन्द्र भी युद्ध करनेमें समर्थ नहीं हो सकते । जो पुरुष युद्धमें अर्जुनको जीत सकेगा, वह अपनी दांती भुजाओंके बलसे पृथ्वीकी भी उठा सकेगा, क्रोध करनेसे सम्यक् प्राणियोंकी

भक्ष कर सकोगा और देवताओंकी भी स्वर्गसे भगानेमें समर्थ होगा ।

हे भरतर्षभ । इससे तुम एक बार पुत्र, पौत्र भाई, जाति तथा दूसरे सम्बन्धी लोगोंकी ओर अच्छी प्रकारसे आख खोलकर देखो, भरत-वंशके उत्पन्न हुए ये सब उत्तम उत्तम महावीर पुरुष जिसमें तुम्हारे निमित्त नाश न हो जावे, कौरवोंका यह प्रतिष्ठित कुल इकबारगी शेष न हो जावे, और लोकमें “कीर्ति और कुलकी नाश करनेवाला,” कहके सब लोग जिसमें तुम्हारी निन्दा न करे, तुम वही कार्य करो । साम्प्रकारिकसे महारथ पाण्डव लोग तुमको ही युवराज और राजा धृतराष्ट्रको सहाराज बनावेन । हे तात । इससे साम्प्रतिके निमित्त उद्यत हुई राजलक्ष्मीकी अवमानना न करो । पाण्डवोंकी आधा राज्य देकर तुम इस पृथ्वीकी लक्ष्मीका लाभ उठाओगे । तुम मित्रोंके वचन मानकर यदि पाण्डवोंके सङ्ग मेल करोगे, तो मित्रोंकी प्रीतिके पात्र होकर स्थिरतासे अपना कल्याण सिद्ध करनेमें समर्थ होओगे ।

१२४ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, श्रीकृष्णचन्द्रकी बातोंको सुनकर शान्तनुपुत्र भीष्म कीधी दुर्योधनसे बाहने लगे । हे तात । मित्रोंकी शान्तिकी इच्छासे महात्मा कृष्णने तुमसे जो कुछ वचन कहे हैं, तुम क्रोध छोड़कर सब प्रकारसे उसी मार्गके अनुगामी होओ । महाबुद्धिमान् कृष्णके इन उत्तम उपदेशोंसे भरे वचन न माननेसे किसी भावसे तुम्हारा कल्याण न होगा, तुम किसी कालमें भी यथार्थ सुख और कल्याणका दर्शन न कर सकोगे, हे राजन् । महाबाहु कृष्णने धर्म, अर्थसे भरे हुए इष्टसाधक उत्तम ही वचन तुम्हारे निमित्त कहे हैं । इससे तुम एकाग्रचित्तसे उन बातोंको स्वीकार कर लो : निरपेक्ष सब प्रजाका नाश मत करो । हे भरत-

श्रेष्ठ ! महा बुद्धिमान् कृष्ण, बूटे प्रज्ञाचक्षु धृतराष्ट्र और विदुर, इन लोगोंके अर्थसे युक्त यथार्थ वचन न माननेसे तुम अन्ध राजा धृतराष्ट्रके जीवित रहते ही अपनी दुष्टता और नीचताके कारण सब राजाओंके बीच वृद्ध वदी और प्रज्वलित इस राजलक्ष्मीके नाश करनेका विधान करोगे और अभिमानसे मतवाले हो कर पुत्र, पौत्र, भाई, सेवक, और सम्बन्धियोंके सहित अपने प्राण और धनका भी निःसन्देह नाश करोगे । हे तात । इससे मैं तुम्हें फिर भी बार बार निषेध करता हूँ, कि तुम कुलघाती, कापुरुष, दुष्टबुद्धि और कुमार्गगामी होकर माता पिताकी शोकरूपी महा समुद्रमें मत डूबाओ ।

भीष्मके ऐसा कहके चुप होनेके अनन्तर, द्रोणाचार्य लक्ष्मी सास लेते हुए क्रोधी दुर्योधनसे यह वचन बोले, हे तात । श्रीकृष्ण और शान्तनुपुत्र भीष्मने तुमसे जो कुछ धर्म और अर्थसे युक्त वचन कहे हैं, तुम सब शङ्का त्यागकर उन्हीं वचनोंके अनुसार चलो । हे राजेन्द्र ! ये लोग महाबुद्धिमान्, तेजसी, धर्मात्मा और शास्त्रोंकी जाननेवाले हैं ; विशेष करके दोनों ही तुम्हारे परम हितधी हैं, इससे इन लोगोंने तुम्हारे हितहीके वचन कहे हैं ; अब तुम भी सब संशय और शङ्का छोड़कर इनका वचन मान लो । हे महाबुद्धिमान् । हे परन्तप । कृष्ण और भीष्मने जो बातें कहीं हैं, तुम उन्हींका अनुष्ठान करो, बुद्धिके मोहमें पड़कर किसी प्रकारसे भी कृष्णकी अवज्ञा मत करो । यह कार्य आदि कमलों लोग जो सदा ही तुरे परामर्शसे तुम्हें उत्साहित कर रहे हैं, ये लोग कभी तुम्हारा विनाश साधन करनेमें समर्थ न हो सकेंगे । युद्धसमयमें ये लोग दूसरेके ऊपर वैरकी अपेक्षा करके निश्चित हो जायेंगे । हे राजेन्द्र ! इससे तुम समस्त प्रजा और पुत्र, भाई तथा ११

मित्रोंका व्यर्थ नाश मत करो। तुम इस बात-
को निश्चय पूर्वक जान रक्खो, कि जिस सेनामें
कृष्ण और अर्जुन निवास करते हैं, वह बहुत ही
अजेय है। हे तात ! हे भारत ! मित्रोंमें अष्ट
कृष्ण और भीष्मने जो कुछ वचन कहे हैं, यदि
तुम उन सत्य वचनोंको न मानोगे, तो अवश्य-
ही तुम्हें पश्चात्ताप करना पड़ेगा। अर्जुनके
विषयमें ऋषिअष्ट परशुरामजीने जो कुछ कहा
है, वह उससे भी सहस्र गुण अष्ट है। देवकी-
पुत्र श्रीकृष्णको बात मैं क्या कहूंगा, देवता
लोग भी इनका प्रताप नहीं सह सकते। हे
भरतर्षभ ! तुम्हारे समीप प्यारे और सुख
उत्पन्न करनेवाले वचन कहनेहीसे क्या फल
होगा ? सुहृद लोगोंका जैसा कहना उचित
है, वह सब कहा गया, इस समय जैसा तुम्हारी
इच्छा होवे, वैसे ही कार्य तुम करो। तुमको
अब अधिक बात कहनेकी मेरी इच्छा नहीं
होती है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, द्रोणाचार्यके वच-
नके शेष होनेपर महा बुद्धिमान् विदुर भी
क्रोधी दुर्योधनके मुंहको ओर देखकर यह
वचन बोले। हे भरतसत्तम ! मैं तुम्हारे निमित्त
कुछ भी शोक नहीं करता हूँ ; परन्तु ये
जो बूढ़े तुम्हारे माता और पिता हैं, जो तुम्हें
शत्रु स्वस्वपसे सहाय पाकर सहाय रहित
होगे, मे उन्हींके निमित्त शोकसे व्याकुल हो
रहा हूँ। 'यही' ऐसे कुलघाती पापी कुपुत्र-
को उत्पन्न करके वह मित्र सेवक और सम्ब-
न्धियोंके मारे जानेपर भिक्षुक और पङ्कुरहित
पक्षीकी भांति इस पृथ्वी पर शोक करते हुए
चारों ओर घूमैंगे यही मुझी असह्य दुःख है।

अनन्तर राजा धृतराष्ट्र भाइयोंके सहित
राजाओंके बीचमें बैठे हुए दुर्योधनसे यह वचन
कहने लगे।

हे पुत्र दुर्योधन ! महारमा कृष्णने धर्म
और अर्थसे युक्त जो कुछ शुभ वचन कहे हैं,

वह तुम अवश्य अपने हृदयमें धारण करो।
यह महा तेजस्वी कृष्ण जब हम लोगोंके सहाय
बनेंगे, तो निःसन्देह हम लोग सब राजाओंके
बीच सब प्रकारसे अपना असीष्ट प्राप्त करेंगे,
इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। हे तात !
इससे तुम कृष्णके कहनेके अनुसार पाण्डवोंके
सङ्ग सम्बन्ध करके युधिष्ठिरसे मेल करो ; भरत
कुलकी रक्षाका अनुष्ठान करो। आचार्येन्द्रपो
कृष्णका उपदेश मानकर शान्ति स्थापनके
निमित्त प्रवृत्त हो जाओ। मेरी समझमें सन्धि
करनेका यही उत्तम समय उपस्थित हुआ है,
इससे किसी प्रकारसे भी यह समय मत
टालो। दयावान् कृष्णने तुम्हारे हित और
शान्तिके निमित्त ये सब बातें कही हैं। यदि
इन वचनोंपर ध्यान न दोगी, तो निःसन्देह
तुम्हारा पराजय होगा।

१२५ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, राजा धृतराष्ट्रके वचन
सुन भीष्म और द्रोणाचार्य उसे युक्तियुक्त समझ-
कर, शासनको न माननेवाले दुर्योधनसे, यह वचन
बोले। हे भारत ! जबतक कृष्ण अर्जुन युद्धके
निमित्त नहीं खड़े होते हैं, जबतक गाण्डीवधनुष
स्थिर भावसे है, जबतक पुरोहित धौम्य यज्ञको
अग्निले शत्रुओंका वध नहीं ज्वन करते हैं,
लज्जाशील महारथ युधिष्ठिर जबतक क्रुण्हा-
कर तुम्हारी सेनाके ऊपर दृष्टि नहीं करते
हैं, जबतक वह भयङ्कर युद्ध आरम्भ नहीं होता
है, तब ही तक इस विरोधकी शान्ति होना
उचित है। जबतक प्रचण्ड वनपुत्र ग्रहण करके
भीमसेन सम्मुख नहीं आता है और धर्मराजके
समान गदा हाथमें लेकर जबतक लक्ष सेनाका
संहार नहीं करता है, तभीतक तुम पाण्डवोंके
सङ्ग विरोध त्यागकर सन्धि कर लो। जबतक
भीमकी गदासे पके हुए तालके फलके समान
वीरोंके शिर पृथ्वीमें नहीं गिरते हैं, तभीतक

तुम सन्धिके निमित्त यत्न करो । जबतक नहुल सहदेव, दुपदपुत्र घृष्टयन्त्र, शिखण्डी, विराट, शिशुपालके पुत्र आदि सब शस्त्रोंका जाननेवाले वीर लोग वर्ष भर धारण करके महाभारीकी सृष्टि नहीं करते हैं, तभी तक विरोध त्याग करके सन्धिके निमित्त यत्न करो । जबतक राजाओंके कामल शरीरमें चोखे बाण नहीं घुसते हैं, तभीतक सन्धि होनी उचित है । पाण्डवोंको उत्तेजित करनेवाले, महा धनुडारी बहूत दूरके लक्ष्य (निशान) को वेधनेवाले, सब शस्त्रोंको जाननेवाले सैनिक योद्धा लोग जबतक चन्दनचर्चित शरीरपर प्रकाशित मणि और हार पहरेकर सब लोहमय शस्त्रोंको नहीं धारण करते हैं, तभीतक शान्ति होनी उचित है । हे राजन् ! राजाओंमें अष्ट धर्मराज युधिष्ठिर तुमकी शिर भुजा कर प्रणाम करते हुए देखकर अपनी दोनों भुजाओंसे ग्रहण करे, शान्तिके निमित्त ध्वजा, अंकुश आदि चिन्हसे युक्त अपना दहिना हाथ तुम्हारे कंधे पर रखे और तुम्हारे बैठनेपर रत्न औषाधसे युक्त उज्ज्वल अंगूठियोंसे शोभित अपनी हथेलीसे तुम्हारी पीठ ठोकें । हे भरतर्षभ ! महाबाहु भोमसेन तुम्हारे सङ्ग मिलकर शान्तिके निमित्त तुमसे बात चोत करें । अर्जुन और नकुल, सहदेव भी जब तुम्हें प्रणाम करें तब तुम उनका मस्तक स्पर्शकर उन लोगोंके सङ्ग प्रीतिपूर्वक बातचोत करा । हे राजेन्द्र ! तुमको बीरोमें अग्रगामी पाण्डव भाइयोंके सङ्ग मिलते हुए देखकर सम्पूर्ण राजा लोग आनन्दसे आसुरी गिरावेंगे । समस्त राजाओंकी राजधानियोंमें तुम लोगोंके आपसमें भावभावसे मिलनेकी घोषणा होगी । अधिक क्या कहें, तुम लोग भावभावसे आपसमें मिलकर सम्पूर्ण पृथ्वीकी राजलक्ष्मी भोगते हुए सब शोक और चिन्तासे रहित होओगे ।

१२६ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, राजा दुर्योधन कौरवोंकी सभाके बीचमें अप्रिय वचन सुनकर महाबाहु यशस्वी श्रीकृष्णचन्द्रसे बोले, आपने वा कुछ वचन कहे, वह अच्छे प्रकारसे विचारकर कहना उचित था । हे मधुसूदन ! पाण्डवोंकी भक्तिके वशमें होकर उक्त प्रकारके वचनोंसे तुमने मेरी बहूत ही निन्दा की है । परन्तु मैं पूछता हूँ, कि तुम कौनसे बलाबलका विचारकर इस प्रकारसे मेरी सदा निन्दा करते हो ? केवल तुम ही नहीं, तदुर, राजा, आचार्य और पितामह भी दूसरे सब राजाओंकी ओर कर केवल मेरी ही निन्दा करते रहते हैं । मैं अपने शरीरसे कोई दोष नहीं किया है, तो भी तुम तथा दूसरे राजा लोग मुझसे द्वेष करते हैं । हे शत्रुनाशन कृष्ण ! मैं एकाग्रचित्तसे विचार कर देखता हूँ, तो भी तुम्हारा कोई भारी अपराध मुझसे नहीं हुआ है, भारी अपराध क्यों ? मेरा तानक भी दाघ नहीं दीख पड़ता है । हे मधुसूदन ! पाण्डवोंके प्रिय और इच्छानुसार जुएके खेलमें शत्रुनाशन जो उन लोगोंका राज्य जीत लिया था, उसमें मेरा क्या अपराध था ? किन्तु उस समयमें जा कुछ धन जीता गया था, वह उन्हीं लोगोंका लोटा देनेके लिये मैंने आज्ञाकी थी । हे शत्रुनाशन ! पासेके खेलमें फिर भी हारका जा अजेय पाण्डव वनको गये, उसमें भी मैंने कौनसा अपराध है ? हे कृष्ण ! वे लोग किस अपराधसे हम लोगोंकी शत्रु स्थिर करते हैं और असमर्थ होकर भी महाहर्षके साथ हम लोगोंके सङ्ग विरोध करनेमें प्रवृत्त हो रहे हैं ? मैंने उन लोगोंकी कौनसी हानि की है ? कौनसे अपराधके कारणसे वे सज्जनोंके सहित धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी हिंसा करनेकी अभिलाषा करते हैं ? हम लोग क्या किसी कटार बन्द गथवा वचनसे भयभीत होकर उनके समुग शिर भुजावेंगे ? कभी नहीं ; साक्षात् इन्द्र भी

आवे तो भी मैं किसी प्रकारसे न उखंगा । हे शत्रुनाशन कृष्ण ! मैं क्षत्रियधर्मके अनुष्ठान करनेवाले ऐसे किसी पुरुषको नहीं देखता हूँ, जो हम लोगोंकी जोतनेमें उल्हाही हो सके । हे कृष्ण ! पाण्डवोंकी बात तो दूर है, साक्षात् देवता लोग भी भीष्म, द्रोण, कर्ण और कृपाचार्य आदि मेरे महावीर योद्धाओंको पराजित करनेमें समर्थ नहीं हैं । हे कृष्ण ! अपने धर्मको पालन करते हुए, यदि दैव-संयोगसे हम लोग संग्राममें मारे जावेंगे, तो भी हम लोगोंकी स्वर्ग लोक मिलेगा । हे जगद्गुरु ! हम लोग युद्धमें शरशय्यापर शयन करें, यही हम लोगोंकी क्षत्रियकुलका परम धर्म है । हे कृष्ण ! इससे हम लोग शत्रुओंके सम्मुख शिर न झुकाकर वीर-शय्यापर शयन करेंगे, वह शय्या किसी प्रकारसे भी हम लोगोंका सन्तानपित न करेंगे । वीरकुलमें उत्पन्न होकर धर्मका अनुष्ठान करनेवाला कौन पुरुष केवल अपने प्राणको रक्षाके निमित्त शत्रुआका सम्मुख शिर झुकावेगा ? आत्म-हितका चाहनेवाले बुद्धिमान् क्षत्रिय लोग सदा ही उद्यमशाली होंगे, किसी प्रकारसे भी मस्तक न झुकावें, क्योंकि उद्यम ही पुरुषार्थ है, यद्यपि और स्थानमें चवनत जावे, पर किसी कालमें भी शत्रुके सम्मुख शिर न झुकावें' मातङ्ग सुानके इस वचनका सदा आदरके साथ ग्रहण करत रहते हैं । मेरे सम्मान क्षत्रिय लोग और किसीका भी चिन्ता न करके धर्मके निमित्त केवल प्राप्तिका ही प्रणाम करेंगे, परन्तु दूसरे लोगोंके साथमें जीवन पथ्यन्त मातङ्ग सुानके जपर कहे हुए वचनके अनुसार व्यवहार करेंगे । यही उनका धर्म और यही मेरा नियमित मत है । हे कृष्ण ! पहिले पाण्डवोंकी जो मेरे पितान राज्यका वश दे दिया था ; इस समय मेरे जीवित रहते वे लोग किसी प्रकारसे भी नहीं पा सकेंगे । राजा धृतराष्ट्र जबतक

जीवित है तबतक क्या हम लोग और क्या वे लोग सबहीको शस्त्र त्यागकर उनका उपजीवी बनना पड़ेगा । हे कृष्ण ! जबतक मैं बालक और दूसरेके आधीनसे था, उस समय मेरे पिताने अज्ञानसे अथवा भयसे ही मेरा राज्य पाण्डवोंको दिया था । परन्तु अब वह राज्य किसी प्रकारसे भी नहीं दिया जा सकता । हे कृष्णानन्दन ! हे महाशहा कौशल ! अब इस समयमें दुर्योधनके जीवित रहते वे लोग किसी कालमें भी वह राज्य फिर नहीं पा सकते । अधिक क्या कहूँ, तीक्ष्ण सुईके नोकसे जितनी भूमि विड हो सकती है, मेरे राज्यसे उतनी भूमि भी पाण्डवोंकी नहीं दी जावेगी ।

१२७ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन सुान वाली, अनन्तर श्रीकृष्ण 'क्रोध-पूरित नेत्रोंसे दुर्योधनका और देखकर हंसते हुए यह वचन बोले । हे दुर्योधन ! तुम धीरज धरो, तुम सेवकोंके सहित अवश्य ही वीरशय्या प्राप्त करोगे, शीघ्र ही तुम्हारा यह अभिलाषा सिद्ध होगा, क्योंकि महा भयङ्कर युद्ध व्यापार अवश्य ही उपस्थित होगा । मैं मूर्ख' । कहता है, कि "पाण्डवोंके विषयमें मैंने कोई अपराध नहीं किया है," इस बातकी सब ही राजा लोग अच्छे प्रकारसे मालूम करेंगे । हे भारत ! तुमने पाण्डवोंका महा ऐश्वर्य देखके जलकर शत्रुओंके सत्र दुष्ट विचार करके जुएका खेलरूपी कपट व्यवहार किया था, वह किसकी विदित नहीं है हे नात ! सरल स्वभावसे युक्त यह पाण्डव लोग जा इस कपट शत्रुओंके साथ इस अन्याय कर्मकी उपासना करनेके निमित्त पूरा रीतिसे सहमत हुए थे, यह बात भी किड प्रकारसे सम्भव हो सकती है ? हे महानुमिन् ! जुएके खेलमें साधु पुरुषोंकी दुष्टिका नाश होता है, और दुष्ट

लोगोंमें सहृदयता तथा नानाप्रकारके विपदकी उत्पत्ति होती है। तुमने साधु पुरुषोंके सङ्ग विना परामर्श किये ही केवल पापबुद्धि और दुराचारो लोगोंकी कुमन्त्रणासे उस दुष्ट जुआरूपी घोर-व्यसनका स्तूपपात किया था। पाण्डवोंको प्राणसे बढ़कर प्रिय, उत्तम कुलसे उत्तम जड़े, शीलसे युक्त द्रौपदीकी तुमने महा सभासे बुलाके अनेक भातिसे कटूक्ति और हसी करके जैसा असह्य दुःख दिया था, इस पृथ्वीके बीचमें कौन पुरुष भाईके स्त्रीकी वैसी दुर्दशा करनेमें समर्थ होसकता है ? और जब तेजस्वी कुन्तीपुत्र वनकी चले थे, उस समय दुष्ट दुःशासनने उन लोगोंकी जो कुछ वचन कहे थे, वे सब कौरवोंके बीचमें किसकी विदित नहीं है ? साधु पुरुष, उत्तम चरित्रवाले, धर्मात्मा, लोभ-रहित अपने आत्मीय बन्धु बान्धवोंके सङ्ग ऐसा अयोग्य और अनुचित व्यवहार कौन करता है ? निटुर अनाचारो और नीच पुरुषोंको जैसा वचन कहना उचित है, वैसे ही वचन काण दुःशासन और तुमने बार बार कहे थे। पाण्डव लोग जिस समय बालक थे, उसी समय वारणावत नगरमें तुमने उनकी जलानेकी निमित्त परम यत्न किया था, परन्तु प्रारब्धसे तुम्हारा वह यत्न सिद्ध नहीं हुआ। उस महा घोर कष्टसे बचकर उन लोगाने एकचक्रा नगरमें किसी ब्राह्मणके घरमें वेष बदलकर बहुत दिनों तक माताके सङ्ग वास किया था। और भी देखा,—तुमने विष और सर्प आदि सब प्रकारके उपायसे उन लोगोंके नाश करनेकी चेष्टा की थी, परन्तु किसी उपायसे भी कृतकार्य न होसके। इससे जब तुमने इस प्रकारसे नीच बुद्धिके वशमें होकर उन महात्माओंकी पद पद पर बुराई की है, तब कैसे कहा जावे कि तुमने उन लोगोंके विषयमें कुछ भी अपराध नहीं किया है। अरे पापी ! उन लोगोंकी प्रार्थना करनेपर भी तू उनके

पैटक राज्यका अंश इस समयमें नहीं देता है, यह ठीक है, परन्तु जिस समयमें ऐश्वर्य भट्ट होगा तथा तू मारा जायगा, उसी समयमें वह सब प्रदान करना पड़ेगा। आह ! क्या आश्चर्यका विषय है, कि तुम सदासे महा नीचता और भिन्न व्यवहार तथा अत्यन्त निटुरताके सहित पाण्डवोंके सङ्ग अनेक बुरेकर्मोंका अनुष्ठान करके भी इस समयमें उसकी उलटा सिद्ध करके निर्दोषी बना चाहते हो ? हे राजन् ! तुम्हारे माता पिता, भोष्म, द्रोणाचार्य और विदुर आदि सज्जन पुरुष लोग तुमकी “शान्त होइए” यह वचन बार बार कहते हैं, तौ भी तुम शान्तिके स्थापित होनेमें सहमत नहीं होते हो। हे राजन् ! सन्धि होनेसे तुम्हें और युधिष्ठिर दोनोंका परम कल्याण हो सकता है, परन्तु उससे तुम्हारी रुचि नहीं होती है, इसमें तुम्हारी बुद्धिकी लघुताके अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है ? हे नरनाथ ! तुम सहृदय लोगोंके वचन उलझन करके किसी समयमें भी अपना कल्याण लाभ करनेमें समर्थ न हो सकोगे ; इससे जिस कर्मके अनुष्ठान करनेके निमित्त तुम हठ करते हो, वह महा अधर्म और अयश देनेवाला है।

श्रीवैशम्पायन सुनि बोले, इस प्रकारसे कहते हुए जब श्रीकृष्णचन्द्रने अपना वक्तव्य समाप्त किया, तब क्रूरबुद्धि दुःशासन कौरवोंकी सभाके बीचमें क्राधो दुर्व्योधनसे बोला, हे महा राज ! यदि तुम अपनी इच्छासे पाण्डवोंके सङ्गमें सन्धि न करोगे ; तो कौरव लोग निश्चय ही तुम्हें बाधकर पाण्डवोंका समर्पण करेंगे। दूसरेको क्या बात है ? भोष्म, द्रोणाचार्य और तुम्हारे पिता महाराज धृतराष्ट्र—ये ही लोग कर्णको, तुम्हें और सुभका बाधके पाण्डवोंके हाथमें समर्पण करेंगे। भाईको बात सुनना माननीय लोकोका अवमान करनेवाला, मर्यादासे रहित, लज्जाहीन, दुष्ट-बुद्धि दुर्व्योधन

क्रोधसे भरकर प्रचण्ड सर्पकी भांति लख्खी सांस लेते हुए अपने आसनपरसे उठकर राजा धृतराष्ट्र, श्रीकृष्ण, भीष्म, द्रोणाचार्य, विदुर, महाराज बाह्लिक, कृपाचार्य और सोमदत्त आदि सब लोगोंका अनादर करके नीच पुरुषकी भांति सभासे प्रस्थान किया। राजा दुर्योधनको सभासे उठके चलते हुए देखकर सेवकोंके सहित उनके सब भाई और जितने राजा वहांपर बैठे थे, सब उनके पीछे पीछे चले। तब शान्तनुपुत्र भीष्म दुर्योधनको इस प्रकारसे क्रोधसे भरकर सहसा उठते और भाइयोंके सहित चलते देखकर श्रीकृष्णचन्द्रसे बोले, हे जनार्दन ! जो पुरुष धर्म और अर्थकी त्याग कर निज हठका ही अनुसीदन करता है, उसके शत्रुलोग शीघ्र ही उसे व्यसनमें फंसे हुए देखकर हंसी करते हैं। यह नीचबुद्धि वृथा राज्यका अभिमान करनेवाला दशात्मा राजपुत्र दुर्योधन केवल क्रोध और लोभके वशमें होकर चलता है। इसके अनुगामी यह सम्पूर्ण क्षत्रिय वीर कालसे पके हुए फलके समान शीघ्र पतित होनेके योग्य बोध ही रहते हैं; क्योंकि ये लोग मोहमें पड़ कर मन्त्रियोंके सहित सब ही दुर्योधनके पीछे पीछे जा रहे हैं।

श्रीवैशम्पायन सुनि बोले, महा पराक्रमी, कमल-नेत्र, यदकुलभूषण श्रीकृष्ण भीष्मके वचन सुनकर उनसे और द्रोणाचार्य आदि बूढ़े कौरवोंसे बोले, कि आप लोग जो ऐश्वर्यमें दूषित और मर्यादाहरित दुर्योधनकी शासन करके अच्छे मार्गमें नहीं लाते हैं, इससे आप लोगोंमें बहुत भारी दोष लग रहा है। हे शत्रुनाशन ! हे पापरहित ! उस विषयमें मैं यह कार्य उपयुक्त समझता हूँ, इसका अनुष्ठान करनेसे मङ्गल हो सकता है, इससे आप लोग यह पूर्णरूपसे सुनिये। हे भरतसत्तम ! मैं जिस बातका प्रस्ताव करूँगा, यदि वह आपके पतन और मानन योग्य होवे- तो प्रत्यक्षने

कल्याण और हितकारक होगा। देखिये उग्रसेनका पुत्र दुराचारी कंस इन्द्रियोंके वशमें होकर पिताके जीवित रहते ही उस वृद्ध भोजराजका ऐश्वर्य हरण करके मृत्युके वशमें हो गया था, उसकी उस नीचताको देखकर वसुधाम्भवोंने उसे त्याग दिया और मैंने भी जातिके लोगोंके हितकी कामनासे महा युद्धमें उसका सहार किया था। फिर मैं और जातिके लोगोंने भोजराजकी कुलकी बढानेवाली आहुकपुत्र उग्रसेनका अच्छी प्रकारसे सत्कार करके फिर उनकी राज्यका स्वामी बनाया। हे भरतनन्दन महाराज धृतराष्ट्र ! इसी प्रकारसे कुलकी रक्षा करनेके निमित्त एक मात्र कंसकी त्यागनेसे यदवंशी अम्भक और वृष्णि लोग सहमत होके परम सुखसे बढ रहे हैं। और भी देखिये, जब देवासुरकी महा युद्धमें काल-स्वरूप सब शस्त्र उठे, तब सम्पूर्ण लोकोंके नाश होनेकी संभावना थी, उस समय सब लोकोंके पितामह प्रजापति भगवान् ब्रह्माने कहा था; कि इस युद्धमें असुर, दैत्य और दानव सब हार जावेंगे, और आदित्य, वसु, रुद्र आदि देवता लोग विजयी होंगे, परन्तु देवता, असुर, गन्धर्व यक्ष, राक्षस, सर्प और मनुष्य आदि सब ही आपसमें लड़के नष्ट-प्राय ही जावेंगे। प्रजापति ब्रह्माने अपने मनमें ऐसा निश्चय करके धर्मको आज्ञा दी, कि इन सम्पूर्ण दैत्य दानवोंकी बाधके वस्त्रोंके हाथमें समर्पण करो। ब्रह्माकी आज्ञा सुनके धर्मने समस्त दैत्य दानवोंकी बाधके वस्त्रोंके हाथमें समर्पण किया, तब जलके स्वामी वस्त्रोंने उन लोगोंको धर्मके और अपने फाँसेसे बांधकर यज्ञपूर्वक समुद्रके बीचमें रोक रक्खा। उसी प्रकारसे आप लोग भी दुर्योधन, कर्ण, शकुनि और दुःशासनकी बांधके पाण्डवोंके हाथमें समर्पण कीजिये। पण्डितोंने कहा है, यदि एक पुरुषके त्यागनेसे कुल भरती रजा

होती हो, तो अवश्य ही उसको त्याग देना चाहिये ; सम्पूर्ण गांव भरकी रक्षाके निमित्त कुलकी, जन-पदके वास्ते गांवकी और अपनी आत्माकी रक्षाके निमित्त इस सम्पूर्ण पृथ्वीकी भी त्याग देना चाहिये । हे क्षत्रियश्रेष्ठ महाराज धृतराष्ट्र ! आप दुर्योधनकी शान्त करके पाण्डवोंके सङ्ग सन्धि स्थापित करें ; आपके निमित्त जिसमें सब क्षत्रियोंका नाश न होने पावे ।

१२८ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, राजा धृतराष्ट्र श्रीकृष्णचन्द्रकी बातोंको सुनकर शोकतापूर्वक सब धर्मोंके जाननेवाले विदुरसे बोले, हे वत्स ! तुम जलदो जाकर दीर्घ-दर्शिनी महा बुद्धिमती गान्धारीकी इस स्थान पर बुला लाओ ; उसके सङ्ग मिलकर मैं नीचबुद्धि दुर्योधनसे कुछ विनती करूंगा, वह भी यदि इस दुष्टकी शान्त कर सके, तो भी हम लोग परम सुहृद श्रीकृष्णचन्द्रके वचनोंकी रक्षा कर सकेंगे, शान्तिके प्रसङ्गसे गान्धारीकी नीच बुद्धि, दुष्टोंकी सहायतासे युक्त, लोभसे भरे हुए, दुष्ट पुत्रोंको प्रच्छेद मार्गमें ले आना कुछ भी असंभव नहीं है । प्रारब्धसे वह यदि दुर्योधनके किये हुए इस महा घोर व्यसनके हम लोगोंको मुक्त कर सके, तो यह सहा अनुष्ठान हम लोगोंके निमित्त सदाके लिये मङ्गलदायक होगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है । विदुर महाराज धृतराष्ट्रकी इन बातोंको सुनते ही शीघ्र दीर्घ-दर्शिनी गान्धारीकी वहापर बुला लाये ।

अनन्तर राजा धृतराष्ट्रने उन्हें समीपन करके कहा, हे गान्धारी ! देखो यह शासनको लाधनेवाला तुम्हारा पापी पुत्र ऐश्वर्यके लोभमें पड़कर सब ऐश्वर्य तथा जीवनका भी विसर्जन करनेपर =पस्थित हुआ है । वह सभ्योदासे रहित, मूढबुद्धि, पापी सुहृद लोगोंकी बातोंको

न मानकर महा मूर्खकी भांति पाप कर्म करनेवाले पापियोंके सङ्ग सभासे उठके चला गया है ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, वह यशस्विनी राजपुत्री गान्धारी स्वामीका वचन सुनकर यथार्थ कल्याणकी इच्छासे कहने लगी । हे महाराज ! उस राजमदसे मतवारे आतुर पुत्र की शीघ्र वहापर बुलाइये । धर्म अर्थके नाश करनेवाले मूर्ख लोग कभी राज्य नहीं पा सकते हैं, तो भी उस विनय-रहित दुर्योधनसे सब प्रकारसे राज्य प्राप्त किया है । हे महाराज धृतराष्ट्र ! इस विषयमें आप ही अत्यन्त निन्दाके योग्य हैं, क्योंकि उसकी पापबुद्धि जानकर भी केवल पुत्रके प्रेमके वशमें होकर आप उसकी बुद्धिको उलटना चाहते हैं । हे राजन् ! वह पाप बुद्धि दुर्योधन काम, क्रोध और मोहमें स्थित है ; इससे अब उसको बलपूर्वक शान्त करनेकी आपकी शक्ति नहीं है । नीच बुद्धि, दुष्ट मन्त्रियोंके कहनेमें चलनेवाला अज्ञानी, पापी और लोभसे खिचे हुए पुरुषकी आपने जो राज्य प्रदान किया था, उसीका फल इस समय भोग रहे हो । हे राजेन्द्र ! आत्मीय लोगोंके संग भेद होनेसे आप न जाने क्यों उपेक्षा कर रहे हैं, इसे मैं कुछ भी नहीं समझ सकती हूं । शत्रु लोग तुमकी दुष्ट मित्रों तथा वन्धु-बान्धवोंके होन देखकर अवश्य हो हंसी करेंगे, इसमें किञ्चित् मात्र भी सन्देह नहीं है । हे महा राज ! आत्मीय पुरुषोंके निकट साम तथा दानसे जब पार हो सकते हैं, तब कौन बुद्धिमान् पुरुष उस स्थानसे दण्डका प्रयोग करता है ?

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, गान्धारीके वचन और धृतराष्ट्रकी आज्ञासे विदुर दुर्योधनकी फिर सभामण्डपसे बुला लाये । दुर्योधन माताके वचन सुननेकी इच्छासे क्रोधमें भरे लाल नेत्रसे युक्त, महा प्रचण्ड सर्पके स्मरण

लम्बो सास लेते जब फिर वहाँपर उपस्थित हुए, तब गान्धारी इस कुमार्गगामी दुष्ट पुत्रकी यथा उचित निन्दा करती हुई यह कहने लगी। हे पुत्र दुःश्रीधन । एक बार ध्यान देकर मेरे इन हितकर वचनोंकी सुनो। इसके भग्ननेसे बन्धुबान्धवोंके सहित तुम परम सुखसे रहोगे। तुम्हारे पिता भरतसत्तम धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, विदुर आदि सुहृद् लोगोंने तुम्हारे नास्ती जो कुछ वचन कहे हैं, उनका तुम निःशर्द्ध पालन करो। तुम्हारे शान्त होनेहीसे भीष्म, धृतराष्ट्र, मेरी तथा द्रोण आदि सुहृद् पुरुषोंकी पूरी पूजा तथा सम्मान होगा। हे महा बुद्धिमान् भरतर्षभ । केवल अपनी इच्छाके अनुसार ही कभी कोई पुरुष राज्यकी प्राप्ति और भोग नहीं कर सकता, इन्द्रियोंके वशमें रहनेवाला मूढ़बुद्धि पुरुष वृद्धत दिनतक राज भाग करनेमें कभी समर्थ नहीं होता। इन्द्रियोंकी वशमें करनेवाला, तेजस्वी बुद्धिमान् पुरुष राज्य करनेका यथार्थ पात्र होता है। काम और क्रोध ये दोनों ही पुरुषको सब अर्थोंसे सदा आकर्षित करते रहते हैं, इससे जो बुद्धिमान् राजा इन दोनों प्रबल शत्रुओंको जीत सकता है, वही इस सम्पूर्ण पृथ्वीको जीतनेका अधिकारी होता है। लोकका स्वामी होकर प्रभुता करना वृद्धत बड़ा कार्य है। दुष्टबुद्धि पामर लोग सहज हीमें राज्य पदके पानेकी अभिलाषा करते हैं, यह ठीक है परन्तु उसकी रक्षा करना उनके सामर्थ्यसे बाहर है। जो पुरुष इस ऊँचे पदको पानेकी इच्छा करता है, उसे प्रथम सम्पूर्ण इन्द्रियोंको अपने वशमें करना उचित है। काठके मिलनेसे जैसे अग्नि बटती है, वैसे ही इन्द्रियोंकी विषयोसे रोकनेसे पुरुषकी बुद्धि बटती रहती है। चञ्चल और दुष्ट घोड़े जैसे मार्गमें भूखी सारथीको नष्ट करते हैं वैसे ही बिना वशमें की हुई इन्द्रियोंभी

पुरुषका नाश कर देती हैं। जो पुरुष पहिले आत्माको न जीतकर सेवकोंके जीतनेकी इच्छा करता है, और सेवकोंकी बिना वशमें किये ही शत्रुओंके जीतनेकी अभिलाषा करता है, वह अवश्य ही दूसरेके वशमें पड़कर धनमभ्यन्तिसि भ्रष्ट होता है। आत्माका हित कर्णवाला पुरुष जो कुछ आत्मासे स्वाभाविक दुष्ट भाव दीख पड़े उसके विरुद्ध आचरण करे, उसके अनन्तर सेवक और शत्रुओंके जीतनेकी इच्छा करे, ऐसा करनेमें उसका उद्योग किसी प्रकारमें भी निष्फल न होगा। राजनक्षत्रो—इन्द्रियोंके जीतनेवाले, सेवकोंकी वशमें रखनेवाले, दुष्टोंको दण्ड देनेवाले, सत्य असत्यका विचार करनेवाले वीर पुरुषको अत्यन्त ही दृढ़ताके साथ सेवा करती है। कूट क्रिप्रासे युक्त जालमें बंधी हुई दो मछलियोंकी भाँति पुरुषकी बुद्धिकी काम और क्राध भ्रष्ट कर देते हैं। इन्हीं दोनोंसे भयभीत होकर देवता लोग राग द्वेषमें रहित स्वर्ग धाममें जानकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंके निमित्त स्वर्गका द्वार रोक रहे हैं। काम क्राधके त्यागनेहीसे देवताओंकी वृद्धि हुई है। जो बुद्धिमान् राजा काम, क्रोध, लोभ, माद और अभिसान आदि शत्रुओंकी पूरी रीतिसे जीतता है, वही इस पृथ्वीका राज्य कर सकता है। धर्म अर्थकी अभिलाषा और शत्रुओंके जीतनेकी इच्छा करनेवाला राजा पहिले अपने इन्द्रियाँ वशमें करनेका यत्न करे। जो पुरुष काम क्रोधके वशमें होकर अपने आत्मीय पुरुषोंके सहज अपट आचरण करता है, उसकी वृद्धगरी सहायता नहीं मिल सकती। हे पुत्र । प्रत्यन्त बलवान् धर्मात्मा पाण्डवोंके सह मित्रकर तुम सम्पूर्ण पृथ्वीका भोग करोगे। हे पुत्र । शान्तनुपुत्र भीष्म और महात्मा द्रोणचार्यने तुमसे जो कुछ वचन कहे हैं वे सब सत्य हैं। काम और अज्ञानकी जाड़े में तुम

नहीं जीत सकता। इससे तुम अतन्त्र कठिन तथा कठोर कामोंके करनेवाले सहायता कृपाके शरणागत होओ, श्रीकृपाके प्रमत्त होनेसे दोनों ओरका कल्याण होगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। जो पुरुष बुद्धिसाल, सब कार्योंका जाननेवाले, हित चाहनेवाले सहृद पुरुषोंके शासनमें नहीं निवास करता, वह अवश्य ही शत्रुओंका आनन्द बढ़ाता है। हे तात ! युद्ध करना किसी प्रकारसे भी नतम नहीं है, क्योंकि उसमें धर्म अर्थ कुछ भी नहीं मिल ही सकता, तब उसमें सुख मिलनेकी जिस प्रकारसे सम्भावना हो सकती है ? युद्धमें जो सदा जय हुआ करता है, वह भी कठ निश्चय नहीं है इससे तुम ऐसे निन्दनीय कार्योंमें कभी अपने चित्तकी मत् लगानाओ। हे शत्रुनाशन ! जिसमें पाण्डवोंके संग भेद न हो जावे इसी भयसे भीत होकर तुम्हारे पिता महाराज धृतराष्ट्र भीष्म और वाहिकने न्यायपूर्वक पाण्डवोंको राज्यका आधा भाग बांट दिया था, इस समय तुम उन बीरोंके प्रतापसे निष्कण्ठक सम्पूर्ण पृथ्वीका राज्य भोग कर रहे हो, यह उसी राज्यके अशक्त होनेका फल है। हे महा बुद्धिमत् ! इससे यदि तुम राज्यका आधा अशक्त भाग करनेकी इच्छा करते हो, तो इस समय भी पाण्डवोंको आधा राज्य प्रदान करो। हे भारत ! पृथ्वीके आधे ही राज्यसे श्रेष्ठोंके सहित तुम्हारा आनन्दसे जीवन बीतेगा, विशेष करके सहृद पुरुषोंकी बात माननेसे तुम अन्यन्त यशके पात्र बनोगे। हे पुत्र ! उन लक्ष्मीवान, धनिमें युक्त, बुद्धिसाल और इन्द्रियोंके जीतनेवाले पाण्डवोंके समक्ष युद्ध करनेसे वे लोग तुम्हें इस बड़े भारी सुखसे वञ्चित कर देंगे। हे भरतर्षभ ! इससे तुम पाण्डवोंका आधा राज्य देकर सहृद पुरुषोंको इच्छाके अनुसार यथा उचित राज्यका शासन करो। हे

पुत्र ! तुमने पाण्डवोंकी तेरह वर्षतक राज्यसे प्रयत्न करके उन लोगोंको जो कुछ दुःख तथा क्लेश दिया है, वही वृद्धत हुआ है। हे महा बुद्धिमत् ! अब इस समय तुम काम क्राध त्याग करके उन लोगोंके दुःख और क्लेशकी शान्ति करो। तुम कुन्तीपुत्रोंका धन हरलनेकी अभिलाषा करते हो, यह ठीक है, परन्तु किसी समयमें भी तुम्हारी यह अभिलाषा पूरी न हो सकेगी, केवल तुम ही नहीं, महा कीर्ति सूर्यपुत्र कर्ण और तुम्हारा भाई दुःशासन, कां भी उस अभिलाषाका पूर्ण करनेमें सम न. हागा, तब यह हो सकता है, भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण और भी अर्जुन, धृष्टद्युम्न आदि वीरोंके अत्यन्त क्रोध करनेपर इस सम्पूर्ण पृथ्वीके प्रजा मातृ जोषित रहनेका सम्भावना न रहेगी। हे तात ! इससे तुम क्रोधके बशमें होकर इस बड़े हुए प्रतिष्ठित कुलवशका व्यर्थ नाश मत करो जिसमें यह सम्पूर्ण पृथ्वीकी प्रजा तुम्हारे निमित्त नाश न होजावे, तुम वही उपाय करो। अब मृदु । तू जा यह समझता है, कि भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य आदि सब बीर अपनी पूरी शक्तिसे अनुसार युद्ध करेंगे, सो वह तेरो आशा कभी पूर्ण न हो सकेगी, क्योंकि क्या तुम लोग आ क्या पाण्डव लोग दोनों आर इन लोगोंके समान हो सकते हैं, विशेष करके वयस ही सबसे प्रबल है। इससे यदि राज्यकी जीपिका पानेमें ये लोग अपने प्राणको भी त्यागना समस्त होंगे, तो भी युधिष्ठिरके ऊपर कभी ये लोगोंको कापट्टि न हो सकेगी। हे तात ! लोभमें पुरुषका अर्थ तथा सम्पत्ति मिलती है, यह कहेंगे सो नहीं दोख पड़ता। हे भरतर्षभ ! इससे लोभ करनेका कुछ भी प्रयोजन नहीं है, तुम शान्ति अवलम्बन करो।

त्रैवेशम्पायन मुनि बोले, दुर्धोधन धर्म अर्थसे युक्त अपनी माताके उत्तम वचनोको न मानकर फिर भी उस सभासे निकलकर नीच-बुद्धिसे युक्त दुष्ट पुरुषोंकी मण्डलीमें चले गये, वहाँपर जाकर वह सुखपुत्र शकुनिके सङ्ग सत्ताक्त करने लगे। अन्तमें दुर्धोधन कर्ण, शकुनि, और दुःशासन इन चार पुरुषोंका यह मङ्गल्य स्थिर हुआ, कि "यह कृष्ण राजा धृतराष्ट्र और भीष्मके सङ्ग परामर्श करके हम लोगोंकी बाधनेकी इच्छा करता है, परन्तु इन्हीं जैसी बलिकी बाध लिया था, उसी प्रकार-मे हम लोग पहिले ही बलपूर्वक इस पुरुष-सिंह कृष्णको शीघ्र ही बाध लेंगे। कृष्णकी बाधा हुआ सुनकर पाण्डवलोग दात टूटे हुए सर्पकी भांति होजावेंगे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है, क्योंकि यह महाबाहू कृष्ण ही उन लोगोंकी सब प्रकारसे सहाय और सकल कल्याणकी मूल है। सम्पूर्ण यदुवंशियोंमें अष्ट इस कृष्णकी पकड़ें जानपर पाण्डव तथा उनके सहाय सोमकवशियोंका सब उद्योग नष्ट हो जावेगा। इससे राजा धृतराष्ट्र चाहे कितना ही मना कर, परन्तु हम लोग इसी अवसरमें कृष्णका यहापर बाध रखेंगे, और फिर संशय रहित होकर शत्रुओंके सङ्ग युद्ध करेंगे।

इंद्रतनू महा बुद्धिमान् बलवान् सत्यकोन उन नीचबुद्धि पापियोंके इस पापमय विचारकी शीघ्र ही जान लिया, और उसका निमित्त सभासे निकलकर हार्दिकनन्दन कृतवर्माके सङ्ग परामर्श करके उनसे कहा, कि मैं जबतक काठन कर्म करनेवाला अशुभका यह सब वृत्तान्त समाज। तबतक आप सेनाका व्यूह बनाकर इष्ट सावधानताके सहित सभाके द्वारपर उपस्थित रहें। ऐसा कहकर वह पञ्चतको कन्द-रामे (संहर्षके समान औरवाका सभामें प्रविष्ट हुए, सभामें जा करके पाण्डव महात्मा उद्योग-पर उसकी मन्तर राजा धृतराष्ट्र तथा विदु-

रसे इन दुष्टबुद्धियोंका नीच विचार कह सुनाया। उन लोगोंके उस दुष्ट अभिप्रायको कहकर हसता हुआ कहने लगा, कि नीच बुद्धि दुष्ट और पापी लोग धर्म अर्थ और कामसे भी साध पुरुषोंसे निन्दनीय तत्क वन्धनरूपी जो महा नीच अनुष्ठान करनेको अभिलाषा कर रहे हैं, वह किसी प्रकारसे भी सिद्ध न हो सकेगी। क्रोध और लोभके वशसे हीकर ये सब इकट्ठे हुए मृद पुरुष तथा पापी लोग काम, क्रोधसे फसकर कलहरूपी महा भयङ्कर कार्य करनेमें तत्पर होंगे। उन लोगोंकी मूर्खताकी बात क्या कहें, बालक जड़ बुद्धि तथा मतवार लग जैसे कपड़ोंसे प्रचण्ड अग्निकी ग्रहण करनेकी इच्छा करते हैं वैसे ही ये लोग पुण्डरीकाक्ष अशुभचक्रको बलपूर्वक पकड़नेकी अभिलाषा करते हैं। कौरवोंकी सभामें सात्यकीके यह वचन सुनकर दोर्घदर्शी महा बुद्धिमान् विदुर राजा धृतराष्ट्रकी सम्बोधन करके बोले, हे शत्रुनाशन महाराज। तुम्हारे पुत्र लोग अत्यन्त ही कालके वश होगये हैं। जब वे सब लोग मिलकर महाशोर अयश मैलान-वाले असाध्य कर्म करनेके निमित्त उद्यत हो रहे हैं, और महाबाहू कृष्णको बलपूर्वक ग्रहण करनेके निमित्त अभिलाषा करते हैं, तब फिर उन लोगोंके कालके वश होनाम अव क्या सन्देह है? जनता हुई अग्निके निकट पतङ्गकी भांति वे लोग महाबाहू अत्यन्त कठिन कार्य करनेवाले महा बलवान् कृष्णके समुख हाथर कबतक जीवित रह सकते हैं - यदि वे सब लोग मिलकर भी इनसे युद्ध करेंगे, नो-भी महात्मा कृष्ण हाथियोंको फाड़नेवाले क्रोधी सिंहके समान अकेले ही उन सबको यमपुरीमें पहुँचा सकतें हैं परन्तु पुनर्प्राप्त कृष्ण धर्म-की त्यागकर उसे निन्दनीय कर्ममें कभी प्रवृत्त न होंगे।

विदुरता वचन सुनकर हीनपर महात्मा

श्रीकृष्ण राजा धृतराष्ट्र को ओर देखकर सहृदय लोगों के बीच में बोले, हे राजन् ! यदि वे लोग क्रुद्ध होकर बलपूर्वक मुझे पकड़ सकें तो पकड़ें, अथवा मैं ही इन लोगों को बाध लूँगा, इन दोनों बातों के लिये आप आज्ञा दीजिये । वे लोग चाहे कितने ही क्रुद्ध क्यों न हों, मैं अकेला ही उन सबको शासन करने के निमित्त उत्साहो हो सकता हूँ, परन्तु कभी मैं ऐसे निन्दित कर्मों का अनुष्ठान न करूँगा । तुम्हारे पुत्र लोग पाण्डवों के अर्थ के लोभ में पड़कर अपने अर्थ से भी विमुख हो जावेंगे ; इसमें मेरी कौनसी हानि है ? ये लोग यदि ऐसी इच्छा करते हैं, तब तो राजा युधिष्ठिर अनायास ही कृतकार्य हो सकते हैं । मैं आज ही इन लोगों को और इनके अनुकूल सहाय लागाना पकड़ के पाण्डवों का समर्पण कर सकता हूँ, ऐसा करना मेरा वास्तविक कौनसा कठिन कार्य है । हे भरतनन्दन महाराज ! तुम्हारे सम्मुख क्रोध और पापबुद्धि से उत्पन्न हुए ऐसे निन्दित कर्मों में मैं कभी प्रवृत्त न हुआ करूँगा । हे राजन् ! यह दुर्योधन जैसा करने को इच्छा करता है, वैसा ही होवे, उसमें मेरी कुछ भी आपत्ति नहीं है, बल्कि तुम्हारे सब पुत्रों को उस विषय में मैं आज्ञा देता हूँ ।

श्रीकृष्ण के यह वचन सुनते ही राजा धृतराष्ट्र न विदुर से कहा, तुम उस राज्य के लाभों पापों दुर्योधन को भाड़े, भ्रम, और सेवकों के साहचर्य पर ली आओ । यदि फिर भी उपदेश से उसका अच्छे भाग में ला सकता उसका काशिश करनी चाहिये । धृतराष्ट्र का आज्ञा सुन विदुर न राजा आसिं धरे हुए दुर्योधन को, वभागों न जानने की इच्छा करने पर भी । फिर सभा मण्डप में ले आये । तब राजा धृतराष्ट्र कार्य, दुःशासन और अनेक दुष्ट बुद्धि राजाओं के बीच में घिरे हुए मूढ़ बुद्धि दुर्योधन की निन्दा करते हुए कहने लगे । अरे पापी क्रूर

बुद्धि ! तू छोटे कर्मों के करने वाली सहायकों के सङ्ग में मिलकर महा भयङ्कर पाप कर्मों के करने की इच्छा करता है । मैंने सुना है, तू इन पाप बुद्धि पापों की सहायता से अत्यन्त तेजसी महाप्रतापी पुण्डरीकाक्ष श्रीकृष्ण को पकड़ने की अभिलाषा करता है, तेरे समान मूढ़ और कुल में कलङ्क लगाने वाली नीच पुरुषों के अति रिक्त और कोन पुरुष ऐसे उपदेश देने वाले निन्दित और असाध्य कर्मों के करने के निमित्त इच्छा कर सकता है ? अरे मूर्ख ! इन्द्र के सहित सब देवता लोग भी कृष्ण को बल से नहीं पकड़ सकते, चन्द्रमा की ग्रहण करने की इच्छा करने वाली बालक की भांति तू उस कृष्ण को पकड़ने की अभिलाषा करता है ? युद्ध के समय में देवता, गन्धर्व, दैत्य, राक्षस आदि जिसका प्रताप सहने में असमर्थ है ; यह वही कृष्ण है, यह क्या तू नहीं जानता है ? तुम यह निश्चय जान रखो, कि हाथ से जैसे वायु तथा अग्नि को ग्रहण करना कठिन है, तथा शिर पर पृथ्वी को उठा लेना जैसा असम्भव है, वैसे ही बल से श्रीकृष्णचन्द्र को भी पकड़ना असम्भव और महा कठिन कार्य है ।

राजा धृतराष्ट्र का वचन समाप्त होने पर यहा बुद्धिमान् विदुर भी क्राधी दुर्योधन की ओर देखकर बोले, हे भरतप्रभ ! सीमा नगर के पुर-द्वार में द्विविद नाम वानर अपने सब प्रकार के प्रयत्न और पराक्रम की प्रकाश करके भी जिस कृष्ण को पकड़ने की इच्छा से बहुत सी शिला की वषा से सब दिशाओं की पूरित करने पर भी कृत कार्य न हो सका ; उसी कृष्ण का तुम बलपूर्वक पकड़ने की इच्छा करते हो । निश्चोचन पुरी में छः हजार असुर लोग जिसका पकड़ने के अभिलाषी होकर फाँस में बांधने के निमित्त सब प्रकार से यत्न और पराक्रम करके भी नहीं पकड़ सके, उसी कृष्ण को तुम बलपूर्वक बांधने की इच्छा करते हो ? कामना

देशमें जानिएपर जिसकी पकड़नेकी इच्छासे महाबली नरकासुर बल्लतसे दानवोंके सङ्ग अनेक यत्न और चेष्टा करके भी कृतकार्य न हुआ, उसी महा तेजस्वी कृष्णकी तुम बलसे बाधनेकी इच्छा करते हो ? अलौकिक बल और प्रभावसे युक्त जिस पुस्तोन्नम कृष्णने बालक अवस्थाहीमें पूतना राक्षसी और पक्षी-क्षपधारी दोनों असुरोंका नाश किया था, जिन्होंने गोकुलकी रक्षा करनेके निमित्त बाये हाथसे गोवर्द्धन पर्वत उठाया था, बुरे कार्य करनेवाले अरिष्ट, धेतुक, चाणूर, अश्वराज आदि महा बली असुरों और कंस, दन्तवक्र आदि प्रबल प्रतापी राजाओंकी समस्त रूपी यज्ञमें आहुति दी थी ; जिस महा तेजस्वीने बाणासुर, वरुणदेव, जरासन्ध और अग्निदेवताकी पराजित किया और कल्पवृक्षको हरकर साक्षात् देवताओंके स्वामी शचीपति इन्द्रकी भो परास्त किया है, जा सबके पैदा करनेवाली और स्वयं किमोसे भो नहीं उत्पन्न हुए हैं, सब पौरुष तथा शक्तिके कारण हानिसे जो इच्छा मात्रसे सब काठिन कर्म अनायास ही पूर्ण कर सकते हैं, शेष शथापर सोते हुए जिन्होंने मधु कैंठभ नाम दोनों असुरों और शरीर धारण करके वेदोंकी चुराने वाले हयग्रीव असुरकी मारा था, उस महा प्रतापी अमित तेजस्वी भगवान् कृष्णकी तुम अभी तक भो नहीं जान सके ? क्रुड विपधारी सर्पके समान प्रचण्ड तेजसे भर हुए, अग्निके तुल्य, निन्दा रक्षित कठिन कर्म करने वाली, महाबाहु कृष्णकी यदि तुम लोग पकड़नेकी इच्छा करके उनके सम्मुखमें जाओगी, तो जलती हुई अग्निमें गिरनेवाले पतङ्गकी भांति इष्ट मित्र और सेवकोंके सहित क्षण भर भी जीते न बच सकोगी ।

॥३० अध्याय समाप्त ॥

त्रिदशमायन मुनि वाले, विदुरके ऐसा कहनेके अनन्तर शत्रुओंका नाश करनेवाली महा

प्रतापी अमित तेजस्वी श्रीकृष्णचन्द्र दुर्योधनके ऊपर कटाक्ष करते हुए बोले, हे दुर्योधन ! तुम सुभकी अकेला समझ अपनी मूर्खतासे सुभी पकड़नेकी अभिलाषा करते हो, परन्तु तुम यह निश्चय जान रखो, कि मैं अकेला नहीं हूँ, आदित्य, रुद्र, वसु और ऋषि लोग सब ही मेरे सङ्ग हैं । ऐसा कहके शत्रुओंके नाश करनेवाली श्रीकृष्णचन्द्र ऊँचे स्वरसे हंसने लगे । उस अट्टहासके साथ ही अग्निके समान तेज धारण करनेवाली महात्मा कृष्णके शरीरसे विद्युत्के आकारके समान अंगुष्ठके प्रमाण सब देवता लोग बाहर होने लगे । मस्तक पर ब्रह्मा, छातीमें रुद्र, हृदयमें अग्नि, आदित्य, चाणूर, वसु, अश्विनीकुमार, इन्द्रके सहित सब देवता, मस्तुगण, विश्वेदेव तथा अनगिनत यक्ष, राक्षस और गन्धर्व उत्पन्न हुए, दोनों हाथोंसे बलदेव और अर्जुन उत्पन्न हुए, दहिने हाथसे धनुर्धारी अर्जुन और बाये हाथसे हलधारी बलराम प्रकट भये । पीछे राजा युधिष्ठिर, भीम, माद्रोपुत्र, नकुल बहदेव और सन्मुखमें सब अन्धकवशीय और प्रद्युम्न आदिक सम्पूर्ण यदुवशीय लोग प्रचण्ड अस्त्र-शस्त्रकी लेकर खड़े हुए । कृष्णकी अपन दाना हाथोंमें भी शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, लाङ्गल और नन्दक आदि सब प्रज्जालत अस्त्र प्रकट भये, उनके दाना नल, नासकाके ऋद्र और दोनों कान ध्वज तथा रोम-कूपमें सूर्यकी किरणके समान महा प्रचण्ड धूप के सहित अग्निके कण निकल न लगे । विराट्मूर्ति महात्मा कृष्णका वक्ष महा घोर और भयंकर रूपकी देखकर केवल भीम, द्राण, दुर्द्विमान् विदुर, मञ्जय और नप करनवाले शत्रुओंके अतिरिक्त और बहापन । जितन राजा खड़े थे, सबने अपनी आम्ब मृन्द ली । भगवान् कृष्णने उस समयमें द्रोणाचार्य आदि महात्मा पुस्तोन्नम दिव्य दृष्टि प्रदान किया था, उसीसे उन ने भगवान् कृष्णकी महा

हुई । हे भरतर्षभ ! देवता लोग कौरवोंकी सभामें श्रीकृष्णका यह अद्भुत और आश्चर्य्य कार्य्य देखकर आकाशसे दुन्दभी बजाकर उनके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे । सम्पूर्ण पृथ्वी और समुद्र उस समय डग मगाने लगा और समस्त राजा अत्यन्त ही भयभीत होगये । अनन्तर पुरुषसिंह शत्रुनाशन कृष्णने अपने उस अद्भुत और विचित्र विराट् रूपकी समेटकर अपना पहिलेका रूप धारण कर लिया और ऋषियोंकी आज्ञा लेकर सात्यकी और कृतवर्माका हाथ धरके सभासे निकले । उस समय जब महा कीलाहल होने लगा, तब नारद आदि ऋषि लोग भी अन्तर्धान होकर अपने अपने स्थानपर चले गये । उन लोगोंका अकस्मात् अन्तर्धान होना भी एक आश्चर्य्यका विषय हुआ । पुरुषसिंह कृष्णकी सभासे जाते हुए देखकर जैसे देवता लोग इन्द्रके पोछे चलते हैं, उसी प्रकारसे कौरव लोग भी कृष्णके पीछे चले, परन्तु महा तेजस्वी श्रीकृष्णचन्द्र उन अनुगामी राजाओंकी और आखसे भी न देखकर धूपके सहित अग्निके समान सभासे निकलके चले । सभाके चारपर पङ्क्तिके देखा, कि सुवर्णसे भूषित, किङ्किणी लगी हुई श्वेतवर्ण व्याघ्रके चमड़ेसे घिरा हुआ, सब सामग्रियासे शोभित, श्रेय्य सुग्रीव आदि चारों ओरोंसे युक्त, बादलके समान गम्भीर शब्द करनेवाले, श्वेतवर्ण, शीघ्रतासे गमन करनेवाले महारथकी लेकर दाक्षक सारथी उपस्थित है । रथकी वहां पर सजा हुआ देखकर श्रीकृष्ण उसी समय उस पर चढ़े और यदवशियोंमें माननीय हृदिकनन्दन कृतवर्मा भी रथपर चढ़े । हे महाराज ! शत्रुनाशन कृष्णको चलते हुए देखकर महाराज धृतराष्ट्र फिर उनसे बोले, हे शत्रुनाशन जनाईन ! पुत्रोंके ऊपर मेरी जितनी प्रभुता है, उसकी तुमने प्रत्यक्ष ही देखा, कुछ भी तुममें छिपा नहीं है, मेरी ऐसी अवस्था देखकर

विशेष करके मैं कौरवोंकी हित-कामनामें जैसा यत्नवान हुआ हूं, उसे भी जानकर तुम किसी प्रकारसे मेरे ऊपर शङ्का न कर सकोगे । हे कृष्ण ! पाण्डवोंके निमित्त मैं कुछ भी दुष्ट अभिलाषा नहीं करता हूं; मैंने सब प्रकारके यत्नसे शान्तिके निमित्त उत्सुक होकर दुर्योधनसे जो कुछ वचन कहा था, वह भी सब तुमको विदित है, और सम्पूर्ण कौरव तथा दूसरे राजा लोग भी इस बातको विशेष रूपसे जानते हैं ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर महाबाहू श्रीकृष्ण राजा धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य्य, वाल्मिक और विदुरको सम्बोधन करके बोले, कि कौरवोंकी सभामें जो कुछ हुआ, नीचबुद्धि दुर्योधन अत्यन्त ही क्रोधित होकर महामूर्खकी भांति जिस प्रकारसे घोर कर्मके अनुष्ठान करनेमें उद्यत हुआ, और राजा धृतराष्ट्रने जिस प्रकारसे अपनेकी प्रभुतासे रहित कहा है, वह सब आप लागोने प्रत्यक्ष देखा है, इस समय युधिष्ठिरके समोप जानेके निमित्त मैं सर्वसंविदा होता हूँ । इसी भांतिसे सबकी अनुमाति लेकर पुरुषश्रेष्ठ श्रीकृष्णकी रथपर चढ़के चलनपर भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य्य, वाल्मिक और राजा धृतराष्ट्र अश्वत्यामा, विकर्ण और युयुत्सु आदि महाधनुजारी महारथ लोग उन के पोछे पोछे चलने लगे । भगवान् देवकीनन्दन कृष्णन उन सब लोगोंके सम्मुख ही उस रथपर चढ़के पिताको बाहिन अपनी फूफा कुन्ती देवीके दर्शनके निमित्त उसमें मान्दस गमन किया ।

१३१ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महाबाहू कृष्ण अपनी फफोके घरमें जाकर उसके दोना चरणोंकी वन्दनकरके कौरवोंकी सभाका जो कुछ वृत्तान्त था, भा संक्षेप रूपसे वर्णन करके कहा;—मैंने और ऋषियोंने तथा भीष्म आदि

पुस्तोंने अनेक युक्तियोंसे युक्त ग्रहण करने योग्य उत्तम तथा हितकर अनेक वचन कहे, परन्तु मूढ़बुद्धि दुर्योधनने किसी प्रकारसे उन वचनोंको ग्रहण नहीं किया। इसीसे जाना जात है, वह पापबुद्धि दुर्योधन तथा उसके वशमें रहनेवाले सब राजा लोग कालसे पके हुए फलकी भांति शीघ्र ही पतित होंगे। इससे मैं तुम्हारे समीपसे विदा होकर शीघ्र ही पाण्डवोंके समीप जाऊंगा। हे महाबुद्धिमत् तो तुम्हारे वचनके अनुसार उन लोगोंसे क्या क्या कहना होगा? सो तुम मुझसे कहो, तुम्हारे मन्त्रोंके वचनोंकी सुननेकी मुझे वृद्धत ही इच्छा है।

कुन्ती बोली, हे पुत्र कृष्ण! तुम मेरे वचनके अनुसार धर्मशास्त्रा राजा युधिष्ठिरसे यह कहना "हे पुत्र! तुम्हारे धर्मकी वृद्धत ही ज्ञान हीरही है, शान्ति चाहनेवाले ब्राह्मणोंकी भांति तुम्हारी यह वेद-अध्यायन करनेवाली मन्दबुद्धि केवल धर्महीकी ओर झुकी रहती है, इससे इस समय भी सावधान हो-जाओ, आत्म धर्मका व्यर्थ ही नाश मत करो प्रजापति स्वयम्भू भगवान्ने धर्मको जिन जिन प्रकारके खलपसे उत्पन्न किया है, तुम उसी खलपसे उसको खानो। देखो उनकी भुजासे जोविष्णु उपाज्जन करनेवाले चतुरियोंकी उत्पत्ति भई है, चतुरियोंका धर्म गृही है कि क्रूर कर्म अर्थात् युद्ध आदिमें मदा प्रजाका पालन करनेमें तत्पर होवे। मैंने पण्डितोंके मुखसे जिस प्रकार सुना है, उनकी अनुसार इस विषयकी एक उपमा भी कहती हूं, उसे तुम सुनो। प्रहिले समयमें धनके स्वामी नंदेर राजर्षि सुचक्रन्दके ऊपर प्रसन्न चक्रर उनकी समस्त पृथ्वीके राज्य देनेके निमित्त पृथक् हुए थे, परन्तु उस वक्तवान् राजाने उसको नहीं ग्रहण किया। उन्होंने यह कहा था, कि "मेरी यह प्रतिज्ञा है, कि अपने बाहु-धर्म उपाज्जन किये हुए राज्यका सब

कस्मेंगा" यह सुनकर कुवेर वृद्धत ही विस्मित और प्रसन्न हुए थे। चतुर्धर्ममें निष्ठावान् राजा सुचक्रन्दने भी अपने बाहुबलसे समस्त पृथ्वीका राज्य उपाज्जन करके भोग किया था। हे तात! प्रजा अच्छी प्रकारसे रक्षित होकर जिस किसी धर्मका अनुष्ठान करती है; राजा उसके चौथे अंशका भागी होता है। राजा स्वयं धर्मका आचरण करने पर देवताका पद पानेके योग्य होता है, परन्तु यदि वह अधर्मका आचरण करे, तो अवश्य ही नरकोंमें जाता है। राजा पूर्ण नीतिसे यदि दण्ड करे तो वह ब्राह्मण आदि चारों वर्गोंकी वर्गके अनुसार अपने अपने धर्ममें लगाकर, वृद्धत ही धर्म सृज्य करनेमें समर्थ कर सकता है। यज्ञातक कि जबतक दण्डदेनेवाला राजा सब प्रकारसे अपने धर्मके अनुसार नीतिशास्त्रके अनुकूल कार्य करता है, तबतक युगो तथा समयमें अष्ट सत्ययुग कहा जाता है। हे धर्मज्ञ! "काल राजाका कारण है, अथवा राजा कालका कारण है?" ऐसी शङ्का जिससे तुम्हारे मनमें उत्पन्न न होवे, इस निमित्त तुम यह निश्चय जान रक्खो कि राज ही कालका कारण है। धर्म और अधर्मके तारतम्यके अनुसार राजा ही सत्ययुग लेता, हापर, कलियुग, इस चारों युगोंके कारण हुआ करते हैं। जो राजा ऊपर कहे हुए सत्य कालके प्रवर्तक होते हैं, वे स्वर्ग भाग करते हैं। जो लेतायुगका प्रवर्तन करते हैं, उन्हें भी स्वर्गभाग मिलता है, परन्तु वृद्धत नहीं। हापर युगके प्रवर्तन करनेवाले राजा भी यथा उचितसे पुण्यफलका अंश पाते हैं, परन्तु राजा कलियुगकी उत्पन्न करता है उसका वृद्धत ही पाप भोगना पड़ता है। वह नीच कर्म करनेवाला राजा उद्धत दिगन्तक नरकोंमें गान करता है। राजाने जो दण्ड रहते हैं, वे समस्त मनुष्योंमें फैल जाते हैं और मनुष्योंमें भय फैल जाता है। हे पुत्र! धर्म

तुम पिता और पितामहके आचरणके अनुसार राजधर्मकी आलोचना करो। तुम जिस धर्ममें स्थित होनेकी अभिलाषा करते हो, वह कभी राजऋषियोंका धर्म नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि वासुधा रसकी पोषकता, दीन-भाव और शान्त-स्वभावसे स्थित रहनेपर प्रजा पालन रूपी फलके मिलनेकी सम्भावना नहीं रहती। तुम अपनी बुद्धिके अनुसार जैसा आचरण करते हो, उसके निमित्त पहिले राजा पाण्डु, मैं और पितामह आदि सब लोगोंने कभी तुम्हें आशीर्वाद नहीं दिया है। मैं सदा तुम्हारे यज्ञ, दान, तपस्या, वीरता, बुद्धि, सत्तान, साहाय्य, बल और आयुकी प्रार्थना करती थी। शुभ आकाशा करनेवाले ब्राह्मण लोग भी पूर्ण रीतिसे सत्कार पानेपर तुम्हारी दीर्घ-आयु, धन और पुत्र आदिके निमित्त अभिलाषा करते हुए पितर-लोक और देव-लोकके उद्देश्यसे सदा स्वाहा और स्वधा प्रदान करते थे। पितर और देवता लोग भी सदासे क्षत्रिय पुत्रोंके निमित्त दान, अध्ययन, यज्ञ और प्रजापालनकी अभिलाषा करते हैं। हे तात ! इससे यह दान आदि कर्म,—धर्म हों, चाहे अधर्म हों, क्षत्रिय-धर्मके अनुसार तुमने इन्हीं सब धर्मोंके अनुष्ठान करनेके निमित्त जन्म ग्रहण किया है, परन्तु दान आदिका करना तो दूर रह्या, तुम उत्तम कुलसे उत्पन्न होके तथा सब विद्या जानकर भी इस समय जीविकाके दुःखसे पीड़ित होरहे हो। क्षमासे आर्त हुए मनुष्य लोग जो बलवान् तथा दान देने योग्य राजाका आसरा करके सन्तुष्ट और प्रतिष्ठित होते हैं, इससे बढ़के दूसरा धर्म और कौनसा हो सकता है,—पृथ्वीमें राज्य प्राप्त करके धर्मात्मा पुष्पका यही कर्तव्य कर्म है, किसीका दान, किसीका बल, किसीकी मीठे वचनसे अपने वशमें कर लेते हैं। ब्राह्मण भिक्षा ग्रन्थका अवलम्बन करे, क्षत्रिय प्रजा-

पालनमें तत्पर होवे, वैश्य धन उपार्जन के और शूद्र इन ब्राह्मण आदि तीनों वर्णोंकी सेवा करे; यही सनातन धर्म है। इससे भी मांगना भी तुम्हारे वास्ते उत्तम नहीं है और कृषि आदि व्यवसायका करना भी तुम्हारे पक्षमें युक्त नहीं है। क्षत्र अर्थात् दोन दुःखियोंके उद्धार करनेसे वाङ्मय ही क्षत्रियोंके एक मात्र जीविकाका स्थान है। हे महाबाहो ! इससे तुम भ्रम, दान, भेद, दण्ड अथवा विना आदि जिस किसी उपायमें हो सके,—अपने पिता पितामहके राज्यका अंश फिर ग्रहण करो। देखो, मित्रोंके आनन्द बढ़ानेवाले तुमको उत्पन्न करके भी मैं इस समय वसु वान्धवोंसे रहित होकर पराये अन्तसे अपने जीवन धारण करती हूँ, इससे बढ़के तुमके और अधिक दुःख क्या होगा ? हे पुत्र ! इससे तुम राजधर्मके अनुसार युद्ध करो। यह कापुरुषताकी प्रकाश कपने पूर्व पितृ-पितामहका नाम लोप मत करो। और तुम सब भी भाइयोंके सहित पण्डुक्षीण होकर पापमय नरककी गति पानेके अधिकारी मत बनो।

१३२ अध्याय समाप्त ।

कुन्ती बोली, हे परन्तप ! मैंने युधिष्ठिरसे कहनेके निमित्त तुमसे जो वचन कहे हैं, प्रतिष्ठित लोग विदुला और उसके पुत्रके सम्वाद रूप इस नीचे कहे हुए पुराने इतिहासकी इसके लिए उदाहरणमें कहते हैं। इससे जो कुछ महल दायक वचन हो, अथवा इसकी अपेक्षा यदि कुछ अधिक अष्ट वचन सम्भव हो, तो तुम उसीको युधिष्ठिरके समोप कहना।

पहिले समयमें विदुला नामक एक दीर्घ दर्शनी यशस्विनी राजकन्या थी। वह क्षत्र धर्ममें रत, विदुषी, कुछ क्रोधी और क्षत्र स्वभावसे युक्त तथा वृद्धतसी राजसभाओंमें प्रसिद्ध थी। उसने अनेक लोगोंके वृद्धतसे वृद्ध

सुने थे ; और अनेक शास्त्र पढ़ चुकी थी । यह कर्कश राजकन्या अपने पुत्रकी सिन्धुराजके द्वारा पराजित होकर उद्योग-रहित और उत्साह शून्य तथा मनमलिन, चित्तसे दुःखित देखकर यह कहके निन्दा किया करती थी ; —“अरे शत्रुनन्दन ! तू मेरा पुत्र नहीं है, मेरे गर्भसे तुम्हारा जन्म नहीं हुआ और तुम्हारे पिताने भी तुम्हें उत्पन्न नहीं किया, तू न जाने कलसे कण्टकरूप होकर कहाँ आगया है ? इसको मैं कुछ भी नहीं समझ सकती हूँ । तुम्हारा मान, सम्पत्ति और पुत्रप्राप्तिके कुछ भी नहीं है, तुम्हारा रूप नपुंसककी भाँति बोध होता है, तुम्हारे गिनती पुरुषोंमें नहीं हो सकती, तू सदाके वास्ते इकवारगी आशा रहित होगया है । अरे मूर्ख ! यदि तू अपने कल्याणकी इच्छा करता है, तो अबसे भी पुरुषोंके योग्य पुत्रप्राप्तिका अवलम्बन कर । थोड़ीहीमें तप होकर इस अपरिमेय आत्माका अपमान मत कर । निर्भय रह, उत्साह और उद्योगसे अपने चित्तकी शङ्काओंकी दूर कर । अरे नपुंसक ! पराजित, मान-रहित, वस्तु-वाञ्छा-वोंकी शोक और शत्रुओंका आनन्द बढ़ानेवाला होकर इस प्रकारसे क्यों पड़ा है ? शीघ्र उठ । हा ! छोटी छोटी पात्र जैसे अल्प हो जलमें भर जाती है तथा चूनेकी अञ्जली थोड़ी ही अन्नसे भर जाती है, वैसे ही कापुरुष लाग भी थोड़ी ही वित्तसे मत्तुष्ट हो जाते हैं । अरु कलकी कलह लगानेवाले । तू अगर महा विपधारी सर्पके दातकी उखाड़कर मर जावे तो उत्तम है । कर्त्तकी भाँति इस नीच वृत्तिका अवलम्बन करके मरना उत्तम नहीं है । तू अपने जीनेकी आशा त्याग करके भी पराक्रमजा प्रकाशित क्यों नहीं करता । आकाशमें उड़नेवाले बाज पक्षीकी भाँति शत्रुओंके ऊपर क्यों नहीं गिरता । अथवा ऊपर ऊपर उड़कर मोनव्रत धारणकर शत्रुओंका उद्धार क्यों नहीं खाजता । अरे

हीन प्रकृति वाले ! तू वज्रसे मारे गये मृतककी भाँति जड़रूपसे इस समय क्यों सीरहा है ? शीघ्र उठ । शत्रुओंसे हारकर अब यह सोनेका समय नहीं है । दीनताका अवलम्बन करके लोकमें निन्दित न बन, अपने पुत्रप्राप्तिके तू सब लोकोंमें विख्यात हो जा । सायदान आदि चारों उपायोंके अनुसार परिश्रम जी-उत्तम और अधम व्यवस्था कड़ी है, उससे तू तेज-स्त्रियोंके योग्य दण्डरूपी येष्ट उपायका अवलम्बन करके उत्तम श्रेणीके उपयुक्त बनी । अरे उरपोक-स्वभाववाले ! अग्निसे युक्त रखे काठके समान एक घड़ी भरके वास्ते भी क्या नहीं जल उठता ? व्यर्थ ही जीवनकी इच्छा करता हुआ, ज्वालासे रहित फूसकी अग्निके समान क्यों छिपा हुआ है ? बृद्धत दिनतक ऐसी दशमें पड़े रहनेसे बाढ़े समयतक भी उठके अपने तेजका दिखाना सीगुना उत्तम है । मेरा मत यही है, कि किसी राजाके घर अत्यन्त कठोर तथा वृद्धत कौमल स्वभाववाला पुत्र कभी उत्पन्न न होवे । युद्धविद्याके जाननेवाले वीर-पुरुष संग्राम-रूममें शत्रुओंके दम्भ, ख जाकर वीर मनुष्योंकी याग्य सम्पूर्ण उत्तम कर्म करके धर्मके समोप ऋणाराहत होते हैं, किसी प्रकारसे अपनी आत्माका तुच्छ नहीं होन देते, इससे वह अपनी आशानुपत वस्तु पावे, अथवा न पावे, उससे कभी शक नहीं करत, बल्कि प्राणको आशा त्याग करके अन्तिम कर्त्तव्य काधेका आरुह्य करते हैं । पुत्र ! इससे तू चाहे अपने नाशपूर्वक व्यवहार, अथवा वीरोंके याग्य चक्रावली से स्वर्गकी जा, धर्मका हाड़के पथ जानसे प्रयोजन । अरे हीन ! तेरा अकिञ्चत्, तपस्य, सत्य, वेदका पढ़ना शक्तिविशेष, योग, धर्म, बलि-वैश्वदेव, आदि सब उपायों का अपमान और भाग तथा सुखता यह इसका नाम है, यह हागया । इससे तेरा अन्तर्भाव जात रहने-

से क्या प्रयोजन है ? यदि इकवारगो अपनी पराजय होती हुई देखे, तो वीर-पुरुषका यही कर्तव्य कार्य है, कि शत्रुको जड़ता ग्रहण करके अपने साथ ही उसे भी लेकर मरनाको प्राप्त होवे ; इकवारगो जड़ सज्जित उखड़ जाना बड़े दुःखका स्थान है, और उत्साह तथा उद्यमसे रहित होना तो किसी प्रकारसे भी उचित नहीं है । रे मूर्ख पत्न ! इससे जैसे उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए अर्द्धे छोड़े अपने पराक्रमको प्रकाशित करते हैं जैसे ही तुम भी अपने तेज तथा पराक्रमको प्रकट करो, तुम्हारे निमित्त जो कुल इस समय डबा चाहता है, तुम अपने पुरुषार्थसे उसके उद्धारके निमित्त तत्पर होकर यत्न करो । लोकमें जिसके किये हुए किसी अद्भुत आर बड़ कार्यको काई बड़ाई नहीं करता वह केवल लोकको मर्यादा ही - डानेवाला कहलाता है, वह स्त्री तथा पुरुष कुछ भी नहीं कहा जा सकता, उसकी गिनती केवल नपुंसकी ही होती है । दान, तपस्या, सत्य, विद्या और धनके उपाज्जन करनेमें जिसका यश इस पृथ्वीमें नहीं विख्यात होता है, वह माताका मल मात्र ही कहा जाता है, उसको कभी पुत्र नहीं कह सकते । जो तेजस्वी पुरुष शास्त्रके ज्ञान, तपस्या, धन, पराक्रम तथा दूसरे पुरुषार्थोंसे सब लोगोंको जीतता है, वही यथार्थ में पुरुष कहा जाता है । अरे मूर्ख ! कापालिक पुरुषोंको भाति नपुंसकोंके यश, घृणित, निन्दित, अयश देनेवाली, तथा दुःख उत्पन्न करनेवाली भिक्षा वृत्तिको ग्रहण करनेको इच्छा कभी नहीं करनी चाहिये । आह ! लोकमें निन्दाके पात्र, वस्त्रआभूषणोंसे रहित जिस पुरुषको देखकर शत्रुओंके आनन्दकी वृद्धि होती है, ऐसे लोभो, दोन, होन, थोड़ी शक्तिवाले, क्षुद्र पुरुषके वस्तुवान्धव कभी सुखी नहीं रह सकते । हा ! अपने स्थानसे भ्रष्ट और राज्यसे अलग हुए तथा सब प्रकारके

सुख और भोगोंसे रहित होकर हम लोगोंको क्या जीविकाके भारसे ही प्राणत्याग करना पड़ेगा अरे सञ्जय ! साधु पुरुषोंके समूहमें ऐसे अयुक्त व्यवहार करनेवाले, वंशको नाश करनेवाले तथा कुलको कलङ्कित करनेवाले तुमको अपने गर्भमें पतनरूपसे धारण करके साक्षात् कलियुगी माता हुई हूँ । मेरे समान और कोई तेजस्विनी रानी ऐसे क्रोध तथा उत्साह-रहित, उलझीन, शत्रु, नन्दन कपटको कभी गर्भमें धारण न करे । अरे भाग्य रहित ! उद्यम रहित धूर्त में न क्षिपकर उत्साह रूपी अग्निमें प्रकाशित होकर पूर्ण नीतिसे शत्रुओं पर आक्रमण करके उनका संहार क्यों नहीं करता ? घड़ी भर अथवा क्षण भरके बर्तन भी शत्रुओंके मस्तकके ऊपर क्यों नहीं बिछा जमाया जाता है ? क्रोध और क्षमा रहित होता ही यथार्थमें पुरुषता कर्म है । जो पुरुष सदा क्षमासे युक्त और क्रोध शून्य रहता है, वह न स्त्री है और न पुरुष ही है ; वह एक प्रकारका नपुंसक कहा जाता है । सतीप, दया, उद्योग न करना और भय ये सब लक्ष्मी के विनाश करनेके कारण हैं, सतीपी पुरुष राज्य आदि बड़े फल कभी नहीं पा सकता । रे पत्न ! इससे तो इन सब ऊपर उठे हुए दोषोंको त्यागकर अपने हृदय कीनेकी भांति कठोर करके अपना निज राज्य तथा स्वयंशक्ति को ग्रहण करने में प्रयत्न होजा । विचार करके देख तो मूर्ख, राज्य कार्य तथा प्रजाका पालन जाना आदि भारी कार्योंके करनेमें समर्थ होनेकीसे मनुष्य पुरुष कहा जाता है इससे जो पुरुष मित्यसे समान घरमें बैठकर इस लोकमें जीता रहता है, उसका जीना व्यर्थ ही कहा जाता है । मित्र समान प्रबल प्रतापका विस्तार करनेवाले जंचे चिन्तवाले, शरवीर राजाके मर जाने पर भी उसके शासन तथा अधिकारमें रहनेवाले

प्रजा सुख भागती हुई छूट-पट्ट बनी रहती है। जो बुद्धिमान् राजा अपने प्रिय सुखको भी त्यागकर राजलक्ष्मीकी खाजमें प्रवृत्त होता है, वह शीघ्र ही सेवक तथा बन्धु-बाण्डवोंका हर्ष और आनन्द बढ़ाता है।

पुत्र बोला, यदि तुम सुभी हो न देखागो तो फिर तुम्हारे इस सम्पूर्ण पृथ्वीके राज्य, भूषण, भोग, सुख और जीनहोसे क्या प्रयोजन है ?

माता बोली, मैं राज्य तथा भूषणके लोभ-से ही जो तुमका उत्तेजित कर रही हूँ, ऐसी बात नहीं है, परन्तु मेरी यही अभिलाषा है, कि आदर रहित नीच लाग जा लाक पाते हैं, हमारे शत्रु लाग वही लाक पावे, और आदरसे युक्त तेजस्वी पुरुष जिस लाकमें जाते हैं, हम लागके बन्धु बान्धव तथा सहृदय लाग उसी लाकमें गमन करे। हे तात ! सेवकासे रहत, परायण अन्नस जीवन धारण कर, दीन, हान और मालनाचित हाकर कभी नपु, सकाका हातिका अवलम्बन करना उचित नहीं है। सम्पूर्ण प्राणा जस बपा करनवाल मधके अनुजावा है, तथा देवता लाग जस इसका उपासना करत है, वैसे ही ब्राह्मण लाग तथा सहृदय-पुरुष तुम्हारे द्वारा अपनी जावका पावे। हे सञ्जय ! अर्द्ध प्रकारस पक हुए फलास युक्ति पचकी जस पचा लाग आसरा करके जीवन धारण करत है उसी भाँति सव प्राणा लाग भाण्डवान् पुरुषका आसरा करके अपना जावका निजोह किया करत है। एस ही भाण्डवान् पुरुषका जीवन सायक है। इन्द्रके बाहुबलसे बढ हुए देवताओंके समान जिस सहाय्यो पुरुषके प्रचण्ड प्रतापके सहारसे बन्धुबान्धवाका सुख और ऐश्वर्य बढता है, उसीका जीवन सायक है, जो भाण्डवान् पुरुष अपन बाहुबलकी सहार जीवनके समयका भोगता है वह इस लोकमें जीर्णिमान्

होकर अन्तमें कल्याणमयी परम गति पाता है।

१३३ अ - १५ समाप्त ।

विदुला बोली, हे पुत्र ! यदि तुम ऐसी होन अवस्थाके समयमें पुरुषार्थ छोड़ दोगे, तो शीघ्र ही अधम पुरुषासे सेवेत नीच मार्गसे गमन करागे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। चातयकुलम जन्म ग्रहण करके जो पुरुष इस असार जीवनको इच्छासे अपनी शक्तिके अनुसार पराक्रम तथा अपना बल प्रकट करके निज तेजकी नहीं प्रकाशित करता, पण्डित लोग उसकी चारके समान समझते हैं। हा ! रोगीके समीप औषधिकी भाँति यथाथे स्वार्थ-से युक्त, युक्ति सम्मत गुणोंसे भरे हुए, उत्तम वचन सब तुम्हारे ऊपर बल प्रकाश करनेमें असमर्थ होरहे हैं। देखो भिक्षुराजकी सहायता करनेके निमित्त वज्रतसे पुरुष है, यह ठीक है, परन्तु कोई भी उससे सन्तुष्ट नहीं है, सब ही उससे विरक्त हैं। अपनी निर्बलताके कारणसे विभीषण करके निज जीविकाकी उपा-लन करनेके दुःखसे असमर्थ हाकर वहलाग केवल स्वामीके व्यसनमें फँसनेकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। इसके आतिरिक्त जो पुरुष सष्ट रूप-से उसके सङ्ग शत्रुता करने हैं, वह लाग तुम्हारे पुरुषार्थकी देखकर तुम्हारे साथ ही उनके विरुद्ध युद्ध करन प्रवृत्त हाग। इससे तुम उन्ही सब लोगोंके सङ्गमें मिलकर समयक अनुसार शत्रुके व्यसनमें फँसनेकी प्रतीक्षा करत हुए दुःखपी पञ्चेतका आसरा ग्रहण करो। भिक्षु-राज अजर अथवा प्रमर है, ऐसा तुम कभी भी अपन मनमें विचर्य न करना। हे पुत्र ! तुम्हारा नाम सञ्जय है परन्तु सञ्जयका काण्ड ने तुम्हारे कन्ध भा नहीं देख सकता है इसी कारणसे कहती हूँ, कि अपने नामकी व्यर्थ न करके उसकी

मार्थ कता जा पूर्ण करो, ऐसा करनेहोसे तुम
मर पुत्र कहे जानके योग्य बनाग। तुम्हारी
बालक अवस्थामे एक महा बुद्धिमान् ज्योतिषा
ब्राह्मण कहला था, कि “यह बालक पहिले
अत्यन्त काष्ठमे पड़कर अन्तमे बद्धतसो राज-
लक्ष्मी जा भांगगा।” उस ब्राह्मणका वचन
अरण्य करके न तुम्हारे वजयका आशा करतो
ह, आर इसी कारणसे इतना हठ करके भी
तुमका उत्तेजित कर रही ह तथा बार बार
इसी भाँतिसे उत्तेजित करेगा। क्योंकि तुम इस
बातका खून ही जानते हो, कि जो पुरुष स्वयं
यथार्थ नीतिके अनुसार कार्य करता है, और
दूसरे लोग भी जिसके कार्यके सिद्ध होनेके
निमित्त सहायता करते हैं, उसका मनोरथ
अवश्य पूरा हाजाता है। हे सज्जय। “इस
कार्यके करनेसे मर पूर्व साधित वजयका चाहे
नाश होवे, अथवा हाड होवे, मे कभी भी
निवृत्त न हाज गा।” इसी प्रकारसे दृढ़-सङ्कल्प
करके तुम युद्धके निमित्त उद्योग करा, एक ही
समयसे उसकी रक्षा न करना। सत्वर
मुनिन कहा है, जिस अवस्थामें “आज घरमे
अन्न नहो है, कलह क्या हागा, सदा ऐसा हो
चिन्ता लगी रहतो है, उससे बढ़के पापो पुरुष-
को आर दूसरी कानसी दशा हा सकता है?”
यहां तक कि, पात आर पुत्रके वधसे जैसा दुःख
हाना सम्भव है, उससे भी बढ़के यह ऊपर कहे
हुए दुःखका सत्वर मुनिन वर्णन किया है।
इससे दारद्रताका दुःख मृत्यु का एक नामान्तर
भात हो है। देखा मे उत्तम कुलमें उत्पन्न तथा
स्वामीक आदरणा पात्रा आर समक कल्याणका
करनेवाला था। पहिले सुहृद लोग मुझका
महामूर्खवान् साका और सब भूषणसे भूषित
तथा तन सुगन्ध और सुन्दर वस्त्रासे युक्त
देखकर इस समय अत्यन्त दुःखमें पड़ा हुआ
देखेंग। हे सज्जय! तुम जिस समय मुझे और
अपना स्त्रिका दोन, हान तथा अत्यन्त दुःखित

देखागे, उस समय तुमका जीवित रहनके
इच्छा न रहेगी। दास-दासी, संवक गुरु
कृत्तविक, पुरोहित आदि सब कोई जीविकां
दुःखसे हम लागोंको छोड़कर चले जावेंगे
इसको देखकर तुम्हारे जानसे त्वा प्रयोज
रहेगा। तुम पहिले प्रशसाके योग्य यश
प्रकट करनेवाले जिन सब क्रमोंका अनुष्ठा
करते थे, यदि उसका भव मैं न देखूगी, तो मे
हृदयमे शान्ति किस प्रकारसे हा सकेगी
काइ ब्राह्मण जब मुझसे कुछ वस्तु मांगगा, तो
उससे मैं “नहीं है” यदि ऐसा वचन कहर्ग
तो मेरा हृदय एकवारगो टुकड़े टुकड़े जावेगा
क्योंकि पहिले मैं तथा मेरे स्वामीने ब्राह्मणों
सागनेपर कभी “नहीं है” यह वचन नह
कहा है। सब लोग हमारा ही आशा कर
थे आर हम लागोन कभी किसीका आश
नहीं को है, इससे यदि दूसरेके वधमें होके
जीविका निर्व्याह करना पड़ेगा, तो मैं अवश्य ही
शरीरका त्याग दूगी। हे पुत्र! इससे अपा
दुःख-सागरमें पड़ जाए हम लागोंका पार कर
नके वास्ते तुम हो एक मात्र अवलम्ब हो
नीका-राहत वपदरूपा ससुद्रसे उबारने
निमित्त तुम ही नीका स्वरूप है। इससे यदि
तुमका स्थान त्यागकर दूसरी जगह नवा
करना पड़े, महा धार लेश सहना पड़े, तो
उसका भी तुम स्वाकार कर ला। अधिक
क्या कहर्गी, हम लागोंके मृतके समान शरीर
का तुम जीवित करो। यदि तुम अपन जीवन
इच्छा त्याग दा, तो सब शत्रु आस युद्ध का
सकत है, और यदि ऐसे हो कीव-धानिक
अवलम्बन किये जाए, दुःखयुक्त और उपाय
राहत हाकर रहना पड़े, तो भी तुम शीघ्र ही
इस पापमयी जीविकाको त्याग दा। जो पुरुष
पराक्रमी हाता है, वह एक ही शत्रुको मारके
पृथ्वीमें यश पाता है। देखो इन्द्र एक ही वृत्र
शूरका मारकर कीर्तिमान् हुए और भव न

नाशकी प्रभुता पाकर सदाके वास्ते सबके राजा
हूँ हैं । उत्साहसे युक्त वीर पुरुष लोग जब
रणभूमिमें अपना नाम प्रकाशित करके हर्षके
सहित शत्रुओंकी सेनाको बहुत भयान करके
अपना पराक्रमसे मुख्य मुख्य सेनापतियोंको
भारते हैं, तब ही उनके दूसरे शत्रुलोग भी
भयभीत होकर स्वयं उनके निकटमें अवनात
स्वीकार कर लेते हैं । परन्तु जो पुरुष नपु-
सकताका व्यवहार करता है, वह शत्रुओंके
वशमें होकर युद्ध विद्याके जाननेवाले पराक्रमी
शत्रुके सब मनोरथ पूर्ण करता है । उत्साह
और साहससे युक्त उत्तम पुरुष चाहे राज्याका
नाश हो जावे अथवा प्राणहोका लङ्घित उपस्थित
होवे । परन्तु शत्रुका पानपर वना उसे नाश
प्रिय कभी नहीं छाड़ते । हे लक्ष्मण ! केवल
पराक्रमका प्रकाश करनेवाले स्वर्गका द्वार
अथवा भगवत्के समान राजापद मिलता है ।
इस बातका हृदयमें रखके जल्दतः इस आत्मके
समान शत्रुओंके बीचमें प्रवेश करा । हे
क्षत्रिय ! रणभूमिमें शत्रुआका नाश करके
अपने धर्मका रक्षा करा । मैं जिसमें तुमका
शत्रुओंके आनन्दका बढानेवाला और अत्यन्त
कातर न देखू । हमारा प्रारक्त पुरुष लोग
शक प्रकाश करते हुए तथा शत्रुओंका आरके
लोग हारते होकर तुमका चारा चारसे घेर
रहे हैं, तुम प्रत्यक्ष जानता व्यवहार करके
उनके बीचमें पड़ जा, यह देखकर मुनका
राना न पड़े । हे पुत्र ! तुम पहिलका भात
हर्षयुक्त चित्तसे वीरोंके दान्य दान्य करके सी
वीर-अन्यायाक वाचमें बड़ाई और आनन्दके
पात्र बना उत्साह सहित और पराक्रमसे
हीन होकर कभी लिखु देशकी अन्यायोंके
वशसे मत पड़ा । ऐसे रूप गुणसे युक्त, उन
विद्यापति से प्रभूत, उत्तम लुलमें उत्पन्न हुआ,
जो नित्य सदा यशस्वी युवा पुरुष जे उदनी भाति
दूसरोंकी भागी बनने और मरने के नहिं धिचा-

रसे कुछ भी भेद नहीं है । यदि मैं तुम्हें दूस-
रके वशमें पड़े उसके पीछे गमन करते हुए
देखूंगी, तो मेरे हृदयमें कैसे शान्ति हो
सकेगी । दूसरेके आज्ञाकारी बने ऐसे पुरुष
तुम्हारे इस वशमें कभी नहीं उत्पन्न हुए हैं,
हे पुत्र ! इससे दूसरेका सेवक होकर
तुमका कभी जीना उचित नहीं है । क्षत्रि-
योंका जो सदासे प्रसिद्ध सनातन धर्म है, वह
मुझकी भली भाँति मालूम है । पहिले तथा
पाछे पण्डितोंने उन विषयमें जो कुछ वचन कहे
हैं, तथा प्रजापति ब्रह्मणं क्षत्रियोंको जिस
कार्यके निमित्त उत्पन्न किया है, उसको मैं
खूब ही जानती हूँ । पृथ्वीके बीच किसी प्रसिद्ध
क्षत्रिय-वंशमें उत्पन्न होकर जो पुरुष सब
धर्मोंकी यथार्थ बातोंका जानकर भी केवल
अपनी प्राणरक्षाके निमित्त भयसे शत्रुओंके
निकट अवनात स्वीकार करता है, वह पुरुष
किसी प्रकारसे उत्तम नहीं कहा जा सकता ।
उद्यम ही पुरुषका पुरुषाय है, इससे सदा
उद्योगी हो बनना चाहिये किंसा समयमें अवनात
स्वीकार करना उचित नहीं है । वाल्मीकि रण-
भूमिमें पराक्रम प्रकाशित करता हुआ मरकर
स्वर्गका जावे, परन्तु किसीके समापमें अपनी
अवनात स्वीकार न कर । मनस्वी वीरपुरुष
निर्भय होकर सब स्थानोंमें भ्रमण कर, केवल
धर्मके अनुसार ब्राह्मणोंके निकट अपना अव-
नात स्वीकार कर, इसके प्रतिरक्त और सम
वर्णाका वलपूर्वक अपने वशमें करके उनके
बुरे कर्मोंके दुड़ानेका यत्न करे, उससे यदि
उसे बलतसे सहायतासे युक्त अथवा एकद्वारगा
सहायतासे रहित होना पड़े, तो भी वह अपने
जीवनके समयतक इसी प्रकारके कर्म तथा
समुद्धान करता रहे ।

पुत्र बोलें, हे क्रोधयुक्त, कर्णारहित, वोर-
ताका अभिमान करनेवाली माता । मालूम
होता है, कि अत्यन्त कठोर लोहेसे ब्रह्माने
तुम्हारे इस काठिन-हृदयको बनाया है । हाय ।
क्षतिय-धर्म का ही विचित्र है, कि जिसके
कारण तुम मुझको सामान्य पुरुषकी भांति
समझकर युद्धके कराल-मुखमें फेंक रहो हो ।
गर्भधारिणी माता जाकर भी तुम मौतिलो
माताके समान ऐसे वचनरूपी वाणोंसे मेरे
हृदयका छेद रहो हो । तुमसे मैं यही एक
बात पूछता हूँ, कि यदि तुम मुझे ही न
देखोगी, तो तुम्हारे इस समस्त पृथ्वीके राज्य
भूषण, भोग, सुख, और जीनेसे क्या प्रयोजन
सिद्ध होगा ? ऐसे उत्तम प्यारे पुत्रके नाश होने-
पर तुम जोके क्या करोगी ?

माता वाली बुद्धिमान् मनुष्योंके सम्पूर्ण
कर्म ही धर्म और अर्थसे युक्त रहते हैं, मैं
उसी धर्म और अर्थकी और लक्ष्य करके तुमको
युद्ध करनेकी कहती हूँ । देखा तुम्हें पराक्रम
प्रकाशित करनेका यह सुख्य समय उपस्थित
हुआ है, इससे यदि तुम इस उपस्थित समयमें
अपन कर्त्तव्य कार्यका अनुष्ठान न करोगी, तो
तुम लोकके बीचमें मान-रहित होकर मेरा
अत्यन्त ही अहित कार्य करोगी । तुम्हारे धन
सम्पत्ति, राज्य, यश और बड़ाईको कुछ भी
सम्भावना नहीं रहेगी । तुमको अपयशसे
ग्रस्त होता हुआ देखकर भी यदि मैं प्रीति
पूर्वक उसके निवारण करनेके निमित्त कुछ
वचन न कहूँ, तो वह किसी प्रकारसे भी युक्ति
युक्त तथा यथार्थ प्रीतिका कार्य नहीं हो
सकता, ऐसे पुत्रके हकी पण्डित लोग सामर्थ्य
रहित बिना कारणकी प्रीति और निरर्थक
रहे कहते हैं । हे सज्जय ! इससे तुम मूर्ख
लोगोंके मानने योग्य और बुद्धिमानोंमें निन्दित
इस बुरे मार्गको त्याग दो । देखो इस पृथ्वीमें
वृद्ध ही अविद्या प्रायः सब स्थानोंमें विराज

रही है, यदि तुम इस अविद्याके हाथसे दू-
कर सदाचारी बनावे, तभी मेरा प्रिय कार्य
सिद्ध होगा । धर्म अर्थ आदि गुणसे युक्त,
देवता और मनुष्योंके कर्मके जाननेवाले साधु
पुरुषोंके मानने योग्य बिना उत्तम कार्यके
तुम कभी मेरी प्रीतिके पात्र नहीं हो सकने ।
जो भली प्रकारसे उत्तम कर्म और विद्या
विनयसे युक्त पुत्र पौत्र आदिके ऊपर प्रीति
करते हैं, उनको प्रीतिको ही यथार्थ प्रीति
कहते हैं । नहीं तो जा पुरुष उद्यम और
विनय-रहित नीचबुद्धि पुत्रके ऊपर प्रीति करते
हैं, उनके वचनका फलही एकवारगी नष्ट हो
जाता है । मनुष्योंके योग्य कर्त्तव्य कर्मका अनु-
ष्ठान न करनेवाले और निन्दित तथा बुरे
कर्मके करनेमें वृद्ध हो हठ करनेवाले अधम
पुरुषोंको इस लोक तथा परलोकमें कहीं भी
सुख नहीं मिल सकता । हे सज्जय ! तुम यह
निश्चय जान रक्खा, कि कवल युद्ध और जय
करनेहोके निमित्त इस पृथ्वीमें क्षत्रियोंका
उत्पात्त हुई है । क्षत्रिय पुरुष चाहें शत्रुओंका
जाते अथवा रणभूमिमें मारा हो जावे, दाता
भातिसे उसे इन्द्र लोक मिलता है । मर्त्यका
वशमें करके क्षत्रिय पुरुष जैसे सुख और सम्-
पत्तिके अधिकारी होता है, वैसा सुख स्वर्ग
इन्द्रभवनमें भी नहीं मिल सकता है । मर्त्यका
पुरुष शत्रुओंसे अनेक बार पराजित होकर
क्रोधकी आगमें जलता हुआ अपने शत्रुओंका
इकवारगी नाशकर देव अथवा उनसे मरकर
स्वर्ग लोकहोको जावे, इसके अतिरिक्त और
किसी प्रकारसे उसके हृदयमें शान्ति नहीं हो
सकती । इस समारमें बुद्धिमान् पुरुष वृद्ध
थोड़ी वस्तुमें प्रीति नहीं करते हैं, थोड़ी वस्तु
जिसे प्यारी हाती है वह अवश्य ही एक दिन
उसके अनिष्टकी जड़ होजाती है । क्योंकि
प्यारी वस्तुओंके अत्यन्त ही अभाव होजाने
पर फिर पुरुषके कल्याणकी सम्भावना नहीं

रहती, बल्कि समुद्रमें लीन हुई गङ्गाकी भांति एकवारगी सब प्रदार्थों का अभाव हो जाता है ।

एत बोला, हे माता । इस प्रकारका अशि-
प्राय प्रगट करना तुमको उचित नहीं है ।
विशेष करने गठके वास्ते ऐसी प्रवृत्ति करनी
तुम्हें योग्य नहीं है । इस समय जब अथवा
रंगीकी भांति शास्त्रभावसे रहकर केवल कर्तव्य
दिखाना ही तुम्हारा कर्मव्य-कार्य है ।

माता बोली, हे पुत्र । तुम जैसा विचार
करते हो, उससे तुम्हारे ऊपर मेरी अधिक
प्रीति उत्पन्न होरही है । मेरे विषयमें जैसा
वचन कहना उचित है, तुम वैसा ही कहते हो,
और मैं भी उसके अनुसार तुमको कर्तव्यसे
युक्त ही वचन कहती हूँ । तुम्हारे हाथसे
पहिले सम्पूर्ण सैन्य-वीरोंकी मारकर पीछे
तुम्हारी अत्यन्त प्रशंसा करती रहंगी । अधिक
क्या कहूँ, तुम्हारी जो सब प्रकारसे विजय
होगी, उसकी मैं प्रत्यक्ष रूपसे देख रही हूँ ।

एत बोली, हमारे धन, बल, सहाय आदि कुछ
भी वस्तु नहीं है ; तब फिर कैसे हमारी जीत
हो सकती है ? तुम्हारी ऐसी दास्य अवस्थाकी
जानकार मैं खट ही उन आशाकी टाड़कर चप-
वैरा हूँ, अत्यन्त कठिनतासे प्राप्त होने योग्य
पार्श्वलाराके समान राज्यकी आशा भी मैंने
चोड़ दी है । मैं सदा बुद्धिमती । जिससे मैं
अतर्कात्मी नौसकूँ तब यदि, ऐसा कदा उपाय
जानती हो, तो विशेष रूपसे कहो, तुम्हारे
यस वचनकी मैं सम्पूर्ण रूपसे पालन करूँगा ।

माता बोली, हे पुत्र । मेरी जीत नहीं
लोगों पहिले ही तेने चिन्ता करके अपनी
आशाकी तुल्य मत समझो । क्योंकि घटनाके
अनुसार बहुत समझकरान्त हुआ गर्ध भी मिलता
है और प्रत्यक्ष प्रमाण भी प्राप्त हो जाता है ।
पार्श्वलारेके उपाय करनेपर दृश्य ही प्रत्यक्षकी
आश होती है, सर्वताने केवल जीतके वशने ही
सोचकर किसी नाटिका आरम्भ करना उचित

नहीं है । हे तात । सब प्रकारकी कर्माँ हीसे
फलकी मिट्टिके विषयमें उपस्थित अनित्यता
देख पड़ती है । जो प्रत्यक्ष फलकी अनित्यता-
की स्थिर करके भी कर्मोंकी अनुष्ठानमें प्रवृत्त
होता है उसके अधिलाषाकी मिट्टि भी होती
है, और नहीं भी हो सकती । परन्तु विना
निश्चय किये ही जो एकवारगी कार्यकी अनुष्ठा-
नमें प्रवृत्त नहीं होते, वह किसी समयमें कृत-
कार्य नहीं हो सकते । कार्यके करनेका
उद्योग न करनेसे एकवारगी कार्यकी फलका
अभाव होता है और कार्यके प्रवृत्त रहनेमें
कार्यके फल-मिट्टि होने और न होने दोनों-
हीकी सम्भावना होती है । हे राजा । आ-
रम्भ करनेकी पहिले ही जो प्रत्यक्ष सब कार्योंकी
अनित्यताकी स्थिर करके लटाय नहीं करता,
उसकी बुद्धि और समृद्धि नहीं हो सकती । इस-
से “निश्चय ही कार्य सिद्ध होगा” ऐसा विचार-
कर लम्बाहके सहित कार्यमें तत्पर होना और
माझलिक कार्योंके अनुष्ठानकी करना ही
उचित है । हे पुत्र । बुद्धिमान राजा लोग
देवता और ब्राह्मणोंकी पूजा तथा स्वर्गायन
आदि माझलिक कर्मोंका अनुष्ठान करके
अपने अर्थात्के सिद्ध करनेवाले कर्मोंकी आरम्भ
करते हैं, उससे अवश्य ही उनकी बुद्धि चोनी
है । पूर्व दिशा जैसे भगवान् सूर्यकी पालि-
इन करती है, वैसीही गङ्गा देवी खट ही उस
प्रत्यक्षिके वशमें हो जाती है । हे सत्य ।
मैंने जो यह सब प्रमाण, उपाय और उदाहरण
युक्त वचन तुमने कहे हैं, मैं तुमकी उमीदके
योग्य देव रही हूँ । इससे तुम सब शत्रुओंकी
त्यागके अपने पराजयकी प्रकाशित करो । सब
पक्षोंमें प्रत्यक्ष अपने कार्यकी सिद्ध करनेके
निश्चय उत्साहपूर्वक प्रवृत्त करो । तुम्हारे
गत के ऊपर ही लोग डर हैं जो तुम्हारे
वशमें हैं, जो लोग तुम्हें न सिद्ध हैं, जिसका
उत्तर अवमान किया है, जो लोग तुम्हें भय

हुए हैं, और जो उसके सङ्गमें युद्धकी इच्छा करते हैं,—तुम पूर्ण रीतिसे यत्नपूर्वक उन लोगोंको अपनी ओर मिला लो, उन लोगोंको पहिले वितन देकर सन्तुष्ट करो और अपने कार्योंकी साधन करनेके निमित्त शोध ही उत्पन्न करो । इस प्रकारके कार्योंको करनेसे ही, जैसे वायु प्रबल बादलोंके समूहको किन्तु भिन्न कर देता है उसी प्रकारसे इन बहूतगो मनुष्योंकी अपने वशमें करनेसे तुम अवश्य ही समर्थ हो जाओगे और वह लोग भी तुमको यादरके सहित प्रीतिपूर्वक अपना स्वामी तथा अग्रणी बनावेंगे, इसमें कष्ट भी सन्देह नहीं है । जब शत्रु जानता है, कि मेरा वरी अपने प्राणकी आशा त्याग करके युद्धके निमित्त उपस्थित हुआ है, तब ही वह घरमें वास करने वाले सर्पकी भाँति उससे डरता है । उसको अत्यन्त प्रबल जानकर यदि वह वशमें करनेकी कांशश करेगा, तो अवश्य सामंदाके प्रयागसे अपनं, अनुकूलने करनेकी इच्छा करेगा, ऐसा हानि-पर एक कारणसे उसका वशमें करना सिद्ध हो जावेगा । क्योंकि सन्धिकी स्थापित करके स्थान तथा राज्यको पानेसे कभी धनको भी हानि होगी, पुरुषकी धनवान् हानिसे मित्र लोग उसे मानते तथा उसका आसरा ग्रहण करते हैं, परन्तु यदि वह दैव-संयागसे धन तथा सम्पत्तिसे भ्रष्ट हो जावे, तो वह मित्र लोग और भाई वन्धु उसका छाड़कर चले जाते हैं, केवल छाड़के ही नहीं जात, बल्कि उससे घृणा करते तथा उसको निन्दा भी करनेमें सङ्काच नहीं करते । जो पुरुष शत्रुकी सहायक बनाकर उसका विश्वास करता है, उसको जो किसी समयमें राज्य मिल सकेगा, यह केवल सम्भावना मात्र ही होती है ? परन्तु यथार्थमें उसको वह आशा कभी सफल नहीं हो सकती ।

१३५ अध्याय समाप्त ।

साता बीर्वा, हे सज्जन । राजाके विषयमें चाहे कैसे ही आपद क्यों न उपस्थित होवे, उससे डरके व्याकुल होना कभी उचित नहीं है, यदि मनमें कोई शङ्का भी उत्पन्न होजाती तो बाहर उस विषयको कभी भी प्रकाशित करना चाहिये । क्योंकि राजाको शक्ति देकर राज्य, वस्त्र, सेवक आदि सब ही भयं व्याकुल होकर उत्साह-रहित हो जाते हैं ऐसी अवस्थाके आने पर कोई कोई स्वामीका छोड़ देते हैं, कोई शत्रुके आसरेकी अवलम्ब करते हैं, और जो सब पुरुष पहिले मानरक्षि हो-गये थे, वह अवसर पाकर अपने स्वामीका विस्मृता करने पर उपस्थित हो जाते हैं । इसके प्रतिरिक्त जो लोग अत्यन्त ही सुहृद हैं वही लोग स्वामीकी अस्तिताके नानुसार उसके परतन्त्रताका स्वीकार करके उस समयमें भी सेवा करते हैं । स्वामीके कल्याणके सिद्ध करनेको अभिलाषा रहते भी राजाके घरमें ही वह हुए बकुड़ेकी भाँति उन लोगोंको उत्साह और चेष्टासे रहित होना पड़ता है । भाई वन्धुकी पतित देखकर जैसे वन्धु बान्धव लोग दुःख और शोक प्रकट करते हैं, वैसे ही विश्वासपात्र सुहृद दृष्टसिद्ध भी स्वामीको बुरी अवस्था में पड़ा हुआ देखकर शोक प्रकाशित करते हैं । इससे स्वामीको व्यसनमें पड़े हुए देखकर जो लोग तनमगसे उसके राज्यकी रक्षा चाहते हैं, वही लोग यथाथमें सित हैं, सबके पहिले उन्हीं लोगोंको पूजा करना उचित है । हे परम ऐसे सुहृद पुरुषोंको तुम कभी भी भयं व्याकुल मत करना । तुमका शक्ति देख कर वह लोग तुम्हें त्याग न देंगे । तुम्हारे प्रभाव पराक्रम और बुद्धिके जाननेको अभिलाषा मैं न जो यह सब वचन बाहे हैं, वह तुम्हारी आशा, उत्साह और तेजस्वी महानके निमित्त ही कहा गया है । यदि यह यथाथ स्तर्पसे तुम्हें उत्तम जंचे और मेरी बातोंमें प्रीति तभी

विश्वास होवे, तो धीरताको अवलम्बन करके तुम अपने विजयके निमित्त उद्योग करो । हे सज्जय ! इस लोगोंका एक बहुत बड़ा धनका स्थान है वह तुमको नहीं मालूम है, सुभी छोड़के आर कोई भी उस खजानेके स्थानको नहीं जानता है, उस स्थानमें जा बहुतमा धन है, वह सम्पूर्ण तुमका देतो हूँ । हे वीर ! इसके अतिरिक्त तुम्हारे कई सौ दृष्ट मात्र तथा सुहृद लोग भी विद्यमान हैं, वह सब ही तुम्हारे सुख दुःखके साथी आर युद्धन कभी भी छोड़े न हटनवाले हैं । हे शत्रु-नाशन ! कोई कल्याणको चाहनेवाला पुरुष बल पूर्वक याद किसी कार्यको करनेका अनुष्ठान करे तो ऐसे सहाय लोग ही उसके यथार्थ मन्त्री बन कर सब कार्य करते हैं ।

सज्जय स्वभावसे ही याड़ी बुद्धिसे युक्त था, परन्तु अपनी माताके ऐसे उत्तम पद पदार्थसे युक्त, सुन्दर और मनीहर वचनोंको सुनते ही उसी समयमें उसका भय और शका हर हींगई तब वह साहसके ऊपर भरोसा करके बोला हे माता ! भावो कल्याणको देखनेवालो तुम जब सुभी उत्तम शिक्षा दे रही हो, तब सुभीका कोई कार्य भी कठिन नहीं है । मैं जतन डूबे हरके समान या तो पैदल राज्यका उतार कलंगा अथवा रणभूमिमें प्राणत्यागकर स्वर्ग लोकमें जाऊंगा । तुम्हारे उपदेशके वचनका सुननेके समय मैं प्रायः मौन रूपसे सुन रहा था, कवच बीच बीचमें कुछ धाड़ा सा जवाब दिया था, उसका कारण यही था कि तुम्हारे दूसरे उपदेशके वचनोंको भी सुनूँगा । अत्यन्त दुःख भवितुक पावसे जैसे प्राप्त होता है, उसे ही तुम्हारे अन्तर्लक्ष्य वचनोंके सुननेसे मेरा इच्छा पूर्ण नहीं होता था । इसीसे तब उपचाप तुम्हारे वचनोंका संग्रह है, इन समयमें शत्रुओंके नाश और अपने विजयके निमित्त उद्योग करता हूँ ।

कुन्ती बोली, विदुलाके ऐसे कठोर वचन रूपी वाणीसे विद्व आर प्रसिद्ध उत्तम षोडशकी भाति उत्तेजित होकर माताकी आज्ञाके अनुसार सज्जयने उन कार्योंको ही पूर्ण किया था । कोई राजा यदि शत्रुओंसे पीड़ित और उत्साह शून्य होवे तो शत्रुओंके नाश करनेवाले, तेजको बढ़ानेवाले इस वत्तम वृत्तान्तको उसे अवश्य सुनाना उचित है । विजय चाहनेवाले पुरुषका जय रूपी इस कथाको अवश्य सुनना चाहिये । जो पुरुष एक बार भी इस कथाका चित लगाके सुनता है, वह शीघ्र ही सम्पूर्ण पृथ्वीको जीतने और शत्रुओंके नाश करनेमें समर्थ होता है । गर्भिणी स्त्री वीर-पुत्रको उत्पन्न करनेको इच्छासे इस कथाको बार बार सुननेसे अवश्य ही शीघ्र ही पुत्र उत्पन्न करतो है । जो कोई क्षत्रिय-नारी यह कथा चित लगाके सुनती है, वह अवश्य ही विद्यावीर, दानवीर, तपस्वी वीर, दिव्य शक्तिसे प्रकाशित, साधु पुरुषोंमें गिनने योग्य, महातिजस्वी, महाबली, भाग्यवान्, महारथ, सबको जीतनेवाले, अपराजित, दुष्टोंका शासन करनेवाले, धर्मात्माओंको रक्षा करनेवाले, सत्य-पराक्रमी वीर, पुत्रको माता ही सक्तो है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ।

॥ २६ अध्याय समाप्त ॥

कुन्ती बोली है हृष्टा 'तुम मेरी आरसे अञ्जनका कहना कि हे पुत्र ! तुमका उत्पन्न करने के जिस समय मैं स्त्रियोंके बीच घिरा पायसके निकट बैठो थी उसी समय आकाशमें यह मनीहर देववाणी हुई थी, हे कुन्ती ! तुम्हारा वचन पुत्र साक्षात् इन्द्रके समान लगता ; इसका यश स्वर्गमें फैलेगा ; भासनेवाला सहायतासे यह सम्पूर्ण पृथ्वीका जीतनेवाला ही होगा । अज्ञानकी सहायतासे अज्ञान कायम रहा । अज्ञान ही सम्पूर्ण करवाक जगत् हर

किर हुए अपने पैरक रान्धका अंश फिर प्राप्त करेगा, और भाइयोंके सब मिलकर तीन सहायक पूर्ण करेगा" । हे कृष्ण ! वह सत्य-साची अर्जुन जैसा सब पराक्रमी और तेजसी युक्त है, उसे तुम विशेष रूपसे जानते हो, इस-से देववाणी जो हुई है, वह जिससे सिद्ध होना, वही करना । हे कृष्ण ! यदि धर्म रहेगा, तो अवश्य वे सब वचन सत्य होंगे । तुम ही सब प्रकारके यत्नासे उसका पूर्ण कराओ । इससे उस माकाशवाणीमें जो वचन तुमने पाये हैं, किसी प्रकारसे भी उसके ऊपर दृष्टि नहीं दे सकते हैं । भगवान् धर्मका सब प्रकार-नमस्कार है, धर्म ही सम्पूर्ण महाप्रोत्साधारण करता है । हे कृष्ण ! गर्जनसे ऐसा कहकर सदा उत्थम करनेवाले उद्योगी भोमसेनके भी यह वचन कहना, "जात्रियोंकी नारी जिस दिन-के वास्ते पत्रकी उत्पन्न करती है उनके यन्त्र समय यहो अब उपस्थित हुआ है । पुरुषोंके डोर लाग क्रमों वैरीकी पाकर चपचाप बैठे नहीं रहते हैं ।" हे कृष्ण ! भीमकी बात तुम्हें सदासे विदित है, वह शत्रुनाश भोम-सेन जबतक शत्रुओंका नाश नहीं कर लेते, तबतक शान्त भी नहीं होते । हे कृष्ण ! महाभा पाण्डुराजकी पुत्रधू (पताहू), सब काथियोंका विशेष रूपसे जाननेवाली यश-स्विनी, शत्रुवाणी द्रापदोसे भी तुम मेरी आरसे यह वचन कहना कि हे महाभाग ! हे यश-स्विनि ! हे उत्तमकुलमें उत्पन्न हुई सनातन । हमारे सब पुत्रोंके ऊपर तुमने जो साधवी स्त्रीके अनुसार यथार्थ प्राचरण किये हैं, वह तुम्हारे वाक्य ही हैं ।

हे पुरुषोत्तम कृष्ण ! इसके अनन्तर छात्र-ओंके धर्ममें सदा रत रहनेवाले दानी माद्री-पुत्रोंसे कहना 'हे पुत्र ! तुम लोग प्राणकी आशा त्यागकर भी अपने पराक्रमसे उपा-चित किये हुए भोग और सुखका आभोग

करो, क्योंकि अपने पुरुषार्थसे उत्पन्न हुआ सब ही उत्तम पुरुषोंकी धारा होता है । देखो तुम लोग सब धर्मोंके चलाते तथा जाननेवाले हो, जो भी तुम्हारे अग्र, खड़े की दौड़ोकी गति-वचन सुनना पड़ा या उसकी गति-वचन पढ़ना पड़ा है, हे कृष्ण ! पूर्वोक्त रात्रि-जान जवहीं हावले और बनवान करनेसे भी सारी जलना नष्ट नहीं है जितना कि प्राणमें भी उसके पतियोंकी धारा मन्दरी-द्रौपदीके मध्य में होती है, द्रौपदीके अतिथि तथा व्याज वचन सत्यमें, साधवी यही एक हृदयकी विद्वत्ता करनेवाला सदा कठिन दुःख है । अर्जुन ! उत्तम धर्मसे सदा रत रहने वालो, स्त्री धर्मसे युक्त, सुन्दरी दौड़ो अत्यन्त अच्छे नाथकी हाकर भी उस समयमें अनाथा हुई थी । हे कृष्ण ! सब धर्मधारणी द्रौपदी प्रसन्नचित्त भू-मसे यह वचन कहना, कि वह द्रौपदीके वताये हुए मार्गसे चले । भीम अर्जुन अत्यन्त क्रुद्ध होनेपर साना दो यमकी मूर्ति धारण करके देवताभक्त भी नष्ट कर सकते हैं, यह तुमकी मता भगवान् मालूम है । उन लोगोंके ऐसे पराक्रमी हाथपर भी जा उनकी धारी स्त्री द्रौपदी सभामें ब्लाई गई थी, उससे पदों और अपमानका विषय हुआ । हे कृष्ण ! जगद्गुरु । आप ही धर्मोंके बीचमें भोमसेन भी जा दुःशासनके अन्तर वचन कहा था, उसका भी तुम फिर साक्षात् करा देना । मेरी प्रार्थना पत्र कालके साक्ष्य पाण्डुवादी कुशल बात पृथक् । इस समय तुम सब विद्वत्से सार्व-हाकर तुम मार्गसे प्रस्थान करो और पञ्चचक्र और पुत्रोंका प्रातःपालन करो ।

श्रीवैशम्पायन सुनि जाले, अनन्तर महानन्द-श्रीकृष्णचन्द्र दन्तीदेवीका प्रणाम और प्रदक्षि-करके उनके सान्द्रसे बाहर हुए और भी-आदि कौरवके सब पुरुषोंको वहीपर नि-कारके कवच करके अपने स्वयं चलाय

सात्यकीयों सहित वहाँसे चले आकृष्णकी चली जानपर सब औरव लागे अर्जुन स्थानसे दूधके हाकर उनके परम अद्भुत महा आश्चर्यसे युक्त वृत्तान्तकी आलोचना करने लगे, और मदन मिलकर यह अभिप्राय प्रकट किया 'यह सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल साहस युक्त है, और मृत्युके वशसे ज्ञात है। दुर्योधनके सुखतात्परा दोषसे अवश्य ही यह सम्पूर्ण राष्ट्र तथा प्रजा सहार दशम उपाश्रित होगा।'

इधर सम्पूर्ण यदुवाक्याके हृषीकेश बटानवाले पुरुषोत्तम कृष्ण नगरसे निकलनेके अनन्तर कणसे बद्धत देर तक विचार करके अनन्तर अतन्त्र शीघ्रताके सहित अपने रथके बाइका चलाया। जन और वायुके समान शीघ्र चलनेवाले वे बाइ दासके सारथीके हाथके पर पड़े चले, जैसी प्राज्ञाश भाग गमन कर रहे हैं, और अतन्त्र शीघ्रतासे गमन करनेवाले राजा की भाँति उनके भाग और नगरकी लड़नेपर बराठ (उपद्रव) नगरमें आकर उपाश्रित हुए।

(२७ अध्याय समाप्त।)

आश्वत्थामान सुान बाण, सुता हवीन उपालि
जी तर्ज धचा कर्ज म मन्त्राश टागात्राध

वह धर्मका भय नहीं है। इस समय सब शस्त्रोंके जाननेवाले अर्जुन-दृढ़सङ्कल्पको करने-वाले भीमसेन गाण्डीव धनुष, दोनों अक्षय तूणार, कपिध्वजासे युक्त रथ, महा पराक्रमी नरुल सहदेव और महा पराक्रमी आकृष्णकी सहायता पाकर राजा याधाष्ठर अब किसी प्रकारसे भी अपना राज्य लिये शान्त न रह सकाग। हे महाबाहा। इसके पीछले वीरोमें अष्ट बुद्धिमान् अर्जुनन जा अकेले ही हम लोगका युद्ध जीता था, उन सब वृत्तान्तकी तुम जानते ही हैं। इसके अतिरिक्त नववाक्यव नामक महा पराक्रमी दानव लाग उस वृद्धास्त्रके धारण करनेवाले कपिध्वजासे युक्त अर्जुनके प्रतापस्वरूपी आत्मसे भक्त होंगे हैं। और भी प्राप्यातर्क समय कर्ण आदि सब महारथ याज्ञा और कवचका धारण करके रक्षक बैठे हुए उस सब लाग अर्जुनके बाहु नलसे गन्धर्वोंके हाथसे छूटेंगे। यह सब कर्म ही उन पाण्डवोंके पराक्रमके पूर्ण प्रमाण हैं। हे पुरुषय्यष्ठ। इससे तुम भाइयोंके सङ्ग मिलकर पाण्डवोंके सङ्ग सन्धि स्थापित करला। अर्जुन सुखसे पड़े हुए इस सम्पूर्ण पृथ्वीके वारिकता उद्धार करे। विचार करके देखो ता सहा, यदि और तन्त्राज न भाइ, धर्मगत्या

करेंगे। लम्बी भुजा, और सिंहके समान कर्ण-
वाले पहार करनेवाले में श्रेष्ठ भीमसेन तुमकी
दोनों भुजाओंसे चालिङ्गन करेंगे। उसके अन-
न्तर कबूतरके समान सुन्दर ग्रीवावाले कमल-
नयन अर्जुन तुम्हें प्रणाम करेंगे और पृथ्वीके
बीच अत्यन्त रूपवान् नकुल और सत्तदेव प्रीति-
पूर्वक सुसुक्ती भाति तुम्हारी आराधना करेंगे।
लुषा आदि सब राजा लोग तुम लोगोंका
मिलना देखकर पुलकित होकर आनन्दपूर्वक
आसुओंकी धारा बहावेगे। तुम अभिमान
छोड़के भाइयोंके सङ्ग मिलो और सब कोई
एकजुट होकर इस सम्पूर्ण पृथ्वीके राज्यका
शासन करो। इन्हें हुए सम्पूर्ण राजा लोग
आपसमें मिलकर हर्षपूर्वक अपने अपने स्थान
पर जावें। हे पृथ्वीनाथ! युद्ध करनेका कुछ भी
प्रयोजन नहीं है। सुहृद लोगोंकी बात मान-
कर तुम युद्धमें प्रवृत्त मत होओ। युद्धमें क्षत्रि-
योंके कुलका अवश्य ही भावी विनाश स्पष्ट रूप-
से दोख पड़ता है। हे वीर! देखो प्रकाश-
मान ज्योति सब प्रातिकूल होरही है, हारण
और पक्षी आदि सब जोवजसु भयङ्कर भाव
धारण किये हुए है। क्षत्रियोंके नाश हानके
विषयमें और भी बद्धतसे भयङ्कर उत्पात
दिखाई पड़ रहे हैं। विशेष करके हम
लोगोंके बीचहोमें सब अशकुनोंकी अधिक
उत्पत्ति होरही है। तुम्हारी सेनाके ऊपर
उल्कापात हो रहा है। सवारोंके वाहन
मानो हर्षसे रहित होकर रुदन कर रहे हैं।
अशुभ फल देनेवाले गिद्ध आदि पक्षी सेनाके
चारों ओर घूम रहे हैं, नगर और राज-
भवनकी शभा पहिलीके समान अब नहीं हैं।
सियार आदि पशु भयङ्कर शब्द करते हुए सब
दिशाओंमें घूम रहे हैं। हे महाबाही! इससे
तुम पिता माता और हित चाहनेवाले हम
लोगोंकी वचनोंका पालन करो। देखो, शान्ति
और युद्ध दोनों ही तुम्हारे अधिकारमें हैं। हे

शत्रुनाशन। यदि इकवारंगो तुम सुहृद पुरुषोंके
बातोंको न मानीगे, तो अपनी सेनाको अर्जुनके
वाणोंसे पीड़ित देखकर अवश्य ही तुमका पचा-
त्ताप करना पड़ेगा। संग्रामभूमिमें अग्निके
समान तेजस्वी भयङ्कर शब्द करनेवाले भीमसेन
के सिहनाद और गाण्डीव धनुषके प्रचण्ड शब्द
को सुनकर हम लोगोंके यह वचन तुमको
स्मरण होंगे। यदि इन वचनोंमें तुम्हें उल्टी
समझ होरही है, तो ये वचन अवश्य ही कार्यमें
परिणत होंगे इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

१२८ अध्याय समाप्त ।

त्रैलोक्यमायन मुनि बोले, भीष्म और द्रुपद
चार्योंके ऐसे वचन सुनके दुर्गोधन गोची गईन
करके दोनों भीष्मोंके स - स्थानको सिक्कीड़कर
तिरछी दृष्टिसे पृथ्वीकी ओर देखने लगे, और
कुछ भी उत्तर न दिया। उनको इन प्रकार
मनमलिन हुए देखकर वे दोनों वीर पुरुष
दूसरेका सुख देखकर फिर भी दुर्गोधनसे ये
वचन बोले। भीष्म बोले, मैं सेवा करनेवाले
पापरहित, ब्रह्मनिष्ठ, सत्यवादी अर्जुनके विरुद्ध
युद्ध करूंगा, इससे बड़के और दुःखका विष
क्या होगा। द्रोणचार्य बोले, हे राजन्! यथा
पुत्र अश्वत्थामाके ऊपर मेरी जैसी प्रीति है
अर्जुनके ऊपर उससे भी अधिक है। अश्वत्थामा
जिस प्रकारसे मेरा मान और प्रतिष्ठा करता
है, अर्जुन उससे भी अधिक मान, प्रतिष्ठा तथा
नम्रता प्रकाश करता है। क्षत्रिय धर्मका
अनुष्ठान करनेसे सुभक्ता पुत्रसे भी प्यारे उस
अर्जुनके सङ्ग युद्ध करना पड़ेगा। अहो!
क्षत्रियोंको जोविका कैसी बुरी है। इस पृथ्वीके
बीच जिससे समान धनुषधारी और कोई भी
नहीं है, वह अर्जुन मेरे ही प्रसादसे सत्रमें बँध
हुआ है। जो पुरुष मितद्राहो, दुष्ट स्वभाव
नास्तिक, विनय रहित और शठतासे युक्त होता
है, वह यज्ञके स्थानमें आये हुए मूर्खके समान

कभी पूजित नहीं हो सकता है । पापों मनुष्य बार बार निवारण करने पर भी जैसे पापकर्महीका अनुष्ठान करनेका अभिलाषा होता है, उसी प्रकारसे पुण्यात्मा पुरुष पापकर्मोंसे नदा उत्तीर्णित किये जानेपर भी केवल पुण्यकर्मोंको करनेहीका वासना करत है । हे भरतसत्तम ! तुमने शठता द्वारा पाण्डवोंको अलग किया है, तभी व लोग तुम्हारे प्रिय हो कायेका करनम रत है, परन्तु तुम सदा उनकी आहत हो कर्म करनेमें तत्पर रहते हो । हेखा, कौरवोंमें बूढ़े आर बुद्धिमान् विदुर, मैं, द्रोणाचार्य और श्रीकृष्ण आदि सब लोग तुम्हारे हितके निमित्त उपदेश करते हैं, परन्तु तुम किसीकी बात भी उत्तम नहीं समझते हो । “सुझनें अत्यन्त बल है” यहो समझ कर तुम मगरमच्छ घाड़याल आदिस युक्त महासमुद्रका तरनका इच्छास गङ्गाको वगैरों भात सहसा पाण्डवोंका सनाक पार जानकी आभिलाषा करत हो । दूरको पहर ऊपर वस्त्रोंका पहरेनकी श्रयवा त्याग की ऊँच भाषाकी धारण करनेको समान तुम युधाष्ठिरकी राजलक्ष्मी पाकर एता आभिलाषा करत हो, परन्तु मैं तुमसे यहो वचन पूछता हूँ, कि युधाष्ठिरकी द्रोपदीकी साहित शल्लधारों भाइयोंस धर ऊँच वनमें निवारण करनेपर भी कौन बार पुरुष राज्यमें स्थित रहकर उन्हे जात सकता है ? सम्पूर्ण यज्ञ राजकी प्राधाकारा तथा सबका वन है, उस धनको खोसो कुबेरको समापन भी जो युधाष्ठिर उनका समान तथा अधिक लोग और प्रातिष्ठाका साहित निराजमान ऊँच ये पाण्डव लोग कुबेरको राजभवनमें लाकर अपने प्रभुकी रत्नानो पाकर मन इस समय तुम्हारा मन बहुत दिग्भ्रम कृष्णकी राजकीय नीतिमें करत प्रवृत्त होना राजकीय नीतिमें जोतलाना करत है

हे राजा ! हम लोगको तो मनुष्य

ऊँच है, हम लोगान अपनी शक्तिके अनुसार दान, अध्ययन, होस और धनसे प्राज्ञाओंकी तप किया है, इससे हम लोगोंको तो एक प्रकारसे कृतज्ञत्व ही समझाना चाहिये । इस समय पाण्डवोंको सङ्ग युद्ध करके तुमको राज्य, सुख, समत, धन आदि सब वस्तुओंको त्यागकर महा धीर व्यसनेमें पड़ना होगा, महा धीर तपस्या और व्रत करनेवाली द्रोपदी देवी जिसकी वज्रकी अभिलाषा करती है, उन पाण्डवोंको तुम कैसे जात सकार्ग ? श्रीकृष्ण जिसकी मन्त्रा और सब धनुधारियोंमें अष्ट अर्जुन जिनकी भाई है, ऐसे प्रतापी पाण्डवोंको तुम किस प्रकारसे जीत सकागे ? इन्द्रियोंको जोतनवाले तपस्वी और बुद्धिमान् ब्राह्मण लोग जिस युधिष्ठिरकी सहायता कर रहे हैं, उस महा पराक्रमी सत्यवादी वीर-पुरुषको तुम किस प्रकारसे पराजित कर सकागे ? मत्वाका वपद रूपी समुद्रमें डूबनेको समयमें कात्यायन चाहनवाले सुहृद पुरुषोंका जैसा वचन कहना उचित है, उसीके अनुसार मैं फिर कहता हूँ कि युद्ध करनेकी कुछ भी आवश्यकता नहीं है । कुसकुलकी धावक निमित्त उन पुरुषोंसह पाण्डवोंको राईमें सन्ध कर । पुत्र, सेवक और सेनाके सहित निरयक मृत्युको सुखमें मत पड़ी ।

(३६ अध्याय समाप्त ।

अथ कर्ण-निवाह पर्व अर्द्धः ।

राजा दुराष्ट्र नाल, है मुख्य आश्रयावृत्त सेवक और राजपुत्रोंकी साहित धिक्कार कर्मको रथपर उठाकर नगरसे बाहर ऊँच है । उन महा तज्ज्वा मरुनाशन दृष्टानि स्तपुष्य कर्णको सह धन पातका प्रसन्न किया था और कर्णको भीतमोद दृष्टात्वा था । यद्यपि कर्ण ने मन्त्रोंसे नगरमें दृष्टाने राधाको धनसे नगरमें उन्हे है, है सब धन । मन्त्र अध्ययन

कठार थे, तुम सरे निकट विस्तारपूर्वक कहो।

मञ्जय बालि, हे भारत । श्रीकृष्णचन्द्रन यथा उचित कर्णसे कामल और कठार दोनों प्रकारकी वचनोंका प्रसङ्ग किया था। उन महा तेजस्वी कृष्णन जा अब वचन कर्णसे कहे थे, वह सब हो धर्म अर्थसे युक्त, प्रिय, सत्य, हितकारो और हृदयसे ग्रहण करन योग्य वचन थे, मैं तुम्हारे समीप विस्तारपूर्वक उन वचनोंका कहता हूँ, तुम चित्त लगाकर सुनो।

श्रीकृष्णचन्द्रने कर्णसे यह वचन कहा था, कि हे कर्ण ! तुमने बल्लभतेरे वेदके जाननवाले ब्राह्मणोंकी उपासना की है, और पाप-रहित होकर निष्ठा और अज्ञाके सहित अनक तत्वोंके अर्थका भी जान लिया है, इससे तुम सनातन वेदवादका यथार्थ रूपसे जानते हो, और सूक्ष्मसे सब धर्मशास्त्रके मर्मका भी तुम जानते हो। देखो स्त्रियोंकी अवस्थामें जा कानीन और सहाड़ु दा प्रकारके पुत्र उत्पन्न होते हैं, शास्त्रका जाननवाले पाण्डव लोग कन्याके पाणग्रहण करनेवाली पुरुषकी ही उन पुत्रोंका पिता कहते हैं, इससे कुन्ती देवीका कन्या अवस्थामें तुम्हारा जन्म हानसे धर्मशास्त्रका आज्ञाके अनुसार तुम भी धर्मपूर्वक पाण्डुराजकी पुत्र हो। इससे चला, युधिष्ठिरके पाहिले तुम ही राजा बनागे। तुम्हारे पटपक्षम पाण्डव आर माटपक्षमें द्रौपदीवश है, हे पुरुष-धर्म । इन दोनों पक्षोंका तुम सदा अपना सहायक समझो। आज हा मर सङ्ग तुम इन स्थानसे प्रस्थान करो। हे तात ! तुम युधिष्ठिरसे पाहिले ही कुन्तीके गर्भसे उत्पन्न हुए हो, वह पाण्डवोंका आज्ञावदित राजावे। पाण्डव लोग पाचौ भाई द्रौपदीके पाचा पुत्र, सुभद्रा-नन्दन अभिमन्यु और पाण्डवोंके काश्यपे निमित्त इकट्ठे हुए अश्वक और द्रौण आदि सम्पूर्ण राजा तथा राजपुत्र लोग

तुम्हारी चरणवन्दना करेंगे। पाण्डवोंके प्यारो स्त्री द्रुपदनान्दना द्रौपदी भी समयके कठवे भागमें तुम्हारे समीप उपस्थित होगी। तुम्हारे राज्याभिषेकके निमित्त राजा और राजकन्या लोग सुवर्ण, चादी आदिके कलशमें गन्ध औषधी, सब धान्य, सम्पूर्ण रत्न और लता आदि समस्त सामग्रियोंके लाकर उपास्यन करेंगे, पवित्र अतःकरणवाले ब्राह्मणगुरु धीम्य मुनि अग्निहोत्रका कार्य पूर्ण करेंगे और पाण्डवोंके वैदिक कर्मका अनुष्ठान करनेवाले चारों वेदोंके जाननवाले ब्राह्मण लोग आज ही तुमको पृथ्वीके राज्यके ऊपर अभिषेक करके सिंहासनपर बैठावेँ, पुत्रपञ्चेष्ट पाचौ भाई पाण्डव लोग, मैं, तथा द्रौपदीके पाचौ पुत्र, पाञ्चाल, और चैदेवंशोय क्षत्रिय लोग तथा सब काई मिलकर इस सम्पूर्ण पृथ्वीके राजपर तुम्हारे आधिपत्यका प्रचार करेंगे। सत्यवादी धर्मात्मा धर्मपुत्र युधिष्ठिर तुम्हारे युवराज बनेंगे। वह स्वतन्त्र धारण करके तुम्हारे पार्श्वे रथपर चढ़के चलेंगे। राजा ! राज्यपर तुम्हारा अभिषेक हानसे महा बल-वान् कुन्तीपुत्र भीमसन तुम्हारे शिरके ऊपर स्वतन्त्र धारण करके खड़े होंगे। अर्जुन किष्किणिके शब्दास पूरत वाक्को चमड़स पहरा हुआ स्वतन्त्र की घाड़ोंसे युक्त तुम्हारे उत्तम रथका चलावेगा। उनका पुत्र अभिमन्यु सदा तुम्हारी सेवान उपास्यत रहेगा, नकुल सहदेव, द्रौपदीके पाचा पुत्र, शिशुपाल और पाञ्चाल देशोय दूसरे सम्बन्धी लोग भी तुम्हारे अनुगामी बनेंगे। अश्वक, द्रौण, दाशह, पार दशाण वशाय राजा आर हम लोग सम्बन्धन अनुसार तुम्हारे अनुयायी बनेंगे। हम सब वाह्य। इससे तुम हम आर अनक मर्त्य कर्मोंसे युक्त होकर सहादर पाण्डवोंकी जानने परम सुखसे राज्य भाग करोगे। द्रुपद, कुन्तल, अश्व, तालचर, चुचुप और रैगुप देशोय

राजा लोग तुम्हारे अनुयायी होवेंगे और स्त, सागध, वन्दो लोग अनेक प्रकारसे तुम्हारी स्तुति करते रहेंगे। पाण्डव लोग “वसुधैव कुटुम्बकम्” ऐसा कहकर नव और तुम्हारी विजयकी घोषणा करेंगे। हे कौन्तेय! नक्षत्रोंके बीचमें विराजमान बृहस्पतिकी भाति तुम शाइयोंके साथ मिलकर राज्य शासनमें प्रवृत्त होकर ज्ञानीका आनन्द भी बढाओगे तुम्हारे इष्ट भित प्रभु और शत्रु लोग दूषित होवेंगे, भाता रूपसे प्राज ही पाण्डवोंके सब तुम्हारा मित्र होजावेगा।

११० अष्टमः सर्गः ।

कर्ण ने ही हे वृष्णिनन्दन कृष्ण। तुम जो मित्रता, प्रीति, हितैषितास युक्त मेरे निमित्त इन सब वचनोंकी कहते हो, उसमें कष्ट भी सम्बन्ध नहीं है, मैं लग सब वचनोंकी स्वीकार करता हूँ। हे कृष्ण! तुम जैसा विचार करते हो, वह सब सत्य है धर्मशास्त्रके अनुसार धर्मपूर्वक मैं पाण्डुराजका ही पुत्र हूँ। मातर्न कन्या प्रवस्थामें सूर्यदेवके अंशसे मुझे गर्भसे धारण किया था, और उत्पन्न होते ही सूर्यदेवके वचनके अनुसार मुझे डीढ़ दिया था, उस समयमें सप्तजातीय अधिरथ नामक पुरुष मुझे देखते हो प्रीतिके लीला अपने घनमें जाकर अपना प्यारी स्त्री राधाकी हारमें समर्पण दिया था। हे शत्रु-नाशन कर्ण! इससे इन प्रकारसे उत्पन्न होनेसे धर्मशास्त्रके अनुसार मैं पाण्डुराजकीका पुत्र ही हो जाता हूँ, परन्तु कर्णदेवीने मेरी माता को जल में डाल करके अपने हाथसे मार दिया। हे कृष्ण! जब मुझे पाण्डवों के लिये अपनी ही राधाकी हारमें समर्पण दिया था, तब पुत्रके लिये युक्त होकर माता के ही स्तनमें पड़ी धारा रक्त, हुई मेरी माता के स्तन में मेरा मन-सब

साफ किया था। इससे धर्मको जाननेवाला और सदा धर्मशास्त्रकी सुनकर मेरे समान पुरुष किस प्रकारसे उनके पिण्डकी लोप करनेमें समर्थ हो सकता है। विशेष करके राधाकी भाति अधिरथ भी प्रीति पूर्वक मुझे अपना पुत्र ही समझते हैं, और मैं सदासे उनकोपिता ही समझता हूँ। पञ्चवर्षमें होकर उन्होंने शास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार शास्त्रोंसे मेरा जातिकर्म आदि सब संस्कार कराके “वसुधैव” नाम रक्खा, और युवा अवस्थाके प्राप्त होनेपर अपनी स्वजातीय कन्याके सब मेरा त्याग किया। हे मधुसूदन जनार्दन! उनके गर्भसे मेरे पत और पौत्र आदि उत्पन्न हुए हैं और उन ही लोगोंके संग मेरा हृदय तथा वासनावस्थान लगा हुआ है। इसमें इज्जतसा सुवर्णका तेर और सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डलके मिलने तथा अत्यन्त वर्ष और भयको पानेपर भी मैं उस प्रीतिके वन्धनोंको कभी नहीं तोड़ सकता हूँ। हे कृष्ण! राजा धृतराष्ट्रके कालमें मैं दुर्योधनके आश्रममें रहकर तेरह वर्षसे निष्कण्ठ राज्योंको भोग कर रहा हूँ, इतने दिनोंमें मैंने वृद्धतसे यज्ञ आदिक गुप्त कर्मोंका भी अनुष्ठान किया है। परन्तु स्तजातिमें पृथक् कभी कोई कर्म नहीं किया है। मेरा विवाह आदि सब माय्य सप्तजातियों हुआ है, हे कृष्ण! मेरा ही आसरा करके राजा दुर्योधन पाण्डवोंके संग विरोध करके युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए हैं। उसी कारणसे तेरह-युद्धमें सबसे अग्रणी और धैर्यसे युद्ध करनेके निमित्त मुझकी ही निश्चित किया है। हे जनार्दन कर्ण! इनसे अब इस समयमें ब्रह्म, वन्दन भय आदि कर्ममें विचलित होकर उस दुर्योधन धृतराष्ट्र-पुत्रके न, समझा किसी प्रकारसे भी मित्रा व्यवहार करनेका उपाय नहीं है। यदि इस समयमें मैंने दुर्योधन के साथ प्रवृत्त हो जाऊँ तो

तथा अर्जुन दोनोंही की वज्रत अकीर्ति होवेगी । हे मधुसूदन कृष्ण ! तुम निःसन्देह यह सब वचन हमारे हितके निमित्त कहते हो, और तुम्हारे वशमें चलनेवाले पाण्डव लोग भी तुम्हारे ऊँचे हुए नव कार्योंको पूर्ण करेंगे, उससे भी सुभाको कुछ गन्देह नहीं है । हे शत्रुनाशन ! इस समय तुम पाण्डवोंके निकट हम लोगोंका यह विचार गुप्त रखना, यहो सुभी सब प्रकारसे उत्तम बोध जाता है । हे शत्रुनाशन ! यदि इन्द्रियोंकी जीतनेवाला धर्मात्मा युधिष्ठिर सुभी कन्तीके गर्भमें उत्पन्न हुआ प्रथम तब जायगा तो वह स्वयं राज्य न ग्रहण करके सुभाको ही समर्पण करेगा, और मैं भी उस प्रसिद्ध विशाल राज्यको ग्रहण करके अपनी पहिली प्रतिज्ञाके अनुसार दुर्योधनको हरा दूँगा । हे मधुसूदन कृष्ण ! इससे वह धर्मात्मा युधिष्ठिर ही सदाके लिये राजा बना रहे । तुम जिसके मन्त्री हो और महारथ भीम तथा अर्जुन जिसके मुख्य वीर योद्धा है, और नकुल सहदेव तथा द्रौपदीके पुत्र जिनके पृष्ठरक्षक है, उसके निमित्त इस सम्पूर्ण पृथ्वीके राज्यको वज्रत दिनतक शोक करनेहोमें औन-कठिनाई है ? हे कृष्ण ! युधिष्ठिरके जिस प्रकारसे क्षत्रियोंकी बड़ी सेना इकट्ठी की है, उसमें हमलोगोंसे सहायता देनेका कुछ भी प्रयोजन नहीं है । देखो, पाण्डवोंका घृष्टदन्त, शिखण्डी, उत्तमौजा और युधामन्यु सहारथ सात्विको, सत्वधर्मा सौमिक, चेत्य, चैकितान, वीरवज्रद्वी कोटिकी सति पाच भाई बालवर्षके कीर्त्य लोग, भीमसेनका आमा महात्मा कुन्तिभाज, महाबल स्थेनजित्, विराटपुत्र शङ्ख और समुद्रको भाति नव कार्यों का पूर्ण करनेवाले तुम तथा और भी वज्रतसे मुख्य मुख्य राजा लोग इकट्ठे हुए हैं । हे कृष्ण ! दुर्योधन सब पृथ्वीके राज्यको पाकर लोकमें विख्यात हुए हैं, यह ठीक है, परन्तु इस समय

उनकी बड़े भारी शस्त्ररूपी यज्ञका अनुष्ठान करना पड़ेगा । तुम उस यज्ञके करानेवाले नायक होगे और तुमकी ही यजुर्वेदी ऋषिकका कार्य करना होगा । गाण्डीव धनुषधरो कपिध्वजासे युक्त अर्जुन हाताका कार्य करेगा । गाण्डीव धनुष शूरा और शत्रुपक्षके लोगोंका पराक्रम ही उसमें घनरूपी होगा । हे कृष्ण ! शस्त्रोंके चलानेके समयमें पराक्रमी अर्जुन पाशुपत, ब्रह्मास्त्र, ऐन्द्र और स्यूणाकर्ण आदि जो सब मन्त्र शस्त्र चलावेगे, वह सब यज्ञीय मन्त्रोंके समान होंगे । पराक्रममें पिताके समान अथवा उससे भी अधिक बलवान् सुभद्रा पुत्र अभिमन्यु गीत-स्तोत्र अथात् उद्गाता बनेंगे, रणभूमिमें महा घोर शब्द करनेवाले हाथियोंकी सेनाके निमित्त कालस्वरूप महाबली पराक्रमी पुरुषसिंह भीमसेन सासवेदी मन्त्रोंको जाननेवाले होताका कार्य करेंगे । जप होमसे युक्त स्वयं राजा युधिष्ठिर होमके कार्योंका समाप्त करेंगे । शङ्ख, भेरी, मृदङ्ग, नगाड़के बाजे और वीरोंके सिंहनाद बाज्जनोंके वचन अथात् कालके भोजनके निमित्त आवाहन मन्त्रस्वरूप होंगे । यशस्वी बलवान् माद्रीनन्दन नकुल और सहदेव इस यज्ञके निमित्त क्षत्रिय रूपी पशुओंको मारेंगे । हे जनार्दन कृष्ण ! विचित्र वर्णके दण्ड सब उत्तम रथोंका समूह यज्ञके यूपरूप होंगे । कर्ण, नाखिक, नाराच आदि शस्त्र वत्सदत्त आर सोम आहुति साधनके निमित्त चर्म आदिके स्थापनमें गिन जावेंगे । हे कृष्ण ! उस यज्ञमें तुम्हारे समीप भीमकलश शरासन आदि खड्ग अभिपन्न मस्तक आदि पुरांडाल, शक्ति गन्धिको उद्घोष करनेवाली सायधा, गदा-परिघ आहुतिको रक्षाके निमित्त दोनों किनारेकी तकड़ी और रुधिर होमका कार्य करेंगे । द्रोणाचार्य तथा शरद्वतपुत्र कृपाचार्यके शिष्य लोग इस यज्ञके कार्यको पूर्ण करेंगे, गाण्डीवधारी अर्जुन और

द्रोणाचार्य आदि महारथ वीर जिन अस्त्र-
शस्त्रोंकी झड़िगे, वह सब परिस्तोम, और
सात्यकी प्रतिज्ञाके सहित पूर्ण रीतिसे मन्त्र
सम्प्राण कर्म्मको करेगा । हे महाबाहो ! इस
प्रकारसे यज्ञके कर्म्म का विस्तार करनेपर भीम-
सेनका पुत्र घटोत्कच उसमें क्षत्रियरूपी पशु-
ओंको मारेगा । हे कृष्ण ! प्रतापी धृष्टद्युम्न जो
द्रुपदकी सभासे यज्ञके कर्म्म आरम्भ करनेपर
अग्निसे उत्पन्न हुआ है, वही इस यज्ञमें
दक्षिणा स्वरूप होगा । हे कृष्ण ! दुर्योधनकी
प्रोतिके निमित्त मेरे पाण्डवोंका जो कुत्त कटार
रचन कहा था, उस नीच कर्म्मके निमित्त इस
तथ्यमें शक्ति हो रहा है । जब तुम सुभको
प्रज्जुनके वाणोंसे मरा हुआ देखोगे, तब मेरे
कहे हुए उस शस्त्रयज्ञका फिर आरम्भ किया
जायगा । भीमसेन जब महाघोर शब्द करके
दुःशासनके रुधिरकी पीविगा, तब ही सामरसका
गान सप्तमा जायगा । हे कृष्ण ! जब पांडुाल-
पुत्र धृष्टद्युम्न और शिखण्डी द्रोणाचार्य और
भीष्मका मारेगे, तब ही इस यज्ञको समाप्ति
अर्थात् कुत्त कालके निमित्त ठहराव होगा और
महाबली भीमसेन जब धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनको
मारेगा तभी यज्ञ शेष होजावेगा । हे कृष्ण !
धृतराष्ट्रको पुत्रवधू जब खासो और उससे ज्ञान
होकर गान्धारीके सहित रोदन करेगा, तब
ही क्षत्रिय, गिर्व आर सियारोंसे युक्त इस शस्त्र
यज्ञकी समाप्ति होवेगा । हे शत्रुनाशन कृष्ण !
जब पाल्कम प्रार्थना यहो है, कि विश्वामित्र
अवस्थामें बूढ़े हुए क्षत्रिय लोग जिनमें तुम्हारे
निमित्त व्यर्थ सन्धुकों ने स्वीकार करे, तब
लोगोंमें पवित्र पुण्यभूमि इस कुरुक्षेत्रमें इकट्ठे
होकर पराक्रमा क्षत्रिय लोग जिसमें सर्वत्र
मरतार स्वर्ग लोकों जावे, हे पुरुषरोसाह !
इस उपक्रममें तुम्हारी जेनी इच्छा होवे, वना हो
धरा, यह सब बातों और जिसमें स्वर्ग लोकमें
रमन करे म इसरोसा (विवान) जावे ।

जनाईन कृष्ण ! इस पृथ्वीपर जबतक पर्वत
और नदी विद्यमान हैं, तबतक यह कीर्ति
सदा प्रकाशित रहेंगे । ब्राह्मण लोग महा-
भारत युद्धकी कथा सदा कहते रहेंगे । हे
कृष्ण ! युद्धमें यश अर्थात् जय अथवा शक्तिके
अनुसार पराक्रमकी प्रकाश करके जो नृत्य
होती है वही क्षत्रियोंका धन है । हे पर-
न्तप कृष्ण ! हमारे इस विचारको सदा गोपन
रखके तुम प्रज्जुनकी युद्धके निमित्त मेरे सम्भ-
रने उपस्थित करना ।

१४१ अध्याय समाप्त ।

सञ्जय बोले, शत्रुओंकी नाश करनेवाली
भगवान् कृष्ण कर्णकी यह बात सुनकर हंसते
हुए उनसे फिर कहने लगे, हे कर्ण ! राज्य
प्राप्त करनेका उपाय क्या तुम्हें उत्तम नहीं
जचता है ? मैं तुम्हें समस्त पृथ्वीके राज्यों
देनमें सहमत हूँ, तभी उसकी शासन करनेके
निमित्त तुम इच्छा नहीं करते हो, इससे
सुभको नियम बांध जाता है, कि पाण्डवोंकी
अवश्य ही भावी-विजय होवेगा । अज्जुनके
कपिध्वजासे युक्त रथपर प्रचण्ड जय शब्द सुनाई
देगा, यह सुने प्रत्यक्ष ही दोख पड़ता है ।
विश्वकर्माने उस कपिध्वजाको दिव्य मायासे
ऐसा विस्तार किया है, कि बोध होता है, इन्द्र
धनुषके समान प्रकाशित और अनन्त प्रताका-
ओंमें युक्त है, और विजय चाहनेवाले भक्त प्रीत
राज्य आदि भी उनपर दोख पड़ते हैं । हे
कर्ण ! प्रज्जुनके ऊपर एक याजन और सम्भ्रम
एक याजनके घेरने में यह ध्वजा जलती हुई
अग्निके समान ऐसी जलाई गई है कि उसकी
गान्धर्व पर्वत वन आदिमें भी नहीं रुक
सकती । सम्भ्रममें हुए मारदोने मारित
जब जब मरतार स्वर्ग लोकों जावे, तब
जब जब मरतार स्वर्ग लोकों जावे, तब
जब जब मरतार स्वर्ग लोकों जावे, तब
जब जब मरतार स्वर्ग लोकों जावे, तब

सुनोगे, उस समय मूर्तिमान् कालिदेवकी उत्पत्ति होगी। सत्ययुग, त्रेता और द्वापरका उस समयमें चिन्ह भी न दीख पड़ेगा। जब देखोगे, जब होमसे युक्त धर्मशास्त्रा राजा युधिष्ठिर खुद ही रणभूमिसे आकर अपनी मन्त्रासेनाकी रक्षा कर रहे हैं और सूर्यके समान प्रज्वलित होकर शत्रु सेनाको पीड़ित कर रहे हैं, उस समयमें सत्ययुग, त्रेता और द्वापरका कोई लक्षण न दीख पड़ेगा। जब देखोगे, कि मन्त्राली भीमसेन — शत्रुओंको नाश करनेवाली महाबाहु भीमसेन दुःशासनके रुधिरका पीकर रणभूमिसे नृत्य कर रहे हैं, उस समय सत्ययुग, त्रेता और द्वापरका कर्म नहीं रहेगा। जब तुम देखोगे, भोष्म, द्रोण, कृपाचार्य, महा-राज सुयोधन, सिन्धुनन्दन जयद्रथ आदि सहा-य्य योद्धाओंके रणभूमिसे आनपर धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन शीघ्र ही उन लोगोंको अपने बाणोंसे पीछे हटाते हैं, उस समय सत्ययुग त्रेता और द्वापरका कुछ भी कर्म न दीख पड़ेगा। जब देखोगे, शत्रुओंको नाश करने-वाले पराक्रमी नकुल और सहदेव रणभूमिमें अपने मन्त्राधीन शस्त्रोंकी चलाकर मतवारे हाथोंके समान धृतराष्ट्रपत्नीकी सेनाको विकल कर रहे हैं, उस समयमें सत्ययुग, त्रेता और द्वापरका कोई भी कर्म न दीख पड़ेगा।

हे कर्ण ! तुम यहाँसे जाकर भोष्म, द्रोण और कृपाचार्यसे यह वचन कहना कि वर्तमान महीना सब प्रकारसे उत्तम है, इस महीनेमें भक्ष्य-भोज्य और काष्ठ वृद्धत मिलेंगे वनमें सब औषधी और फलोंकी वृद्धत हो उत्पत्ति होती है, मन्त्रालीका उपद्रव वृद्धत थोड़ा रहता है, मार्गमें कीचड़ नाम मातृको भी नहीं है, जल उत्तम रससे युक्त है, वायु थोड़ा उष्ण और ठण्डा है; इससे यह महीना सदा ही सुखका देनेवाला है। आजसे सप्त दिनोंके बाद अमा-वस्या होगी, पण्डित लोग इन्द्रको इस तिथि-

का देवता वर्णन करते हैं, इससे उसी दिन यह आरम्भ करो। इसकी अतिरिक्त जो सब रात लोग युद्धके निमित्त उपस्थित हैं, उनसे भी कहना, कि तुम लोगोंकी जो अभिलाषा है, मैं उसको सब प्रकारसे पूर्ण करूँगा, दुर्योधनके वशमे रहनेवाले सब राजा और राजपुत्र शस्त्रे-भर कर उत्तम गतिकी पावेंगे।

१४२ अध्याय समाप्त ।

सञ्जय ॥ हे श्रीकृष्ण! यह कहिते वचन सुन कर्ण उनकी यथा उचित पूजा करके यह वचन बोले, हे महाबाहो ! तुम जान वध कर क्यों सुभको मोहित करनेकी इच्छा करते हो ? पृथ्वी मण्डलका जो यह पूर्णरूपसे विनाश होनेका समय उपस्थित हो रहा है, उसका कारण केवल शक्ति है, दुःशासन और राजा दुर्योधन है। हे कृष्ण ! कौरव पाण्डवोंसे तो महा संग्राम उपस्थित होगा, इसमें सब भी मन्देह नहीं है। पृथ्वी अवश्य इस युद्धमें रुधिरके कीचड़से भर जावेगी, दुर्योधनके अनुयायी सब राजा और राजपुत्र लोग अवश्य ही युद्धक्षेत्रमें भरकर यमपुरीमें पहुँचेंगे। हे कृष्ण ! रोवेंकी खुले करकेवाले अनेक प्रकारके बुरे स्वप्न, भयङ्कर अशक्त और सब प्रकारके दारुण उत्पात सदा ही दोख पड़ते हैं, उसमें युधिष्ठिरका विजय और दुर्योधनका पराजय स्पष्ट रूपसे सूचित होता है। हे कृष्ण ! देखो, तीक्ष्ण यह तेजस्वी शनैश्वर प्राणियोंकी अधिक पीड़ा देनेके निमित्त प्रजापतिदेव गोजिनी नक्षत्रकी पीड़ित कर रहा है। मन्त्राली चालमें जेष्ठानक्षत्र पर आकर मितवृत्तके संहार करनेके निमित्त मितदेव नक्षत्र अब राधासे सङ्ग करनेकी अभिलाषा करता है। हे कृष्ण ! राजग्रह चित्राकी विशेष रूपसे पीड़ित कर रहा है। इससे निजय कौरवोंकी महाभय उपस्थित होगा। चन्द्रमाके भीतर

जी लाया रहती है, वह अपने स्थानसे पृथक्
मालूम होरही है। राजसर्वदा स्त्र्यंके
समापमें हुआ चाहता है। आकाशमें उल्का-
पात होरहा है। हाथी आदि समस्त वाहन
वृक्षशृङ्गा करतें हैं घोड़े अन्न और पानीको
इच्छाको त्याग करके अकारण हो रादन कर
रहे हैं। हे कृष्ण ! इन सब विषयोंको जानने-
वाले पण्डितोंने कहा है, कि इन सब वृक्ष-
शृङ्गाकी उत्पन्न हानिपर अनेक प्राणियोंका सहार
करनवाला महाघात भय उत्पन्न होता है।
हे महाबाहो कृष्ण ! दुर्योधनको सेनामें हाथी,
घोड़े, मनुष्य आदि सबके घोड़े भाजन कर
पर भी अधिकें सल दोख पड़ता है। बुद्धि-
मान् पण्डितोंने इसका केवल पराजय तथा
नाशहोका लक्षण निश्चित किया है। हे
कृष्ण ! इधर पाण्डवाके सब वाहन हृष्टपुष्ट
और हरिण आदि शुभ शृङ्गकी जाननवाले पशु
उनकी दहिनी पारसे गमन करतें हैं, यह
केवल उन लोगोंके विजयका ही लक्षण
दीख पड़ता है। परन्तु दुर्योधनको बाया
पारसे हारण आदि पशु चलत हैं, और
अमानुषी वाणी सदा सुन पड़ती है, यह सब
पराजयके ही लक्षण हैं। उत्तम पक्षी,
मार, हंस, सारस, चातक आर चकार आदि
पाण्डवाके अनुगामा हात हैं, परन्तु
तार्योंके पीछे गिद्ध, कौश, सियार राक्षस
आदि मांसखाका झुण्ड चलता है। दुर्योधन-
की सेनामें भरी आदि राजाका भी शब्द नहीं
आता है, परन्तु पाण्डवाके युद्धके बाज बिना
जाय ही बजत लगत है। हे माधव ! दुर्यो-
धनके स्नान करनवाले स्थानमें कूर, बावली
आदिसे ह्वयमके समान शब्द बाहर हातें हैं,
इता लोग सास आर रुदिरकी वषा करत
, मल्लान् सुन्दर तजसे आर पारष आदि
स्नान युक्त आकाशमें गन्धन लोग दाख
हुत ऐश्वर्यपर लक्ष्यकर प्रचरत पारष सुन्दर

आच्छादित करता है। प्रथम और अन्त दानो
सन्ध्याके समयमें जहाभय उत्पन्न होता है,
एक पक्ष, एक ची नेत्र, और एकही चरणवाले
वज्रतसे विकट रूपकी पक्षी दीख पड़ते हैं, और
महाघात शब्द करतें हैं। सियार रात दिन
अशुभ शब्दसे चिन्ताते हैं काली गर्दन और
लाल चरणवाले भयानक पक्षी सन्ध्याके समय
इधर उधर घूमते हुए दाख पड़ते हैं। सेनाके
पुरुष पीछले ब्राह्मणोंको पीछे गुरु और भक्तिसे
युक्त सेवकोंसे भी द्वेष करत हैं। हे मधुसूदन
कृष्ण ! यह सब ही पराजयके लक्षण हैं।
दुर्योधनको सेनाका स्थान पूर्व दिशामें रक्तवर्ण
दीखता है, शस्त्रोंके रूपके समान दक्षिण
दिशाका वर्ण हा गया है और पश्चिम दिशाका
रूप बिना पके हुए मट्टीके पात्रके समान है।
सब दिशाएं प्रज्वलित होकर दुर्योधनको बड़े
भारी भयना ओष करातो हैं। हे कृष्ण ! मैं
स्वप्नमें देखा है, कि राजा युधिष्ठिर सहस्र
खन्धसे युक्त एक जने मन्दिरके ऊपर चढ़ रहे
हैं, वह सब लोग अत्यन्त उत्तम वस्त्रोंका
धारण करके स्वतंत्रता के कृतसे युक्त हैं। उन
लोगोंके प्रासन भा खडत हो वर्ण के दाख पड़।
हे जनार्दन कृष्ण ! उस समय मैं यह भी
देखा था कि माना राक्षसोंसे सरी हुई पृथ्वीका
तुम अपने शस्त्रोंसे व्याकुल कर रहे हैं और
महातजस्वी राजा युधिष्ठिर दक्षिण के ऊपर
बठकर घृत पार धूधना पान कर रहे हैं,
और यह भी देखा कि युधिष्ठिर सब पृथ्वीका
ग्रस कर रहे हैं, इससे अथर्व हो नाश होता
है, कि वह पुन्हा दिव्य हुए इस सङ्गण पृथ्वी-
मण्डलके राक्षसोंका भाग्य युधिष्ठिरको भाग्य
पुनर्जात होसकेन भी जने पदतः शस्त्र
पर चढ़ कर दादमें गदा लेकर पृथ्वीका घट्ट कर
नका इच्छा करत हैं, इससे सुन हो नाश
जाता है कि यह सब उपायनत सब मने इस
मन्त्रोंकी नाश करमा । हे कृष्ण ! राज

स्थानपर धर्म रहता है, वज्रा पर ही जठ होती है, इसे मैं खूब जानता हूँ। हे कृष्ण ! गाण्डीव धनुषको ग्रहण करनेवाले अर्जुन तुम्हारे सहित पाण्डुरवर्ण हाथीके ऊपर चढ़के परम शोभासे शोभित हुए थे। हे कृष्ण ! इन सब बातोंके सम्झना भली भाँति विचार करके देखनेसे यही बोध होता है, कि तुम लोग सब कोई मिलकर रणभूमिमें दुर्योधनका नाश करदोगे, उसमें मुझको क्या कुछ भी सन्देह हो सकता है ? हे कृष्ण ! फिर भी मैंने यह देखा, नकुल सहदेव और सात्यको यह तीन पुरुषसिंह महारथ वीर सफेद रङ्गके कवच माला और वस्त्रोंसे भूषित होकर उत्तम मनुष्योंकी सवारीमें विरजमान हैं, उनके सिरके ऊपर पाण्डुरवर्ण कवच शोभित हैं। हे महाबाही कृष्ण ! दुर्योधनको सेनामें भी अखत्यामा, कृपाचाथे, यदु-वशायश्चेष्ट कृतवर्मा, इन तीनों पुरुषोंका प्रवेत वस्त्र धारण किये हुए मैंने देखा था। इसके आतिरिक्त और सब राजा लगाकर लालरङ्गके वस्त्रोंसे सर बधे हुए दीख पड़े। हे शत्रु, नाशन कृष्ण ! महारथ भोष्म और द्रोणाचाथे मुझे और दुर्योधनका सङ्ग लेकर जटसे जुते हुए विमानम बैठकर दक्षिण दिशाकी ओर चले। इससे यह निश्चय बोध होरहा है, कि हम लोग शीघ्र ही यमपुरीमें पहुँचकर आताय रूपसे ग्रहण किये जावेंगे। हे जनार्दन कृष्ण ! हम लोग सब राजाओंके सहित गाण्डीव-धनुषके प्रतापरूपी अग्निमें भरसक जावेंगे, इसमें मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है।

श्रीकृष्णचक्रवर्ति, हे कृष्ण ! जब मेरी बात तुम्हारे हृदयमें नहीं उत्तम बाध होती है, तब इस सम्पूर्ण पृथ्वीकी प्रजाओंका निश्चय ही नाशका समय उपास्थित हुआ है। हे आता ! जब सबके नाश होनेका समय उपस्थित होता है, तब उत्तम नातिके समान बोध होनवाला यशार्थसे दुष्ट भाति कभी भी हृदयसे नहीं दूर होती है।

कर्ण बोले, हे कृष्ण ! यदि मैं इस वीरवृक्ष नाश करनेवाले महायुद्धसे पार होकर जो रहूँगा, तब तुमसे फिर भेट कर सकूँगा, न तो स्वर्ग लोकमें अवश्य ही फिर हम लोगोंके मिलान होगा। हे पाप रहित ! इससे उस ही स्थानपर तुम्हारे सङ्ग मेरा मिलन सम्भव होता है।

सञ्जय बोले, राधापुत्र कर्ण कृष्णसे ये वचन कहकर उन्ह अच्छी प्रकारके आलिङ्गन करके वहाँसे विदा हो कृष्णके रथसे उत्तम सुवर्ण भूषित अपने रथपर चढ़के दीनतायुचित्तसे हम लोगोंकी सङ्ग हस्तिनापुरकी ली अन्तर सात्यको के सहित कृष्णने सारथीसे कहा, और शीघ्र ही वहाँसे पलायन किया।

१४३ अध्याय समाप्त ।

श्रीकृष्णायन मुनि बोले,—श्रीकृष्णानकण निरर्थक इन विचारोंकी करके कारवोंको मत लोसे निकलकर पाण्डवोंके समीप गमन किया। विदुर कुन्तीदेवीके समीप जाकर धीमे स्वरसे शाक प्रकाश करते हुए कहते लगे, हे यशस्विनी ! युद्ध न होना ही मुझे उत्तम जंचता है, वह तुमको भला भाँतिसे विदित है, परन्तु मेरे सहस्रों वार कहनेपर भी दुर्योधन किसी प्रकारसे मेरा वचन ग्रहण नहीं करता। राजा युधिष्ठिर चिदो, पाण्डाल, द्रुपद, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, कृष्ण और सात्यको आदि वीरोंकी सहायतासे अत्यन्त दलवार होकर भी अपने राज्यका काँटका विराटनगरमें निवास कर रहे हैं, तीनों जाति की शुभ कामना विचारकर निर्मल पुरुषोंकी भाँति केवल धर्महीकी अभिलाषा करते परन्तु यह अन्धराज धृतराष्ट्र बूढ़े होकर किसी प्रकारसे शान्त नहीं होते हैं, यह पृथ्वीकी मर्त्यमत्त हाकर केवल अधर्मोंकी भाँति

से चल रहे हैं। इसमें शकुनि, जयद्रथ, कर्ण, दुःशासनकी दुष्टवृत्तिसे दुस्कुलका नाश होगा, यथार्थ धर्म-निष्ठ पुरुषके रुद्ध जिह्मोंन ऐसा अधर्मका काये किया है उन लोगोंका वही अधर्म अवश्य ही उनकी नाश करनेका कारण होगा। अर्थात् 'कीरवीन बलपूर्वक धर्मका कर्म केदन किया है, उनसे कौन पुरुषके हृदयमें दुःख नहीं उत्पन्न होगा? हे देव! कृपा जब सान्ध स्थापन नहीं कर सके, तब पाण्डवोंके समीप चले गये, अब पाण्डवोंलाग युद्धका अवश्य ही उद्योग करेंगे, और कीरवीका अवश्य ही नाश होगा, इन्हीं सब बातोंका विचार करके सुभी रातको नींद नहीं आती है।

परम हितैषी विदुरके यह वचन सुनकर कुन्ती अत्यन्त ही दुःखित होकर लम्बो सास लेती हुई अपने मनमें यह चिन्ता करने लगी, कि 'हाय! धन क्या ही अनर्थका मूल है, कि इसीके निमित्त यह महा अथङ्कर जातक लोगका वध उपाख्यत हुआ है। इससे इस अर्थका विचार है। इस युद्धसे सुहृद पुरुषोंका वध होगा। पाण्डवोंलाग चौद, पाण्डवों और युद्धाशयाकी सत्र मलकर कीरवीस युद्ध करेगा, इससे अधिक दुःखका आर कानसा विषय होगा? संग्राममें सुभी अवश्य ही दाप दाख पड़ता है, और युद्ध न करनेसे अपने पक्षका पराभव होखती है, तथाकथनहीन पुरुषोंकी मरगा ही उत्तम है। और अनागन्त जातके लोगोंका वध करना भी उत्तम नहीं है। यहाँ भव विचारकर मरा अन्तःकरण अत्यन्त दुःखसे पीड़ित हो रहा है। याज्ञिकोंमें मुख्य शान्तदुष्ट पुत्र पितामह भीष्म, द्रौणवाक्य और कर्ण के लोग दुष्टोघनके रक्षक हैं, उनसे सुभी बहाने भय लगता है। परन्तु सुभी अधिक होता है। धर्म शब्दके लिये साक्षात् दमन अपनाई है, और शकुनि, जयद्रथ, कर्ण, दुःशासनकी दुष्टवृत्तिसे दुस्कुलका नाश होगा, यथार्थ धर्म-निष्ठ पुरुषके रुद्ध जिह्मोंन ऐसा अधर्मका काये किया है उन लोगोंका वही अधर्म अवश्य ही उनकी नाश करनेका कारण होगा। अर्थात् 'कीरवीन बलपूर्वक धर्मका कर्म केदन किया है, उनसे कौन पुरुषके हृदयमें दुःख नहीं उत्पन्न होगा? हे देव! कृपा जब सान्ध स्थापन नहीं कर सके, तब पाण्डवोंके समीप चले गये, अब पाण्डवोंलाग युद्धका अवश्य ही उद्योग करेंगे, और कीरवीका अवश्य ही नाश होगा, इन्हीं सब बातोंका विचार करके सुभी रातको नींद नहीं आती है।

मिथ्या सोहमें पड़ा हुआ एक मात्र कर्ण ही सब अनिष्ट कर्मोंका मूल है। यह दुष्टात्मा नीचदुष्ट दुष्टोघनके सोहमें पड़कर सदा ही पाण्डवोंके नष्ट होप किया करता है, जिससे उन लोगोंकी दुःख मल्ले, उसके निमित्त यह सदा दुष्टदुष्टिका प्रयाग किया करता है, विशेषतः वह स्वयं महाबल है। उसके दुष्ट चारित्र्य ही मेरे अन्तःकरणकी भस्म कर रहे हैं। इससे आज मैं उसके समीप जाकर सम्पूर्ण गूढ़ विषयोंका वर्णन करके जिससे पाण्डवोंके ऊपर उसका चित्त प्रसन्न होवे, उसकी चेष्टा करूँगी। जिस प्रकारसे उसका जन्म हुआ है, उस वृत्तान्तकी मैं विवेकपूर्वकसे वर्णन करूँगी। जब मैं पिता ज्ञान्तभाज राजाके भवनमें वास करती थी तब भगवान् दुर्वासो मुनिने मेरी सेवासे प्रसन्न होकर मुझे एक सन्त वृत्तक यह वर दिया था कि "तुम एकको इच्छासे जिस देवताका आवाहन कराओ, वही तुम्हारे समीप लला आवेगा" उस प्रकारका वाच्य वर पाकर मैं स्तोत्रभाव, चञ्चलता तथा माल स्वभावके कारणसे अनेक प्रकारकी चिन्ता करने लगा सन्तका वृत्त प्रारम्भ ब्राह्मणक वचनकी परीक्षा करनेके निमित्त सुभी अत्यन्त ही अभिलाषा उत्पन्न हुई। परन्तु उस समय विष्णु-पात्र दास्यसे राक्षस और साधवोंसे युक्त था। विशेषकर किस प्रकारसे सुभी दाप न होवे, तथा पिताका भी कोई कलह न लगे, किस प्रकारसे मेरा सुकृत नष्ट न होगा, और किस भावने अधराधनी न हो सकगा, इन प्रकारका चिन्तासे याकुल होकर इकधरगा उस समयसे पात्र हटन लगी। अन्तमें अत्यन्त ही याकुलकी अभिलाषासे मन दुर्ज्वाला क्लेशक प्रवास करके कल्याणस्थान में सन्तक उद्धारण करके सुहृदोंका पात्रान्त लगी। इससे तो दुष्ट उन्माद उत्पन्न हो सकगा, होकर युद्ध में भाग लेगा, इस

था, वह अपने भाइयों के हित के निमित्त मेरे कहे हुए उत्तम वचनों को क्यों नहीं खोकार करेगा ? कुन्तीदेवी ऐसा विचार कर अपने प्रयाजन की निश्चय करके कर्ण से भेंट करने से निमित्त भागीरथी के तोर पर गई। वहापर वह परम दयालु सत्यव्रत करनेवाला महाबाहु कर्ण अपनी भुजा को ऊपर उठाकर पूर्व ओर सुंह करके वेद मन्त्रों का उच्चारण करता हुआ जप कर रहा था। उसे इस प्रकार से देखकर उसको दुःखता माता जप के शेष होने पर अपना प्रयाजन मिट्ट कर देने की इच्छा से उनकी पीछे खड़ी हुई। वृष्णिवंश में उत्पन्न हुई पाण्डुराज की भायाँ सुकुमारी कुन्तीदेवी बहुत समय तक कर्ण के पीछे खड़ी रहकर सूर्य के प्रचण्ड तेज से कमल की माला के समान सुरभी गई, अन्त में कर्ण के ऊपर के वस्त्र को कायाक सहारा करके वहापर खड़ी हुई। धर्मात्मा सत्यव्रत करनेवाले अत्यन्त तेजस्वी महामाना सूर्यपुत्र कर्ण जब तक अच्छे प्रकार से पीठ पर सूर्य का तेज नहीं पड़ता, तब तक जप करके अन्त में पीठ घुमाकर देखा तो वहापर कुन्तीदेवी खड़ी थी। अकस्मात् उनका देखकर वह विस्मित होकर दाना हाथ जोड़के उन्हें प्रणाम करके यथा उचित नोचे कहे हुए वचन बोले।

१४४ अध्याय समाप्त ।

कर्ण बोले, मैं राधा और अधिरथ का पुत्र कर्ण हूँ, मैं तुमको प्रणाम करता हूँ, तुम किस निमित्त मेरे समीप आई हो, तुम्हारा कौनसा कार्य सुभक्त को करना होगा, वह सब तुम सुभक्त से कहा।

कुन्ती बोली, हे कर्ण ! तुम कुन्तीपुत्र हो, तुम राधापुत्र नहीं हो, अधिरथ भी तुम्हारा पिता नहीं है, तुम सूतकुल में उत्पन्न नहीं हुए हो। मैं तुम्हारे जन्म का गूढ़ वृत्तान्त कहती हूँ, उसे

तुम निश्चय करके सत्य समझो। हे पुत्र ! मैंने कन्या अवस्थामें पहिले ही तुमको गर्भ में धारण किया था, इससे तुम मेरे ही कानीन पुत्र हो, तुम कुन्तिराज के भवन में उत्पन्न हुए थे। हे शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ कर्ण ! यह जा सब लोगों को प्रकाश करनेवाले भगवान् सूर्य सदा आकाशमण्डल में विराजमान है, इन्हीं तुमका मेरे गर्भ से उत्पन्न किया था। हे महा तेजस्वी पुत्र ! मेरे पिता के मान्दर में तुम देव कुमार को भाँति सुन्दर कवच और कुण्डल के सहित अत्यन्त शोभा से युक्त होकर मेरे गर्भ से उत्पन्न हुए थे। इस समय मेरे भाइयों के सब जान पहचान न रहने के कारण तुम माह में पड़कर दुय्योधन की सेवा कर रहे हो। तुम्हारे समान तेजस्वी और बुद्धिमान् पुरुष के लिये यह कार्य किसी प्रकार से उचित नहीं है। हे पुत्र ! मनुष्य धर्म का निरूपण करनेवाले पण्डितों ने पितृवर्ग और एक मातृ स्त्रीद्वयों की माता के सन्तोष की पूर्ण करने की को धर्म का फल निश्चय किया है। इससे गर्भ धारण करनेवाली माता को प्रसन्न करना ही तुम्हारा कर्तव्य कार्य है। पहिले अर्जुन को भुजा से उपाज्जन को हुई राजलक्ष्मी जा दुष्टा के द्वारा हरण की गई है, तुम युधिष्ठिर की वह राजलक्ष्मी धृतराष्ट्रपुत्री से बलपूर्वक छोनकर स्वयं भाग करा, ऐसा करते हो से सुभक्त पूर्ण आनन्द तथा सुख मिलेगा। और वलाग आज कर्ण अर्जुन का समागम देखे। ये दुष्ट तथा पापमय तुम लोगों को आता रूप से मिलते हुए देखकर अनात स्वाकार करे। लोक में जैसे रामकृष्ण का नाम एकत्र उच्चारण किया जाता है, वैसे ही कर्ण अर्जुन का नाम भी आज से पृथ्वी में विख्यात हो। अहा ! तुम लोगों के एकत्र ज्ञान पर इस लोक में ऐसा कौनसा कार्य है, जो पूर्ण न हो सकेगा ? हे कर्ण ! तुम पाँच सहोदर भाइयों से युक्त होकर देवता से घिरे हुए मन्त्रा

इन्द्रके समान राजसिंहासनपर शोभित होओगे। इसमें कुछ भी मन्देह नहीं है। तुम सब गुणोंसे पूर्ण और मेरे सब पुत्रोंसे जेठे हो : इससे "सूतपत्र" यह शब्द जिसमें फिर कभी तुम्हारे ऊपर न प्रयोग किया जावे, तुम महा तेजस्वी पाद्य हो।

१४५ अध्याय समाप्त ।

आश्विष्मयायम सुनि बोले, अनन्तर कर्णने सूर्यमण्डलसे निकली हुई एक स्त्रीदेवियों आकाशवाणी सुनी। भगवान् सूर्यने खूद ही पत्र-प्रेमके वशमें हं कर कल्याण करनेवाले शुभ वचन कहे थे। वह वचन यही है, "हे कर्ण ! कृन्तीने सत्य वचन कहा है तुम सब शत्रुओंकी छोड़कर माताके इस वचनका पालन करो। हे पुत्रोंमें सेष्ठ ! नव प्रकारसे कृन्तीके वचनके अनुसार कार्य करनेसे तुम्हारा अच्युत ही मझल होगा।"

आश्विष्मयायन सुनि बोले, माता कृन्तीदेवी और पिता सूर्यदेवके वचन सुनकर सत्य-प्रतिज्ञा करने वाले वीर कर्णकी बुद्धि तनिक भी विचलित न हुई। उन्होंने माताको सम्बोधन करके कहा, कि "हे क्षत्रियननवी ! तुमने वा कहा, कि मेरी आज्ञाका पालन करना ही तुम्हारे धर्मका हारस्वरूप है। इस वचनपर मैं गुदा नहीं कर सकता हूं। हे माता ! नन्त ही जो तुमने मुझे त्यागकर प्राणोंका नाश करने वाला सत्ता और तुरा और यदुर्ध्वका कार्य किया था, उसीने मेरा यश तथा कीर्ति आदि नष्ट हो गई है, यदि मैं क्षत्रिय-गणोंमें उद्यत हुआ होता तो भी तुम्हारे कारणसे क्षत्रियोंके राज्य मेरा और भी रंठार गरीब हो जाता। तुम्हारे वचन के देवों ने मेरा अच्युतपद इससे भी अधिक बुरा पावना मेरे

साथ कर सकता है ? कैसे आश्चर्यका विषय है कि तुम दया करनेके समयमें कुछ भी मेरे हितका कार्य न करके इस समयमें अपनी आज्ञा पालन करनेसे निमित्त मुझे उपदेश करती हो। पहिले जब तुमने माताके समान मेरा कोई भी हितका कार्य नहीं किया था, तो इस समयमें निश्चय यही बोध होता है, कि तुम केवल अपने कल्याणकी इच्छासे ही इस अवसरमें मुझको पत्र कहके सम्बोधन कर रही हो। कृष्णके मित्र अर्जुनसे कौन परुष भयभीत नहीं हो सकता ? इससे पाण्डवोंकी सभा तथा संग्राममें गमन करनेसे कौन परुष मुझको भयभीत नहीं समझेगा ? पहिले मैं उन लोगोंका भ्राता कहके प्रसिद्ध नहीं था, इस समयमें युद्धका प्रवसर आनेपर यदि पाण्डवोंका पक्ष अवलम्बन कर्त्तंगा, तो यह सम्पूर्ण क्षत्रियोंकी मण्डली मुझको क्या कहेगी ? विशेष करके जिसमें मुझे मुख मिले, ऐसा सब प्रकारका भोग और भोजनकी वस्तुओंसे धृतराष्ट्र-पुत्रोंने आजतक मेरा अत्यन्त ही सत्कार किया है ; उसको मैं इस समय कैसे निष्फल कर सकता हूं ? शत्रुओंके सङ्ग वैर करके जो लोग मदा ही मेरी उपासना किया करते हैं, और वन्धु बान्धव लोग जैसे इन्द्रकी प्रणाम करते हैं, वैसे ही वे लोग मेरे समान स्व विनीतभाव अवलम्बन किये रहते हैं जो लोग मेरे पराक्रम और बलके सम्पत्तिसे शत्रुओंके जीवनकी अभिलाषा करते हैं, उन लोगोंका वह सन्तोष मैं किस प्रकारसे विफल कर सकता हूं ? सत्ता और राज्यकी समृद्धि जो लोग मुझे नीका स्वरूप समझकर अपने पार-लोकिकी इच्छा करते हैं, इस समयमें तो कह-के हैं उन लोगोंकी त्याग स्वरूप हूं। लोग दुर्लोकके उपजीवि हैं, उनके अर्थलक्ष्मका यही उत्साह समग्र क्षत्रियत-वर्ग है। इससे इस अवसरमें मैं अपने माताके आज्ञाकी आज्ञा

करके अवश्य उसको उपहारके पलट्टेमें युद्ध कलंगा। जो सब अधम पुरुष सदा स्वामीके समीपमें भन्न वस्तु पाकर कार्यके समयमें अनायास ही उसको छोड़कर चले जाते हैं। उन स्वामीके पिण्डकी चरणा करनेवाले, कृतघ्न सच्चा पापियोंके निमित्त यह लोक और परलोक कुल भी नहीं रह सकता।

हे मातः। तुमसे मिथ्या बालनेको क्या आवश्यकता है मैं धृतराष्ट्रजीके निमित्त सम्पूर्ण बल और शक्तिका प्रकाशित करके अवश्य तुम्हारे पुत्रोंके सङ्ग युद्ध कलंगा। दया, धर्म और सत्यरूपोंके पवित्र चरित्रको अवश्य ही सुभक्तों रक्षा करनी पड़ेगी। इससे यथार्थ हितकारी होनेपर भी इस समयमें मैं तुम्हारी बातोंका किसी प्रकारसे भी पालन नहीं कर सकता हूँ। तब सुभक्तों जो तुमने इतना अनुरोध किया है, वह भी निरुपलब्ध न होगा, मैं युद्धमें प्रवृत्त होकर केवल अर्जुनके अतिरिक्त तुम्हारे युधिष्ठिर, भीम, नकुल, सहदेव चार पुत्रोंके नाश करनेके निमित्त कभी यत्न न कलंगा। मैं तुम्हारे निकटमें यह प्रतिज्ञा करके सत्य कहता हूँ, कि संग्राममें युधिष्ठिर आदि युद्ध करने योग्य तथा वध्य होनेपर भी मैं कभी उनके नाश करनेका उपाय न कलंगा। युधिष्ठिरकी सेनामें केवल अर्जुनके सङ्ग मेरा युद्ध होगा : क्योंकि युद्धमें अर्जुनको मारनेहीसे यथेष्ट फल लाभ कलंगा अथवा उसने हाथसे मरकर यशसे युक्त होके स्वर्ग लोकमें जाऊगा। हे यशस्विनि। तुम्हारे पाँच पुत्रोंका कभी नाश न होगा, क्योंकि अर्जुनके मरनेसे कर्णको लेकर तुम्हारे पाँच पुत्र रहेंगे, और मेरे मरनेसे अर्जुनके सहित वही पाँच पुत्र रहेंगे।

कर्णके इस वचनको सुनकर कन्ती दुःख और शोकसे कांपती हुई उस अत्यन्त वैयर्थ-शाली महावीर पुरुषको आलिङ्गन करके यह

वचन बोली,—“हे पुत्र। तुम जो बोलते हो, वही सम्भव तथा मृत्यु बोध होता है, इस उपस्थित युद्धमें कौरव लोगोंका नाश होजावेगा, क्या किया जावे? दैवका बल सबसे प्रबल है। हे शत्रुनाशन। तुमने जा युधिष्ठिर आदि चारों भाइयोंको अभय दान किया है, तुम्हारे यह प्रतिज्ञा जिसमें पूर्ण रीतिसे सत्य होवे। अनन्तर कन्ती कर्णसे यह वचन बोली, हे पुत्र। तुम्हारा कल्याण होवे, तुम रोग रहित होकर कुशलमें रहो। कर्णने भी शिर झुकाकर उनको प्रणाम किया और कहा “जो तुम्हारी आज्ञा वही होगा”। इसके अनन्तर दोनों अपने अपने स्थानपर चले गये।

१४६ अध्याय समाप्त ।

अब मेना निर्याण पर्व लिखेंगे।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, इधर शत्रुनाशन कृष्णने हस्तिनापुरसे विराट नगरमें पहुँच पाण्डवोंके समीप कौरवोंका सम्पूर्ण वृत्तान्त आदिसे अतः अक वर्णन किया। वहुत समयतक बात चीत और विचार करके अन्तमें विश्राम करनेके निमित्त अपने निवास भवनमें गमन किया। अनन्तर भगवान् सूर्यके अस्ताचल पर्वतके शिखर पर जानेके अनन्तर पाण्डव लोग पाँचों भाई विराट आदि राजाओंको विदा करके कृष्णके वचन सुननेको अभिलाषासे शीघ्र ही उन्हें अपने समीपमें बुलाकर फिर विचार करने लगे। युधिष्ठिर बोले, हे पुण्डरीकाक्ष। तुमने हस्तिनापुरमें जाकर क्या क्या वचन कहे थे, वह विशेष रूपसे मेरे निकट वर्णन करो।

श्रीकृष्णचन्द्र बोले, मैं हस्तिनापुरमें जाकर जो उत्तम, पथ्य और हितकारी वचन थे, उसे ही कहा था, परन्तु नीचबुद्धि दुर्योधनने किसी प्रकारसे भी मेरे वचनोंको ग्रहण नहीं किया।

राजा युधिष्ठिरने पूछा, हे हृषीकेश जना-
ईन ! दुर्योधनके नीच मार्ग अवलम्बन करनेपर
कीरवोंमें बड़े पितामह भीष्मने क्या कहा
था ? भरद्वाजगन्धर्व महात्मा द्रोणाचार्य, पिता
धृतराष्ट्र तथा माता गान्धारीने क्या कहा था ?
धर्मात्मा विदुर जो रादा ही हंस लोगोके शोक
और दुःखसे व्याकुल रहते हैं, उन्होंने दुर्योधनके
निमित्त क्या वचन कहा था ? और सभामें
बैठे हुए सब राजाओंने कैसे वचन कहे थे ?
हे कृष्ण ! कीरवोंमें अष्ट भीष्म, धृतराष्ट्र तथा
दूसरे सभासदोंन-जो नीचबुद्धि लोभी दुर्योधनसे
उसके हितके निमित्त अप्रिय वचनोंकी कहा
था, वह सब तुमने सुझसे कहा परन्तु वह सब
यथार्थ रूपसे मेरे हृदयद्रम नहीं हुए हैं, इससे
फिर उनलोगोंके वचनोंकी सुननेकी सुझे अभि-
लाषा है । हे गोविन्द ! जिसने याग्य समय
बीत न जावे, तुम उसका विधान करो । हे
तात ! हे कृष्ण ! तुम एक मात्र हम लोगोकी
गात, प्रभु और, गुरु-स्वरूप हो ।

श्रीकृष्णचन्द्र बोले, हे राजेन्द्र ! कीरवोंको
सभामें राजा दुर्योधनसे जैसा वचन कहा गया
था, उसे मैं वर्णन करता हूँ, तुम चित्त लगाकर
सुना । मेरा जा कुछ वक्तव्य था, उसका सुनाने-
पर धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन हसने लगा, इससे
भीष अत्यन्त हाँकड़ाकर उससे कहने लगे ।
हे दुर्योधन ! कुलकी रक्षाके नामत्त मैं जा
तुमसे यह वचन कहता हूँ, उसको अच्छी
प्रकारसे हृदयमें धारण करो । हे राज-
शाहल ! उसे सुनकर अपने कुलके हित साध-
नके निमित्त यत्न करो । हे तात ! मेरा पिता
शकुन्तलाकर्म विख्यात थे, पांडिले मैं जा
उनके पुत्र मातृ पुत्र था । पण्डित लोग एक
विषय पर जो मत नहीं मिलते, इससे और एक
विषय पर जो मत मिलते, इससे और एक
विषय पर जो मत मिलते, इससे और एक
विषय पर जो मत मिलते, इससे और एक

चिन्ता हुई । पिताके मनोरथको जानकर
मैंने व्यासदेवकी माता, योजनगन्धारीके सङ्ग पिताका
विवाह कराया । कुल-रक्षा और पिताके
मनोरथको पूर्ण करनेके निमित्त मैंने कठिन
प्रतिज्ञा करके इस कार्यको सिद्ध किया था ।
उसी प्रतिज्ञाके कारणसे मैं राजा नहीं हो
सका और सदासे ब्रह्मचर्य व्रत अवलम्बन किये
हुए रहता हूँ, वह तुम लोगोको भली भाँतिसे
विदित है । मैंने राज्यपदको नहीं पाया,
इसके निमित्त कभी भी सुभी विपाद तथा
दुःख नहीं हुआ । अपनी प्रतिज्ञाको पूर्ण
करनेसे मैं हृष्ट-पुष्ट और सत्सृष्ट चित्तसे जीवन
धारण करता हूँ ।

हे राजन् ! समयके अनुसार इस सत्यवतो
माताके गर्भसे कुरुकुल-धुरन्धर धर्मात्मा महा-
बाहु विचित्रवाक्यका जन्म हुआ । पिताके
स्वर्ग लोकमें जानेके अनन्तर मैंने अपने छोटे
भाईका लक्ष्मीसे युक्त अपने राज्यपर अभिषेक
किया । विचित्रवोथे राजा हुए और मैं उनका
अनुजोवी होकर राज्यको रक्षा करता था ।
हे राजन् ! विवाहका समय उपस्थित
हानेपर मैंने याग्य कन्याके सङ्ग उनका विवाह
किया । उस विवाहके विषयमें मैंने जो
अनेक राजाओंको पराजित किया था, उसे
तुमने कई बार सुना है । अनन्तर जब मैं
परगुरामके साथ डण्ड युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुआ
था तब सब प्रजा भयभीत विकल होकर विचित्र-
वोथेका दूसरे स्थानमें ले गई । वह बुद्धिहीन
भाता स्त्रीके सङ्गमें गलत हो आसक्त होकर
यज्ञा रोगसे मर गया । इस प्रकारसे कुरु-
राज्य राजासे रहित हान पर इन्द्र जल वर्षा
करनेसे विगत हुए, तब सम्पूर्ण प्रजा भय और
सन्ध्यामें पीड़ित होकर मेरा निवेदन किया, मैं
प्रजा इष्टवृत्ति होकर सुझसे यह वचन कहने
लगी । मैं शकुन्तलागन्धर्वमाता-पिताके राजा
मैंने सब वचनोंके कारण कुरु-राज्य पराजित

नष्ट-प्राय हो रही है, इससे हमलोगोंके कल्याणके निमित्त इस समय तुम राज्यके भारको ग्रहण करो। तुम्हारे राज्यभारको ग्रहण करनेसे हम लोगोंका मङ्गल होगा और इन्द्र जलकी वर्षा करेगा। हे गङ्गानन्दन ! महाघोर विपदम पड़कर सम्पूर्ण प्रजा नष्ट हो रही है; जो सब पुरुष अवतक जीवित है उन्हींके उबारनेके निमित्त आप राज्यके भारको ग्रहण कीजिये। हे पुरुषसिंह ! इस समय बिना तुम्हारी कृपाके हम लोगोकी रक्षा नहीं हो सकती। इससे सब प्रजाके ऊपर कृपा कर तुम राज्य ग्रहण करके प्रजाका पालन करो, तुम्हारे जीवित रहते ही जिसमें सम्पूर्ण पृथ्वीकी प्रजाका नाश न हो जावे।" प्रजा लोगोंसे इस प्रकारके अनक दीन वचनकी सुनने पर भी मेरा स्थिर चित्त तनिक भी विचलित नहीं हुआ, साधुपुरुषोंके चरित और सदाचारको स्मरण करके मैं अपनी पहिली प्रतिज्ञाकी रक्षा करनेहीमें तत्पर रहा। तब सम्पूर्ण पुरवासी और मेरी सौतेली माता सत्यवती, सेवक, पुरोहित और सब शास्त्रोके जानने वाले ब्राह्मण लोग भी अत्यन्त दुःखित होके मुझको राज्यपद ग्रहण करनेके निमित्त बहृत ही अनुरोध करने लगे। हे महाबुद्धिमान् ! हम लोगोंके हितके निमित्त तुम राजसिंहासन पर बैठो। तुम्हारे विद्यमान रहने पर भी तुम्हारे पितामह प्रतीप महाराजके रक्षित इस सम्पूर्ण पृथ्वीके राज्यका विनाश हो रहा है, यह बहृत ही दुःखका विषय है।

उन लोगोंके इस वचनकी सुनकर मैंने अत्यन्त दुःखित और शक्ति होके हाथ जोड़कर उनसे निवेदन किया, मैंने पिताके गौरव और कुलकी रक्षाके निमित्त राज्य-रक्षित होकर ब्रह्मचर्यव्रत करनेकी प्रतिज्ञा की है; इसमें अब इस समयमें राज्यके भारका कैसे

ग्रहण कर सकता हूँ ? साधारणरूपसे सब ऐसा वचन कहके माताको भी यह वचन के शान्त किया :—“हे माता ! मैं तुम्हारे कारणसे इस प्रतिज्ञा पाशमें बंधा हुआ इससे तुम मुझे अब राज्य भारको ग्रहण करनेकी आज्ञा मत करो। हे माता ! कुवंशमें विशेष करके शान्तनुके वीर्यसे उत्पन्न होकर मैं किस प्रकारसे अपनी प्रतिज्ञाका पालन कर सकता हूँ ? केवल तुम्हारे ही निमित्त जब मैंने ऐसी प्रतिज्ञा की है, तब तुम अब किस प्रकारसे उस प्रतिज्ञाको तोड़नेकी आज्ञा दे रही हो ? हे माता ! इससे तुम्हारा उपजीवी तथा सेवक होकर भी मैं इस आज्ञाको किसी भाँतिसे नहीं पालन कर सकूँगा। हे राजन् ! मैं माता और पुरवासियोंसे ऐसी विनती करके अन्तमें भाट-नायके गर्भसे पुत्र उत्पन्न करनेके निमित्त महामुनि व्यासदेवसे प्रार्थना की, उसके निमित्त माता ने भी उनसे बहृत अनुरोध किया था। हे भरत सत्तम ! व्यासदेवने हमलोगोंकी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर तीन पुत्र उत्पन्न किये। उनमेंसे तुम्हारे पिता धृतराष्ट्र अर्ध उत्पन्न हुए थे, इससे जेठे पुत्र होकर भी इन्द्रिय-विकारके कारण राजा न होसके। सब लोकोमें विख्यात महात्मा पाण्डु राजा हुए थे। वह जब राजा हुए थे, तब उनके पुत्र अवश्य ही उस राज्यके पालनके अधिकारी हैं। हे पुत्र ! इससे तुम निरर्थक झगड़ा मत बढाओ, राज्यका आधा भाग पाण्डवोंको अवश्य प्रदान करो। विचारकर देखो तो सही, मेरे जीवित रहते कौन पुरुष राज्यपदके ग्रहण करनेमें समर्थ हो सकता है ? इससे तुम मेरे वचन मत शली। मैं सदा तुम लोगोंमें केवल शान्तिकी इच्छा करता हूँ। तुममें और पाण्डवोंमें मेरी समान ही प्रीति है। मैंने तुमसे जैसा वचन कहा है तुम्हारे माता पिता और विप्रका

भी वही मत है। हे तात । बूढ़ोंके वचनको अवश्य सुनना और मानना चाहिये, इससे तुम मेरे इन वचनोंमें कुछ भी शङ्का न करके अपने और इस सम्पूर्ण पृथ्वीके कल्याण-साधनके निमित्त यत्न करो, निरर्थक सबके नाश करनेमें प्रवृत्त नहाना किसी प्रकारसे उचित नहीं है ।

१४७ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, भीष्मके ऊपर कहे हुए वचनोंके समाप्त होनेपर बुद्धिमान् द्रोणाचार्य भी दुःखांधनकी सम्बोधन करके सब राजाओंके सम्मुख हो उससे यह वचन बोले । हे तात । प्रतोपनन्दन शान्तनु जैसे कुलको रक्षामें लगे हुए थे और उनके पुत्र देवव्रतो भीष्मने कुल-रक्षाके निमित्त जैसे प्रतिज्ञा करके उसका निर्व्याह किया है, वैसे ही सत्यवादी धर्मात्मा पाण्डु राजा भी कुरुकुलमें धर्म-धुरन्धर थे, वह समाधिनिष्ठ सत्यव्रतसे युक्त धर्मात्मा पाण्डुस्वयं राजा होनेपर भी अपने जेठे भाई धृतराष्ट्र और छोटे भाई विदुरका अपना राज्याधिकार समर्पण किया था । कुरुक्षेत्र राजा पाण्डु धृतराष्ट्रका सिंहासन पर बैठकर अपना दाना रानयाके सज्ज वनका चल गये थे । तब पुरुषासह विदुर अपना स्वाभाविक सरलतासे धृतराष्ट्रके समाप खड़े होकर सबकेका भात हाथमें चवर लेकर उनको उपासना करने लगा, और सम्पूर्ण प्रजा राजा पाण्डुका भात नियमके अनुसार उनका सम्मान करने लगा । पराये दशका जातन-वाल पाण्डुराज धृतराष्ट्र और विदुरके हाथमें राज्यका भार समर्पण करके सम्पूर्ण पृथ्वी भ्रमण लग, उसके अनन्तर सत्य प्रतिज्ञा करने-वाले विदुर खजानका सङ्ग्रह करने, दान देन और संघकाका प्रतिपालन करनेमें निभुक्त हुए । और शत्रुनाशन महा तैजसा भीष्म

सन्धि-विग्रह आदि कार्योंको देखने और विचारने लगे । महाबलसे युक्त राजा धृतराष्ट्रके सिंहासनपर बैठनेपर महात्मा विदुर सदा उनके समीप उपस्थित रहते थे । हे प्रजानाथ । इससे तुम उसी धृतराष्ट्रके कुलमें उत्पन्न होकर कभी कुलके नाश करनेमें प्रवृत्त होरहे हो ऐसी नीच प्रवृत्ति त्यागकर तुम भाइयोंके सङ्ग मिलके उत्तम राज्यकी भोगीका भाग करो । हे राजसत्तम । युद्धसे डरके, अथवा धनके लाभमें पड़के मैं तुमसे यह वचन नहीं कहता हूँ । मैं भीष्मके दिये हुए अन्नका भागकर रहा हूँ, तुम्हारे दिये हुए अन्नका नहीं । हे राजन् । तुम्हारे समीप जीवनके निमित्त अन्न ग्रहण करनेकी मेरी कभी भी अभिलाषा न होगी । हे शत्रुनाशन । तुम यह निश्चय समझ लो कि भीष्म जिस और रहेंगे, मैं भी उसी 'और' रहूँगा । इससे यदि मेरा मत ग्रहण करनेको तुम्हें इच्छा होवे, तो भीष्म जैसा कहते हैं, तुम वैसे ही कार्य करो, — पाण्डु-पुत्रोंकी राज्यका आधा भाग दे डालो । हे तात । मैंने तुम्हारे और उन लोगोंके आचार्यका कार्य समान ही किया है । इससे दोनों और मेरी समान ही प्रीति है । मुझे अखत्यामा जैसा प्रिय है, अर्जुन भी वैसा ही प्यारा है । इसमें अधिक बातोंके कहनेकी क्या आवश्यकता है, जन्मापर धर्म रहता है, नहीपर जय जाता है ।

अर्जुन बोले, महा तैजसा द्रोणाचार्यके वचन समाप्त होनेपर सत्यवादी सब धर्मांधर जाननेवाले बुद्धिमान् विदुर शान्तनुनन्दन भीष्मका मुख देखकर यह वचन कहने लगे । हे देवव्रतो भीष्म । मैं तो इतना कहता हूँ कि एक बार तुम एकाग्र चित्तसे रुको । तुम्हें तो इस नष्टप्राय आरवजलका पत्रसे डकार दिया है, उसी निमित्त ही एक क्षणार्ध में बार बार विस्थाप और धारणापर संयत्ता कर रहे हो ।

निष्कलङ्ग कुलकुलमें यह दाप लगानेवाला दुर्योधन कौन है ? ऐसा विनय-रहित पापी पुरुष कभी इस कुलके योग्य नहीं हो सकता । परन्तु क्या ही आश्चर्यका विषय है, कि तुम इस लाभो, सुख, दुष्ट पुरुषकी बुद्धि फेर रहे हो । जा अधम पुरुष धर्म अर्थ जाननेवाले पिताका आसन ग्रहण कर रहा है, उसके निमित्त जो यह सम्पूर्ण कौरवोंके कुलका नाश होवेगा, इसमें क्या सन्देह है ? हे महाराज ! जिसमें कुलका नाश न होवे, उसके निमित्त तुम अब भी सब भातिसे उपाय करो । तुमने सुम्भे, धृतराष्ट्र तथा और दूसरे पुरुषोंकी चित्रमें लिखे पुतलोंको भाति कर रक्खा है । हे महाबाह ! प्रजापति ब्रह्मा जैसे सृष्टिकी रचकर फिर समयके अनुसार उसका संहार करते हैं, वैसा करना तुमको उचित नहीं है । तुमने स्वयं जिस कुलकी रक्षा की है, अकस्मात् उसका नाश होता देखकर भी चुपचाप न बैठे रहना । अवश्य ही भावी-संहारका समय उपस्थित हुआ जानकर यदि तुम्हारी बुद्धिमें भ्रम उपस्थित होता है, तो तुम सुम्भे और धृतराष्ट्रका संग लेकर वनवासके निमित्त प्रस्थान करो और नहीं तो आज ही इस नीचबुद्धि दुष्ट-दुर्योधनकी बाधकर पाण्डवोंके रक्षित इस सम्पूर्ण पृथ्वीके राज्यका शासन करो । हे राजशठूँ ! देखा, कुरु-पाण्डव तथा दूसरे सब राजाओंके नाश हानका समय उपस्थित हुआ है, इससे अब भी प्रसन्न होकर कार्यका विधान करो ।

विदुरके दोन वचनाके समाप्त हानपर कुल-नाशके भयसे डरा हुआ सुवलराजपुत्री गान्धारी राजाओंके सम्मुख हो दुष्ट पापबुद्धि दुर्योधनकी सम्बोधन करके क्राधसे भरे हुए धर्म अर्थसे युक्त यह वचन बोली । अरे नीचबुद्धि ! इस सभामें जो सब राजा, ब्रह्मापि तथा दूसरे सभा-सद लाग बैठे हैं, सब वे कोई सुन, मैं तेरा अपराधकी बात वणन करती हूँ, सबको

सहित तूने कितने पापकर्मका अनुष्ठान किया है, उसको सीमा नहीं हो सकती । अनीचबुद्धि दुर्योधन । कौरवोंका राज्य सदासे कुल परम्पराके क्रमसे चला आता है, यही हम लोगोंके कुलका क्रमगत धर्म है । अनीचकर्म करनेवाले पापी । तू दुष्टनीति वशमें होकर उस धर्मका त्यागकर सदाके कुरु राज्यका नाश करनेमें प्रवृत्त हो रहा है । दुर्योधन । बुद्धिमान् धृतराष्ट्र और उनके भाई द्रोणदर्शी विदुर ये हो राज्यपदपर प्रतिष्ठित हैं इस समय तू मोहमें पड़कर कुलकी मेथादा का लाघकर क्यों राज्यको ग्रहण करनेकी अभिलाषा करता है ? भीष्मके जीवित रहते राजा धृतराष्ट्र और महाबुद्धिमान् विदुर भी स्वाधोन नहीं हो सकते, परन्तु इन पुरुषोंसे महात्मा गङ्गानन्दन भीष्म ने धर्मकी पालन करनेके निमित्त राज्यको इच्छा छोड़ दी है इसी कारण इस सम्पूर्ण पृथ्वीका राज्य पाण्डु राजके हाथमें समर्पण किया गया था । इससे अब उनके पुत्रोंके आश्रय कौन सब राज्यके स्वामी हो सकते हैं ? केवल पाण्डव लोग ही पुत्र पौत्र आदिके क्रमसे इस सम्पूर्ण राज्यका भाग करनेका अधिकारी हैं, और किसीका इसमें अधिकार नहीं है । अत्यन्त बुद्धि और पराक्रमस युक्त सत्य प्रातज्ञा करनेवाले, कौरवोंसे सुख, देवव्रतो, महात्मा, पितामह भीष्म जो वचन कहते हैं, उसे स्वीकार करके सब भातिसे उसीके अनुसार कार्य करना हमें लागाका परम धर्म है । अपने धर्मकी पालन करते हुए पाण्डवोंको राज्य प्रदान करना उचित है । अन्धराज और विदुर भी महाव्रत करनेवाले भीष्मकी आज्ञाके अनुसार मर कर हुए वचनको पृष्ठ करे, ऐसा करनेवासे यथायुक्त सुहृद और धर्मका काय्य सिद्ध होगा । महाराज धृतराष्ट्र और भीष्मसे सम्मानित होकर धर्मपुत्र युधिष्ठिर न्यायसे इस

कुराज्यकी धर्मके अनुसार वहुत दिनतक शासन करे ।

१४८ अध्याय समाप्त ।

श्रीकृष्णचन्द्र बोले, हे महाराज ! गांधारी की बात समाप्त होनेपर, राजा धृतराष्ट्र सब राजाओंकी बोचमें दुश्मोधनसे यह वचन कहन लगे । हे पुत्र ! यदि पिताके ऊपर तुम्हारी भक्ति होव, तब मैं जो वचन कहता हूँ, तुम उसीका अनुष्ठान करो । हे भरतश्रेष्ठ ! देखा पहिले प्रजानाथ सोम कीरवां के वश बढानवाले हुए थे, नहुषपुत्र राजा ययातु नामसे छठी पीढ़ीमें उत्पन्न हुए थे । उनके राजकृपियान सुख पाचपुत्र थे, उनमें महातजस्वी यदु सबसे बड़े थे, इससे वही सबका स्वामी हुए थे । हे तात ! उनका छोट पुत्रका नाम पुरु था, वही हम लोगोंके वशक बढानवाले हुए थे, वृषभधरा राजाका पुत्रा शम्भुका गमसे उनका जन्म हुआ था । यदु देवयानाका पुत्र आर महा तजस्वी शुक्राचार्यके दोहरे हैं, उसी महावार पुरुषसे यदुवाश्याक कुलका उत्पत्ति हुई है । दुष्ट बुद्धिके वशमें जाकर उन्होंने अपने बल और अभिमानसे सम्पूर्ण पाँचपुत्रोंका अपमानित किया और बलके धर्मसे मोहित होकर पिताका आज्ञा उलटन की थी । उस महा पराक्रमी अत्यन्त तजस्वी यदुन पिता और भाइयोंका शत्रुता करने लगे सम्पूर्ण पृथ्वीका वश करके हस्तिनापुरमें निवास किया था । हे पुत्र ! नहुषचन्द्र ययातुन अत्यन्त ही क्रुद्ध होकर उस नाचवान पुत्रको शपथ दिया और राज्यसे भी दूर कर दिया । पुरुषासह ययातुके जा और तीन पुत्र बलसे अभिमानन भर हुए यदुके शत्रुतावा करके उन्हें भी राजा ययातुन क्रुद्ध कर दिया था । अनन्तर उन्होंने अपने पुत्र पुरुषासह राजा दिया । पुरुषासह ही

विनीत स्वभावसे युक्त और पिताके आज्ञाकारी थे । इससे झूटि होकर भी अपने स्वभाविक गुणसे सबके स्वामी हुए । इससे विचार करके देखो, यह हानिपर भी दृष्टता तथा नीचबुद्धिताके कारण जेष्ठ पुत्र पिताके राज्यसे दूर कर दिया जाता है, और कनिष्ठपुत्र भी विद्या विनय आदि गुणसे युक्त होन पर राज्यपद पाता है ।

ऐसा ही और एक प्रमाण है । हमारा प्रापितामह पृथ्वीनाथ प्रताप सब धर्मोंका जाननेवाले और तानी लोकाम विख्यात होकर धर्मके अनुसार राज्य-शासन करते थे । हे तात ! उन राजासहक बोधसे महा यशस्वी तीन पुत्र उत्पन्न हुए । उनमें देवाप बड़े, बालिक दूसरे और हमारे पितामह शान्तनु तीसरे पुत्र थे । महा तजस्वी देवाप कीठनाम कुछ रागसे अत्यन्त ही पीड़ित थे, क्या बालक, क्या बूढ़े सब ही देवापीके संग अन्त करणसे प्रीति करते थे । वह परम धर्मात्मा, सत्यवादी, पिताकी सेवासे युक्त पुरवासी और सेनाके प्यार, साधु पुरुषोंके सत्कार करनेवाले, विनीत स्वभावसे युक्त, सत्यप्रातिज्ञ करनेवाले सब प्राणियोंके हित-काव्यमें रत, पिता और भाइयोंका आज्ञान चलनवाले पुरुष थे । और महात्मा बाहक भी शान्तनुके प्रिय भाता थे । उन महातजस्वी तीनों भाइयोंसे अत्यन्त ही प्रीति थी । समयके अनुसार राज-सत्तम महाराज प्रतापन छोट पुत्रके राज्य-भिषकके नामसे सब मामला इनकी ही सत्काराभिषेकवाले नामसे उनमें वस्तुएँ दिकी हुई । परन्तु ब्राह्मणान पुरवासीयके सत्कार मिलकर बाघा डानी और उन्हें इस काव्यमें निवारण किया । राजान् पुत्रके राज्याभिषेकके समयमें दृष्टता होकर उन्हें ही भात किया । उन दोनोंके देवाप विनीतभाव, धर्मात्मा, सत्यप्रातिज्ञ करनेवाले सब प्राणियोंके हित-काव्यमें रत

होकर भी केवल चर्म-दोषके कारणसे राज्य नहीं प्राप्त कर सके । राजाका शरीर विकल होनेसे देवताओंका प्रसन्नता नहीं होती, इसी कारण ब्राह्मणोंने उन्हें राज्यके ग्रहण करनेसे निषेध किया था । शरीरसे पीड़ित देवाप-पुत्रके राज्यपद न मिलनेपर महाराज प्रतीप दुःखित होकर वनको चले गये । हे राजन् ! महाराज बाल्मिक अपन मातामहका राज्य पाकर भाइयोंकी त्यागके पहिलेहीसे मातामह (नाना) के यहां रहते थे । इससे पिताके स्वर्ग-लोक गमन करनेपर शान्तनुवं ही बाल्मिककी आज्ञाके अनुसार राज्यका भार ग्रहण किया । हे भारत ! बाल्मिकने जैसे शान्तनुको अपना राज्य प्रदान किया था, वैसे ही बुद्धिमान पाण्डुने भी सुभका अपना राज्य समर्पण किया था । मैं जेष्ठ पुत्र हाकर भी नेत्र न रहनेके कारण राज्यपदको नहीं पाया था, इससे छोट पुत्र हाकर भी पाण्डुराज हो कुरु-राज्यके अधिकारी हुए थे । हे शत्रुनाशन ! इससे अब राजा पाण्डुके न रहनेपर उनके पुत्राके आतारक्त और दूसरा कान राज्यका अधिकारी हो सकता है ? मैं जिस राज्याका भागी नहीं हूँ, उस राज्यकी तुम क्या आभिलाषा करते हो ? तुम राजाके पुत्र भी नहीं हो और न राज्यके अधिकारी हो हो । केवल मोह और लाभमें पड़ कर दूसरेका राज्य हरण करनेकी आभिलाषा करते हो । महात्मा युधिष्ठिर राजाके पुत्र हैं, इससे यह राजा भी उन्हीका न्यायके अनुसार मिलना उचित है, वही धर्मात्मा इस कुरुकुलका पालन-पोषण और शासन करनेवाले हैं । राजाके विषयमें क्षमा, सहन-शीलता, दम, दया, विनय, सत्य-निष्ठा, शास्त्रज्ञान, अप्रमाद, सब प्राणियोंके ऊपर कृपा, और नियमके अनुसार सबका शासन करना आदि जो सब गुण ज्ञान उचित हैं, सब ही युधिष्ठिरमें विद्यमान हैं ।

वह सत्यवादी सदा सावधान, भाइयोंका मान करनेवाले, प्रजाओंकी प्रीतिके पात्र, मित्रोंके ऊपर दया करनेवाले, जितेन्द्रिय और साधु पुष्पोंका पालन करनेवाले हैं । अरे विनय रहित दुर्व्योधन् ! तू राजाका पत्र न होकर विशेष करके नोच पुरुषोंके चरित्रसे युक्त, महालोभी, और बन्धु-बान्धवोंकी बुराई करनेमें सदा तत्पर होकर क्रमसे आते हुए इस पाण्डु वोंके राज्यका कैसे छोन सकेगा ? यदि भाइयोंके सहित कुछ दिनतक तुम्हका जोनका इच्छा होवे, तो इस समय भी माह और लाभ छोड़ कर पाण्डुवोंकी वाहन और सब वस्तुओंके सहित राज्यका आधा भाग प्रदान कर ।

१४६ अध्याय समाप्त ।

श्रीकृष्णचन्द्र बाली, इसी प्रकारसे भीष्म, दाण, विदुर, गान्धारी और राजा धृतराष्ट्रने अपने अपने उपदेश-वचनोंका दुर्व्योधनसे कहा, परन्तु उसने किसीकी बात ग्रहण न की । उसने सबको वाताका अनादर करके क्रोध पूर्वक सभासे प्रस्थान किया । जा सब राजा लाग उसका निमित्त अपने प्राणतक हिनमें भी उद्यत थे, वे भी उठकर उसके पीछे पीछे चले । दुर्व्योधनने इन मन्द-बुद्धि राजाओंका बारम्बार यही आज्ञा दी, आज पुष्ट नक्षत्र है, इससे आज ही तुम लोग कुरुक्षेत्रमें गमन करो । अनन्तर उन सब राजाओंने कालके वशमें हाकर भीष्मका सेनापात बनाकर अत्यन्त हर्षके सहित अपनी सेनाके सहित युद्धके निमित्त यात्रा की । हे महाराज ! कौरवोंको ग्यारह अक्षोहिणी सेना युद्धके निमित्त इकट्ठी होकर तालचिन्हको ध्वजासे युक्त महावीर भीष्मकी सबके आगे करके विराजमान है । इससे अब इस समयमें जैसा याग्य और कर्त्तव्य कार्य करना स्थिर हो, आप उसका ही विधान कीजिये । हे भारत ! मेरे जानेपर कौरवोंकी

सभामें जो कुछ हुआ था,—भीष्म, द्रोण, विदुर, गान्धारो और राजा धृतराष्ट्र ने मेरे सम्मुख दुर्योधनसे जो कुछ वचन कहे थे, वे सब मैंने आपसे कह दिये । हे राजन् ! जिससे आप लोगोंमें भ्रातृभाव स्थापित होवे,—ऐसे प्रसिद्ध वशका नाश न होवे वही समझकर मैंने पहिले सामवादका प्रयोग किया था : परन्तु मैंने देखा, कि सामवादका ग्रहण नहीं होता है, तब भेदके प्रयोग करनेमें बाध्य हुआ और आपकी देवी तथा मानुषी सब बड़े बड़े कर्मोंकी कह सुनाया । हे भारत ! दुर्योधनने जब मेरे शान्तिके निमित्त कहे हुए वचनोंका अनादर किया, तब मैंने सब राजाओंमें भेद उत्पन्न करनेके निमित्त तनिक भी सद्बोच नहीं किया और महा-और अमानुषी कर्म दिखानेमें भी मैंने कुछ ठट्ठि न की । इकट्ठे हुए राजाओंकी बारम्बार वचन और युक्तियोंमें भेदित और निन्दा करके दुर्योधनकी तुमके समान अनादर करके, कर्णकी बार बार भय दिखाके, धृतराष्ट्र-पुत्रोंके जुएके खेलकी जड़ पापी शकुनिकी अत्यन्त ही निन्दा करके अन्तमें मैंने फिर शान्तिके निमित्त प्रस्ताव किया । कुरुवशके मङ्गल और कार्यकी सिद्धिके निमित्त मैंने दुर्योधनको राज्य देनेकी बात भी कही । मैंने कहा “वह शूरवीर तेजस्वी पाण्डव भान और प्रभुताका त्यागकर तुम्हीको राज्य समर्पण करके धृतराष्ट्र, भीष्म और विदुरकी आज्ञाके अनुसार चलेगी । तुम्हारे जितके निमित्त धृतराष्ट्र, भीष्म और विदुर जो कह कहें, वही होवे, तुम्ही राज्यके अधिकारी बनो, केवल पाँच गाँव पाण्डवोंको प्रदान करो । हे राजसत्तम ! वे लोग चाहे कैसे ही रहें, परन्तु तुम्हारे पिताको उनका पालन करना होगा है । ऐसी विन्तीकी बात कहनेपर भी वह दृष्टाक्षा किसी प्रकारसे राज्यका अंश देनेसे मञ्जूर नहीं हुआ । हे राजन् ! इसके बाद भी पाण्डवोंके विपत्तियों की ही चाल चलने के

अतिरिक्त और कुछ भी मैं नहीं देखता हूँ । उसकी सहायताके निमित्त बुद्धिहीन राजा लोग भी कुरुक्षेत्रमें गये हैं । हे पाण्डव ! कौरवोंकी सभामें जो कुछ हुआ था, वे सब बातें मैंने तुम्हारे निकट वर्णन की । विना युद्धके दुर्योधन कभी तुमको राज्यका भाग न देगा । वह सब लोगोंके सहित जो मृत्युके वशमें होकर सबके नाश करनेका कारण हुआ है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ।

१५० अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, श्रीकृष्णचन्द्रके वचन सुनकर धर्मात्मा धर्मराज युधिष्ठिर उनके सम्मुख हो अपने भाइयोंसे बोले, हे पुरुषसिन्धो ! कौरवोंकी सभामें जो कुछ हुआ था, वह सब तुम लोगोंने सुना, और श्रीकृष्णके वचन भी निश्चित कर लिये । इससे अब इस समय मेरी सेनाका विभाग होना उचित है । यह सात अज्ञीहिणी सेना विजयके निमित्त इकट्ठी हुई है, जो लोकमें विख्यात सात महारथों इसके नायक होंगे, उनका नाम सुनो । द्रुपद, विराट, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, सात्यकी, चेकितान और भीमसेन,—यही सात वीर पुरुष इस सेनाके नायक होंगे । ये सब लोग प्राणकी आशा त्याग करके युद्धके निमित्त उत्साह करते हैं, ये सब ही वेदकी जाननेवाली शूरवीर, उत्तम—चरित्र और व्रतसे युक्त, लज्जा-शील, नीतिके युक्त, युद्धविद्याकी जाननेवाले प्राण आदि अन्व शस्त्रोंके चलानेमें निपुण, और सब ही सब प्रकारके अस्त्रोंकी धारण करनेवाले वीर योगी हैं । परन्तु हे कुरुनन्दन महर्षेव जो पुरुष इस सात वीरोंका नायक होसके, और मद्रासमें पाण्डुरूपी शिरानि युक्त अग्निके समान तेजस्वी भीमका मानना कर सके, मद्राके विभागका जाननेवाले हैं किसी न गुरु पुरुषका, यह निर्णय करें

सहदेव बोले, जिस धर्मात्मा पुरुषका आसरा करके हम लोग अपने पैटक राज्यके अशकी पानेकी अभिलाषा करते हैं, वही सब लक्ष्मणोंसे युक्त, सुख-दुःखको समान जाननेवाले सब शास्त्र और युद्धविद्यामें निपण बलवान् मत्स्यराज विराट युद्धमें भीष्म तथा दूसरे महारथ वीरोंका सामना कर सकेंगे ।

श्रीशैलपायन सुनि बोले सहदेवकी ऐसा कहनेपर पुरुषसिंह नकुल यह वचन बोले, जो अवस्था शास्त्र, धीरज, कुल, और विनयसे युक्त लज्जाशोक, बलसे युक्त, लक्ष्मीवान्, सब शास्त्रोंके जाननेवाले, पराक्रमी सत्य प्रहिज्ञा करनेवाले हैं; जिन्होंने भरवाजनन्दन महात्मा द्रोणाचार्यसे शस्त्रशिक्षा सीखी है, जो महाबली, पुरुष-सदा भीष्म और द्रोणाचार्यसे युद्ध करनेकी अभिलाषा करते हैं, राजाओंमें अग्रणी और प्रसंशाके योग्य जो सेनापति-पुत्र पौत्रके सहित दश शाखाओंसे युक्त वृद्धकी भांति मालूम पड़ते हैं, जिस शत्रुनाशन पृथ्वीनाथने क्रोधमें भरकर द्रोणाचार्यके वध करनेके निमित्त स्त्रीके सहित महाघोर तपस्या की थी, और जो महाराज ससुर होकर भी पिताके समान हम लोगोंका पालन करते हैं, वही द्रुपद-राज हम लोगोंके सेना नायक बन । मेरी सम्झमें वह भीष्म और द्रोणाचार्यके सम्मुख युद्ध कर सकेंगे, क्योंकि वह सब दिव्य शस्त्रोंके जाननेवाले, प्रतापी और द्रोणाचार्यके सखा हैं ।

माद्रीपुत्रीके अपने अपने अभिप्राय प्रकट करनेपर कुरुनन्दन इन्द्रपुत्र अर्जुन बोले, अग्निकी शिखाके समान वर्णसे युक्त यह जो महाबाहू पुरुष तपस्याके प्रभाव और ऋषियोंके सन्तोषसे उत्पन्न हुआ है, धनुष, कवच, खड्ग, और दिव्य घोड़ीके रथसे युक्त तथा सावधान होकर रथके शब्दके सहित वादलके समान गर्जते हुए अग्निकुण्डसे उत्पन्न हुआ है, जिसकी मूर्ति, भुजा कम्हा और गर्जनेका

शब्द सिंहके समान है, जिसकी दोनों भीदांत सुख और कपोलके ऊपरका हिस्सा भुजा कन्धोंके मोठे, बड़ी आख और पाव अत्यन्त सुन्दर हैं, जो महाबली, महा तेजस्वी, प्रतिष्ठित, रोगरहित सब शस्त्रोंके जाननेवाले मतवार हाथीके समान अत्यन्त बलसे युक्त सत्यवादी, जितेन्द्रिय पुरुष द्रोणाचार्यके वधके निमित्त उत्पन्न हुआ है, मेरे विचारमें वह धृष्टद्युम्न भीष्मके वज्र समान खन करनेवाले, महा विषधर सर्पके समान सुखवाले, वेगमें यम दूतके समान, युद्धमें परशुरामकी भी विकल करनेवाली और वज्रके समान महा कठोर उनके सब बाणोंकी सह सकेंगे । हे महा राज ! सुनो यह निश्चय बांध होता है कि मैं एक मात्र धृष्टद्युम्नके अतिरिक्त और ऐसे किसी पुरुषका भी नहीं देखता हूँ, जो युद्ध में महाव्रत भीष्मके बाणोंकी सहनेमें समर्थ हो सके । इससे यही अभेद कवच धारण करने वाला पुरुषसिंह यूधपति मतवार हाथीके समान हम लोगोंका सेनापति बनाया जावे, यही मेरा मत है ।

भीमसेन बोले, हे राजेन्द्र ! सिद्ध और ऋषियों जिसकी भीष्मके वधके निमित्त उत्पन्न हुआ वर्णन किया है । मनुष्य लाग सग्राम भूमिमें दिव्य अस्त्रोंके चलानवाले जिस पुरुष सिंहके महात्माको रामके समान देखे, युद्धमें सावधान, रथमें स्थित, उस द्रुपदपुत्र शिखण्डीको शस्त्रसे मार सके, ऐसा कोई पुरुष मैं नहीं देखता हूँ । हे महाराज ! वह आर पराक्रमसे युक्त शिखण्डीके अतिरिक्त और कोई पुरुष भी है रथ युद्धमें महाव्रत करनेवाले भीष्मका कहीं मार सकता । इससे मेरे विचारमें वही शिखण्डी हम लोगोंका सेनापति बनाया जावे ।

युधिष्ठिर बोले हे तात ! धर्मात्मा इस इस सम्पूर्ण जगत्के सार असार बलावल और

आभप्रायकी जानते हैं । इससे दाशार्ह कृष्ण जिसकी कहेंगे, सब शास्त्रोंका जाननेवाला होंगे अथवा न होंगे, बालक हो, चाहे बूढ़ा हो ; वह निश्चय हमारा सेनापति बनाया जावेगा । हे तात ! कृष्ण ही हम लोगोंके जय और पराजयके मूल है, हम लोगोंका प्राण, राज्य, भले-बुरे कर्म, सुख-दुःख इनहींमें प्रतिष्ठित है ; हम लोगोंके यहो धाता और विधाता है, इससे हमलोगोंको सिद्धि भी इनही से प्रतिष्ठित है, दाशार्ह कृष्ण जिसका कहेंगे, वहो हमारा सेनापति बनेगा । अब रात्रिका समय उपस्थित हुआ चाहता है, इसी समय बोलनेवालोंमें अष्ट कृष्ण उस पुरुषका नाम वर्णन करें, उसके अनन्तर हम लोग उस पुरुषके वशवर्त्ता होकर सेनापति, शस्त्र तथा सेनाके सब मङ्गल कर्मोंको सिद्ध करके युद्धके निमित्त यात्रा करेंगे ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, बुद्धिमान् धर्मराजके वचन सुनकर पुण्डरीकाक्ष जनार्दन कृष्ण अर्जुन के मुखका देखकर उनकी मतकी अनुमादन करके युधिष्ठिरसे बोले, महाराज ! तुमने जिन सब पराक्रमी महारथ योद्धाओंको अपनी सेनाका नायक बनाया है ; उसमें मैं भी सहमत हूँ, क्योंकि ये सब लोग तुम्हारे शत्रुओंके संहार करनेमें समर्थ हैं । लोभसे युक्त पापी धृतराष्ट्र-पुत्रोंकी बात ही क्या है । ये लोग युद्धमें इन्द्रकी भी भयभीत कर सकते हैं । हे महाबाहो ! तुम्हारे प्रियकाण्डेका साधन करनेके निमित्त मैं वहापर भी बद्धत यत्न किया है ; इससे धर्मके समीपमें भी मैं ऋणसे रहित जागया हूँ, दाप देनेवाला कोई पुरुष भी हम लोगोंकी निन्दा न कर सकेगा । नीच-वृत्ति नृप दुष्टोद्योग अपनेको सब शस्त्रोंसे युक्त समझता है और आतुर जाकर भी अपनेका जल-पान भ्रमभ्रम करता है ; इससे शीघ्र ही सेना सजाने के निमित्त यात्रा कीजिये, शीघ्र बिना मरे यह किसी प्रकारसे भी तुम्हारे सामने

न होगा । अर्जुन, क्रोधो भीमसेन, युयुधान, शत्रुनाशन धृष्टद्युम्न, अभिमन्यु, द्रौपदीके पाँचों पुत्र, विराट, द्रुपद और सेनाके स्वामी दूसरे सब राजाओंको देखकर धृतराष्ट्रके पुत्र लोग कभी सम्म, खुमें न खड़े हो सकेंगे, हम लोगोंकी यह तेजस्विनी बलवती सेना युद्धमें अवश्य ही दुष्टोद्योगकी सेनाका नाश करेगी ।

कृष्णके ऐसा कहने पर सम्पूर्ण राजा लोग अत्यन्त ही आनन्दित हुए । सबके हर्षयुक्त होनेपर उन लोगोंके बीच बड़ी भारी हर्षसे भरी हुई ध्वनि सुनाई पड़ी । आतुर होकर उधर उधर दौड़नेवाले कहने लगे :— “रथ चलाओ, सेना सजाओ” पुरुषोंका सिंह नाद और हाथी घोड़ोंका शब्द होने लगा, शङ्ख, भेरी, नगाड़े आदि जुभाज बाजोंके बजनेसे बड़ा भारी शब्द उत्पन्न हुआ । युद्धके निमित्त प्रस्थान करनेवाली वह पाण्डवोंकी सेना जलसे भरी हुई गङ्गाकी भाँति दिखाई देने लगी । सेनाके अगाड़ी भीमसेन, कवचधारी नकुल, सहदेव, अभिमन्यु, द्रौपदीके पाँचों पुत्र और धृष्टद्युम्न हुए और प्रभद्रक तथा पाञ्चाल-योद्धा लोग भीमसेनकी आग करके चले । अनन्तर जैसे अभावस और पूर्णमासीको समुद्रकी तरङ्ग उठता है, वैसे ही उस प्रस्थान करनेवाली सेनाके महा कालाहलसे युक्त शब्द आकाशमण्डलका स्पर्श करने लगा । शत्रुओंके बलका नाश करनेवाले सब वीर यात्रा लागे अत्यन्त ही प्रसन्न थे । उन लोगोंके बीचसे राजा युधिष्ठिरन शकट, वरुण आद्य, मयारो, खजाना, गज, यन्त्र, आद्युष्यदका जाननयान् अस्त्राचार्यक, पारिवारिक लोग और अमार, निर्वल और कम सेनाका संग्रह करके गमन किया । द्रुपदनिन्दित मलयान्दकी द्रौपदी दास दानिदोंसे युक्त होकर मित्योके भद्र विराट् मगरकः कोट आदि । हे राजन् ! पाण्डवोंके युधिष्ठिरन एक मालिके रहन शम्भो और धनक

स्थानोंमें गमन करनेवाली तथा रक्षा करने-
वाली सेनासे धन और स्त्रियोंकी रक्षाका
विधान किया तथा ब्राह्मणोंकी गऊ, सुवर्ण,
रत्न आदि दान करते और स्तुति सुनते हुए
सुवर्ण और मणियोंसे भूषित रथपर चढ़के
सेनाके सङ्ग चले। केकय-देशीय पाँचों राजपुत्र,
धृष्टकेतु, काशिराजपुत्र, अग्निमान्, वसुदान,
अपराजित, शिखण्डी आदि वीर लोग राजा
युधिष्ठिरकी चारों ओरसे घेरकर उनका अनु-
गमन करते हुए चले। विराट, धृष्टद्युम्न,
सुधर्मा, कुन्तिभोज, और धृष्टद्युम्नके पुत्र लोग
चालीस हजार रथ, दो लाख घोड़े साठ हजार
हाथी और दो लाख पैदल लेकर, पोछे पोछे
चले। अनाघृष्टि, चेकितान, चेदिराज और
सात्यकी ये लोग अर्जुनके सहित कृष्णको घेरकर
चले। इस प्रकारसे व्यूह बनाकर शत्रुनाशन
पाण्डव लोग कुरुक्षेत्रमें पहुँचकर गङ्गेनेवाली
वृषभोंके समूहकी भाँति दिखाई देने लगे।
वह शत्रुनाशन पुरुषसिंह कुरुक्षेत्रमें जाकर
अपने अपने शङ्ख बजाने लगे और कृष्ण तथा
अर्जुनने भी अपने अपने शङ्ख बजाये। वज्रके
समान पाञ्चजन्य शङ्खका शब्द सुनकर सब
सैनिक-पुरुषोंके रीबें खड़े हो गये। इसके
अनन्तर सम्पूर्ण तेजस्त्रियोंके सिंहनादका शब्द
शङ्ख नगाड़े आदि जभाज वाजोंका शब्द समु-
द्रमें गूँजने लगा। अनन्तर राजा युधिष्ठिरने
तथा और काठसे युक्त समतल और सुन्दर
भूमिमें अपनी सेना ठहरायी, महा बुद्धिमान्
राजा युधिष्ठिरने प्रशान, देवालय, मूर्ध्निर्घोंके
आश्रम, तोर्य और अन्दिरोको छोड़कर मनको
हरनेवाली सुन्दर उपजाऊ और पवित्रभूमिमें
अपनी सेनाका निवास स्थान ठहराया। इसके
अनन्तर वाहन आदिको सुखसे विश्राम करा-
कर फिर उठके सैकड़ों, सहस्रों, राजाओंके
सहित प्रस्थान किया। इधर अर्जुनके सहित
कृष्ण दुर्योधनके सैकड़ों सैनिक पुरुषोंकी

हटाते हुए चारों ओर घूमने लगे। द्रुपदन्त
धृष्टद्युम्न, सात्यकी, महा पराक्रमी युयुधा-
इन लोगोंने शिविरका स्थान निश्चित किया
हे भारत। श्रीकृष्णचन्द्रने 'कुरुक्षेत्रमें' हिरण-
वती-नाम्नी सुन्दर जलसे भरी झई कड़ई और
कीचड़से रहित पवित्र तोर्यको देखकर व-
पर जलके निमित्त परिखा स्थापित की। श्री
उसकी रक्षाके निमित्त अदृश्य रूपसे प्रव-
कर दिया। महात्मा पाण्डवोंके शिवि-
वननेके विषयमें जैसा नियम था, श्रीकृष्ण
राजाओंके निमित्त वैसा ही शिविर तैयार क-
वाया। हे राजेन्द्र! वहाँपर राजाओं-
लकड़ी और अन्न पानसे युक्त सैकड़ों सहस्रों
महामूल्यवान् सब शिविर विमानकी भाँति
पृथ्वीपर दिखाई देने लगे। वहाँपर नियमित
वेतनका पानेवाली सैकड़ों शिल्पी और शास्त्रकी
जाननेवाली वैद्य उपस्थित थे। राजा युधिष्ठिर
सब शिविरोंमें महा यत्नसे ढेरके ढेर धनुष,
धनुषके रीढ़े, वर्म, शस्त्र, तूणीरें, बाण, नाराव,
तोमर, परशु और मधु, घृत, जल, भक्षण
करनेके योग्य पेशु, उत्तम तैयार, अग्नि आदि
सब आवश्यक वस्तुओंको स्थापित किया।
वहाँपर लोहेके वर्मसे युक्त घाटे और धीसेके
सहित सैकड़ों, सहस्रों हाथी पर्वतके समान
दिखाई देने लगे। हे भारत! पाण्डवोंकी
कुरुक्षेत्रमें पहुँचा हुआ जानकर भित्त राजा
लोग बल और सेनासे युक्त होकर उसी स्थान
पर गये। ब्रह्मचर्यके अनुष्ठान और सोमपात्र
करनेवाली तथा ब्राह्मणोंकी वज्रतर्पण देने
वाले राजा लोग पाण्डवोंके विजयके निमित्त
वहाँपर जा पहुँचे।

१५१ अध्याय समाप्त।

राजा जनमेजय वाली, हे महामुनि। श्री
कृष्ण, पुत्रके सहित विराट, द्रुपद, केकय,
और यदुवंशी आदि सैकड़ों राजाओंसे युक्त,

देवताओंमें इन्द्रके समान महारथ वीरोसे रक्षित, राजा युधिष्ठिरका कुरुक्षेत्रमें पङ्कचाङ्गना सुनकर, राजा दुर्योधनने ध्याकाये किया था ? उस महा सेनाके कुरुक्षेत्रमें उपस्थित हानपर जो जो वृत्तान्त हुआ था, वह विस्तारपूर्वक मुझसे कहिये। पाण्डवलोग औकृष्ण, विराट, द्रुपद, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, सात्यकी और अत्यन्त ही पराक्रमी महारथ वीरोसे युक्त होकर देवताओंके सहित इन्द्रका भी भयभीत कर सकते थे। हे महामुनि ! इससे कोरव पाण्डवोंमें जा जा वृत्तान्त हुआ था, वह तुम विस्तारपूर्वक वर्णन करो।

और्वशम्पायन मुनि बालि, औकृष्णके कुरुसभासे चले जानपर राजा दुर्योधन कण, दुर्योधन और शकुनसे यह वचन बालि, 'हे राजेन्द्र ! कृष्ण जब यह सोनराश हाकर पाण्डवोंके समापमें गये है, तब वह अवश्य ही काचमें भरके पाण्डवोंका उत्ताजित करेगा, इसमें कुछ भी सन्देह नही है। पाण्डवोंका साहस हम लोगोंका युद्ध है, यह कृष्णकी शक्त ही आभूतापा है। भोम-अर्जुन भा कृष्णके मतमें अक्षत है, और युधाष्ठिर, भाम अर्जुनके अत्यन्त ही वशमें है। पाण्डव वह भाइयोंके साहस से अपमानित किये गये थे, मेन आजकल शत्रुता की था, वह विराट और द्रुपद भी कृष्णके वशमें होकर युधिष्ठिरकी सेनाके नायक हैं; इससे अब राव की खड़ा करनेवाला हाथार स ग्राम उपास्यत हागा। इससे तुम ग आनन्दका बाढ़कर युद्धके वाग्य सब वस्तुका इकट्ठा करो। कुरुक्षेत्रमें बहुत दूरतक युद्धसे प्रयत्न करने जल, काठ, बहुतसी भाजन करनेका धनु, बहुतसे मत्त और ध्वजा पतका युक्त सेकड़ा सहसा शीघ्र तयार कराया। इसके बाद सेनाके गमन करने वाग्य भागोंका समान तथा साफ करा दो।

ही गठारा देता कि कलर - युद्ध

निमित्त यात्रा की जायगी।' वह सब राजा लोग प्रसन्न होकर बोले, "ऐसा ही होगा। ऐसी प्रतिज्ञा करके दूसरे दिन राजाओंके निवासके निमित्त सब कार्यको समाप्त किया। अनन्तर इकट्ठे हुए सब राजा लोग राज-शासनको सुनकर उठे, मणि सुवर्णसे भूषित चन्दन-चर्चित परिषदके समान अपनी भुजाकी धीरे धीरे सश करने लगे और अपने कर-कमलासे वस्त्र आभूषण पहिरने लगे। मुख्य मुख्य रथी लोग रथ, घुड़सवार घोड़े और हाथियोंको शिष्टाईमें निपुण पुरुष हाथियोंका सजाने लगे। उसके अनन्तर वीरोने सुवर्ण-भूषित वर्म और सब शस्त्रोंकी धारण किया। पैदल चलनेवाले वीरोने भी अपने शरीरपर कई प्रकारके शस्त्र और कवचोंकी धारण किया। हे भारत ! अत्यन्त ही प्रसन्न चित्तसे वीर पुरुषोंके इकट्ठे होनेपर वह नगर उत्सवके समयकी भाँति मालूम हान लगा। हे राजन् ! उस समय वीर यादवोंका चन्द्रमाके उदय होनेपर कुरुराजकुपो समुद्र यथार्थमें समुद्रकी भाँति दिखाई देने लगा। उस महा समुद्रन सब सेना जल आर तरङ्ग रूप हुई। रथ, घोड़े और हाथी—मगर, मच्छ और बड़ियाल रूपसे दोख पड़ते थे। शख, भेरी और नगाड़ तथा घोसोंका शब्द समुद्रकी लहरके समान बाध होने लगा : खजाना रत्नके स्थानमें बाध होता था : विशिष्ट भूषण यहाँ तथा वन शस्त्र समुद्रके फेनके समान दिखाई देने लगे, जहाँ मान्दराका समुद्र समुद्रके तीर पर रहनेवाले पर्वत और उस सेनाके चलनेका मार्ग बदलपा देखता था।

१५- अष्टमः समाप्तः ।

अष्टमः समाप्तः । राजा युधिष्ठिरके दुर्योधनके परिषद हुई हुए वचनका समाप्त करने पर उनके दृष्टि, हे राजा ! युद्ध

धनने किस प्रकारसे इस वचनको कहा था ? और इस उपस्थित समयमें कैसे कार्यका अनुष्ठान करनेसे मैं धर्म और अर्थसे पतित न होजंगा । हे महाबाहो । तुम दुर्योधन, कर्ण, शकुनि और भाइयोंके सहित मेरे अभिप्रायको भी जानते हो । हे महाबुद्धिमन् ! तुमने विदुर, भीष्म और माता कुन्ती-देवोंके अभिप्रायका अच्छे प्रकारसे सुना है । इससे तुम उन सब बातोंका भलो भातिसे विचार करके जिस कार्यका करनेसे मेरा मङ्गल होवे, वंसी ही युक्ति भुक्तसे वर्णन करो ।

श्रीकृष्णचन्द्र राजा युधिष्ठिरके धर्म और अर्थसे भरे हुए ऐसे वचन सुनकर बादल और नगाड़के समान गंभीर शब्दसे यह वचन बोले, तुमन जा धर्म अथसे युक्त हित वचनोंका कहा था, नाच बुद्धि दुर्योधनन उनका नहीं ग्रहण किया उस दुष्टात्मान भीष्म, विदुर मर तथा किसोंके वचनाका भी नहीं स्वीकार किया । वह सबका बातोंको उलझन करके इच्छाके अनुसार कार्य करता है । वह दुष्टबुद्धि न धर्मकी इच्छा करता है और न यशका अभिलाषा करता है, वह कर्मका आसरा करके मैंने 'सबका जोत लिया' अपन मनमें ऐसा ही समझता है । उस पापबुद्धि दुर्योधनन सुभक्तका भी कौद करनको आज्ञा दी थी ; पर तु उसको वह अभिलाषा सफल नहीं हुई । उस विषयमें भीष्म, द्रुपद आदि किसीन भी युक्तसे पूरत वचनाका नहीं कहा था । एक मात्र विदुरके आतिरक्त आर सब लाग उसका अनुगामी हुए थे । नाच बुद्धि शकुनि, कर्ण और दुःशासनने तुम्हारे विषयमें अनक प्रकारके बुर वचनाका कहा था । दुर्योधनन जिन सब वचनोंका कहा है, उनके वर्णन करनका कुछ भी आवश्यकता नहीं है, उसका सक्षेप मर्म यहो है, कि वह तुम्हारा उचित रीतिसे राज्य न देगा और न तुम्हारे संग उत्तम व्यवहार

करेगा । इससे तुम्हारी सेनामें इकट्ठे इन सब राजाओंमें जो कुछ पाप तथा बुरे कर्म नहीं हुए हैं ; वह सब उन नीच बुद्धि दुर्योधनमें विद्यमाय हैं । हम लोग भी लक्ष्मोंको त्याग कर किसी प्रकार भी कौरवोंके संग शान्ति नहीं स्थापित कर सकते ; इससे अब ऐसे अवस्थामें युद्ध ही करना उचित है ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे भारत । श्रीकृष्णचन्द्रके इस वचनको सुनकर सम्पूर्ण राजा लोग कुछ भी न कहके महाराज युधिष्ठिरके सुंहकी ओर देखने लगे । तब राजा युधिष्ठिरन सब राजाओंके अभिप्रायको जान कर भीष्म, अर्जुन और नकुल, सहदेवके संग विचार करके युद्धकी तयारी करनको आज्ञा दी । अनन्तर पाण्डवोंकी सेनामें महा धार कालाहल दान लगा । युद्धके तयारीको आज्ञाका सुनकर सेनाके पुरुष अत्यन्त ही आनन्दित और प्रसन्न हुए । परन्तु धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर अवश्य पुरुषोंके वधका देखनेके निमित्त लक्ष्मी सास लेकर भीष्म अर्जुनसे यह वचन बोले, जिसका त्यागनेके निमित्त मैं वनवास स्वीकार करके अत्यन्त क्लेश सहन किया था, वही महा अनर्थ प्रयत्नके क्रमसे हम लागामें उपस्थित होरहा है । इस विषयमें हम लागान जो यत्न किया, वह निष्फल हुआ और कुछ भी यत्न न करनपर भी यह महा भयङ्कर संग्राम उपस्थित हुआ है, वन्दन करन याग्य माननीय पुरुषोंके संग कैसे युद्ध हा सकता है ? ब्रह्म गुरु आदि पुरुषोंके वध करनसे ही मेरे किस प्रकारसे विजय होगा ?

धर्मराज युधिष्ठिरके वचनका सुनकर परन्तप अर्जुन श्रीकृष्णके कहे हुए सब वचना का स्मरण कराके यह वचन बोले, हे राजा ! देवकोनन्दन कृष्णन कुन्ती और विदुरके कहे हुए जिन सब वचनोंका सुनाया, वह सम्पूर्ण रूपसे तुमन अनवग्रह किया है, सुभक्त यह अनवग्रह

बोध होता है, कि वह लोग किसी प्रकारसे भी अधर्मसे युक्त वचन न कहेंगे. विशेष करके विना युद्ध किये हम लोगोंको निवृत्त होना उचित नहीं है। अनन्तर राजा युधिष्ठिरने श्रीकृष्ण और अर्जुनके वचनको सुनकर हंसके कहा “यहो ठीक है” ऐसा कहनसे उन लोगोंके वचनको पुष्टता होगई। है महाराज। इसके अनन्तर पाण्डवान युद्ध करनेके निमित्त सङ्कल्प करके सेनाके पुरुषोंके सहित परम सुखसे निवास करके रात बिताई।

१५३ अ ध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि वाली, है भारत। अनन्तर रातके बोलनपर राजा दुर्योधनने अपनी ग्यारह अर्क्षीहिणी सेनाको नियमके अनुसार विभाग किया और मनुष्य, हाथी घाड़ें रथ आदिका उत्तम, मत्स्यमन्त्राचार करके आगे पीछे और सेनाके वाचन रहनके निमित्त आज्ञा दे दो। अनुकर्ष, तूणोर, वस्तुथ (रथको टकनेके निमित्त व्याघ्र आदिके चमड़े) तामर, उपासग, शक्ति, निषग, ध्वजा, पताका, क्रांष्ट, धनुष, तामर, कई प्रकारके रस्से, फासी, तेल, गुड़, बालू, सर्पसे युक्त घड़े, धूपके चूर्ण, घण्ट-फलक (घण्टासे युक्त चौखे शस्त्र) लोहकी गाली, जलसे युक्त पत्थर, शूलसे युक्त भिन्द-पाल, माम, सुन्नर, काटेसे युक्त दण्ड, लागल, विषादग्ध तामर, शूष, पिठक, परगु, अङ्गुशके तामर, दण्डसे युक्त करपत्र, वासी, छ्वादन, (लाहके काट) बाघ आदिक चमड़ेसे षेर हुए रथ, माला कुटार आदि यज्ञतसे शस्त्र, तेलसे युक्त वस्त्र (जिसका भक्ष प्रायपर लगाव जाता है) प्रायका शाधनके धारसे पुराना हत आदि अनेक प्रकारका युद्धके यान्त्य नामग्रा और अनेक सानक औरोंक रथ तथा रथसे भाषित होनेपर षेर सेना जलता जल आगके समान दोहन करी

कवच धारण करनेवाले, उत्तम शिक्षा तथा घोड़ोंके तत्वोंको जाननेवाले वीर लोग सारथी-के कार्यपर नियुक्त हुए। रथमें उत्तम जाति-के चार चार घोड़े जाते गये; अशुभ लक्षणोंके निवारणके वास्ते यन्त्र, औषधि: घोड़ोंके भूषित करनेके निमित्त घण्टा, माला, मोतियोंकी लड़ी, ध्वज, पताका, सुक्रुट, भूषण, तरवार, पट्टिश, प्रास और एक एक सौ धनुष रथोंमें रखे गये। रथके अगाड़ीके दानो घाड़ाके निमित्त एक सारथी और रथके चक्रोंके पीछे दोनों घोड़ोंके निमित्त दो सारथी नियुक्त किये गये। ऐसे ही रथके ऊपर दो उत्तम सारथी, रथी और घोड़ोंके तत्वोंको जाननेवाले वीर पुरुषोंसे रचित सुवर्णकी मालासे युक्त सहस्री रथ चारों ओर दोखने लगें। रथहोके अनुसार सुवर्णके भूषणोंसे भूषित किये गये, हाथियोंके होदेमें सात सात वीर पुरुषोंके चढ़ने पर ऐसा शोभा हुई जैसे रत्नोंके सहित पर्वत शिखरमान होता है। इन सात वीरोंमें दो अङ्गुश ग्रहण करनेवाले, दो धनुषधारी, दो तरवार चलाने वाले और एक एक शक्ति तथा त्रिशूल चलाने वाले वीर योद्धा रखे गये। है महाराज। राजा दुर्योधनकी वह सेना अनेक प्रकारके वर्मा और तूणोरसे युक्त तथा विचित्र रूपके कवच, पताका, और उत्तम भूषणोंसे भूषित होकर मतवार हाथियोंके मुँहसे षेर गइ। विचित्र रूपके कवच, पताका, उत्तम भूषणसे युक्त अस्त्रधारोंके सहित, मत्स्य दण्डोंसे राहत, उत्तम शिक्षाके युक्त, दश दश हजार तथा लाख लाख घोड़ोंका समूह अस्त्रधारोंके वशमें चलने लगा, नाना प्रकारके भूषण, शस्त्र सुवर्णकी माला और यज्ञतसे युक्त हाकर अमानित पैदल सैन्यवाले चारों ओर मजबूत खड़े हुए। एक एक रथ पर दश दश हाथी, एक एक हाथी पर दश दश घोड़े, और एक एक घोड़ेके निमित्त दश दश पैदल सैन्यवाले

वीर याज्ञा पादरक्षक बनाये गए । रथसे पचास गुने हाथी, हाथीसे सौगुणे घोड़े, और घोड़ेसे सौगुणे मनुष्य रक्खे गये । इसके अतिरिक्त किन्न-भिन्न सेना फिरसे सजाई जाने लगी, पांचसौ रथ और पाच सौ हाथियों पर एक सेना, दश सेनाओं पर एक पूतना, दश पूतनाओं पर एक बाहिनी रक्खी गई, और सेना बाहिनी, पूतना, ध्वजिनो, चमू, बल्लथिनी आदिके क्रमसे एक अर्धोहिणी कही गई । बुद्धिमान् राजा दुर्योधनने इसी प्रकारसे सेनाके व्यूहकी रचना की । दोनों ओरको सम्पूर्ण सेना अठारह, जूई, उदमेंसे पाण्डवोंकी सात अर्धोहिणी और कीरवोंकी ग्यारह अर्धोहिणी सेना थी । प्रचपन मनुष्योंको एक पत्ति, तीन पत्तियोंका एक सेनामुख ब्राह्मण हाता है और तीन गुल्मोंसे एक गण कहा जाता है, दुर्योधनको सेनाके बीच ऐसे लाखों गण युद्धके निमित्त हर्षित और उत्साहित होकर उपस्थित हुए । महाबाहु राजा दुर्योधनने अर्द्ध प्रकारसे विचार पूर्वक पराक्रमो बुद्धिमान् मनुष्योंकी अपनी सेनाका सेनापति बनाया । कृपाचार्य, द्राणाचार्य, शल्य, जयद्रथ, काश्याजराज, सुदक्षिण, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, कर्ण, भूरिश्रवा, शकुनि और बाह्लिक,—इन सब राजाओंको नियमके अनुसार पृथक् पृथक् अर्धोहिणीका नायक बनाकर सबका यथा उचित सम्मान किया और प्रतिदिन तथा हर घड़ी अपने सम्मुख इन लोगोंकी अनेक प्रकारसे पूजा करने लगे । हे राजन् ! इसी प्रकारके नियममें बद्ध होकर वह सब पराक्रमी राजा और उनके प्रह्वरक्षक वीर योद्धा लोग, राजा, दुर्योधनके प्रिय कार्यके साधन करनेके निमित्त उत्साही हुए ।

१५४ अध्याय समाप्त ।

वैशम्पायन सुनि बोले, अनन्तर राजा दुर्योधन सब राजाओंके सङ्ग मिलकर शान्तनुवन्दन भोगसे यह वचन बोले, हे आपतामह ! सेनापतिके बिना अत्यन्त बड़ी सेना भी युद्धमें पहुँच कर चौाट्योंके पृथक् रूपसे गमन करनेके अनुसार शत्रुओंसे पीछित होकर तितर बितर हाजाती है, क्योंकि दो पुरुषोंकी बुद्धि कभी समान नहीं होती । हे महाबुद्धिमन्त ! सुना जाता है, कि ब्राह्मणोंने कुश उखाड़ कर महातेजस्वी हैहयवाशियोंके विरुद्ध युद्धके निमित्त यात्रा की थी ; उस समयमें वैश्य और शूद्र लोग भी उनके अनुगामोद्भूत थे । इसी प्रकारसे एक और क्षत्रिय और दूसरी आरतीनों वंश थे, अनन्तर युद्धके आरम्भ हानपर ब्राह्मण आरतीनों वंशोंका बार बार पराजय होना लगा और क्षत्रियानें एक पंच हाकर भी इस तीन वंशोंका जात लिया । तब उन ब्राह्मणों का वंश इसका कारण पूछा और धर्मात्म ब्राह्मणोंने भी उन लोगोंसे कहा यथायुक्त । दया, कि हम लोग युद्धमें एक महाबुद्धिमान् मनुष्यके वचनके अनुसार चलते हैं और आत्म सब काड़े अपना अपनी बुद्धिके अनुसार हाकर कार्य करते हैं । हे आपतामह ! इस अनन्तर उन ब्राह्मणों ने जातवाले ए महा पराक्रमी और बुद्धिमान् ब्राह्मणोंका अपना सेनापति बनाया और इससे क्षत्रियोंका युद्ध होता था । ऐसा ही जा पुरुष नातस युद्ध पराक्रमी, हर्षिता, पाप राहत किसी पुरुष अपना सेनापति बनाते हैं ; वह शत्रुओंको जीत लेते हैं । आप शूराचार्यके समानोचित, सब शस्त्रोंका जाननेवाले और धर्मात्मा हैं ; विशेष करके हमारे हितकी आभला करनेवाले हैं । इससे जस तेजस्वी पेंदाय आदित्य और ओषधियोंके चतुरमा, यक्ष कुवेर, देवताओंमें इन्द्र, पर्वतोंमें सुमेरु, वसु अग्नि मुख्य नायक हैं, उसी प्रकारसे तुम

लोगोंके प्रधान सेनापति बने। क्योंकि इन्द्रसे रचित देवताओंकी भांति हम लोग तुम्हारे वाङ्मयसे रचित होकर देवताओंसे भी न जीतने योग्य होवेंगे ; इनमें कुछ भी सन्देह नहीं है। तुम देवताओंमें अग्रणी स्वामि-कार्तिककी भांति हम लोगोंके आगे आगे चलो हम लोग महा-वृषभके पीछे बड़ोंकी भांति तुम्हारे पीछे गमन करेंगे।

भीष्म बोले, हे महाबाहो ! तुम जो कुछ वचन कहते हो, वह सब ठीक है, परन्तु मेरे पक्षमें जैसे तुम लोग हो, वैसे ही पाण्डव भी हैं। हे राजेन्द्र ! इससे मुझे उन लोगोंकी निमित्त भी कल्याणके वचन कहने पड़ेंगे और अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार तुम्हारे निमित्त युद्ध भी करना पड़ेगा। उस एक मात्र अर्जुनके अतिरिक्त मैं इस पृथ्वीमें ऐसा कोई वीर योद्धा भी नहीं देखता हूँ, जो मेरे समान हो सके। महा-बुद्धिमान् पाण्डुपुत्र अर्जुन अनेक दिव्य अस्त्रोंको जानता है, इससे वह युद्धमें मेरे समान हो सकता है ; परन्तु वह रणभूमिमें प्रकाशित होकर कभी मेरे सङ्ग युद्ध न कर सकेगा। मैं अपने शस्त्रोंकी बलकी सहायतासे जग भरमें देवता, गन्धर्व और राक्षसोंकी सहित दम सम्पूर्ण जगत्का मनुष्यहीन कर सकता हूँ। परन्तु मैं प्रजानायक। पाण्डुपुत्रोंको मैं किसी प्रकारसे नष्ट करनेमें उत्साही न होऊंगा। इनसे मैं अपने शस्त्रोंका चलाकर प्रातःदिन दस हजार घोर यातायातकी मारूंगा। रणभूमिमें यदि पाण्डवों का वह लोग सुने न मारेगा, तो इसी प्रकारसे उन लोगोंकी सम्पूर्ण घोर यातायातका नाश कर दूंगा। हे राजा ! मैं दूसरे एक भयसे इच्छाके अन्तर्गत तुम्हारा सेना-पात तोड़ूंगा ; वह नियम यह है—घरों परसे सारे हुए करे शय्या में प्रथम युद्ध करने, आकर घर से निकलकर युद्धमें मेरे बाद निकलेंगे।

कर्ण बोले, हे राजा ! गङ्गानन्दन भीष्मके जीते रहते, मैं किसी प्रकारसे भी युद्ध न करूंगा, भीष्मके मारे जानेपर गाण्डीवधारी अर्जुनकी सङ्ग युद्ध करूंगा।

श्रीनैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर राजा दुर्योधनने द्रोणियोंकी वज्रतसी दक्षिणा देकर भीष्मकी विधिपूर्वक सेनापति बनाया। अनन्तर राजाको आज्ञा पाकर बाजे वजानेवाली पुरुष अनेक प्रकारके बाजे शङ्ख भेरी आदि वजाने लगे, वीरोंके सिंहनाद और हाथी घोड़ोंके शब्द सुनाई देने लगे। विना वादल-के रुधिरकी वर्षा होकर पृथ्वी कीचड़से युक्त होगई। अकस्मान् भूकम्प और हाथियोंकी भयङ्कर चिद्वाह सम्पूर्ण वीर योद्धाओंकी अन्तःकरणोंकी पीड़ित करने लगी। आकाशसे देव-वाणी और उल्कापात होने लगा। मियारोंके झण्ड भी बारम्बार महा घोर शब्द करने लगे। हे राजा ! राजा दुर्योधनने जब भीष्मकी सेनापति बनाया, तब इसी प्रकारसे सैकड़ों भयङ्कर उत्पात देख पड़े थे।

शत्रुनाशन शान्तनुपुत्र भीष्मकी सेनापति बनानेके अनन्तर राजा दुर्योधनने अक गौ और धन देकर द्रोणियोंसे स्वस्तिवाचन कराया और उनके आशीर्वादसे वर्धित होकर मै निक-पुरुषोंके सङ्ग यात्रा की और भादव्योंके सहित इस महासेनाका लेकर दक्षिणमें आ-पहुंचे। अनन्तर कर्णके सङ्ग उत्तरे सम्पूर्ण दक्षिणमें धूमकर समान भूमिमें शिवर स्थापित कराया। अनेक दण्ड काटके युद्ध-उर्वरा भूमिमें स्थापित हुए वे सब शिवर शान्तनुपुत्रकी भांति प्रयागत होने लगे।

१५५ अष्टमोऽध्यायः समाप्तः ।

राजा दुर्योधनने धर्म, —द्रोणके दृष्टान्त, समाने पृथ्वी, गङ्गावत्यादि समुद्र, अमरनाम १५५७ अष्टमोऽध्यायः समाप्तः ।

सूर्य, वाणोंकी वर्षासे इन्द्रकी भांति शत्रुओंके संहार करनेवाले, सब राजाओंमें अग्रणी, शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ, महात्मा, गंगानन्दन, पिता-मह भोष्मकी महाभयङ्कर रीवेंकी खड़े करने-वाले-यज्ञमें सदासे दीक्षित सुनकर सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महाबाहु युधिष्ठिर इस विषयमें क्या बोले, भीम तथा अर्जुनहीने क्या कहा और कृष्णहीने क्या उत्तर दिया था ?

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, धर्म अर्थकी जाननेवाले, बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ, महा बुद्धिमान राजा युधिष्ठिर भाइयोंके सहित कृष्णकी बुलाकर मोठे वचनसे ऐसा कहने लगे, तुम लोग तैयार तथा सज्जित होकर सावधानीसे सब सेनामें भ्रमण करो। पहिले ही पितामह भोष्मके सङ्ग तुम लोगाका युद्ध होगा, इससे मेरी सात अर्धहिंगी सेनामें सात सेनापति नियत करो।

श्रीकृष्ण बोले, हे भरतर्षभ ! इस उपस्थित समयमें आपकी समान पुरुषकी जैसा कहना उचित है, आपने वैसे ही अर्थसे भरे हुए वचन कहे हैं। हे महाबाहो ! यह सम्पूर्ण रूपसे हम लोगोंकी उत्तम बोध होता है, इससे शीघ्र इस कर्तव्य-कर्मका अनुष्ठान होना उचित है, अपनी सेनामें सात पुरुषोंकी सेनाका नायक बनाइये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर राजा युधिष्ठिरने द्रुपद, विराट, सात्यकि, धृष्टद्युम्न, धृष्टकेतु, और भगधराज सहदेव,—युद्धकी अभिलाषा करनेवाले इन सात महात्मा वीरोंकी बुलाकर बिधि पूर्वक अपनी सेनाका नायक बनाया। जो यज्ञकी अग्निसे द्रोणाचार्यके वधके निमित्त उत्पन्न हुए थे, उस धृष्टद्युम्नकी सम्पूर्ण सेनाका सेनापति बनाया और इन सबके ऊपर अर्जुनकी नियुक्ति किया। बलदेवके भाई महाबाहु श्रीमान् कृष्ण अर्जुनके भी नायक तथा उनके सारथी बने। हे महाराज !

नोलाम्बरधारी, कैलास पर्वतके शिखरके समान, मतवारे लाल नेत्रसे युक्त, सिंहके समान चलनेवाले महाबाहु श्रीमान् हलधारी बलदेव जीने इस सब प्राणियोंका नाश करने वाले उपस्थित युद्धकी शीघ्र ही होता हुआ जन के देवतासे रक्षित इन्द्रके समान अक्रूर, उद्व, गद, शाम्ब, प्रद्युम्न और चासुदेण आदि बलसे युक्त मुख्य मुख्य यदुवंशियोंसे रक्षित होकर पाण्डवोंके समीपमें आकर उपस्थित हुए। अनन्तर राजा युधिष्ठिरने अपने हाथोंसे उनके करतलकी स्पर्श किया और कृष्ण आदि सब पुरुषोंने उन्हें प्रणाम किया। शत्रुनाशन बल राम अवस्थामें बड़े द्रुपद और विराटकी प्रणाम करके युधिष्ठिरके सहित आसनपर बैठे। अनन्तर सब राजाओंके चारों ओर बैठ जानेपर रीहिणीनन्दन बलदेवजी श्रीकृष्णके मुखकी ओर देखकर यह वचन बोले,—इस महा भयङ्कर युद्धमें प्राणियोंका नाश होगा; मैं बोध करता हूँ, देवकी ऐसी हो इच्छा है, कोई इसकी किसी प्रकारसे नहीं रोक सकेगा। इस समयमें मैं यही चाहता हूँ, कि तुमको सहृद पुरुषोंके सहित इस युद्धसे उत्तीर्ण, अरोग तथा घावसे रहित देखूँ। पृथ्वीके सम्पूर्ण चतुर्विध लोग कालकी वशमें जाके इस युद्धमें डकड़े हुए हैं, इससे कुछ भी सन्देह नहीं है। मास और रुधिरसे पृथ्वी अवश्य ही पूरित होगी। हे भरतनन्दन युधिष्ठिर ! मैंने एकान्तमें कृष्ण बार बार कहा था, कि हे मधुसूदन ! पाण्डव लोग हमारे जैसे सम्बन्धी हैं, राजा दुर्योधन भी वैसे ही है, इससे समान सम्बन्धियोंकी समान ही सहायता देना उचित है, दुर्योधनकी भी सहायता दो, क्योंकि उस ही निमित्तसे वह बार बार यहापर आरहे हैं। परन्तु तुम्हारे निमित्त कृष्णने मेरी बात नहीं ग्रहण की। अर्जुनके स्नेहसे ये तुम्हारी ही और सब प्रकारसे रत हैं। पाण्डवोंका जो निश्चय जय होगा,

को मारकर यह सम्पूर्ण पृथ्वी तुम्हें प्रदान करूंगा । बुद्धिमान् अर्जुन धर्मराज युधिष्ठिर, कृष्ण तथा दूसरे राजाओंके बीचमें रुक्मीके यह वचन सुन कृष्ण और युधिष्ठिरके मुखकी ओर देख कर हंसते हुए धीरभावसे उससे यह वचन बोले,—“हे वीर ! मैं कौरवकुलमें उत्पन्न विशेष करके राजा पाण्डुका पत्र होके और कृष्णकी सहायता पाकर तथा गाण्डीव धनुषकी धारण करके “डर गया हूँ” ऐसी बात किस प्रकारसे कह सकता हूँ ? घोषयात्राके समयमें जब महाबली गन्धर्वोंके सङ्ग मैंने युद्ध किया था, तब किसने मेरी सहायता की थी ? खाण्डव वनमें देवता और दानवोंसे जब मैंने घोर युद्ध किया था, उस समय किसने मेरी सहायता की थी ? जब निवातकवच और कालकेय दानवोंके सङ्ग मैंने युद्ध किया था, तब कौन मेरा सहाय हथा था ? और भी जिस समय विराट नगरमें मैंने अनेक कौरवोंसे युद्ध किया था, उस समय-हीमें किसने मेरी सहायता की थी ? युद्धके निमित्त रुद्र, क्वेर, यम, वरुण, अग्नि, कृपा चार्थ्य, द्रोणाचार्य और कृष्णकी आराधना करके दिव्य तेजसे युक्त दृढ़ गाण्डीव धनुषकी धारण करके तथा अज्ञय नृणीर और दिव्य-शस्त्रोंसे युक्त होकर भी “डर गया हूँ” यह यशको लोप करनेवाला वचन साक्षात् इन्द्रसे भी मेरे समान पुरुष कैसे कह सकता है ? हे पुरुष-सिंह ! न मुझे कुछ डर है, और न मुझे सहायताकी आवश्यकता है, हे महाबाही ! इससे यदि तुम्हारी इच्छा हो तो यहासे दूसरे स्थान पर गमन करो अथवा इस ही स्थान पर निवास करो ।

हे भरतर्षभ ! अनन्तर रुक्मी उस समुद्रके समान अपनी सेनाको लौटाकर राजा दुर्योधनके समीप भी उसी प्रकारसे गये, उनसे भी वैसे ही वचन बोले, और उस शूरमानी दुर्योधनने भी उनसे कहा, कि मुझको सहा-

यतकी कुछ भी आवश्यकता नहीं है । इससे वृष्णिकुलमें उत्पन्न हुए रोहिणी-पुत्र बलराम और राजा रुक्मी ;—ये दो पुरुष इस युद्धे पृथक् हुए थे । बलरामको तीर्थ-यात्राके निमित्त गमन करने और रुक्मीके लौट जाने पर पाण्डव लोग फिर विचार करनेके निमित्त इकट्ठे हुए । हे महाराज ! राजाओंसे भरी हुई वह सभा तारोंसे चित्रित आकाश मण्डल की भांति शोभित होने लगी ।

१५७ अध्याय समाप्त ।

राजा जनमेजय बोले, हे विजयसत्तम ! कुश्चेतमें इस प्रकारसे सम्पूर्ण सेनाके व्यूह-वद्ध होने पर काल प्रेरित कौरवोंने क्या किया ?

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् ! सब सेनाके इस प्रकारसे व्यूह वद्ध होके खड़ी होने पर राजा धृतराष्ट्रने सञ्जयसे यह वचन कहा ; हे सञ्जय ! कुश् पाण्डवोंकी सेनाके कुश्चेतमें इकट्ठी होने पर वहा जो कुछ वृत्तान्त हुआ, वह सम्पूर्ण तुम मुझसे वर्णन करो । मैं पुरुषार्थकी व्यर्थ जान कर दैवको ही श्रेष्ठ समझता हूँ, क्योंकि विनाशका परिणाम और युद्धके दोषकी भली भांतिसे जान कर भी नीचबुद्धि दुष्ट पुरुषोंकी नियममें नहीं स्थिर कर सकता हूँ । हे सूत ! मेरी बुद्धि दीर्घोंका भी बोध हो रहा है परन्तु दुर्योधनके मिलने पर फिर मेरी बुद्धि पलट जाती है । हे सञ्जय !—इससे ऐसी अवस्थामें जो होना है, वही होगा ; युद्धमें शोक करना भी क्षत्रियोंका प्रशंसनीय धर्म नहीं है ।

सञ्जय बोले, हे महाराज ! तुम जो इच्छा करते हो वह तुम्हारे योग्य ही प्रज्ञ है, यह ठीक है, परन्तु इस दोषकी दुर्योधनके ऊपर आरोपित करना तुमको उचित नहीं है । हे राजन् ! मैं जो वचन कहता हूँ, उनको सुनो, जो मनुष्य अपने किये हुए बुरे कर्मका अशुभ-फल पाता है,

उसे काल तथा ईश्वरके ऊपर दीप लगाना उचित नहीं है। हे महाराज ! मनुष्योंमें जो पुरुष निन्दनीय कर्मका अनुष्ठान करते हैं, वह दूर कर्मके आचरण करनेसे सब लोगोसे ही वध करनेके योग्य होजाते हैं। हे राजेन्द्र ! पाण्डवोंने जुएमें हारकर केवल तुम्हारे शासन और प्रतिज्ञाहीसे दृष्ट मित्रोंके सहित सब प्रकारसे अपमान और तिरस्कार सहन किया था। युद्धमें घाड़े, हाथी और महातेजस्वी राजाओंके नाश होनेका जो स्वपात हुआ, उसे तुम पूर्ण रीतिसे सुनो। हे महाबुद्धिमन् ! प्राणियोंके नाश करनेवाले इस महायुद्धके वृत्तान्तको सुनकर ऐसा निश्चय कीजिये, कि पुरुष कभी शुभ तथा अशुभ कर्मोंका स्वयं कर्त्ता नहीं हो सकता कठपुतलीको भाँति दूसरेके वशमें होकर कर्म करता है। शुभ और अशुभ कर्मोंके विषयमें तीन प्रकारके मतभेद हैं। कोई कोई कहते हैं, कि मनुष्य ईश्वरके वशमें होकर सब कर्म करता है, कोई कहते हैं, पुरुष अपनी इच्छाके अनुसार कर्म करता है और कोई कोई कहते हैं, कि वर्त्तमान कर्मोंके अनुष्ठानके विषयमें पूर्व जन्मके कर्म ही उन कर्मोंके कारण होते हैं।

१५८ अध्याय समाप्त ।

अब उलूक दूत-गमन पर्व लिखेंगे ।

सञ्जय बोले, हे राजन् ! महात्मा पाण्डवोंके शिरस्त्रयो नदीके किनारे शिवर स्थापित करने पर कौरवोंने भी उचित स्थानमें अपनी सेनाका एकवित किया। प्रतापो राजा दुर्योधनने वहा पर अपने शिविरको स्थापित करके सब राजाओं को सम्मानित किया और रक्षक सेना रखी करके योग्यरूपसे रक्षा करने योग्य वस्तुओंको रक्षाका विधान कर दिया। अतन्त्र कर्त्ता, दुर्योधन और शकुनिकी बुलाकर द्वन्द्व कराने लगे। हे भारत ! दुर्योधनने कर्त्तव्यके संग

वातचीत करके अन्तमें कर्ण, दुर्योधन और शकुनिकी सम्मतिसे एकान्त स्थानमें उलूककी बुलाकर यह वचन कहा "हे कितव-नन्दन उलूक ! तुम सोमकवशियोंसे युक्त पाण्डवोंके समीपमें जाओ और वहा पर पहुँच कर कृष्णके सम्मुख अर्जुनसे मेरे इस वचनकी कहना, कि कई वर्षोंसे जो विचार हो रहा था, वह महाभयङ्कर कुरु-पाण्डवोंका युद्ध इस समयमें उपस्थित हुआ है। हे अर्जुन ! तुमने कृष्णके संग मिलकर भाइयोंके सहित गर्जन करते हुए जो अपनी अत्यन्त बड़ाई की थी, जिसको सञ्जयने आकर कौरवोंमें प्रकाशित किया था, उसका समय यही उपस्थित हुआ है ; इससे तुम लोगोंने जिस प्रकारसे प्रतिज्ञा की थी, इस अवसरमें उसका प्रतिपालन करो।" हे उलूक ! भाइयो तथा सम्पूर्ण सोमक और केकयवंशियोंमें बैठे हुए राजा युधिष्ठिरसे भी यह वचन कहना, "प्रसिद्ध धर्मात्मा होकर तुम भी अधर्ममें चित्त लगाते हो ? धर्म और दृष्ट पुरुषकी भाँति क्या जगत्का नाश करनेका विचार करते हो ? मैं समझता हूँ, कि तुम सब प्राणियोंके अभय-दाता ही होगे। हे भरत-पुत्र ! सुना जाता है, कि पहिले समयमें देवता लोगोंने जब दानवोंने राज्यकी हरण किया था, उस समयमें प्रह्लादने यह एक श्लोक प्रताप, "हे देवगण ! जिसके धर्मके चिह्न जगदीश्वरकी भाँति सदा प्रकाशित रहते हैं ; परन्तु पापकर्म नेव गुप्त रीतिसे उसके अन्त करणमें निवास करते हैं : उसके उस व्रतकी विद्वान्वन कहते हैं।" हे प्रजानाथ ! इस विषयमें नारद मुनिने मेरे पिताके समीप ही उत्तम उपायान्वन किया था, इस समय मैं तुम्हारे समीपमें उस विषयको कहता हूँ। जिन जगत्का सुना। "हे राजन् ! जिसके समीप एक पुत्र विद्वान् हो पिता दास्ये कर्मोंमें प्रियतम हो महाकौरवपर उद्वेग होकर निवास करता

था, वह सब जीवजन्तुओंमें विश्वास उत्पन्न करनेके निमित्त सबसे यही वचन कहा करता था, कि "मैं धर्मका आचरण कर रहा हूँ" हे राजन् । इसी प्रकारसे कुछ दिनोंके अनन्तर सब पक्षी उसका विश्वास करने लगे और सबोंने मिलकर उसको बहुत ही प्रशंसा करनी आरम्भ की पक्षियोंकी भोजन करनेवाली धूर्त विड़ालने पक्षियोंमें पूजित होके यह सोचा, कि कि इतने दिनके अनन्तर अब मेरी तपस्याका फल उदय हुआ है, अब मेरा कार्य सफल हुआ । हे भारत ! अनन्तर कुछ दिनोंमें चूहे भी वहापर उपस्थित हुए और उस व्रत करनेवाले धार्मिक दम्भसे युक्त धूर्त विड़ालका सहाव्रतमें रत देखा । हे राजन् ! ऐसा निश्चय होनेपर उन चूहोंकी ऐसी बुद्धि हुई, कि हम लोगोंके बहुतसे शत्रु हैं, इससे ये हम लोगोंके मामा बनकर हमारी सदा रक्षा किया करें । ऐसा विचार कर वे सब चूहे विड़ालके समीप जाकर यह वचन बोले, कि तुम्हारे आसरेमें हम लोग सुखपूर्वक सब स्थानोंमें भ्रमण करनेकी इच्छा करते हैं, तुम हो हम लोगोंकी परम गति और तुम हो हमारे परम-स्तु हो, इसी कारणसे हम सब लोग मिलकर तुम्हारे शरणागत हुए हैं, तुम धर्माला हो और सदा धर्महीके कार्यमें लगे रहते हो, इससे हे महा-बुद्धिमन् ! जैसे इन्द्र देवताओंकी रक्षा करते हैं वैसे ही तुम भी हम लोगोंकी रक्षा करो । हे राजन् । वह चूहोंका भक्षण कररेवाला विड़ाल उन सबके वचनोंको सुनकर वाला, कि तपस्या और रक्षा ये दोनों कार्य एक ही समयमें नहीं हो सकते । परन्तु द्वित साधन करनेके निमित्त तुम्हारे इस वचनका रक्षा सुभकी अवश्य हो करनी पड़ेगी, और मेरी बात भी तुम लोगोंकी नित्य हो प्रातिपालन करनी उचित है, मैं इस दृढ़ व्रतमें स्थित होके तपस्यासे क्षीण होगया हूँ, विशेष रूपसे विचारने पर भी सुभमें चल-

नेकी कुछ भी शक्ति नहीं दीख पड़ती, संप्रति दिनके समय तुम लोग सुभे नदी-किनारे पर ले चलना । हे भरतप्रभ ! चूहोंने कहा, "ऐसा ही होगा" ऐसी प्रतिज्ञा करके सब चूहोंने उस विड़ालके समीपमें बूढ़े और बच्चोंकी समर्पण किया । अनन्तर वह पापबुद्धि दुष्टाला विड़ाल चूहोंकी धीरे धीरे भक्षण करके मोटे शरीर, उत्तम वर्ण और खूब ही पुष्ट होने लगा । इसी प्रकार से सब चूहोंका नाश होने लगा और वह विड़ाल तेजस्वी और बलवान् होता जाता था । अनन्तर एक दिन सब चूहे इकट्ठे होकर आपसमें यह वचन कहने लगे, कि मामा नित्य हो माटे ताजे और बलवान् हुए जात हैं, और हम लोगोंके कुलका अत्यन्त ही नाश हो रहा है । हे राजन् ! अनन्तर डाण्डक नामका एकसा बुद्धिमान् चूहोंने उन सवास यह वचन कहा, कि तुम लोग विशेष रूपसे इकट्ठे होकर नदीके तीरपर जाना और मैं मामाके सङ्ग हो तुम लोगोंकी पीछे पीछे चलूंगा । तब सब चूहे धन्य धन्य कहकर उसको प्रशंसा करने लगे । और डाण्डकक इस अर्थयुक्त वचन की न्यायके अनुसार रक्षा करने लगे । अनन्तर विड़ालने यह सब बात न जानकर डाण्डकका भक्षण किया, तब सब चूहे इकट्ठे होके एकान्त स्थानमें विचार करने लगे । हे राजन् ! काकिल नामका एक बूढ़ा चूहा सब चूहोंके बीचमें यह यथार्थ वचन कहने लगा, कि मामा धर्मात्मा नहीं है, हम लोगोंके शत्रु होकर भी केवल कुल करनेके निमित्त मित्र भावका अवलम्बन किये हुये हैं, जो पुरुष फल मूल भाव करता है, उसको विष्ठा कभी रावामें युक्त नहीं होता, इसका शरीर नित्य हो बढ रहा है, और चूहोंके कुलका धीरे धीरे नाश हुआ चला जा रहा है, विशेष करके आज सात माठ दिनों हुआ डाण्डकका दर्शन नहीं मिलता है । काकिलका वचन सुनकर सब चूहे इधर उधर

भाग गए और वह दुष्टात्मा धूर्त विडाल भी
वहसे चला गया । अरे दुष्टात्मा ! इससे तुमने
भी उम ही विडाल व्रतका अवलम्बन किया है ;
चूँहीके बीचमें विडालने जैसा आचरण किया
था, तू भी जातियोंके बीच वैसा ही आचरण
कर रहा है. तुम्हारे वचन और भांति सुन
पड़ते हैं . और कर्म दूसरी प्रकारके दीख
पड़ते हैं ; तुम्हारे वेद-विहित कर्म और धर्म-
का दम्भ लोक दिखानेके निमित्त है । हे
राजन् ! तुम धर्मात्मा कहके विख्यात हो ;
इससे अब तुम इस कपट-व्यवहारको त्यागकर
क्षत्रिय धर्मके अनुसार सब कार्य करो । हे
भरतसत्तम ! अपने बाहुबलसे पृथ्वीका राज्य
ग्रहण करके ब्राह्मण और पितरोंका यथा
उचित दान करो । तुम्हारी माता कई वर्षसे
केश तथा दुःख सह रही है, इससे उसके
हित-साधनके निमित्त यत्न करके युद्धमें शत्रुओं
को जीत करके उसके आसूका वन्द करा ।
तुमने भुक्तिसे पाँच गाव मागे थे, परन्तु हम
लाग "पाण्डवोंका किस प्रकारसे क्राधित करेग,
कैसे उनसे रणभूमिमें युद्ध करेग, यही विचार-
कर नहीं प्रदान किया । तुम्हारे निमित्त
दुष्ट आशपाव, विदुरका त्याग, और जगुहमें
तुम लोगोंका जलाना आदि विषयाओं का करण
करके अब इस समयमें तुम पुरुषार्थ अवलम्बन
करा । हे भारत ! तुमने कौरवोंको सभामें
आनके समय कृपासे कहा था, कि हे राजन् !
मैं शान्त आर युद्ध दानाके निमित्त तयार हूँ
ऐसी बात कहला भेजा था . वही युद्धका समय
अब उपस्थित हुआ है । हे युधाष्टर ! इस ही
निमित्त मैंने सब सामान टांक कर रखा है ।
क्षत्रिय पुरुष युद्धके प्रतिरिक्त और किन
विषयोंके लक्ष्म समर्पण हे भरतसत्तम ! तुम
हो, वही शत्रु है, जो तुम्हारे विरुद्ध
आ रहा है, और प्राणपात करके कृपापात्र है
इसके लक्ष्म ! इसका जोर समान युद्ध, अब

और तेजकी धारणा करके तुमने वसुदेव पुत्र
कृपाका आसरा क्यों ग्रहण किया है ?
हे उलूक ! तुम पाण्डवोंके समीपमें कृपासे
भी यह वचन कहना, कि तुम अपनी और
पाण्डवोंकी रक्षामें यत्नवान् होकर हम लोगोंके
सह युद्ध करो । पहिले तुमने सभासे मायासे
जो रूप धारण किया था, अब फिर उस रूपकी
प्रकट करके अर्जुनके सहित मेरे सम्मुखमें आकर
युद्ध करो । इन्द्रजाल, माया, और बाजीगरी सब
दिखनेमें भयकर होती हैं, यह ठीक है. परन्तु
रणभूमिमें शस्त्रधारी पुरुषके सम्मुख भयङ्कर
हीनी तो दर रहे, वह उल्टी क्राधको उत्पन्न
करती है । मैं भी निज शरीरसे अनेक रूप
प्रकट करके स्वर्ग और आकाशमें गमन करने-
का उत्साह कर सकता हूँ और पाताल तथा
इन्द्र लोकमें भी जानमें समर्थ हूँ सकता हूँ ।
परन्तु माया और भय दिखाना तथा वंशोत्तरण
आदि सब मायाके काव्यासे जो सिद्धि हीनगी,
वह पुरुषार्थ की प्रकाशित करनेवाले पुरुषोंके
सम्मुख नहीं चलती । क्योंकि विधाना ही
अपनी इच्छाके अनुसार सब प्राणियोंको अपने
वशमें कर सकता है, दूसरा नहीं कर सकता ।
हे कृपा ! तुम जा कहना करतें हो, कि मैं युद्धमें
दुष्टराष्ट्रपुत्रोंका मारकर यह सम्पूर्ण पृथ्वीका
राज्य पाण्डवोंको समर्पण करूँगा और सञ्जयन
मेरे समीप तुम्हारे इस वचनका कहा जा, कि
"मैं सहित उस अर्जुनसे तुम्हारा युद्ध, ता हूँ
हूँ अब पाण्डवोंके निमित्त उन वचनोंका
पालन करके सत्य-प्राप्त होऊँगा . रणभूमिमें
यत्नपूर्वक युद्ध करेगा " इस लाग देखा, तुम
एकबार पुरुष बने ! जो पुरुष शत्रुओंका
विषय अपने जानकर अपने वशमें लक्ष्म का
अवलम्बन करके उनका मार्गदर्शन और दानान्त
करके, वही शत्रु अपने पालन करके दान
करके है . जो शत्रु - दुष्टात्मा पाव करके,
तुम्हारा यह विषयान्त लक्ष्म, मैं नहीं करूँगा

इस समय सबको विदित होजावेगी। हे कंसके दास। मेरे समान किसी राजाने कभी तुमसे युद्ध नहीं किया है।

हे उलूक। उस सींगसे रहित, बैलके समान बद्धत भोजन करनेवाले, विद्याशून्य, और मूर्ख भीमसेनसे भी बार बार मेरे इस वचनको कहना, कि हे पार्थ। पहिले विराटनगरमें जो वल्लव नामक प्रसिद्ध रसोई बनानेवाले रूपकार हुए थे, वह सब मेरा ही पराक्रम था। सभाके बीचमें तुमने जो प्रतिज्ञा की थी, वह जिसमें मिथ्या न होजावे; यदि शक्ति हो, तो दुःशासनका रुधिर पान करो। हे कौन्तेय। तुम जो कहा करते हो, कि युद्धमें मैं धृतराष्ट्रके पुत्रोंको शीघ्र ही मारूंगा, उसका समय अब उपस्थित हुआ है। हे भारत। तुम खाने पीने और भोजन करनेहीमें पुरुष हो, भोजनको बात अलग है और भोजनसे युद्धका बद्धत अन्तर है। आओ पुरुष होकर युद्ध करो। हे भारत। तुम प्राणरहित होकर निश्चय ही पृथ्वीमें शयन करोगे। हे भीम। तुमने सभामें बद्धत ही अपनी बड़ाई को थी, वह अत्यन्त ही तुच्छ है।

हे उलूक। तुम नकुलसे भी मेरा यह वचन कहना, "हे भारत। युधिष्ठिरके ऊपर अनुराग मुझसे द्वेष और द्रोपदीका लेश स्मरण करके इस समय युद्ध करो। राजाओंके बीचमें सहदेवसे भी मेरा यह वचन कहना, कि हे पाण्डव। अब इस समय सब लेशोंकी स्मरणकर यत्नवान् होके युद्ध करो।

हे उलूक। विराट और दुपदको भी मेरी ओरसे यह वचन कहना, कि जबसे प्रजाको सृष्टि हुई है, तबसे महागुणवान् सेवकोंने स्वामीको कभी विशेष रूपसे नहीं देखा है और राजाने भी कभी सेवकोंको नहीं जाना है, यह राजा अपना बड़ाई नहीं करता, ऐसा समझकर तुम लोग मेरे वध करनेके

निमित्त आये हो, इस समय सब कोई मिलकर पाण्डव और अपने हितके निमित्त मेरे सङ्गमें युद्ध करो।

पाञ्चालनन्दन धृष्टद्युम्नको भी मेरी ओरसे यह वचन कहना, यही अब तुम्हारा समय आगया है और तुम भी युद्धमें प्रवृत्त होजाओ, युद्धमें द्रोणाचार्यके सम्मुख होकर अपने उत्तम हितको सिद्ध करनेके निमित्त यत्न करो। आओ दुष्ट मित्रोंके सङ्ग मिलकर युद्ध करके अपने निमित्त कठिन-कर्म करो।

हे उलूक। अनन्तर शिखण्डीको मेरी ओरसे यह कहना, कि सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें अष्ट महाबाहु कुरुनन्दन गङ्गापुत्र भीम तुम्हें स्त्री समझके तुम्हारा वध नहीं करेंगे। इससे आओ अब तुम निर्भय होके युद्ध करो। रणभूमिमें यत्नपूर्वक युद्धके कर्मका करो और हम लाग तुम्हारे पराक्रमको देखें।

ऐसा कहकर राजा दुर्योधन हंसे हुए फिर उलूकसे बोले, कि तुम कृष्णके सम्मुख अर्जुनसे फिर हमारे इस वचनको कहना, "हे वीर। या तो तुम हम लोगोंका मारकर इस पृथ्वीको शासन करोगे, अथवा हम लोगोंके हाथसे मरकर पृथ्वीमें शयन करोगे। हे पाण्डव। राज्यसे निकाले जाने पर वनवासका दुःख और द्रोपदीका लेश स्मरण करके इस समयसे तुम अपने पराक्रमका प्रकाशित करो। चतुरियोंका माता जिस कार्यके वास्ते पुत्रका उत्पन्न करती है, उसका समय अब उपस्थित हुआ है। इससे युद्धमें बल, बोर्ये, पराक्रम और अत्यन्त शीघ्रतासे अस्त्र चलाकर अपने पराक्रमको प्रकाशित करो। ऐश्वर्यसे भट, बद्धत दिन तक वनवासमें अत्यन्त ही लेश पाकर किसका हृदय दुःखित न होगा? कौन पुरुष मेरे कुलस उत्पन्न हुए शूरवीर पराय धनकी लेनेवाले किसी पुरुषका सम्पूर्ण पृथ्वीके राज्यका आक्रमण करके उसे ज्ञाधित न करेगा।

तुमने जो अपनी बहुत बड़ाई की थी, इस समयमें कर्मसे उसकी पूरा करो। विना कर्म किये मिथ्या अपनी बड़ाई करनेपर पण्डित लोग उसे अधम-पुरुष कहते हैं। शत्रुओंके वशमेंसे कुटकारा पाना और राज्यका फिरसे उधार करना; इन दोनों विषयोंके निमित्त युद्ध करनेवाले पुरुषका प्रयोजन होता है, इससे बल और पराक्रमको प्रकाशित करके उसे पूर्ण करो। तुम भी जुएमें हारे थे और द्रौपदी भी सभामें बड़ाई गई थी; इससे बलवान् पुरुषकी अवश्य ही क्रोध उत्पन्न हो सकता है। हे पाण्डव ! तुमने राज्यसे भ्रष्ट होकर बारह-वर्ष वनमें और एक वर्षतक विराटनगरमें दामवृत्तिकी अवलम्बन करके वास किया था, इससे राज्यसे भ्रष्ट होना, वनवास और द्रौपदीके दुःखकी स्मरण करके पुरुष बनी। और भी शत्रुओंके तुल्य कटोर वचनोंको बार-बार कहनेवाले दुःशामन आदि पुरुषोंके वचनकी स्मरण करके भी तुमकी क्रोध करना उचित है। हे पार्थ ! युद्धमें तुम्हारा क्रोध बल, वीर्य, ज्ञान और शीघ्र शस्त्रका चलाना प्रकाशित होवे, तुम युद्ध करो, पुरुष बनी। तुम्हारे शस्त्रोंका संस्कार आदि भी हुआ है, और कुरुक्षेत्रकी भूमि भी विना कीचड़के वृक्ष और सत्तर है, घोंडे पट्टे हैं और सेनाके पुरुषोंकी भी वीर्य मिला हुआ है, इससे अब तथाके सैन्य मिलकर कतही युद्ध करनेके निमित्त प्रवृत्त होजाये। हे शोन्तिय ! तुम युद्धमें भीष्मके समूह विना सग्राम किये ही पार्थ अपनी बड़ाई करने करते हो। जैसे घोंडे मनुष्य गन्धसादन पर्वतपर चढ़नेकी इच्छा करता है, तुम भी वैसा ही कार्य करने कर रहे हो। इसमें अपने मुखसे अपनी बड़ाई स्थापित कर देना इस समयमें बहुत उचित है। सम्राटों और भीम सम्राज्य जर्म, गन्धर्वोंकी तुम युद्ध करने समान राजाशाहिकी इच्छा प्रकटित

किये ही तुम हों राज्य ग्रहण करनेकी इच्छा करते हो ? हे पार्थ ! तुम जो वेदमन्त्र और धनुर्वेद दोनों विद्याओंके आचार्य हो शिरोमणि महा पराक्रमी अत्यन्त तेजस्वी मेनापति द्रोणाचार्यकी जीतनेकी अभिलाषा करते हो, वह तुम्हारा उद्योग अत्यन्त ही व्यर्थ है, क्योंकि वायुसे समेत पर्वत उड़ जावे; ऐसा कभी नहीं सुना गया है। यदि वायु कभी समेत पर्वतकों भी उड़ा सके, स्वर्ग पृथ्वीसे मिल जावे अथवा कालचक्रका परिवर्तन होजाय-तब ही तुम मुझको जो कही वह सम्भव हो सकता है, क्योंकि भीष्म और द्रोणाचार्यके शस्त्रकी चोटसे कौन मनुष्य जीते बचनेकी अभिलाषा करेगा ? अर्जुन ही होवे, अथवा दूसरा ही कोई क्यों न होवे, कौन पुरुष युद्धमें उनके समक्ष खड़े कणशपर्वक लौटकर अपने घरकी जा सकेगा ? युद्धमें ये लोग जिमकी मारनेकी इच्छा अर्थात् अपने महा भयङ्कर शस्त्रोंसे उसके शरीरपर प्रहार करते हैं, पांवसे पृथ्वीपर गमन करनेवाला ऐसा कौन मरण धर्मशील मनुष्य जीवित रह सकता है ? हे मन्दबुद्धि ! तू कणमें रहनेवाले मेढककी भांति मृट होकर देवताओंमें रक्षित स्वर्गपरीकी साक्षात् देवताओंकी राजाओं-से रक्षित प्राच्य मेनाके समान वनवान् इकरो हई प्रतीत्य दाक्षिणात्य, पौट्रीय 'आम्बोषक' शक, खश, शाल्व, मलय, खेज, द्राविड, यन्ना, और आदि देशीय आदि दस सम्पूर्ण राज मेनाया देश करनेमें क्यों नहीं समर्थ होता है ? यह शक्यवृत्ति मृट । तू इस प्रकार मृदाके विषये समान पूर्ण रूपमें हरे हरे नाना भांतिसे अनेक और द्रोणाचार्यके सहित और गन्धर्वके समान क्षेत्रमें स्थित होने मृट मृट करनेमें जिम प्रकारमें अभिलाषा करता है ? हे पार्थ ! तू न युद्धमें दोष, लोभ, अस्विकार दिया हुआ दिया हृदय और दयाका है, इसे युद्धस्थितिमें करने चाहते, हे युद्धमय राजा जो मनुष्य-

इस समय सबको विदित होजावेगी । हे कंसको दास । मेरे समान किसी राजाने कभी तुमसे युद्ध नहीं किया है ।

हे उलूक ! उस सींगसे रहित, बैलके समान बद्धत भोजन करनेवाले, विद्याशून्य, और मूर्ख भीमसेनसे भी बार बार मेरे इस वचनको कहना, कि हे पार्थ ! पहिले विराटनगरमें जो वल्लव नामक प्रसिद्ध रसोई बनानेवाले रूपकार हुए थे, वह सब मेरा ही पराक्रम था । सभाके बीचमें तुमने जो प्रतिज्ञा की थी, वह जिसमें मिथ्या न होजावे, यदि शक्ति हो, तो दुःशासनका रुधिर पान करो । हे कौन्तेय ! तुम जो कहा करते हो, कि युद्धमें मैं धृतराष्ट्रके पुत्रोंको शीघ्र ही मारूंगा ; उसका समय अब उपस्थित हुआ है । हे भारत ! तुम खाने पीने और भोजन करनेहीमें पुरुष हो, भोजनको बात अलग है और भोजनसे युद्धका बद्धत अन्तर है । आओ पुरुष हाकर युद्ध करो । हे भारत ! तुम प्राणरहित होकर निश्चय ही पृथ्वीमें शयन करोगे । हे भीम ! तुमने सभामें बद्धत ही अपनी बड़ाई को थी, वह अत्यन्त ही तुच्छ है ।

हे उलूक ! तुक नकुलसे भी मेरा यह वचन कहना, “हे भारत ! युधिष्ठिरके ऊपर अनुराग मुझसे द्वेष और द्रौपदीका लेश स्मरण करके इस समय युद्ध करा । राजाओंके बीचमें सह-देवसे भी मेरा यह वचन कहना, कि हे पाण्डव ! अब इस समय सब लेशोंको स्मरणकर यत्नवान् होके युद्ध करो ।

हे उलूक ! विराट और द्रुपदको भी मेरी ओरसे यह वचन कहना, कि जबसे प्रजाको सृष्टि हुई है, तबसे महागुणवान् सेवकोने स्वामीको कभी विशेष रूपसे नहीं देखा है और राजाने भी कभी सेवकोको नहीं जाना है, यह राजा अपना बड़ाई नहीं करता, ऐसा समझकर तुम लोग मेरे वध करनेके

निमित्त आये हो, इस समय सब कोई मिलकर पाण्डव और अपने हितके निमित्त मेरे सङ्गमें युद्ध करो ।

पाञ्चालनन्दन धृष्टद्युम्नको भी मेरी ओरसे यह वचन कहना, यहो अब तुम्हारा समय आगया है और तुम भी युद्धमें प्रवृत्त होजाओ, युद्धसे द्रोणाचार्यके सम्मुख होकर अपने उत्तम हितको सिद्ध करनेके निमित्त यत्न करो । आओ दुष्ट मित्रोंके सङ्ग मिलकर युद्ध करके अपने निमित्त कठिन-कर्म करो ।

हे उलूक ! अनन्तर शिखण्डीको मेरी ओरसे यह कहना, कि सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें अष्ट महाबाहु कुरुनन्दन गङ्गापुत्र भीम तुम्हें स्त्री समझके तुम्हारा वध नहीं करेंगे । इससे आओ अब तुम निर्भय होके युद्ध करो । रणभूमिमें यत्नपूर्वक युद्धके कर्मका करो और हम लाग तुम्हारे पराक्रमका देखें ।

ऐसा कहकर राजा दुर्योधन हस्ते हुए फिर उलूकसे बोलि, कि तुम कुशाके सम्मुख अर्जुनसे फिर हमारे इस वचनको कहना, “हे वीर ! या तो तुम हम लागोंका मारकर इस पृथ्वीको शासन करोगे, अथवा हम लोगोंके हाथसे मरकर पृथ्वीमें शयन करोगे । हे पाण्डव ! राज्यसे निकाली जाने पर वनवासका दुःख और द्रौपदीका लेश स्मरण करके इस समयसे तुम अपने पराक्रमका प्रकाशित करो । चतुरियोंका माता जिस कार्यके वास्ते पुत्रको उत्पन्न करती है, उसका समय अब उपस्थित हुआ है । इससे युद्धमें बल, वीर्य, पराक्रम और अत्यन्त शीघ्रतासे अस्त्र चलाकर अपने पराक्रमको प्रकाशित करो । ऐश्वर्यसे भरा बद्धत दिन तक वनवासमें अत्यन्त ही लेश पाकर किसका हृदय दुःखित न होगा ? कौन पुत्र मेरे कुलमें उत्पन्न हुए शूरवीर पराय धनवान् लेनेवाले किसी पुरुषका सम्पूर्ण पृथ्वीके राज्य आक्रमण करके उसे क्राधित न करेंगे ?

तुमने जो अपनी बड़ाई की थी, इस समयमें कर्मसे उसकी पूरा करो । बिना कर्म किये मित्रा अपनी बड़ाई करनेपर पण्डित लोग उसे अधम-पुरुष कहते हैं । शत्रुओंके वशमेंसे कुटकारा पाना और राज्यका फिरसे उद्धार करना ; इन दोनों विषयोंके निमित्त युद्ध करनेवाले पुरुषका प्रयोजन होता है, इससे बल और पराक्रमको प्रकाशित करके उसे पूर्ण करो । तुम भी जुष्टे द्वारे थे और द्रौपदी भी सभामें बड़ाई गई थी ; इससे बलवान् पुरुषको अवश्य ही क्रोध उत्पन्न हो सकता है । हे पाण्डव ! तुमने राज्यसे भ्रष्ट होकर वारह-वर्ष वनमें और एक वर्षतक विराटनगरमें दासवृत्तिकी अवलम्बन करके वास किया था, इससे राज्यसे भ्रष्ट होना, वनवास और द्रौपदीके दुःखकी स्मरण करके पुरुष बनी । और भी शत्रुओंके तुल्य कटोरे वचनोंको बार बार कहनेवाले दशामन आदि पुरुषोंके वचनकी स्मरण करके भी तुमको क्रोध करना उचित है । हे पार्थ ! युद्धमें तुम्हारा क्रोध बल, वीर्य, ज्ञान और शीघ्र शस्त्रका चलाना प्रकाशित होवे, तुम युद्ध करो, पुरुष बनी । तुम्हारे शस्त्रोंका संस्कार आदि भी हुआ है, और कुरुक्षेत्रकी भूमि भी बिना कीचड़के स्वच्छ और सुन्दर है, घोड़े पष्ट हैं और सेनाके पुरुषोंको भी वेतन मिला हुआ है, इससे अब कृपाके सङ्ग मिलकर कलही युद्ध करनेके निमित्त प्रवृत्त होजाओ । हे कौन्तेय ! तुम युद्धमें भीष्मके सम्मुख बिना संग्राम किये ही व्यर्थ अपनी बड़ाई क्यों करते हो ? जैसे कोई मनुष्य गन्धमादन पर्वतपर चढ़नेकी इच्छा करता है, तुम भी वैसा ही व्यर्थ गर्व कर रहे हो । इससे अपने मुखसे अपनी बड़ाई त्यागकर अब इस समयमें पुरुष बनी । संग्राममें वीरवरीण सूतपुत्र कर्ण, बलवानोंमें त्रेष्ठ शल्य, इन्द्रके समान द्रोणाचार्यको बिना पराजित

किये ही तुम क्यों राज्य ग्रहण करनेकी इच्छा करते हो ? हे पार्थ ! तुम जो वेदमन्त्र और धनुर्वेद दोनों विद्याओंके आचार्य हो शिरोमणि महा पराक्रमी अत्यन्त तेजस्वी सेनापति द्रोणाचार्यकी जीतनेकी अभिलाषा करते हो, वह तुम्हारा उद्योग अत्यन्त ही व्यर्थ है ; क्यों कि वायुसे सुमेरु पर्वत उड़ जावे : ऐसा कभी नहीं सुना गया है । यदि वायु कभी सुमेरु पर्वतको भी उड़ा सके, स्वर्ग पृथ्वीसे मिल जावे अथवा कालचक्रका परिवर्तन होजाय-तब हो तुम मुझको जो कही वह सम्भव हो सकता है ; क्योंकि भीष्म और द्रोणाचार्यके शस्त्रकी चोटसे कौन मनुष्य जीते वचनेकी अभिलाषा करेगा ? अर्जुन ही जीवे अथवा दूसरा ही कोई क्यों न जीवे, कौन पुरुष युद्धमें उनके सम्मुखसे कशलपूर्वक लौटकर अपने घरकी जा सकेगा ? युद्धमें ये लोग जिसकी मारनेकी इच्छा अर्थात् अपने महा भयङ्कर अस्त्रोंसे उसके शरीरपर प्रहार करते हैं, पावसे पृथ्वीपर गमन करनेवाला ऐसा कौन मरण धर्मशील मनुष्य जीवित रह सकता है ? हे मन्दबुद्धि ! तू कृष्णमें रहनेवाले मेढककी भांति मूढ़ होकर देवताओंसे रक्षित स्वर्गपरीकी साक्षात् देवताओंकी राजाओंसे रक्षित प्राच्य सेनाके समान बलवान् इकट्ठी हुई प्रतीच, दाक्षिणात्य, औदीच, कास्वीजक शक, खश, शाल्व, मत्स्य, स्नेह, द्राविड, अन्ध, और काञ्चि देशीय आदि इस सम्पूर्ण राज सेनाका बोध करनेमें क्यों नहीं समर्थ होता है ? अरे अल्पबुद्धि मूढ़ ! तू इस अपार गङ्गाके वेगके समान पूर्ण रूपसे बड़े हुए नाना भांतिके अनेक वीर योद्धाओंके सहित और नावलके समान बीचमें स्थित मेरे सङ्ग युद्ध करनेकी किस प्रकारसे अभिलाषा करता है ? हे पार्थ ! तेरे जो अन्ध दोनो तूणोर, अग्निका दिया हुआ दिव्य रथ और पताका है, वह रणभूमिमें ही जानी जावेगी । हे अर्जुन ! तू झूठी बड़ाईकी

त्यागके अब युद्ध करके पराक्रम दिखा ; निरर्थक बहूत ही वृथा गर्व क्यों करता है ? केवल बातोंहीसे युद्ध सिद्ध न होता , पूर्ण रीतिसे पराक्रमकी प्रकाशित करनेहीसे इसकी सिद्धि होती है । हे अर्जुन ! इस संसारमें यदि अपनी बड़ाई करनेहीसे यह कर्म सिद्ध होजावे ऐसा होनेसे सब ही कुतकार्य हो सकते हैं । क्योंकि व्यर्थ गर्वकी प्रकाशित करनेमें कौन दरिद्र है ? मैं तुम्हारे सहायक कृष्णकी भी जानता हूँ और ताल प्रमाण गाण्डीव धनुषकी भी जानता हूँ तथा तुम्हारे समान कोई वीर योद्धा नहीं है, उसे भी जानता हूँ और जानकर ही तुम्हारे राज्यको ग्रहण कर रहा हूँ । हे अर्जुन ! मनुष्य छल कपटसे कभी भी सिद्धि नहीं प्राप्त कर सकता , एक मात्र विधाता हो अनुकूल हाकर सबका उसके वशमें कर लेता है । मैंने तेरह वर्षतक तुम्हारे राज्यको भोग किया और तुम लोग विलाप करते हुए देखते ही रहते , अब इसके अनन्तर तुमको भाई-योंके सहित मारकर बहूत दिनतक इस राज्यका शासन करूँगा । हे अर्जुन ! जब तू दासभावसे परासे पराजित हुआ था, उन समयसे तेरा गाण्डीव धनुष कहा था और भीमसेनका बल भी क्या होगया था ? उस समयसे एक मात्र निन्दारहित द्रौपदीके अतिरिक्त गदाधारी भीम और गाण्डीवधारा अर्जुनसे तुम लोगोंको मुक्ति नहीं हुई थी । तुम लोग अमानुषी दासभावको प्राप्त होकर हम लोगोंके दास कर्ममें स्थित हुए थे , पाञ्चालनन्दिनी द्रौपदीहीने तुम लोगोंको मुक्त किया था । मैंने जा तुमको षण्ड कहा था, वह ठीक ही है , क्योंकि उस समयसे तुमने विष्टनगरमें वेणी धारण की थी । और भी विराटकी पाकशालामें जो भीम भोजन बनाया करता था, वह मेरा ही पराक्रम था । हे अर्जुन ! क्षत्रियोंके निमित्त क्षत्रिय लोग

इसी प्रकारसे दण्ड दिया करते हैं , देखो तुम नपुंसकके वेशमें वेणी धारण करके कन्याओंकी नाचाना और गाना सिखाते थे । हे अर्जुन ! मैं कृष्णके भयसे अथवा तेरे भयसे कभी राज्य प्रदान न करूँगा , इससे कृष्णके सङ्ग मिलकर तुम युद्ध करो । क्योंकि संग्राममें शस्त्रधारी पुरुषके सम्मुखमाया, इन्द्रजाल और वाजी गरी कभी भयङ्कर नहीं हो सकते बल्कि क्रोधको ही उत्पन्न करती है । शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ मेरे सम्मुखमे आकर सहस्रों कृष्ण और सैकड़ों अर्जुन दशो दिशामें भाग जावेंगे । हे नोचबुद्धि ! तुम भीष्मके सङ्ग युद्ध करो, वा मस्तकके धक्केसे पर्वत तोड़ो, अथवा बाहुसे नीचे कहे हुए इस अगाध पुरुष-सागरकी तर जाओ अर्थात् मस्तकसे पर्वत तोड़नेकी भांति ये दोनों कार्य असम्भव हैं । इस अगाध पुरुष सागरमें कृपाचार्य महामोन, विविशति महा सर्प, भीष्म वेग, द्रोणाचार्य भयङ्कर ग्राह, कर्ण, शल और शल्य मकुरी, काम्बोज बाहुवानल, वृहदल महा तरङ्ग, भूरिश्रवा तिमिंगल, युयुत्सु और दुर्मेघण जल, भगदत्त वायु, अत वायु और कृतवर्मा आरपार, दुःशासन प्रवाह, सुशेन और चित्रायुध नाग, जयद्रथ दूसरे किनारे पर रहनेवाले पर्वत, पुरुमित्र गम्भीरता, और शकुनि दूसरा किनारास्वरूप है । हे पाथ ! इस अक्षय अस्त्र प्रवाहसे युक्त अगम्य पुरुषसागरकी तरते हुए जब तुम परिश्रमसे चैतरहित होजाओगे और तुम्हारे सब बन्धुवाधव मारे जावेंगे तभी तुम्हारे मनमें शांति उत्पन्न होगी और पापी मनुष्यका मन जैसे स्वर्गको अभिलाषासे निवृत्त होजाता है, उसी भाँतिसे पृथ्वीकी शासन करने की तुम्हारी अभिलाषा जाती रहेगी , क्योंकि तपसे हीन पुरुषकी स्वर्गलाक पानकी इच्छाके समान इस प्रशसनीय पृथ्वीके राज्यकी पाना तुम्हारे निमित्त बहूत ही कष्टन कार्य है ।

सज्जय बोली कितवनन्दन उलूक पाण्डवोंकी सेनामें पहुँचकर पाण्डवोंकी समीप जाके राजा युधिष्ठिरसे यह वचन बोली, कि तुम दूतके कर्मकी जानते हो, इससे दुर्योधनने मुझमें जो कुछ कहा है, वह कहूँगा, सुनकर मेरे ऊपर क्राध न कीजियेगा ।

युधिष्ठिर बोली, हे उलूक ! तुम्हें कुछ भय नहीं है, अदीर्घदर्शी लोभी दुर्योधनका जो कुछ अभिप्राय है, तुम स्थिरचित्तसे उसे वर्णन करो ।

अन्तर उलूक महातेजस्वी महात्मा पाण्डव शृङ्खल, मत्स्य, यशस्वी कृष्ण, पुताके सहित द्रुपद और वराटके समीप तथा सब राजाओंके बीचमें ये वचन कहने लगा, — हे युधिष्ठिर ! महात्मा राजा दुर्योधनने सब कौरवोंके सम्मुख तुमको यह वचन कहा है, तुम सुनो । “हे पाण्डव ! तुम स्वयं जूमें पराजित हुए थे और द्रौपदी भी सभामें बुलाई गई थी, इससे पराक्रमी पुरुष अवश्य क्राधित हो सकता है । तुमने राज्यसे भ्रष्ट होकर बारह वर्ष वनमें और एक वर्षतक दासवृत्ति अवलम्बन करके वराटके घरमें वास किया था । इससे राज्यका हरण, वनवास और द्रौपदीके दुःखका स्मरण करके पुरुष बना । हे पाण्डव ! निम्नत्व हाक भा भामन जा प्रातज्ञा को धो, उसके अनुसार उसे यदि शाक्त है, तो दुःशासनके हाथरको पान कर । तुम्हारे सब शस्त्रोंके सस्कार हैं चुके हैं, कुस्त्र भी इस समय काँचड़से राहत है, भाग भी समतल है, घाड़ भी हृष्ट-पुष्ट है, इससे कलहौ कृष्णके सङ्ग मिलकर युद्ध करा । हे कोन्तेय ! तुम युद्धमें अपना भीषक सम्मुख हुए हो अपनी व्यर्थ बड़ाई करत हो ? कोई बुद्धिहीन मनुष्य जैसे गन्धमादन पर्वतके शिखरपर चढ़नेको इच्छा करता है, तुम भी वैस ही व्यर्थ अपनी बड़ाई करत हो, इससे अपने सुखसे अपनी बड़ाईका करना काड़कर अब पुरुष बना । संग्राममें महावार कण,

बलवानोंमें थोड़ा शल्य, इन्द्रके समान द्रोणाचार्यकी बिना पराजित किये ही तुम क्यों राज्य ग्रहण करनेको इच्छा करते हो । हे पार्थ ! तुम जो मन्त्रवेद और धनुर्वेदकी जाननेवाले वीरधरीण अपराजित महा पराक्रमी, महा तेजस्वी सेनापति द्रोणाचार्यकी जीतनेकी अभिलाषा करते हो, वह सब तुम्हारा उद्योग अत्यन्त ही व्यर्थ है । क्योंकि वायुके झकोरसे समुद्र पर्वत उड़ जावे, ऐसा कभी नहीं सुना गया है । यदि वायु कभी समुद्र पर्वतकी उड़ा सके, स्वर्ग पृथ्वीसे मिल जावे अथवा कालचक्र परिवर्तित हो जावे, तब ही तुम मुझसे जो कुछ कहो, सब सम्भव हो सकता है । क्योंकि युद्धमें इस शत्रुनाशन द्रोणके सम्मुख होकर कौन पुरुष जीवित रह सकता है ? घुड़सवार, गजपति, रथी अथवा कोई पुरुष क्यों न होवे, कौन युद्धमें उनके सम्मुखसे जीवित रहकर कुशलपूर्वक घरकी लौट सकता है ? युद्धमें भोस द्रोणके अस्त्रकी चाटसे विद्ध होकर पाँवसे पृथ्वीकी स्पर्श करनेवाला कौन मरण-धर्मशील मनुष्य जीतेजी निस्तार पा सकता है ? हे मन्द बुद्धि ! तू कूणमें रहनेवाले मेढककी भाँति मूढ़ होकर देवताओंसे रक्षित स्वर्गपुरीकी भाँति, प्रतीच दाक्षिणात्य, औदीच्य, काबोज, शक, शल्ल, स्त्रेक्ष, द्राविड़, आन्ध्र, और काश्मीर देशीय पुलिन्दगण आदि असंख्य राजाओंसे रक्षित साक्षात् देवताओंकी सेनाके समान महाबलवान् इस इकट्ठी हुई राजसेनाकी बोध करनेमें क्यों नहीं समर्थ होता है ? हे अल्पबुद्धिवाले ! तू संग्राममें इस अपार गङ्गावेगके समान पूर्णरूपसे बड़े हुए नाना भातिके असंख्य वीर योद्धाओं और हाथियोंकी सेनाके बीच स्थित मेरे सङ्ग युद्ध करनेकी किस प्रकारसे अभिलाषा करता है ?

उलूक धर्मनन्दन युधिष्ठिरसे ऐसे वचन कहकर फिर अर्जुनको आर मुख फेरकर कहने लग, “हे अर्जुन ! तू झूठा बड़ाई त्यागकर

युद्ध क्यों नहीं करता ? निरर्थक वृद्धतया तथा गर्व क्यों करता है ? केवल बातों-हीसे युद्ध नहीं सिद्ध होता, पूरी रीतिसे पराक्रमको प्रकाशित करनेपर उसकी सिद्धि होती है । रे अर्जुन ! लोकमें यदि अपनी बड़ाई करने-हीसे सब कर्म सिद्ध होजावे, तो ऐसा होनसे सब हो कृत-कार्य हो सकता है ; क्योंकि वृथा गर्व प्रकाशित करनेमें कौन दरिद्र है ? मैं तेरे महायुद्ध-कृष्णको भी जानता हूँ, तालके प्रमाण गाण्डीव धनुषको भी जानता हूँ और तेरे समान कोई बोर योद्धा नहीं है, इसे भी जानता हूँ, और जान कर ही तेरे राज्यको धारण करता हूँ । रे पार्थ ! मनुष्य छल आदि कर्मसे कभी सिद्धि नहीं प्राप्त कर सकता, विधाता-ही एक मात्र अपने सङ्कल्पसे सबको उसके वशमें करता है । मैंने इस तेरह-वर्ष-तक तेरे राज्यको भोग किया ; तुम लोग केवल विलाप करते हुए देखते ही रहते, अब तुमको वन्सु-वान्स्वोंके सहित सारकर वृद्ध-दिनतक इस सम्पूर्ण राज्यका शासन करूँगा । रे अर्जुन ! जब तू दासभावसे पराजित हुआ था, उस समय तेरा गाण्डीव धनुष कहा था और भीमसेनका बल कहा चला गया था ; उस समयमें निन्दा-बहित द्रौपदीके अतिरिक्त गदाधारी भीम और गाण्डीवधारी अर्जुनसे तुम लोगोंकी मुक्ति नहीं हुई थी, तुम लोग अमानुषी दासभावको प्राप्त कर हम लोगोंके दासकर्ममें स्थित थे, उस समयमें प्राञ्जलनन्दिनी द्रौपदीने ही तुम लोगोंको मुक्त किया था । मैंने जो तुमको षण्ड कहा था, वह यथार्थ ही है, क्योंकि उस समय तुमने विराट-नगरमें बेगी धारण की थी और विराटकी पाकशालामें भीम जो रसोई बनाता था, वह मेरा ही पराक्रम था । इसमें क्षत्रिय लोग सदा क्षत्रियोंकी इसी प्रकारसे दण्ड दिया करते हैं, देखो तुम नए सकल वेशमें बेगी धारण करके वन्याओंकी नाचना और गाना सिखाते थे ।

रे अर्जुन ! मैं कृष्ण अथवा तेरे भयसे कभी राज्य न दूँगा इससे कृष्णके सङ्ग मिलकर सुभक्त युद्ध कर, क्योंकि संग्राममें शस्त्रधारी पुरुषोंके सम्मुख माया, इन्द्रजाल और वाजोगरी कभी भयङ्कर नहीं हो सकती, बल्कि वह क्रोधहीके उत्पन्न करती है । शस्त्र-धारियोंमें श्रेष्ठ में सम्मुख आकर सहजों कृष्ण और सैकड़ों अर्जुन-दर्शों दिशामें पलायन करेंगे । रे नीचबुद्धि अर्जुन ! तू भीष्मके मझमें संग्राम कर वा अस्तकसे पर्वतको तोड़ अथवा बाढ़में नीचे कहे हुए पुरुषसागरकी तरफ जा । इस अगम पुरुषसागरमें कृपाचार्य महामीन, विविंशति महासर्प, बृहद्वल महातरङ्ग, भूरिशवा तिमिद्रिल, भीम वेग, द्रोणाचार्य भयङ्कर ग्राह, कर्ण, शल और शल्य सक्करी, काम्बोज बाहुवानल, युयुत्सु और दुर्मेधगजल, भगदत्त, युतायु और कृतवर्मा आर-पार, दुःशासन प्रवाह, सुपेण और चित्रायुध नाग, जयद्रथ दुसरे किनारे पर रहने वाले पर्वत, पुरुमित्र गम्भीरता और शकुनि दुसरा किनारा-स्वरूप है । रे पार्थ ! इस अचय शस्त्रप्रवाहसे युक्त पूर्ण रीतिसे बढे हुए पुरुष सागरकी तरफ जा जब तू परिश्रमसे थक कर चेतनारहित होजावेगा और तेरे वन्सु-वान्स्व सार जावेगे तब ही तेरे मनमें बाध उत्पन्न होगा और पापी मनुष्यका चित्त जैसे स्वर्गकी अभिलाषसे निवृत्त होजाता है, वैसे ही पृथ्वीके शासन करनेका अभिलाषसे तेरा अन्तःकरण भी निवृत्त होजावेगा, क्योंकि तपसे हीन पुरुष के स्वर्ग पानेकी आशाके समान इस प्रशंसनीय राज्यका प्राप्त करना तेरे निमित्त वृद्ध हो काठन काथ्य है ।

१६० अध्याय समाप्त ।

सञ्जय बाल, हे महाराज ! उलूकन क्रावसे पूरित विषधारी सपके समान वचनरूपा गङ्गा कासे प्राणवाका पूर्ण रीतिसे पाड़त करत है-

दुर्योधनके कहे हुए सब वचनोंका फिर कहना आरम्भ किया । पाण्डव लोग पाँहलेहीसे क्रुद्ध हो रहे थे, इस समय उसको उन वचनोंका सुनकर विशेष करके कितवपुत्रकी समीप भी तिरस्कृत होकर एकवारगो अत्यन्त ही क्रोधमें भर गये । सब लोग अपने आसनों-परसे उठके खड़े होगये और भुजाओंको फटकारने लगे तथा एक दूसरेके सुखकी ओर देखने लगे । भीमसेन नीची गर्दन करके महाविप्रधारी सपकी भाँति राग लीते हुए लाल नत्र करके कृष्णकी ओर देखने लगे । तब कृष्ण भीमसेनका अत्यन्त क्रुद्ध और व्याकुल देखकर हँसकर कितवपुत्रसे कहा, कि हे उलूक ! तुम शास्त्र-यहसि जाकर दुर्योधनसे कहा, कि तुम्हारा वचन भी सुना गया और अर्थ भी ग्रहण किया गया । तुम्हारा जैसा अभिप्राय है, वैसा ही होगा । हे राज-सत्तम ! महाबाहु कृष्ण उलूकसे ऐसा कहकर फिर महाबुद्धिमान् राजा युधिष्ठिरकी ओर देखने लगे । उलूकने भा सम्पूर्ण सञ्जय, यशस्वी कृष्ण, पुत्रोंके सहित द्रुपद, और विराटके समीप तथा सब राजाओंके बीच अपने वचनरूपी शलाकासे क्रोधसे युक्त विपैले सर्पके समान अर्जुनकी पीड़ित करते हुए दुर्योधनके कहे हुए सब वचनाका फिर बर्णन किया और कृष्ण आदि सब राजाओंसे भी दुर्योधनके कहे हुए यथाय वचनाका कह दिया । अर्जुन उलूकके कहे हुए महाकठार तथा दारुण वचनोंका सुनकर अत्यन्त ही क्रुद्ध हुए और मस्तकसे पसीना पीकने लगे । हे महाराज ! उस समय वह राजसभा अर्जुनकी ऐसी अवस्थामें देखकर अत्यन्त ही अधोर हो गई, पाण्डवोंके महारथ वीर लोग महात्मा कृष्ण और अर्जुनके अपमानको सुनकर किसी प्रकारसे भी धोरज न धर सके । स्वाभाविक स्थिरचित्त होकर भी ये पुरुषसिंह वीर लोग उलूकके वचनोंकी

सुनकर क्रोधसे प्रचलित होगये । धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, सात्यकी, केकायराजके पाँचों पुत्र, राक्षस घटोत्कच, द्रौपदीके पाँचों पुत्र, अभिमन्यु, धृष्टकेतु, भीमसेन और नकुल, सहदेव आदि सब ही वीर लोग चन्दनचर्चित सब भूषणोंसे भूषित भुजाओंको उठाकर आसनोंसे कूदकर खड़े होगये । भीमसेन उन सबके आकार और इशारेकी जानकर क्रोधसे जलते हुए दाँतसे दाँत पीसते और ओठोंको काटते हुए वेगसे उठ खड़े हुए । वह अकस्मात् दोनों नेत्र लाल करके हाथमें हाथ रगड़ते और दाँतोंको कटकाटते हुए उलूकसे यह वचन बोले, रे मूर्ख ! दुर्योधनने तुमसे जो सब वचन कहे थे, असमर्थकी भाँति हमलोगोंकी उत्तेजनाके निमित्त तेरे वह वचन सुन गये । इस समय तू जाकर स्तनपुत्र कर्ण और दुष्टात्मा शकुनिके सम्मुख दुर्योधनसे जा वचन कहेगा, उसे सुन मैं कहता हूँ । “र दुराचारी ! मैंने जेठे भाईकी प्रीतिके वशसे होकर तेरी दुष्टताकी सहायता की, परन्तु तू उस बातको नहीं समझता है, धर्मराज युधिष्ठिरने कुलकी हितकामनासे ही शान्तिकी इच्छा करके वीरवोंके बीच कृष्णकी भेजा था, परन्तु तू अत्यन्त ही कालके वशमें होकर यमपुरीमें जानकी अभिलाषा करता है, इससे अब आहम लागीसे युद्ध कर, युद्ध भी कलह ही होगा । रे पापो ! मैंने जो भाइयोंके सहित तेरे मारनेकी प्रतिज्ञा की है, वह अवश्य उसी भाँतिसे सिद्ध होगा, उस विषयमें तू कुछ भी सन्देह मत कर । समुद्र यदि अपने मथ्या-दाकी लावकर शीघ्र पृथ्वीकी डुबा दे, पर्वत सब टुकड़े टुकड़े होजावे, तौभी मेरे वचन कभी मिथ्या न होंगे । रे नीचबुद्धि दुर्योधन ! जो यम, कुबेर और साक्षात् रुद्र आर्क्षर तेरी सहायता करे, तौभी पाण्डव लोग अपनी प्रतिज्ञाका अवश्य पालन करेंगे । मैं अपनी इच्छाके अनुसार अवश्य दुःशासनका सधिर पीजगा और

उस समय जो कोई चक्षिय क्रुद्ध होकर मेरे सम्मुख आवेगा, वह चाहे भीष्मको भी आगे करके आवे, तौ भी उसकी यमपुरीमें भेज दूंगा। मैंने चक्षियोंके बीचमें जो कुछ वचन कहा है, उस विषयमें मैं अपने आत्माकी शपथ करके कहता हूँ, कि वह वचन अवश्य ही सत्य होंगे। भीमसेनकी बातकी सुनकर शत्रुनाशन सहदेव भी क्रोधसे लाल नेत्र करके अहंकारी शूरवीरकी भाँति सेनाके पुरुषोंके बीच उलूकसे यह बोले ;—र पापो ! तू अपने पितासे जो वचन कहेगा, वह सुझसे सुन। “यदि तुम्हारे सङ्ग धृतराष्ट्रका सम्बन्ध न होता, तो हम लोगोंकी कौरवोंसे कभी जुदाई न हाती। र पापो ! तू धृतराष्ट्रके कुल, अपन कुल और सब लोगोंके विनाशके निमित्त साक्षात् वैरकी मूर्तिवाले पुरुषरूपसे उत्पन्न हुआ है। र उलूक। तेरा पापो पिता जन्मसे ही हम लोगोंके सङ्ग जुदाई कर रहा है, इससे मैं उसी शत्रुताके सम्बन्धसे इस काँठन कर्मकी कहूँगा, कि शत्रुनिके सम्मुख पहिले तुझे मारकर पोँके इच्छाके अनुसार सब धनुर्धारियोंके सम्मुख ही शत्रुनिका माँहूँगा। भीम और सहदेवकी बात सुनकर अर्जुन हँसते हुए भीमसेनसे यह वचन बोले, हे भीम ! तुम्हारे संग जिसको शत्रुता होती है, वह जोता नहीं वचता, घरमें सुखसे सीता हुआ वह पापो मृत्युके वशमें हो जा रहा है, परन्तु हे पुरुषांसह ! उलूककी कठोर वचन कहना तुम्हें उचित नहीं है, क्योंकि दूत लोग क्या अपराध करते हैं ? वह यथाथ कहे हुए वचनको ही कहते हैं। महाबाहु अर्जुन पराक्रमी भीमसे ऐसा कहकर सहदेव वीरपुरुषोंसे बात चीत करते हुए धृष्ट-द्युम्न आदिसे बोले, आप लोगोंने उस पापी दुर्योधनकी कटूक्ति विशेष करके कृष्णकी ओर मेरी निन्दा सुनी है और सुनकर हम लोगोंके हितकी इच्छासे सब कोई क्रुद्ध हो गये हैं। मैं

कृष्णके प्रभाव और आप लोगोंकी सहायतासे पृथ्वीमात्रके चक्षियोंकी कुछ नहीं गिनता हूँ। इस समय इस वचनका जो उत्तर होगा,—उलूक दुर्योधनसे जो कहेगा, आप लोगोंकी अनुमतिसे मैं वह सब उलूकसे कह दूँगा। इस वचनका जो उत्तर है, वह कलह सेनाके सम्मुख गाँछाव धनुषसे वर्णन कहूँगा। क्योंकि नए सक और असमय लोग ही वचनसे उत्तर दिया करते हैं।

अनन्तर वह सब राजसत्तम राजा लोग अर्जुनकी बात सुनकर विस्मित होके उनकी प्रशंसा करने लगे। तब धर्मराज युधिष्ठिर अवस्थाके अनुसार सबको विनोत भावसे शान्त करके अपनी आरसे दुर्योधनसे कहनेके निमित्त उलूकसे यह वचन बोले ;—कोई राजा अपनेको अपमानित समझ कर शान्त नहीं रह सकते ; इससे मैं तुम्हारे वचनोंकी सुननमें रत था ; अब उसका प्रत्युत्तर कहूँगा। हे भरतर्षभ ! धर्मात्मा युधिष्ठिर दुर्योधनके उस वचनको सुनकर क्रोधन भर कर गर्जित-पुरुषकी भाँति लाल नेत्र करके विप्रधारी सर्पके समान लम्बो साँस छाड़ते और दाताका पीसकर कृष्ण और भाइयोंके सुखकी ओर देख अपनी प्रच्छन्न भुजाका उठाकर कृतवनन्दनसे बोले, हे तात उलूक ! तुम कुलघाता, कृतघ्न, वैरकी मूर्ति, नाचबुझ दुर्योधनके ससाप जाकर उससे यह वचन कहा, र पापो ! तू पाण्डवाका नामत सदा ही कुटिल आचरण करता रहता है। र मूर्ख ! जो पुरुष अपने बल और पराक्रमसे शत्रुओंका आवाहन करता है और निभय हाकर अपना विचन पूरा करता है, उसका ही चक्षिय पुरुष कहते हैं। र कुलघाता ! इससे तू चक्षिय हाकर युद्धमें हम लोगोंका आवाहन क्या नहीं करता ? भानके पात्र इष्टामवाका आगे करके क्या युद्धका आभलापा करता है ? र कौरव ! तू अपने बल और शैवकी परा-

इसके आसरेसे शत्रुओंको आवाहन करके सब भाँतिसे ज्ञातय पुत्र को नहीं जनता । रे अधम पुत्र ! जो परायें बलके अवलम्बसे शत्रुओंको आवाहन करता है और स्वयं उसके सम्मुख ज्ञानसे असमर्थ रहता है : उसे बुद्धिमान लोग नपुंसकोंमें गिनते हैं : इससे जब तू स्वयं असमर्थ होकर दूसरेके पराक्रमसे अपनेका बलवान् समझता है, तो फिर किस प्रकारसे हम लागाके सङ्ग इतना तज्जन गर्जन कर रहा है ?

कृष्ण बोले, हे उलूक ! तुम मेरे इस वचनको भी दुर्व्योधनसे कहना, कि रे नीचबुद्धि दुर्व्योधन ! तूने कहा है, कल युद्ध होगा ; तो इस समय उस कर्मकी करक अब पुत्रार्थ अवलम्बन कर । रे नूढ़ ! तू जा ऐसा समझता है, कि पाण्डवान् कृष्णका केवल सारथी-कर्मके वास्ते वरण किया है,—इससे वह युद्ध न करेगा ; ऐसा समझ कर हा जा तू अभय हो रहा है, वंश किसी कालमें भी न होगा, क्योंकि क्रुद्ध हानपर मैं तण्डुलसूत्रका मरुत करनवाले आगकी भाँति सब राजाओंको भस्म कर सकता हूँ । किन्तु युधिष्ठिरका आज्ञासे युद्धमें प्रवृत्त हुए विजया अर्जुनके रथका सारथी-होना वनूँगा । तू याद तोना लाकाका लाघ-कर भाग जावे अथवा पृथ्वाको वाच प्रवश करे, तोभी कल उसी उसी स्थानपर अर्जुनको रथका देखेगा । तुम भीमसेनका वचन व्यर्थ समझते हो, परन्तु इस समय यह अनश्वर कर रक्खा, कि दुःशासनका सर्धर पान हो चुका है और यह भी जान रक्खा, कि वसुधैव कुटुम्बकम् पर अर्जुन, युधिष्ठिर, भीम, नकुल, सहदेव काई भी तुम्हें कुछ भी समर्थ नहीं समझते हैं ।

१६१ अध्याय समाप्त ।

सङ्गठन बोले, हे भरतर्षभ महायशस्वी अर्जुन दुर्व्योधनके वचनोंकी सुनकर कृष्णके मुखको भीर देखकर उलूकनी और लाल नेत्र करके यह वचन बोले, जा पुत्र अपने पराक्रमके आसरेसे शत्रुओंको आवाहन करके अभय होकर युद्ध करता है, उसका ही पुत्र कहा जाता है ; परन्तु जो परायें बलके आसरे शत्रुओंको आवाहन करता है, उसे पुत्रोंमें अन्तर्गत्त अधम क्षात्रिय-पुत्र कहते हैं । रे मूर्ख ! तू भी परायें बलसे अपनेको बलवान् समझ रहा है और स्वयं कापुत्र हीकर भी शत्रुओंके जोतनकी आभिलाष करता है । रे नीचबुद्धि मूर्ख ! तू जो सब राजाओंमें बूढ़े, अहित करनेवाले, शत्रुओंको जातनवाले, महा-जुद्धमान् भीष्मका मरनकी नामत्त तैयार करके हथा बड़ाइ कर रहा है ; उसका आभिलाष हम लागाका विदित है । रे दुष्ट ! तेरा यह आभिलाष है, कि अर्जुन दया करके गङ्गानन्दन भीष्मका नहीं मारगा । रे दुर्व्योधन ! तू जिसके बलके आसरेसे हथा गर्व कर रहा है ; उस भीष्मका मैं द्रुपदपूर्वक सब धनुर्धारियोंका सम्मुख पाँहली हो मारूँगा ।

हे उलूक ! तुम कीरवाके बोचमें जाकर दुर्व्योधनसे यह वचन कहो, कि सव्यसाची अर्जुनने भी यहो वचन कहा है,—रात बीत-नपर सुबेर ही युद्ध आरम्भ होगा । महापरा-क्रमी सत्यप्रातज्ञा करनवाले भीष्मन कुरुगणको बोच सबके आनन्दकी वढ़ाते हुए “मैं सृज-नोंको सेना और शत्रुके लोगोंको युद्धमें मारूँगा, इसका भार मेरे ही ऊपर है । मैं द्रोणाचार्यको छाड़कर अकेला ही सब लोगोंका सहार कर सकता हूँ ; इससे पाण्डवोंसे तुम्हें कुछ भय नहीं है ।” यह जो वचन कहा है, उससे तुम्हें ऐसा ज्ञान हुआ है, कि सब राज्य मेरा हुआ और ९७

अभिमान द्वारा मतवारे होकर अपनेमें जो सब अनर्थ विद्यमान है, उन्हें नहीं देख सकते हैं। इससे तुम्हारे सम्मुख हो मै भोषको युद्धमें सबसे पहिले मारूंगा। स्थूलके उदय होते ही तुम रथी और ध्वजधारी होकर सत्यप्रतिज्ञा करने-वाले भोषको रक्षा करा, क्योंकि तुम लोगोंके सम्मुख ही मै हीप अर्थात् रक्षकस्वरूप महाबोर भीष्मको अपने तेज बाणोंकी सहायतासे रथमेंसे पृथ्वीपर गिरा दूंगा। दुर्योधन कलपितामह भोषको मेरे बाणोंसे क्षिपा हुआ देखकर बड़ाईका वचन कैसा है, विशेष रूपसे जान जावेगा। र दुर्योधन! भोमसेनन क्राधसे भर कर सभाके बीचमें तुम्हारे भाई नीच, अधर्मी, सदा बैरी, पापी, दुष्ट, अधम पुरुष दुःशासनका जो कुछ वचन, कहा था, उस सत्य प्रतिज्ञाको तू शीघ्र ही पूरा होते देखेगा। और अभिमान गव्व, क्राध, कड़ा वचन, निठुरता, अपनी बड़ाई, निर्दयता, टेढ़ापन, धर्मसे द्वेष, अधर्म, निन्दा, बूढ़ाके वचनोंका अनादर आदि सब बुरे कर्मोंका फल भी भली भांति देखेगा। र अधम पुरुष। र मूढ़! कृष्णका सहाय बनाकर मेरे क्रुद्ध हानिपर तेरा प्राण और राज्यकी कैसे आशा की जा सकती है? मैं जिस समय भास और द्राणाचार्यका शान्त कल्ला गा और सूतपुत्र कणका मारूंगा तब ही तू जाते जो राज्य और पुत्रसे निरास हो जावेगा। र दुर्योधन! तू भाई और पुत्रोंका मरना सुनकर और स्वयं भीमसेनकी गदाकी दास्य चोटसे विकल होकर अपने किये हुए सब पापोंकी खरग करेगा। र धूर्त! मैं दोवार कभी प्रतिज्ञा नहीं करता, तुमसे सत्य ही कहता हूँ, कि मैंने जा कुछ वचन कहे हैं, सब ही सत्य होंगे।

युधाष्ठिर भी उलूकसे यह वचन बोले, हे तात उलूक! तुम दुर्योधनके समीप जाकर मेरे इस वचनको कहना, कि अपने चरित्रके दृष्टान्तसे मेरे चरित्रको बोध करना तुमको

उचित नहीं है। - दोनोंका अन्तर और सत्य तथा मिथ्याका प्रभेद सुझे विदित है। हे तात। मैं किस भांति जातीय लोगोंके वधकी अभिलाषा करूंगा? मैं कभी कोट और चौंठो आदिका भी अनिष्ट करनेकी इच्छा नहीं करता हूँ। र नीच बुद्धि मूर्ख! किसी प्रकारसे तेरी महाविपद देखनी न पड़े, इसी निमित्त मैंने पहिले केवल पांच ही गाव मांगे थे, परन्तु तू मूढ़ता युक्त लाभमें पड़ कर वधा गर्वकर रहा है, और कृष्णके भी उत्तम वचन तूने नहीं ग्रहण किये। इस समय अब वृद्धत वाताके व्यय करनेका क्या प्रयोजन है? वस्तुवाच्यके सहित मेल कर युद्ध कर। हे उलूक! मेरी बुराई करनेवाले दुष्ट दुर्योधनसे कहना, कि तुम्हारे वचन भी सुने गये और अर्थ भी ग्रहण किया गया, तुम्हारा जैसा अभिप्राय है, वैसा हो जाएगा।

अनन्तर भोमसेन फिर बोले, हे उलूक! उस नीच-बुद्धि, पापी बुरे कर्म करनेवाले, शठ दुष्ट राजपुत्र दुर्योधनसे मेरा यह वचन कहना, कि या ता तुम गिद्धके पेटमें जाअंग अथवा हास्तनापुरमें निवास कराओ। र पुरुषाधम! मैं तेरे निकट यह शपथ करके कहता हूँ, मैं सभाके बीच जा कुछ प्रातेज्ञा की है, उसे अवश्य पूरी करूंगा, युद्धमें दुःशासनका लाघर पान करूंगा और तुम्हारी भी दाना जङ्घाओंके ताड़के तुम्हारे सब भाइयोंका मारूंगा। र दुर्योधन! मैं सब धृतराष्ट्रके पुत्रों और अभिमन्यु सब राजपुत्रोंका साक्षात् मृत्युस्वरूप हूँ। र दुर्योधन! मैं अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार तुम सबका ता सन्तुष्ट करूंगा ही, परन्तु उसके अतिरिक्त और भी मरा एक बात सुनो, मैं तुमका भाइयोंके सहित मारकर धर्मराजके सम्मुख ही अपने पापोंमें तुम्हारे सिरपर आघात करूंगा।

हे राजन्! अनन्तर नकुल यह वचन बोले,

हे उलूक ! तुम कौरवोंमें नीच दुर्योधनसे कहना, कि तुम्हारी सब बातें सुनी गईं । हे कौरव ! मुझी जैसी आज्ञा दी है, मैं उसको पूर्ण करूँगा । हे राजन् ! सहदेवने भी ऐसे ही वचन कहे, कि दुर्योधन ? तुम्हारी जैसी बुद्धि है, वैसे ही हम लोगोंके इस क्लेशको देखकर तुम आनन्दित होकर अपनी बड़ाई कर रहे हो, परन्तु पुत्र, भाई और जातिके लोगोंके सहित शोकित तथा दुःखित होओगे ।

बूढ़े राजा विराट और द्रुपदने भी उलूकसे यह वचन कहा, कि धर्मरक्षा पुरुषके सेवक बनें, यह हम लोगोंके निमित्त वृद्धत हो उत्तम है ; परन्तु हम लोग दान हैं, वा प्रभु और जिसका जैसा पराक्रम है, वह कल्ह हो प्रकाशित होजावेगा ।

अनन्तर शिखण्डीने उलूकसे यह वचन कहा, कि पापी राजा दुर्योधनसे तुम यह वचन कहा, कि “हे राजन् ! मैं युद्धमें कैसा भयङ्कर कर्म करता हूँ, उसे तुम प्रत्यक्ष देखोगे जिसके बलकी आशासे तुम अपनी विजयका निश्चय करते हो, तुम्हारे उसी पितामहको मैं रथमें पृथ्वीपर गिराऊँगा ; विधाताने मुझी भोष्मके वध करनेकी निमित्त उत्पन्न किया है, इससे मैं सब धनुर्धारियोंके सम्मुख भोष्मकी अवश्य ही माखूँगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ।

धृष्टद्युम्न भी कितव पुत्र उलूकसे यह वचन बोले, कि तुम मेरी आरसे जाकर दुर्योधनसे यह वचन कहना, कि मैं बन्धु, वासुदेवोंके सहित द्रोणाचार्यकी माखूँगा और ऐसा कर्म करूँगा, कि जैसा कोई भी कभी नहीं कर सकेगा ।

अनन्तर धर्मराज युधिष्ठिर कुरुणा प्रकाशित करके उलूकसे बोले, हे राजन् ! मैं किसो प्रकारसे भी जातिके लोगोंके वधकी इच्छा नहीं करता हूँ ; परन्तु तुम्हारी नीचबुद्धिके दोषसे यह सब भातिसे करना ही पड़ेगा, धृष्टद्युम्न

आदि वीरोंके प्रतिज्ञा पालन करनेके विषयमें मुझी अवश्य आज्ञा देनी पड़ेगी । हे उलूक ! इससे इच्छा हो शीघ्र जाओ, अथवा यहाँपर ही निवास करो, क्योंकि हम लोग भी तुम्हारे बन्धु हैं ।

हे राजन् ! अनन्तर उलूक, धर्म-पुत्र युधिष्ठिरकी आज्ञा लेकर दुर्योधनके समीप गये । वहाँपर क्रोधी दुर्योधनके निकट पड़कर उन्होंने अर्जुनके कहे हुए यथार्थ वचनोंकी वर्णन किया । ओकृष्ण, भीम, युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव, विराट, द्रुपद, धृष्टद्युम्न और शिखण्डीके वचन तथा कृष्ण अर्जुनके यथार्थ सन्देहको सुनकर दुःशासन, कर्ण और शकुनिसे बोले, कि तुम लोग राजाओ और अपनी सेनाओंमें यह आज्ञा प्रचार करो, कि सूर्यके उदय होनेके पहिले ही सम्पूर्ण सेना युद्धके निमित्त सजके खड़ी रहे । अनन्तर कर्णकी आज्ञा पाते ही दूत लोग रथ, जंठ, और कोई घोड़ोंपर चढके कर्णकी आज्ञाके अनुसार सब सेनामें घूमकर सूर्यके उदय होनेके पहिले सेनाकी युद्धके निमित्त सजाकर तयार रखनेके निमित्त गये ।

१६२ अध्याय समाप्त ।

सञ्जय बोले, उलूककी बात सुनकर कुन्ती-पुत्र युधिष्ठिर धृष्टद्युम्नकी आगे करके चलनेवाली सेनाकी युद्धके निमित्त यात्रा करनेकी आज्ञा दी । धृष्टद्युम्नके वंशमें चलनेवाली, पृथ्वीके समान स्थिर, घोड़े, हाथी और पैदलोंसे युक्त वह चतुरङ्गिनी सेना अर्जुन भीम आदि महारथ वीरोंसे रक्षित होकर अगम समुद्रकी भांति देखने लगी । महाधनुर्दारी द्रोणाचार्यके वधकी इच्छा करनेवाली शत्रुनाशन धृष्टद्युम्न उस सेनाके आगे हाकर सैनिक पुरुषोंको निर्वाचन करके सबको आकर्षण करते हुए चलने लगे । इस अग्निवर्णवाली महाधनुर्दारी धृष्टद्युम्नके बल और उत्साहके अनुसार रथियोंका युद्ध करनेके निमित्त निश्चित किया, कर्णसे

अर्जुन, दुर्योधनसे भीम, शल्यसे धृष्टकेतु, कृपा-
चार्यसे उत्तमौजा, अश्वत्थामासे नकुल, कृत-
वर्मासे शैव्य और जयद्रथके निमित्त वृष्णिवंशीय
युधुधानको नियुक्त किया। भीष्मके सम्मुख
शिखण्डीकी स्थापित किया। शकुनिसे सहदेव,
शल्यसे चेकितान और विगर्तसे युद्ध करनेकी
निमित्त द्रौपदीके पाचों पुत्रोंको नियुक्त किया।
वृषसेन और शैपराजाओंके निमित्त अभिमन्युको
नियुक्त किया, क्योंकि उसकी वह अर्जुनसे भी
युद्ध करनेमें अधिक सामर्थ्यवान् समझते थे।
तेजस्वी सेनापति धृष्टद्युम्न सब योद्धाओंको पृथक्
पृथक् और इकट्ठे विभाग करके द्रोणाचार्यको
अपने अंशमें निश्चित किया और उसी प्रकारसे
व्यूह बनाकर युद्धके निमित्त तैयार होकर
सम्पूर्ण सेनाका सजाके पाण्डवोंके जयके
निमित्त रणभूमिमें आकर खड़े हुए।

१३४ अध्याय समाप्त ।

अब रथी-अतिरथी सख्या

निरूपण करेंगे ।

राजा धृतराष्ट्र बोले, अर्जुनने युद्धमें भीष्मके
वध करनेको प्रतिज्ञा की, इसका सुनकर मेरे
नोचबुद्धि पुत्रोंने क्या किया? सुभेवाध होता है,
कि कृष्णको सहायतासे युक्त दृढ़ धनुर्धरो अर्जुन
युद्धमें जेठे पिता गङ्गानन्दन भीष्मका अवश्य ही
वध करेगा। हे सञ्जय! अर्जुनको प्रातः
सुनकर वह महाबुद्धिमान्, महाधनुर्धरो
शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ कौरव धुरन्धर महातेजस्वी
और पराक्रमसे युक्त भीष्मने ही क्या कहा और
सेनापति बनकर किस प्रकारसे उद्योग किया?

श्रीवैशम्पायन सुनि बाले, अनन्तर सञ्जयने
अत्यन्त तेजस्वी कौरवोंमें बूढ़े भीष्मने जैसा
वचन कहा था, वह सम्पूर्ण वृत्तान्त धृतराष्ट्रसे
वर्णन किया।

सञ्जय बाले, हे राजन्। भीष्म सेनापति
होकर दुर्योधनका आनन्दित करते हुए यह

वचन बोले, मैं शक्तिको ग्रहण करनेवाले सेना-
पति स्वामकार्तिकको नमस्कार करके आज
तुम्हारा सेनापति बनूंगा, इसमें कुछ भी सन्देह
नहीं है। मैं सेनाका कर्म और अनेक भांति
व्यूह रचनेमें अभिज्ञ हूँ और वेतन पानेवाले
तथा मित्रतासे इकट्ठे हुए सैनिक पुरुषोंसे
जैसा कर्म कराना उचित है, वह भी जानता
हूँ। हे महाराज! युद्धयात्रा, और दूसरेके
शस्त्रोंका निवारण तथा प्रतीकार करनेमें
मैं वृहस्पतिके समान बुद्धिमान् हूँ। मैं
जो देवता, गन्धर्व और मनुष्य सम्बन्धीय सब
व्यूहकी रचना करना जानता हूँ, उसहीसे
पाण्डवोंको मोहित करूँगा, इससे तुम अपनी
सब चिन्ता दूर करो। हे राजन्। तुम्हारी
सेनाकी सब प्रकारसे रक्षा करते हुए मैं शत्रुके
अनुसार निष्कपट चित्तसे युद्ध करूँगा, इससे
तुम अपनी सब चिन्ता और शोक दूर करो।

दुर्योधन बोले, हे महाबाहो गङ्गानन्दन
भीष्म। मैं तुमसे यह सत्य वचन कहता हूँ कि
सम्पूर्ण देवता और असुरोंसे भी सुभी कुछ भय
नहीं है; तुम्हारे समान महावीर पुरुषके
सेनापति होने और पुरुषसिंह द्रोणाचार्यके
प्रसन्नतापूर्वक युद्धमें स्थित रहनेपर जो भय
नहीं रहेगा, इसमें कौनसा सन्देह है? हे
भरतश्रेष्ठ! पुरुषोंमें मुख्य आप दोनों महावीर
पुरुषोंके स्थित रहनेपर मेरा निश्चय ही विजय
होगा, विजयको तो बात ही क्या है, देवताओंका
राज्य भी सुभी दुर्लभ नहीं है। हे कौरव!
अब इस समयमें शत्रुओं और तुम्हारी सेनामें
कितने रथी और अतिरथी हैं, उनका मैं जान-
नेकी इच्छा करता हूँ। हे पितामह! तुम
अपने और शत्रुपक्षके वीरोंकी खूब ही जानते
हो, इससे मैं इन सम्पूर्ण राजाओंके सहित इस
वृत्तान्तकी सुननेकी अभिलाषा करता हूँ।

भीष्म बोले, हे गान्धारोनन्दन राजेन्द्र!
अपनी सेनाके बीच रथियोंकी सख्या सुनो, जो

लोग रथी और अतिरथी है, वह मैं सब वर्णन करता हूँ । हे राजन् ! तुम्हारी सेनाके बीच कई सहस्र, कई लाख और अनेक अर्बुद रथी है, उनमें जो मुख्य है, उनका नाम कहता हूँ, तुम सुनो । पहिले दुःशासन आदि सौ भाद्र-योके सहित तुम ही एक प्रधान रथी हो, तुम लोग सब ही शस्त्र चलानेके विषयमें कृतकार्य और छेदन, भेदन आदि सब विषयोंकी जानने-वाले हो । तुम लोग रथ और हाथियों पर चढ़के जैसे लड़नेवाले हो, वैसे ही गदा, प्रास, तलवार आदि शस्त्रोंकी भी चलानेवाले हो ; तुम लोग शस्त्रका चलान और भार उठानेमें समर्थ और अस्त्र शस्त्र तथा मन्दमं द्राणाचार्य और कृपाचार्यके शिष्य हो । यह मनस्वी धार्तराष्ट्रगण पाण्डवोंके ऊपर क्रुद्ध होकर युद्धमें मतवारे पाण्डाल-वीरोंका मारेंगे । हे भरतश्रेष्ठ ! तुम सबका सेनापति मैं भी तुम्हारे शत्रु पाण्डवोंका पराजय साधन करता हुआ सबका नाश करूँगा । हे राजन् ! अपना गुण सम्पूर्ण रूपसे वर्णन करना सुभी उचित नहीं है, मैं जैसा हूँ, उसे तुम जानते ही हो । शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ अतिरथी भाजराज कृतवर्मा भी युद्धमें तुम्हारी अवसिद्धि करेगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है, यह शस्त्र धारियोंमें श्रेष्ठ दृढ़शस्त्र और दूरतक अस्त्रोंके चलानमें समर्थ है, इससे इन्द्र जैसे दानवाका संहार करते हैं, वैसे ही यह शत्रुओंकी सेनाका नष्ट करेगा । मेरी समझमें महाधनुर्धारी मद्राज शल्य भी एक मुख्य अतिरथी है, यह राजसत्तम युद्धमें कृष्णके सङ्ग सदा लड़नेका इच्छा करते हैं, विशेष करके अपने भागनयका त्याग करके तुम्हारा पक्ष अवलम्बन किये हुए हैं, इससे यह समुद्रके तरङ्गके समान अपने वाणोंसे शत्रुओंको दूर करते हुए महारथ पाण्डवोंके सङ्ग युद्ध करेंगे । महाधनुर्धारी रथयथपतियोंका भी युध्पति सोमदत्तकी पुत्र

भूरिथवा कृतास्त भी है और तुम्हारे हित-कारी मित्र भी है, इससे यह शत्रुओंकी सेनाका खूब ही विध्वंस करेंगे । हे महाराज ! सिंधुराज जयद्रथकी मैं द्विगुणरथ समझता हूँ : यह राजसत्तम । सम्पूर्ण रूपसे पराक्रम प्रकाशित करके शत्रुओंसे युद्ध करेंगे, हे राजन् ! द्रौपदीचरणके समयमें पाण्डवोंने जो इन्हे अत्यन्त क्रोध दिया था, उसे पूर्ण रीतिसे क्षरण करके यह शत्रुनाशो वीर युद्धमें प्रवृत्त होंगे । हे राजन् ! उस समयमें इन्होंने वज्रत कठिन तपस्या करके महादेवसे अत्यन्त दुर्लभ वर पाया था, इससे ही तात ! यह राज-शार्दूल जयद्रथ युद्धमें उस त्रैरका क्षरण करके अपने प्रिय प्राणको त्याग करके भी पाण्डवोंके संग युद्ध करेंगे ।

१६४ अध्याय समाप्त ।

भीष्म बोले, हे राजसत्तम ! काम्बोज-राज सुदक्षिण एकगुणे रथी हैं, तुम्हारी अर्थ सिद्धिकी इच्छा करके यह शत्रुओंसे युद्ध करेंगे । कौरव लोग युद्धमें तुम्हारे निमित्त शस्त्र चलानेवाले इस रथासहका इन्द्रके समान पराक्रम देखेंगे, क्योंकि इनके रथके समूह शलभपुच्छकी भांति तोत्र वेगसे युक्त काम्बाज वीरोंका विस्तार दोख पड़ेगा । हे महाराज ! माहिष्मतीवासो नीलवर्मा नीलराज भी रथी है, ये अपने रथके समूहसे तुम्हारे शत्रुओंका नाश करेंगे, हे कुरुनन्दन ! पहिले सहदेवने इनके संग शत्रुताकी थी, इससे तुम्हारे निमित्त ये स्थिर होके युद्ध करेंगे । हे तात ! महाबलवान् पराक्रमी, युद्ध-कर्मकी जाननेवाले अवन्तिदेशीय विन्द और अनुविन्द उत्तम रथी कहके विख्यात हैं । हे महाराज ! युद्धमें क्रीड़ा करनेवाली दो मतवारे हाथियोंकी

भांति युद्धकी इच्छासे ये पुरुषसिंह रणभूमिमें कालके समान धूमते हुए अपने हाथसे गदा, प्रास, तलवार और तीमर आदि शस्त्रोंको चलाकर शत्रुओंकी सेनाको भस्म करते रहेंगे। हे राजेन्द्र ! त्रिगर्त लोग पाँचीं माई मेरे मतमें रथश्रेष्ठ है। विराट-नगरमें पाण्डवोंने इनके सङ्ग शत्रुता की थी इससे घड़ियार मगर जैसे तरङ्गसे युक्त भरी हुई गङ्गाको मथते हैं, युद्धमें ध्वजाधारी पाण्डवोंकी सेनाकी भी ये लोग वैसे ही तितर बितर करेंगे। इन पाँच रथियोंके बीच सत्यरथ मुख्य है। हे भारत ! पहिले अर्जुनने दिग्विजयमें प्रवृत्त होकर इन लोगोंका अनिष्ट किया था, उसकी पूरा रीतिसे क्षमा करके, ये लोग युद्ध करेंगे, पाण्डवोंके सम्मुख होकर ये लोग महा धनुरर्दारी महारथ मुख्य मुख्य क्षत्रियोंका वध करेंगे। हे राजन् ! तुम्हारा पुत्र लक्ष्मण और दुःशासनका पुत्र, ये दोनों मेरे मतसे उत्तम रथी हैं। तक्षक और सुकुमार राजकुमार होकर भी ये पुरुषसिंह युद्धमें पीके नहीं हटते, महातेजस्वी युद्धके काथ्य जाननेवाले और शस्त्र चलानेमें निपुण हैं। ये दोनों वीर क्षत्रिय धर्ममें स्थित होकर बल्लत काँठन युद्धके कर्म करेंगे। हे पुरुषश्रेष्ठ महाराज ! दण्डधार एक गुण रथा है, य—अपनी सेनासे राक्षत होकर तुम्हारे नामित युद्ध करेंगे। हे तात ! महावेगवान्, पराक्रमा रथसत्तम शाल्वराज बृहद्वल भी मेरे मतमें रथी है। धृतराष्ट्रपुत्रोंके हितकार्यमें रत होकर ये अस्त्र शस्त्रको धारण करनेवाले महाधनुर्दारी रणभूमिमें अपने बन्धु बान्धवोंको आनन्दित करते हुए युद्ध करेंगे। हे राजन् ! रथयूथपात कृपाचार्य अपना प्रयत्न त्याग कर भी तुम्हारे शत्रुओंका नाश करेंगे। तात ! अजेय स्वाम कार्तिकके समान जा शरस्त्रस्वसे महार्घ गीतमके वीर्य द्वारा उत्पन्न हुए थे, य वही वीरवर पुरुष है, युद्धम धनुष और शस्त्रका धारण करके शत्रुओंका सेनाका

भस्म करते हुए साक्षात् अग्निके समान वे रणभूमिमें धूमेंगे।

१६५ अध्याय समाप्त ।

भोम बाली, हे नरनाथ ! तुम्हारा मामा शत्रुनि भी एकरथी है, पाण्डवोंके सङ्ग शत्रुता करके यह अवश्य युद्ध करेगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। युद्धमें शत्रुओंके विरुद्ध गमन करनेवाले इस वीरकी सेना अनेक शस्त्रोंको धारण करनेवाली और अत्यन्त दलवान् है। महाधनुर्दारी महारथ द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामा सब धनुर्वारियोंमें श्रेष्ठ, युद्धमें महावीर योद्धा और दृढ़ शस्त्रधारी हैं। हे राजन् ! गाण्डीव धनुषकी धारण करनेवाले अर्जुनकी भांति इसके शरासनसे कूटे हुए सब बाण शत्रु आका नाश करते हैं। मे इस रथसनम महावीर पुरुषके गुणोंकी संख्या करनेम असमर्थ हूँ, यह महारथ इच्छा करनेसे तोनी लाकका भस्म कर सकता है। इसन आश्रमवासो होकर तपस्यासे क्रोध और तेज दानोंका बढाया है और उदारबुद्धिसे युक्त हानसे द्रोणाचार्यकी कृपासे सब दिव्य-अस्त्र शस्त्रोंका प्राप्त किया है, परन्तु इसम एक ही दोष ऐसा है, कि जिसमें मैं इसे रथा वा आतिरथी कुछ भी नहीं कह सकता हूँ। हे राजन् ! यह ब्राह्मण सदा आयुको इच्छा करता है, इससे जोवन इस अत्यन्त ही प्यारा है, जा हाँ, दानों सेनाओंके बाव कोई योद्धा भी इसके समान वयमान नहीं है,—यह महा पराक्रमा अश्वत्थामा एक रथसे देवताओंको सेनाका भी वध कर सकता है और पर्वतोंको भी तोड़नेमें समर्थ है, इससे यह अत्यन्त गुणशाली, महातेजस्वी, शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ वीरवर दण्डधारी कालके समान असह्य होकर शत्रुओंको सेनामें भ्रमण करगा। क्रोधमें प्रलयकालकी आगके समान यह महा तेजस्वी पुरुषास ह अश्वत्थामा पाण्डवोंकी सेना-

की भस्म करेगा । इसके पिता द्रोणाचार्य बूढ़े होकर भी तरुण पुरुषोंसे श्रेष्ठ हैं । सग्रासमें जो वे अत्यन्त ही बड़े कार्य करेगे, उनमें मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है । सेनारूपी तृण-काष्ठ अस्त्रशस्त्रोंके वेगस्वरूपी पवनसे बड़े हुए द्रोणरूपी अग्निमें निःसन्देह युधिष्ठिरकी सेना भस्म होजावेगी, इससे रथयूथप यूथ समूहोंके भी यथपति यह पुरुषश्रेष्ठ भरद्वाज-नन्दन तुम्हारा अत्यन्त ही हितकाथ्य सिद्ध करेंगे सब धनुर्द्वारियोंके मुकुटमणि यह बूढ़े आचार्य, सम्पूर्ण सृष्टियोंके काल-स्वरूप होसकते हैं ; परन्तु अर्जुन इनकी वहुत ही प्यारा है । यह महाधनुर्द्वारी द्रोणाचार्य अपने आचार्य कर्मको स्मरण करके युद्धमें कभी अर्जुनकी नहीं मार सकेंगे । हे वीर ! अर्जुनके गुणासे माहित होकर आचार्य द्रोण सदा उसकी प्रशंसा किया करते हैं और पुत्रसे भी उसके ऊपर इनको अधिक प्रीति है । यह अत्यन्त प्रतापी महावीर द्रोणाचार्य एक रथसे ही अपन दिव्य अस्त्रोंकी सहायतासे देवता, गन्धर्व और सम्पूर्ण मनुष्योंका वध कर सकते हैं । हे राजन् ! तुम्हारे शत्रुओंकी नाश करनेवाले यह पुरुषास ह मेरे मतमें रथश्रेष्ठ हैं । यह अपना सेनाका कपाट हुए अग्नि जैसे सूखे तृण और लकड़ीका जला देतो है ; वैसे ही वे पाञ्चाल वीरोंका भस्म कर देगा । हे भारत ! सत्यकोत्त, एका-रथ राजपुत्र बृहद्वल साक्षात् कालके समान शत्रुओंकी सेनामें भस्मण करेंगे । इसके वाचल कवच और शस्त्राकी धारण करनेवाले वीर याज्ञा लोग तुम्हारे शत्रुओंकी मारते हुए रणभूमिमें भस्मण करेंगे ।

हे राजन् ! कर्णका पुत्र वृषसेन तुम्हारा एक मुख्य रथी है । वह बलवान्नामें श्रेष्ठ पुरुष तुम्हारे शत्रुओंकी सेनाका अच्छी प्रकारसे नष्ट करेगा । हे राजन् ! तुम्हारे रथश्रेष्ठ शत्रु-नाशन महातेजस्वी मधुवशीय जलसन्ध प्राण

देकर भी युद्ध करते, हार्थी और रथ दोनों वाहनोंपर चढ़के ये युद्ध कर सकते हैं ; यह महाबाहु सग्रासमें शत्रुओंकी सेनाकी विक्षिप्त करते हुए युद्ध करेंगे ; हे महाराज ! यह राज-सत्तम मेरे मतमें उत्तम रथी हैं, तुम्हारे निमित्त सग्रासमें यह अपनी सेनाके सहित प्राणत्याग करेंगे ; यह सग्रासमें महापराक्रमी योद्धा हैं, इससे निर्भय होकर शत्रुओंसे युद्ध करनेमें प्रवृत्त होंगे । हे राजन् ! युद्धमें अपराजित साक्षात् कालके समान अत्यन्त बली और महा पराक्रमी बाल्हिक मेरे मतमें अतिरथी हैं, क्योंकि रणभूमिमें जाकर यह किसी प्रकारसे भी निवृत्त नहीं होते । वायुकी गतिके समान गमन करके यह सब शत्रुओंका अवश्य ही वध करेंगे । हे महाराज ! तुम्हारे सेनापति महारथ सत्यवात् युद्धमें अद्भुत कर्म करनेवाले रथी और शत्रुओंकी पीड़ित करनेवाले हैं । युद्ध देखकर इनको किसी प्रकारसे भी भय नहीं होता, वह रथोंके मार्गमें स्थित शत्रुओंकी विक्षिप्त करने हुए सहसा उनके ऊपर पतित होते हैं, शत्रुओंकी नाश करनेवाले यह पुरुषजिह तुम्हारे निमित्त सन्तुष्टोंके योग्य अत्यन्त बड़े कार्य करेंगे । हे राजन् ! क्रूर कर्म करनेवाला महारथ राक्षसेन्द्र अलम्बुष पाहिला वैर-स्मरण करके शत्रुओंकी मारेगा । यह सम्पूर्ण राक्षसोंकी सेनाके बीच रथसत्तम, मायावी और दृढ़ शत्रुता करनेवाला है, इससे रणभूमिमें घोर रूप धारण करके शत्रुओंकी सेनामें भस्मण करेगा । हे राजेन्द्र ! प्राग्ज्योतिषपुरके राजा भगदत्त हाथियोंपर अकुश धारण करके चढ़े और रथविद्यामें भी निपुण है, पहिले गाण्डीव धनुष-धारी अर्जुनके सङ्ग इनका युद्ध हुआ था, दोनोंन अपन अपन जयकी अभिलाषासे बहुत दिनतक युद्ध किया था, पीछे पाकशासन इन्द्रको मध्यस्थ मानके इन्हींने महात्मा पाण्डवोंके संग सन्धि

किया था ; हाथोंपर चढ़के युद्ध करनेवाले यह राजा भगदत्त देवताओंके बीच ऐरावत हाथोंपर चढ़े हुए इन्द्रको भाति शत्रुओंसे युद्ध करेंगे।

१६६ अध्याय समाप्त ।

भीष्म बोले, हे राजन् ! गान्धारामें प्रधान, तरुण, देखने योग्य, महाबली, पराक्रमी, दृढ़-क्रीधी, पुरुषसिंह अचल और वृषभ दीनो भाई रथो है ; ये दोनों मिलकर तुम्हारे शत्रुओंको नष्ट करेंगे। हे भारत ! तुम्हारा प्यारा मित्र, मन्त्री, नायक, अभिमानी, बन्धु, अत्यन्त ऊँचो अभिलाषा करनेवाला, अपनी प्रशंसा करनेवाला, सदा युद्धको चाहनेवाला, नीच-पुरुष, सूखेपुत्र कर्ण जो सदा ही तुमको पाण्डवाके संग युद्ध करनेके निमित्त उत्साहित करता रहता है, इसको संग्राममें रथो वा अतिरथी कुछ भी नहीं कह सकते। यह अनभिज्ञ और अत्यन्त दयालु हानिके कारण अपने संग गर्भसे उत्पन्न हुए कवच और कुण्डलसे रहित हो गया है, इससे परशुरामके शप, ब्राह्मणके वचन और कवच कुण्डल आदि साधनोसे राहत हानसे मेरे मतमें यह अर्द्ध रथो है। युद्धमें अर्जुनके सम्मुख होंकर यह कभी जीता न बचेगा।

अनन्तर सब शस्त्रधारियोंमें अष्टद्रोणाचार्य बोले, हे गंगानन्दन भीष्म ! तुमन जो कुछ कहा, सब सत्य है, इसमें कुछ भी मिथ्या नहीं है, कर्ण प्रातः बार युद्धमें अभिमानी होता है ; परन्तु युद्धसे विमुख होते भी दीख पड़ता है, इससे यह घृणित और प्रमादी पुरुष मेरे मतमें भी अर्द्धरथी ही है।

अनन्तर इस वचनको सुनकर कर्ण क्रोधसे दोनों नेत्र लाल करके अकुशके समान वचनोंसे भीष्मकी पीड़ित करते हुए यह वचन बोले, हे पितामह ! मैं निरपराधी हूँ इसपर भी तुम केवल द्वेषके कारण ऐसे वचनरूपी वाणियोंकी

सहायतासे मुझको पद पदमें छेदन करते रहते हो, तो भी दुर्योधनके निमित्त मैं तुम्हारे सब बातोंको सहता रहता हूँ। "मेरे समीप तुम अर्द्धरथकी गिनतीमें हो" ऐसा कहकर जो तुम मुझी कापुरुषकी भाति तुच्छ समझते हो इसमें क्या सन्देह है ? हे गंगानन्दन ! मैं मिथ्या नहीं कहता हूँ, तुम सम्पूर्ण जगत विशेष करके कौरवोंके सदा अहितकारो कर्म कर रहे हो, परन्तु राजा दुर्योधन उसको नहीं जानते हैं। गुणके ऊपर द्वेष करके तुम जैसी मेरी बुराई करनेकी इच्छा करते हो, युद्धमें समान गुणोंसे युक्त उदार राजाओंके बीच भेद करनेकी इच्छासे कौन पुरुष इस प्रकार दूसरोंको तेज-हीन करता है ? हे कौरव ! अवस्था, पक्ष, हुए केश, धन अथवा बन्धुवाच्योंसे क्षत्रियोंकी महारथत्वकी सख्या कोई नहीं कर सकता है। क्षत्रिय बल, ब्राह्मण मन्त्र, वैश्य धन और शूद्र अवस्थाके क्रमसे बड़े तथा अष्ट कहके विख्यात होते हैं। परन्तु तुम केवल मोहमें युक्त और काम क्रोधसे आसक्त होकर अपनी इच्छाके अनुसार रथी और आतरथी-सख्याकी व्याख्या करके सबसे भेद उत्पन्न कर रहे हो, हे महाबाहो-दुर्योधन ! तुम पूर्ण रीतिसे विचार करके देखो, इस दुष्ट अभिप्रायवाले भीष्मकी शपथ ही परित्याग करो ; क्योंकि एकबार पृथक् होनेसे सेनाकी फिरसे जोड़ना बहुत ही कठिन हो जावेगा। हे राजेन्द्र ! जो अनेक देशोंसे पृथक् पृथक् हाकर सब राजा एक ही कार्यके निमित्त यहाँपर आने उपस्थित हुए हैं, उनकी बात-तो दूर है, भेद होनेसे मूल सेना भी, उत्साहरहित हो जावेगी। हे भारत ! भीष्म इन सम्पूर्ण याज्ञोंके सम्मुख ही हमें तेज-हीन कर रहे हैं, इससे युद्ध विषयमें इन सैनिक-पुरुषोंके हृदयमें अत्यन्त संशय उत्पन्न हुआ है। हा ! कहा रथियोंका ज्ञान और कहा अल्पबुद्धि भीष्म ! मैं

हो अकेले पाण्डवोंकी सम्पूर्ण सेनाका नाश करूँगा। शादूलके समीप आये हुए वृषभ आदि पशुओंको भाति पाण्डव और पाञ्चाल याज्ञा लोग अव्यर्थ-वालोंको चलानवाले मेरे सम्मुख आके दशो दिशामें भाग जावेंगे। कहा युद्ध, शस्त्र, मन्त्र, और उत्तम वचन, आर कहा बड़ा मन्दात्मा कालप्रेरित भीष्म। यह अकेले ही सब जगत्की सङ्ग युद्ध करनकी आभिलाषा करता है और ऐसा असत्यदर्शी होता है, कि किसीकी भी पुरुष नहीं समझता। शास्त्रमें ऐसा आज्ञा है, कि दूढ़ीके वचन सुनना उचित है, सा सब ठीक है, परन्तु आत हठ पुरुषोंके वचन नहीं सुनन चाहिये, क्योंकि पण्डितोंके विचारमें वह फिर बाल-भावकी प्राप्त होजाति है। हे राजशादूल ! मैं अकेले ही इस युद्धमें पाण्डवोंकी सम्पूर्ण सेनाको मारूँगा, परन्तु यश भीष्महीका मिलेगा। हे राजेन्द्र ! तुमन इस भीष्मका सेनापति किया है, इससे यश सेनापातहान गमन करता है, याज्ञाओंका यश नहीं जाता। इससे हे राज ! गङ्गानन्दन भीष्मके जीवित रहत, मैं किसी प्रकारसे भी युद्ध न करूँगा, भीष्मके मार जानपर सब महारथ वीराके सहित युद्धमें प्रवृत्त होजंगा।

भीष्म बाली, हे सूतपुत्र ! दुर्योधनने संग्रामके निमित्त इस समुद्रके समान बड़ी सेनाका सम्पूर्ण भार मेरे ऊपर समपण किया है, मैं कई वर्षसे इसकी चिन्ता कर रहा था, इससे उस रीवेंका खड़े करनेवाले भयङ्कर युद्धका समय उपस्थित हानपर आपसमें भेद करना मेरा कर्तव्य कर्म नहीं है, इसी निमित्त तू जीता बचा है, मैं बूढ़ा हाकर भी बालकरूपो तुम्हारे ऊपर अपना पराक्रम प्रकाशित करके तुम्हारी युद्धकी लालसा और जीनको आशा भेट संकता हूँ, परन्तु इसी कारणसे मैंने पराक्रम प्रकाशित नहीं किया। हे सूतपुत्र ! तू मेरा क्या

करेगा, तेरे गुरु परशुरामजी अपने सब महा अस्त्र-शस्त्रोंको चला कर सुभी पराजित नहीं कर सके। हे दुष्ट पुरुषाधम ! सत्पुरुष लोग कभी अपने सुहृदोंसे अपनी प्रशंसा नहीं करते, परन्तु मैं क्रुद्ध होकर तुमसे कहता हूँ, काश-राजके स्वयम्बरमें इकट्ठे हुए सम्पूर्ण क्षत्रिय राजाओंको मैंने इक रथसे ही जीतकर कन्याओंको बलपूर्वक हरण किया था और भीष्मभूमिमें ऐसे सहस्रो तथा इनसे भी श्रेष्ठ सेनाओंके सहित अनक क्षत्रिय राजाओंकी अकेले ही पराजित किया था। इससे साक्षात् वैररूपो तुम्हीं पाकर कौरवोंमें दहृत बड़ा अनर्प उपस्थित हुआ है, इस समय शत्रुओंके नाशके निमित्त यत्न कर, पुरुष बन। हे नोचबुद्धि कर्ण ! जिसके सङ्ग तू सदा युद्धकी अभिलाषा किया करता है, उस अर्जुनके सङ्ग रण-भूमिमें युद्ध कर। मैं इस युद्धमें तुम्हीं इक-बारगो मारा हुआ देखूँगा।

अनन्तर प्रतापो राजा दुर्योधनने गङ्गापुत्र भीष्मसे कहा, कि हे पितामह ! मेरी ओर दृष्टि कीजिये, देखिये यह बहृत बड़ा कार्य उपस्थित हुआ है, इससे जिसमें मेरी मङ्गल होवे, आप एकाग्रचित्त होकर उसीका अनुष्ठान कर। आपलीग दीनो ही हमारे बहृत बड़े कार्य करेगा। अब मैं शत्रुओंके रथसत्तम पुरुषोंके नाम सुननेकी इच्छा करता हूँ; वहापर जो सब अतिरथो और यूथपति है, उनका वृत्तान्त वर्णन कीजिये। हे कौरव ! मैं शत्रुओंके बलाबलको जाननेकी अभिलाषा करता हूँ, क्योंकि रात्रिके वीतनपर सबेर ही यह युद्ध आरम्भ होगा।

१६७ अध्याय समाप्त ।

भीष्म बाली, हे राजेन्द्र ! तुम्हारे इन सब रथो अतिरथो और अर्द्धरथो वर्णन किया

गया. अब पाण्डवोंके रथी आदिका वशान सुनो। हे राजन्। पाण्डवोंके बलके जाननेकी तुम्हें इच्छा है, तो सब राजाओंके सहित उन लोगोंको रथ संख्या सुनो। हे तात। स्वयं रथश्रेष्ठ कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर युद्धमें अग्निके समान भ्रमण करेंगे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। हे राजन् युद्धमें भोम-सेन अठगुणा रथी है; गदा अथवा गण चलानेमें कोई भी उसके समान नहीं. वह दस हजार हाथोंके समान बलवान् अभिमानो और तेजमें भी मनुष्यांसि बढ़कर है। पुरुष श्रेष्ठ दानों माद्री-पुत्र रथी और रूप तथा तेजमें साक्षात् अश्विनो कुमारके समान है,—ये सेनाके सम्मुख आकर सम्पूर्ण अपने दुःख तथा क्लेशोंको स्मरण करके सद्रूपके समान निस्सन्देह शत्रुसेनामें भ्रमण करेगा। पाण्डु-पुत्र सब हो महाबली, महात्मा, सिंहके समान शरीरवाले, वृक्षके समान जघन और दूसरे पुरुषासे उचाईमें अधिक है,—हे तात। य पुरुषासह सब हो ब्रह्मचर्यव्रतकी अनुष्ठान करनेवाले, तपस्वी, लज्जाशील। सहके समान बलवान्, वेग और शस्त्रोंके प्रहारमें असाधारण पुरुष हैं,—हे तात। इन लोगोंने दिग्विजयमें सब राजाओंका पराजित किया था। युद्धमें इनके शस्त्र, गदा और बाणोंको सह सके ऐसे पुरुष ही नहीं देख पाते हैं, बाणोंको सहना तो दूर है, इनके धनुषपर रोदा चढ़ान, भारो गदा आदि उठाने अथवा शस्त्रोंके चलानमें भी कोई समय नहीं है। बालक अवस्था में भी वे लोग, वेग, लज्ज, हर्षण, भाजन तथा धूलि-फेंकने और खेल करनेमें तुम सब लोगोंसे अधिक थे। वे सब हो बलवान् है, युद्धमें तुम्हारी सेनाका अवश्य नाश करेंगे, इससे उनके सद्रूप युद्ध न करना ही उत्तम है। हे राजेन्द्र! वे लोग जो अकेले ही सब राजाओंका मार सकते हैं, सो राजसूय यज्ञमें तुमने देखा

हो था। वे लोग द्रौपदीके लेश और जुएके समय के कठोर वचनोंका स्मरण करके साक्षात् सद्रूपके समान तुम्हारी सेनामें भ्रमण करेंगे। कृष्णकी सहायतासे युक्त लालनत्र वाला जो अर्जुन है उसके समान दोनों सेनाके बीच कोई भी बोर विद्यमान नहीं है, मनुष्यको बात ही क्या है, पक्षिली देवता, यक्ष, राक्षस और नागोंके बीच भी कोई उसके समान महारथी हुआ था, अथवा भविष्यकालमें होगा, मैंने ऐसी बात कहीं नहीं सुनी है। हे राजेन्द्र! बुद्धिमान, अर्जुनका क्रपिध्वजासे युक्त रथ, कृष्ण सारथी, अर्जुन प्रतापी, दिव्य धनुष गाण्डोव, बाणोंके समान चलनेवाले रथके घोड़े, अभेद्य कवच, अक्षय दोनों तूणोर, इन्द्र, रुद्र, कुबेर, वरुण और यम सम्बन्धीय सम्पूर्ण अस्त्र और भयङ्कर गदा तथा वज्र आदि अनेक प्रकारके शस्त्र एकत्रित हुए हैं। इससे जिस पुरुषने एक ही रथसे हिरण्यपुरवासो सहस्रो दानवोंको मारा था, उसके समान रथी और दूसरा कौन हो सकता है? यह अत्यन्त बलशाली, सत्य पराक्रमी, अपनी सेनाको रक्षा करता हुआ तुम्हारी सेनाका नाश करेगा। हे राजेन्द्र। द्रोणाचार्य अथवा मैं,—ये ही दा पुरुष अर्जुनसे युद्ध करनेमें समर्थ हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त दानों सेनाके बीच ऐसा कोई तोसरा रथी नहीं है, जो बाणोंको बचा करनेवाले इस महावीर अर्जुनके सम्मुख खड़ा हो सके। ग्रीष्मकाल के अन्तमें महा बाणसे प्रीरित हुए अग्निकी भाति कृष्णकी सहायतासे युक्त सव्यसाची अर्जुन युद्धके निमित्त सज्जित हो रहा है, वह तस्त्र और कृतास्त्र है और हम लोग दोनों ही बूढ़े हैं।

श्रीवैशम्पायन मुनि बाल, उस समयमें भीष्मके ऐसे वचन सुनकर सदैवयुक्त चित्त से पाण्डवोंके पुराने सामर्थ्यको फिर प्रत्यक्ष देखनेकी भाति पूर्ण रीतिसे स्मरण करके

राजाओंकी सुवर्णके भूषणोंसे भूषित और चन्दन चर्चित भुजाएँ शिथिल होगईं ।

१६८ अध्याय समाप्त ।

भीष्म बाले, हे राजन् ! द्रौपदीके पाचो पुत्र महारथ हैं, विराटपुत्र उत्तर भीमेरी समझमें रथश्रेष्ठ है । महाबाहु अभिमन्यु रथयूथपतियाका भी यूथपति है ;—युद्धमें अर्जुन और कृष्णके समान, शत्रुओंका नाश करनेवाला, शीघ्र शस्त्र चलानेवाला मनस्वी और दृढ़व्रती यह महावीर पुरुष पिताके दुःख और क्लेशोंको स्मरण करके अपना पराक्रम प्रकाशित करेगा । हे राजन् ! वृष्णिवशियोंमें श्रेष्ठ भयरहित सात्यको रथयूथपतियोंका भी यूथपति है और उत्तमौजा तथा बलवान् युधा-मन्यु भी मेरे विचारमें रथश्रेष्ठ हैं । हे भारत ! इन लोगोंके कई हजार रथ, हाथी और घाड़ोंकी सेना है, कुन्तीपुत्रोंके हितकी इच्छासे ये लोग अपना प्राण त्याग करके भी युद्ध करेंगे । पाण्डवोंके सङ्ग मिलकर परस्पर आवाहन करते हुए अग्नि और वायुकी भांति ये लोग तुम्हारी सेनामें भ्रमण करेंगे । हे राजेन्द्र ! युद्धमें अपराजित महा पराक्रमी बड़े राजा विराट और द्रुपद भी मेरे मतमें महारथ हैं, क्योंकि क्षत्रियधर्मसे युक्त वे दोनों राजा बूढ़े होनेपर भी अपनी शक्तिके अनुसार वीरोंके गमन करने योग्य मार्गमें स्थित होके यत्नपूर्वक युद्ध करेंगे । हे राजन् ! वे दोनों उत्तम व्रत करनेवाले महा धनुर्धारी दोनों ही विवाह और पाण्डवोंके सम्बन्धके कारण स्नेह और परा-क्रमसे वद्ध हैं । हे राजन् ! कारण पानेसे सम्पूर्ण महाबाहु पुरुष हो शूर और कातर होजाते हैं, परन्तु अपने प्राणोंकी आशाका काट कर ये दोनों राजा परम शक्तिके सहित युद्धमें प्रवृत्त होंगे । हे परन्तप ! महा

धनुर्धारी लोकमें विख्यात दारुण कर्म करने-वाले ये दोनों राजा अपने जीनेकी इच्छा त्याग कर सम्बन्धिभाव और विश्वासकी रक्षा करते हुए पृथक् पृथक् अक्षौहिणी सेनाके सहित वृद्धत बड़े युद्धके कर्म करेंगे ।

१६९ अध्याय समाप्त ।

भीष्म बाले, हे भारत ! मेरे विचारमें पाञ्चालराजपुत्र पराये देशको जीतनेवाला शिखण्डी युधिष्ठिरकी सेनामें एक मुख्य रथी है । यह पुरुष पूर्व जन्मके स्त्री स्वभावको त्याग करके युद्धमें तुम्हारी सेनाके बीच परम यशका विस्तार करता हुआ युद्ध करेगा । इसके सङ्ग पाञ्चाल और प्रभृत्क प्रभृति वृद्धत सेना हैं, उन रथसमूहोंके सहित यह वीरवर युद्धमें वृद्धत बड़े कार्य करेगा । हे राजन् ! पाण्डवोंकी सब सेनाके बीच सेनापति द्रोणाचार्यका शिष्य धृष्टद्युम्न मेरी समझमें अतिरथी है, यह वीर दृष्टिके अन्तर्गत अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए साक्षात् पिनाकधारी सुदृकी भाँति संग्राममें शत्रुओंको पीड़ित करता हुआ युद्ध करेगा । युद्धके जाननेवाले याज्ञा लोग संग्राममें देवताओंके समान तथा इसकी रथसे युक्त सेनाकी समुद्रकी भांति वर्णित करते हैं । हे राजेन्द्र ! धृष्टद्युम्नका पुत्र क्षत्रधर्मा बाल स्वभावसे युक्त होनेके कारण अधिक परिश्रम नहीं कर सकता, इस निमित्त उसे मैं अर्द्ध-रथोंकी संख्यामें गिनता हूँ । हे भारत ! महाधनुर्धारी, महारथ शिशुपालपुत्र चंद्रिराज धृष्टकेतु युधिष्ठिरका सम्बन्धी है । यह पराक्रमी चंद्रिराज पुत्रके सहित युद्धके कटिने कार्य करेगा । हे राजेन्द्र पाण्डवोंके बीच क्षत्रियधर्ममें रत, पराये देशको जीतनेवाले क्षत्रदेव मेरे मतमें रथश्रेष्ठ हैं । पाञ्चाल-सत्तम जयन्त अमि-तौजा, और महारथ सत्यजित् ये सब ही महात्मा

और महारथ है, हे तात । रणभूमिमें ये लोग क्रुद्ध हुए मतवारे हाथियोंकी भांति युद्ध करेंगे । शीघ्र शस्त्र चलानेवाले महाबली अत्यन्त पराक्रमी अज और भोज ये दोनों महारथ पाण्डवोंके निमित्त अपने परम शक्तिके सहित युद्ध करके शत्रुओंका नाश करेंगे ।

हे राजन् । युद्धमें भय रहित कौकयराजके पाँचो पुत्र रथश्रेष्ठ और लालध्वजाओंसे युक्त हैं । हे राजन् । काशिक, सुकुमार, नील, सूर्यदत्त, शङ्ख और मदिराश्रय ये लोग भी सुख रथी हैं, ये युद्ध तथा सब शस्त्रोंकी जाननेवाले और महात्मा हैं । हे महाराज ! वार्द्धसेमिको भी मैं महारथ समझता हूँ और चित्रायुधकी रथश्रेष्ठ मानता हूँ, क्योंकि वे लोग युद्धमें शोभित अर्जुनके भक्त हैं । चकितान और सत्यवृति ये भी पाण्डवोंके महारथ हैं, ये दोनों पुरुषसिंह मेरे मतमें रथश्रेष्ठ हैं । हे राजेन्द्र । व्याघ्रदत्त चन्द्रसेन और सेनाविन्दु ये भी पाण्डवोंके उत्तम रथियोंमें हैं, इसमें कुछ संदेह नहीं है क्रोधहन्ता नाम वीर जो भीमसेन और कृष्णके समान हैं, वे भी अपना पराक्रम प्रकाशित करके तुम्हारी सेनासे युद्ध करेंगे । हे राजन् । तुम द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और सुभक्तकी जैसा समझते हो, रथसत्तम उस वीरवरकी भी जैसा हो समझो । पराये देशकी जीतनेवाली, शीघ्र शस्त्र चलानेवाली प्रशंसाके योग्य पुरुषान् अष्ट काशिराज मेरे मतमें अर्द्धरथी हैं और दुपदपुत्र पराक्रमी युवा पुरुष सत्यजित् आठ गुणा रथी है, क्योंकि घृष्ट-युग्मके समान होनेसे वह अतिरथिल पदके योग्य हुए हैं और यश पानेकी इच्छासे पाण्डवोंके बहूत बड़े युद्धका कार्य करेंगे । महाबलवान् पाण्डुराज पाण्डवोंके एक बहूत बड़े रथी है, ये उन लोगोंके अनुरक्त हैं और पराक्रमी भी हैं, इससे ये भी युद्धमें अपना परक्रम प्रकाशित करेंगे । महा धनुर्दारी दृढधन्वा पाण्डवोंकी सेनामें एक महारथ योद्धा है । हे राजेन्द्र ।

कौरवश्रेष्ठ श्रेणिमान् और राजा बसुदान दोनों ही अतिरथीकी गिनतीमें हैं ।

१७० अध्याय समाप्त ।

भीष्म बोले, हे महाराज । पाण्डवोंके महारथ रोचमान युद्धमें शत्रु सेनाके बीच द्रुव समान सग्राम करेंगे । भीमसेनके मामा धनुर्दारी महाबल कुन्तिभोज और पुरुजित् मेरे विचारमें अतिरथी हैं । इस रथसत्तम वीर पुरुषकी मैं अत्यन्त कृतास्त्र युद्धमें निपुण और समर्थ समझता हूँ । हे भारत । इन्द्रने जैसे दानवोंसे युद्ध किया था, वह वैसी ही बल और पराक्रम प्रकाशित करके युद्ध करेंगे । उनके जो सब विख्यात सैनिक वीर योद्धा हैं, वे भी सब युद्धके कार्यमें निपुण हैं, इससे पाण्डवोंके प्रिय और हित कार्यको करनेके निमित्त स्थित होकर यह वीरवर-युद्धमें अत्यन्त बड़े कार्य करेंगे । हे महाराज । भीमसेनका पुत्र हिडिम्बाके गर्भसे उत्पन्न हुआ राक्षसेन्द्र घटोत्कच बहूत ही मायावी और रथयूथपतियोंका भी यूथपति है; वह युद्धको चाहनेवाला, मायावी और उसके वशमें रहनेवाली जो सब बलवान् राक्षस उसके सहायक हैं, वे सब संग्राममें महावीर युद्ध करेंगे । ये सब लाग और दूसरे बहूत से राजा श्रीकृष्णकी आगे करके पाण्डवोंके कार्यके निमित्त इकट्ठे हुए हैं । हे राजन् । महात्मा युधिष्ठिरकी सेनामें रथी, अतिरथी और अर्द्धरथी जो सब पुरुष हैं, उन सबमें कृष्ण ही मुख्य हैं; यह इन्द्रकी समान पराक्रमी अर्जुनसे रक्षित युधिष्ठिरकी महा सेनाकी युद्ध के निमित्त आगे बढ़ावेंगे । हे वीर । माया जाननेवाली और जयकी इच्छाकरनेवाली योद्धाओंके सहित मैं विजय अथवा मरनेकी अभिलाषा करके युद्ध करूँगा । चक्र और गाण्डीवधारो रथश्रेष्ठ कृष्ण और अर्जुन का सम्या कालके सूर्य और चन्द्रमाके समान

एक ही स्थानपर एकत्र होनेपर भी मैं तुम्हारे निमित्त उन लोगोंके सम्मुख युद्धके वास्ते गमन करूंगा और युधिष्ठिरके दूसरे जो सब रथश्रेष्ठ सेनापति हैं, अपनी सेनाके सहित उनके सङ्ग भी मैं युद्ध करूंगा ।

हे राजन् ! प्रधानताके अनुसार पाण्डवोंके दोहो सब रथी, अतिरथी और अर्द्धरथी हैं ; सो मैंने तुमसे वर्णन किया । हे भारत । मैं जहांतक देख सकूंगा, वहांतक अर्जुन, कृष्ण तथा दूसरे सब राजाओंको निवारण करूंगा, परन्तु हे महाबाहो ! युद्धमें मेरी सेनाके विरुद्ध संग्राम करनेवाला शस्त्रधारी द्रुपदपुत्र शिखण्डीको देखकर मैं उसका वध नहीं करूंगा । पिताके प्रियकार्य करनेकी इच्छासे मैंने प्राप्त हुआ राज्य भी त्याग दिया और ब्रह्मचर्य व्रतमें स्थित होके चित्राङ्गदको कौरवों महाराजके और विचित्रवीर्यकी युवराजके पदमें नियुक्त किया था, यह सब लागोका विदित है । पृथ्वीके सब राजाओंके बीचमें देवव्रत अर्थात् ब्रह्मचारी कहके मैं विख्यात हूँ, इससे स्त्री अथवा पंहिले स्त्री हुए पुरुषका मैं कभी नहीं मार सकता हूँ । हे राजन् ! शिखण्डी जो पंहिले स्त्रीरूपमें था, सो तुमने सुना ही है, हे भारत । इससे मैं उसके सङ्ग युद्ध नहीं करूंगा । इसके आतिरिक्त संग्राममें जिन सब राजाओंके सम्मुख होऊंगा, उन सबको अवश्य मारूंगा, परन्तु कुन्तीपुत्रोंको नहीं मार सकूंगा ।

१७१ अध्याय समाप्त ।

अब अम्बा-उपाख्यान पर्व लिखेगी ।

दुर्योधन बोले, हे गङ्गानन्दन भरतर्षभ पितामह ! हे महाबाहो ! “मैं सोमकवाश्योंके सहित सब पाञ्चालवीरोंको मारूंगा” पंहिले ऐसा कहकर इस समय अब युद्धमें आत तापी शस्त्र लिये हुए शिखण्डीको देखकर आप

किस कारणसे उसका वध न करेंगे, उसे वर्णन कीजिये ।

भोष्म बोले, हे दुर्योधन ! मैं शिखण्डीको रणभूमिमें देखकर जिस कारणसे उसका वध नहीं करूंगा ; वह सम्पूर्ण वृत्तान्त तुम मुझसे सब राजाओंके सहित सुनी । हे भरतर्षभ ! मेरे पिता लोकमें विख्यात धर्मात्मा महाराज शान्तनु यथा समयमें शरीरको छोड़कर स्वर्गको गये । अनन्तर मैं अपनी प्रतिज्ञाका पालन करता हुआ भाई चित्राङ्गदकी इस सम्पूर्ण राज्यका स्वामी बनाया । हे राजन् ! चित्राङ्गदके मरनेपर सत्यवतीकी सम्प्रतिसे विचित्रवीर्यको विधिपूर्वक राज्य-पदपर प्रतिष्ठित किया । हे राजेन्द्र ! छांटे होकर भी धर्मके अनुसार मेरे द्वारा राज्यपद पानेपर धर्मात्मा विचित्रवीर्य केवल मेरी ही प्रतीक्षा करते थे । हे तात ! मैंने भी समान कुलमेंसे कन्या लाकर उसके विवाह करनेकी इच्छा की । उस समयमें मैंने सुना, कि काशिराजके यहां महासुन्दरी उनकी अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका तीन कन्याओंका स्वयम्बर हो रहा है और उसके निमित्त पृथ्वीके सम्पूर्ण राजा इकट्ठे हुए हैं । हे राजेन्द्र ! इन कुमारियोंके बीच अम्बा जेठी, अम्बिका मध्यमा और अम्बालिका छोटो थी । हे महाबाहो ! मैं एक ही रथ पर काशिराजके नगरमें गमन करके सब भूषणोंसे भूषित उन कन्याओंको देखा । अनन्तर बल तथा पराक्रम ही उनका पण था, ऐसा बोध होनेपर मैंने युद्ध करनेके निमित्त इकट्ठे हुए सम्पूर्ण राजाओंकी आवाहन करके उन तीनों कन्याओंको रथमें बैठा लिया । कुमारियोंकी रथमें रखकर मैंने इकट्ठे हुए सब राजाओंसे यह बारबार यह वचन कहा “हे राजा लोग ! शान्तनुनन्दन भोष्म कन्याओंका हरण करता है, इससे तुम लोग परम शक्तिके सहित उनकी कुड़ानका यत्न करा । हे नरपभगण ! तुम

लोगोंकी अभिलाषा रहनेपर भी मैं सबके सम्मुख ही इन कन्याओंकी बलपूर्वक हरण किया जाता हूँ।” अनन्तर वे सब राजा लोग अपने सम्पूर्ण अस्त्र शस्त्रों लेकर उठ खड़े हुए और सारथीकी रथ सजानेके निमित्त आज्ञा करने लगे। हे राजेन्द्र ! उन राजाओंमें रथों लांग मेंबके समान रथसे, गजपतिलोग हाथियों और घोड़ोंके असवार लोग अपने हृष्ट पृष्ठ घोड़ोंपर चढ़के सब शस्त्रोंके सहित मेरे सम्मुख आ पड़ेंगे और सब ओरसे मुझे घेर लिया। मैंने भी अपने बाणोंको वर्षासे उन सबको निवारित किया और इन्द्र जैसे दानवोंको पराजित करते हैं, उसी प्रकारसे अकेले ही सब राजाओंको जीत लिया। हे भरतर्षभ ! वे लोग जब मुझ पर आक्रमण करनेके निमित्त उद्यत हुए, तब मैंने हसते हसते अपने जलते हुए चोखे बाणोंसे उनकी सुवर्णभूषित विचित्र ध्वजाओंको काटकर गिरा दिया और एक ही एक बाणसे घोड़े, हाथी और सारथियोंको मारकर पृथ्वीमें गिरा दिया। मेरी ऐसी शस्त्रशोद्धता देखकर सब राजा पराजित होकर भाग गये। हे महाबाहो ! अनन्तर मैंने भ्राताके निमित्त उन कन्याओंको लाकर सत्यवतीको समर्पण किया और युद्धका वृत्तान्त भी सम्पूर्ण रूपसे वर्णन किया।

१७२ अध्याय समाप्त ।

भीष्म बाले, हे भरतश्रेष्ठ ! अनन्तर मैंने केवटकी कन्या वीर-जननी सत्यवतीके समीप जाकर प्रणाम करके यह वचन कहा, “हे माता ! मैं सब राजाओंके जीतकर विचित्रवीर्यके निमित्त काशिराजकी इन कई एक कन्याओंको लाया हूँ, पराक्रम ही इनका पण था, इसीसे मैं अपने बाहुबलसे सब राजाओंकी जीतकर इनकी लाया हूँ” हे राजन् ! अनन्तर सत्यवतीने आनन्दित होके मेरा मस्तक स्रष्टा और

आखोंमें आंसू भरकर यह वचन बोली, “हे पुत्र ! प्रार्थनीसे तुमने विजय लाभ किया है। इसके अनन्तर सत्यवतीकी अनुमतिसे जब विवाहका समय उपस्थित हुआ, तब काशिराजकी जेठी कन्या लज्जापूर्वक मुझसे यह वचन बोली, हे भीष्म तुम सब शास्त्राको जाननेवाले और धर्मात्मा हो, इससे मेरे धर्म युक्त वचनोंका सुनकर उनकी रक्षा करनी तुमकी उचित है। पहिले मैंने शाल्वपतिको मन ही मन अपना वर निश्चय किया था और उन्होंने भी एकान्त स्थानपर मुझे पानेकी अभिलाषा की थी, हे राजन् भीष्म ! इससे तुम कौरवाके कुलमें उत्पन्न होकर किस प्रकारसे धर्मका अतिक्रम कर सकते हो ? दूसरेकी अभिलाषा करनेवाले कामिनोको तुम कैसे अपने घरमें रख सकते हो ? हे महाबाहो ! बुद्धिसे इस विषयको अच्छी प्रकारसे विचार कर जैसा उचित हो, वैसा ही कीजिये, हे राजेन्द्र ! वह शाल्वराज अवश्य मेरी बाट जीते होंगे। हे कुरुश्रेष्ठ ! इससे मुझे उनके समीप जानेकी आज्ञा दोजिये। हे महाबाहो ! हे धार्मिक ! मेरे ऊपर कृपा कीजिये, मैंने सुना है, आप पृथ्वीमें सत्यव्रत (ब्रह्मचारी) कहके विख्यात हैं।”

१७३ अध्याय समाप्त ।

भीष्म बोले, हे प्रजानाथ ! अनन्तर मैंने योजनगन्धा, मन्त्री और पुरोहितोंकी सब बात सुनाकर उन लोगोंको सम्रतिसे बड़ी कन्या अम्बाकी शाल्वराजके यहा जानको आज्ञा दी और उसने भी बड़े ब्राह्मणोंसे रक्षित और दासियोंसे युक्त होकर शाल्वराजके नगरको गमन किया। कन्या सब मार्गोंकी लाव कर शाल्वराजके समीप पड़च कर यह वचन बोली हे महाबाहो ! हे महाबुद्धिमन् ! मैं तुम्हारे निमित्त यहापर आई हूँ। हे राजेन्द्र ! तब

शाल्वराज हंसकर उससे यह वचन बोली, हे सुन्दरी ! तुम अन्यपूर्वा हो, इस कारण मैं तुमको अपनी भार्या बनानेकी अभिलाषा नहीं कर सकता हूँ । हे भर्तृ ! तुम फिर भीष्मके समीप जाओ, भीष्मने तुमको बलपूर्वक ग्रहण किया था । इससे अब मैं तुमसे विवाह करनेकी इच्छा नहीं करता हूँ । भीष्मने जब सब राजाओंको जोत कर हाथपकड़के तुम्हें हरण किया था, उस समय तुमने उसके सङ्ग विलक्षण प्रीति की थी, हे सुन्दर ! इससे अन्यपूर्वा स्त्रीकी मैं अपनी भार्या नहीं बना सकता हूँ । शास्त्र और धर्मकी जाननवाली मेरे समान राजा दूसरेकी ग्रहण की हुई स्त्रीको किस प्रकारसे अपने घरमें रख सकता है ? इससे हे भर्तृ ! शीघ्र हो अब जहाँ तुम्हारा इच्छा होवे, गमन करो ।

हे राजन् ! तब अम्बा कामशरसे पीड़ित होकर उनसे यह वचन बोली, हे राजेन्द्र ! ऐसा न कहिये । आप जा कुछ कहते हैं, वह किसी प्रकारसे भी सत्य नहीं है । भीष्मके हाथसे हरण किये जानपर मैं कभी उनसे प्रीति नहीं की थी, भीष्मने जिस समय सब राजाओंका जीतकर बलपूर्वक सुभका ग्रहण किया उस समय मैं रादन करती थी, हे शाल्वराज ! इससे आप इस दासा नरपराधनी बालाका ग्रहण कर । देख भर्तृ शागाका त्यागना धर्मविरुद्ध है । मैं युधमन्यु अपराजित गङ्गानन्दन भीष्मसे बार बार अनुरोधोंका निवेदन करके उनका आज्ञाके अनुसार ही यहाँपर आइ हूँ । हे राजेन्द्र ! मैं सुना है, कि वह महाबाहु भीष्म स्वयं मेरी इच्छा नहीं करते, भाईके निमित्त ही उन्होंने ऐसा यत्न किया था । हे राजन् ! गङ्गातनय भीष्म जा मेरी और दा बहिन अम्बिका और अम्बालिकाका लेगये थे, उन्होंनेके सङ्ग अपने छोटे भाई विचित्रवर्षका विवाह किया है । हे

पुरुषसिंह शाल्वराज ! तुम्हारे अतिरिक्त जो मैं और दूसरे किसी वरकी इच्छा नहीं करती हूँ उस विषयमें मैं मस्तक झुकर शपथ करती हूँ । हे राजन् ! मैं पहिले दूसरेकी होकर तुम्हारे समीपमें नहीं आई हूँ, हे शाल्वराज ! मैं अपनी आत्माको शपथ करके यह सत्य ही कहती हूँ । हे प्रजानाथ ! इससे दूसरेको इच्छा न करनेवालो, स्वयं उपस्थित हुई, — सुभ कुमारीको आप ग्रहण करें ।

हे भरतर्षभ ! काशिराजकी कन्याके ऐसा कहने पर भी शाल्वराजने पुराने केचुलीको छोड़नेवाली सर्पके समान उसे त्याग दिया । कन्याने इसी प्रकारसे अनेक वचन कहे, परन्तु शाल्वराजने उसे ग्रहण नहीं किया । अनन्तर अम्बा रोती हुई आँखोंमें आँसू भरकर यह वचन बोली, हे राजन् ! तुमने मेरा परि त्याग किया । परन्तु मैं जहाँ जहाँ जाऊँगी, वहाँ पर ही साधु पुरुष मेरी रक्षा करेंगे, क्योंकि सत्यका कभी नाश नहीं होता ।

हे कुरुनन्दन ! उस समय ऐसा वचन कहकर कर्णस्वरसे रोदन करनेवाली उस काशिराजकी कन्याकी शाल्वराजने अनायास ही त्याग किया और 'जाओ, जाओ' बार बार ऐसे ही वचन कहने लगी, हे सुन्दर ! मैं भीष्मसे डरता हूँ, और तुम भीष्मको प्रथम ग्रहण को हुई हो, इससे जल्दी यहाँसे चलो जाओ । अम्बा अदोर्षदर्शी शाल्वराजका ऐसा वचन सुन कर, कातर होके कुरुरोको भाति रोदन करती हुई नगरसे बाहर हुई ।

१७४ अध्याय समाप्त ।

भीष्म बोली, अत्यन्त दुःखिता काशिराजकी कन्या नगरसे निकल कर ऐसी चिन्ता करने लगी, कि पृथ्वीने मेरे समान भाग्यहीन राजपुत्री और कोई भी नहीं है, मैं अपने बन्धु-बान्धवोंसे पृथक् हुई हूँ और शाल्वने भी मेरा

त्याग किया । फिर भी हस्तिनापुरकी जानका अब सुभी साहस नहीं है, क्योंकि शाल्वराजके निमित्त भीष्मसे विदा होकर उनकी आज्ञा लेकर यहाँ आई हूँ । इससे अपनी निन्दा करूँ, वा उस दुष्ट भीष्मका ही तिरस्कार करूँ वा जिन्होंने मेरा स्वयम्बर किया था, उस मूढ़ पिताको ही निन्दा करूँ ? अथवा यह मेरा अपना ही दाप है, क्योंकि उस दारुण संग्रामके उपस्थित होनेपर मैं भीष्मके रथसे उतरकर शाल्वराजके रथपर क्यों न चली गई ? हा इस समय मूढ़ाकी भांति मैं उसी बुद्धिहीन ताका फल पारही हूँ । जिसकी दुष्ट नीतिसे मैं इस भारी विपदमें पड़ी हूँ, उसे धिक्कार है, भीष्मकी भी धिक्कार है, जिसने पराक्रमका पण करके सुभी वैश्याकी भाँति हरण किया । उस मन्दबुद्धि मूढ़ पिताकी और सुभीका भी धिक्कार है । शाल्वराज और विधाताकी भी धिक्कार है । मनुष्य अपने प्रारब्धके अनुसार फल पाता है, यह ठीक है, परन्तु शान्तनुपुत्र भीष्म ही मरों इस विपदका मूल कारण है । इससे चाहे तपस्यासे हो अथवा युद्धसे हासके, उसके सङ्ग शत्रुता करना मेरा कर्तव्य काय्ये बाध होता है, परन्तु कौन राजा युद्धमें भीष्मकी पराजित करनका उत्साह कर सकता है ? हे भारत । इसी प्रकारसे चिन्ता करतो हुई अम्बा नगरके बाहर पुण्यशैल महात्मा तपस्वियाके आश्रमों पर जा पड़ची । वहाँपर तपाख्यासे युक्त होकर रात्रि बितायी और अपने हरण करन, कूटन तथा शाल्वराजसे पारत्याग किये जानका सम्पूर्ण वृत्तान्त उन तपाखियोंके निकट वर्णन किया ।

हे महाबाह ! वहाँपर तपमें बद्ध, शास्त्र आर आरण्यक उपनिषदोंके आचार्य, दृढ़व्रती, आग्रहात्र करनवाले, वेद शोर स्मार्त कर्मम निपुण शैखावत्य नाम एक महा विद्वान् ब्राह्मण थे । वह महातपस्वी शैखावत्य मुनि अत्यन्त

कातरा, शोक और दुःखसे युक्त लम्बी साँस छोड़नेवाली साध्वी कन्या अम्बासे बोले, हे भर्तृ ! हे महाभाग ! ऐसी अवस्थामें आश्रमवासी तपस्वी लोग क्या कर सकते हैं ? परन्तु अम्बा दृढताके सहित उससे यह वचन बोली, हे महाभाग ! मेरे ऊपर कृपा करो । मैं प्रव्रत्ता धर्मकी ग्रहण करनेकी इच्छा करती हूँ कठिन होनेपर भी मैं तपस्या करूँगी । मेने भीष्मसे पड़कर पूर्वजन्ममें जो कुछ पाप किया था, उसका यह सब फल भोग कर रही हूँ, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है, हे पापरहित तपसवन्द । फिर वन्धुबान्धवोंके बीच गमन करनके निमित्त सुभी उत्साह नहीं होता है । शाल्वने भी जब सुभीकी पारित्याग कर दिया, तो अब मैं सब प्रकारसे आनन्द रहित होकर तपस्या कर्मके उपदेशको सुननेकी इच्छा करती हूँ, आप लोग देवताओंके समान हैं, इससे मेरे ऊपर कृपा कीजिये । तब उन मुनि लोगोंने लौकिक-दृष्टान्त, वेद और युक्तिसे शान्त करके उस कन्याको धोरज कराया और ब्राह्मणोंके सङ्ग मिलकर उसके काय्येकी पूर्ण करनके निमित्त विचार करन लगे ।

१७५ अध्याय समाप्त ।

भीष्म बोलें, अनन्तर वे धर्मात्मा तपस्वी लोग, उस समय इस कन्याके विषयमें क्या करना उचित है, —ऐसी चिन्ता करके सब कोई विचार करन लगे । कोई बाली, इसकी पिताके घर लेजाना चाहिये, कोई कोई मरी निन्दा करन लगे और कोई शाल्वराजके निकट जाकर उसीकी क्रत्या समर्पण करनेकी कहेन लगे, परन्तु कोई कोई तपस्वी यह कहन लगें कि उसके समीप ले जाकर इसका समर्पण करना उचित नहीं है क्योंकि उसने इसका पारित्याग किया है । दृढ़व्रत करनेवाले तपाख्यान आपसमें ऐसा वादानुवादकरके फिर उस

कन्यासे कहा है भद्र । ऐसी अवस्थामें धर्मात्मा लोग क्या कर सकते हैं ? इससे तापस धर्मको ग्रहण करनेका तुम्हें कुछ भी प्रयोजन नहीं है ; हम लोगोंके हितके वचन सुनो , इस स्थानसे लौट कर तुम पिताके घर जाओ तुम्हारे पिता काशिराजका जैसा कर्तव्य चागा वंसा करेगी । वहापर कल्याणयुक्त और सब गुणासे भूषित होकर तुम परम सुखसे वास करोगी । है भद्र । तुम नारी हो, इससे अब ऐसी अवस्थामें पिताको भाति तुम्हारा दूसरा कोई भी रक्षक नहीं है । है सुन्दरि । स्त्रीको पति अथवा पिता हो गतिस्वरूप है । है भाविनि ! तुम स्वभावहीसे राजपुत्री उसपर भी सुकुमारी कन्या हो , इससे तपस्या तुमका अत्यन्त ही दुःखदायी होगी , विशेष करके आश्रममें वास करनेमें अनेक दोष है , पर पिताके घरमें उन सब दाषोंको सम्भावना नहीं है ।

अनन्तर दूसरे कोई तपस्वी लोग उस तपस्विनीसे यह वचन बाली , है भद्र । इस निर्जन भयङ्कर वनमें तुमको अकेली देख कर राजा लोग तुम्हारे ग्रहण करनेको अभिलाषा करेगी , इससे तुम कभी वहापर रहनेको इच्छा मत करो ।

अम्बा बाली , है तपस्वी लोग ! आपका कल्याण हो , मैं फिर काशी नगरीमें अपने पिताके स्थान पर नहीं जा सकती , ऐसा कर्तव्यसे बन्धु बान्धवोंके बोचमें अवश्य ही अवज्ञाकी पात्रो जाऊंगी । बालक अवस्थामें बहुत दिन तक पिताके घरमें वास किया था , इस समय अब वहापर न जाऊंगी । अब मैं तपस्वियोंसे रक्षित होकर तपस्या करनेकी अभिलाषा करता हूँ । है तपस्वी श्रेष्ठ महात्मागण ! परलोकमें भी मेरे प्रारब्धमें ऐसी ही विपद न उपस्थित होवे , इसी आशयसे मैं तपस्या करूँगी ।

मीष्म बाली , वे ब्राह्मण लोग इसी प्रकारसे

कर्तव्य कार्यकी चिन्ता कर रहे थे , उस ही अवसरमें तपस्वी राजर्षि होतवाहन उस तपोवनमें आकर उपस्थित हुए । अनन्तर तपस्विनीने स्वागत प्रश्न करके विधिपूर्वक आसन अर्घ्य प्रदान करके उनकी पूजा की । उनके विश्राम करके बैठनपर वनवासी तपस्वी लोग उनके सम्मुख ही फिर उस कन्यासे बात चेत करने लगे । है भारत ! अम्बा और काशिराजका वह वृत्तान्त सुनकर वह महा तेजस्वी ऋषि व्याकुल होगये महातपस्वी महात्मा राजर्षि होतवाहन अम्बाके मातामह थे , इससे उसे इस प्रकारसे बात चेत करते हुए सुनकर अत्यन्त ही कृपायुक्त और शरीरसे कापते हुए उठकर कन्याकी गोदमें धारण करके उसे धोरज देने लगे । उन्होंने अम्बासे उसकी उत्पत्तिका सम्पूर्ण वृत्तान्त आदिसे ही पूछना आरम्भ किया और उसने भी जो कुछ हुआ था , उसे विस्तार पूर्वक वर्णन किया । अनन्तर वह महातपस्वी राजर्षि दुःख शोकसे युक्त होकर अपने मन ही मन कार्यका निश्चय करने लगे , और कापते हुए शरीरसे उस दुःखसे कातरा कन्यासे बोली , है भद्र ! पिताके घर मत जाओ , मैं तुम्हारा मातामह (नाना) हूँ , इससे मैं ही तुम्हारे दुःख को दूर करूँगा । है पुत्री ! तुम मेरे सङ्ग रहो । तुम जिस प्रकारसे तनचीण हो रही हो , उससे बोध होता है , कि तुम्हारा अन्तःकरण दुःखके भारसे पूर्ण हो रहा है , इससे मेरे वचनके अनुसार तुम तपस्वियोंसे श्रेष्ठ परशुरामके समीप गमन करो । वह तुम्हारे इस बहुत बड़े दुःख और शोकको दूर करेगा , भोष्म यदि उनको बात न मानेगा , तो वह युद्धम अवश्य ही उसका वध करेगी । इससे तुम उसी प्रलयकालक अग्निके समान तेजस्वी परमशुरामके समीप गमन करो । वह महातपस्वी महात्मा भागवत तुमका सन्मार्गमें प्रतिष्ठित करेगा ।

अनन्तर अम्बा बार बार लम्बी सांस लेती हुई मातामहको प्रणाम करके मधुर स्वरसे यह वचन बोली, आपको आज्ञाकी अनुसार मैं गमन करूंगी; परन्तु उन लोक विख्यात महात्मा भार्गवका मैं कक्षापर दर्शन करूंगी ? वह किस प्रकारसे मेरी तीव्र दुःखको नाश करेंगे और कैसे मैं उनके समीप जाऊँगी ? उसे जाननेकी इच्छा करती हूँ ।

होत्रवाहन बोली, हे भद्रे । तुम सत्यव्रतो महाबल जामदग्न्या परशुरामको महावनमें अत्यन्त कठिन तपस्या करते हुए वर्तमान देखोगी । परशुराम पर्वत श्रेष्ठ महेन्द्र-गिरिके शिखरपर नित्य ही निवास करते हैं, और वेदकी जाननेवाली ऋषि, गन्धर्व तथा अप्सरा भी वहापर विद्यमान रहती हैं । तुम उसी स्थानमें गमन करके उन दृढव्रतो तपमें लगे हुए महात्मा भार्गवकी प्रणाम करके मेरा वचन कहना और अपना अभिप्राय भी वहापर वर्णन करना । हे पुत्री । वह सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ वीरवर जमदग्निपुत्र परशुराम मेरी सखा और प्रोतिपात्र सुहृद हैं, इससे मेरा नाम लेनेहीसे वह तुम्हारा सम्पूर्ण कार्य सिद्ध करेंगे ।

राजा होत्रवाहन कन्यासे ऐसे वचन कह रहे थे. उसी समय मैं परशुरामकी प्यारी सेवक अकृतव्रण वहापर आकर उपस्थित हुए । तब वहापर वे सब सहस्रा सुनि और अवस्थामें बूढ़े राजा होत्रवाहन सब ही तपस्वी उठके खड़े हुए । हे भरतर्षभ ! अनन्तर वे सब तपस्वी लाग उनका यथा उचित अतिथि-सत्कार करके सब कोई उनको चारा ओरसे घेरकर बैठ गये । फिर प्रोतिपूर्वक प्रसन्न चित्तसे बहृतसी दिव्य उत्तम और मनोहर कथाका प्रसङ्ग करने लगे । अनन्तर कथाके समाप्त होने पर महात्मा-राजऋषि होत्रवाहनने अकृतव्रणसे महर्षि श्रेष्ठ परशुरामकी बात पूछी, — हे महावाही अकृतव्रण ! वेद जाननेवालोंमें श्रेष्ठ प्रतापवान् परशु-

राम जो इस समयमें कहांपर मिल सकते हैं,

अकृतव्रण बोली, हे प्रभावसे युक्त राजन् । परशुराम “राजऋषि होत्रवाहन मेरे” प्यारे मित्र हैं ” ऐसा कहकर सदा तुम्हारा स्मरण किया करते हैं, सुभी बोध होता है, कि तुम्हारे दर्शनकी इच्छासे वह कल यहीपर आवेंगे, इससे यहापर आनेहीसे तुम उन्हें देख सकागें । हे राजर्षि ! यह कन्या किस कार से वनमें आई है ? यह किसको कन्या है और तुम्हारी कौन होती है ? इस विषयकी सुननेकी सुभी बहृत हो इच्छा है ।

होत्रवाहन बोली, हे विभी । यह मेरी दौहित्री, काशिराजकी पुत्री और इसका नाम अम्बा है । हे तपोधन । काश-राजकी यह जेठी कन्या है, अम्बिका और अम्बालिका नाम्नी दो छोटी बहिनोंके सहित इसका स्वयम्बर हुआ था उसमें पृथ्वीके सम्पूर्ण क्षत्रिय राजा कन्याको प्राप्त करनेके निमित्त काशपुरीमें इकट्ठे हुए थे । हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! उस समय वहापर अत्यन्त हो उत्सव हुआ था । अनन्तर महाबली अत्यन्त तेजस्वी शान्तनुपुत्र भीष्मने सब राजाओंकी पराजित करके तोनी कन्याओंको हरण किया था । वह प्रतापी भीष्म सब राजाओंकी परास्तकर तोना कन्याओंके सहित हस्तिनापुरमें आकर सत्यवतीका निवेदन करके निज भ्राता विचित्रवोर्ष्यके विवाहके निमित्त आज्ञा दो । हे द्विजश्रेष्ठ ! उस समय इस कन्या वाचत्रवोर्ष्यकी विवाहके निमित्त उपस्थित और भाद्रालिक सूत्रवत्यन आदिसे युक्त होती देखकर मन्त्रियोंके बीच भीष्मसे यह वचन बोली, हे वीर ! मैं मन ही मन शल्वराजकी पतिरूपसे वरणा किया है, इससे हे धर्मके जाननेवाले ! दूसरे पुरुषमें आसक्त कामिनीकी भाईके हाथमें समर्पण करना तुमको उचित नहीं है । भीष्मने उस

वचनकी सुनकर मन्त्रियोंकी सङ्ग विचार कर सत्यवतीकी सम्मतिसे इसे विसर्जन किया । तब यह कन्या भीष्मकी आज्ञा पाकर प्रसन्न चित्तसे सोभपति शाल्वकी निकट जाकर यह वचन बोली, हे राजन् । मैंने मन ही मन तुमको पतिरूपसे वरण किया है, इस समय भीष्मने सुभको त्याग दिया, इससे अब तुम मेरे धर्मकी रक्षा करो । परन्तु शाल्वराजने इसके चरित्रके विषयमें शंकित होकर इसकी ग्रहण करनेमें अस्वीकार किया । इसी कारणसे यह तपकी निमित्त अत्यन्त अभिलाष करके एस तपोवनमें आई है और मैंने भी वंशका नाम लेनेसे इसको जाना है । हे तपोधन ! दुःखकी उत्पत्तिके विषयमें यह भीष्महीको कारण समझती है ।

अम्बा बोली, हे हिजसत्तम ! यह राजर्षि छज्जय होतवाहन जो कहते हैं, वह सब ठीक है । हे महामुनि ! लज्जा और अपमानके भयसे फिर अपने पिताके घर जानेका सुभी उत्साह नहीं होता है । हे भगवन् ! इससे अब मेरी यह इच्छा है, कि भगवान् परशुराम सुभको जो कुछ कहेंगे, वही कार्य मैं सब प्रकारसे करूंगी ।

१७६ अध्याय समाप्त ।

अकृतव्रण बोले, भद्र ! तुमको यह दो दुःख उपस्थित हैं, इनमेंसे तुम किसके प्रतीकारकी इच्छा करती हो, वह सुभसे यथार्थ रूपसे वर्णन करा । हे भद्र ! यदि शाल्वसे विवाहके निमित्त तुम्हारी इच्छा होवे, तो महात्मा परशुराम अवश्य ही तुम्हारे हितके निमित्त उसके हाथमें तुम्हें समर्पण करेगा ; और जा तुम गगानन्दन भीष्मकी बुद्धिमान् परशुरामके संग युद्धमें पराजित हुए देखनका इच्छा करा तो भार्गव उसकायेकी भी कर सकते हैं । हे सुन्दरि ! इससे यह राजर्षि छज्जय और तुम मेरी बात सुनकर, अब

इस विषयमें तुम्हें जो कुछ करना होवे, उसका आज ही विशेष रूपसे विचार कर रक्खो ।

अम्बा बोली, हे भगवन् ! भीष्मने विना जाने ही सुभको हरण किया था, मेरा मन जो शाल्वराजकी सङ्ग लगा था, इस बातकी भीष्म नहीं जानते थे । हे ब्राह्मण ! इससे आप अच्छी प्रकारसे विचार पूर्वक न्यायके अनुसार जैसा निश्चय कीजिये, उसहीको करनेका विधान कीजिये । कृतशार्दूल भीष्म अथवा शाल्वराज वा दोनोंके विषयमें जैसा आचरण करना उचित होवे, वैसा ही कार्य तुम करो । हे भगवन् ! मैंने अपना दुःखका मूल कारण पूर्ण रीतिसे कह सुनाया है, इस समय युक्तिके अनुसार जैसा करना उचित होवे वैसा ही आप लोग उपाय कीजिये ।

अकृतव्रण बोले, हे भद्र ! तुमने धर्मकी और लक्ष्य करके जो यह वचन कहा है, वह ठीक है, इस विषयमें मेरा यह वचन सुनो । हे भीष्म ! यदि भीष्म तुमको हस्तिनापर न लेजाते, तो शाल्व परशुरामकी आज्ञासे तुम्हें मस्तकके जपर धारण करते, हे भाविनि ! भीष्मने सब राजाओंको जीत कर तुम्हें हरण किया है, इस ही निमित्त तुम्हारे जपर शाल्वराजकी सन्देश हुआ है, हे कल्याणि ! भीष्म परुषमानी और जयसे युक्त है, इससे उसके संग ही शत्रुता समाप्त करना तुमको उचित है ।

अम्बा बोली, हे ब्रह्मन् ! मेरे भी मनमें यही इच्छा है, कि जिस प्रकारसे हो सके भीष्मका युद्धमें बध करा जा । हे महाऋषि ! जिस कारणसे मैं अत्यन्त दुःखिता हुई हूँ, वह भीष्म ही हो अथवा शाल्व हो ही, जिसकी आप लोग दोषो स्थिर कीजिये उसहीका शासन करिये ।

भीष्म बोले, हे भरतश्रेष्ठ ! इसी प्रकारसे

बातचीत करते हुए उन लोगोंका बहुत दिन बीत गया और सुख देनेवाली शीतल और उष्ण वायुसे युक्त रात्रि भी बीत गई । अनन्तर जटा चौर धारण किये तेजसे जलते हुए परशुरामजी शिष्यमण्डलोके सहित आकर उपस्थित हुए । हे राजशार्दूल ! काधे पर फरसा लिये तलवार तथा धनुष बाण धारण किये हुए पापरहित भार्गव महात्मा राजा होत्रवाहनसे मिलनेका वहां पर आये । उनकी देखकर सम्पूर्ण तपस्वी, और महा-तपस्वी राजा होत्रवाहन और तपस्विनी कन्या सब लोग हाथ जोड़कर खड़े होगये और स्थिरचित्तसे मधुवर्कसे परशुरामकी पूजा की । वह भी यथा न्यायसे पूजित होकर उन लोगोंके सहित आसनपर बैठे । हे भारत ! अनन्तर परशुराम और होत्रवाहन दोनों महात्मा एकत्र बैठकर पहिले अत्यन्त उत्तम कथाओंको कहने लगे, अनन्तर उस कथाके समाप्त होने-पर राजर्षि होत्रवाहन अवसर देखकर महा-बली भृगुनन्दन परशुरामजीसे यह अर्थयुक्त मधुर वचन कहने लगे हे परशुराम ! यह कन्या काशिराजकी पुत्री और मेरी दौहित्री है, हे कार्यविशारद ! इसका एक कार्य है, उसको सुनो । यह वचन सुन परशुराम अम्बासे बोली, तुम्हारा कौनसा कार्य है ? सुभसे कहो । तब अम्बा जलती हुई अग्निके समान परशुरामके समीप जाकर अपने कमल-के समान हाथोंसे उनके दोनों चरणोंको स्पर्श-कर शिर झुकाकर प्रणाम करके सम्मुख खड़ी हुई और शोभित तथा दुःखित होकर आखोंमें आसू भरके रोदन करती हुई शरणा-गतकी रक्षा करनेवाले परशुरामजीकी शरणा-पन्न हुई ।

परशुराम बोली, हे राजपुत्री ! तुम इस राजसत्तमकी जैसी प्रिय हो, सुभी भी वैसी ही हो, इससे तुम्हारे मनमें जो कुछ दुःख है,

उसकी कही, मैं तुम्हारे वचनकी रक्षा करूंगा ।

अम्बा बोली, हे भगवन् ! हे महाव्रत आज मैं तुम्हारी शरणागत हुई हूँ, इससे महाघोर शोकक्षपी कोचड़में फंसी हुई सुभके नौकाकी भाति तुम उद्धार करो ।

भीम बोली, भृगुश्रेष्ठ परशुरामजी उसके रूप, तरुणई, देह और परम सुकुमारताके देखकर चिन्ता करने लगी, कि यह क्या कहैगी ? ऐसा मनमें विचारते हुए कृपायुक्त होकर बहुत समय तक ध्यान करने लगी, अनन्तर बोली, तुम्हारा क्या कार्य है, उसे कहो । तब उस कन्याने भार्गवका वचन सुनकर उनसे समीपमें विस्तारपूर्वक अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त वर्णन किया । परशुरामजी राजपुत्रीके सब वचनोंको सुनकर कार्यका निश्चय करके उस कुमारीसे बोली, हे भाविनि ! मैं कुशुष्ठ भीष्म के निकट अपना सन्देश भेजूंगा, वह अवश्य ही मेरे वचनकी सुनकर उसे स्वीकार करेगा । गङ्गानन्दन भीष्म यदि इकबारगी मेरी बातोंकी न मानेगा, तो मैं अपने शस्त्रोंके प्रतापसे युद्धों उसको बन्धू, बान्धव और अनुयायियोंके सहित भस्म कर दूंगा । अथवा उससे यदि तुम्हारा मन निवृत्त होवे, तो मैं शात्वराजकी तुम्हारे विवाहके निमित्त उपस्थित करूँ ।

अम्बा बोली, हे भृगुनन्दन ! शात्वराजके विषयमें मेरे पहिले सङ्कल्पकी सुनकर ही भीष्मने मेरा परित्याग किया था मैंने सौम राजके समीप आकर उन सब वचनोंकी निवेदन किया, परन्तु उन्होंने मेरे चरित्र पर शङ्कित होकर सुभे ग्रहण नहीं किया । हे भृगुनन्दन ! इससे सम्पूर्ण विषयको आप अपनी बुद्धिसे निश्चय करके जैसा करना उचित होवे, वैसा कीजिये । महाव्रत भीष्म ही मेरे इस विपदका कारण है, क्योंकि बलपूर्वक मुझे ग्रहण करके उन्होंने अपने वशमें किया था, इससे हे महाबाहो ! जिसके निमित्त मैंने ऐसा

दुःख पाया है ; उस भीष्महीकी आप युद्धमें विनष्ट कीजिये । हे भृगु शार्ङ्गल ! इससे ही मैं अपने बैरका पल्टा लूंगी । हे भार्गव ! भीष्म अत्यन्त लोभो नीच और जयके अभिमानमें भरा है ; इसमें उसका बध करना ही तुमको उचित है । हे विभो ! जिस समय भीष्मने सुभको हरण किया था उस समय मेरे मनमें 'किसी प्रकारसे इसका वध करा-जगी ; ऐसा ही सङ्कल्प उपस्थित हुआ था । हे राम ! इससे अब आप मेरी उसी अभिलाषा-को पूर्ण कीजिये । हे महाबाही ! इन्द्रने जैसे वृत्रासुरका संहार किया था, तुम भी भीष्मका उसी भातिसे वध करो ।

१७७ अध्याय समाप्त ।

भीष्म बालि, तब परशुरामजी "भीष्मका वध करो" बारबार ऐसा ही कहकर रादन करनेवाला कुमारी अम्बासे बोले, हे सुन्दरी ! हे काशिराजपुत्रि ! ब्रह्मवादियोंके प्रयोजनके बिना अब मैं शस्त्रोंका नहीं ग्रहण करता हूँ, इससे तुम्हारा और कौनसा कार्य करना होगा उसे कहो । हे राजनन्दिनि ! भीष्म और शल्य दोनों ही मेरे वशवर्ती होवेंगे, हे अनिन्दिने ! तुम शोक मत करो, मैं तुम्हारे कार्यको सिद्ध करूँगा । परन्तु हे भाविनि ! बिना ब्राह्मणोंकी आज्ञाके मैं कभी शस्त्र ग्रहण नहीं करूँगा, क्योंकि मैंने पहिले ऐसा ही नियम कर लिया है ।

अम्बा बोली, हे प्रभो ! जिस प्रकारसे होवे, मेरे दुःखको कुड़ाना तुम्हारा कर्तव्य कार्य है, वह दुःख भीष्महीसे उत्पन्न हुआ है, इससे भीष्मको ही शीघ्र नष्ट कीजिये ।

परशुराम बोले, हे राजपुत्रि ! तुम यदि कहो, तो भीष्म तुमसे वन्दना करने योग्य होकर भी मेरे वचनसे तुम्हारे दोनों पावों पर अपना शिर रक्खेगा ।

अम्बा बोली, हे राम ! यदि मेरे प्रिय कार्यको तुम करनेकी इच्छा करते हो, तो युद्धमें आये गर्जते हुए असुरकी भाति भीष्मका वध करो । तुमने जो प्रतिज्ञा की है, उसे सत्य करना ही उचित है ।

भीष्म बोले, हे राजन् ! परशुराम और अम्बाका इस ही प्रकारसे वादानुवाद हुआ रहा था, उसी समयमें परम धर्मात्मा अकृतव्रण ऋषि यह वचन बालि, हे महाबाही भृगुनन्दन ? शरणागता कन्याका परित्याग न कीजिये । आपके सम्मुख युद्धमें आकर भीष्म यदि कहे, कि "मैं परास्त हुआ" अथवा यदि तुम्हारे वचनोंकी रक्षा करे ; तौभी इसका कार्य पूर्ण होगा और तुम्हारा वचन भी सत्य होगा । हे महाबाही ! पहिले सब क्षत्रियोंको जोतकर तुमने ब्राह्मणोंके समीपमें यह प्रतिज्ञा की थी, कि ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा जो कोई पुरुष ब्राह्मणोंका द्रोहो होगा, उससे मैं विनष्ट करूँगा और भयभीत शरणमें आये हुए लोगोंका जीते जी कभी परित्याग न कर सकूँगा, और जो पुरुष सम्पूर्ण क्षत्रिय-कुलको युद्धमें परास्त करेगा, उस तेजस्वी पुरुषका भी मैं वध करूँगा । हे भृगुनन्दन ! वह कुरुकुल-धुरधर भीष्म भी इसी प्रकारसे विजयी हुआ है ; इससे रण-भूमिमें आये हुए उसके सङ्ग युद्ध कीजिये ।

परशुराम बोले, हे ऋषिसन्तम ! मैं पहिले की हुई प्रतिज्ञाका स्मरण करता हूँ, तौभी सामपूर्वक यदि कार्य सिद्ध होगा, तो उसहीका विधान करूँगा । हे ब्रह्मन् ! काशिराजकी कन्याके मनका कार्य बद्धत हो बड़ा है, इससे इसको सङ्गमें लिवाकर मैं स्वयं भीष्मके समीप गमन करूँगा । युद्धमें प्रसन्न भीष्म यदि मेरे वचनोंकी न मानेगा तो मेरा यह निश्चय संकल्प है, कि मैं उस अभिमानी क्षत्रियको युद्धमें विनष्ट करूँगा । मेरे हाथसे कूटे हुए सम्पूर्ण बाण मनुष्योंके शरीरमें जगकर

कर उसे जीता नहीं छोड़ते, वह तुमको पहिले रात्रियोंके युद्धमें विदित ही होगया है। महा-तपस्वी परशुराम ऐसा वचन कह-कर उन ब्रह्मावदियोंके सहित प्रस्थान करनेके निमित्त संकल्प करके उठ खड़े हुए। अनन्तर उन तपस्वियोंने वहापर उस रात्रिको बिताकर सबेरा होते ही होमजप और समस्त नित्यकर्म समाप्त करके मेरे बधके निमित्त प्रस्थान किया। हे भारत। अनन्तर परशुरामने उन तपस्वी और कन्याके सहित कुरुक्षेत्रमें आकर सरस्वती नदीके तीर पर विश्राम किया।

१७८ अध्याय समाप्त ।

भीष्म बोले, हे राजन् । अनन्तर वह महा-व्रतो अत्यन्त तेजस्वी परशुरामने वहांपर स्थित-होके तीसरे दिन मेरे समीप यह सन्देश प्रेरण किया, कि मैं आया हूं, मेरे प्रिय कार्य्यकी पूर्ण करो। वह महातेजस्वी बलवान् तपोनिधि मेरे निमित्त आये है, यह सुनकर मैं प्रसन्न चित्तसे ब्रह्मचारो ऋत्तिक, पुरोहित और ब्राह्मणोंके सहित एक गज लेकर आतुर-तासे शीघ्र हो उनके समीपमें गमन किया। प्रतापवान् परशुरामजीने मुझको वहापर उपस्थित देखकर वह पूजा ग्रहण की और मुझसे यह वचन बाली, हे भीष्म । तुमने काम रहित होकर भी कैसी बुद्धि ग्रहण की है, इस काशिराजकी कन्याके स्वयम्बरके समयमें तुमने इसे हरण किया, और फिर किस निमित्तसे इसका परित्याग किया ? तुम्हारे परित्याग करनेकीसे यह तपस्विनी निज धर्मसे भ्रष्ट हो रही है, क्योंकि जब तुमने स्पर्श किया है, तब कौन पुरुष इसको ग्रहण कर सकता है ? हे भारत । तुमने इसे हरण किया था, इसी निमित्त शाल्वने इसको अपन घरमें नहीं रक्खा। इससे अब मेरी आज्ञासे तुम इसका पाणिग्रहण करो, हे पुरुषसिंह । यह राज

पुत्री निज-धर्मका लाभ उठावे। हे पापरहित। इसका ऐसा अवमान करना तुमको उचित नहीं है।

अनन्तर मैंने उनसे यह वचन कहा, हे ब्राह्मण ! मैं किसी प्रकारसे भाईके हाथमें अब इसे नहीं समर्पण कर सकता हूं। हे भार्गव । पहिले, इसने मुझसे ही यह वचन कहा था, कि 'मैं शाल्वकी हुई हूं' और मैंने भी इसको शाल्वके निकट जानके निमित्त आज्ञा दी थी। मेरी अनुमतिसे इसने सौभनगरमें गमन किया था ; इससे अब भय, दया, अर्थ, लाभ अथवा कामनासे भी मैं द्वात्रय-धर्म 'नहीं' परित्याग कर सकता हूं, क्योंकि येही मेरा सदासं व्रत है।

हे राजेन्द्र । अनन्तर परशुराम क्रोधसे लाल नेत्र करके मुझसे बोले, तुम यदि मेरे वचनको न मानोगे तो तुमको सेवकोंके सहित आज ही मास्तंगा ।" हे शत्रुनाशन । परशुराम क्रोध से नेत्र लाल करके गम्भीर स्वरसे बार बार मुझे ऐसा ही कहने लगा। मैंने विनय पूर्वक उनसे बार बार प्रार्थना की, तौभी वह शान्त न हुए। तब मैंने उन ब्राह्मण-सत्तम भृगुनन्दनको शिर झुकाकर प्रणाम किया और यह वचन कहा, हे महाबाहा । जा मेरे सङ्ग तुम युद्ध करनेकी इच्छा करते हो, उसका कारण क्या है ? हे भार्गव ! बालक अवस्थामें तुमने ही मुझे चारो प्रकारकी धनुर्विद्या सिखाई थी, मैं तुम्हारा शिष्य हूं।

अनन्तर परशुराम क्रोधपूरित नेत्रसे युक्त यह वचन फिर बाली, हे भीष्म ! तुम मुझका अपना गुरु भी समझते हो, और मेरी प्रीतिके निमित्त इस काशिराजकी कन्याको ग्रहण नहीं करते हो, हे कुरुनन्दन । इसके अतिरिक्त और किसी प्रकारसे भी मुझे शान्त न द्यावेगी। हे महाबाही ! इससे इस कन्याको ग्रहण करके अपने कुलकी रक्षा करो, तुम्हारे द्वाधर्म

हरण किये जानेहीसे अब इसको स्वामी नहीं मिलता है । पराये देशके जीतनेवाले परशुरामजीके इस वचनको सुनकर मैंने उनसे फिर कहा, हे ब्रह्मर्षि । तुम निरर्थक यम क्यों करते हो ? यह किसी प्रकारसे भी नहीं हो सकता । हे जामदग्न्य परशुराम । तुम मेरे गुरु हो, इसहीसे मैं तुमसे विनय कर रहा हूँ । हे भगवन् ! इसको मैंने पहिले ही त्याग किया है, क्रियोमें जो सब दोष अनर्थके मूल होते हैं, उसको जानकर भी कौन पुरुष सापिनको भाति दूसरे पुरुषमें आसक्त हुई स्त्रीको अपने घरमें रख सकता है ? हे महाव्रत करनेवाले ! मैं इन्द्रके भयसे भी धर्मका नहीं परित्याग कर सकता हूँ, इससे आप मेरे ऊपर प्रसन्न होइये, अथवा तुमको जैसा करना उचित आवे उसे शीघ्र ही पूर्ण करा । हे विभा । हे पापराहित ! पुराणमें महात्मा मरुत्तका कहा हुआ यह एक श्लोक सुन लो जय, "काथ्याकार्य-कौन जाननेवाले, वुरे मार्गसे गमन करनेवाले अभिमानसे युक्त गुरुको भी परित्याग करना उचित है" । तुम मेरे गुरु हो, इस ही निमित्त प्रेमके वशम होकर मैं बार बार तुम्हारा सम्मान करता हूँ, परन्तु तुम गुरुके धर्मको नहीं जानते हो, इस कारणसे मैं तुम्हारे सङ्ग युद्ध करूँगा । गुरु और विशेष करके तपोव्रज ब्राह्मणको युद्धमें नहीं मार सकता हूँ, यहो विचारकर मैं दम प्राथना करता हूँ, परन्तु धर्म-शास्त्रमें लिखा हुआ है, कि जो पुरुष ब्राह्मणका दुष्ट चरित्रको भाति शस्त्र लिये हुए उद्यत और अपराजित तथा युद्धमें प्रवृत्त हुए देखकर मारता है, उसे ब्रह्महत्याका पाप नहीं लगता । हे तपोधन ! मैं चरित्रधर्ममें निवास करनेवाला चरित्र हूँ । जो पुरुष जिसके सग जैसा आचरण करता है, उसके सग वैसा आचरण करनेसे पाप नहीं होता और अपना अमंगल भी नहीं होता है । धर्म अर्थके

विचार करनेमें समर्थ, देशकालकी जाननेवाले पुरुष यदि अर्थ वा धर्म विषयमें कुछ संशय-युक्त होते हैं, तो अर्थको छोड़कर धर्महीका अनुष्ठान करके कल्याणकी प्राप्ति करते हैं । हे परशुराम ! इससे संशय करने योग्य अर्थमें भी जब तुम निरर्थक अन्यायपूर्वक प्रवृत्त होते हो, तब तुम्हारे सङ्ग मैं अवश्य ही महा संग्राम करूँगा, हे भृगुनन्दन । मेरे बाहुबल और अलौकिक पराक्रमको देखो, ऐसी अवस्थामें मैं जो कर सकता हूँ, वह अवश्य ही करूँगा । कुरुक्षेत्रमें तुम्हारे सङ्ग युद्धमें प्रवृत्त होऊँगा । हे महा-तेजस्वी ! इन्द्रयुद्धके निमित्त इच्छानुसार सज्जित होइये । हे राम । जिस स्थलमें सैकड़ों बाणोंसे पीड़ित होकर तुम मरकर पृथ्वीमें और महा युद्धमें शस्त्रोंमें जलकर सब निर्जित लोकोको प्राप्त कराग, उस ही कुरुक्षेत्रमें गमन करो । हे महाबाही ! हे तपोधन । वहापर युद्धप्रिय तुम्हारे सङ्ग मैं अवश्य युद्ध करूँगा । हे राम । पहिले जिस स्थलपर तुमने पिताकी शुद्धि की थी, मैं भी उस स्थानपर तुमको मारकर चरित्रकुलके वैरकी पूर्ण करूँगा । हे अभिमानी विप्र । तुम शीघ्र वहापर गमन करो, मैं तुम्हारे इस पुराने घमण्डको दूरकर दूँगा । हे भार्गव ! मैंने अकेली ही इस सम्पूर्ण पृथ्वीके चरित्रोंको जीता है" वृद्ध दिनोंसे तुम जो ऐसा गर्व किया करते हो, उसका कारण सुनो, उस समयमें भीष्म अथवा भीष्मके समान कोई चरित्र पुरुष नहीं उत्पन्न हुए थे । हे तपोधन ! तुम उस समय केवल दण-समूहमें ही प्रज्वलित हुए थे, परन्तु तेजस्वी चरित्र अब उत्पन्न हुए हैं । हे महा-बाही ! जो पुरुष तुम्हारे युद्धमय अभिमान और अभिलाषाको कुड़ा सकता है, वह पराये देशकी जीतनेवाला भीष्म अब उत्पन्न हुआ है । हे राम ! युद्धमें अवश्य ही मैं तुम्हारे इस

अभिमानको कुड़ा दूंगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ।

१७६ अध्याय समाप्त ।

भीष्म बोले, हे भारत ! अनन्तर परशुराम हंसते हुए सुभसे यह वचन बोले, “हे भीष्म ! प्रारब्धहीसे तुम मेरे सङ्ग युद्ध करनेकी इच्छा करते हो । हे कौरव ! अब मैं तुम्हारे निमित्त कुरुक्षेत्रमें जाता हूँ, हे परन्तप ! तुम वहाँपर गमन करो, मैं तुम्हारे वचनको प्रतिपालन करूँगा । हे भीष्म ! तुम्हारी माता जान्हवी वहाँपर तुमको सैकड़ों वाणोंसे युक्त मरा हुआ और गिद्ध कीए सियार आदिका भक्ष्य हाते देखेगी । हे राजन् ! जिसने तुम्हारे समान मन्दबुद्धि युद्धकामो आतुर पुत्रको उत्पन्न किया है, वह सिद्ध चारणोंसे सेविता भगोरथ-सुता महा यशस्विनी जान्हवी देवी रोदन करनेके अयोग्य होकर भी आज तुम्हें दोन भावसे युक्त मेरे हा-से मरा हुआ देख कर रोदन करेगी । हे युद्धकी इच्छा करनेवाले ! आके मेरे सहित चल, तेरा जा कुछ रथ आदि सामग्री है, सब ग्रहण करके चल ।” ऐसे वचनका सुन कर मैंने पराये देशको जीतनेवाले परशुरामको शिर झुका कर प्रणाम करके यह वचन कहा वृद्ध अर्च्छा वही हागा । हे राजेन्द्र ! परशुराम सुभसे ऐसे वचन कहके युद्धकी इच्छासे कुरुक्षेत्रको गये और मैंने भी नगरमें आके सत्यवतीको यह सम्पूर्ण वृत्तान्त निवेदन किया । हे भरतसत्तम ! अनन्तर मैंने जननीसे आशीर्वाद पाकर ब्राह्मणोंसे पुण्याह वाचन स्वस्तिवाचन कराकर पाण्डुर-वर्ण धनुष कवच धारण करके अष्ट सूतकुलमें उत्पन्न हुए वीर और घोड़ाको विद्याको जाननेवाले, अनेक युद्धोंके देखनेवाले सारथीसे युक्त उत्तम शोभायमान चक्र और वाघके चमड़ेसे घिरा हुआ,

शस्त्रोंसे पूर्ण, सब युद्धकी सामग्रीसे युक्त, पाण्डुरवर्णके चार घोड़ोंके सहित सुवर्ण निर्मित मनोहर रथपर चढ़के प्रस्थान किया । हे भरतर्षभ ! शिरपर पाण्डुर वर्ण मुकुट श्वेत रत्नके भूषणोंसे भूषित होकर जय आशीर्वाद सुनते हुए हस्तिनापुरसे निकल कर मैंने रण-भूमि कुरुक्षेत्रके निमित्त यात्रा की । हे राजन् ! मन और वायुके समान शीघ्र गमन करनेवाले उत्तम घोड़े उस बुद्धिमान् सारथीके चलानेपर आत शीघ्र हो सुभी रथ समेत लेकर महायुद्धके स्थान पर आके पास्यत हुए । हे राजन् ! मैं और प्रतापवान् परशुरामजी दानो युद्धके निमित्त वहाँपर सहसा आकर खड़े हुए, अनन्तर अत्यन्त तपस्वी परशुरामजी और मैंने अपने अपने उत्तम शस्त्रोंका ग्रहण करके जारसे बजाया ; तब उस समय वनवासी तपस्वी और इन्द्रके सहित सब देवता लाग वहाँ पर दिव्य युद्धकी देखनेमें प्रवृत्त हुए । वृद्धतसी दिव्य माला, दिव्य-वाजे, और बादलोक समूह इधर उधर दोखन लगे । अनन्तर परशुरामके अनुयायी सब तपस्वी लोग रथभूमिका घेरकर दर्शक हुए । इसके अनन्तर सब प्राणियोंका हितोपणो मेरी माता गङ्गादेवी मूर्तामें गी हाकर मेरे निकटमें आकर यह वचन बोली, —हे पुत्र ! तुम यह क्या करनेकी इच्छा करते हो ? हे कुरुक्षेत्र ! मैं परशुरामजीके निकट जाकर बार बार यह मागूँगा, कि तुम निज शिष्य भीष्मके सङ्ग युद्ध मत करो । हे पुत्र ! तुम चावय हाकर तपस्वी परशुरामके सङ्ग युद्ध करनेकी इच्छा न करना । अत्यन्त पराक्रमी जा परशुराम चतुर्यकुलके सहार करने वाले हैं, वह क्या तुमका विदित नहीं है, जा तुम इस समयमें उनके सङ्ग युद्ध करनेकी इच्छा करते हो ?

हे भारत ! माता इसी प्रकारसे मरीचिन्दा करने लगी । तब मैंने निजमाता गंगा-

देवीको दोनों हाथ जोड़के प्रणाम करके धीरे धीरे जो कुछ वृत्तान्त हुआ था, उसे पूरा रातसे कह सुनाया, और पहिले परशुरामजोके जैसा वचन कहा था और काशिराजकी कन्याका जो कुछ कर्म था वह भी सम्पूर्ण वर्णन किया। अनन्तर मेरी माता गंगादेवी परशुरामके निकट जाकर 'तुम निज शिष्य भीष्मके सग युद्ध मत करो' ऐसा कह कर मेरे निमित्त उनसे विनती करने लगी, परन्तु उन्होंने उस प्रार्थना करनेवाली मेरी माता जाङ्गवीसे कहा, कि तुम भीष्मको रोको; वह मेरी अभिलाषका पूर्ण नहीं करता है, इस ही कारणसे युद्ध करनेके निमित्त उसके निकट आया हूँ।

श्रीवैशम्पायन मुनि वाले, अनन्तर गंगा पुत्रप्रेमके वशमें हाँकर फिर भीष्मके समीप गई, परन्तु उन्होंने क्राधसे नव लाल करके उनके वचनोंका नहीं माना। इसके अनन्तर हजसत्तम महातपस्वी परशुराम दाख पड़े और युद्धके निमित्त आवाहन किया।

१८० अध्याय समाप्त ।

भीष्म बोले, तब मैं न सुसक्तुरके रण-भूमिमें स्थित परशुरामसे यह वचन कहा है, वीर ! मैं रथमें बैठकर पृथ्वीपर पैदल चलन-वाले तुम्हारे सग युद्ध करनेकी इच्छा नहीं करता हूँ। हे महाबाहू ! याद युद्ध करनेकी इच्छा है, तो रथपर चढ़के कवच धारण काजिय। तब परशुराम हसते हसते मुझसे यह वचन बोले, हे भीष्म ! पृथ्वी ही मेरा रथ है, वेद सब उत्तम वाहन, वायु सारथी, और वेदमाता गायत्री, सार्वित्रा और सरस्वती मेरे कवच हैं। हे कुरुनन्दन ! मैं इन ही सब सामाग्र्यासे युक्त होकर तुमसे युद्ध करूँगा।

हे गान्धारोत्तम ! सत्य पराक्रमी परशुरामजीने ऐसे वचनोंका कहते कहते बाणोंसे

सब दिशाओंको आच्छादित कर लिया। हे महाबाहू ! अनन्तर मैं न परशुरामकी सहसा प्रकट हुए, अद्भुत रूप, मानस निर्मित बड़े नगरके समान, दिव्य घोड़ोंसे युक्त, सावधान, सुवर्णके कवचसे भूषित, चन्द्र-सूर्यके चिह्नसे चित्रित, सब प्रकारके उत्तम शस्त्रोंके सहित, पवित्र जैसे युक्त रथके बीच स्थित देखा। इस रथमें परशुरामके प्यारे सखा वेदका जानने वाले अकृत-व्रण गोधा, अद्भुलि बाण, तूणीर और शर-सनधारी हाँकर परशुरामके सारथीका कार्य करते थे। भार्गव "आआ ! आआ !" युद्धके निमित्त बार बार ऐसा ही कहकर मुझका प्रसन्नाचित्तसे आवाहन करने लगे। मैं उस महातेजस्वी सूर्यके समान प्रकाशित महाबली क्षत्रियोंके नाश करनेवाले अकेले परशुरामके सम्मुख अकेला हो गया। अनन्तर उनके तोन्-वार बाणके छाड़नेपर मैंने घोड़ोंको रोकके और धनुषको उतारकर पैदल ही उन ऋषि-सत्तम-गुरुकी पूजा करनेके निमित्त उनके समीप गमन किया, और उनकी विधिपूर्वक प्रणाम करके यह उत्तम वचन कहा, कि हे परशुराम ! आप समान होंगे, अथवा मुझसे अधिक होंगे; परन्तु मैं आपकी सङ्ग युद्ध करूँगा। हे विभा ! आप गुरु और धर्मात्मा हैं, इससे मुझे जयके निमित्त आशोर्वाद् करी।

राम बोले, हे कुरुश्रेष्ठ ! कल्याणकी इच्छा करनेवाले पुरुषको इसी प्रकारका कर्तव्य-कर्म करना उचित है, क्योंकि जो बड़ाके सङ्ग युद्ध करता है, उसे ऐसा ही व्यवहार करना धर्मके अनुसार उत्तम है। हे महाबाहू ! तुम यदि इस प्रकारसे मेरे पास न आते, तो मैं तुमको शोष देता। हे कौरव ! अब तुम धीरे धीरे के सावधान होकर युद्ध करो। हे राजन् ! मैं स्वयं तुमको जीतनेकी उद्यत हुआ हूँ, इससे तुम्हारे जयको अभिलाषा नहीं कर सकता

हूँ ; अब तुम जाओ, धर्म पूर्वक युद्ध करो , मैं तुम्हारे चरित्रसे प्रसन्न हुआ हूँ ।

अनन्तर मैंने उन्हें नमस्कार करके शीघ्र रथपर चढ़कर सुवर्ण-भूषित अपने शङ्खका फिर बजाया । हे राजन् ! इसके अनन्तर उनका और मेरा परस्पर जयकी अभिलाषासे बृद्धत दिनतक युद्ध हुआ । पाँहले परशुरामने नव सौ साठ चाँखे कङ्कपत्रसे युक्त बाणास मेरे रथपर प्रहार किया और मेरे रथके चारों घाड़ों और सारथीको बाणाका वपासों एकल कर दिया । तोभी मैं इस प्रकारसे दंशित होकर सग्राममें निर्भय खड़ा ही था । अनन्तर देवता और ब्राह्मणोंका विशेषरूपसे नमस्कार करके रणभूमिमें स्थित उन ऋषिराज परशुरामसे यह वचन कहा हे ब्रह्मन् ! तुम्हारे मध्यादा रहित हानपर भी मैं तुम्हारे गुरुपनका सम्मान करता हूँ और धर्म संग्रह विषयम और भी कुछ कर्तव्य-कर्मका कहता हूँ, उसे सुनो । तुम्हारे शरीरम जा सब वेद और अत्यन्त हो ब्राह्मणत्व है और उससे जा तुमने बृद्धत ही तपस्या साधित की है ; उन सबके ऊपर मैं प्रहार नहीं करता हूँ, तुमन जो क्षत्रिय धर्मका आसरा ग्रहण किया है, मैं उसका ऊपर प्रहार करता हूँ, क्योंकि शस्त्र धारण करनेहीसे ब्राह्मण क्षत्रियत्वका प्राप्त करता है । हे वार ! तुम मेरे धनुषके पराक्रम और बाहुबलका देखो । मैं इस उत्तम पानोम बुझाया हुआ बाणसे तुम्हारा कार्मुक काटता हूँ । हे भरतषभ ! ऐसा कहकर मैंने उनके ऊपर एक तेज भल्ल चलाया और उसीसे उनके धनुषका अग्रभाग (शिरो) काटके पृथ्वीमें गिरा दिया । उनके रथपर भी सेकड़ों नतपर्व बाणोंका चलाया, हे राजन् ! पाँहले शरीरमें पृथक् पृथक् विद्ध होकर पाँके सर्पोंको भात वे सब बाण शरीरसे रक्त वहान लगे । उस समयसे परशुराम रक्तपूरित देहसे ऐसे

शाभित हुए, जैसे धातुओंके बहनेसे सुमेरु पर्वत तथा हिमन्त ऋतुके अन्तमें अशोक और वसन्त ऋतुमें किशुक (पलाश) का फूल शोभायमान लगता है । अनन्तर वह क्रोधसे युक्त होकर दूसरा धनुष लेकर सुवर्ण पंखसे युक्त उत्तम पानोम बुझा हुआ बाणाको वपाँन लगे । वह महा वेगशाली सर्पके विष वा अग्निके समान भयङ्कर अनेक बाण मेरे शरीरमें लगाकर मुझे कंपाने लगे । तब मैंने किसी प्रकार युद्धमें फिर स्थिर होके क्रोधमें भरके सौ बाण परशुरामके ऊपर चलाया, वे सब बाण सूर्यके तेज और विषेले सर्पके समान परशुरामके शरीरमें लगनेसे वह चेतना रहितके समान होगये । हे भारत ! उस समय मैं कृपासे युक्त होकर अपने मन ही मन कहने लगा, कि हाय ! मैंने क्षत्रियधर्मके ग्रहण करनेहीसे यह पाप किया है, यह धर्मात्मा ब्रह्मण और विशेष करके मेरे गुरु है, सो उनका मैंने अपने बाणोंसे पीड़ित किया । हे राजन् ! मैं शोकसे पूरित होकर बार बार ऐसा ही विलाप करने लगा, उसके अनन्तर फिर मैंने परशुरामके ऊपर प्रहार नहीं किया । अनन्तर भगवान् सूर्य अपनी किरणोंसे पृथ्वीको तपाकर सन्ध्याके समय अस्त होगये और युद्ध भी निवृत्त हुआ ।

१८१ अध्याय समाप्त ।

भीष्म बाली, हे प्रजानाथ ! अनन्तर मेरे निपुण सारथीन अपना, घाड़ोंका और मेरे शरीरका सब शल्य निकाला । दूसरे दिन सबेर सूर्यके उदय हानपर स्थान करके अत्यन्त तेजस्वी घाड़ोंको रथमें जुटाकर मुझ रणभूमिमें ले आया, उसके अनन्तर युद्ध आरम्भ हुआ । प्रतापवान परशुरामने मुझे रथमें बैठे हुए, कवचसे युक्त शीघ्र आया हुआ देखकर

अत्यन्तही अपनी रथसज्जा की। अनन्तर मैं युद्धको अभिलाषा करनेवाले परशुरामकी आगमन करते हुए देखकर अपने उत्तम धनुषकी त्याग, शीघ्र ही रथसे उतरकर, पहिलेकी भांति उन्हें प्रणाम करके फिर रथपर चढ़के युद्ध करनेके निमित्त उनके सम्मुख निर्भय खड़ा हुआ। इसके अनन्तर बल्लतसे बाणोंकी वर्षा करके एक दूसरेको पीड़ित करने लगी। परशुराम जोनं फिर मेरे ऊपर उत्तम पानोमें बुझी जलते हुए सर्प-मुख बाणोंको चलाया। उस समय मैंने सहस्रों और सैकड़ों बाणोंसे उन सबको मार्गहीमें काटना आरम्भ किया। तब महाप्रतापी परशुरामने मेरे ऊपर दिव्य अस्त्रोंकी चलाना आरम्भ किया। मैंने उससे भी अपनी अधिक श्रेष्ठता दिखानेके निमित्त उत्तम शस्त्रोंसे उन अस्त्रोंकी भी काट डाला। इसके अनन्तर आकाश-मण्डलसे महा गम्भीर-नाद उत्पन्न होने लगा। हे भारत! अनन्तर मैंने परशुरामके ऊपर वायव्य-अस्त्र चलाया और उन्होंने भी शुच्यक अस्त्रसे उसे काट गिराया। तब मैंने मन्त्र पढ़के आग्नेय अस्त्र चलाया, परशुरामने वायुणास्त्रसे उसका संहार किया। इसी प्रकारसे मैं भी रामके सब दिव्य अस्त्रोंकी निवारण करने लगा, और उन्होंने मेरे सब दिव्य शस्त्र निवारण किये। हे राजन्! अनन्तर महातेजस्वी और प्रतापी परशुरामने अत्यन्त क्रुद्ध होकर मुझे वायो और करके मेरे छातोमें शस्त्र प्रहार किया, उससे मैं चैतरहितकी भांति रथपर गिर गया। तब सारथीने मुझे इस प्रकारसे मूर्च्छित देख कर शीघ्र ही रथको लौटाया। हे राजन्! अकृतव्रण आदि रामके अनुयायी लोग और काशिराजकी कन्या भागवके बाणसे मुझे अत्यन्त पीड़ित, विह्वलानसे युक्त, अचेत और रणसे पराजित हाति देख कर आनन्दित हानं लगे। अनन्तर जब मुझे चेत हुआ और मेरी बुद्धि ठीक हुई, तब

मैंने सारथीसे कहा, हे सूत! मैं पीड़ा रहित और सावधान हुआ हूँ, इससे तुम मुझको परशुरामके समीप ले चलो। हे कौरव मेरा सारथी मुझे उत्तम घोड़ोंसे युक्त शोभायमान रथपर लेकर चला और वायुके समान घोड़े भी अत्यन्त शीघ्रतासे नाचते हुए चले। अनन्तर मैंने परशुरामके समीप जाकर क्रीधपूर्वक उनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करनी आरम्भ की। उन्होंने तीन तीन बाणोंसे मेरे सब बाण सरलभावसे मार्गहीमें काट डाले, इस प्रकारसे मेरे सैकड़ों तथा सहस्रों बाण परशुरामके बाणोंसे दो दो टुकड़े होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। तब मैंने परशुरामके वध करनेकी इच्छासे साक्षात् काल दण्डके समान अत्यन्त प्रकाशित जलता हुआ अस्त्र चलाया, उसके लगनेसे वह मूर्च्छित होके पृथ्वीमें गिर पड़े। हे भारत! सूर्यके पतित होनेसे जंगत् जिस प्रकारसे व्याकुल हो सकता है, परशुरामके पृथ्वीपर गिरनेसे सबने उसी भांतिसे हाहाकार किया। वह सब तपस्वी और काशिराजकी कन्या आदि अत्यन्त व्याकुल होके उनके निकट गये और धीरे धीरे उन्हें आलिङ्गन करके जलसे युक्त शीतल हाथोंसे स्पर्श करके और जय अशोर्वादेसे उनको स्तुति करने लगे। अनन्तर परशुराम उठ कर धनुष-पर बाण चढ़ाके विह्वल-वचनसे मुझे कहने लगे, “भीष्म! खड़ा रह। खड़ा रह। यही मारा गया।” संग्राममें वह बाण धनुषसे छूट कर अत्यन्त वेगसे मेरी वायों और हृदयमें लगा उसके लगनेसे मैं वायुसे उखड़ते हुए वृक्षकी भांति व्याकुल होगया। परशुरामने शीघ्रता से अपना शस्त्र चलाकर मेरे सब घोड़ोंका मार डाला और क्रीधपूर्वक लोभ युक्त बाणोंके जालसे मुझे छिपा दिया। मैंने भी उनके शस्त्रोंके निवारण करनेके निमित्त शीघ्र शस्त्र चलाया। हे भारत! परशुरामके आर मेरे वे सब बाण आकाशमें व्याप्त होकर ऊपर हो

रह गये ; इससे वागोंके जालसे आकाश ऐसा छा गया, कि सूर्यकी किरण प्रकाशित नहीं होती थी, और वायुका शीघ्र चलना भी रुक गया । इससे वायुकी सनसनाहट, वागोंकी चोट, और सूर्यकी किरणसे अग्निकी उत्पत्ति हुई । तब सम्पूर्ण वागा अग्निमें भस्म होकर पृथ्वीमें गिर पड़े । हे कौरव ! अनन्तर परशुराम खूबही क्रोधसे पूरित होकर सौ, हजार दश-हजार, लाख, अर्ब, द, खर्व, निखर्व आदि अनगिनत वागोंकी अत्यन्त शीघ्रतासे वर्षाने लगे । मैं भी विषधारी सर्पके समान अपने वागोंसे उनके सब वागोंकी काट काट पृथ्वीमें गिरा दिया । हे भरत सत्तम ! उस समय इसी प्रकारसे घोर संग्राम होने लगा ।

१८२ अध्याय समाप्त ।

भीष्म बोले, हे भरतर्षभ ! दूसरे दिन मेरा और परशुरामका समागम होने पर फिर अत्यन्त घोर युद्ध हुआ, वह दिव्य शस्त्रोंके जाननेवाले धर्मात्मा प्रतापी परशुराम प्रति-दिन अनेक दिव्य-अस्त्रोंको चलाने लगे, और मैं भी अपने अस्त्रोंसे उन सब शस्त्रोंकी निवारण करने लगा । हे भारत ! मैं अपने प्राणकी आशा छोड़कर युद्ध करने लगा । इसी प्रकारसे अनेक शस्त्रोंके चलने और उनका निवारण होनेपर महातेजस्वी परशुराम भी प्राणवण करके युद्ध करने लगे । अस्त्रोंके विफल होनेपर महात्मा परशुरामने प्रकाशमान उल्काके समान जलती हुई सब लोकोंमें तेजसे व्याप्त होनेवाली महाघोर शक्ति चलायी । मैंने भी अपने तेज वागोंसे उस सम्मुख आनेवाली प्रलयकालके सूर्यके समान प्रकाशित शक्तिका तीन खण्ड करके पृथ्वीमें गिरा दिया, तब शीतल-वायु चलने लगा । हे भारत ! उस शक्तिकी कटकर गिरती हुई

देखकर परशुरामने क्रोधमें भरकर और भी वारह महा भयङ्कर शक्तियां चलायी । तेजस्विता और शीघ्रतासे युक्त होनेसे उन शक्तियोंके रूपका वर्णन करना बहुत कठिन है रूपका मैं क्या वर्णन करूं । सब दिशाओंसे अग्निके लुङ्काके समान नाना रूपसे युक्त, प्रलयकालके वारह आदित्यके समान तेजसे जलती हुई उन शक्तियोंको देख कर ही मैं विह्वल होगया । अनन्तर उनको सम्मुख आई हुई जानकर मैंने अत्यन्त उत्तम वारह वाण चलाई और उनहीसे उन महा घोर शक्तियोंको भी भस्म कर दिया, हे राजन् ! तब महात्मा परशुरामने फिर सुवर्ण के दण्डसे युक्त अत्यन्त विचित्र जलती हुई उल्काके समान महाभयङ्कर वृक्ष तसी शक्तियां चलायी, मैंने उन्हें चर्म (टाल) से रोककर तरवारसे काटा और दिव्य वागोंको चलाकर सारथीके सहित उनके दिव्य घोड़ोंका वागोंसे छा लिया । तब हैहयवंशीय कार्तवीर्य अर्जुनके नाश करनेवाले महात्मा परशुरामने कीचुलीसे छूटें हुए सर्पकी भांति सुवर्णभूषित उन शक्तियोंको कटती हुई देखकर अत्यन्त ही क्रोधके वशमें होकर दिव्य अस्त्रोंकी चलाना आरम्भ किया । अनन्तर प्रचण्ड तेजसे युक्त प्रकाशित शलभ-समूहकी भांति उन सब शस्त्रों ने आकर मेरे रथके घोड़े और रथसमेत सारथीको सब ओरसे आच्छादित करते हुए रथकी दोनों धुरी तथा रथके पहिये आदिकी तोड़ कर गिरा दिया । अनन्तर उनके वागोंकी वर्षा शेष होनेपर मैंने भी अपने तेज वागोंकी वर्षा करनी आरम्भ की । उस समय वह महात्मा परशुराम वागोंके लगनेसे रक्त मोचन करने लगे । मेरे वागोंसे परशुराम व्याकुल होगये, और मैं भी उनके वागोंसे अत्यन्त ही विह्वल हुआ । अन्तमें सन्ध्या-मय सूर्यके अस्त होनेपर युद्धका होना बन्द हुआ ।

१८३ अध्याय समाप्त ।

भीष्म बोले, हे राजेन्द्र ! अनन्तर प्रातः-
काल सूर्यके उदय होने पर मेरे सङ्ग फिर
परशुरामका युद्ध आरम्भ हुआ । प्रहार करने-
वालोंमें श्रेष्ठ परशुरामजी अपने भ्रमणशील
रथपर स्थित होके पर्वतके ऊपर जल वर्षाने-
वाले बादलकी भांति मेरे ऊपर बाणोंकी वर्षा
करने लगे ; उससे मेरा सुहृद सारथी परशु-
रामके बाणोंसे पीड़ित होकर मेरे अन्तःकरण-
को दुःखित करता हुआ रथसे पृथ्वीपर गिर
पड़ा । अत्यन्त ही नृच्छाके वशमें होके परशु-
रामके बाणोंसे पीड़ित होकर वह मेरा सारथी
सुहृत् भूमिमें मर गया और मैं भी उस समयमें
भयभीत होगया । सारथीके मारे जानेपर मैं
डोलायमान चित्तसे उसके निमित्त शोक कर
रहा था , उस ही समयमें महात्मा भागवने
मेरे ऊपर कालके समान बाण चलाया । मैं
सूतके अभावसे विपदग्रस्त होकर विलाप कर
रहा था , तभी परशुरामने बलपूर्वक धनुष-
पर बाण चढ़ाकर मुझे पीड़ित किया । हे
राजन् ! वह रक्तको पीनेवाला भयङ्कर बाण
मेरी छातीमें लगकर मेरे सहित पृथ्वीमें
आपड़ा तब परशुराम मुझे पृथ्वीमें गिरा
हुआ देखकर प्रसन्न हो जचे स्वरसे बादलके
समान बार बार गर्जने लगे । हे राजेन्द्र !
मुझे इस प्रकारसे चेत-रहित देखकर परशुराम
अनुचरवृन्दके सहित हर्षित होकर सिहनाद
करने लगे । वहापर मेरे निकट जो कौरव
थे, तथा जो लोग युद्ध देखनेके निमित्त आये
थे, वे लोग मुझे इस प्रकारसे पड़ा हुआ
देखकर वज्रत हो दुःखित हुए । हे राजासंह !
अनन्तर मैंने रथसे गिरकर देखा कि रण-
भूमिमें सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी आठ
ब्राह्मण मुझे चारों ओरसे घेरकर अपना
भुजाओंसे धारण किये हुए हैं । उन ब्राह्म-
णोंसे राक्षित होकर मैंने पृथ्वीको स्पर्श नहीं
किया . उन लागोंके बन्धुकी भांति मुझे अन्त-

रिक्षहीमें धाम रक्खा था , मैं लम्बी सास छोड़
रहा था और वह लोग जलसे मुझे सावधान
कर रहे थे । हे राजन् ! उस समयमें वे ब्राह्मण
मुझे धारण करके बार बार यह कहने लगे
“तुम भय मत करो, तुम्हारा कल्याण होगा ।”
उन लोगोंके वचनसे मैं तर्पित और सावधान होके
उठ खड़ा हुआ और देखा, कि नदियोंमें श्रेष्ठ
मेरी माता गंगा-देवी रथसे बैठी है । हे
राजेन्द्र ! मेरी माता गंगाने युद्धमें मेरे
घोड़ोंको भी सावधान किया था । अनन्तर
मैं जननी और पितरोंकी चरण-वन्दना करके
रथपर चढ़ा । तब मेरी माता रथ, घोड़े और
सब सामग्रियोंके सहित मेरी रक्षा करने लगी ।
परन्तु मैंने हाथ जोड़के विनय पूर्वक उन्हें
विदा किया और स्वयं ही वायुके समान शीघ्र
चलनेवाले घोड़ोंको चलाकर सन्ध्या पर्थन्त
परशुरामके सग युद्ध किया हे भरतश्रेष्ठ ।
उनके ऊपर मैंने एक हृदयको कूदनेवाला
महाबलशाली बाण चलाया । मेरे उस बाणसे
पीड़ित हो, परशुराम मोहके वशवर्ती होकर
धनुषको छोड़के दानों घुटनोंसे पृथ्वीको अवलम्बन
करके खड़े रहे । उन महातेजस्वी परशुरामके
पृथ्वी टकके खड़े होने पर आकाशसे रुधिरकी
वर्षा होने लगी, बादल-रहित विजली और
सैकड़ों उल्कापात होने लगे सूर्य छिप गया,
वायु बड़े जोरसे बहने लगी , पृथ्वी जलने लगी
गिद्ध कीए तथा वशुला आदि सास भक्षण करने-
वाले पक्षी हर्षित होकर इधर उधर घूमने
लगे , सब दिशाएँ जलन लगीं शिथार महाघोर
शब्द करने लगे और बिना बजाये ही नगाड़े
अत्यन्त कर्कश-शब्दसे बजने लगे । हे भारत !
महात्मा परशुरामके चेत-रहित होकर पृथ्वी-
पर गिरनेसे महाघोर भयङ्कर ये सब उत्पातके
चिह्न उत्पन्न हुए । अनन्तर भगवान् सूर्य
धूलसे छिपकर अस्त होगये और सुख देनेवाली
शीतल वायुसे युक्त रात्रिका समय हुआ , तब

मैंने भी युद्ध करना बन्द किया । हे राजन् । इसी प्रकारसे सन्धाको निवृत्त और प्रातःकाल फिर युद्धका आरम्भ होने लगा । इसी भांतिसे तेईस दिन महा धीर संग्राम हुआ ।

१८४ अध्याय समाप्त ।

भीष्म बोले, हे राजेन्द्र । अनन्तर रात्रिके समयमें मैं ब्राह्मण, पितर, देवता, रात्रिकी भ्रमण करनेवाली भूतवृन्द और राजगणको शिर झुका कर प्रणाम करके एकान्त स्थान-पर शय्याके उपर अन ही मन यह चिन्ता करने लगा, कि आज बहुत दिन हुआ परशुरामके सङ्ग मेरा महा-भयङ्कर दाहना-संग्राम हो रहा है ; तो भी मैं महाबलसे युक्त महावीर विप्रको पराजित नहीं कर सकता हूँ । प्रतापो परशुरामको युद्धमें पराजित करनेकी यदि मुझे सामर्थ्य हो, तो देवता लोग प्रसन्न होके आज रात्रिके समयमें मुझे दर्शन देंगे । हे राजन् । मैं बाणोंके लगनेसे घायल होके इसी प्रकारसे दाहिनी और शय्यापर सोया था, उसी समयमें प्रातःकालके पहिले ही जिन ब्राह्मणोंने मुझे रथसे गिरनेपर उठाया और मुझे ग्रहण करके कहा था, तुम्हें भय नहीं है उन्हें लोगोंने स्वप्नमें मुझे दर्शन दिया । और उन सबोंने मुझे घेरकर जो वचन कहा, वह तुम सुनो । वह लोग बोले, भीष्म उठो, तुमको कुछ भी भय नहीं है ; हम लोग तुम्हारी रक्षा करेंगे । क्योंकि तुम हम लोगोंके ही शरीर हो, हे भरतर्षभ । परशुराम किसी प्रकारसे भी तुम्हें युद्धमें पराजित न कर सकेंगे, बल्कि तुम ही उन्हें परास्त करोगे । हे भरतश्रेष्ठ । विश्वकर्माका बनाया यह जो प्रस्वाप नाम उत्तम प्राजापत्य अस्त्र है । वह तुमको युद्धके समयमें विदित हो जायेगा, क्योंकि पूर्वजन्ममें भी यह तुमको विदित था । हे भारत । परशु-

राम तथा पृथ्वीके दूसरे पृथ्वीके किसी पुरुषने आजतक इसके तत्वकी नहीं जाना है । हे भारत ! इससे तुम इस अस्त्रको सरण करो, और दृढ़ताके सहित चलाओ । हे भारत । इस शस्त्रसे परशुरामकी मृत्यु नहीं होवेगी, और तुमको भी ब्राह्मणत्वाका पाप नहीं लगेगा । हे भीष्म । तुम्हारे बाणके बलसे पीड़ित होकर परशुराम केवल शयन मात्र करेंगे । अनन्तर उनको जोतकर तुम ही अपने उत्तम सम्बोधन अस्त्रसे उठाना, हे राजेन्द्र । इससे प्रातःकाल उठकर तुम ऐसा ही करो, सोना और मरना दोनोंको हम लोग समान ही समझते हैं । हे कौरव । परशुरामकी कभी मृत्यु न हो सकेगी, इससे तुम अब इस प्रस्वाप अस्त्रको धनुषपर चढाओ । वह मूर्तिमान् समान रूपवाले आठों ब्राह्मण ऐसा वचन कह कर वहीँ अन्तर्धान होगये ।

१८५ अध्याय समाप्त ।

भीष्म बोले, हे राजेन्द्र । अनन्तर रात्रिके वीतनेपर मैं निद्राके उठ उस स्वप्नके वृत्तान्तको मनमें विचार कर हर्षित हुआ । इसके बाद परशुरामका और मेरा सब लोकोंकी विलित करनेवाला परम अद्भुत संग्राम आरम्भ हुआ । हे भारत ! उस समय परशुरामने मेरे ऊपर बाणोंकी वर्षा की और मैंने भी उसे निवारण किया । अनन्तर महातपस्वी भार्गवने पहिले दिनके कोपसे क्रुद्ध होकर मेरे ऊपर इन्द्रके बज्र समान कठोर साक्षात् यमदण्डके समान शक्ति चलायी, हे भरतर्षभ । वह महाधीर शक्ति जलती हुई अग्निसे समान प्रकाशित होकर सब दिशाओंको प्रज्वलित करती हुई अन्तमें विजली अग्निके समान शीघ्र ही आकर मेरे कन्धमें लगी । हे महाबाही । तब परशुरामके शस्त्रसे घायल होकर गीतकी धार वर्षनेवाले पर्वतकी भांति मेरे शरीरसे रक्त

वशने लगा । तब म अत्यन्त क्रोधित होकर परशुरामकी ओर सर्प विषके-समान मृत्यु-रूपो बाण चलाया । हे महाराज ! वह बाण वीरवर द्विजसत्तम परशुरामके मस्तकमें लगा , उससे शृङ्गयुक्त पर्वतकी भाँत उन्होंने क्रोधपूर्वक धनुषकी खौंचकर शत्रुओंका नाश करनेवाला कालके समान बाण चलाया । शह फुफुकार करता हुआ सर्पके समान गर्जता हुआ बाण मेरी छातीमें लगा । उसके लगनेसे मे रक्तसे भोगकर पृथ्वीमें गिर पड़ा , परन्तु फिर सावधान होकर बुद्धिमान् परशुरामकी ओर वज्रके समान जलती हुई प्रकाशित शक्ति चलायी । हे राजन् ! वह शक्ति द्विजसत्तम परशुरामकी छातीमें लगी , उससे वह विह्वल हाके कापने लगे । तब उनकी प्यारे मित्र सहातपस्वी अकृतव्रण उनकी आलिङ्गन करके अनेक प्रकारके उत्तम और शुभ वचनासे हर्षित करने लगे । अनन्तर महाव्रत करनेवाली परशुरामने क्रोधपूर्वक ब्रह्मास्त्र चलाया । तब मैंने उसके निवारण करनेका परम-ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया । हे भारत ! वह महा अस्त्र प्रलयकालके समान प्रज्वलित होने लगे । हे भारत सत्तम ! परशुराम तथा मेरे पास न पड़ च कर दानों ब्रह्मास्त्रोका आकाशके बीचमें हो समागम हुआ । उस समय सम्पूर्ण पृथ्वी और आकाश तेजसे युक्त होगया और सम्पूर्ण प्राणी अत्यन्त ही पीड़ित होने लगे । दीना अस्त्राक तेजसे पीड़ित होकर ऋषि, गन्धर्व, देवता आदि सब ही अत्यन्त दुःखित हुए । पर्वत, वन और वृक्षोंके सहित पृथ्वी कापने लगी और प्राणी मात्र अत्यन्त पीड़ित होकर विषाद करने लगे आकाश मण्डल प्रज्वलित होने लगा, सब दिशाओंमें धूआं भर गया , इससे आकाशचारो भी आकाशमें निवास न कर सके । अनन्तर देव, असुर और राक्षसों

युक्त सब लोकीमें हाहाकार होने लगा । “यही उत्तम समय है” विचार करके मैंने शीघ्र ही उन ब्राह्मणोंके वचनके अनुसार प्रस्थापास्त्र चलानेकी इच्छा की , उस समय वह विचित्र अस्त्र भी मेरे मनके बीच प्रकाशित होगया ।

१८६ अध्याय समाप्त ।

भीष्म बोले, हे राजन् ! अनन्तर आकाशमें “हे कौरव नन्दन भीष्म ! प्रस्थापास्त्र मत चलाओ” इसी प्रकारसे महाघोर शब्द हुआ , तभी परशुरामकी ओर मैंने उस अस्त्रकी चलाया । तब नारद मुझसे बोले, हे कौरव ! देखो वह आकाशमें सब देवता स्थित है, ये सब लोग तुमकी निवारण करते हैं , इससे तुम प्रस्थापास्त्र मत चलाओ । हे भारत ! परशुराम तपस्वी और ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण है, विशेष करके तुम्हारे गुरु हैं , इसको किसी प्रकारसे उनका अपमान मत करो । हे राजेन्द्र ! फिर मैंने उन आठ ब्रह्मवादी ब्राह्मणोंको आकाशमें स्थित देखा, वह लोग हंसके मुँहसे यह वचन बोले, “हे भारत अष्ट ! नारद जो कहते हैं, वही करो , क्योंकि यह लोकका परम कल्याण करने वाला वचन है ।”

अनन्तर मैंने उस महाघोर प्रस्थापास्त्रका सहार करके विधिपूर्वक ब्रह्मास्त्र ही दीपित किया । हे राजसिंह ! तब क्रोधमें भरे हुए परशुराम उस प्रस्थापनास्त्रकी रक्तता हुआ देखकर सहसा यह वचन बोले, भीष्मने मुझे पराजित किया मैं अत्यन्त ही मन्द-बुद्धि हूँ । इसके अनन्तर परशुरामने माननीय अपने पिता और पितामह आदि पितरोंको देखा । वह लोग उसी स्थान पर उनकी घेर कर खड़े हुए और उस समय उन्हें शान्त करनेके निमित्त यह वचन बोले, “ हे तात ! तुम फिर कभी किसी प्रकारसे भी ऐसा कर्म मत करना ,— भीष्म तथा क्षत्रियोंके सङ्ग अब कभी युद्ध कर-

नका उत्साह मत करो । हे भृगुनन्दन ! युद्ध क्षत्रियोंका ही धर्म है । ब्राह्मणोंका वेद पढ़ना और व्रत करना ही परम धर्म है । पहिले किसी कारणके उपलक्षमें हमलोगोंने तुमको इन शस्त्रोंकी धारण करनेके निमित्त कहा था, और तुमने भी महाधैर्य कठिन कार्यका अनुष्ठान किया था । हे महाबाहो ! संग्राममें भीष्मके संग तुम्हारा यह युद्ध यहां ही तक हुआ । हे पुत्र ! इससे अब तुम इस रणभूमिसे बाहर चलो । हे भार्गव ! तुम्हारा धनुष धारण करना भी आज ही तक रहा, इससे हे पुत्र ! अब तुम इसे विसर्जन करके तपस्या करो । सम्पूर्ण देवता लोग इस शान्तनु-नन्दन भीष्मको 'हे कुरुश्रेष्ठ ! इस संग्रामसे निवृत्त होजाओ, गुरु परशुरामके संग युद्ध मत करो, इनका युद्धमें पराजित करना तुमको उचित नहीं है । हे गगानन्दन ! रणभूमिमें इनका यथा उचित सम्मान करो, बार-बार ऐसे वचनोंको कहके निवारण करके तुम्हारे ऊपर कृपा की है । हे पुत्र ! इससे हम लोग भी तुम्हारे गुरु हैं, इस ही कारणसे तुम्हें निवारण करते हैं । हे भार्गव ! शान्तनुके वीर्य और गगाके गर्भसे उत्पन्न हुए महायशस्वी वसुका तुम कैसे पराजित कर सकते हो ? हे पुत्र ! भीष्म वसुओंमें एक प्रधान पुरुष है, इससे प्रारब्धसे जो तुम जीते बचे हो, यही बल्लत है । इससे अब तुम युद्धसे निवृत्त होजाओ, स्वयम्भू विधाताने इन्द्रपुत्र बलवान् पाण्डवश्रेष्ठ अर्जुनकी समयके अनुसार भीष्मके बधके निमित्त उत्पन्न किया है ।

भीष्म बोले, परशुरामने अपने पिता, पितामह आदि पितरोंके वचनको सुनकर यह कहा, कि "मैं युद्धसे कभी भी निवृत्त न होऊंगा" ऐसा व्रत धारण किया है, और पहिले भी युद्धसे कभी निवृत्त नहीं हुआ हूँ । पितामहगण ! इससे आप लोग गगातनय

भीष्महीको युद्धसे निवृत्त कीजिये, मैं इस युद्धसे किसी प्रकारसे भी निवृत्त न होऊंगा । हे राजन् ! अनन्तर वह ऋषि आदि सुनि लोग नारदके सहित मिलकर भेनिकट आकर बोले, 'हे तात ! युद्धमें निवृत्त हो जाओ, इस द्विजोत्तमका सम्मान करो तब मैंने भी क्षत्रिय-धर्मको प्रतोचासे उससे कहा, लोकमें मेरा यह व्रत है, मैं युद्धसे कभी पीठ दिखाकर निवृत्त होऊंगा । मैं लोभ, कृपणता, भय और अर्थ आदि किसी प्रकारसे भी अपने सनातन धर्मको नहीं छोड़ सकता हूँ, यही मेरा स्थिर निश्चय है, हे राजेन्द्र ! अनन्तर नारद आदि सब सुनि और मेरी माता भार्गवी तथा ऋषि लोग रणभूमिमें आये, तभी मैं उसी प्रकारसे धनुष बाण धारण करके युद्धके निमित्त दृढ़ निश्चयसे खड़ा था । तब वह सब कोई मिलकर भृगुनन्दन परशुरामके निकट जाकर यह वचन बोले, हे भार्गव ! ब्राह्मणोंका हृदय अत्यन्त ही कोमल होता है, इससे तुम हो शान्त हो जाओ । हे राम ! हे द्विजोत्तम ! इस युद्धसे निवृत्त होजाओ । हे भृगुनन्दन ! भीष्म तुम्हारा अबध्य और तुम भी भीष्मके अबध्य हो । वह पितर लोग रणभूमिमें रोककर सब कोई ऐसे ही वचन कहते कहते परशुरामसे शस्त्र त्याग करवाया । अनन्तर मैंने उन प्रकाशित ग्रहसमूहकी भांति ब्रह्मवादी आठ ऋषियोंको फिर देखा, वह लोग युद्धमें स्थित सुभको प्रीतिपूर्वक यह वचन बोले, हे महाबाहो ! लोकके हितका कार्य करो, विनयपूर्वक अपने गुरु परशुरामके निकट जाओ, तब मैंने परशुरामकी सुहृद लोगोंके वचनसे निवृत्त होता हुआ देखकर लोगोंके हितके निमित्त अपने सुहृद पुरुषोंके वचनका ग्रहण किया । अनन्तर शस्त्रोंसे अत्यन्त पीड़ित होकर भी मैंने परशुरामके समीपमें

जाकर उन्हें प्रणाम किया, महातपस्वी परशुराम भी प्रेमपूर्वक हंसते हुए मुझसे यह वचन बोले हे भोष्म ! इस पृथ्वीके बीच सम्पूर्ण जलियोंमें भी तुम्हारे समान कोई क्षत्रिय पुरुष विद्यमान नहीं है, इस युद्धमें तुमने मुझको अत्यन्त ही सन्तुष्ट किया है, इससे अब गमन करो। मुझसे ऐसा वचन कहकर परशुरामजीने सब महात्माओंके बीच मेरे सम्मुख ही उस कन्याको आवाहन करके दीन वचनसे नाचे कही हुई बातोंका कहने लगे।

१८७ अध्याय समाप्त ।

परशुराम बोले, हे भार्वात ! मैंने अपने पुरुषार्थके अनुसार पराक्रमको प्रकाशित करके जा युद्ध किया, उसे सब लागाने हो देखा है। मैंने अनक उत्तम अस्त्र शस्त्र चलाए, तोभी शस्त्रधारणमें अष्ट भोष्मका परास्त न कर सका। मेरो जितनी शक्ति और बल है, उसे प्रकाशित किया, इससे हे भर्तृ ! अब जहा इच्छा हो वहा जाओ। तुम्हारा दूसरा कार्य्य हो मैं क्या करूंगा ? इससे अब तुम भोष्महाको शरणमें जाओ, इसके अतिरिक्त और कहीं भी तुम्हारी गति नहीं है, देखा मैं अपने परम दिव्य अस्त्रोंको चला कर भी भोष्मको नहीं जोत सका। महातेजस्वी परशुराम ऐसे वचन कह कर लम्बी सास लेते हुए चुप होगये। अनन्तर अम्बाने उनसे कहा, भगवान् ! तुम जा कहते हो, वह सब ठोक है, यह उदार बुद्धि भोष्म युद्धमें देवताओंसे भी अर्ज्य है। तुम्हारी जितनी शक्ति और जैसा उत्साह था, तुमने उसके अनुसार ही मेरा कार्य्य किया है, रणभूमिमें अत्यन्त बल, पराक्रम और दिव्य अस्त्रोंको प्रकाशित किया, तोभी भोष्मसे अधिक न होसके, परन्तु हे तपोधन ! मैं इस भोष्मके निकटमें अब किसी

प्रकारसे भी न जाऊंगी, उसी स्थान पर जाऊंगी जहा आप ही उसे परास्त कर सकूंगी। ऐसा वचन कह कर वह कन्या क्रोधसे व्याकुल होके वहासे चली गई और मेरे बंध करनेका सङ्कल्प करके तपस्या करनेका सङ्कल्प किया। अनन्तर भृगुसत्तम परशुरामने उन मुनियोंके सहित विदा होनेके समय उनसे यथा उचित बातचीत करके महेन्द्र पर्वत पर चले गये। हे भारत ! मैं रथ पर चढ़के ब्राह्मणोंसे स्वास्तिवाचन सुनता हुआ हास्तिनापुरमें प्रवेश करके माता सत्यवतीसे सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा, और उन्होंने भी मुझे आनन्दित किया। हे सहाराज ! तब मैं अम्बाके वृत्तान्तको जाननेके वास्ते अत्यन्त निपुण बुद्धिमान् पुरुषोंको नियुक्त किया। वह सब दूत मेरे प्रिय कार्य्यमें रत होकर उस कन्याके प्रतिदिनकी गति, बाणी और चेष्टा सुनाने लगे। हे तात ! अम्बा जब तपस्याके निमित्त सङ्कल्प करके वनकी गई तब ही मैं व्याकुल स्वभावसे युक्त और चेत-राहत हो गया; क्योंकि ब्रह्मज्ञ लोगोंसे ही मुझे भय हुआ करता है, तपस्या करनेवाली ब्रह्मज्ञ लोगोंके अतिरिक्त और कोई क्षत्रिय मुझे युद्धमें नहीं जोत सकता। हे राजन् ! मैंने नारद और व्यासदेवसे भी उस कार्य्यकी निवेदन किया। उससे वह लोग मुझसे बोले, हे भोष्म ! तुम काशिराजकी कन्याके विषयमें कुछ भी शोक मत करो, पुरुषार्थसे कोई पुरुष क्या देवकी अतिक्रम कर सकता है ? हे राजन् ! वह कन्या आश्रममण्डलोंमें प्रवेश करके यमुनाके तीर पर अपना आश्रम बना कर अलौकिक तपस्या करने लगी, उसने आहारको त्याग दिया कुशित, जटाधारिणो धूल और कीचड़के सङ्ग बहनेवाली सूखी लकड़ीकी भांति स्थिर होकर वह महीने वायु मच्चण करके तपस्या करती रहो, फिर एक वर्ष तक

यमुना जलके आसरे निरोद्धर व्रत धारण किया, फिर केवल वृक्षसे गिरे हुए एक एक सूखे पत्तोंकी खाकर एक वर्ष बिताया। वह महाकोप करनेवाली तपस्विनी अपने पावके अंगूठेके अग्रभागके बलसे खड़ी होकर इसी प्रकारसे बाहर वर्ष तपस्या करके स्वर्ग और पृथ्वीकी तपाने लगी। जातिके लोगोंने बहुत ही चेष्टाकी, परन्तु किसी प्रकारसे भी उसे निवृत्त न कर सके। अनन्तर अम्बा पुण्यशील महात्मा ब्रह्मवादी तपस्वियोंके आश्रम, भूत सिद्ध और चारणोंसे सेवित वत्स भूमिमें गमन किया, वहापर पुण्य तीर्थोंमें रात दिन गमन करती हुई, इच्छापूर्वक सब स्थानोंमें भ्रमण करने लगी। हे महाराज। वह क्रमसे नन्दाश्रम, उलूक-आश्रम, चवनके आश्रम, ब्रह्मस्थान, प्रयाग, देवप्रजन, देव अरण्य, भागवतो, विश्वामित्रके आश्रम, माण्डव्य-आश्रम, दिलीप-आश्रम, रामकृष्ण, और ऐल भार्गवके आश्रममें भ्रमण करने लगी। हे राजेन्द्र ! उस काशिराजकी कन्या अत्यन्त कठिन व्रत अवलम्बन करके उस समय सम्पूर्ण तीर्थोंमें जाकर स्नान किया था। हे कौरव ! किसी दिन जलमें खड़ी हुई देखकर मेरी माता गङ्गा-देवीने उससे कहा, हे भद्र ! तुम किस कारणसे इतना लेश सह रही हो, वह सुभासे सत्य सत्य कहो। तब वह अनिन्दिता काशिराजकी कन्या हाथ जोड़कर बोली, हे देवी। हे सुन्दर-नेत्रवाली। परशुरामन भीष्मकी युद्धमें नहीं जीता, तब और कौन बलवान राजा उस शस्त्रधारी महावीरका जीत सकता है ? इससे मैं भीष्मके वधके निमित्त यह महा धार तपस्या कर रही हूँ, ऐसा ही मनमें निश्चय करके पृथ्वीमें भ्रमण कर रही हूँ। हे देवी ! किसी प्रकारसे उस भीष्मका वध कर सकूँ, यही मेरे व्रतका परम फल है। अनन्तर समुद्रमें गमन करनेवाली मेरी माता

भागोरथीने उससे कहा, हे भाविनि। तुम कुटिल आचरण कर रही हो, हे सुन्दरी। तुम्हारी यह अभिलाष पूर्ण न होवेगी। हे काशिराजकी कन्या ! यदि भीष्मके वधके निमित्त तुम इस प्रकारसे व्रत करोगी, और व्रत करती हुई शरीरकी छाड़ोगी, तब टेढ़ी चालसे बहनेवाली नदी रूप होजाओगी। केवल वर्षाकालहीमें तुम्हारा जल रहेगा और दूसरे आठ महोनतक तुम जल-रहित होओगी। और तुम्हारा तीर्थ निम्ननीय होगा, कोई भी तुमको न जान सकेगा। तुम विकराल ग्राहवती और धाररूपा होकर सब प्राणियोंको भयङ्करी बंध जाओगी। हे राजन् ! मेरी माता यशस्विनी भागोरथीने हंसते हंसते ऐसे वचन कहकर काशिराजकी कन्याकी विदा किया। अनन्तर वह कन्या फिर व्रत अवलम्बन करके कभी आठ महान और कभी दश मास तक जल भी नहीं पीती थी। हे कौरव ! और सब तीर्थोंमें इधर उधर भ्रमण करके फिर वह वत्स-भूमि आई और वहापर वर्षाकालमें बहनेवाली अनक ग्राह आदि जल-जन्तुआसे युक्त टेढ़ी और भय उत्पन्न करनेवाली नदीरूपमें विख्यात हुई। हे राजन् ! अम्बा उस तपस्याके बलसे शरीरके आधे भागसे नदी हुई और शेष आधे-भागसे कन्याभी बनरही।

१८८ अध्याय समाप्त ।

भीष्म बाले, अनन्तर वह सब तपस्वी लागान काशिराज कन्याका तपस्याम कृत स कल्प देखकर उस अनवारण किया और उसका कौनसा कार्य है, इस बातका भी पूछा। तब अम्बा उन तपावृद्ध ऋषियासे बोली, हे तपोधनवृन्द ! मैं भीष्मके हाथसे गृहण की जानसे पात-धर्मसे रहित हुई हूँ, इससे उसीके वधके निमित्त मेरी यह तपस्या है, स्वर्ग आदि लोकोंके प्राप्त करनेके निमित्त मैं तप नहीं करती हूँ। भीष्मको मारकर शान्त

होजंगी, यही निश्चय है। हे तापसवृन्द ! जिसके कारणसे इतना दुःख सह रही हूँ, और पति-लोकसे रहित होगई हूँ, न मैं स्त्री और न पुरुष हूँ, उस गङ्गापुत्र भीष्मकी विना युद्धमें मारे अब निवृत्त न होजंगी। आप लोग और सुभक्तों को निवारण न कीजिएगा हे भारत ! अन्तर देवोंके देव शूलधारी महादेव उन महर्षियोंके जोच इस तपस्विनीको दर्शन देकर बोले, “तेरी क्या अभिलाष है ? वर मांग”। तब उस मनस्विनी काशिराजकी कन्याने मेरे वध करनेके निमित्त वरदान मांगा उसका वचन सुनकर महादेव बोले, “अवश्य वध करोगी” यह वचन सुन कर अस्त्राने महादेवसे पूछा, कि हे देवोंके देव मैं स्त्री होकर भीष्मकी युद्धमें मारूंगी, यह कैसे सम्भव और उत्तम हो सकता है ? हे भूतोंके स्वामी उमानाथ ! स्त्री-भाव विशेष करके तपस्यासे मेरा मन अत्यन्त ही शान्त होगया है, तुमने भी भीष्मकी वध करनेका सुभक्त वर दिया, इससे हे वृषभध्वज ! शान्तनुनन्दन भीष्म जिस प्रकारसे मेरा वध होवे, वही कोजिये। मैं उसकी सङ्ग युद्धमें जाऊँ जिस प्रकारसे उसे मार सकूँ तुम उस ही उपायका विधान करो।

तब वृषभध्वज महादेव उस कन्यासे बोले, हे भद्रे ! मेरी बात कभी मिथ्या न होगी, यह अवश्य ही सत्य होगी। तुम भीष्मकी युद्धमें मारोगी, और पुरुषत्वभी प्राप्त करोगी तथा दूसरे शरीरमें गमन करके पूर्व जन्मके सम्पूर्ण वृत्तान्तको भी स्मरण करोगी। द्रुपदके कुलमें जन्म लेकर तुम महारथ, शीघ्र शस्त्र चलानेवाली महाबलवान् योद्धा बनोगी। हे कन्याणि ! मैंने जो कुछ कहा, वह सब सत्य

होगा, तुम कुछ कालके बाद पुरुष हो जाओगी। वृषभध्वज कपाली महादेव ऐसा वचन कह कर तपस्वी ब्राह्मणोंके सम्मुख ही अन्तर्धान होगये। अनन्तर अनन्दिता काशिराजकी कन्या अस्त्राने उन महर्षियोंके सम्मुख ही वनसेसे काठ लाकर यमुनाके समीप एक बड़ी चिता बनाकर उसमें अग्नि लगा दी। हे महाराज ! उस अग्निके प्रज्वलित होने पर वह काशिराजकी बड़ी कन्या क्रोधपूर्वक “मैं भीष्मकी वधके निमित्त इस अग्निमें प्रवेश करती हूँ” ऐसा वचन कहकर अग्निमें प्रवेश करके जल गई।

१८६ अध्याय समाप्त ।

दुर्योधन बोले, हे योद्धाओंमें श्रेष्ठ गङ्गानन्दन पितामह ! शिखण्डी पहिली कन्या होकर पीछे किस प्रकारसे पुरुष होगया ; उसे वर्णन कीजिये।

भीष्म बोले, हे राजेन्द्र ! लोकमें विख्यात राजा द्रुपदकी प्यारी रानी पुत्रहीन थी। हे राजेन्द्र उसी समय राजा द्रुपदने मेरे वधके निमित्त निश्चय करके महा धीर तप करके पिनाकधारी महादेवकी सन्तुष्ट किया और उनसे यह वचन बोले, “हे भगवन् ! मैं भीष्मकी वधके निमित्त एक पत्रकी इच्छा करता हूँ, हे शङ्कर ! इससे कन्याके अतिरिक्त मेरे एक पत्र हीवे, उनकी यह प्रार्थना सुनकर देवोंके देव महादेव बोले, तुमकी स्त्री और पुरुष ऐसा एक पत्र उत्पन्न होगा, हे राजन् ! तुम निवृत्त होजाओ ; मैंने जो वचना कहा है, कभी वह झूठ न होगा। राजा द्रुपद महादेवका ऐसा वचन सुनकर नगरमें आकर अपनी भार्यासे बोले, हे देवो ! मैंने अत्यन्त यत्न तपस्यासे महादेवकी प्रसन्न किया है, उन्होंने कहा है, कि तुमकी कन्या और पुत्र ऐसा एक सन्तान उत्पन्न होगी, उस वचनकी सुनकर मैंने बार बार प्रार्थना

की, परन्तु शङ्करने कहा, यह मेरी बात कभी नहीं पलट सकती। इससे हे भाविनि। उस वचनमें अब कुछ भी रद्द बदल न हीगा, क्योंकि इसी प्रकारकी हीतव्यताथी। अनन्तर यशस्विनी द्रुपदराजकी पत्नीने ऋतुमती होकर नियम पूर्वक उनके सङ्ग सहवास किया और शास्त्रमें कहे हुए कर्मसे यथा समयमें गर्भ धारण किया। महाराज। नारदने मुझसे शिखण्डीका जिस प्रकारसे जन्म-वृत्तान्त कहा था, मैं उसहीको वर्णन करता हूँ। हे कुरु-नन्दन। उस सुन्दर नेत्रवाली महादेवीके गर्भ धारण करनेपर राजा द्रुपदने पुत्र स्नेहके कारण सब प्रकारसे भार्याके सुखके निमित्त यत्न किया। हे राजन्! द्रुपद पुत्रहीन थे, इससे उनकी भार्याने जो कुछ अभिलाष की, वह सब वस्तु देकर उन्होंने उसके मनोरथको पूर्ण किया। अन्तमें उस द्रुपदराजकी प्यारी रानीने एक उत्तम रूपवाली कन्या प्रसव किया, हे राजेन्द्र! द्रुपदराजके पुत्र न रहनेपर उनकी प्यारी स्त्रीने कहा, “मुझे यह पुत्र हुआ है” ऐसीही बात सर्वत्र प्रचार कर दी। हे राजन्! अनन्तर राजा द्रुपदने उस छिपी हुई कन्याको पुत्रके समान जानकर, उसका सम्पूर्ण पुत्र-काथ्य कराया और उनकी रानीने भी पुत्र पुत्र कहकर सब प्रकारसे यत्न पूर्वक उसकी रक्षा की। नगरके बीच एकमात्र राजा द्रुपदको तोड़ कर और कोई पुरुष भी उस कन्याको कन्या नहीं जानता था। हे राजन्! राजा द्रुपदने अविनाश महादेवके वचनपर अज्ञा करके उस कन्याको छिपाकर पुत्र कहके प्रचार किया और पुत्रहीके समान सब जाति-कर्म संस्कार कराया। लोकमें इस कन्याको सब शिखण्डी कहके जानते हैं, परन्तु मैं ही अकेला दूतों तथा नारदके वचन, देव-वाच्य, और अम्बाको तपस्यासे उसके स्वरूपको जानता हूँ।

भीष्म बोले, हे राजेन्द्र! राजा द्रुपद कन्याको लिखना और शिल्प आदि सब कर्मों को सिखानेका यत्न किया। शिखण्डी का और अस्त्रशिखामें द्रोणाचार्यका शिष्य हुआ उसकी प्यारी माताने पुत्रकी भांति उससे विवाहके निमित्त अनुरोध किया। हे महाराज! उस समय द्रुपदराज कन्याको यौवनवती देखकर भार्याके सहित चिन्ता करने लगे। द्रुपद बोले, देखो मेरा शोक बटानेवाली इस कन्याके यौवनका समय प्राप्त हुआ है, मैंने शूलधारी महादेवके वचनसे इसे छिपाकर रक्खा है। भार्या बोली, महाराज। वह वचन कभी मिथ्या न होगी, तीनों लोकके कत्ता होकर महादेव किस प्रकारसे भूठ बोलेंगे? हे राजन्। याद मेरे वचनमें आपकी रुचि होवे, तो मैं जो वचन कहती हूँ, उसको सुनिधि और सुनकर अपने मतके अनुसार कार्य कोजिये। यत्नके सहित विधिपूर्वक किसी कन्यासे इसका विवाह कर्म कोजिये, शिवका वचन अवश्य ही सत्य होगा।

अनन्तर वह दोनों स्त्री-पुरुष उस कार्यका निश्चय करके दशार्णाधिपतिकी कन्याको अपनी कन्याके निमित्त प्रार्थना की। राजसिंह राजा द्रुपदने कुलके अनुसार सब राजाओंके वृत्तान्तको सुनकर दशार्णाराजकी कन्याको ही शिखण्डीके निमित्त वरण किया। हिरण्यवर्मा नामसे विख्यात दशार्णाराजने भी अपनी कन्या शिखण्डीके निमित्त प्रदान की। वह महातेजस्वी हिरण्यवर्मा दशार्ण देशके बड़े पराक्रमी अनक सेनाओंसे युक्त बलवान् राजा थे। हे राजसत्तम! विवाह कर्मके समाप्त होनेपर वह कन्या और शिखण्डीने दोनों ही धीरे धीरे सम्पूर्ण रूपसे यौवनवती हुईं। शिखण्डीने दार-परिग्रह करके काम्पिल्य नगरमें फिर आगमन किया। कुछ दिनोंके अनन्तर उस कन्याने शिखण्डीकी स्त्री जान लिया। हिरण्यवर्माको

कन्याने शिखण्डीकी शिखण्डिनी जानकर लज्जापूर्वक दुःखित चित्तसे दासी और सखियोंके निकटमे पाञ्चालराजकी कन्या शिखण्डिनीके स्वरूपका वृत्तान्त कह दिया । हे राज शार्दूल ! तब दशार्णराजकी दासियोंने अत्यन्त दुःखित होकर अपने स्वामीके निकटमें दूतियोंको भेजा । उन दूतियोंने भी दशार्णराजके समीपसे इस प्रवचना (ठगपना) का वृत्तान्त ठीक ठीक वर्णन किया और राजा भी सुनकर क्रुद्ध हुए इधर शिखण्डिनी भी नारी भावकी छिपाती हुई प्रसन्नता पूर्वक राजकुलमें भ्रमण करने लगी ।

हे राजेन्द्र ! राजा हिरण्यवर्मा कुछ दिनों के अनन्तर इस वृत्तान्तकी सुन कर क्रोधसे पीड़ित हुए, अनन्तर अत्यन्त कुपित हो उन्होंने राजा द्रुपदके समीप दूत भेजा । हिरण्यवर्माका दूत द्रुपदके समीपमें जाकर निर्जन स्थानमें यह वचन बोला, हे राजन् ! तुम्हारी प्रवचना से दशार्णराजने कुपित होकर यह कहा है, हे राजेन्द्र ! तुमने जा मोहमें पड़कर अपनी कन्याके निमित्त मेरी कन्या मागी, वह निश्चय ही तुम्हारी दुष्ट मन्त्रणाका कार्य है । तुम मेरा अपमान करते हो, यह ठीक है, पनतु रं नीचबुद्धिवाली । इससे अब तू प्रतारणाके फलको भोग करेगा । मैं तुमको अब दृष्ट मित्र और वस्तुवान्धवोके सहित मारूंगा ; खड़े रहो ।

१६१ अध्याय समाप्त ।

भीष्म बोले, हे राजन् ! दूतके मुखसे ऐसा वचन सुन कर पकड़े हुए चारको भात राजा द्रुपदके मुखसे कुछ भी वचन न निकला वह म स्वरसे बालनेवाली दूतासे यह वचन बोले, यह ठीक नहीं है" इस प्रकारसे सन्देश भेज कर दशार्णराजके प्रसन्न करनेकी नामत्त अत्यन्त

यत्न करने लगे । परन्तु राजा हिरण्यवर्माने फिर अनुसन्धान करके यह जान लिया, कि शिखण्डी द्रुपदराजकी कन्या ही है, इससे शीघ्र ही उन्होंने युद्धके निमित्त यात्रा की । अनन्तर उन्होंने दासियोंके वचनके अनुसार अपना कन्याके इस प्रकारसे ठगी जानिका वृत्तान्त महातेजस्वी मित्रोंके निकट वर्णन किया । हे भारत ! उस राजसत्तम हिरण्यवर्माने बल्लत बड़ा बल संग्रह करके द्रुपदके विरुद्ध युद्ध करनेके निमित्त इच्छा की, और मन्त्रियोंसे मिल कर इस विषयमें विचार करने लगे । उसमें उन महात्मा राजाओंका यह निश्चय हुआ, कि शिखण्डी कन्या है,—यदि यह वचन सत्य होवे, तो हम लोग पाञ्चाल-राजको बाधकर इस स्थान पर ले आवेंगे और दूसरे किसी भूपालको पाञ्चाल देशका राजा बनाके शिखण्डी के सहित द्रुपदका बध करेंगे । तब हिरण्यवर्मा राजाने ऐसा ही निश्चय करके "तुम्हारा बध करूंगा, खड़े रहो । ऐसा कहके फिर राजा द्रुपदके समीप दूत भेजा ।

भीष्म बोले, राजा द्रुपद स्वभावसे ही उदरपोक थे, तिस पर भी उस पापकर्मके कारण अत्यन्त ही भयभीत हुए । वह शोकित होकर हिरण्यवर्माके निकट दूत भेज कर भार्याके सहित निर्जन स्थानमें बैठ कर शोक और भय-पूरित चित्तसे शिखण्डिनीकी माता प्यारी रानीसे यह वचन बोले, हे सुश्राणि ! हम लोगोंके वैवाहिक सम्बन्धी महाबली हिरण्यवर्मा राजा सेना संग्रह करके कुपित होकर मुझसे लड़नेकी चले आते हैं । इस समय इस कन्याके विषयमें मैं क्या करूंगा, कुछ समझ नहीं सकता हूँ । मैंने सुना है, कि तुम्हारे पुत्र शिखण्डीको लोग कन्या कहके सन्देह करते हैं ; इसी कारणसे हिरण्यवर्मा "मैं ठगा गया हूँ" यह विचारकर यत्नपूर्वक मित्र, बल और अनुचरोंके सङ्ग मिलकर मेरे

नाश करनेकी इच्छा करता है। हे भद्र ? इससे अब इस विषयमें सत्य वा मिथ्या जो कुछ हो, वह तुम मुझसे वर्णन करो। तुम्हारा वचन सुनकर मैं उसको अनुसार ही कार्यका विधान करूंगा। हे वरवर्णिनि। देखो मुझे भी सशय प्राप्त हुआ है और बाला शिखण्डिनी और तुम भी महालेशसे अस्ता हुई हो, इससे तुमसे पूछता हूं कि तुम सबको इस विपदसे छड़ानेके निमित्त यथार्थ तत्व वर्णन करो। हे सुन्दरि। मैं तुम्हारे वचनको सुनकर वैसे ही कार्यका अनुष्ठान करूंगा। हे वरारोह । यद्यपि तुमने मुझे पुत्रधर्मसे वञ्चित किया है, तौभी शिखण्डी तथा अपने विषयमें कुछ भय मत करो, मैं कृपा करके तुम लोगोंके विषय पूर्णरीतिसे उपायका विधान करूंगा। परन्तु हे सुन्दरि। राजा दशार्णराजके सङ्ग मैंने प्रवचना की है, उस विषयमें किस प्रकारसे हित साधनके निमित्त कार्यका विधान करूं, उसे तुम वर्णन करो।

पाञ्चालराज द्रुपदने जान बूझकर भी केवल दूसरेके निकट अपनी निर्दोषिता प्रकट करनेके निमित्त प्रकाशित भावसे अपनी भार्यासे पूछा। और उसने भी नीचे कहे हुए वचनोंसे उत्तर दिया।

१६२ अध्याय समाप्त ।

भीष्म बोले, हे प्रजानाथ। अनन्तर शिखण्डिनीकी माताने अपने पति राजा द्रुपदसे कन्या शिखण्डिनीका यथार्थ वृत्तान्त वर्णन किया, उसने कहा, महाराज। मेरे पुत्र न रहनेसे सौत लोगोंके भयसे युक्त होकर मैंने इस कन्याके उत्पन्न होनेपर पुत्र कहके तुम्हारे समीप वर्णन किया था, तुमने भी मेरी प्रीतिके निमित्त उस वचनकी पोषकता की थी, और कन्याका पुत्रके समान जातिकर्म सत्कार

कराया। फिर तुमने दशार्णराजकी कन्याके सङ्ग इनका विवाह भी किया,—और मैंने भी वचनसे उसके निमित्त परिपोषकता की थी। हे राजन्। “कन्या उत्पन्न होकर पुरुष हो जावेगी” महादेवके वचनोंका ऐसा अर्थ जान कर ही मैंने इस विषयमें उपेक्षा की थी।

हे भारत। यह वचन सुनकर यज्ञसेन द्रुपदराज मन्त्रियोंसे सम्पूर्ण विषय वर्णन करके प्रजाके रक्षाके निमित्त यथा उचित विचार करने लगे। उन्होंने पूरी रीतिसे प्रतारणा करके भी “मैंने यथार्थ सम्बन्ध ही किया है” ऐसा ही निश्चय करके कार्यके विषयमें विचार करने लगे। हे राजेन्द्र। उनका नगर स्वभाविक ही रक्षित था, उस पर भी आपदकालके उपस्थित होनेपर उन्होंने सब सातिसे नगरको अजङ्गुत करके उसकी दृढ़ रक्षाका विधान किया। हे भरतर्षभ। दशार्णपतिके सङ्ग विरोध होनेके निमित्त पाञ्चालराज भार्याके सहित अत्यन्त ही पीड़ित हुए। वैवाहिक सम्बन्धीके सङ्ग जिस प्रकारसे मेरा यह महाविग्रह उपस्थित न होवे, उस हीकी चिन्ता करके उस समयमें वह देवताओंकी पूजा करने लगे। तब राजा द्रुपदकी प्यारी रानी उनकी इस प्रकारसे देव-परायण और पूजामे उत्थार देखकर यह वचन बोली, हे महाराज। देवताओंकी आराधना सदा ही कल्याण करनेवाली है, ऐसा साधु-पुरुषोंका मत है। जो पुरुष दुःखरूपी समुद्रमें डूब रहा है, उसके निमित्त क्या कहना है ? इससे तुम दशार्णराजके शान्त होनेके निमित्त देवताओंकी आराधना करो, ब्राह्मणोंका सम्मान तथा वहुतसी दक्षिणा प्रदान करके देवताओंकी पूजा और अग्निमें हविष करो। हे स्वामी। जिससे बिना युद्धके किये हो शान्ति हावे, तुम सब ही मन उसहीका विचार करो। देवताओंका सन्तुष्ट करनेसे सब कुछ हा सकता है।

हे प्रजानाथ । नगरकी रक्षाके निमित्त तुमने मन्त्रियोंके सङ्ग जैसा विचार किया है, उसका भी पूर्ण रीतिसे अनुष्ठान करो । क्योंकि पुरुषार्थ युक्त होनेहीसे देवो प्रारब्ध पूर्णरूपसे सिद्ध होता है, दोनोंके परस्पर विरोध होनेसे कार्य सिद्ध नहीं होता । इससे हे राजेन्द्र । मन्त्रियोंके सङ्ग मिलकर नगरकी रक्षाका उपाय करके इच्छानुसार देवताओंकी आराधना कोजिये । उस समयमें वह लोग शोकसे युक्त होकर ऐसी ही बातचीत करते थे ; यह देखकर तपस्विनी कन्या शिखण्डिनो अत्यन्त लज्जित हुई । अनन्तर उसने जब जाना कि ये लोग “मेरे ही निमित्त दुःखित हुए हैं,” तब चिन्ता करके अपना प्राण नाश करनेका सङ्कल्प किया । हे राजन् । शिखण्डिनी ऐसा निश्चय करके अत्यन्त दुःखित होकर वर त्यागकर निर्जन घने वनमें चली गई । यह वन स्थूणाकर्ण नामके एक महाबलवान् यक्षसे रक्षित था, उसको भयसे मनुष्य सात वहाँ नहीं जाते थे । पह्वापर स्थूणाकर्णका एक जंघा मन्दिर था और तोरणयुक्त चूना और खंख मृत्तिकासे पोता हुआ शीतल मन्द सुगन्ध वायुसे युक्त उसका अत्यन्त सुन्दर निवास-स्थान था । द्रुपदपुत्री शिखण्डिनी उसी स्थानमें प्रवेश करके आहार त्यागकर अपना शरीर सुखाने लगी, तब स्थूणाकर्ण दया करके उसे दर्शन देकर बोला, कि किम कारणसे तुम ऐसा व्रत करती हो ? सुभसे कहो, मैं शोध ही उसे पूर्ण करूँगा । तब शिखण्डिनी बार बार उससे कहने लगी “वह असाध्य कार्य है, तुम उससे पूर्ण न कर सकागि ।” उसकी बात सुनकर यक्ष बोला,—मैं अवश्य पूर्ण करूँगा । हे राजपुत्री ! मैं कुविरका सेवक हूँ, इससे वर दान करनेमें भी समर्थ हूँ, तुम्हारी जैसी इच्छा होवे, वह सुभसे कहो, मैं न देने योग्य वस्तु होने पर भी तुमको

अवश्य दूँगा । हे भारत । तब शिखण्डोने उस यक्षोंमें प्रधान स्थूणाकर्णके समीप आदिसे अन्ततक सम्पूर्ण वृत्तान्त वर्णन किया । शिखण्डोने कहा, हे यक्ष । मेरे पुत्रहीन पिता शोध ही सारे जावेगी, क्योंकि दशर्णराजने क्रोधमें पूर्ण होकर उनके ऊपर युद्धके निमित्त चढ़ाई करनेका उद्योग किया है । वह हिरण्यवर्मा महाबल और उत्साहसे युक्त है, हे यक्ष । इससे तुम मेरी और मेरे माता पिताकी रक्षा करो । हे पापरहित ! तुमने मेरे दुःखको दूर करनेकी प्रतिज्ञा की है, इससे तुम्हारी कृपासे जिस प्रकारसे मैं पुरुष होसकूँ,—उसी उपायकी करो । हे सहायक ! जब तक राजा हिरण्यवर्मा मेरे नगरमें नहीं आता है, उतने ही समयके भीतर सुभका ऐसा वर प्रदान करो ।

१ ६३ प्र पाय समाप्त ।

भोष्म बाली, हे भरतर्षभ ! अनन्तर वह यक्ष शिखण्डोके वचन सुनकर देवो सयागके वशमें जाकर मन हो मन चिन्ता करके बाला हे भर्तृ । मैं अवश्य ही तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करूँगा, परन्तु जिस प्रकारका नियम करता हूँ, उसका तुम सुना । कुछ समयके निमित्त मैं अपना यह पुरुषाचक्र तुमका देता हूँ ; फिर निश्चित समयपर तुम्हें मेरे निकटमें आना पड़गा, तुम सुभसे सत्य वचन कहा, मैं सङ्कल्प सिद्ध कामचारी खेचर हूँ, जा इच्छा करूँ, वही कर सकता हूँ, इससे तुम मेरे प्रसादसे नगरका और बन्धुबान्धवाका सम्पूर्ण रूपसे पारव्राण करा । हे राजपुत्री ! मैं तुम्हारा यह स्त्री चिह्न धारण करूँगा, तुम मेरे निकट आनेके निमित्त सत्य प्रतिज्ञा करो, मैं अवश्य ही तुम्हारा प्रिय-कार्य साधन करूँगा । हे कौरव ! यक्षने जा

यह वचन कहा, वस मेरे दुःखके निमित्त यही होनहार था, जो ही, शिखण्डीने यह वचन सुनकर कहा, हे भगवन् ! मैं तुम्हारा पुरुष-चिह्न फिर प्रदान करूंगी। हे यक्ष ! तुम थोड़े समयके निमित्त स्त्रीभाव धारण करो। दशार्णराज हिरण्यवर्माके लौट जानेपर मैं कन्या हो जाऊंगी और तुम भी पुरुष बन जाओगे।

भीष्म बोले, हे राजन् ! ऐसा कह कर उन दोनोंने शपथ पूर्वक प्रतिज्ञा की और आपसमें लिङ्गको अदल बदल कर लिया। स्थूणकरणने स्त्रीलिङ्ग धारण किया और शिखण्डीने उस पकाशमान यक्षरूपको प्राप्त होकर प्रसन्न चित्तसे नगरमें प्रवेश करके पिताके निकट जाकर जो कुछ वृत्तान्त हुआ था, सब वर्णन किया तब राजा द्रुपद उसका वह वृत्तान्त सुनकर अत्यन्त हर्षित हुए और भाय्याके सहित महादेवजीका वचन स्मरण किया। अनन्तर उन्होंने दशार्णराजके निकट यह सम्वाद भेज दिया, कि मेरा यह पुत्र यथार्थसे पुरुष ही है तुम मेरे वचनका विश्वास करो। उस समय राजा हिरण्यवर्माने भी दुःख और शोकसे युक्त होकर सहसा पाञ्चाल राजके विरुद्ध गमन किया। अनन्तर दशार्णराज हिरण्यवर्माने काम्पिल्य नगरके निकट जाकर शास्त्र जाननेवाले एक ब्राह्मणको अपना दूत बनाकर द्रुपदके समीपमें भेजा; हिरण्यवर्माने उस दूतसे कहा हे दूत ! तुम मेरे वचनसे उस अधम राजा द्रुपदसे यह कहना कि रे नीचबुद्धि ! तूने जा अपना कन्याके सङ्ग मेरी कन्याका विवाह किया है, उस गर्वका फल शीघ्र भोग करेगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

हे राजसत्तम ! उनका यह वचन सुनकर वह पुरोहित-ब्राह्मण दशार्णराजका दूत होकर द्रुपद राजके नगरको और गमन किया और शीघ्र ही राजा द्रुपदकी नगरीमें पहुँचे, तब पाञ्चाल-

राज द्रुपदने शिखण्डीके सहित गौ और अश्व आदि यथा उचित सत्कार प्रदान किया; परन्तु उसका ग्रहण न करके वीरवर राजा हिरण्यवर्माके कहे हुए वचनोंका अनुवाद करके कहने लगे, रे नृपाधम ! तूने जा कन्याके सङ्ग मेरी कन्याका विवाह करके मुझे ठगा है, उस पाप-कर्मका फल शीघ्र पावेगा। नीच-बुद्धिवाले ! रणभूमिमें आकर मेरे सङ्ग युद्ध कर। मैं तुम्हें सेवक, पुत्र और वन्धु-बान्धवोंके सहित शीघ्र ही नाशकर दूंगा। हे भरतव्रद्ध ! राजा द्रुपद मन्त्रियोंके बीचमें दशार्ण-राजके ऐसे तिरस्कार-युक्त वचन सुनकर प्रीति और विनय पूर्वक यह वचन बोले, हे ब्राह्मण ! वैवाहिक सम्बन्धी हिरण्यवर्माके वचनके अनुसार तुमने मुझसे जा कुछ कहा है, मेरा दूत राजाके समीप जाकर उसका यथार्थ उत्तर देगा। अनन्तर द्रुपदने भी हिरण्यवर्माके निकट एक वेद जाननेवाले ब्राह्मणको दूत बनाकर भेजा। वह ब्राह्मण दशार्ण-राज हिरण्यवर्माके निकट जाकर राजा द्रुपदने जा कुछ कहा था, उन्होंने वचनोंको राजा हिरण्यवर्मासे कहने लगा, आप साची आदिसे परीक्षा कीजिये, मेरा यह पुत्र यथार्थमें कुमार ही है, तुमसे न जाने किसने मिथ्या वचन कहा था, उन वचनों पर विश्वास करना उचित नहीं है। अनन्तर राजा हिरण्यवर्माने द्रुपदके उस वचनका सुनकर हर्ष-विरादसे युक्त हो, शिखण्डी स्त्री है, वा पुरुष, इस बातका जाननेक निमित्त अत्यन्त सुन्दरो उत्तम वारङ्गना-आका भेजा। उन्होंने भी यथार्थ वृत्तान्त जान कर शिखण्डी अत्यन्त उत्तम पुरुष है, यह सम्पूर्ण समाचार दशार्णराज हिरण्यवर्माके समीप जाकर वर्णन किया। तब वह राजा साक्षियोंके वचन सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और अपने सम्बन्धी द्रुपदके सङ्ग-मेल कर आनन्द पूर्वक एकत्र सहवास किया, हे राजन् !

हिरण्यवर्माने अत्यन्त आनन्दित होके
 कीकी बद्धतसा धन, हाथो, घीड़े, गज आदि
 दान किया और पत्तमें पूजित होकर
 कन्याकी निन्दा करके निज नगरको
 छोड़े राजन् । हिरण्यवर्माको क्रोध रहित
 होकर निज देशकी ओर लौटता
 देखकर शिखण्डिनी अत्यन्त ही प्रसन्न
 कुछ समयके अनन्तर धनके स्वामी यक्षोंके
 कुवेर-लोकमें भ्रमण करते हुए स्थूणाकर्ण
 के समीप आये, उन्होंने स्थूणाकर्णके
 पर खड़े होकर देखा, कि वह बद्धत
 निवास स्थान है । विचित्र माला और
 पाँके समान प्रकाशित है, अनेक सुगन्धित
 गी और ध्वजा पतकासे युक्त, मांसआदि
 दान की सामग्रियोंसे पूरित था । यक्षराज-
 ने सुन्दर मणि रत्न और सुवर्णसे पूर्ण
 पुष्प और सुगन्धित वस्तुओंसे युक्त उस
 भवनको देखकर अपने सेवक यक्षोंसे
 हे अत्यन्त पराक्रमी यक्ष लागा । स्थूणा-
 के इस मन्दिरको मैं खूब ही अलङ्कृत देखता
 परन्तु वह मन्दबुद्धि अभीतक मेरे समीप
 नहीं आया । वह दुष्ट जब जान बूझके भी
 निकट नहीं आता है, तब उसके ऊपर
 दण्डका विधान करना ही उत्तम बोध
 है । यक्ष लोग बोले, हे राजन् । दुपद-
 के शिखण्डिनी नामको एक कन्या उत्पन्न
 थी, स्थूणाकर्णने किसी कारणके उप-
 में अपना पुस्र-लक्षण उसे अर्पण किया
 और स्वयं स्त्री-चिह्न ग्रहण करके स्त्री होकर
 बैठा है । इससे स्त्री-भावसे युक्त
 के कारण लज्जासे आपके समीप नहीं
 आता है । अब आपका इस विषयसे जो करना
 वह कीजिये; विमान यहा ही रहै ।
 वचन सुनकर यक्षोंके स्वामी कुवेर
 बार कहने लग, स्थूणाकर्णको शीघ्र यहा
 लाओ । मैं यथा उचितसे दण्ड दूंगा । हे

राजन् । वह स्त्रीरूपधारी स्थूणाकर्ण स्वामीकी
 आज्ञा सुनकर उनके समीप आकर लज्जापूर्वक
 खड़ा हुआ । तब धनके स्वामी यक्षराज कुवेर
 अत्यन्त क्रुद्ध होकर बोले, “हे यक्षवृन्द ! यह
 पापी इसी प्रकारसे स्त्री हो बना रहै”, ऐसा
 कहके उसे शाप दिया । फिर बोले, रे पापी !
 तूने यक्षोंकी अवमानना करके शिखण्डिनीकी
 अपना पुस्र लक्षण अर्पण किया और उसका
 स्त्रीचिह्न तूने धारण किया है, इससे रे पापी ।
 जो तूने ऐसा अयुक्त कर्मका अनुष्ठान किया
 है, इसी निमित्त आजसे तू स्त्री ही रहेगा । हे
 तात ! अनन्तर यक्ष लोग “शापसे मुक्त कीजिये”
 बार बार ऐसा वचन कहकर स्थूणाकर्णके
 निमित्त कुवेरसे प्रार्थना करने लगे । तब महा-
 त्मा यक्षराज कुवेर शापसे मुक्त करनेके निमित्त
 अभिलाषी होकर सेवकोंसे यह वचन बोले,
 हे यक्षवृन्द ! शिखण्डिनीके मरने पर स्थूणाकर्ण
 फिर अपने स्वरूपको पावेगा, इससे यह महा-
 त्मा यक्ष धीरज धारण करे । ऐसा वचन कह
 कर भगवान् कुवेर पूजित होकर सेवकोंके
 सहित अपने स्थान पर गये और स्थूणाकर्ण
 शाप ग्रस्त होकर वहापर निवास करने
 लगा ।

अनन्तर शिखण्डिनी यथा समयमें उस यक्षके
 निकट गमन किया और उसके सम्मुख जाकर
 यह वचन कहा हे भगवन् । मैं आया हूँ, तब
 स्थूणाकर्ण “मैं प्रसन्न हुआ” बार बार यही
 वचन कहने लगा । हे भारत ! वह यक्ष राज-
 पुत्र शिखण्डिनीकी सरलभावसे आया हुआ देख-
 कर जो कुछ वृत्तान्त हुआ था, सब वर्णन
 किया । वह बोला, हे राजपुत्र ! मैं तुम्हारे
 निमित्त कुवेरसे शाप पा चुका हूँ, अब तुम
 जाओ इच्छानुसार सुखपूर्वक लोकमें आनन्द
 करो; तुम्हारा यहापर आना और यक्षराज
 कुवेरका दर्शन दोनों हीकी मैं पूर्ण जन्मको दैवी
 घटना समझता हूँ, किसी प्रकारसे भी

इसे अतिक्रम करनेकी किसीको भी सामर्थ्य नहीं है ।

भीष्म बोले, हे भारत । शिखण्डीने स्वर्गाकर्णका वचन सुनकर अत्यन्त हर्षित हो, नगरमें लौटकर महामृत्यु अनेक सुगन्धित माला तथा धनसे ब्राह्मण, देवता गज वृक्ष आदिकी पूजा की । हे भारत ! राजा द्रुपद निज पुत्र शिखण्डी और बन्धु-बान्धवोंके सहित वृद्ध हो आनन्दित हुए । अनन्तर उन्होंने स्त्रीसे पुरुष हुए पुत्रको धनुष विद्या सिखानेके निमित्त द्रोणाचार्यके हाथमें समर्पण किया । हे महाराज ! धृष्टद्युम्न और शिखण्डीने तुम लोगोंके सङ्ग चारों पादसे युक्त धनुष विद्या सीखी है । हे तात ! मैंने द्रुपदके यहाँ जो जड़ अश्व और वधिर आकारके सब गुप्त चरीको नियुक्त किया था उन्होंने मुझे यह यथार्थ वृत्तान्त सुनाया था । हे पुरुष अष्ट ! द्रुपदपुत्र रथ सत्तम शिखण्डी इसी प्रकारसे स्त्री होकर फिर पुरुष हुआ है । अन्वा नामकी काशिराजकी बड़ी कन्या राजा द्रुपदके कुलमें जन्म लेकर शिखण्डी हुई है । हे भरतर्षभ ! हाथमें धनुष लेकर युद्धके निमित्त शिखण्डीके सम्मुख उपस्थित होने पर भी मैं उसकी ओर चणमात्र न देखूंगा और न उसके ऊपर प्रहार ही करूंगा । पृथ्वीके बीच मेरा यह सदासे व्रत प्रसिद्ध है, कि मैं स्त्री, अथवा स्त्री-पूर्वक स्त्री स्वरूप वा स्त्रीनामधारी पुरुषके ऊपर शस्त्र नहीं चलाता हूँ । हे कौरवबन्धन ! इससे मैं इस ही कारणसे शिखण्डीका बध नहीं करूंगा । हे तात ! मैं इस शिखण्डीके जन्म-वृत्तान्तका जान लिया है, इससे युद्धमें आततायी हानिपर भी उसका बध न करूंगा । भीष्म याद स्त्री हत्या कर, ता अवश्य ही साधु पुरुषोंमें निन्दनीय होगा, इससे मैं उसे युद्धमें सम्मुख खड़ा हुआ देख करके भी न माखूंगा ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तब राजा दुर्योधन

धन यह वचन सुनकर एक मूर्खत्वं भर चिन्ता करके भीष्मके पक्षमें इसे उत्तम बोध किया ।

१८४ अध्याय समाप्त ।

सञ्जय बोले, हे राजन् ! रातकी बीतने पर तुम्हारे पुत्रोंने फिर सेनाके बीचमें भीष्म पितामहसे पूछा, हे गद्गानन्दन ! युधिष्ठिर यह अनेक पैदल सेना, हाथी घोड़ोंसे युक्त महारथ योद्धा धृष्टद्युम्न, भीष्म, अर्जुन आ धनुधारी महाबलसे युक्त लोकपालके समान महारथ वीरोंसे रक्षित, अत्यन्त बलवान् निवारण न होने योग्य, महासमुद्रके समान देवताओंसे भी शीघ्र न जीतने योग्य,—यह अपार सेनासागर युद्धके निमित्त तैयार है तुम कितने समयमें उसका नाश कर हो ? महा धनुर्धारी आचार्य महाबलवान् कृपाचार्य, युद्धमें प्रसन्नित कर्ण और विजयशर अश्वत्थामा,—ये लोग हो कितने दिनोंमें शत्रु सेनाका नाश कर सकते हैं ? क्योंकि मेरी सेनामें आप लोग सब हो दिव्य अस्त्रोंके जानने वाले हैं । हे महाबाहो ! मैं इसे जाननेकी इच्छा करता हूँ, यह परम कुतूहल मेरे हृदयमें उत्पन्न हुआ है, इससे आप लोग इस विषयकी वर्णन कोजिये !

भीष्म बोले, हे कुरुअष्ट ! तुम जो इस समय शत्रुओंके बलावलका जाननेकी इच्छा करते हो, यह तुम्हारे योग्य ही प्रश्न है । हे महाबाहो ! युद्धमें मेरी जितनी शक्ति, शस्त्रका पराक्रम, बाहुबल हो सकता है, उसे तुम सुना । हे राजन् ! युद्धधर्मका यहाँ सिद्धान्त है, कि सधारण लोगोंके सङ्ग सरल युद्ध और सायावोरके सङ्ग मया-युद्ध ही करना उचित है । हे महाभाग ! मैं प्रातादन दश हजार याज्ञा और एक हजार रथी इस प्रकारसे पाण्डवोंकी सेनाका भाग कल्पित करके नाश कर सकता हूँ । हे भारत ! मैं सावधान

उद्यमशील होकर इसी प्रकारसे अश-
समयके अनुसार उस महा सेनाके नाश
। समर्थ हूँ । अथवा युद्धमें स्थित होकर
तो तथा सहस्र पुरुषोंके मारनेवाले
हो यदि चलाऊँ तो एक महीनेमें पाण्ड-
सम्पूर्ण सेनाका नाश कर सकता हूँ ।

जुय बोले, हे राजेन्द्र ! राजा दुर्योधनने
को वचन सुनकर फिर भारद्वाज-ग्रंथ
शार्थसे भी यह प्रश्न किया, कि हे गुरुदेव ।
कितने दिनोंमें युधिष्ठिरकी सेनाका नाश
करते हो ? तब द्रोणाचार्य हंसकर उनसे
वचन बोले, हे महाबाहो ! मैं अब बूढ़
हूँ इससे मेरी चेष्टा और तेज भी कम
है, तौभी मुझे बोध होता है, कि
पत्र भीष्मकी भाँति मैंभी एक महीनेमें
गुप्तोंकी अग्निसे पाण्डवोंकी सेना भस्म
करता हूँ, यही मेरी परम शक्ति तथा
बल है । अनन्तर कृपाचार्यने दो मही-
नेअश्वत्थामा दश रात और महाअस्त्रोंके
ली कर्णने पाँच दिनोंमें पाण्डवोंके
नाश करनेकी प्रतिज्ञा की । सूतपत्र
वचन सुनकर गङ्गानन्दन भीष्म ऊँचे-
हँसने लगे और यह वचन बोले, हे
तुम जबतक रूपायामें शङ्ख और शरा-
ओ कृष्णके सहित रथपर चढ़े हुए युद्धमें
समूख नहीं पहुँचते हो तभीतक
ममते हूँ, ऐसा क्या तुम अपने दृष्टाकी
इससे भी अधिक कह सकते हो ।

१६५ अध्याय समाप्त ।

शम्पायन मुनि बोले, हे भरतग्रंथ ।
यह वृत्तान्त सुनकर सब भाद्योंकी
स्थानमें बुलाकर उनसे यह वचन
आदगण ! मैंने जो दुर्योधनकी सेनामें
नि चारोंकी नियुक्त किया था उन

लोगोंने आज प्रातःकाल मुझे यह समाद
दिया है, कि दुर्योधनने महाव्रत गङ्गानन्दन
भीष्मसे पूछा था, “आप लोग कितने समयमें
पाण्डवोंकी सेनाका नाश कर सकेंगे ?” उस
बातकी सुनकर भीष्मने उस नीचबुद्धिसे कहा है
“एक महीनेमें” और द्रोणाचार्यने भी उतने ही
समयमें मेरी सेनाके नाश करनेकी प्रतिज्ञा
की है । मैंने सुना है, कृपाचार्य दो-मास
और महाअस्त्रोंके जाननेवाले अश्वत्थामाने
दश रात्रिमें मेरी सेनाको नष्ट करनेकी प्रतिज्ञा
की है दिव्यअस्त्रोंके जाननेवाले कर्णने कौरवों-
के बीच पूरे जानेपर पाँच दिनोंके बीच मेरी
सेनाके नाश करनेकी प्रतिज्ञा की है । हे
अर्जुन ! इससे मैं भी तुम्हारा वचन सुननेकी
इच्छा करता हूँ, हे फाल्गुन ! तुम कितने
समयमें शत्रुओंकी सेनाका संहार कर सकते
हो ? अर्जुन युधिष्ठिरका यह वचन सुन कृष्णके
मुँहकी ओर देखकर यह वचन बोले, हे
महाराज ! ये लोग सबही महात्मा कृतास्त्र
और महावीर योद्धा हैं, इससे अवश्य ही तुम्हारी
सेनाका नाश कर सकते हैं ; इसमें कुछ
भी सन्देह नहीं है । परन्तु आप अपने
मनसे यह दुःख दूर कीजिये, मैं सत्य
कहता हूँ श्रीकृष्णकी सहायतासे एक-रथसे
निमेष मात्रमें मैं भूत, वर्तमान, भविष्य स्थावर
जड़मात्मक सम्पूर्ण प्राणियों, यद्वातक कि
देवताओंके सहित तीनों लोकका भी संहार कर
सकता हूँ । किरातीय इन्द्र-युद्धमें भगवान्
महादेवने मुझे जो यह अत्यन्त घोर महाअस्त्र
प्रदान किया था, वह मेरे निकट विद्यमान है ।
हे पुरुषसिंह ! प्रलयकालके समय सब प्राणि-
योंके संहारके निमित्त भगवान् रुद्र इस महा-
अस्त्रको चलाते हैं । वही यह महाअस्त्र मेरे
समीपमें वर्तमान है, सूतपत्र उसे क्या
जानेगा । भीष्म, द्रोण कृपाचार्य और अश्व-
त्थामा भी उस महा अस्त्रकी नहीं जानते हैं ।

परन्तु दिव्य-अस्त्रोंसे साधारण लोगोंको युद्धमें मारना उचित नहीं है : इस कारणसे मैं सरल-युद्धहीसे शत्रुओंको पराजित करूँगा ; और यह जो सब पुरुषसिंह तुम्हारे सहाय हैं, ये सब ही दिव्य अस्त्रोंके जाननेवाले तथा सब ही युद्धको चाहनेवाले हैं । दारुपरिशुद्धके साथही साथ सब यज्ञस्नात हुए हैं, हे राजन् ! ये अपराजित महारथ लोग युद्धमें देवताओंकी सेनाको भी नष्ट कर सकते हैं । शिखण्डी, युयुधान, धृष्टद्युम्न, भीमसेन, नकुल, सहदेव, युधामन्यु, उत्तमौजा, भीष्म-द्रोणके समान बूढ़े विराट और द्रुपद, महाबाहु शख, महाबल घटात्कच, इसका पुत्र महाबली पराक्रमो अञ्जनपर्वा, युद्धके कार्यको जाननेवाला महाबाहु सात्यकी, बलवान् अभिमन्यु, द्रौपदीके पाचो पुत्र,—ये सम्पूर्ण महारथ वीर तुम्हारे सहाय हैं । हे पाण्डव ! तुम भी तोनों लोकोंके नाश करनेमें समर्थ हो । हे वासवकल्प ! मैं इस बातको निश्चय जानता हूँ, कि तुम क्राधपूर्वक जिस पुरुषको ओर देखोगे वह क्षणभर भी जीवित नहीं रह सकता है ।

१६६ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बाले, अनन्तर भली भाँतिसे स्वेरा, हानपर दुर्योधनके सब राजा लोगोंने स्नान करके पाँव धो, सफेद-वस्त्र और साला पहन कर अस्त्र-शस्त्र ध्वजा आदि ग्रहण करके होम और स्वस्तिवाचनके अनन्तर पाण्डवोंसे युद्ध करनेके निमित्त यात्रा की । वह सब लाग ब्रह्मज्ञ, उत्तम-चरित और व्रत करनेवाले, पराक्रमी, अभीष्टके सिद्ध करनेवाले और युद्ध-विद्याके जाननेवाले थे । वह महाबलवान् क्षत्रिय लाग सब ही आपसमें अज्ञापूर्वक एकाग्रचित्त होकर युद्धमें परम लोकोंके जीतनेको अभिलाषसे प्रास्थित हुए । पहिले अवन्ती-देशमें विन्द

वाल्हिकके सहित केकय देशके वीर योद्धा द्रोणाचार्यकी आगे करके चले ; उसके अनन्तर अश्वत्थामा, भीष्म, जयद्रथ, गान्धारराज शकुनि, दक्षिणात्य, प्रतीच, प्राच्य, औदोच्य, पर्वतीय राजा लोग और शक, किरात, यवन, शिवि और वशात आदि सब महारथ राजाओंने अपनी अपनी सेनासे युक्त होकर इसरी सेनाकी अंगीसे युद्धके निमित्त चले । उसके अनन्तर सेनाके सहित कृतवर्मा महाराज त्रिगर्त, भयोंके सहित राजा दुर्योधन, शल, भूरिशल्य, और कौशलराज वृहदल ;—ये लंघार्त्तराष्ट्रकी आगे करके सब पीछे चले हैं भारत । वह महाभाग धार्तराष्ट्र लंघा तथा न्यायसे मिलकर कुरुक्षेत्रके पीछे अर्द्धभागमें स्थित होकर युद्धके निमित्त सज खड़े हुए । दुर्योधनने अपने शिविरकी दूसरी हस्तिनापुरके समान अलंकृत कराया । राजन् । नगरवासी निपण मनुष्य लोग नगर और शिविरमें कुछ भी प्रभेद न कर सकें प्रजानाथ कौरवराजने दूसरे राजाओंके भी वैसे ही सेकड़ों सहस्रो दुर्गम-शिविर निर्माण कराये । हे राजन् ! उस रणभूमिके पांच-योजनके परिमाण परिधि युक्त स्थानको व्याप्त करके वह सब सहस्र सहस्र राजाओंकी सेना इकट्ठी हुई । वहापर उन सब राजा लोगोंने उत्साह और बलके अनुसार बहूतसी सारथियोंसे युक्त अनेक शिविर तयार कराया । राजा दुर्योधनने उन सब हाथी, घोड़े, पैदल और वाहनोसे युक्त महात्मा राजाओंके भय, भय के निमित्त उत्तम प्रकारसे व्यवस्था कर दी । इसके अतिरिक्त वहापर जाँ सब शिल्पियों, मागध, स्तुतिपाठ करनेवाली, वणिक्, वैद्य, दूत और युद्धके देखनेवाले पुरुष आदि दूत और युद्धके देखनेवाले पुरुष आदि कौरवराज दुर्योधनने उन लोगोंके निमित्त विधिपूर्वक प्रवृत्त किया ।

अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे भारत । धर्म-
पुत्र राजा युधिष्ठिरने भी उसी प्रकारसे धृष्ट-
द्युम्न आदि वीरोंको तैयार होनेके निमित्त
आज्ञा दी । चेदि काशिराज और कुरुषगणोंके
नाश करनेवाले, सेनापति धृष्टकेतु विराट,
द्रुपद युयुधान, शिखण्डी, महाधनुर्धारी
पाञ्चालनन्दन युधामन्यु, और उत्तमौजा आदि
सबने उनकी आज्ञाका पालन किया । वह
सब महारथ शूरवीर विचित्र कवच और
सुवर्ण कुण्डलधारी अग्निके स्थानपर रहनेवाले,
घृतसे युक्त प्रज्ज्वलित अग्नि अथवा प्रकाशमान
ग्रहपुञ्जोंको भाति शोभित होने लगे । अनन्तर
पुरुषश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर सम्पूर्ण सेनाके वीरोंकी
था उचितसे पूजा करके युद्धके निमित्त
मन करनेकी आज्ञा दी ; उन घोड़े हाथी,
दल और वाहनोंसे युक्त महात्मा राजाओं तथा
शस्त्री लोगोंके उत्तम भक्षण और भोजनकी
व्यवस्था की । पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरने पहिले
धृष्टद्युम्नको आगे करके अभिमन्यु बृहन्त और
दौपदीके पुत्रोंको उनके सङ्ग भेजा । फिर
भीम, युयुधान, और अर्जुनकी दूसरी सेनाके
विभागमें नियुक्त किया । वहापर घोड़ोंकी
पुष्पोंसे भूषित करनेमें तत्पर इधर उधर
भूमनवाले, दोड़नेवाले, प्रसन्न चित्तसे सब योद्धा
ओंके कीलाहलका शब्द मानो आकाशकी
लहर करने लगा । महाराज युधिष्ठिरने अन्तमें
विराट, द्रुपद और दूसरे राजाओंके सङ्ग स्वयं
प्रस्थान किया । आगे निश्चल रहकर पीछेसे
चलातो हुई अथात् जलसे युक्त गङ्गाकी तरङ्गका
वैग जिस प्रकारसे दोख पड़ता है, धृष्टद्युम्नसे
रक्षित पाण्डवोंकी सेना भी उसी भातिसे
खिंचने लगी । अनन्तर बुद्धिमान् युधिष्ठिर धृष्ट-
द्विपुत्रोंको बुद्धिमें मग्न उत्पन्न करनेके निमित्त
पर दूसरी भातिसे सेनाको सजाके चलने लगा
! धनुर्धारी दौपदीपुत्र, अभिमन्यु, नकुल, सह-
! और सम्पूर्ण प्रभद्रक वीर-योद्धा, दश

हजार घोड़े दो हजार हाथी, अयुत पैदल और
पांच सौ रथ, बलवान् सेना भीमसेनसे रक्षित
होकर चले, इस प्रकारसे आदेश किया ।
बीचको सेनामें विराट, जयत्सेन, और गदा
धनुष धारण करनेवाले, पराक्रमी महारथ
महात्मा पाञ्चालनन्दन युधामन्यु और उत्त-
मौजाको नियुक्त किया । उस समयमें कृष्ण-
अर्जुन भी मध्यभागमें होकर चले । वहापर
अत्यन्त ही उत्साहसे युक्त कृतयुद्ध सैनिक पुष्प
थे ; उन लोगोंके सङ्ग बीस हजार घोड़े, पांच
हजार हाथी, और रथोंका समूह था और
आगे तथा पीछे धनुष, तरवार गदा ग्रहण
करनेवाले पैदल वीर योद्धा थे, जिस सेनाके
समूहमें महाराज युधिष्ठिर स्वयं विराजमान
थे, उसमें अनेक राजा लोग विद्यमान थे । हे
भारत ! उसमें कई हजार हाथी, कई अयुत
घोड़े, कई हजार रथ और पैदल योद्धा थे।
अपनी बृहत्तरी सेनाके सहित चेकितान और
चेदिगणके स्वामी राजा धृष्टकेतु चले । वृष्णि
वंशियोंमें श्रेष्ठ महाधनुर्धारी प्रधान रथी बल-
शाली सात्यकी सौ हजार रथोंसे युक्त होकर
सेनाको चलाया, और रथमें स्थित पुरुषश्रेष्ठ
क्षत्रदेव और ब्रह्मदेव पृष्ठ-रक्षा करते हुए सबके
पीछे चलने लगे । इसके अतिरिक्त गाड़ी,
कुकड़े, युद्धके उपयुक्त सवारी और साधारण
वाहन सब पीछे चलने लगे । राजा युधिष्ठिर
सहस्रों हाथी, लक्षों घोड़े, सम्पूर्ण बालक, स्त्री,
कृशित, और दुर्बल सेना, धनके होनेवाले
घोड़े, अन्नका कोप, हाथियोंकी सेना और सब
सामग्री संग्रह करके धीरे धीरे चलने लगे ।
सत्य सङ्कल्प करनेवाले, युद्धदुर्भेद सौचित्ति,
श्रेणिमान्, वसुदान, काशिराजपुत्र विभु और
उन लोगोंके अनुयायी बीस हजार रथ, किङ्कि-
णियुक्त दश करोड़ घोड़े और सुन्दर श्वेत
दातोसे युक्त, युद्ध करनेवाले, उत्तम कुलमें
उत्पन्न हुए, मतवारे काले बादलोंके समान

बीस हजार हाथी उनके पीछे चलने लगे । इसकी अतिरिक्त युधिष्ठिरकी संग्रामकी निमित्त स्थित सात अक्षौहिणी सेनाके बीच घनघटाके समान तथा जोमूतकदम्बके समान मदयावी सत्तर हजार हाथी थे, वह भी सब उनके पीछे चले । हे भारत ! वह बुद्धिमान युधिष्ठिरकी महा भयङ्कर सेना इस प्रकारसे सज्जित होकर चली, उसीके आसरेसे उन्होंने दुर्योधनके सङ्ग युद्ध किया था। ऊपर लिखे

दृष्ट हाथियोंके अतिरिक्त सेकड़ों सहस्रों तथा-
ननों मनुष्य और सहस्रों सेनाके पुरुष गर्जते
दृष्ट पीछे चलने लगे । हे महाराज ! वह सब
सहस्र सहस्र तथा दश दश हजार सैनिक-पुरुष
पूर्ण रीतिसे आनन्दित और प्रसन्नचित्त होकर
वहाँपर सहस्रों भेरी और शंख आदि वाजोंकी
बजाने लगे ।

१६८ अध्याय समाप्त ।

उद्योगपर्व-सम्पूर्ण ।

